Fatawa Razviya With referencing and translation of Arabic phrases Imam Ahmad Raza Bareilvi (may his secret be sanctified) 8 Raza Foundation Jamia Nizamia Razvia Inside Lohari Gate, Lahore, 8 Pakistan (54000)

फ़तावा रज़विया अरबी इबारतों के तख़रीज व तर्जुमा के साथ इमाम अहमद रज़ा बरेलवी (कुद्दिस सिर्रहु) ८ रज़ा फाउंडेशन जामिया निज़ामिया रज़विया अन्दरून लोहारी दरवाज़ा लाहौर, ८ पाकिस्तान (५४०००)

فتاویٰ رضویہ مع تخریج و ترجمہ عربی عبارات امام احمد رضا بریلوی قدس سرہ ۸ رضا فاؤنڈیشن جامعہ نظامیہ رضویہ اندرون لوہاری دروازہ لاہور، ۸ پاکستان (۵۴۰۰۰)

Volume 8

Fatawa Razawiya

Ri'ayat al-Madhhabayn fi al-Du'a bayn al-Khutbatayn (1310 AH) ..... 477 (Statement regarding supplicating between the two sermons) ..... 477 Awfa al-Lum'at fi Adhan Yawm al-Jumu'ah (1320 AH) ..... 498 (Complete guidance regarding the Friday Call to Prayer) ..... 498 Chapter of the Two Eids ..... 510 (Description of the Two Eids) ..... 510 Suroor al-Eid al-Sa'id fi Hill al-Du'a ba'da Salat al-Eid (1329 AH) (Proof of raising hands to supplicate after Eid prayer) ..... 512 Wishah al-Jid fi Tahlil Mu'anaqat al-Eid (1312 AH) ..... 602 (Proof of the permissibility of embracing after Eid prayer) ..... 602 Chapter of Salat al-Istisqa (Prayer for Rain) ..... 641 (Statement regarding the prayer for rain) ..... 641 Sources and References ..... 642 Appendix ..... 666 Sources and References 666

खंड 8

फ़तावा रज़विया

रिआयतुल मज़हबैन फ़िल दुआ बैनुल खुतबतैन (1310 हि.) ..... 477 (दो खुतबों के बीच दुआ करने का वर्णन) ..... 477 औफ़ल लुम'अ फ़ी अज़ान यौमिल जुमुअह (1320 हि.) ..... 498 (जुमा की अज़ान के बारे में पूर्ण मार्गदर्शन) ..... 498 ईदैन का अध्याय (दोनों ईदों का अध्याय) ..... 510 (ईदों का वर्णन) ..... 510 सुरूरुल ईदिस सईद फ़ी हिल्लिद दुआ बाद सलातिल ईद (1329 हि.) (ईद की नमाज़ के बाद हाथ उठाकर दुआ मांगने का प्रमाण) ..... 512 विशहुल जीद फ़ी तहलील मुआनक़तिल ईद (1312 हि.) ..... 602 (ईद की नमाज़ के बाद गले मिलने के जायज़ होने का प्रमाण) ..... 602 सलातुल इस्तिसक़ा का अध्याय (वर्षा की प्रार्थना) ..... 641 (सलातुल इस्तिसक़ा का वर्णन) ..... 641 स्रोत और संदर्भ ..... 642 परिशिष्ट ..... 666 स्रोत और संदर्भ 666

पृष्ठ 675 में से 2

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

رِعایۃ المذہبین فی الدعاء بین الخطبتین ۱۳۱۰ھ 477

(دو خطبوں کے درمیان دُعا کرنے کا بیان) .....

477 اوفی اللمعۃ فی اذان یوم الجمعۃ ۱۳۲۰ھ .....

498 (اذانِ جمعہ کے بارے میں کامل

رہنمائی) ..... 498 باب

العیدین ..... 510 (عیدین

کا بیان) ..... 510 سرور

العید السعید فی حل الدعاء بعد صلوۃ العید ۱۳۲۹ھ (نماز عید کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعاء مانگنے کا

ثبوت) ..... 512 وشاح الجید فی تحلیل معانقۃ العید

۱۳۱۲ھ ..... 602 (نماز عید کے بعد معانقہ کے جائز

ہونے کا ثبوت) ..... 602 باب

الاستسقاء ..... 641 (نمازِ

استسقاء کا بیان) ..... 641 مآخذ

ومراجع 642

ضمیمہ 666

مآخذ ومراجع 666

Fatawa Razawiyya Volume Eight Fatawa Razawiyya With extraction and translation of Arabic passages Imam Ahmed Raza Barelvi (may his secret be sanctified) Raza Foundation Jamia Nizamia Razawiyya Inside Lohari Gate, Lahore No. 8 Pakistan (54000) www.dawateislami.net I.T. Majlis of Dawat-e-Islami Page 1 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवाँ फ़तावा रज़विया अरबी इबारतों के तख़रीज और अनुवाद के साथ इमाम अहमद रज़ा बरेलवी (अल्लाह उनकी रूह को पाकीज़ा रखे) रज़ा फ़ाउंडेशन जामिया निज़ामिया रज़विया अंदरून लोहारी दरवाज़ा, लाहौर नंबर 8 पाकिस्तान (54000) www.dawateislami.net I.T. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी पृष्ठ 1 / 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ مع تخریج و ترجمہ عربی عبارات امام احمد رضا بریلوی قدس سرہ رضا فاؤنڈیشن جامعہ نظامیہ رضویہ اندرون لوہاری دروازہ لاہور نمبر ۸ پاکستان (۵۴۰۰۰) www.dawateislami.net آئی ٹی مجلس دعوت اسلامی صفحہ 1 از 673

Fatawa Razawiyya Volume Eight

"Whomever Allah intends good for, He grants him understanding of the religion." (Hadith)

AL-ATAYA AL-NABAWIYYA FIL FATAWA AL-RAZAWIYYA With citation and translation of Arabic passages

Volume Eight

A grand jurisprudential encyclopedia of the 14th century containing rare research.

Imam Ahmad Raza Barelvi (May Allah sanctify his secret) 1272 AH _ *1340 AH 1856 AD* _ 1921 AD

Raza Foundation, Jamia Nizamia Razawiyya Inside Lohari Gate, Lahore No. (8) Pakistan (54000) 7657314

फ़तावा रज़विया खंड आठ

"जिसके लिए अल्लाह भलाई चाहता है, उसे धर्म की समझ प्रदान करता है।" (हदीस)

अल-अताया अल-नबवियाह फ़िल फ़तावा अर-रज़वियाह अरबी उद्धरणों के सत्यापन और अनुवाद के साथ

खंड आठ

दुर्लभ शोधों पर आधारित चौदहवीं शताब्दी का विशाल न्यायशास्त्रीय विश्वकोश

इमाम अहमद रज़ा बरेलवी (अल्लाह उनकी कब्र को पवित्र करे) १२७२ हिजरी _ १३४० हिजरी १८५६ ईस्वी _ १९२१ ईस्वी

रज़ा फाउंडेशन, जामिया निज़ामिया रज़विया अन्दरून लोहारी दरवाज़ा, लाहौर नंबर (८) पाकिस्तान (५४०००) ७६५७३१४

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

مَنْ یُّرِدِ اللّٰہُ بِہٖ خَیْرًا یُّفَقِّھْہُ فِی الدِّیْنِ (الحدیث)

اَلْعَطَایَا النَّبَوِیَّۃُ فِي الْفَتَاوَی الرَّضَوِیَّۃِ مع تخریج و ترجمہ عربی عبارات

جلد ہشتم

تحقیقاتِ نادرہ پر مشتمل چودہویں صدی کا عظیم الشان فقہی انسائیکلوپیڈیا

امام احمد رضا بریلوی قدس سرہ العزیز ۱۲۷۲ھ _ ۱۳۴۰ھ ۱۸۵۶ء _ ۱۹۲۱ء

رضا فاؤنڈیشن، جامعہ نظامیہ رضویہ اندرون لوہاری دروازہ، لاہور نمبر (۸) پاکستان (۵۴۰۰۰)

۷۶۵۷۳۱۴

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

Book: Fatawa Ridawiyya Volume Eight Author: Shaykh al-Islam Imam Ahmad Raza Qadri Barelvi (May Allah's mercy be upon him) Translation of Arabic Passages: Hazrat Allama Mufti Muhammad Khan Qadri, Lahore Foreword: Maulana Hafiz Muhammad Abdul Sattar Saeedi, Director of Education, Jamia Nizamia Rizvia, Lahore Referencing & Correction: (1) Maulana Nazir Ahmad Saeedi (2) Maulana Muhammad Rabb Nawaz Supervision & Patronage: Maulana Mufti Muhammad Abdul Qayyum Hazarvi, Secretary General Tanzim-ul-Madaris Ahle Sunnat Pakistan Index Compilation: Hafiz Muhammad Abdul Sattar Saeedi Calligraphy: Muhammad Sharif Gul, Karial Kalan (Gujranwala) Proofreading: (1) Maulana Nazir Ahmad Saeedi (2) Maulana Mahbub Ahmad Chishti Pasting: Muhammad Suhail Umar Pages: 664 Publication: Muharram-ul-Haram 1416 AH / June 1995 AD Printing Press: R & W, S Printers Lahore Publisher: Raza Foundation Jamia Nizamia, Inside Lohari Gate, Lahore Price:

Available at: * Maktaba Qadriya Jamia Nizamia Rizvia, Inside Lohari Gate, Lahore * Maktaba Tanzim-ul-Madaris Jamia Nizamia Rizvia, Inside Lohari Gate, Lahore * Maktaba Ziaiyya, Bohar Bazaar, Rawalpindi

फ़तावा रिज़विया जिल्द आठ

किताब: फ़तावा रिज़विया जिल्द आठ लेखक: शेखुल इस्लाम इमाम अहमद रज़ा क़ादरी बरेलवी (रहमतुल्लाह अलैह) अरबी इबारत का अनुवाद: हज़रत अल्लामा मुफ़्ती मुहम्मद खाँ क़ादरी, लाहौर प्रस्तावना: मौलाना हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल सत्तार सईदी, शिक्षा निदेशक जामिया निज़ामिया रिज़विया, लाहौर संदर्भ और सुधार: (1) मौलाना नज़ीर अहमद सईदी (2) मौलाना मुहम्मद रब्ब नवाज़ प्रबंधन और संरक्षण: मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद अब्दुल कय्यूम हज़ारवी, महासचिव तंज़ीमुल मदारिस अहले सुन्नत पाकिस्तान अनुक्रमणिका संकलन: हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल सत्तार सईदी सुलेख: मुहम्मद शरीफ़ गुल, करियाल कलां (गुजरानवाला) प्रूफरीडिंग: (1) मौलाना नज़ीर अहमद सईदी (2) मौलाना महबूब अहमद चिश्ती पेस्टिंग: मुहम्मद सुहैल उमर पृष्ठ: 664 प्रकाशन: मुहर्रम-उल-हराम 1416 हिजरी / जून 1995 ईस्वी मुद्रणालय: आर एंड डब्ल्यू, एस प्रिंटर्स लाहौर प्रकाशक: रज़ा फाउंडेशन जामिया निज़ामिया, अंदरूनी लोहारी दरवाजा, लाहौर कीमत:

उपलब्धता के पते: * मकतबा क़ादरिया जामिया निज़ामिया रिज़विया, अंदरूनी लोहारी दरवाजा, लाहौर * मकतबा तंज़ीमुल मदारिस जामिया निज़ामिया रिज़विया, अंदरूनी लोहारी दरवाजा, लाहौर * मकतबा ज़ियाइया, बोहर बाज़ार, रावलपिंडी

पृष्ठ 3 का 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

کتاب: فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم تصنیف: شیخ الاسلام امام احمد رضا قادری بریلوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ ترجمہ عربی عبارات: حضرت علامہ مفتی محمد خاں قادری، لاہور پیش لفظ: مولانا حافظ محمد عبدالستار سعیدی ناظم تعلیمات جامعہ نظامیہ رضویہ، لاہور تخریج و تصحیح: (۱) مولانا نذیر احمد سعیدی (۲) مولانا محمد رب نواز باہتمام و سرپرستی: مولانا مفتی محمد عبدالقیوم ہزاروی ناظم اعلیٰ تنظیم المدارس اہلسنت پاکستان ترتیب فہرست: حافظ محمد عبدالستار سعیدی کتابت: محمد شریف گل، کڑیال کلاں (گوجرانوالا) پروف ریڈنگ: (۱) مولانا نذیر احمد سعیدی (۲) مولانا محبوب احمد چشتی پیسٹنگ: محمد سہیل عمر صفحات: ۶۶۴ اشاعت: محرم الحرام ۱۴۱۶ھ / جون ۱۹۹۵ء مطبع: آر اینڈ ڈبلیو، ایس پرنٹرز لاہور ناشر: رضا فاؤنڈیشن جامعہ نظامیہ، اندرون لوہاری دروازہ، لاہور قیمت:

ملنے کے پتے: * مکتبہ قادریہ جامعہ نظامیہ رضویہ، اندرون لوہاری دروازہ، لاہور * مکتبہ تنظیم المدارس جامعہ نظامیہ رضویہ، اندرون لوہاری دروازہ، لاہور * مکتبہ ضیائیہ، بوہڑ بازار، راولپنڈی

Fatawa Razawiya - Volume Eight

Summary Table of Contents

Foreword ..... 5 Sermon of Fatawa Razawiya (Article) ..... 9 Chapter on the Rulings of the Mosque ..... 57 Chapter on Reaching/Catching the Obligatory Prayer ... 129 Chapter on Making up Missed Prayers ..... 141 Chapter on the Prostration of Forgetfulness ..... 177 Chapter on the Prostration of Recitation ..... 223 Chapter on the Prayer of the Traveler ..... 241 Chapter on the Friday Prayer ..... 273 Chapter on the Two Eid Prayers ..... 509 Chapter on the Prayer for Rain (Istisqa) ..... 640 Sources and References 661

List of Treatises

O Al-Tabseer al-Munjid ..... 59 O Mirqat al-Juman ..... 413 O Ri'ayat al-Madhhabayn ..... 477 O Awfa al-Lum'ah ..... 497 O Suroor al-Eid ..... 511 O Wishah al-Jid 601

फ़तावा रज़विया - जिल्द आठ

संक्षिप्त अनुक्रमणिका

प्रस्तावना ..... 5 फ़तावा रज़विया का खुत्बा (लेख) ..... 9 मस्जिद के अहकाम (नियमों) का अध्याय ..... 57 फर्ज़ नमाज़ को पाने का अध्याय ..... 129 छूटी हुई नमाज़ों (क़ज़ा) को पढ़ने का अध्याय ..... 141 सजदा-ए-सह्व (भूल का सजदा) का अध्याय ..... 177 सजदा-ए-तिलावत का अध्याय ..... 223 मुसाफिर की नमाज़ का अध्याय ..... 241 जुमे की नमाज़ का अध्याय ..... 273 ईदैन (दोनों ईदों) का अध्याय ..... 509 इस्तसका (वर्षा के लिए नमाज़) का अध्याय ..... 640 स्रोत और संदर्भ 661

पुस्तिकाओं (रिसालों) की सूची

O अत-तबसीर अल-मुन्जिद ..... 59 O मिरक़ात अल-जुमान ..... 413 O रियायत अल-मज़हबैन ..... 477 O औफ़ा अल-लुमआ ..... 497 O सुरूर अल-ईद ..... 511 O विशा अल-जीद 601

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

اجمالی فہرست

پیش لفظ ..... ۵ فتاوٰی رضویہ کا خطبہ

(مقالہ) ..... ۹ باب احکام

المسجد ..... ۵۷ باب ادراک

الفریضہ ..... ۱۲۹ باب قضاء

الفوائت ..... ۱۴۱ باب سجود

السہو ..... ۱۷۷ باب سجود

التلاوۃ ..... ۲۲۳ باب صلوۃ

المسافر ..... ۲۴۱ باب

الجمعۃ ..... ۲۷۳ باب

العیدین ..... ۵۰۹ باب

الاستسقاء ..... ۶۴۰ ماخذ و

مراجع ۶۶۱

فہرست رسائل

O التبصیر المنجد ..... ۵۹ O مرقاۃ

الجمان ..... ۴۱۳ O رعایۃ

المذہبین ..... ۴۷۷ O اوفی

اللمعۃ ..... ۴۹۷ O سرور

العید ..... ۵۱۱ O وشاح

الجید ۶۰۱

صفحه 4 از 673

Fatawa-e-Razvia, Volume 8

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

Foreword

Alhamdulillah, the institution established under the name "Raza Foundation" is moving towards its goal with great speed and success to bring the academic treasures and jurisprudential stores of Ala Hazrat Imam Ahmad Raza Khan Fazil-e-Barelvi (may Allah's mercy be upon him) into the modern limelight. Before this, seven volumes of Fatawa Rizvia have reached you. Now, with the grace and mercy of Allah Almighty and the kind gaze of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), the eighth volume is being presented for your service. The Arabic and Persian passages of this volume have been translated by the renowned scholar and translator of numerous books, Hazrat Allama Mufti Muhammad Khan Qadri, while the translations of volumes six and seven are also the result of his prolific pen.

Volume Eight

This volume consists of answers to 33 questions from the "Chapter on Rulings of Mosques" in the third volume of Fatawa Rizvia (old edition) until the end of that third volume. In addition to several incidental issues and benefits, the following nine new chapters are discussed in this volume:

(1) Chapter on the Rulings of Mosques (2) Chapter on Attaining the Obligatory (Prayer) (3) Chapter on Making up for Missed (Prayers) (4) Chapter on Prostrations of Forgetfulness (5) Chapter on Prostrations of Recitation

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम

प्राक्कथन (पेश लफ़्ज़)

अल्हम्दुलिल्लाह, आला हज़रत इमाम अहमद रज़ा ख़ान फ़ाज़िल-ए-बरेलवी (रहमतुल्लाहि अलैहि) के ज्ञान के ख़ज़ानों और फ़िक़्ही (न्यायशास्त्र) ज़खीरों को आधुनिक अंदाज़ में सामने लाने के लिए "रज़ा फ़ाउंडेशन" के नाम से स्थापित संस्था अत्यंत गति और सफलता के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही है। इससे पहले फ़तावा-ए-रज़विया की सात जिल्दें आप तक पहुँच चुकी हैं, अब अल्लाह तआला के फ़ज़्ल-ओ-करम और नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नज़र-ए-इनायत से आठवीं जिल्द आपकी सेवा में प्रस्तुत की जा रही है। इस जिल्द के अरबी और फ़ारसी इबारतों (अनुच्छेदों) का अनुवाद प्रसिद्ध विद्वान और कई पुस्तकों के अनुवादक हज़रत अल्लामा मुफ़्ती मोहम्मद ख़ान क़ादरी ने किया है, जबकि छठी और सातवीं जिल्द का अनुवाद भी उन्हीं की कलम का परिणाम है।

जिल्द आठवीं

यह जिल्द फ़तावा-ए-रज़विया (प्राचीन) की तीसरी जिल्द में से "बाब अहकामुल मसाजिद" (मस्जिदों के हुक्म का अध्याय) से लेकर तीसरी जिल्द के अंत तक 33 सवालों के जवाबों पर आधारित है। अनेक गौण मसलों और फ़ायदों के अलावा इस जिल्द में निम्नलिखित नौ नए अध्यायों पर चर्चा की गई है:

(१) बाब अहकामुल मसाजिद (मस्जिदों के नियमों का अध्याय) (२) बाब इदराकुल फ़रीज़ा (फ़र्ज़ नमाज़ पाने का अध्याय) (३) बाब क़ज़ाउल फ़वाइत (छूटी हुई नमाज़ों की क़ज़ा का अध्याय) (४) बाब सुजूदुस सहव (सजदा-ए-सहव का अध्याय) (५) बाब सुजूदुत तिलावत (सजदा-ए-तिलावत का अध्याय)

पृष्ठ 5 / 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

بسم اللہ الرحمن الرحیم ط

پیش لفظ

الحمد للہ اعلیٰ حضرت امام احمد رضا خاں فاضل بریلوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کے خزائن علمیہ و ذخائر فقہیہ کو جدید انداز میں منصہ شہود پر لانے کے لئے "رضا فاؤنڈیشن" کے نام سے قائم شدہ ادارہ انتہائی سرعت اور کامیابی کے ساتھ اپنے ہدف کی طرف بڑھ رہا ہے ، اس سے قبل فتاویٰ رضویہ کی سات مجلدات آپ تک پہنچ چکی ہیں ، اب اللہ تعالیٰ کے فضل و کرم اور نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نظر عنایت سے آٹھویں جلد آپ کی خدمت میں پیش کی جارہی ہے ، اس جلد کی عربی و فارسی عبارات کا ترجمہ فاضل شہیر مترجم کتب کثیرہ حضرت علامہ مفتی محمد خاں قادری نے کیا ہے جبکہ جلد ششم و ہفتم کا ترجمہ بھی انہی کی رشحات قلم کا نتیجہ ہے۔

جلد ہشتم

یہ جلد فتاویٰ رضویہ (قدیم) کی جلد سوم میں سے باب احکام المساجد سے جلد سوم کے آخر تک ۳۳ سوالوں کے جوابات پر مشتمل ہے۔ متعدد ضمنی مسائل و فوائد کے علاوہ اس جلد میں مندرجہ ذیل نو مستقبل ابواب زیر بحث ہیں:

(۱) باب احکام المساجد (۲) باب ادراك الفريضة (۳) باب قضاء الفوائت (۴) باب سجود السهو (۵) باب سجود التلاوة

صفحہ 5 از 673

Fatawa Rizvia Volume 8

(6) Chapter on the Prayer of the Traveler (7) Chapter on Friday Prayer (8) Chapter on the Two Eids (9) Chapter on the Prayer for Rain

In addition, this volume includes six highly valuable and significant research treatises, which are as follows:

(1) Al-Tabsir al-Munjid bi-anna Sahn al-Masjid Masjid (1307 AH) An explanation that the courtyard of the mosque is part of the mosque.

(2) Mirqat al-Juman fi al-Hubut 'an al-Minbar li-Madh al-Sultan (1320 AH) A research on the preacher descending one step of the pulpit to praise the ruler and then re-ascending.

(3) Ri'ayat al-Madhhabayn fi al-Du'a bayna al-Khutbatayn (1310 AH) The method of supplicating between the two sermons.

(4) Awfa al-Lum'ah fi Adhan Yawm al-Jumu'ah (1320 AH) The ruling on giving the second call to prayer for Friday outside the mosque.

(5) Surur al-'Id al-Sa'id fi Hall al-Du'a ba'da Salat al-'Id (1339 AH) Evidence for supplicating with raised hands after the Eid prayer.

(6) Wishah al-Jid fi Tahlil Mu'anaqat al-'Id (1312 AH) An explanation regarding the permissibility of embracing after the Eid prayer.

The following treatises could not be included in this volume due to their unavailability:

(1) Shamamah al-'Anbar fi al-Nida' bi-Iza' al-Minbar The Friday call to prayer should be outside the mosque, opposite the pulpit.

(2) Lawami' al-Baha' fi al-Misr lil-Jumu'ah wa al-Arba' 'Aqibaha Regarding the city being a condition for Friday prayer and the cautionary Dhuhr prayer following it.

(3) Ahsan al-Maqasid fi Bayan ma Tanazzaha 'anhu al-Masajid Regarding actions that are inappropriate within the mosque.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

(६) मुसाफ़िर की नमाज़ का बाब (७) जुमे की नमाज़ का बाब (८) दोनों ईदों का बाब (९) इस्तिसक़ा (बारिश की दुआ) का बाब

इसके अतिरिक्त, इस वर्तमान जिल्द में छह अत्यंत महत्वपूर्ण और मूल्यवान शोध पत्र (रिसाले) भी शामिल हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं:

(१) अत-तबसीर अल-मुन्जिद बि-अन्ना सहन अल-मस्जिद मस्जिद (१३०७ हिजरी) मस्जिद के सहन (आंगन) के मस्जिद होने का वर्णन।

(२) मिर्क़ात अल-जुमान फ़ि अल-हुबूत 'अन अल-मिम्बर लि-मदह अस-सुल्तान (१३२० हिजरी) हाकिम की प्रशंसा के लिए खतीब (प्रवक्ता) द्वारा मिम्बर (मंच) की एक सीढ़ी नीचे उतरने और फिर ऊपर चढ़ने के बारे में शोध।

(३) रियायत अल-मज़हबैन फ़ि अद-दुआ बैन अल-खुतबतैन (१३१० हिजरी) दो खुतबों (प्रवचनों) के बीच दुआ करने का तरीका।

(४) औफ़ा अल-लुम'ह फ़ि अज़ान यौम अल-जुमु'ह (१३२० हिजरी) जुमे की दूसरी अज़ान मस्जिद से बाहर देने का वर्णन।

(५) सुरूर अल-ईद अस-सईद फ़ि हल्ल अद-दुआ बा'द सलात अल-ईद (१३३९ हिजरी) ईद की नमाज़ के बाद हाथ उठाकर दुआ मांगने का प्रमाण।

(६) विशाह अल-जीद फ़ि तहलील मुआनक़त अल-ईद (१३१२ हिजरी) ईद की नमाज़ के बाद गले मिलने के जायज़ होने का वर्णन।

निम्नलिखित रिसाले उपलब्ध न होने के कारण इस जिल्द में शामिल नहीं किए जा सके

(१) शमामतुल अम्बर फ़िल निदा बि-इज़ा अल-मिम्बर जुमे की अज़ान मस्जिद के बाहर, मिम्बर के सामने होनी चाहिए।

(२) लवामे अल-बहा फ़िल मिस्र लिल-जुमु'ह वल अरबअ अक़ीबहा जुमे के लिए शहर की शर्त होने और उसके बाद एहतियाती ज़ुहर की नमाज़ के वर्णन में।

(३) अहसन अल-मकासिद फ़ी बयान मा तनज़्ज़हा अनहुल मसाजिद मस्जिद में कौन-कौन से कार्य अनुचित (ना-रवा) हैं।

पेज 6 ऑफ 673

فتاوی رضویه جلد ہشتم

(۶) باب صلوة المسافر (۷) باب الجمعة (۸) باب العیدین (۹) باب الاستسقاء اس کے علاوہ انتہائی وقیع اور گراں قدر تحقیقات و تدقیقات پر مشتمل چھ رسائل بھی پیش نظر جلد میں شامل ہیں جن کے نام یہ ہیں : (۱) التبصیر المنجد بأن صحن المسجد مسجد (۱۳۰۷ھ) صحن مسجد کے مسجد ہونے کا بیان (۲) مرقاة الجمان في الهبوط عن المنبر لمدح السلطان (۱۳۲۰ھ) تعریف حاکم کے لئے خطیب کے منبر کی ایک سیڑھی اترنے پھر چڑھنے کے بارے میں تحقیق (۳) رعایة المذهبین في الدعاء بین الخطبتین (۱۳۱۰ھ) دو خطبوں کے درمیان دعا کرنے کا طریقہ (۴) اوفی اللمعة في اذان یوم الجمعة (۱۳۲۰ھ) اذان ثانی مسجد سے باہر دینے کا بیان (۵) سرور العید السعید في حل الدعاء بعد صلوة العید (۱۳۳۹ھ) نماز عید کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کا ثبوت (۶) وشاح الجید في تحلیل معانقة العید (۱۳۱۲ھ) نماز عید کے بعد معانقہ کے جائز ہونے کا بیان مندرجہ ذیل رسائل دستیاب نہ ہونے کی وجہ سے اس جلد میں شامل نہ ہو سکے : (۱) شمامة العنبر فی النداء بازاء المنبر اذان جمعہ بیرون مسجد محاذی منبر چاہئے (۲) لوامع البهاء فی المصر للجمعة والاربع عقیبها جمعہ کے لئے شہر شرط ہونے اور احتیاطی ظہر کے بیان میں (۳) احسن المقاصد في بیان ماتنزه عنه المساجد مسجد میں کیا کیا کام ناروا ہیں

Fatawa Razawiya Volume Eight

(4) Ma yajli al-asru 'an tahdid al-misr Definition of a city; where Friday and Eid prayers are permissible. The magnificent treatise "Wishah al-Jid fi Tahlil Mu'anaqat al-'Id," which was not previously included in Fatawa Razawiya, has been included in this volume along with the translation by Hazrat Allama Maulana Muhammad Ahmad Misbahi. The article related to the sermon of Fatawa Razawiya by Hazrat Allama Maulana Qazi Abdul Daim Daim, editor of the monthly "Jam-e-Irfan," Khanqah Naqshbandiya, Haripur Hazara, which was read at the Avari Hotel on October 17, 1993, is being included in Volume Eight.

Muharram al-Haram 1416 AH Hafiz Abdul Sattar Saeedi June 1995 AD Director of Education Jamia Nizamia Razavia, Lahore

Page 7 of 673

फ़तावा रज़विया आठवाँ खंड

(4) मा यजली अल-असर अन तहदीद अल-मिस्र शहर की परिभाषा, जुमा और ईद की नमाज़ें कहाँ जायज़ हैं। भव्य शोध-ग्रंथ "विशाह अल-जीद फ़ी तहलील मुआनक़त अल-ईद", जो पहले फ़तावा रज़विया में शामिल नहीं था, हज़रत अल्लामा मौलाना मुहम्मद अहमद मिस्बाही के अनुवाद के साथ इस खंड में शामिल कर दिया गया है। हज़रत अल्लामा मौलाना क़ाज़ी अब्दुल दाइम दाइम, संपादक मासिक "जाम-ए-इरफ़ान", ख़ानक़ाह नक़्शबंदिया, हरीपुर हज़ारा का फ़तावा रज़विया के ख़ुत्बे से संबंधित वह लेख जो 17 अक्टूबर 1993 को आवारी होटल में पढ़ा गया था, आठवें खंड में शामिल किया जा रहा है।

मुहर्रम अल-हराम 1416 हिजरी हाफ़िज़ अब्दुल सत्तार सईदी जून 1995 ईस्वी नाज़िम-ए-तालीमात (शिक्षा निदेशक) जामिया निज़ामिया रज़विया, लाहौर

पृष्ठ 7/673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

(۴) ما یجلی الاصر عن تحدید المصر شہر کی تعریف، جمعہ وعیدین کہاں جائز ہیں رسالہ جلیلہ وشاح الجید فی تحلیل معانقۃ العید جو اس سے پہلے فتاویٰ رضویہ میں شامل نہیں تھا وہ حضرت علامہ مولانا محمد احمد مصباحی کے ترجمہ کے ساتھ اس جلد میں شامل کردیا گیا ہے۔ حضرت علامہ مولانا قاضی عبدالدائم دائم ایڈیٹر ماہنامہ جام عرفان، خانقاہ نقشبندیہ، ہری پور ہزارہ کا فتاویٰ رضویہ کے خطبہ سے متعلق وہ مقالہ جو ۱۷ اکتوبر ۱۹۹۳ء کو آواری ہوٹل میں پڑھا گیا جلد ہشتم میں شامل کیا جارہا ہے۔

محرم الحرام ۱۴۱۶ھ حافظ عبدالستار سعیدی جون ۱۹۹۵ء ناظم تعلیمات جامعہ نظامیہ رضویہ، لاہور

صفحہ 7 از 673

Fatawa Rizvia Volume Eight

Maulana Qazi Abdul Daim Daim Editor, Monthly Jam-e-Irfan Khanqah Naqshbandiya, Haripur

The Sermon (Khutba) of Fatawa Rizvia

o A masterpiece of knowledge and excellence ——— a masterpiece of thought and art o A radiant masterpiece of eloquence, rhetoric, and excellence of reasoning o A fragrant garden of the names of books of jurisprudence (Fiqh) and noble Imams

A flowing wave of Salsabeel, Kausar, and Tasneem The soul-refreshing and ecstasy-inducing writing of Shah Ahmad Raza

www.dawateislami.net I.T. Majlis of Dawat-e-Islami

Page 9 of 673

फ़तावा रिज़विया जिल्द अष्टम

मौलाना काज़ी अब्दुल दाईम दाईम संपादक, मासिक जाम-ए-इरफ़ान ख़ानक़ाह नक़्शबंदिया, हरिपुर

फ़तावा रिज़विया का खुतबा (प्रस्तावना)

o इल्म और फ़ज़्ल का शाहपारा ——— फ़िक्र और फ़न का महपारा o फ़साहत, बलाग़त और दलील देने की महारत का एक चमकता हुआ शाहकार o फ़िक़्ह की किताबों और प्रतिष्ठित इमामों के नामों का एक महकता हुआ बाग़

सलसबील, कौसर और तस्नीम की एक बहती हुई लहर शाह अहमद रज़ा की रूह को ताज़गी देने वाली और आनंदमयी तहरीर

www.dawateislami.net आई.टी. मजलिस, दावत-ए-इस्लामी

पेज 9/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

مولانا قاضی عبدالدائم دائم ایڈیٹر ماہنامہ جام عرفاں خانقاہ نقشبندیہ ، ہری پور

فتاوٰی رضویہ کا خطبہ

o علم و فضل کا شہ پارہ ـــــــــــــــــ فکر و فن کا مہ پارہ o فصاحت و بلاغت اور براعت استدلال کا دمکتا ہوا شہکار o کتب فقہ اور ائمہ کرام کے ناموں کا مہکتا ہوا گلزار

سلسبیل و کوثر و تسنیم کی موج رواں کیف آگیں ، جاں فزا تحریر شاہ احمد رضا

www.dawateislami.net I.T. Majlis of Dawat-e-Islami

Fatawa-e-Razvia | Volume 8

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

All praise is for the One who is Unique in His Majesty, the Peerless. And His blessings, always, be upon the best of creation, Muhammad. And upon the family and companions, they are my refuge in my times of hardship. So to the Great One is my seeking of intercession, through His Book and through Ahmad. (Imam Ahmad Raza)

The Divine command is: "But as for the favor of your Lord, report [it]." (Quran 93:11) meaning, narrate the blessings of your Lord. Ala-Hazrat Imam Ahmad Raza Khan (may Allah have mercy on him), acting upon this Divine command, sings thus:

The kingdom of speech, O Raza, is acknowledged to be yours, In whichever direction you have gone, you have established your authority.

Although, in view of the context, "speech" (sukhan) here refers to poetic discourse, in reality, Imam Ahmad Raza's sovereignty is acknowledged in every form of speech—whether it be poetry or prose. What is even more remarkable is that your mastery over speech and expression is not restricted to any one language. Rather, whichever language among Arabic, Persian, Urdu, and Hindi you choose as a means of expression, all its words become present in your boundless memory. And from those, whichever you deem appropriate according to the time and place, you utilize with such beauty and proportion that you truly fulfill the right of eloquence and create the aura of poetry even within prose.

फ़तावा रज़विया | खंड 8

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम (अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और कृपाशील है)

सारी प्रशंसा उस अल्लाह के लिए है जो अपनी महानता में अद्वितीय है, बेजोड़ है। और उसकी सलामती हमेशा सृष्टि के सर्वोत्तम, मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर हो। और उनके परिवार और साथियों पर, जो मेरी कठिनाइयों के समय मेरी शरण हैं। अतः उस महान (ईश्वर) से मेरा वसीला (माध्यम) उसकी पुस्तक और अहमद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के द्वारा है। (इमाम अहमद रज़ा)

ईश्वरीय आदेश है: "और अपने रब की अनुकम्पा (नेमत) का वर्णन करो।" (क़ुरआन 93:11) यानी अपने रब की नेमतों का बखान करो। आला हज़रत इमाम अहमद रज़ा ख़ान (रहमतुल्लाहि अलैहि) इसी ईश्वरीय आदेश पर अमल करते हुए इस प्रकार गुनगुनाते हैं:

सुखन (वाणी) के साम्राज्य की बादशाहत, ऐ रज़ा, तुम्हारी मानी गई है, जिस दिशा में तुम आ गए, वहाँ तुमने अपने सिक्के जमा दिए (अपना प्रभाव स्थापित कर दिया)।

यद्यपि संदर्भ के अनुसार यहाँ "सुखन" का अर्थ पद्य (कविता) है, लेकिन वास्तव में इमाम अहमद रज़ा की बादशाहत हर प्रकार के सुखन में मानी गई है—चाहे वह नज़्म (पद्य) हो या नसर (गद्य)। इससे भी बड़ी कमाल की बात यह है कि वाणी और अभिव्यक्ति पर आपका अधिकार किसी एक भाषा तक सीमित नहीं है, बल्कि अरबी, फारसी, उर्दू और हिंदी में से जिस भाषा को आप अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना चाहें, उसके सभी शब्द आपकी असीम स्मृति में उपस्थित हो जाते हैं। और उनमें से जिसे आप अवसर और स्थान के अनुसार उपयुक्त समझते हैं, उसे इतनी सुंदरता और अनुपात के साथ उपयोग में लाते हैं कि वाक्पटुता का हक़ अदा कर देते हैं और गद्य में भी पद्य का समाँ बांध देते हैं।

पृष्ठ 673 का 10

بسم اللہ الرحمن الرحیم

اَلْحَمْدُ لِلْمُتَوَحِّدِ بِجَلَالِهِ الْمُتَفَرِّدِ وَصَلَوتُهُ، دَوْمًا عَلٰی خَيْرِ الْاَنَامِ مُحَمَّدٍ وَالْاٰلِ وَالْاَصْحَابِ هُمْ مَأْوٰی عِنْدَ شَدَائِدِیْ فَالٰی الْعَظِيْمِ تَوَسُّلِيْ بِكِتَابِهٖ وَبِاَحْمَدِ (امام احمد رضا)

ارشادِ ربانی ہے: وَ اَمَّا بِنِعْمَةِ رَبِّكَ فَحَدِّثْ ﴿۱۱﴾ یعنی اپنے رب کی نعمتوں کو بیان کیجئے۔ اعلیٰحضرت امام احمد رضا خاں رحمۃ اللہ تعالیٰ اسی فرمانِ خداوندی پر عمل کرتے ہوئے یوں زمزمہ سرا ہوتے ہیں:

ملکِ سخن کی شاہی تم کو رضا مسلم جس سمت آگئے ہو سکے بٹھا دئیے ہیں

اگرچہ سیاق و سباق کے اعتبار سے یہاں "سخن" سے مراد منظوم کلام ہے، لیکن در حقیقت امام احمد رضا کی شاہی ہر نوعِ سخن میں مسلم ہے_____ خواہ نظم ہو یا نثر۔ مزید کمال کی بات یہ ہے کہ کلام و بیان پر آپ کی قدرت کسی ایک زبان سے مختص نہیں ہے، بلکہ عربی، فارسی، اردو اور ہندی میں سے جس زبان کو ذریعہ اظہار بنانا چاہیں، اس کے تمام الفاظ آپ کے بے پایاں حافظے میں مستحضر ہو جاتے ہیں اور ان میں سے آپ جس کو موقع و محل کے لحاظ سے موزوں سمجھتے ہیں، اس کو اتنی خوبصورتی اور تناسب سے استعمال میں لاتے ہیں کہ خوش گفتاری کا حق ادا کر دیتے ہیں اور نثر میں بھی نظم کا سماں باندھ دیتے ہیں۔

Volume 8 Fatawa Razawiyya

Strings of rhymed words and necklaces of rhythmic sentences are found in such abundance in your poetic and prose works that it is extremely difficult to encompass them; however, the most astonishing among them is the Arabic sermon of "Fatawa Razawiyya," which is undoubtedly a unique masterpiece of eloquence and rhetoric. Containing charming allusions, bright references, beautiful metaphors, and pleasing similes, the distinction of this piece of eloquence is that all the requirements and proprieties of a sermon—namely, the praise of Allah Almighty, the glorification of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), the praise of the Companions and the Household (Ahl al-Bayt), and blessings and peace upon the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and his family—all these things have been expressed through the names of Fiqh books and Imams. That is, the names of Fiqh books and the honored names of the Imams have been arranged in such a way that in some places, the buds of praise have blossomed, and in others, the flowers of Na't (praise of the Prophet) have bloomed; in some places, they have become garlands of Manqabat (praise of the Ahl al-Bayt/Saints), and in others, branches of Durood and Salam (blessings and peace) have been prepared.

Along with this, all rhetorical beauties of the kind of 'Bara'at al-Istihlal' (excellence of opening) and observance of 'Saj' (rhymed prose) etc., have been fully maintained. Despite so many constraints and restrictions, there hasn't been the slightest difference in the fluency and flow of the sermon. Neither did any flaw appear in the naturalness of the sentences, nor was there any disruption in the appropriateness of the compositions. "That is the grace of Allah, which He bestows on whom He wills. And Allah is the possessor of great bounty."

In this short article, there isn't enough space to enumerate all the virtues of this garden-like sermon; however, a few heart-alluring glimpses are presented for the pleasure-seeking readers and listeners. If it is accepted, it is a great honor and dignity.

खंड 8 फ़तावा रज़विया

तुकबंदी वाले शब्दों की ऐसी लड़ियां और लयबद्ध वाक्यों की ऐसी मालाएं आपके पद्य और गद्य कार्यों में इतनी प्रचुरता से पाई जाती हैं कि उनका घेराव करना अत्यंत कठिन है; हालाँकि, उनमें सबसे अधिक आश्चर्यजनक "फ़तावा रज़विया" का अरबी खुतबा (संबोधन) है, जो निस्संदेह वाक्पटुता और अलंकारिकता का एक अनूठा उत्कृष्ट नमूना है। आकर्षक संकेतों, उज्ज्वल संदर्भों, सुंदर रूपकों और मनभावन उपमाओं से युक्त, वाक्पटुता के इस टुकड़े की विशेषता यह है कि एक खुतबे की सभी आवश्यकताएं और औचित्य - अर्थात्, अल्लाह सर्वशक्तिमान की प्रशंसा, अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) की स्तुति, सहाबा और अहले बैत (परिजनों) की प्रशंसा, और अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) और उनके परिवार पर दुरूद और सलाम - ये सभी चीजें फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की किताबों और इमामों के नामों के माध्यम से व्यक्त की गई हैं। यानी, फ़िक़्ह की किताबों के नाम और इमामों के सम्मानित नामों को इस तरह व्यवस्थित किया गया है कि कहीं प्रशंसा की कलियाँ चटक उठी हैं और कहीं नात (पैगंबर की प्रशंसा) के फूल खिल गए हैं; कहीं वे मनक़बत (अहले बैत/संतों की प्रशंसा) के गजरे बन गए हैं और कहीं दुरूद और सलाम की डालियाँ तैयार हो गई हैं।

इसके साथ ही, 'बाराअत अल-इस्तिहलाल' (प्रारंभ की उत्कृष्टता) और 'सज' (तुकबंदी वाला गद्य) आदि जैसे सभी अलंकारिक सुंदरताओं का पूरी तरह से पालन किया गया है। इतने प्रतिबंधों और सीमाओं के बावजूद, खुतबे के प्रवाह और रवानगी में रत्ती भर भी अंतर नहीं आया। न तो वाक्यों की स्वाभाविकता में कहीं कोई दोष आया, न ही रचनाओं की उपयुक्तता में कोई बाधा आई। "यह अल्लाह का अनुग्रह है, जिसे वह चाहता है उसे प्रदान करता है। और अल्लाह बड़े अनुग्रह वाला है।"

इस संक्षिप्त लेख में इतनी गुंजाइश नहीं है कि इस उपवन रूपी खुतबे के सभी गुणों को गिनाया जा सके, हालाँकि, कुछ दिलकश झलकियाँ सहृदय पाठकों और श्रोताओं की नज़र हैं। यदि स्वीकार कर लिया जाए तो यह बड़े सम्मान और गरिमा की बात है।

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مسجع الفاظ کی ایسی لڑیاں اور مقفیٰ جملوں کی ایسی مالائیں آپ کے منظوم و منثور کلام میں اتنی کثرت سے پائی جاتی ہیں کہ ان کا احاطہ از بس دشوار ہے؛ تاہم ان میں سب سے زیادہ حیرت انگیز "فتاویٰ رضویہ" کا عربی خطبہ ہے، جو بلاشبہ فصاحت و بلاغت کا ایک اچھوتا شاہکار ہے۔ دلکش اشارات، روشن تلمیحات، خوبصورت استعارات اور خوشنما تشبیہات پر مشتمل اس بلاغت پارے کی خصوصیت یہ ہے کہ خطبے کے جملہ لوازمات و مناسبات یعنی اللہ تعالیٰ کی حمد، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی تعریف، صحابہ اور اہل بیت کی مدح، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور ان کے اہل بیت پر درود و سلام۔ یہ تمام چیزیں کتبِ فقہ اور ائمہ کے ناموں سے ادا کی گئی ہیں یعنی کتبِ فقہ کے ناموں اور ائمہ کے اسماءِ گرامی کو اس طرح ترتیب دیا گیا ہے کہ کہیں حمد کے غنچے چٹک اٹھے ہیں اور کہیں نعت کے پھول کھل پڑے ہیں، کہیں منقبت کے گجرے بن گئے ہیں اور کہیں درود و سلام کی ڈالیاں تیار ہو گئی ہیں۔

اس کے ساتھ ساتھ جملہ محسناتِ بدیعیہ از قسمِ براعت استہلال و رعایتِ سجع وغیرہ بھی پوری طرح ملحوظ رکھی گئی ہیں۔ اتنی قیودات اور پابندیوں کے باوجود خطبے کی سلاست و روانی میں ذرہ برابر فرق نہیں پڑا۔ نہ جملوں کی بے ساختگی میں کہیں جھول پیدا ہوا، نہ تراکیب کی برجستگی میں کوئی خلل واقع ہوا۔ ذٰلِكَ فَضْلُ اللهِ يُؤْتِيْهِ مَنْ يَّشَآءُ وَاللهُ ذُوالْفَضْلِ الْعَظِيْمِ o

اس مختصر مقالے میں اتنی گنجائش تو نہیں کہ اس خیابارِ خطبے کی تمام خوبیاں گنائی جائیں، تاہم چند دلآویز جھلکیاں خوش ذوق قارئین و سامعین کی نذر ہیں ع گر قبول افتد زہے عزّ و شرف

Fatawa Razawiyya Volume Eight

SubhanAllah, what a heartwarming praise! That is, the increments and additions of Divine grace are transparent like pearls and radiant like bright foreheads. Now you yourself imagine that the grace whose increments and additions are so pure and bright, what would be the state of the transparency and radiance of that grace itself! Then, do not even ask about the radiance and brilliance of the Master of Grace (Glorious and Exalted), for it is beyond human understanding and perception, and tongue and speech are incapable of translating it. As Sheikh Saadi (RA) said:

O You who are higher than thought, analogy, imagination, and whim, And beyond everything that has been said, heard, and read. The book is finished and life has reached its end, Yet we remain at the very first step of describing You.

JazakAllah, O Imam Ahmad Raza! What a unique and wondrous praise you have described for the Lord of the worlds! But let it be clear to the listeners and respected readers! That this aspect of praise is incidental, while Imam Ahmad Raza actually wants to say that for Allah Almighty there is neither limit nor end. i.e. verse: Infinite praise be to the Pure God.

But merely saying "infinite praise" does not convey what Imam Ahmad Raza wants to say. He mentions the expansive grace of Allah Almighty. And it is obvious that there is no end to Allah's grace. And the increments of infinite grace will be infinite upon infinite, and the praise that encompasses those increments will be infinite upon infinite, and Imam Ahmad Raza wants to offer such praise to Allah Almighty. "The collector of the increments of His grace"_____ What a perfect degree of hyperbole in emphasis! Not even a tenth of this hyperbole is found in "infinite praise" or "limitless praise".

Description of Salutations (Salawat) and Blessings, and the merits of the Radiant Presence (peace and blessings of Allah be upon him) within it.

While presenting salutations and greetings in the court of Prophethood, Imam Ahmad Raza first arranged the names and famous titles of the Imams of jurisprudence in such a way that some of them became names of the Master of the World and some became his attributes. After that, he described the merits of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) through the names of books. However, while presenting salutations and greetings, Imam Ahmad Raza has added another quality besides all the above-mentioned beauties and subtleties, i.e.,

he has also clarified his belief about the Master of both worlds (peace and blessings of Allah be upon him) and thus has also performed the duty of representing the Ahl al-Sunnah.

Page 12 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

सुब्हान अल्लाह, क्या दिलकश हम्द है! यानी ईश्वरीय अनुकंपा की वृद्धि और अधिकता मोतियों की तरह पारदर्शी और चमकती पेशानियों की तरह दीप्तिमान हैं। अब आप स्वयं ही सोचिए कि जिस कृपा की वृद्धि और अधिकता इतनी पवित्र और उज्ज्वल हो, उस कृपा की स्वयं की पारदर्शिता और चमक का क्या आलम होगा! फिर कृपा के स्वामी (महान और उच्च) की चमक और दीप्ति की तो बात ही मत पूछिए कि वह मानवीय समझ और बोध से परे है, और ज़ुबान और बयान उसकी व्याख्या करने में असमर्थ हैं। जैसा कि शेख सादी (आरए) ने कहा है:

ऐ तू जो सोच, उपमा, कल्पना और वहम से भी ऊंचा है, और उस सबसे परे जो कहा गया, सुना गया और पढ़ा गया। किताब पूरी हो गई और उम्र अपने अंत को पहुँच गई, मगर हम अभी भी तेरी प्रशंसा के पहले कदम पर ही ठहरे हुए हैं।

जज़ाकअल्लाह, ऐ इमाम अहमद रज़ा! आपने रब्बुल आलमीन की कितनी अद्भुत और अनोखी हम्द बयान की है! लेकिन सुनने वालों और सम्मानित पाठकों के लिए यह स्पष्ट रहे! कि हम्द का यह पहलू गौण है, जबकि इमाम अहमद रज़ा वास्तव में यह कहना चाहते हैं कि अल्लाह तआला के लिए न कोई सीमा है न कोई अंत। यानी मिसरा: पवित्र ईश्वर के लिए असीमित प्रशंसा।

लेकिन केवल "असीमित प्रशंसा" कह देने से वह बात नहीं बनती जो इमाम अहमद रज़ा कहना चाहते हैं। वे अल्लाह तआला की व्यापक कृपा का उल्लेख करते हैं। और यह ज़ाहिर है कि अल्लाह की कृपा का कोई अंत नहीं है। और अनंत कृपा की वृद्धि, अनंत दर अनंत होगी और जो हम्द उन वृद्धियों को समेटे हुए होगी वह अनंत दर अनंत होगी, और इमाम अहमद रज़ा अल्लाह तआला की ऐसी ही हम्द करना चाहते हैं। "उनकी कृपा की वृद्धियों को एकत्र करने वाला"_____ अतिशयोक्ति का क्या ही कमाल का स्तर है! "असीमित प्रशंसा" या "बेइंतहा तारीफ" में इस अतिशयोक्ति का दसवां हिस्सा भी नहीं पाया जाता।

दुरूद व सलाम और उसके अंतर्गत हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के फज़ाइल का बयान

बारगाह-ए-रिसालत में दुरूद व सलाम पेश करते हुए इमाम अहमद रज़ा ने पहले तो अइम्मा-ए-फिक्ह के नामों और प्रसिद्ध उपाधियों को इस तरह व्यवस्थित किया कि उनमें से कुछ संतों के नाम

बन गए और कुछ उनके गुण। उसके बाद किताबों के नामों से हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के फज़ाइल बयान किए हैं। हालाँकि, दुरूद व सलाम पेश करने के दौरान इमाम अहमद रज़ा ने उपरोक्त सभी खूबियों और बारीकियों के अलावा एक और खूबी जोड़ी है, यानी उन्होंने दोनों जहाँ के मालिक (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के बारे में अपने अकीदे को भी स्पष्ट कर दिया है और इस तरह अहल-ए-सुन्नत का प्रतिनिधित्व करने का कर्तव्य भी निभाया है।

पृष्ठ 12 का 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

سبحان اللہ، کیا دلپذیر حمد ہے! یعنی فیضانِ الہی کے اضافے اور زیادات موتیوں کی طرح شفاف اور روشن پیشانیوں کی طرح تابناک ہیں۔ اب آپ خود ہی سوچئے کہ جس فیض کے اضافے اور زیادات اس قدر منزہ اور روشن ہوں اس فیض کی اپنی شفافیت و تابندگی کا کیا عالم ہوگا ! پھر صاحب فیض جل وعلا کی تابانی و درخشانی کی تو بات ہی نہ پوچھئے کہ وہ انسانی فہم و ادراک سے ماورا ہے اور زبان و بیان اس کی ترجمانی سے قاصر ہیں۔ بقول شیخ سعدیؒ:

اے برتر از خیال و قیاس و گمان و و ہم وز ہر چہ گفتہ اند و شنیدیم و خواندہ ایم دفتر تمام گشت و بپایاں رسید عمر ما ہمچناں در اول وصف تو ماندہ ایم

جزاک اللہ، اے امام احمد رضا ! کیا لبیلی اور انوکھی حمد بیان کی ہے آپ نے، اللہ رب العالمین کی ! لیکن واضح رہے سامعین و قارئین کرام ! کہ حمد کا یہ پہلو ضمنی ہے، جبکہ امام احمد رضا در حقیقت یہ کہنا چاہتے ہیں کہ اللہ تعالیٰ کی نہ کوئی حد ہے نہ انتہا۔ یعنی ع: حمد بیحد مر خدائے پاک را

لیکن محض "حمدِ بے حد" کہہ دینے سے وہ بات نہیں بنی جو امام احمد رضا کہنا چاہتے ہیں۔ وہ اللہ تعالیٰ کے فیضِ مبسوط کا ذکر کرتے ہیں۔ اور ظاہر ہے کہ اللہ کے فیض کی کوئی انتہا نہیں۔ اور غیر متناہی فیض کی زیادات، غیر متناہی در غیر متناہی ہوں گی اور جو حمد ان زیادات کی جامع ہو گی وہ غیر متناہی در غیر متناہی ہو گی، اور امام احمد رضا اللہ تعالیٰ کی ایسی ہی حمد کرنا چاہتے ہیں۔ الجامع لزیادات فیضہ_____ کیا کمال درجے کا اغراق فی المبالغہ ہے ! "حمدِ بے حد" یا "بے انتہا تعریف" میں اس مبالغے کا عشر عشیر بھی نہیں پایا جاتا۔

صلوۃ و سلام اور اس کے ضمن میں حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے فضائل کا بیان

بارگاہِ رسالت میں صلوۃ و سلام پیش کرتے ہوئے امام احمد رضا نے پہلے تو ائمہ فقہ کے ناموں اور معروف القاب کو اس طرح ترتیب دیا کہ کچھ ان میں سے سرورِ عالم کے نام بن گئے اور کچھ ان کی صفات۔ اس کے بعد اسماءِ کتب سے آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے فضائل بیان کئے ہیں البتہ صلوۃ و سلام پیش کرنے کے دوران امام احمد رضا نے مندرجہ بالا تمام محاسن و لطائف کے علاوہ ایک اور خوبی کا اضافہ کیا ہے، یعنی سرورِ کونین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے بارے میں اپنے عقیدے کی بھی وضاحت کردی ہے اور یوں اہلسنت کی ترجمانی کا فریضہ بھی انجام دے دیا ہے۔

Fatawa Razawiyya Volume 8

Imam Ahmad Raza's belief is that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is the master of all of us, rather the master of the whole world, but not by his own essence, rather he is the master through the ownership granted by Allah Almighty. In his poetic work of praise (Na'at), he says: Through the ownership granted by the Sovereign of the Kingdom, He was called the Master of the World, so what is it to you!

It is also his belief that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) will intercede for the sinners on the Day of Resurrection and will have them forgiven by Allah Almighty. Before Allah, he will continue to announce the glad tidings of intercession, You (sinners) will keep crying, he will keep making us laugh.

Now see how he explained his belief through the names and titles of the noble Imams. He writes: "And peace and blessings be upon the greatest Imam for the noble Messengers, my Master (Maliki), my Intercessor (Shafi'i), Ahmad (Ahmad), the Noble one (al-Kiram)." (And blessings and peace be upon the greatest leader of the messengers, who is my master and is the one who intercedes for me, his name is Ahmad, he is very honorable, Imam al-A'zam, Imam Malik, Imam Shafi'i, Imam Ahmad)

The well-known titles and names of the Imams of the four schools of thought are mentioned; along with them, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is being praised, and simultaneously, his own belief is being stated. Go a little further and look at the way another belief of the Ahl al-Sunnah is represented. The belief of the Ahl al-Sunnah is that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is the origin and source of the entire universe. "You are the origin of existence from the beginning, Whatever came into existence is a branch of yours."

This is exactly the belief of Imam Ahmad Raza: "The origin of every being and well-being, the seed of existence, Millions of greetings upon the distributor of the treasure of blessings."

To express this belief, he chose the names of the three famous students of Imam al-A'zam, namely Imam Muhammad, Imam Hasan ibn Ziyad, and Imam Qadi Abu Yusuf (may Allah have mercy on them all), and gathered them in such a way that the blessed name of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)

was also expressed, his beauty and splendor were also described, and it also became clear that...

Page 13 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

इमाम अहमद रज़ा का अक़ीदा (विश्वास) है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हम सबके बल्कि पूरी दुनिया के मालिक हैं, लेकिन अपनी ज़ात से नहीं बल्कि अल्लाह तआला के दिए हुए मालिकाना हक़ से मालिक हैं। अपने नातिया कलाम में फ़रमाते हैं: उनको तल्मीके मलीके मुल्क से मालिके आलम कहा फिर तुझ को क्या!

उनका यह भी अक़ीदा है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) महशर के दिन गुनहगारों की शफ़ाअत (सिफारिश) फ़रमाएंगे और हक़ तआला से उन्हें बख़्शवाएंगे। पेशे हक़ मुज़दा शफ़ाअत का सुनाते जाएंगे आप रोते जाएंगे, हम को हंसाते जाएंगे

अब देखिए कि अइम्मा इकराम के नामों और उपाधियों से किस तरह अपने अक़ीदे की वज़ाहत (व्याख्या) फ़रमाई है, लिखते हैं: وَالصَّلٰوۃُ وَالسَّلَامُ عَلَی الْاِمَامِ الْاَعْظَمِ لِلرُّسُلِ الْکِرَامِ مَالِکِیْ وَ شَافِعِیْ اَحْمَدَ الْکِرَامِ۔ (और दुरूद व सलाम हो रसूलों के सबसे बड़े इमाम पर, जो मेरे मालिक हैं और मेरे लिए शफ़ाअत करने वाले हैं, उनका नाम अहमद है, बहुत ही इज़्ज़त वाले हैं, इमाम आज़म, इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई, इमाम अहमद)

चारों मज़हबों के इमामों के मशहूर उपाधियाँ और नाम ज़िक्र किए गए हैं, उन्हीं के साथ अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की तारीफ़ की जा रही है और साथ ही साथ अपना अक़ीदा बयान किया जा रहा है। थोड़ा आगे बढ़िए और अहले सुन्नत के एक और अक़ीदे की तर्जुमानी (प्रतिनिधित्व) का अंदाज़ देखिए। अहले सुन्नत का अक़ीदा है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पूरी कायनात की असल (मूल) और स्रोत हैं। तू अस्ले वजूद आमदी अज़ नख़स्त वगर हर चे मौजूद शुद फ़रअ तूस्त

यही अक़ीदा इमाम अहमद रज़ा का है: अस्ले हर बूदो बहबूद, तोख़्मे वजूद क़ासिमे कंज़े नेमत पे लाखों सलाम

इस अक़ीदे के इज़हार के लिए आपने इमाम आज़म के तीन मशहूर शागिर्दों यानी इमाम मुहम्मद, इमाम हसन इब्न ज़ियाद और इमाम क़ाज़ी अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाह अलैहिम अजमईन) के नामों का चुनाव किया और उन्हें इस तरह इकट्ठा किया कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के नामे गिरामी का भी इज़हार हो गया, आपके हुस्न व जमाल का भी बयान हो गया, और यह भी साफ़ हो गया कि...

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

امام احمد رضا کا عقیدہ ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہم سب کے، بلکہ سارے عالم کے مالک ہیں، لیکن بالذات نہیں بلکہ اللہ تعالٰی کی تملیک سے مالک ہیں۔ اپنے نعتیہ کلام میں فرماتے ہیں: ان کو تملیکِ ملیکِ ملک سے مالکِ عالم کہا پھر تجھ کو کیا!

ان کا یہ بھی عقیدہ ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بروزِ محشر عاصیوں کی شفاعت فرمائیں گے اور حق تعالٰی سے ان کو بخشوائیں گے۔ پیشِ حق مژدہ شفاعت کا سناتے جائیں گے آپ روتے جائیں گے، ہم کو ہنساتے جائیں گے

اب دیکھئے کہ ائمہ کرام کے اسماء والقاب سے کس طرح اپنے عقیدے کی وضاحت فرمائی ہے، لکھتے ہیں: وَالصَّلٰوۃُ وَالسَّلَامُ عَلَی الْاِمَامِ الْاَعْظَمِ لِلرُّسُلِ الْکِرَامِ مَالِکِیْ وَ شَافِعِیْ اَحْمَدَ الْکِرَامِ۔ (اور صلوۃ وسلام ہو رسولوں کے سب سے بڑے امام پر، جو میرے مالک ہیں اور میرے لئے شفاعت کرنے والے ہیں، ان کا نام احمد ہے، بہت ہی عزت والے ہیں، امام اعظم، امام مالک، امام شافعی، امام احمد)

ائمہ مذاہب اربعہ کے معروف القاب و اسماء مذکور ہیں، انہی کے ساتھ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی تعریف کی جارہی ہے اور ساتھ ساتھ اپنا عقیدہ بیان کیا جارہا ہے۔ تھوڑا آگے بڑھیئے اور اہل سنت کے ایک اور عقیدے کی ترجمانی کا انداز دیکھئے۔ اہل سنت کا عقیدہ ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم تمام کائنات کی اصل اور مبداء ہیں۔ تو اصلِ وجود آمدی از نخست وگر ہر چہ موجود شد فرعِ تست

یہی عقیدہ امام احمد رضا کا ہے: اصلِ ہر بود و بہبود، تخمِ وجود قاسمِ کنزِ نعمت پہ لاکھوں سلام

اس عقیدے کے اظہار کے لئے آپ نے امامِ اعظم کے تین مشہور شاگردوں یعنی امام محمد، امام حسن ابن زیاد اور امام قاضی ابو یوسف رحمۃ اللہ علیہم اجمعین کے ناموں کا انتخاب کیا اور انہیں اس طرح یکجا کیا کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے اسم گرامی کا بھی اظہار ہو گیا، آپ کے حسن و جمال کا بھی بیان ہو گیا، اور یہ بھی واضح ہو گیا کہ...

Fatawa Razviya - Volume Eight

The beauty of Yusuf (peace be upon him) is a reflection of the beauty of Mustafa (peace be upon him). In fact, Yusuf (peace be upon him) himself is a branch of Mustafa and a descendant of Mustafa (peace be upon him). Thus it is said:

'The beauty (al-Hasan) says without hesitation, Muhammad is the beauty (al-Hasan), the father of Yusuf.'

Upon seeing your peerless beauty, Beauty itself cries out without hesitation that the possessor of beauty, Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him), is in reality the father and the origin of Yusuf (peace be upon him).

Why stop at Yusuf (peace be upon him) alone? Since the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is established as the origin of all creation, then even your forefather in physical existence, namely the Father of Humanity, Adam (peace be upon him), is considered your son in terms of reality. This reality is clarified in "Hadaiq-e-Bakhshish" as follows:

'His Prophethood and his Fatherhood are universal to all, The Mother of Humanity is the bride of his son.'

'Outwardly my flowers, in reality my trees'—this is the voice of the Father of Humanity in remembrance of that flower.

And why restrict it only to the beauty of Yusuf (peace be upon him)? According to the People of the Sunnah (Ahl-e-Sunnat), all the perfections of all the Prophets and Messengers are the grace and gift from the court of Mustafa. Imam Busiri says:

'And all of them seek from the Messenger of Allah, A handful from the ocean or a sip from the continuous rain.'

(All the Prophets seek a handful from the ocean of generosity of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) or a drop from your rain of mercy.)

And Imam Ahmad Raza sings thus:

'No, by the Lord of the Throne! Whoever received, received from him, The blessings of the Messenger of Allah are distributed in both worlds.'

This same belief is expressed in an allusive manner in the sermon of 'Fatawa Razviya':

'The clear sea, from which every superior river draws.'

"Al-Bahr al-Raiq" and "Al-Nahr al-Faiq" are two commentaries on 'Kanz al-Daqaiq'. Ala Hazrat (Imam Ahmad Raza), by adding "minhu yastamiddu kullu" (from which all draw), created such faith-refreshing meanings. He says that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is that astonishing ocean from which every superior river and stream seeks assistance.

फ़तावा रज़विया - जिल्द अष्टम

हुस्न-ए-यूसुफ़ पर तो हुस्न-ए-मुस्तफ़ा है, बल्कि ख़ुद यूसुफ़ अलैहिस्सलाम फ़रअ-ए-मुस्तफ़ा और इब्न-ए-मुस्तफ़ा हैं सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम। चुनांचे फ़रमाते हैं:-

य़क़ूलुल हसनु बिला तवक़्क़ुफ़ मुहम्मदुनिल हसनु अबू यूसुफ़

आपके जमाल-ए-बे-मिसाल को देख कर ख़ुद हुस्न बग़ैर किसी तवक़्क़ुफ़ के पुकार उठता है कि हुस्न वाले मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि तआला अलैहि वसल्लम दर-हक़ीक़त यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के'अब' और असल हैं।

एक यूसुफ़ अलैहिस्सलाम पर ही क्या मौक़ूफ़। जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि तआला अलैहि वसल्लम तमाम मख़्लूक़ात की असल ठहरे तो ज़ाहिरी वजूद में जो आपके जद-ए-अमजद हैं, यानी अबुल बशर आदम अलैहिस्सलाम, वो भी हक़ीक़त के एतबार से आपके पिसर क़रार पाते हैं। "हदाइक़-ए-बख़्शिश" में इस हक़ीक़त को यूँ वाज़ेह किया:-

इनकी नुबुव्वत, इनकी अबुव्वत है सब को आम उम्मुल बशर उरूस उन्हीं के पिसर की है

"ज़ाहिर में मेरे फूल, दर-हक़ीक़त में मेरे नख़्ल" इस गुल की याद में ये सदा अबुल बशर की है

और यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के हुस्न पर ही क्या मुन्हसिर। अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक तो तमाम अंबिया ओ रुसुल के जुमला कमालात बारगाह-ए-मुस्तफ़वी का फ़ैज़ान ओ अता है। इमाम बूसीरी फ़रमाते हैं:-

व-कुल्लुहुम मिन रसूलील्लाहि मुल्तमिसुन ग़रफ़न मिनल बहरी औ रशफ़न मिनद दियमी

(तमाम अंबिया रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि तआला अलैहि वसल्लम के बहर-ए-करम से एक चुल्लू के या आपकी बारान-ए-रहमत से एक छींटे के तलबगार हैं)

और इमाम अहमद रज़ा यूँ नग्मा सरा होते हैं:-

ला व-रब्बुल अर्श! जिसको मिला उनसे मिला बँटती है कौनैन में नेमत रसूलुल्लाह की

इसी अक़ीदे को 'फ़तावा रज़विया' के खुतबे में तल्मीह के अंदाज़ में बयान किया है:-

अल-बहरुल राइकु मिन्हु यस्तमिद्दु कुल्लु नहिन फ़ाइकिन।

"अल-बहरुल राइक" और "अन-नहरुल फ़ाइक" कंज़ुद दक़ाइक़ की दो शरहें हैं। आला हज़रत ने "मिन्हु यस्तमिद्दु कुल्लु" का इज़ाफ़ा करके क्या ईमान अफ़रोज़ मा'नी पैदा किए हैं। फ़रमाते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि तआला अलैहि वसल्लम वो हैरान कुन समुंदर हैं कि हर फ़ौक़ियत रखने वाला दरिया और नहर उन्हीं से मदद लेती है।

पेज 14 / 673

فتاویٰ رضویہ - جلد ہشتم

حسنِ یوسف پر تو حسنِ مصطفٰی ہے، بلکہ خود یوسف علیہ السلام فرعِ مصطفٰی اور ابنِ مصطفٰی ہیں صلی اللہ علیہ وسلم۔ چنانچہ فرماتے ہیں :۔

یقول الحسن بلا توقف محمد الحسن ابو یوسف

آپ کے جمالِ بے مثال کو دیکھ کر خود حسن بغیر کسی توقف کے پکار اٹھتا ہے کہ حسن والے محمد صلی اللہ علیہ تعالیٰ علیہ وسلم درحقیقت یوسف علیہ السلام کے اب، اور اصل ہیں۔

ایک یوسف علیہ السلام پر ہی کیا موقوف۔ جب رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تمام مخلوقات کی اصل ٹھہرے تو ظاہری وجود میں جو آپ کے جدِ امجد ہیں، یعنی ابوالبشر آدم علیہ السلام، وہ بھی حقیقت کے اعتبار سے آپ کے پسر قرار پاتے ہیں۔ "حدائقِ بخشش" میں اس حقیقت کو یوں واضح کیا:۔

ان کی نبوت، ان کی ابوت ہے سب کو عام ام البشر عروس انہی کے پسر کی ہے

"ظاہر میں میرے پھول، درحقیقت میں میرے نخل" اس گل کی یاد میں یہ صدا ابوالبشر کی ہے

اور یوسف علیہ السلام کے حسن پر ہی کیا منحصر۔ اہل سنت کے نزدیک تو تمام انبیاء ورسل کے جملہ کمالات بارگاہِ مصطفوی کا فیضان و عطا ہے۔ امام بوصیری فرماتے ہیں :۔

وَكُلُّهُمْ مِنْ رَسُولِ اللَّهِ مُلْتَمِسٌ غَرْفًا مِنَ الْبَحْرِ أَوْ رَشْفًا مِنَ الدِّيَمِ

(تمام انبیاء رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے بحرِ کرم سے ایک چُلّو کے یا آپ کی بارانِ رحمت سے ایک چھینٹے کے طلبگار ہیں)

اور امام احمد رضا یوں نغمہ سرا ہوتے ہیں :۔

لا ورب العرش ! جس کو ملا ان سے ملا بٹتی ہے کونین میں نعمت رسول اللہ کی

اسی عقیدے کو 'فتاویٰ رضویہ' کے خطبے میں تلمیح کے انداز میں بیان کیا ہے:

اَلْبَحْرُ الرَّائِقُ مِنْهُ يَسْتَمِدُّ كُلُّ نَهْرٍ فَائِقٍ۔

"البحر الرائق" اور "النہر الفائق" کنز الدقائق کی دو شرحیں ہیں۔ اعلیٰ حضرت نے "منہ یستمد کل" کا اضافہ کرکے کیا ایمان افروز معنی پیدا کئے ہیں۔ فرماتے ہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وہ حیران کن سمندر ہیں کہ ہر فوقیت رکھنے والا دریا اور نہر انہی سے مدد لیتی ہے۔

Fatawa Razawiyya Volume Eight

As if the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, is a vast ocean of grace and perfection, and the rest of the Prophets and Messengers are rivers and streams that hold superiority. It is obvious that the water flowing in rivers and streams is that which rises from the sea as vapor and falls somewhere as rain and somewhere as snow.

Eulogy If Imam Abu Hanifa and Qazi Abu Yusuf agree on an issue, the jurists call them "Shaykhayn" (the two elders). If Qazi Abu Yusuf and Imam Muhammad agree, they are called "Sahibayn" (the two companions), and if the opinion of Imam Abu Hanifa and Imam Muhammad is the same, they are given the title "Tarafayn" (the two sides). Now see the perfection of Imam Ahmad Raza, that he applied these three jurisprudential terms to Siddiq-e-Akbar and Farooq-e-Azam (may Allah be pleased with them both) and said:

لَا سِيَّمَا الشَّيْخَيْنِ الصَّاحِبَيْنِ الْآخِذَيْنِ مِنَ الشَّرِيعَةِ وَالْحَقِيقَةِ بِكِلَا الطَّرَفَيْنِ (Especially those great companions of the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, who hold onto both the edges of Sharia and Haqiqat.)

In short, what should I write and to what extent, for: Neither His beauty has an end, nor does Saadi have a limit to his words.

However, for the sake of brevity at present, I will only say that such a sermon containing so many qualities and virtues has not been written to this day. Leave the other characteristics, just look at one characteristic, and you will be convinced of the truth of my claim. And that astonishing characteristic is that in this sermon, the names of ninety Mohtabs and Imams are mentioned collectively, and with such beauty and subtlety that eloquence takes pride in it and rhetoric dances with joy. It should also be noted that these beauties of eloquence and rhetoric are not limited to the sermon alone; rather, the entire Fatawa is rich with the delicacy of imagination and literary refinements. If its details were to be described, hundreds of pages would be required; however, I find it necessary to draw the attention of those with taste to one distinctive excellence. It is the practice of Ahmad Raza that if an answer to a question needs to be given in more detail, he makes it an independent treatise and gives it a regular name. It is so appropriate, fitting, and in accordance with the facts that the reader is left amazed at the reach and access of Imam Ahmad Raza. In every name, the following four characteristics are common:

फ़तावा रज़विया खंड आठ

मानो अल्लाह के रसूल, सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम, अनुग्रह और पूर्णता के विशाल सागर हैं, और बाकी नबी और रसूल श्रेष्ठता रखने वाली नदियाँ और नहरें हैं। ज़ाहिर है कि नदियों और नहरों में वही पानी बहता है जो समुद्र से भाप बनकर उठता है और कहीं बारिश बनकर बरसता है, कहीं बर्फ बनकर गिरता है।

प्रशंसा (मनक़बत) यदि किसी मसले में इमाम अबू हनीफ़ा और क़ाज़ी अबू यूसुफ़ सहमत हों, तो फ़क़ीह (विधिवेत्ता) उन्हें "शैख़ैन" कहते हैं। और यदि क़ाज़ी अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद सहमत हों, तो उन्हें "साहिबैन" कहा जाता है, और यदि इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मुहम्मद की राय एक हो, तो उन्हें "तरफ़ैन" का ख़िताब दिया जाता है। अब इमाम अहमद रज़ा का कमाल देखिये कि उन्होंने इन तीनों फ़िक़्ही (न्यायशास्त्र) शब्दावलियों को सिद्दीक़-ए-अकबर और फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) पर लागू कर दिया और फ़रमाया:

لَا سِيَّمَا الشَّيْخَيْنِ الصَّاحِبَيْنِ الْآخِذَيْنِ مِنَ الشَّرِيعَةِ وَالْحَقِيقَةِ بِكِلَا الطَّرَفَيْنِ (विशेष रूप से अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के वे महान साथी जो शरीयत और हक़ीक़त के दोनों किनारों को थामे हुए हैं।)

संक्षेप में, मैं क्या-क्या लिखूँ और कहाँ तक लिखूँ कि: न उनके हुस्न का अंत है, न सादी के कलाम का कोई सिरा।

लेकिन वर्तमान में संक्षिप्तता को देखते हुए बस इतना ही कहूँगा कि इतने गुणों और खूबियों वाला खुतबा (भाषण) आज तक नहीं लिखा गया। बाकी विशेषताओं को छोड़िये, केवल एक विशेषता पर नज़र डाल लीजिये, आपको मेरे दावे की सच्चाई का यक़ीन आ जाएगा। और वह हैरतअंगेज़ विशेषता यह है कि इस खुतबे में सामूहिक रूप से नब्बे मोहताबों और इमामों के नाम वर्णित हैं, और जिस सुंदरता और कोमलता के साथ वर्णित हैं, उस पर फ़साहत (सुवक्तृत्व) नाज़ करती है और बलाग़त (वक्तृत्व कला) झूम-झूम उठती है। यह भी ध्यान रहे कि फ़साहत और बलाग़त की ये खूबसूरती केवल खुतबे तक ही सीमित नहीं है, बल्कि पूरा फ़तावा कल्पना की बारीकियों और साहित्यिक कोमलता से भरपूर है। यदि इसका विवरण दिया जाए, तो सैकड़ों पन्नों की आवश्यकता होगी; हालाँकि, मैं स्वाद रखने वालों का ध्यान एक विशिष्ट उत्कृष्टता की ओर आकर्षित करना आवश्यक समझता हूँ। अहमद रज़ा का यह नियम है कि यदि किसी प्रश्न का उत्तर अधिक विस्तार से देना हो, तो

वे इसे एक स्वतंत्र शोध-पत्र बना देते हैं और बाकायदा उसका नाम रखते हैं। यह इतना उपयुक्त, उचित और वास्तविकता के अनुसार होता है कि पढ़ने वाला इमाम अहमद रज़ा की पहुंच और दक्षता पर हैरान रह जाता है। प्रत्येक नाम में निम्नलिखित चार विशेषताएँ साझा होती हैं:

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

گو یا رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فضل و کمال کے بحر زخار ہیں اور باقی انبیاء و رسل فوقیت رکھنے والے دریا اور نہریں۔ ظاہر ہے کہ دریاؤں اور نہروں میں وہ پانی بہتا ہے جو بھاپ بن کر سمندر سے اٹھتا ہے اور کہیں بارش بن کر برستا ہے، کہیں برف بن کر گرتا ہے۔

منقبت اگر کسی مسئلے میں امام ابو حنیفہ اور قاضی ابو یوسف متفق ہوں تو فقہاء ان کو "شیخین" کہتے ہیں اور اگر قاضی ابو یوسف اور امام محمد کا اتفاق ہو تو ان کو "صاحبین" کہا جاتا ہے اور اگر امام ابو حنیفہ اور امام محمد کی ایک رائے ہو تو ان کو "طرفین" کا لقب دیا جاتا ہے۔ اب امام احمد رضا کا کمال دیکھئے کہ انہوں نے ان تینوں فقہی اصطلاحات کو صدیق اکبر اور فاروق اعظم (رضی اللہ تعالیٰ عنہما) پر منطبق کر دیا اور فرمایا:

لَا سِیَّمَا الشَّیْخَیْنِ الصَّاحِبَیْنِ الْآخِذَیْنِ مِنَ الشَّرِیعَۃِ وَالْحَقِیقَۃِ بِکِلَا الطَّرَفَیْنِ (خصوصاً رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے وہ بزرگ ساتھی جو شریعت و حقیقت کے دونوں کناروں کو تھامنے والے ہیں)

غرضیکہ کیا کیا لکھوں اور کہاں تک لکھوں کہ ع نہ حسنش غایتے دارد نہ سعدی را سخن پایاں

مگر فی الحال اختصار کے پیش نظر اتنا ہی کہوں گا کہ اتنے اوصاف و محاسن پر مشتمل خطبہ آج تک نہیں لکھا گیا۔ باقی خصوصیات کو چھوڑیئے، صرف ایک خصوصیت پر نظر ڈال لیجئے، آپ کو میرے دعوے کی صداقت کا یقین آجائے گا۔ اور وہ حیرت افزا خصوصیت یہ ہے کہ اس خطبے میں مجموعی طور پر نوے مہتابوں اور اماموں کے نام مذکور ہیں اور جس خوبی و لطافت سے مذکور ہیں اس پر فصاحت ناز کرتی ہے اور بلاغت جھوم جھوم اٹھتی ہے۔ یہ بھی ملحوظ رہے کہ

فصاحت و بلاغت کی یہ رعنائیاں صرف خطبے تک ہی محدود نہیں، بلکہ پورا فتاویٰ تخیل کی نزاکتوں اور ادبی لطافتوں سے مالامال ہے۔ اگر اس کی تفصیل بیان کی جائے تو سینکڑوں صفحات درکار ہیں؛ تاہم ایک امتیازی کمال کی طرف اہل ذوق کو متوجہ کرنا ضروری سمجھتا ہوں۔ احمد رضا کا معمول ہے کہ اگر کسی سوال کا جواب زیادہ تفصیل سے دینا ہو تو اس کو مستقل رسالہ بنا دیتے ہیں اور باقاعدہ اس کا نام رکھتے ہیں۔ یہ اس قدر موزوں، مناسب اور واقع کے مطابق ہوتا ہے کہ پڑھنے والا امام احمد رضا کی دسترس اور رسائی پر حیران رہ جاتا ہے۔ ہر نام میں مندرجہ ذیل چار خصوصیات مشترک ہوتی ہیں:

(1) Every name is in Arabic, regardless of the language the treatise is written in. (2) Every name consists of two parts, and the last letter of both parts is the same, meaning rhyme (saj') is fully taken care of. (3) Every name is descriptive of its content (ism ba-musamma), meaning the name itself reveals the subject matter of the treatise. (4) Every name is chronogrammatic (tarikhi), meaning if the numerical values of its letters are calculated according to the Abjad system, their sum indicates the year in which the treatise was written. As an example, in the first volume of Fatawa Razawiyya, published with great splendor under the auspices of the Raza Foundation, there are eleven treatises. Only three names are presented here as samples: (a) If there is a difference of opinion between Imam Abu Hanifa, his disciples (Sahibayn), and later jurists on an issue, then in this case, whose statement will the fatwa be based on? On the Imam's? On the Sahibayn's and other jurists'? Or on the Imam's statement in some matters and on the opinion of the Sahibayn and other jurists in others? To explain this issue, the research of Imam Ahmad Raza becomes clear from the name of the treatise he wrote: Ajla al-I'lam, anna al-Fatwa Mutlaqan 'ala Qawl al-Imam (Clear declaration that the fatwa is based on Imam Abu Hanifa's statement in all circumstances) (b) Which type of sleep invalidates wudu and which does not? The name of the treatise written to inform the nation of these details is: Nabbah al-Qawm, anna al-Wudu' min ayyi Nawm (Informing the nation about which sleep necessitates wudu) (c) Is recitation of the Quran permissible in a state of major ritual impurity (janabat)? If permissible, in which cases? What is the name of the treatise that unveils these issues? Irtifa' al-Hujub, 'an Wujuhi Qira'at al-Junub (Lifting the veils from all the situations related to recitation by a person in state of impurity) The names of all three treatises encompass the four characteristics mentioned above, the first three of which are clearly visible; however, the fourth characteristic, i.e., the name being historical (chronogrammatic), requires extraction. The extraction for 'Nabbah al-Qawm' is given below because this name is the shortest among the three; you may infer the others based on it.

फतावा रज़विया | जिल्द 8

(1) हर नाम अरबी में होता है चाहे रिसाला किसी भी ज़बान में हो। (2) हर नाम दो हिस्सों पर मुश्तमिल होता है और दोनों हिस्सों का आख़िरी हर्फ़ एक ही होता है, यानी सज्ज (तुकबंदी) का पूरा-पूरा ख्याल रखा जाता है। (3) हर नाम 'इस्म बा-मुसम्मा' होता है, यानी नाम ही से पता चल जाता है कि उस रिसाले का मौज़ू (विषय) क्या है। (4) हर नाम तारीखी होता है, यानी अबजद के हिसाब से अगर इसके हुरूफ के आदाद (संख्या) निकाले जाएं तो उनका मजमूआ (योग) उस सन (वर्ष) पर दलालत करता है जिसमें वह रिसाला लिखा गया। मिसाल के तौर पर रज़ा फाउंडेशन के ज़ेरे-अहतेमाम इंतिहाई आब व ताब से छपने वाली फतावा रज़विया की पहली जिल्द में ग्यारह रिसाले हैं उनमें से बतौरे-नमूना सिर्फ तीन नाम पेश-ए-ख़िदमत हैं: (क) अगर इमाम अबू हनीफ़ा और साहिबैन व मुताख़िरीन फ़ुक़हा का किसी मसले में इख़्तिलाफ़ हो जाए तो इस सूरत में किसके क़ौल पर फ़तवा होगा? इमाम साहब के? साहिबैन व दीगर फ़ुक़हा के? या बाज़ मामूलात में इमाम साहब के क़ौल पर और बाज़ साहिबैन व दीगर फ़ुक़हा की राय पर? इस मसले की तौज़ीह (व्याख्या) के लिए इमाम अहमद रज़ा ने जो रिसाला लिखा उसके नाम से ही उनकी तहक़ीक़ वाज़ेह हो जाती है। 'अजला-अल-एलाम, अन्नल फ़तवा मुतलक़न अला क़ौले-अल-इमाम' (वाज़ेह एलान कि फ़तवा बहर सूरत इमाम अबू हनीफ़ा के क़ौल पर है) (ख) कौन सी नींद नाक़िज़-ए-वुज़ू है और कौन सी नहीं। इसकी तफ़सीलात से क़ौम को आगाह करने के लिए जो रिसाला लिखा उसका नाम है: 'नब्बह-अल-क़ौम, अन्नल वुज़ू-अ मिन अय्ये नौम' (क़ौम को आगाह करना कि कौन सी नींद के बाद वुज़ू है) (ग) हालते-जनाबत में क़िरात जाएज़ है या नहीं? अगर जाएज़ है तो किन-किन सूरतों में? इन मसाइल से पर्दा उठाने वाले रिसाले का नाम है? 'इरतिफ़ा-अल-हुजुब, अन वुजूहे क़िराते-अल-जुनुब' (पर्दों का उठ जाना, उन तमाम सूरतों से जो जुनबी की क़िरात से मुतअल्लिक़ हैं) तीनों रसायल के नाम मुन्दरजा बाला चारों खुसूसियात के जामेअ हैं जिनमें से पहली तीन तो वाज़ेह तौर पर नज़र आ रही हैं; अलबत्ता चौथी खुसूसियत यानी नाम का तारीखी होना, इस्तिख़राज (गणना) का तक़ाज़ा करती है। 'नब्बह-अल-क़ौम' का इस्तिख़राज दर्ज-ए-ज़ैल है क्योंकि यह नाम तीनों में मुख़्तसर है, बाक़ियों को इस पर क़यास कर लीजिये।

पेज 16 ऑफ 673

(۱) ہر نام عربی میں ہوتا ہے خواہ رسالہ کسی بھی زبان میں ہو۔ (۲) ہر نام دو حصوں پر مشتمل ہوتا ہے اور دونوں حصوں کا آخری حرف ایک ہی ہوتا ہے، یعنی سجع کا پورا پورا خیال رکھا جاتا ہے۔ (۳) ہر نام اسم باسمیٰ ہوتا ہے، یعنی نام ہی سے پتا چل جاتا ہے کہ اس رسالے کا موضوع کیا ہے۔ (۴) ہر نام تاریخی ہوتا ہے، یعنی ابجد کے حساب سے اگر اس کے حروف کے اعداد نکالے جائیں تو ان کا مجموعہ اس سَن پر دلالت کرتا ہے جس میں وہ رسالہ لکھا گیا۔ مثال کے طور پر رضا فاؤنڈیشن کے زیرِ اہتمام انتہائی آب و تاب سے چھپنے والی فتاویٰ رضویہ کی پہلی جلد میں گیارہ رسالے ہیں ان میں سے بطورِ نمونہ صرف تین نام پیشِ خدمت ہیں : (۱) اگر امام ابو حنیفہ اور صاحبین و متاخرین فقہاء کا کسی مسئلے میں اختلاف ہو جائے تو اس صورت میں کس کے قول پر فتویٰ ہوگا؟ امام صاحب کے؟ صاحبین و دیگر فقہاء کے؟ یا بعض معمولات میں امام صاحب کے قول پر اور بعض صاحبین و دیگر فقہاء کی رائے پر؟ اس مسئلے کی توضیح کے لئے امام احمد رضا نے جو رسالہ لکھا اس کے نام سے ہی ان کی تحقیق واضح ہو جاتی ہے۔ اجلی الاعلام، ان الفتوی مطلقا علی قول الامام (واضح اعلان کہ فتویٰ بہر صورت امام ابو حنیفہ کے قول پر ہے) (ب) کون سی نیند ناقضِ وضو ہے اور کون سی نہیں۔ اس کی تفصیلات سے قوم کو آگاہ کرنے کے لئے جو رسالہ لکھا اس کا نام ہے : نبہ القوم، ان الوضوء من ای نوم (قوم کو آگاہ کرنا کہ کون سی نیند کے بعد وضو ہے) (ج) حالتِ جنابت میں قرأت جائز ہے یا نہیں؟ اگر جائز ہے تو کن کن صورتوں میں؟ ان مسائل سے پردہ اٹھانے والے رسالے کا نام ہے؟ ارتفاع الحجب، عن وجوہ قرآۃ الجنب (پردوں کا اٹھ جانا، ان تمام صورتوں سے جو جنبی کی قرأت سے متعلق ہیں) تینوں رسائل کے نام مندرجہ بالا چاروں خصوصیات کے جامع ہیں جن میں سے پہلی تین تو واضح طور پر نظر

آرہی ہیں؛ البتہ چوتھی خصوصیت یعنی نام کا تاریخی ہونا، استخراج کا تقاضا کرتی ہے۔ نبہ القوم کا استخراج درجِ ذیل ہے کیونکہ یہ نام تینوں میں مختصر ہے، باقیوں کو اس پر قیاس کر لیجئے۔

Nibba al-Qawm: N, B, H, A, L, Q, W, M 234 = 40+6+100+30+1+5+2+50 Inna al-wudu'a min ayyi nawmin: A, N, A, L, W, D, U, M, N, A, Y, N, W, M + 1325 | 1091 = 40+6+50+10+1+50+40+6+800+6+30+1+50+1 1325 is the total of these numbers, and this is the historical year. Who but Imam Ahmad Raza could give such excellent, sublime, heartwarming names that are masterpieces of thought and art! Name even one scholar in history who has written so many treatises and given them such beautiful names! Undoubtedly, Imam Ahmad Raza is the true manifestation of this verse by Mutanabbi:

Periods of time have passed and have not brought forth his like, And indeed, he came, and they were unable to produce his equals. And may Allah's peace and blessings be upon our Master and Leader Muhammad, and upon his family, his companions, and all his descendants.

Millions of salutations upon Mustafa, the soul of mercy, Millions of salutations upon the candle of the assembly of guidance. Millions of blessings from their Lord upon them, Millions of salutations upon his companions and progeny. Shafi'i, Malik, Ahmed, Imam Hanif, Millions of salutations upon the four gardens of leadership. Without torment, rebuke, reckoning, or record, Millions of salutations upon the Ahl al-Sunnah until eternity. It's not just my claim on mercy, Millions of salutations upon the entire Ummah of the King.

Amen, O Lord of the worlds!

खंड आठ | फतावा रज़विया

निब्बा अल-क़ौम: न, ब, ह, अ, ल, क़, व, म २३४ = ४०+६+१००+३०+१+५+२+५० इन्नल वुज़ूआ मिन अय्यि नौमिन: अ, न, अ, ल, व, ज़, व, उ, म, न, अ, य, न, व, म + १३२५ | १०९१ = ४०+६+५०+१०+१+५०+४०+६+८००+६+३०+१+५०+१ १३२५ इन अंकों का योग है और यही ऐतिहासिक वर्ष है। इमाम अहमद रज़ा के अलावा ऐसे उम्दा, आला, दिलनशीन और फ़िक्र व फ़न के शाहकार नाम कौन रख सकता है! इतिहास में किसी एक फ़ाज़िल का नाम बता दीजिये जिसने इतने रिसाले लिखे हों और उनके ऐसे खूबसूरत नाम रखे हों! निस्संदेह इमाम अहमद रज़ा मुतनब्बी के इस शेर के सच्चे हक़दार हैं:

युग बीत गए और उसके जैसा कोई नहीं आया, और वास्तव में वह आए, और वे उसके समकक्ष लाने में असमर्थ रहे। और अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हमारे आका और मौला मुहम्मद पर, और उनके परिवार, उनके साथियों और उनके सभी वंशजों पर हो।

मुस्तफ़ा जाने रहमत पे लाखों सलाम, शम-ए-बज़्म-ए-हिदायत पे लाखों सलाम उन के मौला के उन पर करोड़ों दरूद, उन के असहाब व इतरत पे लाखों सलाम शाफ़ई, मालिक, अहमद, इमाम हनीफ़, चार बाग़-ए-इमामत पे लाखों सलाम बे अज़ाब व अताब व हिसाब व किताब, ता-अबद अहल-ए-सुन्नत पे लाखों सलाम एक मेरा ही रहमत पे दावा नहीं, शाह की सारी उम्मत पे लाखों सलाम

आमीन या रब्बल आलमीन!

पेज 17 का 673

نبہ القوم ن، ب، ہ، ا، ل، ق، و، م ۲۳۴ = ۴۰+۶+۱۰۰+۳۰+۱+۵+۲+۵۰ ان الوضوء من ای نوم ا، ن، ا، ل، و، ض، و، ء، م، ن، ا، ی، ن، و، م + ۱۳۲۵ ۱۰۹۱ =

۱+۵۰+۱+۳۰+۶+۸۰۰+۶+۴۰+۵۰+۱+۱۰+۵۰+۶+۴۰ ۱۳۲۵ اس کا مجموعہ اعداد ہے اور یہی سنِ تاریخ ہے۔ امام احمد رضا کے سوا ایسے عمدہ، اعلیٰ، دلنشین اور فکر و فن کے شاہکار نام کون رکھ سکتا ہے! تاریخ میں کسی ایک فاضل کا نام بتا دیجئے جس نے اتنے رسالے لکھے ہوں اور ان کے ایسے خوبصورت نام رکھے ہوں! بلا شبہ امام احمد رضا متنبی کے اس شعر کا حقیقی مصداق ہیں:

مضت الدھور و ما آتین بمثلہ ولقد اتی فعجزن عن نظرائہ وصلی اللہ علی سیدنا و مولانا محمد وعلی آلہ واصحابہ وذریاتہ اجمعین

مصطفیٰ جانِ رحمت پہ لاکھوں سلام شمعِ بزمِ ہدایت پہ لاکھوں سلام اُن کے مولیٰ کے ان پر کروروں درود اُن کے اصحاب و عترت پہ لاکھوں سلام شافعی، مالک، احمد، امامِ حنیف چار باغِ امامت پہ لاکھوں سلام بے عذاب و عتاب و حساب و کتاب تا ابد اہل سنت پہ لاکھوں سلام ایک میرا ہی رحمت پہ دعویٰ نہیں شاہ کی ساری اُمت پہ لاکھوں سلام

آمین یارب العالمین!

صفحہ ۱۷ از ۶۷۳

Fatawa-e-Razvia Volume Eight

Table of Contents

- Preface (Page 5) | A matter on which the common practice and actions of Muslims in all cities are a just witness, it does not need proof. (Page 60)
- Fatawa-e-Razvia (Page 9) | Whoever makes a claim against common practice should bring proof for their claim. (Page 60)
- Chapter on Rules of Mosques (Page 57) | Mention of ten reasons to clarify the courtyard of the mosque as part of the mosque. (Page 60)
- Treatise: Al-Tabsir al-Munjid regarding the courtyard of the mosque being a mosque (Regarding the explanation of the mosque's courtyard being a mosque) (Page 59) | A mosque is the name of that piece of land which has been purely endowed for the purpose of the five daily prayers. (Page 60)
- The courtyard of the mosque is definitely a part of the mosque, just as a courtyard is a part of a house. (Page 60) | Buildings, structures, roofs, etc., are not included in the essence of a mosque. (Page 60)
- If one takes an oath that I will not go to Zaid's house and enters the courtyard, he will be a breaker of the oath. (Page 60) | If there is no building at all, and only a platform or a bounded field is endowed for prayer, it will definitely become a mosque and will deserve all the rulings of a mosque. (Page 60)
- If one takes an oath that I will not go out of the mosque and enters the courtyard, he will not be a breaker of the oath. (Page 60) | Distinguishing between roofed and unroofed, and considering it [the latter] as the courtyard/ exterior of the mosque [instead of part of the mosque itself] is purely meaningless. (Page 61)
- It is certainly permissible for the person in i'tikaf (spiritual retreat) to come, go, and sit in the courtyard of the mosque. (Page 60) | Whether it is a mosque and place of worship or a house and dwelling, dividing every house into two parts based on the difference of seasons is among the regular habits of mankind; they roof one part so it protects from snow, rain, and sun, and keep the other open so it serves for sitting in the sun and getting air. (Page 61)

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं

विषयों की सूची

- प्रस्तावना (पृष्ठ 5) | जिस विषय पर सभी शहरों के आम मुसलमानों का व्यवहार और कार्य न्यायपूर्ण गवाह हों, वह प्रमाण का मोहताज नहीं है। (पृष्ठ 60)
- फ़तावा-ए-रज़विया (पृष्ठ 9) | जो व्यक्ति प्रचलित व्यवहार के विरुद्ध दावा करे, उसे अपने दावे का प्रमाण देना चाहिए। (पृष्ठ 60)
- मस्जिदों के नियमों का अध्याय (पृष्ठ 57) | मस्जिद के आंगन के मस्जिद होने को स्पष्ट करने के लिए दस कारणों का उल्लेख। (पृष्ठ 60)
- रिसाला अल-तब्सीर अल-मुन्जिद बियान सह्न अल-मस्जिद मस्जिद (मस्जिद के आंगन के मस्जिद होने के विवरण में) (पृष्ठ 59) | मस्जिद उस भूखंड का नाम है जिसे केवल पांच वक्त की नमाज के उद्देश्य से शुद्ध रूप से वक्फ किया गया हो। (पृष्ठ 60)
- मस्जिद का आंगन निश्चित रूप से मस्जिद का हिस्सा है, जैसे आंगन वाला घर घर का हिस्सा होता है। (पृष्ठ 60) | इमारतें, निर्माण, छत आदि मस्जिद के सार में शामिल नहीं हैं। (पृष्ठ 60)
- यदि किसी ने शपथ ली कि मैं जैद के घर नहीं जाऊंगा और वह आंगन में चला गया, तो उसकी शपथ टूट जाएगी। (पृष्ठ 60) | यदि इमारत बिल्कुल न हो, केवल चबूतरा या सीमित मैदान नमाज के लिए वक्फ कर दिया जाए, तो वह निश्चित रूप से मस्जिद बन जाएगा और मस्जिद के सभी नियमों का पात्र होगा। (पृष्ठ 60)
- यदि किसी ने शपथ ली कि मैं मस्जिद से बाहर नहीं जाऊंगा और वह आंगन में आ गया, तो उसकी शपथ नहीं टूटेगी। (पृष्ठ 60) | छत वाले और बिना छत वाले में अंतर करना और उसे मस्जिद से अलग (फ़ना-ए-मस्जिद) मानना पूरी तरह अर्थहीन है। (पृष्ठ 61)
- एतिकाफ करने वाले के लिए मस्जिद के आंगन में आना-जाना और बैठना निश्चित रूप से जायज है। (पृष्ठ 60) | चाहे वह मस्जिद और इबादतगाह हो या घर और निवास, मौसम के अंतर के आधार पर हर घर को दो भागों में विभाजित करना मानव जाति की नियमित आदतों में से है; वे एक हिस्से पर छत डालते हैं ताकि वह बर्फ़ बारिश और सूरज से बचाए, और दूसरे को खुला रखते हैं ताकि वह धूप सेंकने और हवा लेने के काम आए। (पृष्ठ 61)

पृष्ठ 19 / 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

فہرست مضامین

- پیش لفظ (۵) | جس مسئلہ پر تمام بلاد میں عام مسلمین کے تعامل و افعال شاہد عدل ہوں وہ محتاجِ دلیل نہیں۔ (۶۰)
- فتاویٰ رضویہ (۹) | جو دعویٰ خلاف تعامل کرے اپنے دعوے پر دلیل لائے۔ (۶۰)
- باب احکام المساجد (۵۷) | صحنِ مسجد کے مسجد ہونے کی وضاحت کے لئے دس وجوہ کا ذکر۔ (۶۰)
- رسالہ التبصیر المنجد بأن صحن المسجد مسجد (صحن مسجد کے مسجد ہونے کے بیان میں) (۵۹) | مسجد اس بقعہ کا نام ہے جو بغرضِ نماز پنجگانہ وقف خالص کیا گیا ہو۔ (۶۰)
- صحنِ مسجد قطعاً جزءِ مسجد ہے جس طرح صحن دار جزءِ دار ہے۔ (۶۰) | عمارات و بنایا سقف وغیرہ مسجد کی ماہیت میں داخل نہیں۔ (۶۰)
- اگر قسم کھائی کہ زید کے گھر نہ جاؤں گا اور صحن میں گیا تو حانث ہوگا۔ (۶۰) | اگر عمارت اصلاً نہ ہو صرف چبوترہ یا محدود میدان نماز کے لئے وقف کر دیا جائے تو قطعاً مسجد ہو جائے گا اور تمام احکامِ مسجد کا استحقاق پائے گا۔ (۶۰)
- اگر قسم کھائی کہ مسجد سے باہر نہ جاؤں گا اور صحن میں آیا تو حانث نہ ہوگا۔ (۶۰) | مسقف و غیر مسقف میں فرق کرنا اسے مسجد سے فناءِ مسجد ٹھہرانا محض بے معنی ہے۔ (۶۱)
- معتکف کو مسجد کے صحن میں آنا جانا بیٹھنا یقیناً روا ہے۔ (۶۰) | مسجد و معبد ہو یا منزل و مسکن ہر مکان کو بلحاظ اختلافِ موسم دو حصوں پر تقسیم کرنا عادات مطردہ بنی نوع انسان

سے ہے، ایک پارہ مسقف کرتے ہیں کہ برف و بارش و آفتاب سے بچائے دوسرا کھلا رکھتے ہیں کہ دھوپ میں بیٹھنے اور ہوا لینے کے کام آئے۔ (۶۱)

Fatawa Razawiyya | Volume 8

No.	Description	No.	Description	Pg.
61	In the Arabic language, the roofed part is called 'Shitwi' (winter area) and the unroofed part is called 'Saifi' (summer area).	61	Planting trees in a mosque is prohibited; however, it is permissible if it benefits the mosque.	65
61	To consider only 'Shitwi' (roofed) as the mosque and exclude 'Saifi' (courtyard) from the mosque is contrary to the intention of the endowers (waqifeen).	61	In the Grand Mosque of Bukhara, the scholars allowed planting trees due to necessity and need.	66
62	Common Muslims consider the mosque courtyard as the mosque itself; this is why they perform Fajr, Maghrib, and Isha prayers in the courtyard during summer, their memorizers (Huffaz) lead Taraweeh there, and those in seclusion (I'tikaf) stay there and engage in remembrance and worship.	62	The shops at the mosque gate are part of the mosque's precincts (fana-e-masjid).	66
62	Denying the mosque-status of the courtyard is against consensus (ijma).	62	It is correct for worshippers standing on the roofs of shops built at the mosque gate to follow the Imam (iqtida).	66
62	Observing the rights of the mosque is more important and takes precedence over following the congregation.	62	'Fana' (precincts) is that which is adjacent to the mosque, not that which is adjacent to the 'fana'.	66
62	In a mosque where no worshipper comes, the Mu'adhin of that mosque should give the Adhan, say the Iqamah, and pray alone; this is better for him than praying in congregation in another mosque.	62	If 'fana' were defined as being adjacent to 'fana', it would lead to infinite distance.	66
63		63	The claim that the concept of courtyard (Sahn) and	66

No.	Description	No.	Description	Pg.
	The result of the unwarranted dispute over not accepting the mosque courtyard as part of the mosque is the desertion of mosques.		precincts (Fana) is one and the same is sheer ignorance.	
64	What were the boundaries of the Prophet's Mosque in the prophetic era, i.e., what were its length and width?	64	It is not permissible for a person in a state of major ritual impurity (junubi) to enter the mosque courtyard.	67
64	Suffah, which was a roofed veranda on the north (Sham) side and south-facing of the Noble Mosque, was part of the mosque, and the People of Suffah (may Allah be pleased with them) resided in it.	64	If there is a water spring in the mosque and it is found nowhere else, a person in major ritual impurity can go there after performing Tayammum.	67
64	The companions of Suffah were reciters (Qurra).	64	The fact that the mosque courtyard is part of the mosque is among clear self-evident truths.	67
65	The Mihrab of Mustafa (peace and blessings be upon him) is to the north of the Mihrab of the Leader of the Faithful Uthman Ghani (may Allah be pleased with him).	65	Clarifications from twelve Imams of the religion that the mosque courtyard is also part of the mosque.	67

नं.	विवरण	पृष्ठ
61	अरबी भाषा में छत वाले हिस्से को 'शितवी' (शीतकालीन) और बिना छत वाले हिस्से को 'सैफ़ी' (ग्रीष्मकालीन) कहा जाता है।	
61	केवल 'शितवी' (छत वाले हिस्से) को मस्जिद मानना और 'सैफ़ी' (आंगन) को मस्जिद से बाहर करना दानकर्ताओं (वाकिफ़ीन) की मंशा के विरुद्ध है।	
62	आम मुसलमान मस्जिद के आंगन को मस्जिद ही मानते हैं; यही कारण है कि वे गर्मियों में आंगन में फ़ज्र, मग़रिब और ईशा की नमाज़ अदा करते हैं, उनके हाफ़िज़ वहां तरावीह पढ़ाते हैं, और एतिकाफ़ करने वाले वहां बैठते हैं और ज़िक्र और इबादत में व्यस्त रहते हैं।	
62	आंगन की मस्जिदियत से इंकार करना आम सहमति (इज्मा) के विरुद्ध है।	
62	मस्जिद के अधिकारों का सम्मान करना जमात के अनुसरण से अधिक महत्वपूर्ण और प्राथमिकता वाला है।	
62	जिस मस्जिद में कोई नमाज़ी न आए, उस मस्जिद का मुअज़्ज़िन अज़ान दे, इक़ामत कहे और अकेले नमाज़	
61	मस्जिद में पेड़ लगाना वर्जित है; हालाँकि, यदि यह मस्जिद के लिए लाभकारी हो तो इसकी अनुमति है।	65
61	बुखारा की जामा मस्जिद में विद्वानों ने आवश्यकता और ज़रूरत के कारण पेड़ लगाने की अनुमति दी थी।	66
62	मस्जिद के दरवाज़े पर जो दुकानें हैं, वे मस्जिद के क्षेत्र (फ़ना-ए-मस्जिद) का हिस्सा हैं।	66
62	मस्जिद के दरवाज़े पर बनी दुकानों की छतों पर खड़े होने वाले नमाज़ियों के लिए इमाम का अनुसरण (इक़्तदा) करना सही है।	66
62	'फ़ना' (परिक्षेत्र) वह है जो मस्जिद के निकट हो, न कि वह जो 'फ़ना' के निकट हो।	66
62	यदि 'फ़ना' को 'फ़ना' के निकट होने के रूप में परिभाषित	66

नं.	विवरण	पृष्ठ
	पढ़े; यह उसके लिए दूसरी मस्जिद में जमात के साथ नमाज़ पढ़ने से बेहतर है।	
63	मस्जिद के आंगन को मस्जिद न मानने के अनुचित विवाद का परिणाम मस्जिदों का वीरान होना है।	
64	नबी के युग में मस्जिद-ए-नबवी की सीमाएँ क्या थीं, यानी इसकी लंबाई और चौड़ाई कितनी थी?	
64	सुफ़्फ़ा, जो मस्जिद-ए-नबवी के उत्तर (शाम) दिशा में दक्षिण मुखी एक छत वाला बरामदा था, मस्जिद का हिस्सा था और अहले सुफ़्फ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) इसमें निवास करते थे।	
64	सुफ़्फ़ा के साथी कारी (क़ुरआन का पाठ करने वाले) थे।	
65	मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मेहराब, अमीरुल मोमिनीन उस्मान ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की मेहराब के उत्तर की ओर है।	
63	यह दावा करना कि आंगन (सहन) और क्षेत्र (फ़ना) की अवधारणा एक ही है, सरासर अज्ञानता है।	66
64	नापाकी (जुन्बी) की स्थिति में मस्जिद के आंगन में जाना जायज़ नहीं है।	67
64	यदि मस्जिद में पानी का चश्मा है और वह कहीं और नहीं मिलता है, तो नापाक व्यक्ति तयम्मुम करने के बाद वहां जा सकता है।	67
64	मस्जिद के आंगन का मस्जिद का हिस्सा होना स्पष्ट स्वतः सिद्ध सत्यों में से है।	67
65	धर्म के बारह इमामों के स्पष्टीकरण कि मस्जिद का आंगन भी मस्जिद है।	67

نمبر	عنوان نمبر	عنوان صفحہ
۶۱	زبانِ عرب میں مسقف حصے کو شتوی اور اور غیر مسقف کو صیفی کہتے ہیں۔ ۶۱	مسجد میں پیڑ بونا ممنوع، ہاں اگر اس میں مسجد کی منفعت ہو تو جائز ہے۔ ۶۵
۶۱	صرف شتوی یعنی مسقف کو مسجد اور صیفی یعنی صحن کو خارج از مسجد ٹھہرانا غرضِ واقفین کے خلاف ہے۔ ۶۱	جامع مسجد بخارا میں درخت لگانے کی اجازت مشائخ نے ضرورت وحاجت کی وجہ سے دی۔ ۶۶
۶۲	عامِ مسلمین صحنِ مسجد کو مسجد ہی سمجھتے ہیں یہی وجہ ہے کہ گرمیوں میں فجر و مغرب و عشاء کی نمازیں صحن میں پڑھتے ہیں، ان کے حفاظ تراویح وہیں پڑھاتے ہیں، معتکف وہاں بیٹھتے اور ذکر و عبادت میں مشغول رہتے ہیں۔ ۶۲	دروازۂ مسجد پر جو دکانیں ہیں فنائے مسجد ہیں۔ ۶۶
۶۲	مسجدیتِ صحن سے انکار اجماع کے خلاف ہے۔ ۶۲	دروازۂ مسجد پر بنی ہوئی دکانوں کی چھت پر کھڑے ہونے والے نمازیوں کی اقتداء صحیح ہے۔ ۶۶

نمبر	عنوان نمبر		عنوان صفحہ
		فناء وہ ہے جو متصل بہ	
۶۲	۶۲ حقِ مسجد کی رعایت اتباعِ جماعت سے اہم واقدم ہے۔	مسجد ہو نہ وہ کہ متصل بہ فناء ہو۔	۶۶
۶۲	۶۲ جس مسجد میں کوئی نمازی نہ آئے تو اس مسجد کا مؤذن اذان دے، اقامت کہے اور اکیلے نماز پڑھے، یہ اس کے لئے دوسری مسجد میں باجماعت نماز پڑھنے سے زیادہ بہتر ہے۔	اگر فناء کی تعریف یوں کی جائے کہ وہ متصل بہ فناء ہے تو اس سے دور لازم آئے گا۔	۶۶
۶۳	۶۳ صحنِ مسجد کو مسجد نہ ماننے کے نزاعِ بے جا کا انجام مساجد کو ویران کرنا ہے۔	یہ ادعا کہ صحن و فناء کا مفہوم واحد ہے جہلِ شدید ہے۔	۶۶
۶۴	۶۴ زمانۂ نبوی میں مسجدِ نبوی کی حدود کیا تھیں یعنی اس کا طول و عرض کتنا تھا۔	جنبی کا صحنِ مسجد میں جانا جائز نہیں۔	۶۷
۶۴	۶۴ صفہ جو کہ مسجدِ شریف کی جانبِ شام جنوب رویہ ایک مسقف دالان تھا جزوِ مسجد تھا اور اہل صفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم اس میں سکونت رکھتے تھے۔	اگر پانی کا چشمہ مسجد میں ہے اور اس کے سوا کہیں نہ ملے تو جنبی تیمم کرکے وہاں جا سکتا ہے۔	۶۷
۶۴	۶۴ اصحابِ صفہ قراء تھے۔	صحنِ مسجد کا جزوِ مسجد ہونا جلی بدیہیات سے ہے۔	۶۷
۶۵	۶۵		۶۷

نمبر	عنوان نمبر	عنوان صفحہ
	محرابِ مصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم محرابِ امیر المؤمنین عثمان غنی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی جانب شمال ہے۔	بارہ ائمہ دین کی تصریحات کہ صحنِ مسجد بھی مسجد ہے۔

Volume 8 Fatawa Razawiya

Page	Content	Page	Content
70	Scholars sometimes describe the courtyard of the mosque as Masjid-e-Saifi and sometimes as Masjid-ul-Kharij.	80	Difference between small and large mosques.
70	Simply by saying "I have made this land a mosque," the ownership of the endower over that piece of land is terminated.	85	There is no harm if a house adjacent to the mosque is higher than the mosque, and the idea that prayer is not valid in a mosque that has a tall building adjacent to it is purely incorrect.
72	Those who cause trouble to worshippers, followers of wrong sects, and those whose bodies emit a bad odor should be prevented from coming to the mosque.	86	One form of Masjid-e-Zirar (harmful mosque).
73	The courtyard of the mosque is part of the mosque itself; neither can the Adhan be given there nor can the funeral prayer be offered.	87	Multiple mosques can be built based on necessity.
73	The boundary wall of the mosque is outside the mosque.	87	It is forbidden (Haram) to demolish a mosque and build shops, etc.
74	No one can be stopped from coming to the mosque without a valid Sharia reason.	87	When building a new mosque, it is necessary to ensure that the old mosque does not become deserted, otherwise it would be a sin.
74	Denial of the Finality of Prophethood is disbelief (Kufr).	88	Refutation of a narration regarding Hazrat Imam-e-Azam (may Allah have mercy on him).
75		88	

Page	Content
	The ruling of disbelief (Kufr) applies to the modern non-followers (Ghair Muqallideen).
76	No one has any exclusive right over mosques, nor can anyone be stopped from praying.
77	The Rawafid (Shia) have no right over the mosques of Sunnis.
77	Definition of Masjid-e-Zirar.
78	If another mosque is built while one already exists, will it be Masjid-e-Zirar or not?
79	If necessary, one mosque can be divided into two.
79	If another mosque is built due to mutual animosity, it is not Masjid-e-Zirar.
	It is obligatory to build one Jami Masjid in every city, and it is also commanded to build mosques in neighborhoods.
89	Building tall mosques is permissible.
89	There is no harm to the mosque if its floors, wells, etc., are built with mixed income from interest.
90	Pure (Paak) things should be used in mosques, whether they are new or old.
90	The sale of mosques is impermissible.
91	If someone has forcibly occupied a mosque and there is no way to recover it, and they are willing to provide another place in compensation, that place can be taken to build a mosque.
92	It is permissible for a person in I'tikaf to sleep in the mosque, and there is a difference of opinion among scholars regarding those not in I'tikaf; research of the author.

जिल्द अष्टम फतावा रज़विया

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
70	विद्वान कभी मस्जिद के आंगन को 'मस्जिद-ए-सैफी' और कभी 'मस्जिद-उल-खारिज' कहते हैं।	80	छोटी और बड़ी मस्जिदों में अंतर।
70	केवल यह कहने से कि "मैंने इस ज़मीन को मस्जिद बना दिया", उस ज़मीन के टुकड़े से दाता (वाकिफ़) का मालिकाना हक समाप्त हो जाता है।	85	यदि मस्जिद से सटा कोई मकान मस्जिद से ऊंचा हो तो कोई हर्ज नहीं है और यह विचार कि जिस मस्जिद के पास कोई ऊंची इमारत हो उसमें नमाज़ नहीं होती, बिल्कुल गलत है।
72	नमाज़ियों को कष्ट देने वालों, गलत पंथ वालों और जिनके शरीर से दुर्गंध आती हो, उन्हें मस्जिद आने से रोका जाना चाहिए।	86	मस्जिद-ए-ज़रार (हानिकारक मस्जिद) का एक रूप।
73	मस्जिद का आंगन मस्जिद का ही हिस्सा होता है; वहां न तो अज़ान दी जा सकती है और न ही जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जा सकती है।	87	ज़रूरत के अनुसार एक से अधिक मस्जिदें बनाई जा सकती हैं।
73	मस्जिद की चारदीवारी मस्जिद से बाहर होती है।	87	मस्जिद को ढहाकर दुकान आदि बनाना हराम (वर्जित) है।
74	बिना किसी वैध शरीयत कारण के किसी को मस्जिद में आने से नहीं रोका जा सकता।	87	नई मस्जिद बनाते समय यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि पुरानी मस्जिद वीरान न हो जाए, अन्यथा यह पाप होगा।
74	'खत्म-ए-नबूवत' (नबूवत की समाप्ति) का इनकार करना कुफ्र (अविश्वास) है।	88	हज़रत इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाह अलैह) से संबंधित एक रिवायत का खंडन।
75	वर्तमान समय के'ग़ैर मुक़ल्लिदीन' पर कुफ्र का हुक्म है।	88	हर शहर में एक जामी मस्जिद बनाना वाजिब है और मोहल्लों में भी मस्जिदें बनाने का हुक्म है।

पृष्ठ	विषय
76	मस्जिदों पर किसी का कोई विशेष अधिकार नहीं है, और न ही किसी को नमाज़ पढ़ने से रोका जा सकता है।
77	सुन्नियों की मस्जिदों पर रवाफ़िज़ (शिया) का कोई अधिकार नहीं है।
77	मस्जिद-ए-ज़रार की परिभाषा।
78	एक मस्जिद के होते हुए दूसरी मस्जिद बनाई जाए तो क्या वह मस्जिद-ए-ज़रार होगी या नहीं?
79	ज़रूरत होने पर एक मस्जिद को दो में विभाजित किया जा सकता है।
79	यदि आपसी रंजिश के कारण दूसरी मस्जिद बनाई जाए, तो वह मस्जिद-ए-ज़रार नहीं है।
89	ऊंची मस्जिदें बनाना जायज़ है।
89	यदि मस्जिद के फर्श, कुएं आदि सूद (ब्याज) की मिली-जुली आमदनी से बनाए जाएं, तो मस्जिद में कोई हर्ज नहीं आता।
90	मस्जिदों में पाक (शुद्ध) चीज़ें लगाई जानी चाहिए, चाहे वे नई हों या पुरानी।
90	मस्जिदों की बिक्री नाजायज़ है।
91	यदि किसी ने मस्जिद पर अन्यायपूर्वक कब्ज़ा कर लिया हो और उसे वापस पाने का कोई रास्ता न हो, और वह मुआवजे में दूसरी जगह देने को तैयार हो, तो उस जगह को लेकर मस्जिद बनाई जा सकती है।
92	मस्जिद में एतिकाफ़ करने वाले (मुताकिफ़) का सोना जायज़ है और जो एतिकाफ़ में नहीं हैं उनके बारे में विद्वानों में मतभेद है; लेखक का शोध।

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

صفحہ	مضمون
	صحنِ مسجد کو علماء کبھی
۷۰	مسجد صیفی اور کبھی مسجد الخارج سے تعبیر فرماتے ہیں۔
۷۰	صرف اس قول سے کہ میں نے اس زمین کو مسجد کیا اس خطہ زمین سے واقف کی ملکیت زائل ہو جاتی ہے۔
۷۲	نمازیوں کو تکلیف دینے والے، بد مذہب اور جن کے بدن سے بدبو نکلتی ہو مسجد آنے سے انہیں روکا جائے۔
۷۳	مسجد کا صحن مسجد ہی ہوتا ہے اس میں نہ اذان دی جا سکتی ہے نہ جنازہ کی نماز پڑھی جا سکتی ہے۔
۷۳	

صفحہ	مضمون
۸۰	صغیر و کبیر مسجدوں میں فرق۔
۸۵	مسجد سے متصل کوئی مکان مسجد سے بلند ہو تو حرج نہیں اور یہ خیال کہ جس مسجد سے متصل کوئی بلند مکان ہو اس میں نماز نہیں ہوتی محض غلط ہے۔
۸۶	مسجد ضرار کی ایک صورت۔
۸۷	ضرورت پر متعدد مسجدیں بنائی جا سکتی ہیں۔
۸۷	مسجد منہدم کر کے دکان وغیرہ بنالینا حرام ہے۔

صفحہ	مضمون
	مسجد کی فصیل خارج از مسجد ہوتی ہے۔
۷۴	بلاوجہ شرعی کسی کو مسجد آنے سے روکا نہیں جاسکتا۔
۷۴	ختم نبوت کا انکار کفر ہے۔
۷۵	غیر مقلدین زمانہ پر حکم کفر ہے۔
۷۶	مسجدوں پر کسی کا کوئی حق نہیں پہنچتا، نہ کسی کو نماز پڑھنے سے روکا جاسکتا ہے۔
۷۷	سنیوں کی مسجدوں پر روافض کا کوئی حق نہیں۔
۷۷	مسجد ضرار کی تعریف۔
۷۸	

صفحہ	مضمون
۸۷	نئی مسجد بنانے میں یہ لحاظ رکھنا ضروری ہے کہ پرانی مسجد ویران نہ ہو جائے ورنہ گناہ ہوگا۔
۸۸	حضرت امام اعظم رحمۃ اللہ علیہ سے متعلق ایک روایت کی تردید۔
۸۸	ہر شہر میں ایک جامع مسجد بنانا واجب ہے اور محلوں میں بھی مسجدیں بنانے کا حکم ہے۔
۸۹	بلند مسجدیں بنانا جائز ہے۔
۸۹	سُود کی مخلوط آمدنی سے مسجد کے فرش، کنواں وغیرہ بنانے سے مسجد میں کوئی حرج نہیں آتا۔
۹۰	مسجدوں میں پاک چیزیں لگائی جائیں، نئی ہوں یا پرانی۔
۹۰	مسجدوں کی بیع ناجائز ہے۔

صفحہ	مضمون	صفحہ	مضمون
	ایک مسجد ہوتے ہوئے دوسری مسجد بنائی جائے تو یہ مسجد ضرار ہوگی یا نہیں؟		کسی نے مسجد پر ظلماً قبضہ کر لیا اور حصول یابی کی کوئی صورت نہ ہو اور وہ دوسری جگہ معاوضہ میں دینے کے لئے تیار ہو تو وہ جگہ لے کر مسجد بنائی جاسکتی ہے۔
۷۹	ضرورت ہو تو ایک مسجد کو دو کیا جاسکتا ہے۔	۹۱	
۷۹	اگر باہمی رنجش کی بنا پر دوسری مسجد بنائی جائے تو یہ مسجد ضرار نہیں۔	۹۲	مسجد میں معتکف کو سونا جائز ہے اور غیر معتکف کے بارے میں علماء کا اختلاف ہے مصنف کی تحقیق۔

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Page	Ruling	Page	Ruling
95	It is not permissible to turn mosques into meeting halls (Chaupal).	104	It is permissible to hang calligraphic plaques (tughra) etc. on the walls of the mosque, provided they are placed high up.
95	The correct view is that it is not permissible for anyone other than those in seclusion (I'tikaf) to eat or drink in the mosque.	105	The ruling on carvings and decorations in mosques.
95	Abusive language and other such vanities are not permissible in the mosque or its courtyard; such a person should be removed from the mosque.	108	It is permissible to sit on a chair and deliver a sermon in the mosque, as long as it does not cause any disturbance to the worshippers.
95	The room of the mosque and its surrounding area (fina) are under the same ruling as the mosque.	108	If there is a conflict between verbal and practical traditions (hadiths), the verbal one will be acted upon.
95	It is not permissible to write amulets (ta'weez) in the mosque's room and charge a fee for them.	109	Where shoes should be kept in mosques.
96	The one in seclusion (mu'takif) should eat and drink in the mosque with caution.	109	Where shoes should be kept in front when there is no necessity.
96	Whether it is permissible to keep a spittoon or to spit etc. in the mosque or not.	110	People cannot be prohibited from drawing water from the mosque's well; however, it is prohibited to draw water for purposes other than prayer using the mosque's rope and bucket.
98	Many rulings and issues change with the difference in intention.	110	Doubts (awham) have no place in matters of purification (taharat).

Page	Ruling
99	Reciting Durood, litanies, or the Quran loudly in mosques in a way that causes distress to worshippers or those sleeping is prohibited.
101	A traveler may stay in the mosque as long as there is no fear for the mosque's belongings from him.
102	It is not permissible to burn kerosene oil in mosques; however, if the smell is removed, then its burning becomes permissible.
103	It is prohibited to keep the doors of mosques closed during prayer times.
104	It is prohibited to light lamps in the mosque without necessity.
104	It is permissible to hang flower pots etc. in the mosque's awning (saiban), provided they are not within the sight of the worshippers.

Page	Ruling
111	It is prohibited to plant trees in the mosque without necessity.
111	It is not permissible to take the fruit or flowers of a tree in the mosque without payment.
112	Worldly talk or noise and clamour in mosques is forbidden (haraam). Such a person should be removed from the mosque.
113	If a mosque is demolished and there are shops associated with it, the mosque should be reconstructed from their rent; it is forbidden to spend the rental income on another mosque or on the Imam.
113	It is forbidden to level graves and include them in the mosque's area.
116	Conditions for establishing schools in mosques.
119	The ruling on placing engraved stones in mosques.

फ़तावा रज़विया, जिल्द हशतम (भाग 8)

पृष्ठ	हुक्म
95	मस्जिदों को चौपाल (बैठक स्थल) बनाना जायज़ नहीं है।
95	सही बात यह है कि मोतकिफ़ (इतिकाफ़ करने वाले) के अलावा दूसरों के लिए मस्जिद में खाना-पीना जायज़ नहीं है।
95	मस्जिद या सहन में गाली-गलौज और अन्य फ़ुज़ूल बातें जायज़ नहीं हैं; ऐसे व्यक्ति को मस्जिद से निकाल देना चाहिए।
95	मस्जिद का कमरा और फ़िना-ए-मस्जिद (मस्जिद का अहाता) मस्जिद के ही हुक्म में आते हैं।
95	मस्जिद के कमरे में तावीज़ लिखकर उसे पैसे लेकर देना जायज़ नहीं है।
96	मोतकिफ़ को मस्जिद में सावधानी से खाना-पीना चाहिए।
96	मस्जिद में पीकदान रखना या मुँह से थूकना आदि जायज़ है या नहीं।
98	
104	मस्जिद की दीवारों पर तुग़रे (प्रतीक चिह्न) आदि लटकाना जायज़ है, बशर्ते कि वे ऊँचाई पर हों।
105	मस्जिदों में नक़्श-ओ-निगार (नक्काशी और सजावट) करने का हुक्म।
108	कुर्सी पर बैठकर मस्जिद में वाज़ (उपदेश) कहना जायज़ है, बशर्ते कि नमाज़ियों को कोई खलल (बाधा) न हो।
108	यदि कौली (मौखिक) और फ़ेअली (व्यावहारिक) हदीसों में विरोधाभास हो, तो कौली पर अमल किया जाएगा।
109	मस्जिदों में जूते कहाँ रखे जाएँ।
109	बिना ज़रूरत के सामने जूते कहाँ रखे जाएँ।
110	मस्जिद के कुएँ से लोगों को पानी भरने से नहीं रोका जा सकता; हालाँकि मस्जिद की रस्सी और डोल से नमाज़ के अलावा अन्य कार्यों के लिए पानी भरना मना है।
110	तहारत (पवित्रता) के मामलों में वहम (संदेह) का कोई स्थान नहीं है।

पृष्ठ	हुक्म
99	बहुत से अहकाम (नियम) और मसले नीयत के अंतर से बदल जाते हैं।
99	मस्जिदों में दुरूद, वज़ाइफ़, या कुरान का पाठ इतनी ज़ोर से करना जिससे नमाज़ियों या सोने वालों को तकलीफ़ हो, मना है।
101	मुसाफ़िर मस्जिद में रुक सकता है, जब तक कि उससे मस्जिद के सामान को कोई ख़तरा न हो।
102	मस्जिदों में मिट्टी का तेल जलाना जायज़ नहीं है; हालाँकि यदि उसकी गंध को दूर कर दिया जाए, तो उसे जलाना जायज़ है।
103	नमाज़ के समय में मस्जिदों के दरवाज़े बंद रखना मना है।
104	बिना ज़रूरत मस्जिद में चिराग़ जलाना मना है।
104	मस्जिद के सायबान (छज्जे) में गमले आदि लटकाना जायज़ है, बशर्ते कि वे नमाज़ियों की नज़रों के सामने न हों।

पृष्ठ	हुक्म
111	बिना ज़रूरत मस्जिद में पेड़ लगाना मना है।
111	मस्जिद के पेड़ के फल या फूल बिना भुगतान के लेना जायज़ नहीं है।
112	मस्जिदों में दुनियावी बातें या शोर-शराबा हराम (वर्जित) है। ऐसे व्यक्ति को मस्जिद से निकाल देना चाहिए।
113	यदि मस्जिद ढह गई हो और उससे जुड़ी कुछ दुकानें हों, तो उनके किराये से मस्जिद का पुनः निर्माण किया जाना चाहिए; किराये की आय को किसी दूसरी मस्जिद या इमाम पर ख़र्च करना हराम है।
113	क़ब्रों को समतल करके उन्हें मस्जिद के क्षेत्र में शामिल करना हराम है।
116	मस्जिदों में मदरसे स्थापित करने की शर्तें।
119	मस्जिदों में नक्काशीदार पत्थर लगाने का हुक्म।

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

صفحہ	حکم
۹۵	مسجدوں کو چو پال بنانا جائز نہیں۔
۹۵	صحیح یہ ہے کہ معتکف کے سوا دوسروں کو مسجد میں کھانا پینا جائز نہیں۔
۹۵	مسجد یا صحن میں گالی گلوچ وغیرہ لغویات جائز نہیں ایسے کو مسجد سے نکال دینا چاہئے۔
۹۵	مسجد کا حجرہ اور فنا مسجد کے حکم میں ہیں۔
۹۵	مسجد کے حجرہ میں تعویذ لکھ کر اجرت پر دینا جائز نہیں۔
۹۶	معتکف مسجد میں احتیاط سے کھائے پیئے۔
۹۶	مسجد میں اگالدان رکھنا یا منہ سے تھوک لگانا وغیرہ جائز ہے یا نہیں ۔
۱۰۴	مسجد کی دیواروں پر طغرے وغیرہ لٹکانا جائز ہے جبکہ بلندی پر ہوں۔
۱۰۵	مسجدوں میں نقش و نگار کرنے کا حکم۔
۱۰۸	کرسی پر بیٹھ کر مسجد میں وعظ کہنا جائز ہے جبکہ نمازیوں کو کوئی خلل نہ ہو۔
۱۰۸	قولی و فعلی حدیثوں میں تعارض ہو تو قولی پر عمل ہوگا۔
۱۰۹	مسجدوں میں جوتے کہاں رکھے جائیں۔
۱۰۹	بلا ضرورت سامنے جوتے کہاں رکھے جائیں۔
۱۱۰	مسجد کے کنویں سے لوگوں کو پانی بھرنے سے منع نہیں کیا جا سکتا البتہ مسجد کی رسی

صفحہ	حکم	صفحہ	حکم
			اور ڈول سے غیر نماز کے لئے پانی بھرنا منع ہے۔
۹۸	بہت احکام و مسائل نیت کے فرق سے بدل جاتے ہیں۔	۱۱۰	طہارت میں اوہام کو دخل نہیں۔
۹۹	مسجدوں میں درود، وظائف، تلاوت وغیرہ جہر سے کرنا جس سے نمازیوں یا سونے والوں کو تکلیف ہو منع ہے۔	۱۱۱	بے ضرورت مسجد میں درخت لگانا منع ہے۔
۱۰۱	مسافر مسجد میں ٹھہر سکتا ہے جبکہ مسجد کے اسباب کو اس سے اندیشہ نہ ہو۔	۱۱۱	مسجد کے درخت کے پھل پھول بلا قیمت لینا جائز نہیں۔
۱۰۲	مسجدوں میں مٹی کا تیل جلانا جائز نہیں، اور اگر بدبو زائل کر دی جائے تو اس کا جلانا جائز ہے۔	۱۱۲	مسجدوں میں دنیا کی باتیں یا شور و شغب حرام ہے۔ ایسے کو مسجد سے نکال دینا چاہئے۔
۱۰۳	نماز کے اوقات میں مسجدوں کے دروازے بند رکھنا منع ہے۔	۱۱۳	مسجد منہدم ہو گئی اور اس کے متعلق دکانیں ہوں تو ان کے کرایے سے مسجد تعمیر کی جائے، کرایہ کی آمدنی کو دوسری مسجد یا امام پر خرچ کرنا حرام ہے۔
۱۰۴		۱۱۳	

صفحہ	حکم	صفحہ	حکم
	بلا ضرورت مسجد میں چراغ جلانا منع ہے۔		قبروں کو ہموار کر کے مسجد میں شامل کر لینا حرام ہے۔
	مسجد کے سائبان میں گملے وغیرہ		
۱۰۴	لٹکانا جائز ہے جبکہ نمازیوں کی نگاہ کے سامنے نہ ہوں۔	۱۱۶	مسجدوں میں مدرسے قائم کرنے کے شرائط۔
		۱۱۹	مسجدوں میں کندہ پتھر لگانے کا حکم۔

Fatawa-e-Razviya Volume Eight

[Page Number] | [Topic/Question] | [Serial Number] | [Topic/Question] | [Page Number] 141 | Ruling on hoisting flags on mosques. | 122 | If the Fajar obligatory prayer has been performed but the Sunnah remains, it can be prayed until Zawal (noon). | 121 142 | How is it to hold Milad Sharif or deliver a sermon in mosques? | 123 | If some prayers are missed and some are performed, in what sequence should they be performed? | 122 143 | Standing for scholars and spiritual mentors in mosques is permissible. | 124 | If the Fajar Sunnah is missed, it can be prayed after sunrise until Zawal. Praying before sunrise is prohibited. | 123 144 | How is it to level graves and build a mosque? | 124 | A 'Sahib-e-Tarteeb' (one who hasn't missed 6 prayers) should perform the missed prayer even during the Friday sermon time, otherwise his Friday prayer won't be valid. One who isn't 'Sahib-e-Tarteeb' cannot pray Qaza (missed prayer) during the sermon. | 124 145 | How should the funds for the construction of a mosque be? | 125 | Fajar Sunnah performed sitting without a valid excuse will not be correct, and the time for performing it if it's missed. | 125 146 | If carpets were donated to a mosque for Friday prayers and Friday prayers are discontinued there, it's not permissible to give those carpets to another mosque. | 127 | If the Sunnah before Isha is missed, there is no Qaza for it. However, if performed after the two-rak'at Sunnah after Isha, there is no prohibition. | 126 148 | **Chapter: Joining the Obligatory Prayer** | 129 | It is a sin to pray the missed Fajar Sunnah before sunrise. | 128 153 | If someone is praying Nafl or Sunnah and the congregation starts, should they complete it and join or leave it? | 129 | If the Friday Sunnah is missed, perform it after the Friday prayer with the intention of Sunnah. | 153 153 | If the Imam is in the final sitting, should one perform the Fajar Sunnah and then join, or join without performing it? | 136 | If the Fajar Sunnah is missed, perform it after sunrise and before Zawal; there is no Qaza for it after Zawal. | 153 154 | What should one do if they have performed the obligatory prayer and the congregation starts? | 137 | A way to perform 'Qaza-e-Umri' (making up missed prayers of a lifetime) on behalf of a deceased person. | 154 155 | If the Imam is in the final sitting of Fajar and one can join after performing Sunnah, then pray the Sunnah, otherwise join and pray the Sunnah after sunrise. | 138 | An incorrect method of 'Qaza-e-Umri'. | 155 157 | Where should the Sunnah be performed when the Fajar congregation is in progress? | 139 | The method of performing 'Qaza-e-Umri' and its intention. | 157 -- | **Chapter: Making up Missed Prayers** | 141 | -- | --

फ़तावा-ए-रज़विया आठवीं जिल्द (भाग 8)

[पेज नंबर] | [विषय/प्रश्न] | [क्रम संख्या] | [विषय/प्रश्न] | [पेज नंबर] 141 | मस्जिदों पर झंडे लहराने का हुक्म। | 122 | फ़ज्र की फ़र्ज़ पढ़ ली हो और सुन्नत रह गई हो तो ज़वाल से पहले तक पढ़ सकता है। | 121 142 | मस्जिदों में मिलाद शरीफ़ या वाज़ कहना कैसा है? | 123 | नमाज़ें कुछ छूटी हों और कुछ पढ़ी हों तो किस तरतीब से पढ़ी जाएँ? | 122 143 | मस्जिदों में उलमा और मशाईख के लिए क़ियाम किया जा सकता है। | 124 | फ़ज्र की सुन्नत रह गई हो तो आफ़ताब (सूरज) बुलंद होने के बाद ज़वाल तक पढ़ ले। तुलू-ए-आफ़ताब (सूर्योदय) से पहले पढ़ना मना है। | 123 144 | क़ब्रें पाट कर मस्जिद बनाना कैसा है? | 124 | साहिब-ए-तरतीब ख़ुत्बा के वक़्त भी क़ज़ा पढ़ ले वरना उसकी जुमा नहीं होगी और जो साहिब-ए-तरतीब न हो वो दौरान-ए-ख़ुत्बा में क़ज़ा नहीं पढ़ सकता। | 124 145 | मस्जिद की तामीर (निर्माण) के लिए रक़में कैसी हों? | 125 | सुन्नत-ए-फ़ज्र बिना उज़्र बैठकर सही नहीं होगी और सुन्नत-ए-फ़ज्र क़ज़ा हो जाए तो उसके पढ़ने का वक़्त। | 125 146 | मस्जिद में जुमा के लिए दरियाँ दी गईं और वहाँ जुमा पढ़ना बंद हो गया तो उन दरियों को दूसरी मस्जिद में देना जाइज़ नहीं। | 127 | इशा से पहले वाली सुन्नत फ़ौत (छूट) हो जाए तो उसकी क़ज़ा नहीं, हाँ इशा के बाद दो रकअत सुन्नत के बाद उसे पढ़ ले तो कोई मुमानिअत (मनाही) नहीं। | 126 148 | **बाब: इदराक-उल-फ़रीज़ा (अनिवार्य प्रार्थना में शामिल होना)** | 129 | सुन्नत-ए-फ़ज्र फ़ौत हो जाए तो तुलू-ए-शम्स (सूर्योदय) से पहले पढ़ना गुनाह है। | 128 153 | कोई नफ़्ल या सुन्नत पढ़ रहा है और जमाअत क़ायम हुई तो पूरी करके जमाअत में शरीक हो या छोड़े? | 129 | जुमा की सुन्नत छूट गई है तो जुमा के बाद उसको बा-नीयत-ए-सुन्नत पढ़ ले। | 153 153 | इमाम क़ादा-ए-अख़ीरा (अंतिम बैठक) में हो तो फ़ज्र की सुन्नतें पढ़ कर शरीक होना चाहिए या बग़ैर पढ़े? | 136 | सुन्नत-ए-फ़ज्र क़ज़ा हो जाए तो तुलू-ए-शम्स के बाद ज़वाल से पहले तक पढ़ ले, ज़वाल के बाद उसकी क़ज़ा नहीं। | 153 154 | फ़र्ज़ पढ़ चुका है और जमाअत खड़ी हुई तो क्या करे? | 137 | मय्यत (मृतक) की जानिब से क़ज़ा-ए-उमरी अदा करने की एक सूरत। | 154 155 | इमाम फ़ज्र के क़ादा-ए-अख़ीरा में हो और सुन्नत पढ़ कर शरीक हो सकता है तो सुन्नत पढ़े वरना शरीक हो जाए और आफ़ताब बुलंद होने के बाद सुन्नत पढ़े। | 138 | क़ज़ा-ए-उमरी का एक ग़लत तरीक़ा। | 155 157 | फ़ज्र की जमाअत हो रही है तो सुन्नत कहाँ पढ़ी जाए? | 139 | क़ज़ा-ए-उमरी के पढ़ने का तरीक़ा और उसकी नीयत। | 157 -- | **बाब: क़ज़ा-उल-फ़वाइत (छूटी हुई नमाज़ों की क़ज़ा)** | 141 | -- | --

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

[صفحہ نمبر] | [مضمون/سوال] | [سلسلہ نمبر] | [مضمون/سوال] | [صفحہ نمبر] ۱۴۱ | مسجدوں پر جھنڈے لہرانے کا حکم۔ | ۱۲۲ | فجر کی فرض پڑھ لی ہو اور سنت رہ گئی ہو تو زوال سے پہلے تک پڑھ سکتا ہے | ۱۲۱ ۱۴۲ | مسجدوں میں میلاد شریف یا وعظ کہنا کیسا ہے۔ | ۱۲۳ | نمازیں کچھ چھوٹی ہوں اور کچھ پڑھی ہوں تو کس ترتیب سے پڑھی جائیں۔ | ۱۲۲ ۱۴۳ | مسجدوں میں علماء اور مشائخ کے لئے قیام کیا جا سکتا ہے۔ | ۱۲۴ | فجر کی سنت رہ گئی ہو تو آفتاب بلند ہونے کے بعد زوال تک پڑھ لے۔ طلوع آفتاب سے پہلے پڑھنا منع ہے۔ | ۱۲۳ ۱۴۴ | قبریں پاٹ کر مسجد بنانا کیسا ہے۔ | ۱۲۴ | صاحب ترتیب خطبہ کے وقت بھی قضا پڑھ لے ورنہ اس کا جمعہ نہیں ہو گا اور جو صاحب ترتیب نہ ہو وہ دوران خطبہ میں قضا نہیں پڑھ سکتا۔ | ۱۲۴ ۱۴۵ | مسجد کی تعمیر کے لئے رقمیں کیسی ہوں۔ | ۱۲۵ | سنت فجر بلا عذر بیٹھ کر صحیح نہیں ہوگی اور سنت فجر قضا ہو جائے تو اس کے پڑھنے کا وقت۔ | ۱۲۵ ۱۴۶ | مسجد میں جمعہ کے لئے دریاں دی گئیں اور وہاں جمعہ پڑھنا بند ہو گیا تو ان دریوں کو دوسری مسجد میں دینا جائز نہیں۔ | ۱۲۷ | عشاء سے پہلے والی سنت فوت ہو جائے تو اس کی قضا نہیں ، ہاں عشاء کے بعد دور کعت سنت کے بعد اسے پڑھ لے تو کوئی ممانعت نہیں۔ | ۱۲۶ ۱۴۸ | **باب ادراک الفریضہ** | ۱۲۹ | سنت فجر فوت ہو جائے تو طلوع شمس سے پہلے پڑھنا گناہ ہے۔ | ۱۲۸ ۱۵۳ | کوئی نفل یا سنت پڑھ رہا ہے اور جماعت قائم ہوئی تو پوری کر کے جماعت میں شریک ہو یا چھوڑے۔ | ۱۲۹ | جمعہ کی سنت چھوٹ گئی ہے تو جمعہ کے بعد اس کو بہ نیت سنت پڑھ لے۔ | ۱۵۳ ۱۵۳ | امام قعدہ اخیرہ میں ہو تو فجر کی سنتیں پڑھ کر شریک ہونا چاہئے یا بغیر پڑھے۔ | ۱۳۶ | سنت فجر قضا ہو جائے تو طلوع شمس کے بعد زوال سے پہلے تک پڑھ

لے زوال کے بعد اس کی قضا نہیں۔ | ۱۵۳ ۱۵۴ | فرض پڑھ چکا ہے اور جماعت کھڑی ہوئی تو کیا کرے۔ | ۱۳۷ | میت کی جانب سے قضائے عمری ادا کرنے کی ایک صورت۔ | ۱۵۴ ۱۵۵ | امام فجر کے قعدہ اخیرہ میں ہو اور سنت پڑھ کر شریک ہو سکتا ہے تو سنت پڑھے ورنہ شریک ہو جائے اور آفتاب بلند ہونے کے بعد سنت پڑھے۔ | ۱۳۸ | قضائے عمری کا ایک غلط طریقہ۔ | ۱۵۵ ۱۵۷ | فجر کی جماعت ہو رہی ہے تو سنت کہاں پڑھی جائے۔ | ۱۳۹ | قضائے عمری کے پڑھنے کا طریقہ اور اس کی نیت۔ | ۱۵۷ -- | **باب قضاء الفوائت** | ۱۴۱ | -- | --

Volume Eight | Fatawa Razawiyya

Page No.	Content	Page No.	Content	Page No.
177	One who has missed (Qadha) prayers due should offer missed prayers instead of voluntary (Nafl) prayers.	158	**Chapter on Prostrations of Forgetfulness (Bab Sujud al-Sahw)**	177
177	A scenario of a prayer becoming Qadha.	158	If while thinking of a Surah, there is a delay equal to the performance of one pillar (Rukn), i.e., the time taken to say 'Subhan Allah' three times, then the prostration of forgetfulness (Sajda-e-Sahw) becomes mandatory (Wajib).	177
181	Can Qadha prayers be offered in congregation, and if so, where: in the mosque or at home?	162	What to do if one stands up forgetfully or is close to standing up.	181
183	The method of performing Qadha-e-Umri (missed prayers of a lifetime).	163	If one mistakenly thinks the final sitting (Qa'da Akhira) is the first sitting (Qa'da Oola) and stands up, but returns before prostrating, they should perform Sajda-e-Sahw immediately upon sitting and not recite Tashahhud again.	183
183	A person does not become a disbeliever by leaving prayer, fasting, Hajj, etc., but it is mandatory (Fardh) for them to perform Qadha.	163	Whether Sajda-e-Sahw is mandatory if one was close to standing up in the first sitting but then sat down.	183
185	As long as one has the strength to stand, prayer performed while sitting will not be valid.	164	If Sajda-e-Sahw was not due on the Imam but he performed it, the prayer of those who join after that will not be valid.	185

Page No.	Content	Page No.	Content	Page No.
191	Can one whose Fajr prayer has become Qadha offer Friday (Jumu'ah) and Eid prayers?	164	If the Imam gives Salam for Sajda-e-Sahw, should the latecomer (Masbuq) also join in giving the Salam?	191
191	If there is an expiation (Kaffara) for prayers and fasts due on the deceased, and a gift of the Holy Quran is given to the poor as expiation, will the expiation be fulfilled or not?	164	If one recites up to 'Allahumma Salli 'ala Muhammad' in the first sitting, Sajda-e-Sahw will become mandatory.	191
191	If there is no wealth or insufficient wealth to pay the expiation for the deceased, how should the expiation be paid?	165	The latecomer (Masbuq) should not give the Salam for Sajda-e-Sahw.	191
192	Who is entitled to receive the expiation for missed prayers?	165	If there was doubt in the first sitting and one performs Sajda-e-Sahw, the prayer will be valid.	192
192	The method of paying expiation on behalf of the deceased.	166	If 'Bismillah' is recited slowly after Surah Al-Fatiha causing a significant delay, Sajda-e-Sahw is not mandatory; however, it becomes mandatory if there is a delay due to silence or thinking about a Surah.	192
192	Giving the Holy Quran as expiation does not fulfill the full expiation; only the amount equal to the value of the Holy Quran will be considered paid.	175	What is the ruling on joining a Surah in the last two units (rak'ats) of a four-unit prayer?	192

जिल्द अष्टम | फतावा रजविया

पृष्ठ संख्या	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या
१७७	जिसके जिम्मे कज़ा नमाज़ें हों, वह नफलों की जगह भी कज़ा नमाज़ें पढ़े।	१५८	**बाब सुजूद अल-सह्व (भूल के सजदे का अध्याय)**	१७७
१७७	नमाज़ कज़ा हो जाने की एक सूरत।	१५८	सूरा सोचने में बक़द्र अदा-ए-रुकन यानी तीन बार 'सुब्हान अल्लाह' कहने की मिकदार देर हो जाए तो सजदा-ए-सह्व वाजिब है।	१७७
१८१	कज़ा नमाज़ों की जमाअत हो सकती है या नहीं, और हो सकती है तो कहाँ, मस्जिद या मकान में।	१६२	भूल कर खड़ा हो जाए या खड़ा होने के करीब हो तो क्या करे।	१८१
१८३	कज़ा-ए-उम्री अदा करने का तरीका।	१६३	कदा-ए-अखीरा को कदा-ए-ऊला समझ कर खड़ा हो गया और सजदा करने से पहले लौट आया तो बैठते ही सजदा-ए-सह्व करे, दोबारा अत्तहिय्यात न पढ़े।	१८३
१८३	नमाज़, रोज़ा, हज वगैरह के छोड़ने से आदमी काफ़िर नहीं होता अलबत्ता उनकी कज़ा उस पर फर्ज़ है।	१६३	कदा-ए-ऊला में खड़ा होने के करीब था कि बैठ गया तो सजदा-ए-सह्व वाजिब होगा या नहीं।	१८३
१८५	जब तक खड़े होने की ताकत हो, बैठकर नमाज़ नहीं होगी।	१६४	इमाम पर सजदा-ए-सह्व नहीं था और सजदा-ए-सह्व किया तो उसके बाद जो लोग इस नमाज़ में शरीक होंगे उनकी नमाज़ नहीं होगी।	१८५
१९१		१६४		१९१

पृष्ठ संख्या	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या
	फज्र की नमाज़ कज़ा हो जाए, वह जुमा और ईद की नमाज़ पढ़ सकता है या नहीं।		सजदा-ए-सह्व के लिए इमाम सलाम फेरे तो मसबूक भी सलाम फेरने में शरीक होगा या नहीं।	
१९१	मय्यत के ज़िम्मे नमाज़ व रोज़े का कफ़्फ़ारा हो और कफ़्फ़ारे में क़ुरआन शरीफ का हदिया मिस्कीन को दिया जाए तो कफ़्फ़ारा अदा होगा या नहीं।	१६४	कदा-ए-ऊला में 'अल्लाहुम्मा सल्लि अला मुहम्मद' तक पढ़ेगा तो सजदा-ए-सह्व वाजिब होगा।	१९१
१९१	मय्यत के कफ़्फ़ारा अदा करने के लिए माल न हो या कम हो तो कफ़्फ़ारा कैसे अदा हो।	१६५	मसबूक, सजदा-ए-सह्व का सलाम न फेरे।	१९१
१९२	कज़ा नमाज़ के कफ़्फ़ारे का मुस्तहिक कौन है।	१६५	कदा-ए-ऊला में शक हुआ और सजदा-ए-सह्व कर ले तो नमाज़ हो जाएगी।	१९२
१९२	मय्यत की जानिब से कफ़्फ़ारा अदा करने का तरीका।	१६६	फातिहा के बाद बिस्मिल्लाह तरतील से पढ़ी जिससे काफी देर हो गई तो सजदा सह्व वाजिब नहीं, सुकूत या सूरत सोचने में देर हो जाए तो सजदा सह्व वाजिब होगा।	१९२
१९२	कफ़्फ़ारे में क़ुरआन शरीफ देने से पूरा कफ़्फ़ारा अदा नहीं होता बल्कि क़ुरआन शरीफ जिस हदिये का है उतना ही अदा होगा।	१७५	चार रकअत वाली नमाज़ में पिछली दो रकअतों में सूरत का ज़म (मिलाना) करना कैसा है।	१९२

موضوع	صفحہ نمبر
جس کے ذمہ قضا نمازیں ہوں وہ نفلوں کی جگہ بھی قضا نمازیں پڑھے۔	۱۷۷
نماز قضا ہو جانے کی ایک صورت۔	۱۷۷
قضا نمازوں کی جماعت ہو سکتی ہے یا نہیں، اور ہو سکتی ہے تو کہاں، مسجد یا مکان میں۔	۱۸۱
قضائے عمری ادا کرنے کا طریقہ۔	۱۸۳
نماز، روزہ، حج وغیرہ کے چھوڑنے سے آدمی کافر نہیں	۱۸۳
باب سجود السھو	۱۷۷
سورۃ سوچنے میں بقدر ادائے رکن یعنی تین بار سبحان اللہ کہنے کی مقدار دیر ہو جائے تو سجدہ سہو واجب ہے۔	۱۷۷
بھول کر کھڑا ہو جائے یا کھڑا ہونے سے قریب ہو تو کیا کرے۔	۱۸۱
قعدہ اخیرہ کو قعدہ اولٰی سمجھ کر کھڑا ہو گیا اور سجدہ کرنے سے پہلے لوٹ آیا تو بیٹھتے ہی سجدہ سہو کرے دوبارہ التحیات نہ پڑھے۔	۱۸۳
	۱۸۳

صفحہ نمبر	موضوع
	ہوتا البتہ ان کی قضا اس پر فرض ہے۔
۱۸۵	جب تک کھڑے ہونے کی طاقت ہو بیٹھ کر نماز نہیں ہوگی۔
۱۹۱	فجر کی نماز قضا ہو جائے وہ جمعہ اور عید کی نماز پڑھ سکتا ہے یا نہیں۔
۱۹۱	میت کے ذمہ نماز وروزہ کا کفارہ ہو اور کفارہ میں قرآن شریف کا ہدیہ مسکین کو دیا جائے تو کفارہ ادا ہوگا یا نہیں۔
۱۹۱	میت کے کفارہ ادا کرنے کے لئے مال نہ ہو یا کم ہو تو کفارہ کیسے ادا ہو۔
۱۹۲	قضا نماز کے کفارہ کا مستحق کون ہے۔
۱۶۴	قعدہ اولٰی میں کھڑا ہونے کے قریب تھا کہ بیٹھ گیا تو سجدہ سہو واجب ہو گا یا نہیں۔
۱۸۵	امام پر سجدہ سہو نہیں تھا اور سجدہ سہو کیا تو اس کے بعد جو لوگ اس نماز میں شریک ہوں گے ان کی نماز نہیں ہوگی۔
۱۹۱	سجدہ سہو کے لئے امام سلام کرے تو مسبوق بھی سلام کرنے میں شریک ہوگا یا نہیں۔
۱۹۱	قعدہ اولٰی میں اللھم صل علی محمد تک پڑھے گا تو سجدہ سہو واجب ہوگا۔
۱۹۱	مسبوق، سجدہ سہو کا سلام نہ کرے۔
۱۹۲	قعدہ اولٰی میں شک ہوا اور سجدہ سہو کر لے تو نماز ہو جائے گی۔

صفحہ نمبر	موضوع	صفحہ نمبر	موضوع	صفحہ نمبر
۱۹۲	میت کی جانب سے کفارہ ادا کرنے کا طریقہ۔	۱۶۶	فاتحہ کے بعد بسم اللہ ترتیل سے پڑھی جس سے کافی دیر ہو گئی تو سجدہ سہو واجب نہیں سکوت یا سورت سوچنے میں دیر ہو جائے تو سجدہ سہو واجب ہوگا۔	۱۹۲
۱۹۲	کفارہ میں قرآن شریف دینے سے پورا کفارہ ادا نہیں ہوتا بلکہ قرآن شریف جس ہدیہ کا ہے اتنا ہی ادا ہوگا۔	۱۷۵	چار رکعت والی نماز میں پچھلی دور کعتوں میں سورت کا ضم کرنا کیسا ہے۔	۱۹۲

Fatawa Razvia Volume Eight

Page	Subject	Subject	Page
196	For Sajdah Sahw (prostration of forgetfulness), salaam should be performed on one side only, not both.	If Sajdah Sahw became mandatory and one does not perform it, repeating the prayer is mandatory.	215
196	If one did not join a Surah with Surah Fatiha and went into Ruku, then upon remembering, one should immediately stand up, recite the Surah, and then perform Ruku again. And if remembered after Ruku, then perform Sajdah Sahw.	If in the third or fourth unit (Rak'at), one forgetfully recited a verse after Surah Fatiha, or recited Ruku's glorifications in Sajdah, or Sajdah's in Ruku, or the follower recited 'Ta'awwudh', or the Imam said Takbir instead of Tasmee', then Sajdah Sahw is not required.	216
197	If a follower makes a mistake, neither repeating the prayer nor Sajdah Sahw is required; a scholarly discussion on why this is so.	What should be done if one forgetfully stands up in the final sitting (Qa'dah Akhirah).	216
210	Sajdah is also mandatory for a latecomer (Lahiq) due to the Imam's mistake, but it should not be performed with the Imam; it should be done after completing one's own prayer.	If someone has forgetfulness (Nisyan) and performs prayer based on another's instruction, the prayer will not be valid. How should such a person pray?	216
212	The salaam for Sajdah Sahw is on the right side, not both, otherwise Sajdah Sahw becomes void and a sin is incurred.	If one goes into Ruku without reciting Qunut, one should not return. If one does return, the prayer is valid but it is a sin. If a follower gives a prompt (luqma) for returning, his prayer becomes invalid.	219
212	Can a follower give a prompt if the Imam stays longer than usual in	**Chapter on Prostrations of Recitation (Sajud al-Tilawah)**	223

Page	Subject	Subject	Page
	the first sitting (Qa'dah Oula) or not?		
212	If one goes into Ruku without reciting Qunut, do not return, but perform Sajdah Sahw.	If verses of Sajdah are in a book etc., is Sajdah mandatory upon reading them or not?	223
213	If the Imam forgetfully stood up from the first sitting and a follower gave a prompt, is the prayer valid or not?	Is it mandatory to perform Sajdah immediately after reciting a verse of Sajdah or not?	233
214	If the Imam makes a mistake in the sitting (Qa'dah), a prompt can also be given with 'Allahu Akbar' or 'Attahiyat', but the Sunnah is to say 'Subhan Allah'.	If the Imam makes the intention for the Prostration of Recitation in Ruku, will the prostration of the Imam and all followers be fulfilled or not?	234
215	If one cannot remember the number of Rak'ats etc. due to forgetfulness, it is not permissible to appoint a person to remind.	Does reading the translation of a verse of Sajdah make Sajdah mandatory or not?	238
215	Performing three prostrations will make Sajdah Sahw mandatory.	Purity (taharah) and intention (niyyah) are necessary for the Prostration of Recitation.	239

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

पृष्ठ	विषय	विषय	पृष्ठ
१९६	सज्दा सह्व के लिए केवल एक तरफ सलाम फेरना चाहिए, दोनों तरफ नहीं।	सज्दा सह्व वाजिब हुआ और नहीं किया तो नमाज़ फिर से पढ़ना वाजिब है।	२१५
१९६	फ़ातिहा के साथ सूरह नहीं मिलाई और रुकू में चले गए, तो याद आने पर तुरंत खड़े होकर सूरह पढ़ें और फिर रुकू करें, और अगर रुकू के बाद याद आए तो सज्दा सह्व करें।	तीसरी या चौथी रकअत में भूलवश फ़ातिहा के बाद आयत पढ़ दी या रुकू की तस्बीह सज्दे में या सज्दे की रुकू में पढ़ ली, या मुक्तदी ने ताव्वुज़ पढ़ा, या इमाम ने तस्मी की जगह तकबीर कही, तो सज्दा सह्व नहीं है।	२१६
१९७	मुक्तदी से सह्व होने पर न तो नमाज़ का दोहराना है और न सज्दा सह्व, ऐसा क्यों है, इस पर एक इल्मी बहस।	क़अदह अख़ीरा (अंतिम बैठक) में भूलकर खड़ा हो जाए तो क्या करे।	२१६
२१०	इमाम की भूल से लाहिक़ (देर से शामिल होने वाले) पर भी सज्दा वाजिब होता है, लेकिन वह इमाम के साथ न करे बल्कि अपनी नमाज़ पूरी करने के बाद करे।	किसी को निस्यान (भूलने की बीमारी) हो और दूसरे के बताने पर वह नमाज़ पढ़े तो नमाज़ नहीं होगी, ऐसा व्यक्ति नमाज़ किस तरह पढ़े।	२१६
२१२	सज्दा सह्व का सलाम दाहिनी तरफ है, दोनों तरफ नहीं, वरना सज्दा सह्व साक़ित हो जाएगा और गुनाह लाज़िम होगा।	बग़ैर क़ुनूत पढ़े रुकू में चला जाए तो न लौटे, और अगर लौट आया तो नमाज़ हो जाएगी लेकिन गुनाहगार होगा, लौटने के लिए मुक्तदी ने लुक़मा (संकेत) दिया तो उसकी नमाज़ फ़ासिद हो जाएगी।	२१९
२१२	क़अदह ऊला (पहली बैठक) में इमाम आदत से ज़्यादा देर लगा दे तो मुक्तदी लुक़मा दे सकता है या नहीं।	**बाब सुजूदुत्तलावत (तिलावत के सज्दों का अध्याय)**	२२३
२१२			२२३

पृष्ठ	विषय	विषय	पृष्ठ
	बग़ैर क़ुनूत पढ़े रुकू में चला जाए तो न लौटे, सज्दा सह्व करे।	किताब वग़ैरह में आयते सज्दा हों तो उनके पढ़ने से सज्दा वाजिब होगा या नहीं।	
२१३	क़अदह ऊला में इमाम भूलवश खड़ा हो गया और मुक्तदी ने लुक़मा दिया तो नमाज़ होगी या नहीं।	आयते सज्दा पढ़ने के बाद फ़ौरन सज्दा करना वाजिब होता है या नहीं।	२३३
२१४	इमाम को क़अदह से सह्व हो तो 'अल्लाहु अकबर' या 'अत्तहियात' से भी लुक़मा दिया जा सकता है, मगर सुन्नत 'सुब्हान अल्लाह' कहना है।	इमाम ने सज्दा तिलावत की नियत रुकू में की तो इमाम और मुक्तदी सबका सज्दा अदा होगा या नहीं।	२३४
२१५	निस्यान (भूल) की वजह से रकअत वग़ैरह की तादाद याद न रहती हो तो याद दिलाने के लिए आदमी नियुक्त करना जायज़ नहीं।	आयते सज्दा के तर्जुमे पढ़ने से सज्दा लाज़िम होता है या नहीं।	२३८
२१५	तीन सज्दे करने से सज्दा सह्व वाजिब होगा।	सज्दा तिलावत के लिए तहारत (पवित्रता) और नियत होना ज़रूरी है।	२३९

पृष्ठ २५ का ६७३

صفحہ	موضوع
۱۹۶	سجدہ سہو کے لئے ایک طرف سلام چاہئے دونوں طرف نہیں۔
۱۹۶	فاتحہ کے ساتھ سورت نہیں ملائی اور رکوع میں چلا گیا تو یاد آنے پر فوراً کھڑے ہو کر سورت پڑھے اور پھر رکوع کرے، اور اگر رکوع کے بعد یاد آئے تو سجدہ سہو کرے۔
۱۹۷	مقتدی سے سہو ہونے پر نہ اعادہ صلوٰۃ ہے نہ سجدہ سہو، یہ کیوں، اس کے متعلق ایک علمی بحث۔
۲۱۰	امام کے سہو سے لاحق پر بھی سجدہ واجب ہوتا ہے مگر امام کے ساتھ نہ کرے اپنی نماز پوری کرنے کے بعد کرے۔
۲۱۲	

صفحہ	موضوع
۲۱۵	سجدہ سہو واجب ہوا اور سجدہ نہ کرے تو نماز کا اعادہ واجب ہے۔
۲۱۶	تیسری یا چوتھی رکعت میں سہواً فاتحہ کے بعد آیت پڑھ دی یا رکوع کی تسبیحات سجدہ میں یا سجدہ کی رکوع میں یا مقتدی نے تعوذ پڑھا، یا امام نے تسمیع کے بجائے تکبیر کہی تو سجدہ سہو نہیں۔
۲۱۶	قعدہ اخیرہ میں بھول کر کھڑا ہو جائے تو کیا کرے۔
۲۱۶	کسی کو نسیان ہو اور دوسرے کے بتانے پر وہ نماز پڑھے تو نماز نہیں ہوگی، ایسا شخص نماز کس طرح پڑھے۔
۲۱۹	بغیر قنوت پڑھے رکوع چلا جائے تو پلٹے نہیں اور اگر پلٹا تو نماز ہو جائے گی مگر

صفحہ	موضوع
	سجدہ سہو کا سلام دہنی طرف ہے دونوں طرف نہیں ورنہ سجدہ سہو ساقط اور گناہ لازم۔
۲۱۲	قعدہ اولیٰ میں امام عادت سے زیادہ دیر لگا دے تو مقتدی لقمہ دے سکتا ہے یا نہیں۔
۲۱۲	بغیر قنوت پڑھے رکوع میں چلا جائے تو پلٹے نہیں سجدہ سہو کرے۔
۲۱۳	قعدہ اولیٰ میں امام سہواً کھڑا ہوگیا اور مقتدی نے لقمہ دیا تو نماز ہو گی یا نہیں۔
۲۱۴	امام کو قعدہ سے سہو ہو تو اللہ اکبر یا التحیات سے بھی لقمہ دیا جا سکتا ہے مگر سنت سبحان اللہ کہنا ہے۔
۲۱۵	نسیان کی وجہ سے رکعت وغیرہ کی تعداد یاد نہ رہتی ہو تو یاد دلانے کے لئے آدمی مقرر کرنا جائز نہیں۔
۲۱۵	تین سجدے کرنے سے سجدہ سہو واجب ہوگا۔

صفحہ	موضوع
	گنہگار ہوگا پلٹنے کے لئے مقتدی نے لقمہ دیا تو اس کی نماز فاسد ہوگی۔
۲۲۳	**باب سجود التلاوة**
۲۲۳	کتاب وغیرہ میں آیاتِ سجدہ ہوں تو ان کے پڑھنے سے سجدہ واجب ہو گا یا نہیں۔
۲۳۳	آیت سجدہ پڑھنے کے بعد فوراً سجدہ کرنا واجب ہوتا ہے یا نہیں۔
۲۳۴	امام نے سجدہ تلاوت کی نیت رکوع میں کی تو امام اور مقتدی سب کا سجدہ ادا ہوگا یا نہیں۔
۲۳۸	آیت سجدہ کے ترجمہ پڑھنے سے سجدہ لازم ہوتا ہے یا نہیں۔
۲۳۹	سجدہ تلاوت کے لئے طہارت اور نیت ہونا ضروری ہے۔

Fatawa Rizvia | Volume 8

Left Text	Page No.	Right Text	Page No.
There is no harm if the Holy Quran is in front while prostrating.	249	Praying full prayer while traveling instead of shortening (qasr) is a sin.	268
After reciting a verse of prostration (Ayat-e-Sajdah), prostration is obligatory, whether in Tarawih or any other prayer.	249	A person becomes a traveler by intending to travel 57.5 miles; moving 10-20 miles here and there will not constitute a Shariah-defined journey.	268
In the recitation of a verse of prostration, moving from one branch to another changes the setting (majlis).	425	A question regarding forest employees.	268
In prayer, prostrating for two verses (unanimously) or three verses (disputed) is not an immediate requirement.	539	If the in-laws' home is at a traveling distance, prayer should be shortened when visiting.	270
Chapter on Traveler's Prayer (Bab Salatul Musafir)	441	If traveling continuously for a distance of 57.5 miles, prayer is shortened.	270
Whether government officials on tours will be travelers or not.	441	If a traveler Imam leads a full prayer, the resident's prayer will not be valid.	271
To be a traveler, it is necessary to intend continuous travel until the 'qasr' duration; otherwise, one is not a traveler.	252	Having a shop somewhere does not make it one's original homeland (Watan-e-Asli).	271
Description of distances in 'Manzil', 'Kos', and 'Farsakh'.	255	**Chapter on Friday Prayer (Bab al-Jumu'ah)**	273
Shortening (qasr) does not occur in less than three 'manzils' (stages).	255	Friday prayer is not permissible in villages.	273
The route a traveler takes will be the one considered.	255	A city is a condition for Friday prayer.	274

Left Text	Page No.	Right Text	Page No.
If two travelers share a common slave, and one intends residency while the other does not, should the slave shorten his prayer or not?	255	Definition of a city.	274
One becomes a traveler as soon as they leave the settlement and remains a traveler until they return home or intend residency.	258	The definition of a city as a place where if all residents obligated to pray Friday attend, the mosque cannot accommodate them, is contrary to standard narrations (Zahir-ur-Riwayah).	274
Whether employees in forests will be called travelers or not.	258	Clearing a doubt regarding Friday prayer: the precautionary Zuhr (Ihtiyati Zuhr) is for specific people.	277
Whether employees at stations located in forests are travelers or not.	267	Rebuttal of a fatwa from Fatawa Abul Barakat.	282
		Understanding the meanings of the words of the sermon is not a condition for the validity of Friday prayer.	282

बायाँ विवरण	पृष्ठ संख्या	दायाँ विवरण	पृष्ठ संख्या
सजदा करते समय पवित्र क़ुरान सामने हो तो कोई हर्ज नहीं।	२४९	सफ़र में नमाज़ पूरी पढ़ना, क़स्र न करना गुनाह है।	२६८
आयत-ए-सजदा की तिलावत के बाद सजदा करना वाजिब है, चाहे तरावीह हो या कोई अन्य नमाज़।	२४९	साढ़े सत्तावन मील के इरादे से सफ़र करने से व्यक्ति मुसाफिर हो जाता है; दस-बीस मील इधर-उधर जाने से शरई सफ़र नहीं होगा।	२६८
आयत-ए-सजदा की तिलावत में एक शाखा से दूसरी पर जाने से मजलिस (स्थान) बदल जाती है।	४२५	जंगलात के कर्मचारियों के संबंध में एक प्रश्न।	२६८
नमाज़ में सजदा-ए-तिलावत के लिए दो आयतें (सर्वसम्मति से) और तीन आयतें (मतभेद के अनुसार) तुरंत अनिवार्य नहीं हैं।	५३९	यदि ससुराल सफ़र की दूरी पर हो, तो वहाँ जाने पर नमाज़ में क़स्र होगा।	२७०
बाबू सलातुल मुसाफ़िर (यात्री की नमाज़ का अध्याय)	४४१	साढ़े सत्तावन मील की दूरी पर लगातार जाना हो तो क़स्र है।	२७०
सरकारी दौरों पर अधिकारी मुसाफ़िर होंगे या नहीं।	४४१	यदि मुसाफ़िर इमाम ने पूरी नमाज़ पढ़ाई, तो मुक़ीम (निवासी) की नमाज़ नहीं होगी।	२७१
मुसाफ़िर होने के लिए आवश्यक है कि क़स्र की दूरी तक निरंतर जाने का इरादा हो, अन्यथा वह मुसाफ़िर नहीं होगा।	२५२	कहीं दुकान हो तो वह 'वतन-ए-असली' (मूल वतन) नहीं बन जाता।	२७१
मंज़िल, कोस और फ़रसंग की दूरियों का वर्णन।	२५५	**बाबू अल-जुमुआ (जुम्मा का अध्याय)**	२७३

बायाँ विवरण	पृष्ठ संख्या	दायाँ विवरण	पृष्ठ संख्या
क़स्र तीन मंज़िल से कम में नहीं होता।	२५५	देहातों में जुम्मा जायज़ नहीं है।	२७३
मुसाफ़िर जिस रास्ते से सफ़र करेगा, वही मान्य होगा।	२५५	जुम्मा के लिए शहर शर्त है।	२७४
दो मुसाफ़िरों के बीच एक साझा गुलाम हो और एक ने रुकने (इक़ामत) की नियत कर ली और दूसरे ने नहीं की, तो गुलाम क़स्र करे या नहीं।	२५५	शहर की परिभाषा।	२७४
आबादी से बाहर निकलते ही व्यक्ति मुसाफ़िर हो जाता है और जब तक वतन वापस न आ जाए या कहीं इक़ामत की नियत न कर ले, मुसाफ़िर रहेगा।	२५८	शहर की यह परिभाषा कि सभी निवासी जिन पर जुम्मा फ़र्ज़ है, आ जाएँ तो मस्जिद में न समा सकें, 'ज़ाहिर-उर-रिवाया' के विरुद्ध है।	२७४
जंगलों में जो कर्मचारी होते हैं वे मुसाफ़िर कहलाएंगे या नहीं।	२५८	जुम्मा के संबंध में एक संदेह का निवारण: एहतियाती ज़ुहर ख़ास लोगों के लिए है।	२७७
जो स्टेशन जंगलों में होते हैं उनके कर्मचारी मुसाफ़िर हैं या नहीं।	२६७	फतावा अबुल बरकात के एक फतवे का खंडन।	२८२
		खुतबे के शब्दों का अर्थ समझना जुम्मा के सही होने के लिए शर्त नहीं है।	२८२

पृष्ठ संख्या २६/६७३

بائیں متن	صفحہ نمبر
سجدہ کرنے میں قرآن شریف سامنے ہو تو حرج نہیں۔	۲۴۹
آیت سجدہ تلاوت کرنے کے بعد سجدہ کرنا واجب، تراویح ہو یا کوئی دوسری نماز۔	۲۴۹
تلاوت آیت سجدہ میں ایک شاخ سے دوسری پر جانے سے مجلس تبدیل ہو جاتی ہے۔	۴۲۵
سجود تلاوت صلوٰۃ میں دو آیتیں بالا تفاق اور تین علی الاختلاف قاطع فور نہیں۔	۵۳۹
باب صلوٰۃ المسافر	۴۴۱
	۴۴۱

دائیں متن	صفحہ نمبر
سفر میں نماز پوری پڑھنا، قصر نہ کرنا گناہ ہے۔	۲۶۸
ساڑھے ستاون میل کے ارادہ سے سفر کرنے سے آدمی مسافر ہوتا ہے دس دس بیس بیس میل ادھر ادھر جانے سے شرعی سفر نہیں ہوگا۔	۲۶۸
جنگلات کے ملازمین کے متعلق ایک سوال۔	۲۶۸
سسرال مدت سفر پر ہو تو وہاں جانے پر نماز میں قصر ہوگا۔	۲۷۰
ساڑھے ستاون میل کے فاصلہ پر علی الاتصال جانا ہو تو قصر ہے۔	۲۷۰
	۲۷۱

بائیں متن	صفحہ نمبر	دائیں متن	صفحہ نمبر
حکام سرکاری دوروں میں مسافر ہوں گے یا نہیں۔		مسافر امام نے پوری نماز پڑھائی تو مقیم کی نماز نہیں ہوگی۔	
مسافر ہونے کے لئے ضروری ہے کہ مدتِ قصر تک مسلسل جانے کا ارادہ ہو ورنہ مسافر نہیں ہوگا۔	۲۵۲	کہیں دکان ہو تو وہ وطنِ اصلی نہیں بن جاتا۔	۲۷۱
منزل، کوس اور فرسنگ کی مسافتوں کا بیان۔	۲۵۵	**باب الجمعة**	۲۷۳
قصر تین منزل سے کم میں نہیں ہوتا۔	۲۵۵	دیہات میں جمعہ جائز نہیں۔	۲۷۳
مسافر جس راستہ سے سفر کرے گا وہی معتبر ہوگا۔	۲۵۵	جمعہ کے لئے شہر شرط ہے۔	۲۷۴
دو مسافروں کے درمیان ایک مشترک غلام ہو اور ایک نے اقامت کی نیت کر لی اور دوسرے نے نہیں کی تو غلام قصر کرے یا نہیں۔	۲۵۵	شہر کی تعریف۔	۲۷۴
آبادی سے باہر نکلتے ہی مسافر ہو جاتا ہے اور جب تک وطن واپس نہ آجائے یا کہیں اقامت کی نیت نہ کرلے مسافر رہے گا۔	۲۵۸	شہر کی یہ تعریف کہ جمیعِ سکان جن پر جمعہ فرض ہے آجائیں تو مسجد میں نہ آسکیں ظاہر الروایۃ کے خلاف ہے۔	۲۷۴

صفحہ نمبر	بائیں متن	صفحہ نمبر	دائیں متن
۲۵۸	جنگلات میں جو ملازمین ہوتے ہیں وہ مسافر کہلائیں گے یا نہیں۔	۲۷۷	جمعہ کے متعلق ایک شبہ کا ازالہ احتیاطی ظہر خواص کے لئے ہے۔
۲۶۷	جو اسٹیشن جنگلوں میں ہوتے ہیں ان کے ملازمین مسافر ہیں یا نہیں۔	۲۸۲	فتاویٰ ابوالبرکات کے ایک فتویٰ کا رد۔
		۲۸۲	خطبہ کے الفاظ کے معانی سمجھنا صحتِ جمعہ کے لئے شرط نہیں۔

- Whether it is permissible to translate the Khutbah (sermon) during the Khutbah or not. (313) | In which year was Jumu'ah (Friday prayer) made obligatory? (286)
- Whether Jumu'ah is permissible in forts etc. or not. (314) | If there is a large congregation for Jumu'ah, Eid prayers etc., can Sajdah-e-Sahw (prostration for forgetfulness) be omitted? (287)
- A general call to prayer (Adhan) is necessary for the validity of Jumu'ah. (315) | If Jumu'ah has been performed in one mosque, can other people perform Jumu'ah in that same mosque or not? (288)
- What is the number of Sunnah prayers for Jumu'ah? (320) | Can Jumu'ah be held twice in the same mosque or not? (288)
- Method of praying Ihtiyati Zuhr (precautionary Zuhr). (320) | Can there be two congregations for Jumu'ah at the same time or not? (293)
- A few questions related to Jumu'ah. (322) | Is it permissible to deliver the Khutbah in Arabic and then translate it into Urdu, or to deliver it in Urdu, or to deliver it partly in Arabic and partly in poetry or not? (296)
- Responding to the second Adhan with the tongue or praying with the tongue after the Adhan is prohibited; it can be done in the heart. (326) | It is not permissible to pray two rak'ats after Jumu'ah with the intention of Zuhr. (300)
- The Khutbah should begin with Ta'awwudh (seeking refuge in Allah). (329) | Two fatwas of others regarding Khutbah and the research of the author. (302)
- Reciting Urdu poems etc. in the Khutbah is against the Sunnah. (332) | Turning the face to the right and left during the Khutbah is baseless. (302)
- How is it to deliver the Khutbah while holding a staff? (333) | Delivering the Khutbah in a language other than Arabic is against the Sunnah. (303)
- How is it if the Khutbah contains Arabic, Persian, and Urdu poetry? (333) | How many steps should the Minbar (pulpit) have, on which step should the Khutbah be delivered, and since when has the tradition of the Minbar existed? (303)
- What is the ruling if a minor delivers the Khutbah and an adult leads the prayer? (344) | A question regarding Ihtiyati Zuhr. (309)
- A question regarding Ihtiyati Zuhr. (347) | Where the population is so large that they cannot fit in the main mosque, based on the narration of Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), that place is considered a city; the later scholars have adopted this, and Jumu'ah and Eid prayers can be held there according to this narration. (310)

- Jumu'ah can be held in multiple places, but praying in one place is better. (348) | The difference between city and village (Regrettably, the complete answer could not be found). (312)
- Where there is doubt regarding the conditions for the validity of Jumu'ah, there is a ruling for the elite to pray four rak'ats of Ihtiyati (precautionary prayer). (350) | Whether it is permissible or not for Jumu'ah and Eid prayers to be held in villages for the sake of Islamic glory. (312)

- खुतबा के दौरान खुतबा का अनुवाद करना जायज़ है या नहीं। (313) | जुम्मा किस साल फ़र्ज़ हुआ। (286)
- किले आदि में जुम्मा जायज़ है या नहीं। (314) | जुम्मा, ईदैन आदि में बड़ी जमात हो तो सजदा-ए-सह्व छोड़ा जा सकता है। (287)
- जुम्मा की वैधता के लिए आम अज़ान ज़रूरी है। (315) | एक मस्जिद में जुम्मा हो जाए तो क्या दूसरे लोग उसी मस्जिद में जुम्मा पढ़ सकते हैं या नहीं? (288)
- जुम्मा की सुन्नत नमाज़ों की संख्या कितनी है? (320) | क्या एक मस्जिद में दो बार जुम्मा हो सकता है या नहीं? (288)
- एहतियाती ज़ुहर (सावधानी वाली ज़ुहर) पढ़ने का तरीका। (320) | क्या एक ही समय में जुम्मा की दो जमातें हो सकती हैं या नहीं? (293)
- जुम्मा से संबंधित कुछ प्रश्न। (322) | क्या अरबी में खुतबा पढ़ना फिर उर्दू में अनुवाद करना या उर्दू में पढ़ना या कुछ अरबी और कुछ शायरी में पढ़ना जायज़ है या नहीं? (296)
- दूसरी अज़ान का जवाब ज़ुबान से देना या अज़ान के बाद ज़ुबान से दुआ करना मना है, दिल से कर सकते हैं। (326) | जुम्मा के बाद ज़ुहर की नीयत से दो रकअत पढ़ना जायज़ नहीं। (300)
- खुतबा तअव्वुज़ (अऊज़ु बिल्लाह...) से शुरू करना चाहिए। (329) | खुतबा के बारे में दूसरों के दो फ़तवे और लेखक का शोध। (302)
- खुतबा में उर्दू के कसीदे आदि पढ़ना सुन्नत के खिलाफ है। (332) | खुतबा के दौरान दाएं-बाएं चेहरा फेरना निराधार है। (302)
- लाठी (असा) लेकर खुतबा पढ़ना कैसा है? (333) | अरबी के अलावा दूसरी भाषा में खुतबा पढ़ना सुन्नत के खिलाफ है। (303)
- अरबी, फारसी और उर्दू शायरी में खुतबा हो तो कैसा है? (333) | मिंबर की कितनी सीढ़ियाँ होनी चाहिए, किस सीढ़ी पर खुतबा दिया जाए और मिंबर का रिवाज कब से है? (303)
- अगर नाबालिग खुतबा पढ़े और बालिग नमाज़ पढ़ाए तो क्या हुक्म है? (344) | एहतियाती ज़ुहर के बारे में एक सवाल। (309)
- एहतियाती ज़ुहर के बारे में एक सवाल। (347) | जहाँ आबादी इतनी अधिक हो कि वे मुख्य मस्जिद में न आ सकें तो हज़रत इमाम अबू यूसुफ (रहमतुल्लाह अलैह) के रिवायत के आधार

पर वह स्थान शहर माना जाएगा; बाद के विद्वानों ने इसे अपनाया है, और उस रिवायत पर वहाँ जुम्मा और ईदैन की नमाज़ हो सकती है। (310)

- जुम्मा कई जगहों पर हो सकता है लेकिन एक ही जगह पढ़ना अफज़ल (बेहतर) है। (348) | शहर और गाँवों में अंतर (अफसोस कि पूरा जवाब नहीं मिल सका)। (312)
- जहाँ जुम्मा की वैधता की शर्तों में संदेह हो, वहाँ खास लोगों के लिए चार रकअत एहतियाती (सावधानी वाली) नमाज़ पढ़ने का हुक्म है। (350) | क्या इस्लामी शान-ओ-शौकत के ख्याल से गाँवों में जुम्मा और ईदैन की नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं। (312)

पेज 27/673

فتاویٰ رضویہ | جلد ہشتم

- خطبہ میں خطبہ کا ترجمہ کرنا جائز ہے یا نہیں۔ (313) | جمعہ کس سال فرض ہوا۔ (286)
- قلعہ وغیرہ میں جمعہ جائز ہے یا نہیں۔ (314) | جمعہ عیدین وغیرہ میں کثیر جماعت ہو تو سہو کا سجدہ چھوڑا جاسکتا ہے۔ (287)
- صحت جمعہ کے لئے اذان عام ضروری ہے۔ (315) | ایک مسجد میں جمعہ ہو جائے تو دوسرے لوگ اس مسجد میں جمعہ پڑھ سکتے ہیں یا نہیں۔ (288)
- جمعہ کی سنتوں کی تعداد کتنی ہے۔ (320) | ایک مسجد میں دو بار جمعہ ہوسکتا ہے یا نہیں۔ (288)
- احتیاطی ظہر پڑھنے کا طریقہ۔ (320) | کیا ایک وقت میں جمعہ کی دو جماعتیں ہو سکتی ہیں یا نہیں۔ (293)
- جمعہ سے متعلق چند سوال۔ (322) | عربی میں خطبہ پڑھنا پھر اردو میں ترجمہ کرنا یا اردو میں پڑھنا یا کچھ عربی اور کچھ اشعار میں پڑھنا جائز ہے یا نہیں۔ (296)
- اذان ثانی کا جواب زبان سے دینا یا اذان کے بعد زبان سے دعا کرنا منع ہے دل سے کر سکتا ہے۔ (326) | جمعہ کے بعد ظہر کی نیت سے دورکعت پڑھنا جائز نہیں۔ (300)
- تعوذ سے خطبہ شروع کرنا چاہئے۔ (329) | خطبہ کے متعلق دوسروں کے دو فتوے اور مصنف کی تحقیق۔ (302)
- اردو کے قصائد وغیرہ خطبہ میں پڑھنا خلاف سنت ہے۔ (332) | خطبہ میں دہنے بائیں منہ پھیرنا بے اصل ہے۔ (302)

- عصا لے کر خطبہ پڑھنا کیسا ہے۔ (333) | عربی کے علاوہ دوسری زبان میں خطبہ پڑھنا خلاف سنت ہے۔ (303)
- عربی، فارسی اور اردو اشعار میں خطبہ ہو تو کیسا ہے۔ (333) | منبر کے کتنے زینے ہوں اور کس زینہ پر خطبہ ہوا اور منبر کا رواج کب سے ہے۔ (303)
- نابالغ خطبہ پڑھے اور بالغ نماز پڑھائے تو کیا حکم ہے۔ (344) | احتیاطی ظہر کے متعلق ایک سوال۔ (309)
- احتیاطی ظہر کے متعلق ایک سوال۔ (347) | جہاں آبادی اتنی ہو کہ وہاں کی بڑی مسجد میں نہ آ سکیں ، حضرت امام ابو یوسف رحمتہ اللہ علیہ کی روایت کی بنا پر وہ شہر ہے، متاخرین نے اس کو اختیار کیا ہے، اس روایت پر وہاں جمعہ اور عیدین ہو سکتے ہیں۔ (310)
- متعدد جگہ جمعہ ہو سکتا ہے مگر ایک جگہ پڑھنا افضل ہے۔ (348) | شہر اور دیہات کا فرق (افسوس کہ پورا جواب نہ مل سکا)۔ (312)
- جہاں صحت جمعہ کے شرائط میں اشتباہ ہو تو وہاں خواص کے لئے چار رکعت احتیاطی پڑھنے کا حکم ہے۔ (350) | شوکتِ اسلامی کے خیال سے جمعہ اور عیدین گاؤں میں پڑھے جائیں تو جائز ہے یا نہیں۔ (312)

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Topic / Question	Page	Topic / Detail	Page
Can Friday prayers be held in prisons or not?	397	Treatise 'Mirqat al-Juman fi al-Hubut an al-Minbar li-Madh al-Sultan' (regarding descending one step and then ascending again during the second sermon).	412
Where there is no doubt about the validity of Friday prayers, precautionary Dhuhr prayer is forbidden.	398	To call any action of Muslims a 'vile innovation' (bid'at-e-shani'ah) is to attribute a ruling to Allah and His Messenger (peace be upon him) that this action is improper in their sight, and to attribute a ruling to Muslims that they are sinners and deserving of punishment because of this action; and to give such a ruling without clear Sharia evidence is impermissible.	417
If the Imam has a Sharia defect and cannot be removed, it is obligatory to go elsewhere for Friday prayer.	399	Sharia evidence for a Mujtahid is the 'Four Principles' (Usul-e-Arba'a), and for us, it is the saying of the Mujtahid.	417
Is it permissible or not to deliver the sermon in Urdu for the sake of people who do not understand Arabic?	399	Where the saying of a Mujtahid exists, scholars write the ruling with certainty in that place.	417
It is disliked (Makruh) to give the second call to prayer (Adhan Thani) inside the mosque.	402	If a non-Mujtahid scholar has discussed a matter, scholars do not write it with certainty, but rather state clearly that this is the discussion of such-and-such or some, so that it is not considered transmitted within the school of thought.	417
When did the first Adhan of Friday start, and where was the second Adhan given	402	If a scholar writes the saying of a non-Mujtahid with certainty, they are taken to task for it.	417

Topic / Question	Page	Topic / Detail	Page
during the time of the Rightly Guided Caliphs?			
Is Friday prayer permissible in a fort or not?	402	Allama Shami did not state that descending one step from the pulpit and then ascending is forbidden or a vile innovation, but rather he quoted the words of Ibn Hajar Shafi'i.	417
Will the Friday prayer of a Hanafi behind a Shafi'i Imam be valid or not?	404	Imam Ibn Hajar also did not write the aforementioned issue with certainty, but said that some have discussed it in this way.	417
If someone other than the appointed Imam delivers the sermon and leads the prayer without his permission, the Friday prayer will not be valid. However, if the appointed Imam joins the prayer, it will be valid.	404	'Discussion' will only be mentioned where the issue is neither transmitted nor explicitly included under any non-specific general principle.	417
If there is no place outside the mosque where the Muezzin can give the Adhan in front of the preacher (Khateeb), what should be done?	405	Relying on non-specific general principles does not depend on discussion and scrutiny.	417
Are both Friday sermons obligatory, or is one Fard and the other Sunnah?	411	If a boy drank a woman's milk at the age of six months, five days, four Ghari (approx. 24 mins each), and three minutes, her daughter is forbidden (Haram) to him.	418

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

विषय / प्रश्न	पृष्ठ	विषय / विवरण	पृष्ठ
जेलखानों में जुमा हो सकता है या नहीं?	397	रिसाला 'मिरकातुल जुमान फ़ील हुबूत अनिल मिम्बर लि-मदहिस सुल्तान' (दूसरे खुतबे में एक सीढ़ी उतरने और फिर चढ़ने के बारे में)।	412
जहाँ जुमा सही होने में कोई संदेह न हो, वहाँ एहतियाती जुहर मना है।	398	मुसलमानों के किसी अमल को 'बिदअत-ए-शनीआ' कहना अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर यह हुक्म लगाना है कि उनके नज़दीक यह अमल नापसंद है, और मुसलमानों पर यह हुक्म लगाना है कि वे इस अमल के कारण गुनहगार और अज़ाब के हकदार हैं; और बिना किसी स्पष्ट शरीयत प्रमाण के ऐसा हुक्म लगाना नाजायज़ है।	417
इमाम में शरीयत का कोई दोष हो और उसे हटाया न जा सके, तो दूसरी जगह जुमा के लिए जाना वाजिब है।	399	मुजतहिद के लिए शरीयत का प्रमाण 'उसूले अरबा' (चार सिद्धांत) हैं और हमारे लिए मुजतहिद का कथन है।	417
जहाँ लोग अरबी नहीं समझते, क्या उनकी सुविधा के लिए उर्दू में खुतबा पढ़ना जायज़ है?	399	जिस जगह मुजतहिद का कथन मौजूद हो, उलेमा उसी के आधार पर यकीनी तौर पर हुक्म लिखते हैं।	417
मस्जिद के भीतर दूसरी अज़ान (अज़ान-ए-सानी) देना मकरूह है।	402	यदि किसी गैर-मुजतहिद आलिम ने किसी मामले पर चर्चा की है, तो उलेमा उसे निश्चितता के साथ नहीं लिखते, बल्कि स्पष्ट रूप से बताते हैं कि यह फलाँ व्यक्ति या कुछ लोगों की चर्चा है, ताकि इसे मज़हब का प्रमाणित हुक्म न समझा जाए।	417
जुमा की पहली अज़ान कब शुरू हुई और खुलफ़ा-ए-	402		417

विषय / प्रश्न	पृष्ठ	विषय / विवरण	पृष्ठ
राशिदीन के समय दूसरी अज़ान कहाँ होती थी?		यदि कोई आलिम किसी गैर-मुजतहिद के कथन को निश्चित हुक्म के रूप में लिख दे, तो उस पर आपत्ति की जाती है।	
किले में जुमा जायज़ है या नहीं?	402	अल्लामा शामी ने मिम्बर से एक सीढ़ी उतरने और फिर चढ़ने को मना या 'बिदअत-ए-शनीआ' नहीं कहा, बल्कि इब्ने हजर शाफ़ई के शब्दों को उद्धृत किया।	417
शाफ़ई इमाम के पीछे हनफ़ी का जुमा मान्य होगा या नहीं?	404	इमाम इब्ने हजर ने भी उपरोक्त मसले को निश्चितता के साथ नहीं लिखा, बल्कि यह कहा कि कुछ लोगों ने इस तरह चर्चा की है।	417
यदि नियुक्त इमाम की अनुमति के बिना किसी और ने खुतबा पढ़ा और नमाज़ पढ़ाई, तो जुमा नहीं होगा; हाँ, यदि नियुक्त इमाम नमाज़ में शामिल हो जाए तो हो जाएगा।	404	'चर्चा' (बहस) केवल वहीं की जाएगी जहाँ मसला प्रमाणित न हो और न ही स्पष्ट रूप से किसी सामान्य सिद्धांत के अंतर्गत आता हो।	417
यदि मस्जिद के बाहर ऐसी कोई जगह न हो जहाँ मुअज़्ज़िन खतीब के सामने खड़े होकर अज़ान दे सके, तो वहाँ क्या किया जाए?	405	सामान्य सिद्धांतों से प्रमाण लेना चर्चा और गहन विचार पर निर्भर नहीं है।	417
जुमा के दोनों खुतबे फ़र्ज़ हैं या एक फ़र्ज़ और दूसरा सुन्नत?	411	यदि किसी लड़के ने छह महीने, पाँच दिन, चार घड़ी और तीन मिनट की उम्र में किसी महिला का दूध पिया, तो उस महिला की बेटी उस पर हराम है।	418

مسئلہ / عنوان صفحہ		مسئلہ / عنوان صفحہ	
جیل خانوں میں جمعہ ہوسکتا ہے یا نہیں۔	۳۹۷	رسالہ مرقاۃ الجمان فی الھبوط عن المنبر لمدح السلطان (ثانی خطبہ میں ایک سیڑھی اترنے پھر چڑھنے کے بارے میں)	۴۱۲
جہاں جمعہ صحیح ہونے میں اشتباہ نہ ہو، وہاں احتیاطی ظہر منع ہے۔	۳۹۸	مسلمانوں کے کسی فعل کو بدعتِ شنیعہ کہنا ایک حکم تولی اللہ و رسول جل و علا صلی اللہ علیہ وسلم پر لگانا ہے کہ ان کے نزدیک یہ فعل ناروا ہے اور ایک حکم مسلمانوں پر لگانا ہے کہ وہ اس فعل کے باعث گنہگار و مستحق عذاب ہیں اور ایسا حکم لگانا بلا دلیل شرعی واضح کے ناجائز ہے۔	۴۱۷
امام میں شرعی عیب ہو اور اسے معزول نہ کرسکیں تو دوسری جگہ جمعہ کے لئے جانا واجب ہے۔	۳۹۹	دلیل شرعی مجتہد کے لئے اصول اربعہ اور ہمارے لئے قول مجتہد ہے۔	۴۱۷

مسئلہ / عنوان	صفحہ
جہاں لوگ عربی نہیں سمجھتے ان کی رعایت میں اردو میں خطبہ پڑھنا جائز ہے یا نہیں۔	۳۹۹
مسجد میں اذان ثانی دینا مکروہ ہے۔	۴۰۲
جمعہ کی پہلی اذان کب سے شروع ہوئی، خلفائے راشدین کے زمانہ میں اذان ثانی کہاں ہوتی تھی۔	۴۰۲
قلعہ میں جمعہ جائز ہے یا نہیں۔	۴۰۲
شافعی امام کے پیچھے حنفی کا جمعہ ہوگا یا نہیں۔	۴۰۴
بے اذنِ امام معین کے دوسرے نے خطبہ پڑھا اور	۴۰۴

مسئلہ / عنوان	صفحہ
جس جگہ قول مجتہد موجود ہو علماء اسی جگہ حکم بالجزم لکھتے ہیں۔	۴۱۷
اگر کسی عالم غیر مجتہد نے کسی امر کی بحث کی ہو تو علماء اس کو بطور جزم نہیں لکھتے بلکہ صراحۃً بتا دیتے ہیں کہ یہ فلاں یا بعض کی بحث ہے تاکہ یہ منقول فی المذہب معلوم نہ ہو۔	۴۱۷
اگر کوئی عالم قول غیر مجتہد کو بطور جزم لکھ جائے تو اس پر گرفت ہوتی ہے۔	۴۱۷
علامہ شامی نے منبر سے ایک سیڑھی اترنے اور پھر چڑھنے کو ممنوع یا بدعتِ شنیعہ نہیں فرمایا بلکہ ابن حجر شافعی کا کلام نقل فرمایا۔	۴۱۷
امام ابن حجر نے بھی مسئلہ مذکورہ کو بطور جزم نہیں لکھا بلکہ فرمایا کہ بعض نے یوں بحث کی۔	۴۱۷
بحث وہیں کہیں گے جہاں مسئلہ نہ منقول ہو اور نہ صراحۃً کسی کلیہ نا مخصوصہ کے تحت داخل ہو۔	۴۱۷

مسئلہ / عنوان صفحہ		مسئلہ / عنوان صفحہ	
نماز پڑھائی جمعہ نہیں ہوگا، ہاں امام معین نماز میں شریک ہوجائے تو ہو جائے گا۔			
مسجد سے باہر کوئی ایسی جگہ نہ ہو جہاں مؤذن خطیب کے محاذی میں اذان دے سکے تو وہاں کیا کیا جائے۔	۴۰۵	کلیات نا مخصوصہ سے استناد بحث و نظر پر موقوف نہیں۔	۴۱۷
جمعہ کے دونوں خطبے فرض ہیں یا ایک فرض دوسرا سنت۔	۴۱۱	کسی لڑکے نے چھ مہینے پانچ دن چار گھڑی تین منٹ کی عمر میں ایک عورت کا دودھ پیا اس کی دختر اس پر حرام ہے۔	۴۱۸

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Page 418: The cessation [of milk] during the nursing period causes prohibition. Page 418: The author's scholarly discussion on the word 'some' (ba'dh) in Imam Ibn Hajar's statement "some of them discussed" (bahatha ba'dhuhum). Page 419: Discussion on the unknown status; an unknown source is not reliable. Page 419: A mere follower (muqallid) cannot pass judgment on his own discussion, nor can his discussion be an authority for another. Page 419: Following a mere follower is invalid by consensus (ijma'). Page 419: Mere newness (haduth) is not legally (Shar'i) a reason for prohibition. Page 419: Innovation (bid'at) can sometimes be forbidden, sometimes obligatory, sometimes recommended, sometimes disliked, and sometimes permissible. Page 420: There is consensus on the recommendation of good innovation (bid'at-e-hasana). Gathering of people to celebrate the birth of Prophet Muhammad (peace be upon him) is a good innovation and recommended. Page 420: Innovation in itself does not necessitate ugliness or abhorrence. Page 421: Recommendation (nadb) is a legal ruling for which evidence is necessary. Page 421: Adding to the Sunnah is disliked if done with the belief that it is Sunnah, not if done with the belief of permissibility or recommendation. Page 422: The word 'exceeding' (ta'addi) in the hadith "He has indeed exceeded" is interpreted as exceeding in belief. Page 423: The necessity of avoiding the ambiguity of being Sunnah requires lack of persistence, not persistence in abandoning it. Page 423: A beautiful point and a subtle detail regarding preachers descending and ascending one step of the pulpit (minbar) during the mention of the ruler in the sermon.

Page 425: A single gathering, according to the explicit statements of all imams, is inclusive of words. Page 425: Offer and acceptance are linked only when they are in the same gathering. Page 425: What exists is not linked with what is non-existent. Page 425: Moving from one branch to another while reciting a verse of prostration (Sajdah) changes the 'gathering'. Page 425: Description of some situations where the 'gathering' changes. Page 427: "A city is that whose largest mosque cannot accommodate its inhabitants" - this is neither the opinion of the Imam nor of the two companions (Sahibayn). Page 428: Friday prayer (Jumu'ah) is not obligatory for people of villages. Page 436: The Imam can respond to the second call to prayer (azan), but the follower (muqtadi) should not; however, if a follower does, one should not quarrel with him. Page 436: The sermon (Khutbah) should start with 'Ta'awwudh' (seeking refuge); if someone starts with 'Bismillah', there is no doubt about its permissibility. Page 437: When the name of Allah (the Exalted) or the Holy name of

the Prophet appears in the sermon, one should say 'Jalla Jalaluhu' or 'Sallallahu Alaihi Wasallam' in the heart, not with the tongue. Page 437: It is forbidden to offer Sunnah prayers during the sermon. Page 438: The sermon can be delivered both by memory and by reading; reciting from memory is better. Page 438: We will not perform Friday prayer in villages, and where it is not established, we will not establish it, but we will not stop the general public from doing so either.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

पृष्ठ 418: दूध पिलाने की अवधि में दूध का रुक जाना हराम होने का कारण बनता है। पृष्ठ 418: इमाम इब्न हजर के कथन "बहथ बअज़ुहुम" (उनमें से कुछ ने चर्चा की) में 'बअज़' (कुछ) शब्द पर लेखक की शोधपूर्ण चर्चा। पृष्ठ 419: अज्ञात स्थिति की चर्चा; अज्ञात स्रोत प्रमाण योग्य नहीं है। पृष्ठ 419: एक सामान्य अनुयायी (मुक़ल्लिद) न तो अपनी चर्चा पर फ़ैसला दे सकता है और न ही उसकी चर्चा दूसरे के लिए प्रमाण हो सकती है। पृष्ठ 419: एक मुक़ल्लिद का अनुसरण करना सर्वसम्मति (इज्मा) से अमान्य है। पृष्ठ 419: केवल नई बात (हदूथ) होना शरई तौर पर मनाही का कारण नहीं है। पृष्ठ 419: बिदअत (नवाचार) कभी हराम, कभी वाजिब, कभी प्रशंसनीय (मंदूब), कभी मकरूह और कभी जायज़ (मुबाह) होती है। पृष्ठ 420: अच्छी बिदअत (बिदअत-ए-हसना) के प्रशंसनीय होने पर सहमति है। पैग़ंबर मुहम्मद (उन पर अल्लाह की शांति हो) का जन्मदिन मनाने के लिए लोगों का इकट्ठा होना एक अच्छी बिदअत और प्रशंसनीय है। पृष्ठ 420: बिदअत स्वयं में बुराई या घृणा को आवश्यक नहीं बनाती। पृष्ठ 421: प्रशंसनीयता (नदब) एक शरई हुक्म है जिसके लिए प्रमाण आवश्यक है। पृष्ठ 421: सुन्नत से अधिक करना तब मकरूह है जब उसे सुन्नत समझकर किया जाए, न कि जायज़ या प्रशंसनीय समझकर। पृष्ठ 422: हदीस "क़द तअद्दा" में 'तअद्दी' का अर्थ विश्वास में सीमा पार करना है। पृष्ठ 423: सुन्नत होने के भ्रम से बचने के लिए निरंतरता की कमी आवश्यक है, न कि उसे छोड़ने पर निरंतरता। पृष्ठ 423: खुतबे के दौरान सुल्तान (शासक) के ज़िक्र पर उपदेशकों के मिंबर की एक सीढ़ी उतरने और चढ़ने में एक सुंदर बिंदु और सूक्ष्म विस्तार।

पृष्ठ 425: सभी इमामों के स्पष्ट कथनों के अनुसार एक ही सभा शब्दों का संग्रह होती है। पृष्ठ 425: प्रस्ताव और स्वीकृति तभी जुड़ते हैं जब वे एक ही सभा में हों। पृष्ठ 425: जो मौजूद है वह जो मौजूद नहीं है उसके साथ नहीं जुड़ता। पृष्ठ 425: सजदा की आयत के पाठ के दौरान एक डाल से दूसरी डाल पर जाने से सभा बदल जाती है। पृष्ठ 425: सभा बदलने की कुछ स्थितियों का वर्णन। पृष्ठ 427: "शहर वह है जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद उसके निवासियों को न समा सके" - यह न इमाम का मत है और न ही उनके दो साथियों (साहिबैन) का। पृष्ठ 428: गाँवों के लोगों पर जुमे की नमाज़ अनिवार्य (वाजिब) नहीं है। पृष्ठ 436: दूसरी अज़ान का जवाब इमाम दे सकता है, मुक्तदी नहीं; लेकिन यदि कोई मुक्तदी दे दे, तो उससे झगड़ा नहीं करना चाहिए। पृष्ठ 436: खुतबा 'तअव्वुज़' से शुरू करना चाहिए; यदि कोई 'बिस्मिल्लाह' से शुरू करे तो इसके जायज़ होने में कोई संदेह नहीं है। पृष्ठ 437: खुतबे में जब अल्लाह का नाम या हुज़ूर का मुबारक नाम आए, तो दिल में 'जल्ला जलालुहु' या

'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' कहना चाहिए, ज़बान से नहीं। पृष्ठ 437: खुतबे के समय सुन्नतें पढ़ना मना है। पृष्ठ 438: खुतबा ज़बानी और देखकर दोनों तरह से पढ़ा जा सकता है, और ज़बानी पढ़ना बेहतर है। पृष्ठ 438: न हम गाँवों में जुमा पढ़ेंगे और जहाँ वह स्थापित नहीं है वहाँ स्थापित करेंगे, लेकिन हम आम जनता को रोकेंगे भी नहीं।

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

صفحہ ۴۱۸: مدتِ رضاعت میں جو ارتفاع ہو موجبِ تحریم ہے۔ صفحہ ۴۱۸: امام ابن حجر کے قول "بَحَثَ بَعْضُهُمْ" میں لفظِ بعض پر مصنف کی تحقیقی بحث۔ صفحہ ۴۱۹: مجہول الحال کی بحث، مجہول الماخذ قابل استناد نہیں۔ صفحہ ۴۱۹: مقلد محض نہ خود اپنی بحث پر حکم لگا سکتا ہے نہ دوسرے پر اس کی بحث حجت ہو سکتی ہے۔ صفحہ ۴۱۹: تقلید مقلد اجماعاً باطل ہے۔ صفحہ ۴۱۹: مجرد حدوث شرعاً دلیل منع نہیں۔ صفحہ ۴۱۹: بدعت کبھی حرام، کبھی واجب، کبھی مندوب، کبھی مکروہ اور کبھی مباح ہوتی ہے۔ صفحہ ۴۲۰: بدعتِ حسنہ کے مندوب ہونے پر اتفاق ہے۔ جشنِ میلاد النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم منانے کے لئے لوگوں کا جمع ہونا بدعتِ حسنہ اور مندوب ہے۔ صفحہ ۴۲۰: نفسِ بدعت مستلزم قبح و شناعت نہیں۔ صفحہ ۴۲۱: ندب حکم شرعی ہے جس کے لئے دلیل ضروری ہے۔ صفحہ ۴۲۱: زیادہ علی السنہ وہ مکروہ ہے جو باعتقادِ سنت ہو نہ کہ باعتقادِ اباحت و ندب۔ صفحہ ۴۲۲: حدیث "قدتعدّٰی" میں تعدی اعتقاد پر محمول ہے۔ صفحہ ۴۲۳: لزومِ ابہامِ سنیت، عدم مداومت کا مقتضی ہے نہ کہ مداوت علی الترک کا۔ صفحہ ۴۲۳: دوران خطبہ ذکرِ سلطان پر خطباء کے منبر کی ایک سیڑھی اترنے اور چڑھنے میں نکتہ جمیلہ اور دقیقہ جلیلہ۔

صفحہ ۴۲۵: مجلس واحد حسبِ صریح کافہ ائمہ جامع کلمات ہوتی ہے۔ صفحہ ۴۲۵: ایجاب و قبول تب مرتبط ہوتے ہیں جب ایک ہی مجلس میں ہوں۔ صفحہ ۴۲۵: موجودِ معدوم کے ساتھ مرتبط نہیں ہوتا۔ صفحہ ۴۲۵: تلاوتِ آیتِ سجدہ میں ایک شاخ سے دوسری پر جانے سے مجلس تبدیل ہو جاتی ہے۔ صفحہ ۴۲۵: مجلس تبدیل ہونے کی بعض صورتوں کا بیان۔ صفحہ ۴۲۷: المصر مالا یسع اکبر مساجدہ اھلہ یہ نہ مذہب امام اور نہ صاحبین کا قول۔ صفحہ ۴۲۸: دیہات کے لوگوں پر جمعہ واجب نہیں۔ صفحہ ۴۳۶: اذانِ ثانی کا جواب امام دے سکتا ہے مقتدی نہیں مگر مقتدی دے تو اس سے

نزاع نہیں کرنا چاہئے۔ صفحہ ۴۳۶: تعوذ سے خطبہ شروع کرنا چاہئے اور کوئی بسم اللہ سے شروع کرے تو جواز میں شک نہیں۔ صفحہ ۴۳۷: خطبہ میں اسمِ جلالت یا حضور کا اسم مبارک آئے تو دل میں جل جلالہ یا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کہے زبان سے نہیں۔ صفحہ ۴۳۷: خطبہ کے وقت سنتیں پڑھنا ممنوع ہے۔ صفحہ ۴۳۸: خطبہ زبانی اور دیکھ کر دونوں طور پر پڑھا جا سکتا ہے اور زبانی پڑھنا افضل ہے۔ صفحہ ۴۳۸: نہ ہم دیہات میں جمعہ پڑھیں گے اور جہاں قائم نہ ہو نہ وہاں قائم کریں گے مگر عوام کو منع بھی نہ کریں گے۔

Fatawa-e-Razwiya Volume 8

Page	Subject/Description	Issue No.	Subject/Description	Page
452	If the Imam is not fit to lead the prayer and cannot be replaced, then Zuhr should be prayed alone.	440	Whether Jumu'ah is permissible if small villages are adjacent or not.	452
454	Making any movement while listening to the Khutbah is prohibited, and standing for prayer on 'Walad Kanz Allah Ala' is forbidden.	441	The Khutbah should not be in a non-Arabic language.	454
454	What is the ruling if an Imam leads Jumu'ah and then participates in Jumu'ah prayer in another mosque?	441	Reciting a brief Khutbah is proof of wisdom.	454
454	Jumu'ah can be held in multiple locations within one city.	441	The 'Al-Wada'i' (farewell sermon) is not a Sharia command, and its adherence is not recommended.	454
454	Who should be the Imam for Jumu'ah?	441	What is the length of recitation in Jumu'ah prayer?	454
446	Jumu'ah can also be held in an open field; it is not necessary to have a mosque or building for it.	444	Jumu'ah is not permissible in villages, and where it is established, stopping it is the work of the ignorant.	446
457	Conditions of Jumu'ah.	444	In Jumu'ah, 'Qazi' refers to a ruler/judge, not a marriage registrar.	457
458	Before starting a verse in the Khutbah, one should recite 'Ta'awwuz', and if that verse is at the beginning of a Surah, there is no harm in reciting 'Bismillah' as well.	446	Whether Jumu'ah is permissible in assembly halls or meeting rooms.	458
458	Khutbah is a condition for Jumu'ah.	446		458

Page	Subject/Description	Issue No.	Subject/Description	Page
			Is it permissible to listen to the Khutbah while using an umbrella due to sunlight?	
459	The Khutbah should be brief.	446	Traveling before noon on the day of Jumu'ah is impermissible.	459
459	The author of the 'Ilmi Khutbah' was a Sunni.	447	Traveling after the arrival of Jumu'ah time is a sin.	459
459	Jumu'ah is forbidden in the forest and impermissible in the village.	449	If a place in the house is designated for prayer, it does not hold the status of a mosque.	459
460	It is better to pray Jumu'ah in a Jamia Mosque; the right of the neighborhood mosque is for the five daily prayers.	450	A mosque is not a condition for Jumu'ah.	460
461	Whether Jumu'ah is permissible where settlements are adjacent or not.	450	It is permissible to recite Durood upon Hazrat Ghaus-ul-Azam in adherence to the Prophet (PBUH).	461
462	The farewell Khutbah is not proven from the Prophet (PBUH) and the Companions; however, it is permissible in itself.	452	Jumu'ah is valid in the cities of India; precautionary Zuhr is for the elite, where Jumu'ah is valid, Zuhr will be waived.	462

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं (आठवीं किताब)

पृष्ठ	विषय/विवरण	मसला नं.	विषय/विवरण	पृष्ठ
452	यदि इमाम इमामत के योग्य न हो और उसे बदला भी न जा सके, तो अकेले ज़ुहर पढ़ें।	440	छोटे-छोटे गाँव आपस में जुड़े हों तो वहाँ जुमा जायज़ है या नहीं।	452
454	खुत्बा सुनने की स्थिति में कोई भी हरकत करना मना है और 'वलद कंज़ अल्लाह अला' पर नमाज़ के लिए खड़े होना हराम है।	441	खुत्बा गैर-अरबी भाषा में नहीं होना चाहिए।	454
454	इमाम ने जुमा पढ़ाकर दूसरी मस्जिद में जुमा की नमाज़ में शिरकत की, यह कैसा है?	441	संक्षिप्त खुत्बा पढ़ना अक्लमंदी का सबूत है।	454
454	एक शहर में कई स्थानों पर जुमा हो सकता है।	441	विदाई खुत्बा कोई शरीयत का हुक्म नहीं है और न ही इसका पाबंद होना बेहतर है।	454
454	जुमा का इमाम कौन हो?	441	जुमा में क़िरात की मात्रा क्या है?	454
446	मैदान में भी जुमा हो सकता है, इसके लिए मस्जिद या इमारत होना ज़रूरी नहीं।	444	देहात (गाँव) में जुमा जायज़ नहीं है और जहाँ कायम हो, उसे बंद करना अज्ञानियों का काम है।	446
457	जुमा की शर्तें।	444	अब जुमा में क़ाज़ी से मुराद हाकिम क़ाज़ी है, निकाह का क़ाज़ी नहीं।	457
458	खुत्बे में आयत शुरू करने से पहले ता'अव्वुज़ पढ़ना चाहिए और यदि वह आयत सूरह की शुरुआत में हो तो बिस्मिल्लाह भी पढ़ लेने में कोई हर्ज नहीं।	446	सभा गृहों या बैठक खानों में जुमा जायज़ है या नहीं।	458
458	जुमा के लिए खुत्बा शर्त (अनिवार्य) है।	446		458

पृष्ठ	विषय/विवरण	मसला नं.	विषय/विवरण	पृष्ठ
			धूप की वजह से छाता लगाकर खुत्बा सुनना जायज़ है या नहीं।	
459	खुत्बा संक्षिप्त होना चाहिए।	446	जुमा के दिन दोपहर से पहले सफ़र करना नाजायज़ है।	459
459	'इल्मी खुत्बे' के लेखक सुन्नी थे।	447	जुमा का वक्त हो जाने के बाद सफ़र करना गुनाह है।	459
459	जंगल में जुमा हराम और गाँव में नाजायज़ है।	449	यदि घर में कोई जगह नमाज़ के लिए नियत कर ली जाए तो वह मस्जिद के हुक्म में नहीं आती।	459
460	जामा मस्जिद में जुमा पढ़ना बेहतर है; मोहल्ले की मस्जिद का हक़ पाँच समय की नमाज़ों में है।	450	जुमा के लिए मस्जिद शर्त नहीं है।	460
461	जहाँ बस्तियाँ आपस में जुड़ी हों, वहाँ जुमा जायज़ है या नहीं।	450	हुज़ूर (स.अ.व.) के अनुसरण में हज़रत ग़ौस-ए-आज़म पर दरूद पढ़ना जायज़ है।	461
462	विदाई खुत्बा हुज़ूर (स.अ.व.) और सहाबा-ए-किराम से साबित नहीं है, हाँ वह अपने आप में अनुमत है।	452	हिन्दुस्तान के शहरों में जुमा सही है, एहतियाती ज़ुहर विशिष्ट लोगों के लिए है, जहाँ जुमा सही होगा वहाँ ज़ुहर समाप्त हो जाएगी।	462

صفحہ	مضمون	شمارہ
۴۵۲	امام قابل امامت نہ ہو اور اسے بدل بھی نہ سکتا ہو تو تنہا ظہر پڑھے۔	۴۴۰
۴۵۴	خطبہ سننے کی حالت میں کوئی حرکت کرنا منع ہے اور ولد کنز اللہ اعلیٰ پر نماز کے لئے کھڑے ہونا حرام ہے۔	۴۴۱
۴۵۴	امام نے جمعہ پڑھا کر دوسری مسجد میں جمعہ کی نماز میں شرکت کی یہ کیسا ہے۔	۴۴۱
۴۵۴	ایک شہر میں متعدد جگہ جمعہ ہوسکتا ہے۔	۴۴۱
۴۵۴	جمعہ کا امام کون ہو۔	۴۴۱
۴۴۶	میدان میں بھی جمعہ ہو سکتا ہے اس کے لئے مسجد یا عمارت ہونا ضروری نہیں۔	۴۴۴
۴۵۷	جمعہ کے شرائط	۴۴۴
۴۵۲	چھوٹے چھوٹے گاؤں متصل ہوں تو وہاں جمعہ جائز ہے یا نہیں۔	۴۴۰
۴۵۴	غیر عربی میں خطبہ نہیں ہونا چاہئے۔	۴۴۱
۴۵۴	مختصر خطبہ پڑھنا عقلمندی کا ثبوت ہے۔	۴۴۱
۴۵۴	الوداعی کوئی حکم شرعی نہیں اور نہ اس کا التزام اچھا۔	۴۴۱
۴۵۴	جمعہ میں قرأت کی مقدار کیا ہے۔	۴۴۱
۴۴۶	دیہات میں جمعہ جائز نہیں اور جہاں قائم ہو بند کرنا جاہلوں کا کام ہے۔	۴۴۴
۴۵۷	اب جمعہ میں قاضی سے مراد والی قاضی ہے نکاح کا قاضی نہیں۔	۴۴۴

صفحہ	مضمون شمارہ	مضمون صفحہ
	خطبہ میں آیت شروع کرنے سے پہلے	
۴۵۸	تعوّذ پڑھنا چاہئے اور وہ آیت سورہ کی ابتداء میں ہو تو بسم اللہ بھی پڑھ لینے میں کوئی حرج نہیں۔ ۴۴۶	مجلس خانوں میں جمعہ جائز ہے یا نہیں۔ ۴۵۸
۴۵۸	جمعہ کے لئے خطبہ شرط ہے۔ ۴۴۶	دھوپ کی وجہ سے چھتری لگا کر خطبہ سننا جائز ہے یا نہیں۔ ۴۵۸
۴۵۹	خطبہ مختصر ہونا چاہئے۔ ۴۴۶	جمعہ کے دن دوپہر سے پہلے سفر کرنا ناجائز ہے۔ ۴۵۹
۴۵۹	علمی خطبہ کے مصنف سنی تھے۔ ۴۴۷	جمعہ کا وقت ہو جانے کے بعد سفر کرنا گناہ ہے۔ ۴۵۹
۴۵۹	بن میں جمعہ حرام اور گاؤں میں ناجائز۔ ۴۴۹	گھر میں کوئی جگہ نماز کے لئے مقرر کرلی جائے تو وہ مسجد کے حکم میں نہیں۔ ۴۵۹
۴۶۰	جامع مسجد میں جمعہ پڑھنا افضل ہے مسجد محلہ کا حق نمازِ پنجگانہ میں ہے۔ ۴۵۰	جمعہ کے لئے مسجد شرط نہیں۔ ۴۶۰
۴۶۱	جہاں متصل بستیاں ہوں وہاں جمعہ جائز ہے یا نہیں۔ ۴۵۰	حضور کی تبعیت میں حضرت غوث الاعظم پر درود پڑھنا جائز ہے۔ ۴۶۱
۴۶۲	۴۵۲	۴۶۲

صفحہ	مضمون شمارہ	مضمون صفحہ
	الوداعی خطبہ حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور صحابہ کرام سے ثابت نہیں، ہاں وہ فی نفسہ مباح ہے۔	ہندوستان کے شہروں میں جمعہ صحیح ہے، احتیاطی ظہر خواص کے لئے ہے، جہاں جمعہ صحیح ہو گا ظہر ساقط ہوگی۔

صفحہ 31 از 673

Fatawa Razawiya, Volume 8

Page	Subject	Page	Subject
462	Friday prayer is valid behind imams appointed by the people.	469	The right to appoint an Imam for Friday prayer belongs to the ruler or their deputy.
463	Friday prayer is not permissible on rivers, seas, etc., nor in Dar al-Harb (land of war).	471	What is the ruling if the sermon (Khutbah) begins while one is performing Sunnah prayers.
465	The practice of stepping down and back up one step, which scholars had established for the preacher for a specific benefit, is no longer in practice.	477	Treatise: Ri’ayat al-Madhhabayn fi al-Du’a bayn al-Khutbatayn (Regarding making supplications between the two sermons).
465	Exaggerated praise for rulers is prohibited.	477	There is fundamentally no dispute regarding the permissibility of the Imam supplicating between the two sermons.
465	The beginning and end times for the Friday prayer.	477	The absence of a Sharia prohibition is a sufficient proof for its permissibility.
465	What should be in the sermon? Is it problematic if the names of the Rightly Guided Caliphs are not mentioned?	477	Only that which Allah Almighty and His Messenger (peace and blessings be upon him) have forbidden is prohibited.
466	The prayers of Qadianis are void.	477	Nothing can ever be prohibited without a prohibition from Allah and His Messenger.
466	Is it problematic if preaching and advice take the place of the sermon?	477	It is narrated in Sahih Bukhari and Muslim, etc., from the Hadith of Anas (may Allah be pleased with him) that the radiant Prophet (peace and blessings be upon him) raised his blessed hands during the sermon itself to pray for rain on one Friday and for the

Page	Subject
466	What is the status of a sermon in a non-Arabic language?
468	It is forbidden to say it is impermissible to listen to the sermon of someone appointed to the position of preacher and Imam since the royal era.
468	One should not respond to the call to the sermon (Adhan), make supplications, or kiss their thumbs upon hearing the blessed name.
468	Recite Durood Sharif in the heart, not with the tongue.
469	A sermon in Urdu is against the Sunnah.
477	clouds to clear from Medina on another Friday.
477	When supplicating during the sermon itself is established by Hadith, which necessitates an interruption of the sermon, then the permissibility of supplication between the two sermons is established with greater priority.
477	Sayings of various commentators of Hadith regarding the permissibility of supplication between the two sermons.
478	According to authentic Hadith of the Master of Messengers (peace and blessings be upon him) and various sayings of the Sahaba and Tabi'un, this sitting is during those times when the hour of acceptance on Friday is expected.
478	Narrations regarding the hour of acceptance on Friday.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
462	लोगों द्वारा नियुक्त इमामों के पीछे जुमे की नमाज़ सही है।	469	जुमे का इमाम नियुक्त करने का अधिकार राजा या उसके प्रतिनिधि को है।
463	दरिया, समुद्र आदि में और दारुल-हर्ब में जुमा जायज़ नहीं है।	471	सुन्नत पढ़ते समय यदि खुतबा शुरू हो जाए तो क्या हुक्म है।
465	एक सीढ़ी उतरकर फिर चढ़ने को उलेमा ने एक مصلحت (हित) के लिए खतीब के लिए रखा था, वह अब नहीं है।	477	रिसाला: रियायतुल मज़हबैन फ़िद्दुआ बैनुल खुतबतैन (दो खुतबों के बीच दुआ करने के बारे में)।
465	सुल्तानों के लिए अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों का प्रयोग वर्जित है।	477	इमाम के लिए दो खुतबों के बीच दुआ की वैधता में मूलतः कोई विवाद नहीं है।
465	जुमे का शुरुआती और आखिरी समय।	477	वैधता के लिए शरीयत की मनाही का न होना ही पर्याप्त प्रमाण है।
465	खुतबे में क्या होना चाहिए? यदि खुलफ़ा-ए-राशिदीन के नाम न लिए जाएँ तो क्या हर्ज है?	477	वर्जित वही है जिसे अल्लाह तआला और उसके रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने मना फरमाया हो।
466	कादियानियों की नमाज़ बातिल (अमान्य) है।	477	खुदा और रसूल की मनाही के बिना कोई भी चीज़ वर्जित नहीं हो सकती।
466	खुतबे के स्थान पर वाज़ और नसीहत हो तो क्या हर्ज है?	477	हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) द्वारा स्वयं खुतबे के दौरान हाथ मुबारक उठाकर एक जुमे को बारिश होने और दूसरे जुमे को मदीना तैयबा से बादल छँटने की दुआ माँगना सहीह बुखारी और

पृष्ठ	विषय
466	गैर-अरबी में खुतबा कैसा है?
468	जो शाही ज़माने से खुतबा और इमामत के पद पर नियुक्त हो, उसका खुतबा सुनने को नाजायज़ कहना मना है।
468	खुतबे की अज़ान का जवाब देना, दुआ माँगना और मुबारक नाम पर अँगूठा चूमना नहीं चाहिए।
468	दरूद शरीफ दिल में पढ़ें, ज़बान से नहीं।
469	उर्दू में खुतबा सुन्नत के खिलाफ है।
477	मुस्लिम आदि में हदीस-ए-अनस (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से वर्णित है। जब खुतबे के बीच में ही दुआ माँगना हदीस से साबित है, जो खुतबे के रुकने का कारण बनता है, तो दो खुतबों के बीच दुआ की वैधता और अधिक दृढ़ता से साबित हो जाती है।
477	दो खुतबों के बीच दुआ की वैधता पर हदीस के कई व्याख्याकारों के कथन।
478	सही हदीस हुज़ूर सैय्यदुल मुर्सलीन (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) और सहाबा व ताबेईन के अनेक कथनों के अनुसार, यह जलसा (बैठना) उन समयों में है जिनमें जुमे के दिन दुआ की कुबूलियत की घड़ी की उम्मीद होती है।
478	जुमे के दिन दुआ की कुबूलियत की घड़ी के बारे में रिवायतें।

صفحہ مضمون

۴۶۲ اماموں کے پیچھے جمعہ صحیح ہے۔

دریا، سمندر وغیرہ میں

۴۶۳ جمعہ جائز نہیں نہ دارالحرب میں۔

ایک زینہ اترنے پھر چڑھنے کو علماء نے ایک

۴۶۵ مصلحت سے خطیب کے لئے رکھا تھا وہ اب نہیں۔

سلاطین کے لئے مبالغہ

۴۶۵ آمیز الفاظ ممنوع ہیں۔

۴۶۵ جمعہ کا اول اور آخر وقت۔

خطبہ میں کیا ہو خلفائے

۴۶۵ راشدین کے نام نہ لئے جائیں تو کیا حرج ہے۔

صفحہ مضمون

۴۶۹ امام جمعہ مقرر کرنے کا حق بادشاہ یا نائب کو ہے۔

۴۷۱ سنت پڑھنے میں خطبہ شروع ہو تو کیا حکم ہے۔

۴۷۷ رسالہ رعایت المذہبین فی الدعاء بین الخطبتین (مابین الخطبتین دعا کرنے کے بارے میں)

۴۷۷ امام کے لئے دعا بین الخطبتین کے جواز میں اصلاً کلام نہیں۔

۴۷۷ جواز کے لئے نہی شرعی کا نہ ہونا ہی سند کافی ہے، ممنوع وہی ہے جسے اللہ تعالیٰ اور اس کا رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم منع فرمائیں۔

صفحہ	مضمون
۴۶۶	قادیانیوں کی نماز باطل ہے۔
۴۶۶	بجائے خطبہ کے وعظ و نصیحت ہو تو کیا حرج ہے۔
۴۶۶	غیر عربی میں خطبہ کیسا ہے۔
۴۶۸	جو شاہی زمانہ سے خطبہ اور امامت کے منصب پر مقرر ہو اس کے خطبہ سننے کو ناجائز کہنا منع ہے۔
۴۶۸	اذان خطبہ کا جواب دینا اور دعا مانگنا اور نام پاک پر انگوٹھا چومنا نہیں چاہئے۔
۴۷۷	خدا اور رسول کی نہی کے بغیر ہر گز کوئی شئی ممنوع نہیں ہو سکتی۔
۴۷۷	حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا عین خطبہ میں دست مبارک بلند فرما کر ایک جمعہ کو مینہ برسنے اور دوسرے جمعہ کو مدینہ طیبہ پر سے کھل جانے کی دعا مانگنا صحیح بخاری و مسلم وغیرہما میں حدیث انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے۔
۴۷۷	جب عین خطبہ میں دعا مانگنا حدیث سے ثابت ہوا جو کہ قطع خطبہ کو مستلزم ہے تو بین الخطبتین دعا کا جواز بدرجہ اولٰی ثابت ہو گیا۔
۴۷۷	بین الخطبتین دعا کے جواز پر متعدد شارحین حدیث کے اقوال۔
۴۷۸	صحیح حدیث حضور سیدالمرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور متعدد اقوال صحابہ و تابعین کی رو سے یہ جلسہ ان اوقات میں ہے جن میں ساعت اجابت جمعہ کی امید ہے۔

صفحہ	مضمون	صفحہ	مضمون
۴۶۸	درود شریف دل میں پڑھے زبان سے نہیں۔	۴۷۸	ساعت اجابت جمعہ کے بارے میں روایات۔
۴۶۹	اردو میں خطبہ خلاف سنت ہے۔		

Fatawa Razawiya, Volume 8

1. It is from the Imam's sitting until the end of prayer. | 479 | The humble author, may Allah forgive him (i.e., the author, may mercy be upon him), mostly remains silent in this sitting, sometimes reciting Surah Al-Ikhlas or Durood Sharif, and never raises his hands so that followers do not engage in prayer upon seeing him. | 485
2. It is from the start of the sermon to the end of the sermon. | 479 | Is it permissible to raise hands and pray between the two sermons or not? | 485
3. It is from the Imam's emergence until the end of prayer. | 479 | The amount of recitation in the Friday prayer. | 494
4. It is from the Imam's emergence until the end of the sermon. | 479 | Treatise 'Aufal-Lum'ah fi Adhan al-Jumu'ah' (regarding the second Adhan being outside the mosque). | 497
5. It is from the Adhan until the prayer. | 479 | Our noble scholars have clarified that it is disliked (Makruh) to give Adhan inside the mosque. | 497
6. It is between the two sermons. | 479 | Adhan should be on the minaret or outside the mosque; it should not be called inside the mosque. | 498 According to the great Hanafi scholars, prayer during the sitting between the two sermons is recommended. | 480 | The Iqamah must certainly be in the mosque. | 498 Imam Shawkani, the leader of the deniers, also cited the opinion of permissibility in 'Nail al-Awtar' and accepted it. | 480 | For Adhan, if there is no minaret, it should be given outside the mosque on land belonging to the mosque. | 498 This ruling of permissibility and recommendation is for the Imam; as for the followers, there is a difference of opinion among our leading scholars. | 480 | It is Sunnah for Adhan to be on a height and Takbir (Iqamah) to be on the ground. | 498 The summary is that followers should pray in their hearts and not move their tongues. | 481 | There is a difference among scholars regarding the Maghrib Adhan. | 498 During the sermon, if the preacher mentions the Holy Prophet (PBUH), followers should recite Durood Sharif in their hearts. | 481 | And the apparent view is that it is also Sunnah for the Maghrib Adhan to be on a height. | 499 Cautious scholars do not consider it necessary to deny even in matters of independent reasoning (Ijtihad), let alone labeling someone as misguided or an infidel. | 484 | Adhan should be given where its sound reaches the neighbors well. | 499 Calling Muslims polytheists and innovators without cause is strictly forbidden by consensus. | 485 | The

Sunnah is that Adhan be on the minaret and Takbir in the mosque. | 499
Although prayer between the two sermons is permissible for the Imam, if there is a fear of harming the common people's faith, he should not make it a regular practice. | 485 | If no tall building is constructed for Adhan, give it on the land belonging to the mosque around the mosque. | 499

फ़तावा रज़विया, जिल्द हशतुम (8)

1. वह इमाम के बैठने से नमाज़ ख़त्म होने तक है। | ४७९ | फ़क़ीर ग़फ़रहुल्लाह लहू, (यानी मुसन्निफ़ रहमतुल्लाहि अलैहि) इस जलसे में अक्सर ख़ामोश रहता है, कभी इख़लास कभी दरूद शरीफ़ पढ़ता है और हाथ उठाना (रफ़ा यदैन) कभी नहीं करता ताकि मुक़्तदी देख कर दुआ में मसरूफ़ न हो जाएँ। | ४८५
2. वह ख़ुत्बे के शुरू से ख़ुत्बे के ख़त्म होने तक है। | ४७९ | दोनों ख़ुत्बों के दरमियान हाथ उठा कर दुआ माँगना जाइज़ है या नहीं। | ४८५
3. वह इमाम के निकलने से नमाज़ ख़त्म होने तक है। | ४७९ | नमाज़-ए-जुमुआ में क़िरात की मिक़दार। | ४९४
4. वह इमाम के निकलने से ख़ुत्बे के ख़त्म होने तक है। | ४७९ | रिसाला 'औफ़ल-लुमआ फ़ी अज़ानुल जुमुआ' (जुमुआ की दूसरी अज़ान मस्जिद से बाहर होने के बयान में)। | ४९७
5. वह अज़ान से नमाज़ तक है। | ४७९ | हमारे उलेमा-ए-किराम ने वज़ाहत फ़रमाई है कि मस्जिद में अज़ान देना मकरूह है। | ४९७
6. वह दोनों ख़ुत्बों के दरमियान है। | ४७९ | अज़ान मीनार पर या मस्जिद के बाहर होनी चाहिए; मस्जिद में अज़ान न कही जाए। | ४९८ अकाबिर उलेमा-ए-हनफ़िया के नज़दीक दोनों ख़ुत्बों के बीच बैठने (जल्सा) में दुआ मुस्तहब है। | ४८० | इक़ामत ज़रूर मस्जिद में होगी। | ४९८ मुनकिरीन के पेशवा इमाम शौक़ानी ने भी 'नीलुल औतार' में जवाज़ के क़ौल को नक़ल किया और उसे सही माना। | ४८० | अज़ान के लिए अगर मीनार न हो तो मस्जिद से बाहर ऐसी ज़मीन पर दी जाए जो मस्जिद से मुताल्लिक़ हो। | ४९८ यह जवाज़ और मुस्तहब होने का हुक्म इमाम के लिए है, जहाँ तक मुक़्तदियों का सवाल है, उनके बारे में हमारे इमामों के दरमियान इख़्तिलाफ़ है। | ४८० | अज़ान बुलंदी पर और तकबीर ज़मीन पर होना सुन्नत है। | ४९८ नतीजा यह है कि मुक़्तदी दिल में दुआ माँगें, ज़ुबान को हरकत न दें। | ४८१ | मग़रिब की अज़ान में बुज़ुर्गों (मशाईख़) का इख़्तिलाफ़ है। | ४९८ ख़ुत्बे के दौरान अगर ख़तीब हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का ज़िक्र करे, तो मुक़्तदी दिल में दरूद शरीफ़ पढ़ें। | ४८१ | और ज़ाहिर यह है कि मग़रिब की अज़ान भी बुलंदी पर होना सुन्नत है। | ४९९ मोहतात उलेमा इजतिहादी मसाइल में इंकार करना भी ज़रूरी नहीं समझते, गुमराह या काफ़िर कहना तो बहुत बड़ी बात है। | ४८४ | अज़ान वहाँ होनी चाहिए जहाँ से पड़ोसियों को आवाज़ अच्छी

तरह पहुँचे। | ४९९ मुसलमानों को बिला-वजह मुशरिक और बिदअती कहना इज्मा (सर्वसम्मति) से क़तई हराम है। | ४८५ | सुन्नत यह है कि अज़ान मीनार पर हो और तकबीर मस्जिद में। | ४९९ इमाम के लिए दो ख़ुत्बों के बीच दुआ अगरचे जाइज़ है, लेकिन अगर अवाम के अक़ीदे के बिगड़ने का ख़तरा हो, तो इसे लाज़िम न किया जाए। | ४८५ | अगर अज़ान के लिए कोई ऊँची इमारत न बनी हो, तो मस्जिद के आस-पास उससे जुड़ी ज़मीन पर अज़ान दी जाए। | ४९९

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

۱۔ وہ امام کے جلوس سے نماز ختم ہونے تک ہے۔ ۴۷۹ فقیر غفراللہ لہ، (یعنی مصنف رحمۃ اللہ علیہ) اس جلسہ میں اکثر سکوت کرتا کبھی اخلاص کبھی درود شریف پڑھتا ہے اور رفع یدین کبھی نہیں کرتا تاکہ مقتدی دیکھ کر دعا میں مشغول نہ ہوں۔ ۴۸۵ ۲۔ وہ شروع خطبہ سے ختم خطبہ تک ہے۔ ۴۷۹ دونوں خطبوں کے درمیان ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنا جائز ہے یا نہیں۔ ۴۸۵ ۳۔ وہ خروج امام سے ختم نماز تک ہے۔ ۴۷۹ نماز جمعہ میں قراۃ کی مقدار۔ ۴۹۴ ۴۔ وہ خروج امام سے ختم خطبہ تک ہے۔ ۴۷۹ رسالہ اوفی اللمعۃ فی اذان الجمعۃ (اذان ثانی مسجد سے باہر ہونے کے بیان میں) ۴۹۷ ۵۔ وہ اذان سے نماز تک ہے۔ ۴۷۹ ہمارے علماء کرام نے تصریح فرمائی ہے کہ مسجد میں اذان دینی مکروہ ہے۔ ۴۹۷ ۶۔ وہ دونوں خطبوں کے درمیان ہے۔ ۴۷۹ اذان منارے پر یا مسجد کے باہر چاہئے مسجد میں اذان نہ کہی جائے۔ ۴۹۸ اکابر علماء حنفیہ کے نزدیک جلسہ بین الخطبتین میں دعا مستحب ہے۔ ۴۸۰ اقامت ضرور مسجد میں ہوگی۔ ۴۹۸ منکرین کے امام شوکانی نے بھی نیل الاوطار میں جواز کے قول کو نقل کیا اور مسلم رکھا۔ ۴۸۰ اذان کے لئے اگر منارہ نہ ہو تو مسجد سے باہر ایسی زمین پر دی جائے جو مسجد سے متعلق ہو۔ ۴۹۸ یہ جواز و استحباب کا حکم امام کا ہے، رہے مقتدی ان کے بارے میں ہمارے ائمہ کرام میں اختلاف ہے۔ ۴۸۰ اذان بلندی پر اور تکبیر زمین پر ہونا سنت ہے۔ ۴۹۸ حاصل کلام یہ ہے کہ مقتدی دل میں دعا مانگیں زبان کو حرکت نہ دیں۔ ۴۸۱ مغرب کی اذان میں مشائخ کا اختلاف ہے۔ ۴۹۸ دوران خطبہ اگر حضور پرنور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ذکر خطیب کرے تو مقتدی دل میں درود شریف پڑھیں۔ ۴۸۱ اور ظاہر یہ ہے کہ مغرب کی اذان بھی بلندی پر ہونا سنت ہے۔ ۴۹۹ علماء محتاطین مسائل اجتہادیہ میں تو انکار بھی ضروری نہیں جانتے چہ جائیکہ تضلیل و تکفیر کی جائے۔ ۴۸۴ اذان وہاں ہونی

چاہئے جہاں سے ہمسایوں کو خوب آواز پہنچے۔ ۴۹۹ مسلمانوں کو بلاوجہ مشرک و بدعتی کہنا بالاجماع حرام قطعی ہے۔ ۴۸۵ سنت یہ ہے کہ اذان منارے پر ہو اور تکبیر مسجد میں۔ ۴۹۹ امام کے لئے دعا بین الخطبتین اگرچہ جائز ہے مگر خوف مفسدہ اعتقاد عوام ہو تو التزام نہ کرے۔ ۴۸۵ اگر اذان کے لئے کوئی بلند مکان نہ بنا ہو تو مسجد کے آس پاس اس کے متعلق زمین میں اذان دے۔ ۴۹۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

Page 499: The ruling for the second Adhan of Jumu'ah is also the same, that it should not be given inside the mosque; there is no specification or exception in this. | Page 504: The minaret was outside the mosque, later the mosque was expanded, and now the minaret is inside the mosque. There is no harm in giving Adhan from there.

Page 499: Reasoning that the second Adhan of Jumu'ah is permissible inside the mosque based on the phrase 'bayna yaday al-Imam' or 'bayna yaday al-Minbar' is sheer ignorance. | Page 504: If, after the completion of the entire mosque, the founder wants to exclude a new space within the mosque for Adhan, it is not permitted.

Page 499: The meaning of 'bayna yaday al-Minbar' or 'bayna yaday al-Imam' is that the second Adhan should be in front of the orator, before the pulpit, facing the Imam. It cannot be inferred from this that the Adhan should be inside the mosque. | Page 499: Ruling on building a house for the Imam inside the mosque after the mosque is completed.

Page 500: 'Bayna yaday' applies to the direction facing forward up to its farthest limit. | Page 507: Explanation of those Hadiths in which the word 'fil-masjid' (in the mosque) has appeared along with Adhan.

Page 500: Clarification of the meaning of 'bayna yaday' and mention of evidence for it from the Quran and Hadith. | Page 509: Chapter on the Two Eids

Page 501: During the holy era of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them), the second Adhan of Jumu'ah used to take place in front of the pulpit at the mosque's door. | Page 509: How is it to recite 'Labbaik' or 'Durood' during the Eid sermon?

Page 502: The author (mercy of Allah be upon him) explaining the issue to a muezzin of a mosque in Delhi with rational arguments. | Page 511: Treatise 'Suroor al-Eid fi Hall al-Dua ba'd Salat al-Eid' (In proof of raising hands for prayer after the Eid prayer).

Page 502: If the mosque founder built a minaret or a raised spot inside the mosque for Adhan before designating the entire area as a mosque, it is permissible. That specific portion will be considered separate for Adhan; no dislike (karahat) will occur here. | Page 511: A question related to a fatwa of Maulvi Abdul Hayy Lakhnawi.

Page 502: A form of permissibility for performing ablution (Wudu) in the mosque. | Page 511: Eid prayers are proven from the great successors (Tabi'in) and prominent Mujtahids (may Allah be pleased with them).

(Empty): | Page 512: A magnificent chain of transmission of the author (mercy of Allah be upon him) reaching back through Imam-e-Azam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) to the leader of Mujtahids, Hazrat Imam Ibrahim Nakha'i (mercy of Allah be upon him).

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

पृष्ठ 499: जुमे की दूसरी अज़ान का हुक्म भी यही है कि मस्जिद के अंदर न दी जाए, इसमें कोई विशेषता या अपवाद नहीं है। | पृष्ठ 504: मुअज़्ज़ना (मीनार) मस्जिद के बाहर था, बाद में मस्जिद बढ़ाई गई, अब मुअज़्ज़ना मस्जिद के अंदर आ गया, तो इस पर अज़ान देने में कोई हर्ज नहीं होगा।

पृष्ठ 499: जुमे की दूसरी अज़ान के मस्जिद में जायज़ होने पर लफ़्ज़ 'बैन यदयी अल-इमाम' या 'बैन यदयी अल-मिम्बर' से दलील देना केवल अज्ञानता है। | पृष्ठ 504: मस्जिद पूरी होने के बाद अगर मस्जिद का संस्थापक अज़ान के लिए मस्जिद में कोई नया स्थान अलग करना चाहे तो इसकी अनुमति नहीं है।

पृष्ठ 499: लफ़्ज़ 'बैन यदयी अल-मिम्बर' या 'बैन यदयी अल-इमाम' का अर्थ यह है कि दूसरी अज़ान ख़तीब के सामने, मिम्बर के आगे इमाम के मुखातिब में हो। इससे मस्जिद के अंदर अज़ान होने का संकेत नहीं मिलता। | पृष्ठ 499: मस्जिद पूरी होने के बाद मस्जिद में इमाम का घर बनाने का हुक्म।

पृष्ठ 500: 'बैन यदयी' सामने की दिशा में उसकी अंतिम सीमा तक लागू होता है। | पृष्ठ 507: उन हदीसों की व्याख्या जिनमें अज़ान के साथ 'फ़िल-मस्जिद' शब्द आया है।

पृष्ठ 500: 'बैन यदयी' के अर्थ का स्पष्टीकरण और उस पर कुरान व हदीस से प्रमाणों का उल्लेख। | पृष्ठ 509: ईदैन (दो ईदों) का अध्याय

पृष्ठ 501: हुज़ूर पाक (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और ख़ुलाफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के पवित्र समय में जुमे की दूसरी अज़ान मिम्बर के सामने मस्जिद के दरवाज़े पर हुआ करती थी। | पृष्ठ 509: ईद के ख़ुत्बे में 'लब्बैक' या दरूद पढ़ना कैसा है?

पृष्ठ 502: लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) द्वारा दिल्ली की एक मस्जिद के मुअज़्ज़िन को तार्किक दलीलों से मसला समझाना। | पृष्ठ 511: रिसाला 'सुरूर अल-ईद फ़ी हल्लिद दुआ बा'दा सलातुल ईद' (ईद की नमाज़ के बाद हाथ उठाकर दुआ मांगने के प्रमाण में)।

पृष्ठ 502: यदि मस्जिद के संस्थापक ने पूरे स्थान को मस्जिद घोषित करने से पहले अज़ान के लिए मस्जिद के अंदर मीनार या कोई ऊँचा स्थान बनाया, तो यह जायज़ है। अज़ान के लिए उतना टुकड़ा अलग समझा जाएगा और यहाँ कोई नापसंदगी (कराहियत) नहीं होगी। | पृष्ठ 511: मौलवी अब्दुल हई लखनवी साहब के एक फतवे से संबंधित प्रश्न।

पृष्ठ 502: मस्जिद में वज़ू के जायज़ होने का एक तरीका। | पृष्ठ 511: ईदैन की नमाज़ ताबेईन और मुजतहिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से प्रमाणित है।

(रिक्त): | पृष्ठ 512: लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) का एक महान सिलसिला (सनद) जो इमाम-ए-आज़म अबू हनीफा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से होता हुआ मुजतहिदों के इमाम हज़रत इब्राहिम नखई (रहमतुल्लाह अलैह) तक पहुँचता है।

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

۴۹۹: جمعہ کی اذان ثانی کا حکم بھی یہی ہے کہ مسجد کے اندر نہ دی جائے، اس میں کوئی تخصیص اور استثناء نہیں۔ | ۵۰۴: مئذنہ بیرون مسجد تھا بعدہ مسجد بڑھائی گئی اب مئذنہ اندرون مسجد ہو گیا اس پر اذان میں حرج نہ ہوگا۔

۴۹۹: جمعہ کی اذان ثانی کے مسجد میں جائز ہونے پر لفظ بین یدی الامام یا بین یدی المنبر سے استدلال محض نا واقفی ہے۔ | ۵۰۴: تمامی مسجد کے بعد اگر بانی مسجد اذان کے لئے مسجد میں نیا مکان مستثنیٰ کرنا چاہے تو اس کی اجازت نہیں۔

۴۹۹: لفظ بین یدی المنبر یا بین یدی الامام کا حاصل یہ ہے کہ اذان ثانی خطیب کے سامنے منبر کے آگے امام کے مواجہہ میں ہو۔ اس سے داخل مسجد اذان کا ہونا مستنبط نہیں۔ | ۴۹۹: تمامیت مسجد کے بعد مسجد میں امام کا مکان بنانے کا حکم۔

۵۰۰: بین یدی سمت مقابل میں منتہائے جہت تک صادق ہے۔ | ۵۰۷: ان احادیث کی تشریح جن میں اذان کے ساتھ فی المسجد کا لفظ آیا ہے۔

۵۰۰: بین یدی کے معنی کی وضاحت اور اس پر قرآن و حدیث سے شواہد کا ذکر۔ | ۵۰۹: باب العیدین

۵۰۱: جمعہ کی اذان ثانی زمانہ اقدس حضور پُر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور خلفائے راشدین رضی اللہ تعالیٰ عنہم میں منبر کے سامنے دروازہ مسجد پر ہوا کرتی تھی۔ | ۵۰۹: عید کے خطبہ میں لبیک یا درود پڑھنا کیسا ہے۔

۵۰۲: مصنف (رحمۃ اللہ علیہ) کی طرف سے دہلی کی ایک مسجد کے مؤذن کو عقلی دلیل سے مسئلہ سمجھانا۔ | ۵۱۱: رسالہ سرور العید فی حل الدعاء بعد صلوٰۃ العید (نماز عید کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کے ثبوت میں)

۵۰۲: بانی مسجد نے تمام مسجدیت سے پہلے مسجد کے اندر اذان کے لئے منارہ یا کوئی محل مرتفع بنایا تو جائز ہے۔ اتنا ٹکڑا اذان کے لئے جدا سمجھا جائے گا یہاں کراہت عارض نہ ہو گی۔ | ۵۱۱: مولوی عبدالہ لکھنوی صاحب کے ایک فتویٰ سے متعلق سوال۔

۵۰۲: مسجد میں جواز وضو کی ایک صورت۔ | ۵۱۱: نماز عیدین کے بعد تابعین عظام اور مجتہدین اعلام رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے ثابت ہے۔

(خالی): | ۵۱۲: مصنف رحمۃ اللہ تعالیٰ کی ایک عظیم الشان سند جو امام اعظم ابو حنیفہ رضی اللہ عنہ سے ہوتی ہوئی امام المجتہدین حضرت امام ابراہیم نخعی رحمۃ اللہ علیہ تک پہنچتی ہے۔

516 | In the aforementioned verses, according to Sayyiduna Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with both of them), "faragh" refers to finishing the prayer and "nasab" refers to striving in supplication. | 515 | In the era of the Successors (Tabi'in), the Eid prayer was held before the sermon, then the Imam would stay on his mount (rahila) and pray. 515 | The noble verse is absolute and, in its absolute sense, includes obligatory (Fard), necessary (Wajib), and voluntary (Nafl) prayers; therefore, the Eid prayers are also included in this command. | 515 | In the era of the Successors, the Eid prayer was held without the Adhan and Iqamah. 516 | It is inferred from the Hadiths that the conclusion of prayers is generally a place for supplication. | 515 | Praying (making du'a) after the Eid prayers is a Sunnah of the Successors. 516 | Scholars, based on the testimony of Hadith, count praying after absolute prayer among the etiquettes (adab). | 515 | Staying on a mount or not cannot negate the Sunnah of supplication. 517 | It is among the etiquettes for the desired supplication to occur after the prayer itself, which consists of bowing (ruku) and prostration (sujud). | 515 | It is the noble habit of Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) that he does not offer a discourse on a narration (Athar) which is contrary to his school of thought. 517 | Righteous deeds are a cause for the pleasure of the Lord (Glorious and Exalted). | 515 | The author (may Allah have mercy on him) divided the issue of supplication after the Eid prayer into two Eids. 518 | The place for supplication is after finishing a righteous deed. | 515 | The first Eid: Regarding the permissibility of this supplication from the Quran and Hadith and the explanation of the error of those who claim prohibition. 518 | One supplication is accepted at every completion of the Quran. | 515 | The second Eid: Regarding the discussion of the Fatwa of Maulvi Abdul Hai Lakhnawi, its basis, and the complete removal of the misconceptions (awham) of the prohibitors. 518 | One supplication of the fasting person at the time of breaking the fast (Iftar) is not rejected. | 515 | There is no prohibition in the pure Shariah against supplication after the Eid prayer. 519 | This excellence of fasting is general to obligatory, necessary, and voluntary fasts because there is no restriction or specificity in the texts. | 515 | Whatever the Shariah has not prohibited can never be forbidden. 519 | Prayer is the most excellent of deeds and the greatest pillar of Islam. | 515 | The burden of proving prohibition lies with the one who claims it. 515 | Prayer is more of a cause for the pleasure of the Lord of Majesty and Honor than fasting. | 516 | Commentary (Tafsir) of the command of

Allah (Blessed and Exalted): "So when you are free, then labor hard [in worship], and to your Lord direct [your] longing."

जिल्द हशतम | फतावा रज़विया

516 | उक्त आयतों में हज़रत अब्दुल्ला इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के अनुसार, 'फ़राग़' का अर्थ नमाज़ से फ़ारिग (निवृत्त) होना है और 'नसब' का अर्थ दुआ में कड़ी मेहनत करना है। | 515 | ताबेईन (Successors) के युग में, ईद की नमाज़ खुतबे से पहले होती थी, फिर इमाम अपनी सवारी (राहिला) पर ठहरकर दुआ माँगते थे। 515 | आयत-ए-करीमा निरपेक्ष (absolute) है और अपनी निरपेक्षता में फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल सभी को शामिल करती है, इसलिए ईदैन की नमाज़ें भी इस हुक्म में शामिल हैं। | 515 | ताबेईन के युग में, ईद की नमाज़ अज़ान और इक़ामत के बिना होती थी। 516 | हदीसों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नमाज़ों का समापन सामान्य रूप से दुआ का स्थान है। | 515 | ईदैन की नमाज़ के बाद दुआ माँगना ताबेईन की सुन्नत है। 516 | विद्वान, हदीस के साक्ष्य के आधार पर, पूर्ण नमाज़ के बाद दुआ माँगने को शिष्टाचार (आदाब) में गिनते हैं। | 515 | सवारी पर ठहरना या न ठहरना सुन्नत दुआ का खंडन नहीं कर सकता। 517 | वांछित दुआ का नमाज़ (जो रुकू और सुजूद वाली हो) के बाद होना शिष्टाचार में से है। | 515 | इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाहि अलैहि) की यह गरिमामयी आदत है कि वे उस असर (परंपरा) पर व्याख्यान नहीं करते जो उनके मज़हब के खिलाफ हो। 517 | नेक आमाल मौला (जल्ला व अला) की रज़ा का कारण होते हैं। | 515 | मुसन्निफ़ (लेखक, रहमतुल्लाहि अलैहि) ने ईद की नमाज़ के बाद दुआ के मसले को दो 'ईद' में विभाजित किया है। 518 | दुआ का स्थान नेक अमल से फ़ारिग होने के बाद है। | 515 | ईद-ए-अव्वल: कुरान और हदीस से इस दुआ की वैधता और मना करने वालों के दावे की गलती के बयान में। 518 | कुरान के हर ख़त्म पर एक दुआ कुबूल (स्वीकार्य) होती है। | 515 | ईद-ए-दुव्वम: मौलवी अब्दुल हई लखनवी के फतवे के आधार पर चर्चा और मना करने वालों के भ्रमों के पूर्ण निवारण के बयान में। 518 | इफ़्तार के समय रोज़ेदार की एक दुआ रद्द नहीं होती। | 515 | ईद की नमाज़ के बाद दुआ की शरीअत-ए-मुतहरा में कहीं भी मनाही नहीं है। 519 | रोज़े की यह फ़ज़ीलत फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल सभी के लिए सामान्य है क्योंकि ग्रंथों (नसूस) में कोई पाबंदी या विशिष्टता नहीं है। | 515 | जिस काम से शरीअत ने मना नहीं किया हो, वह कभी भी वर्जित नहीं हो सकता। 519 | नमाज़ अफ़ज़ल आमाल और इस्लाम के सबसे महान अरकान (स्तंभों) में से है। | 515 | जो मना करने का दावा करे, मनाही साबित करना उसकी ज़िम्मेदारी है। 515 | नमाज़, रोज़े से अधिक ज़ुल-जलाल वल-इकराम की प्रसन्नता का कारण है। | 516 | अल्लाह तबारक व तआला के इरशाद 'फ़-इज़ा फ़राग़त फ़न्सब, व इला रब्बि-क फ़र्ग़ब' की तफ़सीर।

۵۱۶ | آیات مذکورہ میں بقول سیدنا عبد اللہ ابن عباس رضی اللہ عنہما فراغ سے مراد نماز سے فارغ ہونا اور نصب سے مراد دعا میں جدوجہد کرنا ہے۔ | ۵۱۵ | زمانہ تابعین میں نماز عید خطبہ سے پہلے ہوتی پھر امام اپنے راحلہ پر وقوف کر کے دعا مانگتا۔ ۵۱۵ | آیہ کریمہ مطلق ہے اور اپنے اطلاق کے ساتھ فرض، واجب اور نفل سب کو شامل ہے لہذا نماز عیدین بھی اس حکم میں داخل ہیں۔ | ۵۱۵ | زمانہ تابعین میں نماز عید اذان واقامت کے بغیر ہوتی تھی۔ ۵۱۶ | احادیث سے ادبار صلوات کا مطلقاً محل دعا ہونا مستفاد ہے۔ | ۵۱۵ | نماز عیدین کے بعد دعا مانگنا سنت تابعین ہے۔ ۵۱۶ | علماء بشہادت حدیث نماز مطلق کے بعد دعا مانگنے کو آداب سے گنتے ہیں۔ | ۵۱۵ | راحلہ پر وقوف و عدم وقوف سنت دعا کی نفی نہیں کر سکتا۔ ۵۱۷ | مطلوب کی دعا نماز ذات رکوع و سجود کے بعد واقع ہونا آداب سے ہے۔ | ۵۱۵ | امام محمد رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کی عادت کریمہ ہے جو اثر اپنے خلاف مذہب ہوتا ہے اس پر تقریر نہیں فرماتے۔ ۵۱۷ | اعمال صالحہ وجہ رضائے مولیٰ جل وعلا ہوتے ہیں۔ | ۵۱۵ | مصنف رحمۃ اللہ علیہ نے نماز عید کے بعد دعا کے مسئلہ کو دو عیدوں پر منقسم فرمایا۔ ۵۱۸ | دعا کا محل عمل صالح سے فراغت کے بعد ہے۔ | ۵۱۵ | عید اول قرآن وحدیث سے اس دعا کے جواز اور ادعائے مانعین کی غلطی کے بیان میں۔ ۵۱۸ | ہر ختم قرآن پر ایک دعا مقبول ہے۔ | ۵۱۵ | عید دوم فتویٰ مولوی عبد الحی لکھنوی سے اسناد پر کلام اور اوہام مانعین کے ازالہ تام کے بیان میں۔ ۵۱۸ | افطار کے وقت روزہ دار کی ایک دعا رد نہیں ہوتی۔ | ۵۱۵ | نماز عید کے بعد دعا کی شرع مطہر سے کہیں ممانعت نہیں۔ ۵۱۹ | یہ فضیلت روزہ، فرض، واجب و نفل سب کو عام ہے کیونکہ نصوص میں قید و خصوص نہیں۔ | ۵۱۵ | جس امر سے شرع نے منع نہ فرمایا ہو ہرگز ممنوع نہیں ہو

سکتا۔ ۵۱۹ | نماز افضل اعمال و اعظم ارکان اسلام ہے۔ | ۵۱۵ | جو ادعائے منع کرے اثباتِ ممانعت اس کے ذمہ ہے۔ ۵۱۵ | نماز، روزے سے زائد موجب رضائے ذوالجلال والاکرام ہے۔ | ۵۱۶ | اللہ تبارک وتعالیٰ کے ارشاد فإذا فرغت فانصب o والی ربک فارغب کی تفسیر۔

Fatawa Rizvia - Volume 8

Topic Description	Page	Topic Description	Page
After completion, the placement of Dua is not specific only to obligatory prayers.	519	The larger the congregation, the more apparent the hope for acceptance.	523
The Holy Prophet (peace be upon him) commanded to raise hands and pray after every two units of supererogatory prayer.	519	Restricting prayer (Dua) only to the formal prayer (Salah) is never Shariah-prescribed.	523
The commendable method of praying.	519	The prayer of one who does not raise hands and pray after Salah is deficient.	523
Supplication is heard more in the latter half of the night and after obligatory prayers.	520	A servant is closest to his Lord during prostration.	523
Obligatory acts (Wajibat) are superior and greater than supererogatory acts (Nawafil), and are more abundant and complete in seeking Allah's pleasure.	520	Tasbih in prostration is also a supplication.	523
The specific proof for obligatory and supererogatory prayers is the same as the specific proof for Wajibat.	521	Every remembrance (dhikr) is a supplication.	523
Difference between Farz, Wajib, and Nafl.	521	A person cannot ask for every kind of prayer within the Salah.	524
The glad tidings of Quran, Hadith, and scholars' sayings establish that praying after five daily prayers, Eid prayers, Tahajjud, etc., is Shariah-permissible, rather recommended and desirable.	522	Praying after the Eid congregation is proven by specific permission from Hadith and Shariah instructions.	525
Supplication according to the text of the Quran, Hadith, and the	522		525

Topic Description	Page	Topic Description	Page
consensus of early Imams and the greatest Hadith is among the recommended acts of Shariah.		Hadiths related to the incitement and encouragement of supplication in the Eid gathering.	
Searching for times when supplication is likely to be accepted is sunnah and beloved.	522	Angels are sent to every city on the morning of Eid.	526
Arguments from Quran and Hadith on the aforementioned searching.	522	Allah's command is that in the Eid gathering, whatever you ask for the Hereafter, I will grant it.	526
Habib bin Maslama (may Allah be pleased with him) was one whose prayers were answered.	522	Worldly things contain both good and evil.	526
If some among the group of Muslims pray and others say 'Ameen', their prayer is accepted.	523	If a prayer concerning worldly matters is not accepted, an equivalent calamity is averted, or that prayer is stored as treasure for the Day of Judgment, which is better for the servant in every case.	526
Scholars have counted the gathering of Muslims among the times of acceptance.	523	It is derived from Hadith that after the Eid prayer, Allah Himself demands supplication from Muslims.	527
The gathering of Muslims being a time of acceptance is proven from authentic (Sahih) Hadith.	523	Extraction and explanation of the Hadith of Sayyida Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) regarding the emphasis on praying after every gathering.	527

फतावा रिज़विया - जिल्द 8

विषय विवरण	पृष्ठ
फ़राग़त के बाद दुआ की जगह केवल फ़राज़ (अनिवार्य नमाज़) तक सीमित नहीं है।	519
नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हर दो रकात नफ़ल के बाद हाथ उठाकर दुआ माँगने का हुक्म दिया।	519
दुआ माँगने का उत्तम तरीक़ा।	519
रात के अंतिम आधे हिस्से में और फ़र्ज़ नमाज़ों के बाद दुआ ज़्यादा सुनी जाती है।	520
वाजिबात, नफ़िल से आला और अज़ीम हैं और अल्लाह की रज़ा पाने में ज़्यादा भरपूर और कामिल हैं।	520
फ़र्ज़ और नफ़िल के लिए जो विशेष प्रमाण है, वही वाजिबात के लिए भी विशेष प्रमाण है।	521
फ़र्ज़, वाजिब और नफ़िल में अंतर।	521
क़ुरआन, हदीस और उलमा के कथनों की खुशखबरी से साबित है कि पाँचों समय की नमाज़ों, ईदैन, तहज्जुद आदि के बाद दुआ माँगना शरीयत की दृष्टि से जायज़ है, बल्कि मुस्तहब और वांछनीय है।	522
	522
जितनी बड़ी जमात होगी, दुआ की क़बूलियत की उम्मीद उतनी ही स्पष्ट होगी।	523
दुआ को केवल नमाज़ तक ही सीमित रखना शरीयत में कभी भी वांछित नहीं है।	523
नमाज़ के बाद हाथ उठाकर दुआ न माँगने वाले की नमाज़ अधूरी है।	523
बंदा अपने रब के सबसे क़रीब सजदे की हालत में होता है।	523
सजदे की तस्बीह भी एक दुआ है।	523
हर ज़िक्र दुआ है।	523
नमाज़ के अंदर आदमी हर तरह की दुआ नहीं माँग सकता।	524
ईदैन की जमात के बाद दुआ माँगना हदीस और शरीयत के विशेष हुक्म से प्रमाणित है।	525
	525

विषय विवरण	पृष्ठ
क़ुरआन की आयत, हदीस और पूर्व के इमामों के इज्मा तथा महान हदीस के अनुसार दुआ शरीयत के मुस्तहबात (पसंदीदा कार्यों) में से है।	
दुआ की क़बूलियत के समय की तलाश करना सुन्नत और पसंदीदा है।	522
उपरोक्त तलाश पर क़ुरआन और हदीस से दलीलें।	522
हबीब बिन मस्लमा (रज़ियल्लाहु अन्हु) मुस्तजाब-उद-दवात थे।	522
मुसलमानों के गिरोह में से अगर कुछ दुआ करें और कुछ 'आमीन' कहें, तो उनकी दुआ क़बूल होती है।	523
विद्वानों ने मुसलमानों के जमावड़े को दुआ की क़बूलियत के समय में गिना है।	523
मुसलमानों की सभा का क़बूलियत के समय में से होना सहीह हदीसों से साबित है।	523
ईदैन के जमावड़े में दुआ की प्रेरणा और उत्साह से संबंधित हदीसें।	
ईद की सुबह हर शहर में फ़रिश्ते भेजे जाते हैं।	526
अल्लाह का फ़रमान है कि ईद की जमात में आख़िरत के लिए जो माँगोगे, वह मैं अता करूँगा।	526
दुनिया की चीजें ख़ैर और शर दोनों की संभावना रखती हैं।	526
यदि सांसारिक चीज़ों से संबंधित दुआ क़बूल न हो, तो उसके बराबर कोई बला टाल दी जाती है या वह दुआ क़यामत के दिन के लिए ज़ख़ीरा कर दी जाती है, जो बंदे के लिए हर हाल में बेहतर है।	526
हदीस से यह निष्कर्ष निकलता है कि ईद की नमाज़ के बाद स्वयं अल्लाह तआला मुसलमानों से दुआ का तकाज़ा फ़रमाता है।	527
हर मजलिस के बाद दुआ की ताकीद से संबंधित सैयदा आयशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस की तख़रीज और तशरीह।	527

تفصیلِ مضمون صفحہ

بعد فراغ محلّیتِ دعا فرائض سے خاص نہیں۔ ۵۱۹

نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم نے ہر دورکعت نفل کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کا حکم دیا۔ ۵۱۹

دعا مانگنے کا مستحسن طریقہ۔ ۵۱۹

رات کے نصف اخیر میں اور فرض نمازوں کے بعد دعا زیادہ سنی جاتی ہے۔ ۵۲۰

واجبات نوافل سے اعلیٰ اور اعظم اور رضائے الٰہی میں اوفر و اتم ہیں۔ ۵۲۰

فریضہ و نافلہ کے لئے ثبوت خاص بعینہ واجبات کے لئے ثبوت خاص ہے۔ ۵۲۱

فرض و واجب و نفل میں فرق۔ ۵۲۱

تفصیلِ مضمون صفحہ

جس قدر مجمع کثیر ہوگا اسی قدر امید اجابت ظاہر تر ہوگی۔ ۵۲۳

دعاء نماز پر اقتصار ہر گز شرعاً مطلوب نہیں۔ ۵۲۳

بعد نماز ہاتھ اٹھا کر دعا نہ مانگنے والے کی نماز ناقص ہے۔ ۵۲۳

سب سے زیادہ قرب بندے کو اپنے رب سے حالتِ سجود میں ہوتا ہے۔ ۵۲۳

تسبیح سجود بھی دعا ہے۔ ۵۲۳

ہر ذکر دعا ہے۔ ۵۲۳

۵۲۴

تفصیلِ مضمون	صفحہ
بشار تِ قرآن وحدیث واقوالِ علماء ثابت ہے کہ نمازِ پنجگانہ و عیدین و تہجد وغیرہا کے بعد دعا مانگنا شرعاً جائز بلکہ مندوب و مرغوب ہے۔	۵۲۲
دعا بنصِ قرآن و حدیث واجماعِ ائمہ قدیم و حدیثِ اعظم مندوباتِ شرع سے ہے۔	۵۲۲
مظانِ اجابت دعا کی تحری مسنون و محبوب ہے۔	۵۲۲
تحریِ مذکور پر قرآن وحدیث سے دلائل۔	۵۲۲
حبیب بن مسلمہ رضی اللہ تعالی عنہ مستجاب الدعوات تھے۔	۵۲۲
گروہِ مسلمین میں سے بعض دعا کریں اور بعض آمین کہیں تو ان کی دعا مقبول ہے۔	۵۲۳
نماز میں آدمی ہر قسم کی دعائیں نہیں مانگ سکتا۔	
مجمعِ عیدین میں بعد نماز دعا خاص اذنِ حدیث وارشادِ شرع سے ثابت ہے۔	۵۲۵
عیدین کے اجتماع میں دعاء کی تحریص و ترغیب سے متعلق احادیث۔	۵۲۵
عید کی صبح ہر شہر میں فرشتے بھیجے جاتے ہیں۔	۵۲۶
اللہ کا فرمان ہے کہ مجمعِ عید میں آخرت کے لئے جو مانگو گے عطا کروں گا۔	۵۲۶
دنیا کی چیزیں خیر و شر دونوں کو متحمل ہیں۔	۵۲۶
اگر دنیاوی اشیاء سے متعلق دعا قبول نہ ہو تو اس کے برابر بلا دفع کی جاتی ہے یا وہ دعاء روزِ قیامت کے لئے ذخیرہ رکھی جاتی ہے جو بندہ کے لئے بہر صورت بہتر ہے۔	۵۲۶

تفصیلِ مضمون	صفحہ
علماء نے مجمعِ مسلمین کو اوقاتِ اجابت سے شمار کیا ہے۔	۵۲۳
مجمعِ مسلمین کا اوقاتِ اجابت سے ہونا حدیثِ صحاح سے ثابت ہے۔	۵۲۳
حدیث سے مستفاد ہے کہ بعدِ نمازِ عید خود اللہ تعالیٰ مسلمانوں سے دعا کا تقاضا فرماتا ہے۔	۵۲۷
ہر جلسہ کے بعد دعا کی تاکید سے متعلق حدیثِ سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی تخریج و تشریح۔	۵۲۷

Fatawa Razawiya Volume 8

If an indefinite noun appears in a conditional context, it is general, and if it appears in the result, it is specific.	529	In which books is the collection of Hadiths related to the virtues and encouragement of supplication (Dua) found?	532
If an indefinite noun comes under negation, it is general, and if it comes in affirmation, it is specific.	529	Eleven noble Hadiths related to the emphasis and frequency of Dua and warnings against abandoning it.	532
Conditional nouns are general to all cases.	529	Who else can specify or restrict something that God and His Messenger (Jalla Majduhu wa Sallallahu Ta'ala Alayhi wa Sallam) have kept general and absolute?	534
Claiming specification without a specifier is purely rejected and void.	529	Who else can forbid something that God and His Messenger (Jalla Majduhu wa Sallallahu Ta'ala Alayhi wa Sallam) have not forbidden?	535
Supplicating when leaving a gathering of goodness is for the preservation and protection of that goodness.	529	It is not permissible to exceed what Allah Almighty has specified for a particular form or specific place.	535
The greater the goodness, the more important its preservation becomes.	529	Something that Allah Almighty has kept absolute and free will never be fixed to any specific form or place.	535
The goodness of prayer is superior to all things.	529	Proofs for the abundance of the remembrance (Dhikr) of Allah.	535
Reasoning from the generality of words and evidence of meaning from the Hadith of the Mother of the Believers, Sayyidah Aisha Siddiqah (Radiallahu Ta'ala Anha),	529	Every Dua is inherently a remembrance of Allah.	535

on the emphasis of Dua after the prayer gathering.

Dua is absolutely among the greatest religious recommendations and most exalted Shariah requirements. 530

The Lawgiver (Peace and Blessings be upon him) gave absolute permission for Dua without restriction of time or specification of form. 530

Encouragement for the abundance of Dua and warnings for abandoning Dua have been mentioned in Shariah. 530

Reasoning from the Holy Quran. 530

Reasoning from Hadith Qudsi. 530

The proofs for the general permission of Dhikr are exactly the proofs for the general permission of Dua. 553

Hadiths related to the abundance of Dhikr. 535

Remember Allah so much that people call you crazy (Majnun). 535

Dua and Dhikr are absolutely equal. 535

Whoever does not remember Allah abundantly becomes weary of faith. 536

Interpretation of verses related to the abundance of the remembrance of Allah. 536

यदि कोई अनिश्चित संज्ञा (नकिराह) शर्त के संदर्भ में आती है, तो वह सामान्य होती है, और यदि वह प्रतिफल (जज़ा) में आती है, तो वह विशिष्ट होती है।	५२९	दुआ के गुणों और प्रोत्साहन से संबंधित हदीसों का संग्रह किन किताबों में है?	५३२
यदि अनिश्चित संज्ञा निषेध के तहत आए तो सामान्य होती है और यदि पुष्टीकरण में आए तो विशिष्ट होती है।	५२९	दुआ पर जोर देने और उसकी अधिकता, और दुआ छोड़ने पर चेतावनी से संबंधित ग्यारह महान हदीसें।	५३२
शर्त के नाम सभी स्थितियों के लिए सामान्य होते हैं।	५२९	जिस चीज़ को अल्लाह और उसके रसूल (जल्ला मजदुहू व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने सामान्य और निरपेक्ष रखा है, उसे विशिष्ट और प्रतिबंधित करने वाला दूसरा कौन है?	५३४
बिना किसी विशिष्टक के विशिष्टीकरण का दावा करना पूरी तरह से खारिज और अमान्य है।	५२९	जिस चीज़ से अल्लाह और उसके रसूल (जल्ला मजदुहू व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने मना नहीं किया, उससे मना करने वाला दूसरा कौन है?	५३५
भलाई की सभा से उठते समय दुआ करना उस भलाई के संरक्षण और देखभाल के लिए है।	५२९	अल्लाह तआला ने जिस चीज़ को किसी विशेष रूप या विशिष्ट स्थान के लिए निर्धारित किया है, उससे आगे बढ़ना जायज़ नहीं है।	५३५
भलाई जितनी बड़ी होगी, उसका संरक्षण उतना ही महत्वपूर्ण होगा।	५२९	अल्लाह तआला ने जिस चीज़ को निरपेक्ष और मुक्त रखा है, वह कभी भी किसी विशेष रूप या स्थान पर निर्धारित नहीं होगी।	५३५
नमाज़ की भलाई सब चीज़ों से श्रेष्ठ है।	५२९		५३५

	अल्लाह के ज़िक्र (स्मरण) की अधिकता पर प्रमाण।	
नमाज़ की सभा के बाद दुआ पर ज़ोर देने के संबंध में उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ियल्लाहु तआला अन्हा) की हदीस के शब्दों की व्यापकता और अर्थ के साक्ष्य से तर्क।	५२९ हर दुआ मूलतः अल्लाह का ज़िक्र है।	५३५
दुआ पूर्णतः महान धार्मिक सिफारिशों और उत्कृष्ट शरीयत आवश्यकताओं में से है।	५३० ज़िक्र की सामान्य अनुमति के प्रमाण बिल्कुल वही हैं जो दुआ की सामान्य अनुमति के प्रमाण हैं।	५५३
शरीयत देने वाले (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने समय के बंधन और रूप के विनिर्देश के बिना पूर्ण रूप से दुआ की अनुमति दी।	५३० ज़िक्र की अधिकता से संबंधित हदीसें।	५३५
शरीयत में दुआ की अधिकता के लिए प्रोत्साहन और दुआ छोड़ने पर चेतावनी दी गई है।	५३० अल्लाह का ज़िक्र इतनी अधिकता से करो कि लोग तुम्हें पागल (मजनून) कहें।	५३५
कुरआन मजीद से तर्क।	५३० दुआ और ज़िक्र बिल्कुल समान हैं।	५३५
हदीस-ए-कुदसी से तर्क।	५३० जो अल्लाह का कसरत से ज़िक्र नहीं करता, वह ईमान से बेज़ार हो गया।	५३६
	अल्लाह के ज़िक्र की अधिकता से संबंधित आयतों की व्याख्या।	५३६

نکرہ سیاق شرط میں واقع ہو تو عام اور جزا میں واقع ہو تو خاص ہوتا ہے۔ ۵۲۹

نکرہ نفی کے تحت آئے تو عام اور اثبات میں آئے تو خاص ہوتا ہے۔ ۵۲۹

اسماءِ شرط سب صورتوں کو عام ہوتے ہیں۔ ۵۲۹

ادعائے تخصیص بے مخصص محض مردود و باطل ہے۔ ۵۲۹

جلسہ خیر سے اٹھتے وقت دعا کرنا خیر کے حفظ و نگہداشت کے لئے ہے۔ ۵۲۹

خیر جس قدر اعظم ہو اسی قدر اس کا حفظ اہم ہوتا ہے۔ ۵۲۹

فضائل و ترغیب دعا سے متعلق احادیث کا ذخیرہ کن کتابوں میں ہے؟ ۵۳۲

دعا کی تاکید و تکثیر اور ترک دعا پر تہدید سے متعلق گیارہ احادیث کریمہ۔ ۵۳۲

خدا اور رسول جل مجدہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جس چیز کو عام و مطلق رکھا دوسرا اس کو مخصوص و مقید کرنے والا کون ہے؟ ۵۳۴

خدا اور رسول جل مجدہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جس چیز سے منع نہ فرمایا دوسرا اس سے منع کرنے والا کون ہے۔ ۵۳۵

اللہ تعالیٰ نے جس چیز کو کسی ہئیتِ خاصہ اور محلِ معین سے مخصوص فرمایا اس سے تجاوز جائز نہیں۔ ۵۳۵

اللہ تعالیٰ نے جس چیز کو اطلاق و ارسال پر رکھا ہر گز کسی ہئیت و محل پر مقرر نہ ہوگی۔ ۵۳۵

خیر نماز سب چیزوں سے افضل ہے۔ ۵۲۹

جلسہ صلوات کے بعد تاکیدِ دعا پر حدیثِ اُم المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے عموم لفظ اور شہادتِ معنی سے استدلال۔ ۵۲۹

دعا مطلقاً عظم مندوباتِ دینیہ و اجل مطلوباتِ شرعیہ سے ہے۔ ۵۳۰

شارع علیہ الصلوۃ والسلام نے بے تقییدِ وقت و تخصیصِ ہئیت مطلقاً دعا کی اجازت دی۔ ۵۳۰

شرع میں تکثیرِ دعا پر ترغیب اور ترکِ دعا پر وعید وارد ہوئی ہے۔ ۵۳۰

قرآن مجید سے استدلال۔ ۵۳۰

حدیثِ قدسی سے استدلال۔ ۵۳۰

تکثیر ذکر الہی پر دلائل۔ ۵۳۵

ہر دعا بالبد اہتہ ذکر الہی ہے۔ ۵۳۵

اجازتِ عامہ ذکر کے دلائل بعینہا اجازتِ عامہ دعا کے دلائل ہیں۔ ۵۵۳

تکثیرِ ذکر سے متعلق احادیث۔ ۵۳۵

ذکر الہی اتنی کثرت سے کرو کہ لوگ مجنون بتائیں۔ ۵۳۵

دعا و ذکر قطعاً متساوی ہیں۔ ۵۳۵

جو ذکر الہی کی کثرت نہ کرے وہ ایمان سے بیزار ہوگیا۔ ۵۳۶

کثرتِ ذکر الہی سے متعلق آیات کی تفسیر۔ ۵۳۶

Volume 8 Fatawa Razvia

- Remembrance (Zikr), glorification (Tasbeeh), proclamation of oneness (Tahleel), and supplication (Dua) are prescribed at every place and time. (538)
- There is a vast difference between "not being" and "not seen." (539)
- "Not seen" cannot be an argument for non-existence. (540)
- Molvi Abdullah Sahab's fatwa has two interpretations: one is a claim of proof of non-existence, the other is a claim of lack of proof. (540)
- Refutation of the first interpretation for several reasons. (540)
- The 'Fa' of sequence does not indicate real continuity. (540)
- If Zaid promises to come immediately after prayer, a brief two-word prayer is not considered to nullify "immediately" by convention or law. (541)
- In prayer, consensus on two verses and difference on three verses for prostration of recitation does not break immediacy. (541)
- Follow-ups (Tawabe) are not extras. (541)
- In the issue of adding a Surah, 'Amin' is not a separator between Fatiha and the Surah because it follows Fatiha. (541)
- Sunnahs are follow-ups to obligations. (541)
- The Holy Prophet (peace be upon him) offered Eid prayers for nine years. (542)
- It is possible to apply multiple hadiths to various events. (542)
- Current events do not imply generality. (542)
- Skipping once is contrary to necessity and obligation. (542)
- 'Thumma' (then) requires an interval and respite. (543)
- Seven hadiths show that the Holy Prophet (peace be upon him) and the first three Caliphs would start the Eid sermon a little while after the prayer. (543)
- The hadith that shows a gap between the Eid sermon and the return. (545)
- The hadith that expresses the gap between prayer and sermon, and between sermon and return. (545)
- The claim of continuity between prayer-sermon and sermon-return is false; hence the argument for lack of prayer is incorrect. (545)
- 'Thumma' sometimes metaphorically indicates no respite. (545)
- Mere probability is not enough for an argument, especially against the original principle. (546)
- 'Fa' in both cases comes for sequence only, without the meaning of continuity or sequence. (546)

- There is contradiction between universal affirmation and particular negation. (546)
- Muhammad bin al-Sabah al-Bazzar is truthful (Saduq). (546)
- Muhammad bin Yahya bin Ayub is trustworthy (Thiqah). (546)
- Hadyah bin Abdul Wahhab is truthful (Saduq). (546)
- Umar bin Rafi al-Bajli is trustworthy (Thiqah). (546)
- Fadl bin Musa is trustworthy (Thiqah). (547)
- In some respects, speech is superior and more complete than action. (549)
- Regarding virtues of deeds, a weak hadith is acceptable by consensus and sufficient for proving recommendation. (549)

जिल्द हशतम फतावा रज़विया

- ज़िक्र, तस्बीह, तहलील और दुआ हर जगह और हर समय जायज़ हैं। (५३८)
- "नहीं होने" और "नहीं देखने" में ज़मीन और आसमान का अंतर है। (५३९)
- न देखना, न होने का प्रमाण नहीं हो सकता। (५४०)
- मौलवी अब्दुल्ला साहब के फतवे के दो पहलू हैं: एक "नहीं होने" का दावा, दूसरा "प्रमाण न होने" का दावा। (५४०)
- पहले पहलू का कई कारणों से खंडन। (५४०)
- अनुवर्ती 'फ़ा' वास्तविक निरंतरता का संकेत नहीं देती। (५४०)
- यदि ज़ैद नमाज़ के तुरंत बाद आने का वादा करे, तो दो-शब्दों वाली दुआ शरीयत या परंपरा के अनुसार "तुरंत" को भंग नहीं करती। (५४१)
- नमाज़ में दो या तीन आयतों का सज्दह-ए-तिलावत तुरंत आने में बाधक नहीं है। (५४१)
- अनुगामी (तवाबे) अतिरिक्त नहीं होते। (५४१)
- सूरह फातिहा और सूरह के बीच 'आमीन' कोई फासला नहीं है क्योंकि यह फातिहा का ही हिस्सा मानी जाती है। (५४१)
- सुन्नतें अनिवार्य नमाज़ों की अनुगामी हैं। (٥۴١)
- हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने नौ साल तक ईद की नमाज़ें पढ़ाईं। (٥۴۲)
- विभिन्न हदीसों को विभिन्न घटनाओं पर लागू करना संभव है। (٥۴۲)
- वर्तमान घटनाओं में व्यापकता (उमूम) नहीं होती। (٥۴۲)
- एक बार छोड़ना भी अनिवार्यता के विरुद्ध है। (٥۴۲)
- 'सुम्मा' (फिर) अंतराल और मोहलत की मांग करता है। (٥۴۳)
- सात हदीसों से स्पष्ट है कि हुज़ूर और उनके साथियों ने ईद की नमाज़ के कुछ देर बाद खुतबा शुरू किया। (٥۴۳)
- वह हदीस जो खुतबा-ए-ईद और वापसी के बीच अंतर बताती है। (٥۴٥)
- वह हदीस जो नमाज़-खुतबा और खुतबा-वापसी के बीच अंतर दर्शाती है। (٥۴٥)
- नमाज़-खुतबा और खुतबा-वापसी में निरंतरता का दावा गलत है, इसलिए दुआ न होने की दलील गलत है। (٥۴٥)
- 'सुम्मा' कभी-कभी बिना मोहलत के अर्थ में भी आता है। (٥۴٥)

• केवल संभावना दलील के लिए पर्याप्त नहीं है, विशेषकर जब वह मूल के विपरीत हो। (٥४६)
• 'फ़ा' केवल क्रम के लिए है, निरंतरता के बिना। (٥४६)
• पूर्ण स्वीकृति और आंशिक निषेध में विरोध है। (٥४६)
• मुहम्मद बिन अल-सबाह अल-बज़ार सच्चा (सदूक) है। (٥४६)
• मुहम्मद बिन यह्या बिन अयूब भरोसेमंद (सिक़ाह) है। (٥४६)
• हदीया बिन अब्दुल वहाब सच्चा (सदूक) है। (٥४६)
• उमर बिन राफे अल-बजली भरोसेमंद (सिक़ाह) है। (٥४६)
• फज़ल बिन मूसा भरोसेमंद (सिक़ाह) है। (٥४७)
• कुछ मायनों में कथन कर्म से अधिक श्रेष्ठ है। (٥۴९)
• नेक कार्यों की फज़ीलत के लिए कमज़ोर हदीस भी सर्वसम्मति से स्वीकार्य है। (٥۴९)

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

- ذکر، تسبیح، تہلیل اور دعا ہر جگہ اور ہر وقت مشروع ہیں۔ (۵۳۸)
- نہیں اور نہ دیکھا میں زمین و آسمان کا فرق ہے۔ (۵۳۹)
- نہ دیکھنا نہ ہونے کی دلیل نہیں ہو سکتا۔ (۵۴۰)
- مولوی عبداللہ صاحب کے فتوی کے دو محمل ہیں، ایک یہ کہ ثبوت عدم کا ادعا ہو، دوسرا یہ کہ عدم ثبوت کا دعوی ہو۔ (۵۴۰)
- محمل اول کا وجوہ کثیرہ سے بطلان۔ (۵۴۰)
- فائے تعقیب اتصال حقیقی پر دال نہیں۔ (۵۴۰)
- زید وعدہ کرے کہ نماز پڑھ کر فوراً آتا ہوں تو بعد نماز معمولی دو حرفی دعا ہر گز عرفاً و شرعاً مبطل فور نہیں۔ (۵۴۱)
- سجود تلاوت صلوٰۃ میں دو آیتیں بالاتفاق اور تین علی الاختلاف قاطع فور نہیں۔ (۵۴۱)
- توابع فاضل نہیں ہوتے۔ (۵۴۱)
- مسئلہ ضم سورۃ میں آمین فاتحہ وسورۃ میں فاصل نہیں کیونکہ تابع فاتحہ ہے۔ (۵۴۱)
- سنن توابع فرائض ہیں۔ (۵۴۱)
- حضور پرنور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے نو برس عید کی نمازیں پڑھی ہیں۔ (۵۴۲)
- احادیث متعددہ کا وقائع متعددہ پر محمول ہونا ممکن ہے۔ (۵۴۲)
- وقائع حال کے لئے عموم نہیں۔ (۵۴۲)
- ترک مرہ وجوب و لزوم کے منافی ہوتا ہے۔ (۵۴۲)
- ثم فاصلہ و مہلت چاہتا ہے۔ (۵۴۳)

- سات احادیث سے ظاہر ہوتا ہے کہ حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور صدیق و فاروق و عثمان غنی رضی اللہ تعالیٰ عنہم نماز عیدین کا سلام پھیر کر کچھ دیر کے بعد خطبہ شروع فرماتے۔ (۵۴۳)
- وہ حدیث جو خطبہ عید اور معاودت میں فصل بتاتی ہے۔ (۵۴۵)
- وہ حدیث جو نماز و خطبہ اور خطبہ و معاودت میں فصل کا اظہار کرتی ہے۔ (۵۴۵)
- نماز و خطبہ اور خطبہ و معاودت میں اتصال کا ادعا باطل، لہذا عدم دعا پر استدلال غلط (۵۴۵)
- ثم کبھی مجازاً بحالت عدم مہلت بھی آتا ہے۔ (۵۴۵)
- مستدل کو احتمال کافی نہیں خصوصاً خلاف اصل۔ (۵۴۶)
- فاء برہما مجرد ترتیب کے لئے آتی ہے بے معنی اتصال و تعقیب کے۔ (۵۴۶)
- ایجاب کلی اور سلب جزئی میں منافاۃ ہے۔ (۵۴۶)
- محمد بن الصباح البزار صدوق ہے۔ (۵۴۶)
- محمد بن یحییٰ بن ایوب ثقہ ہے۔ (۵۴۶)
- ہدیہ بن عبدالوہاب صدوق ہے۔ (۵۴۶)
- عمر بن رافع البجلی ثقہ ہے۔ (۵۴۶)
- فضل بن موسیٰ ثقہ ہے۔ (۵۴۷)
- من وجہ قول فعل سے اعلیٰ و اتم ہے۔ (۵۴۹)
- فضائل اعمال میں حدیث ضعیف بالاجماع مقبول اور اثبات استحباب میں کافی و وافی ہے۔ (۵۴۹)

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Page	Right Column Content	Page	Left Column Content
549	By consensus of reason and tradition, an absolute ruling applies to all its specificities.	570	It is permissible to perform Eid prayer in a Jami' Masjid, and it is better in an Eidgah.
549	Explanation of the meaning of an absolute ruling.	570	Intentionally missing the Eid prayer is a sin.
549	As long as there is Shari'i evidence, all specificities and determinations fall under the absolute ruling.	570	On whom is the Eid prayer obligatory?
550	Lack of perception does not necessitate lack of existence.	571	When did the additional Takbeers (Takbirat-e-Zawaid) begin?
550	Lack of report is not a report of lack.	572	If Eid was not prayed on the first day without an excuse, can it be prayed on the second day or not?
551	Lack of report does not negate existence.	575	If Eid was prayed twice in one Eidgah, the first with a sermon and the second without, is the prayer valid or not?
551	Lack of proof does not necessarily prove absence.	576	What is the ruling on shaking hands after prayer?
551	Often, historical reports omit famous and well-known matters, but that omission is not proof of non-existence.	576	If the moon is confirmed after sunrise and there is heavy rain, can those who missed it on the first day pray on the second day or not?
551	Reporting absence is not reporting prohibition.	580	If an Eidgah is built with the permission of the authorities, is it permissible to pray in it or not?
551	Not doing something is one thing, and prohibiting it is another.	580	What is the ruling on praying Eid on government land without permission?
551	Mere lack of report or action does not necessitate prohibition.	580	It is not necessary to have a building for an Eidgah.

Page	Right Column Content	Page	Left Column Content
555	Considering the lack of report from the first three generations as proof of prohibition is a common fallacy of the Wahhabis.	582	The conditions for the Imam of Eid are the same as those for the Imam of Friday prayer.
553	Fifteen passages from the fatwas of Maulana Abdul Hai Lakhnawi against the Wahhabis.	582	It is permissible to work for wages, etc., before the Eid prayer.
560	Should Eid be prayed in an open field or in a mosque?	583	A person who has prayed Eid cannot lead the Eid prayer.
566	What is the ruling on fundraising in the sermon or before the prayer?	584	For gathering people, only saying 'As-Salatu Jamiah' is allowed; burning flares or ringing bells for it is forbidden.
567	Difference between leading the Friday/Eid prayers and the five daily prayers.	584	It is not permissible to take the mosque's mats etc. to the Eidgah.
567	Definition and conditions of a Qazi (judge).	585	It is permissible to supplicate (Dua) after the prayer.

फ़तावा रज़विया खंड आठ

पृष्ठ	दायाँ स्तंभ विषय	पृष्ठ	बायाँ स्तंभ विषय
549	बुद्धि और परंपरा की आम सहमति से, एक पूर्ण नियम अपनी सभी विशिष्टताओं में लागू होता है।	570	जामा मस्जिद में ईद की नमाज़ पढ़ना जायज़ है और ईदगाह में बेहतर है।
549	पूर्ण नियम के अर्थ की व्याख्या।	570	जानबूझकर ईद की नमाज़ छोड़ना गुनाह है।
549	जब तक शरीयत का प्रमाण है, सभी विशिष्टताएँ और निर्धारण पूर्ण नियम के अंतर्गत आते हैं।	570	ईद की नमाज़ किस पर वाजिब है?
550	प्रत्यक्ष न होने का मतलब अस्तित्व न होना नहीं है।	571	अतिरिक्त तकबीरें (तकबीरात-ए-ज़वाइद) कब से शुरू हुईं?
550	उल्लेख की कमी, कमी का उल्लेख नहीं है।	572	बिना किसी कारण के पहले दिन ईद नहीं पढ़ी गई, तो दूसरे दिन पढ़ी जा सकती है या नहीं?
551	उल्लेख की कमी अस्तित्व को नकारती नहीं है।	575	एक ईदगाह में दो बार ईद पढ़ी गई, पहली खुतबे के साथ और दूसरी बिना खुतबे के, नमाज़ हुई या नहीं?
551	प्रमाण की कमी से अस्तित्व का अभाव आवश्यक नहीं है।	576	नमाज़ के बाद मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) करना कैसा है?
551	अक्सर हदीसों में मशहूर मामलों को छोड़ दिया जाता है, लेकिन वह छोड़ना उनके न होने का प्रमाण नहीं है।	576	दिन चढ़ने के बाद चाँद की पुष्टि हो और भारी बारिश हो, तो क्या कुछ लोग पहले दिन पढ़ लें और बाकी दूसरे दिन पढ़ सकते हैं या नहीं?
551	अभाव का उल्लेख निषेध का उल्लेख नहीं है।	580	शासकों की अनुमति से ईदगाह बनी हो, तो उसमें ईद पढ़ना जायज़ है या नहीं?
551	न करना अलग बात है और मना करना अलग बात।	580	सरकारी ज़मीन पर बिना अनुमति के ईद पढ़ना कैसा है?
551		580	ईदगाह के लिए इमारत होना ज़रूरी नहीं है।

पृष्ठ	दायाँ स्तंभ विषय	पृष्ठ	बायाँ स्तंभ विषय
	केवल उल्लेख या कार्य की कमी निषेध के लिए अनिवार्य नहीं है।		
555	पहली तीन पीढ़ियों से उल्लेख न होने को निषेध का प्रमाण मानना वहाबियों का एक आम भ्रम है।	582	ईद के इमाम के लिए वही शर्तें हैं जो जुमे के इमाम के लिए हैं।
553	वहाबियों के विरुद्ध मौलाना अब्दुल हई लखनवी के फ़तवों से पंद्रह उद्धरण।	582	ईद की नमाज़ से पहले मज़दूरी आदि करना जायज़ है।
560	ईद खुले मैदान में पढ़नी चाहिए या मस्जिद में?	583	ईद पढ़ने वाला व्यक्ति ईद की इमामत नहीं कर सकता।
566	खुतबे में या नमाज़ से पहले चंदा इकट्ठा करने की मुहिम कैसी है?	584	लोगों को इकट्ठा करने के लिए केवल 'अस-सलातु जामिया' कहने की अनुमति है; इसके लिए आतिशबाजी करना या घंटा बजाना हराम है।
567	जुमे-ईद और पाँच वक्त की नमाज़ की इमामत में अंतर।	584	मस्जिद की चटाइयाँ आदि ईदगाह ले जाना जायज़ नहीं है।
567	काज़ी की परिभाषा और शर्तें।	585	नमाज़ के बाद दुआ माँगना जायज़ है।

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

صفحہ	دایاں کالم مضمون	صفحہ	بایاں کالم مضمون
	باجماع واطباق عقل و نقل حکم		
۵۴۹	مطلق اپنی تمام خصوصیات میں جاری وساری ہوتا ہے۔	۵۷۰	جامع مسجد میں عید پڑھنی جائز ہے اور عیدگاہ میں بہتر۔
۵۴۹	اطلاق حکم کے معنی کا بیان۔	۵۷۰	قصداً نماز عید چھوڑنا گناہ ہے۔
	جب تک شرعی استناد ہو تمام		
۵۴۹	خصوصیات و تعینات حکم مطلق میں داخل ہوتے ہیں۔	۵۷۰	عید کس پر واجب ہے۔
۵۵۰	عدم وجدان عدم وجود کو مستلزم نہیں۔	۵۷۱	تکبیرات زوائد کب سے شروع ہوئیں۔
۵۵۰	عدم نقل نقل عدم نہیں۔	۵۷۲	بلا عذر پہلے روز عید نہیں پڑھی گئی دوسرے روز پڑھی جاسکتی ہے یا نہیں۔
			ایک عید گاہ میں دوبارہ عید پڑھی گئی پہلی
۵۵۱	عدم نقل نافی وجود نہیں۔	۵۷۵	خطبہ کے ساتھ اور دوسری بلا خطبہ، نماز ہوئی یا نہیں۔
۵۵۱	عدم ثبوت کو اثبات عدم لازم نہیں۔	۵۷۶	نماز کے بعد مصافحہ کرنا کیسا ہے۔
۵۵۱		۵۷۶	

صفحہ	دایاں کالم مضمون
	بارہا روایۃ حدیث امور مشہورہ و معروفہ کو چھوڑ جاتے ہیں مگر وہ ترک دلیل عدم نہیں ہوتا۔
۵۵۱	نقل عدم نقل منع نہیں۔
۵۵۱	نہ کرنا اور چیز ہے اور منع کرنا اور چیز۔
۵۵۱	مجرد عدم نقل اور عدم فعل مستلزم ممانعت نہیں۔
۵۵۵	قرونِ ثلاثہ سے عدم ورود کو دلیل منع جاننا وہابیہ کا مغالطہ عامۃ الورود ہے۔
۵۵۳	وہابیہ کے خلاف مولوی عبد الحئی لکھنوی کے فتاویٰ سے پندرہ عبارتیں۔
۵۶۰	عید صحرا میں پڑھنی چاہئے یا مسجد میں۔
۵۶۶	

صفحہ	بایاں کالم مضمون
	دن چڑھنے کے بعد چاند کی تحقیق ہو اور شدید بارش ہو اور کچھ لوگ پہلے روز پڑھ لیں دوسرے روز باقی لوگ پڑھ سکتے ہیں یا نہیں۔
۵۸۰	حکام کی اجازت سے عید گاہ بنی ہو اس میں عید پڑھنی جائز ہے یا نہیں۔
۵۸۰	گورنمنٹ کی زمین پر بلا اجازت عید پڑھنی کیسی ہے۔
۵۸۰	عید گاہ کے لئے عمارت ہونا ضروری نہیں۔
۵۸۲	عید کے امام کے لئے وہی شرائط ہیں جو جمعہ کے امام کے لئے ہیں۔
۵۸۲	نماز عید سے پہلے مزدوری وغیرہ کرنا جائز ہے۔
۵۸۳	عید پڑھنے والا عید کی امامت نہیں کر سکتا۔
۵۸۴	

صفحہ	دایاں کالم مضمون	صفحہ	بایاں کالم مضمون
	خطبہ میں یا نماز سے پہلے چندہ کی تحریک کیسی ہے۔		لوگوں کو جمع کرنے کے لئے صرف الصلوۃ جامعہ کہنے کی اجازت ہے اس کے لئے بنگولہ جلانا یا گھنٹہ بجانا حرام ہے۔
۵۶۷	جمعہ و عیدین اور نماز پنجگانہ کی امامت میں فرق۔	۵۸۴	مسجد کا فرش وغیرہ عید گاہ لے جانا جائز نہیں۔
۵۶۷	قاضی کی تعریف اور شرائط	۵۸۵	نماز کے بعد دعا مانگنا جائز ہے۔

Fatawa Razawiya Volume 8

586: Telegrams etc. are not reliable regarding the moon. | 608: Proof of the permissibility of hugging (mu'anaqa) even without returning from a journey through sixteen hadiths. 587: Eid prayer can be performed in a mosque, but it is Sunnah in the Eidgah (prayer ground). | 608: Prophet's (PBUH) love for Imam Hussain. 588: Eid prayer can be held in multiple places in one city. | 609: The Master's (PBUH) love for Hasan and Hussain. 590: There should not be two Eidgahs for one city. | 609: Prayer (Dua) for Hazrat Abdullah Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) to become a scholar of wisdom. 592: On Bakr Eid, it is Sunnah not to eat anything before prayer and to eat the sacrificial meat after prayer. | 609: Justice of the Prophethood. Hazrat Usaid's love for the Prophet (PBUH). 594: If there is a dispute regarding the moon, caution is needed during the days of sacrifice. | 610: The Master's (PBUH) kindness upon Hazrat Abu Dharr. 595: If Eid was prayed while there was hesitation about the moon, will the prayer be valid or not? | 610: Prophet's (PBUH) love for Hazrat Ali and his status. 597: The rulings of the Eidgah are the same as the rulings of the mosque. | 612: Hazrat Abu Bakr's love for the Prophet (PBUH) and his excellence. 598: What is the ruling if there is precedence or delay in the Takbirs? | 612: Hazrat Uthman's acceptance by the Prophet (PBUH). 599: What is the ruling if the preacher (Khatib) makes the listeners say "Subhan Allah" etc. during the sermon? | 614: Hazrat Batul Zahra's (Fatima) acceptance by the Prophet (PBUH). 601: Booklet "Wishah al-Jid fi Tahlil Mu'anaqa al-Eid" (Statement on the permissibility of hugging after Eid prayer). | 614: According to Maulvi Ismail, reciting Quran, Fatiha, shaking hands after Fajr and Asr, and hugging on Eid is a good innovation (Bid'ah Hasanah). 602: Reason for writing both fatwas. | 615: Fatwa of Maulana Abdul Hai Farangi Mahalli regarding hugging on Eid. 603: Permissibility of hugging and its conditions. | 617: Statements from Rad al-Muhtar and Mirqat regarding shaking hands and hugging. 604: Hugging is not specific to returning from a journey. | 619: Every elderly Muslim is worthy of respect; people of knowledge and Sayyids are deserving of even more respect and honor. 606: Where hugging is prohibited, it refers to hugging out of lust. |

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

५८६: चाँद के बारे में तार आदि विश्वसनीय नहीं हैं। | ६०८: सोलह हदीसों से बिना सफ़र से लौटे भी गले मिलने (मुआनक़ा) के जायज़ होने का प्रमाण। ५८७: मस्जिद में ईद पढ़ी जा सकती है और ईदगाह में सुन्नत है। | ६०८: इमाम हुसैन की रसूल (स.अ.व.) से महबूबियत। ५८८: एक शहर में कई जगहों पर ईद की नमाज़ हो सकती है। | ६०९: हसनैन से सरकार (स.अ.व.) की मुहब्बत। ५९०: एक शहर के लिए दो ईदगाह नहीं होने चाहिए। | ६०९: हज़रत अब्दुल्ला इब्न अब्बास (रज़ि.) के लिए आलिम-ए-हिकमत होने की दुआ। ५९२: बक़र ईद में नमाज़ से पहले कुछ न खाना और नमाज़ के बाद क़ुर्बानी का खाना सुन्नत है। | ६०९: अदल-ए-रिसालत। हज़रत उसैद की रसूल (स.अ.व.) से मुहब्बत। ५९४: चाँद में मतभेद हो तो क़ुर्बानी के दिनों में एहतियात बरतनी चाहिए। | ६१०: हज़रत अबू ज़र पर सरकार (स.अ.व.) का करम। ५९५: चाँद में संशय रहते हुए ईद पढ़ ली गई तो नमाज़ होगी या नहीं। | ६१०: हज़रत अली की रसूल (स.अ.व.) से महबूबियत और उनका मकाम। ५९७: ईदगाह के अहकाम मस्जिद के अहकाम हैं। | ६१२: हज़रत अबू बक्र का इश्क़-ए-रसूल और उनकी फ़ज़ीलत। ५९८: तकबीरात में आगे-पीछे हो जाने पर क्या हुक्म है। | ६१२: हज़रत उस्मान की रसूल (स.अ.व.) द्वारा मक़बूलियत। ५९९: ख़ुत्बे के दौरान ख़तीब सामईन से सुभान अल्लाह आदि पढ़वाए तो क्या हुक्म है। | ६१४: हज़रत बतूल ज़हरा (रज़ि.) की रसूल (स.अ.व.) द्वारा मक़बूलियत। ६०१: रिसाला "विशाह अल-जीद फ़ी तहलील मुआनक़ा अल-ईद" (ईद की नमाज़ के बाद गले मिलने के जायज़ होने का बयान)। | ६१४: मौलवी इस्माइल के नज़दीक क़ुरआन ख़्वानी, फ़ातिहा ख़्वानी, फ़ज्र और असर के बाद मुसाफ़हा और ईद पर मुआनक़ा बिदअत-ए-हसना है। ६०२: दोनों फ़तवों के लेखन का कारण। | ६१५: ईद पर गले मिलने से संबंधित मौलाना अब्दुल हई फ़िरंगी महली का फ़तवा। ६०३: मुआनक़ा (गले मिलने) का जवाज़ और उसकी शर्तें। | ६१७: मुसाफ़हा और मुआनक़ा के बारे में रद्दुल मुहतार और मिर्क़ात की इबारतें। ६०४: मुआनक़ा सिर्फ़ सफ़र से आने के साथ ख़ास नहीं है। | ६१९: हर बुज़ुर्ग मुसलमान अदब के क़ाबिल है, अहल-ए-इल्म और सादात-ए-किराम और भी अधिक अदब व सम्मान के हक़दार हैं। ६०६: जहाँ मुआनक़ा से मनाही है वहाँ मुआनक़ा शहवत के तौर पर मुराद है। |

पृष्ठ ४० का ६७३

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

۵۸۶ | چاند کے بارے میں تار وغیرہ معتبر نہیں۔ | ۶۰۸ | سولہ احادیث سے بے آمد سفر بھی جواز معانقہ کا ثبوت۔ ۵۸۷ | مسجد میں عید پڑھی جا سکتی ہے اور عیدگاہ میں سنت ہے: | ۶۰۸ | امام حسین کی محبوبیت رسول۔ ۵۸۸ | ایک شہر میں متعدد جگہ عید کی نماز ہو سکتی ہے۔ | ۶۰۹ | حسنین سے سرکار کی محبت۔ ۵۹۰ | ایک شہر کے لئے دو عید گاہ نہیں چاہئے۔ | ۶۰۹ | حضرت عبداللہ ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے لئے عالم حکمت ہونے کی دعا۔ ۵۹۲ | بقر عید میں نماز سے پہلے کچھ نہ کھانا اور نماز کے بعد قربانی کا کھانا مسنون ہے۔ | ۶۰۹ | عدل رسالت۔ حضرت اسید کی محبت رسول۔ ۵۹۴ | چاند میں اختلاف ہو تو قربانی کے ایام میں احتیاط چاہئے۔ | ۶۱۰ | حضرت ابوذر پر سرکار کا کرم۔ ۵۹۵ | چاند میں تردد ہوتے ہوئے عید پڑھ لی گئی تو نماز ہوگی یا نہیں۔ | ۶۱۰ | حضرت علی کی محبوبیت رسول اور ان کا مقام۔ ۵۹۷ | عیدگاہ کے احکام مسجد کے احکام ہیں۔ | ۶۱۲ | حضرت ابوبکر کا عشق رسول اور ان کی فضیلت۔ ۵۹۸ | تکبیرات میں تقدیم و تاخیر ہو جائے تو کیا حکم ہے۔ | ۶۱۲ | حضرت عثمان کی مقبولیت رسول۔ ۵۹۹ | دوران خطبہ میں خطیب سامعین سے سبحان اللہ وغیرہ پڑھوائے تو کیا حکم ہے۔ | ۶۱۴ | حضرت بتول زہرا کی مقبولیت رسول۔ ۶۰۱ | ہ رسالہ وشاح الجید فی تحلیل معانقہ العید (نماز عید کے بعد معانقہ کے جائز ہونے کا بیان) | ۶۱۴ | مولوی اسماعیل کے نزدیک قرآن خوانی، فاتحہ خوانی، مصافحہ بعد فجر و عصر اور معانقہ عید بدعت حسنہ ہے۔ ۶۰۲ | دونوں فتووں کا سبب تحریر۔ | ۶۱۵ | معانقہ عید سے متعلق مولانا عبدالحی فرنگی محلی کا فتویٰ۔ ۶۰۳ | معانقہ کا جواز اور اس کے شرائط | ۶۱۷ | مصافحہ و معانقہ کے بارے میں عبارات ردالمحتار و مرقات۔ ۶۰۴ | معانقہ آمد سفر سے خاص نہیں۔ | ۶۱۹ | ہر سن رسیدہ مسلمان قابل

ادب ہے، اہل علم اور سادات کرام اور زیادہ ادب و احترام کے مستحق ہیں۔ ۶۰۶ | جہاں معانقہ سے ممانعت ہے وہاں معانقہ بروجہ شہوت مراد ہے۔ |

صفحہ 40 از 673

Volume Eight Fatawa Razawiyya

Page	Topic
620	Root-destroying statements against Wahhabism in Fatawa Maulana Abdul Hai.
620	(11) Many innovations (bid'ah) are permissible.
620	(22) Khutba al-Wada' (The Farewell Sermon) is permissible and rewarding despite being an innovation.
620	(33) One who calls the people of 'Wujudiyya Shuhudiyya' innovators is ignorant, unaware, and blameworthy.
620	(44) The practice of 'Barzakh' is not shirk (polytheism) or misguidance.
621	(55) Reciting Surah Al-Ikhlas three times at the completion of the Quran in Tarawih is commendable.
621	(66) Writing 'Bismillah' on the forehead of the deceased is commendable.
621	(77) Holding gatherings of Milad (birth celebration of the Prophet) in Makkah, Madinah, and Jeddah, and reciting 'Takbir' after every Surah from Surah Ad-Duha to the end of the Quran.
621	
625	Absence in previous eras is not proof of prohibition.
625	There are five types of innovation: forbidden, obligatory, recommended, disliked, and permissible.
625	An innovation that is not contrary to the Book and Sunnah is not blameworthy.
625	Writing the names of Surahs and the number of verses in the Mushaf (Quran) is an innovation, but a good innovation (Bid'ah Hasanah).
626	Negation of recommendability does not prove it is disliked (not even slightly disliked/tanzihi).
627	It is proven from the statements of jurists that shaking hands after Fajr and Asr, rather after every prayer, is permissible and even a Sunnah.
629	When two Muslims shake hands, their sins fall away with the movement of their hands.
629	They are forgiven, a hundred mercies descend upon them, ninety-nine for the one who takes the lead.
632	The most correct view is that shaking hands after prayer is permissible.

Page	Topic
	Maulana Farangi Mahli himself participated in such gatherings and called them blessed.
622	Actions contrary to what is 'best' (khilaf-e-awla) are not disliked (makruh); they are permissible and allowed.
623	For proving an action is disliked (karahat), a specific evidence is necessary, even if it is slightly disliked (tanzihi).
624	It is proven from hadiths that embracing (mu'anaqa) is not specific to the beginning of a meeting.
624	Resemblance to people of wrong beliefs is forbidden only in three specific cases.

Page	Topic
633	In case of disagreement in correction (tashih) and fatwa, preference will be given to the general application of texts (mutun).
633	We must follow what the jurists have declared as predominant (rajih) and correct (sahih).
633	Giving a fatwa on a non-predominant (marjuh) opinion is ignorance and contrary to consensus (ijma').
634	The practice of people of falsehood is to be avoided only as long as it remains their specific characteristic; if it loses that status and the act itself is permissible in Shariah, then it is no longer prohibited.

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

पृष्ठ	विषय
620	फ़तावा मौलाना अब्दुल हई में वहाबियत की जड़ काटने वाली इबारतें।
620	(11) बहुत सी बिदअतें जाइज़ (अनुमेय) हैं।
620	(22) खुतबा अल-वदाअ बिदअत होने के बावजूद जाइज़ और सवाब (पुण्य) का काम है।
620	(33) वजूदिया शुहूदिया के लोगों को बिदअती कहने वाला जाहिल, अनजान और निंदा के योग्य है।
620	(44) शग़ल-ए-बरज़ख़ शिर्क और गुमराही नहीं है।
621	(55) तरावीह में क़ुरआन मुकम्मल होने पर तीन बार सूरह इखलास पढ़ना मुस्तहसन (सराहनीय) है।
621	(66) मय्यत की पेशानी पर बिस्मिल्लाह लिखना मुस्तहसन है।
621	(77) मक्का मुअज़्ज़मा, मदीना मुनव्वरा और जेद्दा में मिलाद की

पृष्ठ	विषय
625	पिछले ज़माने में न होना मनाही की दलील नहीं।
625	बिदअत की पाँच क़िस्में हैं: हराम, वाजिब, मंदूब (अनुशंसित), मकरूह (नापसंद), मुबाह (अनुमेय)।
625	जो बिदअत किताब और सुन्नत के ख़िलाफ़ न हो, वह निंदनीय नहीं।
625	मुसहफ़ (क़ुरआन) में सूरतों के नाम और आयतों की संख्या लिखना बिदअत है, लेकिन बिदअत-ए-हसना (अच्छी बिदअत) है।
626	मंदूबियत (अनुशंसित होने) की नफ़ी से मकरूह (नापसंद) होना साबित नहीं होता (तन्ज़ीही भी नहीं)।
627	फ़ुक़हा (फ़िक़्ह के विद्वान) की इबारतों से फ़ज्र और अस्र के बाद, बल्कि हर नमाज़ के बाद मुसाफ़हा (हाथ मिलाना) जाइज़ और सुन्नत होना साबित होता है।
629	जब दो मुसलमान आपस में मुसाफ़हा करते हैं, तो उनके हाथों की हरकत के साथ उनके गुनाह झड़ जाते हैं।
629	

पृष्ठ	विषय
	महफ़िलें आयोजित करना और उनमें सूरह अज़-ज़ुहा से क़ुरआन ख़त्म होने तक हर सूरह पर तकबीर कहना।
621	मौलाना फ़रंगी महली ने ऐसी महफ़िलों में ख़ुद शिरकत की और उन्हें मुतबर्रक (पावन) बताया।
622	खिलाफ़-ए-औला (बेहतर के विपरीत) मकरूह नहीं है, जाइज़ और मुबाह है।
623	कराहत (नापसंदगी) साबित करने के लिए विशेष दलील ज़रूरी है, चाहे कराहत तन्ज़ीही (हल्की नापसंदगी) ही क्यों न हो।
624	हदीसों से साबित होता है कि मुआनक़ा (गले मिलना) सिर्फ़ मुलाक़ात की शुरुआत के लिए विशेष नहीं है।
624	बुरे अक़ीदे वालों (बद-मज़हबों) से समानता सिर्फ़ तीन सूरतों (स्थितियों) में मना है।
	उनकी मग़फ़िरत (क्षमा) होती है, उन पर सौ रहमतें नाज़िल होती हैं, निन्यानवे (99) उसके लिए जो पहल करे।
632	सबसे सही बात यही है कि नमाज़ के बाद मुसाफ़हा करना जाइज़ है।
633	तस्हीह (सुधार) और फ़तवे में मतभेद हो तो मतून (मूल पाठों) के सामान्य प्रयोग को प्राथमिकता दी जाएगी।
633	फ़ुक़हा ने जिसे राजेह (प्रबल) और सही क़रार दिया है, हमें उसी का पालन करना चाहिए।
633	मरजूह (कमज़ोर) राय पर फ़तवा देना अज्ञानता और इज्मा (आम सहमति) का विरोध है।
634	बातिल (झूठ) के मानने वालों का तौर-तरीक़ा उसी वक़्त तक परहेज़ के लायक़ है जब तक वह उनका विशेष प्रतीक बना रहे; अगर उनसे वह चलन हट गया और वह काम अपने आप में शरई तौर पर जाइज़ है, तो अब उससे मनाही नहीं।

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

صفحہ	مضمون
۶۲۰	فتاوی مولانا عبدالئی میں وہابیت کی بیخ کن عبارتیں۔
۶۲۰	(۱۱) بہت سی بدعات جائز ہیں۔
۶۲۰	(۲۲) خطبۃ الوداع بدعت ہونے کے باوجود جائز وثواب ہے۔
۶۲۰	(۳۳) وجودیہ شہودیہ حضرات کو بدعتی کہنے والا جاہل و ناواقف اور قابل ملامت ہے۔
۶۲۰	(۴۴) شغل برزخ شرک و گمراہی نہیں۔
۶۲۱	(۵۵) تراویح کے ختم قرآن میں تین بار سورہ اخلاص پڑھنا مستحسن ہے۔
۶۲۱	(۶۶) میت کی پیشانی پر بسم اللہ لکھنا مستحسن ہے۔
۶۲۵	قرون سابقہ میں نہ ہونا ممانعت کی دلیل نہیں۔
۶۲۵	بدعت کی پانچ قسمیں ہیں: حرام، واجب، مندوب، مکروہ، مباح۔
۶۲۵	جو بدعت کتاب وسنت کے خلاف نہ ہو وہ مذموم نہیں۔
۶۲۵	مصحف (قرآن) میں سورتوں کے نام، آیتوں کی تعداد لکھنا بدعت ہے مگر بدعت حسنہ۔
۶۲۶	مندوبیت کی نفی سے مکروہ ہونا ثابت نہیں ہوتا (تنزیہی بھی نہیں)
۶۲۷	عبارات فقہاء سے مصافحہ بعد فجر وعصر بلکہ مصافحہ بعد ہر نماز کا جائز بلکہ سنت ہونا ثابت ہوتا ہے۔
۶۲۹	دو مسلمان باہم مصافحہ کریں تو ہاتھوں کی تحریک کے ساتھ ان کے گناہ جھڑتے ہیں۔

صفحہ	مضمون
۶۲۱	(۷۷) کعبہ معظمہ، مدینہ منورہ اور جدہ میں مجالس میلاد کا انعقاد اور ان میں سورہ والضحٰی سے ختم قرآن تک ہر سورۃ پر تکبیر۔
۶۲۱	مولانا فرنگی محلی نے ایسی مجالس میں خود شرکت کی اور انہیں متبرک بتایا۔
۶۲۲	خلاف اولیٰ مکروہ نہیں، جائز و مباح ہے۔
۶۲۳	ثبوت کراہت کے لئے دلیل خاص ضروری ہے، خواہ کراہت تنزیہی ہو۔
۶۲۴	احادیث سے ثابت ہوتا ہے کہ معانقہ ابتدائے ملاقات سے خاص نہیں۔
۶۲۴	بد مذہبوں سے مشابہت صرف تین صورتوں میں ممنوع ہے۔
۶۲۹	ان کی مغفرت ہوتی ہے، ان پر سو رحمتیں نازل ہوتی ہیں، ننانوے ۹۹ اس کے لئے جو سبقت کرے۔
۶۳۲	اصح یہی ہے کہ مصافحہ بعد نماز جائز ہے۔
۶۳۳	تصحیح و فتوی میں اختلاف ہو تو اطلاق متون کو ترجیح ہوگی۔
۶۳۳	فقہاء نے جسے راجح و صحیح قرار دیا ہمیں اسی کی پیروی کرنی ہے۔
۶۳۳	قول مرجوح پر فتوی دینا جہالت اور مخالفت اجماع ہے۔
۶۳۴	اہل باطل کا شعار اسی وقت تک قابل احتراز ہے جب تک ان کا شعار رہے، اگر ان سے رواج اٹھ گیا اور وہ امر فی نفسہ شرعاً جائز ہے تو اب اس سے ممانعت نہیں۔

If a Muslim extends their hand for a handshake, one should not withdraw their hand. 636

Showing courtesy to a Muslim takes precedence over observing formalities. 636

One should conform to the customs and traditions of Muslims, provided there is no explicit and non-interpretable prohibition from Sharia. 636

Committing a blameworthy innovation (bid'at-e-madhmoomah) is worse than abandoning a Sunnah. 638

It is not required to avoid a permissible innovation (bid'at-e-mubahah); therefore, if performing such an innovation also involves acting upon a Sunnah, one should do it. 638

Chapter on Istisqa (Prayer for Rain) 641

Is Istisqa a supplication or a formal prayer, and when should it be performed? 641

६३६ यदि कोई मुसलमान हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाए, तो अपना हाथ पीछे नहीं खींचना चाहिए।

६३६ मुसलमान के प्रति सौजन्य दिखाना औपचारिकता बरतने से श्रेष्ठ है।

६३६ मुसलमानों के रीति-रिवाजों और परंपराओं का पालन किया जाना चाहिए, जब तक कि शरीयत में उनके प्रति कोई स्पष्ट और अकाट्य निषेध न हो।

६३८ निंदनीय नवाचार (बिदअत-ए-मज़मूमा) का अपराध सुन्नत छोड़ने से भी बुरा है।

६३८ जायज़ नवाचार (बिदअत-ए-मुबाहा) से बचना आवश्यक नहीं है, इसलिए यदि किसी ऐसे नवाचार को करने में किसी सुन्नत पर भी अमल होता है, तो उसे करना चाहिए।

६४१ इस्तिसक़ा (बारिश के लिए दुआ) का अध्याय

६४१ इस्तिसक़ा दुआ है या नमाज़, और यह कब होनी चाहिए?

مسلمان مصافحہ کے لئے ہاتھ بڑھائے تو اپنا ہاتھ کھینچنا نہیں چاہئے۔ ۶۳۶

مسلمان کی خاطر داری رعایتِ ادب پر مقدم ہے۔ ۶۳۶

مسلمانوں کے عادات ورسوم کی موافقت ہی کرنی چاہئے بشرطیکہ شرع سے صریح اور ناقابلِ تاویل ممانعت نہ ہو۔ ۶۳۶

بدعتِ مذمومہ کا ارتکاب ترکِ سنت سے برا ہے۔ ۶۳۸

بدعتِ مباحہ سے بچنا مطلوب نہیں لہذا اگر کسی ایسی بدعت کی بجا آوری میں کسی سنت پر بھی عمل ہوتا ہے تو کرے۔ ۶۳۸

باب الاستسقاء ۶۴۱

استسقاء دعا ہے یا نماز، اور یہ کب ہو۔ ۶۴۱

Fatawa Rizvia Volume 8

Supplementary Index of Issues

Azan and Iqamah (Call to Prayer): - It is forbidden to answer the second Azan verbally or to supplicate verbally after the Azan; it can be done in the heart. (Page 400) - The Imam can answer the second Azan, but the follower (muqtadi) cannot. However, if a follower does, one should not engage in a dispute with them. (Page 436) - Answering the Azan of the Khutbah (sermon), supplicating, and kissing thumbs upon hearing the Holy name [of Prophet Muhammad PBUH] should not be done. (Page 468) - Our noble scholars have clearly stated that giving Azan inside the mosque is disliked (Makruh). (Page 497) - Azan should be given on a minaret or outside the mosque; it should not be said inside the mosque. (Page 498) - Iqamah (the second call to prayer) must definitely be performed inside the mosque. (Page 498) - If there is no minaret for Azan, it should be given on land outside the mosque that belongs to the mosque. (Page 498) - It is Sunnah for Azan to be on a height and for Takbir (Iqamah) to be on the ground. (Page 498) - Regarding the Azan for Maghrib, there is a difference of opinion among the Mashaikh (scholars), and the apparent view is that it is also Sunnah for the Maghrib Azan to be on a height. (Page 499) - Azan should be given where its sound can reach the neighbors well. (Page 499) - The Sunnah is that Azan should be from the minaret and Takbir (Iqamah) should be inside the mosque. (Page 499) - If no high place has been built for the Azan, then give Azan in the land related to and around the mosque. (Page 499)

Times (Auqat): - The start and end time of the Friday (Jumu'ah) prayer. (Page 465)

Page 43 of 673

फतवा रिज़विया खंड 8

अनुपूरक विषयों की सूची

अज़ान और इकामत: - दूसरी अज़ान का मौखिक उत्तर देना या अज़ान के बाद मौखिक रूप से दुआ करना वर्जित है; यह हृदय में किया जा सकता है। (पृष्ठ 400) - इमाम दूसरी अज़ान का उत्तर दे सकता है, लेकिन मुक़्तदी (अनुयायी) नहीं। हालाँकि, यदि कोई मुक़्तदी ऐसा करता है, तो उसके साथ विवाद नहीं करना चाहिए। (पृष्ठ 436) - खुत्बे (प्रवचन) की अज़ान का उत्तर देना, दुआ मांगना और पवित्र नाम सुनने पर अंगूठे चूमना नहीं चाहिए। (पृष्ठ 468) - हमारे महान विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि मस्जिद के भीतर अज़ान देना मकरूह (नापसंद) है। (पृष्ठ 497) - अज़ान मीनार पर या मस्जिद के बाहर होनी चाहिए; मस्जिद के भीतर अज़ान नहीं दी जानी चाहिए। (पृष्ठ 498) - इकामत निश्चित रूप से मस्जिद के भीतर ही होगी। (पृष्ठ 498) - यदि अज़ान के लिए मीनार न हो, तो मस्जिद से बाहर ऐसी ज़मीन पर अज़ान दी जाए जो मस्जिद से जुड़ी हो। (पृष्ठ 498) - अज़ान का ऊंचाई पर और तकबीर (इकामत) का ज़मीन पर होना सुन्नत है। (पृष्ठ 498) - मग़रिब की अज़ान के संबंध में मशायख (विद्वानों) के बीच मतभेद है, और प्रत्यक्ष मत यह है कि मग़रिब की अज़ान का भी ऊंचाई पर होना सुन्नत है। (पृष्ठ 499) - अज़ान वहां दी जानी चाहिए जहां से पड़ोसियों तक आवाज अच्छी तरह पहुंचे। (पृष्ठ 499) - सुन्नत यह है कि अज़ान मीनार से हो और तकबीर (इकामत) मस्जिद के भीतर। (पृष्ठ 499) - यदि अज़ान के लिए कोई ऊंचा स्थान नहीं बनाया गया है, तो मस्जिद के आसपास की संबंधित जमीन में अज़ान दें। (पृष्ठ 499)

औकात (समय): - जुमे की नमाज़ का पहला और आखिरी समय। (पृष्ठ 465)

पृष्ठ 43 का 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

فہرست ضمنی مسائل

اذان واقامت: - اذان ثانی کا جواب زبان سے دینا یا اذان کے بعد زبان سے دعا کرنا منع ہے دل سے کر سکتا ہے۔ (صفحہ ۴۰۰) - اذان ثانی کا جواب امام دے سکتا ہے مقتدی نہیں مگر مقتدی دے تو اس سے نزاع نہیں کرنا چاہئے۔ (صفحہ ۴۳۶) - اذان خطبہ کا جواب دینا اور دعا مانگنا اور نام پاک پر انگوٹھا چومنا نہیں چاہئے۔ (صفحہ ۴۶۸) - ہمارے علماء کرام نے تصریح فرمائی ہے کہ مسجد میں اذان دینی مکروہ ہے۔ (صفحہ ۴۹۷) - اذان منارے پر یا مسجد کے باہر چاہئے مسجد میں اذان نہ کہی جائے۔ (صفحہ ۴۹۸) - اقامت ضرور مسجد میں ہوگی۔ (صفحہ ۴۹۸) - اذان کے لئے اگر منارہ نہ ہو تو مسجد سے باہر ایسی زمین پر دی جائے جو مسجد سے متعلق ہو۔ (صفحہ ۴۹۸) - اذان بلندی پر اور تکبیر زمین پر ہونا سنت ہے۔ (صفحہ ۴۹۸) - مغرب کی اذان میں مشائخ کا اختلاف ہے، اور ظاہر یہ ہے کہ مغرب کی اذان بھی بلندی پر ہو نا سنت ہے۔ (صفحہ ۴۹۹) - اذان وہاں ہونی چاہئے جہاں سے ہمسایوں کو خوب آواز پہنچے۔ (صفحہ ۴۹۹) - سنت یہ ہے کہ اذان منارے پر ہو اور تکبیر مسجد میں۔ (صفحہ ۴۹۹) - اگر اذان کے لئے کوئی بلند مکان نہ بنا ہو تو مسجد کے آس پاس اس کے متعلق زمین میں اذان دے۔ (صفحہ ۴۹۹)

اوقات: - جمعہ کا اول و آخر وقت۔ (صفحہ ۴۶۵)

Fatawa Rizvia, Volume 8

Congregation (Jamat) - The right to appoint the Imam for Jumu'ah belongs to the King or his deputy. (469) - It is valid for worshippers standing on the roof of shops built over the mosque door to follow the Imam. (66, 567) - Difference between the leadership (Imamate) of Jumu'ah, Eids, and the five daily prayers. (567) - Whether missed (Qaza) prayers can be offered in congregation, and if so, where: in a mosque or a house. (162, 582) - The conditions for the Imam of Eid are the same as those for the Imam of Jumu'ah. (582)

Leadership in Prayer (Imamate) - One who is just offering the Eid prayer cannot lead the Eid prayer. (583) - The qualities required for an Imam in Jumu'ah, Eids, and Kusoof (Solar Eclipse) prayers. (359, 459)

Recitation (Qira'at) - The condition of being appointed by a Sultan or authorized person for leading Jumu'ah is not a fundamental requirement. (382, 192) - If 'Bismillah' is recited slowly (with Tarteel) after Surah Fatiha such that it causes a significant delay, Sajda Sahw (prostration for forgetfulness) is not obligatory. However, if there is a delay due to silence or thinking about which Surah to recite, Sajda Sahw becomes obligatory. (192) - Whether there is any difference in the leadership of the five daily prayers, Jumu'ah, Eids, and Kusoof. (383, 192) - The ruling on joining a Surah in the last two Rak'ahs of a four-Rak'ah prayer. (192) - If the Imam has a Sharia-defined flaw and cannot be dismissed, it is obligatory to go to another place for Jumu'ah. (399, 196) - If one forgets to join a Surah with Fatiha and goes into Ruku, upon remembering, one should immediately stand up, recite the Surah, and then perform Ruku again. If remembered after Ruku, one should perform Sajda Sahw. (196) - Whether a Hanafi's Jumu'ah prayer behind a Shafi'i Imam is valid. (402)

Issues regarding Correcting the Imam (Masail-e-Luqma) - If an Imam is unfit to lead and cannot be replaced, one should offer Zuhr alone. (440, 212) - Whether a follower (Muqtadi) can give a hint (Luqma) if the Imam stays longer than usual in the first sitting (Qa'da Ula). (212) - The ruling on an Imam who, after leading Jumu'ah, participates in Jumu'ah prayer in another mosque. (441, 213) - If the Imam mistakenly stands up from the first sitting and a follower gives a hint, is the prayer valid? (213) - Who should be the Imam for Jumu'ah? (441, 214) - If the Imam makes a mistake in sitting (Qa'da), a hint can be given by saying 'Allahu Akbar' or 'At-tahiyyat', but the Sunnah is to say 'Subhan Allah'. (214) - Jumu'ah prayer is valid behind an Imam appointed by the people. (462, 219) - If one goes into Ruku without reciting Qunut,

one should not return. If one does return, the prayer is valid, but one will be sinful. If a follower gave a hint to return, the follower's prayer will be invalidated. (219)

फतावा रिज़विया, खंड 8

जमाअत (Congregation) - जुमा का इमाम नियुक्त करने का अधिकार राजा या उसके प्रतिनिधि को है। (469) - मस्जिद के दरवाज़े पर बनी दुकानों की छत पर खड़े होने वाले नमाज़ियों का इक़्तिदा (अनुसरण) सही है। (66, 567) - जुमा, ईदैन और पांचों वक्त की नमाज़ की इमामत में अंतर। (567) - कज़ा नमाज़ों की जमाअत हो सकती है या नहीं, और हो सकती है तो कहाँ, मस्जिद या घर में। (162, 582) - ईद के इमाम के लिए वही शर्तें हैं जो जुमा के इमाम के लिए हैं। (582)

इमामत (Leadership in Prayer) - ईद पढ़ने वाला ईद की इमामत नहीं कर सकता। (583) - जुमा, ईदैन और कुसूफ़ (सूर्य ग्रहण) में इमाम कैसा हो। (359, 459)

क़िराअत (Recitation) - जुमा की इमामत के लिए सुल्तान या अधिकृत व्यक्ति की शर्त कोई बुनियादी शर्त नहीं है। (382, 192) - फातिहा के बाद बिस्मिल्लाह तरतील के साथ पढ़ी जिससे काफी देर हो गई तो सजदा सहव वाजिब नहीं, सन्नाटा या सूरत सोचने में देर हो जाए तो सजदा सहव वाजिब होगा। (192) - पांचों वक्त की नमाज़, जुमा, ईदैन और कुसूफ़ की इमामत में कोई अंतर है या नहीं। (383, 192) - चार रकात वाली नमाज़ में पिछली दो रकातों में सूरत मिलाना कैसा है। (192) - इमाम में शरीयत के अनुसार कोई दोष हो और उसे पदमुक्त न किया जा सके तो दूसरी जगह जुमा के लिए जाना वाजिब है। (399, 196) - फातिहा के साथ सूरत नहीं मिलाई और रुकू में चला गया तो याद आने पर तुरंत खड़े होकर सूरत पढ़े और फिर रुकू करे, और अगर रुकू के बाद याद आए तो सजदा सहव करे। (196) - शाफ़ई इमाम के पीछे हनफ़ी का जुमा होगा या नहीं। (402)

मसाइल-ए-लुक्मा (सुधार के नियम) - यदि इमाम इमामत के योग्य न हो और उसे बदला भी न जा सके तो अकेले ज़ुहर पढ़े। (440, 212) - क़ादा ऊला (पहली बैठक) में इमाम आदत से ज़्यादा देर लगा दे तो मुक़्तदी लुक्मा (इशारा) दे सकता है या नहीं। (212) - इमाम ने जुमा पढ़ाकर दूसरी मस्जिद में जुमा की नमाज़ में शिरकत की, यह कैसा है। (441, 213) - क़ादा ऊला में इमाम भूलवश खड़ा हो गया और मुक़्तदी ने लुक्मा दिया तो नमाज़ होगी या नहीं। (213) - जुमा का इमाम कौन हो। (441, 214) - इमाम को क़ादा में भूल हो तो अल्लाहू अकबर या अत्तहिय्यात से भी लुक्मा दिया जा सकता है मगर सुन्नत सुब्हान अल्लाह कहना है। (214) - लोगों के द्वारा नियुक्त किए गए इमाम के पीछे जुमा सही है। (462, 219) - बगैर क़ुनूत पढ़े रुकू में चला जाए तो वापस न लौटे और अगर

लौटा तो नमाज़ हो जाएगी मगर गुनहगार होगा, लौटने के लिए मुक़्तदी ने लुक्मा दिया तो उसकी नमाज़ फासिद (अमान्य) हो जाएगी। (219)

पृष्ठ 44 / 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

جماعت - امام جمعہ مقرر کرنے کا حق بادشاہ یا نائب کو ہے۔ (۴۶۹) - دروازہ مسجد پر بنی ہوئی دکانوں کی چھت پر کھڑے ہونے والے نمازیوں کی اقتداء صحیح ہے۔ (۶۶، ۵۶۷) - جمعہ و عیدین اور نماز پنجگانہ کی امامت میں فرق۔ (۵۶۷) - قضا نمازوں کی جماعت ہو سکتی ہے یا نہیں، اور ہو سکتی ہے تو کہاں، مسجد یا مکان میں۔ (۱۶۲، ۵۸۲) - عید کے امام کے لئے وہی شرائط ہیں جو جمعہ کے امام کے لئے ہیں۔ (۵۸۲)

امامت - عید پڑھنے والا عید کی امامت نہیں کر سکتا۔ (۵۸۳) - جمعہ، عیدین اور کسوف میں امام کیسا ہو۔ (۳۵۹، ۴۵۹)

قراءت - جمعہ کی امامت کے لئے سلطان یا ماذون کی شرط کوئی بنیادی شرط نہیں۔ (۳۸۲، ۱۹۲) - فاتحہ کے بعد بسم اللہ ترتیل سے پڑھی جس سے کافی دیر ہو گئی تو سجدہ سہو واجب نہیں سکوت یا سورت سوچنے میں دیر ہو جائے تو سجدہ سہو واجب ہو گا۔ (۱۹۲) - نماز پنجگانہ، جمعہ، عیدین اور کسوف کی امامت میں کوئی فرق ہے یا نہیں۔ (۳۸۳، ۱۹۲) - چار رکعت والی نماز میں پچھلی دور کعتوں میں سورت کا ضم کرنا کیسا ہے۔ (۱۹۲) - امام میں شرعی عیب ہو اور اسے معزول نہ کر سکیں تو دوسری جگہ جمعہ کے لئے جانا واجب ہے۔ (۳۹۹، ۱۹۶) - فاتحہ کے ساتھ سورت نہیں ملائی اور رکوع میں چلا گیا تو یاد آنے پر فوراً کھڑے ہو کر سورت پڑھے اور پھر رکوع کرے، اور اگر رکوع کے بعد یاد آئے تو سجدہ سہو کرے۔ (۱۹۶) - شافعی امام کے پیچھے حنفی کا جمعہ ہو گا یا نہیں۔ (۴۰۲)

مسائل لقمہ - امام قابل امامت نہ ہو اور اسے بدل بھی نہ سکتا ہو تو تنہا ظہر پڑھے۔ (۴۴۰، ۲۱۲) - قعدہ اولیٰ میں امام عادت سے زیادہ دیر لگا دے تو مقتدی لقمہ دے سکتا ہے یا نہیں۔ (۲۱۲) - امام نے جمعہ پڑھا کر دوسری مسجد میں جمعہ کی نماز میں شرکت کی یہ کیسا ہے۔ (۴۴۱، ۲۱۳) - قعدہ اولیٰ میں امام سہواً کھڑا ہو گیا اور مقتدی نے لقمہ دیا تو نماز ہو گی یا نہیں۔ (۲۱۳) - جمعہ کا امام کون ہو۔ (۴۴۱، ۲۱۴) - امام کو قعدہ سے سہو ہو تو اللہ اکبر یا التحیات سے بھی لقمہ دیا جاسکتا ہے مگر سنت سبحان اللہ کہنا ہے۔ (۲۱۴) - لوگوں کے مقرر کردہ امام کے پیچھے جمعہ صحیح ہے۔ (۴۶۲، ۲۱۹) - بغیر قنوت پڑھے رکوع چلا جائے تو پلٹے نہیں اور اگر پلٹا تو نماز ہو جائے گی مگر گنہگار ہو گا پلٹنے کے لئے مقتدی نے لقمہ دیا تو اس کی نماز فاسد ہو گی۔ (۲۱۹)

Volume 8 | Fatawa Razawiyya

Subject / Subtopic	Ref	Detail / Ruling	Page
Rulings for Masbooq (one who joins prayer late)		Established after Eid prayers by the great Tabi'un and prominent Mujtahids (may Allah be pleased with them).	511
Should the Masbooq join in the Salam if the Imam gives Salam for Sajda Sahw (prostration for error)?	191	Scholars, based on the testimony of Hadith, consider supplicating after general prayer as part of etiquette.	516
The Masbooq should not give Salam for Sajda Sahw.	191	The occurrence of the desired supplication after the core of the prayer (Ruku and Sujud) is part of etiquette.	517
Remembrance of Allah (Zikr-e-Ilahi)		The appropriate time for supplication is after completing righteous deeds.	518
Evidences for the abundance of Zikr-e-Ilahi.	535	The suitability for supplication after completion is not exclusive to obligatory prayers.	519
Every supplication is inherently a remembrance of Allah.	535	The Holy Prophet (peace be upon him) commanded to raise hands and supplicate after every two units of voluntary (Nafil) prayer.	519
Ahadith related to the abundance of remembrance.	535	The preferred (mustahsan) method of supplicating.	519
Remember Allah so much that people call you insane (Majnun).	535	Supplications are heard more during the latter half of the night and after obligatory prayers.	520
One who does not frequently remember Allah has become weary of faith.	536	Seeking out times and places likely for the acceptance of prayer (Mazaan-e-Ijabat) is Sunnah and beloved.	522
Etiquettes of Supplication		Evidences from Quran and Hadith for the aforementioned seeking.	522

Subject / Subtopic	Ref	Detail / Ruling	Page
It is Sunnah for the Imam to turn away from the Qibla after Friday and every prayer.	356	If some among a group of Muslims supplicate and others say 'Amin', their prayer is accepted.	523
Sitting facing the Qibla (unnecessarily after prayer) is disliked (Makruh) by consensus.	356	Scholars have counted the gathering of Muslims among the times of acceptance.	523
After prayers followed by Sunnahs, a long supplication is not better, nor when it is burdensome for followers.	356	The gathering of Muslims being a time for acceptance is proven by authentic (Sahih) Hadith.	523
It is not necessary for followers to keep sitting waiting for the supplication.	356	The larger the gathering, the more apparent the hope for acceptance.	523
Is it permissible to supplicate between the two sermons (Khutbahs)?	396	Restricting oneself only to the prayer (without supplementary supplication) is by no means shariah-desired.	523
		The prayer of one who does not raise hands and supplicate after prayer is deficient.	523

विषय / उप-विषय	संदर्भ विवरण / नियम	पृष्ठ
मसबूक के अहकाम (देर से शामिल होने वाले के नियम)	ईदैन की नमाज़ के बाद ताबिईन और मुजतहिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से साबित है।	511
सज्दा सहव के लिए इमाम सलाम करे तो मसबूक भी सलाम करने में शरीक होगा या नहीं।	उलमा, हदीस की गवाही से, नमाज़-ए-मुतलक़ के बाद दुआ माँगने को आदाब में गिनते हैं।	516
मसबूक, सज्दा सहव का सलाम न करे।	मक़सूद दुआ का नमाज़ की ज़ात (रुकू और सुजूद) के बाद वाक़े होना आदाब से है।	517
ज़िक्र-ए-इलाही	दुआ का महल नेक अमल से फ़राग़त के बाद है।	518
ज़िक्र-ए-इलाही की कसरत पर दलीलें।	फ़राग़त के बाद दुआ की महलीयत केवल फ़राइज़ (अनिवार्य नमाज़ों) के साथ ख़ास नहीं।	519
हर दुआ ज़ाहिर तौर पर ज़िक्र-ए-इलाही है।	नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हर दो रकात नफ़्ल के बाद हाथ उठा कर दुआ माँगने का हुक्म दिया।	519
ज़िक्र की कसरत से संबंधित अहादीस।	दुआ माँगने का मुस्तहसन (पसंदीदा) तरीक़ा।	519
अल्लाह का ज़िक्र इतनी कसरत से करो कि लोग मजनून (पागल) कहें।	रात के आख़िरी आधे हिस्से में और फ़र्ज़ नमाज़ों के बाद दुआ ज़्यादा सुनी जाती है।	520
जो ज़िक्र-ए-इलाही की कसरत न करे वह ईमान से बेज़ार हो गया।	दुआ की क़बूलियत के मक़ामात (मज़ान-ए-इजाबत) की तलाश सुन्नत और महबूब है।	522
आदाब-ए-दुआ	उपर्युक्त तलाश पर क़ुरआन और हदीस से दलीलें।	522
		523

191	
191	
535	
535	
535	
535	
536	
356	

विषय / उप-विषय	संदर्भ विवरण / नियम	पृष्ठ
जुमा और हर नमाज़ के बाद क़िब्ला से मुड़ना इमाम के लिए सुन्नत है।	मुसलमानों के गिरोह में से कुछ दुआ करें और कुछ आमीन कहें तो उनकी दुआ मक़बूल है।	
क़िब्ला रुख बैठना सर्वसम्मति से मकरूह है।	356 उलमा ने मुसलमानों के मजमे को क़बूलियत के औक़ात में शुमार किया है।	523
जिन नमाज़ों के बाद सुन्नतें हैं उनमें लंबी दुआ बेहतर नहीं और इसी तरह जब मुक्तदियों पर भारी गुज़रे।	356 मुसलमानों के मजमे का क़बूलियत के औक़ात में से होना हदीस-ए-सहाह से साबित है।	523
दुआ के इंतज़ार में मुक्तदियों का बैठे रहना ज़रूरी नहीं।	356 जितना मजमा बड़ा होगा, उतनी ही क़बूलियत की उम्मीद ज़ाहिर होगी।	523
दोनों ख़ुतबों के बीच दुआ माँगना जायज़ है या नहीं।	396 नमाज़ (के अज़कार) पर इक्तिसार करना हरगिज़ शरई तौर पर मतलूब नहीं।	523
	नमाज़ के बाद हाथ उठा कर दुआ न माँगने वाले की नमाज़ नाक़िस (अधूरी) है।	523

موضوع / ذیلی عنوان حوالہ		تفصیل / حکم صفحہ	
احکام مسبوق		نماز عیدین کے بعد تابعین عظام اور مجتہدین اعلام رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے ثابت ہے۔	۵۱۱
سجدہ سہو کے لئے امام سلام کرے تو مسبوق بھی سلام کرنے میں شریک ہوگا یا نہیں۔	۱۹۱	علماء بشہادت حدیث نماز مطلق کے بعد دعا مانگنے کو آداب سے گنتے ہیں۔	۵۱۶
مسبوق، سجدہ سہو کا سلام نہ کرے۔	۱۹۱	مطلوب کی دعا نماز ذات رکوع و سجود کے بعد واقع ہونا آداب سے ہے۔	۵۱۷
ذکر الٰہی		دعا کا محل عملِ صالح سے فراغت کے بعد ہے۔	۵۱۸
تکثیر ذکر الٰہی پر دلائل۔	۵۳۵	بعد فراغ محلیت دعا فرائض سے خاص نہیں۔	۵۱۹
ہر دعا بالبداہتہ ذکر الٰہی ہے۔	۵۳۵	نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم نے ہر دو رکعت نفل کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کا حکم دیا۔	۵۱۹
تکثیر ذکر سے متعلق احادیث۔	۵۳۵	دعا مانگنے کا مستحسن طریقہ۔	۵۱۹

موضوع / ذیلی عنوان	حوالہ	تفصیل / حکم	صفحہ
ذکر الٰہی اتنی کثرت سے کرو کہ لوگ مجنون بتائیں۔	۵۳۵	رات کے نصف اخیر میں اور فرض نمازوں کے بعد دعا زیادہ سنی جاتی ہے۔	۵۲۰
جو ذکر الٰہی کی کثرت نہ کرے وہ ایمان سے بیزار ہوگیا۔	۵۳۶	مظان اجابت دعا کی تحری مسنون و محبوب ہے۔	۵۲۲
آدابِ دعا		تحری مذکور پر قرآن و حدیث سے دلائل۔	۵۲۲
جمعہ اور ہر نماز کے بعد قبلہ سے انحراف امام کے لئے سنت ہے۔	۳۵۶	گروہ مسلمین میں سے بعض دعا کریں اور بعض آمین کہیں تو ان کی دعا مقبول ہے۔	۵۲۳
قبلہ رو بیٹھنا بالاجماع مکروہ ہے۔	۳۵۶	علماء نے مجمع مسلمین کو اوقات اجابت سے شمار کیا ہے۔	۵۲۳
جن نمازوں کے بعد سنتیں ہیں طویل دعا بہتر نہیں اور یونہی جبکہ مقتدیوں پر گراں گزرے۔	۳۵۶	مجمع مسلمین کا اوقات اجابت سے ہونا حدیث صحاح سے ثابت ہے۔	۵۲۳
دعا کے انتظار میں مقتدیوں کو بیٹھنا ضروری نہیں۔	۳۵۶	جس قدر مجمع کثیر ہوگا اسی قدر امید اجابت ظاہر تر ہوگی۔	۵۲۳
دونوں خطبہ کے مابین دعا مانگنا جائز ہے یا نہیں۔	۳۹۶	دعاء نماز پر اقتصار ہرگز شرعاً مطلوب نہیں۔	۵۲۳
			۵۲۳

موضوع / ذیلی عنوان حوالہ	تفصیل / حکم صفحہ
بعد نماز ہاتھ اٹھا کر دعا نہ مانگنے والے کی نماز ناقص ہے۔	Page 45 of 673

Fatawa Razawiyya (Volume 8)

- Tasbih in prostration is also a prayer. (523) | How to pay expiation (Kaffara) for the deceased if there is no wealth or it is insufficient. (165)
- Allah says that in the gathering of Eid, whatever you ask for the Hereafter, I will grant it. (526) | Who is entitled to the expiation for missed prayers (Qadha Namaz). (165)
- If a prayer related to worldly things is not accepted, then an equivalent affliction is averted, or that prayer is stored for the Day of Judgment, which is better for the servant in any case. (526) | The method of paying expiation on behalf of the deceased. (166)
- Supplicating when leaving a good gathering is for the preservation and protection of that goodness. (525) | Giving the Holy Quran as expiation does not fulfill the entire expiation; rather, only as much as the value of the Holy Quran is fulfilled. (175)
- Dua is absolutely among the greatest religious recommendations and most exalted Sharia requirements. (530) | Rulings regarding graves.
- Eleven noble Hadiths regarding the emphasis and increase of Dua and the warning on abandoning it. (532) | It is forbidden to level graves and include them in a mosque. (113)
- Qadha-e-Umri | How is it to level over graves and build a mosque. (122)
- One way of performing Qadha-e-Umri on behalf of the deceased. (152) | Itikaf (Seclusion in mosque).
- An incorrect method of Qadha-e-Umri. (155) | It is certainly permissible for one in Itikaf to come, go, and sit in the courtyard of the mosque. (60)
- The method of praying Qadha-e-Umri and the intention for it. (157) | It is permissible for one in Itikaf to sleep in the mosque, and regarding those not in Itikaf, there is disagreement among scholars; research of the author. (92)
- The method of performing Qadha-e-Umri. (163) | The correct view is that it is not permissible for others besides those in Itikaf to eat or drink in the mosque. (95)
- Heela-e-Isqat (A legal device to waive off obligations). | The one in Itikaf should eat and drink carefully in the mosque. (96)
- If there is an obligation of expiation for prayers and fasts upon the deceased, and the gift of the Holy Quran is given to a poor person as expiation, will the expiation be fulfilled or not? (144) | Beliefs and Theology.

- Denying the finality of prophethood is disbelief (Kufr). (76)

फतावा रज़विया (जिल्द 8)

- सजदे की तस्बीह भी एक दुआ है। (523) | यदि मृतक के कफ़ारे की अदायगी के लिए धन न हो या कम हो, तो कफ़ारा कैसे अदा किया जाए। (165)
- अल्लाह का फरमान है कि ईद के मजमे में आखिरत के लिए जो मांगोगे, वह मैं तुम्हें अता करूँगा। (526) | कज़ा नमाज़ के कफ़ारे का हकदार कौन है। (165)
- यदि दुनियावी चीज़ों से संबंधित दुआ स्वीकार न हो, तो उसके बराबर की बला टाल दी जाती है या वह दुआ कयामत के दिन के लिए जमा कर दी जाती है, जो बंदे के लिए हर हाल में बेहतर है। (526) | मृतक की ओर से कफ़ारा अदा करने का तरीका। (166)
- खैर (भलाई) की मजलिस से उठते समय दुआ करना उस खैर की हिफाजत और निगेहदाश्त के लिए है। (525) | कफ़ारे में कुरान शरीफ देने से पूरा कफ़ारा अदा नहीं होता, बल्कि कुरान शरीफ का जो हदिया है, उतना ही अदा होगा। (175)
- दुआ मुतलकन अज़म मंदूबात-ए-दीनिया और अजल मतलूबात-ए-शरईया में से है। (530) | कब्रों के अहकाम।
- दुआ की ताकीद व तकसीर और दुआ छोड़ने पर वईद (धमकी) से संबंधित ग्यारह अहादीस-ए-करीमा। (532) | कब्रों को बराबर करके मस्जिद में शामिल कर देना हराम है। (113)
- कज़ा-ए-उमरी | कब्रों को पाटकर मस्जिद बनाना कैसा है। (122)
- मृतक की ओर से कज़ा-ए-उमरी अदा करने की एक सूरत। (152) | एतिकाफ।
- कज़ा-ए-उमरी का एक गलत तरीका। (155) | एतिकाफ करने वाले का मस्जिद के सहन में आना-जाना और बैठना यकीनन जायज़ है। (60)
- कज़ा-ए-उमरी पढ़ने का तरीका और उसकी नियत। (157) | मस्जिद में मोतकिफ (एतिकाफ करने वाले) का सोना जायज़ है और गैर-मोतकिफ के बारे में उलेमा का इख्तिलाफ है; मुसन्निफ (लेखक) की तहकीक। (92)
- कज़ा-ए-उमरी अदा करने का तरीका। (163) | सही यह है कि मोतकिफ के अलावा दूसरों को मस्जिद में खाना-पीना जायज़ नहीं है। (95)
- हीला-ए-इसकात | मोतकिफ मस्जिद में एहतियात से खाए-पिए। (96)
- यदि मृतक के जिम्मे नमाज़ और रोज़ा का कफ़ारा हो और कफ़ारे में कुरान शरीफ का हदिया मिस्कीन को दिया जाए, तो कफ़ारा अदा होगा या नहीं। (144) | अकाइद व कलाम।

• खत्म-ए-नबुवत का इंकार कुफ्र है। (76)

पृष्ठ 46/673

فتاویٰ رضویہ (جلد ہشتم)

- تسبیح سجود بھی دعا ہے۔ (۵۲۳) | میت کے کفارہ ادا کرنے کے لئے مال نہ ہو یا کم ہو تو کفارہ کیسے ادا ہو۔ (۱۶۵)
- اللہ کا فرمان ہے کہ مجمع عید میں آخرت کے لئے جو مانگو گے عطا کروں گا۔ (۵۲۶) | قضا نماز کے کفارہ کا مستحق کون ہے۔ (۱۶۵)
- اگر دنیاوی اشیاء سے متعلق دعا قبول نہ ہو تو اس کے برابر بلا دفع کی جاتی ہے یا وہ دعا روز قیامت کے لئے ذخیرہ رکھی جاتی ہے جو بندہ کے لئے بہر صورت بہتر ہے۔ (۵۲۶) | میت کی جانب سے کفارہ ادا کرنے کا طریقہ۔ (۱۶۶)
- جلسہ خیر سے اٹھتے وقت دعا کرنا خیر کے حفظ و نگہداشت کے لئے ہے۔ (۵۲۵) | کفارہ میں قرآن شریف دینے سے پورا کفارہ ادا نہیں ہوتا بلکہ قرآن شریف جس ہدیہ کا ہے اتنا ہی ادا ہوگا۔ (۱۷۵)
- دعاء مطلقاً اعظم مندوبات دینیہ واجل مطلوبات شرعیہ سے ہے۔ (۵۳۰) | احکام قبور
- دعا کی تاکید و تکثیر اور ترک دعا پر تہدید سے متعلق گیارہ احادیث کریمہ۔ (۵۳۲) | قبروں کو ہموار کر کے مسجد میں شامل کر دینا حرام ہے۔ (۱۱۳)
- قضائے عمری | قبریں پاٹ کر مسجد بنانا کیسا ہے۔ (۱۲۲)
- میت کی جانب سے قضائے عمری ادا کرنے کی ایک صورت۔ (۱۵۲) | اعتکاف
- قضائے عمری کا ایک غلط طریقہ۔ (۱۵۵) | معتکف کو مسجد کے صحن میں آنا جانا بیٹھنا یقیناً روا ہے۔ (۶۰)

- قضائے عمری کے پڑھنے کا طریقہ اور اس کی نیت۔ (۱۵۷) | مسجد میں معتکف کو سونا جائز ہے اور غیر معتکف کے بارے میں علماء کا اختلاف ہے مصنف کی تحقیق۔ (۹۲)
- قضائے عمری ادا کرنے کا طریقہ۔ (۱۶۳) | صحیح یہ ہے کہ معتکف کے سوا دوسروں کو مسجد میں کھانا پینا جائز نہیں۔ (۹۵)
- حیلہ اسقاط | معتکف مسجد میں احتیاط سے کھائے پیئے۔ (۹۶)
- میت کے ذمہ نماز و روزہ کا کفارہ ہو اور کفارہ میں قرآن شریف کا ہدیہ مسکین کو دیا جائے تو کفارہ ادا ہو گا یا نہیں۔ (۱۴۴) | عقائد و کلام
- ختم نبوت کا انکار کفر ہے۔ (۷۶)

Volume 8 Fatawa Rizvia

- The ruling of disbelief applies to the non-conformists of this era. (75)
- Lexicography
- "Bayna Yaday" (in front) is true for the opposite direction up to the limit of direction. (500)
- A person does not become a disbeliever by leaving prayer, fasting, Hajj, etc., however, making up for them is obligatory. (163)
- Explanation of the meaning of "Bayna Yaday" and mention of evidence for it from the Quran and Hadith. (500)
- There is a consensus on a good innovation (Bid'at-e-Hasana) being recommended. (420)
- Gathering of people to celebrate the Mawlid (Birth) of the Prophet (peace and blessings be upon him) is a good innovation and recommended. (420)
- Benefits from Hadith
- In the Hadith "qad ta'adda" (he has transgressed), transgression is interpreted as a transgression in belief. (422)
- Addition to the Sunnah is disliked if done with the belief that it is Sunnah, not with the belief of permissibility or recommendation. (421)
- The existing is not linked with the non-existent. (425)
- Explanation of those Hadiths in which the word "in the mosque" (fil masjid) appeared with Adhan. (502)
- The prayer of Qadianis is void. (466)
- It is inferred from Hadith that the time after prayers is absolutely a place for supplication. (516)
- Calling Muslims polytheists and innovators without reason is absolutely forbidden by consensus. (485)
- It is inferred from Hadith that after the Eid prayer, Allah Almighty Himself demands supplication from Muslims. (527)
- Many innovations are permissible. (620)
- Takhrij (referencing) and explanation of the Hadith from Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her) regarding the emphasis on supplication after every gathering. (527)
- Despite being an innovation, the Farewell Sermon (Khutba al-Wada) is permissible and carries reward. (620)

- Argument from the general wording and the intended meaning of the Hadith of the Mother of the Believers, Sayyidah Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her), for the emphasis on supplication after a prayer gathering. (529)
- One who calls the Wujudi and Shuhudi people innovators is ignorant, unaware, and deserves blame. (620)
- The Hadith that demonstrates the separation between prayer and sermon, and between sermon and return. (545)
- The practice of 'Shughl-e-Barzakh' is not polytheism or misguidance. (620)
- In the virtues of deeds (Faza'il al-A'mal), a weak Hadith is accepted by consensus and is sufficient for establishing recommendability. (549)

खंड 8 फ़तावा रज़विया

- युग के गैर-मुक़ल्लिदीन पर कुफ़्र का हुक्म है। (75)
- शब्दकोश
- "बैन यदै" (सामने) विपरीत दिशा में दिशा की सीमा तक सत्य है। (500)
- नमाज़, रोज़ा, हज आदि छोड़ने से व्यक्ति काफ़िर नहीं होता, हालाँकि उनकी कज़ा उस पर फ़र्ज़ है। (163)
- "बैन यदै" के अर्थ की व्याख्या और उस पर कुरान और हदीस से प्रमाणों का उल्लेख। (500)
- बिदअत-ए-हसना (अच्छी नवीनता) के मंदूब (पसंदीदा) होने पर आम सहमति है। (420)
- जश्न-ए-मिलाद-उन-नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मनाने के लिए लोगों का इकट्ठा होना बिदअत-ए-हसना और मंदूब है। (420)
- हदीस के लाभ
- हदीस "क़द ता'अद्दा" में उल्लंघन को विश्वास के उल्लंघन के रूप में समझा जाता है। (422)
- सुन्नत पर अतिरिक्त वृद्धि वह मकरूह है जो सुन्नत के विश्वास के साथ हो, न कि अनुमेयता या पसंदगी के विश्वास के साथ। (421)
- अस्तित्ववान का गैर-अस्तित्ववान के साथ संबंध नहीं होता। (425)
- उन हदीसों की व्याख्या जिनमें अज़ान के साथ "मस्जिद में" (फ़िल मस्जिद) शब्द आया है। (502)
- क़ादियानियों की नमाज़ बातिल (अमान्य) है। (466)
- हदीसों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नमाज़ के बाद का समय पूर्ण रूप से दुआ का स्थान है। (516)
- मुसलमानों को बिना वजह मुशरिक और बिदअती कहना सर्वसम्मति से पूर्णतः हराम है। (485)
- हदीस से यह निष्कर्ष निकलता है कि ईद की नमाज़ के बाद अल्लाह स्वयं मुसलमानों से दुआ की माँग करता है। (527)
- बहुत सी बिदअतें जायज़ (वैध) हैं। (620)
- हर सभा के बाद दुआ के आग्रह से संबंधित सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ि.) की हदीस का तख़रीज (संदर्भ) और व्याख्या। (527)

- विदाई खुतबा (ख़ुत्बतुल वदा) बिदअत होने के बावजूद जायज़ और सवाब (पुण्य) का काम है। (620)
- नमाज़ की सभा के बाद दुआ के आग्रह पर उम्मुल मोमिनीन सैयदा आयशा सिद्दीका (रज़ि.) की हदीस के शब्दों की व्यापकता और अर्थ की गवाही से तर्क। (529)
- वुजूदी और शुहूदी महापुरुषों को बिदअती कहने वाला अज्ञानी, अनजान और निंदा के योग्य है। (620)
- वह हदीस जो नमाज़ और खुतबे के बीच, और खुतबे और वापसी के बीच अंतर को दर्शाती है। (545)
- 'शुग़्ल-ए-बरज़ख' शिर्क या गुमराह नहीं है। (620)
- 'फ़ज़ाइल-ए-अमाल' (कार्यों के गुण) में ज़ईफ़ (कमज़ोर) हदीस सर्वसम्मति से स्वीकार्य है और मुस्तहब (पसंदीदा कार्य) साबित करने के लिए पर्याप्त है। (549)

पृष्ठ 47/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

- غیر مقلدین زمانہ پر حکم کفر ہے۔ ۷۵
- لغت
- بین یدی سمت مقابل میں منتہائے جہت تک صادق ہے۔ ۵۰۰
- نماز، روزہ، حج وغیرہ کے چھوڑنے سے آدمی کافر نہیں ہوتا البتہ ان کی قضا اس پر فرض ہے۔ ۱۶۳
- بین یدی کے معنی کی وضاحت اور اس پر قرآن و حدیث سے شواہد کا ذکر۔ ۵۰۰
- بدعت حسنہ کے مندوب ہونے پر اتفاق ہے۔ ۴۲۰
- جشن میلاد النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم منانے کے لئے لوگوں کا جمع ہونا بدعت حسنہ اور مندوب ہے۔ ۴۲۰
- فوائد حدیثیہ
- حدیث "قد تعدیٰ" میں تعدی اعتقاد پر محمول ہے۔ ۴۲۲
- زیادۃ علی السنہ وہ مکروہ ہے جو باعتقاد سنت ہو نہ کہ باعتقاد اباحت وندب۔ ۴۲۱
- موجود معدوم کے ساتھ مرتبط نہیں ہوتا۔ ۴۲۵
- ان احادیث کی تشریح جن میں اذان کے ساتھ فی المسجد کا لفظ آیا ہے۔ ۵۰۲
- قادیانیوں کی نماز باطل ہے۔ ۴۶۶
- احادیث سے ادبار صلوات کا مطلقاً محل دعا ہونا مستفاد ہے۔ ۵۱۶
- مسلمانوں کو بلاوجہ شرک و بدعتی کہنا بالاجماع حرام قطعی ہے۔ ۴۸۵

- حدیث سے مستفاد ہے کہ بعد نماز عید خود اللہ تعالیٰ مسلمانوں سے دعا کا تقاضا فرماتا ہے۔ ۵۲۷
- بہت سی بدعات جائز ہیں۔ ۶۲۰
- ہر جلسہ کے بعد دعا کی تاکید سے متعلق حدیث سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کی تخریج و تشریح۔ ۵۲۷
- خطبة الوداع بدعت ہونے کے باوجود جائز و ثواب ہے۔ ۶۲۰
- جلسہ صلوات کے بعد تاکید دعاء پر حدیث اُم المومنین سیدہ عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کے عموم لفظ اور شہادت معنی سے استدلال۔ ۵۲۹
- وجودیہ شہودیہ حضرات کو بدعتی کہنے والا جاہل و ناواقف اور قابل ملامت ہے۔ ۶۲۰
- وہ حدیث جو نماز و خطبہ اور خطبہ و معاودت میں فصل کا اظہار کرتی ہے۔ ۵۴۵
- شغل برزخ شرک و گمراہی نہیں۔ ۶۲۰
- فضائل اعمال میں حدیث ضعیف بالاجماع مقبول اور اثبات استحباب میں کافی و وافی ہے۔ ۵۴۹

صفحہ 47/673

Fatawa Razawiyya - Volume 8

- If there is a conflict between verbal (qawli) and practical (fe'li) Hadiths, the verbal one will be acted upon. | Page 108

Seerat-un-Nabi (Peace be upon him) - The Prophet (peace be upon him) raising his blessed hands during the sermon itself to pray for rain on one Friday and for the clouds to clear from Medina on the next Friday is narrated from the Hadith of Anas (may Allah be pleased with him) in Sahih Bukhari and Muslim, etc. | 774 | Relying on non-specific generalities depends on research and analysis. | Page 417 - The Prophet (peace be upon him) offered Eid prayers for nine years. | 542 | The author's research discussion on the word "Ba'dh" (some) in Imam Ibn Hajar's statement "Ba'dhuhum Bahatha" (Some of them discussed). | Page 418 - Siddiq, Farooq, and Uthman Ghani (may Allah be pleased with them) used to start the sermon some time after completing the Eid prayer salam. | 543 | Discussion on a person of unknown status (Majhul al-Hal); an unknown source is not reliable. | Page 419

Asma-ur-Rijal (Biographical Evaluation) - A mere follower (muqallid) can neither pass judgment based on his own research nor can his research be an authoritative proof for another. | Page 419 - Muhammad bin al-Sabah al-Bazzar is truthful (Saduq). | 546 | Imitating an imitator (taqlid of a muqallid) is consensusly void. | Page 419 - Muhammad bin Yahya bin Ayyub is reliable (Thiqah). | 546 | Mere novelty is not a Sharia reason for prohibition. | Page 419 - Hadbah bin Abdul Wahab is truthful (Saduq). | 546 | The essence of innovation (bid'at) does not necessarily imply ugliness and heinousness. | Page 420 - Umar bin Rafi al-Bajali is reliable (Thiqah). | 546 | The necessity of ambiguity in Sunnah implies lack of constancy, not constancy in abandonment. | Page 423 - Fadhl bin Musa is reliable (Thiqah). | 547 | For permissibility, the absence of a Sharia prohibition is sufficient evidence. | Page 477

Fawaid-e-Usooliyah (Principles of Jurisprudence) - Only that is forbidden which Allah the Almighty and His Messenger (peace be upon him) have forbidden. | Page 477 - A matter upon which the common practice and actions of Muslims in all lands bear witness needs no further proof. | 60 | Without the prohibition of Allah and His Messenger, no thing can ever be forbidden. | Page 477 - Whoever claims contrary to established practice must bring proof for their claim. | 60 | Standing or not standing on a mount cannot negate the Sunnah of supplication (Du'a). | Page 515 - Whatever the Sharia has not forbidden can never be prohibited. | Page 515

फतावा रज़विया - जिल्द अष्टम (Volume 8)

- यदि क़ौली (मौखिक) और फ़ेली (क्रियात्मक) हदीसों में विरोध हो, तो क़ौली पर अमल किया जाएगा। | पृष्ठ 108

सीरत-उन-नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) - हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का खुतबे के बीच में अपने मुबारक हाथ उठाकर एक जुमे को बारिश होने और दूसरे जुमे को मदीना तैयबा से बादल हट जाने की दुआ मांगना, सहीह बुखारी और मुस्लिम आदि में हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से वर्णित है। | 774 | गैर-विशिष्ट सामान्यताओं पर भरोसा करना शोध और विश्लेषण पर निर्भर है। | पृष्ठ 417 - हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने नौ साल ईद की नमाज़ें पढ़ीं। | 542 | इमाम इब्न हजर के कथन "बहसा बाज़ुहुम" में शब्द "बाज़" पर लेखक की शोध चर्चा। | पृष्ठ 418 - सिद्दीक़, फ़ारूक़ और उस्मान गनी (रज़ियल्लाहु अन्हुम) ईद की नमाज़ का सलाम फेरने के कुछ देर बाद खुतबा शुरू फरमाते थे। | 543 | अज्ञात स्थिति (मजहूल अल-हाल) की चर्चा; अज्ञात स्रोत विश्वसनीय नहीं है। | पृष्ठ 419

अस्मा-उर-रिजाल (जीवनी मूल्यांकन) - एक शुद्ध अनुयायी (मुक़ल्लिद) न तो अपने स्वयं के शोध पर निर्णय दे सकता है और न ही उसका शोध दूसरे के लिए प्रमाण हो सकता है। | पृष्ठ 419 - मुहम्मद बिन अल-सबा अल-बज़ार सच्चा (सदूक) है। | 546 | एक मुक़ल्लिद का अनुसरण (तक्लीद) करना सर्वसम्मति से अमान्य है। | पृष्ठ 419 - मुहम्मद बिन यहया बिन अय्यूब विश्वसनीय (सिक़ा) है। | 546 | केवल नवीनता शरीयत में निषेध का कारण नहीं है। | पृष्ठ 419 - हदबा बिन अब्दुल वहाब सच्चा (सदूक) है। | 546 | बिदअत (नवाचार) का होना स्वयं बुराई और घृणितता का अनिवार्य प्रमाण नहीं है। | पृष्ठ 420 - उमर बिन राफ़े अल-बजली विश्वसनीय (सिक़ा) है। | 546 | सुन्नत में अस्पष्टता की आवश्यकता निरंतरता की कमी को दर्शाती है, न कि त्याग पर निरंतरता को। | पृष्ठ 423 - फ़ज़ल बिन मूसा विश्वसनीय (सिक़ा) है। | 547 | अनुमति के लिए, शरीयत में निषेध का न होना ही पर्याप्त प्रमाण है। | पृष्ठ 477

फ़वाइद-ए-उसूलीय्या (न्यायशास्त्र के सिद्धांत) - केवल वही वर्जित है जिसे अल्लाह तआला और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मना फरमाया हो। | पृष्ठ 477 - जिस मसले पर सभी शहरों में आम मुसलमानों का व्यवहार और कार्य साक्षी हों, वह प्रमाण का मोहताज नहीं है। | 60 | अल्लाह और रसूल के निषेध के बिना, कोई भी चीज़ कभी वर्जित नहीं हो सकती। | पृष्ठ 477 - जो

प्रचलित व्यवहार के विरुद्ध दावा करे, उसे अपने दावे का प्रमाण लाना चाहिए। | 60 | सवारी पर रुकना या न रुकना दुआ की सुन्नत का खंडन नहीं कर सकता। | पृष्ठ 515 - जिस बात से शरीयत ने मना नहीं किया, वह कभी वर्जित नहीं हो सकती। | पृष्ठ 515

पृष्ठ 48 of 673

فتاویٰ رضویہ - جلد ہشتم

• قولی و فعلی حدیثوں میں تعارض ہو تو قولی پر عمل ہوگا۔ | صفحہ ۱۰۸

سیرتِ النبی صلی اللہ علیہ وسلم - حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا عین خطبہ میں دست مبارک بلند فرما کر ایک جمعہ کو مینہ برسنے اور دوسرے جمعہ کو مدینہ طیبہ پر سے کھل جانے کی دعا مانگنا صحیح بخاری و مسلم وغیرہ ہما میں حدیث انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے۔ | ۷۷۴ | کلیات نا مخصوصہ سے استناد بحث و نظر پر موقوف نہیں۔ | صفحہ ۴۱۷ - حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے نو برس عید کی نمازیں پڑھی ہیں۔ | ۵۴۲ | امام ابن حجر کے قول "بحث بعضهم" میں لفظ بعض پر مصنف کی تحقیقی بحث۔ | صفحہ ۴۱۸ - صدیق وفاروق و عثمان غنی رضی اللہ تعالیٰ عنہم نماز عیدین کا سلام پھیر کر کچھ دیر کے بعد خطبہ شروع فرماتے۔ | ۵۴۳ | مجهول الحال کی بحث، مجہول الماخذ قابل استناد نہیں۔ | صفحہ ۴۱۹

اسماء الرجال - مقلد محض نہ خود اپنی بحث پر حکم لگا سکتا ہے نہ دوسرے پر اس کی بحث حجت ہو سکتی ہے۔ | صفحہ ۴۱۹ - محمد بن الصباح البزار صدوق ہے۔ | ۵۴۶ | تقلید مقلد اجماعاً باطل ہے۔ | صفحہ ۴۱۹ - محمد بن یحییٰ بن ایوب ثقہ ہے۔ | ۵۴۶ | مجرد حدوث شرعاً دلیل منع نہیں۔ | صفحہ ۴۱۹ - ہدیہ بن عبدالوہاب صدوق ہے۔ | ۵۴۶ | نفس بد عیت مستلزم قبح و شناعت نہیں۔ | صفحہ ۴۲۰ - عمر بن رافع البجلی ثقہ ہے۔ | ۵۴۶ | لزوم ابہام سنیت، عدم مداومت کا مقتضی ہے نہ کہ مداومت علی الترک کا۔ | صفحہ ۴۲۳ - فضل بن موسیٰ ثقہ ہے۔ | ۵۴۷ | جواز کے لئے نہی شرعی کا نہ ہونا ہی سند کافی ہے، | صفحہ ۴۷۷

فوائد اصولیہ - ممنوع وہی ہے جسے اللہ تعالیٰ اور اس کا رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم منع فرمائیں۔ | صفحہ ۴۷۷ - جس مسئلہ پر تمام بلاد میں عام مسلمین کے تعامل و افعال شاہد عدل ہوں وہ محتاج دلیل نہیں۔ | ۶۰ | خدا اور رسول کی نہی کے بغیر ہر گز کوئی شئی ممنوع نہیں ہو سکتی۔ | صفحہ ۴۷۷ - جو دعویٰ خلاف تعامل کرے اپنے دعوے پر دلیل لائے۔ | ۶۰ | راحلہ پر وقوف و عدم وقوف سنت دعا کی نفی نہیں کر سکتا۔ | صفحہ ۵۱۵ - جس امر سے شرع نے منع نہ فرمایا ہو ہر گز ممنوع نہیں ہو سکتا۔ | صفحہ ۵۱۵

Fatawa Razawiyya, Volume Eight

- A specific proof for obligatory and supererogatory acts is exactly a specific proof for mandatory requirements. (521)
- Every remembrance (dhikr) is a supplication (dua). (523)
- When an indefinite noun appears in a conditional context, it is general, and when it appears in a resultative context, it is specific. (529)
- When an indefinite noun comes under negation, it is general, and when it comes in affirmation, it is specific. (529)
- Conditional names are general in all cases. (529)
- A claim of specification without a specifier is purely rejected and invalid. (529)
- The greater the good, the more important its preservation. (529)
- Who else can specify or restrict something that Allah and His Messenger (peace and blessings be upon him) have kept general and absolute? (534)
- Who else can forbid something that Allah and His Messenger (peace and blessings be upon him) have not forbidden? (535)
- It is not permissible to exceed what Allah has specified for a particular form and place. (535)
- Whatever Allah has left general and unrestricted will never be fixed to any particular form or place. (535)
- General permissions for remembrance are exactly the general permissions for supplication. (535)
- There is a world of difference between "no" and "not seen". (539)
- Not seeing cannot be a proof for non-existence. (540)
- The 'fa' of consequence does not indicate actual immediate connection. (540)
- Subordinates are not redundant. (541)

[Column 2] - It is possible for multiple hadiths to be applied to multiple incidents. (522) - There is no generality for current events. (522) - Abandoning virtue is contrary to obligation and necessity. (522) - The word 'thumma' requires an interval and delay. (523) - 'Thumma' sometimes occurs metaphorically even in a state of no delay. (525) - For the one seeking proof, a possibility is not enough, especially if it's against the original principle. (526) - 'Fa' sometimes comes merely for sequence, without the meaning of immediate connection and consequence. (533) - In one aspect, speech is superior and more perfect than action. (529) - By consensus and agreement of reason and transmission, an absolute ruling remains applicable in all its specificities. (529) - Explanation of the meaning of an absolute ruling. (529) - Unless there is a

Sharia exception, all characteristics and determinations are included in the absolute ruling. (529) - Non-discovery does not necessitate non-existence. (550) - The absence of transmission is not the transmission of absence. (550) - The absence of transmission does not negate existence. (551) - Failure to prove does not imply proof of non-existence. (551) - Many times hadith narrators leave out famous and well-known matters, but that omission is not proof of non-existence. (551)

फतावा रज़विया, जिल्द आठवीं

- फ़र्ज़ और नफ़्ल के लिए विशेष प्रमाण अनिवार्यताओं के लिए विशेष प्रमाण है। (521)
- हर ज़िक्र दुआ है। (523)
- जब शर्त के संदर्भ में कोई अनिश्चित संज्ञा (नकिरा) आती है तो वह सामान्य होती है, और जब वह फल (जज़ा) में आती है तो वह विशिष्ट होती है। (529)
- जब अनिश्चित संज्ञा निषेध के अंतर्गत आती है तो वह सामान्य होती है, और जब वह सकारात्मक संदर्भ में आती है तो वह विशिष्ट होती है। (529)
- शर्तिया संज्ञाएं सभी स्थितियों में सामान्य होती हैं। (529)
- बिना किसी विशिष्ट करने वाले कारक के विशिष्टता का दावा पूरी तरह से अस्वीकार्य और अमान्य है। (529)
- भलाई जितनी बड़ी होगी, उसका संरक्षण उतना ही महत्वपूर्ण होगा। (529)
- जिसे अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने सामान्य और निरपेक्ष रखा है, उसे विशिष्ट या सीमित करने वाला दूसरा कौन है? (534)
- जिस चीज़ से अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मना नहीं किया, उससे मना करने वाला दूसरा कौन है? (535)
- अल्लाह ने जिसे किसी विशेष रूप और स्थान के लिए विशिष्ट किया है, उससे आगे बढ़ना जायज़ नहीं है। (535)
- अल्लाह ने जिसे निरपेक्ष और खुला रखा है, वह कभी भी किसी विशेष रूप या स्थान पर निर्धारित नहीं होगा। (535)
- ज़िक्र की सामान्य अनुमति के प्रमाण ही वास्तव में दुआ की सामान्य अनुमति के प्रमाण हैं। (535)
- "नहीं" और "नहीं देखा" में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। (539)
- न देखना न होने का प्रमाण नहीं हो सकता। (540)
- अनुवर्ती 'फ़ा' (فاء) वास्तविक जुड़ाव का संकेत नहीं देता। (540)
- अधीनस्थ चीज़ें व्यर्थ नहीं होतीं। (541)

[स्तंभ 2] - अनेक हदीसों को अनेक घटनाओं पर आधारित माना जा सकता है। (522) - वर्तमान घटनाओं के लिए कोई सामान्यता नहीं है। (522) - परोपकार को छोड़ना अनिवार्यता और

आवश्यकता के विपरीत है। (522) - 'थुम्मा' (ثم) अंतराल और देरी की मांग करता है। (523) - 'थुम्मा' कभी-कभी रूपक के रूप में बिना देरी की स्थिति में भी आता है। (525) - प्रमाण माँगने वाले के लिए केवल संभावना पर्याप्त नहीं है, विशेष रूप से मूल सिद्धांत के विरुद्ध। (526) - 'फ़ा' कभी-कभी केवल क्रम के लिए आता है, बिना जुड़ाव और अनुक्रम के अर्थ के। (533) - एक दृष्टि से, शब्द कार्य से श्रेष्ठ और अधिक पूर्ण है। (529) - तर्क और परंपरा की सहमति से, एक निरपेक्ष नियम अपनी सभी विशेषताओं के साथ लागू रहता है। (529) - निरपेक्ष नियम के अर्थ का वर्णन। (529) - जब तक कोई शरीयत अपवाद न हो, सभी विशेषताएं और निर्धारण निरपेक्ष नियम में शामिल होते हैं। (529) - पाया न जाना न होने को आवश्यक नहीं बनाता। (550) - वर्णन न होना न होने का वर्णन नहीं है। (550) - वर्णन न होना अस्तित्व को नकारता नहीं है। (551) - प्रमाण न होना अभाव का प्रमाण नहीं है। (551) - अक्सर हदीस के वर्णनकर्ता प्रसिद्ध और जानी-मानी बातों को छोड़ देते हैं, लेकिन वह चूक न होने का प्रमाण नहीं है। (551)

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

- فریضہ و نافلہ کے لئے ثبوت خاص بعینہ واجبات کے لئے ثبوت خاص ہے۔ (۵۲۱)
- ہر ذکر دعا ہے۔ (۵۲۳)
- نکرہ سیاق شرط میں واقع ہو تو عام اور جزا میں واقع ہو تو خاص ہوتا ہے۔ (۵۲۹)
- نکرہ نفی کے تحت آئے تو عام اور اثبات میں آئے تو خاص ہوتا ہے۔ (۵۲۹)
- اسماء شرط سب صورتوں کو عام ہوتے ہیں۔ (۵۲۹)
- ادعائے تخصیص بے مخصص محض مردود و باطل ہے۔ (۵۲۹)
- خیر جس قدر اعظم ہو اسی قدر اس کا حفظ اہم ہوتا ہے۔ (۵۲۹)
- خدا اور رسول جل مجدہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جس چیز کو عام و مطلق رکھا دوسرا اس کو مخصوص و مقید کرنے والا کون ہے۔ (۵۳۴)
- خدا اور رسول جل مجدہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جس چیز سے منع نہ فرمایا ہو دوسرا اس سے منع کرنے والا کون ہے۔ (۵۳۵)
- اللہ تعالیٰ نے جس چیز کو کسی ہیئت خاصہ اور محل معین سے مخصوص فرمایا اس سے تجاوز جائز نہیں۔ (۵۳۵)
- اللہ تعالیٰ نے جس چیز کو اطلاق و ارسال پر رکھا ہر گز کسی ہیئت و محل پر مقرر نہ ہوگی۔ (۵۳۵)
- اجازت عامہ ذکر کے دلائل بعینہا اجازت عامہ دعا کے دلائل ہیں۔ (۵۳۵)
- نہیں اور نہ دیکھا میں زمین و آسمان کا فرق ہے۔ (۵۳۹)
- نہ دیکھنا نہ ہونے کی دلیل نہیں ہوسکتا۔ (۵۴۰)

- فائے تعقیب اتصال حقیقی پر دال نہیں۔ (۵۴۰)
- توابع فاضل نہیں ہوتے۔ (۵۴۱)

[کالم ۲] - احادیث متعددہ کا وقائع متعددہ پر محمول ہونا ممکن ہے۔ (۵۲۲) - وقائع حال کے لئے عموم نہیں۔ (۵۲۲) - ترک مروہ وجوب و لزوم کے منافی ہوتا ہے۔ (۵۲۲) - ثم فاصلہ و مہلت چاہتا ہے۔ (۵۲۳) - ثم کبھی مجازاً بحالت عدم مہلت بھی آتا ہے۔ (۵۲۵) - مستدل کو احتمال کافی نہیں خصوصاً خلاف اصل۔ (۵۲۶) - فاء برہا مجرد ترتیب کے لئے آتی ہے بے معنی اتصال و تعقیب کے۔ (۵۳۳) - من وجہ قول فعل سے اعلیٰ و اتم ہے۔ (۵۲۹) - باجماع و اطباق عقل و نقل حکم مطلق اپنی تمام خصوصیات میں جاری و ساری ہوتا ہے۔ (۵۲۹) - اطلاق حکم کے معنی کا بیان۔ (۵۲۹) - جب تک شرعی استثناء نہ ہو تمام خصوصیات و تعینات حکم مطلق میں داخل ہوتے ہیں۔ (۵۲۹) - عدم وجدان عدم وجود کو مستلزم نہیں۔ (۵۵۰) - عدم نقل نقل عدم نہیں۔ (۵۵۰) - عدم نقل نافی وجود نہیں۔ (۵۵۱) - عدم ثبوت کو اثبات عدم لازم نہیں۔ (۵۵۱) - بارہا رواۃ حدیث امور مشہورہ و معروفہ کو چھوڑ جاتے ہیں مگر وہ ترک دلیل عدم نہیں ہوتا۔ (۵۵۱)

Fatawa Rizvia | Volume 8

- Absence of transmission (Naql) is not a prohibition. | 551
- Not doing something is one thing, and prohibiting it is another. | 551
- Merely the absence of transmission or the absence of action does not necessitate prohibition. | 551
- Resemblance with people of false sects is prohibited in only three cases. | 622
- Not existing in the early generations is not a proof for prohibition. | 625
- There are five types of innovation (Bid'at): forbidden (haram), obligatory (wajib), recommended (mandoob), disliked (makrooh), and permissible (mubah). | 625
- Any innovation that is not against the Book (Quran) and Sunnah is not blameworthy. | 625
- Writing names of Surahs and number of verses in the Mushaf (Quran) is an innovation, but it is a good innovation (Bid'at-e-Hasana). | 625
- Negation of being recommended (mandoob) does not prove it to be disliked (makrooh) (not even mildly disliked/tanzeehi). | 626
- The symbols of people of falsehood are to be avoided only as long as they remain their symbols; if they fall out of common practice and the act itself is permissible in Shariah, then it is no longer prohibited. | 634

Fiqhi Benefits - A mosque is the name of that plot of land which has been purely endowed (waqf) for the purpose of the five daily prayers. | 60 - Buildings, structures, roofs, etc., are not included in the essence of the mosque. | 60 - Denying the status of mosque for the courtyard (sehan) is against consensus (ijma'). | 62 - Observing the right of the mosque is more important and prior to following the congregation. | 62

- The 'Fanaa' (precinct/annex) is that which is adjacent to the mosque, not that which is adjacent to the 'Fanaa'. | 66
- If the definition of 'Fanaa' is made such that it is adjacent to the 'Fanaa', then a circular argument (daur) will become necessary. | 66
- Claiming that the concepts of 'Sehan' (courtyard) and 'Fanaa' are one and the same is sheer ignorance. | 66
- The courtyard of a mosque being part of the mosque is a clear and self-evident fact. | 67
- Scholars sometimes refer to the mosque courtyard as 'Masjid-e-Saifi' and sometimes as 'Masjid-al-Kharij'. | 70
- Many rulings and issues change with the difference in intention. | 98

- Definition of a city. | 274
- The definition of a city that if all residents upon whom Friday prayer is obligatory arrive, they cannot be accommodated in the mosque, is against the 'Zahir-ur-Riwayat' (manifest narrations). | 274
- Understanding the meanings of the words of the sermon (Khutba) is not a condition for the validity (sihat) of the Friday prayer. | 282
- Method of performing the precautionary Dhuhr (Zohar) prayer. | 294
- In Friday and Eid prayers, etc., if there is a large congregation, the prostration of forgetfulness (Sajda-e-Sahw) can be omitted. | 312
- What is called the 'Fanaa' of a city. | 363
- Precautionary Dhuhr (Zohar) is not for the general public. | 365
- Difference between Egypt (metropolis), villages, and cities. | 365
- Where there is no doubt about the validity of the Friday prayer, the precautionary Dhuhr is prohibited. | 398

- नक़्ल (प्रसारण) न होने का मतलब मनाही नहीं है। | ५५१
- किसी काम को न करना अलग बात है और उसे मना करना अलग बात है। | ५५१
- सिर्फ नक़्ल न होना या काम का न होना मनाही का कारण नहीं बनता। | ५५१
- बद-मज़हबों (गलत अकीदे वालों) से समानता केवल तीन स्थितियों में वर्जित है। | ६२२
- प्रारंभिक युगों में न होना मनाही की दलील नहीं है। | ६२५
- बिदअत (नवाचार) के पाँच प्रकार हैं: हराम, वाजिब, मन्दूब, मकरूह, मुबाह। | ६२५
- जो बिदअत किताब (कुरान) और सुन्नत के खिलाफ न हो, वह निंदनीय नहीं है। | ६२५
- मुसहफ (कुरान) में सूरतों के नाम और आयतों की संख्या लिखना बिदअत है, लेकिन बिदअत-ए-हसना (अच्छा नवाचार) है। | ६२५
- मन्दूबियत (सिफ़ारिश) के इनकार से मकरूह (नापसंद) होना साबित नहीं होता (तन्ज़ीही भी नहीं)। | ६२६
- गलत राह वालों (अहल-ए-बातिल) के प्रतीकों से तब तक बचना चाहिए जब तक वे उनके प्रतीक रहें; यदि उनका चलन समाप्त हो जाए और वह कार्य मूलतः शरीयत में जायज हो, तो अब उसकी मनाही नहीं है। | ६३४

फ़िक़्ही लाभ - मस्जिद उस ज़मीन के टुकड़े का नाम है जिसे पांच वक्त की नमाज़ के लिए विशुद्ध रूप से वक़्फ़ (दान) किया गया हो। | ६० - इमारतें, छत आदि मस्जिद की असलियत (माहियत) में शामिल नहीं हैं। | ६० - सहन (आंगन) को मस्जिद मानने से इंकार करना इज्मा (आम सहमति) के खिलाफ है। | ६२ - मस्जिद के अधिकार का सम्मान करना जमाअत के अनुसरण से अधिक महत्वपूर्ण और प्राथमिकता वाला है। | ६२

- फ़ना (परिसर) वह है जो मस्जिद से सटा हुआ हो, न कि वह जो फ़ना से सटा हुआ हो। | ६६
- यदि फ़ना की परिभाषा यह की जाए कि वह फ़ना से सटा हुआ है, तो इससे चक्रानुक्रम (दौर) अनिवार्य हो जाएगा। | ६६
- यह दावा करना कि सहन और फ़ना का अर्थ एक ही है, घोर अज्ञानता है। | ६६
- मस्जिद के सहन का मस्जिद का हिस्सा होना एक स्पष्ट और प्रत्यक्ष सत्य है। | ६७

- विद्वान कभी मस्जिद के सहन को 'मस्जिद-ए-सैफ़ी' और कभी 'मस्जिद-अल-ख़ारिज' कहते हैं। | ७०
- नियत (इरादे) के अंतर से बहुत से नियम और मुद्दे बदल जाते हैं। | ९८
- शहर की परिभाषा। | २७४
- शहर की यह परिभाषा कि यदि सभी निवासी जिन पर जुमा फ़र्ज़ है आ जाएँ तो वे मस्जिद में न समा सकें 'ज़ाहिर-उर-रिवायत' (प्रकट उल्लेखों) के विरुद्ध है। | २७४
- ख़ुत्बे के शब्दों के अर्थ समझना जुमा की नमाज़ के सही होने (सिहत) के लिए शर्त नहीं है। | २८२
- एहतियाती ज़ुहर (सावधानी वाली दोपहर की नमाज़) पढ़ने का तरीका। | २९४
- जुमा और ईदैन आदि में यदि बड़ी जमाअत हो तो सहू का सजदा (भूल का सजदा) छोड़ा जा सकता है। | ३१२
- शहर का फ़ना किसे कहते हैं। | ३६३
- एहतियाती ज़ुहर आम जनता के लिए नहीं है। | ३६५
- मिस्र (महानगर), गाँव और शहर का अंतर। | ३६५
- जहाँ जुमा के सही होने में कोई संदेह न हो, वहाँ एहतियाती ज़ुहर मना है। | ३९८

- نقل عدم نقل منع نہیں۔ | ۵۵۱
- نہ کرنا اور چیز ہے اور منع کرنا اور چیز۔ | ۵۵۱
- مجرد عدم نقل اور عدم فعل مستلزم ممانعت نہیں۔ | ۵۵۱
- بدمذہبوں سے مشابہت صرف تین صورتوں میں ممنوع ہے۔ | ۶۲۲
- قرون سابقہ میں نہ ہونا ممانعت کی دلیل نہیں۔ | ۶۲۵
- بدعت کی پانچ قسمیں ہیں: حرام، واجب، مندوب، مکروہ، مباح۔ | ۶۲۵
- جو بدعت کتاب و سنت کے خلاف نہ ہو وہ مذموم نہیں۔ | ۶۲۵
- مصحف (قرآن) میں سورتوں کے نام، آیتوں کی تعداد لکھنا بدعت ہے مگر بدعت حسنہ۔ | ۶۲۵
- مندوبیت کی نفی سے مکروہ ہونا ثابت نہیں ہوتا (تنزیہی بھی نہیں)۔ | ۶۲۶
- اہل باطل کا شعار اسی وقت تک قابل احتراز ہے جب تک ان کا شعار رہے، اگر ان سے رواج اٹھ گیا اور وہ امر فی نفسہ شرعاً جائز ہے تو اب اس سے ممانعت نہیں۔ | ۶۳۴

فوائد فقہیہ - مسجد اس بقعہ کا نام ہے جو بغرض نماز پنجگانہ وقف خالص کیا گیا ہو۔ | ۶۰ - عمارات و بنا یا سقف وغیرہ مسجد کی ماہیت میں داخل نہیں۔ | ۶۰ - مسجدیت، صحن سے انکار اجماع کے خلاف ہے۔ | ۶۲ - حق مسجد کی رعایت اتباع جماعت سے اہم واقدم ہے۔ | ۶۲

- فناء وہ ہے جو متصل بہ مسجد ہو نہ وہ کہ متصل بہ فناء ہو۔ | ۶۶
- اگر فناء کی تعریف یوں کی جائے کہ وہ متصل بہ فناء ہے تو اس سے دور لازم آئے گا۔ | ۶۶

- یہ ادعا کہ صحن و فناء کا مفہوم واحد ہے جہل شدید ہے۔ | ۶۶
- صحن مسجد کا جزء مسجد ہونا جلی بدیہیات ہے۔ | ۶۷
- صحن مسجد کو علماء کبھی مسجد صیفی اور کبھی مسجد الخارج سے تعبیر فرماتے ہیں۔ | ۷۰
- بہت احکام و مسائل نیت کے فرق سے بدل جاتے ہیں۔ | ۹۸
- شہر کی تعریف۔ | ۲۷۴
- شہر کی یہ تعریف کہ جمیع سکان جن پر جمعہ فرض ہے آجائیں تو مسجد میں نہ آ سکیں ظاہر الروایت کے خلاف ہے۔ | ۲۷۴
- خطبہ کے الفاظ کے معانی سمجھنا صحت جمعہ کے لئے شرط نہیں۔ | ۲۸۲
- احتیاطی ظہر پڑھنے کا طریقہ۔ | ۲۹۴
- جمعہ عیدین وغیرہ میں کثیر جماعت ہو تو سہو کا سجدہ چھوڑا جاسکتا ہے۔ | ۳۱۲
- فنائے شہر کس کو کہتے ہیں۔ | ۳۶۳
- احتیاطی ظہر عوام کے لئے نہیں ہے۔ | ۳۶۵
- مصر، قریٰ اور شہر کا فرق۔ | ۳۶۵
- جہاں جمعہ صحیح ہونے میں اشتباہ نہ ہو، وہاں احتیاطی ظہر منع ہے۔ | ۳۹۸

Fatawa Rizwiya Volume 8

Page | No. | Subject (Section 1) | No. | Subject (Section 2) | Page 541 | 417 | Where the word of a Mujtahid is available, scholars write the ruling with certainty. | 417 | Sunan are followers of the Fard (obligatory prayers). | 541 525 | 417 | If a non-Mujtahid scholar has discussed a matter, scholars do not write it with certainty; rather, they clearly state that it is the discussion of so-and-so or some, so that it is not known as something transmitted within the school of thought. | 417 | The claim of continuity in prayer and sermon, and between sermon and return is false, hence the argument based on the absence of prayer is wrong. | 525 565 | 417 | If any scholar writes the word of a non-Mujtahid with certainty, they are held accountable. | 417 | Definition and conditions of a Qazi. | 565 622 | 419 | Innovation (Bid'at) is sometimes forbidden, sometimes obligatory, sometimes recommended, sometimes disliked, and sometimes permissible. | 419 | What is contrary to the better (Khilaf-e-Aula) is not disliked (Makruh); it is permissible and allowed. | 622 623 | 421 | Recommendation (Nadb) is a Shari'i ruling for which evidence is necessary. | 421 | Specific evidence is necessary to establish dislike (Karahat), whether it be mildly disliked (Karahat Tanzihi). | 623 --- | 425 | A single gathering, according to all clear imams, is inclusive of words. | 425 | Mathematics | --- 255 | 425 | Offer and acceptance are linked only when they occur in the same gathering. | 425 | Description of distances: Manzil, Kos, and Farsang. | 255 --- | 427 | 'Al-Misr is what its largest mosques cannot accommodate its people' - this is neither the opinion of the Imam nor the companions (Sahibayn). | 427 | History and Biographies | --- 64 | 457 | Now in Friday (Jumu'ah) prayer, 'Qazi' refers to the governing judge, not the marriage judge. | 457 | What were the boundaries of Masjid Nabawi during the Prophetic era, i.e., what were its length and width. | 64 64 | 499 | Arguing that the second call to prayer (Adhan-e-Thani) for Friday is permissible inside the mosque based on the words 'between the hands of the Imam' or 'between the hands of the pulpit' is pure ignorance. | 499 | Suffah, which was a roofed veranda on the north-south side of the noble mosque, was a part of the mosque, and the people of Suffah (RA) used to reside in it. | 64 64 | 521 | Difference between Fard (obligatory), Wajib (necessary), and Nafl (voluntary). | 521 | The companions of Suffah were reciters (Qurra). | 64 313 | 521 | If Zaid promises to come immediately after praying, then a common two-letter prayer after the prayer is absolutely not a violation of 'immediately' according to custom and Shari'ah. | 521 | In which year Friday prayer (Jumu'ah) became obligatory. | 313 402 | 521 | The issue of joining a Surah: there is

no separation between Ameen, Fatihah, and the Surah because it follows the Fatihah. | 521 | When did the first call to prayer for Friday begin? Where was the second call to prayer made during the time of the Rightly Guided Caliphs? | 402

फतावा रज़विया जिल्द 8

पृष्ठ | सं. | विषय (भाग 1) | सं. | विषय (भाग 2) | पृष्ठ 541 | 417 | जहाँ मुजतहिद का कथन मौजूद हो, विद्वान वहां दृढ़ता के साथ निर्णय लिखते हैं। | 417 | सुन्नतें फ़र्ज़ों के अनुयायी हैं। | 541 525 | 417 | यदि किसी गैर-मुजतहिद विद्वान ने किसी मामले पर चर्चा की हो, तो विद्वान उसे दृढ़ता के साथ नहीं लिखते, बल्कि स्पष्ट रूप से बताते हैं कि यह फलां या कुछ लोगों की चर्चा है ताकि उसे मज़हब में रवायत के रूप में न जाना जाए। | 417 | नमाज़ और खुतबे में, तथा खुतबे और वापसी में निरंतरता का दावा निराधार है, इसलिए दुआ की अनुपस्थिति पर तर्क गलत है। | 525 565 | 417 | यदि कोई विद्वान गैर-मुजतहिद के कथन को दृढ़ता के साथ लिखता है, तो उसकी पकड़ होती है। | 417 | काज़ी की परिभाषा और शर्तें। | 565 622 | 419 | बिदअत कभी हराम, कभी वाजिब, कभी मंदूब, कभी मकरूह और कभी मुबाह होती है। | 419 | बेहतर के विपरीत (खिलाफ़-ए-औला) मकरूह नहीं है, बल्कि जायज़ और मुबाह है। | 622 623 | 421 | नदब एक शरई हुक्म है जिसके लिए दलील ज़रूरी है। | 421 | कराहत (नापसंदगी) साबित करने के लिए विशेष दलील ज़रूरी है, चाहे वह कराहत-ए-तन्ज़ीही ही क्यों न हो। | 623 --- | 425 | एक ही सभा (मजलिस-ए-वाहिद) तमाम इमामों के अनुसार शब्दों को समेटने वाली होती है। | 425 | गणित | --- 255 | 425 | ईजाब और क़ुबूल तब जुड़े होते हैं जब वे एक ही सभा में हों। | 425 | मंज़िल, कोस और फ़रसंग की दूरियों का वर्णन। | 255 --- | 427 | "अल-मिस्र वह है जिसकी सबसे बड़ी मस्जिदें वहां के लोगों के लिए पर्याप्त न हों" - यह न तो इमाम का मत है और न ही साहिबैन (साथियों) का। | 427 | इतिहास और संस्मरण | --- 64 | 457 | अब जुमा (शुक्रवार) में 'काज़ी' से तात्पर्य शासक काज़ी है, निकाह का काज़ी नहीं। | 457 | नबी के युग में मस्जिद-ए-नबवी की सीमाएँ क्या थीं, यानी इसकी लंबाई और चौड़ाई कितनी थी। | 64 64 | 499 | जुमा की दूसरी अज़ान के मस्जिद में जायज़ होने पर "इमाम के सामने" या "मिंबर के सामने" शब्दों से दलील देना सरासर अज्ञानता है। | 499 | सुफ्फ़ा, जो मस्जिद-ए-शरीफ़ के शाम (उत्तर) की ओर दक्षिण-मुखी एक छतदार दालान था, मस्जिद का हिस्सा था और अहले सुफ्फ़ा (रज़ि.) उसमें रहते थे। | 64 64 | 521 | फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल में अंतर। | 521 | अहले सुफ्फ़ा क़ारी थे। | 64 313 | 521 | ज़ैद वादा करे कि नमाज़ पढ़कर तुरंत आता हूँ, तो नमाज़ के बाद एक साधारण दो-अक्षरीय दुआ करना रस्म और शरीयत के अनुसार 'तुरंत' के वादे का उल्लंघन नहीं है। | 521 | जुमा किस वर्ष फ़र्ज़ हुआ। | 313 402 | 521 | सूरत मिलाने का मसला: आमीन, फ़ातिहा और सूरत के बीच कोई अंतराल नहीं है क्योंकि यह फ़ातिहा का

अनुसरण करता है। | 521 | जुमा की पहली अज़ान कब शुरू हुई, खुलफा-ए-राशिदीन के समय दूसरी अज़ान कहाँ होती थी। | 402

पृष्ठ 51 का 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

صفحہ | نمبر | مضمون (حصہ ۱) | نمبر | مضمون (حصہ ۲) | صفحہ ۵۴۱ | ۴۱۷ | جس جگہ قول مجتہد موجود ہو علماء اسی جگہ حکم بالجزم لکھتے ہیں۔ | ۴۱۷ | سنن توابع فرائض ہیں۔ | ۵۴۱ ۵۲۵ | ۴۱۷ | اگر کسی عالم غیر مجتہد نے کسی امر کی بحث کی ہو تو علماء اس کو بطور جزم نہیں لکھتے بلکہ صراحۃً بتا دیتے ہیں کہ یہ فلاں یا بعض کی بحث ہے تا کہ یہ منقول فی المذہب معلوم نہ ہو۔ | ۴۱۷ | نماز و خطبہ اور خطبہ ومعاودت میں اتصال کا ادّعا باطل، لہذا عدم دعا پر استدلال غلط | ۵۲۵ ۵۶۵ | ۴۱۷ | اگر کوئی عالم قول غیر مجتہد کو بطور جزم لکھ جائے تو اس پر گرفت ہوتی ہے۔ | ۴۱۷ | قاضی کی تعریف اور شرائط | ۵۶۵ ۶۲۲ | ۴۱۹ | بدعت کبھی حرام، کبھی واجب، کبھی مندوب، کبھی مکروہ اور کبھی مباح ہوتی ہے۔ | ۴۱۹ | خلافِ اولیٰ مکروہ نہیں، جائز و مباح ہے۔ | ۶۲۲ ۶۲۳ | ۴۲۱ | ندب حکم شرعی ہے جس کے لئے دلیل ضروری ہے۔ | ۴۲۱ | ثبوتِ کراہت کے لئے دلیلِ خاص ضروری ہے، خواہ کراہت تنزیہی ہو۔ | ۶۲۳ --- | ۴۲۵ | مجلس واحد حسب صریح کافہ ائمہ جامع کلمات ہوتی ہے۔ | ۴۲۵ | ریاضی | --- ۲۵۵ | ۴۲۵ | ایجاب و قبول تب مرتبط ہوتے ہیں جب ایک ہی مجلس میں ہوں۔ | ۴۲۵ | منزل، کوس اور فرسنگ کی مسافتوں کا بیان۔ | ۲۵۵ --- | ۴۲۷ | المصر مالا یسع اکبر مساجدہ اھلہ یہ نہ مذہب امام اور نہ صاحبین کا قول۔ | ۴۲۷ | تاریخ و تذکرہ | --- ۶۴ | ۴۵۷ | اب جمعہ میں قاضی سے مراد والی قاضی ہے نکاح کا قاضی نہیں۔ | ۴۵۷ | زمانہ نبوی میں مسجد نبوی کی حدود کیا تھیں یعنی اس کا طول و عرض کتنا تھا۔ | ۶۴ ۶۴ | ۴۹۹ | جمعہ کی اذانِ ثانی کے مسجد میں جائز ہونے پر لفظ بین یدی الامام یا بین یدی المنبر سے استدلال محض نا واقفی ہے۔ | ۴۹۹ | صفہ جو کہ مسجد شریف کی جانب شام جنوب رویہ ایک مسقف

دالان تھا جز ء مسجد تھا اور اہل صفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم اس میں سکونت رکھتے تھے۔ | ۶۴ | ۶۴ | ۵۲۱ | فرض و واجب و نفل میں فرق۔ | ۵۲۱ | اصحاب صفہ قراء تھے۔ | ۶۴ ۳۱۳ | ۵۲۱ | زید وعدہ کرے کہ نماز پڑھ کر فوراً آتا ہوں تو بعد نماز معمولی دو حرفی دعا ہر گز عرفاً و شرعاً مبطل فور نہیں۔ | ۵۲۱ | جمعہ کس سال فرض ہوا۔ | ۳۱۳ ۴۰۲ | ۵۲۱ | مسئلہ ضم سورۃ میں آمین فاتحہ وسورۃ میں فاصل نہیں کیونکہ تابع فاتحہ ہے۔ | ۵۲۱ | جمعہ کی پہلی اذان کب سے شروع ہوئی، خلفائے راشدین کے زمانہ میں اذانِ ثانی کہاں ہوتی تھی۔ | ۴۰۲

Fatawa Razawiya - Volume 8

Page	Topic
501	The second Adhan of Friday during the era of the Holy Prophet (peace be upon him) and the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them) used to take place in front of the pulpit at the mosque door.
515	In the era of the Tabi'un, the Eid prayer was held before the sermon, then the Imam would stand on his mount and pray.
515	In the era of the Tabi'un, the Eid prayer was performed without Adhan and Iqamah.
571	When did the additional Takbirs start?
	Virtues and Merits
517	Righteous deeds are the means to the pleasure of the Lord, Glory be to Him.
518	After every completion of the Quran, a prayer is accepted.
518	At the time of breaking the fast (Iftar), one prayer of the fasting person is not rejected.
519	This virtue applies to all fasting, whether obligatory, mandatory, or voluntary, because there is no restriction or specific mention in the texts.
519	
523	A servant is closest to his Lord while in the state of prostration (Sujud).
529	Good prayer is superior to all things.
608	The belovedness of Imam Hussain to the Prophet.
609	The Prophet's love for Hasanayn (Hasan and Hussain).
609	The prayer for Hazrat Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) to become a scholar of wisdom.
609	Justice of Prophethood. Hazrat Usaid's love for the Prophet.
609	The Prophet's kindness towards Hazrat Abu Dharr.
610	The belovedness of Hazrat Ali to the Prophet and his high status.
612	Hazrat Abu Bakr's love for the Prophet and his virtue.
612	

Page	Topic
	Prayer is the most superior of deeds and the greatest pillar of Islam.
519	Prayer causes more of the pleasure of the Lord of Majesty and Honor than fasting.
520	Obligatory acts are higher and greater than supererogatory acts and more complete and perfect in seeking Allah's pleasure.
522	Prayer (Dua) according to the Quran, Hadith, and consensus of the early Imams is among the recommended acts of Sharia.
522	Habib bin Maslamah (may Allah be pleased with him) was one whose prayers were answered.
	Hazrat Uthman's popularity with the Prophet.
614	Hazrat Batul Zahra's popularity with the Prophet.
616	Every elderly Muslim is deserving of respect; the people of knowledge and the noble descendants of the Prophet (Sayyids) are even more deserving of respect and honor.
629	When two Muslims shake hands, their sins fall away with the movement of their hands.
629	They are forgiven, a hundred mercies descend upon them, ninety-nine for the one who initiates.

फ़तावा रज़विया - भाग 8

पृष्ठ	विषय
501	हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और खुलफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के ज़माने में जुमा की दूसरी अज़ान मस्जिद के दरवाज़े पर मिम्बर के सामने हुआ करती थी।
515	ताबिईन के ज़माने में ईद की नमाज़ खुतबे से पहले होती थी, फिर इमाम अपनी सवारी पर रुककर दुआ माँगता था।
515	ताबिईन के ज़माने में ईद की नमाज़ अज़ान और इकामत के बिना होती थी।
571	तकबीरात-ए-ज़वाइद कब से शुरू हुईं?
	फ़ज़ाइल और मनाकिब
517	नेक आमाल अल्लाह तआला की रज़ा का कारण होते हैं।
518	कुरान के हर खतम पर एक दुआ कुबूल होती है।
518	इफ़्तार के समय रोज़ेदार की एक दुआ रद्द नहीं होती।
519	यह फ़ज़ीलत रोज़ा, फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल सभी के लिए आम है क्योंकि नसूस में कोई शर्त या विशेषता नहीं है।
519	

पृष्ठ	विषय
523	बंदा अपने रब के सबसे ज़्यादा करीब सजदे की हालत में होता है।
529	खैर नमाज़ सब चीज़ों से अफ़ज़ल है।
608	रसूलुल्लाह की इमाम हुसैन से मुहब्बत।
609	हसनैन करीमैन से सरकार की मुहब्बत।
609	हज़रत अब्दुल्ला इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के लिए आलिम-ए-हिकमत होने की दुआ।
609	अदल-ए-रिसालत। हज़रत उसैद की रसूल से मुहब्बत।
609	हज़रत अबूज़र पर सरकार का करम।
610	हज़रत अली की रसूल से मुहब्बत और उनका मुकाम।
612	हज़रत अबू बक्र का इश्क़-ए-रसूल और उनकी फ़ज़ीलत।
612	

पृष्ठ	विषय
	नमाज़ अफ़ज़ल आमाल और इस्लाम के सबसे बड़े अरकान में से है।
519	नमाज़, रोज़े से ज़्यादा जुल जलाल वल इकराम की रज़ा का कारण है।
520	वाजिबात और नवाफ़िल से आला और अज़ीम और अल्लाह की रज़ा में ज़्यादा कामिल हैं।
522	दुआ कुरान, हदीस और पुराने इमामों के इज्मा के अनुसार शरीयत के मंदुबात (पसंदीदा कार्यों) में से है।
522	हबीब बिन मुस्लमा (रज़ियल्लाहु अन्हु) मुस्तजाब-उद-दुआ थे।

पृष्ठ	विषय
	हज़रत उस्मान की रसूल के यहाँ मक़बूलियत।
614	हज़रत बतुल ज़हरा की रसूल के यहाँ मक़बूलियत।
616	हर उम्रदराज मुसलमान अदब के काबिल है, और अहले इल्म और सादात-ए-किराम और ज़्यादा अदब और एहतराम के मुस्तहिक हैं।
629	जब दो मुसलमान आपस में मुसाफ़ा करते हैं, तो हाथों की हरकत के साथ उनके गुनाह झड़ते हैं।
629	उनकी मगफिरत होती है, उन पर सौ रहमतें नाज़िल होती हैं, निन्यानवे उसके लिए जो पहल करे।

فتاویٰ رضویہ - جلد ہشتم

صفحہ	عنوان	صفحہ	عنوان
۵۰۱	جمعہ کی اذان ثانی زمانہ اقدس حضور پُر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور خلفائے راشدین رضی اللہ تعالیٰ عنہم میں منبر کے سامنے دروازہ مسجد پر ہوا کرتی تھی۔	۵۲۳	سب سے زیادہ قرب بندے کو اپنے رب سے حالت سجود میں ہوتا ہے۔
۵۱۵	زمانہ تابعین میں نماز عید خطبہ سے پہلے ہوتی پھر امام اپنے راحلہ پر وقوف کر کے دعا مانگتا۔	۵۲۹	خیر نماز سب چیزوں سے افضل ہے۔
۵۱۵	زمانہ تابعین میں نماز عید اذان و اقامت کے بغیر ہوتی تھی۔	۶۰۸	امام حسین کی محبوبیت رسول۔
۵۷۱	تکبیرات زوائد کب سے شروع ہوئیں۔	۶۰۹	حسنین سے سرکار کی محبت۔
	فضائل و مناقب	۶۰۹	حضرت عبداللہ ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے لئے عالمِ حکمت ہونے کی دعا۔
۵۱۷	اعمال صالحہ وجہ رضائے مولیٰ جل وعلا ہوتے ہیں۔	۶۰۹	عدلِ رسالت۔ حضرت اُسید کی محبتِ رسول۔
۵۱۸	ہر ختم قرآن پر ایک دعا مقبول ہے۔	۶۰۹	حضرت ابوذر پر سرکار کا کرم۔

صفحہ	عنوان
۵۱۸	افطار کے وقت روزہ دار کی ایک دعا رد نہیں ہوتی۔
۵۱۹	یہ فضیلت روزہ، فرض، واجب ونفل سب کو عام ہے کیونکہ نصوص میں قید و خصوص نہیں۔
۵۱۹	نماز افضلِ اعمال و اعظمِ ارکانِ اسلام ہے۔
۵۱۹	نماز، روزے سے زائد موجبِ رضائے ذوالجلال والاکرام ہے۔
۵۲۰	واجبات و نوافل سے اعلیٰ اور اعظم اور ارضائے الہی میں اوفر واتم ہیں۔
۵۲۲	دعا بنص قرآن و حدیث و اجماع ائمہ قدیم و حدیث اعظم مندوباتِ شرع سے ہے۔
۶۱۰	حضرت علی کی محبوبیت رسول اور ان کا مقام۔
۶۱۲	حضرت ابو بکر کا عشقِ رسول اور ان کی فضیلت۔
۶۱۲	حضرت عثمان کی مقبولیتِ رسول۔
۶۱۴	حضرت بتول زہرا کی مقبولیتِ رسول۔
۶۱۶	ہر سن رسیدہ مسلمان قابلِ ادب ہے، اہل علم اور ساداتِ کرام اور زیادہ ادب و احترام کے مستحق ہیں
۶۲۹	دو مسلمان باہم مصافحہ کریں تو ہاتھوں کی تحریک کے ساتھ ان کے گناہ جھڑتے ہیں۔

صفحہ	عنوان	صفحہ	عنوان
۵۲۲	حبیب بن مسلمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ مستجاب الدعوات تھے۔	۶۲۹	سو رحمتیں نازل ہوتی ہیں، ننانوے اس کے لئے جو سبقت کرے۔

Fatawa-e-Razwiya, Volume 8

PROHIBITION AND PERMISSIBILITY

- Planting a tree in the mosque is forbidden; however, it is permissible if it is for the benefit of the mosque. (737)
- It is not permissible for a person in a state of major ritual impurity (junub) to enter the mosque courtyard. (737)
- If there is a water spring in the mosque and it's the only source, a person in a state of ritual impurity can perform tayammum and go there. (738)
- There is no harm if a building adjacent to the mosque is taller than the mosque; the notion that prayer is invalid in such a mosque is completely false. (446)
- Multiple mosques can be built according to necessity. (452)
- It is permissible to build a tall mosque. (458)
- Building mosque floors, wells, etc., with mixed income that includes interest does not cause any harm to the mosque. (459)
- Pure things should be placed in mosques, whether new or old. (459)
- It is not permissible to use mosques as common meeting places (chaupal). (461)
- Abusive language and other such nonsense are not permissible in the mosque or its courtyard; such people should be expelled from the mosque. (465)
- Performing loud recitations of Salutations (Durood), litanies, or Quranic recitation in mosques such that it disturbs those praying or sleeping is prohibited. (469)
- The sermon should begin with 'Ta'awwudh' (seeking refuge); if someone starts with 'Bismillah', there is no doubt in its permissibility. (481)
- During the sermon, if the Name of Majesty (Allah) or the Prophet's blessed name is mentioned, one should say 'Jalla Jalaluhu' or 'Sallallahu Ta'ala 'Alayhi Wa Sallam' in the heart, not with the tongue. (737)
- It is forbidden to pray Sunnah prayers during the sermon. (737)
- The sermon can be delivered both from memory and by looking at a text; reciting from memory is more excellent. (738)
- Before starting a verse in the sermon, one should recite 'Ta'awwudh'; if that verse is at the beginning of a Surah, there is no harm in also reciting 'Bismillah'. (446)
- The farewell sermon is not proven from the Prophet (peace be upon him) and the Noble Companions; however, it is permissible in itself. (452)

- Is it permissible or not to listen to the sermon using an umbrella due to the sun? (458)
- It is permissible to travel before noon on Friday. (459)
- It is a sin to travel after the Friday prayer time has started. (459)
- It is permissible to send blessings upon Hazrat Ghaus-e-Azam in following the Prophet. (461)
- Exaggerated words for rulers are forbidden. (465)
- Giving a sermon in Urdu is against the Sunnah. (469)
- During the sermon, if the Radiant Prophet (peace be upon him) is mentioned, the followers (muqtadis) should recite the Durood Sharif in their hearts. (481)
- If the mosque founder built a minaret or an elevated spot inside the mosque for Adhan before designating the entire area as a mosque, it is permissible. That specific part will be considered separate for Adhan, and no dislike (karahat) will occur here. (502)

फ़तवा-ए-रज़विया, खंड 8

निषेध और अनुमति (हज़र व इबाहत)

- मस्जिद में पेड़ बोना मना है; हाँ, अगर इसमें मस्जिद का लाभ हो तो जायज़ है। (737)
- जुनुबी (अशुद्ध अवस्था में व्यक्ति) का मस्जिद के सहन में जाना जायज़ नहीं। (737)
- अगर पानी का चश्मा मस्जिद में है और उसके सिवा कहीं न मिले तो जुनुबी तयम्मुम करके वहाँ जा सकता है। (738)
- मस्जिद से सटा हुआ कोई मकान मस्जिद से ऊँचा हो तो कोई हर्ज नहीं, और यह सोचना कि जिस मस्जिद से सटा कोई ऊँचा मकान हो उसमें नमाज़ नहीं होती, सरासर गलत है। (446)
- ज़रूरत पड़ने पर कई मस्जिदें बनाई जा सकती हैं। (452)
- ऊँची मस्जिद बनाना जायज़ है। (458)
- सूद (ब्याज) की मिली-जुली आमदनी से मस्जिद का फर्श, कुआँ आदि बनाने से मस्जिद में कोई हर्ज नहीं आता। (459)
- मस्जिदों में पाक चीजें लगाई जाएं चाहे नई हों या पुरानी। (459)
- मस्जिदों को चौपाल बनाना जायज़ नहीं। (461)
- मस्जिद या सहन में गाली-गलौज आदि बेहूदा बातें जायज़ नहीं; ऐसे व्यक्ति को मस्जिद से निकाल देना चाहिए। (465)
- मस्जिदों में दरूद, वज़ीफ़े तिलावत आदि ज़ोर से करना जिससे नमाज़ियों या सोने वालों को तक़लीफ़ हो, मना है। (469)
- खुतबा 'तअऊज़' से शुरू करना चाहिए और अगर कोई 'बिस्मिल्लाह' से शुरू करे तो इसके जायज़ होने में कोई संदेह नहीं। (481)
- खुतबे में अल्लाह का नाम या हुज़ूर का मुबारक नाम आए तो दिल में 'जल्ला जलालाहु' या 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' कहे, ज़बान से नहीं। (737)
- खुतबे के वक्त सुन्नतें पढ़ना मना है। (737)
- खुतबा ज़बानी और देखकर दोनों तरह पढ़ा जा सकता है और ज़बानी पढ़ना अधिक श्रेष्ठ है। (738)

- खुतबे में आयत शुरू करने से पहले 'तअऊज़' पढ़ना चाहिए और यदि वह आयत सूरह की शुरुआत में हो तो 'बिस्मिल्लाह' भी पढ़ लेने में कोई हर्ज नहीं। (446)
- विदाई खुतबा हुज़ूर (स.अ.व.) और सहाबा किराम से प्रमाणित नहीं है; हालाँकि, वह अपने आप में जायज़ है। (452)
- धूप की वजह से छतरी लगाकर खुतबा सुनना जायज़ है या नहीं। (458)
- जुमे के दिन दोपहर से पहले सफर करना जायज़ है। (459)
- जुमे का वक्त हो जाने के बाद सफर करना गुनाह है। (459)
- हुज़ूर के अनुसरण में हज़रत ग़ौस-ए-आज़म पर दरूद पढ़ना जायज़ है। (461)
- शासकों के लिए अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों का प्रयोग वर्जित है। (465)
- उर्दू में खुतबा सुन्नत के खिलाफ है। (469)
- खुतबे के दौरान अगर हुज़ूर पुरनूर (स.अ.व.) का ज़िक्र आए तो मुक़्तदी दिल में दरूद शरीफ पढ़ें। (481)
- यदि मस्जिद के संस्थापक ने पूरी मस्जिद समर्पित करने से पहले अज़ान के लिए मस्जिद के अंदर मीनार या कोई ऊँची जगह बनाई तो जायज़ है। उतना हिस्सा अज़ान के लिए अलग समझा जाएगा और यहाँ कोई मकरूहियत नहीं होगी। (502)

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

حظر واباحت

- مسجد میں پیڑ بونا ممنوع، ہاں اگر اس میں مسجد کی منفعت ہو تو جائز ہے۔ (۷۳۷)
- جنبی کا صحن مسجد میں جانا جائز نہیں۔ (۷۳۷)
- اگر پانی کا چشمہ مسجد میں ہے اور اس کے سوا کہیں نہ ملے تو جنبی تیمم کر کے وہاں جا سکتا ہے۔ (۷۳۸)
- مسجد سے متصل کوئی مکان مسجد سے بلند ہو تو حرج نہیں اور یہ خیال کہ جس مسجد سے متصل کوئی بلند مکان ہو اس میں نماز نہیں ہوتی محض غلط ہے۔ (۴۴۶)
- ضرورت پر متعدد مسجدیں بنائی جا سکتی ہیں۔ (۴۵۲)
- بلند مسجدیں بنانا جائز ہے۔ (۴۵۸)
- سُود کی مخلوط آمدنی سے مسجد کے فرش، کنواں وغیرہ بنانے سے مسجد میں کوئی حرج نہیں آتا۔ (۴۵۹)
- مسجدوں میں پاک چیزیں لگائی جائیں، نئی ہوں یا پرانی۔ (۴۵۹)
- مسجدوں کو چوپال بنانا جائز نہیں۔ (۴۶۱)
- مسجد یا صحن میں گالی گلوچ وغیرہ لغویات جائز نہیں ایسے کو مسجد سے نکال دینا چاہئے۔ (۴۶۵)
- مسجدوں میں درود، وظائف، تلاوت وغیرہ جہر سے کرنا جس سے نمازیوں یا سونے والوں کو تکلیف ہو منع ہے۔ (۴۶۹)

- تعوذ سے خطبہ شروع کرنا چاہئے اور کوئی بسم اللہ سے شروع کرے تو جواز میں شک نہیں۔ (۴۸۱)
- خطبہ میں اسم جلالت یا حضور کا اسم مبارک آئے تو دل میں جل جلالہ، یا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کہے زبان سے نہیں۔ (۷۳۷)
- خطبہ کے وقت سنتیں پڑھنا ممنوع ہے۔ (۷۳۷)
- خطبہ زبانی اور دیکھ کر دونوں طور پر پڑھا جا سکتا ہے او ر زبانی پڑھنا افضل ہے۔ (۷۳۸)
- خطبہ میں آیت شروع کرنے سے پہلے تعوذ پڑھنا چاہئے اور وہ آیت سورہ کی ابتداء میں ہو تو بسم اللہ بھی پڑھ لینے میں کوئی حرج نہیں۔ (۴۴۶)
- الوداعی خطبہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور صحابہ کرام سے ثابت نہیں، ہاں وہ فی نفسہ مباح ہے۔ (۴۵۲)
- دھوپ کی وجہ سے چھتری لگا کر خطبہ سننا جائز ہے یا نہیں۔ (۴۵۸)
- جمعہ کے دن دو پہر سے پہلے سفر کرنا جائز ہے۔ (۴۵۹)
- جمعہ کا وقت ہو جانے کے بعد سفر کرنا گناہ ہے۔ (۴۵۹)
- حضور کی تبعیت میں حضرت غوث الاعظم پر درود پڑھنا جائز ہے۔ (۴۶۱)
- سلاطین کے لئے مبالغہ آمیز الفاظ ممنوع ہیں۔ (۴۶۵)
- اُردو میں خطبہ خلاف سنت ہے۔ (۴۶۹)
- دورانِ خطبہ اگر حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ذکر آئے تو مقتدی دل میں درود شریف پڑھیں۔ (۴۸۱)

• بانی مسجد نے تمام مسجدیت سے پہلے مسجد کے اندر اذان کے لئے منارہ یا کوئی محل مرتفع بنایا تو جائز ہے۔ اتنا ٹکڑا اذان کے لئے جدا سمجھا جائے گا یہاں کراہت عارض نہ ہوگی۔ (۵۰۲)

Fatawa Rizvia | Volume 8

Topic	Page	Topic	Page
A form of permission for ablution in a mosque.	502	It is recommended to recite Surah Ikhlas three times at the completion of Quran in Tarawih.	621
The minaret was outside the mosque; later the mosque was expanded, and now the minaret is inside the mosque. There is no harm in giving Adhan from it.	504	Writing 'Bismillah' on the forehead of the deceased is recommended.	621
After the entire mosque is built, if the founder wants to exempt a new place in the mosque for Adhan, it is not allowed.	504	Holding Milad gatherings in Makkah, Madinah, and Jeddah and saying Takbir at every Surah from Surah Ad-Duha to the end of the Quran.	621
Rule regarding building a house for the Imam in the mosque after the completion of the mosque.	504	If a Muslim extends their hand for a handshake, one should not pull their hand away.	636
How is it to recite Labbaik or Darood in the Eid sermon.	509	Taking care of a Muslim's hospitality is prioritized over following etiquette.	636
Supplicating after Eid prayers, Tahajjud, etc., is shariah-permissible, rather recommended and desirable.	522	One should conform to the customs and traditions of Muslims, provided there is no explicit and non-interpretable prohibition from Shariah.	636
A person cannot make every kind of supplication in prayer.	524	Avoiding permissible innovation is not required; therefore, if performing such an innovation also involves acting upon a Sunnah, one should do it.	638
The Lawgiver (PBUH) granted absolute permission for supplication without restricting time or specifying a form.	530	Exegesis and Sciences of the Quran	
In Shariah, encouragement for frequent supplication and	530	Interpretation of Allah Almighty's saying: "So when you have finished	516

Topic	Page
warning against abandoning supplication has been mentioned.	
Dhikr, Tasbih, Tahlil, and supplication are prescribed in every place and at every time.	538
What is the ruling on initiating a collection during the sermon or before the prayer.	566
Will an Eidgah built on land subject to land tax (Kharaj) be considered an Eidgah or not?	567
How is it to shake hands after prayer.	567

Topic	Page
[your duties], then stand up [for worship]. And to your Lord direct [your] longing."	
According to Sayyiduna Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with them), in the aforementioned verses 'finish' means being free from prayer, and 'stand up' means putting effort into supplication.	516
The noble verse is absolute and, in its absolute sense, includes obligatory, mandatory, and voluntary prayers; therefore, Eid prayers are also included in this ruling.	516
Exegesis of verses related to the abundance of Allah's remembrance.	546

फ़तावा रज़विया | जिल्द 8

विषय	पृष्ठ
मस्जिद में वज़ू की जवाज़ (अनुमतता) की एक सूरत।	502
मअज़ना (मीनार) मस्जिद के बाहर था, बाद में मस्जिद बढ़ाई गई अब मअज़ना मस्जिद के अन्दर हो गया, इस पर अज़ान देने में कोई हर्ज़ नहीं होगा।	504
मस्जिद मुकम्मल होने के बाद अगर मस्जिद का संस्थापक अज़ान के लिए मस्जिद में नया कमरा अलग करना चाहे तो इसकी अनुमति नहीं है।	504
मस्जिद मुकम्मल होने के बाद मस्जिद में इमाम का घर बनाने का हुक्म।	504
ईद के ख़ुत्बे में लब्बैक या दरूद पढ़ना कैसा है।	509
ईदैन और तहज्जुद वग़ैरा के बाद दुआ माँगना शरीअत में जायज़ बल्कि मंदूब और मरगूब (पसंदीदा) है।	522
नमाज़ में आदमी हर तरह की दुआ नहीं माँग सकता।	524
शारे अलैहिस्सलातो वस्सलाम ने बिना किसी वक़्त या तरीके की पाबंदी के दुआ की मुतलक़न (सामान्य) इजाज़त दी है।	530
तरावीह में क़ुरआन मुकम्मल होने पर तीन बार सूरह इख़्लास पढ़ना मुस्तहसन (पसंदीदा) है।	621
मय्यित की पेशानी पर बिस्मिल्लाह लिखना मुस्तहसन है।	621
मक्का मुअज़्ज़मा, मदीना मुनव्वरा और जेद्दा में मजालिसे मीलाद का आयोजन और उनमें सूरह अज़-ज़ुहा से ख़त्मे क़ुरआन तक हर सूरह पर तकबीर कहना।	621
मुसलमान मुसाफ़हा (हाथ मिलाने) के लिए हाथ बढ़ाए तो अपना हाथ नहीं खींचना चाहिए।	636
मुसलमान की ख़ातिरदारी (मेहमाननवाज़ी) अदब की रियायत पर मुक़द्दम (प्राथमिक) है।	636
मुसलमानों की आदतों और रस्मों की मुवाफ़क़त (सहमति) ही करनी चाहिए बशर्ते कि शरीअत से साफ़ और अटल मनाही न हो।	636
बिदअते मुबाह (अनुमत नवाचार) से बचना वांछनीय नहीं है, इसलिए अगर किसी ऐसी बिदअत को करने में किसी सुन्नत पर भी अमल होता है तो उसे करना चाहिए।	638
तफ़्सीर और क़ुरआन के उलूम	

विषय	पृष्ठ
शरीअत में कसरत से दुआ करने की तरग़ीब (प्रोत्साहन) और दुआ छोड़ने पर वईद (चेतावनी) आई है।	530
ज़िक्र, तस्बीह, तहलील और दुआ हर जगह और हर वक़्त जायज़ हैं।	538
ख़ुत्बे में या नमाज़ से पहले चंदे की तहरीक (मुहिम) कैसी है।	566
ख़राजी ज़मीन (लगान वाली ज़मीन) में ईदगाह बनी हो तो वह ईदगाह होगी या नहीं।	567
नमाज़ के बाद मुसाफ़हा करना कैसा है।	567

विषय	पृष्ठ
अल्लाह तबारक व तआला के इरशाद 'फ़इज़ा फ़राग़ता फ़नसब व इला रब्बिा फ़ारग़ब' की तफ़्सीर।	516
ऊपर दी गई आयतों में सैयदुना अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा के अनुसार 'फ़राग़' से मुराद नमाज़ से फ़ारिग होना और 'नसब' से मुराद दुआ में कोशिश करना है।	516
आयते करीमा मुतलक़ है और अपने दायरे में फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल सभी को शामिल करती है, इसलिए ईदैन की नमाज़ें भी इस हुक्म में शामिल हैं।	516
अल्लाह के कसरत से ज़िक्र से संबंधित आयतों की तफ़्सीर।	546

عنوان	صفحہ
مسجد میں جواز وضو کی ایک صورت۔	۵۰۲
مئذنہ بیرون مسجد تھا بعدہ مسجد بڑھائی گئی اب مئذنہ اندرونِ مسجد ہو گیا اس پر اذان میں حرج نہ ہوگا۔	۵۰۴
تمامی مسجد کے بعد اگر بانی مسجد اذان کے لئے مسجد میں نیا مکان مستثنیٰ کرنا چاہے تو اس کی اجازت نہیں۔	۵۰۴
تمامیت مسجد کے بعد مسجد میں امام کا مکان بنانے کا حکم۔	۵۰۴
عید کے خطبہ میں لبیک یا درود پڑھنا کیسا ہے۔	۵۰۹
عیدین و تہجد وغیرہ کے بعد دعا مانگنا شرعاً جائز بلکہ مندوب و مرغوب ہے۔	۵۲۲
تراویح کے ختم قرآن میں تین بار سورہ اخلاص پڑھنا مستحسن ہے۔	۶۲۱
میت کی پیشانی پر بسم اللہ لکھنا مستحسن ہے۔	۶۲۱
مکہ معظمہ، مدینہ منورہ اور جدہ میں مجالس میلاد کا انعقاد اور ان میں سورہ والضحیٰ سے ختم قرآن تک ہر سورہ پر تکبیر۔	۶۲۱
مسلمان مصافحہ کے لئے ہاتھ بڑھائے تو اپنا ہاتھ کھینچنا نہیں چاہئے۔	۶۳۶
مسلمان کی خاطر داری رعایت ادب پر مقدم ہے۔	۶۳۶
مسلمانوں کے عادات ورسوم کی موافقت ہی کرنی چاہئے بشرطیکہ شرع سے صریح اور نا قابل تاویل ممانعت نہ ہو۔	۶۳۶

عنوان	صفحہ
نماز میں آدمی ہر قسم کی دعا نہیں مانگ سکتا۔	۵۲۴
شارع علیہ الصلوۃ والسلام نے بے تقیید وقت و تخصیص ہیئت مطلقاً دعا کی اجازت دی۔	۵۳۰
شرع میں تکثیر دعا پر ترغیب اور ترک دعا پر وعید وارد ہوئی ہے۔	۵۳۰
ذکر، تسبیح، تہلیل اور دعا ہر جگہ اور ہر وقت مشروع ہیں۔	۵۳۸
خطبہ میں یا نماز سے پہلے چندہ کی تحریک کیسی ہے۔	۵۶۶
خراجی زمین میں عید گاہ بنی ہو وہ عید گاہ ہو گی یا نہیں۔	۵۶۷
نماز کے بعد مصافحہ کرنا کیسا ہے۔	۵۶۷
بدعت مباحہ سے بچنا مطلوب نہیں لہٰذا اگر کسی ایسی بدعت کی بجاآوری میں کسی سنت پر بھی عمل ہوتا ہے تو کرے۔	۶۳۸
تفسیر و علوم قرآن	
اللہ تبارک و تعالیٰ کے ارشاد فاذا فرغت فانصب o والی ربک فارغب کی تفسیر۔	۵۱۶
آیات مذکورہ میں بقول سیدنا عبداللہ ابن عباس رضی اللہ عنہما فراغ سے مراد نماز سے فارغ ہونا اور نصب سے مراد دعا میں جدوجہد کرنا ہے۔	۵۱۶
آیہ کریمہ مطلق ہے اور اپنے اطلاق کے ساتھ فرض، واجب اور نفل سب کو شامل ہے لہٰذا نماز عیدین بھی اس حکم میں داخل ہیں۔	۵۱۶
کثرت ذکر الٰہی سے متعلق آیات کی تفسیر۔	۵۴۶

418 Logic (Mantiq): There is a contradiction between universal affirmation and particular negation. Discourse and rebuttal of heretics. Breastfeeding: The cessation occurring during the breastfeeding period is a cause of prohibition. | 546 | Waqf (Endowment): Simply stating 'I have made this land a mosque' terminates the ownership of that land as an endowment. | 70 Rafidis have no right over Sunni mosques. | 77 | Sale (Bey) Author's (may Allah have mercy on him) logical explanation of the issue to a muezzin of a mosque in Delhi. | 502 | Sale of mosques is impermissible. | 90 Usurpation (Ghasb): Discussion on the fatwa of Eid-ul-Adha by Maulana Abdul Hai Lucknawi with authorities and complete removal of opponents' misconceptions. | 515 The burden of proof for prohibition lies with the one who claims permissibility and denies it. | 515 | If a mosque is unjustly occupied and cannot be recovered, and another place is offered in exchange, that place may be taken to build a mosque. | 91 Leasing (Ijara): It is a common misconception of the Wahhabis to consider the lack of explicit mention in the first three generations as evidence of prohibition. | 552 Fifteen passages from the fatwas of Maulana Abdul Hai Lucknawi against the Wahhabis. | 553 | It is not permissible to write amulets in a mosque room and give them for a fee. | 95 Breastfeeding (Raza'at) | Civilization (Tamaddun) If a boy drank a woman's milk at the age of six months, five days, four hours, and three minutes, her daughter is forbidden to him. | 418 | Whether it is a mosque, temple, house, or dwelling, it is a common human habit to divide every building into two parts based on seasonal changes: one part is roofed to protect against snow, rain, and sun, while the other is kept open for sitting in the sun and fresh air. | 61

फतावा रज़विया | खंड आठ

418 तर्क(منطق): सार्वभौमिक सकारात्मकता (ایجاب کلی) और विशेष नकारात्मकता (سلب جزئی) के बीच अंतर्विरोध है। विधर्मियों के साथ शास्त्रार्थ और उनका खंडन। स्तनपान: स्तनपान की अवधि के दौरान होने वाला ठहराव (ارتفاع) निषेध का कारण है। | 546 | वक़्फ़ (Endowment): केवल यह कहने से कि 'मैंने इस भूमि को मस्जिद बना दिया है', उस भूमि की वक़्फ़ के रूप में मिल्कियत समाप्त हो जाती है। | 70 सुन्नी मस्जिदों पर राफ़िज़ियों (روافض) का कोई अधिकार नहीं है। | 77 | विक्रय (بیع) लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) द्वारा तर्कसंगत प्रमाण के साथ दिल्ली की एक मस्जिद के मुअज़्ज़िन को मसला समझाना। | 502 | मस्जिदों की बिक्री नाजायज है। | 90 अवैध कब्ज़ा (غصب): मौलाना अब्दुल हई लखनवी के दूसरे ईद के फतवे पर सनद के साथ बातचीत और विरोधियों की शंकाओं का पूर्ण निराकरण। | 515 निषेध को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व उस व्यक्ति पर है जो अनुमति का दावा करता है। | 515 | यदि किसी ने मस्जिद पर अन्यायपूर्ण तरीके से कब्ज़ा कर लिया है और उसे वापस पाने की कोई संभावना नहीं है, और वह बदले में दूसरी जगह देने को तैयार है, तो उस जगह को लेकर मस्जिद बनाई जा सकती है। | 91 किराया (اجارہ): पहली तीन पीढ़ियों (قرونِ ثلاثہ) में उल्लेख न होने को निषेध का प्रमाण मानना वहाबियों की एक आम गलतफहमी है। | 552 वहाबियों के विरुद्ध मौलाना अब्दुल हई लखनवी के फतवों से पंद्रह उद्धरण। | 553 | मस्जिद के कमरे में तावीज़ लिखकर शुल्क लेकर देना जायज नहीं है। | 95 स्तनपान (رضاعت) | सामाजिक जीवन (تمدن) यदि किसी लड़के ने छह महीने, पांच दिन, चार घड़ी और तीन मिनट की उम्र में एक महिला का दूध पिया है, तो उस महिला की बेटी उस लड़के के लिए हराम है। | 418 | चाहे मस्जिद हो या मंदिर, घर हो या आवास, मौसमी परिवर्तनों के अनुसार प्रत्येक इमारत को दो भागों में विभाजित करना एक मानवीय आदत है: एक हिस्सा छत वाला होता है ताकि बर्फ़ बारिश और धूप से बचा जा सके जबकि दूसरा धूप सेंकने और ताजी हवा के लिए खुला रखा जाता है। | 61

पृष्ठ 55 का 673

۴۱۸ منطق: ایجاب کلی اور سلب جزئی میں منافاۃ ہے۔ مناظرہ و رد بد مذہباں۔ مدت رضاعت میں جو ارتفاع ہو موجب تحریم ہے۔ | ۵۴۶ | وقف: صرف اس قول سے کہ میں نے اس زمین کو مسجد کیا اس خطہ زمین سے وقف کی ملکیت زائل ہو جاتی ہے۔ | ۷۰ سنیوں کی مسجدوں پر روافض کا کوئی حق نہیں۔ | ۷۷ | بیع مصنف (رحمۃ اللہ علیہ) کی طرف سے دہلی کی ایک مسجد کے مؤذن کو عقلی دلیل سے مسئلہ سمجھانا۔ | ۵۰۲ | مسجدوں کی بیع ناجائز ہے۔ | ۹۰ غصب: عید دوم فتویٰ مولوی عبدالحئی لکھنوی سے اسناد پر کلام اور اوہام مانعین کے ازالہ تام کے بیان میں۔ | ۵۱۵ جواز دعائے منع کرے اثبات ممانعت اس کے ذمہ ہے۔ | ۵۱۵ | کسی نے مسجد پر ظلماً قبضہ کرلیا اور حصول یابی کی کوئی صورت نہ ہو اور وہ دوسری جگہ معاوضہ میں دینے کے لئے تیار ہو تو وہ جگہ لے کر مسجد بنائی جا سکتی ہے۔ | ۹۱ اجارہ: قرونِ ثلاثہ سے عدم ورود کو دلیل منع جاننا وہابیہ کا مغالطہ عامۃ الورود ہے۔ | ۵۵۲ وہابیہ کے خلاف مولوی عبدالحئی لکھنوی کے فتاویٰ سے پندرہ عبارتیں۔ | ۵۵۳ | مسجد کے حجرہ میں تعویذ لکھ کر اجرت پر دینا جائز نہیں۔ | ۹۵ رضاعت | تمدن کسی لڑکے نے چھ مہینے پانچ دن چار گھڑی تین منٹ کی عمر میں ایک عورت کا دودھ پیا اس کی دختر اس پر حرام ہے۔ | ۴۱۸ | مسجد و معبد ہو یا منزل و مسکن ہر مکان کو بلحاظ اختلاف موسم دو حصوں پر تقسیم کرنا عادات مطروحہ بنی نوع انسان سے ہے، ایک پارہ مسقف کرتے ہیں کہ برف و بارش و آفتاب سے بچائے دوسرا کھلا رکھتے ہیں کہ دھوپ میں بیٹھنے اور ہوا لینے کے کام آئے۔ | ۶۱

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Section: Rasm-ul-Mufti] - To call any action of Muslims a 'vile innovation' (Bid'at-e-Shania) is, in one sense, imposing a ruling on Allah and His Messenger (peace be upon him) as if that action is disapproved in their view, and in another sense, it is imposing a ruling on Muslims that they are sinners and deserving of punishment due to that action; and imposing such a ruling without a clear Sharia proof is impermissible. (Page 417) - Sharia proof for a Mujtahid (jurist) is the four principles, and for us, it is the saying of the Mujtahid. (Page 417) - Cautious scholars do not even consider denial necessary in matters of Ijtihad (juridical reasoning), let alone declaring someone misguided or an infidel. (Page 482) - If there is a difference between 'Tashih' (correction) and 'Fatwa' (legal ruling), then the general rule of texts (Mutoon) will be preferred. (Page 633) - Whatever the jurists have declared as 'Rajih' (preferred) and 'Sahih' (correct), we must follow it. (Page 633) - Giving a Fatwa based on a 'Marjooh' (non-preferred) opinion is ignorance and opposition to consensus (Ijma). (Page 633)

[Section: Miscellaneous / Oath] - Definition of Masjid-e-Dirar. (Page 77) - Difference between small and large mosques. (Page 80) - One form of Masjid-e-Dirar. (Page 86) - How many steps should a pulpit (Minbar) have, on which step should the sermon (Khutbah) be given, and since when has the custom of the pulpit existed? (Page 343) - Difference between city and village (Regrettably, the complete answer could not be found). (Page 348) - Description of some scenarios of changing a gathering (Majlis). (Page 445) - A grand chain of narration (Sanad) of the author (mercy of Allah be upon him) which goes from Imam al-Azam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) reaching Imam al-Muhaddithin Hazrat Imam Ibrahim Nakha'i (mercy of Allah be upon him). (Page 512) - It was the noble habit of Imam Muhammad (mercy of Allah be upon him) that he would not give a discourse on an 'Athar' (narration from a companion) that was against his school of thought (Madhab). (Page 515) - If one swears an oath 'I will not go to Zaid's house' and enters the courtyard, he will be 'Hanith' (breaker of the oath). (Page 60) - Worldly things encompass both good and evil. (Page 526) - If one swears an oath 'I will not go out of the mosque' and comes into the courtyard, he will not be 'Hanith'. (Page 60) - In which books is the treasure trove of Hadiths regarding the virtues and encouragement of supplication (Dua) found? (Page 532) - Fragments of prayers are equal (footnote). (Page 535) - In the Arabic language, the roofed part is called 'Shitwi' and the unroofed part is called 'Saifi'. (Page 61)

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[अनुभाग: रस्म-उल-मुफ्ती] - मुसलमानों के किसी कार्य को 'बिदअते शनीआ' (घृणित नवाचार) कहना, एक तरफ अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर एक हुक्म लगाना है कि उनके निकट यह कार्य अनुचित है, और दूसरी तरफ मुसलमानों पर यह हुक्म लगाना है कि वे उस कार्य के कारण गुनहगार और सजा के पात्र हैं; और स्पष्ट शरीयत प्रमाण के बिना ऐसा हुक्म लगाना नाजायज है। (पृष्ठ 417) - मुज्तहिद (न्यायविद) के लिए शरीयत का प्रमाण चार सिद्धांत हैं, और हमारे लिए मुज्तहिद का कथन है। (पृष्ठ 417) - सावधान विद्वान इज्तिहादी (न्यायिक तर्क) के मामलों में इनकार करना भी जरूरी नहीं समझते, गुमराह या काफिर घोषित करना तो दूर की बात है। (पृष्ठ 482) - यदि 'तसहीह' (सुधार) और 'फतवा' में मतभेद हो, तो ग्रंथों (मुतून) की व्यापकता को वरीयता दी जाएगी। (पृष्ठ 633) - फकीहों (न्यायविदों) ने जिसे 'राजेह' (वरीयता प्राप्त) और 'सही' (सत्य) घोषित किया है, हमें उसी का पालन करना चाहिए। (पृष्ठ 633) - 'मरजूह' (गैर-वरीयता प्राप्त) मत पर फतवा देना अज्ञानता और सर्वसम्मति (इज्मा) का विरोध है। (पृष्ठ 633)

[अनुभाग: विविध / शपथ] - मस्जिद-ए-दिरार की परिभाषा। (पृष्ठ 77) - छोटी और बड़ी मस्जिदों में अंतर। (पृष्ठ 80) - मस्जिद-ए-दिरार का एक रूप। (पृष्ठ 86) - मिंबर (उपदेश मंच) की कितनी सीढ़ियाँ होनी चाहिए, किस सीढ़ी पर खुतबा दिया जाना चाहिए और मिंबर का रिवाज कब से है? (पृष्ठ 343) - शहर और गाँव का अंतर (अफसोस कि पूरा जवाब नहीं मिल सका)। (पृष्ठ 348) - मजलिस (सभा) बदलने की कुछ स्थितियों का वर्णन। (पृष्ठ 445) - लेखक (रहमतुल्लाह अलैह) की एक महान सनद (प्रमाण-श्रृंखला) जो इमाम-ए-आजम अबू हनीफा (रदियल्लाहु अन्हु) से होते हुए इमामुल मुहद्दिसिन हजरत इमाम इब्राहिम नखई (रहमतुल्लाह अलैह) तक पहुँचती है। (पृष्ठ 512) - इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैह) की यह नेक आदत थी कि वह ऐसे 'असर' (सहाबा के कथन) पर व्याख्या नहीं देते थे जो उनके मजहब के खिलाफ होता था। (पृष्ठ 515) - यदि किसी ने कसम खाई कि "मैं ज़ैद के घर नहीं जाऊँगा" और वह आँगन में गया, तो वह 'हानिस' (कसम तोड़ने वाला) होगा। (पृष्ठ 60) - दुनिया की चीजें खैर (भलाई) और शर (बुराई) दोनों को समाहित करती हैं। (पृष्ठ 526) - यदि किसी ने कसम खाई कि "मैं मस्जिद से बाहर नहीं जाऊँगा" और वह आँगन में आया, तो वह 'हानिस' नहीं होगा। (पृष्ठ 60) - दुआ (प्रार्थना) के गुणों और प्रोत्साहन से संबंधित हदीसों का खजाना किन किताबों में है? (पृष्ठ 532) - दुआओं के टुकड़े बराबर हैं (फुटनोट)। (पृष्ठ 535) - अरबी भाषा में छत वाले हिस्से को 'शितवी' और बिना छत वाले हिस्से को 'सैफी' कहते हैं। (पृष्ठ 61)

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

رسم المفتی - مسلمانوں کے کسی فعل کو بدعتِ شنیعہ کہنا ایک حکم تو اللہ رسول جل و علا و صلی اللہ علیہ وسلم پر لگانا ہے کہ ان کے نزدیک یہ فعل ناروا ہے اور ایک حکم مسلمانوں پر لگانا ہے کہ وہ اس فعل کے باعث گنہگار و مستحقِ عذاب ہیں اور ایسا حکم لگانا بلا دلیل شرعی واضح کے ناجائز ہے۔ (صفحہ ۴۱۷) - دلیل شرعی مجتہد کے لئے اصولِ اربعہ اور ہمارے لئے قولِ مجتہد ہے۔ (صفحہ ۴۱۷) - علماء محتاطین مسائلِ اجتہادیہ میں تو انکار بھی ضروری نہیں جانتے چہ جائیکہ تضلیل و تکفیر کی جائے۔ (صفحہ ۴۸۲) - تصحیح و فتویٰ میں اختلاف ہو تو اطلاقِ متون کو ترجیح ہوگی۔ (صفحہ ۶۳۳) - فقہاء نے جسے راجح و صحیح قرار دیا ہمیں اسی کی پیروی کرنی ہے۔ (صفحہ ۶۳۳) - قولِ مرجوح پر فتویٰ دینا جہالت اور مخالفتِ اجماع ہے۔ (صفحہ ۶۳۳)

[متفرقات / قسم] - مسجدِ ضرار کی تعریف۔ (صفحہ ۷۷) - صغیر و کبیر مسجدوں میں فرق۔ (صفحہ ۸۰) - مسجدِ ضرار کی ایک صورت۔ (صفحہ ۸۶) - منبر کے کتنے زینے ہوں اور کس زینہ پر خطبہ ہو اور منبر کا رواج کب سے ہے۔ (صفحہ ۳۴۳) - شہر اور دیہات کا فرق (افسوس کہ پورا جواب نہ مل سکا)۔ (صفحہ ۳۴۸) - مجلس تبدیل ہونے کی بعض صورتوں کا بیان۔ (صفحہ ۴۴۵) - مصنف رحمۃ اللہ علیہ کی ایک عظیم الشان سند جو امامِ اعظم ابو حنیفہ رضی اللہ عنہ سے ہوتی ہوئی امام المحدثین حضرت امام ابراہیم نخعی رحمۃ اللہ علیہ تک پہنچتی ہے۔ (صفحہ ۵۱۲) - امام محمد رحمۃ اللہ علیہ کی عادتِ کریمہ ہے جو اثر اپنے خلافِ مذہب ہوتا ہے اس پر تقریر نہیں فرماتے۔ (صفحہ ۵۱۵) - اگر قسم کھائی کہ زید کے گھر نہ جاؤں گا اور صحن میں گیا تو حانث ہوگا۔ (صفحہ ۶۰) - دنیا کی چیزیں خیر و شر دونوں کو متحمل ہیں۔ (صفحہ ۵۲۶) - اگر قسم کھائی کہ مسجد سے باہر نہ جاؤں گا اور صحن میں آیا تو حانث نہ ہوگا۔ (صفحہ ۶۰) - فضائل و ترغیبِ

دعا سے متعلق احادیث کا ذخیرہ کن کتابوں میں ہے۔ (صفحہ ۵۳۲) - متفرقات - دعاؤں کے قطعات مساوی ہیں (حاشیہ)۔ (صفحہ ۵۳۵) - زبانِ عرب میں مسقف حصے کو شتوی اور اور غیر مسقف کو صیفی کہتے ہیں۔ (صفحہ ۶۱)

Fatawa Razviyya Volume 8

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

Chapter: Rules of the Mosque Explanation of Mosque Rules

Problem 1115: From Lucknow, Ali Ganj neighborhood, sent by Hafiz Abdullah, 5 Dhu al-Hijjah 1306 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Is it permissible to pray on the roof of the mosque due to the heat or not? Please explain and be rewarded.

The Answer: It is disliked (Makruh) because it is a lack of respect for the mosque. However, if the mosque becomes crowded for the congregation and there is no space left below, then it is permissible without dislike for the remaining people to form rows on the roof as it is a necessity, provided that the state (actions) of the Imam is not uncertain to them.

[In Al-Alamgiriyyah]: Climbing on top of any mosque is disliked. Therefore, if the heat is intense, it is disliked for them to pray in congregation on top of it, unless the mosque becomes too narrow, then climbing on its roof is not disliked due to necessity. Similarly in al-Ghara'ib. And Allah Almighty knows best. (Arabic Text)

[Translation]: In Alamgiri, it is stated that climbing on top of every mosque is disliked. This is why it is disliked to hold a congregation on top of it during intense heat. However, if the mosque becomes crowded for the worshippers, then climbing on the roof of the mosque is not disliked due to necessity. As it is in Ghara'ib. And Allah Almighty knows best (T). (Urdu Text)

---

1. Fatawa Hindiyya, Chapter 5 on Mosque Etiquettes, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/322.

फतावा रज़विया खंड 8

बिस्मिल्लाह-हिर-रहमान-निर-रहीम

मस्जिद के अहकाम (नियम) का अध्याय मस्जिद के नियमों का बयान

मसला 1115: लखनऊ के मोहल्ला अली गंज से, हाफ़िज़ अब्दुल्ला द्वारा प्रेषित, 5 ज़ुल-हिज्जा 1306 हिजरी। विद्वान इस मसले पर क्या कहते हैं कि गर्मी की वजह से मस्जिद की छत पर नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? बयान फरमाएं और पुण्य कमाएं।

अल-जवाब: यह मकरूह (नापसंदीदा) है क्योंकि यह मस्जिद की बेअदबी है। हाँ, अगर मस्जिद में जमात के लिए जगह तंग हो जाए और नीचे जगह न बचे, तो बाकी लोग छत पर सफ़ (पंक्ति) बना लें; यह बिना किसी कराहत (नापसंदगी) के जायज़ है क्योंकि यह ज़रूरत है, बशर्ते कि इमाम की स्थिति (हरकतों) के बारे में कोई संदेह न हो।

[आलमगीरिया में है]: किसी भी मस्जिद के ऊपर चढ़ना मकरूह है। इसलिए, यदि गर्मी तीव्र हो, तो उसके ऊपर जमात करना मकरूह है, जब तक कि मस्जिद नमाज़ियों के लिए तंग न हो जाए। ऐसी स्थिति में, ज़रूरत के कारण मस्जिद की छत पर चढ़ना मकरूह नहीं है। जैसा कि अल-ग़राब में भी है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (अरबी पाठ)

[अनुवाद]: आलमगीरी में है हर मस्जिद के ऊपर चढ़ना मकरूह है, यही वजह है कि तीव्र गर्मी के समय इसके ऊपर जमात कराना मकरूह है। अलबत्ता इस सूरत में कि मस्जिद नमाज़ियों पर तंग हो जाए तो ज़रूरत की वजह से मस्जिद की छत पर चढ़ना मकरूह नहीं। जैसा कि ग़राब में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)। (उर्दू पाठ)

---

1. फतावा हिंदिया, मस्जिद के आदाब पर पांचवां अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित, 2/322।

पृष्ठ 57/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

بسم اللہ الرحمن الرحیم

باب احکام المسجد احکام مسجد کا بیان

مسئلہ ۱۱۱۵: از لکھنؤ محلہ علی گنج مرسلہ حافظ عبداللہ ۵ ذی الحجہ ۱۳۰۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین جواب اس مسئلہ کا کہ سقف مسجد پر بسبب گرمی کے نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں۔ بینوا توجروا۔

الجواب: مکروہ ہے کہ مسجد کی بے ادبی ہے، ہاں اگر مسجد جماعت پر تنگی کرے نیچے جگہ نہ رہے تو باقی ماندہ لوگ چھت پر صف بندی کر لیں یہ بلا کراہت جائز ہے کہ اس میں ضرورت ہے بشرطیکہ حالِ امام مشتبہ نہ ہو۔

فی العالمگیریۃ الصعود علی کل مسجد مکروہ ولہذا اذا اشتد الحریکرہ ان یصلوا بالجماعۃ فوقہ الا اذاضاق المسجد فح لایکرہ الصعود علی سطحہ لضرورۃ کذا فی الغرائب ۱ واللہ تعالٰی اعلم۔

عالمگیری میں ہے ہر مسجد کے اوپر چڑھنا مکروہ ہے، یہی وجہ ہے کہ شدید گرمی کے وقت اس کے اوپر جماعت کرانا مکروہ ہے البتہ اس صورت میں کہ مسجد نمازیوں پر تنگ ہو جائے تو ضرورت کی وجہ سے مسجد کی چھت پر چڑھنا مکروہ نہیں۔ جیسا کہ غرائب میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

---

۱ فتاوٰی ہندیۃ الباب الخامس فی آداب المسجد مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۲/۳۲۲

Fatawa Razawiyya Volume 8

At-Tabseer al-Munjad bi-anna Sahn al-Masjid Masjid 1307 AH (Excellent guidance regarding the fact that the courtyard of a mosque is part of the mosque itself)

Issue 1116: From the town of Kathor, Sayan Station, District Surat, State of Gujarat, Purab-wale Mosque, sent by Maulvi Abdul Haq Sahib, teacher at Madrasa Arabia Kathor, and Seth Bana Bhai Sahib, manager of the Madrasa, 27 Jumada al-Ula 1307 AH.

What do the scholars of Sharia say regarding the ruling for this mosque courtyard where obligatory congregational prayers for Maghrib, Isha, and Fajr, and sometimes Asr, are always performed during the summer? Since this mosque is located in a main market, the flow of worshippers is high. Sometimes, if the congregation for Asr or Maghrib has already finished, many people come and pray their obligatory prayers individually in this courtyard; sometimes a few people come and even form a congregation there. Even during moderate seasons like spring and autumn, the congregation sometimes fills up the said courtyard. Now, should the said courtyard be given the ruling of a mosque or not? Is it permissible for a person in a state of major ritual impurity (Junubi) etc. to enter it without a valid Sharia excuse? Two individuals are debating this. According to one, the said courtyard is a mosque and it is forbidden for a Junubi to enter it. According to the other, it falls under the ruling of an 'Eidgah' (Eid prayer ground), and it is permissible for a Junubi to enter it. His reasoning is that in our city of Surat, the interior of the mosque is called the 'Jamaat Khana' (congregation hall) and the courtyard is called 'Kharij' (outside). His second argument is that the 'Fina' (precincts), 'Harim' (protected area) of the mosque, and the courtyard of the mosque are conceptually united. Since it is permissible for a Junubi to enter the 'Fina' and 'Harim' of a mosque, it should also be permissible to enter the courtyard because 'Fina' is given the ruling of an Eidgah. Among the scholars of Surat, two scholars rule the said courtyard to be a mosque. One of these two scholars is also the teacher of the person who calls the mosque courtyard 'outside the mosque'. Now, each of the aforementioned debaters calls the other a 'mufsid' (corrupter) and 'mufsid fi-d-deen' (corrupter in religion). Who is a 'Muslih' (reformer/corrector) according to Sharia? And is it correct or wrong to understand the terms 'Fina al-Masjid' and 'Harim al-Masjid' as meaning the courtyard of the mosque? Secondly, the custom of the residents of Surat city that...

फ़तावा रज़विया खंड 8

अत-तब्सीर अल-मुन्जद बि-अन्ना सहन अल-मस्जिद मस्जिद 1307 हिजरी (इस बारे में उत्कृष्ट मार्गदर्शन कि मस्जिद का आंगन भी मस्जिद ही होता है)

मसाला 1116: कस्बा कठौर, सायन स्टेशन, जिला सूरत, गुजरात राज्य, पूरब वाली मस्जिद से, प्रेषक मौलवी अब्दुल हक साहिब, शिक्षक मदरसा अरबिया कठौर और सेठ बाना भाई साहिब, प्रबंधक मदरसा, 27 जमादी-उल-उला 1307 हिजरी।

शरीयत के विद्वान इस मस्जिद के आंगन के हुक्म पर क्या कहते हैं, जहाँ गर्मी के मौसम में हमेशा मगरिब, ईशा और फज्र की अनिवार्य नमाज जमाअत के साथ और कभी-कभी अस्र की नमाज भी अदा की जाती है? चूँकि यह मस्जिद मुख्य बाजार में स्थित है, इसलिए नमाजियों का आना-जाना अधिक रहता है। अस्र और मगरिब की जमाअत हो जाने के बाद भी अक्सर लोग आकर इस आंगन में अकेले अपनी फर्ज नमाज पढ़ लेते हैं; कभी दो-चार आदमी आ जाएं तो वहां जमाअत भी कर लेते हैं। बसंत और पतझड़ के मध्यम मौसमों में भी कभी-कभी सामान्य जमाअत से उक्त आंगन भर जाता है। अब उक्त आंगन को मस्जिद का हुक्म दिया जाए या नहीं? क्या इस पर जुनुबी (नापाक) आदि व्यक्ति का बिना किसी शरई मजबूरी के जाना जायज है या नहीं? दो व्यक्ति इस पर आपस में बहस कर रहे हैं। एक के अनुसार उक्त आंगन मस्जिद है और जुनुबी का वहां जाना हराम है। दूसरे के अनुसार यह ईदगाह के हुक्म में है और जुनुबी का वहां जाना जायज है। उसकी दलील यह है कि हमारे सूरत शहर में मस्जिद के अंदरूनी हिस्से को 'जमाअत खाना' और आंगन को 'खारिज' (बाहरी) कहा जाता है। दूसरी दलील यह है कि 'फ़ना' (परिक्षेत्र), 'हरीम' (मस्जिद की सीमा) और मस्जिद का आंगन अवधारणा के रूप में एक ही हैं। चूँकि मस्जिद की फ़ना और हरीम में जुनुबी का जाना जायज है, इसलिए आंगन में जाना भी जायज होना चाहिए, क्योंकि फ़ना को ईदगाह का हुक्म दिया गया है। सूरत के विद्वानों में से दो विद्वान उक्त आंगन को मस्जिद का हुक्म देते हैं। इन दोनों विद्वानों में से एक विद्वान उस व्यक्ति के उस्ताद भी हैं जो मस्जिद के आंगन को 'मस्जिद से बाहर' कहता है। अब उपरोक्त दोनों बहस करने वालों में से हर एक दूसरे को 'मुफसिद' (बिगाड़ने वाला) और 'दीन में मुफसिद' कहता है। शरीयत की दृष्टि में 'मुसलिह' (सुधार करने वाला) कौन है? और क्या 'फ़ना-ए-मस्जिद' और 'हरीम-ए-मस्जिद' शब्दों का अर्थ मस्जिद का आंगन समझना सही है या गलत? और दूसरा यह कि सूरत शहर के निवासियों की प्रथा यह है कि...

पृष्ठ 59/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

التبصیر المنجد بان صحن المسجد مسجد ۱۳۰۷ھ (اس بارے میں عمدہ رہنمائی کہ مسجد کا صحن مسجد ہی ہوتا ہے)

مسئلہ ۱۱۱۶: از قصبہ کٹھور، اسٹیشن سائن ضلع سورت، ملک گجرات، مسجد پُرب والے، مرسلہ مولوی عبدالحق صاحب مدرس مدرسہ عربی کٹھور و سیٹھ با نا بھائی صاحب مہتمم مدرسہ ۲۷ جمادی الاولٰی ۱۳۰۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے شریعت اس صحن مسجد کے حکم پر موسم گرما میں ہمیشہ نماز فرض باجماعت مغرب و عشاء و فجر اور کبھی عصر بھی ادا کی جائے، اور یہ مسجد چونکہ برسر بازار واقع ہے اس واسطے آمد و رفت نمازیوں کی زیادہ ہے عصر و مغرب کو کبھی جماعت ہو چکی ہو تو اکثر آدمی آکر اس صحن پر اکیلے فرض نماز پڑھ لیتے ہیں کبھی دو چار آدمی آگئے تو وہاں پر جماعت بھی کر لیتے ہیں اور موسم اعتدال ربیع و خریف میں بھی کبھی معمولی جماعت صحن مذکور کو پر ہو جایا کرتی ہے، اب صحن مذکور کو حکم مسجد کا دیا جائے یا نہیں؟ اس پر جنبی وغیرہ ناپاک آدمی کا بلا عذر شرعی کے جانا جائز ہے یا نہیں؟ وہ شخص باہم مناظرہ کرتے ہیں ایک کے نزدیک صحن مذکور مسجد ہے اور جنبی کا اس پر جانا حرام، اور دوسرے کے نزدیک مصلی عید کے حکم میں ہے جنبی کو اس پر جانا جائز ہے، دلیل اس کی یہ ہے کہ ہمارے شہر سورت میں اندرونِ مسجد کو جماعت خانہ اور صحن مسجد کو خارج بولتے ہیں، دوسری دلیل یہ کہ فناء و حریمِ مسجد اور صحنِ مسجد باعتبار مفہوم کے متحد ہیں فناء اور حریمِ مسجد پر جب جنبی کو جانا جائز ہو تو صحن پر بھی جائز ہو گا کس واسطے کو فناء کو حکم مصلی عید کا ہے

اور علمائے سورت میں سے دو عالم صحن مذکور کو حکم مسجد کا فرماتے ہیں ان دونوں عالموں میں سے ایک عالم صاحب اس شخص کے جو صحن مسجد کو خارج مسجد کہتا ہے استاد بھی ہیں، اب ہر ایک مناظرینِ مرقومہ بالا میں سے ایک دوسرے کو مفسد کہتا ہے مفسد فی الدین ہے اور مصلح عندالشرع کون؟ اور لفظ فناءِ مسجد اور حریمِ مسجد کے معنی صحن مسجد کے سمجھنا صحیح ہیں یا غلط؟ اور دوسرے یہ کہ ساکنانِ شہر سورت کا عرف کہ

صفحہ ۵۹ از ۶۷۳

Fatawa Razawiyyah, Volume 8

Is calling the inner prayer hall 'mosque' and the courtyard 'outside the mosque' valid according to Sharia or not? And how many prayers should be offered in that courtyard every year for it to become a mosque? If there is any other condition according to Sharia for that courtyard to become a mosque besides prayer, please write it down. Explain and you will be rewarded.

The Answer: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. Praise be to Allah, and peace and blessings be upon the Messenger of Allah.

The courtyard of the mosque is definitely a part of the mosque, just as the courtyard of a house is a part of the house. To the extent that if someone takes an oath that "I will not enter Zaid's house," and he enters the courtyard, he will certainly have broken his oath, as is evident from Al-Hidayah, Al-Hindiyyah, Al-Durr al-Mukhtar, Radd al-Muhtar, and general books. Similarly, if one takes an oath "I will not go out of the mosque" and comes into the courtyard, he will not break his oath at all. Therefore, for a person in I'tikaf (spiritual retreat), coming, going, sitting, and staying in the courtyard is certainly permissible. This matter is so clear and well-known that it is almost self-evident, witnessed by the general practice and actions of Muslims across all cities, after which there is absolutely no need for further proof. Indeed, whoever claims otherwise should bring proof for their claim, and they will never be able to bring it "until the camel passes through the eye of a needle" (Quranic idiom meaning it is impossible). The claimant to the contrary presented two arguments for the mosque's courtyard not being part of the mosque: one general, which is not even in the form of an argument but a mere claim, and the second specific to the mosques of Surat; both are absolutely false and groundless.

This humble servant (may Allah Almighty forgive him), for the necessary clarification of this clear matter, mentions only ten reasons through which the complete clarity of the ruling will be achieved, and the illusion of the contrary arguments will be dispelled. In the course of this, God willing, answers to all the points of the question will be revealed.

I say: And with Allah is the guidance and the overflow of verification (I say, Allah Almighty alone grants the ability for success and research):

Firstly: A mosque is the name of that plot of land which has been declared as a pure endowment (waqf) for the purpose of the five daily prayers. Its complete definition

along with the benefits of its conditions is found in the 'Book of Endowment' (Kitab al-Waqf) of our book 'Al-Ataya al-Nabawiyyah fi al-Fatawa al-Razawiyyah'. (See the details of the complete definition of a mosque and its conditions in our Fatawa - "Al-Ataya al-Nabawiyyah fi al-Fatawa al-Razawiyyah" in the Chapter on Endowment). This definition definitely includes the courtyard as well. Buildings, constructions, roofs, etc., are by no means part of its essential nature (mahiyyat). To the extent that even if there is no building at all, and only a platform or a bounded field is endowed for prayer, it is definitely a mosque.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

मस्जिद के अंदरूनी हिस्से (जमाअत खाना) को 'मस्जिद' और आंगन को 'मस्जिद से बाहर' कहना शरीयत के अनुसार मान्य है या नहीं? और उस आंगन में हर साल कितनी नमाज़ें अदा की जानी चाहिए कि वह मस्जिद बन जाए? नमाज़ के अलावा उस आंगन के मस्जिद बनने के लिए शरीयत में कोई और शर्त हो तो उसे तहरीर फरमाएं। बयान करें और सवाब पाएं।

उत्तर: बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम अल्हम्दुलिल्लाह वस्सलातु वस्सलाम अला रसूलुल्लाह

मस्जिद का आंगन निश्चित रूप से मस्जिद का हिस्सा है, जैसे घर का आंगन घर का हिस्सा होता है। यहाँ तक कि अगर कोई कसम खाए कि "मैं ज़ैद के घर नहीं जाऊँगा," और वह उसके आंगन में चला जाए, तो वह निश्चित रूप से कसम तोड़ने वाला (हानिस) होगा, जैसा कि अल-हिदाया, अल-हिन्दिया, अल-दुर्र अल-मुख्तार, रद अल-मुहतार और सामान्य किताबों में स्पष्ट है। इसी तरह, अगर कोई कसम खाए कि "मैं मस्जिद से बाहर नहीं जाऊँगा" और वह आंगन में आ जाए, तो उसकी कसम हरगिज़ नहीं टूटेगी। इसलिए, एतिकाफ करने वाले के लिए आंगन में आना-जाना, बैठना और रहना निश्चित रूप से जायज़ है। यह मसला अपनी स्पष्टता और प्रसिद्धि के कारण प्राथमिक सच्चाइयों (बदीहियात-ए-अव्वलिया) के करीब है, जिसके गवाह सभी शहरों के आम मुसलमानों के व्यवहार और कार्य हैं, जिसके बाद किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती। हाँ, जो इसके विपरीत दावा करे, वह अपने दावे का प्रमाण लाए, और वह कभी नहीं ला सकेगा "जब तक कि ऊंट सुई के छेद से न निकल जाए" (यानी यह असंभव है)। इसके विपरीत दावा करने वाले ने मस्जिद के आंगन के मस्जिद न होने पर दो दलीलें पेश कीं: एक सामान्य, जिसमें दलील का कोई रूप भी नहीं है बल्कि केवल एक दावा है, और दूसरी सूरत की विशेष मस्जिदों से संबंधित है; दोनों ही पूरी तरह से असत्य और निराधार हैं।

यह फकीर (अल्लाह ताला उसे माफ करे), इस स्पष्ट मसले के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यकतानुसार केवल दस कारण उल्लेख करता है जिनसे पूर्ण स्पष्टता प्राप्त होगी और विपरीत दलीलों का भ्रम दूर हो जाएगा। इसी के साथ, इंशा अल्लाह ताला, प्रश्न के सभी पहलुओं का उत्तर स्पष्ट हो जाएगा।

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की मदद से ही सफलता और शोध की गहराई प्राप्त होती है (मैं कहता हूँ, अल्लाह ताला ही तौफीक और तहकीक प्रदान करने वाला है):

सर्वप्रथम: मस्जिद उस ज़मीन के टुकड़े का नाम है जिसे पांच वक्त की नमाज़ के उद्देश्य से शुद्ध वक्फ (बंदोबस्त) किया गया हो। मस्जिद की पूरी परिभाषा और उसकी शर्तों के लाभों का विवरण हमारी किताब "अल-अताया अल-नबविया फी अल-फतावा अल-रज़विया" के वक्फ के अध्याय में देखें। यह परिभाषा निश्चित रूप से आंगन को भी शामिल करती है। इमारतें, निर्माण, छत आदि किसी भी तरह से इसके मूल स्वरूप (माहियत) का हिस्सा नहीं हैं। यहाँ तक कि अगर कोई इमारत बिल्कुल न हो, सिर्फ एक चबूतरा या सीमित मैदान नमाज़ के लिए वक्फ कर दिया जाए, तो वह निश्चित रूप से मस्जिद है।

पृष्ठ 60 का 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

اندرونِ مسجد جماعت خانہ اور صحنِ مسجد خارجِ مسجد بولنا یہ عند الشرع معتبر ہے یا نہیں؟ اور کس قدریں نمازیں ہر سال میں اُس صحن پر ادا کی جائیں کہ وہ صحن مسجد بن جائے؟ اُس صحن کی مسجد بن جانے میں سوائے نماز کے اور کوئی دوسری شرط بھی عند الشرع معتبر ہو تو تحریر فرمائیں۔ بینوا توجروا۔

الجواب: بسم اللہ الرحمن الرحیم الحمد للہ والصلوۃ والسلام علی رسول اللہ

صحنِ مسجد قطعاً جزئیہ مسجد ہے جس طرح صحنِ دار جزءِ دار، یہاں تک کہ اگر قسم کھائی زید کے گھر نہ جاؤں گا، اور صحن میں گیا بیشک حانث ہوگا جیسا کہ یظھر من الھدایۃ والھندیۃ والدر المختار ورد المحتار و عامۃ الاسفار (جیسا کہ ہدایہ، ہندیہ، دُرِ مختار، ردالمختار اور عام کتب میں ہے،ت) اسی طرح اگر قسم کھائی مسجد سے باہر نہ جاؤں گا اور صحن میں آیا ہرگز حانث نہ ہوا، ولہٰذا معتکف کو صحن میں آنا جانا بیٹھنا رہنا یقیناً روا، یہ مسئلہ اپنی نہایت وضاحت و غایتِ شہرت سے قریب ہے کہ بدیہیاتِ اولیہ سے ملتحق ہو، جس پر تمام بلاد میں عام مسلمین کے تعامل وافعال شاہدِ عدل، جن کے بعد اصلاً احتیاجِ دلیل نہیں، ہاں جو دعویٰ خلاف کرے اپنے دعوے پر دلیل لائے، اور ہرگز نہ لائے گا حتّٰی یَلِجَ الْجَمَلُ فِی سَمِّ الْخِیاطِ (یہاں تک کہ اونٹ سوئی کے سوراخ میں داخل ہو جائے ۔ت) مدعیِ خلاف نے کہ صحنِ مسجد کے مسجد نہ ہونے پر دو دلیلیں پیش کیں، ایک عام جس میں دلیل کی صورت بھی نہیں بلکہ محض دعویٰ ہے دلیل ہے دوسری خاص مساجدِ سورت سے متعلق دونوں محض باطل و زاہق۔

فقیر غفر اللہ تعالیٰ اس مسئلہ واضحہ کی ایضاح کو بحکم ضرورت صرف دس وجہیں ذکر کرتا ہے جن سے حکمِ انجلاءِ تام پائے اور دونوں دلیلِ خلاف کا ازالہ وہام ہو جائے، اسی کے ضمن میں ان شاء اللہ تعالیٰ تمام مراتبِ سوال کا جواب منکشف ہو جائے گا۔

فاقول: وباللہ التوفیق وافاضۃ التحقیق (میں کہتا ہوں اللہ تعالیٰ ہی توفیق اور تحقیق عطا کرنے والا ہے،

اولاً: مسجد اُس بقعہ کا نام ہے جو بغرضِ نمازِ پنجگانہ وقف خالص کہا گیا و تمام تعریفہ مع فوائد قیودہ فی الوقف من کتابنا العطایا النبویہ فی الفتاوی الرضویۃ (مسجد کی کامل تعریف اور اس کے تمام قیود کے فوائد کی تفصیل ہمارے فتاویٰ— "العطایا النبویہ فی الفتاوی الرضویہ" کے باب الوقف میں ملاحظہ کیجئے ۔ت) یہ تعریف بالیقین صحن کو بھی شامل اور عمارات و بنایا سقف وغیرہ ہر گز اس کی ماہیت میں داخل نہیں یہاں تک کہ اگر عمارت اصلاً نہ ہو صرف ایک چبوترہ یا محدود میدان نماز کے لئے وقف کردیں قطعاً مسجد

Fatawa Rizwia Volume Eight

...it will become [a mosque] and will deserve all the rulings of a mosque. In Fatawa Qazi Khan, Fatawa Dhakhira, Fatawa Alamgiriya etc., it is stated:

[Boxed text] Arabic: If a person has an open area and commands a group of people to pray there in congregation; if he says "Pray here forever" or commands them to pray unconditionally but intends it to be forever, that area becomes a mosque. If he dies, it will not be inherited from him. [Summary ends] Urdu: A man has an open space and tells people to perform prayer here. Now if he said "Always pray here", or just said "Pray" but intended it to be forever, then that place will be called a mosque. If he dies, that land will not be included in inheritance. [Summary ends] (T)

Then, differentiating between a roofed area and an unroofed area, calling one a mosque and the other the courtyard of the mosque (fana-e-masjid), is purely meaningless.

Secondly, every sane person knows that whether it is a mosque and place of worship or a dwelling and house, dividing every building into two parts according to seasonal changes is a common practice of mankind. People across most of the inhabited world in all ages and cities have agreed upon this. They make one part roofed to protect from snow, rain, and the sun; they keep the other part open to serve for sitting in the sun, getting air, and avoiding heat. In the Arabic language, the first is called 'Shitwi' (winter-part) and the second 'Saifi' (summer-part), as stated by Allama Badruddin Mahmood al-Ayni in the Book of Faith from Al-Binaya Sharh al-Hidaya. (As Allama Badruddin Mahmood al-Ayni has clarified in the Book of Faith of Binaya Sharh al-Hidaya. - T) These two parts are definitely equal parts of that place of worship or dwelling, making the building useful in every season. Certainly, this is also the intention of those who endow (waqif) courtyards in mosques. Otherwise, if only the 'Shitwi' i.e. the roofed area were considered the mosque and the 'Saifi' i.e. the courtyard were considered outside the mosque, did the endowers build the mosque only for winter and for the late afternoons of summer? Because at those times, prayers would be in the mosque, but for the rest of the time, for prayers and 'itikaf' (seclusion), one wouldn't find a mosque. Or was their aim to compel people, that no matter how intense the stuffiness and heat, Muslims must always pray and stay for 'itikaf' in this enclosed place, and never seek air or comfort? Or did they not know the world's condition, that many times in a year come when it is disagreeable to stay in an inner room even for a moment, let alone being busy with prayer, Tarawih, and

'itikaf'? When none of this is the case, it is firmly established that just as they kept both courtyard and porch in their residential houses for their own comfort, they similarly divided the mosque into these two parts for the ease and comfort of the general Muslim public at all times.

---

1. Fatawa Hindiyya, Chapter Eleven regarding Mosque and related matters, printed by Matba Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/255. Page 61 of 673

फ़तावा रिज़विया खंड आठ

...हो जाएगा और मस्जिद के सभी आदेशों का हकदार होगा। फ़तावा क़ाज़ी खाँ, फ़तावा ज़ख़ीरा, फ़तावा आलमगीरिया आदि में है:

[बॉक्स किया गया पाठ] अरबी: यदि किसी व्यक्ति के पास कोई खुली जगह है और वह लोगों के एक समूह को वहां जमात के साथ नमाज़ पढ़ने का आदेश देता है; यदि वह कहता है "यहाँ हमेशा नमाज़ पढ़ो" या उन्हें बिना शर्त नमाज़ पढ़ने का आदेश देता है लेकिन उसकी नियत हमेशा के लिए है, तो वह जगह मस्जिद बन जाती है। यदि उसकी मृत्यु हो जाती है, तो वह भूमि विरासत में नहीं मिलेगी। [सारांश समाप्त] उर्दू: एक आदमी की खुली जगह है, वह लोगों से कहता है कि यहाँ नमाज़ अदा करो। अब अगर उसने यह कहा कि यहाँ हमेशा तुम नमाज़ पढ़ो, या इतना कहा नमाज़ पढ़ो मगर नियत हमेशा की थी, तो वह जगह मस्जिद कहलाएगी। अगर वह मर जाता है, तो वह ज़मीन विरासत में शामिल नहीं होगी। [सारांश समाप्त] (त)

फिर, छत वाले और बिना छत वाले हिस्से के बीच अंतर करना, एक को मस्जिद और दूसरे को मस्जिद का आंगन (फ़ना-ए-मस्जिद) कहना पूरी तरह से निरर्थक है।

दूसरी बात यह कि हर बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि चाहे वह मस्जिद और इबादतगाह हो या निवास और घर, हर इमारत को मौसम के बदलाव के अनुसार दो भागों में विभाजित करना मानव जाति की एक सामान्य प्रथा रही है। दुनिया के अधिकांश बसे हुए हिस्सों में सभी युगों और शहरों के लोग इस पर सहमत रहे हैं। वे एक हिस्सा छत वाला बनाते हैं ताकि बर्फ़, बारिश और धूप से बचा जा सके, वे दूसरे हिस्से को खुला रखते हैं ताकि धूप में बैठने, हवा लेने और गर्मी से बचने के काम आए। अरबी भाषा में पहले को 'शितवी' (शीतकालीन हिस्सा) और दूसरे को 'सैफ़ी' (ग्रीष्मकालीन हिस्सा) कहा जाता है, जैसा कि अल्लामा बदरुद्दीन महमूद अल-ऐनी ने 'अल-बिनाया शरह अल-हिदाया' की 'किताब अल-ईमान' में बताया है। (जैसा कि अल्लामा बदरुद्दीन महमूद अल-ऐनी ने बिनाया शरह अल-हिदाया की किताब अल-ईमान में स्पष्ट किया है। - त) ये दोनों हिस्से निश्चित रूप से उस इबादतगाह या घर के समान अंग होते हैं, जिससे वह इमारत हर मौसम में काम की होती है। निश्चित रूप से मस्जिदों में आंगन रखने का वक़्फ़ करने वालों (वाक़िफ़ीन) का भी यही उद्देश्य होता है। अन्यथा, यदि केवल 'शितवी' यानी छत वाले हिस्से को मस्जिद और 'सैफ़ी' यानी आंगन को मस्जिद से बाहर माना जाए, तो क्या वक़्फ़ करने वालों ने मस्जिद केवल सर्दियों और गर्मियों की दोपहरों के लिए

बनाई थी? क्योंकि उन समयों में तो नमाज़ मस्जिद में होगी, लेकिन बाकी समय में नमाज़ और एतिकाफ़ के लिए मस्जिद नहीं मिलेगी। या उनका उद्देश्य यह जबरदस्ती करना था कि कितनी ही उमस और गर्मी क्यों न हो, लेकिन मुसलमान हमेशा इसी बंद जगह में नमाज़ पढ़ें, एतिकाफ़ में रहें, हवा और आराम का नाम न लें? या उन्हें दुनिया के हालात नहीं मालूम थे कि साल में कई ऐसे समय आते हैं जब आदमी को अंदरूनी कमरे में नमाज़, तरावीह और एतिकाफ़ में व्यस्त होना तो दूर, एक पल के लिए जाना भी गंवारा नहीं होता? जब ऐसा कुछ नहीं है, तो दृढ़ता से सिद्ध होता है कि जिस प्रकार उन्होंने अपने आराम के लिए निवास स्थान में आंगन और बरामदे दोनों रखे हैं, उसी प्रकार आम मुसलमानों की हर समय की सुविधा और आराम के लिए मस्जिद को भी इन्हीं दो भागों में विभाजित किया गया है।

---

1. फ़तावा हिन्दिया, ग्यारहवां अध्याय मस्जिद और उससे संबंधित विषयों पर, मतबा नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित, 2/255. पृष्ठ 61 का 673

ہو جائے گا اور تمام احکام مسجد کا استحقاق پائے گا۔ فتاوٰی قاضی خاں و فتاوٰی ذخیرہ و فتاوٰی عالمگیریہ و غیرہا میں ہے

رجل لہ ساحۃ امر قوما ان یصلوا فیھا بجماعۃ ان قال صلوا فیھا ابدا و امرھم بالصلوۃ مطلقا و نوی الابد صارت الساحۃ مسجدا لو مات لا یورث عنہ اھ ملخصاً ایک آدمی کی کھلی جگہ ہے لوگوں سے کہتا ہے کہ یہاں نماز ادا کرو، اب اگر اس نے یہ کہا کہ یہاں ہمیشہ تم نماز پڑھو، یا اتنا کہا نماز پڑھو مگر نیت ہمیشہ کی، تو وہ جگہ مسجد کہلائے گی۔ اگر وہ فوت ہو جاتا ہے تو وہ زمین وراثت میں شامل نہ ہوگی اھ ملخصاً (ت)

پھر مسقف وغیرہ مسقف میں فرق کرنا اسے مسجد اسے فناء مسجد ٹھہرانا محض بے معنی۔ ثانیاً ہر عاقل جانتا ہے کہ مسجد و معبد ہو یا مسکن و منزل ہر مکان کو بلحاظ اختلاف موسم دو حصوں پر تقسیم کرنا عادات مطردہ بنی نوع انسان سے ہے جس پر معظم معمورۃ الارض میں تمام اعصار و امصار کے لوگ اتفاق کئے ہوئے ہیں ایک پارہ مسقف کرتے ہیں کہ برف و بارش و آفتاب سے بچائے، دوسرا کھلا رکھتے ہیں کہ دھوپ میں بیٹھنے، ہوا لینے، گرمی سے بچنے کے کام آئے، زبان عرب میں اوّل کو شتوی کہتے ہیں اور دوم کو صیفی کما افادہ العلامۃ بدر الدین محمود العینی فی کتاب الایمان من البنایۃ شرح الھدایۃ (جیسا کہ علامہ بدر الدین محمود عینی نے بنایہ شرح الہدایہ کے کتاب الایمان میں تصریح کی ہے۔ت) یہ دونوں ٹکڑے قطعاً اس معبد یا منزل کے یکساں جزو ہوتے ہیں جن کے باعث وہ مکان ہر موسم میں کام کا ہوتا ہے اور بالیقین مساجد میں صحن رکھنے سے بھی واقفین کی یہی غرض ہوتی ہے ورنہ اگر صرف شتوی یعنی مسقف کو مسجد اور صیفی

یعنی صحن کو خارج از مسجد ٹھہرائے تو کیا واقفین نے مسجد صرف موسم سرما و عصرین گرما کے لئے بنائی تھی کہ ان اوقات میں تو نماز مسجد میں ہو باقی زمانوں میں نمازوں میں اعتکاف کے لئے مسجد نہ ملے یا ان کا مقصود یہ جبر کرنا تھا کیسی ہی حبس و حرارت کی شدت ہو مگر ہمیشہ مسلمان اسی بند مکان میں نماز پڑھیں، معتکف رہیں، ہوا اور راحت کا نام نہ لیں، یا انھیں دنیا کا حال معلوم نہ تھا کہ سال میں بہت اوقات ایسے آتے ہیں جن میں آدمی کو درجہ اندرونی میں مشغولِ نماز و تراویح و اعتکاف ہونا در کنار دم بھر کو جانا ناگوار ہوتا ہے، اور جب کچھ نہیں تو بالجزم ثابت کہ جس طرح انھوں نے اپنے چین کے لئے مکان سکونت میں صحن و دالان دونوں درجے رکھے ہیں یونہی عام مسلمان کی عام اوقات میں آسائش و آرام کے لئے مسجد کو بھی انہی دو حصوں پر تقسیم کیا۔

---

1 فتاوی ہندیہ الباب الحادی عشر فی المسجد وما یتعلق بہ مطبوعہ مطبع نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۲۵۵

Thirdly: Now ask the worshipers, with what intention do you leave home upon hearing the Adhan? Is it to pray in the mosque or something else? They will absolutely reply that they come to pray in the mosque. Now see where they pray the Fajr, Maghrib, and Isha prayers in the summer, where do their memorizers (Huffaz) of the Holy Quran recite, and where do those in seclusion (Mu'takif) sit and engage in remembrance and worship? It will become clear itself whether Muslims have considered the courtyard as part of the mosque or not. Therefore, denying the mosque status of the courtyard is against the consensus (Ijma).

Fourthly: Nay, consider that the actions of those who deny it are evidence of their own error. If they come to pray in the mosque, they must, like common Muslims, pray in the courtyard during summer. Then ask them why they left their homes to pray in a non-mosque area? And if this is not a mosque, what virtue did they see in praying here? Forget virtue, when did they respond to the caller of Allah? Where was the compliance with the Hadith "There is no prayer for the neighbor of the mosque except in the mosque"? (T: The prayer of a neighbor of the mosque cannot be [perfect] except in the mosque). And for what reason did they abandon the great and noble Sunnah? Would any rational Muslim tolerate leaving his house after hearing the call to prayer, and despite the mosque being there, not pray in the mosque but instead pray in its surroundings and leave? Would people of intellect not call such a person insane? Thus, the words and actions of the deniers are completely contradictory. If they excuse themselves by saying they had to pray where the Imam prayed due to necessity, it is purely misplaced, irrational, and unacceptable. Respecting the right of the mosque was more important and prior for you gentlemen than following the congregation. When you saw the entire congregation leaving the mosque to pray in a non-mosque area, you should have gone and prayed in the mosque yourself. If any Muslim had joined you, you would have formed a congregation; otherwise, you would have prayed alone so that the right of the mosque is fulfilled. To the extent that scholars consider this solitary prayer [in the local mosque] to be better than praying with a congregation in another mosque, let alone in a non-mosque area. This is stated in Fatawa Imam Qazi Khan, then in Khazanat-ul-Muftin, then in Radd-ul-Muhtar, etc.

Arabic

One should go to the mosque of his residence, call the Adhan there, and pray even if he is alone, because the mosque of his residence has a right over him, so he fulfills its right. [Regarding] the Mu'adhin of a mosque where no one attends, they (the jurists) said he should call the Adhan, say the Iqamah, and pray alone, for that is more beloved than praying in another mosque.[2]

Urdu

A person should go to his neighborhood mosque, give the Adhan there and pray even if alone, because the neighborhood mosque has a right upon him which is necessary to fulfill. Regarding the Mu'adhin of such a mosque where no one comes, the jurists have said that he should give the Adhan and pray there alone; this is better than praying in another mosque.

[1] Mustadrak Hakim, Kitab al-Salat, "La Salata li Jar al-Masjid etc.", printed by Dar al-Fikr Beirut, 1/246. [2] Fatawa Qazi Khan, Chapter on the Mosque, printed by Naval Kishore Lucknow, 1/32.

तीसरा: अब नमाजियों से पूछिए कि आप अज़ान सुनकर घर से किस इरादे से चलते हैं? यही कि मस्जिद में नमाज़ पढ़ेंगे या कुछ और, वे निश्चित रूप से यही जवाब देंगे कि मस्जिद में नमाज़ पढ़ने आते हैं। अब देखिये कि वे गर्मियों में फ़ज्र, मग़रिब और ईशा की नमाज़ें कहाँ पढ़ते हैं और उनके क़ुरआन के हाफ़िज़ कहाँ सुनाते हैं और उनके एतेकाफ़ करने वाले कहाँ बैठते और ज़िक्र व इबादत में मशगूल रहते हैं, खुद ही साफ़ हो जाएगा कि मुसलमानों ने सहन (आंगन) को भी मस्जिद समझा है या नहीं। तो सहन के मस्जिद होने से इंकार करना इज्मा (सर्वसम्मति) के खिलाफ है।

चौथा: बल्कि गौर कीजिए तो जो लोग इंकार करते हैं उनके अपने कार्य ही उनकी गलती की गवाही देते हैं। अगर वे मस्जिद में नमाज़ पढ़ने आते हैं, तो निश्चित रूप से गर्मियों में आम मुसलमानों की तरह सहन में ही पढ़ते होंगे। फिर उनसे पूछिए कि आप घर छोड़ कर गैर-मस्जिद (जो मस्जिद न हो) में नमाज़ पढ़ने क्यों आए? और जब यह मस्जिद नहीं है तो यहाँ नमाज़ पढ़ने में क्या फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) समझी? फ़ज़ीलत तो दूर, अल्लाह के बुलाने वाले का जवाब कब दिया? और हदीस "ला सलाता लि-जारिल मस्जिदि इल्ला फ़िल मस्जिद" (मस्जिद के पड़ोसी की नमाज़ मस्जिद के अलावा नहीं हो सकती) का पालन कहाँ हुआ? और किस लिए इतनी बड़ी सुन्नत छोड़ी? क्या कोई अक्लमंद मुसलमान यह बर्दाश्त करेगा कि घर छोड़कर, अज़ान की आवाज़ सुनकर नमाज़ के लिए जाए और मस्जिद होने के बावजूद मस्जिद में न पढ़े बल्कि उसके आसपास नमाज़ पढ़कर चला आए? क्या बुद्धिमान लोग ऐसे व्यक्ति को पागल नहीं कहेंगे? तो इंकार करने वालों का कहना और करना पूरी तरह विरोधाभासी है। अगर वे यह बहाना करें कि जहाँ इमाम ने पढ़ी मजबूरी में वहीं पढ़नी पड़ी, तो यह पूरी तरह गलत, तर्कहीन और अस्वीकार्य है। आप लोगों के लिए मस्जिद के हक़ का पालन करना जमाअत के पीछे चलने से अधिक महत्वपूर्ण और प्राथमिक था। जब आपने देखा कि पूरी जमाअत मस्जिद छोड़कर गैर-मस्जिद में नमाज़ पढ़ रही है, तो आपको खुद मस्जिद में जाकर पढ़ना चाहिए था। अगर कोई मुसलमान आपका साथ देता तो जमाअत कर लेते, वरना अकेले ही पढ़ते ताकि मस्जिद का हक़ अदा हो। यहाँ तक कि विद्वान इस अकेले पढ़ने को दूसरी मस्जिद में जमाअत के साथ पढ़ने से बेहतर बताते हैं, गैर-मस्जिद की तो बात ही क्या। फतावा इमाम क़ाज़ी खाँ, फिर ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन, फिर रदुल मुहतार आदि में यही है।

अरबी

इंसान को अपने घर की मस्जिद में जाना चाहिए, वहाँ अज़ान देनी चाहिए और नमाज़ पढ़नी चाहिए, चाहे वह अकेला ही क्यों न हो, क्योंकि उसके घर की मस्जिद का उस पर हक़ है, जिसे वह अदा करता है। उस मस्जिद के मुअज़्ज़िन के बारे में जहाँ कोई नहीं आता, उन्होंने (फ़ुक़हा ने) कहा है कि वह अज़ान दे, इक़ामत कहे और अकेले नमाज़ पढ़े, यह दूसरी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से अधिक प्रिय है।[2]

उर्दू

आदमी अपने मुहल्ले की मस्जिद में जाए, उसमें अज़ान दे और नमाज़ पढ़े चाहे अकेला हो क्योंकि उस पर मुहल्ले की मस्जिद का हक़ है जिसकी अदायगी ज़रूरी है, ऐसी मस्जिद के मुअज़्ज़िन के बारे में जिसमें कोई नहीं आता फ़ुक़हा ने कहा है कि वह वहाँ तन्हा ही अज़ान देकर और नमाज़ पढ़े यह दूसरी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से अफ़ज़ल है।

[1] मुस्तदरक हाकिम, किताबुस सलात, "ला सलाता लि जारिल मस्जिद" आदि, दारुल फिक्र बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/246। [2] फतावा क़ाज़ीखान, मस्जिद से संबंधित अध्याय, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 1/32।

ثالثا : اب نمازیوں سے پوچھئے آپ اذان سن کر گھر سے کس ارادہ پر چلتے ہیں، یہی کہ مسجد میں نماز پڑھیں گے یا کچھ اور ، قطعاً یہی جواب دیں گے کہ مسجد میں نماز پڑھنے آتے ہیں، اب دیکھئے کہ وہ موسم گرما میں فجر و مغرب و عشاء کی نمازیں کہاں پڑھتے ہیں اور ان کے حفاظ قرآن مجید کہاں سناتے ہیں اور ان کے معتکف کہاں بیٹھتے اور ذکر و عبادت میں مشغول رہتے ہیں، خود ہی کھل جائے گا کہ مسلمانوں نے صحن کو بھی مسجد سمجھا ہے یا نہیں تو مسجدیت صحن سے انکار اجماع کے خلاف۔

رابعاً : بلکہ غور کیجئے تو جو صاحب انکار رکھتے ہیں خود انہی کے افعال اُن کی خطا پر دال، اگر وہ مسجد میں نماز پڑھنے آتے ہوں تو لاجرم موسم گرما میں عام مسلمانوں کی طرح صحن ہی پر پڑھتے ہوں گے پھر ان سے پوچھئے آپ گھر چھوڑ کر غیر مسجد میں نماز پڑھنے کیوں آئے، اور جب یہ مسجد نہیں تو یہاں نماز پڑھنے میں کیا فضیلت سمجھی، فضیلت درکنار داعی اللہ کی اجابت کب کی، اور حدیث "لا صلوة لجار المسجد الا في المسجد " (مسجد کے پڑوسی کی نماز ، مسجد کے علاوہ نہیں ہو سکتی۔ت) کی تعمیل کہاں ہوئی اور سنت عظیمہ جلیلہ کس واسطے چھوڑی، کہا کوئی ذی عقل مسلمان گوارا کرے گا کہ مکان چھوڑ کر آواز اذان سُن کر نماز کو جائے اور مسجد ہوتے ساتے مسجد میں نہ پڑھے بلکہ اس کے حریم و حوالی میں نماز پڑھ کر چلا آئے، کیا اہلِ عقل ایسے شخص کو مجنون نہ کہیں گے، تو انکار والوں کا قول و فعل قطعاً متناقض ، اگر یہ عذر کریں کہ جہاں امام نے پڑھی مجبوری میں پڑھنی ہوئی ہے تو محض بیجا و نامعقول و نا قابلِ قبول، آپ صاحبوں پر حق مسجد کی رعایت اتباعِ جماعت سے اہم و اقدم تھی، جب آپ نے دیکھا کہ سب اہلِ جماعت مسجد چھوڑ کر غیر مسجد میں نماز پڑھتے ہیں آپ کو چاہئے تھا

خود مسجد میں جا کر پڑھتے ، اگر کوئی مسلمان آپ کا ساتھ دیتا جماعت کرتے ورنہ تنہا ہی پڑھتے کہ حق مسجد سے ادا ہوتے۔ یہاں تک علما اس تنہا پڑھنے کو دوسری مسجد میں باجماعت پڑھنے سے افضل بتاتے ہیں نہ کہ غیر مسجد میں ۔ فتاوی امام قاضی خاں پھر خزانی المفتین پھر ردالمحتار وغیرہ میں ہے۔

عربي	اردو
يذهب الى مسجد منزله ويؤذن فيه ويصلي وان كان واحدا لان لمسجد منزله حقاً عليه فيؤدي حقه مؤذن مسجد لا يحضر مسجده احد قالوا يؤذن ويقيم ويصلي وحده فذالك احب من ان يصلى في مسجد اخر- 2	آدمی اپنے محلہ کی مسجد میں جائے اس میں اذان دے اور نماز پڑھے اگرچہ تنہا ہو کیونکہ اس پر محلہ کی مسجد کا حق ہے جس کی ادائیگی ضروری ہے، ایسی مسجد کے مؤذن کے بارے میں جس میں کوئی نہیں آتا فقہاء نے کہا ہے کہ وہ وہاں تنہا ہی اذان دے کر اور نماز پڑھے یہ دوسری مسجد میں نماز پڑھنے سے افضل ہے

1 مستدرک حاکم کتاب الصلوٰۃ لا صلوۃ لجار المسجد الخ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/۲۴۶ 2 فتاوی قاضیخان فصل فی المسجد مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱/۳۲

Volume Eight Fatawa Razvia

Note: For these reasons, it has become clear that for the people of Surat, calling the specific winter level (shtawi) as the 'Jamaat Khana' is a specific terminology. And calling the summer area, i.e., the courtyard (sahn), as 'outside' is in the sense that it is outside that specific defined 'Jamaat Khana', not in the sense that it is not a part of the mosque. If they say 'mosque' [referring only to the covered area], it is like the noble scholars referring to the external body as 'outside the body', meaning the outer part of the body, not that it is external to the body itself. Similarly, 'outside the mosque' means the outer segment of the mosque, not that it is outside the mosque's boundary. Even if, hypothetically, they have named only the winter level, i.e., the roofed part, as the 'mosque' in their terminology, the result of not calling it a mosque would only be that it is not the winter level, not that it is not a mosque according to Sharia. Their perpetual actions—such as always offering Maghrib, Isha, and Fajr prayers in congregation in the courtyard during the summer, and people coming from their homes upon hearing the call to prayer with the intention of praying in the mosque and joining the congregation here, as clearly stated in the question; and performing Tarawih prayers and observing I'tikaf here during the summer Ramadan, which is well-known and witnessed habitually—serve as clear evidence, a useful determinant, and a source of certainty for this intended meaning. As it is not hidden from a sensible child, let alone a learned person (T). Fifthly: It is ironic that those who deny [the courtyard being part of the mosque] argue and dispute regarding the permissibility of a person in a state of major ritual impurity entering it. According to their statement, God forbid, a reprehensible innovation is occurring among Muslims continuously and obligatorily, i.e., leaving the mosque in the summer to pray in congregation in a non-mosque area and wasting the right of the mosque. Why do they not object to this? In fact, they themselves participate in it because opposing it would also cause them hardship. Now, if they persist in their false claim and strive to completely stop prayers in the courtyard so that the congregation for every season and time is always held inside, and if, hypothetically, their argument prevents people from praying in the courtyard, see how many mosques would be absolutely suspended from prayer, congregation, Tarawih, and I'tikaf during the summer. When people are stopped from the courtyard and naturally feel distressed performing these acts inside, they will inevitably stop coming to the mosque. And even if one or two individuals tolerate this unjust and causeless severe hardship, the absolute certainty of the general public's aversion is guaranteed. Thus, the consequence of

this misplaced dispute, God forbid, is the desolation of mosques and preventing God's servants from remembering Him and praying in them.

Allah, the Mighty and Sublime, has said: "And who is more unjust than he who prevents (men) from the mosques of Allah, lest His name should be remembered in them, and strives for their ruin?" (1) Allah, the Mighty and Sublime, said: Who is a greater wrongdoer than he who prevents God's mosques from having His name remembered in them and strives for their desolation?

Now, those who do not accept the courtyard as part of the mosque should reflect on whose statement was causing corruption in religion. And there is no power nor strength except with Allah, the Most High, the Most Great.

1 Al-Quran 2 / 114 Page 63 of 673

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

चेतावनी (تنبیہ): इन्हीं कारणों से यह स्पष्ट हो गया है कि सूरत के लोगों का विशिष्ट शीतकालीन तल (शतवी) को 'जमाअत खाना' कहना एक विशेष शब्दावली है। और ग्रीष्मकालीन क्षेत्र यानी सहन (आँगन) को 'बाहर' इसी अर्थ में कहते हैं कि वह उस परिभाषित 'जमाअत खाना' से बाहर है, न कि इस अर्थ में कि वह मस्जिद का हिस्सा नहीं है। और यदि वे इसे ही मस्जिद कहते हैं, तो यह कहना वैसा ही है जैसे विद्वान शरीर के बाहरी हिस्से को 'शरीर से बाहर' कहते हैं, जिसका अर्थ यह है कि शरीर का बाहरी हिस्सा, न कि यह कि वह शरीर से बाहर है। इसी प्रकार 'मस्जिद से बाहर' का अर्थ मस्जिद का बाहरी टुकड़ा है, न कि मस्जिद की सीमा से बाहर। और मान लीजिए कि यदि उन्होंने अपनी शब्दावली में मस्जिद केवल शीतकालीन यानी छत वाले हिस्से का ही नाम रखा हो, तो उसे मस्जिद न कहने का परिणाम केवल इतना होगा कि वह शीतकालीन तल नहीं है, न कि यह कि वह शरीयत के अनुसार मस्जिद नहीं है। उनके निरंतर कार्य—जैसे गर्मियों में हमेशा मग़रिब, ईशा और फज्र की नमाज़ जमाअत के साथ सहन में ही पढ़ना, और अज़ान सुनकर नमाज़-ए-मस्जिद के इरादे से घरों से आकर यहाँ जमाअत करना, जिसका स्पष्ट उल्लेख प्रश्न में मौजूद है; और गर्मियों के रमज़ान में यहीं तरावीह पढ़ना, एतिकाफ़ में रहना, जो आदतन निश्चित रूप से ज्ञात और प्रत्यक्ष है—इस अभीष्ट उद्देश्य पर स्पष्ट प्रमाण, उपयोगी निर्धारक और निश्चितता का स्रोत हैं। जैसा कि किसी समझदार बच्चे से भी छिपा नहीं है, विद्वान की तो बात ही क्या है। (ت) पाँचवीं बात (خامساً): विडंबना यह है कि इनकार करने वाले जुनुब (अपवित्र व्यक्ति) के प्रवेश की वैधता में बहस और विवाद करते हैं। उनके कथन के अनुसार, ईश्वर न करे, मुसलमानों के बीच निरंतर और अनिवार्य रूप से एक घृणित बिदअत (नवाचार) हो रही है, यानी गर्मियों में मस्जिद छोड़कर गैर-मस्जिद में जमाअत पढ़ना और मस्जिद के हक़ को नष्ट करना। वे इस पर आपत्ति क्यों नहीं करते? बल्कि इसमें तो वे स्वयं भी शामिल होते हैं क्योंकि विरोध करने में उनकी अपनी भी कठिनाई है। अब यदि वे अपने झूठे कथन पर अड़े रहें और इस विचार में पड़ें कि सहन की नमाज़ पूरी तरह से बंद कर दी जाए और हमेशा हर मौसम और हर समय की जमाअत अंदर ही हुआ करे, और मान लीजिए कि उनकी यह बात लोगों को सहन की नमाज़ से रोक दे, तो देखिये गर्मियों में कितनी मस्जिदें नमाज़, जमाअत, तरावीह और एतिकाफ़ से पूरी तरह वंचित हो जाएँगी। जब लोगों को सहन से रोका जाएगा और वे स्वाभाविक रूप से अंदर इन कार्यों को करने से घबराएँगे, तो वे अनिवार्य रूप से मस्जिद आने से रुक जाएँगे। और यदि एक या दो लोगों ने यह अन्यायपूर्ण और बिना कारण की भारी मुसीबत झेल भी

ली, तो आम जनता का विमुख होना निश्चित और तय है। अतः इस व्यर्थ विवाद का परिणाम, ईश्वर न करे, मस्जिदों को वीरान करना और उनमें ईश्वर के बंदों को उसके नाम के स्मरण और नमाज़ से रोकना है।

अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल ने फ़रमाया: "और उस व्यक्ति से बढ़कर अत्याचारी कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों में उसके नाम का स्मरण किए जाने से रोके और उन्हें वीरान करने का प्रयास करे?" 1- अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल ने फ़रमाया: उस व्यक्ति से बढ़कर ज़ालिम कौन है जो खुदा की मस्जिदों में खुदा का नाम याद किए जाने से रोके और उनकी वीरानी में प्रयास करे।

अब सहन को मस्जिद न मानने वाले विचार करें कि किसका कथन धर्म में बिगाड़ पैदा करने वाला था। और अल्लाह के बिना न कोई सामर्थ्य है और न कोई शक्ति, जो सबसे उच्च और सबसे महान है।

1 अल-क़ुरान 2 / 114 पृष्ठ 673 में से 63

تنبیہ: انھیں وجوہ سے ظاہر ہو گیا کہ اہل سورت کا خاص درجہ شتوی کو جماعت خانہ کہنا ایک اصطلاح خاص ہے اور صیفی یعنی صحن کو خارج اسی معنی پر کہتے ہیں کہ اُس جماعت خانہ مصطلحہ سے باہر ہے نہ بایں معنی کہ جزء مسجد نہیں، اور اگر مسجد ہی کہتے ہوں تو یہ کہنا ایسا ہے جیسے علماء کرام ظاہرِ بدن کو خارجِ البدن فرماتے ہیں جس کے یہ معنی کہ بدن بیرونی حصہ نہ یہ کہ بدن سے باہر، یونہی خارج مسجد یعنی مسجد کا بیرونی ٹکڑا، نہ یہ کہ مسجد سے خارج۔ اور بالفرض اگر انھوں نے اپنی اصطلاح میں مسجد صرف شتوی یعنی مسقف ہی کا نام رکھا ہو تو اسے مسجد نہ کہنے کا حاصل اس قدر ہو گا کہ درجہ شتویہ نہیں نہ یہ کہ شرعاً مسجد نہیں، ان کے افعالِ دائمی یعنی موسم گرما میں ہمیشہ جماعتِ مغرب وعشاء وفجر صحن ہی پر پڑھنا اور آذان سننے پر مکانوں سے بارادہ صلوٰۃ فی المسجد آکر یہاں جماعت کرنا جس کی تصریح سوال میں موجود۔ اور رمضانِ گرما میں یہیں تراویح پڑھنا، معتکف رہنا کہ عادۃً بالقطع معلوم و مشہود، اس مراد مقصود پر شاہدِ مبین و مفیدِ تعیین و مورثِ یقین، کما لا یخفی علی صبی عاقل فضلا عن فاضل (جیسا کہ کسی عاقل بچے سے مخفی نہیں چہ جائیکہ کسی فاضل پر خفی رہے۔

ت) خامساً: طرفہ یہ کہ انکار کرنے والے حلتِ دخولِ جنب میں بحث و نزاع کرتے ہیں اُن کے قول پر یہ معاذ اللہ صراحتہً بدعتِ شنیعہ مسلمانوں سے علی الدوام والا لتزام واقع ہوتی ہے یعنی گرمی میں مسجد چھوڑ کر غیر مسجد میں جماعت پڑھنا اور حقِ مسجد تلف کرنا اس پر کیوں نہیں انکار کرتے بلکہ اس میں تو خود بھی شریک ہوتے ہیں کہ خلاف میں اپنی بھی تکلیف ہے، اب اگر وہ اپنے قولِ باطل پر اصرار کرکے اسی فکر میں پڑیں کہ نمازِ صحن مطلقاً بند کر دی جائے اور ہمیشہ ہر موسم ہر وقت کی جماعت اندر ہی ہوا کرے، اور بالفرض اُن کی یہ بات خلق کو نمازِ

صحن سے مانع آئے تو دیکھئے موسم گرما میں کتنی مسجدیں نماز و جماعت و تراویح و اعتکاف سے معطل محض ہوئی جاتی ہیں کہ لوگ جب صحن سے روکے جائیں گے اور اندر ان افعال کی بجا آوری سے بالطبع گھبرائیں گے، لا جرم مسجد کے آنے سے باز رہیں گے اور اگر ایک دو نے یہ ناحق و بے سبب کی سخت مصیبت گوارا بھی کر لی تو عام خلائق کا تنفر قطعی یقینی، تو اس نزاعِ بیجا کا انجام معاذ اللہ مساجد کا ویران کرنا اور اُن میں ذکر و نماز سے بندگانِ خدا کو روکنا ہے۔

قال اللہ عزوجل وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ وَسَعٰی فِیْ خَرَابِہَا ؕ 1- اللہ عزوجل نے فرمایا: اس سے بڑھ کر ظالم کون جو خدا کی مسجدوں کو اُن میں نامِ خدا یاد کئے جانے سے روکے اور ان کی ویرانی میں کوشش کرے۔

اب صحن کو مسجد نہ ماننے والے غور کریں کہ کس کا قول افساد فی الدین تھا ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔

1 القرآن 2 / 114

Fatawa Razawiyyah Volume 8

Sa'usa: This grand issue should be extracted from the words of the noble Imams, which are available for many reasons; scholars clarify that during the holy time of the Prophet, the Leader of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him), the blessed mosque had a length of one hundred yards from south to north, i.e., from the Qibla wall to the end of the mosque, and similarly its width was from east to west. At the end, i.e., on the Syrian side, there was a roofed hallway facing south called 'Suffah', where the People of Suffah (may Allah be pleased with them) used to reside. This was also a part of the mosque. Allama Rahmatullah Sindhi, a student of the absolute researcher Imam Ibn al-Humam, in 'Mansak Mutawassit', and Maulana Ali Qari Makki, in its commentary 'Maslak Muqassat', state:

Arabic	**Urdu**
(Its limit) meaning the boundaries of the first mosque (from the east, behind the pulpit about a cubit, and from the west to the fifth pillar from the pulpit, and from the north where one hundred cubits end from the mihrab of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) and it is known to the people of Medina by the established markers. 1 Summary.	(Its limit) meaning the boundaries of the first mosque (towards the east, on the other side of the pulpit, it is equal to one yard; towards the west up to the fifth pillar; and towards the north, it is one hundred yards from the mihrab of the Holy Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) and it is known to the people of Medina due to specific markers. Summary. (T)

Allama Tahir Fatani states in 'Majma' Bihar al-Anwar':

Arabic	**Urdu**
The People of Suffah were the poor among the Migrants (Muhajireen) and those among them who did not have a house to live in, so they would take refuge in a shaded place in the Mosque of Medina. 2	The People of Suffah were from among the poor Migrants, and whoever did not have a home would stay there; thus, they lived in a roofed area in the Prophet's Mosque. (T)

It is in Sahih Bukhari:

Arabic	**Urdu**
Chapter on men sleeping in the mosque. Abu Qilabah reported from	Chapter about people sleeping in the mosque. Abu Qilabah narrates from Hazrat

Arabic	Urdu
Anas (may Allah be pleased with him): A group from the tribe of 'Ukl came to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and they were in the Suffah. And Abdur Rahman said...	Anas (may Allah be pleased with him) that a delegation from the tribe of 'Ukl came to the holy presence of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and they were in the Suffah.

1. Maslak Muqassat with Irshad al-Sari, section 'And he should value the days of his stay in Medina al-Musharrafa', published by Dar al-Kitab al-Arabi Beirut, p. 343.
2. Mentioned under the word 'Suffah' in Majma' Bihar al-Anwar, published by Nawal Kishore Lucknow, 2/353.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

साउसा: इस अज़ीम मसले का समाधान इमामों के कथनों से ही निकालना चाहिए जो कई कारणों से उपलब्ध हैं; विद्वान स्पष्ट करते हैं कि पैगंबरों के सरदार, हज़रत मुहम्मद (उन पर अल्लाह की कृपा और शांति हो) के पवित्र समय में, मुबारक मस्जिद की लंबाई दक्षिण से उत्तर की ओर, यानी क़िबला की दीवार से मस्जिद के निचले हिस्से तक सौ गज़ थी, और उतनी ही चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक थी। निचले हिस्से में, यानी शाम (उत्तर) की ओर, एक छत वाला बरामदा था जो दक्षिण की ओर था, जिसे 'सुफ़्फ़ा' कहा जाता था और अहल-ए-सुफ़्फ़ा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) उसमें रहते थे। यह भी मस्जिद का हिस्सा था। अल्लामा रहमतुल्लाह सिंधी, जो इमाम मुहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक़ इब्न अल-हुमाम के शिष्य थे, अपनी पुस्तक 'मंसक मुतवस्सित' में, और मौलाना अली क़ारी मक्की इसकी व्याख्या 'मसलक मुक़स्सत' में फरमाते हैं:

अरबी	उर्दू
(इसकी सीमा) अर्थात् पहली मस्जिद की सीमा (पूर्व की ओर, मिम्बर के पीछे लगभग एक हाथ, और पश्चिम की ओर मिम्बर से पाँचवें स्तंभ तक, और शाम (उत्तर) की ओर जहाँ नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मेहराब से सौ हाथ की दूरी समाप्त होती है) और यह मदीना के लोगों को स्थापित प्रतीकों के माध्यम से ज्ञात है। 1 संक्षेप में।	(इसकी सीमा) अर्थात् पहली मस्जिद की सीमा (मिम्बर के दूसरी ओर पूर्व की ओर एक गज़ के बराबर है, और पश्चिम की ओर पाँचवें स्तंभ तक है और शाम की ओर हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मेहराब से सौ गज़ है) और विशिष्ट चिन्हों के कारण मदीना वालों को ज्ञात है। संक्षेप में। (त)

अल्लामा ताहिर फतनी 'मजमा' बिहार अल-अनवार' में फरमाते हैं:

अरबी	उर्दू
अहल-ए-सुफ़्फ़ा मुहाजिरों (प्रवासियों) में से गरीब लोग थे और उनमें से जिनके पास रहने के लिए घर नहीं था, वे मदीना की मस्जिद में एक छायादार स्थान पर शरण लेते थे। 2	अहल-ए-सुफ़्फ़ा मुहाजिर गरीबों में से थे और जिसके लिए घर नहीं होता था वह वहीं ठहरता था, अतः वे मस्जिद-ए-नबवी में एक छत वाली जगह में रहते थे। (त)

सहीह बुख़ारी शरीफ में है:

अरबी

मस्जिद में पुरुषों के सोने का अध्याय। अबू क़िलाबा ने अनस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत की: उक्ल कबीले का एक समूह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास आया और वे सुफ़्फ़ा में थे। और अब्दुर रहमान ने कहा...

उर्दू

मस्जिद में लोगों के सोने के बारे में अध्याय। अबू क़िलाबा हज़रत अनस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से बयान करते हैं कि कबीला उक्ल का एक प्रतिनिधिमंडल रसालत-मआब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की पवित्र सेवा में आया और वे सुफ़्फ़ा में थे।

1. मसलक मुक़स्सत मय इरशाद अल-सारी, अध्याय 'मदीना शरीफ में ठहरने के दिनों को गनीमत समझना', मुद्रित दार अल-किताब अल-अरबी बेरूत, पृष्ठ 343।
2. मजमा' बिहार अल-अनवार में शब्द 'सुफ़्फ़ा' के अंतर्गत वर्णित है, मुद्रित नवल किशोर लखनऊ, 2/353।

ساؤسا: اس مسئلہ جلیلہ کو کلماتِ ائمہ کرام ہی سے استخراج کرنا چاہئے تو بوجوہ کثیرہ میسر، علماء تصریح فرماتے ہیں کہ مسجد مبارک حضور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم زمانہ اقدس میں جنوباً شمالاً یعنی دیوارِ قبلہ سے پائیں مسجد تک سو گز طول رکھتی تھی اور اسی قدر شرقا غربا عرض تھا اور پائیں میں یعنی جانبِ شام ایک مسقف دالان جنوب رویہ تھا جسے صفہ کہتے اور اہل صفہ رضی اللہ تعالٰی عنہم اس میں سکونت رکھتے یہ بھی جزءِ مسجد تھا، علامہ رحمۃ اللہ سندھی تلمیذ امام محقق علی الاطلاق ابن الہمام منسک متوسط اور مولانا علی قاری مکی اس کی شرح مسلک متقسط میں فرماتے ہیں:

عربی	اردو
(حدہ) ای حدود المسجد الاول (منالمشرق من وراء المنبر نحو ذراع ومن المغرب الاسطوانة الخامسة من المنبر ومن الشام حیث ینتھی مائة ذراع من محرابه صلی اللہ تعالی علیه وسلم) وھو معلوم لاھل المدینة بالعلامة الموضوعة 1 اہ ملخصًا۔	(اس کی حد) یعنی مسجد اول کی حدود (منبر کی دوسری طرف مشرق کی طرف ایک گز کے برابر ہے، اور جانبِ مغرب پانچویں ستون تک اور جانبِ شام حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے محراب سے سو گز ہے) اور نشانات مخصوصہ کی وجہ سے اہل مدینہ کو معلوم ہے اھ تلخیصاً۔ (ت)

علامہ طاہر فتنی مجمع بحار الانوار میں فرماتے ہیں:

عربی	اردو
اهل الصفة فقراء المهاجرين ومن لم يكن له منهم منزل يسكنه فكانوا يأوون الى موضع مظلل فی مسجد المدينة۔ 2	اہل صفہ مہاجر فقراء میں سے تھے اور جس کے لئے گھر نہ ہوتا وہ وہیں ٹھہرتا، پس صفہ مسجد نبوی میں ایک چھتدار جگہ میں رہتے تھے۔ (ت)

صحیح بخاری شریف میں ہے:

عربی	اردو
باب نوم الرجال فی المسجد وقال ابوقلابة عن انس رضی الله تعالی عنه قدم رهط من عكل على النبی صلی الله تعالی علیه وسلم فكانوا فی الصفة، وقال عبدالرحمن	باب لوگوں کا مسجد میں سونے کے بارے میں، ابو قلابہ حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بیان کرتے ہیں کہ قبیلہ عکل کا ایک وفد رسالتمآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی خدمتِ اقدس میں آیا اور وہ صفہ میں تھے

1. مسلک متقسط مع ارشاد الساری فصل و یغتنم ایام مقامہ بالمدینۃ المشرفۃ مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ص ۳۴۳

2. مجمع بحار الانوار لفظ صفف کے تحت مذکور ہے مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۲/ ۳۵۳

Fatawa Razawiya, Volume Eight

بن ابی بکر رضی اللہ تعالیٰ عنہما کان اصحاب الصفة الفقراء 1	Hadrat Abdur Rahman bin Abi Bakr (may Allah be pleased with them both) narrated that the People of Suffah were poor. (T)

Allama Ahmad al-Qastallani states in Irshad al-Sari Sharh Sahih al-Bukhari:

الصُّفَّة بضم الصاد و تشدید الفاء موضع مظلل فی اخریات المسجد النبوی تاوی الیہ المساکین۔ 2	‘Al-Suffah’, with a damma on the Sad and a tashdid on the Fa, refers to a shaded area at the end of the Prophetic Mosque where the poor sought refuge. (T)

Now an observer knows that the Mihrab of Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him), which is on the north side of the Mihrab of the Leader of the Faithful Uthman Ghani (may Allah be pleased with him), if you measure towards the bottom of the mosque, a part of hundred yards area will fall in the courtyard, and it is definitely known that the extent of the mosque building during the holy period never decreased but only increased. Therefore, it is necessary that even then this hundred yards was included with the courtyard, and since until the Suffah it was a part of the mosque, as is evident from the texts we have quoted (T), then how is it reasonable that the courtyard in the middle be considered outside the mosque.

Secondly, scholars state that planting trees in a mosque is prohibited as it occupies prayer space, but if there is a benefit for the mosque, such as if the ground of the mosque is so damp that columns do not stay stable due to extreme moisture, then trees may be planted to absorb the dampness so that the roots spread and pull out the moisture from the ground. This is mentioned in Al-Zahiriyyah, Al-Khaniyah, Khulasah, Al-Hindiyyah, Bahr al-Ra’iq etc.

یکرہ غرس الشجر فی المسجد لانہ یشبہ بالبیعہ تکون فیہ منفعة للمسجد بان کان الارض نزة لا تستقر اساساطینها فیغرس فیہ الشجر لیقل النزة۔ 3	Planting trees in a mosque is disliked because it resembles a church (bi’ah) and occupies prayer space. However, it is permissible in a case where there is benefit, for example, if the land is marshy and foundations do not stay stable in its clay, then trees are planted to reduce the marshiness. (T)

The words of Al-Zahiriyyah are:

فتغرس لتجذب عروق الاشجار ذلک	So they are planted so that the roots of the trees absorb that [moisture].

1. Sahih al-Bukhari, Chapter on Men Sleeping in the Mosque, Published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/63
2. Irshad al-Sari Sharh Sahih al-Bukhari, Chapter on Men Sleeping in the Mosque, Published by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/473
3. Fatawa Qazi Khan, Section on the Mosque, Published by Naval Kishore, Lucknow, 1/31

फतावा रज़विया, जिल्द आठ

بن ابی بکر رضی اللہ تعالیٰ عنہما کان اصحاب الصفة الفقراء 1

हज़रत अब्दुर रहमान बिन अबी बक्र (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने फ़रमाया कि असहाब-ए-सुफ़्फ़ा फ़क़ीर थे। (त)

अल्लामा अहमद क़स्तलानी इरशाद अल-सारी शरह सहीह बुखारी में फ़रमाते हैं:

الصُّفَّة بضم الصاد و تشدید الفاء موضع مظلل فی اخریات المسجد النبوی تاوی الیہ المساکین۔ 2

अस-सुफ़्फ़ा, साद पर पेश और फ़ा पर तशदीद के साथ, मस्जिद-ए-नबवी के आख़िरी हिस्से में वह छायादार जगह थी जहाँ मिस्कीन (ग़रीब) पनाह लेते थे। (त)

अब मुशाहदा करने वाला जानता है कि मेहराब-ए-मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जो अमीरुल मोमिनीन उस्मान ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) के मेहराब की उत्तर दिशा में है, यदि मस्जिद के निचले हिस्से की ओर पैमाइश करते आएं तो सौ गज़ का रकबा एक हिस्सा सहन (आंगन) में आएगा, और यह यकीनन मालूम है कि नबी ए करीम के मुबारक ज़माने में मस्जिद की जितनी तामीर थी उसमें कमी नहीं हुई बल्कि इज़ाफ़ा ही होता आया। तो ज़रूरी है कि उस वक़्त भी यह सौ गज़ सहन के साथ था, और चूंकि सुफ़्फ़ा तक मस्जिद का हिस्सा था (जैसा कि हमारे द्वारा उद्धृत इबारतों से स्पष्ट है - त), तो यह कैसे मुमकिन है कि बीच में सहन को मस्जिद से बाहर गिना जाए।

दूसरा यह कि उलमा फरमाते हैं कि मस्जिद में पेड़ लगाना मना है क्योंकि उससे नमाज़ की जगह घिरेगी, लेकिन अगर इसमें मस्जिद का कोई फ़ायदा हो, जैसे कि मस्जिद की ज़मीन इस कदर दलदली हो कि नमी की अधिकता के कारण खंभे न टिक सकें तो नमी सोखने के लिए पेड़ लगाए जाएं ताकि जड़ें फैलकर ज़मीन की नमी खींच लें। यह ज़हीरिया, खानिया, ख़ुलासा, हिंदिया और बहरुर राइक़ वगैरह में है।

یکرہ غرس الشجر فی المسجد لانہ یشبہ بالبیعہ تکون فیہ منفعة للمسجد بان کان الارض نزة لا تستقر اساساطینها فیغرس فیہ الشجر لیقل النزة۔ 3

मस्जिद में पेड़ लगाना मकरूह है क्योंकि यह गिरजाघर (बी'अह) के समान है और नमाज़ की जगह को घेरता है। अलबत्ता, यह उस स्थिति में जायज़ होगा जब इसमें कोई लाभ हो, उदाहरण के लिए यदि ज़मीन दलदली है और उस पर खंभे नहीं टिकते हैं, तो उसमें पेड़ लगाए जाएं ताकि दलदलीपन कम हो जाए। (त)

ज़हीरिया के शब्द ये हैं:

فتغرس لتجذب عروق الاشجار ذلک इसलिए पेड़ लगाएं ताकि उनकी जड़ें उस नमी को सोख लें।

1. सहीह अल-बुखारी, बाब: पुरुषों का मस्जिद में सोना, प्रकाशित: कदीमी कुतुब खाना, कराची, 1/63
2. इरशाद अल-सारी शरह सहीह बुखारी, बाब: पुरुषों का मस्जिद में सोना, प्रकाशित: दार अल-किताब अल-अरबी, बेरुत, 1/473
3. फ़तावा काज़ी ख़ान, फ़स्ल मस्जिद के बारे में, प्रकाशित: नवल किशोर, लखनऊ, 1/31

पृष्ठ 65/673

بن ابی بکر رضی اللہ تعالٰی عنہما کان حضرت عبد الرحمن بن ابی بکر رضی اللہ تعالٰی عنہما نے
اصحاب الصفة الفقراء 1 فرمایا کہ اصحاب صفہ فقراء تھے۔ (ت)

علامہ احمد قسطلانی ارشاد الساری شرح صحیح بخاری میں فرماتے ہیں:

الصُّفَّة بضم الصاد و تشدید الفاء موضع الصُّفَّة، صاد پر پیش، فاء پر تشدید، مسجد نبوی کے
مظلل فی اخریات المسجد النبوی تاوی الیہ آخری حصہ میں وہ چھتی ہوئی جگہ جہاں مساکین پناہ
المساکین۔ 2 لیتے تھے۔ (ت)

اب مشاہدہ کرنے والا جانتا ہے کہ محراب مصطفی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کہ محراب امیر المؤمنین عثمان غنی رضی اللہ تعالٰی عنہ کی جانب شمال ہے، پائین مسجد کو پیمائش کرتے آئیے تو سو گز کی مساحت ایک حصہ صحن میں آئے گی، اور قطعاً معلوم کہ زمانہ اقدس میں جس قدر بنائے مسجد تھی اُس میں کمی نہ ہوئی بلکہ افزونیاں ہی ہوتی آئیں تو واجب کہ اس وقت بھی یہ سو گز مع صحن تھی اور جبکہ صفہ تک جزء مسجد تھا کما ظھر مما نقلنا من العبارات (جیسے کہ ہماری نقل کردہ عبارات سے ظاہر ہے۔ ت) تو کیونکہ معقول کہ بیچ میں صحن خارج مسجد گنا جائے۔

ثانیاً علماء ارشاد فرماتے ہیں کہ مسجد میں پیڑ بونا ممنوع ہے کہ اُس سے نماز کی جگہ رُکے گی مگر جبکہ اس میں منفعت مسجد ہو اس طرح کہ زمین مسجد اس قدر گل ہو کہ ستون بوجہ شدت رطوبت نہ ٹھہرتے ہوں تو جذب تری کیلئے پیڑ بوئے جائیں کہ جڑیں پھیل کر زمین کی نم کھینچ لیں۔ ظہیریہ وخانیہ وخلاصہ وہندیہ وبحر الرائق وغیر ہا میں ہے،

یکرہ غرس الشجر فی المسجد لانہ یشبہ بالبیعہ تکون فیہ منفعة للمسجد بان کان الارض نزة لا تستقر اساساطینها فیغرس فیہ الشجر لیقل النزة۔ 3

مسجد میں درخت لگانا مکروہ ہے کیونکہ یہ بیعہ (گرجے) کی مشابہت ہے اور نماز کی جگہ مشغول کرتا ہے۔ البتہ اس صورت میں جائز ہوگا جب اس میں کوئی نفع ہو، مثلاً زمین سیلابی ہے اس پر ستون کھڑے نہیں ہوتے تو اس میں درخت لگائے جائیں تاکہ سیلابیت کم ہو جائے۔ (ت)

ظہیریہ کے لفظ یہ ہیں:

فتغرس لتجذب عروق الاشجار ذلک پس درخت لگائیں تاکہ ان کی جڑیں اس تری کو جذب

1. صحیح البخاری باب نوم الرجال فی المسجد مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۶۳
2. ارشاد الساری شرح صحیح بخاری باب نوم الرجال فی المسجد مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ۱/۴۷۳
3. فتاوٰی قاضی خاں فصل فی المسجد مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۱/۳۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

[First Box] Arabic: Planting [trees in the mosque] is permissible, otherwise not. Our scholars only permitted planting trees in the Grand Mosque of Bukhara due to the necessity existing therein. [1] Urdu: ...they do so, then planting trees will be permissible, otherwise not. Our scholars who declared planting trees in the Grand Mosque of Bukhara as permissible had this very need and necessity in mind. (T)

It is evident that mosque pillars are only in the roofed area, and trees are not planted in the inner chambers; rather, they do not grow in the shade. Furthermore, when there is such excessive moisture that pillars cannot withstand it, such dampness cannot be warded off by small plants of a flowerbed, etc., nor will their roots spread enough to absorb it from the surroundings. And planting large trees inside is not reasonable. Thus, it is necessary that this refers to planting in the courtyard of the mosque, which they deemed as planting in the mosque. When the case of planting in the mosque was held as permissible, and the example of Zahiriyyah made this meaning very clear. It is absolutely known that the Grand Mosque of Bukhara is not roofed, nor are its trees ever under a roof; rather, they were certainly planted in the courtyard, and the Ulema (scholars) considered this as planting in the mosque.

Eighthly, scholars state that the shops at the mosque gate are considered the 'fana' (precincts/annexes) of the mosque as they are adjacent to the mosque. In Fatawa Imam Qazi Khan and then in Fatawa Alamgiri, it is stated:

[Second Box] Arabic: The prayer of one standing on the shops that are at the gate of the mosque is valid because they are from the precincts of the mosque, connected to the mosque. [2] Urdu: The following of the Imam (Iqtida) is valid for the person standing on that shop which is at the gate of the mosque because it is connected to the mosque by virtue of being in the mosque's precincts. (T)

It is clear that the shops at the gate are adjacent to the mosque courtyard, not to the roofed area. Therefore, the mosque courtyard is indeed the mosque. From here it is also evident that calling the courtyard 'fana' (precinct) is purely incorrect. If it were the 'fana' of the mosque, then the shops adjacent to it would be 'adjacent to the fana', not 'adjacent to the mosque'. Then there would be a discussion on the shops being considered 'fana', for 'fana' is that which is adjacent to the mosque, not that which is adjacent to the 'fana'. Otherwise, by this definition, in addition to distance, anything adjacent to the 'fana' would also be considered 'fana', and the whole city, or at least the whole neighborhood, would be declared as the 'fana' of the mosque, as is

not hidden (kama la yakhfa). And this claim that the meaning of 'courtyard' and 'fana' is the same...

[Footnotes] 1. Al-Bahr al-Ra'iq, referring to al-Zahiriyyah, Chapter: After finishing the explanation of dislikeability, etc., printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/35. 2. Fatawa Qazi Khan, Chapter on the Mosque, printed by Naval Kishore, Lucknow, 1/32.

फतावा रिज़विया, जिल्द 8

[पहला बॉक्स] अरबी: [मस्जिद में] वृक्षारोपण करना जायज़ है, अन्यथा नहीं। हमारे उलेमा ने बुखारा की जामे मस्जिद में पेड़ लगाने को जो जायज़ करार दिया है, वह वहाँ मौजूद ज़रूरत और हाजत की वजह से है। [1] उर्दू: ...कर लें, तो अब पेड़ लगाना जायज़ होगा वरना नहीं, हमारे मशाईख (विद्वानों) ने बुखारा की जामे मस्जिद में पेड़ लगाने को जो जायज़ करार दिया है, उसमें यही ज़रूरत व हाजत पेश-ए-नज़र है। (त)

ज़ाहिर है कि मस्जिद के सुतून (खंभे) छत वाले हिस्से में ही होते हैं, और पेड़ भीतरी कमरों में नहीं बोए जाते बल्कि साये में उनकी परवरिश नहीं होती। इसके साथ ही जब नमी की इतनी ज़्यादती हो कि सुतून टिक न सकें, तो ऐसी नमी फूलवारी वगैरह के छोटे-छोटे पौधों से दूर नहीं हो सकती, न ही उनकी जड़ें इतनी फैलेंगी कि चारों तरफ से उसे सोख लें। और बड़े पेड़ों को अंदर बोया जाना तर्कसंगत नहीं है। तो लाज़िमी है कि इससे मुराद मस्जिद के सहन (आंगन) में बोना है और उसे उन्होंने मस्जिद में बोना करार दिया। जब मस्जिद में पेड़ लगाने (ग़र्स फ़िल मस्जिद) की सूरत को जायज़ रखा, और मिसाल-ए-ज़हीरिया ने तो इस मायने को खूब स्पष्ट कर दिया। यह निश्चित रूप से ज्ञात है कि जामे बुखारा बिना छत वाली नहीं है, न ही उसके पेड़ छत के नीचे हैं, बल्कि यकीनन सहन में बोए गए, और इसी को विद्वानों ने मस्जिद में पेड़ लगाना माना।

आठवें, उलेमा फरमाते हैं कि मस्जिद के दरवाज़े पर जो दुकानें हैं वे मस्जिद की फ़ना (अहाता/परिक्षेत्र) हैं क्योंकि वे मस्जिद से जुड़ी हुई हैं। फतावा इमाम काज़ी ख़ान फिर फतावा आलमगीरी में है:

[दूसरा बॉक्स] अरबी: उस व्यक्ति की इक़्तेदा (इमाम के पीछे नमाज़) सही है जो उन दुकानों पर खड़ा हो जो मस्जिद के दरवाज़े पर हैं क्योंकि वे मस्जिद की फ़ना में से हैं और मस्जिद से मुत्तसिल (जुड़ी) हैं। [2] उर्दू: उस शख्स की इक़्तेदा दुरुस्त है जो उस दुकान पर खड़ा है जो मस्जिद के दरवाज़े पर है क्योंकि यह फ़ना-ए-मस्जिद में होने की वजह से मस्जिद से मुत्तसिल (जुड़ी) है। (त)

ज़ाहिर है कि जो दुकानें दरवाज़े पर हैं वे मस्जिद के सहन से जुड़ी हैं न कि छत वाले दर्जे से। तो लाज़मी तौर पर मस्जिद का सहन मस्जिद ही है। और यहीं से ज़ाहिर है कि सहन को फ़ना कहना सरासर गलत है। अगर वह मस्जिद की फ़ना होता तो उससे जुड़ी दुकानें 'फ़ना से मुत्तसिल' होतीं, न कि 'मस्जिद से मुत्तसिल'। फिर उन दुकानों के फ़ना होने पर बहस होती कि फ़ना वह है जो मस्जिद

से मुत्तसिल हो न कि वह जो फ़ना से मुत्तसिल हो। वरना इस परिभाषा के आधार पर, दूरी के अलावा, फ़ना से जुड़ी चीज़ भी फ़ना हो जाएगी तो सारा शहर या कम से कम पूरा मोहल्ला मस्जिद की फ़ना करार पाएगा, जैसा कि छिपा नहीं है (कमा ला यख़फ़ा)। और यह दावा कि सहन और फ़ना का अर्थ एक ही है...

[पाद-टिप्पणियाँ] 1. अल-बहरुल राइक, ज़हीरिया के हवाले से, अध्याय: कराहियत के बयान के बाद आदि, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/35. 2. फतावा काज़ी ख़ान, मस्जिद से संबंधित अध्याय, नवल किशोर, लखनऊ, 1/32.

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[پہلا باکس] عربی: الغرس فیجوز والا فلا وانما جوز مشائخنا فی المسجد الجامع ببخاری لما فیہ من الحاجۃ اھ 1 اردو: کرلیں، تو اب درخت لگانا جائز ہوگا ورنہ نہیں، ہمارے مشائخ نے بخارا کی جامع مسجد میں درخت لگانے کو جو جائز قرار دیا ہے اس میں یہی ضرورت و حاجت پیش نظر ہے اھ (ت)

ظاہر ہے کہ ستون مسجد مسقف ہی میں ہوتے ہیں اور پیڑ درجہ اندرونی میں نہیں بوئے جاتے بلکہ سائے میں پرورش نہیں ہوتے معہذا جب تری کی وہ بیشری کہ ستون نہیں ٹھہرتے تو ایسی رطوبت پھلواری وغیرہ کے چھوٹے چھوٹے پودوں سے دفع نہیں ہو سکتی، نہ ان کی جڑیں اتنی پھیلیں کہ اطراف سے جذب کر لیں اور بڑے پیڑ اندر بوئے جانا معقول نہیں تو واجب کہ اس سے مراد صحن مسجد میں بونا ہے اور اسے انھوں نے مسجد میں بونا قرار دیا __ جب تو غرس فی المسجد کی صورت جواز میں رکھا، اور مثال ظہیریہ نے تو اس معنی کو خوب واضح کر دیا۔ قطعاً معلوم کہ جامع بخارا نامسقف نہیں نہ زنہار اُس کے درخت زیر سقف ہیں بلکہ یقیناً صحن میں بوئے گئے ، اور اسی کو علمائے کرام نے غرس فی المسجد جانا۔

ثامناً علماء فرماتے ہیں دروازہ مسجد پر جو دکانیں ہیں فنائے مسجد ہیں کہ مسجد سے متصل ہیں، فتاوٰی امام قاضی خاں پھر فتاوٰی عالمگیریہ میں ہے:

[دوسرا باکس] عربی: یصح الاقتداء لمن قام علی الدکاکین التي تکون علی باب المسجد لانھا من فناء المسجد متصلۃ بالمسجد۔ 2 اردو: اس شخص کی اقتداء درست ہے جو اس دکان پر کھڑا ہے جو

مسجد کے دروازے پر ہے کیونکہ یہ فنائے مسجد میں ہونے کی وجہ سے مسجد سے متصل ہے۔ (ت)

ظاہر ہے کہ جو دکانیں دروازہ پر ہیں صحن مسجد سے متصل ہیں نہ درجہ مسقفہ سے ، تو لاجرم صحن مسجد مسجد ہے، اور یہیں سے ظاہر کہ صحن کو فنا کہنا محض غلط ہے اگر وہ فنائے مسجد ہوتا تو دکانیں کہ اس سے متصل ہیں متصل بہ فنا ہوتیں ، نہ متصل بہ مسجد، پھر ان دکانوں کے فنا ٹھہرنے میں کلام ہوتا کہ فنا وہ ہے جو متصل بہ مسجد ہو نہ وہ کہ متصل بہ فنا ہو، ورنہ اس تعریف پر لزوم دُور کے علاوہ متصل بالفنا بھی فنا ٹھہرے تو سارا شہر یا لا اقل تمام محلہ فنائے مسجد قرار پائے کما لا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں۔ت) اور یہ ادعاکہ صحن و فنا کا مفہوم واحد

[حواشی] 1 البحر الرائق بحوالہ الظہیر یۃ فصل لما فرغ من بیان الکراہیۃ الخ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۳۵ 2 فتاوٰی قاضی خاں فصل فی المسجد مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱/ ۳۲

Fatawa Rizvia, Volume 8

This is severe ignorance that is not rational for any sane person; perhaps this speaker would even call those shops the courtyard of the mosque.

Ninthly, if you do justice, this specific minor issue (juz'iyyah), i.e., it being impermissible for a person in a state of ritual impurity (junub) to enter the courtyard of the mosque, can be derived from the words of the scholars. The Imams state that it is not permissible for a junub to enter the mosque, except when there is a water spring inside the mosque and he finds no water elsewhere, then he should perform dry ablution (tayammum) and fetch it. It is mentioned in Mabsut, 'Inayah, Radd al-Muhtar, Fatawa 'Alamgiriyyah, Hindiyyah, and other books:

Urdu Translation: The wording of the first three books is: A junub traveler passed by a mosque that contains a spring of water, and he finds no water other than it, so he should perform tayammum to enter the mosque, because according to us, in every case, ritual impurity prevents him from entering the mosque. (T)	**Arabic text: The wording of the first three is: A traveler passed by a mosque in which there is a water spring, and he is in a state of ritual impurity (junub) and finds no other water. He should perform tayammum to enter the mosque because ritual impurity (janabah) prevents him from entering the mosque in all circumstances according to us. 1**

It is clear that in common cities, common mosques for congregations are roofed, and the water spring is usually in the courtyard. The words of the jurists (Fuqaha) are based on common and prevailing matters. It is very rare for a water spring to be in the inner section. Thus, they issued these rulings regarding a junub going into the courtyard. Understand and reflect. Apart from these, deduction is possible from many other numerous reasons, but after these compelling proofs have reached the ears of the listeners, there is no need for further elongation.

Tenthly, how wonderful! After these shining proofs, it was a clear and self-evident fact that the mosque courtyard is part of the mosque, which did not fundamentally need explicit mention in books. Rather, the one who does not consider it a mosque was the one in need of explicit and definitive proof, which he could never show. Nevertheless, this humble servant (the author) has mentioned these four deductions from the words of the Imams as a blessing, because this self-evident issue, due to its extreme clarity and fame, was of the kind that a servant of jurisprudence would not expect to find an explicit minor detail in the books of the Imams, as the honorable jurists pay

less attention to such bright and famous matters. For example, if someone wants to find an explicit statement from books that in the winter section (shatwi) of the mosque, which formalists call the 'Jama'at Khana' (congregation hall), there are three doors, and whether the left door is also part of the mosque and whether it is prohibited for a junub to enter it or not, he will probably never find such a minor detail. However, by the grace of Allah Almighty, when this humble servant had written up to this point, a specific minor detail of the issue was remembered from the words of the scholars, in which the Imams of the religion have given clear explicit statements that both the summer (saifi) and winter (shatwi) levels of the mosque, i.e., the courtyard and the roofed area, are certainly the mosque. Now listen: Imam Tahir bin Abdul Rashid Bukhari in Fatawa Khulasah, then Imam Fakhruddin Abu Muhammad Usman bin Ali Zaila'i in Tabyin al-Haqa'iq Sharh Kanz al-Daqaiq, then Imam Husain bin Muhammad Sam'ani in Khazanat al-Muftin, then Imam Muhaqqiq al-ala-itlaq Kamaluddin Muhammad bin al-Humam in Fath al-Qadir, then 'Allamah Abdur Rahman bin Muhammad Rumi in Majma' al-Anhur Sharh...

1 Al-Mabsut by as-Sarakhsi, Chapter of Tayammum, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/118. Page 67 of 673

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

यह घोर अज्ञानता है जो किसी बुद्धिमान के लिए तर्कसंगत नहीं है; शायद यह कहने वाला उन दुकानों को भी मस्जिद का आंगन कहेगा।

नौवीं बात, यदि आप न्याय करें तो यह विशिष्ट गौण मसला (जुज़िया), यानी मस्जिद के आंगन में जुनुब (अनुष्ठानिक रूप से अशुद्ध व्यक्ति) का जाना नाजायज होना, विद्वानों के शब्दों से निकाला जा सकता है। इमाम फरमाते हैं कि जुनुब का मस्जिद में जाना जायज नहीं है, सिवाय इसके कि जब पानी का चश्मा मस्जिद में हो और उसके अलावा कहीं पानी न मिले, तो वह तयम्मुम (मिट्टी से वज़ू) करके ले आए। मबसूत, इनाया, रद्दुल मुहतार, फ़तावा आलमगीरिया और हिंदिया आदि ग्रंथों में है:

उर्दू अनुवाद: पहली तीन किताबों के शब्द ये हैं: एक जुनुब यात्री ऐसी मस्जिद से गुजरा जिसके अंदर पानी का चश्मा है और इसके अलावा वह पानी नहीं पाता, तो वह मस्जिद में प्रवेश के लिए तयम्मुम करे, क्योंकि हमारे नजदीक हर हाल में जनाबत (अशुद्धि) उसे मस्जिद में प्रवेश करने से रोकती है। (त)

अरबी पाठ: पहली तीन किताबों के शब्द ये हैं: एक यात्री ऐसी मस्जिद से गुजरा जिसमें पानी का चश्मा है और वह जुनुब है और उसे अन्य कोई पानी नहीं मिलता, तो वह मस्जिद में प्रवेश के लिए तयम्मुम करे क्योंकि हमारे यहाँ हर हाल में जनाबत उसे मस्जिद में प्रवेश करने से रोकती है। 1

ज़ाहिर है कि आम शहरों में आम जमाअत वाली मस्जिदें छत वाली होती हैं और पानी का चश्मा आमतौर पर आंगन ही में होता है, और फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) के शब्द आम और प्रचलित मामलों पर आधारित होते हैं। यह बहुत दुर्लभ है कि आंतरिक हिस्से में पानी का चश्मा हो, तो उन्होंने आंगन ही में जुनुब के जाने पर ये हुक्म दिए। अतः समझें और विचार करें। इनके अलावा और भी बहुत से कारणों से निष्कर्ष निकालना संभव है, लेकिन इन प्रबल प्रमाणों के श्रोताओं के कानों तक पहुँचने के बाद बात को लंबा करने की आवश्यकता नहीं है।

दसवीं बात, अहा! इन उज्ज्वल प्रमाणों के बाद मस्जिद के आंगन का मस्जिद का हिस्सा होना एक स्पष्ट और स्वयंसिद्ध बात थी, जिसके लिए वास्तव में किताबों में स्पष्ट उल्लेख की आवश्यकता नहीं थी। बल्कि जो इसे मस्जिद नहीं मानता, वही स्पष्ट और निर्णायक प्रमाण का मोहताज था और वह इसे कभी नहीं दिखा सकता था। फिर भी इस तुच्छ सेवक (लेखक) ने बरकत के तौर पर इमामों के शब्दों से ये चार निष्कर्ष भी उद्धृत किए हैं, क्योंकि यह स्वयंसिद्ध मसला अपनी अत्यधिक स्पष्टता और

प्रसिद्धि के कारण उस श्रेणी का था जिसमें न्यायशास्त्र के सेवक को इमामों की किताबों में स्पष्ट गौण विवरण मिलने की उम्मीद नहीं होती, क्योंकि माननीय फ़ुक़हा ऐसी उज्ज्वल और प्रसिद्ध बातों पर कम ध्यान देते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई किताबों से यह स्पष्ट विवरण निकालना चाहे कि मस्जिद के शीतकालीन स्तर (शतवी) में, जिसे बाहरी लोग जमाअत खाना कहते हैं, तीन दरवाज़े हैं और क्या बाईं ओर का दरवाज़ा भी मस्जिद का हिस्सा है और उसमें भी जुनुब का जाना वर्जित है या नहीं, तो संभवतः उसे यह विवरण कभी नहीं मिलेगा। लेकिन अल्लाह तआला की कृपा से जब यह सेवक यहाँ तक लिख चुका, तो विद्वानों के शब्दों में इस मसले का एक विशिष्ट गौण विवरण याद आ गया, जिसमें धर्म के इमामों ने स्पष्ट रूप से फ़रमाया है कि मस्जिद के ग्रीष्मकालीन (सैफी) और शीतकालीन (शतवी) दोनों स्तर, यानी आंगन और छत वाला हिस्सा, निश्चित रूप से मस्जिद हैं। अब सुनिए: इमाम ताहिर bin अब्दुल रशीद बुखारी 'फ़तावा खुलासा' में, फिर इमाम फखरुद्दीन अबू मुहम्मद उस्मान bin अली जैलई 'तबीनुल हक़ाइक़ शरह कन्ज़ुद दक़ाइक़' में, फिर इमाम हुसैन bin मुहम्मद समआनी 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में, फिर इमाम मुहक़्क़िक़ अल-अतलाक कमालुद्दीन मुहम्मद bin हुमाम 'फ़तहुल क़दीर' में, फिर अल्लामा अब्दुल रहमान bin मुहम्मद रूमी 'मजमाउल अनहुर शरह' में...

1 अल-मबसूत लिस-सरखसी, बाबुत-तयम्मुम, मुद्रित दारुल मारिफ़ा बेरूत, 1/118 पृष्ठ 67/673

جہلِ شدید ہے کہ کسی عاقل سے معقول نہیں، شاید یہ قائل ان دکانوں کو بھی صحنِ مسجد کہے گا۔ تاسعاً انصاف کیجئے تو یہ خاص جزئیہ بھی یعنی صحنِ مسجد میں جنب کا جانا ناجائز ہونا کلماتِ علما سے مستفاد ہو سکتا ہے، ائمہ فرماتے ہیں جنب کو مسجد میں جانا جائز نہیں مگر جبکہ پانی کا چشمہ مسجد میں ہو اور اس کے سوا کہیں پانی نہ ملے تو تیمم کرکے لے آئے ۔ مبسوط و عنایہ و رد المحتار و فتاوٰی عالمگیریہ و ہندیہ وغیرہا اسفار میں ہے :

پہلی تین کتب کے الفاظ یہ ہیں: ایک جنبی مسافر ایسی مسجد سے گزرا جس کے اندر پانی کا چشمہ ہے اور اس کے علاوہ وہ پانی نہیں پاتا تو وہ دخولِ مسجد کے لئے تیمم کرے کیونکہ ہمارے نزدیک ہر حال میں جنابت اسے دخول مسجد سے مانع ہے۔ (ت)

واللفظ للثلثة الاول مسافر مر بمسجد فیه عین ماء وھو جنب ولا یجد غیرہ، فأنه یتیمم لدخول المسجد لان لا جنابة تمنعه من دخول المسجد علی کل حال عندنا۔ 1

ظاہر ہے کہ عامہ بلاد میں عامہ مساجد جماعات مسقف ہوتی ہیں اور چشمہ آب عادتاً صحن ہی میں ہوتا ہے اور کلماتِ فقہاء امورِ عادیہ غالبہ ہی پر مبتنی ہوتے ہیں، بہت نادر ہے کہ حصہ اندرونی میں چشمہ آب ہو، تو انہوں نے صحن ہی میں جنب کو جانے پر یہ احکام فرمائے فافھم وتبصر (پس سمجھو اور غور کروت) ان کے سوا اور بہت وجوہ کثیرہ سے استنباط ممکن مگر بعد ان دلائل قاہرہ کے جوابدہ زیر گوش سامعین ہوئے حاجتِ تطویل نہیں۔ عاشراً یا حبذا ان براہین ساطعہ کے بعد صحن مسجد کا جزء مسجد ہونا جلی بدیہیات تھا جس پر اصلاً تصریح کتب کی احتیاج نہ تھی بلکہ جو اسے مسجد نہیں مانتا وہی محتاجِ تصریح و قطعی تھا اور ہرگز نہ دکھا سکتا، تاہم فقیر نے بطور تبرع یہ چار استنباط بھی کلمات ائمہ سے ذکر کئے کہ یہ بدیہی مسئلہ اپنے غایتِ وضوح و

اشتہار کے باعث اس قبیل سے تھا جس پر خادم فقہ کو کتب ائمہ میں تصریح جزئیہ ملنے کی امید نہ ہوتی کہ ایسی روشن و مشہور باتوں پر فقہائے کرام کم توجہ فرماتے ہیں۔ مثلاً اگر کوئی اس امر کی تصریح کتابوں سے نکالنا چاہے کہ مسجد کے درجہ شتوی میں جسے اہل صورت جماعت خانہ کہتے ہیں تین در ہیں بائیں طرف کا در بھی جزء مسجد ہے اور اس میں بھی جنب کو جانا ممنوع یا نہیں تو غالباً ہرگز اس کا جزئیہ نہ پائے گا مگر بحمد اللہ تعالیٰ جب فقیر یہاں تک لکھ چکا مسئلہ کا خاص جزئیہ کلماتِ علماء میں یاد آگیا جس میں ائمہ دین نے صاف تصریحیں فرمائی ہیں کہ مسجد کے صیفی و شتوی یعنی صحن و مسقف دونوں درجے یقیناً مسجد ہیں۔ اب سنئے امام طاہر بن عبدالرشید بخاری فتاویٰ خلاصہ پھر امام فخر الدین ابو محمد عثمان بن علی زیلعی تبیین الحقائق شرح کنز الدقائق پھر امام حسین بن محمد سمعانی خزانہ لمفتین پھر امام محقق علی الاطلاق کمال الدین محمد بن الھمام فتح القدیر پھر علامہ عبدالرحمن بن محمد رومی مجمع الانہر شرح

1 المبسوط للسرخسی باب التیمم مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۱۱۸ Page 67 of 673

Fatawa Razawiyyah Volume 8

Al-Muntaqa al-Bahr, then Allama Sidi Ahmad Misri Hashiyah Maraqi al-Falah Sharh Nur al-Idah, then the Seal of Researchers Sidi Muhammad ibn Abidin Shami in Radd al-Muhtar says:

Arabic Text	Urdu Translation
The wording of Khulasa and Khizana is as follows: A man arrived at the mosque, and the people were in the Fajr prayer. If he hopes to catch one rak'ah of the congregation, he should perform the two rak'ahs of Fajr near the door of the mosque. If it is not possible there, he should pray them in the winter mosque if the Imam is in the summer mosque, and if the Imam is in the winter mosque, he should pray them in the summer mosque. If the mosque is only one hall, he should stand in a corner of the mosque, and not pray them mixed with the rows in opposition to the congregation. If he does that, it is severely disliked.	The statement of Khulasa and Khizana is this: A man reached the mosque, the Imam and the people were performing Fajr prayer. Now if the person arriving expects that he will catch one rak'at with the congregation, he should perform two Sunnahs near the door of the mosque, and if it is not possible there, then perform two rak'ats in the winter mosque (i.e. winter part) when the Imam is in the summer mosque (i.e. summer part) and if it is vice versa, i.e. the Imam is in the winter mosque, then pray in the summer mosque. If the mosque is one, he should perform them in a corner of the mosque and not stand close to the row for the performance of these two rak'ats because this is against the congregation. If he does so, it will be severely disliked.

In Radd al-Muhtar it is:

Arabic Text	Urdu Translation
His saying "near the door of the mosque" means outside the mosque, as explicitly stated by al-Qahistani etc. I say: This is clarified by the statement of al-Hidayah and al-Hindiyyah: He prays the two rak'ahs of Fajr at the door of the mosque and then enters.	The author's saying "near the door of the mosque" means outside the mosque, as al-Qahistani has clarified on this etc. (T) I say: (I say) the words of Hidayah and Hindiyyah have made it clear that he should pray the sunnahs of Fajr at the door of the mosque and then enter the mosque. (T)

Imam Abu al-Barakat Hafiz al-Din Nasafi says in the commentary of Kafi:

Arabic Text	Urdu Translation
The best place for sunnahs is the home, then the door of the mosque.	The best place for sunnahs is the home and then if the imam is in the mosque.

1. Khulasat al-Fatawa, Kitab al-Salah, Section on Sunan, printed Naval Kishore Lucknow 1/61 & 62
2. Radd al-Muhtar, Chapter on catching the obligatory prayer, printed HM Saeed Company Karachi 2/56
3. Al-Hidayah, Chapter on catching the obligatory prayer, printed Al-Maktabat al-Arabiyyah Karachi 1/132

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

अल-मुंतक़ा अल-बह्र, फिर अल्लामा सिदी अहमद मिस्री हाशिया मराक़ी अल-फ़लाह शरह नूरुल इदाह, फिर खातमुल मुहक्क़िकीन सिदी मुहम्मद बिन आबिदीन शामी रद अल-मुह्तार में फरमाते हैं:

अरबी इबारत

'खुलासा' और 'ख़ज़ाना' की इबारत यह है: एक आदमी मस्जिद पहुँचा, इमाम और लोग फज्र की नमाज़ अदा कर रहे थे। अब अगर आने वाला व्यक्ति उम्मीद रखता है कि उसे एक रकअत जमाअत के साथ मिल जाएगी, तो वह मस्जिद के दरवाज़े के पास फज्र की दो सुन्नतें अदा करे। और अगर वहाँ मुमकिन न हो, तो वह 'मस्जिद-ए-शत्वी' (यानी सर्दियों वाले हिस्से) में दो रकअत अदा करे, जबकि इमाम 'मस्जिद-ए-सैफ़ी' (यानी गर्मियों वाले हिस्से) में हो। और अगर इसका उल्टा हो, यानी इमाम 'मस्जिद-ए-शत्वी' में हो, तो वह 'सैफ़ी' में पढ़े। अगर मस्जिद एक ही हो, तो मस्जिद के एक कोने में अदा करे और इन दो रकअतों की अदायगी के लिए सफ के साथ सटकर खड़ा न हो क्योंकि यह जमाअत के विरुद्ध है। अगर ऐसा किया तो यह सख़्त मकरूह होगा।

उर्दू अनुवाद

'खुलासा' और 'ख़ज़ाना' की इबारत यह है: एक आदमी मस्जिद पहुँचा, इमाम और लोग फज्र की नमाज़ अदा कर रहे थे। अब अगर आने वाला व्यक्ति उम्मीद रखता है कि उसे एक रकअत जमाअत के साथ मिल जाएगी, तो वह मस्जिद के दरवाज़े के पास दो सुन्नतें अदा करे, और अगर वहाँ मुमकिन न हो तो 'मस्जिद-ए-शत्वी' (यानी सर्दियों वाले हिस्से) में दो रकअत अदा करे, जब इमाम 'सैफ़ी' मस्जिद (यानी गर्मियों वाले हिस्से) में हो और अगर इसके विपरीत हो यानी इमाम 'शत्वी' मस्जिद में हो तो यह 'सैफ़ी' में पढ़े। अगर मस्जिद एक ही हो तो मस्जिद के एक कोने में अदा करे और इन दो रकअतों की अदायगी के लिए सफ के सटकर खड़ा न हो क्योंकि यह जमाअत के खिलाफ है। अगर ऐसा किया तो यह सख्त मकरूह होगा।

रद अल-मुह्तार में है:

अरबी इबारत

उनका कहना "मस्जिद के दरवाज़े के पास" यानी मस्जिद से बाहर, जैसा कि क़हिस्तानी ने इस पर स्पष्ट किया है आदि। मैं कहता हूँ:

उर्दू अनुवाद

लेखक का कथन "मस्जिद के दरवाज़े के पास" यानी मस्जिद से बाहर, जैसा कि क़हिस्तानी ने इस पर तसरीह (स्पष्टीकरण) की है आदि। (त) अकुल: (मैं

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद
हिदाया और हिन्दिया के शब्दों ने इसे स्पष्ट कर दिया है: वह फज्र की दो रकअतें मस्जिद के दरवाज़े पर पढ़ता है फिर दाखिल होता है।	कहता हूँ) हिदाया और हिन्दिया के अल्फाज़ ने वाज़ेह (स्पष्ट) कर दिया है कि वह फज्र की सुन्नतें मस्जिद के दरवाज़े पर पढ़कर मस्जिद में दाखिल हो। (त)

इमाम अबुल बरकात हाफ़िज़ुद्दीन नसफ़ी 'काफ़ी' की शरह में फरमाते हैं:

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद
सुन्नतों के लिए सबसे उत्तम स्थान घर है, फिर मस्जिद का दरवाज़ा।	सुन्नतों के लिए अफ़ज़ल (उत्तम) मकाम घर है और अगर इमाम मस्जिद में हो।

---

1. खुलासातुल फ़तावा, किताबुस सलात, सुन्नतों का बाब, मतबूआ नवल किशोर लखनऊ, 1/61 और 62
2. रद अल-मुह्तार, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, मतबूआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/56
3. अल-हिदाया, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, मतबूआ अल-मक्तबतुल अरबिया कराची, 1/132

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

المنقی البحر پھر علامہ سیدی احمد مصری حاشیہ مراقی الفلاح شرح نورالایضاح پھر خاتم المحققین سیدی محمد بن عابدین شامی ردالمحتار میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت

واللفظ للخلاصة ولخزانة رجل انتهى الى الـمام والناس في الصلوة الفجر ان رجا ان يدرك ركعة في الجماعة يأتي بركعتي الفجر عند باب المسجد وان لم يمكن يأتى بهما فى المسجد الشتوى ان كان الامام فى الصيفى وان كان الامام فى الشتوى هو يأتى فى الصيفى وان كان المسجد واحدا يقف فى ناحية المسجد الا يصليهما مخالطا للصف مخالفا للجباية فان فعل ذلك يكره اشد الكراهة اھ 1

اردو ترجمہ

خلاصہ اور خزانہ کی عبارت یہ ہے : ایک آدمی مسجد میں پہنچا، امام اور لوگ نماز فجر ادا کر رہے تھے اب اگر آنے والا شخص امید رکھتا ہے کہ اسے ایک رکعت جماعت کے ساتھ مل جائے گی تو وہ مسجد کے دروازے کے پاس دو سنتیں ادا کرے، اور اگر وہاں ممکن نہ ہو مسجد شتوی (یعنی سردیوں والے حصہ) میں دو رکعات ادا کرے، جب امام صیفی مسجد (یعنی گرمیوں والے حصہ) میں ہو اور اگر اس کا عکس ہو یعنی امام شتوی مسجد میں ہو تو یہ صیفی میں پڑھے۔ اگر مسجد واحد ہی ہو تو مسجد کے ایک گوشے میں ادا کرے اور ان دو رکعتوں کی ادائیگی کے لئے صف کے متصل کھڑا نہ ہو کیونکہ یہ جماعت کی مخالف ہے۔ اگر ایسا کیا تو یہ شدید مکروہ ہوگا اھ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قوله عند باب المسجد ای خارج المسجد كما صرح به القهستانی 2 الخ۔ اقول: ویو ضحه قول الهداية و الهندية يصلی ركعتي الفجر عند باب المسجد ثم يدخل ۔ 3	ماتن کا قول "مسجد کے دروازے کے پاس" یعنی مسجد سے باہر، جیسے کہ قہستانی نے اس پر تصریح کی ہے الخ (ت) اقول: (میں کہتا ہوں) ہدایہ اور ہندیہ کے الفاظ نے واضح کردیا ہے کہ وہ فجر کی سنتیں مسجد کے دروازے پر پڑھ کر مسجد میں داخل ہو۔ (ت)

امام ابوالبرکات حافظ الدین نسفی کافی شرح میں فرماتے ہیں:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
الافضل في السنن المنزل ثم باب المسجد	سنتوں کے لئے افضل مقام گھر ہے اور اگر امام مسجد

---

1 خلاصۃ الفتاوی کتاب الصلوۃ الجنس فی السنن مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۱/۶۱ و ۶۲ 2 ردالمحتار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۵۶ 3 الہدایہ باب ادراک الفریضہ مطبوعہ المکتبۃ العربیہ کراچی ۱/ ۱۳۲

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Arabic]: If the Imam is performing prayer in the masjid, then the outer masjid [is the place for Sunnahs]; if the Imam is praying in the inner part, then the outer; or the inner part if the Imam is in the outer part. [Summarized] [Urdu]: If the congregation is taking place, then the mosque door is a better place; if the Imam is leading the congregation inside the mosque, then outside the mosque. Similarly, if the Imam is outside the mosque, then the inside of the mosque is better for Sunnahs. [Summarized (T)]

Researcher Allama Zain bin Nujaym al-Misri in 'Bahr al-Ra'iq', then Allama Sayyidi Ahmad al-Tahtawi in the 'Hashiyah of Durr al-Mukhtar' state: [Arabic]: The Sunnah regarding Sunnah prayers is to perform them in one's home or at the door of the masjid, and if that is not possible, then in the outer area of the masjid, etc. [Urdu]: The Sunnah for Sunnah prayers is to perform them at home or near the mosque door, and if it is not possible there, then perform them in the courtyard of the mosque, etc. (T)

It is stated in 'Munyah' and 'Sharh al-Saghir al-Munyah' by Allama Ibrahim al-Halabi: [Arabic]: The emphasized (Sunnah) (regarding the Sunnah of Fajr) is that one should not perform them by joining the row nor directly behind the row without a barrier, and (to perform them) either (in one's home), which is better, (or near the door of the masjid) if possible, meaning there is a suitable place for prayer, (and if it is not possible) that, (then in the outer masjid) if they are praying inside, and vice-versa if there are two masjids, summer and winter. [End of quote] [Urdu]: The emphasized (Sunnah) (in Fajr Sunnahs) is that one should not perform them adjacent to the row nor behind the row without a barrier. (Perform them) either (at home), and this is the best way, or (near the mosque door) if possible, i.e., if prayer can be performed there. (And if it is not possible), then (in the courtyard of the mosque) if people are praying inside the mosque, and in the opposite case, it will be the reverse if there are two mosques, for summer and winter. [End of quote (T)]

Imam researcher Allama Muhammad Muhammad Muhammad ibn Amir al-Haj al-Halabi states in 'Halyah' under this same statement of Munyah: "Al-Masjid al-Kharij means the courtyard of the mosque." (Masjid al-Kharij refers to the courtyard of the mosque. [End of quote - T])

1 Kafi Sharh al-Wafi 2 Hashiyat al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter: Catching the Obligatory Prayer, published by Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/300. 3 Saghiri Sharh

Munyah al-Musalli, Section on Voluntary Prayers, published by Mujtabai Delhi, India, 2/201. 4 Al-Ta'liq al-Majalla li-Ma'ni Munyah al-Musalli with reference to Hilyah Amir al-Haj with Munyah al-Musalli, Section on Sunnahs, published by Maktaba Qadriyah Lahore, p. 394.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[अरबी]: यदि इमाम मस्जिद में नमाज़ पढ़ा रहा हो, तो बाहरी मस्जिद [सुन्नत के लिए बेहतर स्थान है]; यदि इमाम अंदर के हिस्से में है, तो बाहरी हिस्सा; या यदि इमाम बाहरी हिस्से में है, तो सुन्नतों के लिए अंदर का हिस्सा बेहतर है। [संक्षेपित] [उर्दू]: यदि जमात हो रही हो, तो मस्जिद का दरवाज़ा बेहतर स्थान है; यदि इमाम मस्जिद के अंदर जमात करवा रहा हो, तो फिर मस्जिद के बाहर। इसी प्रकार, यदि इमाम मस्जिद के बाहर हो, तो सुन्नतों के लिए मस्जिद के अंदर बेहतर है। [संक्षेपित (त)]

मुहक़्क़िक़ अल्लामा ज़ैन बिन नुजैम मिस्री 'बहर अर-राइक़' में, और फिर अल्लामा सैयदी अहमद तहतावी 'हाशिया दर्र-ए-मुख्तार' में फ़रमाते हैं: [अरबी]: सुन्नत नमाज़ों के बारे में सुन्नत यह है कि उन्हें अपने घर में या मस्जिद के दरवाज़े पर अदा किया जाए, और यदि वह संभव न हो, तो मस्जिद के बाहरी क्षेत्र में, आदि। [उर्दू]: सुन्नतों के लिए सुन्नत यह है कि उन्हें घर में अदा करे या मस्जिद के दरवाज़े के पास, और यदि वहाँ संभव न हो, तो फिर मस्जिद के सहन (आँगन) में अदा करे। आदि (त)

अल्लामा इब्राहिम अल-हलबी की 'मुन्या' और 'शरह-ए-सग़ीर मुन्या' में है: [अरबी]: (सुन्नत) मोअक्कदा (फज्र की सुन्नतों में) यह है कि उन्हें सफ़ से मिल कर या बिना किसी आड़ के सफ़ के पीछे अदा न किया जाए, और (उन्हें अदा किया जाए) या तो (अपने घर में), जो बेहतर है, (या मस्जिद के दरवाज़े के पास) यदि संभव हो, यानी वहाँ नमाज़ के लिए उपयुक्त स्थान होने पर, (और यदि संभव न हो) यह, (तो बाहरी मस्जिद में) यदि लोग अंदर नमाज़ पढ़ रहे हों, और इसके विपरीत होने पर विपरीत होगा यदि वहाँ गर्मियों और सर्दियों की दो मस्जिदें हों। [समाप्त] [उर्दू]: (सुन्नत) मोअक्कदा (फज्र की सुन्नतों में) यह है कि उन्हें सफ़ के साथ और बिना किसी रुकावट के सफ़ के पीछे भी अदा न करे। (उन्हें अदा करे) या तो (घर में), और यही सबसे अच्छा तरीका है, या (मस्जिद के दरवाज़े के पास) यदि संभव हो, यानी यदि वहाँ नमाज़ अदा की जा सकती हो। (और यदि संभव न हो) यह बात, (तो फिर मस्जिद के सहन में) यदि लोग मस्जिद के अंदर नमाज़ अदा कर रहे हों, और इसके विपरीत स्थिति में विपरीत होगा यदि वहाँ गर्मियों और सर्दियों की दो मस्जिदें हैं। [समाप्त (त)]

इमाम मुहक़्क़िक़ अल्लामा मुहम्मद मुहम्मद मुहम्मद इब्न अमीर अल-हज हलबी 'हल्या' में 'मुन्या' के इसी कथन के नीचे फ़रमाते हैं: "अल-मस्जिद अल-ख़ारिज से मुराद मस्जिद का सहन है।" (मस्जिद ख़ारिज से मुराद मस्जिद का सहन है। [समाप्त (त)])

1 काफ़ी शरह वाफ़ी 2 हाशिया अत-तहतावी अल-दर्र अल-मुख्तार, अध्याय: फ़रीज़ा को पाना, प्रकाशित: दार अल-मआरिफ़ा बेरुत, 1/300 3 सग़ीरी शरह मुन्या अल-मुसल्ली, अनुभाग: नवाफ़िल, प्रकाशित: मुजतबाई दिल्ली, भारत 2/201 4 अत-तालीक़ अल-मुजल्ला ली-मानी मुन्या अल-मुसल्ली हल्या अमीर अल-हज के हवाले से मुन्या अल-मुसल्ली के साथ, अनुभाग: सुन्नतें, प्रकाशित: मकतबा कादरिया लाहौर पृ. 394

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

ان كان الامام يصلى في المسجد ثم المسجد الخارج ان كان الامام يصلى في الداخل او الداخل ان كان في الخارج اه ملخصا میں جماعت ہورہا ہو تو مسجد کا دروازہ بہتر مقام ہے، اگر امام داخل مسجد میں جماعت کروارہا ہو تو پھر خارج مسجد اسی طرح امام خارج مسجد ہو تو سنتوں کے لئے داخل مسجد بہتر ہے اہ تلخیصا(ت)

محقق علامہ زین بن نجیم مصری بحر الرائق پھر علامہ سیدی احمد طحطاوی حاشیہ در مختار میں فرماتے ہیں: السنة في السنن انياتي بها في بيته او عند باب المسجد وان لم يمكنه ففي المسجد الخارج الخ سنتوں کے لئے سنت یہ ہے کہ انہیں گھر میں ادا کرے یا مسجد کے دروازے کے پاس، اور اگر وہاں ممکن نہ ہو تو پھر صحن مسجد میں ادا کرے الخ(ت)

"منیۃ و شرح صغیر منیۃ للعلامہ ابراہیم الحلبی میں ہے: (السنة) المؤكدة (في سنة الفجر) هو ان لاياتي بها مخالطاً للصف ولا خلف الصف من غير حائل و (ان ياتي بها) اما (في بيته) وهو الافضل (او عند باب المسجد) ان امكن بان كان هناك موضع لائق للصلاة (وان لم يمكنه) ذلك (ففي المسجد الخارج) ان كانوا يصلون في الداخل و بالعكس ان كان هناك مسجد ان صیفی وشتوی اه (سنت) مؤکدہ (فجر کی سنتوں میں) یہ ہے کہ انہیں صف کے متصل اور بغیر رکاوٹ کے صف کے پیچھے بھی ادا نہ کرے (انہیں بجالائے) یا (گھر میں) اور یہی افضل طریقہ ہے، یا (مسجد کے دروازے کے پاس) اگر ممکن ہو یعنی اگر وہاں نماز ادا کی جاسکتی ہو (اور اگر ممکن نہ ہو) یہ بات (تو پھر صحن مسجد میں) اگر لوگ داخل مسجد نماز ادا کر رہے ہوں اور عکس کی صورت میں عکس ہوگا اگر وہاں دو مساجد صیفی اور شتوی ہیں اھ (ت)

امام محقق علامہ محمد محمد محمد ابن امیر الحاج حلبی حلیہ میں اسی قول منیۃ کے نیچے فرماتے ہیں، المسجد الخارج صحن المسجد اہ (مسجد خارج سے مراد صحن مسجد ہے اھ- ت)

1 کافی شرح وافی 2 حاشیۃ الطحطاوي علی الدر المختار باب ادراك الفریضۃ مطبوعہ دار المعرفتہ بیروت، ۱/۳۰۰ 3 صغیری شرح منیۃ المصلی فصل فی النوافل مطبوعہ مجتبائی دہلی بھارت ۲/۲۰۱ 4 التعلیق المجلی لمانی منیۃ المصلی بحوالہ حلیہ امیر الحاج مع منیۃ المصلی فصل فی السنن مطبوعہ مکتبہ قادریہ لاہور ص ۳۹۴

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Look, in the first seven books, both the summer (saifi) and winter (shatwi) areas were called the mosque, and in four books from the eighth to the eleventh, they were described as the inner mosque and outer mosque. Saghiri has made it clear that the referent of these diverse expressions is one, and in Hilyah, it is explicitly stated that the outer mosque is the name of the courtyard of the mosque. Thus, it has become clearly evident that the courtyard of the mosque is definitely part of the mosque, which scholars sometimes refer to as the summer mosque and sometimes as the outer mosque. And all praise is due to Allah for the clarity of the truth (t - translator's note). After these explicit texts, those inferences were not needed, but what could be done, as this humble person had mentioned them earlier? Nevertheless, their retention is for the benefit of seekers of knowledge and servants of jurisprudence, so they may see the method of inferring issues from the statements of scholars. And success is from Allah. Now that, by the grace of Allah, it has become as clear and manifest as the sun at midday that the courtyard of the mosque is certainly a part of the mosque, all rulings of the mosque are established for it. Their establishment on the courtyard is not dependent on prayers being offered there under any condition. According to the predominant school of thought, it becomes a mosque simply by the dedicator saying, "I have made this land a mosque." According to another school of thought in a corrected view of Zahir al-Riwayah, it becomes a mosque if a congregation of two people with Azan and Iqamah prays there, or even if one person other than the dedicator performs Azan, Iqamah, and prayer in congregation. In another view of Zahir al-Riwayah, it becomes a mosque in all its parts by even a single person other than the dedicator praying individually. Thus, there is no consensus-based requirement for separate prayers in every part. On the first view, it is obvious that prayer is not a condition at all; the mere statement suffices. And on the second view, it is also clear that an individual's prayer or a congregation of two people cannot encompass every portion of the mosque, as is not hidden. So the objective has become clear, and all praise is due to Allah, the Exalted, the Loving. (As is evident, all praise is for Allah Almighty, who is high and loving. - t)

Arabic Text

In Tanwir al-Absar, Durr al-Mukhtar, and Radd al-Muhtar it is stated: His ownership of the mosque ceases by his saying: "I have made it a mosque," according to the

Urdu Translation

Ownership of the mosque ceases with these words: "I have made it a mosque." This is according to the Second Imam (Abu Yusuf). (In al-Durr al-Muntaqa, it is

Arabic Text

Second Imam [Abu Yusuf]. (In al-Durr al-Muntaqa, it says: In Tanwir, al-Durrar, and al-Wiqayah etc., the view of Abu Yusuf is mentioned first, and you know that his view is preferred in matters of endowment (waqf) and adjudication (qadha). – Ash [Shami]). Imam Muhammad and the Imam [Abu Hanifa] made praying in it with a congregation a condition. (The condition of congregation is because it is the objective of the mosque; therefore, it was conditioned to be public).

Urdu Translation

mentioned that in Tanwir, Durrar, and Wiqayah etc., the view of Abu Yusuf is cited foremost, and you know that his view is preferred in waqf and judicial matters. – Ash [Shami]). Imam Muhammad and the Imam [Abu Hanifa] have also declared praying with a congregation in it as necessary and a condition. (The reason for setting the condition of congregation is that this is the very purpose of a mosque; hence this condition exists).

देखिये, पहले की सात किताबों में सैफ़ी और शतवी दोनों को मस्जिद कहा गया और आठवीं से ग्यारहवीं तक की चार किताबों में उन्हें मस्जिद-ए-दाख़िल और मस्जिद-ए-ख़ारिज से व्यक्त किया गया। ग़ज़ीरी ने इन विभिन्न इबारतों का स्पष्ट कर दिया कि इनका अर्थ एक ही है, और हिलिया में स्पष्ट कर दिया कि बाहरी मस्जिद, मस्जिद के सहन (आँगन) का नाम है। तो साफ़ स्पष्ट हो गया कि मस्जिद का सहन निश्चित रूप से मस्जिद है जिसे विद्वान कभी मस्जिद-ए-सैफ़ी और कभी मस्जिद-अल-ख़ारिज कहते हैं। और सच्चाई के स्पष्ट हो जाने पर अल्लाह की स्तुति है (त - अनुवादक)। इन स्पष्ट प्रमाणों के बाद उन अनुमानों की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन क्या करें कि इस फ़क़ीर ने उन्हें पहले उल्लेख कर दिया था। इसके बावजूद, उन्हें बनाए रखना ज्ञान के चाहने वालों और फ़िक़्ह के सेवकों के लाभ के लिए है, ताकि वे विद्वानों के कथनों से मसअलों के निकालने का तरीक़ा देख सकें। और सफलता अल्लाह की ओर से है। अब जबकि अल्लाह की कृपा से, यह दोपहर के सूरज की तरह स्पष्ट और प्रकट हो गया है कि मस्जिद का सहन निश्चित रूप से मस्जिद का हिस्सा है, तो मस्जिद के सभी नियम उसके लिए स्वतः सिद्ध हैं। सहन पर उनका सिद्ध होना किसी भी शर्त पर नमाज़ पढ़ने पर निर्भर नहीं है। प्रमुख मत के अनुसार, वाक़िफ़ (वक़्फ़ करने वाले) के केवल यह कहने से कि "मैंने इस ज़मीन को मस्जिद किया" वह मस्जिद बन जाती है। दूसरे मत पर ज़ाहिर-अर-रिवाया के एक सहीह क़ौल के अनुसार, दो लोगों की जमाअत अज़ान और इक़ामत के साथ, बल्कि वाक़िफ़ के अलावा केवल एक ही व्यक्ति के अज़ान, इक़ामत और जमाअत की हैयत से नमाज़ पढ़ने से, और ज़ाहिर-अर-रिवाया के एक अन्य क़ौल में वाक़िफ़ के अलावा केवल एक ही आदमी के अकेले नमाज़ पढ़ लेने से वह अपने सभी अंगों के साथ मस्जिद हो जाती है। तो हर हिस्से में अलग-अलग नमाज़ होने की सर्वसम्मति (इजमा) से आवश्यकता नहीं है। पहले मत पर तो स्पष्ट है कि नमाज़ की शर्त बिल्कुल नहीं है, केवल कथन ही पर्याप्त है। और दूसरे मत पर भी स्पष्ट है कि एक व्यक्ति की नमाज़ या दो व्यक्तियों की जमाअत मस्जिद के हर टुकड़े को शामिल नहीं कर सकती, जैसा कि छिपा नहीं है। तो उद्देश्य स्पष्ट हो गया और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो सर्वोच्च और प्रेम करने वाला है। (जैसा कि स्पष्ट है, सारी प्रशंसा अल्लाह तआला के लिए है जो उच्च और प्रेम करने वाला है। - त)

अरबी पाठ

तनवीर अल-अबसार, दुर्र-ए-मुख्तार और रद अल-मुहतार में है: उसका मालिकाना हक़ मस्जिद से इन शब्दों से समाप्त हो जाता है कि: 'मैंने इसे मस्जिद बना दिया', इमाम-ए-सानी [अबू यूसुफ] के अनुसार। (दुर्र अल-मुंतक़ा में है कि तनवीर, दुरर और वक़ाया आदि में इमाम अबू यूसुफ के कथन को पहले उल्लेख किया गया है, और आप जानते हैं कि उनका कथन वक्फ़ और क़ज़ा के मामलों में बेहतर है - अश [शामी])। इमाम मुहम्मद और इमाम साहब [अबू हनीफ़ा] ने इसमें जमाअत के साथ नमाज़ को भी अनिवार्य और शर्त माना है। (जमाअत की शर्त इसलिए है क्योंकि मस्जिद का उद्देश्य ही यही है; इसलिए यह शर्त रखी गई है)।

पृष्ठ 70/673

उर्दू अनुवाद

उसका मालिकाना हक़ मस्जिद से इन शब्दों से समाप्त हो जाता है कि: "मैंने इसे मस्जिद बना दिया है", यह इमाम-ए-सानी (अबू यूसुफ) के नज़दीक है। (दुर्र अल-मुंतक़ा में है कि तनवीर, दुरर और वक़ाया आदि में इमाम अबू यूसुफ के कथन को प्राथमिकता दी गई है, और आप जानते हैं कि उनका कथन वक्फ़ और क़ज़ा के मामलों में बेहतर है - अश [शामी])। इमाम मुहम्मद और इमाम साहब ने इसमें जमाअत के साथ नमाज़ को भी अनिवार्य और शर्त माना है। (जमाअत को शर्त मानना इसलिए है क्योंकि मस्जिद का उद्देश्य ही यही है, इसलिए यह शर्त है)।

دیکھو اول کی سات کتابوں میں صیفی و شتوی دونوں کو مسجد فرمایا اور آٹھ سے گیارہ تک چار کتابوں میں انھیں مسجد داخل و مسجد خارج سے تعبیر کیا۔ صغیری نے ان عبارات شتی کا مصداق واحد ہونا ظاہر کردیا، اور حلیہ میں تصریح فرمادی کہ مسجد بیرونی صحن مسجد کا نام ہے، تو صاف واضح ہو گیا کہ صحن مسجد قطعاً مسجد ہے جسے علماء کبھی مسجد صیفی اور کبھی مسجد الخارج سے تعبیر فرماتے ہیں والحمد للہ علی وضوح الحق (حق کے واضح ہو جانے پر اللہ کی حمد ہے۔ ت) ان نصوص صریحہ کے بعد اُن استباطوں کی حاجت نہ تھی مگر کیا کیجئے کہ فقیر انھیں پہلے ذکر کر چکا تھا معہٰذا ان کے ابقا میں طالبان علم و خادمان فقہ کی منفعت کہ اقوال علماء سے استنباط مسائل کا طریقہ دیکھیں وباللہ التوفیق اب کہ بحمداللہ کالشمس علی نصف النہار واضح و آشکار ہو گیا کہ صحن مسجد بالیقین جزء مسجد ہے تو اس کے لئے تمام احکام مسجد آپ ہی ثابت، جن کا ثبوت صحن پر نمازیں پڑھے جائے خواہ کس شرط پر اصلا موقوف نہیں کہ مسجد مذہب راجح پر واقف کے صرف اس کہنے سے کہ میں نے اس زمین کو مسجد کیا اور دوسرے مذہب پر ایک قول مصحح ظاہر الروایہ میں دو آدمیوں کی جماعت باذان واقامت بلکہ واقف کے سوا ایک ہی شخص کی اذان واقامت و نماز بہ ہیئت جماعت اور ایک قول ظاہر الروایہ میں سوائے واقف ایک ہی آدمی کی منفرداً نماز پڑھ لینے سے بجمیع اجزائہ مسجد ہو جاتی ہے تو ہر جزئہ میں جداگانہ نماز ہونے کی بالاجماع حاجت نہیں، مذہب اول پر تو خود ظاہر کہ مطلقاً نماز کی شرط ہی نہیں صرف قول کفایت کرتا ہے اور ثانی پر بھی واضح کہ منفرد کی نماز زیادہ دو شخصوں کی جماعت ہر پارہ مسجد کو شامل نہیں ہو سکتی کما لا یخفی فوضح المقصود والحمد للہ العلی الودود (جیسا کہ واضح ہے تمام حمد اللہ تعالٰی کے لئے جو بلند اور محبت کرنے والا ہے۔ ت)

عربی عبارت	اردو ترجمہ
تنوير الابصار و درمختار و ردالمحتار میں ہے : يزول ملكه عن المسجد بقوله جعلته مسجدا عند الثاني(وفی الدرالمنتقی و قدم في التنوير والدرر والوقاية وغيرها قولا ابي يوسف وعلمت ارجحيته في الوقف والقضاء اهـ ش) وشرط محمد والامام الصلوة فيه بجماعة(واشتراط الجماعة لانها المقصودة من المسجد، ولذا شرط ان تكون جهرا	اس کی ملکیت مسجد سے ان الفاظ سے زائل ہو جاتی ہے کہ میں نے اسے مسجد بنا دیا ہے یہ ثانی امام (ابو یوسف) کے نزدیک ہے (الدرالمنتقی میں ہے کہ تنویر، درر اور وقایہ وغیرہ میں قول ابو یوسف کو مقدم ذکر کیا، اور آپ جانتے ہیں کہ ان کا قول وقف اور قضاء میں راجح ہے اھ ش) امام محمد اور امام صاحب نے اس میں جماعت کے ساتھ نماز کو بھی لازم و شرط قرار دیا ہے (جماعت کا شرط قرار دینا اس لئے ہے کہ مسجد سے مقصود ہی یہی ہے اسی لئے یہ شرط ہے

صفحہ 70 از 673

Fatawa Ridawiyya, Volume Eight

...with Azan (call to prayer) and Iqamah (call to stand), otherwise it will not be considered a mosque. Az-Zaila'i said: This narration is the correct one. And it is stated in Al-Fath: Even if the Imam and the Mu'adhin are the same person and he prays there alone, it will unanimously be established as a mosque, because performing it in this way is like a congregation. However, if the endower (Waqif) prays alone, then the correct view is that it is not sufficient (as mentioned in 'Sh' [Shami]). It is also said that one person is sufficient, and 'Al-Khaniyah' has termed this as the apparent narration (Zahir al-Riwayah). (And this is what is in the main texts like Al-Kanz, Al-Multaqa, etc. You have already known the authentication of the first view, and Al-Khaniyah also authenticated it, and Al-Hakim in Al-Kafi restricted it to this; so this is also the apparent narration, as in 'Sh'). (In brief). And Allah, the Exalted, knows best, and His knowledge, glorified be His Majesty, is most complete and most wise. (T)

Problem 117: From Bareilly, sent by Jan Mahmood, resident of Chand. What do the scholars of the religion and jurists of the clear Sharia say regarding this matter: A mosque has been established for a long time and the person himself is the trustee (mutawalli), and Friday prayers are also always performed there. Recently, the trustee of the mosque forbade a person from coming to this mosque for some reason. When he was forbidden, that person and a few other worshippers gathered and built a new mosque at another place. It is at such a distance that if the Azan is called loudly, there is a possibility of it being heard. In this case, is the Friday prayer permissible in both mosques or only in one? If in one, then the first one or the second one? And in the mentioned situation, is it Islamically permissible to forbid any worshipper for any reason or not? Explain with references to books, you will be rewarded on the Day of Judgment.

1. Rad al-Muhtar 'ala al-Durr al-Mukhtar Sharh Tanwir al-Absar, Book of Endowment (Waqf), published by H.M. Saeed Company Karachi, 4/355.

फतावा रज़विया, जिल्द आठवीं

...अज़ान और इक़ामत के साथ, अन्यथा वह मस्जिद नहीं मानी जाएगी। ज़ैलई ने कहा: यह रिवायत सही है। और 'अल-फ़तह' में कहा गया है: यदि इमाम और मुअज़्ज़िन एक ही व्यक्ति हों और उसने वहाँ अकेले नमाज़ पढ़ी, तो सर्वसम्मति से वह मस्जिद बन जाएगी, क्योंकि इस तरह से अदायगी जमाअत की तरह ही है। लेकिन अगर वक्फ़ करने वाले ने अकेले नमाज़ पढ़ी, तो सही यह है कि यह पर्याप्त नहीं है (शामी)। एक राय यह भी है कि एक व्यक्ति का नमाज़ पढ़ना पर्याप्त है और 'अल-खानिया' ने इसे ज़ाहिर अल-रिवायत (स्पष्ट वर्णन) माना है। (और मूल ग्रंथों जैसे अल-कन्ज़, अल-मुल्तका आदि में यही है। आप पहले विचार का प्रमाणीकरण जान चुके हैं, और अल-खानिया ने भी इसे सही कहा है, और अल-हाकिम ने अल-काफ़ी में इसी तक सीमित रखा है; तो यही ज़ाहिर रिवायत है, जैसा कि शामी में है)। (संक्षेप में)। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान, उसकी महिमा बुलंद हो, सबसे पूर्ण और सबसे हिकमत वाला है। (त)

मसला 117: बरेली से, प्रेषक जान महमूद, निवासी चाँद। दीन के विद्वान और शरीअत के मुफ़्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: एक मस्जिद काफ़ी समय से क़ायम है और वह व्यक्ति खुद मुतवल्ली (ट्रस्टी) है, और वहाँ हमेशा जुमे की नमाज़ भी पढ़ी जाती है। अभी मस्जिद के मुतवल्ली ने किसी कारण से एक व्यक्ति को इस मस्जिद में आने से मना कर दिया। जब उसे मना किया गया, तो वह व्यक्ति और कुछ अन्य नमाज़ी इकट्ठा होकर दूसरी जगह एक नई मस्जिद बना ली। यह इतनी दूरी पर है कि अगर बुलंद आवाज़ से अज़ान दी जाए, तो सुनाई देने की संभावना है। इस स्थिति में, क्या दोनों मस्जिदों में जुमे की नमाज़ जायज़ है या केवल एक में? अगर एक में है, तो पहली में या दूसरी में? और क्या उपर्युक्त स्थिति में किसी नमाज़ी को किसी भी कारण से रोकना शरीअत के अनुसार जायज़ है या नहीं? किताबों के हवाले के साथ बयान करें, क़यामत के दिन आपको इसका सवाब मिलेगा।

1. रद अल-मुहतार अला अद-दुर अल-मुख्तार शरह तनवीर अल-अब्सार, किताबुल वक़्फ़, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 4/355.

पृष्ठ 71 का 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

باذان واقامة والالم یصر مسجدا قال الزیلعي: وھذہ الروایة ھي الصحیحة وقال في الفتح: ولو اتحد الامام والموذن وصلی فیه وحدہ صار مسجد الاتفاق لان الاداء علی ھذاالوجه کا لجماعة، لکن لو صلی الواقف وحدہ فا لصحیح انه لا یکفی اه ش) وقیل: یکفی واحد و جعله في الخانیة ظاھر الروایة (وعلیه امتون کا لکنز و الملتقی وغیرھما وقد علمت تصحیح الاول و صححه في الخانیة ایضاً وعلیه اقتصر في کافی الحاکم فھو ظاھر الروایة ایضا اه ش) (مختصرا) واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ (اردو ترجمہ): کہ وہاں اذان واقامت بلند آواز سے ہوں ورنہ وہ مسجد قرار ہی نہ پائے گی۔ امام زیلعی کہتے ہیں کہ یہ روایت صحیح ہے، اور کہا کہ فتح میں ہے کہ اگر امام اور مؤذن ایک ہی آدمی تھا اور اس نے وہاں تنہا نماز ادا کی تو وہ بالاتفاق مسجد ہی قرار دی جائے گی کیونکہ اس طریقہ پر ادائیگی جماعت ہی کی طرح ہے لیکن اگر وقف کرنے والے نے فقط نماز ادا کی تو صحیح یہی ہے کہ یہ کافی نہیں اھ ش) ایک قول یہ ہے کہ ایک آدمی کا نماز ادا کر لینا بھی کافی ہے اور اسے خانیہ نے ظاہر الروایہ قرار دیا ہے (اور متون میں یہی ہے جیسے کہ کنز، ملتقی وغیرہ، اور آپ اول کی تصحیح جان ہی چکے، اور اسی کو خانیہ نے صحیح کہا، اور حاکم نے کافی میں اسی پر اقتصار کیا، پس یہی ظاہر روایت ہے ایضاً اھ ش) مختصراً۔ واللہ سبحانہ و تعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم (ت)

مسئلہ ۱۱۷: از بری سال مرسلہ جان محمود ساکن چاند کیا فرماتے ہیں علمائے دین مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں ایک مسجد مدت سے قائم ہے اور وہ خود متولی ہے اور جمعہ کی نماز بھی ہمیشہ پڑھی جاتی ہے ابھی متولی مسجد نے ایک شخص کو کسی وجہ سے منع کیا کہ وہ اس مسجد میں نہ آئے جب اُس کو منع کیا تو وہ شخص اور چند مصلی مجتمع ہو کر دوسری جگہ پر ایک

مسجد نئی بنا کر لی اس قدر فاصلہ پر ہے کہ اگر بلند آواز سے اذان کہے تو احتمال سنائی کی ہے، اس صورت میں دونوں مسجدوں میں جمعہ کی نماز جائز ہے یا ایک میں، اگر ایک میں ہے تو اوّل یا ثانی، اگر صورت، مذکورہ میں منع کرنا کسی مصلی کو شرعاً کوئی وجہ سے جائز ہے یا نہیں؟ بینوا بحوالۃ الکتاب توجروا یوم الحساب۔

1 رد المحتار علی الدر المختار شرح تنویر الابصار کتاب الوقف مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۳۵۵/۴

Fatawa Ridawiyya Volume 8

The Answer: It is permissible to prevent a person from coming to the mosque who is troublesome, causing distress to those praying, using abusive language, or is mischievous such that there is an apprehension of harm from them. And if someone is a misguided heretic, for example, a Wahhabi, Rafidi, Ghair Muqallid (non-conformist), Nechari (follower of naturalism), or Tafzili etc., and comes to the mosque to mislead those praying or calls them towards their impure sect, then it is absolutely obligatory to prevent them and not allow them to enter the mosque.

(1) فقد نص في العيني ثم المختار وغيرهما من معتمدات الاسفار، باخراج كل موذ و لو بلسانہ۔ | Allama Ayni has clarified, then it is in Durr-e-Mukhtar and other reliable books that every person who causes harm should be expelled from the mosque, even if the harm is through their tongue. (T)

Similarly, someone whose body has an odor that causes distress to the worshippers —for example, refuge is sought with Allah, bad breath, or foul underarm odor, or someone who has applied sulfur due to itching etc.—should also not be allowed to enter the mosque. This is based on the saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "Let him not come near our place of prayer." (2) (The decree of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is that such a person should never come near our place of prayer. (T)) Moreover, preventing a Muslim from entering the mosque without a Sharia-compliant reason, due to some worldly grudge, is a severe sin.

Due to the Word of Allah the Almighty:

(3) وَ مَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ وَسَعٰی فِیْ خَرَابِہَا | The command of Allah the Almighty is: And who can be more unjust than the one who prevents the mention of Allah's name and strives for their destruction? (T)

And if a mosque is built without a pure intention, there is no harm if it is somewhat close to the first mosque.

(4) لما فی الاشباہ والدر ان لاھل المحلۃ جعلوا المسجد الواحد مسجدین | It is mentioned in Ashbah and Dur that it is permissible for the residents of a locality to make one mosque into two mosques. (T)

However, for establishing Friday (Jumu'ah) prayer, it is necessary that the Jumu'ah Imam be someone appointed by the Islamic ruler or someone he has designated as

his deputy. If this is not possible, then he should be someone whom the Muslims collectively appoint and designate as the Jumu'ah Imam. Not every individual is qualified to lead the Jumu'ah and Eid prayers.

---

1 Durr-e-Mukhtar, end of the chapter on what invalidates prayer, printed by Matba Mujtabai, Delhi, 1/94. 2 Majma' al-Zawa'id, Book of Prayer, chapter on one who eats garlic, etc., printed by Dar al-Kitab, Beirut, 2/17. 3 Al-Qur'an 2/114. 4 Al-Ashbah wa al-Naza'ir, discourse on the rulings of the mosque, printed by Idarat al-Qur'an wa al-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 2/135, 234; Durr-e-Mukhtar, before the chapter on Witr and Nawafil, printed by Matba Mujtabai, Delhi, 1/94.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

उत्तर: जो व्यक्ति कष्टदायक हो कि नमाज़ियों को तकलीफ़ देता हो, बुरा-भला कहता हो, शरारती हो और उससे आशंका रहती हो, ऐसे व्यक्ति को मस्जिद में आने से रोकना जायज़ है। और अगर वह कोई गुमराह बे-मज़हब हो, उदाहरण के लिए वहाबी, राफ़िज़ी, ग़ैर-मुक़ल्लिद, नेचरी या तफ़ज़ीली आदि, और मस्जिद में आकर नमाज़ियों को बहकाता हो और उन्हें अपने नापाक मज़हब की तरफ बुलाता हो, तो उसे रोकना और मस्जिद में न आने देना ज़रूरी और वाजिब है।

فقد نص في العيني ثم المختار وغيرهما من معتمدات الاسفار، باخراج كل موذ و لو بلسانہ۔ (1) | अल्लामा ऐनी ने स्पष्ट किया है, फिर दुर्र-ए-मुख़्तार आदि विश्वसनीय पुस्तकों में है कि हर कष्ट पहुँचाने वाले को मस्जिद से निकाल दिया जाए, चाहे उसकी तकलीफ़ ज़बान से ही क्यों न हो। (त)

इसी तरह जिसके शरीर से दुर्गंध आती हो जिससे नमाज़ियों को तकलीफ़ हो, जैसे माज़ अल्लाह मुँह की बदबू या बग़ल की बदबू, या जिसने खुजली आदि के कारण गंधक लगाई हो, उसे भी मस्जिद में न आने दिया जाए। क्योंकि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का फ़रमान है: "वह हमारी नमाज़ की जगह के क़रीब हरगिज़ न आए।" (2) (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का फ़रमान है कि वह हमारी नमाज़ की जगह के क़रीब हरगिज़ न आए। (त)) और बिना किसी शरीय कारण के, महज़ दुनियावी रंजिश के कारण किसी मुसलमान को मस्जिद से रोकना सख्त गुनाह है।

अल्लाह तआला के इरशाद के अनुसार:

(3) وَ مَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ وَسَعٰی فِیْ خَرَابِہَا | अल्लाह तआला का फ़रमान है: और उस से बढ़कर ज़ालिम कौन हो सकता है जो अल्लाह के नाम के ज़िक्र से रोके और उनकी बर्बादी में प्रयासरत हो। (त)

और मस्जिद यदि नेक नीयत से न बनाई जाए, तो पहली मस्जिद के कुछ क़रीब होने में कोई हर्ज नहीं।

(4) لما فی الاشباہ والدر ان لاھل المحلۃ جعلوا المسجد الواحد مسجدین | अशबाह और दुर में है कि मुहल्ले वालों के लिए जायज़ है कि वे एक मस्जिद को दो मस्जिदें बना लें। (त)

मगर जुमा क़ायम करने के लिए ज़रूरी है कि जुमा का इमाम वह हो जिसे इस्लामी शासक ने जुमा का इमाम नियुक्त किया हो या जिसे उसने अपना नायब (प्रतिनिधि) बनाया हो। और यदि ऐसा न हो,

तो वह जिसे मुसलमान इकट्ठा होकर जुमा का इमाम मुक़र्रर करें। हर कोई जुमा और ईद की इमामत नहीं कर सकता।

---

1 दुर्र-ए-मुख़्तार, नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ों के अध्याय के अंत में, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/94. 2 मजमा-उज़-ज़वाइद, किताबुस-सलात, लहसुन खाने वालों के अध्याय में, दारुल-किताब बेरुत, 2/17. 3 अल-क़ुरआन 2/114. 4 अल-अशबाह वन-नज़ाइर, अल-क़ौल फ़ी अहकामुल-मस्जिद, इदारातुल-क़ुरआन वल-उलूमुल-इस्लामिया कराची, 2/135, 234; दुर्र-ए-मुख़्तार, वित्र और नवाफ़िल के अध्याय से पहले, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/94.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

الجواب: جو شخص موذی ہو کہ نمازیوں کو تکلیف دیتا ہے۔ برا بھلا کہتا ہے شریر ہے اس سے اندیشہ رہتا ہے ایسے شخص کو مسجد میں آنے سے منع کرنا جائز ہے، اور اگر بد مذہب گمراہ مثلاً وہابی یا رافضی یا غیر مقلد یا نیچری یا تفضیلی وغیرہ ہے اور مسجد میں آکر نمازیوں کو بہکاتا ہے اپنے مذہب ناپاک کی طرف بلاتا ہے تو اسے منع کرنا اور مسجد میں نہ آنے دینا ضرور واجب ہے۔

فقد نص في العيني ثم المختار وغیرھما من معتمدات الاسفار، باخراج کل موذ و لو بلسانہ۔ (1) | علامہ عینی نے تصریح کی ہے پھر در مختار وغیرہ معتمد کتب میں ہے کہ ہر ایذا دینے والے کو مسجد سے نکال دیا جائے خواہ اس کی اذیت زبان سے ہو۔ (ت)

یونہی جس کے بدن میں بدبو ہو کہ اس سے نمازیوں کو ایذا ہو مثلاً معاذ اللہ گندا دہن یا گندا بغل یا جس نے خارش وغیرہ کے باعث گندھک ملی ہو اسے بھی مسجد میں نہ آنے دیا جائے لقولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فلا یقربن مصلانا (2) (رسالتمآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا فرمان ہے کہ وہ ہرگز ہماری نماز گاہ کے قریب نہ آئے۔ (ت) اور بلاوجہ شرعی اپنی کسی رنجش دنیوی کے باعث مسجد سے کسی مسلمان کو روکنا سخت گناہ ہے۔

لقولہ تعالٰی وَ مَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ وَسَعٰی فِیْ خَرَابِہَا (3) | اللہ تعالٰی کا فرمان ہے : اور کون اس سے بڑھ کر ظالم ہو سکتا ہے جو اللہ کے نام کے ذکر سے روکے اور ان کی بربادی میں کوشاں ہو۔ (ت)

اور مسجد جبکہ نہ نیت خالصہ بنائی جائے تو پہلی مسجد کے کسی قدر قریب ہو کچھ حرج نہیں۔

لما فی الاشباہ والدر ان لاھل المحلۃ جعلوا المسجد الواحد مسجدین (4) | اشباہ اور در میں ہے کہ اہل محلہ کے لئے جائز ہے کہ ایک مسجد کو وہ دو مساجد بنالیں۔ (ت)

مگر جمعہ قائم کرنے کے لئے ضرور ہے کہ امام جمعہ وہ ہو جسے بادشاہ اسلام نے امام جمعہ مقرر کیا ہو وہ جسے اس نے اپنا نائب کیا اور یہ نہ ہو تو وہ جسے اہل اسلام جمع ہو کر امام جمعہ مقرر و معین کریں، ہر شخص جمعہ و عیدین کی امامت نہیں کر سکتا۔

---

1 در مختار آخر باب ما یفسد الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۹۴ 2 مجمع الزوائد کتاب الصلوۃ باب فیمن اکل ثوما الخ مطبوعہ دار الکتاب بیروت ۲ / ۱۷ 3 القرآن ۲ / ۱۱۴ 4 الاشباہ والنظائر القول فی احکام المسجد مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲ / ۱۳۵، ۲۳۴، در مختار قبیل باب الوتر والنوافل مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۹۴

Fatawa Rizvia, Volume 8

...as the authoritative texts of the school of thought have explicitly stated. (T) In the same way, if such an Imam is available for this second mosque, then Jumu'ah (Friday prayer) will be valid there as well, otherwise not. And Allah, the Glorified and Exalted, knows best.

Problem 1118 to 1121: From the city of Porbandar, Kathiawar region, Dead Road locality. Submitted by Khatri Omar Abu Bakr Sahib, 20 Jumada al-Ula 1332 AH. What do the scholars of religion say regarding the following issues: (1) Is the courtyard of the mosque part of the mosque or outside the mosque? (2) If the second Adhan of Friday is given in the courtyard of the mosque, will it be considered as being inside the mosque or not? (3) If a person, despite having access to the inside of the mosque, prays in the courtyard, will they receive the full reward of praying in a mosque or less? (4) Is it permissible to perform a funeral prayer inside the mosque or in the courtyard of the mosque or not?

The Answer: The courtyard of the mosque is a part of the mosque as explicitly stated in Al-Hilyah (T). Praying in it is like praying in the mosque itself; the roofed section is called the winter mosque (Masjid Shatawi) i.e., the mosque for the winter season, and the courtyard is called the summer mosque (Masjid Sayfi) i.e., the mosque for the summer season. Adhan is prohibited inside the mosque; it is neither permitted in the hallway nor in the courtyard. Funeral prayers are not permitted inside the mosque, this is the correct view (T). The courtyard is not separate from the mosque in any ruling. And Allah the Exalted knows best.

Problem 1122: From Pilibhit, Mohalla Bhure Khan, sent by Haji Aziz Ahmad Sahib, 7 Safar 1332 AH. What do the noble scholars say on this matter: is the boundary wall of the water tank outside the mosque? Explain and be rewarded.

The Answer: The boundary wall of an old tank is the outskirts (fana) of the mosque, not the mosque itself; otherwise, performing ablution (wudu) on it would be impermissible. Giving Adhan in the outskirts of the mosque is permissible. And Allah the Exalted knows best.

Problem 1123: From Tarpol Sulol, post office Harul, district Darbhanga, Bilgram Charsa, sent by Abdul Hakim Sahib, 21 Jumada al-Ula 1336 AH. In a settlement, all the Muslims together built a mosque, but the land is in the name of another person. The person in whose name the land is claims that the mosque belongs to him and says:

"Whoever we command shall pray, and whoever we command shall lead the prayer." If he stops someone, will that person's prayer in that mosque be valid or not? And...

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8

...जैसा कि इस पर संप्रदाय (मज़हब) के विश्वसनीय ग्रंथों ने स्पष्ट किया है। (त) इसी प्रकार, यदि ऐसा इमाम इस दूसरी मस्जिद के लिए उपलब्ध होगा, तो उसमें भी जुमा जायज़ होगा अन्यथा नहीं। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है।

मसला 1118 से 1121: शहर पोरबंदर, काठियावाड़ क्षेत्र, डैड रोड मोहल्ला से, सायल खत्री उमर अबू बक्र साहब, 20 जमादी-उल-अव्वल 1332 हिजरी। धर्म के विद्वान इन निम्नलिखित समस्याओं के बारे में क्या कहते हैं: (1) मस्जिद का आँगन मस्जिद के अंदर है या मस्जिद के बाहर? (2) जुमे की दूसरी अज़ान जो मस्जिद के आँगन में दी जाए, तो क्या वह मस्जिद के अंदर मानी जाएगी या नहीं? (3) क्या कोई व्यक्ति मस्जिद के अंदर जाने की संभावना के बावजूद मस्जिद के आँगन में नमाज़ पढ़े, तो उसे मस्जिद का पूरा सवाब मिलेगा या कम? (4) मस्जिद में या मस्जिद के आँगन में जनाज़े की नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): मस्जिद का आँगन मस्जिद का ही हिस्सा है जैसा कि 'अल-हिलिया' में इस पर स्पष्टीकरण दिया गया है (त)। उसमें नमाज़ पढ़ना मस्जिद ही में नमाज़ पढ़ना है; ढके हुए हिस्से को शीतकालीन मस्जिद (मस्जिद-ए-शतवी) कहते हैं यानी सर्दियों के मौसम की मस्जिद, और आँगन को ग्रीष्मकालीन मस्जिद (मस्जिद-ए-सैफ़ी) यानी गर्मियों के मौसम की मस्जिद। मस्जिद के भीतर अज़ान देना मना है, न दालान में अनुमति है और न आँगन में। मस्जिद में जनाज़े की अनुमति नहीं है, यही सही है (त)। आँगन किसी भी हुक्म में मस्जिद से अलग नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1122: पीलीभीत, मोहल्ला भूरे खां से, प्रेषक हाजी अज़ीज़ अहमद साहब, 7 सफ़र 1332 हिजरी। विद्वान इस मसले पर क्या कहते हैं कि हौज (पानी के टैंक) की चारदीवारी मस्जिद से बाहर है? बयान करें, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): पुराने हौज की चारदीवारी मस्जिद का बाहरी परिसर (फ़ना-ए-मस्जिद) है, न कि मूल मस्जिद, अन्यथा उस पर वुज़ू करना नाजायज़ होता। और मस्जिद के बाहरी परिसर में अज़ान देना जायज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1123: तरपोल सुलोल, डाकखाना हरुल, जिला दरभंगा, बिलग्राम चरस से, प्रेषक अब्दुल हकीम साहब, 21 जमादी-उल-अव्वल 1336 हिजरी। एक बस्ती में बस्ती के सभी मुसलमानों ने

मिलकर एक मस्जिद बनवाई, लेकिन ज़मीन दूसरे व्यक्ति के नाम पर है। जिसके नाम पर ज़मीन है, वह दावा करता है कि मस्जिद हमारी है, वह कहता है: "हम जिसे आदेश देंगे वही नमाज़ पढ़ेगा और जिसे हम आदेश देंगे वही इमामत करेगा।" वह जिसे रोक देता है, क्या उस मस्जिद में उसकी नमाज़ जायज़ होगी या नहीं? और...

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

کما نصوا علیہ معتمدات المذہب (جیسا کہ اس پر معتمدات مذہب نے تصریح کی ہے۔ت) اس طرح کا امام اگر اس دوسری مسجد کو میسر ہوگا تو اس میں بھی جمعہ جائز ہوگا ورنہ نہیں۔ واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۱۸ تا ۱۱۲۱: از شہر پور بندر ملک کاٹھیا واڑ محلہ ڈیڈ روڈ مسئولہ کھتری عمر ابوبکر صاحب ۲۰ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل ذیل میں: (۱) صحن مسجد داخل مسجد ہے یا خارج مسجد ہے؟ (۲) اذان ثانی جمعہ جو صحن مسجد میں پڑھی جائے تو داخل مسجد قرار پائے گی یا نہ؟ (۳) کوئی شخص باوجود داخل مسجد ہونے کے صحن مسجد میں نماز پڑھے تو اُس کو مسجد کا پورا ثواب ملے گا یا کم؟ (۴) جنازہ مسجد میں یا صحن مسجد میں پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: صحن مسجد جزو مسجد ہے کما نص علیہ فی الحلیۃ (جیسا کہ حلیہ میں اس پر تصریح ہے۔ت) اس میں نماز مسجد ہی میں نماز ہے، پٹے ہوئے درجے کو مسجد شتوی کہتے ہیں یعنی موسم سرما کی مسجد اور صحن کو مسجد صیفی یعنی موسم گرما کی مسجد۔ اذان مسجد میں منع ہے، نہ دالان میں اجازت ہے نہ صحن میں۔ مسجد میں جنازے کے لئے اجازت نہیں ھوا الصحیح (یہی صحیح ہے۔ت) صحن کسی حکم میں مسجد سے جدا نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۲۲: از پیلی بھیت محلہ بھورے خاں مرسلہ حاجی عزیز احمد صاحب ۷ صفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے کرام اس مسئلہ میں کہ فصیل حوض خارج مسجد ہے۔ بینوا توجروا۔

الجواب: حوض قدیم کی فصیل فنائے مسجد ہے، نہ عین مسجد، ورنہ اس پر وضو نا جائز ہوتا، اور فنائے مسجد میں اذان جائز ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۲۳: از تر پول سولول ڈاک خانہ ہرول ضلع دربھنگہ بلگرام چرسہ مرسلہ عبدالحکیم صاحب ۲۱ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۶ھ ایک جگہ بستی میں بستی کے سارے مسلمان مل کر کے مسجد بنوایا لیکن زمین دوسرے آدمی کے نام سے، جس کے نام سے زمین ہے وہ دعوی کرتا ہے کہ وہ مسجد ہماری ہے ہم جس کو حکم دیں گے وہ نماز پڑھے گا اور ہم جس کو حکم دیں گے وہ امامت کرے گا۔ وہ جسے روک دیتا ہے اس مسجد میں اس کی نماز جائز ہوگی یا نہیں؟ اور اس

Fatawa Razviya Volume 8

What should the mosque be called?

The Answer: Allah Almighty says: "And [He revealed] that the mosques are for Allah"[1]. Mosques belong exclusively to Allah. Neither the owner of the land nor the staff has any claim over them, and preventing any Sunni Muslim from the mosque without a valid Sharia reason is forbidden (haram). Allah Almighty says,

"And who are more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in His mosques and strive toward their destruction?"[2]

Who is more unjust than the one who prevents Allah's mosque from being used for mentioning His name and strives for its desolation.

However, their prevention will neither cause any harm to the mosque, nor will it prohibit the one who was prevented from praying in the mosque. And Allah Almighty knows best.

Issue 1124: From Ranchi city, Qasab Mohalla, sent by Sheikh Wali Muhammad Sudagar Charsa, 4 Jamadi-ul-Ula 1337 AH

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible to follow in prayer, associate with, or speak to a non-muqallid Wahhabi who calls Taqlid (following a school of jurisprudence) an innovation (bid'at), slanders the mujtahid imams, does not believe in the finality of prophethood (Khatm-e-Nabuwwat) and the miracles of the saints (karamat-e-awliya), slanders Ghaus al-Azam, calls organizing Mawlid gatherings and saying "Ya Rasul Allah" innovations, practices loud 'Amin' and raising hands (Raf al-Yadayn) etc.? To prevent discord and strife caused by conflicting beliefs, is it permissible to stop such individuals from entering the mosque? Please provide guidance according to Sharia with references from books.

The Answer: Such a person is an infidel and an apostate (murtad). Just the denial of the finality of prophethood is sufficient for them to be an apostate. Allah Almighty says: "...but [he is] the Messenger of Allah and the seal of the prophets"[3] (The Quranic command is: but he is the Messenger of Allah and the seal of the prophets. - T). It is stated in Tatimma al-Fatawa and al-Ashbah wa al-Naza'ir:

If someone does not believe that Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) is the last of the prophets, then he is not a Muslim because this is among the essentials of the religion.[4] (T)

[1] Quran, 72/18 [2] Quran, 2/114 [3] Quran, 33/40 [4] Al-Ashbah wa al-Naza'ir, Kitab al-Siyar wal-Ridda, published by Idara al-Quran wal-Uloom al-Islamiya Karachi 1/296

फ़तावा रज़विया जिल्द हशतुम

मस्जिद को क्या कहा जाएगा?

अल-जवाब: अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है: "और बेशक मस्जिदें अल्लाह के लिए हैं"[1]। मस्जिदें खास अल्लाह की हैं। उनमें किसी का कोई दावा नहीं है, न ज़मीन वाले का और न ही कर्मचारियों का, और बिना किसी शरई वजह के किसी सुन्नी मुसलमान को मस्जिद से रोकना हराम है। अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है,

"और उससे बड़ा ज़ालिम कौन जो अल्लाह की मस्जिदों को उनमें उसका नाम लिए जाने से रोके और उनकी वीरानी में कोशिश करे?"[2]

उससे बढ़ कर ज़ालिम कौन जो अल्लाह की मस्जिद को रोके उनमें अल्लाह का नाम लिया जाने से और उनकी वीरानी में कोशिश करे।

मगर उसके मना करने से न मस्जिद में कोई नुक़सान आएगा और न ही उस व्यक्ति के लिए मस्जिद में नमाज़ पढ़ना मना होगा जिसे मना किया गया है। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह बेहतर जानता है)।

मसला 1124: रांची शहर, कसाब मोहल्ला से प्रेषित, शेख वली मुहम्मद सौदागर चरसा, 4 जमादी-उल-उला 1337 हिजरी।

सवाल: दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक गैर-मुकल्लिद वहाबी जो तक्लीद को बिदअत कहे, मुजतहिद इमामों पर तंज करे, खत्म-ए-नुबुवत और औलिया की करामातों का कायल न हो, गौस-ए-आज़म पर तंज करे, मिलाद की महफ़िल सजाने और "या रसूल अल्लाह" कहने को बिदअत कहे, आमीन बिल-जहर और रफ़-उल-यदैन करे आदि-आदि, क्या ऐसे व्यक्ति की इक़्तेदा (पीछे नमाज़ पढ़ना), उसका साथ और बातचीत, रोज़ा और नमाज़ जायज़ है या नहीं? आपसी अकीदे के टकराव के कारण फ़ितना और फ़साद रोकने के लिए क्या ऐसे लोगों को मस्जिद में न आने देना जायज़ है या नहीं? शरीयत के हुक्म और किताबों के हवाले से मार्गदर्शन फ़रमाएं।

अल-जवाब: ऐसा व्यक्ति काफ़िर और मुर्तद (धर्मत्यागी) है। उसके मुर्तद होने के लिए सिर्फ खत्म-ए-नुबुवत का इनकार ही काफी है। अल्लाह तआला का फ़रमान है: "लेकिन वह अल्लाह के रसूल और

नबियों के खातिम (अंतिम) हैं"[3] (अल्लाह तआला का इरशाद-ए-गिरामी है: और लेकिन अल्लाह के रसूल और नबियों के खातिम हैं। - त)। ततिम्मा अल-फ़तावा और अल-अशबाह व अन-नज़ायर में है:

अगर कोई व्यक्ति यह अकीदा नहीं रखता कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम आखिरी नबी हैं, तो वह मुसलमान ही नहीं है क्योंकि यह दीन की ज़रूरतों में से है।[4] (त)

[1] अल-क़ुरान, 72/18 [2] अल-क़ुरान, 2/114 [3] अल-क़ुरान, 33/40 [4] अल-अशबाह व अन-नज़ायर किताबुस सियर वल रिद्दा, प्रकाशित इदारा अल-क़ुरान वल उलूम अल-इस्लामिया कराची 296/1

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسجد کو کیا کہا جائے گا؟

الجواب: اللہ عزوجل فرماتا ہے: "وَأَنَّ الْمَسَاجِدَ لِلَّهِ"[1] مساجد خاص اللہ کی ہیں۔ ان میں کسی کا کوئی دعوی نہ زمین والے کو نہ عملے والوں کا، اور بلاوجہ شرعی کسی سنی مسلمان کو مسجد سے منع کرنا حرام ہے۔ اللہ عزوجل فرماتا ہے،

وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّن مَّنَعَ مَسَاجِدَ اللَّهِ أَن يُذْكَرَ فِيهَا اسْمُهُ وَسَعَىٰ فِي خَرَابِهَا [2] اُس سے بڑھ کر ظالم کون جو اللہ کی مسجد کو روکے اُن میں اللہ کا نام لیا جانے سے اور ان کی ویرانی میں کوشش کرے۔

مگر اُس کے منع کرنے سے نہ مسجد میں کوئی نقصان آئے گا نہ وہ جسے منع کیا اسے مسجد میں نماز پڑھنا منع ہو جائے گا واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۲۴: از شہر رانچی قصاب محلہ مرسلہ شیخ ولی محمد سوداگر چرسہ ۴ جمادی الاولی ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ غیر مقلد وہابی جو تقلید کو بدعت کہے، ائمہ مجتہدین پر طعن کرے، ختم نبوت اور کرامات اولیا کا قائل نہ ہو۔ جناب ولی الاولیاء غوث الاعظم پر طعن کرے، انعقاد مجلس میلاد اور یارسول اللہ کہنے کو بدعت کہے، آمین بالجہر و رفع الیدین کرے وغیرہ وغیرہ، ایسے شخص کی اقتداء اور اس کی موانست و مکالمت صوم و صلوۃ جائز ہے یا نہیں؟ ایسے عقیدہ والوں کو واسطے دفع فتنہ و فساد کے جو موجب اس کا خلاف عقیدت باہمی سے مسجد میں نہ آنے دینا جائز ہے یا نہیں؟ بحسب فرمان شرع شریف بحوالہ کتب ارشاد ہو۔

الجواب: ایسا شخص کافر و مرتد ہے، اس کے مرتد ہونے کے لئے صرف انکار خاتمیت ہی کافی ہے۔ قال اللہ تعالیٰ "وَلَكِن رَّسُولَ اللَّهِ وَخَاتَمَ النَّبِيِّينَ"[3] (اللہ تعالیٰ کا ارشاد گرامی ہے: اور لیکن اللہ کے رسول اور نبیوں کے خاتم ہیں۔ ت) تتمۃ الفتاوی اور الاشباہ والنظائر میں ہے:

ان لم یعرف ان محمدا صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم آخر الانبیاء فلیس بمسلم لانہ من الضروریات۔ اگر کوئی شخص یہ عقیدہ نہیں رکھتا کہ حضرت محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم آخری نبی ہیں تو وہ مسلمان ہی نہیں کیونکہ یہ ضروریات دین میں سے ہے۔[4] (ت)

[1] القرآن، ۷۲/ ۱۸ [2] القرآن، ۲/ ۱۱۴ [3] القرآن، ۳۳/ ۴۰ [4] الاشباہ والنظائر کتاب السیر والردۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲۹۶/۱

Fatawa Ridawiya Volume 8

To call Taqleed (following an Imam) an innovation (Bid'at), to slander the Mujtahid Imams, and for a non-follower to speak ill of Imam Shafi'i (may Allah have mercy on him) regarding the raising of hands (Raf al-Yadayn) and saying Ameen loudly are evils and signs of being a 'Ghayr-Muqallid' (non-follower). Denying the miracles of saints and slandering the Master of Saints is misguidance and misfortune. Calling the gatherings of Mawlid and saying "Ya Rasoolullah" an innovation is the hallmark of Wahhabism. Regarding the Wahhabis and other non-Muqallids of the time, the ruling of disbelief (Kufr) is established, details of which are clear from 'Al-Kawakib-ush-Shahabiyyah', 'Sall-us-Suyuf-ul-Hindiyyah', and 'Husam-ul-Haramayn'. Prayer behind the aforementioned person is absolutely void, and sitting or socializing with him is forbidden.

Allah Almighty says: "And if Satan makes you forget, then do not sit after the reminder with the wrongdoing people." 1 Translation: Allah Almighty says: And if Satan makes you forget, then after remembering, do not sit with the wrongdoers. (T)

And Allah Almighty said: "And do not incline toward those who do wrong, lest you be touched by the Fire." 2 Translation: Allah Almighty said: And do not lean towards the wrongdoers, lest the fire touch you. (T)

Warding off mischief and corruption is obligatory according to one's power, and mischief-makers and harm-causers shall be prevented from the mosque according to ability. In Umdat al-Qari, a commentary on Sahih Bukhari, and then in Durr-e-Mukhtar, it is stated: "And every harmful person shall be prevented from it (the mosque), even if his harm is only verbal." 3 - (And every harmful person will be stopped from the mosque even if his pain is caused by his tongue. T) And Allah Almighty knows best.

Issue 1125: From Viramgam, district Ahmedabad, Gujarat, Jamia Masjid. Sent by Sayyid Ghulam Mohiuddin Sahib, 13 Rajab 1327 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: in Viramgam, Gujarat, there is an Eidgah which a few people, whose number is not more than four or five, have taken possession of and are controlling on their own without the permission of the mosque's founder or the city's Muslims, as if they were the owners. Consequently, they openly declare that no one besides them has any right in this mosque and that they will appoint whomever they wish as Imam. The Imam they appoint is someone behind whom all the Muslims of the city and the learned scholars feel aversion (karahat) in praying. This aversion is

religious, not based on personal opposition. The condition of this small group of occupiers is such that they consider second marriage to be absolutely forbidden (haram qati). Among their actions regarding the mosque is that they obstruct the city people from praying with them. Is it permissible for the people of the city to pray in this mosque or not? And can the people of the city designate another place as Eidgah and pray there or not?

1. Al-Quran 6/68
2. Al-Quran 11/113
3. Ad-Durr al-Mukhtar, end of the chapter on what invalidates prayer, published by Mujtabai Press Delhi, 1/94

फतावा रजविया खंड ८

तक्लीद (इमाम का अनुसरण) को बिदअत कहना, मुजतहिद इमामों पर ताना मारना, और बे-तक्लीद होकर इमाम शाफई (रहि.) पर रफ़े यदैन और ज़ोर से आमीन कहने के कारण बुराई करना गैर-मुकल्लिदी की निशानियां और बुराइयाँ हैं। औलिया के करामातों का इनकार करना और सैयदुल औलिया पर ताना मारना गुमराह और बदकिस्मती है। मिलाद की महफ़िलों और "या रसूलल्लाह" कहने को बिदअत कहना वहाबियत का प्रतीक है। वहाबी और ज़माने के अन्य गैर-मुकल्लिदों पर कुफ्र का हुक्म है, जिसकी तफ़सील 'अल-कवाकिब-अश-शहाबिया', 'सल्ल-उस-सुयुफ़-उल-हिंदिया' और 'हुसाम-उल-हरमैन' से स्पष्ट है। उक्त व्यक्ति के पीछे नमाज़ पूरी तरह बातिल (अमान्य) है, और उसके साथ बैठना-उठना हराम है।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और अगर शैतान तुझे भुला दे, तो याद आने पर ज़ालिमों के पास न बैठ।" १ अनुवाद: अल्लाह तआला का फ़रमान है: और जो कहीं तुझे शैतान भुला दे तो याद आने पर ज़ालिमों के पास न बैठ। (त)

और अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और ज़ालिमों की तरफ़ न झुको कि तुम्हें आग छुएगी।" २ अनुवाद: अल्लाह तआला ने फ़रमाया: और ज़ालिमों की तरफ़ न झुको कि तुम्हें आग छुएगी। (त)

फितना और फसाद को रोकना अपनी शक्ति के अनुसार फ़र्ज़ है, और फसाद करने वालों और कष्ट पहुँचाने वालों को सामर्थ्य होने पर मस्जिद से रोका जाएगा। उम्दतुल क़ारी शरह सहीह बुखारी में है, फिर दुर्रे मुख्तार में है: "और हर तकलीफ़ देने वाले को मस्जिद से रोका जाएगा, चाहे उसकी तकलीफ़ ज़ुबानी ही क्यों न हो।" ३ - (और हर ईज़ा देने वाले को मस्जिद से रोका जाएगा अगर चे उसकी अज़ीयत ज़बान से हो। त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ११२५: विरमगाम, ज़िला अहमदाबाद, गुजरात, जामा मस्जिद से। प्रेषक सैयद गुलाम मोहिउद्दीन साहब, १३ रजब १३२७ हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: विरमगाम, गुजरात में जो ईदगाह है, उस पर कुछ लोग, जिनकी संख्या चार-पाँच से अधिक नहीं है, मस्जिद के संस्थापक और शहर के मुसलमानों की अनुमति के बिना खुद-ब-खुद इस तरह काबिज़ और मुतसर्रिफ़ (अधिपत्य) हो गए हैं जैसे वे ही मालिक हों। चुनाँचे वे खुलेआम इस बात का इज़हार करते रहते हैं कि इस मस्जिद में हमारे सिवा किसी और का कोई हक़ नहीं है, हम जिसे चाहेंगे इमाम बनाएँगे। और वे जिसे इमाम बनाते हैं, वह ऐसा होता है जिसके पीछे नमाज़ पढ़ने में शहर के तमाम

मुसलमान और विद्वान कराहत (नापसंदगी) महसूस करते हैं, और यह कराहत शरीयत की बुनियाद पर है, न कि व्यक्तिगत विरोध पर। काबिज़ लोगों के इस छोटे समूह की हालत यह है कि वे दूसरे निकाह को क़तई हराम समझते हैं। मस्जिद पर उनके कब्ज़े का एक रूप यह भी है कि वे शहर के लोगों को नमाज़ पढ़ने में रुकावट पैदा करते हैं। क्या शहर के लोगों के लिए इस मस्जिद में नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? और क्या शहर के लोग दूसरी जगह को ईदगाह तय करके वहाँ नमाज़ पढ़ सकते हैं या नहीं?

1. अल-कुरान ६/६८
2. अल-कुरान ११/११३
3. दर्रे मुख्तार, नमाज़ को बातिल करने वाली चीज़ों के अध्याय के अंत में, मुजतबाई प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, १/९४

पृष्ठ ७५/६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

تقلید کو بدعت کہنا، ائمہ مجتہدین پر طعن کرنا اور بے تقلید امام شافعی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ رفع یدین اور جہر سے آمین کہنا خباثات و علامات غیر مقلدی ہیں، اور کراماتِ اولیاء سے انکار اور حضور سید الاولیاء پر طعن گمراہی و بدنصیبی، اور مجلس میلاد پاک اور یا رسول اللہ کہنے کو بدعت کہنا شعار وہابیت ہے اور وہابی لوگ وغیرہ مقلدین زمانہ پر حکم کفر ہے جس کی تفصیل الکواکبۃ الشھابیہ اور سل السیوف الہندیۃ اور حسام الحرمین سے روشن۔ شخص مذکور کے پیچھے نماز باطل محض ہے، اور اس سے مجالست و موانست حرام۔

قال اللہ تعالٰی وَإِمَّا يُنسِيَنَّكَ الشَّيْطَانُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرَىٰ مَعَ الْقَوْمِ الظَّالِمِينَ ۱ اللہ تعالٰی کا فرمان ہے : اور جو کہیں تجھے شیطان بھلا دے تو یاد آنے پر ظالموں کے پاس نہ بیٹھ ۔ (ت)

وقال اللہ تعالٰی وَلَا تَرْكَنُوا إِلَى الَّذِينَ ظَلَمُوا فَتَمَسَّكُمُ النَّارُ ۲۔ اللہ تعالٰی نے فرمایا : اور ظالموں کی طرف نہ جھکو کہ تمہیں آگ چھوئے گی ۔ (ت)

دفع فتنہ و فساد بقدر قدرت فرض ہے، اور مفسدوں موذیوں کو بشرط استطاعت مسجد سے روکا جائے گا۔ عمدۃ القاری شرح صحیح بخاری شریف میں ہے پھر درمختار میں ہے: ویمنع منہ کل موذ و لو بلسانہ ۳- (اور ہر ایذا دینے والے کو مسجد سے روکا جائے گا اگر چہ اس کی اذیت زبان سے ہو۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۱۲۵: از دیرم گام ضلع احمد آباد گجرات جامع مسجد مرسلہ سید غلام محی الدین صاحب ۱۳ رجب ۱۳۲۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ دیرمگام گجرات میں جو عیدگاہ ہے اس پر چند لوگ جن کا چار پانچ نفر سے زیادہ عدد نہیں خود بخود بلا اجازت بانی مسجد و بلا

اجازت مسلمانان شہر ایسے قابض و متصرف ہو گئے ہیں کہ گویا وہ مالک ہی ہیں، چنانچہ علی الاعلان اس امر کا اظہار کرتے رہتے ہیں کہ اس مسجد میں سوائے ہمارے دوسرے کا حق نہیں جس کو ہم چاہیں گے امام بنائیں گے، اور امام جو بناتے ہیں تو ایسا کہ جس کے پیچھے نماز پڑھنے میں تمام مسلمانان شہر اور اہل علم حضرات کراہت کرتے ہیں اور یہ کراہت شرعی ہوئی نہ مخالفت ذاتی پر۔ قابضین کی قلیل جماعت کی یہ کیفیت ہے کہ نکاح ثانی کو حرام قطعی سمجھتے ہیں، اور مسجد پر تصرفات میں سے یہ بھی ہے کہ اہل شہر کے ساتھ نماز پڑھنے میں مزاحمت کرتے ہیں، آیا اہل شہر کو اس مسجد میں نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ اور دوسری عیدگاہ قرار دیگر اہل شہر نماز پڑھ سکتے ہیں یا نہیں؟

۱ القرآن ۶۸/۶ ۲ القرآن ۱۱۳/۱۱ ۳ در مختار آخر باب مایفسد الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹۴/۱

Volume 8 Fatawa Ridawiyya

The Answer: It is permissible for the city's inhabitants to offer prayer in this mosque, and those individuals have no right to obstruct them. If they do hinder, they will be severe oppressors.

Allah the Almighty said: "And who is more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in His mosques and strive for their destruction?" (Quran 2:114)

Allah the Almighty declared: Who can be a greater oppressor than the one who prevents Allah's name from being remembered in His mosques and strives for their ruin?

And an Imam appointed by them will not be credible. Only that Imam shall be accepted who is appointed by the general Muslim population of the city according to Sharia requirements. Aside from him, the Imam appointed by five or six people against the city's consensus will render the Eid prayer completely void. If for some reason the city's people cannot pray in that Eidgah, they may pray elsewhere, even in an open field, as a building is not a necessity for an Eidgah. And if constructing another Eidgah is appropriate, they have the authority for that as well. And Allah Almighty knows best.

Problem 1126: From Moradabad, sent by Maulvi Abdul Bari, 7 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: If an Imam, after concluding the Friday prayer, absolutely forbids the followers from praying behind him while he remains engaged in recitations (Azkar), etc., and ensures no worshipper prays in a straight line from his prayer rug to the mosque's door? Furthermore, if someone even begins their prayer, he forcibly compels them to break it, claiming it would hinder his exit. This is because it is his habit to return to his private chamber a long time after the Friday prayer concludes. Thus, for that duration, no worshipper should pray in front of or behind him. If someone unaware does so, he treats them with extreme severity. To what extent is this permissible?

The Answer: Allah the Almighty says: "And the mosques are for Allah" (Quran 72:18). Mosques belong exclusively to Allah; no one has a personal claim over them. And He says: "And who is more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in His mosques" (Quran 2:114). Who can be a greater oppressor than the

one who prevents Allah's name from being recited in His mosques? All of this is severe oppression and is prohibited.

1. Al-Quran 2/114
2. Al-Quran 72/18
3. Al-Quran 2/114

जिल्द 8 फतावा रज़विया

उत्तर: शहर के लोगों के लिए इस मस्जिद में नमाज पढ़ना जायज़ है, और उन लोगों को रोकने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वे बाधा डालेंगे, तो वे कठोर अत्याचारी होंगे।

अल्लाह तआला ने फरमाया: "और उस से बढ़कर ज़ालिम कौन है जो अल्लाह की मस्जिदों में उस के नाम का ज़िक्र किए जाने से रोके और उन की बर्बादी की कोशिश करे?" (कुरान 2:114)

अल्लाह तआला ने फ़रमाया: उससे बड़ा ज़ालिम कौन हो सकता है जो अल्लाह की मस्जिदों में अल्लाह के नाम के ज़िक्र से रोके और उनकी वीरानी की कोशिश करे। (त)

और ऐसा इमाम जिसे वे नियुक्त करें मान्य नहीं होगा। इमाम वही माना जाएगा जिसे शहर के आम मुसलमान शरीयत की शर्तों के अनुसार नियुक्त करेंगे। इसके अलावा, वह इमाम जिसे पाँच या छह लोग शहर के आम निर्णय के खिलाफ नियुक्त करें, उसकी ईद की नमाज पूरी तरह से शून्य (बातिल) होगी। यदि किसी कारणवश शहर के लोग उस ईदगाह में नमाज न पढ़ सकें तो वे दूसरी जगह पढ़ लें, चाहे किसी मैदान में ही क्यों न हो, क्योंकि ईदगाह के लिए इमारत होना ज़रूरी नहीं है। और यदि दूसरी ईदगाह बनाना उचित हो, तो उन्हें इसका भी अधिकार है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 1126: मुरादाबाद से, प्रेषक मौलवी अब्दुल बारी, 7 सफ़र 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: यदि कोई इमाम जुमे की नमाज पूरी करने के बाद मुक़्तदियों को अपने पीछे नमाज पढ़ने से बिल्कुल मना कर दे और खुद ज़िक्र व अज़कार में व्यस्त रहे, और इस बात का ध्यान रखे कि मुसल्ले (नमाज़ की चटाई) से मस्जिद के दरवाज़े तक सीधे रास्ते में कोई नमाज़ी नमाज न पढ़ पाए। बल्कि, अगर किसी ने नियत भी बांध ली हो, तो वह बलपूर्वक उसे तुड़वा दे, यह कह कर कि उसके निकलने में बाधा होगी। क्योंकि उसकी आदत है कि जुमे से फ़ारिग होने के बहुत देर बाद वह अपने कमरे में जाता है, इसलिए उतनी देर तक कोई नमाज़ी उसके सामने या पीछे नमाज न पढ़े। अगर किसी अनभिज्ञ व्यक्ति ने ऐसा कर लिया, तो वह उस पर बहुत सख्ती करता है। यह कहाँ तक जायज़ है?

उत्तर: अल्लाह अज्ज़वजल फरमाता है: "और मस्जिदें अल्लाह ही के लिए हैं" (कुरान 72:18)। मस्जिदें पूरी तरह से अल्लाह के लिए हैं, उनमें किसी का व्यक्तिगत दावा नहीं चलता। और फरमाता है: "और उस से बढ़कर ज़ालिम कौन है जो अल्लाह की मस्जिदों में उस के नाम का ज़िक्र किए जाने

से रोके' (कुरान 2:114)। अल्लाह की मस्जिदों में अल्लाह का नाम लेने से रोकने वाले से बड़ा ज़ालिम कौन है? यह सब घोर अत्याचार है और वर्जित है।

1. अल-कुरान 2/114
2. अल-कुरान 72/18
3. अल-कुरान 2/114

पेज 76 ऑफ 673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

الجواب: اہلِ شہر کو اس مسجد میں نماز پڑھنا جائز ہے، اور ان لوگوں کو مزاحمت کا کوئی حق نہیں، اگر وہ مانع آئیں گے سخت ظالم ہوں گے۔

قال اللہ تعالٰی وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ وَسَعٰی فِیْ خَرَابِہَا ۱

اللہ تعالیٰ نے فرمایا: اس سے بڑھ کر ظالم کون ہو سکتا ہے جو اللہ کی مساجد میں اللہ کے نام کے ذکر سے روکے اور ان کی ویرانی کی کوشش کرے۔(ت)

اور ایسا امام کہ وہ مقرر کریں معتبر نہ ہوگا، امام وہی مانا جائے گا جسے عام مسلمانانِ شہر حسبِ شرائط شرعیہ مقرر کریں گے، اس کے سوا وہ امام جسے وہ پانچ چھ بر خلافِ شہر مقرر کریں نمازِ عید باطل محض ہوگی، اہل شہر اگر کسی وجہ سے اس عیدگاہ میں نماز نہ پڑھ سکیں دوسری جگہ پڑھیں اگر چہ کسی میدان میں کہ عیدگاہ میں عمارت کی حاجت نہیں، اور اگر دوسری عید گاہ ہی تعمیر کرنی مناسب ہو تو انھیں اس کا بھی اختیار ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۲۶: از مراد آباد مرسلہ مولوی عبدالباری ۷ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر امام بعدِ فراغتِ نمازِ جمعہ کے مقتدیوں کو اپنے پیچھے قطعی نماز نہ پڑھنے دے اور خود اذکار وغیرہ سے مشغول رہے اور مصلیٰ سے لے کر مسجد کے دروازے تک سیدھ میں کوئی نمازی نماز نہ پڑھنے پائے بلکہ اگر کسی نے نیت بھی باندھ لی تو وہ نیت جبراً تڑوا دے اس لئے کہ اس کے نکلنے میں حرج ہوگا کیونکہ اس کی عادت ہے بعدِ فراغتِ جمعہ بہت دیر کے بعد وہ اپنے حجرہ میں جاتا ہے، تو اتنی دیر تک کوئی مصلیٰ اس کے محاذ اور عقب میں نماز نہ پڑھے، اگر کسی ناواقف نے ایسا کر بھی لیا تو اس پر نہایت تشدد کرتا ہے، یہ کہاں تک روا ہے؟

الجواب: اللہ عزوجل فرماتا ہے: وَاَنَّ الْمَسٰجِدَ لِلّٰہِ ۲۔ مسجدیں خالص اللہ کے لئے ہیں، اُن میں کسی کا ذاتی دعویٰ دعویٰ نہیں پہنچتا۔ اور فرماتا ہے: وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ ۳۔ اس سے بڑھ کر ظالم کون جو اللہ کی مسجدوں کو اُن میں نام الٰہی لینے سے روکے، یہ سب ظلمِ شدید ہے اور بند بھی ہوئی

۱ القرآن ۲/ ۱۱۴ ۲ القرآن ۷۲/ ۱۸ ۳ القرآن ۲/ ۱۱۴

Fatawa Razawiyya Volume 8

Evil intention and causing harm is the severest oppression, "And do not invalidate your deeds" (Al-Quran 47:33). And Allah Almighty knows best.

Issue 116: From Old City, Muhalla Bukharpur, Questioner: Abdul Rahman Baig Sahib, 5 Safar 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: a mosque which was built of old by the Ahl-e-Sunnat wal-Jama'at and since ancient times until today, the possession of the said mosque has also been with the Ahl-e-Sunnat wal-Jama'at. Is it permissible in such a mosque for both parties, Shia and Sunni, to offer prayers together and for the call to prayer (Adhan) and Iqamah to also be from both parties? Explain and be rewarded.

The Answer: The Rawafid (Shias) have no right in a mosque of the Ahl-e-Sunnat. It is explicitly stated in the reliable books of the Ahl-e-Sunnat, such as Khulasa, Fath al-Qadir, Alamgiri, Tanwir al-Absar, and Durr al-Mukhtar, that the Rawafid are disbelievers (kafir), and a disbeliever has no right in a mosque. The text is:

[In box: Arabic & Urdu] "If a Rafidi insults the Shaykhayn (Abu Bakr and Umar) and curses them—refuge is sought with Allah Almighty—then he is a disbeliever. And Allah Almighty knows best." / When a Rafidi insults the Shaykhayn (Abu Bakr and Umar) or curses them (refuge is sought with Allah Almighty), he will be a disbeliever. And Allah Almighty knows best.

Issue 1128: From the country of Bengal, town of Gauripur, district of Mymensingh, sent by Mian Abdul Jalil, 18 Dhu al-Qi'dah 1311 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: a person is a rioter and troublemaker, due to whom the Muslim community has split; people pray in another mosque and that troublemaker is the Imam of that rebellious group. This rebellion is not religious but merely based on ego. In this case, can that old mosque be called "Masjid-e-Dirar" (the Mosque of Harm) or not? Explain and be rewarded.

The Answer: An old mosque cannot become Masjid-e-Dirar because of their going there or leading/offering prayers. Masjid-e-Dirar is that mosque which was originally built for the purpose of creating corruption in religion and division among the believers.

[In box: Arabic & Urdu] Allah Almighty said: "And [there are] those [hypocrites] who took for themselves a mosque for causing harm and disbelief and division among the believers..." until the word of Allah Almighty: "Is he then better who founded his

building on a cliff..." Allah Almighty said: "Those who built a mosque to cause harm, and for disbelief, and to cause division among the Muslims" (up to this word of Allah Almighty).

---

1 Al-Quran 47/33 2 Khulasa al-Fatawa, Book of Words of Disbelief, Published by Habibiya Quetta, 4 / 381

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

बुरी नीयत और नुकसान पहुँचाना सबसे बड़ा ज़ुल्म है। "और अपने कर्मों को व्यर्थ न करो" (अल-क़ुरआन 47:33)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 116: शहर कोहना, मोहल्ला बुख़ारपुरा से, प्रश्नकर्ता: अब्दुल रहमान बेग साहब, 5 सफर 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि एक मस्जिद जो अहले सुन्नत वल-जमाअत द्वारा पुरानी निर्मित है और प्राचीन काल से आज तक उक्त मस्जिद पर कब्ज़ा भी अहले सुन्नत वल-जमाअत का है। ऐसी मस्जिद में शिया और सुन्नी दोनों पक्षों का मिलकर नमाज़ पढ़ना और अज़ान व इक़ामत भी दोनों पक्षों का होना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: अहले सुन्नत की मस्जिद में रफ़ज़ियों (शियाओं) का कोई अधिकार नहीं है। अहले सुन्नत की विश्वसनीय किताबों जैसे 'खुलासा', 'फतह अल-क़दीर', 'आलमगीरी', 'तनवीर अल-अबसार' और 'दुर-ए-मुख्तार' में स्पष्ट किया गया है कि राफ़ज़ी काफ़िर हैं और काफ़िर का मस्जिद में कोई अधिकार नहीं है। इबारत (पाठ) यह है:

[बॉक्स में: अरबी और उर्दू] "जब कोई राफ़ज़ी शैखैन (अबू बक्र और उमर) को गाली दे या उन पर लानत भेजे—अल्लाह की पनाह—तो वह काफ़िर है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।" / राफ़ज़ी जब शैखैन करीमैन को गाली दे या उन पर लानत करे (अल्लाह की पनाह), तो वह काफ़िर होगा। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1128: बंगाल देश के कस्बा गौरीपुर, ज़िला मैमनसिंह से, प्रेषक मियाँ अब्दुल जलील, 18 ज़ुल-क़ादा 1311 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि एक व्यक्ति उपद्रवी और फ़सादी है, जिसकी वजह से मुस्लिम समुदाय में फूट पड़ गई है; लोग दूसरी मस्जिद में नमाज़ पढ़ते हैं और वह फ़सादी उस विद्रोही समूह का इमाम है। यह विद्रोह धार्मिक नहीं बल्कि केवल अहमन्यता (ego) पर आधारित है। ऐसी स्थिति में उस पुरानी मस्जिद को 'मस्जिद-ए-ज़रार' (हानिकारक मस्जिद) कह सकते हैं या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: पुरानी मस्जिद उनके जाने और नमाज़ पढ़ने या पढ़ाने से मस्जिद-ए-ज़रार नहीं हो सकती। मस्जिद-ए-ज़रार वह मस्जिद है जो शुरू से ही धर्म में बिगाड़ और मोमिनों के बीच फूट डालने के लिए बनाई गई हो।

[बॉक्स में: अरबी और उर्दू] अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और जिन्होंने मस्जिद बनाई नुकसान पहुँचाने को, और कुफ्र के कारण, और मोमिनों में फूट डालने को..." अल्लाह तआला के इस कथन तक: "क्या फिर वह जिसने अपनी बुनियाद रखी एक कगार पर..." अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "वे लोग जिन्होंने मस्जिद बनाई नुकसान पहुँचाने को, और कुफ्र के कारण, और मुसलमानों में फूट डालने को" (अल्लाह तआला के इस कथन तक)।

---

1 अल-क़ुरआन 47/33 2 खुलासा अल-फ़तावा, किताबुल अलफ़ाज़ुल कुफ्र, मुद्रित हबीबिया क्वेटा 4/381

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

نیت شر و ادینا اشد ظلم، وَ لَا تُبْطِلُوْا اَعْمَالَکُمْ (اور اپنے اعمال باطل نہ کرو۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۶ : از شہر کہنہ محلہ بخارپورہ مسئولہ عبدالرحمان بیگ صاحب ۵ صفر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد جو قدیمی تعمیر کردہ اہلسنت وجماعت کی ہے اور زمانہ قدیم سے آج تک مسجد مذکورہ پر قبضہ بھی اہلسنت والجماعت کا، ایسی مسجد میں شیعہ وسنی ہر دو فریق کا باہم نماز پڑھنا اور اذان واقامت بھی ہر دو فریق کی ہونا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: اہلِ سنّت کی مسجد میں روافض کا کوئی حق نہیں، اہل سنت کی معتمد کتابوں خلاصہ وفتح القدیر و عالمگیری و تنویر الابصار و درمختار میں تصریح ہے کہ روافض کافر ہیں اور کافر کا مسجد میں کوئی حق نہیں۔ عبارت یہ ہے:

[بکس میں: عربی و اردو] الرافضی اذاکان یسب الشیخین ویلعنھما و العیاذ باللہ تعالی، فھو کافر۔ واللہ تعالٰی اعلم / رافضی جب شیخین کریمین کو گالی دے یا ان پر لعنت کرے (والعیاذ باللہ تعالی) تو وہ کافر ہوگا (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۲۸ : از ملک بنگالہ قصبہ گوری پور ضلع میمن سنگھ مرسلہ میاں عبدالجلیل ۱۸ ذی القعدہ ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ کوئی شخص برافغان ومفسد ہے، جماعت المسلمین بوجہ اس کے افتراق ہو گیا ہے، لوگ دوسری مسجد میں نماز پڑھتے ہیں اور وہ مفسد امام اس قوم باغین کا ہے اور یہ بغاوت دینی نہیں بلکہ محض نفسانیت ہے اس صورت میں اس مسجد کہنہ کو مسجد ضرار کہہ سکتے ہیں یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: مسجد کہنہ اُن کے جانے اور نماز پڑھنے پڑھانے سے مسجد ضرار نہیں ہو سکتی ضرار وہ مسجد ہے جو ابتداء افساد فی الدین و تفریق بین المومنین کے لئے بنائی گئی ہو۔

[بکس میں: عربی و اردو] قال تعالٰی: "وَالَّذِیْنَ اتَّخَذُوْا مَسْجِدًا ضِرَارًا وَ کُفْرًا وَ تَفْرِیْقًا بَیْنَ الْمُؤْمِنِیْنَ" الٰی قولہ تعالیٰ "اَمْ مَنْ اَسَّسَ بُنْیَانَہٗ عَلٰی شَفَا" اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "وہ لوگ جنہوں نے مسجد بنائی نقصان پہنچانے کو، اور کفر کے سبب، اور مسلمانوں میں تفر قہ ڈالنے کو" (اللہ تعالیٰ کے اس قول تک)

---

1 القرآن ۴۷ / ۳۳ 2 خلاصہ الفتاوی کتاب الالفاظ الکفر مطبوعہ حبیبیہ کوئٹہ ۴ / ۳۸۱

Fatawa Razawiya Volume Eight

“...on the edge of a crumbling precipice...”[1] The Verse Or the one who laid his foundation on the edge of a crumbling pit. The Verse (T)

The entry of mischief-makers into a constructed mosque, even if they seize and control it, cannot turn it into Masjid-e-Dirar (a mosque for harmful purposes). Examples include the intrusion of Yazid's army during the Event of Harrah or the mischievous interference of the followers of the filthy Najdi during the Najd incident into the holy mosques of the Two Sacred Cities. God forbid, and Allah the Almighty knows best.

Problem 1129: From Gopalbari, District Malda (English-occupied India), Post Office Bholahat, sent by Sheikh Gharibullah Sahib, 4 Rajab 1312 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: In a village, Muslims of the same community and faith, comprising about two hundred to two hundred and fifty households, reside. There is a solid (pukka) mosque built about ten to twelve years ago by these same Muslims. All the resident Muslims of the said village used to offer the five daily prayers in this mosque with unity of heart and mind. It so happened that after a few years, a worldly dispute and quarrel regarding land or some other worldly matter arose between two Muslim chiefs residing in the same village, which still persists. One of the two, without any cause and out of personal ego and stubbornness, took forty to fifty households of Muslims with him and turned away from the aforementioned mosque. He built a thatched mosque (made of grass/straw) near his house and offers the five daily prayers with his companions. Given that the solid mosque exists and the thatched mosque is located about two hundred steps from it, and there is no danger to life or property on the path between them, can the five daily prayers be performed in the thatched mosque or not? Your ruling on its permissibility or impermissibility will be a great kindness and honor. This is a decision for both chiefs and indeed for all Muslims. Furthermore, for the period those people intentionally prayed in that thatched mosque, were their prayers valid or not? In case of a ruling of permissibility, we accept it; but in case of impermissibility, what is the consequence for these dissenting Muslims according to the noble Sharia? Can they be called splitters of the congregation or not? And what ruling according to Sharia applies to one who splits the congregation, and what can such people be called? Please inform us. Explain and you shall be rewarded.

Answer: Regarding the prayers those people offered in this new mosque, there is absolutely no doubt about their validity and the fulfillment of the obligation, regardless of the intention with which they built this mosque.

---

1. The Quran 9:108 and 109

फ़तावा रजविया जिल्द अष्टम (आठवीं)

"...एक गिरते हुए किनारे की कगार पर..."१ आयत या वह जिसने अपनी नींव एक गिरते हुए गड्ढे के किनारे रखी। आयत (त)

किसी तामीर शुदा (बनी हुई) मस्जिद में फ़सादियों (उपद्रवियों) का जाना, चाहे उनका क़ब्ज़ा और वर्चस्व ही क्यों न हो जाए, उसे मस्जिद-ए-ज़िरार (नुकसान पहुँचाने वाली मस्जिद) नहीं बना सकता। जैसे वाक़या-ए-हर्रा में यज़ीद के लश्करों का या हादसा-ए-नज्द में नज्दी अनुयायियों का पाक मस्जिदों (हरमैन शरीफ़ैन) में मफ़सदाना (शरारत भरा) दाख़िला। अल्लाह की पनाह और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ११२९: गोपालबाड़ी जिला मालदा (अंग्रेज़ी भारत), पोस्ट ऑफिस भोलाहाट, प्रेषक शेख ग़रीबुल्लाह साहिब, ४ रजब १३१२ हिजरी।

दीन के उलमा इस मसले में क्या कहते हैं कि एक बस्ती में एक ही क़ौम और मज़हब के लगभग दो-ढाई सौ घरों के मुसलमान रहते हैं। वहाँ एक पक्की मस्जिद है जिसे उन्हीं मुसलमानों ने दस-बारह साल पहले बनवाया था। बस्ती के सभी मुसलमान एक राय होकर इसी मस्जिद में पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा करते थे। संयोग से कुछ सालों बाद बस्ती के दो मुसलमान रईसों (सरदारों) के बीच ज़मीन या किसी अन्य दुनियावी मामले को लेकर झगड़ा और विवाद हो गया जो अब तक जारी है। उन दोनों में से एक ने बिना किसी कारण के और अपनी नफ़्सानी ज़िद में आकर चालीस-पचास घर के मुसलमानों को अपने साथ मिला लिया और उस पुरानी मस्जिद से मुँह मोड़ लिया। उसने अपने घर के पास एक घास-फूस की मस्जिद बनवा ली और अपने साथियों के साथ वहीं पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा करता है। जबकि पक्की मस्जिद मौजूद है और यह नई कच्ची मस्जिद उससे लगभग दो सौ क़दम की दूरी पर है और दोनों के बीच रास्ते में जान-माल का किसी तरह का कोई ख़तरा नहीं है। क्या पाँचों वक़्त की नमाज़ उस कच्ची मस्जिद में अदा हो सकती है या नहीं? इसके जायज़ या नाजायज़ होने के बारे में जो भी हुक्म होगा, वह बड़ी नवाज़िश और करम होगा। यह फैसला उन दोनों रईसों बल्कि तमाम मुसलमानों के लिए है। दोबारा यह कि उन लोगों ने जितने दिनों तक उस कच्ची मस्जिद में जान-बूझकर नमाज़ पढ़ी, उनकी नमाज़ हुई या नहीं? और जायज़ होने की सूरत में हम उसे स्वीकार करेंगे, और नाजायज़ होने की सूरत में शरीयत के मुताबिक़ उन मुँह मोड़ने वाले मुसलमानों पर क्या लाज़िम आता है? क्या उन लोगों को जमाअत (समुदाय) में फूट डालने वाला कहा

जा सकता है या नहीं? और जमाअत में फूट डालने वाले पर शरीयत का क्या हुक्म है और उन लोगों को क्या कहा जा सकता है? आगाह फ़रमायें। बयान करें और सवाब पायें।

अल-जवाब (उत्तर): उन लोगों ने इस नई मस्जिद में जितनी भी नमाज़ें पढ़ीं, उनकी सेहत (सही होने) और उनसे फ़र्ज़ की अदायगी में तो बिलकुल भी संदेह नहीं है, चाहे उन्होंने यह मस्जिद किसी भी नीयत (इरादे) से बनाई हो।

---

1. अल-क़ुरआन ९/१०८ और १०९

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

جُرُفٍ ہَارٍ ۱ الاٰیۃ یا وہ جس نے اپنی نیو چنی ایک گراؤ گڑھنے کے کنارے" الاٰیۃ (ت)

تعمیر شدہ مسجد میں مفسدین کا جانا خواہ ان کا قبضہ و تسلط ہو جانا اسے مسجدِ ضرار نہیں کر سکتا، جیسے واقعہ حرہ میں لشکریانِ یزید یا حادثہ نجد میں متبعانِ نجدی پلید کا مساجدِ طیبہ حرمین محترین میں مفسدانہ دخل، والعیاذ باللہ تعالٰی واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۲۹: از گوپالباڑی ضلع مالوہ انگریزآباد ڈاکخانہ بھولاہاٹ مرسلہ شیخ غریب اللہ صاحب ۴ رجب ۱۳۱۲ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک بستی میں مسلمانان ہم قوم ہم مذہب قریب دو اڑھائی سو گھر کے رہتے ہیں اور ایک مسجد پختہ عرصہ دس بارہ برس سے کہ بنوائی ہوئی انھیں مسلمانان کی ہے اور ایک دل ایک رائے ہو کر اسی مسجد میں نماز پنجگانہ جمیع مسلمانان باشندہ بستی مذکورہ ادا کرتے ہیں اتفاق وقت کہ بعد چند سال کے دو مسلمان رئیس میں جو رہنے والے اسی بستی کے ہیں جھگڑا و تکرار دنیاوی در بارہ زمین خواہ کسی امر دنیاوی کے برپا ہوا اور ہنوز ہے یا نہیں ہے کہ منجملہ دو کے ایک نے بلا سبب اپنے زور نفسانی وضد میں آکر چالیس پچاس گھر مسلمانوں کو شامل اپنے لے کر اُس مسجد مذکورہ سے رو گرداں ہوا اور ہو کر ایک مسجد گیاہی جسے پھوس کہتے ہیں اپنے مکان کے قریب تعمیر کرا کر نماز پنجگانہ مع ہمراہیان خود ادا کرتا ہے تو کیا رہتے ہوئے مسجد پختہ کے کہ مسجد ہذا سے مسجد گیاہ اندازی دو سو قدم پر واقع ہے اور ان دونوں کے راستہ درمیان کسی طرح کا خوف جان و مال کا نہیں ہے نماز پنج وقتی مسجد گیاہ میں ادا ہو سکتی ہے کہ نہیں؟ اس کے جواز ولا جواز سے جہاں تک تعمیل فرما

کر ممتاز فرمایا جائے گا عین نوازش واکرام ہے اور ان دونوں رئیسوں کا بلکہ سائر مسلمانان کا فیصلہ ہے مکرر آنکہ اُن لوگوں نے جتنے روز تک اُس مسجد گیاہ میں جان بوجھ کر نماز پڑھی تو ان سبھوں کی نماز ہوئی یا نہیں، اور بصورت نکلنے حکم جوازِ آمنّا صدقنا و بصورت نکلنے ناجواز ان مسلمانوں رو گردانوں پر از روئے شرع شریف کے کیا لازم آسکتا ہے اور ان لوگوں کو جماعت میں پھوٹ ڈالنے والا کہہ سکتے ہیں یا نہیں؟ اور جماعت میں پھوٹ ڈالنے والے پر کیا حکم مطابق شرع کے جاری کیا جائے گا اور وہ لوگ کیا کہے جاسکتے ہیں ؟ آگاہ فرمایا جائے۔ بینوا توجروا۔

الجواب: جتنی نمازیں ان لوگوں نے اس نئی مسجد میں پڑھیں ان کی صحت اور ان سے ادائے فرض میں تو اصلاً شبہ نہیں اگرچہ یہ مسجد انھوں نے کسی نیت سے بنائی ہو،

---

1 القرآن ۹/ ۱۰۸ و ۱۰۹

Fatawa Razviyya, Volume 8

According to the saying of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): "The earth has been made a place of prayer (masjid) and a means of purification for me, so whenever the time for prayer comes upon any man from my Ummah, let him pray there."[1]

Because the Noble Prophet said: For my sake, the entire earth has been made a masjid and pure; wherever my follower finds the time for prayer, he should perform it there. (T)

Yes, whether that mosque became a mosque according to Sharia or not, and whether permission to pray in it exists or not, and whether these people caused a split in the congregation or not. These matters depend on the intention of those people. If they built this mosque for the sake of prayer purely for Allah Almighty, even if it was caused by mutual resentment whereby they did not find it appropriate to gather in one place due to grievance and did not want to perform prayer in the [existing] mosque, therefore, if this mosque was built with the intention of performing prayer, then there is no doubt about it being a mosque and the prayer in it being permissible and rewarding. "Because it is an endowment (waqf) issued by the people of waqf in the place of waqf according to the proper way." (T). In this state of intention, these people cannot be considered as those who cause a split in the congregation because their purpose is to perform their own congregational prayer, not to cause division in the congregation of others. To the extent that scholars clearly state that it is permissible for the people of a locality to make two mosques out of one for the purpose of prayer. It is in Durr al-Mukhtar:

"For the people of a locality, making two mosques into one or vice versa is permissible for prayer, but not for lessons or remembrance (dhikr)."[2]

The people of a locality can turn two mosques into one or vice versa, but only for prayer; they cannot do so for lessons or remembrance. (T)

In Al-Ashbaah, it is mentioned:

"For the people of a locality, making one mosque into two is permissible, and it is better that there be a separate muezzin for each group."[3]

The people of a locality can make two mosques out of one mosque, and it is better that there be a separate muezzin for each group. (T)

And if this was not the intention—the mosque was not built for Allah, but rather the purpose was to cause harm to the previous mosque and to scatter its congregation—then indeed this is not a mosque, nor is there permission to pray in it, nor is there permission to keep it established. In this case, these people are surely afflicted with the burden of dividing the congregation of believers, which is an absolute prohibition and a great sin.

Allah Almighty says: "And those who took [for themselves] a mosque..."

Allah Almighty's command is: "And those who built a mosque..."

[1] Sahih al-Bukhari, Kitab al-Salat, Bab Qawl al-Nabi Ju'ilat li al-Ard Masjidan... printed at Qadeemi Kutub Khana Karachi, 1/62 [2] Durr al-Mukhtar, end of Chapter 'What invalidates prayer', printed at Matba Mujtabai Delhi India 1/94 [3] Al-Ashbaah wa'l-Naza'ir, Discourse on the Rulings of the Mosque, printed at Idara al-Qur'an wa al-'Ulum al-Islamiyya Karachi, 2/234, 235

फतावा रज़विया, जिल्द 8

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस फरमान के अनुसार: "मेरे लिए पूरी ज़मीन को नमाज़ की जगह (मस्जिद) और पाक करने का ज़रिया बनाया गया है, लिहाज़ा मेरी उम्मत के जिस शख्स पर भी नमाज़ का वक़्त आए, उसे वहीं नमाज़ अदा कर लेनी चाहिए।"[1]

क्योंकि नबी-ए-अकरम ने फ़रमाया: मेरी खातिर सारी ज़मीन मस्जिद और पाक कर दी गई है, मेरा उम्मती जहाँ नमाज़ का वक़्त पाए वहीं अदा कर ले (त)।

हाँ, यह कि वह मस्जिद शरई तौर पर मस्जिद हुई या नहीं, और उसमें नमाज़ पढ़ने की इजाज़त है या नहीं और ये लोग जमाअत में फूट डालने वाले हुए या नहीं। ये बातें इन लोगों की नीयत पर मुनहसिर हैं, अगर ये मस्जिद उन्होंने महज़ अल्लाह अज़्वजल के लिए नमाज़ की ग़रज़ से बनाई, चाहे इस पर आपसी रंजिश वजह बनी हो कि रंज के कारण एक जगह जमा होना मुनासिब न समझा और [पुरानी] मस्जिद में नमाज़ अदा करना न चाहा, लिहाज़ा अगर यह मस्जिद नमाज़ अदा करने की नीयत से ही बनाई तो इसके मस्जिद होने और इसमें नमाज़ के जायज़ और सवाब होने में कोई शक नहीं। "क्योंकि यह वक़्फ़ है जो वक़्फ़ करने वालों की तरफ से वक़्फ़ की जगह में तरीके के मुताबिक हुआ है।" (त)। और इस नीयत की हालत में ये लोग जमाअत में फूट डालने वाले भी नहीं कहला सकते क्योंकि उनका मक़सद अपनी नमाज़ बा-जमाअत अदा करना है, न कि दूसरों की जमाअत में तफ़रक़ा (बँटवारा) डालना। यहाँ तक कि उलमा स्पष्ट रूप से फ़रमाते हैं कि मोहल्ले वालों के लिए जायज़ है कि नमाज़ की ग़रज़ से एक मस्जिद की दो मस्जिदें कर लें। दुर्रे मुख्तार में है:

"मोहल्ले वालों के लिए दो मस्जिदों को एक करना या इसके उलट करना नमाज़ के लिए जायज़ है, दर्स (सबक) या ज़िक्र के लिए नहीं।"[2]

मोहल्ले वाले दो मस्जिदों को एक या इसका उलट कर सकते हैं मगर नमाज़ के लिए, दर्स या ज़िक्र के लिए ऐसा नहीं कर सकते (त)।

अश्बाह में है:

"मोहल्ले वालों के लिए एक मस्जिद को दो मस्जिदें बनाना जायज़ है और बेहतर यह है कि हर गिरोह के लिए अलग मुअज़्ज़िन हो।"[3]

मोहल्ले वाले एक मस्जिद को दो मस्जिदें बना सकते हैं और बेहतर यह है कि हर गिरोह के लिए अलग मुअज़्ज़िन हो। (त)

और अगर यह नीयत न थी, मस्जिद अल्लाह के लिए न बनाई बल्कि इससे मक़सद पिछली मस्जिद को नुक़सान पहुँचाना और उसकी जमाअत को तितर-बितर कर देना था तो बेशक यह मस्जिद न हुई, न इसमें नमाज़ की इजाज़त है और न ही इसे क़ायम रखने की इजाज़त है, और इस सूरत में ये लोग मोमिनों की जमाअत को बाँटने के वबाल में मुब्तला हुए जो कि क़तई हराम और बहुत बड़ा गुनाह है।

अल्लाह तआला का फ़रमान है: "और वो लोग जिन्होंने मस्जिद बनाई..."

अल्लाह तआला का फ़रमान है: और वो लोग जिन्होंने मस्जिद...

[1] सहीह अल-बुखारी, किताब अस-सलात, बाब क़ौल अन-नबी जुइलत ली अल-अर्ज़ु मस्जिदन... पुरानी कुतुब खाना कराची, 1/62 [2] दुर्रे मुख्तार, नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ों के बाब के आखिर में, मतबा मुज्तबाई दिल्ली भारत 1/94 [3] अल-अश्बाह वल-नज़ायर, मस्जिद के अहकाम पर बहस, इदारा अल-क़ुरान वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची, 2/234, 235

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

لِقَوْلِ رَسُولِ اللّٰہِ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم جُعلت لی الارض مسجدا او طھورا فاینما رجل من امتی ادرکتہ الصلوۃ فلیصل[1]۔ کیونکہ نبی اکرم نے فرمایا: میری خاطر ساری زمین مسجد اور پاک کردی گئی ہے، میرا امتی جہاں نماز کا وقت پائے وہاں ہی ادا کرلے (ت)

ہاں یہ کہ وہ مسجد شرعاً مسجد ہوئی یا نہیں، اور اس میں نماز پڑھنے کی اجازت ہے یا نہیں اور یہ لوگ جماعت میں پھوٹ ڈالنے والے ہوئے یا نہیں۔ یہ امور ان لوگوں کی نیت پر موقوف ہیں، اگر یہ مسجد انھوں نے بغرض نماز خالص اللہ عزوجل ہی کے لئے بنائی اگرچہ اس پر باعث باہمی رنجش ہوئی کہ بسبب رنج ایک جگہ جمع ہونا مناسب نہ جانا اور نماز مسجد ادا کرنی نہ چاہی، لہٰذا یہ مسجد بہ نیتِ بجاآوری نماز ہی بنائی تو اس کے مسجد ہونے اور اس میں نماز جائز و ثواب ہونے میں کوئی شبہ نہیں لانہ وقف صدر عن اھلہ فی محلہ علی وجہہ (کیونکہ یہ وقف ہے اہل وقف سے محل وقف میں طریق کے مطابق وقف ہوئی ہے۔ ت) اور اس نیت کی حالت میں یہ لوگ جماعت میں پھوٹ ڈالنے والے بھی نہیں ٹھہر سکتے کہ ان کا مقصود اپنی نماز باجماعت ادا کرنا ہے، نہ دوسروں کی جماعت میں تفرقہ ڈالنا، یہاں تک کہ علماء تصریح فرماتے ہیں کہ اہل محلہ کو جائز ہے کہ بغرض نماز ایک مسجد کی دو مسجدیں کرلیں۔ درمختار میں ہے:

لاھل المحلہ جعل المسجدین واحد او عکسہ لصلوۃ لالد رس او ذکر[2]۔ اہلِ محلہ دو مساجد کو ایک یا اس کا عکس کرسکتے ہیں مگر نماز کے لئے، درس یا ذکر کے لئے ایسا نہیں کرسکتے (ت)

اشباہ میں ہے:

لاھل المحلہ جعل المسجد الواحد مسجدین والاولیٰ ان یکون لکل طائفہ مؤذن[3]۔ اہلِ محلہ ایک مسجد کو دو مساجد بناسکتے ہیں اور بہتر یہ ہے کہ ہر گروہ کے لئے الگ مؤذن ہو۔ (ت)

اور اگر یہ نیت نہ تھی مسجد اللہ کے لئے نہ بنائی بلکہ اس سے مقصود اگلی مسجد کو ضرر پہنچانا اور اس کی جماعت کا متفرق کردینا تھا تو بیشک یہ مسجد نہ ہوئی، نہ اس میں نماز کی اجازت بلکہ نہ اس کے قائم رکھنے کی اجازت، اور اس صورت میں یہ لوگ ضرور تفریق جماعت مومنین کے وبال میں مبتلا ہوئے کہ حرام قطعی و گناہِ عظیم ہے۔

قَالَ اللہُ تَعَالٰی وَالَّذِیْنَ اتَّخَذُوْا مَسْجِدًا اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: اور وہ لوگ جنھوں نے مسجد

[1] صحیح البخاری، کتاب الصلوٰۃ، باب قول النبی جعلت لی الارض مسجد الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی، ۱/ ۶۲ [2] درمختار آخر باب ما یفسد الصلوٰۃ الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۹۴ [3] الاشباہ والنظائر القول فی احکام المسجد مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲/ ۲۳۴، ۲۳۵

Fatawa Razawiya, Volume 8

[Top Box Left - Arabic Verse]: "ضِرَارًا وَّ كُفْرًا وَّ تَفْرِیْقًۢا بَیْنَ الْمُؤْمِنِیْنَ ۙ الایۃ" [Top Box Right - Urdu Translation]: "Made as a means of harm, disbelief, and to create division among the believers. (T)"

But intention is an internal matter, and harboring bad suspicions against a Muslim is haram and a major sin, and it is never expected from a Muslim that he built a mosque with such a corrupt and cursed intention.

[Middle Box Left - Arabic]: "قال اللہ تعالٰی وَ لَا تَقْفُ مَا لَیْسَ لَکَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَ الْبَصَرَ وَ الْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِکَ كَانَ عَنْهُ مَسْـُٔوْلًا ﴿۳۶﴾" [Middle Box Right - Urdu Translation]: "Allah Almighty commands: And do not pursue that of which you have no knowledge. Indeed, the hearing, the sight and the heart - about all those [one] will be questioned. (T)"

So, without sufficient Sharia proof, it is never permissible to suspect such an evil intention; rather, it should be attributed to the first (good) intention, and the mosque should be considered a mosque, and prayer in it should be considered valid and rewarding, and its upkeep should also be considered necessary.

Issue 1130: What do the scholars of religion say in this matter about the difference between a small mosque and a large mosque? Explain and be rewarded.

The Answer: I say: and with Allah is the guidance and through Him is the arrival at the pinnacle of investigation (with the guidance of Allah Almighty and through Him, arrival at investigation happens. T). The investigation is that the honorable scholars state regarding small and large mosques in two issues: One issue is the validity of following (the Imam) and the connection of rows, that a mosque is a single spot; in it, the separation between the Imam and the follower does not prevent the validity of following even if the Imam is in the niche and the follower or row is near the door. However, in a large mosque, the ruling is like that of a desert/open field, that if there is such a distance between the Imam and the row that two rows could fit in between, then following will not be valid. Second issue is the sin of passing in front of a worshiper, that it is not permissible in a mosque up to the Qibla wall as long as there is no barrier in between. Yes, a large mosque is like a desert/field where, when a worshiper prays with humility, keeping their gaze fixed on the place of prostration, then it is forbidden and impermissible to pass within the range where their sight reaches (as the rule of sight is that where it is fixed, it extends a bit further). Beyond

that, it is allowed. In these two issues, large mosque refers to the same thing, meaning an extremely grand and vast mosque like the Grand Mosque of Khwarizm which had sixteen thousand pillars, or the Grand Mosque of Jerusalem which is a collection of three mosques. As for the rest of the common mosques as they exist in common cities, they are all the same in these two rulings, even if they are a hundred yards in length and breadth.

1. Al-Quran 9/107
2. Al-Quran 17/36

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[ऊपर बाएँ- अरबी आयत]: "ضِرَارًا وَّ كُفْرًا وَّ تَفْرِيْقًا بَيْنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۙ الایۃ" [ऊपर दाएँ- उर्दू अनुवाद]: "नुक़सान पहुँचाने का ज़रिया, कुफ़्र और मोमिनों के बीच फूट पैदा करने का ज़रिया बनाया। (त)"

मगर नीयत एक आंतरिक मामला है और मुसलमान के प्रति बुरा गुमान (संदेह) रखना हराम और गुनाह-ए-कबीरा है, और किसी मुसलमान से यह हरगिज़ उम्मीद नहीं की जा सकती कि उसने ऐसी भ्रष्ट और शापित नीयत से मस्जिद बनाई हो।

[बीच में बाएँ- अरबी]: "صَرَ وَقال اللہ تعالٰی وَ لَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَکَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَ الْ ﴿الْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِکَ كَانَ عَنْهُ مَسْـُٔوْلًا ۳۶﴾" [बीच में दाएँ- उर्दू अनुवाद]: "अल्लाह तआला का फ़रमान है: और उस चीज़ के पीछे न पड़ जिसका तुझे ज्ञान नहीं। यक़ीनन कान, आँख और दिल, इन सबमें से हर एक के बारे में सवाल किया जाएगा। (त)"

तो बिना किसी पर्याप्त शरीई सुबूत के ऐसी बुरी नीयत का गुमान करना हरगिज़ जायज़ नहीं है बल्कि इसे पहली (अच्छी) नीयत पर ही माना जाएगा और मस्जिद को मस्जिद, और उसमें नमाज़ को जायज़ और सवाब का काम, और उसकी आबादी (आबाद रखना) को भी ज़रूर समझा जाएगा।

मसला 1130: दीन के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि छोटी और बड़ी मस्जिद में क्या अंतर है? बयान करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफ़ीक़ से और उसी के ज़रिए शोध की ऊँचाइयों तक पहुँचा जाता है (अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से और उसके ज़रिए शोध तक पहुँच होती है। त)। शोध यह है कि उलेमा-ए-किराम दो मसलों में छोटी और बड़ी मस्जिद के बारे में फ़रमाते हैं: एक मसला इक़्तिदा की सेहत (इमाम के पीछे नमाज़ सही होने) और सफ़ों के जुड़ाव का है, कि मस्जिद एक ही जगह है; इसमें इमाम और मुक्तदी के बीच का फ़ासला इक़्तिदा की सेहत में बाधक नहीं है, चाहे इमाम मेहराब में हो और मुक्तदी या सफ़ दरवाज़े के पास हो। लेकिन बड़ी मस्जिद में हुक्म जंगल जैसा है कि अगर इमाम और सफ़ में इतना फ़ासला हो जिसमें दो सफ़ें आ सकें तो इक़्तिदा सही नहीं होगी। दूसरा मसला नमाज़ी के सामने से गुज़रने के गुनाह का है, कि मस्जिद में क़िबला की दीवार तक गुज़रना जायज़ नहीं है जब तक कि बीच में कोई बाधा न हो। हाँ, बड़ी मस्जिद जंगल की तरह है कि जब नमाज़ी विनम्रता के साथ नमाज़ पढ़े और अपनी नज़र सजदा करने की जगह पर जमाए रखे, तो

इस हालत में जहाँ तक उसकी नज़र पहुँचती है (जैसा कि नज़र का नियम है कि जहाँ जमाई जाए उससे कुछ आगे तक जाती है) वहाँ तक गुज़रना मना और नाजायज़ है, उससे आगे जायज़ है। इन दोनों मसलों में बड़ी मस्जिद से मुराद एक ही है, यानी अत्यंत विशाल मस्जिद जैसे जामे ख़्वारज़्म जिसमें सोलह हज़ार खंभे थे या जामे क़ुद्स (यरूशलेम) जो तीन मस्जिदों का समूह है। बाक़ी आम मस्जिदें जैसी आम शहरों में होती हैं, वे इन दोनों हुक्मों में एक समान हैं, चाहे उनकी लंबाई और चौड़ाई सौ-सौ गज़ ही क्यों न हो।

1. अल-कुरान 9/107
2. अल-कुरान 17/36

पृष्ठ 80 / 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ضِرَارًا وَّ کُفْرًا وَّ تَفْرِیْقًۢا بَیْنَ الْمُؤْمِنِیْنَ ۙ الایۃ نقصان کا ذریعہ، کفر اور مسلمانوں کے درمیان تفریق پیدا کرنے کا ذریعہ بنایا۔ (ت)

مگر نیت امرِ باطن ہے اور مسلمان پر بدگمانی حرام وکبیرہ، اور ہر گز مسلمان سے متوقع نہیں کہ اس نے ایسی فاسد ملعون نیت سے مسجد بنائی۔

قال اللہ تعالٰی وَ لَا تَقْفُ مَا لَیْسَ لَکَ بِہٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَ الْبَصَرَ وَ الْفُؤَادَ کُلُّ اُولٰٓئِکَ کَانَ عَنْہُ مَسْـُٔوْلًا ﴿۳۶﴾ اللہ تعالٰی کا فرمان ہے : نہ پیچھے لگ اس چیز کے جس کا تجھے علم نہیں کیونکہ سمع، بصر اور دل ہر ایک کے بارے میں سوال کیا جائے گا۔ (ت)

تو بے ثبوت کافی شرعی ہر گز اس بُری نیت کا گمان کرنا جائز نہیں بلکہ اسی پہلی نیت پر محمول کریں گے اور مسجد کو مسجد اور اس میں نماز کو جائز ثواب اور اس کی آبادی کو بھی ضرور سمجھیں گے۔

مسئلہ ۱۱۳۰: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مسجدِ صغیر و کبیر میں کیا فرق ہے ؟ بینوا توجروا

الجواب: اقول: وباللہ التوفیق وبہ الوصول الی ذری التحقیق (اللہ تعالٰی کی توفیق سے اور اس کے ذریعے تحقیق تک وصول ہوتا ہے۔ ت) تحقیق یہ ہے کہ علمائے کرام اسلکوں میں مسجدِ صغیر و کبیر میں فرماتے ہیں: ایک مسئلہ صحتِ اقتدا واتصالِ صفوف کہ مسجدِ بقعہ واحدہ ہے اس میں امام و مقتدی کا فصل مانعِ صحتِ اقتدا نہیں اگرچہ امام محراب میں اور مقتدی یا صف قریب باب ہو مگر مسجدِ کبیر میں حکم مثلِ صحرا ہے کہ اگر امام و صف میں اتنا فاصلہ ہو جس میں دو صفیں

ہوسکیں تو اقتدا صحیح نہ ہوگی۔ دوسرے مسئلہ اثمِ مرورِ پیشِ مصلی کہ مسجد میں دیوارِ قبلہ تک جائز نہیں جب تک پیچ میں حائل نہ ہو ہاں مسجدِ کبیر مثلِ صحرا ہے کہ مصلی جب خاشعین کی سی نماز پڑھے کہ نگاہ موضعِ سجود پر جمائے رہے تو اس حالت میں جہاں تک اس کی نظر پہنچے کہ نظر کا قاعدہ ہے جہاں جمائی جائے اس سے کچھ آگے بڑھے وہاں تک گزرنا ممنوع و ناجائز ہے اس سے آگے روا، ان دونوں مسئلوں میں مسجدِ کبیر سے ایک ہی مراد ہے یعنی نہایت درجہ عظیم و وسیع مسجد جیسی جامع خوارزم کہ سولہ ہزار ستون پر تھی یا جامع قدس شریف کہ تین مسجدوں کا مجموعہ ہے، باقی عام مساجد جس طرح عامہ بلاد میں ہوتی ہیں سب ان دونوں حکموں میں متحد ہیں اگرچہ طول وعرض میں سو سو گز ہوں۔

1 القرآن ۹/ ۱۰۷ 2 القرآن ۱۷/ ۳۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Arabic Column Text] It occurs in Al-Quhustani when mentioning the small mosque (Masjid-e-Saghir) that it is less than sixty cubits, and it is said from forty, and this is the chosen view (Mukhtar), as indicated in Al-Jawahir^1. In Al-Tahtawi, regarding his statement "or in a large mosque," it is what is forty cubits or more, and the small one is what is less than that; this is the chosen view of Al-Quhustani from Al-Jawahir^2. In Al-Shamiya^3, it is the same with the mentioned chain. I saw that I had written in my notes on Radd al-Muhtar the following text: I say: And with Allah's guidance, it appears to me that this is an error; rather, what is obtained here regarding the small and large mosque is what was mentioned previously in the book (meaning Radd al-Muhtar from Al-Imdad) in the issue of the barrier separating which prevents following [the Imam]. It does not prevent except in a very large mosque like the Mosque of Jerusalem. This is because they justified the dislike of passing in front of a worshiper in a small mosque up to the wall of the Qibla by saying that the mosque is a single spot, as in Sharh al-Wiqayah and in this commentary of ours. Our commentator mentioned in his discourse the issue of the separating barrier, saying: "contrary to the large mosque, for in it, a barrier is placed etc." So see, what large mosque is that? It is only the very large one.

[Urdu Column Text] In Quhustaniyah, regarding the mention of a small mosque, it is stated that it is less than sixty yards; according to some, forty yards, this is the preferred view. The same is indicated in Jawahir. In Tahtawi, it says regarding the statement "or a large mosque which is forty yards or more, and the small one is that which is smaller than that, this is the preferred view". Quhustani from Jawahir and Shamiya have it the same way with the mentioned reference. I recall that I wrote in the marginalia of Radd al-Muhtar: I say: (I say) by the grace of Allah, it became clear to me that this mistake is wrong, rather, what is obtained in the small and large mosque is the same thing that passed in the book (i.e., in Radd al-Muhtar with reference to Imdad) under this chapter which is in the "statement of what prevents following". A barrier exists in that mosque which is very large, for example, Masjid-e-Quds, because the jurists have stated the reason for the prohibition of passing in front of a worshiper towards the Qibla in a small mosque is that the mosque is like a single piece, as it is in Sharh al-Wiqayah and in this commentary of ours. And our commentator, while describing the separating barrier, said: contrary to the large mosque, because a barrier has been made in it etc. Consider which large mosque it is, it will be the one that is very large, for example.

[Footnotes] 1 Jami' al-Rumuz, Chapter: What Nullifies Prayer, published by Maktaba Islamia, Gonbad-e-Qabus, Iran, 1/201 2 Hashiyat al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter: What Nullifies Prayer, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/268 3 Radd al-Muhtar, Chapter: What Nullifies Prayer, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/234

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवाँ

[अरबी कॉलम पाठ] अल-कुहुस्तानी में छोटी मस्जिद (मस्जिद-ए-सगीर) के ज़िक्र में आता है कि वह साठ हाथ से कम होती है, और कहा गया है चालीस से, और यही मुख्तार (चुना हुआ मत) है, जैसा कि अल-जवाहर^1 में इसकी ओर संकेत किया गया है। अल-तहतावी में उनके इस कथन के बारे में है कि "या बड़ी मस्जिद में," वह है जो चालीस हाथ या उससे अधिक हो, और छोटी वह है जो उससे कम हो; अल-जवाहर^2 से अल-कुहुस्तानी का यही मुख्तार मत है। अल-शामिया^3 में भी इसी तरह उल्लिखित सनद के साथ है। मैंने देखा कि मैंने रद अल-मुह्तार पर अपने हाशिये में यह इबारत लिखी थी: मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफीक से मुझे यह प्रतीत होता है कि यह एक गलती है; बल्कि छोटी और बड़ी मस्जिद के मामले में यहाँ वही हासिल है जो किताब में पहले (यानी अल-इमदाद के हवाले से रद अल-मुह्तार में) इमाम के पीछे चलने (इक्तिदा) में बाधा डालने वाले फ़ासले के मसले में गुज़रा है। यह केवल एक बहुत बड़ी मस्जिद में ही बाधा डालता है जैसे बैतुल मुक़द्दस की मस्जिद। क्योंकि उन्होंने एक छोटी मस्जिद में नमाज़ी के सामने से क़िबला की दीवार तक गुज़रने की नापसंदगी का कारण यह बताया है कि मस्जिद एक ही जगह की तरह है, जैसा कि शरह अल-विकाया और हमारी इस शरह में है। और हमारे टीकाकार ने फ़ासले के मसले का उल्लेख करते हुए कहा: "बड़ी मस्जिद के विपरीत, क्योंकि उसमें एक बाधा बनाई गई है आदि।" तो देखें, वह बड़ी मस्जिद कौन सी है? वह केवल बहुत बड़ी ही है।

[उर्दू कॉलम पाठ] क़ुहुस्तानिया में मस्जिद-ए-सगीर के तज़किरा में है कि वह साठ गज़ से कम होती है; बाज़ के नज़दीक चालीस गज़, यही मुख्तार है। इसी की तरफ़ जवाहर में इशारा है। तहतावी में है कि इसका कौल "या मस्जिद-ए-कबीर जो चालीस गज़ या उससे ज़ायद हो और सगीर वह है जो उससे छोटी हो, यही मुख्तार है"। कुहुस्तानी अन-जवाहर और शामिया में सनद मज़कूर के साथ इसी तरह है, मुझे याद पड़ता है कि मैंने रद अल-मुह्तार के हाशिए में लिखा, मैं कहता हूँ: (मैं कहता हूँ) अल्लाह की तौफीक से मुझ पर यह स्पष्ट हुआ कि यह खता गलत है बल्कि सगीर व कबीर मस्जिद में हासिल वही चीज़ है जो किताब (यानी रद अल-मुह्तार में इमदाद के हवाले से) इस फ़स्ल के तहत गुज़रा जो "इक्तिदा से मानै (रोकने) के बयान" में है, उस मस्जिद में मानै है जो बहुत ही बड़ी हो मसलन मस्जिद-ए-क़ुद्स क्योंकि फ़ुकहा ने मस्जिद-ए-सगीर में क़िबला की जानिब नमाज़ी के आगे से गुज़रने से मना करने पर जो इल्लत बयान की है वह यह है कि मस्जिद एक ही टुकड़े की तरह है जैसा कि शरह अल-विकाया और हमारी इस शरह में है और हमारे महशी ने फ़ासल मानै को बयान

करते हुए कहा बखिलाफ़ मस्जिद-ए-कबीर के, क्योंकि उसमें मानै बनाया गया है आदि, गौर करो बड़ी कौन सी मस्जिद है वह वही होगी जो बहुत ही बड़ी हो मसलन।

[पाद टिप्पणियाँ] 1 जामिअ अल-रुमूज़, फ़स्ल: नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ें, मक्तबा इस्लामिया, गुम्बद-ए-क़बूस, ईरान, 1/201 2 हाशिया अल-तहतावी अला अद-दुर्र अल-मुख्तार, बाब: नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ें, दार अल-मआरिफ़ा, बेरूत, 1/268 3 रद अल-मुह्तार, बाब: नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ें, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/234

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[عربی کالم کا متن] امام وقع فی القهستانية عند ذكر المسجد الصغير، هواقل من ستين ذراعاً، وقيل من اربعين وهو المختار، كما اشار اليه في الجواهر ^1 وفي الطحطاوی قوله او بمسجد كبير هو ما كان اربعين ذراعاً فاكثر و الصغير ما كان اقل من ذلك وهو المختار قهستانی عن الجواهر ^2 وفي الشامية ^3 - بمثله بالسند المذكور فرأيتني كتبت عليه فيما علقت على رد المحتار مانصه اقول: وبالله التوفيق يظهرلی ان هذا خطاء بل الحاصل ههنا في الصغير والكبير ماتقدم في الكتاب (اعنی ردالمحتار عن الامداد) فی مسئلة الفصل المانع عن الاقتداء انه لا يمنع الا في مسجد كبير جدا كمسجد القدس وذلك لانهم عللو كراهة المرور بين يديه في المسجد الصغير الی جدار القبلة بان المسجد بقعة واحدة كما في شرح الوقاية وفي شرحنا هذا وقد ذكر محشينا في تقريره مسألة الفصل لمانع فقال بخلاف المسجد الكبير فانه جعل فيه مانعا الخ فانظر ای كبير ذلك ماهو الا الكبير جدا

[اردو کالم کا متن] قہستانیہ میں مسجدِ صغیر کے تذکرہ میں ہے کہ وہ ساٹھ گز سے کم ہوتی ہے بعض کے نزدیک چالیس گز، یہی مختار ہے۔ اسی کی طرف جواہر میں اشارہ ہے۔ طحطاوی میں ہے کہ اس کا قول "یا مسجد کبیر جو چالیس گز یا اس سے زائد ہو اور صغیر وہ ہے جو اس سے چھوٹی ہو، یہی مختار ہے"۔ قہستانی عن الجواہر اور شامیہ میں سند مذکور کے ساتھ اسی طرح ہے، مجھے یاد پڑتا ہے کہ میں نے ردالمحتار کے حاشیہ میں لکھا، اقول: (میں کہتا ہوں) اللہ کی توفیق سے مجھ پر یہ واضح ہوا کہ یہ خطاء غلط ہے بلکہ صغیر و کبیر مسجد میں حاصل وہی چیز ہے جو کتاب (یعنی ردالمحتار میں امداد کے حوالے سے) اس فصل کے تحت گزرا جو "اقتدا سے مانع کے بیان" میں ہے اس مسجد میں مانع ہے جو بہت ہی بڑی ہو مثلاً مسجد قدس کیونکہ فقہاء نے مسجد صغیر میں قبلہ کی جانب نمازی کے آگے سے گزرنے سے منع پر جو علت بیان کی ہے

وہ یہ ہے کہ مسجد ایک ہی ٹکڑا کی طرح ہے جیسا کہ شرح الوقایہ اور ہماری اس شرح میں ہے اور ہمارے محشی نے فاصل مانع کو بیان کرتے ہوئے کہا بخلاف مسجد کبیر کے، کیونکہ اس میں مانع بنایا گیا ہے الخ غور کرو بڑی کونسی مسجد ہے وہ وہی ہوگی جو بہت ہی بڑی ہو مثلاً

[حواشی] 1 جامع الرموز فصل مایفسد الصلوٰۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۲۰۱/۱ 2 حاشیۃ الطحطاوی علی الدر المختار باب ما یفسد الصلوٰۃ مطبوعہ دارالمعرفۃ بیروت ۲۶۸/۱ 3 رد المحتار باب یفسد الصلوٰۃ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲۳۴/۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

(Arabic Column): Like Masjid al-Quds, and what al-Qahastani mentioned from al-Jawahir was only regarding a house in the matter of separation, not in the mosque, as the text of al-Jawahir has already been cited (where the annotator scholar said) in al-Qahastani: [The house is like the desert, and the more correct view is that it is like the mosque, therefore following (the prayer) in it is permissible without the joining of rows as in al-Munyah]. He did not mention the ruling for a 'dar' (large house), so it should be reviewed. However, the apparent restriction to the desert and the mosque for something very large suggests that the 'dar' is like the 'bayt' (small house) - reflect. Then I saw in the marginalia of al-Madani from Jawahir al-Fatawa that Qadi Khan was asked about this and he said: They differed about it; some estimated it at sixty cubits and some said if it is forty cubits then it is large, otherwise it is small. This is the preferred view. The conclusion is that a large house is like the desert and a small one is like the mosque, and the preferred view for the estimation of a large one is forty cubits. I say: By this, their statements are reconciled, and praise be to Allah - for some of them restricted this issue to the small mosque, like our text here, and...

(Urdu Column): Regarding Masjid al-Quds, what al-Qahastani cited from al-Jawahir is about the issue of separation in a house, not in a mosque. As it passed in the text of al-Jawahir (because its words are that the annotator scholar said in al-Qahastani that a house is like an open field, and the more correct view is that a 'bayt' is like a mosque, which is why following [in prayer] is permissible in it even without the joining of rows, as is in al-Munyah). And the ruling for 'dar' was not stated; it should be considered. But clearly designating the desert or a large mosque as very big indicates that the ruling for 'dar' is like that of a house - reflect. Then I saw in the marginalia of al-Madani from Jawahir al-Fatawa that Qadi Khan was asked about this, and he said there is disagreement in it; some said sixty yards, some said if it is forty yards it is a large mosque, otherwise small, and this is the preferred view. The summary is that a large house is like a desert and a small house is like a mosque, although the preferred view for a large mosque is that it should be forty yards. I say: Through this, all the statements of the jurists have been reconciled, praise be to Allah, because some restricted this issue to a small mosque, as in our...

(Footnotes): 1 Jidd al-Mumtar on Radd al-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer etc., Al-Matba' al-Islami, Mubarakpur, India, 1/300 & 301. 2 Radd al-Muhtar, Chapter on Imamate, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/585. F: From here until 'I

say' (Aqool), Aala Hazrat has quoted the text of Shami. Then from 'I say: and by this reconciled' until the end is Aala Hazrat's own marginal note. - Nazir Ahmed.

Page 82 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

(अरबी कॉलम): मस्जिद अल-कुद्स की तरह, और जो अल-कहस्तानी ने अल-जवाहिर से उल्लेख किया है, वह घर में अलगाव के मसले के बारे में था, न कि मस्जिद में, जैसा कि अल-जवाहिर की इबारत गुज़री है (जहाँ टिप्पणीकार विद्वान ने कहा) अल-कहस्तानी में: [घर रेगिस्तान की तरह है, और अधिक सही राय यह है कि यह मस्जिद की तरह है, इसलिए इसमें सफ़ों के जुड़े बिना भी पैरवी करना जायज़ है जैसा कि मुनय्या में है]। और उन्होंने 'दार' (बड़े घर) का हुक्म नहीं बताया, इसलिए इसकी समीक्षा की जानी चाहिए। लेकिन बहुत बड़े के लिए रेगिस्तान और मस्जिद के स्पष्ट प्रतिबंध से पता चलता है कि 'दार' 'बैत' (घर) की तरह है - गौर करें। फिर मैंने जवाहिर अल-फ़तावा से मदनी के हाशिये में देखा कि क़ाज़ी खान से इस बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा: इसमें मतभेद है; कुछ ने इसे साठ हाथ आंका और कुछ ने कहा कि अगर यह चालीस हाथ है तो यह बड़ा है, अन्यथा छोटा है। यही पसंद की गई राय है। निष्कर्ष यह है कि एक बड़ा घर रेगिस्तान की तरह है और एक छोटा मस्जिद की तरह, और बड़े के आकलन के लिए पसंद की गई राय चालीस हाथ है। मैं कहता हूँ: इससे उनके बयानों में सामंजस्य हो गया है, और अल्लाह का शुक्र है - क्योंकि उनमें से कुछ ने इस मसले को छोटी मस्जिद तक सीमित रखा, जैसे हमारे इस मूल पाठ में, और...

(उर्दू कॉलम): मस्जिद कुद्स के बारे में अल-कहस्तानी ने जो अल-जवाहिर से उद्धृत किया है, वह घर में अलगाव के मसले के बारे में है, मस्जिद के बारे में नहीं। जैसा कि अल-जवाहिर की इबारत में गुज़रा (क्योंकि इसके शब्द यह हैं कि अल्लामा मुहशी ने कहस्तानी में कहा कि घर खुले मैदान की तरह है और सही यह है कि 'बैत' मस्जिद की तरह होता है, इसीलिए इसमें सफ़ों के जुड़ाव के बिना भी इक़्तिदा जायज़ है जैसा कि मुनय्या में है)। और 'दार' का हुक्म बयान नहीं किया गया, चाहिए कि विचार किया जाए लेकिन ज़ाहिरी तौर पर सेहरा (रेगिस्तान) या मस्जिद-ए-कबीर को बहुत बड़ा करार देना आगाह कर रहा है कि 'दार' का हुक्म घर वाला है - तअ़म्मुल (गौर करें)। फिर मैंने हाशियह-ए-मदनी में जवाहिरुल फ़तावा से देखा कि क़ाज़ी ख़ां से इस बारे में पूछा गया तो उन्होंने फ़रमाया इसमें इख़्तिलाफ़ है, कुछ ने साठ गज़ कहा है, कुछ ने कहा कि अगर चालीस गज़ हो तो बड़ी मस्जिद वरना छोटी, और यही मुख़्तार है। हासिल यह है कि बड़ी 'दार' सहरा की तरह और छोटी 'दार' मस्जिद की तरह है अगरचे मुख़्तार बड़ी मस्जिद के लिए चालीस गज़ होना ही हो। अक़ूल (मैं कहता हूँ): इससे फ़ुक़हा की तमाम इबारतों में तत्बीक़ (सामंजस्य) हो गई, वलिल्लाहिल ह़म्द, क्योंकि बाज़ ने इस मसले को मस्जिद-ए-सग़ीर के साथ मुक़य्यद किया है जैसा कि हमारे...

(फुटनोट्स): 1 जिद्द अल-मुम्तार पर रद अल-मुह्तार, नमाज़ को अमान्य करने वाली चीज़ों का अध्याय, अल-मतबा अल-इस्लामी, मुबारकपुर, भारत, 1/300 और 301। 2 रद अल-मुह्तार, इमामत का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा मुद्रित, 1/585। फ़: आला हज़रत ने यहाँ से 'अक़ूल' तक शामी की इबारत उद्धृत की है। फिर 'अक़ूल: व बिहाज़ा तलतइमु' से अंत तक आला हज़रत का अपना हाशियह (टिप्पणी) है। - नज़ीर अहमद।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

(عربی کالم): كمسجد القدس ، وما ذكر القهستاني عن الجواهر فانما كان في الدار في مسئلة الفصل لافي المسجد كما مرت عبارة الجواهر (حيث قال العلامة المحشى) في القهستاني ف: البيت ك الصحراء والاصح انه كالمسجد، ولهذا يجوز الاقتداء فيه بلا اتصال الصفوف كما في المنية اه ولم يذكر حكم الدار فليراجع، لكن ظاهر التقييد بالصحراء والمسجد لكبير جدا ان الدار كالبيت تامل ، ثم رأيت في حاشية المدني عن جواهر الفتاوى ان قاضي خان سئل عن ذلك فقال، اختلفوا فيه، فقدره بعضهم بستين ذراعا وبعضهم قال ان كانت اربعين ذراعا فهي كبيرة والا فصغيرة، هذا هو المختار اه وحاصله ان الدار الكبيرة كالصحراء والصغيرة كا لمسجد، وان المختار في تقدير الكبيرة اربعون ذراعا اقول: وبهذا تلتئم كلماتهم ولله الحمد - فان منهم من قيد هذه المسئلة بالمستجد الصغير كمتننا هذا و

(اردو کالم): مسجد قدس جو کچھ قہستانی نے جواہر سے نقل کیا ہے وہ گھر میں مسئلہ فصل کے بارے میں ہے نہ کہ مسجد کے بارے میں، جیسے کہ عبارت جواہر سے گزرا (کیونکہ اس کے الفاظ یہ ہیں کہ علامہ محشی نے قہستانی میں کہا کہ گھر کھلے میدان کی طرح ہے اور اصح یہ ہے کہ بیت، مسجد کی طرح ہوتا ہے اسی لئے اس میں بلا اتصالِ صفوف بھی اقتدا جائز ہوتی ہے جیسا کہ منیہ میں ہے اہ اور دار کا حکم بیان نہیں کیا، چاہے کہ غور کیا جائے لیکن ظاہر الصحرا یا مسجد کبیر کو بہت بڑا قرار دینا آگاہ کر رہا ہے کہ دار کا حکم گھر والا ہے تامل، پھر میں نے حاشیہ مدنی میں جواہر الفتاوی سے دیکھا کہ قاضی خاں سے اس بارے میں پوچھا گیا تو انھوں نے فرمایا اس میں اختلاف ہے بعض نے ساٹھ گز کہا ہے بعض نے کہا کہ اگر چالیس گز ہو تو بڑی مسجد ورنہ چھوٹی، اور یہی مختار ہے اہ حاصل یہ ہے کہ بڑی دار صحرا کی طرح اور چھوٹی دار مسجد کی طرح ہے اگر چہ مختار بڑی مسجد کیلئے چالیس گز ہونا ہی ہو۔ اقول: اس سے فقہاء

کی تمام عبارات میں تطبیق ہوگئی وللہ الحمد ، کیونکہ بعض نے اس مسئلہ کو مسجدِ صغیر کے ساتھ مقید کیا ہے جیسے کہ ہمارے

(حواشی): 1 جد الممتار علی رد المحتار باب مایفسد الصلوۃ الخ المطبع الاسلامی مبارک پور ، انڈیا ۳۰۰/۱ و ۳۰۱ 2 رد المحتار باب الامامۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۵۸۵/۱ ف:

اعلیحضرت نے یہاں سے اقول تک شامی کی عبارت نقل کی ہے پھر اقول وبھذا تلتئم سے آخر تک اعلیحضرت کا اپنا حاشیہ ہے۔ نذیر احمد

[Arabic Column Text Translation]: Al-Ghurar, Al-Niqayah, Al-Kafi, and Al-Burjandi, narrated from Al-Mansuriyyah on the authority of Imam Qazi Khan and Zahir al-Din al-Marghinani. Some of them stated it absolutely, like Al-Khulasah and Jawami' al-Fiqh, as in Al-Fath. The meaning is one, for "small" is an exclusion of the "very large." Most mosques are governed by the ruling of a small mosque, so the absolute statement of those who made it is valid. Rather, Allama al-Shalabi clarified it very well in Al-Tabyin, quoting from Al-Dirayah on the authority of Shaykh al-Islam, that the consideration of the place of prostration applies when one is in an open field or in a congregational mosque that has the ruling of an open field. As for the mosque, the boundary is the mosque itself. Note how he used the term "mosque" absolutely while meaning the counterpart of the "very large." Also, the statements in Al-Dhakhirah align, as he mentioned in the fourth chapter of the Book of Prayer regarding the issue of passing [in front of a worshiper] that the most correct view is that the status of the mosque is uniform in all its parts, etc. He cited the absolute words of Imam Muhammad regarding mosques, which are certainly not limited to those less than forty [cubits]. Then he repeated the issue in the ninth chapter, stating that if the mosque is small, it is disliked to pass in any part of it. This is what Imam Muhammad indicated in Al-Asl, and he quoted Imam Muhammad's exact words. Praise be to Allah, it has become clear from this that what is meant by both the absolute and the restricted is the same, and it applies to all mosques except those where a distance of two rows prevents following [the Imam]. This does not contradict the absolute statement of those who said that one only sins by passing through the place of prostration, such as Fakhr al-Islam and the authors of Al-Hidayah, Al-Wiqayah, and others, because mosques...

[Urdu Column Text]: In this text etc., Niqayah, Bahr, Kafi, and Burjandi, it was stated from Mansuriyyah with reference to Qazi Khan and Zahir al-Din Marghinani. Some kept it absolute, for example, Khulasah and Jami' al-Fiqh, as it is in Fath, and the meaning is the same because "small" is an avoidance of such a "large" one which is very big. Most mosques have the ruling of a small mosque, so for the one who kept it absolute, its application became valid. Rather, Allama Shalabi has clarified very well in Tabyin via Dirayah with reference to Shaykh al-Islam that the consideration of the place of prostration is when there is a desert or such a congregational mosque which has the ruling of a desert. As for the matter of other mosques, there this limit is the mosque itself. You should reflect, they kept the mosque absolute and by it meant

such a mosque which is in contrast to the very big one. And the words of Dhakhirah also gathered because in the fourth chapter of the Book of Prayer, while describing the issue of passing in front of a worshiper, they said the most correct view is that all places in the mosque are equal in this, etc. And for this, evidence was taken from the speech of Imam Muhammad which is absolute in the matter of mosques and is not at all specific to mosques less than forty yards. Then he repeated in the ninth chapter and said if the mosque is small, then passing from any place is disliked. And Imam Muhammad indicated towards this in "Asl" and quoted the exact statement of Imam Muhammad. Praise be to Allah, it became clear from this that both absolute and restricted mean the same here, and the matter of all mosques is equal except those where the distance of two rows is an obstacle for following [the Imam]. And the application of the one who says "absolute" who has said so...

खंड आठ | फतावा रज़विया

[अरबी कॉलम का अनुवाद]: अल-ग़ुरर, अल-निक़ायाह, अल-काफ़ी, और अल-बुर्जंदी में अल-मंसूरिया से इमाम क़ाज़ी ख़ां और ज़हीर अल-दीन अल-मर्ग़ीनानी के हवाले से कहा गया है। कुछ ने इसे मुतलक़ (बिना किसी शर्त के) रखा है जैसे अल-ख़ुलासा और जवामी' अल-फ़िक़्ह में, जैसा कि अल-फ़तह में है। और इसका अर्थ एक ही है क्योंकि "छोटा" कहना "बहुत बड़े" से बचने के लिए है। ज़्यादातर मस्जिदें छोटे के हुक्म में आती हैं, इसलिए जिसने इसे मुतलक़ रखा उसका ऐसा कहना जायज़ है। बल्कि अल्लामा शलबी ने अल-तबयीन पर दिराया के हवाले से शैख़ुल इस्लाम से अच्छी तरह स्पष्ट किया है कि सज्दे की जगह का विचार तब होता है जब कोई खुले मैदान में हो या ऐसी जामा मस्जिद में हो जिसका हुक्म खुले मैदान जैसा हो। जहाँ तक मस्जिद की बात है, तो सीमा स्वयं मस्जिद ही है। देखिए उन्होंने मस्जिद को मुतलक़ कहा और उससे मुराद ऐसी मस्जिद ली जो "बहुत बड़े" के मुक़ाबले में हो। और ज़ख़ीरा के शब्द भी एक साथ मिलते हैं क्योंकि उन्होंने किताबुस सलात के चौथे अध्याय में नमाज़ी के आगे से गुज़रने के मसले पर बात करते हुए कहा कि सही बात यह है कि मस्जिद के सभी हिस्से इसमें बराबर हैं इत्यादि। और इस पर इमाम मुहम्मद के मुतलक़ कलाम से दलील दी जो मस्जिदों के मामले में मुतलक़ है और चालीस गज़ से कम वाली मस्जिदों के साथ बिल्कुल भी विशिष्ट नहीं है। फिर नौवें अध्याय में इसी मसले को दोहराया और कहा कि अगर मस्जिद छोटी है तो किसी भी जगह से गुज़रना मकरूह है। और इसी ओर इमाम मुहम्मद ने अस्ल में इशारा फ़रमाया और इमाम मुहम्मद की इबारत को वैसा ही नक़ल किया। अल्लाह का शुक्र है कि इससे स्पष्ट हो गया कि यहाँ मुतलक़ और मुक़य्यद दोनों से मुराद एक ही है और तमाम मस्जिदों का मामला बराबर है सिवाय उन मस्जिदों के जहाँ दो सफ़ों (कतारों) की दूरी इक़्तिदा (अनुसरण) के लिए बाधा है। और यह उन लोगों के मुतलक़ कथन के विरुद्ध नहीं है जिन्होंने कहा है कि केवल सज्दे के स्थान से गुज़रने पर ही गुनाह होता है, जैसे फ़ख़्रुल इस्लाम और हिदाया, विक़ाया आदि के लेखक, क्योंकि मस्जिदें...

[उर्दू कॉलम का अनुवाद]: इस पाठ आदि, निक़ायाह, बहर, काफ़ी, और बुर्जंदी में मंसूरिया से क़ाज़ी ख़ां और ज़हीर अल-दीन मर्ग़ीनानी के संदर्भ में कहा गया है। कुछ ने इसे मुतलक़ रखा है, उदाहरण के लिए, ख़ुलासा और जामे' अल-फ़िक़्ह, जैसा कि फ़तह में है, और अर्थ वही है क्योंकि "छोटा" एक ऐसे "बड़े" से बचाव है जो बहुत बड़ा है। अधिकांश मस्जिदों में एक छोटी मस्जिद का नियम होता है, इसलिए जिसने इसे मुतलक़ रखा, उसका प्रयोग मान्य हो गया। बल्कि अल्लामा शलबी ने दिराया के

माध्यम से तबीइन में शैख़ुल इस्लाम के संदर्भ में बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया है कि सज्दे के स्थान का विचार तब होता है जब कोई रेगिस्तान हो या ऐसी जामा मस्जिद हो जिसमें रेगिस्तान का नियम हो। जहाँ तक अन्य मस्जिदों के मामले की बात है, वहाँ यह सीमा मस्जिद ही है। आपको विचार करना चाहिए, उन्होंने मस्जिद को मुतलक़ रखा और इससे उनका मतलब ऐसी मस्जिद से था जो बहुत बड़ी मस्जिद के विपरीत हो। और ज़ख़ीरा के शब्द भी एकत्र हो गए क्योंकि नमाज़ की किताब के चौथे अध्याय में, नमाज़ी के सामने से गुज़रने के मुद्दे का वर्णन करते हुए, उन्होंने कहा कि सबसे सही विचार यह है कि मस्जिद के सभी स्थान इसमें समान हैं, आदि। और इसके लिए इमाम मुहम्मद के भाषण से प्रमाण लिया गया जो मस्जिदों के मामले में मुतलक़ है और चालीस गज़ से कम की मस्जिदों के लिए बिल्कुल भी विशिष्ट नहीं है। फिर उन्होंने नौवें अध्याय में दोहराया और कहा कि यदि मस्जिद छोटी है, तो किसी भी स्थान से गुज़रना नापसंद है। और इमाम मुहम्मद ने "अस्ल" में इसी ओर संकेत किया और इमाम मुहम्मद के सटीक बयान को उद्धृत किया। अल्लाह की स्तुति हो, इससे स्पष्ट हो गया कि यहाँ मुतलक़ और मुक़य्यद दोनों का अर्थ एक ही है, और सभी मस्जिदों का मामला समान है सिवाय उन मस्जिदों के जहाँ दो पंक्तियों की दूरी इक़्तिदा के लिए बाधा है। और जो "मुतलक़" कहते हैं, जिन्होंने ऐसा कहा है, उनका प्रयोग...

[عربی عبارت کا ترجمہ]: الغرر و النقایۃ والکافي والبرجندی میں المنصوریہ سے امام قاضی خاں اور ظہیر الدین المرغینانی کے حوالے سے مروی ہے، اور ان میں سے بعض نے مطلق رکھا جیسے خلاصہ اور جوامع الفقہ میں ہے جیسا کہ الفتح میں ہے اور مراد ایک ہی ہے کیونکہ صغیر (چھوٹی مسجد) سے احتراز ہے بہت بڑی (کبیر جدا) سے، پس عام مساجد چھوٹی مسجد کے حکم میں ہیں تو جس نے مطلق رکھا اس کا اطلاق درست ہوا۔ بلکہ علامہ شلبی نے تبیین میں درایہ کے حوالے سے شیخ الاسلام سے اسے خوب واضح کیا کہ سجدہ گاہ کا اعتبار تب ہے جب جنگل میں ہو یا ایسی جامع مسجد میں ہو جو جنگل کے حکم میں ہو، رہا مسجد کا معاملہ تو اس کی حد خود مسجد ہی ہے۔ پس دیکھئے انہوں نے مسجد کو مطلق کہا اور اس سے مراد اس 'بہت بڑی' کے مقابل والی مسجد لی۔ اور اسی طرح ذخیرہ کی عبارتیں بھی ہم آہنگ ہیں کہ انہوں نے کتاب الصلوٰۃ کی چوتھی فصل میں نمازی کے سامنے سے گزرنے کے مسئلہ میں ذکر کیا کہ اصح یہ ہے کہ مسجد کی بقاء ان تمام میں برابر ہے الخ۔ اور اس پر امام محمد کے مطلق کلام سے استشہاد کیا جو مساجد کے بارے میں مطلق ہے، اور قطعی طور پر چالیس (گز) سے کم کے ساتھ مخصوص نہیں ہے۔ پھر نویں فصل میں اسی مسئلہ کا اعادہ کیا اور فرمایا کہ اگر مسجد چھوٹی ہو تو کسی بھی جگہ سے گزرنا مکروہ ہے اور اسی کی طرف امام محمد نے اصل میں اشارہ فرمایا پس انہوں نے امام محمد کی بعینہ وہی عبارت ذکر کی۔ پس اللہ کا شکر ہے کہ اس سے معلوم ہوگیا کہ مطلق اور مقید دونوں سے مراد ایک ہی ہے اور وہ تمام مساجد ہیں سوائے ان کے جن میں دو صفوں کا فاصلہ اقتداء سے روک دے۔ اور یہ ان کے مطلق کہنے کے منافی نہیں جنہوں نے کہا کہ گناہ صرف سجدہ گاہ سے گزرنے پر ہوتا ہے جیسے فخر الاسلام اور صاحبِ ہدایہ و وقایہ وغیرہ، کیونکہ مساجد...

[اردو کالم کی عبارت]: اس متن وغیرہ، نقایہ، بحر، کافی، اور برجندی میں منصوریہ سے قاضی خاں اور ظہیر الدین مرغینانی کے حوالے سے کہا اور بعض نے اس کو مطلق رکھا مثلاً خلاصہ اور جامع الفقہ، جیسا کہ فتح میں ہے اور مراد ایک ہی ہے کیونکہ صغیر ایسی کبیر سے احتراز ہے جو بہت ہی بڑی ہو تو اکثر مساجد صغیر کا حکم رکھتی ہیں تو جس نے مطلق رکھا اس کا اطلاق جائز ہو گیا بلکہ علامہ شلبی نے تبیین پر درایہ سے شیخ الاسلام کے حوالے سے خوب واضح کیا ہے کہ موضع سجدہ کا اعتبار تب ہوتا ہے جب صحرا ہو یا ایسی جامع مسجد ہو جو حکم صحرا رکھتی ہو رہا دیگر مسجد کا معاملہ تو وہاں یہ حد مسجد ہی ہے اھ آپ غور کریں انہوں نے مسجد کو مطلق رکھا اور اس سے مراد ایسی مسجد لی جو بہت ہی بڑی کے مقابل ہو، اور کلمات ذخیرہ بھی جمع ہو گئے کیونکہ انہوں نے کتاب الصلوٰۃ کی فصل رابع میں نمازی کے آگے سے گزرنے کا مسئلہ بیان کرتے ہوئے کہا کہ اصح یہ ہے کہ مسجد کے تمام مقامات اس میں برابر ہیں الخ اور اس پر استشہاد امام محمد کے کلام سے کیا جو مساجد کے معاملہ میں مطلق ہے اور چالیس گز سے کم مسجد کے ساتھ ہر گز مخصوص نہیں، پھر نویں فصل میں دہرایا اور کہا اگر مسجد چھوٹی ہو تو ہر جگہ سے گزرنا مکروہ ہے اور اسی کی طرف امام محمد نے اصل میں اشارہ فرمایا اور امام محمد کی عبارت بعینہ نقل کی، للہ الحمد اس سے واضح ہو گیا کہ یہاں مطلق اور مقید دونوں سے مراد ایک ہی ہے اور تمام مساجد کا معاملہ مساوی ہے سوا ان کے جن میں دو صفوں کا فاصلہ اقتداء کے لئے مانع ہے اور مطلق کہنے والے کا اطلاق جس نے یوں کہا ہے

Fatawa Razawiya, Volume 8

[Boxed Text] (Arabic column): ...as if it is a single spot, so until the wall of the Qibla, the whole area is the place of prostration, as stated in the commentary of 'Wiqaya'. In fact, Imam Muhammad indicated this in 'Al-Asl' as mentioned in 'Al-Dhakhira'. Praise be to Allah, it has become clear that there is no difference of opinion among them. Passing in front of a person praying in a mosque is absolutely prohibited up to the Qibla wall. In a very large congregational mosque or an open field, passing in front is prohibited up to the extent of the gaze of a humble worshiper. From this, it is also clear that the researcher's discussion in 'Al-Fath' is contrary to the established doctrine. Consider this explanation a boon, for it is a gift from the Almighty Lord to this humble person. To Allah belongs abundant, blessed, and pure praise. This concludes what I wrote there[1] . And Allah Almighty knows best.

(Urdu column): That a person passing in front of a worshiper over the place of prostration will be a sinner. This absolute ruling is not contrary to Fakhr-ul-Islam, the author of 'Hidaya', 'Wiqaya', etc. This is because mosques are like a single piece; thus, they all have the status of the place of prostration up to the wall of the Qibla, as mentioned in the commentary of 'Wiqaya'. In fact, Imam Muhammad indicated this in 'Al-Asl' as mentioned in 'Al-Dhakhira'. Praise be to Allah, it has become clear that there is no difference of opinion among them, and passing in a mosque is absolutely prohibited up to the wall of the Qibla. Whether it is a very large congregational mosque or an open field, passing in front is prohibited up to the extension of the gaze of a humble worshiper. From this, it is also clear that the researcher's discussion in 'Al-Fath' is contrary to the established doctrine. Consider this discourse as a boon because it is a gift from the Almighty Lord to this humble person. For Allah alone is abundant, blessed, and pure praise. That which I wrote there has ended. And Allah Almighty knows best. (T)

[Main Body Text] Problem 1131: From the city, Jasoli neighborhood, questioned by Maulvi Ghulam Jan Punjabi, a student of Madrasa Ahle Sunnat-o-Jamaat, 16 Shaban 1326 AH. Ten years ago, Zaid built an upper story (balakhana) on his house behind the mosque, which was adjacent to the mosque with no gap. Its foundation was separate from the mosque's foundation, and the land was Zaid's ancestral property. The roof of Zaid's lower house is level with the mosque's roof. Only the upper story is higher than the mosque; rather, it is not even level with the main part of the mosque, but is level with a student's room on the left side of the mosque. Yes, a small corner of the upper story is level with a corner of the mosque. However, after building the

upper story, Zaid felt remorse in his heart. Since money had already been spent, he did not demolish it, but out of respect for the mosque, Zaid does not live in the upper story with his family; he stays in the lower house. Now, should this upper story be demolished or not?

Answer: As long as there is no interference or encroachment on any part of the mosque, there is no necessity to demolish it. And Allah Almighty knows best.

[Footnote] 1 - Jadd al-Mumtar 'ala Radd al-Muhtar, Chapter on things that invalidate prayer, etc., Majma' al-Islami, Beirut, 1/401-402.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[बॉक्स किया हुआ पाठ] (अरबी स्तंभ): ...जैसे कि वह एक ही स्थान हो, इसलिए क़िबला की दीवार तक का पूरा क्षेत्र सिजदा (सजदा) का स्थान है, जैसा कि 'शर्ह विक़ाया' में कहा गया है। वास्तव में, इमाम मुहम्मद ने 'अल-अस्ल' में इसका संकेत दिया है जैसा कि 'अल-ज़ख़ीरा' में वर्णित है। अल्लाह की स्तुति हो, यह स्पष्ट हो गया है कि उनके बीच कोई मतभेद नहीं है। मस्जिद में नमाज़ी के आगे से क़िबला की दीवार तक गुज़रना पूरी तरह से वर्जित है। बहुत बड़ी जामा मस्जिद या खुले मैदान में, एक विनम्र उपासक की दृष्टि के विस्तार तक आगे से गुज़रना वर्जित है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया है कि 'अल-फ़तह' में शोधकर्ता की चर्चा स्थापित मत के विरुद्ध है। इस व्याख्या को एक वरदान समझें, क्योंकि यह इस विनम्र व्यक्ति पर सर्वशक्तिमान प्रभु का उपहार है। अल्लाह के लिए प्रचुर, धन्य और पवित्र प्रशंसा है। वह समाप्त हुआ जो मैंने वहाँ लिखा था[1]। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(उर्दू स्तंभ): कि नमाज़ी के आगे से सजदा (सिजदा) के स्थान पर गुज़रने वाला गुनहगार होगा। यह पूर्ण आदेश फ़ख़्र-उल-इस्लाम, 'हिदाया' के लेखक और 'विक़ाया' आदि के विरुद्ध नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मस्जिदें एक टुकड़े की तरह होती हैं; अतः क़िबला की दीवार तक वे सभी सजदा के स्थान का दर्जा रखती हैं, जैसा कि 'शर्ह विक़ाया' में उल्लेख है। बल्कि इमाम मुहम्मद ने 'अल-अस्ल' में इस ओर संकेत किया है जैसा कि 'ज़ख़ीरा' में है। अल्लाह की स्तुति हो, यह स्पष्ट हो गया है कि उनके बीच कोई मतभेद नहीं है और मस्जिद में क़िबला की दीवार तक गुज़रना बिल्कुल वर्जित है। चाहे वह बहुत बड़ी जामा मस्जिद हो या खुला मैदान, विनम्रता के साथ नमाज़ पढ़ने वाले की दृष्टि के फैलाव तक आगे से गुज़रना वर्जित है। इसी से यह भी स्पष्ट हो गया कि 'फ़तह' में शोधकर्ता की चर्चा संबंधित स्थापित मत के विरुद्ध है। इस कथन को वरदान समझें क्योंकि यह इस विनम्र फ़क़ीर पर प्रभु का उपहार है। अल्लाह के लिए ही प्रचुर, धन्य और पवित्र प्रशंसा है। जो मैंने वहाँ लिखा था वह समाप्त हुआ। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

[मुख्य पाठ] मशला ११३१: शहर, जसौली मोहल्ले से, मदरसा अहले सुन्नत-व-जमात के छात्र मौलवी ग़ुलाम जान पंजाबी द्वारा १६ शाबान १३२६ हिजरी को पूछा गया सवाल। दस साल पहले, ज़ैद ने मस्जिद के पीछे अपने घर पर एक ऊपरी मंज़िल (बालाख़ाना) बनाई थी, जो बिना किसी अंतराल के मस्जिद से सटा हुआ था। इसकी नींव मस्जिद की नींव से अलग थी, और ज़मीन ज़ैद की अपनी पुश्तैनी जायदाद थी। ज़ैद के नीचे वाले घर की छत मस्जिद की छत के बराबर है। केवल ऊपरी मंज़िल मस्जिद से ऊँची है; बल्कि वह मस्जिद के मुख्य भाग के बराबर भी नहीं है, बल्कि मस्जिद की

बाईं ओर एक छात्र के कमरे के बराबर है। हाँ, ऊपरी मंज़िल का एक छोटा सा कोना मस्जिद के एक कोने के बराबर है। लेकिन ऊपरी मंज़िल बनाने के बाद ज़ैद को दिल में पछतावा हुआ। चूंकि पैसा खर्च हो चुका था, इसलिए उसने इसे गिराया नहीं, लेकिन मस्जिद के सम्मान में ज़ैद अपने परिवार के साथ ऊपरी मंज़िल में नहीं रहता; वह नीचे वाले घर में रहता है। अब क्या इस ऊपरी मंज़िल को गिरा देना चाहिए या नहीं?

उत्तर: जब तक मस्जिद की किसी चीज़ में कोई हस्तक्षेप या अतिक्रमण न हो, तब तक उसे गिराना ज़रूरी नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[पाद-टिप्पणी] १ - जद अल-मुमतर अला रद अल-मुह्तार, नमाज़ को अमान्य करने वाली चीज़ों का अध्याय आदि, मजमा अल-इस्लामी, बेरूत, १/४०१-४०२।

पृष्ठ ८४/६७३

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[باکس شدہ عبارت] (عربی کالم): کبقعة واحدة فإلی جدار القبلة کله موضع السجود کما قاله في شرح الوقایة بل اشار إلیه محمد في الاصل کما في الذخیرة فتحصل ولله الحمد ان لا خلاف بینهم وان الممنوع في المسجد المرور مطلقا الی جدار القبلة وفي الجامع الکبیر جدا والصحراء الی موضع نظر المصلی الخاشع وبه ظهر ان بحث المحقق في الفتح وقع مخالفاً للمذهب لما اطبقوا علیه فاغتنمه فان هذا التحریر من فیض القدیر فاغتنمه فان هذا التحریر من فیض القدیر علی العاجز الفقیر ولله الحمد حمدا کثیرا طیبا مبارکا فیه اه ما کتبت علیه[1] والله تعالی اعلم

(اردو کالم): کہ نمازی کے آگے سے جائے سجدہ پر گزرنے والا گنہگار ہوگا ، اس کا یہ اطلاق فخر الاسلام ، صاحب ہدایہ اور وقاریہ وغیرہ کے منافی نہیں ہے ، یہ اس لئے کہ مساجد ایک ٹکڑا کی مانند ہوتی ہیں پس وہ قبلہ کی دیوار تک تمام کی تمام موضع سجدہ کا حکم رکھتی ہیں جیسا کہ شرح وقایہ میں ہے بلکہ اس کی طرف امام محمد نے اصل میں اشارہ فرمایا جیسا کہ ذخیرہ میں ہے للہ الحمد واضح ہو گیا کہ ان کے درمیان اختلاف نہیں اور گزرنا مسجد میں دیوار قبلہ تک مطلقاً ممنوع ہے ، اور بہت بڑی جامع مسجد ہو یا صحرا ہو تو پھر خشوع کے ساتھ نماز پڑھنے والے نمازی کی نظر کے پھیلاؤ تک آگے سے گزرنا ممنوع ہے ، اسی سے یہ بھی واضح ہو گیا کہ فتح میں محقق کی بحث مذہب متعلق علیہ کے خلاف ہے۔ اس تقریر کو غنیمت جان لو کیونکہ اس عاجز فقیر پر رب قدیر کا عطیہ ہے ، اللہ ہی کے لئے حمد کثیر مبارک اور طیب ہے ، وہ ختم ہوا جو میں نے وہاں لکھا تھا ۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

[اصلی متن] مسئلہ ۱۱۳۱: از شہر محلہ جسولی مسئولہ مولوی غلام جان پنجابی طالب علم مدرسہ اہلسنت و جماعت ۱۶ شعبان ۱۳۲۶ھ زید نے دس برس ہوئے مسجد کے پیچھے جو زید کا مکان

مسجد کے متصل بلاخلا تھا اور مسجد کی بنا سے اس کی بنا جداگانہ تھی اور زمین بھی زید کی اپنی موروثی تھی اس مکان پر زید نے ایک بالاخانہ بنایا اور زید کے نیچے مکان کا چھت مسجد کی چھت کے برابر ہے صرف بالا خانہ مسجد سے اونچا ہے بلکہ بالا خانہ مسجد کے برابر بھی نہیں ہے مسجد کے بائیں جانب طالب علم کے حجرے کے برابر ہے ، ہاں کچھ تھوڑا سا کونا بالا خانے کا مسجد کے کونے کے برابر ہے لیکن زید بالا خانہ بنانے کے بعد دل میں نادم ہوا ، اور چونکہ روپیہ خرچ ہو چکا تھا اس وجہ سے اس نے بالا خانے کو اکھڑنا نہیں لیکن مسجد کی عزت کی وجہ سے زید مع آل وعیال بالا خانے میں نہیں رہتا نیچے مکان میں رہتا ہے اب اس بالا خانے کو اکھاڑنا چاہیے یا نہیں ؟

الجواب: جب کہ مسجد کی کسی چیز میں تصرف نہ ہو تو اس کا اکھڑنا کچھ ضرور نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

[حاشیہ] 1 - جد الممتار علی ردالمحتار باب یفسد الصلوۃ الخ مجمع الاسلامی بیروت ۱/ ۴۰۲-۴۰۱

Fatawa Razawiyya - Volume 8

Mas'alah 1132: From Serampore, District Hooghly, sent by Muhammad Abdul Hakim, Biri Merchant, 29 Rabi-ul-Akhir 1337 AH.

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: There is an existing mosque where the five daily prayers were performed. Adjacent to the mosque is the three-story house of the mosque's trustee (mutawalli). After the trustee's death, people stopped praying in the mosque, arguing that prayer is not permissible in a mosque that has a tall building nearby. Therefore, people are building another mosque only fifteen steps away from the first one. They do not listen when forbidden, even though building this mosque might lead to the abandonment of the previous one. What is the command of Allah and His Messenger (Peace and blessings of Allah be upon him)?

Answer: This is a purely ignorant and false notion; it has no basis in Shariah. In Mecca, around the Kaaba, there are many multi-story buildings that appear taller than the Kaaba. However, no building can be taller than the Kaaba or any mosque. A mosque is not just the name of its physical walls; rather, the entire space corresponding to it up to the seven heavens is the mosque. No building, even if it has a hundred stories, can be higher than even a billionth part of it. It is stated in Durr-ul-Mukhtar: "It is a mosque up to the zenith of the sky." [1] In Radd-al-Muhtar, it says:

"And similarly down to the depths of the earth, as stated in Al-Biri from Al-Asbijabi." [2]

Building a second mosque fifteen or twenty steps away based on such a nonsensical idea, which harms the congregation of the first mosque, was itself forbidden. Firstly, that belief is false, and secondly, it creates division in the congregation, which is one of the corrupt motives of 'Masjid-e-Zirar' (Mosque of Harm). Allah Almighty says: "...and to cause division among the believers" [3] (Quran 9:107). To the extent that the aim is to render the first mosque null and void; this is strictly haram and extreme oppression.

Allah Almighty says:

"And who is more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in His mosques and strive for their ruin?" [4] (Quran 2:114). And Allah Almighty knows best.

Mas'alah 1133: From Pir-adakhana, Satraganj, Dacca district, Bengal, sent by Maulana Khawaja Shams-ud-Din Muhammad Faridi, 10 Jumada al-Ula 1337 AH.

---

1 Durr-ul-Mukhtar, Bab Ma Yufsid-us-Salah, Mujtabai Press, Delhi, 1/93. 2 Radd-al-Muhtar, Bab Matlab fi Ahkam-ul-Masjid, H.M. Saeed Company, Karachi, 1/656. 3 Al-Quran, 9/107. 4 Al-Quran, 2/114.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

मस्अला 1132: सेरामपुर, जिला हुगली से, प्रेषक मुहम्मद अब्दुल हकीम, बीड़ी मर्चेंट, 29 रबी-उल-आखिर 1337 हिजरी।

सवाल: दीन के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: एक मस्जिद पहले से मौजूद है जहाँ पाँचों समय की नमाज़ होती थी। मस्जिद के मुतवल्ली (ट्रस्टी) का तीन मंज़िला घर मस्जिद से सटा हुआ है। मुतवल्ली की मृत्यु के बाद, लोगों ने मस्जिद में नमाज़ पढ़ना छोड़ दिया और तर्क यह दिया कि जिस मस्जिद के पास कोई ऊँची इमारत हो, वहाँ नमाज़ जायज़ नहीं है। इसलिए, लोग पहली मस्जिद से केवल पंद्रह कदम की दूरी पर दूसरी मस्जिद बना रहे हैं। मना करने पर भी वे नहीं मान रहे हैं, जबकि इस नई मस्जिद के बनने से पुरानी मस्जिद के वीरान होने की संभावना है। अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का क्या हुक्म है?

जवाब: यह पूरी तरह से जाहिलाना और गलत ख्याल है; शरीयत में इसका कोई आधार नहीं है। मक्का मुअज़्ज़मा में काबा के चारों ओर बहुत ऊँची-ऊँची कई मंज़िलों वाली इमारतें हैं जो ज़ाहिर तौर पर काबा से ऊँची लगती हैं, हालाँकि कोई भी इमारत न तो काबा शरीफ से ऊँची हो सकती है और न ही किसी मस्जिद से। काबा और मस्जिद केवल इन ज़ाहिरी दीवारों का नाम नहीं है, बल्कि उस स्थान के सीध में सातों आसमानों तक सब मस्जिद है। उससे ऊँचा क्या, उसके करोड़वें हिस्से के बराबर भी कोई इमारत बुलंद नहीं हो सकती, चाहे वह सौ मंज़िला ही क्यों न हो। 'दुर्रे मुख्तार' में है: "यह आसमान की ऊंचाइयों तक मस्जिद है।" [1] और 'रद्दुल मुहतार' में है:

"और इसी तरह पाताल (ज़मीन की गहराई) तक, जैसा कि बीरी में असबीजाबी से है।" [2]

इस बेहूदा ख्याल के आधार पर पंद्रह-बीस कदम की दूरी पर दूसरी मस्जिद बनाना, जिससे पहली मस्जिद की जमात को नुकसान पहुँचे, खुद ही मना था। एक तो वह ख्याल गलत है, दूसरा जमात में फूट डालना जो 'मस्जिदे ज़रार' (नुकसान पहुँचाने वाली मस्जिद) के भ्रष्ट उद्देश्यों में से एक है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "...और मोमिनों के बीच फूट डालने के लिए" [3] (कुरान 9:107)। यहाँ तक कि अगर इसका उद्देश्य पहली मस्जिद को बेकार और वीरान कर देना है, तो यह सख्त हराम और बड़ा ज़ुल्म है।

अल्लाह तआला ने फ़रमाया:

"और उस व्यक्ति से बढ़कर ज़ालिम कौन है, जो अल्लाह की मस्जिदों में उसके नाम का ज़िक्र किए जाने से रोके और उन्हें वीरान करने की कोशिश करे?" [4] (कुरान 2:114)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मस्अला 1133: गाँव पीर अडडाखाना, सतरगंज, जिला ढाका, बंगाल से, प्रेषक मौलवी ख्वाजा शम्सुद्दीन मुहम्मद फरीदी, 10 जमादी उल-अव्वल 1337 हिजरी।

---

1 दुर्रे मुख्तार, बाब मा युफसिदुस-सलाह, मुल्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/93. 2 रद्दुल मुहतार, बाब मतलब फी अहकामुल मस्जिद, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/656. 3 अल-कुरान, 9/107. 4 अल-कुरान, 2/114.

पृष्ठ 85/673

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

مسئلہ ۱۱۳۲: از سیرام پور ضلع ہو گلی مرسلہ محمد عبدالکیم بیڑی مرچنٹ ۲۹ ربیع الآخر شریف ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد قبل سے ہے اور نماز پنجگانہ ہوا کرتی ہے اور متولی مسجد کا سہ منزلہ مکان مسجد کے متصل ہے بعد انتقال متولی کے لوگوں نے مسجد میں نماز پڑھنا چھوڑ دیا اور عذر یہ ہے کہ جس مسجد کے قریب کوئی اونچی عمارت ہو اس مسجد میں نماز نہیں جائز ہے، لہٰذا لوگوں نے دوسری مسجد متصل پہلی مسجد کے پندرہ قدم کے فاصلہ میں بناتے ہیں اور منع کرنے سے نہیں مانتے حالانکہ اس مسجد کے بنانے سے سابق مسجد کے ویران ہونے کا احتمال ہے لہٰذا حکم خدا و رسول جل وعلا وصلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کیا ہے؟

الجواب: یہ محض جاہلانہ باطل خیال ہے شریعت میں اس کی کوئی اصل نہیں، کعبہ معظمہ کے گرد مکہ مکرمہ میں بہت بلند بلند کئی کئی منزل کے مکان ہیں کہ بظاہر کعبہ معظمہ سے اونچے معلوم ہوتے ہیں حالانکہ نہ کوئی مکان کعبہ معظمہ سے اونچا ہو سکتا ہے نہ کسی مسجد سے، کعبہ و مسجد ان ظاہری دیواروں کا نام نہیں بلکہ اتنی جگہ کے محاذی ساتوں آسمان تک سب مسجد ہے اس سے اونچا کیا اس کے کروڑویں حصے برابر کوئی مکان بلند نہیں ہو سکتا اگرچہ سو منزلہ ہو، در مختار میں ہے: انہ مسجد الٰی عنان السماء [1]۔ (یہ آسمان تک مسجد ہے۔ ت)

ردالمحتار میں ہے:

وکذا الٰی تحت الثرٰی کما فی البیری عن الاسبیجابی [2]۔ (اور اسی طرح تحت الثرٰی تک، جیسا کہ بیری میں اسبیجابی سے ہے۔ ت)

اس بیہودہ خیال کی بنا پر دوسری مسجد پندرہ بیس قدم کے فاصلہ پر بنانا جس سے پہلی مسجد کی جماعت کو نقصان پہنچے خود ہی ممنوع تھا، ایک تو وہ خیال باطل، دوسرے جماعت میں تفریق کہ مسجد ضرار کے اغراض فاسدہ سے ایک غرض ہے۔ قال تعالٰی: وَ تفرِیقاً بَیْنَ الْمُؤْمِنِیْنَ [3] (اللہ تعالیٰ نے فرمایا: اور مسلمانوں میں تفرقہ ڈالنے کو۔ ت) یہاں تک کہ اس سے مقصود مسجد اول کا باطل و معطل کر دینا ہے یہ سخت حرام اشد ظلم ہے۔

قال اللہ تعالٰی: وَ مَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْھَا اسْمُہٗ وَ سَعٰی فِیْ خَرَابِھَا [4] اللہ تعالیٰ نے فرمایا: اس شخص سے بڑھ کر ظالم کون، جو اللہ تعالیٰ کی مساجد سے اس کے نام کے ذکر کو روکتا ہے اور انھیں خراب کرنے کی کوشش کرتا ہے۔ (ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۳۳: از موضع پیر اڈاخانہ سٹر اگنج ضلع ڈھاکہ ملک بنگال مرسلہ مولوی خواجہ شمش الدین محمد فریدی ۱۰ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۷ھ

---

1 در مختار باب مایفسد الصلوۃ مطبوعی مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۳ 2 ردالمحتار باب مطلب فی احکام المسجد مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۶۵۶ 3 القرآن ۹/ ۱۰۷ 4 القرآن ۲/ ۱۱۴

Fatawa Razviya Volume 8

What do the scholars of religion say regarding this matter: In the surroundings of Faridpur district, Khon Dam, there is an ancient mosque where the local people have been performing the five daily prayers and Friday prayers since olden times. These days, due to some worldly transaction dispute, some worshippers and others, out of pure spite and opposition, have built another mosque at a distance of four or five hundred cubits opposite this ancient mosque. They are making full efforts to drive away the remaining worshippers of the ancient mosque so that this mosque becomes deserted and the people praying here are completely brought under control. The Imam, Mutawalli (trustee), and other worshippers of the ancient mosque never prevented anyone from praying, nor are they involved in this transaction dispute. However, a few old worshippers have been driven away from here due to enmity and opposition. So, in this situation, will prayer be permissible in the new mosque, or will it be under the ruling of Masjid-e-Zirar (the Mosque of Harm)? If it is legally declared as Masjid-e-Zirar due to opposition, enmity, and splitting of the congregation, then what should be done with this mosque? If the new mosque is proven to be Masjid-e-Zirar according to Sharia, what is the Sharia ruling regarding those who abuse, speak ill of, harbor enmity towards, and look down upon the scholars who declared the new mosque's prayer impermissible and called it Masjid-e-Zirar?

Answer: If the reality is indeed such that these people are not building this mosque for the sake of Allah but purely out of spite, ego, and to split the congregation of the ancient mosque, then it certainly falls under the ruling of Masjid-e-Zirar. In this case, speaking ill of or abusing those who call it Masjid-e-Zirar is strictly forbidden (haram) and warrants severe punishment. However, if due to an actual dispute they cannot come to the ancient mosque and have a genuine fear for their honor etc., while praying there, and out of this compulsion, they stop coming and build another mosque for the sake of Allah for their own congregation, then it can never be Masjid-e-Zirar. Those who call it "Zirar" are doing wrong. And Allah Almighty knows best.

Problem 1133: From village Sisi, Tehsil and Post Office Kachha, District Nainital, sent by Abdul Rahman Padhan, 2 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: The mosque in my village was old and made of unbaked bricks, and it is also dilapidated. Secondly, due to a decrease in population, it has ended up on one edge of the settlement, which is very inconvenient. Therefore, there is a desire to build a new mosque inside the populated area. For this reason,

according to the command of Sharia, can a new mosque be built in another place or not? If it can be, then in what way? Please provide information with a summary of the ruling.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: फरीदपुर जिले के आसपास के क्षेत्र खोन डैम में प्राचीन समय से एक मस्जिद है जिसमें मोहल्ले के लोग पाँचों समय की नमाज़ और जुमे की नमाज़ पढ़ते आ रहे हैं। इन दिनों किसी दुनियावी लेन-देन के झगड़े के कारण कुछ नमाज़ियों आदि ने, इस प्राचीन मस्जिद के सामने चार-पाँच सौ हाथ की दूरी पर केवल ज़िद और विरोधवश दूसरी मस्जिद बनाई है। वे इस पुरानी मस्जिद के बाकी नमाज़ियों को यहाँ से भगा ले जाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं ताकि यह मस्जिद वीरान हो जाए और यहाँ पढ़ने वाले लोग पूरी तरह उनके नियंत्रण में आ जाएँ। पुरानी मस्जिद के इमाम, मुतवल्ली और अन्य नमाज़ियों ने कभी किसी को नमाज़ पढ़ने से नहीं रोका और न ही वे इस लेन-देन के झगड़े में शामिल हैं। फिर भी, कुछ पुराने नमाज़ियों को शत्रुता और विरोध के कारण यहाँ से भगा दिया गया है। तो, ऐसी स्थिति में नई मस्जिद में नमाज़ जायज़ होगी या यह मस्जिद-ए-ज़रार (नुकसान पहुँचाने वाली मस्जिद) के हुक्म में होगी? यदि विरोध, शत्रुता और जमात को बांटने के कारण इसे शरीयत के अनुसार मस्जिद-ए-ज़रार करार दिया जाए, तो इस मस्जिद का क्या करना होगा? यदि नई मस्जिद शरीयत के अनुसार मस्जिद-ए-ज़रार साबित हो जाए, तो उन मौलवियों को गाली देने, बुरा कहने, शत्रुता रखने और उन्हें तुच्छ समझने वालों पर शरीयत का क्या हुक्म है जिन्होंने नई मस्जिद में नमाज़ को नाजायज़ और उसे मस्जिद-ए-ज़रार कहा था?

उत्तर: यदि वास्तविकता में ऐसा ही है कि ये लोग यह मस्जिद अल्लाह के लिए नहीं बना रहे हैं बल्कि केवल ज़िद, अहंकार और पुरानी मस्जिद की जमात को तितर-बितर करने के लिए बना रहे हैं, तो वह निश्चित रूप से मस्जिद-ए-ज़रार के हुक्म में है। इस स्थिति में उन लोगों को बुरा कहना और गाली देना सख्त हराम और कठोर दंड का कारण है जो इसे मस्जिद-ए-ज़रार कहते हैं। और यदि वास्तव में किसी झगड़े के कारण वे पुरानी मस्जिद में नहीं आ सकते और वहाँ नमाज़ पढ़ने में अपनी इज़्ज़त आदि का सही डर रखते हैं, और इस मजबूरी से वहाँ आना छोड़कर अपनी जमात के लिए दूसरी मस्जिद अल्लाह के वास्ते बनाते हैं, तो वह कभी भी मस्जिद-ए-ज़रार नहीं हो सकती। जो इसे "ज़रार" कहते हैं, वे बुरा करते हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1133: ग्राम सीसी, तहसील और डाकघर कछा, जिला नैनीताल से, प्रेषक अब्दुल रहमान पठान, 2 सफर 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: मेरे गाँव की मस्जिद पुरानी कच्ची थी, वह टूटी-फूटी भी है। दूसरे, आबादी कम हो जाने से वह आबादी के एक किनारे पर हो गई है जो बहुत असुविधाजनक है। इसलिए, आबादी के अंदर नई मस्जिद तामीर कराने की इच्छा है। इस

कारण, शरीयत के हुक्म के अनुसार दूसरी जगह नई मस्जिद तामीर हो सकती है या नहीं? यदि हो सकती है, तो किस तरह? हुक्म के सारांश से अवगत कराएं।

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اطراف ضلع فرید پور ضلع کھون ڈام میں قدیم سے ایک مسجد ہے جس میں اہل محلہ پنجگانہ نماز جمعہ پڑھتے چلے آئے ہیں ان دنوں دنیاوی کسی لین دین کے جھگڑے میں بعض مصلی وغیرہ مصلی اس مسجد قدیم کے مقابل چار پانچ سو ہاتھ کے فاصلہ میں محض ضد و مخالف سے دوسری ایک مسجد بنائی ہے اور اس مسجد قدیم کے باقی مصلی صاحبوں کو یہاں سے بھگا کر لے جانے کی پوری کوشش کر رہا ہے تاکہ یہ مسجد ویران ہو جائے اور یہاں پڑھنے والے لوگ اچھی طرح سے ضبط ہو جائیں، مسجد قدیم میں امام و متولی صاحب و دیگر مصلی صاحبان کبھی کسی کو پڑھنے سے مانع مزاحم نہ ہوا، اور نہ اس لین دین کے جھگڑے میں شامل ہے تاہم چند قدیمی مصلی صاحبوں کو بوجہ عداوت مخالفت یہاں سے بھگا لے گیا ہے ، پس اس صورت میں مسجد جدید میں نماز جائز ہوگی یا حکم میں مسجد ضرار کے ہوگا؟ اگر شرعاً مسجد ضرار قرار پائے بوجہ مخالفت و عداوت و تفریق جماعت تو اس مسجد کو کیا کرنا ہوگا؟ اگر شرعاً مسجد جدید ضرار ثابت ہو جائے تو جن مولوی صاحبان نے جدید مسجد نماز عدم جواز و مسجد ضرار فرمایا تھا ان عالمو کو گالی دینے و برا کہنے و عداوت رکھنے، حقیر جاننے والے پر شرعاً کیا حکم ہے؟ الجواب: اگر واقع میں ایسا ہی ہے کہ یہ لوگ یہ مسجد اللہ کے لئے نہیں بناتے محض ضد اور نفسانیت اور مسجد قدیم کی جماعت متفرق کرنے کے لیے بناتے ہیں تو ضرور وہ مسجد ضرار کے حکم میں ہے اور اس حالت میں ان لوگوں کو جو اسے مسجد ضرار کہتے ہیں برا کہنا اور گالی دینا سخت حرام اور موجب عذاب شدید ہے اور اگر واقعی کسی جھگڑے کے سبب وہ مسجد قدیم میں نہیں آسکتے اور وہاں نماز پڑھنے میں صحیح اندیشہ اپنی آبرو وغیرہ کا رکھتے ہیں اس مجبوری سے اس میں آنا ترک کر کے اور اپنی جماعت کے

لئے دوسری مسجد بوجہ اللہ بناتے ہیں تو وہ ہرگز مسجد ضرار نہیں ہو سکتی، جو اسے ضرار کہتے ہیں برا کرتے ہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔ مسئلہ ۱۱۳۳: از موضع سیسی تحصیل و ڈاکخانہ کچھا ضلع نینی تال مرسلہ عبدالرحمن پدھان ۲ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میرے گاؤں کی مسجد پرانی خام تھی، وہ شکستہ بھی ہے، دوسرے آبادی کم ہو جانے سے ایک کنارے پر آبادی کے ہو گئی ہے جو بہت بے موقع ہے، اس لئے مسجد اندر آبادی جدید تعمیر کرانے کی خواہش ہے، اس واسطے مطابق حکم شرع شریف دوسری جگہ میں مسجد جدید تعمیر ہو سکتی ہے یا نہیں اگر ہو سکتی ہے تو کس طرح؟ خلاصہ حکم سے آگاہی بخشے۔

Fatawa Razawiyya Volume Eight

The Answer: Construct the mosque in the center of the settlement to receive a great reward, and it is also obligatory to keep that first mosque populated; the people of that side should pray all five daily prayers in it. And Allah Almighty knows best.

Question 1134 to 1140: From the city, Mohalla Garhiya, received from Sheikh Walayat Hussain. A mosque was located on a two-story building adjacent to a library. A dispute arose over the ownership of the staircase wall of the mosque with some Hindus. Eventually, the Muslims of Bareilly purchased all the houses including the disputed area for the sake of the mosque and visitation, along with another piece of land from the Hindus. Due to the mosque being very small, it was proposed to expand it. Anjuman Islamia Bareilly took over the management of all construction. They planned to expand the mosque onto another piece of land and started construction. They left the old mosque and built a second new mosque adjacent to it, and demolished the old mosque so thoroughly that no trace remained, and the site of the old mosque is being included in other houses for the purpose of generating income. The following questions are presented for answers: (1) Instead of expanding the old mosque, does building a new mosque in another place maintain the status of the first mosque according to the Noble Sharia? (2) Is it permissible or not to include the site of the demolished old mosque in other worldly constructions? (3) What is the Sharia ruling for those Muslims who were involved in the above-mentioned act, whether through command or practical advice? (4) What should the rest of the Muslims do regarding the aforementioned actors?

The Answer: Since Muslims have designated this new building as a mosque, it has also become a mosque. It is obligatory to protect and keep both the first mosque and this one populated. To demolish the first mosque and include its site in worldly or even religious construction is forbidden, forbidden, strictly forbidden. Those who have done so, those who advised it, and those who consider it permissible, all fall under this noble verse:

"And who are more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in His mosques and strive for their ruin? It was not for them to enter them except in fear. For them in this world is disgrace, and for them in the Hereafter is a great punishment."

Who is more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in Allah's mosques and strive for their ruin? It was not for them to step into the

mosques except in fear. For them is disgrace in this world and for them is a great punishment in the Hereafter.

[1] Al-Quran 2/114 & 115

जवाब: आबादी के बीच में मस्जिद तामीर (निर्माण) करें, बड़ा सवाब पाएंगे, और उस पहली मस्जिद को भी आबाद रखना फ़र्ज़ है। उस किनारे वाले पाँचों समय की नमाज़ उसी में पढ़ें। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ११३४ से ११४०: शहर मोहल्ला गढ़िया से, शेख विलायत हुसैन की जानिब से प्राप्त। एक मस्जिद कुतुबखाने (पुस्तकालय) के साथ दो मंजिला इमारत पर स्थित थी। मस्जिद की सीढ़ी की दीवार पर हिंदुओं के साथ मालिकाना हक को लेकर विवाद हुआ। अंतत; बरेली के मुसलमानों ने मस्जिद और ज़ियारत के लिए विवादित जगह समेत सभी मकानों और हिंदुओं से एक अन्य ज़मीन का टुकड़ा भी खरीद लिया। मस्जिद बहुत छोटी होने के कारण इसके विस्तार का प्रस्ताव रखा गया। अंजुमन इस्लामिया बरेली ने पूरे निर्माण का इंतज़ाम अपने ज़िम्मे लिया। उन्होंने मस्जिद के विस्तार के लिए दूसरी ज़मीन का टुकड़ा तय किया और निर्माण कार्य शुरू किया। उन्होंने पुरानी मस्जिद को छोड़ दिया और उसके पास ही एक नई मस्जिद तामीर की, और पुरानी मस्जिद को इस तरह ढहा दिया कि उसका निशान तक न बचा, और पुरानी मस्जिद की जगह को पैसे कमाने के उद्देश्य से अन्य मकानों में शामिल किया जा रहा है। जवाब के लिए निम्नलिखित प्रश्न प्रस्तुत हैं: (१) पुरानी मस्जिद के विस्तार के बजाय दूसरी जगह नई मस्जिद तामीर करने से क्या वह पहली मस्जिद का दर्जा शरीयत के मुताबिक रखेगी? (२) ढहाई गई पुरानी मस्जिद की जगह को अन्य सांसारिक निर्माण कार्यों में शामिल करना जायज़ है या नहीं? (३) जिन मुसलमानों से यह ऊपर बताया गया काम हुआ है, चाहे हुक्म देने वाले हों या मशविरा देने वाले, उनके लिए शरीयत का क्या हुक्म है? (४) बाकी मुसलमानों को उपरोक्त कर्ताओं के साथ क्या व्यवहार करना चाहिए?

जवाब: चूंकि मुसलमानों ने इस नई इमारत को मस्जिद बना लिया है, तो यह भी मस्जिद हो गई। पहली मस्जिद और इस मस्जिद, दोनों की हिफ़ाज़त और उन्हें आबाद रखना फ़र्ज़ है। पहली मस्जिद को ढहाकर उसकी जगह को दुनियावी या दीनी (धार्मिक) तामीर में शामिल कर देना हराम, हराम, सख्त हराम है। जिन्होंने ऐसा किया, जो इसमें मशविरा देने वाले थे और जो इसे जायज़ मानते हैं, वे सब इस आयते करीमा के दायरे में आते हैं:

"और उस व्यक्ति से बड़ा ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों में उसका नाम लिए जाने से रोके और उनकी वीरानी की कोशिश करे? ऐसे लोगों का यह काम नहीं था कि वे उनमें प्रवेश करें,

मगर डरते हुए। उनके लिए दुनिया में रुसवाई (अपमान) है और उनके लिए आखिरत (परलोक) में बड़ा अज़ाब (दंड) है।"

उनसे बढ़कर ज़ालिम कौन जो अल्लाह की मस्जिदों को उनमें अल्लाह का नाम लिए जाने से रोकें और उनकी वीरानी में लगे रहें। उन्हें तो मस्जिदों में कदम रखना ही नहीं चाहिए था मगर डरते हुए। उनके लिए दुनिया में अपमान है और उनके लिए आखिरत में बड़ा अज़ाब है।

१ अल-कुरान २/११४ और ११५

पृष्ठ ८७ (६७३ में से)

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

الجواب: مسجد بیچ آبادی میں تعمیر کریں ثواب عظیم پائیں گے، اور اُس پہلی مسجد کا بھی آباد رکھنا فرض ہے، اس کنارے والے پانچوں وقت اس میں نماز پڑھیں واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۳۴ تا ۱۱۴۰: از شہر محلہ گڑھیا موصولہ از شیخ ولایت حسین ایک مسجد متصل کتب خانہ دو منزلہ پر واقع تھی دیوار زینہ مسجد پر اہلِ ہنود سے بحق ملکیت تنازعہ ہو کر کل مکانات مع جائے تنازعہ کے اہل اسلام صاحبان بریلی نے بحق مسجد و زیارت مع ایک قطعہ دیگر اراضی ہنود سے خرید لیا، مسجد نہایت چھوٹی ہونے کے سبب توسیع اُس کی ہونا تجویز کیا گیا، انجمن اسلامیہ بریلی نے تمام تعمیر وغیرہ کا انتظام اپنے ذمہ یعنی سپردگی میں لیا اور توسیع مسجد مذکور قطعہ اراضی دیگر تجویز کر کے کام تعمیر شروع کیا، مسجدِ کہنہ کو چھوڑ کر متصل اُس کے دوسری مسجد جدید تعمیر کی اور مسجد کہنہ کو ایسا منہدم کیا کہ نشان تک اُس کا باقی نہ رہا اور جائے مسجد کہنہ کو دیگر مکانات میں بغرضِ حصولِ زر شامل کر لیا جاتا ہے، سوالات ذیل برائے جواب پیش ہیں: (۱) بجائے توسیع مسجد کہنہ کے دوسری جگہ جدید مسجد تعمیر ہونا کیا مسجد اول کا حکم بموجب شرع شریف رکھے گی؟ (۲) جگہ مسجد کہنہ منہدمہ کو دیگر تعمیر دنیوی میں شامل کرکے کام میں لانا جائز ہے یا نہیں؟ (۳) جن اہل اسلام صاحبان سے یہ فعل مذکور بالا ظہور میں آیا حکماً یا عملاً مشیر، ان کے لیے شرعاً کیا حکم ہے؟ (۴) بقیہ اہل اسلام کو فاعل مذکور بالا سے کیا عمل درآمد کرنا چاہئے؟

الجواب: جبکہ اس مسجد جدید کو مسلمانوں نے مسجد کر لیا یہ بھی مسجد ہوگئی، مسجدِ اول کی اور اس کی دونوں کی حفاظت و آبادی فرض ہے، مسجدِ اول کو منہدم کر کے تعمیر دنیاوی تعمیر

دینی میں ہی میں شامل کر دینا حرام حرام سخت حرام ہے، جنہوں نے ایسا کیا ہو اور جو اس میں مشیر ہوں اور جو اسے جائز رکھیں سب اس آیہ کریمہ کے تحت میں ہیں:

وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّن مَّنَعَ مَسَاجِدَ اللَّهِ أَن يُذْكَرَ فِيهَا اسْمُهُ وَسَعَىٰ فِي خَرَابِهَا ۚ أُولَٰئِكَ مَا كَانَ لَهُمْ أَن يَدْخُلُوهَا إِلَّا خَائِفِينَ ۚ لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ وَلَهُمْ فِي الْآخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيمٌ

اُن سے بڑھ کر ظالم کون جو اللہ کی مسجدوں کو اُن میں اللہ کا نام لئے جانے سے روکیں اور اُن کی ویرانی میں کوشاں ہوں انھیں تو مسجدوں میں قدم رکھنا نہ تھا مگر ڈرتے ہوئے ان کے لئے دنیا میں رسوائی اور ان کے لئے آخرت میں بڑا عذاب ہے۔

[1] القرآن ۲/۱۱۴ و ۱۱۵

Page 87 of 673

Fatawa Rizvia, Volume 8

It is an absolute obligation (Fard-e-Qati) to maintain the original mosque as it is. If shops have been constructed in its place, it is an absolute obligation to immediately demolish those shops and restore the mosque. Otherwise, they will deserve a great punishment. For those who do not comply and persist in opposing the Great Quran, it is mandatory for Muslims to avoid them; sitting with them is prohibited.

[Boxed Text] Quranic Verse: Allah Almighty said: "And if Satan causes you to forget, then do not sit after the remembrance with the wrongdoing people."[1] Translation: Allah Almighty said: If Satan ever makes you forget, then do not sit with the oppressors once you remember.

And who is more unjust than the one who desolates a mosque and turns it into shops? If those people do not refrain from opposing God, then it is obligatory for Muslims to strive to restore the demolished mosque. And Allah Almighty knows best.

Problem 1138: From the Cantonment, Banja Topkhana Tin, near the mosque of Hafiz Muhammad Abdul Rauf Khan, the Imam of the mosque. Question: Is building a mosque an absolute obligation (Fard), mandatory (Wajib), or recommended (Mustahabb)? And is it bad to spend money on mortar and stone? This is because a few people went to Imam-e-Azam (may Allah have mercy on him) and said, "O Imam! We are building a mosque; please grant us some sacred relics for blessings." First, the Imam turned his face away from the seekers with a frown and gave them one dirham. The next day, those people returned and gave the dirham back, saying, "O respected sir! Take this back; this dirham is counterfeit, the market does not accept it." The Imam took the dirham back and said happily, "The money that is spent on mortar and stone is indeed bad."

Answer: These are devilish thoughts, and the story narrated from our master Imam-e-Azam (may Allah be pleased with him) is pure lie, falsehood, and a devilish fabrication. It is mandatory (Wajib) to build one Jami Mosque in every city, and there is a command to build a mosque in every neighborhood. It is stated in the noble Hadith:

[Boxed Text] Hadith: "The Messenger of Allah commanded the building of mosques in the districts and that they be kept clean."[2] Translation: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said that mosques should be built in every neighborhood and that they should be kept clean.

Wealth spent on building a mosque is not spent on mortar and stone, but rather for the pleasure of the Great Lord. Allah Almighty.

---

[1] Al-Quran 6:68 [2] Sunan Abu Dawood, Chapter on Establishing Mosques in Districts, published by Aftab-e-Alam Press, Lahore, p. 66; Sunan Ibn Majah, Chapter on Purifying and Perfuming Mosques, published by HM Saeed Company, Karachi, p. 55.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

यह एक निरपेक्ष कर्तव्य (फ़र्ज़-ए-क़तई) है कि पहली मस्जिद को पूर्ववत मस्जिद के रूप में ही रखें। और यदि उसके स्थान पर दुकानें बना ली गई हैं, तो यह फ़र्ज़-ए-क़तई है कि उन दुकानों को तुरंत ध्वस्त किया जाए और मस्जिद को फिर से बहाल किया जाए, अन्यथा वे महान दंड के पात्र होंगे। जो लोग बात नहीं मानते और महान कुरान का विरोध करने पर अड़े रहते हैं, मुसलमानों के लिए उनसे बचना अनिवार्य है; उनके पास बैठना मना है।

[बॉक्स टेक्स्ट] कुरान की आयत: अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और यदि शैतान तुम्हें भुला दे, तो याद आने पर ज़ालिमों के पास मत बैठो।"[1] अनुवाद: अल्लाह तआला ने फ़रमाया: अगर कभी शैतान भुला दे तो याद आने पर ज़ालिमों के पास न बैठो।

और उस व्यक्ति से बड़ा ज़ालिम कौन है जो मस्जिद को वीरान करता है और उसे दुकानों में बदल देता है? यदि ऐसे लोग ईश्वर का विरोध करने से बाज़ नहीं आते, तो मुसलमानों का यह कर्तव्य है कि वे कोशिश करके ध्वस्त मस्जिद को फिर से मस्जिद बना लें। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है)।

मसला 1138: छावनी बनचा तोपखाना टिन से, मस्जिद हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल रऊफ़ खान के निकट, मस्जिद के पेश इमाम। प्रश्न: मस्जिद बनाना फ़र्ज़ है, वाजिब है या मुस्तहब? और क्या वह पैसा जो गारे और पत्थरों में खर्च होता है, बुरा है? इसका कारण यह है कि कुछ लोग इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाह अलैह) की सेवा में उपस्थित हुए और निवेदन किया, "या इमाम! हम एक मस्जिद बनवा रहे हैं, कुछ बरकत के लिए तबर्रुकात इनायत फरमाएं।" पहले तो इमाम साहब ने मांगने वालों की तरफ से मुंह फेर लिया और एक दिरहम निकाल कर दे दिया। अगले दिन वे लोग आए और दिरहम वापस करते हुए कहा, "हज़रत! इसे लीजिए, यह दिरहम खोटा है, बाज़ार इसे स्वीकार नहीं करता।" इमाम साहब ने वह दिरहम ले लिया और खुश होकर कहा: "वह पैसा बुरा है जो गारे और पत्थरों में खर्च हो।"

जवाब: ये शैतानी विचार हैं और हमारे स्वामी इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से जो कहानी सुनाई गई है, वह सरासर झूठ, असत्य और शैतानी गढ़ा हुआ है। हर शहर में एक जामी मस्जिद बनाना वाजिब है और हर मोहल्ले में एक मस्जिद बनाने का आदेश है। हदीस शरीफ़ में है:

[बॉक्स टेक्स्ट] हदीस: "अल्लाह के रसूल ने मोहल्लों में मस्जिद बनाने और उन्हें साफ़ रखने का हुक्म दिया।"[2] अनुवाद: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया कि हर मोहल्ले में मस्जिदें बनाई जाएं और यह कि उन्हें साफ़-सुथरा रखा जाए।

मस्जिद बनाने में जो धन खर्च होता है, वह गारे और पत्थरों में खर्च नहीं होता बल्कि बड़े रब की रज़ा में होता है। अल्लाह अज़्वजल।

---

[1] अल-कुरान 6:68 [2] सुनन अबू दाऊद, मोहल्लों में मस्जिद बनाने का अध्याय, आफताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 66; सुनन इब्न माजाह, मस्जिदों की सफाई और उन्हें सुगंधित करने का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृष्ठ 55।

पृष्ठ 88/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

فرض فرض فرض قطعی فرض ہے کہ مسجد اول کو بھی بدستور مسجد رکھیں، اور اگر اس کی دکانیں کرلی گئی ہوں فرض قطعی ہے کہ فوراً فوراً ان دکانوں کو منہدم کر کے بدستور مسجد کا اعادہ کریں ورنہ عذاب عظیم کے مستحق ہوں گے، جو نہ مانیں اور قرآن عظیم کی مخالفت پر اڑے رہیں مسلمانوں کو ان سے اجتناب لازم ہے، ان کے پاس بیٹھنا منع ہے۔

[خانہ] قال اللہ تعالٰی: وَاِمَّا یُنْسِیَنَّكَ الشَّیْطٰنُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرٰی مَعَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِیْنَ﴿۶۸﴾ ترجمہ: اللہ تعالٰی نے فرمایا: اگر کبھی شیطان بھلا دے تو یاد آنے پر ظالموں کے پاس نہ بیٹھو۔

اور اس سے بڑھ کر ظالم کون جو مسجد ویران کر کے اس کا دکانیں کر لے وہ لوگ اگر مخالف خدا سے باز نہ آئیں تو مسلمانوں پر فرض ہے کہ کوشش کر کے مسجد منہدم کو پھر مسجد کرلیں۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۳۸: از چھاؤنی بنچہ توپ خانہ ٹین نزد مسجد حافظ محمد عبدالرؤف خاں پیش امام مسجد مسجد بنانا فرض ہے یا واجب یا مستحب؟ اور برا ہے وہ پیسہ جو خرچ ہو گارے پتھر میں، اس واسطے کہ امام اعظم رحمۃ اللہ علیہ کی خدمت میں چند آدمی حاضر ہوئے عرض کیا، یا امام! ہم ایک مسجد بنواتے ہیں کچھ آپ تبرکات عنایت فرمائے کہ برکت ہو، امام صاحب نے پہلے چہرہ سائلین کی طرف سے پھیر کر خراب منہ بنایا اور ایک درہم نکال کر دے دیا دوسرے روز وہ شخص آئے اور درہم واپس دے کر کہنے لگے کہ حضرت! لیجئے یہ درہم کوٹھا ہے اس کو بازار قبول نہیں کرتا۔ امام صاحب نے وہ درہم لے کر رکھ لیا اور فرمایا خوش ہو کر کہ: خراب ہے وہ پیسہ جو گارے پتھر میں خرچ ہووے۔

الجواب: یہ شیطانی خیال ہیں اور سیدنا امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے جو حکایت نقل کی وہ محض کذب، دروغ اور شیطانی گھڑت ہے۔ ہر شہر میں ایک مسجد جامع بنانا واجب ہے اور ہر محلہ میں ایک مسجد بنانے کا حکم ہے۔ حدیث شریف میں ہے:

[خانہ] امر رسول اللہ ببناء المساجد فی الدور و ان تنظف[۲] ترجمہ: رسول اللہ (صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم) نے فرمایا کہ ہر محلے میں مسجدیں بنوائی جائیں اور یہ کہ وہ ستھری رکھی جائیں۔

بنائے مسجد میں جو مال صرف ہوتا ہے وہ گارے پتھر میں صرف نہیں ہوتا بلکہ رضائے رب اکبر میں۔ اللہ عزوجل

---

۱ القرآن ۶۸/۶ ۲ سنن ابو داؤد باب اتخاذ لمساجد فی الدور مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ص ۶۶، سنن ابن ماجہ باب تطہیر المساجد و تطییبہا مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۵۵

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Allah says: "In houses which Allah has permitted to be raised[1]." Allah has given permission to elevate mosques in palaces. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Box Start] "Whoever builds a mosque for Allah, Allah builds for him a house in Paradise." Added in a narration: "of pearls and rubies[2]." And Allah knows best.

Whoever builds a mosque for Allah, Allah will build for him a house of pearls and rubies in Paradise. [Box End]

Problem 1139: From Qutubpur, Post Office Pirganj, District Rangpur, requested by Rahmatullah Sahib, 5 Ramadan 1339 AH.

What do the scholars of religion say regarding this: An old mosque was prepared with lawful wealth and was also endowed (waqf). At that time, a usurer's interest money and lawful money became mixed, and it is impossible to distinguish which is haram and which is halal. The old mosque was rebuilt, i.e., a tin roof was provided, the mosque courtyard was paved with bricks, and a well was built for the worshippers. Now the request is: is it correct to pray in such a mosque or not? Explain and be rewarded.

The Answer: In the mentioned situation, praying in that mosque is not only permissible but keeping it inhabited is obligatory. There is no harm to the mosque in taking tin, flooring, and a well from a person with mixed interest-based income; rather, prayer is permissible on this floor and drinking and performing ablution from this well is lawful. Imam Muhammad states: "We act upon this as long as we do not know a thing to be specifically haram[3]." (This is our practice until we know something to be forbidden specifically. T) And Allah knows best.

Problem 1140: From Case Street, Sahibganj, sent by Hakim Syed Muhammad Ismail Sahib, 28 Jumada al-Akhira 1337 AH.

Honorable Maulana Maulvi Muhammad Ahmad Raza Khan Sahib Qibla (May Allah protect him): Peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. An effort is requested from your Presence, and since this is God's work and your Presence is our master, to inquire from your Presence...

---

1. Al-Quran, 24/36

2. Al-Sahih li-Muslim, Kitab al-Masajid, printed by Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi 1/201, Majma al-Zawaid wa Manba al-Fawaid, Chapter on Building Mosques, printed by Dar al-Kitab Beirut 2/7
3. Fatawa Hindiyya with reference to Zahiriyya, Chapter 12 on Gifts and Additions, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar 5/342

फ़तावा रज़विया खंड आठ

अल्लाह फ़रमाता है: "उन घरों में जिन्हें बुलंद करने का अल्लाह ने हुक्म दिया है[1]।" महलों में मस्जिदें बुलंद करने का अल्लाह ने हुक्म दिया है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

[बॉक्स प्रारंभ] "जिसने अल्लाह के लिए मस्जिद बनाई, अल्लाह उसके लिए जन्नत में घर बनाएगा।" एक रिवायत में अधिकता है: "मोतियों और याक़ूत का[2]।" और अल्लाह बेहतर जानता है।

जो अल्लाह के लिए मस्जिद बनाएगा, अल्लाह उसके लिए जन्नत में मोतियों और याक़ूत का घर बनाएगा। [बॉक्स अंत]

मस्अला 1139: क़ुतुबपुर डाकखाना पीर गंज ज़िला रंगपुर से, रहमतुल्लाह साहब द्वारा पूछा गया, 5 रमज़ान 1339 हिजरी।

दीन के विद्वान क्या कहते हैं: एक पुरानी मस्जिद हलाल धन से तैयार की गई थी और वक्फ भी की गई थी। उस समय एक सूदखोर के सूद का पैसा और हलाल पैसा दोनों मिल गए, दोनों में अंतर नहीं किया जा सकता कि कौन सा हराम है और कौन सा हलाल। पुरानी मस्जिद का पुनर्निर्माण किया गया यानी छत पर टिन लगाई गई, मस्जिद के आंगन को ईंटों से पक्का किया गया और नमाजियों के लिए कुआं बनवाया गया। अब निवेदन यह है कि क्या ऐसी मस्जिद में नमाज पढ़ना सही है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: बताई गई स्थिति में उस मस्जिद में नमाज पढ़ना न केवल जायज़ है बल्कि उसे आबाद रखना फ़र्ज़ (अनिवार्य) है। सूद के मिले-जुले धन वाले व्यक्ति से टिन, फर्श और कुआं बनवाने में मस्जिद को कोई हर्ज नहीं होता, बल्कि उस फर्श पर नमाज जायज़ है और उस कुएं से पीना और वज़ू करना हलाल है। इमाम मुहम्मद फ़रमाते हैं: "हम इस पर तब तक अमल करते हैं जब तक कि हमें किसी चीज़ के विशेष रूप से हराम होने का पता न चले[3]।" (जब तक हम किसी चीज़ को विशेष रूप से हराम नहीं जानते, हमारा यही अमल है। त) और अल्लाह बेहतर जानता है।

मस्अला 1140: केस स्ट्रीट साहिबगंज से हकीम सैयद मुहम्मद इस्माइल साहब द्वारा प्रेषित, 28 जमादी उल आख़िरा 1337 हिजरी।

हज़रत मौलाना मौलवी मुहम्मद अहमद रज़ा ख़ाँ साहब क़िबला मदज़िल्लहुल अली: अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू, हुज़ूर को एक कार्य के लिए कष्ट दिया जा रहा है, और चूंकि यह खुदा का काम है और हुज़ूर हम लोगों के आका हैं, हुज़ूर से पूछना...

---

1. अल-क़ुरआन, 24/36
2. अस-सहीह लि-मुस्लिम, किताबुल मसाजिद, मुद्रित नूर मुहम्मद असहुत तबाअ कराची 1/201, मजमाउज़ ज़वाइद व मनबाउल फ़वाइद, बाब बिनाउल मसाजिद, मुद्रित दारुल किताब बेरूत 2/7
3. फ़तावा हिन्दिया ब-हवाला ज़हीरिया, अल-बाबुल सानी अशर फ़िल हदाया वल इज़ाफ़ात, मुद्रित नूरानी कुतुब खाना पेशावर 5/342

पृष्ठ 89/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

فرماتا ہے: فِی بُیُوْتٍ اَذِنَ اللّٰہُ اَنْ تُرْفَعَ ۱ محلوں میں مسجدیں بلند کرنے کا اللہ نے اذن دیا ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

من بنی اللہ مسجدا بنی اللہ لہ بیتا فی الجنۃ زاد فی روایۃ من در و یاقوت ۲۔ واللہ تعالٰی اعلم ۔

جو اللہ کے لئے مسجد بنائے اللہ اس کے لئے جنت میں موتیوں اور یاقوت کا گھر بنائے گا۔

مسئلہ ۱۱۳۹: از قطب پور ڈاکخانہ پیر گنج ضلع رنگ پور مسئولہ رحمت اللہ صاحب ۵ رمضان ۱۳۳۹ھ

چہ می فرمایند علمائے دین کہ ایک مسجد قدیم کو از مال حلال تیار کیا گیا تھا اور وقف بھی کیا گیا اس وقت ایک سود خور کے سود کا مال اور حلال مال دونوں مخلوط ہو گئے ، دونوں میں تمیز نہیں ہو سکتی کہ کون حرام کون حلال ہے مسجد قدیم کو تعمیر کیا یعنی گھر کوٹین دیا اور صحن مسجد کو اینٹ سے پختہ کیا اور مصلیوں کے واسطے کنواں بنوا دیا۔ اب عرض یہ ہے کہ ایسی مسجد میں نماز پڑھنا درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: صورت مذکورہ میں اُس مسجد میں نماز پڑھنا فقط جائز نہیں بلکہ اس کا آباد رکھنا فرض ہے اور سود کی مخلوط آدمی سے ٹین اور فرش اور کنواں بنانے میں مسجد میں کوئی حرج نہیں آتا بلکہ اس فرش پر نماز جائز ہے اور اس کنویں سے پینا اور وضو کرنا حلال۔ امام محمد فرماتے ہیں: بہ ناخذ مالم تعرف شیئاً حراماً بعینہ ۳۔ (اسی پر ہمارا عمل ہے جب تک ہم کسی شے کو حرام نہ جان لیں۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۴۰: از کیس اسٹریٹ صاحب گنج مرسلہ حکیم سید محمد اسمعیل صاحب ۲۸ جمادی الاخری ۱۳۳۷ھ

حضرت مولانا مولوی محمد احمد رضا خاں صاحب قبلہ مدظلہ العالی: السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ ، حضور کو ایک امر کی تکلیف دی جاتی ہے اور چونکہ یہ خدا کا کام ہے اور حضور ہم لوگوں کے آقا ہیں، حضور سے دریافت کرنا

---

۱ القرآن، ۲۴ / ۳۶ ۲ الصحیح للمسلم کتاب المساجد مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۲۰۱، مجمع الزوائد و منبع الفوائد باب بناء المساجد مطبوعہ دار الکتاب بیروت ۲/۷ ۳ فتاویٰ ہندیہ بحوالہ ظہیریہ الباب الثانی عشر فی الہدایا والاضافات مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۵/۳۴۲

Fatawa Razawiyya Volume 8

It is my official duty, I have a desire to build a mosque, and I only seek permission from you for this matter. Often, old bricks are found here, and if those bricks are found to be pure and of good quality, can a mosque be built from those bricks or not? Whatever your high opinion may be, please inform me as soon as possible by return post. May the Lord Almighty grant you a great reward.

The Answer: Respected Syed Sahib, may peace and blessings of Allah be upon you. This humble one (Faqir) has come to Jabalpur. Your kind letter reached here from Bareilly. Thoughts of such questions arise in hearts filled with respect. May the Almighty increase your guidance and blessings. Even if the bricks are old and used, as long as they are pure (paak), they can be used in a mosque. This is similar to the land of a mosque, which is essentially the mosque itself. If previously there was a house of worship for non-believers, and it is demolished to make a mosque, it is permissible. The land of the sacred mosque in Medina Tayyiba was a cemetery for polytheists; their graves were dug up, cleared of impurities like bones, etc., and then the Noble Prophet (peace and blessings be upon him) designated it as a mosque. And Allah Almighty knows best.

Problem 1141: From Haldwani, District Nainital, sent by Hafiz Asrar-ul-Haq Sahib, 15 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: A person endowed (waqf) a solid house. After a short while, the government removed that house and gave land in another place in exchange. The land received in exchange for the house was sold for fifty rupees by a few people collectively. Is selling this land permissible or impermissible?

The Answer: If a Muslim had designated that land as a mosque, then selling it is not permissible. But if it had not yet been made a mosque, and it is not suitable, and they want to sell it and build a mosque in another suitable place, then there is no harm. And Allah Almighty knows best.

Problem 1142, 1143: From the town of Dabhoi, Baroda State, sent by Haji Sharafuddin Umar Miyan, trustee of the Jamia Mosque, 21 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) In this town of Dabhoi, Baroda State, there is an Eidgah built in ancient times. Near it is a railway enclosure. Now, the railway company, with the intention of expanding this railway enclosure, wants to demolish the Eidgah and make it larger [jaber/forcible?]. Is this correct according to the noble Sharia or not? If the Muslims of Dabhoi do not give this Eidgah, there is a

fear of it being forcibly demolished by the state. What should be done in this situation? (2) In Baroda State, related to Sanghera, near the village of Maini in the forest, there is an ancient mosque from the royal era...

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मेरा आधिकारिक कर्तव्य है, एक मस्जिद बनाने की इच्छा है, और मैं केवल इस मामले में आपसे अनुमति चाहता हूँ। यहाँ अक्सर पुरानी ईंटें मिलती हैं, और यदि वे ईंटें शुद्ध और अच्छी गुणवत्ता की मिलती हैं, तो क्या उन ईंटों से मस्जिद बनाई जा सकती है या नहीं? आपकी जो भी उच्च राय हो, कृपया वापसी डाक से जल्द से जल्द सूचित करें। सर्वशक्तिमान ईश्वर आपको महान प्रतिफल प्रदान करे।

उत्तर: आदरणीय सैयद साहब, आप पर अल्लाह की शांति और कृपा हो। यह फ़क़ीर जबलपुर आया हुआ है। आपका कृपा पत्र बरेली से यहाँ पहुँचा। ऐसे प्रश्नों का विचार सम्मान से भरे हृदयों में उत्पन्न होता है। सर्वशक्तिमान आपकी तौफ़ीक़ और बरकत बढ़ाए। ईंटें भले ही पुरानी और इस्तेमाल की हुई हों, लेकिन जब तक वे शुद्ध (पाक) हैं, उन्हें मस्जिद में लगाया जा सकता है। यह मस्जिद की ज़मीन की तरह है, जो वास्तव में मस्जिद ही है। यदि पहले वहां कोई गैर-मुस्लिमों का पूजा स्थल था और उसे तोड़कर मस्जिद बनाई जाती है, तो यह जायज़ है। मदीना तैयबा की पवित्र मस्जिद की ज़मीन मुशरिकों का कब्रिस्तान थी; उनकी कब्रों को खोदकर, हड्डियों आदि की अशुद्धियों से साफ कर दिया गया और फिर हुज़ूर अनवर (उन पर सर्वोत्तम शांति और आशीर्वाद हो) ने इसे मस्जिद करार दिया। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1141: हल्द्वानी, जिला नैनीताल से, हाफ़िज़ असरार-उल-हक साहब द्वारा भेजा गया, 15 सफ़र 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति ने एक पक्का घर वक्फ़ कर दिया। कुछ समय बाद, सरकार ने उस घर को हटा दिया और उसके बदले दूसरी जगह ज़मीन दे दी। घर के बदले में मिली ज़मीन को कुछ लोगों ने मिलकर पचास रुपये में बेच दिया। क्या इस ज़मीन को बेचना जायज़ है या नाजायज़?

उत्तर: यदि किसी मुसलमान ने उस ज़मीन को मस्जिद बना दिया था, तो उसे बेचना जायज़ नहीं है। और अगर अभी तक मस्जिद नहीं बनाई गई थी और वह उपयुक्त नहीं है, और वे उसे बेचकर किसी दूसरी उपयुक्त जगह पर मस्जिद बनाना चाहते हैं, तो कोई हर्ज नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1142, 1143: कस्बा डभोई, रियासत बड़ौदा से, हाजी शरफ़ुद्दीन उमर मियां, मुतवल्ली जामा मस्जिद द्वारा भेजा गया, 21 सफ़र 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या कहते हैं: (1)

रियासत बड़ौदा के इस कस्बा डभोई में प्राचीन काल की बनी एक ईदगाह है। इसके पास रेलवे का अहाता है। अब रेलवे कंपनी वाले इस रेलवे अहाते को बढ़ाने के उद्देश्य से ईदगाह को गिराकर और जबर (ज़बरदस्ती/बड़ा?) बना देना चाहते हैं। क्या यह शरीयत-ए-मुकद्दसा में सही है या नहीं? यदि डभोई के मुसलमान यह ईदगाह न दें, तो रियासत की ओर से इसे ज़बरदस्ती गिरा दिए जाने का डर है। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? (2) रियासत बड़ौदा से संबंधित संघेरा, मौज़ा माइनी के पास जंगल में शाही ज़माने की बनी एक प्राचीन मस्जिद...

पेज 90 ऑफ़ 673

میرا فرض منصبی ہے، ایک مسجد بنانے کی خواہش صرف حضور سے اجازت اس امر کی لینی ہے، یہاں اکثر پرانی اینٹ ملتی ہے اور وہ اینٹ پاک عمدہ ملتی تو اس اینٹ سے مسجد بنا سکتے ہیں یا نہیں؟ حضور کی جیسی رائے عالی ہو اس سے بہت جلد بواپسی ڈاک مطلع فرمائیں، خداوند کریم حضور کو اجر عظیم عطا فرمائے گا۔

الجواب: جناب سید صاحب مکرم اکر مکم و علیکم السلام ورحمۃ اللہ و برکاتہ ، فقیر جبل پور آیا ہوا ہے، آپ کا عنایت نامہ بریلی سے یہاں آیا، ایسے سوالوں کا خیال ادب والے دلوں میں پیدا ہوتا ہے، مولیٰ تعالیٰ توفیق و برکات زاید دے، اینٹ اگرچہ پرانی استعمال شدہ ہے مگر جبکہ پاک ہے مسجد میں لگا سکتے ہیں جیسے زمین مسجد کہ اصل مسجد وہی ہے، پہلے کوئی مکان معبد کفار ہو اور اسے توڑ کر مسجد کیا جاتا ہے، مسجد اقدس مدینہ طیبہ کی زمین میں مشرکین کا قبرستان تھا ان کی قبریں کھدوا کر ان کی ہڈیوں وغیرہا کی نجاستوں سے صاف فرما کر حضور انور علیہ افضل الصلوٰۃ والسلام نے اسے مسجد فرمایا۔ وھو تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۴۱: از ہلدوانی ضلع نینی تال مرسلہ حافظ اسرار الحق صاحب ۱۵ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے ایک مکان پختہ وقف کر دیا، تھوڑے عرصہ کے بعد وہ مکان گورنمنٹ نے اٹھا دیا، اس مکان کے بدلے دوسری جگہ زمین دے دی، جو زمین مکان کے عوض میں ملی تھی وہ چند شخص جمع ہو کر کے مبلغ پچاس روپے کو فروخت کر دی گئی، آیا زمین کا بیچ کرنا جائز ہے یا نا جائز ہے؟

الجواب: وہ زمین اگر مسلمان نے مسجد کر دی تو اسے بیچنا جائز نہیں، اور اگر ہنوز ابھی مسجد نہ کی تھی اور وہ مناسب نہیں اسے بیچ کر دوسری مناسب جگہ مسجد بنانا چاہتے ہیں تو حرج نہیں واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۴۲ ، ۱۱۴۳: از قصبہ ڈبھوئی ریاست بڑودہ مرسلہ حاجی شرف الدین عمر میاں متولی جامع مسجد ۲۱ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں کہ: (۱) اس قصبہ ڈبھوئی ریاست بڑودہ میں ایک عید گاہ قدیم زمانے کی بنی ہوئی ہے، اس کے نزدیک ریل کا احاطہ ہے، اب ریلوے کمپنی والے اس ریل کے احاطے کو بڑھانے کی غرض سے عید گاہ کو گرا کر اور جابر بنادینا چاہتے ہیں، آیا یہ شرع شریف میں درست ہے یا نہیں؟ اگر مسلمان ڈبھوئی اس عید گاہ کو نہ دیں تو ریاست کی جانب سے جبراً گرا دینے کا اندیشہ ہے اس حالت میں کیا کیا جائے؟ (۲) ریاست بڑودہ متعلقہ سنگھیراموضع مائنی کے قریب جنگل میں ایک مسجد قدیم شاہی زمانے کی بنی ہوئی اس

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

...is currently in a demolished state. In this mosque, several valuable stones, arches, pillars, etc., with intricate carvings, have fallen to the ground. Hindus and others in that area who are well-off are taking them away. The condition of the Muslims in that area is not such that they can rebuild this mosque. Therefore, is it permissible to take these stones and use them in a mosque in another town? If Muslims do not take these stones, there is a risk that Hindus will take them away.

The Answer: (1) Mere apprehension is not enough. If there is actual coercion, then one can leave it in exchange for another piece of land. And Allah Almighty knows best. If the situation described is real, then Muslims can install these stones in another mosque, as explained in Rad-ul-Muhtar (as it is stated in Rad-ul-Muhtar. T). And Allah Almighty knows best.

Issue 1144: From Bombay, Bhendi Bazaar, sent by Muhammad Fazl-ur-Rahman Sadah Kar, 5 Rabi-ul-Awwal 1332 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Is sleeping in the mosque for a resident or local person, other than a Mutakif (one in Itikaf) and a traveler, absolutely Haram (forbidden), Makruh Tahrimi (highly disliked), or Makruh Tanzihi (slightly disliked)? If an outsider sleeps in the mosque with the intention of joining the morning prayer in congregation or performing Tahajjud, because staying at home makes missing these prayers likely, then is this sleeping Haram, Makruh, Tahrimi, or Tanzihi? Furthermore, is eating or drinking in the mosque for anyone other than a Mutakif and a traveler Shari'ly Haram or Mubah (permissible)? Apparently, from the narration in Ibn Majah's 'Kitab al-At'imah', permissibility is known:

Narrated by Abdullah bin Harith bin Jaz'	**It is narrated from Hazrat Abdullah bin Harith bin Jaz' that bread and meat were brought to the service of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). At that time**
عن عبدالله بن حارث بن جزء قال اتى رسول الله صلى الله تعالٰى عليه وسلم بخبز و لحم وهو فى المسجد فاكل واكلنا معه ثم	**he was in the mosque, so he ate and we ate with him, then**

F: The Hadith mentioned by the questioner citing Ibn Majah is actually a combination of two Hadiths. The original texts are as follows: (1) p. 245: We used to eat bread and

meat in the mosque during the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). (2) p. 266: We ate food with the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) in the mosque which had been roasted. We wiped our hands with pebbles, then we stood up to pray and did not perform ablution. Both Hadiths are found in 'Abwab al-At'imah' with these exact words. 12- Nazir Ahmad

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

...वर्तमान में जर्जर अवस्था में है, इस मस्जिद में कुछ कीमती पत्थर, मेहराब, खंभे आदि जिन पर नक्काशी का काम किया गया है, ज़मीन पर गिरे हुए हैं। उस क्षेत्र के हिंदू आदि जिनकी स्थिति अच्छी है, उन्हें उठा ले जाते हैं और उस क्षेत्र के मुसलमानों की स्थिति ऐसी नहीं है कि वे इस मस्जिद का पुनर्निर्माण कर सकें। इसलिए, क्या इन पत्थरों को ले जाकर किसी दूसरे शहर की मस्जिद में लगाना जायज़ है या नहीं? यदि मुसलमान इन पत्थरों को नहीं ले जाएंगे, तो डर है कि हिंदू लोग इन्हें उठा ले जाएंगे।

अल-जवाब (उत्तर): (1) केवल आशंका का ध्यान नहीं रखा जाता, यदि वास्तव में ज़बरदस्ती हो तो उसके बदले दूसरी ज़मीन लेकर छोड़ सकते हैं, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। यदि प्रश्न में वर्णित स्थिति वास्तविक है, तो मुसलमान इन पत्थरों को दूसरी मस्जिद में लगा सकते हैं जैसा कि 'रद-उल-मुहतार' में बताया गया है (जैसा कि इसे रद-उल-मुहतार में बयान किया गया है। त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1144: बॉम्बे, भिंडी बाज़ार से, प्रेषक मुहम्मद फ़ज़लुर रहमान सादा कार, 5 रबी-उल-अव्वल 1332 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: मुतकिफ़ (इतिकाफ़ करने वाला) और मुसाफ़िर (यात्री) के अलावा किसी निवासी या शहर के व्यक्ति के लिए मस्जिद में सोना पूर्णतः हराम (वर्जित) है, या मकरूह तहरीमी है, या तनज़ीही? यदि कोई बाहरी व्यक्ति मस्जिद में इस नियत से सोए कि सुबह की नमाज़ जमात के साथ मिले या तहज्जुद भी नसीब हो, क्योंकि घर पर रहने से सुबह की नमाज़ जमात के साथ या तहज्जुद नहीं मिल पाती, तो क्या यह सोना हराम है या मकरूह, तहरीमी या तनज़ीही? इसके अलावा, मुतकिफ़ और मुसाफ़िर के अलावा मस्जिद में खाना-पीना शरीयत के अनुसार हराम है या मुबाह (अनुमति प्राप्त)? ज़ाहिर है, इब्न माजा की 'किताब अल-अतिमा' के रिवायत से मुबाह (अनुमति) प्रतीत होती है:

हज़रत अब्दुल्ला बिन हारिस बिन जज़अ से रिवायत है	**हज़रत अब्दुल्ला बिन हारिस बिन जज़अ से मन्क़ूल है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की खिदमत में रोटी और गोश्त लाया गया, उस समय**
عن عبداللہ بن حارث بن جزء قال اتی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بخبز و لحم وھو فی المسجد فاکل واکلنا معہ ثم	**वह मस्जिद में थे, तो उन्होंने खाया और हमने उनके साथ खाया, फिर**

फ़: प्रश्नकर्ता ने इब्न माजा के हवाले से जिस हदीस का ज़िक्र किया है, वह वास्तव में दो हदीसों का मिश्रण है। मूल इबारतें इस प्रकार हैं: (1) पृष्ठ 245: हम रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने में मस्जिद में रोटी और गोश्त खाते थे। (2) पृष्ठ 266: हमने रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ मस्जिद में खाना खाया जो भुना हुआ था, फिर हमने अपने हाथ कंकड़ियों से पोंछे, फिर हम नमाज़ के लिए खड़े हुए और वज़ू नहीं किया। 'अबवाब अल-अतिमा' में दोनों हदीसें इन्हीं शब्दों के साथ मिली हैं। 12- नज़ीर अहमद

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

...وقت مسمار حالت میں ہے، اس مسجد میں چند قیمتی پتھر، محرابیں، کھبے وغیرہ جو نقشی کام کئے ہوئے ہیں زمین پر گرے ہوئے ہیں، اس موضع کے ہندو وغیرہ جن کی حالت اچھی ہے اٹھا کر لے جاتے ہیں اور اس موضع کے مسلمانوں کی حالت ایسی نہیں کہ اس مسجد کو پھر تعمیر کر سکیں، لہذا ان پتھروں کو لے جا کر کسی اور قصبہ کی مسجد میں لگانا جائز ہے یا نہیں؟ اگر مسلمان ان پتھروں کو نہ لے جائیں گے تو ہندو لوگوں کا ان پتھروں کو اٹھا کر لے جانے کا اندیشہ ہے۔

الجواب: (۱) محض اندیشہ کا لحاظ نہیں، واقعی جبر ہو تو اس کے عوض دوسری زمین لے کر چھوڑ سکتے ہیں، واللہ تعالیٰ اعلم۔ صورت مستفسرہ واقعی ہے تو مسلمان ان پتھروں کو دوسری مسجد میں لگا سکتے ہیں کما بینہ فی ردالمحتار (جیسا کہ اسے رد المحتار میں بیان کیا ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۴۴: از بمبئی بھنڈی بازار مرسلہ محمد فضل الرحمن سادہ کار ۵ ربیع الاول ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ سوائے معتکف اور مسافر کے مقیم یا اہل شہر کو مطلقاً مسجد میں سونا حرام ہے یا مکروہ تحریمی ہے یا تنزیہی؟ اگر بیرونی شہری نہ نیت اس کے کہ نماز صبح باجماعت ملے یا تہجد بھی نصیب ہو کیونکہ اگر گھر میں رہ کر نماز صبح باجماعت یا نماز تہجد نہیں ملتی ہے مسجد میں سوئے تو یہ سونا حرام ہے یا مکروہ یا تحریمی یا تنزیہی، نیز مسجد میں کھانا یا پینا سوائے معتکف اور مسافر کے شرعاً حرام ہے یا مباح؟ بظاہر ابن ماجہ کی کتاب الاطعمہ کی روایت سے اباحت معلوم ہوتی ہے :

عن عبداللہ بن حارث بن جزء قال

حضرت عبداللہ بن حارث بن جزء سے مروی ہے کہ رسول اللہ اتی رسول اللہ

اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی خدمت اقدس میں روٹی اور گوشت بخبز و لحم وھو فی المسجد فاکل لایا گیا، اس وقت وہ مسجد میں تھے، تو انہوں نے کھایا اور ہم واکلنا معہ ثم نے ان کے ساتھ کھایا، پھر

ف : سائل نے ابن ماجہ کے حوالے سے جو حدیث ذکر کی ہے وہ دراصل دو حدیثوں کا مجموعہ ہے، اصل عبارتیں یوں ہیں: (۱) ص ۲۴۵ : کنا ناکل علی عھد رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم فی المسجد الخبز واللحم۔ (۲) ص ۲۶۶ : اکلنا مع رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم طعاماً فی المسجد قد شوی فمسحنا ایدینا بالحصباء ثم قمنا نصلی ولم نتوضأ۔ ابواب الاطعمہ میں دونوں حدیثیں انہی الفاظ کے ساتھ ملی ہیں ۱۲۔ نذیر احمد

Volume 8 Fatawa Razawiyya

He stood and prayed, and we prayed with him, and we did not do more than wipe our hands with small stones. Explain, and may you be rewarded. You were sitting in the mosque, you ate it and we also ate meat and bread with you, then you stood and prayed and we offered prayer with you, and we did nothing except that we cleaned our hands with small stones. (T) Explain, and may you be rewarded.

Answer: Sleeping in the mosque for a person in spiritual retreat (Mu'takif) is permissible by consensus without any dislike (Karahah). For others, there are three opinions of our scholars: First, that it is absolutely just against the better way (Khilaf al-Awla):

[Arabic text]: It was corrected in al-Hindiyyah from Khizanat al-Fatawa and it was followed in Jami' al-Asbijabi as narrated by Ibn Kamal Pasha and al-Kafi in Mi'raj al-Dirayah, and the text of al-Durr in I'tikaf leans towards this. I say: In it is the Hadith of Ibn Umar (may Allah be pleased with them both).

[Urdu text]: It has been corrected in al-Hindiyyah with reference to Khizanat al-Fatawa, and Jami' al-Asbijabi has adopted this as narrated by Ibn Kamal Pasha, and al-Kafi in Mi'raj al-Dirayah; the discussion in al-Durr regarding I'tikaf also leans in this direction. I say: There is a Hadith of Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with them both) regarding this. (T)

Second, it is permissible for a traveler and forbidden for others:

[Arabic text]: And it is asserted in al-Ashbah and followed in al-Durr shortly before the chapter on Witr.

[Urdu text]: This is asserted in al-Ashbah, and it was adopted in al-Durr just before the chapter of Witr. (T)

Third, it is not permissible for anyone except a Mu'takif:

[Arabic text]: And it is asserted in al-Sirajiyyah, Jami' al-Fatawa, Munyat al-Mufti, Ghamz al-Uyun, Matn al-Wiqayah, and other reliable sources.

[Urdu text]: This has been asserted in al-Sirajiyyah, Jami' al-Fatawa, Munyat al-Mufti, Ghamz al-Uyun, Matn al-Wiqayah, and other authoritative books. (T)

And this dislike is of a prohibitive nature (Karahah Tahrimiyyah),

[Arabic text]: Because of his saying: it is forbidden and prohibition is only from what is disliked.

[Urdu text]: Because his saying is: it is forbidden from it, and...

---

1. Sunan Ibn Majah, Book of Food, Published by HM Company Karachi, p. 245 & 246. Page 92 of 673

वह खड़े हुए और नमाज़ पढ़ी और हमने उनके साथ नमाज़ पढ़ी और हमने इसके सिवा कुछ न किया कि अपने हाथ कंकड़ियों से पोंछ लिए। बयान कीजिए सवाब पाएँ। आप मस्जिद में तशरीफ़ फ़रमा थे, आपने इसे तनावल फ़रमाया (खाया) और हमने भी आपके साथ गोश्त रोटी खाई, फिर खड़े हुए नमाज़ पढ़ी और हमने आपके साथ नमाज़ अदा की, और हमने सिवाय इसके कुछ न किया कि अपने हाथ पत्थरों के साथ साफ़ किए। (त) बयान कीजिए सवाब पाएँ।

जवाब: मस्जिद में मोतकिफ़ (एतिकाफ़ करने वाले) का सोना तो बिल-इत्तेफ़ाक़ बिला-कराहत (बिना किसी नापसंदगी के) जाइज़ है और उसके अलावा दूसरों के लिए हमारे उलमा के तीन क़ौल हैं: अव्वल यह कि मुतलक़न सिर्फ़ ख़िलाफ़-ए-अव्ला (बेहतर के विपरीत) है:

[अरबी]: इसकी अल-हिन्दिया में ख़ज़ानतुल फ़तावा के हवाले से तस्हीह (पुष्टि) की गई है और जामि अल-असबीजाबी ने इसी को इख़्तियार किया जैसा कि इब्ने कमाल पाशा ने नक़ल किया और अल-काफ़ी ने मेराज-उद-दराया में, एतिकाफ़ में अल-दुर का कलाम भी इसी तरफ़ माइल (झुका हुआ) है। मैं कहता हूँ इसमें हज़रत इब्ने उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस है।

[उर्दू]: इसकी अल-हिन्दिया में ख़ज़ानतुल फ़तावा के हवाले से तस्हीह की गई है और जामि अल-असबीजाबी ने इसी को इख़्तियार किया, जैसा कि इसे इब्ने कमाल पाशा ने नक़ल किया और अल-काफ़ी ने मेराज-उद-दराया में, एतिकाफ़ में अल-दुर का कलाम भी इसी तरफ़ माइल है, मैं कहता हूँ इसमें हज़रत इब्ने उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस है। (त)

दोयम मुसाफ़िर को जाइज़ है उसके अलावा को मना,

[अरबी]: इसी पर अल-अशबाह में जज़्म (निश्चय) है और अल-दुर में बाब-उल-वित्र से थोड़ा पहले इसी को अपनाया गया है।

[उर्दू]: इसी पर अल-अशबाह में जज़्म है, अल-दुर में बाब-उल-वित्र से थोड़ा पहले इसी को इख़्तियार किया गया है। (त)

सोयम मोतकिफ़ के सिवा किसी को जाइज़ नहीं:

[अरबी]: इसी पर अल-सिराजिया, जामि-उल-फ़तावा, मुनियतुल-मुफ़्ती, ग़म्ज़-उल-उयून, मतन-उल-विक़ाया और दीगर मोतमिद किताबों में जज़्म किया गया है।

[उर्दू]: सिराजिया, जामि-उल-फ़तावा, मुनियतुल-मुफ़्ती, ग़म्ज़-उल-उयून, मतन-उल-विक़ाया और दीगर (अन्य) मोतमिद किताबों में इसी पर जज़्म किया गया है। (त)

और यह कराहत, कराहत-ए-तहरीम (निषिद्ध के निकट नापसंदगी) है,

[अरबी]: क्योंकि उनका कहना है: इससे मना किया गया है और मना करना सिर्फ़ मकरूह से ही होता है।

[उर्दू]: क्योंकि उसका क़ौल है: इससे मना किया गया है और...

---

1. सुनन इब्ने माजा, अबवाब-उल-अतअम, एच.एम. कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 245 और 246। पृष्ठ 92 / 673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

قام فصلی و صلینا معه ولم نزد علی ان مسحنا ایدینا بالحصباء' بینوا توجروا۔ آپ مسجد میں تشریف فرما تھے، آپ نے اسے تناول فرمایا اور ہم نے بھی آپ کے ساتھ گوشت روٹی کھائی، پھر کھڑے ہوئے نماز پڑھی اور ہم نے آپ کے ساتھ نماز ادا کی، اور ہم نے سوائے اس کے کچھ نہ کیا کہ اپنے ہاتھ پتھروں کے ساتھ صاف کئے۔ ت) بینوا توجروا۔

الجواب: مسجد میں معتکف کو سونا تو بالاتفاق بلا کراہت جائز ہے اور اس کے غیر کے لئے ہمارے علماء کے تین قول ہیں: اول یہ کہ مطلقاً صرف خلافِ اولیٰ ہے:

صححه في الهنديه عن خزانة الفتاوی ومشی علیه في جامع الاسبیجابی کما نقله ابن کمال باشا والکافی في معراج الدرایة والیه یمیل کلام الدر في الاعتکاف قلت وفیه حدیث ابن عمر رضی الله تعالی عنهما۔

اس کی ہندیہ میں خزانہ الفتاویٰ کے حوالے سے تصحیح کی ہے اور جامع الاسبیجابی نے اسی کو اختیار کیا، جیسا کہ اسے ابن کمال پاشا نے نقل کیا اور کافی نے معراج الدرایہ میں، اعتکاف میں در کا کلام بھی اسی طرف مائل ہے، میں کہتا ہوں اس میں حضرت ابن عمر رضی اللہ عنہما کی حدیث ہے۔ (ت)

دوم مسافر کو جائز ہے اس کے غیر کو منع،

وبه جزم في الاشباه وعلیه مشی في الدر قبیل باب الوتر۔ اسی پر اشباہ میں جزم ہے، در میں باب الوتر سے تھوڑا پہلے اسی کو اختیار کیا ہے۔ (ت)

سوم معتکف کے سوا کسی کو جائز نہیں:

وبه جزم في السراجية وفی جامع الفتاوی ومنية المفتی وغمز العيون ومتن الوقاية وغيرها من المعتمدات۔ سراجیہ ، جامع الفتاویٰ ، منیۃ المفتّی، غمز العیون، متن الوقایہ اور دیگر کتب میں اسی پر جزم کیا گیا ہے۔ (ت)

اور یہ کراہت کراہت تحریم ہے،

لقوله يمنع منه وانما المنع عن المكروه کیونکہ اس کا قول ہے: اس سے منع کیا گیا ہے اور

---

1 سُنن ابن ماجہ ابواب الاطعمہ مطبوعہ ایچ ایم کمپنی کراچی ص ۲۴۵ و ۲۴۶ Page 92 of 673

[Arabic]: It is prohibited (tahrīman), but as for the dislike that is tanzihi (merely offensive), it coexists with permissibility, as stated in Radd al-Muhtar and other works. | [Urdu]: Prohibition arises from Makruh Tahrimi; Makruh Tanzihi coexists with permissibility, as mentioned in Radd al-Muhtar etc. (T)

I say: The investigated matter is that when permitting and prohibiting factors combine, the prohibiting factor takes precedence, and rulings change with the change of times. "He who does not know the people of his time is ignorant." (T) And here the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) has stated a universal principle through which the ruling on all these particulars becomes clear. The Messenger of Allah (Almighty, peace and blessings be upon him) says:

[Arabic]: "Whoever hears a man searching for a lost item in the mosque, let him say: 'May Allah not return it to you, for mosques were not built for this.'" Narrated by Muslim from Abu Huraira (may Allah be pleased with him). | [Urdu]: Whoever hears someone enquiring about their lost property in the mosque, it is obligatory for them to say: "May Allah not let you find your lost item; mosques were not built for this purpose." Muslim narrated it from Abu Huraira (may Allah be pleased with him). (T)

In another narration of the same Hadith:

[Arabic]: "When you see someone buying or selling in the mosque, say: 'May Allah not grant profit to your trade.'" Narrated by Tirmidhi, who declared it authentic, and by Hakim from him (may Allah be pleased with him). | [Urdu]: When you see someone engaged in buying and selling in the mosque, say: "May Allah not grant profit in your transaction." Tirmidhi narrated it and called it authentic, and Hakim narrated it from Abu Huraira (may Allah be pleased with him). (T)

And it is evident that mosques were not built for sleeping, eating, or drinking. Therefore, those not in I'tikaf are not permitted to perform these acts therein. Without a doubt, if the door to these actions were opened, given the corruption of the times and hearts being devoid of respect and awe, mosques would turn into common meeting places and their sanctity would be violated. "Everything that leads to a forbidden act is itself forbidden." (T) If someone wishes to sleep in the mosque with the intention of Tahajjud or the morning congregational prayer, what is the difficulty for them?

1 Sahih Muslim, Chapter on the prohibition of searching for lost property in the mosque, etc., printed by Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/210. 2 Jami' al-Tirmidhi, Chapters on sales, Chapter on the prohibition of selling in the mosque, printed by Amin Company Kitabkhana Rashidiya, Delhi, 1/158.

[अरबी]: यह हराम (तहरीमन) है, लेकिन जहाँ तक मकरूह तंज़ीही (हल्की नापसंदगी) की बात है, तो वह जायज़ होने के साथ हो सकती है, जैसा कि रद अल-मुह्तार आदि में है। | [उर्दू]: मनाही मकरूह तहरीमी से होती है; मकरूह तंज़ीही तो जायज़ होने के साथ जमा हो जाती है जैसा कि रद अल-मुह्तार वगैरह में है। (त)

मैं कहता हूँ: शोध यह है कि जब अनुमति और मनाही एक साथ हों, तो मनाही को प्राथमिकता दी जाएगी और समय के बदलने से नियम बदल जाते हैं। "जो अपने समय के लोगों की स्थिति से परिचित नहीं है, वह अज्ञानी है।" (त) और हमें अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यहाँ एक सामान्य नियम बताया है जिससे इन सभी विवरणों का निर्णय स्पष्ट हो जाता है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

[अरबी]: "जो किसी व्यक्ति को मस्जिद में खोई हुई चीज़ ढूँढते हुए सुने, तो वह कहे: 'अल्लाह उसे तुम्हें वापस न दिलाए, क्योंकि मस्जिदें इसके लिए नहीं बनी हैं।'" मुस्लिम ने इसे अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। | [उर्दू]: जो किसी व्यक्ति को सुने कि वह मस्जिद में अपनी खोई हुई चीज़ के बारे में पूछ रहा है, तो उस पर वाजिब है कि उससे कहे: "अल्लाह तेरी खोई चीज़ तुझे न दिलाए; मस्जिदें इस काम के लिए नहीं बनी हैं।" इसे मुस्लिम ने अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है। (त)

इसी हदीस की दूसरी रिवायत में है:

[अरबी]: "जब तुम किसी को मस्जिद में ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करते देखो, तो कहो: 'अल्लाह तुम्हारे व्यापार में लाभ न दे।'" तिरमिज़ी ने इसे रिवायत किया और इसे सही कहा, और हाकिम ने उनसे रिवायत किया। | [उर्दू]: जब तुम किसी को मस्जिद में ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करते देखो तो कहो: "अल्लाह तेरे सौदे में फ़ायदा न दे।" इसे तिरमिज़ी ने रिवायत किया और इसे सही कहा और हाकिम ने अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया। (त)

और यह ज़ाहिर है कि मस्जिदें सोने, खाने और पीने के लिए नहीं बनी हैं, इसलिए जो एतिकाफ़ में न हो उसे इनमें इन कामों की अनुमति नहीं है। और निःसंदेह अगर इन कामों का दरवाज़ा खोला जाए, तो समय खराब है और दिल अदब और हैबत से खाली हैं, मस्जिदें चौपाल (बैठक) बन जाएँगी और

उनका अपमान होगा। "और हर वह चीज़ जो वर्जित की ओर ले जाए, वह भी वर्जित है।" (त) जो तहज्जुद या सुबह की जमात के विचार से मस्जिद में सोना चाहे, तो उसे क्या मुश्किल है?

1 सहीह मुस्लिम, मस्जिद में खोई हुई चीज़ ढूँढने की मनाही का अध्याय, आदि, नूर मुहम्मद असहु अल-मताबे, कराची द्वारा मुद्रित, 1/210। 2 जामी' अत-तिरमिज़ी, व्यापार के अध्याय, मस्जिद में बिक्री की मनाही का अध्याय, अमीन कंपनी किताबख़ाना रशीदिया, दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/158।

पृष्ठ 93/673

تحریما واما کراھۃ التنزیہ فتجامع الاباحۃ کما فی رد المحتار وغیرہ۔ | منع مکروہ تحریمی سے ہوتا ہے، کراہت تنزیہی تو اباحت کے ساتھ جمع ہو جاتی ہے جیسا کہ ردالمحتار وغیرہ میں ہے۔ (ت)

اقول: تحقیق امر یہ ہے کہ مرخص و حازر جب جمع ہوں حازر کو ترجیح ہوگی اور احکام تبدلِ زمانہ سے متبدل ہوتے ہیں ومن لم یعرف اھل زمانہ فھو جاھل (جو شخص اپنے زمانے کے لوگوں کے احوال سے آگاہ نہیں وہ جاہل ہے۔ ت) اور ہمیں رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے یہاں ایک ضابطہ کلیہ فرمایا ہے جس سے ان سب جزئیات کا حکم صاف ہو جاتا ہے فرماتے ہیں رسول اللہ تعالٰی علیہ وسلم:

من سمع رجلا ینشد ضالۃ فی المسجد فلیقل لا ردھا اللہ علیك فان المساجد لم تبن لھذا۔ رواہ مسلم عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔ | جو کسی شخص کو سنے کہ مسجد میں اپنی گم شدہ چیز دریافت کرتا ہے تو اس پر واجب ہے کہ اس سے کہے اللہ تیری گئی چیز تجھے نہ ملائے مسجدیں اس لئے نہیں بنیں، اسے مسلم نے ابو ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

اسی حدیث کی دوسری روایت میں ہے:

اذا رأیتم من یتباع فی المسجد فقولوا لا اربح اللہ تجارتك۔ رو الترمذی وصححہ والحاکم عنہ رضی اللہ تعالی عنہ۔ | جب تم کسی کو مسجد میں خرید و فروخت کرتے دیکھو تو کہو اللہ تیرے سودے میں فائدہ نہ دے۔ اسے ترمذی نے روایت کیا اور اسے صحیح کہا اور حاکم نے ابو ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

اور ظاہر ہے کہ مسجدیں سونے۔ کھانے پینے کو نہیں بنیں تو غیر معتکف کو اُن میں ان افعال کی اجازت نہیں اور بلا شبہ اگر ان افعال کا دروازہ کھولا جائے تو زمانہ فاسد ہے اور قلوب ادب و ہیبت سے عاری، مسجدیں چوپال ہو جائیں گی اور ان کی بے حرمتی ہو گی وکل ما ادی الی محظور محظور (ہر وہ شخص جو ممنوع تک پہنچائے ممنوع ہو جاتی ہے۔ ت) جو بخیالِ تہجد یا جماعت صبح مسجد میں سونا چاہے تو اسے کیا مشکل ہے

1 صحیح مسلم باب النہی عن نشد الضالۃ فی المسجد الخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۱۰/۱ 2 جامع الترمذی ابواب البیوع باب النہی عن البیع فی المسجد مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشید یہ دہلی ۱۵۸/۱

Fatawa Razawiyya Volume Eight

If one makes the intention (niyyah) for I'tikaf, there is no harm or difficulty; one phrase is added. And sleeping becomes permissible by consensus. In Munyah al-Mufti, then Ghamz al-Uyun, Sirajiyya, Hindiyya, and then Radd al-Muhtar, it is stated:

(Arabic)	(English Translation)
"When he intends that, it is appropriate for him to intend I'tikaf, then enter (the mosque), and mention Allah Almighty according to what he intended or pray, then do what he wishes 1. And Allah Almighty knows best."	"When one intends to eat or drink, one should make the intention for I'tikaf and then enter the mosque. Then, one should engage in the remembrance (dhikr) of Allah Almighty according to one's intention or offer prayers, then do whatever one wishes there. And Allah Almighty knows best (T)."

Such eating and drinking in the mosque that pollutes it is absolutely impermissible even for a Mu'takif (one in I'tikaf). In Radd al-Muhtar, the chapter on I'tikaf states:

(Arabic)	(English Translation)
"Apparently, eating and drinking are like sleeping, as long as they do not occupy the mosque space (unnecessarily) or pollute it, because cleaning the mosque is mandatory as commanded 2."	"It is evident that eating and drinking, as long as it does not soil the mosque or preoccupy the mosque's space, is like sleeping because maintaining the cleanliness of the mosque is extremely necessary as mentioned before. (T)"

Similarly, bringing so much food into the mosque that it occupies the prayer space is absolutely forbidden. When free from these two issues, it is permissible by consensus for a Mu'takif without any dislike. For a non-Mu'takif, the same debates and differences will apply. For us, the noble supreme rule is sufficient: "Indeed, mosques were not built for this" (Mosques are not built for this purpose - T). For voluntary (Nafl) I'tikaf, neither fasting is a condition nor a long duration is required; just intention is enough, however long one stays, and this is what is fatwa given upon (T). So, what is the need to fall into differences? "And whatever is closer to etiquette (Adab) is more beloved, and what is more beloved is more obligatory. We ask Allah for good success (Tawfiq)" (What is closer to etiquette is more preferred and necessary; we ask Allah for the success of doing good - T).

Regarding the Hadith of Ibn Majah, it is a specific event (waqi'ah-e-ayn), and scholars agree that specific events do not have general application. It is possible that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and the Noble Companions (may Allah be pleased with them) were in I'tikaf at that time, and the Companion's purpose here was not to state the ruling on eating, but rather "what fire has touched" (i.e., food cooked with fire - T).

1 Radd al-Muhtar, Chapter on I'tikaf, published by H.M. Saeed Company Karachi, 246/2 2 Radd al-Muhtar, Chapter on I'tikaf, published by H.M. Saeed Company Karachi, 246/2

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

एतिकाफ़ की नीयत कर ले तो कोई हर्ज नहीं, कोई तकलीफ़ नहीं, एक इबारत बढ़ जाती है। और सोना सर्वसम्मति से जायज़ हो जाता है, मुनिया अल-मुफ्ती, फिर ग़मज़ अल-उयून और सिराजिया फिर हिंदिया फिर रद अल-मुह्तार में है:

(अरबी)

"जब वह ऐसा करने का इरादा करे, तो उसे एतिकाफ़ की नीयत करनी चाहिए, फिर (मस्जिद में) प्रवेश करना चाहिए, और अपनी नीयत के अनुसार अल्लाह सर्वशक्तिमान का ज़िक्र करना चाहिए या नमाज़ पढ़नी चाहिए, फिर जो चाहे करना चाहिए 1. और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे अच्छा जानता है।"

(हिंदी अनुवाद)

"जब खाने-पीने का इरादा करे, तो एतिकाफ़ की नीयत करे, फिर मस्जिद में दाखिल हो जाए। फिर अल्लाह तआला का ज़िक्र नीयत के मुताबिक करे या नमाज़ पढ़े, फिर वहाँ जो चाहे करे, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।"

मस्जिद में ऐसा खाना-पीना जिससे वह गंदी हो, पूरी तरह नाजायज़ है, भले ही वह एतिकाफ़ करने वाला (मोतकिफ़) हो। रद अल-मुह्तार, एतिकाफ़ के अध्याय में है:

(अरबी)

"जाहिर है कि खाना-पीना सोने की तरह है जब तक कि यह मस्जिद को (अनावश्यक रूप से) न घेरे और उसे गंदा न करे, क्योंकि मस्जिद की सफ़ाई अनिवार्य है जैसा कि आदेश दिया गया है 2।"

(हिंदी अनुवाद)

"ज़ाहिर यही है कि खाना-पीना जबकि मस्जिद को गंदा न करे और न मस्जिद को घेरे रहे, तो यह सोने की तरह है क्योंकि मस्जिद की सफ़ाई का ख्याल रखना निहायत ही ज़रूरी है जैसा कि पहले बताया गया। (त)"

इसी तरह इतना अधिक खाना मस्जिद में लाना कि नमाज़ की जगह घिर जाए, पूरी तरह मना है। और जब इन दोनों बातों से खाली हो तो मोतकिफ़ (एतिकाफ़ करने वाले) के लिए सर्वसम्मति से बिना किसी नापसंदगी के जायज़ है। और जो मोतकिफ़ नहीं हैं, उनके लिए वही बहसें और मतभेद लागू होंगे। हमारे लिए पाक इर्शाद का वह व्यापक नियम पर्याप्त है कि "बेशक मस्जिदें इसके लिए नहीं बनाई गईं" (मस्जिदें इस खातिर नहीं बनाई जातीं - त)। नफ़्ल एतिकाफ़ के लिए न रोज़ा शर्त है और न ही लंबे समय की आवश्यकता है, केवल नीयत पर्याप्त है, जितनी देर भी ठहरे, इसी पर फ़तवा है (त)। तो मतभेद में पड़ने की क्या ज़रूरत? "और जो अदब (शिष्टाचार) के अधिक निकट हो वही

अधिक प्रिय है, और जो अधिक प्रिय है वही अधिक आवश्यक है। हम अल्लाह से अच्छी सफलता (तौफ़ीक़) की प्रार्थना करते हैं।" (जो अदब के ज़्यादा करीब हो वही ज़्यादा पसंदीदा और वाजिब होता है, अल्लाह तआला से हुस्न-ए-तौफ़ीक़ का सवाल है - त)।

इब्ने माजाह की हदीस की बात है, तो वह एक विशिष्ट घटना है और विद्वान सर्वसम्मति से स्पष्ट करते हैं कि विशिष्ट घटनाओं का सामान्य अनुप्रयोग नहीं होता। संभव है कि हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) उस समय एतिकाफ़ में हों और सहाबी का यहाँ खाने का मसला बयान करना मक़सद नहीं था, बल्कि यह कि "जिसे आग ने छुआ हो" (यानी आग पर पका हुआ भोजन - त)।

1 रद अल-मुह्तार, बाब अल-एतिकाफ़, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 246/2 2 रद अल-मुह्तार, बाब अल-एतिकाफ़, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 246/2

पृष्ठ 94 का 673

اعتقاف کی نیت کرلے کچھ حرج نہیں، کچھ تکلیف نہیں، ایک عبارت بڑھتی ہے۔ اور سونا بالاتفاق جائز ہوا جاتا ہے، منیہ المفتی پھر غمز العیون اور سراجیہ پھر ہندیہ پھر ردالمحتار میں ہے:

(عربی) **(اردو ترجمہ)**

واذا اراد ذلك ینبغی ان ینوی الاعتکاف فیدخل فیذکر اللہ تعالٰی بقدر مانوی اویصلی ثم یفعل ماشاء 1۔ واللہ تعالٰی اعلم

جب ارادہ کرے کھانے پینے کا، تو اعتکاف کی نیت کرے، پھر مسجد میں داخل ہو جائے۔ پس اللہ تعالٰی کا ذکر نیت کے مطابق کرے یا نماز پڑھے، پھر وہاں جو چاہے کرے، واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسجد میں ایسا اکل و شرب جس سے اس کی تلوث ہو مطلقاً نا جائز ہے اگر چہ معتکف ہو، ردالمحتار باب الاعتکاف میں ہے:

(عربی) **(اردو ترجمہ)**

الظاھر ان مثل النوم الاکل والشرب اذا لم یشغل المسجد ولم یلوثہ لان تنظیفہ واجب کما امر 2۔

ظاہر یہی ہے کہ کھانا پینا جبکہ مسجد کو ملوث نہ کرے اور نہ مسجد کو مشغول رہے تو یہ سونے کی طرح ہے کیونکہ مسجد کی نظافت کا خیال نہایت ہی ضروری ہے جیسا کہ گزرا۔ (ت)

اسی طرح اتنا کثیر کھانا مسجد میں لانا کہ نماز کی جگہ گھیرے مطلقاً ممنوع ہے، اور جب ان دونوں باتوں سے خالی ہو تو معتکف کو بالاتفاق بلا کراہت جائز ہے اور غیر معتکف میں وہی مباحث و اختلاف عائد ہوں گے اور ہمیں ارشاد اقدس کا وہ ضابطہ کلیہ کافی ہے کہ ان المساجد لم تبن لھذا (مساجد اس خاطر نہیں بنائی جاتیں۔ ت) اعتکاف نفل کے لئے نہ روزہ شرط ہے نہ طول

مدت درکار، صرف نیت کافی ہے، جتنی دیر بھی ٹھہرے بہ یفتی (اسی پر فتویٰ ہے۔ت) تو اختلاف میں پڑنے کی کیا حاجت، و ما کان اقرب الی الادب فھو الاحب فھو الا حب الاوجب نسأل اللہ حسن التوفیق (جو ادب کے زیادہ قریب ہو وہی زیادہ پسندیدہ اور واجب ہوتا ہے، اللہ تعالیٰ سے حسن توفیق کا سوال ہے۔ت)

رہی حدیث ابن ماجہ، وہ ایک واقعہ عین ہے اور علماء بالاتفاق تصریح فرماتے ہیں کہ وقائع عین کے لئے عموم نہیں ہوتا ممکن کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و صحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم اس وقت معتکف ہوں اور صحابی کو یہاں مسئلہ اکل بیان کرنا مقصود نہیں بلکہ یہ کہ ما مستہ النار (وہ چیز جسے آگ چھو لے۔ ت)

1 ردالمحتار باب الاعتکاف مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۲۴۶ 2 ردالمحتار باب الاعتکاف مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۲۴۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

...is not a cause for ablution (Wudu); moreover, action and speech are preferable to saying, and intention is superior to sale. And Allah Almighty knows best.

Issue 1125: From Faizabad, Manupura Mosque, sent by Sheikh Akbar Ali Muazzin and Maulvi Abdul Ali, 9 Rabi al-Akhar 1346 AH. Is it permissible for those who come for the Urs to stay in the mosque, use the prayer mats etc., eat food there, talk about worldly affairs, and recite poetry?

Answer: It is not permissible to turn a mosque into a community hall (Chaupal). And Allah Almighty knows best.

Issue 1126: From Gondal, Kathiawar, sent by Seth Abdul Sattar Sahib Razwi, 9 Jumada al-Ula 1346 AH. Can the Imam of the mosque and common Muslims, who have no house to live or sleep in, sleep in the mosque at any time? Also, is it permissible for Muslim travelers who visit cities nowadays and survive on donations to stay in mosques and live there like homes, sleep, eat, and drink there?

Answer: The correct and reliable view is that eating, drinking, and sleeping in the mosque are not permissible for anyone except the one in I'tikaf (spiritual retreat). If a traveler or resident wishes to do so, it is difficult to intend I'tikaf [each time]; for it, neither fasting is a condition nor is a duration fixed; Nafl (voluntary) I'tikaf can be for a single hour. It is not permissible for anyone to make the mosque a home. Those people can also stay with the intention of I'tikaf. And Allah Almighty knows best.

Issue 1127: From Bhusawal, district Khandesh, Satara locality, asked by Hafiz S. Mahboob, 7 Ramadan 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding those who engage in nonsense, absurdities, and mutual abuse in front of common and special people in the main mosque or its courtyard? What is the ruling for such people? Please explain and be rewarded.

Answer: Such people are sinners and legally (Shariah-wise) deserve punishment (Tazir), but who can give punishment here? Do at least this much that they should be turned out of the mosque. And Allah Almighty knows best.

Issue 1128: From the city behind the police station (Kotwali), asked by Maulvi Badi-uz-Zaman Sahib Bengali, 27 Shawwal 1338 AH. An Imam of a mosque who resides day and night in the room (Hujra) of the mosque and performs spiritual operations like

giving amulets (Ta'weez) etc. through Quranic verses; is it permissible for him to make such a living while staying in the mosque and take wages for it or not?

Answer: Giving an amulet in exchange for money is a sale (Bai'), and buying and selling in the mosque is impermissible. The room is part of the mosque's precincts (Fana-e-Masjid) and...

फ़तावा रज़विया खंड 8

...से वज़ू नहीं होता; इसके अलावा, अमल और तक़रीर से कौल (कहना) और बिक्री से नियत बेहतर है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1125: फ़ैज़ाबाद, मनूपुरा मस्जिद से, प्रेषक शेख़ अकबर अली मुअज़्ज़िन और मौलवी अब्दुल अली, 9 रबी-अल-आख़िर 1346 हिजरी। जो लोग उर्स में आएं, क्या वे मस्जिद में ही ठहरें और जाए-नमाज़ (प्रार्थना चटाई) आदि का उपयोग करें, वहाँ खाना खाएं, दुनिया की बातें करें, कविताएँ पढ़ें, क्या यह जायज़ है?

जवाब: मस्जिद को चौपाल बनाना जायज़ नहीं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1126: गोंडल, काठियावाड़ से, प्रेषक सेठ अब्दुल सत्तार साहिब रज़वी, 9 जमादी-उल-ऊला 1346 हिजरी। मस्जिद के इमाम और आम मुसलमान, जिनके पास रहने-सोने के लिए मकान नहीं है, क्या वे किसी भी समय मस्जिद में सो सकते हैं? इसके अलावा, क्या उन मुस्लिम यात्रियों के लिए मस्जिदों में रहना और वहां घरों की तरह रहना, सोना, खाना और पीना जायज़ है, जो आजकल शहरों में आते-जाते हैं और चंदा लेकर गुज़ारा करते हैं?

जवाब: सही और विश्वसनीय मत यह है कि मोतकिफ़ (एतिकाफ़ में बैठने वाले) के अलावा किसी के लिए भी मस्जिद में खाना, पीना और सोना जायज़ नहीं है। अगर कोई यात्री या निवासी ऐसा करना चाहता है, तो एतिकाफ़ की नियत करना कठिन है; इसके लिए न तो रोज़ा शर्त है और न ही कोई अवधि निर्धारित है, नफ़्ल एतिकाफ़ एक घड़ी का भी हो सकता है। मस्जिद को घर बनाना किसी के लिए जायज़ नहीं है। वे लोग भी एतिकाफ़ की नियत से रह सकते हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1127: भुसावल, ज़िला खानदेश, सितारा मोहल्ला से, प्रश्नकर्ता हाफ़िज़ एस. महबूब, 7 रमज़ान 1339 हिजरी। दीन के विद्वान क्या फ़रमाते हैं कि अगर कुछ लोग खास मस्जिद में या उसके आंगन में आम और खास लोगों के सामने आपस में वाहियात, फ़ुज़ूल बातें और गाली-गलौज करें, तो उन लोगों के लिए क्या हुक्म है? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: ऐसे लोग गुनहगार हैं और शरीअत के अनुसार सज़ा (ताज़ीर) के हकदार हैं, लेकिन यहाँ सज़ा कौन दे सकता है? इतना ज़रूर करें कि उन्हें मस्जिद से बाहर निकाल दें। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1128: कोतवाली के पीछे शहर से, प्रश्नकर्ता मौलवी बदीउज़्ज़माँ साहिब बंगाली, 27 शव्वाल 1338 हिजरी। मस्जिद का एक इमाम जो दिन-रात मस्जिद के कमरे (हुजरा) में रहता है और कुरान की आयतों से तावीज़-गंडा आदि का काम करता है, क्या मस्जिद में ठहरने की स्थिति में ऐसा रोज़गार करना और उससे मज़दूरी लेना जायज़ है या नहीं?

जवाब: पैसे के बदले तावीज़ देना 'बैय' (बिक्री) है, और मस्जिद में ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त (लेन-देन) नाज़ायज़ है, और हुजरा मस्जिद का बाहरी हिस्सा (फ़ना-ए-मस्जिद) है और...

पृष्ठ 95/673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

سے وضو نہیں، علاوہ بریں فعل و تقریر سے قول اور بیع سے خاطر ارجح ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۲۵: از فیض آباد مسجد منوپورہ مرسلہ شیخ اکبر علی مؤذن و مولوی عبد العلی ۹ ربیع الآخر ۱۳۴۶ھ جو لوگ عرس میں آئیں وہ مسجد ہی میں قیام کریں اور جائے نماز وغیرہ استعمال کریں، کھانا وہاں کھائیں، دنیا کی بات کریں، اشعار پڑھیں، جائز ہے؟

الجواب: مسجد کو چوپال بنانا جائز نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۲۶: از گوندل کاٹھیا واڑ مرسلہ سیٹھ عبد الستار صاحب رضوی ۹ جمادی الاولیٰ ۱۳۴۶ھ امام مسجد اور عوام مسلمین جن کے پاس رہنے سونے کو مکان نہیں وہ مسجد میں کسی وقت سو سکتے ہیں یا نہیں نیز ایسے مسلمان مسافر جو آج کل شہروں میں آیا جایا کرتے ہیں اور چندے لے کر گزارہ کرتے ہیں انھیں مسجدوں میں رکھنا اور وہ وہاں پر بطور گھروں کے رہیں، سوئیں، کھائیں پئیں، جائز ہے؟

الجواب: صحیح و معتمد یہ ہے کہ مسجد میں کھانا پینا، سونا سوا معتکف کے کسی کو جائز نہیں، مسافر یا حضری اگر چاہتا ہے تو اعتکاف کی نیت کرنا دشوار ہے، اور اس کے لئے نہ روزہ شرط نہ کوئی مدت مقرر ہے، اعتکاف نفل ایک ساعت کا ہو سکتا ہے۔ مسجد کو گھر بنانا کسی کے لئے جائز نہیں، وہ لوگ بھی بہ نیت اعتکاف رہ سکتے ہیں، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۲۷: از بھوساول ضلع خاندیس محلہ ستارہ مسئولہ حافظ ایس محبوب ۷ رمضان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ مسجد خاص میں یا صحن میں اگر واہیات لغویات اور گالی گلوچ

ایک دوسرا آپس میں جمع خاص و عام کے روبرو کرے تو ان لوگوں کے لیے کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: ایسے لوگ گنہگار ہیں اور شرعاً مستحق تعزیر، مگر تعزیر یہاں کون دے سکتا ہے، اتنا کریں کہ انھیں مسجد سے باہر کردیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۲۸: از شہر عقب کو توالی مسئولہ مولوی بدیع الزماں صاحب بنگالی ۲۷ شوال ۱۳۳۸ھ مسجد کا ایک امام جو شب و روز مسجد کے حجرہ میں رہتا ہے اور عملیات تعویذ گنڈا وغیرہ آیات قرآنی سے کرتا ہے اس کو بصورت قیام مسجد ایسا روزگار کرنا اور اس سے اجرت لینا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: عوض مالی پر تعویذ دینا بیع ہے اور مسجد میں بیع و شرا ناجائز ہے، اور حجرہ فنائے مسجد ہے اور

Volume Eight | Fatawa Razawiyya

The ruling for the precincts of a mosque is the same as the mosque itself, as stated in Al-Alamgiriyah:

Arabic Original	Urdu Translation
يبيع التعويذ فى المسجد الجامع ويكتب فى التعويذ التوراة والانجيل والفرقان و يأخذ عليها المال ادفع الى الهدية لايحل له ذلک کذا فی الکبریٰ [1]	A person sells amulets in the congregational mosque, writing in the amulets from the Torah, the Gospel, and the Criterion (Quran), and takes money for it, saying "Give me its gift (hadya)." This is not permissible for him. It is stated similarly in Al-Kubra. (T)

In the same source it is stated:

Arabic Original	Urdu Translation
قيم المسجد لا يجوز له ان يبنى حوانيت فى حد المسجد أو فى فنائه لان المسجد اذا جعل حانوتا و مسكنا تسقط حرمته و هذا لا يجوز و الفناء تبع المسجد فيكون حكمه حكم المسجد کذا فی محیط السرخسی [2]	It is not permissible for the caretaker of a mosque to build shops or residences within the boundaries of the mosque or its precincts. This is because when a mosque is turned into a shop or a residence, its sanctity is lost, and this is not permissible. The precincts are subordinate to the mosque, so its ruling is the same as the ruling for the mosque. It is stated similarly in Muhit as-Sarakhsi. (T) And Allah the Almighty knows best.

Issue 1149: 1st Dhu al-Qi'dah 1337 AH A person employed at a court stays in the mosque during his leisure time, day and night, where he sleeps and eats. This has been going on for a long time. When forbidden, he replied, "I make the intention (niyyah) for i'tikaf (spiritual retreat), so there is no harm in my staying, eating, or sleeping."

Answer: If he truly makes the intention for i'tikaf each time and spends some time in the remembrance of Allah before eating and sleeping, then there is no harm. And Allah the Almighty knows best.

Issue 1150: From Bareilly, 4th Rabi al-Awwal 1328 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: if a scholar or any person sleeps in the mosque, places a floor mat and pillow inside the mosque, eats in the mosque with a group, keeps a spittoon in the mosque, and keeps a horse's saddle and other belongings in the mosque? Is all this correct according to Sharia or not? Explain and be rewarded.

[1] Fatawa Hindiyya, Kitab al-Karahiya, Chapter 5 on Mosque Etiquette, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 5/321. [2] Fatawa Hindiyya, Kitab al-Waqf, Section 2 on Mosque Endowments, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 2/462.

मस्जिद के अहाते (फ़ना-ए-मस्जिद) के लिए मस्जिद का ही हुक्म है, जैसा कि आलमगीरिया में है:

अरबी मूल

يبيع التعويذ فى المسجد الجامع ويكتب فى التعويذ التوراة والانجيل والفرقان و يأخذ عليها المال ادفع الى الهدية لايحل له ذلک كذا فى الكبرىٰ [1]

उर्दू अनुवाद

एक व्यक्ति जामा मस्जिद में तावीज़ बेचता है, उस तावीज़ में तौरात, इंजील और क़ुरान लिखता है और उस पर पैसे लेता है, और कहता है कि "इसका हदिया मुझे दो," तो यह जायज़ नहीं है। अल-कुबरा में भी इसी तरह है। (त)

उसी में है:

अरबी मूल

قيم المسجد لا يجوز له ان يبنى حوانيت فى حد المسجد أو فى فنائه لان المسجد اذا جعل حانوتا و مسكنا تسقط حرمته و هذا لا يجوز و الفناء تبع المسجد فيكون حكمه حكم المسجد كذا فى محيط السرخسى [2]

उर्दू अनुवाद

मस्जिद के मुंतज़िम (प्रबंधक) के लिए जायज़ नहीं है कि वह मस्जिद की सीमा या उसके अहाते में दुकानें या रिहायशी जगह बनाए क्योंकि जब मस्जिद को दुकान या घर बना दिया जाता है, तो उसका सम्मान (हुरमत) नहीं रहता, और यह जायज़ नहीं है। अहाता मस्जिद के अधीन है, इसलिए उसका हुक्म भी मस्जिद वाला ही होता है। मुहीत सरख़सी में भी ऐसा ही है। (त) और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1149: 1 ज़िल-क़ादा 1337 हिजरी एक व्यक्ति कचहरी में मुलाज़िम है, वह फ़ुर्सत के समय दिन-रात मस्जिद में रहकर सोता है और खाना वग़ैरह खाता है। काफ़ी समय से ऐसा चल रहा है। मना करने पर उसने जवाब दिया कि "मैं एतिकाफ़ की नीयत कर लेता हूँ, इसलिए मेरे रुकने, खाने और सोने में कोई हर्ज़ नहीं है।"

जवाब: अगर वह वाकई हर बार एतिकाफ़ की नीयत करता है और कुछ देर अल्लाह का ज़िक्र करके खाता-सोता है, तो कोई हर्ज़ नहीं है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1150: बरेली से, 4 रबी-उल-अव्वल 1328 हिजरी दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि अगर कोई आलिम या कोई व्यक्ति मस्जिद में सोए और मस्जिद के अंदर मसनद और तकिया लगाए, और एक जमात के साथ मस्जिद में खाना खाए, मस्जिद में उगलदान रखे और घोड़े की ज़ीन और सामान वग़ैरह मस्जिद में रखे, तो क्या यह सब शरीयत के अनुसार सही है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

---

[1] फ़तावा हिंदिया, किताबुल कराहिया, अध्याय 5, मस्जिद के आदाब, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर द्वारा मुद्रित, 5/321। [2] फ़तावा हिंदिया, किताबुल वक़्फ़, अनुभाग 2, मस्जिद के वक़्फ़ के बारे में, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर द्वारा मुद्रित, 2/462।

فنائے مسجد کے لئے حکم مسجد، عالمگیریہ میں ہے:

اصل عربی	اردو ترجمہ
یبیع التعویذ فی المسجد الجامع ویکتب فی التعویذ التوراۃ والانجیل والفرقان و یأخذ علیھا المال ادفع الی الھدیۃ لایحل لہ ذلک کذا فی الکبریٰ [1]۔	ایک آدمی مسجد جامع میں تعویذ بیچتا ہے، اس تعویذ میں تورات، انجیل اور قرآن لکھتا ہے اور اس پر رقم لیتا ہے، اور یہ کہتا ہے کہ اس کا ہدیہ مجھے دے تو یہ جائز نہیں۔ الکبری میں اسی طرح ہے۔ (ت)

اُسی میں ہے:

اصل عربی	اردو ترجمہ
قیم المسجد لا یجوز لہ ان یبنی حوانیت فی حد المسجد أو فی فنائہ لان المسجد اذا جعل حانوتا و مسکنا تسقط حرمتہ و ھذا لا یجوز و الفناء تبع المسجد فیکون حکمہ حکم المسجد کذا فی محیط السرخسی [2]۔	مسجد کے منتظم کے لئے جائز نہیں کہ وہ مسجد یا فنائے مسجد میں دکانیں یا رہائش گاہ بنائے کیونکہ جب مسجد دکان یا رہائش گاہ بن جائے تو اس کا احترام برقرار نہیں رہتا، اور یہ جائز نہیں۔ فنا مسجد کے تابع ہے لہذا اس کا حکم مسجد والا ہی ہوتا ہے۔ محیط سرخسی میں یونہی ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۴۹: یکم ذیقعدہ ۱۳۳۷ھ ایک شخص کچہری میں ملازم ہے فرصت کے وقت دن ورات میں مسجد میں قیام کر کے سوتا ہے اور کھانا وغیرہ کھاتا ہے بہت عرصہ سے، اب منع کرنے پر جواب دیا کہ میں نیت اعتکاف کر لیتا ہوں کوئی حرج میرے قیام اور کھانے سونے میں نہیں ہے۔

الجواب: اگر واقعی وہ ہر بار نیت اعتکاف کرتا اور کچھ دیر ذکر الہی کر کے کھاتا سوتا ہے تو حرج نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۵۰: از بریلی ۴ ربیع الاول ۱۳۲۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر کوئی عالم اور کوئی شخص مسجد میں سوئے اور مسند تکیہ مسجد میں اندر مسجد کے لگائے اور کھانا مسجد میں ایک جماعت کے ساتھ کھائے اور اگالدان مسجد میں رکھے اور گھوڑے کی زین اور اور اسباب وغیرہ مسجد میں رکھے یہ سب شرع سے درست ہے نہیں؟ بینوا توجروا

---

1 فتاوی ہندیہ کتاب الکراہیۃ الباب الخامس فی آداب المسجد مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۳۲۱/۵

2 فتاوی ہندیہ کتاب الوقف الفصل الثانی فی الوقف فی المسجد مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۴۶۲/۲

Volume Eight Fatawa Razawiya

The Answer: Sleeping and eating in the mosque while in the state of I'tikaf is permissible. If there is a group of people performing I'tikaf, they can eat together. In any case, it is mandatory that no droplet of anything, soup, milk, etc., falls in the mosque. Apart from the state of I'tikaf, both sleeping and eating in the mosque are disliked (makruh), especially with a group, as it involves others in a disliked act. It is mentioned in Alamgiri:

[Box] Sleeping and eating in it is disliked for one who is not performing I'tikaf. (1) - Sleeping and eating in the mosque is disliked for one not in I'tikaf. (T)

If using a backrest (masnad) is out of pride, then it is forbidden even outside the mosque.

[Box] Allah the Almighty said: "Is there not in Hell an abode for the arrogant?" (2) - Allah the Almighty's command is: Is there not in Hell a place for the proud ones? (T)

And if it is not out of pride, but someone else placed it for him out of respect, keeping in mind that the Leader of the Believers, Maula Ali (may Allah honor his face), says:

[Box] None refuses an honor except a donkey. (3) - Only a donkey can refuse honor and respect. (T)

Even if one sits leaning back, it should not be in the mosque as it is against the etiquette of the mosque. However, if one is compelled due to weakness or pain, then he is excused. If a spittoon is kept for betel leaf juice, then for one not in I'tikaf, eating betel in the mosque is itself disliked. If it is kept because of a cough and phlegm comes repeatedly, then there is no harm. Items like horse saddles etc. should also not be kept in the mosque without Shari'i necessity; the mosque should not be made to resemble a house. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Indeed, mosques were not built for this" (4) (Mosques are not made for these things. T), especially if things are placed that obstruct the place of prayer, then it is strictly forbidden and a sin.

[Box] Allah the Almighty said: "And who is more unjust than he who prevents the name of Allah from being mentioned in His mosques?" (5) - Allah the Almighty's

noble saying is: And who can be more unjust than the one who prevents Allah's name from being taken in the houses of Allah? (T)

1. Fatawa Hindiyya, Kitab al-Karahiya, Chapter Five on the Etiquettes of the Mosque, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 5/321
2. Al-Quran, 39/60
3. Kanz al-Ummal, with reference to Al-Daylami, from Ibn Umar (may Allah be pleased with him), Hadith 25492, printed by Mu'assasat al-Risala Beirut, 9/155
4. Sahih Muslim, Kitab al-Masajid, Chapter on the Prohibition of Seeking Lost Items in the Mosque, printed by Nur Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/210
5. Al-Quran, 2/114

जिल्द अष्टम फतावा रज़विया

अल-जवाब: ऐतिकाफ़ की हालत में मस्जिद में सोना और खाना जायज़ है। अगर ऐतिकाफ़ करने वालों की जमात हो तो वे मिल कर खा सकते हैं। बहरहाल, यह लाज़िम है कि किसी भी चीज़, शोरबा या दूध वग़ैरा की छींट मस्जिद में न गिरे। और ऐतिकाफ़ की हालत के अलावा मस्जिद में सोना या खाना दोनों मकरूह हैं, ख़ास तौर पर एक जमात के साथ, क्योंकि यह दूसरों को भी इस मकरूह काम में शामिल करता है। आलमगीरी में है:

[Box] बिना ऐतिकाफ़ वाले के लिए इसमें (मस्जिद में) सोना और खाना मकरूह है। (1) - मस्जिद में सोना और खाना ग़ैर-मोतकिफ़ के लिए मकरूह है (त)।

अगर मसनद (तुलसी/कुशन) लगाना घमंड के कारण है, तो यह मस्जिद के बाहर भी हराम है।

[Box] अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "क्या जहन्नम में घमंडी लोगों का ठिकाना नहीं है?" (2) - अल्लाह तआला का फ़रमान है: क्या जहन्नम में तकब्बुर करने वालों का ठिकाना नहीं है। (त)

और अगर घमंड की वजह से नहीं बल्कि किसी और ने उसके लिए सम्मान के कारण रख दिया है, तो अमीर-अल-मोमिनीन मौला अली (कर्रमल्लाहु तआला वज्हहुल करीम) के इस कौल को ध्यान में रखें:

[Box] इज़्ज़त और सम्मान को ठुकराने वाला केवल गधा ही हो सकता है। (3) - इज़्ज़त और सम्मान का इनकार कोई गधा ही कर सकता है। (त)

अगर टेक लगा कर बैठ गया, तब भी यह मस्जिद में नहीं होना चाहिए क्योंकि यह मस्जिद के अदब के ख़िलाफ़ है। हाँ, अगर कमज़ोरी या दर्द की वजह से मज़बूर हो तो वह माज़ूर (मज़बूर) है। अगर पीकदान पान की पीक के लिए रखा गया है, तो ग़ैर-मोतकिफ़ के लिए मस्जिद में पान खाना स्वयं मकरूह है। और अगर खाँसी है और बलगम बार-बार आता है, तो इस उद्देश्य के लिए रखने में कोई हर्ज नहीं। और घोड़े की ज़ीन वग़ैरा सामान भी बिना शरीयत की ज़रूरत के मस्जिद में नहीं रखना चाहिए; मस्जिद को घर के समान नहीं बनाना चाहिए। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: 'बेशक मस्जिदें इन कामों के लिए नहीं बनाई गई हैं' (4) (मस्जिदें इन चीज़ों के लिए नहीं बनाई जातीं - त)। विशेष रूप से यदि ऐसी चीज़ें रखी जाएँ जिनसे नमाज़ की जगह रुकती हो, तो यह सख़्त नाज़ायज़ और गुनाह है।

[Box] अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "और उस शख़्स से बड़ा ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों में उसका नाम लिए जाने से रोके?" (5) - अल्लाह तआला का इरशादे गिरामी है: और उस शख़्स से बढ़कर कौन ज़ालिम हो सकता है जो अल्लाह के घरों में अल्लाह का नाम लेने से रोके। (त)

1. फतावा हिन्दिया, किताबुल कराहिया, बाब अल-खामिस फ़ी आदाब अल-मस्जिद, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 5/321
2. अल-कुरान, 39/60
3. कंज़ुल उम्माल, बहवाला अल-दीलमी, अज़ इब्ने उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु), हदीस 25492, मुअस्ससतुल रिसाला बैरूत, 9/155
4. सही मुस्लिम, किताबुल मसाजिद, बाब अल-نهى عن نشد الضالة فى المسجد, नूर मुहम्मद असहुत तबा कराची, 1/210
5. अल-कुरान, 2/114

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

الجواب: مسجد میں سونا، کھانا بحالتِ اعتکاف جائز ہے، اگر جماعتِ معتکف ہو تو مل کر کھا سکتے ہیں، بہرحال یہ لازم ہے کہ کوئی چیز، شوربا یا شیر وغیرہ کی چھینٹ مسجد میں نہ گرے، اور سوائے حالتِ اعتکاف مسجد میں سونا یا کھانا دونوں مکروہ ہیں خاص کر ایک جماعت کے ساتھ کہ مکروہ فعل کا اور لوگوں کو بھی اس میں مرتکب بناتا ہے۔ عالمگیری میں ہے:

یکرہ النوم والاکل فیہ لغیر المعتکف ۱ ۔ مسجد میں سونا اور کھانا غیر معتکف کے لئے مکروہ ہے (ت)

مسند لگانا اگر براہِ تکبر ہے تو یہ خارجِ مسجد بھی حرام ہے۔

قال اللہ تعالیٰ اَلَیْسَ فِیْ جَہَنَّمَ مَثْوًی لِّلْمُتَکَبِّرِیْنَ ۲ ۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے : کیا نہیں ہے جہنم میں ٹھکانہ متکبرین کا۔ (ت)

اور اگر براہِ تکبر نہیں کسی دوسرے نے اس کے لئے رکھ دی یہ اس کی خاطر سے بدیں لحاظ کہ امیر المؤمنین مولی علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ الکریم فرماتے ہیں:

لا یابی الکرامۃ الا حمار ۳ ۔ عزت و احترام کا انکار کوئی گدھا ہی کرسکتا ہے (ت)

ٹیک لگا کر بیٹھ گیا تو بھی یہ مسجد میں نہ ہونا چاہئے کہ ادبِ مسجد کے خلاف ہے، ہاں ضعف یا درد کے سبب مجبور ہو تو معذور ہے، اگالدان اگر پیک کے لئے رکھا ہے تو غیر معتکف کو مسجد میں پان کھانا خود مکروہ ہے، اور اگر کھانسی ہے بلغم بار بار آتا ہے اس غرض کے لئے رکھا تو حرج نہیں۔ اور گھوڑے کا زین وغیرہ اسباب بھی بلا ضرورت شرعیہ مسجد میں نہ رکھنا چاہئے، مسجد کو گھر کے مشابہ نہ کرنا چاہئے۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: ان

المساجد لم تبن لہذا ۴ (مساجد ان چیزوں کی خاطر نہیں بنائی جاتی۔ ت) خصوصاً اگر چیزیں رکھے جن سے نماز کی جگہ رکے تو سخت ناجائز و گناہ ہے۔

قال اللہ تعالیٰ وَ مَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْہَا اسْمُہٗ ۵ ۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد گرامی ہے: اور اس شخص سے بڑھ کر کون ظالم ہوسکتا ہے جو اللہ کے گھروں میں اللہ کا نام لینے سے روکے (ت)

۱ فتاوٰی ہندیہ کتاب الکراہیۃ الباب الخامس فی آداب المسجد مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۳۲۱/۵ ۲ القرآن ۳۹/۶۰ ۳ کنز العمال بحوالہ الدیلمی عن ابن عمر رضی اللہ عنہ حدیث ۲۵۴۹۲ مطبوعہ موسسۃ الرسالۃ بیروت ۱۵۵/۹ ۴ صحیح مسلم کتاب المساجد باب النہی عن نشد الضالۃ فی المسجد مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۱۰/۱ ۵ القرآن ۲/۱۱۴

Fatawa Razawiyyah, Volume 8

With all this, it is also obligatory to remember that in reality, if a religious scholar is a guide for the creation, a Sunni with correct beliefs, then it is strictly forbidden (haram, haram, haram) for common people to object to him, criticize his actions, or seek out his faults. This leads to severe deprivation and misfortune. Firstly, millions of issues and rulings change based on the difference in intention. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Actions are judged by intentions, and every person will get what he intended. 1 (In the box: The basis of actions is on intentions, and for every person is what he intended. (T))

The knowledge of intention is a vast and great science known only to expert scholars. Common people, unaware of the nuances, compare the actions of scholars to their own and pass judgments, thus becoming subject to "Do not judge the actions of the holy ones by your own." Look at this very issue: according to Shariah, neither fasting is a condition for I'tikaf (spiritual retreat), nor is there any specific minimum duration. Therefore, it is recommended that whenever a person enters a mosque, he should make an intention for I'tikaf. As long as he remains in the mosque, he will also receive the reward of I'tikaf. Scholars enter the mosque with the intention of I'tikaf, and now it becomes permissible for them to sleep, eat, and keep a spittoon for betel juice. Apart from this, an ignorant person has no right to object to a Sunni scholar. In a Hadith of the Messenger of Allah, the example of a scholar for the ignorant is given like a candle: it burns itself to give you light and benefit. Foolish is the one who tries to extinguish it because it's burning; he will only be left in the dark himself. Scholars should, even if they have a correct intention, avoid actions before the common people that might disturb their thoughts, as this leads to two fitnas (trials): those who are not followers might object, fall into the sin of backbiting, and be deprived of the scholar's grace; and those who are followers might use his actions as a pretext to do the same without a knowledgeable intention. A scholar is not from the "Malamatiyya" sect where there's benefit in making common people dislike him; he is on the pulpit of guidance, and there is benefit for the common people in being inclined towards him. It is mentioned in a Hadith:

The peak of wisdom after faith in Allah is showing love and friendliness to people. 2 (In the box: After faith in Allah, the greatest wisdom is to love people. (T))

In another Sahih Hadith, the Messenger of Allah says: "Give glad tidings and do not repel (them)." 3 __ (Spread love)

1. Sahih al-Bukhari, Chapter: How Revelation Started, etc., Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/2.
2. Shu'ab al-Iman, Chapter: Cheerful Countenance and Good Manner, etc., Hadith 8061, published by Dar al-Kutub al-Arabiyyah, Beirut, 6/255.
3. Sahih al-Bukhari, Book of Knowledge, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/16; Sahih Muslim, Book of Jihad, Chapter: Orders of Leaders to Delegations, etc., published by Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 2/82.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

इन सबके साथ यह भी याद रखना फ़र्ज़ है कि हकीकत में अगर कोई आलिम-ए-दीन मख्लूक का मार्गदर्शक, सही अकीदे वाला सुन्नी हो, तो आम लोगों के लिए उन पर ऐतराज़ करना, उनके कामों में नुक्ताचीनी करना और उनकी कमियाँ ढूँढना हराम, हराम, हराम है और यह सख्त महरुमी और बदनसीबी का कारण है। अव्वल तो लाखों मसले और अहकाम नीयत के फर्क से बदल जाते हैं। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

बेशक आमाल का दारोमदार नीयतों पर है और हर आदमी को वही मिलेगा जिसकी उसने नीयत की। 1 (बॉक्स में: आमाल का दारोमदार नीयतों पर है और हर शख्स के लिए वही है जिसकी उसने नीयत की। (त))

नीयत का इल्म एक बड़ा और व्यापक इल्म है जिसे केवल माहिर उलमा ही जानते हैं। आम लोग बारीकियों से वाकिफ न होकर उनके कामों की तुलना अपने कामों से करते हैं और हुक्म लगा देते हैं, और "नेक लोगों के कामों की तुलना अपने आप से मत करो" के पात्र बनते हैं। इसी मसले में देखिये शरीयत के अनुसार एतिकाफ के लिए न रोज़ा शर्त है और न ही किसी खास मुद्दत की ज़रूरत है। इसलिए मुस्तहब (पसंदीदा) है कि आदमी जब मस्जिद में जाए तो एतिकाफ की नीयत कर ले। जब तक वह मस्जिद में रहेगा, उसे एतिकाफ का सवाब भी मिलेगा। उलमा एतिकाफ की नीयत से ही मस्जिद में दाखिल होते हैं और अब उनके लिए मस्जिद में सोना, खाना और पान की पीक के लिए थूकदान रखना जायज़ होगा। इसके अलावा भी एक जाहिल को सुन्नी आलिम पर ऐतराज़ करने का कोई हक नहीं पहुँचता। रसूलुल्लाह की हदीस में जाहिल के लिए आलिम की मिसाल एक शमा (मोमबत्ती) की तरह दी गई है जो खुद जलती है और तुम्हें रोशनी और फायदा पहुँचाती है। बेवकूफ है वह जो उसके जलने के कारण उसे बुझाना चाहे, इससे वह खुद ही अंधेरे में रह जाएगा। उलमा को चाहिए कि चाहे उनकी नीयत सही हो, आम लोगों के सामने ऐसे काम न करें जिससे उनका ख्याल परेशान हो, क्योंकि इससे दो फितने (मुसीबतें) पैदा होती हैं: जो अकीदत नहीं रखते वे ऐतराज़ करेंगे, गीबत के गुनाह में पड़ेंगे और आलिम के फैज़ से महरुम रहेंगे; और जो अकीदत रखते हैं वे उनके कामों को दलील बनाकर बिना इल्मी नीयत के खुद वही काम करने लगेंगे। आलिम 'मलामतिया' फिरके से नहीं है कि आम लोगों को नफरत दिलाने में उसका फायदा हो, वह हिदायत के ऊँचे दर्जे पर है, आम लोगों का उसकी तरफ झुकाव होने में ही उनका फायदा है। हदीस में है:

अल्लाह पर ईमान के बाद सबसे बड़ी अकलमंदी लोगों के साथ मोहब्बत और भलाई करना है। 2 (बॉक्स में: अल्लाह पर ईमान के बाद सबसे बड़ी अकलमंदी लोगों के साथ मोहब्बत करना है। (त))

दूसरी सही हदीस में रसूलुल्लाह फरमाते हैं: "खुशखबरी सुनाओ और नफरत न फैलाओ" 3 __ (मोहब्बत फैलाओ)

1. सहीह अल-बुखारी, बाब: वह्य की शुरुआत कैसे हुई, कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/2
2. शुअब अल-ईमान, बाब: चेहरे की मुस्कान और अच्छी आदत, हदीस 8061, दार अल-कुतुब अल-अरबिया बेरुत, 6/255
3. सहीह अल-बुखारी, किताब अल-इल्म, कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/16; सहीह मुस्लिम, किताब अल-जिहाद, बाब: वफदों पर अमीर का हुक्म, नूर मुहम्मद असहा अल-मतबे कराची, 2/82

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

باایں ہمہ یہ بھی یاد رکھنا فرض ہے کہ حقیقۃً عالمِ دین ہادیِ خلق سُنّی صحیح العقیدہ ہو عوام کو اُس پر اعتراض اُس کے افعال میں نکتہ چینی اس کی عیب بینی حرام حرام حرام اور باعثِ سخت محرومی اور بد نصیبی ہے، اول تو لاکھوں مسائل و احکام فرقِ نیت سے متبدل ہو جاتے ہیں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

انما الاعمال بالنیات وانمالکل امرئ مانویٰ 1- (باکس میں ہے: اعمال کا مدار نیتوں پر ہے اور ہر شخص کے لئے وہی ہے جس کی اس نے نیت کی۔ (ت))

علمِ نیت ایک عظیم واسع علم ہے جسے علمائے ماہرین ہی جانتے ہیں، عوام بیچارے فرق پر مطلع نہ ہو کر ان کے افعال کو اپنی حرکات پر قیاس کرتے اور حکم لگا دیتے اور "کارِ پاکاں را قیاس از خود مگیر" کے، مورد بنتے ہیں، اسی مسئلہ میں دیکھئے شرعاً اعتکاف کے لئے نہ روزہ شرط ہے نہ کسی قدرِ مدت کی خصوصیت۔ ولہذا مستحب ہے کہ آدمی جب مسجد میں جائے اعتکاف کی نیت کرلے۔ جب تک مسجد میں رہے گا اعتکاف کا ثواب بھی پائے گا۔ علما اعتکاف ہی کی نیت سے مسجد میں داخل ہوتے ہیں اور اب اُن کو سونا، کھانا، پیک کے لئے اگالدان رکھنا روا ہوگا، اور اس سے قطع نظر بھی ہو تو جاہل کو سُنّی عالم پر اعتراض نہیں پہنچتا، رسول اللہ کی حدیث میں عالمِ بے علم کی مثال شمع سے دی ہے کہ آپ جلے اور تمہیں روشنی و نفع پہنچائے، احمق وہ جو اس کے جلنے کے باعث اسے بجھا دینا چاہے اس سے یہ خود ہی اندھیرے میں رہ جائے گا، علماء کو چاہئے کہ اگرچہ خود نیتِ صحیحہ رکھتے ہوں عوام کے سامنے ایسے افعال جن سے ان کا خیال پریشان ہو نہ کریں کہ اس سے دو فتنے ہیں جو معتقد نہیں ان کا معترض ہونا غیبت کی بلا میں پڑنا عالم کے فیض سے محروم رہنا، اور جو معتقد ہیں اُن کا اس کے افعال کو دستاویز بنا کر

بے علم نیت خود مرتکب ہونا عالم فرقہ ملامتیہ سے نہیں کہ عوام کو نفرت دلانے میں اُس کا فائدہ ہو مسندِ ہدایت پر ہے، عوام کو اپنی طرف رغبت دلانے میں اُن کا نفع ہے، حدیث میں ہے:

راس العقل بعدالایمان باللہ التودد الی الناس 2۔ (باکس میں ہے: ایمان باللہ کے بعد سب سے بڑی عقلمندی لوگوں کے ساتھ محبت کرنا ہے۔ (ت))

دوسری حدیث صحیح میں ہے رسول اللہ فرماتے ہیں: بشروا ولاتنفروا 3 __ (محبت پھیلاؤ)

1 صحیح البخاری باب کیف کان بدء الوحی الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۲ 2 شعب الایمان فصل طلاقۃ الوجہ و حسن البشر الخ حدیث ۸۰۶۱ مطبوعہ دار الکتب العربیہ بیروت ۲۵۵/۶ 3 صحیح البخاری کتاب العلم مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۶، صحیح مسلم کتاب الجہاد باب تامر الامراء علی البعوث الخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۸۲/۲

Fatawa Rizwia Volume 8

Do not spread hatred. (T) Occasionally, if there is a need for such actions, then declare your intention and explain the Shariah issue to the public. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1151: Allahabad Masjid Sadr, sent by Hafiz Abdul Hamid Sahib Fatehpuri, 16 Jamadi-ul-Ula 1331 AH. If someone in the mosque is reciting Durood and litanies or the Quran loudly, and even for those praying separately, the sound reaches their ears, causing people to forget and their thoughts to wander; in such a situation, is it permissible to forbid the one reciting loudly? That is, to ask them to recite quietly and forbid loud recitation; if they do not comply, to what extent is it permissible to forbid them? What do the scholars of religion say regarding this?

The Answer: Certainly, in such a case, forbidding him from loud recitation is not only permissible but obligatory, for it is forbidding evil (Nahi 'an al-Munkar). As for the extent, the answer is to the limit of one's power, as stated in the noble saying of the Holy Prophet (peace be upon him):

[Table] Arabic: Whoever among you sees an evil, let him change it with his hand; if he cannot, then with his tongue; and if he cannot, then with his heart, and that is the weakest of faith. Urdu: Whoever among you sees an impermissible act, it is incumbent upon him to eliminate it or stop it with his hand; if he does not have the power, then forbid it with the tongue; and if he does not have even that power, then consider it bad in the heart, and this is the lowest degree of faith. (T)

And where people are occupied with their work and no one is free to listen to the Magnificent Quran, the one reciting loudly in this case bears a double burden. First, the disruption of prayer etc. caused by the loud remembrance, and second, presenting the Magnificent Quran for disrespect. It is stated in Radd al-Muhtar:

[Table] Arabic: In al-Fath from al-Khulasah: A man is writing jurisprudence and next to him a man is reciting Quran, and listening to the Quran is not possible, then the sin is upon the reciter. And based on this, if he recites loudly... Urdu: In al-Fath from al-Khulasah: A man is writing jurisprudence and another person is reciting the Quran next to him while listening to the Quran is not possible, then the sin is now upon the reciter. Similarly, if loudly...

1. Sahih Muslim, Book of Faith, Chapter: Forbidding evil is part of faith, printed by Nur Muhammad Asahh al-Matabi, Karachi 1/51.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

नफ़रत न फैलाओ। (त) कभी-कभी ऐसे कार्यों की आवश्यकता हो तो सार्वजनिक रूप से अपनी नीयत और शरीयत का मसला लोगों को बता दे। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1151: इलाहाबाद मस्जिद सदर से प्रेषित, हाफ़िज़ अब्दुल हमीद साहब फ़तेहपुरी, 16 जमादी-उल-उला 1331 हिजरी। अगर कोई मस्जिद में तेज़ आवाज़ में दुरूद और वज़ीफ़ा या तिलावत कर रहा हो और उससे अलग होकर नमाज़ पढ़ने वालों के कानों में भी आवाज़ पहुँचती है जिससे लोग भूल जाते हैं और ध्यान भटक जाता है, तो ऐसे मौके पर तेज़ आवाज़ में ज़िक्र या तिलावत करने वाले को मना करना जायज़ है या नहीं? यानी धीरे पढ़ने को कहना और ज़ोर से पढ़ने से मना करना, अगर वह न माने तो कहाँ तक मना करना जायज़ है? इस बारे में उलेमा-ए-दीन क्या फ़रमाते हैं?

अल-जवाब: बेशक ऐसी सूरत में उसे ज़ोर से पढ़ने से मना करना न केवल जायज़ है बल्कि वाजिब है क्योंकि यह बुराई से रोकना (नही अनिल मुनकर) है। और 'कहाँ तक' का जवाब यह है कि शक्ति की सीमा तक, जैसा कि हुज़ूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के इस पवित्र कथन में है:

[टेबल] अरबी: तुम में से जो कोई बुराई देखे, तो उसे अपने हाथ से बदल दे, अगर इसकी शक्ति न हो तो अपनी जुबान से, और अगर इसकी भी शक्ति न हो तो अपने दिल से, और यह ईमान का सबसे कमजोर हिस्सा है। उर्दू: तुम में से जो कोई भी नाजायज़ बात देखे उस पर लाज़िम है कि अपने हाथ से उसे मिटा दे, बंद कर दे, और अगर इसकी ताक़त न पाए तो ज़बान से मना करे, और अगर इसकी भी ताक़त न हो तो दिल से उसे बुरा जाने, और यह सब में कमतर दर्जा ईमान का है। (त)

और जहाँ लोग अपने कामों में व्यस्त हों और महान क़ुरआन सुनने के लिए कोई खाली न हो, वहाँ ज़ोर से तिलावत करने वाले पर इस सूरत में दोहरा गुनाह है। एक तो वही नमाज़ वगैरह में खलल डालना जो तेज़ ज़िक्र में था, दूसरा महान क़ुरआन को अपमान के लिए पेश करना। रद-उल-मुह्तार में है:

[टेबल] अरबी: अल-फ़तह में अल-ख़ुलासा से उद्धृत है: एक व्यक्ति फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) लिख रहा है और उसके बगल में एक व्यक्ति क़ुरआन पढ़ रहा है और क़ुरआन सुनना संभव नहीं है, तो पाप पढ़ने वाले पर है, और इसी आधार पर यदि वह ऊँची आवाज़ में पढ़े... उर्दू: फ़तह में ख़ुलासा से है कि एक

आदमी फ़िक़्ह लिख रहा है और उसके पास दूसरा व्यक्ति क़ुरआन की तिलावत कर रहा है जबकि क़ुरआन सुनना मुमकिन नहीं तो अब गुनाह तिलावत करने वाले पर है। इसी तरह अगर ऊँची...

1. सहीह मुस्लिम, किताबुल ईमान, बाब: बुराई से रोकना ईमान का हिस्सा है, नूर मोहम्मद असहि अल-मत़ाबे, कराची 1/51.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

نفرت نہ پھیلاؤ۔ ت) احیاناً ایسے افعال کی حاجت ہو تو اعلان کے ساتھ اپنی نیت اور مسئلہ شریعت عوام کو بتادے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۵۱: الہ آباد مسجد صدر مرسلہ حافظ عبدالحمید صاحب فتجپوری ۱۶ جمادی الاولی ۱۳۳۱ھ اگر کوئی مسجد میں بآواز بلند درود و وظائف خواہ تلاوت کررہا ہو اس سے علیحدہ ہو کر نماز پڑھنے میں بھی آواز کانوں میں پہنچتی ہے لوگ بھول جاتے ہیں خیال بھٹک جاتا ہے، ایسے موقع پر ذکر بالجہر تلاوت کرنے والے کو منع کرنا جائز ہے یا نہیں؟ یعنی آہستہ پڑھنے کو کہنا بالجہر سے منع کرنا، اگر نہ مانے تو کہاں تک ممانعت کرنا جائز ہے؟ اس کے متعلق کیا ارشاد فرماتے ہیں علمائے دین؟

الجواب: بیشک ایسی صورت میں اسے جہر سے منع کرنا فقط جائز نہیں بلکہ واجب ہے کہ نہی عن المنکر ہے اور کہاں تک کا جواب یہ کہ تاحد قدرت جس کا بیان اس ارشادِ اقدس حضور سیّد عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں ہے:

[ٹیبل] عربی: من رأی منکم منکراً فلیغیرہ بیدہ فإن لم یستطع فبلسانہ فإن لم یستطع فبقلبہ وذلك اضعف الایمان ۱ اردو: جو تم میں کوئی ناجائز بات دیکھے اس پر لازم ہے کہ اپنے ہاتھ سے اسے مٹادے بند کردے، اور اس کی طاقت نہ پائے تو زبان سے منع کرے، اور اگر اس کی بھی طاقت نہ ہو تو دل سے اسے بُرا جانے، اور یہ سب میں کمتر درجہ ایمان کا ہے۔ (ت)

اور جہاں لوگ اپنے کاموں میں مشغول ہوں اور قرآن عظیم کے استماع کے لئے کوئی فارغ نہ ہو وہاں جہراً تلاوت کرنے والے پر اس صورت میں دوہرا وبال ہے، ایک تو وہی خلل اندازی نماز

وغیرہ کہ ذکر جہر میں تھا، دوسرے قرآن عظیم کو بے حرمتی کے لئے پیش کرنا۔ ردالمحتار میں ہے:

[ٹیبل] عربی: في الفتح عن الخلاصة رجل يكتب الفقه وبجنبه رجل يقرأ القرآن فلا يمكن استماع القرآن فالاثم على القارى ، وعلى هذا الوقرأ على اردو: فتح میں خلاصہ سے ہے ایک آدمی فقہ لکھ رہا ہے اور اس کے پاس دوسرا شخص قرآن کی تلاوت کررہا ہے جبکہ قرآن کا سننا ممکن نہیں تو اب گناہ تلاوت کرنے والے پر ہے۔ اسی طرح اگر اونچی

۱ صحیح مسلم کتاب الایمان باب بیان کون النہی عن المنکر من الایمان مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۵۱

Fatawa Razviya, Volume 8

[Table 1] (Arabic): Reading on the roof while people are sleeping is a sin, meaning because it becomes a reason for them to turn away from listening to it as it harms them by waking them up. (Radd al-Muhtar 1) (Urdu Translation): If someone recites in a place where people are sleeping, the reciter will be a sinner because he caused these people to turn away from listening to the Quran, as it would cause a disturbance in their sleep. (T)

[Table 2] (Arabic): In the same source from Ghunyah: It is mandatory for the reciter to respect it by not reciting it in markets and places of occupation. If he recites it there, he is the one who disregards its sanctity, so the sin is upon him and not upon those who are occupied, to avoid hardship. (Radd al-Muhtar 2) - And Allah Almighty knows best. (Urdu Translation): It is mandatory for the one reciting to show respect by not reciting in markets and such places where people are busy. If he recites in such a place, then he is the one finishing the respect of the Quran, therefore, in view of avoiding hardship, this reciter will be a sinner; the busy people will not be sinners. (T) And Allah Almighty knows best.

Problem 1152: What do the scholars of religion and muftis of the clear Shariah say regarding this issue: that one or more persons are praying, or have come to pray after the congregation, and one or several people are reciting the Quran or a litany (wazifa) in a loud voice such that even the mosque is echoing. What should be the ruling in this situation because sometimes a person's thought changes and they forget the prayer? The Answer: Where someone is praying or sleeping such that the sound of reciting would cause a disturbance in their prayer or sleep, it is forbidden to recite the Holy Quran or a litany in such a voice. If one was alone in the mosque and reciting loudly, the moment someone comes for prayer, they should immediately become quiet/low-voiced. And Allah Almighty knows best.

Problem 1153: From Nanpara State, Bahraich District, Mohalla Top Khana, sent by Munshi Hamid Ali Khan Sahib, 27 Ramadan-ul-Mubarak 1336 AH. If Zaid arrives at a place as a traveler and there is no person there known to him such that...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Recitation, Printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/203
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Recitation, Printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/203

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[तालिका 1] (अरबी): छत पर पढ़ना जबकि लोग सो रहे हों गुनाह है, यानी क्योंकि यह उनके कुरआन सुनने से विमुख होने का कारण बनता है क्योंकि यह उन्हें जगाकर तकलीफ़ पहुँचाता है। (रद्द अल-मुह्तार 1) (उर्दू अनुवाद): यदि कोई ऐसी जगह पढ़ता है जहाँ लोग सो रहे हों, तो पढ़ने वाला गुनहगार होगा क्योंकि इस व्यक्ति ने उनके कुरआन सुनने से विमुख होने का कारण पैदा किया, इस वजह से कि उनकी नींद में खलल पड़ेगा। (त)

[तालिका 2] (अरबी): उसी में 'गुन्या' से है: पढ़ने वाले पर इसका सम्मान करना अनिवार्य है कि वह इसे बाज़ारों और व्यस्तता वाले स्थानों पर न पढ़े। यदि उसने वहाँ पढ़ा, तो वही इसकी गरिमा को नष्ट करने वाला होगा, अतः गुनाह उस पर होगा न कि व्यस्त लोगों पर, ताकि तंगी को दूर किया जा सके। (रद्द अल-मुह्तार 2) - और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (उर्दू अनुवाद): तिलावत करने वाले पर यह एहतराम लाज़िम है कि वह बाज़ार में और ऐसे मकामात पर न पढ़े जहाँ लोग मशगूल हों, अगर वो ऐसे मकाम पर पढ़ता है तो वो कुरआन का एहतराम खत्म करने वाला है लिहाजा दफ़ा-ए-हरज (तंगी दूर करने) के पेश-ए-नज़र ये पढ़ने वाला गुनहगार होगा, मशगूल होने वाले लोग गुनहगार न होंगे। (त) वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1152: क्या फ़रमाते हैं उलमा-ए-दीन व मुफ़्तियान-ए-शरह-ए-मतीन इस मसले में कि एक या ज़ियादा शख्स नमाज़ पढ़ रहे हैं या बाद जमात नमाज़ पढ़ने आए हैं और एक या कई लोग बा-आवाज़-ए-बुलंद कुरआन या वज़ीफ़ा यानी कोई कुरआन कोई वज़ीफ़ा पढ़ रहे हैं यहाँ तक कि मस्जिद भी गूँज रही है तो इस हालत में क्या हुक्म होना चाहिए क्योंकि बाज़ दफ़ा आदमी का ख्याल बदल जाता है और नमाज़ भूल जाता है? अल-जवाब: जहाँ कोई नमाज़ पढ़ता हो या सोता हो कि आवाज़ पढ़ने से उसकी नमाज़ या नींद में खलल आएगा वहाँ कुरआन मजीद व वज़ीफ़ा ऐसी आवाज़ से पढ़ना मना है, मस्जिद में जब अकेला था और बा-आवाज़ पढ़ रहा था जिस वक्त कोई शख्स नमाज़ के लिए आए फ़ौरन आहिस्ता हो जाए। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1153: अज़ रियासत नानपारा ज़िला बहराइच मोहल्ला तोपखाना मुरसला मुंशी हामिद अली खान साहब, 27 रमज़ानुल मुबारक 1336 हिजरी। ज़ैद अगर मुसाफ़िराना तौर पर किसी मकाम पर वारिद हुआ और वहाँ उसका कोई ऐसा शख्स शिनासा (जानने वाला) न हो कि जिसके..

1. रद्द अल-मुह्तार, फ़स्ल फ़िल किरअत, मतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/203

2. रद्द अल-मुह्तार, फ़स्ल फ़िल किरअत, मतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/203

पेज 100 ऑफ़ 673

السطح والناس نیام یأثم اه ای لانه یکون سببا لاعراضهم عن استماعه لانه یؤذیهم بایقاظهم جگہ پڑھتا ہے حالانکہ لوگ سوئے ہوئے تھے تو پڑھنے والا گنہگار ہوگا اس لئے کہ یہ شخص ان کے قرآن سننے سے اعراض کا سبب بنایا اس وجہ سے کہ ان کی نیند میں خلل واقع ہوگا۔ (ت) اسی میں غنیہ سے ہے : یجب علی القارئ احترامه بأن لا یقرأه في الاسواق ومواضع الاشتغال فاذا قرأه فیها کان هو المضیع لحرمته فیکون الا ثم علیه دون اهل الاشتغال دفعاً للحرج - واللہ تعالٰی اعلم تلاوت کرنے والے پر یہ احترام لازم ہے کہ وہ بازار میں اور ایسے مقامات پر نہ پڑھے جہاں لوگ مشغول ہوں، اگر وہ ایسے مقام پر پڑھتا ہے تو وہ قرآن کا احترام ختم کرنے والا ہے لہذا دفع حرج کے پیش نظر یہ پڑھنے والا گنہگار ہوگا، مشغول ہونے والے لوگ گنہگار نہ ہونگے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۵۲: کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرح متین اس مسئلہ میں کہ ایک یا زیادہ شخص نماز پڑھ رہے ہیں یا بعد جماعت نماز پڑھنے آئے ہیں اور ایک یا کئی لوگ با آواز بلند قرآن یا وظیفہ یعنی کوئی قرآن کوئی وظیفہ پڑھ رہے ہیں یہاں تک کہ مسجد بھی گونج رہی ہے تو اس حالت میں کیا حکم ہونا چاہئے کیونکہ بعض دفعہ آدمی کا خیال بدل جاتا ہے اور نماز بھول جاتا ہے۔

الجواب: جہاں کوئی نماز پڑھتا ہو یا سوتا ہو کہ آواز پڑھنے سے اس کی نماز یا نیند میں خلل آئے گا وہاں قرآن مجید و وظیفہ ایسی آواز سے پڑھنا منع ہے، مسجد میں جب اکیلا تھا اور با آواز پڑھ رہا تھا جس وقت کوئی شخص نماز کے لئے آئے فوراً آہستہ ہو جائے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۵۳: از ریاست نانپارہ ضلع بہرائچ محلہ توپ خانہ مرسلہ منشی حامد علی خان صاحب ۲۷ رمضان المبارک ۱۳۳۶ھ زید اگر مسافرانہ طور پر کسی مقام پر وارد ہوا اور وہاں اس کا کوئی ایسا شخص شناسہ نہ ہو کہ جس کے

1 رد المحتار فصل فى القراءة مطبوعہ مصطفى البابى مصر ١ / ٢٠٣ 2 رد المحتار فصل فى القراءة مطبوعہ مصطفى البابى مصر ١ / ٢٠٣

Volume 8, Fatawa Rizwiya

Question: Is it permissible for a traveler, who cannot stay in a house and stays in a mosque for the purpose of regular congregational prayers and ablution etc., and is there any evidence for this from the predecessors? And if a person forcibly removes 'Zaid' from the mosque in the aforementioned situation and says, "This mosque is the property of Khalid, and since I am an employee of Khalid, I have been ordered by Khalid not to let anyone stay in our mosque without our permission," and starts a conflict over it, is the expulsion of Zaid from the mosque permissible in the face of such strife and chaos? And is it permissible to attribute the ownership of the mosque to Khalid? And what is the ruling regarding prayer in the aforementioned mosque in this situation? And does the definition of 'Masjid-e-Dirar' (mosque of harm) apply to such a mosque?

The Answer: It is indeed permissible for such a traveler to stay in a mosque. During the holy era of the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) himself, the Companions of the Suffah (may Allah be pleased with them) resided in the sacred mosque by his noble command. Forcibly expelling someone from a mosque is oppression, and "Oppression will be darkness on the Day of Resurrection." Yes, considering the conditions of the times, the stay of unknown strangers in some mosques is inappropriate and a cause for concern; for example, for hundreds of years, the doors of the Mosque of Medina are closed after Isha, and everyone except the attendants is sent outside. If such was the case, it should have been said politely. To call the mosque the property of Khalid is an injustice. Allah Almighty says: "And [He revealed] that the mosques are for Allah," i.e., mosques are exclusively for Allah. In any case, there is no reason for prayer to be invalid in that mosque, nor can it be a 'Masjid-e-Dirar'; this is pure ignorance. Furthermore, if this mosque is not a place of caution regarding property etc., or if Zaid is not suspicious, then it is mandatory for the one who forcibly expelled him to seek his forgiveness, as causing distress to a Muslim without a Shar'i (legal) reason is very severe.

"Whoever harms a Muslim has harmed me, and whoever harms me has surely harmed Allah." - (Hadith)[1]	**"One who gave pain to a Muslim, he gave me pain, and one who gave me pain, he undoubtedly gave pain to Allah Almighty." - (Hadith)**

[1] Al-Jami' al-Saghir with Fayd al-Qadir, referenced by Tabarani in Al-Awsat, published by Dar al-Ma'rifah Beirut 9/6; Kanz al-Ummal, Hadith 43703, published by Mu'assasat

al-Risalah Beirut 16/10; Majma' al-Zawa'id, Chapter on those who step over the necks of people on Friday, published by Dar al-Kitab Beirut 2/179.

Page 101 of 673

जिल्द अष्टम, फ़तावा रज़विया

प्रश्न: क्या किसी मुसाफ़िर के लिए, जो किसी घर में नहीं ठहर सकता और नमाज़-ए-बा-जमाअत और वज़ू वगैरह की पाबंदी की वजह से किसी मस्जिद में ठहर जाए, तो यह जायज़ है या नहीं? और क्या इसका पूर्ववर्तियों (सल्फ़) से कोई प्रमाण है? और जो व्यक्ति 'ज़ैद' को उपरोक्त स्थिति में ज़बरदस्ती मस्जिद से निकाल दे और कहे कि "यह मस्जिद ख़ालिद की मिल्कियत है, और चूँकि मैं ख़ालिद का मुलाज़िम हूँ, इसलिए मुझे ख़ालिद का हुक्म है कि बिना हमारी इजाज़त के किसी को हमारी मस्जिद में न रहने दो," और इस पर लड़ाई-झगड़ा करे, तो फ़ितना और फ़साद की सूरत में ज़ैद को मस्जिद से निकालना जायज़ है या नहीं? और क्या मस्जिद की मिल्कियत को ख़ालिद की तरफ़ जोड़ना जायज़ है? और इस सूरत में उपरोक्त मस्जिद में नमाज़ का क्या हुक्म है? और क्या ऐसी मस्जिद पर 'मस्जिद-ए-ज़रार' की परिभाषा लागू होती है?

उत्तर: ऐसे मुसाफ़िर का मस्जिद में ठहरना बेशक जायज़ है। स्वयं हुज़ूर पुरनूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पवित्र युग में उनके पवित्र आदेश से अस्हाब-ए-सुफ़्फ़ा रज़ियल्लाहु अन्हुम पवित्र मस्जिद में ठहरे हुए थे। मस्जिद से ज़बरदस्ती निकालना ज़ुल्म है, और "ज़ुल्म क़यामत के दिन अंधेरा होगा।" हाँ, ज़माने के हालात को देखते हुए कुछ मस्जिदों में अनजान अजनबियों का ठहरना अनुचित और चिंता का कारण होता है; जैसे कि सैकड़ों वर्षों से मदीना मुनव्वरा की मस्जिद के दरवाज़े ईशा के बाद बंद कर दिए जाते हैं और ख़ादिमों के अलावा सभी लोगों को बाहर कर दिया जाता है। अगर वास्तव में ऐसी स्थिति थी, तो नरमी से कहना चाहिए था। मस्जिद को ख़ालिद की मिल्कियत कहना ज़ुल्म है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और बेशक मस्जिदें अल्लाह के लिए हैं," यानी मस्जिदें ख़ालिस अल्लाह के लिए हैं। बहरहाल, उस मस्जिद में नमाज़ के नाजायज़ होने की कोई वजह नहीं है, और न ही वह मस्जिद-ए-ज़रार हो सकती है; यह निहायत अज्ञानता है। फिर, यदि यह मस्जिद माल वगैरह के लिहाज़ से एहतियात की जगह नहीं है या ज़ैद संदेहास्पद नहीं है, तो उसे ज़बरदस्ती निकाल देने वाले पर लाज़िम है कि उससे माफ़ी माँगे, क्योंकि किसी मुसलमान को बिना शरई वजह के तकलीफ़ देना बहुत सख़्त गुनाह है।

"जिसने किसी मुसलमान को तकलीफ़ दी, उसने मुझे तकलीफ़ दी, और जिसने मुझे तकलीफ़ दी, उसने यकीनन अल्लाह तआला को तकलीफ़ दी।" - (हदीस)[1]

"जिसने किसी मुसलमान को तकलीफ़ दी उसने मुझे तकलीफ़ दी और जिसने मुझे तकलीफ़ दी उसने बिला-शुबा अल्लाह तआला को तकलीफ़ दी।" - (हदीस)

[1] अल-जामी अल-सगीर म'अ फैज़ अल-क़दीर, बहवाला तबरानी औसत, मतबूआ दारुल म'अरिफ़ा बेरुत 9/6; कंज़ुल उम्माल हदीस 43703, मतबूआ मुअस्ससतुर रिसाला बेरुत 10/16; मज्मउज़ ज़वाइद, बाब फ़ीमन यतखत्ता रक़ाबुन नास यौमल जुमुआ, मतबूआ दारुल किताब बेरुत 2/179।

جلد ہشتم، فتاویٰ رضویہ

سوال: مکان میں قیام کرسکے اور بسبب پابندی نماز جماعت ووضو وغیرہ کسی مسجد میں ٹھہر جائے تو جائز ہے یا نہیں اور اس کا سلف سے ثبوت ہے یا نہیں، اور جو شخص زید کو بصورت مذکورہ جبراً مسجد سے نکالے اور کہے کہ یہ مسجد خالد کی ملک ہے اور میں چونکہ ملازم خالد ہو لہذا مجھے حکم خالد ہے کہ بے اذن ہمارے کسی کو ہماری مسجد میں نہ رہنے دو اور اس پر بر سر پیکار ہو تو زید کا اخراج عن المسجد بصورت فتنہ وفساد جائز ہے یا نہیں، اور مسجد کی ملک کی نسبت خالد جانب جائز ہے یا نہیں؟ اور مسجد مذکورہ میں اس صورت میں نماز کا کیا حکم ہے؟ اور ایسی مسجد پر مسجد ضرار کی تعریف صادق ہے یا نہیں؟

الجواب: ایسے مسافر کو مسجد میں ٹھہرنا بیشک جائز ہے، خود مسجد اقدس میں حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے عہد اقدس میں حکم انور سے اصحاب صفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم قیام پذیر تھے مسجد سے بالجبر اس کا اخراج ظلم ہے والظلمات یوم القیمۃ (ظلم قیامت کے روز تاریکیاں ہوگا ت) ہاں نظر بحالات زمانہ بعض مساجد میں اجنبی غیر معروف کا قیام نامناسب ووجہ اندیشہ ہوتا ہے جیسے صدہا سال مسجد مدینہ طیبہ کے دروازے بعد عشا بند کر دیتے ہیں اور سوا خدام کے سب لوگ باہر کر دئے جاتے ہیں، اگر واقعی ایسی صورت تھی تو بزرمی کہنا چاہئے تھا اور مسجد کو خالد کی ملک کہنا ظلم ہے ، اللہ عزوجل فرماتا ہے : وَأَنَّ الْمَسَاجِدَ لِلَّهِ مسجدیں خالص اللہ کے لئے ہیں۔ بہر حال اُس مسجد میں نماز نا جائز ہونے کی کوئی وجہ نہیں، نہ وہ مسجد ضرار ہو سکتی ہے ، یہ جہل محض ہے۔ پھر اگر یہ مسجد اموال وغیرہ سے محل احتیاط مذکور نہیں یا زید مشتبہ نہیں، تو اسے جبراً نکال دینے والے پر لازم ہے کہ اُس سے معافی چاہے کہ مسلمان کو بلا وجہ شرعی ایذا دینا بہت سخت ہے۔

من اذی مسلما فقد اذانی ومن اذانی فقد اذی اللہ -(الحدیث)[1]

جس نے کسی مسلمان کو اذیت دی اس نے مجھے اذیت دی اور جس نے مجھے اذیت دی اس نے بلاشبہ اللہ تعالیٰ کو اذیت دی- (الحدیث ت)

[1] الجامع الصغیر مع فیض القدیر بحوالہ طبرانی اوسط مطبوعہ دار المعرفة بیروت ۹/۶ ، کنز العمال حدیث ۴۳۷۰۳ ، مطبوعہ مؤسسة الرسالة بیروت ۱۶/۱۰ ، مجمع الزوائد باب فیمن یتخطی رقاب الناس یوم الجمعة مطبوعہ دار الکتاب بیروت ۲/۱۷۹

Fatawa Razawiya - Volume 8

Zaid should, if staying in the mosque, make the intention (niyyah) of i'tikaf before sleeping or eating, perform some remembrance of Allah (dhikr), and then eat or sleep. Eating and sleeping in the mosque is permissible for the one in i'tikaf without any disagreement. And Allah Almighty knows best.

Issue 1152: From city of Kamola, asked by Munir-ud-Din Sahab, 11th Dhu al-Hijjah 1331 AH. What do the scholars of religion say about this issue: is it permissible to burn kerosene oil in the mosque or not? Some people say it is permissible and ask for proof of its impermissibility. Explain and you shall be rewarded.

The Answer: Kerosene oil has a strong foul smell, and bringing a foul smell into the mosque is not permissible in any way. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

"Whoever eats from this foul-smelling plant should not come near our mosque, for the angels are offended by whatever offends human beings." Reported by Bukhari and Muslim from Hazrat Jabir (may Allah be pleased with him). (T)

Imam Ayni in Umdat al-Qari, the commentary of Sahih al-Bukhari, and then Allama Sayyid Shami in Radd al-Muhtar state:

"According to the Hadith, every substance that has an unpleasant odor is subject to the same ruling, whether it is an edible item or something else." (T)

Yes, if some English perfumes called Lavender are added to kerosene oil and its foul smell goes away, then it will become permissible, provided that there is no impure substance like spirit etc. in that lavender. Otherwise, burning impure oil in the mosque is also not permissible. It is stated in Durr al-Mukhtar:

"It is prohibitively disliked (makruh tahrimi) to bring impurity into the mosque; therefore, it is not correct to light a lamp there with impure oil." And Allah Almighty knows best. (T)

---

1 Sahih Muslim, Kitab al-Masajid, Bab man akala thuman etc., printed by Noor Muhammad Ashah al-Matabi Karachi, 1/209; Sahih al-Bukhari, Kitab al-Adhan, Bab ma ja'a fi al-thum etc., printed by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/118. 2 Radd al-Muhtar, Bab ma yufsid al-salat wa ma yukrah fiha, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/489. 3 Durr al-Mukhtar, Bab ma yufsid al-salat wa ma yukrah fiha, Matba' Mujtabai Delhi, 1/93.

ज़ैद को चाहिए कि अगर मस्जिद में क़याम करे तो सोने और खाने से कुछ पहले एतिकाफ़ की नियत कर ले, कुछ अल्लाह का ज़िक्र करे और फिर खाए या सोए। मस्जिद में खाना और सोना एतिकाफ़ करने वाले के लिए बिना किसी मतभेद के जायज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1152: शहर कमोला से, मुनीर उद्दीन साहब द्वारा पूछा गया, 11 ज़िलहिज्जा 1331 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि मस्जिद में मिट्टी का तेल जलाना जायज़ है या नहीं? कुछ लोग इसे जायज़ कहते हैं और इसके नाजायज़ होने की दलील माँगते हैं। बयान करें, आपको सवाब मिलेगा।

अल-जवाब: मिट्टी के तेल में बहुत तेज़ बदबू होती है और मस्जिद में बदबू ले जाना किसी भी तरह जायज़ नहीं है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फ़रमाते हैं:

"जिसने इस बदबूदार पौधे को खाया वह हमारी मस्जिदों के करीब न आए क्योंकि फ़रिश्तों को भी उसी चीज़ से तकलीफ़ होती है जिससे इंसानों को होती है।" इसे बुख़ारी और मुस्लिम ने हज़रत जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। (त)

इमाम ऐनी उम्दतुल क़ारी शरह सहीह बुख़ारी में और फिर अल्लामा सैय्यद शामी रद-उल-मुहतार में फ़रमाते हैं:

"हदीस के मुताबिक हर उस चीज़ का यही हुक्म है जिसकी बू अच्छी न हो, चाहे वह चीज़ खाई जाती हो या न।" (त)

हाँ, अगर मिट्टी के तेल में कुछ अंग्रेज़ी इत्र जिन्हें लैवेंडर कहते हैं मिला दिए जाएँ जिससे उसकी बदबू ख़त्म हो जाए, तो उस सूरत में जायज़ हो जाएगा, बशर्ते कि उस लैवेंडर में स्पिरिट वगैरह जैसी कोई नापाक चीज़ न हो। वर्ना नापाक तेल का भी मस्जिद में जलाना जायज़ नहीं है। दुर्र-ए-मुख़्तार में है:

"मस्जिद में नजासत (गंदगी) दाखिल करना मकरूह-ए-तहरीमी है, इसलिए नापाक तेल के साथ वहाँ चिराग़ जलाना सही नहीं है।" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

---

1 सहीह मुस्लिम, किताबुल मसाजिद, बाब मन अकल थौमन आदि, मुद्रित नूर मोहम्मद असहुल मताबी कराची, 1/209; सहीह अल-बुख़ारी, किताबुल अज़ान, बाब मा जा'आ फ़िल थूम आदि, मुद्रित

क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/118। 2 रद-उल-मुहतार, बाब मा युफ़सिदुस सलात व मा युकरहु फ़ीहा, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/489। 3 दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब मा युफ़सिदुस सलात व मा युकरहु फ़ीहा, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/93।

पृष्ठ 673 में से 102

زید کو چاہئے کہ اگر مسجد میں قیام کرے سونے اور کھانے سے کچھ پہلے اعتکاف کی نیت کرکے کچھ ذکر الٰہی کرکے کھائے سوئے کہ مسجد میں کھانا سونا معتکف کو بلا خلاف جائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۱۵۲: از شہر کمولا مسئولہ منیر الدین صاحب ۱۱ ذی الحجہ ۱۳۳۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مٹی کا تیل مسجد میں جلانا جائز ہے یا نہیں؟ بعض لوگ جائز کہتے ہیں اور عدم جواز کی دلیل چاہتے ہیں۔ بینوا توجروا۔

الجواب: مٹی کے تیل میں سخت بدبو ہے اور مسجد میں بدبو لے جانا کسی طرح جائز نہیں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

مَنْ أَكَلَ مِنْ هَذِهِ الشَّجَرَةِ الْمُنْتِنَةِ فَلَا يَقْرَبَنَّ مَسْجِدَنَا فَإِنَّ الْمَلَائِكَةَ تَتَأَذَّى مِمَّا يَتَأَذَّى مِنْهُ الْإِنْسُ - رواہ الشیخان عن جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ جس شخص نے اس بدبودار پودے کو کھایا وہ ہماری مساجد کے قریب نہ آئے کیونکہ ملائکہ کو بھی ہر اس شئی سے تکلیف ہوتی ہے جس سے انسانوں کو ہوتی ہے۔ اسے بخاری و مسلم نے حضرت جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

امام عینی عمدۃ القاری شرح صحیح بخاری پھر علامہ سید شامی ردالمحتار میں فرماتے ہیں:

وَيُلْحَقُ بِمَا نَصَّ عَلَيْهِ فِي الْحَدِيثِ كُلُّ مَا لَهُ رَائِحَةٌ كَرِيهَةٌ مَأْكُولًا أَوْ غَيْرَهُ۔ حدیث کے مطابق ہر اس شئی کا یہی حکم ہے جس کی بو اچھی نہ خواہ وہ شئی کھائی جاتی ہو یا نہ۔ (ت)

ہاں مٹی کے تیل میں بعض انگریزی عطر جن کو لونڈر کہتے ہیں ملانے سے اس کی بدبو جاتی رہتی ہے اس صورت میں جائز ہو جائے گا بشرطیکہ اس لونڈر میں اسپرٹ وغیرہ کوئی ناپاک شئی نہ ہو ورنہ ناپاک تیل کا بھی مسجد میں جلانا جائز نہیں ہے۔ در مختار میں ہے:

کُرِہَ تَحْرِیمًا إِدْخَالُ نَجَاسَۃٍ فِیہِ فَلَا یَجُوزُ الِاسْتِصْبَاحُ بِدُھْنٍ نَجِسٍ فِیہِ - واللہ تعالیٰ اعلم مسجد میں نجاست داخل کرنا مکروہ تحریمی ہے، لہٰذا ناپاک تیل کے ساتھ وہاں چراغ جلانا درست نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

---

1 صحیح مسلم کتاب المساجد باب من اکل ثوما الخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۲۰۹، صحیح البخاری کتاب الاذان باب ماجاء فی الثوم الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۱۸ 2 ردالمحتار، باب مایشد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۸۹ 3 در مختار باب مایشد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۳

Fatawa Razawiya, Volume 8

Issue 1155: From Bareilly City, Madrasa Manzar al-Islam, inquired by Maulvi Rahim Bakhsh Bengali, 16 Safar 1338 AH. What do the scholars of the religion say about this matter: Is it permissible to burn kerosene oil in a mosque or not? The Answer: Burning kerosene oil in a mosque is forbidden (Haram), unless its smell is completely removed. And Allah Almighty knows best.

Issue 1156: From Danapur, Mohalla Saguna, inquired by Muhammad Hanif Khan, 8 Shaban 1339 AH. What do the scholars of the religion say about this matter: There is a mosque that has three doors. During the morning (Fajr) prayer, due to the cold, people perform the prayer by closing all three doors and lighting a lamp, and they perform the morning prayer at its appointed time. One person says that one should not pray with a lamp lit, as it is prohibited, but he provides no evidence for this. Therefore, it is requested to know if there is any religious (Shariah) objection to doing so? And to what extent is his statement correct? Please grant a reply along with references from the noble books of jurisprudence (Fiqh). The Answer: There is no harm in praying with a lamp lit in time of need.

[Arabic Box:] In this regard, there is a Hadith of Tamim al-Dari (Allah be pleased with him) about the lighting of lamps in the Noble Mosque and its approval by the Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him), and a Hadith from Ali (Allah be pleased with him) that when he saw both mosques illuminated, he said: May Allah illuminate the grave of Umar just as he illuminated our mosques.

[Urdu Box:] There is a Hadith narrated by Hazrat Tamim Dari (Allah be pleased with him) regarding this. The lighting of lamps in the Prophet's Mosque and its approval by the Holy Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him) is established. And there is a Hadith in which it is narrated that when Hazrat Ali (Allah Almighty be pleased with him) saw both mosques illuminated, he said: "May Allah Almighty illuminate the grave of Umar (Allah be pleased with him) just as he illuminated our mosques." (T)

However, closing the mosque doors during the time of prayer is certainly prohibited and an evil innovation (bid'at sayyi'ah). It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Arabic Box:] It is disliked to lock the door of the mosque except for fear regarding its belongings. Fatwa is given on this. [End of citation 2]

[Urdu Box:] Locking the mosque door is disliked (Makruh); however, it is permissible in a situation where there is a fear of the mosque's belongings being stolen.

1. Tarikh al-Khulafa, Section on Firsts of Umar (Allah be pleased with him), published by Matba Mujtabai Delhi, p. 79.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, published by Matba Mujtabai Delhi, 1/93.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मसला 1155: शहर बरेली, मदरसा मंज़रुल इस्लाम, मुस्तफ़सीर (पूछने वाले) मौलवी रहीम बख्श बंगाली, 16 सफ़र 1338 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि मस्जिद में रोग़न-ए-मिट्टी (मिट्टी का तेल) जलाना जायज़ है या नहीं? अल-जवाब: मस्जिद में मिट्टी का तेल जलाना हराम है, मगर जब कि इसकी बू (गंध) बिल्कुल दूर कर दी जाए। वल्लाह तआला आलम।

मसला 1156: दानापुर, मोहल्ला सगुना, मुस्तफ़सीर मोहम्मद हनीफ़ खान, 8 शाबान 1339 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक मस्जिद है जिसमें तीन दरवाज़े लगे हैं, सुबह की नमाज़ में सर्दी की वजह से तीनों दरवाज़े बंद करके और चिराग जलाकर लोग नमाज़ पढ़ा करते हैं और नमाज़-ए-सुबह अपने वक़्त पर अदा करते हैं। एक शख़्स कहता है कि चिराग जलाकर नमाज़ नहीं पढ़नी चाहिए, यह मना है, मगर वह इसका कोई सबूत नहीं देता। इसलिए दरयाफ़्त तलब है कि ऐसा करने में शरई तौर पर कोई क़बाहत (दोष) है या नहीं? और उसका कहना कहाँ तक सही है? मेहरबानी फ़रमाकर जवाब मय हवाला कुतुब-ए-फ़िक़्ह शरीफ़ इनायत हो। अल-जवाब: वक़्त-ए-हाजत चिराग जलाकर नमाज़ पढ़ने में तो कोई हर्ज नहीं।

[अरबी बॉक्स:] इस बारे में तमीम दारी रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस है और मस्जिद-ए-शरीफ़ में क़ंदीलों का जलाना और नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का उन्हें पसंद करना साबित है, और अली रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस है कि जब उन्होंने दोनों मस्जिदों को रौशन देखा तो कहा: अल्लाह तआला उमर की क़ब्र को रौशन करे जैसा कि उन्होंने हमारी मस्जिदों को रौशन किया।

[उर्दू बॉक्स:] इस बारे में हज़रत तमीम दारी रज़ियल्लाहु अन्हु से मरवी हदीस है, मस्जिद-ए-नबवी में क़ंदीलों का जलाना और नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का उन्हें पसंद करना साबित है, और वह हदीस जिसमें मन्कूल है कि जब हज़रत अली रज़ियल्लाहु अन्हु ने दोनों मस्जिदों को रौशन देखा तो कहा: "अल्लाह तआला उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की क़ब्र को इसी तरह रौशन करे जैसे उन्होंने मस्जिदों को रौशन किया।" (त)

मगर नमाज़ के वक़्त मस्जिद के किवाड़ (दरवाज़े) बंद करना ज़रूर ममनू (वर्जित) और बिदअत-ए-सय्यिह (बुरी प्रथा) है। 'दुर्र-ए-मुख़्तार' में है:

[अरबी बॉक्स:] मस्जिद का दरवाज़ा बंद करना मकरूह है सिवाय उस सूरत के जब उसके सामान के चोरी होने का अंदेशा हो। इसी पर फ़तवा है। (2)

[उर्दू बॉक्स:] मस्जिद का दरवाज़ा बंद करना मकरूह है, अलबत्ता इस सूरत में जायज़ है जब मस्जिद का सामान चोरी होने का अंदेशा हो।

1. तारीख़ुल खुलाफ़ा, फ़स्ल फ़ी अव्वलियत-ए-उमर रज़ियल्लाहु अन्हु, मतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, पेज 79।
2. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब मा युफ़्सिदुस्सलात व मा युक़रहु फ़ीहा, मतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/93।

पेज 103 ऑफ़ 673

فتاوی رضویه جلد ہشتم

مسئلہ ۱۱۵۵: از شہر بریلی مدرسہ منظر الاسلام مسئولہ مولوی رحیم بخش بنگالی ۱۶ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مسجد میں روغن مٹی کا جلانا جائز ہے یا نہیں؟ الجواب: مسجد میں مٹی کا تیل جلانا حرام ہے مگر جبکہ اس کی بو بالکل دور کردی جائے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۵۶: از داناپور محلہ سگونہ مسئولہ محمد حنیف خاں ۸ شعبان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد ہے جس میں تین دروازے لگے ہیں ، صبح کی نماز میں بوجہ سردی کے تینوں در بند کرکے اور چراغ جلا کر لوگ نماز پڑھا کرتے ہیں اور نماز صبح اپنے وقت پر ادا کرتے ہیں، ایک شخص کہتا ہے کہ چراغ جلا کر نماز نہ پڑھنا چاہئے منع ہے مگر کوئی ثبوت اس کا نہیں دیتا ہے اس لئے دریافت طلب ہے کہ ایسا کرنے میں شرعاً کوئی قباحت ہے یا نہیں؟ اور کہاں تک اس کا کہنا صحیح ہے؟ مہربانی فرما کر جواب مع حوالہ کتب فقہ شریف عنایت ہو۔ الجواب: وقت حاجت چراغ جلا کر نماز پڑھنے میں تو کوئی حرج نہیں،

[Arabic Box:] وفیه حدیث تمیم الداری رضی اللہ تعالی عنہ وایقاده القنادیل فی المسجد الشریف و استحسانہ من النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم و حدیث علی رضی اللہ تعالی عنہ لما رأی المسجدین ھو قال نور اللہ قبر عمر کما نور مساجدنا۔

[Urdu Box:] اس بارے میں حضرت تمیم داری رضی اللہ عنہ سے مروی حدیث ہے، مسجد نبوی میں قندیلوں کا جلانا اور نبی اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کا انہیں پسند کرنا ثابت ہے، اور وہ حدیث جس میں منقول ہے کہ جب حضرت علی رضی اللہ تعالی عنہ نے دونوں مساجد کو روشن

دیکھا تو کہا: اللہ تعالی عمر (رضی اللہ عنہ) کی قبر کو اسی طرح روشن کرے جیسے انہوں نے مساجد کو روشن کیا۔ (ت)

مگر نماز کے وقت مسجد کے کواڑ بند کرنا ضرور ممنوع و بدعت سیئہ ہے در مختار میں ہے:

[Arabic Box:] کرہ غلق باب المسجد الخوف علی متاعہ بہ یفتی ۲ اھ

[Urdu Box:] مسجد کا دروازہ بند کرنا مکروہ ہے البتہ اس صورت میں جائز ہے جب مسجد کا سامان چوری ہونے کا اندیشہ ہو،

۱ تاریخ الخلفاء فصل فی اولیات عمر رضی اللہ تعالی عنہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۷۹ ۲ در مختار باب مایفسد الصلوۃ و ما یکرہ فیہا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۳

Volume 8

Fatawa Razawiyya

I say: This is for times other than prayer, as stated by Shami: 'Except during prayer times.'1 So how can it be permissible at the very time of establishing prayer? This is rejected by the consensus of the people of prayer.

The fatwa is also based on this. I say this is for times other than prayer, because Shami said closing the door during prayer times is disliked (Makruh). Therefore, if the congregational prayer is ongoing, why wouldn't it be forbidden! And there is a consensus among all prayer-performers on its rejection. (T)

Lighting a lamp at that time, if it is done solely because the door is closed and wouldn't be needed otherwise, then this lamp is also without need as that need is based on a false premise. If they pray in such darkness that even with doors open a lamp would be needed, then it is contrary to what is better (afzal). In the Hanafi school, the more the time of the Fajr prayer is lightened before performing it, the greater the reward. And Allah Almighty knows best.

Case 115: From the city of Bareilly, Muhallah Gher Jafar Khan, Mahmood Ali Khan, 28 Dhu al-Qi'dah 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Inside the mosque, in the corridors of the "Mirzai" (tin-roofed) section, flower pots with plants, flowers, etc., have been prepared to be hung for the purpose of decorating the mosque. Pure soil with manure etc. has been put in them. Now some gentlemen object that no new thing should be introduced in the mosque. What is the ruling according to the noble Shariah?

Answer: If they are in the line of sight of the worshiper, they are disliked (Makruh). If they are higher up, there is no harm. And Allah Almighty knows best.

Case 1158: From Mansoorpur near Shishgarh post office, Tehsil Baheri, District Bareilly, asked by Muhammad Shah Khan, 29 Muharram 1332 AH. What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say in this regard? Often Arabic copies, diagrams etc. are installed on the four walls of the mosque. Among them, Arabic prayers/supplications are installed on the wall near the pulpit in such a place that while reading them, they are behind the Imam or somewhat higher, i.e., near the back of the neck of the Imam. What is the ruling in such a situation?

Answer: Such things should not be installed on the Qibla wall as they distract people during prayer. And being so low that the Imam's back is towards it during the sermon is even more inappropriate. Yes, if it remains higher than that, then there is no harm in it. And Allah Almighty knows best.

1 Radd al-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/458.

खंड 8

फ़तावा रज़विया

मैं कहता हूँ: यह नमाज़ के समय के अलावा के लिए है, जैसा कि शामी ने कहा है: 'नमाज़ के समय के सिवाय'।1 तो नमाज़ की स्थापना के समय ही यह कैसे जायज़ हो सकता है? नमाज़ियों की सर्वसम्मति से इसे अस्वीकार किया गया है।

फ़तवा भी इसी पर आधारित है। मैं कहता हूँ कि यह नमाज़ के समय के अलावा के लिए है, क्योंकि शामी ने कहा है कि नमाज़ के समय दरवाज़ा बंद करना मकरूह है, तो जब जमात हो रही हो तो उस समय मना क्यों नहीं होगा! और इसे खारिज करने पर सभी नमाज़ियों की सर्वसम्मति है। (त)

उस समय चिराग जलाना भी, यदि केवल किवाड़ बंद करने के कारण हो और अन्यथा आवश्यकता न हो, तो यह चिराग भी बिना आवश्यकता के है क्योंकि वह आवश्यकता एक गलत आधार पर है। और यदि वे इतने अंधेरे में पढ़ते हैं कि खुले किवाड़ों में भी चिराग की आवश्यकता होती है, तो यह अफ़ज़ल (बेहतर) के विपरीत है। हनफी मज़हब में फज्र की नमाज़ जितना अधिक उजाला करके पढ़ी जाए, उतना ही अधिक पुण्य (अज्र) है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 115: बरेली शहर, मुहल्ला घेर जाफर खान, महमूद अली खान, 28 ज़ुल-क़ादा 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि मस्जिद के भीतर मिर्ज़ाई यानी टिन के बरामदे के मेहराबों में मस्जिद की सुंदरता के उद्देश्य से गमले, पेड़-पौधे, फूल आदि लटकाने के लिए तैयार किए गए हैं, जिनमें खाद और पाक मिट्टी डाली गई है। अब कुछ सज्जनों को आपत्ति है कि मस्जिद में कोई नई बात नहीं होनी चाहिए। शरीयत के अनुसार क्या हुक्म है?

उत्तर: यदि वे नमाज़ी की नज़र के सामने हों तो मकरूह हैं, और यदि अधिक ऊंचे हों तो कोई हर्ज नहीं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1158: मंसूरपुर, डाकखाना शीशगढ़ के पास, तहसील बहेड़ी, जिला बरेली, सायल मोहम्मद शाह खान, 29 मुहर्रम 1332 हिजरी। धर्म के विद्वान और मुफ्ती इस बारे में क्या कहते हैं कि मस्जिद में अक्सर अरबी की कॉपियां और नक्शे आदि चारों दीवारों पर लगाए जाते हैं। उनमें से मिंबर के पास वाली दीवार पर अरबी मुनाजात (प्रार्थनाएँ) ऐसी जगह लगाई जाती हैं कि पढ़ते समय वे इमाम की

पीठ के पीछे या उससे कुछ ऊंचे यानी इमाम की गर्दन के पीछे के करीब होती हैं। ऐसी स्थिति में क्या हुक्म है?

उत्तर: ऐसी चीज़ों को किबला की दीवार पर नहीं लगाना चाहिए जिससे नमाज़ में लोगों का ध्यान भटके। और इतना नीचा होना कि खुतबा में इमाम की पीठ उसकी तरफ हो, यह और भी अनुचित है। हाँ, अगर वह इससे ऊंचा रहे तो इसमें कोई हर्ज नहीं होगा। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

1 रद्दुल मुहतार, अध्याय: नमाज़ को खराब करने वाली चीज़ें और उनमें मकरूह बातें, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित 1/458।

पृष्ठ 104 का 673

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

اقول: هذا في غيروقت الصلوة لقول الشامی الا فی اوقات الصلوة 1 فکیف عند نفس قیام الصلوة هذا مردود باجماع اهل الصلوة۔

فتاویٰ بھی اسی پر ہے اھ میں کہتا ہوں یہ وقت نماز کے علاوہ میں ہے، کیونکہ شامی نے کہا مگر اوقات نماز میں دروازہ بند کرنا مکروہ ہے، تو نماز کی جماعت ہو رہی ہو تو اس وقت منع کیوں نہ ہوگا! اور اس کے مردود ہونے پر تمام اہل نماز کا اجماع ہے۔ (ت)

اس وقت چراغ روشن کرنا بھی اگر اسی کواڑ بند کرنے کی بنا پر ہوا کہ بند نہ کریں چراغ کی حاجت نہ ہو تو یہ چراغ بھی بے حاجت کہ وہ حاجت بوجہ باطل ہے اور اگر اتنے اندھیرے سے پڑھتے ہیں کہ کھلے کواڑوں میں بھی حاجت چراغ ہو تو یہ خلاف افضل ہے، مذہب حنفی میں نماز فجر جس قدر وقت روشن کرکے پڑھی جائے زیادہ اجر ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۵: از شہر بریلی محلہ گھیر جعفر خاں محمود علی خاں ۲۸ ذی القعدہ ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اندرون مسجد مرزائی یعنی ٹین کے دالان کے دروں میں بغرض زیبائش مسجد گملے درختاں پھول وغیرہ لٹکائے جانے کے لئے تیار کئے گئے ہیں جن مین کہ کھاد وغیرہ پاک مٹی کی دی گئی ہے۔ اب چند حضرات کو اعتراض ہے کہ نئی بات مسجد میں نہیں ہونا چاہئے۔ ازروئے شرع شریف کیا حکم ہے؟

الجواب: اگر نمازی نگاہ کے سامنے ہوں تو مکروہ ہیں اور زیادہ بلند ہوں تو حرج نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۵۸: از منصور پور متصل ڈاکخانہ شیش گڑھ تحصیل بہیڑی ضلع بریلی مسئولہ محمد شاہ خاں ۲۹ محرم ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس باب میں، مسجد میں اکثر کاپیاں عربی کی و نقشجات وغیرہ چہار جانب دیواروں پر مسجد کی نصب کئے جاتے ہیں منجملہ ان کے منبر کے قریب دیوار پر عربی مناجات ایسے موقع پر نصب یعنی چسپاں کئے جاتے ہیں کہ بروقت پڑھنے کے امام کے پس پشت یا اس سے کسی قدر اونچے یعنی قریب پس گردن عربی مناجات ہوتے ہیں، ایسی صورت میں کیا حکم ہے؟

الجواب: ایسی چیزوں کا دیوار قبلہ میں نصب کرنا چاہئے جس سے لوگوں کا نماز میں دھیان بٹے اور اتنی نیچی ہو نا کہ خطبہ میں امام کی پشت اس کی طرف ہو، یہ اور بھی نامناسب ہے۔ ہاں اگر اس سے بلند رہے تو یہ حرج اس میں نہ ہوگا۔ واللہ تعالیٰ اعلم

1 رد المحتار باب مایفسد الصلوۃ و مایکرہ فیہا مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۴۵۸

Fatawa Rizvia, Volume 8

Problem 1159: From Aligarh College, asked by Hazrat Maulana Muhammad Suleman Ashraf Sahib Bihari (may Allah have mercy on him), Professor of Theology, Khalifa of Ala Hazrat (may Allah be pleased with him), 1342 AH. Is it permissible to have gold engravings and decorations in a mosque or not? Do glittering floral patterns before worshippers not interfere with prayer? Is such beautification not unbefitting for a mosque's status as a place of worship? Please oblige this humble servant by writing a brief answer; the issue here is that the college mosque is being decorated with engravings and gold. That is all.

The Answer: In the era of the righteous predecessors (Salaf-e-Salihin), external decoration in mosques was considered superfluous and disliked, because their hearts were filled with reverence for the symbols of Allah. Therefore, in the Hadith, boasting about mosques is counted among the signs of the Last Hour. And Abdullah ibn Abbas (may Allah be pleased with both of them) said: "You will surely decorate them just as the Jews and Christians decorated [their places of worship]."

With the changing of times, scholars have permitted the decoration of mosques because now external grandeur inspires reverence in the eyes and impact in the hearts. It is like the adornment of the Holy Qur'an [writing it in gold] out of respect for it. However, even now, there is a command to keep the Qibla wall in general, and the Mihrab (niche) in particular, free from things that distract the heart. Rather, it is better that the right and left walls also remain free from distractions so that the gaze of the worshipper near them is not diverted. Yes, there is no harm in the domes, minarets, ceiling, and the surfaces of walls that are behind the worshippers, even if they have gold engravings, provided they are from one's own lawful wealth. Mosque funds should not be spent on it, unless the original founder of the mosque made the engravings, or the endower gave permission, or if there is surplus mosque money which, if not spent, would fall prey to misappropriation by wrongdoers. Even where one can do engravings with one's own money, excessive intricacy in designs is disliked; the aspect of simplicity and moderation should be kept in mind. Imam Ibn al-Munayyir states in the commentary of Jami' al-Sahih:

From this, the dislike of decorating mosques is derived because it occupies the worshipper's heart or [leads to] the wastage of wealth.

1. Sahih al-Bukhari, Kitab al-Salah, Bab Bunyan al-Masjid, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/64. Page 105 of 673

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

मसअला 1159: अलीगढ़ कॉलेज से, प्रेषक हज़रत मौलाना मुहम्मद सुलेमान अशरफ़ साहब बिहारी (रहमतुल्लाह अलैह), धर्मशास्त्र के प्रोफेसर, आला हज़रत (रज़ियल्लाहु अन्हु) के खलीफा, 1342 हिजरी। मस्जिद में सुनहरी नक्काशी और सजावट जायज़ है या नहीं? क्या नमाज़ियों के सामने चमकते-दमकते बेल-बूटे नमाज़ में खलल नहीं डालते? क्या इस तरह की सजावट मस्जिद की इबादतगाह होने की शान के खिलाफ नहीं है? कृपया संक्षिप्त जवाब लिखकर इस बंदे को कृतार्थ करें; यहाँ समस्या यह है कि कॉलेज की मस्जिद को नक्काशी और सोने से सजाया जा रहा है। बस।

जवाब: नेक बुज़ुर्गों (सलफ़-ए-सालिहीन) के ज़माने में मस्जिदों में बाहरी दिखावटी सजावट को फ़ालतू और नापसंद किया जाता था क्योंकि उनके दिल अल्लाह की निशानियों की ताज़ीम (सम्मान) से भरे हुए थे। इसीलिए हदीस में मस्जिदों के मामले में एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर दिखाने (मुबाहात) को क़यामत की निशानियों में गिना गया है। और अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने फ़रमाया: "तुम मस्जिदों को उसी तरह सजाओगे जिस तरह यहूदियों और ईसाइयों ने (अपने इबादतगाहों को) सजाया।"

ज़माना बदलने के साथ उलेमा (विद्वानों) ने मस्जिदों को सजाने की अनुमति दी है क्योंकि अब बाहरी भव्यता आँखों में इज़्ज़त और दिलों में प्रभाव पैदा करती है। यह वैसा ही है जैसे पवित्र क़ुरआन के सम्मान में उसे सोने के पानी से सजाकर लिखा जाए। लेकिन अब भी किबला की दीवार को सामान्य रूप से और मेहराब को विशेष रूप से उन चीज़ों से बचाने का हुक्म है जो ध्यान भटकाती हैं। बल्कि बेहतर यह है कि दाहिनी और बाईं दीवारें भी मन भटकाने वाली चीज़ों से मुक्त रहें ताकि उनके पास खड़े नमाज़ी की नज़रों में भटकाव न आए। हाँ, गुंबदों, मीनारों, छत और दीवारों की उन सतहों पर जो नमाज़ियों की पीठ के पीछे रहेंगी, नक्काशी हो तो कोई हर्ज़ नहीं, चाहे वह सोने के पानी से ही क्यों न हो, बशर्ते कि वह अपने हलाल माल से हो। मस्जिद का पैसा इसमें खर्च नहीं किया जाना चाहिए, सिवाय इसके कि मस्जिद के मूल निर्माता ने नक्काशी की हो, या वक़्फ़ करने वाले ने इसकी अनुमति दी हो, या मस्जिद का फ़ालतू पैसा बचा हो जो खर्च न किए जाने की सूरत में ज़ालिमों के हाथों में चला जाए। फिर जहाँ-जहाँ कोई अपने पैसे से नक्काशी कर सकता है, वहाँ भी बारीक नक्काशी में ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देना (तकल्लुफ़) मकरूह है; सादगी और एतदाल (संतुलन) का पहलू ध्यान में रखा जाना चाहिए। इमाम इब्न अल-मुनय्यिर 'जामे सहीह' की शरह (व्याख्या) में फ़रमाते हैं:

इससे मस्जिदों को सजाने की कराहियत (नापसंदगी) साबित होती है क्योंकि इसमें नमाज़ी का दिल उलझता है या माल का (खर्च होता है)।

1. सहीह अल-बुख़ारी, किताब अल-सलात, बाब बुनियान अल-मस्जिद, प्रकाशित कदीमी कुतुब खाना कराची 1/64। पृष्ठ 105 / 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۱۵۹: از علی گڑھ کالج مسئولہ حضرت مولانہ محمد سیلمان اشرف صاحب بہاری (رحمۃ اللہ علیہ) پروفیسر دینیات، خلیفہ اعلیٰحضرت رضی اللہ تعالیٰ عنہ ۱۳۴۲ھ مسجد میں طلائی نقش ونگار جائز ہے یا نہیں؟ کیا نمازیوں کے پیش نظر گل بوٹے چمکتے دمکتے مخل صلوٰۃ نہیں؟ کیا اس طرح کی زیبائش مسجد کی من جہت معبد ہونے کے شایانِ شان نہیں؟ محض مختصر جواب اس کا تحریر فرما کر فقیر کو ممنون فرمائیں، یہاں مسئلہ درپیش ہے کالج کی مسجد منقش و طلا کی جارہی ہے۔ فقط

الجواب: مساجد میں زینت ظاہری زمانہ سلف صالحین میں فضول ونا پسند تھی کہ اُن کے قلوب تعظیم شعائر اللہ سے مملو تھے ولذا حدیث میں مباہاۃ فی المساجد کو اشراط ساعت سے شمار فرمایا، اور عبد اللہ ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما نے فرمایا:

لَتُزَخْرِفُنَّهَا كَمَا زَخْرَفَتِ الْيَهُودُ تم مساجد کو اسی طرح مزین کرو گے جس طرح یہود و نصاریٰ وَالنَّصَارَىٰ 1 نے مزین کیں۔ (ت)

تبدل زمان سے علماء نے تزئین مساجد کی اجازت فرمائی کہ اب تعظیم ظاہر مورثِ عظمت فی العیون و وقعت فی القلوب ہوتی ہے فکان کتحلیۃ المصحف فیہ من تعظیمہ (یہ ایسے ہی ہے جیسے تعظیم کی خاطر قرآن حکیم کو طلا کی صورت میں لکھا جائے۔ت) مگر اب بھی دیوارِ قبلہ عموماً اور محراب کو خصوصاً شاغلاتِ قلوب سے بچانے کا حکم ہے بلکہ اولیٰ یہ ہے کہ دیوارِ یمین و شمال بھی ملہیات سے خالی رہے کہ اُس کے پاس جو مصلی ہو اُس کی نظر کو پریشان نہ کرے۔ ہاں گنبدوں، میناروں، سقف اور دیواروں کی سطح کہ مصلیوں کے پس پشت رہے گی ان میں

مضائقہ نہیں اگرچہ سونے کے پانی سے نقش ونگار ہوں بشرطیکہ اپنے مال حلال سے ہوں، مسجد کا مال اُس میں صرف نہ کیا جائے، مگر جبکہ اصل بانیِ مسجد نے نقش ونگار کئے ہوں یا واقف نے اس کی اجازت دی ہو یا مال مسجد کا فاضل بچا ہو، اور اگر صرف نہ کیا جائے تو ظالموں کے خورد برد میں جائے گا پھر جہاں جہاں نقش ونگار اپنے مال سے کرسکتا ہے اس میں بھی دقائق نقوش سے تکلف مکروہ ہے سادگی و میانہ روی کا پہلو ملحوظ رہے۔ امام ابن المنیر شرح جامع صحیح میں فرماتے ہیں:

استنبط منه كراهة زخرفة المساجد لاشتغال قلب المصلى بذلك او لصرف المال

اس سے مساجد کا مزین کرنا مکروہ ثابت ہوتا ہے کیونکہ اس میں نمازی کے دل مشغول یا مال کا

1 صحیح البخاری کتاب الصلوٰۃ باب بنیان المسجد مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۶۴ Page of 673 105

[Arabic text]: In a way other than intended, yes, if this (decoration) happens for the sake of honoring the mosques and the expenditure is not from the public treasury (Bait-ul-Mal), then there is no harm in it. Even if someone makes a will to construct a mosque firmly and to color it red and white, his will shall be implemented because fatwas for people are according to their current state. Now, people, whether believers or non-believers, are decorating their homes. If we build our mosques with raw bricks and make them small between high buildings, it would be a source of humiliation, especially when those houses might belong to the dhimmi (protected non-Muslim subjects). (T)

[Urdu translation]: Improper use is necessary; yes, when this decoration is for the sake of honoring the mosques and is not from the public treasury, then there is no harm in it. If a person leaves a will to build a mosque firmly and to color it red and white, his will will be executed because fatwas among people are according to their current state. Now people, whether believers or disbelievers, everyone is decorating their homes. Now, if we build our mosques with raw bricks and make them small among high buildings, it would be an insult to them, whereas these houses could also belong to the Dhimmi people (protected non-Muslim subjects). (T)

[Footnote 1: Irshad al-Sari on the authority of Ibn al-Munayyar, Chapter on Building the Mosque, printed by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/440]

It is stated in Durr-e-Mukhtar: [Arabic text]: (There is no harm in engraving the mosque except for its mihrab [niche]) because it is disliked (makruh) as it distracts the worshiper. It is disliked to over-elaborate with fine engravings and the like, especially on the qibla wall. Al-Halabi and Al-Mujtaba state in the Chapter of Prohibition that it is said to be disliked in the mihrab but not in the ceiling or the rear part. End of quote. It is apparent that 'mihrab' refers to the qibla wall, so remember this. (With plaster and gold water) if it is from his own (halal wealth) (not from waqf property) because that is forbidden (haram). (The trustee will be liable if he does so), i.e., engraving or whitewashing, unless there is a fear of the greed of oppressors; then there is no harm in it, as stated in 'Al-Kafi', and otherwise if it was for building regulations or by the endower (waqif).

[Urdu translation]: (There is no harm in engraving the mosque except for the prayer niche [mihrab]) because the engravings of the mihrab distract the worshiper; however, taking too much trouble for engravings is disliked, especially in the qibla

wall. It is mentioned in the 'Bab al-Nazar' (Chapter of Sight) of Halabi and Mujtaba that engraving the mihrab is disliked, while engraving the ceiling or the back wall is not disliked (End of quote), and it is apparent that by mihrab the qibla wall is meant, so preserve this (with plaster and gold water) if it is from (one's own) lawful money (not from waqf money) because that is forbidden (the trustee will be liable if he did so) engraving or whitewashing, however, when there is a fear of the greed of oppressors for the waqf money, there is no harm, as in Al-Kafi, and in this case if it were for building regulations or the endower.

जिल्द आठवीं फतावा रजविया

[अरबी पाठ]: गलत तरीके से इस्तेमाल लाज़मी आता है, हाँ जब यह (मस्जिदों की सजावट) उनकी ताज़ीम (सम्मान) के लिए हो और खर्च बैतुल माल (सरकारी खज़ाने) से न हो, तो इसमें कोई हर्ज नहीं। अगर किसी व्यक्ति ने मस्जिद को पक्का करने और उसे लाल और सफेद करने की वसीयत की, तो उसकी वसीयत लागू की जाएगी क्योंकि लोगों के लिए फतवा उनके वर्तमान हालात के मुताबिक होता है। अब लोग, चाहे मोमिन हों या काफिर, हर कोई अपने घर को सजा रहा है। अब अगर हम अपनी मस्जिदों को कच्ची ईंटों से बनाएंगे और उन्हें ऊंची इमारतों के बीच छोटा बनाएंगे, तो यह उनकी तौहीन (अपमान) होगी, जबकि ये घर गैर-मुस्लिम नागरिकों (ज़िम्मियों) के भी हो सकते हैं। (त)

[उर्दू अनुवाद]: गलत तौर पर इस्तेमाल लाज़िम आता है, हाँ जब यह तज़ईन (सजावट) मसाजिद की ताज़ीम की खातिर हो और बैतुल माल से न हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं। अगर किसी शख्स ने मस्जिद को पुख्ता करने और उसे सुर्ख ओ सफेद करने की वसीयत की तो उसकी वसीयत नाफ़िज़ होगी क्योंकि लोगों में फतवा उनके हाल के मुताबिक होता है अब लोग ख्वाह मोमिन हों या काफिर हर कोई अपने घर को मुज़ैयन (सजावट) कर रहा है, अब अगर हम अपनी मसाजिद को कच्ची ईंटों से बनाएंगे और उन्हें बुलंद इमारतों के दरमियान छोटा बनाएंगे तो उनकी तौहीन होगी जबकि यह मकानात अहल-ए-ज़िम्मा के भी हो सकते हैं। (त)

[पाद टिप्पणी 1: इरशाद अल-सारी, इब्न अल-मुनय्यर के हवाले से, मस्जिद बनाने का अध्याय, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 1/440]

दुर्रे मुख्तार में है: [अरबी पाठ]: (मिहराब के अलावा मस्जिद को नकाशीदार बनाने में कोई हर्ज नहीं) क्योंकि यह मकरूह है क्योंकि यह नमाज़ी का ध्यान भटका देता है। मिहराब में सूक्ष्म नक्काशी और इसी तरह की अन्य चीज़ों के लिए अधिक मेहनत करना मकरूह है, विशेष रूप से किबला की दीवार में। अल-हलबी और अल-मुजतबा ने निषेध के अध्याय में कहा है कि मिहराब में मकरूह है लेकिन छत या पिछले हिस्से में नहीं। उद्धरण समाप्त। यह स्पष्ट है कि 'मिहराब' से तात्पर्य किबला की दीवार से है, इसलिए इसे याद रखें। (चूने और सोने के पानी के साथ) यदि वह उसके अपने (हलाल धन) से हो (वक़्फ़ संपत्ति से नहीं) क्योंकि वह हराम है। (प्रबंधक उत्तरदायी होगा यदि वह ऐसा करता है), यानी नक्काशी या सफेदी, जब तक कि ज़ालिमों के लालच का डर न हो; तो इसमें कोई हर्ज नहीं है,

जैसा कि 'अल-काफी' में बताया गया है, और अन्यथा यदि यह इमारत के नियमों के लिए या दानकर्ता (वाकिफ) द्वारा था।

[उर्दू अनुवाद]: (मस्जिद को मिहराब के अलावा मुनक्क़श (नक्काशीदार) करने में कोई हर्ज नहीं) क्योंकि मिहराब का नक्श ओ निगार नमाज़ी को मशगूल (व्यस्त) कर देता है, अलबत्ता बहुत ज़्यादा नक्श ओ निगार के लिए तकल्लुफ करना खुसूसन दीवार-ए-किबला में मकरूह है। हलबी और मुजतबा के बाब-उल-नज़र में है कि मिहराब का मुनक्क़श करना मकरूह है छत या पिछली दीवार का मुनक्क़श करना मकरूह नहीं (अतह) और ज़ाहिर यही है कि मिहराब से मुराद दीवार-ए-किबला है, पस इसे महफूज़ कर लो (चूने और सोने के पानी से) अगर (अपने माल) हलाल से हो (माल-ए-वक़्फ़ से नहीं) क्योंकि वह हराम है (मुतवल्ली ने अगर किया तो वह ज़ामिन (ज़िम्मेदार) होगा) नक्श या सफेदी अलबत्ता जब ज़ालिमों से माल-ए-वक़्फ़ को खतरा हो तो कोई हर्ज नहीं, काफी और इस सूरत में अगर यह इमारत के अहकाम या वाक़िफ के लिए हो।

पृष्ठ 106 / 673

في غير وجهه نعم اذا وقع ذلك على سبيل تعظيم المساجد ولم يقع الصرف عليه من بيت المال فلا بأس به ولو اوصى بتشييد مسجد وتحميره وتصفيره ونفذت وصيته لانه قد حدث الناس فتاوى بقدر ما احدثوا وقد احدث الناس مؤمنهم وكافرهم تشييد بيوتهم وتزيينها ولو بنينا مساجدنا باللبن وجعلناها متطامنة بين الدور الشاهقة وربما كانت لاهل الذمة لكانت مستهانة غلط طور پر استعمال لازم آتا ہے ، ہاں جب یہ تزئین مساجد کی تعظیم کی خاطر ہو اور بیت المال سے نہ ہو تو اس میں کوئی حرج نہیں۔ اگر کسی شخص نے مسجد کو پختہ کرنے اور اسے سرخ و سفید کرنے کی وصیت کی تو اس کی وصیت نافذ ہو گی کیونکہ لوگوں میں فتویٰ ان کے حال کے مطابق ہوتا ہے اب لوگ خواہ مومن ہوں یا کافر ہر کوئی اپنے گھر کو مزین کر رہا ہے ، اب اگر ہم اپنی مساجد کو کچی اینٹوں سے بنائیں گے اور انہیں بلند عمارات کے درمیان چھوٹا بنائیں گے تو ان کی توہین ہو گی جبکہ یہ مکانات اہل الذمہ کے بھی ہو سکتے ہیں (ت)

1 ارشاد الساری بحوالہ ابن المنیر باب بنیان المسجد مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ۱/ ۴۴۰

در مختار میں ہے: (ولا بأس بنقشه خلا محرابه) فانه يكره لانه يلهي المصلي ، ويكره التكلف بدقائق النقوش ونحوها ، خصوصاً في جدار القبلة قال الحلبي وفي حظر المجتبى وقيل يكره في المحراب دون السقف والمؤخر انتهى وظاهره ان المراد بالمحراب جدار القبلة فليحفظ (بجص وماء ذهب) لو (بماله) الحلال (لا من مال الوقت) فانه حرام (وضمن متوليه لو فعل) النقش او البياض الا اذا خيف طمع الظلمة فلا بأس به كافي، والا اذا كان لاحكام البناء او الواقف (مسجد کو محراب کے علاوہ منقش کرنے میں کوئی حرج نہیں) کیونکہ محراب کا نقش و نگار نمازی کو مشغول کر دیتا ہے ، البتہ بہت زیادہ نقش و نگار کے لئے تکلف کرنا خصوصاً دیوارِ قبلہ میں مکروہ ہے۔ حلبی اور مجتبیٰ کے باب النظر

میں ہے کہ محراب کا منقش کرنا مکروہ ہے چھت یا پچھلی دیوار کا منقش کرنا مکروہ نہیں اھ اور ظاہر یہی ہے کہ محراب سے مراد دیوار قبلہ ہے ، پس اسے محفوظ کر لو (چونے اور سونے کے پانی سے) اگر (اپنے مال) حلال سے ہو (مال وقف سے نہیں) کیونکہ وہ حرام ہے (متولی نے اگر کیا تو وہ ضامن ہوگا) نقش یا سفیدی البتہ جب ظالموں سے مال وقف کو خطرہ ہو تو کوئی حرج نہیں ، کافی اور اس صورت میں

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Box 1] (Arabic): He did similarly, because of their saying that the endowment (Waqf) is repaired as it was. Its completion is in Al-Bahr. (Urdu): When this is for the strength of the structure or the endower himself did it, because the jurists said that the repair of the endowment is to be done according to the previous state. Its detail is in the book Al-Bahr. (T)

From Radd al-Muhtar quoting Al-Bahr:

[Box 2] (Arabic): And they intended by the mosque its interior, which implies that decorating its exterior is disliked (Makruh). I saw myself writing upon it as follows: I say: In this inference there is an apparent consideration, rather the apparent from it is its permissibility without dislike with three conditions: that it be from his lawful (Halal) wealth, and he does not burden himself with intricate engravings, because the exterior of the mosque is not a place that distracts the prayer-performer. In it [the decoration] is its glorification in eyes, an increase of its weight in hearts, and a cause for people's presence and longing for its construction. All of that is sought after and beloved. Indeed, matters are judged by their intentions, and every person shall have what he intended. And Allah Almighty knows best. (Urdu): Here they have intended the interior of the mosque, which makes it clear that decorating the exterior of the mosque is disliked (Makruh). What I wrote about it is this: it is evident that there is a concern in this inference, rather the apparent view is that it is permissible without dislike under three conditions: that the wealth used be lawful (Halal), and there should be no excessive formality in the engravings, because the exterior of the mosque does not distract the worshiper. Looking at it increases respect in the eyes and significance in hearts, and causes people to be present and eager for its prosperity, and every such thing is desired and beloved. Matters are judged based on their objectives, and for every person is what he intended. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1160: From Faizabad, Mughal-pura Mosque, sent by Sheikh Akbar Ali, Moazzin, and Maulvi Abdul Ali, 19 Rabi-ul-Akhir 1336 AH. There is a shrine of a saint near a mosque. Singing with musical instruments like drums, etc., takes place there. Spectators enter the mosque without regard for purity and etiquette, and during the 'Gagar' ceremony, a crowd enters the mosque. Is this permissible or not?

The Answer: Singing with musical instruments and listening to it are both forbidden (Haram), and committing a forbidden act in a mosque is even more severe. And the crowd for 'Gagar' if someone...

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, Majtabai Press, Delhi, 1/93 2. Radd al-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, Mustafa al-Babi Press, Egypt, 1/478 3. Jadd al-Mumtar ala Radd al-Muhtar, Chapter on Rulings of the Mosque, Al-Majma' al-Islami, Mubarakpur, India, 1/315

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[बॉक्स 1] (अरबी): उन्होंने वैसा ही किया जैसा कि उनके इस कौल की वजह से कि वक़्फ़ को उसी तरह तामीर किया जाएगा जैसा वो था, और इसकी तक्मील 'अल-बह्र' में है। (उर्दू): जब यह इमारत की मज़बूती के लिए हो या वक़्फ़ करने वाले ने ख़ुद ऐसा किया हो, क्योंकि फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने फ़रमाया है कि वक़्फ़ की मरम्मत पिछले हाल के मुताबिक करनी है। इसकी तफ़सील 'बह्र' में है। (त)

'रद्दुल मुहतार' में 'बह्र' के हवाले से है:

[बॉक्स 2] (अरबी): और मस्जिद से उनकी मुराद उसका अंदरूनी हिस्सा है, जो इस बात का फ़ायदा देता है कि उसके बाहरी हिस्से को सजाना मकरूह (नापसंदीदा) है। मैंने देखा कि मैंने इस पर यह लिखा: मैं कहता हूँ: इस इस्तिफ़ादा (निष्कर्ष) में ज़ाहिरी नज़र है, बल्कि ज़ाहिर यह है कि तीन शर्तों के साथ बिला-कराहत (बिना किसी नापसंदगी के) जाइज़ है: यह कि उसका माल हलाल हो, और नक़्श-ओ-निगार में तक़ल्लुफ़ (दिखावा) न हो, क्योंकि मस्जिद का बाहरी हिस्सा नमाज़ी को मशग़ूल नहीं करता। इसमें (सजावट में) आँखों में उसकी अज़्मत और दिलों में उसकी वक़्त (अहमियत) का इज़ाफ़ा है, और लोगों की हाज़िरी और आबादी में शौक़ का सबब है, और इनमें से हर चीज़ मतलूब-ओ-महबूब (चाही गई और पसंदीदा) है। यक़ीनन आमाल का दारोमदार नियतों पर है, और हर आदमी के लिए वही है जिसकी उसने नियत की। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (उर्दू): यहाँ उन्हों ने दाख़िल-ए-मस्जिद मुराद लिया है जो वाज़ेह कर रहा है कि बाहर मस्जिद की तज़ईन मकरूह है। मैंने इस पर जो लिखा वो ये है कि इस इस्तिफ़ादा में नज़र ज़ाहिर है बल्कि ज़ाहिर ये है कि शरुत-ए-थलाथा के साथ बिला कराहत जाइज़ है, ये कि अपना माल हलाल का हो और नुकूश में तकल्लुफ़ ना हो क्योंकि ख़ारिज-ए-मस्जिद नमाज़ी को मशग़ूल नहीं करता, इस में देखने में ताज़ीम और दिलों में वक़्त का इज़ाफ़ा और लोगों का हुज़ूर-ओ-आबादी में शौक़ का सबब है और इन में से हर शै मतलूब महबूब है, और उमूर का एतिबार उन के मक़ासिद पर होता है, हर आदमी के लिए वही कुछ है जो उस ने नियत की। वल्लाहु तआला आलम। (त)

मसला 1160: फ़ैज़ाबाद, मुग़लपुरा मस्जिद से, प्रेषित: शैख़ अकबर अली मोअज़िन और मौलवी अब्दुल अली, 19 रबी-उल-आख़िर 1336 हिजरी। मस्जिद के किनारे किसी बुज़ुर्ग की क़ब्र है और वहाँ बाजे-गाजे (ढोलकी वगैरह) के साथ गाना-बजाना होता है। तमाशबीन लोग पाकी और अदब का

ख़याल रखे बिना मस्जिद के अंदर चले आते हैं, और 'गागर' के वक़्त हुजूम (भीड़) मस्जिद के अंदर दाख़िल हो जाता है। क्या यह जाइज़ है या नहीं?

अल-जवाब: बाजे-गाजे के साथ गाना और उसे सुनना दोनों हराम हैं, और मस्जिद में हराम काम करना और भी ज़्यादा सख़्त (गुनाह) है। और गागर का हुजूम अगर किसी...

[पाद लेख] 1. दुर्र-ए-मुख़्तार, नमाज़ को फ़ासिद करने वाली और मकरूह चीज़ों का बयान, मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 1/93 2. रद्दुल मुहतार, नमाज़ को फ़ासिद करने वाली और मकरूह चीज़ों का बयान, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/478 3. जद अल-मुम्तार अला रद्दिल मुहतार, मस्जिद के अहकाम का बयान, मजमऊल इस्लामी, मुबारकपुर, इंडिया, 1/315

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[باکس ۱] (عربی): فعل مثله لقولهم انه یعمر الوقف کما کان وتمامه في البحر ۱۔ (اردو): جب یہ بنا کی پختگی کے لئے ہو یا واقف نے خود ایسا کیا ہو کیونکہ فقہاء نے فرمایا کہ وقف کی مرمت حسب سابق کرنا ہے۔ اس کی تفصیل بحر میں ہے۔ (ت)

رد المحتار میں بحر سے ہے:

[باکس ۲] (عربی): وارادوا من المسجد داخله فیفید ان تزیین خارجه مکروه۲ اه رأیتني کتبت علیه مآنصه، اقول: في هذه الاستفادة نظر ظاهر، بل الظاهر منه جوازه بلا کراهة بالشروط الثلثة ان یکون بماله الحلال ولا یتکلف دقائق النقوش لان خارج المسجد لیس محل الهاء المصلی، وفیه تعظیمه في العیون وزیادة وقعته في القلوب و تغیب الناس فی حضوره تعمیره، و کل ذلك مطلوب محبوب، وانما الامور بمقاصدها، و انها لکل امرئ مانوی۳ واللہ تعالٰی اعلم۔ (اردو): یہاں انہوں نے داخل مسجد مراد لیا ہے جو واضح کر رہا ہے کہ باہر مسجد کی تزئین مکروہ ہے اھ میں نے اس پر جو لکھا وہ یہ ہے کہ اس استفادہ میں نظر ظاہر ہے بلکہ ظاہر یہ ہے کہ شروط ثلاثہ کے ساتھ بلا کراہت جائز ہے یہ کہ اپنا مال حلال کا ہو اور نقوش میں تکلف نہ ہو کیونکہ خارج مسجد نمازی کو مشغول نہیں کرتا اس میں دیکھنے میں تعظیم اور دلوں میں وقعت کا اضافہ اور لوگوں کا حضور و آبادی میں شوق کا سبب ہے اور ان میں سے ہر شئی مطلوب محبوب ہے، اور امور کا اعتبار ان کے مقاصد پر ہوتا ہے، ہر آدمی کے لئے وہی کچھ ہے جو اس نے نیت کی۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (ت)

مسئلہ ۱۱۶۰: از فیض آباد مسجد مغلپورہ مرسلہ شیخ اکبر علی موذن و مولوی عبد العلی ۱۹ ربیع الآخر ۱۳۳۶ھ مسجد کے کنارے کسی بزرگ کی قبر ہو اور وہاں گانا مع آلات ڈھولکی وغیرہ ہو

اور تماشائی لوگ اندر مسجد کے بلالحاظ پاکی اور ادب کے اور گا گر کے وقت ہجوم ہو لوگ اندر مسجد داخل ہوں جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: مزامیر کے ساتھ گانا اور اس کا سننا دونوں حرام ہیں اور حرام فعل کا مسجد میں کرنا اور سخت، اور گا گر کا ہجوم اگر کسی...

[حواشی] 1 در مختار باب مایفسد الصلوٰۃ وما یکرہ فیہا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۹۳ 2 ردالمحتار باب مایفسد الصلوٰۃ وما یکرہ فیہا مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۴۷۸ 3 جد الممتار علی ردالمحتار باب احکام المسجد المجمع الاسلامی مبارکپور، انڈیا ۱ / ۳۱۵

...does not contain anything religiously forbidden, nor is it a time for prayer such that it would cause hardship for the worshippers, nor are these people desecrating the mosque, then there is no harm. To assume without Sharia proof that Muslims have entered the mosque in a state of impurity is ill-thinking (bad-gumani), and ill-thinking is forbidden. And Allah Almighty knows best.

Issue 1161: From Lalpur, District Pabna, Bengal, sent by Maulana Abu Saeed Muhammad Arif, dated 26 Jumada al-Thani 1326 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: some people say sitting on a chair in the central mosque (Jami' Masjid) to deliver a sermon is against the Sunnah, and they demand proof of it being Sunnah. Explain and you shall be rewarded.

The Answer: It is permissible for a preacher to sit on a chair in the mosque as long as there is no harm to the prayer or the worshippers. This is proven from Hadith once or twice, but an act does not become a Sunnah practice just by being done once or twice. And Allah Almighty knows best.

Issue 1162: From Chohar Kot, Barkhan, Balochistan, 21 Muharram 1337 AH. Majmu'a Fatawa Abdul Hayy, page 55, and Majmu'a Fatawa Humayuni by Maulana Mufti Abdul Ghafoor have written about the permissibility of a bedstead (charpoy) in the mosque. They present the Hadith where the Holy Prophet (peace be upon him) slept on a bed (sareer) during I'tikaf.

The Answer: When verbal (qawli) and practical (fi'li) Hadiths conflict, the action is based on the verbal Hadith: "Indeed, mosques were not built for this" [Note 1: Mosques are not built for such things]. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) entered Masjid al-Haram riding a camel and similarly performed tawaf of the Ka'bah. When Sa'd bin Mu'adh (may Allah be pleased with him) was injured and blood was flowing from his wounds, a tent was pitched for him in the holy mosque so that [the Prophet] could visit him from nearby, as there was no other place of residence for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) besides the mosque. Can anyone, based on these Hadiths, dare to do such things [regularly]? And Allah Almighty knows best.

Issues 1163, 1164: From the city of Bareilly, requested by Kifayatullah, 1st Ramadan-ul-Mubarak 1337 AH. What do the scholars of religion say on this matter that Zaid asks: (1) Should used shoes be kept in the mosque or not? Since Zaid heard from a

Maulana's blessed tongue that keeping shoes inside the mosque is haram (forbidden), so when he forbade it, the reply was that we see shoes kept in every mosque and...

---

1 Sunan Ibn Majah, Chapter: Prohibition of Announcing Lost Items in the Mosque, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/56; Sahih Muslim, Chapter: Prohibition of Searching for Lost Items in the Mosque, Nur Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/210.

...धार्मिक रूप से वर्जित कुछ भी शामिल नहीं है, न ही यह नमाज़ का समय है कि नमाज़ियों को कष्ट हो, और न ही ये लोग मस्जिद का अपमान कर रहे हैं, तो कोई हर्ज नहीं है। और बिना शरई प्रमाण के यह मान लेना कि मुसलमान नापाकी की हालत में मस्जिद में दाखिल हुए हैं, बदगुमानी (कुविचार) है, और बदगुमानी हराम है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1161: लालपुर, जिला पबना, बंगाल से, प्रेषक मौलवी अबू सईद मुहम्मद आरिफ, दिनांक 26 जमादी-उल-सानी 1326 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि कुछ लोग जुमे की मस्जिद में कुर्सी पर बैठकर उपदेश (वाज़) देने को सुन्नत के खिलाफ कहते हैं और इसके सुन्नत होने का प्रमाण मांगते हैं। उत्तर दें और पुण्य के पात्र बनें।

अल-जवाब: मस्जिद में उपदेशक का कुर्सी पर बैठना जायज़ है बशर्ते कि इससे नमाज़ और नमाज़ियों को कोई असुविधा न हो। हदीस से यह एक-दो बार साबित है, लेकिन केवल एक-दो बार करने से कोई कार्य सुन्नत नहीं बन जाता। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1162: चौहर कोट, बरखान, बलूचिस्तान से, 21 मुहर्रम 1337 हिजरी। मजमुआ फतावा अब्दुल हई, पृष्ठ 55 और मौलाना मुफ्ती अब्दुल गफूर द्वारा रचित मजमुआ फतावा हुमायूनी में मस्जिद में चारपाई रखने की अनुमति लिखी है। वे वह हदीस पेश करते हैं जिसमें नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) एतिकाफ के दौरान पलंग (सरीर) पर सोए थे।

अल-जवाब: जब शाब्दिक (कौली) और व्यावहारिक (फेली) हदीसें आपस में टकराती हैं, तो अमल शाब्दिक हदीस पर होता है: "बेशक मस्जिदें इन चीजों के लिए नहीं बनाई गई हैं" [पाद-टिप्पणी 1: मस्जिदें ऐसी चीजों के लिए नहीं बनाई गई हैं]। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ऊँट पर सवार होकर मस्जिद अल-हराम में दाखिल हुए और इसी तरह काबा शरीफ़ का तवाफ़ किया। जब साद बिन मुआज़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) घायल हुए और उनके ज़ख्मों से खून बह रहा था, तो उनके लिए मस्जिद-ए-नबवी में एक तंबू लगाया गया ताकि नबी करीब से उनकी तीमारदारी कर सकें, क्योंकि मस्जिद-ए-नबवी के अलावा हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास बैठने या ठहरने का कोई और स्थान नहीं था। क्या इन हदीसों के आधार पर कोई ऐसा काम करने का साहस कर सकता है? और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1163, 1164: बरेली शहर से, प्रेषित किफायतउल्ला, 1 रमज़ान-उल-मुबारक 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि ज़ैद पूछता है: (1) मस्जिद में इस्तेमाल किए हुए जूते रखने चाहिए या नहीं? क्योंकि ज़ैद ने एक मौलवी साहब की ज़बान से सुना है कि मस्जिद के अंदर जूते रखना हराम है, इस वजह से जब उसने मना किया, तो जवाब मिला कि हम हर मस्जिद में जूते रखे हुए देखते हैं और...

---

1 सुनन इब्न माजह, अध्याय: मस्जिद में खोई हुई चीजों की घोषणा करने की मनाही, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 1/56; सही मुस्लिम, अध्याय: मस्जिद में खोई हुई वस्तु की तलाश की मनाही, नूर मुहम्मद असहुत तबाअ, कराची, 1/210।

منکر شرعی پر مشتمل نہیں، نہ یہ وقت نماز کا ہو جس سے نمازیوں پر تنگی ہو، نہ یہ لوگ مسجد کی بے حرمتی کریں تو حرج نہیں، اور بے ثبوت شرعی مسلمانوں کو سمجھ لینا کہ ناپاکی کی حالت میں مسجد میں داخل ہوئے بد گمانی ہے اور بد گمانی حرام واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۶۱: از لال پور ضلع پبنا بنگال مرسلہ مولوی ابو سعید محمد عارف مورخہ ۲۶ جمادی الثانی ۱۳۲۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جمعہ کی مسجد میں کرسی پر بیٹھ کر وعظ کہنے کو بعض لوگ عدم سنت کہتے ہیں سنت ہونے کی دلیل چاہتے ہیں۔ بینوا توجروا

الجواب: واعظ کا کرسی پر مسجد میں بیٹھنا جائز ہے جبکہ نماز اور نمازیوں کا حرج نہ ہو، ایک آدھ بار حدیث سے یہ ثابت ہے مگر ایک آدھ بار سے فعل سنت نہیں بن جاتا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۶۲: از چوہٹر کوٹ بار کھاں ملک بلوچستان ۲۱ محرم ۱۳۳۷ھ مجموعہ فتاوٰی عبد الحی صفحہ ۵۵ و مجموعہ فتاوٰی ہمایونی تصنیف مولانا مفتی عبد الغفور نے چارپائی والے مسئلہ مسجد میں جواز لکھا ہے وہ حدیث پیش کرتے ہیں جو آنحضرت اعتکاف کے موقع میں سریر پر سوئے تھے۔ الجواب: حدیث قولی اور فعلی جب متعارض ہوں تو عمل حدیث قولی پر ہے ان المساجد لم تبن لھذا ۱ (مساجد کی بنا ان چیزوں کے لئے نہیں۔ت) نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اونٹ پر سوار مسجد الحرام شریف میں داخل ہوئے اور یو نہی کعبہ معظمہ کا طواف فرمایا۔ سعد بن معاذ رضی اللہ تعالٰی عنہ زخمی ہوئے خون ان کے زخموں سے جاری تھا ان کے لئے مسجد اقدس میں خیمہ نصب فرمایا کہ قریب سے عیادت فرمائیں کہ سوا مسجد شریف کے کوئی مکان نشست کا حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے پاس نہ تھا۔ کیا ان احادیث سے استناد کر کے کوئی ایسی جرات کر سکتا ہے؟ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۶۳، ۱۱۶۴: از شہر بریلی مسئولہ کفایت اللہ یکم رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید دریافت کرتا ہے کہ: (۱) مسجد میں استعما لی جوتا رکھنا چاہئے یا نہیں؟ چونکہ زید نے ایک مولوی صاحب کی زبان مبارک سے سنا ہے کہ جو تا مسجد کے اند رکھنا حرام ہے اس وجہ سے منع کیا تو جواب ہوا کہ ہر مسجد میں جو تا رکھتے دیکھتے ہیں اور

---

1 سنن ابن ماجہ باب النہی عن انشاد الضوال فی المسجد مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۵۶ ، صحیح مسلم باب النہی عن نشد الضالۃ فی المسجد نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۲۱۰

Fatawa Rizvia, Volume 8

It is said that it has been seen in Eidgah and Jamia Masjid, and even claimed to be in books of Shariah, that if shoes are dry and pure, there is no harm in bringing them into the mosque. What is the ruling on this? (2) If the washroom is separate from the mosque floor, but the washroom remains so wet that the feet get wet, should one wear shoes or go as is?

The Answer: (1) If there is a place outside the mosque to keep shoes, they should be kept there and not brought into the mosque. If there is no place outside, then after dusting the soles outside, they should be placed in such a way that they are neither in front of one's own prostration (sajdah) nor in front of another worshipper, nor to one's right side nor to another worshipper's, nor should they break the row. If one cannot manage all this, then place them in front and cover them with a handkerchief. (2) One should wear shoes. And Allah Almighty knows best. Problem 1165: 1st Dhu al-Qi'dah 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue that many worshippers keep their shoes in front of them in the mosque; when forbidden, they ask where it is forbidden? By which saying is it forbidden?

The Answer: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When one of you stands in prayer, he is in private conversation with his Lord. His Lord is between him and the Qibla, so let no one spit in front of his Qibla, but to his left or under his feet." - Reported by Al-Bukhari from Anas (may Allah be pleased with him). And he said: "When one of you stands for prayer, he should not spit."

1 Sahih al-Bukhari, Book of Prayer, Chapter on scraping spit with the hand from the mosque, published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/58. Page 109 of 673

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

कहते हैं कि ईदगाह और जामा मस्जिद में भी देखा और यहाँ तक कहा कि शरीअत की किताबों में भी देखा है कि अगर जूता सूखा और पाक है तो मस्जिद में (लाने में) कोई हर्ज नहीं है, इसमें क्या हुक्म है? (२) अगर गुस्लखाना मस्जिद के फर्श से अलग है और गुस्लखाना इतना गीला रहता है कि पैरों पर नमी लग जाती है तो जूता पहन कर जाना चाहिए या वैसे ही?

अल-जवाब (उत्तर): (१) अगर मस्जिद के बाहर जूता रखने की कोई जगह हो तो वहीं रखे जाएँ, मस्जिद में न रखें। और अगर बाहर कोई जगह नहीं है, तो बाहर झाड़कर तलवों को रगड़कर ऐसी जगह रखें कि नमाज़ में न अपने सजदे के सामने हो न दूसरे नमाज़ी के, न अपने दाएँ हाथ की ओर हो न दूसरे नमाज़ी के, न उनसे सफ (पंक्ति) टूटे। और इन सब पर समर्थ न हों, तो सामने रखकर रुमाल डाल दें। (२) जूता पहन कर जाना चाहिए। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मसला ११६५: १ ज़िल-क़ादा १३३७ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि अक्सर नमाज़ी मस्जिद में जूता सामने रखते हैं, मना करने पर कहते हैं कि कहाँ मना है? किस क़ौल (कथन) से मना है?

अल-जवाब (उत्तर): अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुममें से जब कोई व्यक्ति नमाज़ में खड़ा होता है तो वह अपने रब से मुनाजात (गुप्त संवाद) करता है और रब तआला को नमाज़ी अपने और क़िबला के बीच पाता है, तो कोई क़िबला की ओर न थूके, अलबत्ता बाईं ओर या पैर के नीचे थूक दे।" इसे बुखारी ने हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत किया है। और फ़रमाया: "जब तुममें से कोई नमाज़ शुरू करे तो उसे थूकना नहीं चाहिए।"

१ सहीह अल-बुखारी, किताब-उस-सलात, बाब मस्जिद से हाथ से थूक खुरचने का बयान, पुरानी कुतुब खाना कराची द्वारा प्रकाशित, १/५८। पेज १०९ ऑफ ६७३

کہتے ہیں کہ عید گاہ اور جامع مسجد میں بھی دیکھا اور یہاں تک کہا کہ شرع کی کتابوں میں بھی دیکھا ہے تو جوتا خشک پاک ہے اور مسجد میں کوئی حرج نہیں آیا اس میں کیا حکم ہے؟ (۲) اگر غسل خانہ مسجد کے فرش سے جدا ہے اور غسل خانہ اتنا تر رہتا ہے کہ پاؤں پر تری لگ جاتی ہے تو جوتا پہن کر جانا چاہئے یا ویسے ہی؟

الجواب: (۱) اگر مسجد سے باہر کوئی جگہ جوتا رکھنے کی ہو تو وہیں رکھے جائیں مسجد میں نہ رکھیں اور اگر باہر کوئی جگہ نہیں تو باہر جھاڑ کر تلے ملا کر ایسی جگہ رکھیں کہ نماز میں نہ اپنے سجدے کے سامنے ہو نہ دوسرے نمازی کے، نہ اپنے دہنے ہاتھ کو ہوں نہ دوسرے نمازی کے، نہ ان سے قطع صف ہو، اور ان سب پر قادر نہ ہوں تو سامنے رکھ کر رومان ڈال دیں۔ (۲) جوتا پہن کر جانا چاہئے۔ واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۱۱۶۵: یکم ذی قعدہ ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اکثر نمازی مسجد میں جوتا سامنے رکھتے ہیں، منع کرنے پر کہتے ہیں کہ کہاں منع ہے؟ کس قول سے منع ہے؟

الجواب: رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: | ان احدکم اذا قام فی الصلوۃ فانما یناجی ربہ وان ربہ بینہ وبین القبلۃ فلا یبزقن احدکم قبل قبلتہ ، ولکن عن یسارہ او تحت قدمہ -رواہ البخاری عن انس رضی اللہ تعالٰی عنہ | تم میں سے جب کوئی شخص نماز میں کھڑا ہوتا ہے تو وہ اپنے رب سے مناجات کرتا ہے اور رب تعالٰی کو نمازی اپنے اور قبلہ کے درمیان پاتا ہے تو کوئی قبلہ کی جانب نہ تھوکے، البتہ بائیں جانب یا پاؤں کے نیچے تھوک دے۔ اسے بخاری نے حضرت انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا ہے۔ (ت) | اور فرمایا: | اذا قام احدکم الی الصلوۃ فلا یبصق | جب تم میں سے کوئی نماز شروع کرے تو |

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Arabic Box 1]: امامہ ، فانما یناجی اللہ ما دام فی مصلاہ ولا عن یمینہ فان عن یمینہ ملکا ولیبصق عن یسارہ او تحت قدمہ فیدفنھا [1] - رواہ الشیخان عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔

[Urdu Translation]: One should not spit in front because as long as he is in prayer, he is conversing with his Lord, nor should he spit to his right because there is an angel on his right. However, he may spit to his left or under his foot and bury it. Narrated by Bukhari and Muslim from Hadhrat Abu Huraira (Allah be pleased with him). (T)

And he said:

[Arabic Box 2]: اذا صلی احدکم فلا یضع نعلیہ عن یمینہ ولا عن یسارہ فتکون عن یمین غیرہ الا ان لا یکون علی یسارہ احد ولیضعھما بین رجلیہ [2] - رواہ ابو داؤد عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔ واللہ تعالیٰ اعلم

[Urdu Translation]: When one of you prays, he should not place his shoes to his right nor to his left, because they would be on someone else's right, unless there is no one on his left. In that case, he should place them between his two feet. Narrated by Abu Dawood from Hadhrat Abu Huraira (Allah be pleased with him). And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 1166: From Sarai Chhabila, District Bulandshahr, sent by Rahatullah, Imam of Jamia Masjid, 19 Ramadan 1338 AH.

Question: People generally draw water from the mosque's well for their homes and come barefoot. Their dirty feet touch the rope, and splashes certainly fall back into the well. When forbidden, they say they have always filled it this way. What is the ruling on this?

Answer: The use of the well cannot be prohibited. If the rope and bucket belong to the mosque, protect them and do not allow filling for purposes other than prayer. Regarding purity, Sharia does not give weight to mere suspicions, otherwise, life would become difficult. And Allah Almighty knows best.

Issue 1167: From Shahar-e-Kohna, asked by Muhammad Zahoor Sahib, 10 Shawwal 1337 AH.

Question: What do the scholars say regarding this issue: If there are fruit-bearing trees in the mosque, for example, Jamun, Molsari, Khirni etc., and the fruit is in such

quantity that it could be sold, in such a case, can a worshiper or non-worshiper take that fruit without paying any price...

---

[1] Sahih al-Bukhari, Kitab al-Salat, Bab Dafn al-Nukhama fil Masjid, printed at Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/59. [2] Sunan Abi Dawood, Kitab al-Salat, Bab al-Musalli idha khala'a na'layhi etc., printed at Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/69.

फ़तावा रज़विया - जिल्द अष्टम

[अरबी बॉक्स 1]: امامہ ، فانما یناجی اللہ ما دام فی مصلاہ ولا عن یمینہ فان عن یمینہ ملکا ولیبصق عن یسارہ او تحت قدمہ فیدفنھا [1] - رواہ الشیخان عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔

[उर्दू अनुवाद का हिंदी]: सामने न थूकें क्योंकि जब तक वह नमाज़ में है, वह अपने रब से बात कर रहा होता है। न ही अपनी दाईं ओर थूकें क्योंकि उसकी दाईं ओर एक फरिश्ता होता है। अलबत्ता, वह अपनी बाईं ओर या अपने पैर के नीचे थूक सकता है और उसे दबा दे। इसे बुखारी और मुस्लिम ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है। (त)

और फ़रमाया:

[अरबी बॉक्स 2]: اذا صلی احدکم فلا یضع نعلیہ عن یمینہ ولا عن یسارہ فتکون عن یمین غیرہ الاان لا یکون علی یسارہ احد ولیضعھما بین رجلیہ [2] - رواہ ابو داؤد عن ابی ھ رۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔ واللہ تعالیٰ اعلم

[उर्दू अनुवाद का हिंदी]: जब तुम में से कोई नमाज़ पढ़े, तो अपने जूते न दाईं ओर रखे और न ही बाईं ओर, क्योंकि वे किसी और की दाईं ओर हो जाएंगे, सिवाय इसके कि बाईं ओर कोई न हो। बल्कि उन्हें अपने दोनों पैरों के बीच में रख लेना चाहिए। इसे अबू दाऊद ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है। और अल्लाह बेहतर जानता है। (त)

मसला 1166: सराये छबीला, ज़िला बुलंदशहर से, राहतुल्लाह, इमाम जामा मस्जिद द्वारा प्रेषित, 19 रमज़ान 1338 हिजरी।

प्रश्न: मस्जिद के कुएं से आम तौर पर घरों के लिए पानी भरा जाता है और लोग नंगे पैर आते हैं। उनके गंदे पैर रस्सी को छूते हैं, और पानी के छींटे निश्चित रूप से कुएं में वापस गिरते हैं। मना करने पर वे कहते हैं कि वे पहले से ही इसी तरह भरते आ रहे हैं। इसके बारे में क्या हुक्म है?

उत्तर: कुएं के उपयोग पर पाबंदी नहीं लगाई जा सकती। यदि रस्सी और बाल्टी मस्जिद की है, तो उनकी रक्षा करें और नमाज़ के अलावा अन्य कार्यों के लिए पानी भरने की अनुमति न दें। पवित्रता के मामले में, शरीयत मात्र संदेहों को महत्व नहीं देती, अन्यथा जीवन कठिन हो जाएगा। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

मसला 1167: शहर-ए-कोहना से, मुहम्मद ज़हूर साहिब द्वारा पूछा गया, 10 शव्वाल 1337 हिजरी।

प्रश्न: इस मामले में क्या हुक्म है: यदि मस्जिद में फल देने वाले पेड़ हों, जैसे कि जामुन, मोलसरी, खिरनी आदि, और फल इतनी मात्रा में हों कि उन्हें बेचा जा सके, तो ऐसी स्थिति में क्या कोई नमाज़ी या गैर-नमाज़ी बिना कोई कीमत चुकाए उस फल को...

---

[1] सहीह अल-बुखारी, किताब अस-सलात, बाब दफ़्न अल-नुखामा फ़िल मस्जिद, क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची में मुद्रित, 1/59। [2] सुनन अबू दाऊद, किताब अस-सलात, बाब अल-मुसल्ली इज़ा ख़ला नलयही आदि, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर में मुद्रित, 1/69।

पृष्ठ 110/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[عربی باکس ۱]: امامہ ، فانما یناجی اللہ ما دام فی مصلاہ ولا عن یمینہ فان عن یمینہ ملکا ولیبصق عن یسارہ او تحت قدمہ فیدفنھا ۱ - رواہ الشیخان عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔

[اردو ترجمہ]: سامنے نہ تھوکے کیونکہ جب تک وہ نماز میں ہے اپنے رب سے ہم کلام ہے ، نہ ہی دائیں طرف تھوکے کیونکہ اس کے دائیں طرف فرشتہ ہوتا ہے، البتہ بائیں طرف یا قدم کے نیچے تھوک لے اور اسے دفن کر دے۔ اسے بخاری و مسلم نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔ (ت)

اور فرمایا:

[عربی باکس ۲]: اذا صلی احدکم فلا یضع نعلیہ عن یمینہ ولا عن یسارہ فتکون عن یمین غیرہ الا ان لا یکون علی یسارہ احد ولیضعھما بین رجلیہ ۲ - رواہ ابو داؤد عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔ واللہ تعالیٰ اعلم

[اردو ترجمہ]: جب تم میں سے کوئی نماز پڑھے تو جوتے نہ دائیں طرف رکھے نہ بائیں طرف کیونکہ وہ کسی کی دائیں جانب ہوگی البتہ اس صورت میں جب بائیں جانب کوئی نہ ہو، اور انھیں اپنے دونوں پاؤں کے درمیان رکھ لے۔ اسے ابوداؤد نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۶۶: از سرائے چھبیلہ ضلع بلند شہر مرسلہ راحت اللہ امام مسجد جامع ۱۹ رمضان ۱۳۳۸ھ مسجد کے چاہ سے عموماً پانی بھرنا اپنے گھروں کو اور ننگے پیروں سے آنا، اور رسی سے بھی وہ خراب پیر لگتے ہیں پھر اس کی چھینٹیں کنوئیں میں ضرور جاتی ہیں، منع کرنے پر

کہتے ہیں کہ پہلے سے یونہی بھرتے آتے ہیں۔ ان کا کیا حکم ہے؟ الجواب: کنویں کی ممانعت نہیں ہو سکتی رسی ڈول اگر مسجد کا ہے اس کی حفاظت کریں، غیر نماز کے لئے اُس سے نہ بھرنے دیں، درباره طہارت اوہام کو شریعت نے دخل نہیں دیا ورنہ عافیت تنگ ہو جائے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۶۷: از شہر کہنہ مسئولہ محمد ظہور صاحب ۱۰ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں اس مسئلہ میں کہ مسجد میں درخت پھلدار مثلاً جامن مولسری کھنی وغیرہ کے ہو اور پھل اس مقدار پر آیا جس کو فروخت کیا جائے، ایسی صورت میں وہ پھل نمازی یا غیر نمازی بلاکچھ قیمت ادا کئے ہوئے

۱ صحیح البخاری کتاب الصلوۃ باب دفن النخامۃ فی المسجد مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۵۹

۲ سنن ابوداؤد کتاب الصلوۃ باب المصلی اذا خلع نعلیہ الخ مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/۶۹

Vol. 8 Fatawa Ridawiyya

Can they eat it or not? Furthermore, there are trees like Bela, Jasmine, and Molsari in the mosque; can the worshippers take their flowers home without paying any price?

The Answer: Planting trees in the mosque without intense necessity is prohibited, and one cannot take their fruits and flowers without payment. It is stated in al-Hindiyyah:

[Arabic]: If someone plants a tree in the mosque, then the tree belongs to the mosque, as in al-Zahiriyyah. (1) [Urdu]: When someone plants a plant in the mosque, it will belong to the mosque, as mentioned in Zahiriyyah. (T)

In the same source it is stated:

[Arabic]: In Fatawa Ahl Samarqand: There is an apple tree in a mosque. It is permissible for people to break their fast with these apples. Sadr al-Shahid (may Allah have mercy on him) said: The chosen view is that it is not permissible, as in al-Dhakhirah. (2) End. [Urdu]: In Fatawa Ahl Samarqand, it is mentioned: There is a pear tree in a mosque; is it permissible for people to break their fast with its pears? Sadr al-Shahid says the preferred opinion is that it is not permissible, as stated in al-Dhakhirah. End.

[Arabic]: I say: This is a clear correction from a great Imam, and there is no doubt that this is a matter related to Waqf (endowment). For as Waqf property cannot be owned, it cannot be made permissible (for private use). Therefore, this takes precedence over what is mentioned in Sulh al-Khaniyah before the section on Muhabah. A man planted a mulberry tree on a path. They (jurists) said: There is no harm in it if it does not harm the path, and it is lawful for the planter to use its leaves and eat its mulberries. But if the tree is in the mosque, Faqih Abu Ja'far (may Allah have mercy on him) said... [Urdu]: I say: (I say) this is an explicit correction by a great Imam. Undoubtedly, this issue relates to Waqf, and just as a Waqf property cannot be owned, similarly, it cannot be made permissible for anyone's private use. The ruling mentioned in Khaniyah just before the section on 'Muhabat' is preceded by the statement that if a person plants a mulberry tree on a path, jurists say: as long as it doesn't cause harm to the path, there's no harm in it, and the leaves and fruit are permissible for the planter. And if...

1. Fatawa Hindiyyah, Kitab al-Waqf, Chapter 12 on Inns, Published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/474

2. Fatawa Hindiyyah, Kitab al-Waqf, Chapter 12 on Inns, Published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/474

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

खा सकते हैं या नहीं? इसके अलावा मस्जिद में बेला, चमेली और मौलसरी के पेड़ हैं; क्या नमाज़ी लोग बिना किसी मूल्य के इनके फूल अपने घर ले जा सकते हैं या नहीं?

उत्तर: मस्जिद में बिना तीव्र आवश्यकता के पेड़ लगाना मना है, और उनके फल-फूल बिना मूल्य के नहीं लिए जा सकते। 'हंदिया' में है:

[अरबी]: यदि किसी ने मस्जिद में पेड़ लगाया, तो पेड़ मस्जिद का होगा, जैसा कि ज़हीरिया में है। (1) [उर्दू]: जब किसी ने मस्जिद में पौधा लगाया तो वह मस्जिद ही का होगा, जैसा कि ज़हीरिया में है। (त)

इसी में है:

[अरबी]: फ़तावा अहल-ए-समरकंद में है: एक मस्जिद में सेब का पेड़ है। लोगों के लिए इन सेबों से रोज़ा इफ़्तार करना जायज़ है। सद्र अल-शहीद (रहमतुल्लाह अलैहि) ने कहा: मुख़्तार (पसंदीदा) राय यह है कि यह जायज़ नहीं है, जैसा कि ज़ख़ीरा में है। (2) अंत। [उर्दू]: फ़तावा अहल-ए-समरकंद में है: एक मस्जिद में नाशपाती का पेड़ है, लोगों का इसकी नाशपाती के साथ रोज़ा इफ़्तार करना मुबाह है, सद्र अल-शहीद कहते हैं कि मुख़्तार यह है कि यह जायज़ नहीं, जैसा कि ज़ख़ीरा में है। अंत।

[अरबी]: अकुल (मैं कहता हूँ): यह एक महान इमाम की स्पष्ट पुष्टि है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि यह मामला वक़्फ़ से संबंधित है। जिस प्रकार वक़्फ़ का कोई मालिक नहीं होता, उसी प्रकार वह किसी के लिए मुबाह (अनुमेय) नहीं होता। इसलिए, यह 'सुल्ह अल-खानिया' में 'महाबाह' अनुभाग से पहले जो उल्लेख किया गया है, उस पर वरीयता रखता है। एक रास्ते में, एक व्यक्ति ने शहतूत का पेड़ लगाया। फ़क़ीहों ने कहा: यदि वह रास्ते के लिए हानिकारक न हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं, और लगाने वाले के लिए इसके पत्ते और फल का उपयोग मुबाह होगा। और यदि पेड़ मस्जिद में हो, तो फ़क़ीह अबू जाफ़र (रहमतुल्लाह अलैहि) ने कहा... [उर्दू]: अकुल: (मैं कहता हूँ) यह एक महान इमाम की स्पष्ट पुष्टि है और निस्संदेह यह मामला वक़्फ़ से संबंधित है और वक़्फ़ जिस तरह किसी की मिल्कियत नहीं होता इसी तरह वो किसी के लिये मुबाह नहीं होता। और जो कुछ खानिया में महाबात की फ़सल से थोड़ा सा पहले है इस पर इस क़ौल को तक़दीम हासिल है कि रास्ता में एक शख़्स ने तूत का दरख़्त लगा दिया तो फ़ुक़्हा ने फ़रमाया: जब वो रास्ता के लिये ज़रर रसाँ न हो तो इस में कोई

हर्ज नहीं और दरख़्त लगाने वाले के लिये इस के पत्ते और फल का इस्तेमाल मुबाह होगा और अगर...

1. फ़तावा हंदिया, किताब अल-वक़्फ़, अध्याय 12 सराय के बारे में, प्रकाशित नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 2/474
2. फ़तावा हंदिया, किताब अल-वक़्फ़, अध्याय 12 सराय के बारे में, प्रकाशित नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 2/474

पृष्ठ 673 में से 111

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

کھا سکتے ہیں یا نہیں؟ دیگر یہ کہ مسجد میں درخت بیلہ۔ چنبیلی۔ مولسری کا ہے اس کے پھول نمازی لوگ بلا کوئی قیمت ادا کئے ہوئے گھر کو لا سکتے ہیں یا نہیں؟

الجواب: مسجد میں بے ضرورت شدید درخت بونا منع ہے اور اس کے پھل پھول بے قیمت نہیں لے سکتے۔ ہندیہ میں ہے:

اذاغرس شجرا فی المسجد فالشجر للمسجد کذافی الظھیریہ 1۔ | جب کسی نے مسجد میں پودا لگایا تو وہ مسجد ہی کا ہوگا، جیسا کہ ظہیریہ میں ہے۔ (ت)

اسی میں ہے:

فی فتاوٰی اھل سمر قند مسجد فیہ شجرۃ تفاح یباح للقوم ان یفطر وا بھذا التفاح قال الصدر الشھید رحمہ اللہ تعالٰی المختار انہ لایباح کذافی الذخیرۃ 2 اھ | فتاوٰی اہل سمر قند میں ہے: ایک مسجد میں ناشپاتی کا درخت ہے لوگوں کا اسکی ناشپاتی کے ساتھ روزہ افطار کرنا مباح ہے، صدر الشہید کہتے ہیں کہ مختار یہ ہے کہ یہ جائز نہیں، جیسا کہ ذخیرہ میں ہے اھ

اقول: وھذا تصحیح صریح من امام جلیل ولا شك انہ ھو قضیۃ الوقفیۃ فان الوقف کما لا یملك لا یباح فیقدم علی ما فی صلح الخانیۃ قبیل فصل المھاباۃ۔ طریق غرس فیہ رجل شجرۃ الفرصاد قالوا لاباس بہ اذاکان لا یضر بالطریق ویطیب للغارس ورقھا واکل فرصادھا وان کانت الشجرۃ فی المسجد قال الفقیہ ابو جعفر رحمۃ اللہ تعالٰی | اقول: (میں کہتا ہوں) یہ ایک عظیم امام کی صراحتِ تصحیح ہے اور بلاشبہ یہ معاملہ وقف سے متعلق ہے اور وقف جس طرح کسی کی ملکیت نہیں ہوتا اسی طرح وہ کسی کے لئے مباح نہیں ہوتا۔ اور جو کچھ خانیہ میں مہابات کی فصل سے تھوڑا سا پہلے ہے اس

پر اس قول کو تقدیم حاصل ہے کہ راستہ میں ایک شخص نے تُوت کا درخت لگا دیا تو فقہاء نے فرمایا: جب وہ راستہ کے لئے ضرر رساں نہ ہو تو اس میں کوئی حرج نہیں اور درخت لگانے والے کے لئے اس کے پتے اور پھل کا استعمال مباح ہوگا اور اگر

1 فتاویٰ ہندیہ کتاب الوقف الباب الثانی عشر فی الرباطات مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۴۷۴

2 فتاویٰ ہندیہ کتاب الوقف الباب الثانی عشر فی الرباطات مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۲ / ۴۷۴

Fatawa Razawiyya, Volume 8

“There is no harm in eating its mulberry fruit, but it is not permissible to take its leaves. Allah (the Exalted) knows best.”[1] (Translation): If the tree is in the mosque, Faqih Abu Ja'far (may Allah have mercy on him) said: It is permissible to eat its mulberry fruit, but it is not permissible to take the leaves. And Allah (the Exalted) knows best. (T)

Problem 1168: From Basoli, district Budaun, sent by Khalil-ur-Rehman Sahab, 19 Shaban-ul-Muazzam 1319 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: what is the prohibition for those who talk about worldly matters in mosques, and what will be the accountability on the Day of Resurrection?

The Answer: Going to and sitting in a mosque for the purpose of worldly talk is forbidden (Haram). It is quoted in Ashbah wa Nazair from Fath al-Qadir: “Worldly talk in the mosque eats up good deeds just as fire eats wood.” This is the ruling for permissible (Mubah) talk; then what can be said if the talk itself is bad? Both are severely forbidden upon forbidden, a cause of severe punishment. And Allah (the Exalted) knows best.

Problem 1169: From Ghazipur, Muhallah Miyanpura, sent by Munshi Ali Bakhsh, clerk at the Registry Office, Ghazipur, 7 Dhu al-Qi'dah 1322 AH. What do the scholars of religion and muftis of the luminous Sharia say regarding this matter: is it correct to make noise and talk about worldly things in the mosque, and similarly during wudu, or not? And is it permissible to turn out those who backbite, cast accusations, and in whom the style of hypocrisy and mischief is found?

The Answer: Making noise and mischief in the mosque is forbidden, and sitting in the mosque for worldly talk is forbidden. Mentioning worldly matters in the mosque when one has gone for prayer is disliked (Makruh), and unnecessary worldly talk during wudu should be avoided. As for backbiters, accusers, hypocrites, and mischief-makers, if one has the power to turn them out without causing a greater strife (Fitna), then they should be turned out; otherwise, one should move away from them. And Allah (the Exalted) knows best.

Problem 1170: From the city of Bareilly, Madrasa Manzar-e-Islam, asked by Ghulam Jan Sahab, student, 18 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: a mosque has become ruined, i.e., its roof etc. has fallen, only

walls and other ruins are visible. Regarding a shop belonging to this mosque, can its rent [be spent] on another mosque...

---

[1] Fatawa Qazi Khan, Kitab-ul-Sulh (The Book of Reconciliation) regarding what is permissible for one of the partners, published by Nawal Kishore, Lucknow 3/611.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

“उसके शहतूत के फल खाने में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन उसके पत्ते लेना जायज़ नहीं है। अल्लाह (तआला) बेहतर जानता है।”[1] (अनुवाद): यदि पेड़ मस्जिद में है, तो फ़कीह अबू जाफ़र (रहमतुल्लाह अलैह) ने फरमाया: उसके शहतूत का फल खाना जायज़ है और पत्तों का लेना नाजायज़ है। और अल्लाह (तआला) बेहतर जानता है। (टी)

मसला 1168: बसोली, जिला बदायूँ से, प्रेषक खलील-उर-रहमान साहब, 19 शाबान-उल-मुअज़्ज़म 1319 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि मस्जिदों में दुनियावी मामलात की बातें करने वालों पर क्या मनाही है और क़यामत के दिन क्या जवाबदेही होगी?

उत्तर: दुनियावी बातों के लिए मस्जिद में जाकर बैठना हराम है। ‘अशबाह व नज़ायर’ में ‘फतह अल-क़दीर’ से उद्धृत किया गया है: “मस्जिद में दुनियावी बातचीत नेककियों को वैसे ही खा जाती है जैसे आग लकड़ी को।” यह मुबाह (अनुमेय) बातों का हुक्म है; फिर यदि बातें स्वयं बुरी हों, तो उसका क्या कहना? दोनों ही अत्यंत हराम दर हराम हैं, और कठोर दंड का कारण हैं। और अल्लाह (तआला) बेहतर जानता है।

मसला 1169: गाज़ीपुर, मोहल्ला मियाँपुरा से, प्रेषक मुंशी अली बख्श, क्लर्क रजिस्ट्री ऑफिस गाज़ीपुर, 7 ज़ुल क़ादा 1322 हिजरी। धर्म के विद्वान और शरीअत के मुफ़्ती इस विषय में क्या कहते हैं कि मस्जिद में शोर-शराबा करना और दुनियावी बातें करना और इसी तरह वज़ू के दौरान, सही है या नहीं? और क्या अपने पास से गीबत (चुगली) करने वालों, तोहमत (झूठा आरोप) लगाने वालों और जिनमें मुनाफ़िक़त (पाखंड) और फ़साद (उपद्रव) का अंदाज़ पाया जाए, उन्हें बाहर निकाल देना जायज़ है या नहीं?

उत्तर: मस्जिद में शोर-शराबा और फ़साद करना हराम है, और दुनियावी बात के लिए मस्जिद में बैठना हराम है। नमाज़ के लिए जाकर मस्जिद में दुनियावी ज़िक्र करना मकरूह (नापसंद) है, और वज़ू के दौरान बिना ज़रूरत दुनियावी बातचीत नहीं करनी चाहिए। और गीबत करने वालों, तोहमत लगाने वालों, मुनाफ़िक़ों और फ़सादियों को बाहर निकालने पर शक्ति हो तो उन्हें निकाल दे, बशर्ते कि कोई नया फ़ितना (बखेड़ा) न खड़ा हो; अन्यथा स्वयं उनके पास से हट जाए। और अल्लाह (तआला) बेहतर जानता है।

मसला 1170: बरेली शहर, मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम से, प्रार्थी गुलाम जान साहब छात्र, 18 शव्वाल 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि एक मस्जिद वीरान हो गई है, यानी उसकी छत आदि गिर गई है, केवल दीवारें और अन्य अवशेष दिखाई दे रहे हैं। इस मस्जिद से संबंधित जो दुकान है, उसका किराया दूसरी मस्जिद पर...

---

[1] फ़तावा क़ाज़ी खान, किताब-उस-सुलह, शरीक के अधिकारों के बारे में, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित 3/611।

पृष्ठ 112/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

لا باس باکل توتھا ولایجوز اخذ ورقھا [1] اھ واللہ تعالیٰ اعلم درختِ مسجد میں ہے تو فقیہ ابو جعفر رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے فرمایا: اسے اپنے توت کا پھل کھانا جائز اور پتوں کا لینا ناجائز ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۶۸: از بسولی ضلع بدایوں مرسلہ خلیل الرحمان صاحب ۱۹ شعبان المعظم ۱۳۱۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مساجد میں معاملاتِ دنیا کی باتیں کرنے والوں پر کیا ممانعت ہے اور بروزِ حشر کیا مواخذہ ہوگا؟

الجواب: دنیا کی باتوں کے لئے مسجد میں جاکر بیٹھنا حرام ہے۔ اشباہ و نظائر میں فتح القدیر سے نقل فرمایا: "مسجد میں دنیا کی کلام نیکیوں کو ایسا کھاتا ہے جیسے آگ لکڑی کو۔" یہ مباح باتوں کا حکم ہے پھر اگر باتیں خود بری ہوئیں تو اس کا کیا ذکر ہے، دونوں سخت حرام در حرام، موجبِ عذابِ شدید ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۶۹: از غازی پور محلہ میاں پورہ مرسلہ منشی علی بخش محرر دفتر جی غازی پور ۷ ذیقعدہ ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ مسجد میں شور و شر کرنا اور دنیا کی باتیں کرنا اور اسی طرح وضو میں درست ہے یا نہیں، اور اپنے پاس سے غیبت کرنے والوں اور تہمت اٹھانے والوں اور جن میں شیوہ منافقت کا مفسدہ کا انداز پایا جائے نکلوا دینا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: مسجد میں شور و شر کرنا حرام ہے، اور دنیوی بات کے لئے مسجد میں بیٹھنا حرام، اور نماز کے لئے جاکر دنیوی تذکرہ مسجد میں مکروہ اور وضو میں بے ضرورت دنیوی کلام نہ

چاہئے۔ اور غیبت کرنے والوں اور تہمت اٹھانے والوں منافقوں مفسدوں کو نکلوا دینے پر قادر ہو تو نکلوا دے جبکہ فتنہ نہ اٹھے ورنہ خود ان کے پاس سے اٹھ جائے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۷۰: از شہر بریلی مدرسہ منظر الاسلام مسئولہ غلام جان صاحب طالب العلم ۱۸ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مسجد ویران شدہ یعنی چھت وغیرہ اس کا گر گیا صرف دیواریں و دیگر آثار اس کے سب نمودار ہیں اس مسجد کے متعلق جو دُکان ہو اُس کا کرایہ دوسری مسجد پر---

---

[1] فتاویٰ قاضی خاں کتاب الصلح فیما یجوز لاحد الشریکین مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۳/ ۶۱۱

Fatawa-e-Razvia, Volume 8

Can it be spent? And is it permissible to give the imam of another mosque from this rent or not? Answer: Not permissible, rather use its rent to repair the same mosque. And Allah Almighty knows best.

Problem 171: From Moradabad, Mohalla Asalatpura, sent by Kard Ali Sahib, 15 Muharram 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue that some graves were included in the courtyard of the mosque and a solid floor was built over them? Now no sign of any grave is visible in the courtyard, although it is known for certain that graves of such and such persons are there. Therefore, it is requested to know if praying in the courtyard of this mosque where graves were located is permissible or not? And what about the prayers already offered there, are they valid or not? Provide an answer with references from books of Hadith. Answer: Flattening the graves of Muslims and including them in the courtyard of a mosque is forbidden (Haram), and praying towards those graves is also forbidden. A grave remains a grave as long as its name remains, not merely by the presence of a marker above it; as long as a person is buried there, the place is called a grave. Therefore, as many prayers as were offered there should all be repeated, and markers should be restored on the graves so that Muslims avoid stepping on them, walking over them, or praying towards them. And Allah Almighty knows best.

Problem 172: From Shahi, Rampur region, sent by Nadar Shah Khan and Inaamullah Khan, 6 Jumada al-Ukhra 1319 AH. What do the scholars of religion say about this issue: in the Jami' Masjid, to the right and left, there are old graves; some are simple earth, some are solid platforms. If the mosque floor is extended and the graves are made level so that no sign remains, is it permissible to pray on them? Explain the ruling and be rewarded. Answer: It is not permissible and forbidden for a Muslim to step on a grave, and it is also forbidden to pray on a grave. Both these forbidden acts involve disrespect to the graves and a deficiency in prayer. And Allah Almighty knows best.

Problem 173: Munshi Mardan Ali from Bijnor, Mohalla Qazi Khan: What do the scholars of religion say about this issue: the Jami' Masjid of Bijnor, located in Mohalla Qazi Khan, its current floor is very narrow in width from East to West, so it is insufficient for some worshippers on Friday. Therefore, measures to extend the floor are being considered. As stated in Hadith and clarified by scholars... (Arabic quote)...

One solid grave, whose enclosure is about twelve fingers (girah) high, is located in the middle of the floor; the person passed away nearly a hundred years ago.

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

ख़र्च हो सकता है या नहीं? और इस किराये में से दूसरी मस्जिद के पेश इमाम को देना जाइज़ है या नहीं? अल-जवाब: नहीं जाइज़, बल्कि इसके किराये से उसी मस्जिद की तामीर (मरम्मत) करें। वल्लाह तआला आलम।

मसला 171: अज़ मुरादाबाद, मोहल्ला असालतपुरा, मर्सूला कर्द अली साहब, 15 मुहर्रम 1339 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि सेहन-ए-मस्जिद (मस्जिद के आँगन) में कुछ क़ब्रें आ गई हैं और उन क़ब्रों पर पक्का फ़र्श बना दिया गया है। अब कोई निशान क़ब्र का सेहन-ए-मस्जिद में मालूम नहीं होता, अलबत्ता यह ज़रूर मालूम होता है कि यहाँ फ़लाँ फ़लाँ की क़ब्रें हैं। लिहाज़ा यह मालूम करना है कि इस सेहन-ए-मस्जिद में जहाँ क़ब्रें थीं नमाज़ पढ़ना जाइज़ है या नहीं? और जो नमाज़ें पढ़ी गई हैं वह हो गईं या नहीं? सवाल का जवाब ब-हवाला कुतुब अहादीस (हदीस की किताबों के हवाले से) रक़म फ़रमाएँ। अल-जवाब: मुसलमानों की क़ब्रें हमवार (बराबर) करके सेहन-ए-मस्जिद में शामिल कर लेना हराम हुआ और उन क़ब्रों पर नमाज़ हराम है और उनकी तरफ़ नमाज़ हराम है। क़ब्र ऊपर के निशान का नाम नहीं कि उसके मिटने से क़ब्र जाती रहे, बल्कि उस जगह का नाम है जहाँ मय्यत दफ़्न है। जितनी नमाज़ें इस तरह पढ़ी गईं सब फेरी जाएँ और क़ब्रों के निशान ब-दस्तूर बना दिए जाएँ कि मुसलमान उन पर पाँव रखने और चलने और उन पर और उनकी तरफ़ नमाज़ पढ़ने की आफ़तों से महफ़ूज़ रहें। वल्लाह तआला आलम।

मसला 172: अज़ शाही, इलाक़ा रामपुर, मर्सूला नादर शाह ख़ान व इनाम उल्लाह ख़ान, 6 जमादी अल-उख़रा 1319 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि जामे मस्जिद के दाएं और बाएं पुरानी क़ब्रें मौजूद हैं, क़ब्रिस्तान कच्ची मिट्टी से या पक्का चबूतरा बाँध कर फ़र्श-ए-मस्जिद बढ़ा लिया जाए? इसके निशान बिल्कुल ज़ाहिर न रहे तो उस पर नमाज़ पढ़ना दुरुस्त है या ना-जाइज़? बयान करें और अज्र पाएँ। अल-जवाब: ना-जाइज़ व हराम है मुसलमान की क़ब्र पर पाँव रखना भी हराम और क़ब्र पर नमाज़ पढ़ना हराम, और हराम तो इस ना-जाइज़ फ़ेल में क़ब्रों की बे-इज़्ज़ती भी है और नमाज़ का भी नुक़सान। वल्लाह तआला आलम।

मसला 173: मुंशी मर्दान अली अज़ बिजनौर, मोहल्ला क़ाज़ी ख़ान: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि जामे मस्जिद बिजनौर जो मोहल्ला क़ाज़ियान में वाक़े है, इसका फ़र्श मौजूदा पूर्व से पश्चिम यानी अर्ज़ (चौड़ाई) में बहुत कम है कि जो बाज़ जुमा को नमाज़ियों के लिए काफ़ी नहीं होता।

लिहाज़ा इसके फ़र्श बढ़ाने की तदबीर दरपेश है। दर-सूरत-ए-बढ़ाने फ़र्श के जैसा कि नतिक़-ए-ब-अहादीस जुमा वक़द सरह उलेमा-उ-ना... (अरबी इबारत)... एक क़ब्र पक्का जिसका हज़ीरा (घेरा) ज़मीन से क़रीब बारह गिरह ऊँचा बना हुआ है बीच फ़र्श में पड़ गई, साहिब-ए-क़ब्र के इंतकाल को क़रीब सौ साल गुज़रे होंगे।

पेज 113 ऑफ़ 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

خرچ ہو سکتا ہے یا نہیں؟ اور اس کرایہ میں سے دوسری مسجد کے پیش امام کو دینا جائز ہے یا نہیں؟ الجواب: نہیں جائز، بلکہ اس کے کرایہ سے اسی مسجد کی تعمیر کریں۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۷۱: از مراد آباد محلہ اصالت پورہ مسئولہ کرد علی صاحب ۱۵ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ صحن مسجد میں کچھ قبریں آگئی ہیں اور ان قبروں میں فرش پختہ بنادیا گیا ہے اب کوئی نشان قبر کا صحن مسجد میں معلوم نہیں ہوتا البتہ یہ ضرور معلوم ہوتا ہے کہ یہاں فلاں فلاں کی قبریں ہیں لہذا یہ معلوم کرنا ہے کہ اس صحن مسجد میں جہاں قبریں تھیں نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ اور جو نمازیں پڑھی ہیں وہ ہو گئیں یا نہیں؟ سوال کا جواب بحوالہ کتب احادیث ارقام فرمائیں۔ الجواب: مسلمانوں کی قبریں ہموار کرکے صحن مسجد میں شامل کرلینا حرام ہوا اور ان قبروں پر نماز حرام ہے اور ان کی طرف نماز حرام ہے، قبر اوپر کے نشان کا نام نہیں کہ اس کے مٹنے سے قبر جاتی رہے بلکہ اس جگہ کا نام ہے جہاں میت دفن ہے، جتنی نمازیں اس طرح پڑھی گئیں سب پھیری جائیں اور قبروں کے نشان بدستور بنادئیے جائیں کہ مسلمان ان پر پاؤں رکھنے اور چلنے اور ان پر اور ان کی طرف نماز پڑھنے کی آفتوں سے محفوظ رہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۷۲: از شاہی علاقہ رام پور مرسلہ نادر شاہ خاں وانعام اللہ خاں ۶ جمادی الاخریٰ ۱۳۱۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں جامع مسجد کے یمین ویسار قبرستان خام ہے نشان قبور موجود ہیں، قبرستان کو نئ مٹی سے یا پختہ چبوترہ باندھ کر فرش مسجد بڑھا لیا جائے ایسا کہ بالکل نشان قبر بالکل ظاہر نہ رہے تو اس پر نماز پڑھنا درست ہے یا ناجائز؟ بینوا توا اجروا۔
الجواب: ناجائز وحرام ہے مسلمان کی قبر پر پاؤں رکھنا بھی حرام، اور قبر پر نماز پڑھنی حرام،

اور حرام تو اس ناجائز فعل میں قبروں کی بھی بے عزتی ہے اور نماز کا بھی نقصان۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۷۳: منشی مردان علی از بجنور محلہ قاضی خاں: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جامع مسجد بجنور جو محلہ قاضیان میں واقع ہے اس کا فرش موجودہ شرقا و غربا یعنی عرض میں بہت کم ہے کہ جو بعض جمعہ کو نمازیوں کے لئے کافی نہیں ہوتا لہذا اس کے فرش بڑھانے کی تدبیر درپیش ہے در صورت بڑھانے فرش کے کما نطق بہ احادیث جمعہ و قد صرح علماؤنا المرو فی سکتہ حادثہ فی المقابر حرام کما فی فتح القدیر و رد المحتار و غیر ہما۔ ایک قبر پختہ جس کا حظیرہ زمین سے قریب بارہ گرہ اونچا بنا ہوا ہے بیچ فرش میں پڑگئی، صاحب قبر کے انتقال کو قریب سو سال کے گزری ہوں گی۔

Fatawa Razawiyyah, Volume Eight

Therefore, a request is made to the scholars of religion: what should be done with this grave so that there is no hindrance in prayer? Should it be leveled with the floor or kept elevated? In its current state, keeping the grave as it is, will there be any problem in the prayer or not? Except for one person, the heirs of the deceased agree to level the grave. If leveling is correct, please state it with references from books of jurisprudence (Fiqh) and mention after what period it is permissible to level it. Explain and you shall be rewarded.

The Answer: In the described situation, leveling a Muslim's grave so that people walk, sit, stand, and pray upon it is purely forbidden (Haraam).

As numerous Hadiths testify to this, and our scholars have clarified that walking on newly made paths in graveyards is forbidden, as mentioned in Fath al-Qadir, Radd al-Muhtar, etc. (T)

Furthermore, leveling it provides no relief for prayer but rather causes harm. Praying on a grave is forbidden, and praying towards a grave without a barrier is absolutely forbidden in a small mosque (Masjid-e-Sagheer). In a large mosque (Masjid-e-Kabeer), it is forbidden within such a distance that if a prayer of the humble (khashieen) is performed and eyes are fixed on the place of prostration during standing, the gaze reaches the grave. Most common mosques are "small mosques"; a "large mosque" is like the Jami Khwarizm which has sixteen thousand columns. "Grave" is the name of the place where the deceased is buried; the raised mark above is not part of the essence of the grave. Therefore, by leveling it, the grave will remain a grave; it will not cease to be a grave. It is stated in Radd al-Muhtar:

"Praying on it or towards it is disliked (Makruh) because of the prohibition regarding that." (T)

The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Allah's curse be upon the Jews and Christians who took the graves of their prophets as places of prostration." Narrated by the two Sheikhs (Bukhari and Muslim) and others from the Mother of the Believers, Hazrat Aisha al-Siddiqah.

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Chapter on Istinja, Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/229 2. Radd al-Muhtar, Chapter on Funerary Prayers, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/767 3. Sahih al-Bukhari, Book of Prayer, printed by Qadimi Kutub Khana,

Karachi, 1/12; Sahih Muslim, Book of Mosques, Chapter on the Prohibition of Building Mosques over Graves, printed by Nur Muhammad Asah al-Matabi, Karachi, 1/201

फतावा रजविया, जिल्द हशतुम (आठवीं)

इसलिए दीन के उलेमा की खिदमत में इल्तेमास है कि इस क़ब्र को क्या किया जाए ताकि नमाज़ में कुछ हर्ज न हो, या फर्श के बराबर कर दी जाए या ऊँची रहने दी जाए? मौजूदा हालत में क़ब्र के होने से नमाज़ में कुछ हर्ज होगा या नहीं? क़ब्र वाले के वारिसों में से एक शख़्स के अलावा सब क़ब्र बराबर करने के लिए राज़ी हैं। अगर बराबर करना दुरुस्त हो तो यह भी फिक़्ह की किताबों के हवाले के साथ तहरीर किया जाए कि कितने अर्से के बाद बराबर करना दुरुस्त है? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: पूछी गई सूरत में मुसलमान की क़ब्र को बराबर कर देना ताकि लोग उस पर चलें-फिरें, उठें-बैठें, नमाज़ पढ़ें, सरासर हराम है।

जैसा कि बहुत सी हदीसें इस पर गवाह हैं और हमारे उलेमा ने यह साफ़ कहा है कि कब्रिस्तान में नए बनाए गए रास्तों पर चलना हराम है, जैसा कि फ़तह अल-क़दीर और रद अल-मुह्तार वगैरह में है। (त)

फिर इसे बराबर करने से नमाज़ का भी कोई आराम नहीं बल्कि नुकसान है कि क़ब्र पर नमाज़ पढ़ना हराम है, और क़ब्र की तरफ़ बिना किसी आड़ के नमाज़ पढ़ना भी छोटी मस्जिद (मस्जिद-ए-सग़ीर) में मुतलक़न हराम है और बड़ी मस्जिद में इतने फासले तक हराम है कि जब खुशु-ख़ुज़ू वालों की नमाज़ पढ़ी जाए और कयाम में सज्दे की जगह पर नज़र जमाई जाए तो क़ब्र तक निगाह पहुँचे। आम मस्जिदें छोटी मस्जिदें हैं, बड़ी मस्जिद वैसी है जैसे जामे ख्वारज़म जिसमें सोलह हज़ार सुतून हैं। "क़ब्र" उस जगह का नाम है जहाँ मैयत दफ़न है, ऊपर का ऊँचा निशान क़ब्र की हकीकत में दाखिल नहीं है, तो उसे बराबर कर देने से क़ब्र क़ब्र ही रहेगी, ग़ैर-क़ब्र नहीं हो जाएगी। रद अल-मुह्तार में है:

"क़ब्र पर और क़ब्र की तरफ़ नमाज़ पढ़ना मकरूह है क्योंकि रसूलुल्लाह ﷺ ने इससे मना फ़रमाया है।" (त)

रसूलुल्लाह ﷺ फ़रमाते हैं: "यहूद व नसारा पर अल्लाह की लानत हो जिन्होंने अपने नबियों की क़ब्रों को सजदागाह बना लिया।" इसे बुखारी व मुस्लिम ने उम्मुल मोमिनीन हज़रत आयशा सिद्दीका रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत किया है।

फुटनोट: 1. रद अल-मुह्तार, फ़स्ल अल-इस्तिन्जा, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 1/229 2. रद अल-मुह्तार, बाब सलात अल-जनाइज़, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/767 3. सहीह अल-बुखारी, किताब अस-सलात, पुरानी कुतुब खाना प्रेस, कराची, 1/12; सहीह मुस्लिम, किताब अल-मसाजिद, बाब अन-नह्य अन बिना अल-मस्जिद अलल कुबूर, नूर मुहम्मद असहा अल-मताबी प्रेस, कराची, 1/201

لہذا علمائے دین کی خدمت میں التماس ہے کہ اس قبر کو کیا کیا جائے تاکہ نماز میں کچھ حرج نہ ہو، یا فرش کے برابر کر دی جائے یا اونچی رہنے دی جائے؟ در صورت بحالت موجودہ رکھنے قبر کے، نماز میں کچھ حرج ہو گا یا نہیں؟ ورثائے صاحب قبر سوائے ایک شخص کے قبر کو برابر کرنے کے لئے راضی ہیں اگر برابر کرنا درست ہو تو یہ بھی مع حوالہ کتب فقہ تحریر کیا جائے کہ کتنے میعاد کے بعد برابر کرنا درست ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: صورت مستفسرہ میں قبر مسلمان کو برابر کر دینا کہ لوگ اس پر چلیں پھریں، اٹھیں بیٹھیں، نماز پڑھیں، محض حرام ہے۔

کما نطقت بہ احادیث جمۃ وقد صرح علمائنا ان المرور فی سکۃ حادثہ فی المقابر حرام کما فی فتح القدیر وردالمحتار وغیرھما۔ جیسے کہ اس پر تمام احادیث شاہد عادل ہیں اور ہمارے علماء نے یہ تصریح کی ہے کہ قبرستان میں نئے بنائے گئے رستے پر چلنا حرام ہے، جیسا کہ فتح القدیر اور ردالمحتار وغیرہ میں ہے۔ (ت)

پھر اس برابر کرنے سے نماز کا بھی کچھ آرام نہیں بلکہ نقصان ہے کہ قبر پر نماز پڑھنا حرام، اور قبر کی طرف بے حائل نماز پڑھنا بھی مسجدِ صغیر میں مطلقاً حرام اور کبیر میں اتنے فاصلے تک حرام کہ جب نماز خاشعین کی پڑھی اور قیام میں موضع سجود پر نظر جمائے تو قبر تک نگاہ پہنچے، اور عام مساجد صغیر ہیں، مسجدِ کبیر ایسی ہے جیسے جامع خوارزم کہ سولہ ہزار ستون پر ہے، اور قبر اس جگہ کا نام ہے جہاں میت دفن ہے، اوپر کا بلند نشان حقیقتِ قبر میں داخل نہیں تو اس کے برابر کر دینے سے قبر قبر ہی رہے گی غیر قبر نہ ہو جائے گی۔ ردالمحتار میں ہے :

تکرہ الصلوۃ علیہ والیہ لورود النھی عن ذلك۔ قبر پر اور قبر کی طرف نماز مکروہ ہے کیونکہ رسول اللہﷺ نے منع فرمایا ہے (ت)

رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

لعنۃ اللہ علی الیھود النصاری اتخذوا قبور انبیاء ھم مساجد ۔ رواہ الشیخان وغیرھما عن ام المؤمنین الصدیقۃ اللہ تعالیٰ کی لعنت ہو یہود و نصاریٰ پر جنھوں نے اپنے انبیاء کی قبور کو سجدہ گاہ بنالیا۔ اسے بخاری و مسلم نے ام المؤمنین حضرت عائشہ صدیقہ (رضی اللہ تعالی عنہا سے روایت کیا)۔

حواشی: 1 ردالمحتار فصل الاستنجاء، داراحیاء التراث العربی بیروت، ۱/۲۲۹ 2 ردالمحتار باب صلوۃ الجنائز، مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر، ۱/۷۶۷ 3 صحیح البخاری کتاب الصلوۃ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۲، صحیح مسلم کتاب المساجد باب النھی عن بناء المسجد علی القبور مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی، ۱/۲۰۱

- and it has been narrated from Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them). (T)

Rather, the method for this is to make the grave level with the floor, and if the floor comes out higher, let the grave remain as low as it is and build a four-walled structure around it at a distance of one handspan each, such that it is half a yard or more higher than the surface of the grave. Place stones on these walls or arrange wood to cover them so that it becomes a roof. Now this has become a room inside which the grave is located. Now, praying on its roof or towards its wall in any way becomes permissible, as this prayer is no longer on the grave or towards the grave, but rather on the roof of a room or towards its wall, and there is no harm in it. It is stated in Maslak al-Mutaqassit (F):

Arabic: If there is a barrier between the grave and the prayer, then the prayer is not disliked. Urdu: If there is a curtain between the grave and the place of prayer, then the prayer will not be disliked. (T)

It is stated in Khulasah and Dhakhirah etc.:

Arabic: This is when there is no barrier like a wall between the prayer and these places; if there is a wall, it is not disliked. Urdu: This is for when there is no screen, such as a wall, etc., between the place of prayer and these locations, and if there is a wall, there is no dislike. (T)

And it is better to keep fine lattices in these short walls on the south, north, and also on the wall towards the Qibla side. This will have two (2) benefits: Firstly, the flow of air to the deceased's grave which, according to the Hadith, is a cause for the descent of mercy. Secondly, by seeing the lattices, every person will understand that this is not a grave and will not hesitate to pray on it or towards it; otherwise, an uninformed person might consider it a grave as well and avoid it. And do not let the ignorant consider it unpleasant to have such a space of three or four yards height within the mosque courtyard, for in this lies the well-being of the deceased, the living, the mosque, and the grave, as we have indicated. And Allah Almighty knows best.

F: The words of the aforementioned book are as follows: Rather, let there not be between him and it anything of its wall, otherwise, the prayer is not disliked. - Nazir Ahmed.

1. Maslak al-Mutaqassit fi al-Mansik al-Mutawassit with Irshad al-Sari, Chapter: Wa-li-yaghtam etc., printed by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 342.
2. Khulasat al-Fatawa, Kitab al-Salah, printed by Maktabah Habibiyah, Quetta, 1/20.

• और हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु तआला अन्हुम से रिवायत किया गया है। (त)

बल्कि इसका तरीक़ा यह है कि क़ब्र को फ़र्श के बराबर कर दें और अगर फ़र्श ऊँचा हो जाए तो क़ब्र जितनी नीची हो उसे रहने दें और उसके चारों ओर एक-एक बालिश्त की दूरी पर एक चारदीवारी उठाएं जो क़ब्र की सतह से आधा गज़ या उससे ज़्यादा ऊँची हो, इन दीवारों पर पत्थर डाल दें या लकड़ियाँ चुनकर पाट दें ताकि छत बन जाए। अब यह एक मकान हो गया जिसके अंदर क़ब्र है। अब इसकी छत पर और इसकी दीवार की तरफ़ हर तरह से नमाज़ जायज़ हो गई क्योंकि यह नमाज़ क़ब्र पर या क़ब्र की तरफ़ नहीं रही बल्कि एक मकान की छत पर या उसकी दीवार की तरफ़ हुई और इसमें कोई हर्ज़ नहीं। मज़लक मुतक़स्सित (फ़) में है:

अरबी: यदि क़ब्र और नमाज़ के बीच कोई पर्दा हो, तो नमाज़ मकरूह नहीं है। उर्दू: अगर क़ब्र और जाए-नमाज़ के दरम्यान पर्दा हो तो नमाज़ मकरूह न होगी। (त)

ख़ुलासा और ज़ख़ीरा वगैरह में है:

अरबी: यह तब है जब नमाज़ पढ़ने वाले और इन जगहों के बीच दीवार जैसी कोई रुकावट न हो; यदि दीवार है, तो मकरूह नहीं है। उर्दू: यह उस वक़्त है जब जाए-नमाज़ और इन मक़ामात के दरम्यान पर्दा मसलन दीवार वगैरह हाइल न हो, और अगर दीवार है तो कराहत नहीं। (त)

और बेहतर यह है कि इन मुख़्तसर दीवारों में दक्षिण, उत्तर और क़िबला की तरफ़ की दीवार में भी बारीक जालियां रखें, इससे दो (2) फ़ायदे होंगे: अव्वल, मय्यत की क़ब्र तक हवाओं का आना-जाना जो हदीस के हुक्म के मुताबिक़ रहमत के नुज़ूल का सबब है। दूसरा, जालियां देखकर हर शख़्स समझ लेगा कि यह क़ब्र नहीं है और उस पर या उसकी तरफ़ नमाज़ पढ़ने में अंदेशा नहीं करेगा, वरना नावाक़िफ़ उसे भी क़ब्र जानकर परहेज़ करेगा। और मस्जिद के सहन के अंदर इतनी जगह तीन-चार गज़ की बुलंदी रहने को जाहिल नादानों की तरह नागवार न समझें कि इसमें मय्यत, ज़िन्दा लोगों, मस्जिद और क़ब्र की भलाई है जैसा कि हमने इसकी तरफ़ इशारा किया है। वल्लाहु तआला आलम।

फ़: मज़कूर किताब के अलफ़ाज़ यूँ हैं: बल्कि उसके और उसके दरमियान उसकी दीवार में से कुछ न हो, वर्ना नमाज़ मकरूह नहीं। - नज़ीर अहमद

1. मज़लक मुतक़स्सित फ़िल मन्सक अल-मुतवस्सित मअ इरशाद अल-सारी, फ़स्ल वल-यग़तम अलख, मतबुआ दारुल किताब अल-अरबी, बेरूत, पृ. 342
2. ख़ुलासतुल फ़तावा, किताबुल सलात, मतबुआ मक्तबा हबीबिया, क्वेटा, 1/20

पृष्ठ 115 / 673

• اور حضرت عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے روایت کیا ہے۔ (ت)

بلکہ اس کا طریق یہ ہے کہ قبر کو فرش کے برابر کریں اور اگر فرش اونچا ہو کر آئے گا تو قبر جس قدر نیچی ہو رہنے دیں اور اس کے گرداگرد ایک ایک بالشت کے فاصلے سے ایک چار دیواری اٹھائیں کہ سطح قبر سے پاؤ گز یا زیادہ اونچی ہو، ان دیواروں پر پتھر ڈال دیں یا لکڑیاں چن کر پاٹ دیں کہ چھت ہو جائے۔ اب یہ ایک مکان ہو گیا جس کے اندر قبر ہے، اب اس کی چھت پر اور اسی کی دیوار کی طرف ہر طرح نماز جائز ہو گئی کہ یہ نماز قبر پر یا قبر کی طرف نہ رہی بلکہ ایک مکان کی چھت پر یا اس کی دیوار کی جانب ہوئی اور اس میں حرج نہیں۔ مسلک متقسط (ف) میں ہے :

ان کان بین القبر والمصلی حجاب فلا تکرہ الصلوۃ [1]۔ اگر قبر اور جائے نماز کے درمیان پردہ ہو تو نماز مکروہ نہ ہوگی۔ (ت)

خلاصہ و ذخیرہ وغیرہما میں ہے :

ھذا اذا لم یکن بین المصلی وھذہ المواضع حائل کالحائط وان کان حائطا لا تکرہ [2]۔ یہ اس وقت ہے جب جائے نماز اور ان مقامات کے درمیان پردہ مثلاً دیوار وغیرہ حائل نہ ہو، اور اگر دیوار ہے تو کراہت نہیں۔ (ت)

اور بہتر یہ ہے کہ ان مختصر دیواروں میں جنوباً شمالاً دیوار جانب قبلہ میں بھی باریک جالیاں رکھیں ، اس سے دو (۲) فائدے ہوں گے: اوّلاً میت کی قبر تک ہواؤں کا آنا جانا کہ بحکم حدیث موجب نزول رحمت ہے۔ دوم جالیاں دیکھ کر ہر شخص سمجھ لے گا کہ یہ قبر نہیں اور اس پر یا

اس کی طرف نماز پڑھنے میں اندیشہ نہ کرے گا ورنہ ناواقف اسے بھی قبر جان کر احتراز کرے گا اور صحنِ مسجد کے اندر اتنی جگہ تین چار گز بلندی رہنے کو جاہل نادانوں کی طرح ناگوار نہ جانیں کہ اس میں میت واحیا و مسجد و قبر کی بھلائی ہے کما اشرنا الیہ (جیسا کہ ہم نے اس کی طرف اشارہ کیا ہے) واللہ تعالیٰ اعلم

ف : کتاب مذکور کے الفاظ یوں ہیں : بل لایکون بینہ و بینہ من جدارہ والا فلا تکرہ الصلوۃ۔ نذیر احمد

1. مسلک متقسط فی المنسک المتوسط مع ارشاد الساری فصل و لیغتم الخ مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ص ۳۴۲
2. خلاصۃ الفتاوی کتاب الصلوۃ مطبوعہ مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۱/ ۲۰

Fatawa Rizvia | Volume 8

Issue 117: From the city of Allahabad, below Jamia Masjid Chowk, sent by Mirza Wahid Ali Khushbu Saaz, 29th Shawwal 1337 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: There is a Madrasa in a mosque where the Holy Quran, Tafsir (exegesis), Fiqh (jurisprudence), and Hadith are taught. Some administrators wanted to remove the teaching from the mosque. After much discussion, it was decided that written agreements would be made by both sides and registered. The mosque administrators would write that they will not remove the Madrasa as long as it adheres to three conditions: 1. Boys aged seven or eight years should not be admitted. 2. Teaching of Hindi (Nagri), English, or any non-religious education should not be included. 3. The Madrasa should not take possession of any mosque property. The manager of the Madrasa accepted this and provided a written commitment to abide by them. Bakr says that making such a written and registered agreement is not permissible; the administrators do not have the legal right under Sharia to demand such a document. Zaid says it is all permissible. Anything that is permissible in a mosque, no one has the right to obstruct it. Therefore, there is no religious harm in getting a confirmation of non-interference, just as a trustee might tell or write to a worshiper, "We will never stop you from praying as long as you do not cause harm to anyone and do not cause trouble in the mosque." Whose statement is correct, Zaid's or Bakr's? Clarify and be rewarded.

The Answer: Teaching in a mosque is permissible under certain conditions: (1) The education must be religious. (2) The teacher must be a Sunni of correct belief, not a Wahhabi or any other heretic who would teach disbelief and misguidance. (3) The teacher should teach without payment, as teaching for a wage becomes worldly work. (4) Children who lack understanding (of the sanctity of the place) should not be present, as they may disrespect the mosque. (5) Space should not be restricted for the congregation, as the primary purpose of a mosque is congregational prayer. (6) There should be no noise or clamor that disturbs those praying. (7) Neither the teacher nor the student should sit in a way that breaks the prayer rows.

If a formal document is written for these conditions, there is no harm; in fact, it is better. The first condition they want to include is the fourth among these, and the second is the first among these. The third condition is general, not specific to any education; writing it is also good. At times of intense heat, etc., when there is no

other place, a paid teacher is allowed out of necessity, but not generally. Similarly, if a tailor sits in the mosque to protect it and keep children out, and continues his sewing, it is permitted. Likewise, regarding raising the voice during the repetition of religious knowledge by students outside of prayer times, it is mentioned in the Hadith:

फ़तावा रिज़विया | जिल्द 8

मसला 117: शहर इलाहाबाद, जामा मस्जिद चौक के नीचे से, मिर्ज़ा वाहिद अली खुशबू साज़ द्वारा प्रेषित, 29 शव्वाल 1337 हिजरी।

इस मसले में दीन के उलेमा क्या फ़रमाते हैं: एक मस्जिद में मदरसा है जिसमें कुरान करीम, तफ़सीर, फ़िक़्ह और हदीस की तालीम होती है। कुछ प्रबंधकों ने चाहा कि मस्जिद से तालीम हटा दी जाए, बहुत बातचीत के बाद यह तय हुआ कि दोनों तरफ से दस्तावेज़ लिखे जाएँ और उनकी रजिस्ट्री कराई जाए। मस्जिद के प्रबंधक लिख कर दें कि हम मदरसा नहीं हटाएंगे, जब तक मदरसा तीन शर्तों पर कायम रहेगा। 1. सात-आठ साल के लड़के दाखिल न हों। 2. मदरसे में हिंदी (नागरी), अंग्रेजी या किसी गैर-मज़हब की तालीम न दी जाए। 3. मदरसा मस्जिद की किसी चीज़ पर कब्ज़ा न करे। मदरसे के प्रबंधक ने इसे स्वीकार कर लिया और लिख कर दिया कि हम इसके पाबंद रहेंगे। बक्र कहता है कि यह दस्तावेज़ लिखना और रजिस्ट्री कराना जायज़ नहीं है; प्रबंधकों को शरीयत के अनुसार यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वे इस प्रकार का दस्तावेज़ लिखवाएँ और रजिस्ट्री कराएँ। ज़ैद कहता है कि यह सब जायज़ है। जो काम मस्जिद में जायज़ हैं, उनमें रुकावट डालना किसी के लिए जायज़ नहीं है, इसलिए रुकावट न डालने की पुष्टि कराना शरीयत में कोई हर्ज नहीं है, जैसे कोई मुतवल्ली (ट्रस्टी) किसी नमाज़ी से कह दे या लिख दे कि हम तुम्हें नमाज़ से कभी नहीं रोकेंगे जब तक तुम किसी को तकलीफ़ न पहुँचाओ और मस्जिद में फ़साद की बात न करो। लिहाज़ा किसका कॉल (कथन) सही है, ज़ैद का या बक्र का? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

अल-जवाब: मस्जिद में तालीम शर्तों के साथ जायज़ है: (1) तालीम दीनी (धार्मिक) हो। (2) शिक्षक सुन्नी और सही अकीदा (सही विश्वास रखने वाला) हो, न कि वहाबी आदि विधर्मी जो कुफ्र और गुमराह करने वाली शिक्षा दे। (3) शिक्षक बिना वेतन के तालीम दे, क्योंकि वेतन लेने से वह दुनियावी काम हो जाएगा। (4) नासमझ बच्चे न हों जो मस्जिद का अनादर करें। (5) जमात (प्रार्थना सभा) के लिए जगह तंग न हो, क्योंकि मस्जिद का असल मकसद जमात है। (6) शोर-शराबे से नमाज़ियों को तकलीफ़ न पहुँचे। (7) शिक्षक या छात्र के बैठने से नमाज़ की सफ़ (पंक्ति) न टूटे।

यदि इन शर्तों का कोई दस्तावेज़ लिखा जाए तो इसमें कोई हर्ज नहीं है, बल्कि बेहतर है। वे जो तहरीर (लेख) लिखवाना चाहते हैं उसकी पहली शर्त इनमें से चौथी है और दूसरी शर्त इनमें से पहली है। तीसरी शर्त किसी खास तालीम के बारे में नहीं बल्कि सामान्य है, उसे लिख लेना भी अच्छा है।

भीषण गर्मी आदि के समय जब कोई और जगह न हो, तो ज़रूरत के अनुसार वेतनभोगी शिक्षक को अनुमति है लेकिन सामान्य रूप से नहीं। इसी तरह, यदि कोई दर्जी मस्जिद की रखवाली के लिए और बच्चों को आने से रोकने के लिए मस्जिद में बैठे और अपना सिलाई का काम भी करता रहे, तो इसकी अनुमति दी गई है। इसी प्रकार, नमाज़ के समय के अलावा दीन के ज्ञान के छात्रों द्वारा पाठ दोहराने के दौरान आवाज़ ऊँची करने के बारे में हदीस में फ़रमाया गया है:

مسئلہ ۱۱۷: از شہر الہ آباد زیر جامع مسجد چوک مرسلہ مرزا واحد علی خوشبو ساز ۲۹ شوال ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد میں مدرسہ ہے جس میں تعلیم کلام مجید و تفسیر و فقہ و حدیث کی ہوتی ہے، بعض منتظمین نے چاہا کہ تعلیم مسجد سے اٹھا دی جائے، بعد گفتگو بسیار کے یہ طے پایا کہ دونوں طرف سے تحریریں ہو جائیں اور رجسٹری کر دی جائے، منتظمین مسجد لکھ دیں کہ ہم مدرسہ نہ اٹھائیں گے، جب تک مدرسہ تین شرائط پر قائم رہے گا۔ ایک یہ کہ سات آٹھ برس کے لڑکے نہ داخل ہوں، دوسرے مدرسہ میں تعلیم ہندی ناگری انگریزی غیر مذہب کی تعلیم نہ داخل ہو، مدرسہ مسجد کی کسی چیز پر قبضہ نہ کرے۔ مہتمم مدرسہ نے اس کو تسلیم کیا اور تحریر کر دیا کہ ہم اس کے پابند رہیں گے، بکر کہتا ہے کہ یہ تحریر کرنا اور رجسٹری کرانا جائز نہیں ہے منتظمین کو شرعاً یہ حق حاصل نہیں کہ اس قسم کی تحریر کرائیں اور رجسٹری کرائیں۔ زید کہتا ہے کہ یہ سب جائز ہے جو کام مسجد میں جائز ہیں اس کی مزاحمت کسی کو جائز نہیں لہٰذا عدم مزاحمت کی توثیق کرانا شرعاً کوئی مضائقہ نہیں جیسا کہ کوئی متولی کسی نمازی سے کہہ دے یا لکھ دے کہ ہم تم کو نماز سے کبھی نہ روکیں گے جب تک تم کسی کو ایذا نہ پہنچاؤ گے اور مسجد میں فساد کی بات نہ کرو گے لہٰذا کس کا قول صحیح ہے زید کا یا بکر کا؟ بینوا توا جروا

الجواب: مسجد میں تعلیم بشرائط جائز ہے: (۱) تعلیم دین ہو۔ (۲) معلم سنی صحیح العقیدہ ہو، نہ وہابی وغیرہ بددین کہ وہ تعلیم کفر وضلال کرے گا۔ (۳) معلم بلا اجرت تعلیم کرے کہ اجرت سے کارِ دنیا ہو جائے گی۔ (۴) ناسمجھ بچے نہ ہوں کہ مسجد کی بے ادبی کریں۔ (۵) جماعت پر جگہ

تنگ نہ ہو کہ اصل مقصد مسجد جماعت ہے۔ (۶) غل شور سے نمازی کو ایذا نہ پہنچے۔ (۷) معلم خواہ طالبِ علم کسی کے بیٹھے سے قطعِ صف نہ ہو۔

ان شرائط کا اگر وثیقہ لکھا جائے کیا مضائقہ ہے بلکہ بہتر ہے وہ تحریر کہ لکھانا چاہتے ہیں اس کی پہلی شرط ان میں کی چوتھی اور دوسری ان میں کی پہلی ہے اور تیسیری کوئی خاص تعلیم کی نہیں مطلقاً ہے اس کا لکھالینا بھی اچھا ہے گرمی کی شدت وغیرہ کے وقت جبکہ اور جگہ نہ ہو بضرورت معلم باجرت کو اجازت ہے مگر نہ مطلقاً، یونہی سلائی پر سینے والا درزی اگر حفاظت اور اس میں بچوں کو نہ آنے دینے کے لئے مسجد میں بیٹھے اور اپنا سیتا بھی رہے تو اجازت دی ہے یوں ہی غیر نماز کے وقت متعلمانِ علم دین کو تکرارِ علم میں رفعِ صوت کی حدیث میں فرمایا:

Fatawa Rizwia Volume 8

"Keep your mosques away from your children and the insane." (Reference 1)

It is mentioned in Bahr al-Ra'iq: They (the jurists) said: It is not permissible to practice trades in it (i.e., the mosque) because it is dedicated purely to Allah Almighty. Therefore, it cannot be a place for anything other than worship. However, they said regarding a tailor that if he sits in it for his benefit—such as preventing children from entering and protecting the mosque—then there is no harm due to necessity. But when folding cloth, he should not shake it vigorously causing a loud noise. As for one who writes, if it is for a wage, it is disliked (Makruh); and if it is without a wage, it is not disliked. It is said in Fath al-Qadir: This applies when he is writing the Quran and knowledge, as that is an act of worship. As for these schoolmasters with whom children gather and cause noise, even if there is no noise, it is not permissible because they are engaged in a trade, not worship. This is because they intend to earn a wage and rent, not for the sake of Allah Almighty, but rather for livelihood. The ruling for those teaching the Quran to children is the same as for a scribe: if it is for a wage, it is not permissible, but if it is for the sake of Allah's pleasure, there is no harm. (Reference)

In Fatawa Khulasa, in the section before the Book of Menstruation, it says: The teacher who teaches children for a wage, if he sits... [sentence continues on next page].

1. Sunan Ibn Majah, chapter on what is disliked in mosques, published by H.M. Saeed Company Karachi, p. 55; Al-Mu'jam al-Kabir, Hadith 7101, published by Maktaba Faisalya Beirut, 8/158.
2. Bahr al-Ra'iq, chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/35.

फतावा रज़विया जिल्द 8

"अपनी मस्जिदों को अपने बच्चों और पागलों से दूर रखें।" (संदर्भ 1)

बहर अल-राइक में लिखा है: फुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने फ़रमाया कि मस्जिद में कोई कार्य (व्यवसाय) जायज़ नहीं है, यानी मस्जिद में कोई व्यापार जायज़ नहीं है क्योंकि यह विशेष रूप से अल्लाह तआला के लिए बनाई गई है, इसलिए यह इबादत के अलावा किसी और चीज़ के लिए जगह नहीं बन सकती। हालाँकि, उन्होंने एक दर्जी के बारे में कहा कि यदि वह बच्चों को प्रवेश करने से रोकने और मस्जिद की सुरक्षा करने जैसे अपने लाभ के लिए वहां बैठता है, तो आवश्यकता के कारण इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन कपड़ा तह करते समय उसे ज़ोर से नहीं झटकना चाहिए जिससे तेज़ आवाज़ हो। जहाँ तक लिखने वाले का प्रश्न है, यदि वह पारिश्रमिक के लिए लिखता है, तो यह मकरूह (नापसंद) है; और यदि बिना पारिश्रमिक के है, तो यह मकरूह नहीं है। फतह अल-क़दीर में कहा गया है: यह तब लागू होता है जब वह कुरान और ज्ञान लिख रहा हो, क्योंकि वह इबादत का कार्य है। जहाँ तक इन स्कूल मास्टरों का सवाल है जिनके साथ बच्चे इकट्ठा होते हैं और शोर मचाते हैं, तो शोर न होने पर भी यह जायज़ नहीं है क्योंकि वे एक व्यवसाय में लगे हुए हैं, इबादत में नहीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनका इरादा अल्लाह तआला की खातिर नहीं, बल्कि पारिश्रमिक और किराए की खातिर है, बल्कि जीविकोपार्जन के लिए है। बच्चों को कुरान पढ़ाने वालों का नियम भी लेखक के समान ही है: यदि यह पारिश्रमिक की खातिर है, तो यह जायज़ नहीं है, लेकिन यदि यह अल्लाह की रज़ा की खातिर है, तो कोई हर्ज नहीं है। (त)

फतावा खुलासा में 'किताबुल हैज़' (मासिक धर्म की पुस्तक) से पहले के खंड में लिखा है: वह उस्ताद जो बच्चों को पारिश्रमिक के लिए पढ़ाता है, यदि वह बैठता है... [वाक्य अगले पृष्ठ पर जारी है]

1. सुनन इब्न माजा, मस्जिदों में मकरूह चीज़ों का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 55; अल-मुअजम अल-कबीर, हदीस 7101, मकतबा फ़ैसलिया बेरूत द्वारा प्रकाशित, 8/158।
2. बहर अल-राइक, नमाज़ को खराब करने वाली और उसमें मकरूह चीज़ों का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 2/35।

جنبوا مساجد کم صبیانکم و مجانینکم ۱۔ | اپنی مساجد کو اپنے بچوں اور دیوانوں سے بچاؤ۔ (ت)

بحر الرائق میں ہے: قالوا ولا یجوز ان تعمل فیه (اي في المسجد) الصنائع لانه مخلص لله تعالی فلا یکون محلا لغیر العبادة غیر انهم قالوا في الخیاط اذا جلس فیه لمصلحته من دفع الصبیان و صیانة المسجد لاباس به للضرورة ولا یدق الثوب عند طیه دقا عنیفا والذی یکتب ان کان باجر یکره وان کان بغیر اجر لا یکره قال في فتح القدیر هذا اذا کتب القرآن والعلم لانه في عبادة اما هولاء المکتبون الذین یجتمع عند هم الصبیان واللغط فلا ولو لم یکن لغط لانهم في صناعة لاعبادة اذهم یقصدون الاجارة لیس هو لله تعالی بل للارتزاق ومعم الصبیان القرآن کا لکتاب ان کان لا جر لا وحسبة لاباس به اھ ترجمہ: فقہاء نے فرمایا کہ مسجد میں کوئی عمل جائز نہیں یعنی مسجد میں کوئی کاروبار جائز نہیں کیونکہ وہ خالصۃ اللہ تعالٰی کے لئے بنائی گئی ہوتی ہے تو اب وہ عبادت کے علاوہ کسی دوسری شے کا محل نہیں بن سکتی البتہ اس صورت میں مثلاً کوئی درزی وہاں اس لئے بیٹھ کر کام کرتا ہے کہ بچے داخل نہ ہوں اور مسجد کی حفاظت ہو، تو چونکہ یہ ضرورت کی وجہ سے ہے اس لئے اس میں کوئی حرج نہیں لیکن وہ بھی کپڑے کو لپیٹتے وقت سخت آواز سے کپڑے کو نہ جھاڑے اسی طرح اگر وہاں کوئی لکھتا ہے اور اس کا معاوضہ لیتا ہے تو مکروہ ہے اور اگر معاوضہ نہیں لیتا تو مکروہ نہیں۔ فتح القدیر میں ہے کہ یہ اس وقت ہے جب قرآن اور علم لکھ رہا ہو کیونکہ یہ عبادت ہے، لیکن یہ کتابت سکھانے والے لوگ جن کے پاس بچے اکٹھے ہوں اور شور ہوتا ہو وہ جائز نہیں اگرچہ عملاً شور نہ ہو کیونکہ یہ کاروبار ہے نہ کہ عبادت، کیونکہ وہ تو معاوضہ واجر کی خاطر ہوتا ہے نہ کہ اللہ تعالٰی کی رضا کے حصول کی خاطر، بلکہ یہ رزق کمانے کے لئے ہے،

اور بچوں کو قرآن کی تعلیم دینے والے کا حکم بھی کاتب کی طرح اگر معاوضہ کی خاطر ہے تو جائز نہیں اور اگر رضائے الٰہی کے لئے ہے تو کوئی حرج نہیں اھ (ت)

فتاوٰی خلاصہ میں قبیل کتاب الحیض ہے: المعلم الذي یعلم الصبیان باجر اذا جلس | وہ استاد جو بچوں کو معاوضہ کے لئے پڑھاتا ہے اگر گرمی

۱۔ سنن ابن ماجہ باب ما یکرہ فی المساجد مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۵۵ ، المعجم الکبیر حدیث ۷۱۰۱ مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۱۵۸/۸ ۲۔ بحر الرائق باب ما یفسد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۳۵/۲

Fatawa Razawiyya, Volume 8

- Teaching children in the mosque due to necessity like heat etc. is not disliked. And in the manuscript of Qazi Imam (Mercy of Allah be upon him) and in 'Iqrar al-Uyun', the ruling for a teacher is made similar to the ruling for a scribe and a tailor: if he teaches for the sake of Allah's pleasure, there is no harm, but if he takes a fee, it is disliked, except when there is a necessity. (T)
- In Durr-e-Mukhtar: If space becomes tight for a person praying, he can displace someone who is sitting, even if that person is occupied with recitation or teaching. (T)
- In Radd al-Muhtar: I say, likewise is the ruling for one whose sitting causes a break in the row, even if there is no congestion. (T)
- In Durr-e-Mukhtar (under 'Disliked and Prohibited acts in the mosque'): Raising the voice for Dhikr (remembrance of Allah) is prohibited, except for one who is teaching Fiqh (jurisprudence). (T)
- In Radd al-Muhtar: However, even in this case, it is not permissible if their loud Dhikr is likely to disturb a sleeper, someone praying, or someone reciting the Quran etc. (T)

Footnotes: 1. Khulasa-ul-Fatawa, before the Book of Menstruation, published by Maktaba Habibia, Quetta, 1/229. 2. Durr-e-Mukhtar, before the chapter of Witr and Nawafil, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/94. 3. Radd al-Muhtar, before the chapter of Witr and Nawafil, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/490. 4. Durr-e-Mukhtar, before the chapter of Witr and Nawafil, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/93. 5. Radd al-Muhtar, before the chapter of Witr and Nawafil, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/488.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

- मस्जिद में गर्मी आदि की ज़रूरत के कारण बच्चों को पढ़ाना नापसंद (मकरूह) नहीं है। और काज़ी इमाम (रहमतुल्लाह अलैह) के नुस्खे और 'इकरार अल-उयून' में शिक्षक (मुअल्लिम) के मसले को लेखक और दर्जी के मसले की तरह ही करार दिया गया है कि अगर वह अल्लाह की रज़ा के लिए पढ़ाता है तो कोई हर्ज नहीं और अगर वह मुआवज़ा (फीस) लेता है तो मकरूह है, सिवाय उस सूरत में जब ज़रूरत हो। (त)
- दुर्रे मुख्तार में है: जब नमाज़ी के लिए जगह तंग हो तो वह बैठे हुए आदमी को उठा सकता है, चाहे वह तिलावत में व्यस्त हो या तालीम दे रहा हो। (त)
- रद अल-मुह्तार में है: मैं कहता हूँ कि इसी तरह उसका हुक्म है जिसके बैठने की वजह से सफ़ (कतार) टूट रही हो, चाहे तंगी न भी हो। (त)
- दुर्रे मुख्तार में 'मस्जिद में मकरूहात और ममनुआत' के तहत है: ज़िक्र बुलंद आवाज़ से करना मना है, सिवाय उस शख़्स के जो फ़िक्ह (धर्मशास्त्र) की तालीम दे रहा हो। (त)
- रद अल-मुह्तार में है: अलबत्ता इस सूरत में भी जायज़ नहीं जब बुलंद आवाज़ से ज़िक्र करने से किसी सोने वाले की नींद, किसी नमाज़ी की नमाज़ या तिलावत करने वाले की तिलावत में खलल (विघ्न) पड़ने का अंदेशा हो। (त)

पादलेख: 1. खुलासा-उल-फ़तावा, किताबुल हैज़ से पहले, मकतबा हबीबिया, क्वेटा, 1/229. 2. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल से पहले, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/94. 3. रद अल-मुह्तार, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल से पहले, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/490. 4. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल से पहले, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/93. 5. रद अल-मुह्तार, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल से पहले, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/488.

पृष्ठ 118/673

فی المسجد یعلم الصبیان لضرورۃ الحر وغیرہ لایکرہ وفي نسخۃ القاضي الامام رحمہ اللہ وفي اقرار العیون جعل مسئلۃ المعلم کمسألۃ الکاتب والخیاط فان کان یعلم حسبۃ لابأس بہ وان کان باجر یکرہ الا اذا وقع ضرورۃ 1۔

وغیرہ کی وجہ سے مسجد میں بیٹھ کر تعلیم دے تو مکروہ نہیں، اور قاضی امام رحمہ اللہ کے نسخہ اور اقرار العیون میں مسئلہ معلم کو مسئلہ کاتب اور مسئلہ درزی کی طرح ہی قرار دیا گیا ہے کہ اگر وہ رضائے الٰہی کے لئے تعلیم دیتا ہے تو کوئی حرج نہیں اور اگر معاوضہ لیتا ہے تو مکروہ ہے البتہ اس صورت میں جائز جب ضرورت ہو۔ (ت)

در مختار میں ہے:

اذا ضاق فلمصلی ازعاج القاعد ولم مشتغلا بقراءۃ او درس 2۔

جب نمازی کے لئے جگہ تنگ ہو تو بیٹھے ہوئے آدمی کو اٹھا سکتا ہے خواہ وہ تلاوت میں مصروف ہو یا تعلیم دے رہا ہو۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

اقول وکذا اذالم یضق ولکم من قعودہ قطع للصف 3۔

میں کہتا ہوں اسی طرح اس کا حکم ہے جس کے بیٹھنے کی وجہ سے صف منقطع ہورہی ہو اگرچہ تنگی نہ ہو (ت)

در مختار مکروہات وممنوعات مسجد میں ہے:

و رفع صوت بذکر الا للمتفقهة 4۔

ذکر بلند آواز سے کرنا منع ہے مگر اس شخص کے لئے جو فقہ کی تعلیم دے رہا ہو۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

الان یشوش جهرهم علی نائم او مصلی او قارئ الخ 5۔

البتہ اس صورت میں بھی جائز نہیں جب ذکر بالجہرسے کسی سونے والے کی نیند، کسی نمازی کی نماز یا تلاوت کرنے والے کی تلاوت میں خلل کا اندیشہ ہو۔ (ت)

1۔ خلاصۃ الفتاوٰی قبیل کتاب الحیض مطبوعہ مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۱/۲۲۹ 2۔ در مختار قبیل باب الوتر والنوافل مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۴ 3۔ رد المحتار قبیل باب الوتر والنوافل مطبوعہ مصطفٰی البابی مصر ۱/۴۹۰ 4۔ در مختار ، قبیل باب الوتر والنوافل مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۳ 5۔ رد المحتار قبیل باب الوتر والنوافل مطبوعہ مصطفٰی البابی مصر ۱/۴۸۸

Volume Eight Fatawa-e-Razviya

It is mentioned in Manaqib-e-Kardari:

[Arabic column]: On the authority of Ibn Uyaynah, he said: I passed by him (i.e., the Imam, may Allah be pleased with him) while he was with his companions in the mosque. Their voices were raised, so I said: O Abu Hanifa! This is a mosque, and voices should not be raised in it. He said: Leave them, for they cannot understand except by it.[1] - And Allah Almighty knows best.

[Urdu column]: It is narrated from Ibn Uyaynah: I passed by him (Imam [Abu Hanifa], may Allah be pleased with him); he was in the mosque with his students, but their voices were loud. I said, "O Abu Hanifa! This is a mosque; voices should not be raised here." He replied, "Leave them, because they cannot acquire religious knowledge without this [level of] sound." And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1157: The aforementioned questioner: An old mosque was reconstructed from donated money. On its western wall, the following text was engraved on three stones and affixed above each of the three arches. The text is: "This Jamia Masjid, along with its southern and eastern shops and the royal hammam (bath), was built during a certain era and remained under the management of trustees for a long time. Due to the dishonesty of the last trustee, the hammam was separated from the mosque, and a two-story house for an individual was built on the mosque's western wall. The western wall and the dome wall cracked. The said trustee claimed the mosque's shops as his personal property. Finally, the trustee was removed from the trusteeship by a court order, and the management of the mosque and shops was handed over by the court to a committee. This committee reclaimed the hammam and declared it part of the mosque. Since then, the decoration and prosperity of the mosque have been increasing daily. There was a fear of the mosque collapsing due to the cracking of the western wall and the dome's arch. Therefore, the entire existing structure of the mosque was rebuilt from the foundation under the management of the committee. Construction began in 1331 AH and was completed in 1336 AH. Forty thousand rupees were spent on the construction, of which one thousand nine hundred came from the rent of the shops; the rest was collected through donations. Muslims from other districts besides Allahabad and rulers of the country also donated. The shops below the mosque, along with the hammam, are endowed (waqf), and their income is spent on mosque expenses. May Allah Almighty protect this mosque from the accidents of time and grant a great reward to all the Muslims

who assisted the mosque. May the observers pray for forgiveness for the committee members, the secretary, and other workers. Syed Amiruddin Ahmad (may Allah forgive him), addressed as Khan Bahadur, Secretary."

Footnote: 1 Al-Manaqib lil-Kardari, Imam Abu Hanifa and his companions, Qasamuw ala al-Sunnah, published by Maktabah Islamiyyah Quetta, 3/272.

खंड आठ फ़तावा-ए-रज़विया

मनाकिब-ए-करदरी में है:

[अरबी कॉलम]: इब्न उययना से रिवायत है, उन्होंने कहा: मैं उनके(यानी इमाम रज़ी अल्लाहु तआला अन्हु) पास से गुज़रा, वे मस्जिद में अपने साथियों के साथ थे। उनकी आवाज़ें ऊंची हो गई थीं, तो मैंने कहा: ऐ अबू हनीफ़ा! यह मस्जिद है और इसमें आवाज़ ऊंची नहीं की जानी चाहिए। उन्होंने कहा: उन्हें छोड़ दो, क्योंकि वे इसके बिना (इल्म) नहीं समझ सकते।[1] - और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

[उर्दू कॉलम]: इब्न उययना से रिवायत है कि मैं उनके(इमाम रज़ी अल्लाहु तआला अन्हु) पास से गुज़रा, आप शागिर्दों के साथ मस्जिद में थे लेकिन उनकी आवाज़ बुलंद थी, मैंने कहा: ऐ अबू हनीफ़ा! यह मस्जिद है इसमें आवाज़ बुलंद नहीं होनी चाहिए। फ़रमाया: इनको छोड़ दो क्योंकि दीनी उलूम को इस आवाज़ के बग़ैर हासिल नहीं कर सकते। वल्लाह तआला आलम (त)

मसाला 1157: उपरोक्त सवाल करने वाले: एक पुरानी मस्जिद चंदे के पैसों से नए सिरे से तामीर की गई। इसकी पश्चिमी दीवार पर नीचे दिया गया लेख तीन पत्थरों पर तराश कर तीनों मेहराबों के ऊपर लगाया गया। इबारत यह है: "यह जामा मस्जिद, दक्षिण और पूर्वी दुकानों और शाही हमाम के साथ एक अरसे तक मुतवलियों (ट्रस्टियों) के इंतज़ाम में रही। आखिरी मुतवल्ली की बेईमानी के कारण हमाम मस्जिद के अधिकार से निकल गया और मस्जिद की पश्चिमी दीवार पर एक व्यक्ति का दो मंजिला घर बन गया। पश्चिमी दीवार और गुंबद की दीवार में दरारें आ गईं। मुतवल्ली ने मस्जिद की दुकानों को अपनी निजी संपत्ति होने का दावा किया। आखिरकार, अदालत के आदेश से मुतवल्ली को पद से हटा दिया गया और मस्जिद और दुकानों का इंतज़ाम अदालत की ओर से एक कमेटी को सौंप दिया गया। इस कमेटी ने हमाम को वापस लेकर उसे मस्जिद का हिस्सा घोषित कर दिया, और तब से मस्जिद की सजावट और आबादी में रोज़ाना तरक्की होती रही। मस्जिद की पश्चिमी दीवार और गुंबद की मेहराब में दरार आ जाने से मस्जिद के गिर जाने का डर था, इसलिए मस्जिद की पूरी मौजूदा इमारत को कमेटी की देखरेख में बुनियाद से नए सिरे से बनाया गया। निर्माण कार्य 1331 हिजरी में शुरू हुआ और 1336 हिजरी में पूरा हुआ। निर्माण में चालीस हजार रुपये खर्च हुए, जिसमें से उन्नीस सौ दुकानों के किराए से मिले और बाकी चंदा जमा किया गया। जिला इलाहाबाद के अलावा अन्य जिलों के मुसलमानों और देश के शासकों ने भी चंदा दिया। मस्जिद के नीचे की दुकानें

और हमाम वक्फ़ हैं, उनकी आय मस्जिद के खर्चों में खर्च होती है। अल्लाह तआला इस मस्जिद को समय के हादसों से सुरक्षित रखे और मस्जिद की मदद करने वाले सभी मुसलमानों को नेक बदला अता फरमाए। देखने वाले कमेटी के सदस्यों, सचिव और अन्य कार्यकर्ताओं के हक में मगफिरत (क्षमा) की दुआ करें। सैयद अमीर उद्दीन अहमद (अल्लाह उन्हें क्षमा करे), जिन्हें खान बहादुर कहा जाता है, सचिव।"

पाद-टिप्पणी: 1 अल-मनाकिब लिल-करदरी, इमाम अबू हनीफा व असहाबुहु, कासमू अला अल-सुन्ना, मक्तबा इस्लामिया क्वेटा द्वारा प्रकाशित, 3/272।

पृष्ठ 119/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مناقبِ کردری میں ہے:

عن ابن عیینہ قال مررت بہ (ای بالا مام رضی اللہ تعالی عنہ) و ھو مع اصحابہ فی المسجد قد ارتفعت اصواتھم فقلت یا ابا حنیفہ ہذا المسجد والصوت لایرفع فیہ فقال دعھم فانھم لا یفقھون الا بہ [1]- واللہ تعالٰی اعلم | ابن عیینہ سے ہے کہ میں ان (امام رضی اللہ تعالیٰ عنہ) کے پاس سے گزرا آپ شاگردوں کے ساتھ مسجد میں تھے لیکن ان کی آواز بلند تھی، میں نے کہا: اے ابو حنیفہ! یہ مسجد ہے اس میں آواز بلند نہیں ہونی چاہئے۔ فرمایا: ان کو چھوڑ دو کیونکہ دینی علوم کو اس آواز کے بغیر حاصل نہیں کر سکتے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۵۷: سائل مذکور الصدر: ایک مسجد قدیم چندہ کے روپیہ سے از سر نو تعمیر کی گئی اس کی مغربی دیوار پر عبارت ذیل تین پتھر میں کندہ کرکے ہر سہ محراب کے اوپر چسپاں کی گئی، عبارت یہ ہے: "یہ جامع مسجد مع دکانات جنوبی و شرقی و حمام شاہی عہد کے بنے ہوئے ایک عرصہ تک متولیوں کے اہتمام میں رہی، آخری متولی کی بے ایمانیوں سے حمام مسجد سے نکل گیا اور مسجد کی مغربی دیوار پر ایک شخص کا دو منزلہ مکان بن گیا، مغربی دیوار اور گنبد کی دیوار شق ہو گئی، مکانات مسجد کی نسبت متولی مذکور نے اپنی خانگی جائداد ہونے کا دعویٰ کیا، بالآخر متولی بحکم کچہری تولیت سے خارج کر دیا گیا اور مسجد و دکانات کا انتظام کچہری کی طرف سے کمیٹی کو سپرد ہوا، اس کمیٹی نے حمام کو واپس لے کر جزو مسجد قرار دیا، اور اس وقت سے مسجد کی زینت و آبادی میں روز افزوں ترقی ہوتی رہی، مسجد کی مغربی دیوار اور گنبد کی ڈاٹ شق ہو جانے سے مسجد کے گر جانے کا اندیشہ تھا لہٰذا مسجد کی کل موجودہ عمارت بنیاد سے از سر نو کمیٹی کے زیر اہتمام تعمیر کی گئی تعمیر کا کام ۱۳۳۱ھ میں شروع ہوا

۱۳۳۶ھ میں ختم ہوا، تعمیر میں چالیس ہزار روپیہ خرچ ہوا، جس میں سے ایک ہزار نو سو دکانات کے کرایہ سے ملا باقی چندہ جمع کیا گیا، ضلع الہ آباد کے علاوہ دیگر اضلاع کے مسلمانوں اور والیان ملک نے بھی چندہ عطا فرمایا، دکانات زیریں مسجد مع حمام وقف ہیں ان کی آمدنی اخراجات مسجد میں صرف ہوتی ہے، اللہ تعالٰی اس مسجد کو حوادث زمانہ سے محفوظ رکھے اور جملہ مسلمانانِ معاونین مسجد کو جزائے خیر عطا فرمائے، ناظرین ارکان کمیٹی و سیکرٹری و دیگر کارکنان کے حق میں دعائے مغفرت کریں۔ سید امیر الدین احمد غفر لہ المخاطب بہ خان بہادر سیکرٹری

1 المناقب للکردری الامام ابو حنیفہ واصحابہ قاسموا علی السنۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ۳/۲۷۲

Fatawa Razvia Volume 8

"Committee for the management of the Grand Mosque, Chowk Allahabad, residing at Daira Shah Rafi-uz-Zaman (mercy of Allah be upon him), located in Mohalla Yahyapur, City of Allahabad." Zaid says that for several reasons, pasting this inscription on the western wall is not correct. Firstly, it is written in 'Durr-e-Mukhtar' that it is not correct to make inscriptions on the western wall,

Arabic: *Wa huwa hadha (wa la basa bi-naqshihi khila mihrabihi) fa-innahu yukrahu li-annahu yulhi al-musalla wa yukrahu al-takallufu bi-daqaiq al-nuqush wa nahwiha khususan fi jidar al-qiblah qalahu al-Halabi wa fi Hazr al-Mujtaba wa qila yukrahu fi al-mihrab duna al-saqf wa al-mu'akhkhar ah wa zahiruhu anna al-murada bi-al-mihrab jidaru al-qiblah fal-yahfaz.*

Urdu Translation: And that is: (There is no harm in decorating the mosque except for its mihrab) because decorating the mihrab is disliked (Makruh) as it distracts the worshipper, and it is disliked to take pains with fine decorations and the like, especially on the Qibla wall; as said by Al-Halabi. And in the 'Hazr' section of 'Al-Mujtaba', it is said that according to some, decorations in the mihrab are disliked, but not on the ceiling or the rear wall. End. And it is apparent that by 'mihrab' the wall of the Qibla is intended, so let it be remembered. (Translator)

And the word "nuhuha" (and the like) is also here, which includes everything that might cause the heart to wander. Secondly, the betrayal of the previous trustee is written in it, whom everyone here knows by this title. He has already faced the consequences of his character and the court has also removed him from trusteeship, but when he passes away from the world, his bad deed will remain engraved forever and people will remember him for his evil, while it is forbidden in the Noble Hadith. Thirdly, for someone's name to be at such a place is not free from seeking fame and ostentation, and this is undesirable, as written in 'Mirqat Sharh Mishkat':

Arabic: *Wa 'an 'Uthman radiyallahu ta'ala 'anhu qala qala Rasulullahi sallallahu ta'ala 'alayhi wa sallama man bana lillahi masjidan ay ma'badan fa-yatanawalu ma'bad al-kafarati fa-yakunu lillahi li-ikhraji ma buniya ma'badan li-ghayri Allah qalahu Ibn al-*

Urdu Translation: Narrated by Hazrat Uthman (Allah be pleased with him), he said that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever builds a mosque (place of worship) for Allah", this includes the places of worship of non-believers. Now, by "for

Malik wa al-azharu an yakuna al-masjidu 'ala	Allah", that place of worship will be excluded which...

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer, published by Matba Mujtabai Delhi, 1/39.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

"कमेटी इंतज़ाम जामा मस्जिद चौक इलाहाबाद, साकिन दायरा शाह रफ़ी-उज़-ज़मां (रहमतुल्लाह अलैह), वाक़े मोहल्ला यहियापुर, शहर इलाहाबाद।" ज़ैद कहता है कि कई वज़ह से यह इबारत मगरिबी (पश्चिमी) दीवार पर चस्पां करना दुरुस्त नहीं है। अव्वल यह कि 'दुर्रे मुख्तार' में लिखा है कि मगरिबी दीवार पर नक़्श (चित्रांकन) करना दुरुस्त नहीं है,

अरबी: व हुवा हाज़ा (व ला बा-स बि-नक़्शिही खिला मिहराबिही) फ़-इन्नाहू युकराहु लि-अन्नाहू युल्ही अल-मुसल्ला व युकराहु अत-तकल्लुफ़ु बि-दक़ाइक़ अन-नुक़ूश व नह्वुहा ख़ुसूसन फ़ी जिदार अल-क़िब्ला क़ालहु अल-हलबी व फ़ी हज़्र अल-मुज्तबा व क़ीला युकराहु फ़ी अल-मिहराब दून अस-सक़्फ़ व अल-मुअख़्ख़र अह व ज़ाहिरुहू अन्न अल-मुरादा बि-अल-मिहराब जिदारु अल-क़िब्ला फल-यहफ़ज़।

उर्दू अनुवाद: और वह यह है: (मस्जिद को मेहराब के अलावा मुनक़्क़श [सजाना] करने में कोई हर्ज नहीं) क्योंकि मेहराब को मुनक़्क़श करना मकरूह है, वह नमाज़ी को मशग़ूल कर देता है और बारीक नक़्श-ओ-निगार के लिए तकल्लुफ़ करना ख़सूसन क़िबला की दीवार में मकरूह है; यह हलबी ने कहा है। और 'अल-मुज्तबा' के बाब 'अल-हज़्र' में है कि बाज़ के नज़दीक मेहराब में नक़्श-ओ-निगार मकरूह है, मगर छत या पिछली दीवार पर मकरूह नहीं। इति। और इससे ज़ाहिर हो रहा है कि मेहराब से मुराद क़िबला की दीवार है, इसे याद कर लो। (अनुवादक)

और यहाँ 'नह्वुहा' (और इस जैसा) का लफ़्ज़ भी है जो हर ऐसी चीज़ को शामिल है जिससे दिल बँटने (भटकने) का अंदेशा हो। दौम (दूसरे) यह कि इसमें साबिक़ (पूर्व) मुतवल्ली की ख़यानत लिखी है, जिन्हें इस लक़ब से यहाँ हर शख़्स जानता है। वह अपने किरदार को पहुँच भी चुके और कचहरी ने भी उन्हें तौलयत (ट्रस्टीशिप) से अलहदा कर दिया, लेकिन वह जब दुनिया से रुख़सत फरमाएंगे तो उनकी बुराई हमेशा के लिए कुंदा (उकेरी हुई) रहेगी और लोग उन्हें बुराई से याद करेंगे, और हदीस शरीफ़ में मना है। सौम (तीसरे) यह कि ऐसे मौक़े पर किसी का नाम होना शोहरत और रिया (दिखावे) से खाली नहीं और यह ग़ैर-मुस्तहसन (नापसंदीदा) है जैसा कि 'मर्क़ात शरह मिश्क़ात' में लिखा है:

अरबी: व 'अन उस्मान रज़ियल्लाहु तआला अन्हु क़ाला क़ाला रसूलुल्लाही सल्लल्लाहु तआला अलैहि

उर्दू अनुवाद: हज़रत उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि

व सल्लम मन बना लिल्लाही मस्जिदन अय मअ्बदन फ़-यतानवलु मअ्बद अल-कफ़रती फ़-यकूनु लिल्लाही लि-इख़राजी मा बुनिया मअ्बदन लि-ग़ैरि अल्लाह क़ालहु इब्न अल-मलिक व अल-अज़हरु अन यकून अल-मस्जिदु अला

वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसने अल्लाह के लिए मस्जिद (इबादतगाह) बनाई", यानी इसमें काफ़िरों की इबादतगाहें भी शामिल हैं। अब "अल्लाह की ख़ातिर" से वह इबादतगाह ख़ारिज हो जाएगी जो...

---

1. दुर्रे मुख्तार, नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ों का अध्याय, मतबा मुज्तबाई दिल्ली से प्रकाशित, 1/39.

کمیٹی انتظام جامع مسجد چوک الہ آباد ساکن دائرہ شاہ رفیع الزمان رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ واقع محلہ یحییٰ پور شہر الہ آباد" زید کہتا ہے کہ بچند وجوہ یہ عبارت چسپاں کرانا مغربی دیوار پر درست نہیں ہے، اول یہ کہ درمختار میں لکھا ہے کہ مغربی دیوار پر نقش کرنا درست نہیں ہے،

وھو ھذا (ولا بأس بنقشه خلا محرابه) فانه یکره لانه یلهی المصلی ویکره التکلف بدقائق النقوش ونحوها خصوصا فی جدار القبلة قاله الحلبی وفی حظر المجتبی و قیل یکره فی المحراب دون السقف والمؤخر اھ وظاہرہ ان المراد بالمحراب جدار القبلہ فلیحفظ۔

اور وہ یہ ہے (مسجد کو محراب کے علاوہ منقش کرنے میں کوئی حرج نہیں) کیونکہ محراب کا منقش کرنا مکروہ ہے وہ نمازی کو مشغول کردیتا ہے اور باریک نقش و نگار کے لئے تکلف کرنا خصوصاً دیوارِ قبلہ میں مکروہ ہے حلبی نے کہا کہ المجتبٰی کے باب الحظر میں ہے کہ بعض کے نزدیک محراب میں نقش و نگار مکروہ ، مگر چھت یا پچھلی دیوار پر مکروہ نہیں۔ اور اس سے ظاہر ہورہا ہے کہ محراب سے مراد قبلہ کی دیوار ہے ، اسے محفوظ کرلو۔ (ت)

اور یہاں نحوہا کا لفظ بھی ہے کہ جو ہر ایک ایسی چیز کو شامل ہے کہ جس سے دل بٹنے کا اندیشہ ہو۔ دوم یہ کہ اس میں متولی سابق کی خیانت لکھی ہے جن کو اس لقب سے یہاں ہر شخص جانتا ہے وہ اپنے کردار کو پہنچ بھی چکے اور کچہری نے بھی ان کو تولیت سے علیحدہ کردیا لیکن وہ جب دنیا سے رحلت فرمائیں گے تو ان کی برائی ہمیشہ کے لئے کندہ رہے گی اور لوگ برائی سے ان کو یاد کریں گے، اور حدیث شریف میں منع ہے سوم یہ کہ ایسے موقع پر کسی کا نام ہونا شہرت اور ریا سے خالی نہیں اور یہ غیر مستحسن ہے جیسا کہ مرقاۃ شرح مشکوۃ میں لکھا ہے:

وعن عثمان رضی اللہ تعالیٰ عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم من بنی اللہ مسجدا ای معبد افیتناول معبد الکفرۃ فیکون للہ لاخراج ما بنی معبد الغیر اللہ قالہ ابن الملك والاظہر ان یکون المسجد علی

حضرت عثمان رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا : جس نے اللہ کے لئے مسجد (عبادت گاہ) بنائی ، یہ کافروں کے عبادت خانے کو بھی شامل ہے۔ اب "اللہ کی خاطر" سے وہ عبادت گاہ خارج ہوجائے گی جو

---

1 درمختار باب ما یفسد الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۳۹/۱

[Arabic Passage]: For its sake, and it should be for the sake of Allah, not to show off or seek fame what is built for vanity and reputation. Therefore, it is said that whoever writes his name on his building, it indicates his lack of sincerity. Ibn Hajar said: This is apparent unless he intends by writing his name something like a prayer or seeking mercy, and in that, prayer and seeking mercy can be achieved generally and vaguely, so there is no need for specifying the name.[1]

[Urdu Column]: ...for the sake of other than Allah. This is the saying of Ibn al-Malik. And the more apparent [view] is that this is the ruling for a mosque. Now, it will be excluded from being "for the sake of Allah" if a mosque is built for the sake of hypocrisy and showing off. That is why it is said that whoever writes his name on a mosque, it is evidence of a lack of sincerity. Ibn Hajar says this is apparent as long as the purpose of writing the name is not for prayer and mercy. The objection to this is that prayer and mercy are achieved in a general way, so there is no need to specify the name. (T)

Fourthly, by having it named after a specific person, a kind of right/entitlement for him and his family is established, and in the future, this will be very harmful to the mosque's income, as is happening in all endowments. In any case, even if there is disagreement, it is not good for a contentious matter to remain in the mosque; caution dictates that this stone should not remain. Bakr says that pasting this stone is correct, such plaques are installed in many mosques, and what is the need to look there during prayer? And getting the name engraved is for the sake of prayer and with the thought that there is a need for the name of some responsible manager. In any case, is Zaid's statement correct or Bakr's? State [the ruling] and be rewarded.

The Answer:

The answer to this question was already given in Ramadan 1337 AH. The copy sent is the same answer. In it, the question about the name on the Qibla wall is extra. Indeed, in the Qibla wall, up to the common worshipers' point of vision, there should be nothing that distracts the heart, and if there is, it should be hidden with a cloth. Ahmad and Abu Dawood narrate from Uthman bin Talhah (may Allah be pleased with him):

[Arabic Hadith]: Verily the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) called him after entering the Kaaba and said: "I saw the two horns of the ram when I

entered the House, and I forgot to command you to cover them. So cover them, for it is not appropriate that there be anything in the Qibla of the House [of Allah]."

[Urdu Translation of Hadith]: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) called him after entering the Kaaba and said: "When I entered the House of Allah, I saw two horns of a ram. I did not remember to tell you to cover them, so cover them, because in the Qibla of the House of Allah, any such..."

[1] Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on Mosques and Places of Prayer, published by Maktabah Imdadiyah Multan, 193/2.

[अरबी अनुच्छेद]: ...अल्लाह के लिए हो, न कि दिखावे और प्रसिद्धि के लिए जो कुछ भी दिखावे और प्रसिद्धि के लिए बनाया गया है। इसलिए कहा गया है कि जिसने अपनी इमारत पर अपना नाम लिखा, यह उसकी निष्ठा की कमी को दर्शाता है। इब्न हजर ने कहा: यह स्पष्ट है जब तक कि उसका नाम लिखने से उद्देश्य प्रार्थना या दया मांगना न हो, और इसमें प्रार्थना और दया सामान्य और अस्पष्ट रूप से प्राप्त की जा सकती है, इसलिए नाम निर्दिष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[1]

[उर्दू कॉलम]: ...अल्लाह के अलावा किसी और के लिए हो। यह इब्न अल-मलिक का कथन है। और अधिक स्पष्ट बात यह है कि मस्जिद का यही नियम है। अब "अल्लाह की खातिर" से वह मस्जिद निकल जाएगी जो रिया (पाखंड) और दिखावे की खातिर हो, इसीलिए कहा गया है कि जिसने मस्जिद पर अपना नाम लिखा तो यह निष्ठा की कमी का प्रमाण है। इब्न हजर कहते हैं कि यही स्पष्ट है जब तक नाम लिखने से उद्देश्य दुआ और रहमत (कृपा) न हो। इस पर आपत्ति यह है कि दुआ और रहमत सामान्य रूप से हो जाती है, इसलिए नाम तय करने की ज़रूरत नहीं। (त)

चौथा यह कि एक विशेष व्यक्ति के नाम पर होने से उसका और उसके परिवार का एक प्रकार का अधिकार सिद्ध होता है और भविष्य में यह मस्जिद की आय के अधिकार में अत्यंत हानिकारक होगा जैसा कि सभी वक़्फ़ों में हो रहा है। बहरहाल अगर इसमें कोई मतभेद भी करे तो विवादास्पद बात मस्जिद में रहना अच्छा नहीं, सावधानी की मंशा यही है कि यह पत्थर न रहे। बक्र कहता है कि यह पत्थर चिपकाना सही है, बहुत सी मस्जिदों में ऐसे शिलालेख लगे हुए हैं और नमाज़ में वहां नज़र ले जाने की ज़रूरत क्या है? और नाम खुदवाना दुआ के लिए है और इस विचार से कि किसी प्रबंधक जिम्मेदार के नाम होने की ज़रूरत है। बहरहाल ज़ैद की बात सही है या बक्र की? बयान करें, पुण्य पायें।

उत्तर:

इस सवाल का जवाब रमज़ान 1337 हिजरी में दिया जा चुका है, इसकी नकल भेजी जा रही है, वही जवाब है। इसमें क़िबला की दीवार पर नाम का सवाल अतिरिक्त है, वास्तव में क़िबला की दीवार में आम नमाज़ियों की दृष्टि के स्थान तक कोई ऐसी चीज़ नहीं होनी चाहिए जिससे मन भटके और हो तो कपड़े से छुपा दी जाए। अहमद और अबू दाऊद उस्मान बिन तल्हा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णन करते हैं:

[अरबी हदीस]: अल्लाह के नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने काबा में प्रवेश करने के बाद उन्हें बुलाया और फरमाया: "जब मैं घर (बैतुल्लाह) में दाखिल हुआ तो मैंने मेंढे के दो सींग देखे। मुझे तुमसे यह कहना याद नहीं रहा कि उन्हें ढक दो, तो उन्हें ढक दो, क्योंकि बैतुल्लाह के क़िबला में ऐसी कोई चीज़ नहीं होनी चाहिए।"

[हदीस का उर्दू अनुवाद]: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने काबा में प्रवेश करने के बाद उन्हें बुलाया और फरमाया: "जब मैं अल्लाह के घर (बैतुल्लाह) में दाखिल हुआ तो मैंने मेंढे के दो सींग देखे। मुझे तुमसे यह कहना याद नहीं रहा कि उन्हें ढक दो, तो उन्हें ढक दो, क्योंकि बैतुल्लाह के क़िबला में ऐसी कोई..."

[1] मिरक़ात शरह मिश्क़ात, मस्जिदों और नमाज़ के स्थानों का अध्याय, मकतबा इमदादिया मुल्तान द्वारा प्रकाशित, 193/2।

بابہ ویکون للہ لا خراج مآ بنی للریا والسمعۃ ولذا قیل من کتب اسمہ علی بنائہ دل ذلك منہ علی عدم اخلاصہ قال ابن حجر وھو ظاھر مالم یقصد بکتابۃ اسمہ نحو الدعاء والترحم وفیہ ان الدعاء والترحم یحصل مجملاً ومبھاً فلا یحتاج الی تعیین الاسم۔[1]

غیر اللہ کی خاطر ہو۔ یہ ابن الملک کا قول ہے۔ اور اظہر یہی ہے کہ مسجد کا یہی حکم ہے اب "اللہ کی خاطر" سے وہ مسجد نکل جائے گی جو ریا اور دکھاوے کی خاطر ہو، اسی لئے کہا گیا ہے کہ جس نے مسجد پر اپنا نام لکھا تو یہ عدم اخلاص پر دلیل ہے۔ ابن حجر کہتے ہیں یہی ظاہر ہے جب تک نام لکھنے سے مقصود دعا ورحمت نہ ہو اس پر اعتراض یہ ہے کہ دعا ورحمت مجملاً ہو جاتی ہے لہٰذا نام کی تعیین کی ضرورت نہیں۔ (ت)

چہارم یہ کہ ایک خاص ایسے شخص کے نام ہونے سے اس کا اور اس کے خاندان کا ایک قسم کا استحقاق ثابت ہوتا ہے اور آئندہ یہ مسجد کی آمدنی کے حق میں نہایت مضر ہوگا جیسا کہ تمام اوقاف میں ہورہا ہے بہر حال اگر اس میں کوئی اختلاف بھی کرے تو اختلافی بات مسجد میں رہنا اچھا نہیں، احتیاط کا یہی منشا ہے کہ یہ پتھر نہ رہے۔ بکر کہتا ہے کہ یہ پتھر چسپاں کرنا درست ہے بہت مساجد میں ایسے کتبے لگے ہوئے ہیں اور نماز میں وہاں نظر لے جانے کی ضرورت کیا ہے اور نام کندہ کرانا دعا کے واسطے ہے اور اس خیال سے کہ کسی منتظم ذمہ دار کے نام ہونے کی ضرورت ہے، بہر حال زید کا قول صحیح ہے یا بکر کا؟ بینوا توجروا

الجواب:

اس سوال کا جواب رمضان ۱۳۳۷ھ میں دیا جا چکا ہے اس کی نقل مرسل ہے وہی جواب ہے اس میں دیوارِ قبلہ پر نام کا سوال زائد ہے، بیشک دیوارِ قبلہ میں عام مصلیوں کے موضع نظر تک کوئی ایسی چیز نہ چاہئے جس سے دل بٹے اور ہو تو کپڑے سے چھپا دی جائے۔ احمد و ابوداؤد عثمان بن طلحہ رضی اللہ تعالی عنہ سے راوی:

ان النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم دعاہ بعد دخولہ الکعبہ فقال انی کنت رأیت قرنی الکبش حین دخلت البیت فنسیت ان آمرک ان تخمرھما فخمرھما فانہ لا ینبغی ان یکون فی قبلہ البیت شئ

رسالتمآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے دخولِ کعبہ کے بعد انہیں بلایا اور فرمایا جب میں بیت اللہ میں داخل ہو تو میں نے دنبے کے دو سینگ دیکھے مجھے تجھ سے یہ کہنا یاد نہ رہا کہ انہیں ڈھانپ دو، کیونکہ قبلہ بیت اللہ میں ایسی کسی

1 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب المساجد ومواضع الصلوۃ مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۱۹۳/۲

صفحہ 121 کا 673

Fatawa Ridawiyyah Volume 8

[That which] distracts the prayer-goer. 1- It is not appropriate for something to be present that might distract a person during prayer. (T)

When the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) visited the Grand Kaaba, he summoned Uthman bin Talhah (may Allah be pleased with him), the key-bearer of the Kaaba, and said: "We observed the horns of the ram (the ram which was the ransom for Sayyiduna Ismail, peace be upon him; its horns were fixed to the western wall of the Grand Kaaba). We forgot to tell you to cover them. Cover them now, for there should be nothing in front of a prayer-goer that distracts the heart. Yes, if they are at such a height that they only become visible by raising the head, then it is the fault of the prayer-goer. When is it permissible for them to raise their gaze towards the sky? The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

Arabic: 'Layantahiyanna aqwaamun yarfa'oona absaarahum ilas samaa'i fis salaati aw latukhtafanna absaaruhum. 2. Narrated by Ahmad, Muslim, and an-Nasa'i from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him).'

Urdu translation: 'Those who raise their gazes to the sky during prayer either cease doing so, or their sight will be taken away (i.e., it will not return, they will become blind).' Narrated by Imam Ahmad, Muslim, and an-Nasa'i from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him).

Engraving names depends on the intention. If the intention is for prayer (du'a), then it is undoubtedly permissible. Wanting a general prayer is sufficient and doesn't negate wanting a specific prayer. However, if the aim is for name and fame (pride), then it is forbidden. But who has made it permissible to have bad suspicion about a Muslim? This is a matter of the heart; only the individual and their Lord know. An answer to this was also given in Jumada al-Akhira 1336 AH, which was the same ruling. That was brief, this is somewhat detailed. And Allah Almighty knows best.

Issue 176: From the city office of Anjuman Khadim al-Muslimeen, asked by Gohar Ali Husseini, Secretary of the Anjuman, 6 Muharram 1339 AH.

Question: What do the learned scholars say regarding the matter of installing an Islamic black flag, i.e., the Banner of Islam, on the roofs of mosques with the intention of demonstrating the glory of Islam? Is it permissible or not? Explain and be rewarded.

Answer: The glory of Islam lies in the obedience of Islam. Placing a flag on a mosque is a new thing (innovation). If there is any opposition, it would lead to disgrace and humiliation. If there is no such fear, then in itself there is no harm. And Allah Almighty knows best.

1 Musnad Imam Ahmad bin Hanbal, narrated from the wife of Uthman bin Talhah, published by Dar al-Fikr Beirut, 5/380. 2 Sahih Muslim, Book of Prayer, Chapter on the Prohibition of Raising Gaze towards the Sky etc., published by Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/181.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[जो] नमाज़ी का ध्यान भटकाए। 1- ऐसी किसी चीज़ का होना उचित नहीं है जो नमाज़ी का ध्यान अपनी ओर खींच ले। (त)

हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब काबा ए मोअज़्ज़मा में तशरीफ़ ले गए, तो आपने काबा की चाबियाँ रखने वाले उस्मान बिन तल्हा (रज़ियल्लाहु अन्हु) को बुलाया और फ़रमाया: "हमने काबा में मेढ़े के सींग देखे थे (वह मेढ़ा जो सैयदुना इस्माइल अलैहिस्सलाम का फ़िद्या था; उसके सींग काबा ए मोअज़्ज़मा की पश्चिमी दीवार में लगे हुए थे)। हमें तुम से यह कहना याद न रहा कि उन्हें ढँक दो। अब उन्हें ढँक दो, क्योंकि नमाज़ी के सामने ऐसी कोई चीज़ नहीं होनी चाहिए जिससे दिल भटक जाए। हाँ, अगर वे इतनी ऊँचाई पर हों कि सिर उठाकर देखने पर ही नज़र आएँ, तो यह नमाज़ी का दोष है। उसे आसमान की तरफ़ निगाह उठाना कब जायज़ है? रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

अरबी: 'लयनतहिंन्ना अकवामुन यरफ़ऊना अबसारहुम इलस समाइ फ़िस सलाति अव लतुखतफ़न्ना अबसारहुम। 2. इमाम अहमद, मुस्लिम और नसाई ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया।'

उर्दू अनुवाद: 'वे जो नमाज़ में आसमान की तरफ़ निगाह उठाते हैं या तो वे इससे बाज़ आ जाएँगे या उनकी निगाहें उचक ली जाएँगी यानी वापस नहीं आएँगी, वे अंधे हो जाएँगे।' इसे इमाम अहमद, मुस्लिम और नसाई ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

नाम खुदवाना नीयत पर निर्भर है। अगर नीयत दुआ की है, तो निःसंदेह यह जायज़ है। एक सामान्य दुआ की चाहत काफ़ी है और यह किसी विशेष दुआ की चाहत का खंडन नहीं करती। और अगर मक़सद नाम की प्रसिद्धि है, तो यह हराम है। लेकिन किसी मुसलमान पर बुरा गुमान करने को किसने जायज़ किया है? यह दिल का मामला है; वह जाने और उसका रब। जमादी उल-आख़िर 1336 हिजरी में भी इसका जवाब दिया गया था, हुक्म यही था। वह संक्षिप्त था, यह थोड़ा विस्तृत है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 176: शहर दफ़्तर अंजुमन खादिमुल मुस्लीमीन से, सायल गौहर अली हुसैनी, मोअतमिद (सचिव) अंजुमन, 6 मुहर्रम 1339 हिजरी।

प्रश्न: उलमा-ए-किराम इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि 'शौकत-ए-इस्लाम' (इस्लाम की शान) की नीयत से मस्जिदों की छत पर इस्लामी काला झंडा यानी 'लवा-ए-इस्लाम' लगाना जायज़ है या नहीं? बयान फ़रमाएँ और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: इस्लाम की शौकत इस्लाम की इताअत (आज्ञापालन) में है। मस्जिद पर झंडा लगाना एक नई बात है। और अगर कोई विरोध हो तो इससे अपमान और लज्जा होगी। और अगर ऐसा कोई अंदेशा न हो तो फ़ि नफ़्सिही (अपने आप में) कोई हर्ज नहीं। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

1 मसनद इमाम अहमद बिन हंबल, उस्मान बिन तल्हा की पत्नी से रिवायत, दार अल-फ़िक्र बेरुत, 5/380 द्वारा प्रकाशित। 2 सहीह मुस्लिम, किताबुस सलात, आसमान की तरफ़ निगाह उठाने की मनाही का अध्याय आदि, नूर मुहम्मद असहा अल-मताबे कराची, 1/181 द्वारा प्रकाशित।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

یلھی المصلی ۱۔ شئی کا ہونا مناسب نہیں جو نمازی کو مشغول کردے۔ (ت)

حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کعبہ معظمہ میں تشریف فرما ہوئے عثمان بن طلحہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کلید بردار کعبہ کو طلب فرما کر ارشاد فرمایا: ہم نے کعبہ میں دنبے کے سینگ ملاحظہ فرمائے تھے (دنبہ کہ سیدنا اسمعیل علیہ الصلوۃ والسلام کا فدیہ ہوا اس کے سینگ کعبہ معظمہ کی دیوار غربی میں لگے ہوئے تھے) ہمیں تم سے یہ فرمانا یاد نہ رہا کہ ان کو ڈھانک دو اب ڈھانکو کہ نمازی کے سامنے کوئی چیز ایسی نہ چاہئے جس سے دل بٹے۔ ہاں اگر اتنی بلندی پر ہو کہ سر اٹھا کر دیکھنے سے نظر آئے تو یہ نمازی کا قصور ہے، اسے آسمان کی طرف نگاہ اٹھانا کب جائز ہے، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ فرماتے ہیں:

لینتھین اقوام یرفعون ابصار ھم الی السماء في الصلوۃ اولتخطفن ابصارھم ۲۔ رواہ احمد و مسلم والنسائی عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔

وہ جو نماز میں آسمان کی طرف نگاہ اٹھاتے ہیں یا تو اس سے باز آئیں گے یا ان کی نگاہ اچک لی جائیگی یعنی واپس نہ آئے گی اندھے ہوجائیں گے۔ اسے امام احمد مسلم اور نسائی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔

نام کندہ کرانانیت پر ہے، اگر یہ نیت دعا ہے بے شبہ روا ہے اور مبہم دعا کافی ہو نا بالتعیین دعا چاہنے کا نافی نہیں، اور اگر مقصود نام پیشک حرام ہے، مگر مسلمان پر بد گمانی کس نے جائز کی، یہ امر قلب ہے وہ جانے اور اس کا رب۔ پہلی جمادی الآخر ۱۳۳۶ھ میں بھی اس کا جواب جا چکا تھا یہی حکم تھا، وہ مجمل ہے یہ قدرے مفصل۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۷۶: از شہر دفتر انجمن خادم المسلمین مسئولہ گوہر علی حسینی معتمد انجمن ۶ محرم ۱۳۳۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے کرام اس مسئلہ میں کہ سقف مساجد پر بخیال شوکت اسلام اسلامی سیاہ جھنڈا یعنی لوائے اسلام نصب کرنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: شوکت اسلام اطاعت اسلام میں ہے، مسجد پر جھنڈا ایک نئی بات ہے، اور کوئی مزاحمت ہو تو سبکی و خفت، اور اس کا اندیشہ نہ ہو تو فی نفسہ کوئی حرج نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

1 مسند امام احمد بن حنبل مروی از امراہ ام عثمان بن طلحہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۵/ ۳۸۰ 2 صحیح مسلم کتاب الصلوۃ باب النہی عن رفع البصر الی السماء الخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۱۸۱

Fatawa Rizvia Volume 8

Problem 1177: From Bhera, Shahpur, Punjab, Multani Gate. Questioned by Fazl-ul-Haq Sahib Chishti, 5th Ramadan 1339 AH. To the Presence of Sultan of Scholars, the Most Proficient, Proof of Virtuous and Capable, Treasure of Guidance and Certainty, Shaikh-ul-Islam wal-Muslimeen, Maulana Mufti Allama Shah Ahmed Raza Khan Sahib, may his shadow endure, peace be upon you: What do the scholars of religion say regarding whether Mawlid recitation is permissible in the mosque or not? Because Mirza'is etc. object that musical melodies (raag) are forbidden in mosques, and strictly forbidden as much as possible. Since Mawlid is also in melodies, it is absolutely impermissible. Explain and be rewarded.

The Answer: A Mawlid gathering based on authentic narrations, where the poems recited are according to the pure Shariah, and the reciters are non-beardless men (adults) reciting in melodies, is permissible even in a mosque. This is because mosques are built for the remembrance of Allah, and the remembrance of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is also the remembrance of Allah[1]. It is mentioned in the Hadith that after the revelation of the noble verse "And We raised high your fame [remembrance]" (Warafa'na laka dhikrak), Allah Almighty sent Gabriel (peace be upon him) to the Holy Presence of the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) and said: "Do you know how I have raised high your remembrance for you?" The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) replied, "You know best." He said: "I have made you a remembrance from My remembrance; so whoever remembers you has indeed remembered Me."[2] Qadianis are apostates; it is not permissible to pay heed to what they say. And Allah Almighty knows best.

Problem 1178: Should religious rulings be explained in the mosque as a sermon before prayer when someone is praying Nafil or Sunnah, or after prayer?

The Answer: Religious rulings, whether before or after prayer, should be explained at such a time when people are free to listen and no disturbance is caused to the prayers of the worshippers. And Allah Almighty knows best.

---

[1] Kitab al-Shifa, Part 1, Chapter 1 regarding praise of Allah, published by Shirkat-e-Sahafiya Turkey 1/15. Mentioned in Tafsir Dur al-Manthur under the verse "Warafa'na laka dhikrak", publications of Library of Grand Ayatollah Qom Iran 6/362. [2] Kitab al-

Shifa, Part 1, Chapter 1 regarding praise of Allah, published by Shirkat-e-Sahafiya in Ottoman lands Turkey 1/15.

Page 123 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

मसला 1177: भैरा, शाहपुर, पंजाब, मुल्तानी दरवाज़ा से। सवाली फ़ज़लुल हक़ साहिब चिश्ती, 5 रमज़ान 1339 हिजरी। बखिदमत जनाब सुल्तानुल उलमा, अल-मुतबज्जरीन, बुरहानुल फुज़ला वल मुतक़द्दिरीन, कंजुल हिदायत वल यक़ीन, शैखुल इस्लाम वल मुस्लिमीन मौलाना मुफ्ती अल्लामा शाह अहमद रज़ा खान साहब मदज़िल्लहुल आली, अस्सलामु अलैकुम: क्या फरमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसले में कि मौलूद ख्वानी मस्जिद में जाइज़ है या नहीं? क्योंकि मिज़ाई वगैरह ऐतराज़ करते हैं कि मस्जिद में राग मना हैं और हत्ता उल इमकान मना हैं, चूंकि मौलूद भी राग हैं इसलिए ये कतअन जाइज़ नहीं। बयान फरमाएं ताकि अज्र पाएं।

अल-जवाब: मजलिस-ए-मीलाद मुबारक कि रिवायत-ए-सहीहा से हो और अशआर जो पढ़े जाएं मुताबिक़-ए-शरअ-ए-मुतह्हरा हों और अलहान से पढ़ने वाले मर्द गैर-अमराद (दाढ़ी वाले) हों, मस्जिद में भी जाइज़ है कि मसाजिद ज़िक्र-ए-इलाही के लिए बनी हैं और नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का ज़िक्र भी ज़िक्र-ए-इलाही है[1], हदीस में है कि रब अज्ज़ वजल्ल ने करीमा "व रफअना लका ज़िक्रक" के नुज़ूल के बाद, कि 'हमने बुलंद किया तुम्हारे लिए तुम्हारा ज़िक्र', जिब्रील अमीन अलैहिस्सलाम को खिदमत-ए-अक़दस हुज़ूर सैयदुल आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम में भेजकर इरशाद फरमाया: "क्या तुम जानते हो मैंने तुम्हारा ज़िक्र तुम्हारे लिए कैसे बुलंद फरमाया?" हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने अर्ज़ की: "तू खूब जानता है।" फरमाया: "मैंने तुम्हें अपने ज़िक्र में से एक ज़िक्र बनाया, तो जिसने तुम्हारा ज़िक्र किया उसने मेरा ज़िक्र किया।"[2] कादियानी मुर्तद हैं, उनकी बात पर कान लगाना जाइज़ नहीं। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1178: मस्जिद में मसाइल का बतौर-ए-वाज़ के नमाज़ से पहले, जब कोई नफ़्ल या सुन्नतें पढ़ता हो, बयान करना चाहिए या नहीं, या नमाज़ के बाद?

अल-जवाब: मसाइल चाहे नमाज़ से पहले हों या नमाज़ के बाद, ऐसे वक्त बयान किए जाएं कि लोग सुनने के लिए फारिग हों और नमाज़ियों की नमाज़ में खलल न आए। वल्लाहु तआला आलम।

---

[1] किताबुश शिफ़ा, बाब अव्वल, अल्लाह की हम्द के बयान में, पहली फसल, तुर्की संस्करण 1/15; तफ़सीर दुर्रे मन्सूर में आयत "व रफअना लका ज़िक्रक" के तहत ज़िक्र है, ईरान संस्करण 6/362। [2] किताबुश शिफ़ा, बाब अव्वल, अल्लाह की हम्द के बयान में, पहली फसल, उस्मानी सल्तनत (तुर्की) संस्करण 1/15।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۱۷۷: از بھیرہ شاہ پور ملک پنجاب دروازہ ملتانی مسئولہ فضل حق صاحب چشتی ۵ رمضان ۱۳۳۹ھ بخدمت جناب سلطان العلماء المتبحرین برہان الفضلاء والمتقدرین کنز الہدایۃ والیقین شیخ الاسلام والمسلمین مولینا مفتی العلامہ شاہ احمد رضا خان صاحب مدظلہ العالی، السلام علیکم : کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مولود خوانی مسجد میں جائز ہے یا نہیں؟ کیونکہ مرزائی وغیرہ اعتراض کرتے ہیں کہ مسجد میں راگ منع ہیں اور حتی الامکان منع ہیں، چونکہ مولود بھی راگ ہیں اس لئے یہ قطعاً جائز نہیں۔ بینوا توجروا الجواب: مجلس میلاد مبارک کہ روایات صحیحہ سے ہو اور اشعار کہ پڑھے جائیں مطابق شرع مطہر ہوں اور الحان سے پڑھنے والے مرد غیر امر د ہوں، مسجد میں بھی جائز ہے کہ مساجد ذکر الہی کے لئے بنیں اور نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ذکر بھی ذکر الہی ہے ۱، حدیث میں ہے رب عز و جل نے کریمہ و رفعنا لک ذکرک کے نزول کے بعد کہ ہم نے بلند کیا تمہارے لئے تمہارا ذکر، جبریل امین علیہ الصلوۃ والسلام کو خدمت اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں بھیج کر ارشاد فرمایا: اتدری کیف رفعت لك ذکرک؟ جانتے ہو میں نے تمہارا ذکر تمہارے لئے کیونکر بلند فرمایا؟ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے عرض کی: تو خوب جانتا ہے۔ فرمایا: جعلتک ذکرا من ذکری فمن ذکرك فقد ذکرنی ۲ میں تمہیں اپنے ذکر میں سے ایک ذکر بنایا تو جو نے تمہارا ذکر کیا اس نے میرا ذکر کیا۔ قادیانی مرتدین ہیں ان کی بات پر کان لگانا جائز نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۱۷۸: مسجد میں مسائل کا بطور وعظ کے قبل نماز کے کوئی نفل پڑھتا ہو کوئی سنتیں بیان کرنا چاہئے یا نہیں، یا بعد نماز کے؟ الجواب: مسائل قبل نماز خواہ بعد نماز، ایسے وقت بیان کئے جائے کہ لوگ سننے کے لئے فارغ ہو، نمازیوں کی نماز میں خلل نہ آئے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

۱ کتاب الشفاء لاباب الاول فی ثناء الله تعالی فصل اول مطبوعہ شرکت صحافیہ ترکی ۱/۱۵، تفسیر در منثور آیۃ و رفعنا لک ذکرک کے تحت مذکور ہے منشورات مکتبہ آیۃ الله العظمی قم ایران ۶/ ۳۶۲ ۲ کتاب الشفاء الباب الاول فی ثناء الله تعالی فصل اول مطبوعہ شرکت صحافیہ فی البلاد العثمانیہ ترکی ۱/۱۵

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Page 124 of 673

Issue 1179: From Jawra, sent by Maulvi Hafiz Musahib Ali Sahib, 1st Rajab 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: If people are sitting in rows in a mosque waiting for the congregation or the sermon (khutba) and are busy in the remembrance of Allah, in such a situation, is it permissible for any individual or for the general public to stand up out of respect or move forward to welcome a ruler, a Sufi shaykh, a nobleman, a king, or the Imam of the mosque himself when they arrive?

The Answer: As long as people are not waiting for the congregation or sermon and the Imam has not yet gone for the sermon, every person can stand up for their father, spiritual guide (pir), or teacher of religious knowledge. And if a scholar of religion arrives, the entire mosque should stand up; their respect is exactly the respect of Allah and His Messenger (Jalla wa Ala wa Sallallahu Ta'ala Alayhi wa Sallam). For others, standing out of worldly honor or for the wealthy without necessity or compulsion is not permissible. And Allah Ta'ala knows best.

Issue 1180: 1st Muharram-ul-Haram 1314 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: If a place has many graves, and that place is filled over and a mosque is built upon it, how is it to offer prayers in it?

The Answer: The questioner states that a platform was made by putting soil over the specific site of graves in a public Muslim cemetery, and a building was erected on it and designated as a mosque. This is absolutely impermissible and void. That mosque cannot become a mosque, "for an endowment (waqf) does not remain anyone's property, so it cannot be endowed again for another purpose." (Because waqf does not remain anyone's property, therefore it cannot be endowed again for another [purpose]. - Editor). Nor is prayer permissible in it, "because a grave does not cease to be a grave by adding soil to it, so it would be praying on a grave. Furthermore, this is a disposal of the waqf in a way that is not for it and changing it from what it was for, so it is not permissible." (Because by adding more soil to a grave, the grave does not exit its state of being a grave, therefore this prayer will be on a grave. Then this is such a disposal and change in the waqf which is not permissible for it. - Editor). And Allah Ta'ala knows best.

Issue 1181-1182: From Meerut, Jodhpur region, near the alley of Jamia Masjid Chautah, sent by Maulvi Abdul Rahman Sahib, lawyer of the court, 8th Dhul-Hijjah, Wednesday, 1314 AH. What do the scholars of religion, may Allah increase their group, say in response to the following queries: (1) In our area, there is a community whose profession is distilling wine, and they are religiously Muslims. In this community, some people have stopped distilling wine for two or four generations and have taken up other professions, such as being a small-goods merchant (bisati).

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

पृष्ठ 124 का 673

मसअला 1179: जावरा से, प्रेषित मौलवी हाफ़िज़ मुसाहिब अली साहब, 1 रजब 1338 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसअले में क्या फ़रमाते हैं कि अगर मस्जिद में नमाज़ के लिए सफ़ें बांधकर जमाअत या खुतबे का इंतज़ार कर रहे हों और अल्लाह के ज़िक्र में मशगूल हों, ऐसी सूरत में किसी हाकिम, मशाइख (सूफ़ी बुज़ुर्ग), रईस, बादशाह या खुद मस्जिद के इमाम के आने पर किसी शख्स को या आम लोगों को ताज़ीम (सम्मान) के लिए खड़ा होना या इस्तक़बाल के लिए आगे बढ़ना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): जब तक लोग जमाअत या खुतबे के इंतज़ार में न हों और इमाम अभी खुतबे के लिए न गया हो, तो बाप, पीर या दीन के उस्ताद के लिए हर शख्स खड़ा हो सकता है, और अगर आलिम-ए-दीन (धार्मिक विद्वान) का तशरीफ़ लाना हो तो पूरी मस्जिद को खड़ा होना चाहिए, उनका सम्मान हुबहू अल्लाह और उसके रसूल (जल्ला व अला व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) का सम्मान है। बाकी केवल दुनियावी इज़्ज़त या अमीर लोगों के लिए बिना ज़रूरत और मजबूरी के खड़ा होना जायज़ नहीं है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसअला 1180: ग़र्रह (पहली) मुहर्रमुल हराम 1314 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसअले में क्या फ़रमाते हैं कि जिस जगह पर बहुत सी क़ब्रें हों, उस जगह को पाटकर उस पर मस्जिद बनाई जाए, तो उसमें नमाज़ पढ़ना कैसा है?

अल-जवाब (उत्तर): सवाल पूछने वाले का कहना है कि मुसलमानों के आम कब्रिस्तान में क़ब्रों की जगह पर मिट्टी डालकर चबूतरा बनाया गया और उस पर इमारत खड़ी करके उसे मस्जिद ठहराया गया। यह पूरी तरह से नाजायज़ और बातिल (अमान्य) है। वह मस्जिद, मस्जिद नहीं हो सकती, "क्योंकि वक्फ़ किसी की मिल्कियत (स्वामित्व) नहीं रहता, इसलिए उसे दोबारा किसी दूसरे उद्देश्य के लिए वक्फ़ नहीं किया जा सकता।" (चूंकि वक्फ़ किसी की मिल्कियत नहीं रहता, लिहाज़ा दोबारा किसी दूसरे पर वक्फ़ नहीं किया जा सकता - तर्जुमा)। न ही उसमें नमाज़ मुबाह (जायज़) है, "क्योंकि क़ब्र पर मिट्टी डालने से क़ब्र, क़ब्रियत से बाहर नहीं निकलती, लिहाज़ा यह क़ब्र पर नमाज़ पढ़ना होगा। फिर यह वक्फ़ में ऐसा तसर्रुफ़ (उपयोग) है जो उसके लिए नहीं है और उसे उस चीज़ से बदलना है जिसके लिए वह था, इसलिए यह जायज़ नहीं है।" (चूंकि क़ब्र पर ज़्यादा मिट्टी डालने से

क़ब्र, क़ब्रियत से ख़ारिज नहीं हो सकती, लिहाज़ा यह नमाज़ क़ब्र पर होगी। फिर यह वक्फ़ में ऐसा तसर्रुफ़ और तब्दीली है जो उसके लिए जायज़ नहीं - तर्जुमा)। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसअला 1181-1182: मेरठ इलाक़ा जोधपुर, जामा मस्जिद चोटह की गली के पास से, प्रेषित मौलवी अब्दुल रहमान साहब, वकील कचहरी, 8 ज़िल-हिज्जा, बुध का दिन, 1314 हिजरी। दीन के विद्वान, अल्लाह उनकी जमाअत में बरकत दे, नीचे दिए गए सवालों के जवाब में क्या फ़रमाते हैं: (1) हमारे यहाँ एक कौम है जिसका पेशा शराब बनाना है और वे मज़हबी तौर पर मुसलमान हैं। इस कौम में कुछ लोगों ने दो-चार पीढ़ियों से शराब बनाना छोड़ दिया है और दूसरे पेशे अपना लिए हैं, जैसे बिसाती (छोटा व्यापार)।

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

صفحہ 124 از 673

مسئلہ ۱۱۷۹: از جاورہ مرسلہ مولوی حافظ مصاحب علی صاحب یکم رجب ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مسجد میں اگر نماز کے واسطے صفیں باندھ کر منتظر جماعت یا خطبہ بیٹھے ہوں اور مشغول ذکر الٰہی ہوں اس صورت میں کسی حاکم یا مشائخ یا رئیس یا بادشاہ یا خود امام مسجد کے آجانے پر کسی شخص کو یا عام لوگوں کو تعظیم کے لئے کھڑا ہونا یا استقبال کو بڑھنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: جبکہ لوگ جماعت یا خطبہ کے انتظار میں نہ ہوں اور ابھی امام خطبہ کے لئے نہیں گیا تو باپ یا پیر یا استاذ علم دین کے لئے ہر شخص قیام کرسکتا ہے، اور اگر عالم دین کا تشریف لانا ہو تو تمام مسجد قیام کرے، ان کی تعظیم بعینہ اللہ و رسول کی تعظیم ہے جل وعلا وصلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم، باقی صرف دنیوی عزت یا توانگر رکھنے والے کے لئے بلا ضرورت و مجبور جائز نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۸۰: غرہ محرم الحرام ۱۳۱۴ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس مقام پر بہت قبریں ہوں اس مقام کو پاٹ کر اس پر مسجد بنائی جائے اس میں نماز پڑھنا کیسا ہے؟

الجواب: سائل مظہر ہے کہ قبرستان عامہ مسلمین کے خاص موضع قبور پر مٹی ڈال کر چبوترہ بنایا اور اس پر عمارت قائم کرکے اسے مسجد ٹھہرایا یہ قطعاً نا جائز و باطل ہے، نہ وہ مسجد مسجد ہو سکتی ہے فان الوقف لا یملك فلا یوقف مرة اخری علی جهة اخری (کیونکہ وقف کسی کی ملکیت نہیں رہتا لہٰذا دوبارہ کسی دوسرے پر وقف نہیں کیا جاسکتا) نہ اس میں نماز مباح لان

القبر لا یخرج عن القبریة باضافة تراب علیه فهی صلوة علی القبر ثم هو تصرف فی الوقف بما لیس له و تغییر له عما قد کان له فلا یجوز (کیونکہ قبر پر مٹی زیادہ ڈالنے سے قبر، قبریت سے خارج نہیں ہوسکتی لہٰذا یہ نماز قبر پر ہوگی پھر یہ وقف میں ایسا تصرف و تبدیلی ہے جو اس کے لئے جائز نہیں۔ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۸۱، ۱۱۸۲: از میرٹھ علاقہ جودھپور متصل مسجد جامع چوٹہہ کی گلی مرسلہ مولوی عبدالرحمٰن صاحب وکیل کچہ من ۸ ذی الحجہ یوم چہار شنبہ ۱۳۱۴ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کثر اللہ جماعتہم مستفسرہ ذیل کے جوابات میں: (۱) ہمارے ادھر ایک قوم ہے جس کا پیشہ شراب کشید کرنے کا ہے اور مذہبی مسلمان ہے اس قوم میں کچھ آدمیوں نے دو چار پشت سے شراب کی کشید موقوف کردی ہے اور دوسرے پیشے مثلاً پیشہ بساطی

Fatawa Razawiya, Volume 8

...and masonry etc. through which earning of lawful (halal) livelihood is possible, have been adopted. These people have built a mosque. Can our prayers be valid in it or not? (2) Some Muslims from the aforementioned tribe still distill alcohol, but they adhere to prayer and fasting. These people come to pray in this mosque and perform ablution (wudhu) in it. However, when they enter the mosque, they do not have their bodies contaminated with alcohol; rather, they enter with cleanliness of clothes and body. In this case, should they be allowed to enter the mosque or not, and should they be allowed to perform ablution or be forbidden, and should they be included in the congregation or not? (3) Should the invitation of those Muslims who have abandoned alcohol be accepted or not? And what is the Sharia ruling regarding the person who leads the prayer (imam) in the mosque built by them? (4) Should Qawwals (musicians) and elderly prostitutes be allowed to enter the mosque or not, and should their funeral prayer be offered or not? Give a ruling and be rewarded.

The Answer: That mosque which those people have built with lawful wealth after repentance (tawba) is undoubtedly a Sharia mosque. Not only can prayer be held in it, but it is obligatory for the people of the neighborhood to keep it populated. It is necessary to have the call to prayer (azan), iqamah, congregation (jama'at), and leadership of prayer (imamat) in it. If they do not do so, they will be sinners. And whoever prevents prayer in it will be among those severe oppressors about whom Allah Almighty says: "And who is more unjust than he who prevents (the name of) Allah from being mentioned in His mosques and strives for their destruction?" (Al-Quran 2:114) — Translation: Who is more unjust than the one who prevents God's mention in His mosques and strives to desolate them. And the invitation of these repentant people should also be accepted because now their wealth is also lawful and through repentance, the sin is also removed. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "The one who repents from sin is like the one who has no sin." — (Narrated by Ibn Majah with a good chain and Al-Bayhaqi in Sunan). One who repents from a sin is as if they never committed it.

Footnotes: 1. Al-Quran 2/114 2. Sunan Ibn Majah, Book of Asceticism (Abwab az-Zuhd), Chapter on Mentioning Repentance, published by H.M. Saeed Company Karachi, p. 333; Al-Sunan al-Kubra, Book of Testimonies, Chapter on the Testimony of the Accuser, published by Dar Sader Beirut, 10/152.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

...और राजगीरी आदि जिससे हलाल रिज़्क़ कमाया जा सके, अपना लिया है। इन लोगों ने एक मस्जिद बनाई है, क्या इसमें हम लोगों की नमाज़ हो सकती है या नहीं? (2) उपरोक्त जाति के कुछ मुसलमान अभी भी शराब निकालते हैं, मगर वे नमाज़ और रोज़े के पाबंद हैं। ये लोग इस मस्जिद में नमाज़ पढ़ने आते हैं और इसी में वुज़ू करते हैं, मगर जब मस्जिद में दाखिल होते हैं उस वक्त शराब से बदन को नापाक नहीं रखते, बल्कि कपड़ों और बदन की पाकी के साथ दाखिल होते हैं। इस सूरत में उन्हें मस्जिद में आने देना चाहिए या नहीं और वुज़ू करने देना चाहिए या मना किया जाए और जमाअत में शरीक किया जाए या नहीं? (3) वो मुसलमान जिन्होंने शराब छोड़ दी है, उनके यहाँ की दावत क़ुबूल की जाए या नहीं? और उनकी बनाई हुई मस्जिद में इमामत करने वाले के हक़ में शरीयत का क्या हुक्म है? (4) क़व्वाल और बूढ़ी तवायफ़ को मस्जिद में आने देना चाहिए या नहीं और उनके जनाज़े की नमाज़ पढ़ें या न पढ़ें? जवाब अता फरमाएँ और सवाब पाएँ।

जवाब: वह मस्जिद जो उन लोगों ने तौबा के बाद हलाल माल से बनाई है, बेशक वह शरी'ई मस्जिद है। और उसमें नमाज़ न सिर्फ हो सकती है, बल्कि इसके आस-पास के मोहल्ले वालों पर इसे आबाद रखना वाजिब है। इसमें अज़ान, इक़ामत, जमाअत और इमामत करना ज़रूरी है, अगर ऐसा नहीं करेंगे तो गुनहगार होंगे। और जो इसमें नमाज़ से रोकेगा, वह उन सख्त ज़ालिमों में दाखिल होगा जिनके बारे में अल्लाह अज़्ज़वजल फरमाता है: "और उस से बढ़ कर कौन ज़ालिम जो अल्लाह की मस्जिदों से रोके उनमें खुदा का ज़िक्र होने से और उनकी वीरानी में कोशिश करे।" (अल-क़ुरआन 2:114) और उन तौबा करने वालों की दावत भी क़ुबूल की जाए क्योंकि अब उनका माल भी हलाल है और तौबा से गुनाह भी मिट जाता है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं: "गुनाह से तौबा करने वाला ऐसा है जैसे उसने कोई गुनाह किया ही नहीं।" (इसे इब्ने माजा ने सनदे हसन के साथ और बैहक़ी ने अपनी सुनन में रिवायत किया है) - जिसने गुनाह से तौबा कर ली वह ऐसे है जैसे गुनाह किया ही नहीं।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. अल-क़ुरआन 2/114 2. सुनन इब्ने माजा, अबवाबुज़-ज़ुहद, बाबू ज़िक्रि-तौबा, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृष्ठ 333; अस-सुननुल कुबरा, किताबुश-शहादात, बाबू शहादतुल क़ाज़िफ़, मुद्रित दार सादिर बेरुत, 10/152.

पृष्ठ 125 का 673

اور معماری وغیرہ وغیرہ جن سے اکلِ حلال میسر ہو سکتا ہے اختیار کر لئے ہیں ان لوگوں نے ایک مسجد بنائی ہے اس میں ہم لوگوں کی نماز ہو سکتی ہے یا نہیں؟ (۲) مذکورہ بالا قوم کے بعض مسلمان ابھی تک شراب کشید کرتے ہیں مگر وہ نماز اور روزہ کے پابند ہیں، یہ لوگ اس مسجد میں نماز پڑھنے آتے ہیں اسی میں وضو بناتے ہیں مگر مسجد میں جب داخل ہوتے ہیں اس وقت شراب سے بدن کو ملوث نہیں رکھتے بلکہ کپڑوں سے اور بدن کی طہارت سے داخل ہوتے ہیں اس صورت میں ان کو مسجد میں آنے دینا چاہئے یا نہیں اور وضو کرنے دیں یا منع کیا جائے اور جماعت میں شریک کریں یا نہ کریں؟ (۳) وہ مسلمان جنھوں نے شراب ترک کر دی ہے ان کے یہاں کی دعوت قبول کی جائے یا نہیں اور ان کی بنا کردہ مسجد میں امامت کرنے والے کے حق میں شریعت سے کیا حکم ہے؟ (۴) قوال یعنی بڑھ منجھے اور طوائف بڑھیا کو مسجد میں آنے دینا چاہئے یا نہیں اور ان کے جنازہ کی نماز پڑھیں یا نہ پڑھیں؟ بینوا توجروا

الجواب: وہ مسجد کہ ان لوگوں نے بعد توبہ مال حلال سے بنائی ہے بیشک مسجد شرعی ہے اور اس میں نماز فقط ہو سکتی ہی نہیں بلکہ اس کے قرب و جوار والوں اہل محلہ پر اس کا آباد رکھنا واجب ہے، اس میں اذان و اقامت و جماعت و امامت کرنا ضرور ہے اگر ایسا نہ کریں گے گنہگار ہوں گے، اور جو اس میں نماز سے روکے گا وہ ان سخت ظالموں میں داخل ہوگا جن کی نسبت اللہ عزوجل فرماتا ہے: وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰہِ اَنْ یُّذْکَرَ فِیْھَا اسْمُہٗ وَ سَعٰی فِیْ خَرَابِھَا۱ اس سے بڑھ کر کون ظالم جو اللہ کی مسجدوں سے روکے ان میں خدا کا ذکر ہونے سے اور ان کی ویرانی میں کوشش کرے۔ اور ان تائبوں کی دعوت بھی قبول کی جائے کہ اب اس کا مال بھی حلال ہے اور توبہ سے گناہ بھی زائل، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہے: التائب من الذنب کمن لا

ذنب له ٢- رواه ابن ماجة بسند حسن والبيهقي جس نے گناہ سے توبہ کر لی وہ ایسے ہے جیسے گناہ کیا ہی نہیں۔ اسے ابن ماجہ نے بسندِ حسن، بیہقی نے سنن

١ القرآن ٢/١١٤ ٢ سنن ابن ماجہ ابواب الزہد باب ذکر التوبہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ٣٣٣، السنن الکبریٰ کتاب الشہادات باب شہادة القاذف مطبوعہ دار صادر بیروت ١٠/١٥٢

Volume Eight Fatawa Rizwiya

In as-Sunan and at-Tabarani in al-Kabir from 'Abdullah bin Mas'ud; al-Hakim at-Tirmidhi from Abu Sa'id al-Khudri; al-Bayhaqi in ash-Shu'ab and as-Sunan; and Ibn 'Asakir from Ibn 'Abbas; and in as-Sunan from 'Uqbah al-Khulani; and al-Ustad al-Qushayri in his treatise; and ad-Daylami and Ibn an-Najjar from Anas, may Allah the Almighty be pleased with them all. It is narrated by At-Tabarani in Al-Mu'jam Al-Kabir from Hazrat Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him), by Hakim Tirmidhi from Hazrat Abu Sa'id Khudri (may Allah be pleased with him), by Bayhaqi in Shu'ab al-Iman, and by Ibn 'Asakir from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them), and in Sunan from Uqbah Khulani, and by Master Qushayri in his treatise, and by Daylami and Ibn Najjar from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him).

And those among them who are still involved in this great transgression, although they deserve the curse of God, but when they come to the mosque with pure bodies and pure clothes, they cannot be stopped from ablution, the mosque, and the congregation, provided their arrival does not cause strife. Likewise for the singer (Qawwal) as well. And women, even if they are pious and old, are forbidden from the mosque, especially professional immortals, as such mutual customs have been heard of them that remaining faithful after them is extremely difficult. For singers and others, any Muslim who dies without spreading mischief in the land, except for a few exceptional jurisprudential cases mentioned, the funeral prayer will be offered for all. The Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, says:

The prayer is obligatory upon you for every Muslim who dies, whether he be righteous or profligate, even if he committed major sins (1). Narrated by Abu Dawud, Abu Ya'la, and al-Bayhaqi with a good, authentic chain from Abu Hurayrah. And its meaning is in Ibn Majah from Wathilah bin al-Asqa' and in at-Tabarani in al-Kabir and Abu Nu'aym in al-Hilyah from Ibn 'Umar, may Allah be pleased with them all. And Allah, Glory be to Him and Most High, knows best. The funeral prayer of every Muslim is obligatory upon you, whether he is good or bad, even if he has committed major sins. It has been narrated by Abu Dawud, Abu Ya'la, and Bayhaqi with an authentic chain from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him), and in meaning by Ibn Majah from Hazrat Wathila bin al-Asqa' (may Allah be pleased with him), and by Tabarani in Al-Mu'jam al-Kabir and by Abu Nu'aym in Hilya from Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with them all). And Allah, Glory be to Him and Most High, knows best.

Issue 1185: From Bareilly, queried by Sheikh-ul-Aziz Bastami, 2nd Dhu al-Qi'dah 1330 AH. What do the scholars of religion say in this matter that a person provided rugs etc. for the Friday prayer in a mosque...

(1) Sunan Abu Dawud, Book of Jihad, Chapter on fighting alongside oppressive leaders, printed by Aftab-e-Alam Press Lahore 1/347. Sunan al-Kubra, Book of Prayer, Chapter on praying behind one whose actions are not praised, printed by Dar Sader Beirut 3/811 and 185.

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

सुनन में और तबरानी ने अल-कबीर में अब्दुल्लाह बिन मसूद से; हकीम तिर्मिज़ी ने अबू सईद अल-ख़ुदरी से; बैहक़ी ने शुअब और सुनन में; और इब्न असाकिर ने इब्न अब्बास से; और सुनन में उक़्बा अल-खुलानी से; और उस्ताद कुशैरी ने अपने रिसाले में; और दैलमी और इब्न अल-नज्जार ने अनस रज़ियल्लाहु अन्हुम से। तबरानी ने अल-मुअजम अल-कबीर में हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसूद रज़ियल्लाहु अन्हु से, हकीम तिर्मिज़ी ने हज़रत अबू सईद ख़ुदरी रज़ियल्लाहु अन्हु से, बैहक़ी ने शुअबल ईमान में, और इब्न असाकिर ने हज़रत इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा से और सुनन में उक़्बा खुलानी से, और उस्ताद कुशैरी ने अपने रिसाले में, और दैलमी और इब्न नज्जार ने हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है।

और उनमें जो लोग अब तक इस फ़िस्क़-ए-अज़ीम (बड़े पाप) में मुब्तला हैं, हालांकि वे खुदा की लानत के हक़दार हैं, मगर जब वे पाक बदन और पाक कपड़ों के साथ मस्जिद में आते हैं, तो उन्हें वज़ू, मस्जिद और जमाअत से नहीं रोका जा सकता, बशर्ते उनके आने से फ़ितना (अशांति) न हो। इसी तरह क़व्वाल को भी। और औरतें, चाहे वे पारसा और बूढ़ी हों, मस्जिद से मना हैं, विशेष रूप से पेशेवर बदचलन औरतें, क्योंकि उनके आपसी वे रीति-रिवाज़ सुने गए हैं जिनके बाद ईमान पर कायम रहना बहुत कठिन है। क़व्वाल वगैरह जो मुसलमान मरें और ज़मीन में फ़साद न फैलाया हो, चंद ज़िक्र की गई फ़िक़्ही अपवादात्मक स्थितियों के अलावा, सब की जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाएगी। अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम फरमाते हैं:

नमाज़ तुम पर हर उस मुसलमान के लिए वाजिब है जो मर जाए, चाहे वह नेक हो या गुनहगार, भले ही उसने कबीरा (बड़े) गुनाह किए हों (1)। इसे अबू दाऊद, अबू यअला और बैहक़ी ने हज़रत अबू हुरैरा से हसन सहीह सनद के साथ रिवायत किया है। और इसका अर्थ इब्न माजाह में वाथिला बिन अल-असक़ा से और तबरानी ने अल-कबीर में और अबू नुएम ने अल-हिलिया में इब्न उमर रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन से रिवायत किया है। वल्लाहु सुब्हानहू व तआला आलम। हर मुसलमान की जनाज़े की नमाज़ तुम पर फ़र्ज़ है, वह नेक हो या बद, भले ही उसने कबीरा गुनाह किए हों। इसे अबू दाऊद, अबू यअला और बैहक़ी ने सनद-ए-सहीह के साथ हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु से और मायनवी तौर पर इसे इब्न माजाह ने हज़रत वाथिला बिन अल-असक़ा रज़ियल्लाहु अन्हु से और तबरानी ने अल-मुअजम अल-कबीर में और अबू नुएम ने हिलिया में हज़रत इब्न उमर रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन से रिवायत किया है। वल्लाहु सुब्हानहू व तआला आलम।

मसला 1185: बरेली से, मुस्तौ़ला (पूछा गया) शैखुल अज़ीज़ बस्तमी, 2 ज़ुल क़ादा 1330 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक शख़्स ने एक मस्जिद में जुमे की नमाज़ के वास्ते दरियां वगैरह...

(1) सुनन अबू दाऊद, किताबुल जिहाद, ज़ालिम इमामों के साथ जिहाद का अध्याय, प्रकाशित आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 1/347। सुनन अल-कुबरा, किताबुल सलात, अध्याय जिसके काम प्रशंसनीय न हों उसके पीछे नमाज़, प्रकाशित दार सादिर बेरूत 3/811 और 185।

पृष्ठ 126 / 673

فی السنن والطبرانی فی الکبیر عن عبد اللہ بن مسعود والحکیم الترمذی عن ابی سعید الخدری والبیہقی فی الشعب والسنن وابن عساکر عن ابن عباس وفی السنن عن عقبہ الخولانی والاستاذ القشیری فی رسالتہ والدیلمی وابن النجار عن انس رضی اللہ تعالٰی عنہم۔ میں اور طبرانی نے المعجم الکبیر میں حضرت عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے، حکیم ترمذی نے حضرت ابو سعید خدری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے، بیہقی نے شعب الایمان میں، اور ابن عساکر نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے اور سنن میں عقبہ خولانی سے، اور استاد قشیری نے اپنے رسالہ میں، اور دیلمی اور ابن نجار نے حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔

اور ان میں جو لوگ اب تک اس فسق عظیم میں مبتلا ہیں اگرچہ مستحق لعنت خدا ہیں مگر جبکہ پاک بدن پاک کپڑوں سے مسجد میں آتے ہیں تو انھیں وضو و مسجد و جماعت سے نہیں روک سکتے، اگر ان کے آنے سے فتنہ نہ ہو، یونہی قوال کو بھی، اور عورتیں اگرچہ پارسا اور بڑھیا ہوں مسجد سے ممنوع ہیں خصوصاً ناپیشہ فاحشات کہ ان کے باہمی وہ رسوم سنے گئے ہیں جن کا بعد ایمان قائم رہنا سخت دشوار ہے، قوال وغیرہ جو مسلمان مرے کہ زمین میں فساد نہ پھیلاتا ہو چند صور استثنائی مذکورہ فقہیہ کے سوا سب جنازہ کی نماز پڑھی جائے گی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

الصلوۃ واجبۃ علیکم علی کل مسلم یموت برا کان او فاجرا وان ہو عمل الکبائر 1۔ رواہ ابوداؤد وابو یعلی والبیہقی بسند حسن صحیح عن ابی ہریرۃ ومعناہ لابن ماجۃ عن واثلۃ بن الاسقع وللطبرانی فی الکبیری وابی نعیم فی الحیلۃ عن ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہم اجمعین۔ واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم۔ ہر

مسلمان کے جنازہ کی نماز تم پر فرض ہے وہ نیک ہو یا بد، اگرچہ اس نے کبیرہ گناہ کئے ہوں۔ اسے ابوداؤد، ابویعلی اور بیہقی نے سند صحیح کے ساتھ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اور معناً اسے ابن ماجہ نے حضرت واثلہ بن الاسقع رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اور طبرانی نے المعجم الکبیر میں اور ابونعیم نے حلیہ میں حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہم اجمعین سے روایت کیا ہے واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۱۸۵: از بریلی مسئولہ شیخ العزیز بسطامی دوم ذوالقعدہ ۱۳۳۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے ایک مسجد میں جمعہ کی نماز کے واسطے دریاں وغیرہ

1 سنن ابوداؤد کتاب الجہاد باب فی الغزو مع ائمۃ الجور مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱ / ۳۴۷، سنن الکبری کتاب الصلوۃ باب الصلوۃ خلف من لا یحمد فعلہ مطبوعہ دار صادر بیروت ۳ / ۸۱۱ و ۱۸۵

[He] had them made, but after a few days, Friday prayers ceased to be held there. Now he wants to give these mats to another mosque; is this permissible or not? Please clarify and be rewarded.

The Answer: Once the mats were handed over, they became the property of the mosque. As long as they do not become unusable, he cannot take them back, nor can he give them to another mosque. And Allah Almighty knows best.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

[उन्होंने] बनवाईं लेकिन कुछ दिनों बाद वहां जुमा होना बंद हो गया, अब वह चाहता है कि ये दरीं किसी दूसरी मस्जिद में दे दूं, तो क्या यह जायज़ है या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

उत्तर: जब दरीं सुपुर्द कर दी गईं, तो वे मस्जिद की मिलकियत हो गईं। जब तक वे इस्तेमाल के काबिल न रहें (बेकार न हो जाएं), वह उन्हें वापस नहीं ले सकता और न ही किसी दूसरी मस्जिद में दे सकता है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

पृष्ठ 127/673

بنوائیں مگر کچھ دنوں وہاں جمعہ ہو کر رہ گیا اب وہ چاہتا ہے کہ یہ دریاں کسی دوسری مسجد میں دے دوں، پس یہ جائز ہے یا نہیں ؟ بینوا توجروا

الجواب: جب دریاں سپرد کر دیں ملک مسجد ہو گئیں، جب تک نا قابلِ استعمال نہ ہو جائیں واپس نہیں لے سکتا نہ دوسری مسجد میں دے سکتا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

Volume 8 | Fatawa Razawiyya

Chapter on Joining the Obligatory Prayer (Description of attaining the obligatory prayer)

Problem 1186: From Ujjain, Gwalior region, sent by Muhammad Yaqub Ali Khan from the residence of Mir Khadim Ali Sahib, Assistant, 1st Rabi-ul-Akhir 1307 AH.

[Left Column - Persian]: What do the pious scholars and god-fearing Muftis say in this matter, that a man intended four rak'ats of Sunnah or Nafl prayer, completed one rak'at and rose for the second rak'at, at that time someone said the Takbir for the obligatory prayer; should the one performing Nafl and Sunnah complete all four rak'ats or suffice on two rak'ats and not read the remaining two rak'ats? Inform us and be rewarded.

[Right Column - Urdu]: What do the scholars of the firm religion say regarding this matter: A person intended to pray four rak'ats of Sunnah or Nafl and had started, and had just risen for the second rak'at when the Takbir for the congregational obligatory prayer was called. Should the person performing Nafl or Sunnah complete all four rak'ats, or suffice with two? Should he perform the remaining two rak'ats or not? Inform us and be rewarded.

Answer:

[Left Column - Persian]: The person praying Nafl, from the beginning of Thana to the end of Tashahhud, in whatever state he may be, as he is still in the first couplet (shaf') and has not yet stood for the second couplet, i.e., the third rak'at, and the obligatory congregation was established; necessarily he must suffice with these previous two rak'ats and join the congregation.

[Right Column - Urdu]: A person performing Nafl prayer, from the beginning (Thana) until the end of Tashahhud in the first two rak'ats, and has not yet stood up for the third rak'at when the congregation for the obligatory prayer started, it is mandatory for such a person to suffice with those two rak'ats.

Page 129 of 673

जिल्द 8 | फतावा रज़विया

बाब इदराक-उल-फ़रीज़ा (नमाज़-ए-फ़र्ज़ को पाने का बयान)

मसला 1186: उज्जेन, ग्वालियर क्षेत्र से, मोहम्मद याकूब अली खान द्वारा मीर खादिम अली साहब असिस्टेंट के आवास से प्रेषित, 1 रबी-उल-आखिर 1307 हिजरी।

[बायां कॉलम - फारसी]: इस मसले में दीनदार उलेमा और परहेजगार मुफ्ती क्या फरमाते हैं कि एक व्यक्ति ने चार रकात सुन्नत या नफ़्ल नमाज़ की नियत की, एक रकात मुकम्मल की और दूसरी रकात के लिए उठा, उस वक्त किसी ने फर्ज़ नमाज़ की तकबीर कही; क्या नफ़्ल और सुन्नत पढ़ने वाला चार रकात पूरी करे या दो रकात पर इक्तिफ़ा करे और बाकी दो रकात न पढ़े? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

[दायां कॉलम - उर्दू]: उलेमा-ए-दीन इस मसले के बारे में क्या फरमाते हैं कि एक व्यक्ति ने चार रकात सुन्नत या नफ़्ल की नियत करके नमाज़ शुरू की, अभी दूसरी रकात की ओर उठा ही था कि फर्ज़ नमाज़ की जमात के लिए तकबीर हो गई। नफ़्ल और सुन्नत अदा करने वाला चार रकात पूरी करे या दो पर इक्तिफ़ा कर ले? क्या वह शेष दो रकात अदा करे या नहीं? बयान फरमाएं और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर:

[बायां कॉलम - फारसी]: नफ़्ल पढ़ने वाला, सना की शुरुआत से तशहुद के अंत तक, जिस भी स्थिति में हो, क्योंकि वह अभी भी पहले जोड़े (शफ) में है और दूसरे जोड़े यानी तीसरी रकात के लिए खड़ा नहीं हुआ है कि फर्ज़ जमात कायम हो गई; लाज़मी तौर पर उसे इन्हीं पिछली दो रकातों पर इक्तिफ़ा करना चाहिए और जमात में शामिल होना चाहिए।

[दायां कॉलम - उर्दू]: नफ़्ल अदा करने वाला नमाज़ी सना से तशहुद के आखिर तक जो पहली दो रकात में है, और अभी तीसरी रकात के लिए उसने कयाम नहीं किया था कि जमात-ए-फर्ज़ खड़ी हो गई, तो ऐसे व्यक्ति पर लाज़िम है कि वह उन्हीं दो रकातों पर इक्तिफ़ा करे।

पृष्ठ 129 का 673

جلد ہشتم | فتاویٰ رضویہ

باب ادراک الفریضہ (نماز فرض کو پانے کا بیان)

مسئلہ ۱۱۸۶: ازاوجین علاقہ گوالیار مرسلہ محمد یعقوب علی خاں از مکان میر خادم علی صاحب اسٹنٹ یکم ربیع الآخر ۱۳۰۷ھ

[بایاں کالم - فارسی]: چہ می فرماین علمائے دیندار و مفتیان ورع شعار دریں مسئلہ کہ مردے نیت چہار رکعت نماز سنت خواہ نفل نمودہ یک رکعت نماز با تمام رسانیدہ بادائے رکعت دوم برخاست دراں وقت کسے تکبیر نماز فرض گفت ادا کنندہ نفل وسنت بر چہار رکعت تمام نماید یا بر دور کعت اکتفا ساز دور کعت باقیہ را نخواند یانہ؟ بینوا تو اجروا

[دایاں کالم - اردو]: علماء شرع متین اس مسئلہ کے بارے میں کیا فرماتے ہیں کہ ایک شخص نے چار رکعت نماز سنت یا نفل کی نیت کر کے شروع کی ابھی دوسری رکعت کی طرف اٹھا تھا کہ نماز فرض کی جماعت کے لئے تکبیر ہو گئی نفل و سنت ادا کرنے والا چار رکعت پوری کرے یا دو پر اکتفاء کر لے باقی دو رکعات ادا کرے یا نہ؟ بینوا تو اجروا

الجواب:

[بایاں کالم - فارسی]: مصلی نفل از آغاز ثنا تا انجام تشہد در ہر چہ کہ باشد چوں ہنوز در شفع اول ست و بہر شفع دوم یعنی رکعت ثالثہ قیام نکردہ کہ جماعت فرض قائم شد لا جرم بر ہمیں دو رکعات پیشیں اکتفا نماید و بجماعت در آید

[دایاں کالم - اردو]: نفل ادا کرنے والا نمازی ثنا سے تشہد کے آخر تک جو پہلی دو رکعت میں ہے ابھی تیسری رکعت کی طرف اس نے قیام نہیں کیا تھا کہ جماعت فرض کھڑی ہو گئی تو ایسے شخص پر لازم ہے کہ وہ انہیں دو رکعات پر اکتفاء کرے

صفحہ ۱۲۹ از ۶۷۳

Fatawa Razawiyyah Volume 8

[Left Column - Original Arabic/Persian text from the page] In Ad-Durr al-Mukhtar: One who begins a voluntary (nafl) prayer should not break it arbitrarily but complete at least two rak'ahs[1]. The remaining two rak'ahs (if four were intended) are not mandatory to make up (qada) because every pair (shaf') of nafl prayer is separate. Until one starts the second pair, it doesn't become obligatory, and hence no makeup is required. In Ad-Durr al-Mukhtar: No qada is required if one intended four rak'ahs, sat for the duration of tashahhud, then broke the prayer[2]. This same ruling applies to non-emphasized sunnahs like the four rak'ahs before 'Asr and 'Isha, which are nothing more than nafl. As for the emphasized (ratiba) four-rak'ah sunnahs before Zuhr and Jumu'ah, they are legally superior to absolute nafl. This is a major point of scholarly debate; many scholars treat them the same as nafl in this ruling. Therefore, if the Zuhr congregation starts or the Imam goes for the Jumu'ah sermon, anyone in the first pair of sunnahs should conclude with Salam after two rak'ahs. This is an uncommon (nawadir) narration from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) as in 'Al-Hidayah', and it's also narrated from Imam Azam (may Allah be pleased with him) as in 'Fath al-Qadir'. This view was adopted by Sheikh al-Islam Ali as-Saghdi as mentioned therein, and Qadi Nasafi said the same, as in 'Ash-Shami' quoting 'Al-Wajeez', and in 'Ghunyat al-Halabi' regarding disliked times quoting 'Qadhi Khan'.

[Right Column - Urdu Translation/Explanation provided on the page] ...and join the congregation. In 'Durr-e-Mukhtar' it is stated: one who begins voluntary prayers cannot break them arbitrarily, rather he should complete two rak'ahs. And there is no obligation to make up the remaining two rak'ahs because every pair of rak'ahs in nafl is a separate prayer; until the second pair is started, it will not become binding. In 'Durr-e-Mukhtar' it is stated: qada is not binding even if the worshiper had the intention of four and broke the prayer after sitting for the amount of tashahhud. And the ruling for non-emphasized sunnahs is the same, for example, the first sunnahs of 'Asr and 'Isha, their status is also that of nafl. But those four emphasized sunnahs, which are, for example, before Zuhr and Jumu'ah, their ruling is superior to nafl. In this place, there is a lot of disagreement among the scholars; most have given these emphasized sunnahs the status of nafl. Now, if the Zuhr congregation stands up or the Imam starts the sermon, then the person who is in the first two rak'ahs of the sunnahs should give Salam at two rak'ahs. This narration is among the 'Nawadir' (uncommon reports) from Imam Abu Yusuf, as is in 'Hidayah', and it is also narrated from Imam Azam, as is in 'Fath-ul-Qadir'. And Imam Sheikh-ul-Islam Ali Saghdi turned

towards this saying, as is in 'Fath-ul-Qadir', and Qazi Nasafi has also said the same, as in 'Shami' from 'Wajiz' and 'Ghunyah' of Halabi's 'Awqat-e-Makroohah'.

[Footnotes] 1. Durr-e-Mukhtar, Chapter: Attaining the Obligatory Prayer, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/99 2. Durr-e-Mukhtar, Chapter: Witr and Voluntary Prayers, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/79

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[बायां कॉलम - मूल अरबी/फारसी पाठ] अद-दुर्र अल-मुख्तार में: नफ़्ल नमाज़ शुरू करने वाले को उसे बेमतलब नहीं तोड़ना चाहिए, बल्कि दो रकात पूरी करनी चाहिए[1]। शेष दो रकात (यदि चार की नियत थी) की कज़ा ज़िम्मे नहीं है क्योंकि नफ़्ल नमाज़ का हर जोड़ा (शफ़) अलग होता है। जब तक दूसरे जोड़े को शुरू न किया जाए, वह अनिवार्य नहीं होता, और इसलिए कज़ा की आवश्यकता नहीं होती। अद-दुर्र अल-मुख्तार में: यदि किसी ने चार रकात की नियत की, तशहुद की मात्रा तक बैठा, फिर नमाज़ तोड़ दी, तो कज़ा अनिवार्य नहीं है[2]। यही नियम गैर-मुअक्कदा सुन्नतों जैसे अस्र और ईशा से पहले की चार रकातों पर लागू होता है, जो नफ़्ल से बढ़कर कुछ नहीं हैं। जहाँ तक ज़ुहर और जुमा से पहले की चार रकाती मुअक्कदा सुन्नतों का सवाल है, वे कानूनी तौर पर नफ़्ल से श्रेष्ठ हैं। यह विद्वानों के बीच बहस का एक बड़ा विषय है; कई विद्वान इस नियम में उन्हें नफ़्ल के समान मानते हैं। इसलिए, यदि ज़ुहर की जमात शुरू हो जाए या इमाम जुमा के खुतबे के लिए जाए, तो जो कोई सुन्नत के पहले जोड़े में है, उसे दो रकात के बाद सलाम फेर कर समाप्त कर देना चाहिए। यह इमाम अबू यूसुफ (रहमतुल्लाहि अलैहि) से एक दुर्लभ (नवादिर) रिवायत है जैसा कि 'अल-हिदाया' में है, और इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से भी वर्णित है जैसा कि 'फ़तह अल-क़दीर' में है। इस विचार को शेख-उल-इस्लाम अली अस-सग्दी ने अपनाया, और काज़ी नसफ़ी ने भी यही कहा है, जैसा कि 'अश-शामी' में 'अल-वजीज़' के हवाले से है, और 'गुन्यात अल-हलबी' में नापसंद समय के संबंध में 'काज़ी खान' के हवाले से है।

[दायां कॉलम - पृष्ठ पर दिया गया उर्दू अनुवाद/व्याख्या] ...और जमात में शरीक हो जाए। 'दुर्रे मुख्तार' में है: नवाफ़िल में शुरू होने वाला उन्हें मुतलक़न (बिना वजह) तोड़ नहीं सकता, बल्कि दो रकात पूरी करे। और जो दो रकात बाकी थीं उनकी कज़ा उसके ज़िम्मे नहीं क्योंकि नवाफ़िल की हर दो रकात अलग नमाज़ है; जब तक दूसरे शफ़ का आग़ाज़ नहीं किया जाता वह लाज़िम नहीं होगा। 'दुर्रे मुख्तार' में है: कज़ा लाज़िम नहीं अगरचे नमाज़ी ने चार की नियत की थी और उसने मिक़दार-ए-तशहुद बैठ कर नमाज़ तोड़ दी। और ग़ैर-मुअक्कदा सुन्नत का हुक्म भी यही है, मिसाल के तौर पर अस्र और ईशा की पहली सुन्नतें, उनका दर्जा भी नवाफ़िल का है। लेकिन वे चार सुन्नत-ए-मुअक्कदा जो मसलन ज़ुहर और जुमा से पहले हैं, तो उनका हुक्म नवाफ़िल से फ़ायक़ (श्रेष्ठ) होता है। इस जगह उलमा का बहुत ज़्यादा इख़्तिलाफ़ है; अक्सर ने इन सुन्नत-ए-मुअक्कदा को नवाफ़िल का दर्जा दिया है। अब अगर जमात-ए-ज़ुहर खड़ी हो गई या इमाम ने खुतबा शुरू कर दिया, तो जो शख़्स सुन्नत की

पहली दो रकात में है वह दो रकात पर सलाम कह दे। यह रिवायत 'नवादिर' इमाम अबू यूसुफ़ से है जैसा कि 'हिदाया' में है, और इमाम आज़म से भी मरवी है जैसा कि 'फ़तह-उल-क़दीर' में है। और इसी क़ौल की तरफ़ इमाम शेख़-उल-इस्लाम अली सग्दी ने रुजू किया जैसा कि 'फ़तह-उल-क़दीर' में है और काज़ी नसफ़ी ने भी यही कहा है जैसा कि 'शामी' में 'वजीज़' से और हलबी की 'गुन्या' के 'औक़ात-ए-मक़रूहा' से।

[फुटनोट्स] 1. दुर्रे मुख्तार, बाब: इदराक अल-फ़रीज़ा, मतबुआ मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/99 2. दुर्रे मुख्तार, बाब: अल-वित्र व अल-नवाफ़िल, मतबुआ मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/79

पृष्ठ 130 का 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

[بایاں کالم] فی الدرالمختار الشارع فی نفل لایقطع مطلقا ویتمہ رکعتین-۱ و دو رکعت کہ باقی ماند قضائے آنہا بر ذمہ اش نیست زیرا کہ ہر شفع نفل نماز جدا گانہ است تادر شفع دوم آغاز نکرد واجب نشد و چوں واجب نشد قضا نیامد۔ فی الدرالمختار لاقضاء لونوی اربعاً و قعد قدر التشہد ثم نقض۲۔ و ہمیں سب حکم سنن غیر راتبہ مانند چار رکعت قبلہ عصر و عشاء کہ آنہم نافلہ بیش نیست اما سنن راتبہ رباعیہ کہ قبلیہ ظہر و جمعہ است و ہچو سائر رواتیہ حکما دارد فائق بر احکام نفل مطلق ایں جاعلمار ا معرکہ عظیم ست بہت سی آنہارا نیز در حکم مذکور ہمرنگ نوافل داشتہ اند پس اگر جماعت ظہر قائم شد یا امام بطلبہ جمعہ رفت ہر کہ در شفع اول سنت است ہمیں بر دو رکعت سلام دہد ایں است روایت نوادر از امام ابو یوسف رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کما فی الھدایۃ واز امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ نیز کما فی فتح القدیر وبہ میں ۳ قول رجوع فرمود امام شیخ الاسلام علی سغدی کما فیہ ایضا و قاضی ۴ نسفی نیز کما فی الشامی عن الوجیز و فی غنیۃ الحلبی من الاوقاف المکروھۃ عن قاضی خاں

[دایاں کالم] اور جماعت میں شریک ہو جائے در مختار میں ہے نوافل میں شروع ہونے والا انھیں مطلقاً قطع نہیں کر سکتا بلکہ دو رکعت پوری کرے۔ اور جو دو رکعت باقی تھیں ان کی قضا اس کے ذمہ نہیں کیونکہ نوافل کی ہر دو رکعت الگ نماز ہے جب تک دوسرے شفع کا آغاز نہیں کیا جاتا وہ لازم نہیں ہوگا۔ درمختار میں ہے قضا لازم نہیں اگرچہ نمازی نے چار کی نیت کی تھی اور اس نے مقدار تشہد بیٹھ کر نماز توڑ دی ۔ اور غیر مؤکدہ سنن کا حکم بھی یہی ہے مثلاً عصر اور عشاء کی پہلی سنتیں ، ان کا درجہ بھی نوافل کا ہے لیکن وہ چار سنن مؤکدہ جو مثلاً ظہر اور جمعہ سے پہلے ہیں تو ان کا حکم نوافل سے فائق ہوتا ہے اس جگہ علماء کا بہت زیادہ اختلاف ہے

اکثر نے ان سنن مؤکدہ کو نوافل کا درجہ دیا ہے اب اگر جماعت ظہر کھڑی ہو گئی یا امام نے خطبہ شروع کر دیا تو جو شخص سنن کی پہلی دو رکعت میں ہے وہ دو رکعت پر سلام کہ دے ۔ یہ روایت نوادر امام ابو یوسف سے ہے جیسا کہ ہدایہ میں ہے، اور امام اعظم سے بھی مروی ہے جیسا کہ فتح القدیر میں ہے ، اور اس قول کی طرف امام شیخ الاسلام علی سغدی نے رجوع کیا جیسا کہ فتح القدیر میں ہے اور قاضی نسفی نے بھی یہی کہا ہے جیسا کہ شامی میں وجیز سے اور حلبی کی غنیہ کے اوقات مکروہہ

[حواشی] ۱ در مختار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۹۹ ۲ در مختار باب الوتر و النوافل مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۷۹

(Left Column) And Imam Baqali also has this same inclination as said by Al-Kamal, and Shams al-A'imma al-Sarakhsi also mentioned it similarly, and followed him in Al-Ghunyah and Maraqi al-Falah, and it was affirmed in Radd al-Muhtar. This weak servant has a reservation regarding this, and Allah Almighty knows best. The apparent text of Al-Hidayah shows it as the choice as in Al-Shami, and it is also apparent from Al-Kafi, the commentary on Al-Wafi by Imam Al-Nasafi, as I have seen in it. On this basis, 'Allama al-Tarabulsi in Al-Burhan and Mawahib al-Rahman, Mulla Khusrow in Al-Durar, 'Allama al-Kurki in Al-Faydh, and 'Allama 'Ali al-Maqdisi have also apparently leaned towards this as in Radd al-Muhtar. 'Allama Ibrahim al-Halabi in the text of Multaqa relied on this and mentioned the other view with the word "Qil" (it is said). In Al-Khaniyah, in the chapter of Prayer, section on Knowledge of Times, it is stated that the Mashaikh (teachers) acted upon this. In Al-Fath, it is stated that this is more appropriate. The student of the researcher, 'Allama Muhammad al-Halabi, in Al-Hilyah, after citing it, says: "It is as he said." In Nur al-Idah by 'Allama Shurunbulali and also in Idrak al-Faridah and Durar al-Hukkam, it is mentioned as the most appropriate view. The Seal of the Researchers, 'Allama Shami, also confirmed and strengthened this view. According to this view, these two rak'ats performed become purely voluntary, and there is no makeup (qada) for the remaining two according to the apparent narrations. This is the more correct of the two corrections as researched in Radd al-Muhtar. Then after the obligatory prayer, rather according to the superior of the two preferences in my view as I researched in the margins of the Commentary of Shami, one should perform these Sunnan Qabliyyah after the Sunnah Ba'diyyah so that the Sunnah is fulfilled and the virtue of congregation and listening to the sermon is not lost.

(Right Column) ...is from Qadi Khan, and Imam Baqali also leaned towards this as Sheikh Kamal stated, and Shams al-A'imma al-Sarakhsi also said the same as mentioned, and its following was kept established in Al-Ghunyah, Maraqi al-Falah, and Radd al-Muhtar. But this weak servant has hesitation in this, and Allah Almighty knows best. In the apparent text of Al-Hidayah, this has been chosen as in Al-Shami, and from Al-Kafi, the commentary on Al-Wafi by Imam Nasafi, the same is apparent as I have seen it. On this, 'Allama Tarabulsi in Al-Burhan and Mawahib al-Rahman firmly stood, Mulla Khusrow in Al-Durar, 'Allama Kurki in Al-Faydh, and 'Allama 'Ali al-Maqdisi also apparently leaned towards this as in Radd al-Muhtar, and described the second statement with the word "Qil". Al-Khaniyah stated in the chapter of Prayer,

section on Knowledge of Times, that the Mashaikh acted upon this. In Al-Fath, it is stated that this is the chosen (mukhtar) view. The student of the researcher 'Allama Muhammad Halabi quoted it in Al-Hilyah and said it is just as they stated. In Nur al-Idah, 'Allama Shurunbulali and in the footnotes of his Idrak al-Faridah from Durar al-Hukkam, it is mentioned that this is the chosen view. The Seal of the Researchers 'Allama Shami also supported this statement. Based on this statement, the cycles (rak'ats) performed are purely voluntary and there is no makeup for the remaining two as is clear from the apparent narrations. And in the correction of both statements, this is preferred as its detail is in Radd al-Muhtar. Then after the obligatory prayer...

(बायां स्तंभ) और इमाम बक़ाली का भी यही रुझान है जैसा कि अल-कमाल ने कहा, और शम्स अल-अइम्मा अल-सरख़सी ने भी वैसा ही ज़िक्र किया और अल-ग़ुनिया और मराक़ी अल-फ़लाह में उनका अनुसरण किया गया, और रद अल-मुह्तार में इसकी पुष्टि की गई। इस कमज़ोर बंदे को इसमें कुछ हिचकिचाहट है और अल्लाह बेहतर जानता है। अल-हिदाया का ज़ाहिरी पाठ इसे अश-शामी की तरह विकल्प के रूप में दिखाता है, और इमाम अल-नस्फ़ी की अल-वाफ़ी की व्याख्या अल-काफ़ी से भी यही ज़ाहिर होता है जैसा कि मैंने इसे देखा है। इसी आधार पर, 'अल्लामा अल-तराबुलसी ने अल-बुरहान और मवाहिब अल-रहमान में, मुल्ला खुसरो ने अल-दुरर में, 'अल्लामा अल-कुर्की ने अल-फ़ैज़ में, और 'अल्लामा अली अल-मक़दसी ने भी स्पष्ट रूप से इसी ओर रुझान दिखाया है जैसा कि रद अल-मुह्तार में है। 'अल्लामा इब्राहिम अल-हलबी ने मुल्तक़ा के पाठ में इसी पर भरोसा किया और दूसरे मत को "क़ील" (कहा जाता है) शब्द के साथ पेश किया। अल-ख़ानिया में, नमाज़ के अध्याय में, समय की पहचान के अनुभाग में, कहा गया है कि मशाइख़ ने इसी पर अमल किया। अल-फ़तह में है कि यह अधिक उपयुक्त है। शोधकर्ता के शिष्य, 'अल्लामा मुहम्मद अल-हलबी, अल-हिलिया में, इसे उद्धृत करने के बाद कहते हैं: "यह वैसा ही है जैसा उन्होंने कहा।" 'अल्लामा शुरुन्बुलाली द्वारा नूर अल-इदाह में और इदराक अल-फरीदा और दुरर अल-हुक्काम में भी इसे सबसे उपयुक्त विचार बताया गया है। शोधकर्ताओं के अंतिम मुहर, 'अल्लामा शामी ने भी इस मत की पुष्टि और सुदृढ़ीकरण किया। इस मत के अनुसार, जो दो रकअतें अदा की गई हैं वे विशुद्ध रूप से नफ़्ल (ऐच्छिक) हो जाती हैं, और ज़ाहिरी विवरणों के अनुसार शेष दो की कोई क़ज़ा (क्षतिपूर्ति) नहीं है। यह दो सुधारों में से अधिक सही है जैसा कि रद अल-मुह्तार में शोध किया गया है। फिर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद, बल्कि मेरे विचार में सुधारों की श्रेष्ठता के अनुसार जैसा कि मैंने शामी की व्याख्या के हाशिये पर शोध किया है, इन सुन्नन क़ब्लिया को सुन्नत बादिया के बाद अदा करना चाहिए ताकि सुन्नत पूरी हो जाए और जमात का पुण्य और खुतबा सुनना हाथ से न जाए।

(दायां स्तंभ) ...क़ाज़ी ख़ाँ से है, और इमाम बक़ाली ने भी इसी तरफ़ रुझान किया है जैसा कि शेख़ कमाल ने फ़रमाया, और शम्स अल-अइम्मा अल-सरख़सी ने भी यही फ़रमाया जैसा कि ज़िक्र है, और इसकी पैरवी को अल-ग़ुनिया, मराक़ी अल-फ़लाह और रद अल-मुह्तार में स्थापित रखा गया। लेकिन इस कमज़ोर बंदे को इसमें दुविधा है, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। अल-हिदाया के ज़ाहिरी पाठ में, इसी को अश-शामी की तरह चुना गया है, और इमाम नस्फ़ी की अल-वाफ़ी की व्याख्या

अल-काफ़ी से भी यही ज़ाहिर है जैसा कि मैंने इसे देखा है। इस पर, 'अल्लामा तराबुलसी ने अल-बुरहान और मवाहिब अल-रहमान में दृढ़ता से बात कही, मुल्ला खुसरो ने अल-दुरर में, 'अल्लामा कुर्की ने अल-फ़ैज़ में, और 'अल्लामा अली अल-मक़दसी ने भी ज़ाहिर तौर पर इसी ओर रुझान किया जैसा कि रद अल-मुह्तार में है, और दूसरे कथन को "क़ील" शब्द के साथ वर्णित किया। अल-ख़ानिया ने नमाज़ के अध्याय में, समय की पहचान के अनुभाग में फ़रमाया कि मशाइख़ ने इसी पर अमल किया। अल-फ़तह में कहा गया है कि यही मुख़्तार (चुना हुआ) मत है। शोधकर्ता 'अल्लामा मुहम्मद हलबी के शिष्य ने अल-हिलिया में इसे उद्धृत किया और कहा कि यह वैसा ही है जैसा उन्होंने फ़रमाया। नूर अल-ईज़ाह में, 'अल्लामा शुरुन्बुलाली और दुरर अल-हुक्काम से उनके इदराक अल-फ़रीज़ा के हाशिये में, यह उल्लेख किया गया है कि यही मुख़्तार मत है। शोधकर्ताओं के अंतिम मुहर 'अल्लामा शामी ने भी इस कथन का समर्थन किया। इस कथन के आधार पर, जो रकअतें अदा की गई हैं वे विशुद्ध रूप से नफ़्ल हैं और शेष दो के लिए कोई क़ज़ा नहीं है जैसा कि ज़ाहिरी विवरणों से स्पष्ट है। और दोनों बयानों के सुधार में, यही पसंदीदा है जैसा कि रद अल-मुह्तार में इसका विवरण है। फिर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद...

पृष्ठ १३१/६७३

(Left Column) وامام ۵ بقالی رانیز ہمیں سو میل ست کما قالہ الکمال و شمس ۶ الائمہ سرخسی را ہم کما ذکر ایضاً و تبعہ فی الغنیۃ و فی مراقی الفلاح واقرہ فی ردالمحتار وللعبد الضعیف فیہ وقفہ واللہ تعالیٰ اعلم ۔ وظاہر ۷ ہدایہ اختیار اوست کما فی الشامی وظاہر مکافی شرح وافی للامام النسفی نیز کما رایت فیہ وبر ہمیں ۹ جزم کردہ است علامہ ۱۰ طرابلسی در برہان و مواہب الرحمن و مولیٰ خسرو در درر وعلامہ کرکی در فیض وظاہر اعلامہ ۱۲ علی مقدسی رانیز ہمیں سو میلان ست کما فی ردالمحتار وعلامہ ۱۳ ابراہیم حلبی در متن ملتقٰی بمبریں اعتماد کرد و قول دیگر را بلفظ قیل آورد و در خانیہ ۱۴ اول الصلوٰۃ فصل معرفۃ الاوقات فرمود بہ اخذ المشائخ و در فتح انہ اوجہ تلمیذ ۱۶ محقق علامہ محمد حلبی در حلیہ پس از نقلش فرماید ھو کما قال در نور الایضاح ۱۷ علامہ شرنبلالی و نیز در ادراک الفریضہ اور درر الحکام است ھو الاوجہ خاتمہ ۱۸ المحققین علامہ شامی نیز ہمیں را تایید و تشیید کرد بریں قول ایں دو رکعت کہ گزارہ است نفل محض گرد دو و دو باقی راقضا نیست علی ما ہو ظاہر الروایۃ و ارجع التصحیحین کما حققہ فی ردالمحتار باز بعد از فرض بلکہ علی اولی التر جیحین عندی کما حققتہ علی ھامش حاشیۃ الشامی پس از سنت بعدیہ ایں سنن قبلیہ را ادا کند تاہم سنت ادا شود و ہم فضل جماعت و استماع خطبہ از دست نرود

(Right Column) میں قاضی خاں سے ہے، اور امام بقالی نے بھی اسی طرف میلان کیا ہے جیسا کہ شیخ کمال نے فرمایا، اور شمس الائمہ سرخسی نے بھی یہی فرمایا جیسا کہ یہ بھی مذکور ہے اور اسی کی اتباع غنیہ اور مراقی الفلاح اور ردالمحتار میں اس کو ثابت رکھا ہے۔ لیکن اس عبد ضعیف کو اس میں توقف ہے واللہ تعالیٰ اعلم۔ ظاہر ہدایہ میں اسی کو اختیار کیا ہے جیسا کہ شامی میں ہے اور کافی شرح وافی للامام نسفی سے بھی یہی ظاہر ہے جیسا کہ میں نے اسے دیکھا

ہے، اور اسی پر علامہ طرابلسی نے برہان اور مواہب الرحمن میں جزم کیا، ملا خسرو نے درر، علامہ کرکی نے فیض اور علامہ علی مقدسی نے بھی ظاہرًا اسی کی طرف میلان کیا ہے جیسا کہ ردالمحتار میں ہے اور دوسرے قول کو لفظ "قیل" کے ساتھ بیان کیا، خانیہ نے باب الصلوٰۃ کی فصل فی معرفۃ الاوقات میں فرمایا کہ مشائخ نے اسی پر عمل کیا ہے۔ فتح میں ہے کہ یہی مختار ہے، تلمیذ محقق علامہ محمد حلبی نے حلیہ میں اسے نقل کر کے کہا وہ اسی طرح ہے جو انہوں نے فرما دیا ہے، نور الایضاح میں علامہ شرنبلالی اور اس کے ادراک الفریضہ کے حاشیہ میں دررالحکام سے ہے کہ یہی مختار ہے، خاتمہ المحققین علامہ شامی نے بھی اسی قول کی تائید کی ہے، اس قول پر یہ جو رکعات ادا کی گئی ہیں محض نفل ہیں اور باقی دونوں کی قضا نہیں جیسا کہ ظاہر الروایت سے واضح ہے اور دونوں اقوال کی تصحیح میں یہی راجح ہے جیسا کہ ردالمحتار میں اس کی تفصیل ہے، پھر فرض کے بعد

Fatawa Razawiya, Volume 8

Right Column: Rather, in my view, the first of the two preferences is correct, as I have researched in the marginalia of "Shami". Among them, one should perform the initial Sunnahs after the subsequent Sunnahs so that the Sunnah is fulfilled and the reward of the congregational excellence and listening to the sermon is not lost. In "Nur al-Idah" and its commentary "Maraqi al-Falah", it states: If a person is performing the Sunnahs of Jumu'ah and the Imam (preacher) arrives, or is performing the Sunnahs of Zuhr and the call for the congregational prayer (takbir) is given, then he should end with Salam at two rak'ats because combining both benefits is the chosen view. Then, after the obligatory prayers, he should make up those first four Sunnahs. Thus, listening to the sermon (which was obligatory) was not omitted, and the performance was also done in a complete manner. (Summary)

The second opinion is that one should complete all four rak'ats of these two Sunnahs (before Zuhr and Jumu'ah) even if the Friday sermon or Zuhr congregation starts, because all these are like one single prayer. This is the reason why Durood is not recited in the first sitting (qa'da) and Sana and Ta'awwudh are not recited in the third rak'at. When someone hears news of a sale in the first two rak'ats and starts the second two rak'ats, their right of pre-emption (shuf'a) does not lapse. Similarly, the choice of a woman having authority (to divorce herself) does not lapse. Likewise, until he finishes the four rak'ats, 'Khalwat-e-Sahiha' (valid seclusion) with the woman will not be found.

Left Column: In "Nur al-Idah" and its commentary "Maraqi al-Falah" by Imam al-Shurunbulali: "If one is performing the Sunnah of Jumu'ah and the Imam comes out for the sermon, or if one is performing the Sunnah of Zuhr and the congregational prayer is established, one should offer Salam after two rak'ats. This is more appropriate as it combines two benefits. Then, one should make up the four Sunnah rak'ats after the obligatory prayer along with the subsequent Sunnahs. Thus, listening to the sermon is not missed, and the performance is completed in the best way." (Summary)

Another opinion is that the person should complete all four rak'ats of these two Sunnahs, even if they have just started (bound the Tahrimah) and the Zuhr congregation or the Friday sermon begins. This is because all these rak'ats are like a single prayer. Therefore, one should not recite Durood in the first sitting, nor recite Sana and Ta'awwudh at the beginning of the third rak'at. Just as if someone hears

news of a sale in the first pair (shaf') and moves to the second pair, the right of pre-emption (Shuf'a) is not lost. Similarly, the right of a woman given a choice is not lost. Likewise, until one finishes all four rak'ats, 'Khalwat-e-Sahiha' with a wife will not be established, and the full dowry will not become obligatory. All this is mentioned in "Tabayin al-Haqa'iq", the commentary on "Kanz al-Daqai'q" by Imam al-Zayla'i. Many masters and scholars have explicitly favored and validated this opinion, including Imam Walwaliji and the author of "Al-Multaqa".

Footnote: 1. Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter: Attaining the Obligatory Prayer, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 245.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

दायाँ कॉलम: बल्कि मेरे नज़दीक दोनों प्राथमिकताओं में से पहली वाली ही सही है, जैसा कि मैंने "शामी" के हाशिये में शोध किया है। उनमें से पहली सुन्नतों को बाद वाली सुन्नतों के बाद अदा कर ले ताकि सुन्नत भी अदा हो जाए और जमाअत की फ़ज़ीलत और ख़ुत्बा सुनने का सवाब भी हाथ से न जाए। "नूर अल-ईदाह" और उसकी व्याख्या "मराक़ी अल-फ़लाह" में है कि अगर नमाज़ी जुमे की सुन्नतें अदा कर रहा है और ख़तीब आ गया, या ज़ुहर की सुन्नतें अदा कर रहा है और जमाअत की تکبیر (जमाअत खड़ी होने की आवाज़) कह दी गई, तो वह दो रकअत पर सलाम फेर दे क्योंकि दोनों फ़ायदों को जमा करना ही पसंद किया गया है। फिर फ़राएज़ (अनिवार्य नमाज़) के बाद उन पहली चार सुन्नतों की क़ज़ा कर ले, तो अब ख़ुत्बा सुनना (जो फ़र्ज़ था) भी नहीं छूटा और अदायगी भी मुकम्मल तरीक़े से हो गई। (संक्षेप में)

दूसरा क़ौल (विचार) यह है कि इन दोनों सुन्नतों (ज़ुहर और जुमे से पहले की) की चार-चार रकअत पूरी कर ले, चाहे जुमे का ख़ुत्बा या ज़ुहर की जमाअत खड़ी हो जाए, क्योंकि ये पूरी नमाज़ एक ही इकाई की तरह है। यही वजह है कि पहले क़ादा (बैठक) में दरूद और तीसरी रकअत में सना और तअव्वुज़ नहीं पढ़ा जाता। जब किसी ने पहली दो रकअतों में ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त की ख़बर सुनी और वह दूसरी दो रकअतों में शुरू हो गया, तो उससे शुफ़ा का हक़ साक़ित (रद्द) नहीं हो जाता। इसी तरह अधिकार प्राप्त महिला का अधिकार भी साक़ित नहीं होता। इसी तरह जब तक वह चार रकअतों से फ़ारिग़ नहीं हो जाता, महिला के साथ ख़लवत-ए-सहीहा (वैध एकांत) नहीं पाई जाएगी।

बायाँ कॉलम: "नूर अल-ईदाह" और उसकी व्याख्या "मराक़ी अल-फ़लाह" में इमाम अल-शुरुनबुलाली लिखते हैं: "यदि कोई जुमे की सुन्नत पढ़ रहा हो और ख़तीब (उपदेशक) ख़ुत्बे के लिए आ जाए, या ज़ुहर की सुन्नत पढ़ रहा हो और जमाअत शुरू हो जाए, तो उसे दो रकअतों पर सलाम फेर देना चाहिए। यह अधिक उचित है क्योंकि इसमें दो भलाइयों का मेल है। फिर फ़र्ज़ के बाद उन चार सुन्नतों को बाद वाली सुन्नतों के साथ पूरा करे। इस तरह ख़ुत्बा सुनना भी नहीं छूटेगा और अदायगी भी बेहतरीन तरीक़े से हो जाएगी।" (संक्षेप में)

दूसरा मत यह है कि नमाज़ी इन दोनों सुन्नतों की चारों रकअतें पूरी करे, चाहे उसने अभी तहरीमा ही बांधी हो और ज़ुहर की जमाअत या जुमे का ख़ुत्बा शुरू हो गया हो। ऐसा इसलिए क्योंकि ये सभी रकअतें एक ही नमाज़ की तरह हैं। इसलिए पहली बैठक (क़ादा) में दरूद न पढ़े और न ही तीसरी

रकअत की शुरुआत में सना और तअव्वुज़ पढ़े। जिस तरह यदि किसी ने पहली दो रकअतों (शफ़ा) में ख़रीद-फ़रोख़्त की ख़बर सुनी और वह दूसरी दो रकअतों में चला गया, तो शुफ़ा का अधिकार ख़त्म नहीं होता। इसी तरह जिस औरत को इख़्तियार दिया गया हो, उसका इख़्तियार ख़त्म नहीं होता। इसी तरह जब तक वह चार रकअतों से फ़ारिग़ न हो जाए, औरत के साथ ख़लवत-ए-सहीहा नहीं माना जाएगा और पूरा महर वाजिब नहीं होगा। यह सब इमाम अल-ज़ैलाई की "तबयीन अल-हक़ाएक़", जो "कन्ज़ अद-दक़ाएक़" की व्याख्या है, में वर्णित है। कई उलेमाओं और आचार्यों ने इस राय को प्राथमिकता दी है और सही ठहराया है, जिनमें इमाम वलवालिजी और "अल-मुल्तक़ा" के लेखक शामिल हैं।

पाद टिप्पणी: 1. मराक़ी अल-फ़लाह मअ हाशियह अत-तहतावी, बाब: इदराक अल-फ़रीज़ा, नूर मोहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. 245।

पृष्ठ 132/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

دایاں کالم: بلکہ میرے نزدیک دونوں ترجیحات میں سے پہلی ہے جیسا کہ میں نے شامی کے حاشیہ میں تحقیق کی ہے ان میں پہلی سنتوں کو بعد کی سنتوں کے بعد ادا کرلے تاکہ سنت ادا ہو جائے اور فضیلت جماعت اور خطبہ کی سماعت کا ثواب بھی ہاتھ سے نہیں جائیگا۔ نورالایضاح اور اس کی شرح مراقی الفلاح میں ہے اگر نمازی جمعہ کی سنتیں ادا کررہا ہے اور خطیب آگیا یا ظہر کی سنتیں ادا کررہا ہے تو تکبیر جماعت کہی گئی تو دورکعت پر سلام پھیر دے کیونکہ دونوں مصلحتوں کو جمع کرلینا ہی مختار ہے پھر فرائض کے بعد ان پہلی چار سنتوں قضا کرلے تو اب خطبہ کا سننا (جو فرض تھا) فروت نہ ہوا اور ادائیگی بھی وجہ کامل پر ہوگئی اھ تلخیصی۔

دوسرا قول یہ ہے کہ ان دونوں سنتوں (قبل از ظہر وجمعہ) کی چار چار رکعت پوری کر لے اگرچہ خطبہ جمعہ یا ظہر کی جماعت کھڑی ہو جائے کیونکہ یہ تمام نماز واحد کی طرح ہیں یہی وجہ ہے کہ پہلے قعدہ میں درود اور تیسری رکعت میں ثنا اور تعوذ نہیں پڑھا جاتا، جب کسی نے پہلی دو رکعات میں خرید وفروخت کی خبر سنی اور وہ دوسری دورکعات میں شروع ہوگیا تو اس سے حق شفعہ ساقط نہیں ہو جاتا۔ اسی طرح صاحب اختیار عورت کا اختیار بھی ساقط نہیں ہوتا_____ اسی طرح جب تک وہ چار رکعات سے فارغ نہیں ہو جاتا عورت کے ساتھ خلوت صحیحہ نہیں پائی جائیگی۔

بایاں کالم: في نور الایضاح و شرحه مراقی الفلاح العلامة الشرنبلالی ان کان في سنة الجمعة فخرج الخطیب او في السنة الظهر فاقیمت الجماعة سلم علی رأس رکعتین، وهو الأوجه لجمعه بین

المصلحتين، ثم قضى السنة اربعا بعد الفرض مع مابعده فلا يفوت الاستماع ولاداء على وجه اكمل ١ھ ملخصا۔

قول دیگر آنکہ مصلی این دو سنت ہر چہار رکعت اتمام کند اگر چہ ہنوز تحریمہ بستہ است کہ جماعت ظہر یا خطبہ جمعہ آغاز نہادند زیرا کہ ایں ہمہ رکعات ہمچو نماز واحد است لہذا در قعدہ اولی درود نخواند نہ در شروع ثالثہ ثنا و تعوذ آرد و چون در شفع اولیں خبر بیع شنود و بشفع دوم انتقال نمود شفعہ ساقط نشود و ہمچناں زن مخیرہ را اختیار از دست نرود و کذلک تا از ہر چہار فراغ نیابد خلوت بازن صحیح نشود و کمال مہر لازم نیاید کل ذلک فی تبیین الحقائق شرح کنز الدقائق للامام العلامة الزيلعي، ائمہ مشائخ بترجح و تصحیح ایں قول تصریح نمودہ اند، امام ولوالج و صاحب متقی۔

حاشیہ: 1 مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب ادراک الفریضہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۴۵۔

Fatawa Razawiyya, Volume 8

...and the author of 'Al-Muheet' and 'Allama Al-Shumni' said: "The correct view is that he completes them as four [rak'ahs]", as mentioned in 'Al-Bahr' regarding catching the obligatory prayer. 'Allama Zayn himself in 'Al-Bahr', after citing this, said: "What is apparent is what the Mashaikh (scholars) have authenticated because there is no doubt that saying Salam at the end of two rak'ahs is an annulment of the sunnah attribute, not its completion, and it has already been mentioned that it is not permissible" etc. Full compensation will not be necessary. This entire discussion is in Imam 'Allama Al-Zayla'i's 'Tabyin al-Haqa'iq', a commentary on 'Kanz al-Daqa'iq'. General scholars have preferred this statement and have explicitly stated its correctness. Imam Al-Walwaliji, the author of 'Al-Mubtagha', the author of 'Al-Muheet', and 'Allama Al-Shumni state that the correct view is that the worshipper should complete four rak'ahs, as stated in the section on catching the obligatory prayer in 'Al-Bahr'. 'Allama Zayn himself in 'Al-Bahr', after quoting this passage, writes that the apparent view is what the Mashaikh have corrected, because there is no doubt that greeting with Salam after two rak'ahs is for the invalidation of the sunnah description, not for their completion, and it has been passed before that this is not permissible etc. His brother 'Allama Umar bin Nujaym established the same in 'Al-Nahr', as mentioned in 'Radd al-Muhtar'. In 'Fatawa al-Sughra', it was said "The fatwa is based on this". 'Allama Shurunbulali stated in the Friday prayer section of 'Ghunyat Dhawi al-Ahkam': "Regarding the author's statement that if he is performing the Sunnah of Jumu'ah he should end with salam after two rak'ahs; I say: the correct view is contrary to it, which is that he completes the Sunnah of Jumu'ah as four rak'ahs, and the fatwa is based on this as in 'Al-Saghiri', and it is the correct view as in 'Al-Bahr' from 'Al-Walwalijiyyah' and 'Al-Mubtagha' because it is equivalent to one single obligatory prayer." Imam Zaheer al-Din Marghinani in 'Al-Zahiriyyah' said "It is the correct [view]". Imam Zaheer al-Din Marghinani states in 'Al-Zahiriyyah' that this is correct as mentioned in 'Al-Quhistani' and 'Al-Ghunyah Sharh al-Munyah' regarding disliked times. Similarly, it is in 'Al-Siraj al-Wahhaj' just as it is in the section on disliked times in 'Quhistani' and 'Ghunya Sharh Munya'. Similarly, it is in 'Siraj' and 'Wahaj' as mentioned in 'Al-Hindiyyah'. Imam Sarakhsi said "It is..."

1. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter on Catching the Obligatory Prayer, published by H.M. Saeed Company Karachi 1/212
2. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter on Catching the Obligatory Prayer, published by H.M. Saeed Company Karachi 1/212

3. Ghunyat Dhawi al-Ahkam 'ala al-Durr al-Ahkam, Chapter on Friday, published by Ahmad Kamil, Dar al-Sa'adah Beirut 1/141
4. Ghunyat al-Mustamli citing Al-Marghinani, the fifth condition is time, published by Sohail Academy Lahore p 242
5. Fatawa Hindiyyah citing Al-Siraj al-Wahhaj, Tenth Chapter regarding Catching the Obligatory Prayer, published by Noorani Kutub Khana Peshawar 1/120

फ़तावा रज़विया, खंड 8

...और 'साहिब-ए-मुहीत' और 'अल्लामा शुम्नी' ने कहा: "सही यह है कि वह उन्हें चार पूरा करे", जैसा कि अनिवार्य प्रार्थना को पाने के संबंध में 'अल-बहर' में है। खुद 'अल्लामा ज़ैन' ने 'अल-बहर' में इसे उद्धृत करने के बाद कहा: "ज़ाहिर वही है जिसकी मशाइख़ (विद्वानों) ने तस्दीक की है क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि दो रकातों के अंत में सलाम फेरना सुन्नत के गुण को समाप्त करना है, न कि उसे पूरा करना, और पहले बताया जा चुका है कि यह जायज़ नहीं है" आदि। पूरा मुआवज़ा अनिवार्य नहीं होगा। यह पूरी चर्चा इमाम अल्लामा ज़ैली की 'तबीन अल-हक़ाएक़' में है, जो 'कन्ज़ अल-दक़ाएक़' की व्याख्या है। आम मशाइख़ ने इसी बात को प्राथमिकता दी है और इसकी सटीकता को स्पष्ट किया है। इमाम वलवालिजी, 'अल-मुब्तग़ा' के लेखक, 'मुहीत' के लेखक और अल्लामा शुम्नी कहते हैं कि सही यही है कि नमाज़ी चार रकात पूरी करे, जैसा कि 'अल-बहर' के'इदराक अल-फ़रीज़ा' (अनिवार्य प्रार्थना पाना) में है। खुद अल्लामा ज़ैन 'अल-बहर' में इस इबारत को नक़ल करने के बाद लिखते हैं कि ज़ाहिर यही है जिसकी तस्दीक मशाइख़ ने फरमाई है क्योंकि इसमें कोई शक नहीं कि दो रकातों के बाद सलाम फेरना सुन्नत की विशेषता को खत्म करने के लिए है न कि उन्हें पूरा करने के लिए, और पीछे गुज़र चुका है कि यह जायज़ नहीं आदि। उनके भाई अल्लामा उमर बिन नुजैम ने 'अन-नहर' में इसी को साबित रखा है जैसा कि 'रद अल-मुह्तार' में है। 'फ़तावा अल-सुग़रा' में फरमाया "फ़तवा इसी पर है"। अल्लामा शुरुनबुलाली ने 'ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम' के जुमा के अध्याय में फरमाया: "लेखक का कथन कि यदि वह जुमा की सुन्नतें अदा कर रहा है तो दो रकातों पर सलाम फेर ले; मैं कहता हूँ कि सही इसके विपरीत है, और वह यह है कि जुमा की चार रकातें पूरी करे, और इसी पर फ़तवा है जैसा कि 'अस-सग़ीरी' में है, और यही सही है जैसा कि 'अल-बहर' में 'वलवालिजिया' और 'अल-मुब्तग़ा' से है क्योंकि यह एक अनिवार्य नमाज़ के दर्जे में है।" इमाम ज़हीर अल-दीन मरग़ीनानी ने 'ज़हीरिया' में फरमाया "यही सही है"। इमाम ज़हीर अल-दीन मरग़ीनानी 'ज़हीरिया' में फरमाते हैं यही सही है जैसा कि 'अल-कुहिस्तानी' और 'अल-गुन्या शरह अल-मुन्या' के मकरूह (वर्जित) समयों में है। इसी तरह 'अस-सिराज अल-वहाज' में है जैसा कि कुहिस्तानी और ग़ुन्या शरह मुन्या के मकरूह समयों में है। इसी तरह 'सिराज' और 'वहाज' में है जैसा कि 'हिन्दिया' में है। इमाम सरख़सी फरमाते हैं "वह है..."

1. अल-बहर अल-राइक़, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, एच.एम. सईद कंपनी, कराची 1/212
2. अल-बहर अल-राइक़, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, एच.एम. सईद कंपनी, कराची 1/212

3. ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम अली अल-दुर अल-अहकाम, बाब अल-जुमा, अहमद कामिल, दार अल-सआदह बेरूत 1/141
4. ग़ुनियत अल-मुस्तमली, अल-मरग़ीनानी के हवाले से, पाँचवीं शर्त समय है, सुहैल अकादमी लाहौर पृ. 242
5. फ़तावा हिन्दिया, अल-सिराज अल-वहाज के हवाले से, दसवां अध्याय अनिवार्य प्रार्थना पाने के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर 1/120

و "صاحب محیط و علامہ شمنی فرموند الصحیح انه یتمها اربعاً" (صحیح یہ ہے کہ وہ انہیں چار پورا کرے) كما في البحر من ادراك الفريضة خود "علامہ زین در بحر بعد نقلش فرمود الظاهر ما صحح المشائخ لانه لاشك ان في التسليم على رأس الركعتين ابطال وصف السنية لا لا كمالها و تقدم انه لا يجوز" الخ (ظاہر وہی ہے جس کی مشائخ نے تصحیح کی ہے کیونکہ اس میں کوئی شک نہیں کہ دو رکعات کے سرے پر سلام پھیرنا صفتِ سنیت کا ابطال ہے نہ کہ ان کی تکمیل، اور پہلے گزر چکا ہے کہ یہ جائز نہیں ہے) مہرِ کامل لازم نہ ہوگا۔ یہ تمام گفتگو امام علامہ زیلعی کی تبیینِ حقائق شرح کنز الدقائق میں ہے۔ عام مشائخ نے اسی قول کو ترجیح اور اسی کی تصحیح پر تصریح کی ہے۔ امام ولوالجی، صاحبِ مبتغی، صاحبِ محیط اور علامہ شمنی فرماتے ہیں کہ صحیح یہی ہے کہ نمازی چار رکعات پوری کرے، جیسا کہ بحر کے ادراکِ فریضہ میں ہے، خود علامہ زین بحر میں اس عبارت کو نقل کرنے کے بعد لکھتے ہیں ظاہر یہی ہے جس کی تصحیح مشائخ نے فرمائی ہے کیونکہ اس میں کوئی شک نہیں کہ دو رکعات کے بعد سلام وصفِ سنیت کے ابطال کے لئے ہے نہ کہ ان کے اکمال کے لئے، اور پیچھے گزر چکا ہے کہ یہ جائز نہیں الخ، ان کے بھائی علامہ عمر بن نجیم نے نہر میں اسی کو ثابت رکھا ہے جیسا کہ ردالمحتار میں ہے، فتاوٰی صغرٰی میں فرمایا "فتوٰی اسی پر ہے"۔ علامہ شرنبلالی نے غنیہ ذوی الاحکام کے جمعہ میں فرمایا ماتن کا قول اگر نمازِ جمعہ کی سنتیں ادا کر رہا ہے تو دو رکعتوں پر سلام پھیر لے؛ میں کہتا ہوں:

"الصحيح خلافه و هو انه يتم سنة الجمعة اربعاً، وعليه الفتوى كما في الصغيري، وهو الصحيح كما في البحر عن الولوالجية والمبتغى لانها بمنزلة صلوة واحدة واجبة اھ" (صحیح اس کے خلاف ہے اور وہ یہ ہے کہ جمعہ کی سنتیں چار پوری کرے، اور اسی پر فتوٰی ہے جیسا کہ صغیری میں ہے، اور

یہی صحیح ہے جیسا کہ بحر میں ولوالجیۃ اور مبتغیٰ سے ہے کیونکہ یہ ایک واجب نماز کے درجے میں ہے)۔ امام ظہیر الدین مرغینانی نے ظہیریہ میں فرمایا "ہو الصحیح" (وہی صحیح ہے)۔ امام ظہیر الدین مرغینانی ظہیریہ میں فرماتے ہیں یہی صحیح ہے جیسا کہ القہستانی والغنیۃ شرح المنیۃ کے اوقاتِ مکروہہ میں ہے اور "ہمچناں در سراج وہاج ست" جیسا کہ قہستانی اور غنیہ شرح منیہ کے اوقاتِ مکروہہ میں ہے اسی طرح سراج و ہاج میں ہے جیسا کہ ہندیہ میں ہے "امام سرخسی فرماید ھو"۔

1. بحر الرائق باب ادراك الفريضہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۱۲
2. بحر الرائق باب ادراك الفريضہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۱۲
3. غنية ذوی الاحكام على الدرالاحكام باب الجمعہ مطبوعہ احمد کامل دار سعادت بیروت ۱/ ۱۴۱
4. غنية المستملی بحوالہ المرغینانی الشرط الخامس ھوالوقت مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۲۴۲
5. فتاویٰ ہندیہ بحوالہ السراج الوہاج الباب العاشر فی الدرک الفریضہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۲۰

Fatawa Razawiya Volume 8

"The most correct (al-asahh) [view] ^1, as also stated in it: 'Allama Ghazi ^3 in the text of Tanwir al-Absar said: "Upon the most preferred view (al-rajih)".' 'Allama Dimashqi ^15 in Durr al-Mukhtar commented on it and said: 'Contrary to what al-Kamal ^2 preferred.' And in the [chapter on] Jumu'ah (Friday prayer), following al-Bahr, he said: 'One completes [it] according to the most correct [view] ^3.' In Majma' al-Anhur ^16 it is said: 'The majority of scholars (mashayikh) authenticated it ^4.' Also in it: 'The correct view is that one completes [it] ^5.' Until the recorder of the school (Madhhab), Imam Muhammad ^17, it is Zahir al-Riwayah (manifest transmission); in this sense he pointed to it. Sufficient as proof is what the absolute researcher (Muhaqqiq 'ala al-Itlaq) says in al-Fath: 'To this he (Imam Muhammad) pointed in al-Asl ^6.'"

As it is in [al-Bahr] from [al-Walwalajiyyah] and [al-Mujtaba] because this is like one obligatory prayer. Just as it is in Fatawa al-Hindiyyah, Imam al-Sarakhsi says that this is the most correct view, and it also contains that Allama Ghazi said in the text of Tanwir al-Absar that this is the preferred view. Allama Dimashqi, while discussing this in Durr al-Mukhtar, stated that this is contrary to what Kamal preferred, and in the chapter on Jumu'ah, following al-Bahr, he stated that the most correct view is this. In Majma' al-Anhur, it is stated that the majority of scholars have declared this to be correct, and it also states that the correct view is that the worshiper should perform four rak'ahs, to the extent that the recorder of the school, Hazrat Imam Muhammad (may Allah have mercy on him), in al-Mabsut, which is from the books of Zahir al-Riwayah, pointed towards it. This proof is sufficient; the absolute researcher (Qudwa al-Muhaqqiq 'ala al-Itlaq) stated in al-Fath that he (Imam Muhammad) pointed towards this in al-Asl.

1. Fatawa Hindiyyah with reference to al-Muhit al-Sarakhsi, Chapter 10 on catching the obligatory prayer, printed by Nurani Kutub Khana Peshawar, 1/120.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on catching the obligatory prayer, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/99.
3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Jumu'ah, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/114.
4. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter on catching the obligatory prayer, Dar Ihya al-Turath al-'Arabi Beirut, 1/141.
5. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter on catching the obligatory prayer, Dar Ihya al-Turath al-'Arabi Beirut, 1/141.

6. Fath al-Qadir, Chapter on catching the obligatory prayer, printed by Nuriya Razawiya Sukkur, 1/211.

फतावा रजविया जिल्द आठवां

"सबसे सही (अल-असह्) [विचार] ^1, जैसा कि उसमें भी है: 'अल्लामा गज़ी ^3 ने तनवीर अल-अबसार के पाठ में कहा: 'सबसे पसंदीदा विचार (अल-राजिह) पर'।' अल्लामा दिमश्की ^15 ने दुर्र अल-मुख्तार में इस पर चर्चा की और कहा: 'उससे विपरीत जिसे अल-कमाल ^2 ने प्राथमिकता दी।' और जुमुआ (शुक्रवार की प्रार्थना) के अध्याय में अल-बहर का अनुसरण करते हुए कहा: 'सबसे सही [विचार] ^3 के अनुसार इसे पूरा किया जाता है।' मजमा अल-अन्हुर ^16 में कहा गया है: 'अधिकांश विद्वानों (मशायिख) ने इसे प्रमाणित किया है ^4।' उसी में यह भी है: 'सही विचार यह है कि इसे पूरा किया जाए ^5।' यहाँ तक कि पंथ (मज़हब) के लेखक इमाम मुहम्मद ^17 तक, यह ज़ाहिर अर-रिवायत है; इसी अर्थ में उन्होंने इसकी ओर संकेत किया। प्रमाण के रूप में पर्याप्त है जो निरपेक्ष शोधकर्ता (मुहक्किक अलल-इतलाक़) अल-फ़तह में कहते हैं: 'इसकी ओर उन्होंने (इमाम मुहम्मद ने) अल-अस्ल ^6 में संकेत किया है।'"

जैसे 'बहर' में 'वलवालजिया' और 'अल-मुजतबा' से है क्योंकि यह एक वाजिब नमाज़ के समान है। अभी जैसा कि फतावा हिंदिया में है, इमाम सरख्सी फरमाते हैं कि यही असह् है और इसी में यह भी है कि अल्लामा गज़ी ने तनवीर अल-अबसार के पाठ में फरमाया कि राजिह यही है। अल्लामा दिमश्की ने दुर्र अल-मुख्तार में इस पर चर्चा करते हुए फरमाया है कि यह उस बात के खिलाफ है जिसे कमाल ने प्राथमिकता दी थी और जुमुआ के अध्याय में बहर का अनुसरण करते हुए फरमाया कि असह् कौल यही है। मजमा अल-अन्हुर में फरमाया कि अक्सर मशायिख ने इसी को सही कहा है और इसमें यह भी है कि सही यही है कि नमाज़ी चार रकात अदा करे, यहाँ तक कि मज़हब के मुहर्रिर हज़रत इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैहि) ने 'मबसूत' में, जो कि ज़ाहिर अर-रिवायत की किताबों में से है, इसी की तरफ इशारा किया और यही हुज्जत काफी है। कुदवा मुहक्किक अलल-इतलाक़ ने 'फ़तह' में फरमाया कि इसी की तरफ (इमाम मुहम्मद ने) 'अस्ल' में इशारा फरमाया है।

1. फतावा हिंदिया बर हवाला मुहीत अल-सरख्सी, अध्याय 10, फरीज़ा पाने के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/120.
2. दुर्र अल-मुख्तार, अध्याय फरीज़ा पाने के बारे में, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/99.
3. दुर्र अल-मुख्तार, अध्याय जुमुआ, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/114.

4. मजमा अल-अन्हुर शरह मुल्तका अल-अबहर, अध्याय फरीज़ा पाने के बारे में, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी बेरुत, 1/141.
5. मजमा अल-अन्हुर शरह मुल्तका अल-अबहर, अध्याय फरीज़ा पाने के बारे में, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी बेरुत, 1/141.
6. फ़तह अल-क़दीर, अध्याय फरीज़ा पाने के बारे में, नूरिया रजविया सुक्कुर, 1/211.

पेज 134/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

الاصح ۱ کما فیھا ایضا علامہ غزی ۳ در متن تنویر الابصار فرمود علی الراجح علامہ ۱۵ دمشق در در مختار تقریر ش کرد و گفت خلافا لما رجحہ الکمال ۲ و در جمعۃ تبعا للبحر فرمود یتم فی الاصح ۳ در مجمع ۱۶ الانہر گفت صححہ اکثر المشائخ ۴ ھم در آنست الصحیح انہ یتم ۵ تا آنکہ محرر مذہب حضرت امام ۱۷ محمد ظاہر الروایۃ ست بایں معنی ایما فرمود ناھیک بحجۃ وقدوۃ محقق علی الاطلاق در فتح فرماید الیہ اشار فی الاصل ۶ ۔

جیسے بحر میں ولو الجیہ اور المجتبٰی سے ہے کیونکہ یہ بمنزلہ ایک نماز واجبہ کے ہے ابھی جیسے فتاوٰی ہندیہ میں ہے، امام سرخسی فرماتے ہیں کہ یہی اصح ہے اور اسی میں یہ بھی ہے علامہ غزی نے متن تنویر الابصار میں فرمایا کہ راجح یہی ہے، علامہ دمشقی نے در مختار میں اس پر گفتگو کرتے ہوئے فرمایا ہے یہ مخالف ہے اس بات کے جس کو کمال نے ترجیح دی اور باب جمعہ میں بحر کی اتباع میں فرمایا اصح قول یہی ہے مجمع الانہر میں فرمایا اکثر مشائخ نے اسی کو صحیح کہا ہے اور اس میں یہ بھی ہے کہ صحیح یہی ہے کہ نمازی چار رکعات ادا کرے حتیٰ کہ محرر مذہب حضرت امام محمد رحمۃ اللہ تعالیٰ نے مبسوط جو کتب ظاہر الروایہ میں سے ہے میں اسی کی طرف اشارہ کیا اور یہی حجت کافی ہے قدوۃ محقق علی الاطلاق نے فتح میں فرمایا اسی کی طرف (امام محمد نے) اصل میں اشارہ فرمایا ہے۔

۱ فتاوی ہندیہ بحوالہ محیط السر خسی الباب العاشر فی ادراک الفریضہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۲۰ ۲ در مختار، باب ادراک الفریضہ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹۹/۱ ۳ در مختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۱۴/۱ ۴ مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب ادراک الفریضہ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۱۴۱ ۵ مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب ادراک

الفریضہ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۱۴۱ ۶ فتح القدیر، باب ادراک الفریضہ، مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۱۱/۱

Fatawa Rizwia Volume 8

Saying (I say): You have seen that there is strength on every side, so it is in both highly elevated and majestic heights. Thus, although the argument mentioned by Imam Ibn al-Humam (may his secret be sanctified) for the first position is pleasing to the heart, the multitude of explicit rectifications is more towards this side, where the phrase "huwa al-sahih" (it is the correct one) is used, which is the specific style of the majority of Imams. This has been adopted by the second position. The phrase "huwa awjah" (it is more prominent), coming from the absolute researcher (al-Muhaqqiq al-A'laq) for the first position, adds more weight in terms of form, substance, and additional matters, as is not hidden from a jurist well-versed in the styles of speech. If on that side there is the preference of the masters (mashaikh), which apparently refers to Imam Qadi Khan himself, then on this side there are also the phrases "sahhahahu akthar al-mashaikh" (most masters corrected it) and "sahha al-mashaikh" (the masters corrected it). Furthermore, the words "alayhi al-fatwa" (the verdict is upon this) are present there, which indicate more emphasis and strength compared to general terms. If the school of thought of the two Sheikhs (Imam Azam and Imam Abu Yusuf, may Allah be pleased with them) according to the rare narrations is mentioned towards the first position, then for this (second position), there is an indication of the 'Asl' (Mabsut of Imam Muhammad). An indication of 'Asl' is no trivial matter. It is a saying of famous scholars that the implied meaning of 'mutun' (primary texts) takes precedence over the explicit text ('mantuq') of fatawa. Alama Sayyidi Ahmad Hamwi has written in 'Ghamz al-Uyun' that it is not hidden that what is in primary texts and commentaries, even if by way of implication, takes precedence over what is in fatawa, even if there is no confusion in their wording. And it is clear that the relationship of rare narrations to foundational principles ('usul') is like the relationship of fatawa to primary texts. Ultimately, the issue is of the kind where a person sees both positions.

Footnote 1: Ghamz 'Uyun al-Basair Sharh al-Ashbah wa al-Nazair, Kitab al-Hajr wa al-Ma'dhun, published by Idarat al-Qur'an wa al-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 9/124.
Page 135 of 673

फतवा-ए-रजविया जिल्द 8

अकुल (मैं कहता हूँ): आपने देख लिया कि हर तरफ ताकत है, तो अत्यंत उच्च और भव्य दोनों में है। अतः, पहले कथन पर इमाम इब्न अल-हुमाम (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने जो दलील दी है, वह हालांकि दिल को पसंद आती है, लेकिन स्पष्ट सुधारों की अधिकता इस तरफ ज्यादा है जहाँ "हुवा अस-सहीह" (यही सही है) शब्द है, जो अधिकांश इमामों की विशिष्ट शैली है जिसे दूसरे कथन ने अपनाया है। और "हुवा अवजह" (यही अधिक प्रमुख है) शब्द, जो निरपेक्ष शोधकर्ता (मुहक्किक अल-अतलाक) की ओर से पहले कथन के लिए है, रूप, पदार्थ और अतिरिक्त मामलों के लिहाज से अधिक वजनदार है, जैसा कि भाषण की शैलियों से परिचित फकीह (धर्मशास्त्री) पर छिपा नहीं है। यदि उस तरफ मशायख (गुरुओं) की पसंद है, जिससे प्रत्यक्षतः स्वयं इमाम काजी खान मुराद हैं, तो दूसरी तरफ भी "सहाहु अक्सर अल-मशायख" और "सह अल-मशायख" के शब्द हैं। इसके अलावा, वहाँ "अलैहि अल-फतवा" के शब्द भी हैं, जो सामान्य शब्दों की तुलना में अधिक जोर और ताकत का संकेत देते हैं। यदि पहले कथन की ओर शेखन (इमाम आजम और इमाम अबू यूसुफ, अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) का मज़हब दुर्लभ रिवायतों के अनुसार उल्लेखित है, तो यहाँ (दूसरे कथन) के लिए 'असल' (इमाम मुहम्मद की मबसूत) का इशारा मौजूद है। और 'असल' का इशारा कोई मामूली बात नहीं है। प्रसिद्ध विद्वानों का कहना है कि 'मुतून' (मूल ग्रंथों) का निहित अर्थ भी फतवों के'मंतुक' (स्पष्ट इबारत) पर वरीयता रखता है। अल्लामा सैयदी अहमद हमवी ने 'गमज़ अल-उयून' में लिखा है कि यह छिपा नहीं है कि जो कुछ मूल ग्रंथों और टीकाओं में है, चाहे वह निहितार्थ के माध्यम से ही क्यों न हो, वह फतवों में मौजूद सामग्री पर वरीयता रखता है, भले ही उनके शब्दों में कोई भ्रम न हो। और यह स्पष्ट है कि दुर्लभ रिवायतों का बुनियादी उसूलों से वही संबंध है जो फतवों का मूल ग्रंथों से है। अंततः मामला उस प्रकार का है जहाँ इंसान दोनों कथनों को देखता है।

फुटनोट 1: गमज़ उयून अल-बसायर शरह अल-अशबाह व अन-नज़ायर, किताब अल-हज्र व अल-माज़ून, प्रकाशित इदारत अल-कुरान व अल-उलूम अल-इस्लामिया, कराची, 9/124। पेज 135 का 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اقول: (میں کہتا ہوں) آپ نے دیکھ لیا کہ ہر طرف قوت ہے، تو نہایت بلند اور جلیل رفعت دونوں میں ہے پس قول اول پر جو دلیل امام ابن ہمام قدس سرہ نے ذکر کی ہے وہ اگر چہ دل کو پسند ہے لیکن عامہ تصحیحات صریحہ کا ہجوم اس طرف زیادہ ہے کہ جہاں لفظ "ھوا الصحیح" ہے جو کہ جمہور ائمہ کا خاص انداز ہے جس کو دوسرے قول نے اپنے دامن میں لے رکھا ہے اور لفظ "ھو اوجہ" جو کہ محقق علی الاطلاق کی طرف سے قول اول کے لئے مزید وزنی ہے ہیئت، مادہ اور زائد امور، ہر لحاظ سے ، جیسا کہ کلام کے اسلوب سے واقف فقیہ اور ماہر پر مخفی نہیں، اس طرف اگر مشائخ کی پسند ہے جو کہ بظاہر خود امام قاضی خاں سے مراد ہے تو دوسری طرف بھی "صححہ اکثر المشائخ" اور "صححہ المشائخ" کے الفاظ ہیں نیز وہاں "علیہ الفتوی" کے الفاظ بھی ہیں جو کہ عام الفاظ کی نسبت زیادہ تاکید اور قوت پر دال ہے اگر وہاں (پہلے قول) کی طرف نوادر روایت کے مطابق شیخین (امام اعظم وامام ابو یوسف) رضی اللہ تعالی عنہما کا مذہب مذکور ہے تو یہاں (دوسرے قول) کے لئے اصل (مبسوط امام محمد) کا اشارہ موجود ہے جبکہ اصل کا اشارہ کوئی معمولی بات نہیں ہے مشہور علماء کا قول ہے کہ "متون" کا مفہوم بھی فتاوی کے "منطوق" (ظاہر عبارت) پر مقدم ہے۔ علامہ سیدی احمد حموی نے غمز العیون میں لکھا ہے کہ مخفی نہیں کہ ان ما في المتون والشروح ولو كان بطريق المفهوم مقدم على ما فی الفتاوی وان لم يكن في عبارتها اضطراب ۱ و پیداست کہ نسبت انوادر بہ اصول ہمچو نسبت فتادی ست بمتون و بالاخر مسئلہ ازاں قبیل ست کہ انسان ہر دو قول

1 غمز عيون البصائر شرح الاشباه والنظائر كتاب الحجر ولمأذون مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۹/۱۲۴ Page 135 of 673

Fatawa Rizvia, Volume 8

Whichever one chooses to act upon, there is no blame. And I, the humble one, find myself more inclined towards the latter statement for reasons you have heard and will hear. Faqul: Regarding the argument for the first statement, it can be said that when a Sunnah is delayed past its time, it becomes deficient and will not be performed in the prescribed manner of Sunnah, whereas Sunnahs make the Fara'id (obligatory prayers) complete. It is evident that completing something already complete is more perfect than completing something deficient. Thus, a deficiency in Sunnah leads to a deficiency in the Fard. So, when ending the prayer with Salaam after two rak'ahs is a deficiency in the characteristic of the Sunnah that is not fulfilled, it necessitates a lack of completion in the Fard, and the Fard will not be at its most perfect. Contrary to the case where the Sunnah is fully completed, it remains absolutely protected from deficiency. Thus, even if there is a difference in the Fard being 'most perfect', an alternative perfection will be achieved through the other reason (completion of Sunnahs). This is what has been put into my heart, and true knowledge is with my Lord; my Lord is the Knower of all things. (T)

What is implied in the original texts (Mutun) and commentaries (Shuruh) takes precedence over explicit statements in the Fatawa. In summary, comparing 'Nawadir' (rare reports) with 'Usul' (principles) is like comparing Fatawa with Mutun; i.e., the indication of a principle is preferred over the explicit details of rare reports. In short, this issue is of the sort where whichever of the two opinions a person acts upon, there is no objection. I personally find myself inclined towards the second opinion; you have heard some of its reasons and will hear more. Faqul: Regarding the argument for the first opinion, it can be said that when a Sunnah is delayed from its time, it becomes deficient and will not be performed as a Sunnah, while Sunnahs are meant to complete the Fara'id. It is clear that perfecting a complete thing is more perfect than completing a deficient thing. Thus, deficiency in Sunnah causes deficiency in Fard. So, when salutations after two rak'ahs are a deficiency in the attribute of Sunnah which is not complete, it will necessitate non-completion of Fard such that the Fard won't be most perfect. Contrary to this, if Sunnah is completed, it will be absolutely safe from deficiency. Then even if a difference occurred in the Fard being most perfect, an alternative perfection would be attained due to the second reason (completion of Sunnahs). This is what has occurred to my heart, and true knowledge belongs to my Lord; my Lord is the Knower of everything. (T)

Problem 1187: From Ujjain, residence of Mir Khadim Ali Sahib Assistant, sent by Haji Yaqub Ali Khan Sahib, 22 Sha'ban 1311 AH. What is the ruling on this matter: Bakr performed wudu for the Fajr prayer and arrived at a time when the Imam was in the final sitting (Qa'da Akhira). If he prays the Sunnah, he misses the congregation; if he joins the congregation, the Sunnah prayers are missed. In this situation, should he pray the Sunnah or join the sitting? Please explain so that you may be rewarded.

The Answer: In this situation, by consensus, he should join the congregation because joining the congregation is more important than praying the Sunnah prayers.

वह जिस पर चाहे अमल करे, कोई मलामत (निंदा) नहीं है और मैं फ़क़ीर ख़ुद को बाद वाले क़ौल (कथन) की तरफ़ अधिक झुका हुआ पाता हूँ उन कारणों से जो आपने सुने और सुनेंगे। फ़क़ौल: पहले क़ौल की दलील पर कहा जा सकता है कि जब सुन्नत अपने समय से पीछे हो जाती है, तो वह दोषपूर्ण हो जाती है और वह सुन्नत के तरीक़े से अदा नहीं होगी, जबकि सुन्नतें फ़राइज़ (अनिवार्य प्रार्थनाओं) को पूर्ण बनाती हैं। और यह स्पष्ट है कि एक पूर्ण चीज़ को पूरा करना एक दोषपूर्ण चीज़ को पूरा करने की तुलना में अधिक पूर्ण है। अतः सुन्नत का दोष फ़र्ज़ के दोष का कारण बनता है। तो जब दो रकअतों पर सलाम सुन्नत के गुण में एक कमी है जो पूरी नहीं होती, तो इससे फ़र्ज़ की पूर्णता में कमी आएगी और फ़र्ज़ पूर्ण रूप से पूर्ण नहीं हो सकेगा। इसके विपरीत जब सुन्नत पूरी की जाती है, तो वह दोष से पूर्णतः सुरक्षित रहती है। तो भले ही इससे फ़र्ज़ के सबसे पूर्ण होने में अंतर आए, लेकिन दूसरे कारण (सुन्नतों की पूर्णता) से वैकल्पिक पूर्णता प्राप्त हो जाएगी। यह वह है जो मेरे दिल में डाला गया है और वास्तविक ज्ञान मेरे रब के पास है, मेरा रब हर चीज़ का जानने वाला है। (त)

मूल ग्रंथों और व्याख्याओं में जो बात अर्थ के रूप में है, वह फ़तावा के स्पष्ट कथनों पर प्रधान है। संक्षेप में यह कि 'नवादिर' (दुर्लभ रिवायतों) का मुक़ाबला 'उसूली' (मूल सिद्धांतों) से वैसा ही है जैसा फ़तावा का मूल ग्रंथों से है, अर्थात् उसूल के संकेत को नवादिर के स्पष्टीकरणों पर वरीयता प्राप्त है। तात्पर्य यह कि यह मसला उस श्रेणी का है कि इसके दोनों कथनों में से जिस पर भी मनुष्य चाहे अमल करे, तो कोई आपत्ति नहीं है। मैं स्वयं दूसरे कथन की ओर झुकाव रखता हूँ, इसके कुछ कारण आपने सुन लिए और कुछ सुनेंगे। फ़क़ौल: पहले कथन के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि जब सुन्नत अपने समय से विलंबित हो जाए तो वह त्रुटिपूर्ण हो जाती है और सुन्नत के निर्धारित तरीके से अदा नहीं होगी, जबकि सुन्नतें अनिवार्य कर्तव्यों (फ़राएज़) को पूर्णता प्रदान करती हैं। यह ज़ाहिर है कि एक मुकम्मल चीज़ को मुकम्मल करना, एक अधूरी चीज़ की पूर्ति से कहीं बेहतर है। इस प्रकार सुन्नत की कमी अनिवार्य कर्तव्य (फ़र्ज़) में कमी का कारण बनती है। अतः जब दो रकात पर सलाम फेरने से सुन्नत की विशेषता अधूरी रह जाती है, तो इससे फ़र्ज़ की मुकम्मल अदायगी में बाधा आएगी। इसके विपरीत, यदि सुन्नत को पूरा किया जाए तो वह हर तरह की कमी से सुरक्षित रहेगी। हालाँकि इससे फ़र्ज़ की पूर्णता के स्तर में फर्क पड़ सकता है, लेकिन सुन्नतों की पूर्णता के कारण एक वैकल्पिक श्रेष्ठता प्राप्त हो जाएगी। यह विचार मेरे मन में आया है और वास्तविक ज्ञान अल्लाह के पास है, मेरा रब हर बात का ज्ञाता है। (त)

मसला ११८७: उज्जैन, मकान मीर खादिम अली साहब असिस्टेंट, प्रेषक हाजी याकूब अली खान साहब, २२ शाबान १३११ हिजरी। इस मसले में क्या हुक्म है कि बकर वज़ू करके फज्र की नमाज़ के लिए ऐसे समय आया कि इमाम आख़िरी कायदे (बैठक) में है। अगर वह सुन्नत पढ़ता है तो जमाअत छूट जाती है और अगर जमाअत में मिलता है तो सुन्नतें छूट जाती हैं। इस स्थिति में वह सुन्नतें पढ़े या कायदे में शामिल हो जाए? बयान फरमाएं ताकि पुण्य मिले।

अल-जवाब (उत्तर): इस स्थिति में सर्वसम्मति से जमाअत में शामिल हो जाना चाहिए क्योंकि जमाअत में शामिल होना सुन्नतें पढ़ने से अधिक महत्वपूर्ण है।

पृष्ठ १३६ का ६७३

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

بر ہر خواہد عملی نماید پیچ جائے ملامت نیست و من فقیر بقول اخیر خود را مائل ترمی بینم بوجوہے کہ شنیدی وی می شنوی فقول: بر دلیل قول اول می توان گفت کہ سنت چوں از وقت خود برگشت نقصان پذیرفت وسنت۔ برو جہ سنت ادا نشد وسنن م کملات فرائض ست و شک نیست کہ تکمیل کامل اکمل از تکمیل ناقص ست پس نقصان سنن بنقصان فرائض منجر شود پس در تسلیم بر رکعتین ہم ابطال وصف سنیت ست بے آنکہ بروجہ سنت انجبار یا بد و ہم انعدام تکمیل فرض ست علی الوجہ الاکمل بخلاف اتمام کہ سنت از نقصان محفوظ مطلق ماند و در فرض اگر جہتی از اکملیت فوت شود حتی دیگر بدست آید ہذا ماورد علی قلبی والعلم بالحق عند ربی ان ربی بکل شیئ علیم۔

متون اور شروح میں جو بات بطور مفہوم ہے وہ فتاویٰ واضح اقوال پر مقدم ہے، حاصل یہ کہ نوادر کا مقابلہ اصول سے ایسے ہے جیسا کہ فتاویٰ کا متون سے ہے یعنی اصول کے اشارہ کو نوادر کی تصریحات پر ترجیح ہے غرضیکہ یہ مسئلہ اس قبیل سے ہے کہ اس کے دونوں اقوال میں سے جس پر انسان چاہے عمل کرے تو کوئی اعتراض نہیں ہے اور میں خود دوسرے قول کی طرف اپنے آپ کو مائل پاتا ہوں اس کے وجوہ کچھ تو آپ نے سن لئے اور کچھ کو سنیں گے فقول: پہلے قول کی دلیل پر کہا جاسکتا ہے کہ جب سنت اپنے وقت سے مؤخر ہو جائے تو وہ ناقص ہو جاتی ہے اور یہ سنت بطریق سنت ادا نہ ہوگی جبکہ سنتیں فرائض کو کامل بناتی ہیں اور یہ بات ظاہر ہے کہ کامل چیز کا مکمل کرنا زیادہ کامل ہوتا ہے ناقص چیز کی تکمیل کے مقابلہ میں، تو یوں سنت کا نقصان فرض کے نقصان کا باعث ہوتا ہے تو جب دو رکعتوں پر سلام سنت کے وصف میں نقصان ہے جو کہ پورا نہیں ہوتا، تو اس سے فرض کی تکمیل میں عدم لازم آئے گا کہ فرض

اکمل نہ ہوسکے گا بر خلاف اس بات کے کہ جب سنت کو تمام کیا جائے تو وہ نقصان سے مطلقاً محفوظ رہے گی تو اس سے اگر چہ فرض کے اکمل ہونے میں فرق آیا مگر دوسری وجہ (سنتوں کی تکمیل) سے متبادل کمال حاصل ہو جائے گا۔ یہ ہے وہ جو میرے دل میں ڈالا گیا اور حقیقی علم میرے رب کو ہے، میرا رب ہر چیز کا عالم ہے۔ (ت)

مسئلہ ۱۱۸۷: از اوجین مکان میر خادم علی صاحب اسٹنٹ مرسلہ حاجی یعقوب علی خاں صاحب ۲۲ شعبان ۱۳۱۱ھ اس مسئلہ میں کیا حکم ہے کہ بکر وضو نماز فجر کا کر کے ایسے وقت میں آیا کہ امام قعدہ اخیرہ میں ہے، جو سنت پڑھتا ہے تو جماعت جاتی ہے اور جماعت میں ملتا ہے تو سنتیں فوت ہوتی ہے، اس صورت میں سنتیں پڑھے یا قعدہ میں مل جائے۔ بینوا توا جروا

الجواب: اس صورت میں بالاتفاق جماعت میں شریک ہو جائے کہ جماعت میں ملنا سنتیں پڑھنے سے اہم و

Fatawa Rizvia - Volume 8

It is strongly emphasized that if one knows that by performing the Sunnah prayers, the congregational prayer will end, then by consensus, the ruling is to join the congregation. Even if the Imam is at the beginning of the second rak'ah, or even in the final sitting (Qa'dah) – which is the end of the prayer – because there might be hope that one could join the congregation before the Imam's final salutation (Salam) after completing these Sunnahs.

[Arabic Box Text] In Ad-Durr al-Mukhtar: If someone fears missing the two rak'ahs of Fajr due to being occupied with its Sunnah, he should abandon it [the Sunnah]. The congregation is more complete etc. And Allah Almighty knows best. | It is in Durr al-Mukhtar that when someone has this concern that if he performs the Fajr Sunnahs, the congregation will be missed, he should skip the Sunnahs because the congregation is more perfect, etc. And Allah Almighty knows best (T).

Masla 1188: 15 Ramadan al-Mubarak What do the scholars of religion say regarding this matter: A person has already performed his obligatory (Fard) prayer alone. Now, a congregation is established in the mosque, and he is present in the mosque at that time. What is the ruling for him now? Explain and be rewarded.

Answer: He must join in Zuhr and Isha prayers. This is because if he hears the Takbir (call to prayer) and leaves, or remains sitting there, in both cases, he would be guilty of the dislikeable act (Karahat) and accusation of abandoning the congregation. However, he should not join in Fajr, Asr, and Maghrib prayers. This is because, according to the majority opinion, there are no three-rak'ah supererogatory (Nafl) prayers, and if he adds a fourth rak'ah, it would lead to dislikeability due to opposing the Imam. Furthermore, after Fajr and Asr, supererogatory prayers are inherently disliked (Makruh). Staying seated would also be disliked and even more severe. Therefore, in these prayers, it is necessary that he leaves the mosque.

[Arabic Box Text] Allamah al-Shurunbulali (may Allah have mercy on him) said in Nur al-Idah and its commentary Maraqi al-Falah: If he leaves after praying alone, it is not disliked because he has already responded to Allah's caller once, so it is not obligatory on him a second time. Secondly, however, his leaving is disliked if the congregation is established before his departure in Zuhr and Isha, because supererogatory prayer is permissible in these two with the Imam. He would be accused of opposing the congregation like the Kharijites and Shiites. And he has said... | Allamah Shurunbulali (may Allah Almighty have mercy on him) stated in Nur

al-Idah and its commentary Maraqi al-Falah that when someone leaves the mosque after performing prayer alone, there is no dislikeability because he has responded once to the voice of the one calling towards Allah Almighty, therefore it is not mandatory on him again. However, in this case, there will be dislikeability when the Takbir for the Zuhr and Isha congregation is said before his departure, because in those he can perform supererogatory prayers with the Imam so that...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Attaining the Obligatory Prayer, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/99.

फ़तावा रिज़विया - खंड 8

यह दृढ़ता से कहा गया है कि यदि कोई जानता है कि सुन्नत नमाज़ पढ़ने से जमात समाप्त हो जाएगी, तो सर्वसम्मति से जमात में शामिल होने का आदेश है। भले ही इमाम दूसरी रकात की शुरुआत में हों, या अंतिम बैठक (क़ादा) में हों - जो नमाज़ का अंत है - क्योंकि ऐसी उम्मीद हो सकती है कि इमाम के सलाम फेरने से पहले ये सुन्नतें पूरी करके जमात में शामिल हो सके।

[अरबी बॉक्स पाठ] अल-दुर अल-मुख्तार में: यदि किसी को सुन्नत में व्यस्त होने के कारण फज्र की दो रकात छूटने का डर हो, तो वह इसे छोड़ दे। जमात अधिक पूर्ण है आदि। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है। | दुर्रे मुख्तार में है कि जब किसी को यह अंदेशा हो कि यदि उसने फज्र की सुन्नतें अदा कीं तो जमात छूट जाएगी, तो वह सुन्नतें छोड़ दे क्योंकि जमात अधिक पूर्ण है आदि। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है (टी)।

प्रश्न 1188: 15 रमजान उल-मुबारक धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति अपनी फर्ज नमाज़ अकेले पढ़ चुका था। अब मस्जिद में जमात खड़ी हो गई है और वह उस समय मस्जिद में मौजूद है। अब उसके लिए क्या आदेश है? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: उसे ज़ुहर और ईशा की नमाज़ों में ज़रूर शामिल होना चाहिए। क्योंकि यदि वह तकबीर सुनकर बाहर चला गया या वहीं बैठा रहा, तो दोनों ही स्थितियों में वह जमात छोड़ने की नापसंदगी (कराहत) और आरोप का शिकार होगा। लेकिन फज्र, अस्र और मग़रिब में शामिल न हो क्योंकि विद्वानों के बहुमत के अनुसार तीन रकात वाली नफ़्ल नमाज़ नहीं होती, और यदि वह चौथी रकात मिलाएगा तो इमाम के विरोध के कारण कराहत (नापसंदगी) अनिवार्य होगी। इसके अलावा, फज्र और अस्र के बाद तो नफ़्ल नमाज़ें मकरूह ही हैं। और वैसे ही बैठे रहना भी कराहत और अधिक गंभीर होगा। इसलिए, इन नमाज़ों में यह ज़रूरी है कि वह बाहर चला जाए।

[अरबी बॉक्स पाठ] अल्लामा अल-शुरुनबुलाली (अल्लाह उन पर रहम करे) ने नूर अल-इदाह और उसकी व्याख्या मराक़ी अल-फ़लाह में कहा: यदि वह अकेले नमाज़ पढ़ने के बाद निकलता है, तो यह मकरूह (नापसंद) नहीं है क्योंकि उसने एक बार अल्लाह के बुलाने वाले को उत्तर दे दिया है, इसलिए यह उस पर दूसरी बार अनिवार्य नहीं है। दूसरा, हालांकि, उसका निकलना मकरूह है यदि ज़ुहर और ईशा में उसके प्रस्थान से पहले जमात खड़ी हो जाए, क्योंकि इन दोनों में इमाम के साथ नफ़्ल की अनुमति है। उन पर ख्वारिज और शियाओं की तरह जमात का विरोध करने का आरोप

लगाया जाएगा। और उन्होंने कहा है... | अल्लामा शुरुनबुलाली (अल्लाह उन पर रहम करे) ने नूर अल-इदाह और उसकी व्याख्या मराक़ी अल-फ़लाह में फ़रमाया कि जब कोई अकेले नमाज़ अदा करके मस्जिद से बाहर निकला तो कोई कराहत नहीं है क्योंकि उसने एक बार अल्लाह तआला की तरफ बुलाने वाले की आवाज़ पर लब्बैक कहा है, इसलिए दोबारा उस पर वाजिब नहीं है। अलबत्ता इस सूरत में कराहत होगी जब उसके निकलने से पहले ज़ुहर और ईशा की जमात के लिए तकबीर कह दी गई हो, क्योंकि उनमें इमाम के साथ नवाफ़िल अदा कर सकता है ताकि...

1. दुर्रे मुख्तार, फर्ज नमाज़ को पाने का अध्याय, मत्तबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/99।

جلد ہشتم، فتاویٰ رضویہ

آکد ہے، جب یہ جانے کہ سنتیں پڑھوں گا تو جماعت ہو چکے گی بالاتفاق جماعت میں مل جانے کا حکم ہے اگر چہ ابھی امام رکعت ثانیہ کے شروع میں ہو، قعدہ تو ختم نماز ہے اس میں کیونکہ امید ہو سکتی ہے کہ امام کے سلام سے پہلے یہ سنتیں پڑھ کر جماعت میں مل سکے گا،

[Arabic Box Text] في الدرالمختار اذاخاف فوت رکعتي الفجر لاشتغاله بسنتها ترکها الجماعة اکمل الخ والله تعالی اعلم۔ | درمختار میں ہے جب کسی کو یہ خطرہ ہو کہ اگر فجر کی سنتیں ادا کیں تو جماعت فوت ہوجائے گی تو وہ سنتیں ترک کردے کیونکہ جماعت اکمل ہے الخ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۸۸: ۱۵ رمضان المبارک کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص فرض تنہا پڑھ چکا تھا اب مسجد میں جماعت قائم ہوئی اور یہ اس وقت مسجد میں موجود ہے تو اب اسے کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: ظہر و عشاء میں ضرور شریک ہو جائے کہ اگر تکبیر سن کر باہر چلا گیا وہیں بیٹھا رہا تو دونوں صورت میں مبتلائے کراہت و تہمت ترک جماعت ہوا اور فجر و عصر و مغرب میں شریک نہ ہو کہ قول جمہور پر تین رکعت نفل نہیں ہوتے اور چوتھی ملائے گا تو بسبب مخالفت امام کراہت لازم آئے گی اور فجر و عصر کے بعد تو نوافل مکروہ ہی ہیں اور ویسے بیٹھا رہے گا تو کراہت اور اشد ہوگی لہٰذا ان نمازوں میں ضرور ہوا کہ باہر چلا جائے

[Arabic Box Text] قال العلامة الشرنبلالي رحمة الله علیه في نورالایضاح وشرحه مراقي الفلاح ان خرج بعد صلوة منفر دالا یکره لانه قد اجاب داعي الله مرة فلا تجب علیه ۔ ثانیا الا انه یکره

خروجه اذا اقیمت الجماعة قبل خروجه في الظهر و في العشاء لانه یجوز النفل فیهما مع الامام یتهم بمخالفة الجماعة کالخوارج والشیعة وقد قال | علامہ شرنبلالی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے نورالایضاح اور اس کی شرح مراقی الفلاح میں فرمایا جب تنہا نماز ادا کرکے کوئی مسجد سے باہر نکلا تو کراہت نہیں کیونکہ اس نے ایک دفعہ اللہ تعالیٰ کی طرف بلانے والے کی آواز پر لبیک کہا ہے لہٰذا دوبارہ اس پر واجب نہیں البتہ اس صورت میں کراہت ہوگی جب اس کے نکلنے سے پہلے ظہر اور عشاء کی جماعت کے لئے تکبیر کہہ دی گئی کیونکہ ان میں امام کے ساتھ نوافل ادا کرسکتا ہے تاکہ

1. در مختار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹۹/۱

Fatawa-e-Razviyya, Volume 8

[Arabic Text Section] Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever believes in Allah and the Last Day should not stand in positions of suspicion." Therefore, he should perform voluntary (nafl) prayers behind the Imam in Zuhr and Isha to repel suspicion from himself. Sitting without following the Imam is disliked because it constitutes opposition to the congregation. This is unlike Fajr, Asr, and Maghrib, because voluntary prayers are disliked then. Opposition in Maghrib follows this [rule]... Allama Tahtawi (may Allah have mercy on him) said in Hashiya al-Maraqi: "Regarding the statement that voluntary prayers are disliked, it refers to after Fajr and Asr. It is stated in Al-Nahr that leaving the mosque should be mandatory because staying without prayer is more severely disliked. Allah Almighty knows best, and His knowledge is most complete and perfect."

[Urdu Translation Section of the above Arabic text] So that the accusation of opposing the congregation is not leveled against him; for example, let it not be said that he is among the Kharijites or Shiites, etc. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever believes in Allah and the Last Day should not stand in places of suspicion." Therefore, that person should follow the Imam in Zuhr and Isha with the intention of voluntary prayer so that no suspicion is cast upon him. And sitting without following the Imam is disliked because it is an opposition to the congregation. Unlike morning (Fajr), afternoon (Asr), and sunset (Maghrib), because voluntary prayers are disliked here, and in Maghrib, opposition to the Imam would be necessary, etc. Allama Tahtawi (may Allah be merciful to him) said in Hashiya al-Maraqi: "The text's statement about voluntary prayers being disliked refers to after Fajr and Asr. It is mentioned in 'Al-Nahr' that in these times, it is obligatory to leave the mosque because staying there without prayer is more undesirable. Allah Almighty knows best, and His knowledge is most complete and perfect. (T)"

Problem 1189: From Jadora State, house of Abdul Majeed Khan Sahib Sarishtahdar, 1325 AH. Until when should the Sunnah of Fajr be performed once the congregation is established? And if they are missed, can they be performed after the obligatory (Fard) prayers or not?

The Answer: If one knows that after performing the Sunnahs, they can join the congregation, they should pray the Sunnahs, even if they only expect to catch the Tashahhud (Attahiyat). Otherwise, they should join the obligatory prayers. And if they

wish to make up (Qaza) the first Sunnahs, it is not permissible after the Fard prayers before sunrise, only after the sun has risen high. Allah Almighty knows best.

Footnotes: 1. Maraqi al-Falah with Hashiya al-Tahtawi, Chapter on Perceiving the Obligatory Prayer, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 249. 2. Hashiya al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter on Perceiving the Obligatory Prayer, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 249.

फतावा-ए-रज़विया, खंड 8

[अरबी पाठ अनुभाग] रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जो व्यक्ति अल्लाह और क़यामत के दिन पर ईमान रखता है, उसे संदेह के स्थानों पर नहीं खड़ा होना चाहिए।" इसलिए, उसे ज़ुहर और इशा में अपने ऊपर से संदेह दूर करने के लिए नफ़्ल की नीयत से इक़्तिदा (अनुसरण) करनी चाहिए। और इक़्तिदा किए बिना बैठना मकरूह (नापसंद) है क्योंकि यह जमाअत का विरोध है। इसके विपरीत फ़ज्र, अस्र और मग़रिब में क्योंकि यहाँ नफ़्ल मकरूह हैं, और मग़रिब में (इमाम) का विरोध लाज़िम आएगा आदि। अल्लामा तहतावी (रहमतुल्लाही अलैहि) ने हाशिया अल-मराक़ी में कहा: "नफ़्ल मकरूह होने के बारे में कथन का अर्थ फ़ज्र और अस्र के बाद से है। और अल-नहर में है कि इन समयों में मस्जिद से चले जाना वाजिब है क्योंकि नमाज़ के बिना वहाँ ठहरना अधिक नापसंद है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान पूर्ण और श्रेष्ठ है।"

[उपरोक्त अरबी पाठ का उर्दू अनुवाद अनुभाग] ताकि जमाअत (मण्डली) के विरोध का आरोप उस पर न लगे; उदाहरण के लिए, यह न कहा जाए कि वह ख्वारिज या शिया आदि में से है। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जो व्यक्ति अल्लाह और आख़िरत (परलोक) पर ईमान रखता है, उसे संदेह के स्थानों पर नहीं खड़ा होना चाहिए।" इसलिए वह व्यक्ति ज़ुहर और इशा में नफ़्ल की नीयत से इक़्तिदा करे ताकि उस पर कोई संदेह न हो। और इक़्तिदा किए बिना बैठना मकरूह है क्योंकि यह जमाअत का विरोध है। इसके विपरीत फ़ज्र, अस्र और मग़रिब में क्योंकि यहाँ नफ़्ल मकरूह हैं, और मग़रिब में (इमाम) का विरोध ज़रूरी हो जाएगा आदि। अल्लामा तहतावी (रहमतुल्लाही अलैहि) ने हाशिया अल-मराक़ी में कहा: "मूल पाठ का कथन कि नफ़्ल मकरूह है, इसका अर्थ फ़ज्र और अस्र के बाद है। अल-नहर में है कि इन समयों में मस्जिद से निकल जाना वाजिब है क्योंकि नमाज़ के बिना वहाँ रुकना अधिक नापसंद है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान पूर्ण और श्रेष्ठ है। (त)"

मसला 1189: रियासत जादोरा से, अब्दुल मजीद खान साहब सरिश्तहदार का निवास, 1325 हिजरी। फ़ज्र की सुन्नत, जमाअत शुरू हो जाने के बाद कब तक अदा की जा सकती है? और यदि वे रह जाएँ तो क्या उन्हें फ़र्ज़ नमाज़ के बाद भी पढ़ा जा सकता है या नहीं?

उत्तर: यदि किसी को विश्वास हो कि सुन्नतें पढ़कर वह जमाअत में शामिल हो सकेगा, तो वह सुन्नतें पढ़ ले, भले ही उसे केवल अत्तहिय्यात (तशहुद) ही मिलने की उम्मीद हो। अन्यथा, वह फ़र्ज़ नमाज़ में

शामिल हो जाए। और यदि वह पहली सुन्नतों की क़ज़ा करना चाहता है, तो फ़र्ज़ के बाद सूरज निकलने से पहले यह जायज़ नहीं है, बल्कि सूरज ऊँचा चढ़ने के बाद ही संभव है। अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

पादलेख (Footnotes): 1. मराक़ी अल-फ़लाह मअ हाशिया अल-तहतावी, बाब इदरीक अल-फ़रीज़ा, मुद्रित नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृ. 249। 2. हाशिया अल-तहतावी अली मराक़ी अल-फ़लाह, बाब इदरीक अल-फ़रीज़ा, मुद्रित नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृ. 249।

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[Arabic Column] صلى الله تعالى عليه وسلم من كان يؤمن بالله واليوم الاخر فلا يقفن مواقف التهم فيقدي فيهما اى الظهر والعشاء متنفلًا لدفع التهمة عنه ، يكره جلوسه من غير اقتداء لمخالفة الجماعة بخلاف الصبح العصر والمغرب لكراهة النفل ، والمخالفة في المغرب 1 الى آخره قال العلامة الطحطاوى رحمة الله عليه في الحاشية المراقى قوله لكراهة النفل اى بعد الصبح العصر و في النهر ينبغى ان يجب خروجه لان كراهة مكثه بلاصلوة اشد 2 والله تعالى اعلم سبحنه اتم واحكم

[Urdu Column] جماعت کی مخالفت کی تہمت اس پر نہ لگے مثلاً خوارج اور شیعہ وغیرہ سے نہ کہا جائے۔ رسالتمآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جو شخص اللہ تعالیٰ اور آخرت پر ایمان رکھتا ہے وہ تہمت کے مقامات پر نہ کھڑا ہو لہٰذا وہ شخص ظہر و عشاء میں نفل کی نیت سے اقتداء کرے تاکہ اس پر تہمت نہ لگے۔ اور اقتداء نہ کرتے ہوئے بیٹھنا مکروہ ہے کیونکہ جماعت کی مخالفت ہے۔ بخلاف صبح، عصر اور مغرب کے کیونکہ یہاں نفل مکروہ ہیں، اور مغرب میں (امام) کی مخالفت لازم آئے گی الخ علامہ طحطاوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے حاشیہ المراقی میں کہا متن کا قول نفل مکروہ ہونے کی وجہ سے یعنی صبح اور عصر کے بعد ، نہر میں ہے کہ ان اوقات میں مسجد سے چلے جانا واجب ہے کیونکہ بغیر نماز کے وہاں ٹھہرنا یہ زیادہ ناپسند ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ سبحنہ اتم واحکم (ت)

مسئلہ ۱۱۸۹: از ریاست جادورہ مکان عبد المجید خاں صاحب سرشتہ دار ۱۳۲۵ھ فجر کی سنت وقت قائم ہو جانے جماعت کے کب تک ادا ہو جانا چاہئے اور جو رہ جاتی ہیں تو کیا بعد فرضوں کے بھی ادا کر سکتے ہیں یا نہیں؟

الجواب: اگر جانے کہ سنتیں پڑھ کر جماعت میں شریک ہو جاؤں گا تو سنتیں پڑھ لے اگر چہ التحیات ہی ملتی سمجھے ورنہ فرضوں میں شریک ہو جائے، اور اول سنتوں کو قضا کرنا چاہے تو بعد بلند یا آفتاب نکلے فرضوں کے بعد طلوع سے پہلے جائز نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

1 مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب ادراک الفریضہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۴۹ 2 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب ادراک الفریضہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۴۹

Volume Eight Fatawa Ridawiyya

Problem 1190: From Chaman Sarai, Sambhal, sent by Ahmad Khan Sahib, 8 Jumada al-Ula 1337 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: according to the Hanafi scholars of the Ahl-e-Sunnat wa Jama'at, should the Sunnah of Fajr be performed if the congregational obligatory (Fard) prayer has started, or not? Some say that if one is certain of catching even the Ruku' of the second unit (Rak'at) of the Fard prayer, then one should perform the Sunnah, otherwise perform it after sunrise. Some say that even joining in the final sitting (Qa'da Akhira) is sufficient, so perform the Sunnah first. Others say that as soon as the first Takbir (Takbir-e-Ula) of the Fard prayer is called, one should abandon the Sunnah, immediately join the Fard congregation, and then not perform the Sunnah prayer neither after the Salam while time remains nor after sunrise.

The Answer:

The third person's statement is purely false, and the first two statements are correct, of which the second is more accurate. If one sees that they can join the congregation even until the Tashahhud, they should perform the Fajr Sunnah away from the prayer rows and then join in. And one who understands that by performing the Sunnah, the congregation will be missed entirely, should not perform it at that time and should join the congregation; then he cannot pray the [Sunnah] prayer until the sun has risen high. If he prays before then, he will be a sinner. Yes, it is commendable (Mustahabb) to pray it after the sun has risen high. And Allah the Almighty knows best.

Page 139 of 673 I.T. Majlis of DawateIslami

जिल्द हशतुम (आठवां खंड) फ़तावा रज़विया

मसाला 1190: चमन सराय, संभल से, अहमद खां साहिब द्वारा प्रेषित, 8 जमादी अल-ऊला 1337 हिजरी।

धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: अहले सुन्नत व जमाअत के हनफ़ी विद्वानों के अनुसार, यदि फ़ज्र की सुन्नतें फ़र्ज़ जमाअत के साथ हो रही हों, तो उन्हें पढ़ना चाहिए या नहीं? कुछ लोग कहते हैं कि यदि फ़र्ज़ नमाज़ की दूसरी रकअत का रुकू मिलने का भी यकीन हो, तो सुन्नतें पढ़ ले, वरना सूरज निकलने के बाद अदा करे। कुछ का कहना है कि आखिरी कायदे (बैठक) में शामिल होना भी काफ़ी है, सुन्नत को पहले पढ़े। कुछ कहते हैं कि जैसे ही फ़र्ज़ों की तकबीर-ए-उला (पहली तकबीर) हो, सुन्नत छोड़ दे और तुरंत फ़र्ज़ों में शामिल हो जाए, और फिर नमाज़-ए-सुन्नत न सलाम के बाद पढ़े जबकि वक़्त बाकी हो, और न ही सूर्योदय के बाद।

उत्तर (अल-जवाब):

तीसरे व्यक्ति का कथन सरासर ग़लत है, और पहले दो कथन सही हैं जिनमें से दूसरा अधिक सही (असह्) है। यदि कोई देखे कि वह तशहुद तक भी जमाअत में शामिल हो सकता है, तो फ़ज्र की सुन्नतें सफ़ (पंक्ति) से दूर अदा करके जमाअत में शामिल हो जाए। और जो यह समझता है कि सुन्नतें पढ़ने से जमाअत पूरी तरह छूट जाएगी, तो वह उस समय सुन्नत न पढ़े और जमाअत में शामिल हो जाए; फिर वह तब तक [सुन्नत] नमाज़ नहीं पढ़ सकता जब तक सूरज ऊँचा न हो जाए। यदि वह उससे पहले पढ़ेगा, तो गुनहगार होगा। हाँ, सूरज ऊँचा होने के बाद पढ़ना मुस्तहब (पसंदीदा) है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

पेज 139 का 673 I.T. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مسئلہ ۱۱۹۰: از چمن سرائے سنبھل مرسلہ احمد خاں صاحب ۸ جمادی الاولیٰ ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نزدیک علمائے حنفیہ اہلسنت وجماعت کے صبح کی سنت اگر فرض جماعت سے ہوتے ہوں تو پڑھے یا نہیں؟ بعض یہ کہتے ہیں کہ اگر فرض نماز کی دوسری رکعت کا رکوع بھی مل جانے کا یقین ہو تو سنتیں پڑھ لے ورنہ سورج نکلنے پر ادا کرے، بعض کا قول ہے قاعدہ اخیرہ کی شرکت بھی کافی ہے سنت کو پہلے پڑھے، بعض کہتے ہیں کہ جس وقت تکبیر اولیٰ فرضوں کی ہو ترک سنت کرے فرضوں میں فوراً شریک ہو جائے اور پھر نماز سنت نہ بعد سلام پڑھے وقت ہونے پر نہ بعد طلوعِ آفتاب۔

الجواب:

تیسرے شخص کا قول محض باطل ہے اور پہلے دو قول صحیح ہیں اور ان میں دوسرا اصح ہے اگر تشہد تک بھی جماعت میں ملنا دیکھے تو صبح کی سنتیں صف سے دور ادا کر کے شامل ہو جائے، اور جو یہ سمجھتا ہے کہ سنتیں پڑھنے میں جماعت بالکل فوت ہو جائے گی تو اس وقت نہ پڑھے اور جماعت میں شریک ہو جائے پھر فرض نہیں پڑھ سکتا جب تک آفتاب بلند نہ ہوا اگر پڑھے گا گنہ گار ہوگا، ہاں بعد بلندی پڑھے تو مستحب ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

Chapter on Making up Missed Prayers (Explanation of making up missed prayers)

Problem 1191: 28 Muharram 1308 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: A person skipped the Sunnah prayers of Fajr for fear of missing the congregational prayer and joined the congregation. Should he now perform those Sunnah prayers after the obligatory (Fard) prayer before sunrise or after? Explain, and may you be rewarded.

The Answer: Once he has performed the obligatory Fajr prayer, he must never perform the Sunnah prayers before the sun has risen high. All our Imams (may Allah be pleased with them) are in consensus on this. Rather, if he is to perform them, he should do so after the sun has risen high but before noon; neither after that nor before it. It is stated in Radd al-Muhtar:

(Arabic Text)

If they (the Fajr Sunnahs) are missed alone, they are not made up before sunrise by consensus, due to the dislike of voluntary (nafl) prayers after Subh (Fajr). As for after sunrise, it is likewise according to the two Shaikhs (Abu Hanifa and Abu Yusuf). Imam Muhammad said: 'It is dearer to me that he makes them up until the sun passes its zenith (zawal), as mentioned in al-Durar'.

(Translation)

When the Sunnahs of Fajr are missed on their own, by consensus they should not be performed before sunrise because voluntary prayers after the Fajr prayer are disliked. As for the matter after sunrise, according to the Two Shaikhs, there is no making up (qada), and Imam Muhammad stated that making up the Sunnahs until the sun's zenith (zawal) is preferable in my view, as is in Durar. (T)

^1 Radd al-Muhtar, Chapter on Attaining the Obligatory Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/530.

फतावा रज़विया जिल्द 8

बाब कज़ा-ए-फवाइत (फौत शुदा नमाज़ों की कज़ा का बयान)

मसला 1191: 28 मुहर्रम 1308 हिजरी क्या फरमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक शख्स ने जमात के फौत होने के डर से सुन्नतें फज्र की तर्क कीं और जमात में शामिल हो गया। अब वह उन सुन्नतों को फर्ज़ों के बाद सूरज निकलने से पहले पढ़े या बाद? बय्यान फरमाएं सवाब पायें।

अल-जवाब: जब वह फज्र के फर्ज़ पढ़ चुका, तो सुन्नतें सूरज बुलंद होने से पहले हरगिज़ न पढ़े। हमारे तमाम अईम्मा (अल्लाह उन सब से राज़ी हो) का इस पर इज्मा (सहमति) है। बल्कि पढ़े तो सूरज बुलंद होने के बाद दोपहर से पहले पढ़ ले, न उसके बाद पढ़े न उससे पहले। रद-अल-मुह्तार में है:

(अरबी इबारत)

यदि (फज्र की सुन्नतें) अकेले छूट जाएँ तो सर्वसम्मति से सूर्योदय से पहले उनकी कज़ा नहीं की जाएगी, क्योंकि सुबह (फज्र) के बाद नफ़्ल नमाज़ों की मनाही है। जहाँ तक सूर्योदय के बाद की बात है, तो दो शेखों (इमाम अबू हनीफा और इमाम अबू यूसुफ) के अनुसार भी यही स्थिति है। इमाम मुहम्मद ने कहा: 'मेरे नज़दीक यह अधिक प्रिय है कि वह सूरज ढलने (ज़वाल) तक उनकी कज़ा कर ले, जैसा कि दुरर में है'।

(तर्जुमा)

जब फज्र की सुन्नतें तन्हा फौत हो जाएं तो बिल-इत्तेफाक तुलू-ए-आफताब (सूर्योदय) से पहले अदा न की जाएं क्योंकि नमाज़े फज्र के बाद नवाफिल मकरूह हैं। रहा मामला सूरज निकलने के बाद का, तो शैखैन के नज़दीक कज़ा नहीं, और इमाम मुहम्मद ने फ़रमाया कि ज़वाल तक सुन्नतें कज़ा कर लेना मेरे नज़दीक पसंदीदा है जैसा कि दुरर में है। (त)

^1 रद-अल-मुह्तार, बाब इदराक अल-फरीज़ा, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/530.

पृष्ठ 141 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

باب قضاء الفوائت (فوت شدہ نمازوں کی قضاء کا بیان)

مسئلہ ۱۱۹۱: ۲۸ محرم ۱۳۰۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے فوتِ جماعت کے خوف سے سنتیں فجر کی ترک کیں اور جماعت میں شامل ہو گیا اب وہ ان سنتوں کو فرضوں کے بعد سورج نکلنے سے پیشتر پڑھے یا بعد؟ بینوا توجروا

الجواب: جبکہ فرض فجر پڑھ چکا تو سنتیں سورج بلند ہونے سے پہلے ہرگز نہ پڑھے، ہمارے سب ائمہ رضی اللہ تعالٰی عنہم کا اس پر اجماع ہے بلکہ پڑھے تو سورج بلند ہونے کے بعد دوپہر سے پہلے پڑھ لے، نہ اس کے بعد پڑھے نہ اس سے پہلے۔ ردالمختار میں ہے:

(عربی عبارت)

اذا فاتت وحدها فلا تقضى قبل طلوع الشمس بالإجماع الكراهة النفل بعدا لصبح واما بعد طلوع الشمس فكذلك عندهما، وقال محمد احب الى ان يقضيهما الى زوال كما فى الدرر

(ترجمہ)

جب فجر کی سنتیں تنہا فوت ہو جائیں تو بالا تفاق طلوع آفتاب سے پہلے ادا نہ کی جائیں کیونکہ نماز فجر کے بعد نوافل مکروہ ہیں، رہا معاملہ طلوع فجر کے بعد کا، تو شیخین کے نزدیک قضا نہیں، اور امام محمد نے فرمایا کہ زوال تک سنتیں قضا کر لینا میرے نزدیک پسندیدہ ہیں جیسا کہ درر میں ہے۔ (ت)

۱۸ رد المحتار باب ادراك الفريضہ مطبوعہ مصطفٰی البابی مصر ۱/۵۳۰

fatawa-e-razviya Volume 8

And the thought that intentionally delaying their makeup (qadha) arises from ignorance; these sunnahs, when not prayed before the obligatory (fardh) prayers, become missed (qadha) themselves, because their time was to be prayed before the fardh prayers. Now, if one prays them after the fardh but before sunrise, they will still be qadha and will never be [considered current (ada)]. Have you not seen his words: 'By consensus, they are not to be made up before sunrise, for he named their performance after the fardh and before sunrise as qadha.' (T: Have you not seen these words of his that by consensus, sunnahs should not be made up before sunrise; thus they named their performance after the fardh and before sunrise as qadha). But performing qadha before sunrise is like praying optional prayers (nawafil) after the Fajr fardh, which is not permissible. Therefore, our Imams forbade it, and after sunrise that hardship no longer remains, so they permitted it. And Allah Almighty knows best.

Problem 1192: From Calcutta Tarnub via Wellesley Street Post Office, 6, sent by Rashid Ahmad Khan, 16 Jamadi al-Akhira 1309 AH.

Respected Maulvi Sahab, after greetings, I submit that if Zaid regularly prays, but from January 1st to 15th his prayers were missed. From the 16th he started praying again and also started making up the missed ones in order until the 20th. He continued praying regularly, then five days' prayers were missed again. Starting from the 25th, how should he perform the qadha? That is, in sequence like January 1st morning, then Dhuhr, Maghrib, and Isha, or similarly as he had gradually performed them for the 15th over a few days? Now that he has already prayed those from the 15th to the 20th, should he make up the qadha from the 20th to 25th in the same way, or what is the ruling? Rest is greetings!

Answer: Peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. Sequence (tartib) was not mandatory for Zaid in those 15 days of missed prayers, nor is it mandatory in these five days of missed prayers. He has the choice to perform whichever prayer he wants first and whichever he wants later, because when missed prayers exceed five obligatory ones, the requirement for sequence (tartib) is dropped. This means he has the choice to prioritize or delay any of them among themselves, and there is also no need to maintain sequence between them and the current (waqti) prayer. Furthermore, for these prayers, sequence – neither among themselves nor with respect to the current prayer – never returns, even if through

performing them the number remaining falls below six. For example, in this case, Zaid has twenty-five prayers of five days; even when only two remain, he still has the choice to pray the current prayer before making them up. Yes, according to the more correct (asahh) position, it is necessary to specify the prayer in the intention (niyyah). This is the more cautious (ahwat) of the two corrections. (T: Between the two corrections, this is more cautious). For instance, if ten Fajr prayers are missed, do not make a vague intention like 'Fajr prayer,' because it's not just one Fajr on him for which that would suffice; rather, he should specify, 'the Fajr of such and such date.' However, since it is difficult to remember dates and doing so would involve hardship, an easy method is this intention: 'the first Fajr prayer that is due on me.' When he has prayed one, he should again intend for the 'first Fajr,' as he has prayed one and its makeup is no longer due on him, and a new one has now become the 'first' among the remaining. Thus he should continue the intention until the end. Similarly for all other prayers.

और यह विचार कि इसमें जानबूझकर कज़ा का समय कर देना अज्ञानता से उपजा है; ये सुन्नतें जब फ़र्ज़ों से पहले नहीं पढ़ी गईं, तो वे स्वयं ही कज़ा हो गईं, क्योंकि उनका समय यही था कि उन्हें फ़र्ज़ों से पहले पढ़ा जाए। अब यदि कोई फ़र्ज़ों के बाद और सूर्य निकलने से पहले उन्हें पढ़ेगा, तो भी वे कज़ा ही होंगी और कभी [अदा] नहीं होंगी। क्या आपने उनके ये शब्द नहीं देखे: 'सर्वसम्मति से, उन्हें सूर्योदय से पहले कज़ा नहीं किया जाएगा, क्योंकि उन्होंने फ़र्ज़ के बाद और सूर्योदय से पहले उनके प्रदर्शन को कज़ा का नाम दिया है।' (त: क्या आपने उनके ये शब्द नहीं देखे कि सर्वसम्मति से सूर्योदय से पहले सुन्नतें कज़ा न की जाएं तो उन्होंने फ़र्ज़ के बाद और सूर्योदय से पहले उनकी अदायगी को कज़ा का नाम दिया है।) लेकिन सूर्योदय से पहले कज़ा करना फ़ज्र के फ़र्ज़ के बाद नवाफ़िल पढ़ना है और यह जायज़ नहीं है। इसलिए हमारे इमामों ने इससे मना फ़रमाया है और सूर्योदय के बाद वह हर्ज नहीं रहा, इसलिए अनुमति दी है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला ११९२: कलकत्ता तारनब, वेलेस्ली स्ट्रीट डाकघर ६ के माध्यम से, प्रेषक: रशीद अहमद खान, १६ जमादी अल-आख़िरा १३०९ हिजरी।

जनाब मौलवी साहब, आदाब के बाद अर्ज़ है कि यदि ज़ैद नियमित रूप से नमाज़ पढ़ता है, लेकिन १ जनवरी से १५ जनवरी तक उसकी नमाज़ें कज़ा हो गईं। १६ तारीख से उसने फिर से नमाज़ शुरू की और कज़ा नमाज़ों को भी क्रमवार अदा करने लगा २० तारीख तक। वह नियमित नमाज़ पढ़ता रहा, फिर पाँच दिनों की नमाज़ें फिर से कज़ा हो गईं। २५ तारीख से शुरू करते हुए वह कज़ा कैसे अदा करे? यानी १ जनवरी की सुबह, फिर ज़ुहर, मग़रिब और ईशा के क्रम में, या उसी तरह जैसे उसने १५ तारीख तक की नमाज़ें कुछ दिनों में धीरे-धीरे अदा की थीं? अब जबकि वह १५ से २० तारीख तक की नमाज़ें पहले ही पढ़ चुका है, तो क्या वह २० से २५ तारीख तक की कज़ा उसी तरह अदा करे या क्या हुक्म है? बाक़ी आदाब!

उत्तर: अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाही व बरकातुहु। ज़ैद पर न तो उन १५ दिनों की कज़ा में तरतीब (क्रम) ज़रूरी थी और न ही इन पाँच दिनों की कज़ा में ज़रूरी है। उसे विकल्प है कि इनमें से जो नमाज़ चाहे पहले पढ़े और जो चाहे बाद में, क्योंकि जब कज़ा नमाज़ें पाँच फ़र्ज़ों से अधिक हो जाती हैं, तो तरतीब साक़ित (समाप्त) हो जाती है। इसका अर्थ है कि उनके बीच भी किसी को पहले या बाद में पढ़ने का विकल्प होता है, और उनके और वक़्ती (सामयिक) नमाज़ के बीच भी तरतीब का

पालन करने की आवश्यकता नहीं रहती। फिर इन नमाज़ों के लिए तरतीब - न तो आपस में और न ही वक़्ती के लिहाज़ से - कभी वापस नहीं आती, भले ही उन्हें अदा करते-करते उनकी संख्या छह से कम रह जाए। उदाहरण के लिए, इस स्थिति में ज़ैद पर पाँच दिनों की पच्चीस नमाज़ें हैं; जब केवल दो ही रह जाएँगी, तब भी उसे विकल्प है कि वह उनकी कज़ा से पहले वक़्ती नमाज़ पढ़ ले। हाँ, अधिक सही (असह) मत के अनुसार, नियत में नमाज़ का निर्दिष्ट होना ज़रूरी है। दोनों तस्हीहों (सुधारों) में यही अधिक एहतियात (अहवत) वाला है। (त: दोनों तस्हीहों में अहवत यह है।) उदाहरण के लिए, यदि दस फ़ज्र कज़ा हैं, तो ऐसी गोल नियत न करे कि 'फ़ज्र की नमाज़,' क्योंकि उस पर केवल एक फ़ज्र तो नहीं है जो इसी क़दर बस हो, बल्कि निर्धारण करे कि 'फ़लाँ तारीख की फ़ज्र।' लेकिन यह कैसे याद रहता है, और यदि हो भी तो इसका विचार हर्ज (कठिनाई) से खाली नहीं है, इसलिए इसका आसान उपाय यह नियत है: 'पहली फ़ज्र नमाज़ जो मुझ पर कज़ा है।' जब एक पढ़ ले, तो फिर इसी तरह 'पहली फ़ज्र' की नियत करे क्योंकि एक उसने पढ़ ली है और उसकी कज़ा अब उस पर नहीं रही, और अब शेष में से एक नई 'पहली' हो गई है। इसी तरह अंत तक नियत की जाए, और यही तरीका बाकी सभी नमाज़ों के लिए भी अपनाया जाए।

पृष्ठ १४२/६७३

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اور یہ خیال کہ اس میں قصداً وقت قضا کر دینا ناوافقی سے ناشی ، یہ سنتیں جب فرضوں سے پہلے نہ پڑھی گئیں خود ہی قضاء ہوگئیں کہ ان کا وقت یہی تھا کہ فرضوں سے پیشتر پڑھی جائیں، اب اگر فرضوں کے بعد سورج نکلنے سے پیشتر پڑھے گا جب بھی قضا ہی ہوں گی اور ہر گز نہ ہوں گی الا تری الی قولہ لا تقضی قبل طلوع الشمس بالاجماع فقد سمی صلوتھا قبل الطلوع بعد الفرض قضاء (کیا آپ نے ان کے یہ الفاظ نہیں دیکھے کہ بالاتفاق طلوع آفتاب سے پہلے سنتیں قضا نہ کی جائیں تو انھوں نے فرائض کے بعد طلوع سے پہلے ان کی ادائیگی کو قضا کا نام دیا ہے۔ت) لیکن طلوع سے پہلے قضا کرنے میں فرض فجر کے بعد نوافل کا پڑھنا ہے اور جائز نہیں، لہذا ہمارے اماموں نے اس سے منع فرمایا اور بعد طلوع وہ حرج نہ رہا لہذا اجازت دی واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۱۹۲: از کلکتہ ٹارنب براہ ڈاکخانہ ویلزلی اسٹریٹ ۶ مرسلہ رشید احمد خاں ۱۶ جمادی الاخریٰ ۱۳۰۹ھ

جناب مولوی صاحب بعد آداب کے عرض خدمت میں یہ ہے کہ اگر زید برابر نماز پڑھتا ہے لیکن یکم جنوری سے ۱۵ تک قضا ہوگئی ۱۶ سے پھر پڑھی اور قضا بھی ترتیب وار ادا کرنے لگا ۲۰ تک۔ برابر پڑھتا رہا پھر پانچ روز کی قضا ہوگئیں ۲۵ سے شروع کی تو قضا کس طرح ادا کرے یعنی ترتیب وار جیسی یکم جنوری کی صبح پھر ظہر و مغرب و عشا پھر یا ایسے ہی ۱۵ تاریخ تک رفتہ رفتہ دو چار یوم میں ادا کرچکا اب ۱۵ سے ۲۰ تک تو پہلے ہی پڑھ چکا ہے ۲۰ سے ۲۵ تک کے قضا پھر اسی طور پر ادا کرے یا کیا حکم ہے؟ باقی آداب!

الجواب: السلام علیکم و رحمتہ اللہ و برکاتہ، زید پر نہ ان ۱۵ دن کی قضا میں ترتیب ضرور تھی نہ ان پانچ دن کی قضا میں ضرور ہے اسے اختیار ہے ان میں جو نماز چاہے پہلے ادا کرے جو چاہے پیچھے کہ قضا نمازیں جب پانچ فرضوں سے زائد ہو جاتی ہیں ترتیب ساقط ہو جاتی ہے یعنی باہم ان میں بھی ہر ایک کی تقدیم و تاخیر کا اختیار ہوتا ہے اور ان میں اور وقتی نماز میں بھی رعایت ترتیب کی حاجت نہیں رہتی پھر ان نمازوں کے حق میں ترتیب نہ باہمی نہ بلحاظ وقتی کبھی عود نہیں کرتی اگرچہ ادا کرتے کرتے چھ سے کم رہ جائیں مثلاً اب اسی صورت میں زید پر پانچ دن کی پچیس نمازیں ہیں جب دو ہی رہ جائیں گی تو بھی اسے اختیار ہے کہ اس کی ادا سے پہلے وقتیہ نماز پڑھ لے، ہاں اصح مذہب پر اتنا لحاظ ضرور ہے کہ نماز نیت میں معین مشخص ہو جائے ھوا لاحوط من تصحیحین (دونوں تصحیحوں میں احوط یہ ہے۔ت) مثلاً دس فجریں قضا ہیں تو یوں گول نیت نہ کرے کہ فجر کی نماز کہ اس پر ایک فجر تو نہیں جو اسی قدر بس ہو بلکہ تعین کرے کہ فلاں تاریخ کی فجر، مگر یہ کیسے یاد رہتا ہے اور ہو بھی تو اس کا خیال حرج سے خالی نہیں لہذا اس کی سہل تدبیر یہ نیت ہے کہ پہلی فجر جس کی قضا مجھ پر ہے، جب ایک پڑھ چکے پھر یوں ہی پہلی فجر کی نیت کرے کہ ایک تو پڑھ لی اس کی قضا اس پر نہ رہی نو آئی ہے اب ان میں کی پہلی نیت میں آئے گی یونہی اخیر تک نیت کی جائے، اسی طرح باقی سب نمازوں

Fatawa Rizvia, Volume 8

...can say 'the last one' instead of 'the first one' for someone whose sequence (tartib) has been dropped, for instance, ten or six missed (qada) Fajr prayers. They will be fulfilled from bottom to top. It is mentioned in 'Radd al-Muhtar':

"The sequence is not obligatory between the missed prayers and the current prayer, nor among the missed prayers themselves when the missed prayers reach six. This is mentioned in 'An-Nahr'."

In 'Durr-e-Mukhtar' it is stated:

"The obligation of sequence does not return after it has dropped due to their abundance. That is, if the missed prayers were many and most of them were made up, and only a few remained, then according to the reliable opinion, the sequence does not return because what has dropped does not return."

In the same book, it is stated:

"According to the reliable opinion, one should specify the Zuhr of such-and-such day; however, the easiest way is to intend 'the first Zuhr' or 'the last Zuhr' etc. Complete details are in 'Radd al-Muhtar'. And Allah the Almighty knows best."

Issue 1193: 29 Safar 1311 AH What do the scholars of religion and the Muftis of the clear Shariah say regarding this issue: Should a 'masbuq' (one who joined the congregation late) perform the Sunnahs of Fajr after the congregational Fard prayer? Is it correct or not? Elaborate and be rewarded.

The Answer: Fajr Sunnahs that were missed alone, i.e., the Fard was prayed and the Sunnahs remained, if one makes them up, it should be after the sun has risen high.

---

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Making up Missed Prayers, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/538 2 Durr-e-Mukhtar, Chapter on Making up Missed Prayers, published by Mujtabai, Delhi, 1/101 3 Durr-e-Mukhtar, Chapter on Conditions of Prayer, published by Mujtabai, Delhi, 1/76 Page 143 of 673

फ़तावा रिज़विया, जिल्द आठवीं

...में कहे और जिससे तरतीब (क्रम) साक़ित (ख़त्म) हो जाए, जैसे यही दस या छह फ़ज्र की क़ज़ा वाला पहली की जगह पिछली भी कह सकता है, नीचे से ऊपर की ओर अदा होती चली जाएगी, 'रद-अल-मुह्तार' में है:

"फौत (छूटी हुई) नमाज़ों और वक्ती (समय की) नमाज़ के बीच तरतीब लाज़िम नहीं है और न ही फौत नमाज़ों के आपस में, जब फौत नमाज़ें छह हो जाएं। जैसा कि 'अल-नहर' में है।"

'दुर्रे मुख्तार' में है:

"अक्सर नमाज़ों के छूट जाने पर तरतीब का लाज़िम होना साक़ित होने के बाद वापस नहीं आता, यानी अगर फौत नमाज़ें ज़्यादा थीं और उनमें से अक्सर क़ज़ा कर लीं और बाकी थोड़ी रह गईं तो मोअतमाद (विश्वसनीय) कौल के अनुसार तरतीब लौट कर नहीं आती, क्योंकि जो साक़ित हो गया वो लौटता नहीं।"

इसी में है:

"मोअतमाद कौल के मुताबिक इस बात का तअय्युन (निर्धारण) किया जाए कि फलां दिन की ज़ुहर है, और सबसे आसान ये है कि अव्वल (पहली) ज़ुहर या आख़िरी ज़ुहर की नियत कर ली जाए। इसकी पूरी तफ़सील (विवरण) 'रद-अल-मुह्तार' में है। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह बेहतर जानता है)।"

मसला 1193: 29 सफ़र 1311 हिजरी दीन के उलेमा और शराह-ए-मतीन के मुफ्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि फ़ज्र की सुन्नतें जमाअत के फ़र्ज़ के बाद मसबूक (बाद में शामिल होने वाला) अदा करे, दुरुस्त है या नहीं? बयान कीजिए और सवाब पाइए।

अल-जवाब: सुन्नत-ए-फ़ज्र जो तन्हा फ़ौत हुई हो, यानी फ़र्ज़ पढ़ लिए और सुन्नतें रह गईं, उनकी क़ज़ा करे तो सूरज के ऊँचा होने (बुलंदी-ए-आफ़ताब) के बाद।

---

1 रद-अल-मुह्तार, बाब कज़ा-अल-फवाइत, मतबुआ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/538 2 दुर्रे मुख्तार, बाब कज़ा-अल-फवाइत, मतबुआ मुज्तबाई दिल्ली, 1/101 3 दुर्रे मुख्तार, बाब शरुत-अस-सलात, मतबुआ मुज्तबाई दिल्ली, 1/76 पृष्ठ 143 / 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

میں کہے اور جس سے ترتیب ساقط ہو، جیسے یہی دس یا چھ فجر کی قضا والا پہلی کی جگہ پچھلی بھی کہہ سکتا ہے نیچے سے اوپر کو ادا ہوتی چلی جائے گی، ردالمختار میں ہے :

لا یلزم الترتیب بین الفائتۃ والوقتیۃ ولابین الفوائت اذا کانت الفوائت ستا کذا فی النھر۔ جب فوت شدہ نمازیں چھ ہو جائیں تو فوت شدہ نمازوں کے درمیان اور فوت شدہ اور وقتی نمازوں کے درمیان ترتیب لازم نہیں رہتی، جیسا کہ نہر میں ہے (ت)

در مختار میں ہے:

ولایعود لزوم الترتیب بعد سقوطہ بکثرتھا ، ای الفوائت بعود الفوائت الی القلۃ بسبب القضاء لبعضھا علی المعتمد، لان الساقط لایعود۔ اکثر فوت شدہ نمازوں کو قضا کر لینے پر ترتیب لوٹ نہیں آتی یعنی اگر فوت شدہ نمازیں کثیر تھیں ان میں سے اکثر قضا کرلیں اور باقی تھوڑی رہ گئیں تو معتمد قول کے مطابق ترتیب نہیں لوٹتی، کیونکہ ساقط لوٹ کر نہیں آتا۔ (ت)

اسی میں ہے:

یعین ظھر یوم کذا علی المعتمد والا سھل نیتہ اول ظھر علیہ اواخر ظھر الخ وتمامہ فی رد المحتار۔ واللہ تعالی اعلم ۔ معتمد قول کے مطابق اس بات کا تعین کیا جائے کہ فلاں دن کی ظہر ہے، اور سب سے آسان یہ ہے کہ اول ظہر یا آخر ظہر کی نیت کر لی جائے ۔ اس کی تمام تفصیل ردالمختار میں ہے۔ واللہ تعالی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۹۳: ۲۹ صفر ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ فجر کی سنتیں بعد جماعت فرض کے مسبوق ادا کرے ، درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: سنت فجر کہ تنہا فوت ہوئیں یعنی فرض پڑھ لئے سنتیں رہ گئیں ان کی قضا کرے تو بعد بلندی آفتاب

---

1 ردالمحتار باب قضاء الفوائت مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۳۸ 2 در مختار باب قضاء الفوائت مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/۱۰۱ 3 در مختار باب شروط الصلوۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/۷۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

...make up for missed prayers before the legal midday; according to our eminent Imams, performing them before sunrise is forbidden and disliked.

| For the saying of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): 'There is no prayer after the morning prayer until the sun rises.' - And Allah Subhanahu wa Ta'ala knows best, and His knowledge is most complete and most perfect. (T) | The blessed command of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) is: "There is no prayer after dawn until the sun rises." And Allah Subhanahu wa Ta'ala knows best, and His knowledge is most complete and most perfect. (T) |

Issue 1194: What do the scholars of religion and jurists of the clear Shari'ah say regarding this issue: Zaid says that it is permissible to perform the missed morning prayer during the sermon (Khutbah), while Amr says it is not permissible during the sermon because it is mentioned in the Hadith: 'La salata wa la kalama' (At that time there is neither prayer nor talk. T). Which of them is on the right path and who is acting according to the Hadith? Explain and you will be rewarded.

The Answer: For one who is not a 'Sahib-e-Tarteeb' (one who has not missed more than five consecutive prayers), it is not permissible to perform even a missed prayer during the time of the Khutbah, as he can pray it later. However, for a 'Sahib-e-Tarteeb', it is necessary to perform the missed prayer before the current prayer, otherwise, the current prayer will also not be valid. If such a person has not yet performed the missed Fajr prayer and the Khutbah has started, then it is not prohibited for him to pray the missed one; rather, it is necessary and obligatory, otherwise his Friday prayer (Jumu'ah) will also not be valid. Yes, delaying it without a legal excuse such that it must be performed exactly during the Khutbah is not permissible even for him.

| Because it leads to the abandonment of listening to the Khutbah, which in itself is forbidden, and anything that leads to something forbidden is itself forbidden. (T) | Because it necessitates not listening to the sermon, which is prohibited in itself, and everything that leads to a prohibited thing is itself prohibited. (T) |

It is stated in Durr al-Mukhtar:

| When the Imam comes out (for Jumu'ah), there is neither prayer nor talk until its completion, except for a missed prayer for which the sequence (Tarteeb) between it

and the current prayer has not lapsed, for it is not disliked. (T) | When the Imam for Jumu'ah comes, there is neither prayer nor talk until the completion of Jumu'ah. However, the makeup of a missed prayer is not disliked because the order between the missed and the current prayer had not lapsed. (T) |

1. Sahih al-Bukhari, Kitab Mawaqit as-Salat, Bab La Tataharra as-Salata Qabla Ghurub ash-Shams, Published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/82 and 83.
2. Durr al-Mukhtar, Bab al-Jumu'ah, Published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/113.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

...शरीअत के आधे दिन से पहले कर ले, हमारे अइम्मा-ए-किराम के नज़दीक सूरज निकलने से पहले उनकी क़ज़ा मना और मकरूह है।

| रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के इस कौल की वजह से: 'सुबह के बाद सूरज के बुलन्द होने तक नमाज़ नहीं।' - और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म सबसे कामिल और सबसे मुस्तहकम है। (त) | रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) का फ़रमान-ए-मुबारक है: "सुबह के बाद सूरज के बुलन्द होने तक नमाज़ नहीं।" और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म सबसे कामिल और सबसे मुस्तहकम है। (त) |

मसला 1194: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ-ए-मतीन इस मसले में कि ज़ैद कहता है कि सुबह की नमाज़ ख़ुत्बे के वक़्त पढ़नी जायज़ है, और अम्र कहता है कि ख़ुत्बे के वक़्त जायज़ नहीं क्योंकि हदीस शरीफ़ में वारिद है "ला सलात वला कलाम" (उस वक़्त न नमाज़ है न गुफ़्तगू। त)। इन दोनों में कौन हक़ पर है और कौन हदीस शरीफ़ के मुताबिक़ अमल करता है? बयान करें, सवाब पाएँ।

अल-जवाब: जो साहिब-ए-तर्तीब नहीं है, उसके लिए ख़ुत्बे के वक़्त क़ज़ा नमाज़ पढ़ना भी जायज़ नहीं क्योंकि वह बाद में भी पढ़ सकता है। लेकिन साहिब-ए-तर्तीब के लिए वक़्ती नमाज़ से पहले क़ज़ा अदा करना ज़रूरी है, वरना वक़्ती भी नहीं होगी। ऐसे शख़्स ने अगर अभी फ़ज्र की क़ज़ा अदा नहीं की और ख़ुत्बा शुरू हो गया, तो उसे क़ज़ा पढ़ने से मुमानअत (मनाही) नहीं बल्कि ज़रूरी और लाज़िम है, वरना जुमा भी नहीं होगा। हाँ, बिना किसी शरी उज़्र के इतनी देर करना कि ख़ास ख़ुत्बे के वक़्त पढ़नी पड़े, यह उसके लिए भी जायज़ नहीं।

| क्योंकि इसमें ख़ुत्बा न सुनना लाज़िम आ रहा है जो अपने आप में मना है, और हर वह चीज़ जो मना की हुई चीज़ तक पहुँचाए, वह भी मना होती है। (त) | क्योंकि इसमें ख़ुत्बे का अदम-ए-समाअ (न सुनना) लाज़िम आ रहा है जो फ़ी नफ़्सिही ममनूअ (मना) है और हर वो चीज़ जो ममनूअ तक पहुँचाए ममनूअ होती है। (त) |

दर्रे मुख़्तार में है:

| जब इमाम (जुमा के लिए) आ जाए तो जुमा मुकम्मल होने तक न नमाज़ है न कलाम, सिवाए उस फ़ौत शुदा नमाज़ की क़ज़ा के जिसके और वक़्ती नमाज़ के दरमियान तर्तीब साक़ित नहीं हुई थी, क्योंकि वह मकरूह नहीं है। (त) | जब इमाम-ए-जुमा आ जाए तो इत्माम-ए-जुमा तक न नमाज़ है न कलाम, अलबत्ता फ़ौत शुदा नमाज़ की क़ज़ा मकरूह नहीं क्योंकि फ़ौत शुदा और वक़्ती नमाज़ के दरमियान तर्तीब साक़ित नहीं हुई थी। (त) |

1. सहीह अल-बुख़ारी, किताब मवाक़ीत अस-सलात, बाब ला ततहर्रा अस-सलाता क़बला ग़ुरूब अश्शम्स, मतबुआ क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/82 और 83।
2. दर्रे मुख़्तार, बाब अल-जुमुआ, मतबुआ मतबा-ए-मुज्तबाई देहली, 1/113।

पृष्ठ 144 / 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

پیش از نصف النہار شرعی کرے، طلوع شمس سے پہلے ان کی قضا ہمارے ائمہ کرام کے نزدیک ممنوع و مکروہ ہے۔

| لقول رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم لاصلاۃ بعد الصبح حتی ترتفع الشمس - واللہ سبحانہ وتعالی اعلم وعلمہ اتم واحکم - (ت) | رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کا فرمان مبارک ہے "صبح کے بعد سورج کے بلند ہونے تک نماز نہیں" واللہ سبحانہ وتعالی اعلم وعلمہ اتم و احکم ۔ (ت) |

مسئلہ ۱۱۹۴: کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ زید کہتا ہے کہ صبح کی نماز بوقتِ خطبہ کہی جائز ہے، اور عمر و کہتا ہے بوقتِ خطبہ کے جائز نہیں اس واسطے کہ حدیث شریف میں وارد ہے لا صلوٰۃ ولا کلام (اس وقت نہ نماز ہے نہ گفتگو۔ت) ان دونوں میں کون حق پر ہے اور کون مطابق حدیث شریف کے عمل کرتا ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: جو صاحبِ ترتیب نہیں اسے قضا نماز بھی خطبہ کے وقت ادا کرنی جائز نہیں کہ بعد کو بھی پڑھ سکتا ہے اور صاحبِ ترتیب کو وقتی نماز سے پہلے قضا ادا کرنا ضرور، ورنہ وقتی بھی نہ ہوگی، ایسے شخص نے اگر ابھی قضائے فجر ادا نہ کی اور خطبہ شروع ہو گیا تو اسے قضا پڑھنے سے ممانعت نہیں بلکہ ضرور ولازم ہے ورنہ جمعہ بھی نہ ہوگا، ہاں بلاعذر شرعی اتنی دیر لگانی کہ خاص خطبہ کے وقت پڑھنی پڑے اسے بھی جائز نہیں۔

| لتادیه الی ترك الاستماع وھو فی نفسہ محظور وکل ما ادی الی محظور محظور۔ | کیونکہ اس میں خطبہ کا عدم سماع لازم آرہا ہے جو فی نفسہ ممنوع ہے اور ہر وہ شیئ جو ممنوع تک پہنچائے ممنوع ہوتی ہے۔ (ت) |

در مختار میں ہے:

| اذا اخرج الامام فلا صلٰوۃ ولا کلام الی تمامہا خلا قضا فائتۃ لم یسقط الترتیب بینہا وبین الوقتیۃ فانہا لا تکرہ 2 ۔ | جب امام جمعہ آجائے تو اتمامِ جمعہ تک نہ نماز ہے نہ کلام، البتہ فوت شدہ نماز کی قضا مکروہ نہیں کیونکہ فوت شدہ اور وقتی نماز کے درمیان ترتیب ساقط نہیں ہوئی تھی۔ (ت) |

1 صحیح البخاری کتاب مواقیت الصلوۃ باب لا تتحری الصلوۃ قبل غروب الشمس مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۸۲ و ۸۳ 2 درمختار ، باب الجمعہ ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۳

Fatawa Ridawiyyah - Volume 8

It is stated in Siraj etc.: [It is] for the necessity of the validity of Friday prayer, otherwise not. (i.e., keeping the validity of Friday prayer in mind, otherwise not. T) It is stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic Text]: His words "for it is not disliked" (rather its performance is mandatory, his words "otherwise not") meaning if the order is dropped, it becomes disliked. Ended. And Allah Almighty knows best. [Urdu Text]: The text's statement "because there is no dislike in it" rather doing it is mandatory (otherwise not), meaning if the sequence has lapsed, then dislike will be necessary. Ended. And Allah Almighty knows best (T).

Problem 1195: What do the scholars of religion say regarding this matter: A person missed his Fajr Sunnah prayers; should he perform them as Qada (make-up prayer) now or not? And if he performs them as Qada, at what time? And can these Sunnah prayers be performed sitting down without an excuse or not? Explain and be rewarded.

Answer: The Fajr Sunnah prayers cannot be performed sitting down without compulsion or a valid excuse. If they were missed along with the obligatory (Fard) prayer, then their Qada time is until Dahwa al-Kubra (Islamic midday), not after that. And if the obligatory prayer has been performed but the Sunnah prayers were missed, then it is recommended (Mustahab) to perform them after the sun has risen high; performing them before sunrise is not permissible. It is stated in Alamgiriyyah:

[Arabic Excerpt]: The Sunnah of Fajr is not permissible to be prayed sitting down while having the ability to stand, and therefore it is said that it is close to Wajib (mandatory). Likewise in Al-Tatarkhaniyyah narrating from Al-Nafi', and it is not permissible to perform it riding without an excuse, as in Al-Siraj al-Wahhaj. And when the Sunnah is missed from its time, it is not made up except for the two Rak'ahs of Fajr; if they are missed along with the Fard, they are made up after the rising of the sun until the time of Al-Zawal (midday), then it lapses. Thus it is in Muheet al-Sarakhsi, and it is the correct view. Likewise in Al-Bahr al-Ra'iq, and if they are missed without the Fard...

[Urdu Translation of the Excerpt]: It is not permissible to perform the Fajr Sunnah prayers sitting down despite having the strength to stand; that is why it is said that they are close to Wajib. It is similarly narrated from Nafi' in Tatarkhaniyyah. It is also

not permissible to perform them while riding without an excuse, as stated in Siraj al-Wahhaj. If Sunnah prayers are missed past their time, they are not made up, except that if the Fajr Sunnah prayers are missed along with the Fard, they should be made up after sunrise and before midday (Zawal); after that, they lapse. Similarly, it is in Muheet al-Sarakhsi that this is the correct view, and likewise in Al-Bahr al-Ra'iq.

---

1. Siraj al-Wahhaj
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayer, published by Mustafa Al-Babi, Egypt, 1/202

फ़तावा रज़विय्या - जिल्द अष्टम

सिराज आदि में है: जुमा की सेहत के पेश-ए-नज़र है वरना नहीं। (त) रद्दुल मुह्तार में है:

[अरबी]: उनका कथन "क्योंकि इसमें कराहत नहीं" (बल्कि इसका करना वाजिब है, उनका कथन "वरना नहीं") यानी अगर तरतीब साक़ित हो चुकी हो तो कराहत लाज़िम आएगी। इँतहा। वल्लाहु तआला आलम। [उर्दू]: मत्न का क़ौल "क्योंकि इसमें कराहत नहीं" बल्कि इसका करना वाजिब है (वरना नहीं) यानी अगर तरतीब साक़ित हो चुकी हो तो कराहत लाज़िम आएगी इँतहा। वल्लाहु तआला आलम (त)।

मसाला 1195: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक शख़्स की सुन्नत-ए-फ़ज्र क़ज़ा हो गईं, अब वह क़ज़ा करे या नहीं? और अगर क़ज़ा करे तो किस वक़्त? और ये सुन्नतें बिना किसी उज़्र (मजबूरी) के बैठ कर भी पढ़ सकते हैं या नहीं? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

अल-जवाब: फ़ज्र की सुन्नतें बिना किसी मजबूरी या उज़्र के बैठ कर नहीं हो सकतीं। और अगर फ़र्ज़ के साथ क़ज़ा हुई हों, तो ज़हवा-ए-कुबरा (इस्लामी दोपहर) आने तक उनकी क़ज़ा है, उसके बाद नहीं। और अगर फ़र्ज़ पढ़ लिए हों और सुन्नतें रह गई हों, तो सूरज बुलंद होने के बाद उनका पढ़ लेना मुस्तहब (पसंदीदा) है, तुलूअ (सूर्योदय) से पहले जायज़ नहीं। आलमगीरिय्या में है:

[अरबी उद्धरण का अनुवाद]: खड़े होने की क़ुदरत के बावजूद फ़ज्र की सुन्नतें बैठ कर अदा करना जायज़ नहीं है, और इसीलिए कहा गया है कि यह वाजिब के क़रीब हैं। इसी तरह तातारख़ानिया में नाफ़ेअ से मन्क़ूल है। बिना उज़्र के सवारी की हालत में भी उन्हें अदा करना जायज़ नहीं, जैसा कि सिराजुल वहाज में है। और सुन्नतें अगर अपने वक़्त से क़ज़ा हो जाएं तो उनकी क़ज़ा नहीं, अलबत्ता अगर फ़ज्र की सुन्नतें फ़राइज़ के साथ रह जाएं तो तुलूअ-ए-शम्स (सूर्योदय) के बाद ज़वाल से पहले-पहले क़ज़ा की जाएं उसके बाद साक़ित हो जाएंगी। इसी तरह मुहीत-ए-सरख़सी में है कि यही सही है, और इसी तरह अल-बहरुर रैक़ में भी है।

---

1. सिराजुल वहाज
2. रद्दुल मुह्तार, बाबुल जुमा, मPercentageब्आ मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/202

فتاوی رضویہ - جلد ہشتم

سراج وغیرہ میں ہے : لضرورۃ صحۃ الجمعۃ والا لا ۱ (جمعہ کی صحت کے پیش نظر ہے ورنہ نہیں۔ ت) ردالمحتار میں ہے :

قولہ فأنھا لاتکرہ (بل یجب فعلھا قولہ والا لا) ای وان سقط الترتیب تکرہ ۲۔ انتھی واللہ تعالٰی اعلم۔ متن کا قول "کیونکہ اس میں کراہت نہیں" بلکہ اس کا کرنا واجب ہے (ورنہ نہیں) یعنی اگر ترتیب ساقط ہوچکی ہو تو کراہت لازم آئے گی انتہی۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۱۹۵: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص کی سنت فجر کی قضا ہو گئیں اب وہ قضا کرے یا نہیں اور اگر قضا کرے تو کس وقت، اور یہ سنتیں بیٹھ کر بھی بلا عذر پڑھ سکتے ہیں یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: سنت فجر بلا مجبوری و معذوری بیٹھ کر نہیں ہو سکتیں، اور اگر مع فرض قضا ہوئی ہوں تو ضحوہ کبریٰ آنے تک ان کی قضا ہے اس کے بعد نہیں، اور اگر فرض پڑھ لئے سنتیں رہ گئی ہیں تو بعد بلندیِ آفتاب ان کا پڑھ لینا مستحب ہے قبل طلوع روا نہیں۔ عالمگیریہ میں ہے :

سنۃ الفجر لا یجوزان یصلیھا قاعدا مع القدرۃ علی القیام ولذا قیل انھا قریبۃ من الواجب کذا فی التاتارخانیۃ ناقلا عن النافع ولا یجوز اداءھا راکبا من غیر عذر کذا فی السراج الوھاب والسنۃ اذافاتت عن وقتھا لم یقضھا الارکعتی الفجر اذافاتتا مع الفرض یقضیھما بعد طلوع الشمس الی وقت الزوال ثم یسقط ھکذا فی محیط السرخسی وھو الصحیح ھکذا فی البحر الرائق واذافاتتا بدون الفرض

فجر کی سنتیں قیام پر قدرت کے باوجود بیٹھ کر ادا کرنا جائز نہیں، اسی لئے کہا گیا ہے کہ یہ واجب کے قریب ہیں۔ تاتار خانیہ میں نافع سے اسی طرح منقول ہے، بغیر عذر کے سواری کی

حالت میں بھی انھیں ادا کرنا جائز نہیں جیسا کہ سراج الوہاج میں ہے۔ اور سنتیں اگر اپنے وقت سے قضا ہو جائیں تو ان کی قضا نہیں البتہ اگر فجر کی سنتیں فرائض کے ساتھ رہ جائیں تو طلوعِ شمس کے بعد زوال سے پہلے پہلے قضا کی جائیں، اس کے بعد ساقط ہو جائیں گی۔ اسی طرح محیط سرخسی میں ہے کہ یہی صحیح ہے، اسی طرح البحرالرائق میں ہے

---

۱ سراج الوھاج ۲ ردالمحتار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفے البابی مصر ۱/ ۲۰۲

Fatawa Razawiyyah Volume Eight

| (Arabic) It is not made up according to the two Shaikhs (Imams Abu Hanifa and Abu Yusuf), contrary to Imam Muhammad (May Allah have mercy on him). As stated in Al-Muhit al-Sarkhasi. And Allah Almighty knows best. | (Urdu) When these Sunnahs are left without the obligatory (Farz) prayer, they are not made up according to the two Shaikhs; Imam Muhammad's opinion is contrary to this (that they should be made up), as it is in Al-Muhit al-Sarkhasi. (T) And Allah Almighty knows best. |

Problem 1196: 2 Sha'ban 1306 AH What do the scholars of the religion say about this matter: a person missed the four Sunnahs before Isha, for example, the congregation was established and he could not pray them but joined the congregation. Is it permissible to make them up after the prayer or not? Some contemporary scholars said to make them up, while some other scholars wrote a fatwa against it saying they are not made up; they are recommended (mustahab), and makeup (qada) is for emphasized sunnahs (sunnah mu'akkadah), not for recommended ones. When its time passed, praying it also went away. Some prominent scholars wrote that making them up is contrary to analogy (qiyas) and contrary to the consensus (ijma) of the jurists, and if one considers it obligatory, it will be a blameworthy innovation (bid'at-e-mazmumah). In this case, what is the decisive verdict? Explain and be rewarded.

The Answer: O Allah, guide us to the truth and the right path. The decisive verdict in this matter is that if these Sunnahs are missed, they are not made up. Allama Alai says in Durr-e-Mukhtar:

| (Arabic) As for what is before Isha, it is recommended and not made up at all. | (Urdu) The rak'ahs that are before the obligatory (Farz) of Isha are recommended, they are not made up. (T) |

But if someone prays them after the two subsequent Sunnahs, there is no prohibition. Allama Tahtawi says in the margin (Hashiya) of the commentary on Nur al-Idah:

| (Arabic) There is no barrier to making up what was before Isha after it. | (Urdu) There is no hurdle in performing the initial Sunnahs of Isha after Isha. (T) |

Yes, from that person, those recommended Sunnahs which were prayed before Isha will not be fulfilled, but rather it will be a recommended voluntary (nafl) prayer like Tarawih.

1 Fatawa Hindiyyah, Chapter on Supererogatory Prayers, published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/112 2 Durr-e-Mukhtar, Chapter on Attaining the Obligatory, published by Mujtabai Delhi, 1/100 3 Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter on Attaining the Obligatory, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat-e-Kutub Karachi, p. 246

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

| (अरबी) इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैह) के मत के विपरीत शैख़ैन (इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम अबू यूसुफ़) के नज़दीक इनकी क़ज़ा नहीं की जाएगी। जैसा कि 'अल-मुहीत अल-सरख़सी' में वर्णित है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। | (उर्दू) जब ये सुन्नतें फ़र्ज़ (नमाज़) के बिना रह जाएँ तो शैख़ैन के नज़दीक इनकी क़ज़ा नहीं है, इमाम मुहम्मद की राय इसके विरुद्ध है (कि उनकी क़ज़ा की जाए) जैसा कि मुहीत सरख़सी में है। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। |

मसला 1196: 2 शाबान 1306 हिजरी उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक व्यक्ति की ईशा से पहले वाली चार सुन्नतें छूट गईं, उदाहरण के लिए जमाअत खड़ी हो गई और वह उन्हें नहीं पढ़ सका और जमाअत में शरीक हो गया। अब नमाज़ के बाद उनकी क़ज़ा जाइज़ है या नहीं? समकालीन कुछ मौलवियों ने कहा कि क़ज़ा करे, और उनके ख़िलाफ़ कुछ आलिमों ने फ़तवा लिखा कि उनकी क़ज़ा नहीं है, वे मुस्तहब (सिफ़ारिशी) हैं और क़ज़ा सुन्नत-ए-मुअक्कदा की होती है, मुस्तहब की नहीं। जब उसका समय निकल गया तो पढ़ना भी जाता रहा। और कुछ प्रतिष्ठित विद्वानों ने यह लिखा कि उनकी क़ज़ा क़यास (तर्क) के विरुद्ध और फ़ुक़हा के इज्मा (आम सहमति) के विरुद्ध है, और यदि कोई इसे अनिवार्य समझेगा तो यह बिदअत-ए-मज़्मूमा (निंदनीय नवाचार) होगी। इस स्थिति में निर्णायक मत क्या है? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर (अल-जवाब): ऐ अल्लाह, सत्य और सही मार्ग की ओर मार्गदर्शन कर। इस मसले में निर्णायक मत यह है कि यदि ये सुन्नतें छूट जाएँ तो इनकी क़ज़ा नहीं है। अल्लामा अलाअई 'दुर्र-ए-मुख़्तार' में फ़रमाते हैं:

| (अरबी) जहाँ तक ईशा से पहले की सुन्नतों का संबंध है, तो वे मन्दूब (मुस्तहब) हैं और उनकी क़तई क़ज़ा नहीं है। | (उर्दू) ईशा के फ़राइज़ से पहले जो रक़अतें हैं वे मुस्तहब हैं, उनकी क़ज़ा नहीं। (त) |

लेकिन अगर कोई व्यक्ति ईशा के बाद वाली दो सुन्नतों के बाद उन्हें पढ़े तो कोई मनाही नहीं है। अल्लामा तहतावी 'हाशिया शरह नूरुल ईज़ाह' में फ़रमाते हैं:

| (अरबी) ईशा के बाद, ईशा से पहले वाली सुन्नतों की क़ज़ा करने में कोई बाधा नहीं है। | (उर्दू) ईशा की पहली सुन्नतों को ईशा के बाद अदा कर लेने में कोई रुकावट नहीं है। (त) |

हाँ, उस व्यक्ति द्वारा वे मुस्तहब सुन्नतें अदा नहीं होंगी जो ईशा से पहले पढ़ी जाती थीं, बल्कि वह एक मुस्तहब नफ़्ल नमाज़ होगी जैसे तरावीह।

1 फ़तावा हिन्दिया, बाब फ़िन नवाफ़िल, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/112 2 दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, मुज्तबाई दिल्ली, 1/100 3 हाशिया अत-तहतावी अल मराक़िल फ़लाह, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, नूर मोहम्मद कारख़ाना तिज़ारत-ए-कुतुब कराची, पृ. 246

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

| لا یقضی عندھما خلا فاللمحمد رحمۃ اللہ تعالٰی - کذا فی المحیط السرخسی - واللہ تعالٰی اعلم | جب یہ سنتیں فرض کے بغیر رہ جائیں تو شیخین کے نزدیک ان کی قضا نہیں، امام محمد کی رائے اس کے خلاف ہے (کہ قضا کی جائیں) جیسا کہ محیط سرخسی میں ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم |

مسئلہ ۱۱۹۶: ۲ شعبان ۱۳۰۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص کی چار سنتیں قبل عشا کے فوت ہو گئیں مثلاً جماعت قائم ہوگئی نہ پڑھنے پایا شریک ہوگیا، اب بعد نماز ان کی قضا جائز ہے یا نہیں؟ علمائے عصر سے بعض مولویوں نے فرمایا قضا کرے اور ان کے خلاف بعض عالموں نے فتوٰی لکھا کہ ان کی قضا نہیں وہ مستحب ہیں اور قضا سنت مؤکدہ کی ہے، نہ مستحب کی۔ جب اس کا محل جاتا رہا پڑھنا بھی دور ہوا، اور بعض اجلہ فضلاء نے یہ تحریر فرمایا کہ ان کی قضا خلاف قیاس وخلاف اجماع فقہاء ہے، اور اگر لازم سمجھے گا تو بدعت مذمومہ ہوگا، اس صورت میں قول فیصل کیا ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: الھم ھدایۃ الحق والصواب قول فیصل اس مسئلہ میں یہ ہے کہ یہ سنتیں اگر فوت ہو جائیں تو ان کی قضا نہیں، علامہ علاقی در مختار میں فرماتے ہیں:

| اما ما قبل العشاء فمندوب لا یقضی اصلاً۔ | عشا کے فرائض سے پہلے جو رکعتیں ہیں وہ مستحب ہیں ان کی قضا نہیں۔ (ت) |

لیکن اگر کوئی بعد دوسنت بعدیہ کے پڑھے تو کچھ ممانعت نہیں، علامہ طحطاوی حاشیہ شرح نورالایضاح میں فرماتے ہیں:

| لامانع من قضاء التی قبل العشاء بعدھا۔ | عشا کی پہلی سنتوں کو عشا کے بعد ادا کر لینے میں کوئی رکاوٹ نہیں۔ (ت) |

ہاں اس شخص سے وہ سنن مستحبہ ادا نہ ہوں گی جو عشا سے پہلے پڑھی جاتی تھیں بلکہ ایک نفل نماز مستحب ہو گی جیسے تراویح۔

1 فتاوٰی ہندیہ باب فی النوافل مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۱۲ 2 در مختار ، باب ادراک الفریضہ ، مطبوعہ مجتبائی دہلی ، ۱/ ۱۰۰ 3 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب ادراک الفریضہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۴۶

Fatawa-e-Razawiyya, Volume 8

The Sunnah of Maghrib and the two Sunnahs of Isha for which there is no making up (Qada). If someone performs all the missed Taraweeh prayers, they will be considered supererogatory (Nafl) prayers and not Sunnah or Taraweeh, as that is religiously disliked and improper. 'Allama Amin al-Din Muhammad in Radd al-Muhtar states regarding these Sunnahs of Isha:

Arabic Text	English Translation
If one makes them up, it will not be disliked; rather, it will be a recommended supererogatory prayer, not as the specific prayer that was missed from its prescribed time, just as they said regarding the Sunnah of Taraweeh.	If they are made up, there is no dislike; rather, they will become recommended Nafl prayers. This is not the prayer that was missed from its time, but (it will be a new prayer), as the jurists have stated regarding Taraweeh. (T)

In the section on Taraweeh in Tanwir al-Absar and Durr-e-Mukhtar:

Arabic Text	English Translation
They are not made up at all if missed, neither in congregation nor individually, according to the most correct opinion. If one makes them up, they will be recommended Nafl and not Taraweeh, just like the ruling for the Sunnahs of Maghrib and Isha.	When Taraweeh prayers are missed, there is no making them up, neither in congregation nor alone, according to the most correct view. If someone does make them up, they become recommended Nafl prayers and this prayer will not be Taraweeh, just like the ruling for the Sunnahs of Maghrib and Isha. (T)

I say: And with Allah's guidance (I say - T), the investigation of the matter and clarification of the objective is that, in reality, 'Qada' (making up) only applies to obligatory (Fard) or necessary (Wajib) prayers.

Arabic Text	English Translation
Performing [the prayer] in the place/time of the Prophet's (peace and blessings be upon him) performance is included in the general Sunnah. Thus, what is performed outside of that place/time will not be Sunnah, so it will not be Qada, because	Performance within the time/place of the Prophet's (peace and blessings be upon him) performance is included in the general Sunnah. Therefore, those performed at other times will not be considered Sunnah at all, so how can they

Arabic Text	English Translation
Qada is the equivalent of what was missed, rather its very essence according to the researchers. Yes, what the Prophet (peace and blessings be upon him) designated a time for after its missing, its performance will be Sunnah and it will be a true Qada.	be Qada! Because Qada is like the missed prayer, rather it is the identical prayer according to the research scholars. Yes, for which the Prophet (peace and blessings be upon him) himself designated a time after its missing, that will be an act of Sunnah and also a real Qada. (T)

1. Radd al-Muhtar, Chapter on 'Catching the Obligatory Prayer', printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/531.
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter on 'Witr Prayer', printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/98.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मग़रिब की सुन्नत और ईशा की दो सुन्नतें जिनकी कज़ा नहीं होती। फिर अगर कोई छूटी हुई तरावीह पूरी पढ़ता है, तो वे नफ़्ल (स्वैच्छिक नमाज़) होंगी, सुन्नत या तरावीह नहीं, क्योंकि यह धार्मिक रूप से नापसंद (मक़रूह) और अनुचित है। अल्लामा अमीन अल-दीन मुहम्मद 'रद्द अल-मुह्तार' में ईशा की इन्ही सुन्नतों के बारे में फ़रमाते हैं:

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
यदि कोई उन्हें कज़ा के रूप में पढ़ता है, तो यह मक़रूह नहीं होगा; बल्कि यह एक मुस्तहब (पसंदीदा) नफ़्ल होगा, न कि वही नमाज़ जो अपने निर्धारित समय से चूक गई थी, जैसा कि उन्होंने तरावीह की सुन्नत के बारे में कहा है।	अगर उन्हें कज़ा कर लिया जाए तो कोई कराहत (नापसंदगी) नहीं बल्कि वे नफ़्ल-ए-मुस्तहब हो जाएंगी। और यह अपने समय से छूटी हुई नमाज़ नहीं होगी बल्कि (यह नई नमाज़ होगी) जैसा कि फ़क़ीहों ने तरावीह के बारे में फ़रमाया है। (त)

'तनवीर अल-अ़बसार' और 'दुर्र-ए-मुख्तार' के तरावीह विषय में है:

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
चूक जाने पर उनकी कज़ा बिल्कुल नहीं होती, न जमात के साथ और न ही अकेले, सबसे सही मत के अनुसार। यदि कोई उन्हें कज़ा करता है, तो वे मुस्तहब नफ़्ल होंगी और तरावीह नहीं होंगी, जैसा कि मग़रिब और ईशा की सुन्नतों का हुक्म है।	जब तरावीह छूट जाएं तो उनकी कज़ा नहीं है, न जमात से न अकेले, सबसे सही (अ़सह) कौल के अनुसार। और अगर कोई कज़ा कर लेता है तो नफ़्ल मुस्तहब बन जाएंगी और यह नमाज़ तरावीह न होगी जैसा कि मग़रिब व ईशा की सुन्नतों का हुक्म है। (त)

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफ़ीक़ से (मैं कहता हूँ - त), इस विषय की शोध और उद्देश्य का स्पष्टीकरण यह है कि वास्तव में 'कज़ा' केवल फ़र्ज़ या वाजिब नमाज़ों की होती है।

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की अदायगी के स्थान/समय में अदायगी सामान्य सुन्नत में शामिल है। अतः जो उस स्थान/समय के अलावा	हुज़ूर अलैहिस्सलाम की अदायगी के समय में अदा करना ही आम सुन्नत में शामिल है। इसलिए जो इसके अलावा समय में अदा होंगे वे सुन्नत ही

अरबी पाठ	हिंदी अनुवाद
अदा की जाएगी वह सुन्नत नहीं होगी, तो वह कज़ा नहीं होगी, क्योंकि कज़ा छूटी हुई नमाज़ के समान होती है, बल्कि शोधकर्ताओं के अनुसार वही नमाज़ होती है। हाँ, जिसके लिए हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने स्वयं छूटने के बाद समय निर्धारित कर दिया, वह सुन्नत की अदायगी होगी और वास्तविक कज़ा भी होगी।	नहीं होंगे, तो कज़ा कहाँ! क्योंकि कज़ा छूटी हुई नमाज़ जैसी होती है बल्कि शोधकर्ता उलेमा के नज़दीक वही नमाज़ होती है। हाँ, छूटने के बाद जिसका समय खुद रसालत-मआब (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने निर्धारित कर दिया, वह अदायगी सुन्नत होगी और वास्तविक कज़ा भी होगी। (त)

---

1. 'रद्द अल-मुह्तार', अध्याय: 'फ़र्ज़ नमाज़ को पाना', मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/531।
2. 'दुर्र-ए-मुख्तार', अध्याय: 'नमाज़-ए-वितर', मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/98।

وسنتِ مغرب و دو سنتِ عشاء کہ ان کی قضا نہیں، پھر اگر کوئی بچی فوت شدہ تراویح کل پڑھے تو نفل ہوں گے نہ سنن و تراویح کہ شرعاً مکروہ و قبیح ۔ علامہ امین الدین محمد ردالمحتار میں انہی سننِ عشاء کی نسبت فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
لو قضاها لا تكون مكروهة بل تقع نفلاً مستحباً لا على انها هي التى فاتت عن محلها كما قالوه فى سنة التراويح 1-	اگر انہیں قضا کرلیا جائے تو کراہت نہیں بلکہ نفل مستحبہ ہوجائیں گی اور یہ اپنے محل سے فوت ہونے والی نماز نہیں بلکہ (یہ نئی نماز ہوگی) جیسا کہ فقہاء نے تراویح کے بارے میں فرمایا ہے۔ (ت)

تنویر الابصار و در مختار کی مبحث تراویح میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
لا تقضى اذا فاتت اصلا ولا وحده فى الاصح فان قضاها كانت نفلا مستحبا وليس بتراويح كسنة مغرب وعشاء 2-	جب تراویح فوت ہو جائیں تو ان کی قضا نہیں نہ جماعت سے نہ اکیلے، اصح قول کے مطابق۔ اور اگر کوئی قضا کرلیتا ہے تو نفل مستحب بن جائیں گی اور یہ نماز تراویح نہ ہوگی جیسا کہ مغرب و عشا کی سنتوں کا حکم ہے۔ (ت)

اقول: وباللہ التوفیق (میں اللہ کی توفیق سے کہتا ہوں ۔ ت) تحقیق مقام و تنقیح مرام یہ ہے کہ حقیقۃً قضا نہیں مگر فرض یا واجب کی،

عربی متن	اردو ترجمہ
الاداء فی محل اداء النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم داخل فی مطلق السنة فما ادی فی غیر المحل لا یکون سنة فلا یکون قضاء اذا القضاء مثل الفائت بل عینه عند المحققین نعم ما عین له النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم محلا بعد فوته فیقع سنة فیکون قضاء حقیقة،	حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کی ادائیگی کے محل میں ادا مطلق سنت میں شامل ہے لہذا جو اس کے علاوہ وقت میں ادا ہوں گے وہ سنت ہی نہیں ہوں گے لہذا قضا کہاں! کیونکہ قضا فوت شدہ کی مثل بلکہ محققین علماء کے ہاں عین نماز ہوتی ہے، ہاں فوت ہونے کے بعد جس کا وقت خود رسالتمآب صلی اللہ علیہ وسلم نے معین فرمادیا وہ ادائیگی سنت ہوگی اور قضا بھی حقیقی ہوگی۔ (ت)

---

1. ردالمختار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۳۱

2. در مختار باب الوتر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۹۸

Fatawa Razawiyya Volume 8

Other voluntary and recommended prayers, even if they are 'Mu'akkada' (strongly emphasized), are not eligible for 'Qada' (making up for missed prayers) because they were not legally binding in Shariah to remain as a debt after being missed.

[In Al-Hidayah: The principle regarding Sunnah is that it is not to be made up for (Qada), because making up is specific to obligatory (Wajib) acts. This is the end of it, and its complete verification is in Al-Fath. (T)] [Al-Hidayah says: The principle regarding Sunnah is that there is no Qada for it because Qada is specific to Wajib. The complete discussion on this is in Al-Fath. (T)]

However, in some instances, contrary to general reasoning, specific texts (nass) have been provided; those Sunnahs that were performed in one place, were performed in another place after being missed. For example, the Sunnahs of Fajr, when missed along with the obligatory prayer, provided that they are performed after the sun has risen high and before noon. Or the first four Sunnahs of Zuhr, if not prayed before the obligatory prayer, should be prayed after the obligatory prayer, rather, according to the more preferred view, after the subsequent Sunnahs, provided that the time for Zuhr still remains. This is explicitly mentioned in various books such as Rad al-Muhtar. (This is clarified in several books, such as Rad al-Muhtar. T). When these two Sunnahs are prayed after being missed with these conditions, they will be the exact same Sunnahs that were missed. Other missed Sunnahs, or even these ones if prayed without observing these conditions, will only be voluntary (nafl) and not the missed Sunnah. In short, whoever says that making them up is mandatory is in error, and whoever says making them up is prohibited is also mistaken. The one who says they are not made up as 'Qada' but if performed later there is no harm, is on the right path. And Allah Almighty knows best.

Problem 719: Submitted by Hafiz Maulvi Abdul Waheed Sahib, 29 Jumada al-Ula 1318 AH. What do the scholars of the religion and the muftis of the luminous Shariah say regarding this issue: Zaid says it is better to pray the missed Sunnahs of Fajr before sunrise, while 'Umar says it is better after. Zaid says the first Hadith should be followed, and 'Umar says the second Hadith should be followed. Please explain and be rewarded.

The Answer: If the Fajr prayer and Sunnahs were missed due to fear of missing the congregation or for any other reason, if one makes them up, they should be prayed after the sun has risen high. Before sunrise, it is not just against what is preferable

(khilaf-e-awla), but impermissible, sinful, and forbidden. It is narrated in Sahih al-Bukhari, Sahih Muslim, and other authentic collections of Hadith (Sahah, Sunan, and Masanid) from the Commander of the Faithful, Umar al-Faruq al-A'zam (may Allah be pleased with him):

[The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) forbade prayer after the morning until the sun rises, and after Asr until (the sun sets).] [The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) forbade prayer from the dawn of sunrise until the sun rises, and after the Asr prayer until the sunset.]

1 Al-Hidayah, Chapter on catching the obligatory prayer, printed by Al-Maktabah Al-Arabia, Dastagir Colony, Karachi, 1/133.

फ़तावा रज़विया जिल्द हशतुम (आठवीं)

अन्य नफ़्ल और सुन्नतें चाहे वे सुन्नते मोक्कदा हों, क़ज़ा के योग्य नहीं हैं क्योंकि वे शरीयत में लाज़िम (अनिवार्य) ही नहीं थीं कि छूटने के बाद ज़िम्मे (दायित्व) पर बाकी रहें।

[अल-हिदाया में है: सुन्नत के बारे में मूल सिद्धांत यह है कि इसकी क़ज़ा नहीं की जाती, क्योंकि क़ज़ा अनिवार्य (वाजिब) कार्यों के लिए विशिष्ट है। यहाँ बात समाप्त हुई और इसका पूर्ण विवरण अल-फ़तह में है। (त)] [हिदाया में है कि सुन्नत में असल (सिद्धांत) यह है कि उसकी क़ज़ा नहीं क्योंकि क़ज़ा वाजिब के साथ विशिष्ट है और इस पर पूरी चर्चा फ़तह में है। (त)]

लेकिन कुछ स्थानों पर क़यास (सामान्य तर्क) के विपरीत 'नस' (विशिष्ट निर्देश) प्राप्त हुआ है; वे सुन्नतें जो एक समय पर अदा की जाती थीं, छूटने के बाद दूसरे समय पर अदा की गईं। जैसे फ़ज्र की सुन्नतें, यदि फ़र्ज़ के साथ छूट गई हों, इस शर्त के साथ कि वे सूर्य के पूरी तरह निकल आने के बाद और ज़वाल (दोपहर) से पहले अदा की जाएँ। या ज़ुहर की पहली चार सुन्नतें जो फ़र्ज़ से पहले न पढ़ी गई हों, तो फ़र्ज़ के बाद बल्कि अधिक सही मत के अनुसार बाद वाली सुन्नतों के बाद पढ़ें, बशर्ते कि अभी ज़ुहर का समय शेष हो। यह स्पष्ट रूप से रद अल-मुह्तार जैसी कई किताबों में वर्णित है। (इस पर कई किताबों जैसे रद-उल-मुह्तार में स्पष्टीकरण है। त)। इन शर्तों के साथ जब ये दोनों सुन्नतें छूटने के बाद पढ़ी जाएँगी, तो वही सुन्नतें अदा मानी जाएँगी जो छूटी थीं। इनके अलावा अन्य छूटी हुई सुन्नतें, या यही सुन्नतें इन शर्तों का पालन किए बिना पढ़ी जाएँगी तो वे केवल नफ़्ल होंगी, न कि वह सुन्नत। संक्षेप में, जो कोई यह कहता है कि उनकी क़ज़ा का हुक्म है वह ग़लती पर है, और जो कहता है कि उनकी क़ज़ा वर्जित है वह भी ग़लती पर है। और जो कहता है कि उनकी क़ज़ा तो नहीं है लेकिन बाद में पढ़ ले तो कोई हर्ज नहीं, वह सही रास्ते पर है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ७१९: हाफ़िज़ मौलवी अब्दुल वहीद साहिब द्वारा प्रस्तुत, २९ जमादी-उल-उला १३१८ हिजरी। दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले के बारे में क्या फ़रमाते हैं कि: ज़ैद कहता है कि फ़ज्र की सुन्नतों की क़ज़ा सूर्योदय (तुलू-ए-शम्स) से पहले पढ़ना बेहतर है और उमर कहता है बाद में बेहतर है। ज़ैद कहता है पहली हदीस पर अमल करना चाहिए, और उमर कहता है दूसरी हदीस पर अमल करना चाहिए। स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): यदि फ़ज्र की नमाज़ और सुन्नतें जमात छूटने के डर से या किसी और कारण से रह गईं, तो यदि उनकी क़ज़ा की जाए तो सूर्य के ऊँचा होने के बाद पढ़े। सूर्योदय से पहले न केवल अनुचित (खिलाफ़-ए-अवला) है बल्कि अवैध, पाप और वर्जित है। सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम आदि हदीस के प्रामाणिक संग्रहों में अमीर-उल-मोमिनीन उमर फ़ारूक़ आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है:

[अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने सुबह (फ़ज्र) के बाद सूर्योदय तक और असर के बाद (सूर्यास्त) तक नमाज़ पढ़ने से मना फ़रमाया।] [अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने सुबह के उदय होने से सूर्योदय तक और असर के बाद सूर्यास्त तक नमाज़ पढ़ने से मना फ़रमाया।]

१ अल-हिदाया, बाब इदराक अल-फ़रीज़ा, अल-मकतबा अल-अरबिया, दस्तगीर कॉलोनी, कराची, १/१३३।

पृष्ठ १४८ / ६७३

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

باقی نوافل وسنن اگرچہ موکدہ ہوں مستحق قضا نہیں کہ شرعاً لازم ہی نہ تھی جو بعد فوت ذمہ پر باقی رہیں،

[فی الھدایۃ الاصل فی السنۃ ان لا تقضی الاختصاص القضاء بالواجب اھ وتمام تحقیقہ فی الفتح۔]
[ہدایہ میں ہے سنت میں اصل یہ ہے کہ اس کی قضا نہیں کیونکہ قضا واجب کے ساتھ مخصوص ہے اھ اور اس پر تمام گفتگو فتح میں ہے۔ (ت)]

مگر بعض جگہ بر خلاف قیاس نص وارد ہو گیا وہی سنتیں جو ایک محل میں ادا کی جاتی تھیں بعد فوت دوسری جگہ ادا فرمائی گئیں جیسے فجر کی سنتیں جبکہ فرض کے ساتھ فوت ہوں بشرطیکہ بعد بلند آفتاب و قبل از زوال ادا کی جائیں یا ظہر کی پہلی چار سنتیں جو فرض سے پہلے نہ پڑھی ہوں تو بعد فرض بلکہ مذہب ارجح پر بعد سنت بعدیہ کے پڑھیں بشرطیکہ ہنوز وقت ظہر باقی ہو نص علی کل ذلک فی غیر ما کتاب کرد المحتار (اس پر متعدد کتب مثلاً ردالمحتار میں تصریح ہے۔ ت) ان شرائط کے ساتھ جب یہ دونوں سنتیں بعد فوت پڑھی جائیں گی تو بعینہا وہی سنتیں ادا ہوں گی جو فوت ہوئی تھیں اور ان کے سوا اور فوت شدہ سنتیں یا یہی سنتیں بے مراعات ان شرائط کے پڑھی جائیں گی تو صرف نفل ہوں گی نہ سنت فاجئہ۔ بالجملہ جو یہ کہے کہ ان کی قضا کا حکم ہے وہ خطا پر ہے اور جو کہے ان کی قضا ممنوع ہے وہ بھی غلطی پر ہے اور جو کہے ان کی قضا نہیں مگر بعد کو پڑھ لے تو کچھ حرج نہیں وہ حق پر ہے واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۷۱۹: مسئولہ حافظ مولوی عبد الوحید صاحب ۲۹ جمادی الاولیٰ ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ زید کہتا ہے کہ صبح کی سنتیں قضا قبل طلوع

شمس کے پڑھنا بہتر ہے اور عمر کہتا ہے بعد کو بہتر ہے اول حدیث پر عمل کرنا چاہئے، اور عمر کہتا ہے دوسری حدیث پر عمل کرنا چاہئے۔ بینوا توجروا

الجواب: اگر صبح کی نماز اور سنتیں بسبب خوف جماعت خواہ کسی اور وجہ سے رہ گئیں تو ان کی قضا اگر کرے تو بعد بلند آفتاب پڑھے قبل طلوع نہ صرف خلاف اولی بلکہ ناجائز و گناہ و ممنوع ہے۔ صحیح بخاری و صحیح مسلم و غیر ہما صحاح و سنن و مسانید میں امیر المومنین عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہے:

[نہی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عن الصلوۃ بعد الصبح حتی تطلع الشمس وبعد العصر حتی] [رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے طلوع سحر کے بعد طلوع آفتاب تک اور عصر کے بعد غروب آفتاب تک نماز سے منع فرمایا]

1 الھدایۃ باب ادراک الفریضۃ مطبوعۃ المکتبۃ العربیہ دستگیر کالونی کراچی ۱/ ۱۳۳

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Sunset (Taghrub)[1] - Has been prohibited. (T) It is narrated in Sahih Bukhari and Sahih Muslim etc. from Hazrat Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (may Allah grant him peace and blessings) said: "There is no prayer after Fajr until the sun has risen high, and there is no prayer after Asr until the sun has set."[2] - No prayer until the morning sun rises high, and no prayer after Asr until sunset. (T) It is narrated in Sahih Bukhari and Sahih Muslim etc. from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him): "Indeed, the Holy Prophet (may Allah grant him peace and blessings) forbade praying after Asr until the sun sets, and praying after Fajr until the sun rises."[3] - The Holy Prophet (may Allah grant him peace and blessings) prohibited praying after Asr until sunset and after Fajr until sunrise. (T) Scholars state that Hadiths of this meaning from the Messenger of Allah (may Allah grant him peace and blessings) are Mutawatir (consecutive narrations). Al-Manawi mentioned it in 'At-Taysir fi Sharh Al-Jami' al-Saghir' (Imam Manawi has mentioned it in At-Taysir fi Sharh Al-Jami' al-Saghir. T). It is stated in 'Ad-Durr al-Mukhtar': "It is disliked to intentionally perform optional (nafl) prayers, even if it is Tahiyyat al-Masjid or any place-related prayer; or prayers that become obligatory due to external factors, like a vow (nadhr) or the two rak'ahs of Tawaf; and any prayer that was started and then broken, even if it was the Sunnah of Fajr, after the Fajr and Asr prayers."[4] summarized. - It is disliked (makruh) to perform any intentional nafl prayers after Fajr and Asr prayers, even if it is Tahiyyat al-Masjid. Also, any prayer that becomes necessary due to other reasons, such as vows or Tawaf nafls, or any nafl prayer that was started and then intentionally broken, even if it was the Sunnah of Fajr or Asr. Summarized (T). In 'Radd al-Muhtar' it is stated: "The dislike (karahah) here is prohibitive (tahrimiyyah), as explicitly stated in Al-Hilyah. That is why in Al-Khaniyah and Al-Khulasah, it is expressed as 'non-permissibility'." - This is a prohibitive dislike, as clarified in Hilyah. For this reason, it has been described as "non-permissibility" in Khaniyah and Khulasah.

---

[1] Sahih al-Bukhari, Kitab Mawaqit as-Salat, Bab as-Salat ba'd al-Fajr, published by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/82 [2] Sahih al-Bukhari, Kitab Mawaqit as-Salat, Bab la tataharra as-Salat... etc., published by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/83 [3] Sahih al-Bukhari, Kitab as-Salat ba'd al-Fajr, Bab as-Salat ba'd al-Fajr, published by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/82 & 83 [4] Ad-Durr al-Mukhtar, Kitab as-Salat, Mujtabai Press, Delhi, 1/61

फ़तावा रज़विया, खंड 8

सूर्यास्त (तग़रुब)[1] - मना किया गया है। (त) सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम आदि में हज़रत अबू सईद खुदरी रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं: "ला सलात बादस सुब्ह हत्ता तरतफ़िअश शम्स व ला बाद अल-असर हत्ता तग़रुबश शम्स"[2] - सुबह के सूरज के बुलंद होने तक कोई नमाज़ नहीं और असर के बाद सूरज डूबने तक कोई नमाज़ नहीं। (त) सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम आदि में हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत है: "अनन नबिय्य सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम नहय अनिस सलात बाद अल-असर हत्ता तग़रुबश शम्स व अनिस सलात बादस सुब्ह हत्ता ततलिअश शम्स"[3] - नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने असर के बाद सूर्यास्त तक और सुबह के बाद सूर्योदय तक नमाज़ पढ़ने से मना फरमाया है। (त) विद्वान कहते हैं कि इस विषय की हदीसें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से मुतवातिर (लगातार कई रावी से) हैं। ज़करहुल मनावी फ़ित तयसीर फ़ी शरह अल-जामिअ अस-सग़ीर (इसे इमाम मनावी ने अत-तयसीर फ़ी शरह अल-जामिअ अस-सग़ीर में ज़िक्र किया है। त)। दुर्र-ए-मुख़्तार में है: "करह नफ़्लुन कसबन व लौ तहिय्यतुल मस्जिद व कुल्ला मकानिन वाजिबिन लिग़ैरिही कमनज़ूरिन व रक'अतय तवाफ़िन वल-लज़ी शरा'अ फीहि सुम्मा अफ़सदहु व लौ सुन्नतुल फ़ज्र बाद सलातुल फ़ज्र व असर"[4] अह मुलख़्ख़सन - फज्र और असर की नमाज़ के बाद उन तमाम नफ़्ल नमाज़ों को अदा करना मकरूह है जो जानबूझकर हों, चाहे वे तहिय्यतुल मस्जिद ही क्यों न हों। और हर वह नमाज़ जो किसी अन्य कारण से अनिवार्य हो गई हो, जैसे मन्नत (नज़्र) और तवाफ़ के नफ़्ल, और हर नफ़्ल नमाज़ जिसे शुरू किया गया और फिर तोड़ दिया गया, चाहे वह फज्र और असर की सुन्नतें ही क्यों न हों। अह मुलख़्ख़सन (त)। रद्दुल मुहतार में है: "अल-कराहह हुना तहरीमिय्यतुन अयज़न कमा सर्रहा बिही फ़िल हिलया व लिज़ा अब्बरा फ़िल ख़ानिय्यह व..." - यह कराहत तहरीमी (वर्जित) है जैसा कि इसकी स्पष्ट व्याख्या 'हिलया' में है, इसी कारण 'ख़ानिया' और 'ख़ुलासा' में इसे 'अ-जवाज़' (अनुमत न होना) से संबोधित किया गया है।

---

[1] सहीह अल-बुखारी, किताब मवाकीत अस-सलात, बाब अस-सलात बाद अल-फज्र, प्रकाशित पुरानी कुतुब खाना कराची 82/1 [2] सहीह अल-बुखारी, किताब मवाकीत अस-सलात, बाब ला ततहर्र अस-सलात... आदि, प्रकाशित पुरानी कुतुब खाना कराची 83/1 [3] सहीह अल-बुखारी, किताब अस-सलात बाद अल-फज्र, बाब अस-सलात बाद अल-फज्र, प्रकाशित पुरानी कुतुब खाना कराची 82/1 और 83 [4] दुर्र-ए-मुख़्तार, किताब अस-सलात, मतबा मुजतबाई दिल्ली 61/1

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

تغرب[1] - منع کیا ہے۔ (ت) صحیح بخاری و صحیح مسلم و غیر ہما میں حضرت ابو سعید خدری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: لا صلوۃ بعد الصبح حتی تر تفع الشمس ولا بعد العصر حتی تغرب الشمس[2] - صبح کے سورج کے بلند ہونے تک نماز نہیں اور عصر کے بعد غروب آفتاب تک نماز نہیں۔ (ت) صحیح بخاری و صحیح مسلم و غیر ہما میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے: ان النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم نھی عن الصلوۃ بعد العصر حتی تغرب الشمس وعن الصلوۃ بعد الصبح حتی تطلع الشمس[3] - نبی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے عصر کے بعد غروب آفتاب تک اور صبح کے بعد طلوع آفتاب تک نماز سے منع فرمایا ہے۔ (ت) علما فرماتے ہیں اس مضمون کی حدیثیں رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم سے متواتر ہیں ذکرہ المناوی فی التیسیر فی شرح الجامع الصغیر (اسے امام مناوی نے التیسیر فی شرح الجامع الصغیر میں ذکر کیا ہے۔ ت) در مختار میں ہے: کرہ نفل قصدا ولو تحیۃ مسجد و کل مکان واجب لغیرہ کمنذور ورکعتی طواف والذی شرع فیہ ثم افسدہ ولوسنۃ فجر بعد صلوۃ فجر و عصر[4] اہ ملخصاً - نماز فجر اور عصر کے بعد وہ تمام نوافل ادا کرنے مکروہ ہیں جو قصداً ہوں اگرچہ تحیۃ المسجد ہوں، اور ہر وہ نماز جو غیر کی وجہ سے لازم ہو مثلاً نذر اور طواف کے نوافل اور ہر نفل نماز جس میں شروع ہوا پھر اسے توڑ ڈالا اگرچہ وہ فجر اور عصر کی سنتیں ہی کیوں ہوں اہ ملخصاً (ت) ردالمحتار میں ہے: الکراھۃ ھنا تحریمیۃ ایضاً کما صرح بہ فی الحلیۃ ولذا عبر فی الخانیۃ و - یہ کراہت تحریمیہ ہے جیسا کہ اس کی تصریح حلیہ میں ہے، اسی لئے خانیہ اور خلاصہ میں عدم جواز سے تعبیر کیا گیا

1 صحیح البخاری کتاب مواقیت الصلوٰۃ باب الصلوٰۃ بعد الفجر مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۸۲/۱ 2 صحیح البخاری کتاب مواقیت الصلوٰۃ باب لا تتحر الصلوٰۃ الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۸۳/۱ 3 صحیح البخاری کتاب الصلوٰۃ بعد الفجر باب الصلوٰۃ بعد الفجر مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۸۲/۱ و ۸۳ 4 در مختار کتاب الصلوٰۃ مطبع مجتبائی دہلی ۶۱/۱

Al-Khulasa: It is not permissible, and what is meant is that it is not lawful. (T)

Imam Ahmad, Tirmidhi, and Hakim report with an authentic chain of narration from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) said:

'Whoever did not pray the two rak'ahs (Sunnah) of Fajr, let him pray them after the sun has risen.'

Al-Hakim said it is authentic, and Al-Dhahabi confirmed it in Al-Talkhis.

As for the Hadith of Abu Dawud:

And what is meant by this is that it is not lawful. (T)

Whoever did not pray the Sunnah of Fajr, let him pray them after sunrise. Imam Hakim declared this narration authentic and Imam Dhahabi maintained its authenticity in Al-Talkhis. (T)

Uthman bin Abi Shaybah narrated to us, from Ibn Numayr, from Sa'd bin Sa'id, from Muhammad bin Ibrahim, from Qais bin Amr (may Allah be pleased with him), who said: The Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) saw a man praying two rak'ahs after the morning prayer. The Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) said: 'The morning prayer consists of two rak'ahs.' The man replied: 'I had not prayed the two rak'ahs before them, so I am praying them now.' Then the Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) remained silent.

Ibn Majah narrated it: Abu Bakr bin Abi Shaybah narrated to us, from Abdullah bin Numayr, etc., with a similar chain and text, except that he said: The Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) said, 'Is the morning prayer twice?'

Uthman bin Abi Shaybah narrated to us from Ibn Numayr, from Sa'd bin Sa'id, that Muhammad bin Ibrahim narrated from Qais bin Amr (may Allah be pleased with him), who stated that he said: The Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) saw a person praying two rak'ahs after the morning prayer. He asked: 'Are there only two rak'ahs in the morning prayer?' That person submitted: 'I had not prayed the Sunnahs, so I am praying them now.' Upon this, the Noble Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) remained silent. It was narrated by Ibn Majah with a similar chain and text, except he said that the Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) said: 'Is the morning prayer twice?' (T)

1. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Salat, published by Mustafa al-Babi Egypt 1/276
2. Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Prayer, Chapter on what was narrated regarding repeating it after sunrise, published by Amin Company Delhi 1/75
3. Sunan Abi Dawud, Kitab al-Salat, Chapter on who missed it and when to make it up, published by Aftab-e-Alam Press Lahore 1/180
4. Sunan Ibn Majah, Chapter on what was narrated regarding one who missed the two rak'ahs, etc., published by H.M. Saeed Company Karachi, p. 82

अल-खुलासा: यह जायज़ नहीं है और इसका मतलब यह है कि यह हलाल नहीं है। (त)

इमाम अहमद, तिर्मिज़ी और हाकिम एक सही सनद के साथ हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

'जिसने फ़ज्र की दो रकअतें (सुन्नत) नहीं पढ़ीं, वह उन्हें सूरज निकलने के बाद पढ़े।'

हाकिम ने कहा यह सही है और ज़हबी ने तलखीस में इसकी पुष्टि की।

रही हदीस अबू दाऊद:

और इसका मतलब यह है कि यह हलाल नहीं है। (त)

जिसने सुबह की सुन्नतें नहीं पढ़ी हों, वह सूरज निकलने के बाद पढ़े। इमाम हाकिम ने इस रिवायत को सही करार दिया और इमाम ज़हबी ने तलखीस में इसकी सेहत को बरकरार रखा। (त)

उस्मान बिन अबी शैबा ने हमसे बयान किया, इब्न नुमैर से, साद बिन सईद से, मुहम्मद बिन इब्राहिम से, क़ैस बिन अम्र (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक आदमी को सुबह की नमाज़ के बाद दो रकअत पढ़ते देखा। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: 'सुबह की नमाज़ दो रकअत है।' उस आदमी ने जवाब दिया: 'मैंने उनसे पहले की दो रकअतें नहीं पढ़ी थीं, इसलिए मैं उन्हें अब पढ़ रहा हूँ।' फिर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) खामोश रहे।

इब्न माजा ने इसे रिवायत किया: अबू बक्र बिन अबी शैबा ने हमसे बयान किया, अब्दुल्लाह बिन नुमैर से, आदि, इसी तरह की सनद और मतन के साथ, सिवाय इसके कि उन्होंने कहा: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, 'क्या सुबह की नमाज़ दो बार है?'

उस्मान बिन अबी शैबा ने हमसे बयान किया कि इब्न नुमैर ने साद बिन सईद से, कि मुहम्मद बिन इब्राहिम ने क़ैस बिन अम्र (रज़ियल्लाहु अन्हु) से बयान किया कि उन्होंने कहा: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने एक शख़्स को बा'द सलाते सुब्ह दो रकअतें पढ़ते देखा। फ़रमाया: 'सुबह की दो ही रकअतें हैं?' उस शख़्स ने अर्ज़ की: 'सुन्नतें मैंने नहीं पढ़ी थीं, वे अब पढ़ लूँ।' इस पर नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने सुकूत फ़रमाया। इसे इब्न माजा ने सनद और मतन के साथ रिवायत किया है और कहा कि हमें अबू बक्र बिन अबी शैबा ने अब्दुल्लाह बिन नुमैर से बयान किया, सिवाय इन अलफ़ाज़ के कि रिसालत-मआब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: 'क्या सुबह की नमाज़ दो दफ़ा है?' (त)

1. दुर्रे मुख्तार किताबुस सलात, मतबुआ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/276
2. जामे तिर्मिज़ी अबवाबुस सलात, बाब मा जा-अ फ़ी इआदतिहा बा'द तुलूइश शम्स, मतबुआ अमीन कंपनी देहली 1/75
3. सुनन अबू दाऊद किताबुस सलात, बाब मन फ़ाततहु मता यक्ज़ीहा, मतबुआ आफ़ताबे आलम प्रेस लाहौर 1/180

4. सुनन इब्न माजा, बाब फ़ी मा जा-अ फ़ी मन फ़ाततहु-र रकअताने आदि, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. 82

الخلاصة بعدم الجواز والمراد عدم الحل۔ (ت)

اور اس سے مراد یہ ہے کہ حلال نہیں۔ (ت)

امام احمد و ترمذی و حاکم بسند صحیح

حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے

راوی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم

فرماتے ہیں :

جس نے صبح کی سنت نہ پڑھی ہوں وہ بعد طلوعِ

من لم یصل رکعتی الفجر فلیصلہا بعد ما تطلع آفتاب پڑھے امام حاکم نے اس روایت کو صحیح قرار

الشمس۔ دیا اور امام ذہبی نے تلخیص میں اس کی صحت کو

برقرار رکھا۔ (ت)

قال الحاکم صحیح و اقرہ الذہبی فی التلخیص۔

رہی حدیث ابوداؤد :

حدثنا عثمان بن ابی شیبة نا ابن نمیر عن سعد بن سعید ثنی محمد بن ابراہیم عن قیس بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ قال رأی رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم رجلا صلی بعد صلوۃ الصبح رکعتین فقال رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم صلوۃ الصبح رکعتان فقال الرجل انی لم اکن صلیت الرکعتین اللتین قبلھما فصلیتھما الان ، فسکت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم۔

عثمان بن ابی شیبہ نے ہم سے بیان کیا کہ ابن نمیر نے سعد بن سعید سے کہ محمد بن ابراہیم نے قیس بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بیان کیا کہ انھوں نے فرمایا رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ایک شخص کو بعد صلوۃ صبح دو رکعتیں پڑھتے دیکھا فرمایا صبح کی دو ہی رکعتیں ہیں؟ اس شخص نے عرض کی سنتیں میں نے نہ پڑھی تھیں وہ اب پڑھ لیں، اس پر نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے سکوت فرمایا۔ اسے ابن ماجہ نے سندا و متنا روایت کیا ہے اور کہا ہمیں ابوبکر بن ابی شیبہ نے عبداللہ بن نمیر سے بیان کیا الخ البتہ ان الفاظ کے علاوہ کہ رسالتماب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: کیا صبح کی نماز دو دفعہ ہے؟ (ت)

و رواہ ابن ماجة حدثنا ابوبکر بن ابی شیبة ثنا عبداللہ بن نمیر الخ سندا و متنا نحوہ غیر انہ قال قال النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم الصلوۃ الصبح مرتین۔

1. درالمختار کتاب الصلوۃ، مطبوعہ مصطفے البابی مصر ۱/ ۲۷۶

2. جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب ما جاء فی اعادتھا بعد طلوع الشمس مطبوعہ امین کمپنی دہلی ۱/ ۷۵

3. سنن ابو داؤد کتاب الصلوۃ باب من فاتتہ متی یقضیھا، مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/ ۱۸۰

4. سنن ابن ماجہ ، باب فی ماجاء فیمن فاتتہ الرکعتان الخ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۸۲

Volume Eighth Fatawa Razawiya

And in this same hadith, the narration of Tirmidhi is as follows:

[Box 1] Right Column (Arabic): Muhammad bin 'Amr al-Sawwaq narrated to us from 'Abdul 'Aziz bin Muhammad from Sa'd bin Sa'id from Muhammad bin Ibrahim from his grandfather Qais, who said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) came out and the prayer was established. So I prayed the morning prayer with him. Then the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) turned around and found me praying. He said: "Wait, O Qais! Are two prayers being performed together?" I said: "O Messenger of Allah, I had not prayed the two rak'ahs of Fajr." He said: "No harm then."[1]

Left Column (Urdu): Muhammad bin 'Amr al-Sawwaq narrated to us that 'Abdul 'Aziz bin Muhammad narrated from Sa'd bin Sa'id, he from Muhammad bin Ibrahim, he from his grandfather Hazrat Qais, who said that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) arrived, the takbir was called for the congregation, I performed the morning prayer under your leadership, then the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) turned his noble face and found me performing prayer, he said: O Qais! wait, are two prayers being performed together? I submitted: O Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)! I could not perform the Sunnahs of Fajr. He said, then there is no harm. (T)

In which it is stated that the person himself was Qais. Upon hearing his excuse, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said there is no harm now. This hadith is not worthy of being compared with those noble sahih hadiths.

Firstly: Its chain of narration is disconnected (munqati'). Imam Tirmidhi himself said after narrating the hadith:

[Box 2] Right Column (Arabic): The chain of this hadith is not connected; Muhammad bin Ibrahim al-Taymi did not hear from Qais.[2]

Left Column (Urdu): The chain of this hadith is not connected because Muhammad bin Ibrahim al-Taymi did not hear from Hazrat Qais. (T)

Secondly: There is a difference of opinion regarding Sa'd bin Sa'id himself in its chain of narration; some did not mention the companion at all. It is in Jami' al-Tirmidhi:

[Box 3] Right Column (Arabic): Some narrated this hadith from Sa'd bin Sa'id, from Muhammad bin Ibrahim, that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) came out and saw Qais—[3]

Left Column (Urdu): Some have narrated this hadith with this chain from Sa'd bin Sa'id, Muhammad bin Ibrahim that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) arrived and saw Qais. (T)

---

[1] Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Prayer, Chapter on what has been narrated regarding one who misses the two rak'ahs etc., published by Amin Company Karachi, 1/75 [2] Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Prayer, Chapter on what has been narrated regarding one who misses the two rak'ahs etc., published by Amin Company Karachi, 1/75 [3] Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Prayer, Chapter on what has been narrated regarding one who misses the two rak'ahs etc., published by Amin Company Karachi, 1/75

आठवाँ खंड फ़तावा रज़विया

और इसी हदीस में तिर्मिज़ी की रिवायत इस प्रकार है:

[बॉक्स 1] दायाँ कॉलम (अरबी): मुहम्मद बिन 'अम्र अल-सव्वाक़ ने हमसे बयान किया कि अब्दुल अज़ीज़ बिन मुहम्मद ने सा'द बिन सईद से, उन्होंने मुहम्मद बिन इब्राहीम से, उन्होंने अपने दादा हज़रत क़ैस से बयान किया कि उन्होंने फ़रमाया कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तशरीफ़ लाए, नमाज़ की इक़ामत हुई, मैंने आपके साथ सुबह की नमाज़ अदा की, फिर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने चेहरा फेरा तो मुझे नमाज़ पढ़ते हुए पाया, फ़रमाया: ऐ क़ैस! ठहर जा, क्या दो नमाज़ें एक साथ हो रही हैं? मैंने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल! मैं फ़ज्र की दो रकात (सुन्नत) नहीं पढ़ सका था। फ़रमाया: तो अब हर्ज नहीं।[1]

बायाँ कॉलम (उर्दू): मुहम्मद बिन 'अम्र अल-सव्वाक़ ने हमसे बयान किया कि अब्दुल अज़ीज़ बिन मुहम्मद ने सा'द बिन सईद से, उन्होंने मुहम्मद बिन इब्राहीम से, उन्होंने अपने दादा हज़रत क़ैस से बयान किया कि उन्होंने फ़रमाया कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तशरीफ़ लाए, जमाअत के लिए तकबीर कही गई, मैंने आपकी इक़्तिदा में सुबह की नमाज़ अदा की, फिर रिसालत-मआब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने चेहरा-ए-अनवर फेरा तो मुझे नमाज़ पढ़ते हुए पाया, फ़रमाया: ऐ क़ैस! ठहर जा, क्या दो नमाज़ें इकट्ठी हो गई हैं? अर्ज़ किया: या रसूलल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)! मैं फ़ज्र की सुन्नतें अदा नहीं कर सका। फ़रमाया तो अब हर्ज नहीं। (त)

जिसमें बयान है कि वह व्यक्ति स्वयं यही क़ैस थे। उनका वह उज़्र (बहाना) सुनकर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया तो अब हर्ज नहीं। यह हदीस उन जलील और सहीह हदीसों के मुक़ाबले में लाने के क़ाबिल नहीं।

पहला: इसकी सनद मुनक़ते (टूटी हुई) है, स्वयं इमाम तिर्मिज़ी ने हदीस रिवायत करने के बाद फ़रमाया:

[बॉक्स 2] दायाँ कॉलम (अरबी): इस हदीस की सनद मुत्तसिल (जुड़ी हुई) नहीं है; मुहम्मद बिन इब्राहीम अल-तैमी ने क़ैस से नहीं सुना।[2]

बायाँ कॉलम (उर्दू): इस हदीस की सनद मुत्तसिल नहीं क्योंकि मुहम्मद बिन इब्राहीम अल-तैमी ने हज़रत क़ैस से समाअ (सुना) नहीं किया। (त)

दूसरा: स्वयं सा'द बिन सईद पर इसकी सनद में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) किया गया, कुछ ने सहाबी का ज़िक्र ही नहीं किया, जामिअ तिर्मिज़ी में है:

[बॉक्स 3] दायाँ कॉलम (अरबी): कुछ ने यह हदीस सा'द बिन सईद से, मुहम्मद बिन इब्राहीम से रिवायत की है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तशरीफ़ लाए और क़ैस को देखा—[3]

बायाँ कॉलम (उर्दू): कुछ ने यह हदीस इस सनद से बयान की है सा'द बिन सईद, मुहम्मद बिन इब्राहीम से कि नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तशरीफ़ लाए और क़ैस को देखा। (त)

---

[1] जामिअ तिर्मिज़ी, अबवाबुल सलात, बाब मा जाअ फी मन तफ़ूतहु अल-रअतैन अलख, मतबुआ अमीन कंपनी कराची, 1/75 [2] जामिअ तिर्मिज़ी, अबवाबुल सलात, बाब मा जाअ फी मन तफ़ूतहु अल-रअतैन अलख, मतबुआ अमीन कंपनी कराची, 1/75 [3] जामिअ तिर्मिज़ी, अबवाबुल सलात, बाब मा जाअ फी मन तफ़ूतहु अल-रअतैन अलख, मतबुआ अमीन कंपनी कराची, 1/75

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

اور اسی حدیث میں ترمذی کی روایت یوں ہے:

[Box 1] دا یاں کالم: حد ثنا محمد بن عمر و السواق نا عبدالعزیز بن محمد عن سعد بن سعید عن محمد بن ابرھیم عن جدہ قیس قال خرج رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فا قیمت الصلوۃ فصلیت معہ الصبح ثم انصرف النبي صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فوجدني اصلی فقال مھلا یا قیس اصلاتان معاً۔ قلت یارسول اللہ اني لم اکن رکعت رکعتي الفجر قال فلا اذا[1]۔

بایاں کالم: محمد بن عمر والسواق نے ہم سے بیان کیا کہ عبدالعزیز بن محمد نے سعد بن سعید سے، انھوں نے محمد بن ابراہیم سے، انھوں نے اپنے دادا حضرت قیس سے بیان کیا کہ انھوں نے فرمایا کہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم تشریف لائے جماعت کے لئے تکبیر کہی گئی میں نے آپ کی اقتدا میں نماز صبح ادا کی، پھر رسالتمآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے چہرہ اقدس پھیرا تو آپ نے مجھے نماز پڑھتے ہوئے پایا، فرمایا: اے قیس! ٹھہر جا، کیا دو نمازیں اکٹھی ہوگئی ہیں؟ عرض کیا : یارسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ! میں فجر کی سنتیں ادا نہیں کرسکا۔ فرمایا تو اب حرج نہیں۔ (ت)

جس میں بیان ہے کہ وہ شخص خود یہی قیس تھے ان کا وہ عذر سن کر نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا تو اب حرج نہیں یہ حدیث ان احادیث جلیلہ صحیحہ کے مقابل لانے کے قابل نہیں،

اولاً: اس کی سند منقطع ہے خود امام ترمذی نے بعد روایت حدیث فرمایا:

[Box 2] دا یاں کالم: اسناد ھذا الحدیث لیس بمتصل محمد بن ابراھیم التیمی لم یسمع من قیس[2]۔

بایاں کالم: اس حدیث کی سند متصل نہیں کیونکہ محمد بن ابراہیم التیمی نے حضرت قیس سے سماع نہیں کیا۔ (ت)

ثانیاً: خود سعد بن سعید پر اس کی سند میں اختلاف کیا گیا، بعض نے صحابی کو ذکر ہی نہ کیا، جامع ترمذی میں ہے:

[Box 3] دا یاں کالم: وروی بعضھم ھذا الحدیث عن سعد بن سعید عن محمد بن ابراھیم ان النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم خرج فرأی قیس۔[3]

بایاں کالم: بعض نے یہ حدیث اس سند سے بیان کی ہے سعد بن سعید، محمد بن ابراہیم سے کہ نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تشریف لائے اور قیس کو دیکھا۔ (ت)

---

1 جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب ما جاء فی من تفوتہ الرکعتان الخ مطبوعہ امین کمپنی کراچی ۱/ ۷۵ 2 جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب ما جاء فی من تفوتہ الرکعتان الخ مطبوعہ امین کمپنی کراچی ۱/ ۷۵ 3 جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب ما جاء فی من تفوتہ الرکعتان الخ مطبوعہ امین کمپنی کراچی ۱/ ۷۵

Volume 8 Fatawa Rizwia

Thirdly: The majority of narrators have reported it as *Mursal* (a narration missing a companion link). Even Sa'id's two brothers, 'Abd Rabbih bin Sa'id and Yahya bin Sa'id, who are more reliable and have better memories than Sa'id, report it as *Mursal*. It is stated in *Jami' at-Tirmidhi*: "**Innama yurwa hadha al-hadith mursalan**" [1]. (This Hadith is reported as *Mursal*. - T). In *Sunan Abi Dawud* it says:

'Abd Rabbih and Yahya ibn Sa'id reported this Hadith as *Mursal* from their grandfather, [saying] that Zaid prayed with the Prophet, may Allah Almighty bless him and grant him peace. [2]	**Sa'id's sons 'Abd Rabbih and Yahya both reported this Hadith as *Mursal*, stating that their grandfather Zaid offered prayers with the Noble Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him). (T)**

Fourthly: This narration hinges upon Sa'id bin Sa'id. It is stated in *Jami' at-Tirmidhi*:

We do not know this Hadith reported from Muhammad bin Ibrahim except from the Hadith of Sa'id bin Sa'id. [3]	**We do not know this Hadith reported from Muhammad bin Ibrahim from anyone other than Sa'id bin Sa'id. (T)**

And Sa'id, despite being authenticated by some, is not free from criticism. His memory was deficient; Imam Ahmad called him weak (*da'if*), Imam Nasa'i said he is not strong, and Imam Tirmidhi said: "**takallamu fihi min qibali hifzihi**" [4], meaning the imams of Hadith spoke about Sa'id regarding his memory. Consequently, it is in *Taqrib*: "**saduq sayyi' al-hifz**" [5], [meaning] he is an honest man but has a poor memory.

[Note] It occurs in the three copies of the *Sunan* that I have that their grandfather's name is Zaid, but this is problematic because Yahya's grandfather's name is Qais, not Zaid. Al-Hafiz (Ibn Hajar) denied this in *Al-Isabah*, saying after mentioning the narration: "Thus I read." - 12 (M)	**In the three copies of the *Sunan* with me, it says their grandfather's name is Zaid, but this is a point of confusion because Yahya's grandfather's name is Qais, not Zaid. Hafiz Ibn Hajar denied this in *Al-Isabah* and after mentioning the narration, said: "I read it like this." - 12 Minhu (T)**

---

[1] *Jami' at-Tirmidhi*, Chapters on Prayer, chapter regarding one who misses the two rak'ahs, etc., published by Amin Company Delhi, 1/5. [2] *Sunan Abi Dawud*, Book of

Prayer, chapter regarding when one who misses it should make it up, published by Aftab-e-Alam Press Lahore, 1/180. [3] *Jami' at-Tirmidhi*, Chapters regarding one who misses the two rak'ahs, etc., published by Amin Company Delhi, 5/17. [4] *Tahdhib al-Tahdhib*, biography of Sa'id bin Sa'id, No. 867, published by Dairat al-Ma'arif Hyderabad Deccan India, 1/372. [5] *Taqrib al-Tahdhib*, biography of Sa'id bin Sa'id, No. 2244, letter Seen, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 1/324.

Page 152 of 673

तीसरा: आम रावियों (वर्णनकर्ताओं) ने इसे मुरसल (Mursal) रिवायत किया है। खुद सईद के दोनों भाई अब्द रब्बिह बिन सईद और यहया बिन सईद, जो सईद से अधिक विश्वसनीय और अच्छी याददाश्त वाले हैं, इसे मुरसल रिवायत करते हैं। जामिअ तिर्मिज़ी में है: **इनमा युरवा हाज़ा अल-हदीस मुरसलन** [1]। (यह हदीस मुरसलन वर्णित है। - त) सुनन अबू दाऊद में है:

अब्द रब्बिह और यहया इब्न सईद ने इस हदीस को अपने दादा ज़ैद से मुरसल रिवायत किया कि उन्होंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ नमाज़ पढ़ी। [2]	**सईद के बेटों अब्द रब्बिह और यहया दोनों ने इस हदीस को मुरसल तौर पर रिवायत किया कि उनके दादा ज़ैद ने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ नमाज़ अदा की। (त)**

चौथा: इस रिवायत का आधार सईद बिन सईद पर है। जामिअ तिर्मिज़ी में है:

मुहम्मद बिन इब्राहीम से वर्णित इस हदीस को हम सईद बिन सईद के अलावा किसी और से नहीं जानते। [3]	**हम मुहम्मद बिन इब्राहीम से वर्णित इस हदीस को सईद बिन सईद के अलावा किसी और से नहीं जानते। (त)**

और सईद, तौसीक़ (पुष्टि) के बावजूद आलोचना से मुक्त नहीं हैं, उनकी याददाश्त दोषपूर्ण थी। इमाम अहमद ने उन्हें ज़ईफ़ (कमज़ोर) कहा, इमाम नसाई ने फ़रमाया कि वह मज़बूत नहीं हैं, इमाम तिर्मिज़ी ने फ़रमाया: **तक़ल्लमु फ़ीहि मिन क़िबली हिफ़्ज़िही** [4], यानी हदीस के इमामों ने उन सईद के बारे में उनकी याददाश्त की वजह से बात की है। निस्संदेह तक़रीब में है: **सद्दूक सय्यि अल-हिफ्ज़** [5], [यानी] व्यक्ति सच्चे हैं मगर याददाश्त खराब है।

[नोट] मेरे पास मौजूद सुनन के तीनों नुस्खों में उनके दादा का नाम ज़ैद आया है, लेकिन यह शंकास्पद है क्योंकि यहया के दादा का नाम क़ैस है, ज़ैद नहीं। हाफ़िज़ (इब्न हजर) ने अल-इसाबा में इसका खंडन किया है और रिवायत ज़िक्र करने के बाद कहा: "मैंने इसी तरह पढ़ा है।" - १२ मिन्हु (म)	**मेरे पास सुनन के तीनों नुस्खों में यह है कि उनके दादा का नाम ज़ैद है, लेकिन यह सवाल की जगह है क्योंकि यहया के दादा का नाम क़ैस है ज़ैद नहीं। हाफ़िज़ इब्न हजर ने इसाबा में इसका इनकार किया और रिवायत ज़िक्र करने के बाद कहा कि मैंने इसी तरह पढ़ा है। - १२ मिन्हु (त)**

[1] जामिअ तिर्मिज़ी, अबवाब अस-सलात, बाबू मा जा'अ फी मन तफ़ूतहु अर-रकअतान..., अमीन कंपनी दिल्ली, 1/5. [2] सुनन अबू दाऊद, किताब अस-सलात, बाबू मन फ़ाततहु मता यक्ज़ीहा, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 1/180. [3] जामिअ तिर्मिज़ी, अबवाब मा जा'अ फी मन तफ़ूतहु अर-रकअतान..., अमीन कंपनी दिल्ली, 5/17. [4] तहज़ीब अल-तहज़ीब, सईद बिन सईद की जीवनी, संख्या 867, दाइरत अल-मआरिफ़ हैदराबाद दकन भारत, 1/372. [5] तक़रीब अल-तहज़ीब, सईद बिन सईद की जीवनी, संख्या 2244, हर्फ़ अस-सीन, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरुत, 1/324.

पृष्ठ 152 / 673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

ثالثاً: عامہ رواۃ نے اسے مرسلاً روایت کیا خود انہیں سعید کے دونوں بھائی عبد ربہ بن سعید و یحییٰ بن سعید کہ دونوں سعد سے اوثق و احفظ ہیں مرسلاً روایت کرتے جامع ترمذی میں ہے: **انما یروی ہذا الحدیث مرسلاً** $^$1$- (یہ حدیث مرسلاً مروی ہے۔ ت) سنن ابی داؤد میں ہے:

روی عبد ربہ و یحیی ابن سعید ہذا الحدیث مرسلان جدہم $^ \text{عہ}}$ زیدا صلی مع النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم - $^$2$

سعید کے بیٹے عبد ربہ اور یحییٰ دونوں نے اس حدیث کو مرسلاً روایت کیا کہ ان کے دادا زید نے نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے ساتھ نماز ادا کی۔ (ت)

رابعاً: مدار اس روایت کا سعد بن سعید پر ہے جامع ترمذی میں ہے:

حدیث محمد بن ابرہیم لانعرفہ مثل ہذا الامن حدیث سعد بن سعید $^$3$۔

ہم محمد بن ابرہیم سے مروی اس حدیث کو سعد بن سعید کے علاوہ کسی سے نہیں جانتے۔ (ت)

اور سعد باوصف توثیق مقال سے خالی نہیں، ان کا حافظہ ناقص تھا، امام احمد نے انہیں ضعیف کہا، امام نسائی نے فرمایا قوی نہیں، امام ترمذی نے فرمایا **تکلموا فیہ من قبل حفظہ** $^$4 یعنی ائمہ حدیث نے ان سعد میں ان کے حافظہ کی طرف سے کلام فرمایا۔ لاجرم تقریب میں ہے: **صدوق سئی الحفظ** $^$5 آدمی سچے ہیں حافظہ برا ہے۔

$^ \text{عہ}$ وقع فی نسخ السنن الثلث التی عندی ان جدہم زید وھو مشکل فان جد یحیی قیس لازید وقد انکرہ الحافظ فی الاصابۃ فقال بعد ذکر الروایۃ ھکذا قرأت ۱۲ منہ (م)

میرے پاس تینوں سنن کے نسخوں میں یہ ہے کہ ان کے جد کا نام زید ہے لیکن یہ محل اشکال ہے کیونکہ یحییٰ کے جد کا نام قیس ہے زید نہیں۔ حافظ ابن حجر نے اصابہ میں اس کا انکار کیا اور روایت ذکر کرنے کے بعد کہا میں نے اسی طرح پڑھا ہے ۱۲ منہ (ت)

$^$1 جامع الترمذی ابواب الصلوٰۃ باب ما جاء فی من تفوتہ الرکعتان الخ مطبوعہ امین کمپنی دہلی ، ۵/۱ $^$2 سنن ابو داؤد کتاب الصلوٰۃ باب من فاتتہ متٰی یقضیہا مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱۸۰/۱ $^$3 جامع الترمذی ابواب ما جاء فی من تفوتہ الرکعتان الخ مطبوعہ امین کمپنی دہلی ۱۷/۵ $^$4 تہذیب التہذیب ترجمہ سعد بن سعید نمبر ۸۶۷ مطبوعہ دائرۃ المعارف حیدرآباد دکن ہند ۱/۳۷۲ $^$5 تقریب التہذیب ترجمہ سعد بن سعید نمبر ۲۲۴۴ حرف السین المہملۃ مطبوعہ دارالکتب العلمیہ بیروت ۳۲۴/۱

Fatawa Rizvia Volume 8

In view of these reasons, this isolated Hadith cannot stand against many authentic (Sahih) Hadiths, especially in the situation where those indicate prohibition and this one conveys permission. It is an established rule that when evidences of lawfulness (Halal) and prohibition (Haram) conflict, prohibition and restraint are given preference. And Allah Almighty knows best. Problem 1198: 4 Safar 1320 AH What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say regarding this matter: if the four Sunnahs that are prayed on Friday before the sermon (Khutbah) are missed due to some excuse, should they be performed after the sermon and the obligatory (Fard) prayers or not? Explain with reference to the book and you will be rewarded by Allah, the Bestower. The Answer: ...and one should intend them as Sunnahs, they will be counted as Sunnahs.

(Arabic Text)	**(Urdu Translation)**
In Al-Durr al-Mukhtar: Unlike the Sunnahs of Zuhr and similarly Friday; if one fears missing a unit (Rak'ah), he should leave them and follow the Imam, then perform them as they are Sunnahs within its time, i.e., Zuhr.[1]	It is in Durr al-Mukhtar that unlike the Sunnahs of Zuhr and similarly the Sunnahs of Friday, if there is a risk of missing one Rak'ah, one should leave the Sunnahs and follow the Imam, then perform them during the time of Zuhr. (T)

Yes, if the time for Zuhr has passed, then there is no makeup (Qada), as we have mentioned before. (T) And Allah Almighty knows best.

Problem 1199: 28 Rabi' al-Akhir 1320 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: a person offered the obligatory (Fard) Fajr prayer in congregation and missed its Sunnahs because of performing the Fard. Now, should he pray those Sunnahs after performing the Fard or after sunrise, even if time for performing the Sunnah still remains? And if someone's both Fard and Sunnah are missed, then should he pray those Sunnahs and Fard after sunrise, and until what time should the makeup (Qada) for the Sunnah be done? The Answer: When the Fard of Fajr has been prayed, it is not permissible to pray the Sunnahs before the sun has risen high, even if an hour of Fajr time still remains. Yes, pray after the sun has risen high. And for one whose both Fard and Sunnah were missed, he should make up for both Fard and Sunnah after sunrise before the sun reaches its meridian (Istiva). And if this time also passes, then after the sun's decline (Zawal), make up the Fard prayers...

[1] Durr al-Mukhtar, Chapter on Performing the Obligatory Prayers, printed by Matba' Mujtabai, Delhi 1/100 Page 153 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

इन कारणों की दृष्टि में, यह अकेली हदीस स्वयं उन अनेक सही हदीसों का मुक़ाबला नहीं कर सकती, विशेष रूप से उस स्थिति में जब वे निषेध (मनाही) को साबित करती हों और यह अनुमति की वाहक हो। और यह एक स्थापित नियम है कि जब हलाल और हराम (वैधता और निषेध) के प्रमाणों में विरोधाभास हो, तो हराम और मनाही को प्राथमिकता दी जाएगी। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है) मसला ११९८: ४ सफ़र १३२० हिजरी धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत के मुफ्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जुमे के दिन खुतबा से पहले जो चार सुन्नतें पढ़ी जाती हैं, यदि वे किसी विवशता के कारण छूट जाएँ, तो क्या खुतबा और फ़र्ज़ नमाज़ के बाद उनकी अदायगी है या नहीं? किताब के हवाले से स्पष्ट करें और अल्लाह वहाब के पास प्रतिफल प्राप्त करें। जवाब: ...है और सुन्नतों ही की नियत करे, वे सुन्नत ही मानी जाएँगी,

(अरबी पाठ)

अल-दुर्र अल-मुख्तार में: ज़ुहर की सुन्नतों के विपरीत और इसी तरह जुमे की सुन्नतों के, यदि एक रकअत के छूट जाने का ख़तरा हो, तो उन्हें छोड़ दे और इमाम का अनुसरण करे, फिर उन्हें उनकी सुन्नत की हैसियत से उनके वक़्त में यानी ज़ुहर में अदा करे।[1]

(उर्दू अनुवाद)

दुर्रे मुख्तार में है कि ज़ुहर की सुन्नतों के विपरीत और इसी तरह जुमे की सुन्नतों के, यदि एक रकअत के छूट जाने का ख़तरा हो, तो सुन्नतें छोड़कर इमाम का अनुसरण (इक़्तेदा) करे, फिर उन्हें ज़ुहर के वक़्त में अदा करे। (त)

हाँ, अगर ज़ुहर का वक़्त निकल गया तो अब कज़ा नहीं है जैसा कि हमने पहले बयान कर दिया है। (त) वल्लाहु तआला आलम

मसला ११९९: २८ रबीउल आखिर १३२० हिजरी धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक व्यक्ति ने फ़ज्र की फ़र्ज़ नमाज़ जमात के साथ पढ़ी और फ़र्ज़ की अदायगी के कारण उसकी सुन्नतें छूट गईं। अब वह इन सुन्नतों को फ़र्ज़ अदा करने के बाद पढ़े या सूरज निकलने के बाद, जबकि सुन्नत अदा करने का वक़्त अभी बाकी हो? और यदि किसी के फ़र्ज़ और सुन्नत दोनों छूट गए हों, तो वह उन सुन्नत और फ़र्ज़ को सूरज निकलने के बाद पढ़े और सुन्नत की कज़ा किस वक़्त तक होनी चाहिए? जवाब: जब फ़ज्र के फ़र्ज़ पढ़ लिए तो सूरज के ऊँचा होने से पहले सुन्नतें पढ़ने की अनुमति नहीं है, भले ही फ़ज्र का अभी एक घंटा वक़्त बाकी हो। हाँ, सूरज ऊँचा होने के बाद पढ़े। और

जिसके फ़र्ज़ और सुन्नत दोनों छूट गए हों, वह सूरज निकलने के बाद इस्तेवा (दोपहर) से पहले फ़र्ज़ और सुन्नत दोनों की कज़ा करे, और अगर यह वक़्त भी गुज़र गया तो ज़वाल के बाद फ़र्ज़ों की कज़ा...

[1] दुर्रे मुख्तार, बाब इदराक अल-फ्रीज़ा, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली १/१०० पेज १५३ ऑफ़ ६७३

ان وجوہ کی نظر سے یہ حدیث واحد خود ان احادیث صحیحہ کثیرہ کے مقابل نہ ہو سکتی خصوصاً اس حالت میں کہ وہ مثبت ممانعت ہیں اور یہ ناقلِ اجازت، اور قاعدہ مسلمہ ہے کہ جب دلائل حلت و حرمت متعارض ہوں حرمت و ممانعت کو ترجیح دی جائے گی۔ واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۱۱۹۸: ۴ صفر ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ سنن اربعہ جو بروز جمعہ قبل از خطبہ پڑھی جاتی ہیں اگر وہ کسی عذر سے ترک ہو جائیں تو بعد خطبہ اور فرضوں کے ان کی ادا ہے یا نہیں؟ بینوا بحوالۃ الکتاب وتوجروا عند اللہ الوھاب الجواب: ہے اور سنتوں ہی کی نیت کرے وہ سنت ہی واقع ہوں گی،

| فی الدر المختار بخلاف سنۃ الظھر وکذا الجمعۃ | در مختار میں ہے کہ بخلاف ظہر کی سنتوں کے اور اسی طرح جمعہ کی | | فانہ ان خاف فوت رکعۃ یترکھا ویقتدی، ثم | سنتوں کے اگر ایک رکعت کے فوت ہونے کا خطرہ ہے تو | | یأتی بھا علٰی انھا سنۃ فی وقتہ ای الظھر۔[1] | سنتیں چھوڑ کر امام کی اقتداء کرے پھر ان کو وقت ظہر میں ادا کرے۔ (ت) |

ہاں اگر وقت ظہر نکل گیا تو اب قضا نہیں لما قدمنا (جیسا کہ ہم نے پہلے بیان کردیا ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۱۹۹: ۲۸ ربیع الآخر ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے فرض فجر کی جماعت سے پڑھے اور سنت اس کی فوت ہوئیں بوجہ ادائے فرض کے اب ان سنتوں کو بعد ادائے فرض پڑھے یا بعد طلوعِ آفتاب اور وقت بھی ادائے سنت کا باقی ہو اور کسی کے فرض و سنت دونوں فوت ہوئے ہوں تو ان سنت و فرض کو بعد طلوعِ آفتاب کے پڑھے اور

سنت کی قضا کس وقت تک چاہئے؟ الجواب: جب فجر کے فرض پڑھ لئے تو آفتاب بلند ہونے سے پہلے سنتیں پڑھنے کی اجازت نہیں اگرچہ فجر کا ابھی ایک گھنٹہ وقت باقی ہو، ہاں بعد بلند یا فتاب پڑھے اور جس کے فرض و سنت دونوں فوت ہوئے ہوں وہ طلوع کے بعد استواء سے پہلے فرض وسنت دونوں کی قضا کرے، اور اگر یہ وقت بھی گزر گیا بعد زوال فرضوں کی قضا

[1] در مختار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۰ Page 153 of 673

If one prays, there is no qada (making up) for sunnahs. "Wal masail mabsuta fil Durr wa ghair ammatul asfar ilal ghar" (The details of these issues are in Al-Durr and other blessed books). And Allah Almighty knows best.

Issue 1200: From Bengal, Noakhali district, Chandranj post office, Vidalyamer village, by Muhammad Ibrahim, 6 Shawwal 1322 AH. Question: What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say about this matter: A person never prayed in their whole life. Now that person has died, what is the procedure for his 'Qada-e-Umri' (making up lifetime prayers)? If any remedy is possible, what is it? Explain and you will be rewarded. Answer: If the time of puberty is not known, subtract 12 years for a man and 9 years for a woman from their total age. For the remaining years, calculate the total days, and for each day's prayer, give 810 tolas of wheat (which is a little less than 9 seers by the 100 rupee seer standard) or 1620 tolas of barley, or pay their value. If there is no capacity to pay for everything at once, give whatever is possible to a needy person and make them the owner. The needy person can then gift it back. Then give it again to a needy person as expiation (kaffara), and after receiving it, they gift it back again. Continue this cycle until the full amount is covered. For a woman, if the habit of menstruation (haidh) is known, exclude that many days; if not known, exclude three days from every month from age 9 to 50. However, during the months of pregnancy, do not exclude days of menstruation. Regarding postpartum bleeding (nifas), if the habit is known, exclude those days after each pregnancy; if not known, exclude nothing because there is no minimum period defined by Shariah for nifas; it's possible for it to last only a minute and then one becomes pure. And Allah Almighty knows best.

Issue 1201: From Ujjain, Gwalior region, house of Mir Kham Ali Sahib Assistant, sent by Muhammad Yaqoob Ali Khan, Ramadan al-Mubarak 1307 AH.

Persian Text	**Urdu Text**
What do the research scholars and precise muftis of religion say about this issue: In the last Friday of Ramadan, many common people pray five times 'Qada-e-Umri' behind an Imam. Is this correct or prohibited? Because missed prayers (qada) are not dropped unless they are offered. It is	What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say about this matter: In the last Friday of Ramadan, common people pray five times 'Qada-e-Umri' following an Imam. Is this correct or prohibited? Because qada prayer cannot be

Persian Text

surprising if someone prays 'Qada-e-Umri' on the last Friday of Ramadan with the intention of making up for a lifetime's prayers, thinking they will all be forgiven. Also, what is the procedure for praying for missed days individually?

Page 154 of 673

Urdu Text

dropped until it is offered, and if a person prays Qada-e-Umri on the last Friday of Ramadan with the intention of all lifetime's qada prayers and thinks that all lifetime's prayers will be dropped, then upon this...

यदि कोई नमाज़ पढ़े, तो सुन्नतों की कज़ा नहीं है। "वुल मसायल मबसूता फिल दुर्र व गैर आम्मतुल असफार इलल गर" (इन मसलों का विवरण दुर्र और अन्य मुबारक किताबों में है)। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1200: बंगाल, नोआखाली जिला, चंद्रगंज डाकखाना, विडाल्यामेर गाँव से, मोहम्मद इब्राहिम द्वारा, 6 शव्वाल 1322 हिजरी। सवाल: धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस मसले में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति ने जीवन भर कभी नमाज़ नहीं पढ़ी। अब वह व्यक्ति मर गया है, तो उसकी 'क़ज़ा-ए-उमरी' (जीवन भर की छूटी नमाज़ों की भरपाई) का क्या तरीका है? यदि इसका कोई समाधान संभव है, तो वह क्या है? हमें बतायें, आपको पुण्य मिलेगा। जवाब: यदि बालिग (वयस्क) होने का समय ज्ञात न हो, तो पुरुष के लिए कुल आयु से 12 वर्ष और महिला के लिए 9 वर्ष घटा दें। शेष वर्षों के दिनों की गणना करें और हर दिन की नमाज़ के लिए 810 तोले गेहूं (जो 100 रुपये के सेर के हिसाब से 9 सेर से थोड़ा कम है) या 1620 तोले जौ, या उनकी कीमत अदा करें। यदि सब कुछ एक साथ अदा करने की क्षमता न हो, तो जितना संभव हो उतना किसी ज़रूरतमंद (मोहताज) को देकर उसका मालिक बना दें। वह ज़रूरतमंद अपनी ओर से फिर उन्हें उपहार (हिबा) कर दे। उसे लेकर फिर कफ़ारे (प्रायश्चित) में ज़रूरतमंद को दें, वह उसे प्राप्त करने के बाद फिर उपहार कर दे। इसी तरह यह क्रम तब तक जारी रखें जब तक कि पूरी राशि अदा न हो जाए। महिलाओं के लिए, यदि मासिक धर्म (हैज़) की आदत ज्ञात है, तो उतने दिन निकाल दें; यदि ज्ञात नहीं है, तो 9 वर्ष से 50 वर्ष की आयु तक हर महीने के तीन दिन निकाल दें। हालाँकि, गर्भावस्था के महीनों के दौरान मासिक धर्म के दिनों को कम न करें। प्रसव के बाद के रक्तस्राव (निफास) के बारे में, यदि आदत ज्ञात हो, तो प्रत्येक गर्भधारण के बाद उतने दिन निकाल दें; यदि ज्ञात न हो, तो कुछ भी न निकालें क्योंकि निफास के लिए शरीयत में कोई न्यूनतम समय निर्धारित नहीं है, संभव है कि यह केवल एक मिनट के लिए हो और फिर वह पाक हो जाए। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1201: उज्जैन, ग्वालियर क्षेत्र, मीर खाम अली साहब असिस्टेंट के घर से, मोहम्मद याक़ूब अली खान द्वारा भेजा गया, रमज़ानुल मुबारक 1307 हिजरी।

फ़ारसी पाठ

धर्म के शोध विद्वान और सटीक मुफ्ती इस मसले में क्या कहते हैं: रमज़ान के आखिरी जुम्मे (शुक्रवार) को बहुत से आम लोग इमाम के पीछे पांच वक्त की 'क़ज़ा-ए-उमरी' नमाज़ पढ़ते हैं। क्या यह सही है या मना है? क्योंकि कज़ा नमाज़ तब तक समाप्त नहीं होती जब तक कि उसे अदा न किया जाए। यह आश्चर्यजनक है अगर कोई रमज़ान के आखिरी जुम्मे को जीवन भर की कज़ा नमाज़ों की नीयत से क़ज़ा-ए-उमरी पढ़ता है और समझता है कि जीवन भर की नमाज़ें माफ़ हो जाएंगी। इसके अलावा, अलग-अलग दिनों की कज़ा नमाज़ पढ़ने का तरीका क्या है?

पृष्ठ 154 / 673

उर्दू अनुवाद

धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस मसले के बारे में क्या फरमाते हैं कि रमज़ानुल मुबारक के आखिरी जुम्मे में आम लोग इमाम की इक़्तिदा (अनुसरण) में पांच वक्त की नमाज़ क़ज़ा-ए-उमरी पढ़ते हैं। क्या यह सही है या मना है? क्योंकि कज़ा नमाज़ जब तक अदा न की जाए साक़ित (समाप्त) नहीं हो सकती और अगर कोई व्यक्ति रमज़ान के आखिरी जुम्मे को तमाम उम्र की कज़ा नमाज़ों की नीयत से क़ज़ा-ए-उमरी पढ़ता है और समझता है कि तमाम उम्र की नमाज़ें साक़ित हो जाएंगी, इस पर...

پڑھے تو اب سنتوں کی قضا نہیں والمسائل مبسوطۃ فی الدر وغیر عامۃ الاسفار الا لغر (ان مسائل کی تفصیل در اور دیگر کتب مبارکہ میں ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۰۰: از ملک بنگال ضلع نواکھالی ڈاکخانہ چند رانج موضع ودالیامر سلمہ محمد ابراہیم ۶ شوال ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ کوئی شخص عمر بھر نماز کبھی نہیں پڑھی اب یہ شخص مر گیا تو اس وقت اس کی قضائے عمری کی کیا صورت ہے اس کا اگر کوئی تدارک ہو سکے تو کیا ہے؟ بینوا توجروا اگر وقت بلوغ معلوم نہ ہو تو مرد کے لئے اس عمر سے بارہ برس اور عورت کے لئے ۹ برس کم کریں اور باقی تمام برسوں کے دن کرکے ہر دن کی نماز کے لئے آٹھ سو دس تولے گیہوں کہ سو روپے بھر کے سیر سے کچھ کم نو سیر ہوئے یا سولہ سو بیس تولہ جؤ یا ان کی قیمت ادا کریں کل کے ادا کی طاقت نہ ہو تو جس قدر پر قدرت ہو محتاج کو دے کر قابض کردیں محتاج اپنی طرف سے پھر ان کو ہبہ کردے یہ قبضہ کرکے پھر کفارہ میں محتاج کو دیں وہ بعد قبضہ پھر ان کو ہبہ کردے، یہ پھر قبضہ کرکے کفارہ میں دیں یونہی دور کرتے رہیں یہاں تک کہ ادا ہو جائے۔ عورت کی عادت حیض اگر معلوم ہو تو اس قدر دن اور نہ معلوم ہو تو ہر مہینے سے تین دن نو برس کی عمر سے پچاس برس کی عمر تک مستثنٰی کریں مگر جتنی بار حمل رہا ہو مدت حمل کے مہینوں سے ایام حیض کا استثناء نہ کریں عورت کی عادت دربارہ نفاس اگر معلوم ہو تو ہر حمل کے بعد اتنے دن مستثنٰی کرے اور نہ معلوم ہو تو کچھ نہیں کہ نفاس کے لئے جانب اقل میں شرعاً کچھ تقدیر نہیں ممکن ہے کہ ایک ہی منٹ آکر فوراً پاک ہو جائے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۰۱: از او جین علاقہ گوالیار مکان میر خام علی صاحب اسسٹنٹ مرسلہ محمد یعقوب علی خان رمضان المبارک ۱۳۰۷ھ

فارسی متن	اردو ترجمہ
چہ می فرمایند علمائے محقق دین ومفتیان مدقق پابند شرع متین دریں مسئلہ کہ اکثر عوام الناس در آخر جمعہ رمضان المبارک نماز قضائے عمری پنجوقتہ متخلف امام می خوانند درست است یا ممنوع زیرا کہ نماز قضا بدون ادا ساقط و دور نمی شود اگر کسے بروز جمعہ آخری رمضاب شریف قضائے نماز تمام عمر بہ نیت قضائے عمری بخواند کہ ادا شود تعجب ست انتی و نیز صورت نماز قضائے روز متفرقہ چیست یعنی	علمائے دین ومفتیان شرع متین اس مسئلہ کے بارے میں کیا فرماتے ہیں کہ رمضان المبارک کے آخری جمعہ میں عوام الناس امام کی اقتداء میں پانچ وقتی نماز قضائے عمری پڑھتے ہیں یہ درست ہے یا ممنوع؟ کیونکہ قضا نماز جب تک ادا نہ کی جائے ساقط نہیں ہوسکتی اور اگر کوئی شخص رمضان کے آخری جمعہ کو تمام عمر کی قضا نمازوں کی نیت سے قضا عمری پڑھتا ہے اور سمجھتا ہے کہ تمام عمر کی نمازیں ساقط ہو جائیں گی اس پر

Fatawa Razawiyyah Volume Eight

Question: If Asr prayer is missed on one day, Tuesday, and Asr prayer of the second day, Wednesday, is missed, if these two people offer their missed Asr prayers separately in congregation, is it correct or prohibited? Because the prayers of both people are not from the same day. Additionally, the Imam is 'Sahib-e-Tarteeb' (maintains sequential order of prayers) but the followers are devoid of this quality. In such a case, behind such an Imam, will the followers be absolved of their certain missed prayers that are obligatory upon them, or what is the ruling? That is, explain in detail how an obligatory prayer is fulfilled by a person performing a supererogatory (nafl) prayer, with references from books. May the mercy of Allah be upon you all.

It is surprising! What is the situation for the makeup (qaza) of prayers from different days? For example, one person missed Tuesday's Asr and another missed Wednesday's Asr. If they perform the qaza of Asr together in congregation, is it correct or forbidden? Because the prayers of both are not from the same day. Moreover, the Imam is 'Sahib-e-Tarteeb' but the follower is not. Behind such an Imam, will the followers' qaza prayers be discharged, or what is the ruling? That is, how can obligations be discharged by performing Nafl? Please explain in detail with references from books. May Allah's mercy be upon you. (T)

Answer: This method that has been invented for the expiation (kaffarah) of missed prayers is a vile innovation (bid'at-e-shani'ah) introduced into the religion. The narration regarding it is fabricated (mawdoo') and the act itself is prohibited. This intention and belief are void and rejected. There is a consensus among Muslims on the falsehood of this vile ignorance and manifest misguidance. The Radiant Presence, Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him), has said: "Whoever forgets a prayer, let him pray it when he remembers it; there is no expiation for it except that."[1] Whoever forgot a prayer, when he remembers it, let him perform that prayer again; there is no expiation for it except that. Recorded by Ahmad, al-Bukhari, and Muslim (and the wording is his), and al-Tirmidhi.

This method (Qaza-e-Umri) that has been invented as an expiation for missed prayers is the worst innovation. The narration about it is fabricated (concocted). This act is strictly prohibited. Such intention and belief are void and rejected. There is consensus among all Muslims on the falsehood of this ugly ignorance and clear misguidance. The noble saying of the Radiant Presence, Master of the Messengers (peace and

blessings of Allah be upon him) is: "Whoever forgets a prayer, let him pray it when he remembers it; there is no expiation for it except its performance." Imam Ahmad, Bukhari, Muslim (these words are also his), Tirmidhi, Nasai, and other scholars of Hadith have narrated from Hazrat...

[1] Sahih al-Bukhari, Book of Prayer Times, Chapter: One who forgets a prayer, etc., published by Qadeemi Kutub Khana Karachi 1/84; Sahih Muslim, Chapter: Making up for missed prayers, Nur Muhammad Asah al-Matabi' Karachi 1/241.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम (आठवीं)

प्रश्न: यदि एक दिन मंगलवार की अस्र की नमाज़ और दूसरे दिन बुधवार की अस्र की नमाज़ छूट जाए, तो क्या इन दोनों व्यक्तियों का अलग-अलग जमाअत (समूह) में अपनी कज़ा नमाज़ अदा करना सही है या वर्जित? क्योंकि दोनों व्यक्तियों की नमाज़ एक ही दिन की नहीं है। इसके अलावा, इमाम 'साहिबे-तरतीब' (जिसने पाँच से अधिक नमाज़ें न छोड़ी हों) है लेकिन मुक्तदी (अनुयायी) इस गुण से रहित हैं; तो ऐसे इमाम के पीछे मुक्तदियों की निश्चित कज़ा नमाज़ें, जो उनके ज़िम्मे हैं, अदा हो जाएँगी या इसका क्या हुक्म है? यानी नफ़्ल (स्वैच्छिक) नमाज़ पढ़ने से फ़र्ज़ (अनिवार्य) नमाज़ कैसे अदा हो सकती है? कृपया पुस्तकों के संदर्भ के साथ विस्तार से समझाएं। आप सभी पर अल्लाह की रहमत हो।

ताज्जुब है! विभिन्न दिनों की नमाज़ों की कज़ा की क्या स्थिति है? उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति की मंगलवार की अस्र और दूसरे की बुधवार की अस्र कज़ा हो गई है; यदि दोनों आपस में जमाअत के साथ इन अस्र की कज़ा अदा करते हैं, तो क्या यह सही है या वर्जित? क्योंकि दोनों की नमाज़ एक ही दिन की नहीं है। इसके अतिरिक्त, इमाम 'साहिबे-तरतीब' है लेकिन मुक्तदी 'साहिबे-तरतीब' नहीं है। इस प्रकार के इमाम के पीछे मुक्तदियों की कज़ा नमाज़ें समाप्त हो जाएँगी या उनका क्या हुक्म है? यानी नफ़्ल अदा करने से फ़र्ज़ किस प्रकार समाप्त हो सकते हैं? पुस्तकों के हवाले से विस्तारपूर्वक वर्णन करें। आप पर अल्लाह की रहमत हो। (त)

उत्तर: यह तरीका जो छूटी हुई नमाज़ों के प्रायश्चित (कफ़ारा) के रूप में निकाला गया है, धर्म में एक घृणित नवाचार (बिदअत-ए-शनीआ) है। इसके बारे में हदीस गढ़ी हुई (मौज़ू) है और यह कार्य वर्जित है। ऐसी नियत और विश्वास व्यर्थ और अस्वीकार्य हैं। इस भयंकर अज्ञानता और स्पष्ट पथभ्रष्टता की निरर्थकता पर सभी मुसलमानों की सहमति है। रसूलो के सरदार (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) ने फ़रमाया: "जो कोई नमाज़ भूल जाए, तो जब उसे याद आए वह उसे पढ़ ले, इसके अलावा उसका कोई प्रायश्चित नहीं है।"[1] जो कोई नमाज़ भूल गया, जब उसे याद आए तो वह नमाज़ फिर से अदा करे; इसे अदा करने के अलावा उसका कोई कफ़ारा नहीं है। इसे इमाम अहमद, बुखारी और मुस्लिम (शब्द उन्हीं के हैं) और तिर्मिज़ी ने उद्धृत किया है।

छूटी हुई नमाज़ों के कफ़ारे के तौर पर यह जो तरीका (कज़ा-ए-उमरी) ईजाद कर लिया गया है, यह सबसे बुरी बिदअत है। इसके बारे में जो रिवायत है वह गढ़ी हुई (झूठी) है। यह अमल सख़्त मना है।

ऐसी नियत और अक़ीदा बातिल और मरदूद है। इस भद्दी जिहालत और साफ़ गुमराही के बातिल होने पर तमाम मुसलमानों का इत्तेफ़ाक (सहमति) है। सैय्यदुल मुर्सलीन (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) का इरशादे-गिरामी है: "जो शख़्स नमाज़ भूल गया तो जब उसे याद आए उसे अदा कर ले, उसका कफ़ारा सिवाय उसकी अदायगी के कुछ नहीं है।" इसे इमाम अहमद, बुख़ारी, मुस्लिम (उक्त शब्द उन्हीं के हैं), तिर्मिज़ी, नसाई और अन्य मुहद्दिसीन ने हज़रत... से रिवायत किया है।

[1] सहीह अल-बुख़ारी, किताब मवाक़ीत अस-सलात, अध्याय: जो नमाज़ भूल जाए, आदि, मुद्रित क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची 1/84; सहीह मुस्लिम, अध्याय: छूटी हुई नमाज़ों की कज़ा, नूर मोहम्मद असहुल मताबे कराची 1/241।

पृष्ठ 155 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

قضائے عصر یکے روز سہ شنبہ و نماز قضائے عصر دوم چہار شنبہ اگر این ہر دو مردم نماز قضائے عصر جداگانہ بجماعت ادا نماز بیند درست ست یا منع چرا کہ نماز ہر دو مردم روز یکے نیست علاوہ بریں امام صاحب ترتیب ست و مقتدیان ازیں خوبی عاری پس چنین امام قضائے یقینی مقتدیان کہ اکثر قضائے نماز ذمہ اوست فارغ الذمہ میشوند یا حکم آں چہ ۔ اعنی پس ادا کنندہ نفل نماز فرض بچہ طور ادا می شود بشرح بسیط بیان فرمایند بحوالہ عبارت کتب رحمۃ اللہ علیکم اجمعین۔

تعجب ہے انتی، مختلف دنوں کی نمازوں کی قضاء کی صورت کیا ہے؟ مثلاً ایک آدمی کی منگل کی عصر اور دوسرے کی بدھ کی عصر قضاء ہوگئی ہے اگر دونوں عصر کی قضا آپس میں باجماعت ادا کرتے ہیں تو یہ درست ہے یا ممنوع ؟ کیونکہ دونوں کی نماز ایک دن کی نہیں۔ علاوہ ازیں امام صاحب ترتیب ہے لیکن مقتدی صاحب ترتیب نہیں اس طرح کے امام کے پیچھے مقتدیوں کی قضا نمازیں ساقط ہو جائینگی یا ان کا حکم کیا ہے یعنی نفل ادا کرنے سے فرض کس طرح ساقط ہو سکتے ہیں ؟ عبارت کتب کے حوالہ جات سے تفصیلاً بیان فرمائیں تم پر اللہ کی رحمت ہو۔ (ت)

الجواب: ایں طریقہ کہ بہر تکفیر صلوات فائقہ احداث کردہ اند بدعت شنیعہ در دین نہادہ اند حدیثش موضوع و فعلش ممنوع و ایں نیت و اعتقاد باطل و مدفوع، اجماع مسلمین بر بطلان ایں جہالت شنیعہ وضلالت فظیعہ قائم ست حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرمودہ اند: من نسی

صلوٰۃ فلیصلھا اذا ذکرھا لا کفارۃ لھا الا ذلک ۱ ہر کہ نمازے فراموش کرد چون یاد آید آں نماز باز گزارد جز ایں مر او را کفارہ نیست اخرجہ احمد والبخاری ومسلم واللفظ لہ والتر مذی

فوت شدہ نمازوں کے کفارہ کے طور پر یہ جو طریقہ (قضائے عمری) ایجاد کر لیا گیا ہے یہ بدترین بدعت ہے اس بارے میں جو روایت ہے وہ موضوع (گھڑی ہوئی) ہے یہ عمل سخت ممنوع ہے ، ایسی نیت و اعتقاد باطل و مردود ، اس جہالت قبیحہ اور واضح گمراہی کے بطلان پر تمام مسلمانوں کا اتفاق ہے ، حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد گرامی ہے : جو شخص نماز بھول گیا تو جب اسے یاد آئے اسے ادا کر لے ، اس کا کفارہ سوائے اس کی ادائیگی کے کچھ نہیں اسے امام احمد ، بخاری، مسلم (مذکورہ الفاظ بھی اس کے ہیں) ترمذی ، نسائی اور دیگر محدثین نے حضرت

۱ صحیح البخاری کتاب موقیت الصلوٰۃ باب من نسی صلوٰۃ الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۸۴ ، صحیح مسلم باب قضاء الصلوٰۃ الفائقہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۴۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

Narrated by al-Nasa'i and others from Anas bin Malik (may Allah be pleased with him). Allama Ali Qari (may Allah have mercy on him) says in 'Maudu'at-e-Kabir': The hadith "Whoever performs one obligatory prayer on the last Friday of Ramadan, it will compensate for every missed prayer of his life up to seventy years" is absolutely false, because it contradicts the consensus that no act of worship can take the place of missed acts of worship of previous years, etc. Imam Ibn Hajar Makki in 'Tuhfa Sharh Minhaj al-Imam al-Nawawi', then Allama Zarqani in 'Sharh Mawahib al-Imam al-Qastallani' (may Allah have mercy on them) say: Worse than that is the practice innovated in some cities, of performing five prayers after the Friday prayer with the assumption that it expiates for the missed prayers of the year or entire life, and this action is forbidden for reasons that are not hidden[2]. Furthermore, a person making up today's Asr prayer cannot pray behind someone making up yesterday's Asr prayer, because for following an Imam, the prayer must be the same. Similarly, it is absolutely incorrect for one performing an obligatory prayer to follow one performing a voluntary prayer. Therefore, in such cases, the obligation of the prayers will not be waived. [This is mentioned] in 'Nur al-Idah' and its commentary 'Maraqi al-Falah'.

It is narrated from Anas (may Allah be pleased with him). Allama Qari (may Allah have mercy on him) says in 'Maudu'at-e-Kabir': The hadith "Whoever performs one obligatory prayer on the last Friday of Ramadan, it will compensate for every missed prayer of his life up to seventy years" is absolutely false because it contradicts the consensus that nothing among acts of worship can stand in place of the missed acts of worship of previous years, etc. Imam Ibn Hajar Makki in 'Tuhfa Sharh Minhaj al-Imam al-Nawawi', then Allama Zarqani in 'Sharh Mawahib al-Imam al-Qastallani' (may Allah have mercy on them) say: Worse than that is the method invented in some cities where five prayers are offered after Friday prayer with the assumption that this is an atonement for the missed prayers of the year or the entire previous life, and this act is prohibited for reasons that are very clear. As for the one making up today's Asr prayer, the one making up yesterday's Asr cannot pray behind him because it is a condition for following an Imam that the prayers must be the same. Similarly, it is not correct at all for a person offering an obligatory prayer to follow someone offering a voluntary prayer. Therefore, in this case, the liability for the prayers will not be discharged. In 'Nur al-Idah' and its commentary 'Maraqi al-Falah'.

[1] Al-Asrar al-Maudu'ah fi al-Akhbar al-Maudu'ah, Hadith 953, printed by Dar al-Kutub al-Arabiyya, Beirut, p. 242. [2] Sharh al-Zarqani ala al-Mawahib al-Ladunniyyah, section regarding the protection of Ramadan, Dar al-Ma'rifah, Beirut, 7/110.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

अनस बिन मलिक (रज़ि अल्लाहु अन्हु) से निसाई और अन्यों ने रिवायत किया है। अल्लामा अली क़ारी (रहमतुल्लाहि अलैहि) 'मौज़ूआते कबीर' में फरमाते हैं: हदीस "जिसने रमज़ान के आख़िरी जुमे में एक फर्ज़ नमाज़ अदा की, वह उसकी ज़िंदगी की सत्तर साल की छूटी हुई नमाज़ों का मुआवज़ा बन जाएगी" स्पष्ट रूप से निराधार है, क्योंकि यह इस इज़मा (आम सहमति) के खिलाफ है कि इबादतों में से कोई भी चीज़ पिछले वर्षों की छूटी हुई इबादतों की जगह नहीं ले सकती[1] आदि। इमाम इब्ने हजर मक्की 'तुहफ़ा शरह मिन्हाज अल-इमाम अल-नववी' में, और फिर अल्लामा ज़रक़ानी 'शरह मवाहिब अल-इमाम अल-क़स्तलानी' (रहमतुल्लाहि अलैहिम) में फरमाते हैं: इससे भी बुरा वह तरीक़ा है जो कुछ शहरों में ईजाद कर लिया गया है कि जुमे के बाद पाँच नमाज़ें इस गुमान से अदा की जाती हैं कि इससे साल या पिछली पूरी उम्र की नमाज़ों का कफ़्फ़ारा हो जाएगा, और यह अमल ऐसी वजहों से हराम है जो बहुत स्पष्ट हैं[2]। इसके अलावा, आज की असर की क़ज़ा करने वाला कल की असर की क़ज़ा करने वाले के पीछे नमाज़ नहीं पढ़ सकता, क्योंकि इमामत के लिए नमाज़ का एक होना शर्त है। इसी तरह फर्ज़ पढ़ने वाले का नफ़्ल पढ़ने वाले के पीछे नमाज़ पढ़ना बिलकुल दुरुस्त नहीं है। लिहाज़ा ऐसी सूरत में नमाज़ों का ज़िम्मा साक़ित (ख़त्म) नहीं होगा। 'नूर अल-ईज़ाह' और उसकी शरह 'मराक़ी अल-फलाह' में।

अनस (रज़ि अल्लाहु तआला अन्हु) से रिवायत किया गया है। अल्लामा क़ारी (अलैहि रहमतुल् बारी) 'मौज़ूआते कबीर' में कहते हैं: हदीस "जिसने रमज़ान के आख़िरी जुमे में एक फर्ज़ नमाज़ अदा कर ली उससे उसकी सत्तर साल की फौत शुदा (छूटी हुई) नमाज़ों का अज़ला (मुआवज़ा) हो जाता है" यक़ीनी तौर पर बातिल (झूठी) है क्योंकि यह उस इज़मा के ख़िलाफ़ है कि इबादतों में से कोई चीज़ साबिक़ा सालों की फौत शुदा इबादतों के क़ायम मक़ाम नहीं हो सकती आदि, इमाम इब्ने हजर मक्की 'तुहफ़ा शरह मिन्हाज लिल इमाम अल-नववी' में फिर अल्लामा ज़रक़ानी 'शरह मवाहिब इमाम अल-क़स्तलानी' (रहमतुल्लाहि तआला अलैहिम) फ़रमाते हैं: इससे भी बदतर वह तरीक़ा है जो बाज़ शहरों में ईजाद कर लिया गया है कि जुमे के बाद पांच नमाज़ें इस गुमान से अदा कर ली जाएँ कि इससे साल या साबिक़ा तमाम उम्र की नमाज़ों का कफ़्फ़ारा है और ये अमल ऐसी वजूह की बिना पर हराम है जो निहायत ही वाज़ेह हैं। बाक़ी आज की असर क़ज़ा करने वाले की इक़्तिदा में कल की असर क़ज़ा करने वाला नमाज़ अदा नहीं कर सकता क्योंकि इक़्तिदा के लिए नमाज़ का एक होना शर्त है और इसी तरह फर्ज़ पढ़ने वाले का नफ़्ल पढ़ने वाले की इक़्तिदा करना हरगिज़ दुरुस्त नहीं

लिहाज़ा इस सूरत में नमाज़ों का ज़िम्मा साक़ित नहीं होगा। नूर अल-ईज़ाह और उसकी शरह मराक़ी अल-फ़लाह में।

[1] अल-असरार अल-मौज़ूआ फ़ी अल-अख़बार अल-मौज़ूआ, हदीस 953, दार अल-कुतुब अल-अरबिया, बैरूत, पृ. 242। [2] शरह अल-ज़रक़ानी अलल मवाहिब अल-लदुन्निया, बैरूत, 7/110।

पेज 156 ऑफ़ 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

والنسائی و غیر ھم عن انس بن مالک رضی اللہ عنہ۔ علامہ علی قاری رحمۃ الباری در موضوعات کبیر گوید : حدیث "من قضی صلوٰۃ من الفرائض فی اخر جمعۃ من رمضان کان ذلك جابرا لکل صلوۃ فائتۃ فی عمرہ الی سبعین سنۃ" باطل قطعا لانہ مناقض للاجماع علی ان شیئا من العبادات لا تقوم مقام فائتۃ سنوات ۱ الخ امام ابن حجر مکی در تحفہ شرح منہاج الامام النووی باز علامہ زرقانی در شرح مواہب امام قسطلانی رحمہم اللہ تعالٰی فرمایند: اقبح من ذلك ما اعتید فی بعض البلاد من صلوۃ الخمس فی ھذہ الجمعۃ عقب صلوتھا زاعمین انھا تکفر صلوۃ العام او العمر المتروکۃ و ذلك حرام لوجوہ لا تخفی ۲۔ و اقتدائے قاضی عصر امروز بقاضی عصر دیروز نارواست زیرا کہ اتحاد نماز شرط صحت اقتداست و ہمنچناں اقتدائے مفترض بمستنفل نیز کہ زنہار درست نباشد پس بدیں صور تہاذمہ از نماز فارغ نشود۔ فی نور الایضاح و شرحہ مراقی الفلاح

انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا ہے۔ علامہ قاری علیہ رحمۃ الباری موضوعاتِ کبیر میں کہتے ہیں: حدیث " جس نے رمضان کے آخری جمعہ میں ایک فرض نماز ادا کر لی اس سے اس کی ستر سال کی فوت شدہ نمازوں کا ازالہ ہو جاتا ہے" یقینی طور پر باطل ہے کیونکہ اس اجماع کے مخالف ہے کہ عبادات میں سے کوئی شئی سابقہ سالوں کی فوت شدہ عبادات کے قائم مقام نہیں ہو سکتی الخ ، امام ابن حجر مکی تحفہ شرح منہاج للامام النووی میں پھر علامہ زرقانی شرح مواہب امام قسطلانی رحمہم اللہ تعالٰی فرماتے ہیں : اس سے بھی بدتر وہ طریقہ ہے جو بعض شہروں میں ایجاد کر لیا گیا ہے کہ جمعہ کے بعد پانچ نمازیں اس گمان سے ادا کرلی جائیں کہ اس سے سال یا سابقہ تمام عمر کی نمازوں کا کفارہ ہے اور یہ عمل ایسی وجوہ کی بنا پر حرام ہے جو نہایت ہی واضح ہیں۔ باقی آج کی عصر قضا کرنے والے کی اقتداء میں کل کی عصر قضا کرنے

والا نماز ادا نہیں کر سکتا کیونکہ اقتداء کے لئے نماز کا ایک ہونا شرط ہے اور اسی طرح فرض پڑھنے والے کا نفل پڑھنے والے کی اقتداء کرنا ہرگز درست نہیں لہٰذا اس صورت میں نمازوں کا ذمہ ساقط نہیں ہوگا۔ نور الایضاح اور اس کی شرح مراقی الفلاح میں

۱ الاسرار الموضو عة فی الاخبار الموضوعۃ حدیث ۹۵۳ مطبوعہ دار الکتب العربیۃ بیروت ص ۲۴۲ ۲ شرح الزرقانی علی المواہب اللدنیۃ و اما حفیظہ رمضان دار المعرفۃ بیروت ۷ / ۱۱۰

Condition for the Validity of Following (in prayer)

The condition for the validity of following (in prayer) is that the Imam should not be praying a different obligatory (fard) prayer than the follower, such as one praying Dhuhr and the other Asr, or both praying Dhuhr but from two different days. [1] (Summarized). It is mentioned in Tanweer al-Absar, Durr al-Mukhtar, and Radd al-Muhtar: a person performing an obligatory prayer cannot follow one performing a voluntary (nafl) prayer, nor can one person performing an obligatory prayer follow another performing a different obligatory prayer, such as one praying yesterday's Dhuhr following one praying today's Dhuhr, because the unification of the two prayers is a condition. [2] (Summarized end). And Allah the Almighty knows best.

Translation of the Condition

For following (in prayer), the condition is that the obligatory prayers of the Imam and the follower should not be different. For example, one is praying Dhuhr and the other Asr, or both are performing Dhuhr of two different days (then following is not permissible). Summarized: In Tanweer al-Absar, Durr al-Mukhtar, and Radd al-Muhtar, it is stated that one performing an obligatory prayer cannot follow one praying voluntary prayer. Similarly, if one is performing one obligatory prayer and the other is performing another, following each other is not permissible. For example, one performing today's Dhuhr following one performing yesterday's Dhuhr, because it is a condition for both prayers to be the same. Summarized end. And Allah the Almighty knows best.

Issue 1202: What do the scholars of religion say regarding the issue of someone who has many missed (qada) prayers? How should they make the intention (niyyat)? Which prayers are repeated in qada? And for someone who has a very large number of missed prayers that are difficult to fulfill, is there any concession (takhfeef) available to make it easier to perform them, as they want to finish them quickly because the time of death is unknown. Explain, and may you be rewarded.

Answer: The qada for each day's prayer consists of only twenty rak'ahs: two fard of Fajr, four of Dhuhr, four of Asr, three of Maghrib, four of Isha, and three of Witr. In qada, it is necessary to make the intention like this: "I intend to perform the first Fajr that I missed" or "the first Dhuhr that I missed," and continue this way for every prayer. For someone who has a vast number of missed prayers, if they perform them like this for ease, it is permissible: in every Ruku (bowing) and every Sujud

(prostration), instead of saying "Subhana Rabbiyal Azeem" and "Subhana Rabbiyal A'la" three times, say it only once. However, it should always be remembered in every kind of prayer that one should begin the 'Seen' of 'Subhan' when fully in the Ruku position, and raise the head from Ruku when finishing the 'Meem' of 'Azeem'. Similarly, one should start the tasbih when fully in prostration and raise from prostration only when the entire tasbih is completed.

[1] Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Book of Imamat, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 158. [2] Radd al-Muhtar with al-Durr al-Mukhtar, Book of Imamat, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/429.

इक़्तिदा की वैधता की शर्त (अरबी)

इक़्तिदा (नमाज़ में अनुसरण) की वैधता की शर्त यह है कि इमाम और मुक़्तदी के फर्ज़ अलग-अलग न हों, जैसे एक ज़ोहर पढ़ रहा हो और दूसरा असर, या दोनों दो अलग दिनों की ज़ोहर अदा कर रहे हों। [1] (संक्षिप्त)। तनवीर अल-अब्सार, दुर्र-ए-मुख्तार और रद-उल-मुह्तार में है कि फर्ज़ अदा करने वाला नफ़्ल पढ़ने वाले की इक़्तिदा नहीं कर सकता। इसी तरह अगर एक फर्ज़ पढ़ने वाला हो और दूसरा दूसरे फर्ज़ वाला हो, तो उनका एक-दूसरे की इक़्तिदा करना जायज़ नहीं है। उदाहरण के लिए, कल की ज़ोहर पढ़ने वाले की इक़्तिदा आज की ज़ोहर पढ़ने वाला करे, क्योंकि दोनों नमाज़ों का एक होना शर्त है। [2] (संक्षिप्त समाप्त)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

शर्त का अनुवाद (उर्दू)

इक़्तिदा के लिए यह शर्त है कि इमाम और मुक़्तदी के फर्ज़ अलग-अलग न हों। जैसे एक ज़ोहर और दूसरा असर या दोनों दो दिनों की ज़ोहर अदा कर रहे हों (तो फिर इक़्तिदा जायज़ न होगी)। संक्षिप्त: तनवीर अल-अब्सार, दुर्र-ए-मुख्तार और रद-उल-मुह्तार में है कि फर्ज़ अदा करने वाला नफ़्ल पढ़ने वाले की इक़्तिदा नहीं कर सकता। इसी तरह एक और फर्ज़ पढ़ने वाला है दूसरा दूसरे फर्ज़ वाला है, उनका एक-दूसरे की इक़्तिदा करना भी जायज़ नहीं है। उदाहरण के लिए, कल की ज़ोहर पढ़ने वाले की इक़्तिदा आज की ज़ोहर पढ़ने वाला करे, क्योंकि दोनों नमाज़ों का एक होना शर्त है। संक्षिप्त समाप्त। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १२०२: उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जिस पर कज़ा नमाज़ें ज़्यादा हों, वह उनकी नियत कैसे करे? और कज़ा में कौन-कौन सी नमाज़ें पढ़ी जाती हैं? और जिसके ज़िम्मे बहुत ज़्यादा कज़ा नमाज़ें हैं, जिनका अदा करना अत्यंत कठिन है, तो क्या उसके लिए कोई रियायत (तख़्फ़ीफ़) निकल सकती है जिससे अदा करने में आसानी हो जाए, क्योंकि उन्हें जल्दी पूरा करने की इच्छा है क्योंकि मौत का समय मालूम नहीं है। बयान फरमाएं, आपको अज्र मिलेगा।

जवाब: हर दिन की कज़ा नमाज़ केवल बीस रकात होती है: फज्र की दो फर्ज़, ज़ोहर की चार, असर की चार, मग़रिब की तीन, ईशा की चार और वित्र की तीन रकात। कज़ा में नियत इस प्रकार करना आवश्यक है: "नियत की मैंने पहली फज्र की जो मुझसे कज़ा हुई" या "पहली ज़ोहर की जो मुझसे कज़ा हुई", और इसी तरह हमेशा हर नमाज़ में करे। जिसके ज़िम्मे बहुत अधिक कज़ा नमाज़ें हैं, वह आसानी के लिए अगर इस तरह भी अदा करे तो जायज़ है: हर रुकू और हर सजदे में तीन-तीन बार

"सुब्हाना रब्बियल अज़ीम" और "सुब्हाना रब्बियल आला" की जगह केवल एक बार कहे। लेकिन यह हमेशा हर तरह की नमाज़ में याद रखना चाहिए कि जब आदमी रुकू में पूरी तरह पहुँच जाए, उस समय 'सुब्हान' का 'सीन' शुरू करे और जब 'अज़ीम' का 'मीम' खत्म करे, उस समय रुकू से सर उठाए। इसी तरह जब सजदों में पूरी तरह पहुँच जाए, उस समय तस्बीह शुरू करे और जब पूरी तस्बीह खत्म कर ले, तब सजदे से सर उठाए।

[1] मराक़ी अल-फलाह मआ हाशियह अत-तहतावी, बाब अल-इमामत, नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची द्वारा मुद्रित, पृ. 158. [2] रद-उल-मुह्तार मआ अद-दुर्र अल-मुख्तार, बाब अल-इमामत, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/429.

पृष्ठ 157/673

شرط صحۃ الاقتداء (عربی)

شرط صحة الاقتداء ان لایکون الامام مصلیاً فرضاً غیرفرض المأموم کظهر وعصر وظهرین من یومین [1] اه ملخصاً وفي تنویر الابصار والدرالمختار وردالمحتار لا مفترض بمتنفل ومفترض فرضاً آخر کمصلی ظهر أمس بمصلی ظهر الیوم، لان اتحاد الصلوتین شرط [2] انتهت ملخصة واللہ تعالیٰ اعلم۔

شرط کا ترجمہ (اردو)

ہے اقتدا کے لئے یہ شرط ہے کہ امام اور مقتدی کے فرائض الگ الگ نہ ہوں مثلاً ایک ظہر اور دوسرا عصر یا دونوں دو دنوں کی ظہر ادا کر رہے ہوں (تو پھر اقتداء جائز نہ ہوگی) تلخیصاً، تنویر الابصار، درمختار اور ردالمختار میں ہے کہ فرض ادا کرنے والا نفل پڑھنے والے کی اقتدا نہیں کر سکتا اسی طرح ایک اور فرض پڑھنے والا ہے دوسرا دوسرے فرض والا ہے ان کا ایک دوسرے کی اقتداء کرنا بھی جائز نہیں مثلاً کل کی ظہر پڑھنے والے کی آج کی ظہر پڑھنے والا اقتدا کرے کیونکہ دونوں کی نمازوں کا ایک ہونا شرط ہے انتہت تلخیصاً واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۰۲: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس پر قضا نماز زیادہ ہوں وہ ان کی نیت کیونکر کرے اور قضا میں کیا کیا نماز پھیری جاتی ہے اور جس کے ذمہ قضائیں بہت کثیر ہیں جن کی ادا سخت دشوار ہے تو آیا اس کے لئے کوئی تخفیف نکل سکتی ہے جس سے ادا میں آسانی ہو جائے کہ ادا میں جلدی منظور ہے کہ موت کا وقت معلوم نہیں۔ بینوا توجروا

الجواب: قضا ہر روز کی نماز کی فقط بیس رکعتوں کی ہوتی ہے دو فرض فجر کے، چار ظہر، چار عصر، تین مغرب، چار عشاء کے تین وتر۔ اور قضا میں یوں نیت کرنی ضرور ہے کہ نیت کی میں نے پہلی فجر جو مجھ سے قضا ہوئی یا پہلی ظہر جو مجھ سے قضا ہوئی، اسی طرح ہمیشہ ہر

نماز میں کیا کرے اور جس پر قضا نماز میں بہت کثرت سے ہیں وہ آسانی کے لئے اگر یوں بھی ادا کرے تو جائز ہے کہ ہر رکوع اور ہر سجدہ میں تین تین بار سبحان ربی العظیم، سبحان ربی الاعلی کی جگہ صرف ایک بار کہے، مگر یہ ہمیشہ ہر طرح کی نماز میں یاد رکھنا چاہئے کہ جب آدمی رکوع میں پورا پہنچ جائے اس وقت سبحان کا سین شروع کرے اور جب عظیم کا میم ختم کرے اس وقت رکوع سے سر اٹھائے اسی طرح جب سجدوں میں پورا پہنچ لے اس وقت تسبیح شروع کرے اور جب پوری تسبیح ختم کر لے اس وقت سجدہ سے

[1] مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب الامامۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۱۵۸ [2] ردالمحتار معہ الدرالمختار باب الامامۃ مطبوعہ مصطفے البابی مصر ۱/ ۴۲۹

Volume Eight Fatawa Razawiyya

...lift his head. Many people who recite this tasbih while transitioning into or out of ruku and sujud commit a grave error. One concession (takhfeef) for those with many missed prayers (qada) can be this: a second concession is that in the third and fourth rak'ats of obligatory (fard) prayers, instead of reciting Surah Al-Fatihah (Alhamd Sharif), they may say "SubhanAllah, SubhanAllah, SubhanAllah" three times and then proceed to ruku. However, the same condition applies here: they must begin the "SubhanAllah" while standing completely straight and finish saying it while fully standing before bowing for ruku. This concession applies only to the third and fourth rak'ats of fard prayers; in all three rak'ats of Witr, both Surah Al-Fatihah and an additional Surah must be recited. A third concession is that after the first Tashahhud (Attahiyyat), instead of the two Duroods and the subsequent supplication (dua), they may simply say "Allahumma salli ala Muhammadin wa aalihi" and then perform the Salaam. A fourth concession is that in the third rak'at of Witr, instead of reciting the Dua-e-Qunoot, they may say "Allahu Akbar" and then say "Rabbighfirli" just once or three times. And Allah the Almighty knows best.

Issue 1203: From Maulvi Abdullah Sahib, Teacher at Manzar-e-Islam, Mohalla Saudagran, Bareilly, 9 Safar 1339 AH. What do the scholars of the religion say on this matter: if one is performing the missed prayers of a lifetime (qada-e-umri), will the voluntary (nafl) prayers usually performed at each prayer time be accepted or not?

The Answer: One should perform qada-e-umri in place of voluntary (nafl) prayers. And Allah the Almighty knows best.

Issue 1204: It is written in the book "Tarkeeb-us-Salah" that if a person stayed awake from 3:00 AM and fell asleep at the start of the Fajr prayer time (dawn) and the sun rose, and then he performed that prayer, he would receive the reward of performing it on time (ada) and should not use the word "missed" (qada).

The Answer: There is no doubt that this prayer has become missed (qada) because times for prayer are legally (shar'an) fixed. Allah the Almighty says: "Indeed, prayer has been decreed upon the believers at specified times." (1) Allah the Almighty has said: Undoubtedly, prayer is an obligatory duty for Muslims at fixed times. And the meaning of "missed" (qada) is that the time legally appointed has passed. The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) says: "Indeed, for every prayer, there is a beginning and an end. And indeed, the beginning of the time for Fajr is when dawn breaks, and indeed the end of its time..." Undoubtedly, for every

prayer there is a beginning and an end, and undoubtedly the beginning time for the morning prayer is at the time of dawn (tulu-e-fajr), and its...

(1) Al-Quran 4/103 Page 158 of 673

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

...सिर उठाए। बहुत से लोग जो रुकूसजदा में आते-जाते यह तस्बीह पढ़ते हैं, बहुत ग़लती करते हैं। एक तख़फ़ीफ़ (रियायत) बहुत ज़्यादा क़ज़ा नमाज़ों वालों के लिए यह हो सकती है; दूसरी तख़फ़ीफ़ यह कि फ़र्ज़ नमाज़ों की तीसरी और चौथी रकअत में अल्हम्द शरीफ़ (सूरह फ़ातिहा) की जगह तीन बार "सुब्हान अल्लाह, सुब्हान अल्लाह, सुब्हान अल्लाह" कह कर रुकू में चले जाएं मगर वही ख़याल यहाँ भी ज़रूरी है कि सीधे खड़े होकर "सुब्हान अल्लाह" शुरू करें और पूरा खड़े-खड़े कह कर रुकू के लिए सर झुकाएं। यह तख़फ़ीफ़ सिर्फ़ फ़र्ज़ों की तीसरी और चौथी रकअत में है, वित्र की तीनों रकअतों में अल्हम्द और सूरह दोनों ज़रूर पढ़ी जाएं। तीसरी तख़फ़ीफ़ पहली अत्तहियात के बाद दोनों दुरूदों और दुआ की जगह सिर्फ़"अल्लाहुम्मा सल्लि अला मुहम्मदिन व आलिही" कह कर सलाम फेर दें। चौथी तख़फ़ीफ़ वित्र की तीसरी रकअत में दुआ-ए-कुनूत की जगह "अल्लाहु अकबर" कह कर सिर्फ़ एक या तीन बार "रब्बिग़-फ़िरली" कहे। वल्लाहु तआला अअ़लम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)।

मसला १२०३: अज़ मौलवी अब्दुल्लाह साहब, मुदर्रिस मंज़रे इस्लाम, मोहल्ला सौदागरान बरेली, ९ सफ़र १३३९ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि क़ज़ा-ए-उमरी नमाज़ अदा करने की हालत में जो नफ़्ल हर वक़्त की नमाज़ में पढ़े जाते हैं, वो क़ुबूल होंगे या नहीं?

अल-जवाब: ख़ाली नफ़्लों की जगह भी क़ज़ा-ए-उमरी पढ़े। वल्लाहु तआला अअ़लम।

मसला १२०४: किताब 'तर्कीब-उस-सलाह' में लिखा है कि एक शख़्स रात के तीन बजे से जागता रहा और सुबह सादिक़ (नमाज़ का वक़्त) के वक़्त सो गया और सूरज निकल आया, तो वो उस वक़्त की नमाज़ पढ़े तो उसे 'अदा' (समय पर पढ़ने) का सवाब मिलेगा और वो क़ज़ा का लफ़्ज़ न कहे।

अल-जवाब: इस नमाज़ के क़ज़ा हो जाने में कोई शक नहीं क्योंकि नमाज़ के लिए शरई तौर पर वक़्त मुक़र्रर हैं। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "बेशक नमाज़ ईमान वालों पर मुक़र्ररा वक़्त पर फ़र्ज़ की गई है।" (१) अल्लाह तआला ने फ़रमाया: बेशक नमाज़ मुसलमानों पर वक़्त बाँधा हुआ फ़र्ज़ है। और क़ज़ा हो जाने का यही मतलब है कि शरीअत ने जो वक़्त मुक़र्रर फ़रमाया था वो गुज़र गया। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "बेशक हर नमाज़ के लिए अव्वल और आख़िर (वक़्त) है और बेशक फ़ज्र की नमाज़ का अव्वल वक़्त वह है जब फ़ज्र (पौ) फटे और बेशक उसका

आख़िरी वक़्त..." बेशक हर नमाज़ के लिए अव्वल और आख़िर है और बेशक सुब्ह की नमाज़ का पहला वक़्त तुलू-ए-फ़ज्र (भोर) के वक़्त है और उसका...

(१) अल-क़ुरआन ४/१०३ पृष्ठ १५८ / ६७३

سر اٹھائے۔ بہت سے لوگ جو رکوع سجدہ میں آتے جاتے یہ تسبیح پڑھتے ہیں بہت غلطی کرتے ہیں ایک تخفیف کثرت قضا والوں کی یہ ہو سکتی ہے، دوسری تخفیف یہ کہ فرضوں کی تیسری اور چوتھی رکعت میں الحمد شریف کی جگہ سبحان اللہ، سبحان اللہ ،سبحان اللہ تین بار کہہ کر رکوع میں چلے جائیں مگر وہی خیال یہاں بھی ضرور ہے کہ سیدھے کھڑے ہو کر سبحان اللہ شروع کریں اور سبحان اللہ پورے کھڑے کھڑے کہہ کر رکوع کے لئے سر جھکائیں، یہ تخفیف فقط فرضوں کی تیسری چوتھی رکعت میں ہے وتروں کی تینوں رکعتوں میں الحمد اور سورت دونوں ضرور پڑھی جائیں، تیسری تخفیف پہلی التحیات کے بعد دونوں درودوں اور دعا کی جگہ صرف اللھم صلی علی محمد والہ کہہ کر سلام پھیر دیں چوتھی تخفیف وتروں کی تیسری رکعت میں دعائے قنوت کی جگہ اللہ اکبر کہہ کر فقط ایک یا تین بار رب اغفر لی کہے واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۰۳: از مولوی عبد اللہ صاحب مدرس منظر اسلام محلہ سوداگران بریلی ۹ صفر ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلے میں کہ قضائے عمری نماز ادا کرنے کی حالت میں جو نفل ہر وقت کی نماز میں پڑھے جاتے ہیں وہ قبول ہوں گے یا نہیں؟

الجواب: خالی نفلوں کی جگہ بھی قضائے عمری پڑھے، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۰۴: کتاب ترکیب الصلوٰۃ میں لکھا ہے کہ ایک شخص تین بجے رات سے جاگتا رہا اور وقت نماز صبح صادق سو گیا اور آفتاب نکل آیا تو وہ وقت کی نماز پڑھے ثواب اس کو ادا کا ملے گا وقت میں قضا کا لفظ نہ کہے۔

الجواب: اس نماز کے قضا ہو جانے میں شک نہیں کہ نماز کے لئے شرعاً اوقات معین ہیں، قال اللہ تعالٰی اِنَّ الصَّلٰوۃَ کَانَتْ عَلَی الْمُؤْمِنِیْنَ کِتٰبًا مَّوْقُوْتًا 1 اللہ تعالیٰ نے فرمایا: بیشک نماز مسلمانوں پر وقت باندھا ہوا فرض ہے، اور قضا ہو جانے کے یہی معنی ہیں کہ شرعاً جو وقت مقرر فرمایا گیا تھا وہ جاتا رہا، رسول اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: ان اللصلوٰۃ اولا واخر و ان اول وقت الفجر حین یطلع الفجر و ان اخر وقتہا بیشک ہر نماز کے لئے اول و آخر ہے اور بیشک نماز صبح کا اول وقت طلوع فجر کے وقت ہے اور اس کا

Fatawa Razawiya, Volume 8

"...until the sun rises."[1] - Narrated by Tirmidhi and Imam Tahawi with an authentic chain from Al-A'mash from Abu Salih from Abu Hurairah in detail, and this is a summary. The time ends at sunrise. It was narrated in detail by Imam Tirmidhi and Imam Tahawi through an authentic chain from A'mash, from Abu Salih, from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), and this is the condensed version.

Imam Tahawi says: "This is the consensus of Muslims that the beginning of the Fajr prayer time is when the dawn breaks and its end time is when the sun rises."[2] That is, there is a consensus among all Muslims that the time for the morning prayer starts at dawn and ends at sunrise.

"As for what is mentioned in some books of Fiqh as a Marfu' (elevated) narration that whoever sleeps through a prayer or forgets it should pray it when he remembers it, for that is its time, I say:" Regarding the elevated narration mentioned in some books of jurisprudence that if a person oversleeps or forgets a prayer, they should perform it when they remember it because that is its time. I say (faqul):

"The Hadith in the two Sahihs (Bukhari & Muslim) is with the wording 'Whoever forgets a prayer should pray it when he remembers it; there is no expiation for it except that.'[3] Narrated by both from Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) from the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him)." Bukhari and Muslim have narrated this Hadith from Hazrat Anas bin Malik (may Allah be pleased with him) in these words: The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever forgets a prayer should offer it when he remembers it; there is no expiation for that prayer except this."

"And in a version of Muslim from him: 'Whoever forgets a prayer or sleeps through it, its expiation is to pray it when he remembers it.'[4] And in another version of his: '...let him pray it when he remembers it, for Allah, the Mighty and Sublime, says: "And establish prayer for My remembrance."'[5] and from Abu Qatada (may Allah be pleased with him) with the wording 'let him pray it'." In Sahih Muslim, the narration from him is in these words: "Whoever forgets to perform a prayer or oversleeps, the expiation for it is to perform it when he remembers it." Another narration in Muslim has these words: "...he should perform it when he remembers it, for Allah Almighty says,

'Establish prayer for My remembrance.'" And another from Abu Qatada (may Allah be pleased with him) has the wording "let him pray it."

1. Jami' al-Tirmidhi, Chapters of Prayer, Chapter on this, published by Amin Company, Delhi, 1/22.
2. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on the Timings of Prayer, published by HM Saeed Company, Karachi, 1/103.
3. Sahih al-Bukhari, Chapter on one who forgets a prayer, let him pray when he remembers etc., Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/82; Sahih Muslim, Chapter on making up missed prayers, Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/241.
4. Sahih Muslim, Chapter on making up missed prayers, Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/241.
5. Sahih Muslim, Chapter on making up missed prayers, Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/241.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

"...जब तक सूरज न निकल आए।"[1] - इसे इमाम तिर्मिज़ी और इमाम तहावी ने एक प्रामाणिक श्रृंखला (सनद) के साथ अ'मश से, उन्होंने अबू सालेह से और उन्होंने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से विस्तार से वर्णित किया है, और यह इसका संक्षिप्त रूप है। समय सूर्योदय पर समाप्त होता है। इसे इमाम तिर्मिज़ी और इमाम तहावी ने सहीह सनद के साथ अ'मश से, उन्होंने अबू सालेह से और उन्होंने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से विस्तार से रिवायत किया है और यह संक्षिप्त है।

इमाम तहावी फ़रमाते हैं: "इस पर मुसलमानों की आम सहमति (इज्मा) है कि फज्र की नमाज़ का पहला समय सुबह सादिक (भोर) से शुरू होता है और इसका आखिरी समय सूर्योदय (सूरज निकलने) तक रहता है।"[2] यानी इस पर तमाम मुसलमानों का इज्मा है कि सुबह की नमाज़ का वक़्त तुलू-ए-फज्र से शुरू होता है और तुलू-ए-शम्स पर खत्म हो जाता है।

"रही बात उस मरफू रिवायत की जो कुछ फिक़्ह (धर्मशास्त्र) की किताबों में ज़िक्र है कि जो शख्स नमाज़ से सो गया या उसे भूल गया, तो जब उसे याद आए उसी वक़्त नमाज़ अदा करे क्योंकि यही उसका वक़्त है, तो मैं कहता हूँ:" जो बाज़ कुतुब-ए-फिक़्ह में मरफूअ रिवायत मर्वी है कि जो शख़्स नमाज़ से सो गया या उसे भूल गया तो वो जब याद आ जाए उसी वक़्त नमाज़ अदा करे क्योंकि यही उसका वक़्त है। फ़अक़ूल: (मैं कहता हूँ)

"सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) में हदीस के शब्द हैं: 'जो नमाज़ भूल गया, वह उसे याद आने पर पढ़े; इसके अलावा उसका कोई कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) नहीं है।'[3] इन दोनों ने इसे हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के हवाले से बयान किया है।" इस हदीस को बुखारी व मुस्लिम ने हज़रत अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु से इन अल्फ़ाज़ में रिवायत किया है कि नबी अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया: जो नमाज़ भूल गया वो याद आने पर अदा करे, इस नमाज़ का कफ़्फ़ारा सिवाए इसके कुछ नहीं।

"मुस्लिम के शब्दों में है: 'जो नमाज़ भूल गया या उससे सोता रह गया, तो उसका कफ़्फ़ारा यह है कि जब याद आए उसे पढ़ ले।'[4] और एक अन्य रिवायत में है: '...जब याद आए उसे पढ़ ले, क्योंकि अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है: "और मेरी याद के लिए नमाज़ कायम करो।"'[5] और अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से इन शब्दों के साथ है: 'तो वह उसे पढ़ ले'।" मुस्लिम शरीफ में उन्हीं से यह रिवायत इन अल्फ़ाज़ में है जो शख़्स नमाज़ अदा करना भूल गया या सो गया नमाज़ रह गई तो

उसका कफ़्फ़ारा ये है कि जब याद आए उसे अदा करे। मुस्लिम की दूसरी रिवायत जो इसी सहाबी से मर्वी है ये अल्फ़ाज़ हैं कि जब नमाज़...

1. जामे तिर्मिज़ी, अबवाबुल सलात, बाब मिन्हु, मक्तूआ अमीन कंपनी दिल्ली 1/22।
2. शरह मआनी अल-आसार, बाब मवाक़ीत अल-सलात, मक्तूआ एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/103।
3. सहीह अल-बुखारी, बाब मन नसिया सलातन फ़ल्युसल्ली इज़ा ज़करा अलख, क़दीमी कुतुब खाना कराची 1/82; सहीह मुस्लिम, बाब क़ज़ा अल-सलात अल-फ़ाइता, नूर मुहम्मद असहा उल-मताबे' कराची 1/241।
4. सहीह मुस्लिम, बाब क़ज़ा अल-सलात अल-फ़ाइता, नूर मुहम्मद असहा उल-मताबे' कराची 1/241।
5. सहीह मुस्लिम, बाब क़ज़ा अल-सलात अल-फ़ाइता, नूर मुहम्मद असहा उल-मताबे' कराची 1/241।

حین تطلع الشمس[1] ۔ رواہ الترمذی والامام الطحاوی بسند صحیح عن الاعمش عن ابی صالح عن ابی ہریرۃ مطولا و ھذا مختصر، آخر طلوعِ شمس پر ہے، اسے امام ترمذی اور امام طحاوی نے بسندِ صحیح اعمش سے انہوں نے ابوصالح سے اور انہوں نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے تفصیلاً روایت کیا ہے اور یہ مختصر ہے۔

امام طحاوی فرماتے ہیں: ھذا اتفاق المسلمین ان اول وقت الفجر حین تطلع الفجر واخر وقتھا حین تطلع الشمس[2] یعنی اس پر تمام مسلمانوں کا اجماع ہے کہ نمازِ صبح کا وقت طلوعِ فجر سے شروع ہوتا ہے اور طلوعِ شمس پر جاتا رہتا ہے۔

اما ما ذکر في بعض کتب الفقۃ مرفوعاً من نام عن صلوۃ اونسیھا فلیصلھا اذا ذکرھا فان ذلك وقتھا فاقول: جو بعض کتبِ فقہ میں مرفوعاً روایت مروی ہے کہ جو شخص نماز سے سوگیا اسے بھول گیا تو وہ جب یاد آجائے اسی وقت نماز ادا کرے کیونکہ یہی اس کا وقت ہے۔ فاقول: (میں کہتا ہوں)

الحدیث في الصحیحین بلفظ من نسی صلوۃ فلیصلھا اذا ذکرھا لاکفارۃ لھا الا ذلك[3] اخرجاہ عن انس بن مالك رضی اللہ تعالی عنہ عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم، اس حدیث کو بخاری و مسلم نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ان الفاظ میں روایت کیا ہے کہ نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا : جو نماز بھول گیا وہ یاد آنے پر ادا کرے اس نماز کا کفارہ سوائے اس کے کچھ نہیں۔

وفی لفظ لمسلم عنہ من نسی صلوۃ او نام عنھا فکفارتھا ان یصلیھا اذا ذکرھا وفي اخر لہ انہ فلیصلھا اذا ذکرھا فان اللہ عز و جل یقول اقم الصلوۃ لذکری و لہ عن ابی قتادہ رضی اللہ تعالی عنہ بلفظ

فلیصلھا مسلم شریف میں انہی سے یہ روایت ان الفاظ میں ہے جو شخص نماز ادا کرنا بھول گیا یا سوگیا نماز رہ گئی تو اس کا کفارہ یہ ہے کہ جب یاد آئے اسے ادا کرے۔ مسلم کی دوسری روایت جو اسی صحابی سے مروی ہے یہ الفاظ ہیں کہ جب نماز

1 جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب منہ مطبوعہ امین کمپنی دہلی ۱/ ۲۲ 2 شرح معانی الآثار باب مواقیت الصلوۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۱۰۳ 3 صحیح البخاری باب من نسی صلوۃ فلیصل اذا ذکر الخ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۸۲، صحیح مسلم باب قضاء الصلوۃ الفائتہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۴۱ 4 صحیح مسلم، باب قضاء الصلوۃ الفائتہ، نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۴۱ 5 صحیح مسلم، باب قضاء الصلوۃ الفائتہ، نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۴۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

Main Text: "When he wakes up for it; if it is the next day, let him pray it at its [fixed] time."(1) And he has it like the Sunnah except for Bukhari and Tirmidhi, from Abu Huraira (may Allah be pleased with him). The last words are from Anas (may Allah be pleased with him). Tirmidhi narrated and authenticated it, and Nasai also narrated it in the Hadith of Abu Qatada (may Allah be pleased with him): "Let him pray it when he remembers it."(2) Similar is narrated by Abu Ya'la and Al-Tabarani in 'Al-Mu'jam Al-Kabir' from Abu Hanifa (may Allah be pleased with him), and something similar is in 'Al-Awsat' from Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him). In Imam Malik's 'Muwatta', from Zaid bin Aslam, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): "When one of you sleeps through a prayer or forgets it, then wakes up in a panic for it, let him pray it just as he would have prayed it at its time."(3) In Al-Tabarani, from Maymuna bint Sa'd (may Allah be pleased with her): "When he remembers it, let him pray it and let him perform his prayer well and perform wudu (ablution) and perform it well, for that is its expiation."(4) None of these contain the phrase "for that is its time," rather the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) has guided otherwise.

(Corresponding Urdu explanation/translation on the right side of the page): ...remembers it, then perform it, because the command of Allah the Almighty is: 'Establish prayer for My remembrance.' And Muslim narrated these words from Hazrat Abu Qatada (may Allah be pleased with him) that when that person wakes up, he should perform it, and when the next day comes, he should perform it at its time. It is like this in the Sahih Sittah except for Bukhari. Tirmidhi has quoted the last words of the hadith from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) in the same way as they are narrated from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him). In Tirmidhi and Nasai, in the hadith narrated from Hazrat Abu Qatada (may Allah be pleased with him), it is stated: "So let him recite it when he remembers it." Tirmidhi has called this narration authentic. In Abu Ya'la and Al-Mu'jam Al-Kabir of Al-Tabarani, this hadith is narrated from Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) in a similar way. Likewise, in 'Al-Awsat' it is narrated from Hazrat Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him), and in Imam Malik's Muwatta from Zaid bin Aslam, it is narrated that the Noble Prophet said: "When one of you sleeps through a prayer or forgets it, then fears that the prayer has been missed, let him perform it in the same way as he would perform the timely prayer."

Footnotes: 1. Sahih Muslim, Kitab al-Masajid, Bab Qada al-Salah al-Fa'itah, printed by Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/249. 2. Jami' at-Tirmidhi, Abwab al-Salah, Bab Ma Ja'a fi an-Nawm 'an al-Salah, printed by Amin Company, Karachi, 1/25; Sunan an-Nasa'i, Kitab al-Mawaqit, printed by Al-Maktabah as-Salafiyyah, Lahore, 1/71. 3. Muwatta Imam Malik, Kitab Wuqut al-Salah, Bab an-Nawm 'an al-Salah, printed by Mir Muhammad Kutub Khana, Karachi, p. 10. 4. Al-Mu'jam Al-Kabir, narrated from Maymuna bint Sa'd (may Allah be pleased with her), printed by Al-Maktabah, Beirut, 25/35.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मुख्य विषय-वस्तु: "जब उसे उसके लिए जाग आए; फिर यदि अगला दिन हो, तो उसे उसके समय पर पढ़े।" (1) और उनके पास सुन्नत के समान है सिवाय बुखारी और तिर्मिज़ी के हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से। अंतिम शब्द हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हैं। तिर्मिज़ी ने इसे रिवायत किया और सहीह कहा, और नसाई ने भी हज़रत अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में: "तो जब उसे याद आए, उसे पढ़ ले।" (2) इसी तरह अबू य'ला और अल-तबरानी ने 'अल-मु'जम अल-कबीर' में इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है, और इसी तरह 'अल-औसत' में हज़रत अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से। इमाम मालिक की 'मुवत्ता' में जैद बिन असलम से मरवी है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जब तुम में से कोई नमाज़ से सो जाए या उसे भूल जाए, फिर घबरा कर उसके लिए जागे, तो उसे उसी तरह पढ़े जैसे वह उसे उसके समय पर पढ़ता।" (3) अल-तबरानी में मैमूना बिन्त साद (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत है: "जब उसे याद आए तो उसे पढ़ ले और अपनी नमाज़ अच्छी तरह पढ़े और वज़ू करे और अपना वज़ू अच्छी तरह करे, तो यही उसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) है।" (4) इनमें से किसी में भी "वही उसका समय है" के शब्द नहीं हैं, बल्कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने [अन्यथा] मार्गदर्शन दिया है।

(दायाँ कॉलम उर्दू व्याख्या का हिंदी अनुवाद): ...याद आए तो उसे अदा करे क्योंकि अल्लाह तआला का फ़रमान है: 'नमाज़ मेरी याद के लिए क़ायम करो।' और मुस्लिम ने हज़रत अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से ये अल्फ़ाज़ रिवायत किए हैं कि वह शख़्स जब बेदार हो तो अदा करे और जब दूसरा दिन आए तो उसे वक़्त पर अदा करे। बुखारी के सिवा सिहाह सित्ता में ऐसे ही है। तिर्मिज़ी ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से हदीस के आख़िरी अल्फ़ाज़ इस तरह नक़ल किए हैं जो हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से भी मरवी हैं। तिर्मिज़ी और नसाई में हज़रत अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी हदीस में है, पस उसे पढ़ ले जब उसे याद आए। तिर्मिज़ी ने इस रिवायत को सहीह कहा है। अबू य'ला और अल-मु'जम अल-कबीर लित-तबरानी में यह हदीस इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से इसी की मिसाल मरवी है। इसी तरह औसत में हज़रत अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और इमाम मालिक के मुवत्ता में ज़ैद बिन असलम से मरवी है कि नबी अकरम ने फ़रमाया: "जब तुम में से कोई नमाज़ से सो जाए या उसे भूल जाए फिर उसे नमाज़ के(क़ज़ा) होने का ख़ौफ़ लाहिक़ हुआ तो उसे इसी तरह अदा करे जिस तरह वक़्ती नमाज़।"

पाद टिप्पणियाँ: 1. सहीह मुस्लिम, किताबुल मसाजिद, बाब क़ज़ाउल सलातिल फ़ाइता, मतबुआ नूर मुहम्मद असहुल मताबी, कराची 1/249 2. जामे' तिर्मिज़ी, अबवाबुस सलात, बाब मा जा-अ फिन-नौम अनिस सलात, मतबुआ अमीन कंपनी, कराची 1/25; सुनन नसाई, किताबुल मवाक़ीत... मतबुआ अल-मकतबतुल सलफ़िया, लाहौर 1/71 3. मुवत्ता इमाम मालिक, किताबु वुक़ूतिस सलात, बाबुन-नौम अनिस सलात, मतबुआ मीर मुहम्मद कुतुब ख़ाना, कराची पृ. 10 4. अल-मु'जम अल-कबीर, मैमूना बिन्त साद (रज़ियल्लाहु अन्हा) से मरवी, मतबुआ अल-मकतबह, बेरूत 25/35

पृष्ठ 160/673

حین ینتبه لها فاذا کان الغد فلیصلها عند وقتها ۱ وله کالسنة الا البخاری والترمذی عن ابی هریرة رضی الله تعالی عنه کا خر الفاظه عن انس رضی الله تعالی عنه وللترمذی وصححه والنسائی فی حدیث ابی قتاده رضی الله تعالی عنه فلیصلها اذا ذکرها ۲ ومثله لابی یعلی والطبرانی فی الکبیر عن ابی حنیفه رضی الله تعالی عنه ونحوه لهذا فی الاوسط عن ابی سعید الخدری رضی الله تعالی عنه ولمالك فی موطأه عن زید بن اسلم عن النبی صلی الله تعالی علیه وسلم اذا رقد احدکم عن الصلوة اونسیها ثم فزع الیها فلیصلها کما کان یصلیها لوقتها ۳ وللطبرانی عن میمونة بنت سعد رضی الله تعالی عنها اذا ذکرها فلیصلها ولیحسن صلوته ولیتوضأ فلیحسن وضوئه فذلك کفارته ۴ و لیس فی شی من ذلك "فان ذلك وقتها" بل قد ارشد صلی الله تعالی علیه وسلم

(دائیں کالم کی اردو عبارت): یاد آئے تو اسے ادا کرے کیونکہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے نماز میری یاد کے لئے قائم کرو۔ اور مسلم نے حضرت ابو قتادہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے یہ الفاظ روایت کئے ہیں کہ وہ شخص جب بیدار ہو تو ادا کرے اور جب دوسرا دن آئے تو اسے وقت پر ادا کرے۔ بخاری کے سوا صحاح ستہ میں ایسے ہی ہے۔ ترمذی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے حدیث کے آخری الفاظ اس طرح نقل کئے ہیں جو حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بھی مروی ہیں، ترمذی اور نسائی میں حضرت ابو قتادہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی حدیث میں ہے، پس اسے پڑھ لے جب اسے یاد آئے، ترمذی نے اس روایت کو صحیح کہا ہے ابویعلیٰ اور المعجم الکبیر للطبرانی میں یہ حدیث امام ابی حنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اسی کی مثل مروی ہے، اسی طرح اوسط میں حضرت ابو سعید خدری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اور امام مالک کے موطا میں زید بن اسلم سے مروی ہے کہ نبی اکرم نے فرمایا جب تم میں سے کوئی نماز سے سو جائے یا اسے

بھول جائے پھر اسے نماز کے (قضا) ہونے کا خوف لاحق ہوا تو اسے اسی طرح ادا کرے جس طرح وقتی نماز

حواشی: ۱ صحیح مسلم کتاب المساجد باب قضاء الصلوۃ الفائتہ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۴۹ ۲ جامع الترمذی ابواب الصلوۃ باب ماجاء فی النوم عن الصلوۃ مطبوعہ امین کمپنی کراچی ۱/ ۲۵، سنن النسائی کتاب المواقیت فنیم نام عن صلوۃ مطبوعہ المکتبۃ السلفیہ لاہور ۱/ ۷۱ ۳ موطا امام مالک کتاب وقوت الصلوۃ باب النوم عن الصلوۃ مطبوعہ میر محمد کتب خانہ کراچی ص ۱۰ ۴ المعجم الکبیر مروی از میمونہ بنت سعد رضی اللہ عنہا مطبوعہ المکتبۃ بیروت ۲۵/ ۳۵

صفحہ ۱۶۰ از ۶۷۳

Fatawa Ridawiyya | Volume 8

In the Hadith of Abu Qatada (may Allah be pleased with him), his saying: "When it is the next day, pray it at its time," means that the one who prays today, it is not at its [original] time. Towards this points the Hadith of Zaid: "So he should pray it as he used to pray it at its time." Yes, for Tabarani in Al-Awsat and Al-Bayhaqi in As-Sunan from [one] who forgot a prayer: "Its time is when he remembers it." And Al-Bayhaqi has explicitly stated its weakness. So how can it be used as a proof? Nay, even if it were sound, it would not conflict with the consensus (Ijma) because it is susceptible to interpretation, meaning: he is demanded to perform it now just as he was demanded at its [original] time.

performs. It is narrated in Tabarani from Hazrat Maimoona bint Sa'd (may Allah be pleased with her) that when one remembers it, they should perform it and do Wudu well, for this is its expiation. In all these narrations, these words "that is its time" are not present at all; rather, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) gave guidance through the words of Abu Qatada's Hadith: "On the next day, perform the prayer at its time," that what he prayed today was not on time. The words of Zaid's Hadith: "perform it in the same way as one performs the timely [prayer]" also point towards this. Yes, Tabarani in Al-Awsat and Al-Bayhaqi in As-Sunan narrated from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) as a Marfu' (raised) tradition that: "For one who forgot the prayer, its time is when he remembers it." But Imam Al-Bayhaqi has clarified its weakness, so how can this narration become an evidence? Moreover, even if this narration were authentic, it cannot break the consensus (Ijma). Furthermore, its interpretation is correct that when the prayer is remembered, its performance is demanded from him just as it was in its [original] time. (T)

There is no need to say the word 'Qada' (missed) even in that [unintentional case], whereas if one deliberately missed it (God forbid) while wide awake. Rather, our scholars state explicitly that Qada with the intention of Ada and Ada with the intention of Qada are both correct, but there is no reason for prohibition from it. While it is certainly Qada, what is the harm in saying Qada? As for getting the reward of Ada, that is in the power of Allah (Almighty and Majestic). If He knows that he did not commit any negligence on his part - he was sitting awake until morning due to some incident and involuntarily his eyes closed - then certainly there is no sin upon him. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Indeed, there is no negligence in sleep; negligence is only upon the one who does

not perform the prayer until the time of the next prayer comes." - Narrated by Muslim from

negligence. If the prayer was missed due to sleeping, there is no sin. But the person who deliberately did not pray until the time for the next prayer arrived will certainly be a sinner. Muslim narrated it from Hazrat Abu Qatada.

---

1. Majma' al-Zawa'id, referencing Mu'jam al-Awsat, Chapter on one who slept through prayer, printed by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/322; Sunan al-Kubra, Book of Prayer, Chapter on no negligence for one who sleeps through prayer, printed by Dar Sadr, Beirut, 2/219/2.
2. Sahih Muslim, Book of Mosques, Chapter on making up missed prayers, printed by Noor Muhammad, Asah al-Matabi', Karachi, 239/1.

अबू क़तादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में उनके इस कथन का कि "जब अगला दिन हो, तो उसे उसके समय पर पढ़ो," अर्थ यह है कि जिसने आज नमाज़ पढ़ी, वह उसके[मूल] समय पर नहीं थी। ज़ैद की हदीस इसी ओर संकेत करती है: "तो वह उसे वैसे ही पढ़े जैसे वह उसे उसके समय पर पढ़ता था।" हाँ, तबरानी ने 'अल-औसत' में और बैहक़ी ने 'अस-सुनन' में उस व्यक्ति से रिवायत की है जो नमाज़ भूल गया: "उसका समय वही है जब उसे याद आए।" और बैहक़ी ने इसके कमज़ोर (ज़ईफ़) होने को स्पष्ट किया है। तो यह प्रमाण के रूप में कैसे प्रयुक्त हो सकता है? बल्कि, यदि यह सही भी होता, तो भी यह सर्वसम्मति (इज्मा) के विरुद्ध नहीं होता क्योंकि यह व्याख्या के योग्य है, अर्थात्: उससे अब इसका प्रदर्शन उसी तरह माँगा गया है जैसे उसके[मूल] समय में माँगा गया था।

अदा करता है। तबरानी में हज़रत मैमूना बिन्त साद (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णित है कि जब उसे याद आए तो अदा करे और अच्छी तरह वुज़ू करे, बस यही इसका कफ़्फ़ारा है। इन तमाम रिवायतों में ये शब्द कि "वही उसका वक्त है" हरगिज़ नहीं हैं; बल्कि रिसालत मा'आब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हदीस-ए-अबू क़तादा के शब्दों "दूसरे दिन की नमाज़ अपने वक्त पर अदा करे" के ज़रिए यह रहनुमाई अता फ़रमाई है कि आज उसने जो नमाज़ पढ़ी वह वक्त पर न थी। हदीस-ए-ज़ैद के शब्द "उसे उसी तरह अदा करे जैसे वक्ती अदा करता है" भी इसी तरफ़ इशारा कर रहे हैं। हाँ, तबरानी ने औसत और बैहक़ी ने सुनन में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरफ़ूअ़न रिवायत किया है कि जो नमाज़ भूल गया उसका वक्त वही है जब उसे याद आए। लेकिन इमाम बैहक़ी ने इसके ज़ईफ़ होने की तसरीह (स्पष्टीकरण) कर दी है तो यह रिवायत दलील कैसे बन सकती है? बल्कि अगर यह रिवायत सही भी हो तो इज्मा को तोड़ नहीं सकती। इसके अलावा इसकी तावील (व्याख्या) करना दुरुस्त है कि जब नमाज़ याद आई है तो उससे उसकी अदायगी का इसी तरह मुतालबा है जैसे कि उसके वक्त में था। (त)

वक्त में कज़ा का लफ़्ज़ कहने की तो कोई हाजत इसमें भी नहीं, जबकि जीते-जागते क़स्दन (जानबूझकर) मा'अज़ल्लाह कज़ा कर दी हो। बल्कि हमारे उलमा तसरीह फ़रमाते हैं कि कज़ा ब-नीयत-ए-अदा और अदा ब-नीयत-ए-कज़ा दोनों सही हैं, मगर इससे मुमानअत की कोई वजह नहीं जबकि वह यक़ीनन कज़ा है, तो कज़ा कहने में क्या मुज़ाइक़ा रखा है? रहा अदा का सवाब मिलना, यह अल्लाह अज़्वजल्ल के इख्तियार में है। अगर वह जानेगा कि उसने अपनी जानिब से कोई तक़्सीर (कोताही) न की, सुबह तक जागने के क़िस्से से बैठा था और बे-इख्तियार आँख लग गई, तो ज़रूर

उस पर गुनाह नहीं। रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "बेशक नींद में कोताही नहीं है; कोताही तो उस पर है जिसने नमाज़ नहीं पढ़ी यहाँ तक कि दूसरी नमाज़ का वक्त आ गया।" - इसे मुस्लिम ने रिवायत किया...

सो जाने की वजह से नमाज़ रह गई तो गुनाह नहीं, लेकिन जिस शख़्स ने जानबूझकर नमाज़ न पढ़ी यहाँ तक कि दूसरी नमाज़ का वक्त आ गया तो यक़ीनन गुनहगार होगा। इसे मुस्लिम ने हज़रत अबू क़तादा से...

---

1. मज्म'उज़ ज़वाइद, मुअ़जम औसत के हवाले से, अध्याय: जो नमाज़ से सो गया, मुद्रित: दारुल किताबुल अरबी, बेरूत, 2/322; सुनन अल-कुबरा, किताबुस सलात, अध्याय: सोने वाले पर कोई कोताही नहीं, मुद्रित: दार सादिर, बेरूत, 2/219/2।
2. सहीह मुस्लिम, किताबुल मसाजिद, अध्याय: छूटी हुई नमाज़ों की कज़ा, मुद्रित: नूर मुहम्मद, असहुल् मताबी, कराची, 239/1।

पृष्ठ 161/673

فی حدیث ابی قتادۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ بقولہ فاذا کان الغد فلیصلھا عند وقتھا ان الذی یصلی الیوم لیس لوقتہ والیہ یومی حدیث زید فلیصلھا کما کان یصلیھا لوقتھا نعم للطبرانی فی الاوسط و البیھقی فی السنن من نسی صلوۃ فوقتھا اذا ذکرھا وقد نص البیھقی علی تضعیفہ فانی تقوم بہ الحجۃ بل ولئن صح لم یقادح الاجماع علی انہ یقبل التاویل ای انہ یطالب بھا الان کما یطالب بھا فی وقتھا۔

ادا کرتا ہے۔ طبرانی میں حضرت میمونہ بنت سعد رضی اللہ تعالٰی عنہا سے مروی ہے کہ جب اسے یاد آئے ادا کرے اور اچھی طرح وضو کرے پس یہی اس کا کفارہ ہے۔ ان تمام روایات میں یہ الفاظ کہ "وہی اس کا وقت ہے" ہرگز نہیں ہیں بلکہ رسالت مآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے حدیث ابو قتادہ کے الفاظ "دوسرے دن کی نماز اپنے وقت پر ادا کرے" کے ذریعے یہ رہنمائی عطا فرمائی ہے کہ آج اس نے جو نماز پڑھی وہ وقت پر نہ تھی حدیث زید کے الفاظ اسے اسی طرح ادا کرے جیسے وقتی ادا کرتا ہے" بھی اسی طرف اشارہ کر رہے ہیں ، ہاں طبرانی نے اوسط اور بیہقی نے سنن میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مرفوعاً روایت کیا ہے کہ جو نماز بھول گیا اس کا وقت وہی ہے جب اسے یاد آئے لیکن امام بیہقی نے اس کے ضعیف ہونے کی تصریح کردی ہے تو یہ روایت دلیل کیسے بن سکتی ہے ، بلکہ اگر یہ روایت صحیح بھی ہو تو اجماع کو توڑ نہیں سکتی ، علاوہ ازیں اس کی تاویل کرنا درست ہے کہ جب نماز یاد آئی ہے تو اس سے اس کی ادائیگی کا اسی طرح مطالبہ ہے جیسے کہ اس کے وقت میں تھا۔(ت)

وقت میں قضا کا لفظ کہنے کی تو کوئی حاجت اس میں بھی نہیں جبکہ جیتے جاگتے قصداً معاذ اللہ قضا کردی ہو بلکہ ہمارے علماء تصریح فرماتے ہیں کہ قضا بہ نیت ادا اور ادا بہ نیت قضا دونوں صحیح ہیں مگر اس سے ممانعت کی کوئی وجہ نہیں جبکہ وہ یقیناً قضا ہے تو قضا کہنے میں کیا

مضائقہ رکھا ہے ، رہا ادا کا ثواب ملنا یہ اللہ عزوجل کے اختیار میں ہے اگر وہ جانے گا کہ اس نے اپنی جانب سے کوئی تقصیر نہ کی صبح تک جاگنے کے قصے سے بیٹھا تھا اور بے اختیار آنکھ لگ گئی تو ضرور اس پر گناہ نہیں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں : اما انہ لیس فی النوم تفریط انما التفریط علی من لم یصلی الصلوۃ حتی یجیئ وقت الصلوۃ الاخری 2- رواہ مسلم عن

سو جانے کی وجہ سے نماز رہ گئی تو گناہ نہیں لیکن جس شخص نے جان بوجھ کر نماز نہ پڑھی حتی کہ دوسری نماز کا وقت آگیا تو یقیناً گنہ گار ہوگا۔ اسے مسلم نے حضرت ابو قتادہ

---

1 مجمع الزوائد بحوالہ معجم اوسط باب فیمن نام عن الصلوۃ مطبوعہ دار الکتاب العربیہ بیروت ۲/ ۳۲۲ ، سنن الکبری کتاب الصلوۃ باب لا تفریط علی من نام عن صلوۃ مطبوعہ دار صادر بیروت ۲۱۹/۲ 2 صحیح مسلم کتاب المساجد باب قضاء الصلوۃ الفائتہ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲۳۹/۱

Abi Qatada (may Allah be pleased with him) reported, and Nasai and Tirmidhi recorded from the same companion with the wording: "There is no negligence in sleep; negligence is only in wakefulness." 1

It is narrated from [Abu Qatada] (may Allah be pleased with him). Nasai and Tirmidhi narrated from the same companion in these words: "There is no sin in the case of sleeping; however, there is sin in wakefulness." (T)

And when there is no shortcoming on his part, it is hoped that the full reward of the prayer will be granted, but that prayer will not be excluded from being qadha (missed). The reward depends on the intention; reward can be obtained solely based on intention without the action. It is stated in a Sahih Hadith that whoever sets out with the intention of prayer and the congregation has already finished, he will receive the reward of the congregation, but it cannot be said from this that the congregation was not missed. And this is very clear (T). And Allah, the Sublime and Exalted, knows best.

Problem 1205: From Najibabad, District Bijnor, Muhalla Majeed Ganj, sent by Kareem Bakhsh Sahib, contractor, 17 Jumada al-Ula 1331 AH.

Question: Can there be a congregation for missed (qadha) prayers or not? Is it better to pray alone or in congregation? And in the mosque or at home? If a congregation is possible, should the Fajr, Isha, and Maghrib prayers be recited silently or aloud? And should every missed prayer be prayed exactly at its original time, for example, Isha at Isha time and Dhuhr at Dhuhr time, or as soon as possible without specifying a time?

Answer: If the prayers of an entire congregation were missed due to a common reason, they should pray in congregation; this is better and sunnah, and they can also pray in the mosque. In prayers recited aloud (jahri), the Imam must recite aloud even if it is qadha. And if for a specific reason, the prayers of some individuals were missed, they should pray alone at home because expressing a sin is also a sin. Qadha should be offered as soon as possible; there is no specific time, one can pray all missed prayers at one time. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Table Content] Arabic: It is disliked to offer them (missed prayers) in it (i.e., in the mosque) because delay is a sin, so it should not be made apparent - Bazzaziyya 2. Urdu: Offering missed prayers in the mosque is disliked because delay is a sin which should not be made apparent. Bazzaziyya. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar: [Table Content] Arabic: In Al-Imdad, it is stated that if the missing was due to a common cause, then the Adhan for qadha in the mosque is not disliked due to the absence of the cause (of dislike). Urdu: It is in Imdad that when the missing of prayer is due to some common matter, then Adhan for qadha in the mosque is not disliked.

Footnotes: 1 Sunan an-Nasa'i, Kitab al-Mawaqit, regarding one who slept through prayer, published by Al-Maktaba as-Salafiyya, Lahore, 1/11; Jami' at-Tirmidhi, Chapters on Prayer, what has been narrated about sleep during prayer, published by Amin Company, Delhi, 25/1. 2 Durr al-Mukhtar, Chapter on Adhan, published by Mujtabai Press, Delhi, 9/1.

अबू कतादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है, और नसाई व तिर्मिज़ी ने इसी सहाबी से इन शब्दों में रिवायत की है: "नींद में कोई कोताही नहीं है; कोताही तो केवल जागने की अवस्था में है।" १

रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है। नसाई और तिर्मिज़ी ने इसी सहाबी से इन शब्दों में रिवायत की है कि सो जाने की स्थिति में गुनाह नहीं है, अलबत्ता जागते रहने में गुनाह है। (त)

और जब उसकी ओर से कोई कोताही (तक़सीर) नहीं है, तो उम्मीद यही है कि नमाज़ का पूरा सवाब अता होगा, मगर उससे वह नमाज़ क़ज़ा से बाहर नहीं होगी। सवाब का आधार नीयत पर है; बिना किए भी केवल नीयत पर सवाब मिल जाता है। सही हदीस में इर्शाद है कि जो नमाज़ के इरादे से चला और जमाअत हो चुकी, तो उसे जमाअत का सवाब मिलेगा, लेकिन इससे यह नहीं कह सकते कि जमाअत फ़ौत (छूटी) नहीं हुई। और यह बिल्कुल स्पष्ट है (त)। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है।

मसाला १२०५: नजीबाबाद, ज़िला बिजनौर, मोहल्ला मजीद गंज से, प्रेषक करीम बख्श साहब ठेकेदार, १७ जमादी-उल-उला १३३१ हिजरी।

सवाल: क्या क़ज़ा नमाज़ की जमाअत हो सकती है या नहीं? अकेले पढ़ना अफ़ज़ल है या बा-जमाअत? और मस्जिद में या घर पर? अगर जमाअत हो सकती है तो सुब्ह, इशा और मग्रिब की नमाज़ चुपके से पढ़नी चाहिए या आवाज़ के साथ? और क्या हर एक क़ज़ा उसी के समय पर पढ़ी जाए, जैसे इशा की इशा के समय और ज़ुह्र की ज़ुह्र के समय, या यथासंभव जल्द बिना समय निर्धारित किए?

जवाब: अगर किसी आम कारण (अम्र-ए-आम) की वजह से पूरी जमाअत की नमाज़ क़ज़ा हो गई, तो जमाअत से पढ़ें, यही अफ़ज़ल और सुन्नत है और मस्जिद में भी पढ़ सकते हैं। और ज़हरी (ज़ोर से पढ़ी जाने वाली) नमाज़ों में इमाम पर ज़ह्र (ज़ोर से पढ़ना) वाजिब है चाहे क़ज़ा ही क्यों न हो। और अगर किसी विशेष कारण से कुछ व्यक्तियों की नमाज़ छूट गई, तो घर में अकेले पढ़ें क्योंकि गुनाह (मअसियत) को ज़ाहिर करना भी गुनाह है। क़ज़ा यथासंभव जल्द हो, समय का कोई निर्धारण नहीं है, एक ही समय में सभी समयों की नमाज़ें पढ़ सकता है। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

[सारणी सामग्री] अरबी: उसमें (अर्थात मस्जिद में) क़ज़ा पढ़ना मकरूह है क्योंकि देरी करना गुनाह है, अतः इसे ज़ाहिर नहीं करना चाहिए - बज़्ज़ाज़िया २। उर्दू: मस्जिद में नमाज़ की क़ज़ा मकरूह है क्योंकि देरी गुनाह है जिसका इज़हार नहीं होना चाहिए, बज़्ज़ाज़िया। (त)

'रद्दुल मुहतार' में है: [सारणी सामग्री] अरबी: और 'इमदाद' में है कि जब नमाज़ का छूटना किसी आम कारण से हो, तो मस्जिद में अज़ान देना मकरूह नहीं है क्योंकि (मकरूह होने की) वजह समाप्त हो गई है। उर्दू: 'इमदाद' में है जब नमाज़ का फ़ौत होना किसी आम बात की वजह से हो, तो अब मस्जिद में क़ज़ा के लिए अज़ान मकरूह नहीं है।

पादलेख: १. सुनन अन-नसाई, किताबुल मवाक़ीत, उन लोगों के बारे में जो नमाज़ से सो गए, मकतबा सलफिया लाहौर, १/११; जामिअत तिर्मिज़ी, अबवाबुस सलात, जो नींद में नमाज़ छूटने के बारे में आया है, अमीन कंपनी दिल्ली, २५/१। २. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल् अज़ान, मुतबूआ मुतबा मुजतबाई दिल्ली, ९/१।

पृष्ठ १६२ / ६७३

جلد ہشتم / فتاوی رضویہ

ابی قتادۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ وللنسائی والترمذی وصححہ عنہ رضی اللہ تعالٰی عنہ بلفظ انہ لیس فی النوم تفریط انما التفریط فی الیقظۃ ۱۔

رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا ہے۔ نسائی اور ترمذی نے اسی صحابی سے ان الفاظ میں روایت کی ہے سو جانے کی صورت میں گناہ نہیں البتہ بیداری میں گناہ ہے۔ (ت)

اور جب اس کی جانب سے کوئی تقصیر نہیں تو امید یہی ہے کہ ثواب نماز کامل عطا ہو مگر اس سے وہ نماز قضا سے خارج نہ ہو جائے گی ثواب کا مدار نیت پر ہے، بے کئے ثواب محض نیت پر مل جاتا ہے۔ صحیح حدیث میں ارشاد ہے کہ جو نماز کے قصد پر چلا اور جماعت ہو چکی جماعت کا ثواب پائے گا لیکن اس سے یہ نہیں کہہ سکتے کہ جماعت فوت نہ ہوئی وھذا اظھر جدا (یہ بالکل واضح ہے ۔ت) واللہ سبحٰنہ و تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۰۵: از نجیب آباد ضلع بجنور محلہ مجید گنج مرسلہ کریم بخش صاحب ٹھکیدار ۱۷ جمادی الاول ۱۳۳۱ھ

قضا نماز کی جماعت ہو سکتی ہے یا نہیں؟ تنہا پڑھنا افضل ہے یا باجماعت ؟ اور مسجد میں یا مکان پر ؟ اگر جماعت ہو سکتی ہے تو صبح و عشا و مغرب کی نماز خاموش پڑھنی چاہیئے یا با آواز ؟ اور ہر ایک قضا عین وقت ہی پر پڑھی جائے مثلاً عشاء کی عشاء کے وقت اور ظہر کی ظہر کے وقت علی ہذا القیاس یا حتی الامکان جلد بلا تعیین وقت ؟

الجواب: اگر کسی امر عام کی وجہ سے جماعت بھر کی نماز قضا ہو گئی تو جماعت سے پڑھیں، یہی افضل و مسنون ہے اور مسجد میں بھی پڑھ سکتے ہیں، اور جہری نمازوں میں امام پر جہر

واجب ہے اگرچہ قضا ہو۔ اور اگر بوجہ خاص بعض اشخاص کی نماز جاتی رہی تو گھر میں تنہا پڑھیں کہ معصیت کا اظہار بھی معصیت ہے قضا حتی الامکان جلد ہو ، تعیین وقت کچھ نہیں ایک وقت میں سب وقتوں کی پڑھ سکتا ہے، درمختار میں ہے:

[ٹیبل کا مواد] عربی: یکرہ قضاءھا فیہ (ای فی المسجد) لان التأخیر معصیۃ فلا یظھرھا - بزازیۃ ۲۔ اردو: مسجد میں نماز کی قضا مکروہ ہے کیونکہ تاخیر معصیت ہے جس کا اظہار نہیں ہونا چاہئے ،،بزازیہ۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے: [ٹیبل کا مواد] عربی: وفی الامداد انہ اذا کان التفویت الامر عام فالا ذان فی المسجد لا یکرہ لانتفاء العلۃ اردو: امداد میں ہے جب نماز کا فوت ہونا کسی عام امر کی وجہ سے ہو تو اب مسجد میں قضا کے لئے اذان مکروہ نہیں

حواشی: 1 سنن النسائی کتاب المواقیت فیمن نام عن صلوٰۃ مطبوعہ المکتبہ السلفیہ لاہور ۱/۱۱، جامع الترمذی ابواب الصلوٰۃ ما جاء فی النوم عن الصلوٰۃ مطبوعہ امین کمپنی دہلی ۲۵/۱ 2 درمختار باب الاذان، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹/۱

Fatawa Rizvia Volume 8

“As he (peace and blessings of Allah be upon him) did on the night of Ta’rees | Because that cause is absent, as the Master of the Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) did on the night of Ta’rees.” (T)

In Durr-ul-Mukhtar, it is stated: “The Imam must recite aloud (Jahran) in the Fajr prayer and in the first two Rak'ahs of Maghrib and Isha prayers | Whether the prayer is being offered on time (Ada) or as a missed prayer (Qada). And Allah Almighty knows best.” (T)

Ada and Qada. And Allah Almighty knows best.

Issue 1206: From Nawab Ganj, District Bareilly, sent by Amanat Ali Shah, 17th Ramadan 1331 AH. What do the scholars of the religion say about this matter: if a person has many missed prayers (Qada) or if they started praying late in life, what should they do to complete their past prayers?

The Answer: Perform the Qada of those prayers. The more one can pray in a day, the better; for example, pray for ten days, eight days, or seven days. One may pray them all at once or at different times. Each time, make the intention: "I am performing the first prayer that was missed by me." After performing one, make the same intention again, meaning for the one that is now the first among the remaining missed ones. Continue performing them until there is no longer a suspicion that any Qada remains. Each day's Qada consists of only twenty Rak'ahs. And Allah Almighty knows best.

Issue 1207 & 1208: Secretary, Anjuman Nu'mania, Lahore, 14th Muharram 1339 AH. (1) A person who, until the age of forty, despite being called a Muslim, did not perform prayer (Salah), fasting (Sawm), Hajj, or Zakat, or sometimes did some and not others. Later, he repented, renewed his faith, and took an oath of allegiance (Bay'ah) to a man of God. Will it be mandatory for this person to repeat those acts of worship, or will the renewal of faith be sufficient? Because accepting Islam removes all previous deficiencies and he is no longer accountable for major sins, etc. (2) If his age has reached a point where he cannot perform all those Qada prayers standing, will they be valid if performed while sitting or not?

The Answer: (1) A person does not become a disbeliever (Kafir) by not performing prayer, fasting, Hajj, and Zakat. For as many days as he did not perform them, their Qada is obligatory upon him.

1. Rad al-Muhtar, Chapter of Adhan, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/288.
2. Durr-ul-Mukhtar, Chapter on Reciting Aloud by the Imam, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/97.

फ़तावा रज़विया जिल्द हशतुम (आठवीं)

"जैसे उन्होंने (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) लैलत-उत-तरीस में किया | क्योंकि वह कारण अनुपस्थित है, जैसा कि जगत के स्वामी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने लैलत-उत-तरीस में किया था।" (त)

दुर-ए-मुख्तार में है: "इमाम के लिए फज्र और मग़रिब व इशा की पहली दो रकातों में ज़ोर से (जहरां) क़िरात करना वाजिब है | चाहे नमाज़ अदा पढ़ी जाए या कज़ा। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।" (त)

अदा और कज़ा। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1206: नवाबगंज, ज़िला बरेली से, प्रेषक अमानत अली शाह, 17 रमज़ान 1331 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि अगर किसी व्यक्ति की बहुत सी नमाज़ें कज़ा हो गई हैं या उसने देर से नमाज़ शुरू की, तो उसे अपनी पिछली नमाज़ें पूरी करने के लिए क्या करना चाहिए?

जवाब: उन नमाज़ों की कज़ा करे। एक दिन में जितनी अधिक पढ़ सके उतना बेहतर है, जैसे दस दिन की, आठ दिन की या सात दिन की। वह चाहे तो उन्हें एक ही समय में पढ़े या अलग-अलग समय पर। हर बार यह नीयत करे कि "मुझसे छूटी हुई नमाज़ों में यह सबसे पहली नमाज़ है"। एक पढ़ने के बाद फिर वही नीयत करे (यानी अब बाकियों में जो सबसे पहली है)। उसे अंत तक तब तक पढ़ना चाहिए जब तक उसे यह गुमान (संदेह) न रहे कि अब कोई कज़ा बाकी है। प्रत्येक दिन की कज़ा केवल बीस रकात है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1207 व 1208: सचिव, अंजुमन नोमानिया, लाहौर, 14 मुहर्रम 1339 हिजरी। (1) एक व्यक्ति जिसने अपनी चालीस साल की उम्र तक मुसलमान कहलाने के बावजूद नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात अदा नहीं की या कभी कुछ कर लिया और कभी कुछ नहीं, और बाद में उसने तौबा की और ईमान का नवीनीकरण किया और किसी अल्लाह वाले के हाथ पर बैअत की। क्या उस व्यक्ति पर इन इबादतों को फिर से अदा करना अनिवार्य होगा या ईमान का नवीनीकरण ही पर्याप्त होगा? क्योंकि इस्लाम कुबूल करना पिछले सभी दोषों को दूर कर देता है और वह किसी बड़े पाप (कबायेर) आदि का भी जवाबदेह नहीं रहता। (2) यदि उसकी उम्र इतनी हो गई है कि वह उन सभी कज़ा नमाज़ों को खड़े होकर अदा नहीं कर सकता, तो क्या बैठकर अदा करने से वह अदा हो जाएँगी या नहीं?

जवाब: (1) नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात अदा न करने से आदमी काफ़िर नहीं होता। जितने दिनों तक उसने इन्हें अदा नहीं किया, उनकी कज़ा उस पर अनिवार्य है।

1. रद-अल-मुह्तार, अज़ान का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/288।
2. दुर-ए-मुख्तार, अनुभाग: इमाम का ज़ोर से पढ़ना, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 1/97।

पृष्ठ 163 (कुल 673)

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

کفعله صلی اللہ تعالي علیه وسلم لیلة التعریس | کیونہ وہ علت معدوم ہے جیسے کہ سرورِ علام صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے لیلۃ التعریس میں کیا تھا۔ (ت)

در مختار میں ہے: یجهر الامام وجوبا في الفجر و اولی العشائین | امام فجر اور مغرب و عشاء کی پہلی دو رکعت میں جہراً قرات کرے خواہ نماز ادا پڑھائے یا قضا۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

اداء وقضاء۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۰۶: از نواب گنج ضلع بریلی مرسلہ امانت علی شاہ ۱۷ رمضان ۱۳۳۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر کسی شخص کی بہت نمازیں قضا ہو گئی ہیں یا اس نے دیر سے نماز شروع کی تو اس کو کیا کرنا چاہئے کہ اس کی پچھلی نمازیں پوری ہو جائیں؟

الجواب: ان نمازوں کی قضا کرے جس قدر روز پڑھ سکے اسی قدر بہتر ہے مثلاً دس دن کی روز پڑھے یا آٹھ کی یا سات کی اور چاہے ایک وقت میں پڑھے یا متفرق اوقات میں، اور ہر باریوں نیت کرے کہ سب میں پہلی وہ نماز مجھ سے قضا ہوئی، جب ایک پڑھ لی پھر یوں نیت کرے یعنی اب جو باقیوں میں پہلی ہے، اخیر تک اتنی پڑھے کہ اب اس پر قضا باقی رہنے کا گمان نہ رہے، قضاہر روز کی صرف بیس رکعت ہے واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۰۷ و ۱۲۰۸: دبیر انجمن نعمانیہ لاہور ۱۴ محرم ۱۳۳۹ھ (۱) ایک شخص جس نے اپنی چالیس سال کی عمر تک باوجود مسلمان کہلانے کے نماز روزہ حج زکوٰۃ ادا نہ کی ہو یا کبھی کچھ کرلیا اور کبھی کچھ نہیں اور بعد ازاں وہ تائب ہوا اور تجدیدِ ایمان کی اور کسی اہل اللہ کے ہاتھ پر بیعت کی کہ اس شخص کو بھی ان عبادات کا اعادہ فرض ہوگا یا تجدید ایمان کی کافی ہوگی کیونکہ

اسلام قبول کرنے سے پہلے تمام نقائص کو رفع کردیتا ہے اور کسی کبائر وغیرہ کا بھی وہ جواب دہ نہیں رہتا۔ (۲) اگر اس کی عمر ایسی مدت تک پہنچ گئی ہے کہ وہ سب قضا نمازیں کھڑے ہو کر ادا نہیں کرسکتا تو بیٹھ کر ادا کرنے سے ادا ہو جائے گی یا نہیں۔؟

الجواب: (۱) نماز روزہ و حج زکوٰۃ ادا نہ کرنے سے آدمی کافر نہیں ہوتا جتنے دنوں ادا نہ کرے گا اس کی قضا اس پر

1 ردالمحتار باب الاذان مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۲۸۸ 2 در مختار فصل ویجہر الامام مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۹۷

...it will remain obligatory; a disbeliever's conversion to Islam erases their previous major sins, but a Muslim cannot absolve themselves of their sins merely by renewing their Islam until they repent. If they have missed obligatory duties, a condition of repentance is to make up for them; verbal repentance alone is not enough. And Allah Almighty knows best.

(2) As long as one has the strength to stand, standing is obligatory, even if it is with the support of a stick, a person, or a wall; as much as one can pray in this manner, they should pray standing. If one gets tired, they may stop. If one falls short in performing it this way and death comes, it is hoped that the Lord Almighty will forgive the remaining prayers. And Allah Almighty knows best.

Problem 1209: If a person has not performed the morning prayer (Fajr), can their Friday (Jumu'ah) and Eid prayers be valid or not? And Allah Almighty knows best.

The Answer: The Eid prayer will be valid unconditionally, and the Friday prayer also if the person is not a 'Sahib-e-Tarteeb' (a person who has fewer than six missed obligatory prayers). That is, if more than five missed prayers have accumulated for them, even if few remain after performing some. If the person is a 'Sahib-e-Tarteeb', then as long as they do not perform the Fajr prayer, the Friday prayer will not be valid if they remember the Fajr prayer and there is enough time that if they perform Fajr, the time for Zuhr would expire, and this is not expected to happen in Friday prayer. And Allah Almighty knows best.

Problem 1210: From Bengal, District Sylhet, Post Office Kamalganj, Village Phool Toli, sent by Mr. Abdul Ghani, 20 Shawwal 1317 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid passed away, and he owed expiation (Kaffarah) for missed fasts and prayers, which he did not fulfill during his life due to poverty. Now, his heirs took a loan and gave a copy of the Holy Quran as a gift to a needy person on his behalf. In this situation, is the mentioned expiation dismissed from Zaid's responsibility or not? Explain and be rewarded.

The Answer: According to the market rate, the value of that copy of the Holy Quran is expected to fulfill the expiation to that extent. For example, if it was a gift of two rupees, then as much wheat as can be bought for two rupees would be the expiation fulfilled; the remaining prayers and fasts will remain due from Zaid as before. The Holy Quran is undoubtedly priceless; one of its words or letters cannot be equated to

the seven heavens and earth and everything in them. However, in these matters, the consideration is of monetary value; the Great Quran is not 'property' (in a commercial sense). Yes, the paper and binding containing the inscriptions are property, and only their price will be considered. Otherwise, if someone owes a debt of a hundred million rupees, they could just write the word 'Allah' on a paper and give it, becoming free of debt with an immense surplus remaining for them. All this is very clear. And Allah Subhanah wa Ta'ala knows best.

جلد ہشتم (खंड 8) فتاویٰ رضویہ (फतावा रज़विया)

...यह फर्ज रहेगा; एक काफिर का इस्लाम स्वीकार करना उसके पिछले बड़े गुनाहों को मिटा देता है, लेकिन एक मुसलमान केवल इस्लाम का नवीनीकरण करके अपने गुनाहों से मुक्त नहीं हो सकता जब तक कि वह तौबा न करे। यदि उसने अनिवार्य कार्यों (فرائض - फराइज) को छोड़ दिया है, तो तौबा में यह भी शर्त है कि वह उनकी कज़ा करे; केवल زبانی (जुबानी) तौबा काफी नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(२) जब तक खड़े होने की ताकत है, खड़ा होना फर्ज है, भले ही वह लकड़ी, आदमी या दीवार के सहारे हो; जिस तरह से भी वह पढ़ सके, खड़े होकर पढ़े। जब थक जाए तो रुक जाए। यदि इस तरह अदा करने में वह कमी करेगा और मौत आ गई, तो उम्मीद है कि मौला तआला बाकी नमाज़ें माफ फरमा देगा। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १२०१: जिस व्यक्ति ने सुबह की नमाज़ (فجر - फज्र) न पढ़ी हो, क्या उसकी जुमा और ईद की नमाज़ हो सकती है या नहीं? और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

जवाब: ईद की नमाज़ तो बिल्कुल हो जाएगी, और जुमा की भी यदि वह 'साहिब-ए-तरतीब' न हो (यानी जिसके जिम्मे पाँच से अधिक नमाज़ें कज़ा न हों)। यानी अगर पाँच से ज़्यादा नमाज़ें कज़ा जमा हो गई हों, भले ही अदा करते-करते अब कम बची हों। अगर वह 'साहिब-ए-तरतीब' है, तो जब तक फज्र की नमाज़ न पढ़ ले, जुमा नहीं होगा, बशर्ते उसे फज्र की नमाज़ याद हो और वक्त इतना कम हो कि अगर फज्र पढ़े तो ज़ोहर का वक्त निकल जाए, और जुमा में ऐसा होना मुमकिन नहीं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ١٢١٠: बंगाल, ज़िला सिलहट, डाकखाना कमाल गंज, गाँव फूल टोली, प्रेषक अब्दुल ग़नी साहब, २० शव्वाल १३१७ हिजरी।

दीन के उलेमा इस मसले में क्या फरमाते हैं कि ज़ैद का इंतकाल हो गया, उस पर गरीबी के कारण रोज़े और नमाज़ का کفرہ (कफ़्फ़ारा) वाजिब था जो उसने अपनी ज़िंदगी में अदा नहीं किया। अब उसके वारिसों ने कर्ज़ लेकर उसकी तरफ से एक कुरान शरीफ़ کسی مسکین (किसी ज़रूरतमंद) को तोहफे में दे दिया। इस सूरत में क्या ज़ैद के ज़िम्मे से उक्त کفرہ (कफ़्फ़ारा) खत्म हो गया या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: बाज़ार के भाव से कुरान शरीफ के उस नुस्खे की जो قیمت (कीमत) थी, उस हद तक کفرہ (कफ़्फ़ारा) अदा होने की उम्मीद है। मिसाल के तौर पर अगर वह दो रुपये का तोहफा था, तो दो रुपये के गेहूं के बराबर ही کفرہ (कफ़्फ़ारा) अदा हो सकता है, बाकी नमाज़ और रोज़े ज़ैद के ज़िम्मे पहले की तरह रहेंगे। कुरान मजीद बेशक बेशकीमती है; इसका एक کلمہ (कलिमा) या एक حرف (हर्फ) सातों आसमानों और ज़मीन और जो कुछ उनमें है, उसके बराबर नहीं हो सकता। लेकिन इन मामलों में مالیت (मालियत - कीमत) का एतबार है, कुरान अज़ीम 'माल' नहीं है। हाँ, यह कागज़ और जिल्द जिसमें نقوش (नक़्श) शामिल हैं, यह माल है और केवल इनकी कीमत का लिहाज़ होगा। वरना तो जिस पर दस करोड़ रुपये का कर्ज़ हो, वह एक कागज़ पर 'अल्लाह' लिखकर दे दे और कर्ज़ से मुक्त हो जाए और बेशुमार फाज़िल (बचत) भी उसके पास रह जाए। और यह सब पूरी तरह स्पष्ट है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है।

فرض رہے گی کافر کا اسلام لانا اس کے اگلے کبائر کو محو کر دیتا ہے، مسلمان صرف تجدید اسلام سے اپنے گناہوں سے عہدہ برآ نہیں ہو سکتا جب تک توبہ نہ کرے، فرائض ترک کئے ہیں اس سے توبہ میں یہ بھی شرط ہے کہ ان کی قضا کرے صرف زبانی توبہ توبہ نہیں ہے۔ واللہ تعالی اعلم

(۲) جب تک کھڑے ہونے کی طاقت ہے کھڑا ہونا فرض ہے اگرچہ لکڑی یا آدمی یا دیوار کے سہارے سے جتنی اس طور سے پڑھ سکے کھڑے ہو کر پڑھے، جب تک تھک جائے تھم جائے، اس طرح ادا میں اگر قصور کرے گا اور موت آئی تو امید ہے کہ مولی تعالیٰ باقی نمازیں معاف فرمائے گا واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۰۹: جس شخص نے نمازِ صبح نہ پڑھی ہو تو اس کی جمعہ اور عید کی نماز ہو سکتی ہے یا نہیں؟ واللہ تعالیٰ اعلم

الجواب: عید کی نماز تو مطلقاً ہو جائے گی اور جمعہ کی بھی اگر صاحب ترتیب نہ ہو یعنی اس کے ذمہ پانچ نمازوں سے زیادہ قضا جمع ہوگئی ہوں اگرچہ ادا کرتے کرتے اب کم باقی ہوں، اگر صاحب ترتیب ہے تو جب تک صبح کی نماز نہ پڑھ لے جمعہ نہ ہوگا اگر صبح کی نماز اسے یاد ہے اور وقت اتنا تنگ ہو گیا کہ صبح کی نماز پڑھے تو ظہر کا وقت ہی نکل جائے اور یہ جمعہ میں ہونا متوقع نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۱۰: از بنگالہ ضلع سلہٹ ڈاکخانہ کمال گنج موضع پھول ٹولی مرسلہ عبدالغنی صاحب ۲۰ شوال ۱۳۱۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید نے انتقال کیا اس پر کفارہ صوم و صلوۃ کا واجب تھا بسبب غربت کے، حیات میں ادا نہ کیا، اب اس کے وارثوں نے قرض لے کر اس کی جانب سے ایک قرآن شریف ہدیہ مسکین کو دے دیا اس صورت میں کفارہ مذکورہ ذمہ زید سے ساقط ہوا یا نہیں۔ بینوا توجروا

الجواب: بازار کے بھاؤ سے وہ نسخہ مصحف شریف جس قیمت کا تھا بقدر اس کے کفارہ ادا ہونے کی امید ہے مثلاً دو روپیہ ہدیہ کا تھا تو دو روپے کے گیہوں جتنے کفارہ کو کافی ہوں وہی ادا ہو سکتا ہے باقی نماز روزے زید کے ذمے بدستور رہے، قرآن مجید بیشک بے بہا ہے اس کے ایک کلمے ایک حرف کی برابر ساتوں آسماں و زمین اور جو کچھ ان میں ہے برابر نہیں ہو سکتے، مگر ان امور میں اعتبار مالیت کا ہے، قرآن عظیم مال نہیں۔ ہاں یہ کاغذ و جلد جو متضمن نقوش ہیں یہ مال انھیں کی قیمت ملحوظ ہو گی وبس، ورنہ ہی یوں تو جس پر دس کروڑ روپے کسی کے قرض آتے ہوں ایک کلمہ اللہ پرچہ پر لکھ کر دے دے اور دین سے ادا ہو کر بے شمار اس کا اس پر فاضل رہے وھذا کلہ ظاھر جدا (اور یہ سارا اچھی طرح واضح ہے۔ت) واللہ سبحنہ وتعالی اعلم

- **Volume Eight**
- **Fatawa Rizvia**

- **Problem 1211: 29 Dhul-Qi'dah 1317 AH** What do the scholars of religion say regarding this issue: a person died who never offered prayers in his life, or prayed only occasionally. His age was seventy to seventy-five years. The compensation (kaffara) for the missed prayers would consist of a large quantity of wheat or barley, and he does not possess that much wealth. What is the method for its fulfillment? Explain, may you be rewarded.

- **The Answer:** The method is this: for instance, subtracting twelve years as the minimum age of puberty, sixty years of prayers were mandatory for him. There are 355 days in a year, so the fidyas for one year's prayers are 2130. For sixty years, the fidya for 127,801 prayers in terms of wheat is half a sa'—which according to the weight of Bareilly is 1 seer, 7 chatak, 2 masha, and 6.5 rati. According to the English seer (which is equal to 80 rupees weight), it is 1.75 seers and 0.75 chatak and 1/20th of a chatak, i.e., 1 seer 13 chatak minus 1/5th of a chatak. Multiplying this quantity by 2130 gives the kaffara for one year's prayers, and multiplying by 7800 x 12 gives the kaffara for sixty years. This amounts to approximately 4,750 mounds (mun) of wheat. If there is no capacity to give this much, then give as much as possible to a poor person (faqir) and make him the owner by giving possession. Then the faqir, from his side, should gift (heba) it back. Then again, with the intention of kaffara, give it to him and grant possession. He should gift it back again. Repeat this process until this rotation reaches the total required amount. The larger the amount used for rotation, the sooner it will be completed. For this rotation, one can also borrow a bag of, for example, a hundred rupees from someone and give it to the faqir as kaffara, then rotate it similarly; it will be easier with money. Finally, give something to the faqir to make him content. It is stated in Fatawa Bazzaziyah:

- [Box Text] *Arabic:* If he has no wealth, let him borrow half a sa' and give it to the poor person on behalf of the heir, then from the heir to the poor person, then and then, until for every prayer half a sa' is completed, as we have mentioned. *Urdu:* If the deceased left no wealth, then borrow half a sa' and give it to a needy person. Then let that needy person keep giving it as charity (sadaqah) to the heir, until for every prayer there is a compensation of half a sa', just as we have mentioned. Detailed discussion is in our fatwas. And Allah Almighty knows best.

- **Problem 1212:** What do the noble scholars say regarding this issue: Hindah passed away, and her prayers and fasts remain unperformed.
- **Footnote:** 1. Fatawa Bazzaziyah, on the margin of al-Fatawa al-Hindiyyah, Nineteenth Chapter on Missed Acts, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 4/29.
- **Page 165 of 673**

- **जिल्द अष्टम**
- **फ़तावा रज़विया**

- **मसला 1211: 29 ज़ुल-क़ादा 1317 हिजरी** दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई, उसने जीवन भर नमाज़ नहीं पढ़ी या कभी-कभी पढ़ी। उसकी उम्र सत्तर-पचहत्तर वर्ष की थी। नमाज़ के कफ़्फ़ारे के लिए बहुत अधिक गेहूँ या जौ होंगे और उसके पास इतना माल नहीं है। तो इसके अदा होने का क्या तरीका है? सविस्तार बताएँ, आप पुण्य के पात्र होंगे।

- **उत्तर:** इसका तरीका यह है कि उदाहरण के लिए, बारह वर्ष की न्यूनतम बालिग होने की अवधि घटाकर साठ वर्ष की नमाज़ें उसके ज़िम्मे थीं। एक वर्ष में 355 दिन होते हैं, तो एक वर्ष की नमाज़ों का फ़िद्या 2130 हुआ और साठ वर्ष की 1,27,801 नमाज़ों का फ़िद्या गेहूँ के हिसाब से आधा साअ यानी बरेली के वज़न से 1 सेर 7 छटाँक 2 माशा साढ़े 6 रत्ती और अंग्रेजी सेर से जो 80 रुपये भर का होता है, पौने दो सेर और पौन छटाँक और छटाँक का बीसवाँ हिस्सा यानी 1 सेर 13 छटाँक में छटाँक का पाँचवाँ हिस्सा कम। इस मात्रा को 2130 से गुणा करें तो साल भर की नमाज़ों का कफ़्फ़ारा होगा और 7800 × 12 से गुणा करें तो साठ साल का। यह लगभग पौने पाँच हज़ार मन गेहूँ हुआ। इतनी सामर्थ्य न हो तो जितनी शक्ति हो उतना किसी फ़कीर को देकर उसे मालिक बना दें और कब्ज़ा दिला दें। फिर वह फ़कीर अपनी ओर से उसे हिबा (दान) कर दे। फिर दोबारा कफ़्फ़ारे की नियत से उसे देकर कब्ज़ा दिला दें और वह फिर उसे हिबा कर दे। ऐसा बार-बार तब तक करें जब तक कि यह उलट-फेर उस कुल मात्रा तक न पहुँच जाए। जितना बड़ा मूल्य उलट-फेर के लिए इस्तेमाल करेंगे, काम उतनी ही जल्दी ख़त्म होगा। उलट-फेर के लिए यह भी कर सकते हैं कि किसी से जैसे सौ रुपये की थैली उधार लेकर वह कफ़्फ़ारे में फ़कीर को दें और इसी तरह उलट-फेर करें; रुपयों से काम आसान होगा। अंत में फ़कीर को कुछ देकर राज़ी करें। फ़तावा बज़ाज़िया में है:

- [बॉक्स टेक्स्ट] अरबी: यदि उसके पास धन न हो, तो आधा साअ उधार ले और वारिस की ओर से गरीब को दे, फिर वारिस से गरीब को, फिर और फिर यहाँ तक कि हर नमाज़ के बदले आधा साअ पूरा हो जाए जैसा कि हमने उल्लेख किया है। उर्दू: यदि मृतक के पास धन नहीं है, तो आधा साअ उधार लेकर किसी ज़रूरतमंद को दिया जाए। फिर वह ज़रूरतमंद उसे वारिस

पर सदक़ा करता रहे, यहाँ तक कि हर नमाज़ के बदले आधा साअ हो जाए, जैसा कि हमने उल्लेख किया है। और विस्तृत चर्चा हमारे फ़तावा में है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

- **मसला 1212:** धर्मगुरु इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि हिन्दा का देहांत हो गया और उसकी नमाज़ें और रोज़े क़ज़ा (बाकी) हैं।
- **पादटिप्पणी:** 1. फ़तावा बज़ाज़िया, अल-फ़तावा अल-हिन्दिया के हाशिये पर, उन्नीसवाँ अध्याय छूटी हुई नमाज़ों पर, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर से प्रकाशित, 4/29।
- **पेज 165 of 673**

- **جلد ہشتم**
- **فتاوی رضویہ**

- **مسئلہ ۱۲۱۱: ۲۹ ذیقعدہ ۱۳۱۷ھ** کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص مرگیا اس نے عمر بھر نماز نہ پڑھی یا کبھی پڑھی اس کی عمر ستر پچھتر برس کی ہوئی کفارہ نماز کے بہت سے گیہوں یا جو ہوں گے اور اس قدر مال نہیں تو اس کے ادا ہونے کا کیا طریقہ ہے؟ بینوا توجروا

- **الجواب:** اس کا طریقہ یہ ہے کہ مثلاً بارہ برس ادنیٰ مدت بلوغ کی نکال کر ساٹھ برس کی نمازیں اس کے ذمہ تھیں سال کے دن تین سو پچپن ہیں تو ایک سال کی نمازوں کے فدیے دو ہزار ایک سو تیس ہوئے اور ساٹھ برس کے ایک لاکھ ستائیس ہزار آٹھ سو ایک نماز کا فدیہ گیہوں سے نصف صاع یعنی بریلی کی تول سے ایک سیر سات چھٹانک دو ماشے ساڑھے چھ رتی اور انگریزی سیر سے کہ اسی روپیہ بھر کا ہے پونے دوسیر اور پون چھٹانک اور بیسواں حصہ چھٹانک کا یعنی ایک سیر تیرہ چھٹانک پانچواں حصہ چھٹانک کا کم۔ اس مقدار کو ۲۱۳۰ میں ضرب دیں تو سال بھر کی نمازوں کا کفارہ ہو اور ۱۲×۷۸۰۰ میں ضرب دیں تو ساٹھ سال کا، یہ تقریباً پونے پانچ ہزار من گیہوں ہوئے اس قدر دینے کی طاقت نہیں تو جتنے کی قدرت ہو اس قدر فقیر کو دے کر مالک کر دے قبضہ دلا دیں پھر فقیر اپنی طرف سے انہیں ہبہ کر دے یہ پھر دوبارہ نیت کفارہ اسے دے کر قبضہ دلا دیں وہ پھر انہیں ہبہ کر دے یہ سہ بارہ ایسا ہی کریں یہاں تک کہ یہ الٹ پھیر اس مقدار کو پہنچ جائے جتنے بڑی مقدار سے دور کریں گے جلد ختم ہوگا دور کے لئے یہ بھی کرسکتے ہیں کہ کسی سے مثلاً سو

روپیہ کی تھیلی قرض لے کر وہ کفارے میں فقیر کو دیں اور یوں ہی الٹ پھیر کریں کہ روپے سے دور آسان ہوگا، اخیر میں فقیر کو کچھ دے کر راضی کریں۔ فتاوی بزازیہ میں ہے:

- [خانے کی عبارت] عربی: ان لم یکن لہ مال یستقرض نصف صاع ویعطیہ المسکین علی الوارث ثم الوارث علی المسکین ثم وثم حتی یتم لکل صلوۃ نصف صاع کما ذکرنا ۱ اہ اردو: اگر میت کا مال نہیں تو نصف صاع قرض لے کر مسکین کو دیا جائے پھر وہ مسکین اسے وارث پر صدقہ کرتے جائیں یہاں تک کہ ہر نماز عوض نصف صاع ہو جائے جیسا کہ ہم نے ذکر کیا ہے۔ اور تفصیلی گفتگو ہمارے فتاوی میں ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

- **مسئلہ ۱۲۱۲:** کیا فرماتے ہیں علمائے کرام اس مسئلہ میں کہ ہندہ کا انتقال ہوا اور اس کی نمازیں و روزہ قضا ہیں

- **حاشیہ:** ۱ فتاوی بزازیہ علی ہامش الفتاوی الہندیہ التاسع عشر فی الفوائت مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۲۹/۴

- **Page 165 of 673**

Fatawa Rizwiya, Volume 8

His heirs want to pay his Fitra (charity given at the end of Ramadan). In this locality, the population consists of Hindu subjects, Muslim subjects, and Syeds (descendants of the Prophet), who are extremely needy due to famine years. Relatives and neighbors are also in need. Is it permissible or impermissible to distribute this Fitra among all of them? Among them, to which group is it better to give? Is it better to give it to religious students in places far from where the deceased lived, or to the aforementioned people who are needy in the same locality and surrounding areas? Is it permissible to give the full Fitra for a single prayer or fast to one person, or is it permissible to give its value in cash? If the grain or value of the prayers and fasts is calculated and distributed among the poor in varying amounts, is it permissible? That is, if the Fitra for a hundred prayers and fifty fasts is measured into a pile or its value is collected and intended to be distributed among five hundred poor people, what should be done?

The Answer:

This charity (Sadaqah) is not suitable for the esteemed Syeds, and the Hindus and other non-Muslims of India are not eligible for this charity. There is absolutely no permission to give it to either of them, nor will the religious obligation be fulfilled by giving to them. Giving to poor Muslims who are relatives but not from the Hashimite lineage brings a double reward. It is permissible to send it to students of religious knowledge with correct beliefs (Sahih al-Aqidah) even if they are in another city, even in the case of Zakat. It is stated in Durr-ul-Mukhtar:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
It is disliked to transfer [Zakat] except to relatives, or those more needy, or more pious, or what is more beneficial for Muslims, or to a student of knowledge.	It is disliked to transfer Zakat money to another location except in cases where, at the other location, there are relatives, those more needy, more righteous, a greater benefit for Muslims, or a student of knowledge. (T)

Relatives and neighbors, and distant students of knowledge, each have a reason for priority. One should act upon whichever seems more beneficial. Whether one gives grain or its value, one can give the ransom (Fidya) for multiple prayers and fasts to a single poor person, as long as by giving it, they do not become an owner of Nisab (the threshold of wealth requiring Zakat). However, if they are in debt, an amount equivalent to the debt, even as much as thousands of Nisabs, can be given to a single

person. One should not give a single poor person less than the amount of one expiation (Kaffarah), but rather the full amount or multiple amounts, or its or their full value. Precaution lies in this, to avoid disagreement among scholars (Khuroojan an-il-Khilaf). It is stated in Durr-ul-Mukhtar regarding this expiation:

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
If one gives a poor person less than half a Sa', it is not permissible.	If one gives a poor person less than half a Sa', it is not permissible. And if one...

[1] Durr-ul-Mukhtar, Book of Zakat, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/141. Page 166 of 673

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

उसके उत्तराधिकारी उनका फ़ितरा अदा करना चाहते हैं और इस स्थान पर आबादी हिंदू प्रजा, मुस्लिम प्रजा और सैयदों की है जो अकाल के कारण अत्यधिक ज़रूरतमंद हैं। रिश्तेदार और पड़ोसी भी ज़रूरतमंद हैं। तो क्या इस फ़ितरा को इन सब में बाँटना जायज़ है या नाजायज़? और इनमें से किस समूह को देना श्रेष्ठ है? क्या मृतक के निवास स्थान से दूर के क्षेत्रों के धार्मिक छात्रों को देना बेहतर है या उन लोगों को जो उसी आबादी और आस-पास में ज़रूरतमंद हैं? और क्या एक नमाज़ और रोज़े का पूरा फ़ितरा एक व्यक्ति को देना जायज़ है, या उसकी कीमत नकद में देना जायज़ है? यदि नमाज़ और रोज़े का अनाज या उसकी कीमत का हिसाब लगाकर उसे गरीबों में कम या ज़्यादा बाँट दिया जाए, तो क्या यह जायज़ है? अर्थात्, यदि सौ नमाज़ों और पचास रोज़ों के फ़ितरा का ढेर लगाया जाए या उसकी कुल कीमत एकत्र की जाए और पाँच सौ गरीबों में बाँटने का विचार हो, तो क्या करना चाहिए?

उत्तर:

यह सदक़ा (दान) आदरणीय सैयदों के योग्य नहीं है, और हिंदू और अन्य भारतीय गैर-मुस्लिम इस सदक़ा के पात्र नहीं हैं। इन दोनों को देने की बिल्कुल भी अनुमति नहीं है, और न ही उन्हें देने से धार्मिक कर्तव्य पूर्ण होगा। ज़रूरतमंद मुस्लिम रिश्तेदारों को, जो हाशिमी नहीं हैं, दान देना दोहरा पुण्य है। धार्मिक मदरसे के सही अकीदा (सही विश्वास) वाले छात्रों को भेजने की अनुमति है, भले ही वे दूसरे शहर में हों, यहाँ तक कि ज़कात के मामले में भी। दुर्रे मुख़्तार में उल्लेखित है:

(अरबी पाठ)	**(उर्दू अनुवाद)**
ज़कात को दूसरी जगह ले जाना मकरूह है, सिवाय रिश्तेदारों, या अधिक ज़रूरतमंदों, या अधिक नेक लोगों की ओर, या जो मुसलमानों के लिए अधिक लाभकारी हो, या ज्ञान के साधक के लिए।	ज़कात की राशि को किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरित करना मकरूह है, सिवाय उस स्थिति के जब दूसरे स्थान पर रिश्तेदार हों, या कोई अधिक ज़रूरतमंद हो, या अधिक सदाचारी हो, या मुसलमानों का अधिक लाभ हो, या वह ज्ञान का छात्र हो। (त)

रिश्तेदारों और पड़ोसियों, और दूर के छात्रों, दोनों में प्राथमिकता का अपना-अपना कारण है। जो अधिक लाभकारी लगे, उस पर अमल करें। चाहे अनाज दिया जाए या उसकी कीमत, एक ही गरीब को कई नमाज़ों और रोज़ों का फ़िदया दिया जा सकता है, जब तक कि वह उसे प्राप्त करने से निसब

का मालिक (धनी) न बन जाए। हाँ, यदि वह ऋणग्रस्त है, तो ऋण की राशि के बराबर हज़ारों निसब के बराबर धन भी एक व्यक्ति को दिया जा सकता है। किसी गरीब को एक कफ़्फ़ारा की मात्रा से कम न दें, बल्कि पूरी मात्रा या मात्राएँ या उसकी पूरी कीमत दें। विद्वानों के मतभेदों से बचने के लिए इसी में सावधानी है (ख़ुरूजन अन-इल-ख़िलाफ़)। दुर्रे मुख़्तार में इसी कफ़्फ़ारा के बारे में है:

(अरबी पाठ)	**(उर्दू अनुवाद)**
यदि कोई किसी गरीब को आधे सा' से कम दे, तो यह जायज़ नहीं है।	यदि गरीब को आधे सा' से कम दिया गया, तो यह जायज़ नहीं है। और यदि उसे...

---

[1] दुर्रे मुख़्तार, किताबुज़ ज़कात, मुतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/141। पृष्ठ 166 (673 में से)

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

اس کے ورثان کا فطرہ ادا کرنا چاہتے ہیں اور اس مقام پر آبادی اہلِ ہنود رعیت و مسلمان رعیت وسادات کی ہے جو بوجہ قحط سال انتہا درجہ کے محتاج ہیں اور ذوالقربیٰ اور ہمسایہ بھی احتیاج رکھتے ہیں تو اس فطرہ کو ان سب پر تقسیم کرنا جائز یا نا جائز ، اور دینا اولیٰ اس میں سے کس گروہ کو ہے ، متوفی کی سکونت سے دور مقامات میں طلباء دین کو دینا اولیٰ ہے یا مذکورین سابقین جو اسی آبادی میں اور قرب وجوار میں محتاج ہیں اور ایک نماز و روزہ کے فطرہ کو پورا ایک شخص کو دینا جائز ہے یا اس کی قیمت کر کے نقد دینا جائز ہے یا نہیں ، اگر نماز و روزہ کا غلہ یا قیمت حساب لگا کر مساکین پر کم و بیش تقسیم کر دے تو جائز ہے یا نہیں یعنی ایک سو نمازیں اور پچاس روزہ کا فطرہ پیمائش کر کے انبار کیا یا اس کی قیمت جمع کی اور پانچسو مساکین پر تقسیم کرنا منظور ہے تو کیا کرنا چاہئے؟

الجواب:

یہ صدقہ حضرات سادات کرام کے لائق نہیں اور ہنود و غیر ہم کفار ہند اس صدقے کے لائق نہیں ان دونوں کو دینے کی اصلاً اجازت نہیں ، نہ ان کے دیے ادا ہوں ۔ مسلمین مساکین ذوالقربیٰ غیر ہاشمین کو دینا دونا اجر ہے مدرسہ دینیہ کے طلبہ علم دین کے صحیح العقیدہ کو بھیجنے کی اجازت ہے اگرچہ وہ دوسرے شہر میں ہوں حتیٰ کہ زکوٰۃ بھی۔ در مختار میں ہے :

(عربی متن)	(اردو ترجمہ)
کرہ نقلھا الا الی قرابۃ او احوج او اصلح وانفع للمسلمین او الی طالب علم۔	زکوٰۃ کی رقم کا دوسری جگہ منتقل کرنا مکروہ ہے مگر اس صورت میں جب دوسرے مقام پر رشتہ دار یا زیادہ محتاج یا زیادہ صالح یا مسلمانوں کا زیادہ نفع ہے یا طالب علم ہو۔ (ت)

اقارب و جیران اور دور کے طلبہ علم دونوں میں ایک ایک وجہ اولیت کی ہے جو اسے انفع معلوم ہو اس پر عمل کرے چاہے اناج دے یا اس کی قیمت ایک فقیر کو متعدد نمازوں روزوں کا فدیہ دے سکتا ہے جب تک وہ اس کے دینے سے مالک نصاب نہ ہو جائے ہاں مدیون ہو تو بقدر دین ہزار نصابوں کی مقدار ایک کو دے سکتا ہے کسی فقیر کو ایک کفارہ کی مقدار سے کم نہ دے بلکہ پوری مقدار یا مقادیر یا اس کی یا ان کی پوری قیمت ہو احتیاط اس میں ہے خروجاً عن الخلاف (اختلاف سے بچنے کے لئے ۔ت) در مختار میں اسی کفارہ کے بارے میں ہے :

(عربی متن)	(اردو ترجمہ)
لو ادی للفقیر اقل من نصف صاع لم یجز	اگر فقیر کو نصف صاع سے کم دیا تو یہ جائز نہیں اور اگر اسے

---

[1] در مختار کتاب الزکوٰۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۴۱ Page 166 of 673

Volume Eight | Fatawa Razvia

- ولو اعطاہ الکل جاز 1۔ | If all is given to one person, it is permissible. (T)
- Radd al-Muhtar states:
- ھذا ثانی قولین حکاھما فی التتار خانیۃ بدون ترجیح وظاھر البحر اعتمادہ والاول منھما انہ یجوز کما یجوز فی صدقۃ الفطر 2۔ | This is the second of the two opinions mentioned in At-Tatarkhaniyah without any preference, and Al-Bahr appears to rely on it. The first opinion is that it is permissible just as it is permissible in Sadaqat-ul-Fitr. (T)

From this, it becomes clear that the fidya for a hundred prayers and fifty [fasts] should not be given to more than a hundred and fifty needy persons. And Allah Almighty knows best.

Problem 1313: From Mauza Bakka Jabi, Jagaal area, Haripur, Post Office Kot Najibullah Khan, sent by Maulvi Sher Muhammad Sahib, 33 Ramadan-ul-Mubarak 1311 AH.

Question: What do the scholars of Islam say about the custom in the Punjab region where 'Isqat' (redemption) is performed at the time of a deceased person's funeral? Is this correct or not? Please explain and be rewarded.

The Answer (Al-Jawab): The Shari'i method of Isqat is that if there are missed prayers or fasts due from the deceased and they did not leave enough wealth such that their fidya could be paid from one-third of it by way of a will, or if they did not make a will and all the heirs do not agree to pay the fidya, then in the first case, calculate their one-third wealth to see how much fidya can be paid from it. For example, suppose it is one-fourth of the total required. Then give that one-third of wealth to a poor person with the intention of fidya. The poor person, after receiving it, should gift it back to the heir. The heir should then give it again with the intention of fidya, and the poor person should receive it and gift it back again. Both the poor person and the heir should take possession each time until the full fidya is covered. Or if there is no wealth at all, the heir should borrow, for instance, one and a half seers of wheat or its value from someone and perform this exchange, even if it has to be done a thousand times or more to reach the total amount of fidya.

- فی الدر المختار لومات وعلیہ صلوات فائتۃ واوصی بالکفارۃ یعطی لکل صلوۃ نصف صاع من بر کا لفطرۃ وکذا حکم الوتر 1 | In Ad-Durr al-Mukhtar: If a person dies while having missed prayers, and he bequeaths for expiation, for every prayer, half a

Sa' of wheat should be given like [Sadaqat] al-Fitr. And the ruling for Witr is the same.

- In Durr-e-Mukhtar, it says: If a person dies and has [missed] prayers, and he leaves a will for his expiation, then for each prayer, half a Sa' of wheat will be given like Sadaqah-e-Fitr. 2

1 Durr-e-Mukhtar, Chapter on Making up Missed Prayers, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/101. 2 Radd al-Muhtar, Chapter on Making up Missed Prayers, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/543.

1. ولو اعطاہ الکل جاز | यदि सारा का सारा एक ही को दे दिया जाए तो जायज़ है। (त)
   - रद-अल-मुह्तार में है:
   - هذا ثانی قولین حکاهما فی التتار خانیة بدون ترجیح وظاهر البحر اعتماده والاول منهما انہ یجوز کما یجوز فی صدقة الفطر 2. | यह उन दो कथनों में से दूसरा है जिन्हें तातारखनिया में बिना किसी प्राथमिकता के उद्धृत किया गया है, और 'बहर' से इसी पर निर्भरता का आभास होता है। उनमें से पहला कथन यह है कि यह उसी प्रकार जायज़ है जैसे सदका-ए-फ़ित्र में जायज़ है। (त)

यहाँ यह स्पष्ट हुआ कि सौ नमाज़ों और पचास [रोज़ों] का फ़िदया डेढ़ सौ गरीबों से अधिक को नहीं दिया जाएगा। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 1313: मौज़ा बक्का जबी, जगाल क्षेत्र, हरिपुर थाना, डाकखाना कोट नजीब उल्लाह खान, प्रेषक मौलवी शेर मोहम्मद साहिब, 33 रमज़ान-उल-मुबारक 1311 हिजरी।

प्रश्न: इस्लाम के विद्वान इस बारे में क्या कहते हैं कि पंजाब के क्षेत्र में यह रिवाज है कि मृतक के जनाज़े के समय 'इसक़ात' (मोक्ष भुगतान) किया जाता है, क्या यह सही है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर (अल-जवाब): इसक़ात का शरई तरीक़ा यह है कि अगर मृतक पर नमाज़ या रोज़े क़ज़ा हों और उसने इतना धन नहीं छोड़ा कि वसीयत की स्थिति में उसके तिहाई (एक-तिहाई) माल से उसका फ़िदया अदा हो सके या वसीयत नहीं की और सभी वारिस फ़िदया अदा करने पर सहमत नहीं हैं, तो पहली स्थिति में उसके तिहाई माल का हिसाब लगाएँ कि उससे कितना फ़िदया अदा हो सकता है। उदाहरण के लिए मान लें कि यह कुल आवश्यकता का एक चौथाई है। तो तिहाई माल फ़िदया की नीयत से किसी फ़क़ीर को दें। फ़क़ीर उसे लेकर फिर वारिस को उपहार (हिबा) कर दे। वारिस उसे फिर फ़िदया की नीयत से दे और फ़क़ीर फिर उसे प्राप्त कर उपहार कर दे। हर बार फ़क़ीर और वारिस क़ब्ज़ा करते जाएँ यहाँ तक कि फ़िदया अदा हो जाए। या यदि धन बिल्कुल नहीं है, तो

वारिस उदाहरण के लिए डेढ़ सेर गेहूँ या उसकी क़ीमत किसी से उधार लेकर उसका उलट-फेर कर ले, चाहे हज़ार बार या उससे अधिक बार ऐसा करना पड़े ताकि फ़िदया की राशि पूरी हो जाए।

- فی الدر المختار لومات وعلیہ صلوات فائتة واوصی بالکفارة یعطی لکل صلوة نصف صاع من بر کا لفطرة وکذا حکم الوتر 1 | दर-अल-मुख़्तार में है: यदि कोई व्यक्ति मर जाए और उसकी नमाज़ें छूटी हों, और वह कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) की वसीयत करे, तो प्रत्येक नमाज़ के लिए फ़ित्र के समान आधा सा' गेहूँ दिया जाए। और वित्र का भी यही नियम है।
- दुर्रे मुख़्तार में है: यदि कोई व्यक्ति मर जाता है और उस पर नमाज़ें बाक़ी हैं और वह अपने कफ़्फ़ारे की वसीयत कर जाता है, तो हर नमाज़ के बदले फ़ितरा की तरह आधा सा' गेहूँ दिया जाएगा। 2

1 दुर्रे मुख़्तार, बाब क़ज़ा अल-फ़वाइत, मुद्रित मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/101. 2 रद-अल-मुह्तार, बाब क़ज़ा अल-फ़वाइत, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/543.

• ولو اعطاہ الکل جاز 1۔ | تمام دے دیا تو جائز۔ (ت)

• ردالمختار میں ہے:

• ھذا ثانی قولین حکاھما فی التتار خانیۃ بدون ترجیح وظاھر البحر اعتمادہ والاول منھما انہ یجوز کما یجوز فی صدقۃ الفطر 2۔ | یہ ان دو اقوال میں سے دوسرا ہے جنھیں تاتارخانیہ میں بغیر ترجیح کے نقل کیا اور بحر سے اسی پر اعتماد کا اظہار ہورہا ہے اور پہلا قول یہ ہے کہ یہ اسی طرح جائز ہے جس طرح صدقہ الفطر میں جائز ہے۔ (ت)

یہاں یہ ظاہر ہوا کہ سو نمازوں اور پچاس کا فدیہ ڈیڑھ سو مساکین سے زائد کو نہ دیا جائے گا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۱۳: از موضع بکہ جبی والا علاقہ جاگل تھانہ ہری پور ڈاکخانہ کوٹ نجیب اللہ خاں مرسلہ مولوی شیر محمد صاحب ۳۳ رمضان المبارک ۱۳۱۱ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ملک پنجاب میں رواج ہے کہ میت کے جنازہ کے وقت اسقاط کرتے ہیں یہ درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: اسقاط کا شرعی طریقہ یہ ہے کہ اگر میت پر نماز روزہ قضا ہیں اور اس نے اتنا مال نہ چھوڑا جس کے ثلث سے بحالت وصیت اس کا فدیہ ادا ہوسکے یا وصیت نہ کی اور سب ورثا ادائے فدیہ پر راضی نہیں تو پہلی صورت میں اس کے تہائی مال کا حساب لگائیں کہ اس سے کس قدر کا فدیہ ادا ہوسکتا ہے مثلاً فرض کرو کہ چہارم کی قدر ہے تو ثلث مال فقیر کو بہ نیت فدیہ دیں فقیر اس سے لے کر پھر وارث کو ہبہ کردے یہ پھر بہ نیت فدیہ دے فقیر پھر لے کر ہبہ کردے اور

ہر بار فقیر و وارث قبضہ کرتے جائیں یہاں تک کہ فدیہ ادا ہوجائے یا مال بالکل نہیں ہے تو وارث مثلاً ڈیڑھ سیر گیہوں یا اس کی قیمت کسی سے قرض لے کر اس کا الٹ پھیر کرلے اگرچہ ہزار بار یا زائد میں فدیہ کی حد تک پہنچے۔

- فی الدر المختار لومات وعلیہ صلوات فائتۃ واوصی بالکفارۃ یعطی لکل صلوۃ نصف صاع من بر کا لفطرۃ وکذا حکم الوتر 1 | در مختار میں ہے: اگر کوئی شخص فوت ہو جائے اور اس پر نمازیں ہوں اور وہ کفارہ کی وصیت کرے تو ہر نماز کے لیے فطرہ کی طرح نصف صاع گندم دیا جائے۔ اور وتر کا بھی یہی حکم ہے۔
- در مختار میں ہے: اگر کوئی شخص فوت ہو جاتا ہے اور اس پر نمازیں ہیں اور وہ اپنے کفارہ کی وصیت کر جاتا ہے تو ہر نماز کے عوض فطرہ کی طرح گندم کا نصف صاع دیا جائے گا 2

1 درمختار باب قضاء الفوائت مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۱ 2 ردالمختار باب قضاء الفوائت مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۴۳

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Boxed Text] Arabic: الصوم وانما يعطى من ثلث ماله ولولم يترك مالا يستقرض وارثه نصف صاع مثلا ويد فعه الفقير ثم يد فعه الفقير للوارث ثم وثم حتى يتم Urdu: This is also the ruling for Witr and Taraweeh prayers, and it shall be given from one-third of his wealth. If the deceased left no wealth at all, the heir should borrow half a 'sa' (a measure of weight), for example, and give it to a poor person, then the poor person gives it back to the heir, and so on and so forth, until the compensation for all prayers is completed. (T) [Footnote 1: Durr al-Mukhtar, Chapter on Making up Missed Prayers, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/101]

Aside from this, the practice prevalent among the common people of giving a single copy of the Quran in exchange for all the fidya (expiatory compensation), claiming it is priceless, does not fulfill the obligation. The Quran is indeed priceless, but that which is priceless, i.e., the Word of Allah written on pages, is not 'wealth' in terms of legal value, nor is it a commodity for giving. What constitutes 'wealth' is the paper and the binding; hence, their market price will be considered. When this price does not reach the required amount of fidya, how can the fidya be fulfilled? This is very evident. And Allah Subhanuhu wa Ta'ala knows best. (T)

Problem 1212: From Dholka, Ahmedabad District, Gujarat, asked by Muhammad Yusuf Sahib, 22nd Zil-Qa'dah 1336 AH. In the service of the guide to truth, Maulana Maulvi Ahmad Raza Khan Sahib (May his blessings endure). It is requested that we are residents of Dholka town. We are simple, straightforward people seeking only the path of truth, and we have no affiliation or connection with any particular party. We are always ready to bow our heads before your command. However, we do not have much proficiency in Urdu or extensive knowledge. One of your fatwas was first published in a Gujarati book, and another piece of writing was published addressed to Maulvi Alauddin Sahib. We lack the ability to understand these two writings. Therefore, we submit to your noble service that in our town, a 'Hila' (religious stratagem) is performed using twenty-six seers of wheat at the rate of 80 rupees per seer, some cash of one and a quarter rupees, and a copy of the Holy Quran. The Imam of the funeral prayer reads something—what he reads, we do not know—and after reading, he makes it circulate three times among the present poor people, and then the Imam and others distribute those things among themselves. Is this 'Hila' according to Shariah and permissible or not? A brief answer in simple Urdu words would be very satisfying for us.

The Answer: Whatever the Imam of the funeral prayer reads, if there is nothing against Shariah in it (for example, it should not be like saying, 'We have taken the sins of this deceased upon ourselves' or 'his punishment and reward is upon us,' as saying such a thing is forbidden in Shariah), and if those people among whom those things are circulated are poor and needy deserving of Zakat, then the price of those twenty-six seers of wheat at that time and place...

फ़तावा रज़विया - खंड 8

[बॉक्स किया हुआ पाठ] अरबी: الصوم وانما يعطى من ثلث ماله ولولم يترك مالا يستقرض وارثه نصف صاع مثلا ويد فعه الفقير ثم يد فعه الفقير للوارث ثم وثم حتى يتم उर्दू: वित्र और तरावीह की नमाज़ों का भी यही हुक्म है और यह मृतक की संपत्ति के एक-तिहाई हिस्से से दिया जाएगा। यदि मृतक ने कोई संपत्ति नहीं छोड़ी है, तो उत्तराधिकारी उदाहरण के लिए आधा 'सा' (अनाज) उधार ले और उसे किसी गरीब को दे, फिर गरीब उसे उत्तराधिकारी को दे, इसी तरह तब तक करते रहें जब तक कि सभी नमाज़ों का मुआवज़ा पूरा न हो जाए। (त) [फुटनोट 1: दुर्रे मुख्तार, छूटी हुई नमाज़ों के कज़ा का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली में मुद्रित, 1/101]

इसके अलावा आम लोगों में जो यह प्रचलित है कि वे सभी फ़िदिया (प्रायश्चित) के बदले में कुरान की एक प्रति दे देते हैं यह कहकर कि वह अनमोल है, इस तरह से फ़िदिया अदा नहीं होता। कुरान बेशक अनमोल है, लेकिन जो अनमोल है यानी अल्लाह का कलाम जो पन्नों पर लिखा है, वह माल (संपत्ति) नहीं है और न ही वह देने वाली चीज़ है। जो माल है यानी कागज़ और जिल्द, उन्हीं की कीमत का विचार किया जाएगा। और जब वह कीमत फ़िदिया की निर्धारित राशि तक नहीं पहुँचेगी, तो फ़िदिया कैसे अदा होगा? यह बहुत स्पष्ट है। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला १२१२: धोलका, जिला अहमदाबाद गुजरात से, प्रेषक मुहम्मद यूसुफ साहब, २२ जिल-कादा १३३६ हिजरी। सत्य के मार्गदर्शक मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खान साहब (आपकी बरकतें बनी रहें) की सेवा में निवेदन है कि हम धोलका कस्बे के निवासी हैं। हम बहुत सीधे-सादे लोग हैं और केवल सच्चाई की राह खोजने वाले हैं, किसी भी गुट या पार्टी से हमारा कोई लेना-देना नहीं है। हम आपके आदेश के आगे हमेशा सिर झुकाने को तैयार हैं। लेकिन हमें उर्दू की अधिक जानकारी और ज्ञान नहीं है। आपका एक फतवा पहले गुजराती किताब में छपा था और दूसरा लेख मौलवी अलाउद्दीन साहब के नाम छपा है। हम इन दोनों लेखों को समझने की योग्यता नहीं रखते। इसलिए आपकी सेवा में प्रार्थना करते हैं कि हमारे इस कस्बे में छब्बीस सेर गेहूँ ८० रुपये प्रति सेर की दर से, सवा रुपया नकद और एक कुरान शरीफ के साथ एक 'हीला' (धार्मिक युक्ति) इस तरह किया जाता है कि जनाज़े का इमाम कुछ पढ़ता है - वह क्या पढ़ता है हमें नहीं पता - पढ़ने के बाद वह उपस्थित गरीबों के बीच इन चीज़ों को तीन बार घुमाता है, और फिर इमाम और अन्य लोग उन चीज़ों को आपस में बाँट लेते

हैं। क्या यह 'हीला' शरीयत के अनुसार है और जायज़ है या नहीं? यदि आसान उर्दू शब्दों में संक्षिप्त उत्तर मिल जाए तो हमें काफी तसल्ली होगी।

अल-जवाब: इमाम जनाज़े के समय जो कुछ पढ़ता है, यदि उसमें शरीयत के खिलाफ कोई बात न हो (उदाहरण के लिए, ऐसा न हो कि 'हमने इस मृतक के पाप अपने ऊपर ले लिए' या 'इसका अज़ाब और सवाब हमारे ऊपर है' क्योंकि ऐसा कहना शरीयत में हराम है) और जिन लोगों के बीच उन चीज़ों को घुमाया जाता है, वे गरीब और ज़कात के पात्र हों, तो उन छब्बीस सेर गेहूँ की जो कीमत वहाँ उस समय...

पृष्ठ १६८/६७३

[Boxed Text] الصوم وانما یعطی من ثلث ماله ولولم یترك مالا یستقرض وارثه نصف صاع مثلا ویدفعه الفقیر ثم یدفعه الفقیر للوارث ثم وثم حتی یتم[1] وتر اور تراویح کا بھی یہی حکم ہے اور یہ اس کے تہائی مال سے دیا جائے گا اور اگر میت نے مال ہی نہیں چھوڑا تو وارث نصف صاع قرض لے کر کسی فقیر کو دے اور پھر فقیر نصف وارث کو دے، اسی طرح دیتے رہیں یہاں تک کہ تمام نمازوں کا عوض ہو جائے۔ (ت)

اس کے سوا یہ جو عوام میں رائج ہے کہ سارے فدیہ کے عوض ایک قرآن دے دیا کہ وہ تو بے بہا ہے یوں ادا نہیں ہوتا قرآن مجید بیشک بے بہا ہے مگر جو بے بہا یعنی کلام الٰہی کہ ورقوں میں لکھا ہے وہ مال نہیں، نہ وہ دینے کی چیز ہے تو جو مال ہے یعنی کاغذ اور پٹھے اسی طرح قیمت معتبر ہوگی اور جب مقدار فدیہ کو نہ پہنچے گی فدیہ کیوں کر ادا ہوگا وھذا اظھر جدا (یہ نہایت ہی واضح ہے۔ ت) واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۱۲: از دھولقہ ضلع احمد آباد گجرات مسئولہ محمد یوسف صاحب ۲۲ ذی القعدہ ۱۳۳۶ھ

بخدمت ہادی برحق مولینا مولوی احمد رضا خان صاحب دام برکاتہ گزارش یہ ہے کہ ہم قصبہ دھولقہ کے رہنے والے ہیں ہم لوگ بالکل سیدھے سادھے لوگ اور صرف راہ حق کے تلاش کرنے والے ہیں، کسی فریق پارٹی سے ہمیں کوئی لگاؤ یا تعلق نہیں، آپ کے حکم پر ہمیشہ گردن جھکانے کو تیار ہیں مگر ہم لوگوں اردو کی معمولی لیاقت کے اور علم نہیں ہے آپ کا ایک فتوٰی اول گجراتی کتاب میں چھپا ہے اور دوسری ایک تحریر مولوی علاء الدین صاحب پر آئی ہوئی چھپی ہے، ان دونوں تحریروں کو سمجھنے کی ہم لوگ لیاقت نہیں رکھتے اس لئے خدمت والا میں عرض کرتے ہیں کہ ہمارے اس قصبہ میں چھبیس سیر گیہوں فی سیر ۸۰ روپیہ کے حساب سے

اور نقد سوار روپیہ اور ایک کلام اللہ شریف اتنی چیزوں کا حیلہ اس طرح کرتے ہیں کہ جنازہ کا امام کچھ پڑھتا ہے کیا پڑھتا ہے وہ ہمیں معلوم نہیں بعد پڑھنے کے حاضر فقیروں میں تین دور کرا دیتا ہے اور پھر وہ چیزیں امام وغیرہ بانٹ لیتے ہیں، یہ حیلہ شریعت کے مطابق ہے اور جائز ہے یا نہیں صرف مختصر جواب اردو آسان لفظوں میں ہو گا تو بھی ہماری کافی تسلی ہو گی۔

الجواب: امام جنازہ جو کچھ پڑھتا ہے اگر اس میں کوئی بات خلاف شرع نہ ہو (مثلاً یہ نہ ہو کہ اس میت کے گناہ ہم نے اپنے سر لئے یا اس کا عذاب و ثواب ہمارے اوپر کہ ایسا کہنا شریعت میں حرام ہے) اور وہ لوگ جن پر ان چیزوں کا دور کراتا ہے، فقیر محتاج زکوۃ لینے کے قابل ہوں تو اس چھبیس سیر گیہوں کی جو قیمت وہاں اس وقت

[1] در مختار باب قضاء الفوائت مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۱

Fatawa Razawiyya, Volume 8

...according to the market rate, and whatever the donation (hadya) for that Holy Quran is at that time, and if those one and a quarter rupees are multiplied by three times the group of those needy people who are eligible for Zakat, and the resulting amount of wealth is equivalent to the expiation (kaffara) for as many prayers as there are, then it is sufficient. If the deceased had a larger expiation due, the remainder remains his responsibility. For example, if those wheat are worth three rupees and that Holy Quran has a donation value of two and three-quarters rupees, then this and those one and a quarter rupees together make seven rupees worth of wealth. Now, if the 'Daur' (circulation ceremony) is performed three times among these poor people, it's as if thirty poor people were given seven rupees each, totaling two hundred and ten (210) rupees. If the claim against the deceased for prayers, fasts, etc., was this much or less, then all is paid. If it was more, then whatever was extra remained due. For example, if according to the calculation of his prayers and fasts, the wheat required for expiation was worth one thousand rupees at the current market rate, and this total was two hundred and ten (210) rupees, then a claim of seven hundred and nine (709) rupees remains against the deceased. And if among those in the 'Daur' there are some who pretend to be poor but are actually wealthy (owning wealth worth fifty-six (56) rupees beyond their basic needs), their inclusion won't harm the 'Daur', only that they won't be counted in it. For instance, if the 'Daur' was done among ten poor people and three of them were wealthy, it will be considered as having been done among seven. In the mentioned case, instead of thirty poor people, only twenty-one will be counted, and instead of two hundred and ten (210) rupees, an expiation of one hundred and forty-seven (147) rupees will be paid. Yes, if none of them are needy and all are wealthy, then certainly no expiation will be paid at all. In short, this stratagem (hila) is either completely sufficient when the claim against the deceased is equal to or less than this amount, or it is definitely beneficial as long as there is at least one poor person among those in the 'Daur', because at least some of the claim against the deceased will be reduced. Yes, as many common people do not perform the 'Daur' at all, they just give one Holy Quran and think that the expiation for a lifetime has been paid; this is purely absurd and void. Similarly, here, when the amount is not equal to the full claim, considering it completely paid is wrong and void. Nevertheless, whatever benefit there is from this stratagem is not lost. Mistakenly considering it complete is their error, just as if someone owes Zaid a thousand rupees and Zaid pays one hundred rupees and

thinks everything is paid; that is his mistake, but the hundred rupees paid will not become void because of this mistake; he will still get the benefit that now a claim of nine hundred remains against him. In any case, there is certainly a benefit in it, provided no such thing contrary to Sharia is said, examples of which were mentioned above. Without this, calling it absolutely impermissible is a sheer mistake. However, it is appropriate for Muslims to follow the method of 'Daur' through which, by the permission of Allah Almighty, the entire claim against the deceased is paid. A detailed explanation of this is present in our fatwa. And the objection that giving the Holy Quran as charity (sadaqah) is forbidden or even disbelief (kufr) is ignorance and folly, otherwise, giving the Holy Quran to a poor student would be forbidden and disbelief. Even if one does not call it charity but calls it a gift (hiba), it will still be charity, as the jurists (fuqaha) clarify. It is stated in Durr al-Mukhtar:

फतावा रज़विया, खंड 8

...बाज़ार के भाव के अनुसार हो और उस पवित्र कुरान का जो उपहार (हदिया) उस समय वहाँ हो, और वह सवा रुपया उन ज़रुरत मंदों के समूह को, जो ज़कात के पात्र हैं, तीन गुना करने से जो प्राप्त हो, यह धन जितनी नमाज़ों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) हो उतने का हो गया। यदि मृतक पर अधिक कफ़्फ़ारा था तो शेष उसके ज़िम्मे रहा। उदाहरण के लिए, यदि वह गेहूँ तीन रुपये के हों और वह पवित्र कुरान पौने तीन रुपये के उपहार का हो, तो यह और वह सवा रुपया मिलकर सात रुपये का धन हुआ। अब यदि 'दौर' (परिक्रमा) में इस फ़क़ीर और उन पर तीन बार दौर हुआ, तो मानो तीस फ़क़ीरों को सात-सात रुपये दिए गए, कुल दो सौ दस (210) रुपये हुए। मृतक पर नमाज़, रोज़े आदि का दावा यदि इतना या इससे कम था तो सब अदा हो गया। और यदि अधिक था तो जितना अधिक था वह शेष रहा। उदाहरण के लिए, उसकी नमाज़ों और रोज़ों के हिसाब से कफ़्फ़ारे के लिए जितने गेहूँ होते, उनकी कीमत वहाँ के तत्कालीन भाव से एक हज़ार रुपये थी और ये दो सौ दस (210) रुपये हुए, तो सात सौ नौ (709) रुपये का दावा मृतक पर शेष रहा। और यदि दौर वालों में कुछ ऐसे हों जो यद्यपि फ़क़ीर बनते हैं लेकिन धनी हैं (अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त छप्पन (56) रुपये के धन के स्वामी हैं), तो उनके शामिल होने से दौर में कोई बाधा नहीं आएगी, केवल इतना होगा कि दौर में उनकी गणना नहीं की जाएगी। उदाहरण के लिए, दस फ़क़ीरों पर दौर किया गया और उनमें से तीन धनी थे, तो केवल सात पर ही दौर माना जाएगा। उपरोक्त स्थिति में तीस फ़क़ीरों के स्थान पर इक्कीस (21) ही रखे जाएंगे और दो सौ दस (210) रुपये के स्थान पर एक सौ सैंतालीस (147) रुपये का कफ़्फ़ारा अदा होगा। हाँ, यदि उनमें से कोई भी ज़रुरत मंद न हो और सब धनी हों, तो निस्संदेह कफ़्फ़ारा बिल्कुल अदा नहीं होगा। संक्षेप में, यह हिला (युक्ति) या तो पूरी तरह पर्याप्त है जब मृतक पर दावा इसी मात्रा में या इससे कम हो, अन्यथा यह निश्चित रूप से लाभदायक है जब तक कि उन दौर वालों में एक भी फ़क़ीर हो, क्योंकि अंततः मृतक पर से कुछ न कुछ दावा तो कम हुआ। हाँ, जैसा कि बहुत से आम लोग दौर ही नहीं करते, एक पवित्र कुरान दे दिया और समझ लिया कि जीवन भर का कफ़्फ़ारा अदा हो गया, यह पूरी तरह व्यर्थ और अमान्य है। इसी प्रकार, यहाँ जब पूरे दावे की मात्रा नहीं है, तो उसे पूरी तरह अदा समझ लेना गलत और अमान्य है। फिर भी, इस युक्ति का जितना लाभ है वह समाप्त नहीं होता। कुछ लोगों का इसे पूर्ण समझ लेना उनकी गलती है, जैसे किसी के ज़ैद पर एक हज़ार रुपये का ऋण हो और ज़ैद एक सौ रुपये अदा करे और समझ ले कि सब अदा हो गया, तो यह उसकी गलती है, लेकिन इस गलती के कारण वे एक सौ रुपये जो अदा

किए गए हैं, अमान्य नहीं हो जाएंगे, उसे वह लाभ प्राप्त रहेगा कि अब उस पर नौ सौ का दावा शेष रहा। बहरहाल, इसमें लाभ अवश्य है, बशर्ते इस तरह की कोई शरीयत के विरुद्ध बात न कही जाए, जिसका उदाहरण ऊपर गुज़रा। इसके बिना इसे पूर्णतः नाजायज़ बताने वाला सरासर गलती पर है। अलबत्ता, मुसलमानों के लिए उचित यह है कि वे दौर का वह तरीका अपनाएं जिससे अल्लाह तआला की अनुमति से मृतक पर से सारा दावा अदा हो जाए, इसका विवरण हमारे फ़तवे में विस्तार से मौजूद है। और इस पर यह आपत्ति कि कुरान मजीद का सदक़ा (दान) हराम बल्कि कुफ्र (कुफ़्र) है, अज्ञानता और मूर्खता है, अन्यथा निर्धन छात्र को कुरान मजीद देना हराम और कुफ़्र होता। यदि वह इसे सदक़ा न कहकर हिबा (उपहार) कहे, तब भी वह सदक़ा ही होगा, जैसा कि फ़ुक़हा (धर्मशास्त्री) स्पष्ट करते हैं। 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है:

بازار کے بھاؤ سے ہو اور اس مصحف شریف کا جو ہدیہ وہاں اس وقت ہو اور وہ سوار وپیہ ان کے مجموعہ کو ان دور والے محتاجوں مصرف زکوٰۃ کے سہ چند میں ضرب دینے سے جو حاصل ہو یہ مال جتنے نمازوں کا کفارہ ہو اس قدر کا ہو گیا اگر میت پر زیادہ کفارہ تھا تو باقی اس کے ذمہ پر رہا مثلاً وہ گیہوں تین روپے کے ہوں اور وہ مصحف پونے تین روپے ہدیہ کا ہو تو یہ اور وہ سوار وپیہ مل کر سات روپیہ کا مال ہوا اب اگر دور میں اس فقیر میں اور ان پر تین بار دور ہوا تو گویا تمیں ۳۰ فقیروں کو سات سات روپے دئے گئے مجموع دو سو دس ۲۱۰ روپے ہوئے ، میت پر نماز روزے وغیرہ کا مطالبہ اگر اس قدر یا اس سے کم تھا تو سب ادا ہو گیا اور زیادہ کا تھا تو جتنا زائد تھا باقی رہا مثلاً اس کے نماز روزوں کے حساب سے جتنے گیہوں کفارہ کے ہوتے ان کی قیمت وہاں سے وقت کے بھاؤ سے ہزار روپے تھی اور یہ دو سو دس ۲۱۰ روپے ہوئے تو سات سو نو ۷۰۹ روپے کا مطالبہ میت پر رہا اور اگر دور والوں میں بعض وہ ہوں کہ اگر چہ فقیر بنتے ہیں مگر مالدار ہیں حاجت اصلیہ کے علاوہ چھپن ۵۶ روپے کے مال کے مالک ہیں تو ان کے شامل ہونے سے دور میں حرج نہ آئے گا فقط اتنا ہو گا کہ دور میں ان کا شمار نہ ہو گا مثلاً دس فقیروں پر دور کیا اور ان میں تین ۳ غنی تھے سات ۷ ہی پر دور سمجھا جائے گا صورت مذکورہ میں تمیں ۳۰ فقیروں کی جگہ اکیس ۲۱ ہی رکھے جائیں گے اور دو سو دس ۲۱۰ روپے کی جگہ ایک سو سنتالیس ۱۴۷ روپے کا کفارہ ادا ہو گا ، ہاں اگر ان میں کوئی بھی محتاج نہ ہو سب غنی تھے تو بیشک کفارہ بالکل ادا نہ ہو گا ، غرض یہ حیلہ یا تو بالکل کافی ہے جبکہ میت پر مطالبہ اسی قدر یا اس سے کم ہو ورنہ نافع ضرور ہے جبکہ ان دور والوں میں ایک بھی فقیر ہو کہ آخر کچھ نہ کچھ مطالبہ تو میت پر سے کم ہوا، ہاں جیسے بہت عوام دور ہی نہیں کرتے ایک

مصحف شریف دے دیا اور سمجھ لئے کہ عمر بھر کا کفارہ ادا ہو گیا یہ محض مہمل و باطل ہے ، یونہی یہاں جب پورے مطالبہ کے قدر نہ تو اس سے بالکل ادا سمجھ لینا غلط و باطل ہے پھر بھی اس سے اس حیلہ کا جتنا فائدہ ہے زائل نہیں ہوتا، بعض کو کل سمجھ لینا ان کی غلطی ہے جیسے کسی کے ہزار روپے زید پر قرض ہوں اور زید سو ۱۰۰ روپے ادا کرے اور سمجھ لے کہ سب ادا ہو گیا تو یہ اس کی غلطی ہے مگر اس غلطی کے سبب وہ سو ۱۰۰ روپیہ جو ادا کئے باطل نہ ہو جائیں گے وہ فائدہ اسے حاصل رہے گا کہ اب ۹۰۰ نو سو کا مطالبہ اس پر رہا، بہرحال اس میں فائدہ ضرور ہے مگر اس طرح کی کوئی خلاف شرع بات نہ کہی جاتی ہو، جس کی مثال اوپر گزری، بغیر اس کے اسے مطلقاً ناجائز بتانے والا محض غلطی پر ہے، البتہ مسلمانوں کے مناسب یہ ہے کہ وہ طریقہ دور کا کریں جس سے میت پر سے باذنہ تعالی سب مطالبہ ادا ہو جائے اس کا بیان ہمارے فتویٰ میں مفصل موجود ہے اور اس پر یہ اعتراض کہ قرآن مجید کا صدقہ حرام بلکہ کفر ہے جہل و حماقت ہے ورنہ مسکین طالب علم کو قرآن مجید دینا حرام و کفر ہو، اسے صدقہ کہہ کر نہ دے ہبہ کہے جب بھی تو صدقہ ہی ہو گا جیسا کہ فقہاء تصریح فرماتے ہیں۔ در مختار میں ہے :

"A gift to a poor person is charity (sadaqah), and charity to a wealthy person becomes a gift (hibah)."^1 - (T) According to researchers, the act of seeking nearness [to God] is influential here, "even if the effect is stronger with the intent of waiving a right" (even if the effect is more intense with dropping [the claim]. - T). It is stated in Fath al-Qadeer: "What has been transmitted is that both seeking nearness and waiving a right are influential."^2 - We understood that both seeking nearness and waiving a right are influential. (T) Furthermore, the permissibility of endowing (waqf) a copy of the Quran is explicitly stated in the books of the school of thought (madhhab). It is stated in Durr al-Mukhtar: "In al-Durar, if someone endows a Mushaf (copy of the Quran) for the people of a mosque for recitation, if they are countable/confined, it is permissible. And if he endows it to the mosque, it is permissible, and it shall be read therein."^3 - In al-Durar, if someone endowed a Quran for the people of the mosque for the purpose of recitation, then it is permissible if they keep it safe; and if it was endowed to the mosque, it is also permissible, and its recitation will also be permissible. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar: "The author's statement 'if they are countable, it is permissible' is based on the rule mentioned by Shams al-A'immah, which is: when an endower specifies a beneficiary for the waqf, there must be a mention of their need, whether it is an actual need like 'the poor', or conventionally understood among people like orphans and the chronically ill/disabled, because poverty is most common among them. Thus, it will be valid for both the rich and the poor among them if they are countable/confined, otherwise it will be for their poor only."^4 - The author's saying "if they keep it safe" is based on this rule mentioned by Shams al-A'immah that when a waqif (endower) states a purpose for the waqf, he must state the need and necessity among people for it, whether that necessity is real, such as orphans and helpless people, because poverty is mostly present in them. Therefore, it will be correct for both the rich and the poor as long as they are those who keep it safe; otherwise, it will be only for the poor. (T)

1. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Hibah, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 2/161
2. Fath al-Qadeer, Nooriyah Razawiyyah, Sukkur
3. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Waqf, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/380
4. Radd al-Muhtar, Kitab al-Waqf, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 3/411

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम (आठवीं)

"एक गरीब व्यक्ति को दिया गया उपहार दान (सदका) है, और एक अमीर व्यक्ति को दिया गया दान उपहार (हिबा) बन जाता है।"^1 - (त) और शोधकर्ताओं के अनुसार, यहाँ अल्लाह की निकटता प्राप्त करने की इच्छा प्रभावी है, "भले ही अधिकार त्यागने के साथ प्रभाव अधिक प्रबल हो" (यद्यपि प्रभाव छोड़ने के साथ अधिक तीव्र है। - त)। फ़तह अल-क़दीर में है: "जो कुछ उल्लेखित किया गया है वह यह है कि निकटता प्राप्त करना और अधिकार त्यागना दोनों ही प्रभावी हैं।"^2 - हम यह समझे कि अल्लाह की निकटता और अधिकार का त्याग दोनों ही प्रभावी हैं। (त) फिर पवित्र कुरान को वक्फ (धार्मिक दान) करने की वैधता पंथ की पुस्तकों में स्पष्ट रूप से वर्णित है। दुर्र-ए-मुख्तार में है: "दुरर में है, यदि किसी ने मस्जिद के लोगों के लिए पाठ (तिलावत) के वास्ते कुरान वक्फ किया, यदि वे सीमित/गणनीय हैं तो यह जायज़ है। और यदि उसने मस्जिद को वक्फ किया तो भी जायज़ है और उसमें उसका पाठ किया जाएगा।"^3 - दुरर में है कि अगर किसी ने मस्जिद वालों के लिए तिलावत के वास्ते कुरान वक्फ किया और वे उसे सुरक्षित रखें तो जायज़ है, और अगर मस्जिद के लिए वक्फ किया तो भी जायज़ है और उससे तिलावत करना भी जायज़ होगा। (त)

रद्द अल-मुह्तार में है: "लेखक का कथन 'यदि वे सीमित हैं तो जायज़ है' उस नियम पर आधारित है जिसका उल्लेख शम्स अल-आइम्मा ने किया है, वह यह कि: जब कोई वक्फ करने वाला वक्फ के लिए किसी लाभार्थी का उल्लेख करता है, तो उनमें उनकी आवश्यकता का उल्लेख होना अनिवार्य है, चाहे वह वास्तविक आवश्यकता हो जैसे 'निर्धन', या लोगों के बीच प्रचलित हो जैसे अनाथ और अपंग, क्योंकि उनमें गरीबी की संभावना अधिक होती है। अतः उनके बीच के अमीरों और गरीबों दोनों के लिए यह सही होगा यदि वे सीमित हों, अन्यथा यह केवल उनके गरीबों के लिए होगा।"^4 - लेखक का कहना "अगर वे उसे सुरक्षित रखें" इस नियम पर आधारित है जिसका उल्लेख शम्स अल-आइम्मा ने किया कि जब वाकिफ (दानकर्ता) वक्फ के लिए कोई उद्देश्य बयान करे, तो ज़रूरी है कि लोगों में उसकी हाजत और ज़रूरत बयान करे चाहे वह ज़रूरत हकीकी हो जैसे यतीम और असहाय लोग, क्योंकि उनमें अक्सर गरीबी होती है। इसलिए यह अमीरों और गरीबों दोनों के लिए सही होगा जब तक कि वे उसे सुरक्षित रखने वाले हों, अन्यथा यह केवल गरीबों के लिए होगा। (त)

1. दुर्र-ए-मुख्तार, किताब अल-हिबा, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 2/161
2. फ़तह अल-क़दीर, नूरिया रज़विया, सुक्कुर

3. दुर्र-ए-मुख्तार, किताब अल-वक़्फ़, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, 1/380
4. रद्द अल-मुह्तार, किताब अल-वक़्फ़, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 3/411

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

الھبۃ للفقیر صدقۃ علی الغنی ھبۃ ^1 - ہبہ فقیر کے لئے صدقہ اور صدقہ غنی کے لئے ہبہ ہو جاتا ہے -(ت) اور محققین کے نزدیک یہاں نفسِ قربت مؤثر وان کان الاثر اشد مع الاسقاط (اگرچہ اثر اسقاط کے ساتھ اشد ہے۔ ت) فتح القدیر میں ہے: الذی نقلہ ان کلاً من التقرب و الاسقاط مؤثر ^2 - ہم یہ سمجھے کہ تقرب اور اسقاط دونوں ہی مؤثر ہیں۔ (ت) پھر قرآن مجید وقف کرنے کا جواز کتب مذہب میں مصرح ہے۔ در مختار میں ہے : وفي الدرر وقف مصحفا علی اھل مسجد للقرأن ان یحصون جاز وان وقف علی المسجد جاز ویقرأ فیہ ^3 - درر میں ہے اگر کسی نے برائے تلاوت اہل مسجد کے لئے قرآن وقف کیا تو وہ اسے محفوظ رکھیں تو جائز ہے اور اگر مسجد کے لئے وقف کیا تو بھی جائز ہے اور اس سے تلاوت بھی جائز ہوگی۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے : قولہ ان یحصون جاز ھذ الشرط مبنی علی ما ذکرہ شمس الائمۃ من الضابط و ھو انہ اذا ذکر للوقف مصرفا لا بد ان یکون فیھم تنصیص علی الحاجۃ حقیقۃ کلفقراء او استعمالا بین الناس کالیتامی والزمنی لان الغالب فیھم الفقر فیصح للاغنیاء والفقراء منھم ان کانو ایحصون والا فلفقرائھم فقط ^4 - ماتن کا قول "اگر اسے وہ محفوظ رکھیں" یہ اس ضابطہ پر مبنی ہے جس کا تذکرہ شمس الائمہ نے کیا کہ جب واقف وقف کے لیے کوئی مصرف بیان کرے تو ضرور ہے کہ لوگوں میں اس کی حاجت و ضرورت بیان کرے خواہ وہ ضرورت حقیقہ ہو مثلاً یتامی اور بے دست و پا لوگ کیونکہ ان میں اغلب طور پر فقر ہوتا ہے پس اغنیاء و فقراء کے لئے یہ صحیح ہوگا جبکہ وہ اسے محفوظ رکھنے والے ہوں ورنہ فقط فقراء کیلئے ہوگا۔ (ت)

1. در مختار کتاب الہبہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۶۱/۲

2. فتح القدیر نوریہ رضویہ سکھر

3. در مختار کتاب الوقف مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۳۸۰/۱

4. ردالمحتار کتاب الوقف مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۴۱۱/۳

Volume 8 / Fatawa Rizvia

Waqf is also a form of charity, rather it is a continuous charity (Sadaqah Jariyah), to the extent that even if it is specifically for a few wealthy individuals, its ultimate purpose must be for the poor. As narrated by Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them) in Sahih Bukhari and Sahih Muslim:

Arabic Text	**Urdu Translation**
Indeed, Umar (may Allah be pleased with him) acquired a piece of land in Khaybar. He came to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) to seek his guidance regarding it. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "If you wish, keep its capital (original source) and give its produce in charity." So, Umar gave it in charity on the condition that it would not be sold, given as a gift, or inherited. He gave it in charity for the poor, close relatives, freeing slaves, in the cause of Allah, for travelers, and for guests.[1]	Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) acquired some land in Khaybar. He presented himself before the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) to seek guidance about it. So, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "If you wish, you can prevent it (from being transferred) and give it in charity." Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) gave it as charity in such a way that it shall neither be sold nor gifted. No inheritance will take place in it, and he made it a charity for the poor, close relatives, the liberation of slaves, in the way of God, for travelers and for guests. (T)

This Hadith was narrated by the scribe of the Madhhab, Sayyiduna Imam Muhammad, in 'Al-Mabsut' as follows:

Arabic Text	**Urdu Translation**
Sakhr bin Juwayrah, the freed slave of Abdullah bin Umar, informed us that Umar bin al-Khattab had a land called Thamgh, which was a precious palm grove. He said, "O Messenger of Allah, I have acquired property that is very precious to me. Shall I give it in charity?" The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said, "Give its capital in charity; it shall not be	Sakhr bin Juwayrah, who was a freed slave of Abdullah bin Umar, narrated to us that Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) had a piece of land called 'Thamgh', and there was a very good date orchard there. He came to the holy presence of the Holy Prophet and said, "I have acquired such wealth which is very precious to me, should I give it in charity?" The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be

Arabic Text	Urdu Translation
sold, gifted, or inherited, but its fruit shall be spent." So, Umar gave it in charity in the cause of Allah, for (freeing) slaves, for guests, and for travelers.	upon him) said, "Give its original as charity in such a way that it is not sold nor gifted and nor should any heir be made for it, but its fruit should be spent."

[1] Sahih Muslim, Chapter of Waqf, published by Noor Muhammad Ashah al-Matabi' Karachi, 2/41.

वक़्फ़ भी सदका ही है बल्कि सदका-ए-जारिया मुस्तमिर्रा (निरंतर दान) है। यहाँ तक कि अगर यह कुछ विशिष्ट धनवानों के लिए भी हो, तो भी इसका अंत गरीबों के लिए होना आवश्यक है। जैसा कि सहीह बुखारी और सहीह मुस्लिम में अब्दुल्ला बिन उमर (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से वर्णित है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
वास्तव में, उमर (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) को खैबर में एक ज़मीन मिली। वह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास उसके बारे में सलाह लेने के लिए आए। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "यदि तुम चाहो, तो उसका मूल (जड़) रोक लो और उसे दान कर दो।" तो उमर ने उसे इस शर्त पर दान कर दिया कि उसे न बेचा जाएगा, न उपहार में दिया जाएगा और न ही उसका उत्तराधिकार होगा। उन्होंने उसे गरीबों, करीबी रिश्तेदारों, दासों को मुक्त करने, अल्लाह की राह में, मुसाफिरों और मेहमानों के लिए दान कर दिया।[1]	हज़रत उमर (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने खैबर में कुछ ज़मीन हासिल की, तो वे रसालतमाब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सेवा में उपस्थित हुए ताकि उसके बारे में आपसे मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सके। तो आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "अगर आप चाहें तो इसे (हस्तांतरित होने से) रोक लें और सदका कर दें।" हज़रत उमर (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने उसे इस तरह सदका कर दिया कि न उसे बेचा जाएगा और न ही उपहार में दिया जाएगा। इसमें विरासत लागू नहीं होगी और इसे गरीबों, करीबी रिश्तेदारों, गुलामों की आज़ादी, अल्लाह की राह में, मुसाफिरों और मेहमानों के लिए सदका कर दिया। (त)

यह हदीस मज़हब के मुहर्रिर सैय्यदुना इमाम मुहम्मद ने 'मबसूत' में इस प्रकार वर्णित की है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
हमें सखर बिन जुवैरा ने बताया, जो अब्दुल्ला बिन उमर के आज़ाद किए हुए गुलाम थे, कि उमर बिन अल-खत्ताब के पास 'थमग' नामक एक ज़मीन थी जो खजूर का एक कीमती बाग था। उन्होंने कहा, "हे अल्लाह के रसूल, मुझे ऐसी संपत्ति मिली है जो मेरे लिए बहुत कीमती है। क्या मैं इसे दान कर	हमें सखर बिन जुवैरा ने बताया, जो कि अब्दुल्ला बिन उमर के आज़ाद किए हुए गुलाम थे, कि हज़रत उमर (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के पास 'थमग' नाम की ज़मीन का एक टुकड़ा था और वहाँ बहुत अच्छा खजूरों का बाग था। उन्होंने हुज़ूर अकरम की पवित्र सेवा में उपस्थित होकर

अरबी पाठ

दूँ?" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया, "इसके मूल को दान कर दो; इसे न बेचा जाएगा, न उपहार में दिया जाएगा, और न ही इसका उत्तराधिकार होगा, लेकिन इसका फल खर्च किया जाएगा।" तो उमर ने इसे अल्लाह की राह में, दासों के लिए, मेहमानों के लिए और मुसाफिरों के लिए दान कर दिया।

उर्दू अनुवाद

निवेदन किया, "मैंने ऐसा माल प्राप्त किया है जो मेरे निकट अत्यंत कीमती है, क्या मैं इसे सदका कर दूँ?" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया कि "इसका मूल सदका कर दो इस तरह कि न उसे बेचा जाए न उपहार में दिया जाए और न ही इसका वारिस बनाया जाए लेकिन इसका फल खर्च किया जाए।"

[1] सहीह मुस्लिम, बाब-अल-वक़्फ़, नूर मुहम्मद असहा-अल-मताबे कराची द्वारा प्रकाशित, 2/41.

पृष्ठ 171/673

وقف بھی صدقہ ہی ہے بلکہ صدقہ جاریہ مستمرہ حتی کہ اگر خاص چند اغنیاء پر ہو جب بھی اس کا آخر فقراء کے لئے ہونا لازم، صحیح بخاری و صحیح مسلم میں عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے مروی:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ان عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ اصاب ارضاً بخیبر فاتی النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم یستآمرہ فیھا فقال صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ان شئت حبست اصلھا وتصدقت بھا قال فتصدق بھا عمر انہ لا یباع ولا یوھب ولا یورث و تصدق بھا فی الفقراء و فی القربی و فی الرقاب و فی سبیل اللہ و ابن السبیل و الضیف ۔ [1]	حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے خیبر میں کچھ زمین حاصل کی تو رسالتمآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی خدمت میں حاضر ہوئے تاکہ اس کے بارے میں آپ سے رہنمائی حاصل کی جائے، تو آپ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: اگر آپ چاہیں تو اسے (منتقل ہونے سے) روک لیں اور صدقہ کر دیں، حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے اسے صدقہ کردیا اسی طرح کہ نہ اسے بیچا جائے گا نہ ہبہ کیا جائے گا۔ اس میں وراثت جاری نہ ہوگی اور اسے فقراء، قریبی رشتہ دار، غلاموں کی آزادی، راہِ خدا میں، مسافروں اور مہمانوں کے لئے صدقہ کردیا۔(ت)

یہ حدیث محرر المذہب سیدنا امام محمد نے مبسوط میں یوں روایت فرمائی:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اخبر نا صخر بن جويرة مولى عبد الله بن عمران عمر بن الخطاب كان له ارض تدعى ثمغاً وكان نخلا نفيسا فقال يا رسول الله انى استفدت مالا هو عندى نفيس افأصدق به فقال رسول الله صلى عليه وسلم تصدق با صله لايباع ولا يوهب ولا يورث ولكن تنفق ثمرته فتصدق به عمر في سبيل الله وفى الرقاب وللضيف وللمسافر	ہمیں صخر بن جویرہ جو کہ عبداللہ بن عمر کے آزاد کردہ غلام تھے نے بیان کیا کہ حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے پاس ایک ثمغ نامی زمین کا ٹکڑا تھا اور وہاں نہایت اچھا کھجوروں کا باغ تھا انہوں نے حضور اکرم کی خدمت اقدس میں حاضر ہو کر عرض کیا میں نے ایسا مال حاصل کیا ہے جو میرے نزدیک نہایت ہی قیمتی ہے کیا میں اسے صدقہ کردوں؟ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا کہ اس کا اصل صدقہ کردو اس طرح کہ نہ اسے بیچا جائے نہ ہبہ کیا جائے اور نہ ہی اس کا وارث بنایا جائے لیکن اس کا پھل خرچ کیا جائے

[1] صحیح مسلم باب الوقف مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/۴۱

Volume 8 Fatawa Razawiya

"...for the wayfarer and for the kinsman..." (Hadith).

Hadrat 'Umar (may Allah be pleased with him) gave it as charity in the way of Allah for the liberation of slaves, hospitality, travelers, wayfarers, and close relatives. (T)

In some narrations of Sahih al-Bukhari, in the words of Imam Muhammad: "Give the original as charity, let it not be sold." (Hadith) (T)

What do the preventers (those who prohibit) say in this case when, for example, a philanthropist sends a hundred (100) copies of the Holy Qur'an to their madrasa or orphanage so that poor children and orphans may read from them? Is this act of his good and a cause of reward, or is it forbidden and a cause of punishment, or even, God forbid, disbelief? And if he had made a vow that "for the sake of Allah the Almighty, I will give ten copies of the Holy Qur'an to poor Muslims," is this vow lawful or forbidden and disbelief? And if he made a will that "all the copies of the Qur'an in my possession after me be given to poor Muslims," and they do not exceed one-third of the property, is this will valid or void, and is giving them obligatory upon the executor or forbidden? Furthermore, is this ruling only for the Holy Qur'an, or for books of Hadith and Fiqh as well? Interestingly, it is in Volume 3 of the Fatawa of Gangohi, the leader of the group of preventers:

Question: Is it permissible to buy and give the Qur'an or not? Answer: Whatever is bought and given from Zakat money, whether it be a Qur'an, book, cloth, etc., Zakat is fulfilled. (End of quote). The point is that the preventers are heedless of the reality of the matter. Whoever seeks an investigation of this should refer to our Fatawa. And with Allah is success, and Allah Almighty knows best.

Issue 1215: From the state of Rampur, sent by Habibullah Beg, Maulvi Fazil class, Oriental College, 17 Safar 1338 AH.

What do the scholars of religion say regarding this issue: Is the method of 'Isqat' (compensation for missed religious duties) prevalent in the country of Afghanistan established according to Shariah and commendable or not? If established, what is the proof for it? Although 'Fidya' for fasting (Sawm) is explicitly mentioned in the text, what is the textual evidence (Nass) for 'Fidya' for prayer (Salah)? And why has this, meaning 'Dauran-e-Qur'an', become obsolete in practice, and why is it not prevalent in India? In every second estimation, this passage from Fatawa Samarqandiyah has proven to be completely wrong, which is:

When Imam Rabbani Muhammad bin Hassan al-Shaybani compiled 'Kitab al-Hiyal' (The Book of Legal Stratagems), he denied [it] in every chapter

When Imam Rabbani Muhammad bin Hassan al-Shaybani wrote 'Kitab al-Hiyal' regarding every matter, then the scholars of Baghdad...

1. Sunan al-Daraqutni, Chapter: How endowment is written, published by Nashr al-Sunnah Multan, 4/193.
2. Sahih al-Bukhari, Chapter on Waqf (Endowment) and how it is written, published by Qadeemi Kutub Khana Karachi, 1/389.

जिल्द आठवीं (आठवाँ भाग) फ़तावा रज़विया

"...मुसाफ़िर और क़रीबी रिश्तेदारों के लिए..." (हदीस)।

हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) ने इसे अल्लाह की राह में गुलामों की आज़ादी, मेहमाननवाज़ी, मुसाफ़िर, इब्ने सबील (यात्री) और क़रीबी रिश्तेदारों पर सदक़ा कर दिया। (त)

सहीह बुख़ारी के कुछ अंशों में इमाम मुहम्मद के शब्दों में है: "इसके मूल को सदक़ा कर दो, इसे बेचा न जाए" (हदीस)। (त)

मना करने वाले (मानिईन) इस स्थिति में क्या कहते हैं जब, उदाहरण के लिए, कोई दानी व्यक्ति सौ (100) पाक क़ुरआन उनके मदरसे या यतीमखाने में भेजे ताकि ग़रीब बच्चे और अनाथ उनसे पढ़ सकें? क्या उनका यह कार्य पुण्य और सवाब का कारण है या हराम और अज़ाब का कारण, बल्कि अल्लाह की पनाह, कुफ़्र है? और अगर उन्होंने मन्नत मानी हो कि "अल्लाह तआला के लिए दस पाक क़ुरआन ग़रीब मुसलमानों को दूँगा," तो क्या यह मन्नत जायज़ है या हराम और कुफ़्र? और अगर उन्होंने वसीयत की हो कि "मेरे बाद मेरे अधिकार वाले सभी क़ुरआन ग़रीब मुसलमानों को दे दिए जाएं' और वे संपत्ति के एक तिहाई से अधिक न हों, तो क्या यह वसीयत सही है या गलत, और क्या इसे देना वसीयतदार (वसी) पर अनिवार्य है या हराम? फिर यह हुक्म केवल पाक क़ुरआन के लिए है या हदीस और फ़िक़्ह की किताबों के लिए भी? मजे की बात यह है कि मना करने वालों के गिरोह के इमाम गंगोही के फ़तावा भाग 3 में है:

सवाल: क़ुरआन खरीदकर देना जायज़ है या नहीं? जवाब: ज़कात के पैसों से जो कुछ भी खरीदकर दे दिया जाए, चाहे वह क़ुरआन हो, किताब हो, कपड़ा हो आदि, ज़कात अदा हो जाती है। (अंत)। बात यह है कि मना करने वाले मामले की वास्तविकता से बेख़बर हैं। जो कोई इसकी गहन जाँच चाहता है, वह हमारे फ़तावा की ओर रुख करे। और सफलता अल्लाह की ओर से है, और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 1215: रियासत रामपुर से, हबीब उल्लाह बेग द्वारा प्रेषित, मौलवी फ़ाज़िल जमात, ओरिएंटल कॉलेज, 17 सफ़र 1338 हिजरी।

धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि 'इसक़ात' (धार्मिक कर्तव्यों की क्षतिपूर्ति) का तरीका जो अफगानिस्तान देश में प्रचलित है, वह शरई रूप से प्रमाणित और सराहनीय है या नहीं? यदि

प्रमाणित है तो इसका प्रमाण क्या है? हालाँकि रोज़े (सौम) का फ़िदया स्पष्ट रूप से वर्णित है, लेकिन नमाज़ (सलात) के फ़िदया के लिए कौन सा प्रमाण (नस्स) है? और यह, यानी 'दौरान-ए-क़ुरआन', व्यवहार में क्यों लुप्त हो गया है, और यह भारत में क्यों प्रचलित नहीं है? हर दूसरे अनुमान में, फ़तावा समरकंदिया का यह अंश पूरी तरह से गलत साबित हुआ है, जो यह है:

जब इमाम रब्बानी मुहम्मद बिन हसन अल-शाइबानी ने 'किताब अल-हियल' लिखी, तो उन्होंने हर अध्याय में इसका खंडन किया

जब इमाम रब्बानी मुहम्मद बिन हसन शैबानी ने हर मामले के बारे में 'किताब अल-हियल' लिखी, तो बगदाद के उलेमा ने उस पर...

1. सुनन अद-दारकुतनी, अध्याय: वक़्फ़ कैसे लिखा जाता है, नश्र अस-सुन्नत मुल्तान द्वारा प्रकाशित, 4/193।
2. सहीह अल-बुखारी, वक़्फ़ का अध्याय और वह कैसे लिखा जाता है, क़दीमी कुतुब खाना कराची द्वारा प्रकाशित, 1/389।

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

لابن السبیل ولذی القربی الحدیث۔ حضرت عمر رضی اللہ تعالٰی عنہ نے اسے راہ خدا غلاموں کی آزادی، مہمان نوازی، مسافر، ابن سبیل اور قریبی رشتہ داروں پر صدقہ کر دیا۔ (ت)

صحیح بخاری کے بھی بعض طرق میں بالفاظِ امام محمد ہے: تصدق باصلہ لا یباع الحدیث (اس کا اصل صدقہ کر دو اسے فروخت نہ کیا جائے الحدیث۔ ت)

مانعین کیا کہتے ہیں اس صورت میں جبکہ مثلاً کوئی اہلِ خیر سو ۱۰۰ مصحف شریف ان کے مدرسہ یا یتیم خانہ میں بھیجے کہ ان میں غرباء کے بچے اور یتامٰی پڑھا کریں اس کا یہ فعل حسن و باعثِ ثواب ہے یا حرام و موجبِ عذاب بلکہ معاذ اللہ کفر، اور اگر اس نے نذر مانی ہو کہ اللہ تعالٰی کے لئے دس مصحف شریف فقرائے مسلمین کو دوں گا تو یہ نذر حلال ہے یا حرام و کفر، اور اگر وصیت کی ہو کہ میری ملک کے مصاحف سب میرے بعد فقرائے مسلمین کے دے دیئے جائیں اور وہ ثلث مال سے زائد نہ ہوں تو یہ وصیت صحیح یا باطل اور یہ دینا وصی پر واجب ہے یا حرام، پھر یہ حکم صرف مصحف شریف کے لئے یا کتبِ حدیث و فقہ کے لئے بھی، طرفہ یہ کہ مانعین کے امام الطائفہ گنگوہی کے فتاوٰی حصہ ۳ میں ہے:

سوال: خرید کر قرآن دینا درست ہے یا نہیں؟ جواب: زکوٰۃ کے روپے سے قرآن کتاب کپڑا وغیرہ جو کچھ خرید کر دے دیا جائے زکوٰۃ ادا ہوجاتی ہے اھ اور بات یہ ہے مانعین حقیقت امر سے غافل ہیں جو اس کی تحقیق بازع کا طالب ہو ہمارے فتاوٰی کی طرف رجوع کرے وباللہ التوفیق واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۱۵: از ریاست رام پور مرسلہ حبیب اللہ بیگ جماعت مولوی فاضل اور نٹیل کالج ۱۷ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ طریقہ اسقاط جو ملک افغانستان میں مروج ہے وہ شرعاً ثابت اور مستحسن ہے یا نہیں، اگر ثابت ہے تو اس کی کیا دلیل ہے، اور فدیہ صوم اگرچہ منصوص ہے لیکن فدیہ صلوٰۃ پر کون سی نص ہے اور یہ یعنی دورانِ قرآن کیوں متروک العمل ہے اور یہ ہندوستان میں کیوں مروج نہیں۔ ہر تقدیر ثانی یہ عبارت فتاویٰ سمرقندیہ کی بالکل غلط ثابت ہوئی ہے وہ یہ ہے:

لما صنف الامام الربانی محمد بن حسن الشیبانی فی کتاب الحیل فی کل باب انکر

جب امام ربانی محمد بن حسن الشیبانی نے ہر معاملہ کے بارے میں کتاب الحیل لکھی تو اس پر علماء بغداد نے

1 سنن الدارقطنی باب کیف یکتب الحبس مطبوعہ نشر السنۃ ملتان ۴/ ۱۹۳ 2 صحیح البخاری باب الوقف و کیف یکتب مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۳۸۹

Fatawa Razawiya, Volume 8

The scholars of Baghdad objected to it. When this news reached the Caliph of Baghdad, he said, "Bring that book to me. If its statements are in accordance with the principles, then it is fine; otherwise, we will burn it." The scholars had objected out of envy. The Imam presented the book to the Caliph of the time. When he read it, he was very surprised. He summoned the scholars and said, "Study it with close attention, setting aside envy." When they read the book, they all said, "Imam Muhammad has done excellent work. May Allah Almighty grant him rewards until the Day of Resurrection." Then the Caliph asked the Imam, "What primary source did you have in mind while deriving these rulings?" He replied, "I derived them from the accounts of Prophet Ayub and Prophet Yusuf (peace be upon them) and the Sunnah regarding the legal stratagem (hila) for usury and limits." The Caliph said to the scholars, "Whoever denies the legal stratagem (hila) has indeed denied the Qur'an, Hadith, and the consensus of scholars; therefore, punishment (ta'zir) is mandatory for him." When the Caliph turned a page of the book, his eyes fell upon the stratagem of 'Isqat' (redemption of missed obligations). The Imam said, "The easiest way for this stratagem is that the heir sells a readable copy of the Qur'an to a needy person, and then that poor person gifts it back to the heir. This process should be repeated continuously until the required amount is fulfilled. Perhaps Allah Almighty will make it a ransom (fidya) for missed fasts, prayers, Zakat, etc." The scholars said, "You have spoken very well. May Allah Almighty bless your life. So, record it in your book." This method remained prevalent during the era of the Caliph. (Ad-Durr al-Barr by Imam Ghazali). The commentator Samarqandi said, "To us..."

Page 173 of 673

फ़तावा रज़विया, खंड 8

बग़दाद के विद्वानों ने इस पर आपत्ति जताई। जब यह बात बग़दाद के खलीफ़ा तक पहुँची, तो उसने कहा, "वह किताब मेरे पास लाओ। अगर उसके कथन सिद्धांतों के अनुकूल हैं, तो ठीक है; अन्यथा हम उसे जला देंगे।" विद्वानों ने ईर्ष्यावश आपत्ति की थी। इमाम ने उस समय के खलीफ़ा को किताब दी। जब उसने उसे पढ़ा, तो वह बहुत चकित हुआ। उसने विद्वानों को बुलाया और कहा, "ईर्ष्या से ऊपर उठकर सूक्ष्म दृष्टि से इसका अध्ययन करो।" जब उन्होंने उस किताब को पढ़ा, तो सब कहने लगे कि इमाम मुहम्मद ने बहुत अच्छा काम किया है, अल्लाह तआला क़यामत तक उन्हें इसका फल प्रदान करे। फिर खलीफ़ा ने इमाम से पूछा कि इन मसलों का निष्कर्ष निकालते समय आपके सामने कौन सा मूल आधार था? तो उन्होंने फ़रमाया कि मैंने हज़रत अय्यूब और हज़रत यूसुफ (अलैहिमुस्सलाम) की घटनाओं और ब्याज के लिए हीला (कानूनी उपाय) की सुन्नत और सीमाओं से इन्हें निकाला है। खलीफ़ा ने विद्वानों से कहा कि जो व्यक्ति हीला का इंकार करता है, उसने वास्तव में कुरआन, हदीस और विद्वानों की सहमति (इज्मा) का इंकार किया है, इसलिए उस पर सज़ा (ताज़ीर) अनिवार्य है। जब खलीफ़ा ने किताब का एक पन्ना पलटा, तो उसकी नज़र हीला-ए-इसक़ात (छूटे हुए कर्तव्यों का मुआवज़ा) पर पड़ी। इमाम ने कहा कि हीला का आसान तरीका यह है कि वारिस किसी ज़रूरतमंद को पढ़ने योग्य कुरआन बेच दे, फिर वह फ़कीर उस वारिस को वह कुरआन उपहार (हिबा) में दे दे। फिर इसी तरह निरंतर किया जाए यहाँ तक कि पूरा हो जाए, शायद अल्लाह तआला इसे रोज़ा, नमाज़ और ज़कात आदि का फिदिया (हर्जाना) बना दे। विद्वानों ने कहा कि आपने बहुत अच्छी बात कही है, अल्लाह तआला आपकी उम्र में बरकत दे। अतः इसे अपनी किताब में लिख दें और यह तरीका खलीफ़ा के दौर में प्रचलित रहा। (अद-दुर्र अल-बर्र लिल-इमाम ग़ज़ाली)। व्याख्याकार समरकंदी ने फ़रमाया, हमें...

पेज 173 ऑफ 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

اعتراض کیا یہ بات خلیفہ بغداد کو پہنچی تو اس نے کہا وہ کتاب مجھے لا کر دو اگر اس کی عبارات اصول کے موافق ہیں تو ٹھیک ورنہ ہم اسے جلا دیں گے اور علماء نے اعتراض حسداً کیا تھا ، امام نے کتاب خلیفہ وقت کو دی اس نے جب اسے پڑھا تو بہت متعجب ہوا، علماء کو طلب کیا اور کہا حسد سے بالا تر ہو کر دقتِ نظر سے اس کا مطالعہ کرو، جب انہوں نے اس کتاب کو پڑھا تو سب کہنے لگے کہ امام محمد نے بہت خوب کام کیا ہے اللہ تعالیٰ تا قیامت ان کو اجر عطا فرمائے، پھر خلیفہ نے امام سے پوچھا ان مسائل کا استنباط کرتے وقت کونسی اصل آپ کے پیشِ نظر تھی، تو انہوں نے فرمایا میں نے حضرت ایوب، حضرت یوسف علیہم السلام کے واقعات اور حیلہ ربا کی سنت اور حد سے انہیں مستنبط کیا ہے خلیفہ نے علماء سے کہا جو شخص حیلہ کا انکار کرتا ہے اس نے تو قرآن، حدیث اور اجماع کا انکار کیا تو اس پر تعزیر لازم ہے۔ جب خلیفہ نے کتاب کا ایک ورق اٹھایا تو اس کی نظر حیلہ اسقاط پر پڑی، امام نے کہا کہ حیلہ کا آسان طریقہ یہ ہے کہ وارث محتاج کو قابلِ قرات قرآن بیچ دے پھر وہ فقیر اس وارث کو ہبہ کر دے، پھر اسی طرح مسلسل کیا جائے حتی کہ پورا ہو جائے شاید اللہ تعالیٰ اسے روزہ، نماز اور زکوٰۃ وغیرہ کا فدیہ بنا دے۔ علماء نے کہا کہ آپ نے بہت خوب بات فرمائی ہے اللہ تعالیٰ تمہاری عمر میں برکت دے پس اسے اپنی کتاب میں تحریر فرما دو اور یہ طریقہ خلیفہ کے دور میں مروج رہا (الدر البر للامام غزالی)۔ شارح سمرقندی نے فرمایا، ہمیں

صفحہ 173 از 673

Fatawa Razvia Volume 8

Abbas bin Sufyan narrated from Ibn Utbah, from Ibn Awf, from Muhammad, from Abdullah bin Umar that Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) said: "O believers! Make the Quran a means for the salvation of the dead. Gather in a circle and say: 'O Allah! Forgive this deceased person through the honor of the Quran.' and pass it from hand to hand." During the latter part of his Caliphate, Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) did this with a portion of the Quran on the occasion of the death of Habiba bint Arbad, the wife of Mulab. However, this practice did not become famous during the Caliphate of Hazrat Uthman. Later, during the era of Harun al-Rashid, the rotation of the Quran for 'Heela-e-Isqat' became well-known without any objection. Thus, the origin of this 'Heela' is proven from Hazrat Umar (may Allah be pleased with him). Although this matter is not mentioned in the famous books of Hadith, it is famously recorded with a strong chain of narration in historical books. As the great historian, the author of Al-Futuh, stated: "Abu Asim informed us from Ibn Jurayj, from Ibn Shihab, from Ibn Salama, from Ibn Musa that Hazrat Umar took a part of the Quran in a circle of twenty men and passed it around, and this was done after the funeral prayer of that woman who was the wife of Mulab al-Ansari and famous by the title Habiba bint Arbad (her actual name is not preserved)." Therefore, to reject 'Heela' absolutely is disbelief (kufr), and to reject 'Heela-e-Isqat' is transgression (fisq) because it is proven from Hazrat Umar. Sa'id informed us from Ayyub, from Jami', from Abdullah bin Abi Bakr that after the funeral prayer, Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) initiated the rotation of the Quran.

Page 174 of 673

फतावा-ए-रजविया जिल्द आठवीं

अब्बास बिन सुफियान ने इब्न उतबा से, उन्होंने इब्न औफ से, उन्होंने मुहम्मद से, उन्होंने अब्दुल्ला बिन उमर से रिवायत की कि हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फरमाया: "ऐ ईमान वालो! कुरान को मुर्दों की नजात का वसीला बनाओ और हल्का (घेरा) बना कर इस तरह अर्ज़ करो: 'ऐ अल्लाह! इस मय्यत को कुरान की इज्ज़त की बरकत से बख्श दे' और इसे एक-दूसरे के हाथ में दो।" हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने अपनी खिलाफत के आखिरी दौर में हबीबा बिंत अरबद, जो मुलाब की पत्नी थीं, के इंतकाल के मौके पर कुरान के एक हिस्से के साथ ऐसा ही किया था। लेकिन यह अमल हज़रत उस्मान की खिलाफत में मशहूर नहीं हुआ। फिर हारून रशीद के ज़माने में 'हीला-ए-इसक़ात' के लिए कुरान का दौर बिना किसी एतराज़ के प्रसिद्ध हुआ। तो इस 'हीला' की असल हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से साबित है। हालाँकि यह बात मशहूर हदीस की किताबों में नहीं है, लेकिन इतिहास की किताबों में मज़बूत सनद के साथ मशहूर है। जैसा कि अज़ीम इतिहासकार, 'अल-फुतूह' के लेखक ने बयान किया है कि हमें अबू आसिम ने इब्न जुरैज से, उन्होंने इब्न शिहाब से, उन्होंने इब्न सलमा से, उन्होंने इब्न मूसा से बताया कि हज़रत उमर ने बीस आदमियों के घेरे में कुरान का एक जुज़ (पारा) लिया और दिया, और यह उस महिला के जनाज़े के बाद किया गया जो मुलाब अंसारी की बीवी और हबीबा बिंत अरबद के लक़ब से मशहूर थी (उसका नाम महफूज़ नहीं है)। अतः मुतलक़न 'हीला' का इनकार कुफ्र है और 'हीला-ए-इसक़ात' का इनकार फिस्क है क्योंकि यह हज़रत उमर से साबित है। हमें सईद ने अय्यूब से, उन्होंने जमीअ से, उन्होंने अब्दुल्ला बिन अबी बक्र से बताया कि नमाज़-ए-जनाज़ा के बाद हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कुरान का दौर कराया।

पृष्ठ 174 of 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

حدثنا عباس بن سفیان عن ابن عتبہ عن ابن عوف عن محمد عن عبداللہ قال قال عمر ایھاالمؤمنون اجعلوا القرآن وسیلۃ لنجاۃ الموتی فتحلقوا وقولوا اللھم اغفر لھذا المیت بعزۃ القرآن وتناولوا بایدیکم وفعل عمر فی آخر خلافتہ فی وفاۃ امرأۃ ملقبۃ الحبیبۃ بنت عربد زوجۃ ملاب لجزء من القرآن فمالوا الی عمر ولم یشتھر فی خلافۃ عثمان ثم اشتھر فی خلافۃ ھارون الرشید من غیر انکار دوران القرآن بحیلۃ الاسقاط فاصلہ ثابت عن عمر وھذا وان لم یذکر فی کتب المشھورۃ من الاحادیث ولکنہ مشھور فی بعض الکتب من التواریخ بسند قوی کما قال المورخ اللبیب صاحب الفتوح اخبرنا ابوعاصم عن ابن جریج عن ابن شھاب عن ابن سلمۃ عن ابن موسی قال فعل عمر دوران القرآن لجزء منہ بحلقۃ عشرین رجلا بعد صلوٰۃ الجنازہ لامرأۃ ملقبہ بحبیبۃ بنت عربد زوجۃ ملاب لرجل من الانصار ما حفظنا اسمہ فانکار مطلقۃ الحیلۃ وعن حیلۃ الاسقاط فسق لانہ ثبت عن عمر، اخبرنا سعید بن ایوب عن جمیع عن عبداللہ بن ابی بکر انہ اوجد عمر بدور القرآن

عباس بن سفیان نے ابن عتبہ سے انہوں نے ابن عوف سے انہوں نے محمد انہوں نے عبداللہ بن عمر سے کہ حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا: اے اہل ایمان! قرآن کو مردوں کی نجات کے لئے وسیلہ بناؤ اور حلقہ بنا کر یوں عرض کرو اے اللہ ! اس میت کو عزت قرآن کی برکت بخش دے اور اسے ایک دوسرے کے ہاتھ میں دو۔ حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے اپنی خلافت کے آخری دور میں حبیبہ بنت عربد زوجہ ملاب کی وفات کے موقعہ پر قرآن کے ایک حصہ سے ایسا کیا، لیکن یہ عمل خلافت عثمان میں مشہور نہ ہوا پھر ہارون الرشید کے زمانہ میں قرآن کا دور حیلہ اسقاط کے لئے بغیر کسی اعتراض کے مشہور ہوا تو اس حیلہ کی اصل حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ثابت اور یہ بات اگرچہ مشہور کتب احادیث میں نہیں لیکن کتب تاریخ میں سند

قوی کے ساتھ مشہور ہے جیسا کہ عظیم مورخ صاحب الفتوح نے بیان کیا کہ ہمیں ابوعاصم نے ابن جریج سے انہوں نے ابن شہاب، انہوں نے ابن سلمہ، انہوں نے ابن موسیٰ سے بتایا کہ حضرت عمر نے بیس آدمیوں کے حلقہ میں قرآن کے ایک جز کو لیا دیا اور یہ اس خاتون کے جنازہ کے بعد کیا جو ملاب انصاری کی بیوی اور حبیبہ بنت عربد کے لقب سے مشہور تھی اس کا نام محفوظ نہیں، تو مطلقاً حیلہ کا انکار کفر اور حیلہ اسقاط کا انکار فسق ہے کیونکہ یہ حضرت عمر سے ثابت ہے ، ہمیں سعید نے ایوب سے انہوں نے جمیع سے انہوں نے عبداللہ بن ابی بکر سے بتایا کہ نماز جنازہ کے بعد قرآن کا دور حضرت عمر رضی اللہ

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Boxed text]: After the funeral prayer. Ends. Fatawa Samarqandi from Utbah. ... [Hazrat Umar] (may Allah be pleased with him) originated this. Ends. This is quoted in Fatawa Samarqandi with reference to Utbah. (T)

Question: Furthermore, in this context, the attribution of 'Dauran-e-Quran' (cycling the Quran) to Hazrat Umar (may Allah be pleased with him), is it authentic or not, and what is its chain of narration?

Answer: The baseless narrations mentioned in this text concerning the Commander of the Faithful, Farooq-e-Azam (may Allah be pleased with him), and other individuals are all false and fabrications. Not only is this text absent from Fatawa Samarqandi (making that claim a fabrication as well), but the poor fabricator could not even construct proper Arabic, attributing his broken, ignorant nonsense to the Companions (Sahaba) and Imams. The issue of 'Daur-e-Ammah' (the general cycle) is explicitly stated in the standard books of the school of thought; it can be performed using the Holy Quran itself or some wealth. However, in each transaction, the amount credited will only be equivalent to the market price of the copy of the Holy Quran. The ignorant notion that 'it is priceless and a single performance will suffice as expiation for seven generations, past and future' is merely a false, ignorant idea, as we have explained in our Fatawa with such detail that nothing can be added. Although there is no direct scriptural text (Nass) from the Lawgiver (upon whom be the best blessings and peace) regarding the ransom (Fidya) for missed prayers, the consensus of the Mujtahids of the school of thought exists, and that is sufficient as proof. And Allah Almighty knows best.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[बॉक्स में टेक्स्ट]: जनाज़े की नमाज़ के बाद। समाप्त। फ़तावा समरकंदी उल्बाह से। ... [हज़रत उमर] (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने इसकी शुरुआत की। समाप्त। यह फ़तावा समरकंदी में उल्बाह के हवाले से उद्धृत है। (त)

प्रश्न: इसके अतिरिक्त, इसमें 'दौरान-ए-क़ुरान' का हज़रत उमर (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से संबंध क्या सही है या नहीं, और इसकी सनद (प्रमाण) कैसी है?

उत्तर: अमीर-उल-मोमिनीन फ़ारूक़-ए-आज़म (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) और उनके अलावा अन्य महानुभावों के बारे में इस इबारत (लेख) में जो भी बेबुनियाद बातें कही गई हैं, वे सब असत्य और मनगढ़ंत हैं। न तो यह इबारत फ़तावा समरकंदी में मौजूद है (यह दावा भी एक झूठ है), और वह बेचारा झूठ गढ़ने वाला ढंग से अरबी इबारत भी नहीं बना सका, उसने अपनी टूटी-फूटी अज्ञानतापूर्ण बातों को सहाबा और इमामों के नाम से जोड़ दिया। 'दौर-ए-आम्मा' का मसला मज़हब की प्रचलित पुस्तकों में स्पष्ट है; यह स्वयं पवित्र क़ुरान से या किसी धन-संपत्ति से किया जा सकता है। लेकिन हर बार देने में केवल उतना ही मान्य होगा जितना बाज़ार भाव के अनुसार उस पवित्र क़ुरान का मूल्य है। यह अज्ञानतापूर्ण विचार कि 'यह तो अनमोल है और एक ही बार में सात पीढ़ियों के अगले-पिछले सभी कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) अदा हो जाएंगे', निरा अज्ञानतापूर्ण और असत्य विचार है, जैसा कि हमने अपने फ़तावा में इतनी विस्तार से बताया है कि उसमें कुछ और जोड़ना संभव नहीं है। यद्यपि नमाज़ के फ़िद्ये (हर्जाने) पर शरीयत देने वाले (उन पर सर्वश्रेष्ठ दुरूद और सलाम हो) की कोई स्पष्ट आयत या हदीस (नस्स) नहीं आई है, लेकिन यह मज़हब के मुजतहिद (विद्वान) का स्पष्ट निर्णय है और प्रमाण के लिए पर्याप्त है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

بعد صلواۃ الجنازہ انتہیٰ فتاوی سمر قندی من عتبہ۔ تعالی عنہ نے ایجاد کیا انتہی، فتاوی سمر قندی میں عتبہ کے حوالے سے منقول ہے۔ (ت)

نیز اس میں دورانِ قرآن کی نسبت حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی طرف ہے وہ صحیح ہے یا نہیں اور اس کی سند کیسی ہے؟

الجواب: امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالی عنہ اور ان کے سوا اور حضرات سے جو کچھ روایات ہے سروپا اس عبارت میں مذکور ہیں سب باطل وافتراء ہیں، نہ یہ عبارت فتاوی سمر قندی میں ہے اس پر بھی افتراء ہے ، اور بے چارہ افتراء کرنے والا عربی عبارت بھی باقاعدہ نہ بنا سکا اپنی ٹوٹی پھوٹی جاہلانہ خرافات کو صحابہ وائمہ کی طرف منسوب کیا مسئلہ دور عامہ کتب متداولہ مذہب میں مصرح ہے خود مصحف شریف سے یا کسی مال سے مگر ہر بار کے دینے میں اتنا ہی مجرا ہوگا کہ بازاری نرخ سے وہ مصحف شریف جتنے ہدیہ کا ہے یہ جاہلانہ خیال کہ یہ تو بے بہا ہے ایک ہی دفعہ میں اگلے پچھلے سات پشت کے سب کفارے ادا ہو جائیں گے محض جاہلانہ خیال باطل ہے کما بیناہ فی فتاونا بمالا مزید علیہ (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاویٰ میں اتنی تفصیل سے بیان کیا ہے جس پر اضافہ نہیں کیا جاسکتا۔ت) فدیہ صلوٰۃ پر اگرچہ نص شارع علیہ افضل الصلوۃ والتسلیم نہ آیا نص مجتہد مذہب ہے و کفی بہ حجتہ (یہ دلیل کے لئے کافی ہے۔ت)

واللہ تعالیٰ اعلم

Fatawa Razawiyya Volume 8

Chapter on Sujud al-Sahw (Description of Prostration of Forgetfulness)

Problem 1216: 7 Rabi' al-Thani 1307 AH What do the scholars of religion say regarding this matter: a person, after reciting Surah al-Hamd, kept thinking about which Surah to recite, and some time passed in this. What is the ruling? Please explain and receive reward.

Answer: If the duration of thinking was equal to performing a pillar (rukn) along with its Sunnah practices as mentioned in al-Ghuniyah (i.e., according to the Sunnah as in Ghuniyah - T), for example, as long as it takes to say 'Subhan Allah' three times, then the prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw) is mandatory; otherwise, it is not. It is stated in Rad al-Muhtar: "The thinking that necessitates prostration of forgetfulness is that which results in the delay of a mandatory (wajib) act or a pillar (rukn) from its proper place, by interrupting the engagement with the pillar or mandatory act for the duration of performing one pillar. And this is the most correct view." [1] End of summary. And Allah knows best.

Thinking which becomes a cause for forgetfulness is that which delays a mandatory act or a pillar from its place, for instance, turning away from a pillar or a mandatory act for an amount of time equal to performing one pillar. This is the most correct view. End of summary. And Allah Almighty knows best.

[1] Rad al-Muhtar, Chapter on Sujud al-Sahw, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/558.

Page 177 of 673

फ़तावा-ए-रज़विया आठवाँ भाग

बाब सुजूद अस-सहव (सजदा सहव का बयान)

मसला 1216: 7 रबी-उल-आख़िर 1307 हिजरी दीन के उलमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक व्यक्ति अल-हम्द शरीफ़ (सूरह फ़ातिहा) पढ़ने के बाद सोचता रहा कि कौन सी सूरत पढ़ूँ और इसमें कुछ समय लग गया, तो इसका क्या हुक्म है? बयान करें और पुण्य कमाएँ।

जवाब: अगर सोचने की अवधि एक रुक्न (नमाज़ का एक अनिवार्य हिस्सा) अदा करने के बराबर हो 'म'अ सुन्नतिही' जैसा कि 'अल-ग़ुनिया' में है (यानी सुन्नत के अनुसार जैसा कि ग़ुनिया में है - त), यानी मिसाल के तौर पर जितनी देर में तीन बार 'सुब्हान अल्लाह' कह लिया जाता है, उतने समय तक सोचता रहा, तो सजदा-ए-सहव अनिवार्य (लाज़िम) है, वरना नहीं। रद्दुल मुहतार में है: "वह सोच जो सहव (भूल) का कारण बनती है वह है जिससे वाजिब या रुक्न की अपने स्थान से देरी हो जाए, इस तरह कि रुक्न या वाजिब की अदायगी की जगह एक रुक्न की मात्रा के बराबर काम रुक जाए, और यही सबसे सही मत है।" [1] सारांश। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

ऐसा सोचना जो सहव (भूल) का सबब है वह होगा जो वाजिब या रुक्न को अपने स्थान से विलंबित कर दे, उदाहरण के तौर पर रुक्न अदा करने की मात्रा तक किसी रुक्न या वाजिब से विमुख हो लिया जाए, यही सबसे सही है। सारांश। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

[1] रद्दुल मुहतार, बाब सुजूद अस-सहव, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/558.

पृष्ठ 177/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

باب سجود السھو (سجدہ سہو کا بیان)

مسئلہ ۱۲۱۶: ۷ ربیع الآخر ۱۳۰۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص الحمد شریف پڑھ کر سوچتا رہا کہ کون سی سورت پڑھوں اور اس میں کچھ دیر لگ گئی تو کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: اگر بقدرِ ادائے رکن ای مع سننہ کما فی الغنیۃ (یعنی سنت کے مطابق جیسے غنیہ میں ہے۔ ت) یعنی مثلاً جتنی دیر میں تین بار سبحان اللہ کہہ لیتا اتنے وقت تک سوچتا رہا تو سجدہ سہو لازم ہے ورنہ نہیں۔ ردالمحتار میں ہے: التفکر الموجب للسھو مالزم منہ تاخیر الواجب او الرکن عن محلہ بان قطع الاشتغال بالرکن او الواجب قدر اداء رکن و ھو الاصح ۱ اھ ملخصاً ۔ واللہ تعالٰی اعلم

ایسا سوچنا جو سہو کا سبب ہے وہ ہوگا جو واجب یا رکن کو اپنے مقام سے مؤخر کردے مثلاً اداء رکن کی مقدار کسی رکن یا واجب سے اعراض کرلیا جائے یہی اصح ہے اھ ملخصاً ۔ واللہ تعالٰی اعلم

۱ رد المحتار باب سجود السھو مطبوعہ مصطفٰی البابی مصر ۱/ ۵۵۸

Fatawa Razawiyya Volume 8

Problem 121: 23 Jumada al-Akhirah 1307 AH What do the scholars of religion say regarding this issue: in the Friday (Jumu'ah) prayer, in the second rak'ah after Surah al-Fatihah, the Imam recited from "Wadhkur fil-kitabi Musa" to "Wa wahabna lahu," which are three short verses, then he stopped. After some reflection, he again recited from "Wadhkur" to "Wa wahabna lahu." Then, after reciting it a third time, he reflected again. When he could not proceed further, he went into Ruku'. In this situation, is Sajda Sahw (prostration of forgetfulness) mandatory for the Imam or not? If it was mandatory and he didn't do it, did the prayer become invalid or what? Please explain and be rewarded.

The Answer: If even once he reflected for a duration equal to performing an obligatory act (Rukn) with its Sunnah, i.e., the time it takes to say "Subhan Allah" three times, Sajda Sahw becomes mandatory. It is stated in Rad al-Muhtar:

[Arabic Box] التفكر الموجب للسهو مالزم منه تاخير الواجب او الركن عن محله بان قطع الاشتغال بالركن او الواجب قدر اداء ركن وهو الاصح۔ (ت)

Thinking which necessitates Sajda Sahw is that which results in delaying an obligatory act (Wajib) or a pillar (Rukn) from its place, by pausing the engagement in the Rukn or Wajib for a duration equal to performing a Rukn. This is the more correct view. (T)

If it was not performed, the prayer became "Makruh Tahrimi" (prohibitively disliked), making its repetition mandatory. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Arabic Box] تعاد وجوبا في العمد والسهوان لم يسجد له (٢)

Repetition of the prayer is mandatory in case of intentional omission, or unintentional omission if Sajda Sahw was not performed. (T)

This is the original ruling, but scholars have held that in Jumu'ah and Eid prayers, when performed with a large congregation, it is better to omit Sajda Sahw for fear of causing confusion (fitna). It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Arabic Box] السهو في صلوة العيد والجمعة والمكتوبة التطوع سواء والمختار عند المتاخرين عدمه في الاوليين لدفع الفتنة كما في جمعة البحر واقره المصنف وبه جزم في الدرر (٣)۔

Forgetfulness (Sahw) in Eid, Jumu'ah, obligatory, and voluntary prayers is the same. According to the later scholars, the preferred view for the first two prayers (Jumu'ah

and Eid) is to omit it to prevent confusion, as mentioned in the chapter on Jumu'ah in Al-Bahr. The author has upheld this, and in Ad-Durar, it is stated with certainty. (T)

1. Rad al-Muhtar, Chapter on Sajda Sahw, printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/558.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on Sifat al-Salah, printed by Mujtabai Delhi 1/71.
3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Sajda Sahw, printed by Mujtabai Delhi 1/103.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मसला 121: 23 जुमाद-अल-आखिरा 1307 हिजरी धर्म के विद्वान इस मुद्दे के बारे में क्या कहते हैं: जुमे की नमाज़ में, दूसरी रकात में सूरह फातिहा के बाद इमाम ने "वाज़कुर फ़िल-किताबी मूसा" से "वा वबना लहू" तक पढ़ा, जो कि तीन छोटी आयतें हैं, फिर वह रुक गया। कुछ देर सोचने के बाद, उसने फिर से "वाज़कुर" से "वा वबना लहू" तक पढ़ा। फिर तीसरी बार पढ़ने के बाद फिर थोड़ा सोचा। जब आगे न चल सका तो रुकू कर दिया। इस स्थिति में इमाम पर सजदा-ए-सह्व (भूल की माफी का सजदा) वाजिब हुआ या नहीं? अगर वाजिब था और नहीं किया तो क्या नमाज़ फासिद (अमान्य) हो गई या क्या हुआ? बयान फरमाएं, पुण्य मिलेगा।

जवाब: अगर एक बार भी रुकन अदा करने की मात्रा के बराबर सुन्नत के साथ यानी तीन बार 'सुब्हान अल्लाह' कहने के बराबर सोच-विचार किया, तो सजदा-ए-सह्व वाजिब हो गया। रद-अल-मुह्तार में है:

[अरबी बॉक्स] التفكر الموجب للسهو مالزم منه تاخير الواجب او الركن عن محله بان قطع الاشتغال بالركن او الواجب قدر اداء ركن وهو الاصح۔ (ت)

वह सोच-विचार जो सह्व (भूल) का कारण बनता है, वह है जिससे कोई वाजिब या रुकन अपने स्थान से विलंबित (देर) हो जाए, जैसे कि किसी रुकन या वाजिब से रुकन अदा करने की मात्रा के बराबर ध्यान हटा लिया जाए। यही सबसे सही विचार है। (त)

अगर ऐसा नहीं किया गया, तो नमाज़ मकरूह-ए-तहरीमी (कठोरता से नापसंद) हो गई, जिसे दोबारा पढ़ना वाजिब है। दुर्र-ए-मुख्तार में है:

[अरबी बॉक्स] (٢) تعاد وجوبا في العمد والسهوان لم يسجد له

जानबूझकर या अनजाने में भूल होने पर यदि सजदा-ए-सह्व नहीं किया गया, तो नमाज़ को लौटाना वाजिब है। (त)

मूल नियम यही है, लेकिन विद्वानों ने जुमा और ईदैन की नमाज़ों में, जब वे एक बड़े जनसमूह के साथ अदा की जा रही हों, भ्रम (फितना) के डर से सजदा-ए-सह्व को छोड़ना ही बेहतर माना है। दुर्र-ए-मुख्तार में है:

[अरबी बॉक्स] السهو في صلوة العيد والجمعة والمكتوبة التطوع سواء والمختار عند المتاخرين عدمه في الاوليين لدفع الفتنة كما في جمعة البحر واقره المصنف وبه جزم في الدرر (٣)۔

सह्व (भूल) ईद, जुमा, फर्ज और नफ्ल नमाज़ों में समान है। बाद के विद्वानों के अनुसार, पहली दो नमाज़ों (जुमा और ईद) में फितना दूर करने की वजह से सजदा-ए-सह्व न करना ही पसंदीदा (मुख्तार) है, जैसा कि अल-बहर के बाब-अल-जुमा में है। लेखक ने इसे कायम रखा है और दुरर में इसी पर जोर दिया गया है। (त)

1. रद-अल-मुह्तार, बाब सुजूद-उस-सह्व, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/558
2. दुर्र-ए-मुख्तार, बाब सिफत-उस-सलात, मुजतबाई दिल्ली 1/71
3. दुर्र-ए-मुख्तार, बाब सुजूद-उस-सह्व, मुजतबाई दिल्ली 1/103

पृष्ठ 178 / 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۲۱: ۲۳ جمادی الاخریٰ ۱۳۰۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ امام جمعہ کی نماز میں دوسری رکعت میں بعد فاتحہ کے واذکر فی الکتب موسی سے ووہبنا لہ تک کہ تین آیات قصار ہو گئیں پڑھ کر بند ہو گیا کسی قدر تامل کر کے پھر دوبارہ واذکر سے ووہبنا لہ تک پڑھا پھر سہ بارہ بھی تک پڑھ کر کچھ تامل کیا جب آگے نہ چلا رکوع کر دیا، اس صورت میں امام پر سجدہ سہو آیا یا نہیں؟ اگر آیا اور نہ کیا تو فاسد ہوئی یا کیسی؟ بینوا توجروا

الجواب: اگر ایک بار بھی بقدر ادائے رکن مع سنت یعنی تین بار سبحان اللہ کہنے کی مقدار تک تامل کیا سجدہ سہو واجب ہوا، ردالمختار میں ہے :

التفکر الموجب للسھو مالزم منہ تاخیر الواجب او الرکن عن محلہ بان قطع الاشتغال بالرکن او الواجب قدر اداء رکن وھو الاصح۔ (ت) ہر وہ تفکر سہو کا موجب ہے جو واجب یا رکن کو اپنے مقام سے مؤخر کر دے مثلاً اداء رکن کی مقدار کسی رکن یا واجب سے اعراض کر لیا جائے یہی اصح ہے۔ (ت)

اگر نہ کیا نماز مکروہ تحریمی ہوئی جس کا اعادہ واجب، درمختار میں ہے :

تعاد وجوبا في العمد والسھوان لم یسجد لہ (۲) دانستہ یا نادانستہ سجدہ سہو نہ کیا تو نماز کا لوٹانا واجب ہے۔ (ت)

اصل حکم یہ ہے مگر علماء نے جمعہ و عیدین میں جبکہ جمع عظیم کے ساتھ ادا کئے جائیں بخوف فتنہ سجدہ سہو کا ترک اولیٰ رکھا ہے۔ درمختار میں ہے :

السهو في صلوة العيد والجمعة والمكتوبة التطوع سواء والمختار عند المتاخرين عدمه في الاوليين لدفع الفتنة كما في جمعة البحر واقره المصنف وبه جزم في الدرر (۳)۔ سہو نماز عید جمعہ فرض اور نوافل میں برابر ہے، متاخرین کے نزدیک پہلی دو نماز (نماز جمعہ وعید) میں دفع فتنہ کی وجہ سے سجدہ سہو نہ کرنا مختار ہے، جیسا کہ بحر کے باب الجمعہ میں ہے۔ مصنف نے اسے ثابت رکھا اور درر میں اسی پر جزم ہے۔ (ت)

1. ردالمختار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۵۸
2. در مختار باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/۷۱
3. در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/۱۰۳

Fatawa Razawiyya Volume Eight

It is stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic]: In Jumu'ah, it is mentioned in Hashiyat Abi al-Su'ud on the authority of al-Azmiyah that the intended meaning is not the non-permissibility [of prostration of forgetfulness], but rather it is better to omit it so that people do not fall into confusion. [1] | [Translation]: In the chapter of Jumu'ah in Hashiyat Abu al-Su'ud, it is quoted from al-Azmiyah that it does not mean that the prostration of forgetfulness is impermissible, but rather it is preferable to omit it so that people do not face confusion. (T)

So, where Jumu'ah is not held with a large congregation, one should undoubtedly perform the prostration; if not performed, repeat the prayer. If the time has passed, pray Zuhr. It is stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic]: Al-Wafi has restricted it to when a large crowd is present, otherwise there is no reason to omit it. [2] | [Translation]: Al-Wafi has restricted this to the condition that attendees are in large numbers, and if there is not such a massive gathering, then there is no need to omit the prostration of forgetfulness. (T)

In the same work:

[Arabic]: The preferred view is the obligation of repeating [the prayer] within the time and after it. [3] | [Translation]: The preferred opinion is that the prayer should be repeated within its time or after it. (T)

Problem 1218: What do the scholars of religion and muftis of the firm Sharia say on this issue? Zaid, while praying the first rak'ah of Friday prayer, remained silent for more than a minute after reciting enough for the prayer to be valid, and did not perform prostration at the end of the prayer. When people said you did not perform the prostration of forgetfulness, he replied that the issue is exactly as I did. Is Zaid's statement correct or wrong? And was that prayer complete or deficient? Explain and you will be rewarded.

The Answer: One minute is quite a long time; even if he remained silent for the duration of three glorifications (tasbih), the prostration of forgetfulness is mandatory. This is the original ruling, specifically detailed in Radd al-Muhtar. However, in Friday prayer, when the crowd of worshipers is vast, the prostration of forgetfulness is waived, as also stated in Radd al-Muhtar (as it is in Radd al-Muhtar also. T). Therefore,

in this prayer, there was a large crowd, so Zaid [omitted] the prostration of forgetfulness...

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/556 [2] Radd al-Muhtar, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/556 [3] Radd al-Muhtar, Chapter on Description of Prayer, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/536 Page 179 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

रद्दुल मुख्तार में है:

[अरबी]: जुमा की नमाज़ के बारे में हाशियत अबी सऊद में अज़मियह के हवाले से है कि इससे मतलब यह नहीं कि सजदा सहव करना नाजायज़ है, बल्कि बेहतर यह है कि इसे छोड़ दिया जाए ताकि लोग भ्रम (फ़ितना) में न पड़ें। [1] | [अनुवाद]: हाशिया अबू सऊद के जुमा वाले अध्याय में अज़मियह के संदर्भ से है कि इसका अर्थ सजदा सहव की मनाही नहीं है, बल्कि इसलिए बेहतर है ताकि लोग भ्रम में न पड़ें। (त)

तो जहाँ जुमा बड़ी जमात (जनसमूह) के साथ न हो, वहाँ निस्संदेह सजदा करना चाहिए; यदि नहीं किया गया, तो नमाज़ दोहराएँ। यदि समय बीत गया हो, तो ज़ोहर पढ़ें। रद्दुल मुख्तार में है:

[अरबी]: अल-वाफ़ी ने इसे इस बात के साथ सीमित कर दिया है कि यह तब है जब बहुत बड़ी भीड़ हो, अन्यथा इसे छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। [2] | [अनुवाद]: वाफ़ी ने इस बात को शर्त के साथ जोड़ा है कि यह उस समय के लिए है जब उपस्थित लोग बहुत अधिक संख्या में हों, और यदि इतनी बड़ी भीड़ न हो, तो सजदा सहव छोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। (त)

इसी में है:

[अरबी]: प्राथमिकता इसी बात को है कि समय के भीतर या समय के बाद नमाज़ को दोहराया जाए। [3] | [अनुवाद]: तरजीह (प्राथमिकता) यही है कि समय के अंदर या समय के बाद नमाज़ को लौटाया (दोहराया) जाए। (त)

मसला १२१८ : धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले पर क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद ने जुमा की नमाज़ की पहली रकात में नमाज़ के लिए ज़रूरी पाठ पढ़ने के बाद एक मिनट से ज़्यादा समय तक चुप रहा और नमाज़ पूरी करने पर सजदा भी नहीं किया। जब लोगों ने कहा कि तुमने सजदा सहव नहीं किया, तो उसने जवाब दिया कि मसला वैसा ही है जैसा मैंने किया। क्या ज़ैद का यह कहना सही है या गलत? और क्या वह नमाज़ पूरी हुई या अधूरी? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

जवाब: एक मिनट तो बहुत होता है, अगर तीन तस्बीह की अवधि तक भी मौन रहा तो सजदा सहव अनिवार्य है, मूल नियम यही है, रद्दुल मुख्तार में विशेष रूप से इसका वर्णन है। लेकिन जुमा की नमाज़ में जब नमाज़ियों की भीड़ बहुत ज़्यादा हो, तो सजदा सहव को माफ़ कर दिया गया है जैसा

कि रद्दुल मुख्तार में भी है (जैसा कि रद्दुल मुख्तार में भी है। त)। अतः इस नमाज़ में बहुत भीड़ थी, इसलिए ज़ैद ने सजदा सहव...

१ रद्दुल मुख्तार, सजदा सहव अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, १/५५६ २ रद्दुल मुख्तार, सजदा सहव अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, १/५५६ ३ रद्दुल मुख्तार, नमाज़ के विवरण का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, १/५३६ पेज 179 ऑफ़ 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

ردا لمحتار میں ہے :

في جمعة حاشية ابى السعود عن العزمية انه ليس المراد عدم جوازه بل الاولى تركه لئلا يقع الناس فى فتنہ ۱ | حاشیہ ابو السعود کے باب الجمعہ میں عزمیہ کے حوالے سے ہے کہ اس سے مراد سجدہ سہو کا عدم جواز نہیں بلکہ اس لئے اولی ہے تاکہ لوگ فتنہ میں مبتلا نہ ہوں۔ (ت)

بس جہاں جمعہ بھی جماعتِ عظیم سے نہ ہوتا ہو بلا شبہ سجدہ کرے، اگر نہ کیا اعادہ کرے، اگر وقت نکل گیا ظہر پڑھ لیں۔ ردالمختار میں ہے :

قيده الوافى بما اذا حضر جمع كثير والا فلا داعى الى الترک ۲ | وافی نے اس بات کے ساتھ مقید کر دیا ہے کہ یہ اس وقت ہے جب حاضرین کثرت کے ساتھ ہوں، اور اگر اتنا کثیر اجتماع نہیں تو پھر سجدہ سہو کے ترک کی ضرورت نہیں۔ (ت)

اسی میں ہے :

المرجح وجوب الاعادة فى الوقت وبعدہ ۳ | ترجیح یہی ہے کہ وقت کے اندر یا وقت کے بعد نماز کو لوٹایا جائے۔ (ت)

مسئلہ ۱۲۱۸ : کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ زید نمازِ جمعہ رکعت اول میں بقدر ما یجوز بہ الصلوۃ کے پڑھ کر ایک منٹ سے زیادہ ساکت رہا اور تمام کرنے نماز کے سجدہ بھی نہ کیا جب لوگوں نے کہا تم نے سجدہ سہو نہیں کیا تو جواب دیا کہ مسئلہ اسی طرح ہے جیسا کہ میں نے کیا، آیا یہ قولِ زید صحیح ہے یا غلط ؟ اور وہ نماز کامل ہوئی یا ناقص ؟ بینوا توجروا

الجواب :

ایک منٹ تو بہت ہوتا ہے اگر بقدر تین تسبیح کے بھی ساکت رہا تو سجدہ سہو لازم ہے، اصل حکم یہی ہے، ردالمختار میں خاص اس کی تصریح ہے مگر نمازِ جمعہ میں جبکہ ہجومِ نمازیاں کثیر ہو سجدہ سہو ساقط کر دیا گیا ہے کما فی ردالمختار ایضا (جیسا کہ ردالمختار میں بھی ہے۔ ت) پس اس نماز میں ہجومِ کثیر تھا زید نے سجدہ سہو کا

۱ ردالمختار باب سجود السھو مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۵۶ ۲ ردالمختار باب سجود السھو مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۵۶ ۳ ردالمختار باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۳۶

Volume 8 Fatawa-e-Razawiyya

They did well to abandon it, and if there were few people, it was inappropriate and very inappropriate, and that prayer was deficient, they should repeat the Dhuhr prayer. And Allah Almighty knows best, and His knowledge, glorified be His majesty, is most perfect and most generous.

Issue 1219: Someone intended for two units (rak'at) of Tarawih, forgot the first sitting (qa'da ula), sat after reading three units and performed prostration. Is the prayer valid or not? And should the Quran recited in these units be repeated or not? And if they prayed four units, will these four be counted as Tarawih or not? Explain and be rewarded.

The Answer: In the first scenario, according to the most correct opinion, the prayer is not valid, and the portion of the Great Quran recited in it must be repeated.

[Arabic Quote] In Radd al-Muhtar: If someone performs three voluntary (nafl) units with one sitting, it should be permissible by analogy with the Maghrib prayer, but the most correct view is that it is invalid because the unit connected to the sitting is the last one, and since a single unit of voluntary prayer is not prescribed, it becomes invalid, and what preceded it also becomes invalid. (T)

And if four units are prayed without the first sitting, according to the fatwa-issued opinion, these four will be counted as equal to only two units; one should pray the remaining. As stated in Radd al-Muhtar from An-Nahr al-Faiq from Al-Zahidi. (T) And if both sittings were performed, then definitely all four units are valid, and there is no dislike (karahah) either, as the mentioned reasoning in Radd al-Muhtar indicates. Yes, performing them in sets of two is better as is clear. (T) And Allah Almighty knows best.

Issue 1220: If the Imam commits an oversight (sahw) and does not perform the prostration of forgetfulness (sajda sahw), is the followers' prayer valid, and is the prostration of forgetfulness waived for them or not? Explain and be rewarded.

The Answer: Yes. In Al-Tanwir: It (prostration of forgetfulness) is obligatory for an individual praying alone and for a follower due to the Imam's oversight.

---

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Witr and Nawafil, printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/512.

छोड़ दिया तो अच्छा किया, और अगर थोड़े आदमी थे तो यह अनुचित और बहुत अनुचित था, और वह नमाज़ अधूरी हुई, वे ज़ुहर की नमाज़ दोबारा पढ़ें। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है और उसका इल्म, जिसकी शान बुलंद है, सबसे पूर्ण और सबसे उदार है।

मसला 1219: दो रकअत तरावीह की नीयत की, पहला क़ादा (बैठना) भूल गया, तीन पढ़कर बैठा और सजदा किया, तो नमाज़ हुई या नहीं? और इन रकअतों में जो क़ुरआन मजीद पढ़ा, उसे दोबारा पढ़ना होगा या नहीं? और अगर चार पढ़ लीं, तो क्या ये चारों तरावीह मानी जाएँगी या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएँ।

जवाब: पहली सूरत में सबसे सही मज़हब (विचार) के अनुसार नमाज़ नहीं हुई, और क़ुरआन-ए-अज़ीम का जितना हिस्सा इसमें पढ़ा गया, उसे दोहराया जाए।

[अरबी उद्धरण] 'रद्दुल मुहतार' में है: अगर किसी ने तीन नफ़्ल नमाज़ें एक क़ादा के साथ पढ़ीं, तो मग़रिब की नमाज़ पर कयास (तुलना) करते हुए उन्हें जायज़ कहना चाहिए, लेकिन सही बात यह है कि यह दुरुस्त नहीं है, क्योंकि वह रकअत (आख़िरी) बातिल (अमान्य) हो जाएगी जिसके साथ क़ादा नहीं है, क्योंकि एक नफ़्ल शरीअत में नहीं है, इसलिए पहले वाली भी बातिल हो जाएँगी। (त)

और अगर चार रकअतें पढ़ लीं और पहला क़ादा नहीं किया, तो मुफ़्ती-बे (जिस पर फतवा दिया गया) मज़हब के अनुसार ये चारों दो ही रकअत के बराबर गिनी जाएँगी, बाकी और पढ़ ले। जैसा कि 'रद्दुल मुहतार' में 'अन-नहरुल फ़ाइक' से 'अज़-ज़ाहिदी' के हवाले से है। (त) और अगर दोनों क़ादे (बैठकें) किए तो निश्चित रूप से चारों रकअतें हो गईं, और इसमें कोई कराहत (नापसंदगी) भी नहीं है, जैसा कि 'रद्दुल मुहतार' में दी गई दलील से पता चलता है। हाँ, दो-दो रकअत पढ़ना बेहतर है जैसा कि स्पष्ट है। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1220: अगर इमाम से सह्व (भूल) हो गई और उसने सजदा-ए-सह्व नहीं किया, तो मुक़्तदियों की नमाज़ सही होगी और उन पर से सजदा-ए-सह्व साक़ित (माफ) हो जाएगा या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएँ।

जवाब: बेशक। 'तन्वीरुल अबसार' में है: (सजदा-ए-सह्व) अकेले नमाज़ पढ़ने वाले पर भी वाजिब है, और इमाम की भूल की वजह से मुक़्तदी पर भी।

1 रद्दुल मुहतार, बाबुल वितर वन-नवाफिल, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र से प्रकाशित, 1/512.

पेज 180/673

ترک بجا کیا اور اگر تھوڑے آدمی تھے تو بے جا اور سخت بے جا، اور وہ ناقص نماز ہوئی ظہر کا اعادہ کریں۔ واللہ تعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واکرم مسئلہ ۱۲۱۹: دور کعت تراویح کی نیت کی قعدہ اولیٰ بھول گیا تین پڑھ کر بیٹھا اور سجدہ کیا تو نماز ہوئی یا نہیں؟ اور ان رکعتوں میں جو قرآن شریف پڑھا اس کا اعادہ ہوا یا نہیں؟ اور چار پڑھ لیں تو یہ چاروں تراویح ہوئیں یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: صورت اولیٰ میں مذہب اصح پر نماز نہ ہوئی، اور قرآن عظیم جس قدر اس میں پڑھا گیا اعادہ کیا جائے، فی ردالمحتار لو تطوع بثلاث بقعدۃ واحدۃ کان ینبغی الجواز، اعتبار ابصلاۃ المغرب لکن الاصح عدمہ لانہ قد فسد ما اتصلت بہ القعدۃ و ھوا لرکعۃ الاخیرۃ لان التنفل بالرکعۃ الواحدۃ غیر مشروع فیفسد ما قبلہا۔1 ردالمحتار میں ہے اگر کسی نے تین نوافل ایک قعدہ کے ساتھ ادا کئے تو مغرب کی نماز پر قیاس کرتے ہوئے ان کو جائز کہنا چاہئے مگر اصح یہ ہے کہ یہ صحیح نہیں کیونکہ وہ رکعت (آخری) باطل ہو جائے گی جس کے ساتھ قعدہ نہیں کیونکہ ایک نفل مشروع نہیں لہذا پہلے بھی فاسد ہوں گے۔ (ت) اور چار پڑھ لیں اور قعدہ اولیٰ نہ کیا تو مذہب مفتی بہ پر یہ چاروں دو ہی رکعت کے قائم مقام گنی جائیں گی باقی اور پڑھ لے کما صرح بہ فی ردالمحتار عن النھر الفائق عن الزاھدی (جیسا کہ ردالمحتار میں نہر الفائق سے زاہدی کے حوالے سے ہے۔ ت) اور دونوں قعدے کئے تو قطعاً چاروں رکعتیں ہو گئیں ولا کراھۃ ایضا کما یفیدہ التعلیل المذکور في ردالمحتار نعم الافضل فیھا مثنیٰ مثنیٰ کما لا یخفی (اب بھی کراہت نہیں جیسے کہ ردالمحتار میں مذکور علت اسی کا فائدہ دیتی ہے البتہ دو رکعت افضل ہیں جیسا کہ واضح ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۲۲۰: اگر امام پر سہو ہوا اور سجدہ نہ کرے تو مقتدیوں کی نماز صحیح اور ان پر سے سجدہ سہو ساقط ہو جائیگا یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: بیشک ۔ فی التنویر یجب

(ای سجدة السهو) علی منفرد و مقتد بسهو امام ان تنویر میں ہے (سجدہ سہو) تنہا نماز والے پر بھی واجب، اور امام کی سہو کی وجہ سے مقتدی پر بھی

---

1 ردالمحتار باب الوتر والنوافل مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۵۱۲

Fatawa Razawiyya, Volume 8

It becomes mandatory provided that the Imam performs the prostration [Sajdah-e-Sahw]. I say: this condition indicates that if the Imam did not perform the prostration, it will not be mandatory for the follower. It is explicitly stated in 'Al-Bahr al-Ra'iq' that it falls away; however, a deficiency remains. If one becomes aware of the Imam's error, the prayer should be repeated to rectify the deficiency. This does not contradict the prayer's validity, as 'valid' (Sahih) is the opposite of 'corrupt' (Fasid), and in worship, 'corrupt' is the same as 'void' (Batil), as our scholars have clarified in various books. And Allah Almighty knows best.

Issue 1221: 20 Jamadi al-Ula 1313 AH What do the scholars of religion say regarding this: A person forgot the first sitting (Qa'dah) in an obligatory (Fard) or Witr prayer and stood up or was about to stand up; what is the ruling? Should they return or not? And if they stood up or were close to standing and then returned, is the prayer valid? If so, is Sajdah-e-Sahw mandatory? Explain and be rewarded.

The Answer: If they are still closer to the sitting position—meaning the lower half of the body is not yet straight—they should return by consensus, and according to the most correct opinion, Sajdah-e-Sahw is not required. If they are closer to standing—meaning the lower half of the body is straight but the back is still bent—then according to the most correct and preferred opinion, the ruling is still to return, but Sajdah-e-Sahw now becomes mandatory. If they have stood up straight, there is absolutely no instruction to return; rather, they should complete the prayer with Sajdah-e-Sahw. Even then, if someone returns, it is a grave mistake and they are sinful, to the point that the ruling is to immediately stand back up. If an Imam does this, the followers should not follow him but remain standing until he returns to the standing position. However, according to the most correct view, the prayer is not invalidated even then; only Sajdah-e-Sahw remains mandatory.

It is stated in 'Tanwir al-Absar', 'Ad-Durr al-Mukhtar', and 'Radd al-Muhtar' that (if the first sitting of the Fard prayer is forgotten) even if it is a practical obligation (Fard-e-Amali). As for the voluntary (Nafl) prayer, one should return as long as they have not yet performed the prostration (Sajdah) of that rak'ah.

1. Ad-Durr al-Mukhtar, Chapter on Sajdah-e-Sahw, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/102. Page 181 of 673

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

यह इस शर्त पर अनिवार्य है कि इमाम सजदा करे। मैं कहता हूँ: यह शर्त बता रही है कि अगर इमाम ने सजदा नहीं किया, तो मुक़्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) पर यह अनिवार्य नहीं होगा। 'अल-बहर अर-राइक' में इसके समाप्त होने का स्पष्ट उल्लेख है। हाँ, एक कमी रह जाएगी और यह स्पष्ट है कि यदि इसकी जानकारी हो जाए तो उस कमी को पूरा करने के लिए नमाज़ फिर से पढ़ी जाए। यह नमाज़ की वैधता (सिहत) के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि 'सहीह' (वैध), 'फासिद' (दोषपूर्ण) का विलोम है और इबादतों (पूजा-पाठ) में 'फासिद' ही 'बातिल' (अमान्य) होता है जैसा कि हमारे इमामों ने विभिन्न पुस्तकों में स्पष्ट किया है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 1221: 20 जमादी उल-उला 1313 हिजरी धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति फ़र्ज़ नमाज़ या वित्र में पहला का'दा (बैठना) भूलकर खड़ा हो गया या खड़ा होने लगा, तो इस स्थिति में क्या हुक्म है? क्या वह वापस लौटे या न लौटे? और यदि वह खड़ा हो गया या खड़ा होने के क़रीब था और फिर वापस लौट आया, तो क्या नमाज़ हो जाएगी? यदि हो जाएगी, तो क्या सजदा-ए-सह्व (भूल-चूक का सजदा) अनिवार्य होगा या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: यदि अभी बैठने के क़रीब है—यानी शरीर का निचला आधा हिस्सा अभी सीधा नहीं हुआ है—तो सर्वसम्मति से वापस लौट आए, और सबसे सही मत के अनुसार इस पर सजदा-ए-सह्व नहीं है। और यदि खड़े होने के क़रीब हो गया—यानी शरीर का निचला आधा हिस्सा सीधा हो गया और पीठ में अभी भी झुकाव बाकी है—तो भी सबसे सही और पसंदीदा मत में वापस लौटने का ही हुक्म है, लेकिन अब इस पर सजदा-ए-सह्व अनिवार्य होगा। और यदि पूरी तरह सीधा खड़ा हो गया, तो वापस लौटने का बिल्कुल हुक्म नहीं है, बल्कि नमाज़ के अंत में सजदा-ए-सह्व कर ले। फिर भी यदि कोई वापस लौट आया, तो उसने बहुत बुरा किया और वह गुनहगार हुआ, यहाँ तक कि हुक्म है कि वह तुरंत फिर से खड़ा हो जाए। और यदि इमाम ऐसा करे, तो मुक़्तदी उसका अनुसरण न करें बल्कि खड़े रहें जब तक कि वह फिर से क़ियाम (खड़े होने) की स्थिति में न आ जाए। लेकिन सबसे सही मत में, नमाज़ इस तरह भी अमान्य नहीं होगी, केवल सजदा-ए-सह्व अनिवार्य रहेगा।

'तन्वीर अल-अबसार', 'अद-दुर्र अल-मुख्तार' और 'रद्द अल-मुह्तार' में है कि (यदि फ़र्ज़ का पहला का'दा भूल गया) चाहे वह फ़र्ज़-ए-अमली ही क्यों न हो। रहा मामला नफ़्ल (स्वैच्छिक नमाज़) का, तो जब तक उस रकअत का सजदा नहीं किया है, वापस लौट आए।

1. अद-दुर्र अल-मुख्तार, अध्याय: सजदा-ए-सह्व, मुद्रित: मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/102. पृष्ठ 181/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

لازم ہوتا ہے بشرطیکہ امام سجدہ کرے اھ تلخیصاً، میں کہتا ہوں یہ شرط بتا رہی ہے کہ اگر امام نے سجدہ نہیں کیا تو مقتدی پر لازم نہ ہوگا، بحرالرائق میں ہے اس کے ساقط ہونے کی تصریح ہے، وہاں نقص باقی رہ جائے گا، اور اگر امام کی غلطی پر مطلع ہو جائے تو کمی کے ازالے کی خاطر نماز لوٹالی جائے، لیکن یہ صحت ہے اور عبادات میں فاسد باطل ہی ہوتا ہے جیسا کہ مختلف کتب میں ہمارے ائمہ نے تصریح کی ہے واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۲۱: ۲۰ جمادی الاولی ۱۳۱۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نماز فرض یا وتر میں پہلا قعدہ بھول کر کھڑا ہوگیا یا کھڑا ہونے لگا تو اس صورت میں کیا حکم ہے لوٹ آئے یا نہ لوٹے؟ اور اگر کھڑا ہوگیا یا کھڑا ہونے کے قریب تھا اس کے بعد لوٹ آیا تو نماز ہو جائے گی یا نہیں؟ اگر ہو جائے گی تو سجدہ سہو واجب ہوگا یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: اگر ابھی قعود سے قریب ہے کہ نیچے کا آدھا بدن ہنوز سیدھا نہ ہونے پایا جب تو بالاتفاق لوٹ آئے اور مذہب اصح میں اس پر سجدہ سہو نہیں اور اگر قیام سے قریب ہوگیا یعنی بدن کا نصف زیریں سیدھا اور پیٹھ میں خم باقی ہے تو بھی مذہب اصح و ارجح میں پلٹ آنے ہی کا حکم ہے مگر اب اس پر سجدہ سہو واجب، اور اگر سیدھا کھڑا ہوگیا تو پلٹنے کا اصلاً حکم نہیں بلکہ ختم نماز پر سجدہ سہو کرلے پھر بھی اگر پلٹ آیا بہت برا کیا گناہگار ہوا، یہاں تک کہ حکم ہے کہ فوراً کھڑا ہو جائے، اور امام ایسا کرے تو مقتدی اس کی پیروی نہ کریں کھڑے رہیں یہاں تک کہ وہ پھر قیام میں آئے، مگر مذہب اصح میں نماز یوں بھی نہ جائے گی صرف سجدہ سہو لازم رہے گا۔

تنویر الابصار، ردالمحتار اور در مختار میں ہے کہ (اگر فرض کا قعدہ اول بھول گیا) اگرچہ وہ فرض عملی ہو، رہا معاملہ نفل کا تو لوٹ آئے جب تک رکعت کا سجدہ نہیں کیا

۱ در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۲ Page 181 of 673

Fatawa Ridawiyya - Volume Eight

(Arabic Text Column) (Then if he remembers, he returns to it) and recites Tashahhud, and there is no Sajda Sahw upon him according to the most correct opinion (As long as he does not stand straight) according to the Zahir al-Madhhab (apparent view of the school), and this is the most correct as per Fath (1). This means if he returns before standing straight and was closer to sitting (Qa'ud), then there is no prostration (Sajda Sahw) upon him according to the most correct opinion and the majority. However, if he returns while being closer to standing (Qiyam), then Sajda Sahw is obligatory upon him, as mentioned in Nur al-Idah and its commentary without any reported disagreement. This criterion was authenticated in Fath based on what is in Al-Kafi: if the lower half is straight but his back is still bent, then he is closer to standing; if not even that is straight, then he is closer to sitting (2). If he has stood straight, he should not return, and he must perform Sajda Sahw. If he returns to sitting, the prayer is not invalidated, but he is considered a wrongdoer (3), meaning he sins as stated in Fath. If he is an Imam and returns after standing, the followers should not return with him to establish disagreement (disapproval). At that point, it is mandatory for the Imam to stand immediately, according to Sharh al-Munyah from Al-Qunyah (4). And one performs Sajda for delaying a Wajib (obligatory act), and this is the truth as per Bahr (5), summarized. And Allah Almighty knows best.

(Urdu Text Column) (Then if he remembers, he returns to it) and recites Tashahhud, and according to the most correct opinion, there is no Sajda Sahw upon him (as long as he has not stood up straight) according to the Zahir al-Madhhab, and this is the most correct as per Fath. That is, if he returned before standing straight although he was close to sitting, then according to the most correct opinion, there is no Sajda Sahw upon him, and this is the opinion of the majority. And if he returned but was close to standing, then Sajda Sahw will be mandatory for him, as mentioned in Nur al-Idah and its commentary without any difference of opinion. And this statement of Al-Kafi was considered correct in Fath: that if the lower half was straight but the back was still bent, the prayer-performer is close to standing, and if they are not equal, then he will be close to sitting. And if he has stood up, he should not return and should perform Sajda Sahw. If he returns even now, the prayer will not be invalidated, however, he will be a sinner as it is in Fath. If he is an Imam and returns after standing up, the followers should not return in accordance with him so that they manifest opposition. For this Imam, standing at that time is mandatory; it is in Sharh al-Munyah from Al-Qunyah. And because of the delay of a Wajib, one performs

Sajda Sahw, and this is the truth, Bahr summarized. And Allah Almighty knows best (T).

Footnotes: 1. Durr al-Mukhtar, Bab Sujud al-Sahw, Published by Matba' Mujtabai Delhi 1/102 2. Radd al-Muhtar, Bab Sujud al-Sahw, Mustafa al-Babi Egypt 1/550 3. Durr al-Mukhtar, Bab Sujud al-Sahw, Published by Matba' Mujtabai Delhi 1/102 4. Radd al-Muhtar, Bab Sujud al-Sahw, Mustafa al-Babi Egypt 1/550 5. Durr al-Mukhtar, Bab Sujud al-Sahw, Published by Matba' Mujtabai Delhi 1/102

फतावा रज़विया - जिल्द आठवीं

(अरबी पाठ स्तंभ) (फिर अगर उसे याद आए तो वह उसकी ओर लौट आए) और तशहुद पढ़े, और सबसे सही राय के अनुसार उस पर सजदा सहव नहीं है (जब तक कि वह सीधा खड़ा न हो जाए) ज़ाहिर अल-मज़हब के अनुसार, और यही फ़तह के अनुसार सबसे सही है (1)। इसका अर्थ है कि यदि वह सीधा खड़ा होने से पहले लौट आता है और बैठने (क़ुऊद) के करीब था, तो सबसे सही राय और बहुमत के अनुसार उस पर सजदा सहव नहीं है। हालाँकि, यदि वह खड़े होने (क़ियाम) के करीब होने पर लौटता है, तो उस पर सजदा सहव अनिवार्य है, जैसा कि नूर अल-इज़ाह और उसकी व्याख्या में बिना किसी विवाद के उल्लेख किया गया है। फ़तह में अल-काफ़ी के आधार पर इस मानदंड को प्रमाणित किया गया था: यदि निचला आधा हिस्सा सीधा है लेकिन उसकी पीठ अभी भी झुकी हुई है, तो वह खड़े होने के करीब है; यदि वह भी सीधा नहीं है, तो वह बैठने के करीब है (2)। यदि वह सीधा खड़ा हो गया है, तो उसे नहीं लौटना चाहिए, और उसे सजदा सहव करना चाहिए। यदि वह बैठने के लिए लौटता है, तो नमाज़ अमान्य नहीं होती, लेकिन उसे बुरा माना जाता है (3), यानी वह गुनाहगार होता है जैसा कि फ़तह में कहा गया है। यदि वह इमाम है और खड़े होने के बाद लौटता है, तो मुक्तदियों (अनुयायियों) को मतभेद (अस्वीकृति) स्थापित करने के लिए उसके साथ नहीं लौटना चाहिए। उस समय, इमाम के लिए तुरंत खड़ा होना अनिवार्य है, अल-कुन्या से शरह अल-मुन्या के अनुसार (4)। और एक वाजिब (अनिवार्य कार्य) में देरी के लिए सजदा सहव किया जाता है, और यही बहर के अनुसार सत्य है (5), सारांश। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

(उर्दू पाठ स्तंभ) (फिर उसे याद आया तो उसकी तरफ लौट आए) और तशहुद पढ़े और असहा (सबसे सही) कौल के मुताबिक उस पर सजदा सहव नहीं (जब तक वह सीधा खड़ा नहीं हुआ) ज़ाहिर मज़हब के मुताबिक, और यही असहा है फ़तह। यानी सीधा खड़ा होने से पहले लौटा हालांकि क़ुऊद (बैठने) के करीब था, तो अब असहा कौल के मुताबिक उस पर सजदा सहव नहीं, और अक्सरियत (बहुमत) की यही राय है, और अगर लौटा लेकिन क़ियाम (खड़े होने) के करीब था तो उस पर सजदा सहव लाज़िम हो जाएगा जैसा कि नूर अल-इज़ाह और शरह में इसे बिला इख़्तिलाफ़ (बिना मतभेद) ज़िक्र किया है और काफ़ी की इस इबारत को फ़तह में सही एतबार किया है कि अगर निस्फ़ (आधा) सीधा मगर पुश्त (पीठ) अभी टेढ़ी थी तो नमाज़ी क़ियाम के करीब, और अगर बराबर नहीं तो नमाज़ी क़ुऊद के करीब होगा, और अगर खड़ा हो गया न लौटा तो सजदा सहव करे और अगर अब भी वापस लौट आता है तो नमाज़ फ़ासिद (अमान्य) न होगी अलबत्ता गुनहगार होगा जैसा कि फ़तह में है

अगर वह इमाम है और खड़ा होकर वापस लौटे तो मुक़्तदी उसकी मुवाफ़िक़त (सहमति) में वापस न लौटें ताकि मुख़ालिफ़त ज़ाहिर करें तो इस इमाम पर उस वक्त क़ियाम लाज़िम है, शरह अल-मुन्या में क़ुनिया से है और ताख़ीर-ए-वाजिब की वजह से सजदा सहव करने और यही हक़ है, बहर संक्षेप। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।

पादलेख: 1. दुर्रे मुख्तार, बाब सुजूद अस-सहव, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/102 2. रद उल-मुह्तार, बाब सुजूद अस-सहव, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/550 3. दुर्रे मुख्तार, बाब सुजूद अस-सहव, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/102 4. रद उल-मुह्तार, बाब सुजूद अस-सहव, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/550 5. दुर्रे मुख्तार, बाब सुजूद अस-सहव, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/102

فتاویٰ رضویہ - جلد ہشتم

(عربی متن کا کالم) (ثم تذکرہ عادالیہ) وتشھد ولا سھو علیہ في الاصح (مالم یستقم قائما) فی ظاھر المذھب وھو الاصح فتح ۱ یعنی اذا عادہ قبل ان یستقیم قائما وکان الی القعود اقرب فانہ لا سجود علیہ في الاصح وعلیہ الاکثر، اما اذا عاد وھو الی القیام اقرب فعلیہ سجود السھو کما في نور الایضاح و شرحہ بلا حکایۃ خلاف فیہ وصحح اعتبار ذلك فی الفتح بما فی الکافی ان استوی النصف الاسفل و ظھرہ بعد منحنی فھو اقرب الی القیام وان لم یستو فھو اقرب الی القعود ۲ وان استقام قائما لا یعود وسجد للسھو فلو عادالی القعود لا تفسد لکنہ یکون مسیئا ۳ ای یأثم کما في الفتح فلو کان اماما لا یعود معہ القوم تحقیقاً للمخالفۃ ویلزمہ القیام للحال شرح المنیۃ عن القنیۃ ٤۔ ویسجد لتأخیر الواجب وھو الحق بحر ۵ اہ ملخصا ۔ واللہ تعالی اعلم۔

(اردو متن کا کالم) (پھر اسے یاد آیا تو اس کی طرف لوٹ آئے) اور تشہد پڑھے اور اصح قول کے مطابق اس پر سجدہ سہو نہیں (جب تک وہ سیدھا کھڑا نہیں ہوا) ظاہر مذہب کے مطابق، اور یہی اصح ہے فتح۔ یعنی سیدھا کھڑا ہونے سے پہلے لوٹا حالانکہ قعود کے قریب تھا، تو اب اصح قول کے مطابق اس پر سجدہ سہو نہیں، اور اکثریت کی یہی رائے ہے، اور اگر لوٹا لیکن قیام کے قریب تھا تو اس پر سجدہ سہو لازم ہو جائے گا جیسا کہ نور الایضاح اور شرح میں اسے بلا اختلاف ذکر کیا ہے اور کافی کی اس عبارت کو فتح میں صحیح اعتبار کیا ہے کہ اگر نصف سیدھا مگر پشت ابھی ٹیڑھی تھی تو نمازی قیام کے قریب، اور اگر برابر نہیں تو نمازی قعود کے قریب ہوگا، اور اگر کھڑا ہو گیا نہ لوٹا تو سجدہ سہو کرے اور اگر اب بھی واپس لوٹ آتا ہے تو نماز فاسد نہ ہوگی البتہ گناہگار ہوگا جیسا کہ فتح میں ہے اگر وہ امام ہے اور کھڑا ہو کر واپس لوٹے تو مقتدی اس کی موافقت میں واپس نہ لوٹیں تاکہ مخالفت ظاہر کریں تو اس امام پر اس وقت قیام لازم ہے، شرح

المنیة میں قنیہ سے ہے اور تاخیر واجب کی وجہ سے سجدہ سہو کرنے اور یہی حق ہے، بحر اھ تلخیصاً ۔ واللہ تعالی اعلم (ت)

حواشی: 1 در مختار باب سجود السھو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۲ 2 ردالمحتار باب سجود السھو مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۵۰ 3 در مختار باب سجود السھو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۲ 4 ردالمحتار باب سجود السھو مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۵۰ 5 در مختار باب سجود السھو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۲

Volume Eighth Fatawa Rizwia

Problem 1222: 4 Rabi al-Akhar Sharif 1312 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: After the final sitting (Qa'da Akhira), it was mistakenly thought that this was the first sitting (Qa'da Ula), so the person stood up. Before performing the prostration (Sajda), it was remembered. Now, should one return, recite the Tashahhud again and then perform the prostration of forgetfulness (Sajda Sahw), or just go directly to Sajda Sahw? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: One should return and sit down, and immediately go into Sajda Sahw. The Tashahhud should not be recited again.

In Durr al-Mukhtar: "If one sits in the fourth raka'at, for example, for the duration of Tashahhud and then stands up, he should return and say the Salam. Even if he says the Salam while standing, it is valid." (T)

In Radd al-Muhtar: His words 'then he stood up', meaning he did not prostrate. His words 'he returned and said Salam', meaning he returned to sit. In this, there is an indication that he does not repeat the Tashahhud, and this is explicitly stated in al-Bahr. It is said in al-Imdad: returning to say the Salam while sitting is Sunnah, because the Sunnah is to say the Salam while sitting, etc. Summarized, and Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1223: From Shehr-e-Kohna, Bareilly, 11 Jamadi al-Akhira 1317 AH. What do the scholars of religion say in this matter that a person omitted the first sitting (Qa'da Ula) but was closer to standing upright, then he sat back and completed the rest of the prayer. In this case, is his prayer valid or not? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: Whoever forgets the first sitting in a mandatory (Fard) or Witr prayer and stands up...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/102.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 2/87.

आठवाँ खंड फ़तावा रिज़विया

मसला 1222: 4 रबी अल-आख़िर शरीफ़ 1312 हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले के बारे में क्या फ़रमाते हैं कि अंतिम बैठक (क़ादा अख़ीरा) के बाद यह गुमान हुआ कि यह पहली बैठक (क़ादा ऊला) थी और व्यक्ति खड़ा हो गया। सज्दा करने से पहले याद आ गया, तो अब क्या वह वापस बैठकर दोबारा अत-तहियात पढ़कर सज्दा-ए-सह्व करे या सीधे सज्दा-ए-सह्व के लिए जाए? बयान फ़रमाएं, सवाब मिलेगा।

अल-जवाब: वापस बैठकर तुरंत सज्दा-ए-सह्व में जाना चाहिए, दोबारा अत-तहियात न पढ़े।

दुर्र-ए-मुख़्तार में है: "अगर चौथी रकात में मिसाल के तौर पर तशहुद की मात्रा तक बैठ गया, फिर खड़ा हो गया तो वापस आए और सलाम फेर दे। अगर खड़े-खड़े सलाम फेर दे तब भी सही है।" (त)

रद्द-अल-मुह्तार में है: मतन का क़ौल 'फिर खड़ा हुआ' यानी फिर सज्दा न किया, मतन का क़ौल 'लौटे और सलाम कहे' यानी बैठने के लिए लौटे। तो इसमें इशारा है कि तशहुद न दोहराए। और 'बहर' में इसकी तसरीह है, 'इमदाद' में है कि सलाम बैठकर फेरने के लिए लौटना सुन्नत है क्योंकि सुन्नत यही है कि सलाम बैठकर फेरा जाए। (त) वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1223: पुराने शहर बरेली से, 11 जमादी अल-आख़िरा 1317 हिजरी। दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि नमाज़ी ने पहला क़ादा छोड़ दिया, वह सीधा खड़ा होने के करीब था कि वहीं से लौट आया और बाकी नमाज़ अदा की। इस सूरत में नमाज़ जायज़ होगी या नहीं? बयान फ़रमाएं, सवाब मिलेगा।

अल-जवाब: जो शख्स फ़र्ज़ या वित्र का क़ादा-ए-ऊला भूलकर खड़ा हो जाए...

1. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब सुजूद-उस-सह्व, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/102
2. रद्द-अल-मुह्तार, बाब सुजूद-उस-सह्व, मुतबूआ एच.एम. सईद कंपनी कराची 2/87

पृष्ठ 183 का 673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

مسئلہ ۱۲۲۲: ۴ ربیع الآخر شریف ۱۳۱۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قعدہ اخیرہ کے بعد گمان ہوا کہ یہ قعدہ اولی تھا کھڑا ہو گیا اور قبل سجدہ کے یاد آگیا تو اب عود کر کے دوبارہ التحیات پڑھ کر سجدہ سہو میں جائے یا ویسے سجدہ کو چلا جائے؟ بینوا توجروا

الجواب: عود کر کے بیٹھنا چاہئے اور معاً سجدہ سہو میں چلا جائے دوبارہ التحیات نہ پڑھے۔

فی الدرالمختار وان قعد فی الرابعة مثلا قدر التشهد ثم قام عاد وسلم ولوسلم قائما صح ۔ در مختار میں ہے کہ اگر چوتھی رکعت میں مثلاً تشہد کی مقدار بیٹھ گیا پھر کھڑا ہوا تو لوٹ آئے اور سلام پھیر دے اگر کھڑے کھڑے سلام پھیر دے تب بھی صحیح ہے۔ (ت)

ردالمختار میں ہے: قولہ ثم قام، ای ولم یسجد قولہ عاد وسلم ای عاد للجلوس، وفیه اشارة الی انه لا یعید التشهد، و به صرح فی البحر، قال فی الامداد، والعود للتسلیم جالسا سنة لان السنة التسلیم جالسا الخ۔ ملخصا واللہ تعالٰی اعلم۔ متن کا قول "پھر کھڑا ہوا" یعنی پھر سجدہ نہ کیا، متن کا قول "لوٹے اور سلام کہے" یعنی بیٹھنے کے لئے لوٹے۔ پس اس میں اشارہ ہے کہ تشہد نہ لوٹائے۔ اور بحر میں اس کی تصریح ہے امداد میں ہے سلام بیٹھ کر پھیرنے کے لئے لوٹنا سنت ہے کیونکہ سنت یہی ہے کہ سلام بیٹھ کر پھیرا جائے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۲۳: از شہر کہنہ بریلی ۱۱ جمادی الآخرہ ۱۳۱۷ھ علمائے دین اس مسئلہ میں کیا فرماتے ہیں کہ نمازی نے پہلا قعدہ ترک کردیا، وہ سیدھا کھڑا ہونے کے قریب تھا وہاں سے لوٹ آیا اور باقی نماز ادا کی اس صورت میں نماز جائز ہوگی یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: جو شخص فرض یا وتر کا قعدہ اولی بھول کر کھڑا ہو جائے

۱۔ در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۲ ۲۔ ردالمختار باب سجود السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۸۷

صفحہ 183 کا 673

Fatawa Rizvia, Volume 8.

[Right Column - Urdu Translation/Explanation] If a person has not stood up completely straight, he should return to the sitting position (Qa'dah). Now, if he was closer to sitting, then the Prostration of Forgetfulness (Sajdah Sahw) is not mandatory for him. And if he was closer to standing, then Sajdah Sahw will be mandatory. When the lower part of the human body has not become straight, it is closer to sitting. And if half the body has become straight but the back is still bent, then it is closer to standing. If one has stood up completely straight, then sitting at that time is not permissible. Now, if he returns to the first sitting (Qa'dah Ula), he will be a sinner, but the preferred view is that in this case as well, the prayer will not be invalidated, and Sajdah Sahw will be mandatory. In Durr al-Mukhtar, it says: (If a worshiper forgets the first sitting of a fard prayer), even if it is a practical fard, and then remembers, he should return to it. According to the most correct (Asah) view, Sajdah Sahw will not be required as long as he has not stood up straight. This is the apparent position of the Madhhab and is the most correct view, according to Al-Fath. If he has stood up straight, he should not return. If he does return, the prayer will not be nullified, but he will be a sinner. He must perform Sajdah Sahw due to the delay of a mandatory (Wajib) act. This is the chosen view as researched by Al-Kamal, and it is the truth (according to Al-Bahr, summarized). In Radd al-Muhtar, it is stated that the text's statement "there is no Sajdah on him according to the most correct view" means that when he returns before standing straight and he was closer to sitting, then there is no Sajdah on him. This is the most correct view and the view of the majority. However, if he returns while he was closer to standing, then on him...

[Left Column - Persian/Arabic Text] Until one stands up completely, one should return to the sitting position. So if he was still closer to the sitting position, Sajdah Sahw is not required. And if he has become closer to standing, Sajdah Sahw becomes mandatory. As long as the lower part of the human body is not straight, it is closer to sitting. When half the body becomes straight but the back is still curved, it is closer to standing. If he stands up completely, then sitting is not allowed. If he returns to the first sitting, he becomes a sinner, but the most correct view is that in this case, the prayer is not lost and Sajdah Sahw becomes mandatory. In Al-Durr al-Mukhtar: (If one forgets) the first sitting even if it is a practical fard, then remembers, he returns to it, and according to the most correct view, there is no Sajdah Sahw on him as long as he does not stand up straight, as per the apparent position of the Madhhab, and it is the most correct view according to Al-Fath. If he stands up straight, he should not

return. If he returns, it does not invalidate [the prayer] but he will be an evildoer (musi') and performs Sajdah for delaying the mandatory act, which is the most analogous view as verified by Al-Kamal, and it is the truth according to Al-Bahr (summarized). And in Radd al-Muhtar regarding the statement "there is no Sajdah on him according to the most correct view": it means when he returns before standing straight and was closer to sitting, then there is no prostration on him according to the most correct view and the majority view. But if he returns when he was closer to standing, then on him...

---

1 Durr al-Mukhtar, Chapter on Sajdah Sahw, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/102.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8.

[दायां कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या] यदि व्यक्ति पूरी तरह सीधा खड़ा नहीं हुआ है, तो उसे बैठने (कादा) की स्थिति में लौट आना चाहिए। अब यदि वह बैठने के करीब था, तो उस पर सजदा सह्व (भूल का सजदा) अनिवार्य नहीं है। और यदि वह खड़े होने के करीब था, तो सजदा सह्व अनिवार्य होगा। जब मानव शरीर का निचला हिस्सा सीधा नहीं हुआ है, तो वह बैठने के करीब है। और यदि आधा हिस्सा सीधा हो गया है लेकिन पीठ अभी भी झुकी हुई है, तो वह खड़े होने के करीब है। यदि वह पूरी तरह सीधा खड़ा हो गया है, तो उस समय बैठना जायज़ नहीं है। अब यदि वह पहले कादा (कादा उला) की ओर लौटता है, तो वह गुनहगार होगा, लेकिन सही राय यही है कि इस स्थिति में भी नमाज़ बातिल (अमान्य) नहीं होगी और सजदा सह्व अनिवार्य होगा। दुर्रे मुख़्तार में है: (यदि नमाज़ी फर्ज़ नमाज़ के पहले कादा में भूल गया), भले ही वह फर्ज़-ए-अमली हो, और फिर याद आ जाए, तो उसकी ओर लौट आए। सबसे सही (असह्) कथन के अनुसार, सजदा सह्व नहीं होगा जब तक कि वह सीधा खड़ा न हो जाए। मज़हब का ज़ाहिर यही है और यही असह् है (फ़तह के अनुसार)। और यदि सीधा खड़ा हो गया तो न लौटें। यदि लौट आया तो नमाज़ फासिद (भ्रष्ट) नहीं होगी, अलबत्ता गुनहगार होगा। वाजिब की देरी के कारण सजदा सह्व करे। यही मुख्तार (चुनी हुई राय) है जैसा कि इसकी तहक़ीक़ कमाल ने की और यही हक़ है (बहर के अनुसार - संक्षेप में)। रद्द अल-मुह्तार में है कि 'मतन' का यह कहना कि "सबसे सही कथन के अनुसार उस पर सजदा नहीं है" का अर्थ है कि जब वह सीधा खड़ा होने से पहले लौटा और वह बैठने के करीब था, तो अब उस पर सजदा नहीं है। यही असह् है और अधिकांश का यही कहना है। लेकिन जब वह लौटा जबकि वह क़ियाम (खड़े होने) के करीब था, तो अब उस पर...

[बायां कॉलम - फ़ारसी/अरबी मूल पाठ] जब तक पूरी तरह खड़ा न हो जाए, उसे बैठने की तरफ लौटना चाहिए। यदि वह अब तक बैठने के अधिक निकट था, तो सजदा सह्व नहीं है। और यदि खड़े होने के अधिक निकट हो गया, तो सजदा सह्व अनिवार्य होगा। शरीर का निचला हिस्सा जब तक सीधा न हो, वह बैठने के निकट है। और जब आधा हिस्सा सीधा हो गया और पीठ अभी झुकी है, तो वह खड़े होने के निकट है। यदि पूरी तरह सीधा खड़ा हो गया, तो बैठना जायज़ नहीं है। यदि पहले कादा की ओर लौटता है, तो गुनहगार होगा, लेकिन सही यही है कि इस स्थिति में भी नमाज़ नष्ट नहीं होगी और सजदा सह्व वाजिब होगा। अल-दुर अल-मुख्तार में: (भूल गया) पहले कादा को भले ही वह फर्ज़-ए-अमली हो, फिर याद किया और उसकी ओर लौटा, तो सबसे सही कथन के अनुसार उस पर

सजदा सह्व नहीं है जब तक कि वह सीधा खड़ा न हो जाए, यही मज़हब का ज़ाहिर है और यही असह् है (फ़तह)। और यदि सीधा खड़ा हो गया तो न लौटे, यदि लौटा तो नमाज़ बातिल नहीं होगी लेकिन वह गुनहगार होगा और वाजिब की देरी के कारण सजदा करेगा, और यही सबसे उपयुक्त है जैसा कि कमाल ने प्रमाणित किया और यही हक़ है (बहर - संक्षेप में)। और रद्द अल-मुह्तार में लेखक के इस कथन पर कि "सबसे सही कथन के अनुसार उस पर सजदा नहीं है": यानी जब वह सीधा खड़ा होने से पहले लौटा और बैठने के अधिक निकट था, तो सबसे सही कथन और बहुमत के अनुसार उस पर सजदा नहीं है। लेकिन जब वह लौटा और खड़े होने के अधिक निकट था, तो उस पर...

---

1 दुर्रे मुख़्तार, बाब सुजूदुस सह्व, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/102. पृष्ठ 184 कुल 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

[دایاں کالم] اگر سیدھا کھڑا نہیں ہوا تھا تو اسے قعدہ کی طرف لوٹ آنا چاہئے اب اگر بیٹھنے کے قریب تھا تو اس پر سجدہ سہو لازم نہیں اور اگر قیام کے قریب تھا تو سجدہ سہو لازم ہوگا، جب بدن کا پچھلا حصہ سیدھا نہیں ہوا تو وہ بیٹھنے کے قریب ہوگا اور اگر نصف حصہ سیدھا ہوگیا مگر پشت ابھی ٹیڑھی تھی تو وہ کھڑے ہونے کے قریب ہے، اور اگر سیدھا کھڑا ہو گیا تو اس وقت بیٹھنا جائز نہیں، اب اگر قعدہ اولیٰ کی طرف لوٹتا ہے تو گناہگار ہوگا لیکن راجح یہی ہے کہ اس صورت میں بھی نماز باطل نہ ہوگی سجدہ سہو لازم ہوگا۔ درمختار میں ہے (اگر نمازی فرض کے قعدہ اولیٰ میں بھول گیا) اگرچہ فرض عملی ہو پھر یاد آگیا تو اس کی طرف لوٹ آئے اور اصح قول کے مطابق سجدہ سہو نہ ہوگا جب تک وہ سیدھا کھڑا نہ ہوجائے ، ظاہر مذہب یہی ہے اور یہی اصح ہے فتح ، اور اگر سیدھا کھڑا ہو گیا تو نہ لوٹے اگر لوٹ آیا تو نماز فاسد نہ ہوگی البتہ گناہگار ہوگا، تاخیر واجب کی وجہ سے سجدہ سہو کرے یہی مختار ہے جیسا کہ اس کی تحقیق کمال نے کی اور یہی حق ہے۔ بحر اھ اختصاراً، ردالمحتار میں ہے کہ متن کا قول کہ "اس پر اصح قول کے سجدہ نہیں یعنی جب وہ سیدھا کھڑا ہونے سے پہلے پہلے لوٹا اور وہ بیٹھنے کے قریب تھا تو اب اس پر سجدہ نہیں، یہی اصح ہے اور اکثر کا قول ہے، جب وہ لوٹا حالانکہ قیام کے قریب تھا تو اب اس پر

[بایاں کالم] تابتمام ایستادہ نشود بسوئے قعدہ رجوعش باید پس اگر ہنوز بقعدہ اقرب بود سجدہ سہو نیست و اگر بقیام نزدیک تر شدہ باشد سجدہ سہو لازم آید ثانیہ زیریں از بدن انسان راست نشدہ است بہ نشستن نزدیک است و چوں این نصف راست شد و پشت ہنوز خمیدہ است با ستادن قریب است و اگر بتمامہ راست ایستاد آنگاہ نشستن روانیست اگر بقعدہ اولیٰ باز میگردد گناہگار شود اما راجح

آنست کہ نماز دریں صورت ہم از دست نرود و سجدہ سہو واجب شود۔ فی الدر المختار سہاً عن القعود الاول ولو عملاً ثم تذکرہ عادالیہ ولا سھو علیہ فی الاصح مالم یستقم قائماً فی ظاہر المذہب وھو الاصح فتح وان استقام قائماً لا یعود فلو عاد لاتفسد لکنہ یکون مسیئاً ویسجد لتأخیر الواجب وھو الاشبہ کما حققہ الکمال وھو الحق بحر اھ مختصراً وفی ردالمحتار قولہ ولا سھو علیہ فی الاصح یعنی اذا عاد قبل ان یستقیم قائماً وکان الی القعود اقرب فانہ لاسجود علیہ فی الاصح وعلیہ الاکثر اما اذا عاد و ھو الی القیام اقرب فعلیہ

---

1 در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۲ صفحہ 184 از 673

Fatawa Rizvia Volume 8

Sajdah Sahw (prostration of forgetfulness) becomes mandatory as mentioned in 'Nur al-Idah' and its commentary without any disagreement. The passage from 'Al-Kafi' was authenticated in 'Al-Fath' stating that if the lower half of the person praying becomes upright while the back is still bent, then it is closer to standing (Qiyam). If the lower half is not upright, it is closer to sitting (Qu'ud). The author's words "yakunu musi'an" mean he will be a wrongdoer, i.e., he will be sinful, as stated in 'Al-Fath'. If he is an Imam, he should not return. If he does return, the prayer will not be invalidated, but he will be a sinner. He must perform Sajdah Sahw due to the delay of a mandatory act (Wajib). This is the view most similar to the truth, as researched by Al-Kamal, and it is the truth, summarized from 'Al-Bahr'. Standing immediately is mandatory for him, as mentioned in 'Sharh al-Munyah' citing 'Al-Qunyah'. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1224: 22 Shawwal 1317 AH What do the scholars of religion say regarding this issue: if an Imam performed Sajdah Sahw out of forgetfulness [thinking it was necessary], what is the status of the prayer for the Imam, the followers, and those followers who joined after the Sajdah Sahw? In reality, there was no forgetfulness (error requiring prostration). Explain and you shall be rewarded.

Answer: The prayer of the Imam and the initial followers is valid. However, those who joined after going into that Sajdah Sahw, their prayer is not valid because when there was no actual forgetfulness, the greeting (Salam) turned to the right by the Imam marked the completion of the prayer. This prostration without cause was void, so it did not lead back to the sanctity (Tahrimah) of the prayer. Consequently, the subsequent followers did not get to join the Imam in any part of the actual prayer, so their prayer is invalid. Therefore, if a latecomer (Masbuq) follows the Imam in Sajdah Sahw and later learns that this prostration was without cause, his prayer will be invalidated because it becomes apparent that he followed someone in a place of individual prayer. Yes, if it is not known, the ruling of invalidation does not apply to him because one must presume the Imam's state to be correct and appropriate. And it is stated in 'Al-Mukhtar':

---

1 Radd al-Muhtar, Chapter of Prostration of Forgetfulness, printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/550

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

सजदा-ए-सह्व (भूल का सजदा) अनिवार्य होगा जैसा कि 'नूरुल इज़ा' और उसकी व्याख्या में इस मसले को बिना किसी मतभेद के उल्लेख किया गया है। 'अल-काफ़ी' के कथन को 'अल-फ़तह' में सही माना गया है कि यदि नमाज़ी का निचला आधा हिस्सा सीधा हो गया जबकि पीठ अभी भी मुड़ी हुई थी, तो यह कयाम (खड़े होने) के करीब होगा। यदि निचला आधा हिस्सा सीधा नहीं है, तो वह कुऊद (बैठने) के करीब है। लेखक का कथन "यकुनु मुसिअन" का अर्थ है कि वह गुनहगार होगा यानी उसे पाप होगा जैसा कि 'अल-फ़तह' में है। यदि वह इमाम है, तो वह न लौटे, और यदि लौट गया तो नमाज़ फासिद (अमान्य) नहीं होगी लेकिन वह गुनहगार होगा। वाजिब की देरी के कारण उसे सजदा-ए-सह्व करना चाहिए। यही सत्य के सबसे करीब है जैसा कि अल-कमाल ने इस पर शोध किया है, और यही सत्य है, 'अल-बहर' से संक्षेप में। 'शरह अल-मुन्या' में 'अल-कुन्या' के हवाले से है कि उस पर तत्काल खड़े होना अनिवार्य है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1224: 22 शव्वाल 1317 हिजरी दीन के उलेमा इस मसले में क्या कहते हैं कि इमाम भूल गया और सजदा-ए-सह्व कर लिया, तो इस स्थिति में इमाम, मुक्तदियों और सजदा-ए-सह्व के बाद शामिल होने वाले मुक्तदियों की नमाज़ कैसी होगी? जबकि वास्तव में कोई सह्व (भूल) नहीं थी। बयान कीजिए, आपको सवाब मिलेगा।

जवाब: इमाम और पहले वाले मुक्तदियों की नमाज़ हो गई। लेकिन जो इस सजदा-ए-सह्व में जाने के बाद शामिल हुए, उनकी नमाज़ नहीं हुई। क्योंकि जब वास्तव में सह्व नहीं था, तो इमाम द्वारा दाईं ओर फेरा गया सलाम नमाज़ के अंत का कारण बना। यह बिना कारण वाला सजदा निरर्थक था, इसलिए इससे नमाज़ की तहरीमा की ओर वापसी नहीं हुई। और बाद वाले मुक्तदियों को इमाम के किसी हिस्से में इमाम का साथ नहीं मिला, इसलिए उनकी नमाज़ नहीं हुई। इसलिए यदि सजदा-ए-सह्व में मसबूक (देर से आने वाला) इमाम की पैरवी के बाद जाने कि यह सजदा बिना कारण था, तो उसकी नमाज़ फासिद हो जाएगी क्योंकि यह स्पष्ट हुआ कि उसने अकेले नमाज़ पढ़ने की स्थिति में इक़्तिदा की थी। हाँ, यदि पता न चले तो उसके लिए फसाद का हुक्म नहीं है क्योंकि उसे इमाम के हाल को सही और दुरुस्त मानना चाहिए। और मुख़्तार में है:

---

1 रद्दुल मुहतार, बाब सुजूदुस सह्व, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित 1/550

سجود السھو کما فی نورالایضاح وشرحہ بلا حکایۃ خلاف فیہ وصحح اعتبار ذلك فی الفتح بما فی الکافی ان استوی النصف الاسفل وظھرہ بعد منحٍ فھو اقرب الی القیام، وان لم یستو فھو اقرب الی القعود، قولہ لکنہ یکون مسیئا ای ویأثم کما فی الفتح فلوکان اماماً لا یعود معہ القوم تحقیقاً للمخالفۃ ویلزمہ القیام للحال شرح المنیۃ عن القنیۃ اھ ملتقطا۔ واللہ تعالٰی اعلم سجدہ سہو لازم ہوگا جیسا کہ نورالایضاح اور اس کی شرح میں اس مسئلہ کو بغیر کسی اختلاف کے ذکر کیا ہے اور کافی کی عبارت کو فتح میں صحیح کہا ہے کہ اگر نمازی کا نصف سیدھا ہوگیا حالانکہ پشت ابھی ٹیڑھی تھی تو یہ قیام کے قریب ہوگا اور اگر نصف اسفل سیدھا نہیں تو وہ قعود کے قریب ہے۔ ماتن کے قول "یکون مسیئا" کا معنی یہ ہے کہ وہ گنہگار ہے فتح، اور اگر وہ امام ہے تو وہ نہ لوٹے اور لوٹ گیا تو نماز فاسد نہ ہوگی لیکن گنہگار ہوگا۔ اور واجب کی تاخیر کی وجہ سے سجدہ سہو کرے، یہی اشبہ بالحق ہے جیسا کہ کمال نے اس کی تحقیق کی، اور یہی حق ہے بحر اھ مختصراً۔ اس پر فی الحال قیام لازم ہے شرح منیہ میں قنیہ کے حوالے سے ہے اھ ملتقطا واللہ سبحنہ وتعالی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۲۴: ۲۲ شوال ۱۳۱۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ امام بھول گیا سجدہ سہو کرلے تو اس صورت میں نماز امام و مقتدین اور بعد سجدہ سہو کے جو مقتدی ملے ان سب کی نماز کیسی ہوگی؟ اور حقیقت میں سہو نہیں تھا بینوا توجروا الجواب: امام و مقتدیان سابق کی نماز ہو گئی اس سجدہ سہو میں جانے کے بعد ملے ان کی نماز نہیں ہوئی کہ جب واقع میں سہو نہ تھا دہنا سلام کہ امام نے پھیرا ختم نماز کا موجب ہوا یہ سجدہ بلا سبب لغو تھا تو اس سے تحریمہ نماز کی طرف عود نہ ہوا اور مقتدیان مابعد کو کسی جزءِ امام میں شرکت امام نہ ملی لہذا ان کی نماز نہ

ہوئی و لہذا اگر سجدہ سہو میں مسبوق اتباعِ امام کے بعد کو معلوم ہو کہ یہ سجدہ بے سبب تھا اس کی نماز فاسد ہو جائے گی کہ ظاہر ہوا کہ محل انفراد میں اقتدا کیا تھا، ہاں اگر معلوم نہ ہوا تو اس کے لئے حکم فساد نہیں کہ وہ حالِ امام کو صلاح و صواب پر حمل کرنا ہی چاہئے اور مختار میں ہے:

---

1 ردالمحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۵۰

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Arabic Quote]: The salutation of one who owes prostrations of forgetfulness causes him to exit the prayer; if he prostrates, he returns to it, otherwise not.[1] [Urdu Translation]: The salutation of one who owes prostration of forgetfulness is a conditional exit from the prayer. If he performs the prostration, he returns to the prayer; otherwise, he does not. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar: [Arabic Quote]: Indeed, when he prostrated, it was futile, as if he did not prostrate, so he did not return to the sanctity of the prayer.[2] [Urdu Translation]: When he prostrated, it will be futile, as if he did not prostrate at all; therefore, he did not return to the sanctity of the prayer. (T)

In Khizanat al-Muftin, from Fatawa Qazi Khan: [Arabic Quote]: When the Imam thought that prostration of forgetfulness was due upon him and he performed it, and the latecomer followed him in that, and then it was known [that the Imam's prayer was invalid]; and if it was not known that the Imam did not have to perform prostration of forgetfulness, the latecomer's prayer is not invalidated.[3] [Urdu Translation]: When the Imam thinks that prostration of forgetfulness is due upon him and he performs it, and the latecomer (masbuq) also follows him in that prostration, then if it is known that the prostration of forgetfulness was not due upon the Imam, then the famous view is that his (the latecomer's) prayer will be invalidated. And if he does not know that prostration of forgetfulness was not due upon the Imam, then the latecomer's prayer will not be invalidated. (T)

It is in Tahtawi on Maraqi al-Falah: This is the chosen view as in al-Muhit.[4] (This is the chosen view as in al-Muhit. - T) And Allah Almighty knows best.

Problem 1225: From Rampur, Police Department, sent by Ja’far Husain Sahib, Clerk, on Tuesday, 19th Muharram-ul-Haram, 1318 AH. Zaid joined the congregation in the last rak'ah of the Maghrib prayer. Khalid, who was the Imam, turned for salutation to one side and went into prostration of forgetfulness. Now, should Zaid turn for salutation to one side and then go into prostration of forgetfulness, or should he prostrate without the salutation? Some scholars say that if he intentionally turned for salutation, then the latecomer's (masbuq's) prayer is invalidated, otherwise not. And what is mentioned in Shami, Bahr al-Ra'iq etc.

[Footnotes]: 1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/103. 2. Radd al-Muhtar, Chapter on Prostrations of

Forgetfulness, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/555. 3. Fatawa Qazi Khan, Section on the Latecomer, published by Naval Kishore, Lucknow, 1/48. 4. Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 253.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

[अरबी उद्धरण]: जिस पर सजदा-ए-सहव (भूल का सजदा) वाजिब हो, उसका सलाम फेरना उसे नमाज़ से बाहर निकाल देता है; यदि वह सजदा कर ले तो नमाज़ में वापस आ जाता है, अन्यथा नहीं।[1] [उर्दू अनुवाद]: उसका सलाम जिस पर सजदा सहव था, नमाज़ से एक अस्थायी निकास है। यदि उसने सजदा कर लिया तो वह नमाज़ की ओर लौट आया, अन्यथा नहीं। (त)

रद अल-मुह्तार में है: [अरबी उद्धरण]: वास्तव में जब उसने सजदा किया, तो वह व्यर्थ हुआ मानो उसने सजदा किया ही नहीं, इसलिए वह नमाज़ की हुरमत (पवित्रता) की ओर नहीं लौटा।[2] [उर्दू अनुवाद]: जब उसने सजदा किया तो यह व्यर्थ होगा मानो उसने सजदा किया ही नहीं, अतः वह नमाज़ की हुरमत की ओर नहीं लौटा। (त)

ख़िज़ानत अल-मुफ़्तीन में फ़तावा क़ाज़ी ख़ान से है: [अरबी उद्धरण]: जब इमाम को यह गुमान (अंदाज़ा) हो कि उस पर सजदा-ए-सहव है और उसने सजदा किया और मसबूक (देर से आने वाले) ने भी उसमें उसका अनुसरण किया, फिर उसे पता चला [कि इमाम की नमाज़ फ़ासिद हो गई]; और यदि यह पता न चला हो कि इमाम पर सजदा सहव नहीं था, तो मसबूक की नमाज़ फ़ासिद नहीं होगी।[3] [उर्दू अनुवाद]: जब इमाम को यह गुमान हो कि उस पर सजदा सहव है और उसने सजदा सहव किया और मसबूक ने भी उसके अनुसरण में सजदा किया, फिर उसने जाना कि इमाम पर सजदा सहव न था, तो प्रसिद्ध मत यही है कि उसकी नमाज़ फ़ासिद होगी और अगर उसे इस बात का ज्ञान नहीं कि इमाम पर सजदा सहव नहीं था, तो मसबूक की नमाज़ फ़ासिद न होगी। (त)

तह्तावी अली मराक़ी अल-फ़लाह में है: यही पसंदीदा मत है जैसा कि अल-मुहीत में है।[4] (यही मुख्तार यानी पसंदीदा है जैसा कि मुहीत में है। -त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1225: रामपुर पुलिस विभाग से, प्रेषक जफर हुसैन साहब, क्लर्क, मंगलवार 19 मुहर्रम अल-हराम 1318 हिजरी। ज़ैद मगरिब की नमाज़ की आखिरी रकात में आकर जमाअत में शामिल हुआ। ख़ालिद जो इमाम था, एक तरफ सलाम फेर कर सजदा-ए-सहव में चला गया। अब ज़ैद एक तरफ सलाम फेर कर सजदा-ए-सहव में जाए या बिना सलाम के सजदा करे? कुछ उलेमा कहते हैं कि अगर उसने जानबूझकर सलाम फेरा तो मसबूक की नमाज़ फ़ासिद हो गई अन्यथा नहीं, और शामी और बह्र रायक़ आदि में जो...

[पाद टिप्पणियाँ]: 1. दुर्रे मुख्तार, बाब सुजूद-उस-सहव, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/103. 2. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद-उस-सहव, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/555. 3. फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, मसबूक का बयान, नवल किशोर, लखनऊ, 1/48. 4. तह्तावी अली मराक़ी अल-फ़लाह, बाब सुजूद-उस-सहव, नूर मोहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब, कराची, पृ. 253.

पृष्ठ 186/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

سلام من علیه سجود سهو یخرجه من الصلوة ان سجد عاد الیها و الالا۔ ۱ اس کا سلام جس پر سجدہ سہو تھا نماز سے موقوف خروج ہے اگر سجدہ کر لیا تو وہ نماز کی طرف لوٹ آیا ورنہ نہیں۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے: انه اذا سجد وقع لغوا فکانه لم یسجد فلم یعد الی حرمة الصلوة۔ ۲ جب اس نے سجدہ کیا تو یہ لغو ہو گا گویا اس نے سجدہ کیا ہی نہیں، لہٰذا وہ حرمتِ نماز کی طرف نہیں لوٹا۔ (ت)

خزانہ المفتین میں فتاوٰی قاضی خاں سے ہے: اذاظن الامام ان علیه سهوا فسجد للسهو و تابعه المسبوق في ذلك ثم علم ان صلوته تفسد و ان لم یعلم انه لم یکن علی الامام سهو لم تفسد صلوة المسبوق۔ ۳ جب امام کو یہ گمان ہو کہ اس پر سجدہ سہو ہے اور اس نے سجدہ سہو کیا اور مسبوق نے بھی اس کی اتباع میں سجدہ کیا پھر اس نے جانا کہ امام پر سجدہ سہو نہ تھا تو مشہور یہی ہے کہ اس کی نماز فاسد ہو گی اور اگر اسے اس بات کا علم نہیں کہ امام پر سجدہ سہو نہیں تھا تو مسبوق کی نماز فاسد نہ ہو گی۔ (ت)

طحطاوی علی مراقی الفلاح میں ہے: ھوالختار کذا فی المحیط ۴ (یہی مختار ہے جیسا کہ محیط میں ہے۔ت) واللہ تعالی اعلم

مسئلہ ۱۲۲۵: از رامپور سررشتہ پولیس مرسلہ جعفر حسین صاحب محرر سہ شنبہ ۱۹ محرم الحرام ۱۳۱۸ھ زید نمازِ مغرب میں اخیر رکعت میں آکر جماعت میں شریک ہوا، خالد جو امام تھا ایک طرف سلام پھیر کر سجدہ سہو میں چلا گیا، اب زید ایک طرف سالم پھیر کر سجدہ سہو میں

جائے یا بدونِ سلام کے سجدہ کرے؟ بعض علماء کہتے ہیں کہ اگر اس نے قصداً سلام پھیر ا تو نمازِ مسبوق کی فاسد ہو گئی ورنہ نہیں، اور شامی اور بحر الرائق وغیرہما میں جو

حواشی: ۱ در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۳ ۲ ردالمحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۵۵ ۳ فتاویٰ قاضی خاں فصل فی المسبوق مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱/۴۸ ۴ طحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجود السہو مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۵۳

صفحہ 186/673

Volume 8 Fatawa Razawiyya

The narration written pertains to the final salaam, not the salaam for the prostration of forgetfulness (sajdah sahw). Both parties rely on the narrations from these two books for their argument; a decision is required as the scholars of Rampur could not provide a satisfactory one. Clarify the ruling and be rewarded.

Answer: Regarding the ruling on this issue, the first opinion is correct. In reality, a Masbuq (one who joins the congregational prayer late) is absolutely prohibited and unable to perform the salaam until they have completed the missed rak'ahs. Whether the Imam performs the salaam before or after the prostration of forgetfulness, if the Masbuq joins in the salaam intentionally, their prayer will be invalidated because this intentional salaam occurred during the middle of their prayer. However, if they performed it forgetfully, the prayer remains valid.

Arabic	**Urdu**
Because it is a form of dhikr (remembrance) in one sense, it is not considered intentional speech, even though intentional, accidental, and forgetful speech are all considered speech, as our scholars (may Allah have mercy on them) have established.	Because it is a form of dhikr in one sense, it should not be categorized as intentional speech; and even though intentional, erroneous, and forgetful speech are equal in being considered speech, as our scholars (may Allah have mercy on them) have researched. (T)

Rather, if the Masbuq forgetfully performed the salaam that the Imam did before the prostration of forgetfulness, either before the Imam or, for instance, simultaneously without a pause, then in these cases, the Masbuq is not even required to perform the prostration of forgetfulness because they are still a follower (muqtadi), and a follower is not required to prostrate due to their own forgetfulness. However, if this final salaam was performed after the Imam, then even if they have already prostrated, it becomes mandatory again for them to do so at the end of their prayer because they have now become an individual performer (munfarid). In Khizanat al-Muftin, it is mentioned from the commentary of Mukhtasar Imam Tahawi (may Allah have mercy on him):

Arabic	**Urdu**
If a person owed a prostration from the core of the prayer and performed salaam	If someone owed a prostration of the prayer and mistakenly performed the

Arabic

out of forgetfulness, then remembered it afterward, they have not exited the sanctity of the prayer by this salaam according to consensus, to the point that following them in prayer remains valid. If the Imam returns and performs the prostration, this follower prostrates with them by way of following, but this prostration will not be counted for them because they did not join the ruku' (bowing). They should recite the Tashahhud with the Imam but not perform salaam when the Imam does. However, they should perform both prostrations of forgetfulness with the Imam. When the Imam performs the second salaam, they should still not perform salaam but should stand up to complete the missed rak'ahs. Abridged.

Urdu

salaam, and then remembered the prostration, they have not exited the sanctity of the prayer by that salaam according to consensus, so much so that following them in prayer is correct. And if the Imam returned and prostrated, and the follower prostrated in following the Imam, then this prostration of theirs will not be valid because they did not join the Imam in the ruku'. They should read Tashahhud with the Imam, but when the Imam says salaam, they should not say salaam. However, they should perform both prostrations of forgetfulness with the Imam. When the Imam performs salaam for the second time, they should still not say salaam but instead stand up to complete the missed rak'ahs.

1 Khizanat al-Muftin, Chapter on what necessitates forgetfulness and what does not, Manuscript Copy 1/39 Page 187 of 673

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

जो रिवायत लिखी गई है वह अंतिम सलाम के बारे में है, न कि सह्व (भूल) के सलाम के बारे में। और दोनों पक्षों की दलील इन्हीं दो किताबों की रिवायत है, इसका फ़ैसला चाहिए; रामपुर के उलेमा से संतोषजनक फ़ैसला नहीं हो सका। बयान करें और सवाब पायें।

उत्तर: इस मसले के हुक्म में पहला कौल सही है। वास्तव में, मसबूक (वह नमाज़ी जो जमाअत में देर से शामिल हुआ) के लिए सलाम फेरना तब तक पूर्णतः वर्जित और असमर्थ है जब तक वह अपनी छूटी हुई रकअतें पूरी न कर ले। इमाम सह्व के सजदे से पहले या बाद में सलाम फेरता है, इसमें अगर उसने जानबूझकर शिरकत की तो उसकी नमाज़ बातिल हो जाएगी क्योंकि यह जानबूझकर किया गया सलाम उसकी नमाज़ के बीच में हुआ। हाँ, अगर भूलवश फेरा तो नमाज़ नहीं जाएगी।

अरबी

क्योंकि यह एक प्रकार का ज़िक्र है, इसलिए इसे बिना इरादे का कलाम (बातचीत) नहीं माना जाएगा, हालाँकि जानबूझकर, गलती से और भूलवश कहना कलाम में बराबर हैं जैसा कि हमारे विद्वानों (अल्लाह उन पर रहम करे) ने इसकी तहकीक की है।

उर्दू

क्योंकि यह एक प्रकार का ज़िक्र है, इसलिए इसे बिना इरादे का कलाम करार न दिया जाए और हालाँकि जानबूझकर, गलती से और भूलवश कलाम में बराबर हैं जैसा कि हमारे विद्वानों (अल्लाह उन पर रहम करे) ने इसकी तहकीक की है। (त)

बल्कि वह सलाम जो इमाम ने सजदा-ए-सह्व से पहले किया, अगर मसबूक ने भूलवश इमाम से पहले या मसलन बिना किसी अंतराल के उसके साथ फेरा, तो इन सूरतों में मसबूक पर सह्व भी लाज़िम नहीं हुआ क्योंकि वह अभी तक मुक्तदी (अनुयायी) है और मुक्तदी पर उसकी भूल के कारण सजदा लाज़िम नहीं होता। हाँ, यह अंतिम सलाम अगर इमाम के बाद फेरा तो उस पर सजदा, चाहे वह पहले कर चुका हो, दोबारा लाज़िम आया कि अपनी आख़िरी नमाज़ में करेगा क्योंकि अब वह मुनफ़रिद (अकेला नमाज़ी) हो चुका है। 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में 'शरह मुख़्तसर इमाम तहावी' (रहमतुल्लाह अलैहि) से वर्णित है:

अरबी

यदि किसी व्यक्ति पर नमाज़ का सजदा वाजिब था और उसने भूलकर सलाम फेर दिया, फिर

उर्दू

अगर किसी व्यक्ति पर नमाज़ का सजदा वाजिब था और उसने भूलकर सलाम फेर दिया, फिर

अरबी

उसे याद आया, तो वह इस सलाम के कारण सर्वसम्मति से नमाज़ की हुरमत (पवित्रता) से बाहर नहीं हुआ, यहाँ तक कि उसका अनुसरण करना सही है। यदि इमाम वापस आए और सजदा किया, तो यह मुक्तदी अनुसरण के तौर पर उसके साथ सजदा करे, लेकिन उसका यह सजदा मान्य नहीं होगा क्योंकि उसने रुकूअ को नहीं पाया। वह इमाम के साथ तशह्हुद पढ़े लेकिन जब इमाम सलाम फेरे तो वह सलाम न फेरे, अलबत्ता इमाम के साथ दोनों सुजूद-ए-सह्व करे। जब इमाम दोबारा सलाम फेरे तो वह अब भी सलाम न फेरे बल्कि अपनी पिछली रकअतों की कज़ा के लिए खड़ा हो जाए। संक्षेप में।

उर्दू

उसे सजदा याद आ गया, तो वह इस सलाम की वजह से सर्वसम्मति से नमाज़ की हुरमत से बाहर नहीं हुआ, यहाँ तक कि उसकी इक़्तदा (अनुसरण) दुरुस्त है। और अगर इमाम लौटा और सजदा किया और मुक्तदी ने इमाम के अनुसरण में सजदा कर लिया, तो उसका यह सजदा मान्य नहीं होगा क्योंकि उसने इमाम को रुकूअ में नहीं पाया। वह इमाम के साथ तशह्हुद पढ़े लेकिन जब इमाम सलाम कहे तो यह सलाम न कहे, अलबत्ता इमाम के साथ दोनों सुजूद-ए-सह्व करे। जब इमाम दोबारा सलाम फेरे तो वह अब भी सलाम न कहे बल्कि पिछली रकअतों की कज़ा के लिए खड़ा हो जाए।

1 ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन, उस अध्याय में जो सह्व को वाजिब करता है और जो नहीं, हस्तलिखित नुस्खा 1/39 पृष्ठ 187/673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

روایت لکھی ہے وہ در باب اخیر سلام ہے، نہ در باب سلام سہو۔ اور فریقین کی دلیل یہی دونوں کتاب کی روایت ہے اس کا فیصلہ چاہئے، رامپور کے علماء سے بخوبی فیصلہ جس سے تسلی ہو نہ ہوسکا۔ بینوا توجروا

الجواب:

حکم مسئلہ میں قول اول صحیح ہے فی الواقع مسبوق سلام سے مطلقاً ممنوع و عاجز ہے جب تک فوت شدہ رکعات ادا نہ کرلے امام سجدہ سہو سے قبل یا بعد سلام پھیرتا ہے اس میں اگر قصداً اس نے شرکت کی تو اس کی نماز جاتی رہے گی کہ یہ سلام عمدی اس کے خلال نماز میں واقع ہوا، ہاں اگر سہواً پھیرا تو نماز نہ جائے گی۔

عربی متن	**اردو ترجمہ**
لکونه ذکرا من وجه فلا یجعل کلاماً من غیر قصد وان کان العمد والخطاء والسهو کل ذلك فی الکلام سواء کما حققه علماء نا رحمهم الله تعالی	کیونکہ یہ من وجہ ذکر ہے لہٰذا اسے بغیر قصد کے کلام قرار نہ دیا جائے اور اگرچہ عمد، خطا اور سہو کلام میں برابر ہیں جیسا کہ ہمارے علماء رحمہم اللہ تعالیٰ نے اس کی تحقیق کی ہے۔(ت)

بلکہ وہ سلام جو امام نے سجدہ سہو سے پہلے کیا اگر مسبوق نے سہواً امام سے پہلے یا مثلاً بلا وقفہ اس کے ساتھ پھیرا تو ان صورتوں میں مسبوق پر سہو بھی لازم نہ ہوا کہ وہ ہنوز مقتدی ہے اور مقتدی پر اس کے سہو کے سبب سجدہ لازم نہیں، ہاں یہ سلام اخیر اگر امام کے بعد پھیرا تو

اس پر سجدہ اگر چہ کر چکا ہو دوبارہ لازم آیا کہ اپنی آخر نماز میں کرے گا اس لئے اب یہ منفرد ہو چکا تھا۔ خزانۃ المفتین میں شرح مختصر امام طحاوی رحمۃ اللہ تعالیٰ سے ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
علیه سجدة من صلب الصلوة سلم وهو ناس لها ثم تذكر بعد ذلك فانه بهذا السلام لا يخرج عن حرمة الصلوة بالاجماع حتى صح الاقتداء وان عاد الامام و سجد يسجد هذا المقتدى معه على طريق المتابعة ولا يعتد بهذه السجدة لانه لم يدرك الركوع ويتشهد مع الامام ولا يسلم اذا سلم الامام ويسجد سجدتى السهو مع الامام فاذا سلم الامام ثانياً لا يسلم هو ايضاً بل يقوم الى قضاء ما سبق اهـ باختصار	اگر کسی شخص پر نماز کا سجدہ تھا اس نے بھول کر سلام پھیرا دیا اسے پھر سجدہ یاد آ گیا تو وہ اس سلام کی وجہ سے بالاتفاق حرمت نماز سے خارج نہیں ہوا حتیٰ کہ اس کی اقتداء درست ہے اور اگر امام لوٹا اور سجدہ کیا اور مقتدی نے امام کی متابعت میں سجدہ کر لیا تو یہ اس کا یہ سجدہ معتبر نہ ہوگا کیونکہ اس نے امام کو رکوع میں نہیں پایا، امام کے ساتھ تشہد پڑھے لیکن جب امام سلام کہے تو یہ سلام نہ کہے البتہ امام کے ساتھ دونوں سجود سہو کرے جب امام دوبارہ سلام پھیرے تو وہ اب بھی سلام نہ کہے بلکہ گزشتہ رکعات کی قضا کیلئے کھڑا ہو جائے

1 خزانۃ المفتین فصل فیما یوجب السهو وما لا یوجب قلمی نسخہ ۱/۳۹ Page 187 of 673

See, it has been forbidden for a masbuq (one who joined the congregation late) to perform prostration for forgetfulness (Sajda-e-Sahw) both before and after the salam. In Hilyah Sharh Munyah by Imam Ibn Amir al-Hajj, it is stated:

[Arabic Box - Left]: The agreement of the follower who caught the whole prayer (mudrik) with the Imam in the prostration for forgetfulness is evident. As for the masbuq, he shall not follow him in the salam intended for exiting the prayer, because the pillars of the prayer are still pending for him. However, he shall follow him in the prostration for forgetfulness. It is narrated from Ibrahim al-Nakha'i that he (the masbuq) should not perform prostration at all for his (the Imam's) forgetfulness, because the place for prostration is after the salam, and since he does not follow him in the salam, how can following in the forgetfulness prostration be conceived? In our view, the prostration for forgetfulness is performed within the sanctity (tahrima) of the prayer, so the prayer is still ongoing. When following the Imam remains mandatory, then he must follow him in the actions being performed.

[Urdu Box - Right]: The agreement of the mudrik follower with the Imam in the prostration for forgetfulness is clear. As for the case of the masbuq, he should not follow the Imam in that salam which was for exiting the prayer, because the fulfillment of the pillars of prayer remains for him; however, he should follow in the prostration for forgetfulness. It is narrated from Imam Ibrahim al-Nakha'i that a masbuq should never perform the prostration for forgetfulness because of the Imam's error, because the prostration occurs after the salam, and when he is not following the Imam in the salam, how can following in the prostration be imagined? Our opinion is that the prostration for forgetfulness is performed within the sanctity of the prayer, so the prayer is still remaining, and as long as following the Imam remains, then he should be followed in those actions which are being performed. (T)

The researcher in Fath al-Qadir says:

[Arabic Box - Left]: If the forgetful Imam is preceded by a state of ritual impurity (hadath) after his salam, he should appoint a deputy to lead the prostration, just as if the salutation was still due upon him and he appointed a deputy. It is not for the masbuq to step forward in this deputization because he is not capable of it, as its place is after the salam, and he is not capable of the salam. Rather, he prostrates before the salam in the state of following one who prostrates before him, and he is here...

[Urdu Box - Right]: If the forgetful Imam was affected by a ritual impurity and he made someone a deputy so that he could lead the prostration for forgetfulness, just as if saying salam was pending for the Imam and ritual impurity occurred, then the deputy should perform this task. It is not permissible for a masbuq to become a deputy in such a situation because he is not capable of performing the prostration for forgetfulness, because this prostration will be after the salam and the masbuq is not capable of the salam; however, while following a Shafi'i...

1. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

देखें, मसबूक (देर से आने वाले) को सलाम से पहले और बाद दोनों समय सज्दा-ए-सहव करने से मना किया गया है। इमाम इब्न अमीर अल-हाज की 'हिलया शरह मुनया' में लिखा है:-

[अरबी बॉक्स - बायां]: मुद्रिक (जिसने पूरी नमाज़ पाई) मुक्तदी का सज्दा-ए-सहव में इमाम का साथ देना स्पष्ट है। जहाँ तक मसबूक का मामला है, वह नमाज़ से बाहर निकलने के लिए इमाम के उस सलाम में इत्तेबा (अनुसरण) न करे क्योंकि उसके लिए नमाज़ के अरकान (स्तंभ) अदा करना बाकी हैं। अलबत्ता सज्दा-ए-सहव में इत्तेबा करे। इब्राहिम अल-नखई से रिवायत है कि मसबूक इमाम की भूल की वजह से हरगिज़ सज्दा-ए-सहव न करे क्योंकि सज्दा-ए-सहव का समय सलाम के बाद होता है, और जब वह सलाम में इमाम का अनुसरण नहीं कर रहा है, तो सज्दे में पैरवी की कल्पना कैसे की जा सकती है? हमारी राय यह है कि सज्दा-ए-सहव नमाज़ की तहरीमा (पवित्रता) के अंदर अदा किया जाता है, तो अभी नमाज़ बाकी है। और जब इमाम की पैरवी अभी बाकी है, तो उन अफ़आल (कार्यों) में इमाम का अनुसरण किया जाना चाहिए जो अदा किए जा रहे हैं।

[उर्दू बॉक्स - दायां]: मुद्रिक मुक्तदी की इमाम के साथ सज्दा-ए-सहव में समानता स्पष्ट है। रहा मसबूक का मामला, तो वह इमाम के उस सलाम में पैरवी न करे जो नमाज़ से बाहर निकलने के लिए था क्योंकि उस पर नमाज़ के अरकान की अदायगी बाकी रहती है, अलबत्ता सज्दा-ए-सहव में पैरवी करे। इमाम इब्राहिम नखई से उद्धृत है कि मसबूक इमाम की भूल की वजह से कभी सज्दा-ए-सहव न करे क्योंकि सज्दा-ए-सहव सलाम के बाद होता है और जब वह सलाम में इमाम का अनुसरण नहीं कर रहा है तो सज्दे में पैरवी कैसे संभव हो सकती है? हमारी राय यह है कि सज्दा-ए-सहव नमाज़ की हुरमत में अदा होता है तो अभी नमाज़ बाकी है और जब इमाम की पैरवी बाकी है तो उन कार्यों में इमाम का अनुसरण किया जाए जो अदा हो रहे हैं। (त)

मुहक्किक 'फत्ह' में फ़रमाते हैं:

[अरबी बॉक्स - बायां]: अगर भूलने वाले इमाम को सलाम के बाद हद्ष (अशुद्धि) हो गई, तो वह सज्दा कराने के लिए किसी को खलीफा (प्रतिनिधि) बनाए, जैसे कि सलाम बाकी रहने पर हद्ष होने पर किया जाता है। मसबूक के लिए इस खिलाफत में आगे बढ़ना संभव नहीं है क्योंकि वह इसके लिए सक्षम नहीं है, क्योंकि इसका समय सलाम के बाद है और वह सलाम करने में सक्षम नहीं है।

बल्कि वह सलाम से पहले इत्तेबा की स्थिति में उस व्यक्ति की पैरवी में सज्दा करता है जो उससे पहले सज्दा करता है, और वह यहाँ...

[उर्दू बॉक्स - दायां]: अगर भूल जाने वाले इमाम को हद्ष लाहिक हो गया और उसने किसी को खलीफा बनाया ताकि सज्दा-ए-सहव कराए, जैसा कि अगर इमाम पर सलाम कहना बाकी होता और हद्ष हो जाता, तो खलीफा यह काम अंजाम दे। मसबूक के लिए जायज़ नहीं कि वह ऐसी सूरत में खलीफा बने क्योंकि वह सज्दा-ए-सहव पर क़ादिर नहीं होता, क्योंकि यह सज्दा सलाम के बाद होगा और मसबूक सलाम पर क़ादिर नहीं; अलबत्ता वह शाफई की इक्तदा में...

1. हिलयतुल महल्ली शरह मुनयतुल मुसल्ली

पृष्ठ 188 / 673

دیکھو مسبوق کو سجدہ سہو سے قبل وبعد دونوں وقت سلام سے منع فرمایا، حلیہ شرح منیہ للامام ابن امیر الحاج میں ہے:-

موافقة المقتدی المدرک للامام فی سجود السهو ظاهر واماالمسبوق فلا یتابعه بالسلام للخروج عن الصلوة وقد بقی علیه ارکان الصلوة ویتابعه فی سجود السهو وعن ابراهیم النخعی انه لا یسجد بسهوه اصلا لان محل السهو بعد السلام وانه لا یتابعه فیه فلا یتصور المتابعة فی السهو ولنا ان سجود السهو یؤدی فی تحریمة الصلوة فکانت الصلوة باقیة واذا بقیت التبعیة فیتابعه فیما یؤدی من الافعال۔

مدرک مقتدی کی امام کے ساتھ سجدہ سہو میں موافقت واضح ہے۔ رہا مسبوق کا معاملہ تو وہ امام کے اس سلام میں اتباع نہ کرے جو نماز سے خارج ہونے کے لئے تھا کیونکہ اس پر نماز کے ارکان کی ادائیگی رہتی ہے البتہ سجدہ سہو میں اتباع کرے۔ امام ابراہیم نخعی سے منقول ہے کہ مسبوق امام کے سہو کی وجہ سے ہرگز سجدہ سہو نہ کرے کیونکہ سجدہ سہو سلام کے بعد ہوتا ہے اور جب وہ سلام میں امام کی اتباع نہیں کر رہا تو سجدہ میں متابعت کیسے متصور ہو سکتی ہے ہماری رائے یہ ہے کہ سجدہ سہو نماز کی حرمت میں ادا ہوتا ہے تو ابھی نماز باقی ہے اور جب تابعت امام باقی ہے تو ان افعال میں امام کی اتباع کی جائے جو ادا ہورہے ہیں (ت)

محقق علی اطلاق فتح میں فرماتے ہیں:

لو سبق الامام الساهی الحدث بعد سلامه استخلف لیسجد الخلیفه کما لو بقی علیه التسلیم ولیس للمسبوق ان یتقدم فی هذا الاستخلاف لانه لا یقدر علیه اذمحله بعد السلام وهو غیر قادر علی السلام وانما یسجد قبل السلام حالة الاقتداء بمن یسجد قبله وهو هنا

اگر بھول جانے والے امام کو حدث لاحق ہوگیا اور اس نے کسی کو خلیفہ بنایا تاکہ سجدہ سہو کرائے جیسا کہ امام پر سلام کہنا باقی ہو تو حدث لاحق ہو جائے تو خلیفہ یہ کام سرانجام دے اور مسبوق کے لئے جائز نہیں کہ وہ ایسی صورت میں خلیفہ بنے کیونکہ وہ سجدہ سہو پر قادر نہیں ہوتا کیونکہ یہ سجدہ سلام کے بعد ہوگا اور مسبوق سلام پر قادر نہیں البتہ وہ شافعی کی اقتدا میں

1 حلیہ المحلی شرح منیہ المصلی

“He has become an Imam for the one who appointed him. Despite this, if he steps forward, his prayer is not invalidated because he is still capable of completing the prayer in general, for example, by stepping back himself and bringing forward a ‘mudrik’ (one who joined the congregation from the start) follower to lead the followers in the 'Salam' and perform the prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw). The ‘masbuq’ (latecomer) successor should also prostrate with them because he is currently a follower; then he should stand up to complete the missed part of his prayer, etc.” (1) [Translation:] One can follow the Imam in the prostration of forgetfulness before the Salam. In the mentioned case, the masbuq will become the Imam's Imam. Despite this, if the masbuq steps forward, the prayer will not be invalidated because he is capable of completing the prayer. For instance, he could step back and put a ‘mudrik’ follower forward to lead the Salam and perform the prostration of forgetfulness for the congregants. The masbuq successor should also prostrate with them because he is currently a follower; he should then stand for the previous (missed) prayer. (T)

Regarding the excerpt from Bahr-ur-Raiq, which states that after explaining the matter, the masbuq shall follow the Imam in the prostration of forgetfulness, it says: “Then the masbuq only follows the Imam in forgetfulness (prostration), not in the Salam. So he prostrates with him and recites the Tashahhud. When the Imam performs the Salam, he (the masbuq) stands up for the completion (Qada). If he performs the Salam, then if it was intentional, it invalidates [the prayer], otherwise it does not. There is no prostration upon him if he performs the Salam before or with the Imam. But if he performs the Salam after him, it becomes mandatory upon him because he is an individual (munfarid) at that moment.” (2) [Translation:] Then the masbuq shall follow the Imam in the prostration of forgetfulness, but not in the Salam. Thus, the masbuq should prostrate with the Imam and recite Tashahhud. When the Imam performs the Salam, he should stand up for the remaining part of the prayer. If the masbuq performs the Salam, if he did so intentionally, the prayer is invalidated, otherwise not. If the masbuq performed the Salam before or with the Imam due to forgetfulness, there is no prostration of forgetfulness on him now. However, if he performed the Salam after the Imam, the prostration of forgetfulness will be mandatory because he is now an individual (munfarid). (T)

Similarly, it is mentioned in Radd-ul-Muhtar: “Where it is said: 'And the masbuq prostrates with his Imam,' it is restricted to the prostration because they do not

follow him in the Salam; rather, he prostrates with him and recites Tashahhud, etc.”
(3) [Translation:] The text's statement "the masbuq should perform the prostration of forgetfulness with his Imam" is restricted to the prostration here because following is not required in the Salam; rather, he should prostrate and recite Tashahhud, etc. (T)

(1) Fath-ul-Qadir, Chapter: Prostration of Forgetfulness (Sajdah Sahw), printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/444 (2) Bahr-ur-Raiq, Chapter: Prostration of Forgetfulness (Sajdah Sahw), H.M. Saeed Company Karachi, 2/100 (3) Radd-ul-Muhtar, Prostration of Forgetfulness (Sajdah Sahw), Mustafa Al-Babi Egypt, 1/549

“वह अपने द्वारा नियुक्त व्यक्ति के लिए इमाम बन गया है। इसके बावजूद, यदि वह आगे बढ़ता है, तो नमाज़ अमान्य नहीं होती क्योंकि वह सामान्य रूप से नमाज़ पूरी करने में सक्षम है, उदाहरण के लिए, स्वयं पीछे हटकर और किसी ‘मुद्रिक’ (शुरुआत से शामिल होने वाले) अनुयायी को आगे करके जो नमाज़ियों को 'सलाम' फेरवाए और सजदा-ए-सहव कराए। ‘मसबूक’ (देर से आने वाला) खलीफा को भी उनके साथ सजदा करना चाहिए क्योंकि वह वर्तमान में एक अनुयायी है; फिर वह अपनी नमाज़ के छूटे हुए हिस्से को पूरा करने के लिए खड़ा हो, इत्यादि।” (1) [अनुवाद:] सलाम से पहले इमाम के सजदा-ए-सहव में उसका अनुसरण किया जा सकता है। उपर्युक्त स्थिति में, मसबूक इमाम का इमाम बन जाएगा। इसके बावजूद, यदि मसबूक आगे बढ़ जाता है, तो नमाज़ अमान्य नहीं होगी क्योंकि वह नमाज़ पूरी करने में सक्षम है। उदाहरण के लिए, वह पीछे हट सकता है और एक मुद्रिक अनुयायी को आगे कर सकता है ताकि वह नमाज़ियों के लिए सलाम फेरे और सजदा-ए-सहव कराए। मसबूक खलीफा को भी उनके साथ सजदा करना चाहिए क्योंकि वह वर्तमान में एक अनुयायी है; फिर उसे पिछली (छूटी हुई) नमाज़ के लिए खड़ा होना चाहिए। (त)

बहर-उर-रैक के अंश के संबंध में, जिसमें कहा गया है कि इस मामले की व्याख्या करने के बाद, मसबूक सजदा-ए-सहव में इमाम का अनुसरण करेगा, यह कहता है: “फिर मसबूक केवल भूल (सजदा) में इमाम का अनुसरण करता है, सलाम में नहीं। इसलिए वह उसके साथ सजदा करता है और तशह्हुद पढ़ता है। जब इमाम सलाम फेरता है, तो वह (मसबूक) कज़ा (छूटी हुई नमाज़) के लिए खड़ा हो जाता है। यदि वह सलाम फेरता है, तो यदि यह जानबूझकर था, तो यह नमाज़ को अमान्य कर देता है, अन्यथा नहीं। यदि उसने इमाम से पहले या उसके साथ सलाम फेर दिया, तो उस पर कोई सजदा नहीं है। लेकिन अगर उसने उसके बाद सलाम फेरा, तो यह उस पर अनिवार्य हो जाता है क्योंकि वह उस समय एक व्यक्तिगत नमाज़ी (मुनफ़रिद) है।” (2) [अनुवाद:] फिर मसबूक सजदा-ए-सहव में इमाम का अनुसरण करेगा, लेकिन सलाम में नहीं। इस प्रकार, मसबूक को इमाम के साथ सजदा करना चाहिए और तशह्हुद पढ़ना चाहिए। जब इमाम सलाम फेरे, तो उसे नमाज़ के बाकी हिस्से के लिए खड़ा हो जाना चाहिए। यदि मसबूक सलाम फेरता है, यदि उसने जानबूझकर ऐसा किया, तो नमाज़ अमान्य हो जाती है, अन्यथा नहीं। यदि मसबूक ने भूलवश इमाम से पहले या उसके साथ सलाम फेर दिया, तो अब उस पर सजदा-ए-सहव नहीं है। हालाँकि, यदि

उसने इमाम के बाद सलाम फेरा, तो सजदा-ए-सहव अनिवार्य होगा क्योंकि वह अब एक व्यक्तिगत नमाज़ी (मुनफ़रिद) है। (त)

इसी तरह, रद-उल-मुहतार में उल्लेख है: “जहाँ कहा गया है: 'और मसबूक अपने इमाम के साथ सजदा करता है,' यह सजदा करने तक ही सीमित है क्योंकि वे सलाम में उसका अनुसरण नहीं करते हैं; बल्कि, वह उसके साथ सजदा करता है और तशह्हुद पढ़ता है, इत्यादि।” (3) [अनुवाद:] पाठ का कथन "मसबूक को अपने इमाम के साथ सजदा-ए-सहव करना चाहिए" यहाँ सजदे तक ही सीमित है क्योंकि सलाम में अनुसरण आवश्यक नहीं है; बल्कि उसे सजदा करना चाहिए और तशह्हुद पढ़ना चाहिए, इत्यादि। (त)

(1) फ़तह-उल-क़दीर, अध्याय: सजदा-ए-सहव, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/444 (2) बहर-उर-रैक, अध्याय: सजदा-ए-सहव, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/100 (3) रद-उल-मुहतार, सजदा-ए-सहव, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/549

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

قد صار اماماً للمستخلف ومع هذا لو تقدم لم تفسد لانه يقدر على الاتمام فى الجملة بان يتأخر ويقدم مدركاًليسلم بهم و يسجد ويسجد الخليفة المسبوق معهم لانه الان مقتد ثم يقوم الى قضاء ماسبق به الخ[1]

سلام سے پہلے امام کی سجدہ سہو میں اقتدا کرسکتا ہے اور مذکور صورت میں تو مسبوق امام کا امام بن جائیگا اس کے باوجود اگر مسبوق آگے ہوگیا تو نماز فاسد نہ ہوگی کیونکہ نماز کے اتمام پر قادر تو ہے ہی مثلاً یوں کہ خود پہلے ہٹ جائے اور کسی مدرک مقتدی کو آگے کر دے جو نمازیوں کو سلام پھرائے اور سجدہ سہو کرائے اور خلیفہ مسبوق بھی ان کے ساتھ سجدہ کرے کیونکہ اب یہ مقتدی ہے پھر گزشتہ نماز کیلئے قیام کرے (ت)

رہی عبارت بحر الرائق کہ بعد بیان اس امر کے کہ مسبوق سجدہ سہو میں امام کی متابعت کرے گا، فرمایا: ثم المسبوق انما يتابع الامام فى السهو لا فى السلام فيسجد معه ويتشهد فاذا سلم الامام قام الى القضاء فان سلم فان كان عامداً افسدت والا فلا ولاسجود عليه ان سلم قبل الامام او معه وان سلم بعده لزمه لكونه منفرداً حينئذ[2] پھر مسبوق امام کی سجدہ سہو میں اتباع کرے مگر سلام میں نہیں، پس مسبوق امام کے ساتھ سجدہ کرے تشہد پڑھے، اور امام سلام پھیرے تو یہ گزشتہ نماز کے لئے کھڑا ہو جائے، اور اگر مسبوق سلام پھیرتا ہے تو اگر عمداً کیا تو نماز فاسد ورنہ نہیں، اگر مسبوق نے امام سے پہلے یا اس کے ساتھ سلام سہواً پھیر دیا تو اب اس پر سجدہ سہو نہیں، اور اگر امام کے بعد سلام پھیرا تو اب سجدہ سہو لازم ہوگا کیونکہ اب وہ منفرد ہے (ت)

اسی طرح اس سے ردالمحتار میں ہے: حيث قال قوله والمسبوق يسجد مع امامه قيد بالسجود لانه لا يتابعوه فى السلام بل يسجد معه يتشهد[3] الخ متن کا قول "مسبوق اپنے امام کے ساتھ سجدہ سہو کرے" یہاں سجدہ کے ساتھ مقید ہے کیونکہ سلام میں اتباع نہیں بلکہ سجدہ کرے اور تشہد پڑھے الخ (ت)

[1] فتح القدیر باب سجود السھو مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱ / ۴۴۴ [2] بحر الرائق باب سجود السھو ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۱۰۰ [3] ردالمحتار سجود السھو مصطفی البانی مصر ۱ / ۵۴۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

The research and decisive verdict in this matter is that "In Salla'm ba'dahu" (if the Masbuq [one who joined the prayer late] saluted after the Imam) certainly refers to the final salam, after which there is no prostration of forgetfulness (Sajda Sahw). This is because for the first salam, after which the Imam performed Sajda Sahw, if the Masbuq also salutes after the Imam out of forgetfulness, it cannot become mandatory for him to perform Sahw prostration, because he is still considered a follower (Muqtadi) at that point. The statement "Tawli kawnuhu munfaridan hina'idhin" (because he is then alone) is not applicable there. Similarly, the statement in "Bahr" regarding "la fi salam" (not in salam) and the statement of Shami "qayyadahu bi al-sujud liannuhu la yutabi'uhu fi al-salam" (the author restricted it to prostration because he will not follow in the salam) either refers to the absolute meaning of salam by the generality of the command, whether it is before or after Sajda Sahw, or take the context to mean salam before Sajda Sahw. That is, in Sajda Sahw, although the Masbuq will follow the Imam, he will participate only in the prostration. Therefore, the restriction to prostrations was added in following, meaning that following is intended only for them; the Masbuq cannot follow in the salam.

[Box] Arabic: "And this is a clear and evident meaning that comes to mind as soon as one hears these words, provided the mind is clear from the darkness of doubts." Urdu (T): This reality is so clear that a person's mind goes towards it as soon as they hear the mentioned words, provided the mind is clear from the darkness of illusions.

And to interpret it specifically as the final salam after Sajda Sahw is without evidence, for which there is no clue at all. Rather, the apparent clue points to the opposite, "as is not hidden from the discerning gnostic" (Kama la yakfa 'ala al-'arif al-basir). As for the other two places where the phrase "In Salla'm" (if he saluted) occurs, if you look at the context and flow of speech, they are also like "In Salla'm ba'dahu" (if he saluted after him), referring to the salam after Sajda Sahw. "Idha Salla'm al-Imam" (when the Imam saluted) certainly refers to that same final salam, which is followed by "yasjudu ma'ahu wa yatashahhadu" (prostrates with him and recites Tashahhud), and "qama ila al-qada'" (stands up to complete the prayer) is connected to it. So, looking towards the forthcoming situation is more immediate, especially in these subdivisions where one division "In Salla'm ba'dahu" (if he salutes after him) undoubtedly pertains to the final salam. And if you look at the ruling, both the middle "In Salla'm" (if he salutes) statements are general to both salam before prostration and salam after prostration,

"as we pointed out to all of that" (Kama asharna ila kulli dhalika). Allama Sayyid Tahtawi (may Allah's mercy be upon him) in the marginalia of Maraqi al-Falah, regarding the commentator's statement:

[Box] Arabic: "If he saluted with the Imam, simultaneously or before him by mistake, there is no prostration of forgetfulness (Sahw) upon him because he is in a state of following. If he saluted after him, Sahw becomes mandatory because he is then alone." Urdu (T): If the Masbuq saluted with the Imam or before him by mistake, then Sahw prostration is not mandatory because he is in a state of following. And if he saluted after the Imam, then Sahw prostration will be mandatory because he is now performing prayer alone.

Footnote: 1 Maraqi al-Falah with Marginalia of at-Tahtawi, Chapter of Sajda Sahw, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 235

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

इस मामले में शोध और निर्णायक फैसला यह है कि "इन सल्लम बादहु" (यदि मसबूक ने इमाम के बाद सलाम फेरा) से निश्चित रूप से अंतिम सलाम मुराद है, जिसके बाद सजदा सहव नहीं होता। क्योंकि पहला सलाम, जिसके बाद इमाम ने सजदा सहव किया, अगर मसबूक भी भूलवश इमाम के बाद सलाम फेरेगा तो उस पर सहव अनिवार्य नहीं हो सकता क्योंकि वह अभी भी मुक्तदी (अनुगामी) है। "तौलि कौनिही मुनफ़रिदन हीनइज़िन" (क्योंकि वह तब अकेला है) कथन वहाँ सत्य नहीं बैठता। और 'बहर' का कथन 'ला फ़ी सलाम' (सलाम में नहीं) और शामी का कथन "क़य्यदहु बिस्सजूद ल-अन्नहू ला युताबि-उहू फ़िस्सलाम" (लेखक ने सजदे की शर्त लगाई है क्योंकि सलाम में पैरवी नहीं की जाएगी) में या तो शब्द की व्यापकता और हुक्म की सामान्यता से मुतलक़ सलाम मुराद है, चाहे वह सजदा सहव से पहले हो या बाद में, या संदर्भ के आधार पर सजदा सहव से पहले का सलाम मुराद लें। यानी सजदा सहव में मसबूक भी यद्यपि इमाम की पैरवी करेगा, मगर केवल सजदे में शरीक होगा, इसीलिए पैरवी में सुजूद की क़ैद लगा दी कि अनुसरण केवल उसी का उद्देश्य है, सलाम में मसबूक पैरवी नहीं कर सकता।

[Box] अरबी: "व हाज़ा मानन वाज़िहुन जलीयुन यसबिकु इलज़्ज़िहनी अव्वला मा युसमाउ हाज़ल कलाम इज़ा सफ़तिल क़रीहतु अन ज़ुलामल औहाम।" उर्दू (ت): यह वास्तविकता इतनी स्पष्ट है कि उल्लिखित शब्द सुनते ही मनुष्य का मस्तिष्क उस ओर चला जाता है, बशर्ते कि मस्तिष्क भ्रम के अंधकार से साफ़ हो।

और इसे विशेष रूप से सजदा सहव के बाद वाले अंतिम सलाम पर आधारित करना बिना प्रमाण के है, जिस पर बिल्कुल भी कोई संकेत नहीं है, बल्कि स्पष्ट संकेत इसके विपरीत की ओर इशारा करता है, "जैसा कि अंतर्दृष्टि रखने वाले ज्ञानी पर छिपा नहीं है" (कमा ला यख़्फ़ा अलल आरिफ़िल बसीर)। बाकी दो स्थानों पर जहाँ शब्द "इन सल्लम" (यदि सलाम फेरा) आया है, यदि आप बातचीत के संदर्भ और कलाम की व्यवस्था देखें तो वे भी "इन सल्लम बादहु" (यदि इमाम के बाद सलाम फेरा) की तरह सजदा सहव के बाद वाले सलाम के बारे में हैं। "इज़ा सल्लमल इमाम" (जब इमाम ने सलाम फेरा) से निश्चित रूप से वही अंतिम सलाम मुराद है जो "यसजुदु मअहु व यतशह-हदु" (इमाम के साथ सजदा करे और तशह्हुद पढ़े) के बाद है, और "क़ामा इलल क़ज़ा" (बाकी नमाज़ के लिए खड़ा हो जाए) इससे जुड़ा हुआ है। तो आने वाली सूरत की ओर देखना अधिक स्वाभाविक है, विशेष रूप से इन उप-विभागों में से एक विभाग "इन सल्लम बादहु" (यदि इमाम के बाद सलाम फेरे) निस्संदेह

अंतिम सलाम के लिए विशिष्ट है। और यदि हुक्म पर गौर करें, तो दोनों मध्यम "इन सल्लम" (यदि सलाम फेरे) सजदा से पहले और सजदा के बाद, दोनों सलामों के लिए सामान्य हैं, "जैसा कि हमने इन सभी उप-विभागों की ओर इशारा किया" (कमा अशरना इला कुल्लि ज़ालिक)। अल्लामा सैय्यद तहतावी रहमतुल्लाह अलैह ने हाशियह मराक़िल फ़लाह में शारिह के कथन पर:

[Box] अरबी: "इन सल्लम मअल इमामि मुक़ारिनन लहू अव क़ब्लहू सा हियन फ़ला सह्वा अलैहि लि-अन्नहू फ़ी हालि इक्तिदाइही व इन सल्लम बादहु यलज़मुहुस्सह्वा लि-अन्नहू मुनफ़रिद।" उर्दू (ت): यदि मसबूक ने इमाम के साथ या उससे पहले भूलवश सलाम फेरा तो अब उस पर सजदा सहव नहीं है क्योंकि वह इक़्तिदा (अनुसरण) की स्थिति में है, और यदि इमाम के बाद सलाम फेरा तो अब सजदा सहव अनिवार्य होगा क्योंकि अब वह अकेला नमाज़ अदा कर रहा है।

पाद टिप्पणी: 1 मराक़िल फ़लाह मअ हाशियत-उत-तहतावी, बाब सुजूदुस सह्व, मुद्रित नूर मोहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृ. 235

पृष्ठ 190 / 673

اس میں تحقیق و قول فیصل یہ ہے کہ ان سلم بعدہ (اگر مسبوق نے امام کے بعد سلام پھیرا۔ ت) سے یقیناً سلام اخیر مراد ہے جس کے بعد سجدہ سہو نہیں کہ اس سے پہلا سلام جس کے بعد امام نے سجدہ سہو کیا اگر مسبوق سہواً امام کے بعد بھی پھیرے گا اس پر سہو لازم نہیں ہو سکتا کہ وہ اب بھی مقتدی ہے تولوکونہ منفردا حینئذ (کیونکہ اب وہ منفرد ہے ۔ ت) وہاں قول صادق نہیں اور قول بحر لانی سلام (سلام میں نہیں ۔ ت) و قول شامی قید بالسجود لانہ لایتابعہ فی السلام (ماتن نے سجدہ کی قید لگائی ہے کیونکہ سلام میں اتباع نہیں کی جائیگی۔ ت) میں یا تو نظر باطلاق لفظ و عموم حکم مطلق سلام مراد ہے خواہ سجدہ سہو سے پہلے ہو یا بعد یا بقرینہ مقام سلام قبل سجدہ سہو مراد لیجے یعنی سجدہ سہو میں مسبوق بھی اگر چہ متابعت امام کرے گا مگر فقط سجدے میں شریک ہوگا ولہذا متابعت میں سجود کی قید لگادی کہ پیروی اسی پر مقصود ہے سلام میں مسبوق متابعت نہیں کر سکتا۔

[Box] و ھذا معنی واضح جلی یسبق الی الذہن اول ما یسع ہذا الکلام اذا صفت القریحۃ عن ظلام الاوہام ۔ (ت): یہ حقیقت اتنی واضح ہے کہ مذکورہ کلام سنتے ہی انسان کا ذہن اس طرف چلا جاتا ہے بشرطیکہ اوہام کی تاریکیوں سے ذہن صاف ہو۔

اور اسے خاص سلام اخیر بعد سجود سہو پر حمل کرنا بے دلیل ہے جس پر اصلاً قرینہ نہیں بلکہ ظاہر قرینہ اس کے خلاف کی طرف مشیر کما لا یخفی علی العارف البصیر (جیسا کہ عارف بصیر پر مخفی نہیں۔ ت) باقی دو جگہ جو لفظ ان سلم (اگر سلام پھیرا۔ ت) واقع ہے اگر سیاق سخن و نظم کلام دیکھئے تو وہ بھی مثل ان سلم بعدہ (اگر مسبوق نے امام کے بعد سلام پھیرا۔ ت) سلام بعد سجود سہو میں ہیں کہ اذا سلم الامام (جب امام نے سلام پھیرا۔ ت) سے یقیناً وہی سلام اخیر مراد ہے

جو یسجد معه ویتشهد (امام کے ساتھ سجدہ کرے اور تشہد پڑھے۔ ت) کے بعد اور قام الی القضاء (گزشتہ نماز کے لئے کھڑا ہو جائے۔ ت) اس سے متصل ہے تو کلام آتی اسی صورت کی طرف ناظر ہونا زیادہ متبادر ہے خصوصاً ان تشقیقوں میں ایک شق ان سلم بعده (اگر امام کے بعد سلام پھیرے۔ ت) بلا شبہہ مختص بسلام آخر ہے اور حکم پر نظر کیجئے تو دونوں ان سلم (اگر سلام پھیرے۔ ت) متوسط میں جو بیان ہے سلام قبل سجدہ و بعد سجدہ دونوں کو عام ہے کما اشرنا الی کل ذلک (جیسا کہ ہم نے ان تمام شقوں کی طرف اشارہ کیا۔ ت) علامہ سید طحطاوی رحمۃ اللہ تعالیٰ نے حاشیہ مراقی الفلاح میں قول شارح:

[Box] ان سلم مع الامام مقار نالہ او قبلہ ساھیا فلا سھو علیہ لانہ فی حال اقتدائہ وان سلم بعده یلزمہ السھو لانہ منفرد 1۔ (ت): اگر مسبوق نے امام کے ساتھ یا پہلے بھول کر سلام پھیرا تو اب اس پر سجدہ سہو نہیں کیونکہ وہ حالت اقتداء میں ہے اور اگر امام کے بعد سلام پھیرا تو اب سجدہ سہو لازم ہوگا کیونکہ وہ اب تنہا نماز ادا کر رہا ہے۔

1 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی باب سجود السہو مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۳۵

Fatawa Razawiya Volume Eight

Explained it this way: "Where he said, his words 'and if he greeted with the Imam, etc.,' apply equally to the first greeting of exit (from prayer) and the greeting of the prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw), because the reason (illat) is apparent in both. And his words 'and if he greeted after him,' i.e., only after the Imam's greeting from the prostration of forgetfulness. As for his greeting after the Imam's first greeting from the prayer, it does not necessitate the prostration of forgetfulness for him, because when he prostrates for forgetfulness with him (the Imam), he returns to following (Iqtida), and there is no prostration of forgetfulness upon the follower (Muqtadi). So reflect upon all of this. Ends."[1]

His words are: In the phrase "if the Masbuq (one who joined the prayer late) gave salam with the Imam, etc.", giving salam to finish the prayer or for Sajdah Sahw are both equal because the cause is the same. The phrase "if the Masbuq gave salam after him" means after only the Imam's salam of Sajdah Sahw. If he gave salam after the Imam's first salam of the prayer, even then Sajdah Sahw is not obligatory on the Masbuq because when he performs Sajdah Sahw with the Imam, he returns to being a follower, and Sajdah Sahw is not required of a follower. Contemplate deeply on this entire discussion. (T)

In short, the second party's use of these passages from Bahr and Shami to support their contested point is entirely invalid, and the first party's reliance on them is somewhat incomplete due to the possibility of alternative interpretations. The truth in this ruling lies with the first party. And Allah, the Exalted, knows best.

Issue 26: 1227, 1227 Dhu al-Qi'dah 1318 AH What do the scholars of religion say regarding these matters: (1) In a four-rak'ah prayer, in the middle sitting (Qa'da), if one forgetfully reads 'Allahumma Salli' after Tashahhud, how far must it be read for Sajdah Sahw to become obligatory? (2) In a congregational prayer, for a person who has one or two rak'ahs remaining, is the salam before Sajdah Sahw required or not when he does not know if this salam is for the end of the prayer or for Sajdah Sahw?

Answer: (1) "Allahumma Salli 'ala Muhammad" and this is the ruling (fatwa). (T) And Allah, the Exalted, knows best. (2) It is not permissible, and if he turns it (gives salam) intentionally, the prayer will be invalidated because it occurs during his prayer (since this salam...

[1] Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter of Prostrations of Forgetfulness, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 253. Page 191 of 673

इसकी इस प्रकार व्याख्या की गई: "जहाँ उसने कहा, उसके शब्द 'और यदि उसने इमाम के साथ सलाम फेरा आदि', तो यह नमाज़ से बाहर निकलने वाले पहले सलाम और सजदा सहव के सलाम दोनों पर समान रूप से लागू होता है, क्योंकि दोनों में कारण (इल्लत) स्पष्ट है। और उसके शब्द 'और यदि उसने उसके बाद सलाम फेरा', यानी केवल इमाम के सजदा सहव के सलाम के बाद। जहाँ तक नमाज़ के इमाम के पहले सलाम के बाद उसके सलाम फेरने का सवाल है, तो यह उसके लिए सजदा सहव को अनिवार्य नहीं बनाता है, क्योंकि जब वह उसके(इमाम) के साथ सजदा सहव करता है, तो वह इक्तिदा (अनुकरण) पर वापस लौट आता है, और मुक़्तदी (अनुयायी) पर कोई सजदा सहव नहीं है। अतः इस पूरे विषय पर गहराई से विचार करें। समाप्त।"[1]

उनके शब्द ये हैं: कथन "यदि मसबूक (देर से शामिल होने वाला) ने इमाम के साथ सलाम कहा आदि" में नमाज़ से फ़ारिग होने के लिए सलाम या सजदा सहव के लिए सलाम दोनों बराबर हैं क्योंकि कारण (इल्लत) एक ही है। कथन यदि मसबूक ने उसके बाद सलाम फेरा, अर्थात इमाम के केवल सजदा सहव के सलाम के बाद फेरा। यदि इमाम के पहले सलाम के बाद फेरा तो भी मसबूक पर सजदा सहव नहीं है क्योंकि जब वह इमाम के साथ सजदा सहव करेगा तो वह इक्तिदा (अनुकरण) की ओर लौट आया और मुक़्तदी (अनुयायी) पर सजदा सहव नहीं होता। इस पूरी बातचीत में खूब सोच-विचार से काम लो। (त)

संक्षेप में, 'बहर' और 'शामी' के इन उद्धरणों से दूसरे पक्ष का विवादित मसले पर तर्क पूरी तरह निराधार है और पहले पक्ष का उनसे सहारा लेना संभावनाओं के कारण कुछ अधूरा है, और मसले के हुक्म में हक़ पहले पक्ष के साथ है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है।

मसला 26: 1227, 1227 ज़ीक़अद 1318 हिजरी धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या कहते हैं कि: (1) चार रकअत नमाज़ में दरम्यानी क़ायदा में तशह्हुद के बाद भूल से 'अल्लाहुम्मा सल्ली' कहाँ तक पढ़े कि सजदा सहव वाजिब हो जाए? (2) जमाअत में सजदा सहव से पहले का सलाम उस व्यक्ति के लिए जिसकी एक-दो रकअत बाकी है और उसे यह मालूम न हो कि यह सलाम नमाज़ की समाप्ति का है या सजदा सहव का, उसे फेरना चाहिए या नहीं?

उत्तर: (1) "अल्लाहुम्मा सल्ली अला मुहम्मद" और इसी पर फ़तवा है। (त) और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है। (2) जायज़ नहीं है, और यदि वह जानबूझकर सलाम फेरेगा तो नमाज़ निरस्त हो जाएगी क्योंकि यह उसकी नमाज़ के दौरान हुआ है (क्योंकि यह सलाम...

---

[1] हाशियतुल तहतावी अला मराक़िल फ़लाह, बाब सुजूद सहव, मुद्रित नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची पृ. 253 Page 191 of 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

کی یہی شرح فرمائی: حیث قال قوله وان سلم مع الامام الخ سواء في ذلك تسليمة التحليل الاولى وتسليم سجود السهو لظهور العلة في ذلك وقوله وان سلم بعده ای بعد سلام الامام من سجود السهو فقط اما سلامه بعد سلام الامام الاول من الصلوة فلا یلزم به السهو لانه لما سجد للسهو معه عادالی الاقتداء ولا سهو علی المقتدی فتامل فیه کله اھ[1] ان کے الفاظ یہ ہیں قول "اگر مسبوق نے امام کے ساتھ سلام کہا الخ" میں نماز سے فارغ ہونے کے لئے سلام یا سجدہ سہو کے لئے سلام دونوں برابر ہیں کیونکہ علت ایک ہے قولہ اگر مسبوق نے اس کے بعد سلام پھیرا یعنی امام کے فقط سجود سہو کے سلام کے بعد پھیرا اگر امام کے پہلے سلام کے بعد پھیرا تو بھی مسبوق پر سجدہ سہو نہیں کیونکہ جب وہ امام کے ساتھ سجدہ سہو کرے گا تو وہ اقتداء کی طرف لوٹ آیا اور مقتدی پر سجدہ سہو نہیں ہوتا، اس تمام گفتگو میں خوب غور فکر سے کام لو اھ (ت)

بالجملہ بحر و شامی کی ان عبارات سے فریق ثانی کا مسئلہ نزاعیہ پر استدلال محض باطل اور فریق اول کا ان سے استناد بوجہ تطرق احتمال گونہ ناکامل، اور حکم مسئلہ میں حق فریق اور کے ساتھ ہے۔ واللہ سبحنہ و تعالی اعلم

مسئلہ ۲۶ : ۱۲۲۷، ۱۲۲۷ ذیقعدہ ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں کہ : (۱) چار رکعت نماز میں درمیانی قعدے میں تشہد کے بعد سہو سے اللھم صل کہاں تک پڑھے کہ سجدہ سہو واجب ہو جائے۔ (۲) جماعت میں سجدہ سہو کے قبل کا سلام اس شخص کو جس کی ایک دو رکعت باقی ہے اور اس کو یہ معلوم نہ ہو کہ یہ سلام اختتام نماز کا ہے یا سجدہ سہو کا ہے ، چاہئے یا نہیں؟

الجواب: (۱) اللھم صل علی محمد و بہ یفتی (اللھم صل علی محمد اور اس پر ہی فتوی ہے ۔ت) واللہ سبحنہ و تعالی اعلم (۲) جائز نہیں، اور اگر عمداً پھیرے گا تو نماز جاتی رہے گی لوقوعہ خلال صلوتہ (کیونکہ یہ سلام

---

[1] حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجود السھو مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۵۳ Page 191 of 673

Fatawa Rizwia Volume VIII

...is in the middle of prayer. (T) And Allah the Almighty knows best.

Problem 1228: 10 Jumada al-Ula 1319 AH What do the scholars of religion say regarding this issue that there was a doubt in the first sitting (Qada-e-Oola) but no certainty, and prostration of forgetfulness (Sajda Sahw) was performed; is the prayer valid now or not? Explain and be rewarded.

The Answer: It is valid. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1229: 25 Rabi al-Awwal Sharif 1320 AH What do the scholars of religion say regarding this issue that an Imam, in an audible prayer (Jahri Namaz), remained silent after Surah al-Fatiha and before the next Surah for so long that a small Surah could be recited; what is the ruling in this case?

The Answer: After reciting Al-Hamd Sharif, the Imam took a breath, said Ameen, and recited 'Bismillah-ir-Rahman-ir-Rahim' to start the Surah, reciting Bismillah with proper intonation (tarteel); this will certainly take as long as reciting a small Surah, but there is no harm in this, rather all these actions are according to the Sunnah. Yes, if besides these, he remained silent for so long that he could have recited 'SubhanAllah' three times, then if this silence was for the purpose of contemplation (thinking about what to recite), then prostration of forgetfulness (Sajda Sahw) is obligatory. If not performed, repeating the prayer (I'ada) is obligatory. And if that silence was intentional without any reason, even then repetition is obligatory. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1230: 8 Rabi al-Akhir Sharif 1320 AH What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say in this situation (What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say in this case. T): that a person performs an obligatory (Fard) prayer and by mistake, in the last two Rak'ats as well, he recited a Surah after Al-Hamd and then performed the final salutation (Salam). Is his prayer now considered obligatory (Fard) or optional (Sunnah)? Write as it is. And if he had performed the prostration of forgetfulness, would his prayer have become obligatory or not? Explain and be rewarded.

The Answer: It is considered obligatory (Fard) and no defect occurred in the prayer, nor was prostration of forgetfulness (Sajda Sahw) necessary for him. In fact, if one intentionally joins a Surah in the last Rak'ats of a Fard prayer, there is no harm; it is only contrary to what is better (Khilaf-ul-Awla). Rather, some Imams have specified it

as being recommended (Mustahabb). According to this humble servant (the author), the apparent recommendation (Istihbab) is for one praying alone; for an Imam, it is certainly disliked (Makruh), and if it becomes burdensome for the followers (Muqtadis), it is forbidden (Haram). It is stated in Durr-ul-Mukhtar:

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवां

...नमाज़ के बीच में है। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1228: 10 जमादी उल-ऊला 1319 हिजरी क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि कायदा-ए-ऊला (पहली बैठक) में शक हुआ मगर यकीन नहीं और सजदा-ए-सहव कर लिया, अब नमाज़ जायज़ है या नहीं? बयान करें और पुण्य पायें।

अल-जवाब: जायज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1229: 25 रबी-उल-अव्वल शरीफ़ 1320 हिजरी क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि इमाम ने ज़हरी नमाज़ (सस्वर प्रार्थना) में सूरह फ़ातिहा के बाद और दूसरी सूरह से पहले इतनी देर तक खामोशी इख़्तियार की कि एक छोटी सूरह पढ़ी जा सकती थी, इस सूरत में क्या हुक्म है?

अल-जवाब: अल-हम्द शरीफ़ के बाद इमाम ने सांस ली, आमीन कही और सूरह शुरू करने के लिए बिस्मिल्लाह-हिर-रहमान-निर-रहीम पढ़ी और बिस्मिल्लाह को ख़ूब तरतील (सुरीले और स्पष्ट उच्चारण) से अदा किया, तो इसमें निश्चित रूप से एक छोटी सूरह पढ़ने जितनी देर हो जाएगी, मगर इसमें कोई हर्ज नहीं बल्कि ये सब बातें सुन्नत के मुताबिक़ हैं। हाँ, अगर इनके अलावा महज़ ख़ामोशी इतनी देर तक की कि तीन बार 'सुब्हान अल्लाह' कह सकता, तो यह ख़ामोशी अगर चिंतन (सोचते हुए कि क्या पढ़ूँ) की वजह से थी, तो सजदा-ए-सहव वाजिब (अनिवार्य) है। अगर नहीं किया तो नमाज़ का दोहराना (इआदा) वाजिब है। और अगर वह ख़ामोशी जानबूझकर बिना किसी वजह के थी, तब भी नमाज़ दोहराना वाजिब है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1230: 8 रबी-उल-आख़िर शरीफ़ 1320 हिजरी क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ मतीन इस मामले में (क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ मतीन इस सूरत में। त): कि एक व्यक्ति फर्ज़ नमाज़ पढ़ता है और उसने भूलवश पिछली दो रकअतों में भी अल-हम्द के बाद एक-एक सूरह पढ़ी और फिर सलाम फेर दिया। अब उसकी नमाज़ फ़र्ज़ हुई या सुन्नत? जैसा हो वैसा ही लिखें। और अगर वह सजदा-ए-सहव कर लेता तो क्या उसकी नमाज़ फ़र्ज़ हो जाती या नहीं? बयान करें और पुण्य पायें।

अल-जवाब: फ़र्ज़ हुई और नमाज़ में कोई दोष नहीं आया, न ही उस पर सजदा-ए-सहव लाज़िम था। बल्कि अगर जानबूझकर भी फ़र्ज़ की पिछली रकअतों में सूरह मिलाई तो कोई हर्ज नहीं, केवल

ख़िलाफ़-उल-अवला (बेहतर के विपरीत) है। बल्कि कुछ इमामों ने इसके मुस्तहब (पसंदीदा) होने का उल्लेख किया है। इस फकीर (लेखक) के नज़दीक ज़ाहिरी तौर पर मुस्तहब होना अकेले नमाज़ पढ़ने वाले के लिए है; इमाम के लिए निश्चित रूप से मकरूह (नापसंद) है, बल्कि अगर मुक़्तदियों (अनुयायियों) पर भारी गुज़रे तो हराम है। दुर्रे मुख़्तार में है:

पेज 192/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

نماز کے درمیان ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۲۸: ۱۰ جمادی الاولٰی ۱۳۱۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ قعدہ اول میں شک ہوا مگر یقین نہیں اور سجدہ سہو کا کیا، اب نماز جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: جائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۲۹: ۲۵ ربیع الاول شریف ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ امام نے جہری نماز میں بعد الحمد قبل سورۃ اتنی دیر سکوت کیا کہ چھوٹی سورت پڑھ لیتا، اس صورت میں کیا حکم ہے؟

الجواب: الحمد شریف کے بعد امام نے سانس لیا اور آمین کہی اور شروع سورت کے لئے بسم اللہ الرحمن الرحیم پڑھی اور بسم اللہ کو خوب ترتیل سے ادا کیا تو اس قدر میں ایک سورت چھوٹی پڑھنے کی ضرور دیر ہو جائے گی مگر اس میں حرج نہیں بلکہ یہ سب باتیں مطابق سنت ہیں، ہاں اگر ان کے علاوہ محض سکوت اتنی دیر کیا کہ تین بار سبحان اللہ کہہ لیتا تو یہ سکوت اگر بر بنائے تفکر تھا کہ سوچتا رہا کہ کیا پڑھوں، تو سجدہ سہو واجب ہے اگر نہ کیا تو اعادہ نماز کا واجب ہے، اور اگر وہ سکوت عمداً بلا وجہ تھا جب بھی اعادہ واجب۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳۰: ۸ ربیع الآخر شریف ۱۳۲۰ھ چہ می فرمایند علمائے دین ومفتیان شرع متین اندریں صورت (کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس صورت میں۔ ت) کہ ایک شخص نماز فرض پڑھتا ہے اور اس نے سہواً پچھلی دو رکعت میں بھی بعد الحمد کے ایک ایک سورت پڑھی

بعدہ سلام پھیرا اب اس کی نماز فرض ہوئی یا سنت؟ جیسا ہو ویسا ہی ارقام فرمائے اور اگر وہ سجدہ سہو کر لیتا تو کیا اس کی نماز فرض ہو جاتی یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: فرض ہوئی اور نماز میں کچھ خلل نہ آیا، نہ اس پر سجدہ سہو تھا بلکہ اگر قصداً بھی فرض کی پچھلی رکعتوں میں سورت ملائی تو کچھ مضائقہ نہیں صرف خلاف اولٰی ہے، بلکہ بعض ائمہ نے اس کے مستحب ہونے کی تصریح فرمائی۔ فقیر کے نزدیک ظاہر آیہ استحباب تنہا پڑھنے والے کے حق میں ہے امام کے لئے ضرور مکروہ ہے بلکہ مقتدیوں پر گراں گزرے تو حرام۔ درمختار میں ہے:

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Top Box] Joining a Surah in the first two [rak'ats] of the obligatory (fard) prayer - and is it disliked (makruh) in the last two? According to the preferred (mukhtar) view, it is not disliked. Summarized (T).

It is in Radd-al-Muhtar:

[Main Body - Left Arabic, Right Urdu Explanation] That is, it is not prohibitively disliked (makruh tahrimi) but rather mildly disliked (tanzihi) because it is against the Sunnah. It is stated in Al-Munyah and its commentary that if one joins a Surah with Al-Fatiha out of forgetfulness, then according to Imam Abu Yusuf, prostration of forgetfulness (sajda sahw) is necessary because the bowing (ruku) was delayed from its place. However, according to the more prominent narrations, it is not necessary because recitation in the final units is prescribed without specific designation, and limiting oneself to Al-Fatiha is Sunnah, not obligatory (wajib). It is mentioned in Al-Bahr from Fakhr al-Islam that joining a Surah in the final units is prescribed as a voluntary (nafl) act. Ad-Dhakhirah states that this is the preferred (mukhtar) view. Al-Muhit says this is the most correct (asah) view. It is apparent that 'nafl' or 'prescribed' here means permissibility and non-prohibition, so it does not contradict it being 'contrary to the better way' (khilaf al-awla), as mentioned in Al-Hilyah. End of the excerpt from Radd-al-Muhtar.

I say: The wording of Al-Hilyah then clearly suggests its permissibility. How could it not be so, when it has already been mentioned previously with reference to Sahih Muslim and others that it is narrated from Hazrat Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him) that...

[Footnotes] 1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Characteristics of Prayer, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/71. 2. Radd-al-Muhtar, Chapter on Characteristics of Prayer, printed by Mustafa Al-Babi Egypt, 1/338.

Page 193 of 673

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

[ऊपर का बॉक्स] अनिवार्य (फ़र्ज़) नमाज़ की पहली दो रकअतों में सूरह मिलाना - और क्या आखिरी दो रकअतों में सूरह मिलाना मकरूह है? मुख्तार (पसंदीदा) कौल के मुताबिक मकरूह नहीं है। संक्षेप में (त)।

रद-अल-मुहतार में है:

[मुख्य भाग - बाएँ अरबी, दाएँ उर्दू व्याख्या] यानी मकरूह तहरीमी नहीं बल्कि तन्ज़ीही है क्योंकि यह सुन्नत के खिलाफ है। 'मुनया' और उसकी शरह में है कि अगर भूलकर फ़ातिहा के साथ सूरह मिलाई, तो इमाम अबू यूसुफ के कौल (विचार) के अनुसार उस पर सज्दा-ए-सहव लाज़िम होगा क्योंकि रुकू अपनी जगह से देर से हुआ। और स्पष्ट रिवायतों के अनुसार, उस पर सज्दा-ए-सहव लाज़िम नहीं है क्योंकि आखिरी रकअतों में बिना निर्धारित किए तिलावत जायज़ है और फ़ातिहा पर रुक जाना सुन्नत है, वाजिब नहीं। और 'अल-बहर' में फ़ख्र अल-इस्लाम से है कि आखिरी रकअतों में सूरह मिलाना नफ़ली तौर पर जायज़ है। 'अज़-ज़ख़ीरा' में है कि यही मुख्तार है। 'अल-मुहीत' में इसे ही असह (सबसे सही) कहा गया है। ज़ाहिर है कि यहाँ नफ़ल या जायज़ से मुराद उसकी हुरमत (मनाही) का न होना है, तो यह 'खिलाफ़-ए-औला' (बेहतर के खिलाफ) होने के विपरीत नहीं है, जैसा कि 'हुलिया' में है। रद-अल-मुहतार की इबारत ख़त्म हुई।

मैं कहता हूँ: 'हुलिया' के अल्फाज़ से ज़ाहिर है कि सूरह का मिलाना मुबाह (जायज़) है। और ऐसा क्यों न हो जबकि पहले सही मुस्लिम वगैरह के हवाले से गुज़रा कि हज़रत अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी (वर्णित) है कि...

[पाद लेख] 1. दुर-ए-मुख्तार, बाब सिफत-उस-सलात, मतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/71. 2. रद-अल-मुहतार, बाब सिफत-उस-सलात, मतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/338.

पेज 193/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[اوپر کا باکس] ضم سورۃ فی الاولیین من الفرض وھل یکرہ فی الاخرین المختار لا ۱۔ ملخصاً فرض کی پہلی دو رکعات میں سورت کا ملانا ، کیا آخری دو رکعتوں میں سورۃ ملانا مکروہ ہے؟ مختار قول کے مطابق مکروہ نہیں۔ ملخصا (ت)

ردالمحتار میں ہے:

[درمیانی حصہ] ای لایکرہ تحریما بل تنزیھا لا نہ خلاف السنۃ قال فی المنیۃ وشرحھا فان ضم السورۃ الی الفاتحۃ ساھیا یجب علیہ سجود السھو فی قول ابی یوسف لتأخیر الرکوع عن محلہ وفی اظھر الروایات لا یجب لان القرأۃ فیھا مشروعۃ من غیر تقدیر والاقتصار علی الفاتحۃ مسنون لا واجب اہ وفی البحر عن فخر الاسلام ان السورۃ مشروعۃ فی الاخرین نفلا وفی الذخیرہ انہ المختار وفی المحیط وھو الاصح اہ والظاھران المراد بقولہ نفلا ولامشروعۃ بمعنی عدم الحرمۃ فلا ینا فی کونہ خلاف الاولی کما افادہ فی الحلیۃ ۲اہ ما فی ردالمحتار یعنی مکروہ تحریمی نہیں بلکہ تنزیہی ہے کیونکہ خلاف سنت ہے۔ منیہ اور اس کی شرح میں ہے اگر بھول کر فاتحہ کے ساتھ سورۃ ملائی تو امام ابو یوسف کے قول کے مطابق اس پر سجدہ سہو ہوگا کیونکہ رکوع اپنے مقام سے مؤخر ہوگیا ہے، اور اظہر روایات کے مطابق اس پر سجدہ سہو لازم نہیں کیونکہ ان آخری رکعتوں میں بغیر مقرر کرنے کے قرات مشروع ہے اور فاتحہ پر اکتفا سنت ہے واجب نہیں اھ اور بحر میں فخر الاسلام سے ہے کہ آخری رکعتوں میں سورۃ ملانا نفلی طور پر مشروع ہے۔ اور ذخیرہ میں ہے کہ مختار ہے۔ اور محیط میں اسی کو اصح کہا ہے اھ اور نفل سے واضح طور پر یہاں مراد جواز و مشروعیت بمعنی عدم حرمت ہے پس یہ اس کے خلاف اولیٰ ہونے کے منافی نہیں، جیسا کہ حلیہ میں ہے، ردالمحتار کی عبارت ختم ہوگئی۔

اقول: لفظ الحلیۃ ثم الظاھر ابا حتھا کیف لا وقد تقدم من حدیث ابی سعید الخدری رضی اللہ تعالی عنہ فی صحیح مسلم وغیرہ انہ اقول : (میں کہتا ہوں) کہ حلیہ کے الفاظ کہ پھر ظاہر سورت کا مباح ہونا ہے اور یہ کیسے نہ ہو کہ پیچھے صحیح مسلم وغیرہ کے حوالے سے گزرا کہ حضرت ابو سعید خدری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے کہ

[حواشی] 1 در مختار باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۷۱ 2 رد المحتار باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۳۳۸

صفحہ 193 منجملہ 673

Fatawa Rizwia - Volume 8

[Arabic Column:] The Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) used to recite in the Zuhr prayer about thirty verses in the first two rak'ahs and about fifteen verses in the last two. He also said: half of that. Therefore, it is no surprise that Fakhr al-Islam said in 'Sharh al-Jami' al-Saghir': As for the surah, it is legislated as a voluntary act in the last two rak'ahs, such that we say regarding one who recites in the last two: he does not have to perform the prostration of forgetfulness (sajdah sahw). [End] Then it can be said that it is better (awla) not to add [a surah], and the Hadith of Abu Qatada (may Allah be pleased with him) is interpreted as a clarification of this. (He refers to what was previously narrated in the Sahihayn [Bukhari and Muslim] that the Prophet [PBUH] used to recite in the Zuhr prayer in the first two [rak'ahs] the Mother of the Quran [Al-Fatiha] and two surahs, and in the last two rak'ahs [only] the Mother of the Book. [The Hadith]). And the statement of the aforementioned author (i.e., 'and he does not add anything to it') and the statement of many scholars as in 'Al-Kafi' and others: 'and he recites in them [the last two] after the first two only Al-Fatiha.' The Hadith of Abu Sa'id (may Allah be pleased with him) is interpreted as a mere clarification of permissibility. The statement of Fakhr al-Islam is that the Prophet (PBUH) would occasionally perform permissible acts solely for teaching permissibility and the like, without any dislike (karahah) on his part (PBUH), just as he would perform the most preferable act (al-ja'iz al-awla) in most circumstances. The act does not contradict its not being the most preferable. By this, any perceived contradiction between the two aforementioned hadiths and the statements of the scholars is refuted. And...

[Urdu Column:] The Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) used to recite thirty verses in the first two rak'ahs of Zuhr and fifteen verses (or half) in the last two. Fakhr al-Islam stated in 'Sharh al-Jami' al-Saghir' that a surah is legislated as a voluntary (nafl) act in the last two rak'ahs, to the extent that if someone recites a surah, we say that the prostration of forgetfulness (sajdah sahw) is not necessary for them. [End] Furthermore, it can be said that not adding (a surah) is better (awla), and the evidence for this is the Hadith of Abu Qatada (may Allah be pleased with him). (This refers to the Hadith mentioned earlier from Bukhari and Muslim that the Holy Prophet [PBUH] recited Surah Al-Fatiha and two surahs in the first two rak'ahs of Zuhr, and recited only Surah Al-Fatiha in the last two rak'ahs. [The Hadith]). And the aforementioned statement of the author (meaning no addition should be made to this Fatiha) and the statement of several scholars, as in 'Kafi' etc.,

that only Fatiha should be read after the first two rak'ahs. The Hadith of Abu Sa'id (may Allah be pleased with him) should be interpreted purely as an explanation of permissibility. And Fakhr al-Islam's statement that the Holy Prophet (PBUH) performed some permissible acts to teach permissibility, etc., while it was not disliked (makruh) for him, just as he performed the permissible/preferable most of the time. An act does not conflict with not being the most preferable. With this discussion, that whole issue is resolved which was thought to be a contradiction between these two mentioned hadiths and the statements of the scholars. [End] Perhaps it is not hidden from you that interpreting a legislated voluntary (nafl) act as 'makruh tanzihi' (mildly disliked) is very far-fetched. And in the last rak'ahs...

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

[अरबी कॉलम:] नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ज़ुहर की नमाज़ में पहली दो रकतों में लगभग तीस आयतें और आख़िरी दो रकतों में लगभग पंद्रह आयतें पढ़ते थे। उन्होंने यह भी कहा: इसका आधा। इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि फख्र अल-इस्लाम ने 'शरह अल-जामी अल-सगीर' में कहा है: जहाँ तक सूरत का सवाल है, यह आख़िरी दो रकतों में नफ़्ल (ऐच्छिक) के रूप में शरीयत सम्मत है, यहाँ तक कि हम उस व्यक्ति के बारे में कहते हैं जिसने आख़िरी दो में सूरत पढ़ी: उस पर सजदा सह्व अनिवार्य नहीं है। [अंत] फिर यह कहा जा सकता है कि सूरत न जोड़ना ही बेहतर (औला) है, और हज़रत अबू क़तादा (रज़ि.) की हदीस को इसी के स्पष्टीकरण के रूप में लिया जाता है। (उनका तात्पर्य उस हदीस से है जो बुखारी और मुस्लिम के हवाले से पहले गुज़र चुकी है कि नबी [सल्ल.] ज़ुहर की पहली दो रकतों में सूरह अल-फातिहा और दो सूरतें पढ़ते थे, और आख़िरी दो रकतों में केवल सूरह अल-फातिहा। [हदीस])। और उपर्युक्त लेखक का कथन (अर्थात 'और वह उस पर कुछ भी नहीं बढ़ाता') और कई विद्वानों का कथन जैसा कि 'अल-काफी' आदि में है: 'और वह उनमें [आख़िरी दो में] पहली दो के बाद केवल अल-फातिहा पढ़ता है।' हज़रत अबू सईद (रज़ि.) की हदीस को केवल जवाज़ (जायज़ होने) के बयान के रूप में माना जाता है। फख्र अल-इस्लाम का कथन है कि नबी (सल्ल.) कभी-कभी केवल जवाज़ की शिक्षा देने आदि के लिए जायज़ कार्य करते थे, जबकि यह उनके(सल्ल.) के लिए मकरूह (नापसंद) नहीं था, जैसे कि वे अधिकांश परिस्थितियों में सबसे उत्तम जायज़ कार्य (अल-जायज़ अल-औला) करते थे। कार्य का होना उसके उत्तम न होने के विपरीत नहीं है। इससे उन दो उल्लेखित हदीसों और विद्वानों के कथनों के बीच महसूस होने वाला विरोध दूर हो जाता है। और...

[उर्दू कॉलम:] नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ज़ुहर की पहली दो रकतों में तीस आयतें और आख़िरी दो में पंद्रह आयतें (या आधा) तिलावत फरमाते। फख्र अल-इस्लाम ने 'शरह अल-जामी अल-सगीर' में फरमाया कि आख़िरी दो रकतों में सूरत नफ़्ल के तौर पर मशरूअ (विहित) है, यहाँ तक कि अगर किसी ने सूरत पढ़ी तो हम कहते हैं कि उस पर सजदा सह्व लाज़िम नहीं होगा। [अंत] फिर यह कहना मुमकिन है कि अदम-ए-इज़ाफ़ा (सूरत न जोड़ना) औला (बेहतर) है और इस पर दलील हज़रत अबू क़तादा (रज़ि.) की हदीस है। (इससे मुराद वह हदीस है जो बुखारी व मुस्लिम के हवाले से गुज़री कि नबी अकरम [सल्ल.] ज़ुहर की पहली दो रकतों में सूरह फातिहा और दो सूरतें पढ़ते और आख़िरी दो रकतों में सिर्फ फातिहा पढ़ते। [हदीस])। और मुसन्निफ (लेखक) का मज़कूरा

कौल (यानी इस फातिहा पर इज़ाफ़ा न किया जाए) और मुतअद्दिद मशाइख (अनेक विद्वानों) का कौल जिस तरह 'काफी' वगैरह में है कि पहली दो रकतों के बाद सिर्फ फातिहा पढ़ी जाए। और हज़रत अबू सईद (रज़ि.) की हदीस को महज़ जवाज़ (जायज़ होने के) बयान पर महमूल किया जाए (माना जाए)। और फख्र अल-इस्लाम का कौल कि नबी अकरम (सल्ल.) बाज़ जायज़ अफआल (कार्यों) को तालीम-ए-जवाज़ (जायज़ होने की शिक्षा) वगैरह के लिए बजा लाते, जबकि यह आपके हक़ में मकरूह नहीं, जिस तरह आप जायज़ को ग़ालिब औकात (अक्सर) बजा लाते थे। और फेल (कार्य) अदम-ए-औलवियत (बेहतर न होने) के मुनाफी (विपरीत) नहीं होता। इस गुफ्तगू से वह तमाम मामला खत्म हो जाता है जो ख्याल किया गया था कि इन मज़कूरा दोनों हदीसों और मशाइख के अक़्वाल (कथनों) में मुखालिफत (विरोध) है। [अंत] शायद आप पर यह बात मखफी (छिपी) नहीं रही कि मशरूअ नफ़्ल को मकरूह-ए-तंज़ीही पर महमूल करना निहायत ही बईद (दूर की बात) है। और आख़िरी रकतों...

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

[Arabic Column:] صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کان یقرأ فی صلوۃ الظھر فی الرکعتین الاولیین قدر ثلثین اٰیۃ وفی الأخریین قدر خمسۃ عشرۃ اٰیۃ وقال نصف ذلك فلا جرم ان قال فخر الاسلام فی شرح الجامع الصغیر واما السورۃ فانھا مشروعۃ نفلا فی الاخریین حتی قلنا فی من قرأ فی الاخریین لم یلزمہ سجدۃ سھو انتھی ثم یمکن ان یقال الاولی عدم الزیادۃ ویحمل علی الخروج مخرج البیان لذلك حدیث ابي قتادۃ رضي اللہ تعالی عنہ (یرید ما قدم بروایۃ الصحیحین ان النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کان یقرأ فی الظھر فی الاولیین بام القرآن وسورتین وفی الرکعتین الاخریین بأم الکتاب الحدیث) وقول المصنف المذکور (ای ولا یزید علیھا شیئاً) وقول غیر واحد من المشائخ کما فی الکافی وغیرہ ویقرأ فیھما بعد الاولیین الفاتحۃ فقط ویحمل علی بیان مجرد الجواز حدیث ابي سعید رضي اللہ تعالی عنہ وقول فخر الاسلام فان النبي صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کان یفعل الجائز فقط فی بعض الاحیان تعلیماً للجواز وغیرہ من غیر کراھۃ فی حقہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کما یفعل الجائز الاولی فی غالب الاحوال والفعل لاینافی عدم الاولویۃ فیندفع بھذا ما عساہ یخال من المخالفۃ بین الحدیثین المذکورین و

[Urdu Column:] نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ظہر کی پہلی دو رکعت میں تیس آیات اور آخری دو میں پندرہ آیات (یا نصف) تلاوت فرماتے۔ فخر الاسلام نے شرح الجامع الصغیر میں فرمایا آخری دور رکعات میں سورت بطور نفل مشروع ہے حتیٰ کہ اگر کسی نے سورت پڑھی تو ہم کہتے ہیں کہ اس پر سجدہ سہو لازم نہیں ہو گا، انتہی، پھر یہ کہنا ممکن ہے کہ عدم اضافہ (سورت) اولیٰ ہے اور اس پر دلیل حدیث ابو قتادہ رضی اللہ تعالٰی عنہ ہے (اس سے مراد وہ حدیث ہے جو بخاری و مسلم کے حوالے سے گزری کہ نبی اکرم صلی اللہ اللہ تعالٰی علیہ وسلم ظہر کی پہلی دور کعات میں سورۃ فاتحہ اور دوسورتیں پڑھتے اور آخری دور کعتوں میں صرف فاتحہ

پڑھتے۔ الحدیث) اور مصنف کا قول مذکورہ (یعنی اس فاتحہ پر اضافہ نہ کیا جائے) اور متعدد مشائخ کا قول جس طرح کافی وغیرہ میں ہے کہ پہلی دور کعات کے بعد صرف فاتحہ پڑھی جائے اور حدیث ابو سعید رضی اللہ تعالٰی عنہ کو محض جواز بیان پر محمول کیا جائے، اور فخر الاسلام کا قول کہ نبی اکرم صلی اللہ اللہ تعالٰی علیہ وسلم بعض جائز افعال کو تعلیم جواز وغیرہ کے لئے بجالائے جبکہ یہ آپ کے حق میں مکروہ نہیں جس طرح آپ جائز کو غالب اوقات بجالاتے تھے اور فعل عدم اولیٰ کے منافی نہیں ہوتا، اس گفتگو سے وہ تمام معاملہ ختم ہو جاتا ہے جو خیال کیا گیا تھا کہ ان مذکورہ دونوں احادیث اور اقوال مشائخ میں مخالفت ہے اھ شاید آپ پر یہ بات مخفی نہیں رہی کہ نفل مشروع کو مکروہ تنزیہی پر محمول کرنا نہایت ہی بعید ہے اور آخری رکعتوں

Fatawa Rizwia Volume 8

...and between the sayings of the Mashaikh, and Allah subhanahu knows best. End. Perhaps it is not hidden from you that interpreting a prescribed act as a supererogatory act (nafl) based on a 'makruh tanzihi' (disliked) act is very far-fetched. Reciting a Surah in the last two units of prayer is not an independent recommended act that is affected by a lack of priority due to an accidental factor, like a nafl prayer with some disliked elements. Rather, what is gained from the reasoning here is the recommendation of doing it. So how can it coexist with a lack of priority? What appears to this weak servant is that the sunnah of sufficing with Surah Al-Fatihah is only established from the Chosen One (peace and blessings of Allah be upon him) in the state of leading the prayer (Imamah). For it was not known from him (peace and blessings of Allah be upon him) in obligatory prayers except as an Imam, except very rarely. Thus, it is disliked for an Imam to add to it because it would lengthen it for the followers beyond the Sunnah. In fact, if he lengthened it to the point of being burdensome, it would be 'makruh tahrimi' (prohibitively disliked). As for the person praying alone, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said about him: 'Let him lengthen as much as he wishes.' Adding more is good, and there is nothing to oppose its goodness. Therefore, it is not far-fetched for it to be nafl (supererogatory) in his case. If we apply the words of the Mashaikh to the Imam, and the words of Imam Fakhr al-Islam and the correction of Al-Dhakhira and Al-Muhit to the person praying alone, harmony will be achieved. Success is through Allah. This is what I have, and Allah subhanahu wa ta'ala knows best.

[Footnote 1: Hilya al-Mahalli sharh Munya al-Musalli] Page 195 of 673

फतवा रज़विया खंड 8

...मशाइख के कथनों के बीच, और अल्लाह सुब्हानहू बेहतर जानता है। अंत। शायद आप पर यह स्पष्ट होगा कि एक सुन्नत कार्य को 'मक़रूहे तन्ज़ीही' के आधार पर नफ़्ल मानना बहुत दूर की बात है। अंतिम दो रकातों में सूरह पढ़ना कोई स्वतंत्र मुस्तहब कार्य नहीं है जिस पर किसी कारणवश प्राथमिकता की कमी आ जाए, जैसे कि कुछ मक़रूहात वाली नफ़्ल नमाज़। यहाँ तो दलील से सूरह पढ़ने की मुस्तहबियत साबित हो रही है, तो अब यह प्राथमिकता की कमी के साथ कैसे इकट्ठा हो सकता है। इस कमज़ोर बंदे पर यह बात स्पष्ट हुई है कि केवल फ़ातिहा पर बस करना नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इमामत की स्थिति में प्रमाणित है क्योंकि आपकी जो भी फ़र्ज़ नमाज़ नक़ल की गई है वह इमाम होने की स्थिति में ही है। सिवाय बहुत ही कम मौकों के जब आपने अकेले नमाज़ पढ़ी हो। इसलिए इमाम के लिए फ़ातिहा पर अधिक पढ़ना मक़रूह होगा क्योंकि यहाँ मुक़्तदियों पर सुन्नत से अधिक लम्बाई होगी और अगर मुक़्तदियों पर बोझ पड़े तो यह मक़रूहे तहरीमी होगा। यदि व्यक्ति अकेला नमाज़ पढ़ रहा है तो उसके बारे में रसालत-पनाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का यह इरशाद है कि वह नमाज़ जितनी लंबी करना चाहे करे, और फ़ातिहा पर इज़ाफ़ा (बढ़ोतरी) खैर (भलाई) है और इसके खैर होने के ख़िलाफ़ कोई दलील भी नहीं है, तो मुन्फ़रिद (अकेला नमाज़ पढ़ने वाला) के हक़ में इस इज़ाफ़े का नफ़्ल होना कोई अचंभा नहीं है। अगर हम मशाइख की बातों को इमाम पर और इमाम फ़ख़्रुल इस्लाम और तसहीह़े ज़खीरा व मुहीत को मुन्फ़रिद पर लागू करें तो अनुकूलता पैदा हो जाएगी। और तौफ़ीक़ देने वाला अल्लाह ही है और यह मेरे नज़दीक है। अल्लाह तआला ही बेहतर जानने वाला है।

[पाद टिप्पणी 1: ह़ुलियतुल मह़ल्ली शरह़ मुनियतुल मुसल्ली] पृष्ठ 673 में से 195

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

وبین اقوال المشائخ واللہ سبحنہ اعلم اہ ولعلک لا یخفی علیک ان حمل المشروع نفلاً علی مکروہ تنزیہا مستبعد جداً وقرأۃ السورۃ فی الاخر یین لیست فعلاً مستحباً مستقلاً یعتریہ عدم الاولویۃ بعارض کصلوۃ نافلۃ مع بعض المکروہات وانما المستفاد من العلۃ ہہنا ہو استحباب فعلہا فکیف یجامع عدم الاولویۃ والذی یظہر للعبد الضعیف ان سنیۃ الاقتصار علی الفاتحۃ انما تثبت عن المصطفی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فی الامامۃ فانہ لم یعہد منہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم صلوۃ مکتوبۃ الا اماماً الانادراً فی غایۃ الندرۃ فیکرہ للامام الزیادۃ علیہا لا طالتہ علی مقتدین فوق السنۃ بل لو اطال الی حد الاستثقال کرہ تحریماً اما المنفرد فقد قال فیہ النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فلیطول ماشاء وزیادۃ خیر ولم یعرضہ مایعارض خیریتہ فلا یبعد ان یکون نفلاً فی حقہ فان حملنا کلام المشائخ علی الامام وکلام الامام فخر الاسلام تصحیح الذخیرۃ والمحیط علی المنفرد حصل التوفیق وباللہ التوفیق ہذا ما عندی واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم۔

میں سورت کا پڑھنا مستقل فعل مستحب نہیں کہ اسے کسی عارضہ کی وجہ سے عدم اولویت لاحق ہو جیسے کہ نفل نماز کسی مکروہ پر مشتمل ہو اور یہاں علت سے قرات سورت کا استحباب ثابت ہو رہا ہے تو اب یہ عدم اولویت کے ساتھ کیسے جمع ہو سکتا ہے۔ اس عبد ضعیف پر یہ چیز واضح ہوئی ہے کہ فاتحہ پر اکتفا کرنا نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے امامت کی صورت میں منقول ہے کیونکہ آپ کی فرض نماز جو بھی منقول ہے وہ امام ہونے کی صورت میں ہی ہے البتہ شاذ و نادر ہی کوئی فرض نماز اس کے علاوہ ہو گی لہذا امام کے لئے فاتحہ پر اضافہ مکروہ ہوگا کیونکہ یہاں مقتدیوں پر سنت سے بڑھ کر طوالت کی کہ مقتدیوں پر گراں گزری تو یہ کراہت تحریمی ہو گی۔ اگر آدمی تنہا نماز ادا کر رہا ہے تو اس میں رسالتمآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا

یہ ارشاد گرامی ہے کہ نماز جتنی لمبی کرنا چاہے کرے، اور فاتحہ پر اضافہ خیر ہے اور اس کے خیر ہونے کے خلاف کوئی دلیل بھی نہیں تو منفرد کے حق میں اس اضافہ کا نفل ہونا بعید نہیں ، اگر ہم کلام مشائخ کو امام پر اور امام فخر الاسلام اور تصحیح ذخیرہ اور محیط کو منفرد پر محمول کر لیں تو موافقت پیدا ہو جائے گی اور توفیق دینے والا اللہ ہی ہے اور یہ میرے نزدیک ہے۔ اللہ تعالیٰ ہی خوب جاننے والا ہے

(1 حلیہ المحلی شرح منیہ المصلی) صفحہ 195 از 673

Fatawa-e-Razawiyya Volume 8

Issue 1231: From Atrowli, District Aligarh, Madrasa Islamia, sent by Hafiz Abdul Karim Sahib, teacher, 8 Jamadi al-Akhira 1322 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: after At-Tahiyyat, should the prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw) be performed after one salam with the Imam, or after turning for salam to both sides?

The Answer: It should be after one salam; turning for the second salam is prohibited, to the extent that if one intentionally turns for both, the prostration of forgetfulness cannot be performed and repeating the prayer will remain obligatory. It is stated in Durr-e-Mukhtar: "It is obligatory after only one salam towards the right, and this is the most correct view - Bahr. Based on this, if one performs both salams, the prostration (of forgetfulness) is waived, etc." [Translation provided in the text:] It is obligatory only after the salam to the right side, and this is the most correct. Bahr. And if prostration of forgetfulness was necessary and one turned for salam to both sides, the prostration will be waived, etc. (T)

In Radd-ul-Muhtar, it is stated: "Based on this, it is mandatory to omit the second salam, etc. And Allah Ta'ala knows best, and His knowledge is most complete and wise." [Translation provided in the text:] If prostration of forgetfulness is necessary, then omitting the second salam is essential, etc. And Allah Ta'ala knows best, and His knowledge is most complete and wise. (T)

Issue 1232: Sent by Hafiz Abdullah Khan, village Thariya, District Bareilly, 29 Jamadi al-Akhira 1334 AH. If a person praying only recites Al-Hamd (Fatiha) in any rak'ah and forgets to add a surah, and then performs the prostration of forgetfulness, will the prayer be valid or not? Clarify and be rewarded.

The Answer: If someone forgets to add a surah and remembers it while in Ruku (bowing), they should immediately stand up, recite the surah, then repeat the Ruku, and then complete the prayer. If they remember after Ruku while in Sajdah (prostration), they should just perform the prostration of forgetfulness at the end; the prayer will be valid and will not need to be repeated. And Allah Ta'ala knows best.

Issue 1233: From Taunsa Sharif, District Dera Ghazi Khan, questioned by Maulana Molvi Ahmed Bakhsh, resident of Dera Ghazi Khan, manager of Madrasa Mahmuda Mahmudiya, 24 Dhu al-Qi'dah 1346 AH. My master, my support, my object of belief, and the one on whom I rely, the ocean of understanding, the vast ocean of

knowledge, the exceptionally intelligent and clever, Hazrat Mujaddid of the present century...

---

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Prostration of Forgetfulness, printed at Mujtabai Press, Delhi, India 1/101.
2. Radd-ul-Muhtar, Chapter on Prostration of Forgetfulness, H.M. Saeed Company, Karachi 2/8.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द अष्टम (8)

मसला 1231: अतरौली ज़िला अलीगढ़ मदरसा इस्लामिया से, मुरसला हाफ़िज़ अब्दुल करीम साहब मुदर्रिस, 8 जमादी अल-आख़िरा 1322 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि इमाम के साथ अकेले अत-तहियात के बाद सज्दा-ए-सहव एक सलाम के बाद करना चाहिए या दोनों तरफ़ सलाम फेर कर?

अल-जवाब (उत्तर): एक सलाम के बाद करना चाहिए, दूसरा सलाम फेरना मना है, यहाँ तक कि अगर कोई जानबूझकर दोनों तरफ़ फेर देगा तो सज्दा-ए-सहव नहीं हो सकेगा और नमाज़ दोबारा पढ़ना वाजिब रहेगा। दुर्र-ए-मुख़्तार में है: "सिर्फ़ दाईं तरफ़ एक सलाम के बाद वाजिब है और यही सबसे सही (असह) कौल है - बहर। और इसी बिना पर अगर उसने दोनों सलाम फेर दिए, तो सज्दा साक़ित (ख़त्म) हो जाएगा आदि।" [ग्रंथ में दिया गया अनुवाद:] केवल दाईं ओर सलाम के बाद वाजिब है और यही अधिक सही है। बहर। और अगर सज्दा-ए-सहव लाज़िम था और उसने दोनों तरफ़ सलाम फेर दिया तो सज्दा साक़ित हो जाएगा आदि। (त)

रद्दुल मुहतार में है: "और इस पर लाज़िम है कि दूसरा सलाम छोड़ दे आदि। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म सबसे मुकम्मल और पुख्ता है।" [ग्रंथ में दिया गया अनुवाद:] अगर सज्दा-ए-सहव लाज़िम हो तो दूसरे सलाम को छोड़ना ज़रूरी होता है आदि। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म सबसे मुकम्मल और पुख्ता है। (त)

मसला 1232: मुरसला हाफ़िज़ अब्दुल्लाह ख़ाँ, मौज़ा थरिया ज़िला बरेली, 29 जमादी अल-आख़िरा 1334 हिजरी। नमाज़ी किसी रकअत में सिर्फ़ अल्हम्दु (सूरह फ़ातिहा) पढ़े और भूलवश सूरत न मिलाए और फिर सहव का सज्दा करे तो नमाज़ हो जाएगी या नहीं? बयान फ़रमाएं सवाब पायें।

अल-जवाब (उत्तर): जो सूरत मिलाना भूल गया, अगर उसे रुकू में याद आया तो फ़ौरन खड़ा होकर सूरत पढ़े फिर रुकू दोबारा करे फिर नमाज़ पूरी करे। और अगर रुकू के बाद सज्दा में याद आया तो सिर्फ़ आख़िर में सज्दा-ए-सहव कर ले, नमाज़ हो जाएगी और उसे दोहराना नहीं होगा। वल्लाह तआला आलम (अल्लाह तआला बेहतर जानता है)।

मसला 1233: तौंसा शरीफ़ ज़िला डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ से, मसूला मौलाना मौलवी अहमद बख़्श साकिन डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ, मोहतमिम मदरसा महमूदा महमूदिया, 24 ज़िल-कादा 1346 हिजरी। सैयदी सन्दी

एतिकादी व अलैहि एतमादी अल-बहरुल फह्हाम अल-बहरुल अल्लामा अल-अलमई अल-लौज़ई हज़रत मुजद्दिद-ए-मिल्लत वल-हज़रा...

---

1. दुर्र-ए-मुख़्तार बाब सुजूदुस सहव, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई देहली भारत 1/101
2. रद्दुल मुहतार बाब सुजूदुस सहव, एच.एम. सईद कंपनी कराची 2/8

पृष्ठ 196 (673 में से)

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۲۳۱: از اترولی ضلع علی گڑھ مدرسہ اسلامیہ مرسلہ حافظ عبدالکریم صاحب مدرس ۸ جمادی الآخرہ ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ امام کے ساتھ اکیلا بعد التحیات کے سجدہ سہو کا ایک سلام بعد کرنا چاہئے یا کہ دونوں طرف سلام پھیر کے؟

الجواب: ایک سلام کے بعد چاہئے، دوسرا سلام پھیرنا منع ہے، یہاں تک کہ اگر دونوں قصداً پھیر دے گا سجدہ سہو نہ ہوسکے گا اور نماز پھیرنا واجب رہے گا۔ درمختار میں ہے: یجب بعد سلام واحد عن یمینہ فقط وھو الاصح بحر وعلیہ لو اتي بتسلیمیتین سقط عنہ السجود ۱ الخ فقط دائیں جانب سلام کے بعد واجب ہے اور یہی اصح ہے۔ بحر۔ اور اگر سجدہ سہو لازم تھا اور اس نے دونوں طرف سلام پھیر دیا تو سجود ساقط ہو جائیگا الخ (ت)

ردالمحتار میں ہے: وعلیہ فیجب ترك التسلیمۃ الثانیۃ ۲ الخ۔ واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ اتم واحکم اگر سجدہ سہو لازم ہو تو دوسرے سلام کا ترک ضروری ہوتا ہے الخ۔ واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ اتم واحکم (ت)

مسئلہ ۱۲۳۲: مرسلہ حافظ عبداللہ خاں موضع تھریا ضلع بریلی ۲۹ جمادی الآخرہ ۱۳۳۴ھ نمازی کسی رکعت میں صرف الحمد پڑھے اور سہواً سورت نہ ملائے اور پھر سہو کا سجدہ کرے تو نماز ہو جائیگی یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: جو سورت ملانا بھول گیا اگر اسے رکوع میں یاد آیا تو فوراً کھڑے ہو کر سورت پڑھے پھر رکوع دوبارہ کرے پھر نماز تمام کرے اور اگر رکوع کے بعد سجدہ میں یاد آیا تو صرف اخیر میں سجدہ سہو کرلے نماز ہو جائے گی اور پھیرنی نہ ہوگی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳۳: از تونسہ شریف ضلع ڈیرہ غازی خاں مسئولہ مولنا مولوی احمد بخش ساکن ڈیرہ غازی خاں مہتمم مدرسہ محمودہ محمودیہ ۲۴ ذیقعدہ ۱۳۴۶ھ سیدی سندی اعتقادی وعلیہ اعتمادی البحرالفہام البحرالعلامۃ الألمعی اللوذعی حضرت مجدد المائۃ الحاضرہ

---

1 در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱ / ۱۰۱ 2 رد المحتار باب سجود السہو ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۸

Volume 8 Fatawa Razawiyya

May Allah perpetuate their blessings and titles until the Day of Judgment. Performing the manners of humility and submission, I submit that for this humble person, the well-being of your noble temperament and the fulfillment of the needs of your essence, which combines all virtues, are the most important goals and greatest desires at all times. During these days, an incident occurred in which some contemporaries are in disagreement. This will become clear from my detailed, albeit imperfect, writing, which is sent to your holy service for the purpose of seeking the correct path. Since this humble one has no place of trust besides you, I have taken the liberty to request that, out of your benevolence, you honor and distinguish this humble one with a reasoned and detailed correct answer. It would be a great kindness if you could inform me of your sound opinion at the end of this writing and adorn it with your signature.

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

O my Lord! In You is my refuge, and from You is success. O Compassionate One! O Companion! Deliver me from every distress.

(O my noble Lord! You alone are my support and from You alone comes success. O Compassionate and Companion! Grant me deliverance from suffering.)

Problem: If a follower (mu'tam) commits an error (sahw), repeating the prayer is not obligatory upon him. This is because all jurists have explicitly stated in original texts and commentaries that prostration for forgetfulness (sajdah sahw) is not mandatory for a follower due to his own error. Because if he were to perform the prostration alone, it would necessitate opposing the imam, and if the imam were to prostrate with him, the situation would be reversed—the principal (imam) would become a follower and the follower (mu'tam) would become the principal. From this statement, it is inferred as if no such defect or dislikedness (karahah) occurred in the follower's prayer for which prostration for forgetfulness would be mandatory. Therefore, on this basis, repeating the prayer is not necessary because repetition depends on the existence of dislikedness. Since there is no dislikedness, there is no repetition. (T) Allama Shami has quoted from 'Nahr al-Faiq' that:

"Then, the implication of their words is that he should repeat it due to the establishment of dislikedness, alongside the impossibility of compensation."[1] End. (T)

From the words of the jurists, it is known that the prayer will be repeated due to the proof of dislikedness when it is difficult to compensate for the deficiency. (T)

From this, it is known that the non-obligation of the prostration for forgetfulness is based on the fact that performing it is impossible, not that there is no defect or dislikedness in his prayer. Rather, the prayer is disliked (makruh), and according to the established universal principle of the jurists that "any prayer performed with dislikedness must be repeated," repetition is necessary.

---

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Sajdah al-Sahw, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/82.

खंड 8 फ़तावा रज़विया

अल्लाह उनकी बरकतों और उपाधियों को कयामत के दिन तक कायम रखे। विनम्रता और अधीनता के साथ निवेदन है कि इस खाकसार (तुच्छ) के लिए हर पल आपके नेक स्वभाव की खैरियत और गुणों से भरपूर आपके व्यक्तित्व की आवश्यकताओं की पूर्ति ही सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य और सबसे बड़ी इच्छा है। इन दिनों एक घटना घटी जिसमें कुछ समकालीन लोग असहमत हैं। यह मेरे इस विस्तृत लेकिन अपूर्ण लेखन से स्पष्ट होगा, जो सही मार्ग की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से आपकी पवित्र सेवा में भेजा जा रहा है। चूंकि आपके अलावा इस खाकसार का कोई अन्य भरोसेमंद स्थान नहीं है, इसलिए मैंने आपको यह कष्ट दिया है कि अपनी उदारता से एक तर्कसंगत और विस्तृत सही उत्तर देकर इस खाकसार को सम्मानित और विशिष्ट करें। यह अत्यंत कृपा होगी यदि आप इस लेखन के अंत में अपनी सही राय से अवगत कराएं और इसे अपने विशेष हस्ताक्षरों से सुशोभित करें।

बिस्मिल्लाह हिर-रहमान निर-रहीम (अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और कृपाशील है)।

ऐ मेरे रब! तू ही मेरा सहारा है और तुझ ही से तौफ़ीक़ (सफलता) है। ऐ शफ़ीक़! ऐ रफ़ीक़! मुझे हर कठिनाई से मुक्ति प्रदान कर।

(ऐ मेरे रब करीम! तू ही मेरा सहारा है और तुझ ही से तौफ़ीक़ है। ऐ शफ़ीक़ और रफ़ीक़! मुझे कष्ट से मुक्ति प्रदान कर।)

मसला: यदि मुअतम (अनुयायी) से सहव (भूल) हो जाए, तो उस पर नमाज़ को दोहराना वाजिब नहीं है। क्योंकि सभी फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने मूल ग्रंथों और व्याख्याओं में स्पष्ट किया है कि मुअतम पर अपनी भूल के कारण सजदा-ए-सहव अनिवार्य नहीं है। क्योंकि यदि वह अकेले सजदा-ए-सहव करता है, तो इमाम का विरोध अनिवार्य हो जाएगा, और यदि इमाम भी उसके साथ सजदा करे, तो मामला इसके विपरीत हो जाएगा, यानी जो मूल (इमाम) है वह अनुयायी बन जाएगा और अनुयायी मूल बन जाएगा। इस वर्णन से यह निष्कर्ष निकाला जाएगा कि मानो मक़्तदी की नमाज़ में ऐसा कोई दोष या कराहत (नापसंदगी) उत्पन्न नहीं हुई है जिसके निवारण के लिए सजदा-ए-सहव अनिवार्य हो। अतः इस आधार पर नमाज़ दोहराना आवश्यक नहीं है क्योंकि दोहराना कराहत के अस्तित्व पर निर्भर है। जब कराहत नहीं तो दोहराना नहीं (त)। अल्लामा शामी ने 'नहरुल फ़ाइक' से उद्धृत किया है कि:

"फिर, उनकी बातों का निष्कर्ष यह है कि वह कराहत के सिद्ध होने के कारण उसे दोहराए, जबकि क्षतिपूर्ति करना कठिन हो।"[1] समाप्त। (त)

फ़ुक़हा के शब्दों से पता चलता है कि कराहत के प्रमाण के कारण नमाज़ दोहराई जाएगी जब कमी को पूरा करना कठिन हो। (त)

जिससे यह पता चलता है कि सजदा-ए-सहव की अनिवार्यता न होना इस बात पर आधारित है कि इसे करना असंभव है, न कि इस पर कि उसकी नमाज़ में कोई दोष या कराहत उत्पन्न नहीं हुई। बल्कि नमाज़ मकरूह (नापसंद) है और फ़ुक़हा के सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार कि "जो नमाज़ कराहत के साथ पढ़ी गई हो, उसे दोहराना अनिवार्य है," इसे दोहराना अनिवार्य है।

---

[1] रद्दुल मुहतार, अध्याय: सजदा-ए-सहव, मुद्रित: एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/82.

पृष्ठ 197/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

ادام اللہ برکاتہم والقابہم الی یوم الدین آداب عجز و نیاز بجا لاکر عرض کرتا ہوں کہ خاکسار کو ہر لحظہ عافیت مزاج شریف و قضا ئے حاجات ذات مستجمع الصفات اہم مآرب و اعظم مطالب ہے ان ایام میں ایک واقعہ پیش آیا جس میں بعض ابناء الزمان مخالف ہیں اور مفصل طور پر میری اس تحریر ناقص سے جو بغرض است صواب ابلاغ خدمت اقدس ہے واضح ہو گا چونکہ جناب کے بغیر خاکسار کا کوئی محل اعتماد نہیں اس لئے تکلیف دی ہے کہ براہ بندہ نوازی جواب باصواب سے جو مدلل و مفصل ہو خاکسار کو معزز و ممتاز فرمائیں عین عنایت ہوگی اور اس تحریر کے اخیر میں اپنی رائے صائب سے آگاہ فرما کر بدستخط خاص مزین فرمادیں۔

بسم اللہ الرحمن الرحیم۔

یارب بك الاعتصام ومنك التوفیق ویاشفیق یارفیق نجنی من کل ضیق

(اے میرے رب کریم ! تو ہی میرا آسرا ہے اور تجھ ہی سے توفیق ہے۔ اے شفیق و رفیق! مجھے تکلیف سے نجات عطا فرما)

مسئلہ: اگر موتم سے سہو ہو تو اعادہ صلوٰۃ اُس پر واجب نہیں کیونکہ جمیع فقہاء نے متون اور شروح میں تصریح فرمائی ہے کہ موتم پر اپنے سہو سے سجدہ سہو لازم نہیں کیونکہ اگر وہ اکیلہ سجدہ سہو ادا کرے تو مخالفت امام لازم ہے اور اگر امام بھی اس کے ساتھ سجدہ کرے تو معاملہ برعکس ہو جاتا ہے یعنی اصل تابع اور تابع اصل بن جاتا ہے، اس بیان سے یہ مستفاد کیا جائے گا کہ گویا مقتدی کی نماز میں کوئی ایسا نقص واقع نہیں ہوا یا کراہت جس کے جبر کے لئے سجدہ

سہو واجب ہو پس اس بناء پر اعادہ لازم نہیں کیونکہ اعادہ وجود کراہت پر متفرع ہے واذ لیس فلیس (جب کراہت نہیں تو اعادہ نہیں ۔ ت) علامہ شامی نے نہر فائق سے نقل کیا ہے کہ:

ثم مقتضی کلامھم انہ یعیدھا بثبوت الکراھۃ مع تعذر الجابر ۱ انتہی۔

کلام فقہاء سے معلوم ہوتا ہے کہ نماز ثبوت کراہت کی وجہ سے لوٹائی جائے گی جبکہ نقصان کو پورا کرنا دشوار ہو انتہی۔ (ت)

جس سے معلوم ہوتا ہے کہ عدم لزوم سجدہ سہو اس امر پر مبنی ہے کہ اس کا ادا کرنا ناممکن ہے نہ یہ کہ اس کی نماز میں کوئی نقص یا کراہت واقع نہیں بلکہ نماز مکروہ ہے اور حسب کلیہ مسلمہ فقہاء کہ "جو نماز کراہت سے ادا ہو اس کا اعادہ لازم ہے" اعادہ لازم ہے

---

1 رد المحتار باب سجود السھو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۸۲/۲

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

Answer: If it were so, it would imply that the jurists (Fuqaha) opposed the hadiths, which suggests that the Imam bears the responsibility of the prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw) for the follower, just as he does for the recitation (Qira'at). First Hadith: It is in Mishkat Sharif:

[Table Header] Arabic: عن ابی هریرة رضی الله تعالی عنه قال قال رسول الله صلی الله تعالی علیه وسلم الامام ضامن (الحدیث) 1 Urdu Translation: It is narrated from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "The Imam is a guarantor (Damin)." (Al-Hadith) (T)

This proves that the Imam is responsible for the follower's prayer. If an opponent claims that the prostration of forgetfulness is excluded from this guarantee, then against that is the statement of Maulana Ali Qari (mercy of Allah be upon him) in his commentary 'Mirqat': "i.e., he is responsible for completing the prayer of those following him." 2 (i.e., the Imam is a guarantor for the completion of the followers' prayer. T) And quoting from Ibn Hajar (may Allah be pleased with him):

[Table Header] Arabic: والضمانة اما لحملهم نحو القراءة عن المسبوق او السهو عن الساهی 3۔ Urdu Translation: The meaning of the Imam being a guarantor is that he bears the responsibility for the recitation on behalf of the latecomer (Masbuq) and for the mistake on behalf of the forgetful one. (T)

And the statement of Allama Aini in the commentary of Sahih Bukhari:

[Table Header] Arabic: یعنی ان صلوتهم فی ضمن صلوة الامام صحة و فسادا 4 Urdu Translation: Meaning the followers' prayers are encompassed within the Imam's prayer in terms of validity and invalidity. (T)

And also his statement:

[Table Header] Arabic: ونستدل بما فی صحیح ابن حبان الامام ضامن بمعنی یضمنها صحة و فسادا 5۔ Urdu Translation: And we argue from this narration in Sahih Ibn Hibban that "the Imam is a guarantor", meaning he is the guarantor of the prayer's correctness and defectiveness. (T)

And also his statement:

[Table Header] Arabic: وقال ابن الملك لانهم المتكفلون ای الائمہ لهم Urdu Translation: And Ibn al-Malak said that the Imams are responsible for the corruption or soundness of their followers' prayers and for the prayer itself.

---

1 Mishkat al-Masabih, Book on the Virtue of Adhan and Answering the Mu'adhin, Second Chapter, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, India, p. 65. 2 Mirqat Sharh Mishkat, Book on the Virtue of Adhan and Answering the Mu'adhin, Second Chapter, printed by Maktaba Imdadia, Multan, 3/165. 3 Mirqat Sharh Mishkat, Book on the Virtue of Adhan and Answering the Mu'adhin, Second Chapter, printed by Maktaba Imdadia, Multan, 3/165. 4 Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Book on When the Imam does not Complete and those behind him complete, printed by Idara al-Tiba'a al-Munira, Beirut, 5/229. 5 Umdat al-Qari Sharh Bukhari, Book on When the Imam Prolongs and a man has a need etc., printed by Idara al-Tiba'a al-Munira, Beirut, 5/239.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द आठवीं

उत्तर: यदि ऐसा हो तो इसका अर्थ यह होगा कि न्यायविदों (फ़ुक़हा) ने उन हदीसों का विरोध किया जिनसे यह अभिप्राय निकलता है कि इमाम मुक़्तदी (अनुयायी) से सजदा-ए-सह्व (भूल की सुस्ती के लिए सज्दा) का भार अपने ऊपर ले लेता है, जैसे कि क़िरात (पाठ) का। पहली हदीस: मिश्कात शरीफ़ में है:

[तालिका शीर्षक] अरबी: عن ابی هریرة رضی الله تعالی عنه قال قال رسول الله صلی الله تعالی علیه وسلم الامام ضامن (الحدیث) 1 उर्दू अनुवाद: हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "इमाम ज़ामिन (ज़िम्मेदार) होता है।" (अल-हदीस) (त)

जिससे यह सिद्ध होता है कि इमाम मुक़्तदी की नमाज़ का उत्तरदायी है। यदि कोई विरोधी यह दावा करे कि सजदा-ए-सह्व इस ज़िम्मेदारी से बाहर है, तो उसके लिए मौलाना अली क़ारी (रहमतुल्लाहि अलैहि) का कथन अपनी शरह (व्याख्या) 'मिरक़ात' में है: "अर्थात् वह अपने पीछे नमाज़ पढ़ने वालों की नमाज़ को पूरा करने का ज़िम्मेदार होता है।" 2 (यानी इमाम मुक़्तदियों की नमाज़ को पूरा करने के लिए कफ़ील होता है। त) और इब्ने हजर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के हवाले से:

[तालिका शीर्षक] अरबी: والضمانة اما لحملهم نحو القراءة عن المسبوق او السهو عن الساهی 3. उर्दू अनुवाद: इमाम के ज़ामिन होने का अर्थ यह है कि वह मसबूक़ (देर से आने वाले) की ओर से क़िरात और भूलने वाले की भूल (सह्व) का ज़ामिन होता है। (त)

और अल्लामा ऐनी का कथन सहीह बुखारी की शरह में:

[तालिका शीर्षक] अरबी: 4 یعنی ان صلوتهم فی ضمن صلوة الامام صحة و فسادا उर्दू अनुवाद: अर्थात् मुक़्तदियों की नमाज़ सेहत (शुद्धता) और फ़साद (अशुद्धता) के लिहाज़ से इमाम की नमाज़ के अधीन है। (त)

और साथ ही उनका कथन:

[तालिका शीर्षक] अरबी: ونستدل بما فی صحیح ابن حبان الامام ضامن بمعنی یضمنها صحة و فسادا 5. उर्दू अनुवाद: और हम सहीह इब्न हिब्बान की इस रिवायत से दलील देते हैं कि 'इमाम ज़ामिन है' जिसका अर्थ है कि वह नमाज़ की सेहत और फ़साद का ज़ामिन होता है। (त)

और उनका यह भी कथन:

[तालिका शीर्षक] अरबी: وقال ابن الملك لانهم المتكفلون اى الائمہ لهم उर्दू अनुवाद: और इब्ने अल-मलिक ने कहा कि इमाम अपने मुक़्तदियों की नमाज़ के फ़साद और सेहत और नमाज़ के लिए ज़िम्मेदार होते हैं।

---

1 मिश्कात अल-मसाबीह, अज़ान की फ़ज़ीलत और मुअज़्ज़िन को जवाब देने का अध्याय, दूसरा खंड, मतबा मुजतबाई, दिल्ली, भारत, पृष्ठ 65 द्वारा मुद्रित। 2 मिरक़ात शरह मिश्कात, अज़ान की फ़ज़ीलत और मुअज़्ज़िन को जवाब देने का अध्याय, दूसरा खंड, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 3/165 द्वारा मुद्रित। 3 मिरक़ात शरह मिश्कात, अज़ान की फ़ज़ीलत और मुअज़्ज़िन को जवाब देने का अध्याय, दूसरा खंड, मकतबा इमदादिया, मुल्तान, 3/165 द्वारा मुद्रित। 4 उम्दत अल-क़ारी शरह बुखारी, अध्याय जब इमाम पूरा न करे और उसके पीछे वाले पूरा करें, इदारा अल-तिबा'आ अल-मुनीरा, बेरूत, 5/229 द्वारा मुद्रित। 5 उम्दत अल-क़ारी शरह बुखारी, अध्याय जब इमाम लंबा करे और आदमी की ज़रूरत हो आदि, इदारा अल-तिबा'आ अल-मुनीरा, बेरूत, 5/239 द्वारा मुद्रित।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

جواب: اگر ایسا ہو تو لازم آتا ہے کہ فقہاء نے احادیث کی مخالفت کی جس سے یہ مفہوم ہے کہ امام مقتدی سے سجدہ سہو کو اٹھا لیتا ہے جیسا کہ قراءت کو۔ حدیث اوّل : مشکوۃ شریف میں ہے :

عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم الامام ضامن

(الحدیث) 1 | حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: امام ضامن ہوتا ہے (الحدیث) (ت)

جس سے ثابت ہوتا ہے کہ امام مقتدی کی نماز کا متکفل ہے اگر مخالف سجود سہو کی اس کفالت سے خارج ہونے کا دعوٰی کرے تو اس کے لئے مولانا علی قاری رحمۃ اللہ علیہ کا قول اپنی شرح مرقاۃ میں ای متکفل لصلوۃ المؤتمین بالاتمام 2 (یعنی امام مقتدیوں کی نماز کے اتمام کے لئے کفیل ہوتا ہے۔ت) اور ناقلاً عن ابن حجر رضی اللہ تعالٰی عنہ :

والضمانۃ اما لحملھم نحو القراءۃ عن المسبوق او السھو عن الساھی 3۔ | امام کے ضامن ہونے کا یہ معنی ہے کہ وہ مسبوق کی طرف سے قرات اور بھول جانے والے کے سہو کا ضامن ہوتا ہے۔ (ت)

اور علامہ عینی کا قول شرح صحیح بخاری میں :

یعنی ان صلوتھم فی ضمن صلوۃ الامام صحۃ و فسادا 4 | یعنی مقتدیوں کی نماز صحت اور فساد کے لحاظ سے امام کی نماز کے تابع ہے۔ (ت)

ونیزیہ ان کا قول:

ونستدل بما فی صحیح ابن حبان الامام ضامن بمعنی یضمنها صحۃ و فسادا 5- | اور ہم صحیح ابن حبان کی اس روایت سے استدلال کرتے ہیں کہ امام ضامن ہے یعنی وہ نماز کی صحت اور فساد کا ضامن ہوتا ہے (ت)

اور نیز ان کا قول :

وقال ابن الملك لانهم المتكفلون ای الائمہ لهم | اور ابن الملک نے کہا کہ اگر اپنے مقتدیوں کی نماز کے فساد و صحت اور نماز کے

---

1 مشکوۃ المصابیح باب فضل الاذان واجابت المؤذن فصل ثانی مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ص ۶۵ 2 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب فضل الاذان واجابت المؤذن فصل ثانی مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۳/ ۱۶۵ 3 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب فضل الاذان واجابت المؤذن فصل ثانی مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۳/ ۱۶۵ 4 عمدۃ القاری شرح بخاری باب اذا لم یتم الامام واتم من خلفہ مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ منیرہ بیروت ۵/ ۲۲۹ 5 عمدۃ القاری شرح بخاری باب اذا طول الامام وکان للرجل حاجۃ الخ مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ منیرہ بیروت ۵ / ۲۳۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

The correctness of their prayer, its corruption, its perfection, and its deficiency are judged by the principle of being followed and following. 1	**The leader (Imam) and the follower are responsible for the completeness or deficiency [of the prayer]; this ruling is based on following. (T)**

If it is not sufficient then it is confusing - Second Hadith: It is mentioned in Maraqi al-Falah: | He said, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: The Imam is a guarantor for you; he carries your forgetfulness and your recitation. 2 | The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: The Imam is a guarantor for you and he takes upon himself your forgetfulness and recitation. (T) | |---|---|

According to this Hadith, Hazrat Ibn Hajar (may Allah be pleased with him) has explained the first Hadith mentioned earlier, which was translated in the name of Haq as "Sahu aur Imam bargirad" (The Imam takes upon himself his [the follower's] forgetfulness). Furthermore, regarding this Hadith, Hazrat Imam Tahtawi (may Allah have mercy on him) states that mentioning the removal of recitation along with the removal of forgetfulness is an indication that just as there is no sin on the follower for leaving out recitation, similarly, there is no sin for omitting [the prostration of] forgetfulness. After quoting the previously mentioned passage from Nahr al-Faiq, he says: "And you have known the meaning of the Hadith as explained by some of the virtuous." 3 (T) This means it is contrary to the meaning of the Hadith reported from Nahr. Third Hadith: Allama Shami has quoted from Mi'raj al-Diraya that to prove the non-necessity of the prostration of forgetfulness (Sajda Sahw), it is better to deduce from the Hadith narrated by Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with him) from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): "There is no forgetfulness [prostration] upon the one who is behind the Imam." 4 (T) Fourth Hadith: Hazrat Qutb Sha'rani (may Allah be pleased with him) states in Kashf al-Ghummah on pages 'a' and 'a': | And they would not prostrate for their forgetfulness behind the Imam, and they would say: The Imam carries the doubts of those behind him. | The Companions did not perform the prostration of forgetfulness behind the Imam due to their own forgetfulness, and they would say that the Imam carries the doubts of his followers. | |---|---|

Footnotes: 1 Umdat al-Qari 2 Maraqi al-Falah with Hashiyah at-Tahtawi, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub

Karachi, p. 252. 3 Hashiyah at-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 252. 4 Radd al-Muhtar, Chapter on Prostrations of Forgetfulness, published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/82.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

उनकी नमाज़ की शुद्धता, उसकी भ्रष्टता, उसकी पूर्णता और उसकी कमी का निर्णय अनुगामी और अनुसरणकर्ता के सिद्धांत से होता है। 1	**नेता (इमाम) और अनुयायी [नमाज़ की] पूर्णता या कमी के लिए जिम्मेदार हैं; यह निर्णय अनुसरण पर आधारित होगा। (त)**

यदि यह पर्याप्त नहीं है तो यह भ्रमित करने वाला है - दूसरी हदीस: मराक़ी अल-फ़लाह में है: | उन्होंने कहा, अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने कहा: इमाम आपके लिए ज़ामिन (गारंटर) है; वह आपकी भूल और आपके पाठ का बोझ उठाता है। 2 | अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) ने फरमाया: इमाम तुम्हारे लिए ज़ामिन है और वह तुम्हारी भूल और क़िरात (पाठ) को उठा लेता है। (त) | |---|---|

इसी हदीस के अनुसार हज़रत इब्न हजर (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने पहली हदीस की व्याख्या की है जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है और जिसका अनुवाद हक के नाम पर "सहू और इमाम बरगिरद" (इमाम उसकी भूल को उठा लेता है) के रूप में किया गया था। इसके अलावा इस हदीस के बारे में हज़रत इमाम तहतावी (अल्लाह उन पर दया करे) फरमाते हैं कि भूल को हटाने के साथ क़िरात को हटाने का उल्लेख करना इस बात का संकेत है कि जिस तरह मुक़्तदी पर क़िरात छोड़ने से कोई गुनाह नहीं है, उसी तरह भूल [के सजदे] को छोड़ने से भी कोई गुनाह नहीं है। इसके बाद नह्रुल फ़ाइक़ की पहले उल्लेखित इबारत को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं: "और आप हदीस का वह अर्थ जान चुके हैं जो कुछ गुणी लोगों ने बयान किया है।" 3 (त) यानी यह नह्र से उद्धृत हदीस के अर्थ के विपरीत है। तीसरी हदीस: अल्लामा शामी ने मेराज अद-दिराया से उद्धृत किया है कि सजदा सहू (भूल का सजदा) की अनिवार्यता न होने को साबित करने के लिए बेहतर है कि उस हदीस से तर्क लिया जाए जो हज़रत इब्न उमर (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो) से रिवायत की है: "जो इमाम के पीछे हो उस पर (सजदा) सहू नहीं है।" 4 (त) चौथी हदीस: हज़रत कुत्ब शेरानी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) कशफ़ अल-ग़ुम्मा में पृष्ठ 'अ' और 'अ' पर फरमाते हैं: | और वे इमाम के पीछे अपनी भूल के लिए सजदा नहीं करते थे, और वे कहते थे: इमाम अपने पीछे वालों के भ्रमों का बोझ उठाता है। | सहाबा अपनी भूल के कारण इमाम के पीछे सजदा नहीं करते थे और वे कहते थे कि इमाम अपने मुक़्तदियों के भ्रमों को वहन करता है। | |---|---|

फ़ुटनोट्स: 1 उम्दतुल क़ारी 2 मराक़ी अल-फ़लाह मअ हाशिया अत-तहतावी, बाब सुजूद अस-सहू, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. 252 3 हाशिया अत-तहतावी अला मराक़ी अल-फ़लाह, बाब सुजूद अस-सहू, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. 252 4 रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अस-सहू, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 2/82

पेज 199/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

صحة صلوتهم وفسادها وكمالها ونقصانها بحكم المتبوعية والتابعية 1

کامل وناقص ہونے کے ضامن ہوتے ہیں متبوع اور تابع کے اعتبار سے یہ حکم ہوگا۔(ت)

کفایت نہ کریں تو گوسر وحشت - حدیث دوم : مراقی الفلاح میں ہے : | قال قال رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیه وسلم الامام لکم ضامن یرفع عنکم سھوکم وقراءتکم 2 | رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: امام تمہارے لئے ضامن ہے اور تمہاری سہو اور قرات کو اٹھا لیتا ہے۔ (ت) |

|---|---|

اسی حدیث کے مطابق حضرت ابن حجر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے حدیث اول کی تفسیر فرمائی ہے جو پہلے ذکر ہوچکی ہے اور جس کا ترجمہ کب سے نام حق میں " سہو اور امام برگیرد" (اس کے سہو کو امام اٹھا لیتا ہے۔ت) سے کیا گیا نیز اس حدیث کے متعلق حضرت امام طحطاوی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ فرماتے ہیں کہ رفع سہو کے ساتھ رفع قراۃ کا ذکر کرنے سے یہ اشارہ ہے کہ جیسا کہ مقتدی پر ترک قراۃ سے کوئی گناہ نہیں اسی طرف سہو کے ترک کرنے سے بھی کوئی گناہ نہیں، اس کے بعد نہر فائق کی عبارت متقدمۃ الذکر نقل کرکے فرماتے ہیں : وقد علمت مفاد الحدیث افادہ بعض الافاضل 3 (آپ حدیث کا وہ معنیٰ جان چکے جو بعض افاضل نے بیان کیا ۔ت) یعنی کہ مفادِ حدیث کے مخالف ہے جو نہر سے منقول ہوا۔ حدیث سوم : علامہ شامی نے معراج الدرایہ سے نقل کیا ہے کہ عدمِ لزومِ سجدہ سہو کے ثابت کرنے کے لئے بہتر یہ ہے کہ اس حدیث سے استدلال کیا جائے جو حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے رسول اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے روایت کی : لیس علی من خلف الامام سہو 4 (جو امام کے پیچھے ہو اس پر (سجدہ) سہو نہیں۔ت) حدیث چہارم : حضرت قطب شعرانی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کشف الغمہ میں بہ صفحہ ع وع فرماتے ہیں : | وکانو

الا یسجدون لسھو ھم خلف الامام ویقولون الامام یحمل اوھام من خلفه	صحابہ اپنے سہو کی وجہ سے امام کے پیچھے سجدہ نہیں کرتے تھے اور یہ کہتے کہ امام اپنے مقتدیوں کے وہموں کو

حواشی: 1 عمدة القاری 2 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی باب سجود السہو مطبوعہ نور محمد کارخانه تجارت کتب کراچی ص ۲۵۲ 3 حاشیة الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجود السہو مطبوعہ نور محمد کارخانه تجارت کتب کراچی ص ۲۵۲ 4 رد المحتار باب سجود السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۸۲/۲

صفحہ 199 از 673

Fatawa Razawiya, Volume 8

...from the followers. And likewise, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to say: 'Whoever forgets behind the Imam, there is no prostration for forgetfulness (Sajdah Sahw) upon him, as his Imam suffices for him. But if the Imam forgets, then forgetfulness is upon him and upon those behind him.' ^1 End.

He (the Imam) takes it upon himself, and similarly the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'One who forgets behind the Imam, there is no (Sajdah) Sahw for him, and his Imam is sufficient for him. And if the Imam forgets, then Sajdah Sahw becomes mandatory on both the Imam and his followers.' End (T).

Through which the blessed command of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) 'and his Imam is sufficient' (and his Imam is sufficient for him - T) and then the practice of the Companions (may Allah be pleased with them) on this is a sufficient argument against the opponent. If the opponent says regarding the aforementioned ahadith that, except for the first hadith, the rest of the ahadith are not narrated from any book of hadith nor is any chain of transmission mentioned, and their narrators like Hazrat Qutb Sha'rani (may Allah be pleased with him), Tahtawi, the author of Maraqi al-Falah, and the author of Mi'raj al-Dirayah are not among the critics of hadith, therefore these ahadith are not reliable. In response to this, I find it necessary to say briefly that if the statements of Mullah Ali Qari, Ibn Hajar (may Allah be pleased with him), and Allama Ayni (may Allah have mercy on him) regarding the first hadith are considered sufficient for all arguments, then there is no gain in describing the virtues of others and sermonizing for the sake of maintaining ranks. Secondly, such a thought regarding Kashf al-Ghummah is evidence of being unaware of the preface of this book, in which they state that all these ahadith are taken and narrated from the Sahih books of such and such. Thirdly, such excuses carry no weight in the eyes of the people of research.

Some intelligent people said: 'In my view, the preferred opinion is that it is permissible to narrate hadith from the books of Sahih and Hasan without condition, and from others on the condition of verification by the people of knowledge and their writings.' And in Al-Ashbah of Hanafi jurisprudence, As-Suyuti narrated from Abu Ishaq al-Isfara'ini that there is a consensus (Ijma) on the permissibility of narrating from reliable books without requiring a continuous chain of transmission back to their authors. ^2 End.

Some intelligent individuals said that in my view, it is permissible to narrate hadith from the books of Sahih and Hasan without any condition, and from other books besides them, it is permissible to narrate from the people of knowledge and their compositions on the condition of research. It is in Al-Ashbah of Hanafi jurisprudence that Imam Suyuti has narrated from Abu Ishaq Isfara'ini that there is a consensus on the permissibility of narrating hadith from reliable books even without a continuous chain of transmission to their authors. End (T).

1 Kashf al-Ghummah, Chapter on Prostration for Forgetfulness, published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/159. 2 Al-Ashbah wan-Naza'ir, Rules of Writing, published by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 2/198.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

...मुतदियों में से। और इसी तरह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाया करते थे: 'जो इमाम के पीछे भूल जाए, उस पर सहव का सजदा (सजदा-ए-सहव) नहीं है, क्योंकि उसका इमाम उसके लिए काफी है। लेकिन अगर इमाम भूल जाए, तो उस पर और उसके पीछे वालों पर सहव वाजिब है।' ^1 समाप्त।

वह (इमाम) उठा लेता है, और इसी तरह रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: 'जो इमाम के पीछे भूल गया उस पर (सजदा-ए) सहव नहीं है और उसका इमाम काफी है, और अगर इमाम भूल गया तो इमाम और उसके मुतदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) दोनों पर सजदा-ए-सहव लाज़िम होगा।' समाप्त (त)।

जिससे हज़रत रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुबारक फरमान 'और उसका इमाम काफी है' (त) और फिर इस पर सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का अमल मुखालिफ़ (विरोधी) के खिलाफ काफी हुज्जत (दलील) है। अगर मुखालिफ़ ऊपर ज़िक्र की गई अहादीस के बारे में कहे कि पहली हदीस के अलावा बाकी अहादीस किसी हदीस की किताब से नकल नहीं की गई हैं और न ही कोई सनद ज़िक्र की गई है, और उनके नकल करने वाले हज़रत कुतब शेरानी (रज़ियल्लाहु अन्हु), तहतावी, मराकी अल-फलाह के लेखक और मेराज अल-दिराया के लेखक हदीस के आलोचकों (नक्काद) में से नहीं हैं, इसलिए ये अहादीस काबिले-एतबार नहीं हैं, तो इसके जवाब में मुझे मुख्तसर (संक्षेप में) यह कहना ज़रूरी है कि अगर पहली हदीस के बारे में मौलाना अली कारी, इब्न हजर (रज़ियल्लाहु अन्हु) और अल्लामा ऐनी (रहमहुल्लाह) के कौल (कथन) तमाम हुज्जत के लिए काफी समझ लिए गए हों, तो दूसरों के मनाकिब (गुण) बयान करने और मरतबों की हिफाज़त के लिए नसीहत (मवाइज़) से कोई खास हासिल नज़र नहीं आता। दूसरे, 'कश्फ़ अल-गुम्मा' के बारे में इस तरह का ख्याल उस किताब के मुकद्दमे (प्रस्तावना) से नावाकिफ होने की दलील है, जिसमें वे फरमाते हैं कि फलां और फलां सिहाह (प्रामाणिक) किताबों से ये सब अहादीस ली गई और नकल की गई हैं। तीसरे, ऐसे बहाने तहकीक (शोध) करने वालों के नज़दीक कोई अहमियत नहीं रखते।

कुछ बुद्धिमानों ने कहा: 'मेरे नज़दीक पसंदीदा राय यह है कि सिहाह और हिसान की किताबों से बिना किसी शर्त के हदीस नकल करना जायज़ है, और उनके अलावा अन्य किताबों से इल्म वालों और उनकी रचनाओं से तहकीक की शर्त पर नकल करना जायज़ है।' और हनफी फिक्ह की 'अल-

अशबाह' में है कि इमाम सुयूती ने अबू इसहाक अल-असफ़राइनी से नकल किया है कि मोतमिद (भरोसेमंद) किताबों से उनके लेखकों तक सनद के जुड़ाव के बिना भी हदीस नकल करने के जायज़ होने पर इज्मा (आम सहमति) है। ^2 समाप्त।

कुछ समझदारों ने फरमाया कि मेरे नज़दीक सिहाह और हिसान की किताबों से हदीस का बिना शर्त नकल करना जायज़ है, और उनके अलावा अन्य किताबों से इल्म वालों और उनकी तसानीफ (रचनाओं) से तहकीक की शर्त पर नकल करना जायज़ है। हनफी फिक्ह की 'अशबाह' में है कि इमाम सुयूती ने अबू इसहाक असफ़राइनी से नकल किया है कि मोतमिद किताबों से उनके मुसन्निफीन (लेखकों) तक सनद के इत्तसाल (जुड़ाव) के बिना भी हदीस नकल करने के जवाज़ (वैधता) पर इज्मा है। समाप्त (त)।

1 कश्फ़ अल-गुम्मा, बाब सुजूद अस-सहव, दारुल फिक्र बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/159। 2 अल-अशबाह वल-नज़ायर, अहकाम अल-किताबत, इदारातुल कुरान वल उलूम अल-इस्लामिया कराची द्वारा प्रकाशित, 2/198।

पेज 200/673

من المامومین وکذلك کان یقول صلی اللہ تعالی علیه وسلم من سہا خلف الامام فلیس علیه سہو و امامہ کافیہ فان سہا الامام فعلیه وعلی من خلفه السہو ۱۸ انتہی

اٹھا لیتا ہے، اور اسی طرح رسالتماب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا جو امام کے پیچھے بھول گیا اس پر (سجدہ) سہو نہیں اور اس کا امام کافی ہے اور اگر امام بھول گیا تو امام اور اس کے مقتدی دونوں پر سجدہ سہو لازم ہو گا انتہی (ت)

جس سے حضرت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا فرمان مبارک و امامہ کافیہ (اور اس کا امام کافی ہے۔ ت) اور پھر اسی پر عمل صحابہ رضی اللہ تعالٰی عنہم مخالف کے بر خلاف کافی حجت ہے اگر مخالف ان احادیث متذکرہ بالا کے متعلق کہے کہ سوائے حدیث اول کے باقی احادیث کسی کتاب حدیث سے منقول نہیں اور نہ کوئی سند ذکر کی گئی ہے اور ان کے ناقلین حضرت قطب شعرانی رضی اللہ تعالٰی عنہ اور طحطاوی اور صاحب مراقی الفلاح اور صاحب معراج الدرایہ نقادِ حدیث میں سے نہیں لہٰذا یہ احادیث قابلِ اعتبار نہیں، تو اس کے جواب میں مجھے مختصر طور پر یہ کہنا ضروری ہے کہ حدیث اول کے متعلق مولانا علی قاری اور ابن حجر رضی اللہ تعالٰی عنہ اور علامہ عینی رحمۃ اللہ علیہ کے اقوال اگر تمام حجت کے لئے کافی سمجھ گئے تو دوسروں کے مناقب بیان کرنے اور حفظِ مراتب کے لئے موعظہ سے چنداں کوئی حاصل نظر نہیں آتا دوسرے یہ کشف الغمہ کے متعلق اس قسم کا خیال اس کتاب کے مقدمہ سے ناواقف ہونے کی دلیل ہے جس میں فرماتے ہیں کہ کتب صحاح فلاں وفلاں سے یہ سب احادیث ماخوذ و منقول ہیں، تیسرے یہ کہ ایسے عذرات اہل تحقیق کے نزدیک قابلِ وقعت نہیں۔

قال بعض الاذکیاء فالمختار عندی جواز نقل الحدیث من الکتب الصحاح والحسان بلا شرط ومن غیرھا بشرط التنقیح علی اھل العلم ومؤلفاتھم، وفي الاشباہ من الفقہ الحنفي نقل السیوطي عن ابي اسحق الاسفرائی الاجماع علی جواز النقل من الکتب المعتمدۃ ولا یشترط اتصال السند الی مصنفھا [2][8] انتہی

بعض اذکیاء نے فرمایا کہ میرے نزدیک کتبِ صحاح اور حسان سے حدیث کا بلا شرط نقل کرنا جائز ہے اور ان کے علاوہ دیگر کتب سے اہل علم اور ان کی تصانیف سے بشرطِ تحقیق نقل کرنا جائز ہے، فقہ حنفی کی اشباہ میں ہے کہ امام سیوطی نے ابو اسحاق اسفرائنی سے نقل کیا ہے کہ معتمد کتب سے ان کے مصنفین تک اتصال سند کے بغیر بھی نقل حدیث کے جواز پر اجماع ہے انتہی (ت)

1 کشف الغمہ باب سجود السہو مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/۱۵۹ 2 الاشباہ والنظائر احکام الکتابۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲/۱۹۸

Fatawa Razawiyya, Volume 8

In short, despite these Hadiths, the jurists' (Fuqaha) intention from this statement was not that Sajda-e-Sahw (prostration of forgetfulness) is necessary. Interpreting it in a way that contradicts Hadiths is not only an assault on all jurists but also a deliberate abandonment of acting upon Hadith. Thus, it is better that the same meaning be taken from the words of the jurists as is proven from the Hadiths.

Question: The author of 'Al-Nahr al-Faiq' is among the reliable Hanafi scholars; so how can it be tolerable to rule against his opinion, given that the jurists' discourse implies neither dislike (Karahat) nor repetition (Iadah)?

Answer: "Whoever is afflicted with two trials should choose the lighter of the two." (Trans.) The disagreement of only the author of 'Nahr al-Faiq' compared to all the words of the jurists being against Hadiths and the lack of practice upon the Prophetic Hadiths (upon their possessor be peace and blessings) is extremely easier to accept. "Perhaps Allah will bring about after that a [new] matter." (Trans.) After this, I deem it appropriate to mention a few issues and narrations of the jurists from which it is clearly proven that repetition is not necessary for a follower due to not performing Sajda-e-Sahw:

(1) In the chapter on Prostrations of Recitation (Sujud-ut-Tilawat), the jurists state that if a follower recites a verse of prostration, the prostration of recitation is not mandatory, neither for the follower, nor for the Imam, nor for any other follower. The author of 'Sharh Munyah' has written exactly the same reasoning for this as the one for Sajda-e-Sahw being necessary, meaning: "If the Imam prostrates, it necessitates the leader becoming a follower, otherwise their opposition to him would be required. (End quote)" (Trans.) If the requirement of this reasoning were the proof of dislike and repetition of prayer, then it would follow that there should be such a ruling regarding the prostration of recitation as well, whereas here there is neither repetition of the prostration of recitation nor repetition of the prayer.

(2) The objective is proven from the following narration of 'Fatawa Qadi':

Arabic	**Urdu**
If the follower forgets, Sajda-e-Sahw is not binding on him; it is only necessary for forgetfulness. The reason is that an action only has its effect when it can be	When a follower forgets, Sajda-e-Sahw does not become mandatory for him because Sajda-e-Sahw is mandatory when the person's consideration is

Arabic	Urdu
considered regarding the ruling. But if it cannot be considered regarding the ruling, it is treated as non-existent, as Abu Hanifa and Abu Yusuf said regarding the follower's recitation and as in the sale of a prohibited person [Mahjoor].	possible within the ruling. And when the person's consideration is not possible within the ruling, then the forgetfulness is considered non-existent, as Imam Abu Hanifa and Imam Abu Yusuf held.

1 Radd al-Muhtar with reference to Sharh Munyah etc., Chapter on Prostration of Recitation, published by Mustafa al-Babi Egypt 1/566.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

संक्षेप में, इन हदीसों की उपस्थिति के बावजूद, फ़ुक़हा (न्यायविदों) का इस कथन से सज़दा-ए-सह्व (भूल का सजदा) अनिवार्य होने का अर्थ नहीं था। हदीसों के विपरीत अर्थ निकालना न केवल सभी फ़ुक़हा पर हमला है, बल्कि जानबूझकर हदीस पर अमल छोड़ने के समान है। अतः बेहतर यही है कि फ़ुक़हा के शब्दों से वही अर्थ लिया जाए जो हदीसों से सिद्ध है।

प्रश्न: 'अल-नहर अल-फ़ाएक' के लेखक विश्वसनीय हनफ़ी विद्वानों में से हैं; तो यह कैसे स्वीकार्य हो सकता है कि उनकी राय के विपरीत निर्णय लिया जाए, जबकि फ़ुक़हा के विमर्श का तकाज़ा न तो मकरूह (नापसंद) होना है और न ही नमाज़ दोहराना (इआदा)?

उत्तर: "जो व्यक्ति दो मुसीबतों में फंस जाए, उसे उनमें से आसान को चुनना चाहिए।" (अनु.) केवल 'नहर अल-फ़ाएक' के लेखक का विरोध, इसके मुकाबले में कि सभी फ़ुक़हा की बातें हदीसों के विरुद्ध हों और नबवी हदीसों (उन पर शांति और आशीर्वाद हो) पर अमल न हो, अत्यंत आसान है। "शायद अल्लाह इसके बाद कोई नई बात पैदा कर दे।" (अनु.) इसके बाद, मैं फ़ुक़हा के कुछ मसलों और रिवायतों का ज़िक्र करना उचित समझता हूँ जिससे स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि सज़दा-ए-सह्व न करने के कारण मुक्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) पर नमाज़ दोहराना अनिवार्य नहीं है:

(1) सज़दा-ए-तिलावत के अध्याय में फ़ुक़हा फ़रमाते हैं कि यदि मुक्तदी ने सज़दा वाली आयत पढ़ी, तो सज़दा-ए-तिलावत अनिवार्य नहीं है, न मुक्तदी पर, न इमाम पर और न ही किसी दूसरे मुक्तदी पर। 'शरह मुनिया' के लेखक ने इसके लिए वही तर्क दिया है जो सज़दा-ए-सह्व के अनिवार्य होने का है, यानी: "यदि इमाम सज़दा करेगा तो इसका अर्थ होगा कि नेता अनुयायी बन गया, अन्यथा उनका विरोध करना आवश्यक होगा। (समाप्त)" (अनु.) यदि इस तर्क का तकाज़ा मकरूह होना और नमाज़ दोहराना होता, तो सज़दा-ए-तिलावत के बारे में भी ऐसा ही हुक्म होना चाहिए था, जबकि यहाँ न तो सज़दा-ए-तिलावत दोहराना है और न ही नमाज़।

(2) 'फ़तावा क़ाज़ी' की निम्नलिखित रिवायत से उद्देश्य सिद्ध होता है:

अरबी	**उर्दू**
जब मुक्तदी भूल जाए तो उस पर सज़दा-ए-सह्व अनिवार्य नहीं है। सज़दा-ए-सह्व तभी अनिवार्य होता	जब कोई मुक्तदी भूल जाए, तो उस पर सज़दा-ए-सह्व अनिवार्य नहीं होता क्योंकि

अरबी

है जब भूल के संबंध में नमाज़ी के कार्य का विचार करना संभव हो। परंतु जब हुक्म के अधिकार में नमाज़ी के कार्य का विचार संभव न हो, तो वह भूल न होने के समान मानी जाती है, जैसा कि इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम अबू यूसुफ़ ने मुक्तदी की तिलावत के संबंध में और जैसे महज़ूर (प्रतिबंधित व्यक्ति) की बिक्री के मामले में कहा है।

उर्दू

सज़दा-ए-सह्व तब अनिवार्य होता है जब हुक्म के अधिकार में नमाज़ी का विचार संभव हो। और जब हुक्म के अधिकार में नमाज़ी का विचार संभव न हो, तो सज़दा-ए-सह्व 'कलअदम' (अस्तित्वहीन) माना जाता है जैसा कि इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम अबू यूसुफ़ का मत है।

1 रद-उल-मुहतार ब-हवाला शरह मुनिया आदि, सज़दा-ए-तिलावत का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित 1/566.

पेज 201/673

الغرض ان احادیث کے ہوتے ہی فقہائے اس قول سے سجدہ سہو لازم نہیں ایسے معنی کا ارادہ کرنا جو احادیث کے برخلاف ہے تمام فقہاء پر حملہ کرنے کے علاوہ عمداً ترک عمل بالحدیث نہیں تو اور کیا ہے پس بہتر ہے کہ فقہاء کے کلام سے بھی وہی مراد ہو جو احادیث سے ثابت ہو۔

سوال: صاحب النہر الفائق ثقات حنفیہ سے ہے، پس یہ کس طرح گوارا ہو سکتا ہے کہ اس کی رائے کے برخلاف حکم کیا جائے کہ کلام فقہاء کا مقتضی نہ کراہت ہے اور نہ اعادہ۔

جواب: من ابتلی بلیتین فلیخترا ھونھما (جو شخص دو مشکلات میں گھر جائے وہ ان میں سے آسان کو اختیار کرے۔ ت) صرف صاحب نہر فائق کا خلاف بمقابلہ اس کے کہ سب فقہاء کے کلام احادیث کے برخلاف ہو اور احادیث نبوی علی صاحبہا الصلوٰۃ والسلام پر عمل نہ ہو نہایت ہی آسان ہے ولعل اللہ یحدث بعد ذلك امراً (شاید اس کے بعد اللہ کوئی امر پیدا فرما دے۔ت) اس کے بعد ان چند مسائل اور روایت فقہاء کا ذکر کرنا مناسب سمجھتا ہوں جس سے صاف ثابت ہے کہ مقتدی پر سجدہ سہو کے نہ کرنے کی وجہ سے اعادہ لازم نہیں:

(۱) سجود تلاوت کے باب میں فقہاء فرماتے ہیں کہ اگر مقتدی نے آیت سجدہ تلاوت کی تو سجدہ تلاوت لازم نہیں نہ مقتدی پر اور نہ امام پر اور نہ کسی دوسرے مقتدی پر، اور اس کی دلیل صاحب شرح منیہ نے بعینہ وہی لکھی ہے جو سجود سہو کے لازم ہونے کی ہے، یعنی ان سجد الامام یلزم انقلاب المتبوع تابعاً والالزم مخالفتھم لہ انتھی (اگر امام سجدہ کرے گا تو یہ متبوع کا تابع ہونا لازم آئے گا ورنہ اس کی مخالفت لازم آتی ہے انتہی۔ت) اگر اس دلیل کا مقتضی ثبوت کراہت

اور اعادہ صلوٰۃ ہو تو لازم آتا ہے کہ سجود تلاوت کے متعلق بھی ایسا حکم ہو حالانکہ یہاں نہ اعادہ سجدہ تلاوت ہے اور نہ اعادہ صلوٰۃ۔

(۲) فتاویٰ قاضی کی روایت مندرجہ ذیل سے مدعا ثابت ہے اور وہ یہ ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
اذا سھا المقتدی لایلزمہ سجود السھو انما یجب بالسھو والسبب انما یعمل عملہ اذا امکن اعتبارہ فی حق الحکم فاماً اذالم یمکن اعتبارہ فی حق الحکم کان ملحقاً بالعدم کما قال ابو حنیفۃ وابویوسف فی تلاوۃ المقتدی وکما فی بیع المحجور	جب کوئی مقتدی بھول جائے تو اس پر سجدہ سہو لازم نہیں ہوتا کہ سجدہ سہو اس وقت لازم ہوتا ہے جب حق حکم میں نمازی کا اعتبار ممکن ہو اور جب جب حق حکم میں نمازی کا اعتبار ممکن نہ ہو تو سجدہ سہو کالعدم تصور ہوتا ہے جیسا کہ امام ابو حنیفہ اور امام ابو یوسف

1 ردالمختار بحوالہ شرح منیہ وغیرہ باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۶۶

Fatawa Ridawiyyah Volume 8

[Box 1] (Arabic): ...and its conditions; and here the forgetfulness of the follower cannot be considered regarding the ruling, which is the obligation of the prostration of forgetfulness (Sajda Sahw) 1 End of Quote. (Urdu): ...was said regarding the recitation of the follower, and it is mentioned in the buying and selling of a restricted person, and here in the right of the ruling, i.e., the obligation of Sahw, the consideration of the follower's forgetfulness is not possible at all. End of Quote (T)

(3) Allamah Shami states on page 496 regarding this issue, whether repeating (the prayer) is necessary where the prostrations are waived:

[Box 2] (Arabic): And what is appropriate is that if it (the prayer) is invalidated by one's own action, such as intentional impurity (breaking Wudu) for example, then repetition (A'ada) is necessary; otherwise, it is not. Consider this. 2 End of Quote. (Urdu): And that situation in which one exits the prayer voluntarily, for example, intentionally breaking Wudu, then the prostration of forgetfulness is waived but repetition of the prayer is necessary. And if it is not such a case, then repetition will not be necessary. Reflect on this. End of Quote (T)

From this, it is clearly evident that in our current case, because the waiving of the prostration of forgetfulness was not due to the follower's own voluntary act, but rather because he cannot perform it behind the Imam either before or after the Salaam, repetition is not obligatory.

(4) Allamah Shami (may Allah have mercy on him) states on page 306:

[Box 3] (Arabic): It is appropriate to restrict the obligation of repetition to when the omission was not due to an excuse, like an illiterate person or someone who embraced Islam at the end of the prayer time and prayed before learning Surah Al-Fatiha; then repetition is not necessary. 3 End of Quote. (Urdu): The obligation of repetition should be restricted with the condition that this applies to the case when the omission (of a Wajib act) is not based on some excuse. For example, an illiterate person's omission of Surah Fatiha, or a person who embraced Islam at the very end of prayer time and offered prayer before learning Fatiha; in such cases, repetition of the prayer will not be necessary. (T)

From which it is evident that in our current case, since the omission of prostration was due to inability, "as all jurists have clearly stated," repetition is not necessary.

(5) In Durr al-Mukhtar: It is obligatory for an individual praying alone and for a follower due to the forgetfulness of his Imam, if the Imam prostrates, because of the obligation of following. 4 End of Quote in Radd al-Muhtar. [Box 4] (Urdu): It is stated in Durr al-Mukhtar that the prostration of forgetfulness is obligatory for an individual praying alone, and on the follower due to the mistake of the Imam, provided the Imam prostrates, because following the Imam is obligatory for the follower.

Footnotes: 1 Fatawa Qazi Khan 2 Radd al-Muhtar, Chapter on Prostration of Forgetfulness, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 2/97 3 Radd al-Muhtar, Chapter on Description of Prayer, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 1/456 4 Durr al-Mukhtar, Chapter on Prostration of Forgetfulness, printed by Mujtabai Press, Delhi India, 1/102

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[बॉक्स 1] (अरबी): ...और उसकी शर्तें; और यहाँ हुक्म के हक में मुक़्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) की भूल का एतबार नहीं किया जा सकता, और वह है सज्दह-ए-सहव की वजीबियत। 1 अंत। (उर्दू): मुक़्तदी की तिलावत के बारे में फरमाया, और महजूर (प्रतिबंधित व्यक्ति) की खरीद-ओ-फरोख्त में है, और यहाँ हुक्म के हक यानी सहव के वाजिब होने में मुक़्तदी की सहव का एतबार मुमकिन ही नहीं। अंत। (त)

(3) अल्लामा शामी सफ़्हा 496 में इस मसले के मुताल्लिक फरमाते हैं कि जहाँ सुजूद साक़ित हो जाए (गिर जाए), वहां नमाज़ दोहराना (एआदा) लाज़िम है या नहीं:

[बॉक्स 2] (अरबी): और मुनासिब यह है कि अगर नमाज़ अपने किसी फेल (कार्य) जैसे जानबूझकर वुज़ू तोड़ने से साक़ित हुई हो, तो एआदा लाज़िम है, वरना नहीं। गौर करें। 2 अंत। (उर्दू): और वह सूरत जिसमें नमाज़ से निकलना अपने इरादे से हो, मसलन जानबूझकर वुज़ू तोड़ दिया, तो अब सज्दह-ए-सहव साक़ित हो गया लेकिन नमाज़ दोहराना लाज़िम है। और अगर ऐसी सूरत नहीं है तो नमाज़ दोहराना लाज़िम नहीं होगा। गौर कीजिए। अंत। (त)

जिससे साफ़ ज़ाहिर है कि हमारे मामले में चूंकि सज्दह-ए-सहव का गिरना मुक़्तदी के अपने इरादतन फेल से नहीं हुआ, बल्कि इसलिए कि वह इमाम के पीछे इसे अदा नहीं कर सकता, न सलाम से पहले न सलाम के बाद, इसलिए नमाज़ दोहराना वाजिब नहीं है।

(4) अल्लामा शामी (रहमतुल्लाह अलैह) सफ़्हा 306 पर फरमाते हैं:

[बॉक्स 3] (अरबी): और वाजिब है कि एआदा (दोहराने) के वुजूब को इस शर्त के साथ मुक़य्यद किया जाए कि जब तर्क(छोड़ना) किसी उज़र (बहाने/कारण) की वजह से न हो, जैसे अनपढ़ या वह जो वक्त के आखिर में इस्लाम लाया और सूरह फातिहा सीखने से पहले नमाज़ पढ़ ली, तो एआदा लाज़िम नहीं। 3 अंत। (उर्दू): एआदा के वुजूब को इस क़ैद (शर्त) के साथ मुक़य्यद किया जाना चाहिए कि यह उस सूरत में है जब वाजिब का तर्क किसी उज़र की बिना पर न हो। मसलन अनपढ़ का फातिहा छोड़ना या वह शख़्स जो नमाज़ के आख़री वक्त में इस्लाम लाया और उसने फातिहा सीखने से पहले नमाज़ अदा की, तो अब नमाज़ दोहराना लाज़िम नहीं होगा। (त)

जिससे ज़ाहिर है कि हमारे मामले में चूंकि सज्दह-ए-सहव का तर्क लाचारी (तअज़्ज़ुर) की वजह से हुआ, जैसा कि तमाम फ़ुक़हा (कानूनविदों) ने साफ़ तौर पर बयान किया है, लिहाज़ा एआदा लाज़िम नहीं।

(5) 'दुर्रे मुख़्तार' में है: मुनफ़रिद (अकेले नमाज़ पढ़ने वाले) पर और इमाम की भूल की वजह से मुक़्तदी पर सज्दह-ए-सहव वाजिब है अगर इमाम सज्दह करे, क्योंकि इमाम का इत्तेबा (अनुसरण) वाजिब है। 4 अंत 'रद्दुल मुहतार' में। [बॉक्स 4] (उर्दू): दुर्रे मुख़्तार में है कि तनहा नमाज़ी पर सज्दह-ए-सहव लाज़िम होता है और इमाम की भूल की वजह से मुक़्तदी पर भी, बशर्ते कि इमाम सज्दह करे, क्योंकि मुक़्तदी पर इमाम की पैरवी लाज़िम है।

फ़ुटनोट्स: 1 फ़तावा क़ाज़ी ख़ान। 2 रद्दुल मुहतार, बाब अस्-सुजूद अस-सहव, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/97। 3 रद्दुल मुहतार, बाब सिफत अस-सलात, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/456। 4 दुर्रे मुख़्तार, बाब सुजूद अस-सहव, मतबा मुजतबाई दिल्ली भारत, 1/102।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[Box 1] (Arabic): وشرائه وههنا لا یمکن اعتبار سهو المقتدی فی حق الحکم وهو وجوب سجدة السهو ۱ انتهی (Urdu): نے مقتدی کی تلاوت کے بارے میں فرمایا، اور محجور کی بیع و شراء میں ہے اور یہاں حق حکم یعنی وجوب سہو میں مقتدی کی سہو کا اعتبار ممکن ہی نہیں انتہی (ت)

(۳) علامہ شامی صفحہ ۴۹۶ میں فرماتے ہیں اس مسئلہ کے متعلق کہ جہاں سجود ساقط ہو جائے اعادہ لازم ہوتا ہے یا نہیں،

[Box 2] (Arabic): والذی ینبغی انه ان سقط بصنعه کحدث عمد مثلا یلزم والا فلا تامل ۲ انتهی (Urdu): اور وہ صورت جس میں نماز سے خروج بالا رادہ ہو مثلاً عمداً وضو توڑ دیا تو اب سجدہ سہو ساقط مگر اعادہ نماز لازم، اور اگر ایسی صورت نہیں تو اعادہ لازم نہ ہوگا، غور کیجئے انتہی (ت)

جس سے صاف ظاہر ہے کہ مانحن فیہ میں اس لئے کہ سقوط سجدہ سہو مقتدی کے اپنے فعل اختیاری سے نہیں ہوا بلکہ اس لئے کہ امام کے پیچھے وہ ادا نہیں کرسکتا نہ قبل السلام نہ بعد السلام، اعادہ واجب نہیں،

(۴) علامہ شامی رحمۃ اللہ علیہ صفحہ ۳۰۶ پر فرماتے ہیں:

[Box 3] (Arabic): وینبغی تقیید وجوب الاعادة بما اذالم یکن الترك لعذر کالامی اومن اسلم فی اخر الوقت فصلی قبل ان یتعلم الفاتحة فلا تلزم الاعادة ۳ انتهی (Urdu): وجوب اعادہ کو اس قید کے ساتھ مقید کیا جانا چاہئے کہ یہ اس صورت میں ہے جب ترک (واجب) کسی عذر کی بنا پر نہ

ہو مثلاً امی کا ترک فاتحہ یا وہ شخص جو نماز کے آخری وقت میں اسلام لایا اور اس نے فاتحہ سیکھنے سے پہلے نماز ادا کی تو اب اعادہ نماز لازم نہیں ہوگا (ت)

جس سے عیاں ہے مانحن فیہ میں بوجہ اس کے کہ ترک سجود بوجہ تعذر ہوا کل صرح بہ الفقہا (ان تمام کی فقہاء نے تصریح کی ہے۔ت) اعادہ لازم نہیں۔

(۵) فی الدرالمختار یجب علی منفرد ومقتد بسھو امامہ ان سجد امام لوجوب المتابعۃ ۴ انتھی فی ردالمحتار [Box 4] (Urdu): در مختار میں ہے کہ تنہا نمازی پر سجدہ سہو لازم ہوتا ہے اور امام کی بھول کی وجہ سے مقتدی پر بشرطیکہ امام سجدہ کرے کیونکہ مقتدی پر امام کی متابعت لازم

حواشی: ۱ فتاوٰی قاضی خان ۲ ردالمحتار باب السجود السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۹۷ ۳ ردالمحتار باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۴۵۶ ۴ درمختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱۰۲/۱

Fatawa-e-Razvia, Volume 8

[Box Left - Arabic]: "His saying: If his Imam prostrated. Or if it [prostration of forgetfulness] was dropped from the Imam due to some reason, such as if he spoke or intentionally invalidated his wudu or left the mosque, then it is dropped from the follower [Muqtadi] - (Bahr). It is apparent that repetition [of prayer] is obligatory for the follower as it is for the Imam if the dropping was due to his intentional act, because a deficiency is established without a compensatory act and without excuse. Reflect. Finished."

[Box Right - Urdu Translation]: "It is. Finished. His saying: 'If the Imam prostrated', and if the prostration was dropped from the Imam for some reason, for example, he spoke or intentionally committed an act that invalidates prayer or left the mosque, then now the prostration of forgetfulness will also be dropped from the follower, (Bahr). And the apparent view is that if the dropping of the prostration is intentional, then just like the Imam, repetition of the prayer will be mandatory for the follower too because now, without any excuse, such a deficiency is proven for which there has been no remedy. Reflect, finished. (T)"

In the case under discussion, although it is the follower's own forgetfulness and not the Imam's, but since intentionality does not play a role in the dropping of the prostration of forgetfulness, therefore, repetition is also not obligatory.

(6) To this day, the practice of repeating the prayer is unheard of. If a ruling for the obligation of repetition were given, the prayers of millions of worshippers would become invalid and ruined, and worshippers would be considered those who abandon prayer and sinners. Whereas the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: 'The religion is easy.' (2) (Religion is ease. - T) And he also says: 'Make things easy and do not make things difficult, and give good tidings and do not create aversion.' (3) (Make it easy, do not create hardship, and give good news, do not spread hatred. - T)

To the extent that among the jurists, the preferred view is that in the Eid and Friday prayers, the prostrations of forgetfulness should not be performed to avoid fitna [discord]. (To repel discord. - T). And Allah knows best what is correct. And I am the sinful servant, Muhammad Abu Ba-Ahmad Bakhsh, may he be forgiven.

The Answer:

I say: And with Allah's guidance, supporting the virtuous questioner (may his virtues last forever), I say: (1) Al-Bazzar in his Musnad and Al-Bayhaqi in his Sunan relate from the Commander of the Faithful, Umar Faruq (may Allah be pleased with him), that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Prostrations of Forgetfulness, published by H.M. Saeed Company Karachi, 82/2.
2. Sahih Bukhari, Chapter: The Religion is Ease, published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/10.
3. Sahih Bukhari, Chapter: The Prophet (PBUH) used to look after them with advice, etc., published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 16/1. Page 203 of 673

फतावा-ए-रज़विया, खंड 8

[बॉक्स बायाँ - अरबी]: "उनका कहना: यदि उनके इमाम ने सजदा किया। या यदि किसी कारणवश इमाम से [सजदा-ए-सह्व] साक़ित हो गया, जैसे कि उन्होंने बात की या जानबूझकर वज़ू तोड़ा या मस्जिद से निकल गए, तो वह मुक्तदी (अनुयायी) से भी साक़ित हो जाता है - (बह्र)। और स्पष्ट यह है कि यदि साक़ित होना जानबूझकर किए गए कृत्य के कारण था, तो इमाम की तरह मुक्तदी पर भी नमाज़ को दोहराना अनिवार्य होगा, क्योंकि बिना किसी क्षतिपूर्ति और बिना किसी बहाने के कमी स्थापित हो गई है। विचार करें। समाप्त।"

[बॉक्स दायाँ - उर्दू अनुवाद]: "है। समाप्त। उनका कहना: 'यदि इमाम ने सजदा किया', और यदि किसी कारणवश इमाम से सजदा साक़ित हो गया, उदाहरण के लिए, उन्होंने बात की या जानबूझकर ऐसा काम किया जिससे नमाज़ टूट गई या मस्जिद से निकल गए, तो अब मुक्तदी से भी सजदा-ए-सह्व साक़ित हो जाएगा, (बह्र)। और स्पष्ट विचार यही है कि यदि सजदे का साक़ित होना जानबूझकर हो, तो इमाम की तरह मुक्तदी पर भी नमाज़ दोहराना लाज़िम होगा क्योंकि अब बिना किसी बहाने के ऐसी कमी का प्रमाण मिला जिसका कोई समाधान नहीं किया गया। विचार करें, समाप्त। (त)"

प्रस्तुत मामले में, हालांकि यह मुक्तदी की अपनी भूल है न कि इमाम की, लेकिन चूंकि सजदा-ए-सह्व के साक़ित होने में इरादे (अम्द) की कोई भूमिका नहीं है, इसलिए नमाज़ दोहराना भी वाजिब नहीं है।

(6) आज तक नमाज़ दोहराने का अभ्यास अनसुना है। यदि दोहराने की अनिवार्यता का हुक्म दिया जाए, तो लाखों नमाज़ियों की नमाज़ें नाजायज़ और बर्बाद हो जाएँगी, और नमाज़ी नमाज़ छोड़ने वाले और पापी ठहरेंगे। जबकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: 'दीन (धर्म) आसान है।' (2) (दीन में आसानी है। - त) और यह भी फरमाते हैं: 'आसानी करो, तंगी न करो और अच्छी खबर दो, नफरत न फैलाओ।' (3) (आसानी करो, मुश्किल न पैदा करो और शुभ समाचार दो, नफ़रत मत फैलाओ। - त)

यहाँ तक कि फुक़हा (धर्मशास्त्रियों) के नज़दीक पसन्दीदा (मुख़्तार) राय यह है कि ईद और जुमे की नमाज़ में सजदा-ए-सह्व अदा न किए जाएँ ताकि फ़ितना (अशांति) रोका जा सके। (फ़ितना दूर करने के लिए। - त) और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। और मैं गुनहगार बंदा, मुहम्मद अबू बा-अहमद बख़्श, अल्लाह उसे क्षमा करे।

जवाब:

मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफीक से, गुणी प्रश्नकर्ता (जिनके गुण हमेशा रहें) का समर्थन करते हुए मैं कहता हूँ: (1) बज़्ज़ार ने मुसनद में और बैहक़ी ने सुनन में अमीर-उल-मोमिनीन उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

---

1. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद-अस-सह्व, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 82/2 द्वारा प्रकाशित।
2. सहीह बुखारी, बाब अद-दीन युस्र, कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/10 द्वारा प्रकाशित।
3. सहीह बुखारी, बाब कानन नबी यतखव्वलुहुम बिल मवइज़ा, कदीमी कुतुब खाना कराची, 16/1 द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ 203 का 673

فتاوٰی رضویہ ، جلد ہشتم

[دایاں باکس - عربی]: قولہ ان سجد امامہ امالو سقط عن الامام بسبب من الاسباب بأن تکلم اواحدث معتمدا او خرج من المسجد فانه یسقط عن المقتدی بحر، والظاھر ان المقتدی تجب علیه الاعادة کالامام ان کان السقوط بفعله العمد لتقرر النقصان بلا جابر من غیر عذر ۱ تأمل انتھی

[بایاں باکس - اردو ترجمہ]: ہے۔ انتہی، قولہ "اگر امام نے سجدہ کیا" اور اگر امام سے کسی وجہ سے سجدہ ساقط ہوگیا مثلاً اس نے کلام کیا یا جان بوجھ کر حادث ہوگیا یا مسجد سے نکل گیا تو اب مقتدی سے بھی سجدہ سہو ساقط ہو جائے گا، بحر، اور ظاہر یہی ہے کہ اگر سقوط سجدہ عمداً ہو تو امام کی طرح مقتدی پر بھی اعادہ لازم ہوگا کیونکہ اب بغیر کسی عذر کے ایسے نقصان کا ثبوت ہوا جس کا کوئی ازالہ نہ ہوا، غور کرو، انتہی (ت)

مانحن فیہ میں اگرچہ مقتدی کا اپنا سہو ہے نہ کہ سہو امام، لیکن جبکہ سجدہ سہو کے ساقط ہونے میں عمد کو دخل نہیں لہذا اعادہ بھی واجب نہیں۔

(۶) آج تک اعادہ صلوٰۃ کا عمل نامسموع ہے اگر وجوب اعادہ سے حکم کیا جائے لکھوکھا نمازیوں کی نمازیں ناجائز و تباہ ہو جاتی ہیں اور نمازی تارکِ صلوٰۃ اور آثم ٹھہرتے ہیں، حالانکہ حضرت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: الدین یسر ۲ (دین میں آسانی ہے۔ت) و نیز فرماتے ہیں: یسروا ولا تعسروا وبشروا ولا تنفروا ۳ (آسانی کرو، تنگی نہ کرو اور اچھی خبر دو، نفرت نہ پھیلاؤ۔ت)

یہاں تک کہ فقہاء کے نزدیک مختار یہ ہے کہ صلوٰۃ عید وجمعہ میں سجود سہو ادا نہ کئے جائیں دفعاً للفتنۃ (فتنہ کے دفع کے لئے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم بالصواب و انا العبد العاصی لمحمد ابو باحمد بخش عفی عنہ

الجواب:

اقول: وباللہ التوفیق مؤید المسائل الفاضل دام بالفضائل (میں اللہ کی توفیق سے سائل فاضل (جن کے فضائل ہمیشہ رہیں) کی تائید کرتے ہوئے میں کہتا ہوں:) (۱) بزّار مسند اور بیہقی سنن میں امیر المومنین عمر فاروق رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

---

1 ردالمحتار باب سجود السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۸۲/۲ 2 صحیح بخاری باب الدین یسر مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۰ 3 صحیح بخاری باب کان النبی یتخولہم بالموعظہ الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱۶/۱ Page 203 of 673

Fatawa Rizwia Volume 8

There is no forgetfulness (Sahw) for the one behind the Imam; but if the Imam forgets, it is upon him and those behind him. [Note 1]

There is no forgetfulness for a person praying behind an Imam. If the Imam forgets, then Sajdah Sahw is obligatory for him and his followers. (T)

The negation of Sahw for the follower (Muqtadi) was stated, and this negation is not of occurrence but of ruling, as indicated by the word "Alayhi" (as the ruling of 'Alayhi' indicates it. T). Thus, it is proven that the follower's forgetfulness has no legal consequence. (2) Tabarani in Mu'jam al-Kabir narrates from Uqbah bin Amir (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "No servant leads a people except that he becomes responsible for what is upon them in their prayer." [2] It is clear that "taking responsibility for what is upon them" means that the burden does not remain on them (T). If the follower were ordered to repeat the prayer due to their forgetfulness, then the Imam would not be carrying their burden, rather it would be imposing a heavy load on them, because otherwise two prostrations would have sufficed, but now they have to repeat the entire prayer. (3) It is stated in Bada'i by Imam Malik-ul-Ulama, Vol. 1, p. 175: "When a follower forgets in his prayer, there is no Sahw upon him." [3] (If a follower forgets in prayer, Sajdah Sahw is not obligatory for him. T) (4) In Muheet and then in Hindiyyah, Vol. 1, p. 128 (Egyptian edition): "If the Imam omits the prostration of forgetfulness, there is no Sahw for the follower." [4] (If the Imam omitted Sajdah Sahw, then it is not upon the follower. T) (5) Tabyin al-Haqa'iq by Imam Zayla'i, Vol. 1, p. 195:

If the Masbuq (one who joined late) gives Salaam with the Imam, look into it: if he gave Salaam concurrently with the Imam's Salaam or before it, there is no Sahw on him because he is a follower. But if he gave Salaam after him, then Sahw becomes necessary because he is then an individual (Munfarid). [5]

If the Masbuq said Salaam along with the Imam, we will see: if he said Salaam with or before the Imam, then because he is still a follower, Sajdah Sahw will not be necessary. And if he said Salaam after the Imam, then because he is now an individual, Sajdah Sahw will be necessary. (T)

1. Sunan al-Kubra of al-Bayhaqi, Chapter on one who forgets behind the Imam, etc., Dar Sadir, Beirut, 2/352.

2. Al-Mu'jam al-Kabir of at-Tabarani, Musnad Uqbah bin Amir, published by Maktabah Faysaliyyah, Beirut, 17/291.
3. Bada'i-us-Sana'i, Section on those for whom Sajdah Sahw is obligatory, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/175.
4. Fatawa Hindiyyah, Chapter 12 on Prostration, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/128.
5. Tabyin al-Haqa'iq, Chapter on Prostration, published by Al-Matba'ah al-Kubra al-Amiriyyah, Bulaq, Egypt, 1/195. Note (F): The words in Sunan Kubra are: "Indeed the Imam suffices for those behind him. If the Imam forgets, the two prostrations of forgetfulness are upon him and upon those behind him, so they should prostrate with him. And if someone behind him forgets, there is no prostration on him, and the Imam suffices him."

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने वाले पर सहव नहीं है; लेकिन अगर इमाम भूल जाए, तो यह उस पर और उसके पीछे वालों पर है। [नोट 1]

इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने वाले पर सहव नहीं, अगर इमाम भूल गया तो उस पर और उसके मुक्तदियों पर सज्दा सहव है। (त)

मुक्तदी पर सहव की नफी (नकार) फरमाई और वह नफी वुक़ू(होने) की नहीं बल्कि हुक्म की नफी है, जैसा कि इस पर "अलैहि" का शब्द संकेत कर रहा है (जैसा कि उस पर 'अलैहि' का हुक्म दलालत कर रहा है। त)। तो साबित हुआ कि मुक्तदी का सहव कोई हुक्म नहीं रखता। (2) तबरानी मुअजम कबीर में उक़्बा बिन आमिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "कोई बंदा किसी क़ौम की इमामत नहीं करता मगर वह उनकी नमाज़ में उन पर जो कुछ है उसका ज़िम्मेदार होता है।" [2] इस पर ज़ाहिर है कि उनकी ज़िम्मेदारी लेना (त) यह है कि उन पर बोझ न रहे। अगर मुक्तदी को अपने सहव के कारण नमाज़ दोहराने का हुक्म हो, तो इमाम ने उनका बोझ नहीं उठाया बल्कि उन पर बोझ डाल दिया, क्योंकि वैसे दो सज्दों से काम चल जाता, अब पूरी नमाज़ दोहराना पड़ेगी। (3) बदाइ इमाम मलिक-उल-उलमा जिल्द 1, पेज 175 में है: "मुक्तदी जब अपनी नमाज़ में भूल जाए तो उस पर सहव नहीं है।" [3] (अगर मुक्तदी नमाज़ में भूल जाए तो उस पर सज्दा सहव लाज़िम नहीं। त) (4) मुहीत फिर हिन्दिया जिल्द 1, पेज 128 (मिस्री) में है: "अगर इमाम सज्दा सहव छोड़ दे, तो मुक़्तदी पर सहव नहीं है।" [4] (अगर इमाम ने सज्दा सहव तर्क कर दिया तो मुक्तदी पर सज्दा सहव नहीं। त) (5) तबयीनुल हक़ाइक़ इमाम ज़ैली जिल्द 1, पेज 195:

अगर मसबूक़ (देर से शामिल होने वाला) इमाम के साथ सलाम फेर दे, तो देखें: अगर उसने इमाम के सलाम के साथ या उससे पहले सलाम फेरा तो उस पर सहव नहीं है क्योंकि वह मुक्तदी है। और अगर उसने उसके बाद सलाम फेरा तो सहव लाज़िम होगा क्योंकि वह मुनफ़रिद (अकेला) है। [5]

अगर मसबूक़ ने इमाम के साथ सलाम कह दिया तो अब देखेंगे: अगर उसने इमाम के साथ या उससे पहले सलाम कह दिया तो अब मुक्तदी होने की वजह से सज्दा सहव लाज़िम न होगा, और अगर इमाम के बाद सलाम किया तो अब मुनफ़रिद होने की वजह से सज्दा सहव लाज़िम होगा। (त)

1. सुनन अल-कुबरा लिल-बैहक़ी, बाब मन सहा ख़ल्फ़ल इमाम आदि, दार सादर बैरुत 2/352

2. अल-मुअजम अल-कबीर लित-तबरानी, मुसनद उक़्बा बिन आमिर, मकतबा फ़ैसलिया बैरुत 17/291
3. बदाइउस-सनाइ, फ़स्ल मन यजिबु अलैहि सुजूदुस-सहव, एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/175
4. फ़तावा हिन्दिया, बाब 12 सुजूद में, नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर 1/128
5. तबयीनुल हक़ाइक़, बाब सुजूद, अल-मतबअतुल कुबरा अल-अमीरिया बुलाक़ मिस्र 1/195 फ़: सुनन कुबरा के शब्द इस प्रकार हैं: "बेशक इमाम अपने पीछे वालों के लिए काफ़ी है। अगर इमाम भूल जाए तो सज्दा सहव उस पर और उसके पीछे वालों पर है, तो वे उसके साथ सज्दा करें। और अगर उसके पीछे वालों में से कोई भूल जाए, तो उस पर सज्दा करना नहीं है, और इमाम उसके लिए काफ़ी है।"

لیس علی من خلف الامام سھو فان سھا الامام فعلیه و علی من خلفه ف (ت)

امام کے پیچھے نماز پڑھنے والے پر سہو نہیں ، اگر امام بھول گیا تو اس پر اور اس کے مقتدیوں پر سجدہ سہو ہے۔

1

مقتدی پر سہو کی نفی فرمائی اور وہ نفی وقوع نہیں لاجرم نفی حکم ہے کما دلت علیہ کلمۃ علی (جیسا کہ اس پر "علی" کا حکم دلالت کر رہا ہے۔ ت) تو ثابت ہوا کہ سہوِ مقتدی کوئی حکم نہیں رکھتا (۲) طبرانی معجم کبیر میں عقبہ بن عامر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: لایؤم عبد قوماً الا تولی ماکان علیھم فی صلوتھم 2۔ کوئی آدمی کسی قوم کی امامت نہیں کرتا مگر وہ ہر اس شئ کا ذمہ دار ہوتا ہے جو قوم کی نماز میں ہوتا ہے (ت) پر ظاہر کہ تولی ما علیھم یہ نفی ہے کہ علیھم نہ رہے اگر مقتدی کو اپنے سہو کے سبب حکم اعادہ ہو تو امام سے ان سے تحمل نہیں بلکہ ان پر ثقل کی تحمیل کہ بے اس کے دو سجدوں ہی سے کام چل جاتا اب ساری نماز کا اعادہ کرنا پڑا۔ (۳) بدائع امام ملک العلماء جلد اول صفحہ ۱۷۵ میں ہے : المقتدی اذا سھا في صلوته فلا سھو علیه 3 (اگر مقتدی نماز میں بھول جائے تو اس پر سجدہ سہو لازم نہیں ۔ ت) (۴) محیط پھر ہندیہ جلد اول صفحہ ۱۲۸ مصری میں ہے : لو ترك الامام سجود السھو فلا سھو علی الماموم 4 (اگر امام نے سجدہ سہو ترک کر دیا تو مقتدی پر سجدہ سہو نہیں ۔ ت) (۵) تبیین الحقائق امام زیلعی جلد اول صفحہ ۱۹۵:

لو سلم المسبوق مع الامام ینظر فان سلم مقارناً لسلام الامام او قبله فلا سهو علیه لانه مقتد به وان سلم بعده یلزم السهو لانه منفرد 5

اگر مسبوق نے امام کے ساتھ سلام کہہ دیا تو اب دیکھیں گے اگر اس نے امام کے ساتھ یا اس سے پہلے سلام کہہ دیا تو اب مقتدی ہونے کی وجہ سے سجدہ سہو لازم نہ ہوگا، اور اگر امام کے بعد سلام کیا تو اب منفرد ہونے کی وجہ سے سجدہ سہو لازم ہوگا۔ (ت)

1 سنن الکبری للبیہقی باب من سہا خلف الامام الخ دار صادر بیروت ۳۵۲/۲ 2 المعجم الکبیر للطبرانی مسند عقبہ بن عامر مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲۹۱/۱۷ 3 بدائع الصنائع فصل من یجب علیہ سجود السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۷۵/۱ 4 فتاوٰی ہندیہ الباب الثانی عشر فی السجود مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱۲۸/۱ 5 تبیین الحقائق باب السجود مطبوعہ المطبعۃ الکبرٰی الامیریہ بولاق مصر ۱ / ۱۹۵ ف: سنن کبرٰی کے الفاظ یوں ہیں ان الامام یکفی من ورائہ فان سہا الامام فعلیہ سجدتا السہو و علی من وراء ہ فان یسجد و ا معہ وان سہا احد من خلفہ فلیس علیہ ان یسجد و الامام یکفیہ۔

Fatawa Rizvia, Volume 8

(6) Bahr-ur-Raiq, Volume 2, Page 108:

[Arabic Text]: The latecomer (masbuq) is like an individual worshiper in the rak'ahs he compensates for, as mentioned before. Based on this, it is derived that if a follower (muqtadi) mistakenly says Salam: if it was before or along with the Imam, no prostration of forgetfulness (sajdah sahu) is necessary. But if it was after the Imam, then it is mandatory upon him as mentioned before. [1] [Urdu Translation]: A masbuq, while performing the remaining units (rak'ahs), is like an individual worshiper as previously mentioned. This scenario stems from it: when a follower mistakenly says Salam, if it's before or together with the Imam, no sajdah sahu is required. But if it happens after the Imam, then sajdah becomes mandatory for him, as discussed earlier. (T)

In these four excerpts, like the first Hadith, the forgetfulness of the follower is absolutely negated, meaning there is no ruling for it, as we have established. (7) The exalted Imam Abu Ja'far Tahawi, in 'Sharh Ma'ani al-Athar', Volume 1, Page 238, regarding "A person performing an obligatory prayer following an Imam performing a voluntary prayer" (T), states:

[Arabic Text]: As for its ruling by way of reasoning, we have seen that the prayer of the followers is linked to the prayer of their Imam regarding its validity or invalidity. Sound reasoning necessitates that when the Imam forgets, whatever becomes mandatory upon the Imam due to his forgetfulness also becomes mandatory upon those behind him. And if the followers forget while the Imam does not, then what would have been mandatory upon the Imam had he forgotten does not become mandatory upon them. [2] [Urdu Translation]: However, its ruling is by way of reasoning; we see that the followers' prayer is dependent on the Imam's prayer regarding its validity and invalidity. This sound reasoning makes it necessary that when the Imam forgets, whatever is mandated for the Imam due to his error will also be mandated for those behind him. And if the followers forget while the Imam does not, then that which is mandatory on the Imam for his forgetfulness is not mandatory on them. (T)

Imam (Tahawi) did not say 'prostration is not mandatory for them', but rather said 'that which is mandatory for the Imam (is mandatory for followers)', which includes both prostration and repetition of prayer. (8) Dhakhira, then in Hindiyyah, Volume 1, Page 130, states:

[Arabic Text]: If the first Imam forgets after appointing a successor (istikhlaf), his forgetfulness does not necessitate anything. [3] [Urdu Translation]: If the first Imam forgets after making a successor, his forgetfulness does not necessitate anything. (T)

---

1. Bahr-ur-Raiq, Chapter on Sujud-us-Sahu, published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/100.
2. Al-Tahawi, Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on a person praying Fard behind one praying voluntary, published by H.M. Saeed Company Karachi, 1/280.
3. Fatawa Hindiyyah, 12th Chapter on Sujud-us-Sahu, published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/130.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8

(6) बहर-उर-राइक़, जिल्द 2, सफ़ा 108:

[अरबी पाठ]: मसबूक (देर से शामिल होने वाला) अपनी बाकी रकात अदा करने में अकेले नमाज़ पढ़ने वाले की तरह होता है जैसा कि पहले गुज़रा। इस पर यह सूरत आधारित है कि जब मुक्तदी ने भूलकर सलाम कह दिया, तो अगर इमाम से पहले या साथ में है तो सजदह सह्व लाज़िम नहीं, और अगर बाद में है तो उस पर सजदह लाज़िम होगा जैसा कि पीछे गुज़रा। [1] [उर्दू अनुवाद]: मसबूक बाकी रकात अदा करने में मुनफ़रिद (अकेले नमाज़ पढ़ने वाले) की तरह होता है जैसा कि गुज़रा। उस पर यह सूरत मुतफ़र्रअ (आधारित) है कि जब मुक्तदी ने भूल कर सलाम कह दिया तो अगर इमाम से पहले साथ है तो सजदह सह्व लाज़िम नहीं, और अगर बाद में है तो उस पर सजदह लाज़िम होगा जैसा कि पीछे गुज़रा। (त)

इन चारों इबारतों में पहली हदीस की तरह मुक्तदी की भूल की पूर्णतः मनाही की गई है, यानी इसके लिए कोई हुक्म नहीं जैसा कि हमने साबित किया। (7) इमाम अजल अबू जाफर तहवी 'शरह मानी अल-आसार' जिल्द अव्वल, सफ़ा 238 में 'फर्ज़ पढ़ने वाले का नफ़्ल पढ़ने वाले इमाम की इक्तिदा करना' (त) के बारे में फरमाते हैं:

[अरबी पाठ]: लेकिन इसका हुक्म दलील के आधार पर है; हम देखते हैं कि मुक्तदियों की नमाज़ की सेहत (सही होना) और फसाद (बातिल होना) इमाम की नमाज़ के ताबे (अधीन) है। यह सही दलील इस बात को लाज़िम करती है कि जब इमाम भूल गया तो उसकी भूल की वजह से जो कुछ इमाम पर लाज़िम हुआ, वह उसके पीछे वालों पर भी लाज़िम होगा। और अगर मुक्तदी भूल जाएं और इमाम न भूले तो मुक्तदियों पर वह चीज़ लाज़िम नहीं होती जो इमाम के भूलने पर उस पर लाज़िम होती है। [2] [उर्दू अनुवाद]: लेकिन इसका हुक्म बतरीक़-ए-नज़र (दलील के तौर पर) है, हम देखते हैं कि मुक्तदियों की नमाज़ सेहत व फ़साद के एतबार से इमाम की नमाज़ के ताबे है, यह नज़र-ए-सही लाज़िम करती है कि जब इमाम भूल गया तो उसकी भूल की बिना पर जो कुछ इमाम पर लाज़िम हुआ वह उसके पीछे वालों पर भी लाज़िम होगा। और अगर मुक्तदी भूल जाएं और इमाम न भूले तो मुक्तदियों पर वह चीज़ लाज़िम नहीं होती जो इमाम के भूलने पर उस पर लाज़िम होती है। (त)

इमाम (तहवी) ने 'लम यजिब अलैहिमुस सुजूद' (उन पर सजदा वाजिब नहीं - त) नहीं फरमाया बल्कि 'मा यजिब अलल इमाम' (जो इमाम पर लाज़िम है (वह मुक्तदियों पर लाज़िम है) - त) फरमाया, जो सजदा और इआदा (नमाज़ दोहराना) दोनों को शामिल है। (8) ज़खीरा फिर हिन्दिया जिल्द अव्वल सफ़ा 130 में है:

[अरबी पाठ]: अगर पहला इमाम खलीफा बनाने के बाद भूलता है, तो उसकी भूल से कुछ भी लाज़िम नहीं होता। [3] [उर्दू अनुवाद]: अगर पहला इमाम ख़लीफ़ा बनाने के बाद भूलता है तो उसकी भूल कोई शै (चीज़) लाज़िम नहीं करती। (त)

---

1. बहर-उर-राइक़, बाब सुजूद-उस-सह्व, मटबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/100.
2. अत-तहवी, शरह मानी अल-आसार, बाबुर रजुल युसल्ली... मटबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/280.
3. फ़तावा हिन्दिया, बाब अल-सानी अशर फ़ी सुजूद-उस-सह्व, मटबुआ नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/130.

فتاوٰی رضویہ ، جلد ہشتم

(۶) بحر الرائق جلد دوم صفحہ ۱۰۸:

المسبوق فیما یقضیه کالمنفرد کما تقدم وعلیه یفرغ ما اذاسلم ساہیا فان کان قبل الامام او معه فلا سہو وان کان بعده فعلیه کما ذکرناه $1^$ | مسبوق باقی رکعات ادا کرنے میں منفرد کی طرح ہوتا ہے جیسے گزرا، اس پر یہ صورت متفرع ہے کہ جب مقتدی نے بھول کر سلام کہہ دیا تو اگر امام سے پہلے ساتھ ہے تو سجدہ سہو لازم نہیں، اور اگر بعد میں ہے تو اس پر سجدہ لازم ہوگا جیسا کہ پیچھے گزرا۔ (ت)

ان چاروں عبارتوں میں مثل حدیث اول سہو مقتدی کی مطلقاً نفی فرمائی ہے یعنی اس کے لئے کوئی حکم نہیں کما قررناہ (جیسا کہ ہم نے اس کی تقریر کردی ہے۔ت) (۷) امام اجل ابو جعفر طحاوی شرح معانی الآثار جلد اول صفحہ ۲۳۸: اقتدی مفترض بمتنفل ، (فرض پڑھنے والا نفل پڑھنے والے امام کی اقتداء کرے۔ ت) میں فرماتے ہیں:

اماحکمہ بطریق النظر فانا قدرأینا صلواۃ المأمومین مضمنة بصلوة امامهم بصحتها اوفسادها یوجب ذلك النظر الصحیح من ذلك انا رأینا الامام اذاسها وجب علی من خلفه لسهو ما وجب علیه ولو سهوا هم و لم یسہ حولم یجب علیهم مایجب علی الامام اذاسها $2^$۔ | لیکن اس کا حکم بطریق نظر ہے ہم دیکھتے ہیں کہ مقتدیوں کی نماز صحت و فساد کے اعتبار سے امام کی نماز کے تابع ہے، یہ نظر صحیح لازم کرتی ہے کہ جب امام بھول گیا تو اس کی بھول کی بنا پر جو کچھ امام پر لازم ہوا وہ اس کے پیچھے والوں پر بھی لازم ہوگا۔ اور اگر مقتدی بھول جائیں اور امام نہ بھولے تو مقتدیوں پر وہ چیز لازم نہیں ہوتی جو امام کے بھولنے پر اس پر لازم ہوتی ہے۔ (ت)

امام (طحاوی) نے لم یجب علیہم السجود (مقتدیوں پر سجدہ واجب نہیں۔ت) نہ فرمایا بلکہ مایجب علی الامام (جو امام پر لازم (وہ مقتدیوں پر لازم ہے)۔ت) کہ سجدہ و اعادہ دونوں کو شامل۔ (۸) ذخیرہ پھر ہندیہ جلد اول صفحہ ۱۳۰ میں ہے:

لوسھا الاول بعد الاستخلاف لا یوجب سہوہ شیئاً $3^$۔ | اگر پہلا امام خلیفہ بنانے کے بعد بھولتا ہے تو اس کی بھول کوئی شئی لازم نہیں کرتی، (ت)

$1^$ بحر الرائق باب سجود السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۰۰ $2^$ الطحاوی شرح معانی الآثار باب الرجل یصلی الفریضۃ خلف من یصلی تطوعا مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۲۸۰ $3^$ فتاوی ہندیہ باب الثانی عشر فی سجود السہو مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۳۰

Fatawa Razawiyya Volume 8

(9) In 'Kafi' of Imam Ajal Hakim Shaheed, in which all the books of Zahir al-Riwayah are compiled, it is mentioned incidentally in the commentary by Imam Sarakhsi, Volume 1, page 225:

If an Imam commits a ritual impurity during his prayer and had forgotten something (requiring Sajdah Sahw), and he appoints someone as his successor, that successor shall perform the prostration of forgetfulness after the final salutation. Even if the first Imam had not forgotten, but the second Imam (the successor) forgets, then when the first Imam returns, he too shall perform the prostration because of the successor's mistake. However, if the first Imam forgets after appointing the successor, his mistake does not necessitate the prostration. 1 If a forgetful Imam appointed someone as his successor during prayer, the successor shall perform the prostration of forgetfulness after the final salutation. If the first Imam had not forgotten but the second Imam (successor) forgot, then when the first Imam returns, he too shall perform the prostration due to the successor's mistake. And if the first Imam forgets after appointing the successor, the prostration of forgetfulness will not be required for that mistake. (T)

Imam Sarakhsi stated: "Because he has come under the ruling of a follower (Muqtadi)." 2 (T) This itself is an explicit text from the recorder of the school (Madhhab), Imam Muhammad (may Allah be pleased with him). Since no disagreement is mentioned, it is also the position of Imam Azam and Imam Abu Yusuf (may Allah be pleased with them all). From these statements, it is clear as a universal negative proposition that a follower's own mistake does not make anything obligatory. The general ruling is conclusive for every individual case. It is proven by the texts of the three Imams—Abu Hanifa, Abu Yusuf, and Muhammad (may Allah be pleased with them)—that for a follower's own mistake, neither prostration nor repetition of prayer is required. (10) Imam Ajal Tahawi, in 'Layu'amm', stated even more explicitly after the aforementioned text:

It is established that the followers are subject to the ruling of forgetfulness due to the Imam's mistake, and the ruling of forgetfulness is negated for them if it is negated for the Imam. 3 This confirms that the prostration of forgetfulness is obligatory for the followers due to the Imam's mistake, and if it is not required for the Imam, it is not required for the followers either. (T)

(11) The illustrious Imam Shams al-Aimmah Sarakhsi states in 'Al-Mabsut', Volume 1, page 229:

The one who joins late (Lahiq) is under the ruling of a follower in completing the remaining parts of his prayer, and the mistake of a follower is inconsequential. 4 A Lahiq (one who missed part of the prayer due to an excuse) is under the ruling of a follower in his remaining rak'ahs, and no prostration of forgetfulness is due upon a follower. (T)

(12) Imam Malik al-Ulama Abu Bakr Mas'ud states in 'Bada'i al-Sana'i fi Tartib al-Shara'i', Volume 1, page 76:

1. Al-Mabsut by al-Sarakhsi, Chapter on Sajdah Sahw, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/225.
2. Al-Mabsut by al-Sarakhsi, Chapter on Sajdah Sahw, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/225.
3. At-Tahawi, Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on a person praying obligatory prayer behind someone praying voluntary prayer, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/280.
4. Al-Mabsut by al-Sarakhsi, Chapter on Sajdah Sahw, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/229.

फ़तावा रज़विय्या जिल्द 8

(9) इमाम अजल हाकिम शहीद की 'काफ़ी' में, जिसमें ज़ाहिर अल-रवाया की सभी किताबों को संकलित किया गया है, इमाम सरखसी की व्याख्या के संदर्भ में जिल्द 1, पृष्ठ 225 पर उल्लेख है:

यदि एक इमाम अपनी नमाज़ के दौरान अशुद्ध (हदस) हो जाता है और वह कुछ भूल गया था, और वह किसी को अपना उत्तराधिकारी (खलीफा) नियुक्त करता है, तो वह उत्तराधिकारी सलाम के बाद सजदा सह्व (भूल का सजदा) करेगा। यदि पहले इमाम से कोई भूल नहीं हुई थी, लेकिन दूसरा इमाम (उत्तराधिकारी) भूल जाता है, तो जब पहला इमाम वापस आता है, तो वह भी उत्तराधिकारी की भूल के कारण सजदा करेगा। और यदि पहले इमाम उत्तराधिकारी नियुक्त करने के बाद भूलता है, तो उसकी इस भूल से सजदा सह्व अनिवार्य नहीं होगा। 1 अगर भूले हुए इमाम ने दौरान-ए-नमाज़ किसी को अपना खलीफ़ा बनाया तो सलाम के बाद खलीफ़ा सजदा सह्व करे और अगर पहला इमाम भूला नहीं था और दूसरा इमाम (खलीफ़ा) भूल गया तो पहला इमाम वापस आया तो वो भी खलीफ़ा की भूल की वजह से सजदा करे, और अगर पहला इमाम खलीफ़ा बनाने के बाद भूला तो उस भूल से सजदा सह्व लाज़िम न आएगा। (त)

इमाम सरखसी ने फ़रमाया: "क्योंकि वह एक मुक़्तदी (अनुयायी) के हुक्म में आ गया है।" 2 (त) यह स्वयं मज़हब के संकलनकर्ता इमाम मुहम्मद (रज़ियल्लाहु अन्हु) का स्पष्ट पाठ है। चूँकि कोई विरोधाभास वर्णित नहीं है, इसलिए यह स्वयं इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ का भी रुख है (रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन)। इन इबारतों से यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि मुक़्तदी की अपनी भूल किसी चीज़ को वाजिब (अनिवार्य) नहीं बनाती। यह सामान्य नियम हर व्यक्तिगत मामले के लिए निश्चित है। तीनों इमामों—अबू हनीफ़ा, अबू यूसुफ़ और मुहम्मद (रज़ियल्लाहु अन्हुम)—के ग्रंथों से यह सिद्ध है कि मुक़्तदी पर अपनी भूल के लिए न तो सजदा है और न ही नमाज़ दोहराना। (10) इमाम अजल तहावी ने 'लायुअम्म' में उपरोक्त इबारत के बाद और भी स्पष्ट रूप से फ़रमाया:

यह सिद्ध हो गया है कि इमाम की भूल के कारण मुक़्तदियों पर सह्व (भूल) का हुक्म लागू होता है, और यदि इमाम से सह्व का हुक्म हट जाए, तो मुक़्तदियों से भी हट जाता है। 3 यह बात साबित हो गई कि इमाम की भूल की वजह से मुक़्तदियों पर सजदा सह्व वाजिब है, और इमाम से नफ़ी (मनाही) की सूरत में मुक़्तदियों से भी इसकी नफ़ी हो गई। (त)

(11) इमाम जलील शम्सुल अइम्मा सरखसी 'मबसत' जिल्द 1, पृष्ठ 229 में फ़रमाते हैं:

लाहिक (वह व्यक्ति जो नमाज़ में पीछे छूट गया हो) अपनी शेष नमाज़ पूरी करने में मुक़्तदी के हुक्म में होता है, और मुक़्तदी की भूल निष्प्रभावी होती है। 4 लाहिक अपनी बाकी रकातों में मुक़्तदी के हुक्म में होता है और मुक़्तदी पर सजदा सह्व नहीं होता। (त)

(12) इमाम मलिकुल उलमा अबू बक्र मसूद 'बदाइउल सनाइ' जिल्द 1, पृष्ठ 76 में फ़रमाते हैं:

पाद टिप्पणियाँ: 1. अल-मबसूत लिस-सरखसी, बाब सुजूदुस सह्व, दारुल मारिफ़ा बेरूत, 1/225 2. अल-मबसूत लिस-सरखसी, बाब सुजूदुस सह्व, दारुल मारिफ़ा बेरूत, 1/225 3. अत-तहावी शरह मानी अल-आसार, बाबुर रजुलु युसल्ली अल-फ़रीज़ता खल्फा मन युसल्ली ततव्वुअन, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/280 4. अल-मबसूत लिस-सरखसी, बाब सुजूदुस सह्व, दारुल मारिफ़ा बेरूत, 1/229

पृष्ठ 206 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

(۹) کافی امام اجل حاکم شہید جس میں جمیع کتب ظاہر الروایہ کو جمع فرمایا ہے ضمناً شرح امام سرخسی جلد اول صفحہ ۲۲۵ میں ہے: اذا احدث الامام في خلال صلوته وقد سها فاستخلف رجلا یسجد للسهو بعد السلام وان لم یکن الامام الاول سها لزمه سجود السهو لسهو الثانی ولو سها الاول بعد الاستخلاف لا یوجب سهوه شیئاً 1۔ اگر بھولے ہوئے امام نے دورانِ نماز کسی کو اپنا خلیفہ بنایا تو سلام کے بعد خلیفہ سجدہ سہو کرے اور اگر پہلا امام بھولا نہیں تھا اور دوسرا امام (خلیفہ) بھول گیا تو پہلا امام واپس آیا تو وہ بھی خلیفہ کی بھول کی وجہ سے سجدہ کرے، اور اگر پہلا امام خلیفہ بنانے کے بعد بھولا تو اس بھول سے سجدہ سہو لازم نہ آئے گا۔ (ت)

امام سرخسی نے فرمایا: لانه صار في حکم المقتدی 2 (کیونکہ وہ مقتدی کے حکم میں ہو گیا ہے۔ ت) یہ خود محرر المذہب امام محمد رضی اللہ تعالٰی عنہ کا نص جلی ہے جو بوجہ عدم ذکر خلاف خود امام اعظم و امام ابو یوسف سب کا نص ہے رضی اللہ تعالٰی عنہم اجمعین، ان عبارات سے روشن بین سالبہ کلیہ ہے کہ مقتدی کا سہو اصلاً کسی چیز کو واجب نہیں کرتا اور عام کا حکم اس کے ہر فرد میں قطعی ہوتا ہے خود نص ائمہ ثلثہ ابوحنیفہ و ابو یوسف و محمد رضی اللہ تعالٰی عنہم سے ثابت کہ مقتدی پر اپنے سہو کے ہرگز نہ سجدہ ہے نہ اعادہ۔ (۱۰) لایؤم امام اجل طحاوی نے بعد عبارت مذکورہ صریح تر فرمایا: ثبت ان المأمومین یجب علیهم حکم السهو لسهو الامام وینتفی عنهم حکم السهو بانتفائه عن الامام 3۔ یہ بات ثابت ہو گئی کہ امام کے سہو کی وجہ سے مقتدیوں پر سجدہ سہو واجب ہے اور امام سے نفی کی صورت میں مقتدیوں سے بھی اس کی نفی ہو گئی۔ (ت)

(۱۱) امام جلیل شمس الائمہ سرخسی مبسوط جلد اول صفحہ ۲۲۹ میں فرماتے ہیں: اللاحق في حكم المقتدی فیما یتم وسھو المقتدی متعطل 4۔ لاحق اپنی بقیہ رکعتوں میں مقتدی کے حکم میں ہوتا ہے اور مقتدی پر سجدہ سہو نہیں ہوتا۔ (ت)

(۱۲) امام ملک العلما ابوبکر مسعود بدائع الصنائع فی ترتیب الشرائع جلد اول صفحہ ۷۶ میں فرماتے ہیں:

1 المبسوط للسرخسی، باب سجود السھو، مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۲۲۵ 2 المبسوط للسرخسی، باب سجود السھو، مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۲۲۵ 3 الطحاوی شرح معانی الآثار باب الرجل یصلی الفریضۃ خلف من یصلی تطوعاً مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۸۰ 4 المبسوط للسرخسی باب سجود السھو مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۲۲۹

Fatawa-e-Razvia - Volume 8

[Arabic Box] The Masbuq (one who joined the prayer late) follows the Imam only in the prostrations of forgetfulness (Sajdah Sahw), not in his Salam. If he performs Salam, and if it was intentional, his prayer is invalidated. If it was due to forgetfulness, his prayer is not invalidated, and there is no Sahw (prostration for forgetfulness) due on him because he is a follower (Muqtadi), and the forgetfulness of a follower is nullified. (1) -(T)

[Urdu Translation in Box] The Masbuq should follow the Imam in the prostrations of forgetfulness but should not perform Salam. If he did perform Salam, and if it was intentional, the Masbuq's prayer will be invalidated. If it was by mistake, the prayer will not be invalidated, and no prostration of forgetfulness is required on him because he is a follower, and the forgetfulness of a follower is nullified. -(T)

There he said:

[Arabic Box] If he performs Salam before the Imam's Salam or both perform it together, it is not binding on him because his forgetfulness is the forgetfulness of a follower, and the forgetfulness of a follower is disregarded. (2)

[Urdu Translation in Box] If the Masbuq performs Salam before the Imam's Salam or both perform it together, the prostration of forgetfulness is not mandatory for the Masbuq because his forgetfulness is that of a follower, and the forgetfulness of a follower is not worthy of attention. (T)

What clear textual proofs these are that the forgetfulness of a follower is disregarded and has no ruling. If repetition were made mandatory, then these rulings themselves would become null and void, rather than his forgetfulness.

(14) I say: The issue of the Masbuq has made the ruling brighter than the sun. It is explicitly stated in all books that if a Masbuq mistakenly performs Salam with the Imam, there is no prostration of forgetfulness upon him. If the follower's forgetfulness had any effect, it would have been mandatory for the Masbuq to perform prostration, completing his missed Rak'ahs and performing it at the end. Now, there would be neither opposition to the Imam nor a change of subject. However, they clarify that this forgetfulness is waived due to following the Imam (Iqtida). Thus, it is proven that the forgetfulness of a follower is not fundamentally considered or taken into account. Otherwise, despite the possibility of a remedy (Jabir), they would intentionally cause the omission of the remedy and then

command repetition themselves. This is impossible, as omitting a remedy without a valid excuse is a sin. It is stated in the texts: "Two prostrations are mandatory" (T), and Sharia does not command sin.

[Arabic Box] If you say that prostration will not be performed after completing what was missed because legally they are two prayers, even though the Takbir-e-Tahrima makes them one, and the prostration of one prayer is not performed in another. It is stated in al-Bada'i, page 176: If it is asked that the Masbuq should not prostrate with the Imam...

[Urdu Translation in Box] If you raise this question that prostration will not be performed after the missed Rak'ahs because, although it is one prayer due to Tahrima, legally they are two prayers, and the prostration of one prayer is not done in another. In Bada'i, p. 176, it was said: If this question is asked, then the Masbuq should not [prostrate] with the Imam...

1. Bada'i al-Sana'i, Chapter on "Who is obligated to perform prostration of forgetfulness," printed by H.M. Saeed Company Karachi 1/176.
2. Bada'i al-Sana'i, Chapter on "Who is obligated to perform prostration of forgetfulness," printed by H.M. Saeed Company Karachi 1/176.

फ़तावा रिज़विया - जिल्द आठवीं

[अरबी बॉक्स] मसबूक (वह व्यक्ति जो नमाज़ में देर से शामिल हुआ हो) केवल सह्व के सजदों में इमाम का अनुसरण करता है, उसके सलाम में नहीं। यदि उसने सलाम फेर दिया, और यदि वह जानबूझकर था, तो उसकी नमाज़ फ़ासिद (अमान्य) हो जाती है। यदि वह भूलवश था, तो नमाज़ फ़ासिद नहीं होती और उस पर सह्व (भूल का सजदा) भी नहीं है क्योंकि वह मुक्तदी है और मुक्तदी का सह्व अमान्य होता है। (१) -(त)

[बॉक्स में उर्दू अनुवाद] मसबूक सह्व के सजदे में इमाम का अनुसरण करे लेकिन सलाम न फेरे। और अगर उसने सलाम फेर दिया, तो अगर जानबूझकर था तो मसबूक की नमाज़ फ़ासिद हो जाएगी। और अगर भूलकर था तो नमाज़ फ़ासिद नहीं होगी और उस पर सह्व का सजदा भी नहीं क्योंकि वह मुक्तदी है और मुक्तदी का सह्व बातिल (अमान्य) होता है। -(त)

वहीं फ़रमाया:

[अरबी बॉक्स] यदि उसने इमाम के सलाम से पहले सलाम फेर दिया या दोनों ने एक साथ फेरा, तो उस पर यह लाज़िम नहीं है क्योंकि उसका सह्व मुक्तदी का सह्व है, और मुक्तदी का सह्व निष्प्रभावी है। (२)

[बॉक्स में उर्दू अनुवाद] अगर मसबूक ने इमाम के सलाम से पहले सलाम किया या दोनों ने एक साथ सलाम किया तो मसबूक पर सह्व का सजदा लाज़िम नहीं क्योंकि उसका सह्व मुक्तदी का सह्व है और मुक्तदी का सह्व ध्यान देने योग्य नहीं है। (त)

ये कैसी स्पष्ट दलीलें हैं कि मुक्तदी का सह्व निष्प्रभावी है, उसका कोई हुक्म नहीं। अगर नमाज़ दोहराना (एआदा) वाजिब कर दिया जाए, तो ये हुक्म ही बातिल और बेकार हो जाएंगे, न कि उसका सह्व।

(१४) अक़ूल (मैं कहता हूँ): मसबूक के मसले ने हुक्म को सूरज से ज़्यादा रोशन कर दिया है। यह तमाम किताबों में स्पष्ट है कि मसबूक अगर भूलवश इमाम के साथ सलाम फेर दे तो उस पर सह्व का सजदा नहीं है। अगर मुक्तदी का सह्व कुछ प्रभावी होता, तो वाजिब था कि मसबूक पर सजदा वाजिब होता ताकि अपनी छूटी हुई रकअतें पूरी करके अंत में उसे अदा करता। अब न तो इमाम का विरोध होता और न ही विषय परिवर्तन। मगर वे स्पष्ट करते हैं कि उस पर से यह सह्व इक्तिदा (इमाम का

अनुसरण) की वजह से साक़ित (समाप्त) है। तो साबित हुआ कि मुक्तदी का सह्व मूलतः मान्य या ध्यान में रखने योग्य ही नहीं है, अन्यथा सुधार (जाबिर) की संभावना के बावजूद वे जानबूझकर सुधार को छोड़ने के लिए कहते और फिर खुद ही नमाज़ दोहराने का हुक्म देते। यह असंभव है कि बिना सही उज़्र (कारण) के सुधार को छोड़ना गुनाह है। मूल पाठ (मतून) में है: "दो सजदे वाजिब हैं।" (त) और शरीयत गुनाह का हुक्म नहीं देती।

[अरबी बॉक्स] यदि आप कहें कि छूटी हुई रकातें पूरी करने के बाद सजदा नहीं किया जाएगा क्योंकि वे कानूनी तौर पर दो नमाज़ें हैं, भले ही तहरीमा की वजह से नमाज़ एक है, और एक नमाज़ का सजदा दूसरी नमाज़ में नहीं किया जाता। बदाइअ (Al-Bada'i) पेज १७६ में फ़रमाया: यदि यह सवाल किया जाए कि मसबूक को इमाम के साथ सजदा नहीं करना चाहिए...

[बॉक्स में उर्दू अनुवाद] अगर आप यह सवाल करें कि फौत शुदा (छूटी हुई) रकअतों के बाद सजदा नहीं किया जाएगा क्योंकि अब अगरचे तहरीमा की वजह से नमाज़ एक है मगर हुक्मन दो नमाज़ें हैं और एक नमाज़ का सजदा दूसरी नमाज़ में नहीं किया जाता। बदाइअ पृ. १७६ में फ़रमाया अगर यह सवाल किया जाए कि मसबूक को इमाम के साथ सजदा नहीं...

1. बदाइअ उस-सनाइअ, सह्व का सजदा वाजिब होने वालों के बयान का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा मुद्रित १/१७६
2. बदाइअ उस-सनाइअ, सह्व का सजदा वाजिब होने वालों के बयान का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा मुद्रित १/१७६

पृष्ठ २०७ / ६७३

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

[Arabic Box] المسبوق انما یتابع الامام فی سجود السھو لا فی سلامہ وان سلم فان کان عامدا تفسد صلوتہ وان ساھیا لا تفسدو ولا سھو علیہ لانہ مقتد وسھو المقتدی باطل ۱۔ -(ت)

[Urdu Translation in Box] مسبوق سجدہ سہو میں امام کی اتباع کرے لیکن سلام نہ کرے اور اگر اس نے سلام پھیر دیا تو اگر دانستہ تھا تو مسبوق کی نماز فاسد ہوجائے گی اور اگر بھول کر تھا تو نماز فاسد نہ ہوگی اور اس پر سجدہ سہو بھی نہیں کیونکہ وہ مقتدی ہے اور مقتدی کا سہو باطل ہوتا ہے -(ت)

وہیں فرمایا:

[Arabic Box] ان سلم قبل تسلیم الامام اوسلما معا لا یلزمہ لان سھوہ سھو المقتدی و سھو المقتدی متعطل ۲۔

[Urdu Translation in Box] اگر مسبوق نے امام کے سلام سے پہلے سلام کیا یا دونوں نے اکٹھے سلام کیا تو مسبوق پر سجدہ سہو لازم نہیں کیونکہ اس کا سہو مقتدی کا سہو ہے اور مقتدی کا سہو قابلِ اعتنا نہیں۔ (ت)

کیسے نصوص جلیلہ ہیں کہ مقتدی کا سہو معطل ہے اس کا کچھ حکم نہیں، اگر اعادہ واجب کرے تو یہ احکام ہی باطل معطل ہوں گے نہ کہ اس کا سہو۔

(۱۴) اقول: مسئلہ مسبوق نے حکم کو آفتاب سے زیادہ روشن کر دیا، یہ تمام کتب میں تصریح ہے کہ مسبوق اگر سہواً امام کے ساتھ سلام پھیر دے اس پر سجدہ سہو نہیں، اگر سہو مقتدی کچھ موثر ہوتا تو واجب تھا کہ مسبوق پر سجدہ واجب ہوتا کہ اپنی فائت رکعت پوری کرکے آخر میں بجالاتا

اور اب نہ امام کی مخالفت لازم آتی نہ قلب موضوع، مگر تصریح کرتے ہیں کہ اس پر سے یہ سہو بوجہ اقتداء ساقط ہے تو ثابت ہوا کہ سہو مقتدی اصلاً معتبر و ملحوظ ہی نہیں ورنہ باوصف امکان جابر قصدِ ترکِ جابر کرائیں پھر خود ہی اعادہ کا حکم فرمائیں، یہ محال ہے کہ بلا عذر صحیح ترکِ جابر گناہ ہے، متون میں ہے: تجب سجدتان (دو سجدے واجب ہیں۔ت) اور شریعت گناہ کا حکم نہیں دیتی۔

[Arabic Box] فان قلت انما لا یسجد بعد قضاء مافاته لانهما صلوتان حکما وان اتحدث التحریمة وسهو صلوته لا یسجد له فی اخری قال فی البدائع صفحة فان قیل ینبغی ان لا یسجد المسبوق مع الامام

[Urdu Translation in Box] اگر آپ یہ سوال کریں کہ فوت شدہ رکعات کے بعد سجدہ نہیں کیا جائے گا کیونکہ اب اگرچہ تحریمہ کی وجہ نماز ایک ہے مگر حکماً دو نمازیں ہیں اور ایک نماز کا سجدہ دوسری نماز میں نہیں کیا جاتا، بدائع ص ۱۷۶ میں فرمایا اگر یہ سوال کیا جائے کہ مسبوق کو امام کے ساتھ سجدہ نہیں

۱۔ بدائع الصنائع فصل بیان من یجب علیہ سجودالسہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۱۷۶ ۲۔ بدائع الصنائع فصل بیان من یجب علیہ سجودالسہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۱۷۶

Fatawa Rizvia - Volume 8

[Arabic Column Text] Because perhaps one might forget in what he completes, and thus prostration of forgetfulness (Sajda Sahw) becomes obligatory upon him as well. This would lead to repetition, which is not prescribed. The answer is that repetition in a single prayer is not prescribed, but here they are legally two prayers, even if the initial Takbir (Tahrimah) was one. This is because the latecomer (Masbuq) is like an individual prayer (Munfarid) in what he completes. An analogy is a resident (Muqim) following a traveler (Musafir); if the Imam forgets, the resident follows him in Sajda Sahw, even though the follower might forget while completing his own prayer. End. In 'Al-Kafi Sharh al-Wafi' by Imam al-Nasafi, in the section regarding one who sits for the fourth unit and then forgetfully performs a fifth, adding a sixth, the text says: He should not perform Sajda Sahw based on analogy (Qiyas), because this forgetfulness occurred in the obligatory part (Fara'id) and he has since moved to the voluntary part (Nafal). Whoever forgets in one prayer does not prostrate for it in another prayer. End. I say: Both are like one prayer regarding rectification due to the unity of Tahrimah. Don't you see what was said in Al-Kafi, immediately following the aforementioned phrase: "And he prostrates for forgetfulness based on juristic preference (Istihsan), because the deficiency entered..."

[Urdu Column Text] One should do so because sometimes the latecomer (Masbuq) forgets in the remaining units, making Sajda Sahw mandatory for him. Thus, repetition of Sajda Sahw would occur, which is not prescribed. The answer is that repetition of Sajda Sahw is unauthorized in a single prayer. In this case, although the prayer is one in terms of Takbir Tahrimah, legally it consists of two prayers because the latecomer is like a solitary worshiper in the remaining units. An example is when a resident follows a traveler; if the Imam forgets, the resident follows the Imam in Sajda Sahw, even if the follower sometimes forgets in the remaining units. End. And in Imam Nasafi's 'Kafi Sharh al-Wafi' page 85, regarding a person who sat for the fourth unit then forgetfully offered a fifth and joined a sixth with it, the words are: He should not perform Sajda Sahw by analogy because this was a mistake that occurred in the obligatory portion, whereas he has now moved to the voluntary portion. And a person who forgets in one prayer cannot do its prostration in another prayer. End. I say: Due to the unity of Takbir Tahrimah, to compensate for the deficiency, both are like one prayer. You have not seen the statement in Al-Kafi that immediately follows the aforementioned text: "(Not by analogy) but should prostrate by way of juristic

preference (Istihsan) because, according to Imam Muhammad, the deficiency occurred in the obligatory units because..."

---

1. Bada'i al-Sana'i, Chapter: Explanation of those upon whom Sajda Sahw is mandatory, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 1/71.
2. Al-Kafi Sharh al-Wafi, p. 85.

फतावा रिज़विया - जिल्द अष्टम

[अरबी स्तंभ पाठ] क्योंकि शायद वह जो कुछ पूरा करता है उसमें भूल जाए, और इस प्रकार उस पर भी सजदा सह्व अनिवार्य हो जाए। इससे पुनरावृत्ति होगी, जो निर्धारित नहीं है। उत्तर यह है कि एक ही नमाज़ में पुनरावृत्ति निर्धारित नहीं है, लेकिन यहाँ कानूनी रूप से वे दो नमाज़ें हैं, भले ही प्रारंभिक तकबीर (तहरीमा) एक ही हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि बाद में शामिल होने वाला (मस्बूक) जो कुछ पूरा करता है उसमें व्यक्तिगत नमाज़ पढ़ने वाले (मुनफ़रिद) के समान है। इसका उदाहरण एक निवासी (मुकीम) का है जो एक यात्री (मुसाफ़िर) का अनुसरण करता है; यदि इमाम भूल जाता है, तो निवासी सजदा सह्व में उसका अनुसरण करता है, भले ही अनुयायी अपनी नमाज़ पूरी करते समय भूल जाए। समाप्त। इमाम नसफ़ी की 'अल-काफ़ी शरह अल-वाफ़ी' में, उस व्यक्ति के बारे में जो चौथी रकात के लिए बैठा और फिर भूलवश पांचवीं पढ़ी और छठी मिला ली, मूल पाठ कहता है: वह कयास (तर्क) के आधार पर सजदा सह्व न करे, क्योंकि यह भूल फ़राइज़ (अनिवार्य भाग) में हुई थी और वह अब नफ़्ल (स्वैच्छिक भाग) में स्थानांतरित हो गया है। जो कोई एक नमाज़ में भूलता है, वह दूसरी नमाज़ में उसके लिए सजदा नहीं करता। समाप्त। मैं कहता हूँ: तहरीमा की एकता के कारण क्षतिपूर्ति के संबंध में दोनों एक नमाज़ की तरह हैं। क्या आपने अल-काफ़ी में वह नहीं देखा जो उपर्युक्त वाक्यांश के तुरंत बाद कहा गया है: "और वह इस्तहसान (न्यायिक वरीयता) के आधार पर सजदा सह्व करता है, क्योंकि कमी प्रवेश कर गई..."

[उर्दू स्तंभ पाठ] ऐसा करना चाहिए क्योंकि कभी-कभी मस्बूक (बाद में आने वाला) शेष रकातों में भूल जाता है, जिससे उस पर सजदा सह्व अनिवार्य हो जाता है। तो अब सजदा सह्व में पुनरावृत्ति हो जाएगी और यह शरीअत के अनुसार नहीं है। उत्तर यह है कि एक नमाज़ में सजदा सह्व की पुनरावृत्ति मना है। इस स्थिति में नमाज़ हालाँकि तहरीमा के लिहाज़ से एक है, लेकिन हुक्म के लिहाज़ से दो नमाज़ें हैं क्योंकि मस्बूक शेष रकातों में मुनफ़रिद (अकेले नमाज़ पढ़ने वाले) की तरह होता है। इसकी मिसाल यह है कि जब मुकीम मुसाफ़िर के पीछे नमाज़ पढ़े और इमाम भूल जाए, तो मुकीम सजदा सह्व में इमाम की पैरवी करेगा, हालाँकि कभी-कभी मुक़्तदी शेष रकातों में भूल जाता है। समाप्त। और इमाम नसफ़ी की 'काफ़ी शरह अल-वाफ़ी' पृष्ठ ८५ पर है, ऐसा व्यक्ति जिसने चौथी रकात का क़ायदा किया फिर भूलकर पांचवीं रकात अदा की तो वह छठी रकात भी साथ मिला ले, इसके बारे में शब्द हैं कि वह कयास के अनुसार सजदा सह्व न करे क्योंकि यह एक भूल थी जो फ़राइज़ में हुई जबकि अब वह नमाज़ी नफ़्ल की तरफ़ मुंतकिल (स्थानांतरित) हो चुका है, और जो

व्यक्ति एक नमाज़ में भूला वह उसका सजदा दूसरी नमाज़ में नहीं कर सकता। समाप्त। मैं कहता हूँ: तहरीमा के एक होने की वजह से कमी को पूरा करने के लिए ये दोनों एक नमाज़ की तरह हैं। आपने 'काफ़ी' की वह इबारत नहीं देखी जो उक्त इबारत से जुड़ी हुई है कि (कयास के तौर पर तो नहीं) बल्कि इस्तहसान के तौर पर सजदा करे क्योंकि इमाम मोहम्मद के नज़दीक कमी फ़राइज़ में हुई है क्योंकि...

---

1. बदाइउस्सनाइअ फ़स्ल: बयान मन यजीबू अलैहि सुजूदुस्सह्व, एच. एम. सईद कंपनी कराची ७१/१।
2. काफ़ी शरह अल-वाफ़ी पृ. ८५।

पृष्ठ २०८ / ६७३

[عربی کالم] لانه ربما یسهو فیما یقضی فیلزمه السجود ایضاً فیؤدی الی التکرار وانه غیر مشروع، فالجواب ان التکرار فی صلوة واحدة غیر مشروع وهما صلوتان حکماً وان کانت التحریمة واحدة لان المسبوق فیما یقضی کالمنفرد و نظیره المقیم اذا اقتدی بالمسافر فسها الامام یتابعه المقیم فی السهو وان کان المقتدی ربما یسهو فی اتمام صلوته اه وفی الکافي شرح الوافی للامام النسفی الورقة فیمن قعد للرابعة ثم صلی خامسة ساهیاً فضم سادسة مانصه لا یسجد للسهو قیاساً لان هذا سهو وقع فی الفرائض وقد انتقل منه الی النفل من سها عن صلوة لا یسجد له فی صلوة اخری اه اقول: هما کصلوه واحدة فی حق الجبر لا تحاد التحریمة الا تری الی ماقاله فی الکافی متصلا بالعبارة المذکورة ویسجد للسهو استحسانا لان النقصان دخل

[اردو کالم] کرنا چاہئے کیونکہ بعض اوقات بقیہ رکعتوں میں مسبوق بھول جاتا ہے جس کی وجہ سے اس پر سجدہ سہو لازم آجاتا ہے تو اب سجدہ سہو میں تکرار ہو جائے گا اور یہ مشروع نہیں، تو جواب یہ ہے کہ سجدہ سہو کا تکرار ایک نماز میں نامشروع ہے اور اس صورت میں نماز اگرچہ تحریمہ کے لحاظ سے ایک ہے مگر حکم کے اعتبار سے دو نمازیں ہیں کیونکہ مسبوق بقیہ رکعات میں منفرد کی طرح ہوتا ہے اس کی نظیر یہ ہے کہ مقیم جب مسافر کی اقتداء کرے اور امام بھول جائے تو سجدہ سہو میں مقیم امام کی اتباع کرے گا اگرچہ بعض اوقات مقتدی بقیہ رکعتوں میں بھول جاتا ہے اہ اور امام نسفی کی کافی شرح الوافی ص ۸۵ پر ہے ایسا شخص جس نے چوتھی رکعت کا قعدہ کیا پھر بھول کر پانچویں رکعت ادا کی تو وہ چھٹی رکعت بھی ساتھ ملالے کے بارے میں الفاظ ہیں کہ وہ قیاساً سجدہ سہو نہ کرے کیونکہ یہ ایک سہو تھا جو فرائض میں واقع ہوا حالانکہ اب وہ نمازی نوافل کی طرف منتقل ہو چکا ہے اور جو شخص ایک نماز میں بھولا

وہ اس کا سجدہ دوسری نماز میں نہیں کرسکتا اہ اقول: اتحاد تحریمہ کی وجہ سے نقصان کو پورا کرنے کے لئے یہ دونوں ایک نماز کی طرح ہیں آپ نے کافی کی وہ عبارت نہیں دیکھی جو مذکورہ عبارت کے متصل ہے کہ (قیاساً تو نہیں) مگر بطور استحسان سجدہ کرے کیونکہ امام محمد کے نزدیک نقصان فرائض میں ہوا ہے کیونکہ

---

1 بدائع الصنائع فصل بیان من یجب علیه سجود السهو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۷۱ 2 کافی شرح وافی ص ۸۵

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Arabic Text Section] In his obligatory prayer, according to Imam Muhammad, by omitting the Salam which is mandatory. And this voluntary prayer (Nafl) is based on the first Takbir (Tahrima). Therefore, in terms of the obligation of the prostration of forgetfulness (Sajda Sahw), it is treated as a single prayer. It is like a person who performs six voluntary Rak'ahs with one Salam and forgets in the first pair (Shuf'); he performs the prostration of forgetfulness at the end of the entire prayer, even though each pair is considered a separate prayer. Note: If this is the rule for two independent prayers, which are even different in nature (one being obligatory and the other voluntary), then it is even more applicable for parts of a single prayer, even if the state (of praying behind an Imam or alone) varies. This settles the dispute, as scholars have explicitly stated that if a Masbuq (one who joined late) does not perform the prostration for the Imam's forgetfulness with the Imam, he must perform it at the end of his own makeup prayer. It is mentioned in Al-Badai' (page 176): if the Masbuq stands up to complete what he missed and does not follow the Imam in the prostration of forgetfulness, he should perform it at the end of his prayer. This is because the Masbuq builds the makeup part upon that same initial Takbir (Tahrima). Thus, due to the unity of the Tahrima, the Masbuq makes the entire prayer one. When the whole prayer is one and it has incurred a deficiency due to the Imam's forgetfulness that cannot be rectified except by the two prostrations, then its rectification becomes obligatory. Note: If this is the case for the Imam's forgetfulness, then if he himself commits an error while following the Imam...

[Urdu Text Section] The worshiper has omitted the mandatory Salam and these (two rak'ats) are becoming voluntary (Nafl) only because of the first Takbir (Tahrima). Therefore, regarding the obligation of the prostration of forgetfulness, these both are considered a single prayer, just like the person who offered six voluntary prayers with one Salam and forgot in the first two rak'ats; although here every pair (Shuf') is an independent prayer, he will perform the prostration of forgetfulness at the end. When this is the case for two separate prayers, which are even different in terms of being obligatory or voluntary, then it should certainly be applicable to the parts of a single prayer, even if they differ in terms of congregational or individual performance. And now the dispute is resolved upon which the jurists have specified that if the Masbuq did not perform the prostration due to the Imam's forgetfulness along with the Imam, it would be mandatory for him to perform the prostration at the end of his own prayer. It is stated on page 176 of Badai' that if the Masbuq stood

up to fulfill his remaining prayer and did not follow the Imam in the prostration of forgetfulness, then he should perform the prostration at the end of his prayer because the Masbuq has based the remaining prayer on the same previous Tahrima. So now due to the unity of Tahrima, the Masbuq has made the prayer as one, and when this whole prayer is one and a deficiency has occurred in it due to the Imam's forgetfulness which cannot be removed except by two prostrations, then its removal becomes mandatory. When this matter is due to the Imam's forgetfulness, then if he himself makes a mistake during the state of following...

---

1 Kafi Sharh Wafi, page 85. 2 Badai' al-Sanai', chapter explaining upon whom the prostration of forgetfulness is mandatory, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/177.

फ़तावा रज़विया - खंड 8

[अरबी पाठ अनुभाग] इमाम मुहम्मद के अनुसार उनके फ़र्ज़ में, सलाम छोड़ने के कारण जो वाजिब है। और यह नफ़्ल पहली तहरीमा पर आधारित है। इसलिए सहव के सजदे की अनिवार्यता के संबंध में, इसे एक ही नमाज़ माना जाएगा। यह उस व्यक्ति की तरह है जिसने एक ही सलाम के साथ छह नफ़्ल रकात पढ़ीं और पहले जोड़े (शफ़) में भूल गया; वह नमाज़ के अंत में सहव का सजदा करेगा, भले ही यहाँ प्रत्येक जोड़ा एक स्वतंत्र नमाज़ है। ध्यान दें: यदि यह नियम दो स्वतंत्र नमाज़ों के लिए है, जो फ़र्ज़ और नफ़्ल के मामले में भिन्न भी हैं, तो एक ही नमाज़ के हिस्सों के लिए यह और भी अधिक लागू होना चाहिए, भले ही वे इक़्तिदा (इमाम के पीछे) और इनफ़िराद (अकेले) के लिहाज़ से अलग हों। यह उस विवाद को समाप्त करता है जिस पर न्यायविदों (फ़ुक़्हा) ने स्पष्ट किया है कि यदि मसबूक़ (देर से शामिल होने वाला) इमाम की भूल के कारण इमाम के साथ सजदा नहीं करता है, तो उसे अपनी नमाज़ के अंत में वह सजदा करना वाजिब होगा। अल-बदाए' के पृष्ठ 176 पर कहा गया है कि यदि मसबूक़ जो छूट गया था उसे पूरा करने के लिए खड़ा हो गया और भूलवश इमाम का अनुसरण नहीं किया, तो वह अपनी नमाज़ के अंत में सहव का सजदा करे। क्योंकि मसबूक़ अपनी शेष नमाज़ की बुनियाद उसी पिछली तहरीमा पर रखता है। तो अब तहरीमा की एकता के कारण मसबूक़ ने नमाज़ को एक बना लिया है। और जब यह पूरी नमाज़ एक है और इसमें इमाम की भूल के कारण ऐसी कमी आ गई है जिसे दो सजदों के बिना दूर नहीं किया जा सकता, तो उसका निवारण अनिवार्य हो गया है। ध्यान दें: जब यह बात इमाम की भूल की वजह से है, तो अब अगर इक़्तिदा की स्थिति में खुद उससे गलती...

[उर्दू पाठ अनुभाग] नमाज़ी ने वाजिब सलाम को छोड़ दिया है और ये (दो रकात) पहली तहरीमा की ही वजह से नफ़्ल बन रही हैं। इसलिए सहव के सजदे की अनिवार्यता में ये दोनों एक ही नमाज़ हैं, जिस तरह वह व्यक्ति जिसने एक सलाम के साथ छह नफ़्ल पढ़ीं और पहली दो रकात में भूल गया; हालाँकि यहाँ प्रत्येक जोड़ा (शफ़) एक स्वतंत्र नमाज़ है, लेकिन वह अंत में सहव का सजदा करेगा। जब यह स्थिति दो अलग-अलग नमाज़ों की है, जो फ़र्ज़ और नफ़्ल के मामले में भी भिन्न हैं, तो एक ही नमाज़ के हिस्सों में यह और भी ज़्यादा लागू होना चाहिए, भले ही वे इक़्तिदा और इनफ़िराद के लिहाज़ से अलग हों। और अब विवाद समाप्त हो गया है जिस पर फ़ुक़्हा (न्यायविदों) ने स्पष्ट किया है कि यदि मसबूक़ ने इमाम की भूल के कारण इमाम के साथ सजदा नहीं किया, तो अपनी नमाज़ के अंत में सजदा करना वाजिब होगा। बदाए' के पृष्ठ 176 पर कहा गया है कि यदि मसबूक़ अपनी शेष

नमाज़ की अदायगी के लिए खड़ा हो गया और सहव में इमाम का अनुसरण नहीं किया, तो वह अपनी नमाज़ के अंत में सहव का सजदा करे क्योंकि मसबूक़ ने अपनी शेष नमाज़ की बुनियाद उसी पिछली तहरीमा पर रखी है। तो अब तहरीमा की एकता के कारण मसबूक़ ने नमाज़ को एक बना लिया है और जब यह पूरी नमाज़ एक है और इसमें इमाम की भूल के कारण ऐसी कमी आ गई है जिसका निवारण दो सजदों के बिना नहीं हो सकता, तो उसका निवारण वाजिब होगा। जब यह बात इमाम की भूल की वजह से है, तो अब अगर इक़्तिदा की हालत में खुद उससे ग़लती...

---

1 काफ़ी शरह वाफ़ी, पृष्ठ 85। 2 बदाए अल-सनाए, अध्याय उस व्यक्ति के वर्णन में जिस पर सहव का सजदा अनिवार्य है, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 1/177।

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

[عربی متن] في فرضه عند محمد بترك السلام الذي هو واجب وهذا النفل بناء على التحريمة الاولى فيجعل في حق وجوب السهو كأنها صلوة واحدة كمن صلى ست ركعات تطوعا بتسليمة سهأ في الشفع الاول يسجد للسهو في اخر الصلوة وان كان كل شفع صلوة على حدة اهـ فاذا كان هذا في صلوتين مستقلتين بل مختلفتين فرضية و تنفلا فلان يكون في اجزاء صلوة واحدة اولى وان اختلفت اقتداء وانفراد ويقطع النزاع مانصوا عليه ان المسبوق ان لم يسجد لسهو الامام مع الامام يجب عليه ان يسجد له في اخر ما يقضيه، قال في البدائع صف ۱۷۶ و لوقام المسبوق الى قضاء ماسبق به ولم يتابع الامام في السهو سجد في اخر صلوته فان المسبوق يبني ما يقضى على تلك التحريمة فجعل الكل كأنها صلوة واحدة لاتحاد التحريمة واذا كان الكل صلوة واحدة وقد تمكن فيها النقصان بسهو الامام لم يجز ذلك بالسجدتين فوجب جبره اهـ فاذا كان هذا عليه بسهو امامه فلو كان لسهو نفسه حالة الاقتداء حكم

[اردو متن] نمازی نے واجب سلام کو ترک کردیا ہے اور یہ (دورکعتیں) پہلی تحریمہ کی ہی وجہ سے نفل بن رہی ہیں لہٰذا وجوب سجدہ سہو میں یہ دونوں ایک ہی نماز ہیں جس طرح کہ وہ شخص جس نے چھ نوافل ایک سلام سے پڑھے اور پہلی دورکعت میں بھول گیا تو اب اگرچہ یہاں ہر شفع مستقل نماز ہے مگر سجدہ سہو آخر میں کرے گا۔ جب دو الگ الگ نمازوں بلکہ وہ فرض و نفل کے اعتبار سے مختلف بھی ہیں کا حال یہ ہے تو ایک ہی نماز کے اجزا میں بطریق اولیٰ ہونا چاہئے اگر چہ وہ اقتدا وانفراد کے لحاظ سے مختلف ہیں اور اب نزاع ختم ہو گیا جس پر فقہاء نے تصریح کی ہے کہ مسبوق نے سہو امام کی وجہ سے اگر امام کے ساتھ سجدہ نہیں کیا تو اپنی نماز کے آخر میں سجدہ کرنا واجب ہوگا۔ بدائع کے صفحہ ۱۷۶ پر فرمایا کہ اگر مسبوق اپنی بقیہ نماز کی ادائیگی کے لئے کھڑا ہو گیا اور سہو میں امام کی اتباع نہ کی تو اپنی نماز کے آخر میں سجدہ

سہو کرے کیونکہ مسبوق نے بقیہ نماز کی بنا اسی سابقہ تحریمہ پر کی ہے تو اب اتحاد تحریمہ کی وجہ سے مسبوق نے نماز کو ایک بنا لیا ہے اور جب یہ تمام نماز ایک ہے اور اس میں سہو امام کی وجہ سے ایسا نقصان ہو چکا ہے جس کا ازالہ دو سجدوں سے نہیں ہو سکتا تو اس کا ازالہ واجب ہو گاہ جب یہ بات امام کے سہو کی وجہ سے ہے تو اب اگر حالت اقتداء میں خود اس سے غلطی

---

1 کافی شرح وافی ص ۸۵ 2 بدائع الصنائع فصل بیان من یجب علیہ سہو السہو مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۱۷۷

Fatawa Razviya, Volume 8

[Arabic]: It would have been mandatory for him to perform the prostration for it at the end of his prayer, but they (the jurists) have stated definitively that it is not upon him; thus it is established by their consensus that the mistake (sahw) of a follower (muqtadi) has no legal ruling. —

[Urdu]: If the ruling were applicable upon the occurrence of a mistake, it would have been necessary for him at the end of the prayer. However, the jurists have provided a definitive clarification that in this case, there is no prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw), because the consensus of the jurists is that no ruling can be enforced regarding the forgetfulness of a follower. (T)

(5) From this, it becomes clear that the discussion in 'An-Nahr' is not worthy of consideration at all, even though Sayyid Abu al-Sa'ud followed it and Allama Shami maintained it in 'Radd al-Muhtar' and 'Minhat al-Khaliq'. Their discussion would not be valid against the Hadith itself. It is mentioned in 'Tahtawi ala al-Durr al-Mukhtar', Volume 1, Page 181, regarding the issue of "Two units of voluntary (nafl) prayer before the Maghrib prayer":

[Arabic]: In Bukhari, it is mentioned that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Pray two rak'ahs before Maghrib." This is a command of recommendation (nadb). The prohibition by the author of An-Nahr is not apparent because of the existence of the evidence narrated in the Sahih [Bukhari] [1].

[Urdu]: It is in Bukhari that the Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Perform two rak'ahs before Maghrib." And this command is for recommendation. The author of An-Nahr prohibited it, but this prohibition is not clear because the recommended act is established by a Sahih Hadith. (T)

Allama has similarly pointed towards this issue in 'Hashiya Maraqi al-Falah' on circle page 303, after quoting the discourse of 'An-Nahr', he stated:

[Arabic]: And you have known the import of the Hadith as explained by some of the virtuous ones [2].

[Urdu]: You have understood that meaning of the Hadith which some of the virtuous ones have stated. (T)

Rather, we have proven that it is against the explicit text (nass) of Imam-e-Azam, Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad (may Allah be pleased with them) and the

consensus of all the books of the school of thought. Thus, the requirement of the discourse is not ambiguous, but rather it is the opposite of an ambiguous discourse. This is how the verification should be. And Allah Almighty is the Grantor of success, and all praise is due to Allah, Lord of the worlds. And Allah Almighty knows best, and His knowledge, glorified be His majesty, is most complete and most perfect.

Problem 1234: From Rampur, queried by Muhammad Saeed Sahib. If Sajdah Sahw becomes mandatory on the Imam, should the 'Lahiq' (one who joined late and missed part of the prayer due to a valid excuse) perform prostration with the Imam or not? And for the worshipper who joins with the Imam after that Sajdah Sahw, is the basis of their prayer correct or not?

[1] Tahtawi ala al-Durr al-Mukhtar, Kitab al-Salat, printed by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1 / 81 [2] Hashiya al-Tahtawi ala Maraqi al-Falah, Bab Sujud al-Sahw, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 252

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[अरबी]: उस पर अपनी नमाज़ के अंत में सजदा करना अनिवार्य होता, लेकिन उन्होंने (फ़ुक़हा ने) स्पष्ट रूप से कहा है कि उस पर यह नहीं है। अतः उनके इजमा (सहमति) से यह सिद्ध हुआ कि मुक्तदी (अनुसरणकर्ता) की भूल (सह्व) का कोई हुक्म लागू नहीं होता। —

[उर्दू]: अगर भूल होने पर हुक्म लागू होता तो नमाज़ के अंत में सजदा करना लाज़िम हो जाना चाहिए था, लेकिन फ़ुक़हा ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इस सूरत में सजदा सह्व नहीं है क्योंकि फ़ुक़हा का इस पर इजमा है कि मुक्तदी की भूल पर कोई हुक्म लागू नहीं हो सकता। (त)

(5) यहीं से स्पष्ट हुआ कि 'नहर' की बहस बिलकुल भी ध्यान देने योग्य नहीं है, हालांकि सैयद अबू अल-सऊद ने इसका अनुसरण किया और अल्लामा शामी ने 'रद्द अल-मुह्तार' और 'मिन्हात अल-खालिक़' में इसे बनाए रखा। हदीस के मुक़ाबले उनकी बहस मान्य नहीं होगी। 'तहतावी अल अल-दुर्र अल-मुख्तार' जिल्द 1, पेज 181 में 'मग्रिब की नमाज़ से पहले दो रकात नफ़्ल' के मसले में है:

[अरबी]: बुखारी में है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "मग्रिब से पहले दो रकात पढ़ो।" और यह हुक्म मुस्तहब (पसंदीदा) होने के लिए है। 'नहर' के लेखक की मनाही स्पष्ट नहीं है क्योंकि सहीह हदीस [बुखारी] में वर्णित प्रमाण मौजूद है [1]।

[उर्दू]: बुखारी में है कि रिसालतपआब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "मग्रिब से पहले दो रकात अदा करो।" और यह हुक्म नदब (मुस्तहब) के लिए है, साहब-ए-नहर ने इससे मना किया लेकिन यह मनाही स्पष्ट नहीं है क्योंकि नदब का हुक्म सहीह हदीस से साबित है। (त)

इसी ओर अल्लामा ने 'हाशिया मराक़ी अल-फ़लाह' में इस मसले के दौरान पेज 303 पर इशारा किया है, 'नहर' का कलाम नक़्ल करके फरमाया:

[अरबी]: और आप हदीस का वह लाभ जान चुके हैं जो कुछ विद्वानों ने बताया है [2]।

[उर्दू]: आप हदीस का वह अर्थ जान चुके हैं जो कुछ विद्वानों ने बयान किया। (त)

बल्कि हम साबित कर चुके हैं कि यह इमाम-ए-आज़म, इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के स्पष्ट शब्दों (नस्स) और मज़हब की तमाम किताबों की सहमति के खिलाफ है। तो कलाम का तक़ाज़ा अस्पष्ट नहीं बल्कि अस्पष्ट कलाम के विपरीत है। तहक़ीक़ (शोध) इसी तरह होनी चाहिए। और अल्लाह तआला ही तौफ़ीक़ देने वाला है और तमाम तारीफें अल्लाह के लिए

हैं जो तमाम जहानों का रब है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है और उसका इल्म, उसकी शान बुलन्द हो, सबसे पूर्ण और सबसे मज़बूत है।

मसला 1234: रामपुर से, सायल मुहम्मद सईद साहब। अगर इमाम पर सह्व (भूल) वाजिब हो तो क्या इमाम के साथ लाहिक़ (बाद में शामिल होने वाले) को सजदा करना चाहिए या नहीं? और जो नमाज़ी इमाम के उस सजदा सह्व के बाद शरीक हो, उनकी नमाज़ का आधार सही है या नहीं?

[1] तहतावी अल अल-दुर्र अल-मुख्तार, किताब अल-सलात, मुद्रित दार अल-मारिफ़ा, बेरूत, 1 / 81 [2] हाशिया अल-तहतावी अल मराक़ी अल-फ़लाह, बाब सुजूद अल-सह्व, मुद्रित नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, पेज 252

पेज 210/673

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

لوجب علیه ان یسجد له في اخر صلوته لکن نصوا قاطبة انه لیس علیه فثبت باجماعهم ان سهو المقتدی لا حکم له -

ہو جانے پر حکم لاگو ہو تو اس پر نماز کے آخر میں لازم ہو جانا چاہئے لیکن فقہاء نے قطعی تصریح کی ہے کہ اس پر اس صورت میں سجدہ سہو نہیں کیونکہ فقہاء کا اس پر اجماع ہے کہ مقتدی کی سہو پر کوئی حکم نافذ نہیں ہو سکتا۔ (ت)

(۵) یہیں سے روشن ہوا کہ بحث نہر اصلاً قابل التفات نہیں اگرچہ سید ابو السعود نے اس کا اتباع کیا اور علامہ شامی نے ردالمحتار و منحۃ الخالق میں اسے مقرر رکھا حدیث ہی کے مقابل ان کی بحث معتبر نہ ہوتی، طحطاوی علی الدر المختار جلد اول صفحہ ۱۸۱ "مسئلہ دور کعت نفل قبل نماز مغرب" میں ہے :

في البخاري انه صلی الله تعالی علیه وسلم قال صلوا قبل المغرب رکعتین وهو امر ندب ومنع صاحب النهر لا یظهر لوجود الدلیل المروی فی الصحیح 1-

بخاری میں ہے کہ رسالتمآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا : مغرب سے پہلے دو رکعت ادا کرو۔ اور یہ حکم برائے ندب ہے ، صاحب نہر نے اس سے منع کیا لیکن یہ منع واضح نہیں کیونکہ امرِ ندب صحیح حدیث سے ثابت ہے ۔ (ت)

اسی طرف علامہ نے حاشیہ مراقی الفلاح میں اس مسئلہ دائرۃ صفحہ ۳۰۳ میں اشارہ کیا ہے کلام نہر نقل کر کے فرمایا :

وقد علمت مفاد الحدیث افاده بعض الافاضل 2-

آپ حدیث کا وہ معنی جان چکے جو بعض افاضل نے بیان کیا ۔ (ت)

بلکہ ہم ثابت کر چکے کہ نص صریح امام اعظم و امام ابویوسف و امام محمد رضی اللہ تعالٰی عنہم و اطباق جملہ کتب مذہب کے خلاف ہے تو مقتضی کلام مہم نہیں بلکہ نقیض کلام مہم ہے ھکذا ینبغی التحقیق واللہ تعالی ولی التوفیق والحمد للہ رب العلمین۔ واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔

مسئلہ ۱۲۳۴: از رامپور مسئولہ محمد سعید صاحب اگر امام پر سہو واجب ہو تو امام کے ساتھ لاحق کو سجدہ کرنا چاہئے یا نہیں اور جو مصلی بعد اس سجدہ سہو امام کے ساتھ شریک ہو وے ان کی نماز کا بنا صحیح ہے یا نہیں؟

1 طحطاوی علی الدر المختار کتاب الصلوۃ مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱ / ۸۱ 2 حاشیہ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجود السھو مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۵۲

Fatawa Razawiyya Volume 8

Answer: Prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw) is also obligatory for a 'Lahiq' (someone who joined the prayer late and missed some parts) due to the Imam's error. However, he should not perform it with the Imam; instead, he should complete his prayer and then perform it. Yes, if before the Imam's Salam, he had completed his missed parts and then joined the Imam, performing Salam with him, then he should perform Sajdah Sahw with the Imam; otherwise, after completion. If he performs Sajdah Sahw before completion, the prayer will not be invalidated, but this prostration will be useless and he will have committed an act against the command, and he must perform Sajdah Sahw again after completion. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

Arabic Text	Urdu Translation (T)
The Lahiq performs prostration at the end of his prayer; if he prostrates with his Imam, he must repeat it. (1)	The Lahiq should perform prostration at the end of his prayer; if he did it with the Imam, he should repeat it. (T)

It is stated in Radd-al-Muhtar: | Arabic Text | Urdu Translation (T) | | :--- | :--- | | Because he is in other than its time, and his prayer is not invalidated because he has not added anything except two prostrations. (2) | Because this is not its correct time, however, the prayer will not be invalidated because he hasn't added anything besides two prostrations. (T) |

Those worshippers who joined the Imam in the sitting after the prostration of forgetfulness have joined the congregation; their basis is correct according to the consensus of the Imams.

Arabic Text	Urdu Translation (T)
The disagreement is only regarding the Friday prayer (Jumu'ah), and the school's view on it is also validity.	The disagreement is only regarding Jumu'ah prayer, and in this school as well, the opinion is that it is valid. (T)

It is stated in Durr-e-Mukhtar: | Arabic Text | Urdu Translation (T) | | :--- | :--- | | If one catches it in tashahhud or prostration of forgetfulness (even if in its tashahhud, Sh from T), he completes it as Friday prayer, unlike Muhammad, just as he completes it in Eid by consensus as in Eid al-Fath (3). And Allah Almighty knows best. | If someone finds the Imam in Tashahhud or Sajdah Sahw (even if it's the Tashahhud of Jumu'ah, Sh from T), he should complete the Jumu'ah prayer. However, Imam

Muhammad (mercy of Allah be upon him) disagrees. Just as if he finds the Eid prayer in Tashahhud, he should complete the Eid prayer by consensus (Fath al-Qadeer, Chapter of Eid). And Allah Almighty knows best. (T) |

1. In Durr-e-Mukhtar, Chapter of Prostration of Forgetfulness, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/102.
2. Radd-al-Muhtar, Chapter of Prostration of Forgetfulness, published by Matba' Mustafa al-Babi Egypt, 1/549.
3. In Durr-e-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/113.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

उत्तर: इमाम की भूल के कारण 'लाहिक' (वह व्यक्ति जो नमाज़ में बाद में शामिल हुआ) पर भी सजदह सह्व (भूल का सजदह) वाजिब होता है। लेकिन उसे इमाम के साथ सजदह नहीं करना चाहिए, बल्कि अपनी नमाज़ पूरी करने के बाद करना चाहिए। हाँ, अगर इमाम के सलाम फेरने से पहले उसने अपनी छूटी हुई नमाज़ पूरी कर ली और फिर इमाम के साथ शामिल हो गया और इमाम के साथ सलाम फेरा, तो वह इमाम के साथ ही सजदह सह्व करे, अन्यथा अपनी नमाज़ पूरी करने के बाद। अगर उसने नमाज़ पूरी करने से पहले ही सजदह सह्व कर लिया, तो नमाज़ तो नहीं बिगड़ेगी, मगर यह सजदह व्यर्थ जाएगा और वह हुक्म के विरुद्ध कार्य करने का दोषी होगा, और नमाज़ पूरी करने के बाद उसे फिर से सजदह सह्व करना होगा। दुर्रे मुख्तार में है:

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद (त)
लाहिक अपनी नमाज़ के अंत में सजदह करे और अगर उसने अपने इमाम के साथ सजदह कर लिया तो उसे फिर से दोहराए। (१)	लाहिक अपनी नमाज़ के अंत में सजदह करे और अगर उसने इमाम के साथ सजदह कर लिया तो फिर दोबारा दोहराए। (त)

रदुल मुहतार में है: | अरबी इबारत | उर्दू अनुवाद (त) | | :--- | :--- | | क्योंकि यह उसके (सजदह के) समय के अलावा है और उसकी नमाज़ खराब नहीं होगी क्योंकि उसने दो सजदों के अलावा कुछ नहीं बढ़ाया है। (२) | क्योंकि यह अपने समय पर नहीं है, अलबत्ता नमाज़ फ़ासिद (ख़राब) न होगी क्योंकि उसने दो सजदों के अलावा किसी चीज़ का इज़ाफ़ा (बढ़ोतरी) नहीं किया। (त) |

जो नमाज़ी सजदह सह्व के बाद बैठने (क़ादा) में इमाम के साथ शरीक हुए, वे जमात में शामिल माने जाएंगे; इमामों की सर्वसम्मति के अनुसार उनका आधार सही है।

अरबी इबारत	उर्दू अनुवाद (त)
मतभेद केवल जुमा की नमाज़ के बारे में है, और इस मज़हब में भी सही राय यही है कि यह जायज़ है।	इख्तिलाफ़ (मतभेद) सिर्फ़ जुमा में है और इसमें भी मज़हब यही है कि यह सही है। (त)

दुर्रे मुख्तार में है: | अरबी इबारत | उर्दू अनुवाद (त) | | :--- | :--- | | अगर किसी ने इमाम को तशह्हुद या सजदह सह्व में पाया (चाहे वह सजदह सह्व का तशह्हुद ही क्यों न हो, 'श' से 'त'), तो

वह जुमा की नमाज़ पूरी करे, इमाम मुहम्मद के विपरीत, जैसे कि ईद में इत्तफ़ाक़ (सर्वसम्मति) के साथ ईद पूरी करता है जैसा कि 'ईद अल-फतह' (३) में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। | अगर किसी ने इमाम को तशह्हुद या सुजूद-ए-सह्व में पा लिया (अगरचे तशह्हुद-ए-जुमा हो, श अज़ त) तो जुमा अदा करे, अलबत्ता इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाह तआ़ला का इसमें इख्तिलाफ़ है, जैसा कि ईद को अगर तशह्हुद में पा लेता है तो बिल-इत्तिफ़ाक़ (सर्वसम्मति से) ईद ही अदा करे (फतहुल क़दीर, ईद का अध्याय)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त) |

1. दुर्रे मुख्तार, सजदह सह्व का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली, १/१०२
2. रदुल मुहतार, सजदह सह्व का अध्याय, मतबा मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, १/५४९
3. दुर्रे मुख्तार, जुमा की नमाज़ का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली, १/११३

पेज २११ ऑफ़ ६७३

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

الجواب: امام کے سہو سے لاحق پر بھی سجدہ سہو واجب ہوتا ہے مگر امام کے ساتھ نہ کرے بلکہ نماز پوری کرکے، ہاں اگر سلام امام سے پہلے فوت شدہ نماز پوری کرکے پھر شامل ہوگیا کہ امام کے ساتھ سلام پھیرا تو امام کے ساتھ ہی سجدہ سہو کرے ورنہ بعد اتمام۔ اگر قبل اتمام کے سجدہ سہو کرلے گا نماز تو نہ جائے گی مگر یہ سجدہ بے کار جائے گا اور خلاف حکم کا مرتکب ہوگا اور بعد اتمام پھر سجدہ سہو کرنا ہوگا، در مختار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اللاحق یسجد في اخر صلوته ولو سجد مع امامہ اعادہ ۱-	لاحق اپنی نماز کے آخر میں سجدہ کرے اور اس نے امام کے ساتھ سجدہ کرلیا تو پھر دوبارہ لوٹائے۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے: | عربی عبارت | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | لانه في غیرا وانه ولا تفسد صلوته لانه مازاد الا سجدتین ۲- | کیونکہ یہ اپنے وقت پر نہیں، البتہ نماز فاسد نہ ہوگی کیونکہ اس نے دو سجدوں کے علاوہ کسی شئی کا اضافہ نہیں کیا۔ (ت) |

جو مصلی سجدہ سہو کے بعد قعدہ میں شریک امام ہوئے شریک جماعت ہوگئے ان کی بنا صحیح ہے باتفاق ائمہ

عربی عبارت	اردو ترجمہ
وانما الخلاف في الجمعة والمذهب فیه ایضاً الصحة۔	اختلاف فقط جمعہ میں ہے اور اس میں بھی مذہب یہی ہے کہ یہ صحیح ہے۔ (ت)

در مختار میں ہے: | عربی عبارت | اردو ترجمہ | | :--- | :--- | | ادرکھا فی تشھد او سجود سھو (ولو في تشهده ش عن ط) يتمها جمعة خلافا لمحمد كما يتم في العيد اتفاقا كما في عيد الفتح ۳- واللہ تعالی اعلم | اگر کسی نے امام کو تشہد یا سجود سہو میں پالیا (اگر چہ تشہدِ جمعہ ہو، ش از ط) تو جمعہ ادا کرے البتہ امام محمد رحمۃ اللہ تعالیٰ کا اس میں اختلاف ہے جیسا کہ عید کو اگر تشہد میں پالیتا ہے تو بالاتفاق عید ہی ادا کرے (فتح القدیر باب العید) واللہ تعالیٰ اعلم (ت) |

۱ در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۲ ۲ ردالمحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۴۹ ۳ در مختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۳

Fatawa Razawiya, Volume 8

Issue 1235: From Chauhar Kot, Barkhan, Balochistan, sent by Qadir Bakhsh Sahib, 4 Rabi al-Awwal 1337 AH. What do the scholars of the religion say about this issue: in Sajdah Sahv, should the Salam be said on both sides or only one side, whether for an Imam or an individual? According to which narration is the fatwa given? (T) Answer: Salam should be said only to the right side, whether one is an Imam or an individual. Even some jurists have said that if one says Salam to the other side, the Sajdah Sahv is invalidated and the person becomes a sinner. And Allah Almighty knows best. (T) And Allah Almighty knows best.

Issue 1236: From Jarooh, District Meerut, asked by Syed Siraj Ahmed Sahib, 12 Sha'ban 1337 AH. In a four-rak'ah prayer, the Imam sat after two rak'ahs and started Durood Sharif after At-Tahiyyat. The follower (muqtadi) realized this. In such a situation, can the follower signal the Imam or not? And if they can, then how? Answer: It is difficult for him to know because the Imam recites silently. However, if he is so close that he heard the Imam starting Durood Sharif after At-Tahiyyat, then as long as the Imam has not moved beyond "Allahumma salli 'ala", he should say "Subhan Allah" to inform him. But if the Imam has said "Allahumma salli 'ala Sayyidina" or "Salli 'ala Muhammad", then it is no longer permissible to inform him. Instead, he should wait. If the Imam remembers on his own and stands up, then well and good. If the Imam starts to turn for Salam, then he should inform him at that time. If he informs before that, the prayer of the informer will be nullified, and if the Imam accepts his information, then the Imam's prayer and everyone else's will also be nullified. And Allah Almighty knows best.

Issue 1237: From Bareilly, Madrasa Manzar-e-Islam, asked by Maulvi Ehsan Ali Sahib, a student, 11 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: in Witr prayer, if one mistakenly performs Ruku' before reciting Dua Qunoot and has even recited one or two tasbihs, then realizes it, stands up and recites Qunoot. In this case, is Sajdah Sahv obligatory or not? Answer: Whether he had recited tasbih or had not yet recited anything, he is not permitted to leave Ruku' to recite Qunoot. If he returned to the standing position (Qiyam) for Qunoot, he committed a sin. Whether he recites Qunoot or not, Sajdah Sahv is obligatory upon him. It is stated in Durr al-Mukhtar:

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मसला 1235: चौहर कोट, बारखान, बलूचिस्तान से, प्रेषक कादिर बख्श साहिब, 4 रबी-उल-अव्वल शरीफ 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि सजदा सह्व के लिए दोनों तरफ सलाम कहना होता है या केवल एक तरफ, चाहे इमाम हो या मुन्फरिद (अकेला)? किस रिवायत पर फतवा है? (त) अल-जवाब: सलाम केवल दाईं ओर कहना होता है चाहे इमाम हो या मुन्फरिद, यहाँ तक कि फुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने फरमाया है कि अगर दूसरी ओर सलाम कहता है तो सजदा सह्व साक़ित (अमान्य) हो जाएगा और वह ऐसे कृत्य से गुनहगार होगा। (त) वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1236: जड़ोआ जिला मेरठ से, मुस्तौ़ला (पूछने वाले) सैयद सिराज अहमद साहिब, 12 शाबान 1337 हिजरी। चार रकअत वाली नमाज़ में इमाम दो रकअतों के बाद बैठा और अत-तहीय्यात के बाद दुरूद शरीफ शुरू कर दिया, मुक्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) को पता चल गया। ऐसी स्थिति में क्या मुक्तदी इमाम को इशारा कर सकता है या नहीं? और अगर कर सकता है तो किस तरह से? अल-जवाब: उसका पता चलना मुश्किल है क्योंकि इमाम आहिस्ता (धीरे) पढ़ेगा, हाँ अगर वह इतना करीब है कि उसने इमाम की आवाज़ सुनी कि उसने अत-तहीय्यात के बाद दुरूद शरीफ शुरू किया है, तो जब तक इमाम 'अल्लाहुम्मा सल्लि अला' से आगे नहीं बढ़ा है, वह 'सुब्हान अल्लाह' कहकर बताए। और अगर इमाम 'अल्लाहुम्मा सल्लि अला सय्यिदिना' या 'सल्लि अला मुहम्मद' कह चुका है तो अब बताना जायज़ नहीं बल्कि इंतज़ार करे। अगर इमाम को खुद याद आए और वह खड़ा हो जाए तो बेहतर, और अगर वह सलाम फेरने लगे तो उस वक्त बताए। इससे पहले बताएगा तो बताने वाले की नमाज़ जाती रहेगी और अगर इमाम उसके बताने पर अमल करेगा तो इमाम और बाकी सब की नमाज़ भी चली जाएगी। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1237: बरेली मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम से, मुस्तौ़ला मौलवी अहसान अली साहिब, छात्र, 11 शव्वाल 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि वित्र की नमाज़ में दुआ-ए-क़ुनूत से पहले भूलकर रुकूअ कर लिया और एक-दो तस्बीह भी पढ़ ली, फिर खयाल आया और खड़े होकर क़ुनूत पढ़ ली, तो इस सूरत में सजदा सह्व लाज़िम (अनिवार्य) है या नहीं? अल-जवाब: तस्बीह पढ़ चुका हो या अभी कुछ न पढ़ पाया हो, उसे क़ुनूत पढ़ने के लिए रुकूअ छोड़ने की इजाज़त नहीं है। अगर उसने क़ुनूत के लिए क़ियाम (खड़े होने) की ओर वापसी की तो गुनाह किया। अब चाहे वह क़ुनूत पढ़े या न पढ़े, उस पर सजदा सह्व लाज़िम है। दुर्रे मुख़्तार में है:

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

مسئلہ ۱۲۳۵: از چوبر کوٹ بارکھان ملک بلوچستان مرسلہ قادر بخش صاحب ۴ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ چہ می فرمایند علمائے دین دریں مسئلہ کہ در سجدہ سہو سلام بہر دو جانب گوید یا یکے جانب اگر امام باشد یا مفرد بکدام روایت فتوٰی است۔ علمائے دین اس مسئلہ میں کیا فرماتے ہیں کہ سجدہ سہو کے لئے دونوں جانب سلام کہنا ہوتا ہے یا فقط ایک جانب امام ہو یا منفرد، کس روایت پر فتوٰی ہے (ت) الجواب: سلام ہمیں جانب راست دہد امام باشد خواہ منفرد تا آنکہ گفتہ اند کہ اگر سلام دیگر دہد سجدہ سہو ساقط شود و بزہ کار گردد۔ واللہ تعالٰی اعلم فقط دائیں جانب سلام کہنا ہوتا ہے خواہ امام ہو یا منفرد، حتٰی کہ فقہاء نے فرمایا ہے کہ اگر دوسری جانب سلام کہتا ہے تو سجدہ سہو ساقط اور ایسے عمل سے گنہگار ہوگا۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳۶: از جڑوہ ضلع میرٹھ مسئولہ سید سراج احمد صاحب ۱۲ شعبان ۱۳۳۷ھ چار رکعت والی نماز میں امام دو رکعات کے بعد بیٹھا اور التحیات کے بعد درود شریف شروع کردیا مقتدی کو معلوم ہو گیا، ایسی حالت میں مقتدی امام کو اشارہ کرسکتا ہے یا نہیں؟ اور اگر کرسکتا ہے تو کس طرح سے؟ الجواب: اُس کا معلوم ہونا دشوار ہے کہ امام آہستہ پڑھے گا، ہاں اگر یہ اتنا قریب ہے کہ اس کی آواز اس نے سنی کہ التحیات کے بعد اس نے درود شریف شروع کیا تو جب تک امام اللہم صل علی سے آگے نہیں بڑھا ہے یہ سبحان اللہ کہہ کر بتائے اور اگر اللہم صل علی سیدنا یا صل علی محمد کہہ لیا ہے تو اب بتانا جائز نہیں بلکہ انتظار کرے، اگر امام کو خود یاد آئے اور کھڑا ہو جائے فبہا اور اگر سلام پھیرنے لگے تو اس وقت بتائے، اس سے پہلے بتائے گا تو بتانے والے کی نماز جاتی رہے گی اور اس کے بتانے سے امام لے گا تو اس کی اور سب کی جائے گی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳۷: از بریلی مدرسہ منظر الاسلام مسئولہ مولوی احسان علی صاحب طالبلم ۱۱ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ وتر میں قبل دعائے قنوت کے سہواً رکوع کیا اور دو ایک تسبیح بھی پڑھ چکا اب خیال ہوا کھڑے ہو کر قنوت پڑھی تو اس صورت میں سجدہ سہو لازم ہے یا نہیں؟ الجواب: تسبیح پڑھ چکا ہو یا ابھی کچھ نہ پڑھنے پایا اسے قنوت پڑھنے کے لئے رکوع چھوڑنے کی اجازت نہیں اگر قنوت کے لئے قیام کی طرف عود کیا گناہ کیا پھر قنوت پڑھے یا نہ پڑھے اس پر سجدہ سہو ہے۔ درمختار میں ہے:

Fatawa Ridawiyyah, Volume 8

[Arabic Text]: If he forgets the Qunut and then remembers it in Ruku', he should not perform Qunut in it because its proper place has passed, and he should not return to the standing position (Qiyam). If he returns and performs Qunut but does not repeat the Ruku', his prayer is not invalidated, and he should perform the prostration of forgetfulness (Sajdah al-Sahw) whether he performed Qunut or not, because of its displacement from its proper place. [Summarized] [Urdu Text]: If a worshiper forgets to recite the Qunut and remembers it while in Ruku', he should not recite it there because its time has passed, nor should he return to the standing position (Qiyam). If he does return, recites the Qunut, and does not repeat the Ruku', his prayer is not invalidated; however, he must perform the Sahw prostration whether he recited the Qunut or not, because the Qunut was displaced from its original position. [Summary]

[Arabic Text]: I say: regarding the phrase "and did not repeat the Ruku'", it means he did not nullify the Ruku' by returning for the Qunut. It doesn't mean that if he had repeated the Ruku', the prayer would be invalidated, because adding less than a full Raka'ah does not invalidate it. However, in that case, the Sahw prostration alone would not suffice because he intentionally delayed the final prostration (Sajdah) due to that extra Ruku'. Therefore, he must repeat the prayer, whether he performed the Sahw prostration or not. And Allah Almighty knows best. [Urdu Text]: I say: the phrase "and did not repeat the Ruku'" means he did not omit the Ruku' while returning for the sake of Qunut. It does not mean that if he had repeated the Ruku', the prayer would be invalidated, because an addition of less than a Raka'ah does not invalidate the prayer. However, now the Sahw prostration is not sufficient because he intentionally delayed the Sajdah due to that Ruku'. Therefore, it is now mandatory to repeat this prayer, whether he performed the Sahw prostration or not. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 1238, 1239: From Maniawala post office, Qasimpur Garhi, district Bijnor, sent by Sayyid Kifayat Ali Sahib, 3 Rabi-ul-Awwal Sharif 1338 AH.

What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) An Imam intended to pray four obligatory units (Fard). He finished the first two units but forgot the Tashahhud (At-Tahiyyat) in between and stood up saying "Allahu Akbar." Later, a follower (Muqtadi) informed him, so he sat down, recited Tashahhud, and performed Sahw prostration at the end. Was the prayer of the Imam and followers valid or not? (2) A person was praying Witr. In the third unit, he intended to say "Allahu Akbar" for

the Qunut prayer but forgot and performed Sahw prostration sitting down. Then he prayed Witr again, and again forgot to say "Allahu Akbar" at the same point, but recited the Qunut prayer and performed Sahw prostration. Was it valid or not? Please clarify and be rewarded.

The Answer: (1) If the Imam had not yet stood fully upright when the follower informed him, and he sat down, then everyone's prayer is valid.

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Witr and Nawafil, printed at Mujtabai Press, Delhi, 9/1.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[अरबी पाठ]: यदि वह क़ुनूत भूल जाता है और फिर रुकूअ में उसे याद आता है, तो उसे इसमें क़ुनूत नहीं पढ़ना चाहिए क्योंकि इसका उचित स्थान निकल चुका है, और उसे क़ियाम (खड़े होने की स्थिति) में वापस नहीं लौटना चाहिए। यदि वह वापस लौटता है और क़ुनूत पढ़ता है लेकिन रुकूअ नहीं दोहराता है, तो उसकी नमाज़ अमान्य नहीं होती है, और उसे भूल के लिए सजदा (सजदा सहव) करना चाहिए, चाहे उसने क़ुनूत पढ़ा हो या नहीं, क्योंकि यह अपने स्थान से विस्थापित हो गया है। [संक्षेप] [उर्दू पाठ]: अगर नमाज़ी क़ुनूत पढ़ना भूल गया फिर उसे रुकूअ में याद आया, तो वह अब क़ुनूत न पढ़े क्योंकि उसका समय निकल चुका है, और न ही अब क़ियाम (खड़े होने) की तरफ लौटे। अगर वह लौट गया, क़ुनूत पढ़ी और रुकूअ दोबारा नहीं किया, तो उसकी नमाज़ फ़ासिद (अमान्य) नहीं होगी; उसे सजदा सहव करना होगा, चाहे उसने क़ुनूत पढ़ी हो या नहीं, क्योंकि क़ुनूत अपने स्थान से हट गई। [संक्षेप]

[अरबी पाठ]: मैं कहता हूँ: वाक्यांश "और उसने रुकूअ दोबारा नहीं किया" के संबंध में, इसका अर्थ है कि उसने क़ुनूत के लिए लौटने के कारण रुकूअ को निरस्त नहीं किया। इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि उसने रुकूअ दोहराया होता, तो नमाज़ अमान्य हो जाती, क्योंकि एक रकात से कम की वृद्धि इसे अमान्य नहीं करती है। हालांकि, उस स्थिति में, केवल सजदा सहव पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि उसने जानबूझकर उस अतिरिक्त रुकूअ के कारण अंतिम सजदा में देरी की। इसलिए, उसे नमाज़ दोहरानी चाहिए, चाहे उसने सजदा सहव किया हो या नहीं। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है। [उर्दू पाठ]: मैं कहता हूँ: वाक्यांश "और उसने रुकूअ दोबारा नहीं किया" का अर्थ यह है कि उसने क़ुनूत के लिए लौटने की खातिर रुकूअ को नहीं छोड़ा। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि वह रुकूअ लौटा लेता तो नमाज़ फ़ासिद हो जाती, क्योंकि एक रकात से कम की वृद्धि नमाज़ को फ़ासिद नहीं करती। हाँ, अब सजदा सहव पर्याप्त नहीं है क्योंकि उसने जानबूझकर उस रुकूअ के कारण सजदा में देरी की। इसलिए, अब इस नमाज़ को दोहराना आवश्यक है, चाहे उसने सजदा सहव किया हो या नहीं। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है। (त)

मसला १२३८, १२३९: मानियावाला डाकखाना, कासिमपुर गढ़ी, जिला बिजनौर से प्रेषक सैयद किफायत अली साहब, ३ रबी-उल-अव्वल शरीफ १३३८ हिजरी।

धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या कहते हैं: (१) इमाम ने चार फर्ज़ नमाज़ की नीयत की थी, दो रकात पूरी कर ली थी, बीच में अत्तहियात भूल गया और अल्लाहू अकबर कहकर खड़ा हो गया। बाद में मुक्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाला) ने बताया, तो वह बैठ गया, अत्तहियात पढ़ी और अंत में सजदा सहव किया। क्या इमाम और मुक्तदी की नमाज़ हुई या नहीं? (२) एक व्यक्ति वित्र पढ़ रहा था, तीसरी रकात में अल्लाहू अकबर कहकर दुआ-ए-क़ुनूत का इरादा था लेकिन भूल गया और बैठकर सजदा सहव किया। फिर दोबारा वित्र पढ़े और फिर वहीं आकर अल्लाहू अकबर कहना भूल गया, दुआ-ए-क़ुनूत पढ़ी और सजदा सहव किया। क्या यह हुआ या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: (१) अगर इमाम अभी पूरा सीधा खड़ा नहीं हो पाया था कि मुक्तदी ने बताया और वह बैठ गया, तो सबकी नमाज़ हो गई।

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल वित्र वल नवाफिल, मुद्रित मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, ९/१।

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

[عربی متن]: ولو نسیه القنوت ثم تذکره فی الرکوع لا یقنت فیه لفوات محله ولا یعود الی القیام، فان عاد الیه وقنت ولم یعد الرکوع لم تفسد صلوته، وسجد للسهو قنت اولا لزواله عن محله اھ (ملخصاً)

[اردو متن]: اگر نمازی قنوت پڑھنا بھول گیا پھر اسے رکوع میں یاد آیا وہ اب قنوت نہ پڑھے کیونکہ اپنے محل سے فوت ہو گئی ہے اور نہ اب قیام کی طرف لوٹے، اگر لوٹ کر قنوت پڑھی اور رکوع دوبارہ نہ کیا تو اس کی نماز فاسد نہ ہو گی وہ سجدہ سہو کرے خواہ اس نے قنوت پڑھی یا نہ پڑھی کیونکہ قنوت اپنے مقام سے ہٹ گئی اھ (تلخیصاً)

[عربی متن]: اقول: وقوله ولم یعد الرکوع ای ولم یرتفض بالعود للقنوت لا ان لو اعاده فسدت لان زیادة مادون رکعة لا تفسد نعم لا یکفیه اذن سجود السهو لانه اخر السجدة بهذا الرکوع عمدا فعلیه الاعادة سجد للسهو او لم یسجد - واللہ تعالی اعلم [اردو متن]: اقول:، قولہ اور اس نے رکوع دوبارہ نہ کیا یعنی اس نے قنوت کی خاطر لوٹنے میں رکوع ترک نہ کیا ہو ، یہ معنی نہیں کہ اگر اس نے رکوع لوٹا لیا تو نماز فاسد ہو جائیگی کیونکہ رکعت سے کم کا اضافہ فاسد نہیں کرتا، ہاں اب سجدہ سہو کافی نہیں کیونکہ اس نے عمداً سجدہ کو رکوع کی وجہ سے مؤخر کیا، پس اب اس نماز کا اعادہ لازم ہے خواہ اس نے سجدہ سہو کیا یا نہ کیا۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۳۸، ۱۲۳۹: ازمانیا والا ڈاک خانہ قاسم پور گڑھی ضلع بجنور مرسلہ سید کفایت علی صاحب ۳ ربیع الاول شریف ۱۳۳۸ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں کہ: (۱) امام کی نیت چار فرضوں کی تھی دور کعت اولٰی ختم کر چکا تھا بیچ میں التحیات بھول گیا اور اللہ اکبر کہہ کر کھڑا ہو گیا، بعد کو مقتدی نے

بتایا وہ بیٹھ گیا التحیات پڑھی اور آخر میں سجدہ سہو کیا، آیا مقتدی کی امام کی نماز ہوئی یا نہیں؟

(۲) ایک شخص وتر پڑھ رہا تھا تیسری رکعت میں اللہ اکبر کہہ کر دعائے قنوت کا ارادہ تھا وہ بھول گیا اور بیٹھ کر سجدہ سہو کیا پھر دوبارہ وتر پڑھے پھر وہیں آکر اللہ اکبر کہنا بھول گیا دعائے قنوت پڑھی سجدہ سہو کیا آیا ہوا یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) اگر امام ابھی پورا سیدھا کھڑا نہ ہونے پایا تھا کہ مقتدی نے بتایا اور وہ بیٹھ گیا تو سب کی نماز ہو گئی

1۔ در مختار باب الوتر والنوافل مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی 9/ 1

Fatawa Razawiyya, Volume 8

And there was no need for Sajda Sahw (prostration of forgetfulness). If the Imam had stood up completely and the follower then pointed it out, the follower's prayer would have been invalidated at that moment, and when the Imam returned upon his saying, his prayer as well as everyone else's was invalidated. And if the follower pointed it out when the Imam had not yet stood up straight, but in the meantime, he became completely straight and then returned, then according to the most correct opinion, the prayer was invalidated for all, but it became Makruh (disliked) due to violating the command, as returning for the first sitting (Qa'da-e-Ula) after standing straight is not permissible. They should repeat the prayer, especially since according to one strong school of thought, the prayer was not valid at all, so repetition is obligatory. Imam Zaila'i has specified this, and this is what is found in famous books.

[Table/Box] Left Column (Arabic): And what the investigator discussed in 'Al-Fath' and followed in 'Al-Bahr', therein is a discussion we have explained in what we annotated on 'Radd al-Muhtar', page -. And Allah Almighty knows best. Right Column (Urdu): The investigator discussed it in 'Al-Fath', and 'Al-Bahr' followed it, and there is a discussion in it which we have written in the marginalia of 'Radd al-Muhtar', page 779. (T) And Allah Almighty knows best.

(2) For the first time, one forgot to recite Dua-e-Qunoot and performed Sajda Sahw; the Witr is complete. Reciting it again is a sin. It is in the Hadith: 'There are no two Witrs in one night.' (There aren't two Witrs in one night, T). And Allah Almighty knows best.

Mas'ala 1240: 24 Rabi-ul-Awwal Sharif 1338 AH What do the scholars of religion say regarding this issue: that the Imam made a mistake, meaning he was supposed to stand but sat down, or vice versa, and a follower says 'Allahu Akbar' instead of the tasbih 'SubhanAllah', will any flaw or defect occur in the prayer? And the person who says that if the Imam has to sit (Qa'da), then one should say the word 'Attahiyat', and if he has to stand (Qiyam), then 'Allahu Akbar', meaning the first word of the pillar one intends to perform should be said. Is this correct or wrong?

Answer: There is no flaw in saying 'Allahu Akbar' or 'Attahiyat' in prayer, but the Sunnah is to say 'SubhanAllah'. And Allah Almighty knows best.

Mas'ala 1241: From Pindol Buzurg, post office Raipur, district Muzaffarpur, asked by Niamat Shah Khaki Bora, 9 Muharram-ul-Haram 1339 AH. What do the scholars of the

manifest Shariah (may Allah increase their survival) say regarding this issue: A person, due to extreme forgetfulness and absent-mindedness, cannot remember anything properly, to the extent that when he performs Wudu for prayer, he washes each limb ten times and even then thinks he only washed it twice or once for prayer...

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Talq bin Ali, printed by Dar al-Fikr Beirut, 3/23.

और सजदा सह्व (भूल की शुद्धि के लिए सजदा) की ज़रूरत न थी। और अगर इमाम पूरा खड़ा हो गया था, उसके बाद मुक़्तदी ने बताया, तो मुक़्तदी की नमाज़ उसी वक़्त जाती रही। और जब मुक़्तदी के कहने पर इमाम (बैठने की तरफ़) लौटा, तो उसकी भी नमाज़ गई और सबकी भी गई। और अगर मुक़्तदी ने उस वक़्त बताया था जब इमाम अभी पूरा सीधा खड़ा नहीं हुआ था, और उतने में वह पूरा सीधा हो गया और उसके बाद लौटा, तो सबसे सही मत (मज़हब) के अनुसार नमाज़ सबकी गई, लेकिन आदेश के उल्लंघन के कारण मकरूह हुई, क्योंकि सीधा खड़ा होने के बाद पहले क़ा'दा (क़ा'दा ऊला) के लिए लौटना जायज़ नहीं है। नमाज़ को फिर से पढ़ें, विशेष रूप से एक मज़बूत राय के अनुसार नमाज़ हुई ही नहीं, इसलिए फिर से पढ़ना (इआदा) फ़र्ज़ है। इमाम ज़ैलई ने यही स्पष्ट किया है और यही प्रसिद्ध किताबों में है।

[तालिका/बॉक्स] बायां कॉलम (अरबी): और जो अन्वेषक (मुहक़्क़िक) ने 'अल-फ़तह' में चर्चा की और 'अल-बहर' में उसका पालन किया गया, उसमें एक चर्चा है जिसे हमने 'रद्दुल मुहतार' के हाशिया (पृष्ठ -) में स्पष्ट किया है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। दायां कॉलम (उर्दू): मुहक़्क़िक ने 'फ़तह' में चर्चा की है, 'बहर' में उसी का अनुसरण है, और इसमें वह चर्चा है जो हमने 'रद्दुल मुहतार' के सफ़ा 779 पर हाशिया में लिखी है। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(2) पहली बार दुआ-ए-क़ुनूत पढ़ना भूल गया था और सजदा सह्व कर लिया, वित्र हो गए; दोबारा पढ़ना गुनाह है। हदीस में है: 'एक रात में दो वित्र नहीं हैं' (ला वित्रानि फ़ी लैलत)। (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसअला 1240: 24 रबीउल अव्वल शरीफ़ 1338 हिजरी धर्म के विद्वान इस मसअले में क्या कहते हैं कि इमाम को भूल हुई, यानी उसे खड़ा होना था लेकिन बैठ गया या इसके विपरीत, और कोई मुक़्तदी तस्बीह (सुब्हानअल्लाह) के बजाय तकबीर (अल्लाहू अकबर) कह दे, तो क्या नमाज़ में कोई दोष या खराबी आएगी? और वह व्यक्ति जो कहता है कि अगर इमाम को क़ा'दा (बैठना) करना है तो 'अत्तहियात' शब्द कहना चाहिए और अगर क़ियाम (खड़ा होना) करना है तो 'अल्लाहू अकबर', यानी जो रुकन (स्तंभ) अदा करना है उसका पहला शब्द कहना चाहिए। यह सही है या ग़लत?

अल-जवाब (उत्तर): नमाज़ में 'अल्लाहू अकबर' या 'अत्तहियात' कहने से कोई खराबी नहीं आती, लेकिन सुन्नत 'सुब्हानअल्लाह' कहना है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसअला 1241: पिंडोल बुज़ुर्ग, डाकखाना रायपुर, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर से, निअमत शाह खाकी बोराह द्वारा पूछा गया, 9 मुहर्रमुल हराम 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसअले में क्या कहते हैं कि कोई व्यक्ति अत्यधिक भूल और विस्मृति (निस्यान) के कारण कोई बात ठीक से याद नहीं रख पाता, यहाँ तक कि जब वह नमाज़ के लिए वज़ू करता है तो प्रत्येक अंग को दस-दस बार धोता है और फिर भी उसे विचार आता है कि शायद दो ही बार या एक ही बार धोया है...

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस तलक़ बिन अली, मुद्रित दारुल फ़िक्र बेरूत, 3/23

पृष्ठ 214/673

اور سجدہ سہو کی حاجت نہ تھی اور اگر امام پورا کھڑا ہو گیا تھا اس کے بعد مقتدی نے بتایا تو مقتدی کی نماز اسی وقت جاتی رہی اور جب اس کے کہنے سے امام لوٹا تو اس کی بھی گئی اور سب کی گئی۔ اور اگر مقتدی نے اس وقت بتایا تھا کہ امام ابھی پورا سیدھا نہ کھڑا ہوا تھا کہ اتنے میں پورا سیدھا ہوگیا اس کے بعد لوٹا تو مذہب اصح میں نماز ہو تو سب کی گئی مگر مخالف حکم کے سبب مکروہ ہوئی کہ سیدھا کھڑا ہونے کے بعد قعدہ اولٰی کے لئے لوٹنا جائز نہیں، نماز کا اعادہ کریں خصوصاً ایک مذہب قوی پر نماز ہوئی ہی نہیں، تو اعادہ فرض ہے، اسی کی امام زیلعی نے تصریح کی ہے اور یہی مشاہیر کتب میں ہے۔

[جدول] بائیں جانب (عربی): وما بحث المحقق فی الفتح وتبعه فی البحر ففیہ بحث بیناہ فیما علقناہ علی ردالمحتار صف ۔ واللہ تعالٰی اعلم دائیں جانب (اردو): محقق نے فتح میں بحث کی ہے، بحر میں اس کی اتباع ہے اور اس میں بحث ہے جو ہم نے ردالمحتار صف ۷۷۹ پر حاشیہ میں تحریر کی ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

(۲) پہلی بار کہ دعا قنوت پڑھنا بھول گیا تھا اور سجدہ سہو کر لیا وتر ہوگئے، دوبارہ پڑھنا گناہ ہوا، حدیث میں ہے: لا وتران فی لیلۃ ۱ (ایک رات میں دو وتر نہیں،ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۴۰: ۲۴ ربیع الاول شریف ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ امام کو سہو ہوا یعنی کھڑا ہونا تھا، بیٹھ گیا یا بر عکس اس کے، تو کوئی مقتدی بجائے تسبیح (سبحان اللہ) کے تکبیر (اللہ اکبر) کہہ دے تو نماز میں اس کی کچھ قباحت وخرابی نہیں آئے گی، اور جو شخص

یہ کہے کہ امام کو اگر قعدہ کرنا ہے تو لفظ التحیات کہنا چاہئے اور جو قیام کرنا ہے تو اللہ اکبر، یعنی جو نسار کن کرنا ہے اس میں کا پہلا لفظ کہنا چاہئے۔ صحیح ہے یا غلط؟

الجواب: نماز میں اللہ اکبر یا التحیات کہنے سے خرابی نہیں، اور سنت سبحان اللہ کہنا ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۴۱: از پنڈول بزرگ ڈاک خانہ رائے پور ضلع مظفر پور مسئولہ نعمت شاہ خاکی بوراہ ۹ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین شرع متین کثر ھم اللہ ابقاھم، کہ اس مسئلہ میں کہ کوئی شخص انتہائی سہو و نسیان کی وجہ سے کوئی بات ٹھکانے سے یاد نہیں رکھتا ہے یہاں تک کہ نماز کے لئے جب وضو کرتا ہے تو ایک ایک اعضاء کو دس دس مرتبہ دھوتا ہے اور پھر بھی اس کو خیال ہوتا ہے کہ دو ہی مرتبہ یا ایک مرتبہ دھویا ہے نماز کے لئے

۱ مسند احمد بن حنبل حدیث طلق بن علی مطبوعہ دارالفکر بیروت ۳/ ۲۳

Fatawa Razawiya, Volume 8

If a person stood up and recited Takbeer-e-Tehrima five times each, thought he prayed four or five units (rak'ats), or forgot while in Ruku' or Sajdah due to worldly thoughts, such as putting something somewhere or giving it to someone, and then realized what he did was contrary to his thoughts. In such a situation, can this person appoint a person to count his actions, glorifications (tasbih), and units (rak'ats) so that he can tell him if he forgot or not? And what should such a person do in all these matters in a state of forgetfulness and omission?

Answer: Appointing a person is not permissible. And Allah the Exalted knows best.

Issue 1222: Wakeel-ud-Din, student of Madrasa Manzar-e-Islam, Bareilly. 10 Muharram-ul-Haram 1339 AH. If an Imam, due to forgetfulness in the second unit (rak'at), performed three prostrations (sajdahs) and his dominant thought was that they were two sajdahs until he finished the prayer. The Imam did not remember it at all. There were many followers (muqtadiyan), meaning there were 25 or 26 people in each of the three rows, but no one reminded the Imam. Now, what is the reason for the validity or invalidity of the prayer of the Imam and the congregation?

Answer: The obligation (fard) was fulfilled, but a necessary act (wajib) was omitted. Sajdah-e-Sahw (prostration of forgetfulness) was required. Repeat the prayers; it is not such a large congregation for which Sajdah-e-Sahw would be waived. And Allah the Exalted knows best.

Issue 1223: From Sukkur District, Sindh, Station Dahar-ki, Post Office Khairpur Dahar, Special Dargah Mo'alla Qadriyah Chondray Shareef, from Abu al-Nasr Faqeer Sarwar Shah, 7 Jamadi al-Akhir.

[Table Content - Arabic/Persian side]: What is your opinion, may Allah have mercy on you, regarding a person who performed Maghrib prayer and Sajdah-e-Sahw was necessary but he did not perform it? To compensate for the deficiency, how should he perform the prayer? With what intention and how many units (rak'ats) should he perform? Does this compensation hold the status of voluntary (nafl) prayer, or is it necessary (wajib) or obligatory (fard)?

[Table Content - Urdu side]: What is your decree in this regard (may Allah the Exalted shower His mercies upon you)? What is the ruling regarding a person whose Maghrib prayer was deficient and Sajdah-e-Sahw became necessary but he did not perform it? Now, should he compensate for the deficiency or not? If yes, with what intention?

How many units (rak'ats) should he perform, and does this compensation hold the status of nafl or is it wajib/fard? (t)

Answer: To compensate for the deficiency, it is necessary to repeat the prayer. He should perform the three units (rak'ats) again with the intention of repeating the same Maghrib prayer to make up for what was missed. And Allah the Exalted knows best. (t)

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

जब वह खड़ा हुआ तो उसने तकबीर-ए-तहरीमा पाँच-पाँच बार कही, और सोचा कि चार या पाँच रकअत पढ़ीं, या रुकू और सजदे में दुनियावी ख्यालों की वजह से, जैसे कोई चीज़ कहीं रख दी या किसी को दे दी, फिर जो खयाल आया वह उसके खिलाफ हुआ। ऐसी हालत में, क्या इस शख़्स के लिए नमाज़ के अरकान, तस्बीह और रकअत वगैरह की गिनती के लिए किसी आदमी को मुकर्रर करना जायज़ है ताकि वह उसे बता सके? और वह शख़्स भूल-चूक की इस हालत में इन तमाम मामलों में क्या करे?

उत्तर: आदमी मुकर्रर करना जायज़ नहीं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1222: वकील-उद-दीन, छात्र मदरसा मंज़रे इस्लाम, बरेली। 10 मुहर्रम-उल-हराम 1339 हिजरी। अगर इमाम ने दूसरी रकअत में भूलवश तीन सजदे किए और उसका प्रबल विचार (ज़न्ने ग़ालिब) यही था कि वे दो सजदे थे यहाँ तक कि नमाज़ पूरी हो गई और इमाम को बिल्कुल याद न रहा। मुक़्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) बहुत थे, यानी तीन सफ़ों में से हर सफ़ में 25-26 लोग थे, लेकिन किसी ने इमाम को याद नहीं दिलाया। अब इमाम और जमात की नमाज़ के सही होने या न होने की क्या वजह है?

उत्तर: फ़र्ज़ अदा हो गया, वाजिब छूट गया, सजदा-ए-सह्व लाज़िम था। नमाज़ें दोहराएं इतनी बड़ी जमात नहीं है जिसके कारण सजदा-ए-सह्व माफ़ (साक़ित) हो जाए। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1223: ज़िला सक्खर, सिंध, स्टेशन डहरकी, डाकख़ाना खैरपुर डहर, ख़ास दरबार मुअल्ला क़ादिरिया चोंडरे शरीफ़ से अबू अल-नसर फ़कीर सरवर शाह, 7 जमादी अल-आख़िर।

[तालिका सामग्री - अरबी/फ़ारसी पक्ष]: आपका क्या कहना है, अल्लाह तआला आप पर रहमत फ़रमाए, उस शख़्स के बारे में जिसने मग़रिब की नमाज़ पढ़ी और उस पर सजदा-ए-सह्व लाज़िम था पर उसने नहीं किया। कमी को पूरा करने के लिए वह नमाज़ कैसे पढ़े? कितनी रकअत और किस नियत से पढ़े? क्या यह भरपाई नफ़्ल है या वाजिब या फ़र्ज़?

[तालिका सामग्री - उर्दू पक्ष]: इस बारे में आपका क्या हुक्म है (अल्लाह तआला आप पर रहमतें नाज़िल फ़रमाए)? क्या फ़रमान है कि एक शख़्स जिसकी मग़रिब की नमाज़ में कमी रह गई थी और

उस पर सजदा-ए-सह्व लाज़िम हो गया था लेकिन उसने नहीं किया, अब उस कमी की भरपाई करे या नहीं? अगर करनी है तो किस नियत से? कितनी रकअत पढ़े और क्या यह भरपाई नफ़्ल है या वाजिब और फ़र्ज़? (त)

उत्तर: कमी की भरपाई के लिए नमाज़ दोहराना लाज़िम है। उसे मग़रिब की नमाज़ की नियत से दोबारा तीन रकअत इस नियत से पढ़नी चाहिए कि 'मैं कमी की भरपाई कर रहा हूँ'। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

पृष्ठ 215/673

کھڑا ہوا تو تکبیر تحریمہ پانچ پانچ مرتبہ کہی چار رکعت پڑھیں دور کعت خیال کہیں علیٰ ھذا القیاس تسبیح رکوع و سجود میں غرضیکہ دنیوی کاموں میں بھی مثلاً کوئی چیز کہیں رکھ دی یا کسی کو دے دی پھر خیال جو کیا اس کے خلاف ہوا، ایسی حالت میں اس شخص نے ایک آدمی اس کے ارکان و تسبیح و رکعت وغیرہ شمار کرنے کے لئے مقرر کیا تاکہ وہ گن کر بتا دے آیا یہ جائز ہے یا نہیں؟ اور وہ شخص ایسے سہو و نسیان کی حالت میں ان سب باروں میں کیا کرے؟

الجواب: آدمی مقرر کرنا جائز نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۲۲: وکیل الدین طالب علم مدرسہ منظر الاسلام بریلی ۱۰ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ اگر امام نے رکعت ثانیہ میں سہو سے تین سجدے کئے اور اس کو ظن غالب دو سجدوں کا تھا یہاں تک کہ خروج عن الصلوٰۃ امام کو بالکل یاد نہ ہوا، مقتدیان بہت تھے یعنی تین صف میں سے ہر صف میں ۲۵، ۲۶ اشخاص تھے لیکن امام کو کسی نے یاد کرایا نہیں، اب نماز امام و قوم کی صحت و عدم صحت کی وجہ کیا ہے؟

الجواب: فرض ادا ہوگیا، واجب ترک ہوا، سجدہ سہو لازم تھا، نمازیں پھیریں اتنے آدمی ایسی کثیر جماعت نہیں جس کے سبب سجدہ سہو ساقط ہو۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۲۳: ضلع سکھر سندھ اسٹیشن ڈہر کی ڈاکخانہ خیرپور ڈہر کی خاص دربار معلیٰ قادریہ چونڈے شریف از طرف ابوالنصر فقیر سرور شاہ ۷ جمادی الآخر

[جدول متن - عربی]: ما قولکم رحمکم اللہ تعالیٰ کہ شخصی را در نماز مغرب سجدہ سہو لازم بودنہ داد جبر نقصان گزار دیا نہ، اگر گزر دچگونہ نیت بند و چند رکعت گذارد و ہمیں جبر نقصان حکم نفل دارد یا واجب یا فرض؟

[جدول متن - اردو]: اس بارے میں آپ (اللہ تعالیٰ آپ پر رحمتیں نازل فرمائے) کا کیا فرمان ہے کہ ایک شخص پر نماز مغرب میں سجدہ سہو لازم ہو گیا مگر اس نے نہ کیا اب نقصان کا ازالہ کرے یا نہ؟ اگر کرنا ہے تو کس نیت سے؟ کتنی رکعات ادا کرے اور یہ ازالہ نفل کا حکم رکھتا ہے یا واجب و فرض کا؟ (ت)

الجواب: جبر نقصان واجب است سہ رکعت بہ نیت اعادہ ہماں نماز مغرب برائے تلافی مافات کند۔ نقصان کا اعادہ لازم ہے پھر دوبارہ تین رکعت اس نیت سے ادا کرے کہ میں کمی کا ازالہ کر رہا ہوں، واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

Fatawa Razawiya, Volume 8

Problem 243 to 245: From Madrasa Ahle Sunnat Manzar-e-Islam, Bareilly. Questioner: Maulvi Abdullah Bihari, 3 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding these matters: (1) In the third or fourth rak'ah (cycle) of obligatory (fard) prayers, after reciting Surah Al-Hamd, a whole or half word of any verse inadvertently came out of the mouth, or in ruku' (bowing) accidentally said 'Subhana Rabbiyal A'la' once instead of 'Subhana Rabbiyal Azeem', and similarly in sajdah (prostration), and likewise in the first rak'ah of fard while being a muqtadi (follower), one recited 'A'udhu Billah' after 'Subhanaka'. Is it necessary to recite Surah Al-Hamd then? And in the above situations, is sajdah sahw (prostration for forgetfulness) necessary or not? (2) In a congregational prayer, the Imam said 'Allahu Akbar' instead of 'Sami' Allahu Liman Hamidah' and did not perform sajdah sahw. Is the prayer valid or not? (3) After the second rak'ah in the fard of Fajr, and after the fourth rak'ah in other times, the Imam or individual praying alone forgot to recite 'At-Tahiyyat' and stood up. What should he do now? Explain and be rewarded.

The Answer: (1) In none of these cases is sajdah sahw required, and it is prohibited (haram) for a muqtadi to recite Surah Al-Hamd. And Allah the Almighty knows best. (2) The prayer is valid and there is no need for sajdah sahw at all. And Allah the Almighty knows best. (3) When one forgets the final sitting (Qa'da Akhira) and stands up for an extra rak'ah, as long as he has not performed the prostration of that extra rak'ah, he should sit down, recite 'At-Tahiyyat' and perform sajdah sahw. If he has performed the prostration of the extra rak'ah, then the fard prayer is invalidated, and he should pray again. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1246: From Pindol Buzurg, Post Office Raipur, District Muzaffarpur. Questioner: Ne'mat Shah Khaki Buraha, 11 Muharram-ul-Haram 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: A person is extremely forgetful during prayer regarding wudu, takbir, ruku, sajdah, and qiyam. In fact, in every rak'ah of the five daily prayers, he recites loudly for fear of forgetting, so that he doesn't forget. No matter how much he ponders and reflects in his heart, he still forgets and retains no memory. When he starts praying, he seats a person for the purpose of pointing out any mistakes (sahw) that occur. This person faces great distress during prayer. Furthermore, he says should I leave the prayer, then says how can I leave the prayer? That person is very healthy and of sound mind. In such a situation, what is the ruling regarding this person? Explain and be rewarded.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

मसाला 243 से 245: मदरसा अहले सुन्नत मंज़र-ए-इस्लाम, बरेली से। प्रश्नकर्ता: मौलवी अब्दुल्ला बिहारी, 3 शव्वाल 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या कहते हैं: (1) फ़र्ज़ों की तीसरी या चौथी रक़अत में अल-हम्द शरीफ़ (सूरह फ़ातिहा) के बाद किसी आयत का पूरा या आधा शब्द ज़बान से निकल गया, या रुकू में भूल से एक बार 'सुब्हाना रब्बियल आला' कह दिया, इसी तरह सजदे में, और इसी तरह फ़र्ज़ों की पहली रक़अत में जबकि मुक्तदी (अनुयायी) है, सुब्हानक के बाद 'अऊज़ु बिल्लाह शरीफ़' पढ़ ली, तो क्या अल-हम्द शरीफ़ का पढ़ना भी ज़रूरी होगा और ऊपर की स्थितियों में सजदा-ए-सहव (भूल का सजदा) होगा या नहीं? (2) जमाअत में इमाम ने 'समिअल्लाहु लिमन हमिदह' की जगह 'अल्लाहु अकबर' कहा और सजदा-ए-सहव नहीं किया, क्या नमाज़ हुई या नहीं? (3) फज्र के फ़र्ज़ों में दूसरी रक़अत के बाद और अन्य समयों में चौथी रक़अत के बाद इमाम या अकेले नमाज़ पढ़ने वाला 'अत्तहिय्यात' पढ़ना भूलकर खड़ा हो गया, अब उसे क्या करना चाहिए? बताएं पुण्य पाएं।

उत्तर (अल-जवाब): (1) इनमें से किसी भी स्थिति में सजदा-ए-सहव नहीं है और मुक्तदी को अल-हम्द शरीफ़ पढ़ना हराम है। अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (2) नमाज़ हो गई और सजदा-ए-सहव की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (3) जब आख़िरी क़ादा भूलकर अतिरिक्त रक़अत के लिए खड़ा हो गया, तो जब तक उस अतिरिक्त रक़अत का सजदा नहीं किया है, बैठ जाए और अत्तहिय्यात पढ़कर सजदा-ए-सहव करे। और अगर उसने अतिरिक्त रक़अत का सजदा कर लिया तो अब फ़र्ज़ बातिल (अमान्य) हो गए, फिर से पढ़े। अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1246: पिंडोल बुज़ुर्ग, पोस्ट ऑफिस रायपुर, जिला मुजफ्फरपुर से। प्रश्नकर्ता: नेमत शाह खाकी बुराहा, 11 मुहर्रम-उल-हराम 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि एक व्यक्ति बहुत अधिक भूलने वाला है, नमाज़ के अंदर वज़ू, तकबीर, रुकू सजदा और क़ियाम, बल्कि पाँचों समय की नमाज़ की हर रक़अत में भूलने के डर से ऊँची आवाज़ (बुलंद क़िरात) के साथ पढ़ता है ताकि भूल न जाए। वह व्यक्ति दिल में कितना ही सोच-विचार करके पढ़ता है, फिर भी भूल जाता है, कुछ भी याद नहीं रहता। और वह व्यक्ति जब नमाज़ पढ़ने लगता है, तो एक व्यक्ति को इस उद्देश्य से बैठाता है कि जो कुछ भूल (सहव) हो, वह उसे बताता जाए। उस व्यक्ति को नमाज़ के अंदर बहुत परेशानी होती है। इसके अलावा वह कहता है कि नमाज़ छोड़ दूँ, फिर कहता है कि

नमाज़ कैसे छोड़ूँ? और वह व्यक्ति बहुत स्वस्थ और स्थिर स्वभाव वाला है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति के बारे में क्या हुक्म है? बताएं, पुण्य पाएं।

पृष्ठ 216/673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۲۴۳ تا ۲۴۵: از مدرسہ اہلسنت منظرالاسلام بریلی مسئولہ مولوی عبداللہ بہاری ۳ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں : (۱) فرضوں کی تیسری یا چوتھی رکعت میں بعد الحمد شریف کے کسی آیت کا پورا یا نصف لفظ زبان سے نکل گیا یا رکوع میں سہو اً ایک بار سبحان ربی الاعلیٰ کہہ دیا، اسی طرح سجدہ میں اور اسی طرح فرضوں کی پہلی رکعت میں جبکہ مقتدی ہے سبحانک کے بعد اعوذ باللہ شریف پڑھ لی تو کیا الحمد شریف کا پڑھنا بھی ضرور ہوگا اور اوپر کی صورتوں میں سجدہ سہو ہوگا یا نہیں؟ (۲) جماعت میں امام نے سمع اللہ لمن حمدہ کی جگہ اللہ اکبر کہا اور سجدہ سہو نہیں کیا، کیا نماز ہوئی یا نہیں؟ (۳) فجر کے فرضوں میں دوسری رکعت کے بعد اور دیگر وقتوں میں چوتھی رکعت کے بعد امام یا منفرد التحیات پڑھنی بھول کر کھڑا ہوگیا، اب اس کو کیا کرنا چاہئے؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) ان میں سے کسی صورت میں سجدہ سہو نہیں اور مقتدی کو الحمد شریف پڑھنا حرام ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (۲) نماز ہوگئی اور سجدہ سہو کی اصلاً حاجت نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم (۳) جبکہ قعدہ اخیرہ بھول کر زائد رکعت کے لئے کھڑا ہوا تو جب تک اس رکعت زائدہ کا سجدہ نہیں کیا ہے بیٹھ جائے اور التحیات پڑھ کر سجدہ سہو کرے، اور اگر اس نے رکعت زائدہ کا سجدہ کرلیا تو اب فرض باطل ہوگئے پھر سے پڑھے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۴۶: از پنڈول بزرگ ڈاکخانہ رائے پور ضلع مظفر پور مسئولہ نعمت شاہ خاکی بوراہا ۱۱ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص کمال درجہ کا بھول رکھتا ہے نماز کے اندر وضو و تکبیر ور رکوع و سجود و قیام بلکہ ہر رکعت نماز پنجوقتی میں بھول کے خوف سے بلند قرات کے ساتھ پڑھتا ہے تاکہ ہم بھول نہ جائیں، کتنا ہی وہ شخص دل

میں خیال و غور کرکے پڑھتا ہے تاہم بھول جاتا ہے کچھ بھی خیال نہیں رہتا ہے اور وہ شخص جب نماز پڑھنے لگتا ہے تو ایک شخص کو اس غرض سے بٹھاتا ہے کہ جو کچھ سہو واقع ہواس کو بتلاتا جائے اس شخص کو نماز کے اندر بہت پریشانی ہوتی ہے اس کے علاوہ وہ کہتا ہے کہ نماز چھوڑ دوں پھر کہتا ہے کہ نماز کس طرح چھوڑوں، اور وہ شخص بہت تندرست اور مستقل مزاج ہے، ایسی حالت میں اس شخص کے بارے میں کیا حکم ہے؟ بینوا توجروا۔

Fatawa Razawiyya Volume Eight

The Answer: Sitting someone nearby and praying based on their instructions will invalidate the prayer. In Fajr, Maghrib, and Isha, an individual (munfarid) is allowed to recite aloud. In Dhuhr and Asr, according to the correct school of thought, it is not allowed. The remedy is for that person to join a congregation (jama'at) as a follower (muqtadi), then the follower does not need to recite, and the Imam's actions will serve to inform and remind him. Congregation is obligatory (wajib) anyway, and for such a person, it is an extremely important obligation because, without it, his prayer is not correct. For the Sunnah and Nafl prayers he performs, he should appoint someone as the Imam, as a congregation of up to three people is permissible in purely Nafl prayers. If he cannot find anyone to lead, he should pray based on his own memory; if there is a doubt in the number of rak'ahs, he should assume the lesser number—for instance, if there is a doubt between one and two, he should assume one, and if between two and three, he should assume two—and wherever there is a possibility of the final sitting (qa'da akhira), he should sit, and perform the prostration of forgetfulness (sajdah sahw) at the end. If he is completely unable to perform the prayer from memory in any way, then it is excused. It is stated in Durr al-Mukhtar:

(If a patient becomes confused about the number of rak'ahs and prostrations due to drowsiness affecting him, he is not obligated to perform it [the prayer]). And if he performs them through the prompting (talqeen) of another, it should suffice him, as stated in Al-Qunyah. [1]'Allamah Tahtawi said: It might be said that this is teaching and learning (ta'leem wa ta'allum), which invalidates the prayer, just as if one reads from the Mushaf (Quran copy) or someone teaches him recitation while he is in prayer. [2]'Allamah Shami said: I say, it has been said that this is not teaching and learning, but rather reminding or informing, so it is like the informing of a conveyer (muballigh) of the Imam's transitions. So reflect.[3] I saw myself writing a marginal note on it, saying: I say, regarding this, that opening (Al-Fath)...

(If a patient, due to drowsiness that afflicts him, becomes confused about the number of rak'ahs and prostrations, then the performance of prayer is not obligatory for him.) And if he performed them based on the prompting of another, it should be sufficient for him as it is in Qunyah. 'Allamah Tahtawi said that the objection made to this is that it is teaching and learning which invalidates prayer, such as if a person read from a Mushaf or another person taught him recitation while he was in prayer. 'Allamah Shami said, I say it has been said that it is not teaching and learning but

rather reminding and informing, so it is just like one who informs of the Imam's transitions in a large gathering, so reflect. I [wrote] a marginal note there...

[1] Durr al-Mukhtar, Chapter on the Prayer of the Sick, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/103. [2] Hashiya al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter on the Prayer of the Sick, printed at Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/319. [3] Radd al-Muhtar, Chapter on the Prayer of the Sick, printed at Mustafa al-Babi, Egypt, 1/562.

फ़तावा रज़विया जिल्द हशतम (खंड आठ)

उत्तर: किसी व्यक्ति को पास बैठा लेना और उसके बताने पर नमाज़ पढ़ना नमाज़ को बातिल (अमान्य) कर देगा। फज्र, मग़रिब और ईशा में अकेले (मुनफ़रिद) पढ़ने वाले को आवाज़ से पढ़ने की इजाज़त है, ज़ुहर और अस्र में सही मज़हब पर इजाज़त नहीं। उपाय यह है कि वह व्यक्ति जमाअत में मुक्तदी बनकर पढ़े, तो मुक्तदी को क़िरात करने की आवश्यकता नहीं होगी और इमाम के कार्य उसे बताने और याद दिलाने वाले होंगे। जमाअत वैसे भी वाजिब है, और ऐसे व्यक्ति पर तो अत्यंत महत्वपूर्ण वाजिब है क्योंकि इसके बिना उसकी नमाज़ सही ही नहीं। सुन्नतें और नफ़्ल जो पढ़े उनमें किसी व्यक्ति को इमाम बना ले क्योंकि केवल नफ़्ल में तीन तक जमाअत जायज़ है। और जब कोई व्यक्ति इमामत के लिए न मिले तो अपनी याद पर पढ़े, रकअतों में अगर संदेह हो तो कम समझे, उदाहरण के तौर पर एक और दो में संदेह हो तो एक समझे और दो और तीन में हो तो दो, और जहाँ-जहाँ क़ादा अखीरा (अंतिम बैठक) का संदेह हो वहाँ बैठता जाए और अंत में सजदा सहव करे। और अगर किसी तरह अपनी याद से नमाज़ अदा करने पर सक्षम ही न हो तो माफ़ है। दर्रे मुख्तार में है:

(अगर किसी मरीज़ पर ऊंघ के कारण जो उसे आती है, रकअतों और सजदों की संख्या में संदेह पैदा हो जाए तो उस पर नमाज़ की अदायगी लाज़िम नहीं) और अगर दूसरे के बताने (तलक़ीन) पर उन्हें अदा कर लिया तो चाहिए कि यह उसे काफी हो जैसा कि 'कुनिया' में है। [1]अल्लामा तहतावी ने फ़रमाया कि इस पर यही ऐतराज़ (आपत्ति) किया गया है कि यह 'तालीम और तअल्लुम' (शिक्षा देना और लेना) है जो नमाज़ को खराब करने वाला होता है जैसे कि किसी आदमी ने मुसहफ़ (क़ुरआन की प्रति) से पढ़ा या उसे दूसरे आदमी ने क़िरात सिखा दी जबकि वह नमाज़ में था। [2]अल्लामा शामी ने फ़रमाया, मैं कहता हूँ कि कहा गया है कि यह तालीम और तअल्लुम नहीं बल्कि याद दिलाना और सूचित करना है, अतः यह उसी तरह है जैसे बड़े मजमे में इमाम के इंतक़ालात (एक मुद्रा से दूसरी मुद्रा में जाने) की सूचना देने वाला होता है। विचार करें।[3] मैंने वहाँ यह हाशिया (टिप्पणी) लिखी...

(अगर किसी मरीज़ पर उस ऊंघ के कारण जो उसे घेर लेती है, रकअतों और सजदों की संख्या में संदेह पैदा हो जाए, तो उसके लिए नमाज़ अदा करना अनिवार्य नहीं है।) और यदि उसने दूसरे के द्वारा बताए जाने के आधार पर उन्हें अदा किया है, तो यह उसके लिए पर्याप्त होना चाहिए जैसा कि 'कुनिया' में है। अल्लामा तहतावी ने फ़रमाया कि इस पर यह आपत्ति की गई है कि यह पढ़ाना और सीखना है जो नमाज़ को भ्रष्ट करता है जैसे कि किसी व्यक्ति ने मुसहफ से पढ़ा हो या किसी अन्य

व्यक्ति ने उसे नमाज़ के दौरान ही क़िरात सिखाई हो। अल्लामा शामी ने फ़रमाया, मैं कहता हूँ कि यह कहा गया है कि यह पढ़ाना और सीखना नहीं है बल्कि याद दिलाना और सूचना देना है, इसलिए यह वैसा ही है जैसे बड़े समूह में इमाम के परिवर्तनों की सूचना देने वाला होता है। अतः विचार करें। मैंने वहाँ यह हाशिया लिखा...

[1] दर्रे मुख्तार, बाब सलातुल मरीज़, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/103 [2] हाशिया अत-तहतावी अलद-दर्रिल मुख्तार, बाब सलातुल मरीज़, मुद्रित दारुल मअरिफ़ह बेरूत, 1/319 [3] रद-दुल मुहतार, बाब सलातुल मरीज़, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/562

الجواب: کسی شخص کو پاس بٹھا لینا اور اس کے بتانے پر نماز پڑھنا نماز باطل کرے گا، فجر و مغرب و عشاء میں منفرد کو بآواز پڑھنے کی اجازت ہے، ظہر و عصر میں صحیح مذہب پر اجازت نہیں، چارہ کار یہ ہے کہ وہ شخص جماعت میں مقتدی ہو کر پڑھے تو مقتدی کو قرات کرنی نہ ہوگی اور امام کے افعال اسے بتانے اور یاد دلانے والے ہوں گے، جماعت ویسے بھی واجب ہے، اور ایسے شخص پر تو نہایت اہم واجب ہے کہ بغیر اس کے اس کی نماز ٹھیک ہی نہیں، سنتیں اور نفل جو پڑھے ان میں کسی شخص کو امام کرلے کہ نفل محض میں تین تک جماعت جائز ہے، اور جب کوئی شخص امامت کو نہ ملے اپنی یاد پر پڑھے رکعتوں میں اگر شبہ ہو تو کم سمجھے ، مثلاً ایک اور دو میں شبہ ہو تو ایک سمجھے اور دو اور تین میں ہو تو دو، اور جہاں جہاں قعدہ اخیرہ کا شبہ ہو تو وہاں بیٹھتا جائے اور اخیر میں سجدہ سہو کرے اور اگر کسی طرح اپنی یاد سے نماز ادا کرنے پر قادر ہی نہ ہو تو معاف ہے، درمختار میں ہے:

(ولو اشتبه على مريض اعداد الركعات والسجدات لنعاس يلحقه لايلزمه الاداء) و لواداها بتلقين غيره ينبغي ان يجزيه كذافى القنية [1]قال العلامة ط قد يقال انه تعليم وتعلم وهو مفسد كما اذا قرأمن المصحف او علمه انسان القرأة و هو في الصلاة [2]قال العلامة ش قلت وقد يقال انه ليس بتعليم وتعلم بل هو تذكير او اعلام فهو كاعلام المبلغ بانتقالات الامام فتأمل[3] اهـ و رأيتنى كتبت عليه مانصه اقول فيه ان الفتح

(اگر کسی مریض پر بسبب اونگھ کے جو اسے لاحق ہوتی ہے رکعات وسجدوں کی تعداد میں اشتباہ پیدا ہو گیا تو اس پر ادائے نماز لازم نہیں) اور اگر غیر کی تلقین کی بنا پر انہیں ادا کر لیا تو چاہئے کہ یہ اسے کافی ہو جیسا کہ قنیہ میں ہے، علامہ طحطاوی نے فرمایا اس پر یہی اعتراض کیا گیا ہے کہ یہ تعلیم و تعلم ہے جو کہ مفسد نماز ہوتا ہے جیسے کہ کسی آدمی نے مصحف سے پڑھا یا

اسے دوسرے آدمی نے قرات سکھادی حالانکہ وہ نماز میں تھا، علامہ شامی نے فرمایا میں کہتا ہوں کہ کہا گیا ہے کہ تعلیم و تعلم نہیں بلکہ یاد دلانا اور اطلاع کرنا ہے پس یہ اسی طرح ہے جس طرح بڑے مجمع میں امام کے انتقالات کی اطلاع دینے والا ہوتا ہے فتامل اھ میں نے وہاں یہ حاشیہ

[1]در مختار باب صلوۃ المریض مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۳ [2]حاشیہ الطحطاوی علی الدر المختار باب صلوۃ المریض مطبوعہ دار المعرفہ بیروت ۱/ ۳۱۹ [3]رد المحتار باب صلوۃ المریض مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۶۲

Fatawa Razawiyya Volume 8

(Arabic Text Column) It does not exceed more than reminding. Some have said and it is authentic that when a follower prompts (gives Luqmah to) the Imam after he has recited the obligatory amount, his prayer becomes void because it is teaching without necessity. If the Imam takes it, everyone's prayer becomes void because it is learning without necessity. Those who say it is permissible (and it is the relied-upon view) have relied on the fact that it is for necessity, as explained in 'Al-Hilyah', while admitting that it is teaching and learning. I testify against it. Haven't they agreed that if someone else prompted the person praying and he took it, his prayer would be void? All this has been specified before. Citing the one who shouts 'Allahu Akbar' (Muballigh) as evidence is out of place, as everyone then is in one prayer. So the correct answer in my opinion is that this is for necessity, which brings ease. Yet there is distance in it; how can it be, while if it were permissible, it would be appropriate that performance would be mandatory upon him, just as turning towards the Qibla becomes mandatory in the presence of someone who directs him. Therefore, in its permissibility, the invalidation of the original narrated issue is necessary. So there is no weight in the discussion of 'Al-Qunyah'. It might be said about this last one that he is capable through the capability of another, so it is not mandatory upon him, and if he did it, it is correct. So let him reflect deeply. And Allah Almighty knows best.

(Urdu Text Column) It is written: I say, giving a prompt (Luqmah) in this is not more than reminding. And a group said the correct view is that when the follower prompts his Imam after the obligatory amount of recitation, that follower's prayer is invalidated because it is teaching without necessity. In such a case, if the Imam took the prompt, then everyone's prayer will be invalidated because it is learning without necessity. Those who say it is permissible (and this is the relied-upon view) have relied on the fact that it is due to necessity, as described in 'Hilyah', despite admitting it is teaching and learning. I present testimony against this. Is there no consensus among jurists that if a non-praying person prompts a praying person and the latter accepts it, the prayer will be invalidated? All these clarifications have passed in all this discussion. And presenting the follower who says 'Allahu Akbar' loudly (Muballigh) as evidence is not in its proper place because in the mentioned case, everyone's prayer is one. Therefore, the correct answer according to me is that this is a necessity which demands ease, and yet there is distance in it. How can it be, although if it were permissible, it would be appropriate that performance became mandatory on him, just as it is mandatory to turn (towards Qibla) in the presence of someone who

directs. Thus, in its permissibility, the invalidation of the original narrated issue follows. Therefore, the discussion in 'Qunyah' will not be considered. And regarding this last issue (the one who cannot correct the prayer himself), it has been said that since he becomes capable through the capability of another, the correctness of prayer is not mandatory on him. And if he took correction from someone else, it is correct. Think about this fully. (T) And Allah Almighty knows best.

1 Jadd al-Mumtar 'ala Radd al-Muhtar, Chapter on the Prayer of the Sick Person, Al-Majma' al-Islami, Mubarakpur 1/354 Page 218 of 673

फ़तवा-ए-रज़विया, खंड 8

(अरबी पाठ कॉलम) यह याद दिलाने से अधिक नहीं है। कुछ लोगों ने कहा है और यह प्रमाणित है कि जब मुक़्तदी (अनुयायी) अपने इमाम को अनिवार्य मात्रा में पाठ करने के बाद सुराग (लुक़्मा) देता है, तो उसकी नमाज़ अमान्य हो जाती है क्योंकि यह बिना आवश्यकता के शिक्षा देना है। यदि इमाम इसे ग्रहण कर लेता है, तो सभी की नमाज़ अमान्य हो जाती है क्योंकि यह बिना आवश्यकता के शिक्षा प्राप्त करना है। जो लोग कहते हैं कि यह अनुमेय है (और यही विश्वसनीय मत है), उन्होंने इस बात पर भरोसा किया है कि यह आवश्यकता के कारण है, जैसा कि 'अल-हिलिया' में स्पष्ट किया गया है, जबकि यह स्वीकार किया गया है कि यह पढ़ाना और सीखना है। मैं इसके विरुद्ध गवाही देता हूँ। क्या वे इस बात पर सहमत नहीं हुए हैं कि यदि प्रार्थना करने वाले व्यक्ति को किसी और ने लुक़्मा दिया और उसने उसे ग्रहण कर लिया, तो उसकी नमाज़ अमान्य हो जाएगी? यह सब पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है। 'अल्लाहु अकबर' ज़ोर से चिल्लाने वाले (मुबल्लिग़) का प्रमाण देना यहाँ उचित नहीं है, क्योंकि तब हर कोई एक ही नमाज़ में होता है। इसलिए मेरी राय में सही उत्तर यह है कि यह आवश्यकता के लिए है, जो सुगमता लाती है। फिर भी इसमें दूरी है; यह कैसे हो सकता है, जबकि यदि यह जायज़ होता, तो उचित होता कि प्रदर्शन उस पर अनिवार्य हो जाता, जैसे कि दिशा दिखाने वाले की उपस्थिति में क़िबला की ओर मुड़ना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए, इसकी स्वीकार्यता में, मूल वर्णित मसले का अमान्य होना आवश्यक है। अतः'अल-कुनिया' की चर्चा का कोई महत्व नहीं है। इस अंतिम मसले के बारे में कहा जा सकता है कि वह दूसरे की क्षमता के माध्यम से सक्षम है, इसलिए यह उस पर अनिवार्य नहीं है, और यदि उसने ऐसा किया, तो यह सही है। अतः उसे गहराई से चिंतन करने दें। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे अच्छा जानता है।

(उर्दू पाठ कॉलम) लिखा है: मैं कहता हूँ कि इसमें लुक़्मा (सही शब्द बताना) देना याद दिलाने से ज़्यादा नहीं होता। और एक गिरोह ने कहा कि सही यह है कि जब मुक़्तदी (अनुयायी) अपने इमाम को अनिवार्य (वाजिब) क़िरात (कुरान पाठ) के बाद लुक़्मा दे, तो उस मुक़्तदी की नमाज़ फ़ासिद (अमान्य) हो जाती है क्योंकि यह बिना ज़रूरत के शिक्षा देना (तालीम) है। ऐसी स्थिति में, यदि इमाम ने लुक़्मा ले लिया, तो सभी की नमाज़ फ़ासिद हो जाएगी क्योंकि यह बिना ज़रूरत के शिक्षा ग्रहण करना (तअलुम) है। और जो लोग इसके जायज़ (वैध) होने के कायल हैं (और यही भरोसेमंद मत है), उन्होंने इस बात पर भरोसा किया है कि यह ज़रूरत की वजह से है, जैसा कि 'हिलिया' में वर्णन किया गया है, इस बात को स्वीकार करने के बावजूद कि यह तालीम और तअलुम है। मैं इसके खिलाफ

गवाही पेश करता हूँ। क्या फ़ुक़हा (न्यायशास्त्रियों) का इस पर इत्तेफ़ाक़ (सहमति) नहीं है कि यदि किसी गैर-नमाज़ी ने नमाज़ी को लुक़्मा दिया और उसने उसे स्वीकार कर लिया, तो नमाज़ फ़ासिद हो जाएगी? और इस पूरी चर्चा पर पहले ही स्पष्टीकरण आ चुके हैं। और मुक़्तदी मुकब्बिर (तकबीर कहने वाला) को प्रमाण के रूप में पेश करना अपनी जगह सही नहीं है क्योंकि वर्णित स्थिति में सभी की नमाज़ एक ही है। इसलिए मेरे नज़दीक सही जवाब यह है कि यह ज़रूरत है जो आसानी की मांग करती है, फिर भी इसमें दूरी है। यह कैसे हो सकता है, हालांकि अगर यह जायज़ होता तो उचित था कि उस पर अदा करना लाज़िम (अनिवार्य) हो, जैसे कि दिशा दिखाने वाले की मौजूदगी में रुख करना लाज़िम होता है। इसलिए इसके जायज़ होने में मूल वर्णित मसले का अमान्य होना लाज़िम आता है। इसलिए 'कुनिया' की चर्चा का विचार नहीं किया जाएगा। और इस आखिरी मसले (जो स्वयं अपनी नमाज़ दुरुस्त नहीं कर सकता) के बारे में कहा गया है कि चूंकि वह दूसरे की शक्ति से सक्षम होता है, इसलिए उस पर नमाज़ की शुद्धि लाज़िम नहीं है। और अगर उसने किसी और से सुधार ले लिया, तो वह सही है। इसमें पूरी तरह गौर करो। (त) और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

1 जद अल-मुम्तार अली रद अल-मुहतार, बीमार की नमाज़ का अध्याय, अल-मजमा अल-इस्लामी, मुबारकपुर 1/354 पेज 218 ऑफ़ 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

(عربی متن کا کالم) لایزید علی التذکیر بشیئ وقد قال قوم وصح ان المقتدی اذا فتح علی امام بعد ما قرأ قدر الواجب تفسد صلوته لانه تعلیم من دون ضرورة فان اخذه الامام فسدت صلوة الکل لانه تعلم من دون ضرورة والقائلون بالجواز (وهو المعتمد) انما اعتمد واعلی انه للحاجة کما بینه فی الحلیة مع الاعتراف بانه تعلیم وتعلم انی استشهد بخلافه الیسوا قد اجمعوا ان لو فتح علی المصلی غیره فاخذ فسدت صلوته، وقد مر التنصیص علی کل ذلك والاستشهاد بالمبلغ لم یصادف محله فانهم جمیعاً حینئذ في صلوة واحدة فالصواب عندی الجواب بان هذا لضرورة وهي تجلب التیسیر وبعد فیه بعد کیف ولو جاز (هذا) کان ینبغی ان یلزمه الاداء کما یلزمه التوجه اذا وجد من یوجهه ففی تجویزه ابطال اصل المسئلة المنقولة فلا عبرة ببحث القنیة 1 وقد یقال عن هذا الاخیر انه قادر بقدرة غیره فلا یلزمه وان فعل صح فلیتأمل حق التأمل- واللہ تعالیٰ اعلم

(اردو متن کا کالم) تحریر کیا ہے اقول اس میں لقمہ دینا یاد دلانے سے زائد نہیں ہوتا اور ایک جماعت نے کہا کہ صحیح یہ ہے کہ مقتدی جب اپنے امام کو قدر واجب قرآت کے بعد لقمہ دے تو اس مقتدی کی نماز فاسد ہو جاتی ہے کیونکہ یہ بغیر ضرورت کے تعلیم ہے ایسی صورت میں اگر امام نے لقمہ لے لیا تو سب کی نماز فاسد ہوگی کیونکہ یہ بغیر ضرورت کے تعلم ہے اور جو جواز (اور معتمد بھی یہی ہے) کے قائل ہیں انھوں نے اعتماد کرتے ہوئے کہا کہ یہ ضرورت کی وجہ سے ہے جیسا کہ حلیہ میں بیان کیا گیا ہے باوجود اس اعتراف کے کہ تعلیم وتعلم ہے، میں اس کے خلاف شہادت پیش کرتا ہوں ، کیا فقہاء کا اس پر اجماع نہیں کہ اگر غیر نمازی نے نمازی کو لقمہ دیا اور اس نے قبول کرلیا تو نماز فاسد ہو جائیگی اور اس تمام گفتگو پر پہلے تصریحات گزر چکی ہیں اور مقتدی مکبر کو بطور استشہاد پیش کرنا ہے اپنے محل پر نہیں کیونکہ مذکور صورت میں

تمام کی نماز ایک ہے لہذا میرے نزدیک درست جواب یہ ہے کہ یہ ضرورت ہے جو آسانی کا تقاضا کرتی ہے اور ابھی اس میں بعد ہے، کیسے ہو سکتا ہے حالانکہ یہ جائز ہو تو مناسب تھا کہ اس پر ادا لازم ہو جس طرح توجہ دلانے والے کی موجودگی میں توجہ کرنا لازم ہے لہذا اس کے جواز میں اصل منقول مسئلہ کا ابطال لازم آتا ہے اس لئے قنیہ کی بحث کا اعتبار نہیں ہوگا اور اس آخری مسئلہ (جو اپنے آپ نماز درست نہیں کرسکتا) کے بارے میں کہا گیا ہے کہ چونکہ یہ دوسرے کی قدرت سے قادر ہوتا ہے اس لئے اس پر نماز کی صحت لازم نہیں اور اگر اس نے غیر سے اصلاح لے لی تو صحیح ہے، اس میں مکمل غور کرو، (ت) واللہ تعالٰی اعلم

1 جد الممتار علی ردالمحتار باب صلوۃ المریض المجمع الاسلامی مبارک پور ۱/۳۵۴ Page 218 of 673

Fatawa Rizvia, Volume 8

Mas’ala 1247: What do the scholars of religion say about this issue: In the third rak'ah of Witr, instead of reciting Qunut, the Imam said the Takbir for Qunut and went into Ruku'. He returned after the followers (Muqtadis) said Takbir, recited Qunut, then performed Ruku' again and did Sajdah Sahw (prostration for forgetfulness). Is the prayer valid, or did the Witr become void? He had fully bowed into Ruku' when he returned to Qunut. Please explain and be rewarded.

Answer: A person who forgets Qunut and goes into Ruku' is not allowed to return to Qunut. Instead, the command is to finish the prayer and perform Sajdah Sahw at the end. If someone violates this command, according to some Imams, their prayer becomes void. However, the more correct (Asah) view is that they did wrong and sinned, but the prayer is not invalidated. It is stated in Radd al-Muhtar, based on Mubtani:

[Arabic Box Text] Left side: If one forgets Qunut and bows, then returns and recites Qunut, the prayer is not invalidated according to the most correct opinion. (al-Fath) And in it, from al-Fath, regarding the issue of returning to Tashahhud after standing up for the third rak'ah: it is not permissible, but it does not impair the validity of the prayer. Right side: If Qunut was forgotten and Ruku' was performed, if one returns and recites Qunut, according to the most correct saying, the prayer will not be invalidated. And in the same, under the issue of returning to Tashahhud after standing up for the third rak'ah, it is mentioned that this is not permissible, although it does not affect the validity of the prayer. (T)

In any case, no one calls this return permissible. Therefore, the prayer of those followers who said Takbir to call him to this impermissible return became void. The Imam should not have returned based on their calling, nor did he remember because they told him; rather, he should have remembered it himself. Even if his remembering and their saying Takbir happened simultaneously, then in that case, according to the more correct doctrine, the prayer of the Imam and the remaining followers would be valid, meaning the obligation would be fulfilled, although repetition would be necessary due to the prohibitively disliked (karahat tahrim) nature of the act. Now that he returned because those followers told him, and they were outside of the prayer [due to their invalidating act], his own prayer also became void, and because of him, everyone's prayer was lost. This is because he obeyed their command or was reminded by their Takbir and then returned based on his own

opinion; thus, he learned from someone who is outside of the prayer, as stated in Al-Bahr. (Because he obeyed them or was reminded by their Takbir and returned by his own choice, he has now learned from someone outside the prayer. As mentioned in Al-Bahr). And Allah the Almighty knows best.

Mas'ala 1248: From Old City, 11 Jumada al-Akhirah 1317 AH.

[Box at bottom] Left: Abandoning the first sitting (Qa'da-e-Ula) but coming closer to standing, then... Right: If a person performing prayer leaves the first sitting for the third rak'ah...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Sajdah Sahw, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/551
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Sajdah Sahw, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/550

फतावा रजविया, खंड 8

मसाला 1247: धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: वित्र की तीसरी रकात में इमाम कुनूत पढ़ने के बजाय कुनूत की तकबीर कहकर रुकू में चला गया और मुक्तदियों के तकबीर कहने से वापस लौटकर कुनूत पढ़ा और फिर दोबारा रुकू किया और सजदा सहव किया। क्या नमाज़ हो गई या वित्र फासिद (शून्य) हो गए? वह रुकू में पूरी तरह झुक चुका था जब वह कुनूत की ओर लौटा। स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: जो व्यक्ति कुनूत भूलकर रुकू में चला जाए, उसके लिए कुनूत की ओर लौटना जायज़ नहीं है। बल्कि आदेश यह है कि नमाज़ पूरी करे और अंत में सजदा सहव कर ले। फिर यदि किसी ने इस आदेश के विरुद्ध किया, तो कुछ इमामों के निकट उसकी नमाज़ बातिल (अमान्य) हो जाएगी, और अधिक सही (असह) विचार यह है कि उसने बुरा किया और गुनहगार हुआ, लेकिन नमाज़ नहीं जाएगी। 'रद्दुल मुहतार' में मुब्तनी से है:

[अरबी बॉक्स पाठ] बाईं ओर: यदि कोई कुनूत भूल जाए और रुकू करे, फिर वापस आकर कुनूत पढ़े, तो सबसे सही राय के अनुसार नमाज़ फासिद नहीं होती। (अल-फत्ह) और उसी में अल-फत्ह के हवाले से तीसरी रकात के लिए खड़े होने के बाद तशह्हुद के लिए लौटने के मसले पर है: यह हलाल नहीं है, लेकिन यह नमाज़ की वैधता में खलल नहीं डालता। दाईं ओर: यदि कुनूत भूल गई और रुकू कर लिया, अब अगर लौटकर कुनूत पढ़ी तो सबसे सही कथन के अनुसार नमाज़ फासिद नहीं होगी। और उसी में तीसरी रकात के लिए खड़े होने के बाद तशह्हुद की ओर लौटने के मसले के अंतर्गत है कि यह जायज़ नहीं है, हालांकि नमाज़ की सेहत (वैधता) में बाधक नहीं है। (त)

बहरहाल, इस लौटने को कोई जायज़ नहीं बताता, तो जिन मुक्तदियों ने उसे इस नाजायज़ लौटने के लिए बुलाने हेतु तकबीर कही, उनकी नमाज़ फासिद हो गई। इमाम को उनके कहने पर नहीं लौटना चाहिए था, न ही उनके बताने से उसे याद आना चाहिए था, बल्कि उसे स्वयं याद आना चाहिए था। यदि उसका याद आना और उनका तकबीर कहना एक साथ हुआ होता, तो उस स्थिति में अधिक सही मज़हब पर इमाम और बाकी मुक्तदियों की नमाज़ हो जाती, यानी वाजिब अदा हो जाता, यद्यपि कराहत-ए-तहरीम (सख्त नापसंदगी) के कारण नमाज़ दोहराना वाजिब होता। अब जबकि वह उन मुक्तदियों के बताने से पलटा और वे नमाज़ से बाहर थे [अपने कार्य के कारण], तो उसकी अपनी नमाज़ भी जाती रही और उसके कारण सबकी नमाज़ गई। क्योंकि उसने उनके आदेश का पालन

किया या उनकी तकबीर से याद दिलाया गया और फिर अपनी राय से लौटा, तो अब उसने उस व्यक्ति से सीखा या जाना जो नमाज़ से बाहर है, जैसा कि 'अल-बहर' में बताया गया है। (क्योंकि उसने उनकी बात मानी या उनकी तकबीर से उसे याद दिलाया गया और वह अपनी मर्जी से लौटा, तो उसने नमाज़ से बाहर के आदमी से सीखा। जैसा कि 'बहर' में इसका उल्लेख है)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1248: पुराने शहर से, 11 जमादी-उल-आखिर 1317 हिजरी।

[नीचे का बॉक्स] बायाँ: पहला कायदा (बैठना) छोड़ दिया लेकिन खड़े होने के करीब पहुँच गया, फिर... दायाँ: यदि नमाज़ी पहली बैठक छोड़कर तीसरी रकात के लिए...

1. रद्दुल मुहतार, बाब सुजूदुस सहव, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/551
2. रद्दुल मुहतार, बाब सुजूदुस सहव, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/550

पेज 219 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

مسئلہ ۱۲۴۷: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ وتروں میں رکعت ثالث میں امام بجائے قنوت پڑھنے کے تکبیر قنوت کہہ کر رکوع کو چلا گیا اور مقتدیان کی تکبیر کہنے سے واپس ہو کر قنوت پڑھا اور پھر دوبارہ رکوع کیا اور سجدہ سہو کیا نماز ادا ہو گئی یا وتر فاسد ہوئے رکوع میں پورا جھک گیا تھا جب قنوت کی طرف رجوع کی۔ بینوا توجروا الجواب: جو شخص قنوت بھول کر رکوع میں چلا جائے اسے جائز نہیں کہ پھر قنوت کی طرف پلٹے بلکہ حکم ہے کہ نماز ختم کر کے اخیر میں سجدہ سہو کر لے پھر اگر کسی نے اس حکم کا خلاف کیا تو بعض ائمہ کے نزدیک اس کی نماز باطل ہو جائے گی اور اصح یہ ہے کہ برا کیا گنہگار ہوا مگر نماز نہ جائے گی۔ رد المحتار میں مبتنی سے ہے:

[جدول] لوسھا عن القنوت فرکع فانہ لوعاد وقنت لا تفسد علی الاصح ۱ اھ وفیہ عن الفتح فی مسئلۃ العود الی التشہد بعد القیام للثالثۃ لا یحل و لکنہ بالصحۃ لا یخل ۲ اھ اگر قنوت بھول گئی اور رکوع کیا اب اگر لوٹ کر قنوت پڑھی تو اصح قول کے مطابق نماز فاسد نہ ہوگی اھ اور اسی میں مسئلہ تیسری رکعت کی طرف قیام کے بعد تشہد کی طرف لوٹنا کے تحت ہے کہ یہ جائز نہیں البتہ صحت نماز میں مخل نہیں اھ (ت)

بہر حال اس عود کو جائز کوئی نہیں بتاتا تو جن مقتدیوں نے اسے اس عودِ ناجائز کی طرف بلانے کے لئے تکبیر کہی ان کی نماز فاسد ہوئی امام ان کے کہنے کی بنا پر نہ لوٹنا نہ ان کے بتائے سے اسے یاد آتا بلکہ اسے خود ہی یاد آتا اور لوٹنا اگرچہ اس کا یاد کرنا اور ان کا تکبیر کہنا برابر واقع ہوتا تو اس صورت میں مذہب اصح پر امام اور باقی مقتدیوں کی نماز ہو جاتی یعنی واجب اتر جاتا اگرچہ اس کراہت تحریم کے باعث اعادہ واجب ہوتا اب کہ وہ ان مقتدیوں کے بتانے سے پلٹا اور یہ

نماز سے خارج تھے تو خود اس کی بھی نماز جاتی رہی اور اس کے سبب سب کی گئی لانہ امتثل امرہم او تذکر بتکبیر ھم فعاد برای نفسہ فقد تعلم ممن ھو خارج الصلوٰۃ کما افادہ فی البحر (کیونکہ اس نے ان کی بات مانی یا اسے ان کی تکبیر سے یاد دہانی ہوئی اور وہ اپنی رائے سے لوٹا تو اب اس نے نماز سے خارج آدمی سے سیکھا یا جانا ہے۔ جیسا کہ بحر میں اس کا افادہ کیا۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۴۸: از شہر کہنہ ۱۱ جمادی الآخرہ ۱۳۱۷ھ [جدول] ترک آرد قعدہ اولی لیکن باستادن نزدیک تر شد آنگاہ | اگر پہلا قعدہ ترک کر کے تیسری رکعت کے لئے نمازی

۱ رد المحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱ / ۵۵۱ ۲ رد المحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱ / ۵۵۰

Fatawa Razawiyyah Volume 8

Question: [Sitting back down and performing the rest of the prayer], is his prayer valid in this state or not? He stood up straight, then returned and offered the rest of the prayer. Was his prayer valid or not? Give a ruling, and you will be rewarded.

Answer:

[Left Column text]: Whoever forgets the first sitting (Qa'dah-e-Ula) in an obligatory (Fard) or Witr prayer and starts to stand up, as long as he has not stood up completely, he should return to the sitting position. Then, if he was still closer to the sitting position, there is no Sajdah-e-Sahw (prostration of forgetfulness). If he was closer to standing, Sajdah-e-Sahw becomes necessary. As long as the lower half of a person's body has not straightened, it is considered close to sitting. Once this lower half straightens, even if the back is still bent, it is considered close to standing. If he has stood up completely, then sitting down is not permissible. If he returns to the first sitting, he becomes a sinner. However, the preferred view (Rajih) is that the prayer is not lost in this case as well; Sajdah-e-Sahw becomes mandatory. In *Ad-Durr al-Mukhtar*: If one forgets the first sitting of a Fard prayer (even if it's an 'Amali' Fard) and then remembers and returns to it, there is no Sajdah-e-Sahw upon him according to the most correct (Asahh) view, as long as he has not stood up straight. This is the apparent position of the school of thought and it is the most correct as stated in *Al-Fath*. If he has stood up straight, he should not return. If he does return, the prayer is not invalidated, but he will be a sinner, and he must perform Sajdah due to the delay of a mandatory (Wajib) act. This is the preferred view (Mukhtar) as investigated by Al-Kamal, and it is the truth according to *Al-Bahr* [1] (End of brief quote). In *Radd al-Muhtar*, regarding the words "most correct view," it means if he returned before standing up completely and...

[Right Column text]: Whoever forgets the first sitting in a Fard or Witr prayer and starts to stand up, if he has not stood up straight, he should return. Now, if he was closer to sitting, Sajdah-e-Sahw will not be necessary. If he was closer to standing, Sajdah-e-Sahw will be necessary because as long as a person's lower part is not straight, he is closer to sitting. If the lower half becomes straight, even if the back is still crooked, he will be closer to standing. If he has stood up straight, sitting is now not permissible. Now, if he returns to the first sitting, he will be a sinner. The preferred view is that his prayer has not ended; Sajdah-e-Sahw will be mandatory upon him. It is in *Ad-Durr al-Mukhtar* that if one forgot the first sitting of a Fard prayer

(even if they were 'Amali' ones), then remembered and returned, then according to the most correct saying, Sajdah-e-Sahw is not upon him, provided he did not stand up straight. This is the apparent school of thought and this is the most correct view, *Fath*. And if he stood up straight, he should not return. If he returned, the prayer will not be nullified, but he will be a sinner and should perform Sajdah because of delaying a Wajib. This is the preferred view as Al-Kamal has researched it, and this is the truth, *Bahr* (End of brief quote). In *Radd al-Muhtar*, it is said that "most correct saying"...

[Footnote]: 1. In *Ad-Durr al-Mukhtar*, chapter on prostrations of forgetfulness, printed by Mujtabai, Delhi, 1/102.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

प्रश्न: [बैठकर बाकी नमाज़ अदा की], इस हाल में उसकी नमाज़ जायज़ है या नहीं? वह सीधा खड़ा हो गया फिर वापस लौटा और बाकी नमाज़ अदा की, उसकी नमाज़ हुई या नहीं? बयान फरमाएं सवाब पाएं।

उत्तर:

[बायां कॉलम]: जो कोई फ़र्ज़ या वित्र में पहला क़ादा भूल गया और खड़ा होने लगा, जब तक पूरी तरह खड़ा न हो जाए उसे बैठने की तरफ़ लौट आना चाहिए। फिर अगर वह अब भी क़ादे (बैठने) के करीब था तो सजदा-ए-सह्व नहीं है और अगर क़याम (खड़े होने) के करीब हो गया था तो सजदा-ए-सह्व लाज़िम आएगा। जब तक इंसान के बदन का निचला आधा हिस्सा सीधा न हो जाए, वह बैठने के करीब होता है। और जब यह आधा हिस्सा सीधा हो जाए, भले ही पीठ अभी झुकी हो, वह खड़े होने के करीब माना जाएगा। अगर वह पूरी तरह सीधा खड़ा हो गया तो अब बैठना जायज़ नहीं है। अगर वह पहले क़ादे की तरफ़ वापस लौटता है तो गुनहगार होगा। लेकिन राजेह (अधिक सही) राय यह है कि इस सूरत में भी नमाज़ बेकार नहीं जाती, सजदा-ए-सह्व वाजिब हो जाता है। दुर्र-ए-मुख़्तार में है: फ़र्ज़ (चाहे वह अमली हों) के पहले क़ादे को भूल गया, फिर उसे याद आया और लौट आया, तो सबसे सही (अस़ह) क़ौल के मुताबिक़ उस पर सजदा-ए-सह्व नहीं है जब तक कि वह सीधा खड़ा न हुआ हो। यही मज़हब का ज़ाहिर मौक़िफ़ है और यही अस़ह है - फ़तह। और अगर वह सीधा खड़ा हो गया तो न लौटे। अगर लौट आया तो नमाज़ फ़ासिद (बातिल) न होगी लेकिन गुनहगार होगा और वाजिब में ताख़ीर (देरी) की वजह से सजदा करे, और यही मुख़्तार है जैसा कि इसकी तहक़ीक़ कमाल ने की है और यही हक़ है - बहर [1] (संक्षेप में समाप्त)। और रद-उल-मुह्तार में है, उनके इस क़ौल "अस़ह" का अर्थ है कि यदि वह सीधा खड़ा होने से पहले लौट आया और...

[दायां कॉलम]: जो व्यक्ति फ़र्ज़ या वित्र में पहला क़ादा भूल कर खड़ा होने लगे, अगर वह सीधा खड़ा नहीं हुआ तो वापस लौट आए। अब अगर वह क़ुऊद (बैठने) के करीब था तो सजदा-ए-सह्व लाज़िम न होगा और अगर क़याम के करीब था तो सजदा-ए-सह्व लाज़िम होगा कि जब तक इंसान का नीचे वाला हिस्सा सीधा न हो वह बैठने के करीब होता है। और अगर नीचे वाला आधा हिस्सा सीधा हो जाए, चाहे अभी पीठ टेढ़ी हो, वह खड़ा होने के करीब होगा। अगर सीधा खड़ा हो गया तो अब बैठना जायज़ नहीं। अब अगर पहले क़ादे की तरफ़ लौट आता है तो गुनहगार होगा। और राजेह यह है कि

उसकी नमाज़ ख़त्म न हुई, उस पर सजदा-ए-सह्व लाज़िम होगा। दुर्र-ए-मुख़्तार में है: अगर फ़र्ज़ (चाहे अमली हों) के पहले क़ादे को भूल गया फिर उसे याद आया और लौट आया तो अब अस़ह क़ौल के मुताबिक़ उस पर सजदा-ए-सह्व नहीं बशर्ते कि वह सीधा खड़ा न हुआ हो, यही ज़ाहिर मज़हब है और यही अस़ह है - फ़तह। और अगर सीधा खड़ा हो गया तो न लौटे, अगर लौट आया तो नमाज़ फ़ासिद न होगी लेकिन गुनहगार होगा और ताख़ीर-ए-वाजिब की वजह से सजदा करे और यही मुख़्तार है जैसा कि इसकी तहक़ीक़ कमाल ने की है और यही हक़ है - बहर (संक्षेप में समाप्त)। रद-उल-मुह्तार में है "क़ौलुहु अस़ह"...

[पाद-टिप्पणी]: 1. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब सुजूद-ए-सह्व, मुत़बुआ मुज्तबाही दिल्ली 1/102.

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

نشست باز باقی نماز گزارد دریں حال نماز او جائز است یا نہ؟ سیدھا کھڑا ہو گیا پھر واپس لوٹا اور باقی نماز ادا کی اس کی نماز ہوئی یا نہیں؟ بینوا توجروا بینوا توجروا

الجواب:

[بایاں کالم]: ہر کہ در فرض یا وتر قعدہ اولی فراموش کردہ استادہ تابتمامہ استادہ نشود بسوئے قعود رجوعش باید پس اگر ہنوز بقعدہ اقرب بود سجدہ سہو نیست و اگر بقیام نزدیک تر شدہ باشد سجدہ سہو لازم آید تانیم زیریں از بدن انسان راست نشدہ است نہ نشستن نزدیک ست وچوں این نصف راست شدہ پشت ہنوز خمیدہ است بہ استادن قریب ست اگر تمام راست استاد آنگاہ نشستن روانیست اگر بقعدہ اولی باز میگردد گناہگار شود اما راجح آنست کہ نماز دریں صورت ہم از دست نرود سجدہ سہو واجب شود فی الدر المختار سہاً عن القعود الاولی من الفرض ولو عملیا ثم تذکرہ عادالیہ ولاسھو علیہ فی الاصح مالم یستقم قائماً فی ظاہر المذھب وھو الاصح فتح، وان استقام قائماً لایعود فلو عاد لا تفسد لکنہ یکون مسیئاً ا ویسجد لتأخیر الواجب وھو الاشبہ کما حققہ الکمال وھو الحق بحر ^1 اھ مختصراً وفي رد المحتار قولہ ولاسھو علیہ في الاصح یعنی اذا عاد قبل ان یستتم قائما وکان

[دایاں کالم]: جو شخص فرض یا وتر میں پہلا قعدہ بھول کر کھڑا ہونے لگے اگر وہ سیدھا کھڑا نہیں ہوا تو واپس لوٹ آئے اب اگر وہ قعود کے قریب تھا تو سجدہ سہو لازم نہ ہوگا اور اگر قیام کے قریب تھا تو سجدہ سہو لازم ہوگا کہ جب تک انسان کا نیچے والا حصہ سیدھا نہ ہو وہ بیٹھنے کے قریب ہوتا ہے اور اگر نیچے والا نصف حصہ سیدھا ہو جائے خواہ ابھی پشت ٹیڑھی ہو وہ کھڑا ہونے کے قریب ہوگا ، اگر سیدھا کھڑا ہو گیا تو اب بیٹھنا جائز نہیں ، اب اگر پہلے قعدے کی

طرف لوٹ آتا ہے تو گناہگار ہوگا ، اور راجح یہ ہے کہ اس کی نماز ختم نہ ہوئی اس پر سجدہ سہو لازم ہوگا، در مختار میں ہے اگر فرض (اگرچہ عملی ہوں) کے پہلے قعدے کو بھول گیا پھر اسے یاد آیا اور لوٹ آیا تو اب اصح قول کے مطابق اس پر سجدہ سہو نہیں بشرطیکہ وہ سیدھا کھڑا نہ ہوا یہی ظاہر مذہب ہے اور یہی اصح ہے فتح۔ اور اگر سیدھا کھڑا ہو گیا تو نہ لوٹے اگر لوٹ آیا تو نماز فاسد نہ ہو گی لیکن گناہگار ہوگا اور تاخیر واجب کی وجہ سے سجدہ کرے اور یہی مختار ہے جیسا کہ اس کی تحقیق کمال نے کی ہے اور یہی حق ہے بحر اھ مختصراً۔ رد المحتار میں ہے قولہ اصح

1^8 در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/۱۰۲

Fatawa Razawiyya Volume Eight

| (If one is) closer to sitting, then according to the most correct opinion (Al-Asah), there is no prostration of forgetfulness (Sajdah Sahw) due for him, and this is the opinion of the majority. And Allah knows best.[1] | According to the statement, there is no Sajdah Sahw for him. That is, if he returned before standing up straight while he was close to sitting, then according to the most correct (Asah) opinion, there is no prostration for him now, and this is the opinion of most jurists. (T) And Allah knows best. |

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Prostration of Forgetfulness (Sajdah al-Sahw), published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/550.

फतावा रज़विया आठवीं जिल्द

| (यदि कोई) बैठने के करीब है, तो सबसे सही राय (अल-असहा) के अनुसार उस पर सजदा-ए-सह्व नहीं है, और यही बहुमत की राय है। और अल्लाह बेहतर जानता है।[1] | कथन के अनुसार, उस पर सजदा-ए-सह्व नहीं है। यानी, जब वह सीधा खड़ा होने से पहले लौट आया जबकि वह बैठने के करीब था, तो अब सबसे सही (असहा) राय के अनुसार उस पर सजदा नहीं है, और अधिकांश फकीहों (धर्मशास्त्रियों) की यही राय है। (त) और अल्लाह बेहतर जानता है। |

[1] रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अस-सह्व, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 1/550

पेज 221 / 673

| الی القعود اقرب فانه لاسجود علیه في الاصح وعلیه الاکثر - واللہ تعالٰی اعلم[1] | قول کے مطابق اس پر سجدہ سہو نہیں یعنی جب کہ وہ سیدھا کھڑے ہونے سے پہلے لوٹا حالانکہ وہ قعود کے قریب تھا تو اب اس پر اصح قول کے مطابق سجدہ نہیں اور اکثر فقہاء کی یہی رائے ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم |

[1] ردالمحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفٰی البابی مصر ۱ / ۵۵۰

Vol. 8 | Fatawa Ridawiyya

Chapter on the Prostrations of Recitation (An account of the prostration of recitation)

Problem 1249: From Marehra Mutahhara, Bagh Pukhta, sent by Mr. Sayyid Muhammad Ibrahim, 8th Rabi al-Awwal 1306 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: often in books of poetry and prose, verses of prostration (Ayat-e-Sajdah) are written; what is the ruling regarding them? Is it necessary to perform a prostration or not? For example, in a panegyric (Manqabat), there is a couplet by Mr. Maulvi Abdul Qadir Sahib, *Khasama-ullah Bil-Mawahib*:

He sacrificed his head in prostration on the path of Truth, Who has interpreted "prostrate and draw near" (Was-jud waqtarib) like this?

Give a ruling and you shall be rewarded.

The Answer: The obligation of the prostration of recitation is tied to the recitation of specific words of the Holy Quran. When those words are recited, the prostration will become obligatory for the reciter and the listener. Their appearance within prose or poetry merely implies that some extraneous text preceded or followed them, which had no role in making the prostration mandatory, nor does it remove or negate the ruling of prostration. Its presence or absence is the same. Just as if one recites only those specific words of recitation and says nothing before or after, the prostration of recitation will be obligatory; similarly here, the text whose absence or presence is equal is disregarded and falls under the ruling of silence. And this is extremely evident. However, a point worth considering is: how much recitation makes the prostration necessary? In the original school of thought and *Zahir al-Riwayah*, the entire verse in its completion is the cause for it, to the extent that if even one letter remains [unrecited], the prostration will not be required. For example, in [Surah] al-Hajj, from "*Alam tara ann-Allaha*" to "*inn-Allaha*"...

जिल्द अष्टम (8) | फतावा रिज़विया

बाब सुजूद अत-तिलावत (सजदा ए तिलावत का बयान)

मसला 1249: मारहरा मुतहरा, बाग पुख्ता से जनाब सैयद मुहम्मद इब्राहिम साहब द्वारा प्रेषित, 8 रबी-उल-अव्वल 1306 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि अक्सर कविता और गद्य की पुस्तकों में सजदा की आयतें लिखी होती हैं; उनके बारे में क्या हुक्म है? क्या सजदा करना चाहिए या नहीं? जैसे कि एक मनकबत में जनाब मौलवी अब्दुल कादिर साहब 'खसम-उल्लाह बिल-मवाहिब' का एक शेर है:

राह-ए-हक़ में कर दिया सजदा में कुर्बान अपना सर, ऐसी 'वस्जुद वक्तरिब' की किसने की तफ़सीर है।

उत्तर दें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: सजदा ए तिलावत की अनिवार्यता (वजुब) कुरान मजीद के विशेष शब्दों के पाठ (तिलावत) पर निर्भर है। जब वे शब्द पढ़े जाएँगे, तो पढ़ने वाले (तालीं) और सुनने वाले (सामे) पर सजदा अनिवार्य हो जाएगा। किसी कविता या गद्य के हिस्से के रूप में आने का तात्पर्य केवल यह है कि उनके पहले और बाद में कुछ अन्य शब्द आए हैं जिनका सजदा अनिवार्य करने में कोई योगदान नहीं था, न ही वे सजदा के हुक्म को हटाने या मिटाने वाले हैं। उनका होना या न होना एक बराबर है। जिस तरह यदि कोई व्यक्ति केवल उतने ही शब्द पढ़े और पहले या बाद में कुछ न कहे तो सजदा ए तिलावत वाजिब होगा, ठीक उसी प्रकार यहाँ भी, वह इबारत (पाठ) जिसका होना या न होना एक समान है, उसे उपेक्षित माना जाएगा और वह खामोशी के हुक्म में है। और यह अत्यंत स्पष्ट है। हाँ, विचारणीय विषय यह है कि पाठ (क़िरात) के किस स्तर पर सजदा वाजिब होता है? मूल मत और 'ज़ाहिर-उर-रिवायत' में यह है कि पूरी आयत मुकम्मल तौर पर उसका कारण है, यहाँ तक कि यदि एक अक्षर भी शेष रह जाए, तो सजदा वाजिब नहीं होगा। उदाहरण के लिए, यदि [सूरह] अल-हज में 'अलम तरा अन्न-अल्लाह' से 'इन्न-अल्लाह' तक...

पृष्ठ 223/673

باب سجود التلاوۃ (سجدہ تلاوت کا بیان)

مسئلہ ۱۲۴۹: از مارہرہ مطہرہ باغ پختہ مرسلہ جناب سید محمد ابراہیم صاحب ہشتم ربیع الاول ۱۳۰۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اکثر کتب نظم ونثر میں آیاتِ سجدہ لکھی ہوتی ہے ان کا کیا حکم ہے آیا سجدہ کرنا چاہئے یا نہیں؟ جیسے منقبت میں جناب مولوی عبدالقادر صاحب خصم اللہ بالمواہب کا شعر ہے:

راہِ حق میں کر دیا سجدہ میں قربان اپنا سر ایسی واسجد واقترب کی کس نے کی تفسیر ہے

بینوا توجروا۔

الجواب: وجوبِ سجدہ تلاوت، تلاوتِ کلماتِ معینہ قرآنِ مجید سے منوط ہے۔ وہ کلمات جب تلاوت کئے جائیں گے سجدہ تالی وسامع پر واجب ہوگا کسی نظم یا نثر کے ضمن میں آنے سے غایت یہ ہے کہ اول و آخر کچھ غیر عبارت مذکور ہوئی جسے ایجابِ سجدہ میں دخل نہ تھا، نہ یہ کہ حکمِ سجدہ کی رافع و مزیل ہو اس کا ہونا نہ ہونا برابر ہوا جس طرح حرف اسی قدر کلمات تلاوت کریں اور اول و آخر کچھ نہ کہیں سجدہ تلاوت واجب ہوگا، ایسے ہی یہاں بھی کہ جس عبارت کا عدم وجود یکساں ہے وہ نظر سے ساقط اور حکمِ سکوت میں ہے و ھذا اظھر جدا (اور یہ نہایت واضح ہے۔ت) ہاں قابلِ غور یہ بات ہے کہ سجدہ تلاوت کس قدر قرات سے ہوتا ہے اصل مذہب و ظاہر الروایہ میں ہے کہ ساری آیت تمامہ اس کا سبب ہے یہاں تک کہ اگر ایک حرف باقی رہ جائے گا سجدہ نہ آئے گا مثلاً اگر حج میں الم تر ان اللہ سے ان اللہ

If one reads up to 'Yaf'alu ma', the prostration does not occur until 'Yasha' is also read. This same ruling is derived from the practices (athar) of the noble Companions and the eminent Successors. Similarly, it is the instruction of Imam Malik, Imam Shafi'i, and other Imams; in fact, no contradiction from the early Imams is known regarding this at all. The texts of the scholars, which are established for narrating the school of thought, have all unanimously moved in this direction. The general proofs and statements in the commentaries, which are responsible for research and clarification, are based on and constructed upon this. The senior scholars of fatwa are also with them. In 'Waqaya', 'Niqaya', and 'Multaqa al-Abhur', it is stated: 'It becomes obligatory upon one who recites a verse.' (The prostration becomes obligatory due to the recitation of the verse. -T) In 'Kanz' and 'Wafi', it says: 'It becomes obligatory by fourteen verses.' (Prostration of recitation becomes mandatory due to fourteen verses. -T) In 'Tanwir', it is stated: 'It becomes obligatory due to the cause of reciting a verse.' (It becomes obligatory because of the recitation of the verses. -T) In 'Ghunyah' it is stated:

When he recites the verse of prostration, it is obligatory for him to prostrate. (Summarized)	When someone recites a verse of prostration, it becomes mandatory for him to perform the prostration of recitation. (Summarized) (T)

In 'Khaniyah' it is stated:

The prostration of recitation is obligatory upon him for whom prayer is obligatory, when he recites the prostration verse or hears it.	Prostration of recitation is mandatory for that person upon whom prayer is mandatory, when he has recited or heard the verse of prostration. (T)

From 'Barjandi Sharh Niqaya' and 'Fatawa Zahiriyyah' of Imam Zahir al-Milla wa al-Din al-Marghinani:

What is meant by 'verse' is a complete verse, so much so that if one recites the entire verse of prostration except for the last letter, he does not prostrate, etc.	By 'verse' is meant the complete verse, to the extent that if someone recited the verse but did not recite its last letter, prostration is not mandatory, etc. (T)

In 'Hidayah' it is stated:

The place of prostration in Surah Ha Meem As-Sajdah is at the word of Allah the Almighty 'la yas'amun' according to the saying of Umar, may Allah be pleased with him.

In Ha Meem As-Sajdah, according to the command of Hazrat Umar (may Allah be pleased with him), the prostration is at 'la yas'amun'. Out of caution...

1. Sharh al-Waqayah, Chapter on Prostrations of Recitation, printed by Maktabah Rashidiyah, Delhi, 1/229
2. Kanz al-Daqaiq, Chapter on Prostrations of Recitation, printed by HM Saeed Company, Karachi, 1/25
3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Prostrations of Recitation, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/102
4. Ghunyah al-Mustamli Sharh Munyah al-Musalli, Chapter on Prostrations of Recitation, printed by Suhail Academy, Lahore, p. 498
5. Fatawa Qadi Khan, Section on Recitation of the Quran, printed by Naval Kishore, Lucknow, 1/57
6. Sharh Niqaya Barjandi, Section on Prostration of Recitation, printed by Naval Kishore, 1/155

'यफ़अलु मा' तक पढ़ लिया सजदा नहीं हुआ जब तक 'यशा' भी न पढ़े, और यही मज़हब सहाबा-ए-किराम और ताबिईन-ए-इज़ाम के आसार से हासिल होता है। और इसी तरह इमाम मालिक और इमाम शाफ़ई और इनके अलावा अन्य इमामों का इरशाद है, बल्कि पुराने इमामों से इस बारे में बिल्कुल भी विरोध ज्ञात नहीं है। असहाब की किताबें जो मज़हब के नक़्ल के लिए विषय हैं, सब की सब इसी ओर गई हैं और व्याख्याओं (शुरूहात) के दलीलें और शब्द जो शोध और स्पष्टीकरण के ज़िम्मेदार हैं, इसी पर आधारित हैं और बड़े मुफ़्ती साहिबान भी उनके साथ हैं। 'वक़ाया', 'नक़ाया' और 'मुल्तक़ा अल-अब्हुर' में है: 'तजबु अला मन तला आयतन' (सजदा आयत की तिलावत की वजह से वाजिब होता है। -त)। 'कन्ज़' और 'वाफ़ी' में है: 'तजबु बि अर्बअ अशरा आयतन' (सजदा तिलावत चौदह आयतों की वजह से लाज़िम होता है। -त)। 'तन्वीर' में है: 'तजबु सबबु तिलावतु आयतिन' (सजदा आयतों की तिलावत की वजह से वाजिब हो जाता है। -त)। 'ग़ुनिया' में है:

जब वह सजदा की आयत पढ़े तो उस पर सजदा करना वाजिब है। संक्षेप में।	जब किसी ने आयत-ए-सजदा पढ़ी तो उस पर सजदा-ए-तिलावत करना लाज़िम है। संक्षेप में। (त)

'ख़ानिया' में है:

सजदा-ए-तिलावत उस पर वाजिब है जिस पर नमाज़ वाजिब है, जब वह आयत-ए-सजदा पढ़े या सुने।	सजदा-ए-तिलावत उस व्यक्ति पर वाजिब होता है जिस पर नमाज़ वाजिब है जबकि उसने आयत-ए-सजदा पढ़ी या सुनी। (त)

'बरजन्डी शरह नक़ाया', 'फ़तावा ज़हीरिया' इमाम ज़हीरुल मिल्लत वद्दीन मरग़ीनानी से है:

आयत से मुराद पूरी आयत है यहाँ तक कि अगर कोई पूरी आयत-ए-सजदा पढ़े सिवाय आख़िरी हर्फ के तो वह सजदा नहीं करेगा, इत्यादि।	आयत से मुराद पूरी आयत है यहाँ तक कि किसी ने आयत पढ़ी मगर उसका आख़िरी हर्फ न पढ़ा तो सजदा लाज़िम नहीं, इत्यादि। (त)

'हिदाया' में है:

हा-मीम अस-सजदा में सजदे का स्थान अल्लाह तआला के इरशाद 'ला यसअमून' पर है, हज़रत	हा-मीम अस-सजदा में हज़रत उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के फ़रमान के

उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के कौल के मुताबिक़।

मुताबिक़ 'ला यसअमून' पर सजदा है। एहतियात की...

1. शरह अल-वक़ाया, बाब सुजूद्दु-त-तिलावत, मतबुआ मकतबा रशीदिया दिल्ली 1/229
2. कन्जुद्दक़ा'इक़, बाब सुजूद्दु-त-तिलावत, मतबुआ एच.एम. सईद कम्पनी कराची 1/25
3. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब सुजूद्दु-त-तिलावत, मतबुआ मतबा-ए-मुजतबाई दिल्ली 1/102
4. ग़ुनियतुल-मुस्तमली शरह मुनियतुल-मुसल्ली, बाब सुजूद्दु-त-तिलावत, मतबुआ सुहैल एकेडमी लाहौर पृ. 498
5. फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, फ़स्ल फ़ी क़िरा'अतुल-क़ुरआन, ख़त मतबुआ नवल किशोर लखनऊ 1/57
6. शरह नक़ाया बरजन्ڈی, फ़स्ल फ़ी सजदतुत-तिलावत, मतबुआ नवल किशोर, 1/155

یفعل ماتک پڑھ گیا سجدہ نہ ہوا جب تک یشاء بھی نہ پڑھے، اور یہی مذہب آثارِ صحابہ عظام و تابعینِ کرام سے مستفاد اور ایسا ہی امامِ مالک و امام شافعی و غیرہما ائمہ کا ارشاد بلکہ ائمہ متقدمین سے اس بارے میں اصلاً خلاف معلوم نہیں کتبِ اصحاب سے متون کہ نقلِ مذہب کے لئے موضوع ہیں قاطبۃً اسی طرف گئے اور دلائل و کلماتِ عامہ شروح کہ تحقیق و تنقیح کی متکفل ہیں اسی پر مبنی و متنبنی ہوئے اور اکابر اصحابِ فتاوٰی بھی ان کے ساتھ ہیں۔ 'وقایہ و نقایہ و ملتقی الابحر میں ہے: تجب علی من تلا آیۃ ۱۔ (سجدہ آیت کی تلاوت کی وجہ سے واجب ہوتا ہے۔ت) کنز و وافی میں ہے: تجب باربع عشر آیۃ ۲ (سجدہ تلاوت چودہ ۱۴ آیات کی وجہ سے لازم ہوتا ہے۔ ت) تنویر میں ہے: تجب سبب تلاوۃ آیۃ ۳ (سجدہ آیات کی تلاوت کی وجہ سے واجب ہو جاتا ہے۔ ت) غنیہ میں ہے:

اذا قرأ آیۃ السجدۃ یجب علیہ ان یسجد ٤ اھ ملخصا — جب کسی نے آیت سجدہ پڑھی تو اس پر سجدہ تلاوت کرنا لازم ہے اہ ملخصا (ت)

خانیہ میں ہے:

سجدۃ التلاوۃ تجب علی من تجب علیہ الصلوۃ اذا قرأ السجدۃ او سمعھا ٥ ۔ — سجدہ تلاوت اس شخص پر واجب ہوتا ہے جس پر نماز واجب ہے جبکہ اس نے آیت سجدہ پڑھی یا سنی۔ (ت)

برجندی شرح نقایہ فتادی ظہیریہ امام ظہیر الملہ والدین مرغینانی سے ہے:

المراد بالآية آية تامة حتى لو قرأ آية السجدة كلها الا الحرف الذى في آخرها لا يسجد ٦ الخ

آیت سے مراد پوری آیت ہے حتیٰ کہ کسی نے آیت پڑھی مگر اس کا آخری حرف نہ پڑھا تو سجدہ لازم نہیں الخ (ت)

"ہدایہ" میں ہے:

موضع السجدة في حم السجده عند قوله تعالى لا يسأمون في قول عمر رضى الله تعالى

حم السجدة میں حضرت عمر رضی اللہ تعالی عنہ کے فرمان کے مطابق لا یسأمون پر سجدہ ہے۔ احتیاط کی

1 شرح الوقایہ باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مکتبہ رشیدیہ دہلی ۱/۲۲۹ 2 کنز الدقائق باب سجود التلاوۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۲۵ 3 در مختار ، باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۲ 4 غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی باب سجود التلاوۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۴۹۸ 5 فتاوی قاضی خان فصل فی قراۃ القرآن خط مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱/۵۷ 6 شرح نقایہ برجندی ، فصل فی سجدۃ التلاوۃ ، مطبوعہ نولکشور ، ۱/۱۵۵

From it, and it is what is adopted for caution.[1] —

It is acted upon based on this. (T)

In "Fath al-Qadir" it is stated:

"The reason for it is that if the prostration was obligatory at 'Ta'budun', delaying it until the following verse does not harm it. And if it was at 'La Yas'amun', then prostrating beforehand would not be sufficient." [2]

Its reason is that if the prostration becomes obligatory at 'Ta'budun', then the verse after it does not harm it, and if the prostration is at 'La Yas'amun', then now being done beforehand, it will not be sufficient. (T) (2)

In "Al-Kafi" it is stated:

"The place of prostration in Ha-Mim is at His saying 'La Yas'amun', and it is the school of Ibn Abbas. Al-Shafi'i said it is at His saying 'In Kuntum Iyyahu Ta'budun', which is the school of Ali (may Allah Almighty be pleased with them) because the command for prostration is therein. Caution lies in what we have stated, so that the obligated person emerges from the duty with certainty, for if it was at the second verse and the prostration was before it, it is not permissible. Thus, if one prostrates at 'Ta'budun', they do not emerge from the obligation, etc." [3]

In Surah Ha-Mim, the prostration is at the words 'La Yas'amun', and this is the school of Hazrat Ibn Abbas. According to Imam Shafi'i, the prostration is at the words 'In Kuntum Iyyahu Ta'budun', and this is also the school of Hazrat Ali (may Allah be pleased with him) because the command for prostration is in it. Caution is in our statement so that the obligated person fulfills the duty with certainty, because if the prostration is at the second verse, then prostrating before it is not permissible. Therefore, if the prostration was done at 'Ta'budun', the obligated person will not be absolved of their responsibility, etc. (T)

In "Radd al-Muhtar", from "Imdad al-Fattah", from "al-Bahr al-Ra'iq", from "Bada'i" it is stated:

"We have preferred the first for caution when the schools of the Sahabah differ, because if it were obligatory at 'Ta'budun', delaying until 'La Yas'amun'

We have preferred the first as a precaution due to the difference of opinion among the Companions, because if the prostration becomes obligatory at 'Ta'budun', delay

does not harm, contrary to the reverse."	until 'La Yas'amun' is not harmful, and in the opposite case there is harm, because in such a situation the obligation...

[1] Al-Hidayah, Chapter on Sajdah al-Tilawah, printed in Naval Kishore Lucknow, 1/143. [2] Fath al-Qadir, Chapter on Sajdah al-Tilawah, printed in Nouriyah Razawiyyah Sukkur, 1/465. [3] Kafi, commentary on Wafi.

उन्हीं से, और यही एहतियात (सावधानी) के तौर पर लिया गया है।[1] —

इसी पर अमल किया जाता है। (त)

"फतहुल क़दीर में है:

"इसकी वजह यह है कि अगर सजदा 'तअ'बुदून' पर वाजिब हो जाता है, तो उसके बाद वाली आयत तक देरी करना नुकसानदेह नहीं है। और अगर सजदा 'ला यसअमून' पर हो, तो पहले सजदा करना काफी नहीं होगा।" [2]

इसकी वजह यह है कि अगर सजदा 'तअ'बुदून' पर लाज़िम हो जाता है, तो इसके बाद वाली आयत इसे नुकसानदेह नहीं और अगर सजदा 'ला यसअमून' पर हो तो अब पहले होने की वजह से काफी न होगा। (त) (2)

"काफी में है:

"सूरह हा-मीम में सजदे का स्थान 'ला यसअमून' के शब्दों पर है और यह हजरत इब्ने अब्बास का मज़हब है। इमाम शाफ़ई के अनुसार सजदा 'इन कुन्तुम इय्याहु तअ'बुदून' के शब्दों पर है और हजरत अली रज़ियल्लाहु अन्हु का भी यही मज़हब है क्योंकि सजदे का हुक्म इसी में है। एहतियात हमारे कौल में है ताकि मुकल्लफ (ज़िम्मेदार व्यक्ति) यकीनी तौर पर वाजिब की अदायगी कर ले, क्योंकि अगर सजदा दूसरी आयत पर है तो उससे पहले सजदा करना जायज़ नहीं है। इसलिए अगर सजदा 'तअ'बुदून' पर किया तो मुकल्लफ अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा, इत्यादि।" [3]

सूरह हा-मीम में सजदा 'ला यसअमून' के शब्दों पर है और यह हजरत इब्ने अब्बास का मज़हब है। इमाम शाफ़ई के मुताबिक सजदा 'इन कुन्तुम इय्याहु तअ'बुदून' के लफ्जों पर है और हजरत अली रज़ियल्लाहु अन्हु का यही मज़हब है क्योंकि सजदे का हुक्म इसी में है, और एहतियात हमारे कौल में है ताकि मुकल्लफ से वाजिब की अदायगी यकीनी तौर पर हो जाए, क्योंकि अगर सजदा दूसरी आयत पर है तो उससे पहले सजदा जायज़ नहीं। लिहाजा अगर सजदा 'तअ'बुदून' पर किया तो मुकल्लफ अपनी ज़िम्मेदारी से बरी नहीं होगा इत्यादि (त)

"रद्दुल मुहतार में, इमदादुल फत्ताह से, अल-बहरुर रैक से, बदाएअ से है:

"हमने सहाबा के मज़हबों में इख्तिलाफ (मतभेद) की वजह से एहतियातन पहले को तरजीह

हमने सहाबा में इख्तिलाफ की वजह से एहतियातन पहले को तरजीह दी है क्योंकि

(प्राथमिकता) दी है, क्योंकि अगर सजदा 'तअ'बुदून' पर वाजिब हो तो 'ला यसअमून' तक देरी नुकसानदेह नहीं है, और इसके विपरीत में नुकसान है क्योंकि ऐसी सूरत में वजूब..."

अगर सजदा 'तअ'बुदून' पर लाज़िम हो तो 'ला यसअमून' तक ताखीर (देरी) नुकसानदेह नहीं और इसके बरअक्स (विपरीत) में नुकसान है क्योंकि ऐसी सूरत में वजूब...

[1] अल-हिदाया, सजदा-ए-तिलावत का अध्याय, नवल किशोर लखनऊ द्वारा मुद्रित, 1/143। [2] फतहुल क़दीर, सजदा-ए-तिलावत का अध्याय, नूरिया रज़विया सुक्कुर द्वारा मुद्रित, 1/465। [3] काफी शरह वाफी।

عنه وهو المأخوذ للاحتياط [1] ۔

بناء پراسی پر عمل ہے۔ (ت)

"فتح القدیر میں ہے:

وجهه انه ان كان السجود عند تعبدون لا يضره التأخير الى الآية بعده وان كان عند لايسأمون لم يكن السجود قبل مجزئًا ۔[2]

اس کی وجہ یہ ہے اگر سجدہ تعبدون پر لازم ہو جاتا ہے تو اس کے بعد آیت اسے نقصان دہ نہیں اور اگر سجدہ لایسامون پر ہو تو اب پہلے ہونے کی وجہ سے کافی نہ ہو گا۔ (ت) (۲)

"کافی میں ہے:

موضع السجدة في حم عند قوله لايسأمون وهو مذهب ابن عباس وقال الشافعي عند قوله ان كنتم اياه تعبدون، وهو مذهب علي رضي الله تعالى عنهم لان الامر بالسجود فيها والاحتياط فيما قلنا ليخرج عن الواجب بيقين فانها ان كانت عند الآية الثانية والسجود قبلها غير جائز فلو سجد عند تعبدون لا يخرج عن العهدة الخ [3]

سورہ حم میں سجدہ لایسامون کے الفاظ پر ہے اور یہ حضرت ابن عباس کا مذہب ہے امام شافعی کے مطابق سجدہ ان کنتم ایاہ تعبدون کے الفاظ پر ہے اور حضرت علی رضی اللہ عنہ کا یہی مذہب ہے کیونکہ سجدہ کا حکم اسی میں ہے، اور احتیاط ہمارے قول میں ہے تاکہ مکلف سے واجب کی ادائیگی بالیقین ہو جائے کیونکہ اگر سجدہ دوسری آیت پر ہے تو اس سے پہلے سجدہ جائز نہیں لہٰذا اگر سجدہ تعبدون پر کیا تو مکلف اپنی ذمہ داری سے عہدہ برآ نہ ہو گا الخ (ت)

"ردالمحتار میں 'امداد الفتاح اُس میں

'البحر الرائق اس میں 'بدائع سے ہے:

رجحنا الاول للاحتیاط عند اختلاف مذاهب ہم نے صحابہ میں اختلاف کی وجہ سے احتیاطاً پہلے کو

الصحابة لانها لو وجبت عند تعبدون ترجیح دی ہے کیونکہ اگر سجدہ تعبدون پر لازم ہو تو لا

فالتأخیر الی لایسأمون لا یضر بخلاف سامون تک تاخیر نقصان دہ نہیں اور اس کے عکس میں

العکس نقصان ہے کیونکہ ایسی صورت میں وجوب

1 الهدایه فصل في سجدة التلاوة مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱/ ۱۴۳ 2 فتح القدیر فصل في سجدة التلاوة مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۴۶۵ 3 کافی شرح وافی

Because it occurs before the existence of the cause of obligation[1] etc.

It will be before everything, etc. (T)

Similarly, it is mentioned in Sharh al-Wiqayah, Majma' al-Anhur, al-Mustakhlas, etc.:

They have stated that the cause of obligation is the complete verse, to the extent that performing it before (the full verse) is like performing prayer before its time.

Jurists have clarified that the cause for the obligation of prostration is the complete verse, such that prostrating before the entire verse is like offering prayer before its designated time. (T)

It is stated in al-Hilya:

(Arabic side): The prostration of recitation is obligatory in al-A'raf after its end, and in ar-Ra'd after His saying 'and their shadows in the mornings and the afternoons', and in an-Nahl after His saying 'and they do what they are commanded', and in Bani Isra'il after His saying 'and it increases them in humility', and in Maryam after His saying 'they fell down prostrating and weeping', and in al-Hajj after His saying 'indeed, Allah does what He wills', and in al-Furqan after His saying 'and it increased them in aversion', and in an-Naml after His saying 'and He knows what you conceal and what you reveal'. This is attributed to the majority of jurists. Malik said it is at His saying 'Lord of the Great Throne'. An-Nawawi mentioned that this is the correct view and it is the Shafi'i school, as stated by his companions. In Alif-Lam-Mim as-Sajdah, it is after His saying 'and they are not arrogant', and in Sad after His saying 'and he turned in repentance'. According to the Malikis, and it is a narration from Malik, it is after...

(Urdu side): The prostration of recitation is after the last verse in al-A'raf. In ar-Ra'd, it is after 'Zilaluhum bil-ghuduwwi wal-asal'. In an-Nahl, at 'wa yaf'aluna ma yu'marun'. In Bani Isra'il, at 'wa yaziduhum khushu'an'. In Maryam, at 'kharru sujjadan wa bukiyya'. In al-Hajj, at 'Innallaha yaf'alu ma yasha'u'. In al-Furqan, after 'wa zadahum nufura'. In an-Naml, at 'wa ya'lamu ma tukhfuna wa ma tu'linun'. This is attributed to most jurists. Imam Malik is in favor of prostrating at 'Rabb al-'Arsh al-'Azim'. Imam an-Nawawi said this is the correct view and the Shafi'i school, as their companions have clarified. In al-Sajdah, at 'wa hum la yastakbirun'. In Sad, after 'wa anaba'. According to the Malikis, after 'ma'ab'. This is also narrated from Imam Malik (may Allah have mercy on him).

[1] Radd al-Muhtar, Chapter of Sijud al-Tilawa, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/565.

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

क्योंकि यह दायित्व के कारण के अस्तित्व से पहले होता है[1], इत्यादि।

यह सब से पहले होगा। इत्यादि (त)

इसी तरह शरह विक़ाया, मजमा-उल-अन्हर, मुस्तख़लस आदि में है:

उन्होंने स्पष्ट किया है कि दायित्व का कारण पूरी आयत है, यहाँ तक कि उसे पूरी आयत से पहले करना नमाज़ को उसके समय से पहले अदा करने जैसा है।

फ़कीहों ने स्पष्ट किया है कि सजदा वाजिब होने का कारण पूरी आयत होती है, यहाँ तक कि पूरी आयत से पहले सजदा करना ऐसा ही है जैसे नमाज़ समय से पहले अदा कर ली हो। (त)

हिलिया में है:

(अरबी पक्ष): सजदा-ए-तिलावत आराफ़ में उसके अंत के बाद वाजिब है, और रअद में उनके इस कथन 'और उनकी परछाइयां सुबह और शाम' के बाद, और नह्ल में उनके इस कथन 'और वे वह करते हैं जिसका उन्हें आदेश दिया जाता है' के बाद, और बनी इसराइल में उनके इस कथन 'और यह उनकी विनम्रता को बढ़ाता है' के बाद, और मरियम में उनके इस कथन 'वे सजदा करते हुए और रोते हुए गिर पड़े' के बाद, और हज में उनके इस कथन 'निश्चय ही अल्लाह जो चाहता है वह करता है' के बाद, और फ़ुरकान में उनके इस कथन 'और इसने उनकी घृणा को बढ़ा दिया' के बाद, और नम्ल में उनके इस कथन 'और वह जानता है जो तुम छिपाते हो और जो तुम प्रकट करते हो' के बाद। और यह अधिकांश फकीहों की राय है। इमाम मालिक ने 'रब्बुल अर्शिल अज़ीम' के शब्द पर सजदा कहा है। इमाम नववी ने उल्लेख किया कि यही सही है और यही शाफई संप्रदाय है जैसा कि उनके साथियों ने स्पष्ट किया है। अलिफ़ लाम मीम अस-सजदा में उनके इस कथन 'और वे अहंकार नहीं करते' के बाद, और साद में उनके इस कथन 'और वह तौबा करते हुए मुड़ा' के बाद। और मलिकियों के अनुसार, और यह इमाम मालिक से एक रिवायत है, इसके बाद...

(उर्दू पक्ष): सजदा-ए-तिलावत आराफ़ में आखिरी आयत के बाद है। रअद में 'ज़िलालुहुम बिल गुदुव्वी वल आसल' के बाद है। नह्ल में 'व यफ़अलून मा युअमरून' पर, बनी इसराइल में 'व यज़ीदुहुम खुशुअन' पर, मरियम में 'खर्रू सुज्जदन व बुकिय्या' पर, हज में 'इन्नल्लाहा यफ़अलु मा यशाअ' पर, फ़ुरकान में 'व जादहुम नुफ़ूरा' के बाद, नम्ल में 'व यअलमु मा तुख़फ़ून व मा तुलिनून' पर, और यह अधिकांश फकीहों की तरफ मंसूब है। इमाम मालिक 'रब्बुल अर्शिल अज़ीम' पर सजदा के कायल हैं। इमाम नववी ने कहा यही सवाब (सही) है और मजहब-ए-शाफई है जैसा कि उनके असहाब ने तसरीह की है। अलम अल-सजदा में 'व हुम ला यस्तक्बिरून' पर, साद में 'व अनाबा' के बाद, और मालकिया के नज़दीक 'मआब' के बाद, और यही इमाम मालिक रहमतुल्लाह अलैहि से मरवी है।

[1] रद-उल-मुहतार, अध्याय सजदा-ए-तिलावत, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/565.

لانها تکون قبل وجود سبب الوجوب[1] الخ

سب سے پہلے ہوگا۔ الخ (ت)

اسی طرح شرح وقایہ و مجمع الانہر و مستخلص وغیرہا میں ہے:

فقد نصوا علی ان سبب الوجوب الأٰیة بتمامها حتی جعلوا التقدیم علیها کتقدیم الصلوة علی وقتها۔

فقہاء نے تصریح کی ہے کہ وجوب سجدہ کا سبب پوری آیت ہوتی ہے حتی کہ پوری آیت سے پہلے سجدہ کرنا ایسے ہی ہے جیسے نماز وقت سے پہلے ادا کر لی ہو۔ (ت)

حلیہ میں ہے:

سجدة التلاوة واجبة فی الاعراف عقب اخرها وفی الرعد عقب قوله وظلالهم بالغدو والاصال ه وفی النحل عقب قوله ویفعلون ما یؤمرون ه وفی بنی اسرائیل عقب قوله ویزیدهم خشوعا ه وفی مریم عقب قوله خروا سجدا وبکیا ه وفی الحج عقب قوله ان الله یفعل ما یشاء ه وفی الفرقان عقب قوله وزادهم نفورا ه وفی النمل عقب قوله ویعلم ما تخفون وما تعلنون ه وهو معز والی اکثر الفقهاء وقال مالك عند قوله رب العرش العظیم وذکر النووي انه الصوب وانه مذهب الشافعي کما صرحت به اصحابه وفی الم السجدة عقب قوله وهم لا یستکبرون ه وفی ص عقب قوله واناب ه وفی قوله عند المالکیة وهو روایة عن مالك عقب

سجدہ تلاوت اعراف میں آخری آیت کے بعد ہے رعد میں ظلالھم بالغدو والآصال کے بعد ہے۔ نحل میں ویفعلون ما یؤمرون پر، بنی اسرائیل میں ویزیدھم خشوعاً پر، مریم میں خروا سجداً و بکیا پر، حج میں ان اللہ یفعل ما یشاء پر، فرقان میں وزادھم نفورا کے بعد، نمل میں ویعلم ما تخفون وما تعلنون پر، اور یہ اکثر فقہاء کی طرف منسوب ہے امام مالک رب العرش العظیم پر سجدہ کے قائل ہیں امام نووی نے کہا یہی صواب اور مذہب شافعی ہے جیسا کہ ان کے اصحاب نے تصریح کی ہے۔ الم السجدہ میں وھم لا یستکبرون پر، ص میں واناب کے بعد، اور مالکیہ کے نزدیک مآب کے بعد، اور یہی امام مالک رحمۃ اللہ علیہ سے مروی ہے

[1] ردالمختار باب سجود التلاوة مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۶۵

Fatawa Rizvia, Volume 8

(Arabic Section:) In Surah Ha-Mim As-Sajdah, the prostration is after His words "wa la yas'amoon" (and they do not tire), and the well-known view of the Maliki school is that it is after "ta'budoon" (you worship). In Surah An-Najm, it is after its end. In Surah Al-Inshiqaq, it is after His words "la yasjudoon" (they do not prostrate), and the well-known Maliki view is at its end. In Surah Al-'Alaq, it is at its end. Furthermore, no disagreement has been reported from anyone who advocates for prostration in these fourteen places regarding any of their mentioned locations, except for the four places where the disagreement was explained. Yes, in "Dhakhira al-Dhikr fi al-Ruqiyyat," etc., a rare narration from Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on him) is mentioned here. End of excerpt (1). I say: Look at his words "obligatory after such and such and after such and such," for "after" (aqib) is an adverb indicating the timing of obligation. Thus, there is no obligation before the completion of the verse. Look also at what was mentioned of the sayings of the Malikis and Shafi'is; you will gain from them that they are also with us in this. Then, looking at his words "none have reported etc.," it suggests that there is no disagreement; rather, it is according to the leading scholars of the predecessors, except for a rare narration from our third Imam (Imam Muhammad) (may Allah Almighty have mercy on him).

(Urdu Section:) In Surah Ha-Mim As-Sajdah, the prostration is after 'la yas'amoon', and according to the well-known Maliki school, it is after 'ta'budoon'. In An-Najm, it is after the last verse. In Al-Inshiqaq, it is after 'la yasjudoon', and the famous Maliki view is at its last verse. In Al-'Alaq, it is mandatory after the last verse. No disagreement is narrated in these fourteen places except for those four places where the disagreement was mentioned. However, it is mentioned in 'Dhakhira' that in 'Al-Ruqiyyat' etc., a rare narration from Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on him) is mentioned. End of excerpt (T). I say: You have observed his words "it is obligatory after such and such a word"; the word 'aqib' (after) describes the location for the obligation. Therefore, the obligation of prostration will not occur before the completion of the entire verse. Look at the statements mentioned from the Malikis and Shafi'is; it is inferred from them that they are with us in this matter. Then see these words that "no disagreement is narrated from anyone etc.", which makes it clear that the Imams of the Salaf (predecessors) have no disagreement in this, except for that narration which is reported from our third Imam (Imam Muhammad) (may Allah Almighty have mercy on him). (T)

Similarly, in 'Sharh Ma'ani al-Athar', Imam Tahawi clarified that the ends of the verses are the places of prostration, and regarding Ha-Mim As-Sajdah, he cited the disagreement regarding the location as follows:

1. Huliyat al-Mahalli bi-Sharh Munyat al-Musalli. Page 227 of 673

फतवा-ए-रज़विया, खंड 8

(अरबी अनुभाग:) सूरह हा-मीम अस-सजदा में, सजदा उनके शब्दों 'वा ला यसअमून' (और वे थकते नहीं) के बाद है, और मालिकी मत का प्रसिद्ध विचार यह है कि यह 'तअबुदून' (तुम पूजा करते हो) के बाद है। सूरह अन-नज्म में, यह इसके अंत में है। सूरह अल-इन्शिक़ाक़ में, यह उनके शब्दों 'ला यसजुदून' (वे सजदा नहीं करते) के बाद है, और प्रसिद्ध मालिकी विचार इसके अंत में है। सूरह अल-'अलक़ में, यह इसके अंत में है। इसके अलावा, इन चौदह स्थानों में सजदा करने वालों में से किसी से भी उनके उल्लिखित स्थानों के संबंध में कोई असहमति नहीं बताई गई है, सिवाय उन चार स्थानों के जहाँ असहमति स्पष्ट की गई थी। हाँ, 'ज़खीरा अल-ज़िक्र फ़ी अल-रुक़य्यात' आदि में, यहाँ इमाम मुहम्मद (अल्लाह तआला उन पर रहम करे) से एक दुर्लभ वर्णन का उल्लेख है। उद्धरण समाप्त (1)। मैं कहता हूँ: उनके शब्दों "अमुक के बाद और अमुक के बाद अनिवार्य है" को देखें, क्योंकि "बाद" (अक़ीब) अनिवार्यता के समय को दर्शाने वाला एक क्रियाविशेषण है। इस प्रकार, आयत के पूरा होने से पहले कोई अनिवार्यता नहीं है। मालिकियों और शाफ़ियों के जो कथन उल्लेखित हैं, उन्हें भी देखें, उनसे आपको पता चलेगा कि वे भी इस मामले में हमारे साथ हैं। फिर उनके शब्दों "किसी ने रिपोर्ट नहीं किया आदि" को देखने से पता चलता है कि इसमें कोई असहमति नहीं है; बल्कि, यह पूर्वजों (सलफ़) के प्रमुख विद्वानों के अनुसार है, सिवाय हमारे तीसरे इमाम (इमाम मुहम्मद) (अल्लाह तआला उन पर रहम करे) के एक दुर्लभ वर्णन के।

(उर्दू अनुभाग:) सूरह हा-मीम अस-सजदा में 'ला यसअमून' के बाद, और मालिकी मत के अनुसार प्रसिद्ध 'तअबुदून' के बाद है। अन-नज्म में अंतिम आयत के बाद, इन्शिक़ाक़ में 'ला यसजुदून' के बाद, और प्रसिद्ध मालिकी मत इसकी अंतिम आयत पर है, अल-'अलक़ में अंतिम आयत के बाद आवश्यक है। इन चौदह स्थानों में उन चार स्थानों के अलावा कोई मतभेद वर्णित नहीं है जिनमें मतभेद का उल्लेख किया गया है। हाँ, ज़खीरा में है कि अल-रुक़य्यात आदि में इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) से एक दुर्लभ रिवायत का ज़िक्र किया गया है। अंत (टी) मैं कहता हूँ: आपने उनके शब्द 'फलां शब्द के बाद' और 'फलां के बाद वाजिब है' को देखा; शब्द 'अक़ीब' (बाद) वाजिब होने के स्थान का वर्णन है। इसलिए पूरी आयत से पहले सजदा वाजिब नहीं होगा। मालिकी और शाफ़ई जो कथन ज़िक्र करते हैं उन्हें देखें, उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस मामले में वे हमारे साथ हैं। फिर इन शब्दों को देखें कि 'किसी से कोई मतभेद वर्णित नहीं है आदि' जिससे यह

स्पष्ट हो रहा है कि सलफ़ के इमामों के बीच इसमें कोई मतभेद नहीं है, सिवाय उस रिवायत के जो हमारे तीसरे इमाम (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) से वर्णित है। (टी)

इसी तरह इमाम तहावी ने 'शरह मानी अल-आसार' में स्पष्ट किया है कि आयतों का अंत सजदे का स्थान है और हा-मीम अस-सजदा में स्थान के मतभेद को इस प्रकार उद्धृत किया है:

1. हुलियातुल महल्ली बी-शरह मुनियतुल मुसल्ली। पृष्ठ 673 में से 227

مآب وفی حم السجدۃ عقب قولہ ولایسأمون و مشہور مذہب مالك عقب تعبدون وفی النجم عقب أخرھا و فی الانشقاق عقب قولہ لا یسجدون مشہور مذہب مالك عقب أخرھا وفی العلق عقب أخرھا ثم لم یحك عن احد ممن قال بالسجود فی ھذا المواضع الاربعۃ عشر خلاف فی شئ من محالھا المذکورۃ فیھا عدا المواضع الاربعۃ التي بینت الخلاف فیھا نعم فی ذخیرۃ الذکر فی الرقیات الخ و ذکر ھھنا روایۃ غریبۃ عن الامام محمد رحمۃ اللہ تعالی اہ ملتقطا 1 اقول : فانظر الی قولہ واجبۃ عقب کذا وعقب کذا فان عقب ظرف للوجوب فلا وجوب قبل تمام الأیۃ وانظر ع ماذکر من اقوال المالکیۃ والشافعۃ تستقید بھا انھم ایضا معنا فی ذلك ثم النظر الی قولہ لم یحك من احد الخ تشعر بہ ان لا خلاف فھی لائمۃ السلف اللھم الاروایۃ نادرۃ عن امامنا الثالث رحمہ اللہ تعالی ۔

حم السجدہ میں ولا یسأمون کے بعد ، اور مذہب مالک میں مشہور تعبدون کے بعد ہے ، النجم میں آخری آیت کے بعد ، انشقاق میں لایسجدون کے بعد ، اور مذہب مالک مشہور اس کی آخری آیت پر ، علق میں آخری آیت کے بعد لازم ہے ، ان چودہ مقامات میں کوئی اختلاف مروی نہیں ماسوائے ان چار مقامات کے جن میں اختلاف ذکر کردیا گیا ہے ، ہاں ذخیرہ میں ہے کہ الرقیات میں ہے الخ اور وہاں امام محمد رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ سے روایت غریبہ ذکر کی گئی ہے اھ ملتقطاً (ت) اقول : آپ نے انکے الفاظ فلاں لفظ کے بعد فلاں کے بعد واجب ہے ، ملاحظہ کئے ، لفظ عقب وجوب کے لئے جگہ کا بیان ہے پس تمام آیت سے پہلے سجدہ کا وجوب نہ ہوگا ، مالکیہ اور شافعیہ جو اقوال ذکر کرتے ہیں انہیں دیکھیں ان سے مستفاد کہ اس معاملہ میں ہمارے ساتھ ہیں پھر یہ الفاظ دیکھو کہ کسی سے اختلاف مروی نہیں الخ جس سے واضح ہو رہا ہے کہ ائمہ سلف کو اس میں کوئی اختلاف نہیں مگر وہ روایت جو ہمارے تیسرے امام رحمۃ اللہ تعالٰی سے مروی ہے ۔ (ت)

اسی طرح شرح معانی الاثار امام طحطاوی میں تصریح فرمائی کہ اواخر آیات موضع سجود ہے اور رحم السجدہ میں اختلاف محل یوں نقل کیا:

1 حلیہ المحلی بشرح منیۃ المصلی Page 227 of 673

Fatawa-e-Razviya Volume Eight

Some have said that the place for prostration is 'Ta'budun', while others have said it is 'La Yas'amun'. Imam Abu Hanifa, Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad—all three have favored the latter opinion. The earlier scholars had a difference of opinion on this. Then, it has been narrated through a chain of transmission that the school of thought (madhhab) of Ibn Abbas, Abu Wa'il, Ibn Sirin, Mujahid, and Qatadah is similar to that of our companions (Hanafis). The school of thought of Ibn Mas'ud and Ibn Umar is similar to that of the Malikis. It is narrated through a chain from Mujahid: I asked Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) regarding the prostration in Surah Ha-Meem (Fussilat); he said, 'Prostrate at the end of the two verses.'

I say: (I say that) the letter 'Ba' indicates causality. Then, through another chain from Ibn Abbas, it is narrated that a man prostrated at the first verse of Ha-Meem. Upon this, Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with him) said: 'He rushed into prostration.' (T)

Then he stated: There is agreement on the prostration in Ha-Meem, but there is a difference regarding its location. As for the mention of prostrations at the ends of the chapters before this, there is agreement on them and their mentioned locations. Etc. (T)

Imam Ahmad Qastalani states in 'Irshad al-Sari Sharh Sahih al-Bukhari': If someone prostrates before the completion of the verse, even by a single letter, it is not valid.

---

1. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter of Prostration of Recitation in the Mufassal, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/224.
2. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter of Prostration of Recitation in the Mufassal, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/224.
3. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter of Prostration of Recitation in the Mufassal, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/224.
4. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter of Prostration of Recitation in the Mufassal, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/224.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं

कुछ ने कहा कि सिजदा का स्थान 'तअ्बुदून' है, और कुछ ने कहा कि यह 'ला यस'अमून' है। इमाम अबू हनीफ़ा, इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद तीनों ने बाद वाले मत को अपनाया है। शुरुआती विद्वानों ने इसमें मतभेद किया है। फिर रिवायत के अनुसार इब्न अब्बास, अबू वाइल, इब्न सीरीन, मुजाहिद और क़तादा का मत हमारे साथियों (हनफ़ियों) की तरह है। इब्न मसूद और इब्न उमर का मत मलिकी मत के समान है। मुजाहिद से रिवायत है कि उन्होंने कहा: मैंने हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से सूरह हाम-मीम (फ़ुस्सिलत) में सिजदा के बारे में पूछा, तो उन्होंने फ़रमाया: दोनों आयतों के अंत में सिजदा करो।

मैं (लेखक) कहता हूँ: 'बा' कारण बताने के लिए है। फिर दूसरी सनद से इब्न अब्बास से वर्णित है कि एक आदमी ने हाम-मीम की पहली आयत पर सिजदा किया। इस पर हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया: इस व्यक्ति ने सिजदा करने में जल्दबाज़ी की। (त)

फिर फ़रमाया: सूरह हाम-मीम के सिजदा पर सहमति है, लेकिन इसके स्थान पर मतभेद है। और इससे पहले की सूरतों के अंत में सिजदों का जो ज़िक्र आया है, उन पर और उनके बताए गए स्थानों पर सहमति है। इत्यादि। (त)

इमाम अहमद क़स्तलानी 'इरशाद अल-सारी शरह सहीह अल-बुखारी' में फ़रमाते हैं: अगर किसी ने आयत पूरी होने से पहले, यहाँ तक कि एक अक्षर पहले भी सिजदा किया, तो वह मान्य नहीं है।

---

1. शरह मआनी अल-आसार, बाब सुजूद अत-तिलावत फ़िल मुफ़स्सल, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/224.
2. शरह मआनी अल-आसार, बाब सुजूद अत-तिलावत फ़िल मुफ़स्सल, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/224.
3. शरह मआनी अल-आसार, बाब सुजूद अत-तिलावत फ़िल मुफ़स्सल, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/224.
4. शरह मआनी अल-आसार, बाब सुजूद अत-तिलावत फ़िल मुफ़स्सल, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/224.

بعض نے فرمایا کہ سجدہ کا مقام تعبدون ہے ، بعض نے فرمایا لایسئمون ہے، امام ابو حنیفہ ، امام ابو یوسف اور امام محمد تینوں آخری کی طرف گئے ہیں ، مقتدین نے اس میں اختلاف کیا ہے پھر انھوں نے سنداً بتایا کہ ابن عباس، ابووائل، ابن سیرین، مجاہد اور قتادہ کا مذہب ہمارے اصحاب کی طرح ہے ابن مسعود اور ابن عمر کا مسلک مالکیہ والا ہے، اور مجاہد سے سنداً بیان کیا ہے کہ میں نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے حم میں سجدہ کے بارے میں پوچھا تو انھوں نے فرمایا دونوں آیات کے آخر میں سجدہ کرو اھ

قلت : (میں کہتا ہوں کہ) باء سببیہ ہے پھر دوسری سند سے ابن عباس سے روایت کیا ایک آدمی نے حم کی پہلی آیت پر سجدہ کیا اس پر حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے فرمایا: سجدہ میں جلدی کر دی۔ (ت)

پھر فرمایا: حم کے سجدہ پر اتفاق ہے لیکن اس کے مقام میں اختلاف ہے اور جو اس سے پہلے سورتوں کے آخر میں سجدوں کا ذکر آیا ان پر اور ان کے مذکور مقامات پر اتفاق ہے الخ (ت)

امام احمد قسطلانی ارشاد الساری شرح صحیح بخاری میں فرماتے ہیں: لو سجد قبل تمام الآیۃ ولو بحرف لم یصح | اگر کسی نے آیت سے ایک حرف بھی پہلے سجدہ کیا

---

1 شرح معانی الآثار باب سجود التلاوۃ فی المفصل مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۲۲۴ 2 شرح معانی الآثار باب سجود التلاوۃ فی المفصل مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۲۲۴ 3 شرح معانی الآثار باب سجود التلاوۃ فی المفصل مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۲۲۴ 4 شرح معانی الآثار باب سجود التلاوۃ فی المفصل مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۲۲۴

Fatawa Rizvia, Volume 8

"For its time only enters with its completion"[1] Then it would not be correct because its time starts upon the completion of the entire verse. (T) According to this grand and firmly established doctrine, reciting or hearing the aforementioned poem does not mandate a prostration (Sajda) because it does not contain the entire verse of prostration. Similarly, every poem that does not contain the complete verse of prostration [will not mandate it]. From this, it becomes clear that reciting or hearing poetry does not generally necessitate prostration, as none of the fourteen verses of prostration (indicated by 'ع') fit the poetic meters. If one tries to fit them into poetry, either they will not be complete, or the word order will change. In any case, the verse will not remain in its original state.

"Except perhaps in Surah Al-Najm and Surah Al-Alaq, for maybe the meter can accommodate them in some rare hemistichs and distant poetic licenses, or with strange structures, even by joining some words at the beginning or end. So one should reflect upon this." Yes, only in two verses of Surah Najm and Al-Alaq, there is a possibility of fitting poetic meter, perhaps through some rare aspects and distant changes and alien meters, and that too by adding some words at the beginning or end. Therefore, one should apply deep thought. (T)

Yes, some later scholars hold the view that reciting just two words from the verse of prostration mandates a prostration: one word being the one mentioning prostration (like 'wasjud' in the verse of Suwal) and the other being the one before or after it (like 'waqtarib'). This view, although separate from the 'Zahir al-Riwaya' (manifest narrations) and even from 'Nawadir' (rare narrations), and completely against the path of the early Imams and the explicit texts and commentaries of the primary works, has been authenticated in 'Siraj Wahaj', 'al-Jawhara al-Nayyirah', and 'Maraqi al-Falah'. In the commentary of 'Nur al-Idah', it says:

"Reciting the word of prostration along with the word before or after it from its verse mandates prostration, just like reciting the complete verse, according to the correct view." According to the correct saying, if in the verse of prostration, only the word of prostration is recited with the preceding or succeeding word, then the prostration will become obligatory, just as it becomes obligatory from reciting the entire verse. (T)

Allama Tahtawi states in its marginalia:

"In al-Jawhara, 'the correct view' benefits the point that when he recites the word of prostration and a word before it and a word after it..." In al-Jawhara it is stated that the correct view is that when the word of prostration is recited and along with it the word preceding it is also read...

ع: The fourteen verses of prostration.

[1] Irshad al-Sari Sharh al-Bukhari, Chapters on Prostrations of the Quran, printed by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 281/2. [2] Maraqi al-Falah with Tahtawi's Marginalia, Chapter on the Prostration of Recitation, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 261.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

"क्योंकि उसका समय उसकी पूर्णता के साथ ही शुरू होता है"[1] तो सही नहीं होगा क्योंकि इसका समय पूरी आयत पर शुरू होता है। (त) इस महान और सुदृढ़ सिद्धांत के आधार पर, उल्लेखित कविता को पढ़ने या सुनने से सजदा (साष्टांग प्रणाम) नहीं आता क्योंकि इसमें सजदा की आयत पूरी तरह नहीं है। इसी तरह हर वह कविता जिसमें सजदा की पूरी आयत न हो [उससे सजदा अनिवार्य नहीं होगा]। यहीं से यह स्पष्ट हो गया कि कविता का पाठ या श्रवण सामान्यतः सजदा का कारण नहीं है, क्योंकि सजदा की चौदह आयतों (ऐन 'ع' द्वारा इंगित) में से कोई भी आयत छंद शास्त्र के वजन (मात्रा) में नहीं आती। यदि उन्हें कविता में लाने की कोशिश की जाए, तो या तो वे पूरी नहीं आएंगी या शब्दों का क्रम बदल जाएगा। बहरहाल, आयत अपनी मूल स्थिति में नहीं रहेगी।

"मगर सूरह अल-नज्म और अल-अ़लक़ में, शायद छंद की गुंजाइश कुछ दुर्लभ चरणों और दूर के परिवर्तनों या विदेशी छंदों में हो, भले ही शुरू या अंत में कुछ शब्दों को मिलाने के कारण। अतः इस पर विचार किया जाना चाहिए।" हाँ, केवल सूरह नज्म और अलक़ की दो आयतों में काव्य छंद की गुंजाइश शायद कुछ दुर्लभ पहलुओं और दूरगामी परिवर्तनों और बाहरी छंदों में, वह भी शुरुआत या अंत में कुछ शब्दों को जोड़ने की वजह से पैदा हो जाए, इसलिए सोच-विचार करना चाहिए। (त)

हाँ, कुछ बाद के विद्वानों का यह मत है कि सजदा की आयत से केवल दो शब्द पढ़ना सजदा अनिवार्य करता है: जिनमें से एक वह शब्द है जिसमें सजदा का उल्लेख है (जैसे आयत-ए-सुवाल में शब्द 'वस्जुद') और दूसरा उसके पहले या बाद का (जैसे 'वक़्तरिब')। यह मत यद्यपि 'ज़ाहिर-उर-रिवाया' और दुर्लभ कथाओं से भी अलग है, और पूर्ववर्ती इमामों के मार्ग और मूल ग्रंथों एवं उनकी व्याख्याओं के बिल्कुल खिलाफ है, फिर भी 'सिराज वहाज', 'जौहरा नय्यिरा' और 'मराक़ी अल-फ़लाह' में इसकी पुष्टि की गई है। 'नूर अल-ईदाह' की व्याख्या में है:

"सजदा के शब्द को उसकी आयत के पहले या बाद के शब्द के साथ पढ़ना सजदा को उसी तरह अनिवार्य करता है जैसे पूरी आयत को पढ़ना, सही मत के अनुसार।" सही मत के अनुसार, यदि सजदा की आयत में केवल सजदा के शब्द को उसके पिछले या अगले शब्द के साथ पढ़ लिया जाए, तो सजदा अनिवार्य हो जाएगा, जैसा कि पूरी आयत के पाठ से अनिवार्य होता है। (त)

अल्लामा तहतावी इसके हाशिये (टिप्पणी) में फरमाते हैं:

"जौहरा में 'सही' शब्द इस बात का लाभ देता है कि जब उसने सजदा का शब्द और उससे पहले का शब्द और उसके बाद का शब्द पढ़ा..." जौहरा में है कि सही यह है कि जब सजदा का शब्द पढ़ा और उसके साथ उससे पहले का शब्द भी पढ़ा...

९: सजदे वाली चौदह आयतें।

[1] इरशाद अल-सारी शरह अल-बुखारी, अबवाब सुजूद अल-क़ुरान, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरूत, 281/2। [2] मराक़ी अल-फ़लाह मा हशिया अल-तहतावी, बाब सुजूद अल-तिलावत, नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, पृ. 261।

فتاوٰی رضویہ ، جلد ہشتم

لان وقتھا انما یدخل بتمامھا 1 تو صحیح نہ ہو گا کیونکہ اس کو وقت تمام آیت پر شروع ہوتا ہے (ت) اس مذہب جلیل الشان مشید الارکان پر شعر مذکور کے پڑھنے سننے سے سجدہ نہیں آسکتا کہ اس میں آیت سجدہ بتمامہا نہیں ،اسی طرح ہر وہ نظم جس میں پوری آیت سجدہ نہ ہو ، اور یہیں سے ظاہر ہوگیا کہ قرأت وسماعت نظم مطلقاً موجب سجدہ نہیں کہ آیات چار دوگانہ ع سے کوئی آیت وزن عروضی کی مساعدت نہیں فرماتی جسے نظم میں لانا چاہیں گے یا پوری نہ آئے گی یا ترتیب کلمات بدل جائے گی بہر حال آیت بحالہا باقی نہ رہے گی۔

اللھم الا فی النجم والعلق فلعل الوزن یسعھما فی بعض الشطور النادرۃ والزحافات البعیدۃ اولا بنیۃ الغریبۃ ولو بضم بعض بعض الکلمات فی الاول اولاخر فلیعمل الفکر۔ ہاں ، صرف سورہ نجم اور علق کی دو آیتوں میں وزن شعری کی گنجائش شاید بعض نادر وجوہ اور بعید تبدیلیوں اور اجنبی وزنوں میں وہ بھی اول یا آخر میں بعض کلمات ملانے کی وجہ سے پیدا ہوجائے ، لہٰذا غور وفکر کو عمل میں لانا چاہئے۔ (ت)

ہاں بعض علمائے متاخرین کا یہ مذہب ہے کہ آیت سجدہ سے صرف دو کلمے پڑھنا موجب سجدہ ہے جن میں ایک وہ لفظ جس میں ذکر سجود ہے جیسے آیت سوال میں لفظ واسجد اور دوسرا اس کے قبل یا بعد کا جیسے اس میں واقترب ہ یہ مذہب اگرچہ ظاہر الروایہ بلکہ روایات نوادر سے بھی جدا ، اور مسلک ائمہ سلف وتصرح وتلویح متون وشروح کے بالکل خلاف ہے مگر سراج وہاج وجوہرہ نیرہ ومراقی الفلاح میں اس کی تصحیح واقع ہوئی ، شرح نور الایضاح میں ہے :

قراء ۃ حرف السجدہ مع کلمۃ قبلہ او بعدہ من آیتھا توجب السجود کالآیۃ المقروءۃ بتمامھا فی الصحیح۔

صحیح قول کے مطابق اگر آیت سجدہ میں صرف حرف سجدہ کو اس کے ماقبل یا مابعد کلمہ کے ساتھ پڑھ لیا تو سجدہ لازم ہوجائے گا جیسے کہ تمام آیت کی تلاوت سے لازم ہوتا ہے۔ (ت)

علامہ طحطاوی اس کے حاشیہ میں فرماتے ہیں :

فی الجوھرۃ الصحیح فادہ انہ اذا قرأ حرف السجدۃ وقبلہ کلمۃ وبعد کلمۃ جوہرہ میں ہے کہ صحیح یہ ہے کہ جب حرف سجدہ پڑھا اور اس کے ساتھ اس سے پہلے کا کلمہ بھی پڑھا

عہ : سجدے والی چودہ آیتیں۔

1 ارشاد الساری شرح البخاری ابواب سجود القرآن مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ۲/۲۸۱ 2 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی باب سجود التلاوۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۶۱

Fatawa Razvia Volume 8

| Prostration becomes obligatory, otherwise not.[1] | So prostration will be obligatory; if the word before or after is not recited, then prostration will not be obligatory. (T) |

It is stated in Durr-ul-Mukhtar: "In Al-Siraj, there is a difference of opinion on whether prostration is obligatory upon reciting the entire verse or a part of it. The correct view is that if someone recites the letter of prostration along with the word preceding it or following it, prostration becomes obligatory, otherwise not."[2] It is stated in Siraj that whether for prostration to be obligatory, recitation of the entire verse is necessary or just a part of it, there is a difference of opinion. The correct view is that when someone recites the letter of prostration joined with the word before or after it, the prostration will become obligatory, otherwise not. (T)

Allama Ibn Ameer Al-Hajj, after stating the school of the early Imams, mentioned a rare narration from Raqiyat, about which he said: | It is mentioned in the supplement to Fatawa al-Sughra that Faqih Abu Ja'far mentioned it in a rare narration from Muhammad.[3] | It is mentioned in the supplement to Fatawa Sughra that Faqih Abu Ja'far has mentioned it with reference to a rare narration from Imam Muhammad. (T) |

Then he said: | Faqih Abu Ja'far said: If one recites the letter of prostration along with others before or after it, he is commanded to prostrate, and he should prostrate. If it is less than that, he should not prostrate.[4] | Faqih Abu Ja'far said: If someone recited the letter of prostration and others, i.e., what is before and after it, then he will be commanded to prostrate, and he should perform prostration; and if he recites it without that, the prostration of recitation will not be obligatory. (T) |

From this it is clear that this school belongs only to Faqih Abu Ja'far Handawani; it is not even narrated in the 'Nawadir' (rare reports) from the Imams. I say: as for the corrections, they do not increase by the multiplicity of books, so for someone who does not have the position of 'Ijtihad of Fatwa', saying 'Huwa al-Sahih' (This is the correct view. T) is pure transmission and mere imitation. Moreover, a servant of Fiqh knows that the status of the consensus of texts is great, especially when...

---

1. Hashiyah al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Bab Sujud al-Tilawah, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 261
2. Radd al-Muhtar, Bab Sujud al-Tilawah, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/565
3. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

4. Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

| सज़दा लाज़िम होगा, वरना नहीं।[1] | तो सज़दा लाज़िम होगा; अगर पहले या बाद का कलिमा न पढ़ा तो सज़दा लाज़िम न होगा। (त) |

दुर-ए-मुख्तार में है: "सिराज में है कि क्या सज़दा लाज़िम होने के लिए पूरी आयत की तिलावत ज़रूरी है या उसके कुछ हिस्से की, इसमें इख़्तिलाफ़ है। और सही यही है कि जब किसी ने हर्फ़ए-सज़दा को उसके पहले या बाद के कलिमे के साथ मिलाकर पढ़ा तो सज़दा लाज़िम हो जाएगा, वरना नहीं।"[2] सिराज में है कि क्या सज़दा लाज़िम होने के लिए पूरी आयत की तिलावत ज़रूरी है या कुछ की, इसमें इख़्तिलाफ़ है, और सही यही है कि जब किसी ने हर्फ़ए-सज़दा को उससे पहले या बाद के कलिमे के साथ मिलाकर पढ़ा तो सज़दा लाज़िम हो जाएगा वरना नहीं, (त)

अल्लामा इब्न अमीर अल-हज्ज ने अइम्मा मुतक़द्दिमीन का मज़हब बयान फरमा कर रिवायत-ए-नादरा रक़ियात ज़िक्र की जिसकी निस्बत फरमाया: | फतावा अल-सुग़रा के तत्तिमह में ज़िक्र है कि फ़क़ीह अबू जाफ़र ने इसे मुहम्मद से एक ग़रीब रिवायत में ज़िक्र किया है।[3] | फतावा सुग़रा के तत्तिमह में है कि फ़क़ीह अबू जाफ़र ने इमाम मुहम्मद से एक ग़रीब रिवायत के हवाले से ज़िक्र किया है। (त) |

फिर फरमाया: | फ़क़ीह अबू जाफ़र ने कहा: जब कोई हर्फ़ए-सज़दा पढ़े और उसके साथ उसके पहले या बाद का दूसरा (कलिमा) भी हो, तो उसे सज़दे का हुक्म दिया जाएगा और वह सज़दा करे, और अगर इससे कम हो तो सज़दा न करे।[4] | फ़क़ीह अबू जाफ़र ने फरमाया अगर किसी ने हर्फ़ए-सज़दा को पढ़ा और ग़ैर यानी माक़बल और माबाद को भी पढ़ा तो उसे सज़दा का हुक्म दिया जाएगा और वह सज़दा करे और उसके बग़ैर पढ़ा तो सज़दा तिलावत लाज़िम न होगा। (त) |

इससे ज़ाहिर कि यह मज़हब सिर्फ फ़क़ीह अबू जाफ़र हिन्दवानी का है अइम्मा से नवादिरात में भी मंक़ूल नहीं। अक़ूल (मैं कहता हूँ) रही तस्हीहें वह तअद्दुद-ए-कुतुब से मुतकासिर नहीं होतीं कि जिसे मन्सब-ए-इजतिहाद-ए-फ़तवा नहीं उसका 'हुव-अस-सहीह' (यही सही है। त) कहना नक़्ल-ए-महज़ व तक्लीद-ए-मुजर्रद है, फिर खादिम-ए-फ़िक़्ह जानता है कि इजमा-ए-मुतून की शान अज़ीम है खुसूसन जबकि...

1. हाशिया अल-तहतावी अला मराक़ी अल-फलाह, बाब सुजूद अल-तिलावत, मतबुआ नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, पृ. 261
2. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अल-तिलावत, मतबुआ मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/565
3. हिल्यत अल-महल्ली शरह मुन्यत अल-मुसल्ली
4. हिल्यत अल-महल्ली शरह मुन्यत अल-मुसल्ली

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

| وجب السجود والافلا[1] | تو سجدہ لازم ہوگا اگر پہلے یا بعد کا کلمہ نہ پڑھا تو سجدہ لازم نہ ہوگا۔ (ت) |

در مختار میں ہے: فی السراج و ھل تجب السجدۃ بشرط قرائۃ جمیع الاٰیۃ ام بعضھا فیھی اختلاف والصحیح انھ ذا قرأ حرف السجدۃ وقبلہ کلمۃ او بعدہ کلمۃ وجب السجود والافلا[2] ۔ سراج میں ہے کہ کیا سجدہ لازم ہونے کے لئے تمام آیت کی تلاوت ضروری ہے یا بعض کی، اس میں اختلاف ہے، اور صحیح یہی ہے کہ جب کسی نے حرفِ سجدہ کو اس سے پہلے یا بعد کے کلمہ کے ساتھ ملا کر پڑھا تو سجدہ لازم ہو جائے گا ورنہ نہیں، (ت)

علامہ ابن امیر الحاج نے ائمہ متقدمین کا مذہب بیان فرما کر روایتِ نادرہ رقیات ذکر کی جس کی نسبت فرمایا: | ذکر فی تتمۃ الفتاوی الصغری ان الفقیہ ابا جعفر ذکرہ فی غریب الروایۃ عن محمد[3] ۔ | فتاوی صغری کے تتمہ میں ہے کہ فقیہ ابو جعفر نے امام محمد سے ایک غریب روایت کے حوالے سے ذکر کیا ہے۔(ت) |

پھر فرمایا: | وقال الفقیہ ابو جعفر اذا قرأ حرف السجدۃ ومعھا غیرھا قبلھا او بعدھا امر بالسجود وسجد وان کان دون ذلک لایسجد[4] ۔ | فقیہ ابو جعفر نے فرمایا اگر کسی نے حرفِ سجدہ کو پڑھا اور غیر یعنی ماقبل اور مابعد کو بھی پڑھا تو اسے سجدہ کا حکم دیا جائے گا اور وہ سجدہ کرے اور اس کے بغیر پڑھا تو سجدہ تلاوت لازم نہ ہوگا۔(ت) |

اس سے ظاہر کہ یہ مذہب صرف فقیہ ابوجعفر ہندوانی کا ہے ائمہ سے نوادر میں بھی منقول نہیں۔ اقول رہیں تصحیحیں وہ تعدد کتب سے متکثر نہیں ہوتیں کہ جسے منصبِ اجتہادِ فتوی نہیں اس کا

ھو الصحیح (یہی صحیح ہے۔ ت) کہنا نقلِ محض و تقلیدِ مجرد ہے، پھر خادمِ فقہ جانتا ہے کہ اجماعِ متون کی شان عظیم ہے خصوصاً جبکہ

---

1 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجود التلاوۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۶۱ 2 رد المحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۶۵ 3 حلیت المحلی شرح منیۃ المصلی 4 حلیت المحلی شرح منیۃ المصلی

Volume 8 Fatawa Razawiya

The majority of commentators and major Fatwa works are also with them, to the extent that some explicit corrections were not accepted for this reason because they contradict the foundational texts (mutun), as we explained in the Book of Marriage in "al-'Ataya al-Nabawiyya fi al-Fatawa al-Ridawiyya" specifically (as we have detailed specifically in the Book of Marriage of "al-'Ataya al-Nabawiyya fi al-Fatawa al-Ridawiyya" - Translator's note). Rather, it is not even narrated from the Imams of the school of thought; it is merely the stance of some scholars. And the ruling is not of the kind that changes with the changing of times. In such a situation, to consider reliance and trust upon this correction necessary is a rebellion against truth, prevention, and denial. Consequently, the researcher Ibn 'Abidin al-Shami, after quoting the aforementioned text from "al-Siraj," mentioned the difference regarding "ta'budun" and "la yassamun" in Surah Ha-Mim al-Sajdah and the reasoning of our scholars regarding it, narrated from "al-Imdad," from "al-Bahr," from "al-Bada'i," and said:

[Table Content] Arabic Text: It is apparent that this difference is based on the fact that the reason for prostration is the recitation of a complete verse, as is evident from the general language of the texts. And what is meant by "verse" includes one or two verses if the second is related to the verse in which the word of prostration is mentioned. This contradicts what was previously stated in "Siraj" regarding the correction that prostration becomes obligatory by reciting the word of prostration along with a word before it or after it. It cannot be said that what is in "Siraj" is an explanation of the point of the origin of obligation, and what was mentioned from "Imdad" is an explanation of the point of the obligation of performance or an explanation of the Sunnah method in it. Because we say that performance does not become obligatory immediately upon recitation, as will come soon. And what was mentioned in the preference of our school of thought from their saying that it would necessitate the prostration occurring before the existence of the cause of obligation (if recited before the end of the verse), and what is mentioned similarly in "Al-Fath" and others, indicates that the difference between us and the Shafi'is is in the point of the origin of obligation.

Urdu Translation: It is apparent that the basis of this difference is that the cause of prostration is the recitation of the entire verse, as is clear from the general application of the texts. By 'verse', what is meant is that part which consists of one or two verses, provided the second verse is related to the first one containing the word

of prostration. However, this contradicts the previous clarification in Siraj that prostration becomes mandatory by reciting the word of prostration along with a preceding or succeeding word. (In response) it cannot be said that Siraj provides an explanation of the point of original obligation, while what was cited from Imdad refers to the point of obligation of performance or was intended to explain the Sunnah method. This is because we maintain that performance does not become immediately mandatory upon recitation, as will be discussed soon. In the preference of our school, the stated opinion of the jurists—that prostration before the end of the verse would necessitate it occurring before its cause of obligation—as well as similar mentions in Fath and other works, indicates that the difference between us and the Shafi'is lies in the point of original obligation.

जिल्द हशतम (खंड 8) फ़तावा रज़विया

बहुसंख्यक व्याख्याकार और प्रमुख फ़तवा संग्रह भी उनके साथ हैं, यहाँ तक कि कुछ स्पष्ट सुधारों को इसी कारण नहीं माना गया क्योंकि वे मूल ग्रंथों (متون) के विरुद्ध हैं, जैसा कि हमने "अल-अताया अल-नबवियाह फी अल-फ़तावा अल-रज़वियाह" में, विशेष रूप से निकाह की किताब में विस्तार से बताया है। (जैसा कि हमने इसका विस्तृत विवरण विशेष रूप से "अल-अताया अल-नबवियाह फी अल-फ़तावा अल-रज़वियाह" की निकाह की किताब में दिया है। - त)। बल्कि यह पंथ के इमामों से भी वर्णित नहीं है, केवल कुछ विद्वानों का मत है। और हुक्म उस श्रेणी का नहीं है जो समय बदलने के साथ बदल जाए। ऐसी स्थिति में इस सुधार पर भरोसा और विश्वास करना आवश्यक समझना सत्य के विरुद्ध विद्रोह, अवरोध और इनकार है। परिणामस्वरूप, शोधकर्ता इब्न आबिदीन शामी ने सिराज के उपर्युक्त कथन के बाद हा-मीम अस-सजदा में "تعبدون" (तअबुदुन) और "لا يسامون" (ला यसआमून) के मतभेद और इसमें हमारे उलेमाओं के तर्क का उल्लेख किया, जो अल-इमदाद से, अल-बहर से, अल-बदाए' से उद्धृत है, और कहा:

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: यह स्पष्ट है कि यह मतभेद इस तथ्य पर आधारित है कि सजदे का कारण एक पूर्ण आयत का पाठ है, जैसा कि ग्रंथों की सामान्य भाषा से स्पष्ट है। और "आयत" से तात्पर्य एक या दो आयतों से है यदि दूसरी उस आयत से संबंधित है जिसमें सजदे का शब्द वर्णित है। यह "सिराज" में सजदे की अनिवार्यता के सुधार के संबंध में पहले जो कहा गया था, उसके विपरीत है कि सजदे के शब्द को उससे पहले या बाद के शब्द के साथ पढ़ने से सजदा अनिवार्य हो जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि "सिराज" में जो है वह मूल अनिवार्यता के बिंदु की व्याख्या है, और "इमदाद" से जो उल्लेख किया गया था वह अदायगी की अनिवार्यता के बिंदु की व्याख्या है या उसमें सुन्नत पद्धति की व्याख्या है। क्योंकि हम कहते हैं कि पाठ करने के तुरंत बाद अदायगी अनिवार्य नहीं होती, जैसा कि जल्द ही आएगा। और हमारे पंथ की प्राथमिकता में उनके इस कथन से जो उल्लेख किया गया था कि इससे अनिवार्यता के कारण के अस्तित्व से पहले सजदा करना आवश्यक हो जाएगा (यदि आयत के अंत से पहले पढ़ा जाए), और जैसा कि "अल-फतह" और अन्य में समान रूप से वर्णित है, इंगित करता है कि हमारे और शाफई विद्वानों के बीच मतभेद मूल अनिवार्यता के बिंदु में है।

उर्दू अनुवाद: ज़ाहिर यही है कि इस इख़्तिलाफ़ की बुनियाद इस पर है कि सजदे का सबब पूरी आयत की तिलावत है जैसा कि मतून के इतलाक से ज़ाहिर है और आयत से मुराद वो हिस्सा है जो

एक आयत या दो आयात पर मुश्तमिल हो जबकि दूसरी आयत उस पहली से मुताल्लिक हो जिसमें हर्फ़ए-सजदा है लेकिन ये बात सिराज की उस साबिका तसरीह के मनाफी है कि हर्फ़ए-सजदा को पहले या बाद के कलमे के साथ मिला कर पढ़ने से सजदा लाज़िम हो जाता है (जवाबन) ये नहीं कहा जा सकता कि सिराज में अस्ल-ए-वुजुब के मकाम का बयान है और इमदाद के हवाले से जो गुज़रा उससे मुराद वुजुब-ए-अदा के मकाम या उसमें सुन्नत तरीक़े का बयान मक़सूद है, इसलिए कि हम कहते हैं कि अदा-ए-क़िरात पर फ़िल-फ़ौर लाज़िम नहीं होती जैसा कि अनक़रीब आ रहा है। हमारे मज़हब की तरजीह में फ़ुक़हा का जो क़ौल गुज़रा कि इख़्ताम-ए-आयत से क़ब्ल सजदा सबब-ए-वुजुब से पहले होना लाज़िम आएगा और इसी की मिस्ल फ़तह वग़ैरह में जो मज़कूर है वो दलालत करता है कि हमारे और शवाफ़े के दरमियान अस्ल-ए-वुजुब के मकाम में इख़्तिलाफ़ है।

جماہیر شراح وکبریٰ فتاویٰ بھی ان کے ساتھ ہوں یہاں تک بعض صریح تصحیحوں کو اسی وجہ سے نہ مانا گیا کہ مخالفِ متون ہیں کما بیناہ فی کتاب النکاح من العطایا النبویۃ فی الفتاوی الرضویۃ علی الخصوص (جیسا کہ ہم نے اس کا تفصیلی بیان ''العطایا النبویۃ فی الفتاوی الرضویہ'' کے کتاب النکاح میں خصوصی طور پر کیا ہے۔ت) بلکہ وہ مذہب ائمہ مذہب سے منقول بھی نہیں صرف بعض مشائخ کا مسلک ہے اور حکم اُس قبیل سے نہیں جو اختلافِ زمانہ سے بدل جائے، ایسی حالت میں اس تصحیح پر تعویل و اعتماد ضروری ہو نا بغاوتِ حق منع و انکار میں ہے، لاجرم محقق ابن عابدین شامی نے عبارت مذکورہ سراج کے بعد حم السجدہ میں تعبدون ہ ولا یسامون ہ کا اختلاف اور اس میں ہمارے علماء کا استدلال، مذکور عن الامداد عن البحر عن البدائع نقل کر کے فرمایا:

[جدول] الظاہر ان ھذا الاختلاف مبنی علی ان السبب تلاوۃ آیۃ تامۃ کما ھو ظاہر اطلاق لمتون وان المراد بالآیۃ مایشمل الآیۃ والآیتین اذاکانت الثانیۃ متعلقۃ بالآیۃ التی ذکر فیھا حرف السجدۃ وھذا ینا فی ما مرعن السراج من تصحیح وجوب السجود بقراءۃ حرف السجدۃ مع کلمۃ قبلہ اوبعدہ، لایقال ما فی السراج بیان لموضع اصل الوجوب وما مرعن الامداد بیان لموضع وجوب الاداء اوبیان لموضع السنۃ فیہ لانا نقول ان الاداء لایجب فورالقرائۃ کماسیاتی، ومامر فی ترجیح مذھبنا من قولھم لانھا تکون قبل وجود سبب الوجوب، وقد ذکر مثلہ ایضاً فی الفتح وغیرہ یدل علی ان الخلاف بیننا وبین الشافعی فی موضع اصل الوجوب ظاہر یہی ہے کہ اس اختلاف کی بنیاد اس پر ہے کہ سجدہ کا سبب پوری آیت کی تلاوت ہے جیسا کہ متون کے اطلاق سے ظاہر ہے اور آیت سے مراد وہ حصہ ہے جو ایک آیت یا دو آیات پر مشتمل ہو جبکہ دوسری آیت اس پہلی سے متعلق ہو جس میں حرف سجدہ ہے

لیکن یہ بات سراج کی اس سابقہ تصریح کے منافی ہے کہ حرف سجدہ کو پہلے یا بعد کے کلمہ کے ساتھ ملا کر پڑھنے سے سجدہ لازم ہو جاتا ہے (جواباً) یہ نہیں کہا جا سکتا کہ سراج میں اصل وجوب کے مقام کا بیان ہے اور امداد کے حوالے سے جو گزرا اس سے مراد وجوب ادا کے مقام یا اس میں سنت طریقے کا بیان مقصود ہے، اس لئے کہ ہم کہتے ہیں کہ اداء قرات پر فی الفور لازم نہیں ہوتی جیسا کہ عنقریب آرہا ہے۔ ہمارے مذہب کی ترجیح میں فقہاء کا جو قول گزرا کہ اختتام آیت سے قبل سجدہ سبب وجوب سے پہلے ہونا لازم آئے گا اور اسی کی مثل فتح وغیرہ میں جو مذکور ہے وہ دلالت کرتا ہے کہ ہمارے اور شوافع کے درمیان اصل وجوب کے مقام میں اختلاف۔

Volume 8 Fatawa Razawiyya

[Text in two columns - Left: Arabic, Right: Urdu Translation] (Left Column: Arabic) And indeed, prostration (Sajdah) in Surah Ha-Mim As-Sajdah is not obligatory except at the end of the second verse as a precaution, as explicitly stated in Al-Hidayah and others. This is because the obligation only arises after the occurrence of its cause. If one prostrates after the first verse, it is not sufficient because it would be before its cause. From this, it becomes clear that what is stated in As-Siraj is contrary to the school of thought followed by the commentators and original texts. Reflect. End. I say: We reflected upon it and found it to be true. As for your statement that 'it is apparent that this disagreement, etc.', this is not a place for 'apparent' (speculation); rather, it is definitely determined as is clear. Furthermore, it is surprising that 'Allama Shurunbulali asserted in his text what As-Siraj deemed correct, yet relied in his commentary on the words of Al-Badai', despite the explicit contradiction between them. This weak servant (may Allah Almighty forgive him) has written an independent treatise investigating this matter after receiving this question, in which I have clarified the objective by the grace of the Exalted King. (Right Column: Urdu) And in Surah Ha-Mim As-Sajdah, they make that prostration mandatory at the end of the second verse as a precaution, as explicitly stated in Al-Hidayah etc., because the obligation comes after its cause. If someone prostrates after the first verse, it will not be sufficient because it would be before its cause. From this, it became clear that whatever is in As-Siraj is against that school of thought on which the original texts and commentaries are based. End. I say: We reflected upon this and found it to be true. As for the matter of your statement that 'it is apparent that this disagreement, etc.', this is not a place for 'apparent' (speculation); rather, it is definitely determined as is clear. Then, it is surprising for Allama Shurunbulali that he asserted in the text what Siraj declared correct and relied on the discourse of Badai' in the commentary, even though there is an explicit contradiction between the two. The weak servant (may Allah Almighty forgive him) has written a separate treatise on the research of this issue after this question, in which the purpose has been clarified with the grace of Allah Almighty. (T)

In short, the original school of thought is known. However, the point is that there is no harm in prostrating, and given the obligation, abandoning it is objectionable, and explicit authentication attracts hearts. Therefore, it is most appropriate to adhere to this correct school and perform the prostration upon hearing or reciting the

aforementioned verse. Similarly, in every poetry or prose where only the verse of prostration is read with its associated word, perform the prostration.

[Text in two columns - Left: Arabic, Right: Urdu Translation] (Left Column: Arabic) And Allah is the Giver of success. Know that in this matter there are three (other) schools of thought; the most prominent among them is what is in Ar-Raqiyyat, which is the obligation with the majority of the verse along with the word of prostration. (Right Column: Urdu) And Allah Almighty is the One who grants success. Be it clear that there are three more schools regarding this issue; the most prominent among them is the one in Raqiyyat, which is if someone... [word of prostration]

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Prostrations of Recitation, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/565.

[दो कॉलम में पाठ - बायाँ: अरबी, दायाँ: उर्दू अनुवाद] (बायाँ कॉलम: अरबी) और वास्तव में सूरा हा-मीम अस-सज्दा में सजदा अनिवार्य नहीं है जब तक कि दूसरी आयत का अंत न हो जाए, एहतियात के तौर पर जैसा कि अल-हिदाया आदि में स्पष्ट किया गया है। इसका कारण यह है कि अनिवार्यता उसके कारण के मौजूद होने के बाद ही होती है। इसलिए, यदि कोई पहली आयत के बाद सजदा करता है, तो यह पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि यह उसके कारण से पहले होगा। इससे स्पष्ट हो गया कि अस-सिराज में जो कुछ है वह उस मज़हब के खिलाफ है जिसका पालन टीकाकारों और मूल ग्रंथों ने किया है। विचार करें। समाप्त। मैं कहता हूँ: हमने इस पर विचार किया और इसे सत्य पाया। जहाँ तक आपकी इस बात का संबंध है कि 'ज़ाहिर है कि यह मतभेद आदि', तो यह 'ज़ाहिर' (अनुमान) का स्थान नहीं है बल्कि यह निश्चित रूप से तय है जैसा कि स्पष्ट है। फिर अल्लामा शुरुनबुलाली पर आश्चर्य है कि उन्होंने अपने मूल पाठ में उसी बात को पुख्ता तौर पर लिखा जिसे सिराज ने सही माना था, जबकि अपनी व्याख्या में 'बदाइ' के शब्दों पर भरोसा किया, जबकि इन दोनों के बीच स्पष्ट विरोधाभास है। इस कमज़ोर बंदे (अल्लाह तआला उसे क्षमा करे) ने इस प्रश्न के आने के बाद इस मसले की जाँच पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी है जिसमें अल्लाह तआला की तौफीक से उद्देश्य को स्पष्ट किया है। (दायाँ कॉलम: उर्दू अनुवाद) और सूरा हा-मीम अस-सज्दा में वे सजदा एहतियात के तौर पर दूसरी आयत के अंत में अनिवार्य करते हैं जैसा कि हिदाया आदि में स्पष्ट है, क्योंकि अनिवार्यता उसके कारण के बाद होती है। यदि कोई पहली आयत के बाद सजदा कर ले तो काफी नहीं होगा क्योंकि यह उसके कारण से पहले होगा। इससे स्पष्ट हो गया कि सिराज में जो कुछ है वह उस मज़हब के विरुद्ध है जिस पर मूल ग्रंथ और टीकाएँ आधारित हैं। समाप्त। मैं कहता हूँ: हमने इस पर विचार किया और इसे सही पाया। जहाँ तक आपकी इस बात का संबंध है कि 'ज़ाहिर है कि यह मतभेद आदि', तो यह स्थान ज़ाहिर (संदेह) का नहीं है बल्कि निश्चित रूप से निर्धारित है जैसा कि स्पष्ट है। फिर अल्लामा शुरुनबुलाली पर आश्चर्य है कि उन्होंने पाठ में उसी पर जोर दिया जिसे सिराज ने सही ठहराया था और व्याख्या में 'बदाइ' की बातों पर भरोसा किया जबकि उन दोनों के बीच स्पष्ट विरोधाभास है। कमज़ोर बंदे (अल्लाह तआला उसे क्षमा करे) ने इस सवाल के बाद इस मसले की जाँच पर एक स्वतंत्र शोध पत्र लिखा है जिसमें अल्लाह तआला की तौफीक से उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। (त)

संक्षेप में, मूल मत ज्ञात है। फिर भी बात यह है कि सजदा करने में कोई हर्ज नहीं है, और अनिवार्यता की स्थिति में इसे छोड़ना अनुचित है और स्पष्ट प्रमाणीकरण दिलों को आकर्षित करने वाला है। इसलिए, सबसे उपयुक्त यही है कि इसी सही मत पर अमल करते हुए उल्लेखित आयत को सुनने या पढ़ने पर सजदा करें। इसी प्रकार हर कविता और गद्य में जहाँ आयत-ए-सजदा से केवल सजदा और उससे जुड़ा शब्द पढ़ा जाए, सजदा करें।

[दो कॉलम में पाठ - बायाँ: अरबी, दायाँ: उर्दू अनुवाद] (बायाँ कॉलम: अरबी) और अल्लाह ही तौफीक देने वाला है। जान लें कि इस मसले में तीन (अन्य) मज़हब हैं; उनमें से सबसे प्रमुख वह है जो अर-रकियात में है कि सज्दे का वाजिब होना आयत के अधिकांश भाग और सजदा शब्द के साथ है। (दायाँ कॉलम: उर्दू अनुवाद) और अल्लाह तआला तौफीक देने वाला है। स्पष्ट रहे कि इस मसले में तीन और (भी) मज़हब हैं, उनमें से सबसे प्रमुख वह है जो रक़ियात में है कि अगर किसी ने सज्दे का अक्षर...

1. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अत-तिलावत, मुस्तफ़ा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 1/565।

पृष्ठ 232 / 673

وانه لا يجب السجود في سورة حم السجده الا عند انتهاء الآية الثانية احتياطاً كما صرح به في الهداية وغيرها، لان الوجوب لا يكون الا بعد وجود سببه فلو سجدها بعد الآية الاولى لا يكفي لانه يكون قبل سببه وبه ظهر ان ما في السراج خلاف المذهب الذي مشى عليه الشراح والمتون تامل 1 انتهى اقول: تاملناه فوجدناه حقاً واما قولكم الظاهر ان هذا الاختلاف الخ فليس هذا محل الظاهر بل هو المتعين قطعاً كما لا يخفى ثم العجب من علامة الشرنبلالي حيث جزم في متنه بما صحح السراج وعول في شرحه على كلام البدائع مع تنافيها صريحاً وللعبد الضعيف غفر الله تعالى له في تحقيق هذا المرام رسالة مستقلة الفتها بعد ورود هذا السؤال و اوضحت فيها المرام بتوفيق الملك المتعال۔

اور سورہ حم السجدہ میں وہ سجدہ احتیاط کے پیش نظر دوسری آیت کے اختتام پر لازم کرتے ہیں جیسا کہ ہدایہ وغیرہ میں تصریح ہے کیونکہ وجوب اپنے سبب کے بعد ہوتا ہے اگر کسی نے پہلی آیت کے بعد سجدہ کرلیا تو کافی نہیں ہوگا کیونکہ یہ اس کے سبب سے پہلے ہوگا اور اس سے ظاہر ہوگیا کہ سراج میں جو کچھ ہے وہ اس مذہب کے خلاف ہے جس پر متون اور شروحات ہیں انتہی اقول ہم نے اس پر غور کیا تو اسے حق پایا، باقی رہا معاملہ تمہارے اس قول کا کہ ظاہر یہ ہے کہ یہ اختلاف الخ تو یہ محل ظاہر نہیں بلکہ قطعی طور پر متعین ہے جیسا کہ واضح ہے، پھر علامہ شرنبلالی پر تعجب ہے کہ انہوں نے متن میں اس پر جزم کیا ہے جسے سراج نے صحیح قرار دیا اور شرح میں کلام بدائع پر اعتماد کیا حالانکہ ان دونوں کے درمیان صراحۃً منافات ہے عبدِ ضعیف (اللہ تعالیٰ اس کی مغفرت فرمائے) نے اسو سوال کے بعد اس مسئلہ کی تحقیق پر مستقل رسالہ لکھا ہے جس میں اللہ تعالیٰ کی توفیق سے مقصد کو واضح کیا ہے۔ (ت)

بالجملہ اصل مذہب معلوم ہے تاہم محل وہ ہے کہ سجود میں ضرر نہیں اور بر تقدیر وجوب ترک معیوب اور صریح تصحیح جاذب قلوب، لہذا انسب یہی ہے کہ اسی مذہب صحیح پر کاربند ہو کر شعر مذکور کی سماعت و قرائت پر سجدہ کر لیں اسی طرح ہر نظم و نثر میں جہاں آیت سجدہ سے صرف سجدہ مع کلمہ مقارنہ پڑھا جائے سجدہ بجالائیں،

واللہ الموفق واعلم ان في المسئلة ثلثہ مذاهب اخرا جلهاما فی الرقیات وهو الوجوب باکثر الآیة مع حرف السجدة

اور اللہ تعالیٰ توفیق دینے والا ہے، واضح رہے کہ مسئلہ میں تین اور (بھی) مذاہب ہیں ان میں سے اجل وہ ہے جو رقیات میں ہے کہ اگر کسی نے حرف

1 ردالمختار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۶۵

(Arabic) Those who followed this are from the [period of] two hundred [years], like the authors of Al-Tabyin, Al-Khulasa, Al-Durr al-Mukhtar, etc. However, it did not cease to be corrected. The remaining two are lower in grade, so nothing of them should be relied upon in contradiction to the primary texts (Mutun) and general commentaries (Shuruh). We have discussed all of this in our mentioned treatise by the grace of Allah, Glorified and Exalted. And Allah the Almighty knows best.

(Urdu) If the majority of the verse is recited, then prostration (Sajda) becomes obligatory. This was adopted by some scholars of the 'two hundred' period, for example, the author of Tabyin, Khulasa, and Durr al-Mukhtar, etc. However, it was not corrected, and the remaining two are so low in grade that they cannot stand against the primary texts and majority of commentaries. By the grace of Allah Almighty, we have discussed this in detail in our aforementioned treatise. (Translator) And Allah Almighty knows best.

Problem 1250: From Mahra Munawwara, Bagh Pakhta, sent by Sayyid Muhammad Ibrahim Sahib, 15 Rabi' al-Awwal 1306 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: should the prostrations of the Holy Quran be performed immediately at the time of recitation, or whenever one wishes? Please clarify, and may you be rewarded.

Answer: The prayer prostration (Sajda Salawiyyah), whose performance is obligatory within the prayer, must be done immediately, to the extent that delay beyond two or three verses is a sin. Even for non-prayer prostrations, it is better and safer to perform it immediately when there is no excuse, as delaying it often leads to forgetting it, and "there are calamities in delay" (wa fi at-takheer aafat). Therefore, scholars have declared its delay to be disliked (Makruh Tanzihi), but not impermissible.

(Arabic) In Al-Durr al-Mukhtar, it is on delay according to the chosen opinion, and delaying it is disliked (Tanzihi). If it is not part of prayer, then it is immediate because it becomes a part of it, so one sins by delaying it. 1 End summary.	**(Urdu) In Durr al-Mukhtar, it states: The chosen opinion is that the prostration of recitation is not mandatory immediately, and delaying it is slightly disliked (Makruh Tanzihi) provided it was not mandatory within the prayer. If it became mandatory within prayer, it must be done immediately because it becomes part of the prayer; delaying it now would be a sin. End summary.**

It is mentioned in Radd al-Muhtar: | (Arabic) The definition of 'immediate' (al-fawr) is the absence of a long duration between | (Urdu) The definition of 'immediately' is that between the recitation and the prostration... | | :--- | :--- |

1 Durr al-Mukhtar, Chapter on Prostrations of Recitation, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/105.

(अरबी) इस पर चलने वालों में दो सौ [वर्षों की अवधि] के विद्वान शामिल हैं, जैसे तबीन, खुलासा और दुर्रे मुख़्तार आदि के लेखक। हालांकि, इसका संशोधन जारी रहा। शेष दो का स्तर इतना नीचे है कि मूल ग्रंथों (मतून) और आम टीकाओं (शुरुहात) के विरुद्ध होने पर उन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। हमने अल्लाह सर्वशक्तिमान की कृपा से अपने उल्लिखित शोधपत्र में इस सब पर विस्तार से चर्चा की है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

(उर्दू) यदि अधिकांश आयत पढ़ ली जाए तो सजदा वाजिब हो जाता है। कुछ विद्वानों ने इसी को अपनाया है जैसे तबीन, खुलासा और दुर्रे मुख़्तार आदि के लेखक, लेकिन इसका सुधार नहीं किया गया और शेष दो दर्जे के लिहाज से इतने नीचे हैं कि वे मतून (मूल ग्रंथों) और अधिकांश टीकाओं के सामने नहीं टिक सकते। हमने अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से इस पर अपने उपर्युक्त रिसाले (लेख) में विस्तार से चर्चा की है। (अनुवादक) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1250: माहरा मुनव्वरा, बाग़ पुख्ता से, प्रेषक सैयद मोहम्मद इब्राहिम साहब, 15 रबीउल अव्वल 1306 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि कुरान मजीद के सजदे तिलावत के समय तुरंत किए जाएं या जब चाहें? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

जवाब: सजदा-ए-सलविया (नमाज़ का सजदा) जिसका अदा करना नमाज़ में वाजिब है, उसका वाजिब होना तुरंत (फ़ौरी) है, यहाँ तक कि दो-तीन आयत से ज़्यादा की देरी गुनाह है। नमाज़ के अलावा अन्य सजदों में भी बेहतर और सुरक्षित यही है कि बिना किसी बहाने के तुरंत अदा किया जाए क्योंकि टालने से भूल हो जाती है और "देरी करने में मुसीबतें हैं।" इसलिए विद्वानों ने इसकी देरी को मकरूह-ए-तन्ज़ीही कहा है लेकिन यह नाजायज नहीं है।

(अरबी) अल-दुर्रे मुख़्तार में है कि चुनिंदा राय के अनुसार इसमें देरी की अनुमति है और इसे टालना मकरूह-ए-तन्ज़ीही है। यदि यह नमाज़ का हिस्सा नहीं है, तो फिर यह तुरंत वाजिब है क्योंकि अब यह नमाज़ का हिस्सा बन जाता है, इसलिए इसकी देरी पर पाप होगा। 1 सारांश समाप्त।

(उर्दू) दुर्रे मुख़्तार में है: चुनिंदा मत यही है कि सजदा-ए-तिलावत तुरंत अनिवार्य नहीं होता और इसे टालना मकरूह-ए-तन्ज़ीही है, बशर्ते कि वह नमाज़ में अनिवार्य न हुआ हो। और यदि नमाज़ में अनिवार्य हुआ तो तुरंत करना होगा क्योंकि अब वह नमाज़ का हिस्सा बन जाएगा, अब इसकी देरी से गुनाह होगा। सारांश समाप्त।

रद्दुल मुह्तार में है: | (अरबी) 'फ़ौर' (तुरंत) की व्याख्या यह है कि इनके बीच समय की अवधि लंबी न हो | (उर्दू) 'फ़ौर' की व्याख्या यह है कि तिलावत और सजदे के बीच... | | :--- | :--- |

1 दुर्रे मुख़्तार, बाब सुजूद-अत-तिलावत, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/105 द्वारा मुद्रित।

पृष्ठ 233 का 673

مشی علیہ مآئتین کالتبیین والخلاصة والدرالمختار وغیرھا ولکن لم یزل بالتصحیح والباقیان انزل درجة فلا یعرج علی شیئ منھا في مخالفة المتون و عامة الشروح و قد ذکرنا الکلام علی کل ذلك في رسالتنا المذکورة بتوفیق اللہ سبحانہ وتعالی ۔ واللہ تعالی اعلم

سجدہ اکثر آیت کے ساتھ پڑھ لیا تو اس پر سجدہ واجب ہو جائے گا رات اسی کو بعض مائتین نے اختیار کیا مثلاً صاحب تبیین، خلاصہ اور در مختار وغیرہ، لیکن اس کی تصحیح نہیں کی اور بقیہ دو درجہ کے لحاظ سے اتنے نیچے ہیں کہ وہ متون اور اکثر شروحات کے مقابل نہیں آسکتے، ہم نے اللہ تعالٰی کی توفیق سے اس پر اپنے مذکورہ رسالے میں تفصیلاً گفتگو کی ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۵۰: از ماہرہ منورہ باغ پختہ مرسلہ سید محمد ابراہیم صاحب ۱۵ ربیع الاول ۱۳۰۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ سجدات کلام اللہ شریف وقت تلاوت معاً ادا کرے یا جس وقت چاہے؟ بینوا توجروا

الجواب: سجدہ صلوتیہ جس کا ادا کرنا نماز میں واجب ہو اس کا وجوب علی الفور ہے، یہاں تک کہ دو تین آیت سے زیادہ خیر گناہ ہے اور غیر صلوتیہ میں بھی افضل واسلم یہی ہے کہ فوراً ادا کرے جبکہ کوئی عذر نہ ہو کہ اٹھارکھتے ہیں بھول پڑتی ہے وفی التاخیر آفات (دیر کرنے میں آفات ہیں۔ ت) ولہذا علماء نے اس کی تاخیر کو مکروہ تنزیہی فرمایا مگر ناجائز نہیں۔

في الدرالمختار هي على التراخی على المختار ویکره تاخیرها تنزیهاً، ان لم تکن صلوية فعلی الفور لصیرورتها جزءاً منها فیأثم بتأخیرها 1 اه ملخصاً

در مختار میں ہے مختار یہی ہے کہ سجدہ تلاوت فی الفور لازم نہیں ہوتا اور اس کا مؤخر کرنا مکروہ تنزیہی ہے بشرطیکہ وہ نماز میں لازم نہ ہوا ہو، اور اگر نماز میں لازم ہوا تو فی الفور لازم ہوگا کیونکہ اب وہ نماز کا حصہ بن جائیگا اب اس کی تاخیر سے گناہ ہوگا اہ ملخصاً

ردالمحتار میں ہے: | تفسیر الفور عدم طول المدة بین | فی الفور کی تفسیر یہ ہے کہ تلاوت اور سجدہ کے درمیان | | :--- | :--- |

1 در مختار باب سجود التلاوة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۵

Fatawa Razawiyya Volume 8

Recitation and prostration: the distance should not exceed two or three verses, as will soon be detailed from al-Hilya. End. And Allah knows best. (T)

Recitation and prostration: the distance should not exceed two or three verses, as will soon be detailed from al-Hilya. End. And Allah knows best. (T)

Problem 1251: From Bareilly, Muhalla Mulukpur, asked by Maulvi Hakim Hafiz Amirullah Sahib, Head Teacher of Arabiya Akbariyah, 2nd Jumada al-Ula 1301 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: If a person recites 'Iqra' in obligatory prayers, and does not join it with another surah, and the prostration (Sajdah) is at the end of the Surah, and he is the Imam; if he intends for the Sajdah during Ruku (bowing), the follower's Sajdah of recitation will not be fulfilled. Is it permissible to perform Sajdah after finishing the Surah, then stand up and perform Ruku, or perform three prostrations? Please inform. State the answer and be rewarded.

The Answer: In reality, in the described scenario, if the Imam immediately performed Ruku and made the intention for the Sajdah of recitation within the Ruku, then his Sajdah is fulfilled. However, for those followers who did not make the intention, their Sajdah will not be fulfilled according to one scholarly view.

By this, I mean those scholars who do not consider the Imam's intention sufficient for the follower.

These are two views cited by al-Quhustani (T).

By this, I mean those scholars who do not consider the Imam's intention sufficient for the follower.

These are two views cited by al-Quhustani (T).

Neither will they be able to perform a separate Sajdah, as that would entail opposing the Imam (T), nor will the prayer's Sajdah suffice for them as a Sajdah of recitation even if they intend it therein, because when the Imam intended it in his Ruku, it became designated for it - as stated by 'H' and quoted by 'Sh' (T). Rather, the procedure would be to perform the Sajdah of recitation after the Imam's greeting (salam), and then this Sajdah will be restorative as established in its proper place (T). It then becomes mandatory to repeat the sitting (Qa'da); if they do not, the prayer will become invalid.

In al-Durr al-Mukhtar, from al-Quniyyah: If the Imam intends for the Sajdah of recitation during Ruku and the follower does not, it does not suffice for the follower.

In al-Durr al-Mukhtar, from al-Quniyyah: If the Imam intends for the Sajdah of recitation during Ruku and the follower does not, it does not suffice for the follower.

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Prostration of Recitation, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/569.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Prostration of Recitation, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/571.

फ़तावा रजविया जिल्द 8

तिलावत और सज्दा: दो या तीन आयतों से अधिक का फ़ासला न हो जाए जैसा कि अनक़रीब 'हिलिया' के हवाले से आएगा। समाप्त। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।

तिलावत और सज्दा: दो या तीन आयतों से अधिक का फ़ासला न हो जाए जैसा कि अनक़रीब 'हिलिया' के हवाले से आएगा। समाप्त। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।

मसला 1251: बरेली, मोहल्ला मलूकपुर से, मौलवी हकीम हाफ़िज़ अमीरउल्लाह साहब, प्रथम शिक्षक अरबी अकबरी द्वारा पूछा गया, 2 जमादी अल-उला 1301 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जो व्यक्ति फ़र्ज़ नमाज़ों में 'इक़रा' (सूरह अलक़) पढ़ता है, और दो सूरह नहीं मिलाए, और सज्दा सूरह के अंत में है, और वह इमाम है; यदि वह रुकू(झुकने) में सज्दे की नीयत (इरादा) करता है, तो मुक़तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) का सज्दा-ए-तिलावत अदा नहीं होगा। क्या यह जाइज़ होगा कि सूरह ख़त्म करके सज्दा करे, फिर खड़ा होकर रुकू करे या तीन सज्दे करे? सूचित करें। बयान करें और सवाब पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): वास्तव में, पूछी गई स्थिति में यदि इमाम ने तुरंत रुकू किया और रुकू में ही सज्दा-ए-तिलावत की नीयत कर ली, तो उसका सज्दा अदा हो गया। लेकिन जिन मुक़तदियों ने नीयत नहीं की, विद्वानों के एक मत के अनुसार उनका सज्दा अदा नहीं होगा।

मेरा मतलब उन विद्वानों से है जो इमाम की नीयत को मुक़तदी के लिए पर्याप्त नहीं समझते।

और ये दो क़ौल (कथन) हैं जिन्हें क़ुहिस्तानी ने नक़्ल (उद्धृत) किया है (त)।

मेरा मतलब उन विद्वानों से है जो इमाम की नीयत को मुक़तदी के लिए पर्याप्त नहीं समझते।

और ये दो क़ौल (कथन) हैं जिन्हें क़ुहिस्तानी ने नक़्ल (उद्धृत) किया है (त)।

न तो वे अलग से सज्दा कर सकेंगे क्योंकि इसमें इमाम की मुख़ालफ़त (विरोध) लाज़िम आती है (त), और न ही नमाज़ का सज्दा उनके लिए सज्दा-ए-तिलावत की अदायगी के लिए पर्याप्त होगा चाहे वे उसमें नीयत भी कर लें। क्योंकि जब इमाम ने रुकू में इसकी अदायगी की नीयत कर ली, तो वही उसके लिए मुतअय्यन (निर्धारित) हो गया - जैसा कि 'ह' ने बयान किया और 'श' ने नक़्ल किया (त)। बल्कि उसका तरीक़ा यह होगा कि इमाम के सलाम के बाद सज्दा-ए-तिलावत करें, फिर यह सज्दा

राफ़े(निवारक) होगा जैसा कि अपने स्थान पर तय है (त)। फिर फ़र्ज़ होगा कि क़ादा (बैठना) का एआदा (पुनरावृत्ति) करें; यदि नहीं करेंगे तो नमाज़ फ़ासिद (अमान्य) हो जाएगी।

'दुर्रे मुख़्तार' में 'क़ुनिया' से है कि अगर इमाम ने सज्दा-ए-तिलावत की नीयत रुकू में कर ली और मुक़तदी ने नीयत नहीं की, तो मुक़तदी का सज्दा नहीं होगा।

'दुर्रे मुख़्तार' में 'क़ुनिया' से है कि अगर इमाम ने सज्दा-ए-तिलावत की नीयत रुकू में कर ली और मुक़तदी ने नीयत नहीं की, तो मुक़तदी का सज्दा नहीं होगा।

---

1. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अल-तिलावत, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/569 द्वारा प्रकाशित।
2. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अल-तिलावत, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/571 द्वारा प्रकाशित।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

التلاوۃ والسجدۃ اکثر من ایتین او ثلاث علی **دو یا تین آیات کی قرائت کی مقدار کا فاصلہ نہ ہو جائے جیسا**

ماسیاتی حلیۃ ۱ انتہی، واللہ تعالی اعلم کہ عنقریب آرہا ہے حلیہ انتہی ۔ واللہ تعالی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۵۱: از بریلی محلہ ملوکپور مسئولہ مولوی حکیم حافظ امیر اللہ صاحب مدرس اول عربیہ اکبریہ ۲ جمادی الاولی ۱۳۰۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جو شخص اقرا پڑھے فرضوں میں، اور ضم دوسورتوں کا آیا نہیں، اور سجدہ سورت کے آخر میں ہے، اور امام ہے اگر رکوع میں نیت کرے تو مقتدی کا سجدہ تلاوت ادا نہ ہوگا، آیا یوں جائز ہوگا کہ سورت ختم کرکے سجدہ کرے؟ پھر کھڑا ہو کر رکوع کرے یا تین سجدے کرے؟ مطلع فرمائے۔ بینوا توجروا

الجواب: فی الواقع اگر صورت مستفسرہ میں امام نے فوراً رکوع کیا اور رکوع میں نیت سجدہ تلاوت کرلی تو اس کا سجدہ ادا ہو گیا مگر جن مقتدیوں نے نیت نہ کی ان کا سجدہ ایک مذہب علماء پر ادا نہ ہوگا۔

عنی عند من لا یتجزئ للمأموم بنیۃ الامام **میری مراد وہ علماء ہیں جو امام کی نیت کو مقتدی کے لئے کافی نہیں**

وہما قولان حکاہما القہستانی، سمجھتے، اور یہ دو قول ہیں جنہیں قہستانی نے نقل کیا ہے (ت)

نہ وہ آپ جداگانہ سجدہ کر سکیں گے للزوم خلاف الامام (کیونکہ اس میں امام کی مخالفت لازم آرہی ہے۔ ت) نہ سجدہ نماز انہیں سجدہ تلاوت سے کافی ہوگا اگرچہ وہ اس میں سجدہ تلاوت کی

نیت بھی کرلیں لانه لما نواها الامام فی رکوعه تعین لها افاده ح قاله ش (کیونکہ جب امام نے اس کی ادائیگی کی رکوع میں نیت کی تو وہی اس کے لئے متعین ہو گیا اسے 'ح' نے بیان کیا اور 'ش' نے نقل کیا۔ ت) بلکہ اس کی سبیل ہو گی کہ بعد سلام امام سجدہ تلاوت کریں پھر یہ سجدہ رافع ہوگا کما تقرر فی مقررہ (جیسا کہ اپنے مقام پر ثابت شدہ ہے۔ ت) تو فرض ہوگا کہ قعدہ کا اعادہ کریں نہ کریں گے تو نماز فاسد ہو جائے گی۔

فی الدرالمختار عن القنیة لو نواها فی رکوعه ولم	**در مختار میں قنیہ سے ہے کہ اگر امام نے سجدہ تلاوت کی نیت**
ینوها المؤتم لم تجزه و	رکوع میں کرلی اور مقتدی نے نیت نہیں کی تو

---

1 ردالمحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۶۹ 2 ردالمحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۷۱

Fatawa Razawiyya, Volume 8

| یسجد اذاسلم الامام ویعید القعدة ولو ترکها فسدت صلوته[1] | It will not be sufficient for the follower. Therefore, when the Imam gives salutation, the follower should prostrate and repeat the sitting (Qa'dah). If the follower omits the prostration, their prayer will be void. (T) |

Since these difficulties exist, performing the prostration of recitation during the bowing (Ruku') position, especially in this age of ignorance, is to put the followers into trial. Therefore, the Imam should avoid it.

| فی ردالمحتار ینبغی للامام ان لاینویها فی الرکوع[2]۔ | It is stated in Radd al-Muhtar that it is not appropriate for the Imam to intend the prostration (of recitation) during Ruku'. (T) |

And if he does this: finishes the Surah and immediately performs the prostration of recitation, then stands up and immediately goes into Ruku' to prostrate, the prostration for everyone will be performed, but this action will be disliked (Makruh) because he did not provide a gap between the prostration of recitation and the Ruku' [by recitation].

| فی مراقی الفلاح لورکع بمجرد قیامه منها کره[3]۔ | It is stated in Maraqi al-Falah that if, after the prostration of recitation, one performs Ruku' merely after standing up, it will be disliked. (T) |

So if an independent prostration for recitation is to be performed, then the safest method is to rise from the prostration and recite at least three verses or more from another Surah (for example, Surah al-Qamar after Surah al-Mustanfirah, or the beginning of Surah al-Qamar after reciting Surah an-Najm) and then perform Ruku'. Although this involves reciting two Surahs in one Rak'at, which is better to avoid in obligatory (Fard) prayers, it is not disliked if there is no gap of a Surah between them. It is stated in Sharh Saghir Munyah:

| لوجمع بین السورتین فی رکعة واحدة الاولی ان لا یفعل فی الفرض ولو فعل لایکره الا ان یترک بینهما سورة او اکثر[4]۔ | If two Surahs are combined in one Rak'at, it is better not to do this in obligatory prayers. And even if one does so, there is no dislike (Karahat) except in the case where there is one or more Surahs [gap] between them. (T) |

---

[1] Durr al-Mukhtar, Chapter on Sajdah al-Tilawah, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/105 [2] Radd al-Muhtar, Chapter on Sajdah al-Tilawah, printed by Mustafa al-Babi

Egypt, 1/571 [3] Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter on Sajdah al-Tilawah, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, 26 [4] Sagheeri Sharh Munyat al-Musalli, Tatimmat fima Yukrahu Fi'luhu, printed by Matba' Mujtabai Delhi, p. 256

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

| يسجد اذاسلم الامام ويعيد القعدة ولو تركها فسدت صلوته[1] | मुक्तदी के लिए यह काफ़ी नहीं होगा। इसलिए, जब इमाम सलाम कहे, तो मुक्तदी सज्दा करे और क़ादा को दोहराए। और अगर मुक्तदी ने सज्दा करना छोड़ दिया, तो उसकी नमाज़ अमान्य (फ़ासिद) हो जाएगी। (त) |

जब ये मुश्किलें हैं, तो ऐसी स्थिति में, विशेष रूप से अज्ञानता के इस दौर में, रुकू के दौरान सज्दा-ए-तिलावत अदा करना मुक्तदीयों को फ़ितने (भ्रम) में डालना है। इसलिए इमाम को इससे बचना चाहिए।

| فی ردالمحتار ینبغی للامام ان لاینویها فی الرکوع[2]۔ | रद्द-उल-मुहतार में उल्लेख है कि इमाम के लिए रुकू में सज्दा (तिलावत) की नीयत करना उचित नहीं है। (त) |

और अगर वह ऐसा करता है कि सूरह समाप्त करने के तुरंत बाद सज्दा-ए-तिलावत करता है और उसके बाद खड़ा होकर तुरंत रुकू में सज्दा के लिए चला जाता है, तो सज्दा तो सबका अदा हो जाएगा, लेकिन यह कार्य मकरूह (नापसंद) होगा क्योंकि उसने सज्दा-ए-तिलावत और रुकू के बीच (तिलावत से) फ़ासला नहीं रखा।

| فی مراقی الفلاح لورکع بمجرد قیامه منها کره[3]۔ | मराक़ी-उल-फ़लाह में है कि अगर सज्दा-ए-तिलावत के बाद सिर्फ़ खड़ा होकर रुकू कर लिया, तो वह मकरूह होगा। (त) |

बस अगर तिलावत के लिए अलग से सज्दा करना ही हो, तो इसका सबसे सुरक्षित तरीका यह है कि सज्दा से उठकर दूसरी सूरह (जैसे सूरह मुस्तनफ़िरा के बाद सूरह क़मर, या वन्नज्म की तिलावत के बाद सूरह क़मर की शुरुआत से) कम से कम तीन आयतें या अधिक पढ़कर रुकू करे। हालांकि इसमें एक रकात में दो सूरह पढ़ना होगा और फ़र्ज़ नमाज़ों में इसे न करना ही बेहतर है, लेकिन अगर सूरह के बीच में कोई फ़ासला (छूटी हुई सूरह) न हो, तो यह मकरूह नहीं है। शरह सगीर मुन्या में है:

| لوجمع بین السورتین فی رکعة واحدة الاولی ان لا یفعل فی الفرض ولو فعل لایکره الا ان یترك بینهما سورة او اکثر[4]۔ | अगर एक रकात में दो सूरह जमा कर ली जाएं तो बेहतर यह है कि फ़र्ज़ नमाज़ों में ऐसा न किया जाए। और अगर ऐसा कर भी लिया जाए, तो कोई कराहत (नापसंदगी) नहीं है, सिवाय इस सूरत के जब उनके बीच एक या अधिक सूरह हों। (त) |

[1] दुर्रे मुख़्तार, बाब सुजूदुत्तलावह, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/105 [2] रद्दुल मुहतार, बाब सुजूदुत्तलावह, मतबुआ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/571 [3] मराक़ी उल फ़लाह मअ हाशिया अत्ताहतावी, बाब सुजूदुत्तलावह, मतबुआ नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची, 26 [4] सग़ीरी शरह मुनियतुल मुसल्ली, ततिम्मात फ़ीमा युकराहु फ़ेअ्लुहु, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, पृ. 256

| یسجد اذاسلم الامام ویعید القعدۃ ولو ترکھا فسدت صلوتہ[1] | مقتدی کے لئے کافی نہ ہوگا، لہٰذا جب امام سلام کہے تو مقتدی سجدہ کرے اور قعدہ کو لوٹائے، اور اگر مقتدی نے سجدہ کو ترک کر دیا تو اس کی نماز فاسد ہو جائے گی۔ (ت) |

جب یہ دقتیں ہیں تو ایسی حالت خصوصاً اس زمانہ جہالت میں رکوع نماز سجدہ تلاوت ادا کر لینا مقتدیوں کو فتنے میں ڈالنا ہے لہٰذا امام کو اس سے بچنا چاہئے۔

| فی ردالمحتار ینبغی للامام ان لاینویھا فی الرکوع[2]۔ | ردالمحتار میں ہے کہ امام کا رکوع میں سجدہ (تلاوت) کی نیت کرنا مناسب نہیں۔ (ت) |

اور اگر یہ کرتا ہے کہ سورت ختم کر کے فوراً سجدہ تلاوت کرے اور اس کے بعد کھڑا ہو کر مگّار رکوع میں سجدہ چلا جائے تو سجدہ تو سب کا ادا ہو جائے گا مگر یہ فعل مکروہ ہوگا کہ سجودِ تلاوت اور رکوع میں فصل نہ کیا۔

| فی مراقی الفلاح لورکع بمجرد قیامہ منھا کرہ[3]۔ | مراقی الفلاح میں ہے کہ اگر سجدہ تلاوت کے بعد محض قیام کر کے رکوع کر لیا تو مکروہ ہوگا۔ (ت) |

بس اگر تلاوت کے لئے سجدہ مستقلہ ہی کرنا چاہئے تو اس کا یہ طریقہ اسلم کہ سجدہ سے اٹھ کر دوسری سورت مثلاً سورہ مستنفرہ میں سورہ قمر یا تلاوت و النجم میں سورہ یٰ قمر کے اول سے تین آیتیں خواہ زیادہ پڑھ کر رکوع کرے اس میں اگرچہ ایک رکعت میں دو سورتوں سے پڑھنا ہوگا اور فرضوں میں اس کا ترک اولیٰ، مگر سورتوں میں فصل نہ ہو تو مکروہ نہیں، شرح صغیر منیہ میں ہے:

| لوجمع بین السورتین فی رکعة واحدة الاولی ان لا یفعل فی الفرض ولو فعل لایکرہ الا ان یترك بینهما سورة او اکثر[4]۔ | اگر دو سورتیں ایک رکعت میں جمع کر لیں اور بہتر یہ ہے کہ فرائض میں ایسا نہ کیا جائے اور اگر ایسا کر بھی لیا تو کراہت نہیں مگر اس صورت میں جب ان کے درمیان ایک سورہ یا اکثر سورتوں۔ (ت) |

---

[1] در مختار باب سجود التلاوة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۵ [2] رد المحتار باب سجود التلاوة مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۷۱ [3] مراقی الفلاح مع حاشیة الطحطاوی باب سجود التلاوة مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲۶ [4] صغیری شرح منیة المصلی تتمات فیما یکرہ فعله مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۲۵۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

Contrarily, going into Ruku' immediately after Sajdah Tilawat (prostration of recitation) without any gap is disliked (Makruh), as we have previously stated. Therefore, to avoid this, it will be tolerated. It is stated in Maraqi al-Falah:

Arabic: If it is the end of his recitation, he should recite one or two verses from another Surah after rising from it, so that he does not base the Ruku' directly on the Sajdah.[1]	**Urdu: When this is the final recitation, it is appropriate to recite more after rising from the prostration of recitation, even if those verses are from another Surah, so that one does not base the bowing upon the prostration. (T)**

This was one method, but a better, more pleasant, and safer method from all concerns in the questioned scenario is that for the recitation, one should not perform an independent prostration at all. Instead, immediately upon reading the verse of prostration, perform the Ruku' (bowing) of the prayer simultaneously without intending for the prostration. Then, after rising (Qawmah), immediately perform the first Sajdah (prostration) of the prayer and make the intention for the prostration therein. Now, no repulsiveness, dislike, or loss of merit occurs, nor is there any difficulty for the followers (Muqtadis), even if they have not intended for the prostration of recitation anywhere. This is because when the prostration of prayer is performed immediately, the prostration of recitation is automatically fulfilled, even if there was no specific intention.

Arabic: In Radd al-Muhtar: If he bows and prostrates for it, i.e., for the prayer immediately, it suffices, i.e., the prostration of the follower suffices for the prostration of recitation without intention, following the prostration of his Imam, because of what has passed recently that it is fulfilled by the prostration of the prayer immediately, even if he did not intend.[2]	**Urdu: It is stated in Radd al-Muhtar: If the Imam performs the bowing and prostration of the prayer immediately, then the follower's prostration of recitation will be fulfilled without intention by following the Imam's prostration, as mentioned previously that the prostration of recitation is fulfilled immediately by the prostration of the prayer even if there is no intention. (T)**

And from here it is clear that in this commendable and safe manner, even if the Imam himself does not initially intend for the prostration of recitation, everyone's

prostration will still be fulfilled, and the Imam and followers will remain safe from any confusion at all times. In fact, our scholars, in cases of a large congregation or silent recitation, consider this method absolutely superior: to recite the verse of prostration and immediately perform the bowing and prostrations of the prayer so that there is no need for a separate prostration for recitation, which often causes confusion for the ignorant. It is stated in Maraqi al-Falah:

Arabic: This is appropriate for the Imam with a large crowd or in case of opposition, so that it does not lead to confusion.[3]	**Urdu: This is appropriate for the Imam when there is a large number of people or conflicting situations, so that it does not become a cause of confusion. (T)**

[1] Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter of Sajud al-Tilawah, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 64. [2] Radd al-Muhtar, Chapter of Sujud al-Tilawah, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/571. [3] Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter of Sajud al-Tilawah, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 64.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

इसके विपरीत, सजदा-ए-तिलावत (तिलावत के सजदे) के बाद बिना किसी अंतराल के रुकू में जाना मकरूह (नापसंद) है जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है। इसलिए, इसे टालने के लिए इसे गवारा किया जाएगा। मराक़ी अल-फ़लाह में है:

अरबी: यदि यह उसकी तिलावत का अंत है, तो उसके लिए उचित है कि वह सजदे से खड़े होने के बाद किसी अन्य सूरह की एक या दो आयतें पढ़े, ताकि रुकू की बुनियाद सीधे सजदे पर न हो।[1]

उर्दू: जब यह अंतिम तिलावत हो, तो सजदा-ए-तिलावत से खड़े होने के बाद क़िरात (तिलावत) उचित है, भले ही वे किसी अन्य सूरह की आयतें हों, ताकि रुकू को सजदे पर आधारित करने वाला न बन जाए। (त)

एक तरीका तो यह था और इन सबसे बेहतर, अधिक सुखद और हर तरह के खतरे से सुरक्षित तरीका यह है कि पूछी गई स्थिति में तिलावत के लिए स्वतंत्र रूप से सजदा बिल्कुल न किया जाए। बल्कि, सजदे की आयत पढ़ते ही तुरंत नमाज़ का रुकू किया जाए और उसमें सजदे की नियत (इरादा) न की जाए। फिर क़ौमा (रुकू से खड़े होने) के बाद तुरंत नमाज़ के पहले सजदे में जाया जाए और उसमें सजदे की नियत की जाए। अब न तो कोई बुराई या नापसंदगी होगी और न ही श्रेष्ठता में कोई कमी आएगी, और न ही मुक़्तदियों (अनुयायियों) को कोई कठिनाई होगी, भले ही उन्होंने कहीं सजदा-ए-तिलावत की नियत न की हो। क्योंकि जब नमाज़ का सजदा तुरंत किया जाता है, तो उससे सजदा-ए-तिलावत अपने आप अदा हो जाता है, भले ही नियत न हो।

अरबी: रद्द अल-मुह्तार में है: यदि उसने उसके लिए यानी नमाज़ के लिए तुरंत रुकू और सजदा किया, तो वह पर्याप्त होगा, यानी मुक़्तदी का सजदा बिना नियत के इमाम के सजदे के अनुसरण में सजदा-ए-तिलावत की ओर से पर्याप्त होगा, जैसा कि अभी गुज़रा कि वह नमाज़ के सजदे से तुरंत अदा हो जाता है भले ही उसने नियत न की हो।[2]

उर्दू: रद्द अल-मुह्तार में है कि यदि इमाम ने नमाज़ का रुकू और सजदा तुरंत कर लिया, तो मुक़्तदी का सजदा-ए-तिलावत बिना नियत के इमाम के अनुसरण में सजदे के साथ अदा हो जाएगा, जैसा कि अभी पीछे गुज़रा कि सजदा-ए-तिलावत तुरंत नमाज़ के सजदे से अदा हो जाता है भले ही नियत न हो। (त)

और यहीं से स्पष्ट है कि इस सराहनीय और सुरक्षित तरीके में, यदि स्वयं इमाम भी मूल रूप से सजदा-ए-तिलावत की नियत न करे, तब भी सबका सजदा अदा हो जाएगा, और इमाम व मुक़्तदी हर समय भ्रम से सुरक्षित रहेंगे। वास्तव में, हमारे विद्वान बड़ी जमात या धीमी क़िरात की स्थिति में इसी तरीके को पूर्णतः श्रेष्ठ मानते हैं कि सजदे की आयत पढ़कर तुरंत नमाज़ के रुकू और सजदे कर लिए जाएं ताकि तिलावत के लिए अलग से सजदा करने की आवश्यकता न पड़े, जिसके कारण अज्ञानियों में अक्सर भ्रम पैदा हो जाता है। मराक़ी अल-फ़लाह में है:

अरबी: इमाम के लिए बड़ी जमात या विपरीत स्थितियों में यही उचित है, ताकि इससे उलझन पैदा न हो।[3]

उर्दू: लोगों की अधिकता और विपरीत परिस्थितियों में इमाम के लिए यही उचित है ताकि भ्रम का कारण न बने। (त)

[1] मराक़ी अल-फ़लाह मा हशिया अत-तहतावी, बाब सुजूद अत-तिलावत, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृष्ठ 64। [2] रद्द अल-मुह्तार, बाब सुजूद अत-तिलावत, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/571। [3] मराक़ी अल-फ़लाह मा हशिया अत-तहतावी, बाब सुजूद अत-तिलावत, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृष्ठ 64।

पेज 236/673

بخلاف بعد سجدہ تلاوت بلا فصل رکوع میں جانے کے کہ یہ مکروہ ہے کما قدمنا (جیسا کہ ہم نے پیچھے بیان کر دیا ۔ت) تو اس کے دفع کرنے کو اسے گوارا کیا جائے گا۔ مراقی الفلاح میں ہے:

اذا کانت آخر تلاوته ینبغی ان یقول أولو آیتین من سورة اخری بعد قیامه منها حتی لایصیر بانیا للرکوع علی السجود۔ 1

جب یہ آخری تلاوت ہو تو سجدہ تلاوت سے قیام کے بعد قرأت مناسب ہے اگرچہ وہ کسی دوسری سورت کی آیات ہوں تاکہ رکوع کی سجدہ پر بنا رکھنے والا نہ ہو جائے ۔ (ت)

ایک طریقہ تو یہ تھا اور ان سب سے بہتر و خوش تر اور ہر خدشہ سے سالم و محفوظ طریقہ یہ ہے کہ صورتِ مستفسرہ میں تلاوت کے لئے مستقل سجدہ اصلًا نہ کرے بلکہ آیت سجدہ پڑھنے ہی معًا نماز کا رکوع بجالائے اور اس میں نیتِ سجدہ نہ کرے پھر قومہ کے بعد فورًا نماز کے سجدہ اولٰی میں جائے اور اس میں نیتِ سجدہ کرے اب نہ کوئی قباحت یا کراہت یا تفویتِ فضیلت لازم ہوئی نہ مقتدیوں پر کچھ دقت آئی اگرچہ انھوں نے کہیں نیتِ سجدہ تلاوت کی نہ کی ہو کہ سجدہ نماز جب فی الفور کیا جائے تو اس سے سجدہ تلاوت خود بخود ادا ہو جاتا ہے اگر چہ نیت نہ ہو۔

فی ردالمحتار لو رکع وسجد لها ای للصلوٰة فور اناب ای سجود المقتدی عن سجود التلاوة بلانیة تبعاً لسجود امامه لما مر انفاً انها تؤدٰی بسجود الصلوٰة فوراً وان لم ینو ۔ 2

ردالمحتار میں ہے اگر امام نے نماز کا رکوع اور سجدہ فوراً کر لیا تو مقتدی کا سجدہ تلاوت بلانیت امام کی اتباع میں سجدہ کے ساتھ ادا ہو جائے گا جیسا کہ ابھی پیچھے گزرا کہ سجدہ تلاوت فوراً سجدہ نماز سے ادا ہو جاتا ہے اگرچہ نیت نہ ہو۔ (ت)

اور یہیں سے ظاہر کہ اس محمود و محفوظ صورت میں اگر خود امام بھی اصلًا نیت سجدہ تلاوت نہ کرے تاہم سب کا سجدہ ادا ہو جائے گا اور امام و مقتدی ہر وقت سے امان میں رہیں گے بلکہ ہمارے علماء بحالت کثرتِ جماعت یا اخفائے قرأت اسی طریقہ کو مطلقًا افضل ٹھہراتے ہیں کہ آیت سجدہ پڑھ کر فوراً نماز کے رکوع وسجود کرلے تاکہ تلاوت کے لئے جدا سجدے کی حاجت نہ پڑے جس کے باعث جہال کو اکثر التباس ہو جاتا ہے۔ مراقی الفلاح میں ہے،

ینبغی ذلك للامام مع کثرۃ القوم اوحال المخالفۃ حتی لایؤدی الی التخلیط۔ 3 **لوگوں کی کثرت اور مخالفتِ حال میں امام کے لئے یہی مناسب ہے تاکہ اختلاط کا سبب نہ بنے۔ (ت)**

1 مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب سجود التلاوۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۶۴ 2 ردالمحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۷۱ 3 مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب سجود التلاوۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۶۴

Volume 8

Fatawa Ridawiyya

Allama Tahtawi states in his marginal notes:

Meaning, he should not perform a separate bowing and prostration for it out of fear of causing confusion to others. 1-	**Meaning the Imam should not perform an independent bowing (Ruku) and prostration (Sujud) for the prostration of recitation because it will cause confusion in the prayers of others. (T)**

I say: The condition of a large congregation is based on the view that when there is a crowd, commoners will certainly be present. Nowadays, since the general public consists almost entirely of commoners, whether the congregation is large or small is all the same. Thus, absolutely, this method is most appropriate and superior for independent prostration, unless the Imam knows that at that time only those who possess knowledge of religious matters are behind him. However, it is essential to remember that this situation will only arise if the bowing and prostration in prayer are not delayed after the verse of prostration but are performed immediately. Otherwise, if after reciting the verse of prostration, three or four more verses are recited, then the prostration of recitation will definitely not be fulfilled except through a specific independent prostration, and the sin of delay will be additional. It is mentioned in 'Durr-ul-Mukhtar':

If it is not performed within the prayer [immediately after recitation], then it must be performed immediately because it becomes a part of it, so one sins by delaying it. 2-	**If the prostration required in prayer is not performed separately, then Ruku and Sujud should be performed immediately, because this prostration being a part of the prayer becomes obligatory immediately, and a person becomes a sinner due to delay. (T)**

In 'Radd-ul-Muhtar':

So if the immediacy is lost, there is no substitute for it except a specific prostration for it as long as one is in the sanctity of prayer. And it is stated in 'al-Bada'i' that it has become a debt, and a debt is paid with what belongs to one, not with what is owed by one. And bowing and prostration are duties upon him, so the debt is not settled by them. 3 End.

If it was not done immediately, it will be necessary to perform a separate prostration of recitation as long as the worshipper is within the sanctity of prayer. The reason for this is explained in 'Bada'i' that the prostration of recitation is a debt, and a debt is paid with what is one's own right, not with what is obligatory upon one. And Ruku and Sujud are obligatory upon the worshipper, so how can a debt be paid with them? End (T)

In the same [it is]:

If the immediacy is lost, it is not correct to perform Ruku for it, even if...

If the prostration of recitation could not be performed immediately, then while remaining within the sanctity of prayer...

1. Hashiya al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter of Prostration of Recitation, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 264.
2. Durr-ul-Mukhtar, Chapter of Prostration of Recitation, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/105.
3. Radd-ul-Muhtar, Chapter of Prostration of Recitation, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/517.

जिल्द 8

फतावा रज़विया

अल्लामा तहतावी इसके हाशिये में फरमाते हैं:

अर्थात, वह दूसरों के लिए भ्रम के डर से इसके लिए स्वतंत्र रुकू और सजदा न करे। 1-

यानी इमाम सज्दा-ए-तिलावत के लिए स्वतंत्र रुकू और सुजूद न करे क्योंकि दूसरों की नमाज़ में खराबी आएगी। (त)

मैं कहता हूँ कि जमात की अधिकता की शर्त इस दृष्टि से है कि जब भीड़ होगी तो आम लोग भी ज़रूर होंगे, अब हमारे ज़माने में कि आम लोग ही आम लोग हैं, अधिकता और कमी सब बराबर है, तो स्वतंत्र सजदा से पूर्णतः यही सूरत सबसे अधिक उपयुक्त और श्रेष्ठ है, सिवाय इसके कि इमाम जानता हो कि इस समय मेरे पीछे केवल वही लोग हैं जो धार्मिक मसलों का ज्ञान रखते हैं। लेकिन यह याद रखना बहुत ज़रूरी है कि यह सूरत उसी स्थिति में संभव होगी जब नमाज़ में सज्दा की आयत के बाद रुकू और सुजूद में देरी न की जाए और उन्हें तुरंत किया जाए, अन्यथा यदि सज्दा की आयत पढ़कर तीन-चार आयतें और पढ़ लीं, तो अब सज्दा-ए-तिलावत बिना किसी विशेष स्वतंत्र सजदे के हरगिज़ अदा नहीं होगा और देरी का गुनाह अलग से होगा। दुर्र-ए-मुख़्तार में है:

यदि यह नमाज़ के भीतर [तिलावत के तुरंत बाद] नहीं किया जाता है, तो इसे तुरंत किया जाना चाहिए क्योंकि यह इसका एक हिस्सा बन जाता है, इसलिए इसे विलंबित करने से व्यक्ति पाप करता है। 2-

नमाज़ में अनिवार्य होने वाला सज्दा यदि अलग से नहीं किया गया, तो तुरंत रुकू और सजदा करे क्योंकि यह सजदा नमाज़ का हिस्सा होने के कारण तुरंत अनिवार्य (वाजिब) होता है, देरी के कारण आदमी गुनहगार होता है। (त)

रद्दुल मुहतार में है:

तो यदि तात्कालिकता समाप्त हो जाती है, तो इसके लिए एक विशेष सजदे के अलावा कोई विकल्प नहीं है जब तक कि कोई नमाज़ की पवित्रता में है। और 'अल-बदाए' में उल्लेख है कि यह एक ऋण बन गया है, और ऋण उस चीज़ से चुकाया जाता है जो व्यक्ति की अपनी है, न कि उस चीज़ से जो व्यक्ति पर बकाया है। और रुकू और सुजूद उस पर अनिवार्य हैं, इसलिए उनके द्वारा ऋण नहीं चुकाया जा सकता। 3 अंत।

अगर तुरंत न हुआ तो अलग से सज्दा-ए-तिलावत करना ज़रूरी होगा जब तक नमाज़ी नमाज़ की हुरमत (पवित्रता) में है और इसका कारण 'बदाए' में बताया गया है कि सज्दा-ए-तिलावत एक कर्ज़ (ऋण) है और कर्ज़ उससे अदा होगा जो उसका अपना हक़ है, न कि उससे जो उस पर वाजिब है। और रुकू और सुजूद तो नमाज़ी पर वाजिब हैं, इसलिए उनसे ऋण कैसे अदा हो सकता है? (त)

इसी में है:

यदि तात्कालिकता समाप्त हो गई है, तो इसके लिए रुकू करना सही नहीं है, भले ही...

अगर तुरंत सज्दा-ए-तिलावत न हो सका तो अब नमाज़ की हुरमत में रहते हुए...

1. हाशियतुल तहतावी अल मराक़िल फ़लाह, बाब सुजूदुत्तलावत, मुद्रित: नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची 264
2. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब सुजूदुत्तलावत, मुद्रित: मतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/105
3. रद्दुल मुहतार, बाब सुजूदुत्तलावत, मुद्रित: मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/517

पेज 237/673

جلد ہشتم

فتاوی رضویہ

علامہ طحطاوی اس کے حاشیہ میں فرماتے ہیں:

ای ولا یجعل لھا رکوعاً وسجوداً یعنی امام سجدہ تلاوت کے لئے مستقل رکوع و سجود نہ مستقلاً خوف الفساد من غیرہ 1- کرے کیونکہ دوسروں کی نماز میں فساد آئے گا۔ (ت)

میں کہتا ہوں کثرتِ جماعت کی قید اس نظر سے ہے کہ جب ہجوم ہوگا تو عوام بھی ضرور ہوں گے ، اب ہمارے زمانہ میں کہ عام لوگ عوام ہی عوام ہیں کثرت و قلت سب یکساں ، تو سجود مستقل سے مطلقاً یہی صورت انسب و اولٰی ، مگر یہ کہ امام جانتا ہو کہ اس وقت میرے پیچھے صرف وہی لوگ ہیں جو دینی مسائل کا علم رکھتے ہیں لیکن اس قدر ضرور یاد رکھنا چاہئے کہ یہ صورت اسی حالت میں بن پڑے گی کہ آیت سجدہ کے بعد رکوع و سجود نماز میں دیر نہ کی فوراً بجا لایا ورنہ اگر آیت سجدہ پڑھ کر تین چار آیتیں اور پڑھ لیں تو اب سجدہ تلاوت ہر گز بے خاص مستقل سجدے ہی کے ادا نہ ہوگا اور تاخیر کا گناہ ہو اوہ علاوہ ، در مختار میں ہے :

ان لم تکن صلوۃ فعلی الفور نماز میں لازم آنے والا سجدہ اگر علیحدہ نہ کیا تو فی الفور رکوع و لصیرورتھا جزء منھا فیأثم سجدہ کرے کیونکہ یہ سجدہ جزء نماز ہونے کی وجہ سے فی الفور بتأخیرھا 2- واجب ہوتا ہے تاخیر کی وجہ سے آدمی گنہگار ہوتا ہے (ت)

ردالمحتار میں ہے :

فلوانقطع الفورلا بدلها من سجود خاص بها مادام في حرمة الصلوة وع لله في البدائع بانها صارت دينا والدين يقضى بماله لا بما عليه والركوع والسجود عليه فلايتأدى به الدين 3 اهـ

اگر فی الفور نہ ہوا تو الگ سجدہ تلاوت کرنا لازم ہوگا جب تک نمازی حرمت نماز میں ہے اور اس کی علت بدائع میں بیان ہوئی ہے کہ سجدہ تلاوت قرض ہے اور قرض اس سے ادا ہوگا جو اس کا اپنا حق ہے ، نہ کہ اس سے جو اس پر لازم ہے اور رکوع و سجود تو نمازی پر لازم لہذا ان سے دین کیسے ادا ہو سکتا ہے اھ (ت)

اسی میں ہے :

ان فات الفور لا یصح ان یرکع لها ولو

اگر فی الفور سجدہ تلاوت نہ ہو سکا تو اب حرمت نماز میں رہتے

1 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب سجود التلاوۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲۶۴ 2 در مختار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۰۵/۱ 3 ردالمحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵۱۷/۱

Fatawa Razawiya Volume 8

In Bada'i (referring to Bada'i as-Sana'i), regarding the sanctity of prayer, it means separate prostration (Sajda) is necessary for it, etc. And Allah, Glory be to Him and Exalted is He, knows best, and His knowledge, glorified be His Majesty, is most complete and most wise. Even then, bowing (Ruku') cannot suffice for it according to Bada'i, meaning now a separate independent prostration will have to be performed for it, etc. And Allah, Glory be to Him and Exalted is He, knows best, and His knowledge, glorified be His Majesty, is most complete and most wise (T).

Problem 1252: Inquired by Nawab Sultan Ahmad Khan Sahib of Bareilly (Question in Verse) My question to the scholars of the Sharia is this: Let those well-mannered individuals answer it for the sake of truth. If someone reads the translation of a verse of prostration (Ayat-e-Sajda), Does prostration become obligatory for that person then as well? And if there are prostrations of recitation to be performed, But he dies before performing those prostrations, Then what will be the form of his exoneration, Sir? It is desired that you give a correct answer.

The Answer in Verse: The translation here is also certainly the cause for prostration. The difference is that understanding the meaning is a condition in translation, but not in the original. If a verse of prostration is heard and it is known to be a place of prostration, Whether the tongue understands or not, the prostration becomes obligatory. In the case of translation, knowing that language is also necessary. There are two elements: form (word) and meaning; at least one must remain, So that in some way, the hearing of the Quran holds true. Otherwise, it was just a wave of air that touched the ear. This is the school of thought upon which the fatwa is based and relied upon. From Shami (Ibn Abidin), Faydh, and Nahr, and Allah knows best the path of guidance. There is no ransom (fidyah) for prostration; it is clarified in Al-Ashbah. In Al-Sayrafiyyah, this denial has been validated. They say that making a will at the time of death is not obligatory upon him. If there were a ransom, why would it not be obligatory to compensate for the loss? Meaning, there is no substitute for it established in the Sharia. Except for repentance, there is no other recourse at the time of inability. This doesn't mean it's permissible or useless; After all, it is a good deed, and a good deed erases sins. I have said this, taking it from the reasoning in the matter of prayer. And it is an apparent discussion, and true knowledge belongs to Allah.

Problem 1253 to 1254: Amanat Ali Shah, Town Nawabganj, District Bareilly, 17th Ramadan al-Sharif, 1331 AH. (1) If the word 'Sajda' occurs during recitation without ablution (wudu), how should one perform the prostration later? Will it be necessary to make the intention for the prostration later or in some other way? Explain and you will be rewarded.

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Prostrations of Recitation, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/507.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

बदाई (बदाई-उस-सनाई) में नमाज़ की हुरमत के बारे में है, यानी इसके लिए अलग से सजदा करना ज़रूरी है आदि। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म, उसकी शान बुलन्द हो, सबसे कामिल और मज़बूत है। ऐसा होने पर भी उसके लिए रुकूअ नहीं किया जा सकता बदाई के अनुसार, यानी अब उसके लिए अलग स्वतंत्र सजदा करना होगा आदि। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म, उसकी शान बुलन्द हो, सबसे कामिल और मज़बूत है। (त)

मसाला 1252: नवाब सुल्तान अहमद खां साहब बरेली द्वारा प्रेषित (पद्य में सवाल) शरियत के आलिमों से मेरा सवाल इस प्रकार है: वे नेक अख़लाक़ वाले इसका जवाब हक की ख़ातिर मुझे दें। अगर किसी ने सजदा वाली आयत का तर्जुमा (अनुवाद) पढ़ा, तो क्या तब भी उस शख्स पर सजदा करना वाजिब हुआ? और यदि तिलावत के सजदे अदा करने बाकी हों, और वह उन सजदों को अदा करने से पहले ही मर जाए, तो जनाब, उसकी सुबुकदोशी (छुटकारे) की सूरत क्या होगी? आपसे एक सही जवाब की उम्मीद है।

पद्य में जवाब: यहाँ तर्जुमा भी यकीनन सजदे की वजह है। फर्क यह है कि इसमें मानी (अर्थ) को समझना शर्त है, मूल में नहीं। सजदा की आयत सुनी और जान लिया कि यह सजदे की जगह है, अब ज़बान समझे या न समझे, सजदा वाजिब हो गया। तर्जुमे में उस ज़बान का जानना भी ज़रूरी है। नज़्म (शब्द) और मानी (अर्थ) दो हैं, उनमें से एक तो बाकी रहे, ताकि कुछ हद तक तो कुरआन सुनना सादिक (सत्य) हो। वरना वह हवा की एक लहर थी जो कान को छू गई। यही वह मज़हब (विचारधारा) है जिस पर फतवा दिया जाता है और एतमाद (भरोसा) है। शामी, फ़ैज़ और नहर से, और अल्लाह ही हिदायत के रास्ते को बेहतर जानता है। सजदे का कोई फिदया (बदला) नहीं है, अशबाह में इसकी वजाहत की गई है। सैरफ़िया में इसी इनकार की तस्दीक की गई है। वे कहते हैं कि मौत के वक्त इस पर वसीयत करना वाजिब नहीं है। अगर फिदया होता, तो फौत (छूट जाने) के बदले वह वाजिब क्यों न होता? यानी शरीअत में इसका कोई विकल्प मुकर्रर नहीं है। सिवाय तौबा के मजबूरी के वक्त कोई और चारा नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि यह जायज़ है या बेकार है; आखिरकार एक नेकी है और नेकी गुनाहों को मिटाने वाली है। मैंने यह बात नमाज़ के मामले में दी गई दलील से अख़ज़ की (ली) है। और यह एक ज़ाहिरी बहस है और हकीकी इल्म अल्लाह ही के पास है।

मसाला 1253 से 1254: अमानत अली शाह, कस्बा नवाबगंज, जिला बरेली, 17 रमज़ान शरीफ 1331 हिजरी। (1) अगर बिना वज़ू तिलावत करते समय सजदा का लफ्ज़ आ जाए, तो बाद में सजदा किस तरह करे? क्या बाद में सजदा की नियत करनी होगी या किसी और तरह से? बयान कीजिए, आपको सवाब मिलेगा।

1. रद-उल-मुहतार, बाब सुजूदुत्तलावत, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/507।

فی حرمۃ الصلوۃ بدائع ای فلا بد من سجود خاص بھا الخ واللہ سبحنہ وتعالی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ ہوئے بھی اس کے لئے رکوع نہیں کیا جاسکتا بدائع ، یعنی اب اس کے لئے الگ مستقل سجدہ کرنا ہوگا الخ واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم (ت)

مسئلہ ۱۲۵۲: مسئولہ نواب سلطان احمد خاں صاحب بریلی (سوال منظوم) عالمانِ شرح سے ہے اس طرح میرا سوال دیں جواب اس کا برائے حق مجھے وہ خوشخصال گر کسی نے ترجمہ سجدہ آیت کی پڑھا تب بھی سجدہ کرنا کیا اُس شخص پر واجب ہوا اور ہوں سجدے تلاوت کے ادا کرنے جسے پھر ادا کرنے سے ان سجدوں کے پہلے وہ مرے پس سبکدوشی کی اس کے شکل کیا ہو گی جناب! چاہئے ہے آپ کو دینا جوابِ باصواب

الجواب منظوم ترجمہ بھی اصلی یہاں ہے وجہ سجدہ بالیقین فرق یہ ہے فہمِ معنی اس میں شرط اس میں نہیں آیت سجدہ سنی جانا کہ ہے سجدہ کی جا اب زباں سمجھے نہ سمجھے سجدہ واجب ہو گیا ترجمہ میں اس زباں کا جاننا بھی چاہئے نظم و معنی دو ہیں ان میں ایک تو باقی رہے تاکہ من وجہ تو صادق ہو سننا قرآن کو ورنہ اک موجِ ہوا تھی چھو گئی جو کان کو ہے یہی مذہب بہ یفتیٰ علیہ الاعتماد شامی از فیض و نہر واللہ اعلم بالرشاد سجدہ کا فدیہ نہیں اشباہ میں تصریح کی صیرفیہ میں اسی انکار کی تصحیح کی کہتے ہیں واجب نہیں اس پر وصیت وقتِ موت فدیہ گر ہوتا تو کیوں واجب نہ ہوتا جبر فوت یعنی اس کا شرع میں کوئی بدل ٹھہرا نہیں جزا دایا تو بہ وقتِ عجز کچھ چارہ نہیں یہ نہیں معنی کہ جائز ہے یا بیکار ہے آخر اک نیکی ہے نیکی ماحی اوزار ہے قُلْتُہٗ، اَخْذًا مِّنَ التَّعْلِیْلِ فِیْ اَمْرِ الصَّلٰوۃِ وَھُوَ بَحْثٌ ظَاھِرٌ وَالْعِلْمُ حَقًّا لِلّٰہِ

مسئلہ ۱۲۵۳ تا ۱۲۵۴: امانت علی شاہ قصبہ نواب گنج ضلع بریلی ۱۷ رمضان شریف ۱۳۳۱ھ (۱) اگر بے وضو تلاوت میں لفظ سجدہ آجائے تو بعد کو سجدہ کس طرح کرے؟ کیا بعد کو سجدہ کی نیت کرنا ہو گی یا اور کسی طرح سے؟ بینوا توجروا

1۔ ردالمحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۰۷

Volume 8 Fatawa Razawiyya

(2) If someone is reciting on a prayer mat while in a state of ablution (Wudu) and the Holy Quran is placed in front of him, and a verse of prostration (Sajdah) occurs, should he perform the prostration by setting the Holy Quran aside or in some other way? And if it is set aside, should it be closed or left open? Please clarify and be rewarded.

Answer: (1) Even if performed later, the prostration should be done in the same manner as it would have been done at that time. The intention should be made at that moment: "I am performing the prostration that became obligatory upon me due to recitation." Thinking this, one should say "Allahu Akbar" and go into prostration from a standing position, then say "Allahu Akbar" and raise the head from prostration. No other verbal intention is expressed. And Allah the Almighty knows best. (2) There is no specific rule for this. Whatever is easy should be done, while ensuring respect for the Great Quran is maintained. There is no harm in it being in front during prostration. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1255: 1331 AH What do the scholars of religion say regarding the matter that if a verse of prostration occurs while praying Taraweeh, can the Imam perform the prostration or not?

Answer: Whether in Taraweeh or any other prayer, if a verse of prostration is recited, it is obligatory to perform the prostration immediately. Delaying it for more than three verses is a sin. And Allah the Almighty knows best.

Page 239 of 673

जिल्द 8 फतावा रज़विया

(2) यदि कोई वुज़ू की स्थिति में मुसल्ले (जायनमाज़) पर तिलावत कर रहा हो और कलाम-ए-मजीद उसके सामने रखा हो, उस समय सजदे का शब्द आए, तो क्या कलाम-ए-मजीद को अलग रखकर सजदा करना चाहिए या किसी और तरीके से? और अगर अलग रखा जाए तो बंद करके या खुला हुआ? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

उत्तर: (1) बाद में भी सजदा उसी तरह करना होगा जैसा उस वक्त किया जाता। यह नीयत हर वक्त करनी होती है कि "तिलावत के कारण जो सजदा मुझ पर वाजिब हुआ है उसे अदा करता हूँ", यह समझकर 'अल्लाहु अकबर' कहते हुए खड़े से सजदे में जाए, फिर 'अल्लाहु अकबर' कहकर सजदे से सर उठाए। इसके अलावा और कोई नीयत ज़बान से नहीं कही जाती। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह तआला बेहतर जानता है)। (2) इसके लिए कोई खास हुक्म नहीं है, जो आसान हो वही करें और कुरान-ए-अज़ीम के अदब का लिहाज़ ज़रूर रखें। सजदे में इसका सामने होना कोई हर्ज नहीं। वल्लाहु तआला आलम।

मसाला 1255: 1331 हिजरी उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि अगर तरावीह पढ़ने में सजदे का मुकाम आ जाए, तो क्या इमाम सजदा कर सकता है या नहीं?

उत्तर: तरावीह हो या कोई भी नमाज़, अगर आयत-ए-सजदा पढ़ी जाए तो फौरन सजदा वाजिब है। तीन आयतों से ज़्यादा देर लगाना गुनाह है। वल्लाहु तआला आलम।

पृष्ठ 239/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

(۲) اگر باوضو مصلے پر تلاوت کرتا ہو اور کلامِ مجید سامنے رکھا ہو اُس وقت لفظِ سجدہ آئے تو کلامِ مجید علیحدہ رکھ کر سجدہ کرنا چاہئے یا اور کسی طرح سے، اور اگر علیحدہ رکھا جائے تو بند کرکے یا کھلا ہوا؟ بینوا توجروا

الجواب: (۱) بعد کو بھی سجدہ اسی طرح کرنا ہوگا جیسا اس وقت کیا جاتا، یہ نیت ہر وقت کرنی ہوتی ہے کہ تلاوت کے سبب جو سجدہ مجھ پر واجب ہوا اُسے ادا کرتا ہوں، یہ سمجھ کر اللہ اکبر کہتا ہوا کھڑے سے سجدہ میں جائے پھر اللہ اکبر کہہ کر سجدہ سے سر اٹھائے، اس کے سوا اور کوئی نیت زبان سے نہیں کہی جاتی۔ واللہ تعالیٰ اعلم (۲) اس کے لئے کوئی خاص حکم نہیں جو آسان ہو اور قرآنِ عظیم کے ادب کا لحاظ ضرور ہے اور سجدہ میں اس کا سامنے ہونا کوئی حرج نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۵۵: ۱۳۳۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر تراویح پڑھنے میں مقامِ سجدہ آگیا تو کیا امام سجدہ کرسکتا ہے یا نہیں؟

الجواب: تراویح خواہ کسی نماز میں اگر آیتِ سجدہ پڑھے تو فوراً سجدہ واجب ہے تین آیت سے زیادہ دیر لگانا گناہ ہے واللہ تعالیٰ اعلم

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Chapter on the Prayer of the Traveler (Description of the Traveler's Prayer)

Problem 1256: Khalilpur Tehsil Ganoora, Station Berala, Army Sayyid Muhammad Hasan Sahib, Deputy Collector, sent by Azimullah Khan Sahib, 14 Jamadi-ul-Akhira 1313 AH.

The humble servant has started a tour for English employment; it will be a two-month tour. There is an intention to go up to a distance of 34 'kos' (a unit of distance) from the original place. But until now, I have stayed at a distance of less than 30 'kos', and there has always been an intention to return to the original place, and I have been returning. Now, moving from the original place by rail, there is an intention to reach more than 30 'kos', and as part of the tour, I will stay at places for two days or four days. In such a situation, regarding the travel distance, should I perform 'qasr' (shortened prayer) or pray in full like the residents? You are familiar with the circumstances of tours etc. If there is some brevity or generality in the question, please clarify it in the answer and provide a detailed, easy-to-understand response by return mail. Is a 'manzil' (stage/destination) counted as ten or twelve 'kos'? Until now, the full prayers I have performed up to twelve 'kos', was that correct or incorrect? Peace be upon you, and may it end well.

Answer: A tour is usually such that people travel with an intention of eight or ten 'kos' at a time, and after reaching one place, they set off for another. This condition is not considered travel (in terms of Sharia law requiring qasr), even if the total distance becomes a hundred 'kos'. Similarly, if the return from that far-off location is also in the same manner of a tour—moving through nearby places one after another and then returning to the place of residence—there is no 'qasr' in this return either. Yes, if while going or coming, particularly to some place of residence...

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

मुख्य शीर्षक: बाब सलातुल मुसाफ़िर (मुसाफ़िर की नमाज़ का बयान)

मसला १२५६: खलीलपुर तहसील गनूरा, स्टेशन बीराला, लश्कर सैयद मोहम्मद हसन साहब डिप्टी कलेक्टर, प्रेषक अज़ीमुल्ला खां साहब, १४ जमादी-उल-आख़िर १३१३ हिजरी।

बंदा ने अंग्रेज़ी नौकरी के सिलसिले में दौरा शुरू किया है; यह दो महीने का दौरा होगा। असल स्थान से ३४ कोस की दूरी तक जाने का इरादा है। लेकिन अब तक ३० कोस से कम दूरी पर रहा और हमेशा बीच में असल स्थान पर वापस लौटने का इरादा रहा और वापस आता रहा। अब असल स्थान से रेल की सवारी से ३० कोस से ज़्यादा पहुँचने का इरादा है और दौरे के तौर पर कहीं दो दिन, कहीं चार दिन रुकना होगा। ऐसी हालत में सफ़र की दूरी के लिहाज़ से नमाज़ में 'क़स्र' (नमाज़ छोटी करना) करना चाहिए या निवासियों की तरह पूरी नमाज़ पढ़नी चाहिए? आप दौरे आदि की स्थिति से वाकिफ़ हैं। अगर सवाल में कुछ संक्षिप्तता रह गई हो तो उसे जवाब में स्पष्ट कर दें और वापसी डाक से विस्तारपूर्वक व सरल जवाब प्रदान करें। क्या 'मंज़िल' की गिनती दस कोस होती है या बारह कोस? अब तक जो बारह कोस की दूरी तक पूरी नमाज़ पढ़ी, क्या वह सही था या गलत? वस्सलाम।

जवाब: दौरा आमतौर पर जिस तरह होता है कि लोग आठ-आठ या दस-दस कोस की नियत से चलते हैं और एक जगह पहुँचकर फिर दूसरी जगह के लिए रवाना होते हैं, यह 'सफ़र' की स्थिति नहीं है (जिसमें क़स्र वाजिब हो), चाहे इसमें कुल दूरी सौ कोस ही क्यों न हो जाए। इसी तरह अगर उस दूर दराज़ जगह से वापसी भी इसी दौरे के तरीके से हो—यानी एक के बाद एक नज़दीकी मुकामों के इरादे से चलते हुए निवास स्थान के पास पहुँचकर वापस आएँ—तो इस वापसी में भी क़स्र नहीं है। हाँ, अगर जाने या आने में किसी ख़ास निवास स्थान पर...

६७३ का पृष्ठ २४१

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

باب صلوٰۃ المسافر (مسافر کی نماز کا بیان)

مسئلہ ۱۲۵۶: خلیل پور تحصیل گنورا اسٹیشن بیرالہ لشکر سید محمد حسن صاحب ڈپٹی کلکٹر مرسلہ عظیم اللہ خاں صاحب ۱۴ جمادی الآخرہ ۱۳۱۳ھ بندہ نے بتقریب ملازمت انگریزی دورہ شروع کیا ہے دو ماہ دورہ ہوگا، اور اصلی مقام سے ۳۴ کوس کے فاصلہ تک جانے کا ارادہ ہے لیکن اب تک ۳۰ کوس سے کم فاصلہ پر رہا اور ہمیشہ درمیان میں مقام اصلی کی واپسی کا ارادہ رہا اور واپس ہوتا رہا، اب اصلی مقام سے چل کر ریل کی سواری میں ۳۰ کوس سے زیادہ پہنچنے کا ارادہ ہے اور دورہ کے طور پر کہیں دو روز کہیں چار روز ٹھہرنا ہو گا ایسی حالت میں باعتبار مسافت سفر نماز میں قصر کرنا چاہئے یا اہلِ خبا کی طرح پوری نماز پڑھنا چاہئے ، جناب دورہ وغیرہ کے حال سے واقف ہیں اگر سوال میں کچھ اجمال اطلاق رہا ہو تو اس کو جواب میں رفع فرمادیں اور مفصل عام فہم جواب بواپسی ڈاک ارشاد ہو منزل دس ۱۲ کوس کی شمار ہوتی ہے یا نہیں بارہ ۱۲ کوس کی اب تک جو پوری نماز پڑھی یہ صحیح کیا یا غلط؟ والسلام خیر ختام

الجواب: دورہ غالباً جس طور پر ہوتا ہے کہ آٹھ آٹھ دس دس کوس نیت سے چلتے اور ایک جگہ پہنچ کر پھر دوسرے کو روانہ ہوتے ہیں یہ حالت سفر نہیں اگرچہ اس میں سو کوس کا فاصلہ ہو جائے، یو نہی اگر اُس موضع بعید سے واپسی بھی اسی طریق دورہ ہو کہ یکے بعد دیگرے قریب قریب مقامات کے قصد سے چلتے ہوئے محل اقامت کے نزدیک آکر پلٹ آئیں تو اس رجوع میں بھی قصر نہیں، ہاں اگر جانے خواہ آنے کیسی محل اقامت بالخصوص ایسی جگہ

Vol. 8 Fatawa Razawiyya

If they set out with the intention of traveling from there for the duration of a journey, then the journey is established and shortening prayers (Qasr) becomes obligatory. Similarly, if a tour ends at a place which is three stages away from the place of residence, and one returns from there in a straight line, then from there to here, it is considered traveling conditions. In Fath al-Qadir it is stated:

Arabic	English Translation
الخليفة ان كان انما قصد الطواف في ولايته فالاظهرانه حينئذ غير مسافر حتى لايقصر الصلوة فى طوافہ كالسائح ١ھ ملخصا ذكره فى باب الجمعۃ مسئلۃ تمصر منى فى الموسم ۔	If the Caliph only intended to tour through his territory, the most apparent view is that he is not a traveler at that time, such that he does not shorten the prayer during his tour, like a wanderer. End of summary. This is mentioned in Fath al-Qadir under the chapter of Friday regarding the issue "Mina becomes a town during the Hajj season." (T)

In 'Ikhtiyar Sharh Mukhtar' and 'Khizaniyat al-Muftin', it is stated:

Arabic	English Translation
الخليفة اذا سافر يقصر الصلوة الا اذا طاف فى ولايته ٢۔	When the Caliph travels, he shortens the prayer, unless he is touring within his province. (T)

In 'Fatawa Bazzaziyya', it is stated:

Arabic	English Translation
خرج الامير مع الجيش الطلب العد ولا يقصر وان طال سيره وكذا اذا خرج لقصد مصدرون مدة سفر ثم منه الى اخ كذلك لعدم نية السفر ٣۔	If the commander set out with the army to seek the enemy, he does not shorten [the prayer] even if his journey is long. Similarly, there is no shortening in this case too, when he set out towards a destination less than the travel duration, then from there to another likewise, because of the lack of intention for travel. (T)

In the same source, it is stated: "And upon returning, if it is for the duration of travel, they shorten [the prayer]."[4] And in the case of returning, if it is a travel distance, then shorten the prayer. (T)

---

1. Fath al-Qadir, Chapter on Friday Prayer, published by Nooria Razawiyya, Sukkur, Sindh, 26/2
2. Khizaniyat al-Muftin

3. Fatawa Bazzaziyya on the margin of Al-Fatawa al-Hindiyya, the twenty-second [section] on travel, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 14/7
4. Fatawa Bazzaziyya on the margin of Al-Fatawa al-Hindiyya, the twenty-second [section] on travel, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 14/7

खंड 8 फ़तावा रज़विया

यदि वे वहां से यात्रा की अवधि के संकल्प के साथ चलें, तो यात्रा सिद्ध हो जाएगी और नमाज़ कम करना (क़स्र) वाजिब होगा। इसी प्रकार यदि कोई दौरा किसी ऐसे स्थान पर समाप्त हुआ जहाँ से निवास स्थान तीन मंज़िल की दूरी पर है, और अब सीधी रेखा में वहां से वापस लौटें, तो भी वहां से यहाँ तक यात्रा की स्थिति मानी जाएगी। 'फ़तह अल-क़दीर' में लिखा है:

अरबी	हिंदी अनुवाद
الخليفة ان كان انما قصد الطواف في ولايته فالاظهرانه حينئذ غير مسافر حتى لايقصر الصلوة فى طوافہ كالسائح ١ھ ملخصا ذكرہ فى باب الجمعۃ مسئلۃ تمصر منى فى الموسم ۔	यदि समय का शासक अपने राज्य का दौरा करने के इरादे से यात्रा करे, तो वह मुसाफ़िर (यात्री) नहीं होगा, यहाँ तक कि वह एक पर्यटक की तरह नमाज़ में क़स्र नहीं कर सकता। सारांश समाप्त। इसे फ़तह अल-क़दीर के लेखक ने जुमे के अध्याय में इस मुद्दे के तहत उल्लेख किया है कि "हज के मौसम में मिना एक शहर बन जाता है"। (त)

'इख़्तियार शरह मुख़्तार' और 'ख़ज़ानियतुल मुफ़्तीन' में है:

अरबी	हिंदी अनुवाद
الخليفة اذا سافر يقصر الصلوة الا اذا طاف فى ولايته ۲۔	जब शासक यात्रा पर निकले तो वह क़स्र करेगा, सिवाय उस स्थिति के जब वह अपने प्रांत के दौरे पर हो, तब वह क़स्र नहीं कर सकता। (त)

'फ़तावा बज़्ज़ाज़िया' में है:

अरबी	हिंदी अनुवाद
خرج الامير مع الجيش الطلب العد ولا يقصر وان طال سيره وكذا اذا خرج لقصد مصدرون مدة سفر ثم منه الى اخ كذلك لعدم نية السفر ۳۔	यदि सेना का सेनापति शत्रु की खोज में सेना के साथ निकला, तो वह क़स्र न करे, भले ही उसकी यात्रा कितनी ही लंबी क्यों न हो। और इसी तरह इस मामले में भी क़स्र नहीं है, जब वह यात्रा की अवधि से कम दूरी के किसी शहर के इरादे से निकला, फिर वहां से दूसरे ऐसे शहर की ओर चला जो यात्रा की अवधि से कम दूरी पर था, क्योंकि उसमें यात्रा का इरादा नहीं था। (त)

इसी में है: "और वापसी के मामले में यदि यात्रा की अवधि जितनी दूरी है, तो वे क़स्र करें।"[4] और वापसी की सूरत में अगर यात्रा की अवधि है, तो नमाज़ में क़स्र कर लें। (त)

---

1. फ़तह अल-क़दीर, बाब सलातुल जुमा, प्रकाशक: नूरिया रज़विया, सुक्कुर, सिंध, 26/2
2. ख़ज़ानियतुल मुफ़्तीन
3. फ़तावा बज़्ज़ाज़िया, अल-फ़तावा अल-हिन्दिया के हाशिये पर, बाइसवाँ भाग यात्रा पर, प्रकाशक: नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 14/7
4. फ़तावा बज़्ज़ाज़िया, अल-फ़तावा अल-हिन्दिया के हाशिये पर, बाइसवाँ भाग यात्रा पर, प्रकाशक: नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 14/7

کے عزم پر چلیں جو وہاں سے مدت سفر پر ہو تو سفر متحقق اور قصر واجب ہوگا اسی طرح اگر دورہ کسی ایسے مقام پر ختم ہوا جہاں سے محل اقامت تین منزل ہے اب بخطِ مستقیم وہاں کو پلٹے تو بھی وہاں سے یہاں تک حلات سفر ہے، فتح القدیر میں ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
الخلیفة ان کان انما قصد الطواف في ولایته فالاظهرانه حینئذ غیر مسافر حتی لایقصر الصلوة فی طوافه کالسائح ۱ھ ملخصا ذکره فی باب الجمعة مسئلة تمصر منی فی الموسم ۔	حاکم وقت اپنی مملکت میں دورہ کرنے کی نیت سے سفر کرے تو وہ مسافر نہ ہوگا حتی کہ وہ سیاحت کرنے والے کی طرح نماز میں قصر نہیں کر سکتا اھ ملخصا، اسے صاحب فتح القدیر نے باب الجمعہ مسئلہ "منی موسم حج میں شہر بن جاتا ہے" کے تحت ذکر کیا ہے (ت)

اختیار شرح مختار و خزانیۃ المفتین میں ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
الخلیفة اذا سافر یقصر الصلوة الا اذا طاف فی ولایته ۲۔	حاکم جب سفر کرے تو وہ قصر کرے گا مگر اس صورت میں جب وہ دورہ کررہا ہو تو پھر قصر نہیں کر سکتا (ت)

فتاوی بزازیہ میں ہے :

عربی متن	اردو ترجمہ
خرج الامیر مع الجیش الطلب العد ولا یقصر وان طال سیره	امیر لشکر کے ساتھ دشمن کی طلب کے لئے نکلا تو قصر نہ کرے اگرچہ اس کا سفر کتنا ہی طویل ہو اور اسی طرح اس

عربی متن	اردو ترجمہ
وکذا اذا خرج لقصد مصدرون مدة سفر ثم منه الی اخ کذلك لعدم نیة السفر ۳۔	صورت میں بھی قصر نہیں ، جب وہ مدت سفر سے کم کے ارادے سے نکلا پھر وہاں سے دوسرے ایسے شہر کی طرف چلا جو مدت سفر سے کم مسافت تھا کیونکہ اس میں نیت سفر نہ تھی۔ (ت)

اسی میں ہے : وفی الرضوع لو من مدة سفر قصر وا ۴۔ اور رجوع کی صورت میں اگر مدت سفر ہے تو نماز میں قصر کر لیں (ت)

---

1 فتح القدیر باب صلوۃ الجمعہ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر سندھ ۲/۲۶ 2 خزانیۃ المفتین 3 فتاوی بزازیہ علی ہامش الفتاوی الہندیہ الثانی والعشرون فی السفر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۷/۱۴

4 فتاوی بزازیہ علی ہامش الفتاوی الہندیہ الثانی والعشرون فی السفر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۷/۱۴

Fatawa Razawiyya Volume 8

I say, and success is through Allah (t. - I say with the help of Allah Almighty): The verification of the position is that for the verification of a Shari'i journey, neither mere travel without intention is sufficient, nor intention alone without travel. Rather, a combination of both is necessary, as indicated by travelogues as a whole and as explained in Khizana al-Muftin and others (t. - as the texts of books bear witness to this and it has been described in Khizana al-Muftin etc.). And by intention (niyyah), it is meant an immediate (fil-haal) intention combined with action concurrent with travel, which is called 'azm (resolve).

| As indicated by their collective use of the word 'haal' (present state) | As all jurists (fuqaha) expressing it with the word 'haal' points towards this, therefore | | in defining a traveler as someone who leaves the settled area of their home with the intention | the definition of a traveler has been made such: every person who for the intention of a three-day journey | | of a three-day journey. | leaves their settled area (t). |

Not an intention for the future (istiqbal), which is unanimously (bi-l ijma') insufficient.

| Like one who sets out intending to go to a nearby village, intending from home to | For example, that person who sets out with the intention of a nearby village and their | | initiate a long journey after that; he will certainly not be | intention was that after this village they will travel to a far city, then | | a traveler during his journey to that [nearby village]. | now in this setting out they will certainly not be a traveler. (t) |

And the intention reaches its end upon reaching its primary intended goal, because the 'ghaya ma hi ghayatul-lah' (the end for which it is becoming an end. t) is posterior in existence, and for movement there is no persistence after existence. So after that, if there is a movement towards another objective, then that is a subsequent travel and a subsequent intention. And it does not reach the end before arrival, even if stillness and descent intervene. Therefore, if someone meets [another] at any stage, the one who has descended will say 'I was going to such and such place', so that they are joined, he met them, or met them on the way while going. So that will never be a case of multiple varied ends concurrent with the first partial focus with a specific origin and a specific end, the determination of which is necessary for its identification. Rather, it is only the intention of the first end in the present (fil-haal), and if there is a second, it is in the future (fil-maal and istiqbal), even if the cause of setting out was the consideration of both matters. In this specific travel, focus

towards one side is one thing and the thought of going somewhere in the heart is another. The second includes the future intention which will be expressed as 'I will go there too' or 'I have to go there via here'. And the first is specific to that which is the end of this specific partial travel, upon the achievement of which it will end. A clear proof for this is the issue of the 'Afaqi' (someone from outside the Miqat boundaries) who sets out with the intention of attending Makkah al-Muazzama without wearing Ihram; crossing the Miqat is forbidden for him. If he seeks permissibility, scholars say the legal stratagem (hila) is to intend a place between the Haram and the Miqat, such as Jeddah etc., so that upon reaching there, he joins its people. And now going to Makkah al-Muazzama will be from within the Miqat, not from home. Now this is for the Miqat of Nusk. In Tanwir al-Absar and Durr al-Mukhtar it is stated:

| An Afaqi enters the orchard, meaning a place within the Hill area | If a foreigner (Afaqi) due to some need [enters] the orchard (of Miqat) |

फतावा रज़विया जिल्द 8

मैं कहता हूँ, और सफलता अल्लाह की ओर से है (त. - मैं अल्लाह तआला की मदद से कहता हूँ): स्थिति का शोध यह है कि शरीयत के अनुसार यात्रा के प्रमाण के लिए न तो बिना इरादे के केवल घूमना काफी है और न ही बिना यात्रा के केवल इरादा। बल्कि दोनों का मिलन आवश्यक है, जैसा कि सभी यात्रा वृत्तांतों द्वारा सूचित किया गया है और 'खज़ाना-उल-मुफ़्तीन' आदि में विस्तार से बताया गया है (त. - जैसा कि इस पर किताबों के कथन साक्षी हैं और इसे खज़ाना-उल-मुफ़्तीन वगैरह में बयान किया गया है)। और इरादे (नीयत) से तात्पर्य वर्तमान में (फ़िल-हाल) क्रिया के साथ जुड़े हुए उस संकल्प से है जो यात्रा के साथ-साथ हो, जिसे 'अज़्म' कहा जाता है।

| जैसा कि सभी के'हाल' शब्द के प्रयोग से सिद्ध होता है | जैसा कि सभी न्यायविदों (फ़ुक़हा) का 'हाल' शब्द से इसे व्यक्त करना इस पर प्रमाण है, अतः | | मुसाफ़िर की परिभाषा में: वह व्यक्ति जो अपनी आबादी से बाहर निकल जाए | मुसाफ़िर की परिभाषा इस प्रकार की गई है: हर वह व्यक्ति जो तीन दिन की यात्रा | | तीन दिन की यात्रा के इरादे से। | के इरादे से अपनी आबादी से निकल जाए (त)। |

भविष्य (इस्तक़बाल) का इरादा नहीं, क्योंकि सर्वसम्मति (इजमा) से यह पर्याप्त नहीं है।

| जैसे कि कोई व्यक्ति किसी पास के गाँव जाने के इरादे से निकला और घर से ही | जैसे वह व्यक्ति जो किसी पास के गाँव के इरादे से निकला और उसकी | | उसकी नीयत यह थी कि उस गाँव के बाद वह दूर की यात्रा करेगा; तो वह | नीयत यह थी कि उस गाँव के बाद वह किसी दूर के शहर की यात्रा करेगा तो | | उस [गाँव] तक की यात्रा में निश्चित रूप से मुसाफ़िर नहीं होगा। | अब वह इस निकलने में निश्चित रूप से मुसाफ़िर न होगा। (त) |

और नीयत अपने मुख्य उद्देश्य तक पहुँचकर समाप्त हो जाती है क्योंकि 'ग़ायत मा ही ग़ायतुल-लह' (अंत जिसके लिए अंत बन रहा है। त) अस्तित्व में बाद में आता है, और गति के लिए अस्तित्व में आने के बाद स्थायित्व नहीं है। तो उसके बाद अगर दूसरे उद्देश्य की ओर प्रस्थान हो तो वह दूसरी यात्रा और दूसरा इरादा है। और अंत तक पहुँचने से पहले इरादा समाप्त नहीं होता चाहे बीच में रुकना और उतरना ही क्यों न हो। इसलिए, यदि किसी पड़ाव पर कोई व्यक्ति मिले, उतरने वाला कहेगा 'मैं फलाँ जगह जा रहा था', ताकि वे मिल जाएँ उससे मुलाकात हुई या जाते हुए रास्ते में मिल गया। तो वह कभी भी एक निश्चित उद्गम और निश्चित अंत वाले कई अलग-अलग अंतों का मामला नहीं होगा

जिसका निर्धारण उसकी पहचान के लिए आवश्यक है। बल्कि वर्तमान में (फ़िल-हाल) केवल पहले अंत का इरादा है, और यदि दूसरा है तो वह भविष्य (फ़िल-माल और इस्तक़बाल) में है, भले ही निकलने का कारण दोनों बातों का ध्यान रखना हो। इस विशेष यात्रा में किसी ओर ध्यान होना एक बात है और दिल में कहीं जाने का ख्याल दूसरी बात। दूसरा भविष्य के इरादे को भी शामिल करता है जिसे इस तरह व्यक्त करेंगे 'वहाँ भी जाऊँगा' या 'यहाँ होकर वहाँ जाना है'। और पहला विशेष रूप से उसी के लिए है जो इस विशेष आंशिक यात्रा का अंत है, जिसे प्राप्त करने पर यह समाप्त हो जाएगी। इस पर स्पष्ट प्रमाण 'आफ़ाकी' (मीक़ात की सीमाओं से बाहर का व्यक्ति) का मुद्दा है जो बिना एहराम बांधे मक्का मुअज़्ज़मा की हाज़िरी के इरादे से चला; मीक़ात से आगे बढ़ना उसके लिए हराम है। यदि वह अनुमति चाहता है, तो विद्वान कहते हैं कि कानूनी उपाय (हीला) यह है कि हरम और मीक़ात के बीच किसी स्थान, जैसे जेद्दा आदि का इरादा करे ताकि वहाँ पहुँचकर वह वहाँ के लोगों में शामिल हो जाए। और अब मक्का मुअज़्ज़मा जाना मीक़ात के भीतर से होगा न कि घर से। अब यह नुसुक (हज/उमराह) की मीक़ात के लिए है। तनवीरुल अबसार और दुर्रे मुख्तार में है:

| आफ़ाकी बगीचे में प्रवेश करता है यानी हिल्ल के क्षेत्र में | अगर कोई विदेशी (आफ़ाकी) किसी ज़रूरत के कारण बगीचे (मीक़ात के) |

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اقول: وباللہ التوفیق (میں اللہ تعالٰی کی مدد سے کہتا ہوں۔ت) تحقیق مقام یہ ہے کہ تحقیق سفر شرعی کے لئے نہ مجرد سیر بے قصد کافی نہ تنہا قصد بے سیر بلکہ دونوں کا اجتماع ضرور کما تفیدہ الاسفار قاطبۃ وبینہ فی خزانۃ المفتین وغیرھا (جیسا کہ اس پر عبارات کتب شاہد ہیں اور اسے خزانہ المفتین وغیرہ میں بیان کیا ہے۔ ت) اور قصد سے مراد فی الحال مستجمع فعل مقارن سیر ہے جسے عزم کہتے ہیں

| کما یدل علیہ تعبیرھم جمیعا بلفظۃ الحال فی | جیسے کہ تمام فقہاء کا لفظِ حال سے تعبیر کرنا اس پر دال ہے لہٰذا | | حد المسافر بمن جاوز عمران موطنہ قاصدا | مسافر کی تعریف یوں کی گئی ہے ہر وہ شخص جو تین دن کے سفر | | مسیرۃ ثلاثۃ ایام۔ | کے ارادے سے اپنی آبادی سے نکل جائے (ت) |

نہ قصد فی الاستقبال کہ بالاجماع کافی نہیں

| کمن خرج قاصدا قریۃ قریبۃ ومن بیتہ ان | مثلاً وہ شخص جو کسی قریبی قریہ کے ارادے سے نکلا اور اس کی | | ینشئی بعدھا سفرا الی بعید فانہ لایکون فی | نیت یہ تھی کہ اس قریہ کے بعد وہ کسی بعید شہر کا سفر کرے گا تو | | مسیرہ الیھا مسافرا قطعاً۔ | اب وہ اس نکلنے میں قطعاً مسافر نہ ہوگا۔ (ت) |

اور نیت اپنی غایت مقصودہ بالذات پر پہنچ کر منتہی ہو جاتی ہے کہ غایت ماھی غایۃ لہ (غایت جس کے لئے غایت بن رہی ہے۔ت) سے متاخر فی الوجود ہے اور حرکت کے لئے بعد وجود بقا نہیں، تو اس کے بعد اگر دوسرے مقصود کی طرف نہضت ہو تو وہ سیرِ آخر و قصدِ آخر ہے اور

قبل وصول منتہی نہیں ہوتی اگر چہ سکون و نزول متخلل ہو، لہٰذا اگر کسی منزل میں کوئی شخص ملے نازل کہے گا میں فلاں جگہ جاتا تھا کہ وہ ملایا جاتے ہیں اس سے ملاقات ہوئی یا جاتے ہوئے راہ میں مل گیا تو وہ نہایات مختلفہ کا قصہ مقارن اول توجہ جزئی متعدد بمبدء معین ومنتہائے معین میں کہ ان کا تعین اسکے تشخص کو لازم ہے ہر گز نہ ہوگا بلکہ صرف غایت اولیٰ ہی کا قصد فی الحال اور ثانیہ کا ہو تو فی المال و الاستقبال اگرچہ باعث علی الخروج لحاظ امرین ہو اس سیر خاص میں کسی طرف توجہ اور چیز اور دل میں کہیں جانے کا خیال اور چیز، ثانی قصد مستقبل کو بھی شامل جسے یوں تعبیر کریں گے وہاں بھی جاؤں گا یا یہاں ہو کر وہاں جانا ہے اور اول خاص اسی کے لئے ہے جو اس سیر جزئی مخصوص کا منتہی ہے جس کے حصول پر یہ منتہی ہو جائے گی اس پر دلیل واضح مسئلہ آفاقی ہے جو بقصد حاضری مکہ معظمہ چلا بے احرام باندھے، میقات سے تجاوز اسے حرام ہے، اگر حلت چاہے تو علماء فرماتے ہیں حیلہ یہ ہے کہ بین الحرم والمیقات کسی مقام مثلاً جدہ وغیرہ کا قصد کرے کہ وہاں پہنچ کر اس کے اہل سے ملتحق ہو جائے گا اور اب مکہ معظمہ کو جانا داخل میقات سے ہوگا نہ کہ گھر سے، اب اس میقاتِ نسک کے لئے ہے، تنویر الابصار و در مختار میں ہے:

| دخل افاقي البستان ای مکانا من الحل | اگر غیر ملکی کسی حاجت کی وجہ سے بستان (میقات کے |

Fatawa-e-Razawiyya - Volume 8

[Arabic Text]: Entered the Miqat for a need he intended, and intending a duration of stay is not a condition according to the Madhhab, let alone entering Makkah without Ihram, and his timing is Al-Bustan, and there is nothing upon him because he has joined its people. This is a ruse for an outsider who wants to enter Makkah without Ihram. (1) [Urdu Translation]: If one enters a place within the 'Hill' (area between Miqat and Haram) intentionally, then according to the school of thought, intending a specific duration of stay is also not a condition. Now, entering Makkah without Ihram is permissible for him. His Miqat is 'Al-Bustan', and nothing (penalty) will be mandatory upon him because he has joined the local people. This is a legal method (hila) for an outsider who intends to enter Makkah without Ihram. (T)

Also, in the same [book] before the section on Ihram, it is mentioned: [Arabic Text]: If he intended a place from the 'Hill' like Khulais and Hadda, it is permissible for him to pass it without Ihram. When he arrives there, he is joined with its people, so he can enter Makkah without Ihram, and it is a ruse for whoever intends that, except for one commanded for Hajj, [as it would be] opposition. (2) [Urdu Translation]: If someone intends to go to a place in 'Hill', for example Khulais, then it is permissible to enter without Ihram. When he reaches there, he becomes associated with the local people. Now, entering Makkah without Ihram will be permissible for him. This legal method is for every person who intends to enter Makkah without Ihram. However, if Hajj is an obligation, then it is not permissible; in this case, it would lead to opposition of Sharia commands. (T)

In Radd al-Muhtar, it is stated: [Arabic Text]: Intended a place from the 'Hill', meaning his primary intention, as if he intended it for buying or selling, and when he finishes from it, he enters Makkah secondly. (3) [Urdu Translation]: "Intended a place in 'Hill'", meaning primary intention, for example, intended to buy or sell. When he finishes from this work, then he can enter Makkah with a second intention. (T)

In Bahr al-Raiq, it is stated: [Arabic Text]: Because he did not initially intend to enter Makkah, but rather intended Al-Bustan. They said: This is a ruse for an outsider when he wants to enter Makkah without Ihram. [Urdu Translation]: Because initially he did not intend to enter Makkah; his intention was 'Al-Bustan'. Jurists have said this is a legal method for an outsider who wants to enter Makkah without Ihram.

Footnotes: 1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Offences, published by Mujtabai Delhi, 1/80 2. Durr al-Mukhtar, Book of Hajj, published by Mujtabai Delhi, 1/162 3. Radd al-Muhtar, Book of Hajj, published by Mustafa al-Babi Egypt, 2/167

फ़तावा-ए-रज़विया - जिल्द 8

[अरबी पाठ]: किसी ज़रुरत के लिए मीक़ात में प्रवेश किया, और मज़हब के अनुसार ठहरने की अवधि की नीयत शर्त नहीं है, मक्का में बिना एहराम प्रवेश करना तो दूर की बात है, और उसका वक़्त अल-बुस्तान है, और उस पर कुछ भी वाजिब नहीं है क्योंकि वह वहां के निवासियों में शामिल हो गया है। यह उस बाहरी व्यक्ति (आफ़ाकी) के लिए एक हीला (कानूनी उपाय) है जो बिना एहराम के मक्का में प्रवेश करना चाहता है। (1)

इसी तरह, उसी में एहराम के अध्याय से पहले है: [अरबी पाठ]: यदि उसने 'हिल' के किसी स्थान जैसे खुलैस या हद्दा का इरादा किया, तो उसके लिए बिना एहराम के वहां से गुज़रना जायज़ है। जब वह वहां पहुँच गया तो वहां के लोगों के साथ जुड़ गया, अतः उसके लिए बिना एहराम मक्का में प्रवेश करना जायज़ है। यह हर उस व्यक्ति के लिए हीला है जो इसका इरादा रखे, सिवाय उस व्यक्ति के जिसे हज का आदेश हो, क्योंकि यह उल्लंघन होगा। (2) उर्दू अनुवाद: अगर 'हिल' में किसी जगह, मिसाल के तौर पर खुलैस का इरादा किया, तो अब बिना एहराम प्रवेश जायज़ है। जब वह वहां पहुँच गया तो वहां के लोगों से मिल गया। अब मक्का में बिना एहराम प्रवेश जायज़ होगा। यह हीला हर उस शख्स के लिए है जो बिना एहराम मक्का जाने का इरादा रखे। अलबत्ता अगर हज फ़र्ज़ होने का इरादा हो, तो फिर जायज़ नहीं है; इस सूरत में शरीअत के हुक्मों की मुखालफत लाज़िम आएगी। (त)

रद्दुल मुहतार में है: [अरबी पाठ]: 'हिल' के किसी स्थान का इरादा किया, यानी उसका प्राथमिक इरादा, जैसे कि उसने ख़रीदने या बेचने का इरादा किया, और जब वह उससे फ़ारिग हो जाए तो दोबारा मक्का में प्रवेश करे। (3) उर्दू अनुवाद: "हिल में किसी स्थान का इरादा किया" यानी प्राथमिक इरादा, जैसे ख़रीद-ओ-फरोख्त का इरादा किया। जब इस काम से फ़ारिग हो गया तो अब मक्का में दूसरे इरादे से दाखिल हो सकता है। (त)

बहरुर राईक़ में है: [अरबी पाठ]: क्योंकि उसने शुरू में मक्का में प्रवेश करने का इरादा नहीं किया था, बल्कि उसका इरादा अल-बुस्तान था। फ़ुक़हा ने कहा: यह उस बाहरी व्यक्ति के लिए हीला है जब वह बिना एहराम मक्का में प्रवेश करना चाहता है। उर्दू अनुवाद: क्योंकि उसने शुरुआत में मक्का में दाखिल होने का इरादा ही नहीं किया था, उसका इरादा तो बुस्तान था। फ़ुक़हा (धर्मशास्त्री) ने कहा है कि यह उस आफ़ाकी (बाहरी) के लिए हीला है जो मक्का में बिना एहराम दाखिल होना चाहता है।

पाद-टिप्पणियां: 1. दुर्रे मुख्तार, बाबू अल-जिनायात, मुतबूआ मुज्तबाई दिल्ली, 1/80 2. दुर्रे मुख्तार, किताबुल हज, मुतबूआ मुज्तबाई दिल्ली, 1/162 3. रद्दुल मुहतार, किताबुल हज, मुतबूआ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/167

पृष्ठ 244 का 673

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

[عربی متن]: داخل لمیقات لحاجة قصدها ونية مدة الاقامة ليست بشرط على المذهب بله دخول مكة غير محرم ووقته البستان ولاشيئى عليه لانه التحق بأهله وهذه حيلة لافاقى يريد دخول مكة بلا احرام - 1 [اردو ترجمہ]: اندر حل میں ایک جگہ ہے) میں قصداً داخل ہوا تو وہاں مذہب کے مطابق مدتِ اقامت کی بھی نیت شرط نہیں، اب اس کے لئے بغیر احرام مکہ کا داخلہ جائز ہے اور اس کا میقات وہ بستان ہے، اور اس پر کوئی شئے لازم نہ ہوگی کیونکہ وہ وہاں کے اہل کے ساتھ ملا ہے اور یہ اس غیر ملکی کے لئے حیلہ ہے جو بغیر احرام کے مکہ میں داخل ہونے کا ارادہ رکھتا ہو۔ (ت)

نیز اسی میں قبیل فصل احرام ہے: [عربی متن]: لو قصد موضعاً من الحل كخليص وحدة حل له مجاوزته بلا احرام فأذا حل به التحقق بأهله فله دخول مكة بلا احرام وهو الحيلة لمريد ذلك الالمأمور بالحج المخالفة 2 [اردو ترجمہ]: اگر حل میں کسی جگہ مثلاً خلیص کا ارادہ رکھتا کیا تو اب بغیر احرام داخلہ جائز ہے اور وہ جب وہاں پہنچ گیا تو وہاں اہل سے لاحق ہو گیا تو اب مکہ میں بغیر احرام داخلہ جائز ہوگا اور یہ حیلہ ہر اس شخص کے لئے جو مکہ کا ارادہ بغیر احرام کے کرے البتہ اگر حج فرض کا ارادہ ہو پھر جائز نہیں اس صورت میں احکام شرع کی مخالفت لازم آئے گی۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے: [عربی متن]: قصد موضعاً من الحل ای قصد اولیاً كما اذا قصده لبيع او شراء وانه اذا فرغ منه يدخل مكة ثانياً 3 [اردو ترجمہ]: "حل میں کسی مقام کا ارادہ کیا" یعنی قصد اولیٰ مثلاً خرید یا فروخت کا ارادہ کیا جب اس عمل سے فارغ ہو گیا تو اب مکہ میں قصد ثانی سے داخل ہو سکتا ہے۔ (ت)

بحر الرائق میں ہے: [عربی متن]: لانه لم یقصد اولا دخول مکة وانما قصد البستان، قالوا ولهذه حیلة الآفاقي اذا اراد ان یدخل مکة بغیر احرام [اردو ترجمہ]: کیونکہ اس نے اوّلاً دخول مکہ کا ارادہ ہی نہیں کیا تھا اس کا ارادہ تو بستان تھا، فقہاء نے کہا ہے یہ اس آفاقی کے لئے حیلہ ہے جو مکہ میں بغیر احرام داخل

حواشی: 1 در مختار باب الجنایات مطبوعہ مجتبائی دہلی ۸۰/۱ 2 در مختار کتاب الحج مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱۶۲/۱ 3 ردالمحتار کتاب الحج مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱۶۷/۲

Fatawa Razvia, Volume 8

He intends to enter Khalis, for example, then it is permissible for him to pass Rabigh, which is the Miqat for the Syrians and Egyptians, opposite to Al-Juhfah, etc.[1] | [If one] intends to be [there], then let him intend to enter Khalis, for instance. For him, it is permissible to pass through Rabigh without Ihram, which is the Miqat for the Syrian and Egyptian people and is opposite Juhfah, etc. (T)

In the same source, before the chapter on Ihram, it says: When an Afaqi (one from outside the Miqat) intends to go to a place in the Hill area like Khalis, it is permissible for him to cross the Miqat without being in Ihram. This is a legal way for anyone who wants to enter Makkah without Ihram from the Miqat. However, it is appropriate that this way should not be permissible for one commanded to perform Hajj, because then his journey would not be for Hajj.[2] | When an Afaqi intends to go to Khalis etc. in the Hill area, it is permissible for him to pass the Miqat without Ihram. This is a strategy for everyone who wants to go to Makkah from the Miqat without Ihram, but this strategy is not permissible for the person on whom Hajj is obligatory, because now the journey will no longer be for Hajj. (T)

It is mentioned in 'Ashbah': If an Afaqi wants to enter Makkah from the Miqat without Ihram, he should intend to go to another place within the Miqat boundaries, such as Bustan Bani Amir.[3] | If a non-Makkan wants to enter Makkah without Ihram, he should intend another place within the Miqat, for example, the garden of Bani Amir. (T)

It is mentioned in 'Zakhira' and 'Hindiya': The strategy for an Afaqi when he wants to enter Makkah without Ihram from the Miqat is that he should not intend to enter Makkah. Instead, he should intend another place beyond the Miqat but outside the Haram, such as Bustan Bani Amir. Then, when he reaches that place, he may enter Makkah without Ihram.[4] (Summarized) | The strategy for an Afaqi who wants to enter Makkah without Ihram is that he should not intend to enter Makkah, but rather intend some other place within the Miqat boundaries which is outside the Haram area, for example the garden of Bani Amir. (T) So when he reaches there, he may enter Makkah without Ihram. (T)

1. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter: Crossing the Miqat without Ihram, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 3/291.
2. Al-Bahr al-Ra'iq, Book of Hajj, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/318.

3. Al-Ashbah wa al-Naza'ir, Fifth Art from Al-Ashbah wa al-Naza'ir, published by Idara-tul-Quran wal-Uloom-il-Islamia, Karachi, 2/293.
4. Fatawa Hindiyyah, Book of Strategies, Fifth Chapter on Hajj, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 6/393.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

वह उदाहरण के लिए खलीस में प्रवेश करने का इरादा रखता है, तो उसके लिए राबिघ को पार करना जायज़ है, जो कि जहफ़ा के सामने सीरियाई और मिस्रियों के लिए मीक़ात है, इत्यादि।[1] | यदि वह वहाँ होने का इरादा रखता है, तो मान लें कि वह खलीस में प्रवेश करने की नियत करता है। उसके लिए बिना एहराम के राबिघ से गुजरना जायज़ है जो शामी और मिस्री लोगों का मीक़ात है और जहफ़ा के सामने है इत्यादि। (त)

उसी में एहराम के अध्याय से पहले उल्लेख है: जब कोई आफ़ाक़ी (मीक़ात के बाहर रहने वाला) हिल क्षेत्र में खलीस जैसे स्थान पर जाने का इरादा करता है, तो उसके लिए बिना एहराम के मीक़ात को पार करना जायज़ है। यह उन लोगों के लिए एक कानूनी तरीका है जो मीक़ात से बिना एहराम के मक्का में प्रवेश करना चाहते हैं। लेकिन यह तरीका उस व्यक्ति के लिए उचित नहीं होना चाहिए जिसे हज करने का आदेश दिया गया हो, क्योंकि तब उसकी यात्रा हज के लिए नहीं होगी।[2] | आफ़ाक़ी जब हिल में खलीस वगैरह का इरादा करे तो उसके लिए मीक़ात से बिना एहराम के गुज़रना जायज़ है, और यह हर उस शख्स के लिए हीला (तरीका) है जो मीक़ात से मक्का बिना एहराम के जाना चाहता हो लेकिन यह हीला उस शख्स के लिए जायज़ नहीं जिस पर हज फ़र्ज़ है क्योंकि अब का सफ़र हज न रहेगा। (त)

'अशबाह' में है: यदि कोई आफ़ाक़ी बिना एहराम के मीक़ात से मक्का में प्रवेश करना चाहता है, तो उसे मीक़ात की सीमाओं के भीतर किसी अन्य स्थान पर जाने का इरादा करना चाहिए, जैसे कि बुस्तान बनी आमिर।[3] | अगर कोई गैर-मक्की बिना एहराम के मक्का में प्रवेश चाहता है, तो वह मीक़ात के अंदर किसी और जगह का इरादा करे, मिसाल के तौर पर बनी आमिर के बाग़। (त)

'ज़ख़ीरा' और 'हिन्दिया' में है: आफ़ाक़ी के लिए हीला जब वह बिना एहराम के मीक़ात से मक्का में प्रवेश करना चाहता है, यह है कि वह मक्का में प्रवेश करने का इरादा न करे। इसके बजाय, वह मीक़ात से परे लेकिन हरम के बाहर किसी अन्य स्थान का इरादा करे, जैसे कि बुस्तान बनी आमिर। फिर, जब वह उस स्थान पर पहुँच जाए, तो वह बिना एहराम के मक्का में प्रवेश कर सकता है।[4] (संक्षिप्त) | उस आफ़ाक़ी के लिए जो बिना एहराम के मक्का में प्रवेश चाहता है, हीला यह है कि वह मक्का में प्रवेश का इरादा न करे बल्कि मीक़ात के अंदर किसी और जगह का इरादा करे जो हरम

के बाहर हो, मिसाल के तौर पर बनी आमिर के बाग़, (त) तो जब वहाँ पहुँच जाए तो अब मक्का में बिना एहराम दाखिल हो जाए। (त)

1. अल-बहरुल राइक, अध्याय: बिना एहराम के मीक़ात पार करना, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 3/291।
2. अल-बहरुल राइक, हज की किताब, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, 2/318।
3. अल-अशबाह वन-नज़ायर, अल-अशबाह वन-नज़ायर से पांचवीं कला, इदारा-तुल-क़ुरान वल-उलूम-इल-इस्लामिया, कराची द्वारा प्रकाशित, 2/293।
4. फ़तावा हिन्दिया, हीलों की किताब, हज पर पांचवां अध्याय, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर द्वारा प्रकाशित, 6/393।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

فینوی ان یدخل خلیصاً مثلا فلہ مجاوزۃ رابع الذی ھو میقات الشامی والمصری المحاذی للجحفۃ الخ[1] | ہونے کا ارادہ رکھتا ہو پس وہ مثلاً خلیص میں داخل ہونے کی نیت کرے تو اس کے لئے بغیر احرام رابغ سے گزرنا جائز ہے جو شامی اور مصری لوگوں کا میقات اور جحفہ کے مقابل ہے الخ (ت)

اُسی میں قبیل باب الاحرام ہے: الافاقی اذا قصد موضعاً من الحل کخلیص یجوز لہ ان یتجاوز المیقات غیر محرم وھی الحیلۃ لمن ارادان یدخل مکۃ بغیر احرام وینبغی ان لا تجوز ھذہ الحیلۃ للمأمور بالحج لانہ حینئذ لم یکن سفرہ للحج[2] | آفاقی جب حل میں خلیص وغیرہ کا ارادہ کرے تو اس کے لئے میقات سے بغیر احرام کے گزرنا جائز ہے، اور یہ ہر شخص کے لئے حیلہ ہے جو میقات سے مکہ بغیر احرام جانا چاہتا ہو لیکن یہ حیلہ اس شخص کے لئے جائز نہیں جس پر حج فرض ہے کیونکہ اب کا سفر حج نہ رہے گا۔ (ت)

اشباہ میں ہے: اذا اراد الافاقی دخول مکۃ بغیر احرام من المیقات قصد مکاناً اخر داخل المواقیت کبستان بنی عامر[3] | اگر کوئی غیر مکی بغیر احرام دخول مکہ چاہتا ہے تو وہ میقات کے اندر کسی اور جگہ کا ارادہ کئے مثلاً بنی عامر کے بستان۔ (ت)

ذخیرہ و ہندیہ میں ہے: الحیلۃ للافاقی اذا اراد دخول مکۃ من غیر احرام من المیقات ان لا یقصد دخول مکۃ وانما یقصد مکاناً اخر وراء المیقات خارج الحرم نحوبستان بنی عامر ثم اذا وصل ذلک الموضع یدخل مکۃ بغیر احرام[4]۔ (ملخصاً) | اس آفاقی کے لئے جو دخول مکہ بغیر احرام کے چاہتا ہے حیلہ یہ ہے کہ وہ دخول مکہ کا ارادہ نہ کرے بلکہ میقات کے اندر کسی اور جگہ کا ارادہ کرے جو

خارج حرم ہو مثلاً بنی عامر کے بستان ، (ت) تو جب وہاں پہنچ جائے تو اب مکہ میں بغیر احرام داخل ہو جائے۔ (ت)

1. بحر الرائق باب مجاوزة المیقات بغیر احرام مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲۹۱/۳
2. بحر الرائق کتاب الحج مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۳۱۸/۲
3. الاشباہ والنظائر الفن الخامس من الاشباہ والنظائر مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲۹۳/۲
4. فتاوٰی ہندیہ کتاب الحیل الفصل الخامس فی الحج مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۳۹۳/۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

In Maslak al-Mutaqassit, it is stated:

[Box Start] Arabic: The jurists have mentioned a legal artifice (hila) regarding entering the Haram without Ihram: that a person should intend to go to Bustan Bani Amir and then enter Makkah. The reasoning in brief is that he initially intended the Bustan, and his subsequent entry into the Haram is incidental or secondary, which is not harmful. This is similar to an Indian person who intends to go to Jeddah for trade (buying and selling), and it is in his mind that once he is free from that, he will enter Makkah a second time. This is in contrast to someone who comes from India, for example, with the primary intention of Hajj, and intends to enter Jeddah only as a secondary matter, even if he also intends to buy and sell. These quotations end here in brief.

Urdu: The jurists have described this artifice for entering the Haram without Ihram: that the person should intend to go to Bustan Bani Amir, then enter Makkah from there. In brief, the reason is that since he initially intended the Bustan, the subsequent entry into the Haram, being incidental and secondary, cannot be harmful. Just as an Indian person initially intends Jeddah for buying and selling and has it in mind that after finishing he will go to Makkah a second time. This is contrary to a person who comes from India initially with the intention of Hajj and intends to enter Jeddah secondarily, even if he has the intention of buying and selling. (Transliteration ends here with brevity, T). [Box End]

It is evident that when the intention is to visit Makkah al-Mukarramah, then by merely intending for Jeddah, that thought in the heart was by no means negated. Therefore, the scholars describe it with the word 'hila' (artifice) and depict it as an intention to enter Makkah without Ihram. If the intention for Makkah were negated, there would be no basis or context for these statements at all. Yes, it so happened that the intention for Makkah remained in terms of final destination and future outcome, while the primary intention was established for Jeddah, as has passed from Bahr al-Ra’iq, Radd al-Muhtar, and Sharh al-Lubab. On this basis, the honorable scholars have permitted crossing the Miqat without Ihram, even though the thought of Makkah is certainly present from the beginning. Thus, it is proven that when there are very different primary objectives, the concurrent intention specifically applies to the first part, and for the second, there is only that thought of future outcome. As the statement of Mawlana Ali Qari: 'and it should be in his mind that when he is free from it, he will enter Makkah a second time' (meaning he has it in mind that after finishing,

he will go to Makkah a second time, T) has clarified that this intention is not truly an actual intention. Therefore, in al-Dhakirah and al-Hindiyya, even though the description of the problem starts with the phrase 'intended to enter Makkah without Ihram' (intends to enter Makkah without Ihram, T), it uses the words 'that he does not intend to enter Makkah'.

1. Al-Maslak al-Mutaqassit fi al-Mansak al-Mutawassit with Irshad al-Sari, Chapter on crossing the Miqat etc., printed by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 60.
2. Al-Maslak al-Mutaqassit fi al-Mansak al-Mutawassit with Irshad al-Sari, Chapter on crossing the Miqat without Ihram, printed by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, p. 2016.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

'मसलक-ए-मुतक़स्सित' में है:

[बॉक्स प्रारंभ] अरबी: फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने एहराम के बिना हरम में प्रवेश करने के लिए यह हिला (क़ानूनी युक्ति) बयान किया है कि वह व्यक्ति बस्तान बनी आमिर का इरादा करे, फिर वहाँ से मक्का में प्रवेश करे। संक्षेप में कारण यह है कि उसने शुरू में बस्तान का इरादा किया था, और उसके बाद हरम में प्रवेश करना गौण और आकस्मिक है, जो हानिकारक नहीं है। जैसे कि कोई भारतीय व्यक्ति व्यापार (खरीद-बिक्री) के लिए जेद्दा की नियत करके आया हो और उसके मन में हो कि जब वह उससे फ़ारिग हो जाए तो दूसरी बार मक्का में प्रवेश करे। इसके विपरीत वह व्यक्ति जो उदाहरण के तौर पर भारत से शुरू में हज के इरादे से आता है और जेद्दा में प्रवेश का इरादा उसके अनुगामी (गौण) के रूप में रखता है, चाहे वह खरीद-बिक्री का इरादा भी रखता हो। (उद्धरणों का सारांश यहाँ संक्षिप्त रूप में समाप्त हुआ)।

उर्दू: फ़ुक़हा ने बिना एहराम, हरम में प्रवेश करने के लिए यह हिला बयान किया है कि वह व्यक्ति बस्तान बनी आमिर का इरादा करे, फिर वहाँ से मक्का में प्रवेश करे। संक्षेप में कारण यह है कि उसने शुरू में बस्तान का इरादा किया था, इसलिए उसके बाद हरम में प्रवेश करना गौण और आकस्मिक होने के कारण हानिकारक नहीं हो सकता। जैसे कि कोई भारतीय व्यक्ति शुरू में व्यापार (खरीद-बिक्री) के लिए जेद्दा की नियत करके आया हो और ज़हन में था कि फ़ारिग होकर दूसरी बार मक्का चला जाएगा। इसके विपरीत वह व्यक्ति जो हिंदुस्तान से शुरू में हज के इरादे से आता है और वह जेद्दा में प्रवेश का इरादा गौण (अनुगामी) रखता है, चाहे वह खरीद-बिक्री का इरादा रखता हो। (संक्षेप के साथ उद्धरण समाप्त हुए, त)। [बॉक्स समाप्त]

ज़ाहिर है कि जब उसकी नियत मक्का मुअज़्ज़मा की हाज़िरी की है, तो जेद्दा का इरादा कर लेने से दिल का वह विचार हरगिज़ ख़त्म नहीं हुआ। इसीलिए उलेमा इसे 'हिला' शब्द से व्यक्त करते हैं और इसे बिना एहराम मक्का में प्रवेश के इरादे के रूप में चित्रित करते हैं। अगर मक्का का इरादा ख़त्म हो जाता, तो इन कथनों का कोई स्थान या अर्थ ही न होता। हाँ, यह हुआ कि मक्का का इरादा भविष्य और परिणाम के लिहाज़ से रहा, जबकि पहला इरादा जेद्दा के लिए तय हुआ, जैसा कि 'बह्र-उर-राइक़', 'रद्द-उल-मुहतार' और 'शर्ह-ए-लुबाब' के हवाले से गुज़रा। इसी आधार पर उलेमा-ए-किराम ने एहराम के बिना मीक़ात पार करना जायज़ बताया है, हालांकि मक्का का विचार निश्चित रूप से

शुरू से मौजूद है। तो साबित हुआ कि जब दो उद्देश्य अलग-अलग हों, तो तात्कालिक इरादा विशेष रूप से पहले हिस्से के लिए होता है, और दूसरे के लिए वही भविष्य का विचार होता है। जैसा कि मौलाना अली क़ारी के कथन "और उसके मन में हो कि जब वह उससे फ़ारिग हो जाए तो दूसरी बार मक्का में प्रवेश करे" (उसके ज़हन में हो कि वह फ़ारिग होकर दूसरी बार मक्का चला जाएगा, त) ने स्पष्ट कर दिया है कि यह इरादा वास्तव में 'वर्तमान इरादा' नहीं है। इसीलिए 'ज़ख़ीरा' और 'हिन्दिया' में, हालांकि मसले का चित्रण "बिना एहराम मक्का में प्रवेश का इरादा रखता है" (बिना एहराम मक्का प्रवेश का इरादा रखता है, त) शब्दों से शुरू किया गया है, लेकिन बाद में "कि वह मक्का में प्रवेश का इरादा न रखे" शब्द कहे गए हैं।

1. अल-मसलक अल-मुतक़स्सित फ़ी अल-मंसक अल-मुतवस्सित मअ इरशाद अस-सारी, मीक़ात पार करने का अध्याय आदि, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरुत, पृ. 60
2. अल-मसलक अल-मुतक़स्सित फ़ी अल-मंसक अल-मुतवस्सित मअ इरशाद अस-सारी, बिना एहराम मीक़ात पार करने का अध्याय, दार अल-किताब अल-अरबी, बेरुत, पृ. 2016

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسلک متقسط میں ہے :

[Box Start] ذکر الفقہاء فی حیلۃ دخول الحرم بغیر احرام ان یقصد بستان بنی عامر ثم یدخل مکۃ فالوجہ فی الجملۃ ان یقصد البستان قصد الولیاً ولا یضرۃ قصدۃ دخول الحرم بعدہ قصد اضمنیاً او عارضیاً کما اذا قصد ھندی جدۃ لبیع وشراء ولا یکون فی خاطرۃ انہ اذا فرغ منہ ان یدخل مکۃ ثانیاً بخلاف من جاء من الھند مثلاً بقصد الحج اولاً وانہ یقصد دخول جدۃ تبعاً و لو قصد بیعاً و شراء اھ تلك النقول باختصار۔

فقہاء نے بغیر احرام، حرم میں داخل ہونے کے لئے یہ حیلہ بیان کیا ہے کہ وہ شخص بستان بنی عامر کا ارادہ کرے پھر وہاں سے مکہ میں داخل ہو جائے اور فی الجملہ وجہ یہ ہے کہ اس نے اولاً بستان کا ارادہ کیا تھا تو اس کے بعد حرم میں داخل ہونا ضمناً اور عارضی ہونے کی وجہ سے نقصان دہ نہیں ہو سکتا جیسے کہ ہندی شخص اولاً بیع وشرک کے لئے جدہ کی نیت کر کے آیا ہے اور ذہن میں تھا کہ فارغ ہو کر ثانیاً مکہ چلا جائے گا۔ بخلاف اس شخص کے جو ہندوستان سے اولاً حج کے ارادے سے آتا ہے اور وہ جدہ میں دخول کا ارادہ تبعاً رکھتا ہے اگرچہ وہ بیع و شراء کا ارادہ رکھتا ہو اھ اختصار کے ساتھ نقول ختم ہو گئیں ، (ت) [Box End]

ظاہر ہے کہ جب اس کی نیت حاضریِ مکہ معظمہ ہے تو جدہ کا ارادہ کر لینے سے دل کا وہ خیال ہرگز منتفی نہ ہوا و لہذا علماء اسے بلفظ حیلہ تعبیر اور خود ارادہ دخول مکہ بغیر احرام سے تصویر فرماتے ہیں اگر قصد مکہ منتفی ہو جاتا تو ان عبارات کا اصلاً کوئی محل و محمل نہ تھا، ہاں یہ ہوا کہ قصد مکہ باعتبارِ مآل و استقبال رہا، قصد اول جدہ کے لئے قرار پایا جیسا کہ بحر

الرائق و رد المحتار و شرح لباب سے گزرا اسی بنا پر علمائے کرام نے مجاوزتِ میقات بلا احرام جائز فرمائی ہے حالانکہ خیالِ مکہ یقیناً اول سے موجود ہے تو ثابت ہوا کہ جب وہ نہایت مختلف مقصود بالذات ہوں تو قصد مقارن خاص حصہ اولیٰ ہے اور ثانیہ کے لئے وہی مآل و استقبال کا خیال، جیسا کہ عبارت مولا نا علی قاری ویکون في خاطرة انه اذا فرغ منه ان یدخل مکة ثانیاً (اس کے ذہن میں ہو کہ وہ فارغ ہو کر ثانیاً مکہ چلا جائے گا۔ ت) نے روشن کردیا یہ قصد حقیقۃً قصد بالفعل نہیں ۔ و لہذا اسی کو ذخیرہ و ہندیہ میں با آنکہ شروع تصویر مسئلہ بلفظ اراد دخول مکة من غیر احرام (بغیر احرام دخول مکہ کا ارادہ رکھتا ہے ، ت) بلفظ ان لا یقصد دخول مکة

1 المسلک المتقسط فی المنسک المتوسط مع ارشاد الساری، فصل فی مجاوزة المیقات الخ مطبوعہ دار الکتاب العربیہ بیروت ص ۶۰ 2 المسلک المتقسط فی المنسک المتوسط مع ارشاد الساری، فصل فی مجاوزة المیقات بغیر احرام، مطبوعہ دار الکتاب العربیہ بیروت ص ۲۰۱۶

Fatawa Razawiya Volume Eight

...not intend to enter Makkah. (T) expressed as such.

[Arabic Column]: Through this noble research bestowed upon the heart of the weak servant from the grace of the Opener, the All-Knowing, the All-Aware, the Gracious—and praise be to Allah—the objections raised against this stratagem (hiyal) have been dispersed and eliminated. It was a matter in which opinions were conflicted, debate was rife, and men's understandings differed in its resolution. The closest to what I leaned towards was the view of the illustrious Allama al-Qari. He did excellently when he raised an objection based on the consensus of scholars mentioning this stratagem, as the wording of the 'Bab' (chapter) creates an illusion that the matter is specific to one whose desire to enter Makkah arose after entering the garden, while having had no thought of entering the Haram beforehand at all. Conversely, the virtuous Allama Shami in 'Radd al-Muhtar' and 'Minhat al-Khaliq' raised an objection based on the apparent wording of the 'Bab' regarding the collective statements of the wise Imams. Through what we have attained by the grace of our Master, the Sublime and Almighty, it is clear that there is no absolute difficulty or objection, and no contradiction, whether there was no intention of the Haram at all, or it was not the primary intention, or the intention was solely for the garden, while employing the stratagem for one who wishes to enter the Haram without Ihram. Praise be to Allah for clarifying the right path and attaining the goal.

[Urdu Column]: Through this blessed research (which the Opener, All-Knowing, All-Aware, and Gracious Being bestowed upon the heart of this weak servant as an inspiration) – praise be to Allah – the objection raised against this stratagem has been refuted. It was an objection in which opinions were conflicting and there was much debate, and people's minds differed in its answer. The closest to what my mind leaned towards is Allama Ali Qari, and he spoke most excellently in 'Lubab'. When an objection is apparent from the speech of the scholars who frequently mention the stratagem, the wording of 'Lubab' gives the impression that this issue is only for that person who developed a desire to enter Makkah after entering the garden, and previously had absolutely no intention of entering the Haram. Allama Shami in 'Radd al-Muhtar' and 'Minhat al-Khaliq' did the opposite; thus, an objection arose against the collective speech of the Imams from the apparent text of 'Lubab'. By the grace and kindness of Allah Almighty, it has become clear that there is no difficulty or objection in this, and no contradiction, whether the intention for the Haram is not there at all, or it is not the primary intention, or the intention is only for the garden.

For one who wishes to enter the Haram without Ihram using a stratagem, praise be to Allah Almighty for the manifestation of the correct way and the attainment of the goal. (T)

When, by the grace of Allah Almighty, these introductory points were established, the ruling of the matter became clear and manifest. If a person sets out from a residence with the intention of going to a specific place that is three stages away from there, there is no debate about him being a traveler, even if he intends to stay for one day at some intermediate point or location along the way.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

...मक्का में प्रवेश करने का इरादा न करे। (त) इस प्रकार व्यक्त किया गया।

[अरबी कॉलम]: इस महान शोध के माध्यम से जो इस कमज़ोर बंदे के दिल पर फ़त्ताह, अलीम, ख़बीर और लतीफ़ ज़ात-ए-अक़दस की ओर से फ़ैज़ के तौर पर अता हुई—और अल्लाह का शुक्र है—इस हीला (तदबीर) पर उठने वाली आपत्तियां दूर और समाप्त हो गई हैं। यह एक ऐसा मामला था जिसमें राय विभाजित थी, बहस-ओ-तकरार बहुत थी, और इसे सुलझाने में लोगों की समझ अलग-अलग थी। जिस ओर मेरा झुकाव हुआ, उसके सबसे करीब अल्लामा अल-क़ारी का नज़रिया था। उन्होंने 'लुबाब' में बहुत ही बेहतरीन काम किया जब उन्होंने हीला बयान करने वाले विद्वानों की आम सहमति पर आधारित एक आपत्ति उठाई, क्योंकि 'बाब' (अध्याय) के शब्दों से यह भ्रम होता है कि यह मसला केवल उस व्यक्ति के लिए है जिसे बगीचे में प्रवेश करने के बाद मक्का जाने का विचार आया, जबकि उससे पहले उसके मन में हरम में प्रवेश का बिल्कुल भी विचार नहीं था। इसके विपरीत, गुणी अल्लामा शामी ने 'रद अल-मुह्तार' और 'मिन्हात अल-ख़ालिक़' में प्रमुख विद्वानों के सामूहिक कथनों पर 'बाब' के स्पष्ट शब्दों के आधार पर आपत्ति जताई। हमारे मालिक, सुब्हानहु व तआला की कृपा से हमें जो प्राप्त हुआ, उससे यह स्पष्ट है कि इसमें कोई पूर्ण कठिनाई या आपत्ति नहीं है, और कोई विरोधाभास नहीं है, चाहे हरम का इरादा बिल्कुल न हो, या यह प्राथमिक इरादा न हो, या केवल बगीचे का ही इरादा हो, उन लोगों के लिए जो हीला के माध्यम से बिना एहराम के हरम में प्रवेश करना चाहते हैं। सही राह को स्पष्ट करने और लक्ष्य की प्राप्ति पर अल्लाह के लिए स्तुति है।

[उर्दू कॉलम]: इस मुबारक शोध से (जो इस कमज़ोर बंदे के दिल में फ़त्ताह, अलीम, ख़बीर और लतीफ़ ज़ात-ए-अक़दस ने फ़ैज़ के तौर पर अता फ़रमाई) — अल्लाह का शुक्र है — उस आपत्ति का खंडन हो गया जो इस हीला पर की गई थी, जिसमें राय विभाजित थी और बहुत बहस-ओ-तकरार थी और इसके जवाब में लोगों के विचार अलग-अलग थे। जिस ओर मेरा ध्यान गया, उसके सबसे करीब अल्लामा अली क़ारी हैं और उन्होंने 'लुबाब' में बहुत ही बेहतरीन बात कही। जब हीला बयान करने वाले विद्वानों के कलाम से कसरत के साथ आपत्ति ज़ाहिर हुई, तो 'लुबाब' के कलाम से यह भ्रम होता है कि यह मसला केवल उस व्यक्ति के लिए है जिसे बगीचे में प्रवेश करने के बाद मक्का जाने का शौक़ हुआ और उससे पहले हरम में प्रवेश का विचार उसके मन में बिल्कुल नहीं था। अल्लामा शामी ने 'रद अल-मुह्तार' और 'मिन्हात अल-ख़ालिक़' में इसका विपरीत किया, तो 'लुबाब' की ज़ाहिरी इबारत से इमामों के सामूहिक कलाम पर आपत्ति पैदा हो गई। अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ और

मेहरबानी से यह स्पष्ट हो गया कि इसमें कोई कठिनाई और आपत्ति नहीं है और कोई विरोधाभास नहीं है, चाहे हरम का इरादा बिल्कुल न हो या इरादा-ए-अव्वल न हो या केवल बगीचे का ही इरादा हो। उसके लिए जो हीला के साथ बिना एहराम के हरम में दाखिल होना चाहता हो, सही बात के ज़ाहिर होने और मक़सद के हासिल होने पर अल्लाह तआला की हम्द (प्रशंसा) है। (त)

जब अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से ये मुक़द्दमात (प्रस्तावनाएँ) स्थापित हो गईं, तो मसले का हुक्म साफ़ और ज़ाहिर हो गया। यदि कोई व्यक्ति अपने निवास स्थान से किसी ऐसे स्थान के इरादे से चले जो वहाँ से तीन मंज़िल की दूरी पर हो, तो उसके मुसाफ़िर (यात्री) होने में कोई संदेह नहीं है, चाहे वह रास्ते में किसी स्थान पर एक दिन रुकने की नीयत ही क्यों न रखता हो।

पृष्ठ 247/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

دخول مکہ کا ارادہ نہ کرے۔ت) تعبیر فرمایا۔

[عربی کالم]: وبهذا التحقيق الشريف الفائض على قلب العبد الضعيف من فيض الفتاح العليم الخبير اللطيف ولله الحمد طاح وزاح ما كان يورد على هذا الاحتيال من الاشكال الذى اضطربت فيه الاقوال وكثر فيه القيل والقال واختلف فى حله افهام الرجال وكان اقرب من جنح الى ما جنحت اليه العلامة القارئ الجلى الافضال ولقد احسن اذا استشكل بتظافر العلماء على ذكر هذه الحيلة كلام الباب الموهم لاختصاص المسألة بمن حث له قصد مكة بعد دخول البستان ولم يكن فى خاطره دخول الحرم من قبل اصلا وعكس العلامة الفاضل الشامي فى رد المحتار ومنحة الخالق فاستشكل بظاهر الباب ما تظافرت عليه كلمات الائمة اولى الالباب بما وقفنا لامولى سبحانه وتعالى طهران قصد الحرم مطلقا او قصد اوليا او عصر القصد فى البستان مع الاحتيال لمن يريد الحرم بلا احرام والحمد لله على ابانة الصواب واصابة المرام۔

[اردو کالم]: اس مبارک تحقیق (جو اس عبد ضعیف کے دل میں فتاح، علیم، خبیر اور لطیف ذات اقدس نے فیض کے طور پر فرمائی) سے للہ الحمد اس حیلہ پر وارد ہونے والا وہ اعتراض رد ہو گیا جس میں اقوال مضطرب اور کثرت قیل وقال تھی اور اس کے جواب میں لوگوں کے ذہن مختلف تھے اور جس کی طرف میرا ذہن گیا اس کے قریب تر، علامہ علی قاری ہیں اور انھوں نے لباب میں نہایت ہی احسن بات کی جب کثرت کے ساتھ حیلہ بیان کرنے والے علما کے کلام سے اشکال ظاہر کیا تو لباب کے کلام سے یہ وہم ہوتا ہے کہ یہ مسئلہ فقط اس شخص کیلئے ہے جسے دخول بستان کے بعد دخول مکہ کا شوق ہوا اور اس سے پہلے دخول حرم کا قطعاً اس کے ذہن میں نہ تھا علامہ شامی نے ردالمحتار اور منحۃ الخالق میں اس کا عکس کیا تو لباب کی ظاہر عبارت سے ائمہ

کے مجموعی کلام پر اشکال پیدا ہو گیا، اللہ تعالیٰ کی توفیق و مہربانی واضح ہو گیا کہ اس میں کوئی صعوبت اور اشکال نہیں اور کوئی مخالفت نہیں خواہ حرم کا قصد بالکل نہ ہو یا قصد اولیٰ نہ ہو یا قصد بستان کا ہی ہو، اس کے لئے جو حیلہ کے ساتھ حرم میں بغیر احرام کے داخل ہونا چاہتا ہو، صواب کے ظہور اور مقصد کے حصول پر اللہ تعالیٰ کی حمد ہے۔ (ت)

جب بتوفیق اللہ تعالی یہ مقدمات ممہد ہوئے حکم مسئلہ واضح و منکشف ہو گیا آدمی اگر کسی مقام اقامت سے خاص ایسی جگہ کے قصد پر چلے جو وہاں سے تین منزل ہو تو اس کے مسافر ہونے میں کلام نہیں اگرچہ راہ میں ضمنی طور پر اور موضع میں بھی وہ ایک روز ٹھہرنے کی بیت رکھے۔

صفحہ 247 از 673

Fatawa Rizwiya Volume 8

[Arabic Box Text]: "As explained by Al-Mawla Ali Al-Qari in his words: Unlike the one who came from India, for example, with the primary intention of Hajj first, etc." [Urdu Explanation]: As Mulla Ali Qari explained in his own words. Contrary to that person who came from India with the primary intention for Hajj, etc. (T)

However, probably this is not the situation of a tour. In it, especially, the main destination is not just that distant place, nor is the travel specifically intended for it; rather, there is an intention to visit all places and every place is intended for itself. So, although for the sake of travel all are considered, every intention is limited to its own specific partial journey. While going to a nearby place, the concurrent intention is for that itself, and the intention for the distant place is merely in the sense of a thought and future intention. Therefore, when from one place to another the distance of travel (masafat-e-safar) does not exist, essentially no journey with the intention of travel distance is established. Yes, those are several intentions resulting in several journeys, whose collective sum may be more than the travel distance. Finally, did you not see that Allama Bahr, the author of Bahr (may Allah Almighty have mercy on him), did not accept the validity of this legal ruse for the one commanded for Hajj to enter Mecca without Ihram, that when he travels with the intention that 'from here I go to Bustan Bani Amir, then from there I will go to Mecca the Honorable,' then his journey was not for Hajj? It became known that the intended journey is only the primary intention and nothing else. Therefore, it was said in Al-Dhakhira and Al-Hindia: "If he does not intend Mecca" (T). Thus it became clear that the eventual thought of going to a travel distance is not a journey with the intention of travel distance, and the cause of legal (Shari') travel was this very thing which was not established.

[Left Arabic Column]: And with it, it is clear—and praise be to Allah—that what the virtuous Master Ibrahim al-Halabi mentioned in al-Ghuniya, with his text: It may be understood from the example of the Caliph at the beginning of the issue of following, that the Caliph and the Sultan are like others in that when they intend to travel, they become travelers and shorten prayers (qasr). It was said: This is when he is not in his dominion. But if he tours within his dominion, he does not shorten. And the correct view is that there is no difference, because of what preceded from the action of the Prophet (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) and the Rightly Guided Caliphs, that they shortened when they traveled from Medina to Mecca and elsewhere. And the meaning of the one who said...

[Right Urdu Column]: Praise be to Allah, from this it also became clear that what the virtuous Ibrahim al-Halabi said in Ghuniya—that by making the Caliph an example at the beginning of the issue of following, it is understood that in this matter (that when he intends to travel he becomes a traveler and can shorten prayers), the Caliph and Sultan are just like other people—has been said to be when he is not in his own jurisdiction. And if he is touring within his own jurisdiction, then he should not shorten prayers. And the most correct view is that there is no difference, because it was mentioned earlier that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them) used to shorten prayers when they traveled from Medina to Mecca etc. And the one who said "the Caliph in his own..."

[Footnote]: 1 Al-Maslak al-Mutaqassit fi al-Mansak al-Mutawassit, Chapter on crossing the Miqat without Ihram, published by Dar al-Kitab al-Arabiya Beirut, p. 60. Page 248 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

[अरबी बॉक्स]: "जैसा कि अल-मौला अली अल-क़ारी ने अपने शब्दों में स्पष्ट किया: उस व्यक्ति के विपरीत जो भारत से आया, उदाहरण के लिए, पहले हज के प्राथमिक इरादे के साथ, आदि।" [उर्दू व्याख्या]: जैसा कि मुल्ला अली क़ारी ने अपने शब्दों में व्यक्त किया। उस व्यक्ति के विपरीत जो भारत से हज के प्राथमिक इरादे के साथ आया था, आदि। (त)

मगर शायद दौरे (tour) की यह स्थिति नहीं होती। इसमें विशेष रूप से प्राथमिक उद्देश्य वह दूर का स्थान ही नहीं होता, न ही विशेष रूप से उसके इरादे पर चला जाता है, बल्कि सभी स्थानों में भ्रमण का इरादा होता है और हर स्थान स्वयं में उद्देश्य होता है। तो यद्यपि यात्रा के कारण सभी का विचार होता है, लेकिन हर उद्देश्य अपनी विशेष आंशिक यात्रा तक सीमित होता है। निकटवर्ती स्थान पर जाते समय समवर्ती इरादा उसी के लिए होता है, और दूर के स्थान का इरादा केवल एक विचार और भविष्य के लक्ष्य के अर्थ में होता है। तो जब एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा की दूरी (मुसाफ़त-ए-सफ़र) मूल रूप से नहीं होती, तो यात्रा की दूरी के इरादे के साथ कोई यात्रा सिद्ध नहीं होती। हाँ, वे कई इरादों से कई यात्राएँ हैं, जिनका कुल योग यात्रा की दूरी से अधिक हो सकता है। अंत में, क्या आपने नहीं देखा कि अल्लामा बहर, 'बहर' के लेखक (अल्लाह उन पर दया करे), ने हज के लिए आदेशित व्यक्ति के लिए बिना एहराम के मक्का में प्रवेश करने के लिए इस बहाने की वैधता को नहीं माना कि जब वह इस इरादे से चलेगा कि 'यहाँ से मैं बुस्तान बनी आमिर जाता हूँ फिर वहाँ से मक्का मुअज़्ज़मा जाऊँगा', तो उसकी यह यात्रा हज के लिए नहीं हुई? पता चला कि अभीष्ट यात्रा वही प्राथमिक उद्देश्य होता है और बस। इसलिए 'ज़ख़ीरा' और 'हिंदिया' में कहा गया: "यदि वह मक्का का इरादा न करे" (त)। अतः यह स्पष्ट हो गया कि अंततः यात्रा की दूरी पर जाने का विचार, यात्रा की दूरी के इरादे से की गई यात्रा नहीं है, और शरीयत के अनुसार यात्रा का कारण यही था जो सिद्ध नहीं हुआ।

[बायाँ अरबी कॉलम]: और इसके साथ, यह स्पष्ट है—और अल्लाह की स्तुति है—कि जो गुणी स्वामी इब्राहिम अल-हलबी ने 'अल-ग़ुनिया' में अपने पाठ में उल्लेख किया है: अनुसरण के मुद्दे की शुरुआत में खलीफा के उदाहरण से यह समझा जा सकता है कि खलीफा और सुल्तान दूसरों की तरह ही हैं कि जब वे यात्रा का इरादा करते हैं, तो वे यात्री बन जाते हैं और नमाज़ कम (क़स्र) करते हैं। कहा गया: यह तब है जब वह अपने अधिकार क्षेत्र में न हो। लेकिन अगर वह अपने अधिकार क्षेत्र में दौरा कर रहा हो, तो वह कम न करे। और सही विचार यह है कि इसमें कोई अंतर नहीं है, क्योंकि जो

पहले नबी (अल्लाह की शांति और आशीर्वाद उन पर हो) और खुलफ़ा-ए-रशीदीन के कृत्य से गुज़रा है कि उन्होंने मदीना से मक्का आदि की यात्रा करते समय नमाज़ कम की थी। और जिसने कहा कि...

[दायाँ उर्दू कॉलम]: अल्लाह की स्तुति हो, इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि गुणी इब्राहिम अल-हलबी ने 'गुनिया' में जो कहा—कि अनुसरण के मुद्दे की शुरुआत में खलीफा को उदाहरण बनाने से यह समझ आ रहा है कि इस मामले में (कि जब वह यात्रा की नीयत करे तो वह यात्री हो जाता है और क़स्र कर सकता है) खलीफा और सुल्तान दूसरे लोगों की तरह ही हैं—कहा गया है कि यह उस समय है जब वह अपनी विलायत (अधिकार क्षेत्र) में न हो। और अगर अपनी विलायत में दौरा कर रहा हो तो फिर क़स्र न करे। और सही यह है कि कोई अंतर नहीं है क्योंकि पीछे गुज़रा कि नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और खुलफ़ा-ए-रशीदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) जब मदीना से मक्का आदि का सफ़र फ़रमाते तो नमाज़ में क़स्र करते। और जिसने कहा 'खलीफा अपनी...'

[पादलेख]: 1 अल-मस्लक अल-मुतक़स्सित फ़ी अल-मन्साक अल-मुतवस्सित, एहराम के बिना मीक़ात पार करने का अध्याय, दार अल-किताब अल-अरबिया बेरूत द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 60। पृष्ठ 673 का 248

کما افادہ المولی علی القاری بقولہ بخلاف من جاء من الھند مثلاً بقصد الحج اولا ۱ الخ جیسا کہ ملا علی قاری نے اپنے الفاظ میں بیان کیا۔ بخلاف اس شخص کے جو ہندوستان سے قصد اولیٰ کے ساتھ حج کے لئے آیا الخ (ت)

مگر غالباً دورہ کی یہ حالت نہیں ہوتی اس میں بالخصوص مقصود اصلی وہ موضع بعید ہی نہیں ہوتا نہ خاص اس کے قصد پر چلتا بلکہ سب مواضع میں گشت کا ارادہ اور ہر موضع مقصود بالذات ہوتا ہے تو اگرچہ باعث سیر لحاظ جمیع ہے مگر ہر مقصود اپنی سیر خاص جزئی پر محدود موضع قریب کو جاتے ہوئے قصد مقارن اسی کے لئے ہے اور قصد بعید صرف بمعنی خیال وارادہ مآل، تو جب کسی موضع سے دوسرے تک مسافت سفر نہیں اصلاً کوئی سیر بقصد مسافت سفر متحقق نہ ہوئی ہاں وہ چند قصدوں سے چند سیریں ہیں جن کا مجموعہ مسافت سفر سے زائد سہی آخر نہ دیکھا کہ علامہ بحر صاحب بحر رحمہ اللہ تعالیٰ نے مامور بالحج کے لئے دخول مکہ بغیر احرام میں اس حیلہ کا جواز نہ مانا کہ جب وہ بایں قصد چلے گا کہ یہاں سے بستان بنی عامر جاتا ہوں پھر وہاں سے مکہ معظمہ چلوں گا تو اس کا یہ سفر حج کے لئے نہ ہوا، معلوم ہوا کہ مقصود سیر وہی مقصود اولیٰ ہوتا ہے وبس، ولہذا ذخیرہ وہ ہندیہ میں ان لا یقصد مکۃ (وہ مکہ کا ارادہ نہ کرے۔ت) فرمایا تو روشن ہوا کہ بالمآل مسافت سفر کی دوری پر جانے کا خیال سیر بقصد مسافت سفر نہیں اور موجب سفر شرعی یہی تھی کہ متحقق نہ ہوئی۔

وبہ تبیین واللہ الحمد ان ماذکر المولی الفاضل ابراہیم الحلبی فی الغنیۃ بما نصہ قد یفھم من التمثیل بالخلی فی اول مسئلۃ التبع ان الخلیفۃ والسلطان کغیرہ فی انہ اذا نوی السفر یصیر مسافرا یقصر، فقیل

هذا اذالم یکن فی ولایتہ، اما اذاطاف فی ولایتہ فلا یقصر ولاصح انہ لا فرق لما تقدم من فعل النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم والخلفاء الراشدین انھم قصروا حین سافروا من المدینۃ الی مکۃ وغیر ذلک، ومراد من قال

للہ الحمد اس سے یہ بھی واضح ہو گیا کہ فاضل ابراہیم حلبی نے غنیہ میں یہ جو کہا کہ مسئلہ تبع کی ابتداء میں خلیفہ کو مثال بنانے سے سمجھ آرہا ہے کہ اس معاملہ (کہ جب وہ سفر کی نیت کرے تو وہ مسافر ہو جاتا ہے اور قصر کرسکتا ہے) میں خلیفہ اور سلطان دوسرے لوگوں کی طرح ہی ہیں، کہا گیا ہے کہ یہ اس وقت ہے جب وہ اپنی ولایت میں نہ ہو، اور اگر اپنی ولایت میں دورہ کر رہا ہو تو پھر قصر نہ کرے، اور اصح یہ ہے کہ کوئی فرق نہیں کیونکہ پیچھے گزرا کہ نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور خلفاء راشدین رضی اللہ تعالیٰ عنہم جب مدینہ سے مکہ وغیرہ کا سفر فرماتے تو نماز میں قصر کرتے، اور جس نے کہا "خلیفہ اپنی

١ المسلک المتقسط فی المنسک المتوسط فصل فی مجاوزۃ المیقات بغیر احرام مطبوعہ دار الکتاب العربیہ بیروت ص ۶۰ Page 248 of 673

Volume Eight Fatawa Razawiya

Arabic Column: If he tours within his jurisdiction, he does not shorten [the prayer]. This is what Hafiz ad-Din al-Bazzazi clarified in his Fatwas: that when he goes out to inspect the conditions of the subjects and intends to return once his objective is achieved, but did not intend a travel distance, [he does not shorten prayers]. Even so, on the return journey, he could shorten them if it was the duration of travel. No weight is given to the one who reasoned that the entire jurisdiction is like his own city for the Caliph, because this reasoning is in opposition to the explicit text and has not been narrated from any of the three Imams; therefore, this point is not worth considering. End of quote. Thus, what was mentioned of the intention to return once his objective was achieved, was only mentioned by al-Bazzazi in another issue other than the one we quoted from, which is what he said after it: Likewise the Imam, the Caliph, the Emir, and the investigator, to inspect the subjects, and each intended to return when his objective was achieved and they did not intend the distance of travel —shorten, they completed [the prayer] etc. It does not contradict what we intend in anything, for his objective—as is evident from the flow of his speech—is the refutation of the one who claimed that the Caliph does not become a traveler in his jurisdiction even if he intended the distance of travel. And this is a matter whose falsity is clear. As for our case, we have explained that it does not apply.

Urdu Column: If he tours within his jurisdiction, he should not shorten [prayer]. This is what he meant, which Hafiz ad-Din al-Bazzazi stated clearly in his fatwas that when the Caliph goes out for the welfare of the subjects' conditions and intends to return after achieving the objective, but he did not intend travel, he could shorten [prayer] on the return journey provided it was the travel distance. And that person's view will not be considered who, while stating the reason, said that the entire jurisdiction is like his own city for the Caliph, because this reason is against the text and moreover, from the three Imams, this is not narrated by anyone. Therefore, this point is not worth listening to. End of quote. Despite the fact that the mentioned phrase "the Caliph intended return after achieving the objective" was mentioned by al-Bazzazi under a different issue than the one we quoted, and that is: Imam, Caliph, Emir and inspector should tour so they can know the conditions of people and return after achieving the objective, but if they do not intend travel for shortening prayer, then they shall perform the complete prayer. All this is not contrary to what we intended because Sheikh Halabi's objective (as is clear from the flow of his speech) is the refutation of the person who said that the Caliph cannot be a traveler in his

jurisdiction even if he intends the travel distance, and this matter is clearly false. As for what we described on that, travel distance...

---

1. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Section on the Prayer of the Traveler, printed by Suhail Academy Lahore, p. 41.
2. Fatawa Bazzaziya, in the margins of Fatawa Alamgiri, Chapter Twenty-Two on Travel, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 2/37.

अरबी स्तंभ: यदि वह अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर दौरा करता है, तो वह [नमाज़] छोटी नहीं करता। यही वह बात है जिसे हाफ़िज़ अद-दीन अल-बज़्ज़ाज़ी ने अपने फतवों में स्पष्ट किया है: कि जब वह प्रजा की स्थितियों का निरीक्षण करने के लिए बाहर निकलता है और अपना उद्देश्य पूरा होने पर वापस लौटने का इरादा रखता है, लेकिन यात्रा की दूरी का इरादा नहीं किया, [तो वह नमाज़ छोटी नहीं करता]। फिर भी, वापसी यात्रा पर, वह उन्हें छोटा कर सकता था यदि वह यात्रा की अवधि थी। उस व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया जाता है जिसने तर्क दिया कि पूरा अधिकार क्षेत्र खलीफा के लिए उसके अपने शहर की तरह है, क्योंकि यह तर्क स्पष्ट पाठ के विरोध में है और तीनों इमामों में से किसी से भी वर्णित नहीं किया गया है; इसलिए, यह बिंदु विचार करने योग्य नहीं है। उद्धरण समाप्त। इस प्रकार, जो उल्लेख किया गया था कि उसका उद्देश्य पूरा होने पर लौटने का इरादा था, वह केवल अल-बज़्ज़ाज़ी द्वारा उस मुद्दे के अलावा किसी अन्य मुद्दे में उल्लेख किया गया था जिसे हमने उद्धृत किया था, जो कि उन्होंने इसके बाद कहा था: इसी तरह इमाम, खलीफा, अमीर, और अन्वेषक, प्रजा का निरीक्षण करने के लिए, और प्रत्येक ने अपना उद्देश्य पूरा होने पर लौटने का इरादा किया और उन्होंने यात्रा की दूरी का इरादा नहीं किया—छोटा, उन्होंने [नमाज़] पूरी की आदि। यह हमारे इरादे के विपरीत नहीं है, क्योंकि उनका उद्देश्य—जैसा कि उनके भाषण के प्रवाह से स्पष्ट है—उस व्यक्ति का खंडन करना है जिसने दावा किया था कि खलीफा अपने अधिकार क्षेत्र में यात्री नहीं बनता है, भले ही उसने यात्रा की दूरी का इरादा किया हो। और यह एक ऐसा मामला है जिसकी असत्यता स्पष्ट है। जहाँ तक हमारे मामले का प्रश्न है, हमने स्पष्ट कर दिया है कि यह लागू नहीं होता है।

उर्दू स्तंभ: यदि वह अपने अधिकार क्षेत्र में दौरा करता है, तो उसे क़स्र (नमाज़ छोटी) नहीं करनी चाहिए। उनका तात्पर्य यही है जिसकी स्पष्टता हाफ़िज़ अद-दीन अल-बज़्ज़ाज़ी ने अपने फतवों में दी है कि जब खलीफा प्रजा की स्थितियों की भलाई के लिए बाहर निकले और उद्देश्य प्राप्ति के बाद वापस लौटे लेकिन उसने यात्रा की नीयत नहीं की थी, तो वह वापसी में क़स्र कर सकता था बशर्ते कि यात्रा की अवधि हो। और उस व्यक्ति का विचार नहीं माना जाएगा जिसने कारण बताते हुए कहा कि खलीफा के लिए पूरा अधिकार क्षेत्र उसके अपने शहर की तरह है, क्योंकि यह कारण स्पष्ट प्रमाण (नस्) के विरुद्ध है और फिर तीनों इमामों में से किसी से भी यह वर्णित नहीं है। अतः यह बात सुनने योग्य नहीं है। उद्धरण समाप्त। इस तथ्य के बावजूद कि उपर्युक्त वाक्यांश "खलीफा ने उद्देश्य प्राप्ति

के बाद वापसी का इरादा किया" को बज़्ज़ाज़ी ने उस मसले के अलावा किसी और के तहत उल्लेख किया है जिसे हमने उद्धृत किया है, और वह यह है कि इमाम, खलीफा, अमीर और निरीक्षक दौरा करें ताकि लोगों की स्थितियों का ज्ञान हो और उद्देश्य प्राप्ति के बाद वापस लौटें, लेकिन वे क़स्र यात्रा का इरादा न करें तो वे पूरी नमाज़ अदा करेंगे। यह सब उस बात के विरुद्ध नहीं है जो हमने मुराद ली है क्योंकि शेख हलबी का उद्देश्य (जैसा कि उनके कलाम के संदर्भ से स्पष्ट है) उस व्यक्ति का खंडन है जिसने कहा कि खलीफा अपने अधिकार क्षेत्र में मुसाफ़िर (यात्री) नहीं हो सकता चाहे वह यात्रा की दूरी का इरादा कर ले, और यह बात स्पष्ट रूप से गलत है। बाकी हमने जो कुछ वर्णन किया उस पर यात्रा की दूरी...

---

1. गुन्नतुल मुस्तमली शरह मुन्यतुल मुसल्ली, मुसाफ़िर की नमाज़ का अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा मुद्रित, पृ. 41।
2. फतावा बज़्ज़ाज़िया, फतावा आलमगीरी के हाशिये पर, यात्रा पर अध्याय बाईस, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित, 2/37।

पृष्ठ 673 में से 249

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

Arabic Column: اذا اطاف فی ولایتہ لا یقصر ھو ماصرح بہ حافظ الدین البزازی فی فتاوٰہ انہ اذا خرج لتفحص احوال الرعیۃ وقصد الرجوع متی حصل مقصودہ ولم یقصد مسیرۃ سفر حتی انہ في الرجوع یقصر لو کان من مدۃ سفر ولا اعتبار بمن علل بان جمیع الولایۃ بمنزلۃ مصرہ لان ھذا تعلیل فی مقابلۃ النص مع عدم الروایۃ عن احد من الائمۃ الثلثۃ فلا یسمع فبع ان ماذکر من قصد الرجوع متی حصل مقصودہ انما ذکرہ البزازی فی مسألۃ اخری غیر التی نقلنا عنھا وھی ماقال بعدھا وکذا الامام والخلیفۃ والامیر والکاشف لیفحص الرعیۃ وقصد کل الرجوع متی حصل مقصودہ ولم یقصدوا مسیرۃ سفر قصر أتموا 2 - الخ لا یخالف مانحن نریدہ في شيء فانما مقصودہ کما ھو صریح سوق کلامہ الرد علی من زعم ان الخلیفۃ لا یصیر مسافرا في ولایتہ وان قصد مسیرۃ سفر وھو امر بین البطلان اما ما نحن فیہ فقد بینا انہ لا یصدق

Urdu Column: ولایت میں دورہ کرے تو قصر نہ کرے "اس کی مراد وہی ہے جس کی تصریح حافظ الدین البزازی نے اپنے فتاویٰ میں کی کہ جب خلیفہ رعیت کے احوال کی خیر کے لئے نکلے اور حصولِ مقصود کے بعد واپس لوٹے لیکن اس نے سفر کی نیت نہ کی کہ __ وہ رجوع میں قصر کر سکتا تھا بشرطیکہ مدّت سفر ہو اور اس شخص کا اعتبار نہیں کیا جائیگا جس نے علت بیان کرتے ہوئے کہا کہ تمام ولایت خلیفہ کے لئے اپنے شہر کی طرح ہے کیونکہ یہ علت نص کے مقابل ہے اور پھر ائمہ ثلاثہ میں سے کسی سے بھی یہ مروی نہیں ہے لہذا یہ بات قابلِ سماعت نہیں اھ با وجودیکہ مذکورہ عبارت " خلیفہ نے حصولِ مقصود کے بعد رجوع کا ارادہ کیا " کو بزازی نے اس مسئلہ کے علاوہ کے تحت ذکر کیا ہے جسے ہم نے نقل کیا ہے اور وہ یہ ہے کہ امام خلیفہ، امیر اور محتسب دورہ کریں تاکہ لوگوں کے احوال کا علم ہو اور حصولِ مقصود کے

بعد رجوع کریں لیکن وہ سفر قصر کا ارادہ نہ کریں تو وہ پوری نماز ادا کریں گے۔ یہ تمام اس کے منافی نہیں جو ہم نے مراد لیا کیونکہ شیخ حلبی کا مقصود (جیسا کہ ان کے سیاق کلام سے واضح ہے) اس شخص کا رد ہے جس نے کہا کہ خلیفہ اپنی ولایت میں مسافر نہیں ہو سکتا خواہ وہ مسافتِ سفر کا ارادہ کرلے اور یہ امر واضح طور پر باطل ہے باقی ہم نے جو کچھ بیان کیا اس پر مسافتِ سفر

---

1 غنیة المستملی شرح منیة المصلی فصل فی صلوة المسافر مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۴۱ 2 فتاویٰ بزازیہ علی ہامش الفتاویٰ عالمگیری باب الثانی والعشرون فی السفر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۲/۳۷

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Arabic Box Content] Regarding this, the intention for a journey (travel distance) does not hold true here. This is something where neither Al-Halabi nor anyone else would disagree. Therefore, there is no ambiguity in what the absolute researcher (Al-Muhaqqiq) stated in 'Al-Fath', Imam Al-Bazzazi in 'Fatawa', Allama Ibn Al-Sa'ati in 'Al-Ikhtiyar', and Imam Ibn Al-Sam'ani in 'Al-Khizana'. All praise is due to Allah. Allah is the owner of excellent elucidation; this is how research should be, and success is granted by Allah the Almighty. (T)

[Main Urdu Body Text] This elegant research, which this humble servant (the author) mentioned with the success granted by the Mighty Lord, encompasses the apparent situation. Even if the primary near objective lies on the path to the primary distant objective, and if it is completely separate from its path, as often happens in circular routes (touring).

For example, in this diagram, 'ب' (B) is the place of residence, and the remaining points are the intended locations. None of them is at a travel distance from each other. But when someone touring from 'B' starts towards 'ج' (J), no one will say that he is heading towards 'یہ' (Y) at this moment. He is going to 'J'; he started with the intention of 'J'. In fact, it is certain that in this journey, 'J' is the objective, although there might be a thought that passing through these points, he might also go to 'Y'. Thus, in any segment of the journey, the intention (qasd) coinciding with travel distance was not found.

In short, these tours are not considered travel (safar) regardless of how far they extend. Until now, if they performed full prayers, they did quite rightly.

Warning: From here, the ruling for tourists and preachers also becomes clear. For them, no specific place at a travel distance from their residence is the primary intended objective. Rather, their real aim is to wander from city to city, village to village at distances of a few 'kos' (miles), seeing sights or delivering sermons everywhere. As long as there is no primary intention to travel the minimum travel distance from a residence, they will not be considered travelers (musafir), even if they traverse the entire country. As stated explicitly in 'Fath al-Qadir' regarding tourists. This issue occurs frequently, and people are negligent of it. A 'Manzil' (stage/day's journey) in our lands is approximately twelve 'kos'. This is the view closest to the authoritative fatwa, as mentioned in 'Zahiriyah', 'Muhit Burhani', 'Nihayah', 'Kifayah' (commentaries on 'Hidayah'), 'Khizanat al-Muftin', etc., stating 'Alaihil Muftawa' (the

fatwa is based on this). A 'Manzil' is eighteen miles, which equals eleven and a quarter 'kos'. This view is not against the original school of thought (Zahir al-Riwayah), but rather its estimation and explanation are suitable for these lands, as pointed out by Allama Salbil, the Mufti of Damascus, Syria, as quoted in 'Minhat al-Khaliq' (as did the Mufti of Damascus, Syria...)

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[अरबी बॉक्स सामग्री] इसके बारे में, यात्रा (सफ़र की दूरी) का इरादा यहाँ सही नहीं बैठता। यह ऐसी बात है जिसमें न तो हलबी और न ही कोई और असहमत हो सकता है। इसलिए, 'अल-फ़तह' में अल-मुहक़्क़िक, 'फ़तावा' में इमाम अल-बज़ाज़ी, 'अल-इख़्तियार' में अल्लामा इब्न अल-साती और 'अल-ख़ज़ाना' में इमाम इब्न अल-समानी ने जो कुछ भी कहा है, उसमें कोई अस्पष्टता नहीं है। सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है। अल्लाह ही उत्कृष्ट स्पष्टीकरण का स्वामी है; शोध इसी प्रकार होना चाहिए, और सफलता अल्लाह सर्वशक्तिमान द्वारा प्रदान की जाती है। (त)

[मुख्य उर्दू पाठ] यह सुंदर शोध, जिसका उल्लेख इस विनम्र सेवक (लेखक) ने सर्वशक्तिमान प्रभु की सफलता के साथ किया है, प्रत्यक्ष स्थिति को शामिल करता है। भले ही प्राथमिक निकट उद्देश्य प्राथमिक दूर के उद्देश्य के मार्ग में स्थित हो, और यदि यह इसके मार्ग से पूरी तरह अलग हो, जैसा कि अक्सर वृत्ताकार मार्गों (दौरे) में होता है।

उदाहरण के लिए, इस चित्र में, 'ب' (ब) निवास स्थान है, और शेष बिंदु अभीष्ट स्थान हैं। उनमें से कोई भी एक-दूसरे से यात्रा की दूरी पर नहीं है। लेकिन जब 'ब' से दौरा करने वाला 'ج' (ज) की ओर चलना शुरू करता है, तो कोई यह नहीं कहेगा कि वह इस समय 'ي' (य) की ओर जा रहा है। वह 'ज' की ओर जा रहा है; उसने 'ज' के इरादे से चलना शुरू किया है। वास्तव में, यह निश्चित है कि इस यात्रा में 'ज' ही उद्देश्य है, हालांकि यह विचार भी हो सकता है कि इन बिंदुओं से गुजरते हुए वह 'य' तक भी जाए। इस प्रकार, यात्रा के किसी भी हिस्से में, यात्रा की दूरी के साथ मेल खाने वाला इरादा (क़स्द) नहीं पाया गया।

संक्षेप में, ये दौरे यात्रा (सफ़र) नहीं माने जाते, चाहे वे कितनी भी दूर तक फैले हों। अब तक, यदि उन्होंने पूरी नमाज़ें पढ़ीं, तो उन्होंने बिल्कुल सही किया।

चेतावनी: यहाँ से पर्यटकों और उपदेशकों के लिए भी नियम स्पष्ट हो जाता है। उनके लिए, अपने निवास स्थान से यात्रा की दूरी पर कोई विशिष्ट स्थान प्राथमिक अभीष्ट उद्देश्य नहीं होता है। बल्कि, उनका वास्तविक उद्देश्य शहर-शहर, गाँव-गाँव कुछ 'कोस' की दूरी पर घूमना, नज़ारे देखना या हर जगह उपदेश आदि देना होता है। जब तक निवास स्थान से न्यूनतम यात्रा दूरी तय करने का प्राथमिक इरादा न हो, वे यात्री (मुसाफ़िर) नहीं माने जाएंगे, भले ही वे पूरे देश में घूम आएं। जैसा कि पर्यटकों के संबंध में 'फ़तह अल-क़दीर' में स्पष्ट रूप से कहा गया है। यह समस्या अक्सर होती है, और लोग

इससे अनभिज्ञ हैं। हमारे देशों में एक 'मंज़िल' लगभग बारह कोस की होती है। यही मत फ़तवे के सबसे करीब है, जैसा कि 'ज़हीरिया', 'मुहित बुरहानी', 'निहाया', 'किफ़ाया' ('हिदाया' की व्याख्या), 'ख़ज़ानत अल-मुफ़्तीन' आदि में उल्लेख किया गया है, जिसमें 'अलैहिल मुफ़्तवा' (फ़तवा इसी पर आधारित है) कहा गया है। एक 'मंज़िल' अठारह मील की होती है, जो सवा ग्यारह कोस के बराबर होती है। यह विचार मूल विचारधारा (ज़ाहिर अर-रिवाया) के विरुद्ध नहीं है, बल्कि इसका अनुमान और विवरण इन देशों के लिए उपयुक्त है, जैसा कि दमिश्क, सीरिया के मुफ़्ती अल्लामा सलबील ने संकेत दिया है, जैसा कि 'मिन्हात अल-ख़ालिक' में उद्धृत किया गया है (जैसा कि दमिश्क सीरिया के मुफ़्ती ने...)

पृष्ठ 250 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[عربی عبارت] فيه قصد مسيرة سفر فهذا مما لا يخالف فيه الحلبي ولا احد فلا غبار على ما افاده المحقق على الاطلاق في الفتح والامام البزازي في فتاوٰی والعلامة ابن الساعاتي في الاختيار والامام ابن السمعاني في الخزانة ولله الحمد والله على حسن الابانة هكذا ينبغي التحقيق والله تعالى ولى التوفيق۔

[اردو ترجمہ] کا ارادہ کرنا صادق نہیں آتا اور اس میں حلبی اور کوئی شخص بھی اختلاف نہیں کر سکتا، پس محقق علی الاطلاق نے فتح ، امام بزازی نے فتاوٰی، علامہ ابن ساعاتی نے اختیار اور امام ابن سمعانی نے خزانہ میں جو کہا اس پر اب کوئی غبار نہیں رہی، اس حسن وضاحت پر اللہ تعالٰی کی حمد ہے، تحقیق اس طرح ہونی چاہئے اور توفیق کا مالک اللہ تعالٰی ہے۔ (ت)

[مرکزی متن] یہ تحقیق انیق کہ فقیر نے بتوفیق رب قدیر ذکر کی مظاہر صورت کو شامل ہے اگرچہ مقصود اصلی قریب مقصود اصلی بعید کی راہ میں واقع ہوا اور اگر اس کی راہ سے بالکل جدا ہو اور دورہ رانجہ میں اکثر ایسا واقع ہوتا ہے،

مثلاً اس شکل میں ب محلِ اقامت ہے اور نقاط باقیہ مواضع مقصودہ، ان میں کوئی ایک دوسرے سے مسافت سفر پر نہیں مگر ب سے دورہ کرنے والا جس وقت ب سے ج کی طرف چلا کوئی نہ کہے گا کہ اس وقت یہ کی طرف متوجہ ہے یہ ج کو جاتا ہے، یہ ج کے قصد پر چلا ہے بلکہ بالیقین اس سیر میں ج مقصود ہے اگرچہ خیال یہ بھی ہے کہ ان نقطوں پر ہوتا ہوا یہ کو بھی جاتا ہے تو کسی سیر میں قصہ مقارن مسافت سفر نہ پایا گیا۔

بالجملہ یہ دورے سفر نہیں ہوتے اگرچہ کتنے ہی دور تک ہوں اب تک کہ نمازیں پوری پڑھیں بہت بجا کیا۔

تنبیہ : یہاں سے سیاحین و واعظین کا حکم بھی واضح ہو گیا جنہیں کوئی مقام محل اقامت سے مدت سفر پر خاص مقصود بالذات نہیں بلکہ شہر قریہ بہ قریہ چند چند کوس کے فاصلوں پر گشت کرنا سیر دیکھنا یا ہر جگہ وعظ وغیرہ کے ذریعہ سے کمال مقصود ہے جب تک کسی محل اقامت سے مسافت سفر کا قصد اولی نہی ہو مسافر نہ ہوں گے اگرچہ سارے ملک میں پھر آئیں جس طرح سیاح کی نسبت خود فتح القدیر میں مصرحاً ارشاد ہوا یہ مسئلہ کثیر الوقوع ہے اور لوگ اس سے غافل، منزل ہمارے بلاد میں تقریباً بارہ کوس کی ہے یہی قول مفتی بہ کے قریب تر ہے جسے ظہیر یہ ومحیط برہانی و نہایہ و کفایہ شروح ہدایہ وخزانتہ المفتین و غیرہما میں علیہ المفتوی (فتوی اسی پر ہے۔ ت) کہا کہ منزل اٹھارہ میل ہے کے سوا گیارہ کوس ہوتے ہیں ، یہ قول اصل مذہب ظاہر الروایہ کے خلاف نہیں بلکہ ان بلاد کے مناسب اسی کی تقدیر و شرح ہے کمانبہ علیہ العلامتہ سلبیل مفتی دمشق الشام کمانقلہ فی منحة الخالق (جیسا کہ مفتی دمشق شام...)

صفحہ 250 از 673

Volume 8

Fatawa Razawiyya

Allama Ismail has cautioned about this, and it is quoted in Munyatul Khaliq. (Note: In our lands, an estimate of ten 'kos' is not acceptable because here, during the shortest days, i.e., at the time of the winter solstice (Tahweel-e-Jadi), the time from dawn (Fajr) to noon (Zawal) is around seven hours. There is no doubt that a person walking at a moderate pace can easily cover twelve 'kos' in seven hours, as witnessed by numerous experiments. Allah, the Glorious and Most High, knows best, and His knowledge, may His glory be exalted, is the most perfect and firm.)

Question 125: From Allahabad, Kothi Hashmatullah Khan, Joint Magistrate, sent by Ali Muhammad Khan on 28th Jamadi-ul-Ula 1317 AH.

Currently, I am in Allahabad. Should Allahabad be considered travel (safar) for me or not? But I am staying at the Joint Sahib's bungalow and I do not stay in Allahabad for more than a week; I have to return on the same day. Should the prayer (namaz) for travel (Qasr) be offered in Allahabad or not? Also, there is a place called Karana from Allahabad which is about ten miles away; should the travel prayer be offered there as well or not? It is in the same district of Allahabad. Please grant a quick reply.

The Answer:

Allahabad is not your original homeland (Watan-e-Asli), nor will staying at the Joint Sahib's bungalow make it anyone's homeland, especially since the Joint Sahib himself is not there permanently these days. Rather, the intention of staying for fifteen days will be considered. If the intention is to stay for a duration less than that, or the duration of stay is uncertain—for instance, if you have gone for some work and are waiting for its completion, thinking "go today, maybe go after twenty days"—in this case, staying in Allahabad will be considered travel (safar) for you. Pray the travel prayer (shortened prayer), even if months pass while waiting. Similarly, in the surrounding areas, wherever you want, pray two Rak'ats instead of four. Once you have made the intention to stay in a specific place in Allahabad for fifteen days, then Allahabad has become your homeland of residence (Watan-e-Iqamat). Full prayers should be offered until you intend to travel three stages (manzil) from there. Even if every week, or rather every day, you go out of Allahabad for a short distance, i.e., less than thirty-six (36) kos, and return the same day, provided that at the time of making the intention, there was no intention to spend any night elsewhere during these

fifteen days. Otherwise, that intention would not be for a full fifteen days. For example, if you intended to stay in Allahabad for fifteen days, but at the same time, it was known that you would have to spend one night elsewhere, then this would not be an intention for fifteen full days and it would remain travel (safar), even if that other place is within the Allahabad district or only three or four kos away. And if the intention was to stay here for the full fifteen nights, even if there was a thought of going elsewhere and returning during the day, then the residence (iqamat) is valid, and full prayers will be offered, provided that the other place is not thirty-six (36) kos, i.e., fifty-seven (57) or fifty-eight (58) miles, away from Allahabad. In short, at the time of intending to stay, these thoughts matter; what happens afterwards is not taken into account. For instance, you settled on staying for a full fifteen nights and then, by chance, had to go elsewhere for a few nights which was from Allahabad...

खंड 8

फ़तावा रज़विया

अल्लामा इस्माइल ने इस पर चेतावनी दी है और यह मुनियतुल ख़ालिक़ में उद्धृत है। (अनु.) हमारे नगरों में दस कोस का अनुमान स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यहाँ सबसे छोटे दिनों में, यानी शीतकालीन संक्रांति (तहवील-ए-जदी) के दिनों में, फज्र से ज़वाल तक का समय लगभग सात घंटे का होता है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक पैदल चलने वाला व्यक्ति अपनी मध्यम चाल से सात घंटे में बिना किसी कठिनाई के बारह कोस चल सकता है, जैसा कि बार-बार के अनुभवों से सिद्ध है। अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है और उसका ज्ञान, उसकी महिमा महान हो, सबसे पूर्ण और सुदृढ़ है।

मसाला 125: इलाहाबाद से कोठी हशमतुल्लाह खां, जॉइंट मजिस्ट्रेट, प्रेषक अली मोहम्मद खां, 28 जमादी-उल-उला 1317 हिजरी।

मैं आजकल इलाहाबाद में हूँ, तो क्या इलाहाबाद मेरे लिए सफ़र (यात्रा) माना जाएगा या नहीं? लेकिन मैं जॉइंट साहब की कोठी में रहता हूँ और इलाहाबाद में एक सप्ताह से अधिक रुकना नहीं होता, लेकिन फिर उसी दिन वापस आना पड़ता है, तो क्या इलाहाबाद में सफ़र की नमाज़ (क़स्र) पढ़ी जाएगी या नहीं? और इलाहाबाद से कराना एक स्थान है जो लगभग दस मील की दूरी पर है, क्या वहाँ भी सफ़र की नमाज़ पढ़ी जाएगी या नहीं? वह इलाहाबाद के ही ज़िले में है, कृपया शीघ्र उत्तर दें।

उत्तर:

इलाहाबाद आपका वतन-ए-असली (मूल निवास) नहीं है, न ही जॉइंट साहब की कोठी में ठहरना इसे किसी का वतन बना देगा। चूँकि जॉइंट साहब स्वयं आजकल वहाँ नहीं हैं, बल्कि पंद्रह दिन रुकने के इरादे को देखा जाएगा। यदि उससे कम समय रुकने का इरादा है या रुकने की अवधि निश्चित नहीं है - जैसे कि किसी काम के लिए गए हों और उसके पूरा होने की प्रतीक्षा में हों कि "आज चले जाओ, बीस दिन बाद हो" - तो इस स्थिति में इलाहाबाद में रहना आपके लिए सफ़र ही माना जाएगा। सफ़र की नमाज़ (आधी) पढ़ें, भले ही इंतज़ार करते-करते महीने बीत जाएँ। इसी तरह आसपास के क्षेत्रों में जहाँ चाहें, चार रकअत की जगह दो ही पढ़ें। जब तक किसी विशेष स्थान पर पंद्रह दिन ठहरने का इरादा इलाहाबाद में कर लिया है, तो अब इलाहाबाद वतन-ए-इक़ामत (निवास स्थान) हो गया है, पूरी नमाज़ पढ़ी जाएगी। जब तक आप वहाँ से तीन मंज़िल की यात्रा के इरादे से न निकलें। भले ही हर

हफ्ते, बल्कि हर दिन इलाहाबाद से कहीं थोड़ी दूरी पर, अर्थात् छत्तीस (36) कोस से कम बाहर जाना और दिन के दिन वापस आना हो, जबकि इरादा करते समय उन पंद्रह दिनों में किसी भी रात दूसरी जगह रात बिताने का इरादा न हो। अन्यथा वह इरादा पूरे पंद्रह दिनों का नहीं माना जाएगा। उदाहरण के लिए, इलाहाबाद में पंद्रह दिन रुकने का इरादा किया और साथ ही यह ज्ञात था कि उनमें से एक रात दूसरी जगह रुकना होगा, तो यह पूरे पंद्रह दिनों का इरादा नहीं हुआ और सफ़र की स्थिति ही रही, भले ही वह दूसरी जगह इलाहाबाद के ज़िले में हो या वहाँ से मात्र तीन-चार कोस की दूरी पर हो। और यदि पंद्रह रातों का इरादा यहीं रुकने का पूरा था, भले ही दिन में कहीं और जाने और वापस आने का विचार था, तो इक़ामत सही हो गई और पूरी नमाज़ पढ़ी जाएगी, बशर्ते कि वह दूसरी जगह इलाहाबाद से छत्तीस (36) कोस यानी सत्तावन (57) या अट्ठावन (58) मील की दूरी पर न हो। संक्षेप में, रुकने का इरादा करते समय इन विचारों का महत्व है, बाद में जो कुछ हो उस पर ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरण के लिए, पंद्रह रातों के पूर्ण प्रवास का निश्चय कर लिया और उसके बाद संयोगवश कुछ रातों के लिए किसी और जगह जाना पड़ा जो इलाहाबाद से...

पृष्ठ 251/673

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

علامہ اسماعیل نے اس پر تنبیہ کی ہے اور وہ منیہ الخالق میں منقول ہے۔ت) ہمارے بلاد میں دس کوس کا اندازہ قابلِ قبول نہیں کہ یہاں اقصر ایام یعنی تحویلِ جدی کے دن میں فجر سے زوال تک سات ساعت کے قریب ہوتا ہے اور شک نہیں کہ پیادہ اپنی معتدل چال سے سات گھنٹہ میں بارہ کوس بے تکلف چل لیتا ہے جس پر بارہا کا تجربہ شاہد، واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔

مسئلہ ۱۲۵: از الہ آباد کوٹھی حشمت اللہ خاں جنٹ مجسٹریٹ مرسلہ علی محمد خاں ۲۸ جمادی الاولیٰ ۱۳۱۷ھ

میں آج کل الہ آباد میں ہوں تو الہ آباد میرے واسطے سفر خیال کیا جائے گا یا نہیں، لیکن جنٹ صاحب کی کوٹھی میں رہتا ہوں اور الہ آباد ایک ہفتہ سے زیادہ رہنا نہیں ہوتا لیکن پھر اسی روز واپس آنا پڑتا ہے، الہ آباد میں نماز سفر کی پڑھی جائے گی یا نہیں؟ اور الہ آباد سے کرنا ایک مقام ہے جو قریب دس میل کے ہے وہاں پر بھی سفر کی نماز پڑھی جائے گی یا نہیں؟ وہ الہ آباد ہی کے ضلع میں ہے جواب جلد مرحمت فرمائیں۔

الجواب:

الہ آباد تمہارا وطن اصلی نہیں، نہ جنٹ صاحب کی کوٹھی ٹھہرنا اسے کسی کا وطن کردے گا جبکہ جنٹ خود آج کل وہاں نہیں بلکہ پندرہ دن قیام کی نیت دیکھی جائے گی اگر اس سے کم مدت قیام کی نیت ہے یا مقدر قیام کچھ معلوم نہیں کسی کام کے لئے گئے ہوں اس کے ہو جانے کا انتظار

ہو جائے تو آج چلے جاؤ، بیس دن بعد ہو تو اس صورت میں الہ آباد کار ہنا تمھارے لئے سفر ہی سمجھا جائے گا نماز سفر کی پڑھو اگر چہ انتظار انتظار میں مہینے گزر جائیں، یونہی اطراف میں جہاں چاہوں چار رکعت کی دو ہی پڑھو جب تک کسی خاص جگہ پندرہ دن ٹھہرنے کی نیت الہ آباد میں کرلی ہے تو اب الہ آباد وطن اقامت ہوگیا نماز پوری پڑھی جائے گی جب تک وہاں سے تین منزل کے ارادہ پر نہ جاؤ اگر چہ ہر ہفتہ پر بلکہ ہر روز الہ آباد سے کہیں تھوڑی تھوڑی یعنی چھتیس ۳۶ کوس سے کم باہر جانا اور دن کے دن واپس آنا ہو جبکہ نیت کرتے وقت اس پندرہ دن میں کسی رات دوسری جگہ شب باشی کا ارادہ نہ ہو ورنہ وہ نیت پورے پندرہ دن کی نہ ہوگی مثلاً الہ آباد میں پندرہ روز ٹھہرنے کی نیت کی اور ساتھ ہی یہ معلوم تھا کہ ان میں ایک شب دوسری جگہ ٹھہرنا ہوگا تو یہ پورے پندرہ دن کی نیت نہ ہوئی اور سفر ہی رہا اگر چہ دوسری جگہ الہ آباد کے ضلع میں بلکہ اس سے تین چار ہی کوس کے فاصلہ پر ہو، اور اگر پندرہ راتوں کی نیت پوری یہیں ٹھہرنے کی تھی اگر چہ دن میں کہیں اور جانے اور واپس آنے کا خیال تھا تو اقامت صحیح ہوگئی نماز پوری پڑھی جائے گی جبکہ وہ دوسری جگہ الہ آباد سے چھتیس ۳۶ کوس یعنی ستاون ۵۷ اٹھاون ۵۸ میل کے فاصلے پر نہ ہو غرض قیام کی نیت کرتے وقت ان خیالوں کا اعتبار ہے بعد کو جو پیش آئے اُس کا لحاظ نہیں مثلاً پندرہ رات پورے کا قیام ٹھہرالیا اور اس کے بعد اتفاقاً چند راتوں کے لئے اور جگہ جانا ہوا جو الہ آباد سے

Fatawa Razawiyya Volume 8

It is not within the distance of three stages, even if it is ten, twenty, or even fifty-six miles, it will not be a journey; in this other place as well, the full prayer must be offered, and understand all these situations well in Allahabad too.

Arabic Column

In Al-Durr al-Mukhtar: If a pilgrim enters Makkah during the ten days (of Dhu al-Hijjah), his intention (for residence) is not valid because he is to go out to Mina and Arafat. Thus, it becomes like an intention of residence in a place other than the place of stay. After his return from Mina, it is valid, just as if he intended to spend the night in one of them, etc.

Urdu Column

It is in Durr al-Mukhtar that if any pilgrim entered Makkah during the ten days of Dhu al-Hijjah, his intention (for residence) is not correct because he has to go towards Mina and Arafat during these days. This is like an intention of residence where the place is not for staying. It is correct to make the intention after returning from Mina, as if he intends to spend the night in one of those two, etc.

Arabic Column

And in Radd al-Muhtar: It is said that this matter was the reason for the jurisprudence (fiqh) of Isa ibn Aban. That is because he was busy seeking Hadith. He said: So I entered Makkah in the first ten days of Dhu al-Hijjah with a companion of mine and I intended to stay for a month. So I began to complete the prayer. Then some companions of Abu Hanifa met me and said to me: You have erred, for you are going out to Mina and Arafat. When I returned from Mina, it occurred to my companion to leave, and I intended to accompany him and began to shorten the prayer. Then the companion of Abu Hanifa said to me: You have erred, for you are a resident in Makkah, and as long as you do not leave it, you do not become a traveler. So I said...

Urdu Column

In Radd al-Muhtar it is stated: It is reported that this issue was the reason for Imam Isa bin Aban (may Allah's mercy be upon him) learning jurisprudence. His own statement is that I was busy seeking Hadith, I went to Makkah in the ten days of Dhu al-Hijjah, my friends were also with me, I intended to stay there for one month and started performing the full prayer. I met a companion of Imam Abu Hanifa, he said to me that you did wrong because you will go towards Mina and Arafat. Then when I returned from Mina, my companion felt the need to leave Makkah and I intended to remain with them, so I started shortening the prayer. Then the companion of Imam Abu Hanifa told me you did wrong because you are a resident in Makkah, so when you do not leave from there, you cannot be a traveler. So I thought that I have...

[1] Al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Traveler's Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/107 Page 252 of 673

तीन मंज़िल की दूरी पर नहीं है, चाहे वह दस, बीस, बल्कि छप्पन मील तक हो, यह सफ़र नहीं होगा। इस दूसरे स्थान पर भी पूरी नमाज़ पढ़नी होगी और इलाहाबाद में भी इन सभी स्थितियों को अच्छी तरह समझ लें।

अरबी कॉलम

अल-दुर्रुल मुख़्तार में है: यदि कोई हाजी (ज़ुल-हिज्जा के) दस दिनों के दौरान मक्का में प्रवेश करता है, तो उसकी नीयत (निवास के लिए) सही नहीं है क्योंकि वह मिना और अराफ़ात की ओर निकलता है। इस प्रकार यह निवास के स्थान के अलावा किसी अन्य स्थान पर निवास की नीयत की तरह हो जाता है। मिना से लौटने के बाद यह सही है, जैसे कि उसने उनमें से किसी एक में रात बिताने की नीयत की हो, इत्यादि।

और रद्दुल मुहतार में है: कहा गया है कि यह मसला ईसा बिन अबान के फ़िक़्ह सीखने का कारण बना। वह इसलिए क्योंकि वह हदीस सीखने में व्यस्त थे। उन्होंने कहा: मैं ज़ुल-हिज्जा के पहले दस दिनों में अपने एक साथी के साथ मक्का में दाख़िल हुआ और मैंने एक महीने ठहरने का इरादा किया, तो मैंने पूरी नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी। फिर मुझे इमाम अबू हनीफ़ा के कुछ साथी मिले और मुझसे कहा: तुमने गलती की है, क्योंकि तुम मिना और अराफ़ात की ओर निकलोगे। जब मैं मिना से लौटा, तो मेरे साथी का बाहर निकलने का विचार हुआ और मैंने उनके

उर्दू कॉलम

दुर्रुल मुख़्तार में है कि अगर कोई हाजी मक्का में ज़ुल-हिज्जा के अशरा (दस दिनों) में दाख़िल हुआ तो उसकी नीयत (अकामत के लिए) दुरुस्त नहीं है क्योंकि उसने उन्हीं दिनों में मिना और अराफ़ात की तरफ़ जाना है। यह उस नीयत-ए-अकामत की तरह है जो अकामत का मुक़ाम न हो और मिना से लौटकर नीयत करना दुरुस्त है जैसा कि इन दोनों में से एक में रात बसर करने की नीयत करे, इत्यादि।

रद्दुल मुहतार में है कि मनक़ूल यह है कि यह मसला इमाम ईसा बिन अबान रहमतुल्लाह अलैह के फ़िक़्ह सीखने का सबब बना था। उनका अपना बयान है कि मैं तलब-ए-हदीस में मशग़ूल था, ज़ुल-हिज्जा के अशरा में मक्का में गया, मेरे साथ मेरे दोस्त भी थे, मैंने वहां एक माह अकामत की नीयत की और पूरी नमाज़ अदा करना शुरू कर दी। मुझे इमाम अबू हनीफ़ा के एक साथी मिले उन्होंने कहा कि तूने ग़लत किया है क्योंकि तू तो मिना और अराफ़ात की तरफ़ चला जाएगा। पस जब मैं मिना से लौटा तो मेरे साथी को मक्का से निकलने की हाजत पेश आ गई और मैंने इरादा

अरबी कॉलम

साथ रहने का इरादा किया और नमाज़ क़सर (कम) करना शुरू कर दिया। तब इमाम अबू हनीफ़ा के साथी ने मुझसे कहा: तुमने गलती की है, क्योंकि तुम मक्का में मुक़ीम (निवासी) हो, और जब तक तुम वहां से नहीं निकलोगे, तुम मुसाफ़िर नहीं बनोगे। तो मैंने सोचा कि मैंने...

उर्दू कॉलम

किया था कि मैं उनके साथ रहूं तो मैंने नमाज़ क़सर शुरू कर दी। तो मुझे इमाम अबू हनीफ़ा के साथी ने कहा तूने ग़लत किया क्योंकि तू मक्का में मुक़ीम है, तो जब तू उससे निकलेगा नहीं तो मुसाफ़िर नहीं हो सकता, तो मैंने सोचा कि मैंने...

[1] अल-दुर्रुल मुख़्तार, बाब सलातुल मुसाफ़िर, मतबा मुजतबाई देहली १/१०७ पृष्ठ २५२ / ६७३

تین منزل کے فاصلہ پر نہیں اگر چہ دس بیس بلکہ چھپن میل تک ہو سفر نہ ہو گا اس مقام دیگر میں بھی نماز پوری پڑھنی ہو گی اور الہ آباد میں بھی ان سب صورتوں کو خوب غور سے سمجھ لو۔

عربی کالم **اردو کالم**

در مختار میں ہے کہ اگر کوئی حاجی مکہ میں ذوالحج کے

فی الدر المختار لو دخل الحاج مکة ایام العشر لم تصح نیته لانه یخرج الی منی وعرفة فصار کنیة الاقامة فی غیر موضعها وبعد عوده من منی تصح کما لو نوی مبیته باحدهما الخ۔

عشرہ میں داخل ہوا تو اس کی نیت (برائے اقامت) درست نہیں کیونکہ اس نے منیٰ اور عرفات کی طرف انہی دنوں میں جانا ہے اس نیت اقامت کی طرح ہی ہے جو مقام اقامت نہ ہو اور منیٰ سے لوٹ کر نیت کرنا درست ہے جیسا کہ ان دونوں میں سے ایک میں رات بسر کرنے کی نیت کرے الخ۔

وفی ردالمحتار قیل هذه المسألة کانت سبب لتفقه عیسی بن ابان وذلك انه کان مشغولا لطلب الحدیث قال فدخلت مکة فی اول العشر من ذي الحجة مع صاحب لی وعزمت علی الاقامة شهرا فجعلت اتم الصلوة فلقینی بعض

ردالمحتار میں ہے کہ منقول یہ ہے کہ یہ مسئلہ امام عیسیٰ بن ابان رحمہ اللہ تعالیٰ کے فقہ سیکھنے کا سبب بنا تھا ان کا اپنا بیان ہے کہ میں طلب حدیث میں مشغول تھا ذوالحجہ کے عشرہ میں مکہ میں گیا میرے ساتھ میرے دوست بھی تھے میں نے وہاں ایک ماہ اقامت کی نیت کی اور پوری نماز ادا کرنا شروع کردی مجھے امام ابو حنیفہ کے ایک

عربی کالم	اردو کالم
اصحاب ابي حنيفة فقال لی اخطأت فانك تخرج الی منی وعرفات فلما رجعت من منی بدالصاحبي ان يخرج وعزمت علی ان أصاحبه وجعلت اقصر الصلوة فقال لی صاحب ابي حنيفة اخطأت فانك مقيم بمكة فمالم تخرج منها لا تصير مسافرا فقلت	ساتھی ملے انھوں نے کہا کہ تو نے غلط کیا ہے کیونکہ تو تو منیٰ اور عرفات کی طرف چلا جائے گا، پس جب میں منیٰ سے لوٹا تو میرے ساتھی کو مکہ سے نکلنے کی حاجت پیش آگئی اور میں نے ارادہ کیا تھا کہ میں ان کے ساتھ رہوں تو میں نے نماز قصر شروع کردی تو مجھے امام ابو حنیفہ کے ساتھی نے کہا تو نے غلط کیا کیونکہ تو مکہ میں مقیم ہے تو جب تو اس سے نکلے گا نہیں تو مسافر نہیں ہو سکتا، تو میں نے سوچا کہ میں نے

[1] الدرالمختار باب صلوة المسافر مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۰۷ Page 252 of 673

[Arabic Column:] I erred in a matter in two places, so I traveled to the assembly of Muhammad and engaged in jurisprudence. It is stated in Al-Bada'i: 'We only cited this story so that the extent of knowledge might be known, thus becoming a motivation for students to seek it.' [End of Bahr quote]. It appears from this story that his intention for residency did not take effect until after his return, because there was a stay of fifteen days without the intention of leaving during that period. This is in contrast to before his departure for Arafat, because when he intended to leave before the completion of half a month, he did not become a resident (muqim). It is possible that he renewed his intention of residency after his return. This resolves the objection raised by Allama al-Qari in 'Sharh al-Lubab', that there is a contradiction in the words of Imam [Abu Hanifa]'s companion, where he first ruled him a traveler and then a resident, even though the situation remained the same. It is understood from the primary texts (Mutun) that if one intends half a month in one of two places, it is valid, and thus his going to Arafat does not harm him, because it is not a condition for the half-month to be continuous in such a way that he does not leave it. [End quote] summarized. The reason for the dismissal [of the objection] is that continuity is not a condition as long as there is no intention to leave for another place, for then he would be intending residency in two places. However, after returning from Mina, his intention became valid because he intended for only one place.

[Urdu Column:] I made a mistake in two places in one issue, so I went to the service of Imam Muhammad and started learning Fiqh (jurisprudence). It is mentioned in Bada'i that we have brought this anecdote so that the value of knowledge may be known and it may become a cause for seeking knowledge for students, [End of Bahr quote]. From this anecdote, it became clear that his intention for residency (stay) became effective after his return because now there would be a stay of such fifteen days during which there was no intention of leaving, unlike before leaving for Arafat. Because when there was an intention to leave before the completion of half a month, then one cannot become a resident (Muqim). And it is possible that they renewed their intention after returning. This removes the objection that Allama Qari raised in Sharh al-Lubab that there is a contradiction in the speech of the companion of Imam Sahib because first he gave the ruling of being a traveler and then again of a resident although the matter was as it was. It is understood from the texts that if the intention was made for half a month in either of the two, then it is correct, so now going to Arafat is not harmful because it is not a condition for half a month to be continuous

in such a way that there is no departure in it, [End quote]. The reason for the dismissal is that continuity is not a condition at that time when the person's determination is not to go to another place because at that time he has made the intention of two places, yes, after returning from Mina the Sunnah became correct because now in one place...

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Traveler's Prayer, Printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/582 Page 253 of 673

[अरबी कॉलम:] "मैंने एक मसले में दो जगहों पर गलती की, इसलिए मैं मुहम्मद की सभा में गया और न्यायशास्त्र (फिक्ह) सीखना शुरू किया। बदाई (Al-Bada'i) में कहा गया है: 'हमने यह कहानी केवल इसलिए उद्धृत की है ताकि ज्ञान की सीमा जानी जा सके, इस प्रकार यह छात्रों के लिए इसे सीखने की प्रेरणा बने।' [बहर का उद्धरण समाप्त]। इस कहानी से स्पष्ट होता है कि उनके निवास (इकामह) का इरादा उनके लौटने के बाद ही प्रभावी हुआ, क्योंकि तब उस दौरान बिना बाहर जाने के इरादे के पंद्रह दिनों का प्रवास था। यह अराफात के लिए उनके प्रस्थान से पहले की स्थिति के विपरीत है, क्योंकि जब आधे महीने के पूरा होने से पहले बाहर जाने का इरादा था, तो वह निवासी (मुकीम) नहीं बने। यह संभव है कि उन्होंने लौटने के बाद निवास के अपने इरादे को नवीनीकृत किया हो। इससे वह आपत्ति दूर हो जाती है जो अल्लामा अल-क़ारी ने 'शर्ह अल-लुबाब' में उठाई थी कि इमाम के साथी के शब्दों में विरोधाभास है, जहाँ उन्होंने पहले उन्हें यात्री और फिर निवासी करार दिया, भले ही स्थिति वैसी ही थी। प्राथमिक ग्रंथों (मुतून) से यह समझा जाता है कि यदि कोई दो स्थानों में से किसी एक में आधे महीने का इरादा करता है, तो यह वैध है, और इस प्रकार उनका अराफात जाना उन्हें नुकसान नहीं पहुँचाता है, क्योंकि आधे महीने का निरंतर होना इस तरह से शर्त नहीं है कि वह उसमें से बाहर न निकले। [उद्धरण समाप्त] सारांशित। [आपत्ति] को खारिज करने का कारण यह है कि निरंतरता तब तक शर्त नहीं है जब तक कि दूसरे स्थान पर जाने का इरादा न हो, क्योंकि तब वह दो स्थानों में निवास का इरादा कर रहा होगा। हालाँकि, मिना से लौटने के बाद उनका इरादा सही हो गया क्योंकि अब वह केवल एक स्थान के लिए था।"

[उर्दू कॉलम:] मैंने एक मसले में दो जगहों पर गलती की, तो मैं इमाम मुहम्मद की सेवा में गया और फ़िक्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) सीखना शुरू किया। बदाई (Al-Bada'i) में उल्लेख है कि हमने यह हिकायत (कहानी) इसलिए दर्ज की है ताकि ज्ञान का मूल्य जाना जा सके और छात्रों के लिए ज्ञान प्राप्त करने का कारण बने। [बहर का उद्धरण समाप्त]। इस कहानी से स्पष्ट हो गया कि उनके निवास (ठहरने) की नियत लौटने के बाद प्रभावी हुई, क्योंकि अब ऐसे पंद्रह दिनों का प्रवास होगा जिसके बीच प्रस्थान की नियत नहीं थी, अराफात के लिए प्रस्थान से पहले के विपरीत। क्योंकि जब आधे महीने के पूरा होने से पहले निकलने का इरादा था, तो व्यक्ति मुकीम (निवासी) नहीं हो सकता। और यह संभव है कि उन्होंने लौटने के बाद अपनी नियत का नवीनीकरण किया हो। इससे वह आपत्ति समाप्त हो जाती है जो अल्लामा कारी ने 'शर्ह अल-लुबाब' में उठाई थी कि इमाम साहब के

साथी के वचन में विरोधाभास है क्योंकि पहले उन्होंने मुसाफिर होने का फैसला सुनाया और फिर मुकीम होने का, हालांकि स्थिति वैसी ही थी। ग्रंथों से यह समझा जाता है कि यदि दोनों में से किसी एक में आधे महीने की नियत की गई तो वह सही है, तो अब अराफात जाना नुकसानदेह नहीं है क्योंकि आधे महीने का निरंतर होना इस तरह शर्त नहीं है कि उसमें प्रस्थान न हो। [उद्धरण समाप्त]। आपत्ति खारिज होने का कारण यह है कि निरंतरता तब शर्त नहीं है जब व्यक्ति का इरादा किसी दूसरे स्थान पर जाने का न हो क्योंकि उस समय उसने दो स्थानों की नियत की हुई है, हाँ, मिना से लौटने के बाद सुन्नत सही हो गई क्योंकि अब एक स्थान में...

1. रद अल-मुह्तार, मुसाफिर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/582 पृष्ठ 253 का 673

[Arabic Column:] اخطأت في مسألة في موضعين فرحلت الى مجلس محمد واشتغلت بالفقه قال في البدائع وانما اوردنا هذا لحكاية ليعلم مبلغ العلم فيصير مبعثة للطلبة على طلبه اه بحر ويظهر من هذه الحكاية ان نيته الاقامة لم تعمل عملها الابعد رجوعه لوجود خمسة عشر يوما بلا نية خروج في اثنائها بخلاف ما قبل خروجه الى عرفات لانه لما كان عازما على الخروج قبل تمام نصف شهر لم يصر مقيدا ويحتمل ان يكون جد دنية الاقامة بعد رجوعه وبهذا سقط ما اورده العلامة القارئ في شرح اللباب من ان كان في كلام صاحب الامام تعارضا حيث حكم اولا بانه مسافر وثانيا بانه مقيم مع ان المسئلة بحالها والمفهوم من المتون انه لونوى في احدهما نصف شهر صح فح لا يضره خروجه الى عرفات اذ لا يشترط كونه نصف شهر متواليا بحيث لا يخرج فيه اه ۱ ملخصا و وجه السقوط ان لتوالى لايشترط اذالم يكم من عزمه الخروج الى موضع اخر لا نه يكون ناويا الاقامة فى موضعين نعم بعد رجوعه من منى صحت نيته لعزمہ على

[Urdu Column:] ایک مسئلہ میں دو جگہ خطا کی ہے تو میں امام محمد کی خدمت میں گیا اور فقہ سیکھنا شروع کی، بدائع میں ہے کہ یہ حکایت ہم نے اس لئے وارد کی ہے کہ علم کی قدر معلوم ہو سکے اور طلباء کے لئے طلب علم کا باعث بن سکے، اھ بحر ، اس حکایت سے واضح ہو گیا کہ ان کی نیت اقامت رجوع کے بعد موثر ہوئی کیونکہ اب ایسے پندرہ دنوں کا قیام ہوگا جن کے درمیان نیت خروج نہیں، بخلاف عرفات کی طرف نکلنے سے پہلے کے، کیونکہ جب نصف ماہ کے اتمام سے پہلے نکلنے کا ارادہ ہے تو اب مقیم نہیں ہو سکتا اور ممکن ہے کہ انھوں نے رجوع کے بعد تجدید نیت کی ہے اس سے وہ اعتراض ساقط ہو جاتا ہے جو علامہ قاری نے شرح لباب میں اٹھایا کہ امام صاحب کے ساتھی کے کلام میں تعارض ہے کیونکہ پہلے انھوں نے مسافر ہونے

کا حکم لگایا اور دوبارہ مقیم کی حالانکہ معاملہ اپنی جگہ پر تھا، متون سے مفہوم یہ ہوتا ہے کہ اگر دونوں میں سے کسی ایک میں نصف ماہ تک کی نیت کی تو درست ہے تو اب عرفات کی طرف نکلنا مضر نہیں کیونکہ نصف ماہ کا مسلسل اس طرح ہونا شرط نہیں کہ اس میں خروج نہ ہو انتہی، وجہ سقوط یہ ہے کہ تسلسل اس وقت شرط نہیں جب آدمی کا عزم دوسری جگہ جانے کا نہ ہو کیونکہ اس وقت وہ دو مقامات کی نیت کئے ہوئے ہے ، ہاں منی سے رجوع کے بعد سنت صحیح ہو گئی کیونکہ اب ایک جگہ میں

۱ ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۸۲ Page 253 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

Residing for half a month in one place, and Allah knows best. Regarding the statement "he has...", know that his statement "as if he intended to spend the night in one of them", if he first enters the place where he intended to stay during the day, he will not become a resident (Muqim). If he first enters the place where he intended to spend the night, he will become a resident. Then, by going to the other place, he will not become a traveler (Musafir), because a person's place of residence is where he spends the night. (Hilya, 2, end). Through this, everything we mentioned becomes clear, and Allah the Almighty knows best.

There is an intention to stay for half a month, and Allah the Almighty knows best. Regarding the statement "he has... intended to spend the night in one of the two places", so if that person first went to the place where he was supposed to stay during the day, he would not be a resident, and if he first went to the place where he was supposed to spend the night, he would become a resident. After that, by intending to go to the second place, he will not become a traveler because a man's place of residence is where he spends the night. (Hilya). With this, all that we have mentioned will be clear, and Allah the Almighty knows best (T).

Problem 1258: 3 Sha'ban al-Mu'azzam 1319 AH from Tilims, question by Khalil-ud-Din Sahib. A place is located thirty (30) kos away from Zaid's homeland, and Zaid traveled by such a route that he had to cover a distance of forty (40) kos to reach that place. Will Zaid's prayer be shortened (Qasr) or not?

Answer: It is (permissible) if it was not intentionally divided into locations, for example, there is a city twenty kos away on this road, and the intention was made as follows: "First I will go there, after finishing there I will go to the second place which is twenty (20) kos from there", making it forty kos in total, then there is no Qasr. If he set out from home with the goal of twenty (20) kos, even if there is a second intention for another place from there, and Allah the Almighty knows best.

Problem 1259 to 1263: From Bareilly, question by Sheikh Abdul Aziz Basati, 2nd Dhu al-Qi'dah 1330 AH. What do the scholars of the religion say in answer to the following questions: (1) How many farsakhs is a 'manzil' (stage)? (2) At how many stages will Qasr (shortening of prayer) occur? (3) In covering a stage, is the direct path considered or the path one actually takes?

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Traveler's Prayer, printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/582 2 Radd al-Muhtar, Chapter on Traveler's Prayer, printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/582 Page 254 of 673

फतावा रज़विया जिल्द आठवीं

एक स्थान पर आधे महीने तक निवास करना, और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। उनके इस कथन "उसने..." के बारे में जानें। उनका कथन "जैसे कि उसने उनमें से एक में रात बिताने का इरादा किया हो", तो यदि वह पहले उस स्थान में प्रवेश करता है जहाँ उसने दिन में ठहरने का इरादा किया था, तो वह निवासी (मुकीम) नहीं बनेगा। और यदि वह पहले उस स्थान में प्रवेश करता है जहाँ उसने रात बिताने का इरादा किया था, तो वह निवासी बन जाएगा। फिर दूसरे स्थान पर जाने से वह यात्री (मुसाफिर) नहीं बनेगा क्योंकि मनुष्य के निवास का स्थान वह होता है जहाँ वह रात बिताता है। (हिलिया, 2, इति)। इसके माध्यम से वह सब स्पष्ट हो गया जो हमने उल्लेख किया है, और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है। आधे महीने ठहरने का इरादा है, और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है। कथन "उसने... दो स्थानों में से किसी एक में रात बिताने की नीयत की", तो अगर वह व्यक्ति पहले उस स्थान पर गया जहाँ दिन को ठहरना था तो वह मुकीम नहीं होगा, और अगर पहले उस जगह गया जहाँ रात ठहरना था तो मुकीम हो जाएगा। इसके बाद दूसरी जगह के इरादे से मुसाफिर नहीं बनेगा क्योंकि आदमी की इक़ामत का मक़ाम (निवास स्थान) वह होता है जहाँ वह रात बसर करता है। (हिलिया)। इसके साथ वह सब स्पष्ट होगा जिसका हमने ज़िक्र किया है, और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है। (त)

मसला १२५८: ३ शाबान अल-मुअज़्ज़म १३१९ हिजरी, तिलम्स से, मुस्तौ़ला खलील उद्दीन साहब। ज़ैद के वतन से एक स्थान तीस (३०) कोस की दूरी पर स्थित है और ज़ैद ने ऐसे रास्ते से सफर किया कि उस स्थान तक चालीस (४०) कोस की दूरी तय करनी पड़ी, तो ज़ैद पर नमाज़ का कसर है या नहीं?

जवाब: है, बशर्ते कि वह जानबूझकर स्थानों में विभाजित न हो, मिसाल के तौर पर इस रास्ते में बीस कोस पर एक शहर है, इरादा यूँ किया कि पहले वहाँ जाऊँगा, वहाँ से फारिग होकर दूसरे स्थान पर जाऊँगा जो वहाँ से बीस (२०) कोस है, यूँ चालीस कोस होंगे तो कसर नहीं। मकान से बीस (२०) कोस के मकसद को ही चला है अगरचे वहाँ से दूसरा इरादा दूसरी जगह का होने वाला है, और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

मसला १२५९ से १२६३: बरेली से, मुस्तौ़ला शेख अब्दुल अजीज बसाती, २ ज़ुल-कादा १३३० हिजरी। उलेमा-ए-दीन निम्नलिखित मसलों के जवाब में क्या फरमाते हैं: (१) मंज़िल कितने फरसंग की होती

है? (२) कितनी मंज़िल पर कसर होगा? (३) मंज़िल तय करने में सीधे रास्ते का एतबार है या जिस रास्ते पर चले?

१ रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल मुसाफिर, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र १/५८२ २ रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल मुसाफिर, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र १/५८२ पेज २५४ ऑफ ६७३

الاقامة نصف شهر في مكان واحد والله تعالٰی اعلم قوله "اس نے " اعلم ۔ قوله كما لونوى مبيته بأحدهما فان دخل اولا الموضع الذى نوى المقام فيه نهارا لايصير مقيما وان دخل اولا ما نوى المبيت فيه يصير مقيما ثم بالخروج الى الموضع الاخر لايصير مسافر الان موضع اقامة الرجل حيث يبيت به، حلية ۲ اھ و به ظهر كل مأذكرناه ، والله تعالٰی اعلم نصف ماہ اقامت کا عزم ہے ، واللہ تعالٰی اعلم قولہ 'اس نے' دو مقامات میں سے کسی ایک میں رات بسر کرنے کی نیت کی" پس اگر تو وہ شخص پہلے اس مقام پر گیا جس پر دن کو ٹھہرنا تھا تو وہ مقیم نہ ہوگا اور پہلے اس جگہ گیا جہاں رات ٹھہرنا تھا تو مقیم ہو جائے گا اس کے بعد دوسری جگہ کے ارادے سے مسافر نہیں بنے گا کیونکہ آدمی کی اقامت کا مقام ہوتا ہے جہاں وہ رات بسر کرتا ہے اھ حلیہ اس کے ساتھ وہ تمام واضح ہوگا جس کا تذکرہ ہم نے کیا، واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۵۸: ۳ شعبان المعظم ۱۳۱۹ھ از تلمس مسئولہ خلیل الدین صاحب زید کے وطن سے ایک مقام تیس ۳۰ کوس کے فاصلے پر واقع ہے اور زید نے ایسی راہ سے سفر کیا کہ اس مقام تک چالیس ۴۰ کوس مسافت طے کرنی ہوئی تو زید پر نماز کا قصر ہے یا نہیں؟

الجواب: ہے جبکہ قصداً وہ جگہ پر منقسم نہ ہو مثلاً اس راہ میں بیس کوس پر ایک شہر ہے ، ارادہ یوں کیا کہ پہلے وہاں جاؤں گا وہاں سے فارغ ہو کر دوسرے مقام پر کہ وہاں سے بیس ۲۰ کوس ہے جاؤں گا یوں چالیس کوس ہوں گے تو قصر نہیں ، مکان سے بیس ۲۰ ہی کوس کے مقصد کو چلا ہے اگر چہ وہاں سے دوسرا قصد دوسری جگہ کا ہونے والا ہے ، واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۵۹ تا ۱۲۶۳: از بریلی مسئولہ شیخ عبدالعزیز بساطی دوم ذوالقعدہ ۱۳۳۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین مسائل ذیل کے جواب میں: (۱) منزل کتنے فرسنگ کی ہوتی ہے؟ (۲) کے (کتنے) منزل پر قصر ہوگا؟ (۳) طے منزل میں راہِ راست کا اعتبار ہے یا جس راستے پر چلے؟

1 ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۸۲ 2 ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۸۲ Page 254 of 673

Fatawa Rizvia, Volume 8

(4) From here to Bisalpur, it is 18 kos by horse carriage and 36 kos by rail. When will Qasr (shortening of prayer) be performed? (5) A person provided mats etc. to a mosque for Friday prayers and stayed there for some days. Now he wants to give those mats to another mosque. Is it permissible or not? Answer with proof.

The Answer: (1) Conventionally, a stage (manzil) is twelve kos, and in these lands, a kos is 5/8 of a mile, meaning three-fifths of a mile, and three miles make one farsakh (league). Thus, one stage is six farsakhs and two-fifths of a farsakh. (2) Qasr is applicable at three stages. (3) The route taken is what matters. (4) If traveling by rail, perform Qasr; otherwise, do not. (5) Once the mats are handed over to the mosque, they become the property of the mosque. As long as they are usable, they cannot be taken back or given to another mosque. And Allah Almighty knows best.

Problem 1262: From District Nainital, Post Office Khachamar, from Abdul Aziz Khan, 4 Ramadan-ul-Mubarak 1315 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter? A slave is shared between two men. They both set out on a journey. In one place, they both stayed. One intended to stay (iqamat), while the other did not. Now, will that common slave offer shortened (Qasr) prayer or full (Hazari) prayer? Answer with proof.

The Answer: If he is in the possession of only one of them, then the intention of the one in whose possession he is will be considered. Arabic text: "Because he is a follower of only the one whose he is, and soon a specific discussion on this will come."

And if he is in the possession of both, then if his service is divided into turns—for example, he serves one on one day and the other on the next—then according to each person's turn, he should act according to their intention. That is, on the day of his service to the resident owner, he should act according to his intention; even if he thinks he is a traveler on the day of the resident owner's service, and even if they both together decided on the turns of service, on the day of the resident owner's service, he is fundamentally not a traveler in terms of service. Therefore, he should not perform Qasr in terms of the resident owner, and the first sitting (Qa'da-e-Oola) is obligatory for him from the perspective that he is the slave of the other owner.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

(4) यहाँ से बीसलपुर घोड़े गाड़ी से 18 कोस और रेल गाड़ी से 36 कोस हो जाती है, वहाँ जाने में कसर (नमाज़ कम करना) कब होगा? (5) एक शख़्स ने एक मस्जिद में जुमे की नमाज़ के लिए दरियाँ वग़ैरह बनवाईं मगर कुछ दिनों वहाँ जुमा हो कर रह गया, अब वह चाहता है कि यह दरियाँ किसी दूसरी मस्जिद में दे दूँ, पस यह जायज़ है या नहीं? बनूवा तूजिरूवा।

अल-जवाब: (1) उर्फ़ में मंज़िल बारह कोस है और इन बिलाद में हर कोस 5/8 मील यानी मील के तीन पांचवें हिस्से के बराबर है, और तीन मील का एक फ़रसंग है, तो एक मंज़िल छह फ़रसंग और दो पांचवें फ़रसंग की हुई। (2) तीन मंज़िल पर कसर है। (3) जिस रास्ते से जाए उसका एतबार है। (4) रेल में जाए तो कसर करे वरना नहीं। (5) जब दरियाँ सुपुर्द-ए-मस्जिद कर दीं, तो मस्जिद की मिलकियत हो गईं, जब तक ना-काबिले इस्तेमाल न हो जाएं वापस नहीं ले सकता, न दूसरी मस्जिद में दे सकता है। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1262: अज़ ज़िला नैनीताल, डाक खाना खचामर, मुर्सला अब्दुल अज़ीज़ खां, 4 रमज़ान-उल-मुबारक 1315 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक शख़्स दो आदमियों का ग़ुलाम था, दोनों के सफ़र के लिए गए, रास्ते में दोनों ने क़याम किया, एक ने नीयत इक़ामत की, दूसरे ने न की, अब वह मुश्तरक ग़ुलाम नमाज़ कसर अदा करे या हज़री (पूरी)? बनूवा तूजिरूवा।

अल-जवाब: अगर वह इन दोनों में से सिर्फ़ एक के क़ब्ज़े में है, तो जिसके क़ब्ज़े में है उसी की नीयत का एतबार है। अरबी पाठ: "क्योंकि वह उसी का ताबे (अनुयायी) होगा जिसका वह है, और अनक़रीब इस पर मुक़य्यद गुफ़्तगू आ रही है।" (त)

और अगर दोनों के क़ब्ज़े में है, तो अगर उनकी ख़िदमत नौबत ब-नौबत मुक़र्रर पाई है, मसलन एक दिन इसकी ख़िदमत करे और दूसरे दिन उसकी, तो हर एक की नौबत में उसकी नीयत पर अमल करे। यानी जिस दिन मुक़ीम की ख़िदमत की बारी हो, भले ही वह ख़ुद को मुसाफ़िर समझे और जिस दिन मुसाफ़िर की ख़िदमत की बारी हो अपने आप को मुसाफ़िर जाने, और अगर बाहम नौबत न क़रार दी बल्कि दोनों ही की ख़िदमत में है, वह मन वजह मुक़ीम और मन वजह मुसाफ़िर है, कसर असलन न करे इस लिहाज़ से कि वह एक मौला की नीयत इक़ामत की वजह से मुक़ीम है और क़अदा-ए-ऊला भी अपने ऊपर फ़र्ज़ जाने इस नज़र से कि वह दूसरे मौला की वजह से मुसाफ़िर है।

पेज 255 का 673

(۴) یہاں سے بیسلپور ۱۸ کوس براہ سواری گاڑی اور براہ ریل گاڑی چھتیس کوس ہو جاتی ہے وہاں جانے میں قصر کب ہو گا؟ (۵) ایک شخص نے ایک مسجد میں جمعہ کی نماز کے واسطے دریاں وغیرہ بنوائیں مگر کچھ دنوں وہاں جمعہ ہو کر رہ گیا اب وہ چاہتا ہے کہ یہ دریاں کسی دوسری مسجد میں دے دوں پس یہ جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: (۱) عرف میں منزل بارہ کوس ہے اور ان بلاد میں ہر کوس ۵/۸ میل یعنی میل کے تین خمس ، اور تین میل کا ایک فرسنگ ، تو ایک منزل چھ فرسنگ اور دو خمس فرسنگ کی ہوئی۔ (۲) تین منزل پر قصر ہے۔ (۳) جس راستے سے جائے اس کا اعتبار ہے۔ (۴) ریل میں جائے تو قصر کرے ورنہ نہیں۔ (۵) جب دریاں سپرد مسجد کر دیں ملک مسجد ہو گئیں ، جب تک نا قابلِ استعمال نہ ہو جائیں واپس نہیں لے سکتا نہ دوسری مسجد میں دے سکتا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۶۲: از ضلع نینی تال ڈاک خانہ کچامرسلہ عبدالعزیز خاں، ۴ رمضان المبارک ۱۳۱۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص دو آدمیوں کا غلام تھا ہر دو مع غلام کے سفر کے گئے راستے میں دونوں نے قیام کیا ، ایک نے نیت اقامت کی دوسری نے نہ کی ، اب وہ عبد مشترک نماز قصری ادا کرے یا حضری ، بینوا توجروا۔

الجواب: اگر وہ ان دونوں سے صرف ایک کے قبضہ میں ہے تو جس کے قبضہ میں ہے اسی کی نیت کا اعتبار ہے لانہ ح لیس تابعا الاله وسیأتیك مایفیده۔ کیونکہ وہ جس کا ہے اسی کا تابع ہوگا اور عنقریب اس پر مقید گفتگو آرہی ہے۔ (ت)

اور اگر دونوں کے قبضہ میں ہے تو اگر ان میں اس کی خدمت نوبت بہ نوبت مقرر پائی ہے مثلاً ایک دن اس کی خدمت کرے اور دوسرے دن اُس کی ، تو ہر ایک کی نوبت میں اس کی نیت پر عمل کرے یعنی جس دن خدمت کی باری ہو غلام بھی اپنے آپ کو مقیم سمجھے اور جس دن خدمت مسافر کی باری ہو اپنے آپ کو مسافر جانے ، اور اگر باہم نوبت نہ قرار دی بلکہ یوں ہی دونوں کی خدمت میں ہے وہ من وجہ مقیم اور من وجہ مسافر ہے قصر اصلاً نہ کرے اس لحاظ سے کہ اس کے ایک مولیٰ نے نیت اقامت کی اور قعدہ اولیٰ بھی اپنے اوپر فرض جانے اس نظر سے کہ دوسرے مولیٰ کی وجہ سے مسافر ہے۔

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

His intention is travel and it is better for him that as far as possible he follows a resident (muqim) in prayer within the time. In Durr al-Mukhtar, it says:

[Table Content] Arabic Text: A slave shared between a resident and a traveler who alternate his service; he shortens (the prayer) during the traveler's turn, otherwise, the first sitting is obligatory for him and he completes the prayer as a precaution, and he never follows a resident. This is among the complex issues regarding slaves. (Footnote 1) Urdu Text: A slave is shared between a resident and a traveler, and their service has been decided turn by turn. Thus, in the traveler's turn, he should shorten the prayer, otherwise (if turns are not fixed), then the first sitting (Qa'dah Ula) will be obligatory for him and he should complete the prayer as a precaution (because since he has two owners, he is a resident from one perspective and a traveler from the other's perspective). And he should not follow a resident at all; this is a complex issue from among the issues regarding slaves. (t)

In Radd al-Muhtar, it says:

[Table Content] Arabic Text: Regarding the statement "and he shall not follow..." in Sharh al-Munyah: Based on this, it is not permissible for him to follow a resident at all. So know this well. i.e., neither within the time nor after it, nor in the first pair (of rak'ahs) nor in the second. Perhaps the reason for this is what our Shaykh stated: that the first sitting was obligatory for him as well due to being categorized with the traveler. Thus, when he follows a resident, it results in someone performing an obligatory act following someone performing a supererogatory act regarding the first sitting. (Footnote 2) Urdu Text: Regarding the statement "and he shall not follow etc.", it is in Sharh al-Munyah and based on this it becomes necessary that following a resident is not permissible for him in any situation. So he should know this well, i.e., neither within the time nor after it, nor in the first pair nor in the second. Perhaps the reason for this is what our Shaykh mentioned: that the first sitting was obligatory for him as well due to being categorized with the traveler. Thus, when he follows a resident, it will now become necessary regarding the first sitting that an individual performing an obligatory act is following an individual performing a supererogatory act. Arabic Text: I say: But the statement of the commentator of Al-Munyah "and based on this etc." appears from it that it is a branch from... Urdu Text: I say: (I say)

From the statement of the commentator of Al-Munyah "and based on this etc.", it appears that as a...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on the Prayer of the Traveler, printed at Matba' Mujtabai Delhi, 1/108.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on the Prayer of the Traveler, Mustafa al-Babi Egypt, 1/589.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

उसकी यात्रा की नियत है और उसके हक में बेहतर यह है कि जहाँ तक हो सके वक्त के अंदर किसी मुकीम (निवासी) की इक्तादा (अनुसरण) करे। 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है:

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: एक गुलाम जो एक मुकीम और एक मुसाफिर के बीच साझा है, जिसकी सेवा बारी-बारी से होती है; वह मुसाफिर की बारी में नमाज़ कसर करे, अन्यथा उसके लिए पहला बैठना फर्ज़ है और वह एहतियातन नमाज़ पूरी करे, और वह कभी मुकीम के पीछे नमाज़ न पढ़े। यह गुलामों से जुड़े पेचीदा मसलों में से एक है। (पाद-टिप्पणी 1) उर्दू अनुवाद: एक गुलाम मुकीम और मुसाफिर के बीच साझा है, और दोनों की सेवा बारी-बारी तय की गई है। तो मुसाफिर की बारी में कसर करे वरना (अगर बारी तय न हो) तो कायदा-ए-उला उस पर फर्ज़ होगा और वह एहतियातन नमाज़ पूरी पढ़े (क्योंकि जब उसके दो मालिक हैं तो वह एक लिहाज़ से मुकीम और दूसरे के एतबार से मुसाफिर है) और वह किसी मुकीम के साथ इक्तादा बिल्कुल न करे। यह गुलाम के मसलों में से पेचीदा मसला है। (त)

'रद्दुल मुहतार' में है:

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: उनके इस कथन "और वह इक्तादा न करे..." के बारे में 'शरह अल-मुनिया' में है: इस आधार पर उसके लिए मुकीम की इक्तादा करना किसी भी हाल में जायज़ नहीं है। इसे अच्छी तरह जान लें। यानी न वक्त में और न वक्त के बाद, न पहली दो रकअत में और न ही दूसरी में। शायद इसकी वजह वही हो जो हमारे शैख ने बताई कि मुसाफिर के साथ मिलने की वजह से उस पर पहला बैठना फर्ज़ था। पस जब उसने मुकीम की इक्तादा की, तो पहले बैठने के हक में यह लाज़िम आएगा कि फर्ज़ पढ़ने वाला नफ्ल पढ़ने वाले के पीछे है। (पाद-टिप्पणी 2) उर्दू अनुवाद: उनके इस कथन "और न इक्तादा करे वग़ैरा" के बारे में 'शरह अल-मुनिया' में है और इस आधार पर यह ज़रूरी है कि उसके लिए मुकीम की इक्तादा किसी हाल में जायज़ न हो। अतः इसे अच्छी तरह जान लेना चाहिए, यानी न वक्त में और न वक्त के बाद, न पहली शफ़ (दो रकअत) में और न दूसरी में। शायद इसकी वजह वही हो जो हमारे शैख ने फरमाई कि मुसाफिर के साथ मिलने की वजह से कायदा-ए-उला उस पर फर्ज़ था। पस जब उसने मुकीम की इक्तादा की, तो अब कायदा-ए-उला के लिहाज़ से यह लाज़िम आएगा कि एक फर्ज़ अदा करने वाला, नफ्ल अदा करने वाले की इक्तादा कर रहा है। अरबी पाठ: अक़ूल (मैं कहता हूँ): लेकिन 'शरह अल-मुनिया' के लेखक के इस कथन "और

इस आधार पर वग़ैरा" से ज़ाहिर होता है कि बतौर... उर्दू अनुवाद: अक़ूल: (मैं कहता हूँ) 'शरह अल-मुनिया' के लेखक के कथन "और इस आधार पर वग़ैरा" से ज़ाहिर होता है कि बतौर...

1. दुर्र-ए-मुख्तार, बाब सलातुल मुसाफिर, मतबुआ मतबा-ए-मुजतबाई दिल्ली 1/108।
2. रद्दुल मुहतार, बाब सलातुल मुसाफिर, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/589।

पृष्ठ 256 / 673

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

کی نیت سفر ہے اور اس کے حق میں افضل یہ ہے کہ جہاں تک مل سکے کسی مقیم کی اقتداء وقت میں کرے، در مختار میں ہے :

[ٹیبل کا مواد] عربی متن: عبد مشترك بين مقيم ومسافران تهايأ قصر في نوبة المسافر والا يفرض عليه القعود الاول ويتم احتياطا ولا يأتم بمقيم اصلا وهو مما يلغز _$1^$ اردو متن: ایک غلام مقیم مسافر کے درمیان مشترک ہے، اور دونوں کی خدمت نوبت بہ نوبت قرار دی گئی ہے تو مسافر کی نوبت میں قصر کرے ورنہ (اگر باری نہ ٹھہرائی ہو) تو قعدہ اولیٰ اس پر فرض ہوگا اور وہ نماز کا اتمام احتیاطاً کرے (کیونکہ جب اس کے مالک دو ہیں تو وہ ایک لحاظ سے مقیم اور دوسرے کے اعتبار سے مسافر) اور وہ کسی مقیم کے ساتھ اقتداء بالکل نہ کرے یہ غلام کے مسائل میں سے پیچیدہ مسئلہ ہے (ت)

ردالمختار میں ہے :

[ٹیبل کا مواد] عربی متن: قوله ولا يأتم الخ في شرح المنية وعلى هذا فلا يجوزله الاقتداء بالمقيم مطلقا فليعلم هذا اهـ اى لا في الوقت ولا بعده ولا في الشفع الاول ولا في الثاني ولعل وجهه كما افاده شيخنا ان القعدة الاولى فرض عليه ايضاً الحاقه بالمسافر فاذا اقتدى بمقيم يلزم اقتداء المفترض بالمتنفل في حق القعدة الاولى اهـ _$2^$ اردو متن: قولہ "اور نہ اقتداء کرے الخ" شرح المنیہ میں ہے اور اس بنا پر لازم آتا ہے کہ اس کے لئے مقیم کی اقتداء کسی حال میں جائز نہ ہو ، پس اسے اچھی طرح جان لینا چاہئے اھ یعنی نہ وقت میں اور نہ وقت کے بعد ، نہ شفع اول میں نہ ثانی میں ، شاید اس کی وجہ وہ ہی ہو جو ہمارے شیخ نے فرمائی کہ قعدہ اولی الحاق مسافر کی وجہ سے اس پر فرض تھا،

پس جب اس نے مقیم کی اقتداء کی تو اب قعدہ اولی کے لحاظ سے لازم آئے گا کہ ایک فرض ادا کرنے والا نفل ادا کرنے والے کی اقتداء کر رہا ہے۔ عربی متن: اقول: لکن قول شارح المنیة و علی هذا الخ یظهر منہ انه تفریع من اردو متن: اقول: (میں کہتا ہوں) شارح المنیہ کے قول "اور اس بنا پر الخ" سے ظاہر ہوتا ہے کہ بطور

1 در مختار باب صلوة المسافر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۸ 2 رد المحتار باب صلوة المسافر مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۸۹

[Arabic Section]: In his view, by way of research and instruction, I saw in Al-Tatarkhaniyya on the authority of Al-Hujjah that if it is not by rotation and it is in the hands of both of them, then for every prayer he prays alone, he should pray four cycles (rak'ats), sitting after every two cycles and reciting in the last two. Similarly, if he follows a traveler, he should pray two cycles with him, and there is a difference of opinion regarding the recitation in the [remaining] two cycles. However, if he follows a resident, he must pray four cycles by consensus. (End of quote from Radd al-Muhtar).

[Urdu Section]: This discussion is an elaboration from his own side; otherwise, I have seen in Tatarkhaniyya with reference to Hujjah that if they are not bound by turns and it is in the possession of both, then he should perform every prayer alone as four cycles, sit after every two cycles, and recite in the last two cycles. Similarly, when following a traveler, he should perform two cycles with him, and there is a difference of opinion regarding reciting in the two cycles after that. However, when he follows a resident, he will perform four cycles by consensus. (The text of Radd al-Muhtar ends).

The Fakir (humble servant) says:

[Arabic Section]: May Allah Almighty forgive him. I remember that I wrote a marginal note on his statement: "So if he follows a resident, following for the one performing an obligatory prayer becomes necessary... etc." The text of which is: I say, this is something I do not find acceptable. For the traveler is, from every aspect, such that the first sitting is obligatory for him from every aspect. Despite that, it is permissible for him to follow a resident by consensus. When he performs it within the time, it is not considered as an obligatory performer following a voluntary performer. Rather, it is said that due to following (the resident), his obligation has changed to four cycles. Therefore, the first sitting is no longer obligatory for him, because here a transformer (al-mughayyir) has been found in the place capable of transformation where it joined.

[Urdu Section]: May Allah Almighty forgive him; I remember that I wrote a marginal note on his statement "When he followed a resident, the following of the obligatory performer will become necessary" etc. This statement is something with which I do not find any agreement, because the person who is a traveler regarding the obligatory prayer from every aspect, for him too the first sitting is obligatory from every aspect. Yet, he can follow a resident by consensus. When performed within the

time, his following is not counted as an obligatory performer following a voluntary one; rather, it will be said that because of following, his obligation became four instead of two. So now the first sitting is no longer obligatory for him, because here in the place capable of change, a changer has been found.

1: Radd al-Muhtar, Chapter of the Prayer of the Traveler, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/589. Page 257 of 673

[अरबी अनुभाग]: उनके अनुसार शोध और शिक्षा के तौर पर, मैंने 'अल-ततारख़ानिया' में 'अल-हुज्जाह' के हवाले से देखा है कि यदि यह बारी-बारी से नहीं है और वह दोनों के कब्ज़े में है, तो वह जो भी नमाज़ अकेले पढ़ेगा, उसे चार रकात पढ़नी चाहिए, और हर दो रकात के बाद बैठना चाहिए और अंतिम दो में क़िरात (पाठ) करनी चाहिए। इसी तरह जब वह किसी मुसाफ़िर के पीछे नमाज़ पढ़े, तो उसके साथ दो रकात पढ़े, और उसके बाद की दो रकातों में क़िरात के बारे में मतभेद है। लेकिन जब वह किसी मुक़ीम के पीछे नमाज़ पढ़े, तो वह सर्वसम्मति से चार रकात ही पढ़ेगा। (रद-उल-मुहतार का उद्धरण समाप्त)।

[उर्दू अनुभाग]: यह चर्चा उनकी अपनी ओर से एक स्पष्टीकरण है; अन्यथा मैंने तातारख़ानिया में 'हुज्जाह' के संदर्भ में देखा है कि यदि वे बारी-बारी के पाबंद नहीं हैं और वह दोनों के कब्ज़े में है, तो वह हर नमाज़ अकेले चार रकात के रूप में पढ़ेगा, हर दो के बाद बैठेगा और आखिरी दो रकातों में क़िरात करेगा। इसी तरह, मुसाफ़िर के पीछे नमाज़ पढ़ते समय, वह उसके साथ दो रकात पढ़ेगा, और उसके बाद दो रकातों में क़िरात करने में मतभेद है। लेकिन जब वह किसी मुक़ीम के पीछे नमाज़ पढ़ेगा, तो वह सर्वसम्मति से चार रकात पढ़ेगा। (रद-उल-मुहतार की इबारत समाप्त हुई)।

फ़क़ीर कहता है:

[अरबी अनुभाग]: अल्लाह तआला उन्हें क्षमा करे। मुझे याद है कि मैंने उनके इस कथन 'जब उसने किसी मुक़ीम की इक़्तिदा की तो फ़र्ज़ वाले की इक़्तिदा लाज़िम आएगी' आदि पर हाशिये में लिखा था: मैं कहता हूँ, यह ऐसी बात है जिससे मैं सहमत नहीं हूँ। क्योंकि मुसाफ़िर हर लिहाज़ से वह है जिसके लिए पहली बैठक (क़ादा-ए-ऊला) हर लिहाज़ से फ़र्ज़ है। इसके बावजूद, सर्वसम्मति से मुक़ीम के पीछे नमाज़ पढ़ना उसके लिए जायज़ है। जब समय के भीतर अदा किया जाए, तो इसे फ़र्ज़ पढ़ने वाले का नफ़्ल (स्वैच्छिक) पढ़ने वाले के पीछे नमाज़ पढ़ना नहीं माना जाता है। बल्कि यह कहा जाएगा कि इक़्तिदा (अनुसरण) के कारण उसका फ़र्ज़ दो के बजाय चार रकात में बदल गया है। इसलिए, पहली बैठक अब उस पर फ़र्ज़ नहीं रही, क्योंकि यहाँ बदलाव के लिए सक्षम स्थान में बदलाव करने वाला कारक (अल-मुग़य्यर) मिल गया है।

[उर्दू अनुभाग]: अल्लाह तआला उनकी मग़फ़िरत फ़रमाए; मुझे याद है कि मैंने उनकी इस इबारत "जब उसने किसी मुक़ीम की इक़्तिदा की तो फ़र्ज़ वाले की इक़्तिदा लाज़िम आएगी" आदि पर

हाशिये में एक टिप्पणी लिखी थी। यह कथन ऐसी चीज़ है जिससे मुझे कोई सहमति नहीं है, क्योंकि जो व्यक्ति हर लिहाज़ से मुसाफ़िर है, उस पर भी पहली बैठक (क़ादा) हर लिहाज़ से फ़र्ज़ है। फिर भी, वह सर्वसम्मति से मुक़ीम के पीछे नमाज़ पढ़ सकता है। जब समय में अदा किया जाए, तो उसकी इक़्तिदा को फ़र्ज़ पढ़ने वाले का नफ़्ल पढ़ने वाले के पीछे नमाज़ पढ़ना नहीं गिना जाएगा; बल्कि यह कहा जाएगा कि इक़्तिदा के कारण उसका फ़र्ज़ दो के बजाय चार हो गया है। तो अब पहली बैठक उस पर फ़र्ज़ नहीं रही, क्योंकि यहाँ बदलाव की क्षमता वाले स्थान में बदलाव लाने वाला मिल गया है।

1: रद-उल-मुहतार, मुसाफ़िर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/589।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[عربی حصہ]: عنده على وجه البحث والافادة ای رأیته في التاتر خانية عن الحجة انه ان لم يكن بالمهاياة وهو في ايديهما فكل صلوة يصليها وحده يصلى اربعا و يقعد على رأس الركعتين ويقرأ في الاخريين وكذا اذا اقتدى بمسافر يصلى معه ركعتين وفى قرأته في الركعتين اختلاف واما اذا اقتدى بمقيم فانه يصلى اربعاً بالاتفاق اهـ مانى ردالمحتار۔ [اردو حصہ]: بحث یہ ان کی اپنی طرف سے تفریح ہے ورنہ میں نے تاتارخانیہ میں حجہ کے حوالے سے دیکھا ہے اگر وہ باری باری پابند نہیں اور وہ دونوں کے قبضہ ہے تو وہ ہر نماز تنہا چار رکعات ادا کرے اور ہر دو کے بعد بیٹھے اور آخری دو رکعتوں میں قرأت کرے اور اسی طرح جب کسی مسافر کی اقتداء کرے تو اس کے ساتھ دو رکعات ادا کرے اور اس کے بعد دو رکعات میں قرأت کرنے میں اختلاف ہے لیکن جب وہ کسی مقیم کی اقتداء کرے تو وہ بالاتفاق چار رکعتیں ادا کرے گا (ردالمحتار کی عبارت ختم ہوئی)

فقیر کہتا ہے:

[عربی حصہ]: غفر الله تعالٰی له رأيتني كتبت على هامش قوله فاذا اقتدى بمقيم يلزم اقتداء المفترض الخ مانصه اقول هذا مما لست احصله فان المسافر من كل وجه القعدة الاولى فريضة عليه من كل وجه، مع ذلك يجوز له الاقتداء بالمقيم اجماعا ولا يعد بذلك مفترضاً خلف متنفل اذا اقتدى فى الوقت بل يقال ان فرضه تحول بالقدوة رباعيا فلم تبق للقعدة الاولى فريضة عليه لمصادفة المغير محله القابل له حيث اتصل [اردو حصہ]: اللہ تعالیٰ ان کی بخشش فرمائے، مجھے یاد پڑتا ہے کہ میں نے ان کی اس عبارت "جب اس نے کسی مقیم کی اقتداء کی تو فرض والے کی اقتداء لازم آئیگی" الخ پر حاشیہ تحریر کیا تھا قول یہ ایسی چیز ہے جس سے مجھے کچھ اتفاق نہیں ہو رہا ہے، کیونکہ جو شخص ہر لحاظ سے فرض سے مسافر ہے اس پر بھی قعدہ اولیٰ ہر لحاظ سے فرض ہے حالانکہ وہ

بالاتفاق مقیم کی اقتداء کرسکتا ہے جب وقت میں ادا کرے تو اسے فرض والے کا نفل والے کی اقتداء کرنا شمار نہیں کیا جاتا بلکہ یہ کہا جائے گا کہ اقتداء کی وجہ سے اس پر فرض دو کے بجائے چار ہوگئے ہیں تو اب قعدہ اولیٰ اس پر فرض نہیں رہا کیونکہ یہاں تبدیلی کے قابل محل میں تبدیلی پیدا کرنے والا پا گیا ہے۔

1: ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۸۹ Page 257 of 673

Fatawa Rizvia Volume 8

Arabic Text

...by the cause, meaning the time, unlike when one follows after its expiration. If this is the case for him, then what about someone who is not a traveler in every respect and for whom sitting is not obligatory in a single way? Therefore, he should be ordered to follow the resident (Muqim) during the time whenever he finds it, so that he may emerge from the possibility of completing [the prayer] during the journey. This is what I have written. Due to the intensity of its clarity, the confirmation of the narration, and even the transmission of consensus on the permissibility of his following the resident, I have resolved upon it. If it is correct, it is from my Lord Allah, and I hope it will not be otherwise. And Allah Almighty knows best.

Urdu Explanation

That is because here the cause (time) is connected, unlike the situation where following occurs after the time has passed. When this is the case for someone who is a traveler in every sense, then what will be the state of one who is not a traveler in every respect and for whom there isn't a single definite reason for the obligation of the final sitting (Qa'da)? Therefore, he should be commanded to follow the resident (Muqim) whenever he finds him, so that he exits the possibility of completing the prayer during travel (what I wrote there ends here). Because of the intense clarity, confirmation of narration, and indeed the reported consensus on the permissibility of following a resident, I have adopted this firm stance. So, if it is correct, it is from Allah Almighty, and I hope it is indeed correct. (T)

Problem 1265: From Sandal Khan, Bareilly, dated 29 Dhu al-Qi'dah 1326 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid is employed in a city seventy or eighty leagues (Kos) away from his hometown. After one or two years, he came to his house for eight or ten days and then returned. During this coming and going, should he pray shortened (Qasr) prayers or not? Explain and be rewarded.

The Answer: When he departs from there with the intention of returning to his hometown and leaves the settled area of that place, from that moment until he enters the settled area of his own city, he will perform Qasr. Once he enters the settled area of his hometown, the Qasr ends. As long as he stays here, even if it is for just one hour, he cannot perform Qasr, because staying for fifteen days is not a requirement in one's hometown. Then, when he leaves his hometown with the intention of going to that city and exits the settled area of his hometown, from that moment Qasr becomes obligatory. He will perform Qasr throughout the journey. If,

upon reaching that city, he does not intend to stay for fifteen days or more this time, but rather plans to return in less than fifteen days or go somewhere else from there, then he will also perform Qasr during that stay as long as he remains there. However, if he intends to take up residence (Iqamat) there, he will only perform Qasr during the journey; when he enters the settled area of that city, the Qasr will end. And Allah Almighty knows best.

Problem 1266: From Pilibhit, sent by Habib Ahmad Sahib Rizvi Barkati, 30 Dhu al-Hijjah al-Haram 1336 AH. A person is employed in a forest or at a station located in a forest, and whenever his master sends him, it is for at least one month...

---

1. Jadd al-Mumtar 'ala Radd al-Muhtar, Chapter of the Traveler's Prayer, Al-Majma' al-Islami, Beirut, 1/366.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

अरबी पाठ

...कारण से, मेरा मतलब समय है, इसके विपरीत जब वह समय बीतने के बाद अनुसरण करता है। यदि उसके लिए यह मामला है, तो उस व्यक्ति के बारे में क्या जो हर तरह से मुसाफ़िर नहीं है और जिसके लिए बैठना (कादा) एक ही तरह से अनिवार्य नहीं है? इसलिए उसे समय के भीतर मुक़ीम (निवासी) का अनुसरण करने का आदेश दिया जाना चाहिए जब भी वह उसे पाए, ताकि वह यात्रा के दौरान [नमाज़] पूरी करने की संभावना से बाहर निकल सके। यह वह है जो मैंने लिखा है। इसकी स्पष्टता की तीव्रता, रिवायत की पुष्टि और यहाँ तक कि मुक़ीम के अनुसरण की अनुमेयता पर आम सहमति के उल्लेख के कारण, मैंने इसे दृढ़ता से अपनाया है। यदि यह सही है, तो यह मेरे रब अल्लाह की ओर से है और मुझे आशा है कि यह इसके अलावा कुछ नहीं होगा। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

उर्दू स्पष्टीकरण

वह इसलिए कि यहाँ कारण (समय से) जुड़ा हुआ है, इसके विपरीत उस स्थिति के जब अनुसरण समय बीतने के बाद हो। जब यह मामला हर लिहाज़ से मुसाफ़िर का है, तो उसका हाल क्या होगा जो हर लिहाज़ से मुसाफ़िर नहीं है और उस पर कादा के फ़र्ज़ होने की एक वजह तय नहीं है। लिहाज़ा उसे हुक्म दिया जाए कि वह मुक़ीम के साथ जब भी पाए उसकी इक़्तदा (अनुसरण) करे ताकि सफ़र में एतमाल-ए-इतमाम (पूरी नमाज़ की संभावना) से बाहर हो जाए (जो मैंने वहाँ लिखा वह समाप्त हुआ)। स्पष्टता की तीव्रता, रिवायत की पुष्टि बल्कि मुक़ीम की इक़्तदा के जवाज़ पर इत्तेफ़ाक़ (सहमति) मनक़ूल होने की वजह से मैंने इसी पर जज़्म (दृढ़ता) अख्तियार किया है। पस अगर सवाब (सही) है तो अल्लाह तआला की तरफ़ से है और मैं उम्मीद करता हूँ कि सवाब ही होगा। (त)

मसला 1265: बरेली संदल ख़ाँ की बज़रिया 29 ज़ी अल-क़ादा 1326 हिजरी उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद अपने वतन से सत्तर या अस्सी कोस की दूरी पर किसी शहर में मुलाज़िम है। वहाँ से साल-दो साल के बाद आठ-दस रोज़ के वास्ते अपने मकान पर आया और फिर चला गया। इस आमद-ओ-रफ़्त में उसको नमाज़ क़स्र पढ़नी चाहिए या नहीं। बयान फ़रमायें और सवाब पायें।

अल-जवाब: जब वहाँ से बक़स्द-ए-वतन (वतन के इरादे से) चले और वहाँ की आबादी से बाहर निकल आए, उस वक़्त से जब तक अपने शहर की आबादी में दाख़िल न हो, क़स्र करेगा। जब अपने वतन की आबादी में आ गया, क़स्र जाता रहा। जब तक यहाँ रहेगा, चाहे एक ही साअत (घड़ी) हो, क़स्र न कर सकेगा क्योंकि वतन में कुछ पंद्रह रोज़ ठहरने की नियत ज़रूरी नहीं। फिर जब वतन से उस शहर के क़स्द पर चला और वतन की आबादी से बाहर निकल गया, उस वक़्त से क़स्र वाजिब हो गया। रास्ते भर तो क़स्र करेगा ही और अगर उस शहर में पहुँचकर इस बार पंद्रह रोज़ या ज़्यादा क़ियाम (ठहरने) का इरादा नहीं बल्कि पंद्रह दिन से कम में वापस आने या वहाँ से और कहीं जाने का क़िस्सा है, तो वहाँ जब तक ठहरेगा उस क़ियाम में भी क़स्र ही करेगा। और अगर वहाँ इक़ामत का इरादा है तो सिर्फ़ रास्ता भर क़स्र करे, जब उस शहर की आबादी में दाख़िल होगा, क़स्र जाता रहेगा। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1266: पीलीभीत से मुरसला हबीब अहमद साहब रिज़वी बरकाती 30 ज़ी अल-हिज्जा अल-हराम 1336 हिजरी एक शख़्स जंगल या स्टेशन पर जो जंगल में वाक़े है मुलाज़िम है और उसको आक़ा जब भेजते हैं तो कम-अज़-कम एक माह...

1- जद अल-मुम्तार अली रद अल-मुहतार, बाबू सलात अल-मुसाफ़िर, अल-मजमा अल-इस्लामी बेरूत 366/1

عربی عبارت **اردو تشریح**

وہ ایسے کہ یہاں سبب (وقت سے) متصل ہے بخلاف اس

بالسبب اعنی الوقت بخلاف ماااذا اقتدی صورت کے کہ جب اقتداء وقت گزرنے کے بعد ہو، جب

بعد انقضاء ہ فاذا کان ھذا فی حقہ فکیف یہ معاملہ ہر لحاظ سے مسافر کا ہے تو اس کا حال کیا

بمن لیس مسافرا من کل وجہ ولا القعدۃ ہوگا جو ہر لحاظ سے مسافر نہیں اور اس پر قعدہ کے

فریضۃ علیہ وجھا واحدا فھذا ینبغی ان فرض ہونے کی ایک وجہ متعین نہیں لہٰذا اسے حکم دیا

یومربأقتداء المقیم فی الوقت مھما وجد جائے کہ وہ مقیم کے ساتھ جب بھی پائے اس کی اقتداء

کی یخرج عن احتمال الاتمام فی السفر اھ کرے تاکہ سفر میں احتمال اتمام سے خارج ہو جائے (جو

ماحررتہ ولشدۃ وضوحہ وثبوت الروایۃ میں نے وہاں لکھا ختم ہوا) شدت وضوح ثبوت روایت

بل نقل الاتفاق علی جواز اقتدائہ بالمقیم بلکہ مقیم کی اقتداء کے جواز پر اتفاق منقول ہونے کی

جزمت بہ فان کان صوابا فمن ربی اللہ وجہ سے میں نے اسی پر جزم اختیار کیا ہے، پس اگر

وارجوان لایکون الا ایاہ۔ واللہ تعالٰی اعلم صواب ہے تو اللہ تعالٰی کی طرف سے ہے اور میں امید

کرتا ہوں کہ صواب ہی ہوگا۔ (ت)

مسئلہ ۱۲۶۵: بریلی صندل خاں کی بزریہ ۲۹ ذی القعدہ ۱۳۲۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید اپنے وطن سے ستر یا اسی کوس کے فاصلے پر کسی شہر میں ملازم ہے وہاں سے سال دو سال کے بعد آٹھ دس روز کے واسطے اپنے مکان پر آیا اور پھر چلا گیا اس آمد ورفت میں اس کو نماز قصر پڑھنا چاہئے یا نہیں۔ بینوا توجروا

الجواب: جب وہاں سے بقصد وطن چلے اور وہاں کی آبادی سے باہر نکل آئے اس وقت سے جب تک اپنے شہر کی آبادی میں داخل نہ ہو قصر کرے گا جب اپنے وطن کی آبادی میں آگیا قصر جاتا رہا، جب تک یہاں رہے گا اگرچہ ایک ہی ساعت، قصر نہ کر سکے گا کہ وطن میں کچھ پندرہ روز ٹھہرنے کی نیت ضرور نہیں، پھر جب وطن سے اُس شہر کے قصد پر چلا اور وطن کی آبادی سے باہر نکل گیا اس وقت سے قصر واجب ہو گیا راستے بھر تو قصر کرے گا ہی اور اگر اُس شہر میں پہنچ کر اس بار پندرہ روز یا زیادہ قیام کا ارادہ نہیں بلکہ پندرہ دن سے کم میں واپس آنے یا وہاں سے اور کہیں جانے کا قصہ ہے تو وہاں جب تک ٹھہرے گا اس قیام میں بھی قصر ہی کرے گا اور اگر وہاں اقامت کا ارادہ ہے تو صرف راستہ بھر قصر کرے جب اس شہر کی آبادی میں داخل ہو گا قصر جاتا رہے گا۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۶۶: از پیلی بھیت مرسلہ حبیب احمد صاحب رضوی برکاتی ۳۰ ذی الحجہ الحرام ۱۳۳۶ھ ایک شخص جنگل یا اسٹیشن پر جو جنگل میں واقع ہو ملازم ہے اور اس کو آقا جب بھیجتے ہیں تو کم از کم ایک ماہ

1- جد الممتار علی ردالمحتار باب صلوۃ المسافر المجمع الاسلامی بیروت ۱/۳۶۶

Fatawa Razawiyya, Volume 8

...if they send [the employee] with an intention [of staying for a certain duration], does this employee perform shortened (Qasr) prayer or full prayer? And among the following arguments, is Zaid right or Amr? Zaid's statement is that the employee must perform [full] prayer in all circumstances even if the master sends him with an intention for one month, because if the master wishes, he could transfer him to another place within eight days. Secondly, because it is a forest, Qasr is obligatory in every situation as there is no inhabited settlement there which qualifies as a place of residence (Iqamah). Amr's argument is that all actions depend on intentions; that is, at the time the master sends him, he sends him with a one-month intention. Even if he calls him back in one day, in this state, due to the intention, prayer does not become Qasr. Secondly, the forests where residency is not established are different forests; such forests or stations located in forests where twenty to twenty-five people are present at all times, and also railway employees work at the station (even if inhabited villages are a few kos away from there), it does not invalidate residency. In such places, whose statement is correct among them?

Answer: Here, notification on several matters is necessary, through which, with the help of Allah Almighty, the ruling may be revealed: First: Although stations may be at some distance from the settlement, buildings exist there and the means of residency are provided. Yes, if they are situated miles away from settlements in the forest, like those assigned to gather wood from the forest, then that is not a place of residency even if tents and camps are with them, except for those whose way of life itself is such, like nomads. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

Arabic	**Urdu Translation**
Or he intends to reside for half a month in a place suitable for it	Or he makes an intention to reside for half a month in a place that has the capacity for residency.
or a village, or a desert which is our abode, and he is of the people of tents.	either it be a village or the desert of our country, or he is a nomad living in tents.

It is stated in Alamgiriyyah:

Arabic	Urdu Translation
Shams al-A'immah al-Halwani said: When the army of Muslims	Shams al-A'immah Halwani said that if an army of Muslims goes to a place
aimed for a place and they had with them their tents, booths, and pavilions	aims for a place and their tent equipment is with them, they
and they camped in a desert on the way and set up tents and pavilions	camped in a forest on the way and pitched tents etc. and
and resolved therein on a stay of fifteen [days]	intended to stay there for fifteen days, they will not be residents (muqeem).

1 Durr-e-Mukhtar, Chapter on the Prayer of the Traveler, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/107.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

...के इरादे से भेजते हैं तो इस मुलाज़िम पर नमाज़ क़स्र है या पूरी? और निम्नलिखित दलीलों में ज़ैद हक़ पर है या अम्र? ज़ैद का कहना है कि मुलाज़िम को हर हाल में नमाज़ करनी चाहिए चाहे आका एक महीने के इरादे से भेजे क्योंकि अगर आका चाहे तो आठ दिन में दूसरी जगह मुंतकिल (स्थानांतरित) कर दे। दूसरे, जंगल होने की वजह से हर हालत में क़स्र वाजिब है क्योंकि वहां आबादी नहीं है जो इक़ामत (निवास) की जगह है। अम्र की दलील है कि तमाम काम इरादे के लिहाज़ पर होते हैं यानी जिस वक़्त आका भेजता है तो एक महीने के इरादे से भेजता है, फिर वह चाहे एक दिन में बुला ले, इस हालत में इरादे की वजह से नमाज़ क़स्र नहीं हुई। दूसरे, जिस जंगल में इक़ामत नहीं होती वे दूसरे जंगल हैं और ऐसे जंगल या स्टेशन जो जंगल में हों जहाँ बीस-पच्चीस इंसान हर वक़्त हों और रेलवे के मुलाज़िम भी स्टेशन पर काम करते हों (अगर आबादी वाले गाँव वहाँ से दो-चार कोस पर हों), इक़ामत को बातिल (अमान्य) नहीं करती। ऐसी जगह इन में किसका कहना सही है?

जवाब: यहाँ कुछ बातों पर जानकारी देना ज़रूरी है जिनसे अल्लाह के फ़ज़ल से हुक्म ज़ाहिर हो: पहला: स्टेशन अगरचे आबादी से कुछ फासले पर हों, वहाँ इमारत होती है, इक़ामत का सामान मुहैय्या होता है। हाँ, अगर आबादी से कोसों दूर जंगल में तैनात हों जैसे जंगल की लकड़ी लेने वाले, तो वह इक़ामत की जगह नहीं है अगरचे खेमे और डेरे साथ हों, मगर उनके लिए जिनका रहन-सहन ही ऐसा हो, जैसे खानाबदोश। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
ओ यन-वि इक़ामता निस्फ शहर बमौज़िइन सालिहिन लहा औ क़र्यतिन औ सहराए दारना व हुवा मिन अह्लिल अख़बिया	या वह आधे महीने की इक़ामत की नियत किसी ऐसी जगह करे जो इक़ामत की सलाहियत (योग्यता) रखती हो चाहे वह बस्ती हो या हमारे मुल्क का सहरा हो या वह तंबू में रहने वाला खानाबदोश हो।

'आलमगीरी' में है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
क़ाला शम्सुल अइम्मा अल-हलवानी असकरुल मुस्लिमीन इज़ा	शम्सुल अइम्मा हलवानी ने फरमाया कि मुसलमानों का लश्कर (सेना) अगर किसी जगह जाए

अरबी	उर्दू अनुवाद
क़सदुल मौज़िअन व म-अहुम अख़बियातुहुम व खियामुहुम व	और उनके खेमे का सामान उनके साथ हो, उन्होंने रास्ते के
फ़सातीतुहुम फनज़ालु मफ़ाज़तन फ़ित-तरीक़ि व नस-बुल अख़बिया	जंगल में पड़ाव डाला और वहाँ खेमे वगैरह नसब (गाड़ना) किए और पंद्रह दिन
वल-फ़सातीता व अज़मू फ़ीहा अला इक़ामति ख़म-सता अ-श-र	ठहरने का इरादा कर लिया तो वे मुक़ीम (निवासी) नहीं होंगे।

1 दुर्रे मुख्तार, मुसाफिर की नमाज़ का अध्याय, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/107।

पृष्ठ 259/673

کے ارادہ سے بھیجتے ہیں تو اس ملازم پر نماز قصر ہے یا پوری؟ اور مندرجہ ذیل دلیلوں میں زید حق پر ہے یا عمرو؟ زید کا قول ہے کہ ملازم کو ہر حالت میں نماز کرنا چاہئے اگرچہ آقا ایک ماہ کے ارادے سے بھیجے کیونکہ اگر آقا چاہے تو آٹھ روز میں دوسری جگہ منتقل کردے، دوسرے جنگل ہونے کی وجہ سے ہر حالت میں قصر واجب ہے کیونکہ وہاں آبادی نہیں ہے جو اقامت کی جگہ ہے، عمرو کی دلیل ہے کہ کل کام ارادے کے لحاظ پر ہوتے ہیں یعنی جس وقت آقا بھیجتا ہے تو ایک ماہ کے ارادے سے بھیجتا ہے پر وہ چاہے ایک روز میں بلالے اس حالت میں ارادے کی وجہ سے نماز قصر نہیں ہوئی، دوسرے جس جنگل میں اقامت نہیں ہوتی وہ دوسرے جنگل ہیں اور ایسے جنگل یا اسٹیشن جو جنگل میں ہوں جہاں بیس پچیس انسان ہر وقت ہوں نیز ریلوے کے ملازم بھی اسٹیشن پر کام کرتے ہوں (اگر آبادی گاؤں وہاں سے دو چار کوس پر ہوں) اقامت کو باطل نہیں کرتی ایسی جگہ ان میں قول کس کا درست ہے؟

الجواب: یہاں چند امور پر اطلاع لازم جن سے بعونہ تعالیٰ انکشاف حکم ہو : اول: اسٹیشن اگرچہ آبادی سے کچھ فاصلے پر ہوں وہاں عمارت ہوتی ہے سامان اقامت مہیا ہوتا ہے ، ہاں اگر آبادی سے کوسوں دوری ہے جنگل میں متعین ہوں جیسے بن کی لکڑی لینے والے، تو وہ محل اقامت نہیں اگرچہ خیمے ڈیرے ساتھ ہوں مگر ان کے لئے جن کی طرز معیشت ہی یہ ہو، جیسے سانسیے، در مختار میں ہے:

عربی متن **اردو ترجمہ**

یا وہ نصف ماہ اقامت کی نیت کسی ایسی جگہ کرے جو اقامت

عربی متن	اردو ترجمہ
اوینوی اقامة نصف شهر بموضع صالح لها اوقرية اوصحراء دارناوهو من اهل الاخبية 1-	کی صلاحیت رکھتی ہو یا قریہ ہو یا ہمارے ملک کا صحرا ہو او رنیت کرنے والا خانہ بدوش ہو(ت)

عالمگیری میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
قال شمس الائمة الحلوانی عسکرالمسلمین اذا قصدوا موضعا ومعهم اخبيتهم وخيامهم و فساطيطهم فنزلوا مفازة فی الطريق ونصبوا الاخبية والفساطيط وعزموافيها على اقامة خمسة عشر	شمس الائمہ حلوانی نے فرمایا کہ مسلمانوں کا لشکر اگر کسی جگہ جائے اور ان کے خیمے کا سامان ان کے ساتھ ہو، انہوں نے راہ جنگل میں پڑاؤ ڈالا اور وہاں خیمے وغیرہ نصب کئے اور پندرہ دن ٹھہرنے کا ارادہ کر لیا تو وہ مقیم نہیں ہوں گے

1 در مختار باب صلوة المسافر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۷

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Arabic]: "For even a day they would not become residents, because it is baggage (carrying stuff) and not dwellings. Similarly in al-Muhit." | [Urdu]: Because they are carriers of goods, their homes are not there. Al-Muhit - (T)

Second: In a mere wilderness where the intention of residency is not valid, it is after walking for the duration of the journey, having crossed three stages (Manzil). Now, if one intends to stay for 15 days or more in any wilderness, he will remain a traveler. However, before completing the journey's duration, the intention of residency is valid even in the wilderness. For example, if one started with the intention of three stages but after walking one or two stages, he canceled the journey's intention and intended to reside there, he would no longer be a traveler and would pray the full prayer, even if he is in the forest. As stated in Durr-e-Mukhtar:

[Arabic]: "He prays the four-cycle obligatory prayer as two cycles until he enters his place of stay if he has traveled the distance of a journey; otherwise, he completes the prayer just by the intention of returning because the journey was not established.[2]" | [Urdu]: (The traveler) should perform two cycles of the four-cycle obligatory prayer until returning to his place, provided the journey duration was completed; otherwise, just with the intention of returning, perform the full prayer because the journey was not established. (T)

As stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic]: "He intends (residency) in a place suitable for it if he has traveled for three days; otherwise, he completes (the prayer) even in a wilderness. The point is that the intention of residency before completing the duration is a revocation of the journey, just like the intention of returning to one's city. A journey before its establishment accepts revocation. Ah, summarized.[3]" | [Urdu]: If the intention of residency was made in a place suitable for residency, provided three days' journey was completed, otherwise, pray the full prayer even if in the forest. The gist is that the intention of residency before the entire duration terminates the journey, just as the intention of returning to one's city terminates the journey while it can be nullified before completing its duration. Ah, summarized. (T)

In Mi'raj al-Dirayah and then in Alamgiri it is mentioned:

[Arabic]: "When he has not traveled for three days and decides to return or intends residency, he becomes a resident even if he is in a wilderness.[4]" | [Urdu]: When three

days' journey was not completed and he resolved to return or intended residency, he will become a resident even if he is in the forest. (T)

1. Fatawa Hindiyya, Chapter 15 regarding the Traveler's Prayer, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/139.
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Traveler's Prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/107.
3. Radd al-Muhtar, Chapter on Traveler's Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/581.
4. Fatawa Hindiyya, Chapter 15 regarding the Traveler's Prayer, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/139.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[अरबी]: "वे एक दिन के लिए भी निवासी नहीं बनेंगे क्योंकि यह सामान ढोने वाला है और घर नहीं है। अल-मुहीत में इसी तरह है।" | [उर्दू]: क्योंकि वे सामान ढोने वाले हैं, वहां उनके घर नहीं हैं। अल-मुहीत - (त)

दूसरा: कोरे जंगल में जहां निवास की नीयत सही नहीं है, सफर की अवधि चलने के बाद है कि तीन मंजिलें तय कर चुका हो, अब किसी जंगल में 15 दिन या उससे अधिक ठहरने की नीयत करे तो मुसाफ़िर ही रहेगा। लेकिन सफर की अवधि पूरी होने से पहले जंगल में भी निवास की नीयत सही है। उदाहरण के लिए, तीन मंजिल के इरादे से चला था, एक या दो मंजिल चलकर सफर का इरादा खत्म कर दिया और वहां निवास की नीयत कर ली, तो वह मुसाफ़िर नहीं रहेगा और पूरी नमाज़ पढ़ेगा, चाहे वह जंगल में ही क्यों न हो। दुर्रे मुख़्तार में है:

[अरबी]: "वह चार रकात वाली फ़र्ज़ नमाज़ को दो रकात पढ़ेगा जब तक कि वह अपने ठहरने के स्थान में प्रवेश न कर जाए, यदि उसने सफर की अवधि तय कर ली है; अन्यथा लौटने की नीयत मात्र से ही नमाज़ पूरी करेगा क्योंकि सफर स्थापित नहीं हुआ।[2]" | [उर्दू]: (मुसाफ़िर) अपने स्थान पर वापसी तक चार फ़र्ज़ के दो फ़र्ज़ अदा करे जब सफर की अवधि पूरी हो, वरना केवल वापसी की नीयत से पूरी नमाज़ अदा करे क्योंकि सफर साबित नहीं हुआ। (त)

रद्दुल मुहतार में है:

[अरबी]: "वह उसके लिए उपयुक्त स्थान पर (निवास की) नीयत करता है यदि उसने तीन दिन का सफर तय किया हो; अन्यथा वह (नमाज़) पूरी करेगा चाहे जंगल में ही क्यों न हो। निष्कर्ष यह है कि अवधि पूरी होने से पहले निवास की नीयत सफर को रद्द करना है, जैसे कि अपने शहर लौटने की नीयत। अपनी स्थापना से पहले सफर रद्द किया जा सकता है। आह, संक्षेप में।[3]" | [उर्दू]: अगर ऐसी जगह निवास की नीयत की जो निवास के योग्य थी बशर्ते तीन दिन का सफर तय किया हो, वरना पूरी नमाज़ पढ़े चाहे जंगल में हो। निष्कर्ष यह है कि पूरी अवधि से पहले निवास की नीयत सफर को खत्म कर देती है, जैसे अपने शहर की तरफ लौटने की नीयत से सफर खत्म हो जाता है जबकि सफर अपनी अवधि पूरी होने से पहले निष्प्रभावी हो सकता है। आह, संक्षेप में। (त)

मेराजुद दराया और फिर आलमगीरी में है:

[अरबी]: "जब उसने तीन दिन का सफर तय न किया हो और लौटने का इरादा कर ले या निवास की नीयत कर ले, तो वह निवासी हो जाएगा चाहे जंगल में ही क्यों न हो।[4]" | [उर्दू]: जब तीन दिन का सफर तय न किया और वापसी का इरादा कर लिया या निवास की नीयत कर ली तो निवासी हो जाएगा चाहे जंगल में ही हो। (त)

1. फ़तावा हिन्दिया, अध्याय 15, मुसाफ़िर की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर द्वारा मुद्रित, 1/139।
2. दुर्रे मुख़्तार, मुसाफ़िर की नमाज़ का अध्याय, मतबा मुजतबाई, दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/107।
3. रद्दुल मुहतार, मुसाफ़िर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/581।
4. फ़तावा हिन्दिया, अध्याय 15, मुसाफ़िर की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर द्वारा मुद्रित, 1/139।

पृष्ठ 260/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

یوماً لم یصیروا مقیمین لانھا حمولۃ ولیست بمساکن کذا في المحیط[1] | کیونکہ وہ سامان اٹھانے والے ہیں وہاں ان کے گھر نہیں المحیط -(ت)

دوم : نرے جنگل میں کہ نیت اقامت صحیح نہیں، مدت سفر چل لینے کے بعد ہے کہ تین منزل قطع کر چکا ہو ، اب کسی جنگل میں ۱۵ دن یا زائد قیام کی نیت کرے تو مسافر رہے گا لیکن مدت سفر پوری ہونے سے پہلے جنگل میں بھی نیت اقامت صحیح ہے، مثلاً تین منزل کے ارادے پر چلا تھا ایک یا دو منزل چل کر نیت سفر قطع کی اور وہاں اقامت کی نیت کرلی مسافر نہ رہا نماز پوری پڑھے گا اگر چہ بن میں ہو، در مختار میں ہے :

صلی الفرض الرباعي رکعتین حتی یدخل موضع مقامہ ان سار مدۃ السفر والا فیتم بمجرد نیۃ العود لعدم استحکام السفر[2] | (مسافر) اپنے مقام پر واپسی تک چار فرض کے دو فرض ادا کرے اور جب مدت سفر ہو ورنہ محض رجوع کی نیت سے پوری نماز ادا کرے کیونکہ سفر کا اثبات نہ ہوا۔ (ت)

رد المحتار میں ہے :

ینوي بموضع صالح لھا ان سار ثلثۃ ایام والا فیتم ولو في المفازۃ والحاصل ان نیۃ الاقامۃ قبل تمام المدۃ تکون نقضاً للسفر کنیۃ العود الی بلدہ والسفر قبل استحکامہ یقبل النقض[3] اھ ملتقطاً | اگر ایسی جگہ نیت اقامت کی جو اقامت کی صالح تھی بشرطیکہ تین دن کا سفر طے کیا ہو ورنہ پوری نماز پڑھے اگر چہ جنگل میں ہو، حاصل یہ ہے کہ تمام مدت سے پہلے اقامت کی نیت سفر کو ختم کردیتی ہے جس طرح اپنے شہر کی طرف لوٹنے کی نیت سے سفر ختم ہو جاتا ہے جبکہ سفر اپنی مدت مکمل ہونے سے قبل کالعدم ہوسکتا ہے اہ ملتقطاً (ت)

معراج الدرایہ پھر عالمگیریہ میں ہے :

اذالم یسر ثلثۃ ایام فعزم علی الرجوع اونوی الاقامۃ یصیر مقیماً وان کان في المفازۃ[4] - | جب تین دن کا سفر طے نہ کیا اور رجوع کا عزم کرلیا یا اقامت کی نیت کر لی تو مقیم ہو جائے گا اگر چہ جنگل میں ہو۔ (ت)

1 فتاوٰی ہندیۃ باب الخامس عشر فی صلوۃ المسافر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۳۹ 2 در مختار، باب صلوۃ المسافر ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ، ۱/۱۰۷ 3 رد المحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۸۱ 4 فتاوٰی ہندیۃ باب الخامس عشر فی صلوۃ المسافر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۳۹

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

Third: The servant's own intention is not considered; instead, it is subordinate to the master's intention in the case where they are with the master, otherwise, their own intention is considered. It is stated in Tanwir al-Absar and Radd al-Muhtar:

Arabic Original

The intention of the followed (principal) is considered, not the follower. Like a woman whose prompt dower (mahr mu'ajjal) has been paid, a slave, a soldier when he receives provision from the leader or the public treasury, and a hired laborer, whether monthly or yearly. (Source: Tatarkhaniyyah). A prisoner, a debtor, and a student when they are with their respective leads—husband, master, employer, captor, creditor, and teacher. It should be noted that being together (companionship) is a condition for establishing subordination. (Abridged)

Urdu Translation

The intention of the leader is considered, not the follower, such as a woman whose prompt dower has been paid, a slave, and a soldier when they receive provision from the ruler or the public treasury, or are on monthly or annual wages (Tatarkhaniyyah). Prisoners, debtors, and students when they are with their respective followers —husband, master, employer, captor, creditor, and teacher. The condition of togetherness must be kept in mind to prove subordination. (Abridged) (T)

Fourth: The mere possibility that one might have to leave today does not contradict residency. A person would never be a resident anywhere other than their hometown if they were to intend residency for a year but think, "Who knows, a travel need might arise today." Instead, a prevailing assumption (ghaliba al-zann) is required; certainty is not necessary because without information from the Unseen, there is no way to have certainty. It is stated in Tabyin al-Haqa'iq by Imam Zayla'i, and then in al-Hindiyyah:

Arabic Original

It is necessary for the traveler to intend a distance of three days' journey. Prevailing assumption (ghaliba al-zann) is sufficient; that is, when his prevailing assumption is that he will travel, he performs qasr (shortens prayers), and absolute certainty is not a condition.

Urdu Translation

An intention for a distance of three days is necessary for a traveler, and a prevailing assumption will be sufficient. That is, when his dominant thought is that he will travel, he should perform qasr because certainty is not a condition. (T)

Fifth: Intention is the name of a true resolve of the heart. If one intends to stay for fifteen days but knows they have to leave before that, then this is not an intention, it is merely an imagination. Similarly, if in the heart there is a resolve for only two stages of a journey, but one makes an intention for three stages from home so that upon leaving the settlement they get permission for qasr on the way, permission will never be granted because this is not an intention but a mere fancy. However, if one is going to two stages and makes a true intention for three stages, and after travelling three stages reaches their intended destination...

---

1. Radd al-Muhtar sharh al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Traveler's Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/587.
2. Fatawa al-Hindiyyah, Chapter Fifteen on Traveler's Prayer, printed by Nurani Kutub Khana, Peshawar, 1/139.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

तीसरा: नौकर की अपनी नीयत (इरादा) मान्य नहीं है, बल्कि उस स्थिति में मालिक की नीयत के अधीन होना है जब वह मालिक के साथ हो, अन्यथा उसकी अपनी नीयत मान्य है। तनवीरुल अबसार और रद-उल-मुहतार में है:

अरबी मूल

अनुगामी की नहीं बल्कि जिसका अनुसरण किया जा रहा है (नेता/प्रमुख) की नीयत का विचार किया जाएगा। जैसे वह महिला जिसका मेहर-ए-मुअज्जल (तत्काल देय मेहर) अदा कर दिया गया हो, और गुलाम, सिपाही उस समय जब वह अमीर से या बैतुल माल (सरकारी खजाना) से रोज़ी लेता हो या मासिक या वार्षिक मज़दूरी पर हो (ततारखालिया)। कैदी, ऋणी और छात्र जब ये लोग अपने संबंधित नेतृत्व - पति, मालिक, नियोक्ता, बंदी बनाने वाला, लेनदार और उस्ताद के साथ हों। और अनुगामी होने की पुष्टि के लिए साथ रहने (मईयत) की शर्त को ध्यान में रखना होगा। (संक्षिप्त)

उर्दू अनुवाद

नेता की नीयत का विचार किया जाएगा, अनुयायी का नहीं, जैसे वह महिला जिसका मेहर-ए-मुअज्जल अदा कर दिया गया हो, और गुलाम, सिपाही जब वे शासक या बैतुल माल से रोज़ी लेते हों या मासिक या वार्षिक वेतन पर हों (ततारखालिया)। कैदी, देनदार और छात्र जब वे अपने अनुयायियों - पति, मालिक, नियोक्ता, कैद करने वाले, लेनदार और उस्ताद के साथ हों। अधीनता सिद्ध करने के लिए साथ रहने की शर्त का ध्यान रखना होगा। (संक्षिप्त) (त)

चौथा: मात्र यह संभावना कि शायद आज ही जाना पड़ जाए, निवास (इकाम़त) के विपरीत नहीं है। एक व्यक्ति अपने वतन के अलावा कहीं भी निवासी नहीं माना जाएगा यदि वह साल भर निवास की नीयत करे और सोचे कि "क्या पता आज ही यात्रा की कोई ज़रूरत पड़ जाए।" बल्कि इसके लिए प्रबल संभावना (ग़ालिब गुमान) आवश्यक है, निश्चितता की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अदृश्य की सूचना के बिना निश्चितता का कोई उपाय नहीं है। इमाम ज़ैलई की तबईनुल हक़ाएक और फिर हिंदिया में है:

अरबी मूल

मुसाफिर (यात्री) के लिए तीन दिन की दूरी का इरादा करना आवश्यक है और प्रबल संभावना (ग़ालिब

उर्दू अनुवाद

यात्री के लिए तीन दिन की दूरी का इरादा करना आवश्यक है और प्रबल संभावना

अरबी मूल	उर्दू अनुवाद
ज़न) पर्याप्त होगी, अर्थात जब उसकी प्रबल संभावना यह हो कि वह यात्रा करेगा तो वह कसर (नमाज़ छोटी करना) करेगा क्योंकि निश्चितता शर्त नहीं है।	पर्याप्त होगी। यानी जब उसका प्रबल विचार यह हो कि वह यात्रा करेगा, तो उसे कसर करनी चाहिए क्योंकि निश्चितता शर्त नहीं है। (त)

पांचवां: नीयत दिल के सच्चे संकल्प का नाम है। यदि वह पंद्रह दिन ठहरने का इरादा कर ले, और जानता है कि इससे पहले चले जाना है, तो यह नीयत नहीं हुई बल्कि केवल एक कल्पना हुई। इसी तरह, यदि दिल में संकल्प केवल दो मंज़िल का है और घर से तीन मंज़िल का इरादा कर लिया ताकि आबादी से निकलकर रास्ते में कसर की अनुमति मिल जाए, तो हरगिज़ अनुमति नहीं होगी क्योंकि यह नीयत नहीं बल्कि केवल ख्याली पुलाव है। अलबत्ता, यदि वह दो ही मंज़िल पर जाता है और तीन मंज़िल का सच्चा इरादा कर लिया और तीन मंज़िल जाकर अपनी मंज़िल-ए-मक़सूद पर...

---

1. रद-उल-मुहतार शरह अद-दुरुल मुख्तार, मुसाफिर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/587।
2. फतावा हिंदिया, पंद्रहवां अध्याय मुसाफिर की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/139।

पृष्ठ 261/673

سوم: نوکر کی اپنی نیت معتبر نہ ہوئی بلکہ نیتِ آقا کا تابع ہونا اس حالت میں ہے کہ آقا کے ساتھ ہو ورنہ خود اس کی نیت معتبر ہے، تنویر الابصار و ردالمحتار میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
المعتبر نية المتبوع لا التابع كامرأة وفاها مهرها المعجل وعبد وجندي اذا كان يرتزق من الامير او بيت المال واجير، مشاهرة او مسانهة، تارتار خانيه واسير وغريم وتلميذ مع زوج ومولى واميرو مستاجرو أسر ودائن واستاذ فقيد المعية ملاحظ في تحقيق التبعية اه ملتقطاً	سربراہ کی نیت کا اعتبار ہے تابع کا نہیں جیسا کہ وہ خاتون جس کا مہر معجل ادا کردیا گیا اور غلام، سپاہی اس وقت جب امیر سے یا بیت المال سے روزی لیتا ہو یا ماہانہ یا سالانہ مزدوری پر ہو تارتار خانیہ۔ قیدی مقروض اور شاگرد جب یہ لوگ اپنے متبوع خاوند، مولٰی، مستاجر، قید کرنے والا، قرض خواہ اور استاذ کے ساتھ ہوں اور تابع ہونے کے اثبات کے لئے معیت کی قید ملحوظ خاطر رکھنا ہوگا اھ ملتقطاً(ت)

چہارم: مجرد احتمال کہ شاید آج چلا جانا ہو منافی اقامت نہیں اور اپنے وطن کے سوا آدمی کبھی کہیں مقیم نہ ہو اگر چہ سال بھر اقامت کی نیت کرے کہ کیا معلوم شاید آج ہی کوئی ضرورت سفر کی پیش آئے بلکہ اس کے لئے غلبہ گمان درکار ہے یقین کی حاجت نہیں کہ بے اعلام بنی غیب پر یقین کی کوئی صورت نہیں، تبیین الحقائق امام زیلعی پھر ہندیہ میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
لابد للمسافر من قصد مسافة ثلثة ايام ويكفي غلبة الظن يعنى اذا غلب على ظنه انى يسافر قصرو لايشترط فيه التيقن - (ت)	مسافر کے لئے تین دن کی مسافت کا ارادہ ضروری ہے اور غلبہ ظن کافی ہوگا یعنی جب اس کا ظن غالب یہ ہو کہ سفر کرے گا تو قصر کرے کیونکہ یقین شرط نہیں۔

پنجم: نیت سچے عزم قلب کا نام ہے، پندرہ دن ٹھہرنے کا ارادہ کرلے، اور جانتا ہے کہ اس سے پہلے چلے جانا ہے تو یہ نیت نہ ہوئی محض تخیل ہوا، یوں ہی دل میں عزم دو ہی منزل کا ہے اور گھر سے تین منزل کا ارادہ کرلیا کہ آبادی سے نکل کر راہ میں قصر کی اجازت مل جائے ہرگز اجازت نہ ہوگی کہ یہ نیت نہیں وہی خیال بندی ہے، البتہ اگر دو ہی منزل پر جاتا ہے اور سچا ارادہ تین منزل کا کرلیا اور تین منزل جا کر ایک منزل اپنے محل مقصود کو

---

1. ردالمحتار شرح الدرالمختار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۸۷
2. فتاوٰی ہندیہ باب الخامس عشر في صلوة المسافر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۳۹

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

If someone returns and intends to stay for less than fifteen days, they should perform 'Qasr' (shortened prayer) for going, coming, and staying, as this is a firm intention even if there was no work there. It is stated in Durr al-Mukhtar:

Arabic	Urdu
If a pilgrim enters Makkah during the ten days [of Dhu al-Hijjah], his intention for residence is not valid because he has to go out to Mina and Arafat.	If a pilgrim enters Makkah during the first ten days of Dhu al-Hijjah, his intention for residence will not be correct because he has to go out towards Mina and Arafat. (T)

It is in Meraj al-Dirayah, then in Alamgiriyah:

Arabic	Urdu
Our companions (Allah Almighty have mercy on them) said regarding a merchant who enters a city for a need and intends to stay fifteen days to fulfill that need: he does not become a resident because he is hesitant between fulfilling his need and returning, or not fulfilling it and staying. Thus, his intention is not stable. This section is an argument against someone who says: whoever wants to go to a place and wishes to avail the concessions of travel by intending a place further than it—this is a mistake.	Our companions (Allah Almighty have mercy on them) stated that a merchant who goes to a city for some need and intends to stay for fifteen days to achieve that need, he will not be a resident because he is in doubt whether to return if the work is done now, and if not, then stay. So, his intention was not firm. This case is an argument against the person who says that whoever wants to set out for a place and wants the ease of travel (even though that place is not that far), so he intends a far-off place and sets out so that he can get the concession; so this is wrong. (T)

Sixth: 'Watan-e-Iqamat' (Place of Residence), meaning where an intention to stay for fifteen days or more has been correctly made, makes a person a 'muqeem' (resident), and there is no intermediate state between residence and travel. Therefore, if from there, without an intention for the travel duration, one travels for a thousand 'kos' (a unit of distance), for example, sets out from there with an intention of ten 'kos', then from there intends fifteen 'kos', then from there aims for twenty 'kos', he will not be a traveler and will not be able to make the intention [of travel]. This is the ruling for such a tour from 'Watan-e-Asli' (original home) as well. Until, for example, if he went twenty 'kos' from 'Watan-e-Iqamat' and from there set out with an intention of

twenty-six 'kos', and 'Watan-e-Iqamat' falls in between, then the travel will cease. Yes, if after three stages of travel, this 'watan' (homeland) does not come in between, then he will make the intention [of travel], and this 'watan' will no longer be 'Watan-e-Iqamat'. It is stated in Radd al-Muhtar:

1. Durr al-Mukhtar, Chapter: Prayer of the Traveler, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/107.
2. Fatawa Hindiyya, Chapter Fifteen regarding Prayer of the Traveler, printed at Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/140.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

वापस आया और यहाँ पंद्रह दिन से कम ठहरना है तो जाने और आने और ठहरते हुए 'क़स्र' (नमाज़ को छोटा करना) करेगा क्योंकि यह एक पक्की नीयत हुई अगरचे वहाँ जाने से कोई काम न था, 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

अरबी

यदि हाजी मक्का में ज़ुल-हिज्जा के अशरा (दस दिनों) में दाखिल हुआ तो उसकी इक़ामत (निवास) की नीयत दुरुस्त नहीं होगी क्योंकि उसे मिना और अरफ़ा की तरफ निकलना है।

उर्दू

अगर हाजी मक्का में ज़ुल-हिज्जा के अशरा में दाखिल हुआ तो उसकी नीयत इक़ामत दुरुस्त न होगी क्योंकि उसने मिना और अरफ़ा की तरफ निकलना है। (त)

'मेराजुद दरायह' फिर 'आलमगीरिया' में है:

अरबी

हमारे असहाब (अल्लाह तआला उन पर रहम करे) ने फ़रमाया कि वह ताजिर जो किसी शहर में किसी ज़रूरत के लिए गया और उसने अपनी ज़रूरत पूरी करने के लिए पंद्रह दिन इक़ामत की नीयत कर ली, तो वह मुक़ीम (निवासी) नहीं होगा क्योंकि वह इस बारे में पस-ओ-पेश (असमंजस) में है कि अगर अभी काम हो जाता है तो लौट जाए और अगर नहीं होगा तो इक़ामत करे, तो उसकी नीयत मुस्तक़र (स्थिर) नहीं हुई। यह फ़स्ल उस शख़्स के ख़िलाफ़ हुज्जत है जो कहता है कि जो कोई किसी जगह की तरफ निकलना चाहता है और वह चाहता है कि उसे सफ़र की सहूलियत मयस्सर हो (हालाँकि वह जगह इतनी दूर नहीं), तो वह किसी दूर की जगह की नीयत करके निकल पड़ता है ताकि रुख़सत (रियायत) हासिल हो जाए, तो यह ग़लत है।

उर्दू

हमारे असहाब रहमहुल्लाह तआला ने फ़रमाया कि वह ताजिर जो किसी शहर में किसी ज़रूरत के लिए गया उसने हुसूल-ए-हाजत के लिए पंद्रह दिन इक़ामत की नीयत कर ली तो वह मुक़ीम न होगा क्योंकि वह मुतरदद है इस बारे में कि अगर अभी काम हो जाता है तो लौट जाए और अगर नहीं होगा तो इक़ामत करे तो उसकी पुख़्ता नीयत न हुई, यह सूरत उस शख़्स के ख़िलाफ़ हुज्जत है जो कहता है कि जो कोई किसी जगह की तरफ निकलना चाहता है और वह चाहता है कि उसे सफ़र की सहूलियत मयस्सर हो (हालाँकि वह जगह इतनी दूर नहीं) तो वह किसी दूर जगह की नीयत करके निकल पड़ता है ताकि रुख़सत हासिल हो जाए तो यह ग़लत है। (त)

छठा: वतन-ए-इक़ामत यानी जहाँ पंद्रह दिन या ज़्यादा क़ियाम की नीयत सहीह कर ली हो, वह आदमी को मुक़ीम बना देता है और इक़ामत व सफ़र के दरमियान कोई वास्ता नहीं है। तो वहाँ से बिना सफ़र की मुद्दत के इरादे के अगर हज़ार कोस का दौरा करे, मिसाल के तौर पर दस कोस के इरादे पर वहाँ से चले, फिर वहाँ से पंद्रह कोस का इरादा करे, वहाँ से बीस कोस का क़स्द (इरादा) हो, तो वह मुसाफ़िर नहीं होगा और (सफ़र का) क़स्द नहीं कर सकेगा जैसा कि वतन-ए-असली से यूँ दौरा करने में हुक्म है। यहाँ तक कि अगर मिसाल के तौर पर वतन-ए-इक़ामत से बीस कोस गया और वहाँ से छब्बीस कोस का इरादा करके चला और बीच में वतन-ए-इक़ामत आ पड़ेगा तो सफ़र ख़त्म हो जाएगा। हाँ, अगर तीन मंज़िल चलने के बाद यह वतन बीच में नहीं आएगा तो क़स्द करेगा और यह वतन वतन-ए-इक़ामत नहीं रहेगा, 'रद्दुल मुहतार' में है:

1. दुर्रे मुख़्तार, बाब सलातुल मुसाफ़िर, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/107
2. फ़तावा हिंदिया, बाबुल ख़ामिस अशर फ़ी सलातुल मुसाफ़िर, मतबुआ नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/140

पेज 262/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

واپس آیا اور یہاں پندرہ دن سے کم ٹھہرنا ہے تو جانے اور آنے اور ٹھہرتے قصر کرے گا کہ یہ پچی نیت ہوئی اگرچہ وہاں جانے سے کوئی کام نہ تھا، درمختار میں ہے:

لو دخل الحاج مكة ايام العشر لم تصح نيتة لانه يخرج الى منى وعرفة 1.

اگر حاجی مکہ میں ذوالحجہ کے عشرہ میں داخل ہوا تو اس کی نیت اقامت درست نہ ہوگی کیونکہ اس نے منیٰ اور عرفہ کی طرف نکلنا ہے۔ (ت)

معراج الدرایہ پھر عالمگیریہ میں ہے:

قال اصحابنا رحمهم الله تعالى في تاجر دخل مدينة لحاجة نوى ان يقيم خمسة عشريوماً لقضاء تلك الحاجة لايصير مقيماً لانه متردد بينا ان يقضى حاجته فيرجع وبين ان لا يقضى فيقيم فلا تكون نيته مستقرة وهذا الفصل حجة على من يقول من اراد الخروج الى مكان ويريد ان يترخص برخص السفرينوي مكاناً ابعد منه وهذا غلط 2.

ہمارے اصحاب رحمہم اللہ تعالیٰ نے فرمایا کہ وہ تاجر جو کسی شہر میں کسی ضرورت کے لئے گیا اس نے حصول حاجت کے لئے پندرہ دن اقامت کی نیت کرلی تو وہ مقیم نہ ہوگا کیونکہ وہ متردد ہے اس بارے میں کہ اگر ابھی کام ہو جاتا ہے تو لوٹ جائے اور اگر نہیں ہوگا تو اقامت کرے تو اس کی پختہ نیت نہ ہوئی، یہ صورت اس شخص کے خلاف حجت ہے جو کہتا ہے کہ جو کوئی کسی جگہ کی طرف نکلنا چاہتا ہے اور وہ چاہتا ہے کہ اسے سفر کی سہولت میسر ہو (حالانکہ وہ جگہ اتنی دور نہیں) تو وہ کسی دور جگہ کی نیت کرکے نکل پڑتا ہے تاکہ رخصت حاصل ہو جائے تو یہ غلط ہے۔ (ت)

ششم : وطن اقامت یعنی جہاں پندرہ دن یا زیادہ قیام کی نیت صحیح کرلی ہو آدمی کو مقیم کر دیتا ہے اور اقامت و سفر میں واسطہ نہیں تو وہاں سے بے ارادہ مدت سفر اگر ہزار کوس دورہ کرے مثلاً دس کوس کے ارادے پر وہاں سے چلے پھر وہاں سے پندرہ کوس کا ارادہ کرے وہاں سے بیس کوس کا قصد ہو مسافر نہ ہوگا اور قصد نہ کر سکے گا جیسے وطن اصلی سے یوں دورہ کرنے میں حکم ہے یہاں تک کہ اگر مثلاً وطن اقامت سے بیس کوس گیا اور وہاں سے وہاں سے چھبیس کوس کا ارادہ کرکے چلا اور بیچ میں وطن اقامت آکر پڑے گا تو سفر جاتا رہے گا، ہاں اگر تین منزل چلنے کے بعد یہ وطن بیچ میں نہ آئے گا تو قصد کرے گا اور یہ وطن وطن اقامت نہ رہے گا، ردالمحتار میں ہے :

1 درمختار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۷ 2 فتاوی ہندیہ باب الخامس عشر فی صلوۃ المسافر مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۰

Fatawa Rizvia Volume 8

The gist is that starting a journey nullifies the 'home of residence' (watan-e-iqamat) when the journey begins from there. However, if the journey starts from somewhere else and there is no passage through the 'home of residence', or if there is but after three days of travel, the ruling is the same. But if it happens before that, the 'home of residence' will not be nullified; instead, the journey (its travel status) will be nullified, because staying at home prevents the validity of being a traveler (safar). (T)

Seventh: Employment and service involve an intention of permanence. Therefore, whoever chooses to stay where they are employed becomes a resident (muqim), even if there is no specific intention for fifteen days, because the intention for permanence is superior to the intention of residence. (T)

Note: In Fath al-Qadeer, Chapter of Hajj on behalf of others, it is stated: If a person settles in Makkah for fifteen days after completing [Hajj], his maintenance from the deceased's wealth is nullified because he has settled for his own needs. This is in contrast to if he stays for less, for he remains a traveler as he was. If it occurs to him after that to return, his maintenance from the deceased's wealth returns. It is narrated from Abu Yusuf that it does not return because in returning he is acting for himself, not for the deceased. However, we say that the origin of his journey was for the deceased, so as long as that journey remains, his maintenance remains. This is how it is in Al-Mabsut, and several jurists have stated it without mention of disagreement, that if he intended to stay for fifteen days... (continued on the next page)

1. Radd al-Muhtar, Chapter of the Traveler's Prayer, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/586.

सार यह है कि यात्रा शुरू करने से निवास स्थान (वतन-ए-इकामत) अमान्य हो जाता है जब यात्रा वहीं से शुरू हो। और अगर यात्रा किसी और जगह से हो तो अब निवास स्थान से गुज़र नहीं हुआ या हुआ लेकिन तीन दिन की यात्रा के बाद, तो हुक्म यही है। और अगर इससे पहले हुआ तो वतन बिलकुल अमान्य नहीं होगा बल्कि यात्रा अमान्य हो जाएगी, क्योंकि वतन में रुकना यात्रा की वैधता में बाधक होता है। (त)

सातवाँ: नौकरी और सेवा में स्थायित्व का इरादा होता है, इसलिए जो जहाँ नौकर होकर रहना स्वीकार करे वह मुकीम (निवासी) हो जाएगा, चाहे विशेष रूप से पंद्रह दिन की नियत न हो क्योंकि स्थायित्व की नियत निवास की नियत से श्रेष्ठ है। (त)

नोट: फ़तह अल-क़दीर, दूसरे की ओर से हज के अध्याय में है: यदि (हज-ए-बदल करने वाले ने) फारिग होने के बाद मक्का मुअज़्ज़मा में पंद्रह दिन रुकने की नियत कर ली, तो अब वह मृतक के धन से खर्च नहीं कर सकता क्योंकि वह अब अपने निजी काम के लिए ठहरा है। इसके विपरीत उस स्थिति में जिसमें पंद्रह दिन से कम हो क्योंकि अब वह यात्रा की स्थिति में ही है। फिर यदि वह पंद्रह दिन के बाद वापस आएगा, तो इमाम अबू यूसुफ़ से वर्णित है कि वह मृतक के माल की ओर नहीं लौटेगा क्योंकि वापस आना अपनी जात के लिए है न कि मृतक के लिए। लेकिन हम कहते हैं कि यात्रा की जड़ मृतक के लिए थी, तो जब तक वह यात्रा में रहेगा, उसका खर्च मृतक की ओर से ही होगा। मबसूद में इसी तरह है, और कई फ़कीहों ने इसे बिना किसी मतभेद के बयान करते हुए कहा है कि अगर उसने पंद्रह दिन की नियत कर ली तो (बाकी अगले पन्ने पर)।

1. रद अल-मुहतार, मुसाफ़िर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/586।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

والحاصل ان انشاء السفر یبطل وطن الاقامة اذا کان منه اما لو انشأه من غیره فان لم یکن فیه مرور علی وطن الاقامة او کان ولکن بعد سیر ثلثة ایام فکذلك ولو قبله لم یبطل الوطن بل یبطل السفر لان قیام الوطن مانع من صحته 1-

حاصل یہ ہے کہ سفر شروع کرنے سے وطنِ اقامت باطل ہو جاتا ہے جبکہ سفر وہاں سے ہوا اور اگر سفر کسی اور جگہ سے ہو تو اب وطنِ اقامت سے گزر نہیں ہوا یا ہوا لیکن تین دن بعد ، تو حکم یہی ہے اور اگر اس سے پہلے ہوا تو وطن بالکل باطل نہ ہو گا بلکہ سفر باطل ہو جائے گا ، کیونکہ قیامِ وطن صحتِ سفر سے مانع ہوتا ہے (ت)

ہفتم: نوکری ملازمت ہے اس میں قصد استدامت ہوتا ہے تو جو جہاں نوکر ہو کر رہنا اختیار کرے مقیم ہو جائیگا اگرچہ یہ بالخصوص پندرہ دن کی نیت نہ ہو لان نیته الاستدامة فوق ذلك (کیونکہ دوام کی نیت اقامت کی نیت سے فائق ہے۔ ت)

عه : فتح القدیر باب الحج عن الغیر میں ہے : لوتوطن مکة بعد الفراغ خمسة عشر یوما بطلت نفقته في مال المیت لانه توطن ح لحاجة نفسه بخلاف مااذا اقامه اقل فانه مسافر علی حاله فان بداله بعد ذلك ان یرجع رجعت نفقته في مال المیت وقد روی عن ابي یوسف انه لا تعود لانه في الرجوع عامل لنفسه لا للمیت لکنها قلنا ان اصل سفره کان للمیت فما بقی ذلك السفر بقیته النفقة کذا في المبسوط ، وذکر غیر واحد من غیر ذکر خلاف انه ان نوی الاقامة خمسة عشر یوما

اگر (حج بدل کرنے والے نے) فراغت کے بعد مکہ معظمہ میں پندرہ روز ٹھہرنے کی نیت کر لی تو اب مالِ میت سے خرچ نہیں کر سکتا کیونکہ یہ اب اپنے ذاتی کام کے لئے ٹھہرا ہے ، بخلاف

اس صورت کے کہ جس میں پندرہ دن سے کم ہو کیونکہ اب وہ حالت سفر میں ہی ہے پس اگر پندرہ کے بعد لوٹ آئے گا، امام ابو یوسف سے مروی ہے کہ مال میت کی طرف نہیں لوٹے گا کیونکہ رجوع اپنی ذات کے لئے ہے نہ کہ میت کے لئے، لیکن ہم کہتے ہیں کہ سفر میت کے لئے ہے، تو جب تک سفر میں رہے گا اس کا نفقہ میت کی طرف سے ہی ہوگا، مبسوط میں اسی طرح ہے، اور متعدد فقہاء نے اسے بغیر اختلاف کے بیان کرتے ہوئے کہا ہے کہ اگر اس نے پندرہ دن کی نیت کر لی تو (باقی اگلے صفحہ پر)

1۔ ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۸۶

Fatawa Razawiya - Volume 8

Yes, if he came here having been hired for the duration of the journey and it is known that he will not stay for fifteen days, then certainly he will not be a resident. When he returns from that second place and stays here as an employee, from that time he will be a resident.

[Table Header/Note] As stated in Rad al-Muhtar regarding the incident of Isa bin Aban (may Allah Almighty have mercy on him): The intention of residence did not take effect except after his return because there was a fifteen-day intention without an intention to leave during it. This is contrary to before his departure to Arafat because since he intended to leave before completing half a month, he did not become a resident.

[Arabic Quote in Table] كما قال فى ردالمحتار فى واقعة عيسى بن ابان رحمه الله تعالى ان نية الاقامة لم تعمل عملها الا بعد رجوعه لو جود خمسة عشر يوماً بلانية خروج فى اثنائها بخلاف ماقبل خروجه الى عرفات لانه لما كان عازماً على الخروج قبل تمام نصف شهر لم يصر مقيماً 1۔

[Urdu text in Table] جیسا کہ ردالمختار میں شیخ عیسیٰ بن ابان رحمہ اللہ تعالیٰ کے واقعہ میں ہے کہ نیت اقامت مؤثر نہیں مگر رجوع کے بعد کیونکہ پندرہ دنوں کی نیت ہے اور اس میں نکلنے کی نیت بھی نہیں۔ بخلاف عرفات کی طرف نکلنے سے پہلے کے کیونکہ جب نصف ماہ کے اتمام سے پہلے نکلنے کا ارادہ رکھتا ہے تو وہ مقیم نہیں ہوگا۔ (ت)

(Remainder of the footnote from the previous page) If it [the maintenance/support] drops, then if she returns and makes it her homeland, whether for a short or long time, it does not return. This benefits the idea that making a place a homeland is more than just the intention of staying for fifteen days. And apparently, it means making it a homeland without a specific limit for that. Thus, the maintenance drops. Then, returning is the start of a journey for one's own need, even if it is after two days. Therefore, he is not entitled to maintenance from the deceased [estate]. And Allah knows best. 2 Ah, so understand. 12 From him (M).

[Arabic Footnote Text] ان سقطت فان عادت وان توطنها سواء قل اوكثر لا تعود وهذا يفيد ان التوطن غير مجرد نية الاقامة خمسة عشر يوما والظاهر ان معناه ان يتخذها وطنا ولا يحد فى ذلك حد افتسقط النفقة ثم العود انشاء سفر لحاجة نفسه ولو بعد يومين فلا يستحق به النفقة على الميت والله سبحنه اعلم 2 اه فافهم ١٢ منه (م)

[Urdu Footnote Text] Maintenance will cease. If he returns from the journey, maintenance will resume. And if he makes Makkah his homeland, whether for few days or many, maintenance will not return. From this it becomes clear that even if he

stays without an intention of fifteen days, he will be considered a settled resident (mutawattin). Apparently, its meaning is that if he makes Makkah his homeland, there is no limit to the number of days etc. in it. Therefore, his maintenance will cease. Now after this, returning will be a new journey for his own self, even if that journey is only after two days. Therefore, he will not be entitled to maintenance from the side of the deceased. And Allah Almighty knows best. Understand this. 12 from him (T).

1. Rad al-Muhtar, Chapter: Prayer of the Traveler, printed at Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Mustafa al-Babi Egypt 1/582
2. Fath al-Qadeer, Chapter: Hajj on behalf of others, printed at Nooriya Razawiya Sukkur 29/3

फतावा रज़विया - भाग 8

हाँ, अगर वह यात्रा की अवधि के लिए यहाँ किराए पर आया है और यह ज्ञात है कि वह पंद्रह दिन नहीं ठहरेगा, तो निश्चित रूप से वह निवासी (मुक़ीम) नहीं होगा। जब वह उस दूसरे स्थान से वापस आएगा और यहाँ एक कर्मचारी के रूप में रहेगा, तो उस समय से वह निवासी होगा।

[तालिका शीर्षक/नोट] जैसा कि रद अल-मुह्तार में शेख ईसा बिन अबान (अल्लाह उन पर दया करे) की घटना के संबंध में कहा गया है: निवास (इक़ामत) का इरादा तब तक प्रभावी नहीं हुआ जब तक कि उनकी वापसी नहीं हुई क्योंकि उसमें बीच में बाहर निकलने के इरादे के बिना पंद्रह दिनों का इरादा था। यह अराफात की ओर निकलने से पहले के विपरीत है क्योंकि जब उसने आधा महीना पूरा होने से पहले निकलने का इरादा किया था, तो वह निवासी नहीं बना।

[तालिका में अरबी उद्धरण] كما قال فى ردالمحتار فى واقعة عيسى بن ابان رحمه الله تعالى ان نية الاقامة لم تعمل عملها الا بعد رجوعه لو جود خمسة عشر يوماً بلانية خروج فى اثنائها بخلاف ماقبل خروجه الى عرفات لانه لما كان عازماً على الخروج قبل تمام نصف شهر لم يصر مقيماً 1۔

[तालिका में उर्दू पाठ] جیسا کہ ردالمختار میں شیخ عیسیٰ بن ابان رحمہ اللہ تعالیٰ کے واقعہ میں ہے کہ نیت اقامت مؤثر نہیں مگر رجوع کے بعد کیونکہ پندرہ دنوں کی نیت ہے اور اس میں نکلنے کی نیت بھی نہیں۔ بخلاف عرفات کی طرف نکلنے سے پہلے کے کیونکہ جب نصف ماہ کے اتمام سے پہلے نکلنے کا ارادہ رکھتا ہے تو وہ مقیم نہیں ہوگا۔ (ت)

(पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष भाग) यदि यह [भरण-पोषण/खर्च] गिर जाता है, तो यदि वह लौटती है और उसे अपना वतन बनाती है, चाहे वह थोड़े समय के लिए हो या लंबे समय के लिए, यह वापस नहीं आता है। इससे यह लाभ मिलता है कि वतन बनाना केवल पंद्रह दिन ठहरने के इरादे से बढ़कर है। और स्पष्ट रूप से इसका अर्थ है कि बिना किसी सीमा के उसे वतन बना लेना। इस प्रकार, भरण-पोषण (नफ़क़ा) समाप्त हो जाता है। फिर, लौटना अपनी आवश्यकता के लिए एक नई यात्रा की शुरुआत है, भले ही वह दो दिनों के बाद ही क्यों न हो। इसलिए, वह मृतक (की संपत्ति) से भरण-पोषण का हकदार नहीं है। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। २ आह, तो समझें। १२ उसकी ओर से (म)।

[फुटनोट में अरबी पाठ] ان سقطت فان عادت وان توطنها سواء قل اوكثر لا تعود وهذا يفيد ان التوطن غير مجرد نية الاقامة خمسة عشر يوما والظاهر ان معناه ان يتخذها وطنا ولا يحد فى ذلك حد افتسقط النفقة ثم العود انشاء سفر لحاجة نفسه ولو بعد يومين فلا يستحق به النفقة على الميت والله سبحنه اعلم 2 اه فافهم ١٢ منه (م)

[फुटनोट में उर्दू पाठ] खर्च (नफ़क़ा) समाप्त हो जाएगा। यदि वह यात्रा से वापस आता है, तो खर्च फिर से शुरू हो जाएगा। और यदि वह मक्का को अपना वतन बताता है, चाहे थोड़े दिनों के लिए या अधिक के लिए, तो खर्च वापस नहीं होगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पंद्रह दिनों के इरादे के बिना भी यदि वह रहता है तो वह निवासी (मुतवात्तिन) होगा। स्पष्ट रूप से इसका अर्थ यही है कि यदि वह मक्का को अपना वतन बताता है तो उसमें दिनों आदि की कोई सीमा नहीं है। इसलिए उसका खर्च समाप्त हो जाएगा। अब इसके बाद वापसी उसकी अपनी जात के लिए एक नई यात्रा होगी, भले ही वह यात्रा दो दिनों के बाद ही हो। इसलिए वह मृतक की ओर से खर्च का हकदार नहीं होगा। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। इसे समझें। १२ उसकी ओर से (त)।

1. रद अल-मुह्तार, अध्याय: मुसाफ़िर की नमाज़, मुद्रित दार अल-कुतुब अल-इल्मिया मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/582
2. फतह अल-क़दीर, अध्याय: दूसरों की ओर से हज, मुद्रित नूरिया रज़विया सुक्कुर 29/3

ہاں اگر مدّتِ سفر سے یہاں نو کر ہو کر آیا اور معلوم ہے کہ پندرہ دن ٹھہرنا نہ ہوگا تو البتہ مقیم نہ ہوگا، جب اس دوسری جگہ سے فارغ ہو کر آئے گا اور یہاں ملازمانہ قیام کرے گا اس وقت سے مقیم ہوگا۔

کما قال فی ردالمحتار فی واقعة عیسی بن ابان رحمه الله تعالی ان نیة الاقامة لم تعمل عملها الا بعد رجوعه لو جود خمسة عشر یوماً بلانیة خروج فی اثنائها بخلاف ماقبل خروجه الی عرفات لانه لما کان عازماً علی الخروج قبل تمام نصف شهر لم یصر مقیماً 1۔

جیسا کہ ردالمختار میں شیخ عیسیٰ بن ابان رحمہ اللہ تعالیٰ کے واقعہ میں ہے کہ نیت اقامت مؤثر نہیں مگر رجوع کے بعد کیونکہ پندرہ دنوں کی نیت ہے اور اس میں نکلنے کی نیت بھی نہیں۔ بخلاف عرفات کی طرف نکلنے سے پہلے کے کیونکہ جب نصف ماہ کے اتمام سے پہلے نکلنے کا ارادہ رکھتا ہے تو وہ مقیم نہیں ہوگا۔ (ت)

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) ان سقطت فان عادت وان توطنها سواء قل اوکثر لا تعود وهذا یفید ان التوطن غیر مجرد نیة الاقامة خمسة عشر یوما والظاهر ان معناه ان یتخذها وطنا ولا یحد فی ذلك حد افتسقط النفقة ثم العود انشاء سفر لحاجة نفسه ولو بعد یومین فلا یستحق به النفقة علی المیت والله سبحنه اعلم 2 اه فافهم ۱۲ منه (م)

نفقہ ساقط ہو جائے گا اگر سفر سے لوٹا ہے تو نفقہ لوٹ آئے گا، اور اگر مکہ کو اپنا وطن بتاتا ہے خواہ تھوڑے دن یا زیادہ تو نفقہ نہیں لوٹے گا، اس سے یہ واضح ہو جاتا ہے کہ پندرہ دن کی نیت کے بغیر بھی اگر وہ رہا تو وہ متوطن ہوگا، ظاہر اس کا مفہوم یہی ہے کہ وہ اگر مکہ کو اپنا وطن

بتاتا ہے تو اس میں دنوں وغیرہ کی کوئی حد نہیں لہٰذا اس کا نفقہ ساقط ہو جائے گا اب اس کے بعد رجوع اپنی ذات کے لئے نیا سفر ہوگا اگرچہ وہ سفر دو دن کے بعد ہی ہو لہٰذا وہ میت کی طرف سے نفقہ کا مستحق نہ ہوگا واللہ سبحنہ اعلم اہ فافہم ۱۲ منہ (ت)

1 ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ دار الکتب العلمیہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۸۲ 2 فتح القدیر باب الحج عن الغیر مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۹/۳

Fatawa-e-Razvia Volume 8

And while working as a servant at a place, and it is not known whether one will go from there to another place within fifteen days, then a mere possibility will not be a breaker of residence (Iqamat). Otherwise, no residence of residence could be established, and millions of people who are servants away from their homeland for the duration of a journey and stay there for years would never be residents, as there is a possibility of being transferred or sent for some work at any time. This is what I have (This is my view and Allah Almighty knows best. T). Now that these seven matters are known, let us move towards the issue in question.

I say: and success is with Allah (So I say by the grace of Allah Almighty. T). It is known above that there are two situations here: one is that the place where the appointment is made is a mere wilderness, not a place of residence. The second is that it is a place of residence like a station. And in each case, there are two situations: one is that this person is a traveler at the time of appointment, meaning he has traveled three stages (manzil) and has not yet become a resident anywhere; the second is that he is a resident, for example, a dweller of this city or a nearby place, and is appointed at a distance of a few kos (miles) from the city, or he came having covered three stages but stayed in the city with the intention of fifteen days so that he became a resident. And now that he is appointed here, four situations have arisen:

First situation: The traveler is as mentioned, and this place is not a place of residence. In this:

(1) In this, from the beginning of the appointment without any break, as long as he stays here, he will shorten (qasr) the prayers, even if his master has said he will stay here for ten years and he has also intended that when he came from the journey and did not become a resident anywhere and this is not a place of residence, then as long as he stays here, he will remain a traveler.

(2) If he goes from here to another place, whether by order or by his own intention, he will shorten the prayer on the way, even if that place is not at a journey distance from here.

(3) If there is no intention to stay in that second place for fifteen days, then he will shorten the prayer there too, and also on the return from there and upon returning

to this place, no matter how long the intention to stay here is, because his journey has not yet ended due to the lack of residence.

(4) If the intention to stay there for fifteen days was made by order or just by his own intention, then he will offer full prayers there.

(5) When he returns from there, if the distance between that place and the place of appointment is three stages, then he will shorten the prayer on the return also and after reaching here too, no matter how many days the intention to stay here is, because after reaching here from the journey, his first state has returned and due to the start of the journey, there was no effect of that stay in the other place.

(6) If after a fifteen-day stay he returned from there and there is no journey distance in between, then now on the way also full...

फतावा-ए-रज़विया जिल्द 8

और जब एक जगह नौकर होकर रहे और पन्द्रह दिन के अन्दर वहां से दूसरी जगह जाना मालूम न हो तो सिर्फ संभावना इकामत (निवास) को खत्म करने वाली नहीं होगी, वरना कोई वतन-ए-इकामत (निवास स्थान) न हो सकेगा और अपने वतन से यात्रा की अवधि पर जो लाखों लोग नौकर होते हैं और वर्षों वहाँ रहते हैं, वे कभी मुकीम (निवासी) न हों क्योंकि तबादला या किसी काम पर भेजे जाने की संभावना हर समय रहती है। हज़ा मा इंदि वल्लाहु तआला आलम (यह तो मेरे पास है और अल्लाह तआला बेहतर जानने वाला है। टी)। जब ये सात बातें मालूम हो गईं, तो अब पूछे गए मसले की ओर चलें।

फाकूल: व बिल्लाहित तौफीक (तो मैं अल्लाह तआला की तौफीक से कहता हूं। टी) ऊपर मालूम हुआ कि यहाँ दो स्थितियाँ हैं: एक यह कि जहाँ नियत (नियुक्त) हो वह निरा जंगल है, रहने की जगह नहीं। दूसरी यह कि वह रहने की जगह है जैसे स्टेशन। और हर स्थिति में दो सूरतें हैं: एक यह कि यह व्यक्ति नियुक्त होते समय मुसाफिर (यात्री) है यानी तीन मंज़िल चलकर आया और अभी कहीं मुकीम (निवासी) नहीं हुआ, दूसरी यह कि मुकीम है उदाहरण के लिए इसी शहर या और करीबी जगह का निवासी है और यहाँ शहर से दो-चार कोस की दूरी पर नियुक्त हुआ या आया तो तीन मंज़िल तय करके मगर शहर में पन्द्रह दिन की नीयत के साथ ठहरा कि मुकीम हो गया। और अब यहाँ नियुक्त हुआ तो चार सूरतें सामने आ गईं:

पहली सूरत: मुसाफिर उपर्युक्त अर्थ में है और यह जगह रहने की जगह नहीं है, इसमें:

(1) इसमें नियुक्ति की शुरुआत से बिना किसी अंतराल के जब तक यहाँ रहेगा, क़स्र करेगा (नमाज़ छोटी करेगा), चाहे उसके मालिक ने दस साल तक यही रहने के लिए कह दिया हो और उसने भी इरादा कर लिया हो कि जब वह यात्रा की अवधि से आया और कहीं मुकीम नहीं हुआ और यह रहने की जगह नहीं है, तो जब तक भी यहाँ रहेगा मुसाफिर ही रहेगा।

(2) अगर यहाँ से किसी आदेश से या केवल अपने इरादे से किसी दूसरी जगह जाएगा, तो रास्ते में क़स्र ही करेगा, चाहे वह जगह यहाँ से यात्रा की दूरी पर न हो।

(3) उस दूसरी जगह पन्द्रह दिन ठहरने की नीयत न हो तो वहाँ भी क़स्र ही पढ़े और वहाँ से वापसी में और इस स्थान पर वापस आकर भी, चाहे यहाँ कितना ही ठहरने का इरादा हो कि अभी तक उसकी यात्रा इकामत (निवास) की कमी के कारण समाप्त नहीं हुई।

(4) अगर वहाँ पन्द्रह दिन ठहरने की नीयत आदेश से या केवल अपने इरादे से की तो वहाँ पूरी (नमाज़) पढ़ेगा।

(5) जब वहाँ से वापस होगा, अगर उस जगह और नियुक्ति के स्थान के बीच तीन मंज़िल की दूरी है, तो वापसी में भी क़स्र करेगा और यहाँ पहुँचकर भी, चाहे यहाँ कितने ही दिन ठहरने का इरादा हो कि यात्रा की अवधि से यहाँ पहुँचकर उसकी फिर पहली स्थिति लौट आई और नई यात्रा शुरू होने के कारण उस दूसरी जगह के निवास का कोई प्रभाव नहीं रहा।

(6) अगर पन्द्रह दिन के निवास के बाद वहाँ से वापस हुआ और बीच में यात्रा की दूरी नहीं है, तो अब रास्ते में भी पूरी...

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اور جبکہ ایک جگہ نوکر ہو کر رہے اور پندرہ دن کے اندر وہاں سے دوسری جگہ جانا معلوم نہ ہو تو صرف احتمال قاطع اقامت نہ ہوگا ورنہ کوئی وطن اقامت نہ ہو سکے اور اپنے وطن سے مدت سفر پر جو لاکھوں آدمی نوکر ہوتے اور برسوں وہاں رہتے ہیں کبھی مقیم نہ ہوں کہ بدلی یا کسی کام پر بھیجے جانے کا احتمال ہر وقت ہے ھذا ما عندی واللہ تعالٰی اعلم (یہ تو میرے نزدیک ہے اور اللہ تعالٰی بہتر جاننے والا ہے۔ ت) جب یہ امور سبعہ معلوم ہو لئے اب مسئلہ مسئولہ کی طرف چلئے۔

فاقول: وباللہ التوفیق (پس میں اللہ تعالٰی کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) اوپر معلوم ہو کہ یہاں دو صورتیں ہیں: ایک یہ کہ جہاں متعین ہو وہ نرا جنگل ہے جائے اقامت نہیں۔ دوسرے یہ کہ محل اقامت ہے جیسے اسٹیشن۔ اور ہر تقدیر پر دو صورتیں ہیں: ایک یہ کہ یہ شخص متعین ہوتے وقت مسافر ہے یعنی تین منزل چل کر آیا اور ہنوز کہیں مقیم نہ ہوا، دوسرے یہ کہ مقیم ہے مثلاً اسی شہر یا اور قریب جگہ کا ساکن ہے اور یہاں شہر سے دو چار کوس کے فاصلے پر متعین ہو یا آیا تو تین منزل طے کرکے مگر شہر میں پندرہ دن کی نیت کے ساتھ ٹھہرا کہ مقیم ہوگیا۔ اور اب یہاں متعین ہو تو چار صورتیں آگئیں:

صورت اولی: مسافر بمعنی مذکور ہے اور یہ جگہ محل اقامت نہیں، اس میں:

(۱) اس میں ابتدائے تعین سے بلا فصل جب تک یہاں رہے گا قصر کرے گا اگر چہ دس برس یہی رہنے کی نسبت اس کے آقا نے کہہ دیا اور اس نے بھی ارادہ کرلیا کہ جب وہ مدت سفر سے آیا اور کہیں مقیم نہ ہوا اور یہ محل اقامت نہیں تو جب تک بھی یہاں رہے گا مسافر ہی رہے گا۔

(۲) اگر یہاں سے حکما خواہ صرف بارادہ خود کسی دوسری جگہ جائے گا راہ میں قصر ہی کرے گا اگر چہ وہ جگہ یہاں سے مدت سفر پر نہ ہو۔

(۳) اس دوسری جگہ پندرہ دن ٹھہرنے کی نیت نہ ہو تو وہاں بھی قصر ہی پڑھے اور وہاں سے واپسی میں اور اس مقام پر واپس آکر بھی، اگر چہ یہاں کتنا ہی ٹھہرنے کا ارادہ ہو کہ ہنوز اس کا سفر بوجہ عدم اقامت ختم نہ ہوا۔

(۴) اگر وہاں پندرہ دن ٹھہرنے کی نیت حکما خواہ فقط اپنے ارادے سے کی تو وہاں پوری پڑھے گا۔

(۵) جب وہاں سے واپس ہوگا اگر اس جگہ اور مقام تعین میں تین منزل کا فاصلہ ہے تو واپسی میں بھی قصر کرے گا اور یہاں پہنچ کر بھی، اگر چہ یہاں کتنے ہی دن ٹھہرنے کا ارادہ ہو کہ مدت سفر سے یہاں پہنچ کر اس کی پھر حالت اولی عود کر آئی اور انشائے سفر کے سبب اس اقامت جائے دیگر کا کوئی اثر نہ رہا۔

(۶) اگر بعد اقامت پانزدہ روزہ وہاں سے واپس ہوا اور بیچ میں مدت سفر نہیں تو اب راہ میں بھی پوری

Fatawa Rizwia Volume 8

He will pray [full prayers], and having reached here, his intention of residency (iqamat) before a three-day journey in the forest is correct. Due to the travel not having commenced, that residency of his did not become void, nor did that 'homeland of residency' (watan-e-iqamat) become void. In this sixth scenario, its ruling will return to the divisions of the second scenario following.

Second Scenario: He is a resident (muqeem) and this place is not a place of residency (mahal-e-iqamat). In this: (1) As long as he stays here after determination without interruption, he will pray full prayers because a resident staying in the wilderness is not travel. (2) If he goes from here to somewhere with an intention of less than the travel duration (three days), he will perform full prayers (itmam) in all states—while going, coming, and staying there—even if he stays there for only one day, as travel has not yet been established. (3) If he goes with the intention of the travel duration, he will shorten (qasr) on the way, and also there if he does not intend to stay for fifteen days; otherwise, he will pray full prayers there. (4) Similarly, on the return, when he returns from there to this place with a single intention, he will shorten on the way. (5) When he reaches here, since he has come from a journey duration and this is not a place of residency, now its ruling will apply to the divisions of the first scenario mentioned previously: that from the start of the return, as long as he stays here without interruption, he will shorten, for finally he has come here as a 'traveler' in the mentioned sense. In short, when he comes here after a journey, it will be the first scenario, and while being a resident, this cycle of the second scenario will remain.

Third Scenario: He is a 'traveler' in the mentioned sense and this place is a place of residency like a station. In this: (1) If at the beginning of determination it was known that he has to leave from here within fifteen days, he will not be a resident and will only shorten prayers. (2) If he goes somewhere from here before establishing residency, he will only shorten on the way and also on the return. (3) When he returns from there and even now intends to go somewhere within fifteen days, then these same divisions and rulings apply. (4) Now if he doesn't have that intention, or initially in the determination he didn't intend to go anywhere within 15 days, then from then onwards or after coming here now, he will become a resident and pray full prayers. In this fourth case, its ruling will refer to the four divisions of the following [fourth scenario].

Fourth Scenario: He is a resident and this place is a place of residency. In this: (1) As long as he stays here, he will perform full prayers even if the intention is to stay for only one day. (2) If he goes somewhere from here, while going, coming, staying, and returning, he will always pray full prayers as long as that place...

वह [पूरी नमाज़] पढ़ेगा और यहाँ पहुँचकर भी कि जंगल में तीन दिन की यात्रा से पहले इक़ामत (निवास) की नीयत सही है। यात्रा शुरू न होने के कारण उसकी वह इक़ामत बातिल (अमान्य) नहीं हुई और न ही वह वतन-ए-इक़ामत बातिल हुआ। इस छठी सूरत में इसका हुक्म आने वाली दूसरी सूरत के विभागों की तरफ़ लौटेगा।

दूसरी सूरत: मुक़ीम (निवासी) है और यह जगह महल-ए-इक़ामत (निवास स्थान) नहीं है, इसमें: (१) जब तक यहाँ बिना किसी व्यवधान के रहेगा, पूरी नमाज़ पढ़ेगा क्योंकि मुक़ीम का जंगल में रुकना सफ़र नहीं है। (२) अगर यहाँ से कहीं सफ़र की मुद्दत (तीन दिन) से कम की नीयत से जाएगा, तो जाने, आने और वहाँ रुकने के दौरान हर हाल में इत्माम (पूरी नमाज़) करेगा, चाहे वहाँ एक ही दिन रुके, क्योंकि अभी सफ़र साबित नहीं हुआ। (३) अगर सफ़र की मुद्दत की नीयत से जाएगा, तो रास्ते में क़स्र (नमाज़ कम करना) करेगा, और वहाँ भी अगर पंद्रह दिन की नीयत न करे, वर्ना वहाँ पूरी नमाज़ पढ़ेगा। (४) यही वापसी में होगा, जब वहाँ से इस स्थान पर एक ही इरादे से वापस आएगा, तो रास्ते में क़स्र करेगा। (५) जब यहाँ पहुँचेगा, चूँकि सफ़र की मुद्दत से आया है और यह महल-ए-इक़ामत नहीं है, अब इसका हुक्म पिछली पहली सूरत के विभागों पर लागू होगा: कि वापसी की शुरुआत से जब तक यहाँ बिना किसी व्यवधान के रहेगा, क़स्र करेगा, क्योंकि आख़िरकार वह यहाँ उपर्युक्त अर्थ में 'मुसाफ़िर' (यात्री) बनकर आया है। संक्षेप में, जब वह यहाँ सफ़र के बाद आएगा तो पहली सूरत होगी, और मुक़ीम होने की स्थिति में दूसरी सूरत का यही चक्र रहेगा।

तीसरी सूरत: उपर्युक्त अर्थ में 'मुसाफ़िर' है और यह जगह महल-ए-इक़ामत जैसे स्टेशन है, इसमें: (१) अगर शुरुआत में ही मालूम था कि पंद्रह दिन के अंदर यहाँ से जाना है, तो मुक़ीम नहीं होगा और क़स्र ही पढ़ेगा। (२) यहाँ से कहीं इक़ामत से पहले जाए, तो रास्ते में और वापसी में भी क़स्र ही करेगा। (३) जब वहाँ से वापस आए और अब भी पंद्रह दिन के अंदर कहीं जाने का इरादा हो, तो यही विभाग और नियम होंगे। (४) अब वह इरादा नहीं है या शुरुआत में ही १५ दिन के अंदर कहीं जाने की नीयत नहीं थी, तो तभी से या अब यहाँ आकर मुक़ीम हो जाएगा और पूरी नमाज़ पढ़ेगा। इस चौथी सूरत में इसका हुक्म आने वाली चार विभागों की तरफ़ लौटेगा।

चौथी सूरत: मुक़ीम है और यह जगह महल-ए-इक़ामत है, इसमें: (१) जब तक यहाँ रहेगा, इत्माम करेगा चाहे एक ही दिन रुकने का इरादा हो। (२) यहाँ से कहीं जाए और जाने, आने, रुकने और वापस आकर हमेशा पूरी पढ़ेगा जबकि वह जगह...

पेज 266 ऑफ़ 673

پڑھے گا اور یہاں پہنچ کر بھی کہ قبل سیر سہ روزہ جنگل میں نیت اقامت صحیح ہے اور بوجہ عدم انشائے سفر اس کی وہ اقامت باطل نہ ہوئی نہ وہ وطن اقامت باطل ہوا، اس صورتِ ششم میں اس کا حکم شقوقِ صورتِ ثانیہ آئندہ کی طرف عود کا جائے گا۔

صورتِ ثانیہ: مقیم ہے اور یہ جگہ محلِ اقامت نہیں، اس میں: (۱) جب تک بعد تعین بلا فصل یہاں رہے گا پوری پڑھے گا کہ مقیم کا بن میں ٹھہرنا سفر نہیں۔ (۲) اگر یہاں سے کہیں مدت سفر سے کم کی نیت سے جائے گا جاتے اور آتے اور وہاں ٹھہرتے ہر حال میں اتمام کرے گا اگرچہ وہاں ایک ہی دن ٹھہرے کہ ہنوز سفر متحقق نہ ہوا۔ (۳) اگر مدت سفر کی نیت سے جائے گا راہ میں قصر کرے گا اور وہاں بھی اگر پندرہ دن نیت نہ کرے ورنہ وہاں پوری پڑھے گا۔ (۴) یہی واپسی میں جب وہاں سے اس مقام کو بقصد واحد واپس آئے گا راہ میں قصر کرے گا۔ (۵) جب یہاں پہنچے گا ازانجا کہ مدتِ سفر سے آیا ہے اور یہ محلِ اقامت نہیں، اب اس کا حکم شقوقِ صورت اولیٰ گزشتہ کی طرف عائد ہوگا کہ ابتدائے واپسی سے بلا فصل جب تک یہاں رہے گا قصر کرے گا اس آخرہ کہ اب یہاں مسافر بمعنیٰ مذکور ہو کر آیا، بالجملہ جب یہاں بعدِ سفر آئے گا صورتِ اولیٰ ہوگی اور مقیم ہو کر صورتِ ثانیہ یہی دورہ رہے گا،

صورتِ ثالثہ: مسافر بمعنیٰ مذکور ہے اور یہ جگہ محلِ اقامت جیسے اسٹیشن، اس میں: (۱) اگر ابتدائے تعین میں معلوم تھا کہ پندرہ دن کے اندر یہاں سے جانا ہے تو مقیم نہ ہوگا قصر ہی پڑھے گا، (۲) یہاں سے کہیں قبل اقامت جائے راہ میں قصر ہی کرے اور واپسی میں بھی۔ (۳) جب وہاں سے واپس آئے اور اب بھی پندرہ دن کے اندر کہیں جانے کا ارادہ ہے تو یہی شقوق و احکام ہیں۔ (۴) اب وہ ارادہ نہیں یا ابتدائے تعین ہی میں ۱۵ روز کے اندر کہیں جانے کی نیت نہ تھی تو جبھی

سے یا اب یہاں آکر مقیم ہو جائے گا پوری پڑھے ، اس صورت چہارم میں اس کا حکم شقوق اربعہ آئندہ کی طرف رجوع کرے گا۔

صورتِ رابعہ: مقیم ہے اور یہ جگہ محلِ اقامت، اس میں: (۱) جب تک یہاں رہے گا اتمام کرے گا اگرچہ ایک ہی دن ٹھہرنے کا ارادہ ہو۔ (۲) یہاں سے کہیں جائے اور جاتے اور آتے اور ٹھہرتے اور واپس آکر ہمیشہ پوری پڑھے گا جبکہ وہ جگہ

Fatawa Razawiyya Volume 8

...on the duration of travel. (3) If one goes for the duration of travel, perform Qasr (shortened prayer) on the way and pray full there if the intention is to stay for fifteen days; otherwise, perform Qasr there as well. (4) When returning from there, perform Qasr on the way. Upon reaching here, the same conditions and rulings apply, provided there is no intention to go back within fifteen days. (5) If after returning, the intention is to stay here for less than fifteen days, then even after arriving here, one will not be a resident (muqeem) because this place of residence became void due to travel and there is no intention of residency now. In this fifth scenario, its ruling refers back to the conditions of the third scenario. And Allah Almighty knows best.

Issue 1267: From Dudhwa Ghat Station, District Kheri Lakhimpur, Abdul Latif Khan's factory, contractor, sent by Farrukh Shah Khan, 18 Jumada al-Ula 1337 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: Dudhwa Ghat station is a place in a forest where there is neither population nor agriculture. I am an employee of a contractor and it seems likely that my stay at this place will continue as long as my employment lasts. With this thought, I used to perform full prayers. Now a person from Pilibhit said that you should pray Qasr here whether you stay for a year or more. Therefore, I am sending this writing to your service to be informed of the ruling on this matter so that doubt is removed and prayer is performed accordingly.

The Answer:

Since there is neither population nor a place of residence there, if one arrives there as a traveler—meaning, having started from three stages (manzil) and arriving there without breaking the journey in between—then as long as one stays there, they will perform Qasr, no matter how much time passes. And if one arrives there as a resident—meaning the distance was less than a three-day journey, or it was more but they stayed at another place in between such that the travel duration from the previous intention was not reached up to here—then as long as they stay, they will pray full even if it is for only one day and there was no intention of residence at all. And Allah Almighty knows best.

Issue 1268: From Bareilly, Madrasa Manzar-e-Islam, questioned by Ghulam Jan, student, 18 Shawwal 1337 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: if a person who is required to perform Qasr prayer, intentionally performs full prayer during travel with the intention of gaining more reward, will they be a sinner or not?

फ़तावा रज़विया खंड ८

...यात्रा की अवधि पर न हो। (३) यदि यात्रा की अवधि के लिए जाए तो मार्ग में क़स्र (नमाज़ संक्षिप्त करना) करे और वहां पूरी पढ़े, यदि पंद्रह दिन ठहरने की नियत (इरादा) हो, अन्यथा वहां भी क़स्र करे। (४) जब वहां से वापस आए तो मार्ग में क़स्र करे। यहां पहुंचकर यही विकल्प और आदेश लागू होंगे जब तक कि पंद्रह दिन के भीतर जाने का इरादा न हो। (५) यदि वापसी के बाद यहां पंद्रह दिन से कम ठहरने का इरादा है, तो यहां आकर भी वह निवासी (मुक़ीम) नहीं होगा क्योंकि यात्रा के कारण यह निवास स्थान शून्य हो गया और अब निवास का इरादा नहीं है। इस पांचवीं स्थिति में, इसका आदेश तीसरी स्थिति के विकल्पों की ओर लौटता है। और अल्लाह तआला ही सबसे बेहतर जानता है।

मसअला १२६७: स्टेशन दुधवा घाट, जिला खीरी लखीमपुर, अब्दुल लतीफ़ खां साहब का कारखाना, ठेकेदार, प्रेषक फर्रुख शाह खां, १८ जमादी-उल-उला १३३७ हिजरी।

धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि दुधवा घाट स्टेशन जंगल में एक स्थान है और यहाँ न तो आबादी है और न ही खेती होती है। मैं एक ठेकेदार का कर्मचारी हूँ और ज़ाहिर है मुझे उम्मीद है कि इस जगह मेरा रहना जब तक नौकरी कायम है, बराबर रहेगा। इसी विचार से मैं पूरी नमाज़ पढ़ता था। अब पीलीभीत के एक व्यक्ति ने कहा कि तुम्हें यहाँ क़स्र पढ़नी चाहिए चाहे तुम एक साल रहो या ज़्यादा। अतः, आपकी सेवा में यह पत्र भेज रहा हूँ कि इस मसले का जो आदेश हो उससे अवगत कराएं ताकि संदेह दूर हो और उसके अनुसार नमाज़ अदा की जाए।

जवाब:

चूंकि वहां न तो आबादी है और न ही रहने का स्थान है, इसलिए यदि कोई वहां मुसाफिर (यात्री) होकर पहुँचा—अर्थात तीन पड़ाव (मंज़िल) की दूरी तय करने का इरादा करके बीच में यात्रा तोड़े बिना वहां पहुँचा—तो जब तक वहां रहेगा, क़स्र करेगा, चाहे कितना ही समय बीत जाए। और यदि वहां मुकीम (निवासी) होकर पहुँचा—अर्थात वहां तक की दूरी तीन दिन के रास्ते से कम थी, या अधिक थी लेकिन रास्ते में दूसरी जगह ठहरता हुआ आया कि पिछले इरादे से यहाँ तक यात्रा की अवधि पूरी नहीं हुई थी—तो जब तक रहेगा पूरी पढ़ेगा, भले ही एक ही दिन रहे और निवास का बिल्कुल इरादा न हो। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसअला १२१८: बरेली, मदरसा मंज़रे-इस्लाम, गुलाम जान साहब छात्र द्वारा पूछा गया, १८ शव्वाल १३१७ हिजरी।

धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति जिस पर नमाज़-ए-क़स्र अनिवार्य हो, वह यात्रा में जानबूझकर अधिक पुण्य की नीयत से पूरी नमाज़ पढ़े, तो क्या वह गुनहगार होगा या नहीं?

पृष्ठ २६७ / ६७३

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

مدت سفر پر نہ ہو۔ (۳) اگر مدتِ سفر پر جائے راہ میں قصر کرے اور وہاں پوری پڑھے ، اگر پندرہ دن ٹھہرنے کی نیت ہو، ورنہ وہاں بھی قصر کرے۔ (۴) جب وہاں سے واپس آئے راہ میں قصر کرے یہاں پہنچ کر یہی شقوق واحکام ہیں جبکہ پندرہ دن کے اندر جانے کا ارادہ نہ ہو۔ (۵) اگر بعد واپسی یہاں پندرہ دن سے کم ٹھہرنے کا ارادہ ہے تو یہاں آکر بھی مقیم نہ ہوگا کہ یہ وطنِ اقامت بوجہ سفر باطل ہو گیا اور اب قصدِ اقامت نہیں، اس صورتِ پنجم میں اس کا حکم شقوقِ صورت ثالثہ کی طرف راجع ہوگا واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۶۷: از اسٹیشن دودھوا گھاٹ ضلع کھیری لکھیم پور کارخانہ عبداللطیف خاں صاحب ٹھیکہ دار مرسلہ فرخ شاہ خاں ۱۸جمادی الاولٰی ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اسٹیشن دودھوا گھاٹ ایک جنگل کا مقام ہے اور یہاں پر نہ آبادی ہے نہ زراعت ہوتی ہے اور میں ایک ٹھیکہ دار کا ملازم ہوں اور بظاہر مجھ کو امید ہے کہ اس جگہ میرا قیام جب تک کہ ملازمت قائم ہے برابر رہے گا اسی خیال سے میں پوری نماز ادا کرتا تھا، اب ایک شخص سکنہ پیلی بھیت نے کہا کہ تم کو یہاں پر قصر پڑھنا چاہئے خواہ تم ایک سال رہو یا زائد رہو، لہٰذا آپ کی خدمت میں یہ تحریر ارسال کرتا ہوں کہ اس مسئلہ کا جو حکم ہو اس سے مطلع فرمائے تاکہ شک رفع ہو اور اس کے مطابق نماز ادا کی جائے۔

الجواب:

جبکہ وہاں نہ آبادی ہے نہ جائے قیام ہے تو اگر یہ وہاں مسافر ہو کر پہنچا یعنی تین منزل سے ارادہ کر کے بیچ میں بغیر سفر توڑے وہاں پہنچا تو جب تک وہاں رہے گا قصر کرے گا اگرچہ

کتنی ہی مدت گزرے اور اگر وہاں مقیم ہو کر پہنچا یعنی تین دن کی راہ سے کم فاصلہ وہاں تک تھا یا زیادہ تھا مگر بیچ میں دوسری جگہ ٹھہرتا ہوا آیا کہ پچھلے قصد سے یہاں تک مدتِ سفر نہ تھی تو جب تک رہے گا پوری پڑھے گا اگرچہ ایک ہی دن رہے قیام کا اصلاً قصد نہ ہو، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۶۸: از بریلی مدرسہ منظرالاسلام مسئولہ غلام جان صاحب طالب علم ۱۸ شوال ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر کوئی شخص جس پر نمازِ قصر ہو وہ سفر میں اگر دیدہ و دانستہ بہ نیت زیادہ ثواب، پوری نماز پڑھے گا تو گنہگار ہوگا یا نہیں؟

صفحہ ۲۶۷ از ۶۷۳

Fatawa Razawiyya (Volume 8)

The Answer: Indeed, he will be a sinner and deserving of punishment. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says: "It is a charity which Allah has given you, so accept His charity."^1 | This is a story of charity; Allah Almighty has bestowed charity upon you, so accept His charity. (T) And Allah Almighty knows best. And Allah Almighty knows best.

Issue 1269: From Adaldan, Jhansi District, sent by Muhammad Taqi Khan, Sub-Inspector Police Station, 3 Dhu al-Hijjah 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: I am employed in Jhansi district, which is approximately 200 miles away from Budaun district. My posting is at Adaldan police station in Jhansi. For fifteen days, I never stay at the police station; I am continuously patrolling the villages of the area for government work such as investigations, etc. Therefore, it is requested to know whether in such a case I should pray Qasr (shortened prayer) or the full prayer.

The Answer: One who is a resident and travels with the intention of going ten, five, twenty, or thirty kos (a unit of distance) will never be considered a traveler; he must always pray the full prayer, even if he tours the entire world in this manner, as long as he does not set out with a single intention for a full distance of thirty-six kos, i.e., fifty-seven and a half English miles. This means there should be no intention to stay anywhere in between. If he started with an intention for two hundred miles but in segments—for example, "I will go twenty miles to do this work, from there I will go thirty miles, then twenty-five miles," and so on, totaling two hundred miles—then he is not a traveler because there was no single intention for the required distance (around 57.5 miles). However, he who is already a traveler and not a resident will pray Qasr wherever he is. From there, whether he travels one mile or less or more, he will still perform Qasr there too, as long as he does not intend to stay for a full fifteen days in any single place of residence. And Allah Almighty knows best.

Issue 12/70: From Pilibhit, Mohalla Sher Muhammad Khan, questioned by Habib Ahmad Bareilly, 25 Dhu al-Hijjah. What do the scholars of religion say regarding this issue: A person is employed by timber merchants in the forests of Nepal and resides in a place where habitation and agriculture are one or two miles or more away. He is employed in forests under British administration as described above, or at a railway station located in the forest, where habitation and agriculture are also two or three miles away. When the employer sends him, he does not specify any duration. In

these cases, is it obligatory for the employee to perform Qasr prayer or the full prayer? And if he is independent, should he pray Qasr or the full prayer? Zaid claims that it is obligatory to perform Qasr prayer because, firstly, it is Hindu-governed territory (Nepal), and secondly, there is neither habitation nor agriculture at the place of stay, i.e., at some distance...

1 Sunan Abi Dawud, Chapter on Traveler's Prayer, published by Aftab-e-Alam Press Lahore 1/170 Page 268 of 673

फ़तावा रज़विया (जिल्द हशतम)

अल-जवाब: बेशक गुनहगार और मुस्तहिक़-ए-अज़ाब होगा, नबी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फरमाते हैं: सदक़तुन तसदक़ल्लाहु बिहा अलैकुम फ़क़बलू सदक़तहु ^1 | यह क़िस्सा सदक़ा है अल्लाह तआला ने तुम पर सदक़ा किया है इसके सदक़ा को क़बूल करो। (त) वल्लाहु तआला आलम। वल्लाहु तआला आलम

मसला 1269: अज़ अदलदन ज़िला झांसी मुरसला मोहम्मद तक़ी ख़ाँ सब-इंस्पेक्टर पुलिस स्टेशन 3 ज़ी अल-हिज्जा 1337 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि मैं ज़िला झांसी में मुलाज़िम हूँ जो कि ज़िला बदायूँ से क़रीब 200 मील के फासले पर है और मक़ाम-ए-झांसी में थाना अदलदन में तायनाती है पंद्रह रोज़ तक कभी थाने में ठहरना नहीं होता इलाक़े के देहात में बराबर बसिलसिला-ए-कार-ए-गवर्नमेंट तफ़्तीश वग़ैरा के गश्त रहता है लिहाज़ा इल्तिमास है कि ऐसी सूरत में नमाज़ क़स्र पढ़नी चाहिए या पूरी नमाज़ पढ़नी।

अल-जवाब: जो मुक़ीम हो और वह दस-दस, पांच-पांच, बीस-बीस, तीस-तीस कोस के इरादे पर जाए कभी मुसाफ़िर न होगा हमेशा पूरी नमाज़ पढ़ेगा अगरचे इस तरह दुनिया भर का गश्त कर आए जब तक एक नियत से पूरे छत्तीस कोस यानी साढ़े सत्तावन मील अंग्रेज़ी के इरादे से न चले यानी न बीच में कहीं ठहरने की नियत हो और अगर दो सौ मील के इरादे पर चला मगर टुकड़े करके यानी बीस मील जाकर यह काम करूँगा वहाँ से तीस मील जाऊँगा वहाँ से पच्चीस मील, व अला हाज़ल क़ियास मजमूआ दो सौ मील तो वह मुसाफ़िर न हुआ कि एक लख़्त इरादा 57.5 मील का न हुआ। हाँ जो मुसाफ़िर है मुक़ीम नहीं वह जहाँ है वहाँ भी क़स्र पढ़ेगा और वहाँ से एक ही मील या कम को जाए ख़्वाह ज़्यादा को, वहाँ भी क़स्र ही करेगा जब पूरे पंद्रह दिन ठहरने की नियत किसी महल-ए-इक़ामत में न करे, वल्लाहु तआला आलम।

मसला 12/70: अज़ पीलीभीत मोहल्ला शेर मोहम्मद ख़ाँ मसूला हबीब अहमद बरेलवी 25 ज़ी अल-हिज्जा। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक शख़्स इलाक़ा नेपाल के जंगल में मिन्जानिब ताजिरान-ए-लट्ठ मुलाज़िम है और ऐसी जगह रहना होता है जहाँ से एक या दो मील या कम व ज़्यादा के फासले पर आबादी और ज़राअत होती है ता अंग्रेज़ी अमलदारी के जंगलात में मुलाज़िम है जो सूरत-ए-मुतज़क्किरा बाला है या स्टेशन रेलवे जंगल में है वहाँ से भी दो या तीन मील के फासले पर आबादी और ज़राअत है, और आक़ा जब भेजता है तो कुछ मुद्दत मुक़र्रर नहीं करता

तो इन सूरतों में मुलाज़िम को नमाज़ क़स्र अदा करना वाजिब है या पूरी? और अगर खुद-मुख्तार है तो उसको क़स्र पढ़ना चाहिए या पूरी? ज़ैद का क़ौल कि नमाज़ क़स्र अदा करना वाजिब है क्योंकि अव्वल अमलदारी हिंदू की है यानी नेपाल, दूसरे जगह इक़ामत पर न आबादी है न ज़राअत होती है यानी कुछ फासले।

1 सुनन अबी दाऊद बाब सलातुल मुसाफ़िर मतबुआ आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर 1/170 Page 268 of 673

الجواب: بیشک گنہگار و مستحقِ عذاب ہوگا، نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: صدقة تصدق الله بها عليكم فاقبلوا صدقته[18] | یہ قصہ صدقہ ہے اللہ تعالٰی نے تم پر صدقہ کیا ہے اسکے صدقہ کو قبول کرو۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۶۹: از ادلدن ضلع جھانسی مرسلہ محمد تقی خاں سب انسپکٹر پولیس اسٹیشن ۳ ذی الحجہ ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ میں ضلع جھانسی میں ملازم ہوں جو کہ ضلع بدایوں سے قریب ۲۰۰ میل کے فاصلے پر ہے اور مقام جھانسی میں تھانہ ادلدن میں تعیناتی ہے پندرہ روز تک کبھی تھانہ میں ٹھہرنا نہیں ہوتا علاقے کے دیہات میں برابر بسلسلہ کار گورنمنٹ تفتیش وغیرہ کے گشت رہتا ہے لہذا التماس ہے کہ ایسی صورت میں نماز قصر پڑھنا چاہئے یا پوری نماز پڑھنا۔

الجواب: جو مقیم ہو اور وہ دس دس پانچ پانچ بیس بیس تیس تیس کوس کے ارادے پر جائے کبھی مسافر نہ ہوگا ہمیشہ پوری نماز پڑھے گا اگر چہ اس طرح دنیا بھر کا گشت کر آئے جب تک ایک نیت سے پورے چھتیس کوس یعنی ساڑھے ستاون میل انگریزی کے ارادے سے نہ چلے یعنی نہ بیچ میں کہیں ٹھہرنے کی نیت ہو اور اگر دو سو میل کے ارادے پر چلا مگر ٹکڑے کر کے یعنی بیس میل جاکر یہ کام کروں گا وہاں سے تیس میل جاؤں گا وہاں سے پچیس میل، وعلی ہذا القیاس مجموعہ دو سو میل تو وہ مسافر نہ ہوا کہ ایک لخت ارادہ ۵۷.۵ میل کا نہ ہوا، ہاں جو مسافر ہے مقیم نہیں وہ جہاں ہے وہاں بھی قصر پڑھے گا اور وہاں سے ایک ہی میل یا کم کو جائے خواہ زیادہ کو، وہاں بھی قصر ہی کرے گا جب پورے پندرہ دن ٹھہرنے کی نیت کسی محل اقامت میں نہ کرے، واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۷۰/۱۲: از پیلی بھیت محلہ شیر محمد خاں مسئولہ حبیب احمد بریلوی ۲۵ ذی الحجہ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص علاقہ نیپال کے جنگل میں منجانب تاجران لٹھ ملازم ہے اور ایسی جگہ رہنا ہوتا ہے جہاں سے ایک یا دو میل یا کم و زیادہ کے فاصلے پر آبادی اور زراعت ہوتی ہے تا انگریزی عملداری کے جنگلات میں ملازم ہے جو بصورت متذکرہ بالا ہے یا اسٹیشن ریلوے جنگل میں ہے وہاں سے بھی دو یا تین میل کے فاصلہ پر آبادی اور زراعت ہے، اور آقا جب بھیجتا ہے تو کچھ مدت مقرر نہیں کرتا تو ان صورتوں میں ملازم کو نماز قصر ادا کرنا واجب ہے یا پوری؟ اور اگر خود مختار ہے تو اس کو قصر پڑھنا چاہئے یا پوری؟ زید کا قول کہ نماز قصر ادا کرنا واجب ہے کیونکہ اول عملداری ہندو کی ہے یعنی نیپال، دوسرے جگہ اقامت پر نہ آبادی ہے نہ زراعت ہوتی ہے یعنی کچھ فاصلے

1 سنن ابی داؤد باب صلوٰۃ المسافر مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱ / ۱۷۰ Page 268 of 673

Fatawa-e-Razvia Volume 8

...it is based on. Thirdly, in the first case, he is not independent; the master can move or dismiss him whenever he wishes. And in British rule, even if it is a station but agriculture does not occur there, shortening (qasr) of prayer is obligatory due to the aforementioned lack of independence and lack of agriculture. Among the conditions for establishing residence is agriculture. The proof for 'umr (residence) is that in the above-mentioned cases, in places of residence where agriculture happens within a mile or so, no difficulty arises in providing grain etc. Secondly, although the place of residence is in a jungle, ten, twenty, or fifty men are together who reside in one place for a duration. There is absolutely no fear of wild animals etc. Thirdly, when a master sends a servant, the possibility of moving or dismissing him before the completion of work if needed is not considered. In this case, the servant's intention is considered. If he intends to stay for fifteen days, should he perform full prayers? Is following both (in prayer) correct or not? Explain and be rewarded.

Answer: The person who was not a traveler and did not have to travel to reach that forest, because the distance was less than three stages, is obviously a resident (muqim) and remained a resident. For him, shortening the prayer (qasr) is forbidden (haram) and performing full prayer is obligatory (farz), even if that place is in the wilderness. It is stated in Bahr-ur-Raiq and Radd-ul-Muhtar:

This is [only] if he traveled for three days; otherwise, it [residence] is valid even in a desert/wilderness. | This applies when a journey of three days has been completed; otherwise, he will be a resident even if he is in a forest. (Translator's note)

And the one who was a traveler and became a traveler by going there, because the distance was three stages or more, he is certainly a traveler. If it is known by habit that the work for which he was sent will take fifteen days or more, and the place is such that residence is possible, even if human habitation is two or three miles away and there is no agriculture, he will become a resident upon arrival there and must perform full prayers. It is not necessary for agriculture to be specifically there. The rule of a Hindu government is not an obstacle because movement is safe and not interfered with. It is stated in Durr-e-Mukhtar: "Whoever enters it [a territory] with [a guarantee of] safety, he shall complete [his prayer]." (Whoever entered based on safety, he should perform full prayers. - Translator's note) And the possibility that some necessity might arise and the one he works for might send him elsewhere is not considered. Such a possibility exists for everyone in every situation. And when

this is the ruling for a servant, then an independent person is even more subject to it when he has intended to stay for fifteen days or more. And Allah Almighty knows best.

1 Radd-ul-Muhtar, Chapter of Traveler's Prayer, printed by Mustafa Al-Bani, Egypt, 1/581. 2 Durr-e-Mukhtar, Chapter of Traveler's Prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 10/7.

फ़तावा-ए-रज़विया खंड 8

...पर है, तीसरे यह कि पहली सूरत में वह स्वतंत्र नहीं है, आका (मालिक) जब चाहे स्थानांतरित कर सकता है या अलग कर सकता है। और अंग्रेज़ी शासन में भी, भले ही वह स्टेशन हो लेकिन यदि वहाँ खेती नहीं होती है, तो नौकरी पर होने और उक्त स्वतंत्रता न होने तथा खेती न होने के कारण क़स्र (नमाज़ कम करना) अनिवार्य है। निवास (इक़ामत) की शर्तों में खेती भी शामिल है। उम्र का प्रमाण यह है कि उपरोक्त मामलों में, निवास के उन स्थानों पर जहाँ एक मील या उससे कम-अधिक की दूरी पर खेती होती है, वहाँ अनाज आदि जुटाने में कोई कठिनाई नहीं होती। दूसरा यह कि निवास का स्थान भले ही जंगल में हो, लेकिन दस, बीस या पचास आदमी साथ होते हैं जो एक समय तक एक ही स्थान पर रहते हैं। जंगली जानवरों आदि का बिल्कुल डर नहीं होता। तीसरा यह कि जब कोई मालिक किसी कर्मचारी को भेजता है, तो काम खत्म होने तक बीच में ज़रूरत पड़ने पर वहाँ से हटाने या अलग करने की बात मान्य नहीं है। इस स्थिति में कर्मचारी का इरादा मान्य है। यदि पंद्रह दिनों का इरादा है, तो क्या वह पूरी नमाज़ पढ़े? क्या दोनों का अनुसरण करना सही है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर: जो व्यक्ति मुसाफिर (यात्री) नहीं था और उस जंगल तक जाने में भी उसे यात्रा नहीं करनी पड़ी क्योंकि दूरी तीन मंज़िल से कम थी, वह तो ज़ाहिर है कि मुक़ीम (निवासी) था और मुक़ीम ही रहा। उसके लिए क़स्र करना हराम (वर्जित) है और पूरी नमाज़ पढ़ना फ़र्ज़ (अनिवार्य) है, चाहे वह जगह वीराने में ही क्यों न हो। बहर-उर-रैक़ और रद्द-उल-मुहतार में है:

यह तब है जब उसने तीन दिन की यात्रा पूरी कर ली हो, अन्यथा वह मुक़ीम होगा भले ही वह जंगल में हो। | यह उस समय है जब तीन दिन का सफ़र तय कर लिया हो वरना वह मुक़ीम होगा अगरचे वह जंगल में हो। (त)

और जो मुसाफिर था और वहाँ तक जाने से मुसाफिर बन गया क्योंकि दूरी तीन मंज़िल या उससे अधिक थी, वह निश्चित रूप से मुसाफिर है। यदि यह ज्ञात है कि जिस काम के लिए उसे भेजा गया है वह पंद्रह दिन या उससे अधिक समय लेगा, और जगह ऐसी है जहाँ निवास संभव है, भले ही आबादी वहाँ से दो-तीन मील दूर हो और खेती न हो, तो वहाँ पहुँचकर वह मुक़ीम हो जाएगा और पूरी नमाज़ पढ़ना अनिवार्य होगा। वहाँ विशेष रूप से खेती होना ज़रूरी नहीं है। न ही हिंदू शासन का होना कोई बाधा है क्योंकि वहाँ आना-जाना सुरक्षित है और इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता। दुर्र-ए-मुख्तार

में है: "जो व्यक्ति अमन (सुरक्षा) के साथ उसमें (किसी क्षेत्र में) प्रवेश करे, वह [नमाज़] पूरी करे।" (जो सुरक्षा के आधार पर प्रवेश करे, वह पूरी नमाज़ पढ़े। - त) और यह संभावना कि शायद कोई ज़रूरत पड़ जाए और जिसका वह नौकर है वह उसे दूसरी जगह भेज दे, मान्य नहीं है। ऐसी संभावना तो हर व्यक्ति के लिए हर हाल में रहती है। और जब नौकर के लिए यह आदेश है, तो स्वतंत्र व्यक्ति के लिए तो यह और भी अधिक लागू होगा जब उसने पंद्रह दिन या उससे अधिक रहने का इरादा किया हो। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

1 रद्द-उल-मुहतार, मुसाफिर की नमाज़ का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बानी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/581। 2 दुर्र-ए-मुख्तार, मुसाफिर की नमाज़ का अध्याय, मत्तबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 10/7।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

پر ہے، تیسرے یہ صورت اول میں خود مختار نہیں، آقا جب چاہے منتقل یا علیحدہ کر سکتا ہے اور عملداری انگریزی میں بھی اگر چہ اسٹیشن ہے مگر زراعت نہیں ہوتی ہے نوکری پر بوجہ مذکورہ خود مختار پر بوجہ نہ ہونے زراعت کے قصر واجب ہے، اقامت کی شرائط میں زراعت بھی ہے، عمر کی دلیل یہ ہے کہ صورت مذکورہ بالا جن مقامات اقامت سے ایک میل یا کم یا زیادہ پر زراعت ہوتی ہے مگر فراہمی غلہ وغیرہ میں کوئی دقت پیش نہیں آتی ہے، دوسرے مقام اقامت گو جنگل میں ہے مگر دس بیس پچاس آدمی ہمراہ ہوتے ہیں جو عرصہ تک ایک جگہ مقیم رہتے ہیں، جانور درندہ وغیرہ کا بالکل خوف نہیں ہوتا ہے، تیسرے یہ کہ کوئی آقا ملازم کو جب بھیجتا ہے تو کام ختم کر کے آنے تک کے لئے درمیان میں اگر ضرورت ہوئی تو وہاں سے منتقل یا علیحدہ کردیا یہ معتبر نہیں، اس صورت میں ارادہ ملازم کا معتبر ہے، اگر پندرہ یوم کا ارادہ ہے تو پوری ادا کرے تو دونوں کی اقتداء درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: جو مسافر نہ تھا اور اُس جنگل تک جانے میں بھی اسے سفر کرنا نہ پڑا کہ فاصلہ تین منزل سے کم تھا، وہ تو ظاہر ہے کہ مقیم تھا اور مقیم رہا اس سے قصر حرام ہے اور پوری پڑھنی فرض ہے اگرچہ وہ جگہ زراعت ہو۔ بحر الرائق وردالمحتار میں ہے :

هذا ان سار ثلثة ايام والا فتصح ولو في المفازة | یہ اس وقت ہے جب تین دن کا سفر طے کر لیا ہو ورنہ وہ مقیم ہوگا اگرچہ وہ جنگل میں ہو۔ ت)

اور جو مسافر تھا وہاں تک جانے سے مسافر ہوا کہ فاصلہ تین منزل یا زائد کا تھا وہ ضرور مسافر ہے، اگر عادت معلوم ہے کہ جس کام کے لئے بھیجا گیا وہ پندرہ دن یا زائد میں ہوگا اور جگہ ایسی

ہو جہاں اقامت ممکن ہے اگرچہ آبادی وہاں سے دو تین میل فاصلہ پر ہو اور زراعت نہ ہو وہاں پہنچ کر مقیم ہو جائے گا اور پوری پڑھنی لازم ہو گی خاص وہاں زراعت ہونا کچھ ضرور نہیں، نہ ہندو کی عملداری ہونا کچھ مانع کہ یہ آمد ورفت امن کے ساتھ ہے اس سے تعرض نہیں کیا جاتا۔ در مختار میں ہے : من دخلھا بامان فانہ یتم (جو امان کی بنا پر داخل ہوا وہ نمازی پوری پڑھے۔ ت) اور یہ احتمال کہ شاید کوئی ضرورت پیش آئے اور جس کا نوکر ہے وہ دوسری جگہ بھیجے معتبر نہیں، ایسا احتمال ہر شخص کو ہر حال میں ہے، اور جب نوکر کا یہ حکم ہے تو خود مختار تو بدرجہ اولیٰ جبکہ پندرہ دن یا زائد کی نیت کی ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم

1 ردالمحتار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱/۵۸۱ 2 دُرِّ مختار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۰/۷

Fatawa Rizvia Volume 8

Question 712: From Etawah, Mohalla Thabit Ganj, sent by Muhammad Ibrahim Khan Sabiri Marehrawi, 2 Shawwal 1339 AH. Zaid's in-laws live at a distance of 114 miles by rail from his residential house. His wife and children all stay at the in-laws' place. However, due to his business, Zaid mostly stays at his own residence. He has left his family at his in-laws' out of necessity for about 8 months. In such a situation, when Zaid goes from his residence to visit his family with the intention of returning after four days, fifteen days, or a month, is 'Qasr' (shortening the prayer) mandatory for him or not? And if on any occasion he did not perform the Qasr prayer because according to his knowledge he did not know it was Qasr, but according to Sharia principles, Qasr was mandatory for him, is there any accountability for him?

Answer: Since Zaid's residence is at another place and keeping his family here is temporary, so when he comes here and intends to stay for less than fifteen days, he shall perform Qasr. If he intends to stay for fifteen days or more, he will become a resident ('Muqeem') and will perform full prayer. On the occasion where Qasr was mandatory by Sharia and he performed full prayer, there is accountability for him, and repeating that prayer is mandatory. And Allah the Almighty knows best.

Question 713: From Faridkot State, District Firozpur, Punjab, sent by Munshi Muhammad Ali Iram, 6 Rajab-ul-Murajab 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: In the railway, there is a large 'relieving' staff whose work is to stay for a week, ten days, one day, or two days, more or less, in place of any railway employee who falls ill, is reduced in rank, or goes on leave. Because of this, they sometimes have to stay for twenty days, a month, or more, and sometimes just for two to four days. Is the ruling of Qasr applicable to them in prayer or not?
Answer: If one has to travel continuously to a distance of fifty-seven and a half (57.5) miles from one's place, such that the destination is that far and there is no intention of stopping in between, and there is no intention of staying there for a full fifteen days, then they shall perform Qasr; otherwise, they shall perform full prayer. Yes, if the one who is sent is currently in a state of travel and is not a resident, then no matter how far he is sent, he will remain a traveler ('Musafir') until he intends to stay for a full fifteen days or reaches his homeland. And Allah the Almighty knows best.

Question 714: From the city, Mohalla Bihari Pur, questioned by Nawab Wazir Ahmad Khan Sahib, 20 Muharram 1339 AH. What do the scholars of religion and the jurists of the clear Sharia say regarding this matter: Today there is an intention to go to

Talsahar by the ten o'clock train. Up to Talsahar, it is not Qasr. From Talsahar, there is an intention for Rampur. From Talsahar to Rampur, it is Qasr distance. However, Bareilly falls in between; one doesn't have to disembark. In this case, what is the ruling on Qasr? Should Qasr be performed in Talsahar as well or not? And if the intention for Rampur is cancelled in Talsahar, should Qasr be treated as Qasr or not? Please clarify and be rewarded.

फ़तावा रज़विया खंड 8

प्रश्न 712: इटावा, मोहल्ला साबित गंज से, प्रेषक मुहम्मद इब्राहिम खान साबिरी मारेहरवी, 2 शव्वाल 1339 हिजरी। ज़ैद की ससुराल उसके निवास स्थान से रेल द्वारा 114 मील की दूरी पर है। उसकी पत्नी और बच्चे सभी उसकी ससुराल में रहते हैं। लेकिन ज़ैद अपने व्यवसाय के कारण अधिकतर अपने निवास पर रहता है। उसने अपनी पत्नी और बच्चों को ज़रूरत के कारण लगभग 8 महीने से ससुराल में ही छोड़ रखा है। ऐसी स्थिति में, जब ज़ैद अपने निवास से अपने परिवार के पास इस इरादे से जाता है कि वह चार दिन, पंद्रह दिन या एक महीने के बाद वापस आएगा, तो क्या उस पर 'क़स्र' (नमाज़ को छोटा करना) वाजिब है या नहीं? और अगर किसी अवसर पर उसने क़स्र नमाज़ अदा न की हो, जिसे वह अपने ज्ञान के अनुसार क़स्र नहीं जानता था, लेकिन शरीयत के नियमों के अनुसार उस पर क़स्र वाजिब था, तो क्या उसके ऊपर कोई जवाबदेही है या नहीं?

उत्तर: चूंकि ज़ैद का निवास दूसरी जगह है और यहाँ परिवार का रहना अस्थायी है, इसलिए जब वह यहाँ आएगा और पंद्रह दिन से कम ठहरने का इरादा करेगा, तो वह क़स्र करेगा। और अगर पंद्रह दिन या उससे अधिक की नियत करेगा तो मुक़ीम (निवासी) हो जाएगा और पूरी नमाज़ पढ़ेगा। जिस स्थान पर शरीयत के अनुसार क़स्र वाजिब था और उसने पूरी नमाज़ पढ़ी, उस पर जवाबदेही है और उस नमाज़ को दोहराना वाजिब है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

प्रश्न 713: फ़रीदकोट रियासत, ज़िला फ़िरोज़पुर, पंजाब से, प्रेषक मुंशी मुहम्मद अली इरम, 6 रजब-उल-मुरज्जब 1337 हिजरी। दीन के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि रेलवे में एक बड़ा 'रिलीविंग' स्टाफ रहता है जिनका काम यह है कि वे किसी रेल कर्मचारी के बीमार होने, पद कम होने या छुट्टी पर जाने पर उनकी जगह हफ़्ता, दस दिन, एक-दो दिन ज़्यादा या कम रहते हैं। इस कारण उन्हें कहीं बीस दिन, महीना या उससे ज़्यादा, और कहीं केवल दो-चार दिन ही रहना पड़ता है। क्या उनके लिए नमाज़ में क़स्र का हुक्म है या नहीं? उत्तर: अगर अपने स्थान से साढ़े सत्तावन (57.5) मील की दूरी पर लगातार जाना हो कि वहीं जाना उद्देश्य है, बीच में रुकना उद्देश्य नहीं है, और वहाँ पूरे पंद्रह दिन ठहरने का इरादा न हो, तो क़स्र करेंगे; अन्यथा पूरी पढ़ेंगे। हाँ, जिसे भेजा गया है अगर वह उस समय यात्रा की स्थिति में है और मुक़ीम नहीं है, तो उसे जितनी दूर भी भेजा जाए, वह मुसाफ़िर (यात्री) ही रहेगा जब तक कि वह पूरे पंद्रह दिन ठहरने की नियत न करे या अपने वतन न पहुँच जाए। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

प्रश्न 714: शहर, मोहल्ला बिहारी पुर से, प्रश्नकर्ता नवाब वज़ीर अहमद ख़ान साहब, 20 मुहर्रम 1339 हिजरी। दीन के विद्वान और स्पष्ट शरीयत के मुफ़्ती इस विषय में क्या कहते हैं कि आज दस बजे की गाड़ी से तलसहर जाने का इरादा है। तलसहर तक क़स्र नहीं है। तलसहर से रामपुर का इरादा है। तलसहर से रामपुर तक क़स्र की दूरी है। लेकिन बीच में बरेली पड़ेगी, वहाँ उतरना नहीं होगा। इस स्थिति में क़स्र का क्या हुक्म है? क्या तलसहर में भी क़स्र पढ़ा जाए या नहीं? और अगर तलसहर में रामपुर का इरादा रद्द हो जाए तो क़स्र को क़स्र माना जाए या नहीं? स्पष्ट करें, पुण्य पायें।

पृष्ठ 270/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۷۱۲: از اتاوہ محلہ ثابت گنج مرسلہ محمد ابراہیم خاں صابری مارہروی ۲ شوال ۱۳۳۹ھ زید کی سسرال اسکے مکان مسکونہ سے بسفر ریل ۱۱۴ میل کے فاصلے پر ہے اور بیوی بچے اس کے سب سسرال میں رہتے ہیں مگر زید اپنے کاروبار کی وجہ سے زیادہ تر اپنے مسکن پر رہتا ہے اور بال بچے جو اس کے سسرال میں رہتے ہیں بلکہ ضرورتاً عرصہ ۸ ماہ سے ان کو وہاں چھوڑ رکھا ہے ایسی صورت میں جب زید اپنے مسکن سے اپنے بال بچوں میں ہونے کے واسطے بایں ارادہ گیا کہ میں چوتھے روز یا پندرہ دن کے بعد یا مہینہ بھر کے بعد واپس آؤں گا تو اس پر قصر واجب ہے یا نہیں؟ اور اگر کسی موقع سے اس نے قصر نماز ادا نہ کی ہو جس کو کہ وہ اپنے علم کے موافق قصر نہیں جانتا مگر شرعی اصول کے موافق اس پر قصر واجب ہو تو اس کے ذمہ کچھ مواخذہ ہے یا نہیں؟

الجواب: جبکہ مسکن زید کا دوسری جگہ ہے اور بال بچوں کا یہاں رکھنا عارضی ہے تو جب یہاں آئے گا اور پندرہ دن سے کم ٹھہرنے کی نیت کرے گا قصر کرے گا اور پندرہ دن یا زیادہ کی نیت سے مقیم ہو جائے گا پوری نماز پڑھے گا جس پر شرعاً قصر ہے اور اس نے جگہ پڑھے گی اُس پر مواخذہ ہے اور اس نماز کا پھیرنا واجب۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۷۱۳: از ریاست فرید کوٹ ضلع فیروز پور پنجاب مرسلہ منشی محمد علی ارم ۶ رجب المرجب ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ریل میں ایک کثیر عملہ ریلیونگ رہتا ہے جسکا یہی کام کہ ہفتہ عشرہ ایک دن دو دن زیادہ کم کسی ملازم ریلوے کے بیمار ہو جانے تخفیف میں آجانے رخصت جانے پر اس کی جگہ رہتے ہیں جس سے کہیں بیس دن مہینہ اور زیادہ دو دو چار چار دن ہی رہنا پڑتا ہے ان کے لیے نماز میں قصر کا حکم ہے یا نہیں؟ الجواب: اگر

اپنے مقام سے ساڑھے ستاون (۵۷ ۱/۲) میل کے فاصلے پر علی الاتصال جانا ہو کہ وہیں جانا مقصود ہے بیچ میں جانا مقصود نہیں اور وہاں پندرہ دن کامل ٹھہرنے کا قصد نہ ہو تو قصر کریں گے ورنہ پوری پڑھیں گے ، ہاں یہ جو بھیجا گیا اگر اس وقت حالت سفر میں ہے مقیم نہیں تو کم و بیش جتنی دور بھی بھیجا جائے گا مسافر ہی رہے گا جب تک پندرہ کا مل ٹھہرنے کی نیت نہ کرے یا اپنے وطن نہ پہنچے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۷۱۴: از شہر محلہ بہاری پور مسئولہ نواب وزیر احمد خاں صاحب ۲۰ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ آج قصد تلہسر اس وقت دس بجے کی گاڑی سے ہے تلہسر تک قصر نہیں تلہسر سے قصد رامپور کا ہے تلہسر سے رام پور تک قصر ہے لیکن درمیان میں بریلی پڑھے گی اترنا نہیں ہوگا اس صورت میں قصر کا کیا حکم ہے۔ تلہسر میں بھی قصر پڑھا جائے یا نہیں اور اگر تلہسر میں قصد رامپور کا فسخ ہو جائے تو قصر کو قصر کیا جائے یا نہیں؟ بینوا توجروا

Volume Eight Fatawa Ridawiyya

Answer: Do not shorten prayers (Qasr) from here to Talsar and during your stay in Talsar. When you intend to go directly from Talsar to Rampur, shorten the prayer on the way, in Rampur, and on the way back to Bareilly. Although you will pass through Bareilly station on your way to Rampur, it is not considered being in Bareilly such that it would end your Qasr, because the station here is outside the city. And Allah Almighty knows best.

Problem 772: From Sambhal, Moradabad, Mohalla Deepasaray, questioned by Maulvi Muhammad Ayub Sahib, 3 Jumada al-Ula 1325 AH. If a traveler leads a full four-rakat prayer, will the prayer of the residents (behind him) be valid or not? Clarify and be rewarded.

Answer: If a traveler, without intending residency (iqamat), performs the full four rakats, he will be a sinner, and the prayer of the residents behind him will be void if they continue following him after the first two rakats. And Allah Almighty knows best.

Problem 775: From Pilibhit, Mohalla Punjabian, sent by Sheikh Abdul Aziz Sahib, 1309 AH. What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say about this matter: A person travels from his original homeland (watan-e-asli) to another place which is more than three stages of Shariah travel away, for the necessity of business or employment relations, etc. However, his family is in his original homeland, and he mostly stays in this second homeland (watan-e-thani). He might stay with his family for a month or two during the year, or take some of his family with him and leave some behind, or take all dependents with him, with only connections like houses remaining in the original homeland. In all these cases, his stay is mostly in the second homeland and rarely in the original one. Apparently, the reason for staying in the second homeland is those new relations, and he intends to return to the original homeland if those relations end. In such a case, if this person comes to the second homeland while traveling from somewhere and does not intend to stay for 15 days, should he perform the full four-rakat prayer like in his original homeland, or shorten it like travelers? Clarify and be rewarded.

Answer: Since that second place is neither his birthplace nor has he married there, nor has he made it his permanent home (i.e., he has not resolved to stay there forever and never leave), but rather his stay there is only temporary based on business or employment relations, then that place is not the original homeland (watan-e-asli). Even if his stay there for a known necessity is long, or if he brings

some or all of his family there for a while or until the need ends, it's still a stay for a specific reason and not a permanent settlement. Therefore, when he comes there from a journey, as long as he does not intend a 15-day stay, he will perform Qasr (shorten the prayer), because a temporary homeland (watan-e-iqamat) is invalidated by traveling.

In Al-Durr al-Mukhtar: The original homeland (watan-e-asli) is the place of a person's birth.

जवाब: यहाँ से तलसर तक और तलसर में ठहरने तक क़स्र न करें। जब तलसर से सीधे रामपुर जाने का इरादा हो तो रास्ते में भी और रामपुर में भी और बरेली वापस आने तक भी क़स्र करें। रामपुर जाने में हालांकि बरेली स्टेशन से गुजरना होगा, लेकिन उसे बरेली में गुजरना नहीं माना जाएगा कि क़स्र खत्म हो जाए, क्योंकि यहाँ स्टेशन शहर के बाहर है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ७७२: संभल मुरादाबाद, मोहल्ला दीपा सराय से, मौलवी मोहम्मद अयूब साहब द्वारा पूछा गया, ३ जमादी-उल-उला १३२५ हिजरी। अगर कोई मुसाफिर (यात्री) पूरी चार रकात नमाज़ पढ़ा दे, तो क्या मुक़ीमों (निवासियों) की नमाज़ होगी या नहीं? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: अगर मुसाफिर बिना इक़ामत (ठहरने) की नीयत के पूरी चार रकात नमाज़ पढ़ेगा तो गुनाहगार होगा और उसके पीछे मुक़ीमों की नमाज़ बातिल (अमान्य) हो जाएगी, अगर वे पहली दो रकात के बाद भी उसकी इक़्तेदा (अनुसरण) जारी रखेंगे। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला ७७५: पीलीभीत, मोहल्ला पंजाबियां से, शेख अब्दुल अज़ीज़ साहब द्वारा भेजा गया, १३०९ हिजरी। धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या फरमाते हैं कि: एक व्यक्ति अपने वतन-ए-असली (मूल गृहभूमि) से यात्रा करके दूसरी जगह जा रहा है, जो शरीयत के अनुसार तीन मंज़िल से ज़्यादा दूर है, व्यापार या नौकरी आदि के कारण। लेकिन उसके बीवी-बच्चे उसके वतन-ए-असली में हैं और उसका ज़्यादातर निवास इस वतन-ए-सानी (दूसरी गृहभूमि) में होता है। साल भर में एक-दो महीने के लिए वह अपने बीवी-बच्चों के पास भी रह जाता है, या कुछ परिवार वालों को साथ ले जाता है और कुछ को वतन में छोड़ जाता है, या सभी आश्रितों को साथ ले जाता है और वतन-ए-असली में सिर्फ मकानों आदि का संबंध बाकी रहता है। इन सभी स्थितियों में उसका अधिकांश निवास वतन-ए-सानी में रहता है और वतन-ए-असली में रहने का इत्तेफ़ाक़ कम होता है। ज़ाहिर है कि वतन-ए-सानी में रहने का कारण वही नए संबंध हैं, और उन संबंधों के खत्म होने पर वह वतन-ए-असली वापस आने का इरादा रखता है। ऐसी स्थिति में, अगर यह व्यक्ति कहीं से यात्रा करता हुआ वतन-ए-सानी में आए और १५ दिन ठहरने का इरादा न रखता हो, तो क्या वह चार रकात वाली नमाज़ पूरी पढ़े जैसे वतन-ए-असली में, या मुसाफिरों की तरह क़स्र (छोटा) करे? बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: चूंकि वह दूसरी जगह न तो उसका जन्मस्थान है, न ही उसने वहां शादी की है, और न ही उसने उसे अपना वतन बना लिया है (अर्थात यह दृढ़ संकल्प नहीं किया है कि अब यहीं रहूंगा और यहां का निवास नहीं छोड़ूंगा), बल्कि वहां रहना केवल व्यापार या नौकरी के कारण अस्थायी है, तो वह जगह वतन-ए-असली नहीं हुई। भले ही वहां किसी ज्ञात आवश्यकता के कारण लंबा प्रवास हो, भले ही वह वहां कुछ समय के लिए या आवश्यकता पूरी होने तक कुछ या सभी परिवार के सदस्यों को ले जाए, फिर भी यह प्रवास एक विशेष कारण से है न कि स्थायी और स्थिर। इसलिए, जब वह वहां यात्रा से आएगा, जब तक वह १५ दिन ठहरने की नीयत नहीं करेगा, वह क़स्र ही पढ़ेगा, क्योंकि वतन-ए-इक़ामत (अस्थायी गृहभूमि) यात्रा करने से बातिल (अमान्य) हो जाता है।

अद-दुर्र अल-मुख्तार में है: वतन-ए-असली मनुष्य के जन्म का स्थान है।

पेज २७१ ऑफ ६७३

الجواب: یہاں سے تلسر تک اور تلسر کے قیام تک قصر نہ کریں جب تلسر سے بخط مستقیم رامپور کا ارادہ ہو تو راہ میں بھی اور رامپور میں بھی اور بریلی تک واپس آنے میں بھی قصر کریں، رامپور جانے میں اگرچہ بریلی کے اسٹیشن پر گزر ہوگا مگر وہ بریلی میں گزر نہیں کہ قصر کا قصر کر دیں اس لئے کہ یہاں اسٹیشن خارج شہر ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۷۷۲: از سنبھل مراد آباد محلہ دیپا سرائے مسئولہ مولوی محمد ایوب صاحب ۳ جمادی الاولیٰ ۱۳۲۵ھ مسافر اگر نمازی پوری چار رکعت پڑھادے تو مقیمین کی نماز ہوگی یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: مسافر اگر بے نیت اقامت چار رکعت پوری پڑھے گنہ گار ہوگا اور مقیمین کی نماز اس کے پیچھے باطل ہو جائیگی اگر دو رکعت اولیٰ کے بعد اس کی اقتداء باقی رکھیں گے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۷۷۵: از پیلی بھیت محلہ پنجا بیاں مرسلہ شیخ عبدالعزیز صاحب ۱۳۰۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ کوئی شخص اپنے وطن اصلی سے سفر کر کے دوسری جگہ میں جو سفر شرعی تین منزل سے زائد ہے بضرورت تعلقات تجارت یا نوکری وغیرہ کے جا رہا ہو مگر اہل و عیال اس کے وطن اصلی میں ہوں اور اکثر قیام اس کا وطنِ ثانی میں رہنا ہوگا ہی، سال بھر میں مہینہ دو مہینہ کے واسطے اہل و عیال میں بھی رہ جاتا ہو یا بعض اہل کو ہمراہ لے جائے اور بعض کو وطن چھوڑ جائے یا کل متعلقین ہمراہ لے جائے صرف مکانات وغیرہ کا تعلق وطن اصلی میں باقی ہو اور ان سب صورتوں میں ان کا زیادہ تر اور اکثر قیام وطنِ ثانی میں رہتا ہے اور کم اتفاق رہنے کا وطنِ اصلی میں ہوتا ہے اور بظاہر وجہ قیام ثانی کے وہی

تعلقات جدید ہیں اور در صورت قطع تعلقات جدیدہ کے وطن اصلی میں واپس آجانے کا بھی قصد رکھتا ہے ایسی صورت میں یہ شخص کہیں سے سفر کرتا ہوا وطنِ ثانی میں آئے اور ۱۵ روز قیام کا قصد نہ رکھتا ہو تو صلاۃ رباعیہ کو پورا پڑھے مثل وطن اصلی کے یا قصر کرے مثل مسافروں کے؟ بینوا توجروا

الجواب: جبکہ وہ دوسری جگہ نہ اس کا مولد ہے نہ وہاں اس نے شادی کی نہ اسے اپنا وطن بنا لیا یعنی یہ عزم نہ کر لیا کہ اب یہیں رہوں گا اور یہاں کی سکونت نہ چھوڑوں گا بلکہ وہاں کا قیام صرف عارضی بر بنائے تعلقِ تجارت یا نوکری ہے تو وہ جگہ وطنِ اصلی نہ ہوئی اگرچہ وہاں بضرورتِ معلومہ قیام زیادہ اگرچہ وہاں برائے چندے یا تا حاجت اقامت بعض یا کل اہل و عیال کو بھی لے جائے کہ بہر حال یہ قیام بیک وجہ خاص سے ہے نہ مستقل و مستقر، تو جب وہاں سفر سے آئے گا جب تک ۱۵ دن کی نیت نہ کرے گا قصر ہی پڑھے گا کہ وطنِ اقامت سفر کرنے سے باطل ہو جاتا ہے۔

فی الدرالمختار الوطن الاصلی وھو موطن | در مختار میں ہے وطن اصلی، آدمی کی جائے ولادت ہے

Volume Eight Fatawa Razawiyya

His birth, or his marriage, or his taking residency.[1] | Or he married there, or he made it his homeland there. (T)

In Radd al-Muhtar, it states:

His saying "his marriage" means he married there; it says in Sharh al-Munyah that if a traveler marries in a city but does not intend to reside there, it is said he does not become a resident, and it is also said he becomes a resident, which is the preferred view. His saying "or his taking residency" means he determined to stay there and not depart, even if he did not marry. If a person has parents in a city other than his birthplace and he is an adult and did not marry there, then that is not his homeland unless he determines to stay there and leaves the homeland he had before.[2] - Sharh al-Munyah. | His saying "tahalla" means he married there. In Sharh al-Munyah, it says that if a traveler marries in a city and does not establish residency there, one opinion is that he will not be a resident, and another opinion is that he will become a resident, and this is the chosen view. His saying "aw tawattanahu" means that although he did not marry there, he made the firm intention to stay and not move. If a person has parents in a city, but that place is not his birthplace nor has he married there, then that city will not be his homeland unless he intends to stay there and abandons his previous homeland. Sharh al-Munyah. (T)

In Tanwir, it states:

The homeland of residency is invalidated by a similar one (another residency), the original homeland, and travel.[3] - And Allah Almighty knows best. | The homeland of residency is invalidated by a similar residency, the original homeland, and travel. And Allah Almighty knows best. (T)

[1] Durr al-Mukhtar, Chapter of the Traveler's Prayer, printed at Matba' Mujtaba'i Delhi, 1/108 [2] Radd al-Muhtar, Chapter of the Traveler's Prayer, Mustafa al-Babi Egypt, 1/586 [3] Durr al-Mukhtar, Chapter of the Traveler's Prayer, Matba' Mujtaba'i Delhi, 1/108

जिल्द अष्टम (आठवीं) फ़तावा-ए-रज़विया

उसकी जन्मभूमि, उसका विवाह, या उसका वतन बनाना।[1] | या वहां उसने शादी की हो या उसने वहां उसे अपना वतन बनाया हो। (त)

रदुल मुख्तार में है:

उनका कथन "उसका विवाह" अर्थात उसने वहां शादी की; शरह अल-मुनिया में है कि यदि एक मुसाफ़िर (यात्री) किसी शहर में शादी कर ले और वहां निवास (इक़ामत) की नीयत न करे, तो कहा गया है कि वह मुक़ीम (निवासी) नहीं होगा, और एक राय यह है कि वह मुक़ीम हो जाएगा और यही श्रेष्ठ विचार है। उनका कथन "या उसका वतन बनाना" अर्थात उसने वहां ठहरने और न जाने का दृढ़ संकल्प कर लिया, भले ही उसने वहां शादी न की हो। यदि किसी व्यक्ति के माता-पिता किसी ऐसे शहर में हों जो उसका जन्मस्थान नहीं है और वह बालिग़ (वयस्क) है और उसने वहां शादी नहीं की है, तो वह स्थान उसका वतन नहीं होगा जब तक कि वह वहां ठहरने का इरादा न कर ले और अपने पिछले वतन को छोड़ न दे।[2] - शरह अल-मुनिया। | उनका कहना "ताहल्ला" यानि उसने वहां शादी की, शरह अल-मुनिया में है कि अगर मुसाफ़िर ने किसी शहर में शादी कर ली और वहां इक़ामत (निवास) न की तो क़ौल (कथन) यह है कि वह मुक़ीम नहीं होगा और एक क़ौल में मुक़ीम हो जाएगा यही मुख्तार (पसंदीदा) है। उनका क़ौल "औ तवत्तनाहू" यानि अगरचे वहां शादी नहीं की मगर ठहरने और कूच न करने का अज़्म (संकल्प) कर लिया, अगर आदमी के एक शहर में वालिदैन (माता-पिता) हैं लेकिन वह जगह उसकी जाए-विलादत (जन्म स्थान) नहीं और न ही उसने वहां शादी की है तो वह शहर उसका वतन न होगा अलबत्ता इस सूरत में कि वहां ठहरने का इरादा करे और साबिक़ा (पिछला) वतन तर्क(त्याग) कर दे। शरह अल-मुनिया। (त)

तनवीर में है:

वतन-ए-इक़ामत, वैसी ही दूसरी इक़ामत, वतन-ए-असली और सफ़र से बातिल (अमान्य) हो जाता है।[3] - वल्लाह तआला आलम। | वतन-ए-इक़ामत (निवास स्थान), वतन-ए-इक़ामत, वतन-ए-असली और सफ़र से बातिल हो जाता है। वल्लाह तआला आलम (त)

[1] दुर्रे मुख्तार, बाब सलातुल मुसाफ़िर, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली, 108/1 [2] रदुल मुख्तार, बाब सलातुल मुसाफ़िर, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 586/1 [3] दुर्रे मुख्तार, बाब सलातुल मुसाफ़िर, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 108/1

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

ولادتہ اوتأھلہ اوتوطنہ۔[1] | یا وہاں اس نے شادی کی ہو یا اس نے وہاں اسے اپنا وطن بنایا ہو۔ (ت)

ردالمختار میں ہے:

قولہ اوتأھلہ ای تزوجہ قال فی شرح المنیۃ ولو تزوج المسافر بلد ولم ینوا لاقامۃ بہ فقیل لا یصیر مقیما وقیل یصیر مقیما وھو الاوجہ، قولہ أوتوطنہ ای عزم علی القرار فیہ وعدم الارتحال وان لم یتأھل فلو کان لہ ابوان بلد غیر مولدہ وھو بالغ ولم یتأھل بہ فلیس ذلک وطنا الا اذا عزم علی القرار فیہ وترک الوطن الذی کانہ لہ قبلہ[2] - شرح المنیۃ۔ | قولہ "تاھلہ" یعنی اس نے وہاں شادی کی، شرح المنیہ میں ہے کہ اگر مسافر نے کسی شہر میں شادی کر لی اور وہاں اقامت نہ کی تو قول یہ ہے کہ وہ مقیم نہیں ہوگا اور ایک قول میں مقیم ہو جائے گا یہی مختار ہے۔ اس کا قول "اوتوطنہ" یعنی اگرچہ وہاں شادی نہیں کی مگر ٹھہرنے اور کوچ نہ کرنے کا عزم کر لیا، اگر آدمی کے ایک شہر میں والدین ہیں لیکن وہ جگہ اس کی جائے ولادت نہیں اور نہ ہی اس نے وہاں شادی کی ہے تو وہ شہر اس کا وطن نہ ہوگا البتہ اس صورت میں کہ وہاں ٹھہرنے کا ارادہ کرے اور سابقہ وطن ترک کر دے۔ شرح المنیۃ۔ (ت)

تنویر میں ہے:

ویبطل وطن الاقامۃ بمثلہ والاصلی والسفر[3] - واللہ تعالٰی اعلم | وطن اقامت وطن اقامت، وطن اصلی اور سفر سے باطل ہو جاتا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

1 در مختار باب صلوۃ المسافر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۰۸/۱ 2 ردالمختار باب صلوۃ المسافر مصطفٰی البابی مصر ۵۸۶/۱ 3 در مختار باب صلوۃ المسافر مطبع مجتبائی دہلی ۱۰۸/۱

Volume Eight - Fatawa Razawiyya

Chapter of Jumu'ah (The Discourse on Friday Prayer)

Problem 1276: Sent by Maulvi Hafiz Amirullah Sahib, First Teacher of Madrasa Arabiya Akbariyah, 7 Muharram 1306 AH. What do the scholars of religion say regarding the issue of whether Jumu'ah is permissible in villages or not? And a settlement whose mosque cannot accommodate its residents, is it a city or a village? Explain and be rewarded.

The Answer: Jumu'ah is not permissible in villages. If they perform it, they will be sinners, and the Zuhr prayer will not be waived from their responsibility. In Durr-al-Mukhtar from al-Qunyah, it is stated: "Eid prayer in villages is disliked to the degree of prohibition (Makruh Tahrimi), i.e., it is engagement in something that is not valid because being in a city (Misr) is a condition for validity." End quote. I say: Jumu'ah is even more prohibited, because in it, along with that, there is either the abandonment of Zuhr, which is an obligation (Fard), or the abandonment of its congregation, which is mandatory (Wajib). Then, praying individually despite the gathering and the absence of any hindrance is another grave evil besides leaving the congregation. For whoever prays alone in their house, detached from the congregation, has indeed left the congregation, even if they pray at the same time in the mosque.

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Eids, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/114.

Page 273 of 673

खण्ड आठ - फ़तावा रज़विया

जुमा का अध्याय (नमाज़-ए-जुमा का बयान)

मसाला 1276: मौलवी हाफ़िज़ अमीरुल्लाह साहब, प्रथम शिक्षक, मदरसा अरबीया अक़बरिया, 7 मुहर्रम 1306 हिजरी द्वारा प्रेषित। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि गाँवों में जुमा की नमाज़ जायज़ है या नहीं? और वह आबादी जिसकी मस्जिद में उसके निवासी समा न सकें, वह शहर है या गाँव? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: गाँवों में जुमा की नमाज़ जायज़ नहीं है। यदि वे इसे पढ़ेंगे, तो वे पापी होंगे, और उनके उत्तरदायित्व से ज़ुहर की नमाज़ कम नहीं होगी। दुर-अल-मुख्तार में अल-कुन्या से उद्धृत है कि गाँवों में ईद की नमाज़ मकरूह-ए-तहरीमी है, यानी ऐसी चीज़ में व्यस्त होना है जो सही नहीं है क्योंकि शहर (मिस्र) का होना ईद की वैधता के लिए शर्त है। समाप्त। मैं कहता हूँ: जुमा की नमाज़ और भी अधिक वर्जित होगी, क्योंकि इसमें इसके साथ-साथ या तो ज़ुहर का त्याग होगा जो कि फ़र्ज़ है, या फिर इसकी जमात का त्याग होगा जो कि वाजिब है। फिर, सभा होने और किसी रुकावट के न होने के बावजूद अकेले नमाज़ पढ़ना, जमात छोड़ने के अलावा एक और बड़ी बुराई है। क्योंकि जो कोई जमात से अलग अपने घर में अकेले नमाज़ पढ़ता है, उसने वास्तव में जमात छोड़ दी है और एक समय में मस्जिद में उपस्थित है।

1. दुर अल-मुख्तार, ईदैन का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/114.

पृष्ठ 273 का 673

جلد ہشتم - فتاویٰ رضویہ

باب الجمعة (نماز جمعہ کا بیان)

مسئلہ ۱۲۷۶: مرسلہ مولوی حافظ امیر اللہ صاحب مدرس اول مدرسہ عربیہ اکبر یہ ۱۷ محرم ۱۳۰۶ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ دیہات میں جمعہ جائز ہے یا نہیں؟ اور وہ آبادی جس کی مسجد میں اس کے ساکن نہ سما سکیں شہر ہے یا گاؤں؟ بینوا توجروا

الجواب: دیہات میں جمعہ ناجائز ہے اگر پڑھیں گے گنہگار ہوں گے اور ظہر ذمہ سے ساقط نہ ہوگا۔ في الدرالمختار فی القنیة صلوة العید فی القری تکرہ تحریمًا ای لانہ اشتغال بما لایصح لان المصر شرط الصحة ۱ انتھی درمختار میں ہے کہ قنیہ میں ہے کہ عید کی نماز دیہاتوں میں مکروہ تحریمی ہے یعنی نہ ایسی شیئ میں مصروف ہونا ہے جو صحیح نہیں کیونکہ شہر کا ہونا صحتِ عید کے لئے شرط ہے انتہیٰ اقول: فالجمعة اولی لانه فیها مع ذلك اما ترك الظهر وهو فرض او ترك جماعته وهی واجبة ثم الصلوة فرادی مع الاجتماع، وعدم المانع شنیعة اخری غیر ترك الجماعة فان من صلی فی بیته منعز لاعن الجماعة فقد ترك الجماعة وان صلوا اقول: جمعہ بطریق اولیٰ مکروہ تحریمی ہوگا کیونکہ اس جمعہ کی صورت میں ترک ظہر ہوگا جو فرض ہے یا ترک جماعت ہوگا حالانکہ وہ واجب ہے، باوجود اجتماع اور عدم مانع کے تنہا نماز ادا کرنا ترک جماعت سے الگ خرابی ہے کیونکہ جو جماعت سے الگ گھر میں نماز ادا کرے گا اس نے جماعت ترک کردی اور ایک وقت میں مسجد میں حاضر

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۴

Fatawa Razawiya, Volume 8

[Arabic Section]: Individuals present in the mosque at a single time performed prayers alone, thus they abandoned the congregation and committed this heinous act in addition to it. This leads to three, rather four, even five prohibitions. Because what they prayed was not obligatory for them, rather it was a voluntary (Nafal) prayer, and performing Nafal prayers with a congregation and formal gathering (Tada'i) is disliked (Makruh). Then their belief that it is an obligation upon them while it is not so, this is the fifth evil. These two things are common between Friday (Jumu'ah) and the two Eids.

[Urdu Translation of the above]: People perform prayers individually, so they have abandoned the congregation and they have done such an act which is an addition to this defect. So now three, rather four, no, rather five prohibitions become necessary because the prayer they performed was not obligatory on them but it was voluntary, and performing voluntary prayers with a congregation and formal gathering is disliked. Then their considering it as their duty while it is not obligatory, this is the fifth defect, and these two things are common between Friday and the two Eids.

For the validity of the Friday prayer (Jumu'ah), the city is a condition. And the definition of a city such that its residents upon whom Jumu'ah is obligatory—namely sane, adult, healthy men—cannot be accommodated in its largest mosques, is contrary to the 'Zahir al-Riwayah' (manifest reports) from our three Imams (may Allah Almighty have mercy on them). Whatever is contrary to Zahir al-Riwayah is retracted and abandoned, as stated in 'al-Bahr al-Ra'iq', 'al-Khayriyah', 'Radd al-Muhtar', etc. (As it is in al-Bahr al-Ra'iq, Khayriyah, and Radd al-Muhtar, etc. - t). And when the fatwa (legal opinion) is different, then acting upon Zahir al-Riwayah is mandatory, as stated in 'al-Bahr', 'al-Durr', etc. (As it is in al-Bahr and al-Durr, etc. - t).

I say (Aqul): Researchers explicitly state that it is mandatory to give fatwa based on the Imam's (Abu Hanifa) statement; one should not deviate from it even if the two companions (Sahibayn: Abu Yusuf and Muhammad) are in disagreement, even if the sheikhs of the school issue fatwas based on the statement of the companions.

[Arabic Section]: O Allah! Unless the evidence is weak or the common practice is contrary to it. This has been explicitly stated by Allamah Zayn ibn Nujaym in 'al-Bahr', Allamah Khayr al-Din al-Ramli in his fatwas, Shaykh al-Islam author of 'al-Hidayah' in 'al-Tajnis', the researcher where he expressed it generally in 'al-Fath', Sharif al-Tahtawi and Sayyid al-Shami in their glosses on 'al-Durr', and other eminent noble scholars,

as we have explained in the Book of Marriage in 'al-Ataya al-Nabawiyyah fi al-Fatawa al-Razawiyyah'.

[Urdu Translation of the above]: O Allah! Unless this evidence is weak or practice is against it. This was explicitly stated by Allamah Zayn bin Nujaym in 'Bahr', Allamah Khayr al-Din Ramli in his fatwas, Shaykh-ul-Islam author of 'Hidayah' in 'Tajnis', the researcher in 'Fath', Sharif Tahtawi and Sayyid Shami in the glosses of 'Durr', and other great eminent scholars have explicitly stated it as we have explained it in the Book of Marriage of 'Al-Ataya al-Nabawiyyah fi al-Fatawa al-Razawiyyah'. (t)

So, where the statement of the companions is also with the Imam himself, a rare report (Nawadir) simply because of the difference in the fatwas of later scholars—since the common and accepted practice and what is mentioned in Zahir al-Riwayah of the three Imams is abandoned and worthy of deviation—necessarily in 'Sharh Niqayah' and 'Majma' al-Anhur'...

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[अरबी खंड]: मस्जिद में एक ही समय में उपस्थित व्यक्तियों ने अकेले-अकेले नमाज़ अदा की, इस प्रकार उन्होंने जमाअत छोड़ दी और इसके अतिरिक्त यह घृणित कार्य किया। यह तीन, बल्कि चार, यहाँ तक कि पाँच निषेधों (ममनूआत) की ओर ले जाता है। क्योंकि उन्होंने जो नमाज़ पढ़ी वह उन पर फ़र्ज़ नहीं थी, बल्कि वह नफ़्ल (स्वैच्छिक) थी, और नफ़्ल नमाज़ को जमाअत और तदाअई (औपचारिक आयोजन) के साथ पढ़ना मकरूह है। फिर उनका इसे अपना फ़र्ज़ मानना जबकि ऐसा नहीं है, यह पाँचवीं बुराई है। और ये दोनों बातें जुमा और दोनों ईदों के बीच साझा हैं।

[उपरोक्त का उर्दू अनुवाद]: लोग तन्हा नमाज़ अदा करते हैं तो उन्होंने जमाअत तर्क कर दी और उन्होंने ऐसा अमल किया जो इस ख़राबी पर इज़ाफ़ा है। पस अब तीन बल्कि चार, नहीं बल्कि पाँच ममनूआत लाज़िम आते हैं क्योंकि जो नमाज़ उन्होंने अदा की वह उन पर फ़र्ज़ न थी बल्कि वह नफ़्ल थी और नफ़्ल को जमाअत और तदाअई के साथ अदा करना मकरूह है। फिर उनका इसे अपने फ़र्ज़ मानना हालाँकि वह फ़र्ज़ नहीं यह पाँचवीं ख़राबी है और यह दोनों चीजें जुमा और ईदैन के दरमियान मुश्तरक हैं।

जुमा की वैधता के लिए शहर एक शर्त है। और शहर की यह परिभाषा कि जिसके निवासी जिन पर जुमा फ़र्ज़ है—यानी समझदार, बालिग़, स्वस्थ पुरुष—उसकी सबसे बड़ी मस्जिदों में न समा सकें, हमारे तीनों इमामों (अल्लाह तआला उन पर रहम करे) की 'ज़ाहिर-उर-रवाया' (स्पष्ट विवरणों) के विरुद्ध है। और जो कुछ 'ज़ाहिर-उर-रवाया' के ख़िलाफ़ है, वह वापस लिया गया और छोड़ दिया गया है, जैसा कि 'बहर-उर-राइक', 'ख़ैरिया' और 'रद्द-उल-मुह्तार' आदि में है। (जैसा कि बहर-उर-राइक, ख़ैरिया और रद्द-उल-मुह्तार वगैरह में है। - त) और जब फ़तवा अलग-अलग हो तो 'ज़ाहिर-उर-रवाया' पर अमल करना वाजिब है, जैसा कि 'बहर' और 'दुर' आदि में है। (जैसा कि बहर और दुर वगैरह में है। - त)

अक़ूल (मैं कहता हूँ): शोधकर्ता स्पष्ट करते हैं कि इमाम (अबू हनीफ़ा) के कथन पर फ़तवा देना वाजिब है; इससे विचलित नहीं होना चाहिए, चाहे साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) विरोध में हों, और चाहे मज़हब के विद्वान साहिबैन के कथन पर फ़तवा दें।

[अरबी खंड]: ऐ अल्लाह! सिवाय इसके कि दलील कमज़ोर हो या आम व्यवहार इसके विरुद्ध हो। इस पर अल्लामा ज़ैन बिन नुजैम ने 'बहर' में, अल्लामा ख़ैर-उद-दीन रम्ली ने अपने फ़तावा में, शैख़-

उल-इस्लाम साहब-ए-हिदाया ने 'तजनीस' में, शोधकर्ता ने जहाँ 'फ़तह' में इसे सामान्य रूप से कहा है, शरीफ़ तहतावी और सैय्यद शामी ने 'हाशिया दुर' में और अन्य महान प्रतिष्ठित विद्वानों ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है, जैसा कि हमने इसे 'अल-अताया अल-नबविय्या फ़िल फ़तावा अर-रज़विया' के किताब-उल-निकाह में बयान किया है।

[उपरोक्त का उर्दू अनुवाद]: ऐ अल्लाह! मगर यह दलील कमज़ोर हो या अमल इसके ख़िलाफ़ हो इस पर अल्लामा ज़ैन बिन नुजैम ने बहर में, अल्लामा ख़ैर-उद-दीन रम्ली ने अपने फ़तावा में, शैख़-उल-इस्लाम साहब-ए-हिदाया ने अपने तजनीस में, मोहक़्क़िक़ ने फ़तह में, शरीफ़ तहतावी और सैय्यद शामी ने हावाशी दुर में और दीगर उलमा-ए-अजिल्ला ने इस पर तसरीह की है जैसा कि हमने इसे 'अल-अताया अल-नबविय्या फ़िल फ़तावा अर-रज़विया' के किताब-उल-निकाह में बयान किया है। (त)

तो जहाँ साहिबैन का कथन भी इमाम ही के साथ है, एक रिवायत-ए-नवादिर सिर्फ़ बाद के विद्वानों के फ़तवों के मतभेद के कारण—चूंकि मामूल और मक़बूल और तीनों इमामों के'ज़ाहिर-उर-रवाया' में जो आदेश है वह छोड़ा हुआ और विचलन के योग्य है—तो निश्चित रूप से 'शरह निक़ाया' और 'मज्म-उल-अन्हुर' में...

فتاوی رضویه جلد ہشتم

فرادی حاضرین فی المسجد فی وقت واحد فقد ترکوا الجماعة واتوا بهذه الشنیعه زیادة علیه فیؤدی الی ثلث مخطوات بل اربع بل خمس لان مایصلونه لما لم یکن مفترضا علیهم کان نفلا واداء النفل بالجماعة والتداعی مکروه ثم هم یعتقدونها فریضة علیهم و لیس کذلك فهذه خامسة وهذان مشترکان بین الجمعة والعیدین۔

لوگ تنہا نماز ادا کرتے ہیں تو انھوں نے جماعت ترک کر دی اور انھوں نے ایسا عمل کیا جو اس خرابی پر اضافہ ہے پس اب تین بلکہ چار، نہیں بلکہ پانچ ممنوعات لازم آتے ہیں کیونکہ جو نماز انھوں نے ادا کی وہ ان پر فرض نہ تھی بلکہ وہ نفل تھی اور نفل کو جماعت اور تداعی کے ساتھ ادا کرنا مکروہ ہے پھر ان کا اسے اپنے فرض ماننا حالانکہ وہ فرض نہیں یہ پانچویں خرابی ہے اور یہ دونوں چیزیں جمعہ اور عیدین کے درمیان مشترک ہیں۔

صحتِ جمعہ کے لئے شہر شرط ہے، اور شہر کی یہ تعریف کہ جس کی اکبر مساجد میں اس کے سکان جن پر جمعہ فرض ہے یعنی مرد عاقل بالغ تندرست نہ سما سکیں، ہمارے ائمہ ثلثہ رحمہم اللہ تعالٰی سے ظاہر الروایہ کے خلاف ہے اور جو کچھ ظاہر الروایہ کے خلاف ہے مرجوع عنہ اور متروک ہے کما فی البحرالرائق والخیریۃ وردالمحتار وغیرہا (جیسا کہ بحر الرائق، خیریہ اور ردالمحتار وغیرہ میں ہے۔ت) اور فتوی جب مختلف ہو تو ظاہر الروایہ پر عمل واجب ہے کما فی البحر والدر وغیرہما(جیسا کہ بحر اور در وغیرہ میں ہے۔ت)

اقول: محققین تصریح فرماتے ہیں کہ قول امام پر فتوی واجب ہے اس سے عدول نہ کیا جائے اگر چہ صاحبین خلاف پر ہوں اگر چہ مشائخ مذہب قول صاحبین پر افتا کریں۔

اللھم الا لضعف دلیل اوتعامل بخلافه نص علی ذلک العلامة زین بن نجیم فی البحر و العلامة خیرالدین الرملی فی فتاواه وشیخ الاسلام صاحب الھدایۃ فی التجنیس والمحقق حیث اطلق فی الفتح والسید احمد الطحطاوی والسید الشامی فی حواشی الدر وغیرھم من اجلۃ العلماء الکرام الغرکما بیناہ فی کتاب النکاح من عطایاالنبویۃ فی الفتاوی الرضویۃ۔

اے اللہ ! مگر یہ دلیل کمزور ہو یا عمل اس کے خلاف ہو اس پر علامہ زین بن نجیم نے بحر میں، علامہ خیر الدین رملی نے اپنے فتاوی میں، شیخ الاسلام صاحب الہدایہ نے تجنیس میں، محقق نے فتح میں، شریف طحطاوی اور سید شامی نے حواشی در میں اور دیگر علماء اجلہ نے اس پر تصریح کی ہے جیسا کہ ہم نے اسے "العطایا النبویہ فی الفتاوی الرضویہ" کے کتاب النکاح میں بیان کیا ہے۔ (ت)

تو جہاں قول صاحبین بھی امام ہی کے ساتھ ہے ایک روایت نوادر صرف بوجہ اختلاف فتاوی متاخرین کیونکہ معمول و مقبول اور ائمہ ثلثہ کا ظاہر الروایہ میں جوارشاد ہے متروک ولائق عدول ہو، لاجرم شرح نقایہ ومجمع الانہر میں

Fatawa Ridawiyya, Volume Eight

It has been clearly stated that this definition of a city is not correct according to the researchers, as you will soon hear the text (of the evidence). (t)

I say: Nonetheless, the condition of 'Misr' (a city) that our noble Imams (may Allah have mercy on them) set for establishing Friday prayer is derived from a sound (Sahih) Hadith of Hazrat Maula Ali (may Allah Almighty ennoble his face), which Abu Bakr bin Abi Shaybah and Abdur Razzaq narrated in their compilations:

[Arabic Text]: There is no Jumu’ah, no Takbirat al-Tashriq, and no Eid al-Fitr or Eid al-Adha prayers except in a central city (Misr Jami') or a large town (Madinah Azimah).[1]

[Urdu Translation]: Friday prayer, Takbirat al-Tashriq, Eid al-Fitr, and Eid al-Adha can only be held in a large city or outside the main town. (t)

It is evident that this strange narration's definition would apply to many small hamlets which no one would call a 'Misr Jami' or 'Madinah', as pointed out by Allama Tahtawi in 'Hashiya al-Ala'i' (As Allama Tahtawi has indicated in Hashiya al-Ala'i. t). Therefore, adopting it would be a departure from the original school of thought and a clear contradiction of the source. It would almost validate the opponents' objection that Hanafis imposed this condition based on their own opinion without the Lawgiver's mandate. Besides, upon investigation, many problems arise whose details would require volumes. The irony is that those two pure and blessed cities, whose status as 'Misr' is agreed upon and where Jumu’ah was established from the holy time of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him)—namely Madinah and Makkah (may Allah Almighty increase them in honor and dignity)—would be excluded from being cities according to that (faulty) definition, as clearly stated by Allama Ibrahim al-Halabi in 'al-Ghunya' and Allama Sayyid Ahmad al-Tahtawi in 'Hashiya Maraqi al-Falah Sharh Nur al-Idah' (Just as Allama Ibrahim al-Halabi stated in Ghunya and Allama Sayyid Ahmad Tahtawi stated clearly in Hashiya Maraqi al-Falah Sharh Nur al-Idah. t). So, what doubt remains in its unreliability? The correct definition of a city is: a settlement with multiple streets and permanent markets—not just a village (Peth)—and it is a district center to which villages are counted, and in which a ruler is appointed to decide the cases of the subjects, whose power and majesty are such that they can secure justice for the oppressed from the oppressor. Wherever this definition holds true, that is a city, and Jumu’ah is valid there. This is the 'Zahir al-Riwayah' (evident report) from our three Imams (may Allah be pleased with them),

[Arabic Text]: As in al-Hidaya, al-Khaniya, al-Zahiriyya, al-Khulasa, al-Inaya, al-Durr al-Mukhtar, al-Hindiya, etc.

[Urdu Translation]: As it is in Hidaya, Khaniya, Zahiriya, Khulasa, Inaya, Hulya, Ghunya, Dur-e-Mukhtar, and Fatawa Hindiya, etc. (t)

[1] Musannaf Ibn Abi Shaybah, Book of Prayer, Chapter: Who said there is no Jumu'ah etc., published by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyya, Karachi, 2/101; Musannaf Abdur Razzaq, Chapter on Small Villages, published by al-Maktab al-Islami, Beirut, 3/171.

फ़तावा रज़विया, जिल्द अष्टम

स्पष्ट किया गया है कि शहर की यह परिभाषा शोधकर्ताओं के अनुसार सही नहीं है जैसा कि आप शीघ्र ही इसका पाठ सुनेंगे। (त)

मैं कहता हूँ: इसके बावजूद हमारे इमामों (अल्लाह उन पर दया करे) ने जुमे की नमाज़ की स्थापना के लिए 'मिस्र' (शहर) की जो शर्त लगाई है, उसका स्रोत हज़रत मौला अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) की एक सही (सहीह) हदीस है जिसे अबू बक्र बिन अबी शैबा और अब्दुल रज्जाक ने अपनी रचनाओं में वर्णित किया है:

[अरबी पाठ]: जुमा, तकबीर-ए-तशरीक, ईदुल फितर और ईदुल अज़हा की नमाज़ें बड़े शहर या शहर के बाहर के केंद्रीय भाग में ही हो सकती हैं।[1]

[अनुवाद]: जुमा, तकबीर-ए-तशरीक, ईदुल फितर और ईदुल अज़हा शहर के बाहर या बड़े शहरों में हो सकते हैं, (त)

यह स्पष्ट है कि इस विचित्र रिवायत की परिभाषा बहुत से छोटे-छोटे खेतों पर लागू होगी जिन्हें कोई भी 'मिस्र-ए-जामे' या 'मदीना' नहीं कहेगा जैसा कि अल्लामा तहावी ने 'हाशिया अल-अलाई' में इसकी ओर संकेत किया है। (जैसा कि अल्लामा तहावी ने हाशिया अलाई में इसकी ओर इशारा किया है। त) तो इसे अपनाना मूल पंथ से विचलन और स्रोत के स्पष्ट खिलाफ है, और मानो विरोधियों के इस एतराज को पूरा कर लेना है कि हनफियों ने यह शर्त बिना शरीयत के आदेश के अपनी राय से लगा ली। इसके अलावा शोध करने पर इस पर बहुत से प्रश्न उठते हैं जिनका विवरण देने के लिए दफ्तर (पूरी किताब) चाहिए। विडंबना यह है कि वे दो पवित्र और धन्य शहर जिनकी मिस्रियत पर सहमति है और जिनमें हुज़ूर सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र युग से जुमा कायम है यानी मदीना और मक्का (अल्लाह उनके सम्मान और प्रतिष्ठा को बढ़ाए) इस (गलत) परिभाषा के आधार पर शहर होने से बाहर हो जाते हैं जैसा कि अल्लामा इब्राहिम अल-हलबी ने 'अल-ग़ुनिया' में और अल्लामा सैय्यद अहमद तहावी ने 'हाशिया मराकी अल-फलाह' में स्पष्ट किया है। (जिस तरह कि अल्लामा इब्राहिम हलबी ने ग़ुनिया में और अल्लामा अल-सैय्यद अहमद तहावी ने हाशिया मराकी अल-फलाह शरह नूरुल ईज़ाह में स्पष्ट किया है। त) तो इसकी अविश्वसनीयता में क्या संदेह है? शहर की सही परिभाषा यह है कि वह आबादी जिसमें कई गलियां हों, स्थायी बाजार हों, न कि वह जिसे 'पेठ' (छोटा गांव) कहते हैं, और वह एक परगना हो जिसके साथ गांव गिने जाते हों, और उसमें कोई

शासक प्रजा के मुकदमों का फैसला करने के लिए नियुक्त हो जिसका प्रभाव और शक्ति ऐसी हो कि वह मजलूम का इंसाफ जालिम से ले सके। जहाँ यह परिभाषा खरी उतरती हो वही शहर है और वहीं जुमा जायज़ है। हमारे तीनों इमामों (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से यही ज़ाहिर-उर-रिवायत है,

[अरबी पाठ]: जैसा कि हिदाया, खानिया, ज़हीरिया, खुलासा, इनाया, दुर्रे मुख्तार और हंदिया आदि में है।

[अनुवाद]: जैसा कि हिदाया, खानिया, ज़हीरिया, खुलासा, इनाया, हुल्या, ग़ुनिया, दुर्रे मुख्तार और फतावा हिंदिया आदि में है। (त)

[1] मुसन्नफ इब्न अबी शैबा, किताबुस सलात, अध्याय: किसने कहा जुमा नहीं है आदि, मुद्रित इदारातुल कुरान वल उलूम अल-इस्लामिया कराची 101/2; मुसन्नफ अब्दुल रज्जाक, अध्याय छोटे गांव, मुद्रित अल-मकतब अल-इस्लामी बेरूत 171/3

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

تصریح فرمائی ہے کہ شہر کی یہ تعریف محققین کے نزدیک صحیح نہیں کما ستسمع نصہ (جیسا کہ عنقریب اس پر آپ نص سنیں گے۔ ت)

اقول: معہذا ہمارے ائمہ کرام رحمتہ اللہ علیہم نے جو اقامت جمعہ کے لئے مصر کی شرط لگائی اس کا ماخذ حضرت مولٰی علی کرم اللہ تعالٰی کی حدیث صحیح ہے جسے ابو بکر بن ابی شیبہ و عبدالرزاق نے اپنی مصنفات میں روایت کیا:

1 ۔ لا جمعۃ ولا تشریق ولا صلوۃ فطر ولا اضحٰی الا فی مصر جامع اومدینۃ عظیمۃ

جمعہ، تکبیراتِ تشریق، عید الفطر اور عید الاضحٰی خارج شہر یا بڑے شہر میں ہو سکتے ہیں، (ت)

ظاہر ہے کہ اس روایتِ غریبہ کی تعریف بہت سے چھوٹے چھوٹے مزرعوں پر صادق جنہیں کوئی مصرِ جامع یا مدینہ نہ کہے گا کما ارشار الیہ العلامۃ الطحطاوی فی حاشیۃ العلائی (جیسا کہ علامہ طحطاوی نے حاشیہ علائی میں اس کی طرف اشارہ کیا ہے۔ ت) تو اس کا اختیار اصل مذہب سے عدول اور ماخذ کا صریح خلاف ہے اور گویا مخالفوں کے اس اعتراض کا پورا کر لینا ہے کہ حنفیہ نے یہ شرط بے توقیف شارع اپنی رائے سے لگالی اس کے سوا عند التحقیق اسپر بہت اشکال وارد ہیں جن کی تفصیل کو دفتر درکار ہے۔ طرفہ یہ ہے کہ وہ پاک مبارک دو شہر جس کی مصریت پر اتفاق ہے اور ان میں زمانہ اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے جمعہ قائم یعنی مدینہ و مکہ زاد ہما اللہ تعالٰی شرفاً و تکریا اس تعریف کی بنا پر وہی شہر ہونے سے خارج ہوئے جاتے ہیں ماصرح بہ العلامۃ ابراہیم الحلبی فی الغنیۃ والعلامۃ السید احمد الطحطاوی فی

حاشیۃ مراقی الفلاح شرح نور الایضاح (جس طرح کہ علامہ ابراہیم حلبی نے غنیہ میں اور علامہ السید احمد طحطاوی نے حاشیہ مراقی الفلاح شرح نور الایضاح میں تصریح کی ہے۔ ت) تو اس کی بے اعتباری میں کیا شبہ ہے۔ صحیح تعریف شہر کی یہ ہے کہ وہ آبادی جس میں متعدد کوچے ہوں دوامی بازار ہوں، نہ وہ جسے پیٹھ کہتے ہیں، اور وہ پرگنہ ہے کہ اس کے متعلق دیہات گنے جاتے ہوں اور اس میں کوئی حاکم مقدمات رعایا فیصل کرنے پر مقرر ہو جس کی حشمت و شوکت اس قابل ہو کہ مظلوم کا انصاف ظالم سے لے سکے۔ جہاں یہ تعریف صادق ہو وہی شہر ہے اور وہیں جمعہ جائز ہے۔ ہمارے ائمہ ثلاثہ رضی اللہ تعالٰی عنہم سے یہی ظاہر الروایۃ ہے،

کما فی الھدایۃ والخانیۃ والظھیریۃ والخلاصۃ والعنایۃ والدر المختار والھندیۃ وغیرھا۔

جیسا کہ ہدایہ، خانیہ، ظہیریہ، خلاصہ، عنایہ، حلیہ، غنیہ، درمختار اور فتاوٰی ہندیہ وغیرہ میں ہے۔ (ت)

1 مصنّف ابن ابی شیبہ کتاب الصلوۃ من قال لا جمعہ الخ مطبوعہ داراۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱۰۱/۲، مصنف عبدالرزاق باب القری الصغار مطبوعہ المکتب الاسلامی بیروت ۱۷۱/۳

Volume Eight Fatawa Razawiyya

And this is the school of thought of the teacher of our Imam-e-Azam and the special student of Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both), Hazrat Imam Ata bin Abi Rabah (may Allah have mercy on him).

Arabic Original

As it is in Musannaf Abd al-Razzaq: Ibn Jurayj narrated to us from Ata bin Abi Rabah, who said: "If you are in a comprehensive village (Qarya Jami'a) and the call to prayer (Adhan) is made on Friday, it is incumbent upon you to attend it, whether you heard the call or not."[1] He said: I asked Ata, "What is a comprehensive village?" He replied: "One that has a congregation, an emir, a judge, and houses grouped together, not separated, adjoining each other like Jeddah."[2]

Urdu Translation

As in Musannaf Abd al-Razzaq, Ibn Jurayj narrated from Hazrat Ata bin Abi Rabah that when you are in a comprehensive village and the call for Friday prayer is made there, it is obligatory for you to go for Friday prayer whether you have heard the call or not. He says, I asked Ata: What is a comprehensive village? He said: One in which there is a congregation, an emir, a judge, and numerous streets are intermingled in it, just as Jeddah is. (T)

And this same view is chosen by Imam Abu al-Qasim Saffar, the student of the student of Imam Muhammad, as in al-Ghunya (as it is in Ghunya. T). The same was adopted by Imam Karkhi as in al-Hidayah (as it is in Hidaya. T). Imam Quduri relied upon it as in Majma' al-Anhur (as it is in Majma' al-Anhur. T). Imam Shams al-A'immah al-Sarakhsi said it is the manifest school among us (Zahir al-Madhhab 'indana - among us the manifest school is this. T) as in al-Khulasah (as it is in Khulasa. T). Upon this, Imam Ala-ud-Din Samarqandi in Tuhfat al-Fuqaha and his student Imam Malik al-Ulama Abu Bakr Masud in Bada'i Sharh Tuhfa gave the fatwa as in al-Hilyah (as it is in Hilya. T). Upon this, Imam Faqih al-Nafs Qazi Khan was firm and limited it as in his Fatawa (as it is in his Fatawa. T). And in the commentary of Jami' al-Saghir, he called your saying 'relied upon' (mu'tamad) as in al-Hilyah and al-Ghunya (as it is in Hilya and Ghunya. T). Imam Shaykh al-Islam Burhan al-Din Ali Farghani preferred it as in Sharh al-Munyah (as it is in Sharh Munya. T). The same was declared 'most correct' (asahh) in al-Mudmarat as in Jami' al-Rumuz (as it is in Jami' al-Rumuz. T). Similarly, in Jawahir al-Akhlati, it is written: 'This is the closest of the sayings to correctness' (Haza aqrab al-aqawil ila al-sawab) as in what was seen recorded there (as it is seen

recorded in it. T). Similarly, it is written in al-Ghiyathiyah as in al-Ghunya (as it is in Ghunya. T). The same in Tatar Khaniya...

[1] Al-Musannaf by Abd al-Razzaq, Chapter on Small Villages, printed by Al-Maktab al-Islami Beirut, 3/168. [2] Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Section on Friday Prayer, printed by Suhail Academy Lahore, p. 550.

और यही मज़हब हमारे इमाम-ए-आज़म के उस्ताद और हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा) के खास शागिर्द हज़रत इमाम अता बिन अबी रबाह (रहमतुल्लाह तआला अलैह) का है।

अरबी मूल

जैसा कि मुसन्निफ़ अब्दुर्रज़्ज़ाक में है: इब्न जुरीज ने हमसे अता बिन अबी रबाह से रिवायत की, उन्होंने कहा: "जब तुम किसी जामअ करिया (गाँव) में हो और जुमा के दिन नमाज़ के लिए अज़ान दी जाए, तो तुम पर उसमें शामिल होना लाज़िम है, चाहे तुमने अज़ान सुनी हो या नहीं।"[1] उन्होंने कहा: मैंने अता से पूछा, "जामअ करिया क्या है?" उन्होंने जवाब दिया: "जिसमें जमाअत हो, एक अमीर हो, एक काज़ी हो, और घर आपस में जुड़े हुए हों, अलग न हों, एक दूसरे से मिले हुए हों जैसे जेद्दा है।"[2]

उर्दू अनुवाद

जैसा कि मुसन्निफ़ अब्दुर्रज़्ज़ाक में है कि हमें इब्न जुरीज ने हज़रत अता बिन अबी रबाह से बयान किया कि जब तुम किसी जामअ करिया में हो तो वहाँ जुमा के लिए अज़ान हो तो तुम पर जुमा के लिए जाना फ़र्ज़ है, चाहे अज़ान सुनी हो या नहीं। कहते हैं मैंने अता से पूछा कि जामअ करिया कौन सा होता है? उन्होंने फ़रमाया जिसमें जमाअत, अमीर, काज़ी और बहुत से कूचे (गलियाँ) आपस में मिले-जुले हों जिस तरह जेद्दा है। (त)

और यही कौल इमाम अबुल कासिम सफ़्फ़ार, जो इमाम मुहम्मद के शागिर्द के शागिर्द हैं, उनका पसंदीदा है जैसा कि 'अल-ग़ुनिया' में है (जैसा कि ग़ुनिया में है। त)। इसी को इमाम करखी ने अपनाया जैसा कि 'अल-हिदाया' में है (जैसा कि हिदाया में है। त)। इसी पर इमाम कुदूरी ने भरोसा किया जैसा कि 'मजमा उल-अनहुर' में है (जैसा कि मजमा उल-अनहुर में है। त)। इसी को इमाम शम्सुल अइम्मा सरख्सी ने हमारे नज़दीक 'ज़ाहिरुल मज़हब' (प्रसिद्ध मत) कहा (ज़ाहिरुल मज़हब इन्दना - हमारे नज़दीक प्रसिद्ध मज़हब यही है। त) जैसा कि 'अल-खुलासा' में है (जैसा कि खुलासा में है। त)। इसी पर इमाम अलाउद्दीन समरकंदी ने 'तोहफ़तुल फ़ुकहा' में और उनके शागिर्द इमाम मलिकुल उलमा अबूबक्र मसूद ने 'बदाइ' (तोहफ़ा की शरह) में फ़तवा दिया जैसा कि 'अल-हिल्या' में है (जैसा कि हिल्या में है। त)। इसी पर इमाम फकीहुल नफ़्स काज़ी ख़ान ने दृढ़ता दिखाई और इसे ही सीमित रखा जैसा कि उनके फ़तावा में है (जैसा कि उनके फ़तावा में है। त)। और इसी को 'शरह जामअ सग़ीर' में आपका कहना 'मोअतमद' (विश्वसनीय) फ़रमाया जैसा कि 'अल-हिल्या' और 'अल-ग़ुनिया' में है (जैसा कि हिल्या और ग़ुनिया में है। त)। इमाम शैखुल इस्लाम बुरहानुद्दीन अली फ़रग़ानी

ने इसे प्राथमिकता दी जैसा कि 'शरह मुनिया' में है (जैसा कि शरह मुनिया में है। त)। इसी को 'मुज़मरात' में सबसे सही ठहराया जैसा कि 'जामअ उल-रुमूज़' में है (जैसा कि जामअ उल-रुमूज़ में है। त)। ऐसा ही 'जवाहिरुल अख्लाती' में लिखकर 'हाज़ा अकरबुल अक़ावील इलस सवाब' (यह बात अक़ावील में सच्चाई के सबसे ज़्यादा करीब है) कहा जैसा कि उसमें देखा गया है (जैसा कि इसमें मरवी देखा है। त)। ऐसा ही 'ग़यासिया' में लिखा है जैसा कि 'अल-ग़ुनिया' में है (जैसा कि ग़ुनिया में है। त)। इसी को 'तातार ख़ानिया' में...

[1] अल-मुसन्निफ़ अब्दुर्रज़्ज़ाक, छोटे गाँवों का अध्याय, मक्तबुल इस्लामी बैरूत, 3/168. [2] ग़ुन्यतुल मुस्तमली शरह मुन्यतुल मुसल्ली, जुमा की नमाज़ का अध्याय, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृष्ठ 550.

اور یہی مذہب ہمارے امام اعظم کے استاذ اور حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے شاگردِ خاص حضرت امام عطاء بن ابی رباح رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کا ہے،

عربی متن	اردو ترجمہ
كما في مصنف عبدالرزاق حمد ثنا بن جريج عن عطاء بن ابي رباح قال اذا كنت في قرية جامعة فتودى بالصلوة من يوم الجمعة فحق عليك ان تشهدها سمعت النداء اولم تسمعه[1] قال قلت لعطاء مالقرية الجامعة قال ذات الجماعة والامير والقاضى والدور المجتمة غير المفترقة الاخذ بعضها ببعض مثل جدة[2]۔	جیسا کہ مصنف عبدالرزاق میں ہے کہ ہمیں ابن جریج نے حضرت عطاء بن ابی رباح سے بیان کیا کہ جب تم کسی جامع قریہ میں ہوں تو وہاں جمعہ کے لئے اذان ہو تو تم پر جمعہ کے لئے جانا فرض ہے خواہ اذان سنی ہو یا نہ، کہتے ہیں میں نے عطا سے پوچھا کہ جامعہ قریہ کون سا ہوتا ہے؟ انہوں نے فرمایا جس میں جماعت، امیر، قاضی اور متعدد کوچے اس میں ملے جلے ہوں جس طرح جدہ ہے۔ (ت)

اور یہی قول امام ابوالقاسم صفار تلمیذ التلمیذ امام محمد کا مختار ہے کما في الغنية (جیسا کہ غنیہ میں ہے۔ت) اسی کو امام کرخی نے اختیار فرمایا کما في الهداية (جیسا کہ ہدایہ میں ہے۔ت) اسی پر امام قدوری نے اعتماد کیا کما في مجمع الانهر (جیسا کہ مجمع الانہر میں ہے۔ت) اسی کو امام شمس الائمہ سرخسی نے ظاهر المذهب عندنا (ہمارے نزدیک ظاہر مذہب یہی ہے۔ت) فرمایا کما فی الخلاصة (جیسا کہ خلاصہ میں ہے۔ت) اسی پر امام علاء الدین سمرقندی نے تحفۃ الفقہاء اور ان کے تلمیذ امام ملک العلماء ابوبکر مسعود نے بدائع شرح تحفہ میں فتوی دیا کما في الحلية (جیسا کہ حلیہ میں ہے۔ت) اسی پر امام فقیہ النفس قاضی خاں نے جزم واقتصار کیا کما فی فتاواہ (جیسا کہ ان

کے فتاوی میں ہے۔ت) اور اسی کو شرح جامع صغیر میں قولک معتمد فرمایا کما في الحلیة والغنیة (جیسا کہ حلیہ اور غنیہ میں ہے۔ت) اسی کو امام شیخ الاسلام برہان الدین علی فرغانی نے مرجح رکھا کما في شرح المنیة (جیسا کہ شرح منیہ میں ہے۔ت) اسی کو مضمرات میں اصح ٹھہرایا کما في جامع الرموز (جیسا کہ جامع الرموز میں ہے۔ت) ایسا ہی جواہر الاخلاطی میں لکھ کر ھذا اقرب الاقاویل الی الصواب (اقوال میں سے یہ قول صواب کے زیادہ قریب ہے۔ت) کہا کما رأیته فیها (جیسا کہ اس میں مروی دیکھا ہے۔ت) ایسا ہی غیاثیہ میں لکھا کما في الغنیة (جیسا کہ غنیہ میں ہے۔ت) اسی کو تارتار خانیہ میں

1 المصنف لعبد الرزاق باب القری الصغار مطبوعہ المکتب الاسلامی بیروت ۳/۱۶۸ 2 غنیہ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۰

12 Reliance is upon it (reliance is on this - T). He stated as in Al-Hindiyya (as it is in Al-Hindiyya - T). Similarly, in 13 Ghaya Sharh Hidaya, 15 Ghunya Sharh Munya, 16 Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, 17 Jawahir, and 18 Sharh Niqaya Qahustani, it is stated to be correct. In the end, it is this opinion that is acted upon. This was prioritized and adopted in 19 Multaqa al-Abhur. Upon this, 20 Kanz al-Daqaiq, 21 Kafi Sharh Wafi, 22 Nur al-Idah, and 23 Alamgiriyya have shown determination and limitation. Another opinion was also mentioned. Regarding this, in 24 'Inaya Sharh Hidaya, it was said 'Upon it are most of the jurists' (Most jurists are on this - T). As mentioned in the marginalia of Al-Tahtawi on Maraqi al-Falah (as it is in the marginalia of Tahtawi's Maraqi al-Falah - T). Allamah Hasan Shurunbulali in Sharh Nur al-Idah called it the most correct and stated that reliance is upon it (reliance is on this - T). Upon this, 26 Allamah Sayyid Ahmad Misri, in the marginalia of Shurunbulaliyya, relied and strongly refuted the latter opinion. Upon this, 27 Imam Ibn al-Humam Muhammad, 28 Allamah Isma'il Nabulsi, 29 Allamah Nuh Efendi, 30 Allamah Sayyid Ahmad Hamawi and other great eminent scholars based their discourse. Explaining all this would be lengthy (the explanation of each is long - T). Allamah Ibrahim Halabi says in Sharh Munya:

[Table Content] Arabic Text: The correct definition is what the author of al-Hidayah chose: that it is that which has a leader (amir) and a judge (qadi) who executes rulings and establishes the prescribed punishments (hudud). Sadr al-Shari'ah's refutation of it while making excuses for the author of al-Wiqayah—as he chose the previously mentioned definition due to the emergence of laxity in Shari'ah rulings, especially in establishing punishments in the cities—is refuted by the fact that what is meant is the capacity to establish the punishments, as clarified in Tuhfat al-Fuqaha from Abu Hanifa (may Allah Almighty be pleased with him): that it is a large city in which there are streets and markets, and it has surrounding villages, and in it is a ruler who is able to provide justice for the oppressed against the oppressor by his prestige and knowledge, or the knowledge of others, so that people may refer to him in case of any incidents. And this is the most correct. End.

Urdu Text Translation: The correct definition of a city, which the author of Hidayah liked, is that there should be a leader and a judge who can enforce rulings and establish prescribed punishments (hudud). And the excuse of Sadr al-Shari'ah on behalf of the author of Wiqayah for choosing the first definition—that laxity is appearing in the enforcement of Shari'ah rulings, especially punishments, in cities—

is weak, because what is meant is being capable of establishing the punishments, as is clarified in Tuhfat al-Fuqaha from Imam Abu Hanifa (may Allah Almighty be pleased with him): that it should be a large city having main roads, markets, and there should be inns, and there should be some ruler who is capable of delivering justice to the oppressed from the oppressor, whether due to his own awe and knowledge or due to the knowledge of another, so that they can refer to him in incidents. And this is the most correct. End (T).

1 Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Friday Prayer, published by Sohail Academy Lahore, p. 550. Page 277 of 673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ (खंड 8, फ़तावा रज़विया)

12 इसी पर भरोसा है (इसी पर भरोसा है - टी)। जैसा कि अल-हिन्दिया में कहा गया है (जैसा कि अल-हिन्दिया में है - टी)। इसी को 13 ग़ाया शरह हिदाया, 15 ग़ुनिया शरह मुनिया, 16 मजमा अल-अन्हुर शरह मुल्तक़ा अल-अबहुर, 17 जवाहिर, और 18 शरह निक़ाया क़ुहुस्तानी में सही कहा गया है। अंत में यही है कि इसी पर अमल किया जाता है। इसी को 19 मुल्तक़ा अल-अबहुर में प्रधानता दी गई और अपनाया गया। इसी पर 20 कंज़ अद-दक़ाएक़, 21 काफ़ी शरह वाफ़ी, 22 नूर अल-इज़ाह और 23 आलमगीरिया में दृढ़ता और संक्षिप्तता दिखाई गई है। एक अन्य कथन का भी उल्लेख किया गया। इसी के बारे में 24 इनाया शरह हिदाया में कहा गया: 'अधिकांश फ़क़ीह इसी पर हैं' (अधिकांश न्यायविद इसी पर हैं - टी)। जैसा कि अल्लामा तह़तावी के मराक़ी अल-फ़लाह के हाशिए में उल्लेख है (जैसा कि तह़तावी की मराक़ी अल-फ़लाह के हाशिये में है - टी)। अल्लामा हसन शुरुनबुलाली ने शरह नूर अल-इज़ाह में इसे सबसे सही और भरोसेमंद बताया (इसी पर भरोसा है - टी)। इसी पर 26 अल्लामा सैय्यद अहमद मिस्री ने हाशियः शुरुनबुलालीया में भरोसा किया और अंतिम कथन का प्रभावी खंडन किया। इसी पर 27 इमाम इब्न अल-हुमाम मुहम्मद, 28 अल्लामा इस्माइल नाबुलसी, 29 अल्लामा नूह आफ़ंदी, 30 अल्लामा सैय्यद अहमद हमवी और अन्य महान विद्वानों ने अपना प्रवचन आधारित किया। इस सबकी व्याख्या लंबी होगी (प्रत्येक की व्याख्या लंबी है - टी)। अल्लामा इब्राहिम ह़लबी शरह मुनिया में फरमाते हैं:

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: सही परिभाषा वह है जिसे हिदाया के लेखक ने चुना है: कि वह वह है जिसका एक अमीर और एक काज़ी हो जो आदेशों को लागू करे और दंड (हुदूद) स्थापित करे। सदर अल-शरिया का इसका खंडन, विक़ाया के लेखक का बचाव करते हुए—जहाँ उन्होंने शहरों में शरीयत के आदेशों, विशेष रूप से दंडों को लागू करने में सुस्ती के उभरने के कारण पहले उल्लेखित परिभाषा को चुना—यह कहकर खंडित किया गया है कि इसका अर्थ दंड स्थापित करने की क्षमता है, जैसा कि तुह़फ़त अल-फ़ुक़हा में अबू हनीफ़ा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से स्पष्ट किया गया है: कि यह एक बड़ा शहर है जिसमें सड़कें और बाज़ार हैं, और इसके गाँव हैं, और इसमें एक शासक है जो अपनी प्रतिष्ठा और ज्ञान, या दूसरों के ज्ञान के आधार पर अत्याचारी से पीड़ित को न्याय दिलाने में सक्षम है, ताकि लोग होने वाली घटनाओं में उसके पास जा सकें। और यही सबसे सही है। समाप्त।

उर्दू पाठ का अनुवाद: शहर की वह सही परिभाषा जिसे हिदाया के लेखक ने पसंद किया है, यह है कि वहाँ अमीर और काज़ी हों जो आदेश लागू कर सकें और दंड (हुदूद) स्थापित कर सकें। और

विक़ाया के लेखक की ओर से पहली परिभाषा अपनाने पर सदर अल-शरिया का यह बहाना कि शरीयत के आदेशों, विशेष रूप से दंडों के कार्यान्वयन में शहरों में सुस्ती देखी जा रही है, कमज़ोर है, क्योंकि इसका अर्थ दंड स्थापित करने पर सक्षम होना है, जैसा कि तुहफ़त अल-फ़ुक़हा में इमाम अबू हनीफ़ा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से स्पष्ट है: कि वह एक बड़ा शहर हो जिसमें मुख्य सड़कें, बाज़ार हों और वहाँ सराय हों, और उसमें कोई ऐसा शासक हो जो ज़ालिम से मज़लूम को इंसाफ़ दिलाने पर सक्षम हो, चाहे अपने दबदबे और इल्म की बिना पर या किसी और के इल्म की वजह से, ताकि वे घटनाओं में उसकी ओर लौट सकें। और यही सबसे सही है। समाप्त (टी)।

1 ग़ुनियात अल-मुस्तमली शरह मुनियात अल-मुसल्ली, जुमा की नमाज़ का अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 550। पृष्ठ 673 में से 277

۱۲ علیہ الاعتماد (اسی پر اعتماد ہے ت) فرمایا کما فی الھندیہ (جیسا کہ ہندیہ میں ہے۔ ت) اسی کا ۱۳ غایۃ شرح ہدایہ و غنیہ ۱۵ شرح منیہ و مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر ۱۷ جواہر ۱۸ و شرح نقایہ قہستانی میں صحیح کہا اخیر میں ہے یہی قول معمول علیہ ہے اسی کو ۱۹ ملتقی الابحر میں مقدم و ماخوذ بہ ٹھہرایا اسی پر ۲۰ کنز الدقائق و ۲۱ کافی شرح وافی و ۲۲ نور الایضاح و ۲۳ عالمگیریہ میں جزم واقتصار کیا قول دیگر کا نام بھی لیا اسی کو ۲۴ عنایہ شرح ہدایہ میں علیہ اکثر الفقہاء (اکثر فقہاء اسی پر ہیں۔ ت) فرمایا کما في حاشیۃ المراقی للعلامۃ الطحطاوی (جیسا کہ علامہ طحطاوی کی مراقی الفلاح کے حاشیہ میں ہے، ت) اسی کو ۲۵ علامہ حسن شرنبلالی نے شرح نور الایضاح میں اصح وعلیہ الاعتماد (اسی پر اعتماد ہے۔ ت) فرمایا، اسی پر ۲۶ علامہ سید احمد مصری نے حاشیہ شرنبلالیہ میں اعتماد اور قولِ آخر کارڈ بلیغ کیا، اسی پر ۲۷ امام ابن الہمام محمد و ۲۸ علامہ اسمعیل نابلسی و ۲۹ علامہ نوح آفندی و ۳۰ علامہ سید احمد حموی و غیر ہم کبارائے اعلام نے بنائے کلام فرمائی شرح کل ذلک یطول (ہر ایک کی شرح طویل ہے۔ ت) علامہ ابراہیم حلبی شرح منیہ میں فرماتے ہیں:

[جدول] عربی عبارت: الحد الصحیح ما اختارہ صاحب الھدایۃ انہ الذی لہ امیر و قاض ینفذ الاحکام ویقیم الحدود تزییف صدر الشریعۃ لہ عند اعتذارہ عن صاحب الوقایۃ حیث اختار الحد المتقدم ذکرہ بظھور التوانی احکام الشرع سیما فی اقامۃ الحدود في الامصار مزیف بأن المراد القدرۃ علی اقامۃ الحدود علی ما صرح بہ فی التحفۃ الفقہاء عن ابی حنیفۃ رضی اللہ تعالی عنہ انہ بلدۃ کبیرۃ فیھا سکك و اسواق ولھا رساتیق وفیھا وال یقدر علی انصاف المظلوم من الظالم بحشمتہ وعلمہ او علم غیرہ یرجع الناس الیہ فیما تقع من الحوادث وھذا ھو الاصح اھـ

اردو ترجمہ: شہر کی وہ صحیح تعریف جسے صاحبِ ہدایہ نے پسند کیا ہے یہ ہے کہ وہاں امیر اور قاضی ہو جو احکام نافذ اور حدود قائم کر سکیں، اور صاحبِ وقایہ کے پہلی تعریف کو اختیار کرنے پر ان کی طرف سے صدر الشریعہ کا یہ عذر کرنا کہ احکامِ شرع خصوصاً حدود کے نفاذ میں سستی کا ظہور ہو رہا ہے کمزور ہے کیونکہ مراد اقامتِ حدود پر قادر ہونا ہے جیسے کہ تحفۃ الفقہاء میں امام ابو حنیفہ رضی اللہ تعالی عنہ سے تصریح ہے کہ وہ شہرِ کبیر ہو اس میں شاہراہیں، بازار اور وہاں سرائے ہوں اور اس میں کوئی نہ کوئی ایسا والی ہو جو ظالم سے مظلوم کو انصاف دلانے پر قادر ہو خواہ اپنے دبدبہ اور علم کی بنا پر یا غیر کے علم کی وجہ سے تاکہ حوادث میں اس کی طرف رجوع کر سکیں اور یہی اصح ہے اھ (ت)

1 غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۰

Fatawa Razawiyya Volume 8

In Multaqa al-Abhur and Majma' al-Anhur, it is stated:

[Arabic Quote Table] Right Column (Arabic Original): It is the apparent view of the school according to what Al-Sarakhsi stipulated, and it is the choice of Al-Karkhi and Al-Quduri. It is said its proponent is the author of Al-Wiqayah, Sadr al-Shariah, and others: [A city is a place] which, if its inhabitants gathered in its largest mosque, it would not accommodate them. This is the choice of Al-Thalji. It was only cited with the form of weakening (tamrid) because they said this definition is not correct according to the researchers, even though the first one is consistent with the condition of the presence of the Sultan and his deputy and suitable for what the Imam (Allah have mercy on him) said. In Al-Ghayah, it is [stated] that it is the correct one. Here ends the summary. This is the gist of the discussion; for details there is another place. Allah (Glorified and Exalted is He) knows best.

Left Column (Urdu Translation/Commentary): According to Imam Sarakhsi, this is the manifest view of the school. It is also the chosen view of Imam Karkhi and Quduri. According to some, this is the statement of the author of Wiqayah and Sadr al-Shariah etc. And this definition of a city (that if the people of the city gather in its largest mosque, it would not accommodate them) is the chosen view of Imam Thalji. The reason for mentioning it with a term of weakening is that the jurists stated that this definition is not correct according to the researchers, despite the fact that the first definition is according to the presence of the Sultan and the Deputy Sultan and is suitable for what the Imam (may Allah the Exalted have mercy on him) stated. And in Ghayah, it is stated that this is correct. (End summary) This is a general discussion; for further details, there is another place. Allah Subhanuhu wa Ta'ala knows best. (T)

Problem 777: From Kalanaur, District Gurdaspur, sent by Sheikh Murad Ali Sahib, 21 Safar 1309 AH. To the honorable and magnificent service of our Fayyaz ad-Darayn, Hazrat Maulvi Ahmad Raza Khan Sahib, resident of Bareilly, may Allah increase his grace. After Peace (Assalamu Alaikum) and the desire for visitation, it is submitted to your noble service that there has been a disagreement regarding the obligation (fardiyyat) of the Friday (Jumu'ah) prayer, which does not provide peace of mind. Some learned scholars issue a fatwa that the Friday prayer is an absolute obligation (Ayn Fard). No existing state of affairs of the government prevents its obligation. Purely without doubt or suspicion, one must believe in it as an absolute obligation (Ayn Fard) with "Amen and we believe." And those precautionary obligatory prayers

offered after the Friday prayer should not be read. On the other hand, some learned scholars worthy of issuing fatwas, in view of the difficult circumstances of the state, state that the Friday prayer was an absolute obligation, but at this time, due to the absence of an Islamic government, that obligation which originally existed no longer remains. Instead of an obligation, they call it like a commendable act (Mustahab) and issue a fatwa that the Friday prayer is a very great pillar of Islam; abandoning it or leaving it altogether is not good. In any case, performing the Friday prayer is rewarding and good, and along with it...

[Footnote] 1 Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter of Jumu'ah, printed by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/166 & 167.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मुल्तक़ल अबहुर और मज्मअल अन्हुर में है:

[अरबी उद्धरण तालिका] दायां कॉलम (अरबी मूल): सरख़सी के अनुसार यही ज़ाहिर मज़हब है, और यही करख़ी और क़ुदूरी की पसंद है। कहा जाता है कि इसके प्रस्तावक साहिब-ए-विक़ाया, सद्रुश-शरिया और अन्य हैं: [शहर वह है] यदि उसके निवासी उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में एकत्र हों, तो वह उन्हें न समा सके। यह थलजी की पसंद है। इसे केवल कमज़ोरी (तमरीद) के साथ उद्धृत किया गया था क्योंकि उन्होंने कहा कि यह परिभाषा शोधकर्ताओं के अनुसार सही नहीं है, हालांकि पहली परिभाषा सुल्तान और उनके प्रतिनिधि की उपस्थिति की शर्त के अनुरूप है और इमाम (अल्लाह उन पर रहम करे) ने जो कहा उसके लिए उपयुक्त है। और अल-ग़ाया में है कि यही सही है। (संक्षिप्त)। यह चर्चा का सार है; विवरण के लिए दूसरा स्थान है। अल्लाह (महिमा और उच्चता) सबसे अच्छा जानता है।

बायां कॉलम (उर्दू अनुवाद/टिप्पणी): इमाम सरख़सी के अनुसार यही ज़ाहिर मज़हब है। इमाम करख़ी और क़ुदूरी का भी यही चुनिंदा विचार है। कुछ के अनुसार, यह साहिब-ए-विक़ाया और सद्रुश-शरिया आदि का कथन है। और शहर की यह परिभाषा (कि यदि शहर के लोग उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में इकट्ठा हों, तो वह उन्हें समा न सके) इमाम थलजी का चुनिंदा विचार है। इसे कमज़ोरी के शब्द के साथ उल्लेख करने का कारण यह है कि फ़ुक़हा (न्यायविदों) ने कहा कि यह परिभाषा शोधकर्ताओं के पास सही नहीं है, इसके बावजूद कि पहली परिभाषा सुल्तान और नायब सुल्तान की उपस्थिति के अनुसार है और इमाम (अल्लाह तआला उन पर रहम करे) ने जो कुछ फ़रमाया उसके अनुकूल है। और ग़ाया में है कि यही सही है। (संक्षिप्त) यह सामान्य बातचीत है; विस्तार के लिए दूसरा स्थान है। अल्लाह सुभानहु व तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 777: कलानौर, ज़िला गुरदासपुर से, शेख़ मुराद अली साहिब द्वारा भेजा गया, 21 सफ़र 1309 हिजरी। बशर्फ़े ख़िदमत बा-अज़मत मौलाना फ़य्याज़-अद-दारैन, हज़रत मौलवी अहमद रज़ा ख़ां साहिब, निवासी बरेली, अल्लाह उनके फ़ैज़ में वृद्धि करे। सलाम के बाद और मुलाक़ात की तमन्ना के साथ, आपकी शरीफ़ सेवा में निवेदन है कि जुमे की नमाज़ की फ़र्ज़ियत (अनिवार्यता) में मतभेद चला आ रहा है, जिससे मन को चैन नहीं मिलता। कुछ विद्वान फ़तवा देते हैं कि जुमे की नमाज़ ऐन फ़र्ज़ (निश्चित रूप से अनिवार्य) है। हुकूमत के मौजूदा हालात में से कोई भी बात इसकी

फ़र्ज़ियत में बाधक नहीं है। बिना किसी शक व शुबहे के पूरे यकीन के साथ जुमे की नमाज़ को ऐन फ़र्ज़ मानना चाहिए। और जुमे की नमाज़ के बाद जो एहतियाती फ़र्ज़ नमाज़ें पढ़ी जाती हैं, वे नहीं पढ़नी चाहिए। और कुछ विद्वान जो फ़तवा देने के योग्य हैं, हुकूमत के कठिन हालात के मद्देनज़र कहते हैं कि जुमे की नमाज़ ऐन फ़र्ज़ थी, मगर इस समय इस्लामी हुकूमत न होने के कारण वह फ़र्ज़ियत जो वास्तव में थी, अब नहीं रही। वे इसे फ़र्ज़ियत के बजाय मुस्तहब (प्रशंसनीय) की तरह बताते हैं और फ़तवा देते हैं कि जुमे की नमाज़ इस्लाम का एक बहुत बड़ा रुकन (स्तंभ) है; इसका त्याग करना और इसे बिल्कुल छोड़ना अच्छा नहीं है। बहरहाल, जुमे की नमाज़ पढ़ना सवाब और अच्छा है, और इसके साथ...

[पाद टिप्पणी] 1 मज्मअल अन्हुर शरह मुल्तक़ल अबहुर, बाबुल जुमुआ, मुद्रित दार इहयाउत तुराथिल अरबी, बेरुत, 1/166 और 167।

पृष्ठ 278 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

ملتقی الابحر و مجمع الانہر میں ہے:

Left Column (Arabic) [Arabic Quote Table]: هو ظاهر المذهب على ما نص عليه السرخسی وهو اختيار الكرخي والقدوري، وقيل قائله صاحب الوقاية وصدر الشريعة وغيرهما مالو اجتمع اهله فی اكبر مساجده لا يسعهم و هو اختيار الثلجي وانما اورد بصيغة التمريض لانهم قالوا ان هذا الحد غير صحيح عند المحققين مع ان الاول يكون ملا يما بشرط وجود السلطان ونائبه ومناسبا لما قاله الامام رحمه الله تعالی ، وفی الغاية هو الصحيح ١ اه ملخصاً هذا جملة الكلام وللتفصيل محل اخر ، والله سبحانه وتعالی اعلم

Right Column (Urdu Explanation): امام سرخسی کے بقول یہی ظاہر مذہب ہے امام کرخی و قدوری کا بھی یہی مختار ہے۔ بعض کے نزدیک یہ صاحبِ وقایہ اور صدرالشریعہ وغیرہ کا قول ہے اور شہر کی یہ تعریف (کہ اگر اس کی بڑی مسجد میں اہل شہر جمع ہوں تو وہ ان کی گنجائش نہ رکھے، یہ امام ثلجی کا مختار ہے صیغہ تمریض کے ساتھ وارد کرنے کی وجہ یہ ہے کہ فقہاء نے فرمایا کہ یہ تعریف محققین کے ہاں صحیح نہیں باوجودیکہ پہلی تعریف وجودِ سلطان اور نائب سلطان کے موافق اور امام نے جو کچھ فرمایا اس کے مناسب ہے ، اور غایہ میں ہے کہ یہی صحیح ہے اھ ملخصاً یہ فی الجملہ گفتگو ہے تفصیل کے لئے دوسرا مقام ہے واللہ سبحانہ وتعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۷۷۷ : از کلانور ضلع گورداسپور مرسلہ شیخ مراد علی صاحب ۲۱ صفر ۱۳۰۹ھ بشرف خدمت با عظمت من مولانہ فیاض دارین حضرت مولوی احمد رضا خاں صاحب مقیم بریلی زاد اللہ

فیضانہ، بعد السلام علیکم و تمنائے زیارت خدمتِ شریف میں عرض یہ ہے کہ نماز جمعہ کی فرضیت میں اختلاف چلا آتا ہے اس سے اطمینان حال نہیں بعض عالمِ فاضل فتویٰ کے فرماتے ہیں کہ نمازِ جمعہ کی عین فرض ہے کوئی کوئی امر حالاتِ موجودہ سلطنت سے اس کی فرضیت کا مانع نہیں خالصاً بلا شک و شبہ عین فرض یقیناً نماز جمعہ پر آمنا و صدقنا سے یقین رکھنا چاہئے اور جو بعد نماز جمعہ کے احتیاطی فرض نماز پیش کئے جاتے ہیں یہ نہیں پڑھنے چاہئیں، اور بعض بعض عالمِ فاضل لائقِ فتویٰ کے بنظر حالاتِ سلطنت دقت کے فرماتے ہیں کہ نمازِ جمعہ عین فرض تھی مگر اس وقت بوجہ نہ ہونے سلطنت اسلام کے وہ فرضیت جو دراصل تھی اب وہ نہیں رہی نمازِ جمعہ کی بجائے فرضیت کے بمنزلہ مستحب کے فرماتے ہیں اور فتویٰ دیتے ہیں کہ نمازِ جمعہ کی ایک بڑا بھاری رکن اسلام کا ہے اس کا ترک اور ان کا مطلقاً چھوڑنا اچھا نہیں بہرحال پڑھنا نماز جمعہ ثواب اور اچھا ہے اور ساتھ اس کے

1 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب الجمعۃ مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۱۶۶ و ۱۶۷

Fatawa Razawiya Volume 8

They also give a fatwa that after the Friday prayer, it is necessary to offer all the afternoon (Zuhr) prayers including the obligatory ones as a precaution. Therefore, a request is submitted to your presence as to what your opinion is. Does it align with the first group of scholars who issue a fatwa of absolute obligation, or is it contrary to that and aligns with the second group of scholars who deem it recommended and state that after the Friday prayer, one should offer all afternoon prayers including the obligatory ones as a precaution? Your Grace, please provide a detailed response clarifying this request, whichever is better and superior according to your fatwa, so that the varying discussions of both groups may reach a settled reassurance. Dated September 22, 1891.

The Answer:

O Allah! Guide to the truth and what is correct. (T) There is no disagreement regarding the fundamental obligation of Friday prayer, as it is established not only by consensus or definitive text but is among the highest duties of religion. However, the Friday prayer is conditional by the consensus of the Ummah. There is no doubt that the conditions specified by our noble Imams (may Allah be pleased with them all) for its fulfillment are somewhat subject to doubt and dispute in these lands. Furthermore, here in general lands, multiple Friday congregations take place. Although in the preferred (mufta-bihi) doctrine, multiple Friday prayers, like the two Eids, are absolutely permissible. Upon this, reliance has been placed in Kanz, Wafi, Kafi, Multaqa, Tanwir, Hindiyyah, Tahawi, Shami, etc. The great Imam, Mufti of Jinn and Men, Najm al-Din Nasfi, then Allama Ibn Wahban in his poem, Allama Yusuf Celebi in Dhakhirat al-Uqba, and Allama Shurunbulali in Maraqi al-Falah, identified this as the correct view of Imam Azam and Imam Muhammad (may Allah be pleased with them). In Sharh Wiqayah, it is stated: 'Upon this, the fatwa is given.' In Sharh Majma' by Allama Badr al-Ayni: 'Upon it is the fatwa.' In Fath al-Qadir: 'Upon the preferred opinion.' In Muhit of Shams al-A'immah al-Sarakhsi: 'It is correct and we adopt it.' In Tabyin al-Haqa’iq, Bahr, Fath, Sharh Wahbaniyyah, Minah al-Ghaffar, Uqud al-Durriyyah, etc.: 'The most correct.' In Bahr al-Ra’iq and Durr al-Mukhtar: 'According to the school of thought.' Even Allama Hasan Shurunbulali and Allama Muhammad bin Ali al-Ala'i and others clarified the weakness of the opposing view. However, upon research, the report of the impermissibility of multiple congregations is also not discarded; rather, it is a strong opinion of the school of thought. Imam Tahawi, Timurtashi, and the author of Mukhtar chose it. Imam Faqih an-Nafs Qadi

Khan prioritized it in Khaniyah. Khazanat al-Muftin limited itself to it. Attabi and Akhlati called it 'most apparent' (azhar), and in Jawami' al-Fiqh, it's 'the more apparent of the two reports.' Imam Malik al-Ulama Abu Bakr Mas'ud called it the 'manifest report' (zahir al-riwayah). In Takmalah Razi: 'By it we hold.' In Hawi al-Qudsi: 'Upon it is the fatwa.' In Bada'i by Imam Malik al-Ulama: 'Upon it is reliance.' Jawahir al-Akhlati...

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

यह भी फ़तवा फ़रमाते हैं कि जुमा की नमाज़ के बाद एहतियातन ज़ुहर की तमाम नमाज़ें फ़र्ज़ों समेत पढ़ लेना ज़रूरी है, इसलिए जनाब की ख़िदमत में इल्तमास पेश किया जाता है कि जनाब इस बारे में क्या फ़रमाते हैं? क्या यह पहले गिरोह के उलमा के मुताबिक है जो ऐन फ़र्ज़ियत का फ़तवा देते हैं, या इसके खिलाफ और दूसरे गिरोह के उलमा के मुताबिक है जो इसे मुस्तहब (पसंदीदा) फ़रमाते हैं और जुमा की नमाज़ के बाद एहतियातन फ़र्ज़ों समेत ज़ुहर की जुमला नमाज़ें पढ़ने का हुक्म देते हैं? जनाब इस अर्ज़ी के जवाब में तफ़सीली हाल जो आपके फ़तवे की रू से बेहतर और औला हो, तहरीर फ़रमा दें ताकि इन दोनों फ़रीकों की मुख़्तलिफ़ बहस से एकतरफ़ा इत्मीनान हासिल हो। फ़क़त 22 सितम्बर 1891 ई.

अल-जवाब:

ऐ अल्लाह! हक़ और दुरुस्ती की रहनुमाई फ़रमा। (त) असल जुमा की फ़र्ज़ियत में किसी को कलाम (विवाद) नहीं कि वह न सिर्फ इज्मा या नस-ए-क़तई से साबित है बल्कि दीन के आला वाजिबात में से है, मगर जुमा उम्मत के इज्मा से मशरूत (शर्तों वाला) है। हमारे अइम्मा-ए-कराम (रज़ियल्लाहु तआला अलैहिम अजमईन) ने इसके लिए जो शर्ते मुअय्यन फ़रमाई हैं, इसमें शक नहीं कि इन शहरों में उनका पूरा-पूरा इज्तिमा (इकट्ठा होना) कुछ शक और झगड़े का स्थान है। इसके अलावा, यहाँ आम शहरों में जुमा की कई जमातें होती हैं और हालाँकि मुफ़्ता-बिही (जिस पर फ़तवा हो) मज़हब में जुमा का तादाद (एक से अधिक होना) ईदैन की तरह मुतलक़न जायज़ है। इसी पर कँज़, वाफ़ी, काफ़ी, मुल्तक़ा, तनवीर, हिन्दिया, तह़ावी और शामी वग़ैरह में एतमाद फ़रमाया गया है। इमाम-ए-अजल, मुफ़्ती-ए-जिन् ओ इंस, नजमुद्दीन नफ़्सी, फिर अल्लामा इब्ने वहबान ने अपनी मन्ज़ूमा में और अल्लामा यूसुफ़ चलपी ने ज़ख़ीरतुल उक़्बा में और अल्लामा शरुनबलाली ने मराक़िल फ़लाह़ में इसी को इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद (रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा) का क़ौल-ए-सहीह बताया। शरह विक़ाया में है: 'बिही युफ़्ता' (इसी पर फ़तवा है। त)। अल्लामा बदरुद्दीन ऐनी की शरह मज्मअ में है: 'अलैहिल फ़तवा' (इसी पर फ़तवा है। त)। फ़तह़ुल क़दीर में है: 'अलल मुफ़्ता-बिही' (मुफ़्ता-बिही क़ौल पर। त)। मुहीत शम्सुल अइम्मा सरख़सी में है: 'अस्सहीह़ व बिही नअख़ुज़' (सही है और हम इसी पर अमल पैरा हैं। त)। तबयीनुल ह़क़ाएक़, बह्र, फ़तह़, शरह वहब़ानिया और मिनह़ुल ग़फ़्फ़ार व उक़ूदुल दुर्रिया वग़ैरह में है: 'अल-अस़ह़' (ज़्यादा सही है। त)। बह़रुल रैक़ और दुर्रे मुख़्तार में है: 'अलल मज़हब' (मज़हब पर। त)। यहाँ तक कि अल्लामा हसन शरुनबलाली और

अल्लामा मुहम्मद बिन अली अलाई वग़ैरह ने दूसरे क़ौल के ज़ईफ़ होने की तसरीह फ़रमाई, मगर तह़क़ीक़ के नज़दीक तादाद (एक से अधिक जमात) के जवाज़ न होने की रिवायत भी साक़ित नहीं बल्कि मज़हब का ताक़तवर क़ौल है। इमाम तह़ावी, तुमुरताशी और साहिब-ए-मुख़्तार ने इसी को अख़्तियार फ़रमाया। इमाम फ़क़ीहुन नफ़्स क़ाज़ी ख़ाँ ने ख़ानिया में इसी को मुक़द्दम (प्राथमिकता) रखा। ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन में इसी पर इक्तिसार (संक्षेप) किया। अत्ताबी और अख़्लाती ने इसी को अज़हर (अधिक स्पष्ट) और जवामिउल फ़िक़्ह में अज़हरुल रिवायतैन और इमाम मलिकुल उलमा अबूबक्र मसूद ने ज़ाहिरुर रिवायत कहा। तकमला राज़ी में है: 'बिही नअख़ुज़' (हम इसी पर अमल पैरा हैं। त)। ह़ावी अल-क़ुदसी में है: 'अलैहिल फ़तवा' (फ़तवा इसी पर है। त)। इमाम मलिकुल उलमा की ब़दाए में है: 'अलैहिल एतमाद' (एतमाद इसी पर है। त)। जवाहिरुल अख़्लाती...

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

یہ بھی فتویٰ فرماتے ہیں کہ بعد نمازِ جمعہ کے احتیاطاً نمازِ سب پیشیں کی معہ فرضوں کے پڑھ لینا ضرور چاہیئے، اس واسطے جناب میں التماس پیش کیا جاتا ہے کہ جناب اس میں کس طرح فرماتے ہیں آیا مطابق فرقہ علمائے اول کے جو عین فرضیت کا فتویٰ فرماتے ہیں یا برخلاف اُس کے اور مطابق فرقہ علمائے گروہ ثانی کے جو مستحب فرماتے ہیں اور پیچھے نمازِ جمعہ کے جملہ نمازِ پیشیں معہ فرضوں کے احتیاطاً پڑھ لینا فرماتے ہیں جناب بالتصریح اسے درخواست کے محاذ پر مفصل حال جو جناب کے فتویٰ سے بہتر اور اولیٰ ہو تحریر فرما دیں تا کہ ان دونوں فریق کی بحث مختلف سے یک سوا اطمینان حاصل ہو فقط ۲۲ ماہ ستمبر ۱۸۹۱ء

الجواب:

اللھم ھدایۃ الحق والصواب (اے اللہ ! حق اور درستی کی رہنمائی فرمات) اصل فرضیت جمعہ میں کسی کو کلام نہیں کہ وہ نہ صرف مجمع علیہا یا نصِ قطعی سے ثابت بلکہ اعلیٰ واجباتِ دین سے ہے مگر جمعہ باجماعِ امت مشروط ہے، ہمارے ائمہ کرام رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین نے جو شرائط اس کے لئے معین فرمائے شک نہیں کہ ان بلاد میں ان کا پورا پورا اجتماع قدرے محل اشتباہ و نزاع معہذا یہاں عامہ بلاد میں جماعاتِ جمعہ متعدد ہوتی ہیں اور اگرچہ مذہب مفتی بہ میں تعددِ جمعہ مثلِ عیدین مطلقاً جائز، اسی پر کنز و وافی و کافی و ملتقی و تنویر و ہندیہ و طحاوی و شامی وغیرہما میں اعتماد فرمایا امام اجل مفتی الجن وانس نجم الدین نسفی پھر علامہ ابن وہبان نے اپنے منظومہ اور علامہ یوسف چلپی نے ذخیرۃ العقبیٰ اور علامہ شرنبلالی نے مراقی الفلاح میں اسی کو قول صحیح امام اعظم و امام محمد رضی اللہ تعالیٰ عنہما بتایا، شرح وقایہ میں ہے بہ یفتی

(اسی پر فتویٰ ہے۔ت) شرح مجمع للعلاّمہ البدر العینی میں ہے: علیہ الفتوی (اسی پر فتویٰ ہے۔ت) فتح القدیر میں ہے: علی المفتی بہ (مفتی بہ قول پر۔ت) محیط شمس الائمہ سرخسی میں ہے۔ت) الصحیح وبہ نأخذ (صحیح ہے اور ہم اسی پر عمل پیرا ہیں ، ت) تبیین الحقائق و بحر و فتح و شرح وہبانیۃ و منح الغفار و عقود الدریہ وغیرہما میں ہے: الاصح (زیادہ صحیح ہے۔ت) بحر الرائق و در مختار میں ہے: علی المذھب (مذہب پر۔ت) حتی کہ علامہ حسن شرنبلالی و علامہ محمد بن علی علائی و غیر ہما نے قولِ آخر کے ضعیف ہونے کی تصریح فرمائی مگر عندالتحقیق روایتِ عدمِ جوازِ تعدد بھی ساقط نہیں بلکہ مذہب کا با قوت قول ہے امام طحطاوی و تمرتاشی و صاحبِ مختار نے اسی کو اختیار فرمایا، امام فقیہ النفس قاضی خاں نے خانیہ میں اسی کو مقدم رکھا، خزانۃ المفتین میں اسی پر اقتصار کیا، عتابی و اخلاطی نے اسی کو اظہر اور جوامع فقہ میں اظہر الروایتین اور امام ملک العلماء ابو بکر مسعود نے ظاہر الروایہ کہا، تکملہ رازی میں ہے: بہ نأخذ (ہم اسی پر عمل پیرا ہیں۔ت) حاوی القدسی میں ہے علیہ الفتویٰ (فتویٰ اسی پر ہے۔ت) بدائع امام ملک العلماء میں ہے۔ علیہ الاعتماد (اعتماد اسی پر ہے۔ت) جواہر الاخلاطی

Volume 8 Fatawa Razawiyya

In [it] is stated: "This is correct, this is most correct, and upon this is the fatwa." (This is correct, most correct, and the verdict is based on it. T) Afandi Shami states: "So it is the relied-upon saying in the school of thought, not a weak saying." (Hence, this is the relied-upon saying and school of thought here, not a weak saying.) In view of these reasons, the Imams of Marw, most of the scholars of Bukhara, the companions of Imam Abdullah Hakm Shaheed, the companions of Imam Shaykh Abi Amr, the teachers of the author of Mukhtar al-Fatawa, and other major religious leaders and reliable scholars have commanded those four precautionary (ihtiyati) rak'ats in such places. And this is clearly stated in Muheet-e-Burhani, Fatawa Zahiriyya, Fatawa Hujjah, Waqi'at, Matlab, Mukhtar al-Fatawa, Anhar, Kafi, Jami' al-Mudmirat, Khazinat al-Muftin, Fath al-Qadir, Sharh al-Majma', Fatawa Sirajiyya, Tatarkhaniyya, Hilya, Ghunya, Sagheeri, Majma' al-Anhur, Tayseer al-Maqasid, Nahr al-Faiq, Alamgiriyya, Fatawa Sufiyya, Khazanat al-Riwayat, Quniyya, Hawi, Gharaib, Fatawa Rahmaniyya, Tahtawi's marginalia on Maraqi al-Falah, and others. Imam al-Hasan, Imam Tamurtashi, Qazi Badi'uddin, the researcher Ibn Jarbash, Ibn al-Shuhna, Shaykh al-Islam grandfather of Ibn al-Shuhna, Allama Baqani Maqdisi, Allama Abu Su'ud, researcher Shami, and a large group of commentators of al-Hidaya and other Imams and scholars have chosen this. Allama Ibrahim Halabi called it "more appropriate," Imam Mahmud Aini called it "best and most precautionary," and Allama Baqani said "it is the correct one" (this is correct. T), and in Sirajiyya "it is good" (this is good. T), and in Hujjah, Mudmirat, etc., it is kept as "the chosen correct one" (selected correct. T). The texts of all these books and scholars have been mentioned by this humble servant (may Allah forgive him) in his fatwas; here, only two or three passages are sufficient according to the need. Imam the researcher, Allama Muhammad bin Amir al-Haj Halabi states in Hilya Sharh Munya:

[Table Header omitted, contents follow:] Sometimes doubt occurs regarding the validity of Friday prayer due to the lack of some of its conditions. Among these is when multiple prayers occur in a city, which was the incident of the people of Marw, so what they did should be done. Al-Muhassan said: When the people of Marw were afflicted with performing Friday prayer in two places despite the disagreement of scholars regarding its permissibility, their leaders ordered them to perform four [rak'ats] after Friday prayer as a mandatory precaution. | Due to the absence of some conditions for Friday prayer, doubt sometimes arises regarding its validity. One of these is when Friday prayer is held in multiple locations in a city, and this was the

incident of the people of Marw. Therefore, the same should be done as the people of Marw did. Mohsin says that when the people of Marw started Friday prayer in two places despite the disagreement of scholars over its permissibility, the Imams ordered them to perform four rak'ats of Zuhr prayer as a precaution after the Friday prayer as a necessity. (T)

Allama Ibrahim Halabi states in Ghunya Sharh Munya:

1 Hilya al-Mahalli Sharh Munya al-Musalli, Section on Friday Prayer; Ghunya al-Mustamli Sharh Munya al-Musalli, Section on Friday Prayer, printed by Suhail Academy Lahore, p. 552.

जिल्द आठ फ़तावा रज़विया

किताब में लिखा है: "हुवस्सहीहु व हुवल असहु व अलैहिल फतवा" (यही सही और यही सबसे सही है और इसी पर फ़तवा है। - त)। अफ़ंदी शामी फ़रमाते हैं: "फ़हुव कौलुम मोतमदुम फ़िल मज़हबि ला कौलुन ज़ईफ़ुन" (तो यही यहाँ विश्वसनीय कथन और पंथ है, कमज़ोर कथन नहीं है)। इन कारणों के दृष्टिगत, मरव के इमामों, बुख़ारा के अधिकांश मशायख़, इमाम अब्दुल्लाह हकम शहीद के साथियों, इमाम शेख़ अबी अम्र के साथियों, मुख़्तार अल-फ़तावा के लेखक के शिक्षकों और अन्य प्रमुख धार्मिक नेताओं और विश्वसनीय विद्वानों ने ऐसी जगह उन चार एहतियाती (सावधानी वाली) रकातों का हुक्म दिया है। और यही मुहीते-बुरहानी, फ़तावाज़-ज़हीरिया, फ़तावाज़-हुज्जा, वाक़िआत, मतलब, मुख़्तार अल-फ़तावा, अन्हार, काफ़ी, जामेउल-मुज़मिरात, ख़ज़ीनतुल-मुफ़्तीं, फ़तहुल-क़दीर, शरहुल-मजमा, फ़तावाज़-सिराजिया, तातारखनिया, हिलिया, ग़निया, सगीरी, मजमउल-अन्हुर, तैसीरुल-मक़ासिद, नहरुल-फ़ाइक़, आलमगीरिया, फ़तावाज़-सूफ़िया, ख़ज़ानतुर-रिवायात, कुनिया, हावी, ग़राइब, फ़तावाज़-रहमानिया, तहतावी हाशिया मराक़िल-फ़लाह और अन्य में स्पष्ट किया गया है। इसी को इमाम अल-हसन, इमाम तमुरताशी, क़ाज़ी बदीउद्दीन, अन्वेषक इब्न जरबाश, इब्न अश्-शुहना, शेख़ुल इस्लाम दादा इब्न अश्-शुहना, अल्लामा बाक़ानी मक़दिसी, अल्लामा अबू सऊद, अन्वेषक शामी और हिदाया के टीकाकारों के एक बड़े समूह और अन्य इमामों और विद्वानों ने चुना है। अल्लामा इब्राहिम हलबी ने इसे 'अधिक उचित' (औला) कहा है, इमाम महमूद ऐनी ने इसे 'सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक सावधानीपूर्ण' कहा है, और अल्लामा बाक़ानी ने कहा "वही सही है" (यही सही है। - त), और सिराजिया में "वह अच्छा है" (यह अच्छा है। - त), और हुज्जा, मुज़मिरात आदि में "सही और चुनिंदा" (सही मुख़्तार। - त) रखा गया है। इन सभी किताबों और विद्वानों के मूल पाठों का उल्लेख इस फ़क़ीर (अल्लाह उसे क्षमा करे) ने अपने फ़तवाओं में किया है; यहाँ ज़रूरत के मुताबिक सिर्फ़ दो-तीन इबारतों पर ही इक्तिसार किया जाता है। इमाम अन्वेषक अल्लामा मुहम्मद बिन अमीर अल-हज हलबी 'हिलिया शरह मुनिया' में फ़रमाते हैं:

[सारणी:] जुमे की नमाज़ की सेहत में कभी-कभी कुछ शर्तों के अभाव के कारण संदेह पैदा हो जाता है। उनमें से एक यह है कि शहर में एक से अधिक जगहों पर जुमे की नमाज़ हो, और यह वाक़िआ (घटना) मरव के लोगों का है। अतः वही किया जाए जो मरव के लोगों ने किया था। मोहसिन कहते हैं कि जब जुमे के जायज़ होने पर विद्वानों के मतभेद के बावजूद मरव के लोगों ने दो जगहों पर जुमे की नमाज़ शुरू की, तो उनके इमामों ने उन्हें हुक्म दिया कि वे जुमे के बाद अनिवार्य रूप से एहतियातन

चार रकात अदा करें। | कुछ शर्तों के अभाव के कारण कभी-कभी जुमे की नमाज़ के सही होने में संदेह हो जाता है। उनमें से एक यह है कि शहर में कई जगहों पर जुमे की नमाज़ हो और यह मरव के लोगों की घटना है, इसलिए वही करना चाहिए जो मरव के लोगों ने किया था। मोहसिन कहते हैं कि जब विद्वानों के मतभेद के बावजूद मरव के लोगों ने दो जगहों पर जुमे की नमाज़ शुरू की, तो इमामों ने उन्हें आदेश दिया कि वे जुमे के बाद एहतियात के तौर पर चार रकात नमाज़ अनिवार्य रूप से पढ़ें। (त)

अल्लामा इब्राहिम हलबी 'ग़निया शरह मुनिया' में फ़रमाते हैं:

1 हिलिया अल-महल्ली शरह मुनिया अल-मुसल्ली, जुमे की नमाज़ का अध्याय; ग़निया अल-मुस्तमली शरह मुनिया अल-मुसल्ली, जुमे की नमाज़ का अध्याय, मुद्रित सुहैल अकादमी लाहौर, पृष्ठ 552।

पृष्ठ 280 / 673

میں ہے ھو الصحیح وھو الاصح وعلیہ الفتوی (یہی صحیح اور یہی اصح اور اسی پر فتوی ہے۔ ت) آفندی شامی فرماتے ہیں فھو قول معتمد فی المذھب لا قول ضعیف (پس یہی یہاں معتمد قول اور مذہب ہے ضعیف قول نہیں ہے) ان وجوہ کی نظر سے ائمہ مرو و اکثر مشائخ بخارا و اصحاب امام عبداللہ حکم شہید و اصحاب امام شیخ ابی عمرو و اساتذہ صاحب مختار الفتاوی وغیر ہم جمہور ائمہ دین و علمائے معتمدین نے ایسی جگہ ان چار رکعت احتیاطی کا حکم دیا اور اسی کی محیط برہانی و فتاوی ظہریہ و فتاوی حجت و واقعات و مطلب و مختار الفتاوی و انہار و کافی و جامع المضمرات و خزینۃ المفتین و فتح القدیر و شرح المجمع و فتاوی سراجیہ و تاتارخانیہ و حلیہ و غنیہ و صغیری و مجمع الانہر و تیسیر المقاصد و نہر الفائق و عالمگیریہ و فتاوی صوفیہ و خزانۃ الروایات و قنیہ و حاوی و غرائب و فتاوی رحمانیہ و طحطاوی حاشیہ مراقی الفلاح وغیرہما میں تصریح کی اسی کو امام الحسن و امام تمرتاشی و قاضی بدیع الدین و محقق ابن جرباش و ابن الشحنہ و شیخ الاسلام جد ابن الشحنہ و علامہ باقانی مقدسی و علامہ ابو سعود و محقق شامی و جماعت کثیرہ شراح ہدایا و غیر ہم ائمہ و علماء نے اختیار فرمایا علامہ ابراہیم حلبی نے اسی کو اولیٰ اور امام محمود عینی نے احسن واحوط اور علامہ باقانی نے ھو الصحیح (یہی صحیح ہے۔ ت) اور سراجیہ میں ھو حسن (یہ حسن ہے۔ ت) اور حجہ و مضمرات و غیر ہما میں الصحیح المختار (صحیح مختار۔ ت) رکھا ان سب کتب و علماء کے نصوص فقیر غفر اللہ تعالی نے اپنے فتاوی میں ذکر کئے یہاں بقدر حاجت صرف دو تین عبارت پر اقتصار ہوتا ہے امام محقق علامہ محمد بن امیر الحاج حلبی حلیہ شرح منیہ میں فرماتے ہیں:

| قد يقع الشك فی صحة الجمعة بسبب فقد بعض شروطها ومن ذلك ماذا تحدث في المصر وهی واقعة اهل مرو فيفعل ما فعلوه قال المحسن لما ابتلی اهل مرو باقامة الجمعة في موضعين مع اختلاف العلماء في جوازها امرائمتهم باداء الاربع بعد الجمعة حتما احتياطا ۔ 1 | بعض شرائط جمعہ کے فقدان کی وجہ سے بعض اوقات صحت جمعہ میں شک واقع ہو جاتا ہے ان میں سے ایک یہ ہے کہ شہر میں متعدد جگہ جمعہ ہو اور یہ واقعہ اہل مرو کا ہے لہذا وہی کیا جائے جو اہل مرو نے کیا تھا، محسن کہتے ہیں کہ جب جواز جمعہ میں علمائے کے اختلاف کے باوجود جب اہل مرو نے دو جگہ جمعہ شروع کیا تو انھیں ائمہ نے حکم دیا کہ وہ جمعہ کے بعد ضروری طور پر چار رکعت فرض احتیاطا ادا کریں۔ (ت) |

علامہ ابراہیم حلبی غنیہ شرح منیہ میں فرماتے ہیں :

1 حلیہ المحلي شرح منية المصلی فصل فی صلوٰۃ الجمعہ، غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۲

Fatawa Razawiyya - Volume 8

Arabic	Urdu
Regarding this and the disagreement about the city, they said: In every place where doubt arises concerning the validity of Jumu'ah (Friday prayer), it is appropriate to pray four rak'ahs with the intention of Dhuhr. Precaution is better because the disagreement is strong, and the fact that the correct view allows multiplicity due to necessity for the purpose of a fatwa does not legally prevent precautionary piety. 1 (Abridged)	Due to this disagreement and the difference in the definition of a city, the jurists have stated that in a place where there is doubt about the validity of Friday prayer, four rak'ahs should be performed with the intention of Dhuhr. Therefore, precaution is better because there is a very severe disagreement here, and the fact that the fatwa allowing multiple locations due to necessity is correct does not, according to Sharia, contradict precaution as a matter of piety. (Abridged) (T)

The great Imam Zahir al-Milla wal-Din al-Marghinani says in his Fatawa:

Arabic	Urdu
Most of the scholars of Bukhara are upon this, so that one may fulfill their obligation with certainty. 2	Most of the scholars of Bukhara hold this view so that one may be absolved of their responsibility with certainty. (T)

It is stated in Fatawa Sirajiyya:

Arabic	Urdu
The Imams in most countries take precaution; they pray Dhuhr after performing Jumu'ah behind these [imams]. Their reward is good. 3	In most cities, the Imams take precaution by praying Dhuhr after performing Friday prayer behind the deputies, and this is good. (T)

Yes, those common, ignorant people who are not capable of correcting their intention, or if due to these rak'ahs they start considering the Friday prayer itself as non-obligatory or think that two prayers are obligatory on Friday, they should not be commanded to perform these rak'ahs. Rather, they should not even be informed of their performance, as averting a greater and more severe corruption is more emphasized and important. For them, it is sufficient that their prayer becomes valid according to some reports and statements of the Imams of the school (Madhhab). Therefore, Sayyidi Nur al-Din al-Maqdisi states in 'Nur al-Sham'a':

Arabic	Urdu
We do not command the likes of these commoners to do that, but we point it out to the elite, even if it pertains to them. 4	We do not give commands regarding such matters to the common people, but rather we inform the elite about it, even if it relates to them.

1. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Friday Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 552.
2. Fatawa of the great Imam Zahir al-Din al-Marghinani.
3. Fatawa Sirajiyya, Chapter on Friday Prayer, published by Nawal Kishore Lucknow, p. 17.
4. Nur al-Sham'a.

अरबी

इसके बारे में और शहर की परिभाषा में मतभेद के बारे में उन्होंने कहा: हर उस जगह जहाँ जुमे के जायज़ होने में संदेह हो, ज़ुहर की नीयत से चार रकात नमाज़ अदा करना उचित है। सावधानी ही बेहतर है क्योंकि यहाँ गहरा मतभेद है, और ज़रूरत के कारण बहुलता के जायज़ होने का सही फ़तवा होना शरीयत के अनुसार तक़वा (परहेज़गारी) के तौर पर सावधानी के विरुद्ध नहीं है। 1 (संक्षिप्त)

उर्दू

इस मतभेद और शहर की परिभाषा में अंतर के कारण फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने कहा है कि जिस स्थान पर जुमे की नमाज़ की वैधता में संदेह हो, वहाँ ज़ुहर की नीयत से चार रकात नमाज़ अदा करनी चाहिए। अतः सावधानी ही बेहतर है क्योंकि यहाँ बहुत गंभीर मतभेद है, और ज़रूरत के कारण कई स्थानों पर जुमे की अनुमति देने वाले फ़तवे का सही होना, शरीयत के अनुसार तक़वा के रूप में सावधानी बरतने के विपरीत नहीं है। (संक्षिप्त) (त)

महान इमाम ज़हीर अल-मिल्लत वद-दीन अल-मर्गीनानी अपने फ़तावा में फ़रमाते हैं:

अरबी

बुखारा के अधिकांश मशाइख़ इसी पर हैं ताकि व्यक्ति अपनी ज़िम्मेदारी से निश्चित रूप से मुक्त हो सके। 2

उर्दू

बुखारा के अधिकांश मशाइख़ की यही राय है ताकि उत्तरदायित्व से निश्चित रूप से मुक्ति मिल सके। (त)

फ़तावा सिराजिया में उल्लेख है:

अरबी

अधिकांश देशों में इमाम सावधानी बरतते हैं; वे इन [इमामों] के पीछे जुमा अदा करने के बाद ज़ुहर पढ़ते हैं। उनका फल (सवाब) अच्छा है। 3

उर्दू

अधिकांश शहरों में इमाम सावधानी बरतते हैं कि जुमे की अदायगी के बाद नायबों के पीछे ज़ुहर पढ़ते हैं और यह अच्छा है। (त)

हाँ, वे बिल्कुल अनपढ़ आम लोग जो नीयत को सही करने में सक्षम नहीं हैं, या यदि इन रकातों के कारण वे स्वयं जुमे को अनिवार्य न समझने लगें या जुमे के दिन दो नमाज़ों को फ़र्ज़ समझने लगें, उन्हें इन रकातों का हुक्म न दिया जाए। बल्कि उन्हें इनकी अदायगी के बारे में सूचित भी न किया जाए, क्योंकि किसी बड़े और गंभीर बिगाड़ को रोकना अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है। उनके लिए

इतना ही पर्याप्त है कि मज़हब के इमामों के कुछ वर्णनों और कथनों के अनुसार उनकी नमाज़ सही हो जाए। इसलिए सैय्यदी नूरुद्दीन मक़दिसी 'नूरुश-शमा' में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू
हम इन जैसे आम लोगों को इसका आदेश नहीं देते, बल्कि हम विशिष्ट लोगों (ख़्वास) को इसके बारे में सूचित करते हैं, भले ही यह उनसे संबंधित हो। 4	हम इस प्रकार के मामलों का आदेश आम जनता को नहीं देते, बल्कि हम विशिष्ट लोगों को इससे अवगत कराते हैं, भले ही यह उनसे संबंधित हो।

1. गुन्यातुल मुस्तमली शरह मुन्यातुल मुसल्ली, जुमे की नमाज़ का अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 552।
2. फ़तावा इमाम अजल ज़हीरउद्दीन अल-मर्गीनानी।
3. फ़तावा सिराजिया, जुमे का अध्याय, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 17।
4. नूरुश-शमा।

عربی	اردو
عن هذا وعن الاختلاف فی المصر قالوا فی کل موضع وقع الشك فی جواز الجمعة ینبغی ان یصلی اربع رکعات ینوی بها الظهر فالا ولی هوا لاحتیاط لان الخلاف فیه قوی وکون الصحیح جواز التعدد للضرورة للفتوی لایمنع شرعیة الاحتیاط للتقوی 1 (ملخصاً)	اس اختلاف اور تعریفِ شہر میں اختلاف کی وجہ سے فقہاء نے فرمایا ہے کہ جس جگہ جوازِ جمعہ میں شک ہو وہاں ظہر کی نیت سے چار رکعات ادا کرنی چاہئیں، تو احتیاط ہی بہتر ہے کیونکہ یہاں بڑا سخت اختلاف ہے اور رجعہ کا ضرورت کے پیش نظر متعدد جگہ پر جواز کے فتوٰی کا صحیح ہونا شرعاً تقوٰی کے طور پر احتیاط کے منافی نہیں۔ (ملخصاً) (ت)

امام اجل ظہیر الملة والدین مرغینانی اپنے فتاوٰی میں فرماتے ہیں:

عربی	اردو
اکثر مشائخ بخارا علیه لیخرج عن العهدة بیقین 2-	مشائخ بخارا کی اکثریت کی یہی رائے ہے تاکہ ذمہ داری سے عہدہ برآ ہو جائے۔ (ت)

فتاوٰی سراجیہ میں ہے:

عربی	اردو
احتاطت الائمة فی اکثر البلاد فانهم یصلون الظهر بعد مایؤدون الجمعة خلف ثواب هؤلاء هوحسن 3-	اکثر شہروں میں ائمہ احتیاط کرتے ہیں کہ جمعہ کی ادائیگی کے بعد ظہر پڑھتے ہیں ناءبین کے پیچھے جمعہ کی ادائیگی کے بعد اور یہ اچھا ہے۔ (ت)

ہاں وہ نرے جاہل عامی لوگ کہ تصحیح نیت پر قادر نہ ہوں یا ان رکعات کے باعث رائسا جمعہ کو غیر فرض یا جمعہ کے دن دو نمازیں فرض سمجھنے لگیں انھیں ان رکعات کا حکم نہ دیا جائے بلکہ ان کی ادا پر مطلع نہ کیا جائے کہ مفسدہ اشد واعظم کا دفع اکد واہم ان کے لئے اسی قدر بس ہے کہ بعض روایات واقوال ائمہ مذہب پر ان کی نماز صحیح ہو جائے لہٰذا سیدی نور الدین مقدسی نورالشمعہ میں فرماتے ہیں:

عربی	اردو
نحن لا نأمر بذلك امثال هذه العوام بل ندل عليه الخواص ولو بالنسبة اليهم 4-	ہم اس طرح کے معاملات کا حکم عوام کو نہیں دیتے بلکہ ہم خواص کو اس پر آگاہ کرتے ہیں اگرچہ وہ ان کی نسبت سے ہو-

1 غنیہ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۲ 2 فتاویٰ امام اجل ظہیر الدین المرغینانی 3 فتاویٰ سراجیہ باب الجمعۃ مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ص ۱۷ 4 نور الشمعۃ

Volume Eight Fatawa Razawiyya

From this research, it is clear that considering the absolute validity of Friday prayer (Jumu'ah) in these lands as definitively certain and beyond doubt is an excess (ifrat) and a neglect and oversight of the school's doctrines and the differences among the scholars. To consider Jumu'ah as merely recommended (mustahabb) is pure falsehood and deficiency (tafrit) and a deviation from the rules of the explanations of the aims of the Imams. If the former were true, what was the need for caution (ihtiyat) to ensure discharge from obligation with certainty? And if the latter were correct, what would be the meaning of considering it only as caution? Rather, certainly, Zuhr is a definitive obligation (fard qat'i), and abandoning the Zuhr congregation, which is obligatory according to the relied-upon view, for the sake of a recommended act is prohibitively disliked (makruh tahrimi). Furthermore, a "recommended Jumu'ah" is neither familiar from the Shari'ah nor do the words of the scholars support it. Thus, the middle and just position is that Jumu'ah is definitely necessary in these cities, and abandoning it, God forbid, is a turning away from a great symbol of Islam. And as for those four precautionary rak'ahs, the command is for the elite, and for the ignorant commoners, it is overlooked. And Allah Subhanu wa Ta'ala knows best.

Problem 1278: Sent by Maulana Allah Yar Khan Sahib, 21 Dhu al-Hijjah 1305 AH. What do the scholars of the religion say about this issue mentioned in Fatawa Abu al-Barakat: "La tajuz al-Jumu'ah hatta ya'lam al-khatib ma'nahu" (Friday prayer is not valid until the preacher knows the meaning of the sermon - Ed). Is this correct or what? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: Requiring the preacher to understand the meaning of the sermon text is not at all obligatory such that they could be called sinners. Let alone making Jumu'ah invalid, if this saying were correct, it would have been mandatory for famous and widely circulated books to be full of its clarifications. Such an extremely important issue, upon which the validity and invalidity of an obligatory prayer depends, yet the primary texts (mutun), commentaries (shuruh), and fatwas give no trace of it - sound intellect can never accept this. Therefore, in Al-Mujtaba, when many conditions for the intention of obligatory and voluntary prayers were mentioned which did not exist in reliable compositions, the scholars did not pay attention to them for this reason. It is stated in Al-Ashbah:

Among the strange things in Al-Mujtaba is that intention for worship,	**It is strange what is mentioned in Al-Mujtaba that it is necessary to have the intention of worship,**
obedience, and proximity is necessary, and that he does it for the sake of benefit in his religion,	obedience, and reward; and it is also necessary
and that it is closer to what he considers rationally obligatory rather than just	that he considers it for the benefit of his religion and a rationally obligatory action and
an action and fulfillment of trust, and further away from...	fulfilling a trust, and far from forbidden oppression and...

Note (Ah): I say: Al-Zahidi has manifested his Mu'tazilite leanings here because, according to the People of Truth (Sunnis), obligation is based on Shari'ah, not on reason. 12 Minhu (M). [Translation: I say, Zahidi has expressed his being a Mu'tazilite here because according to the People of Truth, a deed is Shari'i, it is not rational. 12 Minhu (T)] **Page 282 of 673**

इस शोध से यह स्पष्ट है कि इन शहरों में जुमा की पूर्ण वैधता को बिना किसी संदेह के निश्चित रूप से मानना अतिरेक (इफ़रात) है और पंथ के सिद्धांतों और विद्वानों के मतभेदों की अनदेखी और भूल है। और जुमा को केवल मुस्तहब (पसंदीदा) के स्तर पर मानना सरासर असत्य और कमी (तफ़रीत) है और इमामों के उद्देश्यों की व्याख्या के नियमों से विचलन है। यदि पहला सही होता तो सावधानी (एहतियात) की क्या आवश्यकता थी ताकि दायित्व से मुक्ति निश्चित हो सके? और यदि दूसरा सही होता तो केवल सावधानी मानने का क्या अर्थ था? बल्कि, निश्चित रूप से ज़ुहर एक निश्चित फ़र्ज़ (क़तई फ़र्ज़) है, और ज़ुहर की जमात को छोड़ना, जो विश्वसनीय मत के अनुसार अनिवार्य है, एक मुस्तहब के लिए मकरूह तहरीमी (निषिद्ध के करीब नापसंद) है। इसके अलावा, "मुस्तहब जुमा" न तो शरीयत में जाना जाता है और न ही विद्वानों के शब्द इसका समर्थन करते हैं। अत; मध्यम और न्यायसंगत मत यह है कि इन शहरों में जुमा निश्चित रूप से आवश्यक है, और इसे छोड़ना, ईश्वर न करे, इस्लाम के एक महान प्रतीक से विमुख होना है। और उन चार एहतियाती रकातों का आदेश ख़ास लोगों के लिए है, और अनपढ़ आम लोगों के लिए इससे आँख मूँद ली जाती है। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1278: प्रेषित मौलवी अल्लाह यार ख़ान साहब, 21 ज़िल हिज्जाह 1305 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले के बारे में क्या कहते हैं जो फ़तावा अबुल बरकात में लिखा है: "ला तजूज़ुल जुमुअतु हत्ता यअलमल ख़तीबु मा-नाहु" (जुमा जायज़ नहीं जब तक कि उपदेशक को उपदेश का अर्थ न पता हो)। क्या यह सही है या क्या: स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

जवाब: उपदेशक के लिए उपदेश के शब्दों का अर्थ समझना शर्त बनाना, अर्थ समझना हरगिज़ अनिवार्य (वाजिब) भी नहीं है कि वे गुनहगार कहे जा सकें। जुमा का नाजायज़ होना तो दूर की बात है, अगर यह कथन सही होता तो प्रसिद्ध और प्रचलित पुस्तकें इसके स्पष्टीकरणों से भरी होतीं। इतना महत्वपूर्ण मसला जिस पर फ़र्ज़ नमाज़ की वैधता और अमान्यता टिकी हो, और मूल ग्रंथों (मुतून), व्याख्याओं (शुरूहात) और फ़तवों में इसका कोई निशान न मिले - स्वस्थ बुद्धि इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकती। इसलिए अल-मुज्तबा में जब नमाज़ के फ़र्ज़ और नफ़्ल की नीयत की कई शर्तें ज़िक्र की गईं जो विश्वसनीय कृतियों में मौजूद नहीं थीं, तो विद्वानों ने इसी कारण उनकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। अल-अशबाह में है:

अल-मुज्तबा की अजीब बातों में से यह है कि इबादत की नीयत ज़रूरी है,

आज्ञाकारिता और निकटता, और यह कि वह इसे अपने धर्म के लाभ के लिए करता है,

और यह कि वह उसके नज़दीक तर्कसंगत रूप से अनिवार्य होने के अधिक करीब हो बजाय

केवल एक कार्य और अमानत की अदायगी के और दूर हो...

यह अजीब है कि अल-मुज्तबा में किन बातों का ज़िक्र है कि इबादत की नीयत,

आज्ञाकारिता और सवाब का होना ज़रूरी है, और यह भी ज़रूरी है

कि वह इसे अपने धर्म के लाभ के लिए और तर्कसंगत रूप से अनिवार्य कार्य और

अमानत की अदायगी के करीब समझे और हराम किए गए ज़ुल्म से दूर और...

नोट (अह): मैं कहता हूँ: यहाँ ज़ाहिदी ने अपने मोअतज़िला होने का इज़हार किया है क्योंकि अहले हक़ के नज़दीक कार्य शरई होता है, अक़्ली (तर्कसंगत) नहीं होता। 12 मिन्हु (म)। [अनुवाद: मैं कहता हूँ ज़ाहिदी ने यहाँ अपने मोअतज़िला होने का इज़हार किया है क्योंकि अहले हक़ के नज़दीक फ़ेल शरई होता है अक़्ली नहीं होता। 12 मिन्हु (त)] **पृष्ठ 282/673**

اس تحقیق سے ظاہر کہ ان بلاد میں مطلقاً صحتِ جمعہ کو قطعی یقینی بلا اشتباہ ماننا افراط اور اقاویلِ مذہب و خلافیات مشائخ سے غفلت و ذہول ہے اور جمعہ کو صرف درجہ مستحب میں جاننا محض باطل و تفریط و قواعد شرح مقاصد ائمہ سے عدول، اگر اول حق ہوتا تو احتیاط کی کیا حاجت تھی کہ خروج عن العہدہ بالیقین ہو لیا، اور ثانی صحیح ہوتا تو صرف احتیاط ماننے کے کیا معنی تھے بلکہ یقیناً ظہر فرض قطعی ہوتا اور ایک مستحب کے سبب جماعتِ ظہر کو کہ علی المعتمد واجب ہے ترک کرنا مکروہ تحریمی معہٰذا جمعہ مستحبہ نہ شرع سے معہود نہ کلماتِ علماء اُس کے مساعد پس قولِ وسط و انصاف یہ ہے ان شہروں میں جمعہ ضرور لازم ہے اور اس کا ترک معاذ اللہ ایک شعارِ عظیم اسلام سے اعراض، اور ان چار رکعت احتیاطی کا خواص کو حکم اور نا فہم عامیوں کے حق میں اغماض ۔ واللہ سبحنہ تعالیٰ اعلم ۔

مسئلہ ۱۲۷۸: مرسلہ مولوی الہ یار خاں صاحب ۲۱ ذی الحجہ ۱۳۰۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ یہ جو فتاویٰ ابوالبرکات میں لکھا ہے لا تجوز الجمعۃ حتی یعلم الخطیب معناہ (جب خطیب، خطبہ کے معانی آگاہ نہ ہو جمعہ جائز نہیں۔ت) یہ صحیح ہے یا کیا: بینوا توجروا

الجواب: خطیب کا معنی عبارت خطبہ سمجھنا شرط کیا، معنی ہر گز واجب بھی نہیں کہ آثم کہہ سکیں، جمعہ ناجائز ہونا تو دور کنار اگر یہ قول صحیح ہوتا واجب تھا کہ کتب مشہورہ متداولہ اس کی تصریحوں سے مالا مال ہوتیں ایسا نہایت ضروری مسئلہ جس پر نمازِ فرض کے صحت و بطلان کا مدار ہو اور متون و شروح و فتاویٰ کہیں اس کا پتا نہ دیں ہر گز عقل سلیم اسے قبول نہیں

کر سکتی و لہذا مجتبیٰ میں جو بہت سی شرائط نیتِ نمازِ فرض و نفل میں ذکر کیں جب کا تصانیفِ معتمدہ میں وجود نہ تھا علماء نے اسی وجہ سے ان کی طرف اصلاً التفات نہ فرمایا، اشباہ میں ہے:

من الغریب ما فی المجتبیٰ لابد من نیة العبادة **عجیب ہے وہ چیزیں جس کا تذکرہ مجتبیٰ میں ہے کہ نیت عبادت**

والطاعة والقربة وانہ یفعلها مصلحة لہ فی دینہ — طاعت اور ثواب کا ہونا ضروری ہے، اور یہ بھی ضروری ہے

وان یکون اقرب الی ما وجب عنده عقلا وعم من الفعل واداء الامانة وابعد — کہ وہ اسے اپنے دین کی مصلحت کی اور عقلا واجب شدہ عمل اور ادائیگی امانت سے قریب اور حرام شدہ ظلم اور

عہ: قلت افصح الزاهدی ههنا عن اعتزالہ فان الوجوب عند اهل الحق شرعی لاعقلی ۱۲ منہ (م) | میں کہتا ہوں زاہدی نے یہاں اپنے معتزلہ ہونے کا اظہار کیا ہے کیونکہ اہل حق کے نزدیک فعل شرعی ہوتا ہے عقلی نہیں ہوتا ۱۲ منہ (ت) **Page 282 of 673**

Fatawa Razawiyya, Volume Eight

...from what was forbidden to him of oppression and ingratitude for blessings, then these intentions from the beginning of the prayer to its end, especially when moving from one pillar to another, and it is necessary to have the intention of worship in every pillar, and the supererogatory prayer (nafl) is like the obligatory (fard) in this, except in one aspect, which is that one intends in the supererogatory prayers that they are a grace for the obligatory ones and an ease for them. [Summary ended]

...is doing it for the sake of following ungratefulness for blessings ____ then this intention should be from the beginning of the prayer to the end, especially when transitioning from one pillar to another, and the intention of worship is necessary in every pillar, and in this matter, nafl is also like fard but in one case, and that is to intend in nafl that these are for grace and ease in fard. [Summary ended] (T)

It is in Ghamz al-'Uyun:

As for the strangeness in these things being necessary to intend, for the jurists (fuqaha) did not mention that in their books, neither in texts, commentaries, nor fatwas. [End]

The strangeness of these things is that having an intention for them has been declared necessary, whereas the jurists have not written this in the texts, commentaries, and fatwas of their books. [End] (T)

And Al-Mujtaba, although it is not among the reliable books like other works of Zahidi, is a famous work of a famous author from which later scholars have quoted hundreds of issues, but due to such rare and strange points, its level of reliability has fallen. Then, assuming if this is indeed the meaning of Fatawa Abu al-Barakat, then such a point in fatwas, and that too so unstable for which there is no evidence from the beginning, how can it be worthy of the slightest attention? There is no doubt that contemplating the meaning is a commendable beauty and a perfection of purpose, but the jurists generally, in any mention of acts of worship, have not placed any part of the heart except the soul of intention as a basis for validity or corruption. To the extent that the actual presence of the heart, which means being aware of the performance of actions and words even if the meaning of the speech is not understood, is also not necessary for the validity of prayer. This is mentioned in Multaqat, Khizana, Sirajiyya, Sharh Qaidani by Al-Quhistani, Ghamz al-'Uyun, Radd al-Muhtar, etc.:

The saying of the one who says 'there is no value for the prayer of one whose heart was not with him in it' is not considered.

The statement of the one who said that there is no value to the prayer of that person whose heart was not with him is not reliable. [End] (T)

Allama Shami said:

1. Al-Ashbah wa al-Nazair, Art One, Second Rule, published by Idara al-Quran wa al-Ulum al-Islamiyya Karachi, 1/76-69.
2. Ghamz 'Uyun al-Basair Sharh al-Ashbah wa al-Nazair, Second Rule, published by Idara al-Quran wa al-Ulum al-Islamiyya Karachi, 1/70.
3. Radd al-Muhtar, Chapter on Conditions of Prayer, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/370.

फतावा रज़विया, जिल्द आठवीं

...जो उस पर ज़ुल्म और नेमत की नाशुक्री की वजह से हराम किया गया, फिर ये नियतें नमाज़ की शुरुआत से लेकर आखिर तक होनी चाहिए, खासकर एक रुक्न से दूसरे रुक्न की तरफ जाते समय, और हर रुक्न में इबादत की नियत ज़रूरी है और इस मामले में नफ़्ल भी फ़र्ज़ की तरह है सिवाय एक सूरत के और वह यह है कि नफ़्ल नमाज़ों में यह इरादा करे कि ये फ़र्ज़ नमाज़ों में लुत्फ़ और आसानी के लिए हैं। [सारांश समाप्त]

...कफ़राने नेमत के बाद की ख़ातिर कर रहा है ____ फिर यह नियत नमाज़ की शुरुआत से आखिर तक होनी चाहिए, विशेष रूप से जब एक रुक्न से दूसरे रुक्न की ओर स्थानांतरण हो, और हर रुक्न में इबादत की नियत आवश्यक है और इस मामले में नफ़्ल भी फ़र्ज़ की तरह है लेकिन एक स्थिति में, और वह यह है कि नफ़्ल में यह इरादा करे कि यह फ़र्ज़ों में कृपा और उनके लिए आसानी के लिए हैं। [सारांश समाप्त] (त)

गम्ज़ुल उयून में है:

इन चीज़ों की विचित्रता (ग़राबत) में नियत का आवश्यक होना यह है कि फ़ुक़्हा (धर्मशास्त्रियों) ने अपनी किताबों में न तो मूल पाठ (मतून), न व्याख्याओं (शरुह) और न ही फतावा में इसका उल्लेख किया है। [समाप्त]

इन चीज़ों की विचित्रता यह है कि उनकी नियत का होना आवश्यक घोषित किया गया है, जबकि फ़ुक़्हा ने अपनी किताबों के मूल पाठ, व्याख्याओं और फतावा में यह बात कहीं नहीं लिखी है। [समाप्त] (त)

और मुजतबा, हालांकि ज़ाहिदी की अन्य रचनाओं की तरह विश्वसनीय किताबों में से नहीं है, फिर भी एक प्रसिद्ध लेखक की प्रसिद्ध रचना है जिससे बाद के विद्वानों ने सैंकड़ों मसले उद्धृत किए हैं, लेकिन ऐसी ही दुर्लभ और अजीब बातों के कारण यह विश्वसनीयता के स्तर से गिर गई। फिर मान लीजिए कि अगर फतावा अबुल बरकात का यही मतलब हो भी, तो फतावा में इस प्रकार की बात और वह भी इतनी अस्थिर जिसका शुरू से कोई प्रमाण नहीं है, तो वह कैसे ज़रा भी ध्यान देने योग्य हो सकती है? इसमें कोई शक नहीं कि अर्थ पर चिंतन करना एक प्रशंसनीय सुंदरता और उद्देश्य की पूर्णता है, लेकिन फ़ुक़्हा-ए-किराम ने सामान्यतः इबादतों के किसी भी उल्लेख में नियत के अलावा दिल के किसी ऐसे हिस्से को नहीं रखा जिस पर नमाज़ के सही या गलत होने की बुनियाद हो। यहाँ

तक कि असल हुज़ूर-ए-क़ल्ब (दिल की उपस्थिति), जिसका अर्थ यह है कि क्रिया और शब्द के होने पर ध्यान हो चाहे कलाम का अर्थ समझ में न आए, यह भी नमाज़ की सेहत (सही होने) के लिए ज़रूरी नहीं है। मुल्तक़त, ख़ज़ाना, सिराजिया, शरह क़ैदानी लिल क़ुहिस्तानी, गम्ज़ुल उयून, रद्दुल मुहतार आदि में है:

उस व्यक्ति की बात का कोई महत्व नहीं है जिसने कहा कि उस व्यक्ति की नमाज़ का कोई मूल्य नहीं है जिसका दिल नमाज़ के दौरान उसके साथ नहीं था।

उसका कहना विश्वसनीय नहीं है जिसने कहा कि उस व्यक्ति की नमाज़ का कोई मूल्य नहीं है जिसका दिल उसके साथ नहीं था। [समाप्त] (त)

अल्लामा शामी ने फ़रमाया:

1. अल-अशबाह वन-नज़ायर, फन अव्वल, क़ायदा सानिया, मतबूआ इदारातुल कुरान वल उलूम अल-इस्लामिया कराची, १/७६-६९।
2. गम्ज़ उयूनुल बसायर शरह अल-अशबाह वन-नज़ायर, क़ायदा सानिया, मतबूआ इदारातुल कुरान वल उलूम अल-इस्लामिया कराची, १/७०।
3. रद्दुल मुहतार, बाब शुरुतुस सलात, मतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, १/३७०।

पृष्ठ २८३ / ६७३

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

عما حرم علیه من الظلم و کفران النعمة ثم هذه النیات من اول الصلوة الی اخرها خصوصاً عند الانتقال من رکن الی رکن ولا بد من نیة العبادة فی کل رکن والنفل کالفروض فیها الا فی وجه واحد وهو ان ینوی فی النوافل انها لطف فی الفرائض و تسهیل لها 1 اه ملخصاً

کفرانِ نعمت سے بعد کی خاطر کر رہا ہے ____ پھر یہ نیت اول نماز سے لے کر آخر تک خصوصاً جب ایک رکن سے دوسرے رکن کی طرف انتقال ہو، اور ہر رکن میں عبادت کی نیت ضروری ہے اور اس معاملہ میں نفل بھی فرض کی طرح ہے مگر ایک صورت میں، اور وہ یہ ہے کہ نوافل میں یہ ارادہ کرے کہ یہ فرائض میں لطف اور ان میں آسانی کے لئے ہیں اھ ملخصاً (ت)

غمز العیون میں ہے :

اماً الغرابة فی کون هذه الاشیاء لابد من نیتها فان الفقهاء لم یذکروا ذلك فی کتبهم متوناً وشروحاً وفتاوی 2 اھ

ان اشیاء کی غرابت یہ ہے کہ اس کی نیت کا ہونا ضروری قرار دیا گیا ہے حالانکہ فقہاء نے یہ بات اپنی کتب کے متون وشروح اور فتاوٰی میں کہیں نہیں لکھی اھ (ت)

اور مجتبی اگرچہ مثلِ سائر تصانیف زاہدی کتبِ معتمدہ سے نہیں تاہم مشہور مصنف کی مشہور تصنیف ہے جس سے علماء مابعد نے صدہا مسائل نقل فرمائے مگر ایسے ہی نوادرِ غرائب کے باعث پایہ اعتماد سے ساقط ہوئی پھر بالفرض اگر فتاوٰی ابو البرکات کا یہ مطلب ہو بھی تو اس قسم کے فتاوٰی ایک بات اور وہ بھی اتنی بے ثبات جس پر شروع سے اصلاً دلیل نہیں، کیونکہ ادنٰی التفات کے قابل ہو سکتی ہے، اس میں شک نہیں کہ تدبر معنٰی جمال محمود و کمالِ مقصود ہے

مگر فقہائے کرام نے عموماً عبادات کے کسی ذکر میں نفسِ نیت کے سوا قلب کا کوئی حصہ ایسا نہیں رکھا جس پر فساد و صحت کی بنا ہو یہاں تک کہ اصل حضورِ قلب جس کے معنی یہ ہیں کہ صدورِ فعل و قول پر متنبہ ہو اگرچہ معنیٰ کلام نہ سمجھے یہ بھی صحت نماز کے لئے ضروری نہیں، ملتقط و خزانہ و سراجیہ و شرح قیدانی للقہستانی وغمز العیون وردالمحتار و غیرہا میں ہے :

لا یعتبر قول من قال لا قیمۃ لصلوۃ من لم یکن قلبہ فیھا معہ 3۔

اس کا قول معتبر نہیں جس نے کہا کہ اس شخص کی نماز کی کوئی قیمت نہیں جس کے ساتھ اس کا دل نہ تھا (ت)

علامہ شامی نے فرمایا:

1 الاشبا ہ والنظائر الفن الاول قاعدہ ثانیہ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم اسلامیہ کراچی ۱ / ۷۶۔ ۶۹

2 غمز عیون البصائر شرح الاشبا ہ والنظائر قاعدہ ثانیہ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم اسلامیہ کراچی ۱ / ۷۰ 3 رد المحتار باب شروط الصلوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۳۷۰

Volume 8 Fatawa-e-Razviyya

[Box 1] **Presence of heart is the awareness of the action and words emanating from the one praying, and it is different from comprehension. For the awareness of the word itself is different from the awareness of the meaning of the word. — 1 (Summary) Presence of heart is the knowledge of the action and word being performed, and it is other than understanding, because the knowledge of the word itself is different from the knowledge which is the knowledge of the meaning of the word. (T)**

And the establishment of the Friday sermon (Khutbah) for the purpose of reminder (tazkir), as Allah Almighty said: "Hasten to the remembrance of Allah"[2] (as Allah Almighty said: "Then hasten to the remembrance of Allah." — T), can never support the claim [that understanding is necessary] when words of remembrance are used and one utters them intentionally; remembrance is certainly established. It does not depend on pondering over the meaning, otherwise it would be mandatory in prayer (Salah) as well, as Allah Almighty said: "Establish prayer for My remembrance"[3]. (Allah Almighty said: "Establish prayer for My remembrance." — T). Furthermore, for 'tazkir' (reminding), 'tazakkur' (being reminded/remembering) is more in need of understanding and reflection.

A man should take to heart, Even if the advice is written on a wall. (A person should preserve it even if the advice is written on a wall.)

While scholars explicitly state that if the followers (Muqtadis) are deaf, sleeping, or so far away that the sound does not reach them, but they are present during the sermon, it is sufficient; the condition is fulfilled. Understanding the meaning is separate; even hearing itself is not a necessity. It is stated in Rad al-Muhtar:

[Box 2] **For its validity, it is not stipulated that it be heard by them; rather, their presence is sufficient, so that even if they are far from him or sleep, it suffices. — 4 For the validity of the sermon, it is not necessary for all people to hear; rather, the presence of people will be sufficient, even if they stay far from the orator (Khatib) and fall asleep, the sermon will still be fulfilled. (T)**

It is in Tanwir: "Even if [the listener is] deaf."[5] (Even if it is a non-hearer. — T) I say: And with Allah is the success. The reality of the matter is that although Sharia rulings generally arise from wisdom and benefits, and the wisdom behind the prescription of

the sermon is indeed reminder and remembrance, wisdom is not such that its absence would necessarily lead to corruption and invalidity [of the act].

---

1. Rad al-Muhtar, Chapter: Conditions of Prayer, Published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/30
2. Al-Quran 62/9
3. Al-Quran 20/14
4. Rad al-Muhtar, Chapter: Friday [Prayer], Published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/598
5. Durr-e-Mukhtar, Chapter: Friday [Prayer], Published by Matba Mujtabai Delhi, 1/111

जिल्द आठवीं फ़तावा-ए-रज़विया

[बॉक्स 1] **हुज़ूरुल क़ल्ब (दिल की उपस्थिति) नमाज़ी से होने वाले अमल और कौल (बोल) का ज्ञान है और यह तफहुम (समझने) से अलग है। क्योंकि शब्द का ज्ञान उसके अर्थ के ज्ञान से अलग होता है। — 1 (सारांश) हुज़ूर-ए-क़ल्ब, सादिर होने वाले फ़ेअल (काम) और क़ौल (बात) का इल्म है और यह तफहुम से अलग है, क्योंकि स्वयं शब्द का ज्ञान और उस इल्म का दूसरा पहलू जो शब्द के अर्थ का ज्ञान हो, अलग-अलग होते हैं। (त)**

और जुमे का ख़ुतबा 'तज़कीर' (याद दिलाने) के लिए मशरूअ (निर्धारित) होना जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ दौड़ो"[2] (जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: 'अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ जल्दी चलो'।— त), हरगिज़ इस दावे का पोषक नहीं हो सकता। जब ज़िक्र के शब्द हों और उसने इरादतन उन्हें अदा किया, तो निश्चित रूप से ज़िक्र सिद्ध हो गया। अर्थ पर विचार करने पर यह निर्भर नहीं है, अन्यथा नमाज़ में भी अर्थ का समझना अनिवार्य होता, क्योंकि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो"[3]। (अल्लाह तआला ने फ़रमाया: 'मेरे ज़िक्र के लिए नमाज़ क़ायम करो'।— त)। इसके अलावा, याद दिलाने (तज़कीर) के लिए याद करने (तज़क्कुर) से अधिक समझ और चिंतन की आवश्यकता होती है।

मर्द को चाहिए कि कान धर कर सुने, चाहे दीवार पर नसीहत लिखी हो। *(इंसान को चाहिए कि वह उसे सुरक्षित रखे, चाहे नसीहत दीवार पर लिखी हो।)*

हालाँकि उलेमा स्पष्ट करते हैं कि यदि मुक़्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) बहरे हों, सो रहे हों या इतनी दूर हों कि आवाज़ न पहुँचे, लेकिन ख़ुदबे के समय उपस्थित हों, तो पर्याप्त है; शर्त पूरी हो गई। अर्थ समझना अलग बात है, स्वयं सुनने की भी आवश्यकता नहीं है। रद अल-मुहतार में है:

[बॉक्स 2] **इसकी वैधता के लिए उनका सुनना शर्त नहीं है, बल्कि उनकी उपस्थिति ही पर्याप्त है, यहाँ तक कि अगर वे ख़तीब से दूर हों या सो जाएँ तो भी ख़ुतबा मान्य होगा। — 4 ख़ुतबे की वैधता (सहत) के लिए सभी लोगों का सुनना ज़रूरी नहीं, बल्कि लोगों का हाज़िर होना ही काफ़ी होगा, यहाँ तक कि अगर वे ख़तीब से दूर रहें और सो जाएँ तब भी ख़ुतबा अदा हो जाएगा। (त)**

तन्वीर में है: "चाहे वह बहरा हो।"[5] (अगरचे न सुनने वाला हो।— त) मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही तौफ़ीक़ (सामर्थ्य) देने वाला है। वास्तविकता यह है कि हालाँकि शरीयत के आदेश आमतौर पर

हिकमत (बुद्धिमत्ता) और लाभों से उत्पन्न होते हैं, और ख़ुतबे की मशरूइयत (विधान) की हिकमत यही याद दिलाना और नसीहत है, लेकिन हिकमत ऐसी नहीं होती कि उसकी अनुपस्थिति से कार्य का बिगड़ना या अमान्य होना अनिवार्य हो जाए।

---

1. रद अल-मुहतार, अध्याय: नमाज़ की शर्तें, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/30
2. अल-क़ुरआन 9/62
3. अल-क़ुरआन 20/14
4. रद अल-मुहतार, अध्याय: जुमा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/598
5. दुर्रे मुख़्तार, अध्याय: जुमा, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/111

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[ڈبہ 1] حضور القلب هو العلم بالفعل والقول الصادرين من المصلی وهو غير التفهم فان العلم بنفس اللفظ غير العلم بمعنی اللفظ - 1 (ملخصاً) حضورِ قلب، صادر ہونے والے فعل اور قول کا علم ہے اور تفہیم کا غیر ہے کیونکہ نفسِ لفظ کا علم اور اس علم کا غیر ہوتا ہے جو لفظ کے معنی کا علم ہو۔ (ت)

اور خطبہ جمعہ کا ذکر تذکیر کے لئے مشروع ہونا کما قال تعالیٰ فَاسْعَوْا إِلَی ذِکْرِ اللہ 2 (جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا پس اللہ کے ذکر کی طرف جلدی چلو۔ت) ہر گز اس دعوی کا مثبت نہیں ہو سکتا جب الفاظِ ذکر ہوں اور اس نے بالقصد انہیں ادا کیا قطعاً ذکر متحقق ہوا، تدبر معنیٰ پر توقف نہیں ورنہ واجب کہ نماز میں بھی فہم معنی قال تعالیٰ أَقِمِ الصَّلَوۃَ لِذِکْرِی 3 ۔ (اللہ تعالیٰ نے فرمایا میرے ذکر کے لئے نماز قائم کروں۔ ت) علاوہ بریں تذکیر سے تذکر زیادہ محتاج فہم وتدبر۔

مرد باید کہ گیرد اندر گوش ور نوشت ست پند بر دیوار (انسان کو چاہئے کہ وہ محفوظ کرے اگرچہ نصیحت لکھی ہو دیوار پر)

حالانکہ علماء تصریح فرماتے ہیں کہ مقتدی اگر بہرے یا سوتے یا اس قدر دور ہوں کہ آواز نہ جائے مگر وقت خطبہ حاضر ہوں کافی ہے شرط ادا ہوگئی فہم معنی جدا، نفس سماع کی بھی ضرورت نہیں، ردالمحتار میں ہے:

[ڈبہ 2] لا يشترط لصحتها كونها مسموعة لهم بل يكفی حضورهم حتی لو بعدوا عنه اوناموا اجزأت۔ 4 صحتِ خطبہ کے لئے تمام لوگوں کا سننا ضروری نہیں بلکہ لوگوں کا حاضر ہو جانا کافی ہوگا حتی کہ اگر وہ خطیب سے دور رہے اور سو گئے تب بھی خطبہ ادا ہو جائے گا (ت)

تنویر میں ہے: ولو صماً 5 (اگرچہ نہ سننے والا ہو۔ ت) اقول: وب اللہ التوفیق حقیقت امر یہ ہے کہ ہر چند احکامِ شرعیہ عموماً حکم و مصالح سے ناشی ہوتے ہیں اور مشروعیت خطبہ کی حکمت یہی تذکیر و تذکر ہے مگر حکمت نہیں ہوتی کہ اس کے فقدان سے فساد و بطلان لازم

---

1 رد المحتار باب شرط الصلوۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۳۰ 2 القرآن ۹/۶۲ 3 القرآن ۲۰/ ۱۴ 4 رد المحتار باب الجمعہ ، مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۵۹۸ 5 درمختار باب الجمعہ ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۱

Fatawa Razvia Volume 8

For example, the wisdom of Shari'a regarding marriage is the increase of the Ummah and the chastity of the soul, yet marriage is valid even if the man is impotent or the woman has physical obstructions or is barren. The wisdom of fasting is to break desires and discipline the soul. If a person's temperament is dominated by moisture such that fasting is beneficial and gives strength to the two desires (hunger and sex), would we still command him to fast or consider his fast invalid? And so on (analogize based on this). All this discussion is based on the assumption that the meaning of the mentioned statement in the question is such. This Fatwa has not come under my (the humble servant's) observation so that I could determine the intended meaning by looking at the context. However, in the opinion of this humble servant (may Allah Almighty forgive him), an excellent interpretation of the words quoted by the questioner is possible: Intention (niyyah) is the name of the heart's purpose, and the purpose of a thing depends on the knowledge of it. If a person does not know a thing at all, then intending it is meaningless. Knowing a thing is not just knowing its name while the mind is completely devoid of its meaning and intent. Rather, awareness of its concept is necessary. For example, if you teach a parrot the name 'Zaid', it wouldn't be said that it knows Zaid. That is why scholars say that if someone intends the 'Obligatory' (Fard) in an obligatory prayer but does not know what 'Fard' means, the prayer will not be valid. Because in the obligatory prayer, the intention of 'Fard' was necessary; when he is heedless of the meaning of 'Fard', then it was just a thought of the word 'Fard', not the intention of 'Fard' which was required.

في الاشباه عن العناية انه ينوى الفريضة في الفرض الخ ثم نقل عن القنية ينوى الفرض ولا يعلم معناه لا يجزيه 1۔

In Al-Ashbah from Al-Inayah, it is stated that in obligatory prayers, the intention of obligation should be made, etc. Then it is quoted from Al-Qunyah that if he intended the obligations but did not know their meaning, then this is not sufficient for him. (T)

When this became clear, and it is known that the intention of the sermon (Khutbah) is a condition for its validity, to the extent that if one climbs the pulpit, sneezes, and says "Alhamdulillah" because of the sneeze, the sermon is not performed. It is in Al-Ashbah:

ما النية للخطبة في الجمعة فشرط صحتها حتى لو عطس بعد صعود المنبر فقال الحمد لله للعطاس غير قاصد لها لم تصح كما في فتح القدير وغيره 2 الخ (ملخصاً)	**The intention for the Friday sermon is a condition for its validity, to the extent that if the orator (khatib) climbs the pulpit, sneezes, and says "Alhamdulillah" but did not have the intention of the sermon, this will not be the sermon, as it is in Fath al-Qadir etc. (T)**

Therefore, it became necessary that the orator be aware of the meaning of the sermon, i.e., he should know that a sermon is a name for a remembrance of Allah, so that he can intend it, otherwise...

1. Al-Ashbah wa al-Nazair, Art 1, Rule 2, published by Idarat al-Qur'an wal-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 1/59.
2. Al-Ashbah wa al-Nazair, Art 1, Rule 1, published by Idarat al-Qur'an wal-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 1/29.

फतावा रजविया जिल्द अष्टम (आठवीं)

उदाहरण के लिए, निकाह की शरई हिकमत (बुद्धिमत्ता) उम्मत की वृद्धि और नफ्स (आत्मा) की शुचिता है, फिर भी यदि पुरुष नपुंसक हो और स्त्री में शारीरिक बाधा हो या वह बांझ हो, तो भी निकाह के सही होने में कोई संदेह नहीं है। रोज़े की हिकमत इच्छाओं को तोड़ना और नफ्स का अभ्यास है। यदि किसी व्यक्ति के स्वभाव पर नमी हावी हो और इस कारण रोज़ा उसके लिए लाभदायक और इच्छाओं (भूख और संभोग) को शक्ति प्रदान करने वाला हो, तो क्या हम उसे रोज़ा रखने का आदेश देंगे या उसके रोज़े को अमान्य मानेंगे? इसी प्रकार और भी अनुमान लगाएँ। यह सारी चर्चा इस आधार पर है कि प्रश्न में उल्लिखित कथन का यही अर्थ हो। यह फतवा मेरी (इस तुच्छ सेवक की) नज़र से नहीं गुज़रा ताकि संदर्भ देखकर उद्देश्य निश्चित किया जा सके। लेकिन जितने शब्द प्रश्नकर्ता ने उद्धृत किए हैं, फकीर (अल्लाह तआला उसे क्षमा करे) की राय में उनकी एक उत्तम व्याख्या संभव है: नियत (इरादा) दिल के इरादे का नाम है और किसी चीज़ का इरादा उसके ज्ञान पर निर्भर है। जिस चीज़ को इंसान जानता ही न हो, उसका इरादा करना बेमानी है। और किसी चीज़ को जानने का मतलब यह नहीं है कि केवल उसका नाम पता हो और दिमाग उसके अर्थ और उद्देश्य से पूरी तरह खाली हो, बल्कि उसके अवधारणा (concept) से अवगत होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि एक तोते को 'ज़ैद' का नाम सिखा दें, तो यह नहीं कहेंगे कि वह ज़ैद को जानता है। इसीलिए विद्वान कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति अनिवार्य (फर्ज़) नमाज़ में फर्ज़ की नियत तो करे, लेकिन यह न जाने कि फर्ज़ किसे कहते हैं, तो नमाज़ नहीं होगी। क्योंकि अनिवार्य नमाज़ में फर्ज़ की नियत भी आवश्यक थी; जब वह फर्ज़ के अर्थ से बेखबर है, तो वह केवल 'फर्ज़' शब्द का ख्याल था, न कि फर्ज़ की नियत जो कि अनिवार्य थी।

في الاشباه عن العناية انه ينوى الفريضة في الفرض الخ ثم نقل عن القنية ينوى الفرض ولا يعلم معناه لا يجزيه 1۔

'अल-अशबाह' में 'अल-इनाया' से है कि फर्ज़ में फर्ज़ होने की नियत की जाए आदि। फिर 'अल-कुन्या' से उद्धृत है कि यदि उसने फर्ज़ों की नियत की लेकिन उनका अर्थ नहीं जानता था, तो अब यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है। (त)

जब यह स्पष्ट हो गया और यह ज्ञात है कि खुत्बा (प्रवचन) के सही होने के लिए खुत्बा की नियत शर्त है, यहाँ तक कि यदि मिम्बर पर जाकर छींक आए और छींक पर 'अल्हम्दुलिल्लाह' कहा, तो खुत्बा अदा नहीं हुआ। 'अल-अशबाह' में है:

ما النية للخطبة في الجمعة فشرط صحتها حتى لو عط بعد صعود المنبر فقال الحمد لله للعطاس غير قاصد لها لم تصح كما في فتح القدير وغيره الخ (ملخصاً) 2

जुमे के खुत्बा की नियत खुत्बा की वैधता के लिए शर्त है, यहाँ तक कि यदि खतीब को मिम्बर पर चढ़ने के बाद छींक आई और उसने 'अल्हम्दुलिल्लाह' कहा लेकिन खुत्बा की नियत नहीं थी, तो यह खुत्बा नहीं होगा, जैसा कि 'फतह अल-क़दीर' में है आदि। (त)

अतः यह आवश्यक हो गया कि खतीब खुत्बे के अर्थ से अवगत हो, यानी वह जानता हो कि खुत्बा अल्लाह के ज़िक्र के एक नाम है, ताकि वह उसकी नियत कर सके अन्यथा...

1. अल-अशबाह व अन-नज़ायर, फन अव्वल, कायदा सानिया, मतबूआ इदारातुल कुरान वल उलूम अल इस्लामिया कराची 1/59
2. अल-अशबाह व अन-नज़ायर, फन अव्वल, कायदा अव्वल, मतबूआ इदारातुल कुरान वल उलूम अल इस्लामिया कराची 1/29

آئے مثلاً شرع نکاح کی حکمت تکثیر امت اور نفس کی عفت کہ مرد عنین وزن رتقاء وقرناء میں دونوں اور بحالت عقم اول منفی مگر پھر بھی صحت نکاح میں شبہ نہیں، صوم کی حکمت کسر شہوت اور نفس کی ریاضت، پھر اگر کسی شخص کے مزاج پر رطوبت غالب اور اس کی وجہ سے شہوتین میں ضعف ہو کہ روزہ اسے نافع وموجب قوت پڑے تو کیا اسے روزے کا حکم دیں گے یا اس کے صوم کا فاسد مانیں گے وقس علی ہذا (اور اس پر قیاس کرت) یہ سب کلام اس تقدیر پر ہے کہ عبارت مذکورہ سوال کا وہ مطلب ہو یہ فتاوی فقیر کی نظر سے نہ گزرا کہ سیاق و سباق دیکھ کر تعین مراد کی جاتی مگر جتنے لفظ سائل نے نقل کئے فقیر غفراللہ تعالیٰ لہ کی رائے میں ان کی عمدہ توجیہ یوں ممکن کہ نیت نام قصد قلبی کا ہے اور قصد شے اس کے علم پر موقوف، آدمی جس چیز کو جانتا ہی نہ ہو اس کا قصد محض بے معنی، اور کسی شے کا جاننا اسے نہیں کہتے کہ صرف اس کا نام معلوم ہو جس کے معنی و مراد سے ذہن بالکل خالی ہو بلکہ اس کے مفہوم سے آگاہی ضروری ہے مثلاً طوطے کو زید کا نام سکھا دیں تو یہ نہ کہیں گے کہ وہ زید کو جانتا ہے، اسی لئے علماء فرماتے ہیں اگر کوئی شخص نماز فرض میں فرض کی نیت تو کرے مگر یہ نہ جانے کہ فرض کسے کہتے ہیں نماز نہ ہوگی کہ صلوۃ فریضہ میں نیت فرض بھی ضروری تھی جب وہ معنی فرض سے غافل ہے تو لفظ فرض کا خیال ہوا نہ نیت فرض کہ فرض تھی

في الاشباه عن العناية انه ينوی الفريضة في الفرض الخ ثم نقل عن القنية ينوی الفرض ولا يعلم معناه لا يجزيه 1.

اشباہ میں عنایہ سے ہے کہ فرض میں فرض ہونے کی نیت کی جائے الخ پھر قنیہ سے منقول ہے کہ اگر فرضوں کی نیت کی اور اس کا معنی نہ جانتا تھا تو اب یہ اس کے لئے کافی نہیں۔ (ت)

جب یہ واضح ہو لیا اور معلوم ہے کہ صحت خطبہ کے لئے نیت خطبہ شرط ہے یہاں تک کہ اگر منبر پر جا کر چھینک آئی اور چھینک پر الحمد للہ کہا خطبہ ادا نہ ہوا، اشباہ میں ہے:

ما النية للخطبة في الجمعة فشرط صحتها حتی لو عطس بعد صعود المنبر فقال الحمد لله للعطاس غير قاصد لها لم تصح كما في فتح القدير وغيره 2 الخ (ملخصاً)

خطبہ جمعہ کی نیت صحت خطبہ کے لئے شرط ہے حتیٰ کہ اگر خطیب کو منبر پر چڑھنے کے بعد چھینک آئی اور اس نے الحمد للہ کہا لیکن خطبہ کی نیت نہ تھی تو یہ خطبہ نہ ہوگا، جیسا کہ فتح القدیر میں ہے الخ (ت)

تو لازم ہوا کہ خطیب معنی خطبہ سے آگاہ ہو یعنی یہ جانتا ہو کہ خطبہ ایک ذکر الہی کا نام ہے تاکہ اس کی نیت کر سکے ورنہ

1 الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدۃ الثانیہ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱/ ۵۹ 2 الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدۃ الاول مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱/ ۲۹

To know just the name 'Khutbah' (sermon) and not to know what it entails, but simply performing an act by blindly imitating people without understanding, then surely the Friday prayer will not be valid. This is because it was merely a thought of the word 'Khutbah', not the intention for the sermon.

[Arabic]: And we have previously stated from Ash-Shami that knowledge of the word itself is different from knowledge of the meaning of the word. And the condition is only the intention of what is meant by the sermon, not the intention of the words of the sermon, and this is very obvious. [Urdu]: We have previously stated from Shami that the knowledge of the word is separate from the knowledge of its meaning. So, the condition is the intention for what is intended by the sermon, not the intention for the words of the sermon, and this is extremely clear. (T)

And when there was no intention, which was a condition for the validity of the sermon, the sermon did not take place. And when the sermon did not take place, which was a condition for the validity of the Friday prayer, the Friday prayer did not take place. Just as if someone, seeing people praying, also performs the same actions as them while being ignorant of the meaning of prayer—i.e., not knowing that prayer is an obligation from God that is performed for the sake of obeying His command—the prayer will never be valid. It is stated in Al-Ashbah:

[Arabic]: (If) one does not know that Allah Almighty has an obligatory prayer for His servants, but he used to pray it at its times, it would not suffice for him. [Urdu]: If a person does not know that prayer is obligatory upon the servants for Allah Almighty — but he performs prayer at prayer times, then this is not enough. (T)

This is the meaning of not knowing the meaning of the sermon, not that it is necessary to understand the translation of the text that one recites. This is not the doctrine of even a single school of thought. Thus should be the orientation (the text should be interpreted in this way. T). And Allah, Glory be to Him and Exalted be He, knows best.

Problem 79: From Afzalgarh, District Bijnor, sent by Yusuf Khan and others, 26 Ramadan al-Mubarak 1333 AH. What do the scholars of religion say regarding the fact that when Zaid recites the sermon on Friday, he also reads the translation after it? Due to this, there is a pause in the second sermon, and reading the translation after the second sermon causes a delay in the prayer. Is this sermon with translation

in a non-Arabic language permissible for Friday or Eid prayers or not? And is the pause between the two sermons legally permissible? And the delay in the Friday prayer that will occur after the second sermon, is that also legally permissible? Clarify and you shall be rewarded.

The Answer: Delay in the second sermon or Friday prayer because of translation is not an 'alien interruption' (fasl-e-ajnabi), because the translation of the sermon is also a sermon, for it contains what it contains of remembrance and admonition (because it contains remembrance and advice. T). Yes, it will result in the lengthening of the sermon, and this...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on the Conditions of Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/30.
2. Al-Ashbah wa al-Naza'ir, First Art, Second Principle, printed by Idarat al-Qur'an wa al-'Ulum al-Islamiyya, Karachi, 1/59.

केवल 'ख़ुत्बा' नाम जान लेना और यह न जानना कि ख़ुत्बा किसे कहते हैं, बल्कि लोगों को देख-देखकर बिना समझे एक कार्य कर दिया, तो निश्चय ही जुमे की नमाज़ अदा नहीं होगी। क्योंकि यह केवल ख़ुत्बा के नाम का विचार था, ख़ुत्बा की नीयत नहीं।

[अरबी]: और हमने पहले शामी से बयान किया है कि शब्द का ज्ञान उसके अर्थ के ज्ञान से अलग है। और शर्त केवल उस चीज़ की नीयत है जो ख़ुत्बे से अभिप्रेत है, न कि ख़ुत्बे के शब्दों की नीयत, और यह अत्यंत स्पष्ट है। [उर्दू]: हमने पहले शामी से बयान किया है कि लफ़्ज़ (शब्द) का इल्म (ज्ञान) उसके मानी (अर्थ) के इल्म से अलग है, तो शर्त इसकी नीयत है जो ख़ुत्बे से मुराद (अभिप्रेत) है न कि अल्फ़ाज़-ए-ख़ुत्बा की नीयत, और यह निहायत ही वाज़ेह (स्पष्ट) है। (त)

और जब नीयत नहीं हुई जो ख़ुत्बे की सेहत (वैधता) की शर्त थी, तो ख़ुत्बा नहीं हुआ। और जब ख़ुत्बा नहीं हुआ जो जुमे की सेहत की शर्त थी, तो जुमा नहीं हुआ। जिस तरह कोई व्यक्ति लोगों को नमाज़ पढ़ते देखकर खुद भी उनके जैसे काम करे और नमाज़ के मानी से जाहिल (अनजान) हो, यानी यह न जाने कि नमाज़ ख़ुदा का एक फ़र्ज़ है जो हुक्म की तामील (पालन) की नीयत से अदा किया जाता है, तो नमाज़ हरगिज़ नहीं होगी। 'अशबाह' में है:

[अरबी]: (यदि) कोई यह नहीं जानता कि अल्लाह तआला ने अपने बंदों पर नमाज़ फ़र्ज़ की है, लेकिन वह उसके समय पर नमाज़ पढ़ता था, तो यह उसे पर्याप्त नहीं होगी। [उर्दू]: अगर कोई शख़्स यह नहीं जानता कि अल्लाह तआला के लिए बंदों पर नमाज़ फ़र्ज़ है — लेकिन वह औक़ात-ए-नमाज़ में नमाज़ अदा करता है तो यह काफ़ी नहीं। (त)

ख़ुत्बे के मानी न जानने का अर्थ यह है, न कि यह कि जो इबारत (पाठ) पढ़े उसका तर्जुमा समझना ज़रूरी है। यह किसी एक भी मज़हब (विचारधारा) का मत नहीं है। 'हकज़ा यन्बगी अत्तौजीह' (इबारत की व्याख्या इसी तरह होनी चाहिए। त)। वल्लाहु सुब्हानहु व तआला आलम (और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है)।

मसला ७९: अफ़ज़लगढ़, ज़िला बिजनौर से प्रेषित, यूसुफ़ खान व अन्य द्वारा, २६ रमज़ानुल मुबारक १३३३ हिजरी। उलेमा-ए-दीन क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद जुमे के दिन जब ख़ुत्बा पढ़ता है, तो उसके बाद तर्जुमा भी पढ़ता है, इसलिए दूसरे ख़ुत्बे में देरी होती है और दूसरे ख़ुत्बे के बाद तर्जुमा पढ़ने से नमाज़ में देरी होती है। तो क्या यह तर्जुमा के साथ ग़ैर-अरबी ज़ुबान में जुमे या ईदैन का ख़ुत्बा जायज़ है या

नहीं? और दोनों ख़ुत्बों के बीच का वक़्फ़ा शरई तौर पर जायज़ है? और दूसरे ख़ुत्बे के बाद जुमे की नमाज़ में जो देरी होगी, क्या वह भी शरई तौर पर जायज़ है? बयान फ़रमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: तर्जुमा के कारण दूसरे ख़ुत्बे या जुमे की नमाज़ में देरी 'फ़स्ल-ए-अजनबी' (बाहरी हस्तक्षेप) नहीं है, क्योंकि ख़ुत्बे का तर्जुमा भी ख़ुत्बा ही है, 'इज़ फ़ीहा मा फ़ीहा मिनज़ ज़िक्र वत्तज़कीर' (क्योंकि इसमें ज़िक्र और नसीहत है। त)। हाँ, ख़ुत्बा लंबा हो जाएगा और यह...

1. रद्दुल मुहतार, बाब शरुतुल सलात, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, १/३०।
2. अल-अशबाह वल नज़ाइर, अल-फ़न्नुल अव्वल, अल-क़ाएदतुस सानिया, इदारतुल क़ुरआन वल उलूमल इस्लामिया, कराची, १/५९।

पेज २८६ ऑफ़ ६७३

نام خطبہ جانا بھی اور یہ نہ جانا کہ خطبہ کسے کہتے ہیں بلکہ لوگوں کے دیکھا دیکھی بے سمجھے ایک فعل کر دیا تو بیشک نماز جمعہ ادا نہ ہو گی کہ یہ وہی نام خطبہ کا خیال ہوا نہ نیت خطبہ،

[عربی]: وقد قدمنا عن الشامي العلم بنفس اللفظ غير العلم بمعنى اللفظ 1 والشرط انما هوانية ما يعنى من الخطبة لا نية لفظ الخطبة وهذا ظاهر جدا۔ [اردو]: ہم نے پہلے شامی سے بیان کیا ہے کہ لفظ کا علم اس کے معنی کے علم سے الگ ہے تو شرط اس کی نیت ہے جو خطبہ سے مراد ہے نہ کہ الفاظ خطبہ کی نیت، اور یہ نہایت ہی واضح ہے۔ (ت)

اور جب نیت نہ ہوئی کہ شرط صحت خطبہ تھی خطبہ نہ ہوا، اور جب خطبہ نہ ہوا کہ شرط صحت جمعہ تھا جمعہ نہ ہوا جس طرح کوئی شخص لوگوں کو نماز پڑھتے دیکھ کر خود بھی ان کے سے افعال کرے اور معنی نماز سے جاہل ہو یعنی نہ جانے کہ نماز خدا کا ایک فرض ہے کہ بفرض امتثال امر ادا کیا جاتا ہے ہرگز نماز نہ ہو گی۔ اشباہ میں ہے :

[عربی]: لا يعلم ان لله تعالى على عباده صلوة مفروضة ولكنه كان يصليها لا وقاتها لم يجزه 2-
[اردو]: اگر کوئی شخص یہ نہیں جانتا کہ اللہ تعالٰی کیلئے بندوں پر نماز فرض ہے __ لیکن وہ اوقات نماز میں نماز ادا کرتا ہے تو یہ کافی نہیں۔ (ت)

یہ معنی ہیں معنی خطبہ نہ جاننے کے، نہ یہ کہ جو عبارت پڑھے اس کا ترجمہ سمجھنا ضروری ہے، یہ کسی اک بھی مذہب نہیں ھکذا ینبغي التوجیھه (عبارت کی توجہ اسی طرح ہونی چاہئے۔ ت) واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم

مسئلہ ۷۹ : از افضل گڈھ ضلع بجنور مرسلہ یوسف خاں وغیرہ ۲۶ رمضان المبارک ۱۳۳۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ زید جمعہ کے دن جب خطبہ پڑھتا ہے تو اس کے بعد ترجمہ بھی پڑھتا ہے اس لئے خطبہ ثانیہ میں توقف ہوتا ہے اور خطبہ ثانیہ کے بعد ترجمہ پڑھنے سے نماز میں تاخیر ہوتی ہے تو یہ خطبہ مع ترجمہ بزبان غیر عربی جمعہ یا عیدین کا جائز ہے یا نہیں؟ اور توقف مابین ہر دو خطبہ شرعاً جائز ہے؟ اور خطبہ ثانیہ کے بعد تاخیر نماز جمعہ میں ہو گی وہ بھی شرعاً جائز ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: ترجمہ کے سبب خطبہ ثانیہ یا نماز جمعہ میں تاخیر فصل اجنبی تو نہیں ہے کہ ترجمہ خطبہ بھی خطبہ ہے اذفیھا ما فیھا من الذکر والتذکیر (کیونکہ اس میں ذکر و نصیحت ہے۔ ت) ہاں خطبہ کی تطویل ہو گی اور یہ

1 ردالمحتار، باب شروط الصلوۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱ / ۳۰ 2 الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدۃ الثانیہ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱ / ۵۹

Fatawa Razviya, Volume 8

It is against the Sunnah, especially if it is burdensome for the followers, as it is now strictly forbidden.

Hadith: The words of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): "Are you a troublemaker, O Muadh?" He said this regarding prayer, so what about the sermon? - 1 | The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "O Muadh! Do you want to cause strife?" He said this regarding prayer, so what would be the case in a sermon? (T)

Even if it is not burdensome, mixing a non-Arabic language in the sermon is itself disliked and contrary to the inherited Sunnah, as we have explained well in our fatwas. (T) However, in the two Eids, during the second sermon, if people are willing and attentive, one can give advice and counsel with the intention of preaching and not with the intention of the Eid sermon, even if that same sermon is mentioned in Arabic.

The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) after the Eid sermon went to the women, preached to them and reminded them. - 2 And Allah Almighty knows best. | You (peace and blessings of Allah be upon him) after the Eid sermon would go to the gathering of women and give them sermons and advice. (T) And Allah Almighty knows best.

Problem 1280 & 1281: From Calcutta, Dharmatala No. 6, sent by Mr. Mirza Ghulam Qadir Baig Sahib, 26 Safar 1312 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) In Fort Calcutta, there are guards at the gates, and whether it's five or ten or fifty or a hundred people going for a walk or for some other purpose, for example, to meet someone, no one stops or hinders them. Three to four thousand laborers work inside who go in and out freely in the morning. Yes, from 9:30 at night until 5:00 in the morning, general people cannot go in. There is also a market inside; whoever wants to go from outside to buy things, there is no prohibition. English shoes are made very well in the fort; most people go to buy them and bring them. Yes, this is the rule that whoever wants can take whatever they want inside from outside, but no one can bring anything outside from inside without a pass. There is no mosque inside. Prayer is held in congregation with the call to prayer (Adhan). Previously, there were many Muslims in the regiment; congregational prayer was held. Now the regiment that is here has many Hindus; Muslims would be around seventy. They requested the Colonel that we want to keep our own Maulana for the

purpose of leading prayers. He gave permission and they kept one. At one time, a Muslim gentleman who is not among the soldiers of the regiment but an employee of a General, [consulted] with another Muslim on some issues...

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Jabir bin Abdullah, published by Dar al-Fikr, Beirut 3/29.
2. Mishkat al-Masabih, Chapter on Eid Prayers, Second Section, published by Matba' Mujtabai, Delhi, p. 126.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

यह सुन्नत के विरुद्ध है, विशेष रूप से यदि यह अनुयायियों पर बोझिल हो, क्योंकि अब इसकी सख्त मनाही है।

हदीस: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कथन: "ऐ मुआज़! क्या तुम फ़ितना (अशांति) पैदा करने वाले हो?" आपने यह नमाज़ के बारे में कहा था, तो खुतबे के बारे में क्या हाल होगा? - 1 | हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का मुबारक इरशाद है: "ऐ मुआज़! तुम फ़ितना पैदा करना चाहते हो?" यह आपने नमाज़ के बारे में फ़रमाया था तो खुतबे में क्या हाल होगा। (त)

और अगर ऐसा न भी हो, तो खुतबे में ग़ैर-अरबी भाषा का मिश्रण स्वयं मकरूह (नापसंद) है और सुन्नत-ए-मुतवारिसा (विरासत में मिली सुन्नत) के विरुद्ध है, जैसा कि हमने अपने फ़तवों में इसे अच्छी तरह से बयान किया है। (त) हाँ, ईदैन (दोनों ईदों) में दूसरे खुतबे में यदि लोग राज़ी और ध्यान केंद्रित हों, तो उपदेश की नीयत से, न कि ईद के खुतबे की नीयत से, नसीहत और सलाह दी जा सकती है, भले ही वही खुतबा अरबी भाषा में दिया गया हो।

क्योंकि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद के खुतबे के बाद महिलाओं के पास गए और उन्हें उपदेश दिया और याद दिलाया। - 2 और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। | आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ईद के खुतबे के बाद महिलाओं की सभा में तशरीफ़ ले जाते और उन्हें वाज़-ओ-नसीहत फ़रमाते। (त) और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 1280 और 1281: कलकत्ता धर्मतला नंबर 6 से, श्री मिर्ज़ा गुलाम कादिर बेग साहब द्वारा प्रेषित, 26 सफ़र 1312 हिजरी। इन मसलों में दीन के उलेमा क्या फ़रमाते हैं: (1) कलकत्ता के किले में दरवाज़ों पर पहरा चौकी रहती है और दस-पाँच क्या, सौ-पचास आदमी बिना किसी सैर की ग़रज़ से जाएँ या किसी दूसरी ग़रज़ से, उदाहरण के लिए किसी से मिलने, तो कोई रोकने वाला या बाधा डालने वाला नहीं होता। तीन-चार हज़ार मज़दूर अंदर काम करते हैं जो सुबह बिना रोक-टोक अंदर जाते और बाहर आते हैं। हाँ, रात के साढ़े नौ बजे से सुबह पाँच बजे तक आम लोग अंदर नहीं जा सकते। अंदर बाज़ार भी है; जो चाहे बाहर से चीज़ें खरीदने के लिए जाए, कोई मनाही नहीं है। किले में अंग्रेज़ी जूते बहुत अच्छे बनते हैं; अधिकांश लोग उन्हें खरीदने जाते हैं और खरीद कर लाते हैं। हाँ, यह नियम है कि बाहर से जो चाहे जो चीज़ चाहे अंदर ले जाए, लेकिन अंदर से बिना पास के कोई चीज़ बाहर नहीं ला सकता। अंदर मस्जिद नहीं है, नमाज़ अज़ान के साथ जमात से होती है। पहले की

पल्टन में मुसलमान बहुत थे, बा-जमात नमाज़ होती थी। अब जो पल्टन है उसमें हिंदू बहुत हैं, मुसलमान करीब सत्तर होंगे। उन्होंने कर्नल से आवेदन किया कि हम नमाज़ पढ़ाने के लिए अपना मौलवी रखना चाहते हैं। उसने अनुमति दे दी और उन्होंने रख लिया। एक समय एक मुसलमान साहब जो पल्टन के सिपाहियों में नहीं बल्कि एक जनरल के कर्मचारी हैं, कुछ मसलों पर दूसरे मुसलमान से...

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, जाबिर बिन अब्दुल्ला से वर्णित, दारुल फ़िक्र बेरूत द्वारा प्रकाशित 3/29।
2. मिश्कातुल मसाबीह, बाबु सलातिल ईदैन, अल-फ़सलुस-सानी, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ. 126।

خلاف سنت ہے خصوصاً اگر مقتدیوں پر ثقیل ہو کہ اب سخت ممانعت ہے۔ لحد یث قولہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم : افتان انت یا معاذ ! قالہ في الصلوۃ فکیف في الخطبۃ - 1 | حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا ارشاد مبارک ہے اے معاذ ! تو فتنہ پیدا کرنا چاہتا ہے ، یہ آپ نے نماز کے بارے میں فرمایا تھا تو خطبہ میں کیا حال ہوگا۔ (ت)

اور نہ بھی ہو تو خطبہ میں غیر زبان عربی کا خلط خود مکروہ اور سنت متوارثہ کے خلاف ہے کما بیناہ فی فتاونا (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاوٰی میں اسے خوب بیان کیا ہے ۔ ت) ہاں عیدین میں خطبہ ثانیہ اگر لوگ راضی و متوجہ ہوں بہ نیت وعظ نہ بہ نیت خطبہ عید پند و نصیحت کر سکتا ہے اگرچہ وہی خطبہ میں بزبان عربی مذکور ہوئی ۔ فقدا تی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم بعد خطبۃ العید الی النساء فوعظھن وذکر ھن - 2 واللہ تعالی اعلم | آپ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم خطبہ ء عید کے بعد خواتین کے اجتماع میں تشریف لے جاکر انھیں وعظ و نصیحت فرماتے ۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۸۰ و ۱۲۸۱ : از کلکتہ دھرم تلہ نمبر ۶ مرسلہ جناب مرزا غلام قادر بیگ صاحب ۲۶ صفر ۱۳۱۲ ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں : (۱) قلعہ کلکتہ میں دروازوں پر پہرہ چوکی رہتا ہے اور دس پانچ کیا سو پچاس آدمی بغیر غرض سیر جائیں یا دوسری غرض سے مثلاً کسی کے ملاقات کو ، تو کوئی مانع و مزاحم نہیں ہوتا ، تین چار ہزار مزدور اندر کام کرتے ہیں جو صبح کو بے روک ٹوک اندر جاتے اور باہر آتے ہیں ، ہاں شب کے ساڑھے نو بجے سے عام لوگ پانچ بجے تک اندر نہیں جاسکتے اندر بازار بھی ہے جو چاہے باہر سے اشیاء خریدنے کو جائے کچھ ممانعت نہیں ، انگریزی جوتا قلعہ میں عمدہ بنتا ہے اکثر لوگ اس کے خریدنے کو

جاتے اور خرید کر لاتے ہیں ، ہاں یہ قاعدہ ہے کہ باہر سے جو چاہے جو چیز چاہے اندر لے جائے مگر اندر سے بغیر پاس کے کوئی چیز باہر نہیں لاسکتا ، مسجد اندر نہیں ہے، جماعت اذان کے ساتھ ہوتی ہے ، پیشتر کی پلٹن میں مسلمان بکثرت تھے ، نماز باجماعت ہوتی تھی اب جو پلٹن ہے اس میں ہندو بہت ہیں ، مسلمان قریب ستر کے ہوں گے ، انھوں نے کرنل سے درخواست کی کہ ہم اپنا مولوی نماز پڑھانے کی غرض سے رکھنا چاہتے ہیں اس نے اجازت دی اور انھوں نے رکھ لیا ، ایک وقت میں ایک مسلمان صاحب نے جو پلٹن کے سپاہیوں میں نہیں بلکہ ایک جرنیل کے ملازم ہیں بعض مسائل میں دوسرے مسلمان سے

1 مسند احمد بن حنبل ، مروی از جابر بن عبداللہ ، مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲۹/۳ 2 مشکوٰۃ المصابیح باب صلوۃ العیدین الفصل الثانی مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۱۲۶

Argument and beating occurred. The colonel prohibited that lone Muslim from joining their congregation and told them all that if this person comes to your place of prayer, imprison him and send him to us. In such a situation, will Friday prayer be performed inside the fort or not? (2) Besides the two obligatory (fard) units of Friday prayer, how many units of Sunnah prayer should be performed? How many units before the fard and how many units after the fard? And is it necessary to perform the precautionary Dhuhr prayer or not? Explain and be rewarded.

The Answer: O Allah! Guide to the truth and what is correct. General permission (Idhn-e-Aam), which is a condition for the validity of Friday prayer, means that there should be general permission from those establishing the Friday prayer for all eligible residents of that city to attend the Friday prayer at its designated time. If there is a restriction during prayer times other than the time of Friday prayer, it is not harmful, let alone if the restriction is only from 9:30 PM to 5:00 AM. It is explicitly stated in the books of the school of law that if a ruler performs Friday prayer in his fort or house after giving general permission for attendance, it is valid, even though royal palaces and forts cannot be public thoroughfares at all times. In "Kafi Sharh Wafi," it is stated: "When a Sultan intends to pray with his retinue in his house, if its door is opened and general permission is given to the people, his prayer is valid, whether the public participates or not." The prohibition of bringing anything out without a pass has nothing to do with this, as it prevents exit, not entry. Similarly, the general permission for laborers, sightseers, or buyers is not useful because at the time of prayer, for the sake of prayer, permission for the worshipers is required; what does the presence or absence of others matter? And although permission is a condition for those who establish this Friday prayer, as stated in "Radd al-Muhtar": "What is meant is the permission from those establishing it." However, it is clear that for the meaning of permission to be realized, it is also necessary that the place be suitable for general permission. Otherwise, if some people gather in a royal palace or the house of some nobleman and perform Friday prayer with the call to prayer (Adhan) and announcement, and give general permission on their own behalf for all the people of the city to come...

---

1 Radd al-Muhtar, citing Al-Kafi, Chapter of Friday, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/201 2 Radd al-Muhtar, citing Al-Kafi, Chapter of Friday, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/201 Page 288 of 673

فتاویٰ رضویہ (جلد 8) جلد ہشتم (फ़तावा-ए-रज़विया)

बहस और मारपीट हुई। कर्नल ने उस अकेले मुसलमान को उनकी जमात में शामिल होने से मना कर दिया और उन सब से कह दिया कि अगर यह व्यक्ति तुम्हारी नमाज़ की जगह आए तो इसे कैद कर लो और हमारे पास पहुँचा दो। ऐसी स्थिति में जुमे की नमाज़ किले के अंदर अदा होगी या नहीं? (२) जुमे के दो रकअत फर्जों के अलावा कितनी रकअत नमाज़ सुन्नत पढ़नी चाहिए? फर्जों से पहले कितनी रकअत और बाद में कितनी रकअत? और एहतियाती ज़ुहर पढ़ने की ज़रूरत है या नहीं? बयां फरमाएं और सवाब पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): ऐ अल्लाह! हक़ और सही की हिदायत दे। इज़्ने-आम (आम इजाज़त), जो जुमे की नमाज़ के सही होने के लिए एक शर्त है, इसका मतलब यह है कि जुमे की नमाज़ कायम करने वालों की तरफ से उस शहर के तमाम जुमे के अहल (पात्र) लोगों के लिए जुमे के वक्त हाज़िर होने की आम इजाज़त हो। अगर जुमे के वक्त के अलावा बाकी नमाज़ के वक्त में पाबंदी हो तो कोई हर्ज नहीं, न कि सिर्फ रात के साढ़े नौ बजे से सुबह पांच बजे तक। मज़हब की किताबों में साफ तौर पर लिखा है कि अगर कोई बादशाह अपने किले या मकान में जुमे की हाज़िरी की आम इजाज़त देकर जुमा पढ़े तो सही है, हालांकि शाही महल और किले आम वक्तों में आम रास्ता नहीं हो सकते। "काफी शरह वाफी" में है: "जब सुल्तान अपने अमले के साथ अपने घर में नमाज़ पढ़ना चाहे, अगर उसका दरवाज़ा खोल दिया जाए और लोगों को वहां दाखिल होने की आम इजाज़त हो जाए, तो उसकी नमाज़ दुरुस्त हो जाएगी चाहे आम लोग शरीक हों या न हों।" और बिना पास के किसी चीज़ को बाहर ले जाने की पाबंदी का यहाँ से कोई ताल्लुक नहीं है, क्योंकि वह बाहर निकलने से मना करती है, न कि अंदर आने से। इसी तरह मज़दूरों या सैर करने वालों या खरीदारों को आम इजाज़त होना कुछ फायदेमंद नहीं, क्योंकि नमाज़ के वक्त, नमाज़ के लिए, नमाज़ियों को इजाज़त चाहिए; दूसरों के होने या न होने से क्या मतलब? और इजाज़त अगरचे उन लोगों की शर्त है जो इस जुमे को कायम करते हैं, जैसा कि "रद्द-अल-मुह्तार" में है: "मुराद उन लोगों की इजाज़त है जो इसे कायम कर रहे हैं।" मगर यह ज़ाहिर है कि इजाज़त के मायने पूरे होने के लिए उस जगह का आम इजाज़त के काबिल होना भी ज़रूरी है। वर्ना अगर कुछ लोग शाही महल या किसी अमीर के घर में जमा होकर अज़ान और एलान के साथ जुमा पढ़ें और अपनी तरफ से शहर के तमाम लोगों को आने की आम इजाज़त दे दें...

1 रद्द-अल-मुह्तार, बहवाला अल-काफी, बाबुल जुमा, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/201 2 रद्द-अल-मुह्तार, बहवाला अल-काफी, बाबुल जुमा, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/201 पेज 288 / 673

حجت کی اور مار پیٹ ہوئی، کرنیل نے اُن تنہا مسلمان کو ان کی جماعت میں شریک ہونے سے ممانعت کردی اور ان سب سے کہہ دیا اگر یہ شخص تمھاری نماز کی جگہ آئے تو اس کو قید کرلو اور ہمارے پاس پہنچا دو، ایسی حالت میں نماز جمعہ قلعہ کے اندر ادا ہو جائے گی یا نہیں ؟ (۲) جمعہ کے دورکعت فرضوں کے سواکئے (کتنے) رکعت نماز سنت پڑھنا چاہئے؟ فرضوں سے پہلے کے رکعت اور بعد فرضوں کے کے رکعت؟ اور احتیاطی ظہر پڑھنے کی ضرورت ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: اللھم ھدایۃ الحق والصواب (اے اللہ! حق اور صواب کی ہدایت دے ت) اذن عام کہ صحتِ جمعہ کے لئے شرط ہے، اُس کے یہ معنی کہ جمعہ قائم کرنے والوں کی طرف سے اس شہر کے تمام اہل جمعہ کے لئے وقتِ جمعہ حاضری جمعہ کی اجازتِ عام ہو تو وقتِ جمعہ کے سوا باقی اوقاتِ نماز میں بھی بندش ہو تو کچھ مضر نہیں نہ کہ صرف رات کے ساڑھے نو بجے سے صبح پانچ بجے تک، کتب مذہب میں تصریح ہے کہ بادشاہ اپنے قلعہ یا مکان میں حاضری جمعہ کا اذنِ عام دے کر جمعہ پڑھے تو صحیح ہے حالانکہ قصر و قلعہ شاہی عام اوقات میں گزرگاہِ عام نہیں ہو سکتے، کافی شرح وافی میں ہے: السلطان اذا اراد ان یصلی بحشمہ فی دارہ فان فتح بابھا واذن للناس اذناً عاماً جازت صلوتہ شھدتھا العامۃ اولاً ۱۔ بادشاہ اپنے دبدبہ کی وجہ سے اپنے دار میں نماز ادا کرنا چاہتا ہو اگر اس دار کا دروازہ کھول دیا جائے اور لوگوں کو وہاں داخل ہونے کا اذنِ عام ہو گیا تو اس کی نماز درست ہو جائے گی خواہ عوام شریک ہوں یا نہ ہوں (ت) اور بے پاس کسی چیز کی باہر لانے کی ممانعت تو یہاں سے کچھ علاقہ ہی رکھتی ہے کہ وہ خروج سے منع ہے نہ دخول سے یونہی مزدوروں یا سیر والوں یا خریداروں کو اجازتِ عام ہونا کچھ مفید نہیں کہ وقتِ نماز بہر نماز اہل نماز کو اجازت چاہیے اوروں کو ہونے نہ ہونے سے کیا

کام، اور اذن اگرچہ انھیں لوگوں کا شرط ہے جو اس جمعہ کی اقامت کرتے ہیں، ردالمحتار میں ہے: المراد الا ذن من مقیمھا ۲ (جمعہ قائم کرنے کی اجازت مراد ہے۔ت) مگر پر ظاہر کہ تحقق معنی اذن کے لئے اُس مکان کا صالح اذن عام ہونا بھی ضرور، ورنہ اگر کچھ لوگ قصر شاہی یا کسی امیر کے گھر میں جمع ہو کر اذان واعلان جمعہ پڑھیں اور اپنی طرف سے تمام اہل شہر کو آنے کی اجازت عامہ دے دیں

---

1 ردالمحتار بحوالہ الکافی باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۲۰۱ 2 ردالمحتار بحوالہ الکافی باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۲۰۱ Page 288 of 673

But if guards are stationed at the gates by the ruler or amir and general public attendance is hindered, then the residents' claim of 'general permission' (idhn-e-aam) would be merely meaningless words. They may say 'general permission' with their tongues, but in their hearts, they would know that general permission is not possible here. Thus, in the matter under discussion, two points are worth considering: First, that fort being suitable for general permission, meaning if all the people of the city wish to pray Friday (Jummah) in that same fort, no one should prevent them. It is stated in Tahtawi:

If they intended to pray inside it and they all entered it, they should not be prevented.	**If people intended to pray inside the fort and all entered it, they should not be prevented. (T)**

If this is the case, then undoubtedly that fort is suitable for general permission. In such a state, having a sentry post at the gate will not be harmful, as the guard that is an obstacle is the one who prevents entry. Therefore, in Kafi, regarding the case of impermissibility, it was not merely said 'he seated guards' (T), but rather 'so that they prevent from entering' (T) was added. Similarly, in Rahmaniyyah, quoted from Al-Muhit:

If he seated guards at the gates to prevent entry, then Friday prayer will not be valid for them.	**If he seated the guards at the doors to prevent entry, then Friday prayer will not be permissible now. (T)**

Thus, having guards merely for royal majesty or to adhere to a law such that no one goes from inside to outside without a pass does not exclude a place from being capable of general permission. However, if permission is limited to fifty, a hundred, or a thousand or two thousand to some extent, as is derived from some words of the question, and if all the congregations of the city want to go and they are not allowed, then that place is restricted; Friday prayer cannot be held in it. In Bada'i', regarding the evidence for the condition of general permission, it is stated:

It is called Jummah (Friday) because of the gathering of congregations in it. This requires that all congregations be permitted to attend with general permission to substantiate the meaning of the name.	**It is called Jummah because it is a gathering of all congregations; this requires that all congregations be allowed to come with general permission so that the proof of the meaning of the name is established. (T)**

1. Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Jummah, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 1/344.
2. Radd al-Muhtar, referring to al-Kafi, Chapter on Jummah, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/208.
3. Rahmaniyyah, from Al-Muhit.
4. Bada'i' al-Sana'i', section on conditions of Jummah, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/269.

लेकिन अगर शासक या अमीर की ओर से दरवाज़े पर पहरेदार बैठे हों और आम जनता के आने में रुकावट हो, तो वहाँ रहने वालों का 'इज़्न-ए-आम' (सामान्य अनुमति) कहना महज़ बेमानी होगा। वे ज़ुबान से 'इज़्न-ए-आम' कहेंगे लेकिन दिल में खुद जानते होंगे कि यहाँ इज़्न-ए-आम नहीं हो सकता। अतः यहाँ विचाराधीन विषय में दो बातें विचारणीय हैं: पहली बात, उस किले का इज़्न-ए-आम के योग्य होना, यानी अगर शहर के तमाम लोग उसी किले में जुमे की नमाज़ पढ़ना चाहें, तो कोई उन्हें न रोके। तहतावी में है:

यदि उन्होंने इसके अंदर नमाज़ का इरादा किया और वे सब प्रवेश कर गए, तो उन्हें रोका न जाए।	**अगर लोगों ने किले के अंदर नमाज़ का इरादा कर लिया और तमाम उसके अंदर दाखिल हो गए तो उन्हें मना न किया जाए। (त)**

अगर ऐसा है, तो बेशक वह किला इज़्न-ए-आम के योग्य है। ऐसी स्थिति में दरवाज़े पर चौकी-पहरा होना हानिकारक नहीं होगा, क्योंकि वही पहरा बाधक है जो प्रवेश में बाधक हो। इसीलिए काफी में, जुमे के जायज़ न होने की स्थिति में, केवल यह नहीं कहा गया कि 'पहरेदार बैठा दिए' (त), बल्कि 'ताकि प्रवेश से रोकें (त) शब्द बढ़ाए गए। इसी तरह रहमानिया में मुहीत से उद्धृत है:

यदि उसने प्रवेश रोकने के लिए पहरेदारों को बैठाया तो उनका जुमा जायज़ नहीं होगा।	**उसने पहरेदारों को दरवाज़ों पर प्रवेश से रोकने के लिए बैठा दिया तो अब जुमा जायज़ न होगा। (त)**

तो केवल शाही दबदबे या उस कानून के पालन के लिए कि बिना पास के कोई अंदर से बाहर न जाए, पहरा होना किसी स्थान को इज़्न-ए-आम की योग्यता से बाहर नहीं करता। और यदि अनुमति पचास-सौ या हज़ार-दो हज़ार तक सीमित है, जैसा कि प्रश्न के कुछ शब्दों से ज्ञात होता है, कि अगर शहर की तमाम जमातें जाना चाहें और उन्हें न जाने दिया जाए, तो वह स्थान प्रतिबंधित है, उसमें जुमा नहीं हो सकता। 'बदाइ' में इज़्न-ए-आम की शर्त की दलील में फ़रमाया:

इसे जुमा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें जमातों का मेल होता है, तो इसका तकाज़ा है कि इसमें तमाम जमातों को आम अनुमति के साथ आने की इजाज़त हो ताकि नाम के अर्थ की पुष्टि हो।

जुमा कहने की वजह यह है कि इसमें तमाम जमातों का मेल होता है, यह इसका तकाज़ा है कि इसमें तमाम जमातों को आने की अनुमति हो ताकि नाम के अर्थ की पुष्टि हो। (त)

1. तहतावी अल-दुर्रुल मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुद्रित दारुल मारिफ़ा, बेरूत, 1/344।
2. रद्दुल मुहतार, अल-काफ़ी के हवाले से, जुमे का अध्याय, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/208।
3. रहमानिया, मुहीत से।
4. बदाइउस्सनाइ, जुमे की शर्तों का अनुभाग, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/269।

पृष्ठ 289/673

مگر بادشاہ امیر کی طرف سے دروازہ پر پہرے بیٹھے ہوں عام حاضری کی مزاحمت ہو تو مقیمین کا وہ اذن عام محض لفظ بے معنی ہوگا وہ زبان سے اذن عام کہتے اور دل میں خود جانتے ہوں گے کہ یہاں اذن عام نہیں ہوسکتا۔ پس مانحن فیہ میں دو باتیں محل نظر ہیں : اولاً اُس قلعہ کا صالح اذن عام ہونا یعنی اگر تمام اہل شہر اُسی قلعہ میں جمعہ پڑھنا چاہیں تو کوئی ممانعت نہ کرے، طحطاوی میں ہے :

لو اراد الصلوٰۃ داخلھا و دخلوھا جمیعاً لم یمنعوا — **اگر لوگوں نے قلعہ کے اندر نماز کا ارادہ کرلیا اور تمام اس کے اندر داخل ہوگئے تو انہیں منع نہ کیا جائے۔ (ت)**

اگر ایسا ہے تو بیشک وہ قلعہ صالح اذن عام ہے اور ایسی حالت میں دروازہ پر چوکی پہرہ ہونا کچھ مضر نہ ہوگا کہ پہرہ وہی مانع ہے جو مانع دخول ہو، ولہٰذا کانی میں بصورت عدم جواز صرف اجلس البوابین (پہرے دار بٹھا دیئے ۔ ت) نہ فرمایا بلکہ لیمنعوا عن الدخول (تاکہ دخول سے منع کریں ۔ت) بڑھایا، یو نہی رحمانیہ میں محیط سے منقول :

ان اجلس البوابین لیمنعوا عن الدخول لم یجزھم الجمعۃ - — **اس نے پہرے داروں کو دروازوں پر داخلے سے منع کرنے کے لئے بٹھا دیا تو اب جمعہ جائز نہ ہوگا۔ (ت)**

تو صرف شوکت شاہی یا اُس قانون کی رعایت کو کہ بے پاس کوئی اندر سے باہر نہ جائے، پہرا ہونا مکان کو صلاحیت اذن عام سے خارج نہیں کرتا اور اگر اجازت سو پچاس یا ہزار دو ہزار کسی حد تک محدود ہے جیسا کہ بعض الفاظ سوال سے مستفاد، اگر تمام جماعت شہر جانا چاہیں

نہیں جانے دیں گے تو وہ مکان بندش کا ہے اس میں جمعہ نہیں ہوسکتا بدائع میں اشتراط اذن عام کی دلیل میں فرمایا:

یسمی جمعۃ لاجتماع الجماعات فیھا جمعہ کہنے کی وجہ یہ ہے کہ اس میں تمام جماعتوں کا فاقتضی ان تکون الجماعات کلھا مأذونین اجتماع ہوتا ہے اس کا تقاضا ہے کہ اس میں تمام بالحضور اذنا عاما تحقیقا لہ معنی الاسم جماعتوں کو آنے کی اجازت ہو تاکہ نام کے معنی کا - ثبوت ہو۔ (ت)

1 طحطاوی علی الدر المختار باب الجمعۃ مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱/ ۳۴۴ 2 ردالمختار بحوالہ الکافی باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱ / ۲۰۸ 3 رحمانیۃ عن المحیط 4 بدائع الصنائع فصل شرائط الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۲۶۹

Fatawa Razawiyya Volume VIII

Secondly, if it is proven that this fort is a place of public permission, then as long as there was no prohibition for any specific person from attending the prayer, Friday prayer was undoubtedly valid. Now that the servant of the general has been prohibited, it is a matter of consideration whether this prohibition is also from the residents of the Friday prayer or not. If they do not prevent him from coming to the Friday prayer, even if they prevent him from other prayers, and even if the colonel has forcibly stopped him from the Friday prayer or he himself does not come for fear of the colonel, even in these cases, there is no doubt about the validity of the Friday prayer. Because when there is public permission from the residents of the Friday prayer and the place is suitable for public permission, then stopping someone for reasons other than the Friday prayer, or his own failure to come, or someone forcibly keeping him away, cannot be a breaker of public permission. For example, imprisoned people are always prohibited from attending mosques. Or if someone restricts certain worshippers at a specific prayer time so that they cannot go to the mosque, neither is this detrimental to public permission nor is it a blame on the residents of the Friday prayer. In fact, apparently, the prohibition by the colonel is also not an obligatory order from his side; it is for the sake of the regiment and left to their will. When they do not object, what is the colonel's concern with enmity? And if they themselves keep him from attending the Friday prayer, then it should be seen if that person is actually mischievous, corrupt, or harmful, such that there is fear of fitna (mischief) by his coming. In that case, such a prohibition will also not prevent the validity of the Friday prayer as being a bar to public permission.

As in al-Tahtawi from al-Halabi: It must be construed in the case when he prevents people from prayer.[1]	**As in Tahtawi from Halabi: It must be construed in this way that it refers to when he prevents people from prayer. (T)**

In Sharh 'Uyun al-Madhahib, then Majma' al-Anhur, then al-Durr al-Mukhtar, then Fath al-Mu'een by 'Allama Abu al-Sa'ud al-Azhari it is stated:

And the wording is his: Friday prayer in a fort is valid even if its door is closed because public permission is established for its inhabitants, and its closing is to prevent the entry of enemies or is an old custom, not for the worshipper.[2]

Its words are that the Friday prayer inside the fort is correct even if its door is closed, because public permission is established for the people of the fort, and its being closed is to prevent enemies from entering or it is an old custom, not to stop the worshipper. (T)

And this prevention is not in fact stopping from prayer but rather a restriction from fitna,

[1] Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Friday Prayer, published by Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/344 [2] Fath al-Mu'een, Chapter on Friday Prayer, published by H.M. Saeed Company Karachi, 1/316

द्वितीय, यदि यह सिद्ध हो जाए कि यह किला सार्वजनिक अनुमति का स्थान है, तो जब तक किसी विशेष व्यक्ति को नमाज़ में उपस्थिति से मना नहीं किया गया था, जुमा की नमाज़ निःसंदेह सही हो जाती थी। अब जबकि उस जनरल के मुलाज़िम को मना कर दिया गया है, तो यह विचारणीय विषय है कि यह मनाही उन जुमा पढ़ने वालों की ओर से भी है या नहीं। यदि वे उसे जुमा में आने से मना नहीं करते, भले ही अन्य नमाज़ों में रोकते हों, और भले ही कर्नल ने उसे जुमा से भी जबरन रोका हो या वह स्वयं कर्नल के भय से न आता हो, तो इन स्थितियों में भी जुमा की वैधता में कोई संदेह नहीं है। क्योंकि जब जुमा पढ़ने वालों की ओर से सार्वजनिक अनुमति है और वह स्थान भी सार्वजनिक अनुमति के योग्य है, तो किसी व्यक्ति को जुमा के अलावा किसी अन्य कारण से रोकना या उसका स्वयं न आना या किसी का जबरन उसे रोके रखना, सार्वजनिक अनुमति को भंग करने वाला नहीं हो सकता। जैसे बंदी लोग सदैव मस्जिदों में उपस्थित होने से रोके जाते हैं। या यदि कोई व्यक्ति कुछ नमाज़ियों को नमाज़ के विशेष समय पर इस लिए कैद कर ले कि वे मस्जिद न जा सकें, तो न तो यह सार्वजनिक अनुमति के लिए बाधक है और न ही जुमा पढ़ने वालों पर इसका आरोप है। बल्कि स्पष्टतः कर्नल द्वारा मनाही भी उसकी ओर से कोई अनिवार्य आदेश नहीं है; यह पलटन वालों के लिए है और उन्हीं की इच्छा पर छोड़ा गया है। जब वे विरोध नहीं करते, तो कर्नल को शत्रुता से क्या लेना-देना? और यदि वे स्वयं उसे जुमा में आने से रोकते हैं, तो यह देखना चाहिए कि क्या वह व्यक्ति वास्तव में शरारती, भ्रष्ट या हानिकारक है कि उसके आने से फितने (उपद्रव) की आशंका है। ऐसी स्थिति में ऐसी मनाही भी जुमा की वैधता के लिए बाधक नहीं होगी कि उसे सार्वजनिक अनुमति से रोकना माना जाए।

जैसा कि अल-तहतावी में अल-हलबी से है: इसे उस स्थिति पर लागू करना आवश्यक है जब वह लोगों को नमाज़ से रोके।[1]

जैसा कि तहतावी में हलबी से है कि इसे इस सूरत पर महमूल करना ज़रूरी है जब वह लोगों को नमाज़ से मना करे। (त)

शरह उयून अल-मज़ाहिब, फिर मजमा अल-अन्हूर, फिर दुर्र-ए-मुख्तार, फिर फ़तह अल-मुईन में अल्लामा अबू अल-सऊद अज़हरी कहते हैं:

और शब्द उनके हैं: किले के भीतर जुमा सही है भले ही उसका दरवाज़ा बंद हो क्योंकि सार्वजनिक अनुमति किले वालों के लिए सिद्ध है और उसका बंद होना शत्रुओं के प्रवेश को रोकने के लिए है या पुरानी परंपरा है, नमाज़ी को रोकने के लिए नहीं।[2]

इसके अल्फाज़ ये हैं कि किले के अंदर जुमा दुरुस्त है अगरचे इसका दरवाज़ा बंद हो क्योंकि इज़्न-ए-आम अहल-ए-किला के लिए साबित है और इसका बंद होना दुश्मनों के अदम दुख़ूल के लिए है या आदत-ए-क़दीमा है नमाज़ी को रोकने के लिए नहीं। (त)

और यह रोकना दरहक़ीक़त नमाज़ से रुकना नहीं बल्कि फ़ितना से बंदिश है,

[1] तहतावी अल-दुर्र अल-मुख़्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ दारुल मारिफ़ा बेरुत, 1/344 [2] फ़तह अल-मुईन, बाबुल सलातुल जुमा, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/316

ثانیاً اگر ثابت ہو جائے کہ یہ قلعہ اذنِ عام کا مکان ہے تو جب تک کسی شخصِ خاص کو حاضریِ نماز سے ممانعت نہ تھی جمعہ بیشک صحیح ہو جاتا تھا اب کہ اُس ملازم جرنیل کو منع کیا گیا تو محلِ نظر ہے کہ یہ ممانعت ان مقیمانِ جمعہ کی طرف سے بھی ہے یا نہیں۔ اگر یہ اُسے جمعہ میں آنے سے منع نہیں کرتے اگرچہ اور نمازوں میں مانع ہوں اگرچہ کرنیل نے اُسے جمعہ سے بھی جبراً روکا ہو یا وہ خود بخوف کرنیل نہ آتا ہو تو ان صورتوں میں بھی صحتِ جمعہ میں شک نہیں کہ جب مقیمینِ جمعہ کی طرف سے اذنِ عام اور وہ مکان بھی اذنِ عام کا صالح تو کسی شخص کو غیرِ جمعہ سے تو روکنا یا جمعہ میں اُس کا خود آنا یا کسی کا جبراً اُسے باز رکھنا قاطعِ اذنِ عام نہیں ہو سکتا جیسے زندانی لوگ کہ ہمیشہ حضوریِ مساجد سے ممنوع ہوتے ہیں یا اگر کوئی شخص بعض نمازیوں کو خاص وقتِ نماز اس لئے مقید کر لے کہ مسجد میں نہ جانے پائیں تو نہ یہ قادح اذنِ عام نہ مقیمانِ جمعہ پر اس کا الزام، بلکہ ظاہرًا ممانعتِ کرنیل بھی کوئی اپنی طرف سے حکمِ جبری نہیں انھیں پلٹن والوں کی خاطر سے ہے اور انھیں کی مرضی پر رکھا ہے جب یہ مزاحمت نہیں کرتے تو کرنیل کو پرخاش سے کیا مطلب، اور اگر یہ خود اُسے حاضریِ جمعہ سے باز رکھتے ہیں تو دیکھنا چاہئے کہ وہ شخص فی الواقع شریر و مفسد و موذی ہے کہ اُس کے آنے سے اندیشہ فتنہ ہے جب تو ایسی ممانعت بھی مانعِ صحتِ جمعہ نہ ہو گی کہ قادح اذنِ عام سے روکنا ہے۔

كما في الطحطاوی عن الحلبي لا بد من حملہ علی ما اذا منع الناس من الصلوۃ ۱۔

جیسا کہ طحطاوی میں حلبی سے ہے کہ اسے اس صورت پر محمول کرنا ضروری ہے جب وہ لوگوں کو نماز سے منع کرے۔ (ت)

شرح عیون المذاہب پھر مجمع الانہر پھر درِ مختار پھر فتح المعین علامہ ابو السعود ازہری میں ہے:

واللفظ لہ الجمعۃ بالقلعۃ صحیحۃ وان غلق بابھا لان الاذن العام مقرر لاھلھا وغلقہ لمنع عدو او عادۃ قدیمۃ لا للمصلی ۲

اس کے الفاظ یہ ہیں کہ قلعہ کے اندر جمعہ درست ہے اگرچہ اس کا دروازہ بند ہو کیونکہ اذنِ عام اہل قلعہ کے لئے ثابت ہے اور اس کا بند ہونا دشمنوں کے عدم دخول کے لئے ہے یا عادتِ قدیمہ ہے نمازی کو روکنے کے لئے نہیں۔ (ت)

اور یہ روکنا در حقیقت نماز سے رکنا نہیں بلکہ فتنہ سے بندش ہے،

1 طحطاوی علی الدر المختار باب الجمعۃ مطبوعہ دار المعرفہ بیروت ۱ / ۳۴۴ 2 فتح المعین باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۳۱۶

Fatawa Ridawiyyah, Volume 8

[Table Header: Left Column - Arabic Text/Context, Right Column - Urdu Translation]

Left Column (Arabic/Urdu)	Right Column (Urdu Translation/ Explanation)
As stated in ash-Shami from at-Tahtawi: Preventing women and the like is not harmful due to the fear of temptation (fitna).[1] [End quote]	As it is in Shami from Tahtawi that stopping women etc. is not harmful because there is a fear of fitna in their coming. (End)
I say: Explaining it by the lack of legal obligation is flawed by what is in ash-Shami from the scholar Isma'il, the Mufti of Damascus, student of the researcher al-Ala'i, author of ad-Durr al-Mukhtar, from the scholar Abdal-Ali al-Birjandi, commentator of an-Nuqayah: General permission means not to prevent anyone for whom Friday prayer is valid,[2] as is not hidden, so understand.	I say: To state the reason that they are not obligated (mukallaf) is related to the statement mentioned in Shami by the Mufti of Syria, Ismail Damishqi, who is a student of Muhaqqiq Alai, the author of Durr-e-Mukhtar, citing the commentator of Nuqaya, Allama Abdul Ali Birjandi, that general permission is that no such person should be stopped whose performance of Friday prayer would be valid, as this is not hidden. (T)
Scholars themselves state that harmful persons should be stopped from mosques.	
As in Umdat al-Qari by Imam al-Badr Mahmud al-Ayni, and in ar-Rasa'il az-Zayniyyah by Scholar Zayn bin Nujaym al-Misri, and in ad-Durr al-Mukhtar: Every harmful person should be barred from it (i.e., the mosque), even if the harm is verbal.[3]	As in Imam Badr Mahmud Ayni's Umdat-ul-Qari, Allama Zain bin Nujaim al-Misri's Rasa'il Zainiyyah, and in Durr-e-Mukhtar that every troublesome person should be prevented (from the mosque) even if he is one who causes trouble with his tongue. (T)
Thus, this stopping, which is in accordance with the Shariah, does not contradict general permission. But if it is not so, rather these people stop others purely out of oppression, without	

Left Column (Arabic/Urdu)	Right Column (Urdu Translation/ Explanation)
reason, or out of prejudice, then undoubtedly their Friday prayer is invalid, because preventing even one person nullifies the general permission.	
For it has passed from ash-Shami from Isma'il from al-Birjandi that no one should be prevented.	Previously, Shami wrote from Sheikh Ismail citing Birjandi that no one should be stopped. (T)
It is in Jami' al-Rumuz:	
General permission for prayer means that the door of the congregational mosque or the ruler's house is opened without any hindrance for anyone.	General permission for prayer is that the gate of the congregational mosque or the ruler's house [is opened] for entry without any hindrance.

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayer, published by Dar al-Kutub al-Arabiyyah, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/201 2. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayer, published by Dar al-Kutub al-Arabiyyah, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/200 3. ad-Durr al-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer, etc., published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/94

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[तालिका शीर्षक: बायां कॉलम - अरबी पाठ/संदर्भ, दायां कॉलम - उर्दू अनुवाद]

बायां कॉलम (अरबी/उर्दू)	दायां कॉलम (उर्दू अनुवाद/व्याख्या)
जैसा कि शामी में तहतावी से है: महिलाओं और उनके जैसों को रोकना हानिकारक नहीं है फ़ितना (बुराई) के डर से।[1] [समाप्त]	जैसा कि शामी में तहतावी से है कि औरतों वगैरह को रोकना हानिकारक नहीं क्योंकि उनके आने में फ़ितना का डर है। (समाप्त)
मैं कहता हूँ: इसे कानूनी बाध्यता की कमी से समझाना दोषपूर्ण है क्योंकि शामी में विद्वान इस्माइल, दमिश्क के मुफ्ती, शोधकर्ता अल-अलई के छात्र, अद-दुर्र अल-मुख्तार के लेखक, विद्वान अब्दुल अली अल-बिरजंदी, अन-नुक़ायह के टिप्पणीकार से है: सामान्य अनुमति का अर्थ है कि किसी को भी न रोका जाए जिसके लिए जुमे की नमाज़ वैध है,[2] जैसा कि छिपा नहीं है, इसलिए समझें।	अक़ौल (मैं कहता हूँ): यह इल्लत (कारण) बयान करना कि वे मुकल्लफ़ (बाध्य) नहीं हैं, उस बयान से संबंधित है जो शामी में सीरिया के मुफ़्ती इस्माइल दमिश्क़ी, जो मुहक़्क़िक़ अलाई साहब-ए-दुर्रे मुख़्तार के शागिर्द हैं, के हवाले से शारह नुक़ाया अल्लामा अब्दुल अली बिरजंदी से कहा कि इज़्ने आम (सामान्य अनुमति) यह है कि हर उस शख़्स को न रोका जाए जिससे जुमे की अदायगी सही हो जैसा कि यह मख़फ़ी (छिपा हुआ) नहीं है। (त)
विद्वान स्वयं कहते हैं कि कष्ट पहुँचाने वालों को मस्जिदों से रोका जाना चाहिए।	
जैसा कि इमाम अल-बद्र महमूद अल-ऐनी की उम्दतुल क़ारी में, और अल्लामा ज़ैन बिन नुजैम अल-मिस्री की अर-रसाइल अज़-ज़ैनिया में, और अद-दुर्र अल-मुख्तार में है: हर कष्टदायक व्यक्ति को इससे (अर्थात मस्जिद से) रोका जाना चाहिए, भले ही कष्ट मौखिक हो।[3]	जैसा कि इमाम बदर महमूद ऐनी की उम्दतुल क़ारी, अल्लामा ज़ैन बिन नुजैम अल-मिस्री के रसाईल ज़ैनिया और दुर्रे मुख़्तार में है कि (मस्जिद से) हर अज़ियत (कष्ट) देने वाले को मना किया जाए अगरचे वो ज़बान से अज़ियत देने वाला हो। (त)
तो यह रोकना जो शरीयत के अनुसार है, सामान्य अनुमति के विपरीत नहीं है। और यदि ऐसा नहीं है, बल्कि ये लोग केवल ज़ुल्म के	

बायां कॉलम (अरबी/उर्दू)	दायां कॉलम (उर्दू अनुवाद/व्याख्या)
कारण बिना वजह या पक्षपात के कारण रोकते हैं, तो निस्संदेह उनका जुमा बातिल (अमान्य) है क्योंकि एक व्यक्ति की मनाही भी सामान्य अनुमति को रद्द कर देती है।	
क्योंकि शामी से इस्माइल के माध्यम से बिरजंदी से गुज़र चुका है कि किसी को न रोका जाए।	पहले शामी ने शैख़ इस्माइल से बिरजंदी के हवाले से लिखा कि किसी को मना न किया जाए। (त)
जामेउर रुमूज़ में है:	
नमाज़ के लिए सामान्य अनुमति यह है कि जामा मस्जिद या शासक के घर का दरवाज़ा बिना किसी बाधा के सबके लिए खोल दिया जाए।	नमाज़ के लिए इज़्ने आम यह है कि दाख़िले के लिए बिना रुकावट जामे मस्जिद या दार-ए-सुलतान का दरवाज़ा [खोला जाए]।

पादलेख (फुटनोट): 1. रद-उल-मुहतार बाबुल जुमा, मतबुआ दारुल कुतुब अल-अरबिया, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/201 2. रद-उल-मुहतार बाबुल जुमा, मतबुआ दारुल कुतुब अल-अरबिया, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/200 3. दुर्रे मुख़्तार बाब मा-युफ़्सिदुस सलात अलख, मतबुआ मतबा-ए-मुजतबाई, देहली, 1/94

کالم بائیں (عربی/اردو)

کما فی الشامی عن الطحطاوی لا یضر منع نحو النساء لخوف الفتنہ ۱۸ انتھی۔

اقول: وتعلیلہ بعدم التکلیف معلول بما فی الشامی عن العلامۃ اسمعیل مفتی دمشق الشام تلمیذ المحقق العلائی صاحب الدرالمختار عن العلامۃ عبدا لعلی البرجندی شارح النقایۃ ان الاذن العام ان لا یمنع احدا ممن تصح منہ الجمعۃ ۲۸ کما لا یخفی فافھم۔

علماء خود فرماتے ہیں کہ موذیوں کو مساجد سے روکا جائے۔

کما فی عمدۃ القاری للامام البدر محمود العینی وفی الرسائل الزینیۃ للعلامۃ زین بن نجیم المصری وفی الدرالمختار یمنع منہ (ای من المسجد) کل موذ ولو بلسانہ ۳۸۔

کالم دائیں (اردو ترجمہ/تشریح)

جیسا کہ شامی میں طحطاوی سے ہے کہ عورتوں وغیرہ کو روکنا مضر نہیں کیونکہ ان کے آنے میں فتنہ کا ڈر ہے۔ انتہٰی

اقول : یہ علّت بیان کرنا کہ وہ مکلّف نہیں ، اس کا تعلق اس بیان سے ہے جو شامی میں مفتی شام جو اسمعیل دمشقی جو محقق علائی صاحب درِ مختار کے شاگرد ہیں سے شارح نقایہ علامہ عبدالعلی برجندی کے حوالے سے کہا کہ اذنِ عام یہ ہے کہ ہر اس شخص کو نہ روکا جائے جن سے جمعہ کی ادائیگی صحیح ہو جیسا کہ یہ مخفی نہیں ہے۔ (ت)

جیسا کہ امام بدر محمود عینی کی عمدۃ القاری، علامہ زین بن نجیم المصري کے رسائل زینیہ اور درِ مختار میں ہے کہ (مسجد سے) ہر اذیت دینے والے کو منع کیا جائے اگرچہ وہ زبان سے اذیت دینے والا ہو۔ (ت)

کالم بائیں (عربی/اردو) **کالم دائیں (اردو ترجمہ/تشریح)**

تو یہ روکنا کہ مطابق شرع ہے منافی اذن

نہیں ، اور اگر ایسا نہیں بلکہ یہ لوگ

محض ظلماً بلا وجہ یا براء تعصب

روکتے ہیں تو بلا شبہ ان کا جمعہ باطل

کہ ایک شخص کی ممانعت بھی اذن عام

کی مبطل،

فقد مرعن الشامی عن اسمعیل عن پہلے شامی نے شیخ اسمعیل سے برجندی کے حوالے

البرجندی ان لا یمنع احدا۔ سے لکھا کہ کسی کو منع نہ کیا جائے۔ (ت)

جامع الرموز میں ہے :

الاذن العام بالصلوۃ بان یفتح باب الجامع او نماز کے لئے اذنِ عام یہ ہے کہ داخلہ کے لئے بلا

دار لسطان بلا مانع لا حد من رکاوٹ جامع مسجد یا دارِ سلطان کا دروازہ

حواشی: 1. ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ دار الکتب العربیہ مصطفیٰ البانی مصر ۱ / ۲۰۱ 2. ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ دار الکتب العربیہ مصطفیٰ البانی مصر ۱ / ۲۰۰ 3. درمختار باب مایفسد الصلوۃ الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۹۴

Fatawa-e-Razviya Volume 8

[Arabic]: Entry into it[1] ... This is all I have grasped through understanding from all their statements, and I hope it is correct, God willing. [Urdu]: Let it be opened. I have understood this from the statements of all the jurists, and God willing, I hope it is correct. (T)

There are ten Sunnahs: four before and four after, as explicitly stated in all the foundational texts (Mutoon), and authentic Hadith regarding them are present in Sahih Muslim. (The fact of them being four is definitely specified in the texts, and authentic Hadith regarding them is also narrated in Sahih Muslim. -T) And two more after that, making it six Sunnahs after Friday prayer, which is established both through Hadith and jurisprudence and is more cautious (the chosen and cautious approach according to Hadith and jurisprudence. -T). This is the preferred view, although the four that our Imams agree upon are more emphasized than these two.

[Table - Arabic Column]: A Hadith from Abu Dawud with a sound chain, and Al-Hakim authenticated it based on the criteria of the two Sheikhs [Bukhari and Muslim], from Ibn Umar (may Allah be pleased with them both), that whenever he was in Makkah and prayed the Friday prayer, he would step forward and pray two units (Rak'ahs), then step forward and pray four units.[2] (And in it is mentioned): He said: the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to do that.[3] This is a summary, and the complete discussion on it is in 'Al-Fath'. Imam Al-Tahawi in 'Sharh Ma'ani al-Athar' narrates from Abu Abdur Rahman al-Sulami, who said: Abdullah (meaning Ibn Mas'ud, may Allah be pleased with him) came to us and he used to pray four units after the Friday prayer. Then after him, Ali (may Allah be pleased with him) came, and when he prayed Friday prayer, he would pray two units after it and then four. We liked the action of Ali (may Allah be pleased with him), so we chose it.[3] In 'Fath Abu al-Saud al-Azhar' under the saying of Miskin, it says: Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) said...

[Table - Urdu Column]: There is a Hadith in Abu Dawud with a sound chain, and Al-Hakim, after extracting it, said that it is on the conditions of Bukhari and Muslim... that regarding Hazrat Ibn Umar (may Allah be pleased with them both), when he was in Makkah and performed Friday prayer, he stepped forward and performed two Rak'ahs, then stepped forward and performed four Rak'ahs (and it is in the same): he said the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) used to do so. This is a summary and all the discussion on it is in 'Al-Fath'. Imam Tahawi, in 'Sharh Ma'ani

al-Athar', narrates with reference to Abu Abdur Rahman al-Sulami that Hazrat Abdullah (Ibn Mas'ud, may Allah be pleased with him) came to us, and he performed four Rak'ahs after the Friday prayer. After that, Hazrat Ali (may Allah be pleased with him) came, and his practice was that after Friday prayer he performed two Rak'ahs first then four Rak'ahs; we liked the action of Hazrat Ali (may Allah be pleased with him) very much.

---

1. Jami al-Rumuz, Chapter on Friday Prayer, published by Maktaba-e-Islamia, Gumbad Qamus Iran 1/265
2. Sunan Abu Dawud, Chapter on Prayer after Friday, published by Nur Muhammad Asah al-Matabi Karachi 1/120
3. Sharh Ma'ani al-Athar, Chapter on Voluntary Prayer after Friday, published by H.M. Saeed Company Karachi 1/233

फतावा-ए-रजविया खंड 8

[अरबी]: इसमें प्रवेश करना[1] ... यह सब मैंने उनके सभी कथनों से समझ के माध्यम से ग्रहण किया है, और मुझे आशा है कि यह सही है, यदि ईश्वर ने चाहा। [उर्दू]: खोल दिया जाए। मैंने यह सभी फ़कीहों (धर्मशास्त्रियों) के कथनों से समझा है और ईश्वर ने चाहा तो उम्मीद है कि यह सही है। (त)

दस सुन्नतें हैं, चार पहले और चार बाद में, जैसा कि सभी मूल ग्रंथों (मुतून) में स्पष्ट रूप से उल्लेखित है और उनके बारे में सही मुस्लिम में सही हदीस भी मौजूद है। (उनके चार होने पर ग्रंथों में स्पष्ट विवरण है और सही मुस्लिम में उनके बारे में सही हदीस भी आई है। -त) और दो बाद की, कि जुमा के बाद छह सुन्नतें होना हदीस और फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) दोनों से सिद्ध और अधिक एहतियाती (चुना हुआ और एहतियाती हदीस और फ़िक़्ह के अनुसार। -त) है। यह पसंदीदा मत है, हालांकि वे चार जिन पर हमारे इमाम सहमत हैं, इन दो की तुलना में अधिक बल देने वाली (मुअक्कद) हैं।

[तालिका - अरबी कॉलम]: अबू दाऊद से एक सही सनद के साथ हदीस है, और अल-हाकिम ने इसे दो शेखों [बुखारी और मुस्लिम] की शर्तों पर सही बताया है, इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से, कि जब भी वे मक्का में होते और जुमा की नमाज़ पढ़ते, तो वे आगे बढ़ते और दो रकात अदा करते, फिर आगे बढ़ते और चार रकात अदा करते।[2] (और इसमें उल्लेख है): उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ऐसा ही किया करते थे।[3] यह संक्षिप्त है, और इस पर पूरी चर्चा 'अल-फतह' में है। इमाम अल-तहवी 'शर्ह मानी अल-आसार' में अबू अब्दुर रहमान अल-सुलमी से रिवायत करते हैं, जिन्होंने कहा: अब्दुल्ला (अर्थात् इब्न मसूद, रज़ियल्लाहु अन्हु) हमारे पास आए और वे जुमा की नमाज़ के बाद चार रकात पढ़ा करते थे। फिर उनके बाद अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) आए, और जब वे जुमा की नमाज़ पढ़ते, तो उसके बाद दो रकात और फिर चार रकात पढ़ते थे। हमें अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कार्य पसंद आया, इसलिए हमने इसे चुना।[3] 'फतह अबू अल-सऊद अल-अज़हर' में मिस्कीन के कथन के तहत है: अबू यूसुफ (रहमतुल्लाह अलैह) ने कहा...

[तालिका - उर्दू कॉलम]: अबू दाऊद में सही सनद के साथ हदीस है, हाकिम ने इसकी तख़रीज (निष्कर्ष) कर के कहा कि यह बुखारी और मुस्लिम की शर्तों पर है... कि हज़रत इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के बारे में है कि जब वे मक्का में थे और जुमा की नमाज़ अदा की तो आगे बढ़े और दो रकात अदा कीं, फिर आगे बढ़े और चार रकात अदा कीं (और इसी में है) कहा: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इसी तरह किया करते थे। यह संक्षिप्त है और इस पर पूरी चर्चा 'अल-

फतह' में है। इमाम तहवी 'शर्ह मानी अल-आसार' में अबू अब्दुर रहमान अल-सुलमी के हवाले से बयान करते हैं कि हज़रत अब्दुल्ला (इब्न मसूद, रज़ियल्लाहु अन्हु) हमारे यहाँ तशरीफ़ लाए तो आपने जुमा के बाद चार रकात अदा कीं, उसके बाद हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) तशरीफ़ लाए और आपका तरीका था कि जुमा के बाद पहले दो रकात फिर चार रकात अदा करते, हमें हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कार्य बहुत पसंद आया।

---

1. जामिउर रूमूज़, जुमा की नमाज़ का अध्याय, प्रकाशित मकतबा-ए-इस्लामिया, गुम्बद क़ामूस ईरान 1/265
2. सुनन अबू दाऊद, जुमा के बाद की नमाज़ का अध्याय, प्रकाशित नूर मुहम्मद असह अल-मताबि कराची 1/120
3. शर्ह मानी अल-आसार, जुमा के बाद की नफल नमाज़ का अध्याय, प्रकाशित एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/233

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

الدخول فیه[1] اه هذا کله مما اخذته تفقهًا من کلما تهم وارجو ان یکون صواباً ان شاء الله تعالٰی۔ کھول دیا جائے اھ اور یہ تمام فقہاء کی عبارات سے میں نے سمجھا ہے اور ان شاء اللہ امید ہے کہ یہ صواب ہے۔ (ت)

دس سنتیں ہیں، چار پہلے چار بعد ہی منصوص علیہن في المتون قاطبة وقد صح بهن الحدیث في صحیح مسلم (ان کے چار ہونے پر متون میں قطعاً تصریح ہے اور صحیح مسلم میں ان کے بارے میں صحیح حدیث بھی وارد ہے۔ت) اور دو بعد کو اور، کہ بعد جمعہ چھ سنتیں ہونا ہی حدیثاً وفقہاً ثابت و احوط (مختار و محتاط حدیث و فقہ کے اعتبار سے۔ ت) مختار ہے اگرچہ چار کہ ہمارے ائمہ میں متفق علیہ ہیں ان دو سے مؤکد تر ہیں۔

لحدیث ابوداؤد دبسند صحیح والحاکم وصححه علی شرط الشیخین عن ابن عمر رضی الله تعالٰی عنهما انه کان اذاکان بمکة فصلی الجمعة تقدم فصلی رکعتین ثم تقدم فصلی اربعاً[2] وفیه) فقال کان رسول الله صلی الله تعالٰی علیه وسلم یفعل ذلك[3] هذا مختصر وتمام الکلام علیه فی الفتح، والامام الطحاوی فی شرح معانی الآثار عن ابی عبدالرحمن السلمی قال قدم علینا عبد الله (یعنی ابن مسعود رضی الله تعالٰی عنہ) فکان یصلی بعد الجمعة اربعاً فقدم بعده علی رضی الله تعالٰی عنہ فکان اذا صلی الجمعة صلی بعدها رکعتین واربعاً فاعجبنا فعل علی رضی الله تعالٰی عنہ فاخترناه[3]۔ فی فتح ابو السعود الازهر تحت قول مسکین قال ابو یوسف رحمه الله

ابو داؤد میں سند صحیح کے ساتھ حدیث ہے، حاکم نے تخریج کر کے کہا کہ بخاری و مسلم کے شرائط پر ہے ____ کہ حضرت ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما کے بارے میں ہے کہ جب مکہ میں

تھے جمعہ ادا فرمایا تو آگے بڑھے دو رکعات ادا کیں پھر آگے بڑھے تو چار رکعت ادا کیں (اور اسی میں ہے) فرمایا رسالت مآب صلی اللہ علیہ وسلم اسی طرح کیا کرتے تھے۔ یہ مختصر ہے اور اس پر تمام گفتگو فتح میں ہے، امام طحاوی شرح معانی الآثار میں ابو عبدالرحمٰن السلمی کے حوالے سے بیان کرتے ہیں کہ حضرت عبد اللہ (ابن مسعود رضی اللہ عنہ) ہمارے ہاں تشریف لائے تو آپ نے جمعہ کے بعد چار رکعات ادا کیں، اس کے بعد حضرت علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ تشریف لائے اور آپ کا طریقہ تھا کہ جمعہ بعد پہلے دو رکعات پھر چار رکعات ادا کرتے، ہمیں حضرت علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا فعل نہایت ہی پسند آیا

---

1 جامع الرموز فصل صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ السلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۲۶۵ 2 سنن ابو داؤد باب الصلوۃ بعد الجمعۃ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۱۲۰ 3 شرح معانی الآثار باب التطوع بعد الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۳۳

Fatawa Razawiya - Volume 8

[Boxed Text:] Sunnah prayer after Friday prayer is six rak'ahs. (End of quote). We have adopted this. In Fath Abu Saud Azhari, under Miskeen's statement, it is mentioned: Imam Abu Yusuf (may Allah be pleased with him) said: There are six rak'ahs after Friday (End of quote). Tahawi and most scholars have preferred this view. 'Nahr' mentioned it referring to 'Uyun al-Madhahib' and 'At-Tajnis'. (1) End of quote. In 'Jawahir al-Akhlati', it is stated that this is taken from the Judge (Qazi), most scholars followed it, and it is the preferred view. (2) End of quote. In 'Majma' al-Anhur', it is stated that Tahawi and most of our scholars followed it, and today it is practiced. (3) End of quote. In 'Al-Bahr al-Ra'iq', it is stated that in 'Ad-Dhakhirah' and 'At-Tajnis', the majority of our scholars are of the opinion of Imam Abu Yusuf. In 'Munyat al-Musalli', it is stated: according to us, the best way is to pray four and then two rak'ahs. (4) End of quote. In 'Al-Ghunya', it is stated: to avoid disagreement, it is best to pray four rak'ahs then two rak'ahs. (5) End of quote. (T)

And common people do not need the precautionary Zuhr prayer, as we have detailed in our fatwas (as we explained in detail in our fatwas. T). And Allah Almighty knows best.

Problem 1282: From Bhaura Kalan, Pargana district Pilibhit, sent by Sheikh Salar Bakhsh, 21 Jamadi al-Awwal 1309 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: whether after Friday prayer, four rak'ahs of Zuhr obligatory prayer should be recited like voluntary (nafl) prayer, i.e., by reciting a surah in all four rak'ahs or not? Explain and be rewarded.

Answer: In those cities and towns where there is doubt regarding the fulfillment of the conditions for Friday prayer, or where Friday prayer is held in multiple locations, and nowadays...

1. Fath al-Mu'een, chapter on Witr and Nawaafil, printed by HM Saeed Company, Karachi 1/253.
2. Jawahir al-Akhlati, chapter on Congregation, unpublished manuscript p. 42.
3. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, chapter on Witr and Nawaafil, printed by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut 1/130.
4. Al-Bahr al-Ra'iq, chapter on Witr and Nawaafil, printed by HM Saeed Company, Karachi 2/79.

5. Ghunya al-Mustamli, chapter on Nawaafil, printed by Suhail Academy, Lahore p. 389.

फ़तावा रज़विया - जिल्द आठ

[बॉक्स में लिखा पाठ:] जुमे की नमाज़ के बाद सुन्नत छह रकात है। (उद्धरण समाप्त)। हमने इसी को अपनाया है। फ़तह अबू सऊद अज़हरी में मिस्कीन के कथन के तहत है: इमाम अबू यूसुफ़ (अल्लाह उन पर रहम करे) ने फ़रमाया: जुमे के बाद छह रकात हैं (उद्धरण समाप्त)। इसे तहवी और अधिकांश विद्वानों ने पसंदीदा माना है। 'नहर' ने 'उयून अल-मज़ाहिब' और 'अत-तजनीस' के संदर्भ में इसका वर्णन किया है। (1) उद्धरण समाप्त। 'जवाहर अल-अख़लाती' में है कि यह काज़ी से लिया गया है और अधिकांश विद्वानों ने इस पर अमल किया है और यही पसंदीदा मत है। (2) उद्धरण समाप्त। 'मजमा अल-अनहुर' में है कि तहवी और हमारे अधिकांश विद्वानों ने इस पर अमल किया और आज इसी पर अमल किया जाता है। (3) उद्धरण समाप्त। 'अल-बहर अल-राईक' में है कि 'अद-ज़ख़ीरा' और 'अत-तजनीस' में अधिकांश विद्वान इमाम अबू यूसुफ़ के मत पर हैं। 'मुनियत अल-मुसल्ली' में है: हमारे यहाँ बेहतर यह है कि पहले चार और फिर दो रकात पढ़ी जाएँ। (4) उद्धरण समाप्त। 'अल-गुनिया' में है: मतभेद से बचने के लिए बेहतर यही है कि पहले चार रकात और फिर दो रकात पढ़ी जाएँ। (5) उद्धरण समाप्त। (त)

और आम लोगों को एहतियाती ज़ुहर की कोई ज़रूरत नहीं है जैसा कि हमने अपने फ़तावा में विस्तार से बताया है (जैसा कि हमने अपने फ़तावा में इसका विस्तार से वर्णन किया है। त)। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1282: भौर कलां, परगना ज़िला पीलीभीत से शेख सालार बख्श द्वारा भेजा गया, 21 जमादी अल-अव्वल 1309 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि जुमे की नमाज़ के बाद चार रकात फ़र्ज़ ज़ुहर को नफ़्ल की तरह, यानी चारों रकातों में सूरह मिलाकर पढ़ना चाहिए या नहीं? बयान करें और पुण्य के पात्र बनें।

उत्तर: वे शहर और कस्बे जिनमें जुमे की शर्तों के इकट्ठा होने में संदेह हो या जहाँ जुमा कई स्थानों पर होता हो और आज कल...

1. फ़तह अल-मुईन, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल, मुद्रित एचएम सईद कंपनी, कराची 1/253
2. जवाहर अल-अख़लाती, फ़स्ल फ़िल जमाअत, अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति पृ. 42
3. मजमा अल-अनहुर शरह मुल्तका अल-अबहुर, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल, मुद्रित दार इहया अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत 1/130

4. बहर अल-राईक, बाब अल-वित्र वल-नवाफ़िल, मुद्रित एचएम सईद कंपनी, कराची 2/79
5. गुनिया अल-मुस्तमली, फ़स्ल फ़िल नवाफ़िल, मुद्रित सुहैल अकादमी, लाहौर पृ. 389

[باکس کی عبارت:] تَعَالٰی السُنَّۃُ بَعْدَ صَلَاۃِ الْجُمُعَۃِ سِتٌّ رَکَعَاتٍ اھ تو ہم نے اسی کو اختیار کرلیا، فتح ابو سعود ازہری میں مسکین کے قول کے تحت ہے امام ابویوسف رحمہ اللہ تعالٰی نے فرمایا: جمعہ کے بعد چھ رکعات ہیں اھ، اسے طحاوی اور اکثر مشائخ نے مختار کہا ہے۔ نہر نے عیون المذاہب اور تجنیس کے حوالے سے بیان کیا ہے۔ (1) اھ فی الجواھر الاخلاطی ھو ما خوذ عن القاضی واخذ بہ اکثر المشائخ وھو المختار (2) اھ فی مجمع الانھر بہ اخذ الطحاوی واکثر المشائخ منا و بہ یعمل الیوم (3) اھ فی البحر الرائق فی الذخیرۃ والتجنیس وکثیر من مشائخنا علی قول ابی یوسف وفی منیۃ المصلی والا فضل عندنا ان یصلی اربعاثم رکعتین (4) اھ فی الغنیۃ الافضل ان یصلی اربعاثم رکعتین للخروج عن الخلاف (5) اھ (ت)

اور عام لوگوں کو احتیاطی ظہر کی کچھ ضرورت نہیں کما فصلنا فی فتاؤنا (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاوی میں اسے تفصیلاً بیان کیا ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۸۲: از بھورہ کلاں پر گنہ ضلع پیلی بھیت مرسلہ شیخ سالار بخش ۲۱ جمادی الاولی ۱۳۰۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ بعد نماز جمعہ چار رکعت فرض ظہر مثل نفل یعنی چاروں رکعتوں میں سورت ملا کر پڑھنا چاہئے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: وہ شہر و قصبات جن میں شرائط جمعہ کے اجتماع میں اشباہ واقع ہو یا جمعہ متعدد جگہ ہوتا ہو اور آج کل

1 فتح المعین باب الوتر والنوافل مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۵۳ 2 جواہر الاخلاطی فصل فی الجماعت غیر مطبوعہ قلمی نسخہ ص ۴۲ 3 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب الوتر

والنوافل مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۱ / ۱۳۰ 4 بحر الرائق باب الوتر والنوافل مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۷۹ 5 غنیہ لمستمل فصل فی النوافل مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۳۸۹

صفحہ 293 از 673

Fatawa Razawiyya, Volume 8

The common cities of India are such that our noble scholars have commanded that after the Friday (Jumu'ah) prayer, one should perform four rak'ahs of precautionary obligatory prayer (Ihtiyati Fard) with the intention that: "I perform that previous Dhuhr (noon prayer) whose time I did not find and have not performed until now." These four rak'ahs should be performed after the four Sunnah prayers following Jumu'ah. And if someone does not have any missed Dhuhr prayers from their lifetime (Qada-e-Umri), they should also include a Surah in all four rak'ahs. Then, after these rak'ahs, they should perform the two Sunnah rak'ahs of the time with the intention of the Sunnah of the time. While praying Jumu'ah, keep the intention correct and firm, considering it valid and specifically intending the obligatory Jumu'ah prayer. If it is not performed with the intention of being obligatory, then Jumu'ah will certainly not be valid, and these four rak'ahs will no longer be merely precautionary; rather, performing Dhuhr will become obligatory. Once performed with such a correct intention, do not intend in these four rak'ahs that "I am praying today's Dhuhr," but rather keep the same vague intention: "I am performing that previous Dhuhr which I did not find and have not performed," regardless of which day it was from. Do not confuse your thoughts further. By praying in this way, one will benefit: if perhaps in Divine Knowledge, the Jumu'ah was not valid due to the absence of some conditions, then these rak'ahs will become today's Dhuhr, as in this case, this Dhuhr is the "previous" one whose time was found and has not yet been discharged from responsibility. If the Jumu'ah was valid, then any Dhuhr prayer from before today that was still due (whether because it wasn't prayed at all or became invalid for some reason) will be fulfilled. If no Dhuhr remains due, then these rak'ahs will become voluntary (Nafl). For this reason, those who do not have lifetime missed Dhuhr prayers should recite a Surah in all four rak'ahs, because if they become Nafl and a Surah was not recited, a mandatory (Wajib) act would be missed, making the prayer prohibitively disliked (Makruh Tahrimi). However, for those who do have lifetime missed prayers, there is no need to recite a Surah in the last two rak'ahs, as their obligatory (Fard) prayer will be fulfilled either way. If Jumu'ah didn't happen, it's today's; if it did, it's from before today. All this detail is according to the actual state; the worshiper is not commanded to have this doubt and hesitation in their intention, as intention and hesitation are mutually exclusive. If a vacillating intention is made, that purpose of precaution will never be achieved. Therefore, perform it with a vague intention without thinking of hesitation and leave the matter of the actual state to

Divine Knowledge. Furthermore, such correction of intention is somewhat difficult for laypeople, and there is a fear that because of this, they might begin to think that Jumu'ah is not among God's obligations at all, or they might think there are double obligations on Friday - two rak'ahs separate and four separate. For this reason, the scholars have said that such people should not be commanded to perform these rak'ahs. It is enough for them that their prayer be correct according to some narrations; they do not need such precaution. Yes, for the elite, i.e., those who can make such an intention and from whom those fears do not exist, they should perform this precaution so that God's obligation is certainly fulfilled and no room for doubt or possibility remains. The humble writer has already written this issue in detail with evidence in his Fatawa; here, only two or three passages are excerpted. In Fatawa Alamgiri, it is stated:

[In every place where doubt has occurred regarding the permissibility of Jumu'ah due to doubt occurring regarding it being a city or otherwise, and its people established it...] In every place where, due to doubt about whether Jumu'ah should be held or not, a doubt arises in the permissibility of Jumu'ah, there after Jumu'ah...

हिन्दुस्तान के आम शहर ऐसे ही हैं जहाँ हमारे उलेमा-ए-किराम ने यह हुक्म दिया है कि जुमा की नमाज़ के बाद चार रकअत फर्ज़ एहतियाती इस नियत से अदा करे कि: "पिछली वह ज़ोहर जिसका वक़्त मैंने नहीं पाया और अब तक अदा नहीं की," ये चार रकअतें जुमा के बाद वाली चारों सुन्नतों के बाद पढ़े। और जिस पर उम्र भर की कोई ज़ोहर की नमाज़ क़ज़ा न हो (क़ज़ा-ए-उमरी), वह इन चारों रकअतों में (सूरह फ़ातिहा के साथ) कोई सूरह भी मिलाए। फिर इन रकअतों के बाद जुमा की दो सुन्नतें वक़्त की सुन्नत की नियत से अदा करे। जुमा पढ़ते समय नियत को सही और पक्का रखे, जुमा को सही मानकर विशेष रूप से जुमा के फर्ज़ की नियत करे। यदि फर्ज़ की नियत से अदा नहीं किया, तो जुमा निश्चित रूप से नहीं होगा और फिर ये चार रकअतें केवल एहतियाती नहीं रहेंगी, बल्कि ज़ोहर पढ़ना फर्ज़ हो जाएगा। और जब इस प्रकार सही नियत से अदा कर चुका, तो इन चार रकअतों में यह नियत न करे कि "आज की ज़ोहर पढ़ता हूँ," बल्कि वही गोल-मोल (अस्पष्ट) नियत रखे कि "वह पिछली ज़ोहर जो मैंने नहीं पाई और अदा नहीं की, उसे अदा करता हूँ," चाहे वह किसी भी दिन की हो। इससे ज़्यादा विचारों को परेशान न करे। इस तरह पढ़ने में यह लाभ होगा कि यदि शायद ईश्वरीय ज्ञान में कुछ शर्तों के छूट जाने के कारण जुमा सही न हुआ हो, तो ये रकअतें आज ही की ज़ोहर हो जाएँगी, क्योंकि उस स्थिति में यही ज़ोहर वह "पिछली" है जिसका वक़्त उसे मिला और अभी ज़िम्मेदारी से नहीं उतरी। और अगर जुमा सही हो गया, तो आज से पहले की जो ज़ोहर उसके ज़िम्मे रही होगी (चाहे बिल्कुल न पढ़ी हो या किसी कारण से खराब हो गई हो), वह अदा हो जाएगी। और अगर कोई ज़ोहर ज़िम्मे न रही होगी, तो ये रकअतें नफ़्ल हो जाएँगी। इसी कारण से, जिस पर उम्र भर की कोई ज़ोहर क़ज़ा न हो, वह चारों रकअतों में सूरह मिलाए, क्योंकि अगर ये नफ़्ल हुईं और सूरह न मिलाई तो वाजिब छूट जाने के कारण नमाज़ मकरूह-ए-तहरीमी होगी। हाँ, जिस पर क़ज़ा-ए-उमरी है, उसे पिछली दो रकअतों में सूरह मिलाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि उसके हर हाल में फर्ज़ ही अदा होंगे। जुमा न हुआ तो आज के और हुआ तो आज से पहले के। यह सारी विस्तार वास्तविक स्थिति के आधार पर है; नमाज़ी को नियत में इस शक और झिझक का हुक्म नहीं है, क्योंकि नियत और झिझक एक-दूसरे के विपरीत हैं। यदि ऐसी डगमगाती नियत की, तो वह उद्देश्य और एहतियात (सावधानी) कभी प्राप्त नहीं होगा। इसलिए इसी तरह गोल-मोल नियत से बिना किसी झिझक के अदा करे और वास्तविक स्थिति का मामला ईश्वरीय ज्ञान पर छोड़ दे। फिर ऐसी नियत सुधारना आम अनपढ़ लोगों के लिए थोड़ा कठिन है और उनसे यह डर भी है कि इसके कारण

वे कहीं यह न समझने लगें कि जुमा मूल रूप से ईश्वर के फर्ज़ों में से ही नहीं है, या यह समझने लगें कि जुमा के दिन दोहरे फर्ज़ हैं - दो रकअतें अलग और चार अलग। इसीलिए उलेमा ने फरमाया कि ऐसे लोगों को इन रकअतों का हुक्म न दिया जाए। उनके हक़ में यही बहुत है कि कुछ रिवायतों पर उनकी नमाज़ ठीक हो जाए; उन्हें ऐसी एहतियात की ज़रूरत नहीं है। हाँ, खास लोग यानी जो लोग इस प्रकार की नियत कर सकते हों और जिनसे वे डर न हों, वे यह एहतियात अमल में लाएँ ताकि निश्चित रूप से ईश्वर का फर्ज़ अदा हो जाए और किसी संदेह या संभावना की गुंजाइश न रहे। यह फकीर (लेखक) अपने फतावा में इस मसले को विस्तार और दलीलों के साथ लिख चुका है; यहाँ केवल दो-तीन इबारतों (उद्धरणों) पर बस किया जा रहा है। फ़तावा आलमगीरी में है:

[अरबी उद्धरण: हर उस जगह जहाँ जुमा के जायज़ होने में शक हो जाए, शहर होने या न होने के शक के कारण, और वहाँ के लोग उसे कायम करें...] हर वह मुकाम जहाँ जुमा होने या न होने में शक की वजह से जवाज़-ए-जुमा (जुमा के जायज़ होने) में शक हो जाए, वहाँ जुमा के बाद...

पेज 294 of 673

ہندوستان کے عام بلاد ایسے ہی ہیں ایسی جگہ ہمارے علمائے کرام نے حکم دیا ہے کہ بعد جمعہ چار رکعت فرض احتیاطی اس نیت سے ادا کرے کہ پچھلی وہ ظہر جس کا وقت میں نے نہ پایا اور اب تک ادا نہ کی یہ چار رکعتیں چاروں سنت بعد یہ جمعہ کے بعد پڑھے اور جس پر ظہر کی قضائے عمری نہ ہو وہ چاروں میں سورت بھی ملائے پھر جمعہ کی دو سنتیں ان رکعتوں کے بعد بہ نیت سنت وقت ادا کرے جمعہ پڑھتے وقت نیت صحیح و ثابت رکھے جمعہ کو صحیح سمجھ کر خاص فرض جمعہ کی نیت کرے اگر بہ نیت فرض ادا نہ کیا تو جمعہ یقیناً نہ ہوگا اور اب یہ چار رکعتیں نری احتیاطی نہ رہیں گی بلکہ ظہر پڑھنی فرض ہو جائے گی، اور جب یوں نیت صحیحہ سے ادا کر چکا تو ان چار رکعتوں میں یہ نیت نہ کرے کہ آج کی ظہر پڑھتا ہوں بلکہ وہی گول نیت رکھے کہ جو پچھلی ظہر میں نے نہیں پائی اور ادا نہ کی اسے ادا کرتا ہوں خواہ وہ کسی دن کی ہو اس سے زیادہ خیالات پریشان نہ کرے، یوں پڑھنے میں یہ نفع پائے گا کہ اگر شاید علم الٰہی میں بوجہ فوت بعض شرائط جمعہ صحیح نہ ہوا ہوگا تو یہ رکعتیں آج ہی کی ظہر ہو جائیں گی کہ اس صورت میں یہی ظہر وہ پچھلی ہے جس کا وقت اسے ملا اور ابھی ذمہ سے ساقط نہ ہوئی اور اگر جمعہ صحیح واقع ہوا تو آج سے پہلے کی جو ظہر اس کے ذمہ رہی ہوگی (خواہ یوں کہ سرے سے پڑھی ہی نہ تھی یا کسی وجہ سے فاسد ہو گئی) وہ ادا ہو جائے گی اور اگر کوئی ظہر نہ رہی ہوگی تو یہ رکعتیں نفل ہو جائیں گی ، اسی لحاظ سے جس پر قضائے عمری ظہر کی نہ ہو یہ چاروں رکعتیں بھری پڑھیں کہ اگر نفل ہوئیں اور سورت نہ ملائی تو واجب چھوٹ کر نماز مکروہ تحریمی ہوگی، ہاں جس پر قضائے عمری ہے اسے پچھلی دو میں سورت ملانے کی حاجت نہیں کہ اس کے ہر طرح فرض ہی ادا ہوں گے، جمعہ نہ ہوا تو آج کے اور ہوا تو آج سے پہلے کے یہ سب

تفصیل واقع کے اعتبار سے ہے نمازی کو نیت میں اس شک و تردد کا حکم نہیں کہ نیت و تردد باہم منافی ہیں اگر یونہی مذبذب نیت کی تو وہ مقصود و احتیاط ہرگز حاصل نہ ہوگا لہٰذا اسی طرح گول نیت سے بے خیال تردد بجالائے اور واقع کا معاملہ علم الٰہی پر چھوڑ دے، پھر ایسی تصحیح نیت نرے جاہلوں کو ذرا دشوار ہے اور ان سے یہ بھی اندیشہ کہ اس کے سبب کہیں یہ نہ جاننے لگیں کہ جمعہ سرے سے خدا کے فرضوں میں ہی نہیں سمجھنے لگیں کہ جمعہ کے دن دوہرے فرض ہیں دورکعتیں الگ چار الگ اسی لئے علماء نے فرمایا کہ ایسے لوگوں کو ان رکعتوں کا حکم نہ دیا جائے ان کے حق میں یہی بہت ہے کہ بعض روایات پر ان کی نماز ٹھیک ہو جائے انھیں ایسی احتیاط کی حاجت نہیں، ہاں خواص یعنی جو لوگ اس طرح کی نیت کر سکتے ہوں اور ان سے وہ اندیشے نہ ہوں وہ یہ احتیاط بجالائیں تا کہ یقیناً فرض خدا ادا ہو جائے اور شبہ و احتمال کی گنجائش نہ رہے، فقیر اپنے فتاویٰ میں یہ مسئلہ مفصل و مدلل لکھ چکا ہے یہاں صرف دو تین عبارات پر اقتصار ہوتا ہے ، فتاویٰ عالمگیری میں ہے :

في كل موضع وقع الشك في جواز الجمعة لوقوع الشك في المصر او غيره واقام اهله ہر وہ مقام جہاں پر جمعہ ہونے یا نہ ہونے میں شک کی وجہ سے جواز جمعہ میں شک ہو جائے وہاں جمعہ کے بعد

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

[Table 1] (Arabic): It is appropriate for them to pray four rak'ahs after the Friday prayer and intend Zuhr by them so that if the Friday prayer did not occur in its place, one certainly exits from the obligation of the time's duty. Thus it is in Al-Kafi and similarly in Al-Muhit. Then they differed in its intention; it was said he intends the last Zuhr upon him, and it is better. The most precautionary is to say, "I intended the last Zuhr whose time I reached and did not pray yet," as in Al-Qunyah. In Fatawa [Ahu], it is appropriate to recite Al-Fatihah and a Surah in the four rak'ahs prayed after the Friday prayer in our lands, as in Al-Tatar Khaniyah. (Urdu): Four rak'ahs should be offered with the intention of Zuhr so that if the Friday prayer was not valid, the obligatory prayer of the time is certainly fulfilled. It is similarly stated in Al-Kafi and Al-Muhit. Then there is a difference regarding the intention for these rak'ahs; some said one should intend to perform the last Zuhr due on them, and this is better. The most precautionary way is to intend: "I am performing the last Zuhr whose time I found but have not yet performed," as mentioned in Al-Qunyah. In Fatawa Ahu, it says that in our regions, in the four rak'ahs prayed after the Friday prayer, one should recite Surah Al-Fatiha and a Surah, as in Al-Tatar Khaniyah. (T)

In Hulyah it is stated: [Table 2] (Arabic): Doubt may occur regarding the validity of the Friday prayer due to the loss of some of its conditions. Among that is when it is multiple in the city, and it is the occurrence of the people of Marw. So he should do what they did. Al-Muhsin said their Imams ordered them to perform the four rak'ahs after the Friday prayer necessarily as a precaution. (Urdu): Due to the absence of some conditions of Friday, sometimes doubt arises regarding the validity of the Friday prayer. One of them is when there are multiple Friday prayers in a city, and this is the event of the people of Marw. Therefore, the same will be done there as they said. Al-Muhsin said that their Imams commanded them to perform four rak'ahs after Friday prayer definitively as a precaution. (T)

In Tahtawi it is stated: [Table 3] (Arabic): Al-Halabi said it is better to pray its Sunnahs after the Friday prayer, then the four with this intention, then two rak'ahs of the Sunnah of the time. If the Friday prayer was correct... (Urdu): Al-Halabi says that it is preferable to perform the Sunnahs of Friday after it, then four rak'ahs with this

intention, then two rak'ahs of the Sunnah of the time. Thus, if the Friday prayer was correct then this...

1. Fatawa Hindiyya, Chapter 16, regarding Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/145.
2. Hulyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8

[तालिका 1] (अरबी): जुमा के बाद चार रकात पढ़नी चाहिए और उनके द्वारा ज़ुहर की नीयत करनी चाहिए ताकि यदि जुमा अपनी जगह पर न हुआ हो, तो निश्चित रूप से समय के अनिवार्य कर्तव्य से मुक्त हो जाए। अल-काफी में ऐसा ही है और मुहीत में भी। फिर उन्होंने इसकी नीयत में मतभेद किया; कहा गया कि वह अपने ऊपर अंतिम ज़ुहर की नीयत करे, और यह बेहतर है। सबसे अधिक एहतियात यह कहना है कि "मैंने उस अंतिम ज़ुहर की नीयत की जिसका समय मुझे मिला और मैंने अभी तक नमाज़ नहीं पढ़ी," जैसा कि कुन्या में है। फ़तावा आहू में है कि हमारे शहरों में जुमा के बाद पढ़ी जाने वाली चार रकातों में अल-फातिहा और एक सूरत पढ़ना उचित है, जैसा कि तातार खानिया में है। (उर्दू): चार रकात ज़ुहर की नीयत से अदा की जानी चाहिए ताकि अगर जुमा न हुआ हो, तो वक़्त का फर्ज़ निश्चित रूप से अदा हो जाए। अल-काफ़ी और मुहीत में भी इसी तरह है। फिर इन रकात की नीयत के बारे में मतभेद है। कुछ ने कहा कि वह इरादा करे कि वह अपने ज़िम्मे आख़िरी ज़ुहर अदा कर रहा है और यही बेहतर है। और अधिक एहतियात इसमें है कि यूँ इरादा करे कि मैं वह आख़िरी ज़ुहर पढ़ रहा हूँ जिसका वक़्त मैंने पाया और उसे अभी तक अदा नहीं किया, जैसा कि कुन्या में है। और फ़तावा आहू में है कि हमारे इलाक़ों में जुमा के बाद जो चार रकात पढ़ी जाती हैं, उनमें फ़ातिहा और सूरत पढ़नी चाहिए, जैसा कि तातार ख़ानिया में है। (त)

हुल्या में है: [तालिका 2] (अरबी): जुमा की कुछ शर्तों के अभाव के कारण उसकी वैधता में संदेह हो सकता है। उनमें से वह भी है जब वह शहर में बहुसंख्यक हो, और यह मर्व के लोगों की घटना है। तो उसे वही करना चाहिए जो उन्होंने किया। अल-मुहसिन ने कहा कि उनके इमामों ने उन्हें एहतियात के तौर पर जुमा के बाद अनिवार्य रूप से चार रकात अदा करने का आदेश दिया। (उर्दू): कुछ शर्तों के अभाव के कारण कभी-कभी जुमा के सही होने में संदेह हो जाता है। उनमें से एक यह है कि जब शहर में कई जगहों पर जुमा हो, जैसा कि मर्व वालों के साथ हुआ। अतः वहाँ वही किया जाएगा जो उन्होंने कहा। अल-मुहसिन ने कहा कि उनके इमामों ने उन्हें एहतियात के तौर पर जुमा के बाद अनिवार्य रूप से चार रकात अदा करने का हुक्म दिया। (त)

तहतावी में है: [तालिका 3] (अरबी): हलबी ने कहा कि जुमा के बाद उसकी सुन्नतें पढ़ना बेहतर है, फिर इस नीयत के साथ चार, फिर समय की सुन्नत की दो रकात। यदि जुमा सही था... (उर्दू): हलबी

कहते हैं कि बेहतर यह है कि जुमा के बाद उसकी सुन्नतें अदा करे, फिर इस नीयत से चार रकात, फिर वक़्त की दो सुन्नतें अदा करे। तो अगर अब जुमा सही हुआ तो यह...

1. फ़तावा हिन्दिया, बाब 16, जुमा की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब ख़ाना, पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/145।
2. हुल्या अल-मुहल्ली शरह मुन्या अल-मुसल्ली।

पृष्ठ 295/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[ٹیبل 1] (عربی): الجمعة ينبغي ان يصلوا بعد الجمعة اربع ركعات وينووا بها الظهر حتى لو لم تقع الجمعة موقعها يخرج عن عهدة فرض الوقت بيقين كذافي الكافي وهكذا في المحيط ثم اختلفوا في نيتها قيل ينوى آخر ظهر عليه وهو الاحسن والاحوط ان يقول نويت آخر ظهر ادركت وقته ولم اصله بعد كذا في القنية وفی فتاوی آه و ينبغي ان يقرء الفاتحه والسورة في الاربع التی تصلی بعد الجمعة في ديارنا كذا في التاتار خانية۔ (اردو): چار رکعات بہ نیت ظہر ادا کی جائیں تاکہ اگر جمعہ نہ ہوا تو وقتی فرض کی ادائیگی بالیقین ہوسکے، الکافی، اور محیط میں بھی اسی طرح ہے، پھر ان رکعات کی نیت کے بارے میں اختلاف ہے، بعض نے کہا کہ وہ ارادہ کرے کہ وہ اپنے ذمے آخری ظہر ادا کر رہا ہے اور یہی احسن ہے، اور احوط یہ ہے کہ یوں ارادہ کرے میں آخری ظہر پڑھ رہا ہوں جس کا وقت میں نے پایا اور اسے ابھی تک ادا نہیں کیا، جیسا کہ قنیہ میں ہے، اور فتاوٰی آہو میں ہے کہ ہمارے علاقے میں جمعہ کے بعد جو چار رکعات پڑھی جاتی ہے ان میں فاتحہ اور سورت پڑھنی چاہئے، جیسا کہ تاتار خانیہ میں ہے۔ (ت)

حلیہ میں ہے: [ٹیبل 2] (عربی): قد يقع الشك فی صحة الجمعة بسبب فقد بعض شروطها ومن ذلك ماذا تعددت في المصر وهی واقعة اهل مروفيفعل ما فعلوه وقال المحسن امرائمتهم بأداء الاربع بعد الجمعة حتما احتياطاً۔ (اردو): بعض شرائط جمعہ کے فقدان کی وجہ سے بعض اوقات صحتِ جمعہ میں شک ہو جاتا ہے، ان میں سے ایک یہ ہے کہ جب شہر میں متعدد جگہ جمعہ ہو اور اہل مرو کا واقعہ ہے، پس وہاں وہی کچھ کیا جائے گا جو انھوں نے کہا، محسن نے کہا کہ انہیں ائمہ نے احتیاطاً حتمی طور پر جمعہ کے بعد چار رکعات ادا کرنے کا حکم دیا۔ (ت)

طحطاوی میں ہے: [ٹیبل 3] (عربی): قال الحلبی الاولی ان یصلی بعد الجمعة سنتها ثم الاربع بهذه النية ثم ركعتين سنة الوقت فان صحت الجمعة۔ (اردو): حلبی کہتے ہیں کہ اولیٰ یہ ہے کہ جمعہ کے بعد اس کی سنن ادا کرے پھر اس نیت سے چار رکعات پھر وقتی سنتیں دو رکعت ادا کرے، پس اگر اب جمعہ صحیح ہوا تو اس

1 فتاوی ہندیة الباب السادس عشر فی صلوة الجمعة مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۵ 2 حلیہ المحلی شرح منیة المصلی

Fatawa Razawiyyah Volume 8

[Table Header] If the Sunnahs were performed in their proper way, then [if the Friday prayer was not valid], he has prayed the Zuhr along with its Sunnahs. (Abu al-Sa'ud. - Note)

In Maraqi al-Falah, it is stated: Performing the four [Rak'ahs] creates corruption in the belief of the ignorant, making them doubt whether Friday prayer is obligatory or not, or if multiple obligatory prayers can exist at the same time. Therefore, the fatwa for the four Rak'ahs of Zuhr is only for the elite, and their action [of performing these Rak'ahs] should also be in their homes. The same has been stated by researchers like Imam al-Maqdisi etc. And Allah Almighty knows best.

Problem 1283 to 1289: From Firozpur, Shahi Post Office, District Bareilly, sent by Sheikh Fazl Hussain Sahib, 21 Rajab 1311 AH. What do the scholars of religion say regarding these matters: (1) If a Hanafi adopts some sayings of Imam Shafi'i (may Allah have mercy on him) which are regarding the progress of worship, is it permissible or not? For example, if performing Friday prayer in villages is permissible according to the saying of Imam Shafi'i, and Hanafis pray according to this ruling, will it be permissible or impermissible? And in case of it being impermissible, will they be liable for punishment or will only the obligation of Zuhr remain upon them? (2) If, due to doubt about invalidity, after performing Friday prayer, four more Rak'ahs are performed with the intention that if the Friday prayer was invalid, these Rak'ahs would be counted as the Zuhr obligation, otherwise they would be optional (Nafl), with the thought that on the Day of Judgment any deficiency in obligations will be fulfilled by Sunnahs and Nafls; will this be sufficient or not? And this is common in many places; is this custom permissible or not? (3) It is famous that performing it is better than not performing it, as it is a time of weakness for Islam to perform Friday prayer.

Footnotes: 1. Hashiya al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, printed by Dar al-Fikr, Beirut, 1/321. 2. Maraqi al-Falah with Hashiya al-Tahtawi, Chapter of Friday Prayer, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, pp. 275-276.

फ़तावा रज़विया खंड 8

[टेबल हेडर] यदि सुन्नतें अपने तरीके पर अदा हुईं, और यदि जुमा नहीं हुआ तो उसने ज़ुहर सुन्नतों के साथ अदा कर ली, अबुल सऊद। (त)

मराक़िल फ़लाह में है: इन चार रकतों की अदायगी जाहिल लोगों के अक़ीदे में फ़साद पैदा करेगी कि जुमा फ़र्ज़ है या नहीं, या एक ही वक़्त में कई फ़रायज़ हो सकते हैं, लिहाज़ा चार रकात ज़ुहर का फ़तवा सिर्फ़ ख़ास लोगों के लिए है और उनका यह अमल भी अपने घरों में होगा। इसी तरह की बात मुक़द्दिसी वगैरह जैसे शोधकर्ताओं ने कही है, (त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1283 से 1289: फ़िरोज़पुर, शाही डाकखाना, ज़िला बरेली से शेख फ़ज़ल हुसैन साहब द्वारा प्रेषित, 21 रजब 1311 हिजरी। धर्म के विद्वान इन मसलों में क्या फ़रमाते हैं: (1) यदि कोई हनफ़ी इमाम शाफ़ई (रहमतुल्लाह अलैह) के कुछ ऐसे कथनों को अपना ले जो इबादत की तरक़्क़ी के बारे में हों, तो क्या यह जायज़ है या नहीं? मिसाल के तौर पर, यदि इमाम शाफ़ई के अनुसार देहातों में जुमा पढ़ना जायज़ हो और इस हुक्म के तहत हनफ़ी पढ़ें तो क्या यह जायज़ होगा या नाजायज़? और नाजायज़ होने की सूरत में क्या वे पकड़ के लायक़ होंगे या सिर्फ़ उनके ज़िम्मे ज़ुहर का फ़र्ज़ बाक़ी रहेगा? (2) यदि जुमे के नाजायज़ होने के संदेह में, जुमा पढ़ने के बाद चार रकात इस नीयत से पढ़ी जाएँ कि यदि जुमा नाजायज़ हुआ तो ये रकातें ज़ुहर के फ़र्ज़ में गिनी जाएँगी, वरना नफ़्ल रहेंगी, इस ख्याल से कि क़यामत के दिन फ़रायज़ में जो कमी होगी वह सुन्नत और नफ़्ल से पूरी की जाएगी; तो क्या ऐसा करना काफ़ी होगा या नहीं? और यह बात कई जगहों पर चलन में है; क्या यह रिवाज जायज़ है या नहीं? (3) यह बात मशहूर है कि न पढ़ने से पढ़ना बेहतर है क्योंकि जुमा पढ़ने के वास्ते इस्लाम की कमजोरी का समय है।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. हाशिया अत-तहतावी अल अल-दुर्र अल-मुख्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ दारुल फ़िक्र बेरूत 1/321 2. मराक़िल फ़लाह मअ हाशिया अत-तहतावी, बाबुल जुमा, मतबुआ नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची, पृ. 275-276.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

کان قد ادی سنتھا علی وجھھا والا فقد صلی الظھر (کی سنن اپنے طریقے پر ہوئیں، اور اگر جمعہ نہ ہوا تو اس نے) مع سنتہ ابوالسعود 1 (ظہر سنن کے ساتھ ادا کر لی، ابوالسعود۔ (ت))

مراقی الفلاح میں ہے: بفعل الاربع مفسدۃ اعتقاد الجھلۃ عدم فرض (ان چار رکعات کی ادائیگی جاہل لوگوں کے اعتقاد میں فساد برپا) الجمعۃ اوتعدد المفروض في وقتھا ولایفتی (کرے گی کہ جمعہ فرض ہے یا نہیں، یا ایک ہی وقت میں متعدد) بالاربع الا الخواص یکون فعلھم ایاھا فی (فرائض ہو سکتے ہیں، لہذا چار رکعات ظہر کا فتوٰی صرف خواص) منازلھم 2 اہ وبمثلہ صرح المحققون الآمرون (کے لئے ہے اور ان کا فعل (رکعات کی ادائیگی) بھی اپنے) کالمقدسی وغیرہ۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (گھروں میں ہو گی اھ اسی کی مثل اس کا حکم دینے والے محققین مثلاً امام مقدسی وغیرہ نے کہا ہے، (ت) واللہ تعالٰی اعلم)

مسئلہ ۱۲۸۳ تا ۱۲۸۹: از فیروز پور ڈاکخانہ شاہی ضلع بریلی مرسلہ شیخ فضل حسین صاحب ۲۱ رجب ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں : (۱) حنفی اگر بعض اقوال امام شافعی رحمتہ اللہ علیہ کے اختیار کرلیں جو درباره ترقی عبادت ہوں جائز ہے یا نہیں؟ مثلاً اگر دیہات میں جمعہ پڑھنا بقول امام شافعی جائز ہووے اور بدیں حکم حنفی پڑھیں تو جائز ہوگا یا نا جائز؟ اور نا جائز ہونے کی صورت میں لائق مواخذہ کے ہوں گے یا صرف فرض ظہر ان کے ذمہ باقی رہے گا؟ (۲) اگر بنظر شبہ ناجواز بعد پڑھنے جمعہ کے چار رکعات دیگر بدیں نیت کہ اگر جمعہ ناجائز ہوا یہ رکعتیں فرض ظہر میں شمار ہو جائیں ورنہ نفل رہیں بدیں خیال کہ روزِ قیامت فرائض میں جو کمی ہوگی وہ سنن و نوافل سے پوری کی جائے گی، پڑھنا کفایت کرے گا یا نہیں؟ اور یہ بات

اکثر جگہ رواج میں ہے یہ رواج جائز ہے یا نہیں؟ (۳) یہ بات مشہور ہے کہ نہ پڑھنے سے پڑھنا اولیٰ ہے کہ ضعفِ اسلام کا وقت ہے جمعہ پڑھنے کے واسطے

حواشی: 1 حاشیۃ الطحطاوی علی الدر المختار باب الجمعۃ مطبوعہ دار الفکر بیروت ۱/ ۳۲۱ 2 مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب الجمعۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۷۵-۷۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

...is it worthy of being said or not? (4) The presence of a ruler, judge, king, or representative is a condition, which is not available anywhere in India, yet Jumu'ah (Friday prayer) is still offered, and one condition is ignored. Similarly, if some conditions like "vicinity of the city or population equal to Mina" are not considered, is there room (for it to be valid) or not? (5) In villages where Jumu'ah is offered but the population is so low that it does not qualify as a city, if the people there are stopped from offering Jumu'ah and told that the obligation of Zuhr prayer is not waived from them, will this be permissible or impermissible? Especially when they are not going to another valid place to offer Jumu'ah. (6) Regarding what scholars write, that if the obligated Muslims of a settlement cannot fit in its largest mosque, then Jumu'ah is permissible there; does this refer to the village census or the number of worshippers inside the mosque or including the mosque courtyard? (7) For the congregation, some imams state two people besides the Imam, while others, as mentioned in 'Ma La Budda Minhu', state forty people. If Jumu'ah is offered with fewer than forty people according to that, will it be valid or invalid? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: (1) As far as possible, observing the differences of all four schools of thought, rather all schools of the mujtahid imams, is considered recommended by our scholars, indeed all scholars. However, at the same time, the noble scholars clearly state that this is only as long as one does not commit something disliked (makruh) in their own school of thought; otherwise, such observance is not permitted.

[Box 1] Arabic: In Radd al-Muhtar: "It is not permissible for him to commit a disliked act of his own school to observe the school of another, as explained at the beginning of the book."[1] Urdu: It is in Radd al-Muhtar that it is not permissible to commit a makruh (disliked act) of one's own school while trying to observe the school of another, as has been detailed at the beginning of this book. (T)

When this rule applies to something makruh, how can it be permitted for something forbidden (haram) and impermissible? Offering Jumu'ah in villages is itself impermissible.

[Box 2] Arabic: In al-Durr al-Mukhtar: "It is prohibitively disliked (makruh tahrimi), meaning because it is engaging in what is not valid, since being in a city (Misr) is a condition for validity."[2] Urdu: It is in Durr al-Mukhtar that this is makruh tahrimi

because it is being busy with a work that is not correct since the existence of a city is a condition for validity. (T)

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on the Recommendation of Observing Differences, etc., published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/109. [2] Durr al-Mukhtar, Chapter on the Two Eids, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/141. Note: In Radd al-Muhtar, this text is mentioned in meaning, not in these exact words.

फ़तावा रज़विया खंड 8

...कहने योग्य है या नहीं? (4) शासक, काज़ी, राजा या प्रतिनिधि की उपस्थिति एक शर्त है जो भारत में कहीं भी उपलब्ध नहीं है, फिर भी जुमा पढ़ा जाता है और एक शर्त की अनदेखी की जाती है। इसी तरह, यदि कुछ शर्तों जैसे "शहर के आसपास या मिना के बराबर जनसंख्या" पर ध्यान न दिया जाए, तो क्या गुंजाइश है या नहीं? (5) जिन गाँवों में जुमा पढ़ा जाता है और वहाँ की जनसंख्या कम है कि उसे शहर का दर्जा प्राप्त नहीं है, अगर वहाँ के लोगों को जुमा पढ़ने से रोका जाए और कहा जाए कि ज़ुहर का फ़र्ज़ तुम्हारे ज़िम्मे से साक़ित (समाप्त) नहीं होता, तो क्या यह जायज़ होगा या नाजायज़? जबकि वे जुमा पढ़ने के लिए दूसरी जायज़ जगह पर जाने वाले न हों। (6) यह जो विद्वान लिखते हैं कि जिस बस्ती के मुकल्लफ़ मुसलमान वहाँ की बड़ी मस्जिद में न समा सकें वहाँ जुमा जायज़ है, इससे गाँव की जनगणना मुराद है या मस्जिद के अंदर नमाज़ियों की संख्या या मस्जिद के आंगन सहित? (7) जमात के लिए कुछ इमामों के अनुसार इमाम के अलावा दो व्यक्ति और 'माला बुद्दा मिन्हु' में वर्णित कुछ के अनुसार चालीस व्यक्ति लिखे हैं। अगर उसके अनुसार चालीस से कम व्यक्तियों में जुमा पढ़ा जाए तो जायज़ होगा या नाजायज़? बयान करें, पुण्य पाएँ।

उत्तर: (1) जहाँ तक संभव हो चारों संप्रदायों (मज़ाहिब), बल्कि मुजतहिद इमामों के सभी संप्रदायों का सम्मान करना हमारे विद्वानों बल्कि सभी विद्वानों द्वारा मुस्तहब (सराहनीय) लिखा गया है। लेकिन इसके साथ ही विद्वान स्पष्ट करते हैं कि यह तभी तक है जब तक अपने संप्रदाय के किसी मकरूह (नापसंद) कार्य का संपादन न हो, अन्यथा ऐसी रियायत की अनुमति नहीं है।

[बॉक्स 1] अरबी: रद अल-मुह्तार में है: "उसके लिए अपने संप्रदाय के मकरूह कार्य को करना जायज़ नहीं है ताकि वह दूसरे के संप्रदाय का पालन कर सके जैसा कि पुस्तक की शुरुआत में स्पष्ट किया जा चुका है।"[1] हिन्दी: रद अल-मुह्तार में है कि दूसरे के मज़हब का लिहाज़ करते हुए अपने मज़हब के मकरूह का इर्तिकाब (करना) जायज़ नहीं है जैसा कि इस किताब की इब्तिदा (शुरुआत) में तफ़्सील (विस्तार) से गुज़र चुका है। (त)

जब मकरूह के कारण यह नियम है तो हराम और नाजायज़ काम के लिए अनुमति कैसे हो सकती है? गाँवों में जुमा पढ़ना स्वयं नाजायज़ है।

[बॉक्स 2] अरबी: अल-दुर अल-मुख्तार में है: "यह मकरूह तहरीमी है, यानी क्योंकि यह ऐसे कार्य में व्यस्त होना है जो सही नहीं है, क्योंकि शहर का होना स्वास्थ्य (वैधता) की शर्त है।"[2] हिन्दी: दुर्रे

मुख्तार में है कि यह मकरूह तहरीमी है क्योंकि यह ऐसे काम में मशगूल (व्यस्त) होना है जो सही नहीं क्योंकि शहर का होना शर्त-ए-सेहत (वैधता की शर्त) है। (त)

[1] रद अल-मुह्तार, मतलब फ़ी नदब मुराअत अल-खिलाफ़ आदि, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र द्वारा प्रकाशित 1/109 [2] दुर्रे मुख्तार, बाब अल-ईदैन, मतबा मुजतबाई, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 1/141 फ़: रद अल-मुह्तार में यह इबारत अर्थ में वर्णित है, इन शब्दों में नहीं।

पृष्ठ 297/673

لائق کہنے کے ہے یا نہیں؟ (۴) حاکم یا قاضی یا بادشاہ یا نائب کا موجود ہونا جو مشروط ہے اور وہ شرط ہندوستان میں کہیں میسر نہیں پھر آخر جمعہ پڑھا جاتا ہے اور ایک شرط پر لحاظ نہیں کیا جاتا، ایسا ہی اگر بعض شرائط "حوالیِ شہر یا آبادی مساویِ منیٰ" نہ لحاظ کیا جائے تو گنجائش ہے یا نہیں؟ (۵) جن دیہات میں جمعہ پڑھا جاتا ہے اور وہاں کی آبادی کم ہے کہ شہریت اس کو حاصل نہیں وہاں کے لوگوں کو اگر جمعہ پڑھنے سے باز رکھا جائے اور کہا جائے کہ فرضِ ظہر تمہارے ذمہ سے ساقط نہیں ہوتا جائز ہوگا یا ناجائز ، درحالیکہ وہ جمعہ پڑھنے دوسری جائز جگہ پر جانے والے نہ ہوں۔ (۶) یہ جو علماء لکھتے ہیں کہ جس بستی کے مسلمان مکلف وہاں کی بڑی مسجد میں نہ سماویں وہاں جمعہ جائز ہے یہ مردم شماری دیہہ سے مراد ہے یا تعدادِ نمازیوں سے اندرونِ مسجد سے یا مع صحنِ مسجد؟ (۷) جماعت میں بقول بعض ائمہ علاوہ دو آدمی اور بقول بعض چالیس آدمی لکھے ہیں مالابد منہ میں ، اگر موجب اُس کے چالیس آدمی سے کم میں جمعہ پڑھا جائے تو جائز ہو گا یا نا جائز؟ بینوا توجروا۔

الجواب: (۱) حتی الامکان چاروں مذہب بلکہ جمیع مذاہب ائمہ مجتہدین کی رعایت ہمارے علماء بلکہ سب علماء مستحب لکھتے ہیں مگر اس کے ساتھ ہی علمائے کرام تصریح فرماتے ہیں کہ یہ اسی وقت تک ہے کہ اپنے مذہب کے کسی مکروہ کا ارتکاب نہ ہو ورنہ ایسی رعایت کی اجازت نہیں۔

[Box 1] فی ردالمحتار فـ لیس لہ ان یرتکب مکروہ مذھبہ لیراعي مذھب غیرہ کما مر تقریرہ اول الکتاب۔1 ردالمحتار میں ہے کہ غیر کے مذہب کی رعایت کرتے ہوئے اپنے مذہب کے مکروہ کا ارتکاب جائز نہیں جیسا کہ اس کتاب کی ابتداء میں تفصیلاً گزر چکا ہے۔ (ت)

جب مکروہ کے سبب یہ حکم تو امر حرام و نا جائز کے لئے کیونکر اجازت ہو سکتی ہے، دیہات میں جمعہ پڑھنا خود ناجائز ہے۔

[Box 2] فی الدرالمختار تکرہ تحریماً ای لانہ اشتغال بما لا یصح لان المصر شرط الصحۃ۔2 در مختار میں ہے کہ یہ مکروہ تحریمی ہے کیونکہ یہ ایسے کام میں مشغول ہونا ہے جو صحیح نہیں کیونکہ شہر کا ہونا شرط صحت ہے۔ (ت)

1 ردالمحتار مطلب فی ندب مراعاۃ الخلاف الخ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۱۰۹ 2 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۴۱ ف: ردالمحتار میں یہ عبارت بالمعنی مذکور ہے بالفاظ مذکور نہیں۔

Fatawa Rizvia Volume 8

Then, abandoning the Zuhr congregation because of it is a second sin, and every sin is subject to accountability. And if Zuhr is not prayed at all, then it is intentionally abandoning an obligatory prayer, God forbid. Is it a light matter for an obligatory prayer to remain as an obligation? And refuge is sought with Allah Almighty. (I seek refuge in the shade of Allah Almighty's mercy. - Transl.) (2) This intention that 'if Friday prayer is not valid then it's an obligatory prayer, otherwise it's a voluntary prayer' will absolutely not suffice because if Friday prayer is not valid, the obligation of Zuhr remains, and for an obligatory prayer, specific determination (Ta'ayyun) in the intention is a condition; doubt and hesitation are not enough.

In Al-Tanweer: It is necessary to determine the obligation at the time of intention, even if it is a missed (Qadha) or mandatory prayer.	**It is mentioned in 'At-Tanweer' that at the time of intention for an obligatory or mandatory prayer, specific determination is necessary, whether it is an on-time prayer or a missed (Qadha) prayer. (Transl.)**

Rather, in case of doubt, one should do this: while praying the Friday prayer, make the intention for Friday prayer with firm resolve. Then pray four sunnahs after it with the intention of sunnah of the time. Then offer these four 'precautionary' rak'ahs with the intention that: 'the last Zuhr whose time I found but did not perform'. Then pray two sunnahs with the intention of sunnah of the time. The benefit of this will be that if the Friday prayer was valid, then those four rak'ahs he prayed will be counted towards any past Zuhr qadha he might have, whether intentional or unintentional. If there was no qadha, they will become voluntary (nafl) prayers. And if the Friday prayer was not valid, then this obligation will be fulfilled as today's Zuhr itself along with its preceding and succeeding sunnahs in sequence. This is the benefit of this method, not that one should have such doubt and hesitation in the intention. Obligatory prayers can never be fulfilled in that way. So where would that intended precaution be achieved? The practice of these rak'ahs is not just permissible, rather in such situations scholars have commanded it, but not for those ignorant people who cannot make a correct intention or because of which they might start considering two obligatory prayers on Friday. Therefore, scholars say that common ignorant people should not be given this command. It is stated in 'Alamgiri':

He intends the last Zuhr due upon him, and it is better.	**(One should make the intention for the last Zuhr due upon him, and this is best. - Transl.)**

In 'Maraqi al-Falah' it is: The fatwa for four rak'ahs is only for the elite. (The fatwa for four rak'ahs of Zuhr is only and only for the elite. - Transl.)

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Conditions of Prayer, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/71
2. Fatawa Hindiya, Chapter Sixteen regarding Friday Prayer, printed at Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/145
3. Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter on Friday Prayer, printed at Noor Muhammad Karkhana Tijarat-e-Kutub, Karachi, p. 276

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

फिर इसके कारण जुहर की जमात छोड़ना दूसरा गुनाह है, और हर गुनाह जवाबदेही के योग्य है। और अगर जुहर बिल्कुल न पढ़ी गई, तो खुदा न करे, जानबूझकर फ़र्ज़ नमाज़ छोड़ना होगा। क्या फ़र्ज़ का ज़िम्मे पर रह जाना कोई छोटी बात है? और अल्लाह तआला की शरण चाहते हैं। (मैं अल्लाह तआला की रहमत के दामन में पनाह लेता हूँ। - अनु.) (2) यह नियत कि 'अगर जुमा न हुआ तो फ़र्ज़ वरना नफ़्ल' हरगिज़ काफ़ी नहीं होगी क्योंकि अगर जुमा न हुआ तो जुहर का फ़र्ज़ ज़िम्मे पर बाकी है और फ़र्ज़ की नियत में तईन (विशिष्ट निर्धारण) शर्त है, शक और दुविधा काफ़ी नहीं।

फ़ि-त-तन्वीर ला बुद्दा मिनत तईन इन्दन्निय्यति लि-फ़र्ज़िन व लव क़ज़ाअन व वाजिबन -	**'तन्वीर' में है कि नियत के समय फ़र्ज़ और वाजिब का तईन ज़रूरी है, चाहे वह कज़ा ही क्यों न हो। (अनु.)**

बल्कि संशय के स्थान पर यह करे कि जुमा पढ़ते समय पक्के इरादे के साथ जुमा की नियत करे। फिर उसके बाद चार सुन्नतें 'सुन्नत-ए-वक़्त' की नियत से पढ़े। फिर ये चार रकात एहतियाती इस नियत से अदा करे कि 'पिछली वह जुहर जिसका वक़्त मैंने पाया और अदा न की'। फिर दो सुन्नतें 'सुन्नत-ए-वक़्त' की नियत से पढ़े। इसका फ़ायदा यह होगा कि अगर जुमा सही हो गया, तो जो चार फ़र्ज़ उसने पहले पढ़े, वे किसी पिछली जुहर की कज़ा (चाहे जानबूझकर हो या अनजाने में) जो उसके ज़िम्मे रह गई थी, उसमें गिनी जाएँगी और अगर कोई कज़ा न थी तो नफ़्ल हो जाएँगी। और अगर जुमा न हुआ, तो यह फ़र्ज़ आज की ही जुहर के रूप में अपनी पहले और बाद वाली सुन्नतों के साथ तरतीब से अदा हो जाएँगे। यह इस तरीक़े का लाभ है, न कि यह कि नियत में इस तरह का शक और दुविधा करे। इस तरह फ़र्ज़ कभी अदा नहीं हो सकते, तो वह एहतियात कहाँ हासिल हुई? इन रकातों का चलन न केवल जायज़ है, बल्कि ऐसे मौकों पर उलेमा ने इसका हुक्म दिया है, लेकिन उन जाहिलों को नहीं जो सही नियत न कर सकें या जिनके कारण वे जुमे के दिन दोहरे फ़र्ज़ समझने लगें। इसलिए उलेमा फ़रमाते हैं कि आम जाहिलों को इनका हुक्म न दिया जाए। 'आलमगीरी' में है:

यनवी आख़िर ज़ुह्रिन अलैहि वहुवल अहसन -	**(जो उस पर आख़िरी जुहर है उसकी नियत करे और यही बेहतर है। - अनु.)**

'मराकी उल फ़लाह' में है: ला युफ़्ता बिल-अरबइ इल्लल ख़वास (ज़ुहर की चार रकातों का फ़तवा सिर्फ और सिर्फ खास लोगों के लिए है। - अनु.)

1. दुर्र-ए-मुख़्तार, नमाज़ की शर्तों का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/71
2. फ़तावा हिन्दिया, जुमा की नमाज़ के बारे में सोलहवां अध्याय, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/145
3. मराकी उल फ़लाह मअ हाशियह अत-तहतावी, जुमा का अध्याय, नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत-ए-कुतुब, कराची, पृ. 276

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

پھر اس کے سبب جماعت ظہر ترک ہونا دوسرا گناہ ، اور ہر گناہ قابل مواخذہ ، اور اگر ظہر نہ پڑھی جب تو خود نماز فرض معاذ اللہ عمداً ترک کی فرض کا ذمہ پر رہ جانا کیا کوئی ہلکی بات ہے، والعیاذ باللہ تعالیٰ (اللہ تعالیٰ کے دامن رحمت میں پناہ لیتا ہوں۔ت) (۲) یہ نیت کہ اگر جمعہ نہ ہوا تو فرض ورنہ نفل ہر گز کفایت نہ کرے گی کہ جمعہ نہ ہوا تو فرض ظہر ذمہ پر باقی ہے اور فرض کی نیت میں تعین شرط ہے شک وتردد کافی نہیں۔

في التنوير لابد من التعيين عند النية لفرض ولو قضاء و واجب - **تنویر میں ہے کہ نیت کے وقت فرض و واجب کی تعین ضروری ہے خواہ وہ قضا ہو ۔ (ت)**

بلکہ اشتباہ کی جگہ یہ کرے کہ جمعہ پڑھتے وقت عزم وجزم کے ساتھ جمعہ کی نیت کرے پھر چار سنت بعد یہ بہ نیت سنت وقت پڑھے پھر یہ چار رکعت احتیاطی اس نیت سے ادا کرے کہ پچھلی وہ ظہر جس کا وقت میں نے پایا اور ادا نہ کی، پھر دو سنتیں بہ نیت سنت وقت پڑھے، اس کا فائدہ یہ ہوگا کہ جمعہ صحیح ہو گیا تو چار فرض جو اس نے پڑھے پہلے کسی ظہر کی قضا دانستہ یا نادانستہ جو اس کے ذمہ رہ گئی تھی اس میں محسوب ہوجائیں گی اور کوئی قضا نہ تھی تو نفل ہوں گی، اور اگر جمعہ نہ ہوا تو یہ فرض خود آج ہی کی ظہر کے مع سنت قبلیہ و بعد یہ بترتیب ادا ہو جائیں گے، یہ اس طریقہ کی منفعت ہے نہ یہ کہ نیت میں یوں شک و تردد کرے، یوں ہرگز فرض ادا نہیں ہو سکتے تو وہ مقصود احتیاط کہاں حاصل ہوا، ان رکعتوں کا رواج جواز کیا بلکہ ایسے مواقع میں علماء نے حکم دیا ہے مگر ان جاہلوں کو نہیں جو نیت صحیح نہ کر سکیں یا ان کے باعث جمعہ کے دن دوہرے فرض سمجھنے لگیں ، ولہذا علماء فرماتے ہیں عوام جاہلوں کو ان کا حکم نہ دیا جائے، عالمگیری میں ہے:

ينوي آخر ظهر عليه وهو الاحسن (جو اس پر آخری ظہر ہے اس کی نیت کرے اور یہی احسن ہے۔ ت)

2

مراقی الفلاح میں ہے : لا یفتي بالاربع الا الخواص 3 (چار رکعت ظہر کا فتوٰی صرف اور صرف خواص کے لئے ہے۔ت)

1 در مختار باب شروط الصلوۃ ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۷۱ 2 فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۴۵ 3 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی باب الجمعہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۷۶

However, this is for a place that is a city or the outskirts of a city, and there is doubt in the validity of the Friday prayer (Jumu'ah) due to reasons like multiple Jumu'ahs, etc. In a village, Jumu'ah is fundamentally not permissible, so permission cannot be given there for a person to commit an impermissible act and then seek to compensate for it with four rak'ahs of 'precautionary prayer'.

(3) And the excuse of 'weakness of Islam' is not worth hearing; such weakness is already there that most Muslims do not care much about what is permissible or forbidden, let alone performing an impermissible act considering it an act of worship. The splendor of Islam lies in following the commands, not in lack of restraint.

Sin leads to another sin, and a small amount invites to a larger one. We give fatwa only according to the school of thought (Madhhab). Scholars have said about several issues within the school of thought that fatwa should not be given on them, lest the common people lean towards dismantling the school. Then what about an issue that has no relation to the school of thought? Protection is only from Allah Almighty. (T)

Sin leads to another sin, a small amount invites to a larger one. We give fatwa only according to the school of thought (Madhhab). Scholars have said about several issues within the school of thought that fatwa should not be given on them, lest the common people lean towards dismantling the school. Then what about an issue that has no relation to the school of thought? Protection is only from Allah Almighty. (T)

(4, 5) And the Sultan or his appointed and authorized representative performing the Jumu'ah prayer, although it is a condition that is waived in times of necessity, but the condition of being a city (Misr) cannot be compared to it. In places other than a city, the pure Sharia itself has not mandated the establishment of Jumu'ah; rather, its non-establishment is mandatory. So, what meaning does 'necessity' have in waiving this condition? In short, permission for Jumu'ah in villages can never be granted; the obligation of the Dhuhr prayer will not be waived from one's responsibility.

In Al-Shami, from Al-Quhistani, from Al-Jawahir: If they pray Jumu'ah in villages, it remains necessary for them to perform the Dhuhr prayer.

Shami has quoted from Quhistani, who quoted from Jawahir, that if people performed Jumu'ah in villages, it would be

mandatory for them to perform Dhuhr there. (T)

(6) Some scholars who have adopted this narration do not mean the total population of the settlement, but specifically those people on whom Jumu'ah is obligatory; that is, sane, adult, free, resident males who are not blind, crippled, lame, or so weak or sick that they are excused from attending Jumu'ah. Such excused persons, children, women, slaves, and travelers are not counted, and...

---

1. Rad al-Muhtar, Bab al-Jumu'ah, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/590

جلد ہشتم (जिल्द 8) فتاوٰی رضویہ (फ़तावा रिज़विया)

मगर यह उस जगह के लिए है जो शहर या शहर की सीमा (फ़ना-ए-शहर) हो और जुमा के कई जगह होने वगैरह कारणों से जुमा की वैधता में संदेह हो। गाँव में जुमा मूल रूप से जायज़ नहीं है, तो वहाँ इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती कि कोई नाजायज़ काम करे और फिर उन चार एहतियाती रकअतों से उसकी भरपाई करना चाहे।

(३) और 'इस्लाम की कमज़ोरी' का बहाना सुनने लायक नहीं है। कमज़ोरी तो वैसी ही है कि अधिकतर मुसलमानों को जायज़ और नाजायज़ की ज़्यादा परवाह नहीं रही, न कि वे किसी नाजायज़ काम को इबादत समझकर करें। इस्लाम की रौनक हुक्मों के पालन में है, न कि बेक़ैदगी (अनुशासनहीनता) में।

पाप दूसरे पाप की ओर ले जाता है और कम मात्रा अधिक को आमंत्रित करती है। हमारे लिए अपने मज़हब (विचारधारा) के अलावा कोई फतवा नहीं है। विद्वानों ने मज़हब के कई ऐसे मसलों के बारे में कहा है कि उन पर फतवा न दिया जाए ताकि आम लोग मज़हब को खत्म करने पर आमादा न हो जाएं। तो उस मसले का क्या हाल होगा जिसका मज़हब से कोई ताल्लुक ही नहीं? और सुरक्षा केवल अल्लाह तआला की ओर से है।

गुनाह दूसरे गुनाह की तरफ खींचता है, कम मात्रा अधिक की ओर बुलाती है। हमारा काम सिर्फ अपने मज़हब (विचारधारा) के अनुसार फतवा देना है। विद्वानों ने मज़हब के कई ऐसे मसलों के बारे में कहा है कि उन पर फतवा न दिया जाए ताकि आम लोग मज़हब को खत्म करने पर आमादा न हो जाएं। तो उस मसले का क्या हाल होगा जिसका मज़हब से कोई ताल्लुक ही नहीं? और हिफाज़त अल्लाह तआला ही की तरफ से है। (त)

(४, ५) और सुल्तान या उसके नियुक्त और अधिकृत प्रतिनिधि का जुमा कायम करना, हालाँकि यह ऐसी शर्त है जो ज़रूरत के समय खत्म हो जाती है, लेकिन शहर (मिस्र) होने की शर्त की इससे तुलना नहीं की जा सकती। क्योंकि गैर-शहर में जुमा की स्थापना स्वयं शरीअत-ए-मुतह्हरा ने ज़रूरी नहीं ठहराई, बल्कि वहाँ जुमा न करना ही ज़रूरी है। तो इस शर्त को खत्म करने में 'ज़रूरत' का क्या अर्थ है? संक्षेप में, गाँवों में जुमा की अनुमति हरगिज़ नहीं दी जा सकती; ज़ुहर की नमाज़ का फ़र्ज़ ज़िम्मेदारी से खत्म नहीं होगा।

शामी में कुहिस्तानी से, उन्होंने जवाहर से उद्धृत किया है: अगर उन्होंने गाँवों में जुमा की नमाज़ पढ़ी, तो उन पर ज़ुहर की नमाज़ अदा करना लाज़िम होगा।	शामी ने कुहिस्तानी से और उन्होंने जवाहर से उद्धृत किया है कि अगर लोगों ने गाँवों में जुमा अदा किया तो वहाँ ज़ुहर की अदायगी लाज़िम होगी। (त)

(६) कुछ विद्वानों ने जो यह रिवायत अपनाई है, उसमें बस्ती की जनसंख्या का अर्थ पूरी आबादी नहीं है, बल्कि विशेष रूप से वे लोग हैं जिन पर जुमा फ़र्ज़ है, यानी समझदार, बालिग, आज़ाद और निवासी पुरुष जो अंधे, अपाहिज, लंगड़े या इतने कमज़ोर या बीमार न हों कि जुमा में शामिल होने से मजबूर हों। ऐसे मजबूर लोगों, बच्चों, औरतों, गुलामों और मुसाफिरों की गिनती नहीं की जाएगी, और...

---

1. रद अल-मुह्तार, बाब अल-जुमा, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, १/५९०

مگر یہ اس جگہ کے لئے ہے جو شہر یا فناء شہر ہو اور تعددِ جمعہ وغیرہ وجوہ کے سبب صحتِ جمعہ میں اشتباہ ہو، گاؤں میں جمعہ اصلاً جائز نہیں تو وہاں اس کی اجازت نہیں ہو سکتی کہ ایک ناجائز کام کریں اور ان چار رکعت احتیاطی سے اس کی تلافی چاہیں۔

(۳) اور ضعفِ اسلام کا عذر قابلِ سماعت نہیں، ضعف تو یوں ہی ہے کہ اکثر اہل اسلام کو جائز ناجائز کی چنداں پرواہ رہی نہ کہ وہ ناجائز جسے عبادت سمجھ کر بجالائیں، رونقِ اسلام اتباعِ احکام میں ہے نہ بے قیدی میں۔

والذنب یجر الی الذنب والقلیل یدعو الی الکثیر ومالنا الافتاء الابالمذھب وقد قال العلماء في عدة مسائل في المذھب لا یفتی بھا کیلا یتوصل العوام الی ھدم المذھب فکیف بما لیس من المذھب في شيء وباللہ العصمۃ۔

گناہ دوسرے گناہ کی طرف کھینچتا ہے، قلیل، کثرت کی دعوت دیتا ہے اور ہم جو مذہب ہے اسی پر فتوی دیتے ہیں، متعدد ایسے مسائل جو مذہب پر ہیں لیکن علماء نے فرمایا کہ ان پر فتوی نہ دیا جائے تاکہ عوام مذہب کو ختم کرنے پر نہ تل جائیں تو اس مسئلہ کا کیا معاملہ ہے جو مذہب سے تعلق نہ رکھتا ہے اور عصمت اللہ تعالیٰ ہی کے لئے ہے۔(ت)

(۴، ۵) اور سلطان یا اس کے مامور و ماذون کا اقامتِ جمعہ کرنا اگرچہ ایسی شرط ہے کہ ہنگامِ ضرورت ساقط ہو جاتی ہے مگر شرطِ مصر کا اس پر قیاس نہیں کہ غیر مصر میں اقامتِ جمعہ خود شرعِ مطہر نے ضرور نہ ٹھہرائی بلکہ وہاں عدمِ اقامت ہی ضرور ہے تو اس شرط کے سقاط

میں ضرورت کے کیا معنی، غرض دیہات میں جمعہ کی ہرگز اجازت نہیں ہوسکتی فرض ظہر ذمہ سے ساقط نہ ہوگا،

فی الشامی عن القهستانی عن الجواهر شامی نے قہستانی سے انہوں نے جواہر سے نقل کیا کہ اگر لو صلوا فی القری لزمهم اداء الظهر ۔ لوگوں نے دیہاتوں میں جمعہ ادا کیا تو وہاں ظہر کی ادائیگی 1 لازم ہوگی۔ (ت)

(۶) بعض علماء نے جو یہ روایت اختیار کی ہے اس میں بستی کی مردم شماری مقصود نہیں بلکہ خاص وہ لوگ جن پر جمعہ فرض ہے یعنی مرد عاقل بالغ آزاد مقیم کہ اندھے لنجے لولے یا ایسے ضعیف یا مریض نہ ہوں کہ جمعہ کی حاضری سے معذور ہوں، ایسے معذوروں یا بچوں، عورتوں، غلاموں، مسافروں کی گنتی نہیں، اور

---

1. رد المحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۰

Fatawa Razawiya Volume 8

"It refers to the entire mosque including the courtyard, and not just the inner portion,"

| In Tanwir: "It is what the largest of its mosques cannot accommodate its responsible residents."^1 In Shami from al-Tahtawi from al-Quhistani: He excluded those with excuses, such as women, children, and travelers, by using the term 'responsible'.^2 | In Tanwir, it is stated: A city is one whose largest mosque is insufficient for the city's responsible residents. In Shami from Tahtawi and there from Quhistani, it is mentioned that the term 'responsible' excludes those with excuses, for example, women, children, and travelers. (T) |

(7) According to our Imam (may Allah be pleased with him), for the validity of the Friday prayer, three sane, adult men besides the Imam are required; it is not permissible with fewer, and more are not necessary.

| In Tanwir: "And the minimum for a congregation is three men besides the Imam."^3 And Allah Almighty knows best. | In Tanwir, it is stated: For a congregation, at least three men besides the Imam are necessary. (T) And Allah Almighty knows best. |

Issue 1290: 6 Ramadan al-Mu'azzam 1311 AH What do the scholars of religion say regarding this issue: Should the followers respond to the Adhan called in front of the sermon giver (Khatib)? And when there is a sitting (break) between the two sermons, should the followers pray or not? Please clarify and be rewarded.

The Answer: They should not do so at all, this is the more precautionary view. It is stated in Rad al-Muhtar:

| Responding to the Adhan is disliked. Nahr al-Faiq.^4 | Responding to the Adhan at this time is disliked (Makruh). Nahr al-Raiq (T) |

Then, it is stated in Durr al-Mukhtar:

| It is appropriate that one does not respond with the tongue, by consensus, to the Adhan called before the sermon giver.^5 | By consensus, the response to the Adhan given before the sermon giver should not be given. (T) |

---

1 Durr al-Mukhtar, Book of Friday, printed at Matba' Majtabai, Delhi, India, 1/109 2 Rad al-Muhtar, Book of Friday, printed at Mustafa al-Babi, Egypt, 1/590 3 Durr al-

Mukhtar, Book of Friday, printed at Matba' Majtabai, Delhi, India, 1/111 4 Rad al-Muhtar, Book of Friday, printed at Mustafa al-Babi, Egypt, 1/70 5 Durr al-Mukhtar, Book of Adhan, printed at Matba' Majtabai, Delhi, India, 1/25

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

"पूरी मस्जिद मय सहन (आंगन) मुराद है न कि सिर्फ अंदर का हिस्सा,"

| अत-तन्वीर में है: "वह वह है जिसे उसकी मस्जिदों में से सबसे बड़ी मस्जिद उसके ज़िम्मेदार बाशिंदों के लिए नाकाफी हो।"^1 शामी में अल-तहतवी से अल-कुहिस्तानी के हवाले से है: उन्होंने 'ज़िम्मेदार' शब्द से उज़्र (बहाने) वालों, जैसे औरतों, बच्चों और यात्रियों को बाहर रखा है।^2 | तनवीर में है: शहर वह है जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद शहर के मुकल्लफ़ीन (ज़िम्मेदार लोगों) के लिए नाकाफी हो। शामी में तहतावी से और वहां कुहिस्तानी से मरवी है कि लफ्ज़ 'मुकल्लफ़ीन' से माज़ूरीन (जिनके पास जायज़ उज़्र हो) जैसे औरतें, बच्चे और मुसाफिरों को बाहर रखा गया है। (त) |

(७) हमारे इमाम (अल्लाह उन पर राजी हो) के नज़दीक जुमे की नमाज़ की सेहत (सही होने) के लिए इमाम के अलावा तीन अक़्लमंद बालिग पुरुषों की ज़रूरत है, इससे कम में जायज़ नहीं और ज़्यादा की ज़रूरत नहीं।

| अत-तन्वीर में है: "जमात के लिए इमाम के अलावा कम से कम तीन पुरुष होने चाहिए।"^3 वल्लाहु तआला आलम। | तनवीर में है: जमात के लिए इमाम के अलावा कम से कम तीन पुरुषों का होना ज़रूरी है। (त) वल्लाहु तआला आलम। |

मसला १२९०: ६ रमज़ान अल-मुअज़्ज़म १३११ हिजरी क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि खतीब के सामने जो अज़ान होती है, मुक्तदियों (पीछे नमाज़ पढ़ने वालों) को उसका जवाब देना और जब दो खुत्बों के दरमियान खतीब बैठे(जलसा करे) तो मुक्तदियों को दुआ करनी चाहिए या नहीं? बयान फरमाएं ताकि आपको सवाब मिले।

अल-जवाब: हरगिज़ नहीं चाहिए, यही अहतियात वाला नज़रिया है। रद-अल-मुह्तार में है:

| अज़ान का जवाब देना मकरूह है। नहर अल-फ़ाइक़।^4 | इस वक्त अज़ान का जवाब देना मकरूह है। नहर-उर-रईक (त) |

फिर दुर्र-ए-मुख़्तार में है:

| यह उचित है कि खतीब के सामने दी जाने वाली अज़ान का जवाब ज़ुबान से न दिया जाए, इस पर इत्तेफ़ाक़ है।^5 | खतीब के सामने दी जाने वाली अज़ान का जवाब ब-इत्तेफ़ाक (सर्वसम्मति से) नहीं देना चाहिए। (त) |

1 दुर्र-ए-मुख़्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ मतबअ मुजतबाई, दिल्ली, भारत १/१०९ 2 रद-अल-मुह्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र १/५९० 3 दुर्र-ए-मुख़्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ मतबअ मुजतबाई, दिल्ली, भारत १/१११ 4 रद-अल-मुह्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र १/७० 5 दुर्र-ए-मुख़्तार, बाबुल अज़ान, मतबुआ मतबअ मुजतबाई, दिल्ली, भारत १/२५

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

پوری مسجد مع صحن مراد ہے نہ کہ فقط اندر کا درجہ،

| في التنوير هو مالا يسع اكبر مساجده اهله المكلفين بها ۱^ في الشامي عن الطحطاوي عن القهستاني احترزبه عن اصحاب الاعذار مثل النساء والصبيان والمسافرين ۲^۔ | تنویر میں ہے شہر وہ ہے جس کی سب سے بڑی مسجد شہر کے مکلفین کے لئے ناکافی ہو، شامی میں طحطاوی سے اور وہاں قہستانی سے ہے کہ لفظ مکلفین سے معذورین کو خارج کیا ہے مثلاً خواتین، بچے اور مسافر۔ (ت) |

(۷) ہمارے امام رضی اللہ تعالٰی عنہ کے نزدیک صحتِ نمازِ جمعہ کے لئے امام کے سوا تین مرد عاقل بالغ درکار ہیں اس سے کم میں جائز نہیں زیادہ کی ضرورت نہیں۔

| في التنوير والجماعة اقلها ثلثة رجال سوى الامام ۳^۔ واللہ تعالٰی اعلم | تنویر میں ہے جماعت کے لئے امام کے علاوہ کم از کم تین مردوں کا ہونا ضروری ہے۔(ت) واللہ تعالٰی اعلم |

مسئلہ ۱۲۹۰ : ۶ رمضان المعظم ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ خطیب کے سامنے جو اذان ہوتی ہے مقتدیوں کو اس کا جواب دینا اور جب دو خطبوں کے درمیان جلسہ کرے مقتدیوں کو دعا کرنا چاہئے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: ہرگز نہ چاہئے یہی احوط ہے۔ ردالمحتار میں ہے:

| اجابة الاذان ح مكروهة نهر الفائق ۴^۔ | اس وقت اذان کا جواب دینا مکروہ ہے۔ نہر الرائق (ت) |

پھر درمختار میں ہے:

| ینبغی ان لا یجیب بلسانہ اتفاقاً في الاذان بین یدی الخطیب ۵۸- | خطیب کے سامنے دی جانے والی اذان کا جواب بالاتفاق نہیں دینا چاہئے۔(ت) |

---

1 در مختار باب الجمعة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/۱۰۹ 2 ردالمحتار باب الجمعة مطبوعہ مصطفیٰ البانی مصر ۱/۵۹۰ 3 در مختار باب الجمعة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/۱۱۱ 4 ردالمحتار باب الجمعة مطبوعہ مصطفیٰ البانی مصر ۱/۷۰ 5 در مختار باب الاذان مطبوعہ مجتبائی دہلی بھارت ۱/۲۵

Fatawa Razvia Volume 8

In it, it is stated: | If the Imam emerges from the chamber, if one exists, otherwise when he stands to ascend the pulpit, then there is neither prayer nor speech until its completion. The two companions (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) say there is no harm in speech before the sermon and after it. According to Imam Abu Yusuf, there is also no harm in speech when the Imam sits (between the two sermons). The disagreement concerns speech related to the hereafter; as for other types, they are disliked by consensus. Based on this, the customary Tarqiyah (reciting 'Indeed, Allah and His angels send blessings upon the Prophet...' etc.) in our time is disliked according to him (Imam Abu Hanifa). It is strange that the one reciting Tarqiyah prohibits commanding the good based on the requirements of his Hadith, and then himself says, 'Be silent, may Allah have mercy on you.' End of summary. | When the Imam comes out of the chamber, if there is one, or when he stands to ascend the pulpit, then there is neither prayer nor speech until the entire sermon is finished. The two companions say that there is no harm in conversation before the sermon and after it, and according to Imam Abu Yusuf, there is also no harm in conversation when the Imam sits. The disagreement is regarding conversation that relates to the hereafter, but besides that, conversation is disliked by consensus. On this basis, the customary Tarqiyah in our time (reciting 'Inna Allah wa mala'ikatahu...' etc.) (recited while the Khatib sits on the pulpit) is disliked according to the Great Imam. It is surprising that the person reciting the Tarqiyah prevents others from 'commanding what is good' because of the Hadith of the Prophet (peace be upon him), and then he himself says 'Be silent, may Allah have mercy on you.' End of summary. (T) | | :--- | :--- |

Yes, if this response to the permission (Adhan) or prayer is done only in the heart and not pronounced with the tongue at all, there is no harm, as indicated by the words of Ali al-Qari and branches in the books of the school (as Ali al-Qari wrote and its details are in the books of the school. T). As for the Imam, i.e., the Khatib, even if he gives the response to the permission or prays with the tongue, it is undoubtedly permissible. | And indeed, the speech regarding both matters from the Master of the two worlds (peace and blessings of Allah be upon him) has been authentically reported in Sahih al-Bukhari and others. | In Sahih al-Bukhari etc., both practices are found from the Master of the two worlds (peace and blessings of Allah be upon him). (T) | | :--- | :--- |

This statement is concise, and the detailed discussion of the matter with extreme finality and removal of doubts is in our Fatawa by the grace of the King, the All-Knowing (the details of this place we have stated in our Fatawa with extreme research by the grace of the King, the All-Knowing. T). And Allah Almighty knows best. Problem 1291: From Bilgram, District Hardoi, Mohalla Maidanpura, sent by Hazrat Syed Ibrahim Sahib, 14 Ramadan al-Mubarak 1311 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: should 'Bismillahir Rahmanir Rahim' be said loudly or silently in the Friday sermon? And if said loudly, is there any harm? Explain and you shall be rewarded.

1 Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, published by Mujtabai, Delhi, India, 1/113 Page 301 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

इसी में है: | इज़ा ख़रजल इमामू मिनल हुजरति इन काना वल्ला फ़क़ियामुहू लिस सुऊदी फ़ला सलाता वला कलामा इला तमामिहा व काला ला बासा बिल कलामि कबलल खुतबती व बादहा व इज़ा जलासा इन्दस सानी वल ख़िलाफ़ु फ़ी कलामिन यतअल्लकु बिल आख़िरती अम्मा गैरूहु फ़युकराहू इजमाअन व अला हाज़ा फ़त्तरक़िय्यतुल मुतआरफ़तु फ़ी ज़मानिना तुकरहु इन्दहू वल अजबू अन्नल मुरक़्क़िया यन्हा अनिल अम्रि बिल मारूफ़ि बिमुक्तज़ा हदीसिहि सुम्मा यक़ूलु अनसितू रहिमकुमुल्लाह १ अह मुलख़ख़सन | जब इमाम हुजरे से निकले अगर हुजरा हो, वर्ना जब वह मिम्बर पर चढ़ने के लिए खड़ा हो तो तमाम ख़ुत्बा तक न नमाज़ है और न ही कलाम, साहिबैन कहते हैं कि ख़ुत्बा से पहले और इसके बाद गुफ़्तगू में हर्ज नहीं, और इमाम अबू यूसुफ के नज़दीक जब इमाम बैठे उस वक्त भी कलाम में कोई हर्ज नहीं, और इख़्तिलाफ़ इस गुफ़्तगू में है जो आख़िरत से मुताल्लिक हो लेकिन इसके अलावा गुफ़्तगू तो बिल-इत्तेफ़ाक मकरूह है, इस बिना पर हमारे ज़माना में मुतारिफ़ तरक़िया (इन्नल्लाहा व मलाइकतहु यूसल्लूना अलन्नबी इख़) (ख़तीब के मिम्बर पर बैठते वक्त पढ़ना) इमाम-ए-आज़म के नज़दीक मकरूह है और ताज्जुब है कि तरक़िया पढ़ने वाला अम्र बिल-मारूफ़ से हुज़ूर अलैहिस-सलातु वस-सलाम की हदीस की वजह से रोकता है और फिर खुद कहता है ख़ामोश रहो, अल्लाह तआला तुम पर रहम करे संक्षिप्त समाप्त। (त) | | :--- | :--- |

हाँ, यह जवाब-ए-अज़ान या दुआ अगर सिर्फ दिल से करें, ज़बान से तलफ्फुज़ (उच्चारण) बिलकुल न हो तो कोई हर्ज नहीं, जैसा कि अली अल-क़ारी ने तहरीर फ़रमाया और इसकी तफ़सीलात मज़हब की किताबों में हैं (त)। और इमाम यानी ख़तीब तो अगर ज़बान से भी जवाब-ए-अज़ान दे या दुआ करे तो बिला-शुबा जाइज़ है। | व क़द सहा कलामुल अम्मरैनी अन सैय्यदिल कौनेनी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लमा फ़ी सहीहिल बुख़ारी व गैरह। | सहीह बुख़ारी वगैरा में सैय्यद-उल-कौनेन सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से दोनों मामूल मिलते हैं। (त) | | :--- | :--- |

यह कौल मुजमल है और तफ़्सीलुल मकाम मअ निहायतिल गायाति व इज़ालतिल औहाम फ़ी फ़तावाना बितौफीक़िल मलिकिल अल्लाम (इस मकाम की तफ़सील हमने बितौफीक़ मलिक अल्लाम निहायत तहक़ीक़ के साथ अपने फ़तावा में बयान कर दी है। त) वल्लाहु तआला आलम। मसअला १२९१: बिलग्राम जिला हरदोई मोहल्ला मैदानपुरा मुरसला हज़रत सैय्यद इब्राहिम साहब १४ रमज़ानुल मुबारक १३११ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसअला में कि ख़ुत्बा जुमा में

बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम बाआवाज़ बुलंद कहना चाहिए या बाख़फ़ा? और अगर बाआवाज़ बुलंद कहे तो कुछ हर्ज तो नहीं? बैनवा तूजरू

१ दुर्र-ए-मुख़्तार बाबुल जुमुआ मतबुआ मुज्तबाई दिल्ली भारत १/११३ पेज ३०१ ऑफ़ ६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اسی میں ہے: | اذا خرج الامام من الحجرۃ ان کان والا فقیامہ للصعود فلا صلوۃ ولا کلام الی تمامھا و قالا لا باس بالکلام قبل الخطبۃ وبعدھا واذا جلس عند الثانی والخلاف فی کلام یتعلق بالاخرۃ اما غیرہ فیکرہ اجماعاً وعلی ھذا فالترقیۃ المتعارفۃ فی زماننا تکرہ عندہ والعجب ان المرقی ینھی عن الامر بالمعروف بمقتضی حدیثہ ثم یقول انصتوا رحمکم اللہ ۱ اھ ملخصاً | جب امام حجرہ سے نکلے اگر حجرہ ہو، ورنہ جب وہ منبر پر چڑھنے کے لئے کھڑا ہو تو تمام خطبہ تک نہ نماز ہے اور نہ ہی کلام، صاحبین کہتے ہیں کہ خطبہ سے پہلے اور اس کے بعد گفتگو میں حرج نہیں، اور امام ابویوسف کے نزدیک جب امام بیٹھے اس وقت بھی کلام میں کوئی حرج نہیں، اور اختلاف اس گفتگو میں ہے جو آخرت سے متعلق ہو لیکن اس کے علاوہ گفتگو تو بالاتفاق مکروہ ہے، اس بناء پر ہمارے زمانہ میں متعارف ترقیہ (ان اللہ وملئکتہ یصلون علی النبی الخ) (خطیب کے منبر پر بیٹھتے وقت پڑھنا) امام اعظم کے نزدیک مکروہ ہے اور تعجب ہے کہ ترقیہ پڑھنے والا امر بالمعروف سے حضور علیہ الصلوۃ والسلام کی حدیث کی وجہ سے روکتا ہے اور پھر خود کہتا ہے خاموش رہو، اللہ تعالٰی تم پر رحم کرے اھ ملخصاً (ت) | | :--- | :--- |

ہاں یہ جواب اذن یا دعا اگر صرف دل سے کریں زبان سے تلفظ اصلاً نہ ہو کوئی حرج نہیں، کما افادہ کلام علی القاری و فروع فی کتب المذھب (جیسا کہ علی قاری نے تحریر فرمایا اور اس کی تفصیلات کُتبِ مذہب میں ہیں۔ت) اور امام یعنی خطیب تو اگر زبان سے بھی جواب اذن دے یا دعا کرے بلاشبہ جائز ہے۔ | وقد صح کلام الامرین عن سید الکونین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فی صحیح البخاری وغیرہ۔ | صحیح بخاری وغیرہ میں سید الکونین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے دونوں معمول ملتے ہیں۔(ت) | | :--- | :--- |

یہ قول مجمل ہے و تفصیل المقام مع نہایۃ الغایۃ واز الۃ الاوھام فی فتاؤنا بتوفیق الملک العلام (اس مقام کی تفصیل ہم نے بتوفیق ملک العلام نہایت تحقیق کے ساتھ اپنے فتاویٰ میں بیان کردی ہے۔ت)

واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۲۹۱: از بلگرام ضلع ہر دوئی محلہ میدانپورہ مرسلہ حضرت سید ابراھیم صاحب ۱۴ رمضان المبارک ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ خطبہ جمعہ میں بسم اللہ الرحمن الرحیم بآواز بلند کہنا چاہئے یا باخفا؟ اور اگر بآواز بلند کہے تو کچھ حرج تو نہیں؟ بینوا توجروا

۱ در مختار باب الجمعۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی بھارت ۱ / ۱۱۳ صفحہ ۳۰۱ از ۶۷۳

Fatawa Razawiyya Volume 8

The Answer: Neither aloud nor secretly, but rather, while alone, after reciting 'A'uzu' quietly, begin with the praise of Allah.

In al-Durr al-Mukhtar: "It begins with the 'ta'awwudh' secretly." In Radd al-Muhtar:	In Durr al-Mukhtar, it is [stated] that one should start the sermon after reading 'ta'awwudh' quietly,
His saying "begins," meaning before the first sermon, with 'ta'awwudh' secretly, then	In Radd al-Muhtar, the text's statement "begins" is that before the first sermon
with the praise of Allah the Almighty and glorification upon Him. [2] And Allah Almighty knows best.	first say 'A'uzu Billah' quietly, then after that perform praise and glorification of Allah Almighty. And Allah Almighty knows best. (T)

Question 1292: From Calcutta, Dharmatala No. 6, sent by Mr. Ghulam Qadir Baig Sahib, 3rd Ramadan-ul-Mubarak 1311 AH. What do the scholars of the religion say about the issue that Urdu poems containing sermons and advice are read during the Friday sermon? How is this according to Sharia? And is the excuse of the common people, that 'Arabic is not understood by us, hence Urdu is necessary,' acceptable or not? State the ruling and be rewarded.

The Answer: This matter is against the inherited Sunnah of the Muslims, and opposing the inherited Sunnah is disliked (Makruh). Generation after generation, it has been the practice and inheritance among the people of Islam to always have the sermon in pure Arabic, and it is necessary to follow the inheritance. It is stated in Durr al-Mukhtar: "Because the Muslims have inherited it, following them is obligatory." [3] (This is the inheritance of the Muslims which it is mandatory to follow. - T). In the era of the noble Companions (may Allah be pleased with them), by the grace of Allah, thousands of non-Arab (Ajam) lands were conquered. Thousands of non-Arabs were present, but it is never reported that they [the Companions] delivered the sermon in a language other than Arabic for their sake, or mixed another language into it.

And everything whose requirement was specifically present, with the absence of a barrier, yet	Everything for which the requirement is found and there is no barrier either, then

they abandoned it, it indicates that they refrained from it, so it was the lowest [level] of dislikedness (karahah).	abandoning it is indicative that it has been left, so at the very least this act will certainly be disliked. (T)

When this excuse of the common people was not worthy of consideration by the noble Companions, why should it be heard now? The fact is that the pure Sharia...

---

[1] Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, printed at Mujtabai Press, Delhi 1/111. [2] Radd al-Muhtar, Chapter of Friday Prayer, printed at Mustafa al-Babi, Egypt 1/598. [3] Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed at Mujtabai Press, Delhi 1/127.

फतवा रज़विया जिल्द आठ

जवाब: न ज़ोर से न छुपकर, बल्कि अकेले में चुपके से 'अऊज़ु' पढ़कर अल्लाह की प्रशंसा से शुरू करे।

अल-दुर्र अल-मुख्तार में: "यह चुपके से 'तअव्वुज़' के साथ शुरू होता है।" रद्द अल-मुह्तार में:	दुर्रे मुख्तार में है कि चुपके से तअव्वुज़ पढ़कर खुतबा शुरू करे,
उनका कहना "शुरू होता है" यानी पहले खुतबे से पहले चुपके से 'तअव्वुज़' के साथ, फिर	रद्द अल-मुह्तार में है कि मूल पाठ का कथन 'यबदौ' यह है कि पहले खुतबे से
अल्लाह तआला की प्रशंसा और उनकी महिमा के साथ। [2] और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।	पहले चुपके से 'अऊज़ु बिल्लाह' कहे, उसके बाद अल्लाह तआला की हम्द और सना करे। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 1292: कलकत्ता, धर्मतल्ला नंबर 6 से, जनाब गुलाम कादिर बेग साहब द्वारा प्रेषित, 3 रमजानुल मुबारक 1311 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि जुमा के खुतबे में जो उर्दू कसीदे (कविताएँ) पढ़ी जाती हैं जिनमें उपदेश और नसीहत होती है, यह शरीयत के हिसाब से कैसा है? और आम जनता का यह बहाना कि अरबी हमारी समझ में नहीं आती इसलिए उर्दू की ज़रूरत है, स्वीकार्य है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: यह बात मुसलमानों की विरासत में मिली सुन्नत (सुन्नते मुतवारसा) के खिलाफ है और विरासत में मिली सुन्नत के खिलाफ होना मकरूह (नापसंद) है। पीढ़ी दर पीढ़ी, इस्लाम के लोगों के बीच खुतबा हमेशा शुद्ध अरबी में ही प्रचलित और विरासत में रहा है और विरासत का पालन करना ज़रूरी है। दुर्रे मुख्तार में है: "क्योंकि मुसलमानों ने इसे विरासत में पाया है, इसलिए उनका पालन करना अनिवार्य है।" [3] (यह मुसलमानों की विरासत है जिसका पालन करना लाज़िम है। -त)। सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के ज़माने में, अल्लाह के फ़ज़ल से हज़ारों गैर-अरबी (अजमी) शहर फतह हुए। हज़ारों अजमी उपस्थित हुए लेकिन कभी यह उल्लेख नहीं मिलता कि उन्होंने उनके लिए खुतबा गैर-अरबी में पढ़ाया हो या इसमें दूसरी भाषा मिलाई हो।

और वह सब जिसकी आवश्यकता विशेष रूप से मौजूद थी, बाधा की अनुपस्थिति के साथ, फिर	हर वह चीज़ जिसकी आवश्यकता पाई जाए और कोई बाधा भी न हो, फिर
उन्होंने उसे छोड़ दिया, यह इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने इससे परहेज किया, तो यह निम्नतम [स्तर]	उसे छोड़ देना इस पर दलील है कि उसे छोड़ दिया गया है, तो कम से
मकरूहियत (नापसंदगी) का।	कम यह अमल मकरूह ज़रूर होगा। (त)

आम जनता का यह बहाना जब सहाबा किराम के नज़दीक ध्यान देने योग्य नहीं था, तो अब क्यों सुना जाने लगा? बात यह है कि शरीयते मुतहरा...

---

[1] दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमा, मुतबूआ मतबअ मुजतबाई दिल्ली 1/111। [2] रद्द अल-मुह्तार, बाबुल जुमा, मुतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/598। [3] दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मुतबूआ मतबअ मुजतबाई दिल्ली 1/127।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

الجواب: نہ بآواز نہ باخفاء بلکہ تنہا اعوذ آہستہ پڑھ کر حمد الٰہی سے شروع کرے،

في الدر المختار يبدأ بالتعوذ سرا ا	در مختار میں ہے کہ آہستہ تعوذ پڑھ کر خطبہ شروع کرے،
فی ردالمحتار	
قوله يبدأ اى قبل الخطبة الاولى بالتعوذ سرا ثم	ردالمحتار میں ہے متن کا قول یبدأ یہ ہے کہ پہلے خطبہ سے
بحمد الله تعالى والثناء عليه- 2 والله تعالى اعلم	پہلے آہستہ اعوذ باللہ کہے اس کے بعد اللہ تعالٰی کی حمد وثنا کرے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۹۲: از کلکتہ دھرم تلہ نمبر ۶ مرسلہ جناب غلام قادر بیگ صاحب ۳ رمضان المبارک ۱۳۱۱ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ خطبہ جمعہ میں جو اردو قصائد متضمن وعظ ونصیحت پڑھے جاتے ہیں یہ شرعاً کیسا ہے اور عوام کا یہ عذر کہ عربی ہماری سمجھ میں نہیں آتی لہٰذا اردو کی ضرورت ہے قابل قبول ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: یہ امر خلاف سنت متوارثہ مسلمین ہے اور سنت متوارثہ کا خلاف مکروہ، قرناً فقرناً اہل اسلام میں ہمیشہ خالص عربی میں خطبہ معمول ومتوارث رہا ہے اور متوارث کا اتباع ضرور ہے۔ در مختار میں ہے: لان المسلمین توارثوہ فوجب اتباعھم 3 (یہ مسلمانوں کا توارث ہے جس کی اتباع لازم ہے۔ ت) زمانہ صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم میں بحمد اللہ ہزارہا بلاد عجم فتح ہوئے۔ ہزاروں عجمی حاضر ہوئے مگر کبھی منقول نہیں کہ انھوں نے ان کی غرض سے خطبہ غیر عربی میں پڑھایا اس میں دوسری زبان کا خلط کیا ہو،

وکل ماوجد مقتضیه عیناً مع عدم ہر وہ شیئ جس کا مقتضی پایا جائے اور کوئی مانع بھی نہیں

المانع ثم پھر

ترکوہ دل علی انھم کفوا عنه فکان اس کو ترک کر دینا اس پر دال ہے کہ اسے چھوڑا گیا ہے

الدناہ تو کم از

الکراھة۔ کم یہ عمل مکروہ ضرور ہوگا۔ (ت)

عوام کا یہ عذر جب صحابہ کرام کے نزدیک لائق لحاظ نہ تھا اب کیوں مسموع ہونے لگا، بات یہ ہے کہ شریعت مطہرہ

---

[1] در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۱ [2] رد المحتار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱ / ۵۹۸ [3] در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۲۷

Fatawa-e-Razvia Volume 8

...has made seeking knowledge obligatory for everyone. The reason the common people do not understand is that they do not learn; the fault lies with them, not the preacher. After all, the common people do not even understand the Holy Quran; should the Quran be read to them in Urdu? And Allah Almighty knows best.

Issue 1293: From the city of Porbandar, Kathiawar region, Dead Road neighborhood, questioned by Khatri Umar Abu Bakr Sahib, 20 Jumada al-Ula 1332 AH.

What do the scholars of religion say regarding the following matter: Is it Sunnah for a preacher to hold a staff (stick) in his hand while delivering a sermon (Khutbah), or not? That is all.

Answer: In the sermon, holding a staff in hand has been written as Sunnah by some scholars and as Makruh (disliked) by others. It is evident that even if it is a Sunnah, it is not a Sunnah Mu'akkadah (emphasized Sunnah). Therefore, in view of the difference of opinion, it is better to avoid it unless there is an excuse,

[Arabic]: And that is because when an action fluctuates between being Sunnah and Makruh, leaving it is better. And Allah Almighty knows best. [Urdu explanation]: "That is because when there is doubt about an action being Sunnah or Makruh, leaving it is better. And Allah Almighty knows best. (T)"

Issue 1294: Sent by Maulvi Allah Yar Khan Sahib, 21 Dhu al-Hijjah 1305 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible to deliver the entire sermon (Khutbah) for Jumu'ah (Friday) and the two Eids in Arabic, Persian, and Hindi poetry, and to include poetry in it? Explain and be rewarded.

Answer: Regarding poetry, it is stated in the Hadith that it is a form of speech; its goodness is good and its foulness is foul, meaning it depends on the content. If it is a good mention, even poetry is praiseworthy, and if it is a bad mention, then poetry is also reprehensible. Being composed in meters (prosody), whether intentional or not, does not make speech foul. However, excessive indulgence and complete absorption in it is disliked by Sharia for the speaker,

[Arabic Reference]: Bukhari narrated in 'al-Adab al-Mufrad', and at-Tabarani in 'al-Mu'jam al-Awsat', and Abu Ya'la from Abdullah bin Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with them both), and this, and ad-Daraqutni from the Mother of the Believers...

[Urdu translation/completion]: "Imam Bukhari in 'al-Adab al-Mufrad', at-Tabarani in 'Mu'jam al-Awsat', and Abu Ya'la from Hazrat Abdullah bin Amr bin Aas (may Allah be pleased with them both), and from Abu Ya'la and ad-Daraqutni from the Mother of the Believers, Hazrat Siddiqa (may Allah be pleased with her) and..."

फ़तावा-ए-रजविया खंड 8

...ने ज्ञान प्राप्त करना सब पर अनिवार्य कर दिया है। आम जनता जो नहीं समझती, उसका कारण यह है कि वे सीखते नहीं; इसमें उपदेशक का दोष नहीं है, बल्कि उनका अपना कसूर है। आख़िरकार आम जनता पवित्र कुरान को भी तो नहीं समझती; क्या उनके लिए कुरान उर्दू में पढ़ा जाए? और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1293: पोरबंदर शहर, काठियावाड़ क्षेत्र, डेड रोड मोहल्ला से, खत्री उमर अबू बकर साहब द्वारा पूछा गया, 20 जमादी-उल-अव्वल 1332 हिजरी।

धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: क्या खुतबा (धर्मोपदेश) पढ़ते समय हाथ में लाठी (आसा) लेना सुन्नत है या नहीं? बस इतना ही।

उत्तर: खुतबा के दौरान हाथ में लाठी लेने को कुछ विद्वानों ने सुन्नत लिखा है और कुछ ने मकरूह (नापसंद)। यह स्पष्ट है कि यदि यह सुन्नत भी है, तो यह सुन्नत-ए-मुअक्कदा (अत्यधिक बल दी गई सुन्नत) नहीं है। इसलिए, मतभेद को देखते हुए इससे बचना ही बेहतर है, जब तक कि कोई ठोस कारण न हो,

[अरबी]: और वह इसलिए कि जब कोई कार्य सुन्नत और मकरूह होने के बीच झूलता हो, तो उसे छोड़ना ही बेहतर है। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है। [उर्दू व्याख्या]: वह इसलिए कि जब किसी कार्य के सुन्नत या मकरूह होने में संदेह हो, तो उसे छोड़ना बेहतर होता है। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है। (त)

मसला 1294: मौलवी अल्लाह यार खान साहब द्वारा प्रेषित, 21 ज़िल हिज्जा 1305 हिजरी।

धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि क्या जुमा और ईदैन के खुतबे को पूरी तरह अरबी, फारसी और हिंदी कविताओं में पढ़ना और उसमें कविताएँ शामिल करना सही है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: कविता के संबंध में हदीस में कहा गया है कि वह एक प्रकार की बातचीत है; जिसकी अच्छाई अच्छी है और बुराई बुरी, यानी यह विषयवस्तु पर निर्भर करता है। यदि इसमें अच्छी बात का उल्लेख है, तो कविता भी प्रशंसनीय है और यदि बुरा उल्लेख है, तो कविता भी निंदनीय है। छन्दों (बहूर) में

लयबद्ध हो जाना, चाहे वह स्वेच्छा से हो या अनजाने में, वाणी को बुरा नहीं बनाता। हालाँकि, इसमें अत्यधिक लिप्तता और पूर्ण तल्लीनता वक्ता के लिए शरीयत में नापसंद है,

[अरबी संदर्भ]: बुखारी ने 'अल-अदब अल-मुफ़रद' में, और तबरानी ने 'अल-मुअजम अल-अौसत' में और अबू या'ला ने अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल-आस (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत की है, और इसी तरह दारकुतनी ने उम्मुल मोमिनीन से...

[उर्दू अनुवाद]: इमाम बुखारी ने 'अदबुल मुफ़रद' में, तबरानी ने 'मुअजम अौसत' में और अबू या'ला ने हज़रत अब्दुल्ला बिन अम्र बिन आस (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से, और अबू या'ला और दारकुतनी ने उम्मुल मोमिनीन हज़रत सिद्दीका (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से और...

पृष्ठ 303/673

نے علم سیکھنا سب پر واجب کیا ہے۔ عوام کہ نہیں سمجھتے، سبب یہ ہے کہ سیکھتے تو قصور ان کا ہے نہ کہ خطیب کا، آخری عوام قرآن مجید بھی تو نہیں سمجھتے کیا ان کے لئے قرآن اُردو میں پڑھا جائے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۹۳: از شہر پور بندر ملک کا ٹھیاواڑ محلہ ڈیڈ روڈ مسؤلہ کھتری عمر ابو بکر صاحب ۲۰ جمادی الاولی ۱۳۳۲ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین مسئلہ ذیل میں، خطیب کو وقتِ خواندگیِ خطبہ عصا ہاتھ میں لینا سنت ہے یا نہیں؟ فقط

الجواب: خطبہ میں عصا ہاتھ میں لینا بعض علماء نے سنت لکھا اور بعض نے مکروہ، اور ظاہر ہے کہ اگر سنت بھی ہو تو کوئی سنت مؤکدہ نہیں، تو بنظر اختلاف اس سے بچنا ہی بہتر ہے مگر جب کوئی عذر ہو،

وذلك لان الفعل اذا تردد بين السنية والكراهة وہ اس لئے کہ جب فعل کے سنت اور مکروہ ہونے میں شک کان ترکہ اولٰی ۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ ہو تو اس کا ترک بہتر ہوتا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۹۴: مرسلہ مولوی الہ یار خاں صاحب ۲۱ ذی الحجہ ۱۳۰۵ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جمعہ و عیدین میں پورا خطبہ اشعارِ عربی و فارسی و ہندی میں پڑھنا اور اشعار کا داخل کرنا درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: شعر کی نسبت حدیث میں فرمایا وہ ایک کلام ہے جس کا حسن حسن اور قبیح قبیح یعنی مضمون پر مدار ہے اگر اچھا ذکر ہے شعر بھی محمود اور برا تذکرہ ہے تو شعر بھی مذموم، بحور، عروض پر موزوں ہو جانا خواہی نخواہی قبیح کلام کا باعث نہیں اگرچہ اس میں انہماک واستغراق تام متکلم کے حق میں شرع کو ناپسند،

اخرج البخاری فی الادب المفرد ، والطبرانی فی امام بخاری نے ادب المفرد میں، طبرانی نے معجم اوسط میں اور المعجم الاوسط وابو یعلٰی عن عبد اللہ بن عمر وبن ابویعلی نے حضرت عبد اللہ بن عمرو بن عاص رضی اللہ تعالیٰ العاص رضی اللہ تعالٰی عنہما وھٰذا والدارقطنی عن عنہما سے ابویعلی اور دارقطنی نے ام المؤمنین حضرت صدیقہ ام المؤمنین رضی اللہ تعالیٰ عنہما اور

Fatawa Ridawiyyah - Volume 8

[Box 1] Imam Shafi'i narrated Mursalan (as a disconnected chain) from Hazrat Urwa bin Zubair (may Allah be pleased with them both) that the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) said: Poetry is like other speech; good poetry is like good speech, and bad poetry is like bad speech. Imam Manawi said that the chain of this narration is Hasan (good). (T)

The Luminous Presence, the Master of Messengers (may Allah's peace and blessings be upon him), himself would place a pulpit (minbar) for Hazrat Hassan bin Thabit Ansari (may Allah be pleased with him). He would stand upon it and recite eloquent sermons in verse praising and glorifying the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him). The Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) would say: "As long as he remains in this work, Allah Almighty helps him through Jibreel (Gabriel)."

[Box 2] Imam Bukhari narrated in Al-Jami' al-Sahih from the Mother of the Believers, Hazrat Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her), that the Messenger of God (may Allah's peace and blessings be upon him) used to have a pulpit set up in the mosque for his companion Hassan bin Thabit. He would stand on the pulpit and praise the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) and respond to the attacks made by the disbelievers. Then the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) would say: "As long as Hassan (may Allah be pleased with him) is praising and defending Allah's Messenger (may Allah's peace and blessings be upon him), Allah Almighty aids and supports him through the Holy Spirit (Ruh al-Qudus)." (T)

Footnotes: 1. Al-Adab al-Mufrad, Chapter on Poetry, Hadith No. 382/865, Published by Al-Maktaba al-Athariyya, Sangla Hill, Sheikhupura, p. 223; Al-Jami' al-Saghir with Fath al-Qadir, citing Mu'jam al-Awsat and Adab al-Mufrad from Ibn Umar and Abu Ya'la from Aisha, 5/174. 2. Fayd al-Qadir, Commentary of Al-Jami' al-Saghir, citing Al-Haythami, Published by Dar al-Ma'rifa, Beirut, 5/174. 3. Mishkat al-Masabih, citing Al-Bukhari, Chapter on Eloquence and Poetry, Published by Matba' Mujtabai, Delhi, p. 410; Sunan Abu Dawud, Book of Manners, Published by Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 2/684.

Page 304 of 673

फतावा रिज़विया - खंड 8

[बॉक्स 1] इमाम शाफई ने हज़रत उरवा बिन ज़ुबैर (अल्लाह उन दोनों से राज़ी हो) से मुरसलन रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) ने फ़रमाया: कविता अन्य वाणी की तरह ही है; अच्छी कविता अच्छी वाणी की तरह है, और बुरी कविता बुरी वाणी की तरह है। इमाम मुनावी ने कहा कि इस रिवायत की सनद (श्रृंखला) हसन है। (त)

स्वयं प्रकाशमान उपस्थिति, संतों के सरदार (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) हज़रत हस्सान बिन साबित अंसारी (अल्लाह उनसे राज़ी हो) के लिए मिम्बर (मंच) बिछाते थे। वह उस पर खड़े होकर पवित्र पैगंबर (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) की प्रशंसा और महिमा में कविता में प्रभावशाली भाषण देते थे। पवित्र पैगंबर (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) फ़रमाते थे: "जब तक वह इस काम में रहता है, अल्लाह तआला जिब्रईल के माध्यम से उसकी मदद करता है।"

[बॉक्स 2] इमाम बुखारी ने अल-जामि' अस-सहीह में मोमिनों की माँ, हज़रत आयशा सिद्दीका (अल्लाह उनसे राज़ी हो) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) अपने साथी हस्सान बिन साबित के लिए मस्जिद में मिम्बर बिछवाते थे। वह मिम्बर पर खड़े होकर आप (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) की प्रशंसा करते और काफिरों की ओर से किए गए हमलों का जवाब देते। फिर अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) फ़रमाते: "जब तक हस्सान (अल्लाह उनसे राज़ी हो) अल्लाह के रसूल (अल्लाह की उन पर शांति और कृपा हो) की प्रशंसा और रक्षा कर रहे हैं, अल्लाह तआला रूह-उल-क़ुदुस (पवित्र आत्मा) के माध्यम से उनकी सहायता और समर्थन करता है।" (त)

पाद टिप्पणियाँ: 1. अल-अदब अल-मुफ़्रद, कविता पर अध्याय, हदीस संख्या 382/865, अल-मकतबा अल-अथरिया, सांगला हिल, शेखूपुरा द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 223; अल-जामि' अस-सगीर फ़तह अल-कादिर के साथ, इब्न उमर से मुअजम अल-अवसत और अदब अल-मुफ़्रद और आयशा से अबू याला के हवाले से, 5/174। 2. फ़ैज़ अल-कादिर, अल-जामि' अस-सगीर की व्याख्या, अल-हैथमी के हवाले से, दार अल-मआरिफ़ा, बेरूत द्वारा प्रकाशित, 5/174। 3. मिश्कात अल-मसाबीह, अल-बुखारी के हवाले से, वाक्पटुता और कविता पर अध्याय, मतबा मुजतबाई, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 410; सुनन अबू दाऊद, शिष्टाचार की पुस्तक, नूर मुहम्मद असद अल-मताबी, कराची द्वारा प्रकाशित, 2/684।

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

[Box 1] الصديقة رضى الله تعالى عنها والامام الشافعي عن عروة بن الزبير رضى الله تعالى عنهما مرسلا قال رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم : الشعر بمنزلة الكلام فحسنه كحسن الكلام وقبيحه كقبيح الكلام 1 قال المناوى اسناده حسن 2 - امام شافعی نے حضرت عروہ بن زبیر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے مرسلاً روایت کیا ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: شعر دوسرے کلام کی طرح ہی ہے، اچھا شعر اچھے کلام اور برا شعر برے کلام کی طرح ہوتا ہے۔ امام مناوی نے کہا کہ اس روایت کی سند حسن ہے۔ (ت)

خود حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حضرت حسان بن ثابت انصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ کے لئے منبر بچھاتے وہ اس پر کھڑے ہو کر حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی حمد و ثناء و مفاخرت کا خطبہ بلیغہ اشعار میں پڑھتے، حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ارشاد فرماتے یہ جب تک اس کام میں رہتا ہے اللہ تعالٰی جبریل سے اس کی مدد فرماتا ہے،

[Box 2] اخرج الامام البخاري في الجامع الصحيح عن ام المؤمنين الصديقة رضى الله تعالى عنها قالت كان رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم يضع لحسان بن ثابت منبرا في المسجد يقوم عليه قائما يفاخر عن رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم او ينافح ويقول رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم ان الله يؤيد حسان بروح القدس ما نافح او فاخر عن رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم 3 - امام بخاری نے الجامع الصحیح میں اُم المؤمنین حضرت عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کیا کہ رسول خدا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اپنے صحابی حسان بن ثابت کے لئے مسجد میں منبر بچھواتے اور وہ منبر پر کھڑے ہو کر آپ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی مدح کرتے اور کفار کی طرف سے کئے ہوئے حملوں کا جواب دیتے، پھر رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے کہ جب تک

حسان (رضی اللہ تعالیٰ عنہ) اللہ کے رسول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی تعریف اور دفاع کرتے ہیں اللہ تعالیٰ ان کی روح القدس کے ذریعے مدد و تائید فرماتا ہے۔ (ت)

حواشی: 1. الادب المفرد باب الشعر حسن الخ نمبر ۳۸۲ حدیث ۸۶۵ مطبوعہ المکتبۃ الاثریہ سانگلا ہل شیخوپورہ ص ۲۲۳، الجامع الصغیر مع فتح القدیر بحوالہ معجم اوسط و ادب مفرد عن ابن عمر و ابویعلیٰ عن عائشہ ۵/۱۷۴ 2. فیض القدیر شرح الجامع الصغیر بحوالہ الہیثمی مطبوعہ دارالمعرفۃ بیروت ۵/۱۷۴ 3. مشکوۃ المصابیح بحوالہ البخاري باب البیان والشعر مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۴۱۰، سنن ابو داؤد کتاب الادب مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۶۸۴/۲

My master, the gnostic of Allah, the leader of the two paths, the Shaykh of Shaykhs, Shihab al-Haqq wal-Din Suhrawardi (may his secret be sanctified), says:

Whatever poetry is of this nature, meaning poetry regarding asceticism, exhortation, wisdom, condemnation of the world, reminding of the blessings of Allah, praise of the righteous and the attributes of the God-fearing, and similar things that carry one towards obedience and distance one from disobedience, is praiseworthy, etc. (T)

Every poem is good which contains asceticism, exhortation, wisdom, condemnation of the world, a reminder of the blessings of Allah Almighty, or the description and praise of the righteous and the pious, etc., which urges a person to obey Allah Almighty and His Messenger or keeps him away from sin, etc. (T)

So, if occasionally in the Friday or Eid sermons, a few Arabic verses of praise for Allah and the Prophet (pbuh), exhortation and remembrance, condemnation of the world, and praise for the hereafter are recited, there is no prohibition. Rather, it is narrated that the most severe of the Ummah in the command of Allah, the Commander of the Faithful, Umar al-Faruq (may Allah be pleased with him), recited some verses in a sermon.

Indeed, Al-Askari narrated in 'al-Mawa'iz' from Abu Khalid al-Ghassani, who said: The elders of the people of Syria who met Umar bin al-Khattab (may Allah be pleased with him) told me: When he was made caliph, he ascended the pulpit. When he saw the people below him, he praised Allah. Then the first words he spoke after the praise of Allah and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) were: 'Take it easy on yourself, for the measures of affairs are in the Hand of God. What is forbidden will not come to you, nor will what is commanded fall short of you.' This was mentioned by Allama Ibrahim bin Abdullah al-Yamani al-Madani in the seventeenth chapter of the book 'al-Qawl al-Sawab'.

Shaykh Askari has narrated in 'al-Mawa'iz' from Abu Khalid al-Ghassani that: 'The elders of the people of Syria told me that we saw Hazrat Umar bin al-Khattab (may Allah be pleased with him) when the Commander of the Faithful (may Allah be pleased with him) became the caliph and ascended the pulpit. Seeing the people below him, he praised Allah. Then, after the praise of the Lord and the tribute to Mustafa (may the glory of Allah be exalted and peace and blessings of Allah be upon him), the first speech he brought to his tongue were these verses, the summary of

which is: 'Be gentle with yourself, for the measures of all affairs are in the hand of power of Allah (the Mighty and Majestic). What is not destined will not come to you, and what is destined will not be less for you.' This was mentioned by Allama Ibrahim bin Abdullah Yamani Madani.'

1. Kitab 'Awarif al-Ma'arif, attached to Ihya al-'Ulum, printed at Matba'at al-Mashhad, Cairo, p. 109.
2. Al-Qawl al-Sawab fi Fadl 'Umar bin al-Khattab, Chapter 17. Note: Ala Hazrat quoted the passage referring to the Shaykh without mentioning a specific book. I could not find the exact original passage. However, after great effort, a supportive passage was found in 'Awarif al-Ma'arif with these words: "If it consists of poems mentioning Paradise and Hell, creating desire for the eternal abode, describing the favors of the Almighty King, and mentioning acts of worship and encouraging good deeds, then there is no way to deny it." - Nazir Ahmad.

मेरे आका, अल्लाह के आरिफ़, दोनों तरीक़ों के इमाम, शैख़ों के शैख़, शिहाब अल-हक़ वल-दीन सुहरावर्दी (क़ुद्दिसा सिर्रुहुल अज़ीज़) फ़रमाते हैं:

हर वह शेर अच्छा है जो ज़ुहद (वैराग्य), वाज़ (उपदेश), हिकमत (बुद्धिमत्ता), दुनिया की मज़म्मत (बुराई), अल्लाह तआला की नेमतों की याद दहानी, या सालेहीन (नेक लोगों) और मुत्तक़ीन (परहेज़गारों) की सिफ़त व तारीफ़ वगैरह पर मुश्तमिल (आधारित) हो, जो इंसान को अल्लाह तआला और उसके रसूल की इताअत (आज्ञाकारिता) पर उभारता हो या गुनाह से दूर करता हो, इत्यादि। (त)

तो अगर जुमा या ईदैन के खुतबे में कभी-कभी दो-चार अरबी अशआर (शेर) हम्द व नात, वाज़ व तज़कीर, दुनिया की मज़म्मत और आख़िरत की मदह (तारीफ़) के पढ़े जाएँ तो कोई मनाही नहीं, बल्कि खुद उम्मत में अल्लाह के हुक्म में सबसे सख़्त अमीरुल मोमिनीन उमर फ़ारूक़ रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से खुतबे में बाज़ (कुछ) अशआर पढ़ना मरवी (वर्णित) है।

शैख़ असकरी ने 'अल-मवाइज़' में अबू खालिद अल-ग़स्सानी से नक़ल किया कि मुझे शाम के बुज़ुर्गों ने बताया कि हमने हज़रत उमर बिन ख़त्ताब रज़ियल्लाहु तआला अन्हु को देखा कि जब अमीरुल मोमिनीन रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ख़लीफ़ा बने तो मिम्बर पर तशरीफ़ ले गए। लोगों को अपने से नीचे देखकर हम्द-ए-इलाही बजा लाए, फिर ख़ुदा की सना (तारीफ़) और मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) की नात के बाद पहला कलाम जो ज़ुबान पर लाए, वे ये अशआर थे जिनका हासिल यह है कि अपने ऊपर नर्मी कर, क्योंकि सब कामों के अंदाज़े अल्लाह अज़्वजल के दस्ते-कुदरत (शक्ति के हाथ) में हैं। जो मुक़द्दर नहीं वह तेरे पास आने का नहीं और जो मुक़द्दर है वह तुझसे कम होने वाला नहीं। इसे अल्लामा इब्राहिम बिन अब्दुल्ला यमनी मदनी ने 'अल-क़ौल अस-सवाब' की सत्रहवीं किताब में ज़िक्र किया है।

1. किताब 'अवारिफ़ अल-मआरिफ़', इहया अल-उलूम के साथ संलग्न, मतबअतुल मशहद, काहिरा, पृ. 109।
2. अल-क़ौल अस-सवाब फ़ी फ़ज़्ल उमर बिन अल-ख़त्ताब, अध्याय 17। फ़ (नोट): आला हज़रत ने शैख़ के हवाले से इबारत नक़ल की, किसी किताब का ज़िक्र नहीं किया। मुझे असल इबारत नहीं मिल सकी। अलबत्ता, बहुत कोशिश के बाद अवारिफ़ अल-मआरिफ़ में इन शब्दों के साथ एक सहायक इबारत मिली है: "अगर वह जन्नत और दोज़ख़ के ज़िक्र, सुकून के घर की तरफ़

शौक दिलाने, अल-मलिक अल-जब्बार की नेमतों के वर्णन, इबादतों के ज़िक्र और नेक कामों की तरग़ीब (प्रोत्साहन) वाले कसीदे हों, तो इनकार की कोई गुंजाइश नहीं।" - नज़ीर अहमद।

पृष्ठ 305/673

سیدی عارف باللہ امام الطریقتین شیخ الشیوخ شہاب الحق والدین سہر وردی قدس سرہ العزیز فرماتے ہیں:

ماکان منہ یعنی من الشعر فی الزھد والمواعظ والحکم وذم الدنیا والتذکیر بالاء اللہ ونعت الصالحین وصفۃ المتقین ونحو ذلك مما یحمل علی الطاعۃ ویبعد عن المعصیۃ محمود الخ (ت)

ہر وہ شعر اچھا ہے جو زہد، وعظ، حکمت، دنیا کی مذمت، اللہ تعالٰی کی نعمتوں کو یاد دلانے والا یا صالحین و متقین کی صفت و تعریف وغیرہ پر مشتمل ہو جو انسان کو اللہ تعالٰی اور اس کے رسول کی اطاعت پر ابھارتا ہو یا گناہ سے دور کرتا ہو الخ (ت)

تو اگر خطبہ جمعہ یا عیدین میں احیاناً دوچار عربی اشعار حمد ونعت، وعظ وتذکیر و ذم دنیا ومدح عقبٰی کے پڑھے جائیں کوئی مانع نہیں بلکہ خود اشداء الامتہ فی امر اللہ امیر المومنین عمر فاروق رضی اللہ تعالٰی عنہ سے خطبہ میں بعض اشعار پڑھنا مروی ،

فقد اخرج العسکری فی المواعظ عن ابی خالد الغسانی قال حدثنی مشیخۃ من اھل الشام ادرکوا عمر بن الخطاب رضی اللہ تعالی عنہ قالوا لما استخلف صعد المنبر فلما رأی الناس اسفل منہ حمد اللہ ثم کان اول کلام تکلم بہ بعد الثناء علی اللہ وعلی رسولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم، ھون علیك فان الامور:: بکف الالہ مقادیرھا * فلیس باتیک منھیھا * ولا قاصر عنك مامورھا * ذکرہ العلامۃ ابراھیم بن عبداللہ الیمنی المدنی فی الباب السابع عشر من کتاب القول الصواب

شیخ عسکری نے المواعظ میں ابو خالد الغسانی سے نقل کیا کہ مجھے اہل شام کے بزرگوں نے بتایا کہ ہم نے حضرت عمر بن خطاب رضی اللہ تعالٰی عنہ کو دیکھا کہ جب امیر المومنین رضی اللہ

تعالیٰ عنہ خلیفہ ہوئے منبر پر تشریف لے گئے لوگوں کو اپنے سے نیچا دیکھ کر حمد الہی بجالائے پھر ثنائے خداوند و نعت مصطفیٰ جل جلالہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے بعد پہلا کلام جو زبان پر لائے یہ اشعار تھے جن کا حاصل یہ کہ اپنے اوپر نرمی کر کہ سب کاموں کے اندازے اللہ عزوجل کے دست قدرت میں ہیں جو مقدر نہیں وہ تیرے پاس آنے کا نہیں اور جو مقدر ہے وہ تجھ سے کمی کرنے کا نہیں، اسے علامہ ابراہیم بن عبداللہ یمنی مدنی نے

1 کتاب عوارف المعارف ملحق احیاء العلوم مطبوعہ مطبعتہ المشہد القاہرہ ص ۱۰۹ 2 القول الصواب فی فضل عمر بن الخطاب الباب السابع عشر ف: اعلحضرت نے شیخ کے حوالے سے عبارت نقل کی کسی کتاب کا ذکر نہیں کیا، مجھے اصل عبارت نہیں مل سکی، البتہ سعی بسیار کے بعد اس عبارت کی مؤید عبارت عوارف المعارف سے ان الفاظ کے ساتھ ملی ہے، فان کان من القصائد فی ذکر الجنۃ والنار والتشویق الی دار القرار ووصف نعم الملک الجبار وذکر للعبادات والترغیب فی الخیرات فلاسبیل الی الانکار"۔ نذیر احمد

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Arabic Box Left]: Regarding the excellence of the Commander of the Faithful, Umar ibn al-Khattab, from his book "Al-Iktifa fi Fadl al-Arba'at al-Khulafa". [Urdu Box Right]: It has been quoted from "Al-Iktifa fi Fadl al-Arba'at al-Khulafa" in the seventeenth chapter of his book "Al-Qawl al-Sawab fi Fadl Amir al-Mu'minin Umar ibn al-Khattab". (T)

However, these sermons (khutbahs) should not be recited entirely in verse, as it is a deviation from the established Sunnah words without reason, rather it is an alteration of the inherited method. Reciting a purely poetic sermon necessitates the abandonment of the Sunnah of recitation [of Quranic verses], the dislike of which is explicitly stated in the words of scholars, as mentioned in "Imdad al-Fattah Sharh Nur al-Idah" by Allamah Hasan Shurunbulali:

[Arabic Box Left]: In "Al-Muhit," it is stated that a Surah or a verse from the Quran should be recited in the sermon, for it has been established through continuous reports (tawatur) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to recite the Quran in his sermon, and it would not be devoid of a Surah or a verse. [Urdu Box Right]: It is mentioned in "Al-Muhit" that a Quranic surah or its verse should be read in the sermon because it is proven by mass-transmitted traditions from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that his sermon was never without a Quranic surah or some verse. (T)

Allamah Tahtawi said regarding the second sermon in the marginalia of the commentary on "Tanwir":

[Arabic Box Left]: Supplication for believing men and women is added in it instead of the exhortation (wa'z) in the first one, and there is no exhortation in it, and the recitation of a verse in it is sunnah, as stated in "Al-Bahr". [Urdu Box Right]: Instead of the sermon in the first khutbah, an addition of prayer for believing men and women should be made in the second; there should be no sermon in it, and reciting a verse in it is sunnah, as it is in "Bahr". (T)

It is in "Durr-e-Mukhtar":

[Arabic Box Left]: Two sermons with a sitting between them are sunnah, and the one who leaves it... [Urdu Box Right]: Two sermons with a sitting (jalsa) between them are sunnah, this...

[Arabic Box Left]: Note: I say: It was mentioned in "Al-Bahr" as an inference from the statement in "Al-Tajnis wal-Mazid" that the second is like the first, etc., so one should take note. [Urdu Box Right]: I say that in "Bahr", while considering the statement of "Tajnis wal-Mazid" as apparent, it was mentioned that the second sermon is like the first, so it should be reflected upon. (T)

1. Radd al-Muhtar citing Imdad al-Fattah, Chapter of Jumu'ah, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/598.
2. Hashiyat al-Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Jumu'ah, printed by Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/343.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[अरबी बॉक्स]: अमीरुल मोमिनीन उमर बिन अल-ख़त्ताब की फ़ज़ीलत के बारे में, उनकी किताब 'अल-इक्तिफ़ा फ़ी फ़ज़्ल अल-अरबा अल-ख़ुलफ़ा' से। [उर्दू बॉक्स]: अपनी किताब 'अल-क़ौल अल-सवाब फ़ी फ़ज़्ल अमीर अल-मोमिनीन उमर बिन अल-ख़त्ताब' के सत्रहवें अध्याय में 'अल-इक्तिफ़ा फ़ी फ़ज़्ल अल-अरबा अल-ख़ुलफ़ा' से उद्धृत किया गया है। (त)

लेकिन इन खुतबों को पूरी तरह से पद्य (नज़्म) में नहीं पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि यह बिना किसी कारण के सुन्नत शब्दों से विमुख होना है, बल्कि यह विरासत में मिली पद्धति का परिवर्तन है। पूरी तरह से काव्यात्मक खुतबा पढ़ने से कुरान की तिलावत की सुन्नत छूट जाती है, जिसकी नापसंदगी विद्वानों के शब्दों में स्पष्ट है, जैसा कि अल्लामा हसन शुरनबुलाली की 'इमदाद अल-फ़त्ताह शरह नूर अल-ईज़ाह' में है:

[अरबी बॉक्स]: 'अल-मुहीत' में है कि खुतबे में कुरान की एक सूरा या एक आयत पढ़ी जानी चाहिए, क्योंकि निरंतर रिवायतों (तवातुर) से साबित है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अपने खुतबे में कुरान पढ़ते थे और वह किसी सूरा या आयत से खाली नहीं होता था। [उर्दू बॉक्स]: मुहीत में है कि खुतबे में कुरानी सूरा या उसकी आयत पढ़ी जाए क्योंकि नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से तवातुर के साथ साबित है कि आपका खुतबा कुरानी सूरा या किसी आयत से खाली नहीं होता था। (त)

अल्लामा तहतावी ने 'तन्वीर' की शरह के हाशिये में दूसरे खुतबे के बारे में फ़रमाया:

[अरबी बॉक्स]: इसमें पहले खुतबे के उपदेश (वाज़) के बदले मोमिन मर्दों और औरतों के लिए दुआ की जाती है, और इसमें कोई उपदेश नहीं होता, और इसमें एक आयत का पाठ सुन्नत है, जैसा कि 'अल-बहर' में है। [उर्दू बॉक्स]: पहले खुतबे में वाज़ के बदले दूसरे में मोमिनीन और मोमिनात के लिए दुआ का इज़ाफ़ा किया जाए, इसमें वाज़ न हो और इसमें किराते आयत सुन्नत है जैसा कि 'बहर' में है। (त)

'दुर्रे मुख़्तार' में है:

[अरबी बॉक्स]: उनके बीच बैठने के साथ दो खुतबे सुन्नत हैं, और इसे छोड़ने वाला... [उर्दू बॉक्स]: दो खुतबे दरमियान में जलसा (बैठने) के साथ सुन्नत हैं, इस...

[अरबी बॉक्स]: नोट: मैं कहता हूँ: 'अल-बहर' में 'अल-तजनीस वल-मजीद' के इस कथन से निष्कर्ष निकालते हुए इसका उल्लेख किया गया है कि दूसरा खुतबा पहले की तरह है, आदि, अतः ध्यान देना चाहिए। [उर्दू बॉक्स]: मैं कहता हूँ कि 'बहर' में 'तजनीस वल-मजीद' के कौल को ज़ाहिर करार देते हुए ज़िक्र किया कि दूसरा खुतबा पहले की तरह है, पस गौर करना चाहिए। (त)

1. रद-उल-मुह्तार, हवाला इमदाद-उल-फ़त्ताह, बाब-उल-जुमा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/598.
2. हाशिया-अत-तहतावी अल अद-दुर-अल-मुख़्तार, बाब-उल-जुमा, दार अल-मारिफ़ा बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/343.

पृष्ठ 306/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[عربی باکس بائیں]: فی فضل امیر المؤمنین عمر بن الخطاب من کتابہ الاکتفاء فی فضل الاربعۃ الخلفاء۔ [اردو باکس دائیں]: اپنی کتاب القول الصواب فی فضل امیر المومنین عمر بن الخطاب کے سترھویں باب میں الاکتفاء فی فضل الاربعۃ الخلفاء سے نقل کیا ہے۔ (ت)

مگر ان خطبوں کا تمام و کمال نظم ہی میں پڑھنا نہ چاہئے کہ بلاوجہ کلماتِ مسنونہ سے اعراض بلکہ طریقہ متوارثہ کی تغیر ہے اور نظم خالص خطبہ میں ترکِ سنتِ تلاوت کو مستلزم جس کی کراہت کلماتِ علماء میں مصرح، امداد الفتاح شرح نور الایضاح علامہ حسن شرنبلالی میں ہے:

[عربی باکس بائیں]: فی المحیط یقرأ فی الخطبۃ سورۃ من القرآن او آیۃ فالاخبار قد تواترت ان النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کان یقرأ القرآن فی خطبتہ لا تخلو عن سورۃ او آیۃ 1۔ [اردو باکس دائیں]: محیط میں ہے کہ خطبہ میں قرآنی سورت یا اس کی آیت پڑھی جائے کیونکہ بنی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے تواتر کے ساتھ ثابت ہے کہ آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا خطبہ قرآنی سورت یا کسی آیت قرآنی سے خالی نہ ہوتا۔ (ت)

علامہ طحطاوی نے حاشیہ شرح تنویر میں خطبہ ثانیہ کی نسبت فرمایا:

[عربی باکس بائیں]: یزید فیھا الدعاء للمؤمنین والمؤمنات بدل الوعظ فی الاولی ولا یعظ فیھا ویسن قرأۃ آیۃ فیھا کذا فی البحر 2 عہ۔ [اردو باکس دائیں]: پہلے خطبہ میں وعظ کے بدلے دوسرے میں مومنین اور مومنات کے لئے دعا کا اضافہ کیا جائے اس میں وعظ نہ ہو اور اس میں قرات آیت سنت ہے جیسا کہ بحر میں ہے۔ (ت)

درمختار میں ہے:

[عربی باکس بائیں]: یسن خطبتان بجلسة بینهما وتارکها [اردو باکس دائیں]: دو خطبے درمیان میں جلسہ کے ساتھ سنت ہیں، اس

[عربی باکس بائیں]: عہ: اقول: ذکرہ فی البحر استظہارا من قول التجنیس والمزید الثانیۃ کالا ولی الخ فلیتنبہ ۱۲ منہ (م) [اردو باکس دائیں]: میں کہتا ہوں بحر میں تجنیس والمزید کے قول کو ظاہر قرار دیتے ہوئے ذکر کیا کہ دوسرا خطبہ پہلے کی طرح ہے پس غور کرنا چاہئے ۱۲ منہ (ت)

1 ردالمحتار بحوالہ امدادالفتاح باب الجمعہ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۵۹۸ 2 حاشیۃ الطحطاوی علی الدر المختار باب الجمعہ مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۱/۳۴۳

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Main Text Segment 1] Named according to the most correct opinion, it is like leaving the recitation of the amount of three verses. [Summarized]. I say: And by his statement "the amount of, etc.", a long verse is also included which is equal to three verses. Therefore, the objection raised in Radd al-Muhtar will also be removed. It is very beneficial for you to study the footnote we have written on it (Radd al-Muhtar). (T)

[Main Text Segment 2] Annotation: Allama Shami said, meaning it is disliked to restrict the sermon to something like a single tasbih (glorification) and tahlil (proclamation of faith), which is not a long dhikr equivalent to three verses or the required amount of Tashahhud. It does not mean that leaving the recitation of three verses is disliked, because it is explicitly stated in Al-Multaqa, Al-Mawahib, Nur al-Idah, and others that reciting one verse is a Sunnah. [End of quote]. I wrote a footnote on this, the text of which is: I say, rather this is the clear meaning of the words. If your interpreted purpose was meant, he would have said (it is disliked like leaving three verses). Let the change be through interpretation; this clear meaning is better. However, the author's purpose is not specifically three verses so that your mentioned objection arises; rather, he used the word "amount" and included one and two such verses as well (continued on next page).

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/111. 2. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/598.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[मुख्य पाठ खंड 1] सबसे सही मत के अनुसार, यह तीन आयतों की मात्रा की तिलावत छोड़ने के समान है। [संक्षेप में]। मैं कहता हूँ: और उनके कथन "मात्रा आदि" से एक लंबी आयत भी शामिल हो जाती है जो तीन आयतों के बराबर हो। इसलिए, रद अल-मुहतार में जो आपत्ति की गई है, उसका भी निवारण हो जाएगा। आपके लिए उस हाशिये (पाद-टिप्पणी) का अध्ययन करना बहुत उपयोगी है जो हमने उस (रद अल-मुहतार) पर लिखा है। (त)

[मुख्य पाठ खंड 2] टिप्पणी: अल्लामा शामी ने कहा, अर्थात खुतबे में केवल एक तस्बीह और तहलील जैसी चीज़ पर सीमित रहना मकरूह है, जो तीन आयतों के बराबर लंबे ज़िक्र या अनिवार्य तशहुद की मात्रा के बराबर न हो। इसका मतलब यह नहीं है कि तीन आयतों को छोड़ना मकरूह है क्योंकि अल-मुल्तका, अल-मवाहिब, नूर अल-ईदाह आदि में स्पष्ट किया गया है कि एक आयत पढ़ना सुन्नत है। [उद्धरण समाप्त]। मैंने इस पर एक हाशिया लिखा है जिसका पाठ यह है: मैं कहता हूँ, बल्कि यह शब्दों का स्पष्ट अर्थ है। यदि आपका व्याख्यायित उद्देश्य होता, तो वह कहते (तीन आयतों को छोड़ने की तरह मकरूह है)। व्याख्या के माध्यम से परिवर्तन किया जाए; यह स्पष्ट अर्थ बेहतर है। हालाँकि, व्याख्याकार का उद्देश्य विशेष रूप से तीन आयतें नहीं हैं ताकि आपकी बताई गई आपत्ति उत्पन्न हो; बल्कि उन्होंने "मात्रा" शब्द का प्रयोग किया है और इसमें एक और दो ऐसी आयतों को भी शामिल किया है (अगले पृष्ठ पर जारी)।

[पाद-टिप्पणियाँ] 1. दुर्र अल-मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली में मुद्रित, 1/111। 2. रद अल-मुहतार, जुमे का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/598।

पृष्ठ 307 का 673

[پہلا حصہ] مسمیٰ علی الاصح کترکه قرائة قدر ثلث ایات اه ملخصاً، قلت وبقوله قدر الخ دخل اية طويلة تكون قدر ثلث فائد فح ما اورد فی ردالمحتار وعليك بما علقناه عہ۔ دو خطبے کے درمیان میں جلسے کے ساتھ سنت ہیں، اس جلسے کو ترک کرنا اصح قول کے مطابق گناہ ہے جیسے کہ تین آیات کی مقدار قرأت کا ترک کرنا گناہ ہے اھ ملخصاً قلت ان کے قول "قدر الخ" سے طویل آیت بھی شامل ہو جاتی ہے جو تین آیات کے برابر ہو لہذا ردالمحتار میں جو اعتراض ہوا اس کا ازالہ بھی ہو جائے گا آپ پر اس حاشیہ کا مطالعہ نہایت مفید ہے جو ہم نے اس (ردالمحتار) پر لکھا ہے۔ (ت)

[دوسرا حصہ] عہ: قال العلامة الشامي ای یکره الاقتصار فی الخطبة علی نحو تسبیحة وتهلیلة مما لایکون ذکر الطویل قدر ثلث ای ات او قدر التشهد الواجب ولیس المرادان ترك قرائة ثلث ای ات مکروه لان المصرح به فی المتقی والمواهب ونورالایضاح وغیرها ان من السنن قرائة آیة[2] اه وکتب علیه مانصه اقول بل ہو مفاد صریح اللفظ ولو کان المراد ما اولتم به لقال کترکه قرائة ثلث آیات وهذا اشبه بالتبدیل منه بالتاویل ولا یرید الشارح ثلث آیات عینا حتی یرد علیه ماذکر تم وانما قدرها فادخل اية او ای تین علامہ شامی نے کہا یعنی خطبہ میں صرف ایک تسبیح اور تہلیل کے برابر جو تین آیات یا تشہد واجب کے برابر نہ ہو تو مکروہ ہے۔ اس سے مراد یہ نہیں کہ تین آیات کا ترک مکروہ کیونکہ ملتقی اور مواہب اور نورالایضاح وغیرہ میں تصریح کی گئی ہے کہ ایک آیت کا پڑھنا سنت ہے اھ میں نے اس پر حاشیہ لکھا جس کی عبارت یہ ہے اقول بلکہ یہ تو صریح لفظ کا مفاد ہے اور اگر آپ کا تاویل شدہ مقصد ہوتا تو یوں کہتے (تین آیات کے ترک کی طرح مکروہ ہے) تاویل کے ذریعہ تبدیلی کی جائے یہ صریح مفاد بہتر ہے حالانکہ شارح کا مقصد خاص تین آیات مراد نہیں

تاکہ آپ کا ذکر کردہ اعتراض وارد ہو بلکہ انہوں نے تو قدر رکھا لفظ کہا ہے اور ایک اور دو ایسی آیات کو بھی (باقی بر صفحہ آئندہ) Majlis of Dawatels

[حواشی] 1. درمختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۱ 2. ردالمحتار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۸

Fatawa Rizwia Volume 8

In the same way, incorporating a non-Arabic language into the sermon is not appropriate, as it has been traditionally inherited from the time of the Companions, their Successors, and the leaders of religion that the sermon be specifically in the Arabic language, as mentioned by Shah Waliullah Dehlawi in the commentary of Al-Muwatta. (As Shah Waliullah Dehlawi mentioned it in the commentary of Muwatta. - T). By the grace of Allah, thousands of non-Arab lands were conquered during the era of the ancestors. Thousands of pulpits were established; the general attendees were non-Arabs, yet it is never reported that the pious ancestors delivered the Friday or Eid sermons in a non-Arabic language for their understanding or mixed in another language, and opposing the inherited Sunnah is certainly disliked. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Table Content] Arabic: "Verily, what the Muslims have inherited, it is obligatory to follow it (End). That is, it is established and emphasized. I say: and its verification is that since the motive for preaching in a foreign language was itself present and any obstacle was absent, yet they did not do so, then that was a deliberate refrain (kaff) from them, not a mere omission (tark). Restraint is an action, and action is subject to inheritance, unlike omission, for there is no meaning for its inheritance, and there is no scope for following it because it is something not done, rather it is not even within capacity, as stated by the great scholars. It is mentioned in 'al-Ashbah wa al-Nazair': Omissions are not to be followed." Urdu: "Whatever is inherited and reported among Muslims, following it is mandatory. (End) i.e., it is established and emphasized. I say: its verification is that the demand for sermon and advice in the non-Arabic language was present by itself and the obstacle was missing, still they did not do so, so this is 'refraining' (kaff) from their side, not 'leaving' (tark). Refraining is an action and inheritance continues in action. Contrary to 'leaving' in which the concept of inheritance cannot even exist and there can be no justification for following it because action was not taken on it, rather it [was not] in power..."

[Bottom Section Content] Arabic: "(Remainder of previous page's footnote) By the amount of one third, and that is intended by those who said 'an ayah' (a verse) by the proof of what is in 'al-Hindiyya' from 'al-Jawhara': the amount of what is recited from the Quran in it is three short verses or a long verse (End). So the words became complete and the truth became manifest and Praise be to Allah. - 12 Minhu" Urdu: "Included what are equal to three verses and the same is the intent of those who say one verse. Its proof is what 'Hindiyya' has quoted from 'Jawhara' that the amount of

Quran to be read in the sermon is three small verses or one long verse. (End) So the words of the scholars became consistent, and the truth became clear. Praise be to Allah. - 12 Minhu (T)"

Footnotes: 1. Ad-Durr al-Mukhtar, Chapter of Eids, printed at Mujtabai Press, Delhi, India, 1/171. 2. Fatawa Hindiyya, Chapter Sixteen regarding Friday Prayer, printed at Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/147.

फ़तावा रज़विया खण्ड 8

इसी प्रकार खुतबे में गैर-अरबी भाषा को शामिल करना उचित नहीं है क्योंकि सहाबा, ताबेईन और दीन के इमामों के समय से खुतबा विशेष रूप से अरबी भाषा में होना विरासत में चला आ रहा है जैसा कि शाह वलीउल्लाह देहलवी ने शरह मुवत्ता में उल्लेख किया है। (जैसा कि शाह वलीउल्लाह देहलवी ने शरह मुवत्ता में इसका उल्लेख किया है - त)। अल्लाह की कृपा से पूर्वजों के समय में हज़ारों गैर-अरब क्षेत्र फतह हुए। हज़ारों मिम्बर बनाए गए, अधिकांश उपस्थित लोग गैर-अरब थे, परंतु यह कभी भी रिपोर्ट नहीं किया गया कि पूर्वजों (सलफ सालेह) ने उन्हें समझाने के लिए जुमा या ईदैन के खुतबे गैर-अरबी में दिए हों या उसमें किसी अन्य भाषा का मिश्रण किया हो, और विरासत में मिली सुन्नत का विरोध निश्चित रूप से मकरूह (नापसंदीदा) है। 'दुर्रे मुख्तार' में फरमाया गया है:

[तालिका की सामग्री] अरबी: "बेशक मुसलमानों में जो चीज़ विरासत में चली आ रही है, उसका पालन करना अनिवार्य है। (इंतहा) यानी वह प्रमाणित और पुख्ता है। मैं कहता हूँ: इसका शोध यह है कि जब गैर-अरबी में उपदेश का कारण स्वयं मौजूद था और कोई बाधा नहीं थी, फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो यह उनकी ओर से एक 'कफ़' (स्वैच्छिक रुकावट) था, न कि 'तर्क (मात्र त्याग)। 'कफ़' एक क्रिया है और क्रिया विरासत के अधीन होती है, 'तर्क के विपरीत, क्योंकि इसके विरासत में होने का कोई अर्थ नहीं है, और न ही इसमें अनुकरण की कोई गुंजाइश है क्योंकि यह कोई कार्य नहीं है, बल्कि यह सामर्थ्य में भी नहीं था, जैसा कि महान विद्वानों ने स्पष्ट किया है। 'अल-अशबाह वन-नज़ायर' में कहा गया है: त्यागे गए कार्यों का अनुकरण नहीं किया जाता।" उर्दू: "जो मुसलमानों में विरासत के तौर पर चला आ रहा है और नक़ल (रिपोर्ट) किया गया है, उसका पालन करना अनिवार्य है। (इंतहा) यानी वह साबित और पुख्ता होता है। मैं कहता हूँ: इसका शोध यह है कि गैर-अरबी भाषा में उपदेश और नसीहत की आवश्यकता स्वयं मौजूद थी और कोई रुकावट नहीं थी, फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो यह उनकी ओर से छोड़ना (कफ़) है 'तर्क नहीं, छोड़ना एक कार्य (फ़ेल) है और कार्य में विरासत का सिलसिला चलता है। इसके विपरीत 'तर्क के कि उसमें विरासत का कोई अर्थ ही नहीं हो सकता और उसमें पैरवी का कोई औचित्य ही नहीं हो सकता क्योंकि उस पर अमल ही नहीं हुआ बल्कि वह सामर्थ्य में..."

[निचले हिस्से की सामग्री] अरबी: "(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट) एक-तिहाई की मात्रा, और यही उनका मतलब है जिन्होंने एक आयत कहा है, जिसका प्रमाण 'अल-हिंदिया' में 'अल-जौहरा' के हवाले से है कि खुतबे में जितना कुरान पढ़ा जाए उसकी मात्रा तीन छोटी आयतें या एक लंबी आयत है।

(इंतहा) अतः शब्द पूर्ण हुए और सत्य स्पष्ट हो गया, अल्हम्दुलिल्लाह। 12 मिन्हु" उर्दू: "शामिल किया जो तीन आयतों के बराबर हों और एक आयत कहने वाले की भी यही मुराद है, इसका प्रमाण वह है जो 'हिंदिया' ने 'जौहरा' से नक़ल किया है कि खुतबे में जो कुरान पढ़ा जाए उसकी मात्रा तीन छोटी आयतें या एक लंबी आयत है। (इंतहा) अतः विद्वानों के शब्द सुसंगत हो गए और सत्य स्पष्ट हो गया, अल्हम्दुलिल्लाह। 12 मिन्हु (त)"

फुटनोट्स: 1. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-ईदैन, मुतबूआ मतबा मुजतबाई, दिल्ली, भारत, 1/171 2. फतावा हिंदिया, अध्याय 16 जुमे की नमाज के संबंध में, मुतबूआ नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/147

पृष्ठ 308/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

یوں ہی زبان عجمی کا داخل خطبہ کرنا مناسب نہیں کہ زمانہ صحابہ و تابعین و ائمہ دین سے خطبہ خاص زبان عربی میں ہونا متوارث ہے کما ذکر الشاہ ولی اللہ الدھلوی فی شرح الموطا (جیسا کہ شاہ ولی اللہ دہلوی نے شرح موطا میں اس کا ذکر کیا ہے۔ت) عہد سلف میں بحمداللہ ہزاروں بلاد عجم فتح ہوئے۔ ہزارہا منبر نصب کئے گئے، عامہ حاضرین اہل عجم ہوتے مگر کبھی منقول نہیں کہ سلف صالح نے ان کی تفہیم کے لئے خطبہ جمعہ یا عیدین غیر عربی میں پڑھایا اس میں دوسری زبان کا خلط کیا، اور سنت متوارثہ کی مخالفت بیشک مکروہ ہے۔ در مختار میں فرمایا:

[ٹیبل کا متن] عربی: ان المسلمین ماتوارثوہ فوجب اتباعھم اہ ای ثبت وتأکد . اقول: وتحقیقہ ان التذکیر بالعجمیۃ لما کان المقتضی لہ بعینہ موجودا والمانع مفقود ثم لم یفعلوا کان ذلك کفا منھم لاترکا والکف فعل والفعل یجری فیہ التوارث بخلاف الترك اذلا معنی لتوارثہ ولا مساغ للتأسی فیہ لانہ غیر مفعول بل ولا مقدور کما نص علیہ الاکابر الصدور قال فی الاشباہ والنظائر التروک لا یقتدی اردو: جو مسلمانوں میں متوارث و منقول ہو اس کی اتباع لازم ہوتی ہے اھ یعنی وہ ثابت اور موکد ہوتا ہے اقول: اس کی تحقیق یہ ہے کہ عجمی زبان میں وعظ و نصیحت کا تقاضا بنفسہ موجود تھا اور مانع مفقود، پھر بھی انہوں نے ایسا نہیں کیا تو یہ ان کی طرف سے چھوڑنا ہے ترک نہیں، چھوڑنا فعل ہے اور فعل میں توارث جاری ہوتا ہے۔ بخلاف ترک کے کہ اس میں توارث کا مفہوم ہی نہیں ہو سکتا اور اس میں اقتدا کا کوئی جواز ہی نہیں ہو سکتا کیونکہ اس پر عمل ہی نہیں ہوا بلکہ وہ قدرت میں

[نیچے والے حصے کا متن] عربی: (بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) بقدر ثلث وھو مراد من قال اٰیۃ بدلیل ما فی الھندیۃ عن الجوھرۃ مقدار ما یقرأ فیھا من القرآن ثلث آیات قصار او اٰیۃ طویلۃ 2 اہ فالتام

الکلمات و حصحص الحق والحمد للہ ۔ ۱۲ منہ اردو: شامل کیا جو تین آیات کے برابر ہوں اور ایک آیت کہنے والے کی بھی یہی مراد ہے، اس کی دلیل یہ ہے جو ہندیہ نے جوہرہ سے نقل کیا ہے کہ خطبہ میں جو قرآن پڑھا جائے اس کی مقدار تین چھوٹی آیات یا ایک طویل آیت ہے اھ پس علماء کے کلمات موافق ہو گئے، اور حق واضح ہو گیا الحمد للہ ۱۲منہ (ت)

حواشی: 1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱۷۱/۱ 2 فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱۴۷/۱

Fatawa Razawiya Volume 8

Arabic Original

...except when abstaining becomes an act of refraining; then it is an action, and this is what is commanded in prohibition, not abandonment in the sense of non-existence, because that does not fall under the power of a servant, as stated in Al-Tahrir. [Footnote 1] (End of quote). Meaning 'Tahrir al-Usul' by the Absolute Researcher Imam. Where he (may Allah's mercy be upon him) mentioned this without restriction. Master this, for it is among the most important matters.

Urdu Translation

No, as the great elders of the past have explicitly clarified. It is stated in 'Al-Ashbah wa Al-Nazair' that proximity [to Allah] cannot be achieved through mere abandonment; however, in the case where abandonment takes the form of actively refraining, it becomes an action, and in prohibition, this is what is commanded, not abandonment in the sense of non-existence, because in that sense, it does not fall under the slave's capability, as mentioned in 'Al-Tahrir'. (End of quote). By 'Tahrir', it refers to the book 'Tahrir al-Usul' by the Absolute Researcher Imam. Grasp this firmly because this is an extremely vital point. (T)

(T)

Despite this, if some verses of advice and counsel are read in Urdu along with the Arabic sermon, as is common in most places in India today, its ultimate status is only that it is contrary to what is preferable (Khilaf-e-Aula) and mildly disliked (Makruh Tanzihi). To declare it more than that, like severely disliked (Makruh Tahrimi), sinful, forbidden, or an evil innovation (Bid'ah Sayyi'ah), is purely without evidence. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1295: What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible for a minor (pre-pubescent) to deliver the Friday sermon (Khutbah) and for someone other than the preacher (Khateeb) to lead the prayer? Explain and you shall be rewarded.

The Answer:

It is not preferable (Aula) for someone other than the preacher to lead the prayer.

Arabic Text

In 'Tanwir al-Absar': "It is not appropriate for anyone other than the

Urdu Translation

It is stated in 'Tanwir al-Absar' that it is not appropriate for someone other than the

Arabic Text	Urdu Translation
preacher to lead the people in prayer." [Footnote 2] And similarly in 'Fatawa Alamgiri' citing from 'Al-Kafi'.	preacher to lead the community in prayer; similarly, it is narrated in 'Fatawa Alamgiri' from 'Al-Kafi'. (T)

And if a minor delivers the sermon and an adult leads the prayer, there is a difference of opinion. In 'Alamgiri' citing from 'Az-Zahidi' (Narrated from Zahidi. T): It is stipulated as a condition that the preacher must be eligible for the leadership (Imamat) of the Friday prayer, and since a minor is not eligible for such leadership, their delivering the sermon is impermissible, and the obligation (Farz) will not be discharged through it.

Arabic Text	Urdu Translation
Its phrasing is this: "As for the preacher, it is a condition that he be eligible for leadership in the Friday prayer."	Its phrasing is this: For the one delivering the sermon, the condition is that he must be capable of the Friday Imamat.

1. Al-Ashbah wa Al-Nazair, Art 1, Second Rule, published by Idara al-Quran wa al-Ulum al-Islamiya, Karachi, 1/74.
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, published by Matba Mujtabai, Delhi, India, 1/113.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

अरबी मूल

...सिवाय इसके कि जब त्याग करना रुकने का कार्य बन जाए; तो वह एक कार्य है, और निषेध में इसी का आदेश दिया गया है, न कि अस्तित्वहीनता के अर्थ में त्याग का, क्योंकि वह दास की शक्ति के अधीन नहीं आता, जैसा कि 'अल-तहरीर' में है। [फुटनोट 1] (उद्धरण समाप्त)। 'तहरीर' से तात्पर्य इमाम मुहक़्क़िक़ मुतलक़ की किताब 'तहरीर अल-उसूल' है। इसे मज़बूती से आत्मसात करें क्योंकि यह अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों में से है।

उर्दू अनुवाद

नहीं, जैसा कि पूर्ववर्ती महान बुजुर्गों ने स्पष्ट किया है। 'अल-अशबाह व अन-नज़ायर' में है कि केवल त्याग से निकटता प्राप्त नहीं की जा सकती; अलबत्ता उस स्थिति में जब त्याग छोड़ने की सूरत में हो तो वह एक कार्य होगा और निषेध में यही आदेशित है न कि अभाव के अर्थ में त्याग, क्योंकि उस अर्थ में वह दास की शक्ति के अधीन नहीं आता जैसा कि 'तहरीर' में है। (उद्धरण समाप्त)। तहरीर से मुराद इमाम मुतलक़ मुहक़्क़िक़ की किताब 'तहरीर अल-उसूल' है, इसे मज़बूती से हासिल करो क्योंकि यह निहायत ही ज़रूरी मुक़ाम है। (त)

(त)

इसके बावजूद अगर अरबी खुतबे (प्रवचन) के साथ नसीहत और उपदेश के कुछ शेर उर्दू में पढ़े जाएं जैसा कि आज कल हिन्दुस्तान में अक्सर जगह रिवाज है, तो इसकी अधिकतम स्थिति बस इतनी है कि यह बेहतर के खिलाफ (ख़िलाफ़-ए-औला) और नापसंदीदा (मक़रूहे तन्ज़ीही) है। इससे ज़्यादा इसे मक़रूहे तहरीमी, गुनाह, वर्जित या बुरी बिदअत (नवाचार) करार देना पूरी तरह निराधार है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1295: क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि नाबालिग का जुमे का खुतबा पढ़ना और नमाज़ किसी और (गैर-खतीब) का पढ़ाना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

जवाब:

गैर-खतीब का नमाज़ पढ़ाना बेहतर (औला) नहीं है।

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
'तन्वीरुल अबसार' में: "खतीब के अलावा किसी और का लोगों को नमाज़ पढ़ाना उचित नहीं है।" [फ़ुटनोट 2] और इसी तरह 'फ़तावा आलमगीरी' में 'अल-काफ़ी' के हवाले से है।	'तन्वीरुल अबसार' में है कि खतीब के अलावा किसी और का क़ौम को नमाज़ पढ़ाना मुनासिब नहीं, इसी तरह 'फ़तावा आलमगीरी' में 'काफ़ी' से नक़ल है। (त)

और अगर नाबालिग खुतबा पढ़े और बालिग नमाज़ पढ़ाए तो इसमें मतभेद है। 'आलमगीरी' में 'अज़-ज़ाहेदी' के हवाले से (ज़ाहेदी से नक़ल है। त): खतीब का जुमे की इमामत के योग्य होना शर्त है, और चूंकि नाबालिग इमामत के योग्य नहीं है, इसलिए उसका खुतबा पढ़ना जायज़ नहीं और फ़र्ज़ उससे अदा नहीं होगा।

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
इसकी इबारत यह है: "जहाँ तक खतीब का सवाल है, उसके लिए शर्त यह है कि वह जुमे की इमामत के योग्य हो।"	इसकी इबारत यह है: खुतबा देने वाले के लिए यह शर्त है कि वह जुमे की इमामत का अहल (योग्य) हो।

1. अल-अशबाह व अन-नज़ायर, फ़न अव्वल, क़ायदा दोयम, मक़बूआ इदारातुल क़ुरआन वल उलूमल इस्लामिया, कराची, 1/74.
2. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल जुमा, मक़बूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, भारत, 1/113.

عربی عبارت	اردو ترجمہ
بها الا اذ صارا لترك كفاهو فعل وهو المكلف به في النهى لا الترك بمعنى العدم لانه ليس داخلا تحت القدرة للعبد كما في التحرير ۱ اه یعنی تحریرا لاصول للامام المحقق حیث اطلق رحمه الله تعالی اتقن هذا فانه من اجل المهمات۔	نہیں جیسا کہ اس پر اسلاف اکابر نے تصریح کی، الاشباہ والنظائر میں ہے کہ ترک سے تقرب حاصل نہیں کیا جاسکتا البتہ اس صورت میں جب ترک چھوڑنے کی صورت میں ہو تو وہ فعل ہوگا اور نہی میں یہی مکلف بہ ہے نہ کہ ترک بمعنی عدم، کیونکہ اس معنی میں وہ عبد کی قدرت کے تحت داخل نہیں ہوتا جیسا کہ تحریر میں ہے اھ۔ تحریر سے مراد امام مطلق محقق کی کتاب تحریر الاصول ہے اسے مضبوطی سے حاصل کرو کیونکہ یہ نہایت ہی ضروری مقام ہے (ت)

(ت)

با ایں ہمہ اگر خطبہ عربیہ کے ساتھ کچھ اشعار پند و نصائح اردو میں پڑھے جائیں جیسا کہ آج کل ہندوستان میں اکثر جگہ معمول ہے تو غایت اس کی بس اس قدر کی خلاف اولٰی و مکروہ تنزیہی ہے اس سے زیادہ مکروہ تحریمی و گناہ و ممنوع و بدعت سی ء قرار دینا محض بے دلیل ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۹۵: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نابالغ کا خطبہ جمعہ پڑھنا اور نماز غیر خطیب کا پڑھانا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب:

غیر خطیب کا نماز پڑھانا اولیٰ نہیں،

عربی عبارت	اردو ترجمہ
فی تنویر الابصار ولاینبغی ان یصلی بالقوم غیر الخطیب ۲ وھکذا في الفتاوی عالمگیریة ناقلا عن الکافی۔	تنویر الابصار میں ہے کہ غیر خطیب کا قوم کو نماز پڑھانا مناسب نہیں ، اسی طرح فتاویٰ عالمگیری میں کافی سے منقول ہے۔ (ت)

اور اگر نابالغ خطبہ پڑھے اور بالغ نماز پڑھائے تو اس میں اختلاف ہے عالمگیری میں ناقلا عن الزاہدی (زاہدی سے منقول ہے ۔ت) خطیب کا صالح امامت جمعہ ہونا شرط ٹھہرایا اور نابالغ صالح امامت نہیں تو اس کا خطبہ پڑھنا ناجائز اور فرض اس سے ساقط نہ ہوگا

عربی عبارت	اردو ترجمہ
عبارتھا ھذہ واما الخطیب فیشترط فیه ان یتاھل للامامة في الجمعة	اس کی عبارت یہ ہے خطبہ دینے والے کے لئے یہ شرط ہے کہ جمعہ کی امامت کا اہل ہو۔

۱ الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدۃ الثانیۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱/ ۷۴ ۲ درمختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۱۳

Fatawa Razawiyya Volume 8

As in al-Zahidi[1] It is the same in al-Zahidi. (T)
It was ruled permissible in Shabah wa al-Nazair, Fatawa Khulasa, and Tanwir al-Absar.

Where it is stated in Al-Ashbah: "If he delivers the sermon with the permission of the Sultan and an adult leads the prayer, it is permissible." In Tanwir al-Absar: "If it happens such that a boy delivers the sermon with the permission of the Sultan and an adult leads the prayer, it is permissible." And in al-Khulasa: "If a boy delivers the sermon by order of the Sultan and an adult leads the Friday prayer, it is permissible[4]."

In Al-Ashbah, it is stated that if (an underage boy) delivers the sermon with the king's permission and an adult leads the prayer, it is permissible. In Tanwir al-Absar, it is said that if this happens, meaning a child delivers the sermon with the king's permission but an adult leads the prayer, it is permissible. In Khulasa, it is stated that if any underage boy delivered the sermon by the Sultan's order and an adult led the prayer, it is permissible. (T)

In Durr-e-Mukhtar, this was declared the chosen opinion:

Where it says after the statement "it is permissible": "This is the chosen opinion"[5].

Where they have said after the text's statement "it is permissible" that this is the chosen one. (T)

However, to avoid disagreement (Sawnan 'an al-Khilaf -T), it is not appropriate for an underage boy to deliver the sermon, and Allah knows best.

Problem 1296: From Gwalior Army, Postal Department, sent by Maulvi Nur al-Din Ahmed Sahib, 1st Dhu al-Hijjah 1312 AH. Should four cautionary obligatory (Ihtiyati) rak'ats be prayed after Friday prayer or not? That is, if the conditions of Friday prayer are fully met, then these rak'ats are unnecessary, and if Friday prayer is not performed according to the Hanafi school, then why is Friday prayer performed at all? Zuhr prayer should be performed instead. If both are performed as a precaution, then what kind of followers (Muqallids) and Hanafis are we? Those who say Ameen loudly and recite Fatiha behind the Imam can also make the same excuse. Please explain in detail so the inquirer may be satisfied. With many respects.

1. Fatawa Hindiyya, Chapter Six regarding Friday Prayer, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/147

2. Al-Ashbah wa al-Nazair, Rulings for Children, printed by Idara al-Quran wa al-Ulum al-Islamiyya, Karachi, 2/133-544
3. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Friday, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, India, 1/113
4. Khulasat al-Fatawa, Chapter Twenty-three regarding Friday Prayer, printed by Maktaba Habibiya, Quetta, 1/205
5. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Friday, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, India, 1/113

फतावा रज़विया जिल्द 8

जैसा कि ज़ाहिदी[1] में है - ज़ाहिदी में इसी तरह है। (त)

शबाह वन्नज़ायर, फतावा खुलासा और तनवीरुल अबसार में इसके जायज़ होने का हुक्म दिया गया है।

जहाँ अल-अशबाह में कहा गया है: "यदि उसने सुल्तान की अनुमति से खुतबा दिया और एक बालिग (वयस्क) ने नमाज़ पढ़ाई, तो यह जायज़ है।" तनवीरुल अबसार में है: "यदि ऐसा होता है कि एक बच्चे ने सुल्तान की अनुमति से खुतबा दिया और बालिग ने नमाज़ पढ़ाई, तो जायज़ है।" और खुलासा में है: "यदि किसी बच्चे ने सुल्तान के आदेश से खुतबा दिया और बालिग ने जुमे की नमाज़ पढ़ाई, तो जायज़ है[4]।"

अल-अशबाह में है कि अगर (नाबालिग ने) बादशाह की इजाज़त से खुतबा दिया और बालिग ने नमाज़ पढ़ा दी तो जायज़ है। तनवीरुल अबसार में है कि अगर ऐसा हुआ यानी बच्चे ने बादशाह की इजाज़त से खुतबा दिया लेकिन नमाज़ बालिग ने पढ़ा ली तो जायज़ है। खुलासा में है किसी नाबालिग बच्चे ने सुल्तान के हुक्म से खुतबा दिया और बालिग ने नमाज़ पढ़ाई तो जायज़ है। (त)

दुर्रे मुख्तार में इसी को मुख्तार (चुना हुआ मत) करार दिया गया है:

जहाँ उन्होंने मत्न के शब्द "जायज़" के बाद कहा है: "यही मुख्तार है"[5]।

जहाँ उन्होंने मत्न के कौल "जाज़" के बाद कहा यही मुख्तार है (त)

बहरहाल, सो़नन अनिल खिलाफ (इख्तिलाफ से बचने के लिए -त) नाबालिग का खुतबा पढ़ना मुनासिब नहीं है, वल्लाहु तआला आलम।

मसला १२९६: लश्कर ग्वालियर, डाक विभाग, प्रेषक मौलवी नूरुद्दीन अहमद साहब, १ ज़िलहिज्जा १३१२ हिजरी। जुमे की नमाज़ के बाद चार रकअत फर्ज़ एह्तियाती (सावधानी के तौर पर) पढ़ी जानी चाहिए या नहीं? यानी अगर जुमे की शर्तें पूरी तरह अदा होती हैं तो फिर ये रकअतें गैर-ज़रूरी हैं, और अगर जुमे हनफी मज़हब के मुताबिक अदा नहीं होता, तो जुमे क्यों पढ़ा जाता है? ज़ोहर की नमाज़ पढ़ी जानी चाहिए। अगर एह्तियात के तौर पर दोनों पढ़ी जाती हैं, तो फिर हम मुक़ल्लिद और

हनफी कैसे हुए? ज़ोर से आमीन कहने वाले और इमाम के पीछे सूरह फातिहा पढ़ने वाले भी यही बहाना कर सकते हैं। विस्तार से बताएं ताकि पूछने वाले को संतोष हो। सप्रेम भेंट।

1. फतावा हिन्दिया, बाब सादिस (छठा अध्याय) जुमे की नमाज़ के बारे में, मुद्रित नूरानी कुतुब खाना पेशावर 1/147
2. अल-अशबाह वन्नज़ायर, अहकामुल सिब्यान, मुद्रित इदारातुल कुरान वल उलूमल इस्लामिया कराची 2/133-544
3. दुर्रे मुख्तार बाबुल जुमुआ, मुद्रित मतबा मुज्तबाई दिल्ली भारत 1/113
4. खुलासातुल फतावा, अध्याय तेईस, जुमे की नमाज़ के बारे में, मुद्रित मकतबा हबीबिया क्वेटा 1/205
5. दुर्रे मुख्तार बाबुल जुमुआ, मुद्रित मतबा मुज्तबाई दिल्ली भारत 1/113

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

کذا فی الزاھدی - [1] زاہدی میں اسی طرح ہے۔ (ت)

شباہ والنظائر و فتاوی خلاصہ و تنویر الابصار میں جواز کا حکم دیا۔

حیث قال في الاشباہ لو خطب باذن السلطان وصلی بالغ جاز وفی تنویر الابصار فان فعل بان خطب صبی باذن السلطان وصلی بالغ جاز وفی الخلاصۃ صبی خطب بامر السلطان وصل الجمعۃ مصلی بالغ یجوز - [4]

الاشباہ میں ہے کہ اگر (نابالغ نے) بادشاہ کی اجازت سے خطبہ دیا اور بالغ نے نماز پڑھادی تو جائز ہے۔ تنویر الابصار میں ہے کہ اگر ایسا ہوا یعنی بچے نے بادشاہ کی اجازت سے خطبہ دیا لیکن نماز بالغ نے پڑھالی تو جائز ہے۔ خلاصہ میں ہے کسی نابالغ بچے نے سلطان کے حکم سے خطبہ دیا اور بالغ نے نماز پڑھائی تو جائز ہے۔ (ت)

در مختار میں اسی کو مختار قرار دیا :

حیث قال بعد قولہ جاز ھو المختار جہاں انہوں نے متن کے قول "جاز" کے بعد کہا یہی مختار ہے [5] ۔ (ت)

بہر حال صونا عن الخلاف (اختلاف سے بچنے کی خاطر -ت) نابالغ کا خطبہ پڑھنا مناسب نہیں ، واللہ تعالٰی اعلم مسئلہ ۱۲۹۶: از لشکر گوالیار محکمہ ڈاک مرسلہ مولوی نور الدین احمد صاحب غرہ ذی الحجہ ۱۳۱۲ھ نماز جمعہ کے بعد چار رکعت فرض احتیاطی پڑھے جائیں یا نہیں یعنی اگر جمعہ کے شرائط پورے ادا ہوتے ہیں تو پھر یہ رکعتیں غیر ضروری ہیں اور اگر جمعہ بموجب مذہب حنفی ادا نہیں ہوتا تو جمعہ کیوں پڑھا جاتا ہے نماز ظہر پڑھی جائے اگر احتیاطاً دونوں پڑھی جاتی ہیں تو پھر ہم مقلد اور حنفی کیا ہوئے آمین بالجہر کرنے والے اور فاتحہ خلف الامام

پڑھنے والے بھی یہی عذر کر سکتے ہیں مفصل طور پر ارشاد فرمائے کہ سائل کو تسکین ہو، زیادہ نیاز،

1 فتاوی ہندیہ الباب السادس فی صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷ 2 الاشباہ والنظائر احکام الصبیان مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲/ ۱۳۳ - ۵۴۴ 3 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۱۳ 4 خلاصۃ الفتاوی الفصل الثالث والعشرون فی صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۱/ ۲۰۵ 5 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۱۳

Volume 8, Fatawa Razawiyya

Answer: Acts of worship are strictly areas of caution, and exiting from disagreement with scholars is unanimously recommended, as long as it does not necessitate committing something disliked (makruh) in one's own school of thought, as explicitly stated in Radd al-Muhtar etc. (As it is detailed in Radd al-Muhtar. T) Recitation by the follower (muqtadi), raising hands (raf' al-yadayn), and saying 'Amin' loudly are unanimously prohibited, disliked, and contrary to the Sunnah in our school. Therefore, observing the disagreement here clearly involves exiting one's own school and committing a disliked act within the school. This is contrary to the 'precautionary obligatory prayer' (fard ihtiyati) established due to the multiplicity of Friday prayers; both of these are free from such harm. Although the absolute multiplicity (of Friday prayers) is according to the most correct and apparent narration (zahir al-riwayah), and is the practiced and fatwa-given position, the prohibition of multiplicity is also a strong and authenticated opinion within the school.

Arabic Text

In Radd al-Muhtar: Although the permissibility of multiplicity is more correct and stronger in evidence, there is also a strong doubt in it because its contrary is also narrated from Imam Abu Hanifa. It was chosen by al-Tahtawi, al-Timirtashi, and the author of al-Mukhtar. Al-Atabi termed it as more apparent. You have already known the statement of al-Badai' that it is from Zahir al-Riwayah. In Sharh al-Munyah from Jawami' al-Fiqh: it is the more apparent of the two narrations from the Imam. In al-Nahr, it is stated that in al-Hawi al-Qudsi, it says the fatwa is based on this. In al-Zahidi's Takmilah, it says 'and we take this'. Thus, it is a relied-upon opinion in the school, not a weak one. [Summarized]

Urdu Translation

It is in Radd al-Muhtar that although the permissibility of having Friday prayers in multiple places is more weightier and stronger, the doubt in it is also strong. This is because a narration against it is also reported from Imam Abu Hanifa, and Tahtawi, Timirtashi, and the author of Mukhtar have adopted it. Atabi has declared it more apparent. You have read the statement of the author of Badai' that this is 'Zahir al-Riwayah'. In Sharh al-Munyah, citing Jawami' al-Fiqh, it is said that out of the two narrations reported from the Imam, this is more apparent. In Nahr, it was said that in Hawi al-Qudsi, it is written that the fatwa is on this. In Zahidi's Takmilah, it is mentioned that our practice is upon this. So, at this time, this became a relied-upon opinion in the school, it did not remain a weak opinion. [Summarized] (T)

Furthermore, observing this does not necessitate any dislike (karahat) because these 'precautionary obligatory prayers' are not performed in congregation. They are performed individually with the intention of the last Zuhr prayer. Moreover, they are only for the elite; they should not be taught to the general public, nor do they need them. Thus, the difference is clear and the objection is void. "Detailed discussion regarding those rak'ahs has already passed in our fatwas" (The detailed discussion about these rak'ahs has occurred in our fatwas. T). And Allah Almighty knows best.

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, Printed at Mustafa al-Babi Press, Egypt, 1/596. Page 311 of 673

जिल्द 8, फ़तावा रज़विया

उत्तर: इबादतें (उपासना) अत्यधिक सावधानी का स्थान हैं, और विद्वानों के मतभेद से बाहर निकलना सर्वसम्मति से मुस्तहब (पसंदीदा) है, जब तक कि अपने मज़हब (पंथ) के किसी मकरूह (नापसंद) कार्य का करना आवश्यक न हो जाए, जैसा कि रद-उल-मुहतार आदि में स्पष्ट किया गया है। (जैसा कि रद-उल-मुहतार में इस पर तसरीह (स्पष्टीकरण) है। त) मुक़्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) द्वारा क़िरात (कुरान पढ़ना), रफ़-ए-यदैन (हाथ उठाना) और ज़ोर से आमीन कहना हमारे मज़हब में सर्वसम्मति से मना, मकरूह और सुन्नत के ख़िलाफ़ है। इसलिए, यहाँ दूसरे मत का सम्मान करने का अर्थ है अपने मज़हब से बाहर निकलना और मज़हब के भीतर मकरूह काम करना। यह 'फ़र्ज़ एहतियाती' (सावधानीपूर्ण अनिवार्य नमाज़) के विपरीत है, जो जुमे की नमाज़ के कई स्थानों पर होने के कारण रखी गई है; ये दोनों किसी भी परेशानी से मुक्त हैं। यद्यपि जुमे का एक से अधिक स्थानों पर होना सबसे सही और ज़ाहिर अल-रिवायत के अनुसार है और इसी पर अमल और फ़तवा है, लेकिन एक से अधिक स्थानों पर जुमे की मनाही भी मज़हब में एक मज़बूत और प्रमाणित मत है।

अरबी पाठ

रद-उल-मुहतार में है: हालांकि बहुलता (एक से अधिक स्थानों पर जुमा) की अनुमति अधिक सही और प्रमाण में मज़बूत है, लेकिन इसमें संदेह भी गहरा है क्योंकि इसके विपरीत इमाम अबू हनीफ़ा से भी रिवायत है। इसे तहतावी, तिमिर्ताशी और साहिब-ए-मुख़्तार ने चुना है। अताबी ने इसे अधिक स्पष्ट (अज़हर) करार दिया है। आप बदाइ' के लेखक का कथन पढ़ चुके हैं कि यह ज़ाहिर अल-रिवायत है। शरह अल-मुनिया में जवामी' अल-फ़िक़्ह के हवाले से है कि इमाम साहब से वर्णित दोनों रिवायतों में से यह अधिक स्पष्ट है। नहर में कहा गया है कि हावी अल-क़ुदसी में लिखा है कि इसी पर फ़तवा है। ज़ाहेदी के तक्मिला में है कि हमारा अमल इसी पर है। अत; उस समय यह

उर्दू अनुवाद

रद-उल-मुहतार में है कि जुमे के कई स्थानों पर होने की अनुमति यद्यपि बेहतर और मज़बूत है, लेकिन इसमें संदेह भी मज़बूत है। क्योंकि इसके ख़िलाफ़ इमाम अबू हनीफ़ा से भी रिवायत है और इसे तहतावी, तिमिर्ताशी और साहिब-ए-मुख़्तार ने अपनाया है और अताबी ने इसे अधिक स्पष्ट घोषित किया है। आप बदाइ' के लेखक का कथन पढ़ चुके हैं कि यह ज़ाहिर अल-रिवायत है। शरह अल-मुनिया में जवामी' अल-फ़िक़्ह से है कि इमाम साहब से वर्णित दोनों रिवायतों में से यह अधिक स्पष्ट है। नहर में कहा कि हावी अल-क़ुदसी में है कि इसी पर फ़तवा है और ज़ाहेदी के तक्मिला में है कि हमारा अमल इसी पर है। तो उस समय मज़हब

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
मज़हब में एक विश्वसनीय मत बन गया, न कि एक कमज़ोर मत। [संक्षेप में]	में यह विश्वसनीय मत हुआ, कमज़ोर मत न रहा। [संक्षेप में] (त)

फिर इस पर अमल करने में कोई नापसंदगी (कराहियत) नहीं आती, क्योंकि ये 'फ़र्ज़ एहतियाती' जमात के साथ नहीं होते, बल्कि अकेले आख़िरी ज़ुहर की नीयत से पढ़े जाते हैं। इसके अलावा, ये केवल विशिष्ठ लोगों के लिए हैं; आम जनता को न बताए जाएँ और न ही उन्हें इनकी आवश्यकता है। अतः अंतर स्पष्ट हो गया और आपत्ति निराधार है। "उन रकातों के बारे में विस्तृत चर्चा हमारे फ़तवों में पहले ही गुज़र चुकी है।" (इन रकातों के बारे में विस्तृत चर्चा हमारे फ़तावा में आ चुकी है। त) और अल्लाह तआला ही सबसे बेहतर जानता है।

---

1. रद-उल-मुहतार, जुमा का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र में मुद्रित, 1/596. पृष्ठ 311 का 673

الجواب: عبادات بشدت محل احتیاط ہیں اور خلاف علماء سے خروج بالا جماع مستحب، جب تک اپنے مذہب کے کسی مکروہ کا ارتکاب نہ لازم آئے کما نص علیہ فی ردالمحتار وغیرہ (جیسا کہ ردالمحتار میں اس پر تصریح ہے۔ ت) قراءت مقتدی و رفع یدین و جہر بہ آمین ہمارے مذہب میں بالاتفاق ائمہ ممنوع و مکروہ و خلاف سنت ہیں تو ہمیں یہاں رعایت خلاف اپنے مذہب سے خروج اور مکروہ فی المذہب کا ارتکاب صاف ہے، بخلاف فرض احتیاطی کہ بسبب تعدد جمعہ رکھے گئے یہ دونوں حرج سے پاک ہیں تعدد مطلقاً اگر چہ علی الاصح ظاہر الروایہ اور وہی معمول و مفتی بہ مگر منع تعدد بھی مذہب میں ایک قول قوی و مصحح ہے،

عربی متن	اردو ترجمہ
فی ردالمحتار جواز التعدد وان کان ارجح واقوی دلیلا لکن فیه شبة وقوية لان خلافه مروی عن ابی حنيفة ايضا و اختاره الطحطاوي والتمرتاشی وصاحب المختار وجعله العتابي الاظهر وقد علمت قول البدائع انه ظاہر الروية وفی شرح المنية عن جوامع الفقه انه الظهر الروايتين عن الامام قال فی النهر وفی الحاوی القدسی وعليه الفتوی وفی التكملة للزاهدی و به	ردالمحتار میں ہے کہ جمعہ کے متعدد مقامات پر ہونے کا جواز اگرچہ راجح اور قوی ہے مگر اس میں اشتباہ بھی قوی ہے کیونکہ اس کے خلاف امام ابو حنیفہ سے بھی روایت ہے اور اسے طحطاوی، تمرتاشی اور صاحبِ مختار نے اختیار کیا اور عتابی نے اسے اظہر قرار دیا ہے اور صاحبِ بدائع کا قول آپ پڑھ چکے کہ یہ ظاہر الروایۃ ہے، شرح المنیہ میں جوامع الفقہ سے ہے کہ امام صاحب سے مروی ہے دونوں روایات میں سے یہ اظہر ہے، نہر میں کہا کہ حاوی القدسی میں ہے کہ اسی پر فتویٰ ہے اور زاہدی کے تکملہ میں کہ ہمارا

عربی متن	اردو ترجمہ
نأخذ اھ فھو حینئذ قول معتمد فی المذھب لا قول ضعیف ۱ اہ ملخصاً	عمل اسی پر ہے اھ تو اس وقت مذہب میں یہ معتمد قول ہوا ضعیف قول نہ رہا اھ ملخصاً (ت)

پھر اس کی رعایت میں کوئی کراہت لازم نہیں آتی کہ یہ فرض احتیاطی بجماعت نہیں ہوتے منفرداً بہ نیت آخر ظہر پڑھے جاتے ہیں وہ بھی صرف خواص کے لئے عوام کو نہ بتائے جائیں نہ انہیں حاجت، تو فرق ظاہر ہوگیا اور اعتراض ساقط وتفصیل القول فی تلك الرکعات قد سبقت فی فتاونا (ان رکعات کے بارے میں تفصیلی گفتگو ہمارے فتاوٰی میں گزر چکی ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

---

۱ ردالمحتار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۶ Page 311 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

Problem 1297: From Nawadiya, District Bareilly, 1st Muharram 1312 AH: What do the scholars of religion say regarding this matter: In a town, there is a Jamia Masjid where Friday prayers have always been held. Now a new mosque has been built. Is it permissible to make it the Jamia Masjid and abandon the old Jamia Masjid, or to hold Friday prayers in both? The Answer: In towns and cities where Friday prayer is permissible, it is also permissible for the Friday prayer to be held in multiple places, although it is better to have it in one place as much as possible. If "abandoning the previous Jamia Masjid" means that prayers are stopped there altogether, then it is absolutely impermissible as it results in the desolation of the mosque. If it means that regular prayers continue there but Friday prayer is held in this new mosque instead of the old one, then if the local Muslims have any acceptable religious (Shar'i) benefit in doing so, there is no harm. Otherwise, the Jamia Masjid is that old mosque, and the reward for Friday prayer in it is greater. And Allah Almighty knows best.

Problem 1298: From Jalandhar, Mohalla Rasta, adjacent to the house of Deputy Ahmad Jan Sahib, sent by Muhammad Ahmad Khan Sahib, 20th Shawwal 1312 AH: What do the scholars of religion and jurists of the clear Shari'ah say regarding the matter: Is it mandatory (wajib) or recommended (mustahabb) to pray four rak'ahs of cautionary (ihtiyati) Zuhr after the Friday prayer in the cities of Punjab or India where Jamia Masjids were built by the order of kings? And is there any doubt or suspicion regarding the Friday prayer in these cities? Please write with references along with the text of the book. The Answer: There is certainly difference and ambiguity in the research of some conditions for validity here. In such places, the honorable scholars have commanded four rak'ahs of cautionary prayer, but for the elite (learned), not for such common people who are not capable of correcting their intention. For them, validity according to one school of thought is sufficient. These rak'ahs are only recommended (mandub) in case of a doubt of invalidity, and apparently mandatory (wajib) in case of uncertainty and ambiguity. It is stated in Radd al-Muhtar:

[Table content] Arabic Text: Al-Maqdisi narrated from Al-Muhit: Every place where there is doubt about it being a city (misr), it is appropriate for them to pray four rak'ahs after Friday with the intention of Zuhr as a precaution. Similar is mentioned in Al-Kafi and Al-Qunyah, that their leaders commanded the four rak'ahs after it definitely as a precaution. Al-Maqdisi said, Ibn al-Shihnah mentioned from his grandfather regarding its... Urdu Translation: Qudsi narrated from Muheet that in every place where there is doubt about it being a city, people there should perform

four rak'ahs with the intention of Zuhr after Friday prayer out of caution. Similarly, it is mentioned in Kafi and Qunyah that the Imams have strictly commanded the people for four rak'ahs out of caution after Friday. Al-Maqdisi said that Ibn-e-Shihnah narrated from his grandfather about its...

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मसला 1297: नवदिया, ज़िला बरेली से, 1 मुहर्रम 1312 हिजरी: दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक कस्बे में एक जामा मस्जिद है जहाँ हमेशा जुमा होता है। अब एक नई मस्जिद बनी है, क्या उसे जामा मस्जिद बनाना और पुरानी जामा मस्जिद को छोड़ देना या दोनों जगह जुमा पढ़ना जायज़ है या नहीं? जवाब: कस्बा और शहर जहाँ जुमा जायज़ है, वहाँ जुमे की नमाज़ कई जगहों पर होना भी जायज़ है, हालाँकि जहाँ तक हो सके एक ही जगह होना बेहतर है। और अगली जामा मस्जिद को छोड़ने का अगर यह मतलब है कि उसमें नमाज़ ही छोड़ दी जाए, तो यह कतई नाजायज़ है क्योंकि यह मस्जिद को वीरान करना है। और अगर यह मुराद है कि नमाज़ तो वहाँ होती रहे लेकिन जुमा वहाँ के बजाय अब इस नई मस्जिद में हो, तो अगर वहाँ के मुसलमानों के पास इसके लिए कोई स्वीकार्य शरीअती हिकमत (मसलहत) हो तो कोई हर्ज नहीं। वरना जामा मस्जिद वही पुरानी मस्जिद है और उसमें जुमे की नमाज़ का सवाब ज़्यादा है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1298: जालंधर, मोहल्ला रास्ता, डिप्टी अहमद जान साहब के घर के पास से, प्रेषक मुहम्मद अहमद खां साहब, 20 शव्वाल 1312 हिजरी: दीन के विद्वान और शरीअत के मुफ्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि पंजाब या हिंदुस्तान के उन शहरों में जहाँ बादशाहों के हुक्म से जामा मस्जिदें बनी हैं, जुमे की नमाज़ के बाद चार रकअत एहतियाती जुहर पढ़ना वाजिब है या मुस्तहब? और इन शहरों में जुमे की नमाज़ में कोई वहम या संदेह है या नहीं? किताब के हवाले और इबारत के साथ लिखें। जवाब: सेहत (वैधता) की कुछ शर्तों की तहकीक में यहाँ ज़रूर मतभेद और संदेह है। ऐसी जगहों पर उलेमा-ए-किराम ने चार रकअत एहतियाती (सावधानी) का हुक्म दिया है, लेकिन ख़्वास (विद्वानों) के लिए, न कि उन आम लोगों के लिए जो नियत की सुधार (तसहीह-ए-नीयत) पर सक्षम न हों। उनके लिए एक मज़हब पर सेहत (वैधता) काफ़ी है। ये रकअतें अदम-ए-सेहत (अवैधता) के भ्रम की स्थिति में केवल मंदूब (पसंदीदा) हैं और शक व संदेह की स्थिति में ज़ाहिरी तौर पर वाजिब हैं। रद-उल-मुहतार में है:

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: मक़दिसी ने मुहीत से नकल किया: हर वह जगह जिसके'मिस्र' (शहर) होने में संदेह हो, उनके लिए उचित है कि वे जुमे के बाद एहतियातन जुहर की नीयत से चार रकअत पढ़ें। इसी तरह 'काफ़ी' और 'कुनिया' में है कि उनके इमामों ने एहतियातन उनके बाद निश्चित रूप से चार रकअतों का हुक्म दिया। मक़दिसी ने कहा कि इब्न शिहना ने अपने दादा से इसके बारे में

ज़िक्र किया... उर्दू अनुवाद: कुदसी ने मुहीत से नकल किया कि हर वह जगह जिसके शहर होने में संदेह हो, वहाँ के लोगों को जुमे के बाद एहतियातन जुहर की नीयत से चार रकअतें अदा करनी चाहिए। इसी तरह 'काफ़ी' और 'कुनिया' में है कि इमामों ने जुमे के बाद लोगों को हतमी (निश्चित) तौर पर एहतियातन चार रकअतों का हुक्म दिया है। मक़दिसी ने कहा कि इब्न शिहना ने अपने दादा से इसके बारे में...

पृष्ठ 312/673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۲۹۷: از نودیا ضلع بریلی غرہ محرم ۱۳۱۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک قصبہ میں جامع مسجد ہے کہ ہمیشہ اُس میں جمعہ ہوتا ہے اب ایک مسجد بنا ہوئی اُس کو جامع مسجد بنانا اور قدیم کی جامع مسجد کو ترک کر دینا یا دونوں جا جمعہ پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ الجواب: قصبہ و شہر جہاں جمعہ جائز ہے وہاں نماز جمعہ متعدد جگہ ہونا بھی جائز ہے اگرچہ افضل حتی الوسع ایک جگہ ہوتا ہے اور اگلی مسجد جامع کو ترک کر دینے کے اگر یہ معنی کہ اُس میں نماز ہی چھوڑ دی جائے، تو قطعاً ناجائز کہ مسجد کا ویران کرنا ہے اور اگر یہ مراد کہ نماز تو وہاں ہوا کرے مگر جمعہ وہاں کے بدلے اب اس مسجد جدید میں ہو، اس میں اگر وہاں کے اہل اسلام کوئی مصلحت شرعیہ قابل قبول رکھتے ہوں تو کیا مضائقہ، ورنہ مسجد جامع وہی مسجد قدیم ہے اور اس میں نماز جمعہ کا ثواب زائد۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۲۹۸: از جالندھر محلہ راستہ متصل مکان ڈپٹی احمد جان صاحب مرسلہ محمد احمد خاں صاحب ۲۰ شوال ۱۳۱۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ بعد نماز جمعہ کے چار رکعت ظہر احتیاطی کا پڑھنا ملک پنجاب یا ہندوستان کے شہروں میں جن میں جامع مساجد بادشاہوں کے حکم سے بنی ہوئی ہیں واجب ہے یا مستحب، اور ان شہروں میں نماز جمعہ میں کچھ وہم یا شبہ ہے یا نہیں؟ بحوالہ کتاب مع عبارت لکھا جائے۔ الجواب: بعض شرائط صحت کی تحقیق میں یہاں ضرور اختلاف و اشتباہ ہے، ایسی جگہ علمائے کرام نے چار رکعت احتیاطی کا حکم دیا مگر خواص کے لئے، نہ کہ ایسے عوام کو جو تصحیح نیت پر قادر نہ ہوں، اُن کے لئے ایک مذہب پر صحت بس ہے، یہ رکعتیں بحال تو ہم عدم صحت تو صرف مندوب ہیں اور بحال شک و اشتباہ ظاہر وجوب، ردالمحتار میں ہے:

[ٹیبل کا مواد] عربی عبارت: نقل مقدسی عن المحیط کل موضع وقع الشك فی کونه مصرا ینبغی لهم ان یصلوا بعد الجمعة اربعا بنیة الظهر احتیاطا، ومثله فی الکافی والقنیة امرائمتهم بالاربع بعدها حتما احتیاطا، قال المقدسی ذکر ابن الشحنة عن جده اردو ترجمہ: قدسی نے محیط سے نقل کیا کہ ہر وہ جگہ جس کے شہر ہونے میں شک ہو وہاں پر ان لوگوں کو جمعہ کے بعد احتیاطاً چار رکعتیں بنیت ظہر ادا کرنی چاہئیں، اسی کی مثل کافی اور قنیہ میں ہے کہ ائمہ نے جمعہ کے بعد لوگوں کو حتمی طور پر احتیاطاً چار رکعات کا حکم دیا ہے، المقدسی نے کہا کہ ابن شحنہ نے اپنے دادا سے اس کے

Fatawa Razawiya, Volume 8

[Arabic Section]: It was explicitly stated to be recommended (Mandub), and it was argued that such a thing should only be the case when there is a mere suspicion. However, when doubt and uncertainty exist, the apparent ruling is obligation (Wajib). He quoted from his teacher Ibn al-Humam what is beneficial here. Al-Maqdisi stated: We do not command the common people with such matters; rather, we inform the elite about them, even if it concerns them. [Summary]

[Urdu Section]: Explicitly stated it to be recommended and objected that such a matter applies when there is a suspicion, but if there is doubt and uncertainty, then it is obligatory. He quoted from his teacher Ibn al-Humam what was useful here. Al-Maqdisi said that we do not give orders for such things to the common people but rather inform the elite, even if it is regarding them. [Summary]

The detailed research of this issue is in our Fatawa and the treatise 'Lawami al-Baha fi al-Misr lil-Jum'ah wal-Arba' Uqbiha'. And Allah Almighty knows best.

Issue 1299: From Rampur, near Moradabad, Mohalla Mulla Zarif, Gher Farangi Mahal, sent by Maulvi Riyasat Husain Sahab, 4 Ramadan-ul-Mubarak 1315 AH.

[Question Section]: Persian/Urdu: What do the scholars of religion say regarding this matter: in which year did Friday prayer (Jumu'ah) become obligatory? Urdu: What do the scholars of religion say regarding this matter: in which year did Friday prayer (Jumu'ah) become obligatory?

Answer: [Arabic Section]: In the first year of Hijrah, according to the correct and famous view among the majority (Jumhur). It is mentioned in Sharh al-Mawahib by al-Zarqani that the verse [of Jumu'ah] is Madani, which indicates that the obligation of Jumu'ah occurred in Madinah al-Munawwarah. This is the opinion of the majority of scholars. Sheikh Abu Hamid says that Jumu'ah was made obligatory in Makkah al-Mukarramah; al-Hafiz says this is a rare (gharib) view. In Zarqani's Sharh of al-Muwatta, it is mentioned that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) during the journey of Hijrah, when he left Quba on Friday as the day advanced, reached the time of Jumu'ah in the area of Bani Salim...

[Urdu Section]: According to the correct and famous view among the majority (Jumhur), it was made obligatory in the first year of Hijrah. It is mentioned in Sharh al-Mawahib by al-Zarqani that the verse (of Jumu'ah) is Madani, which indicates that the obligation of Jumu'ah occurred in Madinah al-Munawwarah—blessings be upon

its dweller. This is the opinion of the majority of scholars. Sheikh Abu Hamid says that Jumu'ah was made obligatory in Makkah al-Mukarramah; al-Hafiz says this is a rare (gharib) view. In Zarqani's Sharh of al-Muwatta, it is mentioned that when the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was on the journey of Hijrah...

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Jumu'ah, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/596.
2. Sharh al-Mawahib al-Ladunniyyah by al-Zarqani, Chapter Two on the mention of Friday Prayer, printed at Matba'ah 'Amirah Egypt, 2/433.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[अरबी खंड]: इसे स्पष्ट रूप से मंदूब (सिफारिशी) बताया गया, और यह तर्क दिया गया कि ऐसी बात केवल तब होनी चाहिए जब मात्र वहम हो। हालाँकि, जब संदेह और अनिश्चितता मौजूद हो, तो प्रत्यक्षतः यह वाजिब (अनिवार्य) है। उन्होंने अपने शिक्षक इब्न अल-हुमाम से वह उद्धृत किया जो यहाँ उपयोगी है। अल-मक़दिसी ने कहा: हम आम लोगों को ऐसे मामलों का आदेश नहीं देते; बल्कि हम विशिष्ट लोगों को उनके बारे में सूचित करते हैं, भले ही यह उनसे संबंधित हो। [संक्षिप्त]

[उर्दू खंड]: इसे मंदूब होने की स्पष्ट व्याख्या की और इस पर आपत्ति की कि ऐसी बात तब है जब वहम हो और अगर शक व संदेह हो तो फिर वाजिब है। और अपने उस्ताद इब्न अल-हुमाम से वह नक़ल किया जो यहाँ लाभदायक था, मक़दिसी ने कहा कि हम ऐसी बातों का हुक्म अवाम को नहीं देते बल्कि ख़्वास को मुत्तला करते हैं अगरचे वह उनके मुताल्लिक़ हों। [संक्षिप्त]

इस मसले का शोध हमारे फ़तावा और रिसाला 'लवामे अल-बहा फ़िल मिस्र लिल-जुमुआ वल-अरबा उक़्बीहा' में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1299: रामपुर, मुरादाबाद के पास, मोहल्ला मुल्ला ज़रीफ़, घेर फ़िरंगी महल से, प्रेषक मौलवी रियासत हुसैन साहब, 4 रमज़ान-उल-मुबारक 1315 हिजरी।

[प्रश्न खंड]: फ़ारसी/उर्दू: दीन के विद्वान इस मसले के बारे में क्या कहते हैं कि जुमा किस साल फर्ज़ हुआ? उर्दू: इस मसले के बारे में दीन के विद्वान क्या फरमाते हैं कि जुमा किस साल फर्ज़ हुआ?

उत्तर: [अरबी खंड]: हिजरत के पहले साल में, बहुमत (जमहूर) के बीच सही और प्रसिद्ध राय के अनुसार। ज़रक़ानी द्वारा शरह अल-मवाहिब में उल्लेख है कि आयत [जुमा की] मदनी है, जो इंगित करती है कि जुमा की फर्ज़ियत मदीना मुनव्वरा में हुई थी। अधिकांश विद्वानों की यही राय है। शेख अबू हामिद कहते हैं कि जुमा मक्का मुकर्रमा में फर्ज़ किया गया था; अल-हाफ़िज़ कहते हैं कि यह एक दुर्लभ (ग़रीब) विचार है। ज़रक़ानी की शरह मुअत्ता में उल्लेख है कि पवित्र नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हिजरत की यात्रा के दौरान, जब वे जुमा के दिन कुबा से निकले जब दिन चढ़ गया था, तो उन्होंने बनी सालिम के क्षेत्र में जुमा का समय पाया...

[उर्दू खंड]: जमहूर के नज़दीक सही मशहूर यही है कि हिजरत के पहले साल फ़र्ज़ हुआ, शरह अल-मवाहिब लिल-ज़रक़ानी में है कि आयत (जुमा) मदनी है जो दलील है कि जुमा की फ़र्ज़ियत मदीना

मुनव्वरा—उन पर दुरूद हो—में हुई, और अक्सर उलमा की यही राय है, शेख़ अबू हामिद कहते हैं कि जुमा मक्का मुकर्रमा में फ़र्ज़ हुआ था, हाफ़िज़ कहते हैं कि यह क़ौल ग़रीब है। ज़रक़ानी की शरह मुअत्ता में है कि रसातलमाआब सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जब सफर-ए-हिजरत के..

1. रद अल-मुहतार, जुमा का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/596।
2. शरह अल-मवाहिब अल-लदुन्निया लिल-ज़रक़ानी, जुमा की नमाज़ के ज़िक्र पर दूसरा अध्याय, मतबा आमिरा मिस्र द्वारा मुद्रित, 2/433।

पृष्ठ 313/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

التصریح بالندب وبحث فیه بأنه ینبغی ان یکون عند مجرد التوهم ماعند قیام الشک والاشتباه فالظاهر الوجوب و نقل عن شیخه ابن الهمام ما یفیده وقال المقدسی نحن لا نأمر بذلک امثال هذه العوام بل ندل علیه الخواص ولو بالنسبة الیهم اھ ملخصا ۔ مندوب ہونے کی تصریح کی اور اس پر اعتراض کیا کہ ایسی بات اس وقت ہے جب وہم ہو اور اگر شک و اشتباہ ہو پھر واجب ہے اور اپنے شیخ ابن ہمام سے وہ نقل کیا جو یہاں مفید تھا ، مقدسی نے کہا کہ ہم ایسی باتوں کا حکم عوام کو نہیں دیتے بلکہ خواص کو مطلع کرتے ہیں اگر چہ وہ ان کی نسبت سے ہوں اھ ملخصاً (ت)

تحقیق مسئلہ ہمارے فتاوٰی اور رسالہ لوامع البہا فی المصر للجمعہ والاربع عقبیھا میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۹۹: از رامپور متصل مراد آباد محلہ ملا ظریف گھیر فرنگی محل مرسلہ مولوی ریاست حسین صاحب ۴ رمضان المبارک ۱۳۱۵ھ

چہ می فرمایند علمائے دین دریں مسئلہ کہ جمعہ بکدام سال مفروض شد، | اس مسئلہ کے بارے میں علمائے دین کیا فرماتے ہیں کہ جمعہ کس سال فرض ہوا؟

الجواب:

ہم بسال اول از ہجرت علی الصحیح المشہور عند الجمہور فی شرح المواھب للزرقانی، الایۃ مدنیۃ فتدل علی انھا فرضت بالمدینۃ وعلیہ ۱ لاکثر وقال الشیخ ابوحامد فرضت بمکۃ قال الحافظ وھو غریب وفی شرح الموطأ لہ انہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فی سفر الھجرۃ لما خرج من قبایوم الجمعۃ حین ارتفع النھار ادرکتہ الجمعۃ فی بنی سالم جمہور کے نزدیک صحیح مشہور یہی ہے کہ ہجرت کے

پہلے سال فرض ہوا، شرح المواہب للزرقانی میں ہے کہ آیت (جمعہ) مدنی ہے جو دال ہے کہ جمعہ کی فرضیت مدینہ منورہ علی صاحبہا الصلوۃ میں ہوئی ، اور اکثر علماء کی یہی رائے ہے، شیخ ابو حامد کہتے ہیں کہ جمعہ مکہ مکرمہ میں فرض ہوا تھا، حافظ کہتے ہیں کہ یہ قول غریب ہے۔

زرقانی کی شرح موطا میں ہے کہ رسالتمآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم جب سفر ہجرت کے

1 رد المحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۹۶ 2 شرح المواہب اللدنیہ للزرقانی الباب الثانی فی ذکر صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ مطبعہ عامرہ مصر ۲ / ۴۳۳

[Top Box Left Side - Arabic] Bin Auf offered the prayer in their mosque, and it was named Masjid al-Jumu'ah. This was the first Friday prayer he (peace be upon him) performed. Ibn Ishaq mentioned this[1] AH. And Allah, Glorified and Exalted, knows best.

[Top Box Right Side - Urdu] On the day of Friday, when proceeding from Quba towards Medina, the sun had risen high. The time for Friday prayer arrived in the locality of Banu Salim bin Auf. So, the Prophet (peace be upon him) offered the Friday prayer in their mosque. For this reason, that mosque was named "Masjid al-Jumu'ah". This was the first Friday prayer performed by the Master of the Universe (peace be upon him). Ibn Ishaq has mentioned it in this manner. And Allah, Glorified and Exalted, knows best. (T)

Issue 1300: From Dor, District Nainital, Post Office Kachama, sent by Abdul Aziz Khan, 4 Ramadan-ul-Mubarak 1315 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Is it permissible for the Imam to omit the Sajda Sahw (prostration of forgetfulness) in Eid or Friday prayers due to a large crowd of people, or not?

Answer: Yes, the honorable scholars have given permission to omit it in the state of congregation when there is a risk of confusion and trial (fitna) among the followers due to Sajda Sahw, rather they have declared it more appropriate.

[Middle Box Left Side - Arabic] In 'al-Durr al-Mukhtar': Forgetfulness in Eid, Friday, obligatory, and voluntary prayers is the same. According to the later scholars, the preferred view is not to perform it in the first two (Eid and Friday) to prevent trial, as mentioned in the chapter of Friday in 'al-Bahr'. The author has affirmed it, and it was decisively stated in 'al-Durr'[2].

[Middle Box Right Side - Urdu] It is mentioned in 'Durr al-Mukhtar' that forgetfulness in Eid, Friday, obligatory, and voluntary prayers is equal. According to later scholars, the chosen view is the absence of Sajda Sahw in Eid and Friday prayers to prevent confusion/trial, as mentioned in the chapter of Friday in 'al-Bahr'. The author has established this, and 'al-Durr' has decisively adopted it. (T)

[Bottom Box Left Side - Arabic/Urdu] It is mentioned in 'Radd al-Muhtar': It is apparent that in gatherings other than these two, the ruling is the same, as some have researched. Similarly, al-Rahmati researched and said, especially in our times, and in the marginalia of the Friday chapter...

[Bottom Box Right Side - Urdu] It is apparent that besides these two (Eid and Friday prayers), wherever there is a large gathering, its ruling is also the same as some have described, and similarly, Rahmati said while discussing, and said especially in our era (not to perform Sajda Sahw).

Footnotes: 1. Sharh al-Zurqani 'ala al-Muwatta, Chapter: What has been narrated regarding the Imam staying in a village, etc., printed by al-Maktabat al-Tijariyat al-Kubra, Egypt, 1/220. 2. Durr al-Mukhtar, Chapter: Sajood al-Sahw, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/103.

फ़तावा रज़विया | जिल्द अष्टम

[ऊपरी बॉक्स - अरबी/उर्दू] जुमे के दिन कुबा से मदीना तैयबा की तरफ चले तो दिन खूब चढ़ चुका था। मुहल्ला बनू सालिम बिन औफ में जुमे का वक्त हो गया तो आपने उनकी मस्जिद में जुमा अदा फरमाया, इसी वजह से उस मस्जिद का नाम मस्जिद अल-जुमा करार पा गया। यह पहला जुमा था जो हुज़ूर सरवरे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अदा फरमाया। इब्ने इस्हाक ने इसी तरह ज़िक्र किया है। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। (त)

मसला 1300: दौर, जिला नैनीताल, डाकखाना कचामर, प्रेषक अब्दुल अज़ीज़ खां, 4 रमज़ानुल मुबारक 1315 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि नमाज़-ए-ईदैन या जुमा में आदमियों की कसरत की वजह से इमाम के लिए सजदा सह्व (भूल की माफी का सजदा) छोड़ना जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब: हाँ, उलेमा-ए-किराम ने जमाअत की हालत में जबकि सजदा सह्व के कारण मुक्तदियों (पीछे नमाज़ पढ़ने वालों) के भ्रम और फितने (उलझन) का अंदेशा हो, इसे छोड़ने की इजाज़त दी है, बल्कि इसी को बेहतर करार दिया है।

[मध्य बॉक्स - अरबी/उर्दू] 'दुर्रुल मुख्तार' में है कि ईद, जुमा और फ़र्ज़ व नफ़्ल नमाज़ में सह्व (भूल) बराबर है। बाद के उलेमा के नज़दीक ईद और जुमा में फितने को रोकने के लिए सजदा सह्व न करना ही मुख्तार (पसंदीदा) है जैसा कि 'बह्र' के बाब-ए-जुमा में है। मुसन्निफ (लेखक) ने इसे साबित रखा और 'दुर्र' में इसी के साथ जज़्म (निश्चय) किया। (त)

[नीचे का बॉक्स - अरबी/उर्दू] 'रद्दुल मुहतार' में है: ज़ाहिर यह है कि इन (ईद और जुमा) के अलावा जहाँ भी बड़ा मजमा हो, उसका हुक्म भी यही है जैसा कि कुछ ने बयान किया है, और इसी तरह रहमती ने बहस करते हुए कहा और कहा कि खासकर हमारे दौर में (सजदा सह्व न करना)।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. शरह अल-ज़रकानी अलल मुवत्ता, बाब: इमाम का किसी बस्ती में उतरना आदि, मकतबा अल-तिजारिया अल-कुबरा, मिस्र, 1/220। 2. दुर्र-ए-मुख्तार, बाब: सुजूद अस-सह्व, मतबा मुजतबाई देहली, 1/103।

पृष्ठ 314 / 673

بن عوف فصلّٰھا بمسجد ھم فسمی مسجد الجمعۃ وھی اول جمعۃ صلاھا صلی اللہ تعالی وسلم ذکرہ ابن اسحق[1] اھ واللہ سبحنہ وتعالی اعلم۔ موقعہ پر جمعہ کے دن قباء سے مدینہ طیبہ کی طرف چلے تو دن خوب بلند ہو چکا تھا محلہ بنو سالم بن عوف میں جمعہ کا وقت ہو گیا تو آپ نے ان کی مسجد میں جمعہ ادا فرمایا، اسی وجہ سے اس مسجد کا نام مسجد الجمعہ قرار پا گیا، یہ پہلا جمعہ تھا جو حضور سرور عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ادا فرمایا، ابن اسحاق نے اسی طرح ذکر کیا ہے اھ واللہ سبحنہ وتعالی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۰۰: از دور ضلع نینی تال ڈاکخانہ کچامرسلہ عبدالعزیز خاں ۴ رمضان المبارک ۱۳۱۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز عیدین یا جمعہ میں آدمیوں کی کثرت سے سجدہ سہو امام کو ترک کرنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: ہاں علمائے کرام نے بحالت جماعت جبکہ سجدہ سہو کے باعث مقتدیوں کے خبط وافتنان کا اندیشہ ہو اس کے ترک کی اجازت دی بلکہ اسی کو اولٰی قرار دیا،

فی الدرالمختار السھو فی صلوۃ العید والجمعۃ والمکتوبۃ والتطوع سواء والمختار عند المتأخرین عدمه في الاولیین لدفع الفتنۃ کما في جمعۃ البحر واقرہ لاالمصنف و به جزم فی الدر[2]۔ درمختار میں ہے کہ نماز عید، جمعہ اور فرض و نفل نماز میں سہو برابر ہے، متاخرین کے ہاں عید و جمعہ میں دفع فتنہ کی وجہ سے سجدہ سہو کا نہ ہونا مختار ہے جیسا کہ بحر کے باب جمعہ میں ہے، مصنف نے اسے ثابت رکھا اور در میں اسی کے ساتھ جزم کیا۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے: الظاهر ان الجمع الكثير فيما سواهما كذلک كما بحثه بعضهم ط وكذا بحثه الرحمتي وقال خصوصا في زماننا و فی جمعة حاشية ظاہر یہ ہے کہ ان (نماز عید وجمعہ) کے علاوہ میں جہاں بھی کثیر اجتماع ہو اس کا حکم بھی یہی ہے جیسا کہ بعض نے بیان کیا ہے ط، اور اسی طرح رحمتی نے بحث کرتے ہوئے کہا اور کہا کہ خصوصاً ہمارے دور میں (سجدہ سہو نہ کرنا)

1 شرح الزرقانی علی الموطأ باب ماجاء فی الامام ینزل بقریۃ الخ مطبوعہ المکتبۃ التجاریۃ الکبری مصر ۱/ ۲۲۰ 2 در مختار باب سجود السہو مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۳

Fatawa Rizvia, Volume 8

(Arabic) Abi Al-Saud narrates from Al-Azmiyya that the meaning is not its impermissibility, but rather it is better to abandon it so that people do not fall into fitna (tribulation)... | (Urdu) In the marginalia of Abu Al-Saud regarding Friday prayer, it is cited from Azmiyya that this does not mean that the prostration of forgetfulness (sajdah sahw) is not permissible; rather, its omission is preferable so that people do not fall into confusion. This statement is asserted in 'Al-Durr'. However, its commentator, Al-Wani, added the condition that this applies when a large congregation is present; otherwise, there is no reason to abandon it. And Allah, Glory be to Him and Exalted is He, knows best. (T) (Arabic) His statement: And it was asserted in 'Al-Durr', but its commentator Al-Wani restricted it to when a large group is present, otherwise there is no call to abandonment. (T) (Arabic) And Allah, Glory be to Him and Exalted is He, knows best.

Problem 1301: From Rampur State, Mullah Zarif neighborhood, sent by the late Munshi Abdul Rahman Khan through Maulana Abdul Rauf Sahib, 12th Dhu al-Qi'dah 1315 AH.

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: On a Friday, the Imam finished the Friday prayer along with the sermon in a mosque. Now, fifteen or sixteen people arrived at that same mosque after the Friday prayer. Should these newcomers perform the Friday prayer again in this mosque, or the Zuhr prayer? If the latter, should they pray in congregation or individually? The late Abdullah Sahib wrote in his collection of fatwas that they should pray Friday, and mentioned it is better in another mosque, but if they pray in this mosque, there is no harm. However, from the text of 'Al-Alamgiri', it clearly appears that a second Friday prayer is not permissible; instead, they should pray individually. What is the research on this? Clarify and you shall be rewarded.

Answer: In 'Al-Alamgiri', this matter is narrated from 'Khaniyah', and similarly it is mentioned in 'Fatawa Zahiriyya', 'Al-Bahr al-Ra'iq', 'Durr-e-Mukhtar', etc.

(Arabic) It is stated in 'Al-Bahr' that it is mentioned in 'Al-Zahiriyya': A group that missed the Friday prayer in a city should pray Zuhr without Adhan, Iqamah, or congregation. | (Urdu) It is in 'Al-Bahr' that it was said in 'Zahiriyya': If a group in a city misses the [Friday] congregation, they should perform Zuhr without Adhan, Takbir, and congregation. (T)

The depiction of the issue is about missing the Friday prayer, and that statement is obvious as far as the limit goes... | And on this is built the reasoning of 'Al-Hidayah' for the issue of the excused in these words... (Arabic) And upon it is built the reasoning of Al-Hidayah for the issue...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Sajdah al-Sahw, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/556.
2. Al-Bahr al-Ra'iq Sharh Kanz al-Daqaiq, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/154.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8

(अरबी) अबी अल-सऊद अल-अज़्मिय्या से वर्णन करते हैं कि इसका अर्थ इसकी गैर-अनुमति नहीं है, बल्कि इसे छोड़ना बेहतर है ताकि लोग फ़ितने (भ्रम) में न पड़ें... | (उर्दू अनुवाद) जुमे के बारे में अबू अल-सऊद के हाशिये में अज़्मिय्या से उद्धृत है कि इसका मतलब यह नहीं है कि सजदा सह्व जायज़ नहीं है; बल्कि इसे छोड़ना बेहतर है ताकि लोग भ्रम में न पड़ें। 'अल-दुर्र' में इस पर पक्का फैसला है। लेकिन इसके भाष्यकार अल-वानी ने यह शर्त जोड़ी है कि यह उस स्थिति में है जब वहां बड़ी भीड़ जमा हो; अन्यथा सजदा छोड़ने का कोई कारण नहीं होगा। और अल्लाह, जो पवित्र और सर्वोच्च है, सबसे बेहतर जानता है। (त) (अरबी) उनका कथन: और 'अल-दुर्र' में इस पर दृढ़ता से कहा गया है, लेकिन इसके भाष्यकार अल-वानी ने इसे बड़ी भीड़ की उपस्थिति तक सीमित कर दिया है, अन्यथा छोड़ने का कोई कारण नहीं है। (त) (अरबी) और अल्लाह, जो पवित्र और सर्वोच्च है, सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1301: रियासत रामपुर, मोहल्ला मुल्ला ज़रीफ़ गहीर से, स्वर्गीय मुंशी अब्दुल रहमान खां द्वारा मौलवी अब्दुल रऊफ साहब के माध्यम से प्रेषित, 12 ज़ुल-क़ादा 1315 हिजरी।

प्रश्न: धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं: एक मस्जिद में आज जुमे के दिन इमाम साहब जुमे की नमाज़ खुत्बे के साथ पढ़ाकर फारिग हुए। अब उस समय पंद्रह-सोलह आदमी उसी मस्जिद में जुमे की नमाज़ के बाद आए। अब ये आने वाले लोग इसी मस्जिद में फिर से जुमा पढ़ें या ज़ुहर की नमाज़? यदि ज़ुहर, तो क्या वे जमात के साथ पढ़ें या अकेले? स्वर्गीय अब्दुल्ला साहब ने अपने फतवों के संग्रह में लिखा है कि वे जुमा पढ़ेंगे, और दूसरी मस्जिद में पढ़ना बेहतर बताया है, लेकिन अगर इसी मस्जिद में पढ़ें तो कोई हर्ज नहीं। हालांकि, 'आलमगीरी' की इबारत से साफ पता चलता है कि दूसरा जुमा जायज़ नहीं है, बल्कि वे लोग अकेले-अकेले नमाज़ पढ़ें। इस पर सही शोध क्या है? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: 'आलमगीरी' में यह मसला 'खनिया' से लिया गया है, और इसी तरह 'फ़तावा ज़हीरिया', 'अल-बह्र अल-रईक' और 'दुर-ए-मुख्तार' आदि में भी इसका उल्लेख है।

(अरबी) 'अल-बह्र' में कहा गया है कि 'अल-ज़हीरिया' में उल्लेख है: शहर में जिस समूह की जुमे की नमाज़ छूट गई हो, उन्हें अज़ान, इक़ामत या जमात के बिना ज़ुहर की नमाज़ पढ़नी चाहिए। | (उर्दू

अनुवाद) 'अल-बह्र' में है कि 'ज़हीरिया' में कहा गया है: अगर किसी शहर में जमात छूट गई, तो बिना अज़ान, तकबीर और जमात के ज़ुहर अदा करें। (त)

मसले का चित्रण जुमा छूटने के बारे में है, और वह बात सीमा तक तो स्पष्ट है... | और इसी पर 'अल-हिदाया' में माज़ूरों (मजबूरों) के मसले का तर्क इन शब्दों में आधारित है... (अरबी) और इसी पर आधारित है अल-हिदाया का तर्क इस मसले के लिए...

1. रद अल-मुह्तार, बाब सुजूद अस-सह्व, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र द्वारा मुद्रित 1/556.
2. अल-बह्र अल-रईक शरह कंज़ अद-दक़ाईक़, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा मुद्रित 2/154.

ابی السعود عن العزمیۃ انہ لیس المراد عدم جوازہ بل الاولی ترکہ لئلا یقع الناس فی فتنۃ اھ | چاہیے) حاشیہ ابوالسعود کے جمعہ میں عزمیہ سے ہے کہ اس سے مراد یہ نہیں کہ سجدہ سہو جائز نہیں بلکہ اس کا ترک اولٰی ہے تاکہ لوگ فتنہ میں نہ پڑیں، اھ قولہ، اس پر در میں جزم ہے لیکن اس کے محشی الوانٰی نے اس قید کا اضافہ کیا ہے کہ یہ اس صورت میں ہے جب وہاں کثیر لوگ جمع ہوں ورنہ نہیں کیونکہ اس وقت ترک سجدہ کا داعی نہیں ہوگا، ط واللہ سبحنہ و تعالٰی اعلم (ت) قولہ و بہ جزم فی الدر لکنہ قیدہ محشیھا الوانی بما اذا حضر جمع کثیر والا فلاداعی الی الترك ط واللہ سبحنہ و تعالٰی اعلم[1]

مسئلہ ۱۳۰۱: از ریاست رامپور محلہ ملا ظریف گہیر منشی عبدالرحمن خاں مرحوم مرسلہ مولوی عبدالرؤف صاحب ۱۲ ذیقعدہ ۱۳۱۵ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد میں آج جمعہ کے دن امام صاحب جمعہ مع خطبہ پڑھا کر فارغ ہوئے، اب اُس وقت پندرہ سولہ آدمی اسی مسجد میں بعد نماز جمعہ آگئے اب یہ آیندگان اسی مسجد میں پھر جمعہ پڑھیں یا ظہر، بر تقدیر ثانی جماعت سے پڑھیں یا منفرد؟ عبداللہ صاحب مرحوم نے اپنے مجموعہ فتاوٰی میں لکھا ہے کہ وہ لوگ جمعہ پڑھیں گے دوسری مسجد میں افضل لکھا ہے اگر اسی مسجد میں پڑھیں کچھ حرج نہیں کر کے تحریر کیا ہے، مگر عالمگیری کی عبارت سے صاف معلوم ہوتا ہے کہ دوسرا جمعہ جائز نہیں بلکہ وہ لوگ فرادٰی فرادٰی نماز پڑھیں اس کی تحقیق کیا ہے؟ بینوا توجروا الجواب: عالمگیری میں یہ مسئلہ خانیہ سے ماثور ہے اور اسی کی مثل فتاوٰی ظہیریہ و بحر الرائق و در مختار و غیرہا میں مذکور،

قال فی البحر قال فی الظہیریۃ جماعۃ فاتتہم الجمعۃ فی المصر فانہم یصلون الظہر بغیر اذان ولا اقامۃ ولاجماعۃ[2]۔ | بحر میں ہے کہ ظہیریہ میں فرمایا کہ اگر کسی شہر میں سے جماعت فوت ہوگئی تو بغیر اذان، تکبیر اور جماعت کے ظہر ادا کریں۔ (ت)

تصویر مسئلہ فوتِ جمعہ سے ہے اور وہ قول تو حدّ پر تو ظاہر، وعلیہ یبتنی تعلیل الہدایۃ لمسألۃ | اور ہدایہ میں مسئلہ معذورین کی ان الفاظ میں علت

1 ردالمحتار باب سجود السہو مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۵۶ 2 بحر الرائق شرح کنز الدقائق مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۵۴

Volume 8 - Fatawa Rizvia

[Arabic Section] ...the excused ones by his saying, because it contains a flaw in general, as it is the gatherer of congregations [1]. He said in al-Fath, and followed in al-Bahr: This reason is based on the impermissibility of multiple Friday prayers in one city [2], etc. Al-Bahr added: This is contrary to what is explicitly mentioned, both narratively and rationally [3]. I say: By Allah, in al-Hidayah, there are two reasons mentioned; the first is what was stated, and the second is what you relied upon, as he said after it: "And sometimes a non-excused person follows an excused one" [4]. It is no wonder, as explaining the issue based on either of the two opinions is because the opinion of oneness (single Friday prayer) is also a strong opinion in the school (madhhab), as is evident from what we noted in Radd al-Muhtar and as we presented in our Fatawa. An objection like this against such an Imam from such a learned scholar is astonishing. He followed al-Fath in this, but al-Fath only limited itself to what preceded, then said: "And according to the chosen narration from al-Sarakhsi and others on the permissibility of its multiplicity, the reason is that sometimes a non-excused person may end up following them" [5], etc. He did not mention what al-Bahr mentioned. So it is not a criticism, but rather an explanation by distributing the two arguments across the two opinions. And Allah is the Granter of success.

[Urdu Section] Describing it is also based on the fact that in this case, a disruption occurs in the Friday prayer, even though it is the gatherer of all congregations. This is said in Fath, and followed in Bahr, that this reason is based on the impermissibility of multiple Friday prayers in a single city, etc. Adding in Bahr, he said that according to narration and reasoning, this is against the text (Nass). I say: In Hidayah, two reasons are given; one is the aforementioned, and the second is the one you relied upon. After that, they said that sometimes a non-excused person follows an excused one, and there is no harm because the reason for the issue is based on both opinions... Furthermore, the opinion of oneness is also a strong opinion in the school, as becomes clear from the writing of our marginalia on Radd al-Muhtar, and we have mentioned it in our Fatawa. Such an objection against such an Imam by such a learned scholar is surprising. He followed Fath in this, but Fath only sufficed with what has passed before. Then he said that according to Sarakhsi etc., on the preferred narration, the multiplicity of Friday prayers is permissible, and its reason is that sometimes a non-excused person follows an excused one. And they did not mention what Bahr has done. So, it is not a critique but an explanation dividing the arguments for the two opinions, and Allah alone gives success. (T)

[Footnotes] 1. Al-Hidayah, Chapter on Friday Prayer, 1/150. 2. Fath al-Qadir Sharh al-Hidayah, Chapter on Friday Prayer, 2/35. 3. Bahr al-Ra'iq Sharh Kanz al-Daqa'iq, Chapter on Friday Prayer, 1/152. 4. Al-Hidayah, Chapter on Friday Prayer, 1/150. 5. Fath al-Qadir, Chapter on Friday Prayer, printed by Nuriyya Razawiyya Sukkur, 2/35.

जिल्द आठवीं - फ़तावा रज़विया

[अरबी खंड] ...माज़ूरों (अक्षमों) का ज़िक्र इसलिए है क्योंकि इसमें सामान्य रूप से बाधा आती है, क्योंकि वह जमातों का जामिअ है [1]। फ़तह में कहा गया और बह्र में उसका अनुसरण किया गया: यह वजह एक शहर में कई जुमा होने की अनुमति न होने पर आधारित है [2], आदि। बह्र में इज़ाफ़ा करते हुए कहा गया कि यह रिवायत और दरायत के लिहाज़ से नस्सत (स्पष्ट प्रमाण) के खिलाफ़ है [3]। मैं कहता हूँ: अल्लाह की कसम, हिदाया में दो दलीलें दी गई हैं: पहली वह जिसका ज़िक्र हुआ, और दूसरी वह जिस पर आपने भरोसा किया, क्योंकि उसके बाद कहा गया: "और कभी-कभी एक ग़ैर-माज़ूर व्यक्ति माज़ूर का अनुसरण कर लेता है" [4]। इसमें कोई अचरज नहीं, क्योंकि मसले की दलील दोनों में से किसी भी कौल पर आधारित होना इस बात पर है कि एकात्मकता का कौल भी मज़हब में एक मज़बूत कौल है, जैसा कि 'रद्दुल मुहतार' पर हमारे हाशिये से ज़ाहिर होता है और हमने अपने फ़तावा में इसे पेश किया है। ऐसे इमाम पर इतने बड़े विद्वान का ऐसा ऐतराज़ ताज्जुब पैदा करने वाला है। उन्होंने इसमें फ़तह की इत्तिबा की, लेकिन फ़तह ने सिर्फ़ उसी पर इक्तिफ़ा किया जो पहले गुज़र चुका है, फिर कहा: "सरख़सी वग़ैरह के नज़दीक मुख़्तार रिवायत पर जुमा की बहुलता जायज़ है, और इसकी वजह यह है कि बाज़ औक़ात ग़ैर-माज़ूर व्यक्ति माज़ूर की इक्तिदा (अनुसरण) कर लेता है" [5], आदि। उन्होंने वह ज़िक्र नहीं किया जो बह्र ने किया है। लिहाज़ा यह कोई जरह (आलोचना) नहीं है, बल्कि दो अक़वाल पर दो दलीलों की तक़सीम के तौर पर एक शरह (व्याख्या) है। और अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है।

[उर्दू खंड] यह बयान करना भी इसी पर मबनी है कि इस सूरत में जुमा में ख़लल आता है हालाँकि वह तमाम जमातों का जामिअ है। फ़तह में कहा गया और इसी की इत्तिबा बह्र में है कि यह वजह एक शहर में मुतअद्दद (अनेक) जगहों पर जुमा के अदम-ए-जवाज़ (अनुमति न होना) पर मबनी है, आदि। बह्र में इज़ाफ़ा करते हुए कहा कि रिवायत और दरायत के लिहाज़ से यह नस्सत के ख़िलाफ़ है। मैं कहता हूँ: हिदाया में इसकी दो इल्लतें (कारण) बयान हुई हैं; एक यह जो मज़कूर है और दूसरी वह जिस पर तुमने एतिमाद (भरोसा) किया, वहाँ इसके बाद उन्होंने कहा कि कभी माज़ूर की ग़ैर-माज़ूर इक्तिदा कर लेता है, और कोई हर्ज नहीं क्योंकि मसले की इल्लत दोनों कौलों पर है... इसके अलावा कौल-ए-तवहुद (एकात्मकता) भी मज़हब में क़वी कौल है जैसा कि हमारे हाशिये 'रद्दुल मुहतार' की तहरीर से ज़ाहिर हो जाता है और हमने इसे अपने फ़तावा में ज़िक्र किया है। इस तरह का ऐतराज़ ऐसे इमाम पर इस तरह के फ़ाज़िल-ए-अल्लाम से ताज्जुब पैदा करता है, और उन्होंने

इसमें फ़तह की इत्तिबा की है लेकिन फ़तह ने इसी पर इक्तिफ़ा किया है जो पीछे गुज़र चुका है। फिर कहा कि सरख़सी वग़ैरह के नज़दीक मुख़्तार रिवायत पर तअद्दद-ए-जुमा (जुमा की बहुलता) का जवाज़ है और इसकी वजह यह है कि बाज़ औक़ात माज़ूर को ग़ैर-माज़ूर की इक्तिदा लाहिक़ हो जाती है। और उन्होंने वह ज़िक्र नहीं किया जो बह्र ने किया है, पस वह जरह नहीं बल्कि दो अक़वाल की दलीलों की तक़सीम के तौर पर शरह है और अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है। (त)

[फुटनोट्स] 1. अल-हिदाया, बाब सलातुल जुमा, 1/150। 2. फ़तहुल क़दीर शरह अल-हिदाया, बाब सलातुल जुमा, 2/35। 3. बह्रुल राइक़ शरह कंज़ुद दकाइक़, बाब सलातुल जुमा, 1/152। 4. अल-हिदाया, बाब सलातुल जुमा, 1/150। 5. फ़तहुल क़दीर, बाब सलातुल जुमा, मतबुआ नूरिया रज़विया सुक्कुर, 2/35।

جلد ہشتم - فتاوی رضویہ

[عربی حصہ] المعذورین بقولہ لما فیہ من الاخلال بالجملۃ اذ ھی جامعۃ الجماعات 1 اہ قال في الفتح وتبع في البحر ھذا الوجہ مبنی علی عدم جواز تعدد الجمعۃ في المصر الواحد 2 الخ زاد في البحر وھو خلاف المنصوص علیہ روایۃ ودرایۃ 3 اہ اقول: واللہ فی الھدایۃ بتعلیلین الاول ماذکر والثانی ماعولتم علیہ حیث قال بعدہ والمعذور قد یقتدی بہ غیرہ 4 اہ ولا غر وتعلیل المسألۃ علی کل من القولین علی ان قول التوحد ایضا قول قول في المذھب کما یظھر مما علقنا علی ردالمحتار وقد ادناہ في فتاونا والاعتراض بمثل ھذا علی مثل ھذا الامام من مثل ھذا الفاضل العلام مما یقضی الی العجب وقد تبع فیہ الفتح ولکن الفتح انما اقتصر علی ما قدمت ثم قال وعلی الروایۃ المختارۃ عند السرخسي وغیرہ من جواز تعدد ھا فوجھہ انہ ربما یتطرف غیر المعذور الی الاقتداء بھم 5 الخ ولم یذکر ماذکر ھذا البحر فھو لیس بجرح بل شرح بتوزیع الدلیلین علی القولین واللہ الموفق۔

[اردو حصہ] بیان کرنا بھی اسی پر مبنی ہے کہ اس صورت میں جمعہ میں خلل آتا ہے حالانکہ وہ تمام جماعتوں کا جامع ہے اہ فتح میں کہا اور اسی کی اتباع بحر میں ہے کہ یہ وجہ ایک شہر میں متعدد جگہ جمعہ کے عدم جواز پر مبنی ہے الخ بحر میں اضافہ کرتے ہوئے کہا کہ روایت ودرایت کے لحاظ سے یہ نص کے خلاف ہے اہ _____ اقول: ہدایہ میں اس کی دو علتیں بیان ہوئی ہیں ایک یہ جو مذکور ہے اور دوسری وہ جس پر تم نے اعتماد کیا وہاں اس کے بعد انھوں نے کہا کہ کبھی معذور کی غیر اقتداء کر لیتا ہے اہ اور کوئی حرج نہیں کیونکہ مسئلہ کی علت دونوں قولوں پر ہے--- علاوہ ازیں قول توحد بھی مذہب میں قوی قول ہے جیسا کہ ہمارے حاشیہ ردالمحتار کی تحریر سے ظاہر ہو جاتا ہے اور ہم نے اسے اپنے فتاوی میں ذکر کیا ہے، اس طرح کا اعتراض ایسے امام پر اس طرح کے فاضل علام سے تعجب دارد، اور انہوں نے اس میں فتح کی اتباع کی

ہے لیکن فتح نے اسی پر اکتفاء کیا ہے جو پیچھے گزر چکا ہے، پھر کہا سرخسی وغیرہ کے نزدیک مختار روایت پر تعدد جمعہ کا جواز ہے اور اس کی وجہ یہ ہے کہ بعض اوقات معذور کو غیر معذور کی اقتداء لاحق ہو جاتی ہے اھ اور انہوں نے ذکر نہیں کیا جو بحر نے کیا ہے پس وہ جرح نہیں بلکہ دو اقوال کی دلیلوں کی تقسیم طور شرح ہے اور اللہ ہی توفیق دینے والا ہے۔(ت)

[حواشی] 1 الهداية باب صلوة الجمعة ١ / ١٥٠ 2 فتح القدير شرح الهداية باب صلوة الجمعة ٢/ ٣٥ 3 بحر الرائق شرح كنز الدقائق باب صلوة الجمعة ١/ ١٥٢ 4 الهداية باب صلوة الجمعة ١ / ١٥٠ 5 فتح القدير باب صلوة الجمعة مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ٢/ ٣٥

Fatawa-e-Razvia Volume 8

And even on the reliable view regarding multiplicity, scenarios are conceivable. Among them is that the prayer has been performed in all places and only three men remain, while for Friday (Jumu'ah) prayer, at least four are required. In any case, this issue of the impermissibility of multiple Friday prayers in a single mosque is not explicitly stated in the texts (Nass). Now, consider the question; Fatawa-e-Lucknow was obtained from some friends and reviewed. No evidence was presented for that ruling, nor was any book referenced. They simply based it on the validity of multiple Friday obligations and wrote that for this reason, it is necessary for those people to perform the sermon and Friday prayer in congregation. However, if it is in another mosque, it is preferable; but if it is in the same mosque, there is no harm either.

I say: And success is through Allah (I say with the guidance of Allah Almighty). For the validity of Friday prayer, the mere permissibility of multiplicity is not sufficient.

A thousand points finer than a hair are here. (There are a thousand nuances here that are thinner than a hair.)

Not every person has the authority to establish and lead the Friday prayer. Rather, it must be the Sultan of Islam, his appointee, or a deputy appointed by the appointee out of necessity or without necessity. And where obtaining permission from the Sultan is impossible, then the one whom the general body of believers appoints as the orator (Khatib) and Imam for the Friday prayer. It is stated in Tanwir-ul-Absar and Durr-ul-Mukhtar:

[Table content] Arabic Text: The presence of the Sultan or his appointee for establishing Friday prayer is a condition for its validity. There is a difference of opinion regarding the orator appointed by the Supreme Imam or his deputy: can he appoint a deputy for the sermon? Some said "No, absolutely." Others said "It is permissible for necessity, otherwise not." And some said "It is permissible absolutely," and this is apparent from their statements. In 'al-Badai', it is stated: whoever is authorized for Friday prayer is authorized for its establishment through others. The appointment of an orator by the general public is not valid when those mentioned are present; however, in their absence, it is permissible due to necessity. [Summarized]

Urdu Translation (from original): For the validity of Friday prayer, it is necessary to have the Sultan or a person appointed by him for the establishment of Friday prayer.

There is a difference of opinion as to whether an orator appointed by the Supreme Imam or his deputy can appoint a deputy for the sermon or not. Some say it is permissible in any case, otherwise not. According to some, he can appoint a deputy in every situation; this is apparent from the jurists' text. It is in 'Badai' that every person who has been made the authority for Friday prayer will also be authorized to appoint someone else for the establishment of Friday prayer. And the appointment of an orator by the common people is not valid while the mentioned individuals are present. Yes, if the aforementioned individuals are not there, then it will be permissible due to necessity. [Summarized]

---

1. Durr-ul-Mukhtar, Chapter of Friday, printed at Matba Mujtabai, Delhi, India, 1/109-110. Page 317 of 673

और भरोसेमंद राय के अनुसार, जुमे की अनेकता के संबंध में भी इसमें स्थितियाँ संभव हैं। उनमें से एक यह है कि सब जगह नमाज़ अदा की जा चुकी है और केवल तीन आदमी शेष हैं, जबकि जुमे के लिए कम से कम चार आदमियों की आवश्यकता होती है। बहरहाल, यह मामला एक ही मस्जिद में एक से अधिक जुमे की अनुमति न होने पर स्पष्ट पाठ (नस्स) नहीं है। अब प्रश्न पर विचार करें; कुछ मित्रों से 'फ़तावा-ए-लखनऊ' मँगवाकर देखा गया। उस निर्णय के लिए न तो कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया है और न ही किसी पुस्तक का संदर्भ दिया गया है। उन्होंने केवल जुमे की अनेकता की वैधता को आधार बनाकर लिख दिया कि इस कारण उन लोगों के लिए आवश्यक है कि वे जमात के साथ खुतबा और जुमा अदा करें। हालाँकि, यदि यह दूसरी मस्जिद में हो तो बेहतर है; लेकिन यदि इसी मस्जिद में हो तो भी कोई बुराई नहीं है।

अकुल (मैं कहता हूँ): और सफलता अल्लाह की तौफ़ीक से है (मैं अल्लाह तआला की तौफ़ीक से कहता हूँ)। जुमे की वैधता के लिए केवल अनेकता की अनुमति ही पर्याप्त नहीं है।

यहाँ हज़ार नुक्ते हैं जो बाल से भी बारीक हैं। (यहाँ हज़ार बारीकियाँ हैं जो बाल से भी ज़्यादा महीन हैं।)

हर व्यक्ति को जुमे की स्थापना और इमामत का अधिकार नहीं है। बल्कि यह इस्लाम का सुल्तान, उसका नियुक्त व्यक्ति, या आवश्यकतावश नियुक्त व्यक्ति का नायब होना चाहिए। और जहाँ सुल्तान से अनुमति लेना असंभव हो, तो जिसे आम मोमिनों ने जुमे का खुतीब और इमाम नियुक्त कर लिया हो। 'तनवीरुल अबसार' और 'दुर्रे मुख्तार' में उल्लेख है:

[तालिका सामग्री] अरबी पाठ: जुमे की वैधता के लिए सुल्तान या उसकी ओर से नियुक्त व्यक्ति द्वारा जुमा स्थापित करना शर्त है। इमाम-ए-आज़म या उनके प्रतिनिधि द्वारा नियुक्त खुतीब के बारे में मतभेद है: क्या वह खुतबे के लिए किसी को अपना प्रतिनिधि बना सकता है? कुछ ने कहा, "बिल्कुल नहीं।" अन्य ने कहा, "आवश्यकता के लिए जायज़ है, अन्यथा नहीं।" और कुछ ने कहा, "यह पूरी तरह से जायज़ है," और यही उनके बयानों से स्पष्ट है। 'अल-बदाए' में कहा गया है: जिसे जुमे का अधिकार दिया गया है, उसे दूसरों के माध्यम से इसकी स्थापना का भी अधिकार है। आम जनता द्वारा खुतीब की नियुक्ति तब मान्य नहीं है जब उल्लेखित व्यक्ति मौजूद हों; हालाँकि, उनकी अनुपस्थिति में, आवश्यकता के कारण यह जायज़ है। [संक्षिप्त]

उर्दू अनुवाद (मूल से): जुमे की वैधता के लिए सुल्तान या उसकी ओर से जुमा कायम करने के लिए नियुक्त व्यक्ति का होना आवश्यक है। इसमें मतभेद है कि इमाम-ए-आज़म या उनके नायब द्वारा नियुक्त खुतीब, खुतबे में किसी को नायब बना सकता है या नहीं। कुछ ने कहा कि हर हाल में जायज़ है, अन्यथा नहीं। कुछ के अनुसार, वह हर स्थिति में नायब बना सकता है; फ़ुक़हा के बयानों से यही ज़ाहिर है। 'बदाए' में है कि जिस व्यक्ति को जुमे का अधिकार दिया गया है, वह अपनी जगह किसी और को जुमे की इकामत के लिए नियुक्त करने का भी अधिकार रखेगा। और आम लोगों का खुतीब नियुक्त करना विश्वसनीय नहीं है जबकि उल्लेखित लोग मौजूद हों। हाँ, अगर उपरोक्त लोग नहीं हैं, तो ज़रूरत के कारण जायज़ होगा। [संक्षिप्त]

---

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमुआ, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, भारत, 1/109-110 पृष्ठ 317/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اور قول معتمد تعدد پر بھی اُس میں صور متصور، از آنجملہ یہ کہ سب جگہ نماز ہوچکی اور باقی صرف تین آدمی ہیں اور جمعہ کے لئے کم سے کم چار درکار، بہرحال یہ مسئلہ عدم جواز تعدد جمعہ بمسجد واحد میں نص نہیں، اب سوال پر نظر کیجئے فتاوائے لکھنؤ بعض احباب سے منگا کر دیکھا گیا اُسی حکم پر نہ کوئی سند پیش کی ہے نہ کسی کتاب کا حوالہ دیا صرف صحت تعدد فرضیت جمعہ پر بنائے کار کر کے لکھ دیا کہ اس وجہ سے لازم ہے اُن لوگوں کو کہ جماعت سے خطبہ اور جمعہ ادا کریں مگر دوسری مسجد میں ہو تو اولیٰ ہے اور اگر اسی مسجد میں ہو تو بھی کچھ حرج نہیں۔

اقول: وباللہ التوفیق (میں اللہ تعالیٰ کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) صحت جمعہ کے لئے صرف جواز تعدد ہی کافی نہیں ع ہزار نکتہ باریک ترز مو اینجاست (یہاں ہزار نکتہ ہے جو بال سے بھی زیادہ باریک ہے)

ہر شخص اقامت وامامت جمعہ کا اختیار نہیں رکھتا بلکہ سلطان اسلام یا اس کا مامور یا علی الخلاف مامور کا نائب بنایا ہوا بضرورت، یا بلا ضرورت، اور جہاں استیذانِ سلطان متعذر ہو تو جسے عامہ مومنین خطیب وامام جمعہ مقرر کرلیں تنویر الابصار و در مختار میں ہے:

[جدول] عربی عبارت: يشترط لصحتها السلطان او مامورہ باقامتها واختلف في الخطيب المقرر من جهة الامام الاعظم اونائبه هل يملك الاستنابة فی الخطبة فقيل لا مطلقا وقيل ان لضرورة جاز والا لا وقيل يجوز مطلقا وهو الظاهر من عبار اتهم ففی البدائع كل من ملك الجمعة ملك اقامة غيره ونصب العامة الخطبيب غير معتبر مع وجود من ذكرا مامع عدمهم فيجوز للضرورة 1 اھ ملتقطا ۔

اردو ترجمہ (جدول): صحتِ جمعہ کے لئے سلطان یا اس کی طرف سے اقامتِ جمعہ پر مامور شخص کا ہونا ضروری ہے، اس میں اختلاف ہے کہ امام اعظم یا اس کے نائب کی طرف سے مقرر کردہ خطیب، خطبہ میں نائب بناسکتا ہے یا نہیں، بعض نے کہا ہر حال میں جائز، ورنہ جائز نہیں، اور بعض کے نزدیک ہر حال میں نائب بناسکتا ہے، فقہا کی عبارت سے یہی ظاہر ہے، بدائع میں ہے کہ ہر وہ شخص جسے جمعہ کا مالک بنادیا گیا وہ اپنے علاوہ کسی کو اقامتِ جمعہ کے لئے تقرر کا بھی مالک ہوگا اور عام لوگوں کا خطیب مقرر کرنا معتبر نہیں جبکہ مذکور لوگ موجود ہوں، ہاں اگر مذکورہ بالا لوگ نہ ہوں تو ضرورت کی وجہ سے جائز ہوگا اھ ملتقطا (ت)

---

1 درمختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۰۹-۱۱۰ Page 317 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

It is stated in Sirajiya: If the Governor of Egypt dies, then the heir of the deceased, the police chief, or the judge should lead the Friday prayer; it is permissible. If none of them are present and the people agree on a man to lead them, then that is also permissible. (T)

It is stated in Khaniya: If there is no judge or heir of the deceased there, and the general public agrees to appoint a man, it is permissible due to necessity. (T)

It is stated in Tahzeeb and Hindiyya: If obtaining permission from the leader is difficult and the people agree on a man to lead the Friday prayer for them, it is permissible. (T)

And it is evident that the discussion pertains to the situation where the first Friday prayer has been correctly performed. Otherwise, what would be the reason for multiple Friday prayers in a single mosque, and what would be the rationale for priority in another mosque? Therefore, it is necessary that the first prayer was led by the one who possessed the authority to establish the Friday prayer in that mosque. Now, the one leading the Friday prayer there again cannot be in a state other than these two (Note): either he leads with the permission of that authority of establishment, or without permission. The first path is blocked as there is no permission from the authority. However, delegation (inabat) is meaningless here, because after the original person has personally led today's Friday prayer and the rite has been established, there is no meaning to delegation for today's Friday prayer. Delegation is for attaining what has not been attained, not for attaining what is already achieved. Furthermore, the deputy and the principal cannot be joined in the same matter. And permission for today's Friday prayer does not constitute permission for future Friday prayers. Thus, the second option is established, and in the Friday prayer, leadership by someone other than the appointed Imam of Friday prayer without the Imam's permission is void. In Sirajiya, after the aforementioned text:

Note: It remains that if a designated authorized Imam is found. (H) [The possibility remains that common people find a person with specific permission. (T)]

1. Fatawa Sirajiya, Chapter on Friday Prayer, published by Munshi Nawal Kishore, Lucknow, India, 1/17

2. Fatawa Qazi Khan, Chapter on Friday Prayer, published by Munshi Nawal Kishore, Lucknow, India, 1/84
3. Fatawa Hindiyya, the Sixteenth Chapter on Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/146

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

सिराजिया में है: मिस्र का गवर्नर मर गया, तो जुमा वारिस-ए-मैयित पढ़ाए या पुलिस प्रमुख या क़ाज़ी, तो जाइज़ है, और अगर उनमें से वहाँ कोई मौजूद नहीं और लोगों ने किसी शख़्स को इमाम बना लिया तो तब भी जाइज़ है। (त)

ख़ानिया में है: अगर वहाँ क़ाज़ी और ख़लीफ़ा-ए-मैयित न हो और लोग किसी एक शख़्स को इमाम बना लें तो यह ज़रूरत के मौक़े पर जाइज़ होगा। (त)

तहज़ीब व हिन्दिया में है: अगर इमाम से इजाज़त मुश्किल हो और लोग किसी एक आदमी को इमाम बना लें तो जाइज़ है। (त)

और यह ज़ाहिर है कि कलाम इसी सूरत में है जबकि पहला जुमा सही तौर पर अदा हो गया हो, वर्ना एक ही मस्जिद में जुमे की पुनरावृत्ति कैसी, और दूसरी मस्जिद में प्राथमिकता का क्या मतलब? तो लाज़मी है कि पहली नमाज़ उसी ने पढ़ाई जो उस मस्जिद में जुमा क़ायम करने का अधिकारी था। अब यह दोबारा वहाँ जुमा पढ़ाने वाला दो स्थितियों से खाली नहीं (अह): या तो वह उस अधिकार धारक की इजाज़त से पढ़ाएगा या बिना इजाज़त। पहली तरफ़ रास्ता बंद है क्योंकि यहाँ मालिक की इजाज़त नहीं है। लेकिन प्रतिनिधित्व (इनाबत) और इसके बाद कि आज का जुमा ख़ुद असल शख़्स पढ़ा चुका है और जुमा का प्रतीक स्थापित हो चुका है, आज के जुमे में इनाबत का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि इनाबत उसे हासिल करने के लिए होती है जो हासिल न हो, न कि उसे हासिल करने के लिए जो पहले ही हासिल हो चुका हो। और न ही नाइब (प्रतिनिधि) और मुनीब (प्रधान) एक ही मामले में जमा हो सकते हैं। और भविष्य के जुमे के लिए आज के जुमे की इजाज़त काफ़ी नहीं है, इसलिए दूसरा विकल्प ही तय हुआ, और जुमे में जुमा के मुख्य इमाम के अलावा किसी और की इमामत, मुख्य इमाम की इजाज़त के बिना बातिल (अमान्य) है। सिराजिया में इस इबारत के बाद:

अह: बक़ी अन लौ वुजिदा इमामन मुअय्यनन माज़ूनन ह (म) [यह सम्भावना बाक़ी रह गई कि आम लोग किसी निर्धारित इजाज़त वाले शख़्स को पाएँ। त]

1. फ़तावा सिराजिया बाब अल-जुमुआह मतबुआ मुंशी नवल किशोर लखनऊ भारत १/१७
2. फ़तावा क़ाज़ी ख़ान बाब सलात अल-जुमुआह मतबुआ मुंशी नवल किशोर लखनऊ भारत १/८४

3. फ़तावा हिन्दिया अल-बाब अल-सादिस अशर फ़ी सलात अल-जुमुआह मतबुआ नूरानी कुतुब ख़ाना पेशावर १/१४६

पृष्ठ ३१८/६७३

سراجیہ میں ہے: والی مصر مات فصلی بھم خلیفة المیت او صاحب الشرطة او القاضي جاز، وان لم یکن ثمة واحد منھم اجتمع الناس علی رجل فصلی بھم جاز ۱؎ والی مصر فوت ہو گیا تو جمعہ وارث میت پڑھائے یا محتسب یا قاضی، تو جائز ہے ،اور اگر ان میں سے وہاں کوئی موجود نہیں اور لوگوں نے کسی شخص کو امام بنالیا تو تب بھی جائز ہے۔ (ت)

خانیہ میں ہے: ان لم یکن ثم قاض ولا خلیفة المیت فاجتمع العامة علی تقدیم رجل جاز لمکان الضرورة ۲؎ اگر وہاں قاضی اور خلیفہ میت نہ ہو اور لوگ کسی ایک شخص کو امام بنالیں تو یہ ضرورت کے موقعہ پر جائز ہوگا۔ (ت)

تہذیب و ہندیہ میں ہے: لو تعذر الاستیذان من الامام فاجتمع الناس علی رجل یصلي بھم الجمعة جاز ۳؎ اگر امام سے اجازت متعذر ہو اور لوگ کسی ایک آدمی کو امام بنالیں تو جائز ہے۔ (ت)

اور یہ ظاہر کہ کلام اسی صورت میں ہے جبکہ پہلا جمعہ صحیح ادا ہو لیا ورنہ مسجد واحد میں تعددِ جمعہ کیسا، اور دوسری مسجد میں اولویت کا کیا منشاء، تو ضرور ہے کہ پہلی نماز اسی نے پڑھائی جو اس مسجد میں اقامتِ جمعہ کا مالک تھا اب یہ دوبارہ وہیں جمعہ پڑھانے والا دو حال سے خالی نہیں عہ یا اس مالک اقامت کے اذن سے پڑھائے گا یا بے اذن اول کی طرف راہ ممنوع کہ یہاں اذنِ مالک نہیں، مگر انابت اور بعد اس کے کہ آج کا جمعہ خود اصل پڑھا چکا اقامت شعار ہو چکی، جمعہ امروز میں انابت کے کوئی معنی نہیں کہ انابت تحصیلِ نا حاصل کے لئے ہوتی ہے نہ تحصیلِ حاصل کے واسطے نہ نائب و منیب ایک امر میں جمع ہوسکیں اور آئندہ جمعہ کے لئے

اذنِ جمعہ امروز کا اذن نہیں تو شق ثانی ہی متعین ہوئی اور جمعہ میں غیر امامِ جمعہ کی امامت بے اذنِ امامِ جمعہ باطل ہے سراجیہ میں بعد عبارت

عہ: بقی ان لو وجد اماماً معیناً مأذونا ح (م) [یہ احتمال باقی رہ گیا کہ عام لوگ کسی مقررہ اذن والے شخص کو پائیں۔ ت]

۱ فتاوی سراجیہ باب الجمعۃ مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ بھارت ۱/۱۷ ۲ فتاوی قاضی خان باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ بھارت ۱/۸۴ ۳ فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۴۶

Fatawa Razawiya Volume 8

It is mentioned: | If someone offers prayer without the permission of the Khatib, it is not permissible unless they are followed by someone who has the authority for Friday prayer. (1) | If prayers are led without the Khatib's permission, it is not permissible. However, it will be permissible in the situation where the one being followed is someone who holds the authority of Jumu'ah (Friday prayer). (T) | | :--- | :--- |

In 'Durr-e-Mukhtar': 'And Shaykh al-Islam confirmed it' (2). In 'Khaniya', 'Hindiya', and 'Radd al-Muhtar': | If a person delivers the sermon on the day of Jumu'ah without the permission of the Imam, and the Imam is present, it is not permissible unless the Imam has commanded him to do so. (3) | Someone gave the sermon without the Imam's permission even though the Imam was present, so it's not permissible except in the case where the Imam ordered him to do it. (T) | | :--- | :--- |

In this mosque today, there is no need for an Imam for Jumu'ah, nor are there a few general people. Otherwise, even Eid prayers would not be missed by anyone more than Jumu'ah, while if only one person is with them, it would be considered necessary for them to find a prayer, and appointing one of them as the Imam of Eid for another would stand in place of the leadership of the Sultan of Islam. All issues based on missing Jumu'ah and Eids would become void. This is something that no sane person would say, let alone a learned one (T). So the truth is, let alone this mosque, in any other mosque where Jumu'ah is not held, whether in a house or an open field, these people cannot pray Jumu'ah; rather, they should pray their Dhuhr (afternoon prayer) individually. It is mentioned in 'Tanweer al-Absar' and 'Durr-e-Mukhtar': | It is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi) for an excused person, a prisoner, or a traveler to perform Dhuhr in congregation in a city before or after Jumu'ah, as it leads to the reduction of the Jumu'ah congregation and creates a form of conflict. (4) | It is prohibitively disliked for an excused person, a prisoner, and a traveler to perform Dhuhr with congregation in the city before or after Jumu'ah because it entails a reduction in the congregation and the appearance of conflict. (T) | | :--- | :--- |

1. Fatawa Sirajiyya, Chapter of Jumu'ah, published by Munshi Naval Kishore, Lucknow, India, p. 17.
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter of Jumu'ah, published by Matba' Mujtabai, Delhi, India, 1/110.

3. Fatawa Hindiya, Sixteenth Chapter on Jumu'ah Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/135.
4. Durr-e-Mukhtar, Sixteenth Chapter on Jumu'ah Prayer, published by Matba' Mujtabai, Delhi, India, 1/112.

उल्लेख है: | यदि किसी ने खतीब की अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ाई, तो यह जायज़ नहीं है, जब तक कि उसका अनुसरण वह व्यक्ति न करे जिसके पास जुमा (शुक्रवार की नमाज़) का अधिकार हो। (१) | यदि खतीब की अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ाई गई, तो यह जायज़ नहीं है। हालाँकि, यह उस स्थिति में जायज़ होगा जब उसका अनुसरण किसी ऐसे व्यक्ति ने किया हो जिसके पास जुमा का अधिकार था। (त) | | :--- | :--- |

'दुर्र-ए-मुख़्तार' में है: 'और शेख अल-इस्लाम ने इसकी पुष्टि की' (२)। 'ख़ानिया', 'हिन्दिया' और 'रद्द अल-मुह्तार' में है: | यदि किसी व्यक्ति ने इमाम की अनुमति के बिना जुमा के दिन खुतबा (प्रवचन) दिया और इमाम उपस्थित था, तो यह जायज़ नहीं है जब तक कि इमाम ने उसे ऐसा करने का आदेश न दिया हो। (३) | किसी व्यक्ति ने इमाम की अनुमति के बिना खुतबा दिया जबकि इमाम मौजूद था, तो यह जायज़ नहीं है सिवाय उस स्थिति के जब इमाम ने उसे इसका आदेश दिया हो। (त) | | :--- | :--- |

आज के जुमा के लिए न तो इस मस्जिद में इमाम की ज़रूरत है, न ही कुछ आम लोग हैं। अन्यथा, जुमा से बढ़कर ईद की नमाज़ें कभी किसी व्यक्ति से नहीं छूटतीं, जबकि उनके साथ सिर्फ एक व्यक्ति भी हो तो उनके लिए नमाज़ पाना ज़रूरी माना जाता। उनमें से एक को दूसरे के लिए ईद का इमाम नियुक्त करना इस्लाम के सुल्तान के इमामत का स्थान ले लेता। जुमा और ईद के छूटने पर आधारित सभी मसले (मुद्दे) अमान्य हो जाएंगे। यह बात तो कोई सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी नहीं कह सकता, एक विद्वान की तो बात ही क्या (त)। तो सच्चाई यह है कि इस मस्जिद को छोड़िए, किसी भी दूसरी मस्जिद में जहाँ जुमा न होता हो, चाहे घर हो या मैदान, ये लोग जुमा नहीं पढ़ सकते; बल्कि उन्हें अपनी ज़ोहर (दोपहर की नमाज़) अकेले पढ़नी चाहिए। 'तनवीर अल-अबसार' और 'दुर्र-ए-मुख़्तार' में है: | जुमा से पहले और उसके बाद शहर में किसी विवश (मज़दूर), कैदी और यात्री के लिए जमाअत के साथ ज़ोहर पढ़ना मकरूह-ए-तहरीमी (सख्त नापसंद) है, क्योंकि इससे जुमा की जमाअत में कमी आती है और विरोधाभास की स्थिति पैदा होती है। (४) | जुमा से पहले और उसके

बाद शहर में विवश, कैदी और मुसाफिर का जमाअत के साथ ज़ोहर अदा करना मकरूह-ए-तहरीमी है क्योंकि इसमें जमाअत की कमी और विरोधाभास की सूरत लाज़िम आती है। (त) | | :--- | :--- |

1. फ़तावा सिराजिया, बाब अल-जुमा, मुंशी नवल किशोर द्वारा प्रकाशित, लखनऊ, भारत, पृष्ठ १७।
2. दुर्र-ए-मुख़्तार, बाब अल-जुमा, मतबा मुजतबाई द्वारा प्रकाशित, दिल्ली, भारत, १/११०।
3. फ़तावा हिन्दिया, सोलहवाँ अध्याय जुमा की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना द्वारा प्रकाशित, पेशावर, १/१३५।
4. दुर्र-ए-मुख़्तार, सोलहवाँ अध्याय जुमा की नमाज़ के बारे में, मतबा मुजतबाई द्वारा प्रकाशित, दिल्ली, भारत, १/११२।

مذکورہ ہے: | لوصلی احد بغیر اذن الخطیب لایجوز الا اذا اقتدی بہ من لہ ولایۃ الجمعۃ ۱- | اگر بغیر اذن خطیب نماز پڑھائی تو جائز نہیں، البتہ اس صورت میں جائز ہوگی جب اس کی اقتداء کسی ایسے شخص نے کی جو ولایتِ جمعہ رکھتا تھا۔ (ت) | | :--- | :--- |

دُرِ مختار میں ہے: واقرہ شیخ الاسلام ۲ (اسے شیخ الاسلام نے ثابت رکھا۔ ت) خانیہ و ہندیہ و ردالمحتار میں ہے: | رجل خطب یوم الجمعۃ بغیر اذن الامام والامام حاضر لایجوز ذلک الا ان یکون لامام امرہ بذلک ۳- | کسی شخص نے اذنِ امام کے بغیر خطبہ دیا حالانکہ امام موجود تھا تو یہ جائز نہیں مگر اس صورت میں جب امام نے اسے اس کا حکم دیا ہو۔ (ت) | | :--- | :--- |

نہ اس مسجد میں آج کے جمعہ کو امام کی ضرورت، نہ معدودے چند عامہ ناس ہیں ورنہ جمعہ سے بڑھ کر عیدین کبھی کسی شخص کو فوت نہ ہوں جبکہ اپنے ساتھ ایک ہی پاسکے کہ انھیں نماز مل جانی ضرورت قرار پائے اور ان میں ایک کا دوسرے کو امام عید مقرر کر لینا قائم مقام امامت سلطان اسلام ٹھہرے اور تمام مسائل کہ فوت جمعہ و عیدین پر مبنی ہیں باطل ہوجائیں وھذا لا یقول بہ عاقل فضلا عن فاضل (یہ بات تو کوئی معمولی عقل والا بھی نہیں کہہ سکتا چہ جائیکہ کوئی فاضل کہے۔ ت) تو حق یہ ہے کہ اس مسجد میں درکنار کسی دوسری مسجد میں بھی جہاں جمعہ نہ ہوتا ہو خواہ مکان یا میدان میں کسی جگہ یہ لوگ جمعہ پڑھ سکتے بلکہ اپنی ظہر تنہا تنہا پڑھیں، تنویر الابصار و درمختار میں ہے : | کرہ تحریما لمعذور ومسبحون ومسافر اداء ظھر بجماعۃ فی مصر قبل الجمعۃ وبعدھا لتقلیل الجماعۃ وصورۃ المعارضۃ ۴- | جمعہ سے پہلے اور اس کے بعد شہر میں معذور، قیدی اور مسافر کا جماعت کے ساتھ ظہر ادا کرنا مکروہِ تحریمی ہے کیونکہ اس میں قلّتِ جماعت اور صورتِ تعارض لازم آتی ہے۔ (ت) | | :--- | :--- |

۱ فتاویٰ سراجیہ باب الجمعہ مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ بھارت ص ۱۷ ۲ در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱۱۰/۱ ۳ فتاویٰ ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱۳۵/۱ ۴ درمختار الباب السادس عشر فی صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱۱۲/۱

Volume Eight Fatawa Rizwia

In Radd al-Muhtar it is stated: His statement regarding the excused, the same applies to the unexcused by a greater reason (a fortiori). 1 You know that they are more in need of performing Zuhr because they are not capable of establishing Friday prayer (Jummah). Therefore, scholars directed them to offer the Zuhr prayer individually, as is not hidden from anyone whom Allah Almighty has granted sound intellect and correct understanding. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1302: What do the scholars of religion say about this issue: Is it permissible for two Imams to lead Friday prayers in the same mosque by placing a curtain in between, or not? (2) Is it permissible to perform Friday prayer twice in one mosque? Explain and be rewarded.

Answer: Non-permissibility in the sense of sin applies to all obligatory (Fard) prayers. It is evident from the scenario described that two congregations were intentionally formed in this manner, and establishing two congregations for any obligatory prayer in one mosque at one time intentionally is strictly impermissible. Both groups, or at least one of them, will surely be sinful because such a division of obligatory prayer congregations is explicitly a reprehensible and evil innovation (Bid'at-e-Sayyiah). If only one of the two Imams is suitable for leading the prayer without any dislike (makruh), for example, the other is an open transgressor (fasiq-e-mu'lan) or a follower of a deviant sect, then the dislike is only upon the second one. If both are suitable, then there is no blame on the one whose intention (niyyah) was tied first; it is on the other. If they start simultaneously, then it is on both. It is mentioned in Khulasa and Hindiyyah:

Some people were sitting inside the mosque and some outside. The Muezzin called the Takbeer. An Imam from those outside stood up and led them, and an Imam from those inside also stood up and led them. Whoever starts first, he and those following him (muqtadi) are not disliked (no makruh). 2 (T)

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Jummah, Published by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/202 2 Fatawa Hindiyyah, Chapter Five on Imamate, Second Section, Published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/84

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

रद्द अल-मुह्तार में है: उनका कथन 'मज़ूर' (अक्षम) के बारे में है, और 'ग़ैर-मज़ूर' के लिए भी यही नियम और भी अधिक लागू होता है। 1 आप जानते हैं कि ये लोग ज़ुहर की नमाज़ अदा करने के ज़्यादा मोहताज हैं क्योंकि वे जुम्मा कायम करने पर सक्षम नहीं हैं। इसलिए विद्वानों ने उन्हें अकेले ज़ुहर की नमाज़ अदा करने की सीख दी, जैसा कि हर उस व्यक्ति पर स्पष्ट है जिसे अल्लाह तआला ने स्वस्थ बुद्धि और सही समझ प्रदान की है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। (त)

मसला १३०२: धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि एक ही मस्जिद में बीच में पर्दा डालकर दो इमामों द्वारा जुम्मा पढ़ाना जायज़ होगा या नहीं? (२) एक मस्जिद में दो बार जुम्मा पढ़ना जायज़ होगा या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: नाज़ायज़ होने का अर्थ पाप होना सभी अनिवार्य नमाजों (फ़राज़) में है। प्रश्न की स्थिति से स्पष्ट है कि जानबूझकर इस तरह से दो जमातें बनाई गईं, और एक ही मस्जिद में एक ही समय में किसी भी अनिवार्य नमाज़ की दो जमातें जानबूझकर स्थापित करना कतई जायज़ नहीं है। दोनों समूह, या कम से कम दोनों में से एक अवश्य पापी होगा क्योंकि अनिवार्य नमाज़ों की जमात का ऐसा विभाजन स्पष्ट रूप से एक बुरी और घृणित नवीनता (बिदअत-ए-सय्यिया) है। यदि दोनों इमामों में से केवल एक ही बिना किसी नापसंदगी के इमामत के योग्य है, जैसे कि दूसरा खुलेआम पाप करने वाला (फ़ासिक़-ए-मुअलन) या पथभ्रष्ट है, तो नापसंदगी केवल उस दूसरे पर है। और यदि दोनों योग्य हैं, तो जिस व्यक्ति की नियत पहले बँध गई, उस पर कोई दोष नहीं है, दोष दूसरे पर है। और यदि दोनों साथ में शुरू करें, तो दोनों पर दोष है। 'ख़ुलासा' और 'हिन्दिया' में है:

कुछ लोग मस्जिद के अंदर बैठे थे और कुछ बाहर। मुअज़्ज़िन ने तक़बीर कही, बाहर वालों में से एक इमाम खड़ा हुआ और उन्हें नमाज़ पढ़ाई, और अंदर वालों में से भी एक इमाम खड़ा हुआ और उन्हें नमाज़ पढ़ाई। जिसने पहले शुरू किया, वह और उसके पीछे चलने वाले (मुक्तदी) बिना किसी नापसंदगी के हैं। 2 (त)

१ रद्द अल-मुह्तार, बाब अल-जुम्मा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, २/२०२ २ फ़तावा हिन्दिया, इमामत पर पाँचवाँ अध्याय, दूसरा अनुभाग, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित, १/८४

पृष्ठ ३२० / ६७३

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

ردالمحتار میں ہے: قولہ لمعذور وکذا غیرہ بألا ولی 1 اہ فأنت تعلم انھم انما احوجھم الی اداء الظھر انھم لا یقدرون علی اقامۃ الجمعۃ فارشدوا الی صلوتھا فرادی کما لایخفی علی من رزق العقل سلیم والفھم المستقیم واللہ تعالی اعلم۔ قولہ معذور، غیر معذور کا بطریق اولٰی یہی حکم ہے اھ در آب جانتے ہیں کہ یہ لوگ اداء ظہر کے زیادہ محتاج ہیں کیونکہ وہ اقامتِ جمعہ پر قادر ہی نہیں لہذا علماء نے تنہا نماز ظہر ادا کرنے کی تلقین کی، جیسا کہ ہر شخص پر مخفی نہیں جسے اللہ تعالیٰ نے عقل سلیم اور فہمِ مستقیم عطا فرمایا ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔ (ت)

مسئلہ ۱۳۰۲: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک مسجد میں دو امام درمیان میں پردہ ڈال کر جمعہ پڑھانا جائز ہوگا یا نہیں؟ (۲) ایک مسجد میں دو دفعہ جمعہ پڑھنا جائز ہوگا یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: عدم جواز بمعنی گناہ تو جمیع فرائض میں ہے صورتِ سوال سے ظاہر کہ دیدہ ودانستہ دو جماعتیں بالقصد اس طرح کیں اور کسی فرض کی دو جماعتیں ایک مسجد ایک وقت میں بالقصد قائم کرنا ہرگز جائز نہیں، دونوں فریق یا لااقل دونوں میں سے ایک ضرور گنہگار ہوگا کہ جماعت فرائض کی ایسی تفریق صراحتًا بدعتِ سیئہ شنیعہ ہے، اگر دونوں امام میں صرف ایک صالح امامت بلاکراہت ہے، مثلاً دوسرا فاسقِ معلن یا بد مذہب ہے جب تو کراہت صرف اس دوسرے پر ہے، اور اگر دونوں صالح تو جس کی نیت پہلے بندھ گئی اس پر الزام نہیں دوسرے پر ہے، اور معاً باندھیں تو دونوں پر۔ خلاصہ وہندیہ میں ہے: قوم جلوس فی المسجد الداخل وقوم فی المسجد الخارج اقام المؤذن فقام امام من اھل الخارج وأمھم وقام امام من اھل الداخل فأمھم من یسبق بالشروع فھو والمقتدون بہ لا کراھۃ فی حقھم۔ 2 کچھ لوگ مسجد داخل میں اور کچھ لوگ مسجد خارج میں بیٹھے تھے مؤذن نے تکبیر کہی، اہلِ خارج میں سے امام نے اور اہلِ داخل میں سے

بھی امام نے جماعت کرائی، ان میں سے جس نے پہلے شروع کی وہ امام اور اسی کے لوگ مقتدی ہوں گے اور ان کے حق میں کوئی کراہت نہیں۔ (ت)

1 ردالمحتار، باب الجمعۃ، مطبوعہ مصطفی البابی مصر، ۲/۲۰۲ 2 فتاوٰی ہندیہ، الباب الخامس فی الامامت فصل ثانی مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۸۴

Fatawa Razawiyya - Volume 8

It is stated in *Radd al-Muhtar*, Chapter on catching the obligatory prayer: "If a follower followed someone whose leadership is disliked (*makruh*), and then another person started leading in whose leadership there is no dislike, should he cut off [the first prayer] and follow the latter? [Allamah] Tahtawi deemed it apparent that if the first is a transgressor (*fasiq*), he should not cut it off, but if he belongs to a different school of thought (*madhab*) and there is doubt regarding his observance [of rules], then he should cut it off. I say: the opposite is more apparent because in the latter case, the dislike is *tanzīhī* (mildly disliked), as is the case with a blind man or a desert-dweller, unlike the transgressor, etc." (T)

If someone followed a person whose leadership was disliked, then an imam started a congregation in which there was no dislike, should that follower break his prayer and follow the other? Allamah Tahtawi said it is apparent that if the first is a transgressor, he should not break it, and if he holds a different school of thought and his observance of the rules of the other school is doubtful, then he should break it. I say its opposite is more apparent because in the latter, the dislike is *tanzīhī* as it is for a blind man or a nomad, unlike the case of a transgressor etc. (T)

And in Friday prayer (*Jumu'ah*), it is not just a matter of validity; at least one group's Jumu'ah will not be performed at all. One of the conditions for the validity of Jumu'ah is that the Muslim ruler or his appointee establishes it, meaning the Sultan himself or his authorized person delivers the sermon and leads the prayer. Where this situation is impossible, as in the lands of India which are still *Dar al-Islam*, general appointment (*Nasb-e-Aammah*) is permitted out of necessity, meaning the general Muslims appoint whoever they wish as imam.

In *Tanwir* and *Durr*: "The Sultan or his appointee for its establishment is a condition for its validity. They said: the ruler of the city leads it, then the police chief, then the judge, then someone appointed by the Chief Judge. Public appointment is not valid in the presence of those mentioned. However, in their absence, it is permissible due to necessity." (T) (Summarized)

It is stated in *Tanwir* and *Durr* that for the validity of Jumu'ah, it is necessary for the Sultan or someone appointed by the Sultan to establish it. The jurists have said that the governor of the city, then the police chief, then the judge, then the person appointed by the Chief Judge can establish it. In the presence of these people, the

public's appointment is not valid; however, when none of them are present, it will be permissible due to necessity. (T) (Summarized)

It is evident that for any mosque, two Jumu'ah imams are not appointed simultaneously to lead a single Jumu'ah prayer. Especially in our lands, it is even more apparent that public appointment is only valid out of necessity to establish the religious symbol, and this necessity is fulfilled by a single imam. Thus, having two imams in one mosque for one Jumu'ah prayer is invalid and rejected. Therefore, in the case asked, for the one among them who was not the designated imam of that mosque, his Jumu'ah and that of his followers was not performed; and if neither were designated, then no one's Jumu'ah was valid.

---

1. *Radd al-Muhtar*, Chapter on catching the obligatory prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/525
2. *Durr al-Mukhtar*, Chapter on Jumu'ah, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, India, 1/109-110

फ़तावा रज़विया - जिल्द अष्टम

रद अल-मुह्तार, फ़र्ज़ की अदायगी (इद्राक अल-फ़रीज़ा) के अध्याय में है: "यदि किसी मुक़्तदी (अनुयायी) ने ऐसे व्यक्ति का अनुसरण किया जिसका अनुसरण मकरूह (नापसंद) था, फिर एक ऐसे इमाम ने नमाज़ शुरू की जिसके अनुसरण में कोई नापसंद नहीं थी, तो क्या वह मुक़्तदी पहली नमाज़ छोड़कर दूसरे का अनुसरण करे? [अल्लामा] तहतावी ने इसे ज़ाहिर कहा कि यदि पहला फ़ासिक़ (पापी) है तो नमाज़ न तोड़े, और यदि वह दूसरे संप्रदाय (मज़हब) का है और उसके द्वारा नियमों के पालन में संदेह है, तो नमाज़ तोड़ दे। मैं कहता हूँ: इसका विपरीत अधिक स्पष्ट है क्योंकि बाद वाली स्थिति में नापसंदगी 'तन्ज़ीही' (हल्की) है, जैसा कि अंधे या ग्रामीण व्यक्ति के मामले में होता है, जबकि फ़ासिक़ के मामले में ऐसा नहीं है।"

अगर किसी ने ऐसे व्यक्ति की इक़्तदा की जिसकी इक़्तदा मकरूह थी फिर ऐसे इमाम ने जमाअत शुरू की जिसमें कराहत न थी तो क्या वो मुक़्तदी क़तअ (तोड़ना) करके दूसरे की इक़्तदा करे? तहतावी ने इसको ज़ाहिर कहा कि अव्वल अगर फ़ासिक़ है तो क़तअ न करे और अगर मुख़ालिफ़ मसलक रखता है और उससे दूसरे मसलक की रियायत मशकूक है तो फिर क़तअ करे, अक़ूलु (मैं कहता हूँ) इसका अक्स अज़हर है क्योंकि दूसरे में कराहत-ए-तन्ज़ीही है जैसा कि नाबीना या एराबी में है, बखिलाफ़ फ़ासिक़ के। (त)

और जुमा में तो जवाज़ ब-मानि सेहत ही नहीं, कम से कम एक फ़रीक़ का जुमा सिरे से अदा ही न होगा। सेहत-ए-जुमा की शरायत में से एक यह भी है कि बादशाह-ए-इस्लाम या उसका मामूर (नियुक्त) इक़ामत करे यानी सुल्तान खुद या उसका माज़ून (अनुमति प्राप्त) खुतबा पढ़े, इमामत करे और जहाँ यह सूरत मुतअज़्ज़र (कठिन) हो जैसे इन बिलाद-ए-हिंदुस्तान में कि हनूज़ दारुल इस्लाम है वहाँ ब-ज़रूरत नस्ब-ए-आम्मा की इजाज़त यानी आम मुस्लिमीन जिसे इमाम मुक़र्रर कर लें।

तनवीर और दुर्र में है: "इसकी (जुमा की) सेहत के लिए सुल्तान या इक़ामत के लिए उसका मामूर होना शर्त है। उन्होंने कहा: शहर का अमीर, फिर पुलिस प्रमुख, फिर क़ाज़ी, फिर वह व्यक्ति जिसे क़ाज़ी-उल-क़ुज़ात ने नियुक्त किया हो, जुमा क़ायम करता है। ज़िक्र किए गए लोगों की मौजूदगी में अवाम का तकर्रुर मोतबर नहीं है, अलबत्ता जब उनमें से कोई न हो तो ज़रूरत की वजह से जायज़ होगा।" (त)

तनवीर और दुर्र में है कि सेहत-ए-जुमा के लिए सुल्तान या उसकी इक़ामत के लिए सुल्तान का मामूर होना शर्त होना ज़रूरी है, फ़ुक़हा ने फ़रमाया है कि जुमा शहर का अमीर, फिर मुहासिब फिर क़ाज़ी फिर वो शख़्स क़ायम कर सकता है जिसको क़ाज़ी-उल-क़ुज़ात ने मुक़र्रर किया हो, इन लोगों की मौजूदगी में अवाम का तकर्रुर मोतबर नहीं अलबत्ता जब उनमें से कोई न हो तो ज़रूरत की वजह से जायज़ होगा। (त)

पर ज़ाहिर कि किसी मस्जिद के लिए दो अइम्मा-ए-जुमा अली वजहल इज्तिमा (एक साथ) कि दोनों इमामत-ए-जुमा-ए-वाहिदा करें मुक़र्रर नहीं होते, खुसूसन हमारे बिलाद में अम्र और भी अज़हर कि नस्ब-ए-आम्मा सिर्फ ब-ज़रूरत इक़ामत-ए-शआर मोतबर, और यह ज़रूरत इमाम-ए-वाहिद से मुर्तफ़े(पूरी) हो गई, तो एक जुमा में एक मस्जिद में दो इमाम का जमा बातिल व मुतदफ़े है। पस सूरत-ए-मुस्तफ़सरा में उन दोनों में जो उस मस्जिद का इमाम-ए-मुअय्यन (निर्धारित) जुमा न था उसका और उसके मुक़्तदियों का जुमा अदा न हुआ; और अगर दोनों न थे तो किसी का नहीं।

---

1. रद अल-मुह्तार, बाब इद्राक अल-फ़रीज़ा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/525
2. दुर्रे मुख़्तार, बाब अल-जुमुआ, मतबा मुजतबाई देहली भारत, 1/109-110

ردالمحتار باب ادراک الفریضہ میں ہے: لوکان مقتد تأبّن یکرہ الاقتداء بہ ثم شرع من لا کراھۃ فیہ ھل یقطع ویقتدی بہ استظھر ط ان الاول لوفاسقاً لا یقطع ولو مخالفاً وشك فی مراعاتہ یقطع اقول والاظھر العکس لان الثانی فی کراھۃ تنزیھیۃ کالاعمی والاعرابی بخلاف الفاسق ۱ الخ

اگر کسی نے ایسے شخص کی اقتداء کی جس کی اقتداء مکروہ تھی پھر ایسے امام نے جماعت شروع کی جس میں کراہت نہ تھی تو کیا وہ مقتدی قطع کرکے دوسرے کی اقتداء کرے ، ط نے اس کو ظاہر کہا کہ اول اگر فاسق ہے تو قطع نہ کرے اور اگر مخالف مسلک رکھتا ہے اور اس سے دوسرے مسلک کی رعایت مشکوک ہے تو پھر قطع کرے، اقول اس کا عکس اظہر ہے کیونکہ دوسرے میں کراہت تنزیہی ہے جیسا کہ نابینا یا اعرابی میں ہے ، بخلاف فاسق کے الخ۔ (ت)

اور جمعہ میں تو جواز بمعنی صحت ہی نہیں کم سے کم ایک فریق کا جمعہ سرے سے ادا ہی نہ ہوگا، صحت جمعہ کی شرائط سے ایک یہ بھی ہے کہ بادشاہ اسلام یا اس کا مامور اقامت کرے یعنی سلطان خود یا اس کا ماذون خطبہ پڑھے، امامت کرے اور جہاں یہ صورت متعذر ہو جیسے ان بلادِ ہندوستان میں کہ ہنوز دار الاسلام ہے وہاں بضرورت نصبِ عامہ کی اجازت یعنی عام مسلمین جسے امام مقرر کرلیں۔

فی التنویر والدر یشترط لصحتھا السلطان او ماموروہ باقامتھا وقالوا یقیمھا امیر البدر ثم الشرطی ثم القاضی ثم من ولاہ قاضی القضاۃ ونصب العامۃ غیر معتبر مع وجود من ذکر اما مع عدمھم فیجوز للضرورۃ ۲ اھ ملتقطاً

تنویر اور درمیں ہے کہ صحت جمعہ کے لئے سلطان یا اس کی اقامت کے لئے سلطان کا مامور ہونا شرط ہونا ضروری ہے، فقہا نے فرمایا ہے کہ جمعہ شہر کا امیر، پھر محاسب پھر قاضی پھر وہ شخص قائم کرسکتا ہے جس کو قاضی القضاۃ نے مقرر کیا ہو، ان لوگوں کی موجودگی میں عوام کا تقرر معتبر نہیں البتہ جب ان میں سے کوئی نہ ہو تو ضرورت کی وجہ سے جائز ہوگا اھ ملتقطاً (ت)

پر ظاہر کہ کسی مسجد کے لئے دو ائمہ جمعہ علی وجہ الاجتماع کہ دونوں امامتِ جمعہ واحدہ کریں مقرر نہیں ہوتے خصوصاً ہمارے بلاد میں امر اور بھی اظہر کہ نصبِ عامہ صرف بضرورت اقامت شعار معتبر ، اور یہ ضرورت امامِ واحد سے مرتفع ، تو ایک جمعہ میں ایک مسجد میں دو امام کا جمع باطل و متدفع ، پس صورت مستفسرہ میں اُن دونوں میں جو اُس مسجد کا امام معین جمعہ نہ تھا اُس کا اور اس کے مقتدیوں کا جمعہ ادا نہ ہوا، اور اگر دونوں نہ تھے تو کسی کا۔

---

1 ردالمحتار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۲۵ 2 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/۱۰۹-۱۱۰

Volume Eight, Fatawa Razawiyya

...did not happen, from here the answer to the final scenario is also clear, and even if, for the sake of a false premise, the scenario of validity were accepted—which is not at all worthy of acceptance—there is no doubt that it is severely contrary to the objective of Sharia and a vile, evil innovation. Regarding Friday (Jummah) prayer, one strong opinion is that it can only be held in one place in the entire city. Some allowed it in two places, and some set the condition of a dividing river between them. The fatwa (legal opinion) given is for the permissibility of multiple locations, but this multiplicity where Friday prayer is led ten times in the same mosque on the same day, like two by two reaching a hundred, is undoubtedly an innovation (bid'ah) in religion. And Allah Almighty knows best.

Issue 1303: From Kanpur, Mohalla Jarnail Ganj, Masjid Haji Farhat, sent by Sheikh Muhammad Sahool, 18 Muharram al-Haram 1316 AH. What do you noble scholars say (O noble scholars, what is your ruling? - Translator's note) on this issue: Is it permissible or not to read the sermon (Khutbah) for Friday or Eid in Arabic and then translate it into Urdu, or to deliver the sermon only in Urdu as a sermon/lecture, or to read some parts in Arabic and some in Urdu, or to recite some verses of poetry for encouragement or warning in Arabic or a non-Arabic language along with prose first? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: This question consists of several matters:

First: To translate the Friday or Eid sermon into Urdu after reading it. I say: and success is with Allah (I say with the guidance from Allah - Translator's note). The verdict from a jurisprudential (fiqhi) perspective is that if this action in the Eid prayers is done with the intention of being part of the sermon, it is undesirable and its abandonment is better. If it is done after the conclusion of the sermon, not with the intention of being part of the sermon but for the purpose of separate advice and exhortation, then it is permissible and good. As for the Friday prayer, it is absolutely disliked (Makruh) and not commendable. The evidence for this ruling and the reason for the distinction is that from the era of the blessed tongue of the Prophethood through the era of the noble Companions, the great Successors (Tabi'in), and the eminent Imams, across all centuries and strata, the sermons for Friday and Eid have always been mentioned and recorded in pure Arabic. Despite the fact that in the era of the Companions, by the grace of Allah Almighty, Islam spread to hundreds of non-Arab (Ajam) lands, congregational mosques were built, and pulpits were erected, and

despite the verified need, it was never recorded that a sermon was delivered in any non-Arabic language or that two languages were mixed. Therefore, mixing another language in the sermon is contrary to and a change from the inherited Sunnah, and thus it is disliked (Makruh).

As we explained in our fatwas and mentioned the difference between refraining (kaff) and leaving (tark), so stay firm and do not be confused.	**As we have explained in our fatwas and clearly stated the difference between kaff and tark there, stay firm on it and do not become a victim of confusion (Translator's note).**

However, in the Eid prayers, the sermon is after the prayer, so it cannot be a fixed and occupied time; the intention to conclude will have its effect. After finishing the sermon, when all matters related to the Eid prayer have ended, reminding and explaining to Muslims is not forbidden, but rather recommended (Mandub), and it is proven from the Leader of the World himself, may Allah's peace and blessings be upon him, according to Bukhari, Muslim, Darimi, Abu Dawood, Nasa'i, and Ibn Majah, from Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with him)...

जिल्द अष्टम, फतावा रज़विया

...नहीं हुआ, यहीं से अंतिम स्थिति का उत्तर भी स्पष्ट है, और यदि असत्य आधार पर वैधता की स्थिति स्वीकार भी कर ली जाए—जो कि कदापि स्वीकार करने योग्य नहीं है—तो इसमें कोई संदेह नहीं कि यह शरिया के उद्देश्य के घोर विपरीत और एक घृणित, बुरी बिदअत (नवाचार) है। जुमे (शुक्रवार) की नमाज़ के बारे में एक सशक्त मत यह है कि यह पूरे शहर में केवल एक ही स्थान पर हो सकती है। कुछ ने दो स्थानों पर अनुमति दी और कुछ ने बीच में विभाजित करने वाली नदी की शर्त रखी। बहुलता की वैधता पर फतवा दिया गया है, लेकिन यह बहुलता कि एक ही दिन एक ही मस्जिद में दस बार जुमे की इमामत हो, जैसे दो-दो करके सौ (100) बार हो जाए, यह निस्संदेह धर्म में बिदअत है। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला 1303: कानपुर, मोहल्ला जरनैल गंज, मस्जिद हाजी फरहत से, प्रेषक शेख मोहम्मद सहूल, 18 मुहर्रम अल-हराम 1316 हिजरी। हे सम्मानित विद्वानों! आपका इस मसले में क्या कहना है: जुमे या ईदैन के खुतबे (धर्मोपदेश) को अरबी में पढ़कर उर्दू अनुवाद करना, या केवल उर्दू में उपदेश के तौर पर खुतबा देना, या कुछ हिस्सा अरबी और कुछ उर्दू में पढ़ना, या उत्साह बढ़ाने या डराने के लिए अरबी या गैर-अरबी भाषा में कुछ शेर गद्य के साथ पहले पढ़ना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: यह प्रश्न कई मामलों पर आधारित है:

प्रथम: जुमे या ईदैन का खुतबा पढ़कर उसका उर्दू अनुवाद करना। मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफीक से (मैं अल्लाह की तौफीक से कहता हूँ - अनुवादक नोट)। फिक़्ही (न्यायशास्त्र) दृष्टि से फैसला यह है कि ईदैन में यदि यह कार्य खुतबे की नियत से हो तो नापसंद है और इसे छोड़ना बेहतर है। यदि खुतबा समाप्त होने के बाद, खुतबे की नियत से नहीं बल्कि अलग से उपदेश और नसीहत के इरादे से हो तो जायज़ और अच्छा है। जुमे की नमाज़ में यह पूर्णतः मकरूह (नापसंद) और अवांछनीय है। हुक्म का प्रमाण और अंतर का कारण यह है कि रिसालत की बरकत वाली ज़बान के समय से लेकर सहाबा-ए-किराम, ताबेईन और बड़े इमामों के युग तक, सभी सदियों और स्तरों में जुमे और ईदैन के खुतबे हमेशा शुद्ध अरबी भाषा में वर्णित और प्रचलित रहे हैं। बावजूद इसके कि सहाबा के दौर में, अल्लाह तआला के फज़्ल से इस्लाम सैंकड़ों गैर-अरब (अजम) देशों में फैल गया, जामा मस्जिदें बनीं, मिम्बर स्थापित हुए, ज़रूरत की पुष्टि के बावजूद कभी किसी गैर-अरबी भाषा में

खुतबा देना या दो भाषाओं को मिलाना प्रमाणित नहीं हुआ। अतः खुतबे में दूसरी भाषा का मिश्रण विरासत में मिली सुन्नत के विरुद्ध और उसे बदलने वाला है, इसलिए वह मकरूह है।

जैसा कि हमने अपने फतावा में स्पष्ट किया और वहाँ 'कफ' (रुकना) और 'तर्क (छोड़ना) के बीच का अंतर बताया है, अतः उस पर अडिग रहें और भ्रमित न हों।	**जैसा कि हमने अपने फतावा में बयान किया और वहाँ हमने कफ और तर्क के बीच का अंतर स्पष्ट कर दिया है, इस पर अडिग रहें और भ्रम का शिकार न हों (अनुवादक नोट)।**

परंतु ईदैन में खुतबा नमाज़ के बाद होता है, इसलिए वह समय प्रतिबंधित नहीं हो सकता; नियत खत्म करने का अपना असर होगा। खुतबा समाप्त होने के बाद, जब ईद की नमाज़ से संबंधित सभी मामले खत्म हो जाते हैं, तो मुसलमानों को याद दिलाना और समझाना वर्जित नहीं बल्कि मंदूब (वांछनीय) है, और स्वयं सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से प्रमाणित है, बुखारी, मुस्लिम, दारीमी, अबू दाऊद, नसाई और इब्ने माजा, हज़रत अब्दुल्ला बिन अब्बास रज़ियल्लाहु तआला...

पेज 322/673

نہ ہوا، یہیں سے صورت اخیرہ کا جواب بھی ظاہر، اور اگر بفرضِ باطل صورتِ صحتِ تسلیم بھی ہو جو ہر گز لائقِ تسلیم نہیں تو اس کے سخت مخالف مقصودِ شرع و بدعتِ شنیعہ سیئہ ہونے میں کلام نہیں، جمعہ میں ایک مذہبِ قوی یہ ہے کہ شہر بھر میں ایک ہی جگہ ہو سکتا ہے اور بعض نے دو جگہ اجازت دی اور بعض نے بیچ میں نہرِ فاصل ہونے کی شرط کی، مفتی بہ جوازِ تعدد ہے مگر یہ تعدد کہ ایک ہی دن ہی مسجد میں دس بار امامتِ جمعہ ہو کہ جیسے دو دو ایسی ہی سو ۱۰۰، یہ بلاشبہ ابتداع فی الدین ہے واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۳۰۳: از کانپور محلہ جرنیل گنج مسجد حاجی فرحت مرسلہ شیخ محمد سہول ۱۸ محرم الحرام ۱۳۱۶ھ ما قولکم ایھا العلماء الکرام (اے علمائے کرام ! تمھارا قول کیا ہے۔ت) اس مسئلہ میں کہ خطبہ یا عیدین کو عربی میں پڑھ کر اُردو ترجمہ کرنا یا صرف اردو میں بطورِ وعظ کے خطبہ ادا کرنا یا بعض حصہ عربی و بعض اردو میں پڑھنا یا چند اشعار ترغیباً و ترہیباً عربی یا غیر عربی میں پڑھنا مع النثر اولاً جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: یہ سوال چند امور پر مشتمل :

اوّل: جمعہ یا عیدین کا خطبہ پڑھ کر اُردو ترجمہ کرنا۔ اقول: وباللہ التوفیق (میں اللہ کی توفیق سے کہتا ہوں۔ت) قضیہ نظرِ فقہی یہ ہے کہ یہ امر عیدین میں بہ نیت خطبہ ہو تو ناپسند اور اس کا ترک احسن اور بعدِ ختمِ خطبہ، نہ بنیتِ خطبہ بلکہ قصدِ پند و نصیحت جداگانہ ہو تو جائز و حسن اور جمعہ میں مطلقاً مکروہ و نا مستحسن، دلیلِ حکم و وجہِ فرق یہ کہ زبانِ برکت نشانِ رسالت سے عہدِ صحابہ کرام و تابعین عظام و ائمہِ اعلام تک تمام قرون و طبقات میں جمعہ و عیدین کے خطبے

ہمیشہ خالص زبانِ عربی مذکور و ماثور اور باآنکہ زمانہ صحابہ میں بحمد اللہ تعالٰی اسلام صدہا بلادِ عجم میں شائع ہوا، جوامع بنیں، منابر نصب ہوئے، باوصف تحقیقِ حاجت کبھی کسی عجمی زبان میں خطبہ فرمانا یا دونوں زبانیں ملانا مروی نہ ہوا تو خطبے میں دوسری زبان کا خلط سنتِ متوارثہ کا مخالف و مغیر ہے اور وہ مکروہ،

كما بينا في فتاوانا وذكرنا ثم الفرق بين الكف والترك فتثبت ولا تتخبط

جیسا کہ ہم نے اپنے فتاوی میں بیان کیا اور وہاں ہم نے کف اور ترک کے درمیان فرق واضح کردیا ہے اس پر ثابت رہو اور انتشار کا شکار نہ ہوں۔(ت)

مگر عیدین میں خطبہ بعدِ نماز ہے تو وہ مستوعب وقت نہیں ہو سکتا نیت قطع اپنا عمل کرے گی اور بعدِ فراغِ خطبہ کہ تمام امورِ متعلقہ نمازِ عید منتہی ہوگئے، مسلمان کو تذکیر و تفہیم ممنوع نہیں بلکہ مندوب، اور خود سیدِ عالم صلی اللہ علیہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثابت ہے، بخاری و مسلم و دارمی و ابوداؤد و نسائی و ابنِ ماجہ حضرت عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی

Fatawa Razawiya Volume 8

Narrated from: [Arabic]: I went out with the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) on the day of Eid al-Fitr or Eid al-Adha. He led the prayer, then delivered the sermon, then went to the women, exhorted them, reminded them, and commanded them to give charity. (1) [Urdu]: I went out with the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) on the day of Eid al-Fitr or Eid al-Adha. He led the prayer, then delivered the sermon. After that, he went to the gathering of women, gave them advice and exhortation, and ordered them to give charity. (T)

In the Sahihayn, it is narrated from Hadrat Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them): [Arabic]: Then he addressed the people. When the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) finished, he descended and went to the women and reminded them. (2) [Urdu]: Then after that, he gave a sermon. When the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) finished, he came down from the pulpit, then came to the gathering of women and gave them advice and instruction. (T)

Imam Nawawi states in Minhaj: "He only went to them after finishing the Eid sermon." (3) (He went to the gathering of women after finishing the Eid sermon. T) This is unlike Friday (Jumu'ah) prayer, where the sermon is before the prayer, and its time is from the start of the remembrance until the beginning of the Takbir. Therefore, an unrelated gap is impermissible, to the extent that if a long gap occurs, the sermon becomes nullified and its repetition becomes necessary, otherwise the prayer would be invalid. Even a related gap is not preferred, and repeating the sermon is better.

[Arabic]: In Durr al-Mukhtar: If one delivers the sermon in a state of ritual impurity (Janaba), then performs Ghusl and leads the prayer, it is valid. (4) (Meaning, the Ghusl will not be considered a gap because it is among the actions related to prayer, but repeating the sermon is better, just as if voluntary prayers were performed after it, as in al-Bahr. (5) Sh). And if there is a gap with an unrelated action, such as returning home and eating breakfast... [Urdu]: In Durr al-Mukhtar, it states: If someone delivers the sermon in a state of ritual impurity, then performs Ghusl and leads the prayer, it is valid. (Meaning, the Ghusl (between the sermon and prayer) will not be counted as a gap because it is also among the actions of the prayer. However, repeating the

sermon is better, just as if voluntary prayers were offered after the sermon, as in al-Bahr...

1. Sahih al-Bukhari, Kitab al-Eidain, Chapter on children going out to the prayer ground, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/133.
2. Sahih al-Bukhari, Kitab al-Eidain, Chapter on walking and riding etc., published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/131.
3. Sharh Muslim by Nawawi with Muslim, Kitab Salat al-Eidain, Chapter on walking and riding etc., published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 289/1.
4. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, published by Mujtabai Press, Delhi, India, 1/111.
5. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/200.

फ़तावा रज़विया खंड 8

वर्णनकर्ता से: [अरबी]: मैं नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ ईद-उल-फ़ितर या ईद-उल-अज़हा के दिन निकला। आपने नमाज़ पढ़ाई, फिर खुत्बा दिया, फिर महिलाओं के पास आए, उन्हें उपदेश दिया, उन्हें याद दिलाया और उन्हें दान देने का आदेश दिया। (1) [उर्दू]: मैं हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ ईद-उल-फ़ितर या ईद-उल-अज़हा के दिन निकला। आपने नमाज़ पढ़ाई, फिर खुत्बा दिया। उसके बाद आप महिलाओं की सभा में तशरीफ़ ले गए, उन्हें नसीहत और उपदेश दिया और सदका (दान) करने का हुक्म दिया। (त)

सहीहैन में हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्ला (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से वर्णित है: [अरबी]: फिर आपने लोगों को खुत्बा दिया। जब नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़ारिग हुए, तो आप नीचे आए और महिलाओं के पास गए और उन्हें नसीहत दी। (2) [उर्दू]: फिर उसके बाद आपने खुत्बा दिया। जब नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़ारिग हुए, तो आप मिम्बर से नीचे तशरीफ़ लाए, उसके बाद महिलाओं की सभा में तशरीफ़ लाकर उन्हें नसीहत और तालीम दी। (त)

इमाम नववी 'मिन्हाज' में फ़रमाते हैं: "वह महिलाओं के पास केवल ईद के खुत्बे से फ़ारिग होने के बाद ही गए।" (3) (आप महिलाओं की सभा में ईद के खुत्बे से फ़ारिग होने के बाद तशरीफ़ ले गए। त) जुमे के विपरीत, जिसमें खुत्बा नमाज़ से पहले होता है और ज़िक्र की शुरुआत से तकबीर की शुरुआत तक इसका समय होता है। इसलिए एक 'अजनबी' (असंबंधित) अंतराल वर्जित है, यहाँ तक कि अगर लंबा अंतराल हो जाए तो खुत्बा निष्प्रभावी हो जाएगा और उसे दोहराना ज़रूरी होगा, वरना नमाज़ बातिल (अमान्य) हो जाएगी। और गैर-अजनबी अंतराल भी पसंद नहीं किया जाता, और खुत्बा दोहराना बेहतर है।

[अरबी]: दुर-ए-मुख्तार में है: अगर किसी ने जनाबत (नापाकी) की हालत में खुत्बा दिया, फिर गुसल किया और नमाज़ पढ़ाई, तो यह जायज़ है। (4) (यानी गुसल को खुत्बे और नमाज़ के बीच अंतराल नहीं माना जाएगा क्योंकि यह भी नमाज़ के कार्यों में से है, लेकिन खुत्बा दोहराना बेहतर है, जैसा कि अगर खुत्बे के बाद नफ़्ल नमाज़ें पढ़ी जाएँ जैसा कि 'बहर' में है। (5) श)। और अगर किसी बाहरी काम से अंतराल हो जाए, जैसे कि घर वापस जाकर नाश्ता करना... [उर्दू]: दुर-ए-मुख्तार में है: अगर किसी ने जनाबत की हालत में खुत्बा दिया, फिर गुसल किया और नमाज़ पढ़ाई, तो यह जायज़ है (यानी गुसल को (खुत्बे और नमाज़ के बीच) अंतराल नहीं माना जाएगा क्योंकि वह भी नमाज़ के कार्यों

में से है, लेकिन खुत्बा दोहराना बेहतर है जैसा कि अगर खुत्बे के बाद नफ़्ल नमाज़ें पढ़ी जाएँ जैसा कि बहर...

1. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, अध्याय: बच्चों का ईदगाह जाना, पुरानी कुतुब खाना, कराची, 1/133.
2. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, अध्याय: पैदल चलना और सवारी करना आदि, पुरानी कुतुब खाना, कराची, 1/131.
3. शरह मुस्लिम लिन-नववी, किताब सलातुल ईदैन, पुरानी कुतुब खाना, कराची, 289/1.
4. दुर-ए-मुख्तार, अध्याय: जुमा, मुस्तफ़ाई प्रेस, दिल्ली, भारत, 1/111.
5. रद-उल-मुह्तार, अध्याय: जुमा, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 2/200.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

سے راوی: قَالَ خَرَجْتُ مَعَ النَّبِیِّ صَلَّی اللّٰہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ یَوْمَ فِطْرٍ اَوْ اَضْحٰی فَصَلّٰی ثُمَّ خَطَبَ ثُمَّ اَتَی النِّسَاءَ فَوَعَظَھُنَّ وَذَکَّرَھُنَّ وَاَمَرَھُنَّ بِالصَّدَقَۃِ 1 میں حضور اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے ساتھ عید الفطر یا عید الاضحی کے دن نکلا آپ نے نماز پڑھائی پھر خطبہ ارشاد فرمایا اس کے بعد آپ خواتین کے اجتماع میں تشریف لے گئے انھیں وعظ و نصیحت فرمائی اور صدقہ کرنے کا حکم دیا۔ (ت)

صحیحین میں حضرت جابر بن عبد اللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے: ثُمَّ خَطَبَ النَّاسَ بَعْدُ فَلَمَّا فَرَغَ نَبِیُّ اللّٰہِ صَلَّی اللّٰہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ نَزَلَ فَاَتَی النِّسَاءَ فَذَکَّرَھُنَّ 2 پھر اس کے بعد آپ نے خطبہ دیا، جب نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فارغ ہوئے تو آپ منبر سے نیچے تشریف لائے، اس کے بعد خواتین کے اجتماع میں تشریف لاکر انھیں نصیحت و تلقین فرمائی۔ (ت)

امام نووی منہاج میں فرماتے ہیں : اِنَّمَا نَزَلَ اِلَیْھِنَّ بَعْدَ فَرَاغِ خُطْبَۃِ الْعِیْدِ 3 (آپ خواتین کے اجتماع میں خطبہ عید سے فراغت کے بعد تشریف لے گئے۔ت) بخلاف جمعہ کہ اس میں خطبہ قبل نماز ہے اور شروع تذکیر سے اغاز تکبیر تک اسی کا وقت ہے ولہذا فصل بہ اجنبی ناجائز، یہاں تک کہ اگر فصل طویل حاصل ہو خطبہ زائل اور اعادہ لازم، ورنہ نماز باطل ہو، اور غیر اجنبی سے بھی فصل پسندیدہ نہیں اور اعادہ خطبہ اولٰی۔

فِی الدُّرِّ الْمُخْتَارِ لَوْ خَطَبَ جُنُبًا ثُمَّ اغْتَسَلَ وَصَلّٰی جَازَ 4 (ای ولا یعد الغسل فاصلا لانہ من اعمال الصلوۃ ولکن الاولی اعادتھا کما لو تطوع بعد ھا کما فی البحر، 5 ش) ولو فصل باجنبی فان طال بان رجع لبیتہ فتغدی درمختار میں ہے اگر کسی نے جنبی حالت میں خطبہ دیا پھر غسل کیا اور نماز

پڑھائی تو جائز ہے (یعنی غسل کو (خطبہ اور نماز کے درمیان) فاصلہ نہ شمار کیا جائے گا کیونکہ وہ بھی نماز کے اعمال میں سے ہے لیکن اعادہ خطبہ بہتر ہے جیسا کہ اگر خطبہ کے بعد نوافل ادا کئے، جیسا کہ بحر

1 صحیح البخاری کتاب العیدین باب خروج الصبیان الی المصلی مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۳۳ 2 صحیح البخاری کتاب العیدین باب المشی والرکوب الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۳۱ 3 شرح مسلم للنووی مع مسلم کتاب صلٰوۃ العیدین باب المشی والرکوب الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲۸۹/۱ 4 درمختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/۱۱۱ 5 ردالمحتار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۲/۲۰۰

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Table/Box 1] (Left - Arabic): Or he performed intercourse and took a bath, he should restart. "Khulasah" i.e., necessarily due to the invalidity of the Khutbah. "Siraj" 1 etc. more from "Shami". (Right - Urdu): (In the text 'sh') And if a gap of an unrelated act intervened, then if it was long, for example, he went home and ate food or had intercourse and then returned after bathing, he must start the sermon anew. "Khulasah", meaning it is now mandatory to give the sermon again because the first one has ended. "Siraj" etc. This addition is from "Shami". (T)

And there is no doubt that the translation of the read sermon or other sermons and advices that occur at that time will consist of the purposes and themes of the sermon. __ So at the time of the sermon, performing 'tazkir' (reminder/admonition) with the intention of 'tazkir' will definitely include it in the sermon, and the intention of interruption (qata') will be meaningless as the actual action and occurrence will explicitly contradict it.

[Table/Box 2] (Left - Arabic): Like someone who intends not to eat while he is eating, or not to drink while he is drinking. In short, the intention of 'tazkir' at this time is exactly the same as the intention of the Khutbah, because the Khutbah is nothing but 'tazkir'. Therefore, they have explicitly stated that whenever the preacher speaks in a way that commands good or forbids evil, it is considered part of the Khutbah, even if he addresses a specific person for a particular need, as will be seen shortly. (Right - Urdu): Just like if a person intended that he would not eat or drink while he is actually eating or drinking. In short, at this point, the intention of 'tazkir' is exactly the intention of the sermon because the sermon is just 'tazkir'. That is why the jurists have clarified that if the person giving the sermon does something in which there is a command for good and prohibition from evil, it will be called the sermon itself, even if he is addressing someone due to some specific need, as is coming soon. (T)

And if, for the sake of argument, interruption is accepted, then a gap between the sermon and prayer will be necessary. Even if it is from a non-foreign act, it would be against the continuous Sunnah and continuity. In any case, it is not free from dislike (karahat). This is what has appeared to me, and with Allah is the guidance.

Second: Only Urdu sermon - its dislike is clearer and more evident from the above explanation, especially when it is in its pure form. Now, its being disliked and abominable is explicitly stated because abandoning the recitation of the Great Quran in the sermon is bad.

[Table/Box 3] (Left - Arabic): In al-Hindiyya, in the mention of the sunan (traditions) of the Khutbah, the eleventh is the recitation of the Quran, and the one who leaves it is an evildoer. Likewise in al-Bahr al-Ra'iq. And the amount of what should be read in it from the Quran is three short verses or one long verse, likewise. (Right - Urdu): In Fatawa Hindiyya, in the description of the Sunnahs of the sermon, it is stated that the eleventh Sunnah is to read the Quran in the sermon and abandoning it is a sin. Similarly, it is in Bahr-ur-Raiq and its quantity is three small verses or one large verse.

---

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, published by Mujtabai, Delhi, India 1/111.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[सारणी/बॉक्स 1] (बाएं- अरबी): या उसने संभोग किया और स्नान किया, तो उसे फिर से शुरू करना चाहिए। 'खुलासा' यानी अनिवार्य रूप से खुतबा के अमान्य होने के कारण। 'सिराज' 1 आदि। 'शामी' से अधिक। (दाएं- उर्दू): (पाठ में 'श' है) और यदि किसी बाहरी कार्य का अंतराल हो गया, तो यदि वह लंबा था, उदाहरण के लिए वह घर आया और भोजन किया या संभोग किया और स्नान करके वापस लौटा, तो उसे नए सिरे से खुतबा देना होगा। 'खुलासा', यानी अब खुतबा दोबारा देना अनिवार्य है क्योंकि पहला खत्म हो चुका है। 'सिराज' आदि। यह वृद्धि 'शामी' से है। (त)

और इसमें कोई संदेह नहीं है कि पढ़े गए खुतबे का अनुवाद या अन्य उपदेश और नसीहतें जो उस समय घटित होंगी, वे खुतबे के उद्देश्यों और विषयों पर आधारित होंगी। __ तो खुतबे के समय 'तज़कीर' (नसीहत) की नियत से 'तज़कीर' करना निश्चित रूप से उसे खुतबे में शामिल करेगा और 'क़ता' (बीच में रोकने) की नियत बेमानी रहेगी क्योंकि वास्तविक कार्य और घटना स्पष्ट रूप से इसका खंडन करेगी।

[सारणी/बॉक्स 2] (बाएं- अरबी): जैसे किसी व्यक्ति ने नियत की कि वह नहीं खाएगा जबकि वह खा रहा है, या नहीं पिएगा जबकि वह पी रहा है। संक्षेप में, इस समय 'तज़कीर' की नियत खुतबे की नियत के बिल्कुल समान है, क्योंकि खुतबा 'तज़कीर' के अलावा कुछ नहीं है। इसलिए, उन्होंने स्पष्ट किया है कि जब भी खतीब (वक्ता) ऐसी बात कहे जिसमें नेकी का हुक्म हो या बुराई से मनाही हो, तो उसे खुतबे का हिस्सा माना जाता है, भले ही वह किसी विशिष्ट आवश्यकता के लिए किसी विशेष व्यक्ति को संबोधित कर रहा हो, जैसा कि शीघ्र ही देखा जाएगा। (दाएं- उर्दू): जैसे किसी व्यक्ति ने नियत की कि वह नहीं खाएगा या नहीं पिएगा जबकि वह वास्तव में खा रहा है या पी रहा है। संक्षेप में, इस अवसर पर 'तज़कीर' की नियत बिल्कुल खुतबे की नियत है क्योंकि खुतबा 'तज़कीर' ही होता है। इसीलिए फ़ुक़हा ने स्पष्ट किया है कि यदि खुतबा देने वाला कोई ऐसा कार्य करे जिसमें नेकी का हुक्म और बुराई से मनाही हो, तो उसे खुतबा ही कहा जाएगा, भले ही वह किसी विशिष्ट आवश्यकता के कारण किसी से संबोधित हो रहा हो, जैसा कि शीघ्र ही आने वाला है। (त)

और यदि मान लीजिए कि खुतबे में विच्छेद (कट) स्वीकार कर लिया जाए, तो खुतबे और नमाज़ के बीच अंतराल अनिवार्य हो जाएगा। भले ही वह किसी बाहरी कार्य से न हो, फिर भी यह निरंतर सुन्नत

और जुड़ाव के खिलाफ होगा। किसी भी स्थिति में, यह कराहत (नापसंदगी) से खाली नहीं है। यह वही है जो मुझे स्पष्ट हुआ है, और तौफ़ीक़ अल्लाह की ओर से है।

दूसरा: केवल उर्दू खुतबा - इसकी कराहत उपर्युक्त विवरण से अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल है, विशेष रूप से जब यह केवल अपनी शुद्धता पर हो। अब इसका मकरूह और बुरा होना स्पष्ट रूप से लिखित है क्योंकि खुतबे में कुरान-ए-अज़ीम की तिलावत को छोड़ना बुरा है।

[सारणी/बॉक्स 3] (बाएं- अरबी): फ़तावा हिंदिया में, खुतबा की सुन्नतों के वर्णन में, ग्यारहवीं सुन्नत कुरान का पाठ है, और जो इसे छोड़ता है वह बुरा काम करने वाला है। इसी तरह बहर-अल-रायिक़ में भी है। और इसमें कुरान से जितना पढ़ा जाना चाहिए, वह तीन छोटी आयतें या एक लंबी आयत के बराबर है। (दाएं- उर्दू): फ़तावा हिंदिया में खुतबा की सुन्नतों के बयान में है कि ग्यारहवीं सुन्नत खुतबे में कुरान पढ़ना है और उसे छोड़ना गुनाह है। इसी तरह बहर-उर-रायिक़ में है और इसकी संख्या तीन छोटी आयतें या एक बड़ी आयत है।

---

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमा, मुजतबाई दिल्ली भारत द्वारा प्रकाशित, 1/111.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[ٹیبل/باکس 1] (بائیں - عربی): او جامع واغتسل استقبل، خلاصة ای لزوما لبطلان الخطبة سراج 1 اھ مزید امن الشامی (دائیں - اردو): میں ہے ش) اور اگر کسی اجنبی کا فاصلہ ہو گیا پس اگر وہ طویل تھا مثلاً گھر آیا اور کھانا کھایا یا جماع کیا اور غسل کر کے واپس لوٹا تو نئے سرے سے خطبہ دے خلاصہ ، یعنی اب خطبہ دوبارہ دینا لازمی ہے کیونکہ پہلا ختم ہو چکا ہے سراج اھ یہ اضافہ شامی سے ہے۔ (ت)

اور شک نہیں کہ خطبہ خواندہ کا ترجمہ یا اور مواعظ و نصائح جو اس وقت میں واقع ہوں گے انھیں مقاصد و مضامین خطبہ پر مشتمل ہوں گے __ تو وقت خطبہ میں ایقاع تذکیر بہ نیت تذکیر قطعاً اسے داخل خطبہ کرے گا اور نیت قطع بے معنی رہے گی کہ عمل وواقع صراحتہً اس کا مکذب ہوگا

[ٹیبل/باکس 2] (بائیں - عربی): کمن نوی ان لا یاکل وھو اکل اولایشرب وھو شارب بالجملة فنیة التذکیر فی ھذا الوقت عین نیة الخطبة لیست الخطبة الا ھذا ولذا صرحوا ان الخطیب کلما تکلم بکلام یأمر فیه بمعروف او ینھی عن منکر فانه یعد من الخطبة وان خاطب به رجلا معینا لحاجة مخصوصة کما سیأتی۔ (دائیں - اردو): جیسے کہ کسی شخص نے نیت کی کہ وہ نہیں کھائے گا یا نہیں پیئے گا اور درآنحالیکہ وہ کھارہا ہے یا پی رہا ہے، الغرض اس موقعہ پر تذکیر کی نیت بعینہ نیت خطبہ ہے کیونکہ خطبہ تذکیر ہی ہوتا ہے اسی لئے فقہاء نے تصریح کی ہے کہ خطبہ دینے والا کوئی ایسا کام کرے جس میں نیکی کا حکم اور برائی سے ممانعت ہو تو اسے خطبہ ہی کہا جائے گا اگرچہ وہ کسی مخصوص حاجت کی وجہ سے کسی سے مخاطب ہو رہا ہو جیسا کہ عنقریب آ رہا ہے۔ (ت)

اور اگر بالفرض قطع ہی مانیئے تو خطبہ و نماز میں فصل لازم آئے گا اگرچہ غیر اجنبی سے تو سنتِ مستمرہ و وصل کے خلاف ہوگا بہر حال خالی از کراہت نہیں ھذا ما ظھر لي وبـالله التوفیق

دوم : صرف اردو خطبہ اس کی کراہت بیان بالا سے اظہر وانہر خصوصاً جبکہ یہ صرف اپنی صرافتِ محضہ پر ہو کہ اب تو اس کا مکروہ و شنیع ہونا صراحتہً منصوص کہ خطبہ میں تلاوتِ قرآن عظیم کا ترک بُرا ہے۔

[ٹیبل/باکس 3] (بائیں - عربی): في الهندية في ذكر سنن الخطبة الحاوى عشر قرائة القرآن وتاركها مسيئى هكذا في البحر الرائق ومقدار ما يقرأ فيها من القرآن ثلث اى ات قصار اوانة طويلة كذا (دائیں - اردو): فتاویٰ ہندیہ میں سنن خطبہ کے بیان میں ہے کہ گیارہویں سنت خطبہ میں قرآن پڑھنا ہے اور اس کا ترک گناہ ہے، اسی طرح بحر الرائق میں ہے اور اس کی تعداد تین چھوٹی آیات یا ایک بڑی آیت ہے

---

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۱۱

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Box 1] In Al-Jawharah al-Nayyirah (1). As stated in Al-Jawharah al-Nayyirah. (T)

Third: The case of some Arabic and some Urdu has also been clarified from the previous explanation. However, if the Imam sees a forbidden act while delivering the sermon, it is mandatory to forbid it. When the audience understands Arabic or the Imam himself does not know how to speak in Arabic, he will inevitably resort to a language within his capacity and understanding. This speech within the sermon will be part of the sermon itself, as 'enjoining good' is also one of its virtuous purposes.

[Box 2] In Al-Durr al-Mukhtar: Speaking during it is disliked except for enjoining good, because it is part of it (2). In Al-Durr al-Mukhtar, it is stated that conversation during the sermon is disliked; however, ordering good is permissible because it is part of the sermon. (T)

Thus, having a portion of the sermon in Urdu is certainly not disliked; rather, it could even be obligatory if the removal of evil is restricted to it.

Fourth: Relying solely on poetry is certainly disliked, offensive, contrary to the Sunnah, and leads to the abandonment of (Quranic) recitation. If a long verse or three short verses are put into poetic form, then firstly, it is mostly impossible to do so without changing the structure of the Quran, and after changing the structure, it will no longer remain a recitation, even if it is a quotation. Even if it were possible, reciting the Holy Quran in verse form to fulfill the Sunnah of recitation is more severe and hideous than abandoning the recitation itself. The Magnificent Quran is pure and exalted above poetry and far above being rendered into verse. "And We have not taught him [the Prophet] poetry, nor is it befitting for him" (3). So, intending recitation in this manner is a blatant lack of respect.

[Box 3] And by this, it is distinguished from the quotation in which the recitation of the Quran is not intended, for that is widespread and permissible according to the most correct opinion. This distinguishes it from the quotation whose purpose is not the recitation of the Quran, because according to the most correct view, this is famous and prevalent. (T)

Furthermore, limiting oneself to verse is an unnecessary turning away from the transmitted words and inherited method, so it should be avoided.

Fifth: Including some praiseworthy and appropriate verses, even if they are in a foreign language, falls under the third point mentioned above. Otherwise, there is no harm, especially when done occasionally to revive a practice, as it is narrated that the Commander of the Faithful, Farooq al-Azam (may Allah be pleased with him), recited some verses in a sermon.

[Box 4] As narrated by al-Askari in Kitab al-Mawa'iz, and we have discussed his narration in our Fatawa. And Allah, the Exalted, knows best. As al-Askari has mentioned in Kitab al-Mawa'iz, and we have also discussed it in our Fatawa. And Allah, the Exalted, knows best. (T)

Footnotes: 1. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16 regarding Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/147. 2. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Friday, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/111. 3. The Quran, 36/69.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द आठवीं

[बॉक्स 1] फी अल-जौहरा अल-नय्यिरा (1)। जैसा कि अल-जौहरा अल-नय्यिरा में है। (त)

तीसरा: अरबी और उर्दू के मिश्रण का मामला भी पिछली व्याख्या से स्पष्ट हो चुका है। लेकिन यदि इमाम खुतबा (प्रवचन) के दौरान कोई बुरा कार्य देखे, तो उसे रोकना ही चाहिए। और यदि श्रोता अरबी समझते हैं या इमाम स्वयं अरबी में बात करना नहीं जानते, तो अनिवार्य रूप से वे ऐसी भाषा का सहारा लेंगे जो उनके वश में हो और समझी जाती हो। खुतबे में यह भाषण खुतबा ही होगा क्योंकि 'भलाई का आदेश देना' भी इसके नेक उद्देश्यों में से है।

[बॉक्स 2] फी अल-दुर्र अल-मुख्तार: इसमें बातचीत करना मकरूह है सिवाय भलाई का हुक्म देने के, क्योंकि यह उसी का हिस्सा है (2)। दुर्र मुख्तार में है कि खुतबे में बातचीत करना मकरूह है, अलबत्ता नेकी का हुक्म देना जायज़ है क्योंकि यह खुतबे का हिस्सा है। (त)

इस प्रकार खुतबे का एक हिस्सा उर्दू में होना निश्चित रूप से मकरूह नहीं है, बल्कि वाजिब (अनिवार्य) तक हो सकता है, यदि बुराई का अंत केवल उसी पर निर्भर हो।

चौथा: केवल कविताओं पर निर्भर रहना निश्चित रूप से मकरूह, अनुचित और सुन्नत के विरुद्ध है और कुरान के पाठ को छोड़ने का कारण बनता है। यदि एक लंबी आयत या तीन छोटी आयतों को कविता के रूप में ढाला जाए, तो पहली बात तो यह है कि कुरान की संरचना को बदले बिना ऐसा करना शायद ही संभव हो, और संरचना बदलने के बाद वह (सही) पाठ नहीं रहेगा, भले ही वह उद्धरण (इक्तिबास) हो। और यदि संभव भी हो, तो सुन्नत की अदायगी के लिए पवित्र कुरान को कविता के रूप में पढ़ना, कुरान के पाठ को छोड़ने से भी अधिक गंभीर और घिनौना है। महान कुरान कविता से पवित्र और उच्च है, और कविता बनने से ऊपर है। "और हमने उन्हें (पैगंबर को) कविता की शिक्षा नहीं दी और न ही यह उनके योग्य है" (3)। तो इस तरह से पाठ का इरादा करना स्पष्ट रूप से अदब (सम्मान) की कमी है।

[बॉक्स 3] और इसी से वह इक्तिबास अलग हो जाता है जिसमें कुरान का पाठ करना अभिप्रेत नहीं है, क्योंकि यह सबसे सही मत के अनुसार प्रचलित और जायज़ है। इससे वह इक्तिबास अलग हो गया जिससे कुरान पाठ का उद्देश्य नहीं है क्योंकि सबसे सही मत के अनुसार यह प्रसिद्ध और प्रचलित है। (त)

और वैसे भी, कविता तक सीमित रहना बिना किसी कारण के उन शब्दों और तरीके से मुंह मोड़ना है जो पीढ़ियों से चले आ रहे हैं, इसलिए इससे बचना ही चाहिए।

पांचवां: कुछ सराहनीय और उचित कविताओं को शामिल करना, यदि वे गैर-अरबी भाषा में हैं, तो यह वही तीसरा मुद्दा है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। अन्यथा इसमें कोई हर्ज नहीं है, विशेष रूप से जब इसे कभी-कभार किसी परंपरा को जीवित करने के लिए किया जाए, जैसा कि वर्णित है कि अमीरुल मोमिनीन फारूक-ए-आजम (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने खुतबे में कुछ कविताएँ पढ़ी थीं।

[बॉक्स 4] जैसा कि अल-अस्करी ने 'किताब अल-मवाइज़' में वर्णित किया है और हमने उनके हदीस के बारे में अपने फ़तावा में भी चर्चा की है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है। जैसा कि अल-अस्करी ने 'किताब अल-मवाइज़' में उल्लेख किया है और हमने इसके बारे में अपने फ़तावा में भी बातचीत की है। और अल्लाह तआला ही सबसे बेहतर जानता है। (त)

पाद-टिप्पणियाँ: 1. फ़तावा हिंदिया, सोलहवां अध्याय जुमे की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/147 2. दुर्र मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/111 3. कुरान 36/69

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[باکس 1] فی الجوہرۃ النیرۃ ۱۔ جیسا کہ جوہرہ نیرہ میں ہے (ت)

سوم: کچھ عربی کچھ اردو اس کا حال بھی بیان سابق سے واضح ہو چکا مگر جب امام بحالت خطبہ کوئی امر منکر دیکھے تو اس سے نہی کیا ہی چاہئے اور جب وہ عربی سمجھتا یا امام خود عربی میں کلام کرنا نہیں جانتا تو ناچار زبان مقدور و مفہوم کی طرف رجوع ہوگی یہ کلام جو خطبہ میں ہوگا خطبہ ہی ہو گا کہ امر بالمعروف بھی اس کے مقاصد حسنہ سے ہے

[باکس 2] فی الدرالمختار یکرہ تکلمہ فیہا الا لامربمعروف لانہ منہا ۲۔ در مختار میں ہے خطبہ میں گفتگو مکروہ ہے البتہ نیکی کا حکم جائز ہے کیونکہ یہ خطبہ کا حصہ ہے۔ (ت)

یوں ایک حصہ خطبہ اردو میں ہونا البتہ مکروہ نہیں بلکہ واجب تک ہو سکتا ہے جبکہ ازالہ منکر اسی میں منحصر ہو۔

چہارم: محض اشعار پر قناعت یہ ضرور مکروہ و اسائت و خلاف سنت و موجب ترک تلاوت، اور اگر ایک آیت طویلہ یا تین آیت قصیرہ کو نظم کر کے لائیں تو اول تو غالبا یہ بلا تغییر نظم قرآن نامیسر اور بعد تغییر نظم تلاوت نہ رہے گی اگرچہ اقتباس ہو، اور اگر بن بھی پڑے تو ادائے سنت تلاوت کے لئے قرآن مجید کو منظوم کر کے پڑھنا ترک قرائت سے اشد واشنع ہے، قرآن عظیم شعر سے پاک و منزہ اور اپنے شعر بننے کی گوارش سے متعالی و ارفع ہے۔ وَمَا عَلَّمْنٰهُ الشِّعْرَ وَمَا يَنْۢبَغِيْ لَهٗؕ ۳ (اور ہم نے آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو شعر کی تعلیم ہی نہیں دی اور نہ ہی یہ آپ کی شان کے لائق ہے۔ت) تو اس طور پر قصد تلاوت صریح اساءت ادب ہے۔

[باکس 3] وبہ فارق الاقتباس الذی لا یراد فیہ تلاوۃ القرآن فانہ شائع سائغ علی الاصح۔ اس سے وہ اقتباس الگ ہو گیا جس سے مقصد تلاوت قرآن نہیں کیونکہ اصح قول کے مطابق یہ مشہور اور مروج ہے۔ (ت)

اور یوں بھی نظم پر اقتصار میں بلاوجہ کلمات ماثورہ و طریقہ متوارثہ سے اعراض ہے تو اس سے اعراض ہی چاہئے۔

پنجم: بعض اشعار محمودہ ملائمہ داخل کرنا یہ اگر زبان عجم ہوں تو وہی امر سوم ہے ورنہ کچھ حرج نہیں خصوصاً جبکہ احیائاً ہو کہ امیر المومنین فاروق اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے خطبہ میں بعض اشعار پڑھنا مروی۔

[باکس 4] کما رواہ العسکری فی کتاب المواعظ وقد ذکرنا حدیثہ فی فتاونا۔ واللہ سبحنہ وتعالی اعلم جیسا کہ عسکری نے کتاب المواعظ میں ذکر کیا ہے اور ہم نے اس کے بارے میں اپنے فتاوٰی میں بھی گفتگو کی ہے واللہ تعالٰی اعلم (ت)

حواشی: 1 فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷ 2 درمختار ، باب الجمعۃ ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ، ۱/ ۱۱۱ 3 القرآن ۶۹/۳۶

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Issue 1304: From Kanpur, Mohalla Jarnail Ganj, Masjid Haji Farhat, sent by Sheikh Muhammad Sahool, 18 Muharram al-Haram 1316 AH. What is your opinion, O noble scholars, regarding this issue: is there a need to perform the two units (rak'at) of Sunnah of Dhuhr at the end of the Friday prayer? Explain and you will be rewarded.

The Answer: There is no place for the Sunnah of Dhuhr after the Friday prayer, nor is there any possibility of necessity in the sense of obligation for the Sunnahs. Yes, there is a difference of opinion regarding the post-Friday Sunnahs; the original view in the school of thought is four, as mentioned in the core texts (mutun), and six is more cautious and superior. (T)

[Arabic Box - Left]: This is the opinion of Imam Abu Yusuf, and most scholars have adopted it, as stated in Fath Allah al-Mu'in on the authority of al-Nahr, from al-'Uyun and al-Tajnis. It is the chosen view as in Jawahir al-Akhlati, and it is established by Hadith as we have explained in our Fatawa.

[Urdu Box - Right]: This is the opinion of Imam Abu Yusuf, and most of the teachers act upon it, as mentioned in Fath Allah al-Mu'in from al-Nahr, and there from al-'Uyun and al-Tajnis. This is the chosen view as in Jawahir al-Akhlati, and it is proven from Hadith as detailed in our Fatawa. (T)

However, when, due to dispute and doubt regarding the validity of the Friday prayer, the elite perform four cautionary units with the intention of the 'Last Dhuhr', they should perform four Sunnahs after the Friday prayer, then those four units, and after them, perform these two Sunnahs with the intention of 'Sunnah of the Time'. They should not specify Friday or Dhuhr so that the intention covers every possibility and these Sunnahs occur in their proper place by consensus.

[Arabic Box - Left]: In Radd al-Muhtar, from the commentary of Munyat al-Musalli as-Saghir: It is better to pray the Sunnah of Friday after it, then the four [rak'ats] with this intention: "I intend the last Dhuhr I reached and did not pray," then two units of 'Sunnah of the Time'. If the Friday prayer is valid, then he has performed its Sunnahs properly. Otherwise, he has prayed Dhuhr with its Sunnahs. And Allah, Glorified and Exalted, knows best.

[Urdu Box - Right]: It is stated in Radd al-Muhtar with reference to Sharh Munyah al-Saghir that it is better to perform the Sunnahs of Friday after it, then four units with this intention, i.e., the intention of 'last Dhuhr' that "I reached but did not perform,"

then perform the two Sunnahs of the time. Now if the Friday prayer was valid, then its Sunnahs were performed at their time, and if the Friday prayer was not valid, they would be performed with the Sunnahs of Dhuhr. And Allah, Glorified and Exalted, knows best. (T)

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Friday, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/597.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

मसअला 1304: कानपुर मोहल्ला जरनैल गंज मस्जिद हाजी फ़रहत से, प्रेषक शेख मोहम्मद सहूल, 18 मुहर्रम अल-हराम 1316 हिजरी। विद्वान उलेमा इस मसअले में क्या फरमाते हैं कि जुमा की नमाज़ के बाद अंत में जो ज़ुहर की दो रकात सुन्नत पढ़ते हैं, उसकी ज़रूरत है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: जुमा के बाद ज़ुहर की सुन्नत का कोई स्थान नहीं है, और न ही सुन्नतों में अनिवार्यता के अर्थ में कोई आवश्यकता संभावित है। हाँ, जुमा के बाद की सुन्नतों में मतभेद है; मूल मज़हब में चार हैं जैसा कि मूल ग्रंथों (मतून) में उल्लेख है, और अधिक सुरक्षित और बेहतर छह हैं। (त)

[अरबी बॉक्स - बायाँ]: यह इमाम अबू यूसुफ का कथन है और अधिकांश विद्वानों ने इसे अपनाया है, जैसा कि फतह अल्लाह अल-मुईन में अल-नहर के हवाले से अल-उयून और अल-तजनीस से उद्धृत है। यही चयनित मत है जैसा कि जवाहर अल-अख्लाती में है, और यह हदीस से प्रमाणित है जैसा कि हमने अपने फतावा में स्पष्ट किया है।

[उर्दू बॉक्स - दायाँ]: इमाम अबू यूसुफ का यही कथन है और इसी पर अधिकांश मशायख़ का अमल है जैसा कि फतह अल्लाह अल-मुईन में नहर से और वहाँ उयून और तजनीस से है। यही मुख्तार (चयनित) है जैसा कि जवाहर अल-अख्लाती में है, और यह हदीस से साबित है जैसा कि हमारे फतावा में इसका विवरण है। (त)

मगर जब जुमा की वैधता में विवाद और संदेह के कारण विशिष्ट लोग चार रकात एहतियाती (सावधानीवश) 'आख़िरी ज़ुहर' की नीयत से पढ़ते हैं, तो उन्हें चाहिए कि जुमा के बाद चार सुन्नतें पढ़ें, फिर वे चार रकातें पढ़कर उनके बाद ये दो सुन्नतें 'वक्ती सुन्नत' की नीयत से पढ़ें। जुमा या ज़ुहर का निर्धारण न करें ताकि नीयत हर संभावना को समाहित रखे और हर तरह से ये सुन्नतें सर्वसम्मति से अपने स्थान पर संपन्न हों।

[अरबी बॉक्स - बायाँ]: रद-अल-मुह्तार में शरह मुनियतुल मुसल्ली अस-सगीर के हवाले से है: बेहतर यह है कि जुमा के बाद उसकी सुन्नतें पढ़ी जाएँ फिर चार रकातें इस नीयत से: "मैं उस आख़िरी ज़ुहर की नीयत करता हूँ जिसे मैंने पाया और नहीं पढ़ा," फिर दो रकात वक्ती सुन्नत। यदि जुमा सही है, तो

उसकी सुन्नतें यथावत अदा हुईं। अन्यथा उसने सुन्नतों के साथ ज़ुहर पढ़ी है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानता है।

[उर्दू बॉक्स - दायाँ]: रद-अल-मुह्तार में शरह मुनिया अल-सगीर के हवाले से है कि बेहतर यह है कि जुमा के बाद उसकी सुन्नतें अदा की जाएँ फिर चार रकात इस नीयत से यानी आख़िरी ज़ुहर की नीयत से कि "मैंने पाया मगर अदा न किया," फिर वक्ती दो सुन्नतें अदा करे। अब अगर जुमा सही हो गया था तो उसकी सुन्नतें अपने-अपने समय पर अदा हुईं और अगर जुमा सही नहीं तो ज़ुहर की सुन्नतों के साथ अदा होंगी। वल्लाहु सुब्हानहु व तआला आलम (त)

1 रद-अल-मुह्तार, बाब अल-जुमा, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/597।

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۰۴: از کانپور محلہ جرنیل گنج مسجد حاجی فرحت مرسلہ شیخ محمد سہول ۱۸ محرم الحرام ۱۳۱۶ھ ماقولکم ایھا العلماء الکرام (اے علماء کرام تمھارا کیا قول ہے) اس مسئلہ میں کہ جمعہ کی نماز میں جو اخیر میں دو رکعت ظہر کی سنت پڑھتے ہیں اس کی ضرورت ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: جمعہ کے بعد ظہر کی سنت کا کوئی محل ہی نہیں، نہ ضرورت بمعنی وجوب سنن میں محتمل۔ ہاں جمعہ کی سنت بعدیہ میں اختلاف ہے، اصل مذہب میں چار ہیں وعلیہ المتون (متون میں اس بات کا تذکرہ ہے۔ ت) اور احوط وافضل چھ ہیں۔

[Arabic Box - Left]: وھو قول الامام ابی یوسف و بہ اخذ اکثر المشائخ کما في فتح اللہ المعین عن النھر عن العیون والتجنیس وھو المختار کما في جواھر الاخلاطی وھو الثابت بالحدیث کما بیناہ في فتاوانا۔

[Urdu Box - Right]: امام ابو یوسف کا یہی قول ہے اور اسی پر اکثر مشائخ کا عمل ہے جیسا کہ فتح اللہ المعین میں نہر سے اور وہاں عیون اور تجنیس سے ہے اور یہی مختار ہے جیسا کہ جواہر الاخلاطی میں ہے اور یہ حدیث سے ثابت ہے جیسا کہ ہمارے فتاوٰی میں اس کی تفصیل ہے (ت)

مگر جب صحت جمعہ میں نزاع واشتباہ کے باعث خواص چار رکعت احتیاطی بہ نیت آخر ظہر پڑھیں تو انھیں چاہئے بعد جمعہ چار سنتیں پھر وہ چار رکعتیں پڑھ کر ان کے بعد یہ دو سنتیں نہ

نیت سنت وقت پڑھیں، جمعہ یا ظہر کی تعین نہ کریں کہ نیت ہر احتمال کو اشتمل رکھے اور ہر طرح یہ سنتیں اپنے موقع پر بالاتفاق واقع ہوں۔

[Arabic Box - Left]: في ردالمحتار عن شرح المنية الصغير والاولى ان يصلى بعد الجمعة سنتها ثم الاربع بهذه النية اى نيت آخر ظهر ادركته ولم اصله ثم ركعتين سنة الوقت فان صحت الجمعة يكون قد ادى سنتهما على وجهها والا فقد صلى الظهر مع سنته ۱۔ واللہ سبحنہ و تعالٰی اعلم

[Urdu Box - Right]: ردالمحتار میں شرح منیہ الصغیر کے حوالے سے ہے کہ بہتر یہ ہے کہ جمعہ کے بعد اس کی سنن ادا کی جائے پھر چار رکعات اس نیت سے یعنی آخری ظہر کی نیت سے کہ میں نے پایا مگر ادا نہ کیا پھر وقتی دو سنتیں ادا کرے اب اگر جمعہ صحیح ہو گیا تھا تو اس کی سنن اپنے اپنے وقت پر ادا ہوئیں اور اگر جمعہ صحیح نہیں تو ظہر کی سنتوں کے ساتھ ادا ہوگی۔ واللہ سبحنہ و تعالٰی اعلم (ت)

1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۷

Fatawa Rizvia, Volume 8

Mas'ala 1305: From Cantonment Ferozepur Sadar Punjab, Mohalla Lal Digi, sent by Maulvi Fazl-ur-Rehman Sahib, 21st Rabi-ul-Akhir 1316 AH. In the service of the respected master, the honorable and accepted of the Almighty, Hazrat Maulana Maulvi Ahmed Raza Khan Sahib (may Allah continue his powerful grace), Peace be upon you and upon those with you. I am an intruder into the service of your noble attendants. I submit two scenarios of a matter for your noble service, requesting that through your kind favors you honor and distinguish me with a correct answer. May Allah reward you with the best reward (May Allah Almighty grant you a better reward - T). Your old humble servant, Faqir Muhammad Fazl-ur-Rehman.

[Boxed Text] Starting with the name of Allah, praising Him, and sending blessings and peace [on His Messenger]. As for what follows: let it be clear that according to the Hadith regarding the Friday sermon, anyone who tells another "be quiet" or touches a pebble, there is no reward of Friday for him because he performed a futile and vain act. It is in the noble Hadith that during the Friday sermon, if one says to another "be quiet" or touches a pebble, he will not obtain the reward of Friday because he has performed a futile and vain act. (T)

Also, during the Friday sermon, the attendees asked you to pray for rain; you raised your hands and prayed, and all the attendees also raised their hands. Then, on the following Friday, all the attendees said to pray for the rain to stop; as soon as you prayed, the rain stopped immediately (Bukhari & Muslim, Note 1). From both instances, it is known that speaking for a futile task or moving hands during the Friday sermon is disliked (makruh), but for a good deed, it is not disliked at all. If this reasoning is not understood, then in Fatawa Alamgiri, quoting from Al-Muhit etc., it is stated regarding the Friday sermon: [Arabic Legal Quote]: If he did not speak with his tongue but signaled with his hand, head, or eye, such as if he saw something forbidden from a person and forbade him with his hand (Note 2) or was informed of something and signaled with his head, the correct view is that... [Urdu Translation]: If he did not speak with his tongue but signaled with his hand, head, or eye—for example, he saw an evil deed and stopped it with his hand, or someone gave him news and he responded with his head...

Note 1: This is obtained by looking at the chapters on the Friday sermon and the prayer for rain. (M) Note 2: For example, if he sees someone telling another to "be quiet" or touching a pebble, the observer should forbid him with a gesture of the

hand, head, or eye. Why not? Because the one forbidding is included in "there is no harm in it", while the one he forbade will be counted among those performing vain and futile acts. So ponder. (M)

फ़तावा रिज़विया, खंड 8

मसला 1305: छावनी फ़िरोज़पुर सदर पंजाब, मोहल्ला लाल डिग्गी से, मौलवी फ़ज़लुर रहमान साहब द्वारा प्रेषित, 21 रबी-उल-आख़िर 1316 हिजरी। हज़रत मख़दूम व मुअज़्ज़म मक़बूल-ए-सुब्हान हज़रत मौलाना मौलवी अहमद रज़ा ख़ाँ साहब (अल्लाह उनकी शक्तिशाली कृपा जारी रखे) की सेवा में, अस्सलामु अलैकुम व अला लदैकुम। मैं आपके प्रतिष्ठित सेवकों की सेवा में एक बाधा डालने वाला हूँ। एक मसले की दो सूरतें आपकी सेवा में भेजकर गुज़ारिश है कि अपनी कृपालु मेहरबानियों से सही जवाब देकर सम्मानित और गौरवान्वित फरमाएँ। जज़ाकुमुल्लाह ख़ैरुल जज़ा (अल्लाह तआला आपको बेहतर बदला अता फरमाए - त)। आपका पुराना विनम्र सेवक, फ़क़ीर मुहम्मद फ़ज़लुर रहमान।

[बॉक्स किया हुआ पाठ] अल्लाह के नाम से शुरू, उसी की हम्द, और उसके रसूल पर दुरूद व सलाम के बाद: यह स्पष्ट रहे कि जुमा के खुतबे के बारे में हदीस के अनुसार, जो कोई दूसरे से कहे कि "खामोश रहो" या कंकड़ को छुए, उसके लिए जुमा का सवाब नहीं है क्योंकि उसने एक व्यर्थ और निरर्थक काम किया। हदीस शरीफ़ में है कि जुमा के खुतबे में अगर कोई दूसरे को कहे कि "खामोश हो जाओ" या कंकड़ को छू लिया तो उसे जुमा का सवाब हासिल न होगा क्योंकि उसने एक व्यर्थ और निरर्थक काम किया है। (त)

साथ ही, जुमा के खुतबे में हाज़िरीन ने आपसे कहा कि बारिश की दुआ कीजिए; आपने हाथ उठाकर दुआ की थी और तमाम हाज़िरीन ने भी हाथ उठाए थे। फिर अगले जुमा को तमाम हाज़िरीन ने कहा कि बारिश बंद होने की दुआ कीजिए; आपके दुआ करने से फ़ौरन बारिश बंद हो गई थी (बुखारी व मुस्लिम, टिप्पणी 1)। तो दोनों जगहों से मालूम हुआ कि व्यर्थ काम के लिए बोलना, हाथ हिलाना जुमा के खुतबे में मकरूह (नापसंद) है, और नेक काम के लिए हरगिज़ मकरूह नहीं। अगर यह दलील समझ न आए तो फ़तावा आलमगीरिया में अल-मुहीत आदि के हवाले से मौजूद है कि जुमा के खुतबे में: [अरबी कानूनी पाठ]: यदि उसने अपनी ज़ुबान से बात नहीं की लेकिन अपने हाथ, सिर या आँख से इशारा किया, जैसे कि उसने किसी व्यक्ति से कोई बुरा काम देखा और उसे अपने हाथ से रोका (टिप्पणी 2) या उसे किसी चीज़ की सूचना दी गई और उसने अपने सिर से इशारा किया, तो सही बात यह है कि... [उर्दू अनुवाद]: अगर उसने ज़ुबान से कलाम नहीं किया लेकिन हाथ या सिर या आँख से इशारा किया, जैसे कि कोई बुरा काम देखा और उसे हाथ से रोका या उसे किसी ने ख़बर दी तो उसने सिर से...

टिप्पणी 1: जुमा के खुतबे और इस्तिसक़ा (बारिश की दुआ) के अध्यायों को देखने से यही प्राप्त होता है। (म) टिप्पणी 2: उदाहरण के लिए, अगर वह किसी को देखे कि दूसरे को कहता है "चुप रहो" या कंकड़ को छूता है, तो देखने वाला उसे हाथ या सिर या आँख के इशारे से मना करे। क्यों न करे? क्योंकि मना करने वाला "इसमें कोई हर्ज नहीं" के दायरे में आता है, जबकि जिसे उसने मना किया है उसे व्यर्थ और निरर्थक काम करने वालों में गिना जाएगा। अतः विचार करें। (म)

पृष्ठ 327/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۰۵: از چھاؤنی فیروز پور صدر پنجاب محلہ لال ڈگی مرسلہ مولوی فضل الرحمان صاحب ۲۱ ربیع الآخر شریف ۱۳۱۶ھ بخدمت حضرت مخدوم و معظم مقبول السبحان حضرت مولینا مولوی احمد رضا خاں صاحب ادام اللہ فیضہ القوی ، السلام علیکم و علی لدیکم مصدع خدمت خدام والا ہوں کہ ایک مسئلہ کی دو صورتیں ارسال خدمت شریف کرکے گزارش کہ بتفضلات کریمانہ جواب باصواب سے معزز و ممتاز فرمائیں جزاکم اللہ خیر الجزاء (اللہ تعالٰی آپ کو بہتر جزا عطا فرمائے۔ ت) نیازمند قدیمی فقیر محمد فضل الرحمان۔

[جدول] مُبَسْمِلًا وَحَامِدًا وَمُصَلِّیًا وَمُسَلِّمًا امابعد پس واضح رہے کہ بحدیثِ آمدہ بخطبہء جمعہ ہر کہ دیگری را می گوید کہ خاموش باش یا سنگریزہ را مس کرد او را ثوابِ جمعہ نباشد کہ او عبث و لغو کرد۔ حدیث شریف میں ہے کہ خطبہء جمعہ میں اگر ایک دوسرے کو کہے خاموش ہو جا یا سنگریزے کو مس کر دیا تو اسے جمعہ کا ثواب حاصل نہ ہوگا کیونکہ اس نے ایک عبث و لغو کام کیا ہے -(ت)

نیز خطبہ جمعہ میں حاضرین نے آپ سے کہا کہ بارش کی دعا کیجئے، آپ نے ہاتھ اٹھا کر دعا کی تھی اور تمام حاضرین نے بھی ہاتھ اٹھائے تھے تو آئندہ جمعہ کو تمام حاضرین نے کہا کہ بند ہونے بارش کی دعا کیجئے ، آپ کے دعا کرنے سے فوراً مینہ بند ہو گیا تھا ، بخاری و مسلم عہ ۱، تو دونوں مقاموں سے معلوم ہوا کہ عبث کام کے لئے بولنا، ہاتھ کا ہلانا جمعہ کے خطبہ میں مکروہ ہے اور نیک کام کے لئے مکروہ ہر گز نہیں، اس استدلال کی اگر سمجھ نہ آئے تو فتاوٰی عالمگیریہ نقلاً عن المحیط وغیرہ موجود ہے کہ بخطبہ جمعہ: اذا لم یتکلم بلسانہ لکنہ اشار بیدہ او برأسہ او بعینہ نحوان رأی منکرا من انسان فنھاہ بیدہ عہ ۲ او اخبر بخبر فاشار برأسہ الصحیح انہ

اگر اس نے زبان سے کلام نہیں کیا لیکن ہاتھ یا سر آنکھ سے اشارہ کیا مثلاً کوئی برا کام دیکھا اور اسے ہاتھ سے روکا یا اسے کسی نے خبر دی تو اس نے سر سے

عہ ۱: باب خطبہ جمعہ و باب استسقاء کے دیکھنے سے یہی حاصل ہے۔ (م) عہ ۲: مثلاً اگر دیکھے کسی کو کہ دوسرے کو کہتا ہے چپ کر یا سنگریزہ کو مس کرتا ہے تو دیکھنے والا اس کو ہاتھ یا سر یا آنکھ کے اشارے سے منع کرے کیوں نہ کر تو منع کنندہ لا باس بہ میں داخل ہے اور جس کو اس نے منع کیا ہو لغو و عبث کنندگان سے شمار کیا جائے گا۔ فتدبر (م)

(Arabic) No harm in it. As for studying and writing Fiqh, it is disliked by some, while others said there is no harm in it (summarized from what was mentioned earlier and later). End.

(Urdu) It was pointed out that the correct view is that there is no harm in it, but teaching and writing Fiqh is disliked by some, and according to others, there is no harm in it. End (T)

So, based on the deduction from all these narrations, anyone who listens to the first sermon for the duration of the Sunnah and continues to listen to the rest, and starts fanning the attendees who are in need of air in the heat so they may listen to the sermon with peace of mind—there is no harm in it (T). Surely, this person will not be deprived of the reward of Friday prayer.

(Arabic) Since the objective of silence is to observe the meaning of the sermon, and the hearts of the listeners being occupied with heat misses that; this is inferred from Fatawa Hamawi.

(Urdu) Because the purpose of paying attention to the sermon is to be aware of its meanings, but for the hearts of the listeners to be troubled due to the heat is a means of missing it. This is inferred from Fatawa Hamawi. (T)

Look, on the day of Friday in Paradise, when all the believers are gathered in one place, the Lord Almighty will also cause a northern wind to blow so they may be honored with the sight of the Truth (Allah) with peace of mind. The name of this wind is 'Maysharah,' which will have the effect of the fragrance of musk, as mentioned in Sahih Muslim (T).

Secondly, for that person who fans the congregation during the Friday sermon, while he himself is in severe need of air due to the heat, he has prioritized the comfort of others over his own. By entering the circle of 'and they prefer [them] over themselves, even though they are in poverty'[2] (they give preference to others over themselves even if they are hungry. T), he has attained the rank of the successful (muflihun). This verse of Surah Al-Hashr is present in Bukhari, Ashbah, and Fatawa Hamawi, and the command of the Book and Sunnah is general.

(Arabic) Because the consideration is for the generality of the wording, not for the specificity of the occasion, as established in the Principles [of Jurisprudence].

(Urdu) Because consideration is given to the generality of the word, a specific incident is not considered, as is established in the principles. (T)

Reciting the Friday sermon to the extent of one tasbih is obligatory (fard), and reciting three short verses or one long verse, the two testimonies (Shahadatayn), sending blessings (Durood), and giving advice to the people is Sunnah for the preacher (Khatib). The second sermon is also Sunnah, and according to some, the first sermon to the extent of the entire At-Tahiyyat is obligatory. Reflect. The writer, a well-wisher and beggar, Ghulam al-Bani (may he be forgiven) in the name of his Glorious and Exalted Lord.

---

1. Fatawa Hindiyya, Chapter Sixteen regarding Friday Prayer, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/147.
2. Al-Quran 59/9

(अरबी) इसमें कोई हर्ज नहीं। जहाँ तक फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) के अध्ययन और लेखन का संबंध है, कुछ के अनुसार यह मकरूह है, जबकि कुछ ने कहा कि इसमें कोई हर्ज नहीं (पहले और बाद में जो उल्लेख किया गया है उसका सारांश)। अंत।

(उर्दू) यह संकेत दिया गया था कि सही विचार यह है कि इसमें कोई हर्ज नहीं है, लेकिन फ़िक़्ह का शिक्षण और लेखन कुछ के यहाँ मकरूह है, और दूसरों के अनुसार इसमें कोई हर्ज नहीं है। अंत (त)

अत:, इन सभी उल्लेखों के निष्कर्ष के आधार पर, जो कोई सुन्नत की अवधि के लिए पहला खुतबा (धर्मोपदेश) सुनता है और बाकी को सुनना जारी रखता है, और उन उपस्थित लोगों के लिए पंखा झलना शुरू कर देता है जिन्हें गर्मी में हवा की आवश्यकता होती है ताकि वे शांति से खुतबा सुन सकें —इसमें कोई हर्ज नहीं (त)। निश्चित रूप से, यह व्यक्ति जुमे के सवाब (पुण्य) से वंचित नहीं रहेगा।

(अरबी) चूंकि मौन रहने का उद्देश्य खुतबे के अर्थ का अवलोकन करना है, और श्रोताओं के दिलों का गर्मी में व्यस्त होना उसे समाप्त कर देता है; यह फ़तावा हमावी से निकाला गया है।

(उर्दू) क्योंकि खुतबे की ओर ध्यान देने का उद्देश्य उसके अर्थों से अवगत होना है, लेकिन गर्मी के कारण श्रोताओं के दिलों का परेशान होना उसे खोने का एक साधन है। फ़तावा हमावी से यही निष्कर्ष निकलता है। (त)

देखो, जन्नत में जुमे के दिन जब सभी मोमिन एक स्थान पर एकत्रित होंगे, तो अल्लाह तआला उत्तर से चलने वाली हवा भी चलाएगा ताकि वे शांति के साथ दीदार-ए-हक़ (अल्लाह के दर्शन) से सम्मानित हों। इस हवा का नाम 'मैशराह' है, जिसमें कस्तूरी की खुशबू का प्रभाव होगा, जैसा कि सही मुस्लिम में है (त)।

दूसरे, उस व्यक्ति के लिए जो जुमे के खुतबे के दौरान जमात को हवा देता है, जबकि उसे स्वयं गर्मी के कारण हवा की सख्त आवश्यकता होती है, उसने अपनी इस राहत पर दूसरों की राहत को प्राथमिकता दी है। 'और वे उन्हें अपने आप पर प्राथमिकता देते हैं, चाहे वे खुद तंगी में हों'[2] (वे दूसरों को अपने ऊपर वरीयता देते हैं चाहे वे खुद भूखे हों। त) के घेरे में प्रवेश करके उसने 'मुफ़लिहून' (सफल लोगों) का दर्जा पाया। सूरह अल-हश्र की यह आयत बुखारी, अशबाह और फ़तावा हमावी में मौजूद है, और किताब और सुन्नत का हुक्म आम (सामान्य) है।

(अरबी) क्योंकि विचार शब्द की व्यापकता का होता है, न कि अवसर की विशिष्टता का, जैसा कि उसूल (न्यायशास्त्र के सिद्धांतों) में स्थापित है।

(उर्दू) क्योंकि शब्दों की व्यापकता पर विचार किया जाता है, किसी विशिष्ट घटना पर विचार नहीं किया जाता जैसा कि सिद्धांतों में सिद्ध है। (त)

जुमे का खुतबा एक तस्बीह की अवधि के बराबर पढ़ना फ़र्ज़ है, और तीन छोटी आयतें या एक लंबी आयत पढ़ना, शहादतैन और दुरूद पढ़ना और लोगों को नसीहत करना खतीब के लिए सुन्नत है। दूसरा खुतबा भी सुन्नत है, और कुछ के अनुसार पहला खुतबा पूरी 'अत-तहिय्यात' की अवधि के बराबर फ़र्ज़ है। विचार करें। लेखक, शुभचिंतक और फकीर, गुलाम अल-बनी (अल्लाह उन पर दया करे) अपने महिमामय और उच्च पालनहार के नाम से।

---

1. फ़तावा हिंदिया, जुमे की नमाज़ के बारे में सोलहवाँ अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित, 1/147।
2. अल-क़ुरान 59/9

لاباس به اما دراسة الفقه وكتابته عند البعض مكروه وقال البعض لاباس ۱ به (ملخصاً تقدماً و تاخراً) انتهی۔

اشارہ کیا تو صحیح یہی ہے کہ اس میں کوئی حرج نہیں لیکن فقہ کی تدریس وکتابت بعض کے ہاں مکروہ ہے اور بعض کے نزدیک اس میں کوئی حرج نہیں انتہی (ت)

پس ان سب روایتوں کے استدلال سے جو کوئی خطبہ اولٰی بقدر سنت سن کے باقی کو سنتا رہے اور حاضرین کو جو گرمی میں ہوا کی حاجت و ضرورت ہوتی ہے سب کو ہوا کرنے لگے تاکہ اطمینان سے خطبہ سنیں لا باس به (اس میں کوئی حرج نہیں۔ت) بیشک یہ شخص ثواب جمعہ سے محروم نہ رہے گا۔

اذا المقصود من الانصات ملاحظة معنی الخطبة واشتغال قلوب السامعین بالحر یفوت ذلك كذا یستفاد من فتاوی حموی۔

کیونکہ خطبہ کی طرف کان لگانے سے مقصود یہی ہے کہ معانی خطبہ سے آگاہی ہو، لیکن سامعین کے دلوں کا گرمی کی وجہ سے پریشان ہونا اسے فوت کرنے کا ذریعہ ہے فتاوٰی حموی سے یہی مستفاد ہے ۔(ت)

دیکھو جنت میں بروز جمعہ سب مومنوں کو ایک مکان میں جمع کرکے باری تعالٰی بھی ہوا شمالی چلائے گا تاکہ باطمینان دیدار حق سبحانہ تعالٰی سے مشرف ہوا کریں گے، اس ہوا کا نام میشرہ ہے کہ کستوری کی خوشبوئی کا اثر رکھتی ہوگی کما فی مسلم (جیسا کہ مسلم شریف میں ہے۔ ت)

ثانیاً اس ہوا کنندہ قوم کو بخطبہ جمعہ گرمی کے مارے خود ہوا کی سخت حاجت و ضرورت ہوتی ہے تو اُس نے اپنی اس راحت پر راحت کو مقدم کیا وَ یُؤْثِرُونَ عَلَی أَنْفُسِهِمْ وَ لَوْ كَانَ بِهِمْ خَصَاصَةٌ ۲

(وہ اپنی ذاتوں پر دوسروں کو ترجیح دیتے ہیں اگر چہ وہ خود بھوکے ہوتے ہیں۔ت) کے گرد میں داخل ہوکے درجہ مفلحون کا پایا، یہ آیت سورہ حشر کی بخاری واشباہ وفتاوٰی حموی میں موجود ہے اور کتاب و سنت کا حکم عام ہے۔

لان العبرة لعموم اللفظ لا لخصوص المورد كما قرر في الاصول۔ **کیونکہ اعتبار عموم لفظ کا ہوتا ہے مخصوص واقعہ کا اعتبار نہیں کیا جاتا جیسا کہ اصول میں مسلم ہے۔ (ت)**

خطبہ جمعہ بقدر ایک تسبیح کے فرض اور تین آیات قصیرہ یا ایک آیت طویلہ پڑھنا و شہادتین و درود پڑھنا اور پند و نصیحت قوم کو کرنا خطیب پر سنت اور خطبہ ثانیہ نیز سنت ہے اور بعضوں کے نزدیک خطبہ اولٰی بقدر تمام التحیات کے فرض ہے فتدبر۔ راقم دعا گو خیر خواہ فقیر غلام البنی عنہ باسمہ سبحانہ و تعالٰی شانہ۔

---

1 فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷ 2 القرآن ۹/۵۹

The Answer: He is the Granter of success through truth and correctness. (t) It should not remain hidden or veiled from the consciences of the people of truth and purity, the masters of insight and intelligence, that those actions which are prohibited during the prayer are also prohibited and un-legislated during the Khutbah (Friday sermon) while listening to it. Talking or fanning oneself (distracting physical acts) which are harmful and contrary to listening to the sermon are prohibited and not permitted; it is never correct, and the one who commits it is a wrongdoer and a severe sinner. It is in Alamgiriyah:

Arabic Text	**Translation / Explanation**
Whatever is forbidden in prayer is forbidden during the Khutbah, so much so that it is not appropriate to eat or drink while the Imam is giving the Khutbah. Thus it is in Al-Khulasah, p. 53.	Every such thing that is forbidden in prayer is also forbidden during the Khutbah, such that eating and drinking at the time of the Imam's sermon is not appropriate. Similarly in Al-Khulasah, p. 53. (t)
It is in Durr-ul-Mukhtar:	
(And everything that is forbidden in prayer is forbidden in it) i.e., in the Khutbah. From Khulasah and others: eating, drinking, and speaking are forbidden, even if it is Tasbeeh (saying Subhan-Allah), responding to a greeting, or commanding good; rather, it is obligatory on him to listen and remain silent.	(Whatever is forbidden in prayer is also forbidden during it [the Khutbah]). From Khulasah etc., thus eating, drinking, and talking—even if saying Subhan-Allah, answering a greeting, or commanding virtue—is impermissible during it; rather, it is obligatory that the sermon be listened to and silence be maintained. (t)
It is in Shami:	
His statement 'Rather, it is obligatory for him to listen' apparently shows that it is disliked to engage in anything that prevents hearing, even if it is not speech. Al-Quhistani clarified this, stating: Since listening is Fard (obligatory) as in Al-Muhit, or Wajib	The statement "rather, listening to the sermon is obligatory" makes it apparent that reading anything through which listening to the sermon is missed is disliked (makruh), even if it is not speech. Clarifying this, Quhistani said: because listening to the sermon is Fard as in Al-Muhit, or Wajib

Arabic Text	Translation / Explanation
(necessary) as in Salat al-Mas'udiyyah, or Sunnah, etc.	as in Salat-ul-Mas'udiyyah, or Sunnah, etc. (t)

1. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16, regarding Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/147.
2. Durr-ul-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, published by Mujtabai Press, Delhi, India, 1/113.
3. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday Prayer, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/606.

जिल्द अष्टम फ़तावा-ए-रज़विया

अल-जवाब: वह सत्य और शुद्धता के साथ सफलता देने वाला है। (अनु.) सच्चाई और पवित्रता के स्वामियों, और बुद्धि और विवेक के स्वामियों की अंतरात्मा से यह बात छिपी और गुप्त न रहे कि जो कार्य नमाज़ के दौरान हराम हैं, वही खुतबा सुनते समय बातचीत करना या हवा झलना (विचलित करने वाले शारीरिक कार्य) करना जो खुतबा सुनने के लिए हानिकारक और प्रतिकूल हैं, वर्जित और गैर-कानूनी हैं। यह किसी भी तरह से सही नहीं है; इसका कर्ता अपराधी और कठोर गुनहगार है। आलमगीरिया में है:

अरबी पाठ	**अनुवाद / व्याख्या**
खुतबा के दौरान वह सब हराम है जो नमाज़ में हराम है, यहाँ तक कि इमाम के खुतबा देते समय खाना या पीना उचित नहीं है। इसी तरह 'खुलासा' पृष्ठ 53 में है।	खुतबा के दौरान हर वह चीज़ हराम है जो नमाज़ में हराम है, यहाँ तक कि इमाम के खुतबा के समय खाना-पीना उचित नहीं है। इसी तरह 'खुलासा' पृष्ठ 53 में है। (अनु.)
दुर्रे मुख्तार में है:	
(और जो कुछ नमाज़ में हराम है, वह उसमें (खुतबा में) भी हराम है) यानी खुतबा में। 'खुलासा' आदि के अनुसार खाना, पीना और बात करना हराम है, चाहे वह तस्बीह (सुभान अल्लाह कहना) हो, सलाम का जवाब देना हो या नेक काम का हुक्म देना हो। बल्कि उस पर वाजिब है कि वह सुने और चुप रहे।	(जो कुछ नमाज़ में हराम है वह इस (खुतबा) के दौरान भी हराम है) 'खुलासा' आदि, अतः खाना-पीना, बात करना चाहे वह सुभान अल्लाह कहना हो, सलाम का जवाब देना हो या नेकी का हुक्म देना हो, इस दौरान नाजायज़ है; बल्कि वाजिब है कि खुतबा सुना जाए और खामोशी अख्तियार की जाए। (अनु.)
शामी में है:	
उनका यह कथन कि 'बल्कि उस पर सुनना वाजिब है' का स्पष्ट अर्थ यह है कि ऐसी किसी भी चीज़ में व्यस्त होना मकरूह है जिससे सुनना छूट जाए, भले ही वह बातचीत न हो। कोहिस्तानी ने इसी की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा है: क्योंकि	कथन 'बल्कि खुतबा का सुनना वाजिब है' का ज़ाहिर स्पष्ट कर रहा है कि हर वही चीज़ पढ़ना जिससे खुतबा का सुनना छूट जाए वह मकरूह है, भले ही वह बातचीत न हो। इसी को स्पष्ट करते हुए कोहिस्तानी ने कहा कि खुतबा का

अरबी पाठ	अनुवाद / व्याख्या
सुनना फर्ज़ है जैसा कि 'मुहीत' में है, या वाजिब है जैसा कि 'सलात अल-मसऊदिया' में है, या सुन्नत है इत्यादि।	सुनना फर्ज़ है जैसा कि 'मुहीत' में, या वाजिब है जैसा कि 'सलात-उल-मसऊदिया' में, या सुन्नत है इत्यादि। (अनु.)

1. फ़तावा-ए-हिन्दिया, सोलहवाँ अध्याय, जुमे की नमाज़ के विषय में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/147.
2. दुर्रे मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, भारत, 1/113.
3. रद्द-उल-मुहतार, जुमे का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/606.

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

الجواب: ھو الموفق بالحق والصواب (وہ حق اور درستی کے ساتھ توفیق دینے والا ہے۔ ت) بر ضمائر ارباب صدق و صفا و اصحاب فطنت و ذکا مخفی و محتجب نہ رہے کہ جو افعال اثنائے نماز میں حرام ہیں وہی خطبہ میں بحالت استماع خطبہ گفتگو کرنا یا باد کشی کرنا جو مضر اور مخالف استماع خطبہ ہے ممنوع اور غیر مشروع ہے ہر گز درست نہیں مرتکب اس کا خاطی و سخت گناہ گار ہے، عالمگیر یہ میں ہے :

عربی عبارت	اردو ترجمہ / تشریح
ویحرم في الخطبة ما یحرم في الصلوة حتی لا ینبغی ان یاکل او یشرب والامام في الخطبة ھکذا في الخلاصة ص ۵۳۔	خطبہ کے دوران ہر وہ شیئ حرام ہے جو نماز میں حرام حتی کہ امام کے خطبہ کے وقت کھانا پینا مناسب نہیں اسی طرح خلاصہ ص ۵۳ میں ہے۔(ت)
در مختار میں ہے: (وکل ماحرم في الصلوة حرم فیھا) ای في الخطبة خلاصة وغیرھا فیحرم اکل وشرب وکلام ولو تسبیحاً اورد سلام او امراً بمعروف بل یجب علیه ان یستمع و یسکت ۔	(جو کچھ نماز میں حرام ہے اس (خطبہ) کے دوران بھی حرام ہے) خلاصہ وغیرہ، پس کھانا پینا، کلام کرنا اگرچہ سبحان اللہ کہنا، سلام کا جواب دینا یا نیکی کا حکم ہو اس دوران ناجائز ہے بلکہ واجب ہے کہ خطبہ سنا جائے اور خاموشی اختیار کی جائے۔ (ت)
شامی میں ہے:	

عربی عبارت	اردو ترجمہ / تشریح
قولہ بل یجب علیہ ان یستمع ظاھرہ انہ یکرہ الاشتغال بما یفوت السماع وان لم یکن کلاما و بہ صرح القھستانی حیث قال اذا الاستماع فرض کما فی المحیط او واجب کما فی صلوۃ المسعودیۃ او سنۃ الخ۔	قولہ "بلکہ خطبہ کا سننا واجب ہے" کا ظاہر واضح کررہا ہے ہر وہی شیئ پڑھنا جس سے سماع خطبہ فوت ہو وہ مکروہ ہے اگر چہ وہ کلام نہ ہو، اسی کی تصریح کرتے ہوئے قہستانی نے کہا کیونکہ خطبہ کا سننا فرض ہے جیسا کہ محیط میں یا واجب ہے جیسے کہ صلوۃ المسعودیہ میں یا سنت ہے الخ (ت)

1. فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷
2. در مختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۱۳
3. ردالمحتار، باب الجمعۃ، مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۰۶

Volume 8 Fatawa Razawiya

It is stated in Sharh Wiqayah: [Arabic]: And when the Imam comes out (for the sermon), prayer and speech become prohibited until he completes his sermon. 1- [Urdu]: When the Imam comes out (for the sermon), prayer and speech become prohibited until the sermon is completed. (T)

It is stated in Sharh Nawawi: [Arabic]: His saying, peace and blessings of Allah be upon him: 'And whoever touches the pebbles has committed an idle act' contains a prohibition on touching pebbles and other types of idle play during the sermon, and it points towards the heart and limbs turning towards the sermon. 2- [Urdu]: It is the noble saying of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): 'And whoever touched the pebbles committed an idle act.' In this command, you prohibited acts like touching pebbles etc. during the state of the sermon. In this, there is an indication towards directing the heart and limbs towards the sermon. (T)

The gist and essence of the above-mentioned texts is that during the sermon, idle acts like fanning etc., which prevent listening to the sermon and the focus of the heart and human limbs, are impermissible. And its doer, instead of being deserving of reward, will be a perpetrator of sin. Respondent: Muhammad Fazl-ur-Rahman, resident of Sadar Bazaar Camp, Ferozepur, Punjab.

Answer: The second writing is correct and the correct opinion in reality is that the mentioned act is a sin and forbidden, and its perpetrator is a committer of a sinful record, and in it the hope for reward is a vain desire, and the first writing is entirely based on misconceptions. Khulasah, Bazaziyah, Khizanat-ul-Muftin, Mujtaba, Jallabi, Hulyah, Jami-ur-Rumuz, Bahr-ur-Raiq, Nahr-ul-Faiq, Maraqi-ul-Falah, Tanwir-ul-Absar, Durr-ul-Mukhtar, Tahtawi 'ala-al-Maraqi, Minhat-ul-Khaliq, Hindiyyah, Minhat-ul-Khaliq and other general books of the school of thought clearly state that whatever action is forbidden in prayer is also forbidden during the sermon. The texts from Khulasah, Alamgiriyah, the text and commentary of Tanwir were mentioned in the respondent's words. The text of Khizanat-ul-Muftin is identical to the text of Khulasah, and from it, Bahr and the marginalia of al-Bahr by Allama Shami have quoted it via Nahr-ul-Ma'thur. It is stated in Wajiz of Imam Kardari: [Arabic]: What is forbidden in prayer is forbidden in the sermon, such as eating and drinking during the sermon. 3- [Urdu]: Whatever is forbidden in prayer is also forbidden in the sermon, for example eating and drinking during the sermon. (T)

---

1 Sharh Wiqayah, Chapter of Jumu'ah, published by Maktabah Rashidiyah, Delhi, India, 1/244 2 Sharh Muslim with Muslim, Book of Jumu'ah, published by Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/283 3 Fatawa Bazaziyah on the margins of al-Fatawa al-Hindiyyah, Twenty-third (volume) on Jumu'ah, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 4/74

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

शरह विक़ाया में है: [अरबी]: और जब इमाम (खुतबा के लिए) निकले तो नमाज़ और बातचीत हराम हो जाती है जब तक कि वह अपना खुतबा पूरा न कर ले। 1- [उर्दू]: जब इमाम (खुतबा के लिए) बाहर आ जाए, तो नमाज़ और बातचीत हराम हो जाती है यहाँ तक कि खुतबा मुकम्मल हो जाए। (त)

शरह नववी में है: [अरबी]: उनका कहना, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम: 'और जिसने कंकड़ छुआ उसने बेकार काम किया' इसमें खुतबे के दौरान कंकड़ छूने और अन्य प्रकार के बेकार खेल से मना किया गया है, और इसमें खुतबे की ओर दिल और अंगों के मुड़ने की ओर इशारा है। 2- [उर्दू]: हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का पाक फरमान है: 'और जिसने कंकड़ को छुआ उसने बेकार काम किया'। इस फरमान में आपने खुतबे की हालत में कंकड़ वगैरा छूने जैसे कामों से मना फरमाया है। इसमें इस बात की तरफ इशारा है कि दिल और अंगों को खुतबे की तरफ लगाया जाए। (त)

उपरोक्त इबारतों का सार और निष्कर्ष यह है कि खुतबे के दौरान पंखा झलना (बादकशी) वगैरा जैसे फालतू काम जो खुतबा सुनने और दिल व इंसानी अंगों की तवज्जो में रुकावट बनते हैं, नाज़ायज़ हैं। और इसका करने वाला सवाब का हकदार होने के बजाय गुनाहगार होगा। अल-मुजीब: मुहम्मद फजलुर रहमान, निवासी सदर बाज़ार कैंप, फिरोजपुर, पंजाब।

अल-जवाब: दूसरी तहरीर सही है और हकीकत में सही राय यह है कि उल्लेखित कार्य गुनाह और हराम है, और इसका करने वाला गुनाह का मुर्तकिब है, और इसमें सवाब की उम्मीद बेमानी है, और पहली तहरीर पूरी तरह से वहम और कल्पना पर आधारित है। खुलासा, बज़ाज़िया, ख़िज़ानतुल मुफ़्तीन, मुजतबा, जलाबी, हुल्या, जामिउर रुमूज़, बहरुर रैक, नहरुल फ़ाइक, मराक़िल फ़लाह, तनवीरुल अबसार, दुर्रे मुख़्तार, तहतावी अलल मराक़ी, मिन्हतुल ख़ालिक़, हिन्दिया, मिन्हतुल ख़ालिक़ और मज़हब की अन्य आम किताबों में साफ़ तौर पर ज़िक्र है कि जो काम नमाज़ में हराम है वह खुतबा होने की हालत में भी हराम है। खुलासा, आलमगीरिया और तनवीर के मूल और व्याख्या की इबारतें जवाब देने वाले के शब्दों में गुज़र चुकी हैं। ख़िज़ानतुल मुफ़्तीन की इबारत हूबहू खुलासा की इबारत है, और इसी से अल्लामा शामी की 'बहर' और 'हाशिया अल-बहर' में 'नहरे मासूर' के हवाले से नकल किया गया है। इमाम करदरी की 'वजीज़' में है: [अरबी]: जो नमाज़ में हराम है वह खुतबे में भी हराम है, जैसे खुतबे के दौरान खाना और पीना। 3- [उर्दू]: जो कुछ नमाज़ में हराम है वह खुतबे में भी हराम है, जैसे मिसाल के तौर पर खुतबे के दौरान खाना-पीना। (त)

1 शरह विक़ाया, बाबुल जुमुआ, मकतबा रशीदिया, दिल्ली, भारत, 1/244 2 शरह मुस्लिम मय मुस्लिम, किताबुल जुमुआ, नूर मुहम्मद असहुल मताबे, कराची, 1/283 3 फ़तावा बज़ाज़िया अल हामिश अल फ़तावा अल हिन्दिया, तेईसवाँ (बाब) जुमुआ पर, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 4/74

पृष्ठ 330/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

شرح وقایہ میں ہے : واذا خرج الامام محرم الصلوۃ والکلام حتی یتم خطبتہ 1- جب امام (خطبہ کے لئے نکل آئے تو نماز و کلام حرام ہو جاتی ہے یہاں تک کہ خطبہ مکمل ہوجائے۔(ت)

شرح نووی میں ہے : قولہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ومن مس الحصا فقد لغافیہ النھی عن مس الحصا وغیرہ من انواع العبث فی حال الخطبۃ و فیہ اشارۃ الی اقبال القلب والجوارح علی الخطبۃ 2- حضور صلی اللہ علیہ وسلم کا ارشاد گرامی ہے : اور جس نے سنگریزے کو مس کیا اس نے لغو کام کیا، اس فرمان میں سنگریزے وغیرہ کو مس کرنا جیسے کاموں سے حالت خطبہ میں آپ نے منع فرمایا ہے اس میں اس بات کی طرف اشارہ ہے کہ دل اور اعضاء کو خطبہ کی طرف لگایا جائے۔(ت)

لب اور خلاصہ عبارات متذکرہ بالا کا یہ ہے کہ اثنائے خطبہ میں بادکشی وغیرہ لغو افعال جو مانع استماع خطبہ و توجہ قلب اور اعضائے انسانی کے ہیں ناجائز ہیں اور فاعل اس کا بجائے اس کے کہ مستحق ثواب کا ہو مرتکب گناہ کا ہوگا۔الجیب محمد فضل الرحمٰن ساکن صدر بازار کیمپ فیروز پنجاب۔

الجواب: تحریر ثانی صحیح ہے اور رائے صحیح فی الواقع فعل مذکور گناہ و حرام، اور اس کا فاعل مرتکب آثار، اور اس میں ثواب طمع خام، اور تحریر اول سراسر اوہام، خلاصہ و بزازیہ و خزانتہ المفتین و مجتبی و جلابی و حلیہ و جامع الرموز و بحر الرائق و نہر الفائق و مراقی الفلاح و تنویر الابصار ودر مختار و طحطاوی علی المراقی و منحتہ و ہندیہ و منحتہ الخالق و غیرہ عامہ کتب مذہب میں صاف تصریح ہے کہ جو فعل نماز میں حرام ہے خطبہ ہونے کی حالت میں بھی حرام ہے، خلاصہ و عالمگیریہ و متن و شرح تنویر کی عبارات کلام مجیب میں گزریں اور عبارت

خزانتہ المفتین بعینہا عبارت خلاصہ ہے اور اسی سے بحر و حاشیہ البحر للعلامۃ الشامی میں بہ نقل نہر ماثور۔ وجیز امام کردری میں ہے : مایحرم فی الصلوۃ یحرم فی الخطبۃ کالا کل والشرب حال الخطبۃ 3- جو کچھ نماز میں حرام ہے خطبہ میں بھی حرام ہے مثلاً خطبہ کے دوران کھانا پینا۔(ت)

---

1 شرح وقایہ، باب الجمعتہ، مطبوعہ مکتبہ رشیدیہ دہلی بھارت ۱/ ۲۴۴ 2 شرح مسلم مع مسلم کتاب الجمعتہ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۸۳ 3 فتاوٰی بزازیہ علی ہامش الفتاوٰی الہندیہ الثالث والعشرون فی الجمعتہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۴/ ۷۴

Fatawa Razawiya - Volume Eight

In Sharh-e-Munyah by Imam Muhammad ibn Amir al-Hajj al-Halabi, it is stated:

Arabic: Kama yukrahu al-kalamu bianwa'ihi yukrahu mayujrahu min kitabatin wa nahwiha mimma yashghalu 'an sama'iha hatta inna fi sharh al-zahidi wa yukrahu limustami'in likhutbatin ma yukrahu fi al-salati kal-akli wash-shurbi wal-'abathi wal-iltifati. Translation: Just as every kind of talk is disliked, similarly what stands in its place, like writing etc., which causes disturbance in listening to the sermon is also forbidden; so much so that it is mentioned in Sharh-e-Zahidi that for the listener of the sermon, everything is disliked (makruh) which is disliked in prayer, for example, eating, drinking, useless acts, and turning towards any direction, etc. (T)

Similarly, Allama Sayyid Ahmad Misri narrated in the marginalia of Sharh Nur al-Idah, referencing Sharh al-Kanz by Allama Umar bin Nujaym and Sharh al-Quduri by Mukhtar bin Mahmud. In Sharh al-Niqayah by Allama Muhammad Quhistani, it is stated:

Arabic: Kama muni'a al-kalamu muni'a al-aklu wash-shurbu al-'abathu wal-iltifatu wal-takhtitu wa ghayruha mimma muni'a fi al-salati kama fi Jallabi. Translation: Just as speech is forbidden, similarly eating, drinking, useless acts, turning towards someone else, and drawing lines, etc., which are forbidden in prayer, are also forbidden, as mentioned in Jallabi. (T)

In the text and commentary of Allama Hasan Shurunbulali, it is stated:

Arabic: (Kuriha lihadiril khutbatil aklu wash-shurbu) wa qala al-Kamal yahrumu (wal-'abathu wal-iltifatu) fiyujtanabu ma yuhtanabu fi al-salati. Ah bikhtisarin. Translation: (Eating and drinking is disliked for the person present at the sermon). Kamal said it is forbidden (including useless acts and turning towards another side). Therefore, one should avoid everything that is avoided in prayer. [End of quote] in short. (T)

In Ghunyah Sharh al-Munyah by Allama Ibrahim al-Halabi, it is stated:

Arabic: Al-istima'u wal-insatu wajibun 'indana wa 'inda al-jumhuru hatta innahu yukrahu qira'atu al-Qur'ani wa nahwiha wa raddu al-salamu tashmitu al-'atisi wa kadha al-aklu wash-shurbu wa kullu 'amalin. Translation: Listening to the sermon and paying attention to it is mandatory according to us and the majority [of scholars], so much so that during it, reciting the Quran etc., responding to greetings, responding

to a sneeze is disliked; and similarly, eating, drinking, and every action falls under the same ruling. (T)

1. Hashiyah al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, referencing al-Nahr from al-Bada'i, conceptually, chapter of Friday (Jumu'ah), published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 282
2. Jami' al-Rumuz, section on Friday prayer, published by Gumbad Qamus Iran 1/268
3. Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, p. 283
4. Ghunyah al-Mustamli Sharh Munyah al-Musalli, section on Friday prayer, published by Sohail Academy Lahore, p. 560

फ़तावा रज़विया - जिल्द आठवीं

इमाम मुहम्मद इब्न अमीर अल-हज्ज अल-हलबी की शरह मुनया में है:

अरबी: जैसा कि हर प्रकार की बातचीत नापसंद है, वैसे ही उसके समान कार्य जैसे लिखना आदि भी नापसंद हैं जो ख़ुत्बा सुनने में बाधा डालते हैं। यहाँ तक कि शरह अल-ज़ाहीदी में है कि ख़ुत्बा सुनने वाले के लिए वह चीज़ मकरूह है जो नमाज़ में मकरूह है, जैसे खाना-पीना, व्यर्थ कार्य और किसी और ओर ध्यान देना आदि। अनुवाद: जैसे हर तरह की बातचीत वर्जित है, वैसे ही उसके स्थान पर होने वाले कार्य जैसे लिखना आदि भी वर्जित हैं जो ख़ुत्बा सुनने में खलल डालें। यहाँ तक कि शरह अल-ज़ाहीदी में है कि ख़ुत्बा सुनने वाले के लिए वह चीज़ मकरूह (नापसंद) है जो नमाज़ में मकरूह है, जैसे खाना-पीना, व्यर्थ कार्य और किसी और तरफ ध्यान देना आदि। (त)

इसी प्रकार अल्लामा सैय्यद अहमद मिस्री ने हाशिया शरह नूरुल ईज़ाह में शरह अल-कन्ज़ (अल्लामा उमर बिन नुजैम कृत) और शरह अल-क़ुद्दूरी (मुख्तार बिन महमूद कृत) के हवाले से उल्लेख किया है। शरह निक़ाया अल्लामा मुहम्मद कहिस्तानी में है:

अरबी: जैसा कि बातचीत वर्जित है, वैसे ही खाना-पीना, व्यर्थ कार्य, इधर-उधर देखना और लकीरें खींचना आदि वर्जित हैं जो नमाज़ में वर्जित हैं, जैसा कि जलाबी में है। अनुवाद: जिस प्रकार बातचीत वर्जित है, उसी प्रकार खाना-पीना, व्यर्थ कार्य, किसी और ओर ध्यान देना और लकीरें खींचना आदि, जो नमाज़ में वर्जित हैं, वे भी वर्जित हैं जैसा कि जलाबी में है। (त)

अल्लामा हसन शरुनबुलाली के मूल पाठ और व्याख्या में है:

अरबी: (ख़ुत्बा में उपस्थित व्यक्ति के लिए खाना-पीना नापसंद है) और कमाल ने कहा कि यह हराम है (व्यर्थ कार्य और इधर-उधर देखना)। अतः उन चीज़ों से बचना चाहिए जिनसे नमाज़ में बचा जाता है। संक्षिप्त रूप में। अनुवाद: (ख़ुत्बा में उपस्थित व्यक्ति के लिए खाना-पीना मकरूह है)। कमाल ने कहा कि यह हराम है (व्यर्थ कार्य और किसी और ओर ध्यान देने के साथ)। अतः हर उस कार्य से बचना चाहिए जिससे नमाज़ में बचा जाता है। [उद्धरण समाप्त] संक्षेप में। (त)

अल्लामा इब्राहिम अल-हलबी की गुनिया शरह मुनया में है:

अरबी: सुनना और मौन रहना हमारे और बहुसंख्य विद्वानों के निकट अनिवार्य है, यहाँ तक कि क़ुरआन पाठ आदि, सलाम का उत्तर देना, छींकने वाले को दुआ देना, और वैसे ही खाना-पीना और

हर कार्य नापसंद है। अनुवाद: ख़ुत्बा सुनना और उसकी ओर ध्यान लगाना हमारे और अधिकांश विद्वानों के निकट अनिवार्य है, यहाँ तक कि उसके दौरान क़ुरआन का पाठ करना आदि, सलाम का जवाब देना और छींक का जवाब देना मकरूह है; और इसी तरह खाना-पीना और हर कार्य का यही नियम है। (त)

1. हाशिया अल-तहतावी अला मराक़िल फ़लाह, अल-नहर अन अल-बदई के हवाले से, वैचारिक रूप से, जुमे का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. २८२
2. जामि अल-रुमूज़, जुमे की नमाज़ पर अनुभाग, गुंबद क़ामूस ईरान १/२६८ द्वारा प्रकाशित
3. मराक़िल फ़लाह मअ हाशिया अल-तहतावी, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. २८३
4. गुनिया अल-मुस्तमली शरह मुनया अल-मुसल्ली, जुमे की नमाज़ पर अनुभाग, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृ. ५६०

पृष्ठ ३३१ का ६४३

شرح منیہ امام محمد ابن امیر الحاج حلبی میں ہے:

عربی: کما یکرہ الکلام بانواعہ یکرہ مایجراہ من کتابۃ ونحوھا مما یشغل عن سماعھا حتی ان فی شرح الزاھدی ویکرہ لمستمع لخطبۃ مایکرہ فی الصلوۃ کالاکل والشرب والعبث والالتفات ۔ اردو ترجمہ: جیسے ہر طرح کی گفتگو منع ہے ویسے ہی اس کے قائم مقام مثلاً کتابت وغیرہ جو خطبہ کے سماع میں خلل ڈالے حتی کہ شرح الزاہدی میں ہے کہ خطبہ کے سامع کے لئے ہو وہ شیء مکروہ ہے جو نماز میں مکروہ ہے مثلاً کھانا پینا، عبث فعل اور کسی طرف متوجہ ہونا وغیرہ (ت)

اسی طرح علامہ سید احمد مصری نے حاشیہ شرح نورالایضاح میں بحوالہ شرح الکنز للعلا مۃ عمر بن نجیم و شرح القدوری لمختار بن محمود سے نقل کیا۔ شرح نقایہ علامہ محمد قہستانی میں ہے:

عربی: کما منع الکلام منع الاکل والشرب العبث والالتفات والتخطی وغیرھا مما منع فی الصلوۃ کما في جلابی۔ اردو ترجمہ: جس طرح گفتگو منع ہے اسی طرح کھانا پینا عبث کام، کسی اور طرف متوجہ ہونا اور خط وغیرہ کھینچنا جو کہ نماز میں ممنوع ہیں منع ہیں جیسا کہ جلابی میں ہے۔ (ت)

متن و شرح علامہ حسن شرنبلالی میں ہے:

عربی: (کرہ لحاضر الخطبۃ الاکل والشرب) وقال الکمال یحرم (والعبث والالتفات) فیجتنب ما یحتنبہ فی الصلوۃ۔ اھ باختصار۔ اردو ترجمہ: (خطبہ میں حاضر شخص کے لئے کھانا پینا مکروہ ہے) کمال نے کہا حرام ہے (بے فائدہ کام کسی اور طرف متوجہ ہونا) پس ہر شے سے اجتناب کرنا چاہئے جس سے نماز میں اجتناب کیا جاتا ہے اھ اختصاراً (ت)

غنیہ شرح منیہ للعلا مہ ابرا ہیم الحلبی میں ہے:

عربی: الاستماع والانصات واجب عندنا وعند الجمهور حتی انہ یکرہ قراءۃ القرآن ونحوها ورد السلام تشمیت العاطس وکذا الاکل والشرب وکل عمل۔ اردو ترجمہ: خطبہ سننا اور اُس کی طرف متوجہ ہونا ہمارے اور جمہور کے نزدیک واجب ہے حتی کہ اس کے دوران قرات قرآن وغیرہ، سلام کا جواب ، چھینک کا جواب مکروہ ہے اور اسی طرح کھانا پینا اور ہر عمل کا یہی حکم ہے (ت)

1 حاشیہ الطحطاوی علی مراقی الفلاح بحوالہ النہر عن البدائع مفہوما باب الجمعہ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۸۲ 2 جامع الرموز فصل فی صلوۃ جمعہ مطبوعہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۲۶۸ 3 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۸۳ 4 غنیہ المستملی شرح منیہ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۶۰

Volume Eight Fatawa-e-Razvia

Can any sensible person say that the aforementioned act of fanning for the one praying is permissible during prayer? Absolutely not, it is forbidden. Thus, according to the abundant explanations of the reliable Imams and scholars, it is also forbidden and sinful during the sermon. From this, the answer to the narration about gesturing with the eyes, head, and hands also becomes clear. Where is gesturing once towards someone committing an evil or for some need, and where is fanning the attendees throughout the sermon? This comparison is invalid. If this were correct, then such movement would be permissible in prayer as well, because such a gesture is not forbidden even during prayer. For example, if someone greets a person praying, or the one praying replies with a gesture of the head or hand, or someone asks for something and they gesture yes or no, or someone asks how many cycles (rak'ahs) were performed and they indicate with fingers, or someone shows a coin and asks if it's counterfeit or genuine and they answer with a nod – all these forms, although disliked (makruh), are not forbidden nor do they invalidate the prayer. In Durr-e-Mukhtar, Chapter of Nullifiers of Prayer, it is stated:

(Returning the greeting) even if by mistake (with the tongue) not with the hand, rather it is disliked according to the reliable view. (T)	**(Wadd al-Salam) walau sahwan (bilisanihi) la biyadihi bal yukrahu alal mu'tamad -1**

In Radd al-Muhtar, it is stated:

That is, returning the greeting with the hand does not invalidate the prayer, contrary to the one who attributed it to Imam Abu Hanifa that it invalidates prayer. This is because such a narration is not known from any of the followers of the school (Madhhab). Scholars have stated the non-invalidation without mentioning any disagreement. In fact, the explicit text of al-Tahtawi states that it is the view of our three Imams, as found in al-Hilya. In al-Bahr al-Ra'iq, it is mentioned that invalidation is not established in the Madhhab. The action of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) indicates the lack of invalidation, as narrated by Abu Dawud, and authenticated by al-Tirmidhi. It is explicitly mentioned in al-Munya that it is disliked (makruh), meaning tanzihi (lightly disliked). Summarized (T).

Ay la yufsiduha radd al-salam biyadihi khilafan liman aza ila abi hanifata annahu mufsidun fa-innahu lam yu'raf naqluhu min ahadin min ahl al-madhhab wa innama yadhkuruna adam al-fasad bila hikayati khilafin bal sarihu kalami al-tahtawi annahu qawlu aimmatina al-thalathati kadha fil hilyati wa fil bahri al-ra'iqi inna al-fasada wa laysa bi-thabitin fil madhhab wa yadullu li-adami al-fasadi annahu sallallahu ta'ala alaihi wa sallama fa'alahu kama rawahu abu dawuda wa sahhahahu fit tirmidhi wa sarraha fil muniyati bi-annahu makruhun ay tanzihiyya^2 ah mukhtasaran

---

1 Durr-e-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer, Published by Mujtabai Delhi India 1/89 2 Radd al-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer, Published by Mustafa al-Babi Egypt 1/455

भाग आठवाँ फ़तावा-ए-रज़विया

क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति कह सकता है कि नमाज़ पढ़ने वाले के लिए नमाज़ की स्थिति में पंखा झलना (बादकशी) हलाल है? हरगिज़ नहीं, यह बिल्कुल हराम है। अतः विश्वसनीय इमामों और विद्वानों के प्रचुर स्पष्टीकरणों के अनुसार, खुतबे की स्थिति में भी यह हराम और पाप का कारण है। यहीं से आँखों, सिर और हाथों के संकेत वाली उस रिवायत का उत्तर भी स्पष्ट हो गया। कहाँ किसी बुराई करने वाले को रोकने या किसी आवश्यकता के लिए एक इशारा कर देना, और कहाँ खुतबे के दौरान हाज़िरीन को पंखा झलते फिरना। यह तुलना ग़लत है। यदि यह सही होती, तो ऐसी हरकत नमाज़ में भी जायज़ ठहरती, क्योंकि ऐसा इशारा तो नमाज़ के बीच में भी हराम नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति नमाज़ी को सलाम करे या नमाज़ी सिर या हाथ के इशारे से उत्तर दे दे, या कोई कुछ माँगे और वह हाँ या ना का इशारा कर दे, या कोई पूछे कि कितनी रकअतें हुईं और वह उंगलियों के इशारे से बता दे, या कोई सिक्का दिखाकर खोटा-खरा पूछे और वह इशारे से उत्तर दे दे - तो ये सभी रूप यद्यपि मकरूह हैं, लेकिन हराम और नमाज़ को अमान्य (मुफ़्सिद) करने वाले नहीं हैं। 'दुर्रे मुख्तार' के'नमाज़ को अमान्य करने वाले कार्यों' (मुफ़्सिदात-ए-सलात) के अध्याय में है:

(सलाम का जवाब देना) चाहे भूल से हो (ज़बान के साथ) न कि हाथ के साथ, बल्कि यह विश्वसनीय मत के अनुसार मकरूह है। (त)	**و لو سهوا (ورد السلام) لا بيده بل يكره على (بلسانه) 1- المعتمد**

'रद्दुल मुहतार' में है:

अर्थात हाथ के साथ सलाम का जवाब देना नमाज़ के लिए अमान्य (फ़ासिद) नहीं है, उसके विपरीत जिसने इसे इमाम अबू हनीफ़ा की ओर मंसूब किया है कि यह नमाज़ को फ़ासिद कर देता है। क्योंकि मज़हब के किसी भी व्यक्ति से इसका ऐसा उल्लेख प्रसिद्ध नहीं है। विद्वानों ने बिना किसी मतभेद के उल्लेख किए अदम-ए-फ़साद (अमान्य न होना) बयान किया है। बल्कि तातवी के स्पष्ट कलाम में है कि यह हमारे तीनों इमामों का मत है, जैसा कि 'हिलया' में है। और 'बह़रुल रैक' में है कि फ़साद मज़हब में साबित नहीं है और इसके अमान्य न होने पर नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का अमल दलालत करता है, जैसा कि अबू दाऊद में है, तिरमिज़ी ने इसकी तस्दीक की है और 'मुनिया' में इसके मकरूह (तन्ज़ीही) होने की स्पष्टता है। (संक्षेप में) (त)

ای لا یفسدها رد السلام بیده خلاف لمن عزا الی ابی حنیفه انیه مفسد فانه لهم یعرف نقله من احد من اهل المذب و انما یذکرون عدم الفساد بلا حکایة خلاف بل صریح کلام الطحطاوی انه قول ائمتنا الثلثة کذا فی الحیلة و فی البحر الرائق ان الفساد و لیس بثابت فی المذهب و یدل لعدم الفساد انه صلی الله تعالی علیه و سلم فعله کما رواه ابو داؤد وصححه فی الترمذی و صرح فی المنیة بانه مکروه ای تنزیها2 اه مختصرا

---

1 दुर्रे मुख्तार, नमाज़ को अमान्य करने वाले कार्यों का अध्याय, मुजतबाई दिल्ली, भारत 1/89 2 रद्दुल मुहतार, नमाज़ को अमान्य करने वाले कार्यों का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र 1/455

کیا کوئی عاقل کہہ سکتا ہے کہ بادکشی مذکور نمازی کو بحالتِ نماز حلال ہے حاشا قطعاً حرام ہے تو حسب تصریحاتِ متوافرہ ائمہ وعلمائے معتمدین بحالتِ خطبہ بھی حرام و موجبِ آثام ہے یہیں سے اُس روایتِ اشارہ بچشم وسر و دست کا بھی جواب ظاہر ہو گیا کہاں کسی منکر یا اور کسی حاجت کے لئے ایک اشارہ کر دینا اور کہاں حالتِ خطبہ میں حاضرین کو پنکھا جھلتے پھرنا، یہ قیاس فاسد اگر صحیح ہو تو یہ حرکت نماز میں بھی جائز ٹھہرے کہ ایسا اشارہ تو عین نماز میں بھی حرام نہیں، مثلاً کوئی شخص نمازی کو سلام کرے یا نمازی سر یا ہاتھ کے اشارے سے جواب دے دے یا کوئی کچھ مانگے یہ ہاں یا نہ کا اشارہ کردے، یا کوئی پوچھے کے رکتیں ہوئیں، یہ انگلیوں کے اشارہ سے بتادے یا کوئی روپیہ دکھا کر کھوٹا کھرا پوچھے یہ ایما سے جواب دے دے تو یہ سب صورتیں اگرچہ مکروہ ہیں مگر حرام و مفسدِ نماز نہیں، در مختار باب مفسدات الصلوٰۃ میں ہے :

(سلام کا جواب دینا) اگرچہ بھول کر ہو (زبان کے ساتھ) نہ کہ ہاتھ کے ساتھ، بلکہ یہ معتمد قول کے مطابق مکروہ ہے۔ (ت)

(ورد السلام) و لو سھوا (بلسانہ) لا بیدہ بل یکرہ علی المعتمد -1

رد المحتار میں ہے:

یعنی ہاتھ کے ساتھ سلام کا جواب دینا نماز کے لئے فاسد نہیں بخلاف اس کے جس نے امام ابو حنیفہ کی طرف منسوب کیا ہے کہ یہ فاسدِ نماز ہے کیونکہ اس کا یہ کسی اہل مذہب سے منقول ہونا معروف نہیں علماء نے بغیر اختلاف ذکر کئے عدم فساد بیان کیا ہے بلکہ کلامِ طحطاوی میں تصریح ہے کہ یہ تینوں ائمہ کا قول ہے جیسا کہ حلیہ میں ہے، اور بحر الرائق میں ہے کہ فساد مذہب میں ثابت نہیں اور اس کے عدم فساد پر نبی اکرم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کا عمل دلالت کرتا ہے جیسا کہ ابوداؤد میں ہے، ترمذی نے اس کی تصحیح فرمائی اور منیہ میں اس کے مکروہ (تنزیہی) ہونے کی تصریح ہے اھ مختصراً (ت)

ای لا یفسدھا رد السلام بیدہ خلاف لمن عزا الی ابی حنیفہ انیہ مفسد فانہ لہم یعرف نقلہ من احد من اھل المذب و انما یذکرون عدم الفساد بلا حکایۃ خلاف بل صریح کلام الطحطاوی انہ قول ائمتنا الثلثۃ کذا فی الحیلۃ و فی البحر الرائق ان الفساد و لیس بثابت فی المذھب و یدل لعدم الفساد انہ صلی اللہ تعالی علیہ و سلم فعلہ کما رواہ ابو داؤد وصححہ فی الترمذی و صرح فی المنیۃ بانہ مکروہ ای تنزیھا2 اھ مختصرا

---

1 درمختار باب مایفسد الصلوۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۸۹ 2 ردالمحتار باب مایفسد الصلوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۵۵

Fatawa Rizvia - Volume 8

It is mentioned in the section on disliked acts (Makruhat) of (Al-Durr al-Mukhtar):

Arabic Text	Urdu Translation
لا باس بتكلم المصلى واجابتہ براسہ كما لو طلب منه شيئ اوارى درهما قيل اجيد فاو ما بنعم اولا او قيل كم صليتم فاشار بيده انهم صلوا ركعتين 1۔	There is no harm if a person in prayer responds or speaks by nodding the head. For example, if something is requested from him, or he is shown a dirham and asked if it is genuine, and he signals 'yes' or 'no' with his head. Or if he is asked, "How many cycles (Rak'ahs) did you pray?" and he signals with his hand that he prayed two cycles. (T)

In Radd al-Muhtar:

Arabic Text	Urdu Translation
قوله واجبتہ براسہ قال فى الامداد و به ورد الاثر عن عائشه رضى اللہ تعالىٰ عنها وكذا فى تكليم الرجل المصلى قال تعالىٰ فنادته الملئكۃ وهو قائم يصلي في المحراب 2۔	In Radd al-Muhtar: Regarding the text's statement "responding by nodding the head in prayer", it is mentioned in Al-Imdad that a narration from Lady Aisha (may Allah be pleased with her) is reported on this. Similarly, concerning someone speaking to a person in prayer, Allah Almighty says: "The angels called out to him while he stood praying in the sanctuary." (T)

Explicit clarification has been provided in these statements of the Imams that it is prohibited (Haram) to walk during the sermon (Khutbah). Scholars even state that if someone arrives when the Khutbah has started, they should stop exactly where they reached in the mosque and not proceed further, as walking would constitute an action, and no action is permissible during the Khutbah. Although being near the Imam is religiously desirable and its excellence is mentioned in Hadith and Fiqh, and sitting right there might cause space constraints for those coming later, these factors will not be considered, and permission to move forward will not be granted. However, walking around to fan people is somehow made permissible! It is stated in Khania, Hindia, etc.:

Arabic Text	Urdu Translation
ذكر الفقيه ابو جعفر قالا اصحابنا رضى اللہ تعالىٰ عنهم انه لا باس با لتخطى مالم يا خذ الامام فى	Faqih Abu Ja'far mentions that our companions (may Allah be pleased with them) said: There is no harm in stepping over people as long as the Imam has not

Arabic Text	Urdu Translation
الخطبة ويكره اذا اخذ للمسلم ان	started the sermon. It is disliked once he has started, for a Muslim to...

1. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter: What Nullifies Prayer, etc., printed by Mujtabai Press, Delhi, India, 1/91.
2. Radd al-Muhtar, Chapter: What Nullifies Prayer, etc., printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/477.

फ़तावा रिज़विया - जिल्द 8

उसी (दुर्र अल-मुख्तार) के मकरूहात (नापसंद कार्यों) में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
لا باس بتكلم المصلى واجابته براسه كما لو طلب منه شيئ اوارى درهما قيل اجيد فاو ما بنعم اولا او قيل كم صليتم فاشار بيده انهم صلوا ركعتين 1.	नमाज़ में अगर कोई सिर के इशारे के साथ बात करे या जवाब दे तो इसमें कोई हर्ज नहीं है। उदाहरण के लिए, उससे कोई चीज़ मांगी गई या उसे दिरहम दिखाकर पूछा गया कि क्या यह खरा है, तो उसने इशारे से 'हाँ' या 'ना' कहा। या यह पूछा गया कि 'तुमने कितनी रकातें पढ़ी हैं?' तो उसने हाथ के इशारे से बताया कि उसने दो रकातें अदा की हैं। (त)

रद्द अल-मुह्तार में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
قوله واجبته براسه قال فى الامداد و به ورد الاثر عن عائشه رضى الله تعالىٰ عنها وكذا فى تكليم الرجل المصلى قال تعالىٰ فنادته الملئكة وهو قائم يصلي في المحراب 2.	रद्द अल-मुह्तार में है: पाठ का यह कथन "नमाज़ में सिर के इशारे से जवाब देना", इसके बारे में अल-इमदाद में है कि हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से भी इस पर रिवायत मौजूद है। इसी तरह किसी का नमाज़ी से बात करना, तो इस बारे में अल्लाह तआला का फ़रमान है: फ़रिश्तों ने उन्हें पुकारा जबकि वह मेहराब में नमाज़ अदा कर रहे थे। (त)

इमामों के इन कथनों में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि खुतबा के दौरान चलना हराम है। यहाँ तक कि उलेमा फ़रमाते हैं कि अगर कोई व्यक्ति उस समय आए जब खुतबा शुरू हो चुका हो, तो मस्जिद में जहाँ तक पहुँचा है वहीं रुक जाए, आगे न बढ़े क्योंकि चलना एक 'अमल' (कार्य) होगा और खुतबा के दौरान कोई भी कार्य जायज़ नहीं है। हालाँकि इमाम के करीब होना शरीअत की दृष्टि से वांछनीय है और हदीस व फ़िक़्ह में इसकी फ़ज़ीलत (महिमा) लिखी है, और वहीं बैठ जाने से बाद में आने वालों के लिए जगह की तंगी हो सकती है, फिर भी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा और आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जाएगी। लेकिन पंखा झलते हुए फिरना ज़रूर जायज़ बना लिया जाएगा! खानिया, हिन्दिया आदि में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
ذكر الفقيه ابو جعفر قالا اصحابنا رضى اللہ تعالیٰ عنهم انه لا باس با لتخطى مالم يا خذ الامام فى الخطبة ويكره اذا اخذ للمسلم ان	फ़कीह अबू जाफ़र कहते हैं कि हमारे साथियों (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का फ़रमान है कि जब तक इमाम ने खुतबा शुरू नहीं किया है, तब तक (लोगों के ऊपर से) गुज़रने में कोई हर्ज नहीं है। जब खुतबा शुरू हो जाए तो एक मुसलमान के लिए यह मकरूह है कि...

---

1. दुर्र अल-मुख्तार, बाब: नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ें आदि, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, भारत, 1/91।
2. रद्द अल-मुह्तार, बाब: नमाज़ को फासिद करने वाली चीज़ें आदि, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/477।

पृष्ठ 333 / 673

اسی (در مختار) کے مکروہات میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لا باس بتکلم المصلی واجابتہ براسہ کما لو طلب منہ شیئ اواری درھما قیل اجید فاو ما بنعم اولا او قیل کم صلیتم فاشار بیدہ انھم صلوا رکعتین 1۔	نماز اگر سر کے اشارے کے ساتھ کلام یا جواب دے تو اس میں کوئی حرج نہیں، مثلاً اس سے کوئی شے طلب کی گئی یا اس سے دراہم کے بارے دریافت کیا گیا کہ کیا یہ کھرا ہے۔ تو اس نے اشارے سے ہاں یا نہ کہا، یا یہ پوچھا گیا کہ تم نے کتنی رکعات پڑھی ہیں، تو وہ ہاتھ کے اشارے سے بتلاتا ہے کہ اس نے دو رکعات ادا کی ہیں۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قولہ واجبتہ براسہ قال فی الامداد و بہ ورد الاثر عن عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا وکذا فی تکلیم الرجل المصلی قال تعالٰی فنادتہ الملئکۃ وھو قائم یصلي في المحراب 2۔	ردالمحتار میں ہے: متن کا قول "نماز کا سر کے اشارے سے جواب دینا" اس بارے میں الامداد میں ہے کہ حضرت عائشہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کا اس پر فرمان بھی منقول ہے اسی طرح کسی کا نمازی سے کلام کرنا، تو اس سلسلہ میں اللہ تعالٰی کا فرمان ہے ملائکہ نے انہیں آواز دی حالانکہ وہ محراب میں نماز ادا کر رہے تھے۔ (ت)

انھیں عبارات ائمہ میں تصریح گزری کہ بحالت خطبہ چلنا حرام ہے یہاں تک کہ علمائے کرام فرماتے ہیں کہ اگر ایسے وقت آیا کہ خطبہ شروع ہو گیا مسجد میں جہاں تک پہنچا وہیں رک جائے آگے نہ بڑھے کہ عمل ہوگا اور حال خطبہ میں کوئی عمل روا نہیں حالانکہ امام سے قرب شرعاً مطلوب اور حدیث وفقہ میں اس کا فضل مکتوب اور وہیں بیٹھ جانے میں آئندہ آنے والوں کے لئے بھی جگہ کی تنگی ہے ان امور پر لحاظ نہ کریں گے اور آگے بڑھنے کی اجازت نہ دیں گے مگر پنکھا جھلتے پھر نا ضرور جائز بنا ہی لیا جائے گا، خانیہ و ہندیہ و غیرہ ہما میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ذکر الفقیه ابو جعفر قالا اصحابنا رضی الله تعالیٰ عنهم انه لا باس با لتخطی مالم یا خذ الامام فی الخطبة ویکره اذا اخذ للمسلم ان	فقیہ ابو جعفر کہتے ہیں کہ ہمارے اصحاب رضی الله تعالیٰ عنہم کا فرمان ہے کہ جب تک امام نے خطبہ شروع نہیں کیا اس وقت تک چلنے میں کوئی حرج نہیں، جب

---

1 در مختار باب مایفسد الصلوة الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت 1/ 91 2 ردالمحتار باب مایفسد الصلوة الخ مطبوعہ مصطفی البابی مصر 1/ 477

Volume 8

Fatawa Razawiyya

Arabic Original	Urdu Translation
One should move forward and draw near to the Mihrab when the Imam is not delivering the sermon, so that the space expands for those who come after him, and he attains the merit of proximity to the Imam. If the first person does not do so, he has wasted that place without a valid excuse; therefore, it is permissible for the one who comes after him to take that place. As for the one who comes while the Imam is delivering the sermon, he must remain in his place in the mosque because his walking and moving forward is considered an action during the state of the sermon.[1]	Since the Imam has started the sermon, it is now disliked (makruh). Because when the Imam is not delivering the sermon, a Muslim should move close to the Mihrab so that space is created for people coming later, and through this, the virtue of proximity to the Imam will also be achieved. When he did not take the initiative, he wasted that place without excuse. Now, the person coming later can take that place. But the person who arrived while the Imam was delivering the sermon should sit in his place in the mosque because now his walking and moving forward will be considered an action during the state of the sermon. (T)

Walking is a significant matter; it has been explicitly mentioned in these statements of scholars that drinking a sip of water while the sermon is in progress is prohibited (haram), and turning one's neck to any side is prohibited. Therefore, the aforementioned movement would be strictly prohibited to a higher degree. From these clear reasons, the answer to those who include this in good deeds and "preferring others over themselves" has become clear. Goodness and self-sacrifice are only considered when the act itself is permissible. When the act itself is forbidden from the start, what is the place for counting its virtues? Fanning Muslims would be highly recommended where it is permissible, but responding to greetings and commanding good, which were obligatory, become forbidden for the attendees during the sermon. Is there any room left here to argue based on their virtues and obligation? It is stated in Al-Ghunyah:

Arabic Original	Urdu Translation
It is not said that responding to a greeting is an obligation (fard), so one	It cannot be objected that responding to a greeting is obligatory, so it should not be

Arabic Original	Urdu Translation
should not be prevented from it, because we say that is the case when the greeting is legally permitted, which is not the case during the state of the sermon; rather, its doer commits a sin.[2]	forbidden. Because in response, it will be said that the obligation is there where there is legal permission to greet. However, in the state of the sermon, it is not permitted; rather, the one who performs such an act will be a sinner. (T)

You call the clear restlessness of others as their tranquility. [He quoted the verse:] "They prefer [others] over themselves."[3] - (They prioritize others over their own selves).

---

[1] Fatawa Hindiyya, Chapter 16, regarding Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/28 - 127. [2] Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Section on Friday Prayer, published by Suhail Academy, Lahore, p. 560. [3] Al-Quran, 59/9

जिल्द आठवीं

फ़तावा रज़विया

अरबी मूल

जब इमाम खुतबा (धर्मोपदेश) न दे रहा हो, तो मिहराब के पास आगे बढ़ना और उसके करीब होना चाहिए ताकि बाद में आने वालों के लिए जगह बन जाए और इमाम की निकटता का पुण्य प्राप्त हो। यदि पहले व्यक्ति ने ऐसा नहीं किया, तो उसने बिना किसी ठोस कारण के उस स्थान को व्यर्थ कर दिया; अतः बाद में आने वाले व्यक्ति के लिए उस स्थान को लेना जायज़ है। लेकिन जो व्यक्ति उस समय आया जब इमाम खुतबा दे रहा हो, तो उसे मस्जिद में अपने स्थान पर ही रुक जाना चाहिए क्योंकि उसका चलना और आगे बढ़ना खुतबा की स्थिति में 'अमल' (कार्य/विक्षेप) माना जाएगा।[1]

उर्दू अनुवाद

चूंकि इमाम ने खुतबा शुरू कर दिया है, इसलिए अब यह नापसंद (मक़रूह) है। क्योंकि जब इमाम खुतबा नहीं दे रहा होता है, तो मुसलमान को चाहिए कि वह मिहराब के करीब हो जाए ताकि बाद में आने वाले लोगों के लिए जगह बन जाए और इसके माध्यम से इमाम की निकटता की फ़ज़ीलत (महिमा) भी प्राप्त होगी। जब उसने पहल नहीं की, तो उसने बिना किसी उज़्र (बहाने) के वह जगह ज़ाया (नष्ट) कर दी। अब बाद में आने वाला व्यक्ति वह जगह हासिल कर सकता है। लेकिन जो व्यक्ति उस समय आया जब इमाम खुतबा दे रहा था, तो वह मस्जिद में अपनी जगह पर ही बैठ जाए क्योंकि अब उसका चलना और आगे बढ़ना खुतबा की हालत में अमल होगा। (त)

चलना तो बड़ी बात है, विद्वानों के इन्हीं कथनों में यह स्पष्ट किया गया है कि खुतबा होने के दौरान एक घूंट पानी पीना हराम है, किसी तरफ गर्दन घुमाकर देखना हराम है, तो वह उक्त हरकत किस स्तर तक सख्त हराम होगी। इन्हीं स्पष्ट कारणों से उन लोगों का जवाब साफ़ हो गया जो इसे नेक काम और "दूसरों को अपने आप पर तरजीह देने" (ईसार) में शामिल करते हैं। नेकी और ईसार तो तब देखा जाए जब वह कार्य वहाँ जायज़ भी हो। जब मूल रूप से वह कार्य ही हराम है, तो उसके गुणों को गिनने का क्या अवसर है? मुसलमानों को पंखा झलना तो जहाँ जायज़ हो वहाँ अत्यंत प्रशंसनीय होगा, लेकिन सलाम का जवाब देना और भलाई का हुक्म देना, जो कि अनिवार्य (वाजिब) थे, खुतबा की स्थिति में उपस्थित लोगों पर हराम हो गए। अब क्या यहाँ उनके गुणों और अनिवार्यता से तर्क देने की कोई गुंजाइश है? 'गुन्या' में है:

अरबी मूल

यह नहीं कहा जाएगा कि सलाम का जवाब देना फ़र्ज़ है, इसलिए इससे रोका नहीं जाना चाहिए, क्योंकि हम कहेंगे कि वह तब है जब सलाम करने की शरई अनुमति हो, जबकि खुतबा की स्थिति में ऐसा नहीं है; बल्कि ऐसा करने वाला गुनहगार होगा।[2]

उर्दू अनुवाद

यह ऐतराज़ (आपत्ति) नहीं किया जा सकता कि सलाम का जवाब देना फ़र्ज़ है इसलिए इससे मना न किया जाए, क्योंकि जवाब में कहेंगे कि फ़र्ज़ वहाँ है जहाँ शरई तौर पर सलाम करने की इजाज़त हो, जबकि खुतबा की हालत में इसकी इजाज़त नहीं बल्कि ऐसा अमल करने वाला गुनहगार होगा। (त)

दूसरों की स्पष्ट बेचैनी को आप इत्मीनान (संतुष्टि) कहते हैं। [कुरआन की आयत है:] "वे दूसरों को अपने आप पर तरजीह देते हैं"[3] - (वे अपनी जात पर दूसरों को प्राथमिकता देते हैं)।

---

[1] फ़तावा हिन्दिया, अध्याय 16, जुमा की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/28 - 127। [2] गुन्यातुल मुस्तमली शरह मुन्यातुल मुसल्ली, जुमा की नमाज़ का अध्याय, सुहैल अकादमी, लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 560। [3] अल-कुरआन, 59/9

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

عربی متن	اردو ترجمہ
يتقدم ويدنو من المحراب اذالم يكن الامام في الخطبة ليتسع المكان على من يجي بعده وينال فضل القرب من الامام، فاذا لم يفعل الاول فقد ضيع ذلك المكان من غير عذر، فكان للذي جاء بعده ان يأخذ ذلك المكان، واما من جاء والامام يخطب، فعليه ان يستقر في موضعه من المسجد لان مشيه فتقدمه عمل في حالة لخطبة - 1	امام نے خطبہ شروع کردیا تو اب کراہت ہے کیونکہ امام خطبہ نہیں دے رہا تو مسلمان کو چاہئے کہ وہ محراب کے قریب ہوجائے تاکہ بعد میں آنے والے لوگوں کے لئے جگہ بن جائے اور اس کے ذریعے امام کی قربت کی فضیلت بھی حاصل ہوگی جب اس نے پہل نہ کی تو اس نے بغیر عذر وہ جگہ ضائع کردی ، اب بعد میں آنے والا شخص وہ جگہ حاصل کرسکتا ہے لیکن جو شخص اس وقت آیا جب امام خطبہ دے رہا تھا تو وہ مسجد میں اپنی جگہ پر ہی بیٹھ جائے کیونکہ اب اس کا چلنا اور آگے بڑھنا حالت خطبہ میں عمل ہوگا۔ (ت)

چلنا تو بڑی چیز ہے انھیں عبارات علماء میں تصریح گزری کہ خطبہ ہوتے میں ایک گھونٹ پانی پینا حرام، کسی طرف گردن پھیر کر دیکھنا حرام، تو وہ حرکت مذکورہ کس درجہ سخت حرام ہوگی، انھیں وجوہِ زاہرہ سے اس کے نیک کام اور یؤثرون علی انفسھم میں داخل ہونے کا جواب روشن ہوگیا، نیکی وا یثار تو جب دیکھیں کہ فعل وہاں جائز بھی ہو جب سرے سے نفس فعل حرام، تو اس کے فضائل گننے کا کیا محل، مسلمانوں کو پنکھا جھلنا تو جہاں جائز ہو وہاں غایت درجہ

مستحب ہوگا، جواب سلام دینا، امر بالمعروف کرنا تو واجب تھے اور بحالت خطبہ حاضرین پر حرام ہوئے، اب کیا یہاں ان کے فضائل ووجوب سے استدلال کی گنجائش ہے، غنیہ میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
لایقال ردالسلام فرض فلا یمنع منه لانا نقول ذلك اذا كان السلام فاذونا فیه شرعا ولیس كذلك في حالة الخطبة بل یرتكب فاعله اثماً - 2	یہ اعتراض نہیں کیا جاسکتا کہ سلام کا جواب دینا فرض ہے لہذا اس سے منع نہ کیا جائے کیونکہ جواباً کہیں گے فرض وہاں ہے یہاں شرعاً سلام کرنے کی اجازت ہو حالانکہ حالت خطبہ میں اس کی اجازت نہیں بلکہ ایسا عمل کرنے والا گنہگار ہوگا۔ (ت)

اوروں کے اطمینان کو آپ صریح بے اطمینانی یُؤْثِرُونَ عَلَىٰ أَنْفُسِهِمْ -3 (وہ اپنی ذات پر دوسروں کو ترجیح)

---

1 فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۲۸ - ۱۲۷

2 غنیہ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۶۰ 3 القرآن ۹/ ۵۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

...they give [advice]. T) In "Do you command people to virtue and forget yourselves?" (Quran 2:44), [you] are included. (Meaning you give people the command of goodness but forget your own selves. T) In this is included the proverb "advice to others and disgrace for oneself" (advising others but acting disgracefully oneself. T). The noble scholars have a discussion regarding preference in spiritual closeness (Ithar-e-Qurbat), but not about committing a forbidden act for the closeness of others; this is not self-sacrifice (Ithar) but clearly harmful to one's own faith, as it is not hidden (kama la yukhafa. T). From here it is clear that limiting the prohibition to merely a useless and vain act is completely wrong; rather, any such act, no matter how useful it may appear, is legally (shar'an) included in 'laghw' (idle/void act) during the sermon. To look at its benefit is false; instead of profit, harm is obtained. Ultimately, the pure Sharia has forbidden 'Amr-bil-Ma'ruf' (commanding the good) at this time, which is a highly useful and important thing, and it has declared saying even two characters like 'Hush' (be quiet) as part of 'laghw'. It is in the Sahih Sittah from Abu Huraira (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

When you say to your companion on Friday, 'Be quiet,' while the Imam is preaching, you have committed an idle act.

When on Friday, during the Imam's sermon, you say to another 'be quiet', then you yourself have committed an idle act.

In Musnad Ahmad and Sunan Abi Dawood, it is from the Leader of the Believers, Maula Ali (may Allah honor him), that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

Whoever says to his companion on Friday, 'Hush,' has committed an idle act, and whoever commits an idle act has nothing in his Friday prayer.

Whoever says 'be quiet' to his companion on the day of Friday has committed an idle act, and for whoever commits an idle act, there is no reward for him in this Friday.

Imam Ahmad narrates from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

He who speaks on Friday while the Imam is preaching is like a donkey carrying books, and the one who says to him 'Be quiet' has no Friday [prayer reward].	**On the day of Friday, when the Imam is in the sermon, the one who speaks is like a donkey loaded with books, and the one who says 'be quiet' to him, his Friday is not [complete/valid].**

From here it is evident that the deduction from the mentioned Hadith of Istisqa in the Sahihayn is not correct. If anything is proven from it, then the consensus of the leading Imams of the school (Madhhab) and the authentic Hadiths (some of which were mentioned) regarding the prohibition of speaking during the Imam's sermon are decisive in ending the dispute, for the prohibitor takes precedence [over the permitter], and the full discussion is in 'Al-Fath' etc. (as the consideration of a prohibitor is primary and detailed on this).

---

1. Al-Quran 2/44
2. Sahih al-Bukhari, Chapter: Al-Insaaf yawm al-Jumu'ah, etc., published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/128
3. Sunan Abu Dawood, Chapter: Fadl al-Jumu'ah, published by Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/151
4. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with him), published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/230

फ़तावा रज़विया, खंड 8

...देते हैं। त (नोट): "क्या तुम लोगों को नेकी का हुक्म देते हो और अपने आप को भूल जाते हो" (कुरान 2:44) में शामिल हैं। (यानी तुम लोगों को तो भलाई का आदेश देते हो और अपने आप को भूल जाते हो। त) इसमें वह कहावत "नसीहत दूसरों को, फ़ज़ीहत अपने को" (दूसरों को सलाह और खुद को अपमानित करना। त) भी शामिल है। उलेमा-ए-किराम 'ईसार-ए-क़ुरबत' (दूसरों के लिए पुण्य का त्याग) में तो विचार करते हैं, लेकिन दूसरों की भलाई के लिए स्वयं हराम काम करने पर नहीं; यह त्याग नहीं है बल्कि स्पष्ट रूप से अपने दीन के लिए हानिकारक है, जैसा कि छिपा नहीं है (कमा ला युख़फ़ा। त)। यहीं से स्पष्ट है कि मनाही को केवल एक बेकार और व्यर्थ काम तक सीमित करना पूरी तरह गलत है; बल्कि ऐसा हर कार्य, चाहे वह कितना ही उपयोगी क्यों न हो, खुतबा (प्रवचन) के समय शरीयत की दृष्टि में 'लग्व' (व्यर्थ) में शामिल है। इसके लाभ पर विचार करना व्यर्थ है; लाभ के बजाय इससे हानि होती है। अंतत; पवित्र शरीयत ने इस समय 'अम्र बिल मारूफ' (नेकी का हुक्म) को भी हराम ठहराया है, जो एक बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण चीज़ है, और 'हुश' (चुप रहने को कहना) जैसे शब्द कहने को 'लग्व' करार दिया है। सहाह सित्ता में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

जब तुमने जुमे के दिन अपने साथी से कहा 'खामोश रहो' जबकि इमाम खुतबा दे रहा हो, तो तुमने व्यर्थ काम किया।

जब जुमे के दिन इमाम के खुतबा के समय दूसरे से कहे 'चुप', तो तूने खुद लग्व (व्यर्थ काम) किया।

मुसनद अहमद और सुनन अबी दाऊद में अमीरुल मोमिनीन मौला अली (करमल्लाहु वजहुल करीम) से है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

जिसने जुमे के दिन अपने साथी से कहा 'चुप', उसने व्यर्थ काम किया और जिसने व्यर्थ काम किया उसके लिए उस जुमे में कुछ नहीं है।

जो जुमे के दिन अपने साथी से 'चुप' कहे उसने लग्व किया और जिसने लग्व किया उसके लिए इस जुमे में कुछ अज्र (पुण्य) नहीं।

इमाम अहमद, हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

जो जुमे के दिन बोलता है जबकि इमाम खुतबा दे रहा हो, वह उस गधे की तरह है जिस पर किताबें लदी हों, और जो उससे कहे 'चुप', उसके लिए जुमा नहीं है।	**जुमे के दिन जब इमाम खुतबा में हो बोलने वाला ऐसा है जैसे गधा जिस पर किताबें लदी हों और जो उससे 'चुप' कहे उसका जुमा नहीं।**

यहीं से यह स्पष्ट हुआ कि बुखारी और मुस्लिम (सहीहैन) की ज़िक्र की गई इस्तस्का की हदीस से यह तर्क देना सही नहीं है। यदि उससे कुछ साबित होता भी है, तो इमाम के खुतबा के समय बातचीत की मनाही पर मज़हब के इमामों का इज्मा और सही हदीसें (जिनमें से कुछ का उल्लेख किया गया) इस विवाद को समाप्त करने के लिए निर्णायक हैं, क्योंकि मना करने वाली दलील जायज़ करने वाली पर प्राथमिकता रखती है, और इस पर विस्तार से चर्चा 'अल-फ़तह' आदि में है।

---

1. अल-क़ुरान 2/44
2. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: अल-इंसाफ़ यौम अल-जुमुआ आदि, पुराना कुतुब खाना कराची, 1/128
3. सुनन अबू दाऊद, अध्याय: फ़ज़्ल अल-जुमुआ, आफ़ताब-ए-आलम प्रेस लाहौर, 1/151
4. मुसनद अहमद बिन हंबल, अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत, दार अल-फ़िक्र बेरुत, 1/230

دیتے ہیں۔ ت) میں شمول نہیں أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنسَوْنَ أَنفُسَكُمْ ط (تم لوگوں کو نیکی کا حکم دیتے ہو اور اپنے آپ کو بھول جاتے ہو ۔ ت) میں دخول ہے یعنی دیگران را نصیحت و خود را فضیحت (اوروں کو تو اچھے کام کی نصیحت کرنا اور خود برے کام کرنا۔ ت) علمائے کرام تو ایثار قربت میں کلام رکھتے ہیں نہ کہ اوروں کی قربت کے لئے خود حرام کا ارتکاب، یہ ایثار نہیں صراحتًا اپنے دین کو اضرار ہے کما لا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں۔ ت) یہیں سے واضح کہ ممانعت کو صرف فعلِ عبث و بے فائدہ سے خاص کرنا محض غلط ہے بلکہ اس قسم کا ہر عمل اگرچہ کیسا ہی مفید ہو وقتِ خطبہ شرعاً لغو میں داخل اور اس کے فائدے پر نظرِ باطل بلکہ نفع در کنار اس سے ضرر حاصل ، آخر دیکھا کہ شرعِ مطہر نے اس وقت امر بالمعروف کو کہ اعلیٰ درجہ کی مفید و مہم چیز ہے حرام ٹھہرایا، اور دو حرف (چپ) کہنے کو لغو میں داخل فرمایا ، صحاح ستہ میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں،

اذا قلت لصاحبک یوم الجمعۃ انصت والامام یخطب فقد لغوت 2-

جب روزِ جمعہ خطبہ امام کے وقت تو دوسرے سے کہے چپ ، تو تُو نے خود لغو کیا۔

مسند احمد سُنن ابی داؤد میں امیر المومنین مولیٰ علی کرم اللہ وجہہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

من قال لصاحبه یوم الجمعۃ صہ فقد لغا و من لغا فلیس فی جمعتہ تلك شیئ 3-

جو جمعہ کے دن اپنے ساتھی سے چپ کہے اُس نے لغو کیا اور جس نے لغو کیا اُس کے لئے اس جمعہ میں کچھ اجر نہیں۔

امام احمد حضرت عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

من یتکلم یوم الجمعۃ والامام یخطب فھو کمثل الحمار یحمل اسفارا والذی یقول لہ انصت لیس لہ جمعۃ 4-

جمعہ کے دن جب امام خطبہ میں ہو بولنے والا ایسا ہے جیسے گدھا جس پر کتابیں لدی ہوں اور جو اُس سے چپ کہے اُس کا جمعہ نہیں۔

یہیں سے منجلی ہوا کہ حدیث استقسائے مذکور صحیحین سے استدلال صحیح نہیں اُس سے اگر ثابت ہو گا تو وقتِ خطبہ امام جوازِ کلام اور اس کی حرمت پر ائمہ مذہب کا اجماع اور احادیثِ صحیحہ جن کی بعض مذکور ہوئیں مثبتِ تحریم قاطع نزاع فان الحاظر مقدم و تمام الکلام فی الفتح وغیرہ (کیونکہ منع کرنے والی مقدم ہے اور اس پر تفصیلی)

---

1 القرآن ۲/۴۴ 2 صحیح البخاری باب الانصاف یوم الجمعۃ الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۲۸ 3 سنن ابوداؤد باب فضل الجمعۃ مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/۱۵۱ 4 مسند احمد بن حنبل مروی از عبد اللہ بن عباس رضی اللہ اللہ عنہ مطبوعہ دار الفکر بیروت ۱/۲۳۰

Fatawa-e-Razvia, Volume 8

...dialogue on victory etc. (Translator) As for the claims that the attendees asked to pray for rain, and that all attendees also raised their hands, and that all attendees said this on the following Friday — these are all false claims and there is no trace of them in the Sahihayn (Bukhari and Muslim). Regarding the mentioned ruling of writing in Alamgiriya:

Firstly, those who consider it permissible do so only for someone who is so far from the Imam that the voice of the sermon does not reach him. To argue for its permissibility for those who are near, while they listen and others are present, is an argument based on opposition. It is stated in Ghuniya, Bazzazia, and Shurunbulaliya:

[Box 1] (The wording is from Al-Halabi) The later scholars differed regarding the person far from the Imam. Muhammad bin Salamah chose silence for him as well. Nasir bin Yahya permitted recitation and the like. From Abu Yusuf, the preference for silence is narrated, and it is narrated about him that he used to look at his book and correct it with a pen. (1) [Urdu Translation]: Halabi's text is: Concerning the person far from the Imam, there is a difference of opinion among later scholars. According to Muhammad bin Salamah, silence is required for him as well. Nasir bin Yahya allows recitation etc. From Imam Abu Yusuf, the preference for silence is narrated, and it is narrated about him that in this state he was reading his book and correcting it with a pen. (Translator)

It is stated in Khaniya and Khazanat al-Muftin:

[Box 2] As for studying jurisprudence, looking into books of jurisprudence, and writing it, among our companions (may Allah have mercy on them) are those who disliked that, and among them are those who said there is no harm in it if he does not hear the voice of the orator (this addition is in Al-Khaniya), and thus it is narrated from Abu Yusuf (may Allah Almighty have mercy on him). (2) [Urdu Translation]: Teaching Fiqh (jurisprudence), studying books of Fiqh, and writing it are disliked according to some of our scholars, while some say if the Imam's voice is not reaching (this addition is in Khaniya) then there is no harm; and it is similarly narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah Almighty have mercy on him). (Translator)

It is stated in Maraqi al-Falah:

[Box 3] In Al-Yanabi' it is disliked to glorify (tasbih) and recite the Quran if he hears the sermon. And it is narrated from Nasir bin Yahya that if... [Urdu Translation]: It is in

Yanabi' that glorification (tasbih) and recitation of the Quran are disliked while listening to the Imam's sermon. It is narrated from Nasir bin Yahya that if...

1. Ghuniyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Friday Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 561.
2. Fatawa Qazi Khan, Chapter on Friday Prayer, published by Nawal Kishore Lucknow, 1/87.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

...जीत वगैरह पर बातचीत। (अनुवादक) रही यह बात कि हाज़िरीन ने बारिश की दुआ के लिए कहा और यह कि तमाम हाज़िरीन ने भी हाथ उठाए और यह कि आइंदा जुमा को तमाम हाज़िरीन ने यह कहा - यह सब गलत दावे हैं और सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) में इनका कहीं पता नहीं है। जहाँ तक आलमगीरिया में ज़िक्र किए गए लिखने के मामले का सवाल है:

अव्वलन जो लोग इसे जायज़ (अनुमति योग्य) समझते हैं, वे भी केवल उस व्यक्ति के लिए जो इमाम से इतनी दूर हो कि खुतबे (प्रवचन) की आवाज़ उस तक न पहुँचती हो। पास वाले के लिए इसके तर्क को विरोधी तर्क माना जाएगा। गुनिया, बज़्ज़िया और शुरनबुलिया में है:

[बॉक्स 1] (शब्द हलबी के हैं) इमाम से दूर व्यक्ति के बारे में बाद के विद्वानों में मतभेद है। मुहम्मद बिन सलमा ने उनके हक में भी चुप्पी (सकूत) को चुना है। नसीर बिन यहया क़िरात (पाठ) आदि की अनुमति देते हैं। इमाम अबू यूसुफ़ से चुप्पी का चुनाव करना वर्णित है, और उनके बारे में यह भी वर्णित है कि वे उस स्थिति में अपनी किताब पढ़ रहे थे और कलम से उसे सुधार रहे थे। (1) [उर्दू अनुवाद]: हलबी की इबारत यह है कि इमाम से दूर व्यक्ति के बारे में मुताखरीन (बाद के विद्वानों) का मतभेद है। मुहम्मद बिन सलमा के यहाँ उसके हक में भी सकूत है। नसीर बिन यहया क़िरात वगैरह की इजाज़त देते हैं। इमाम अबू यूसुफ़ से सकूत का मुख़्तार (पसंदीदा) होना मंकूल (वर्णित) है और उन्हीं के बारे में मंकूल है कि वह इस हालत में अपनी किताब पढ़ रहे थे और कलम से उसकी इस्लाह (सुधार) फरमा रहे थे। (त)

खानिया और खज़ानतुल मुफ़्तीन में है:

[बॉक्स 2] जहाँ तक फिक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) पढ़ाने, फिक़्ह की किताबों को देखने और उसे लिखने का सवाल है, हमारे साथियों (अल्लाह उन पर रहम करे) में से कुछ ने इसे नापसंद किया है और उनमें से कुछ ने कहा कि इसमें कोई हर्ज नहीं है अगर वह खतीब (प्रवचनकर्ता) की आवाज़ न सुनता हो (खानिया में यह अतिरिक्त है), और इसी तरह अबू यूसुफ़ (अल्लाह तआला उन पर रहम करे) से वर्णित है। (2) [उर्दू अनुवाद]: फिक़्ह की तदरीस (शिक्षण), कुतुब-ए-फिक़्ह का मुताला (अध्ययन) और किताबत (लिखना) हमारे बाज़ उलमा के नज़दीक मकरूह (नापसंद) है और बाज़ (कहते हैं कि) उस तक इमाम की आवाज़ न पहुँच रही हो (खानिया में यह इज़ाफ़ा है) और इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाह अलैह से इसी तरह मरवी (वर्णित) है। (त)

मराक़ी अल-फ़लाह में है:

[बॉक्स 3] यनाबी में है कि तस्बीह और क़ुरआन की क़िरात मकरूह है यदि वह खुतबा सुनता हो। और नसीर बिन यहया से वर्णित है कि अगर... [उर्दू अनुवाद]: यनाबी में है कि इमाम का खुतबा सुनते वक़्त तस्बीह और क़िरात-ए-क़ुरआन मकरूह है। नसीर बिन यहया से मरवी है कि अगर...

1. गुनियातुल मुस्तमली शरह मुन्यतुल मुसल्ली, जुमा की नमाज़ का अध्याय, सुहेल एकेडमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 561।
2. फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, जुमा की नमाज़ का अध्याय, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 1/87।

पृष्ठ 336 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

گفتگو فتح وغیرہ میں ہے۔ت) باقی رہا یہ کہ حاضرین نے کہا بارش کی دعا کیجئے اور یہ کہ تمام حاضرین نے بھی ہاتھ اٹھائے اور یہ کہ آئندہ جمعہ کو تمام حاضرین نے کہا یہ سب غلط دعوے ہیں اور صحیحین میں ان کا کہیں پتا نہیں، رہی فرع کتابت مذکورہ عالمگیریہ۔

اولا جو بعض اسے جائز رکھتے ہیں وہ بھی اس کے لئے جو امام سے اس قدر دور ہو کہ خطبے کی آواز اس تک نہ جاتی ہو تو قریب کے لئے جواز بلا کشی پر اس سے استدلال کہ سنتا رہے اور حاضرین کو ہوا کرے استدلال بالمخالف ہے، غنیہ و بزازیہ و شرنبلالیہ میں ہے:

واللفظ للحلبی الختلف المتاخرون فی البعید عن الامام فمحمدبن سلمة اختار السکوت فی حقه ایضاً ونصیر بن یحیی اجاز القرأة ونحوها وعن ابی یوسف اختیار السکوت و حکی عنه انه کان ینظر فی کتابه ویصلحه بالقلم 1۔ | حلبی کی عبارت یہ ہے امام سے دور شخص کے بارے میں متاخرین کا اختلاف ہے محمد بن سلمہ کے ہاں اس کے حق میں بھی سکوت ہے، نصیر بن یحییٰ قرائت وغیرہ کی اجازت دیتے ہیں، امام ابویوسف سے سکوت کا مختار ہونا منقول ہے اور آپ ہی کے بارے میں منقول ہے کہ وہ اس حالت میں اپنی کتاب پڑھ رہے تھے اور قلم سے اس کی اصلاح فرمارہے تھے۔ (ت)

خانیہ و خزانہ المفتین میں ہے:

اما درسه الفقه والنظر فی کتب الفقه و کتابته من اصحابنا رحمهم الله من کره ذلك ومنهم من قال لابأس به اذاکان لایسمع صوت الخطیب (زاده فی الخانیة) وهکذا روی عن ابی یوسف رحمه الله تعالی 2۔ | فقہ کی تدریس، کتب فقہ کا مطالعہ اور کتابت ہمارے بعض علماء کے نزدیک مکروہ ہے اور بعض

اس تک امام کی آواز نہ پہنچ رہی ہو (خانیہ میں یہ اضافہ ہے) اور امام ابویوسف رحمہ اللہ تعالٰی سے اسی طرح مروی ہے۔ (ت)

مراقی الفلاح میں ہے:

فی الینابیع یکرہ التسبیح وقرائۃ القرآن اذاکان یسمع الخطبۃ وروی عن نصیر بن یحیی انکان | ینابیع میں ہے کہ امام کا خطبہ سنتے وقت تسبیح اور قرائت قرآن مکروہ ہے، نصیر بن یحییٰ سے مروی ہے کہ اگر

1 غنیہ المستملی شرح منیہ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۶۱ 2 فتاوٰی قاضی خاں باب صلوۃ الجمعہ مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱ / ۸۷

Fatawa Razawiya, Volume 8

[Arabic Passage on the left side] "If one is far from the Imam, he can recite the Quran. If someone does so and does not distract others by listening to his recitation, there is no harm, just as looking at writing. There is disagreement regarding this. From Abu Yusuf, it is reported that there is no harm. Al-Hakam bin Zuhair used to sit with Abu Yusuf, looking at his book and correcting it with a pen during the sermon. Al-Kamal said that eating, drinking, and writing are forbidden at this time, meaning when one is hearing the sermon, as mentioned before, because writing is not prohibited for one who does not hear the sermon." (1)

[Urdu translation on the right side] If a person is far from the Imam, he can read the Quran; if he does so and does not occupy others in listening to his recitation, there is no harm. Hakam bin Zuhair used to sit with Imam Abu Yusuf during the sermon, look at the book, and correct it with a pen. Kamal said eating, drinking, and writing are forbidden at this time, meaning when listening to the sermon, as mentioned before, because writing is not prohibited for those who do not listen. (T)

Secondly, this opinion is weak and unreliable. The correct view is that silence is mandatory for everyone, near or far, and writing, recitation, and all such actions are impermissible. In Hashiya at-Tahtawi, under the aforementioned text, it is stated:

[Arabic Passage on the left side] "His saying 'not prohibited', the reliable view is prohibition. I say: attributing Al-Kamal's words to a person nearby is extremely far-fetched, because Al-Kamal explicitly stated the opposite, as we will soon present his text."

[Urdu translation on the right side] Their statement "not prohibited" is actually a reliable prohibition. I say that interpreting Kamal's words for a person nearby is extremely far-fetched because Kamal has explicitly stated the opposite, as we will soon present his text. (T)

In Radd al-Muhtar, from the grace of Allama Kurki, it says: [Arabic Passage on the left side] "If he is far and does not hear the sermon, there is a disagreement regarding the prohibition of speaking, and similarly regarding Quranic recitation and looking at books. It is narrated from Abu Yusuf that he used to look at his book and correct it with a pen. The more cautious approach is silence, and this is the fatwa." (3)

[Urdu translation on the right side] If he is far from the Imam and is not listening to the sermon, then there is a difference of opinion regarding the prohibition of

speaking there. Similarly, there is a difference of opinion regarding the recitation of the Quran and studying books. Regarding Imam Abu Yusuf, it is said that he was studying the book and correcting it with a pen. The most cautious approach is silence, and this is the fatwa. (T)

---

1. Maraqi al-Falah with Hashiya at-Tahtawi, Chapter of Friday, published by Noor Muhammad Kutub Khana Karachi, p. 283.
2. Hashiya at-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter of Friday, published by Noor Muhammad Kutub Khana Karachi, p. 283.
3. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/606.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[बाईं ओर अरबी गद्यांश] "यदि कोई इमाम से दूर है, तो वह कुरान पढ़ सकता है। यदि कोई ऐसा करता है और दूसरों को अपना पाठ सुनने के लिए विचलित नहीं करता है, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है, जैसे लेखन को देखना। इसमें मतभेद है। अबू यूसुफ से यह बताया गया है कि इसमें कोई बुराई नहीं है। अल-हकम बिन ज़ुहैर अबू यूसुफ के साथ बैठते थे, खुतबे के दौरान अपनी किताब देखते थे और कलम से उसे सही करते थे। अल-कमाल ने कहा कि इस समय खाना, पीना और लिखना हराम है, यानी जब कोई खुतबा सुन रहा हो, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, क्योंकि जो खुतबा नहीं सुन रहा है उसके लिए लिखना वर्जित नहीं है।" (1)

[दाईं ओर उर्दू अनुवाद] वह आदमी इमाम से दूर हो तो कुरान पढ़ सकता है, जिसने ऐसे किया और अपनी तिलावत के समाअ (सुनने) में दूसरे को मशगूल (व्यस्त) न किया तो कोई हर्ज नहीं, हकम बिन ज़ुहैर बोक्ते-ख़ुतबा (खुतबे के समय) इमाम अबू यूसुफ के साथ बैठ जाते, किताब देखते और कलम से इस्लाह (सुधार) करते, कमाल ने फरमाया खाना पीना और किताबत (लिखना) इस मौके पर हराम है, यानी जब खुतबा सुन रहा हो, जैसा कि पीछे गुज़र चुका क्योंकि न सुनने वाले के लिए किताबत मना नहीं है। (त)

दूसरे, यह राय कमज़ोर और अविश्वसनीय है। सही विचार यह है कि दूर या पास सभी के लिए मौन रहना अनिवार्य है, और लिखना, पाठ करना और ऐसे सभी कार्य वर्जित हैं। तहतावी के हाशिये में, उपर्युक्त पाठ के तहत, यह कहा गया है:

[बाईं ओर अरबी गद्यांश] "उनका कहना 'वर्जित नहीं है', विश्वसनीय विचार निषेध है। मैं कहता हूँ: अल-कमाल के शब्दों को किसी करीबी व्यक्ति के लिए मानना बहुत ही दूर की बात है, क्योंकि अल-कमाल ने स्पष्ट रूप से इसके विपरीत कहा है, जैसा कि हम जल्द ही उनका पाठ प्रस्तुत करेंगे।"

[दाईं ओर उर्दू अनुवाद] उनका कौल (कथन) "मना नहीं" मना मोतमद (विश्वसनीय) है। मैं कहता हूँ कलामे-कमाल को करीबी शख्स पर महमूल करना (थोपना) निहायत ही बईद (दूर) है क्योंकि कमाल ने इसके खिलाफ तसरीह (स्पष्टीकरण) की है जैसे कि अनकरीब (शीघ्र) हम उनकी इबारत पेश कर देंगे। (त)

रद्द अल-मुह्तार में, अल्लामा कुरकी के हवाले से कहा गया है: [बाईं ओर अरबी गद्यांश] "यदि वह दूर है और खुतबा नहीं सुनता है, तो बोलने की मनाही के संबंध में मतभेद है, और इसी तरह कुरान

के पाठ और पुस्तकों को देखने के बारे में भी। अबू यूसुफ से रिवायत है कि वे अपनी किताब देखते थे और कलम से उसे सही करते थे। अधिक सतर्क दृष्टिकोण मौन रहना है, और यही फतवा है।" (3)

[दाईं ओर उर्दू अनुवाद] अगर वह इमाम से दूर है खुतबा नहीं सुन रहा तो वहां कलाम के हराम होने में इख्तिलाफ (मतभेद) है, इसी तरह किराते-कुरान और मुताला-ए-किताब के बारे में भी इख्तिलाफ है, इमाम अबू यूसुफ के बारे में है कि किताब का मुताला करते हुए कलम से इस्लाह कर रहे थे, अहवत (अधिक सतर्क) सुकूत (मौन) है और इसी पर फतवा है। (त)

---

1. मराकी अल-फलाह मअ हाशिया अत-तहतावी, जुमा का बाब, नूर मुहम्मद कुतुब खाना कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 283।
2. हाशिया अत-तहतावी अल मराकी अल-फलाह, जुमा का बाब, नूर मुहम्मद कुतुब खाना कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 283।
3. रद्द अल-मुह्तार, जुमा का बाब, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/606।

पृष्ठ 337/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[Arabic Passage on the left side] بعید امن الامام یقرأ القرآن فمن فعل مثله ولایشغل غیره بسماع تلاوته لابأس به کالنظر فی الکتابة وفیه خلاف وعن ابی یوسف لاباس به والحکم بن زهیر کان یجلس مع ابي یوسف و ینظر فی کتابه ویصحح بالقلم وقت الخطبه وقال الکمال یحرم الاکل والشرب والکتابة انتهی یعنی اذا کان یسمع لما قد مناه ان کتابة من لایسمع الخطبة غیر ممتنعه (1) انتهی ملتقطاً۔

[Urdu translation on the right side] وہ آدمی امام سے دور ہو تو قرآن پڑھ سکتا ہے، جس نے ایسے کیا اور اپنی تلاوت کے سماع میں دوسرے کو مشغول نہ کیا تو کوئی حرج نہیں، حکم بن زہیر بوقتِ خطبہ امام ابویوسف کے ساتھ بیٹھ جاتے، کتاب دیکھتے اور قلم سے اصلاح کرتے، کمال نے فرمایا کھانا پینا اور کتابت اس موقعہ پر حرام ہے انتہٰی یعنی جب خطبہ سن رہا ہو، جیسا کہ پیچھے گزر چکا کیونکہ نہ سننے والے کے لئے کتابت منع نہیں انتہی ملتقطاً (ت)

ثانیاً یہ قول بعض و نا معتبر ہے، صحیح یہی ہے کہ دور نزدیک سب پر سکوت واجب، او کتابت و قرأت جمیع اعمال نا جائز، طحطاویہ میں زیر قول مذکور مراتی ہے:

[Arabic Passage on the left side] قوله غیر ممتنعه، المعتمد المنع (2) اھ اقول وحمله کلام الکمال علی القریب بعید کل البعد فان الکمال صرح بخلافه کما سنسمعك نصه۔

[Urdu translation on the right side] ان کا قول "منع نہیں" منع معتمد ہے اھ اقول کلام کمال کو قریبی شخص پر محمول کرنا نہایت ہی بعید ہے کیونکہ کمال نے اس کے خلاف تصریح کی ہے جیسے کہ عنقریب ہم ان کی عبارت پیش کردیں گے (ت)

ردالمحتار میں فیض علامہ کر کی سے ہے: [Arabic Passage on the left side] لو کان بعید الا یسمع الخطبة ففی حرمة الکلام خلاف وکذا فی قرأة القرآن والنظر فی الکتب وعن ابی یوسف انه کان ینظر فی کتابه ویصححه بالقلم والاحوط السکوت وبه یفتی (3)۔

[Urdu translation on the right side] اگر وہ امام سے دور ہے خطبہ نہیں سن رہا تو وہاں کلام کے حرام ہونے میں اختلاف ہے، اسی طرح قرآت قرآن اور مطالعہ کتاب کے بارے میں بھی اختلاف ہے، امام ابویوسف کے بارے میں ہے کہ کتاب کا مطالعہ کرتے ہوئے قلم سے اصلاح کر رہے تھے، احوط سکوت ہے اور اسی پر فتویٰ ہے۔ (ت)

---

1 مراقی الفلاح مع حاشیة الطحطاوی باب الجمعہ مطبوعہ نور محمد کتب خانہ کراچی ص ۲۸۳ 2 حاشیة الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب الجمعہ مطبوعہ نور محمد کتب خانہ کراچی ص ۲۸۳ 3 ردالمحتار، باب الجمعہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۶۰۶

Fatawa Rizvia Volume 8

In 'Jawahir al-Akhlati' it is stated: - The one distant from the Imam regarding listening to the sermon is like the one who is near, and silence is chosen (preferred) for him. (T) - In 'Hindiyyah', from 'Tabyin al-Haqa'iq' by Imam Zaylai, it is stated: 'It is more cautious.' (T) From 'Muheet' of Imam Shams al-A'imma al-Sarakhsi, it is stated: 'It is the most correct.' (T) From the commentary of 'Niqayah' by Birjandi citing 'Khazanah', it is stated: 'It is foremost.' (T) In 'Hidayah' and 'Idah al-Islah' it is stated: - There is disagreement regarding the one distant from the pulpit. Silence is more cautious (Hidayah adds: while establishing the obligation of silence). (T)

In 'Kafi Sharh al-Wafi' it is stated: - Silence is more cautious because he is commanded to listen and be attentive when near the Imam, and when distant, if he is unable to listen, he is still able to remain attentive (silent), so it becomes obligatory for him. (T)

In 'Fath al-Qadir', chapter on recitation, it is stated: - This is when he is such that he can hear; as for the one far away, there is no narration regarding him from the predecessors, and there is disagreement among the later scholars...

Footnotes: 1. Jawahir al-Akhlati, Chapter on Friday Prayer, unpublished manuscript, p. 49. 2. Fatawa Hindiyyah, Sixteenth Chapter on Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/147. 3. Fatawa Hindiyyah, citing Muheet al-Sarakhsi, Sixteenth Chapter on Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/147. 4. Sharh Niqayah by Birjandi, Chapter where the Imam leads Friday prayer etc., published by Naval Kishore Lucknow, 1/115. 5. Al-Hidayah, Chapter on the Description of Prayer, published by Al-Maktabah al-Arabiyyah Karachi, 1/101. 6. Kafi Sharh al-Wafi.

फ़तावा रिज़विया खंड 8

जवाहरुल अख्लाती में है: - इमाम से दूर व्यक्ति खुतबा सुनने में नज़दीक वाले की तरह है और उसके हक में भी खामोश रहना बेहतर है, यही मुख्तार (पसंद किया गया) है। (त)

हिन्दिया में इमाम जैलई की 'तबीनुल हकाएक' से है: 'यही अहतियात (सावधानी) वाला है।' (त) इमाम शम्सुल अइम्मा सरखसी की 'मुहीत' से है: 'यही सबसे सही है।' (त) बिरजन्दी की 'शरह निक़ाया' में 'ख़ज़ाना' से है: 'यही बेहतर है।' (त) 'हिदाया' और 'ईज़ाहुल इस्लाह' में है: - मिम्बर (मंच) से दूर रहने वाले के बारे में मतभेद है। खामोश रहना अधिक अहतियात वाला है (हिदाया में इज़ाफ़ा है कि: खामोशी के फ़र्ज़ को कायम करते हुए)। (त)

काफ़ी शरह वाफ़ी में है: - खामोश रहना अधिक अहतियात वाला है क्योंकि खुतबा सुनने और उसकी ओर ध्यान देने का आदेश है जब वह इमाम के करीब हो, और अगर दूर हो तो वह भले ही सुनने में सक्षम न हो लेकिन ध्यान देने (खामोश रहने) में सक्षम है, इसलिए यह उस पर वाजिब (अनिवार्य) होगा। (त)

फ़तह-उल-क़दीर के क़िराअत वाले हिस्से में है: - यह तब है जब वह खुतबा सुन रहा हो, दूर वाले के बारे में पूर्वजों से कोई रिवायत (कथन) नहीं है, और मतभेद है...

पाद टिप्पणियाँ: 1. जवाहरुल अख्लाती, जुमे की नमाज़ का अध्याय, अप्रकाशित पांडुलिपि, पृष्ठ 49 2. फ़तावा हिन्दिया, जुमे की नमाज़ पर सोलहवाँ अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित 1/ 147 3. फ़तावा हिन्दिया, मुहीत अल-सरखसी के हवाले से, जुमे की नमाज़ पर सोलहवाँ अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित 1/ 147 4. बिरजन्दी की शरह निक़ाया, अध्याय जहाँ इमाम जुमे में नेतृत्व करता है आदि, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित 1/ 115 5. अल-हिदाया, नमाज़ के गुणों का अध्याय, अल-मकतब अल-अरबिय्या कराची द्वारा प्रकाशित 1/ 101 6. काफ़ी शरह वाफ़ी

पेज 338 ऑफ 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

جواہر الاخلاطی میں ہے: النائی عن الامام فی استماع الخطبۃ کالقریب والانسات فی حقہ ھو المختار ۱۔ | امام سے دور شخص خطبہ سننے میں قریبی کی طرح ہوتا ہے اور اس کے حق میں بھی خاموش ہے، یہی مختار ہے۔ (ت)

ہندیہ میں تبیین الحقائق امام زیلعی سے ہے: ھوالا حوط ۲ (یہی احوط ہے۔ ت) محیط امام شمس الائمہ سرخسی سے ہے: ھو الاصح ۳ (یہی اصح ہے۔ ت) شرح نقایہ بر جندی میں خزانہ سے ہے: ھو الاولی ۴ (یہی اولٰی ہے۔ ت) ہدایہ وایضاح الاصلاح میں ہے: اختلفوا فی النائی عن المنبر والا حوط السکوت زاد فی الھدایۃ) اقامۃ الفرض الانصات ۵۔ | منبر سے دور والے کے بارے میں اختلاف ہے۔ سکوت احوط ہے (ہدایہ میں اضافہ ہے کہ) خاموشی کے فریضہ کو قائم کرتے ہوئے۔ (ت)

کافی شرح وافی میں ہے: الاحوط السکوت لانہ مأمور بالاستماع والانصات اذا قرب من الامام وعند بعد ان لم یقدر علی الاستماع فقد قدر علی الانصات فیجب علیہ۔ ۶ | سکوت احوط ہے کیونکہ خطبہ سننے اور اس کی طرف متوجہ ہونے کا حکم ہے جبکہ امام کے قریب ہو اور اگر دور ہو تو وہ اگرچہ سننے پر قادر نہیں مگر متوجہ ہونے پر قادر ہے لہذا اس پر یہ واجب ہوگا۔ (ت)

فتح القدیر فصل القراۃ میں ہے: ھذا اذا کان بحیث یستمع فاما النائی فلا روایۃ فیہ عن المتقدمین واختلف | یہ اس وقت ہے جب خطبہ سن رہا ہو، دور والے کے بارے میں متقدمین سے کوئی روایت نہیں، متاخرین

حواشی: 1 جواہر الاخلاطی فصل فی صلوۃ الجمعۃ غیر مطبوعہ نسخہ ص ۴۹ 2 فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷ 3 فتاوی ہندیہ بحوالہ محیط السرخسی الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷ 4 شرح نقایہ للبرجندی فصل یجسر الامام فی الجمعۃ الخ مطبوعہ نولکشور لکھنو ۱/ ۱۱۵ 5 الہدایۃ باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ المکتبۃ العربیہ کراچی ۱/ ۱۰۱ 6 کافی شرح وافی

Fatawa Razawiya Volume 8

Later scholars [have disagreed], but silence is the most cautious [position], meaning not reciting and not writing etc. and not just avoiding permissible talk. Because such talk is disliked (Makruh) in the mosque even when there is no sermon; so how could it be permissible during the sermon? (T)

In Multaqa al-Abhur and Majma' al-Anhur: (An-Na'i) i.e. the one who is far away and cannot hear the sermon and (Ad-Dani) i.e. the one who is near are (equal) in the obligation to listen and remain silent in obedience to the command. (Both are equal) (T)

In Ghurar wa Durar: (The distant one) from the preacher (is like the one who is near) in the obligation to listen and remain silent. One far from the preacher is just like the one who is near in listening to the sermon and paying attention. (T)

In Tanwir wa Durar: (The distant one) from the preacher and the near one are equal in the obligation of remaining silent. The one near the preacher and the one far away are equal in listening with attention. (T)

In An-Ni: It is mandatory for him to listen and remain silent (without difference between near and far, according to the more correct opinion). According to the most correct opinion, listening to the sermon and remaining silent is mandatory without distinction whether one is near or far. (T)

In Kanz al-Daqaiq and Al-Bahr al-Raiq: (The distant one is like the near one) is more cautious. (The one far away is like the one who is near) this is the precaution. (T)

1. Fath al-Qadir, Chapter on Recitation, published by Maktaba Nooriya Razawiya Sukkur, 1/298
2. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter on Rulings of Recitation, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi Beirut, 1/170
3. Durar al-Hukkam Sharh Ghurar al-Ahkam, Chapter on what the Imam begins with, published by Maktaba Ahmad Kamil Ka'ina, Dar as-Sa'adat Egypt, 1/82
4. Durr-e-Mukhtar, Chapter 'wa yujhiru al-Imam etc.', published by Matba' Mujtabai Delhi India, 1/81
5. Durr-e-Mukhtar, Chapter 'wa yujhiru al-Imam etc.', published by Matba' Mujtabai Delhi India, 1/113
6. Al-Bahr al-Raiq, Chapter of Friday Prayer, published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/155

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

बाद के विद्वानों में मतभेद है, लेकिन खामोश रहना सबसे सुरक्षित स्थिति है, जिसका अर्थ है न पढ़ना और न लिखना आदि, न कि केवल जायज़ बातचीत से बचना। क्योंकि मस्जिद में बिना खुतबा (प्रवचन) के भी ऐसी बातचीत मकरूह (नापसंद) है; तो खुतबे के दौरान यह कैसे जायज़ हो सकती है? (त)

मुल्तका अल-अबहुर और मजमा अल-अनहुर में है: (अन-नाई) यानी दूर वाला जो खुतबा नहीं सुन सकता और (अद-दानी) यानी पास वाला, दोनों ही आदेश के पालन में सुनने और खामोश रहने के कर्तव्य में समान हैं। (दोनों बराबर हैं) (त)

ग़ुरर व दुरर में है: उपदेशक से (दूर रहने वाला व्यक्ति) (पास रहने वाले की तरह) ही सुनने और खामोश रहने के कर्तव्य में है। उपदेशक से दूर रहने वाला व्यक्ति खुतबा सुनने और ध्यान देने में पास रहने वाले की तरह ही है। (त)

तन्वीर व दुरर में है: उपदेशक से (दूर रहने वाला और पास रहने वाला समान हैं) खामोश रहने की अनिवार्यता में। उपदेशक के पास रहने वाला और दूर रहने वाला ध्यान से सुनने में बराबर हैं। (त)

अन-नी में है: उसके लिए सुनना और खामोश रहना अनिवार्य है (अधिक सही मत के अनुसार पास और दूर के बीच बिना किसी भेद के)। सबसे सही मत के अनुसार, खुतबा सुनना और खामोश रहना अनिवार्य है, चाहे वह पास हो या दूर। (त)

कन्ज़ुद-दकाइक़ और अल-बह़रुल-राइक़ में है: (दूर वाला पास वाले की तरह है) यही अधिक एहतियात (सावधानी) है। (दूर वाला पास वाले की तरह है) यही एहतियात है। (त)

1. फतह अल-कादिर, खंड: किराअत, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर, 1/298
2. मजमा अल-अनहुर शरह मुल्तका अल-अबहुर, खंड: अहकामुल किराअत, दार इहया अल-तुराथ अल-अरबी बेरूत, 1/170
3. दुरर अल-हुक्काम शरह ग़ुरर अल-अहकाम, मकतबा अहमद कामिल काइना, दार अस-सआदत मिस्र, 1/82
4. दुर्रे मुख्तार, खंड 'व युजहिरु अल-इमाम आदि', मतबा मुजतबाई दिल्ली भारत, 1/81
5. दुर्रे मुख्तार, खंड 'व युजहिरु अल-इमाम आदि', मतबा मुजतबाई दिल्ली भारत, 1/113

6. अल-बह़रुल-राइक़, बाब सलातुल जुमा, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/155

पृष्ठ 339/673

المتأخرون والاحوط السکوت یعنی عدم القراءۃ والکتابۃ کا اختلاف ہے سکوت احوط ہے یعنی عدم قرأت اور عدم کتابت وغیرہ نہ کہ کلام مباح فانہ مکروہ فی المسجد فی غیر حال الخطبہ فکیف فی حالہا۔ کا اختلاف ہے سکوت احوط ہے یعنی عدم قرآت اور عدم کتابت وغیرہ نہ کہ کلام مباح کیونکہ یہ تو مسجد میں حالت خطبہ کے علاوہ بھی مکروہ ہے تو حالت خطبہ کے دوران یہ کیسے جائز ہوگی (ت)

ملتقی الابحر و مجمع الانہر میں ہے: (النائي) ای البعید الذی لا یسمع الخطبۃ (والدانی) ای القریب (سواء) فی وجوب الاستماع والانصات امتثا للامر۔ (النائی) یعنی دور والا شخص جو خطبہ نہیں سن سکتا (والدانی) یعنی قریبی شخص حکم کی بجا آوری کی بنا پر سننے اور متوجہ ہونے کے وجوب میں (دونوں برابر ہیں) (ت)

غرر و درر میں ہے: (البعید) عن الخطیب (کالقریب) فی وجوب الاستماع والانصات۔ بعید خطیب سے خطبہ سننے اور متوجہ ہونے میں قریبی کی طرح ہی ہوتا ہے۔ (ت)

تنویر و درر میں ہے: (البعید) عن الخطیب والقریب سیان) فی افتراض الانصات۔ متوجہ ہو کر سننے میں خطیب کا قریبی اور دُور والا برابر ہوتے ہیں (ت)۔

اَنّہی میں ہے: یجب علیہ و ان یستمع ویسکت (بلا فرق بین قریب وبعید في الاصح)۔ اصح قول کے مطابق خطبہ کا سننا اور خاموش رہنا لازم ہے بلا تفریق کہ وہ قریب ہے یا دور۔ (ت)

کنزالداقائق و بحر الرائق میں ہے: (النائي کالقریب) ھو الاحوط (دُور والا قریب کی طرح ہے) یہی احتیاط ہے (ت)

1 فتح القدیر فصل فی القراۃ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر، ۲۹۸/۱ 2 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر فصل فی احکام القراۃ مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۱ / ۱۷۰ 3 درر الحکام شرح غرر الاحکام فصل فیما یبجر الامام مطبوعہ مکتبہ احمد کامل کائنہ، دار سعادت مصر ۱ / ۸۲ 4 در مختار فصل و یبجر الامام الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱ / ۸۱ 5 در مختار ، فصل و یبجر الامام الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱ / ۱۱۳ 6 البحر الرائق باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۱۵۵

Fatawa Razawiya, Volume 8

From the previous statements, it was clear that the obligation to listen does not simply mean the sound reaching the ear while you are busy with other tasks. Otherwise, why would eating, drinking, walking, or turning your neck to look be forbidden? None of these activities prevent sound from entering the ear. Rather, it means to be fully attentive towards it and not be engaged in any other work. However, the subsequent statements have made it even clearer that remaining attentive with all your limbs is mandatory. For someone far away, the sound might not even reach the ear, yet the correct, reliable, and fatwa-issued opinion is that it is also forbidden for him to engage in other deeds. Repent from the notion that after listening to the Sunnah portion of the sermon, one can listen to the rest while being busy.

Firstly: It is a clear statement of contradiction and stems from not understanding the meaning of 'listening' (istima') and 'maintaining silence' (insat).

Secondly: Is this action disruptive to listening or not? If it is, it must be forbidden absolutely, not just after the Sunnah portion is complete. And if it is not, then it should be absolutely permissible; why is there an exception for the 'Sunnah portion'?

Thirdly: Both sermons (Khutbahs) are Sunnah, not just a part of each sermon or only the first sermon. Therefore, 'having heard the Sunnah portion' would only be true after both sermons are completed. Now, will someone keep fanning themselves during the prayer? Perhaps it might be claimed that if an Imam recites an excessively long sermon contrary to the Sunnah, then after the Sunnah portion, such movement is permissible in the additional length. Firstly, this interpretation is far from the speaker's intent, which is general, not specific to this rare and disliked scenario. Even then, it's wrong and false. Leaving aside increasing the length, even if there is mention and praise of oppressors in the sermon—which is strictly against the Sunnah, strongly forbidden, and certainly far from the purposes of the sermon—the correct view remains that listening and maintaining silence are mandatory. It is stated in Al-Mujtaba Sharh Quduri, then Nahr al-Faiq, then Fath-ul-Allah al-Mubeen by Allama Sayyid Abul Saud Azhari:

> ١۔ استماع الخطبۃ من اولها الی آخرها واجب وان کان فیها ذکر الولاۃ و هو الاصح |
> Listening to the sermon from its beginning to its end is mandatory, even if there is mention of rulers in it, and this is the most correct view. (T)

It is in Al-Muheet, then Rabbani, then Alamgiriyah:

واللفظ لها الذی علیہ عامۃ مشائخنا ان علی القوم ان یسمعوا الخطبۃ من اولها الی آخرها والدنومن الامام افضل من التباعد عنہ و هو الصحیح من الجواب مشائخنا رحمهم اللہ تعالی ۲۔ |
The wording upon which most of our scholars agree is that it is mandatory for the people to listen to the sermon from its beginning to its end. Being close to the Imam is better than being far from him, and this is the correct answer among the opinions of our scholars, may Allah have mercy on them. (T)

1. Fath al-Mu'in, Chapter of Friday Prayer, published by H.M. Saeed Company Karachi, 1/321.
2. Fatawa Hindiyyah, Chapter 16 on Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana Peshawar, 1/147.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

पिछले बयानों से यह स्पष्ट था कि सुनना जो फ़र्ज़ है उसका मतलब यह नहीं कि आवाज़ कान तक पहुँचे जबकि आप दूसरे कामों में व्यस्त हों। वरना खाना-पीना, चलना, गर्दन घुमाकर देखना क्यों हराम होता, क्योंकि इनमें से कोई भी काम कान तक आवाज़ पहुँचने में बाधक नहीं है। बल्कि इसका अर्थ यह है कि पूरी तरह उसी ओर ध्यान दिया जाए और किसी दूसरे काम में व्यस्त न हों। लेकिन बाद के बयानों ने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है कि शरीर के सभी अंगों से उसी ओर ध्यान रखना स्वयं अनिवार्य (वाजिब) है। दूर रहने वाले के लिए तो कान में आवाज़ भी नहीं आती, फिर भी सही, विश्वसनीय और फ़तवा दिया गया विचार यही है कि उसके लिए भी अन्य कार्यों में व्यस्त होना हराम है। इस विचार से तौबा करें कि सुन्नत के बराबर ख़ुत्बा सुनने के बाद बाक़ी को सुनते हुए व्यस्त रहा जा सकता है।

पहला: यह साफ़ तौर पर विरोधाभासी बात है और 'इस्तिमा' (सुनना) और 'इन्सात' (खामोश रहना) के अर्थ न समझने का परिणाम है।

दूसरा: क्या यह क्रिया सुनने में बाधा डालती है या नहीं? यदि डालती है, तो इसे पूर्णतः हराम होना चाहिए, न कि सुन्नत की मात्रा के बाद अनुमति हो। और यदि नहीं डालती, तो इसे पूर्णतः जायज़ होना चाहिए, 'सुन्नत की मात्रा' का अपवाद क्यों?

तीसरा: दोनों ख़ुत्बे सुन्नत हैं, न कि प्रत्येक ख़ुत्बे का एक हिस्सा या केवल पहला ख़ुत्बा। अतः'सुन्नत की मात्रा सुन लेना' दोनों ख़ुत्बों के पूरा होने के बाद ही सही होगा। अब क्या कोई नमाज़ पढ़ते समय पंखा झलता रहेगा? शायद यह दावा किया जाए कि यदि कोई इमाम सुन्नत के ख़िलाफ़ बहुत लंबा ख़ुत्बा पढ़े, तो सुन्नत की मात्रा के बाद अतिरिक्त हिस्से में यह हलचल जायज़ है। पहली बात तो यह है कि यह बोलने वाले के इरादे से बहुत दूर है, उसका कथन सामान्य है, न कि इस दुर्लभ और मकरूह स्थिति के लिए विशिष्ट। और यदि ऐसा हो भी, तो यह भी गलत और बातिल (असत्य) है। मात्रा बढ़ाना तो दूर, यदि ख़ुत्बे में ज़ालिमों का ज़िक्र और प्रशंसा भी हो—जो सुन्नत के कतई ख़िलाफ़, सख़्त हराम और निश्चित रूप से ख़ुत्बे के उद्देश्यों से बहुत दूर है—तब भी सही यही है कि सुनना और खामोश रहना वाजिब है। 'मुजतबा शरह कुदूरी', फिर 'नहरुल फ़ाएक', फिर 'फ़तहुल्लाह अल-मुबीन' अल्लामा सैय्यद अबुल सऊद अज़हरी में है:

| استماع الخطبۃ من اولها الی آخرها واجب وان کان فیها ذکر الولاۃ و هو الاصح ١۔
ख़ुत्बे को शुरू से अंत तक सुनना अनिवार्य है, चाहे उसमें शासकों का ज़िक्र हो, यही सबसे सही है। (त)

मुहीत, रब्बानी, फिर आलमगीरिया में है:

واللفظ لها الذی علیہ عامۃ مشائخنا ان علی القوم ان یسمعوا الخطبۃ من اولها الی آخرها والدنومن الامام افضل من التباعد عنہ و هو الصحیح من الجواب مشائخنا رحمهم اللہ تعالی ٢۔ | वे शब्द जिन पर हमारे अधिकांश उलेमा सहमत हैं, वह यह है कि लोगों पर ख़ुत्बे को शुरू से अंत तक सुनना अनिवार्य है। इमाम के करीब होना दूर होने से बेहतर है, और हमारे उलेमा के जवाबों में यही सही है, अल्लाह उन पर रहम करे। (त)

1. फ़तह अल-मुईन, जुमे की नमाज़ का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/321।
2. फ़तावा हिन्दिया, जुमे की नमाज़ पर 16वाँ अध्याय, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/147।

पृष्ठ 340/673

عبارات سابقہ سے تو واضح تھا ہی کہ سُننا جو فرض ہے اس کے یہ معنی نہیں کہ کان میں آواز پہنچے اگرچہ آپ دوسرے کام میں مشغول ہو ورنہ کھانا، پینا، چلنا، گردن پھیر کر دیکھنا کیوں حرام ہوتا کہ ان میں کون سا کام کان میں آواز جانے کے منافی ہے بلکہ اس کے یہ معنی کہ ہمہ تن اسی طرف متوجہ ہو اور دوسرے کسی کام میں مشغول نہ ہو، مگر ان عبارات لاحقہ نے اور بھی تر کر دیا کہ سراپا تمام اعضاء سے اُسی طرف متوجہ رہنا خود واجب ہے کہ بعید کے لئے تو کان میں آواز آنا بھی نہیں مگر قول صحیح و معتمد و مفتی بہ یہی ہے کہ اُسے بھی اور اعمال میں مشغول حرام، توبہ زعم کہ خطبہ بقدر سنت سُن کر باقی کو سنتا رہے اور ہوا کرے۔

اولاً: صاف قول بالتافیین ہے اور استماع و انصات کے معنی نہ سمجھنے سے ناشی۔

ثانیاً: یہ فعل مخل استماع ہے یا نہیں، اگر ہے تو مطلقاً حرام ہونا واجب نہ یہ کہ قدر سنت کے بعد اجازت ہو، اور اگر نہیں تو مطلقاً جائز ہونا چاہیے قدر سنت کا استثناء کس لئے،

ثالثاً: دونوں خطبے مسنون ہیں، نہ کہ ہر خطبے یا صرف اولٰی سے اُس کا ایک جز، تو قدر سنت سن چکنا بعد تمامی خطبتین صادق ہوگا اب کیا نماز پڑھتے میں پنکھا جھلتا پھرے گا شاید ادعا کیا جائے کہ اگر کوئی امام خطبہ کبیرہ طویلہ بطول فاحش مخالف سنت پڑھے تو قدر سنت کے بعد مقدار زیادت میں یہ حرکت جائز، اول تو اس کا ارادہ کلام قائل سے بعید وہ مطلق ہے نہ کہ اس صورت نادرہ مکروہ سے خاص اور ہو بھی تو یہ بھی غلط و باطل ہے، مقدار میں بڑھادینا درکنار خطبے میں ذکر و مدح ظالمین بھی ہو قطعاً خلاف سنت کیا حرام شدید اور یقیناً مقاصد خطبہ سے

جدا و بعید ہے، جب بھی صحیح یہی ہے کہ استماع و انصات واجب، مجتبیٰ شرح قدوری پھر نہر الفائق پھر فتح اللہ المبین علامہ سید البوالسعود ازہری میں ہے:

استماع الخطبۃ من اولھا الی آخرھا واجب وان کان فیھا ذکر الولاۃ و ھو الاصح ۱۔ | خطبہ کا اوّل تا آخر سننا لازم ہے اگر چہ اس میں امراء کا ذکر ہو، یہی اصح ہے۔(ت)

محیط، ربانی پھر عالمگیریہ میں ہے :

واللفظ لھا الذی علیہ عامۃ مشائخنا ان علی القوم ان یسمعوا الخطبۃ من اولھا الی آخرھا والدنومن الامام افضل من التباعد عنہ و ھو الصحیح من الجواب مشائخنا رحمھم اللہ تعالی ۲۔ | وہ الفاظ جن پر اکثر مشائخ ہیں وہ یہ ہے کہ قوم پر اول تا آخر خطبے کا سننا لازم ہے، امام کا قرب دوری سے افضل ہے اور مشائخ کے جواب میں سے یہی صحیح ہے۔(ت)

1 فتح المعین باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۳۲۱ 2 فتاوٰی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۷

Fatawa Rizvia, Volume Eight

It is stated in Tanveer-ul-Absar and Dur-e-Mukhtar: (No prayer or speech until its completion) even if there is a mention of oppressors in it, this is the most correct view. (T) No fatwa of Allama Hamwi is heard, nor is the permissibility of the aforementioned movement derived from any of his books. Consider the meaning: just as the intent in the sermon is similar to that in prayer; would there be permission in prayer as well to fan with such a good intention? The end goal of that wind in paradise is so that they may be honored with a vision in peace; this is extremely far-fetched and must be rejected. When, God forbid, will there be a time of heat and stuffiness in paradise that there would be a need for wind to remove it? When, God forbid, will there be a cause for restlessness for the people of paradise that there would be a need to gain peace? All the matters there are purely for pleasure and an increase in blessings. Therefore, the researchers state that there is no true pleasure in this world which is thought to be pleasure; in reality, it is the removal of pain. No matter how cold, sweet, fragrant, and pleasant the water or drink is, if there is no thirst, it gives no pleasure. No matter how delicious, excellent, fragrant, and tasty the food is, if there is no hunger, there is no enjoyment. So, in reality, the pain of hunger and thirst is removed, not pure pleasure. And similarly for all other pleasures. Unlike paradise, where there is no hunger, no thirst, no heat, no confinement; so whatever is there is pure and true pleasure.

May Allah Almighty grant us, by His grace and kindness, the bounty of His mercy through His righteous servants, Ameen. For the sake of Muhammad, the Prophet of Mercy, the intercessor of the Ummah, peace and blessings of Allah be upon him and upon all of them, Ameen. May Allah Almighty, for the sake of His kindness, benevolence, grace, and the beloved Prophet of Mercy, the intercessor of the Ummah, peace and blessings of Allah be upon him, and for the sake of His righteous servants, grant us this heavenly pleasure. Ameen! (T)

And even if, for the sake of argument, it were so, who is created there, and what listening is mandatory for the Almighty Lord, and at what time is it necessary for Him to refrain from any of His actions, and what action can distract Him? Then, taking support from Divine actions is a strange spectacle. What is the comparison between the Worshipped and the worshipper? Our job is only to follow the commands and that's it. May Allah Almighty grant us the strength for that, Ameen. And Allah, Glory be to Him and Most High, knows best.

Issue 1306 to 1308: From Bengal, District Pana, Post Office Sirajganj, Village Bhangabari, sent by Munshi Inayatullah Sahib, 6 Shawwal 1316 AH.

What is your ruling, may Allah Almighty have mercy on you, regarding this issue:

---

1 Dur-e-Mukhtar, Chapter on Friday, printed at Mujtabai Press, Delhi, India 1/113

फ़तावा रज़विया, जिल्द आठवीं

तनवीरुल अब्सार और दुर्रे मुख़्तार में है: (समाप्ति तक न कोई नमाज़ और न कोई कलाम) भले ही उसमें ज़ालिम शासकों का ज़िक्र हो, यही सही है। (त) अल्लामा हमवी का कोई फ़तवा सुना नहीं गया, न ही उनकी किसी किताब से उपरोक्त हरकत की अनुमति का पता चलता है। अर्थ पर गौर करें: जैसे खुतबे में उद्देश्य है वैसे ही नमाज़ में; क्या नमाज़ में भी इसी नेक नीयत से पंखा झलने की अनुमति होगी? जन्नत में उस हवा का उद्देश्य यह है ताकि वे चैन से दीदार से सम्मानित हों; यह बात बहुत दूर की और रद्द करने के योग्य है। जन्नत में माज़अल्लाह गर्मी और उमस का कौन सा समय होगा कि उसे दूर करने के लिए हवा की ज़रूरत हो? जन्नत वालों के लिए माज़अल्लाह बेचैनी का सामान किस समय होगा कि सुकून हासिल करने की ज़रूरत हो? वहाँ के जितने मामले हैं, सब केवल आनंद और नेमत की वृद्धि के लिए हैं। इसलिए शोधकर्ता कहते हैं कि दुनिया में वास्तव में कोई आनंद नहीं है जिसे आनंद समझा जाता है, वास्तव में वह दुख का निवारण है। पानी या शरबत कितना ही ठंडा, मीठा, खुशबूदार और सुहावना हो, अगर प्यास नहीं है तो वह कोई आनंद नहीं देता। खाना कितना ही स्वादिष्ट, उत्तम, खुशबूदार और मज़ेदार हो, अगर भूख नहीं है तो कोई मज़ा नहीं आता। तो वास्तव में भूख और प्यास का दुख दूर होता है, न कि शुद्ध आनंद। और इसी तरह अन्य सभी सुखों का हाल है। इसके विपरीत जन्नत में न भूख है, न प्यास, न गर्मी और न ही घुटन; तो वहाँ जो कुछ भी है वह शुद्ध और वास्तविक आनंद है।

अल्लाह तआला अपनी दया और कृपा से अपने नेक बंदों के सदके हमें अपनी रहमत का फ़ज़्ल अता फरमाए, आमीन। मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, जो रहमत के नबी और उम्मत के शफ़ीअ (सिफारिश करने वाले) हैं, उनके और उन सब के सदके, आमीन। अल्लाह तआला अपने करम, एहसान, फ़ज़्ल और प्यारे नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, जो रहमत के नबी और उम्मत के शफ़ीअ हैं, और नेक बंदों के सदके हमें यह जन्नती आनंद अता फरमाए। आमीन! (त)

और यदि गलत तरीके से ऐसा मान भी लिया जाए, तो वहाँ कौन बनावटी है और बारी अज़ व जल पर किस चीज़ का सुनना वाजिब है, और किस समय उसे अपने किसी काम से रुकना ज़रूरी है, और उसे कौन सा काम विचलित कर सकता है? फिर ईश्वरीय कार्यों से प्रमाण लेना एक अजीब तमाशा है। माबूद (पूजनीय) और आबिद (पूजा करने वाला) की क्या बराबरी? हमारा काम बस आदेशों का पालन करना है और बस। अल्लाह तआला हमें इसके लिए सामर्थ्य दे, आमीन। और अल्लाह, वह पाक है और सबसे उच्च है, सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1306 से 1308: बंगाल, ज़िला पाना, डाकखाना सिराजगंज, मौज़ा भंगाबाड़ी से मुंशी इनायतुल्लाह साहब द्वारा भेजा गया, 6 शव्वाल 1316 हिजरी।

आपका क्या फरमान है, अल्लाह तआला आप पर रहम फरमाए, इस मसले में कि:

---

1 दुर्रे मुख़्तार, जुमे का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, भारत में मुद्रित 1/113 पृष्ठ 341 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

تنویر الابصار و در مختار میں ہے: (لا صلوۃ ولا کلام الی تمامھا) وان کان فیھا ذکر الظلمۃ فی الاصح۔ (خطبہ مکمل ہونے تک کوئی نماز اور کوئی کلام نہیں) اگرچہ اس میں ظالم حکمرانوں کا ذکر ہو، یہی اصح ہے۔ (ت) علامہ حموی کا کوئی فتاوٰی مسموع نہیں، نہ ان کی کسی کتاب سے حرکت مذکورہ کا جواز مستفاد، ملاحظہ معنی جس طرح خطبے میں مقصودیوں ہی نماز میں، کیا نماز میں بھی اسی نیک نیت سے پنکھا جھلنے پھرنے کی اجازت ہوگی، جنت میں اُس ہوا کی یہ غایت تاکہ باطمینان دیدار سے مشرف ہوں، سخت ابعد و واجب الرد ہے، جنت میں معاذ اللہ گرمی و حبس کا کون سا وقت ہوگا جس کے ازالے کو ہوا کی حاجت ہو، اہل جنت کے لئے معاذ اللہ بے اطمینانی کا سامان کس وقت ہوگا کہ تحصیل اطمینان کی ضرورت ہو، وہاں کے جتنے امور ہیں سب محض لذت وزیادت نعمت ہیں، لہٰذا محققین فرماتے ہیں دنیا میں حقیقتاً کوئی لذت نہیں جسے لذت گمان کیا جاتا ہے، واقع میں دفع الم ہے، پانی یا شربت کیسا ہی سرد و شیریں و خوشبو و خوشگوار ہو پیاس نہیں تو کچھ لذت نہیں دیتا، کھانا کیسا ہی لذیذ وعمدہ و خوشبو و خوش مزہ ہو بھوک نہیں تو کچھ لطف نہیں آتا، تو حقیقتاً بھوک پیاس کا الم دفع ہوتا ہے، نہ لذت خالصہ وعلٰی ہذا القیاس باقی تمام ملاذ، بخلاف بہشت کہ وہاں اصلاً نہیں، نہ بھوک، نہ پیاس، نہ گرمی، نہ احتباس تو وہاں جو کچھ ہے خالص و حقیقی لذت ہے۔

رزقنا اللہ تعالٰی بمنہ وکرمہ فضل رحمتہ بصالحی عبادہ اٰمین بجاہ محمد نبی الرحمۃ شفیع الامۃ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وعلیھم اجمعین اٰمین۔ اللہ تعالٰی اپنے کرم، احسان، فضل اور پیارے نبی رحمۃ، شفیع امت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور صالحین بندوں کے طفیل یہ جنتی لذت ہمیں عطا فرمائے۔ اٰمین ! (ت)

اور بفرض باطل ایسا ہو بھی تو وہاں کون ساختہ ہے اور باری عزوجل پر کس چیز کا استماع واجب، اور کس وقت اپنے کسی فعل سے باز رہنا لازم، اور اُسے کون سافعل درسرے سے مشغول کرسکتا ہے، پھر افعال الہیہ سے استناد عجب تماشہ ہے، معبود و عابد کی کیا رییس، ہمیں اتباع احکام سے کام ہے وبس۔ وفقنا اللہ تعالیٰ لہ اٰمین واللہ وسبحنہ وتعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۰۶ تا ۱۳۰۸: از بنگالہ ضلع پانہ ڈاکخانہ سراج گنج موضع بھنگا باڑی مرسلہ منشی عنایت اللہ صاحب ۶ شوال ۱۳۱۶ھ

ما قولکم رحمکم اللہ تعالیٰ (اللہ تعالیٰ آپ پر رحم فرمائے آپ کا کیا فرمان ہے) اس مسئلہ میں کہ:

---

1 در مختار باب الجمعة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/ ۱۱۳ Page 341 of 673

Volume 8, Fatawa Rizvia

(1) In some sermons it is written that he should descend and ascend, and read while facing the right and then the left. What is its origin and basis, and is it permissible to act upon it or not? (2) In the middle of some sermons, Urdu verses are written; is it permissible to read the sermon along with them, or to read the entire sermon from beginning to end in Persian, Urdu, or any language other than Arabic, whether it is for Eid or Friday? (3) How many steps should the pulpit (minbar) have, and on which step should one stand for the sermon, and in which era did the pulpit originate?

The Answer: (1) Turning the face to the right and left has no basis; it should not be practiced. And descending one step during the mention of the Sultan was also described by some Shafi'is as detestable (qabih). Indeed, if it is devoid of any Shariah-based wisdom, it is futile, and the level of futility is 'Makruh' (disliked).

Arabic Text	**Urdu Translation**
In Radd al-Muhtar, it is stated that Ibn Hajar said in 'At-Tuhfa' and some of them researched that what is customary now of descending to a lower step during the second sermon and then returning is a foul and heinous innovation. -1	In Radd al-Muhtar, it is stated that Ibn Hajar said in 'At-Tuhfa' that some scholars have said that this practice which has become common of descending to a lower step during the second sermon and then returning to the upper step is the worst kind of innovation. (T)

In Al-Hindiya, among the Sunnahs of the sermon is: facing the people with one's face. 2 (Facing the people - T) In Radd al-Muhtar, it is stated:

Arabic Text	**Urdu Translation**
What some preachers do, turning their faces towards the right and the left during the prayer (Salat) upon the Prophet (may Allah Almighty bless him and grant him peace) in the second sermon, I have not seen anyone mention it. It appears to be an innovation that should be abandoned so that it is not mistakenly thought to be a Sunnah. Then I saw in Minhaj al-Nawawi,	Some preachers turn their faces to the right and left while reciting Durood upon the Holy Prophet (may Allah Almighty bless him and grant him peace) during the second sermon. I have not come across any mention of this in my studies, and it is apparent that it should be abandoned so that no one mistakes it for a Sunnah. Then I saw in Minhaj al-

Arabic Text	Urdu Translation
he said: and he should not turn right or left in...	Nawawi, he said: that in anything right and left...

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/608.
2. Fatawa Hindiyyah, Chapter Sixteen on Friday Prayer, printed by Nurani Kutub Khana Peshawar, 1/146.

जिल्द अष्टम, फ़तावा रज़विया

(१) कुछ खुतबों में जो लिखा है कि नीचे आए, ऊपर जाए, दाएं तरफ और बाएं तरफ मुतवज्जह होकर पढ़े, इसकी असल क्या है और ये किस पर आधारित है और इस पर अमल करना जायज़ है या नहीं? (२) कुछ खुतबों के दरमियान जो उर्दू अशआर लिखे हैं, खुतबा उनके साथ पढ़ना या सिर्फ फारसी या उर्दू या अरबी के अलावा किसी और ज़बान में शुरू से आखिर तक पढ़ना, चाहे ईद हो या जुमा, जायज़ है या नहीं? (३) मिम्बर कितनी सीढ़ियों का होना चाहिए और किस पर खड़े होकर खुतबा पढ़ना चाहिए और मिम्बर किस ज़माने से शुरू हुआ है?

जवाब: (१) दाएं बाएं मुँह फेरना बे-असल है, इस पर अमल न किया जाए। और सुल्तान के ज़िक्र के वक़्त एक सीढ़ी नीचे उतरने को भी बाज़ शाफ़ई उलमा ने कबीह (बुरा) बताया है, और वाकई अगर इसमें कोई शरई हिकमत न हो तो यह फुज़ूल है और फुज़ूल का दर्जा मकरूह है।

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
रद्द अल-मुहतार में है कि इब्न हजर ने 'तुहफ़ा' में फरमाया और उनमें से कुछ ने शोध किया कि यह जो अब रिवाज हो गया है कि दूसरे खुतबे में नीचे की सीढ़ी पर उतरना और फिर वापस ऊपर आना, एक घिनौनी और बुरी बिदअत है। -1	रद्द अल-मुहतार में है कि इब्न हजर ने 'तुहफ़ा' में फरमाया कि बाज़ उलमा ने फरमाया कि यह जो मामूल बन गया है कि दूसरे खुतबे के वक़्त नीचे के दर्जे (सीढ़ी) पर आना और फिर ऊपर के दर्जे की तरफ लौटना बद-तरीन बिदअत है। (त)

अल-हिन्दिया में खुतबे की सुन्नतों में है: लोगों की तरफ मुँह करना। 2 (लोगों की तरफ मुँह करना - त) रद्द अल-मुहतार में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
बाज़ खतीब जो दूसरे खुतबे में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर दरूद पढ़ते समय अपना चेहरा दाएं और बाएं मोड़ते हैं, मैंने इसके बारे में किसी का उल्लेख नहीं देखा है। ज़ाहिर है कि यह एक बिदअत है जिसे छोड़ देना चाहिए ताकि इसे सुन्नत न समझ लिया जाए। फिर मैंने मिन्हाज	बाज़ खुतबा देने वाले (खतीब) दूसरे खुतबे के दौरान नबी अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम पर दरूद पढ़ते हुए दाएं-बाएं चेहरा फेरते हैं, इसका ज़िक्र मेरे मुताले (अध्ययन) में नहीं आया, और ज़ाहिर यही है कि इसे तर्क कर देना चाहिए ताकि कोई इसे सुन्नत न समझ ले,

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
अन-नववी में देखा, उन्होंने कहा: और वह दाएं या बाएं नहीं मुड़ेगा...	फिर मैंने मिन्हाज अन-नववी में देखा, उन्होंने फरमाया कि किसी चीज़ में दाएं-बाएं..

1. रद्द अल-मुहतार, बाबू जुमा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र १/६०८
2. फ़तावा हिन्दिया, अध्याय १६, नमाज़े जुमा के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर १/१४६

पृष्ठ ३४२ / ६७३

جلد ہشتم، فتاویٰ رضویہ

(۱) بعض خطبہ میں جو لکھا ہے کہ فرودآید بالا رود بدست راست خواند بدست چپ خواند (نیچے آئے، اوپر جائے دائیں طرف اور بائیں طرف متوجہ ہو کر پڑھے) اس کا اصل کیا اور مبنی کہاں سے ہے اور اس پر عمل کرنا جائز ہے یا نہیں؟ (۲) بعض خطبہ کے درمیان جو اردو اشعار لکھا ہے خطبہ مع اُس کے پڑھنا یا صرف فارسی یا اردو یا اور کوئی زبان میں سوائے عربی کے پڑھنا اول سے اخیر تک چاہے عید ہو یا جمعہ، جائز ہے یا نہیں؟ (۳) منبر کتنی سیڑھی کا ہونا چاہئے اور کس پر کھڑے ہو کر خطبہ چاہئے اور منبر کس زمانہ سے شروع ہوا ہے؟

الجواب: (۱) دہنے بائیں منہ پھیرنا بے اصل ہے اس پر عمل نہ کیا جائے اور ذکر سلطان کے وقت ایک پایہ نیچے اُترنے کو بھی بعض شافعیہ نے قبیح بتایا، اور واقعی اگر مصلحتِ شرعیہ سے خالی ہو تو عبث ہے اور عبث کا درجہ مکروہ،

| في ردالمحتار قال ابن حجر في التحفة وبحث بعضهم ان ما اعتيد الان من النزول في الخطبة الثانية الی درجة سفلی ثم العود بدعة قبيحة شنيعة -1 | ردالمحتار میں ہے کہ ابن حجر نے تحفہ میں فرمایا کہ بعض علماء نے فرمایا کہ یہ جو معمول بن گیا ہے کہ دوسرے خطبہ کے وقت نیچے درجہ پر آنا پھر اوپر والے درجہ کی طرف لوٹنا بد ترین بدعت ہے۔ (ت) |

ہندیہ میں سُننِ خطبہ میں ہے: استقبال القوم بوجهہ 2 (قوم کی طرف منہ کرنا۔ ت) ردالمحتار میں ہے:

| ما يفعله بعض الخطباء من تحويل الوجه جهة اليمين وجهة اليسار عند الصلوة على النبي صلى الله تعالى عليه وسلم في الخطبة الثانية لم ارمن ذكره والظاهر انه بدعة ينبغی تركه لئلا يتوهم انه سنة ثم

رأيت في منهاج النووی قال ولا يلتفت يمينا وشمالا فی | بعض خطباء دوسرے خطبہ کے دوران نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر درود پڑھتے ہوئے دائیں بائیں چہرہ پھیرتے ہیں، اس کا ذکر میرے مطالعہ میں نہیں آیا، اور ظاہر یہی ہے کہ اسے ترک کر دینا چاہئے تاکہ کوئی اسے سنت نہ بنالے، پھر میں نے منہاج النووی میں دیکھا انھوں نے فرمایا کہ کسی شئی میں دائیں بائیں |

1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱ / ۶۰۸ 2 فتاویٰ ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱ / ۱۴۶

[Arabic Box:] One should not turn (during the sermon). Ibn Hajar stated in his commentary: "Because that is an innovation (Bid'ah)." This is concluded. According to us, this can be inferred from the statement in 'Al-Bada'i' that the Sunnah is for the Imam to face the people and have his back towards the Qibla, as the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to deliver the sermon in this manner. And Allah the Exalted knows best.

[Urdu Box:] (Regarding turning) Ibn Hajar stated in his commentary: "Do not do so, because it is an innovation (Bid'ah)." Finished. For us, this can be inferred from the statement in 'Al-Bada'i' that the Sunnah is for the Imam to face the people and have his back towards the Qibla, as the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to deliver the sermon in this manner. And Allah the Exalted knows best. (T)

(2) No Urdu or Persian poetry should be recited in the sermon (Khutbah), nor should the sermon be delivered in any language other than Arabic, as it is against the inherited Sunnah (Sunnah Mutawaritha). As we have established in our Fatawa (As we have researched in our Fatawa. T). And Allah the Exalted knows best.

(3) The pulpit (Minbar) itself was commissioned by the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and he delivered sermons from it, as established in Sahihayn (Bukhari and Muslim) etc. through the Hadith of Sahal bin Sa'd (may Allah be pleased with him). (The Hadith is narrated by Sahrat Sahal bin Sa'd in Bukhari, Muslim etc. T). The sacred pulpit had three steps in addition to the upper platform on which one sits.

[Arabic Box:] They are mentioned in several Hadiths, such as the Hadith regarding the warning for one in whose presence the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is mentioned and he does not send blessings upon him.

[Urdu Box:] Their mention is found in multiple Hadiths, such as the Hadith which mentions that the person in whose presence the blessed name of the Prophet (peace be upon him) was taken and he did not recite Durood Sharif upon him (peace and blessings of Allah be upon him), for him there is a warning. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic Box:] His (peace and blessings of Allah be upon him) pulpit had three steps besides the one called 'Mustarah' (the resting platform).

[Urdu Box:] The sacred pulpit of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) had three steps besides the platform on which one sits. (T)

The Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) used to deliver the sermon from the top step; Siddiq (may Allah be pleased with him) delivered it from the second step, and Farooq (may Allah be pleased with him) from the third. When the era of Dhu al-Nurayn (Uthman, may Allah be pleased with him) arrived, he delivered the sermon from the first step again. When asked the reason, he said: "If I delivered it from the second step, people would think I consider myself equal to Siddiq, and if I delivered it from the third step, it would be perceived that..."

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Jumu'ah, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/598.
2. Sahih Bukhari, Chapter on Al-Khutbah 'ala al-Minbar, printed by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/125.
3. Al-Targhib wa al-Tarhib, Book of Fasting, p. 93. Book of Dhikr wa al-Du'a, Mustafa al-Babi, Egypt, 2/8-507.
4. Radd al-Muhtar, Chapter on Jumu'ah, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/608.

[अरबी बॉक्स:] मुड़कर न देखे। इब्न हजर ने अपनी व्याख्या में फ़रमाया: "क्योंकि यह बिदअत (नवाचार) है।" समाप्त। हमारे निकट 'बदाइ' के इस कथन से यह बात ली जा सकती है कि सुन्नत यह है कि इमाम लोगों की ओर मुँह करे और क़िबला की ओर पीठ रखे, क्योंकि नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इसी प्रकार ख़ुत्बा इरशाद फ़रमाया करते थे। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

[उर्दू बॉक्स:] (मुड़कर न देखे), इब्न हजर ने अपनी व्याख्या में फ़रमाया कि यह बिदअत है। समाप्त। और हमारे निकट 'बदाइ' के इस कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सुन्नत यह है कि इमाम लोगों की ओर मुँह करे और क़िबला की ओर पीठ करे, क्योंकि नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इसी प्रकार ख़ुत्बा इरशाद फ़रमाया करते थे। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। (त)

(२) ख़ुत्बा में उर्दू या फ़ारसी की कोई कविता नहीं पढ़नी चाहिए और न ही ख़ुत्बा अरबी के अलावा किसी और भाषा में पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि यह सुन्नत-ए-मुतवारिषा (निरंतर चली आ रही सुन्नत) के ख़िलाफ़ है, जैसा कि हमने अपने फ़तावा में इसकी तहक़ीक़ (अनुसंधान) की है। (जैसा कि हमने अपने फ़तवों में इसकी पुष्टि की है। त) और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

(३) मिम्बर (प्रवचन मंच) स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने बनवाया था और उस पर ख़ुत्बा फ़रमाया, जैसा कि सहीहैन (बुख़ारी व मुस्लिम) आदि में हज़रत सहल बिन साद (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से प्रमाणित है। (बुख़ारी और मुस्लिम आदि में हज़रत सहल बिन साद रज़ियल्लाहु अन्हु से वर्णित है। त) पवित्र मिम्बर की तीन सीढ़ियाँ थीं, ऊपर के उस तख़्त के अलावा जिस पर बैठा जाता है।

[अरबी बॉक्स:] उनका उल्लेख कई हदीसों में आया है, जैसे वह हदीस जिसमें उस व्यक्ति के लिए चेतावनी है जिसके सामने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का उल्लेख हो और वह उन पर दुरूद न भेजे।

[उर्दू बॉक्स:] इनका ज़िक्र कई हदीसों में है, जैसे वह हदीस जिसमें ज़िक्र है कि जिस व्यक्ति के पास हुज़ूर अलैहिस्सलाम का मुबारक नाम लिया जाए और उसने आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर दुरूद शरीफ़ न पढ़ा तो उसके लिए सज़ा की चेतावनी है। (त)

रद्दुल मुहतार में है:

[अरबी बॉक्स:] हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मिम्बर की तीन सीढ़ियाँ थीं, 'मुस्तराह' (विश्राम स्थल) के नाम से प्रसिद्ध हिस्से के अलावा।

[उर्दू बॉक्स:] हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र मिम्बर की तीन सीढ़ियाँ उस तख़्त के अलावा थीं जिस पर बैठा जाता है। (त)

हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ऊपरी दर्जे पर ख़ुत्बा फ़रमाया करते थे; सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने दूसरी सीढ़ी पर पढ़ा, फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने तीसरी पर। जब ज़ुन्नूरैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) का युग आया, तो उन्होंने फिर से पहली सीढ़ी पर ख़ुत्बा फ़रमाया। जब कारण पूछा गया, तो फ़रमाया: "अगर मैं दूसरी पर पढ़ता तो लोग सोचते कि मैं सिद्दीक़ का समकक्ष हूँ, और अगर तीसरी पर पढ़ता तो यह भ्रम होता कि..."

---

1. रद्दुल मुहतार, बाब अल-जुमुअह, मुस्तफ़ा अल-बाबी द्वारा मुद्रित, मिस्र, १/५९८
2. सहीह बुख़ारी, बाब अल-ख़ुत्बा अलल-मिम्बर, क़दीमी कुतुब ख़ाना द्वारा मुद्रित, कराची, १/१२५
3. अत्तर्गीब वत्तर्हीब, किताबुस-सौम, पृ. ९३। किताबुज़-ज़िक्र वद्दु'आ, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, २/८-५०७
4. रद्दुल मुहतार, बाब अल-जुमुअह, मुस्तफ़ा अल-बाबी द्वारा मुद्रित, मिस्र, १/६०८

पृष्ठ ३४३ / ६७३

شیئی منھا قال ابن حجر في شرحه لان ذلك بدعة انتھی ویؤخذ ذلك عندنا من قول البدائع ومن السنة ان یستقبل الناس بوجھه و یستدبر القبلة لان النبي صلی اللہ تعالی علیه وسلم کان یخطب ھکذا اھ واللہ تعالی اعلم

التفات نہ کرے، ابن حجر نے شرح میں فرمایا اس لئے کہ یہ بدعت ہے انتہی اور ہمارے نزدیک بدائع کے اس قول سے اخذ کیا جاسکتا ہے کہ سنت یہ ہے کہ امام لوگوں کی طرف منہ کرے اور قبلہ کی طرف پشت کرے کیونکہ نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اسی طرح خطبہ ارشاد فرمایا کرتے تھے اھ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

(۲) خطبہ میں کوئی شعر اردو فارسی نہ پڑھنا چاہئے نہ خطبہ عربی کے سوا کسی زبان میں پڑھا جائے کہ یہ سنت متوارثہ کی خلاف ہے کما حققناہ فی فتاوٰنا (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاوٰی میں اس کی تحقیق کی ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

(۳) منبر خود رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے بنوایا اور اس پر خطبہ فرمایا کما ثبت فی الصحیحین وغیر ہما حدیث سھل بن سعد رضی اللہ تعالٰی عنه (بخاری و مسلم وغیرہ میں حضرت سہل بن سعد رضی تعالٰی عنہ سے مروی ہے۔ ت) منبر اقدس کے تین زینے تھے علاوہ اوپر کے تختے کے جس پر بیٹھتے ہیں

وقد وقع ذکر ھن فی غیر ما حدیث کحدیث وعید من ذکر عندہ النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فلم یصل صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔

ان کا ذکر متعدد احادیث میں ہے جیسے وہ حدیث جس میں ذکر ہے کہ جس شخص کے پاس حضور علیہ السلام کا نام مبارک لیا اور اس نے آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر درود شریف نہ پڑھا تو اس کے لئے وعید ہے (ت)

ردالمحتار میں ہے :

منبرہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کان ثلث درج غیر المسماۃ بالمستراح۔

حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے مقدس منبر کے تین زینے اس تخت کے علاوہ تھے جس پر بیٹھا جاتا ہے۔ (ت)

حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم درجہ بالا پر خطبہ فرمایا کرتے ، صدیق رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے دوسرے پر پڑھا، فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے تیسرے پر ، جب زمانہ ذوالنورین رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا آیا پھر اول پر خطبہ فرمایا سبب پوچھا گیا، فرمایا اگر دوسرے پر پڑھتا لوگ گمان کرتے کہ میں صدیق کا ہمسر ہوں اور تیسرے پر تو ہم ہوتا کہ

---

1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۸ 2 صحیح بخاری باب الخطبۃ علی المنبر مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۲۵ 3 الترغیب والترہیب کتاب الصوم ص ۹۳۔ کتاب الذکر والدعاء مصطفی البابی مصر ۲/۸۔۵۰۷ 4 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۶۰۸

Fatawa Razawiyya Volume 8

...equal to Farooq. Therefore, it was read where this possibility is not even conceivable; the original Sunnah is standing in the first degree.

"What Siddiq did was out of etiquette towards the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), and what Farooq did was out of etiquette towards Siddiq (may Allah be pleased with them both)."

Hadrat Siddiq al-Akbar (may Allah be pleased with him) did this out of respect for the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and Hadrat Farooq al-Azam (may Allah be pleased with him) did it for the sake of respect for Hadrat Abu Bakr Siddiq (may Allah be pleased with him). (T)

The primary purpose of the pulpit's height is for all attendees to see the preacher (Khatib) and hear his voice. Where this need is not met with three steps due to the large number of attendees and distance of the rows, one has the discretion to increase the steps. It is better to observe an odd number, for "Allah is Witr (One/Odd) and loves Witr." (Allah Almighty is One and likes odd numbers. - T) And Allah knows best.

Case 1309: From Katra village, Oubra Post Office, District Gaya, sent by Maulvi Syed Karim Raza Sahib, 1st Jamadi-ul-Akhirah 1317 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Is performing four rak'ahs of 'Ihtiyati Zuhr' (cautionary noon prayer) recommended (Mustahabb), obligatory (Wajib), or absolutely mandatory (Fard-e-Qat'i)? In the first and second cases, can this cautionary prayer take the place of the mandatory (Fard) prayer or not? And in the second case, does the necessity of both Zuhr and Jumu'ah (Friday prayer) follow as a combined requirement or not? And in such a case, will one who omits the cautionary prayer be considered an omitter of a mandatory (Fard) prayer? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: Where Jumu'ah is undeniably invalid and void according to the school of thought, like those villages that cannot be termed 'Misr' (cities) by any narration of the school, there Zuhr itself is specifically mandatory. In such places, there is absolutely no room for holding Jumu'ah or prescribing four rak'ahs of cautionary prayer, because "Verily, the Sharia does not command the commission of sin, nor does it allow engagement in what is fundamentally incorrect." (T) Their place [of cautionary prayer] is where there is doubt and strong hesitation regarding the

validity of Jumu'ah. For example, those places whose status as a 'Misr' is doubtful, or where despite assurance of validity, the opposing side holds some weight; for instance, where Jumu'ah is held in multiple locations and it is unknown which started first. Although regarding multiple locations, the ruling of permissibility is reliable, adopted, and given as fatwa, the ruling of non-permissibility is also not dismissed or negligible, as explained in 'Radd al-Muhtar'. (T) In the first case, the ruling for these four rak'ahs will be one of obligation and emphasis, due to the occurrence of doubt in the discharge of one's responsibility. (T) And in the second case, it is as a recommendation and encouragement, because "Avoiding disagreement is recommended by consensus, as long as it does not lead to something prohibited." (T) And Allah Almighty knows best.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

...फ़ारूक के बराबर हों। इसलिए वहाँ पढ़ा गया जहाँ यह संभावना ऽल्पनीय ही नहीं है; मूल सुन्नत प्रथम श्रेणी में खड़ा होना है।

"जो सिद्दीक़ ने किया वह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रति शिष्टाचार के कारण था, और जो फ़ारूक ने किया वह सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के प्रति शिष्टाचार के कारण था।"

हज़रत सिद्दीक़ अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अदब की वजह से ऐसा किया और हज़रत फ़ारूक़े आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) के अदब की ख़ातिर। (त)

मिंबर की ऊंचाई का मुख्य उद्देश्य यह है कि सभी उपस्थित लोग खतीब (वक्ता) को देखें और उसकी आवाज़ सुनें। जहाँ बड़ी संख्या में उपस्थित लोगों और सफ़ों (पंक्तियों) की दूरी के कारण तीन सीढ़ियों से यह ज़रूरत पूरी न हो, वहाँ सीढ़ियाँ बढ़ाने का अपना अधिकार है। विषम संख्या (ताक) का ध्यान रखना बेहतर है, क्योंकि "अल्लाह वित्र (एक) है और वित्र को पसंद करता है।" (अल्लाह तआला वित्र है और वित्र को पसंद करता है। - त) और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसाला 1309: गाँव कटरा, डाकघर ओबरा, जिला गया, मौलवी सैयद करीम रज़ा साहब द्वारा भेजा गया, 1 जमादी-उल-आख़िरह 1317 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: चार रकात 'एहतियाती ज़ुहर' (सावधानी के तौर पर दोपहर की नमाज़) अदा करना मुस्तहब (पसंदीदा) है, वाजिब है या फ़र्ज़-ए-क़तई है? पहली और दूसरी स्थिति में क्या यह एहतियाती नमाज़ फ़र्ज़ की जगह ले सकती है या नहीं? और दूसरी स्थिति में क्या ज़ुहर और जुमा दोनों का पढ़ना एक साथ आवश्यक हो जाता है या नहीं? और ऐसी स्थिति में क्या एहतियाती नमाज़ छोड़ने वाला फ़र्ज़ का छोड़ने वाला माना जाएगा? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: जहाँ मज़हब के अनुसार जुमा निस्संदेह नाजायज़ और बातिल (अमान्य) है, जैसे वे गाँव जिन्हें मज़हब की किसी भी रिवायत के अनुसार 'मिस्र' (शहर) नहीं माना जा सकता, वहाँ ज़ुहर ही अनिवार्य (फ़र्ज़) है। वहाँ जुमा पढ़ाने और चार रकात एहतियाती बताने की बिल्कुल भी गुंजाइश नहीं है, क्योंकि "बेशक शरीयत गुनाह करने का हुक्म नहीं देती, और न ही ऐसी चीज़ में व्यस्त होने की अनुमति देती है जो मौलिक रूप से सही न हो।" (त) इनका स्थान वहाँ है जहाँ जुमा की वैधता में संदेह और प्रबल हिचकिचाहट हो। उदाहरण के लिए, वे स्थान जिनकी मिस्रियत (शहर होने) में संदेह हो, या वैधता के

प्रति इत्मीनान के बावजूद विपक्षी पक्ष का कुछ महत्व हो; उदाहरण के तौर पर जहाँ जुमा कई स्थानों पर होता हो और यह अज्ञात हो कि पहले कहाँ शुरू हुआ। हालाँकि कई स्थानों पर जुमा होने के बारे में अनुमति का ही कथन विश्वसनीय, स्वीकार्य और फ़तवा के योग्य है, लेकिन अनुमति न होने का पक्ष भी रद्द या उपेक्षणीय नहीं है, जैसा कि 'रद-उल-मुह्तार' में वर्णित है। (त) पहली स्थिति में इन चार रकात का हुक्म अनिवार्यता और ताकीद के तौर पर होगा, क्योंकि ज़िम्मेदारी से मुक्त होने में संदेह पैदा हो गया है। (त) और दूसरी स्थिति में मुस्तहब (पसंदीदा) और प्रोत्साहन के तौर पर, क्योंकि "सहमति से मतभेद से निकलना मुस्तहब है, बशर्ते कि इससे किसी निषिद्ध कार्य का करना आवश्यक न हो जाए।" (त) और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

पृष्ठ 344/673

فاروق کے برابر ہوں۔ لہذا وہاں پڑھا جہاں یہ احتمال متصور ہی نہیں اصل سنت اول درجہ پر قیام ہے

و ما فعله الصدیق فکان تأدبا منه مع رسول الله صلی الله تعالی علیہ وسلم و ما فعل الفاروق فکان تأدبا مع الصدیق رضی الله تعالٰی عنہما

حضرت صدیق اکبر رضی الله تعالٰی عنہ نے حضور صلی الله تعالٰی علیہ وسلم کے ادب کی بنا پر ایسا کیا اور حضرت فاروق اعظم رضی الله تعالٰی عنہ نے حضرت ابو بکر صدیق رضی الله تعالٰی عنہ کے ادب کی خاطر۔ (ت)

بلندی منبر سے اصل مقصد یہ ہے کہ سب حاضرین خطیب کو دیکھیں اور اُس کی آواز سنیں جہاں یہ حاجت بسبب کثرتِ حضار و دوریِ صفوف تین زینوں میں پوری نہ ہو تو زینے زیادہ کرنے کا خود ہی اختیار ہے اور بہتر عدد طاق کی مراعات فان الله وتر یحب الوتر (الله تعالٰی وتر ہے اور وتر کو پسند کرتا ہے۔ت) والله تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۳۰۹: از موضوع کٹرہ ڈاک خانہ اوبرہ ضلع گیا مرسلہ مولوی سید کریم رضا صاحب غرہ جمادی الآخرہ ۱۳۱۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں چار رکعت احتیاطی ظہر کا ادا کرنا مستحب ہے یا واجب یا فرضِ قطعی؟ بصورتِ اولٰی و ثانیہ یہ نماز احتیاطی قائم مقام فرض کے ہو سکتی ہے یا نہیں؟ اور صورتِ ثانیہ میں صلوٰۃِ ظہر و جمعہ کا لزوم بطریقِ اجتماع لازم آتا ہے یا نہیں؟ اور ایسی صورت میں تارکِ احتیاطی تارکِ فرض ہو گا یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: جہاں جمعہ بحسب مذہب بلا شبہ ناجائز باطل ہے جیسے وہ قوروہ جو کسی روایت مذہب پر مصر نہیں ہو سکتے وہاں ظہر آپ ہی عیناً فرض ہے اور جمعہ پڑھوانے اور چار رکعت احتیاطی بتانے کی اصلاً گنجائش نہیں فان الشرع لا یأمر بارتکاب الاثم والاشتغال بما لا یصح اصلا (شریعت کسی ایسی چیز کا حکم نہیں دیتی جس پر گناہ ہو اور نہ ہی ایسی شئی میں مشغول ہونے کی اجازت دیتی ہے جو بالکل صحیح نہ ہو۔ ت) ان کا محل وہاں ہے کہ صحتِ جمعہ میں اشتباہ و تردد قوی ہو مثلاً وہ مواضع جن کی مصریت میں شک ہے یا باوصفِ اطمینانِ صحت جانبِ خلاف کچھ وقعت رکھتی ہو مثلاً جہاں جمعہ متعدد جگہ ہوتا ہو اور سبقتِ نامعلوم ہو کہ اگرچہ درباره تعدد قول جواز ہی معتمد و ماخوذ و مفتی بہ ہے مگر عدمِ جواز بھی ساقط و نا قابلِ التفات نہیں کما بینہ فی رد المحتار (جیسا کہ ردالمحتار میں بیان کیا گیا ہے۔ ت) صورت اولیٰ میں ان چار رکعت کا حکم ایجاباً و تاکیداً ہو گا لوقوع الشبہۃ فی برائتہ العھدۃ (ذمہ داری سے عہدہ برآ ہونے میں شبہ ہو گیا ہے۔ ت) اور ثانیہ میں استحباباً و ترغیباً لان الخروج عن الخلاف مستحب اجماعا مالم یلزم محذور (بالاتفاق اختلاف سے نکلنا مستحب ہے بشرطیکہ وہاں کسی ممنوع کا ارتکاب نہ ہو۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

Fatawa Razawiya - Volume 8

In Radd al-Muhtar it is stated:

[Arabic Text] It is quoted from al-Maqdisi, from al-Muhit, that in every place where there is doubt about its being a city, they should pray four units (rak'ahs) after the Friday prayer with the intention of Zuhr as a precaution. Similarly, it is stated in al-Kafi. In al-Qunyah, it is mentioned that their imams strictly commanded the people to perform four units after the Friday prayer as a precaution. This has been quoted by many commentators of al-Hidayah and others, and they have circulated it. In al-Zahiriyyah, it says that the majority of the scholars of Bukhara follow this practice so that they may be relieved of the obligation with certainty. Then al-Maqdisi quoted from al-Fath that when there is doubt about the place being a city or when the Friday prayer is held in multiple locations, one should pray four units with the intention of the last obligatory prayer whose time he reached but did not perform. He quoted similarly from the researcher Ibn Jarbash and then said that its benefit is to emerge from the imagined or verified difference of opinion. It is mentioned in al-Nahr that one should not hesitate in recommending the Zuhr prayer as a precaution, even according to the view that multiple Friday prayers are permissible, to avoid disagreement. In Sharh al-Baqani, it is stated that this is correct. The discussion remains whether it is obligatory or recommended. Al-Maqdisi said that Ibn Shahnah quoted from his grandfather an explicit statement regarding it being recommended (mandub), and he discussed it saying that this is when it's a mere imagination. However, when there is doubt and uncertainty regarding the validity of the Friday prayer, its obligatoriness is apparent. He quoted a passage from his teacher Ibn al-Humam in support of this. The detail is also supported by the expressions of al-Timirtashi in 'La Budd' and the mentioned text from al-Qunyah. — Abridged.

[Urdu Text] Al-Maqdisi quoted from al-Muhit that in every place where there is a difference of opinion about its status as a city, four units of prayer should be performed after the Friday prayer with the intention of Zuhr as a precaution. The same is stated in al-Kafi. In al-Qunyah, it says that the Imams strictly ordered the people to perform four units of prayer after the Friday prayer as a precaution. Many commentators of al-Hidayah and others have quoted this and made it a common practice. In al-Zahiriyyah, it's mentioned that the majority of the scholars of Bukhara act upon this so they can be sure they've fulfilled their duty. Then it's quoted from al-Fath that when there's doubt about a place being a city or when Friday prayers are held in multiple places, four units should be prayed with the intention: 'I am

performing the last obligatory prayer whose time I reached but did not perform.' Similarly, quoting the researcher Ibn Jarbash, he said its benefit is to move away from a proven or imagined disagreement. It's mentioned in al-Nahr that one shouldn't hesitate about the recommendability of Zuhr as a precaution, even based on the view that multiple Friday prayers are allowed, to avoid disagreement. In Sharh al-Baqani, it says this is correct. The discussion on whether this is obligatory or recommended is still ongoing. Al-Maqdisi says Ibn Shahnah quoted from his grandfather a clear statement on it being recommended, and while discussing it, he said this is when there's only a suspicion. But if there's doubt and uncertainty about the validity of the Friday prayer, then its being obligatory is clear. He quoted his teacher Ibn al-Humam's text in support, and this detail is also supported by al-Timirtashi's word 'La Budd' and the mentioned text of al-Qunyah. — Abridged. (T)

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday Prayer, printed Mustafa al-Babi Egypt, 1/596.

फ़तावा रज़विया - भाग 8

रद अल-मुह्तार में है:

[अरबी पाठ] अल-मक़दिसी से अल-मुहीत के हवाले से नक़ल किया गया है: हर वह स्थान जहाँ उसके शहर होने में संदेह हो, वहाँ जुमा के बाद एहतियातन ज़ुहर की नियत से चार रकात नमाज़ पढ़नी चाहिए। अल-काफ़ी में भी ऐसा ही है। अल-कुन्या में है कि उनके इमामों ने लोगों को जुमा के बाद एहतियातन चार रकात अदा करने का कड़ा आदेश दिया। इसे हिदाया के कई व्याख्याकारों और अन्य लोगों ने नक़ल किया है और इसे प्रचलित किया है। अल-ज़हीरिया में है कि बुखारा के अधिकांश विद्वानों का यही अमल है ताकि वे निश्चित रूप से अपने दायित्व से मुक्त हो सकें। फिर अल-मक़दिसी ने अल-फत्ह से नक़ल किया कि जब शहर होने में संदेह हो या जुमा कई स्थानों पर हो रहा हो, तो चार रकात इस नियत से पढ़नी चाहिए: 'मैं वह अंतिम फ़र्ज़ अदा कर रहा हूँ जिसका समय मुझे मिला लेकिन मैंने उसे अदा नहीं किया।' उन्होंने मुहक्किक इब्न जरबाश से भी ऐसा ही नक़ल किया और कहा कि इसका लाभ कल्पित या प्रमाणित मतभेद से बाहर निकलना है। अन-नहर में उल्लेख है कि मतभेद से बचने के लिए जुमा के कई स्थानों पर होने की अनुमति के विचार पर भी एहतियातन ज़ुहर के मुस्तहब होने में संकोच नहीं करना चाहिए। शरह अल-बकानी में है कि यही सही है। अब यह चर्चा शेष है कि यह वाजिब है या मुस्तहब। अल-मक़दिसी कहते हैं कि इब्न शहना ने अपने दादा से इसके मुस्तहब होने का स्पष्ट उल्लेख नक़ल किया है, और उस पर चर्चा करते हुए कहा कि यह तब है जब केवल संदेह हो। लेकिन उस स्थिति में जब जुमा की शुद्धता में संदेह और अनिश्चितता हो, तो इसका वाजिब होना स्पष्ट है। उन्होंने अपने उस्ताद इब्न अल-हुमाम के पाठ को अपने समर्थन में नक़ल किया, और इस विवरण का समर्थन तिमिर्ताशी के शब्द 'ला बुद्द' और कुन्या के उक्त पाठ से भी होता है। — संक्षिप्त।

[उर्दू पाठ] मक़दिसी ने मुहीत से नक़ल किया कि हर वह मक़ाम जिसके शहर होने में इख़्तिलाफ़ हो वहाँ जुमा के बाद एहतियातन नियत-ए-ज़ुहर से चार रकअत अदा की जाए, काफ़ी में भी इसी तरह है। क़ुनिया में है कि अइम्मा ने जुमा के बाद लोगों को हतमन (निश्चित रूप से) चार रकअत एहतियातन बजा लाने का हुक्म दिया है। इसे अक्सर शारिहीन-ए-हिदाया वग़ैरह ने नक़ल किया है और इसी को मुतदावल (प्रचलित) किया। ज़हीरिया में है कि मशाईख़-ए-बुख़ारा की अक्सरियत का अमल इसी पर है ताकि बा-यक़ीन ज़िम्मादारी से उहदा-बरा हो सकें। फिर फ़तह से मनक़ूल है कि जब शहर होने में शक हो या जुमा मुतअद्दिद जगह हो रहा हो तो चाहिए कि चार रकअत इस नियत

से अदा की जाएं कि मैं आख़िरी फ़र्ज़ अदा कर रहा हूँ जिनका वक़्त मैंने पाया मगर उन्हें अदा नहीं किया। इसी तरह मुहक्किक इब्न जर्बाश से नक़ल करके कहा इसका फ़ायदा साबित या मुतवहम इख़्तिलाफ़ से निकलना है। नह्र में मज़कूर है कि इख़्तिलाफ़ से निकलने के लिए जवाज़-ए-तअद्दुद-ए-जुमा के क़ौल पर भी एहतियातन ज़ुहर के मुस्तहब होने में तरद्दुद (संकोच) नहीं करना चाहिए। शरह अल-बकानी में है कि यही सही है। इस तहक़ीक़ में गुफ़्तगू कि यह वाजिब है या मुस्तहब, अभी बाक़ी है। मुक़द्दसी कहते हैं कि इब्न शहना ने अपने दादा से नदब (सिफ़ारिश) पर तसरीह नक़ल की और इस पर बहस करते हुए कहा कि यह उस वक़्त है जब महज़ तवहुम हो। मगर इस सूरत में जब सेहत-ए-जुमा में शक-ओ-इश्तबाह हो तो फिर इसका वाजिब होना ज़ाहिर है और अपने शैख़ इब्न हम्माम की इबारत को अपनी ताईद में नक़ल किया और इसकी तफ़्सील की ताईद तुमरताशी के अल्फ़ाज़ 'ला बुद्द' और क़ुनिया के मज़कूर कलाम से भी होती है। — संक्षिप्त। (त)

---

1. रद अल-मुह्तार, जुमा का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/596.

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

ردا لمختار میں ہے :

[Arabic Column] نقل عن المقدسي عن المحيط كل موضع وقع الشك في كونه مصرا ينبغي لهم ان يصلوا بعد الجمعة اربعا بنية الظهر احتياطا ومثله في الكافي وفى القنية امر أئمتهم بالاربع بعدها حتما احتياطا اه ونقله كثير من شراح الهداية وغيرها وتد اولوه وفى الظهيرية واكثر مشايخ بخارا عليه ليخرج عن العهدة بيقين ثم نقل المقدسي عن الفتح انه ينبغى ان يصلى اربعا ينوى بها اخر فرض ادركت وقته ولم أودئه ان تردد فى كونه مصرا او تعددت الجمعة وذكر مثله عن المحقق ابن جرباش قال ثم قال وفائدته الخروج عن الخلاف المتوهم او المحقق وذكر فى النهر انه لا ينبغى التردد فى ندبها على القول بجواز التعدد خروجا عن الخلاف اه وفى شرح الباقانى هو الصحيح بقى الكلام فى تحقيق انه واجب او مندوب قال المقدسي ذكر ابن شحنة عن جده التصريح بالندب وبحث فيه بأنه ينبغى ان يكون عند مجرد التوهم اما عند قيام الشك والاشتباه فى صحة الجمعة فالظاهر الوجوب ونقل عن شيخه ابن الهمام ما يفيده ويؤيد التفصيل تعبير التمر تاشى بلابد وكلام القنية المذكور اه مختصرا -

[Urdu Column] مقدسی نے محیط سے نقل کیا کہ ہر وہ مقام جس کے شہر ہونے میں اختلاف ہو وہاں جمعہ کے بعد احتیاطاً نیت ظہر سے چار رکعت ادا کی جائے، کافی میں بھی اسی طرح ہے۔ قنیہ میں ہے کہ ائمہ نے جمعہ کے بعد لوگوں کو حتماً چار رکعت احتیاطاً بجالانے کا حکم دیا ہے اھ اسے اکثر شارحینِ ہدایہ وغیرہ نے نقل کیا ہے اور اسی کو متداول کیا۔ ظہیریہ میں ہے کہ مشائخِ بخارا کی اکثریت کا عمل اسی پر ہے تاکہ بالیقین ذمہ داری سے عہدہ برآ ہوسکیں، پھر فتح سے منقول ہے کہ جب شہر ہونے میں شک ہو یا جمعہ متعدد جگہ ہو رہا ہو تو چاہئے کہ چار رکعت اس نیت سے ادا کی جائیں کہ میں آخری فرض ادا کر رہا ہوں جن کا وقت میں نے پایا مگر

انھیں ادا نہیں کیا، اسی طرح محقق ابن جرباش سے نقل کرکے کہا اس کا فائدہ ثابت یا متوہم اختلاف سے نکلنا ہے۔ نہر میں مذکور ہے کہ اختلاف سے نکلنے کے لئے جوازِ تعددِ جمعہ کے قول پر بھی احتیاطاً ظہر کے مستحب ہونے میں تردد نہیں کرنا چاہئے اھ شرح الباقانی میں ہے کہ یہی صحیح ہے اس تحقیق میں گفتگو کہ یہ واجب ہے یا مستحب، ابھی باقی ہے، مقدسی کہتے ہیں کہ ابن شحنہ نے اپنے دادا سے ندب پر تصریح نقل کی اور اس پر بحث کرتے ہوئے کہا کہ یہ اس وقت ہے جب محض توہم ہو۔ مگر اس صورت میں جب صحتِ جمعہ میں شک واشتباہ ہو تو پھر اس کا واجب ہونا ظاہر ہے اور اپنے شیخ ابن ہمام کی عبارت کو اپنی تائید میں نقل کیا اور اس کی تفصیل کی تائید تمرتاشی کے الفاظ "لابد" اور قنیہ کے مذکور کلام سے بھی ہوتی اھ مختصرا (ت)

---

1 رد المحتار باب الجمعة مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

As for the doubt of how recommended (Mustahab) or obligatory (Wajib) acts can substitute for mandatory (Farz) ones, if one considers the intention for these cycles (rak'ats), the resolution is found at first glance. It was just mentioned from *Fath al-Qadir* etc., that these cycles are performed with the intention of the last mandatory (Farz) prayer, not with the intention of what is technically termed Mustahab or Wajib. So, what doubt can there be in the performance of Farz with the intention of Farz? Meaning, if according to Allah they were not valid, then in reality, Dhuhr was mandatory. When he intended that last Dhuhr prayer for which the time was found but not yet performed, then that Dhuhr will be fulfilled. Otherwise, if there was some prior Dhuhr prayer due, it would be fulfilled. If not, these cycles would become voluntary (Nafil) prayers. And performing Nafil with the intention of Farz is clear in itself. And Allah, Glory be to Him and Exalted is He, knows best.

Issue 1310: From Makhdoompur, Post Office Narhat, District Gaya, sent by Maulvi Syed Razi-ud-Din Sahib, 1st Jumada al-Akhira 1317 AH. To the honorable master, our Maulana, Maulvi Ahmad Raza Khan Sahib (may his glory increase), after offering greetings of peace and the mercy and blessings of Allah. I am assigned to serve and ask: In this village of Makhdoompur Qazi Chak and also its surroundings, we, the followers of the Hanafi school, perform Friday (Jumu'ah) and Eid prayers. The Friday congregation in this village consists of fifteen to twenty people, and sometimes even less. Now, some object that according to Imam Abu Hanifa Sahib, Friday prayer is not permissible in villages and should not be performed. Should I continue leading the prayers as Makhdoomna or stop? Please inform me of what is permissible in your presence so that I may act accordingly. And should Eid prayers also be held in villages or not? Sahibganj city is 12 Kos from here. With utmost humility, the humble Razi-ud-Din Husain, may he be forgiven.

The Answer: Honorable, noble, and generous sir, may Allah Almighty honor you. Peace be upon you and the mercy and blessings of Allah. Indeed, Friday and Eid prayers in villages are prohibited and impermissible by the consensus of the Hanafi Imams (may Allah be pleased with them). Engaging in a prayer that is not Sharia-compliant is not allowed.

(Arabic Text)	**(Urdu Translation)**
In Ad-Durr al-Mukhtar and in Al-Quniyah: "Eid prayer in villages is	It is in Durr-e-Mukhtar that it is stated in Quniyah: "Eid prayer in villages is prohibited

(Arabic Text)	(Urdu Translation)
prohibited (Makruh Tahrimi), meaning it is engaging in what is not valid."[1] End. In Radd al-Muhtar: "The same applies to Friday prayer."[2] H.	(Makruh Tahrimi), meaning it is being occupied with a task that is not correct." End. In Radd al-Muhtar: "And similar to it is Friday (prayer)." (T)

There are other reasons for the lack of permissibility for Friday prayer besides this, as we have explained in our Fatawa.

---

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Eidain, printed at Matba Mujtabai Delhi, 1/114.
2. Radd al-Muhtar, Chapter of Eidain, printed at Mustafa al-Babi Egypt, 1/611.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

जहाँ तक इस संदेह की बात है कि मुस्तहब (अनुशंसित) या वाजिब अनिवार्य (फ़र्ज़) के स्थान पर कैसे हो सकते हैं, तो इन रकात की नियत पर विचार करने से पहली ही नज़र में समाधान मिल जाता है। अभी फ़तहुल क़दीर आदि से गुज़रा कि ये रकात आख़िरी फ़र्ज़ की नियत से ही पढ़ी जाती हैं, न कि तकनीकी रूप से मुस्तहब या वाजिब की नियत से। तो फ़र्ज़ की नियत से फ़र्ज़ अदा होने में क्या संदेह है? यानी अल्लाह के नज़दीक अगर वे सही नहीं थीं, तो वास्तव में ज़ुहर फ़र्ज़ थी। जब उसने उस पिछली फ़र्ज़ ज़ुहर की नियत की जिसका समय मिला था और अभी अदा नहीं की थी, तो वही ज़ुहर अदा हो जाएगी। वर्ना अगर पहले से कोई ज़ुहर ज़िम्मे थी, तो वह अदा हो जाएगी। वर्ना ये रकात नफ़्ल हो जाएँगी। और फ़र्ज़ की नियत से नफ़्ल अदा होना स्वयं स्पष्ट है। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला १३१०: मखदूमपुर, डाकखाना नरहट, ज़िला गया से, मौलवी सैयद रज़ीउद्दीन साहब द्वारा प्रेषित, १ जमादी अल-आख़िरा १३१७ हिजरी। आदरणीय स्वामी, हमारे मौलाना, मौलवी अहमद रज़ा ख़ां साहब (उनका सम्मान बढ़े), सलाम और अल्लाह की रहमत और बरकतों के बाद। सेवा में निवेदन है कि इस मौज़ा (गाँव) मखदूमपुर क़ाज़ी चक और इसके आसपास के क्षेत्रों में, हम हनफ़ी मुक़ल्लिदीन (अनुयायी) जुमा और ईदैन की नमाज़ पढ़ते हैं। इस गाँव में जुमा की जमात में विशेष रूप से पंद्रह-बीस आदमी होते हैं और कभी-कभी कम भी होते हैं। अब कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि इमाम अबू हनीफ़ा साहब के अनुसार देहात (गाँवों) में जुमा की नमाज़ जायज़ नहीं है और नहीं पढ़नी चाहिए। मैं मखदूमना (स्वामी) के रूप में नमाज़ पढ़ाता रहूँ या बंद कर दूँ? आपके नज़दीक जो जायज़ हो उससे अवगत कराएं ताकि उसके अनुसार कार्य किया जा सके। और क्या ईदैन की नमाज़ भी देहात में होनी चाहिए या नहीं? साहिबगंज शहर यहाँ से १२ कोस की दूरी पर है। अधिक नियाज़ (सम्मान) के साथ। तुच्छ रज़ीउद्दीन हुसैन, अल्लाह उन्हें क्षमा करे।

अल-जवाब (उत्तर): सम्माननीय और उदार श्रीमान, अल्लाह तआला आपको सम्मानित करे। आप पर सलाम और अल्लाह की रहमत और बरकतें हों। वास्तव में, हनफ़ी इमामों (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की सर्वसम्मति से गाँवों में जुमा और ईदैन की नमाज़ वर्जित और नाजायज़ है। जो नमाज़ शरीयत के अनुसार सही नहीं है, उसमें व्यस्त होना जायज़ नहीं है।

(अरबी पाठ)

'अद-दुर्र अल-मुख़्तार' और 'अल-क़ुनियाह' में है: "गाँवों में ईद की नमाज़ मकरूह तहरीमी (सख्ती से वर्जित) है, यानी यह ऐसे काम में व्यस्त होना है जो मान्य नहीं है।"[1] 'रद्द अल-मुह्तार' में है: "और जुमा भी इसी के समान है।"[2] ह

(उर्दू अनुवाद)

दुर्रे मुख़्तार में है कि क़ुनियाह में है: "देहातों में ईद की नमाज़ मकरूह तहरीमी है यानी यह ऐसे काम में मशगूल होना है जो दुरुस्त नहीं।" रद्द अल-मुह्तार में है: "और इसी की मिसाल जुमा है।" (त)

जुमा में इसके अलावा भी जायज़ न होने के और भी कारण हैं जैसा कि हमने अपने फ़तावा में बयान किया है।

---

1. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल ईदैन, मुस्तफ़ाई प्रेस, दिल्ली, १/११४।
2. रद्द अल-मुह्तार, बाबुल ईदैन, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, १/६११।

पृष्ठ ३४६/६७३

رہا یہ اشتباہ کہ مستحب یا واجب قائم مقام فرض کیونکر ہوں گے ان رکعات کی نیت پر نظر کی جائے تو بنگاہ اولیں اندفاع پائے، ابھی فتح القدیر وغیرہ سے گزرا کہ یہ رکعات بہ نیت آخریں فرض ہی پڑھی جاتی ہیں نہ کہ بہ نیت مستحب یا واجب مصطلح تو فرض بہ نیت فرض ادا ہو جانے میں کیا تردد ہے یعنی عنداللہ اگر صحت نہ تھی تو نفس الامر میں ظہر فرض تھا، جب اُس نے اُس پچھلے فرض ظہر کی نیت کی جس کا وقت پایا اور ابھی ادانہ کی تو وہی ظہر ادا ہو جائے گا ورنہ اگر پہلے کوئی ظہر ذمہ پر تھا وہ ادا ہوگا ورنہ یہ رکعات نفل ہو جائیں گی اور نفل بہ نیت فرض ادا ہونا خود واضح ہے واللہ سبحنہ و تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۱۰: از مخدوم پور ڈاکخانہ نر ہٹ ضلع گیا مرسلہ مولوی سید رضی الدین صاحب غرہ جمادی الآخرہ ۱۳۱۷ھ جناب مستطاب مخدومنا مولنا مولوی احمد رضا خاں صاحب زاد مجد ہم بعد ہدیہ السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، کے مکلف خدمت ہوں کہ اس موضوع مخدوم پور قاضی چک میں اور نیز قرب و جوار میں اس کے نماز جمعہ و عیدین ہم لوگ مقلدین حنفی پڑھا کرتے ہیں اور جماعت جمعہ کی خاص اس موضوع میں پندرہ بیس آدمی اور کبھی کم بھی ہوا کرتی ہے اب بعض معترض ہیں کہ جمعہ دیہات میں نزد امام ابو حنیفہ صاحب جائز نہیں ہے پڑھنا بھی نہ چاہئے مخدومنا پڑھا کروں یا ترک کر دوں، حضور کے نزدیک جو جائز ہو مطلع فرمائیں تا مطابق اس کے کار بند ہوں اور نماز عیدین بھی دیہات میں ہو یا نہ ہو؟ شہر صاحب گنج یہاں سے ۱۲ کوس پر ہے۔ زیادہ حد نیاز۔ احقر رضی الدین حسین عفی عنہ

الجواب: جناب مکرم ذی المجد والکرم اکرمکم اللہ تعالیٰ السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، فی الواقع دیہات میں جمعہ و عیدین باتفاق ائمہ حنفیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہم ممنوع و ناجائز ہے کہ جو نماز شرعاً صحیح نہیں اس سے اشتغال روا نہیں،

(عربی عبارت)	(اردو ترجمہ)
فی الدر المختار وفی القنیۃ صلوۃ العید فی القری تکرہ تحریماً ای لانہ اشتغال بما لا یصح[1] اھ فی رد المحتار و مثلہ الجمعۃ[2] ح۔	در مختار میں ہے کہ قنیہ میں ہے دیہاتوں میں عید کی نماز مکروہ تحریمی ہے یعنی یہ ایسے کام میں مشغول ہونا ہے جو درست نہیں اھ ردالمحتار میں ہے اور اسی کی مثل جمعہ ہے، ح (ت)

جمعہ میں اس کے سوا اور بھی عدم جواز کی وجہ ہے کما بیناہ فی فتاونا (جیسا کہ ہم نے اسے اپنے فتاوی میں بیان کیا۔

---

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۴ 2 ردالمحتار باب العیدین مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۶۱۱

(What is this? - T) Yes, there is a rare narration from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that any settlement where so many sane, adult Muslim men, who are healthy enough for Friday (Jummah) prayer to be obligatory upon them, reside such that if they were to gather in the largest mosque of that place, they would not fit, necessitating the construction of a congregational (Jami') mosque, then that place will be considered a city for the validity of Jummah prayer. Imam Akmal-ud-Din Babarti states in Inayah Sharh-ul-Hidayah:

(From him) i.e., from Abu Yusuf, (when they gather) i.e., those on whom Jummah is obligatory, not everyone residing in that place such as children, women, and slaves, because those on whom Jummah is obligatory usually gather there. Ibn Shuja' said: The best that has been said about this is that when the people entitled to Jummah gather there (in the largest mosque, and there is no room for them) to the extent that they are forced to build another mosque for Jummah etc. (T) [1]

In any village where this condition is found, Jummah and Eid prayers can be held based on this rare narration, even though it is against the original position of the school of thought. However, a group of later scholars has also adopted it. And where even this condition is not met, Jummah or Eid is absolutely not permissible in the Hanafi school of thought, rather it is a sin. And Allah speaks the truth, and He guides to the (right) way, and Allah, Glorified and Exalted is He, knows best. The word of Allah Almighty is Truth, and He alone guides to the path, and the being of Allah is Pure, Exalted, and All-Knowing. (T) Question 311 to 315: From Katra, Post Office Ora, District Gaya, sent by Syed Abdul Majeed Sahib Qadri, 2 Jumada al-Akhirah 1317 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) Is Jummah prayer permissible in India or not? (2) If it is permissible, why? And what are its proofs? (3) Is Jummah permissible only in a city or in villages as well?

1 Inayah Sharh-ul-Hidayah on the margins of Fath al-Qadir, Chapter of Friday Prayer, published by Nooria Razawiyya, Sukkur, 2/24. Page 347 of 673

(क्या है? - त) हाँ, इमाम अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाह अलैह) से एक विरल (नादिर) रिवायत आई है कि जिस आबादी में इतने मुसलमान पुरुष, बुद्धिमान और वयस्क, जो इतने स्वस्थ हों कि उन पर जुम्मा फ़र्ज़ हो सके आबाद हों कि अगर वे वहां की सबसे बड़ी मस्जिद में इकट्ठा हों तो समा न सकें यहाँ तक कि उन्हें जुम्मा के लिए जामा मस्जिद बनानी पड़े, तो वह स्थान जुम्मा की वैधता के लिए शहर समझा जाएगा। इमाम अकमल-उद-दीन बाबरती 'इनाया शरह हिदाया' में फ़रमाते हैं:

(और उनसे) यानी इमाम अबू यूसुफ़ से है (जब वे इकट्ठा हों) यानी वे लोग जिन पर जुम्मा अनिवार्य है, न कि वे सभी लोग जो वहाँ निवास करते हैं जैसे कि बच्चे, महिलाएँ और गुलाम, क्योंकि जिन पर जुम्मा अनिवार्य है वे आम तौर पर वहां इकट्ठा होते हैं। इब्न शुजा ने कहा: इस बारे में जो सबसे बेहतर बात कही गई है वह यह है कि जब जुम्मा के योग्य लोग वहां इकट्ठा हों (सबसे बड़ी मस्जिद में, और उनमें उनकी गुंजाइश न हो) यहाँ तक कि वे जुम्मा के लिए एक और मस्जिद बनाने पर मजबूर हों आदि। (त) [1]

जिस गाँव में यह स्थिति पाई जाए, उसमें इस विरल रिवायत के आधार पर जुम्मा और ईदैन हो सकते हैं, हालाँकि यह मूल पंथ (मज़हब) के ख़िलाफ़ है, लेकिन उत्तरवर्ती विद्वानों के एक समूह ने इसे भी अपनाया है। और जहाँ यह भी नहीं है, वहाँ हनफ़ी मज़हब में जुम्मा या ईद हरगिज़ जायज़ नहीं हो सकता, बल्कि गुनाह है। और अल्लाह सत्य कहता है, और वह (सही) मार्ग दिखाता है, और अल्लाह, जो पवित्र और सर्वोच्च है, सबसे अधिक जानने वाला है। अल्लाह तआला का फ़रमान सत्य है और वही मार्ग का मार्गदर्शन देता है और अल्लाह की सत्ता पवित्र, उच्च और पूर्णतः जानने वाली है। (त) मसला 311 से 315: कटरा डाकखाना ओरा, ज़िला गया से, प्रेषक सैयद अब्दुल मजीद साहब क़ादरी, 2 जमादी अल-आखिरह 1317 हिजरी। धर्म के विद्वान इन समस्याओं के बारे में क्या कहते हैं: (1) हिंदुस्तान में जुम्मा जायज़ है या नहीं? (2) जायज़ है तो क्यों? और इसके प्रमाण क्या हैं? (3) जुम्मा केवल शहर में जायज़ है या गाँवों में भी?

1 'इनाया शरह हिदाया' हाशिए पर 'फ़तह अल-क़दीर', अध्याय: जुम्मा की नमाज़, प्रकाशित नूरया रज़विया सुक्कुर, 2/24। पृष्ठ 347/673

کیا ہے۔ ت) ہاں ایک روایت نادرہ امام ابویوسف رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ سے یہ آئی ہے کہ جس آبادی میں اتنے مسلمان مرد عاقل بالغ ایسے تندرست جن پر جمعہ فرض ہو سکے آباد ہوں کہ اگر وہ وہاں کی بڑی سے بڑی مسجد میں جمع ہوں تو نہ سما سکیں یہاں تک کہ انہیں جمعہ کے لئے مسجد جامع بنانی پڑے وہ صحتِ جمعہ کے لئے شہر سمجھی جائے گی، امام اکمل الدین بابرتی عنایہ شرح ہدایہ میں فرماتے ہیں:

(وعنہ) ای عن ابی یوسف (انھم اذا اجتمعوا) ای اجتمع من تجب علیھم الجمعۃ لاکل من یسکن فی ذلك الموضع من الصبیان والنساء والعبید لان من تجب علیھم مجتمعون فیہ عادۃ قال ابن شجاع احسن ماقیل فیہ اذاکان اھلھا بحیث لو اجتمعوا (فی اکبر مساجد لم یسعھم ذلک) حتی احتاجوا الی بناء مسجد آخر للجمعۃ 1 الخ

(اور ان سے) یعنی امام ابویوسف سے ہے (جب وہ جمع ہوں) یعنی وہ لوگ جن پر جمعہ لازم ہے نہ کہ تمام وہ لوگ جو وہاں سکونت پذیر ہیں مثلاً بچے، خواتین اور غلام ، ابن شجاع نے کہا کہ اس بارے میں سب سے بہتر قول یہ ہے کہ جب جمعہ کے اہل وہاں جمع ہوں (سب سے بڑی مسجد میں، اور اس میں ان کی گنجائش نہ ہو) حتی کہ وہ جمعہ کے لئے ایک اور مسجد بنانے پر مجبور ہوں الخ (ت)

جس گاؤں میں یہ حالت پائی جائے اس میں اس روایت نوادر کی بنا پر جمعہ و عیدین ہو سکتے ہیں اگرچہ اصل مذہب کے خلاف ہے مگر اسے بھی ایک جماعت متاخرین نے اختیار فرمایا اور جہاں یہ بھی نہیں وہاں ہرگز جمعہ خواہ عید مذہب حنفی میں جائز نہیں ہو سکتا بلکہ گناہ ہے، واللہ یقول

الحق وھو یھدی السبیل واللہ سبحانہ وتعالی اعلم۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان حق ہے اور وہی راستہ کی ہدایت دیتا ہے اور اللہ کی ذات پاک، بلند اور خوب جاننے والی ہے۔ (ت) مسئلہ ۳۱۱ تا ۳۱۵: از کٹرہ ڈاکخانہ اورہ ضلع گیا مرسلہ سید عبدالمجید صاحب قادری ۲ جمادی الاخرہ ۱۳۱۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسائل میں: (۱) ہندوستان میں جمعہ جائز ہے یا نہیں؟ (۲) جائز ہے تو کیوں؟ اور اس کے دلائل کیا ہیں؟ (۳) جمعہ شہر ہی میں جائز ہے یا دیہات میں بھی؟

1 عنایہ شرح ہدایہ علی ہامش فتح القدیر باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۲۴

Fatawa Rizvia Volume 8

(4) What is the definition of a city, town, and village? (5) Is there any limit to a settlement smaller than a village? Because villages are of two types: one is merely a small hamlet, and the other is one where most essential items like ordinary clothes are available, and there are tailors, blacksmiths, carpenters, grocers, shopkeepers, etc. and its inhabitants include Hindus along with Muslims, totaling around 1200 men and women. The majority of the landowners are Muslims, and the number of Muslim women is around five hundred. There is an ancient mosque, and since the mosque was built, Friday (Jumu'ah) prayers have always been held there continuously. In these two types of villages, will Jumu'ah be permissible in both, or only in the latter type, or in neither? We are residents of the latter type of village. Now some people say that Jumu'ah is not permissible in villages. So, should we offer it or not? Please write a very clear and detailed answer.

The Answer: India, may Allah improve its state, by the grace of Allah Almighty, is still Dar al-Islam (Abode of Islam):

[Table/Box Start] As we have investigated in our treatise "I'lam al-A'lam bi-anna Hindustan Dar al-Islam" (Proclamation of the Authorities that India is the Abode of Islam). (t) [Table/Box End]

In it, establishing Friday and Eid prayers is definitely permissible for Muslims. It is stated in Jami' al-Fusulain:

[Main Table Start] [Left Column (Arabic)]: Imam al-A'zam (i.e., Abu Hanifa, may Allah be pleased with him) said: A land does not become Dar al-Harb (Abode of War) except by the implementation of the laws of polytheism therein, and its contiguity with Dar al-Harb such that there is no Muslim city between it and Dar al-Harb, and no Muslim or Dhimmi remains safe there by the original safety, i.e., they are not safe except by the protection of the polytheists. This is because when a ruling is established based on a cause, then as long as any part of the cause remains, the ruling remains by its presence. When a city becomes Dar al-Islam through the implementation of its laws, then as long as any of its laws and signs remain, it continues to be Dar al-Islam. And in every city where there is a Muslim governor appointed by the non-believers, establishing Jumu'ah and Eids is permissible.

[Right Column (Urdu)]: Imam-e-Azam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him) said: For a land to become Dar al-Harb, it is necessary that the laws of polytheism are

implemented there and that country's connection with Dar al-Harb is such that there is no Muslim or Dhimmi safe in that country and between Dar al-Harb due to the initial safety, meaning now they are not safe without the protection of the polytheists. This is because when a ruling is established based on a cause, as long as that cause remains, the ruling will also remain. When any region becomes Dar al-Islam due to the implementation of Islamic laws, then as long as some laws and signs remain there, it will remain Dar al-Islam, and every city whose Muslim governor is from the side of the non-believers, establishing Jumu'ah and Eids is permissible there. [Main Table End]

फ़तावा रिज़विया जिल्द 8

(4) शहर, कस्बे और गाँव की परिभाषा क्या है? (5) क्या गाँव से नीचे भी बस्ती की कोई सीमा है? क्योंकि गाँव दो प्रकार के होते हैं: एक केवल एक छोटा गाँव, और दूसरा वह जहाँ सबसे आवश्यक वस्तुएँ जैसे साधारण कपड़े मिलते हों और दर्जी, लोहार, बढ़ई, बनिया और पंसारी आदि हों और उसके निवासियों में हिन्दुओं के साथ मुसलमान लगभग बारह सौ "1200" पुरुष और महिलाएँ हों। जमींदार अधिकांशतः मुसलमान हों और मुसलमानों की संख्या लगभग पांच सौ महिलाओं की हो। वहाँ एक प्राचीन मस्जिद हो और जब से वह बनी है, हमेशा जुमा की नमाज़ होती रही हो। इन दोनों प्रकार के गाँवों में से क्या दोनों में जुमा जायज़ होगा या केवल दूसरे प्रकार में या किसी में भी नहीं? और हम दूसरे प्रकार के गाँव के निवासी हैं। अब कुछ लोग कहते हैं कि गाँवों में जुमा जायज़ नहीं है। तो क्या हम नमाज़ पढ़ें या नहीं? कृपया बहुत स्पष्ट और विस्तृत उत्तर लिखें।

उत्तर: हिन्दुस्तान, अल्लाह इसकी स्थिति में सुधार करे, अल्लाह तआला के अनुग्रह से अब भी दारुल-इस्लाम (इस्लाम का घर) है:

[तालिका शुरू] जैसा कि हमने अपनी पत्रिका "ऐलामुल आलाम बि अन्ना हिन्दुस्तान दारुल-इस्लाम" में इसकी शोध की है। (त) [तालिका अंत]

इसमें मुसलमानों के लिए जुमा और ईदैन की नमाज़ कायम करना निश्चित रूप से जायज़ है। जामे-अल-फ़ुसुलैन में लिखा है:

[मुख्य तालिका शुरू] [बायां कॉलम (अरबी)]: इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) ने फ़रमाया: दारुल-हर्ब के लिए ज़रूरी है कि वहाँ शिर्क के अहकाम का कार्यान्वयन हो और उस देश का दारुल-हर्ब के साथ इस तरह संबंध हो कि उस देश और दारुल-हर्ब के बीच मुसलमानों का कोई शहर न हो और कोई मुसलमान या ज़िम्मी पहले की सुरक्षा के कारण सुरक्षित न रहे, यानी अब मुशरिकों की सुरक्षा के बिना सुरक्षित न हो। क्योंकि जब कोई हुक्म किसी कारण से साबित होता है, तो जब तक वह कारण शेष रहता है, हुक्म भी शेष रहेगा। जब कोई क्षेत्र इस्लामी अहकाम के कार्यान्वयन के कारण दारुल-इस्लाम बनता है, तो जब तक वहाँ कुछ अहकाम और निशान बाकी रहेंगे, वह दारुल-इस्लाम ही रहेगा। और हर वह शहर जिसका काफ़िरों की ओर से कोई मुसलमान गवर्नर हो, वहाँ जुमा और ईदैन कायम करना जायज़ है।

[दायां कॉलम (उर्दू)]: इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) ने फ़रमाया: दारुल-हर्ब के लिए ज़रूरी है कि वहाँ शिर्क के अहकाम का कार्यान्वयन हो और उस देश का दारुल-हर्ब से इस तरह जुड़ाव हो कि उस देश और दारुल-हर्ब के बीच कोई मुसलमान या ज़िम्मी पहले की सुरक्षा की वजह से अमान में न हो, यानी अब मुशरिकों की सुरक्षा के बिना अमन वाला न हो। क्योंकि जब हुक्म किसी कारण (इल्लत) से साबित है, तो जब तक वह कारण बाकी है, हुक्म भी बाकी रहेगा। जब कोई क्षेत्र इस्लामी अहकाम के कार्यान्वयन की वजह से दारुल-इस्लाम बनता है, तो जब तक वहाँ कुछ अहकाम और निशान बाकी रहेंगे, वह दारुल-इस्लाम ही रहेगा, और हर वह शहर जिसका काफ़िरों की तरफ से कोई मुसलमान गवर्नर (वाली) हो, वहाँ जुमा और ईदैन कायम करना जायज़ है। [मुख्य तालिका अंत]

पृष्ठ 348 / 673

(۴) تعریف شہر اور قصبہ اور دیہات کی کیا ہے؟ (۵) دیہات سے نیچے بھی کوئی حد بستی کی ہے کیونکہ دیہات دو قسم کے ہوتے ہیں: ایک محض کور دہ، دوسرا وہ جس میں اشیاء اشد ضروری جیسے معمولی کپڑے ملتے ہوں اور درزی اور لوہار اور بڑھئی اور بنیا اور بقال وغیرہ ہم ہوں اور ساکنان اُسی کے ہندو مع مسلمان قریب بارہ سو "۱۲۰۰" مرد مع عورت کے ہوں اور غالب درجہ مسلمان زمیندار ہوں اور مسلمانوں کی تعداد قریب پانچ سو عورتوں کے ہو اور مسجد قدیم سے ہو اور جب سے مسجد بنی ہمیشہ سے برابر جمعہ ہوتا رہا ہو تو ان دونوں قسموں میں دیہات کے جمعہ جائز ہوگا یا صرف قسمِ اخیر میں یا کسی میں نہیں اور ہم قسمِ اخیر کے دیہات کے رہنے والے ہیں، اب بعض لوگ کہتے ہیں کہ دیہات میں جمعہ جائز نہیں، تو آیا ہم لوگ پڑھیں یا نہیں؟ بہت صاف جواب بالتفصیل تحریر ہو۔

الجواب: ہندوستان صلح اللہ حالہا بحد اللہ تعالٰی ہنوز دارالاسلام ہے:

[جدول شروع] کما حققناہ فی رسالتنا اعلام الاعلام بان ہندوستان دارالاسلام۔ | جیسا کہ ہم نے اپنے رسالہ "اعلام الاعلام بان ہندوستان دارالاسلام" میں اس کی تحقیق کی ہے۔(ت) [جدول ختم]

اُس میں اقامتِ جمعہ و عیدین مسلمانوں کو ضرور جائز۔ جامع الفصولین میں ہے:

[بڑا جدول شروع] [بایاں کالم (عربی)]: قال ح (ای الامام الاعظم ابو حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ) لا تصیر دارالحرب الاباجراء احکام الشرک فیہا واتصالہا بدارالحرب بان لایکون بینہا وبین دارالحرب مصر للمسلمین وان لایبقی فیہا مسلم اوذمی اٰمنا علی نفسہ بالامان الاول ای لایبقی اٰمنا الابامان المشرکین ان الحکم اذا ثابت بعلۃ فما بقی شیئ من العلۃ یبقی الحکم ببقائہ فلما صارت البلدۃ دارالاسلام

باجراء احکامہ فما بقی شیئ من احکامہ و اٰثارہ تبقی تبقی دارالاسلام وکل مصرفیہ وال مسلم من جھة الکفار تجوز فیه اقامة الجمع والاعیاد

[دایاں کالم (اردو)]: امام اعظم ابوحنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا دارالحرب کے لئے ضروری ہے کہ وہاں احکامِ شرک کا اجراء ہو اور اس ملک کا اتصال دارالحرب سے اس طرح ہو کہ اس ملک اور دارالحرب کے درمیان کوئی مسلمان یا ذمی امانِ اول کی وجہ سے امان میں نہ ہو یعنی اب مشرکین کی امان کے بغیر امن والا نہ ہو کیونکہ جب حکم کسی علت سے ثابت ہے تو جب تک وہ علت باقی ہے حکم بھی باقی ہو گا، جب کوئی علاقہ اجرا احکام اسلامی کی وجہ سے دارالاسلام بنتا ہے تو جب تک وہاں کچھ احکام و آثار باقی ہوں گے وہ دارالاسلام ہی ہوگا، اور ہر وہ شہر جس کا کفار کی طرف سے کوئی مسلمان والی ہو وہاں جمعہ و عیدین کی اقامت، [بڑا جدول ختم]

صفحہ 348 از 673

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Arabic]: Taking land tax (kharaj), appointing a judge, and marrying widows is permissible because Muslims are dominant there. However, in regions governed by non-Muslims, it is still permissible for Muslims to establish Friday (Jumu'ah) and Eid prayers. (Briefly, T).

It is stated in Radd al-Muhtar: [Arabic]: In Mi'raj al-Dirayah quoting al-Mabsut: Territories under non-Muslim control are still lands of Islam (Bilad al-Islam), not lands of war (Bilad al-Harb). Any city where there is a governor appointed by them can establish Jumu'ah and Eid prayers. Even if the governors are non-Muslims, it is permissible for Muslims to establish Jumu'ah. (Summarized, T).

For Jumu'ah and Eid prayers to be not only commanded but also valid and correct, by the consensus of the Imams of the school (Madhhab), the location must be a city (Misr). All books of the school are filled with this principle. In villages, Jumu'ah and Eid prayers are neither valid nor permissible; in fact, they are a sin.

[Arabic]: As explicitly stated in Durr al-Mukhtar from al-Qunyah, and in Jami' al-Rumuz from Jami' al-Mudmarat, and we have explained this in our Fatawa. (T).

Lower in rank than villages are encampments in jungles, plains, and mountains, belonging to people of tents where there are no permanent brick or mud houses. Wherever they see water and pastures, they pitch their tents and reside there. In the eyes of Sharia, these settlements are even lower than villages. If inhabitants of cities and developed areas intend to stay in a village for fifteen days, they become residents (muqim) and shall not shorten their prayers (qasr). For tent-dwellers whose lifestyle is such, their intention to reside in these campsites is valid. However, those from developed areas, after establishing travel (safar) and covering distances, even if they intend to stay there for fifteen days, they will not become residents. This is the most correct view in both chapters. (T). It is in Durr al-Mukhtar:

---

1. Jami' al-Fusulayn, Chapter One on Judiciary, connected to it, printed by Islami Kutub Khana, Karachi, 1/13 and 14.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/595.

[अरबी]: भूमि कर (खराज) लेना, इस्लामी न्याय का पालन करना और विधवाओं का विवाह कराना जायज़ है क्योंकि वहाँ मुसलमान प्रभावी हैं। लेकिन वे क्षेत्र जहाँ काफ़िर शासक हैं, वहाँ भी मुसलमानों के लिए जुमा और ईद की नमाज़ का आयोजन जायज़ है। (संक्षेप में, त)

रद्दुल मुहतार में है: [अरबी]: 'मेराजुद-दिरयाह' में 'मबसूद' से उद्धृत है: जो क्षेत्र काफिरों के नियंत्रण में हैं, वे भी दारुल इस्लाम ही हैं, दारुल हर्ब नहीं। और हर वह शहर जिसमें उनकी ओर से कोई प्रशासक नियुक्त हो, वह जुमा और ईद की नमाज़ का आयोजन कर सकता है। और यदि प्रशासक काफ़िर हों, तो भी मुसलमानों के लिए जुमा की नमाज़ का आयोजन जायज़ है। (सारांश, त)

जुमा और ईद की नमाज़ के न केवल आदेशित होने बल्कि स्वयं जायज़ और सही होने के लिए भी, पंथ के इमामों (अइम्मा-ए-मज़हब) की सहमति के अनुसार, 'मिस्र' (बड़ा शहर) होना शर्त है। पंथ की सभी पुस्तकें इससे भरी पड़ी हैं। गाँव में जुमा और ईद न तो सही हैं और न ही जायज़, बल्कि गुनाह हैं।

[अरबी]: जैसा कि इस पर 'दुर्रे मुख्तार' में 'कुनिया' के हवाले से और 'जामेउर-रुमूज़' में 'जामेउल-मुज़मरात' के हवाले से स्पष्टीकरण है, और हमने इसे अपने फ़तावा में बयान किया है। (त)

गांवों से भी निचले स्तर की बस्तियाँ जंगलों, मैदानों और पहाड़ों में टेंटों (खिमों) वालों के स्थान हैं, जहाँ पक्के या कच्चे घर बिल्कुल नहीं होते। उन्होंने जहाँ पानी और चारागाह देखा, वहीं डेरे डाल दिए, टेंट लगा लिए और वहीं रहने लगे। शरीयत की नज़र में ये बस्तियाँ गांवों से भी निम्न स्तर की हैं। शहरों और विकसित क्षेत्रों के निवासी यदि किसी गाँव में पंद्रह दिन ठहरने की नीयत करें, तो वे मुकीम (निवासी) हो जाएंगे और कसर (नमाज़ संक्षिप्त करना) नहीं करेंगे। उन टेंटों वाले स्थानों में उन्हीं लोगों की ठहरने की नीयत सही है जिनकी जीवनशैली ही ऐसी है। विकसित क्षेत्रों वाले लोग, यात्रा (सफर) की स्थिति सुनिश्चित होने और मंज़िलें तय करने के बाद, चाहे वे वहाँ पंद्रह दिन ठहरने का इरादा करें, मुकीम नहीं होंगे। दोनों अध्यायों में यही सबसे सही मत (असह) है। (त) दुर्रे मुख्तार में है:

---

1. जामेउल-फुसूलैन, प्रथम अध्याय न्याय पर, इस्लामी कुतुब खाना, कराची, 1/13 और 14।
2. रद्दुल मुहतार, जुमा का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/595।

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

واخذ الخراج وتقلید القضاء وتزویج الایامی لا ستیلاء المسلم علیھم وامانی بلاد علیھا ولاۃ کفار فیجوز للمسلمین اقامۃ الجمعۃ والاعیاد اھ مختصرا۔ | خراج لینا، قضاءِ اسلامی کی پابندی اور بیوگان کا نکاح کروانا جائز ہے کیونکہ وہاں مسلمان غالب ہیں لیکن وہ علاقے جہاں کا فر والی ہیں وہاں مسلمانوں کے لئے جمعہ اور عیدین کا قیام جائز ہے اھ اختصاراً (ت)

رد المحتار میں ہے: فی معراج الدرایۃ عن المبسوط البلاد التی فی ایدی الکفار بلاد الاسلام لا بلاد الحرب وکل مصر فیہ وال من جھتھم یجوز لہ اقامۃ الجمعۃ والاعیاد فلوا لو لاۃ کفار ایجوز للمسلمین اقامۃ الجمعۃ اھ ملخصا | معراج الدرایہ میں مبسوط سے ہے وہ علاقہ جات جو کفار کے قبضہ میں ہیں وہ بلادِ اسلام ہی ہیں بلادِ حرب نہیں اور ہر وہ شہر جس میں کفار کی طرف سے والی ہو تو وہ جمعہ اور عیدین کا قیام کر سکتا ہے اور اگر والی کافر ہوں تو بھی مسلمانوں کے جمعہ کا قیام جائز ہے اھ تلخیصاً (ت)

جمعہ و عیدین کے نہ فقط مامور بہ بلکہ خود جائز و صحیح ہونے کے لئے بھی باجماع ائمہ مذہب عنہم مصر شرط ہے کتب المذہب عن آخرھا طافحۃ بذلک (تمام کتب مذہب اس سے پُر ہیں۔ ت) گاؤں میں جمعہ و عیدین نہ صحیح نہ جائز بلکہ گناہ ہے

کما نص علیہ في الدرالمختار عن القنیۃ وفی جامع الرموز عن جامع المضمرات وقد بیناہ في فتاؤنا۔ | جیسا کہ اس پر در مختار میں قنیہ اور جامع الرموز میں جامع المضمرات کے حوالے سے تصریح ہے اور اسے ہم نے اپنے فتاوٰی میں بیان کیا ہے۔ (ت)

دیہات سے بھی کم درجہ بستی جنگلوں ، میدانوں، پہاڑوں میں اہل خیمہ کے مقام ہیں جن میں مکانات کچے پکے اصلاً نہیں ہوتے ، انھوں نے جہاں آب و مرغزار دیکھے ڈیرے ڈال دئے ، خیمے تان دیئے ، وہیں اقامت کرلی، یہ بستیاں نظر شرع میں بھی دیہات سے ادنیٰ ہیں، امصار و عمرانات کے سکان اگر گاؤں میں پندرہ دن ٹھہرنے کی نیت کریں مقیم ہو جائیں گے قصر نہ کریں گے اور اُن خیمہ گاہوں میں اُنھیں اہل خیمہ کی نیت اقامت صحیح ہے جن کی طرزِ تعیش ہی یہ ہے عمرانات والے بعد تحققِ سفر طے مراحل اگرچہ وہاں پندرہ دن قیام کا قصد کریں مقیم نہ ہوں گے ھو الاصح فی الفصلین (دونوں فصلوں میں یہی اصح ہے۔ ت) درمختار میں ہے:

---

1. جامع الفصولین الفصل الاول فی القضاء وملہ متصل بہ مطبوعہ اسلامی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۳ اور ۱۴

2. ردالمحتار ، باب الجمعہ ، مطبوعہ مصطفی البابی مصر، ۱ / ۵۹۵

[Boxed Section] Arabic Text: People of tents like Turkmans in the wilderness, indeed it [intention of residency] is correct according to the most correct opinion, and fatwa is given on it, provided they have enough water and fodder for the duration. If others besides them intended residency with them, it would not be correct according to the most correct opinion, in summary.

Urdu Translation: Nomads, for example, the Turkman people, if they intend to stay in the forest, then according to the most correct (Asah) saying, it is correct and the fatwa is on this, provided there is enough water and fodder for them for that duration. And besides them, if anyone else made the intention with them, then according to the most correct saying, it is not correct, briefly. (T)

[Main Body Text] A town (Qasbah) is conventionally intermediate between a city (Misr) and a village (Dih); it refers to a small city where the population is low, facilities are few, and there are markets and solid buildings but not like major cities (Amsar). A 'Dih' is a pargana (administrative unit), not a district; it has minor officials with limited jurisdiction, and does not have high officials capable of deciding all sorts of civil and criminal cases. There are three categories based on this modern convention, but in the Arabic language, there are only two things: City (Misr) or Village (Qaryah). Town (Qasbah) is not a third thing outside of them. In 'Qamus' and 'Misbah al-Munir' etc., it is said: "The town of a land is its city, and the town of a village is its center" (A city town is a city, and a rural town is between villages and the city - T). Similarly, the Purified Sharia did not specify towns with any special ruling. The division of Misr and Qaryah is based on population; if the definition of Misr applies, it is a Misr, otherwise it is a Qaryah; there is no third category for them (T). Now, many sayings have come from our scholars regarding the definition of Misr, among which there are two authenticated, chosen, and reliable ones from great Imams:

First, the Zahir al-Riwayah and the core of the school of thought and the guidance of the Imam of the school, our master Imam Azam (may Allah be pleased with him), is that a city is a populated area with buildings having multiple streets, permanent markets, it being a district or pargana with associated villages, having a ruler appointed to decide the cases of the subjects, before whom cases are presented, and whose power and majesty are capable of taking justice for the oppressed from the oppressor even if it is never actually taken. This definition was conveyed in numerous books with various words and similar meanings.

Problem 1316: From Azimabad Patna, Shah ki Imli, near Masjid Tarahibah, Clinic of Hakim Sahib, sent by Maulana Noor al-Huda Sahib, 6 Rabi' al-Akhir 1318 AH.

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: if in such a village where the definition of a city (Misr) does not apply at all, the Hanafis there perform Friday prayer along with the precautionary Zuhr and Eid prayers with the thought of Islamic prestige, will they be sinners or not? And if they are sinners, what is the reason for it? Explain, and you shall be rewarded.

Answer: Performing Friday or Eid prayers in such a place is a sin in the Hanafi school of thought. Not just one sin, but several sins:

---

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Traveler's Prayer, printed by Mujtabai Delhi, 1/708.

[बॉक्स अनुभाग] अरबी पाठ: जंगल में खानाबदोश जैसे तुर्कमान आदि, वास्तव में यह [निवास की नीयत] सबसे सही मत के अनुसार सही है, और इसी पर फतवा दिया जाता है, बशर्ते कि उनके पास उस अवधि के लिए पर्याप्त पानी और चारा हो। यदि उनके अलावा किसी और ने उनके साथ निवास की नीयत की, तो यह सबसे सही मत के अनुसार सही नहीं होगा, संक्षेप में।

उर्दू अनुवाद: खानाबदोश, उदाहरण के लिए तुर्कमान लोग, यदि वे जंगल में निवास (इक़ामत) की नीयत कर लें, तो सबसे सही (असह्) मत के अनुसार यह सही है और इसी पर फतवा है, बशर्ते कि वहां उनके लिए इतनी अवधि के लिए पानी और चारा हो। और उनके अलावा अगर किसी और ने उनके साथ नीयत की, तो सबसे सही मत के अनुसार यह सही नहीं है, संक्षेप में। (त)

[मुख्य पाठ] क़स्बा प्रथागत रूप से 'मिस्र' (शहर) और 'दह' (गाँव) के बीच का मध्यम स्थान है। यह छोटे शहर को कहते हैं जहाँ आबादी कम हो, सुविधाएँ कम हों, बाज़ार और पक्की इमारतें हों लेकिन बड़े शहरों (अमसार) जैसी नहीं। 'दह' परगना होता है, ज़िला नहीं, उसमें छोटे-छोटे अधिकारी होते हैं जिनका अधिकार क्षेत्र सीमित होता है, बड़े अधिकारी नहीं होते जो हर तरह के दीवानी और आपराधिक मामलों का फ़ैसला कर सकें। इस आधुनिक प्रथा पर तीन विभाग हैं लेकिन अरबी भाषा में केवल दो ही चीज़ें हैं: मिस्र (शहर) या क़र्या (गाँव)। क़स्बा इनसे बाहर कोई तीसरी चीज़ नहीं है। 'क़ामूस' और 'मिसबाह अल-मुनीर' आदि में है: "देश का क़स्बा उसका शहर है और गाँव का क़स्बा उसका मध्य है" (शहरी क़स्बा शहर होता है और देहाती क़स्बा गाँवों और शहर के बीच होता है - त)। इसी तरह शरीयत-ए-मुतह्हरा ने क़स्बों को किसी विशेष आदेश से विशिष्ट नहीं किया। मिस्र और क़र्या का विभाजन आबादी पर आधारित है; यदि मिस्र की परिभाषा सटीक बैठती है तो वह मिस्र है अन्यथा क़र्या; इन दोनों के लिए तीसरा कोई विकल्प नहीं है (त)। अब मिस्र की परिभाषा में हमारे विद्वानों से कई कथन आए हैं जिनमें से बड़े इमामों के दो कथन प्रमाणित और चुनिंदा हैं:

पहला, ज़ाहिर अल-रिवैया और मज़हब का मूल और मज़हब के इमाम, हमारे आका इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) का मार्गदर्शन है कि शहर वह आबादी वाली इमारत है जिसमें कई गलियां हों, स्थायी बाज़ार हों, वह ज़िला या परगना हो जिसके साथ गाँव जुड़े हों, उसमें प्रजा के मामलों का फ़ैसला करने के लिए कोई शासक नियुक्त हो, जिसके पास मुक़दमे पेश होते हों और जिसका प्रताप

और वैभव मज़लूम का इंसाफ़ ज़ालिम से लेने के क़ाबिल हो, चाहे कभी लिया न जाए। यह परिभाषा कई किताबों में अलग-अलग शब्दों और समान अर्थों के साथ दी गई है।

मसला 1316: अज़ीमाबाद पटना से, शाह की इमली, मस्जिद तराहिबा के पास, हकीम साहब का मतब (क्लिनिक), प्रेषक मौलवी नूरुल हुदा साहब, 6 रबीउल आख़िर 1318 हिजरी।

प्रश्न: विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं: यदि ऐसे गाँव में जहाँ किसी भी तरह मिस्र (शहर) की परिभाषा लागू नहीं होती, वहां के हनफी पंथ के लोग इस्लामी शान-ओ-शौकत के ख़याल से जुमे की नमाज़ के साथ एहतियाती ज़ोहर और ईद की नमाज़ें पढ़ते हों, तो क्या वे गुनहगार होंगे या नहीं? और अगर गुनहगार हैं तो इसकी वजह क्या है? स्पष्ट करें, पुण्य पाएँ।

उत्तर: ऐसी जगह जुमा या ईदैन पढ़ना हनफी मज़हब में गुनाह है। न केवल एक गुनाह बल्कि कई गुनाह:

---

1. दुर्रे मुख़्तार, मुसाफ़िर की नमाज़ का अध्याय, मुजतबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/708।

اہل اخبیۃ کترکمان نووہ في المفازۃ فانھا تصح في الاصح و بہ یفتی اذا کان عندھم من الماء والکلاء ما یکفیھم مدتھا ولونوی غیرھم الاقامۃ معھم لم یصح في الاصح ۱ھ مختصرا۔ خانہ بدوش مثلاً ترکمان قوم اگر جنگل میں اقامت کی نیت کرلیں تو یہ اصح قول کے مطابق صحیح ہے اور اسی پر فتوٰی ہے بشرطیکہ وہاں ان کے لئے اتنی مدت کیلئے پانی اور چارہ ہو اور ان کے علاوہ کسی نے ان کے ساتھ نیت کر لی تو یہ اصح قول کے مطابق درست نہیں اھ مختصراً (ت)

قصبہ عرفاً مصر و دہ میں متوسط ہے چھوٹے شہر کو کہتے ہیں جس میں آبادی کم، مرافق قلیل ہوں بازار و پختہ عمارات ہوں نہ مثل امصار، دہ پرگنہ ہوتا ہے ضلع نہیں، اُس میں چھوٹے چھوٹے حکام ہوتے ہیں جن کی سماعت ایک حد تک محدود، بڑے حکام کو کہ ہر گونہ مقدمات دیوانی و جرائم فیصل کر سکیں نہیں ہوتے، اس عرف حادث پر قسمیں تین ہوتی ہیں مگر زبان عربی میں وہ دو ہی چیزیں ہیں: مصر یا قریہ قصبہ، ان سے باہر کوئی شے ثالث نہیں، قاموس و مصباح المنیر وغیرہما میں قصبۃ البلاد مدینتھا وقصبۃ القریۃ وسطھا (شہری قصبہ ، شہر ہوتا ہے اور دیہاتی قصبہ دیہات اور شہر کا درمیان ہوتا ہے ت) یونہی شرع مطہر نے قصبات کو کسی حکم خاص سے مخصوص نہ فرمایا مصر وقریہ کی تقسیم حاضر ہے آبادی پر، حدِ مصر صادق ہو تو مصر ہے ورنہ قریہ لا ثالث لہما (ان دونوں کے لئے تیسرا نہیں ت) اب تعریف مصر میں ہمارے علماء سے اقوال کثیرہ آئے جن میں مصحح و مختار و معتمد ائمہ کبار دو ہیں: اول ظاہر الروایہ واصل مذہب وارشاد امام مذہب سیدنا امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کہ شہر وہ آبادی عمارت والی ہے جس میں متعدد کوچے ہوں، دوامی بازار ہوں، وہ ضلع یا پرگنہ ہو کہ اس کے متعلق دیہات ہوں، اس میں کوئی حاکم مقدمات رعایا فصیل کرنے پر مقرر ہو، جس کے یہاں قضایا پیش ہوتے ہوں اور اس کی

شوکت و حشمت مظلوم کا انصاف ظالم سے لینے کے قابل ہو اگرچہ کبھی نہ لیا جائے، پہ تعریف کتب کثیرہ میں بالفاظِ عدیدہ ومعانی متقابہ ادا کی گئی۔

مسئلہ ۱۳۱۶: از عظیم آباد پٹنہ شاہ کی املی متصل مسجد ترا ہبہ مطب حکیم صاحب مرسلہ مولوی نور الہدیٰ صاحب ۶ ربیع الآخر شریف ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایسے قریہ میں جس پر کسی طرح حدِ مصر صادق نہیں اگر وہاں کے حنفی المذہب بخیال شوکتِ اسلامی نمازِ جمعہ مع ظہر احتیاطی وصلوٰۃ العیدین پڑھتے ہوں تو گنہگار ہوں گے یا نہیں؟ اور اگر گنہگار ہوں تو اس کی وجہ کیا ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: ایسی جگہ جمعہ یا عیدین پڑھنا مذہب حنفی میں گناہ ہے۔ نہ ایک گناہ بلکہ چند گناہ:

---

1 در مختار باب صلوٰۃ المسافر مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/ ۷۰۸

Firstly, since Jumu'ah and Eid prayers are not valid there, this matter constitutes engagement in something invalid, and that is impermissible.

[Arabic Text]: In al-Durr al-Mukhtar: It is disliked to a degree of prohibition (makruh tahrimi), meaning it is engagement in what is not valid because being in a city (misr) is a condition for validity.

[Urdu Translation]: It is in Durr al-Mukhtar that this is prohibited (makruh tahrimi) because it is engagement in an invalid act, as being in a city is a condition for the validity of Jumu'ah. (T)

Secondly, I say: It is not just engagement, but rather considering this impermissible matter as a means of establishing the glory of Islam, and moreover performing it with the intent and purpose of it being obligatory (fard) or necessary (wajib), is a corruption of belief, against which scholars have issued severe warnings.

[Arabic Text]: They [the scholars] advised abandoning the adherence to a recommended act (mustahabb) if it is feared that the common people will think it is obligatory. Regarding an even lesser matter than this, our leader Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) said: "None of you should give Satan a portion of his prayer by thinking it is a duty upon him not to turn away except to his right. I have surely seen the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) turning many times to his left." Narrated by the Two Sheikhs [Bukhari and Muslim]. So if this is the case regarding something that is originally legislated, then what do you think about something that was not permissible from the beginning?

[Urdu Translation]: When there is a fear that the general public will consider it necessary, the scholars should stop adhering to the recommended act. Regarding a lesser level of practice, the statement of our master Abdullah bin Mas'ud (may Allah be pleased with him) is: "None of you should make a share for Satan from your prayer by making it mandatory upon yourself to turn only to the right side after prayer, because I have seen the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) turning to the left side many times." Bukhari and Muslim narrated it. When this is the situation with an act that is fundamentally legislated, then what is your opinion on that which is fundamentally not permissible at all? (T)

Thirdly, since in reality it was neither Jumu'ah nor Eid prayer, it became a supererogatory (nafl) prayer performed in congregation with public announcement and gathering, which is impermissible.

[Arabic Text]: In Radd al-Muhtar, from Allamah al-Halabi, the commentator of al-Durr: It is a disliked supererogatory prayer due to its performance in congregation.

[Urdu Translation]: In Radd al-Muhtar, from Allamah Halabi, the commentator of Durr: These supererogatory prayers are disliked because they were performed with a congregation. (T)

These three reasons encompass both Jumu'ah and Eid prayers.

---

1 Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/112 2 Sahih al-Bukhari, Chapter on Turning Away and Withdrawing, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/118 3 Radd al-Muhtar, Chapter of the Two Eids, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/611

फतावा रज़विया जिल्द आठ

सर्वप्रथम, जब वहां जुमा और ईद की नमाज़ सही नहीं है, तो यह अनुचित कार्य में संलग्न होना है और वह नाजायज़ है।

[अरबी पाठ]: अल-दुर्र अल-मुख्तार में है: यह मकरूह तहरीमी (निषिद्ध के करीब) है क्योंकि यह उस कार्य में संलग्न होना है जो वैध नहीं है, क्योंकि जुमा की वैधता के लिए शहर (मिस्र) एक शर्त है।

[उर्दू अनुवाद]: दुर्र अल-मुख्तार में है कि यह मकरूह तहरीमी है क्योंकि यह एक अमान्य कार्य में व्यस्त होना है, क्योंकि जुमा की वैधता के लिए शहर का होना एक शर्त है। (T)

दूसरा, मैं कहता हूँ: केवल संलग्न होना ही नहीं, बल्कि इस नाजायज़ कार्य को इस्लाम की शान का कारण समझना, बल्कि इसे फर्ज़ और वाजिब की नियत और इरादे से अदा करना, अकीदे (विश्वास) की खराबी है जिसके खिलाफ उलेमा ने कड़ी चेतावनी दी है।

[अरबी पाठ]: उन्होंने [विद्वानों ने] सलाह दी कि मुस्तहब (पसंदीदा) कार्य की पाबंदी छोड़ दी जाए यदि यह डर हो कि आम लोग इसे वाजिब समझ लेंगे। इससे भी छोटे मामले में हमारे सरदार अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "तुम में से कोई भी अपनी नमाज़ से शैतान का हिस्सा इस तरह न बनाए कि यह सोचे कि उस पर लाज़िम है कि वह केवल दाईं ओर मुड़े। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को कई बार बाईं ओर मुड़ते देखा है।" इसे दो शेखों [बुखारी और मुस्लिम] ने रिवायत किया है। जब उस कार्य का यह हाल है जो मूल रूप से मशरू (धर्मसंगत) है, तो उसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है जो शुरुआत से ही जायज़ नहीं है?

[उर्दू अनुवाद]: जब यह खतरा हो कि आम लोग इसे ज़रूरी समझ लेंगे, तो विद्वान मुस्तहब पर पाबंदी छोड़ देंगे। इससे कम स्तर के अमल के बारे में हमारे आका अब्दुल्ला बिन मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) का फरमान है कि "तुम में से कोई भी अपनी नमाज़ में शैतान का हिस्सा इस तरह न बनाए कि नमाज़ के बाद केवल दाईं ओर मुड़ना ही खुद पर लाज़िम कर ले, क्योंकि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को कई बार बाईं ओर मुड़ते देखा है।" इसे बुखारी और मुस्लिम ने रिवायत किया है। जब उस अमल की यह स्थिति है जो मूल रूप से वैध है, तो तुम्हारा उस बारे में क्या ख्याल है जो मूल रूप से जायज़ ही नहीं है? (T)

तीसरा, चूंकि वास्तव में वह न जुमा थी और न ईद की नमाज़, तो यह एक नफ्ल (ऐच्छिक) नमाज़ हुई जिसे जमात, सार्वजनिक घोषणा और सामूहिक आयोजन के साथ अदा किया गया, जो नाजायज़ है।

[अरबी पाठ]: रद्द अल-मुह्तार में दुर्र के व्याख्याकार अल्लामा हलबी से है: यह मकरूह नफ्ल नमाज़ है क्योंकि इसे जमात के साथ अदा किया गया।

[उर्दू अनुवाद]: रद्द अल-मुह्तार में दुर्र के व्याख्याकार अल्लामा हलबी से है: ये नवाफ़िल मकरूह हैं क्योंकि वे जमात के साथ अदा किए गए। (T)

ये तीनों कारण जुमा और ईद की नमाज़, दोनों पर लागू होते हैं।

---

1 दुर्र अल-मुख्तार, बाबुल ईदैन, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/112 2 सहीह अल-बुखारी, बाबुल इनफ़िताल वल इनसिराफ़, कदीमी कुतुब खाना कराची, 1/118 3 रद्द अल-मुह्तार, बाबुल ईदैन, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/611

पृष्ठ 351/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اولا جب نماز جمعہ و عیدین وہاں صحیح نہیں تو یہ امر غیر صحیح میں مشغول ہوئی اور وہ ناجائز ہے،

فی الدرالمختار تکرہ تحریماً ای لانہ اشتغال بما لا یصح لان المصر شرط الصحۃ 1۔

در مختار میں ہے کہ یہ مکروہ تحریمی ہے اس لئے کہ یہ غیر صحیح کام میں مشغول ہونا ہے کیونکہ شہر جمعہ کی صحت کے لئے شرط ہے۔ (ت)

ثانیاً اقول: فقط مشغولی نہیں بلکہ اس امر ناجائز کو موجب شوکت اسلام جانا بلکہ بہ قصد ونیت فرض و واجب ادا کیا یہ مفسدہ عقیدہ ہے جس سے علماء نے تحذیر شدید فرمائی۔

اوصوا بترک التزام مستحب اذا خیف ان یظنہ العوام واجبا وفی اخف منہ قال سید نا عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالٰی عنہ لا یجعل احدکم للشیطان شیئی من صلوتہ یری ان حقاً علیہ ان لا ینصرف الا عن یمینہ لقد رأیت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کثیراً ینصرف عن یسارہ 2 رواہ الشیخان فاذا کان ھذا فیما ھو مشروع باصلہ فما ظنک بما لم یجز من رأسہ۔

جب یہ خطرہ ہو کہ عوام اسے ضروری سمجھ لیں گے تو علماء مستحب پر پابندی ترک کرائیں اور اس سے کم درجہ عمل کے بارے میں سیدنا عبداللہ بن مسعود رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا فرمان ہے کہ تم میں سے کوئی بھی اپنی نماز سے شیطان کا حصہ اس طرح نہ بنائے کہ نماز کے بعد دائیں طرف ہی پھرنا اپنے اوپر لازم کر لے کیونکہ میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کو بہت دفعہ بائیں طرف پھرتے ہوئے دیکھا، اسے بخاری و مسلم نے روایت کیا، جب اس عمل کا معاملہ ہے جو اصلاً مشروع ہے تو اس میں تمہارا کیا خیال ہے جو اصلاً جائز ہی نہ ہو۔ (ت)

ثالثاً جبکہ واقع میں نماز جمعہ و عید نہ تھی تو ایک نماز نفل ہوئی کہ باجماعت واعلان وتداعی ادا کی گئی یہ ناجائز ہوا،

فی رد المحتار عن العلامہ الحلبی محشی الدر فھو نفل مکروہ لادائہ بالجماعۃ 3۔

رد المحتار میں محشی درعلامہ حلبی سے ہے یہ نوافل مکروہ ہیں کیونکہ جماعت کے ساتھ ادا ہوئے۔ (ت)

یہ تینوں وجہیں جمعہ و عیدین سب کو شامل ہیں۔

---

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۲ 2 صحیح البخاری باب الانفتال والانصراف مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۱۸ 3 رد المحتار باب العیدین مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۱۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

Fourthly I say: Regarding those who do not pray Zuhr because of Friday prayer, the obligation remains upon them. Omitting a mandatory prayer (Farz) even once is a major sin (Kabira) in itself. And those who, according to their own assumption, pray 'cautionary rak'ahs' (Ehtiyati Rak'aat), they certainly abandon the congregational prayer (Jama'at). Performing congregational prayer is mandatory (Wajib) according to the reliable position of the school of law, the omission of which even once is a sin, and repeated omission is a major sin. As the jurists have specified and there is no lack of clarity on this matter that it needs further explanation. (T)

Fifthly I say: Those performing the cautionary rak'ahs are actually praying today's Zuhr according to the Hanafi school.

Arabic Text	**Urdu Translation**
For if the Friday prayer is not valid, the obligation of Zuhr remains upon their necks. So when they intend the last Zuhr they encountered and did not perform, it is necessary to consider it today's Zuhr.	Because when the Friday prayer is not valid, the obligation of Zuhr remains upon them. So, when they intend to pray the last Zuhr they encountered but did not perform, it is necessary to consider it today's Zuhr. (T)

While gathered in the mosque and capable of congregational prayer, they pray individually. This is another repulsiveness, that being gathered results in the nullification of congregation, which the Lawgiver did not permit even in severe conditions like a mosque under fear. Rather than nullification, He forbade the unnecessary division of a congregation among those present and taught the method of performing a single congregation, as stated in the Great Qur'an. And guidance to the straight path is from Allah. (As the Great Qur'an speaks on this, and Allah alone is the guide to the straight path. T) And Allah Almighty knows best.

Problem 731: 6 Dhu al-Qi'dah 1318 AH What do the scholars of the religion say about this matter: while the Imam is delivering the sermon (Khutbah), should one perform any supplication (Wazifa), Sunnah, voluntary prayers (Nawafil), or the missed Dawn prayer (Qaza-e-Fajr)? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: At that time, performing a wazifa is absolutely impermissible. And if one performs voluntary prayers (Nawafil), they will be a sinner, although the prayer will be valid. As for missed prayers (Qaza), if one is not a 'Sahib-e-Tartib' (one who has

fewer than six missed prayers), the same ruling applies. Otherwise, they must first perform the missed prayer, choosing a location as far away as possible to avoid the appearance of opposition. And Allah Almighty knows best.

Problem 1318: From Bengal, District Patra, Village Muradnagar, sent by Qazi Ashrafuddin Sahib, 28 Jumada al-Ula 1319 AH

Persian Text

What do the scholars of religion say regarding this matter that several persons went to a mosque to perform the Friday prayer and saw that the Friday prayer had already been performed. Now they, in the mentioned mosque, the Friday prayer...

Urdu Translation

What do the scholars of religion say regarding this matter that several persons went to a mosque for the performance of Friday prayer. They saw that the Friday prayer has been performed. Now those people in this mosque, the Friday prayer...

फ़तावा रज़विया खण्ड 8

चौथा मैं कहता हूँ: जुमा में उस कारण से जो लोग ज़ुहर नहीं पढ़ते, उन पर फ़र्ज़ ही रह गया। फ़र्ज़ को छोड़ना, चाहे एक ही बार हो, अपने आप में कबीरा (बड़ा पाप) है। और जो अपनी समझ से एहतियाती (सावधानी वाली) रकअतें पढ़ते हैं, वे निश्चित रूप से जमाअत (सामूहिक प्रार्थना) छोड़ने वाले हुए। विश्वसनीय मत के अनुसार जमाअत वाजिब है, जिसका एक बार भी छोड़ना गुनाह है और बार-बार छोड़ना कबीरा है। जैसा कि फ़ुकहा (धर्मशास्त्रियों) ने इस पर स्पष्ट रूप से लिखा है और यह बात इतनी स्पष्ट है कि व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। (त)

पाँचवाँ मैं कहता हूँ: वे एहतियाती रकअत वाले लोग वास्तव में हनफ़ी मत में आज की ज़ुहर पढ़ रहे हैं।

अरबी पाठ

क्योंकि जब जुमा सही नहीं हुआ, तो उनके ज़िम्मे ज़ुहर का फ़र्ज़ बाक़ी है। तो जब वे यह नियत करते हुए कि आख़िरी ज़ुहर का समय पाया मगर उसे अदा नहीं किया, तो उसे आज की ज़ुहर पर मानना वाजिब है।

उर्दू अनुवाद

इसलिए कि जब जुमा सही नहीं है तो उनके ज़िम्मे ज़ुहर का फ़रीज़ा बाक़ी है, तो जब यह इरादा करते हुए कि आख़िरी ज़ुहर का वक़्त पाया मगर उसे अदा न किया तो उसका आज की ज़ुहर पर महमूल करना वाजिब है। (त)

बावजूद इसके कि मस्जिद में जमा हैं और जमाअत पर क़ादिर हैं, वे अकेले पढ़ते हैं। यह दूसरी बुराई है कि मजमा (इकट्ठा) होकर जमाअत को ख़त्म करना है, जिसे शरीअत ने मस्जिद-ए-ख़ौफ़ जैसी कठिन स्थिति में भी अनुमति नहीं दी। बल्कि जमाअत को ख़त्म करने के बजाय, उपस्थित लोगों में बिना किसी शरीअत की वजह के जमाअत में फूट डालने को मना किया और एक ही जमाअत करने का तरीक़ा सिखाया जैसा कि क़ुरआन-ए-अज़ीम में ज़िक्र है। और अल्लाह ही सीधी राह की हिदायत देने वाला है। (जैसा कि इस पर क़ुरआन-ए-अज़ीम गवाह है, अल्लाह ही सीधे रास्ते की हिदायत देने वाला है। त) और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 731: 6 ज़ीकाद 1318 हिजरी दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जिस स्थिति में इमाम खुत्बा पढ़ रहा हो, उस वक़्त क्या कोई वज़ीफ़ा, सुन्नत, नवाफ़िल या फ़ज़्र की क़ज़ा नमाज़ पढ़नी चाहिए या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

जवाब: उस समय वज़ीफ़ा बिल्कुल नाजायज़ है, और नवाफ़िल भी अगर पढ़ेगा तो गुनहगार होगा हालाँकि नमाज़ हो जाएगी। रही बात क़ज़ा की, तो अगर वह साहिब-ए-तरतीब नहीं है तो उसका भी यही हुक्म है, वरना वह पहले ज़रूर क़ज़ा अदा करे, और जहाँ तक मुमकिन हो दूरी अपनाए ताकि विरोध की स्थिति से बचा जा सके। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1318: बंगाल, ज़िला पत्रा, गाँव मुरादनगर, प्रेषक क़ाज़ी अशरफ़ुद्दीन साहब, 28 जमादी-उल-अव्वल 1319 हिजरी

फ़ारसी पाठ	उर्दू अनुवाद
दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि कुछ लोग जुमा की नमाज़ अदा करने के लिए मस्जिद गए और देखा कि जुमा की नमाज़ अदा हो चुकी है, अब वे उस ज़िक्र की हुई मस्जिद में जुमा की नमाज़...	दीन के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि कुछ लोग जुमा की अदायगी के लिए मस्जिद में गए, उन्होंने देखा कि जुमा अदा हो गया है, अब वे लोग उस मस्जिद में जुमा...

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

رابعاً اقول: جمعہ میں اُس کے سبب جو ظہر نہ پڑھیں ان پر فرض ہی رہ گیا، ترکِ فرض اگرچہ ایک ہی بار ہو خود کبیرہ ہے اور جو بزعم خود احتیاطی رکعات پڑھیں وہ بھی تارکِ جماعت تو ضرور ہوئے اور جماعت مذہبِ معتمد میں واجب ہے جس کا ایک بار ترک بھی گناہ اور متعدد بار ہو کروہ بھی کبیرہ۔ کما نصوا علیہ ولارام وضع من ان یوضح (جیسا کہ فقہاء نے اس پر تصریح کی ہے اور یہ امر اتنا واضح ہے کہ وضاحت کی ضرورت نہیں۔ت)

خامساً اقول: وہ احتیاطی رکعات والے کہ حقیقۃً مذہب حنفی میں آج کی ظہر پڑھ رہے ہیں

| فانھما اذالم تصح الجمعۃ بقیت فریضۃ الظھر فی اعناقھم فاذا انووا اخر ظھر ادرکوھا ولم یؤدوھا وجب انصرافھا الی ظھر الیوم۔ | اس لئے کہ جب جمعہ صحیح نہیں تو ان کے ذمے ظہر کا فریضہ باقی ہے، تو جب یہ ارادہ کرتے ہوئے کہ آخری ظہر کا وقت پایا مگر اسے ادانہ کیا تو اس کا آج کی ظہر پر محمول کرنا واجب ہے۔(ت) |

بآنکہ مسجد میں جمع ہیں جماعت پر قادر ہیں تنہا پڑھتے ہیں یہ دوسری شناعت ہے کہ مجمع ہو کر ابطالِ جماعت ہے جسے شارع نے مسجد خوف جیسی حالتٍ شدید میں بھی روا نہ رکھا بلکہ ابطال درکنار موجودین میں بلا وجہ شرعی تفریقِ جماعت کو ناجائز رکھا کر ایک ہی جماعت کرنے کا طریقہ تعلیم فرمایا کما نطق بہ القرآن العظیم وباللہ الھدایۃ الی صراط مستقیم (جیسا کہ اس پر قرآنِ عظیم ناطق ہے، اللہ ہی صراطِ مستقیم کی ہدایت دینے والا ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۷۳۱: ۶ ذیقعدہ ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس حالت میں امام خطبہ پڑھتا ہو اُس وقت کوئی وظیفہ یا سنن یا نوافل یا فرض قضائے فجر پڑھنا چاہیئے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: اُس وقت وظیفہ مطلقاً ناجائز ہے، اور نوافل بھی اگر پڑھے گنہگار ہوگا اگرچہ نماز ہو جائے گی، رہی قضا اگر صاحبِ ترتیب نہیں تو اس کا بھی یہی حکم ہے ورنہ وہ ضرور پہلے قضا ادا کرے، اور جہاں تک دوری ممکن ہو اختیار کرے کہ صورتِ مخالفت سے بچے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۱۸: از بنگالہ ضلع پتراموضع مراد نگر مرسلہ قاضی اشرف الدین صاحب ۲۸ جمادی الاولیٰ ۱۳۱۹ھ

| چہ می فرمایند علمائے دین اندریں مسئلہ کہ چند اشخاص برائے ادائے جمعہ بمسجدے رفتند و دید نہ کہ جمعہ ادا شدہ است اکنوں ایشاں درآں مسجد مذکور صلواۃِ جمعہ | کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ چند اشخاص جمعہ کی ادائیگی کے لئے مسجد میں گئے انھوں نے دیکھا جمعہ ادا ہو گیا ہے اب وہ لوگ اس مسجد میں جمعہ |

Fatawa Rizvia, Volume 8

Question: Should they perform the Friday prayer or will the performance of Dhuhr be obligatory for them? If Dhuhr is obligatory, should they perform it in congregation or individually? A person says that if a group's Friday congregation is missed, they should go outside the mosque to a distance of one hundred or one hundred and twenty-five English yards away and perform the Friday prayer there, even if there is no mosque. Is his statement correct or not? If they have performed it this way, is it valid or not? Give a decree and be rewarded.

Answer: Not everyone can lead the Friday and Eid prayers; rather, it is necessary that the leader be the Sultan of Islam or someone appointed by him. However, in case of necessity, Muslims can appoint an Imam for the Friday prayer. There is no doubt that there cannot be two Imams for establishing a single Friday prayer in one mosque. Therefore, Friday prayer cannot be held twice in one mosque. When some people cannot find Friday prayer in that mosque, they should go to another mosque because, according to the fatwa-abiding (mufta-bihi) school of thought, Friday prayer can be held in multiple places within a city. Similarly, if the appointed Imam for the Friday prayer is found in the city or its outskirts (fana-e-shahr) outside a mosque, then performing it will also be permissible because a mosque is not a prerequisite for the Friday prayer. If no such situation exists, then performing Dhuhr prayer will be obligatory, but congregational prayer will not be permissible; rather, they should perform it individually. All this is explicitly stated in the books of the school of thought, and we have explained it in our Fatawa. As for the distance in yards specified by the aforementioned person, it has no basis. And Allah, the Glorified and Exalted, knows best.

Page 353 of 673

फ़तावा रिज़विया, खंड 8

प्रश्न: क्या वे जुमे की नमाज़ अदा करेंगे या उन पर ज़ुहर की अदायगी लाज़िम होगी? अगर ज़ुहर लाज़िम है तो वे जमाअत के साथ अदा करें या अकेले? एक व्यक्ति का कहना है कि अगर किसी समूह की जुमे की जमाअत छूट गई है, तो वे मस्जिद से बाहर सौ या सवा सौ अंग्रेजी गज़ की दूरी पर चले जाएँ और वहाँ जुमे की नमाज़ अदा करें, भले ही वहाँ मस्जिद न हो। क्या उसका यह कथन सही है या नहीं? अगर उन्होंने इस तरह अदा कर लिया है, तो क्या यह जायज़ है या नहीं? फतवा दें और पुण्य पाएँ।

उत्तर: जुमे और ईद की इमामत हर कोई नहीं करा सकता, बल्कि यह वाजिब है कि वह सुल्तान-ए-इस्लाम हो या उसकी तरफ से नियुक्त किया गया हो। अलबत्ता, ज़रूरत के समय मुसलमान जुमे का इमाम नियुक्त कर सकते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि एक मस्जिद में एक जुमे की अदायगी के लिए दो इमाम नहीं हो सकते, लिहाज़ा एक मस्जिद में दो बार जुमा नहीं हो सकता। जब कुछ लोग उस मस्जिद में जुमा न पा सकें, तो वे दूसरी मस्जिद में चले जाएँ क्योंकि मुफ़्ता-बिही मज़हब के अनुसार शहर में कई जगहों पर जुमा हो सकता है। इसी तरह अगर जुमे के लिए नियुक्त इमाम शहर या शहर की बाहरी सीमा (फ़ना-ए-शहर) में मस्जिद के अलावा कहीं मिलते हैं, तो वहाँ भी जुमा जायज़ होगा क्योंकि जुमे के लिए मस्जिद शर्त नहीं है। और अगर ऐसी कोई सूरत नहीं है, तो ज़ुहर की अदायगी फ़र्ज़ होगी लेकिन जमाअत जायज़ नहीं होगी बल्कि अलग-अलग अदा करें। यह सब मज़हब की किताबों में स्पष्ट रूप से मौजूद है और हमने अपने फ़तावा में इसे बयान किया है। और उक्त व्यक्ति ने गज़ों की जो दूरी तय की है, उसका कोई आधार नहीं है। और अल्लाह सुब्हानहू व ताला बेहतर जानता है।

पृष्ठ 353 / 673

ادار توانند کرد یا ادائے ظہر واجب است بر تقدیر ثانی باجماعت یا فرادیٰ شخص میگوید کہ جماعتے را کہ نماز جمعہ فوت شدہ شود اوشاں در خارج مسجد بہ بعد مقدار یک صد گز یا صد وبست و پنج گز مروجہ انگریزی رفتہ نماز جمعہ ادا توانند کرد و در انجا مسجد نیست و قول او صحیح است یا نہ واگر چنیں ادا کرد جائز خواھد شد یا نہ؟ بینوا توجروا | ادا کریں گے یا ظہر کی ادائیگی ان پر لازم ہوگی، اگر ظہر لازم ہے تو وہ جماعت کے ساتھ ادا کریں یا تنہا؟ ایک شخص کا کہنا ہے کہ اگر کسی گروہ کی جماعت جمعہ فوت ہوگئی تو مسجد سے دور انگریزی سو گز یا ایک سو پچیس گز کے فاصلے پر چلے جائیں اور وہاں جمعہ ادا کریں اگرچہ وہاں مسجد نہیں، اس کا قول صحیح ہے یا نہ؟ اگر اس طرح انھوں نے ادا کرلیا ہے تو جائز ہے یا نہ؟ بینوا توجروا

الجواب: امامت جمعہ و عیدین ہر کس نتواں کرد بلکہ واجب است کہ سلطان اسلام یا ماذون او باشد و بضرورت آنکہ مسلمان اور امام جمعہ مقرر کردہ باشند وشک نیست کہ یک مسجد را دو امام جمعہ کہ اقامت جمعہ واحدہ کنند نباشند پس در مسجد واحد دو بار جمعہ نتواں شد چوں بعض مردماں ایں جاجعہ نیابند بمسجدے دیگر اگر یابند روند کہ تعدد جمعہ در شہر مذہب مفتی بہ رواست ہمچناں اگر امامے معین برائے امامت جمعہ یابند و در غیر مسجد در شہر یا فنائے شہر ادا کنند نیز روا باشد زیرا کہ مسجد شرط جمعہ نیست و اگر نیا بند فرض است کہ ظہر ادا کنند و روائیت کہ جماعت نمایند بلکہ فرادی خواند کل ذلک مصرح بہ فی کتاب المذہب و قد بیناہ فی فتاونا و آنکہ شخص مذکور تحدید فصل ذرعان کرد اصل ندارد۔ واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم۔ | جمعہ و عیدین کی امامت ہر کوئی نہیں کرواسکتا بلکہ واجب ہے کہ وہ سلطان اسلام یا اس طرف سے مامور ہو، البتہ ضرورت کے پیش نظر مسلمان امام جمعہ مقرر کرسکتے ہیں اور اس میں کوئی شک نہیں کہ ایک

مسجد میں ایک جمعہ کی اقامت کے لئے دو امام نہیں ہو سکتے لہذا ایک مسجد میں دو بار جمعہ نہیں ہو سکتا جب کچھ لوگ اس مسجد میں جمعہ نہ پاسکیں تو وہ دوسری مسجد میں چلے جائیں کیونکہ مفتی بہ مذہب کے مطابق شہر میں متعدد جگہ جمعہ ہو سکتا ہے، اسی طرح اگر مقرر امام جمعہ کو شہر یا فنائے شہر میں مسجد کے علاوہ پا لیتے ہیں تو وہاں بھی جمعہ جائز ہوگا کیونکہ جمعہ کے لئے مسجد شرط نہیں اور اگر ایسی کوئی صورت نہیں تو ظہر کی ادائیگی فرض ہوگی لیکن جماعت جائز نہ ہوگی بلکہ الگ الگ ادا کریں یہ تمام کتب مذہب میں صراحتہً موجود ہے اور ہم نے اپنے فتاوی میں اسے بیان کیا ہے اور مذکور شخص نے جو گزوں کی مقدار کا تعین کیا ہے اس کی کوئی اصل نہیں واللہ سبحنہ و تعالیٰ اعلم۔

Volume 8 Fatawa Razawiyyah

Problem 1319: From the Royal region of Rampur, sent by Nadir Shah Khan and Inaamullah Khan, 6 Jumada al-Akhirah 1319 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: In this Royal town, there is only one mosque, which is the congregational (Jami') mosque. Friday prayers have been held there since ancient times. There is also an Eidgah near the settlement where Eid prayers are performed. Currently, due to the large number of worshippers or lack of space for everyone, Friday prayers are being held at the Eidgah. On that day, the Jami' mosque remains completely empty of Friday prayers. In such a situation, will the Almighty God question the townspeople on the Day of Judgment because the mosque remained empty? And is there any harm in the eyes of Allah and His Messenger in performing Friday prayers at the Eidgah? Please clarify and be rewarded. **The Answer:** It is permissible. There is no harm, nor any accountability. And Allah the Almighty knows best.

Problem 1320: From Bengal, Mymensingh district, Mirzapur village, sent by Munshi Adam, the first of Rabi' al-Awwal 1320 AH. **What do you say, O possessors of intellect, regarding the propagation of the Prophet's rulings in this matter: Is it mandatory for worshippers to perform the Dhuhr prayer after the Friday prayer or not? And if they do perform it, what intention should they make—obligatory (fard) or voluntary (nafl)? Clarify with evidence, may you be rewarded with a great reward.** What is the opinion of the people of understanding who propagate the teachings of the Messenger of Allah (peace be upon him) regarding this: Is it necessary to perform the Dhuhr prayer along with Friday or not? If they perform it, then with what intention—obligatory or voluntary? Please clarify with evidence, may Allah Almighty grant you a great reward. (T) **The Answer: If doubt arises regarding the validity of the Friday prayer due to ambiguity in a condition, such as whether it's a city or whether the territory is Dar al-Islam, then the apparent ruling is obligation. If there is a mere apprehension due to a weak difference of opinion, then it is recommended, and the fatwa is for the elite, not for the common folk. In every case, one should intend the obligatory [prayer], i.e., the last Dhuhr prayer that I reached but did not perform, because voluntary prayers are fulfilled with the intention of obligatory ones, but not vice-versa. Thus, caution is only achieved with the intention of obligation, as is not hidden. It is stated in Radd al-Muhtar regarding...** If there is doubt about the validity of the Friday prayer due to ambiguity in the conditions of Friday, then it is apparent that

performing Dhuhr there is necessary. If there is an apprehension about the validity of Friday due to a weak disagreement, then performing Dhuhr will be recommended. However, this fatwa is for the elite, not for the common people. In any case, the intention will be for the obligatory prayer, meaning the last Dhuhr which I found but did not perform, because voluntary (nafl) prayers can be fulfilled with the intention of obligatory (fard) prayers, but obligatory ones cannot be fulfilled with the intention of voluntary ones. So, out of precaution, the intention lies in the obligatory prayer, as it is not hidden.

जिल्द हशतम (खंड 8) फ़तावा रज़विया

मसला 1319: शाही इलाक़ा रामपुर से, प्रेषक नादिर शाह खां और इनामउल्लाह खां, 6 जमादी अल-आखिरह 1319 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि इस शाही कस्बे में केवल एक ही मस्जिद है वही जामा मस्जिद है, प्राचीन काल से उसमें जुमे की नमाज़ होती आ रही है। और बस्ती के पास एक ईदगाह है, वहाँ ईद की नमाज़ पढ़ी जाती है। वर्तमान में नमाज़ियों की अधिकता या सबकी गुंजाइश न होने के कारण जुमे की नमाज़ ईदगाह में पढ़ते हैं। उस दिन जामा मस्जिद जुमे की नमाज़ से बिल्कुल खाली रहती है। ऐसी स्थिति में क्या अल्लाह तआला कयामत के दिन मस्जिद खाली रहने के कारण कस्बे वालों से कोई पूछताछ करेगा? और ईदगाह में जुमे की नमाज़ पढ़ने से अल्लाह और उसके रसूल के नज़दीक कोई नुकसान है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ। **उत्तर:** जायज़ है। कोई नुकसान नहीं और न ही कोई पकड़ होगी। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1320: बंगाल, जिला मयमन सिंह, मौज़ा मिर्ज़ापुर से, प्रेषक मुंशी आदम, पहली रबी-उल-अव्वल 1320 हिजरी। **[अरबी पाठ:] हे बुद्धिमानों, इस विषय में रसूल के आदेशों के प्रचार के बारे में आप क्या कहते हैं: क्या नमाज़ियों पर जुमे के साथ बाद वाली ज़ोहर (अखिरुज़ ज़ोहर) पढ़ना अनिवार्य है या नहीं? और यदि वे इसे पढ़ते हैं, तो उनकी नीयत क्या होनी चाहिए—फ़र्ज़ या नफ़्ल? प्रमाण के साथ स्पष्ट करें, आपको महान प्रतिफल मिले।** अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की शिक्षाओं का प्रचार करने वाले बुद्धिजीवियों की इस बारे में क्या राय है कि जुमे के साथ ज़ोहर की नमाज़ अदा करना ज़रूरी है या नहीं? अगर वे उसे अदा करते हैं तो किस नीयत से, फ़र्ज़ या नफ़्ल? प्रमाण के साथ स्पष्ट करें, अल्लाह तआला आपको महान प्रतिफल प्रदान करे। (त) **उत्तर: [अरबी पाठ:] यदि जुमे की किसी शर्त में संदेह के कारण उसकी वैधता में शक पैदा हो जाए, जैसे कि वह स्थान शहर है या नहीं, या वह दारुल इस्लाम है या नहीं, तो स्पष्ट रूप से (ज़ोहर पढ़ना) अनिवार्य है। और यदि किसी कमज़ोर मतभेद के कारण केवल एक वहम है, तो यह मुस्तहब (पसंदीदा) है, और इसका फ़तवा खास लोगों के लिए है, आम लोगों के लिए नहीं। और हर स्थिति में फ़र्ज़ की नीयत की जाएगी, यानी वह आखिरी ज़ोहर जिसे मैंने पाया लेकिन अदा नहीं की, क्योंकि नफ़्ल नमाज़ फ़र्ज़ की नीयत से अदा हो जाती है लेकिन फ़र्ज़ नफ़्ल की नीयत से अदा नहीं होता। अतः सावधानी फ़र्ज़ की नीयत में ही है, जैसा कि स्पष्ट है। रद-उल-मुहतार में कहा गया है...** अगर जुमे की शर्तों में स्पष्टता न होने के कारण जुमे के सही होने में संदेह हो जाए, तो ज़ाहिर है कि वहाँ ज़ोहर की नमाज़ अदा करना ज़रूरी है। और अगर वहाँ जुमे के सही

होने का वहम मात्र है किसी कमज़ोर मतभेद की वजह से, तो ज़ोहर की अदायगी मुस्तहब होगी। अलबत्ता इसके साथ फ़तवा खास लोगों के लिए है, आम जनता के लिए नहीं। हर हाल में नीयत फ़र्ज़ की होगी, यानी वह आख़िरी ज़ोहर जिसे मैंने पाया मगर अदा नहीं की, क्योंकि नफ़्ल नमाज़ें फ़र्ज़ की नीयत से अदा हो जाती हैं मगर फ़र्ज़ नफ़्ल की नीयत से अदा नहीं होते। तो एहतियातन नीयत फ़र्ज़ में ही है, जैसा कि छिपा नहीं है।

पृष्ठ 354 का 673

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

مسئلہ ۱۳۱۹: از شاہی علاقہ رامپور مرسلہ نادر شاہ خاں و انعام اللہ خاں ۶ جمادی الآخرہ ۱۳۱۹ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اس قصبہ شاہی میں صرف ایک مسجد وہی جامع مسجد ہے قدیم الا ایام سے اُس میں نمازِ جمعہ ہوتی ہے اور ایک عیدگاہ قریب آبادی کے ہے اس میں نمازِ عید پڑھی جاتی ہے فی الحال بوجہ کثرتِ نماز یا گنجائش سب نمازیوں کی نہیں اس لئے عیدگاہ میں جمعہ پڑھتے ہیں اُس روز جامع مسجد نمازِ جمعہ سے بالکل خالی رہتی ہے ایسی حالت میں کوئی باز پرس تو اہل قصبہ سے خداوند کریم بوجہ خالی رہنے مسجد کے بروزِ حساب نہ فرمائے گا اور پڑھنے نماز جمعہ سے عیدگاہ میں کچھ نقصان عنداللہ و عندالرسول ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا **الجواب:** جائز ہے۔ کچھ نقصان نہیں، نہ کوئی مواخذہ۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۲۰: از بنگالہ ضلع میمن سنگھ موضع مرزاپور مرسلہ منشی آدم غرہ ربیع الاول ۱۳۲۰ھ

ماتقولون یا ارباب العقول فی تبلیغ احکام الرسول فی ہذا الباب ھل یجب علی المصلین ان یصلوا اخرالظہر مع الجمعۃ ام لا وان صلوا فما ذا ینوونہا فریضۃ ام نافلۃ بینوا بالدلیل تو جروا اجرا جزیلا۔

تعلیمات رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم کی تبلیغ کرنے والے اہل فہم کی اس بارے میں کیا رائے ہے کہ جمعہ کے ساتھ نمازِ ظہر ادا کرنا لازم ہے یا نہ؟ اگر وہ ادا کرتے ہیں تو کس نیت سے فرض یا نفل؟ دلیل کے ساتھ واضح فرمائیں، اللہ تعالٰی آپ کو اجر عظیم عطا فرمائے۔ (ت) **الجواب: ان وقع الشك فی صحۃ الجمعۃ لوقوع الشبہۃ فی شرط کالمصریۃ اوکون الدار دارالاسلام فالظاھر الوجوب وان کان ھناك تو ھم لاجل خلاف ضعیف فالندب ویفتی بہ الخواص لا العوام و علی کل ینوی الفریضۃ ای اخر فرض ظہر ادرکتہ ولم اود لان النفل یتأدی بنیۃ الفرض ولاعکس فلا یحصل الاحتیاط الابنیۃ الفریضۃ کما لا یخفی قال فی رد المحتار فی** اگر شرائطِ جمعہ میں اشتباہ کی وجہ سے صحتِ جمعہ

میں شک ہوجائے تو ظاہر یہی ہے کہ وہاں ظہر کا ادا کرنا لازم ہے اور اگر وہاں صحتِ جمعہ کا وہم ہے تو ضعیف اختلاف کی وجہ سے ظہر کی ادائیگی مستحب ہوگی البتہ اس کے ساتھ خواص کے لئے فتویٰ ہے عوام کے لئے نہیں، ہر صورت میں فرض کی نیت ہوگی یعنی وہ آخری ظہر جسے میں پایا مگر ادا نہ کی کیونکہ نوافل فرض کی نیت سے ادا ہوجاتے ہیں مگر فرض نفل کی نیت سے ادا نہیں ہوتے، تو احتیاطاً نیت فرض میں ہی ہے جیسا کہ مخفی

Page 354 of 673

Fatawa Ridawiyya, Volume Eight

[Boxed Text] [Arabic Column]: "Al-Qunya" mentions that when the people of Marv were tried with establishing two Friday prayers amidst scholars' disagreement over their validity, their imams commanded them to perform four rak'ahs after it as an obligatory precaution. Many commentators of "Al-Hidayah" and others transmitted and circulated this. Then Al-Maqdisi transmitted from "Al-Fath" that it is appropriate to pray four rak'ahs intending them to be the last obligatory prayer whose time was reached but not performed, if there is doubt about the location being a city or if Friday prayers were multiple. He said the benefit is to exit from the imagined or verified disagreement. It is mentioned in "An-Nahr" that there should be no hesitation in it being recommended according to the opinion of the permissibility of multiple Friday prayers, as a way out of disagreement. Al-Maqdisi said that Ibn al-Shihnah quoted from his grandfather an explicit statement of its recommended nature (nadb), but debated that it should be so only in case of mere imagination (tawahhum). However, when doubt and uncertainty exist regarding the validity of the Friday prayer, then its necessity (wujub) is apparent. He quoted from his teacher Ibn al-Humam what supports this. (Abridged) And Allah Almighty knows best.

[Urdu Column]: No, it is stated in "Radd al-Muhtar" that "Al-Qunya" mentions: when the establishment of two Friday prayers occurred for the people of Marv and scholars differed on multiple Fridays, the imams made it mandatory for people to perform four rak'ahs of Zuhr after Friday as a precaution. Many commentators of Hidayah etc. narrated this and considered it prevalent. Then Maqdisi narrated from "Fath" that if there's hesitation about a place being a city or due to multiple Friday prayers, then four rak'ahs should be performed after Friday with the intention "I reached the time of the last Zuhr and had not performed it". He stated its benefit is to avoid imagined or proven disagreement. In "An-Nahr", it's mentioned that to avoid disagreement, one should not hesitate about the desirability of Zuhr even on the view of permissibility of multiple Fridays. Maqdisi says Ibn al-Shihnah, quoting his grandfather's explicit statement on it being recommended, debated saying this applies when there is mere imagination. But when there is doubt and suspicion about the validity of Friday prayer, its obligation (wujub) is apparent. On this, he quoted the text of his teacher Ibn al-Humam which supports it. (Abridged) (Translator) And Allah Almighty knows best.

[Below Box] Problem 1321: From district Kamarla, village Pansir, sent by Moulvi Abdul Ghafoor, 1st Rabi' al-Awwal 1320 AH. What do the scholars of religion say regarding

this matter: Is it permissible to turn away from the Qibla, i.e., towards the right or left, to supplicate (munajat) after the Friday prayer, or not? Despite the fact that it's in books of Fiqh that one should not turn away after a prayer followed by Sunnat-e-Mu'akkada. Please write with arguments. Explain and be rewarded.

[Footnote] 1 Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, Printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/596

फ़तावा रज़विया, खंड आठ

[बॉक्स वाला पाठ] [अरबी कॉलम]: 'अल-कुन्या' में उल्लेख है कि जब मर्व के लोगों को विद्वानों के बीच उनके औचित्य पर असहमति के बीच दो जुमे की नमाज़ें स्थापित करने का सामना करना पड़ा, तो उनके इमामों ने उन्हें सावधानी के तौर पर इसके बाद अनिवार्य रूप से चार रकअत (ज़ुहर) अदा करने का आदेश दिया। 'अल-हिदाया' के कई व्याख्याकारों और अन्य लोगों ने इसे उद्धृत और प्रचारित किया। फिर अल-मक़दिसी ने 'अल-फ़तह' से उद्धृत किया कि चार रकअत इस नीयत से पढ़ना उचित है कि वह अंतिम अनिवार्य नमाज़ है जिसका समय तो मिला लेकिन उसे अदा नहीं किया गया, यदि इस बात में संदेह हो कि वह जगह शहर है या जुमे की नमाज़ें एकाधिक हैं। उन्होंने कहा कि इसका लाभ कल्पित या प्रमाणित मतभेद से बाहर निकलना है। 'अन-नहर' में उल्लेख है कि मतभेद से बचने के लिए जुमे के बहुलता के औचित्य के मत पर भी ज़ुहर की नमाज़ के मुस्तहब (पसंदीदा) होने में संदेह नहीं करना चाहिए। अल-मक़दिसी कहते हैं कि इब्न अल-शिहना ने अपने दादा से इसके मुस्तहब होने का स्पष्ट उल्लेख उद्धृत किया, लेकिन इस पर बहस की कि ऐसा केवल कोरी कल्पना की स्थिति में होना चाहिए। लेकिन जब जुमे की नमाज़ की शुद्धता में संदेह और अनिश्चितता हो, तो इसका वाजिब (अनिवार्य) होना ज़ाहिर है। इस पर उन्होंने अपने उस्ताद इब्न अल-हुमाम का वह कथन उद्धृत किया जो इसका समर्थन करता है। (संक्षेप में) और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

[उर्दू कॉलम]: नहीं, 'रद्द अल-मुह्तार' में कहा गया है कि 'कुन्या' में है: जब मर्व के लोगों के लिए दो जुमों का आयोजन हुआ और विद्वानों ने बहु-जुमा में मतभेद किया, तो इमामों ने लोगों पर एहतियात के तौर पर जुमे के बाद चार रकअत ज़ुहर अदा करना लाज़िमी कर दिया। हिदाया आदि के अधिकांश व्याख्याकारों ने इसे उद्धृत किया और इसे ही प्रचलित माना। फिर मक़दिसी ने 'फ़तह' से उद्धृत किया कि यदि शहर होने में दुविधा हो या जुमा के बहुल होने के कारण दुविधा हो, तो जुमा के बाद चार रकअत इस नीयत से अदा की जाएं कि 'मैंने आखिरी ज़ुहर का वक्त पाया और उसे अदा नहीं किया था'। उन्होंने इसका लाभ यह बताया कि इससे कल्पित या प्रमाणित मतभेद से बचाव होगा। 'नहर' में उल्लेख है कि मतभेद से बचने के लिए जुमा के बहुल होने के औचित्य के मत पर भी ज़ुहर की अदायगी के मुस्तहब होने में दुविधा नहीं करनी चाहिए। मक़दिसी कहते हैं कि इब्न शिहना ने अपने दादा से इसके मुस्तहब होने पर स्पष्टीकरण उद्धृत करते हुए इस पर चर्चा की और कहा कि यह उस समय है जब केवल वहम हो, लेकिन जब जुमा की सेहत में शक और संदेह हो तो ज़ुहर का

वजूद (अनिवार्यता) ज़ाहिर है। इस पर उन्होंने अपने उस्ताद इब्न हुमाम की वह इबारत पेश की जो इसे पुष्ट करती है। (संक्षेप में) (अनुवादक) और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

[बॉक्स के नीचे] प्रश्न 1321: ज़िला कमरला, ग्राम पानसीर, मौलवी अब्दुल ग़फ़ूर साहब द्वारा प्रेषित, 1 रबी-उल-अव्वल 1320 हिजरी। इस मामले में दीन के विद्वान क्या फ़रमाते हैं: क्या जुमे की नमाज़ के बाद किबला से मुड़कर, यानी दाएं या बाएं मुड़कर मुनाजात (दुआ) करना जायज़ है या नहीं? बावजूद इसके कि फ़िक़्ह की किताबों में यह भी है कि जिस नमाज़ के बाद सुन्नत-ए-मुअक्कदा हो, उसमें न मुड़ें। दलीलों के साथ तहरीर फ़रमाएं। स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

[पाद-टिप्पणी] 1 रद्द अल-मुह्तार, जुमा का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/596

[باکس والا متن] [عربی کالم]: القنية لما ابتلى اهل مروبإقامة الجمعتين فيها مع اختلاف العلماء في جوازهما امر أئمتهم بالا ربع بعدها حتما احتياطاً اه ونقله كثير من شراح الهداية وغيرها وتداوله، ثم نقل المقدسی عن الفتح انه ينبغي ان يصلى اربعا ينوى بها آخر فرض ادركت وقته ولم أؤده ان تردد فی كونه مصرا او تعددت الجمعة، قال و فائدته الخروج عن الخلاف المتوهم او المحقق وذكر فی النهر انه لا ينبغي التردد في ندبها على القول بجواز التعدد خروجا عن الخلاف اه قال المقدسي ذكر ابن الشحنة عن جده التصريح بالندب وبحث فيه بأنه ينبغي ان يكون عند مجرد التوهم، اما عند قيام الشك والاشتباه في صحة الجمعة فالظاهر الوجوب ونقل عن شيخه ابن الهمام مايفيده اه مختصرا واللہ تعالی اعلم۔

[اردو کالم]: نہیں، ردالمحتار میں فرمایا کہ قنیہ میں ہے کہ جب اہلِ مرو کو دو جمعوں کا قیام پیش آیا علماء نے متعدد جمعہ میں اختلاف کیا تو ائمہ نے لوگوں پر جمعہ کے بعد احتیاطاً چار رکعات ظہر ادا کرنا لازمی قرار دے دیا اھ اکثر شارحینِ ہدایہ وغیرہ نے اسے نقل کیا اور اسے ہی متداول قرار دیا، پھر مقدسی نے فتح سے نقل کیا کہ اگر شہر ہونے میں تردد ہو یا جمعہ کے متعدد ہونے کی وجہ سے تردد ہو تو جمعہ کے بعد چار رکعات اس نیت سے ادا کی جائیں کہ میں نے آخری ظہر کا وقت پایا اسے ادا نہ کیا تھا اور فرمایا فائدہ اس کا یہ ہے کہ خلافِ متوہم یا محقق سے خروج ہوجائے گا، نہر میں مذکور ہے کہ اختلاف سے بچنے کی خاطر جوازِ تعددِ جمعہ کے قول پر بھی ظہر کی ادائیگی کے مستحب ہونے میں تردد نہیں کرنا چاہئے اھ مقدسی کہتے ہیں کہ ابنِ شحنہ نے اپنے دادا سے ندب پر یہ تصریح نقل کرکے اس میں بحث کرتے ہوئے کہا کہ یہ اس وقت ہے جہاں محض وہم ہو لیکن جب صحتِ جمعہ میں شک و اشتباہ ہو تو ظہر کا وجوب ظاہر ہے اس پر اپنے شیخ ابنِ ہمام کی وہ عبارت نقل کی جو اسے مفید ہے اھ اختصاراً (ت) واللہ تعالیٰ اعلم

[باکس کے نیچے] مسئلہ ۱۳۲۱: از ضلع کمر لہ موضع پانسیر مرسلہ مولوی عبدالغفور صاحب غرہ ربیع الاول ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ بعد نمازِ جمعہ انحرافِ قبلہ یعنی جانبِ ایمن وایسر کو پھر کر مناجات کرنا جائز ہے یا نہیں باوجودیکہ فقہ کی کتابوں میں بھی یہ ہے کہ جس نماز کے بعد سنتِ موکدہ ہو نہ پھرے بالدلائل تحریر فرمائیے۔ بینوا توجروا

[فٹ نوٹ] 1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۹۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

The Answer:

For the Imam to turn away from the Qibla after Salam is absolutely a Sunnah. Abandoning it, i.e., remaining seated facing the Qibla after Salam, is unanimously disliked (Makruh) for the Imam. All prayers, including Jumu'ah, etc., are equal in this ruling. Supplication (Dua) and Munajat after Salam are also unanimously permissible. However, for prayers followed by Sunnah (i.e., Zuhr, Jumu'ah, Maghrib, and Isha), a long delay is not better for anyone. If one does so, it is not forbidden, but it should not be so long that it becomes burdensome for the followers (muqtadis). It is the ongoing custom of Muslims that the followers stay in the supplication until the Imam finishes, and they do not leave before him. Although this is not Shari'ah-obligatory (Wajib), it is a matter of good etiquette.

Arabic	**Urdu**
I say: Support for this can be derived from the words of Allah Almighty: "And when they are with him upon a common matter, they go not until they have asked his leave." Because completing the supplication is considered as permission from him, and common custom follows this.	I say: This can be argued from this honorable statement of Allah Almighty: "And when they are with the Prophet (peace be upon him) in any common matter, they do not leave without your permission," because finishing the prayer is considered as permission and custom prevails on this. (T)

In such a situation, a long supplication that is burdensome for some followers should absolutely not be made, even if there are no Sunnah prayers after it, like Fajr and Asr.

Arabic	**Urdu**
This is what has become clear to me through understanding (fiqh), and I hope it is correct, if Allah Almighty wills. And when the Imam is commanded to keep the prayer brief, i.e., not to exceed the prescribed amount (Sunnah amount), there is consensus (Ijma) that he should not remain in his place facing the Qibla; all prayers are equal in this ruling.	Upon reflection and thought, this has become clear to me, and I hope that this will be correct, God willing. And when the Imam is ordered to lighten the prayer, i.e., do not add more than the Sunnah amount, then there is a consensus that the Imam should not stay in his place facing the Qibla; all prayers are equal in this ruling. (T)

It is mentioned in Hilya:

Arabic	Urdu
Many have stated clearly that it is disliked for him.	Many scholars have clarified that it is disliked (Makruh). (T)

It is mentioned in Durr al-Mukhtar:

Arabic	Urdu
Delaying the Sunnah except for the duration of "Allahumma Antas-Salam..." etc., is disliked.	Delaying the Sunnahs more than the duration of "Allahumma Antas-Salam..." etc.

1. Hilya al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli

फ़तावा रज़विया खंड 8

उत्तर:

सलाम के बाद इमाम का क़िबला से मुड़ जाना पूर्णतः सुन्नत है। इसे छोड़ना, यानी सलाम के बाद क़िबला की ओर मुँह करके बैठे रहना, इमाम के लिए सर्वसम्मति से मकरूह (नापसंद) है। जुमा आदि सभी नमाज़ें इस हुक्म में बराबर हैं। सलाम के बाद दुआ और मुनाजात भी सर्वसम्मति से जायज़ हैं। लेकिन जिस नमाज़ के बाद सुन्नतें हैं, यानी ज़ुहर, जुमा, मग्रिब और इशा, उनके बाद लंबी देरी करना किसी के लिए भी बेहतर नहीं है। अगर कोई ऐसा करता है तो मना भी नहीं है, लेकिन इतनी लंबी न हो कि मुक्तदियों (पीछे नमाज़ पढ़ने वालों) पर भारी पड़े। मुसलमानों की यह परंपरा रही है कि इमाम जब तक दुआ से फ़ारिग नहीं होता, मुक्तदी दुआ में शरीक रहते हैं और उससे पहले दुआ छोड़ कर नहीं उठते। हालाँकि यह शरीयत की दृष्टि से वाजिब नहीं है, लेकिन अच्छे अदब (शिष्टाचार) की बात है।

अरबी

कहो: इस पर अल्लाह तआला के इस पाक इरशाद से दलील दी जा सकती है: "और जब वे (पैगंबर के) साथ किसी साझा काम में हों, तो वे तब तक नहीं जाते जब तक कि उनसे इजाज़त न ले लें।" क्योंकि दुआ से फ़ारिग होना ही इजाज़त तसव्वुर किया जाता है और इस पर आम रिवाज जारी है।

उर्दू

मैं कहता हूँ: इस पर अल्लाह तआला के इस पाक इरशाद से इस्तदलाल (दलील देना) मुमकिन है: "और जब वे हुज़ूर अलैहिस्सलाम के साथ किसी मामले में जमा होते हैं तो आपकी इजाज़त के बग़ैर जाते नहीं," क्योंकि दुआ से फ़राग़त (निपटना) इजाज़त ही तसव्वुर होता है और इस पर उर्फ़(आम रिवाज) जारी है। (त)

ऐसी स्थिति में इतनी लंबी दुआ, जो कुछ मुक्तदियों पर भारी हो, बिल्कुल नहीं करनी चाहिए, भले ही उसके बाद सुन्नतें न हों, जैसे फ़ज्र और अस्र।

अरबी

ग़ौर व फ़िक्र के बाद यह मुझ पर स्पष्ट हुआ और मुझे उम्मीद है कि यह इंशा अल्लाह सही होगा। और जब इमाम को नमाज़ में तखफ़ीफ़ (संक्षेप) करने का हुक्म है, यानी मसनून मिकदार (सुन्नत

उर्दू

ग़ौर व फ़िक्र में यह मुझ पर स्पष्ट हुआ और मैं उम्मीद करता हूँ कि यह इंशा अल्लाह दुरुस्त होगा और जब इमाम को नमाज़ में तख़फ़ीफ़ (कमी) का हुक्म है यानी क़दरे मसनून (सुन्नत की

अरबी	उर्दू
मात्रा) से ज़्यादा न बढ़ाए, तो इस पर इज्मा (सर्वसम्मति) है कि इमाम अपनी जगह पर क़िबला रुख होकर न ठहरे। तमाम नमाज़ें इस हुक्म में बराबर हैं।	मात्रा) पर इज़ाफ़ा (बढ़ोत्तरी) न करे, तो इस पर इज्मा (सहमति) है कि इमाम अपनी जगह पर क़िबला रुख़ होकर न ठहरे, तमाम नमाज़ें इस हुक्म में बराबर हैं। (त)

'हिलिया' में है:

अरबी	उर्दू
कई विद्वानों ने इसके मकरूह होने को स्पष्ट रूप से बताया है।	मुतअद्दिद (अनेक) उलेमा ने इसके मकरूह होने की तसरीह (स्पष्टीकरण) की है। (त)

'दुर्रे मुख़्तार' में है:

अरबी	उर्दू
सुन्नतों में "अल्लाहुम्मा अन्तास-सलाम..." आदि की अवधि से ज़्यादा की देरी मकरूह है।	सुन्नतों में ताख़ीर (देरी) "अल्लाहुम्मा अन्तास-सलाम..." आदि की मिकदार से

1. हिलिया अल-महल्ली शरह मुन्या अल-मुसल्ली

الجواب:

امام کا بعد سلام قبلہ سے انحراف تو مطلقاً سنت ہے اور اس کا ترک یعنی بعد سلام روبقبلہ بیٹھا رہنا امام کے لئے بالاجماع مکروہ ہے، جمعہ وغیرہ سب نمازیں اس حکم میں برابر ہیں اور بعد سلام دعا و مناجات بھی بالاجماع جائز ہے مگر جس نماز کے بعد سنت ہے یعنی ظہر وجمعہ و مغرب و عشاء، اس کے بعد تاخیر طویل کسی کو بہتر نہیں اور اگر کرے تو منع بھی نہیں مگر اس قدر نہ ہو کہ مقتدیوں پر گراں گزرے، عادت مسلمین یوں جاری ہے کہ امام بعد سلام جب تک دعا سے فارغ نہ ہو مقتدی شریک دعا رہتے ہیں اور اس سے قبل اسے چھوڑ کر نہیں اٹھتے اور یہ اگرچہ شرعاً واجب نہیں مگر حسن ادب سے ہے۔

عربی	اردو
اقول: ویمکن الاستناس لہ بقولہ عزوجل "واذا کانوا معہ علی امر جامع لم یذھبوا حتی یسأذنوہ" فان فراغہ من الدعاء یعد اذنامنہ دلالۃ بذلک العرف جار۔	اقول: اس پر اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد گرامی سے استدلال ممکن ہے "اور جب وہ حضور علیہ السلام کے ساتھ کسی معاملہ میں جمع ہوتے ہیں تو آپ کی اجازت کے بغیر جاتے نہیں" کیونکہ دعا سے فراغت اذن ہی تصور ہوتا ہے اور اس پر عرف جاری ہے۔ (ت)

تو ایسی حالت میں اتنی دعائے طویل کہ بعض مقتدیوں پر ثقیل ہو مطلقاً نہ کرنی چاہئے اگر چہ اس کے بعد سنت نہ ہو جیسے فجر و عصر۔

عربی	اردو
هذا ماظهر لی تفقها و ارجو ان یکون صوابا ان شاء الله تعالی واذا امر الامام بالتخفیف في الصلوة ای عدم الزیاده علی القدر المسنون اجمعوا علی انه لا یمکث في مکانه مستقبل القبلة سائر الصلوات في ذلك علی السواء۔	غور و فکر میں یہ مجھ پر واضح ہوا اور میں امید کرتا ہوں کہ یہ ان شاء اللہ درست ہوگا اور جب امام کو نماز میں تخفیف کا حکم ہے یعنی قدر مسنون پر اضافہ نہ کرے تو اس پر اجماع ہے کہ امام اپنی جگہ پر قبلہ رُخ ہو کر نہ ٹھہرے تمام نمازیں اس حکم میں برابر ہیں۔ (ت)

حلیہ میں ہے:

عربی	اردو
وقد صرح غیر واحد بانه یکره له ذلك۔	متعدد علماء نے اس کے مکروہ ہونے کی تصریح کی ہے۔ (ت)

درمختار میں ہے:

عربی	اردو
یکره تأخیر السنة الا بقدر اللهم انت السلام الخ	سنتوں میں تاخیر اللھم انت السلام الخ کی مقدار سے

1 حلیہ المحلی شرح منیۃ المصلی

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Arabic]: Al-Halwani said: "There is no harm in separating [Fara'id and Sunan] with litanies (Awrad)," and Al-Kamal chose this view. Al-Halabi said: "If by 'makruh' (disliked) it is meant 'karahah tanzihiyyah' (minor dislike), then the disagreement is resolved." I say: "In my memory, it is applied to a minor separation." (End). | [Urdu]: It is more disliked [to have a long gap]. Al-Halwani said there is no harm in the interval between obligatory and sunnah prayers with remembrances (dhikr). Al-Kamal adopted this. Al-Halabi says that if the dislike is 'tanzihi' (minor), the disagreement ends. I say: My recollection is that this (tanzihi) is based on a short separation. (End). (T)

In Hulyah, it is stated: [Arabic]: The dislike is carried upon 'tanzihi' after the absence of evidence for 'tahrimi' 2. | [Urdu]: When there is no evidence for a 'tahrimi' (prohibitive) dislike, the 'makruh' (disliked) is understood as 'tanzihi' (minor dislike). (T)

In Ghaniyyah, it is stated: [Arabic]: The statement of Aisha (may Allah be pleased with her) "the amount of time it takes to say: O Allah, You are Peace..." implies that the intention was not those exact words themselves, but rather sitting for a period of time that accommodates that amount or similar words approximately. Therefore, it does not contradict what Muslim and others narrated from Abdullah bin al-Zubayr (may Allah be pleased with both) that the Messenger of Allah (may Allah bless him and grant him peace), when he finished his prayer with salam, would say with his loud voice: "There is no god but Allah alone, He has no partner; His is the kingdom, and His is the praise, and He is over all things powerful. There is no might nor power except with Allah. We do not worship except Him. To Him belongs all praise and excellence. There is no god but Allah, we are sincere to Him in religion, even if the disbelievers hate it," because... | [Urdu]: The statement of Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her) that the Prophet (may Allah bless him and grant him peace) would recite for the duration of "O Allah, You are Peace..." indicates that her intention was not those exact words, but rather sitting for a period in which these words or something equivalent could be recited. Therefore, this narration is not contrary to the narration of Muslim and others from Hazrat Abdullah bin Zubayr (may Allah be pleased with both) that when the Messenger of Allah (may Allah bless him and grant him peace) turned for salam from prayer, he would say in a loud voice: "There is no deity but Allah, He has no partner, the kingdom is His, the praise is His, and He has power over everything. The power to turn from evil and to come towards good is

given only by Allah Almighty; we worship only Him, the blessing is His and the grace is His..."

1 Durr al-Mukhtar, Chapter 'When one intends to start prayer', printed at Mujtabai Press, Delhi, India, 1/166. 2 Hulyah al-Mahalli, Commentary on Munyah al-Musalli.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

अरबी: अल-हलवानी ने कहा: "वजीफों (अवरद) के साथ [फ़राज़ और सुन्नत को] अलग करने में कोई हर्ज नहीं है," और अल-कमाल ने इसी को चुना। अल-हलबी ने कहा: "अगर 'मक़रूह' (नापसंदगी) से मुराद 'कराहत तन्ज़ीहिय्या' (मामूली नापसंदगी) है, तो मतभेद खत्म हो जाता है।" मैं कहता हूँ: "जहाँ तक मुझे याद है, इसे थोड़े अंतराल पर लागू किया जाता है।" (समाप्त) | [उर्दू]: अधिक मक़रूह है। हलवानी ने फरमाया कि अज़कार (ज़िक्र) के साथ फ़राइज़ और सुन्नत के बीच फासले में कोई हर्ज नहीं है। कमाल ने इसी को अपनाया है। हलबी कहते हैं कि अगर नापसंदगी 'तन्ज़ीही' है, तो मतभेद खत्म हो जाता है। मैं कहता हूँ: मुझे यहाँ तक याद है कि यह (तन्ज़ीही) थोड़े फासले पर आधारित है। (त)

हुलिया में है:

ग़निया में है: अरबी: हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) का यह कथन कि 'उतनी देर जितना कहने में लगता है: ऐ अल्लाह, तू ही सलामती है...' इसका अर्थ यह है कि उनका उद्देश्य बिल्कुल यही शब्द नहीं थे, बल्कि उतनी देर बैठना था जिसमें इतना या इसके बराबर शब्द लगभग पढ़े जा सकें। इसलिए, यह मुस्लिम और अन्य द्वारा हज़रत अब्दुल्ला बिन जुबैर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से वर्णित उस रिवायत के विपरीत नहीं है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब नमाज़ से सलाम फेरते तो ऊँची आवाज़ में कहते: 'अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, उसका कोई शरीक नहीं, उसी का मुल्क है, उसी की हम्द है, और वह हर चीज़ पर कादिर है। बुराई से बचने और नेकी करने की ताकत और तौफीक अल्लाह तआला ही अता फरमाता है; हम उसी की इबादत करते हैं, नेमत उसी की है और फ़ज़ल उसी का है,' क्योंकि... | [उर्दू]: हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा का यह फरमान कि आप सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम 'अल्लाहुम्मा अन्तस-सलाम...' की मिकदार पढ़ते, फायदा दे रहा है कि उनकी मुराद हूबहू यही अल्फाज नहीं बल्कि इतनी देर बैठना है जिसमें यह या इसकी मिकदार तकरीबन पढ़ी जाए। लिहाजा यह रिवायत मुस्लिम वगैरह की उस रिवायत के मुनाफी नहीं जो हजरत अब्दुल्लाह बिन जुबैर रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा से मरवी है कि रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम जब नमाज से सलाम फेरते तो बुलंद आवाज से कहते 'अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, उसका कोई शरीक नहीं, मुल्क उसी का है, उसी की हम्द है, और वह हर शय पर कादिर है, बुराई से फिरने और नेकी की तरफ आने की ताकत व तौफीक

अल्लाह तआला ही अता फरमाता है हम उसी की इबादत करते हैं, नेमत उसी की है और उसी का फज़ल...'

1 दुर्रे मुख्तार, फसल 'जब नमाज़ शुरू करने का इरादा हो', मुतबूआ मतबा मुजतबाई, दिल्ली, भारत 1/166 2 हुलिया अल-महल्ली, शरह मुन्यात अल-मुसल्ली

पृष्ठ 357/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

قال الحلوانی لابأس بالفصل بالاوراد واختار الکمال، قال الحلبی ان ارید بالکراھۃ التنزیھیۃ ارتفع الخلاف قلت فی حفظی حملہ علی القلیلۃ ۱ اھ | زیادہ مکروہ ہے، حلواني نے فرمایا اذکار کے ساتھ فرائض وسنن میں فاصلے میں کوئی حرج نہیں، کمال نے اسی کو اختیار کیا ہے، حلبی کہتے ہیں کہ اگر کراہت سے کراہت تنزیہی ہے تو اختلاف ختم ہو جاتا ہے قلت اور مجھے یہاں تک یاد ہے کہ یہ (تنزیہی) قلیل فصل پر محمول ہے اھ (ت)

حلیہ میں ہے: تحمل الکراھۃ علی التنزیھیۃ بعد دلیل التحریمیۃ ۲۔ | جب تحریمی پر دلیل نہ ہو تو مکروہ کو تنزیہی پر محمول کیا جاتا ہے۔ (ت)

غنیہ میں ہے: قول عائشہ رضی اللہ تعالی عنھا مقدار ما یقول اللھم انت السلا الخ یفید ان لیس المراد انہ کان یقول ذلك بعینہ بل کان یقعد زماناً یسع ذلك المقدار ونحوہ من القول تقریباً فلا ینافي ماروی مسلم وغیرہ عن عبداللہ بن الزبیر رضی اللہ تعالی عنھما کان رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم اذا سلم من صلوتہ قال بصوتہ الا علی لااللہ الا اللہ وحدہ لاشریك لہ لہ الملك ولہ الحمد وھو علی کل شیئ قدیر ولا حول ولا قوۃ الاّ باللہ ولا نعبد ولہ الثناء الحسن، لا الہ الا اللہ مخلصین لہ الدین ولوکرہ الاالکفرون، لان | حضرت عائشہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا کا یہ فرمان کہ آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اَللّٰھُمَّ اَنْتَ السَّلَامُ الخ کی مقدار پڑھتے، فائدہ دے رہا ہے کہ ان کی مراد بعینہ یہی الفاظ نہیں بلکہ اتنی دیر بیٹھنا جس میں یہ یا اس کی مقدار تقریباً پڑھا جائے۔ لہٰذا یہ روایت مسلم وغیرہ کی اس روایت کے منافی نہیں جو حضرت عبداللہ بن زبیر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے مروی ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جب نماز سے سلام پھیرتے تو بلند آواز سے کہتے "اللہ کے سوا کوئی معبود نہیں، اس کا کوئی شریک نہیں، ملک اسی کا ہے، اسی کی حمد ہے، اور وہ ہر شئی پر قادر

ہے، برائی سے پھرنے اور نیکی کی طرف آنے کی طاقت و توفیق اللہ تعالیٰ ہی عطا فرماتا ہے ہم اسی کی عبادت کرتے ہیں، نعمت اسی کی ہے اور اسی کا فضل

۱ در مختار فصل واذا اراد الشروع فی الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی بھارت ۱/۱۶۶ ۲ حلیہ المحلی شرح منیۃ المصلی

Volume Eight Fatawa Razawiyya

[Top Box Left - Arabic]: "The mentioned quantity is by way of approximation, not specification; it might accommodate each of these remembrances (adhkar) because there is no great difference between them[1] اھ summarily."

[Top Box Right - Urdu]: "High praise is for Him alone. There is no deity except Allah, our obedience is sincerely for Him, even if the disbelievers dislike it. 'Because the mentioned quantity is approximate, not definitive; that time allows for all these remembrances because there isn't much difference between them.' اھ summarily (T)."

[Middle Box Left - Persian/Arabic]: "Rather, Sheikh Muhaqqiq Maulana Abdul Haq (may his secret be sanctified) says in Ash'at al-Lam'at Sharh Mishkat al-Masabih: Hastening to stand for the sunnah prayers of Maghrib is not contrary to reciting Ayat al-Kursi etc. which is recited after Fajr and Maghrib ten times 'La ilaha illallah wahdahu la sharika lahu, lahul mulku wa lahul hamdu wa huwa 'ala kulli shay'in qadir'[2] -"

[Middle Box Right - Urdu]: "Standing early for the Maghrib sunnahs is not contrary to reading Ayat al-Kursi etc., because it is narrated in a Sahih Hadith that after the Fajr and Maghrib prayers, this should be read ten times: 'La ilaha illallah wahdahu la sharika lahu, lahul mulku wa lahul hamdu wa huwa 'ala kulli shay'in qadir.' (T)"

[Main Body - Urdu]: In no reliable book of Fiqh is it stated that for a prayer after which there is a sunnah, the imam is prohibited from turning away from the Qibla; yes, they dislike a long gap, and the meaning of these words of the scholars which this humble servant has quoted has become clear, and Allah Almighty knows best.

Problem 1322: From Khata, District Rampur, sent by Qazi Ziauddin Ahmad Sahib, 3 Muharram 1321 AH.

What do the scholars of religion say regarding this matter: In a village, a long time ago during the era of the Islamic sultanate, the Qazi of Sharia, who was an empowered Qazi, established a Jami Masjid. Considering that place appropriate according to the conditions of Jumu'ah, Friday prayers and Eid prayers continued to be held in that masjid. Since then, continuously according to the permission and direction of the original Qazi or ruler of the time, the leadership (imamate) remained in that family. Now, a person, due to opposition in some worldly matters and being upset with the Imam, performed the Eid prayer in another masjid which was built

recently. He prevented and misled the villagers from coming to the old Jami Masjid and made many people participate in that prayer and lead the prayer. In the old Jami Masjid as well, the prayer was held as per tradition and the congregation took place. Now it is sought to be known whether the Eid prayer held in that new masjid in opposition to the old Imam is valid or not? And for the one who caused such a prayer to be led, thus committing the act of dividing the congregation...

[Footnotes]: 1 Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Description of Prayer Attributes, Published by Suhail Academy Lahore, p. 342 2 Ash'at al-Lam'at, Chapter on Remembrances After Prayer, Published by Maktaba Nooria Razawiyya Sukkur 1/418

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

[ऊपरी बॉक्स बाएँ- अरबी]: "उल्लिखित मात्रा अनुमान के तौर पर है, न कि निर्धारण के तौर पर; यह इन स्मरणों (अज़कार) में से प्रत्येक के लिए पर्याप्त हो सकता है क्योंकि उनके बीच अधिक अंतर नहीं है[1] अह- संक्षेप में।"

[ऊपरी बॉक्स दाएँ- उर्दू]: "सर्वोच्च प्रशंसा केवल उसी की है। अल्लाह के अलावा कोई पूज्य नहीं है, हमारी आज्ञाकारिता केवल उसी के लिए है, भले ही काफ़िर इसे नापसंद करें। 'क्योंकि उल्लिखित मात्रा अनुमानित है न कि निश्चित; वह समय इन सभी स्मरणों के लिए गुंजाइश रखता है क्योंकि उनमें बहुत अधिक अंतर नहीं है।' अह- संक्षेप में (त)।"

[मध्य बॉक्स बाएँ- फ़ारसी/अरबी]: "बल्कि शेख मुहक्किक मौलाना अब्दुल हक (अल्लाह उनकी कब्र को पवित्र करे) अशअतुल लमआत शरह मिश्कात शरीफ़ में फरमाते हैं: मग़रिब की सुन्नतों के लिए जल्दी खड़ा होना आयतुल कुर्सी आदि पढ़ने के विपरीत नहीं है जिसे फज्र और मग़रिब की नमाज़ के बाद दस बार पढ़ा जाता है 'ला इलाहा इल्लल्लाहु वहदहु ला शरीका लहू, लहुल मुल्कु व लहुल हम्दु वहुवा अला कुल्लि शैइन क़दीर'[2] -"

[मध्य बॉक्स दाएँ- उर्दू]: "मग़रिब की सुन्नतों के लिए जल्दी खड़ा होना आयतुल कुर्सी आदि पढ़ने के खिलाफ नहीं है क्योंकि सही हदीस में आया है कि फज्र और मग़रिब की नमाज़ के बाद दस बार यह पढ़ा जाए: 'ला इलाहा इल्लल्लाहु वहदहु ला शरीका लहू, लहुल मुल्कु व लहुल हम्दु वहुवा अला कुल्लि शैइन क़दीर'। (त)"

[मुख्य भाग - उर्दू]: फिक्ह की किसी भी विश्वसनीय किताब में यह नहीं है कि जिस नमाज़ के बाद सुन्नत है उसके इमाम के लिए क़िब्ला से मुड़ना मना है; हाँ, वे लंबे अंतराल को नापसंद करते हैं, और विद्वानों के इन शब्दों का अर्थ जिन्हें इस सेवक ने उद्धृत किया है, स्पष्ट हो गया है, और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1322: खाता, जिला रामपुर से, प्रेषक काज़ी ज़ियाउद्दीन अहमद साहब, 3 मुहर्रम 1321 हिजरी।

क्या फरमाते हैं दीन के विद्वान इस मसले में कि: एक गांव में बहुत समय पहले इस्लामी सल्तनत के ज़माने में शरई काज़ी ने, जो अधिकार संपन्न काज़ी थे, जामा मस्जिद की स्थापना की। उस स्थान को

जुमे की शर्तों के अनुसार उपयुक्त समझकर वहाँ जुमे और ईदैन की नमाज़ होती रही और निरंतर उसी समय से मूल काज़ी या समय के शासक की अनुमति और निर्देश के अनुसार इमामत उसी परिवार में रही। अब एक व्यक्ति ने कुछ सांसारिक मामलों के विरोध के कारण इमाम से नाराज़ होकर एक दूसरी मस्जिद में जो थोड़े समय पहले तैयार हुई है, ईद की नमाज़ अदा की और गाँव के निवासियों को पुरानी जामा मस्जिद आने से रोककर और बहकाकर बहुत से लोगों को उस नमाज़ में शरीक किया और नमाज़ पढ़ाई। पुरानी जामा मस्जिद में भी पुरानी परंपरा के अनुसार नमाज़ पढ़ी गई और जमात हुई। अब यह जानना आवश्यक है कि क्या उस नई मस्जिद में पुराने इमाम के विरोध में ईद की नमाज़ हुई या नहीं? और ऐसा नमाज़ पढ़ाने वाले के लिए जिसने जमात में फूट डालने का अपराध किया...

[फुटनोट्स]: 1 गुन्यातुल मुस्तमली शरह मुन्यतुल मुसल्ली, नमाज़ के गुणों का वर्णन, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 342 2 अशअतुल लमआत, नमाज़ के बाद के ज़िक्र का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 1/418

पृष्ठ 673 में से 358

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[اوپری باکس بائیں - عربی]: المقدار المذکور من حیث التقریب دون التحدید، قد یسع کلو احد من نحو هذه الاذکار لعدم التفات الکثیر بینها[1] اھ مختصرا۔

[اوپری باکس دائیں - اردو]: ہے ، اعلیٰ تعریف اسی کی ہے۔ اللہ تعالیٰ کے سوا کوئی معبود نہیں ، ہماری تابعداری اسی کے لئے خالص ہے ، اگرچہ کافر اسے ناپسند کریں۔ " کیونکہ مقدار مذکور تقریباً ہے تحدیداً نہیں وہ وقت ان تمام اذکار کی گنجائش رکھتا ہے کیونکہ ان میں بہت زیادہ تفاوت نہیں ہے اہ مختصراً (ت)

[درمیانی باکس بائیں - فارسی/عربی]: بلکہ شیخ محقق مولانا عبدالحق قدس سرہ اشعۃ اللمعات شرح مشکوٰۃ شریف میں فرماتے ہیں: تعجیل قیام به سنت مغرب منافی نیست مر خواندن آیۃ الکرسی و غیرہ را که بخواند بعد از نماز فجر و مغرب ده بار لا اله الا الله وحده لا شریك له له الملك وله الحمد وهو علی کل شیئ قدیر[2] -

[درمیانی باکس دائیں - اردو]: مغرب کی سنتوں کے لئے جلدی قیام آیۃ الکرسی وغیرہ پڑھنے کے منافی نہیں کیونکہ حدیث صحیح میں وارد ہے کہ نماز فجر و مغرب کے بعد دس مرتبہ یہ پڑھا جائے لا اله الا الله وحده لا شریك له له الملك وله الحمد وهو علی کل شیئ قدیر۔ (ت)

[اصل متن - اردو]: فقہ کی کسی کتاب معتمد میں یہ نہیں کہ جس نماز کے بعد سنت ہے اس کے امام کو قبلہ سے پھرنا نہی منع، ہاں فصل طویل کو ناپسند فرماتے ہیں اور اس کے معنی ان کلمات علماء سے کہ فقیر نے نقل کئے ظاہر ہوگئے ، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۲۲: از کھاتہ ضلع رامپور مرسلہ قاضی ضیاء الدین احمد صاحب ۳ محرم ۱۳۲۱ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک موضع میں عرصہ کثیر گزرا زمانہء پادشاہت اسلام میں قاضی شرع نے جو قاضی بااختیار تھے جامع مسجد قائم کی اور وہ مقام شرائط جمعہ کے موافق مناسب سمجھ کر نماز جمعہ و نماز عیدین اُسی مسجد میں ہوتی رہی اور مسلسل اسی وقت سے حسبِ اجازت و ہدایت اصل قاضی یا حاکم وقت مذکور کے اسی خاندان میں امامت رہی اب ایک شخص نے بوجہ مخالفت چند امور دنیاوی کے امام سے رنج کر کے ایک دوسری مسجد میں جو تھوڑے زمانے سے تیار ہوئی ہے نمازِ عید ادا کی اور باشندگانِ دیہہ کو جامع مسجد قدیم کو آنے سے روک کر بہکا کر بہت سے اشخاص کو اُس نماز میں شریک کیا اور نماز پڑھائی اور جامع مسجد قدیم میں بھی مثلِ قدیم نماز پڑھی گئی اور جماعت ہوئی تو اب دریافت طلب ہے کہ اُس مسجد جدید میں امامِ قدیم سے مخالفت کرکے نماز عید ہوئی یا نہیں؟ اور ایسے نماز پڑھوانے والے کے واسطے جو تفریقِ جماعت کا مرتکب ہوا۔۔۔

[حواشی]: 1 غنية المستملي شرح منية المصلى بيان صفة الصلوة مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۳۴۲ 2 اشعۃ اللمعات باب الذکر بعد الصلوۃ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۴۱۸

Volume 8

Fatawa Razawiyya

What is the ruling, and will prayers be held in this manner in the future or not?

The Answer: In Friday (Jumu'ah), Eid prayers, and solar eclipse prayers, not everyone can lead the prayer (Imamat). Instead, it is necessary that the Imam be appointed or authorized by the Sultan (sovereign) of Islam. Yes, where such an authority's appointee is not available, then out of necessity, the general Muslims may appoint someone as Imam. In the case presented, where by the order of a Sharia judge from an Islamic state (may Allah Almighty prolong its era) Jumu'ah is established and the Imamat has been continuous and permanent in a specific family since ancient times, the Imam himself is authorized by the Sultan. While he is available, general Muslims do not have the authority to appoint a new Imam without a valid Sharia necessity.

Because the choice for them is only at the time of necessity due to the absence of the authorized person; so when he is found, there is no necessity, thus no choice. They have the choice at the time of necessity when no one is appointed, and when someone is appointed, there is no longer a necessity, hence no choice either. (T)

Here, Sharia necessity would mean that the authorized Imam is no longer present, or his qualification for Imamat has vanished due to corruption in beliefs etc., and there is no other pious person capable of Imamat in that authorized family. When none of these conditions were met, the Imamat of that other person did not take place. The Eid and Jumu'ah prayers behind him will be completely void. He himself will be guilty of grave sins and will involve so many Muslims in severe disobedience. That Jumu'ah in the other mosque will be forbidden (haram), the obligation of Dhuhr prayer will remain unfulfilled, and in Eidain, the Eid prayer will be void. Praying it will be a sin, and the obligation of Eid will remain. A "split in the congregation" is only said to occur if the Jumu'ah or Eid prayer behind him would also be valid; when it hasn't happened at all, how can there be a split? Rather, it is the nullification of prayer, which is most severe. May Allah grant the guidance to repent. This matter is extremely important to remember. Nowadays, among the ignorant, this calamity has spread widely: if they miss the Jumu'ah or Eid prayer, two or three people gather in some mosque, appoint someone as Imam, and offer the prayer. That is not prayer, and there is a separate sin for performing it. In the eyes of the common people, these prayers are like the five daily prayers, where anyone who wishes can lead. However, according to Sharia,

a specific Imam through this defined method is required here; without him, these prayers cannot be valid. It is stated in Tanwir al-Absar:

The presence of the Sultan or his appointee to establish it is a condition for its validity.

The establishment of Jumu'ah by the Sultan or his appointee is a condition for the validity of Jumu'ah. (T)

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Jumu'ah, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/101-109.

जिल्द 8

फ़तावा रज़विया

क्या हुक्म है और आइंदा इस तरीके से नमाज़ होगी या नहीं?

उत्तर: जुमा, ईदैन और कुसूफ (सूर्य ग्रहण) में हर कोई इमामत नहीं कर सकता, बल्कि यह अनिवार्य है कि इमाम इस्लामी सुल्तान द्वारा नियुक्त या अधिकृत (माज़ून) हो। हाँ, जहाँ ऐसे नियुक्त व्यक्ति न मिल सकें, वहाँ ज़रूरत पड़ने पर आम मुसलमान किसी को इमाम नियुक्त कर लें। प्रश्न की स्थिति में, जबकि एक इस्लामी रियासत के शरीयत जज के आदेश से (अल्लाह तआला उसके शासन को लंबा करे) वहाँ जुमा स्थापित है और इमामत प्राचीन काल से एक परिवार में निरंतर और स्थायी रूप से चली आ रही है, तो वह इमाम स्वयं सुल्तान की ओर से अधिकृत है। उसके होते हुए बिना किसी शरिया मजबूरी के आम मुसलमानों को नया इमाम नियुक्त करने का अधिकार नहीं है।

क्योंकि उनके पास चुनाव का अधिकार केवल ज़रूरत के समय होता है जब अधिकृत व्यक्ति न हो; इसलिए जब वह मिल जाए, तो कोई ज़रूरत नहीं रहती, अतः कोई चुनाव का अधिकार भी नहीं रहता। उन्हें अधिकार ज़रूरत के समय है जब कोई नियुक्त न हो, और जब कोई नियुक्त है तो अब ज़रूरत नहीं रही, इसलिए अधिकार भी नहीं होगा। (त)

यहाँ शरिया मजबूरी का अर्थ यह है कि अधिकृत इमाम स्वयं न रहे, या उसके विश्वासों आदि में किसी बिगाड़ के कारण इमामत की योग्यता समाप्त हो जाए, और उस अधिकृत परिवार में कोई दूसरा नेक व्यक्ति इमामत के योग्य न हो। जब इनमें से कोई भी स्थिति नहीं थी, तो उस दूसरे व्यक्ति की इमामत सही नहीं हुई। उसके पीछे पढ़ी गई ईद और जुमा की नमाज़ें पूरी तरह से बातिल (अमान्य) होंगी। वह स्वयं भी भारी पापों का दोषी होगा और इतने मुसलमानों को भी गंभीर गुनाहों में डाल देगा। दूसरी मस्जिद का जुमा हराम होगा, और ज़ोहर का फ़र्ज़ ज़िम्मे पर रहेगा, और ईदैन में ईद की नमाज़ बातिल होगी। उसे पढ़ना गुनाह होगा और ईद का वाजिब ज़िम्मे पर रह जाएगा। "जमात में फूट" तब कही जाती है जब उसके पीछे भी जुमा या ईद की नमाज़ सही हो जाए; जब यहाँ सिरे से हुई ही नहीं तो फूट कैसी? बल्कि यह नमाज़ को बातिल करना है, जो सबसे कठिन है। अल्लाह तौबा की तौफ़ीक़ दे। यह मसला याद रखना अत्यंत आवश्यक है। आजकल जाहिलों में यह बला बहुत फैल गई है कि जुमा या ईद की नमाज़ न मिली तो किसी मस्जिद में दो-ढाई आदमी इकट्ठे हुए और एक व्यक्ति को इमाम बनाकर नमाज़ पढ़ ली। वह नमाज़ नहीं होती और उसके पढ़ने का गुनाह अलग होता है। आम

लोगों की नज़रों में ये नमाज़ें भी पंजगाना (पाँच वक्त की नमाज़) की तरह हैं कि जिसने चाहा इमामत कर ली, हालांकि शरीयत की दृष्टि से यहाँ इस विशेष तरीके से नियुक्त विशेष इमाम की आवश्यकता है; उसके बिना ये नमाज़ें नहीं हो सकतीं। तनवीरुल अबसार में है:

इसकी वैधता के लिए सुल्तान या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति का इसे स्थापित करना शर्त है।

सुल्तान या उसके नियुक्त व्यक्ति द्वारा जुमा को स्थापित करना जुमा की वैधता के लिए शर्त है। (त)

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमा, मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/101-109.

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

کیا حکم ہے اور آئندہ اس طریقہ سے نماز ہوگی یا نہیں؟

الجواب: جمعہ و عیدین و کسوف میں ہر شخص امامت نہیں کر سکتا بلکہ لازم ہے کہ سلطانِ اسلام کا مقرر کردہ یا اُس کا ماذون ہو، ہاں جہاں یہ نہ مل سکیں تو بضرورت عام اہلِ اسلام کسی کو امام مقرر کر لیں، صورتِ سوال میں جبکہ سلطنتِ اسلام سقی اللہ تعالی عہدھا (اللہ تعالیٰ اس کی مدت کو دراز فرمائے۔ ت) سے بحکمِ حاکم شرع وہاں جمعہ قائم اور امامت خاندانِ ایامِ قدیم میں مستمر و دائم ہے تو امامِ خود ماذون من جانب السلطان ہے، اس کے ہوتے بلا مجبوری شرعی عام مسلمانوں کو بھی امامِ جدید قائم کرنے کا اختیار نہیں۔

لان الخیرۃ لھم انما یکون عند الضرورۃ لفقد الماذون فاذا وجد فلا ضرورۃ فلا خیرۃ ۔ انھیں اختیار ضرورت کے وقت ہے جب مامور نہ ہو اور جب مامور ہے تو اب ضرورت نہیں لہذا اختیار بھی نہ ہوگا۔ (ت)

یہاں مجبوری شرعی یہ کہ امام ماذون خود نہ رہے یا اُس میں مذہب وغیرہ کے فساد پیدا ہونے سے قابلیتِ امامت معدوم ہو جائے اور اس خاندانِ ماذون میں کوئی اور بھی صالح امامت نہ ہو، جب ان صورتوں میں سے کچھ نہ تھا اس دوسرے شخص کی امامت نہ ہوئی اُس کے پیچھے نماز عید و جمعہ محض باطل ہوں گی وہ سخت گناہوں کا خود بھی مرتکب ہوگا اور اتنے مسلمانوں کو بھی شدید معصیتوں میں مبتلا کر دے گا وہ دوسری مسجد کا جمعہ حرام ہوگا اور ظہر کا فرض سر پر رہے گا اور عیدین میں نماز عید باطل ہوگی۔ اُس کا پڑھنا گناہ ہوگا واجب عید سر پہ رہ جائے گا

تفریقِ جماعت تو وہاں کہی جائے کہ نمازِ جمعہ یا عیدین اس کے پیچھے بھی صحیح ہو جائیں، جب یہاں سرے سے ہوئی ہی نہیں تو تفریق کیسی، بلکہ ابطالِ نماز ہے کہ سب سے سخت تر ہے، اللہ تعالٰی توفیقِ توبہ بخشے، یہ مسئلہ نہایت واجب الحفظ ہے، آج کل جُہّال میں یہ بلا بہت پھیلی ہوئی ہے کہ جمعہ یا نمازِ عید نہ ملی کسی مسجد میں ڈھائی آدمی جمع ہوئے اور ایک شخص کو امام ٹھہرا کر نماز پڑھ لی وہ نماز نہیں ہوتی اور اُس کے پڑھنے کا گناہ الگ ہوتا ہے عوام کے خیال میں یہ نمازیں بھی پنجگانہ کی طرح ہیں کہ جس نے چاہا امامت کرلی حالانکہ شرعاً یہاں امامِ خاص اس طریق معین کا درکار ہے اُس کے بغیر یہ نمازیں ہو نہیں سکتیں، تنویر الابصار میں ہے:

یشترط لصحتھا السلطان او مامورہ با قامتھا[1]۔ سلطان یا اس کے مامور کا جمعہ کو قائم کرنا صحتِ جمعہ کے لیے شرط ہے۔ (ت)

[1] در مختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۱-۱۰۹

Fatawa Razawiyya Volume Eight

In Durr al-Mukhtar, it is stated:

[Table] In al-Sirajiyyah: If someone performs Friday prayer without the permission of the preacher (Khatib), it is not permissible [1], etc. | In Sirajiyyah, it is stated: If someone performed Friday prayer without the permission of the preacher, it is not permissible. (T)

In Radd al-Muhtar, it is stated:

[Table] Its summary is that its performance is not valid except for someone whom the Sultan (ruler) has permitted, whether through an intermediary or without one. As for without that, it is not permissible [2]. | Its gist is that the establishment of Friday prayer is not correct except for that person whom the Sultan has permitted, whether this permission be direct or indirect. If someone established Friday prayer without permission, it is not correct. (T)

In Tanwir and al-Durr, it is stated:

[Table] (And the appointment by the public) of the preacher (is not reliable while those mentioned are present), but in their absence, it is permissible out of necessity [3]. | Appointing a preacher (by the public) (is not reliable provided that the aforementioned people are present), but in the case where these people are not present, then the appointment of an Imam for necessity will be correct. (T)

In the Chapter of the Two Eids of the same book, it is stated:

[Table] (The prayer of the two Eids is obligatory upon everyone for whom Friday prayer is obligatory, with its conditions), for it is a Sunnah after those conditions. In al-Qunya: Eid prayer in villages is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi), meaning it is engagement in what is not valid because being a city is a condition for its validity [4]. Summarized. And Allah Almighty knows best. | (The prayer of the two Eids is obligatory upon every person upon whom Friday prayer is obligatory, along with the conditions of Friday), because Eid prayer is a Sunnah after those conditions. It is in al-Qunya that performing Eid in villages is prohibitively disliked, meaning this is to be occupied in a work that is not correct because being a city is a condition for its validity. And Allah Almighty knows best. (T)

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/110. 2. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/592.

3. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/110. 4. Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/113.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

दुर्रुल मुख्तार में है:

[तालिका] फ़िस सिराजिया: अगर किसी ने ख़तीब (प्रवक्ता) की अनुमति के बिना जुमे की नमाज़ पढ़ी तो वह जायज़ नहीं है [1] इत्यादि। | सिराजिया में है: अगर अनुमति के बिना किसी ने जुमे की नमाज़ पढ़ी, तो वह जायज़ नहीं है। (T)

रद्दुल मुहतार में है:

[तालिका] इसका सारांश यह है कि इसकी स्थापना केवल उसी व्यक्ति के लिए मान्य है जिसे सुल्तान (शासक) ने अनुमति दी हो, चाहे वह किसी माध्यम से हो या बिना किसी माध्यम के। जहाँ तक उसके बिना है, तो यह जायज़ नहीं है [2]। | इसका सार यह है कि जुमे की नमाज़ कायम करना सही नहीं है सिवाय उस व्यक्ति के जिसे सुल्तान ने अनुमति दी हो, चाहे यह अनुमति प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यदि बिना अनुमति के किसी ने जुमा कायम किया तो वह सही नहीं है। (T)

तन्वीर और अल-दुर्र में है:

[तालिका] (और आम जनता द्वारा नियुक्ति) ख़तीब की (मान्य नहीं है उन लोगों की उपस्थिति में जिनका उल्लेख किया गया है), लेकिन उनकी अनुपस्थिति में आवश्यकता के कारण यह जायज़ है [3]। | ख़तीब को (आम जनता का नियुक्त करना) (मान्य नहीं है बशर्ते कि उल्लेखित लोग मौजूद हों), लेकिन ऐसी स्थिति में जब ये लोग न हों, तो आवश्यकता के लिए इमाम की नियुक्ति सही होगी। (T)

उन्हीं के बाबू-अल-ईदैन (दो ईदों के अध्याय) में है:

[तालिका] (दो ईदों की नमाज़ उन सभी पर वाजिब है जिन पर जुमे की नमाज़ अपनी शर्तों के साथ वाजिब है), क्योंकि यह उन शर्तों के बाद सुन्नत है। अल-कुन्या में है: गाँवों में ईद की नमाज़ मकरूहे तहरीमी है, यानी यह ऐसे कार्य में व्यस्त होना है जो सही नहीं है क्योंकि शहर होना इसकी शुद्धता के लिए एक शर्त है [4]। संक्षेपित। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है। | (ईदैन की नमाज़ जुमे की शर्तों के साथ हर उस व्यक्ति पर वाजिब है जिस पर जुमा वाजिब है) क्योंकि ईद की नमाज़ उन शर्तों के बाद सुन्नत है। कुन्या में है कि देहातों में ईद मकरूहे तहरीमी है यानी यह ऐसे काम में

व्यस्त होना है जो सही नहीं है क्योंकि शहर होना सेहत के लिए शर्त है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (T)

[पाद टिप्पणियाँ] 1. दुर्रुल मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/110। 2. दुर्रुल मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/592। 3. दुर्रुल मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/110। 4. दुर्रुल मुख्तार, ईदैन का अध्याय, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/113।

पृष्ठ 360/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

در مختار میں ہے:

[ٹیبل] فی السراجیة لوصلی احد بغیر اذن الخطیب لایجوز 1 الخ | سراجیہ میں ہے اگر اجازت خطیب کے بغیر کسی نے جمعہ پڑھا یا تو جائز نہیں۔ (ت)

رد المحتار میں ہے :

[ٹیبل] حاصله انه لا تصح اقامتها الا لمن اذن له السلطان بواسطة او بدونها اما بدون ذلك فلا 2- | اس کا حاصل یہ ہے کہ اقامت جمعہ درست نہیں مگر اس شخص کے لئے جسے سلطان نے اجازت دی خواہ یہ اجازت بلاواسطہ ہو یا بلا واسطہ ، اگر بغیر اجازت کسی نے جمعہ قائم کیا تو درست نہیں۔ (ت)

تنویر و در میں ہے :

[ٹیبل] (ونصب العامة) الخطیب (غیر معتبر مع وجود من ذکر) امامع عدمهم فیجوز للضرورة 3- | خطیب کو (عوام کا مقرر کرنا) (معتبر نہیں بشرطیکہ جب مذکورہ لوگ ہوں) لیکن اس صورت میں جب یہ لوگ نہ ہوں تو ضرورت کے لئے امام کا تقرر درست ہوگا (ت)

اُنھیں کے باب العیدین میں ہے:

[ٹیبل] (تجب صلوتهما علی من تجب علیه الجمعة بشرائطها) فانها سنة بعدها وفی القنیة صلوة العید فی القری تکره تحریما ای لانه اشتغال بما لایصح لان المصر شرط الصحة 4 ملخصا - واللہ تعالٰی اعلم | (عیدین کی نماز شرائط جمعہ کے ساتھ ہر اس شخص پر واجب ہے جس پر جمعہ واجب ہے) کیونکہ نماز عید ان شرائط کے بعد سنت ہے۔ قنیہ میں ہے کہ دیہاتوں میں عید مکروہ تحریمی

ہے یعنی یہ ایسے کام مشغول ہونا ہے جو صحیح نہیں کیونکہ شہر ہونا صحت کے لئے شرط ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

[حواشی] 1 در مختار باب الجمعة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۰ 2 در مختار باب الجمعة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۵۹۲ 3 در مختار باب الجمعة مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۰ 4 در مختار باب العیدین ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۳

Fatawa Razawiya Volume 8

Problem 1324: From Bengal, Mymensingh district, Baniajan town, Post Office Lakhi Ganj, sent by Munshi Talib Husain Khan, 23 Safar 1322 AH. What do the scholars of the religion say about this issue: In a town, there is a mosque where people have been performing Friday prayers for a long time. If the Imam performs the Friday prayer with a few people, is it then permissible for other people to repeat the Friday prayer in the same mosque? And if they have performed it, is their prayer valid or not? Please explain and be rewarded.

Answer: Repeating the Friday prayer in one mosque is never permissible. [Arabic]: And some contemporaries from Lucknow have erred by declaring it permissible, being misled by the permissibility of multiple Friday prayers (in different locations), as we have explained in our Fatawa. [Urdu]: Some contemporaries from Lucknow have erred by declaring it permissible; they were misled by the permissibility of multiple locations for Friday prayers, as we have explained in our Fatawa. (T)

Leading Friday and Eid prayers is not like the five daily prayers where anyone can be made an Imam. Rather, it is a necessary condition for it that the Imam be authorized by the Islamic Authority (Sultan al-Islam), either directly or indirectly (e.g., authorized by someone who is authorized).

[Arabic]: And so on, whether out of necessity or otherwise, based on the difference of the two opinions, despite the condition being known and clear in the statements of the noble scholars. [Urdu]: And similarly onwards, due to necessity or without it, based on the difference of opinions, despite the fact that the condition is known and clear in the statements of the noble scholars. (T)

To the extent that if another person leads the Friday prayer without his (authorized Imam's) permission, the prayer will not be valid. It is stated in Sirajiyyah: [Arabic]: If someone prays without the permission of the Khatib, it is not sufficient unless he is followed by someone who has the authority of Friday.[1] I say: there is no need for an exception here because the permission includes implied permission. [Urdu]: If the prayer is led without the permission of the Khatib, it is not permissible; however, in the event that such a person follows him who could establish Friday (it is okay). I say: there is no need to make an exception here because permission includes that permission which is implied. (T)

In Durr al-Mukhtar it is stated: "And Shaykh al-Islam confirmed it." (T) Yes, where there is no authorized appointee of the Sultan remaining, there, out of necessity to maintain the collective religious symbols of the Muslims, the Sultan's permission is deemed established.

[1] Fatawa Sirajiyyah, Chapter on Friday, Nawal Kishore Lucknow, p. 17 Page 361 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

मसला 1324: बंगाल प्रांत, जिला मयमनसिंह, कस्बा बनियाजान, डाकखाना लखी गंज, प्रेषक मुंशी तालिब हुसैन खाँ, 23 सफ़र 1322 हिजरी। इस मसले में दीन के उलेमा क्या फ़रमाते हैं कि एक कस्बे में एक मस्जिद है जहाँ लोग बहुत दिनों से जुमा पढ़ा करते हैं। अगर इमाम कुछ लोगों के साथ जुमे की नमाज़ पढ़ ले, तो उसके बाद दूसरे लोगों के लिए उसी मस्जिद में जुमे की नमाज़ का दोहराना (तकरार) जायज़ है या नहीं? और अगर पढ़ ली तो उनकी नमाज़ हुई या नहीं? बयान फ़रमाएँ सवाब पाएँ।

जवाब: एक ही मस्जिद में जुमे की नमाज़ का दोहराना हरगिज़ जायज़ नहीं है। [अरबी]: लखनऊ के कुछ समकालीनों ने इसे जायज़ कह कर गलती की है; वे जुमा के बहुलता (तअद्दुद-ए-जुमा) के जवाज़ से धोखे में आ गए, जैसा कि हमने अपने फ़तवों में बयान कर दिया है। [उर्दू]: लखनऊ के कुछ समकालीनों ने इसे जायज़ कह कर गलती की है; वे जुमा के बहुलता के जवाज़ से धोखे में आ गए जैसा कि हमने अपने फ़तवों में बयान कर दिया है। (त)

जुमा और ईदैन की इमामत पाँच वक्त की नमाज़ की तरह नहीं है कि जिसे चाहे इमाम बना दें, बल्कि इसके लिए शर्त लाज़िम है कि इमाम सुल्तान-ए-इस्लाम की तरफ़ से माज़ून (अनुमति प्राप्त) हो, चाहे वह सीधे तौर पर हो या किसी मध्यस्थ के ज़रिये, यानी माज़ून का माज़ून हो।

[अरबी]: और इसी तरह आगे ज़रूरत की वजह से या उसके बिना भी, दो कथनों के मतभेद के आधार पर, इसके बावजूद कि उलेमा-ए-किराम के शब्दों में शर्त मालूम और स्पष्ट है। [उर्दू]: और इसी तरह आगे ज़रूरत की वजह से या उसके बिना भी, दो कौलों (कथनों) के मतभेद की बिना पर बावजूद इसके कि उलेमा-ए-किराम की इबारतों में शर्त मालूम और वाज़ेह (स्पष्ट) है। (त)

यहाँ तक कि अगर उसकी इजाज़त के बिना दूसरा व्यक्ति जुमे की इमामत करे तो नमाज़ नहीं होगी, सिराजिया में है: [अरबी]: अगर किसी ने खतीब की इजाज़त के बिना नमाज़ पढ़ाई तो वह काफ़ी नहीं होगी, सिवाय उस सूरत के जब उसके पीछे किसी ऐसे व्यक्ति ने नमाज़ पढ़ी हो जिसे जुमा कायम करने का अधिकार हो।[1] मैं कहता हूँ: यहाँ अपवाद की ज़रूरत नहीं है क्योंकि इजाज़त में वह इजाज़त भी शामिल है जो दलालत (संकेत) से हो। [उर्दू]: अगर खतीब की इजाज़त के बगैर नमाज़ पढ़ाई तो जायज़ नहीं, अलबत्ता इस सूरत में जब उसकी इक्तिदा किसी ऐसे शख़्स ने की जो जुमा

कायम कर सकता था। मैं कहता हूँ: यहाँ इस्तिसना (अपवाद) करने की ज़रूरत नहीं क्योंकि इजाज़त उस इजाज़त को भी शामिल है जो दलालतन हो। (त)

दुर्रे मुख्तार में है: "और इसे शैखुल इस्लाम ने साबित रखा है।" (त) हाँ, जहाँ सुल्तान का मुकर्रर किया हुआ कोई माज़ून न बचे, वहाँ मुस्लिम जमात के दीनी शिआर (प्रतीक) को कायम रखने की ज़रूरत के तहत सुल्तान की इजाज़त मान ली गई है।

[1] फ़तावा सिराजिया, बाबुल जुमुआ, नवल किशोर लखनऊ, पृ. 17 पेज 361/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۲۴: از ملک بنگالہ ضلع میمن سنگھ قصبہ بنیازان ڈاک خانہ لکھی گنج مرسلہ منشی طالب حسین خاں ۲۳ صفر ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک قصبہ میں ایک مسجد ہے جہاں لوگ بہت دنوں سے جمعہ پڑھا کرتے ہیں اگر امام مع چند لوگوں کے نماز جمعہ پڑھ لے تو بعدہ دوسرے لوگوں کو تکرارِ نمازِ جمعہ جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر پڑھ لیا تو نماز ان کی ہوگئی یا نہیں؟ بینوا توجروا۔

الجواب: ایک مسجد میں تکرارِ نمازِ جمعہ ہر گز جائز نہیں۔ وقد اخطأ بعض العصریین من لکھنؤ في تجویز ذلک مغترا بجواز التعدد کما بیناہ فی فتاونا۔ بعض معاصرین لکھنؤ نے اسے جائز کہہ کر غلطی کی ہے انہیں تعددِ جمعہ کے جواز سے دھوکا ہوا ہے جیسا کہ ہم نے اپنے فتاوٰی میں بیان کر دیا۔ (ت)

جمعہ و عیدین کی امامت مثل نماز پنجگانہ نہیں کہ جسے چاہئے امام کر دیجئے بلکہ اس کے لئے شرط لازم ہے کہ امام ماذون من جہتہ سلطان الاسلام ہو بلاواسطہ یا بالواسطہ کہ ماذون کا ماذون ہو یا ماذون الماذون کا ماذون ہو۔

وھلم جرا بضرورۃ اوبدونھا ایضا علی اختلاف القیلین مع شرط المعلوم المبین فی کلمات العلماء الکرام۔ اور اسی طرح آگے ضرورت کی وجہ سے یا اس کے بغیر بھی اختلافِ قولین کی بنا پر باوجودیکہ علماء کرام کی عبارات میں شرط معلوم اور واضح ہے۔ (ت)

یہاں تک کہ اگر بغیر اس کی اجازت کے دوسرا شخص امامت جمعہ کرے نماز نہ ہوگی، سراجیہ میں ہے: لوصلی احد بغیر اذن الخطیب لایجز الا اذا اقتدی بہ من لہ ولایۃ الجمعۃ[1] اھ اقول ولا استثناء

فان الاذن یعم الاذن دلالۃ۔ اگر خطیب کی اجازت کے بغیر نماز پڑھائی تو جائز نہیں البتہ اس صورت میں جب اس کی اقتداء کسی ایسے شخص نے کی جو جمعہ قائم کر سکتا تھا اھ اقول: یہاں استثناء کرنے کی ضرورت نہیں کیونکہ اجازت اس اجازت کو بھی شامل ہے جو دلالۃ ہو (ت)

در مختار میں ہے: واقرہ شیخ الاسلام (اسے شیخ الاسلام نے ثابت رکھا ہے۔ ت) ہاں جہاں ماذون سلطان نہ باقی ہو وہاں بضرورت اقامت شعار اجتماع مسلمین کو قائم اذن سلطان قرار دیا ہے۔

[1] فتاوی سراجیہ باب الجمعۃ نولکشور لکھنؤ ص ۱۷ Page 361 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

That is, if Muslims agree and appoint someone as the Imam for Friday prayers, he becomes like an Imam authorized by the ruler. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Arabic Quote]: The appointment of a preacher by the public is not considered valid in the presence of those mentioned as Imams; however, in their absence, it is permissible out of necessity. (t)

And there is no doubt that what is permitted due to necessity cannot exceed the bounds of that necessity.

[Arabic Quote]: As is known from the consistent jurisprudential and rational principle: that which exists by necessity is limited to the extent of that necessity. (t)

And there is absolutely no necessity for two Imams for a single mosque at the same time. So, when the first designated Imam for Friday is available, then surely another person, distant from and forsaken of that capability, following him for Friday prayer would be invalid and prohibited. However, if the designated Imam, out of mischief or for some personal need, hurried and performed the prayer before the appointed time with a few individuals, and the general congregation of Muslims arrived at the appointed time, then apparently the requirement of jurisprudential insight is that it is permissible for them to unanimously appoint another person as Imam and perform the Friday prayer.

[Arabic Quote]: Because of the clear occurrence of necessity, and this necessity was not averted by what the Imam did; rather, what his appointment was intended for was not achieved by his action. For he was appointed for the general public, not for a small number of people, as is not hidden, and it should be clarified. And Allah Almighty knows best. (t)

Problem 1324: Sent by Zahoor Ahmad from Bethu post office, Chakand, district Gaya.

In a locality where there are three mosques, and the biggest mosque cannot accommodate all the people of that place, and a city is adjacent within three miles of that place, is Friday prayer obligatory in that locality or not? And is it obligatory for the people of that place to perform Friday prayer in that city or not? Explain and be rewarded. The phrase from Wiqayah is: 'That whose largest mosque cannot contain

its people is a city.' In a place where the largest mosque cannot accommodate all its Muslim residents, is Friday prayer obligatory or not?

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed at Matba' Mujtabai Delhi, 1/110.
2. Sharh al-Wiqayah, Chapter of Friday, printed at Maktaba Rashidiya Delhi, 1/240.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

यानी, मुसलमान सहमत होकर जिसे जुमा का इमाम नियुक्त कर लें, वह सुल्तान की ओर से अधिकृत इमाम की तरह हो जाएगा। दुर्रे मुख्तार में है:

[अरबी उद्धरण]: उपरोक्त व्यक्तियों की उपस्थिति में जनता द्वारा खतीब (प्रवक्ता) नियुक्त करना मान्य नहीं है, हालाँकि, यदि उक्त व्यक्ति मौजूद न हों, तो आवश्यकता के कारण यह जायज़ होगा। (त)

और इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो बात आवश्यकता के कारण जायज़ ठहराई गई है, वह आवश्यकता की सीमा से बाहर नहीं जा सकती।

[अरबी उद्धरण]: जैसा कि सुस्थापित न्यायशास्त्रीय और तर्कसंगत सिद्धांत से ज्ञात है: जो कुछ आवश्यकता के कारण होता है, वह उस आवश्यकता की मात्रा तक ही सीमित होता है। (त)

और एक ही मस्जिद के लिए एक ही समय में दो इमामों की कतई आवश्यकता नहीं है। इसलिए जब जुमा का पहला निर्धारित इमाम मौजूद हो, तो दूसरा व्यक्ति जो उस योग्यता से दूर और वंचित हो, उसके पीछे जुमा की नमाज़ पढ़ना बातिल (अमान्य) और वर्जित है। हाँ, यदि निर्धारित इमाम ने शरारत वश या अपनी किसी विशेष आवश्यकता के कारण जल्दी की और नियत समय से पहले कुछ गिने-चुने लोगों के साथ नमाज़ पढ़ ली, और मुसलमानों की आम जमात नियत समय पर हाज़िर हुई, तो अब स्पष्ट रूप से फिकही (न्यायशास्त्रीय) दृष्टिकोण की मांग यह है कि उनके लिए यह जायज़ है कि वे आम मुसलमानों की सहमति से किसी दूसरे व्यक्ति को इमाम नियुक्त करें और जुमा की नमाज़ पढ़ें।

[अरबी उद्धरण]: स्पष्ट आवश्यकता पाए जाने के कारण, और यह आवश्यकता इमाम के कार्य से पूरी नहीं हुई; बल्कि जिस उद्देश्य के लिए उसकी नियुक्ति हुई थी, वह उसके कार्य से प्राप्त नहीं हुआ। क्योंकि वह आम लोगों के लिए नियुक्त था न कि कुछ लोगों के लिए, जैसा कि छुपा नहीं है, इसे स्पष्ट कर लेना चाहिए। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। (त)

मसाला 1324: प्रेषक ज़हूर अहमद, बैथू डाकखाना चाकंद, ज़िला गया।

जिस स्थान में तीन मस्जिदें हों और बड़ी मस्जिद में उस स्थान के सभी लोग न समा सकें और उस स्थान से तीन मील पर शहर लगा हुआ हो, क्या उस स्थान में जुमा वाजिब (अनिवार्य) है या नहीं? और

क्या उस स्थान के लोगों के लिए उस शहर में जाकर जुमा पढ़ना वाजिब है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा। विकाया की जो इबारत है कि: 'जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद उसके निवासियों को न समा सके वह शहर है।' ऐसी जगह जहाँ की बड़ी मस्जिद में वहाँ के सभी मुसलमान न समा सकें क्या जुमा वाजिब है या नहीं?

1. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-जुमा, मुतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/110।
2. शरह अल-विकाया, बाब अल-जुमा, मकतबा रशीदिया दिल्ली, 1/240।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

یعنی مسلمان متفق ہو کر جسے امام جمعہ مقرر کر لیں وہ مثل امام ماذون من السلطان ہو جائے گا۔

درمختار میں ہے:

نصب العامة الخطیب غیر معتبر مع وجود من ذکر اماماً عدمھم فیجوز للضرورة -1- | مذکورہ اشخاص کے ہوتے ہوئے عوام کا خطیب مقرر کرنا معتبر نہیں، البتہ اگر مذکورہ افراد نہ ہوں تو ضرورت کی وجہ سے جائز ہوگا۔ (ت)

اور شک نہیں کہ جو امر بوجہ ضرورت جائز رکھا گیا وہ حد ضرورت سے تجاوز نہیں کر سکتا۔

لما عرف من القاعدة المطردة الفقھیة بل | کیونکہ فقہ بلکہ عقلاً قاعدہ مسلمہ ہے کہ جو کچھ ضرورت کی وجہ سے والعقلیة ان ما کان بضرورة فقدر بقدرھا | ہوتا ہے وہ ضرورت کی مقدار کے برابر ہی ہوتا ہے۔ (ت)

اور مسجد واحد کے لئے وقت واحد میں دو امام کی ہر گز ضرورت نہیں، تو جب پہلا امام معین جمعہ ہے دوسرا ضرور اس کی لیاقت سے دور و مہجور تو اس کے پیچھے نماز جمعہ باطل و محذور ، البتہ اگر امام معین نے براہ شرارت خواہ اپنی کسی خاص حاجت کے سبب جلدی کی اور وقت معہود سے پہلے معدودے چند کے ساتھ نماز پڑھ لی عامہ جماعت مسلمین وقت معین پر حاضر ہوئی تو اب ظاہراً مقتضائے نظر فقہی یہ ہے کہ انہیں جائز ہو کہ دوسرے شخص کو باتفاق عام مسلمین امام مقرر کریں اور نماز جمعہ پڑھیں۔

لحصول الضرورة بالضرورة ولم تندفع بما فعل | واضح ضرورت پائے جانے کی وجہ سے اور یہ ضرورت امام کے الامام بل لم یحصل من فعلہ ماکان نصبہ فما | فعل سے پوری نہیں ہوئی بلکہ

جس مقصد کے لئے اس کا تقرر ہوا وہ حاصل نہ ہوا وہ تو عام لوگوں کے لئے مقرر تھا نہ کہ چند لوگوں کے نصب اللعامۃ لا العدۃ نفر کما لا یخفی ولیحرر - | لئے جیسا کہ مخفی نہیں ، اسے واضح کر لینا چاہئے۔ واللہ تعالیٰ واللہ تعالیٰ اعلم۔ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۲۴: مرسلہ ظہور احمد از بیتھو ڈاک خانہ چاکند ضلع گیا

جس موضع میں تین مسجد ہوں اور بڑی مسجد میں اُس جگہ کی سب لوگ گنجائش نہ کر سکیں اور اس جگہ سے تین میل شہر متصل ہوا اُس موضع میں جمعہ واجب ہے یا نہیں؟ اور اس جگہ کے لوگوں کو جمعہ پڑھنا اُس شہر میں واجب ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا۔ یہ جو عبارت وقایہ کی ہے کہ : مالا یسع اکبر مساجدہ اھلہ مصر 2 ایسی جگہ کہ بڑی مسجد میں اُس جگہ کی سب مسلمان گنجائش نہ کر سکیں جمعہ واجب ہے یا نہیں

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۰ 2 شرح الوقایۃ باب الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ رشیدیہ دہلی ۱ / ۲۴۰

That is, a sane, adult Muslim male upon whom Friday prayer is obligatory.

The Answer: A place that is not itself a city requires the existence of a 'Fina-e-Misr' (city periphery) for the validity of the Friday prayer. 'Fina-e-Misr' refers to those locations of a city that have been designated for city-related purposes; for example, the city's Eidgah (prayer ground), city graveyards, or the military cantonment established for the city's protection, or the city's horse racing ground, archery range, or courts, even if they are located many miles away from the city's inhabited areas and even if some fields lie in between. Any place that is neither a city nor the periphery of a city, performing Friday prayer there is forbidden (Haram). It is not only forbidden but also invalid (batil), as the obligation of the Dhuhr prayer will not be discharged.

(Arabic Text)

In Tanwir al-Absar and al-Durr al-Mukhtar, it is stipulated for its validity to be in a city or its periphery. The periphery is what surrounds it, whether connected to it or not, as documented by Ibn al-Kamal and others for purposes such as burying the dead and horse racing, etc. (Summarized). In Radd al-Muhtar, the Imams have clearly stated that the periphery is what is prepared for burying the dead and city needs like horse and cattle racing, gathering of troops, archery, and such. In al-Durr al-Mukhtar, from al-Qunya, it is stated that Eid prayer in villages is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi), meaning engaging in an action that is not correct because being a city is a condition for the validity of Eid.

(Urdu Translation)

In Tanwir al-Absar and al-Durr al-Mukhtar, it is stated that for the validity of Friday, being a city or its periphery is necessary. Periphery refers to the place near the city for the needs of the citizens, whether connected or not, as Ibn al-Kamal and others have written, e.g., graveyard, horse racing ground, etc. (Summarized). In Radd al-Muhtar, it is stated that the Imams have specified that periphery means the ground prepared for burying the dead and city requirements, e.g., for horse racing and cattle, assembly of the army, or for archery practice, etc. In al-Durr al-Mukhtar, from al-Qunya, it says that Eid prayer in villages is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi), i.e., engaging in an act which is not correct because being a city is a condition for the validity of Eid. (T)

This definition of a city—that its largest mosques cannot accommodate all its inhabitants eligible for Friday prayer—is, in its literal sense, contrary to the successive

(mutawatir) school of our Imams. Therefore, the researchers (muhaqqiqin) have rejected it and clarified that by this definition, even Makkah al-Mukarramah and Madinah al-Tayyibah...

---

1. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/109
2. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/591
3. Al-Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/112

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द अष्टम (खंड 8)

यानी मुसलमान अक्लमंद बालिग जिस पर जुमे की नमाज़ वाजिब है।

जवाब: जो जगह खुद शहर न हो, उसमें जुमे की सेहत (वैधता) के लिए 'फ़ना-ए-मिस्र' (शहर की सरहद/बाहरी क्षेत्र) होना ज़रूरी है। 'फ़ना-ए-मिस्र' शहर के उन स्थानों को कहते हैं जो शहर के हितों के लिए रखे गए हों, जैसे कि शहर की ईदगाह या शहर के कब्रिस्तान, या शहर की हिफ़ाज़त के लिए जो फ़ौज रखी जाती है उसकी छावनी, या शहर का घुड़दौड़ का मैदान, निशानेबाज़ी का मैदान या कचहरियाँ, चाहे वे शहर की आबादी से कितने ही मील दूर हों और चाहे बीच में कुछ खेत हों। और जो न शहर है और न ही शहर का फ़ना, उसमें जुमा पढ़ना हराम है। न केवल हराम बल्कि बातिल है कि ज़ोहर का फ़र्ज़ ज़िम्मे से साक़ित (ख़त्म) नहीं होगा।

(अरबी पाठ का सार)

तनवीरुल अबसार और दुर्रे मुख्तार में है कि इसकी (जुमे की) सेहत के लिए शहर या उसका फ़ना होना शर्त है। फ़ना वह जगह है जो उसके चारों ओर हो, चाहे उससे जुड़ी हो या नहीं, जैसा कि इब्नुल कमाल और दूसरों ने शहर के हितों जैसे मुर्दों को दफ़नाने और घुड़दौड़ आदि के लिए स्पष्ट किया है। रद्दुल मुहतार में है कि इमामों ने साफ़ कहा है कि फ़ना वह मैदान है जो मुर्दों को दफ़नाने और शहर की ज़रूरतों जैसे घुड़दौड़, मवेशियों, फ़ौज के इकट्ठा होने और निशानेबाज़ी आदि के लिए तैयार किया गया हो। दुर्रे मुख्तार में अल-कुन्या के हवाले से है कि देहातों में ईद की नमाज़ मकरूह-ए-तहरीमी है, यानी ऐसे काम में मशगूल होना जो सही नहीं है क्योंकि ईद की सेहत के लिए शहर का होना शर्त है।

(उर्दू अनुवाद)

तनवीरुल अबसार और दुर्रे मुख्तार में है कि सेहत-ए-जुमा के लिए शहर या फ़ना-ए-शहरी का होना ज़रूरी है, और फ़ना से मुराद वह जगह है जो शहर के पास नागरिकों की ज़रूरत के लिए हो, चाहे जुड़ी हो या न हो, जैसा कि इब्नुल कमाल आदि ने लिखा है, मसलन कब्रिस्तान, घुड़दौड़ का मैदान आदि। रद्दुल मुहतार में है कि इमामों ने इस बात पर स्पष्ट किया है कि फ़ना से मुराद वह मैदान है जो मुर्दों को दफ़नाने और शहर की ज़रूरतों के लिए बनाया गया हो, मसलन घुड़दौड़ और चौपायों के लिए, लश्कर के इकट्ठा होने के लिए या निशानेबाज़ी आदि के लिए। दुर्रे मुख्तार में कुन्या से है कि देहातों में नमाज़-ए-ईद मकरूह-ए-तहरीमी है, यानी ऐसे अमल में मशगूल होना है जो सही नहीं क्योंकि सेहत-ए-ईद के लिए शहर का होना शर्त है। (त)

शहर की यह परिभाषा कि जिसकी सबसे बड़ी मस्जिदों में वहाँ के जुमा पढ़ने वाले न समा सकें, अपने ज़ाहिरी अर्थों में हमारे इमामों के मुतवातिर मज़हब के खिलाफ़ है। इसलिए शोधकर्ताओं (मुहक़्क़िक़ीन) ने इसे खारिज किया और स्पष्ट किया कि इस परिभाषा के अनुसार तो खुद मक्का मुअज़्ज़मा और मदीना तय्यबा भी...

---

1. दुर्रे मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/109
2. रद्दुल मुहतार, जुमे का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/591
3. दुर्रे मुख्तार, दो ईदों का अध्याय, मुजतबाई प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/112

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

یعنی مسلمان عاقل بالغ جس پر نماز جمعہ واجب ہے۔

الجواب: جو جگہ خود شہر نہ ہو اُس میں صحتِ جمعہ کے لئے فنائے مصر ہونا ضرور ہے فنائے مصر والی شہر کے اُن مقامات کو کہتے ہیں جو مصالحِ شہر کے لئے رکھے گئے ہوں مثلاً وہاں شہر کی عیدگاہ یا شہر کے مقابر ہوں یا حفاظتِ شہر کے لئے جو فوج رکھی جاتی ہے اُس کی چھاؤنی یا شہر کی گھوڑ دوڑ یا چاند ماری کا میدان یا کچہریاں، اگرچہ مواضع شہر سے کتنے ہی میل ہوں اگرچہ بیچ میں کچھ کھیت حائل ہوں، اور جو نہ شہر ہے نہ فنائے شہر اس میں جمعہ پڑھنا حرام ہے اور نہ صرف حرام بلکہ باطل کہ فرضِ ظہر ذمہ سے ساقط نہ ہوگا۔

| في تنویر الابصار والدر المختار یشترط لصحتها المصر، اوفنائیه وهو ماحوله اتصل به اولا کما حرره ابن الکمال وغیره لاجل مصالحه کدفن الموتی و رکض الخیل اه ملخصاً، في رد المحتار قد نص الائمة علی ان الفناء مااعد لدفن الموتی وحوائج المصر کرکض الخیل والدواب وجمع العساکر والخروج للرمي وغیر ذلک اه وفي درالمختار عن القنیة صلوٰة العید في القری تکره تحریماً ای لانه اشتغال بما لا یصح لان المصر شرط الصحة. | تنویر الابصار اور در مختار میں ہے کہ صحتِ جمعہ کے لئے شہر یا فنائے شہر کا ہونا ضروری ہے، اور فنا سے مراد وہ جگہ ہے جو شہر کے پاس شہریوں کی ضرورت کے لئے ہو، خواہ متصل ہو یا نہ ہو، جیسا کہ ابن الکمال وغیرہ نے تحریر کیا ہے، مثلاً قبرستان، گھوڑ دوڑ کا میدان اھ ملخصاً، ردالمحتار میں ہے کہ ائمہ نے اس بات پر تصریح کی ہے کہ فنا سے مراد وہ میدان ہے جو دفنِ موتی اور شہر کی ضروریات کے لئے بنائی گئی ہو مثلاً گھوڑ دوڑ اور چوپایوں کے لئے ، لشکر کے اجتماع کے لئے یا نشانہ بازی

وغیرہ کے لئے ہو اھ، درمختار میں قنیہ سے ہے کہ دیہاتوں میں نمازِ عید مکروہِ تحریمی ہے یعنی ایسے عمل مشغول ہونا ہے جو صحیح نہیں کیونکہ صحتِ عید کے لئے شہر کا ہونا شرط ہے (ت)

|

مصر کی یہ تعریف کہ جس کی اکبر مساجد میں وہاں کے اہل جمعہ نہ سمائیں اپنے ظاہر معنی پر ہمارے ائمہ کے مذہبِ متواتر کے خلاف ہے ولہٰذا محققین نے اسے رد فرمایا اور تصریح کی کہ اس تصریح پر خود مکہ معظمہ ومدینہ طیبہ

---

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۹ 2 ردالمحتار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۱ 3 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۲

Volume 8

Fatawa Ridawiyyah

...they go out of the city and Jumu'ah is considered void in them because their blessed mosques have always had enough capacity for their people. It is mentioned in Ghunyah Sharh Munyah by Allama Ibrahim Halabi:

Arabic Text

They differed greatly concerning the definition of 'Misr' (city). The decisive verdict is that Makkah and Madinah are two cities where Jumu'ah has been established from the time of the Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) until today. Therefore, any place that is similar to either of them is a city, and any definition that does not hold true for either of them is unreliable. Even the definition selected by a group of later scholars, such as the authors of Al-Mukhtar, Al-Wiqayah, and others—which is that it is a place where if its inhabitants gathered in its largest mosque, it would not accommodate them—is invalidated by these two [holy cities], since the mosque of each accommodates its inhabitants and more. Thus, this definition is not considered. Even more so, the definition according to which every craftsman lives by his craft or every [type of] craftsman is found should not be considered. For Misr (Cairo) and Constantinople are among the greatest Islamic cities of our time, yet in each of

Urdu Translation/Explanation

There is much difference of opinion regarding the definition of a city, and the decision in this regard is that in Makkah al-Mukarramah and Madinah al-Munawwarah, Jumu'ah has been performed from the physical life of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) until today. Thus, any place that is like either of these two will be called a city, and any interpretation of a city that is not applicable to either of these two will be unreliable. Even the definition that a group of later scholars, for example the author of Mukhtar and the author of Wiqayah etc., have adopted—that (the place will be a city) if all the people of that place gather in its largest mosque and there is no room for them in the mosque—is objectionable because of these two (Makkah and Madinah). This is because the mosques there had space for the residents and even more people. Therefore, this definition is not reliable. And a fortiori, this definition of a city is unreliable: that every place where every artisan is with his craft or every kind of artisan is present, because in our era, Misr and Constantinople are among the largest cities of the Muslims; despite this, there is a

Arabic Text	Urdu Translation/Explanation
them there are crafts not found in the other, let alone Makkah and Madinah. [The quote] ends concisely.	specific industry in one of them that is not in the other, let alone being in Makkah al-Mukarramah and Madinah al-Munawwarah. The text of Ghunyah has ended concisely. (T)

It is in Multaqa al-Abhur:

Arabic Text	Urdu Translation
And it was said: [A city is] that if its inhabitants were to gather in its largest mosque, it would not accommodate them.	One saying is that if the people there gather in the largest mosque, it would not be sufficient for them. (T)

1 Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Jumu'ah Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 550. 2 Multaqa al-Abhur, Chapter on Jumu'ah, published by Mu'assasat ar-Risalah Beirut, 1/123.

जिल्द अष्टम

फतावा रज़विया

...वे शहर से बाहर जा रहे हैं और उनमें जुमा बातिल ठहरता है क्योंकि उनकी मसाजिद-ए-करीमा अपने अहल के लिए हमेशा से वुसअत रखती हैं। 'गुनिया शरह मुनिया' अल्लामा इब्राहिम हलबी में है:

अरबी मूलपाठ

'मिस्र' (शहर) की परिभाषा में बहुत मतभेद है। और इसमें फैसला यह है कि मक्का और मदीना ऐसे शहर हैं जहाँ हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के समय से आज तक जुमा कायम किया जाता है। अतः हर वह स्थान जो इन दोनों में से किसी एक की तरह होगा, वह शहर कहलाएगा। और जो भी परिभाषा इन दोनों में से किसी एक पर खरी नहीं उतरेगी, वह अविश्वसनीय होगी। यहाँ तक कि वह परिभाषा जिसे बाद के विद्वानों के एक समूह, जैसे 'मुख्तार' और 'विकाया' के लेखक आदि ने अपनाया है—कि (वह स्थान शहर होगा) यदि उसके सभी निवासी उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में एकत्र हों और मस्जिद में उनके लिए जगह न बचे—इन दोनों (शहरों) के कारण गलत साबित होती है। क्योंकि इन दोनों में से प्रत्येक की मस्जिद अपने निवासियों और उससे भी अधिक लोगों को समाहित कर सकती है। इसलिए, यह परिभाषा मान्य नहीं है। और विशेष रूप से शहर की यह परिभाषा मान्य नहीं है कि वह स्थान जहाँ हर शिल्पकार अपने शिल्प के साथ हो या

उर्दू अनुवाद/व्याख्या

शहर की परिभाषा में बहुत अधिक मतभेद है, और इस मामले में निर्णय यह है कि मक्का मुकर्रमा और मदीना मुनव्वरा वे स्थान रहे हैं जहाँ नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रत्यक्ष जीवन से आज तक जुमा अदा किया जाता है। इसलिए, कोई भी स्थान जो इन दोनों में से किसी एक के समान होगा, उसे शहर कहा जाएगा, और शहर की कोई भी परिभाषा जो इन दोनों में से किसी एक के लिए सही साबित नहीं होगी, वह अविश्वसनीय होगी। यहाँ तक कि वह परिभाषा जिसे बाद के विद्वानों के एक समूह, उदाहरण के लिए, मुख्तार के लेखक और विकाया के लेखक आदि ने अपनाया है, कि (एक स्थान शहर होगा) यदि उस स्थान के सभी लोग उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में इकट्ठा हों और मस्जिद में उनके लिए कोई जगह न हो, इन दोनों (मक्का और मदीना) के कारण आपत्तिजनक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वहाँ की मस्जिदों में निवासियों और उससे भी अधिक लोगों के लिए क्षमता थी। इसलिए, यह परिभाषा विश्वसनीय नहीं है। और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि शहर की यह परिभाषा अविश्वसनीय है: कि हर वह स्थान

अरबी मूलपाठ

जहाँ हर प्रकार का शिल्पकार मौजूद हो। क्योंकि हमारे समय में मिस्र (काहिरा) और कुस्तुनतुनिया इस्लाम के महानतम शहरों में से हैं; इसके बावजूद, उनमें से एक में एक विशिष्ट उद्योग है जो दूसरे में नहीं है, मक्का मुकर्रमा और मदीना मुनव्वरा में होने की तो बात ही अलग है। (गुनिया का उद्धरण यहाँ संक्षेप में समाप्त होता है)।

उर्दू अनुवाद/व्याख्या

जहाँ हर कारीगर अपने उद्योग के साथ हो या हर तरह का कारीगर मौजूद हो, क्योंकि हमारे युग में, मिस्र और कुस्तुनतुनिया मुसलमानों के सबसे बड़े शहरों में से हैं, इसके बावजूद, उनमें से एक में एक विशिष्ट उद्योग है जो दूसरे में नहीं है, मक्का मुकर्रमा और मदीना मुनव्वरा में होने की तो बात ही छोड़ दें। गुनिया का पाठ संक्षेप में समाप्त हो गया है। (त)

'मुल्तका अल-अबहुर' में है:

अरबी मूलपाठ

और कहा गया: [शहर वह है] कि यदि उसके निवासी उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में एकत्र हों, तो वह उन्हें न समा सके।

उर्दू अनुवाद

एक कहावत यह है कि यदि वहाँ के लोग सबसे बड़ी मस्जिद में इकट्ठा हों, तो वह उनके लिए पर्याप्त न हो। (त)

1 गुनियात अल-मुस्तमली शरह मुनियात अल-मुसल्ली, जुमा की नमाज़ पर अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 550। 2 मुल्तका अल-अबहुर, जुमा पर अध्याय, मुअस्ससत अर-रिसाला बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/123।

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

شہر سے خارج ہوئے جاتے ہیں اور ان میں جمعہ باطل ٹھہرتا ہے کہ ان کی مساجد کریمہ اپنے اہل کی ہمیشہ سے وسعت رکھتی ہیں، غنیہ شرح منیہ علامہ ابراہیم حلبی میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
اختلفوا فی تفسیر المصر اختلافا کثیرا والفصل فی ذلک ان مکۃ والمدینۃ مصران تقام بھما الجمع من زمنہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم الی الیوم فکل موضع کان مثل احدھما فھو مصر وکل تفسیر لایصدق علی احدھما فھو غیر معتبر حتی التعریف الذی اختارہ جماعۃ من المتأخرین کصاحب المختار والوقایۃ وغیرھما وھو مالو اجتمع اھلہ فی اکبر مساجدہ لایسعھم فانہ منقوض بھما اذ مسجد کل منھما یسع اھلہ وزیادۃ فلا یعتبر ھذا التعریف وبالاولی ان لایعتبر تعریفہ بما یعیش	تعریف شہر میں بہت زیادہ اختلاف ہے اور فیصلہ اس میں یہ ہے کہ مکہ مکرمہ اور مدینہ منورہ میں حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی ظاہری حیات سے لے کر آج تک جمعہ ادا کیا جاتا ہے تو ہر وہ مقام جو ان دونوں میں سے کسی ایک کی طرح ہو گا وہ شہر کہلائے گا اور جو تفسیر شہر ان دونوں میں سے کسی ایک پر صادق نہ آئے گی وہ غیر معتبر ہوگی حتیٰ کہ وہ تعریف جیسے متاخرین کی ایک جماعت مثلاً صاحب مختار اور صاحب وقایہ وغیرہ نے اختیار کی کہ (وہ مقام شہر ہوگا) اگر وہاں کی سب سے بڑی مسجد میں وہاں کے لوگ جمع ہو جائیں اور مسجد میں ان کی گنجائش نہ رہے، ان دونوں (مکہ ومدینہ) کی وجہ سے قابل اعتراض ہے کیونکہ ان دونوں کی مساجد وہاں کے مقیم بلکہ اس سے زائد لوگوں کی گنجائش رکھتی تھیں

عربی عبارت	اردو ترجمہ و تشریح
	لہٰذا یہ تعریف معتبر نہیں، اور بطریق اولیٰ شہر کی یہ
فیہ کل محترف بحرفتہ اویوجد فیہ کل محترف فان مصر وقسطنطنیۃ من اعظم امصار الاسلام فی زماننا ومع ھذا فی کل منھما حرف لاتوجد فی الاخری فضلا عن مکۃ والمدینۃ باختصار۔	تعریف غیر معتبر ہے کہ ہر وہ مقام جس میں ہر کاریگر اپنی صنعت کے ساتھ ہو یا وہاں ہر قسم کا کاریگر موجود ہوں کیونکہ ہمارے دور میں مصر اور قسطنطنیہ مسلمانوں کے سب سے بڑے شہروں میں سے ہیں، باوجود اس کے دونوں میں سے ایک میں مخصوص صنعت ہے جو دوسرے میں نہیں چہ جائیکہ مکہ مکرمہ اور مدینہ منورہ میں ہو ، غنیہ کی عبارت اختصاراً ختم ہوئی۔ (ت)

ملتقی الابحر میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
وقیل مالو اجتمع اھلہ فی اکبر مساجدہ لایسعھم۔	ایک قول یہ ہے کہ اگر وہاں کے لوگ سب سے بڑی مسجد میں جمع ہوں تو ان کے لئے کافی نہ ہو (ت)

1 غنیہ المستملی شرح منیہ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۰ 2 ملتقی الابحر باب الجمعۃ مطبوعہ مؤسسۃ رسالہ بیروت ۱/۱۲۳

2013

Fatawa Razawiyya Volume Eight

In Majma' al-Anhur it is stated:

و بصیغة التمریض لانهم قالوا ان هذا الحد غیر صحیح عند المحققین ۔ واللہ تعالیٰ اعلم	**The form of 'tamrid' (uncertainty) is used because the jurists stated that this definition is not sound according to the researchers. And Allah Almighty knows best. (T)**

Problem 1325 to 1326: From Ghazipur, Mianpura neighborhood, sent by Ali Bakhsh Sahib, clerk at the Judge's office, Ghazipur, 17th Dhu al-Qi'dah 1322 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: (1) How is performing the 'ihtiyati zuhr' (precautionary Zuhr) prayer after the Friday prayer; is it required or not? (2) How is it for the listeners to recite Durood Sharif when the holy name of Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) is mentioned in the Friday sermon; should they do it or not? Explain and be rewarded.

The Answer: (1) Common people do not need the 'ihtiyati zuhr'. (2) Upon hearing the holy name of the Prophetic Presence (peace and blessings of Allah be upon him) in the sermon, recite Durood in the heart; silence of the tongue is obligatory. And Allah Almighty knows best.

Problem 1327: From Bengal, District Dhaka, Post Office Balabo, Town Nilokhiya, sent by Muhammad Niaz Hussain, 12th Muharram al-Haram 1323 AH. If in a 'qaryah' (village/small town) where Muslims are in large numbers and houses are adjacent to each other without gaps, if there are fifteen or twenty worshippers and five daily prayers are established with Adhan and congregation, if the people there agree and appoint one person as the Imam of Jumu'ah and perform the Friday prayer, will they be absolved from what is mandatory for them (T) or not? And will it be correct according to the school of thought of Imam-e-Azam (may Allah have mercy on him) or not? And how is it to pray 'ihtiyati zuhr' after the Friday prayer, and are those people, because of performing this Jumu'ah, deserving of reward or sin, and if it is a sin, then what kind? Explain in detail with evidence, and may you be rewarded on the Day of Judgment and Accountability. Ameen, O Lord of the Worlds. (Please explain in detail with proofs, may Allah Almighty reward you in the hereafter. O Lord of the Worlds! Accept the prayer. T) A 'misr' (city) is a condition for the validity of Jumu'ah. So what is the correct definition of 'misr' according to the school of Imam-e-Azam (may Allah have mercy on him), and what is the definition of 'qaryah' in which Jumu'ah is

not obligatory and it is not permissible to perform Jumu'ah there, villages and hamlets?

1. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter of Friday, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/261.

फतावा रज़विया जिल्द आठ

मजमा उल-अनहुर में है:

ریض لانهمو بصیغة الت قالوا ان هذا الحد غیر صحیح عند المحققین ۔ واللہ تعالیٰ اعلم	**'तमरीज़' (अनिश्चितता के भाव) का रूप लाया गया है क्योंकि फुक़हा (न्यायविदों) ने फरमाया कि यह परिभाषा शोधकर्ताओं के निकट सही नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)**

मसाला 1325 से 1326: ग़ाज़ीपुर, मोहल्ला मियाँपुरा से, प्रेषक अली बख्श साहब, मुहर्रिर जज कचहरी, ग़ाज़ीपुर, 17 ज़िल-क़ादा 1322 हिजरी। उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि: (1) जुमे की नमाज़ के बाद 'एहतियाती ज़ुहर' पढ़ना कैसा है, होना चाहिए या नहीं? (2) जुमे के खुतबे में जब मोहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का पाक नाम आए, उस वक्त सुनने वालों को दरूद शरीफ पढ़ना कैसा है, होना चाहिए या नहीं? बयान करें, सवाब पाएं।

जवाब: (1) आम लोगों को 'एहतियाती ज़ुहर' की ज़रूरत नहीं है। (2) खुतबे में हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का पाक नाम सुनकर दिल में दरूद पढ़ें, ज़बान से खामोशी फ़र्ज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1327: बंगाल, ज़िला ढाका, डाकखाना बलाबु, कस्बा नीलोखिया से, प्रेषक मोहम्मद नियाज़ हुसैन, 12 मुहर्रमुल हराम 1323 हिजरी। अगर किसी 'क़र्या' (गांव/बस्ती) में जहाँ मुसलमान बड़ी संख्या में हों और घर बिना किसी फासले के आपस में जुड़े हों, अगर वहाँ पन्द्रह या बीस नमाज़ी हों और पंजगाना नमाज़ के लिए अज़ान व जमाअत होती हो, वहाँ के लोग मिलकर किसी एक शख्स को इमाम-ए-जुमा मुक़र्रर करके जुमा की नमाज़ अदा कर लें, तो क्या वे अपने कर्तव्य (जो उन पर लाज़िम है। त) से बरी हो जाएँगे या नहीं? और क्या यह इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाह अलैह) के मज़हब के मुताबिक सही होगा या नहीं? और जुमे की नमाज़ के बाद 'एहतियाती ज़ुहर' पढ़ना कैसा है, और वे लोग इस जुमा के पढ़ने के कारण सवाब के हकदार होंगे या गुनाह के और अगर गुनाह है तो कैसा? दलील के साथ विस्तार से बयान करें, खुदा आपको हश्र और हिसाब के दिन इसका बदला दे। आमीन या रब्बुल आलमीन। (विस्तार से दलीलों के साथ बयान फरमा दीजिए, अल्लाह तआला आखिरत में आपको अज्र अता फरमाए। ऐ रब्बुल आलमीन! दुआ कुबूल फरमा। त) जुमा की सही अदायगी के लिए 'मिस्र' (शहर) शर्त है, तो इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाह अलैह) के मज़हब के

मुताबिक 'मिस्र' की सही परिभाषा क्या है, और उस 'क़र्या' की क्या परिभाषा है जिसमें जुमा वाजिब नहीं और न ही वहां जुमा पढ़ना जायज़ किया है, बस्तियां और देहात?

1. मजमा उल-अनहुर शरह मुल्तक़ल अबहुर, बाबुल जुमा, मतबुआ दार इहयाउत तुरास अल-अरबी, बेरुत, 1/261

पृष्ठ 365/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

مجمع الانہر میں ہے :

و بصیغة التمریض لانھم قالوا ان ھذا الحد غیر صحیح عند المحققین ۔ واللہ تعالٰی اعلم

صیغہ تمریض لایا گیا ہے کیونکہ فقہاء نے فرمایا یہ تعریف محققین کے نزدیک صحیح نہیں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۲۵ تا ۱۳۲۶: از غازی پور محلہ میاں پورہ مرسلہ علی بخش صاحب محرر دفتر ججی غازی پور ۱۷ ذی قعدہ ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ : (۱) بعد نماز جمعہ احتیاطی ظہر پڑھنا کیسا ہے ، چاہئے یا نہیں ؟ (۲) خطبہ جمعہ میں جب نامِ پاک محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا آوے اُس وقت سامعین کو درود شریف پڑھنا کیسا ہے ، چاہئے یا نہیں ؟ بینوا توجروا الجواب: (۱) احتیاطی ظہر کی عام لوگوں کو حاجت نہیں۔ (۲) خطبے میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا نامِ پاک سُن کر دل میں درود پڑھیں ، زبان سے سکوت فرض ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۲۷: از بنگالہ ضلع ڈھاکہ ڈاک خانہ بلا بو قصبہ نیلو کھیا مرسلہ محمد نیاز حسین ۱۲ محرم الحرام ۱۳۲۳ھ اگر قری میں جہاں مسلمان کثرت سے ہوں اور مکانات آپس میں متصل بلا فاصلہ ہیں اگر ہے تو پندرہ یا بیس گزار ور نماز پنجگانہ کے لئے مقرر ہے اذان و جماعت ہوتی ہے وہاں کے لوگ متفق ہو کر ایک شخص کو امامِ جمعہ مقرر کرکے نمازِ جمعہ ادا کرلیں تو علیہ ما وجب لہ (جوان پر لازم ہے ۔ت) سے بری ہوں گے یا نہیں، اور موافقِ مذہبِ امامِ اعظم رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ صحیح ہوگا یا نہیں ، اور بعد نماز جمعہ ظہر احتیاطی پڑھنا کیسا ہے اور وہ لوگ بسبب

اس جمعہ پڑھنے کے مستحق ثواب یا اثم، اور اگر اثم ہے تو کیسا ؟ بینوا بالتفصیل مع الدلیل توجروا یوم الاخر والحساب آمین یا رب العلمین (تفصیلاً دلائل کے ساتھ بیان فرمادتیجئے اللہ تعالیٰ آخرت میں آپ کو اجر عطا فرمائے۔ اے رب العلمین ! دعا قبول فرمات) صحتِ جمعہ کے لئے مصر شرط ہے پس مصر کی تعریف صحیح موافق مذہب امام اعظم رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کہا ہے اور تعریف قری جس میں جمعہ واجب نہیں اور نہ وہاں جمعہ پڑھنا جائز کیا ہے ، قری اور دیہات

1 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب الجمعہ مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۲۶۱

2019

Fatawa Razawiyya Volume 8

Is there a difference or not? If there is a difference, in which case is the Friday prayer (Jumu'ah) permissible and in which case is it impermissible?

The Answer: In the Hanafi school of thought, for the obligation, validity, and permissibility of the Friday prayer, a city (Misr) is a condition. In villages, the Friday prayer is not obligatory, nor is its performance there valid and correct. If performed, it will be a voluntary (nafl) prayer, but because congregational prayer was held contrary to Shariah, the obligation of Dhuhr prayer will not be discharged. Those performing it will be guilty of multiple sins,

because of being occupied with what is not correct, as stated in Al-Durr al-Mukhtar; and for performing voluntary prayers in congregation with public invitation, which entails abandoning the Dhuhr congregation. If they abandon Dhuhr altogether, it is even more heinous and shameful.

This is being occupied with a task that is not correct, as mentioned in Durr al-Mukhtar. Performing voluntary prayers in congregation with public invitation and abandoning the Dhuhr congregation becomes necessary, and if they abandon Dhuhr, then this is an extremely bad and shameful act. (T)

In the Arabic language, 'qariya' (village/town) is also used for a city.

Allah the Almighty says: "And We sent not before you but men to whom We revealed, from among the people of the cities" - i.e., the cities, due to their knowledge and forbearance, unlike the desert dwellers due to their harshness and coarseness. Allah also says: "Upon a great man of the two cities" - i.e., Makkah and Taif. And Allah says: "From your city which has driven you out."

Allah the Almighty's command is: "And We sent not before you but men to whom We revealed, from among the people of the towns," meaning from the cities because city people possess knowledge and forbearance. (In another place) Allah the Almighty says: "Upon a great man from these two towns," meaning Makkah and Taif. (In a third place) Allah the Almighty says: "From your town which drove you out." (T)

And when it is used in contrast to 'Misr' (city), then there is no difference between it and a village. Then I say: and with Allah is the success (Then I say with the guidance

of Allah the Almighty. T). The clear truth is that 'Misr' and 'qariya' are not established Shariah terms like Salah and Zakat.

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/114.
2. Al-Quran 12:109.
3. Al-Quran 43:31.
4. Al-Quran 47:13.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

क्या इनमें कोई अंतर है या नहीं? यदि अंतर है, तो किसमें जुमा जायज़ है और किसमें नाजायज़?

उत्तर (अल-जवाब): हनफ़ी मज़हब में जुमा की फ़र्ज़ियत, जुमा की सेहत (वैधता) और जुमा के जायज़ होने के लिए 'मिस्र' (शहर) शर्त है। देहात (गाँवों) में न तो जुमा फ़र्ज़ है और न ही वहाँ इसकी अदायगी जायज़ और सही है। यदि पढ़ेंगे तो वह एक नफ़्ल नमाज़ होगी, क्योंकि शरीअत के विरुद्ध जमाअत से पढ़ी गई। ज़ुहर की फ़र्ज़ नमाज़ ज़िम्मे से नहीं उतरेगी; इसे पढ़ने वाले अनेक गुनाहों के भागी होंगे।

क्योंकि यह ऐसे कार्य में व्यस्त होना है जो सही नहीं है, जैसा कि दुर्रे मुख्तार में है; और बुलावे के साथ जमाअत से नफ़्ल नमाज़ अदा करना, जिससे ज़ुहर की जमाअत का त्याग अनिवार्य होता है। और यदि वे ज़ुहर को छोड़ देते हैं, तो यह और भी अधिक घृणित और बुरा है।

यह ऐसे काम में व्यस्त होना है जो सही नहीं है, जैसा कि दुर्रे मुख्तार में है। और तदाई (बुलावे) के साथ नवाफ़िल (नफ़्ल नमाज़ों) का जमाअत के साथ अदा करना और जमाअत-ए-ज़ुहर का तर्क(त्याग) लाज़िम आता है, और यदि वे ज़ुहर छोड़ देते हैं तो यह अत्यंत बुरा और घृणित कार्य है। (त)

अरबी भाषा में 'क़रिया' शब्द का प्रयोग शहर के लिए भी किया जाता है।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "और हमने आपसे पहले नहीं भेजा मगर उन पुरुषों को जिनकी ओर हमने वह्य (प्रकाशना) की, शहरों के निवासियों में से" - यानी शहरों से, उनके ज्ञान और धैर्य के कारण, न कि मरुस्थल निवासियों से उनकी कठोरता और रूखेपन के कारण। और अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "इन दो शहरों के किसी बड़े आदमी पर" - यानी मक्का और ताइफ़। और अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "तुम्हारी उस बस्ती (शहर) से जिसने तुम्हें निकाला है।"

अल्लाह तआला का फ़रमान है "और हमने आपसे पहले नहीं भेजा मगर उन मर्दों को जिन पर हमने वह्य (प्रकाशना) की अहल-ए-क़ुरा में से" यानी शहरों से क्योंकि शहरी लोग ज्ञानवान और सहनशील होते हैं। (दूसरी जगह) अल्लाह तआला का इर्शाद है "इन दो बस्तियों (क़रियों) में से बड़े आदमी पर" यानी मक्का और ताइफ़। (तीसरी जगह) अल्लाह तआला ने फ़रमाया "तुम्हारी उस बस्ती (क़रिया) से जिसने तुम्हें निकाला" (त)

और जब इसे 'मिस्र' (शहर) के विलोम शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो इसमें और गाँव में कोई अंतर नहीं होता। फिर मैं कहता हूँ: 'व-बि-अत-तौफ़ीक़' (फिर मैं अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से

कहता हूँ। त)। स्पष्ट सत्य यह है कि 'मिस्र' और 'क़रिया' कोई शरई शब्द (मनकूलाते शरईया) नहीं हैं जैसे नमाज़ और ज़कात।

1. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-ईदैन, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/114
2. अल-क़ुरआन 12/109
3. अल-क़ुरआन 43/31
4. अल-क़ुरआन 47/13

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

میں فرق ہے یا نہیں، اگر فرق ہے تو کس میں جمعہ جائز اور کس میں ناجائز؟ الجواب: مذہب حنفی میں فرضیت جمعہ و صحت جمعہ و جواز جمعہ سب کے لئے مصر شرط ہے دیہات میں نہ جمعہ فرض نہ وہاں اس کی ادا جائز و صحیح، اگر پڑھیں گے ایک نفل نماز ہو گی کہ بر خلاف شرع جماعت سے پڑھی ظہر کا فرض سر سے نہ اترے گا پڑھنے والے متعدد گناہ کے مرتکب ہوں گے،

لِلَّاشْتِغَالِ بِمَا لَا یَصِحُّ کَمَا فِی الدُّرِّ الْمُخْتَارِ وَ لِلتَّنَفُّلِ بِجَمَاعَۃٍ بِالتَّدَاعِی وَ لِتَرْکِ جَمَاعَۃِ الظُّھْرِ وَ اِنْ تَرَکُوْا الظُّھْرَ فَاشْنَعُ وَ اخْنَعُ۔ یہ ایسے کام میں مشغول ہونا ہے جو صحیح نہیں ، جیسا کہ در مختار میں ہے۔ اور تداعی کے ساتھ نوافل کا جماعت کے ساتھ ادا کرنا اور جماعت ظہر کا ترک لازم آتا ہے اور اگر وہ ظہر ترک کر دیتے ہیں تو یہ نہایت ہی برا و فتیح عمل ہے۔ (ت)

قریہ زبان عرب میں شہر کو بھی کہتے ہیں،

قَالَ تَعَالٰی وَ مَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ اِلَّا رِجَالًا نُّوْحِیْ اِلَیْھِمْ مِّنْ اَھْلِ الْقُرٰی 2 - ای الامصار لعلمھم وحلمھم دون البوادی لغلظھم وجفائھم وقال تعالٰی علی عَلٰی رَجُلٍ مِّنَ الْقَرْیَتَیْنِ عَظِیْمٍ 3 - ای مکۃ و الطائف وقال تعالٰی مِنْ قَرْیَتِكَ الَّتِیْ اَخْرَجَتْكَ 4 - اللہ تعالٰی کا فرمان ہے "اور ہم نے نہیں بھیجا آپ سے پہلے مگر مردوں کو جن پر ہم نے وحی کی اہل قری میں سے" یعنی شہروں سے کیونکہ شہری لوگ صاحب علم و حلم ہوتے ہیں۔ (دوسرے مقام پر) اللہ تعالٰی کا ارشاد ہے "ان دو قریوں میں سے بڑے آدمی پر" یعنی مکہ و طائف۔ (تیسرے مقام پر) اللہ تعالٰی نے فرمایا "تیرے اس قریہ سے جس سے تجھے نکالا" (ت)

اور جب اسے مصر کے مقابل بولیں تو اس میں اور دہ میں کچھ فرق نہیں ثم اقول : وبہ التوفیق (پھر میں اللہ تعالیٰ کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) حق ناصع یہ ہے کہ مصر و قریہ کوئی منقولات شرعیہ مثل صلوۃ وزکوۃ نہیں

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۴ 2 القرآن ۱۰۹/۱۲ 3 القرآن ۳۱/۴۳ 4 القرآن ۱۳/۴۷

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Something] which the pure Shari'ah has separated from the commonly known meaning and assigned to a new meaning in its own specific terminology; otherwise, a transmission from the Legislator (peace and blessings of Allah be upon him) would have been necessary in this regard, because the terminology of the Legislator cannot be known without the explanation of the Legislator. There is no doubt that here, no transmission whatsoever from the Legislator (peace and blessings of Allah be upon him) is established or reported. Therefore, in the custom of Shari'ah, they remain upon those well-known and common meanings. Diverting them from these to any other meaning would be the personal terminology of the one doing so, which cannot be the basis or pivot of rulings or the intent and purpose of Shari'ah. The Muhaqqiq 'ala al-Itlaq (Mercy of Allah be upon him) states in 'Fath al-Qadir':

Arabic	**Urdu**
And know that among the commentators are those who express this as its Shari'i interpretation, and it is necessary that the custom of the people of Shari'ah be intended by it, which is the meaning of the terminology by which we expressed it; for the Legislator (peace and blessings of Allah be upon him) did not transfer it, as it is not established, rather the Legislator spoke in accordance with the language.[1]	It should be clear that some commentators have called this interpretation Shari'i, and it is mandatory to mean the custom of the people of Shari'ah by it. This is the very meaning of the terminology with which we have expressed it. It does not mean that the Legislator (peace and blessings of Allah be upon him) transferred it (the meaning), because this is not established. The Legislator spoke in it according to the language. (T)

And it is evident that in the common meaning, a city, metropolis, or town refers to that settlement in which there are numerous streets, neighborhoods, and multiple permanent markets. It is a district, and villages related to it are counted. Usually, a ruler is appointed in it to decide cases, so that by his power, he can secure justice for the oppressed from the oppressor. Settlements that are not like this are called villages, hamlets, or rural sites. Legally (Shari'i) as well, these very common meanings are intended and are the basis for the rulings of Friday prayers and others. Therefore, our greatest and foremost Imam (may Allah be pleased with him) stated this very definition of a city. 'Allama Ibrahim Halabi states in 'Ghunyah Sharh Munyah':

Arabic

In 'Tuhfat al-Fuqaha' from Abu Hanifa (may Allah be pleased with him): It is a large town in which there are streets and markets and it has rural districts (villages), and in it there is a governor who is able to provide justice for the oppressed from the oppressor through his prestige and his knowledge, or the knowledge of others to whom people refer in matters that arise.

Urdu

In 'Tuhfa', it is narrated from Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him): A city is that which is large, having roads, markets, and inns. There should be a governor who, by his grandeur, his own knowledge, or the knowledge of someone else, can provide justice to the oppressed from the oppressor. In accidents [emergencies], people [turn to him].

---

[1] Fath al-Qadir, Chapter of Friday, published by Nooria Razawiyya Sukkur 12/

जिसे शरीयत-ए-मुतह्हरा ने प्रचलित अर्थ से अलग करके अपनी विशेष स्थिति में किसी नए अर्थ के लिए नियत किया हो, वरना शरीअ (नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इसमें स्थानांतरण (नक़्ल) अवश्य होता, क्योंकि शरीअ की स्थिति शरीअ के बयान के बिना ज्ञात नहीं हो सकती। और इसमें कोई संदेह नहीं कि यहाँ शरीअ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से मूलतः कोई स्थानांतरण सिद्ध या वर्णित नहीं है, तो शरीयत की प्रथा में वे उन्हीं प्रसिद्ध और प्रचलित अर्थों पर शेष हैं। उन्हें उन अर्थों से हटाकर किसी दूसरे अर्थ के लिए निर्धारित करना निर्धारित करने वाले की अपनी विशेष शब्दावली होगी, जो आदेशों का आधार और शरीयत का उद्देश्य एवं लक्ष्य नहीं हो सकती। मोहक्क़िक अलल इतलाक़ (अल्लाह उन पर रहमत करे) 'फ़तहुल क़दीर' में फरमाते हैं:

अरबी

और जान लें कि टिप्पणीकारों में से कुछ ऐसे हैं जो इसे इसके शरी'ई अर्थ के रूप में व्यक्त करते हैं, और यह आवश्यक है कि इससे शरीयत वालों की प्रथा का इरादा किया जाए, और यही उस शब्दावली का अर्थ है जिसे हमने व्यक्त किया है; क्योंकि शरीअ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसे स्थानांतरित नहीं किया है, क्योंकि यह प्रमाणित नहीं है, बल्कि शरीअ ने इसमें भाषा के अनुसार बात की है।[1]

उर्दू

स्पष्ट रहे कि कुछ टिप्पणीकारों ने इस व्याख्या को शरी'ई कहा है और इससे शरीयत वालों की प्रथा का अर्थ लेना अनिवार्य है और इस शब्दावली का यही अर्थ है जिसके साथ हमने इसे व्यक्त किया। इसका यह अर्थ नहीं कि शरीअ (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसे स्थानांतरित किया है क्योंकि यह प्रमाणित नहीं है, शरीअ ने इसमें भाषा के अनुसार बात की है। (त)

और यह स्पष्ट है कि प्रचलित अर्थों में शहर, मिस्र और मदीना उसी बस्ती को कहते हैं जिसमें अनेक गलियां, मोहल्ले और अनेक स्थायी बाज़ार होते हैं, वह एक परगना (ज़िला) होता है जिसके साथ जुड़े हुए गाँवों को गिना जाता है, आमतौर पर उसमें एक शासक नियुक्त होता है जो मुकदमों का फैसला करे, ताकि वह अपनी शक्ति के कारण मज़लूम को ज़ालिम से इंसाफ दिला सके। और जो बस्तियाँ ऐसी नहीं हैं वे क़रिया, देह और मौज़ा (गाँव) कहलाती हैं, शरी'ई तौर पर भी यही प्रचलित अर्थ जुमा और अन्य आदेशों का आधार हैं, इसलिए हमारे इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने शहर की यही परिभाषा प्रदान की है, अल्लामा इब्राहिम हनफ़ी 'ग़ुन्या शरह मुन्या' में फरमाते हैं:

अरबी	उर्दू
'तुहफ़तुल फ़ुक़हा' में इमाम अबू हनीफा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है कि: वह एक बड़ा शहर है जिसमें सड़कें और बाज़ार हैं और उसके अधीन देहाती क्षेत्र हैं, और उसमें एक ऐसा शासक है जो अपने दबदबे और अपने ज्ञान या किसी और के ज्ञान से मज़लूम को ज़ालिम से इंसाफ दिलाने में सक्षम हो, जिस पर लोग आने वाली घटनाओं में निर्भर करें।	'तुहफ़ा' में इमाम अबू हनीफा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है कि शहर वह होगा जो बड़ा हो, उसमें सड़कें, बाज़ार, सराए हों, वहाँ कोई ऐसा हाकिम (शासक) हो जो अपने दबदबे, अपने ज्ञान या दूसरों के ज्ञान के कारण मज़लूम को ज़ालिम से इंसाफ दिला सके, घटनाओं में लोग...

[1] फ़तहुल क़दीर, बाबुल जुमा, मुतबुआ नूरिया रज़विया सक्कर 12/

جس کو شرع مطہر نے معنی متعارف سے جدا فرما کر اپنی وضع خاص میں کسی نئے معنی کے لئے مقرر کیا ہو ورنہ شارع صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے اس میں نقل ضرور تھی کہ وضع شارع بے بیان شارع معلوم نہیں ہوسکتی اور شک نہیں کہ یہاں شارع صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے اصلاً کوئی نقل ثابت و منقول نہیں تو ضرور عرف شرع میں وہ اُنھیں معانی معروفہ متعارفہ پر باقی ہیں اور ان سے پھیر کر کسی دوسرے معنی کے لئے قرار دینا دہ قرار دہندہ کی اپنی اصطلاح خاص ہوگی جو مناط و مدار احکام و مقصود و مراد شرع نہیں ہوسکتی۔ محقق علی الاطلاق رحمہ اللہ تعالیٰ فتح القدیر میں فرماتے ہیں :

عربی	اردو
واعلم ان من الشارحین من یعبر عن هذا بتفسیره شرعاً ویجب ان یراد عرف اهل الشرع وهو معنی الاصطلاح الذي عبرنابه لان الشارع صلی اللہ تعالی علیه وسلم نقله فانه لم یثبت وانما تکلم به الشارع علی وفق اللغة.[1]	واضح رہے کہ بعض شارحین نے اس تفسیر کو شرعی کہا ہے اور اس سے اہل شرع کا عرف مراد لینا واجب ہے اور اس اصطلاح کا یہی معنی ہے جس کے ساتھ ہم نے اسے تعبیر کیا اس کا یہ معنی نہیں کہ شارع صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے نقل کیا ہے کیونکہ یہ ثابت نہیں شارع نے اس میں لغت کے مطابق تکلم فرمایا ہے۔ (ت)

اور ظاہر کہ معنی متعارف میں شہر و مصر و مدینہ اسی آبادی کو کہتے ہیں جس میں متعدد کوچے، محلے متعدد و دائمی بازار ہوتے ہیں، وہ پرگنہ ہوتا ہے اُس کے متعلق دیہات گنے جاتے ہیں، عادۃً اُس میں کوئی حاکم مقرر ہوتا ہے کہ فیصلہ مقدمات کرے، اپنی شوکت کے سبب مظلوم کا انصاف ظالم سے لے سکے۔ اور جو بستیاں ایسی نہیں وہ قریہ و دہ و موضع و گاؤں کہلاتی ہیں،

شرعاً بھی یہی معنی متعارفہ مراد و مدار احکام جمعہ و غیرہا ہیں، ولہذا ہمارے امام اعظم و ہمام اقدم رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے شہر کی یہی تعریف ارشاد فرمائی، علامہ ابراہیم حلبی غنیہ شرح منیہ میں فرماتے ہیں :

عربی	اردو
في تحفة الفقهاء عن ابي حنيفه رضي الله تعالى عنه انه بلدة كبيرة فيها سكك واسواق ولها رساتيق وفيها وال يقدر على انصاف المظلوم من الظالم بحشمته وعلمه او علم غيره يرجع الناس اليه فيما تقع	تحفہ میں امام ابو حنیفہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے شہر وہ ہوگا جو بڑا ہو اس میں سڑکیں، بازار، سرائے ہوں وہاں کوئی ایسا والی ہو جو اپنے دبدبہ، اپنے علم یا غیر کے علم کی وجہ سے ظالم سے مظلوم کو انصاف دلا سکیں، حوادثات میں لوگ

---

[1] فتح القدیر باب الجمعۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱۲/

Fatawa Razawiyya Volume 8

“From the occurrences, and this is the most correct view.” [1] | Refer to this, and this is the most correct. (T)

Yes, it is certain that Jumu'ah (Friday prayer) is an Islamic command, for which an Islamic city is necessary. Therefore, there is fundamentally no Jumu'ah in 'Dar al-Harb' (Land of War), even if there are large and great metropolises with populations of millions. This is not because they are not cities legally (Shari'ah); it is absolutely wrong to say that in the terminology of Shari'ah they are villages. No proof can be given until the Day of Judgment that the pure Shari'ah excluded the large cities of the disbelievers from being 'misr' (city) and 'Madinah' and called them villages on the basis that 'hudud' (legal punishments) are not established and Shari'ah laws are not implemented there. When the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) was commissioned, the dominance and prevalence of disbelief and disbelievers in Makkah, and indeed the whole world, was clear and evident. Most of the noble Messengers, the bearers of new laws (peace be upon them), were born in such cities, lived there, and were sent to them. Now, God forbid, will it be said that legally all the Messengers (blessings and peace of Allah be upon them all) were villagers? Whereas Allah Almighty says:

“And We sent not before you but men from the people of the towns to whom We sent revelation.” [2] (Meaning: We sent no messengers before you but men who were city-dwellers.) Among them there was no woman, nor any rustic. Even when the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) himself needed to migrate from Makkah due to the dominance of the disbelievers, at that time too, the Great Quran called Makkah a city: “And how many a city was stronger than your city which has driven you out? We destroyed them, and there was no helper for them.” [3] Many cities were more powerful than your city which expelled you; We destroyed them so they had no helper. Rather, the reason is simply that the cities of 'Dar al-Harb' are cities of disbelief, and for the establishment of Jumu'ah, an Islamic city is required. Looking at the words of the ancients when Islam was widespread and Islamic cities were bound by Islamic laws, it was stated “there should be an amir or a judge who can implement and execute laws.” (T) The intention behind this was describing an Islamic city as it was at that time. It did not mean that the implementation of laws and the establishment of 'hudud' are essential to the definition of a city, such that if they are absent, a city would no longer be a city legally and would become a village. During the unrest (fitna) caused by the rebels in Egypt, especially during the Rashidun

Caliphate, laws were not implemented for a few days; did Madinah Tayyibah become a village at that time and the Friday prayer there became haram and void? Certainly not. These very scholars explicitly state that Jumu'ah will be established during days of fitna and the city will not cease to be a city. Therefore, it is in Radd al-Muhtar:

[1] Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Jumu'ah Prayer, printed by Sohail Academy Lahore, p. 550. [2] Al-Quran 12/109 [3] Al-Quran 47/13

फतावा रज़विया खंड 8

“घटनाओं में से, और यही सबसे सही है।” [1] | इसकी ओर रुजू करें और यही असह (सबसे सही) है। (त)

हाँ, इतना ज़रूर है कि जुमा एक इस्लामी हुक्म है, इसके लिए इस्लामी शहर का होना ज़रूरी है। इसलिए 'दारुल हर्ब' (युद्ध का क्षेत्र) में मूल रूप से जुमा नहीं है, चाहे वे कितने ही बड़े महानगर क्यों न हों जिनमें दस-दस लाख लोगों की आबादी हो। यह इस वजह से नहीं है कि वे शरई (कानूनी) तौर पर शहर नहीं हैं; शरई शब्दावली में उन्हें गाँव कहना सरासर गलत है। क़यामत तक कोई सबूत नहीं दिया जा सकता कि शरा-ए-मुतह्हरा (पवित्र कानून) ने काफ़िरों के बड़े शहरों को मिस्र (शहर) और मदीना से बाहर कर दिया हो और उन्हें गाँव बताया हो, इस आधार पर कि वहाँ हुदूद (कानूनी सज़ाएँ) और शरई अहकाम (नियम) लागू नहीं होते। जब रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की बिअत हुई, तो मक्का मुअज़्ज़मा बल्कि पूरी दुनिया में कुफ़्र और काफ़िरों का वर्चस्व और प्रभुत्व ज़ाहिर और स्पष्ट था। अधिकांश आदरणीय पैग़म्बर, नई शरीअतों के स्वामी (उन पर सलाम हो), ऐसे ही शहरों में पैदा हुए, वहीं के निवासी थे और उन्हीं की ओर भेजे गए। अब क्या माज़अल्लाह (ईश्वर न करे) यह कहा जाएगा कि शरई तौर पर सभी पैग़म्बर (उन पर अल्लाह का आशीर्वाद और सलाम हो) ग्रामीण थे? जबकि अल्लाह अज़्ज़वजल फ़रमाता है:

“और हमने आपसे पहले जितने भी रसूल भेजे, वे सब बस्तियों के रहने वाले पुरुष ही थे जिनकी ओर हम वह्य भेजते थे।” [2] (अर्थ: हमने आपसे पहले जितने रसूल भेजे वे सब पुरुष और शहरी ही थे।) उनमें कोई महिला नहीं थी और न ही कोई गँवार (देहाती)। स्वयं हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को जब काफ़िरों के वर्चस्व के कारण मक्का मुअज़्ज़मा से हिजरत (पलायन) करने की ज़रूरत हुई, उस समय भी क़ुरआन अज़ीम ने मक्का मुकर्रमा को शहर ही फ़रमाया: “और कितने ही शहर आपके उस शहर से ज़्यादा शक्तिशाली थे जिसने आपको निकाल दिया, हमने उन्हें तबाह कर दिया और उनका कोई मददगार न था।” [3] बहुत से शहर आपके उस शहर से ज़्यादा ताक़तवर थे जिसने आपको निकाला; हमने उन्हें हलाक (नष्ट) कर दिया तो उनका कोई मददगार नहीं। बल्कि वजह सिर्फ यह है कि दारुल हर्ब के शहर कुफ़्र के शहर हैं और जुमा की नमाज़ के लिए इस्लामी शहर की ज़रूरत है। पूर्वजों की बातों पर नज़र डालते हुए जब इस्लाम का दौर था और इस्लामी शहर इस्लामी आदेशों के पाबंद थे, तो कहा गया: “वहाँ कोई अमीर या क़ाज़ी हो जो आदेशों को लागू और जारी कर सके।” (त) इसका मक़सद यही था कि उस समय इस्लामी शहर ऐसे ही होते थे। इसका यह मतलब

नहीं था कि आदेशों का क्रियान्वयन और हुदूद का क़ायम होना शहर की हक़ीक़त में शामिल है, कि अगर ये न हों तो शहर शरई तौर पर शहर नहीं रहेगा और गाँव बन जाएगा। क्या मिस्र में विद्रोहियों के फ़ितने के दौरान, विशेष रूप से ख़िलाफ़त-ए-राषिदा के समय, कुछ दिनों तक आदेश लागू नहीं हुए थे, तो क्या उस समय मदीना तैयबा गाँव बन गया था और उसमें जुमा पढ़ना हराम और बातिल (अमान्य) हो गया था? हरगिज़ ऐसा नहीं। यही उलेमा स्पष्ट करते हैं कि फ़ितने के दिनों में जुमा क़ायम किया जाएगा और शहर अपनी शहरीयियत से बाहर नहीं होगा। इसीलिए रद-उल-मुहतार में है:

[1] ग़ुन्यतुल मुस्तमली शरह मुन्यतुल मुसल्ली, जुमा की नमाज़ का अध्याय, सुहैल एकेडमी लाहौर द्वारा मुद्रित, पृ. 550। [2] अल-क़ुरआन 12/109 [3] अल-क़ुरआन 47/13

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

من الحوادث وھذا ھو الاصح [1] | اس کی طرف رجوع کریں اور یہی اصح ہے۔ (ت)

ہاں اتنا ضرور ہے کہ جمعہ اسلامی حکم ہے اس کے لئے اسلامی شہر کا ہونا ضروری ہے ولہذا دار الحرب میں اصلاً جمعہ نہیں اگر چہ کتنے ہی بڑے امصار عظام کبار ہوں جس میں دس دس لاکھ آدمیوں کی آبادی ہو، نہ اس وجہ سے کہ وہ شرعاً شہر نہیں، اصطلاح شرع میں وہ گاؤں ہیں، حاشا یہ محض غلط ہے قیامت تک کوئی ثبوت نہیں دے سکتا کہ شرع مطہر نے کفار کے امصار کبار کو مصر و مدینہ سے خارج اور دہ گاؤں بتایا ہو اس بنا پر کہ وہاں اقامت حدود و تنفیذ احکام شرع نہیں، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی جب بیثت ہوئی مکہ معظمہ بلکہ تمام دنیا میں جیسا کہ کفر و کافرین کا تسلط و غلبہ تھا ظاہر و عیاں ہے اور اکثر مرسلین کرام اصحاب شرائع جدیدہ علیہم الصلوٰۃ والسلام ایسے ہی شہروں میں پیدا ہوتے ہیں اور وہیں کے ساکن ہو کر انھیں پر مبعوث ہوتے اب کیا معاذ اللہ یہ کہا جائے گا کہ شرعاً ہی مرسلین صلوات اللہ تعالٰی وسلامہ علیہم اجمعین دیہاتی تھے حالانکہ اللہ عزوجل فرماتا ہے:

وَمَا أَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ إِلَّا رِجَالًا نُوحِي إِلَيْهِمْ مِنْ أَهْلِ الْقُرَىٰ[2]۔ (ترجمہ: ہم نے تم سے پہلے جتنے رسول بھیجے وہ سب مرد اور شہری ہی تھے۔) ان میں کوئی عورت نہ تھی نہ کوئی گنوار بھی خود حضور صلی اللہ علیہ وسلم کو جس وقت غلبہ کفار کے سبب مکہ معظمہ سے ہجرت کی ضرورت ہوئی اس وقت بھی قرآن عظیم نے مکہ مکرمہ کو شہر ہی فرمایا وَكَأَيِّنْ مِنْ قَرْيَةٍ هِيَ أَشَدُّ قُوَّةً مِنْ قَرْيَتِكَ الَّتِي أَخْرَجَتْكَ أَهْلَكْنَاهُمْ فَلَا نَاصِرَ لَهُمْ[3]۔ بہتیرے شہر کو تمہارے اس شہر سے جس نے تم کو نکالا زیادہ قوت والے تھے ہم نے ہلاک کر دئے تو ان کا کوئی مددگار نہیں، بلکہ وجہ صرف یہ ہے کہ دار الحرب کے شہر کفر کے شہر ہیں اور اقامت جمعہ کو اسلامیہ شہر درکار، اسی طرف

نظر کرم فرما کر کلام قدماء میں جبکہ اسلام کا دور دورہ تھا اور اسلامی شہر اسلامی احکام کے پابند تھے له امیر وقاض ینفذ الاحکام ویقیم الحدود (وہاں کوئی امیر یا قاضی ہو جو احکام نافذ اور جاری کر سکے۔ت) واقع ہوا اس سے مقصود وہی تھا کہ اسلامی شہر کہ اُس وقت اسلامی شہر ایسے ہی ہوتے تھے، یہ معنی نہ تھے کہ تنفیذ احکام و اقامت حدود سنخ حقیقت شہر میں داخل ہے، یہ نہ ہو شہر شرعاً شہر ہی نہ رہے گا گاؤں ہو جائے گا حالانکہ فتنہ بلوائیان مصر میں خاص زمانہ خلافت راشدہ میں چند روز تنفیذ احکام نہ ہوئی کیا اُس وقت مدینہ طیبہ گاؤں ہو گیا تھا اور اس میں جمعہ پڑھنا حرام باطل ہوا تھا؟ حاشاہر گز ایسا نہیں، خود یہی علماء تصریح فرماتے ہیں کہ ایام فتنہ میں اقامت جمعہ ہوگی اور شہر شہریت سے خارج نہ ہوگا، و لہذا ردالمحتار میں ہے :

1 غنیہ لمستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۰ 2 القرآن ۱۲ / ۱۰۹ 3 القرآن ۴۷ / ۱۳

Fatawa Ridawiyyah, Volume 8

[Arabic]: If the ruler dies or cannot attend due to civil strife (fitna), and there is no one present who has the right to lead the Friday prayer, then out of necessity, the general public can appoint an orator (khatib), as will be mentioned shortly. This remains true even if there is no emir or judge present at all. This also clarifies the ignorance of those who say that Friday prayer is not valid during times of civil strife, even though it is valid in cities occupied by non-believers, as we will soon state. So, reflect on this. (1)

[Urdu]: If the ruler dies or cannot attend due to civil strife and there is no such person who is eligible for the Imamate of Friday prayer, then out of necessity, an orator (khatib) can be appointed, as is about to be mentioned. Along with this, there may be no judge or emir at all. Through this, the ignorance of that person also became clear who says that Friday prayer is not correct during the days of civil strife, whereas Friday is valid in those cities which are under the dominion of non-believers, as we will soon explain. So, reflect. (T)

In this definition, the words "yanfudhu wa yuqimu" (executes and establishes - T) suggested actualization, which misled some elders. This was removed by Imam Azam's (may Allah be pleased with him) statement "yaqdiru 'alal insaf" (he is capable of justice - T), as explained in 'Al-Ghaniyyah', 'Radd al-Muhtar', and other books (T). If one truly reflects, the Imam's statement regarding the restriction of 'Islam' (T - based on his own knowledge or that of others) was also according to the state of affairs at that time. At that time and for hundreds of years thereafter, there was no precedent that a city be 'Dar al-Islam' and the ruler be a non-believer. Therefore, considering the existing situation, there was a correlation between the Islamicity of the city and the Islamicity of the ruler. It would not have crossed the minds of those servants of God even in their dreams, what is before our eyes today: that a city is 'Dar al-Islam' yet ruled by non-believers. In reality, only this much is required: that it be an Islamic city, even if the ruler is a non-believer. Hence, in 'Jami' al-Rumuz', under the text's condition for its performance being "the city and the Sultan" (T), it is stated:

[Arabic]: The absolute nature (of the statement) suggests that Islam is not a condition. (2)

[Urdu]: The absolute nature shows that Islam is not a condition. (T)

It is in 'Mabsut', 'Mi'raj al-Dirayah', 'Jami' al-Fusulayn', 'Hindiyyah', 'Radd al-Muhtar', etc.:

[Arabic]: So, if the rulers are non-believers, it is permissible for Muslims to establish the Friday prayer.

[Urdu]: Even if the city ruler is a non-believer, for Muslims, the establishment of Friday [prayer]...

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayer, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/590.
2. Jami' al-Rumuz, Section on Friday Prayer, printed by Maktabah Islamiyyah, Gunbad Qamus, Iran, 1/263.

फ़तावा रिज़विया, खंड 8

अरबी: यदि शासक की मृत्यु हो जाए या वह फ़ित्ना (विद्रोह) के कारण उपस्थित न हो सके और वहां कोई ऐसा व्यक्ति न हो जो जुमे की इमामत का हक़दार हो, तो आवश्यकतावश आम लोग अपना खतीब नियुक्त कर सकते हैं, जैसा कि आगे बताया जाएगा। साथ ही, वहाँ भले ही कोई अमीर या काज़ी मौजूद न हो। इससे उन लोगों की अज्ञानता भी स्पष्ट हो गई जो कहते हैं कि फ़ित्ने के दिनों में जुमा सही नहीं है, जबकि जुमा उन शहरों में भी सही है जिन पर काफिरों का शासन है, जैसा कि हम शीघ्र ही वर्णन करेंगे। अतः विचार करें। (1)

[उर्दू]: यदि शासक की मृत्यु हो जाए या फ़ित्ने के कारण न आ सके और वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति भी न हो जो जुमे की इमामत का हक़दार हो तो फिर ज़रूरत की वजह से खतीब मुक़र्रर कर सकते हैं जैसा कि अनक़रीब आ रहा है, इसके साथ-साथ कि वहाँ कभी काज़ी या अमीर न हो, इससे उस शख़्स की जहालत भी वाज़ेह हो गई जो कहता है कि फ़ित्ने के दिनों में जुमा सही नहीं हालाँकि जुमा उन शहरों में दुरुस्त है जिन पर कुफ्फ़ार की विलायत हो जैसा कि हम अनक़रीब बयान करेंगे पस गौर कीजिये। (त)

इस परिभाषा में शब्द 'यंफुधु व युक़ीमु' (लागू करे और स्थापित करे - त) से कुछ प्रमुख लोगों को यह भ्रम हुआ कि यह वास्तविक शासन की बात है। इसे इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के कथन 'यक़दिरु अलल इन्साफ़' (वह न्याय करने में सक्षम हो - त) ने दूर कर दिया, जैसा कि 'अल-ग़निया' और 'रद-अल-मुह्तार' आदि पुस्तकों में स्पष्ट किया गया है (त)। और हक़ीक़तन गौर कीजिये तो इमाम का इर्शाद इल्म (अपने या गैर के इल्म की बिना पर - त) कि मुफीद तक़यीद इस्लाम वाली है यह भी उस ज़माने की हालत के मुताबिक़ था। उस वक़्त और उसके बाद सैकड़ों बरसों तक इसकी नज़ीर क़ायम न हुई थी कि शहर दारुल इस्लाम हो और हाकिम काफिर, लिहाज़ा नज़र बहालत-ए-मौजूदा इस्लामियत-ए-शहर व इस्लाम-ए-शहर्यार में तलाज़ुम था। उन बंदगान-ए-खुदा के ख़्वाब में भी यह ख्याल न गुज़रा होगा जो आज आँखों के सामने है: कि शहर दारुल इस्लाम और उस पर कुफ़्फ़ार हुक्काम, वरना हक़ीक़तन सिर्फ उसी क़दर दरकार है कि इस्लामी शहर हो अगरचे वाली काफिर ही हो, लिहाज़ा जामे अर-रुमुज़ में ज़ेर-ए-क़ौल मतन शर्त-ए-अदाएहा अल-मिस्र वल सुल्तान (जुमे की अदा के लिये शहर और सुल्तान का होना शर्त है - त) फरमाया:

[उर्दू]: इतलाक बताता है कि इस्लाम शर्त नहीं। (त)

मबसूत व मेराज अद-दिरयाह व जामे अल-फसूलैन व हन्दिया व रद-अल-मुह्तार वगैरह में है:

अरबी: अतः यदि शासक काफिर हों, तो मुसलमानों के लिए जुमा कायम करना जायज़ है।

[उर्दू]: अगरचे वाली-ए-शहर काफिर हो मुसलमानों के लिये जुमे का...

---

1. रद-अल-मुह्तार, जुमा का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/590
2. जामे अर-रुमुज़, जुमा की नमाज़ का अध्याय, मकतबा इस्लामिया, गुंबद क़ामूस, ईरान, 1/263

فتاوی رضویه جلد ہشتم

لومات الوالی او لم یحضر الفتنة ولم یوجد احد ممن له حق اقامة الجمعة نصب العامة لهم خطیبا للضرورة کما سیأتی مع انه لا امیر والا قاض ثم اصلا، وبهذا ظهر جهل من یقول لاتصح الجمعة فی ایام الفتنة مع انها تصح فی البلاد التی استولی علیها الکفار کما سنذکره فتامل۔ 1

اگر والی فوت ہوگیا یا فتنہ کی وجہ سے نہیں آسکتا اور وہاں کوئی ایسا شخص بھی نہ ہو جو جمعہ کی امامت کا حقدار ہے تو پھر ضرورت کی وجہ سے خطیب مقرر کرسکتے ہیں جیسا کہ عنقریب آرہا ہے ، اس کے ساتھ ساتھ کہ وہاں کبھی قاضی یا امیر نہ ہو ، اس سے اس شخص کی جہالت بھی واضح ہوگئی جو کہتا ہے کہ فتنہ کے دنوں میں جمعہ صحیح نہیں حالانکہ جمعہ ان شہروں میں درست ہے جن پر کفار کی ولایت ہو جیسا کہ ہم عنقریب بیان کریں گے پس غور کیجئے۔ (ت)

اس تعریف میں الفاظ ینفذ ویقیم (نافذ کرے اور قائم کرے۔ ت) موہم فعلیت تھے جس سے بعض کبراء کو دھوکا ہو جسے امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کے ارشاد یقدر علی الانصاف (وہ انصاف پر قادر ہو۔ت) نے زائل کردیا جیسا بینہ فی الغنیة وردالمحتار وغیر هما من الاسفار (جیسے کہ یہ بات غنیہ اور ردالمحتار وغیرہ جیسی کتب میں ہے۔ ت) اور حقیقتہ غور کیجئے تو ارشاد امام میں علم او علم وغیرہ (اپنے یا غیر کے علم کی بناء پر ۔ ت) کہ مفید تقیید اسلام والی ہے یہ بھی اُس زمانے کی حالت کے مطابق تھا اس وقت میں اور اس کے بعد صدہا سال تک اس کی نظیر قائم نہ ہوئی تھی کہ شہر دارالاسلام ہو اور حاکم کافر ولہذا نظر بحالت موجودہ اسلامیت شہر واسلام شہریار میں تلازم تھا ان بندگان خدا کے خواب میں بھی یہ خیال نہ گزرتا ہوگا جو آج آنکھوں کے سامنے ہے کہ شہر دارالاسلام اور اس پر کفار حکام ورنہ حقیقتہ صرف اُسی قدر درکار ہے کہ

اسلامی شہر ہو اگر چہ والی کافر ہی ہو، ولہذا جامع الرموز میں زیر قول متن شرط الادئھا المصر والسلطان (ادائے جمعہ کے لئے شہر اور سلطان کا ہونا شرط ہے۔ ت) فرمایا:

الاطلاق مشعر بان الاسلام لیس بشرط 2

اطلاق بتاتا ہے کہ اسلام شرط نہیں۔ (ت)

مبسوط و معراج الدرایہ وجامع الفصولین وہندیہ وردالمحتار وغیرہما میں ہے:

فلو الولاۃ کفارایجوز للمسلمین اقامۃ الجمعۃ۔

اگرچہ والی شہر کافر ہو مسلمانوں کے لئے جمعہ کا

1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۹۰ 2 جامع الرموز فصل فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱ / ۲۶۳

Fatawa Razawiya Volume 8

[Box Start] Al-Jumu'ah (Friday Prayer) - 1 Establishing it is permissible. (T) [Box End]

Thus, it has become as clear as the sun that it is only required to be an Islamic city; the enforcement of laws or the establishment of limits (hudud) or any other condition related to Islam is not required. By the grace of Allah Almighty, we have proved with overwhelming arguments in our fatwas that the whole of India, from the border of Kabul to the end of Bengal, is Dar-ul-Islam. Therefore, all the cities and towns here (those which are called cities and they are certainly those which have multiple neighborhoods, multiple and permanent markets, they are parganas, they have villages related to them, and in them there must be some ruler appointed for deciding cases who has the power to grant or dismiss a decree, not just a police station officer who is not a ruler but only authorized for protection and investigation or filing charges) are certainly all Islamic cities, and Friday prayer is obligatory in them and it is correct in them. Apart from these, all settlements are villages; even if there are solid houses and many Muslims and mosques, Friday prayer is neither obligatory, nor permissible, nor correct in them. This is the truth of research and the research of truth, from which the truth does not deviate even by a hair's breadth. This definition, that if its largest mosque cannot accommodate its residents who are eligible for Friday prayer, then it is a village—if this were accepted as a definition, it would be manifestly false, and it would face overwhelming objections for which an answer is essentially impossible. And if nothing else, is it not enough that by this definition, Makkah Al-Mukarramah and Madinah Al-Munawwarah themselves would be considered villages, and Friday prayer in them would, God forbid, be declared forbidden and void? If "Akbar Masajiduhu" (its largest mosque - T) is taken literally and if multiple small and large mosques are present in them and being "Akbar" (the largest) among them all is made a condition, then it clearly becomes evident that Makkah Al-Mukarramah would not be a city because for hundreds of years there was no mosque in Makkah Al-Mukarramah except Al-Masjid al-Haram, and it's not surprising if it's still like that. It is in Nur-ul-'Ayn and Radd-ul-Muhtar, the Book of Waqf:

[Box Start] La masjida fi makkata siwal masjidil harami 2. (There is no mosque in Makkah besides the Sacred Mosque. - T) [Box End]

And if one is content with one mosque and metaphorically considers it such that since this is the only mosque, it is the largest of mosques, then first of all, this is so

far removed from the purposes of the pure Sharia. Suppose a great Islamic city where a hundred thousand Muslim men and fighters live, in it there is one mosque where more than a hundred thousand or just a hundred thousand people can come. On the other hand, consider two huts of wild savages at the edge of a forest in a remote mountain valley where eight to ten men live, and they have built a platform of a few yards which can accommodate seven people—an imam in front and two rows of three people each behind him. It would then follow that the grand city is a village and Friday prayer is forbidden in it, while this small settlement is a "Misr Jami" and a "Madinah Azimah" and Friday prayer is obligatory in it. What does the Hadith say:

1. Radd-ul-Muhtar, Chapter of Friday Prayer, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/595.
2. Radd-ul-Muhtar, Book of Waqf, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 3/421.

फ़तावा रज़विया खंड 8

[बॉक्स प्रारंभ] अल-जुमा (जुमा की नमाज़) - 1 इसे स्थापित करना जायज़ है। (त) [बॉक्स अंत]

तो यह सूरज की तरह स्पष्ट हो गया कि केवल इस्लामी शहर होना आवश्यक है; कानूनों का कार्यान्वयन या सीमाओं (हुदूद) की स्थापना या इस्लाम से संबंधित कोई अन्य शर्त आवश्यक नहीं है। अल्लाह सर्वशक्तिमान की कृपा से, हमने अपने फ़तवों में प्रबल तर्कों के साथ सिद्ध किया है कि काबुल की सीमा से लेकर बंगाल के अंत तक पूरा भारत दारुल-इस्लाम है। इसलिए, यहाँ जितने भी शहर और कस्बे हैं (जिन्हें शहर कहा जाता है और वे निश्चित रूप से वे हैं जिनमें कई मोहल्ले, कई और स्थायी बाज़ार हैं, वे परगने हैं, उनसे संबंधित गाँव हैं, और उनमें मुकदमों के फैसले के लिए कोई शासक नियुक्त होना चाहिए जिसे डिक्री देने या खारिज करने का अधिकार हो, न कि केवल एक थाना अधिकारी जो शासक नहीं है बल्कि केवल सुरक्षा और जांच या चालान के लिए अधिकृत है) वे निश्चित रूप से सभी इस्लामी शहर हैं और उनमें जुमा फ़र्ज़ है और उनमें जुमा सही है। इनके अलावा जितनी भी आबादी है वे गाँव हैं; भले ही वहाँ पक्के मकान और मुसलमान और मस्जिदें बड़ी संख्या में हों, उनमें न तो जुमा फ़र्ज़ है, न जायज़ है, न ही सही। यह शोध का सत्य और सत्य का शोध है, जिससे सत्य बाल बराबर भी विचलित नहीं होता। यह परिभाषा कि जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद में जुमा के पात्र निवासी न समा सकें, वह गाँव है—यदि इसे परिभाषा के रूप में माना जाए, तो यह स्पष्ट रूप से गलत है, और इसे उन प्रबल आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा जिनका उत्तर देना अनिवार्य रूप से असंभव है। और यदि कुछ और न हो, तो क्या यह कम है कि इस परिभाषा के अनुसार स्वयं मक्का अल-मुकर्रमा और मदीना अल-मुनव्वरा गाँव माने जाएँगे, और उनमें जुमा, ईश्वर न करे, हराम और बातिल करार दिया जाएगा? "अकबर मसाजिदुहु" (वहाँ की सबसे बड़ी मस्जिद - त) को उसके शाब्दिक अर्थ पर रखें और यदि उनमें कई छोटी और बड़ी मस्जिदें मौजूद हों और उन सब में "अकबर" (सबसे बड़ा) होना शर्त बनाया जाए, तो यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है कि मक्का अल-मुकर्रमा शहर नहीं होगा क्योंकि सैकड़ों वर्षों तक मक्का अल-मुकर्रमा में मस्जिद अल-हराम के अलावा कोई मस्जिद नहीं थी, और इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अब भी न हो। नूरुल-ऐन और रद-उल-मुह्तार, किताबुल-वक्फ़ में है:

[बॉक्स प्रारंभ] ला मस्जिदा फ़ी मक्का सिवाल् मस्जिदिल् हरामी 2. (मक्का में मस्जिद-ए-हराम के अलावा कोई मस्जिद नहीं है। - त) [बॉक्स अंत]

और यदि वे एक मस्जिद पर संतोष करें और इसे लाक्षणिक रूप से ऐसा मान लें कि चूँकि यही एकमात्र मस्जिद है, तो यही मस्जिदों में सबसे बड़ी है, तो सबसे पहले, यह शुद्ध शरीयत के उद्देश्यों से बहुत दूर है। कल्पना करें एक महान इस्लामी शहर जहाँ एक लाख मुस्लिम पुरुष और लड़ाके रहते हैं, उसमें एक मस्जिद मान लें जिसमें एक लाख से अधिक या केवल एक लाख लोग आ सकें। दूसरी ओर, एक दूरस्थ पहाड़ी घाटी में जंगल के किनारे जंगली आदिवासियों की दो झोपड़ियाँ हों जिनमें आठ-दस आदमी रहते हों, और उन्होंने कुछ गज का एक चबूतरा बनाया हो जिसमें सात लोगों की गुंजाइश हो—आगे एक इमाम और पीछे तीन-तीन आदमियों की दो कतारें। तो यह आवश्यक होगा कि वह शानदार शहर एक गाँव हो और उसमें जुमा हराम हो, और यह छोटी बस्ती "मिस्र जामे" और "मदीना अजीमा" हो और इसमें जुमा फ़र्ज़ हो। हदीस क्या कहती है:

1. रद-उल-मुह्तार, बाबुल जुमा, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/595.
2. रद-उल-मुह्तार, किताबुल वक्फ, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र द्वारा प्रकाशित, 3/421.

[Box Start] الجمعۃ - 1 قیام جائز ہے۔ (ت) [Box End]

تو آفتاب کی طرح روشن ہوا کہ صرف اسلامی شہر ہونا درکار ہے تنفیذِ احکام یا اقامتِ حدود یا اسلام والی کچھ شرط نہیں اور بحمد اللہ تعالٰی ہم نے اپنے فتاوٰی میں دلائلِ قاہرہ سے ثابت کیا ہے کہ تمام ہندوستان سرحدِ کابل سے منتہائے بنگالہ تک سب دار الاسلام ہے تو یہاں جتنے شہر و قصبات میں (جن کو شہر کہتے ہیں اور وہ نہ ضرور ایسے ہی ہوتے ہیں جن میں متعدد محلے، متعدد ودائمی بازار ہیں، وہ پرگنہ ہیں، ان کے متعلق دیہات ہیں، اُن میں ضرور کوئی حاکم فصل مقدمات کے لئے مقرر ہوتا ہے جسے ڈگری ڈسمس کا اختیار ہے نہ فقط تھانہ دار کہ وہ کوئی حاکم نہیں صرف حفاظت اور تحقیقات یا چالان کا مختار ہے) وہ ضرور سب اسلامی شہر ہیں اور ان میں جمعہ فرض ہے اور انھیں میں جمعہ صحیح ہے ان کے علاوہ جتنی آبادیاں ہیں گاؤں ہیں اگرچہ مکانات پختہ اور مسلمان و مساجد بکثرت ہوں ان میں نہ جمعہ فرض نہ جائز نہ صحیح، یہ حقِ تحقیق و تحقیقِ حق ہے جس سے سرمُو حق متجاوز نہیں، یہ تعریف کہ جس کی سب سے بڑی مسجد میں اس کے سُکانِ اہل جمعہ نہ سمائیں اگر بطور تعریف مانی جائے تو صریح باطل ہے جس پر وہ اعتراضاتِ قاہرہ وارد ہیں جن کا جواب اصلاً ممکن نہیں اور اگر کچھ اور نہ ہو تو یہی کیا کم ہے کہ اس تعریف پر خود مکہ معظمہ و مدینہ منورہ گاؤں ٹھہرے جاتے ہیں اور ان میں جمعہ معاذ اللہ حرام و باطل قرار پاتا ہے اکبر مساجدہ (وہاں کی سب سے بڑی مسجد- ت) کو اپنے ظاہر پر رکھیں اور ان میں متعدد مساجد صغیرہ و کبیرہ اور ان سب میں اکبر ہو ناشرط کریں جب تو مکہ معظمہ کا شہر نہ ہونا صراحتہً واضح کہ مکہ معظمہ میں سوا مسجد الحرام کے کوئی مسجد صدہا سال تک نہ تھی اور عجب نہیں کہ اب بھی نہ ہو۔ نورالعین وردالمختار کتاب الوقف میں ہے:

[Box Start] لا مسجد في مكة سوى المسجد الحرام 2 ۔ (مکہ میں مسجدِ حرام کے علاوہ کوئی مسجد نہیں۔ت) [Box End]

اور اگر ایک مسجد پر قناعت کریں اور مجازاً ٹھہرائیں کہ جب یہی ایک مسجد تو یہی اکبر مساجد ہے تو اول تو یہ اس قدر مقاصدِ شرعِ مطہر سے دورِ مہجور ہے، ایک عظیم اسلامی شہر جس میں لاکھ مسلمان مرد و مقاتل رہتے ہیں اُس میں ایک مسجد فرض کیجئے جس میں لاکھ سے زائد یا صرف لاکھ آدمی آسکیں اور ایک گمنام پہاڑی کی نلی میں بن کے کنارے دو جھونپڑیاں وحشی جنگلیوں کی ہوں جن میں آٹھ دس مرد رہتے ہیں اور انھوں نے ایک چبوترہ چند گز کا بنا لیا ہے جس میں سات آدمیوں کی گنجائش ہے آگے امام اور پیچھے تین تین آدمیوں کی دو صفیں، رو لازم ہے کہ وہ شہر عظیم الشان گاؤں ہو اور اس میں جمعہ حرام، اور یہ کورده مصر جامع ومدینہ عظیمہ ہو اور اس میں جمعہ فرض، کیا ارشاد حدیث:

1. ردالمحتار، باب الجمعہ، مطبوعہ مصطفی البابی مصر، ۵۹۵/۱
2. ردالمحتار کتاب الوقف مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۳/ ۴۲۱

Fatawa-e-Razviya, Volume 8

[Arabic Box:] Friday prayer (Jumu'ah), Tashreeq Takbirs, and the two Eid prayers are not valid except in a central city (Misr Jami') or a large metropolis.

[Urdu Box:] Except for a central city and a big city, Friday prayer cannot be held, nor the Tashreeq Takbirs, nor the Eid-ul-Fitr prayer, nor the Eid-ul-Adha prayer. (T)

This is the intent. God forbid! If it were so, then townhood and villagehood would flip six times a day. Suppose a village has a hundred people eligible for Jumu'ah, and its largest mosque has space for exactly that many people. Then it is a village. Later in the morning, a boy reaches puberty, so it becomes a city because now the mosque lacks capacity for all eligible residents. At noon, one person leaves and moves elsewhere, so it becomes a village again as space is now sufficient. Later in the day, a slave is freed, so it becomes a city again due to lack of space. In the evening, someone dies, so it becomes a village again. At night, a madman regains his senses, so it becomes a city. At midnight, someone loses their sight, so it remains a village, and so on. Furthermore, suppose it was a city and Jumu'ah was obligatory. Muslims gathered for Jumu'ah, the Imam was delivering the sermon, when news came that so-and-so died. Now Jumu'ah becomes forbidden, the sermon goes to waste because the city became a village. The Imam stopped the sermon and announced, "Brothers, intend for Zuhr prayer." As the Takbir was about to start, a boy said, "I had fallen asleep and had a wet dream." He went to bathe. Now the Imam should go back to the sermon because it's a city again, and he must repeat the first sermon which was wasted due to the loss of city status. Before reaching the second sermon, news comes that someone else lost their sight. Now the Imam descends again and announces Zuhr. As the Takbir is being called, a traveler stands up from the row and says, "Gentlemen! Why are you losing Jumu'ah? I came here for a few days, but now I have become a permanent resident." Tell the Imam to go for the sermon a third time. In this back and forth, who knows if the congregation will get Jumu'ah or Zuhr before the time for Asr arrives. All these "beauties" belong to this definition. Regardless of this, the blessed mosques of the two holy cities, Makkah and Madinah, definitely have capacity for their residents and far more, as observed with our own eyes by the grace of Allah. So, God forbid, were those two holy cities villages, and was Jumu'ah forbidden in them? What could be more heinous than this? And this capacity is not just from today; it existed during the sacred era of the Master of the Universe (Peace and Blessings of Allah be upon him) as well. So, God forbid, were they villages from the sacred era and was Jumu'ah forbidden while it was actually being performed?

This is the ultimate peak of heinousness, beyond which nothing can be imagined. In Jami' Tirmidhi, it is narrated from the Commander of the Faithful, Mawla Ali (may Allah honor him), that the Messenger of Allah (Peace and Blessings of Allah be upon him) said: "May Allah have mercy on Uthman; he increased our mosque until he expanded it for us." This is a summary. May Allah have mercy on Uthman, he...

---

1 Musannaf Ibn Abi Shaybah, chapter on 'Who said there is no Jumu'ah etc.', published by Idara-tul-Qur'an wal-Uloom-ul-Islamia, Karachi, 2/101.

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

[अरबी बॉक्स:] जुमा की नमाज़, तकबीरात-ए-तशरीक और दोनों ईद की नमाज़ें केवल एक जामे शहर (मिस्र जामे) या बड़े महानगर के अलावा कहीं मान्य नहीं हैं।

[उर्दू बॉक्स:] जामे शहर और बड़े शहर के अलावा किसी जगह न जुमा हो सकता है, न तकबीरात-ए-तशरीक, न नमाज़ ईद-उल-फ़ित्र और न नमाज़ ईद-उल-अज़हा। (त)

यही मंशा है, हाशा व कल्ला! अल्लाह न करे अगर ऐसा हो तो दिन में छह-छह बार शहरियत और गांवियत बदलती रहे। एक बस्ती में सौ जुमा के योग्य लोग रहते हैं और उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में इतने ही आदमियों की जगह है, तो वह गांव है। फिर दिन चढ़े उनमें एक लड़का बालिग हो गया तो वह शहर हो गया क्योंकि अब उस मस्जिद में वहाँ के जुमा वालों की गुंजाइश न रही। दोपहर को एक व्यक्ति वहाँ से निवास छोड़कर चला गया तो फिर गांव हो गया क्योंकि अब जगह हो गई। फिर दिन ढले एक गुलाम आज़ाद हुआ तो फिर शहर हो गया कि गुंजाइश न रही। शाम को एक व्यक्ति मर गया तो फिर गांव हो गया। ईशा के समय एक पागल होश में आ गया तो फिर शहर हो गया। आधी रात को एक व्यक्ति की आँखें चली गईं (अंधा हो गया) तो फिर गांव का गांव रहा, और इसी तरह चलता रहे। बल्कि कल्पना कीजिए कि अभी वह शहर था और जुमा फर्ज था, मुसलमान जुमा के लिए इकट्ठा हुए, इमाम खुतबा पढ़ रहा है कि खबर आई कि फलां मर गया। अब जुमा हराम हो गया, खुतबा बेकार गया क्योंकि शहर गांव हो गया। इमाम ने खुतबा छोड़ा और घोषणा हुई कि भाइयों! ज़ुहर की नीयत बांधो। तकबीर होने ही वाली थी कि एक लड़के ने कहा, "मेरी आँख लग गई थी, मुझे एहतिलाम (स्वप्नदोष) हो गया।" वह नहाने गया, यहाँ इमाम फिर खुतबा के लिए जाए क्योंकि अब यह फिर शहर है, और पहला खुतबा जो शहर की स्थिति खत्म होने के कारण बेकार हो गया था, उसे फिर से पढ़े। अभी दूसरे खुतबे तक न पहुँचा था कि खबर आई कि फलां की आँखें चली गईं। अब इमाम फिर उतरे और ज़ुहर की घोषणा दे। तकबीर हो रही है कि सफ में से एक मुसाफिर ने उठकर कहा, "साहबों! क्यों जुमा खोते हो, मैं यहाँ कुछ दिनों के लिए आया था मगर अब यहीं का निवासी हो गया हूँ।" इमाम से कहिए फिर तीसरी बार खुतबा के लिए जाए। इस उलट-फेर में पता नहीं कि असर का वक्त आने तक जमात को जुमा नसीब हो या ज़ुहर। ये सब खूबियाँ इस परिभाषा की हैं। और इन सब बातों को छोड़ भी दें, तो दोनों पवित्र शहर मक्का मुकर्रमा और मदीना मुनव्वरा की पाक मस्जिदें निश्चित रूप से वहाँ के जुमा वालों, बल्कि उनसे कहीं ज़्यादा लोगों की क्षमता रखती हैं, जैसा कि

अल्लाह के फज़ल से अपनी आँखों से देखा गया है। तो क्या वे दोनों पवित्र शहर (अल्लाह न करे) गांव हुए और उनमें जुमा हराम ठहरा? इससे बड़ी बुराई और क्या होगी। और यह क्षमता आज की नहीं है, हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पवित्र युग में भी थी। तो अल्लाह न करे, क्या वे पवित्र युग से ही गांव थे और उनमें जुमा हराम था जबकि वह होता था? यह सबसे बड़ी बुराई की पराकाष्ठा है जिससे ऊपर कुछ सोचा नहीं जा सकता। जामे तिरमिज़ी शरीफ में अमीरुल मोमिनीन मौला अली (करम अल्लाह वजहुल करीम) से वर्णित है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "अल्लाह उस्मान पर रहमत फरमाए, उन्होंने हमारी मस्जिद में इज़ाफ़ा किया यहाँ तक कि इसे हमारे लिए बड़ा कर दिया।" यह संक्षिप्त है। अल्लाह तआला उस्मान पर रहमत फरमाए उन्होंने हमारी...

---

1 मुसन्निफ़ इब्न अबी शैबा, अध्याय 'जिसने कहा कि जुमा नहीं है आदि', इदारातुल कुरान वल उलूम अल इस्लामिया, कराची, 2/101 द्वारा प्रकाशित।

فتاوٰی رضویہ ، جلد ہشتم

[Arabic Box:] لاجمعة ولاتشریق ولاصلوة فطر ولا اضحی الافی مصر جامع اومدینة عظیمة۔

[Urdu Box:] مصر جامع اور بڑے شہر کے علاوہ کسی جگہ نہ جمعہ ہو سکتا ہے نہ تکبیرات تشریق، نہ نماز عید الفطر اور نہ نماز عید الاضحی۔(ت)

کا یہی منشا ہے، حاشا و کلا معاذ اللہ ایسا ہو تو دن میں چھ چھ بار مصریت و قرویت پلٹا کھائے، ایک بستی میں سو اہل جمعہ رہتے ہیں اور اس کی اکبر مساجد میں اتنے آدمیوں کی وسعت ہے تو گاؤں ہے پھر دن چڑھے ان میں ایک لڑکا بالغ ہوا تو وہ شہر ہو گیا کہ اب اس مسجد میں وہاں کے اہل جمعہ کی وسعت نہ رہی، دوپہر کو ایک شخص وہاں سے سکونت چھوڑ کر چلا گیا تو پھر گاؤں ہو گیا اب پھر وسعت ہو گئی پھر دن رہے ایک غلام آزاد ہوا تو پھر شہر ہو گیا کہ وسعت نہ رہی شام کو ایک شخص مر گیا تو پھر گاؤں ہو گیا، عشاء کو ایک مجنون ہوش میں آگیا تو پھر شہر ہو گیا، آدھی رات ایک شخص کی آنکھیں جاتی رہیں تو پھر گاؤں کا گاؤں رہا و علی ہذا القیاس، بلکہ فرض کیجئے کہ ابھی وہ شہر تھا اور جمعہ فرض تھا مسلمان جمعہ کے لئے جمع ہوئے امام خطبہ پڑھ رہا ہے کہ خبر آئی فلاں مر گیا اب جمعہ حرام ہو گیا خطبہ بے کار گیا کہ شہر گاؤں ہو گیا، امام نے خطبہ چھوڑا اور اعلان ہوا کہ بھائیوں ظہر کی نیت باندھو، تکبیر ہوتی ہی تھی کہ ایک لڑکے نے کہا میری آنکھ لگ گئی تھی احتلام ہو گیا، وہ نہانے کو گیا یہاں امام پھر خطبہ کو جائے کہ اب یہ پھر شہر ہے اور پہلا خطبہ کہ بوجہ زوال محلیت بیکار ہو گیا تھا پھر اعادہ کرے ابھی دوسرے خطبہ تک نہ پہنچا تھا کہ خبر آئی فلاں کی آنکھیں جاتی رہیں اب امام پھر اترے اور ظہر کا اعلان دے، تکبیر ہو رہی ہے کہ صف میں سے ایک مسافر نے اٹھ کر کہا صاحبو! کیوں جمعہ کھوتے ہو میں یہاں چند روز کے لئے آیا تھا مگر اب یہیں کا ساکن ہو گیا امام سے کہئے پھر

سہ بارہ خطبے کو جائے، اس الٹ پھیر میں معلوم نہیں کہ عصر کا وقت آنے تک جماعت کہ جمعہ نصیب ہو یا ظہر، یہ سب خوبیاں اس تعریف کی ہیں اور ان سب سے قطع نظر کیجئے تو دونوں بلد کریم مکہ مکرمہ و مدینہ منورہ کی مساجد طیبہ قطعاً وہاں کے اہل جمعہ بلکہ ان سے بدر جہا زائد کی وسعت رکھتی ہیں جیسا کہ بحمد اللہ تعالیٰ آنکھوں سے مشاہدہ ہے تو وہ دونوں شہر کریم معاذ اللہ گاؤں ہوئے اور ان میں جمعہ حرام ٹھہرا، اس سے زیادہ شناعت اور کیا ہو گی، اور یہ وسعت آج کی نہیں زمانہ اقدس حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں بھی تھی۔ تو معاذ اللہ زمانہ اقدس سے وہ گاؤں ہی تھے اور ان میں جمعہ حرام تھا مگر ہوتا تھا، اب یہ منتہائے شناعت کبریٰ ہے جس سے مافوق متصور نہیں، جامع ترمذی شریف میں امیر المومنین مولیٰ علی کرم اللہ تعالیٰ وجہہ الکریم سے مروی ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا: رحم اللہ عثمان زاد فی مسجد ناحتی وسعنا ھذا مختصر اللہ تعالیٰ عثمان پر رحمت فرمائے اس نے ہماری

---

1 مصنف ابن ابی شیبہ من قال لا جمعہ الخ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲ / ۱۰۱

Fatawa Razawiya, Volume 8

The holy mosque was expanded so much that it now accommodates all the worshippers. Clearly, accommodating all worshippers is much more than just accommodating those who attend Friday prayers. So, God forbid, according to this definition, the outcome of the Hadith would be that may Allah bless Uthman, he expanded our mosque and turned Medina into a village, thus making Friday prayers forbidden therein. La hawla wala quwwata illa billahil aliyyil adheem. It is mentioned in Tahtawi on Maraqi al-Falah, the chapter on Istisqa:

Arabic Text	Urdu Translation
Those who reside in Medina do not reach the required number (to fill the mosque), and when all of them gather, the expansion of the Noble Mosque is seen in its surroundings. The intense crowding is only in the Rawdah al-Sharifah and its vicinity due to the desire for extra merit and proximity to Al-Mustafa (the Chosen One), peace and blessings of Allah be upon him. Thus it is in the commentary [1].	Those who reside in Medina Munawwarah, their number does not fulfill the aforementioned need for Friday prayers. Despite the gathering of all the people of Medina, the surroundings of the Prophet's Mosque are seen empty. The rush of people in Riyadh al-Jannah and its surrounding areas is because they attain proximity to the Noble Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, and more merit. This is how it is in the commentary. (T)

In Al-Ghunyah it is stated:

Arabic Text	Urdu Translation
The decision in this matter is that Mecca and Medina are two cities in which Friday prayers have been performed since the time of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, until today. So every place that is like one of them is a city, and every definition that does not apply to one of them is unreliable, even the definition chosen by a group of later scholars like the author of Al-Mukhtar and Al-Wiqayah and others, which is: "if its	The decision in this is that Friday prayer has been performed in Mecca Mukarramah and Medina Tayyibah from the physical life of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, until today. Therefore, every place that is like either of these two will be called a city. Any definition of a city that does not accurately describe either of these two will be unreliable, including the definition adopted by a group of later scholars such as the authors of Mukhtar and Wiqayah, that (every place will be a

Arabic Text	Urdu Translation
people gathered in its largest mosque, it would not accommodate them." This is contradicted by both of them because each of their mosques accommodates its residents and more [2].	city) "if all the people of that place gather in its largest mosque and there is no room for them in the mosque." These definitions are subject to objection because of Mecca and Medina, as their mosques have the capacity for the residents there and even more people. (T)

1. Hashiyat al-Tahtawi on Maraqi al-Falah, Chapter on Istisqa, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 301.
2. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter on Friday Prayer, printed by Suhail Academy, Lahore, p. 550.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मस्जिद शरीफ़ इतनी बढ़ा दी गई कि इसमें हम सभी नमाजियों के लिए गुंजाइश हो गई। ज़ाहिर है कि सभी नमाजियों की गुंजाइश होना सिर्फ़ जुमा पढ़ने वालों की गुंजाइश से कहीं ज़्यादा होगी, तो अल्लाह न करे, इस परिभाषा के अनुसार हदीस का अर्थ यह होगा कि अल्लाह ताला उस्मान का भला करे, उन्होंने हमारी मस्जिद को बढ़ाकर मदीना को गाँव बना दिया और इसमें जुमा हराम हो गया, 'ला हौला वला.कुव्वता इल्ला बिल्लाहिल अलिय्यिल अज़ीम'। तहतावी अला मराक़िल फ़लाह बाबुल इस्तिसका में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
मदीना में रहने वालों की संख्या इतनी नहीं है कि वह (पूरी मस्जिद की) ज़रूरत को पूरा कर सके और जब वे सब इकट्ठे होते हैं, तो महान मस्जिद का विस्तार उसके आसपास खाली देखा जाता है। भीड़ केवल रौज़ा-ए-शरीफ़ और उसके आसपास के क्षेत्रों में होती है, जो मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के पास रहने और अधिक पुण्य प्राप्त करने की इच्छा के कारण होती है। ऐसा ही टीका में है [1]।	जो मदीना मुनव्वरा में रहते हैं उनकी संख्या जुमा के लिए बताई गई ज़रूरत को पूरा नहीं करती। मदीना के सभी लोगों के इकट्ठा होने के बावजूद, मस्जिद-ए-नबवी शरीफ़ के आसपास के हिस्से खाली देखे जाते हैं। रियाज़ुल जन्नत और उसके आसपास के स्थानों पर लोगों की भीड़ इसलिए होती है ताकि उन्हें नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की निकटता और अधिक पुण्य प्राप्त हो। टीका में इसी प्रकार है। (त)

गुनिया में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
इस बारे में निर्णय यह है कि मक्का और मदीना दो ऐसे शहर हैं जिनमें नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के समय से लेकर आज तक जुमा की नमाज़ पढ़ी जाती है। इसलिए हर वह स्थान जो इन दोनों में से किसी एक की तरह होगा वह शहर है, और हर वह परिभाषा जो इन दोनों में से किसी एक पर खरी नहीं उतरती वह	फ़ैसला इसमें यह है कि मक्का मुकर्रमा और मदीना तय्यबा में हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़ाहिरी जीवन से लेकर आज तक जुमा अदा किया जाता है, तो हर वह स्थान जो इन दोनों में से किसी एक की तरह होगा वह शहर कहलाएगा। और जो परिभाषा शहर की इन दोनों में से किसी एक पर खरी न उतरेगी वह अविश्वसनीय होगी, यहाँ तक कि

अरबी पाठ

अविश्वसनीय है, यहाँ तक कि वह परिभाषा भी जिसे बाद के विद्वानों के एक समूह जैसे अल-मुख्तार और अल-विक़ाया के लेखकों और अन्य लोगों ने चुना है, कि "यदि उसके लोग उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में एकत्र हों, तो वह उन्हें समा न सके।" यह इन दोनों (मक्का और मदीना) के कारण खंडित है क्योंकि उनकी प्रत्येक मस्जिद उनके निवासियों और उससे भी अधिक के लिए पर्याप्त है [2]।

उर्दू अनुवाद

वह परिभाषा जिसे बाद के विद्वानों (मुतअख़िरीन) के एक समूह जैसे साहिबे मुख्तार और साहिबे विक़ाया वग़ैरा ने अपनाया कि (हर स्थान शहर होगा) "अगर वहाँ की सबसे बड़ी मस्जिद में वहाँ के लोग इकट्ठा हो जाएँ और मस्जिद में उनके लिए गुंजाइश न रहे", ये दोनों मक्का व मदीना की वजह से आपत्तिजनक हैं क्योंकि उनकी मस्जिदें वहाँ के निवासियों बल्कि उससे भी अधिक लोगों की गुंजाइश रखती हैं। (त)

1. हाशिया अत-तहतावी अला मराक़िल फ़लाह, बाबुल इस्तिसका, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, पृष्ठ 301।
2. गुनियातुल मुस्तमली शरह मुनियतुल मुसल्ली, फ़सल फ़ी सलातुल जुमा, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृष्ठ 550।

مسجد شریف بڑھادی یہاں تک کہ اس میں ہم سب نمازیوں کی وسعت ہوگئی۔ ظاہر ہے کہ سب نمازیوں کی وسعت ہو جانا صرف اہل جمعہ کی وسعت سے کہیں زیادہ ہوگی، تو معاذ اللہ اس تعریف پر حاصل حدیث یہ ہوگا کہ اللہ تعالٰی عثمان کا بھلا کرے اس نے ہماری مسجد بڑھا کر مدینہ کو گاؤں کر دیا اور اس میں جمعہ حرام ہو گیا، لا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم ۔ طحطاوی علی مراقی الفلاح باب الاستسقاء میں ہے :

عربی عبارت	اردو ترجمہ
من ھو مقیم بالمدینۃ لا یبلغ قدر الحاجۃ وعند اجتماع جملتھم یشاھد اتساع المسجد الشریف فی اطرافہ، وانما شدۃ الزحام فی الروضۃ الشریفۃ وما قاربھا للرغبۃ فی زیادۃ الفضل والقرب من المصطفی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کذا فی الشرح ۱۔	جو مدینہ منورہ میں مقیم ہیں ان کی تعداد جمعہ کے لئے مذکورہ ضرورت کو پورا نہیں کرتی تمام اہل مدینہ کے اجتماع کے باوجود مسجد نبوی شریف کی اطراف کو خالی دیکھا جاتا ہے، ریاض الجنہ اور اس کے آس پاس کی جگہ پر لوگوں کا اژدحام اس لئے ہوتا ہے کہ اس سے مصطفی کریم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا قرب اور مزید فضل نصیب ہوتا ہے، اسی طرح شرح میں ہے، (ت)

غنیہ میں ہے :

عربی عبارت	اردو ترجمہ
الفصل فی ذلك ان مکۃ والمدینۃ مصران تقام بھما الجمع من زمنہ	فیصلہ اس میں یہ ہے کہ مکہ مکرمہ اور مدینہ طیبہ میں حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ظاہری حیات سے لے

عربی عبارت	اردو ترجمہ
صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم الی الیوم فکل موضع کان مثل احدہما فہو مصر وکل تفسیر لا یصدق علی احدہما فہو غیر معتبر حتی التعریف الذی اختارہ جماعۃ من المتأخرین کصاحب المختار روالو قایۃ وغیرہما و ہو مالو اجتمع اہلہ فی اکبر مساجدہ لایسعہم فانہ منقوض بہما اذا مسجد کل منہما یسع اہلہ وزیادۃ ۲۔	کر آج تک جمعہ ادا کیا جاتا ہے تو ہر وہ مقام جو ان دونوں میں سے کسی ایک کی طرح ہوگا وہ شہر کہلائے گا اور جو تعریف شہر ان دونوں میں سے کسی ایک پر صادق نہ آئے گی وہ غیر معتبر ہوگی حتیٰ کہ وہ تعریف جیسے متاخرین کی ایک جماعت مثلاً صاحب مختار اور صاحب وقایہ وغیرہ نے اختیار کی کہ (ہر مقام شہر ہوگا) "اگر وہاں کی سب سے بڑی مسجد میں وہاں کے لوگ جمع ہوجائیں اور مسجد میں ان کے لئے گنجائش نہ رہے" ان دونوں مکہ ومدینہ کی وجہ سے محل اعتراض ہیں کیونکہ ان کی مساجد وہاں کے مقیم بلکہ اس سے زائد لوگوں کی گنجائش رکھتی ہیں۔ (ت)

۱ حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب الاستسقاء مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۳۰۱ ۲ غنیۃ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۵۰

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Consequently, scholars have clarified that this definition is not correct according to the researchers. It is stated in Multaqa al-Abhur:

And it is said: If all its people gathered in its largest mosque, it would not accommodate them.1	Some have defined a city such that if all the people there gathered, the largest mosque there would not be sufficient for them. (T)

It is stated in Majma' al-Anhur:

It was only mentioned with the form of weakness (tamrid) because they said this definition is not correct according to the researchers.2	The term "qila" (it is said) has been used because the jurists stated that this definition is not correct among the researchers. (T)

Similarly, it is mentioned in Sharh al-Niqayah etc. Furthermore, it is known and even those who chose this definition admit that it is a rare report (riwayah nadirah) contrary to the Zahir al-Riwayah. Scholars clarify that whatever is contrary to the Zahir al-Riwayah is not the saying of our Imams; it is all retracted (marju' 'anhu) and abandoned (matruk). It is stated in al-Bahr al-Ra'iq:

Whatever exits the Zahir al-Riwayah is retracted, and that which is retracted is no longer a saying of his 3 - summarized.	That which deviates from the Zahir al-Riwayah is retracted, and a retracted saying is no longer the Imam's opinion. - Summarized (T)

It is stated in Fatawa Khayriyyah:

They explicitly stated that what exits the Zahir al-Riwayah is not the school (madhhab) of Abu Hanifa nor a saying of his.4	The jurists have explicitly stated that what deviates from the Zahir al-Riwayah is neither the school nor the saying of the Imam. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar:

What contradicts the Zahir al-Riwayah is not the school of our companions.5	What is against the Zahir al-Riwayah is not the school of our companions (Hanafis). (T)

1 Multaqa al-Abhur, Chapter of Jumu'ah, printed by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 1/123. 2 Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter of Jumu'ah, printed by Mu'assasat al-Risalah, Beirut, 1/123. 3 Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter: It is permissible to

follow whomever one wishes, etc., printed by H.M. Saeed Company Karachi, 6/207. 4 Fatawa Khayriyyah, Book of Divorce, printed by Dar al-Ma'rifah Beirut, 1/52. 5 Radd al-Muhtar, Book of Reviving Dead Lands, printed by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 8/578.

फतावा रज़विया खंड आठ

फलस्वरूप, विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि यह परिभाषा शोधकर्ताओं (मुहक़्क़िक़ीन) के अनुसार सही नहीं है। 'मुल्तक़ा अल-अब्हुर' में है:

और कहा गया है: यदि इसके सभी लोग इसकी सबसे बड़ी मस्जिद में एकत्र हों, तो वह उनके लिए पर्याप्त नहीं होगी।1	कुछ ने शहर की यह परिभाषा दी है कि यदि वहां के सभी लोग एकत्र हों, तो वहां की सबसे बड़ी मस्जिद उनके लिए पर्याप्त न हो। (त)

'मजमा अल-अनहुर' में है:

इसे केवल कमज़ोर रूप (तमरीद) के साथ उल्लेख किया गया है क्योंकि उन्होंने कहा कि यह परिभाषा शोधकर्ताओं के निकट सही नहीं है।2	"क़ील" (कहा गया) शब्द लाया गया है क्योंकि फुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने कहा है कि यह परिभाषा शोधकर्ताओं के यहाँ सही नहीं है। (त)

इसी तरह 'शरह निक़ाया' आदि में है। इसके साथ ही यह भी ज्ञात है और स्वयं इस परिभाषा को चुनने वालों को स्वीकार है कि वह दुर्लभ वर्णन (रिवायत नादिरा) 'ज़ाहिर अल-रिवायत' के विरुद्ध है। विद्वान स्पष्ट करते हैं कि जो कुछ 'ज़ाहिर अल-रिवायत' के विरुद्ध है, वह हमारे इमामों का कथन नहीं है; वह सब वापस लिया गया (मर्जू अनहु) और छोड़ा गया (मतरूक) है। 'बहर अल-राइक' में है:

जो ज़ाहिर अल-रिवायत से बाहर निकल जाए, वह वापस लिया गया है, और जो वापस लिया गया हो, वह उनका कथन नहीं रहता 3 - सारांशित।	जो ज़ाहिर अल-रिवायत से निकल जाए वह मर्जू अनहु है और मर्जू अनहु इमाम का कथन नहीं रहेगा। - सारांशित (त)

'फतावा खैरिया' में है:

उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो ज़ाहिर अल-रिवायत से बाहर है, वह न तो अबू हनीफ़ा का पंथ (मज़हब) है और न ही उनका कथन।4	फुक़हा ने स्पष्ट किया है कि जो ज़ाहिर अल-रिवायत से निकल जाए वह न इमाम साहब का मज़हब होता है और न कथन। (त)

'रद्द अल-मुह्तार' में है:

जो ज़ाहिर अल-रिवायत के विरुद्ध हो, वह हमारे साथियों का मज़हब नहीं है।5	जो ज़ाहिर अल-रिवायत के खिलाफ हो वह हमारे साथियों (अहनाफ) का मज़हब नहीं होता। (त)

1 मुल्तक़ा अल-अब्हुर, जुमा का अध्याय, मुअस्ससत अल-रिसाला द्वारा प्रकाशित, बेरूत 1/123 2 मजमा अल-अनहुर शरह मुल्तक़ा अल-अब्हुर, जुमा का अध्याय, मुअस्ससत अल-रिसाला द्वारा प्रकाशित, बेरूत 1/123 3 बहर अल-राइक, अध्याय: जिसकी चाहे उसकी तक़लीद जायज़ है आदि, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित 6/207 4 फतावा खैरिया, तलाक की किताब, दार अल-मारिफ़ा बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/52 5 रद्द अल-मुह्तार, बंजर भूमि को जीवित करने की किताब, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरूत द्वारा प्रकाशित 8/578

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

لاجرم علماء نے تصریح فرمائی کہ یہ تعریف محققین کے نزدیک صحیح نہیں۔ ملتقی الابحر میں ہے:

وقیل مالواجتمع اھلہ في اکبر مساجدہ لا یسعھم 1 بعض نے شہر کی یہ تعریف کی ہے کہ وہاں کے تمام لوگ اگر جمع ہوں تو وہاں کی سب سے بڑی مسجد ان کے لئے کافی نہیں۔ (ت)

مجمع الانہر میں ہے:

انما اورد بصیغۃ التمریض لانھم قالوا ان ھذا الحد غیر صحیح عند المحققین 2 "قیل" لایا گیا ہے اس لئے کہ فقہاء نے فرمایا کہ یہ تعریف محققین کے ہاں صحیح نہیں۔ (ت)

اسی طرح شرح نقایہ وغیرہ میں ہے معہذا معلوم ہے اور خود اس تعریف کے اختیار کرنے والوں کو اقرار ہے کہ وہ روایت نادرہ خلاف ظاہر الروایۃ ہے اور علماء تصریح فرماتے ہیں کہ جو کچھ ظاہر الروایۃ کے خلاف ہے وہ ہمارے ائمہ کا قول نہیں وہ سب مرجوع عنہ اور متروک ہے، بحر الرائق میں ہے:

ماخرج عن ظاھر الروایۃ فھو مرجوع عنہ والمرجوع عنہ لم یبق قولا لہ 3 - ملخصاً- جو ظاہر الروایہ سے نکل جائے وہ مرجوع عنہ ہے اور مرجوع عنہ امام کا قول نہیں رہے گا۔ ملخصاً (ت)

فتاوٰی خیریہ میں ہے:

صرحوا به ان ما خرج عن ظاهر الرواية فقہاء نے تصریح کی ہے کہ جو ظاہر الروایہ سے نکل

ليس مذهباً لابي حنيفة ولا قولا له 4- جائے وہ نہ امام صاحب کا مذہب ہوتا ہے اور نہ قول (ت)

رد المحتار میں ہے:

ما خلف ظاهر الرواية ليس مذهباً جو ظاہر الروایہ کے خلاف ہو وہ ہمارے اصحاب (احناف) کا

لأصحابنا 5- مذہب نہیں ہوتا۔ (ت)

1 ملتقی الابحر، باب الجمعہ، مطبوعہ مؤسسۃ الرسالہ، بیروت ۱/۱۲۳ 2 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر، باب الجمعہ، مطبوعہ مؤسسۃ الرسالہ، بیروت ۱/۱۲۳ 3 بحر الرائق، فصل یجوز تقلید من شاء الخ، مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۶/۲۰۷ 4 فتاوٰی خیریہ، کتاب الطلاق، مطبوعہ دارالمعرفۃ بیروت، ۱/۵۲ 5 رد المحتار، کتاب احیاء الموات، مطبوعہ دار احیاء التراث العربی، بیروت ۸/۵۷۸

Volume 8 Fatawa Razawiyya

So, how can acting and issuing a fatwa based on a rare (nadir) report contrary to the 'Zahir al-Riwayah' (manifest report), which is authenticated, relied upon, practiced, the choice of the majority, supported, and victorious, be permissible? It is stated in 'Durr al-Mukhtar':

"Ruling and issuing a fatwa based on a weak (marjuh) opinion is ignorance and a violation of consensus (ijma)." [1] (To issue a ruling and fatwa based on a weak/less preferred opinion is ignorance and opposition to consensus. (T))

It is stated in 'Radd al-Muhtar':

"Like the opinion of Imam Muhammad in the presence of Imam Abu Yusuf's opinion, when it (Imam Muhammad's opinion) has not been authenticated or its reasoning strengthened. Even more void than this is issuing a fatwa contrary to 'Zahir al-Riwayah' when it has not been authenticated, and similarly, issuing a fatwa based on a retracted opinion is impermissible. End." [2] (Just as issuing a fatwa on an unauthenticated opinion of Imam Muhammad is not permissible in the presence of Imam Abu Yusuf's opinion, or if the reasoning for that opinion is not strong. Likewise, giving a fatwa against the 'Zahir al-Riwayah' is even more invalid when its contrary hasn't been authenticated. Similarly, issuing a fatwa on an opinion that has been retracted is unlawful. End. H. (T))

This is the researched issue, and by the grace of Allah, the people of justice and knowledge will clearly understand that truth does not exceed this. We cannot act against it, nor can we ever abandon the school of the Imams to issue a fatwa on another. However, concerning the common people, the method of this poor servant (the author) is that I do not initially prohibit them myself, nor do I like to attempt to keep them from prayer. A single report of validity is enough for them. Whatever way they take the holy name of Allah and His Messenger is a boon. Observation shows that if they are stopped from this, they stop even the occasional [worship]. Allah Almighty says:

"Have you seen him who forbids a servant when he prays?" [3] (Have you seen him who forbids a servant when he performs prayer? (T))

Sayyiduna Abu Dawud (may Allah be pleased with him) says:

"Something is better than nothing." [4] (Having something is better than having nothing at all.)

1. Durr al-Mukhtar, Preface, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/15.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on the Ruling of Taqleed (Following), printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/55.
3. Quran 96/10.
4. Kanz al-Ummal, under Adab al-Salah, Hadith 22550, printed by Maktabat al-Turath, Beirut, 8/202.

जिल्द अष्टम (Volume 8) फ़तावा रज़विया

तो ज़ाहिर अल-रिवायत (प्रमाणित रिवायत) जो कि मुसह्-हह (प्रमाणित), मोतमद (विश्वसनीय), मामूल-अलैह (जिस पर अमल हो), जमहूर का चुनिंदा और समर्थित है, उसके खिलाफ एक नादिर (दुर्लभ) रिवायत पर अमल और फतवा देना कैसे जायज़ हो सकता है? 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है:

"मरजूह (कमज़ोर) कौल (कथन) पर हुक्म और फतवा देना अज्ञानता है और इजमा (सहमति) का उल्लंघन है।" [1] (जो कथन कमज़ोर हो उस पर हुक्म और फतवा जारी करना अज्ञानता और इजमा का विरोध है। (त))

'रद्द अल-मुह्तार' में है:

"जैसे इमाम अबू यूसुफ के कौल की मौजूदगी में इमाम मुहम्मद के उस कौल पर फतवा जायज़ नहीं जिसकी तस्हीह (पुष्टि) न हुई हो या उस कौल की वजह मज़बूत न हो। और इससे भी अधिक अमान्य 'ज़ाहिर अल-रिवायत' के खिलाफ फतवा देना है जबकि उसकी तस्हीह न हुई हो, और इसी तरह उस कौल पर जिस से रुजू (वापसी) कर लिया गया हो, फतवा देना नाजायज़ है। समाप्त।" [2] (जैसा कि इमाम अबू यूसुफ के कथन की मौजूदगी में इमाम मुहम्मद के उस कथन पर फतवा जायज़ नहीं है जिसकी पुष्टि न हुई हो या जिस कथन का आधार मज़बूत न हो। और इसके मुक़ाबले ज़ाहिर रिवायत के खिलाफ फतवा देना और भी अमान्य है जबकि उस विरोध की पुष्टि न हो और इसी तरह उस कथन पर फतवा देना नाजायज़ है जिससे रुजू कर लिया गया हो। समाप्त। ह. (त))

यह शोधित मामला है और अल्लाह के फज़ल से इंसाफ और इल्म वाले लोग साफ़ जान लेंगे कि हक़ इससे बाहर नहीं है। हम न इसके खिलाफ अमल कर सकते हैं और न ही कभी इमामों के मज़हब को छोड़ कर किसी दूसरे पर फतवा दे सकते हैं। लेकिन आम जनता के बारे में इस फकीर (लेखक) का तरीका यह है कि मैं शुरुआत में खुद उन्हें मना नहीं करता और न ही उन्हें नमाज़ से रोकने की कोशिश पसंद करता हूँ। उनके लिए एक रिवायत पर सेहत (वैधता) ही काफी है। वे जिस तरह भी अल्लाह और उसके रसूल का पाक नाम लें, वही गनीमत (बड़ी बात) है। अनुभव बताता है कि अगर उन्हें इससे रोका जाए, तो वे कभी-कभार की जाने वाली इबादत भी छोड़ बैठते हैं। अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल फरमाता है:

"क्या तुमने उसे देखा जो मना करता है बंदे को जब वह नमाज़ पढ़ता है?" [3] (क्या तुमने उसे देखा जो मना करता है बंदे को जब वह नमाज़ अदा करता है? (त))

सैयदुना अबू दाऊद रज़ियल्लाहु अन्हु फरमाते हैं:

"कुछ होना बिल्कुल न होने से बेहतर है।" [4] (कुछ होना बिल्कुल न होने से बेहतर है।)

1. दुर्र-ए-मुख्तार, मुक़द्दमा अल-किताब, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/15।
2. रद्द अल-मुह्तार, मतलब फ़ी हुक्म अल-तक़लीद, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/55।
3. अल-कुरान 96/10।
4. कंज़ अल-उम्माल, आदाब अल-सलात के तहत, हदीस 22550, मकतब अल-तुराथ, बेरूत, 8/202।

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

تو ظاہر الروایۃ مصح معتمد معمول علیہ مختار جمہور مؤید و منصور کے خلاف ایک روایت نادرہ پر عمل و فتوٰی کیونکر روا، درمختار میں ہے :

الحکم والفتیا بالقول المرجوح جھل و خرق للاجماع ۱۔ (جو قول مرجوح ہو اس پر حکم و فتوٰی جاری کرنا جہالت اور اجماع کی مخالفت ہے۔ (ت))

ردالمحتار میں ہے:

کقول محمد مع وجود قول ابی یوسف اذالم یصحح اویقو وجھہ واولی من ھذا بالبطلان الافتاء بخلاف ظاھر الروایۃ اذالم یصحح والافتاء بالقول المرجوع عنہ انتھٰی ۲۔ (جیسا کہ امام ابویوسف کے قول کے موجودگی میں امام محمد کے اس قول پر فتوٰی جائز نہیں جس کی تصحیح نہ ہوئی ہو یا اس قول کی وجہ قوی نہ ہو اور اس کی نسبت ظاہر روایت کے خلاف فتوٰی دینا اور بھی باطل ہے جبکہ اس خلاف کی تصحیح نہ ہو اور یوں ہی اس قول پر جس سے رجوع کر لیا گیا ہو فتوٰی ناجائز ہے انتہی، ح۔ (ت))

یہ تحقیق مسئلہ ہے اور بحمد اللہ اہل انصاف و علم صاف جانیں گے کہ حق اس سے متجاوز نہیں، ہم نہ اس کے خلاف عمل کر سکتے ہیں نہ زنہار زنہار مذہب ائمہ چھوڑ کر دوسری پر فتوٰی دے سکتے ہیں مگر دربارہ عوام فقیر کا طریق عمل یہ ہے کہ ابتداءً خود انہیں منع نہیں کرتا نہ انہیں نماز سے باز رکھنے کی کوشش پسند رکھتا ہے ایک روایت پر صحت ان کے لئے بس ہے، وہ جس طرح خدا اور رسول کا نام پاک لیں غنیمت ہے، مشاہدہ ہے کہ اس سے روکیے تو وہ وقتی چھوڑ بیٹھتے ہیں، اللہ عزوجل فرماتا ہے:

اَرَءَيْتَ الَّذِي يَنْهٰى ۝ عَبْدًا اِذَا صَلّٰى ۝ ۳ (کیا تم نے اسے نہیں دیکھا جو منع کرتا ہے بندے کو جب وہ نماز ادا کرتا ہے۔ (ت))

سید نا ابو داؤد رضی اللہ تعالی عنہ فرماتے ہیں:

شیئ خیر من لا شیئ ۴۔ (کچھ ہونا بالکل نہ ہونے سے بہتر ہے)

۱ در مختار مقدمۃ الکتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۵ ۲ ردالمحتار، مطلب فی حکم التقلید مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱/ ۵۵ ۳ القرآن ۹۶/۱۰ ۴ کنز العمال ذیل ادب الصلوۃ حدیث ۲۲۵۵۰ مطبوعہ مکتبۃ التراث بیروت ۸/ ۲۰۲

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Table Header Style Content] - Abd al-Razzaq narrated in his 'Musannaf' that he (Allah be pleased with him) passed by a man who was not performing the bowing (ruku) or prostration (sujud) properly. He said: "Something is better than nothing." [Footnote 1] (T)

- The Commander of the Faithful, Mawla Ali (may Allah honor his face), saw a person praying voluntary prayers (nafl) after the Eid prayer, even though voluntary prayers are disliked after Eid. Someone asked: "O Commander of the Faithful! Why don't you forbid him?" He replied:
- "I fear falling under the threat mentioned by Allah Almighty: 'Have you seen the one who forbids a servant when he prays?' [Footnote 2] This is mentioned in Durr al-Mukhtar."
- Similarly, it is stated in Bahr al-Ra'iq: "(This is for the elite). As for the common people, they should not be forbidden from reciting Takbirs or performing voluntary prayers at all, because they have little inclination towards good deeds." [Footnote 3] (T)
- In 'Kitab al-Tajnis wa al-Mazid', then 'Bahr al-Ra'iq', then 'Radd al-Muhtar' it is stated: Shams al-A'imma al-Halwani was asked: Common people, out of laziness, pray Fajr at sunrise. Should we reprimand them for that? He said: No, because if they are forbidden from that, they will abandon it altogether. Performing it with the permission of the people of Hadith is better than abandoning it entirely. [Footnote 4] (T) They consider it permissible. (T)

[Footnotes] 1. Kanz al-Ummal, with reference to Abd al-Razzaq, under 'Salat', Hadith 22550, published by Maktabat al-Turath, 18/202. 2. Durr al-Mukhtar, Chapter on the Two Eids, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/115. 3. Bahr al-Ra'iq, Chapter on the Two Eids, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/160. 4. Bahr al-Ra'iq, Chapter on the Two Eids, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/160.

Page 375 of 673

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[तालिका प्रारूप में सामग्री] - अब्दुल रज़्ज़ाक ने अपनी 'मुसन्नफ़' में रिवायत किया कि वह (अल्लाह उनसे राज़ी हो) एक ऐसे व्यक्ति के पास से गुज़रे जो न नमाज़ का रुकू सही से अदा कर रहा था न सुजूद। आपने फ़रमाया: "कुछ होना बिलकुल न होने से बेहतर होता है।" [फुटनोट 1] (त)

- अमीरुल मोमिनीन मौला अली (अल्लाह उनके चेहरे को सम्मानित करे) ने एक व्यक्ति को ईद की नमाज़ के बाद नफ़्ल पढ़ते देखा, हालांकि ईद के बाद नफ़्ल मकरूह हैं। किसी ने अर्ज़ किया: "ऐ अमीरुल मोमिनीन! आप इसे मना क्यों नहीं करते?" आपने फ़रमाया:
- "मैं उस चेतावनी में आने से डरता हूँ जो अल्लाह तआला ने फ़रमाई: 'क्या तुमने उसे देखा जो मना करता है बंदे को जब वह नमाज़ पढ़ता है?' [फुटनोट 2] इसका ज़िक्र 'दुर्रे मुख्तार' में किया गया है।"
- इसी तरह 'बहरुर राइक' में है: "(यह विशिष्ट लोगों के लिए है)। जहाँ तक आम लोगों की बात है, उन्हें तकबीरें कहने और नफ़्ल पढ़ने से बिलकुल मना नहीं किया जाता, क्योंकि उनमें नेक कामों के प्रति बहुत कम दिलचस्पी होती है।" [फुटनोट 3] (त)
- 'किताब अल-तजनीस वल-मजीद', फिर 'बहरुर राइक', फिर 'रद्दुल मुख्तार' में है: शम्सुल अइम्मा हलवानी से सवाल हुआ कि आम लोग सुस्ती करते हुए सूरज निकलने के वक्त फ़ज्र की नमाज़ अदा करते हैं, क्या हम उन्हें डांट-फटकार करें? फ़रमाया: ऐसा न करो, क्योंकि अगर तुम उन्हें इससे रोकोगे तो वे नमाज़ बिलकुल छोड़ देंगे। नमाज़ का अदा कर लेना उसे बिलकुल छोड़ देने से बेहतर है और मुहद्दिसों ने इसे जायज़ भी माना है। [फुटनोट 4] (त)

[फुटनोट्स] 1. कंज़ुल उम्माल, बहवाला अब्दुल रज़्ज़ाक, ज़ैल अल-सलात, हदीस 22550, मतबुआ मकतबत अल-तुराथ, 18/202। 2. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-ईदैन, मतबुआ मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/115। 3. बहरुर राइक, बाब अल-ईदैन, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/160। 4. बहरुर राइक, बाब अल-ईदैन, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/160।

पृष्ठ 375 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

رواه عنه عبدالرزاق في مصنفه انه رضی اللہ تعالی عنه مر برجل لایتم رکوعا ولا سجودا فقال شیئ خیر من لا شیئ -1- | حضرت عبدالرزاق رضی اللہ تعالٰی عنہ سے امام عبدالرزاق نے اپنی مصنف میں روایت کیا کہ آپ رضی اللہ تعالٰی عنہ ایک ایسے شخص کے پاس سے گزرے جو نہ نماز کا رکوع صحیح ادا کر رہا تھا نہ سجود، تو آپ نے فرمایا: کچھ ہونا بالکل نہ ہونے سے بہتر ہوتا ہے۔ (ت)

امیر المومنین مولی علی کرم اللہ وجہہ الکریم نے ایک شخص کو بعد نماز عید نفل پڑھتے دیکھا حالانکہ بعد عید نفل مکروہ ہیں، کسی نے عرض کیا: یا امیر المومنین! آپ نہیں منع کرتے۔ فرمایا:

اخاف ان ادخل تحت الوعید قال اللہ تعالی اَرَءَیْتَ الَّذِي یَنْهٰی عَبْدًا إِذَا صَلّٰی -2- ذکره في الدر المختار۔ | میں وعید میں داخل ہونے سے ڈرتا ہوں، اللہ تعالٰی فرماتا ہے: کیا تو نے اسے نہیں دیکھا جو منع کرتا ہے بندہ کو جب وہ نماز پڑھے، اسے در مختار میں ذکر کیا گیا۔

اسی سے بحر الرائق میں ہے: (هذا للخواص) اما العوام فلا یمنعون من تکبیر ولا تنفل اصلا لقلة رغبتهم في الخیرات -3- | یہ خواص کا معاملہ ہے، باقی عوام کو تکبیرات کہنے اور نوافل پڑھنے سے بالکل منع نہیں کیا کرتے، کیونکہ انہیں نیکیوں کا بہت کم شوق ہوتا ہے۔ (ت)

کتاب التجنیس والمزید پھر بحر الرائق پھر ردالمختار میں ہے: سئل شمس الائمة الحلواني ان کسالی العوام یصلون الفجر عند طلوع الشمس افتزجرهم عن ذلك قال لا لانهم اذا منعوا عن ذلك ترکوها اصلا واداؤها مع تجویز اهل الحدیث لها اولی من ترکها اصلا -4- | شمس الائمہ حلوانی سے سوال ہوا کہ عوام سستی کرتے ہوئے طلوع شمس کے وقت نماز فجر ادا کرتے ہیں کیا ہم انہیں زجر و توبیخ

کریں؟ فرمایا: ایسا نہ کرو کیونکہ اگر تم اس سے ان کو روکو گے تو نماز بالکل ترک کردیں گے نماز کا ادا کر لینا چھوڑ دینے سے بہتر ہے اور محدثین اسے جائز بھی سمجھتے ہیں۔ (ت)

1 کنز العمال بحوالہ عبدالرزاق ذیل الصلوۃ حدیث ۲۲۵۵۰ مطبوعہ مکتبۃ التراث ۱۸/ ۲۰۲ 2 در مختار ، باب العیدین ، مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۵ 3 بحر الرائق باب العیدین مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۶۰ 4 بحر الرائق باب العیدین مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۶۰

Fatawa Rizvia, Volume 8

In Durr al-Mukhtar, it is stated:

(Arabic Text)	(Urdu Translation Provided in Text)
No prayer is permissible at all with the sunrise except for the commoners, so they are not prevented from performing it because they would [otherwise] abandon it. Performing an act that is permissible according to some is better than abandoning it, as in Al-Qunyah and others[1]. - (Summarized)	No prayer is permissible at the time of sunrise except for the common people, whom the jurists have not stopped from praying, otherwise they would abandon it completely. Every action whose performance is permissible according to some is better to perform than to abandon, as mentioned in Qunyah etc. (T)

In Radd al-Muhtar, it is stated:

(Arabic Text)	(Urdu Translation Provided in Text)
His statement 'so they are not prevented' indicates that the exception is for 'prevention', not the ruling of invalidity according to us. Regarding his statement 'as in Al-Qunyah', the author of Al-Musaffa attributed it to Imam Hamid al-Din from his teacher Imam al-Mahbubi and to Shams al-A'imma al-Halwani, and it is attributed in Al-Qunyah to al-Halwani and al-Nasafi[2]. - (Summarized)	The statement 'the common people should not be stopped' indicates that the exception is for 'not stopping', not that there is no ruling of invalidity according to us. Regarding the statement 'as in Qunyah', the author of Musaffa has attributed it to Imam Hameed-ud-Din, who narrated it from his teacher Imam Mahbubi, and it is also attributed to Shams-ul-A'imma Halwani, and in Qunyah, it is attributed to both Halwani and Nasafi. (T)

Yes, when a question is asked, the answer will be the one that is according to our own school of thought. Praise be to Allah, this is for the common people who are like cattle. However, those who call themselves scholars but cast aside the school of the Imam, rather the school of all Hanafi Imams, turn their backs on the corrections, preferences, and fatwas of the majority of Imams, and on the basis of a rare, retracted, and incorrect narration, issue fatwas for establishing Friday prayer in those ignorant villages—they are certainly guilty of opposing the school and are responsible for the sins of those ignorant people. We ask Allah for forgiveness and well-being (T). And Allah Almighty knows best.

Problem 1328: From Madrasa Islamia Amroha, sent by Maulvi Abdul Shakoor Sahib Arkani, 13 Muharram 1323 AH. What do the scholars of religion say in this matter: in a settlement where there are nearly three to four hundred responsible Muslim men and its...

---

1. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Salat, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/61.
2. Radd al-Muhtar, Kitab al-Salat, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/273.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

दुर्र अल-मुख्तार में है:

(अरबी पाठ)

सूर्योदय के समय कोई भी नमाज़ जायज़ नहीं है सिवाय आम लोगों के, जिन्हें नमाज़ पढ़ने से नहीं रोका जाना चाहिए क्योंकि वे इसे पूरी तरह से छोड़ देंगे। वह कार्य जिसकी अदायगी कुछ के अनुसार जायज़ हो, उसे करना छोड़ने से बेहतर है जैसा कि 'कुन्या' आदि में है।[1]- (संक्षिप्त)

(ग्रंथ में दी गई उर्दू व्याख्या का हिंदी अनुवाद)

सूर्योदय के समय कोई नमाज़ जायज़ नहीं है मगर आम लोगों को नमाज़ पढ़ने से फ़कीहों ने नहीं रोका वरना वे बिल्कुल छोड़ देंगे, हर वह अमल जिसकी अदायगी कुछ के नज़दीक जायज़ हो उसका बजा लाना तर्क करने (छोड़ने) से बेहतर है जैसा कि कुन्या वगैरह में है। (त)

रद्द अल-मुह्तार में है:

(अरबी पाठ)

उनका कथन 'अतः उन्हें न रोका जाए' यह दर्शाता है कि अपवाद 'रोकने' के लिए है, न कि हमारे अनुसार अमान्यता के आदेश के लिए। उनके कथन 'जैसा कि कुन्या में है' के संबंध में, मुसफ्फ़ा के लेखक ने इसे इमाम हमीद अल-दीन की ओर प्रेरित किया है जिन्होंने अपने गुरु इमाम अल-महबूबी और शम्स अल-अइम्मा अल-हलवानी से वर्णन किया है, और कुन्या में इसे हलवानी और नसफ़ी दोनों की ओर प्रेरित किया गया है।[2]- (संक्षिप्त)

(ग्रंथ में दी गई उर्दू व्याख्या का हिंदी अनुवाद)

कौल (कथन) 'عوام کو منع نہ کیا جائے' (आम लोगों को न रोका जाए) बता रहा है कि अपवाद 'न रोकने का' है न कि यह कि हमारे नज़दीक अदम-ए-सेहत (अमान्यता) का हुक्म नहीं है। कौल 'جیسا کہ قنیہ میں ہے' (जैसा कि कुन्या में है), साहिब-ए-मुसफ़्फ़ा ने इसकी निस्बत इमाम हमीद-उद-दीन की तरफ़ की है और उन्होंने अपने शैख़ इमाम महबूबी से बयान किया है और इसकी निस्बत शम्स-उल-अइम्मा हलवानी की तरफ़ की है और कुन्या में इसकी निस्बत हलवानी और नसफ़ी दोनों की तरफ़ की है। (त)

हाँ, जब सवाल किया जाए तो जवाब में वही कहा जाएगा जो अपना मज़हब (संप्रदाय) है। अल्हम्दुलिल्लाह, यह उन आम लोगों के लिए है जो मवेशियों के समान हैं। अलबत्ता वे जो आलिम कहलाने वाले हैं मगर इमाम के मज़हब बल्कि जुमला (समस्त) हनफ़ी इमामों के मज़हब को पस-ए-पुश्त (पीछे) डालते हैं, जमहीर-ए-अइम्मा (बहुमत इमामों) की तसहीहात (सुधारों), तरजीह

(प्राथमिकता) और फ़तवे को पीठ देते हैं और एक नादिर (दुर्लभ), मरजूआ (वापस ली गई) और ग़ैर-सही रिवायत की बिना पर उन जाहिल बस्तियों में जुमा कायम करने का फ़तवा देते हैं—वे ज़रूर मुख़ालफ़त-ए-मज़हब के मुर्तकिब (दोषी) हैं और उन जाहिलों के गुनाह के ज़िम्मेदार हैं। हम अल्लाह तआला से अफ़ू व आफ़ियत का सवाल करते हैं (त)। वल्लाह तआला आलम (और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है)।

मसला १३२८: मदरसा इस्लामिया अमरोहा से, मुरसला (प्रेषक) मौलवी अब्दुल शकूर साहिब अरकानी, १३ मुहर्रम १३२१ हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलेमा-ए-दीन इस मसले में कि एक बस्ती में करीब तीन-चार सौ मुसलमान मर्द मुकल्लफ़ (उत्तरदायी) और इसके..

---

1. दुर्र अल-मुख्तार, किताबुस-सलात, मुद्रित मुतबा मुजतबाई दिल्ली १/ ६१
2. रद्द अल-मुह्तार, किताबुस-सलात, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बानी मिस्र १/ २७३

पृष्ठ ३७६ / ६७३

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

در مختار میں ہے:

| لا یجوز صلوۃ مطلقاً مع شروق الا لعوام فلا یمنعون من فعلھا لانھم یترکونھا والاداء الجائز عند البعض اولی من الترك كما في القنية وغيرها[1]- (ملخصاً) | طلوعِ آفتاب کے وقت کوئی نماز جائز نہیں مگر عوام کو نماز پڑھنے سے فقہاء نے نہیں روکا ورنہ وہ بالکل ترک کردیں گے، ہر وہ عمل جس کی ادا بعض کے نزدیک جائز ہو اس کا بجالانا ترک سے بہتر ہے جیسا کہ قنیہ وغیرہ میں ہے۔ (ت) |

رد المحتار میں ہے:

| قولہ فلا یمنعون افادان المستثنی المنع لا الحکم بعدم الصحۃ عندنا قولہ کما في القنية وعزاہ صاحب المصفی الی الامام حمید الدین عن شیخہ الامام المحبوبی والی شمس الائمۃ الحلوانی وعزاہ في القنية الی الحلوانی والنسفی[2] -(ملخصاً) | قولہ "عوام کو منع نہ کیا جائے" بتلا رہا ہے کہ استثناء "نہ روکنے کا" ہے نہ یہ کہ ہمارے نزدیک عدمِ صحت کا حکم نہیں ہے قولہ "جیسا کہ قنیہ میں ہے" صاحب مصفی نے اس کی نسبت امام حمید الدین کی طرف کی ہے اور انہوں نے اپنے شیخ امام محبوبی سے بیان کیا ہے اور اس کی نسبت شمس الائمہ حلوانی کی طرف کی ہے اور قنیہ میں اس کی نسبت حلوانی اور نسفی دونوں کی طرف کی ہے۔ (ت) |

ہاں جب سوال کیا جائے تو جواب میں وہی کہا جائے گا جو اپنا مذہب ہے وللہ الحمد یہ عوام کالانعام کے لئے ہے البتہ وہ عالم کہلانے والے کہ مذہبِ امام بلکہ مذہبِ جملہ ائمہ حنفیہ کو پسِ پشت ڈالتے تصحیحات جماہیر ائمہ ترجیح و فتوٰی کو پیٹھ دیتے اور ایک روایت نادرہ مرجوعہ عنہا غیر صحیح

کی بنا پر ان جہال کو دہ میں جمعہ قائم کرنے کا فتویٰ دیتے ہیں یہ ضرور مخالفتِ مذہب کے مرتکب اور ان جہلاء کے گناہ کے ذمہ دار ہیں نسأل اللہ العفو والعافیۃ (ہم اللہ تعالی سے عفو و عافیت کا سوال کرتے ہیں ت) واللہ تعالی اعلم

مسئلہ ۱۳۲۸: از مدرسہ اسلامیہ امر وہہ مرسلہ مولوی عبدالشکور صاحب ارکانی ۱۳ محرم ۱۳۲۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک بستی میں قریب تین چار سو مسلمان مرد مکلف اور اس کے

---

1 در مختار کتاب الصلوٰۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۶۱ 2 رد المحتار کتاب الصلوٰۃ مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱/ ۲۷۳

Fatawa Razawiyya Volume 8

Query: There are approximately so many resident men in this settlement. There is a munsifi (court), a police station, a post office, a hospital, and a market. Now, is this a city (Misr) or a village (Qariya)? Is Friday prayer (Jumu'ah) obligatory for the residents of this settlement or not? If it is not obligatory, will performing Jumu'ah here discharge the obligation of the Zuhr prayer from their responsibility or not? In the settlements of our country Burma, in some places, there are a thousand to two thousand accountable (mukallaf) Muslim men resident; such settlements are few. In the lowest grade, some settlements have ten to twenty accountable Muslim men resident. However, there are many settlements with one, two, four, or five hundred accountable men. In some settlements, seven to eight hundred accountable men reside. Now, can any of these settlements be called a city or not? And if we consider them all villages, then is Jumu'ah and the two Eids obligatory or necessary in any large village or not? And if it is not obligatory, if someone performs Jumu'ah in any of these settlements, will the obligation of Zuhr prayer be discharged or not? If you state that Jumu'ah is correct in a large village, which settlement will be called large? Please explain this. In some settlements, there are several parts separated by a mile or a mile and a half for agriculture etc., and each part has a distinct name among themselves, but in the surrounding areas, they are known by a single name. Now, should all of them be considered one large settlement together, or is the ruling for each distinct? Provide a detailed and reasoned answer as far as possible to guide us blind ones.

Answer: For the obligation, validity, and permissibility of Jumu'ah, being an Islamic city is a condition. A place that is not a settlement, like a forest, sea, or mountain; or is a settlement but not a city, like villages; or is a city but not Islamic, like the cities of Russia or France—in these, Jumu'ah is neither obligatory, nor valid, nor permissible. Instead, it is prohibited, void, and a sin. By performing it, the obligation of Zuhr prayer will not be discharged. To be a city, it is necessary to have multiple streets and multiple permanent markets. It should be a 'Pargana' (administrative division) to which villages are associated, such as "village such-and-such belongs to the Pargana of city such-and-such," and it must have a ruler or someone with the authority to decide cases appointed by the state. Both these things are usually inseparable. A territory the state declares as a Pargana surely has a ruler, at least a Munsif or a Tehsildar, and where the state establishes a court, it certainly designates it as a district or at least a Pargana. Usually, the first two conditions (markets and streets)

are also essential to these two (court and administrative status). Where there is a Pargana and a court is established, there are certainly multiple markets and multiple streets.

Arabic Text in Box: ولا عكس فقد تتعدد ولا حاكم ولا رساتيق فذكر الاولين لا يغنى عن الاخيرين بخلاف الاخيرين ففيهما الكفاية ولذا انما بنى الامر عليهما في اقرب الاقاويل الى الصواب۔

Explanation of Arabic Text: It's not the reverse (meaning it's not necessary for a place with markets to have a court). Sometimes there are multiple streets and markets, but no ruler and no associated villages. So, mentioning the first two does not suffice for the last two. Conversely, mentioning the last two is sufficient. That is why, in the most correct opinion, the matter has been based on these two. -(T)

फ़तावा रज़विया खंड 8

प्रश्न: इस बस्ती में लगभग इतने पुरुष निवासी हैं, यहाँ मुंसिफी (न्यायालय), थाना, डाकघर, अस्पताल और बाज़ार भी हैं। अब यह शहर (मिस्र) है या गाँव (क़रिया)? क्या इस बस्ती वालों पर जुमा (शुक्रवार की नमाज़) अनिवार्य है या नहीं? यदि अनिवार्य नहीं है, तो यहाँ जुमा अदा करने से ज़ुहर की नमाज़ का दायित्व समाप्त होगा या नहीं? हमारे देश बर्मा की आबादी में कहीं-कहीं एक हज़ार से दो हज़ार तक मुकल्लफ़ (उत्तरदायी) मुस्लिम पुरुष निवासी हैं, ऐसी बस्तियाँ कम हैं। निम्नतम श्रेणी में कुछ बस्तियों में दस-बीस मुकल्लफ़ मुस्लिम पुरुष निवासी हैं। हालाँकि, जिन बस्तियों में सौ, दो सौ, चार सौ, पाँच सौ मुकल्लफ़ पुरुष हैं, वे बहुत सारी हैं। कुछ बस्तियों में सात-आठ सौ मुकल्लफ़ पुरुष निवास करते हैं। अब, क्या इनमें से किसी बस्ती को शहर कहा जा सकता है या नहीं? और यदि सभी को गाँव मानेंगे, तो क्या किसी बड़े गाँव में भी जुमा और ईदैन फ़र्ज़ या वाजिब है या नहीं? और यदि वाजिब नहीं है, और कोई इन बस्तियों में से किसी में जुमा अदा करे, तो क्या ज़ुहर का दायित्व समाप्त होगा या नहीं? यदि आप बड़े गाँव में जुमा सही बताते हैं, तो कौन सी बस्ती बड़ी कहलाएगी? इसकी व्याख्या फरमा दें। जिन बस्तियों में कई हिस्से हैं जो केवल कृषि आदि के लिए एक-डेढ़ मील की दूरी पर बसे हैं, और प्रत्येक का नाम आपस में अलग-अलग है, लेकिन आसपास के क्षेत्रों में एक ही नाम से प्रसिद्ध हैं। अब, क्या उन सबको मिलाकर एक बड़ी बस्ती माना जाएगा या प्रत्येक का हुक्म अलग-अलग है? यथासंभव विस्तृत और तर्कपूर्ण उत्तर देकर हम नेत्रहीनों का मार्गदर्शन करें।

उत्तर: जुमा की फ़र्ज़ियत, सेहत (वैधता) और जवाज़ (अनुमति) के लिए इस्लामी शहर होना शर्त है। जो स्थान बस्ती नहीं है, जैसे जंगल, समुद्र या पहाड़; या बस्ती है लेकिन शहर नहीं है, जैसे देहात; या शहर है लेकिन इस्लामी नहीं है, जैसे रूस या फ्रांस के शहर—इनमें जुमा न तो फ़र्ज़ है, न सही, न जायज़, बल्कि निषिद्ध, शून्य और पाप है। इसे पढ़ने से ज़ुहर की फ़र्ज़ियत समाप्त नहीं होगी। शहर होने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें अनेक गलियाँ और अनेक स्थायी बाज़ार हों। वह परगना (प्रशासनिक क्षेत्र) हो जिससे गाँव संबंधित हों, जैसे "फलां-फलां गाँव फलां शहर के परगना में हैं," और उसमें राज्य की ओर से कोई हाकिम (शासक) या मुकदमों का फैसला करने का अधिकार रखने वाला व्यक्ति हो। ये दोनों बातें आमतौर पर एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। राज्य जिसे परगना घोषित करता है, उसमें निश्चित रूप से कोई हाकिम, कम से कम मुंसिफ या तहसीलदार होता है, और जहाँ राज्य कोई कचहरी स्थापित करता है, उसे निश्चित रूप से ज़िला या कम से कम परगना बताता है। आमतौर पर पहली दो बातें (बाज़ार और गलियाँ) भी इन दो (कचहरी और प्रशासनिक स्थिति) के लिए

आवश्यक हैं। जहाँ परगना होता है और जहाँ कचहरी स्थापित होती है, वहाँ निश्चित रूप से अनेक बाज़ार और अनेक गलियाँ होती हैं।

बॉक्स में अरबी पाठ: ولا عكس فقد تتعدد ولا حاكم ولا رساتيق فذكر الاولين لا يغنى عن الاخيرين بخلاف الاخيرين ففيهما الكفاية ولذا انما بنى الامر عليهما في اقرب الاقاويل الى الصواب۔

अरबी पाठ की व्याख्या: इसका विपरीत नहीं है (अर्थात जहाँ बाज़ार हों वहाँ कचहरी का होना आवश्यक नहीं है)। कभी-कभी गलियाँ और बाज़ार अनेक होते हैं, लेकिन हाकिम और संबंधित देहात नहीं होते, तो पहले दो का उल्लेख अंतिम दो के उल्लेख से पर्याप्त नहीं होता। इसके विपरीत अंतिम दो का उल्लेख पर्याप्त है। इसीलिए सत्यता के सबसे करीब मत में मामले की बुनियाद इन्हीं दोनों पर रखी गई है। -(त)

पृष्ठ 377/673

قریب قریب اتنے مرد مقیم ہیں اس بستی میں منصفی تھانہ ڈاک خانہ شفا خانہ بازار بھی ہیں اب یہ مصر ہے یا قریہ؟ اس بستی والے پر جمعہ واجب ہے یا نہیں؟ اگر واجب نہیں تو یہاں جمعہ ادا کرنے سے صلوٰۃ ظہر ذمہ سے ساقط ہوگی یا نہیں؟ ہمارے ملک برہما کی آبادی میں کہیں کہیں تو مسلمان مرد مکلف ہزار دو ہزار تلک مقیم ہیں ایسی بستی کم ہے اور ادنیٰ درجے میں بعض بستیوں میں دس بیس مرد مسلمان مکلف مقیم ہیں البتہ جن بستیوں میں سو دوسو چار پانچ سو مرد مکلف ہیں بہت ساری ہیں بعض بستیوں میں سات آٹھ سو مکلف مقیم ہیں، اب ان آبادیوں میں سے کوئی شہر کہلا سکتی ہے یا نہیں؟ اور اگر سب کو گاؤں مانیں گے تو کوئی بڑے گاؤں میں بھی جمعہ اور عیدین فرض یا واجب ہے یا نہیں؟ اور اگر واجب نہیں تو ان بستیوں میں سے کسی میں جمعہ ادا کرے تو صلوٰۃ ظہر ذمہ سے ساقط ہوگی یا نہیں؟ اگر آپ بڑے گاؤں میں جمعہ درست بتائیں تو ان بستیوں میں کون سی بستی بڑی کہلائے گی؟ اس کی تشریح فرمادیں، جن آبادیوں میں کئی ایک حصے ہیں فقط زراعت وغیرہ کی میل ڈیڑھ میل کے فاصلے پر ایک دوسرے سے بساہے ہر ایک کا نام بھی آپس میں جدا گانہ ہے مگر اطراف میں ایک ہی نام مشہور ہے اب کیا سب کو ملا کر ایک بڑی بستی ماننا پڑے گی یا ہر ایک کا حکم جدا گانہ ہے حتی الامکان جواب مفصل اور مدلل سے ہم نابیناؤں کو ہدایت فرمائیں۔

الجواب: فرضیت و صحت و جواز جمعہ سب کے لئے اسلامی شہر ہونا شرط ہے، جو جگہ بستی نہیں جیسے بن سمندر یا پہاڑ، یا بستی ہے مگر شہر نہیں جیسے دیہات، یا شہر ہے مگر اسلامی نہیں جیسے روس فرانس کے بلاد، ان میں جمعہ فرض ہے نہ صحیح نہ جائز بلکہ ممنوع و باطل و گناہ ہے اس کے پڑھنے سے فرض ظہر ذمہ سے ساقط نہ ہوگا، شہر ہونے کے لئے یہ چاہئے کہ

اس میں متعدد کوچے متعدد دائمی بازار ہوں، وہ پرگنہ ہو کہ اس کے متعلق دیہات گنے جاتے ہوں کہ موضع فلاں فلاں وفلاں پرگنہ شہر فلاں اور اس میں کوئی حاکم یا فیصلہ مقدمات کا اختیار من جانب سلطنت رکھتا ہو دونوں باتیں عادۃً متلازم ہیں سلطنت جسے پرگنہ قرار دیتی ہے ضرور اس میں کوئی حاکم لاءقل منصف یا تحصیلدار رکھتی ہے اور جہاں سلطنت کوئی کچہری قائم کرتی ہے اسے ضرور ضلع یا کم از کم پرگنہ بتاتی ہے اور عادۃً پہلی دو باتیں بھی ان دو کو لازم ہیں، جو پرگنہ ہوتا ہے جہاں کچہری مقرر ہوتی ہے وہاں ضرور متعدد بازار متعدد کوچے ہوتے ہیں،

ولا عکس فقد تتعدد ولا حاکم ولا رساتیق فذکر الاولین لا یغنی عن الاخیرین بخلاف الاخیرین ففیھما الکفایۃ ولذا انما بنی الامر علیھما في اقرب الاقاویل الی الصواب۔

اس کا عکس نہیں (یعنی جہاں بازار ہوں وہاں کچہری کا ہونا ضروری نہیں) اور کبھی کوچے بازار متعدد ہوتے ہیں مگر حاکم اور متعلقہ دیہات نہیں ہوتے تو پہلے دو کا ذکر آخری دو کے ذکر سے کفایت نہیں کرتا برخلاف آخری دونوں کا ذکر وہ کفایت کرتا ہے اسی لئے صحت کے قریب ترین قول میں معاملہ کی بنا ان دونوں پر کی گئی ہے -(ت)

Fatawa Rizwia - Volume Eight

In Fatawa Ghiyathiya then Ghuniya Sharh Munya, it is stated:

If Friday prayer is performed in a village without a central mosque, and the village is large with surrounding villages and has a ruler or governor, the Friday prayer is valid whether they built a mosque or not. This is the saying of Abu al-Qasim al-Saffar and it is the closest of sayings to what is correct. | If Friday prayer was performed in a village without a congregational mosque, even though that village was large and there were several surrounding villages, and there was a ruler and governor there, then Friday prayer is permissible whether they build a mosque or not. This is the opinion of Sheikh Abu al-Qasim al-Saffar, and this is closer to the correct path among all the opinions. (T)

In Ghuniya, after quoting this, he said:

And this is not far from what preceded it, and the congregational mosque is not a condition. End. And by 'what preceded it' he meant what was previously cited from Tuhfat al-Fuqaha by Imam Alauddin al-Samarqandi from Imam al-A'zam (may Allah be pleased with him): that it is a large town with streets and markets, having rural districts, and a governor. It is said in Tuhfa: 'This is the most correct.' End. Indeed, it was not far from it because, as we previously stated, streets and markets are customarily necessary for the two aforementioned matters, as stated in Ghuniya as well after quoting what is in Tuhfa. However, the author of Hidayah omitted the mention of streets and rural districts based on the prevailing reality that the ruler and judge are characterized by the ability to implement rulings and establish penal punishments, and this does not occur except in a city. | This statement is not far from the preceding statement, and a congregational mosque is not a condition for Friday prayer. End. And by the preceding statement is meant what Imam Alauddin Samarqandi wrote in Tuhfat al-Fuqaha with reference to Imam al-A'zam (may Allah be pleased with him) that it is a place which is a very large city, having streets and markets, and related villages, and there is some ruler in it. It is said in Tuhfa: 'This is the most correct.' The reason for this statement not being far from the preceding statement is that usually streets and markets are necessary for both mentioned matters, as is also said in Ghuniya after quoting the text of Quniya. However, the author of Hidayah omitted the mention of streets and villages based on the fact that it is mostly the case that those rulers and judges whose status is to implement rulings and establish penal punishments...

1 Ghunyat al-Mustamli, Chapter on Friday Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 551 2 Ghunyat al-Mustamli, Chapter on Friday Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 551 3 Ghunyat al-Mustamli, Chapter on Friday Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 550

फ़तावा रज़विया - जिल्द अष्टम

फ़तावा गयासिया फिर गुनिया शरह मुनिया में है:

अगर जुमा की नमाज़ बिना जामा मस्जिद के किसी बस्ती में पढ़ी जाए, जबकि वह बस्ती बड़ी हो और उसके चारों ओर कई गाँव हों और वहाँ कोई शासक या हाकिम हो, तो जुमा जाइज़ है चाहे वे मस्जिद बनाएँ या न बनाएँ। यही अबुल क़ासिम अस्-सफ़्फ़ार का कथन है और यह सभी कथनों में सत्य के सबसे निकट है। | अगर जुमा बग़ैर जामा मस्जिद के क़रिया में पढ़ लिया हालाँकि वो क़रिया बड़ा था और उस के गिर्द मुतअद्दिद देहात थे और वहाँ वाली व हाकिम भी था तो जुमा जाइज़ है ख़्वाह वो मस्जिद बनाएँ या ना बनाएँ शैख़ अबुल क़ासिम सफ़्फ़ार का यही क़ौल है और ये तमाम अक़्वाल में से सवाब के ज़्यादा क़रीब है। (त)

गुनिया में इसे नक़ल करके फ़रमाया:

और यह अपने से पहले वाले (कथन) से दूर नहीं है और जामा मस्जिद शर्त नहीं है। इति। और 'पहले वाले' से मुराद वह है जो इमाम अलाउद्दीन अस्-समरकन्दी की 'तुहफ़तुल फ़ुक़हा' से इमाम-ए-आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के हवाले से गुज़रा कि: वह एक बड़ा शहर हो जिसमें गलियाँ और बाज़ार हों, और उसके देहात हों और उसमें कोई हाकिम हो। 'तुहफ़ा' में कहा कि यही सबसे सही है। इति। और यह उससे दूर नहीं है क्योंकि, जैसा कि हमने पहले ज़िक्र किया, गलियाँ और बाज़ार उन दो ज़िक्र किए गए मामलों के लिए आदतन ज़रूरी हैं, जैसा कि 'गुनिया' में भी 'तुहफ़ा' की इबारत नक़ल करने के बाद कहा गया। अलबत्ता 'हिदाया' के लेखक ने गलियों और देहात का ज़िक्र छोड़ दिया इस बिना पर कि अक्सर यही होता है कि वह अमीर और क़ाज़ी जिसकी शान हुक्मों को लागू करना और हुदूद (दंड) क़ायम करना हो, वह नहीं होता मगर किसी शहर में। | ये क़ौल अपने माक़बल क़ौल से दूर नहीं और मस्जिद जामा होना जुमा के लिये शर्त नहीं इन्तहा और माक़बल क़ौल से वही मुराद है जो इमाम अलाउद्दीन समरकन्दी ने तुहफ़तुल फ़ुक़हा में इमाम-ए-आज़म रज़ी अल्लाह तआला अन्हु के हवाले से लिखा कि वो मुक़ाम शहर है जो निहायत बड़ा हो, उस में कूचे बाज़ार हों और उस से मुतअल्लक़ा देहात हों और उस में कोई वाली हो, तुहफ़ा में कहा यही असह् है अह इस क़ौल की माक़बल क़ौल से बईद ना होने की वजह ये है कि आदतन कूचे और बाज़ार मज़कूरा दोनों उमूर को लाज़िम होते हैं जैसा कि गुनिया में भी क़निया की इबारत नक़ल करने के बाद कहा अलबत्ता साहब-ए-हिदाया ने कूचे और देहात के ज़िक्र को तर्क कर दिया इस बिना पर कि

अक्सर यही होता है कि वो अमीर और क़ाज़ी जो अहकाम के निफ़ाज़ और इक़ामत-ए-हुदूद की शान...

1 गुनिया अल-मुस्तमली, फ़स्ल फ़ी सलातुल जुमा, मत्तबूआ सुहैल एकेडमी लाहौर, सफ़्हा 551 2 गुनिया अल-मुस्तमली, फ़स्ल फ़ी सलातुल जुमा, मत्तबूआ सुहैल एकेडमी लाहौर, सफ़्हा 551 3 गुनिया अल-मुस्तमली, फ़स्ल फ़ी सलातुल जुमा, मत्तबूआ सुहैल एकेडमी लाहौर, सफ़्हा 550

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

فتاوٰی غیاثیہ پھر غنیہ شرح منیہ میں ہے:

لوصلي الجمعة في قرية بغير مسجد جامع و القرية كبيرة لها قرى وفيها وال حاكم جازت الجمعة بنوا المسجد اولم يبنوا و هو قول ابى القاسم الصفار وهذا اقرب الاقاويل الى الصواب | اگر جمعہ بغیر جامع مسجد کے قریہ میں پڑھ لیا حالانکہ وہ قریہ بڑا تھا اور اس کے ارد گرد متعدد دیہات تھے اور وہاں والی وحاکم بھی تھا تو جمعہ جائز ہے خواہ وہ مسجد بنائیں یا نہ بنائیں، شیخ ابوالقاسم الصفار کا یہی قول ہے اور یہ تمام اقوال میں سے صواب کے زیادہ قریب ہے۔(ت)

غنیہ میں اسے نقل کرکے فرمایا:

وهو ليس ببعيد مما قبله والمسجد الجامع ليس بشرط انتهى واراد بما قبله ما قدم عن تحفة الفقهاء للامام علاء الدين السمرقندى عن الامام الاعظم رضى الله تعالى عنه انه بلدة كبيرة فيها سكك واسواق ولها رساتيق وفيها وال قال فى التحفة هذا هو الاصح اه وانما لم يكن بعيدا منه لما قدمنا ان السكك والاسواق تلزم عادة للامرين المذكورين كما قال فى الغنية ايضاً بعد نقل مافى التحفة ، الا ان صاحب الهداية ترك ذكر السكك والرساتيق بناء على الغالب ان الامير والقاضي شانه القدرة على تنفيذ الاحكام واقامة الحدود ولا يكون الا فى بلد | یہ قول اپنے ماقبل قول سے دور نہیں اور مسجد جامع ہونا جمعہ کے لئے شرط نہیں انتہی اور ماقبل قول سے وہی مراد ہے جو امام علاء الدین سمرقندی نے تحفۃ الفقہاء میں امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کے حوالے سے لکھا کہ وہ مقام شہر ہے جو نہایت بڑا ہو، اس میں کوچے بازار ہوں اور اس سے متعلقہ دیہات ہوں اور اس میں کوئی والی ہو، تحفہ میں کہا یہی اصح ہے اھ اس قول کی ماقبل قول سے بعید نہ ہونے کی وجہ یہ ہے کہ عادۃً کوچے اور بازار مذکورہ

دونوں امور کو لازم ہوتے ہیں جیسا کہ غنیہ میں بھی قنیہ کی عبارت نقل کرنے کے بعد کہا البتہ صاحب ہدایہ نے کوچے اور دیہات کے ذکر کو ترک کردیا اس بناء پر کہ اکثر یہی ہوتا ہے کہ وہ امیر اور قاضی جو احکام کے نفاذ اور اقامتِ حدود کی شان

1 غنیہ المستملی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص 551 2 غنیہ المستملی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص 551 3 غنیہ المستملی فصل فی صلوۃ الجمعہ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص 550

Fatawa Rizwia Volume 8

[Arabic Box Text]: Likewise, he said: In short, the most correct of definitions is what is mentioned in "Al-Tuhfa," because it applies to Makkah and Madinah, and they are the primary reference for considering a place as a metropolis (Misr). (End)

[Urdu Box Text]: They are kept in such a city. Then he said: the most correct definition is what is in "Tuhfa," because it holds true for each of Makkah al-Mukarramah and Madinah al-Tayyibah, and they hold the status of the origin/standard regarding cities. (End)

And for a city to be Islamic, it is necessary that either currently it has a sovereign Islamic government, as, by the grace of Allah the Almighty, are the great Ottoman Empire and the God-given state of Afghanistan—may Allah the Almighty protect both from the passage of time—or it is subordinate to some infidel (non-Muslim) rule, as has been the case with the Sultanate of Bukhara for a few days, and Allah is sufficient for us and He is the best Disposer of affairs. And if not currently [under Islamic rule], then two things are necessary: first, it must have previously been an Islamic state; and second, since it came under non-Muslim control, Islamic rituals like Friday prayers, congregational prayers, the call to prayer (Adhan), and Iqamah, etc., all or some, have continued to be practiced therein consistently. Places where there was never an Islamic state, nor is there one now, cannot be Islamic cities, nor are Friday and Eid prayers permissible there, even if the non-Muslim rulers there do not prevent Islamic rituals, even if mosques are plentiful there, and Adhan and congregational prayers are held openly, and even if the common people, out of their ignorance, perform Friday and Eid prayers without hindrance. Such is the case with Russia, France, Germany, Portugal, etc., in fact, perhaps all European states. Similarly, if there was previously an Islamic state, then non-Muslims dominated and, by implementing non-Islamic rituals, completely abolished all Islamic rituals, then that city would no longer remain Islamic. And until an Islamic state is re-established there, Friday and Eid prayers cannot be validly performed there, even if the dominant non-Muslims later allow Islamic rituals on their own, or if other non-Muslims seize the land from them and re-introduce Islamic rituals. This is because no non-Islamic city becomes Islamic merely by the practice of Islamic rituals. However, if a non-Muslim province of an Islamic state rebels and takes control of an Islamic city and completely abolishes Islamic rituals, but that province is surrounded by the Islamic state on all four sides, then that city will still remain an Islamic city. Although the non-Muslim abolished the

rituals of Islam completely, its dark state is merely temporary as it is surrounded by the Islamic state from four directions.

[Bottom Box Text]: "And these, by the praise of Allah the Almighty, are precious benefits..." By the grace of Allah the Almighty, these are extremely valuable benefits, as every person of understanding [would recognize].

[Footnote]: 1 Ghunyat al-Mustamli, Chapter on Friday Prayer, published by Suhail Academy Lahore, p. 551.

फ़तावा रज़विया खंड 8

[अरबी बॉक्स पाठ]: इसी प्रकार, उन्होंने कहा: संक्षेप में, सबसे सही परिभाषा वह है जो "अल-तोहफा" में वर्णित है, क्योंकि यह मक्का और मदीना पर लागू होती है, और वे किसी स्थान को महानगर (मिस्र) मानने के लिए मूल संदर्भ हैं। (समाप्त)

[उर्दू बॉक्स पाठ]: वे इसी तरह के शहर में रखे जाते हैं। फिर उन्होंने कहा: सबसे सही परिभाषा वह है जो "तोहफा" में है, क्योंकि यह मक्का अल-मुकर्रमा और मदीना अल-तैयबा में से प्रत्येक पर खरी उतरती है, और वे शहरों के संबंध में मूल का दर्जा रखते हैं। (समाप्त)

और किसी शहर के इस्लामी होने के लिए यह आवश्यक है कि या तो वर्तमान में उसमें एक संप्रभु इस्लामी शासन हो, जैसे अल्लाह सर्वशक्तिमान की कृपा से महान उस्मानी साम्राज्य और अफ़गानिस्तान का अल्लाह द्वारा प्रदत्त राज्य हैं—अल्लाह सर्वशक्तिमान उन दोनों की समय के थपेड़ों से रक्षा करे—या वह किसी कुफ़्र (गैर-मुस्लिम) शासन के अधीन हो, जैसा कि कुछ दिनों से बुखारा सल्तनत के साथ है, और अल्लाह हमारे लिए पर्याप्त है और वह सबसे अच्छा कार्यसाधक है। और यदि वर्तमान में [इस्लामी शासन के अधीन] नहीं है, तो दो बातें आवश्यक हैं: पहली यह कि पहले उसमें इस्लामी सल्तनत रही हो, दूसरी यह कि जब से वह काफ़िरों के कब्ज़े में आया है, इस्लामी रीति-रिवाज जैसे जुमे की नमाज़, जमात, अज़ान और इक़ामत आदि, सभी या कुछ, उसमें अब तक निरंतर जारी रहे हों। जहाँ कभी इस्लामी सल्तनत नहीं थी और न ही अब है, वे इस्लामी शहर नहीं हो सकते और न ही वहाँ जुमा और ईद की नमाज़ें जायज़ हैं, भले ही वहाँ के काफ़िर शासक इस्लामी रीति-रिवाजों को न रोकते हों, भले ही वहाँ मस्जिदों की भरमार हो, अज़ान और जमात खुलेआम होती हो, और भले ही आम लोग अपनी अज्ञानता के कारण बिना किसी बाधा के जुमा और ईद की नमाज़ अदा करते हों। जैसा कि रूस, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल आदि, बल्कि शायद सभी यूरोपीय राज्यों का यही हाल है। इसी तरह, यदि पहले इस्लामी सल्तनत थी, फिर काफ़िरों ने प्रभुत्व जमा लिया और कुफ़्र के रीति-रिवाजों को लागू करके इस्लाम के सभी रीति-रिवाजों को पूरी तरह से हटा दिया, तो अब वह शहर इस्लामी नहीं रहेगा। और जब तक वहाँ फिर से नए सिरे से इस्लामी सल्तनत स्थापित न हो जाए, वहाँ जुमा और ईद की नमाज़ें जायज़ नहीं हो सकतीं, भले ही प्रभुत्वशाली काफ़िर बाद में अपनी ओर से इस्लामी रीति-रिवाजों की अनुमति दे दें, या दूसरे काफ़िर उनसे वह ज़मीन छीनकर इस्लामी रीति-रिवाजों को फिर से लागू कर दें। क्योंकि कोई भी गैर-इस्लामी शहर केवल इस्लामी रीति-रिवाजों के पालन से इस्लामी नहीं बन जाता। हाँ, यदि किसी

इस्लामी सल्तनत के किसी काफ़िर प्रांत ने विद्रोह कर दिया और किसी इस्लामी शहर पर कब्ज़ा कर लिया और इस्लामी रीति-रिवाजों को पूरी तरह से हटा दिया, लेकिन वह प्रांत चारों तरफ से इस्लामी सल्तनत से घिरा हुआ है, तो वह शहर इस्लामी शहर ही रहेगा। हालाँकि काफ़िर ने इस्लाम के रीति-रिवाजों को पूरी तरह से हटा दिया है, लेकिन चारों दिशाओं से इस्लामी सल्तनत से घिरा होने के कारण उसकी यह अंधकारमय स्थिति केवल अस्थायी है।

[निचले बॉक्स का पाठ]: "और ये, अल्लाह सर्वशक्तिमान की प्रशंसा के साथ, अनमोल लाभ हैं..." अल्लाह सर्वशक्तिमान की कृपा से, ये अत्यंत मूल्यवान लाभ हैं, जैसा कि हर समझदार व्यक्ति [पहचान लेगा]।

[पाद टिप्पणी]: 1 गुन्यात अल-मुस्तमली, जुमे की नमाज़ का अध्याय, सुहैल अकादमी लाहौर द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 551।

पृष्ठ 379/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[Arabic Box Text]: كذلك قال فالحاصل ان اصح الحدود ماذكر في التحفة لصدقه على مكة والمدينة وهما الاصل في اعتبار المصرية اهـ

[Urdu Box Text]: رکھتے ہیں وہ اسی طرح کے شہر میں ہی ہوتے ہیں پھر کہا اصح تعریف وہی ہے جو تحفہ میں ہے کیونکہ مکہ المکرمہ اور مدینہ طیبہ میں سے ہر ایک پر صادق آرہی ہے اور وہ دونوں شہر کے حوالے سے اصل کا درجہ رکھتے ہیں اھ (ت)

اور شہر کے اسلامی ہونے کے لئے یہ ضرور ہے کہ یا تو فی الحال اُس میں سلطنتِ اسلام ہو خود مختار، جیسے بحمد اللہ تعالٰی سلطنتِ علیہ عالیہ عثمانیہ ودولتِ خدادادِ افغانستان حفظہما اللہ تعالٰی عن شہر ورالزمان یا کسی سلطنتِ کفر کی تابع جیسے اب چند روز سے سلطنتِ بخارا، وحسبنا اللہ ونعم الوکیل (ہمیں اللہ تعالٰی کافی ہے اور وہی سب سے بہتر کارساز ہے۔ ت) اور اگر فی الحال نہ ہو تو دو باتیں ضرور ہیں: ایک یہ کہ پہلے اُس میں سلطنتِ اسلامی رہی ہو، دوسرے یہ کہ جب سے قبضہ کافر میں آئی شعارِ اسلام مثل جمعہ وجماعت واذان و اقامت وغیر ہاگلا یا بعضا برابر اُس میں اب تک جاری رہی ہوں جہاں سلطنتِ اسلامی کبھی نہ تھی نہ اب ہے وہ اسلامی شہر نہیں ہو سکتے نہ وہاں جمعہ وعیدین جائز ہوں اگرچہ وہاں کے کافر سلاطین شعائرِ اسلامیہ کو نہ روکتے ہوں اگرچہ وہاں مساجد بکثرت ہوں اذان واقامت جماعت علی الاعلان ہوتی ہو اگرچہ عوام اپنے جہل کے باعث جمعہ و عیدین بلا مزاحمت ادا کرتے ہوں جیسے کہ روس فرانس و جرمن و پرتگال وغیرہا اکثر بلکہ شاید کل سلطنت ہائے یورپ کا یہی حال ہے ، یو نہی اگر پہلے سلطنت اسلامی تھی پھر کافر نے غلبہ کیا اور شعائرِ کفر جاری کر کے تمام شعائرِ اسلام یکسر اٹھادئے تو اب وہ شہر بھی اسلامی نہ رہے اور جب تک پھر از سر نو ان میں سلطنت اسلامی نہ ہو وہاں جمعہ

وعیدین جائز نہیں ہو سکتے اگرچہ کفار غلبہ یافتہ ممانعت کے بعد پھر بطور خود شعائرِ اسلام کی اجازت دے دیں خواہ ان کافروں سے دوسرے کافر چھین کر اجرائے شعائرِ اسلام کر دیں کہ کوئی غیر اسلامی شہر مجردِ جریانِ شعائرِ اسلام سے اسلامی نہیں ہو جاتا، ہاں اگر اسلامی سلطنت کے کسی کافر صوبہ نے بغاوت کر کے کسی اسلامی شہر پر تسلط کیا اور شعائرِ اسلام بالکل اٹھا دیئے مگر وہ صوبہ سے سلطنتِ اسلامیہ میں محصور ہے تو وہ شہر شہر اسلامی ہی رہے گا کہ اگرچہ کافر نے شعائرِ اسلام یکسر اٹھادئے مگر چار سمت سے سلطنتِ اسلامیہ میں محصور ہونے کے اُس کی یہ تاریک حالت محض عارضی ہے۔

[Bottom Box Text]: وہذہ بحمدہ تعالیٰ فوائد نفیسۃ سمح بحمد اللہ تعالیٰ یہ نہایت ہی قیمتی فوائد ہیں جیسے ہر صاحبِ فہم

[Footnote]: 1 غنیۃ المستملی فصل فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ، ص ۵۵۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

"...it would be viewed with respect. If we were to delve into the arguments and details, we would drift far from our objective. Furthermore, these matters are clear to those who possess insight into the subsidiary books and a refined understanding of the principles of Sharia. Therefore, we will content ourselves with quoting some specific jurisprudential texts." (T)

In reliable texts such as Jami' al-Fusulayn, Mabsut, Mi'raj al-Dirayah, Hindiyya, Radd al-Muhtar, etc., it is stated:

"When a ruling is established due to a cause, the ruling remains as long as that cause persists. Thus, when a city becomes 'Dar al-Islam' (Abode of Islam) through the implementation of its laws, it remains 'Dar al-Islam' as long as any of its laws or vestiges remain. In every city where a Muslim administrator is appointed on behalf of the Muslims, even if under non-Muslim rule, the establishment of Friday and Eid prayers, the collection of land tax (Kharaj), the enforcement of judicial rulings, and the marriage of widows are permissible because the Muslims are dominant there. However, obedience to infidels is merely a strategic truce and deception. As for lands where infidels are in authority, it is permissible for Muslims to establish Friday and Eid prayers, etc." (T)

In Sharh Nuqayah, citing al-Kafi, it is mentioned:

"Dar al-Islam is that in which the command of the Imam of the Muslims is in force." (T)

In Fusul al-Imadi, it is stated:

"Indeed, Dar al-Islam does not become Dar al-Harb (Abode of War) as long as any of the rulings of Islam remain, even if the [rule of] the people of Islam has ceased there..."

---

1 Jami' al-Fusulayn, Chapter on Judiciary, published by Islami Kutub Khana Karachi, 1/313. 2 Sharh Nuqayah, known as Jami' al-Rumuz, Book of Jihad, published by Maktaba Islamia, Iran, 2/556.

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

"...इज़्ज़त की नज़र से देखेगा और अगर दलाइल और तफ़सील में जाएँ तो मक़सूद से दूर चले जाएँगे। इलावा अज़ीं उन लोगों पर आशकार हैं जो कुतुब-ए-नफ़ीसा में नज़र और उसूल-ए-शरईया में उम्दा फ़िक्र रखते हैं हम, यहाँ चंद मख़सूस फ़क़ीह के नक़ल करने पर इक्तिफ़ा करते हैं।" (त)

जामे-उल-फ़सूलैन व मबसूत व मेराज-उद-दिरया व हिन्दिया व रद-उल-मुह्तार वगैरह मोतमिद किताबों में है:

"जब कोई हुक्म किसी इल्लत की बिना पर हो तो जब तक इल्लत रहती है हुक्म भी बाक़ी रहेगा तो जब कोई शहर अहकाम-ए-इस्लामी के इजरा से दारुल इस्लाम बन गया तो जब तक अहकाम व आसार में से कुछ न कुछ बाक़ी होगा वह शहर दारुल इस्लाम ही रहेगा और हर वह शहर जिस में मुसलमान वाली हो वहाँ जुमा और ईदैन का क़याम, ख़राज लेना, क़ज़ा के निफ़ाज़ और बेवाओं का निकाह जाइज़ होगा क्योंकि वहाँ मुसलमान ग़ालिब हैं लेकिन कुफ़्फ़ार की ताअत ग़लत और धोखा है जहाँ कुफ़्फ़ार वाली हैं वहाँ जुमा और ईदों का क़याम मुसलमानों के लिए जाइज़ है इल्ख़" (त)

शरह नुक़ाया में 'काफ़ी' से है:

"दारुल इस्लाम वह होता है जिस में इमामुल मुस्लिमीन का हुक्म जारी हो - (त)"

फ़सूल-ए-इमादी में है:

"बेशक दारुल इस्लाम दारुल हर्ब नहीं बनता जब तक इस्लाम के कुछ न कुछ अहकाम बाक़ी हों, अगरचे अहल-ए-इस्लाम का वहाँ शासन ख़त्म हो गया हो..."

---

1 जामे-उल-फ़सूलैन, फ़स्ल फ़िल-क़ज़ा, मतबुआ इस्लामी कुतुब ख़ाना कराची, 1/313 2 शरह नुक़ाया अल-मअरूफ़ जामे-उर-रुमूज़ किताबुल जिहाद मतबुआ मक्तबा इस्लामिया, ईरान, 2/556

بھا البراع لو استرسلنا فی الکلام علی دلیلھا و تفاصیلھا لخرجنا عن القصد مع ان اکثرھا جلیلۃ عند من لہ اجالۃ نظر فی الکتب الفرعیۃ واجادۃ فکر فی الاصول الشرعیۃ فلنقتصر علی نقل بعض نصوص فقھیۃ۔ عزت کی نظر سے دیکھے گا اور اگر دلائل اور تفصیل میں جائیں تو مقصود سے دور چلے جائیں گے۔ علاوہ ازیں ان لوگوں پر آشکار ہیں جو کتب نفیسہ میں نظر اور اصولِ شرعیہ میں عمدہ فکر رکھتے ہیں ہم، یہاں چند مخصوص فقیہ کے نقل کرنے پر اکتفا کرتے ہیں۔ (ت)

جامع الفصولین ومبسوط و معراج الدرایہ و ہندیہ و ردالمحتار وغیرہا معتمدات اسفار میں ہے:

الحکم اذا ثبت بعلۃ فما بقی شیئ من العلۃ یبقی الحکم ببقائہ فلما صارت بلدۃ دارالاسلام باجراء احکامہ فما بقی شیئ من احکام و اثارہ تبقی دارالاسلام وکل مصرفیہ وال الاعیاد واخذ الخراج وتقلید القضاء وتزویج الایامی لاستیلاء المسلم علیھم واما طاعۃ الکفرۃ فھی موادعۃ ومخادعۃ واما فی بلاد علیھا ولادۃ کفار فیجوز للمسلمین اقامۃ الجمع والاعیاد الخ جب کوئی حکم کسی علت کی بناء پر ہو تو جب تک علت رہتی ہے حکم بھی باقی رہے گا تو جب کوئی شہر احکامِ اسلامی کے اجراء سے دارالاسلام بن گیا تو جب تک احکام و آثار میں سے کچھ نہ کچھ باقی ہوگا وہ شہر دارالاسلام ہی رہے گا اور ہر وہ شہر جس میں مسلمانوں کی طرف سے مسلمان والی ہو وہاں جمعہ اور عیدین کا قیام، خراج لینا، قضا کے نفاذ اور بیوگان کا نکاح جائز ہوگا کیونکہ وہاں مسلمان غالب ہیں لیکن کفار کی طاعت غلط اور دھوکا ہے وہ نشر جہاں کفار والی ہیں وہاں جمعہ اور عیدوں کا قیام مسلمانوں کے لئے جائز ہے الخ (ت)

شرح نقایہ میں کافی سے ہے:

دارالاسلام ما یجری فیہ حکم امام المسلمین۔ دارالاسلام وہ ہوتا ہے جس میں امام المسلمین کا حکم جاری ہو -(ت)

فصول عمادی میں ہے:

ان دارالاسلام لا تصیر دارالحرب اذا بقی شیئ من احکام الاسلام وان زال جب احکامِ اسلامی کچھ نہ کچھ باقی ہوں دارالاسلام دارالحرب نہیں بن سکتا اگرچہ اہل اسلام کا وہاں

---

1 جامع الفصولین، فصل فی القضا، مطبوعہ اسلامی کتب خانہ کراچی ۱/۳۱۳ 2 شرح نقایہ المعروف جامع الرموز کتاب الجہاد مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ، ایران ۲/۵۵۶

Fatawa Razawiya, Volume 8

Dominance of the people of Islam[1] - Predominance should not remain. (t)

Similarly, it is benefited from many books:

Summary: For a place to initially become Dar al-Islam (Land of Islam), meaning for Dar al-Harb (Land of War) to become Dar al-Islam, the condition is that the command of the Sultan of Islam is in effect there. And for Dar al-Islam to remain so, it is necessary for Islamic symbols to remain visible, even if partially, even if the legal command and political authority no longer exist there. And Allah is the Helper and in Him is reliance. (t)

In Durar and Ghurar it is:

Dar al-Islam becomes Dar al-Harb when polytheistic laws are implemented there and it is connected to a Dar al-Harb in such a way that there is no city of Muslims between them. (t)

In Durr al-Muntaqa it is: The salty sea is annexed to Dar al-Harb[3] (The salty sea has the ruling of Dar al-Harb. (t)). In Radd al-Muhtar it is:

The salty sea and similar things like a wilderness beyond which there are no Islamic lands are annexed to it. Some have reported this from al-Hamawi, and in the marginalia of Abu al-Sa'ud from the commentary of al-Nazm al-Hamili, the surface of the sea has the ruling of Dar al-Harb. (t)

1. Fusul Imadi.
2. Durar al-Hukkam fi Sharh Ghurar al-Ahkam, Chapter on the Musta'min, published by Kamil al-Kamiliyah in Dar al-Sa'adat, Egypt, 1/295.
3. Durr al-Muntaqa on the margin of Majma' al-Anhur, section on what remains of the rulings of the Musta'min, published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/659.
4. Radd al-Muhtar, Book of Jihad, Chapter on the Conquest by Infidels... etc., published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 6/255.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

इस्लाम के लोगों का प्रभुत्व[1] - प्रभुत्व नहीं रहना चाहिए। (त)

इसी प्रकार, कई पुस्तकों से लाभ मिलता है:

संक्षेप में: किसी स्थान को प्रारंभ में दार अल-इस्लाम (इस्लाम की भूमि) बनने के लिए, यानी दार अल-हर्ब (युद्ध की भूमि) को दार अल-इस्लाम बनने के लिए, यह शर्त है कि वहां इस्लाम के सुल्तान की आज्ञा प्रभावी हो। और दार अल-इस्लाम बने रहने के लिए, इस्लामी प्रतीकों का दृश्य रहना आवश्यक है, भले ही आंशिक रूप से, भले ही कानूनी आज्ञा और राजनीतिक अधिकार वहां न रहे हों। और अल्लाह ही सहायक है और उसी पर भरोसा है। (त)

दुरर और ग़ुरर में है:

दार अल-इस्लाम तब दार अल-हर्ब बन जाता है जब वहां बहुदेववादी कानून लागू हो जाते हैं और दार अल-हर्ब के साथ उसका संबंध ऐसा हो जाता है कि उनके बीच कोई मुस्लिम शहर न हो। (त)

दुरर अल-मुंतक़ा में है: खारा समुद्र दार अल-हर्ब से जुड़ा हुआ है[3] (खारे समुद्र में दार अल-हर्ब का नियम लागू होता है। त)। रद अल-मुहतार में है:

खारा समुद्र और इसी तरह की चीजें जैसे जंगल जिसके आगे कोई इस्लामी शहर न हो, उससे जुड़े हुए हैं। कुछ लोगों ने इसे अल-हमावी के हवाले से उद्धृत किया है, और अबू अल-सऊद के हाशिये में अल-नज़्म अल-हामिली की व्याख्या के हवाले से है कि समुद्र की सतह दार अल-हर्ब का नियम रखती है। (त)

1. फ़ुसूल इमादी।
2. दुरर अल-हुक्काम फ़ी शरह ग़ुरर अल-अहकाम, मुस्तअमिन का अध्याय, कामिल अल-कामिलिया, दार अल-सआदत, मिस्र, 1/295 में प्रकाशित।
3. मज्म अल-अन्हुर के हाशिये पर दुरर अल-मुंतक़ा, मुस्तअमिन के शेष नियमों पर खंड, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरूत, 1/659 में प्रकाशित।
4. रद अल-मुहतार, जिहाद की किताब, काफ़िरों की विजय का अध्याय... आदि, दार अल-मारिफ़ा, बेरूत, 6/255 में प्रकाशित।

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

غلبۃ اھل الاسلام[1] - غلبہ حاصل نہ رہے۔ (ت)

اسی طرح کتب کثیرہ سے مستفاد ہے:

وبالجملة یشترط لدار الاسلام ابتداء اعنی صیرورۃ دارالحرب دارالاسلام جریان حکم سلطان الاسلام فیھا وبقاء ظھور شعائر الاسلام ولو بعضا وان لم یبق الحکم والسلطان واللہ المستعان وعلیہ التکلان - الغرض دارالاسلام ابتداءً بننے کے لئے یہ شرط ہے یعنی دارالحرب کا دارالاسلام بننے کے لئے یہ شرط ہے کہ وہاں سلطان اسلام کا حکم جاری ہو اور دارالاسلام کو باقی رہنے کے لئے شعائر اسلامی کا باقی رہنا ضروری ہے خواہ وہ کچھ ہی کیوں نہ ہوں اگرچہ وہاں حکم اور سلطان باقی نہ ہوں اور اللہ تعالٰی ہی مددگار ہے اور اسی پر بھروسہ ہے۔(ت)

در و غرر میں ہے: تصیر دار الاسلام دار الحرب باجراء احکام الشرك واتصال بدارالحرب بحیث لایکون بینھما مصر للمسلمین[2] الخ دارالاسلام اس وقت دارالحرب بن جاتا ہے جب وہاں احکام شرک جاری ہو جائیں اور اس کا اتصال کسی دارالحرب سے ایسا ہو کہ ان کے درمیان مسلمانوں کا کوئی شہر نہ ہو۔ (ت)

در منتقی میں ہے: البحر المالح ملحق بدار الحرب[3] (نمکین سمندر دارالحرب کا حکم رکھتا ہے۔ت)

ردالمحتار میں ہے: یلحق بھا البحر الملح ونحوہ کمفازۃ لیس ورائھا بلاد اسلام نقلہ بعضھم عن الحموي وفی حاشیۃ ابی السعود عن شرح النظم الھاملی سطح البحر لہ حکم دارالحرب -[4] نمکین سمندر دارالحرب کے ساتھ ملحق ہے، اور ہر وہ جنگل بھی جس سے آگے مسلمانوں کا شہر نہ ہو،

یہ بات بعض نے حموی کے حوالے سے نقل کی ہے اور حاشیہ ابی سعود میں شرح النظم الہاملی کے حوالے سے ہے کہ سطح سمندر کا حکم دارالحرب کا ہے۔ (ت)

1 فصول عمادی 2 درر الحکام فی شرح غرر الاحکام باب المستامن مطبوعہ کامل الکاملیہ فی دار سعادت مصر ۱/ ۲۹۵ 3 در منتقی علی ہامش مجمع الانہر فصل فی مابقی من احکام المستامن مطبوعہ داراحیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۶۵۹ 4 ردالمحتار کتاب الجہاد باب استیلاء الکفار... الخ مطبوعہ دارالمعرفہ بیروت ۶/ ۲۵۵

Fatawa Razawiya, Volume Eight

From this investigation, the ruling on all the inquired cases becomes clear. Those settlements which are 'Parganas' (administrative divisions) and have a court in them (not just a police station, post office, or hospital, as trials of cases do not occur there), and where there is or was Islamic rule, and since the occupation by non-Muslims, some Islamic rites have continued without hindrance until now, just as all regions of India and Bengal are; they are all Islamic cities. Friday prayer (Jummah) is obligatory in them. And the settlements in a Pargana where there is no court, or there are courts but it is a Pargana where there was never an Islamic state, or there was but after that, the disbelievers completely stopped the Islamic rites, even if permission was given again later, they are all villages and non-Islamic towns. Jummah and Eid prayers are not permissible in them; performing them would be a sin, and the obligation of the Zuhr prayer would not be waived. Now the only question remains whether a settlement consisting of several parts separated by agricultural land due to farming would be considered one settlement or multiple. Apparently, the questioner's intent is regarding the census, whether the residents of all these parts combined should be considered for that town's population or separately. As mentioned in the entire question regarding the number of inhabitants, the investigated answer makes it clear that population size and number of residents are not fundamentally considered. A settlement that is not a Pargana and has no judge for adjudicating cases is absolutely a village, regardless of its population. A Pargana with a designated court is a city, even if its population is small. Yes, for a settlement legally declared a city where Jummah is validly obligatory, if there are other settlements within a distance of one or one-and-a-half miles with agriculture in between, the question arises: is Jummah obligatory for those surrounding residents, and is its performance valid in those places? The answer according to the verified opinion is that whatever area around the city is designated for city interests, such as a camp, Eidgah, or city cemetery, all that is the 'Fina-e-Misr' (precincts of the city). Jummah is valid there and obligatory for its residents, even if there is intervening agricultural land. But if it has no connection to city interests and there is a separation in between, then it is not part of the city's outskirts, Jummah is not valid there, nor is it obligatory for its residents. It is stated in Rad al-Muhtar:

Arabic Text	**Urdu Translation**
The Imams have explicitly stated that the 'Fina' (outskirts) is what is prepared	The Imams have clarified that by 'Fina' is meant that place which is made for burying

Arabic Text

for burying the dead and for city needs such as horse and animal racing, gathering of troops, going out for archery practice, and so on. Through this, the validity [of Friday prayer] became clear in the hospice (Takiyya) of Sultan Selim in Marja, Damascus, and likewise in his mosque in Salihiya, Damascus, for they are from the outskirts of Damascus, even if separated from it.

Urdu Translation

the dead and for urban needs, for example, a place for running horses and four-legged animals, a military camp, and a place for learning target shooting, etc. From this, it became clear that Friday prayer is correct in the hospice of Sultan Selim in the area of Marja, Damascus. Similarly, in his mosque at the place of Salihiya, Damascus, because it is the 'Fina' (outskirts) of Damascus even though...

इस शोध से सभी पूछे गए मामलों का हुक्म स्पष्ट हो गया। वे बस्तियाँ जो 'परगना' हैं और उनमें कोई कचहरी (अदालत) है (सिर्फ थाना, डाकखाना या अस्पताल नहीं जहाँ मुकदमों का फैसला नहीं होता), और वहाँ इस्लामी शासन है या पहले था और जब से गैर-मुस्लिमों का कब्ज़ा हुआ, कुछ इस्लामी रस्में बिना किसी बाधा के अब तक जारी हैं, जैसे भारत और बंगाल के सभी क्षेत्र ऐसे ही हैं; वे सभी इस्लामी शहर हैं। उनमें जुमा फर्ज़ है। और परगना की वे बस्तियाँ जिनमें कोई कचहरी नहीं है, या कचहरियाँ हैं लेकिन वे कभी इस्लामी सल्तनत का हिस्सा नहीं रहीं, या थीं लेकिन बाद में काफिरों ने इस्लामी रस्मों को पूरी तरह बंद कर दिया, भले ही बाद में फिर से अनुमति दे दी गई हो, वे सब गाँव हैं और गैर-इस्लामी शहर। उनमें जुमा और ईद की नमाज़ जायज़ नहीं है; उन्हें पढ़ने से गुनाह होगा और जुमा से ज़ुहर का फ़र्ज़ साक़ित (माफ़) नहीं होगा। अब केवल यह प्रश्न शेष है कि एक बस्ती के कई हिस्से हों और उनके बीच खेती की वजह से दूरी हो, तो क्या वह एक ही बस्ती मानी जाएगी या अनेक? ज़ाहिर है इस सवाल से पूछने वाले का उद्देश्य जनगणना से है कि इन सब के निवासियों को मिलाकर उस बस्ती की जनगणना मानी जाएगी या अलग-अलग? जैसा कि पूरे सवाल में उसने निवासियों की संख्या का ज़िक्र किया है, लेकिन शोधपूर्ण जवाब से स्पष्ट हो गया कि जनगणना और निवासियों की संख्या पर मूलतः नज़र नहीं है। जो बस्ती परगना नहीं है और उसमें मुकदमों के फैसले के लिए कोई हाकिम नहीं है, वह पूरी तरह गाँव है, चाहे उसकी जनगणना कितनी ही हो। और जो परगना है जिसमें कचहरी नियुक्त है, वह शहर है चाहे जनगणना में कम ही हो। हाँ, जो बस्ती शरीयत की दृष्टि से शहर घोषित हो और उसमें जुमा फर्ज़ होना सही ठहरे, और उसके इर्द-गिर्द की बस्तियाँ डेढ़ मील की दूरी पर हों और बीच में खेती हो, वहाँ एक यह सवाल उठता है कि क्या उन आस-पास के निवासियों पर भी जुमा फर्ज़ है, और उन स्थानों पर इसकी अदायगी सही है या नहीं? इसका जवाब शोधकर्ता के कथन पर यह है कि शहर के चारों ओर जहाँ तक कोई स्थान शहर के हितों के लिए निर्धारित किया गया हो, जैसे कैंप, ईदगाह या शहर का कब्रिस्तान, वह सब 'फ़ना-ए-मिस्र' (शहर का बाहरी क्षेत्र) है। वहाँ जुमा सही है और उसके निवासियों पर जुमा फर्ज़ है, भले ही बीच में खेती की दूरी हो। और अगर उसका शहर के हितों से कोई संबंध नहीं है और बीच में अलगाव है, तो वह शहर के बाहरी हिस्सों (तवाबे-ए-शहर) में से नहीं है, न उसमें जुमा सही है और न ही उसके निवासियों पर फर्ज़ है। 'रद्दुल मुहतार' में है:

अरबी पाठ

इमामों ने स्पष्ट किया है कि 'फ़ना' (बाहरी क्षेत्र) से तात्पर्य वह स्थान है जो मुर्दों को दफनाने और शहर की ज़रूरतों जैसे घोड़ों और जानवरों को दौड़ाने, सेना के जमा होने, तीरंदाज़ी के अभ्यास के लिए बाहर जाने आदि के लिए तैयार किया गया हो। इससे दमिश्क के'मरजा' में सुल्तान सलीम की खानकाह (तकिया) में जुमा की वैधता स्पष्ट हो गई, और इसी तरह दमिश्क के 'सालिहिया' में उनकी मस्जिद में भी, क्योंकि वे दमिश्क के'फ़ना' से हैं, भले ही वे उससे अलग हों।

पृष्ठ ३८२ / ६७३

हिंदी अनुवाद

इमामों ने स्पष्ट किया है कि 'फ़ना' से तात्पर्य वह जगह है जो मृतकों को दफनाने और शहरी ज़रूरतों के लिए बनाई गई हो, जैसे घोड़ों और चौपायों को दौड़ाने की जगह, लश्करगाह (सेना शिविर) और निशानाबाज़ी सीखने की जगह आदि। इससे यह स्पष्ट हो गया कि दमिश्क के स्थान 'मरजा' में सुल्तान सलीम के तकिया (खानकाह) में जुमा सही है, इसी तरह दमिश्क के स्थान 'सालिहिया' में उनकी मस्जिद में भी, क्योंकि वह दमिश्क का 'फ़ना' है, हालांकि...

اس تحقیق سے تمام صور مستفسرہ کا حکم واضح ہوگیا جو آبادیاں پرگنہ ہے اور اُن میں کوئی کچہری ہے (نہ فقط تھانہ یا ڈاک خانہ یا شفا خانہ فصل مقدمات کے لئے نہیں ہوتے) اور وہاں سلطنت اسلام ہے یا پہلے تھی اور جب سے غیر مسلم کا قبضہ ہو بعض شعائر اسلام بلا مزاحمت اب تک جاری ہیں جیسے تمام بلادِ ہند و بنگالہ ایسے ہی ہیں وہ سب اسلامی شہر ہیں ان میں جمعہ فرض ہے اور جو آبادی پرگنہ ہیں اُس میں کوئی کچہری نہیں یا کچہریاں ہیں پرگنہ ہے مگر اُس میں سلطنت کبھی نہ ہوئی یا تھی مگر اس کے بعد کفار نے شعائر اسلام یکسر بند کردئے گو بعد کو پھر اجازت بھی دے دی ہو ، وہ سب گاؤں ہیں غیر اسلامی شہر، اُن میں جمعہ و عیدین جائز نہیں، پڑھنے سے گناہ ہوگا اور جمعہ سے ظہر کا فرض ساقط نہ ہوگا، اب فقط یہ سوال رہا کہ ایک آدمی کے چند حصے ہیں اور اُن میں باہم بوجہ زراعت فاصلہ ہے آیا وہ ایک ہی آبادی منصور ہوگی یا متعدد؟ ظاہراً اس سوال سے سائل کا مقصود مردم شماری کا لحاظ ہے کہ ان سب کے ساکنین ملا کر اُس بستی کی مردم شماری سمجھی جائے گی یا جدا جدا؟ جیسا کہ تمام سوال میں اس نے تعدادِ ساکنان کا ذکر کیا ہے، مگر تحقیق جواب سے واضح ہوگیا کہ مردم شماری و تعدادِ سکان پر اصلاً نظر نہیں، جو بستی پرگنہ نہیں اُس میں فیصلہ مقدمات کا کوئی حاکم نہیں مطلقاً گاؤں ہے اس کی مردم شماری کسی قدر ہو، اور جو پرگنہ ہے اس میں کچہری مقرر ہے وہ شہر ہے اگرچہ مردم شماری میں کم ہو، ہاں جو آبادی شرعاً شہر قرار پائے اور اس میں جمعہ فرض صحیح ٹھہرے اور اس کے گرد اور آبادیاں میل ڈیڑھ میل کی مسافت پر واقع ہوں بیچ میں زراعت ہوتی ہوں وہاں ایک یہ سوال متوجہ ہوتا ہے کہ اُن ساکنانِ حوالی پر بھی جمعہ فرض ، اور ان مواضع میں اس کی ادا صحیح ہے یا نہیں؟ اس کا جواب قولِ محقق پر یہ ہے کہ شہر کے گردا گرد جہاں تک کوئی موضع

مصالح شہر کے لئے معین کیا گیا ہو مثلاً کیمپ یا عیدگاہ یا شہر کا قبرستان، وہاں وہ سب فنائِ مصر ہے اس میں جمعہ صحیح اور اس کے اہل پر جمعہ فرض اگرچہ بیچ میں زراعت کا فاصلہ ہو اور اگر مصالح شہر سے اسے تعلق نہیں اور بیچ میں فصل ہے تو وہ توابعِ شہر سے نہیں نہ اُس میں جمعہ صحیح نہ اُس کے ساکنوں پر فرض ۔ ردالمحتار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قدنص الائمة على ان الفناء ما اعد لدفن الموتى وحوائج المصر كركض الخيل ولدواب وجمع العساكر والخروج للرمي وغير ذلك ، وبه ظهر صحتها في تكية السلطان سليم بمرجة دمشق وكذا في مسجده بصالحية دمشق فانها من فناء دمشق وان انفصلت عن	ائمہ نے تصریح کی ہے کہ فناء سے مراد وہ جگہ ہے جو اموات کی تدفین او رشہری ضروریات کے لئے بنائی گئی ہو مثلاً گھوڑے اور چارپایوں کے دوڑانے کی جگہ لشکر گاہ اور نشانہ بازی سیکھنے کے لئے جگہ وغیرہ۔ اس سے یہ ظاہر ہوگیا کہ مقام مرجہ دمشق میں سلطان سلیم کے تکیہ میں جمعہ صحیح ہے اس طرح مقام صالحیہ دمشق پر ان کی مسجد میں بھی کیونکہ وہ فنائِ دمشق ہے اگرچہ

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Damascus with its farms, end of summary	**It is distinct from Damascus because of its agricultural lands. End of summary. (T)**

Furthermore, a second question arises: whether the settlement is a city or not, when its inhabitant sets out for a journey intended for three stages (manzils), will he be considered a traveler and perform Qasr (shortening prayers) as soon as he leaves his specific settlement, even if other settlements are still on the way, or will he only be considered a traveler when he has passed all those settlements? The answer is that when there is a distance in between and farming takes place, passing through them will not be considered, even if they are designated for the city's interests. When he leaves his own settlement, he will become a traveler. Yes, as far as the settlement continues contiguously, it is considered a single location, and surpassing it is necessary. It is stated in Durr al-Mukhtar:

Regarding the outskirts (al-Fina'), it is the place prepared for the benefits of the town, such as the racing of beasts, burial of the dead, and the dumping of soil. If it is contiguous with the city, its passing is considered [to be a traveler]. And if it is separated by a 'ghalwah' (arrow shot distance) or a farm, then it is not [considered], as will follow. Contrary to the Friday prayer, for it is valid to establish it in the outskirts even if separated by farms.[2]	**The outskirts (Fina) is the place prepared for the needs of the city, for example, for the running of animals, burying the dead, and dumping soil, etc. If it is contiguous with the city, then the traveler's crossing of it is considered. If it is separated by a 'ghalwa' (the extreme distance of an arrow shot) or a farm (field), then its crossing is not necessary, as will follow. Unlike Friday prayer, its performance is valid in the outskirts even if it is separated by the extent of farms. (T)**

Also, a third question arises: if a person takes an oath that he will not live in a certain settlement, and then leaves his specific settlement where he lived and takes up residence in a surrounding settlement, has his oath been preserved or not? The answer is that when these settlements have distinct specific names and are collectively referred to by another name, then if he took an oath using the name specific to his settlement and leaves it for another settlement to which that name is not applied, and whose inhabitant is not conventionally considered an inhabitant of the first settlement, then the oath is fulfilled. But if he used the name that includes all

of them, and the settlement he has now come to is considered a part of that first settlement, and its inhabitant is still considered an inhabitant of it, then the oath is not fulfilled, and he should pay expiation (Kaffara).

And that is because the basis of oaths (al-ayman) is on the meaning understood in common usage (al-urf), therefore the ruling revolves around it. And Allah, Glorified and Exalted, knows best.

This is because the basis of oaths is on the meaning understood by convention (Urf), therefore the ruling revolves around it. And Allah, Glorified and Exalted, knows best. (T)

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayer, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/591. [2] Radd al-Muhtar, Chapter on the Prayer of the Traveler, 1/578.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

दमिश्क अपने खेतों के साथ, सारांश समाप्त

यह अपनी कृषि भूमि के कारण दमिश्क से अलग है। सारांश समाप्त। (त)

इसके अलावा, एक दूसरा सवाल यह पैदा होता है कि बस्ती शहर हो या न हो, जब उसका निवासी तीन मंज़िलों के इरादे से सफर पर निकलेगा, तो क्या वह अपनी विशेष आबादी से बाहर निकलते ही मुसाफिर (यात्री) माना जाएगा और क़स्र (नमाज़ छोटी करना) करेगा, भले ही अन्य आबादियाँ अभी रास्ते में आने वाली हों, या जब वह उन सभी आबादियों से बाहर निकल जाएगा तब मुसाफिर होगा? इसका जवाब यह है कि जब बीच में फासला हो और खेती होती हो, तो उनसे गुजरने का लिहाज़ नहीं होगा, भले ही वे शहर के हितों के लिए ही निर्धारित की गई हों। जब वह अपनी आबादी से निकल जाएगा, तो मुसाफिर हो जाएगा। हाँ, जहाँ तक आबादी निरंतर जुड़ी हुई चली गई हो, वह एक ही स्थान माना जाएगा, उससे आगे बढ़ना ज़रूरी है। दुर्रे मुख्तार में है:

फ़ना (उपनगर) वह जगह है जो शहर की ज़रूरतों के लिए बनाई गई हो, जैसे जानवरों के दौड़ने, मुर्दों को दफनाने और मिट्टी आदि फेंकने के लिए। अगर यह शहर के साथ जुड़ी हुई हो, तो मुसाफिर का उससे गुजरना ज़रूरी माना जाता है। और अगर वह एक 'ग़लवा' (तीर चलाने की अधिकतम दूरी) या एक खेत की दूरी पर अलग है, तो उससे गुजरना ज़रूरी नहीं है, जैसा कि आगे आ रहा है। इसके विपरीत, जुमे की नमाज़ फ़ना में पढ़ना जायज़ है, चाहे वह खेतों की दूरी के बराबर अलग ही क्यों न हो।[2]

फ़ना वह जगह है जो शहर की ज़रूरतों के लिए बनाई गई हो जैसे चौपायों के दौड़ने, मृतकों के दफन और मिट्टी आदि फेंकने के लिए। अगर शहर के साथ जुड़ी हो, तो फिर यात्री का उसी से गुजर जाना मान्य है और अगर 'ग़लवा' (तीर मारने का अधिकतम फासला) या खेत की मात्रा में अलग है तो उसका गुजरना ज़रूरी नहीं जैसा कि आ रहा है। जुमे के विपरीत कि उसका आयोजन फ़ना में जायज़ होता है चाहे वह खेतों की मात्रा में अलग हो। (त)

इसके साथ ही तीसरा सवाल यह उठता है कि अगर किसी व्यक्ति ने कसम खाई कि मैं फलां आबादी में नहीं रहूँगा, फिर अपनी खास आबादी जिसमें वह रहता था छोड़कर पास की किसी आबादी में निवास करने लगा, तो क्या उसकी कसम बची रही या नहीं? इसका जवाब यह है कि जब इन आबादियों के अपने अलग-अलग नाम हों और उन सबको मिलाकर एक अन्य नाम से पुकारा जाता

हो, तो अगर उसने वह नाम लेकर कसम खाई थी जो उसकी अपनी आबादी का खास नाम था और उसे छोड़कर दूसरी आबादी में चला गया जिस पर वह नाम लागू नहीं होता, और उसका निवासी लोक-व्यवहार (उर्फ़) में पहली आबादी का निवासी नहीं माना जाता, तो कसम पूरी हो गई। लेकिन अगर उसने वह नाम लिया था जिसमें ये सब शामिल हैं, और जिस आबादी में वह अब आया है उसे उसी पहली आबादी का हिस्सा समझा जाता है और उसके निवासी को उसी का निवासी माना जाता है, तो कसम पूरी नहीं हुई, उसे कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) देना चाहिए।

यह इसलिए है क्योंकि कसमों का आधार उस अर्थ पर होता है जो लोक-प्रचलित (उर्फ़) हो, इसलिए हुक्म का आधार उसी पर होगा। और अल्लाह पाक सबसे बेहतर जानता है।	**यह इसलिए है कि कसमों का आधार उस अर्थ पर होता है जो लोक-प्रसिद्ध (उर्फी) हो, अतः फैसले का आधार उसी पर होगा। और अल्लाह पाक सबसे बेहतर जानता है। (त)**

[1] रद-उल-मुहतार, अध्याय: जुमे की नमाज़, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/591। [2] रद-उल-मुहतार, अध्याय: मुसाफिर की नमाज़, 1/578।

पृष्ठ 383/673

دمشق بمزارع اھ مختصرا دمشق سے کاشتی زمینوں کی وجہ سے الگ ہے۔ اھ مختصرا (ت)

نیز دوسرا سوال یہ پیدا ہوتا ہے کہ وہ بستی شہر ہو یا نہ ہو جب اس کا ساکن تین منزلہ کے ارادے سے سفر کو چلا تو آیا جب اپنی خاص آبادی سے نکل جائے گا اس وقت سے مسافر ٹھہرائے گا اور قصر کرے گا اگرچہ وہ دوسری آبادیاں ہنوز راہ میں آنے والی ہوں یا جب ان سب آبادیوں سے نکل جائے گا اس وقت سے مسافر ہوگا؟ اس کا جواب یہ ہے کہ جب بیچ میں فاصلہ ہے زراعتیں ہوتی ہیں تو ان سے گزر جانے کا لحاظ نہ ہوگا اگرچہ وہ مصالح شہر ہی کے لیے مقرر کی گئی ہوں، جب اپنی آبادی سے نکل جائے گا مسافر ہو جائے گا، ہاں جہاں تک آبادی متصل چلی گئی ہو وہ موضع واحد ہے اس سے تجاوز ضرور ہوگا، درمختار میں ہے :

امام الفناء وھوالمکان المعد لمصالح البلد کرکض الدواب ودفن الموتی والقاء التراب فان اتصل بالمصر اعتبر مجاوزتہ وان انفصل بغلوۃ او مزرعۃ فلا کما یاتی بخلاف الجمعۃ فتصح اقامتھا فی الفناء ولو منفصلا بمزارع ^2-

فناء وہ جگہ ہے جو شہر کی ضروریات کے لئے بنائی گئی ہو مثلاً چوپایوں کے دوڑنے ، اموات کی تدفین اور مٹی وغیرہ پھینکنے کے لئے ہو اگر شہر کے ساتھ متصل ہو، تو پھر مسافر کا اسی سے گزر جانا معتبر ہے اور اگر بمقدار غلوۃ (تیر مارنے کا انتہائی فاصلہ) یا مزرعہ (کھیت) جدا ہے تو اس کا گزرنا ضروری نہیں جیسا کہ آرہا ہے۔ بخلاف جمعہ کے اس کا قیام فناء میں جائز ہوتا ہے خواہ وہ مزارع کی مقدار جدا ہو۔ (ت)

نیز تیسرا سوال یہ نکلتا ہے کہ اگر کسی شخص نے قسم کھائی کہ فلاں آبادی میں نہ رہوں گا پھر اپنی خاص آبادی جس میں رہتا تھا چھوڑ کر گرد کی کسی آبادی میں سکونت اختیار کی تو آیا قسم بچی ہوئی یا نہیں؟ اس کا جواب یہ ہے کہ جب ان آبادیوں کے خاص خاص نام جدا ہیں اور سب ملا کر ایک جدا نام سے تعبیر کی جاتی ہیں تو اگر اس نے وہ نام لے کر قسم کھائی جو خاص اس کی آبادی کا تھا اور اسے چھوڑ کر دوسری آبادی میں جارہا جس پر وہ نام اطلاق نہیں کیا جاتا اور اس کا ساکن عرف میں اس آبادی کا ساکن نہیں ٹھہرتا تو قسم پوری ہوئی اور اگر وہ نام لیا تھا جس میں یہ سب داخل ہیں جس آبادی میں اب آیا وہ اسی پہلی آبادی کا حصہ سمجھی جاتی ہے اور اس کے ساکن کو اسی کا ساکن تصور کیا جاتا ہے تو قسم پوری نہ ہوئی کفارہ دے۔

وذلك لان مبنى الايمان على المعنى المتفاهم فى العرف فعليه يدار الحكم. والله سبحانه وتعالى اعلم.

یہ اس لئے ہے کہ اقسام کا مدار اس معنی پر ہوتا ہے جو عرفی ہو لہذا حکم کا مدار اسی پر ہوگا۔ واللہ سبحانہ وتعالی اعلم۔ (ت)

1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۱ 2 ردالمحتار باب صلاۃ المسافر ۱/۵۷۸

Fatawa Rizvia Volume 8

Issue 1329: From Gwalior, District Mandsaur, town of Jadu, sent by Abdul Malik Khan, 7th Rabi-ul-Awwal Sharif 1323 AH. What is the ruling of the Sharia in this matter: Jadu is a town where three mosques are situated close to each other in the same neighborhood. On Fridays, the people of each mosque perform Friday prayer in their respective mosques like the five daily prayers. One scholar says that performing Friday prayer in this way is not correct because one of the conditions for Friday prayer is the presence of the Sultan (ruler), his deputy, or someone authorized to establish Friday prayer. This condition is absent here. In such a place, Muslims should appoint one person as their Qazi (judge) and leader and perform Friday prayer behind him. Another scholar says that for establishing Friday prayer, the presence of the Sultan or his appointed deputy is not a condition. Even if neither is present, Friday prayer is valid, and there is no need for Muslims to appoint a Qazi and pray behind him. Similarly, there is no harm in performing Friday prayer in their respective mosques; rather, there is harm in gathering in one place. I hope for a final verdict. Explain and be rewarded.

Answer: Indeed, the establishment of Friday prayer by the Sultan, his deputy, the authorized person, or the person authorized by the authorized person, and so on (and so forth - Translator), is a condition according to the consensus of Hanafi Imams. The books of the school of thought are overflowing with this (The books of the school are filled with this - Translator). However, this is one of those conditions that are dropped in case of necessity through substitution, just as wudu (ablution) is a condition for the validity of prayer, and if one lacks power over water, then tayammum is its deputy and substitute. Even clearer than this is facing the Qibla, which is definitely a condition, and in case of inability, the direction of investigation (tahari) is its deputy. Similarly, the establishment by the Sultan in the aforementioned sense is a necessary condition for Friday prayer, and here, due to the determination by Muslims, it takes the place of the determination by the Sultan. Therefore, not calling it a condition is wrong, and not accepting the validity of Friday prayer here due to its absence is even more false and wrong. According to the correct, reliable, and fatwa-given position of the school, multiple Friday prayers in one city are absolutely permissible. As stated in many books. And Allah, the Glorified and Exalted, knows best what is right.

Issue 1330: From Pilibhit, Maulana Wasi Ahmad Sahib Muhaddith Surati. What do the scholars of the religion say in this matter: Is the ruling for the leadership (imamah) of the five daily prayers the same as the leadership of Friday and Eid prayers? That's all.

Answer: The conditions for the leadership of Friday, Eid, and solar eclipse (Kusoof) prayers are much stricter than for the five daily prayers. In the five daily prayers, any person who is of correct faith, correct recitation, correct purity, male, sane, adult, and not excused can lead the prayer; i.e., the prayer behind him will be valid.

फतावा रिज़विया जिल्द 8

मसला 1329: ग्वालियर जिला मंदसौर कस्बा जादू से अब्दुल मलिक खान द्वारा प्रेषित, 7 रबी-उल-अव्वल शरीफ 1323 हिजरी। इस मामले में शरीयत का क्या हुक्म है कि जादू एक कस्बा है जहाँ एक ही मोहल्ले में तीन मस्जिदें पास-पास स्थित हैं। शुक्रवार (जुमे) के दिन हर मस्जिद वाले अपनी-अपनी मस्जिद में पाँच वक्त की नमाज़ की तरह जुमा पढ़ा करते हैं। एक मौलवी साहब कहते हैं कि इस तरह जुमा पढ़ना सही नहीं है क्योंकि जुमा की शर्तों में सुल्तान (शासक) या उसके नायब (प्रतिनिधि) या जुमा कायम करने के लिए अधिकृत व्यक्ति की उपस्थिति है, और यह शर्त यहाँ अनुपस्थित है। ऐसी जगह पर मुसलमानों को चाहिए कि एक व्यक्ति को अपना काजी और सरदार बना लें और उसके पीछे जुमा पढ़ा करें। दूसरे मौलवी साहब कहते हैं कि जुमा कायम करने के लिए सुल्तान या उसके नियुक्त नायब का होना शर्त नहीं है, अगर उनमें से एक भी न हो तब भी जुमा सही है और मुसलमानों को काजी बनाने और उसके पीछे नमाज़ पढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसी तरह अपनी-अपनी मस्जिदों में जुमा पढ़ने में कोई हर्ज नहीं है बल्कि एक जगह जमा होने में हर्ज है। उम्मीद है कि आखिरी फैसला मिलेगा। बयान करें, पुण्य पायें।

उत्तर: वास्तव में जुमा की अदायगी के लिए सुल्तान या उसके नायब या अधिकृत व्यक्ति या अधिकृत के अधिकृत व्यक्ति, आदि (और इसी तरह आगे - अनुवादक) का इसे कायम करना हनफी इमामों की सहमति से शर्त है। मज़हब की किताबें इससे भरी पड़ी हैं (मज़हब की किताबें इसी का आदेश देती हैं - अनुवादक)। लेकिन यह उन शर्तों में से है जो ज़रूरत पड़ने पर विकल्प द्वारा समाप्त हो जाती हैं, जैसे नमाज़ की शुद्धता के लिए वुज़ू शर्त है और अगर पानी पर सामर्थ्य न हो तो तयम्मुम उसका प्रतिनिधि और विकल्प है। इससे भी अधिक स्पष्ट क़िब्ला की तरफ मुँह करना है जो निश्चित रूप से शर्त है और असमर्थता की स्थिति में तह़री (खोज) की दिशा उसकी नायब है। इसी तरह सुल्तान द्वारा कायम किया जाना उक्त अर्थ में जुमा के लिए ज़रूरी शर्त है और यहाँ मुसलमानों के निर्धारण के कारण यह सुल्तान के निर्धारण का स्थान ले लेता है। इसलिए इसे शर्त न कहना भी गलत है और इसके न होने के कारण यहाँ जुमा को सही न मानना उससे भी अधिक बातिल और गलत है। सही, विश्वसनीय और फतवा दिए गए मज़हब के अनुसार, एक शहर में एक से अधिक जुमा पढ़ना पूरी तरह जायज़ है। जैसा कि कई किताबों में उल्लेख है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1330: पीलीभीत से मौलाना वसी अहमद साहब मुहद्दिस सूरती। दीन के विद्वान इस मामले में क्या फरमाते हैं कि क्या पाँच वक्त की नमाज़ की इमामत और जुमा व ईदैन की इमामत का एक ही हुक्म है? बस।

उत्तर: जुमा, ईदैन और कुसूफ (सूर्य ग्रहण) की इमामत पाँच वक्त की नमाज़ की इमामत से बहुत अधिक सख्त है। पाँच वक्त की नमाज़ में हर वह व्यक्ति जो सही अक़ीदा (ईमान), सही क़िरात (पाठ), सही पाकी (पवित्रता) वाला, पुरुष, समझदार, वयस्क और माज़ूर (मजबूर) न हो, इमामत कर सकता है, यानी उसके पीछे नमाज़ हो जाएगी।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۲۹ : از گوالیار ضلع مند سور قصبہ جاد و مرسلہ عبدالملک خاں ۷ ربیع الاول شریف ۱۳۲۳ھ کیا حکم ہے شرع شریف کا اس مسئلہ میں کہ جادو ایک قصبہ ہے جہاں تین مسجدیں اباد ایک ہی محلہ میں قریب قریب واقع ہیں جمعہ کے روز ہر مسجد والے اپنی اپنی مسجد میں مانند صلوٰۃ خمسہ کے جمعہ پڑھا کرتے ہیں ایک مولوی صاحب کہتے ہیں کہ اس طرح جمعہ پڑھنا صحیح نہیں کیونکہ جمعہ کی شرائط سے حضور سلطان ہے یا نائب یا ماذون با قامۃ جمعہ تو یہ شرط یہاں پر مفقود ہے اور ایسے مقام پر مسلمانوں کو چاہئے کہ ایک شخص کو اپنا قاضی و سردار بنا کر اس کے پیچھے جمعہ پڑھا کریں، دوسرے مولوی صاحب فرماتے ہیں کہ جمعہ کی اقامت کے واسطے سلطان یا اس کے نائب مامور کا ہونا شرط نہیں ، اگر ان سے ایک بھی نہ ہو تو بھی جمعہ صحیح ہے اور مسلمانوں کو قاضی بنانا اور اس کے پیچھے نماز پڑھنے کی کچھ ضرورت نہیں اسی طرح اپنی اپنی مسجدوں میں بھی جمعہ پڑھنا کچھ حرج نہیں بلکہ ایک جگہ جمع ہونے میں حرج ہے امیدوار قول فیصل ہوں، بینوا توجروا۔

الجواب: فی الواقع ادائے جمعہ کے لئے سلطان یا اس کا نائب یا ماذون یا ماذون الماذون وھلم جرا (اسی طرح آگے چلے چلو۔ ت) کا اقامت کرنا باتفاق ائمہ حنفیہ شرط ہے کتب المذاھب طافحۃ بذلك (کتب مذہب اس سے مامور ہیں۔ ت) مگر یہ ان شرائط سے ہے کہ محل ضرورت میں بخلفیت بدل ساقط ہو جاتی ہیں جیسے صحت نماز کے لئے وضو شرط ہے اور پانی پر قدرت نہ ہو تو تیمم اس کا خلیفہ و بدل ہے اور اس سے واضح تر استقبال قبلہ ہے کہ قطعاً شرط ہے اور بحال تعذر جہت تحری اس کی نائب، یوں ہی اقامت سلطان بمعنی مذکور ضرور شرط جمعہ ہے اور یہاں بوجہ تعین مسلمین قائم مقام تعین سلطان ہے تو اسے شرط نہ کہنا بھی غلط اور اس کے نہ ہونے کے سبب یہاں

جمعہ صحیح نہ ماننا اس سے زیادہ باطل و غلط اور مذہب صحیح و معتمد و مفتی بہ میں تعدد جمعہ مطلقاً جائز ہے۔ کما نص فی غیر ماکتاب واللہ سبحنہ وتعالی اعلم بالصواب۔

مسئلہ ۱۳۳۰ : از پیلی بھیت مولانا وصی احمد صاحب محدث سورتی کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ امامت پنجگانہ و امامت جمعہ و عیدین کا ایک ہی حکم ہے کیا؟ فقط

الجواب: جمعہ و عیدین و کسوف امامت نماز پنجگانہ سے بہت تنگ تر ہے، پنجگانہ میں ہر شخص صحیح الایمان صحیح القراۃ صحیح الطہارۃ مرد عاقل بالغ غیر معذور امامت کر سکتا ہے یعنی اس کے پیچھے نماز ہو جائے گی

Volume 8 Fatawa Razawiya

Although, due to sin etc., it might be abominable (Makruh Tahrimi) and necessary to repeat, the meaning of the saying "Prayer is permissible behind every righteous and wicked person" (T) is exactly this. However, no one can lead the Jumu'ah (Friday), Eid, and Kusuf (solar eclipse) prayers—even if they possess virtues like being a Hafiz, Qari, or pious—unless they are, by the rule of Sharia, the Imam of the general Muslims themselves, having a general right to leadership, or appointed and authorized by such an Imam. This right is established in only three ways, in order: First: He is the Sultan of Islam. Second: Where there is no Islamic Sultanate, this general leadership belongs to the most knowledgeable religious scholar of that city. Third: Where even this is not possible, the general Muslims may appoint someone out of necessity. Without these forms, if a person is neither such an Imam himself nor an assistant, authorized, or appointed person of such an Imam, his leadership in these prayers is fundamentally not valid. If he leads, the prayer will be absolutely void, and the obligation of Jumu'ah will remain. In those cities where an Islamic Sultan is not present and it is difficult for the whole country to agree on one scholar, the most knowledgeable scholar of the city (A'lam Ulama-e-Balad), who is the most expert jurist among the Sunni scholars of that city, is their general leader in matters similar to prayer for Muslims. Based on the Quranic command, it is obligatory for people to refer to him and act upon his instructions. He should lead the Jumu'ah, Eid, and Kusuf prayers himself or appoint whoever he deems appropriate. If the common people, against his decision, make someone an Imam on their own, it will not be valid. The appointment by the public was only allowed out of necessity in a situation where a general Imam was not present. In his presence, their agreement counts for nothing. It is stated in Tanwir al-Absar and Durr al-Mukhtar, Chapter on Jumu'ah:

Arabic	Urdu Translation
يشترط لصحتها سبعة اشياء الاول المصر وفناء والثاني السلطان او مامورہ باقامتها[1]۔	Seven things are conditional for its validity: first, the city and its outskirts; second, the Sultan or someone commissioned by him for its establishment. (T)

In Fatawa Imam Attabi, and then in Hadiqa Nadiyya, a commentary on Tariqa Muhammadiyya, published in Egypt, Volume 1, page 240, it is stated:

Arabic	Urdu Translation
اذا خلا الزمان من سلطان ذی کفایة فالامور موکلة الی العلماء	When the time is devoid of a perfect Sultan, then affairs will be handed over to the scholars, and it is necessary

Arabic	Urdu Translation
ويلزم الامة الرجوع اليهم و يصيرون ولاة فاذا عسر جمعهم على واحد استقل كل قطر	for the Ummah to turn to the scholars, and at that time the scholars themselves will become the guardians. And when they [cannot agree] on any matter...

[1] Durr al-Mukhtar, Chapter of Jumu'ah, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/109.

खंड 8 फ़तावा रज़विया

हालाँकि फ़िस्क़ (पाप) आदि के कारण मकरूहे तहरीमी और दोहराना आवश्यक हो सकता है, लेकिन "हर नेक और बद (बुरे) के पीछे नमाज़ जायज़ है" (त) के यही मायने हैं। लेकिन जुमा, ईदैन और कुसूफ़ (सूर्य ग्रहण) में कोई इमामत नहीं कर सकता, चाहे वह हाफ़िज़, क़ारी, मुत्तक़ी आदि जैसे गुणों का स्वामी ही क्यों न हो, जब तक कि वह शरीयत के हुक्म के अनुसार आम मुसलमानों का खुद इमाम न हो कि आमतौर पर उन पर इमामत का अधिकार रखता हो, या ऐसे इमाम का नियुक्त और अधिकृत किया हुआ हो। और यह अधिकार क्रमवार केवल तीन तरह से सिद्ध होता है: पहला: वह सुल्तान-ए-इस्लाम (इस्लामी शासक) हो। दूसरा: जहाँ इस्लामी सल्तनत नहीं है, वहाँ यह आम इमामत उस शहर के सबसे बड़े धार्मिक विद्वान (आलिम-ए-दीन) को प्राप्त है। तीसरा: जहाँ यह भी न हो, वहाँ मजबूरी में आम मुसलमान जिसे नियुक्त कर लें। इन रूपों के बिना, जो व्यक्ति न तो स्वयं ऐसा इमाम है और न ही ऐसे इमाम का प्रतिनिधि, अधिकृत या नियुक्त किया हुआ, उसकी इमामत इन नमाज़ों में मूल रूप से सही नहीं है। यदि वह इमामत करेगा तो नमाज़ पूरी तरह से शून्य (बातिल) होगी, जुमा का फ़र्ज़ सिर पर रह जाएगा। उन शहरों में जहाँ सुल्तान-ए-इस्लाम मौजूद नहीं है और पूरे देश का एक विद्वान पर सहमत होना कठिन है, तो शहर का सबसे बड़ा विद्वान (अअ़लम उलमा-ए-बलद), जो उस शहर के सुन्नी विद्वानों में सबसे बड़ा फ़क़ीह (न्यायविद) हो, नमाज़ की तरह मुसलमानों के कार्यों में उनका आम इमाम है। और कुरान के हुक्म के अनुसार उन पर उसकी ओर रुजू करना और उसके निर्देश पर अमल करना फ़र्ज़ है। जुमा, ईदैन और कुसूफ़ की इमामत वह स्वयं करे या जिसे उचित समझे नियुक्त करे। उसके खिलाफ जनता यदि अपनी ओर से किसी को इमाम बना लेगी तो वह सही नहीं होगा, क्योंकि जनता द्वारा नियुक्ति मजबूरी में उसी स्थिति में जायज़ रखी गई है जब आम इमाम मौजूद न हो। उसके होते हुए उनकी सहमति का कोई महत्व नहीं है। 'तनवीरुल अबसार' और 'दुर्रे मुख़्तार' के जुमा अध्याय में है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
يشترط لصحتها سبعة اشياء الاول المصر وفناء والثاني السلطان او مامورہ باقامتها[1]۔	जुमे की वैधता के लिए सात चीजें शर्त हैं: पहली, शहर और शहर का उपनगर; और दूसरी, सुल्तान या उसकी ओर से जुमे की स्थापना के लिए नियुक्त व्यक्ति। (त)

'फ़तावा इमाम अत्ताबी' फिर 'हदीक़ा नदिय्या' (तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया की व्याख्या), जो मिस्र में प्रकाशित हुई है, खंड 1, पृष्ठ 240 में है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
اذا خلا الزمان من سلطان ذی کفایة فالامور موکلة الی العلماء ویلزم الامة الرجوع الیهم و یصیرون ولاة فاذا عسر جمعهم علی واحد استقل کل قطر	जब ज़माना एक पूर्ण सुल्तान से खाली हो, तो मामले विद्वानों के सुपुर्द होंगे और उम्मत पर अनिवार्य है कि वह विद्वानों की ओर रुजू करे, और उस समय विद्वान ही वाली (संरक्षक) हो जाएंगे। और जब वे किसी मामले पर...

[1] दुर्रे मुख़्तार, जुमा अध्याय, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली, 1/109।

पृष्ठ 385/673

اگرچہ بوجہ فسق وغیرہ مکروہِ تحریمی واجب الاعادہ ہو تجوز الصلوٰۃ خلف کل بر و فاجر (ہر نیک وبد کے پیچھے نماز جائز ہے۔ ت) کے یہی معنی ہیں مگر جمعہ وعیدین وکسوف میں کوئی امامت نہیں کرسکتا اگرچہ حافظ قاری متقی وغیرہ وغیرہ فضائل کا جامع ہو مگر وہ جو بحکم شرع عام مسلمانوں کا خود امام ہو کہ بالعموم ان پر استحقاقِ امامت رکھتا ہو یا ایسے امام کا ماذون ومقرر کردہ ہو اور یہ استحقاق علی الترتیب صرف تین طور پر ثابت ہوتا ہے: اولاً: وہ سلطانِ اسلام ہو۔ ثانیاً: جہاں سلطنتِ اسلام نہیں وہاں یہ امامتِ عامہ اس شہر کے اعلم علمائے دین کو ہے۔ ثالثاً: جہاں یہ بھی نہ ہو وہاں بمجبوری عام مسلمان جسے مقرر کرلیں، بغیر ان صورتوں کے جو شخص نہ خود ایسا امام نہ ایسے امام کا نائب وماذون ومقرر کردہ اس کی امامت ان نمازوں میں اصلاً صحیح نہیں، اگر امامت کرے گا نماز باطل محض ہوگی، جمعہ کا فرض سر پر رہ جائے گا، ان شہروں میں کہ سلطانِ اسلام موجود نہیں اور تمام ملک کا ایک عالم پر اتفاق دشوار ہے، اعلم علمائے بلد کہ اُس شہر کے سنی عالموں میں سب سے زیادہ فقیہ ہو نماز کے مثل مسلمانوں کے کاموں میں ان کا امامِ عام ہے اور بحکم قرآن اُن پر اس کی طرف رجوع اور اس کے ارشاد پر عمل فرض ہے جمعہ وعیدین وکسوف کی امامت وہ خود کرے یا جسے مناسب جانے مقرر کرے، اُس کے خلاف پر عوام بطورِ خود اگر کسی کو امام بنالیں گے صحیح نہ ہوگا کہ عوام کا تقرر بمجبوری اُس حالت میں روا رکھا گیا ہے جب امامِ عام موجود نہ ہو اُس کے ہوتے ہوئے ان کی اقرار داد کوئی چیز نہیں، تنویر الابصار ودرِ مختار باب الجمعہ میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
یشترط لصحتها سبعة اشیاء الاول المصر وفناء والثاني السلطان او ماموره باقامتها[1]۔	صحتِ جمعہ کے لئے سات چیزیں شرط ہیں: ایک یہ شہر اور فناء شہر، دوسری سلطان یا اقامتِ جمعہ پر اس کی طرف سے کوئی مامور ہو (ت)

فتاوٰی امام عتابی پھر حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ مطبوعہ مصر جلد اول صفحہ ۲۴۰ میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
اذا خلا الزمان من سلطان ذی کفایة فالامور موکلة الی العلماء ویلزم الامة الرجوع الیهم و یصیرون ولاة فاذا عسر جمعهم علی واحد استقل کل قطر	جب کامل سلطان سے زمانہ خالی ہو تو معاملاتِ علماء کے سپرد ہوں گے اور امت پر لازم ہے کہ وہ علماء کی طرف رجوع کرے اور اس وقت علماء ہی والی ہو جائیں گے اور جب ان کا کسی معاملہ پر

[1] در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Box 1] Arabic: Follow their scholars. If they are many, follow the most learned among them. If they are equal in knowledge, cast lots between them. — 1 Urdu Translation: If it becomes difficult to gather together, then the people of each region should follow their own scholars. If there are many scholars in that region, follow the one with the most knowledge. If they are equal, then a draw (lots) should be cast. (T)

Allah Almighty says: [Box 2] Arabic: "Obey Allah and obey the Messenger and those in authority among you." — 2 Urdu Translation: Obey Allah, obey the Messenger of Allah, and those who are in authority among you. (T)

The leaders of religion (Imams) say that it is correct that "Ulil Amr" (those in authority) in this noble verse refers to the scholars of religion. This was explicitly stated by Al-Allama Al-Zarqani in Sharh al-Mawahib and others in other works. (Allama Zarqani has specified this in Sharh al-Mawahib and other scholars in their books. - T). It is stated in Durr al-Mukhtar: [Box 3] Arabic: The appointment of a preacher (Khatib) by the common people is not valid in the presence of those mentioned (authorities like the Sultan), but in their absence, it is permissible due to necessity. — 3 Urdu Translation: If the aforementioned people (Sultan etc.) are present, it will not be correct for the common people to appoint a preacher. In their absence, it will be permissible due to necessity. (T)

It is stated in Fatawa Qadi Khan and Radd al-Muhtar: [Box 4] Arabic: If someone delivers the sermon without the permission of the Imam while the Imam is present, it is not permissible unless the Imam has commanded him to do so. — 4 And Allah Almighty knows best. Urdu Translation: If someone delivers the sermon without the Imam's permission while the Imam was present, then this is not permissible except in the case where the Imam has given him permission. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 1331: From the state of Jadoora, residence of Abdul Majeed Khan Sahib, Registrar, dated 18th [month] 1315 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: is Friday prayer (Jumu'ah) valid in a village or not?

Footnotes: 1. Al-Hadiqa al-Nadiyya Sharh al-Tariqa al-Muhammadiyya, the third type of the three types of sciences, etc., printed at Nuriya Razawiyya, Faisalabad, 1/351. 2. Al-Quran, 4/59. 3. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, printed at Matba' Mujtabai,

Delhi, 1/101. 4. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, printed at Mustafa Al-Bani, Egypt, 1/594.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[बॉक्स 1] अरबी: उनके विद्वानों (उलेमा) का अनुसरण करें। यदि वे कई हैं, तो उनमें से सबसे अधिक ज्ञानी का अनुसरण करें। यदि वे ज्ञान में समान हैं, तो उनके बीच पर्ची (क़ुरआ) डालें। — 1 उर्दू अनुवाद: यदि एक साथ जमा होना मुश्किल हो जाए, तो प्रत्येक क्षेत्र के लोग अपने क्षेत्र के विद्वानों का अनुसरण करें। यदि उस क्षेत्र में विद्वान अधिक हों, तो उनमें से अधिक ज्ञान रखने वाले का अनुसरण करें, और यदि वे बराबर हों, तो पर्ची डाल ली जाए। (त)

अल्लाह अज़्ज़ व जल फ़रमाता है: [बॉक्स 2] अरबी: "अल्लाह की आज्ञा का पालन करो और रसूल की आज्ञा का पालन करो और उनका भी जो तुममें अधिकार वाले हैं।" — 2 उर्दू अनुवाद: अल्लाह की आज्ञा मानो, अल्लाह के रसूल की आज्ञा मानो और जो तुममें से अधिकार वाले (उलिल अम्र) हैं। (त)

धर्म के इमाम फ़रमाते हैं कि सही यह है कि आयत करीमा में 'उलिल अम्र' से मुराद दीन के उलेमा (धर्म के विद्वान) हैं। अल्लामा ज़र्क़ानी ने 'शर्ह अल-मवाहिब' में और अन्य विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में इस पर स्पष्टीकरण दिया है। (अल्लामा ज़र्क़ानी ने 'शर्ह अल-मवाहिब' में और अन्य विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में इस पर स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। - त) 'दुर्रे मुख़्तार' में है: [बॉक्स 3] अरबी: आम जनता द्वारा ख़तीब (उपदेशक) की नियुक्ति मान्य नहीं है जब तक कि वे लोग (अधिकारी जैसे सुल्तान आदि) मौजूद हों, लेकिन उनकी अनुपस्थिति में आवश्यकता के कारण यह जायज़ होगा। — 3 उर्दू अनुवाद: यदि उपर्युक्त लोग (सुल्तान आदि) मौजूद हों, तो आम लोगों का ख़तीब नियुक्त करना सही नहीं होगा और उनकी अनुपस्थिति में ज़रूरत की वजह से जायज़ होगा। (त)

'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' और 'रद्दुल मुह्तार' में है: [बॉक्स 4] अरबी: यदि किसी ने इमाम की अनुमति के बिना ख़ुतबा (उपदेश) दिया जबकि इमाम मौजूद था, तो यह जायज़ नहीं है जब तक कि इमाम ने उसे ऐसा करने का आदेश न दिया हो। — 4 और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। उर्दू अनुवाद: अगर किसी ने इमाम की इजाज़त के बिना ख़ुतबा दिया जबकि इमाम मौजूद था, तो यह जायज़ नहीं है सिवाय उस सूरत में जब इमाम ने उसे इजाज़त दी हो। वल्लाहु तआला आलम। (त)

मसला 1331: रियासत जादोरा, मकान अब्दुल मजीद ख़ान साहिब सर-रिश्तादार, दिनांक 18 [महीना] 1315 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि गाँव में जुमा सही है या नहीं?

पाद-टिप्पणियाँ (Footnotes): 1. अल-हदीक़त अल-नदिय्या शर्ह अल-तरीक़त अल-मुहम्मदिय्या, तीन प्रकार के विज्ञानों में से तीसरा प्रकार, आदि, नूरिया रज़विया, फ़ैसलाबाद, 1/351 द्वारा प्रकाशित। 2. अल-क़ुरआन, 4/59। 3. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल जुमा (जुमा का अध्याय), मत्वअ मुज्तबाई, दिल्ली, 1/101 द्वारा प्रकाशित। 4. रद्दुल मुह्तार, बाबुल जुमा, मुस्तफ़ा अल-बानी, मिस्र, 1/594 द्वारा प्रकाशित।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[باکس 1] عربی: بِاتِّبَاعِ عُلَمَائِہِ فَاِنْ کَثُرُوْا فَالْمُتَّبِعُ اَعْلَمُھُمْ فَاِنِ اسْتَوَوْا اَقْرِعْ بَیْنَھُمْ ۔ 1 اردو: جمع ہونا مشکل ہوجائے تو ہر علاقہ کے لوگ اپنی طرف کے علماء کی اتباع کرلیں ، اور اگر اس علاقہ میں علماء زیادہ ہوں تو ان میں زیادہ علم والے کی اتباع کریں اور اگر وہ برابر ہوں تو قرعہ ڈال لیا جائے (ت)

اللہ عزوجل فرماتا ہے : [باکس 2] عربی: اَطِیْعُوا اللّٰہَ وَ اَطِیْعُوا الرَّسُوْلَ وَ اُولِی الْاَمْرِ مِنْکُمْ 2 ۔ اردو: اللہ کی اطاعت کرو، رسول اللہ کی اطاعت کرو اور تم میں سے جو صاحب امر ہیں ،(ت)

ائمہ دین فرماتے ہیں صحیح یہ ہے کہ آیہ کریمہ میں اولی الامر سے مراد علمائے دین ہیں نص علیہ العلامۃ الزرقانی فی شرح المواھب وغیرہ فی غیرہ (علامہ زرقانی نے شرح المواہب میں اور دیگر علماء نے اپنی کتب میں اس پر تصریح کی ہے۔ت) در مختار میں ہے : [باکس 3] عربی: نَصْبُ الْعَامَّۃِ الْخَطِیْبَ غَیْرَ مُعْتَبَرٍ مَعَ وُجُوْدِ مَنْ ذَکَرَ اِمَامًا مَعَ عَدَمِھِمْ فَیَجُوْزُ لِلضَّرُوْرَۃِ 3 ۔ اردو: مذکورہ لوگ (سلطان وغیرہ) ہوں تو لوگوں کا خطیب کو مقرر کرنا درست نہ ہوگا اور ان کی عدم موجودگی میں ضرورت کی وجہ سے جائز ہوگا۔ (ت)

فتاوٰی قاضی خاں و ردالمحتار میں ہے : [باکس 4] عربی: خَطَبَ بِلَا اِذْنِ الْاِمَامِ وَالْاِمَامُ حَاضِرٌ لَمْ یَجُزْ اِلَّا اَنْ یَّکُوْنَ الْاِمَامُ اَمَرَہٗ بِذَالِکَ 4۔ وَاللّٰہُ تَعَالٰی اَعْلَمُ اردو: اگر کسی نے امام کی اجازت کے بغیر خطبہ دیا حالانکہ امام موجود تھا تو یہ جائز نہیں مگر اس صورت میں جب امام نے اسے اجازت دی ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم۔(ت)

مسئلہ ۱۳۳۱ : از ریاست جادورہ مکان عبدالمجید خاں صاحب سر رشتہ دار تاریخ ۱۸ ۱۳۱۵ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جمعہ گاؤں میں درست ہے یا نہیں ؟

حواشی: 1 الحدیقۃ الندیۃ شرح الطریقۃ المحمدیۃ النوع الثالث من انواع العلوم الثلثۃ الخ مطبوعہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۱/ ۳۵۱ 2 القرآن ۵۹/۴ 3 درمختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۱ 4 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱/ ۵۹۴

Fatawa Razawiyya - Volume 8

Answer: Jumu'ah and Eid prayers are impermissible in villages and performing them is a sin. However, if the ignorant masses perform them, there is no need to forbid them, because it is a blessing in whatever way the public mentions the name of Allah and His Messenger, as mentioned in Al-Bahr al-Ra'iq, Al-Durr al-Mukhtar, Al-Hadiqah al-Nadiyyah, etc. (as it is in Al-Bahr al-Ra'iq, Durr al-Mukhtar, and Al-Hadiqah al-Nadiyyah etc. - T) And Allah Almighty knows best.

Problem 1332 to 1334: From Khairabad, district Sitapur, Mohalla Mian Sarai, Madrasa Arabiya Qadeem, sent by Maulvi Syed Fakhrul Hasan Sahib, 12 Dhul-Qi'dah 1326 AH. Regarding the recitation of the Friday and Eid Khutbah (sermon) in languages other than Arabic, whether in Persian or another language, Mufti Saadullah Sahib (late) states in his Fatawa Sadiyyah:

[Box 1] Left (Arabic/Persian): According to Imam Abu Hanifa, it is permissible but disliked with a 'Tanzihi' (mild) dislike. Right (Urdu): According to Imam Abu Hanifa (may Allah Almighty have mercy on him), this is permissible but 'Makruh Tanzihi' (mildly disliked). (T)

And at the end of the same answer, it is stated:

[Box 2] Left (Arabic/Persian): If the obligatory portion of the Khutbah, which according to the 'Sahibayn' (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) is equal to the length of Tashahhud, is performed in Arabic, then there is no harm in reciting the rest of it in Persian or other languages, as mentioned in Minah al-Ghaffar Sharh Tanwir al-Absar. Right (Urdu): If someone recites the obligatory amount of the Khutbah, which according to the 'Sahibayn' is the amount of Tashahhud, in Arabic, and recites the rest of the Khutbah in any other language, then there is no harm in it, as it is in Minah al-Ghaffar Sharh Tanwir al-Absar. (T)

Maulvi Abdul Hayy Sahib, in the second volume of his collection of Fatawa, very emphatically describes the Khutbah in the Arabic language as 'Sunnah Mu'akkadah' (emphasized tradition) and reciting it in a non-Arabic language as 'Makruh Tahrimi' (prohibitively disliked) and a 'Bid'ah Dalalah' (misguided innovation). However, in the third volume of the same Fatawa, he writes it as 'Makruh Tanzihi'. Therefore, please provide guidance on whether a Khutbah that is entirely in a non-Arabic language, or partially mixed with Arabic and another language, is 'Makruh Tahrimi' and 'Bid'ah

Dalalah', or 'Makruh Tanzihi', or permissible without dislike. State the ruling and be rewarded (Bainu Tujaru).

(2) The Friday Khutbah authored by Hazrat Makhdoom Sa'duddin, known as Makhdoom Sheikh Sa'd (may his secret be sanctified), of Khairabad, Khalifa of Hazrat Makhdoom Shah Meena Lucknowi (may his noble secret be sanctified), which is attached herewith, includes the following phrase from the said Khutbah:

[Box 3] Left: When Hazrat Muhammad Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) said... Right: Hazrat Muhammad Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) has...

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

जवाब: गाँवों में जुमा और ईद की नमाज़ें जायज़ नहीं हैं और उनका पढ़ना गुनाह है, लेकिन अगर जाहिल अवाम पढ़ती है तो उन्हें रोकने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि अवाम जिस तरह भी अल्लाह और उसके रसूल का नाम ले ले वही ग़नीमत है, जैसा कि अल-बह्रर्राइक़, अद-दुर्रुल मुख्तार और अल-हदीक़तुन नदिय्या वग़ैरह में है। (जैसा कि बह्रर्राइक़, दुर्र-ए-मुख्तार और हदीक़ा-ए-नदिय्या वग़ैरह में है। - त) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1332 से 1334: खैराबाद, ज़िला सीतापुर, मोहल्ला मियाँ सराए, मदरसा अरबिया क़दीम से, मुरसिला मौलवी सैयद फ़ख्रुल हसन साहब, 12 ज़ुल-क़ादा 1326 हिजरी। जुमा और ईदों का खुत्बा अरबी के अलावा फारसी या किसी और ज़बान में पढ़ने के बारे में मुफ्ती सअदुल्लाह साहब (मरहूम) अपने 'फ़तावा सअदिया' में फरमाते हैं:

[बॉक्स 1] बायाँ (अरबी/फारसी): इमाम अबू हनीफ़ा के नज़दीक यह जायज़ और मकरूह-ए-तन्ज़ीही (नापसंदीदा) है। दायाँ (उर्दू): इमाम अबू हनीफ़ा रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक यह जायज़ है लेकिन मकरूह-ए-तन्ज़ीही (नापसंदीदा) है। (त)

और इसी जवाब के अंत में है:

[बॉक्स 2] बायाँ (अरबी/फारसी): अगर खुत्बे की वाजिब मिक़दार, जो साहिबैन के नज़दीक तशहुद के बराबर है, अरबी में अदा की गई हो, तो उनके नज़दीक उसके अलावा फारसी या अन्य भाषाओं में पढ़ने में कोई हर्ज नहीं है, जैसा कि मिनह-अल-ग़फ़्फ़ार शरह तनवीर-अल-अबसार में है। दायाँ (उर्दू): अगर कोई व्यक्ति खुत्बे की वाजिब मिक़दार, जो साहिबैन के नज़दीक तशहुद की मिक़दार है, अरबी में पढ़ ले और इसके अलावा खुत्बा किसी और ज़बान में पढ़ ले तो इसमें कोई हर्ज नहीं है, जैसा कि मिनह-अल-ग़फ़्फ़ार शरह तनवीर-अल-अबसार में है। (त)

मौलवी अब्दुल हई साहब अपने मजमुआ-ए-फ़तावा के दूसरे जिल्द में बहुत ज़ोर देकर अरबी ज़बान में खुत्बे को 'सुन्नत-ए-मुअक्कदा' और ग़ैर-अरबी ज़बान में पढ़ने को 'मकरूह-ए-तहरीमी' और 'बिदअत-ए-दलाला' लिखते हैं, लेकिन उसी फ़तावा के तीसरे जिल्द में 'मकरूह-ए-तन्ज़ीही' लिखते हैं। लिहाज़ा, वह खुत्बा जो पूरी तरह ग़ैर-अरबी ज़बान में हो या कुछ अरबी और कुछ दूसरी ज़बान में मिला-जुला हो, उसका पढ़ना मकरूह-ए-तहरीमी और बिदअत-ए-दलाला है या मकरूह-ए-तन्ज़ीही

या बिना किसी कराहत के जायज़ है? जो भी हुक्म हो उससे रहनुमाई फरमाएँ, बयान करें सवाब पाएँ (बैनू तूजरू)।

(2) जुमा का खुत्बा जो हज़रत मखदूम सअदुद्दीन उर्फ मखदूम शेख सअद (कुद्दिस सिर्रहु), खैराबादी, खलीफा हज़रत मखदूम शाह मीना लखनवी (कुद्दिस सिर्रहुल अज़ीज़) का लिखा हुआ है और इसके साथ संलग्न है, उस खुत्बे की इबारत में से यह भी है:

[बॉक्स 3] बायाँ: जब हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने कहा... दायाँ: हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने...

पेज 387 ऑफ़ 673

الجواب: جمعہ و عیدین دیہات میں ناجائز ہیں اور ان کا پڑھنا گناہ، مگر جاہل عوام اگر پڑھتے ہوں تو ان کو منع کرنے کی ضرورت نہیں کہ عوام جس طرح اللہ و رسول کا نام لے لیں غنیمت کما فی البحر الرائق والدر المختار میں والحدیقۃ الندیۃ وغیرہما (جیسا کہ بحر الرائق، در مختار اور حدیقہ ندیہ وغیرہ میں ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۳۳۲ تا ۱۳۳۴: از خیر آباد ضلع سیتا پور محلہ میاں سرائے مدرسہ عربیہ قدیم مرسلہ مولوی سید فخر الحسن صاحب ۱۲ ذیقعدہ ۱۳۲۶ھ خطبہ جمعہ و اعیاد کا سوائے زبان عربی خواہ فارسی ہو یا دیگر زبان ہو پڑھنے کی نسبت جناب مفتی سعد اللہ صاحب مرحوم اپنے فتاوٰی سعدیہ میں فرماتے ہیں:

[باکس ۱] نزد امام ابو حنیفہ جائز و مکروہ بکراہت تنزیہی است۔ | امام ابو حنیفہ رحمۃ اللہ تعالٰی کے نزدیک یہ جائز مگر مکروہِ تنزیہی ہے۔ (ت)

اور اسی جواب میں اختتام عبارت میں ہے:

[باکس ۲] اگر کسی خطبہ بقدر واجب کہ نزد صاحبین بقدر تشہد است بعربی ادا کردہ باشد خواندن ماورایش در فارسی و غیر آن نزد ایشان مضائقہ ندارد کمافی منح الغفار شرح تنویر الابصار۔ | اگر کوئی شخص خطبہ بمقدار واجب جو صاحبین کے نزدیک تشہد کی مقدار عربی میں پڑھ لے اور اس کے علاوہ خطبہ کسی اور زبان میں پڑھ لے تو اس میں کوئی مضائقہ نہیں، جیسا کہ منح الغفار شرح تنویر الابصار میں ہے۔ (ت)

جناب مولوی عبدالحئی صاحب اپنے مجموعہ فتاویٰ کے جلد دوم میں بہت شدومد کے ساتھ خطبہ کو عربی زبان میں سنت مؤکدہ اور غیر زبان میں پڑھنے کو مکروہِ تحریمی و بدعت ضلالہ تحریر فرماتے ہیں، مگر اسی فتاویٰ کے جلد سوم میں مکروہِ تنزیہی تحریر فرماتے ہیں، لہذا جو خطبہ کلًا غیر زبان میں ہو یا بعضاً مخلوط بزبان عربی و زبان دیگر میں ہو پڑھنا مکروہِ تحریمی ہے اور بدعت ضلالہ یا مکروہ تنزیہی یا جائز بلا کراہت، جو حکم ہو اس سے ہدایت فرمائی جائے، بینوا توجروا

(۲) خطبہ جمعہ مصنفہ حضرت مخدوم سعد الدین عرف مخدوم شیخ سعد قدس سرہ، خیر آبادی خلیفہ حضرت مخدوم شاہ مینا لکھنوی قدس سرہ العزیز جو منسلک ہذا ہے منجملہ عبارت خطبہ مذکور کے:

[باکس ۳] چوں گفتہ حضرت محمد مصطفیٰ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم | حضرت محمد مصطفیٰ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Right Column - Urdu translation of the Persian text on the left] I presented in the divine presence, "O Allah! If I put a blanket over my head, You say: 'O you wrapped in garments (Muzammil), arise [to pray] the night, except for a little—half of it.' If I come out, You say: 'and avoid them with gracious avoidance.' What should I do?" The command came from Allah Almighty: "O Muhammad! You seek comfort, while We seek exertion and distress from you. You want an account of your good deeds and to be in seclusion, and We want that We with you and you with Us have a hundred thousand kinds of accounts. Who are you who seeks peace of heart? We commanded former prophets with distress. If I see you happy, I will say: 'Indeed, Allah does not like the exultant.' And if I see your heart constrained, I will say: 'We already know that your breast is constrained by what they say.' How beautiful is that distress which a handful of dust has attained! Who is it that expresses mourning for tragedy in this matter? From Muhammad came this cry: 'O Lord of Muhammad! I wish Muhammad had never been created.' The cry of lovers is of this kind: 'I wish no mother in the world had given birth to a son, or that there were not even a trace or name of my father.' One cannot bind the feet of this deceitful and treacherous world, whereas this was the state of the Chief of Messengers, peace and blessings of Allah be upon him." (T)

[Left Column - Persian text with Arabic Quranic verses] O Lord, if I draw the blanket over my head, You say: "O you wrapped in garments! Arise [to pray] the night, except for a little—half of it..." (1) and if I come out, You say: "and avoid them with gracious avoidance." What should I do? The command came: "O you, you seek comfort and We want wandering/exertion from you. You want to conclude the account of good deeds with Me in seclusion, and We want that We with you and you with Us have a hundred thousand kinds of accounts. Who are you that specifically seeks peace? We made the decree of distress for former prophets. If I see you happy, I will say: 'Indeed, Allah does not like the exultant.' (1) And if I see your heart constrained, I will say: 'We already know that your breast is constrained by what they say.' (2) How beautiful a wandering/distress which the handful of dust has attained! Who is it that in this, has insight into mourning and tragedy? A cry arose from Muhammad: 'O Lord of Muhammad, if only Muhammad had not been created!' And the cry of lovers is of this kind: 'Oh, if only no mother of the world had given birth to a son, neither myself, nor would there be the name and trace of my father.' Ultimately, you cannot keep

this deceitful and treacherous world bound, when this was the matter for the Sultan of Messengers.

[Bottom Section] A gentleman, who is considered learned given the state of current times, has an objection to this passage. He claims it contains insults and disrespect toward the Holy Prophet (PBUH), which would be a cause for excommunication (takfir) of both the reader and the audience of the sermon, because this subject matter is derived from neither a Quranic verse nor any Hadith. Is this objector's objection correct or incorrect? And if incorrect, what is the answer to his objection? State clearly and be rewarded.

1. Al-Quran 28/76
2. Al-Quran 15/97

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[दायां स्तंभ - फारसी पाठ का उर्दू/हिंदी अनुवाद] ईश्वरीय दरबार में अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह! अगर मैं कम्ली सिर पर लेता हूँ तो आप फ़रमाते हैं, 'ऐ चादर ओढ़ने वाले! रात को थोड़ा क़ियाम कर, आधी रात।' अगर मैं बाहर आता हूँ तो आप फ़रमाते हैं, 'उन्हें अच्छे तरीक़े से छोड़ दे।' मुझे क्या करना चाहिए? अल्लाह तआला की तरफ़ से इरशाद हुआ कि ऐ मुहम्मद! आप राहत के तलबगार हैं और हम आप से मेहनत व परेशानी चाहते हैं। आप चाहते हैं कि मेरी नेकियों का हिसाब हो और मैं एकांत में रहूँ, और हम चाहते हैं कि हम तेरे साथ और आप मेरे साथ सौ हज़ार किस्म का हिसाब रखें। आप कौन हैं जो दिल का इत्मीनान चाहते हैं? हमने तो पुराने नबियों को परेशानी का हुक्म दिया। अगर मैं तुझे खुश देखूँगा तो कहूँगा, 'यकीनन अल्लाह तआला खुश होने वालों को पसंद नहीं करता।' और अगर तेरे दिल को तंग पाऊँगा तो कहूँगा, 'हम जानते हैं इस बात को कि आपका सीना उनकी बातों से तंग है।' वह परेशानी कितनी अच्छी है जो मिट्टी की मुट्ठी को हासिल हुई है! कौन है जो इस मामले में मातम-ए-मुसीबत का इज़हार करे? मुहम्मद की तरफ़ से यह फ़रियाद हुई: 'ऐ रब-ए-मुहम्मद! काश मुहम्मद पैदा ही न होता।' प्रेमियों की फ़रियाद इसी तरह की होती है: 'काश इस कायनात में कोई माँ बेटा ही न जनती, या खुद, मेरे बाप का नाम व निशान तक न होता।' इस मक्कार और गद्दार दुनिया के पाँव तो नहीं बाँध सकते जबकि रसूलों के सरदार सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का यह मामला था। (त)

[बायां स्तंभ - फारसी पाठ और अरबी कुरआन की आयतें] हे प्रभु, यदि मैं कंबल अपने सिर पर खींच लूँ, तो आप कहते हैं: "ऐ चादर ओढ़ने वाले! रात को (इबादत के लिए) खड़े रहो, थोड़े समय के लिए —आधी रात..." (1) और यदि मैं बाहर आता हूँ, तो आप कहते हैं: "और शालीनता से उनसे किनारा कर लें।" मुझे क्या करना चाहिए? आदेश आया: "ऐ तुम, तुम आराम चाहते हो और हम तुमसे व्याकुलता/मेहनत चाहते हैं। तुम चाहते हो कि मेरे साथ नेक कार्यों का हिसाब एकांत में पूरा करो, और हम चाहते हैं कि हमारे साथ तुम्हारा और तुम्हारा हमारे साथ लाख प्रकार का हिसाब हो। तुम कौन हो जो विशेष रूप से शांति चाहते हो? हमने पुराने नबियों के लिए परेशानी का आदेश दिया। यदि मैं तुम्हें खुश देखूँगा, तो कहूँगा: 'निश्चित रूप से अल्लाह खुश होने वालों (अहंकारियों) को पसंद नहीं करता।' (1) और यदि मैं तुम्हारा दिल तंग देखूँगा, तो कहूँगा: 'निश्चित रूप से हम जानते हैं कि आपका सीना उनकी बातों से तंग होता है।' (2) कितनी सुंदर है वह व्याकुलता/परेशानी जो इस मिट्टी की मुट्ठी (इंसान) को मिली है! वह कौन है जिसे इस मातम और त्रासदी में समझ है? मुहम्मद से एक

पुकार उठी: 'ऐ मुहम्मद के रब, काश मुहम्मद पैदा न हुआ होता!' और प्रेमियों की पुकार इसी तरह की होती है: 'आह, काश दुनिया की किसी माँ ने बेटा न जना होता, न मैं होता, न मेरे पिता का नाम और निशान होता।' अंतत; आप इस मक्कार और विश्वासघाती दुनिया को बंधा हुआ नहीं रख सकते, जब रसूलों के सुल्तान के लिए यह मामला था।

[निचला भाग] इस इबारत पर एक साहब को, जो मौजूदा दौर की हालत देखते हुए विद्वान माने जाते हैं, यह ऐतराज है कि इस इबारत में नबी करीम (सल्ल.) की शान में गुस्ताखी और बे-अदबी है, जो खुतबा पढ़ने वाले और सुनने वालों के काफ़िर होने का कारण है, क्योंकि इस विषय का आधार न तो किसी कुरआन की आयत पर है और न ही किसी हदीस पर। क्या ऐतराज करने वाले का यह ऐतराज सही है या गलत? और अगर गलत है, तो ऐतराज का जवाब क्या है? बयान कीजिए, आपको सवाब मिलेगा।

1. अल-कुरआन 28/76
2. अल-कुरआन 15/97

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

[دایاں کالم - فارسی متن کا اردو ترجمہ] بارگاہِ خداوندی میں عرض کیا اے اللہ ! اگر میں کملی سر پر لیتا ہوں تو آپ فرماتے ہیں " اے چادر اوڑھنے والے رات کو تھوڑا قیام کر نصف رات" اگر میں باہر آتا ہوں تو آپ فرماتے ہیں، " ان کو احسن طریقے سے چھوڑ دے " مجھے کیا کرنا چاہئے؟ اللہ تعالیٰ کی طرف سے ارشاد ہوا کہ اے محمد ! آپ راحت کے طلبگار ہیں اور ہم آپ سے محنت و پریشانی چاہتے ہیں، آپ جانتے ہیں کہ میری نیکوں کا حساب ہو اور گوشہ نشین رہوں، اور ہم چاہتے ہیں کہ ہم تیرے ساتھ اور آپ میرے ساتھ سو ہزار قسم کا حساب رکھیں، آپ کون ہیں جو دل کا اطمینان چاہتے ہیں ہم نے تو سابقہ انبیاء کو پریشانی کا حکم دیا اگر میں تجھے خوش دیکھوں گا تو کہوں گا " یقیناً اللہ تعالیٰ خوش ہونے والوں کو پسند نہیں کرتا " اور اگر تیرے دل کو تنگ پاؤں تو کہوں گا " ہم جانتے ہیں اس بات کو کہ آپ کا سینہ ان کی باتوں سے تنگ ہے " وہ پریشانی کتنی اچھی ہے جو مشت خاک کو حاصل ہوئی ہے کون ہے جو اس معاملہ میں ماتم مصیبت کا اظہار کرے ، محمد کی طرف سے یہ فریاد ہوئی اے رب محمد ! کاش محمد کو پیدا ہی نہ کرتا ، عشاق کی فریاد اسی طرح کی ہوتی ہے، کاش اس کائنات میں کوئی ماں بیٹا ہی نہ جنتی، یا خود، میرے باپ کا نام و نشان تک نہ ہوتا، اس مکار و غدار دنیا کے پاؤں تو نہیں باندھ سکتے جبکہ رسولوں کے سربراہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا یہ معاملہ تھا۔ (ت)

[بایاں کالم - فارسی متن مع عربی آیاتِ قرآنی] بار خدا اگر گلیم بر سر کشم گوئی یٰٓاَیُّهَا الْمُزَّمِّلُۙ(۱) قُمِ الَّیْلَ اِلَّا قَلِیْلًاۙ(۲) نِّصْفَهٗۤ و اگر بیرون آرم گوئی واهجرهم هجراً جمیلاً، مرا چه باید کرد فرمان آمد اے تو راحت می طلبی و ما از تو سرگردانی میخواهیم تو میخواہی کہ با من حساب حسنات بسر بری بو گوشہ نشینی و ما می خواهم کہ مرا با تو و ترا با من صد ہزار گونہ حساب بود تو کیستی کہ خاص

جمع میخواہی حکم بر انبیا ہے اولین کردیم بپریشانی، اگر شادت بینم گویم اِنَّ اللّٰہَ لَا یُحِبُّ الْفَرِحِیْنَ ۱ و اگر دل تنگت بینم گویم وَ لَقَدْ نَعْلَمُ اَنَّكَ یَضِیْقُ صَدْرُكَ بِمَا یَقُوْلُوْنَ ۲ زہے سر گردانی کہ مشتِ خاک را ست کیست کہ دریں ، ماتم و مصیت وقوف دارد فریاد و از محمد بر خاست یالیت رب محمد لم یخلق محمداً وفریادِ عاشقاں بریں نوع ست اے کاش نزادے پسرے مادر عالم نہ خود نہ بدی نام و نشان پدر من عاقبت این دینا ئے مکارہ و غدارہ پابستہ نداری کہ سلطانِ مر سلاں ایں معاملہ بودہ است۔

[سوال کا حصہ] اس عبارت پر ایک صاحب کو جو بنظر حالت زمانہ حال ذی علم خیال کئے جاتے ہیں یہ اعتراض ہے کہ اس عبارت میں اہانت و بے حرمتی حضرت نبی کریم علیہ افضل الصلوٰۃ والتسلیم ہے جو باعث تکفیر قاری و سامعین خطبہ ہے کیونکہ اس مضمون کا استنباط نہ کسی آیت قرآنی سے ہے نہ کسی حدیث سے، یہ اعتراض معترض کا صحیح ہے یا غلط؟ اور اگر غلط ہے تو معترض کے اعتراض کا کیا جواب ہے؟ بینوا توجروا

1 القرآن ۲۸/ ۷۶ 2 القرآن ۱۵/ ۹۷

Volume 8 Fatawa-e-Razviya

The Answer: Mixing non-Arabic language into the sermon (Khutbah) is harmful and 'Makruh Tanzihi' (undesirable/disliked) and contrary to the inherited Sunnah of the Prophet. Having the sermon entirely in a non-Arabic language is even more 'Makruh', as we have researched in our Fatawas (as we have conducted research on it in our Fatawa - Translator). However, calling it 'Makruh Tahrimi' (prohibitively disliked) and 'Bid'ah Dalalah' (misleading innovation) is absolutely wrong, false, and baseless. And Allah Almighty knows best.

(2) Reciting this [specific] sermon is forbidden and pure ill-will towards the common Muslims. This terrible discourse mentioned in it has no basis in any verse, Hadith, report, or any reliable and authentic book. Nor is it proven through an authentic chain from Hazrat Sayyiduna Makhdoom Sheikh Saad Budhan (may Allah be pleased with him). If it is such a baseless story, then its rejection is self-evident. And if it's not a scribal error, the disjointedness of the text itself is clear proof of the falsity of its attribution. For example, at the beginning of the sermon: 'Afaman sharahallahu sadrahu lil-Islami wa man taba tawbatan nasuhan min at-tabi'een' (Is he whose chest Allah opens for Islam, and he who repents sincerely is a Tabi'i? - Translator). In the second sermon: 'Nashhadu anna Muhammadan abduhu wa rasuluh khusoosan ala afdal as-sahabati wa afdalihim bit-tahqeeq' (We testify that Hazrat Muhammad is Allah's servant and His Messenger, especially superior to the Sahaba and certainly possessor of excellence over them - Translator). Furthermore, the primary purpose of the sermon is 'Amr bil Ma'ruf wa Nahi anil Munkar' (enjoining good and forbidding evil), i.e., encouraging righteous deeds and restraining from sins. This sermon does not deal with this at all, but is explicitly against it. When ignorant people hear every Friday that Allah Almighty has said: 'Whoever testifies to My Oneness and your Messengership will enter Paradise, no matter what his deeds are,' what a bad effect it will have on them! They will think just reciting the Kalima is enough, and deeds are useless and futile. Moreover, mentioning three specific terms of Sufis like gambling, wandering (Qalandari), tearing of garments (Chak Damni), and cunningness (Ayari) before the common folk is quite contrary to the objectives of the sermon. And worse than all of these, and millions of times worse, is the address to Mustafa, the Master of Messengers, the Noblest of the first and the last, peace and blessings of Allah be upon him: 'Who are you to want peace of mind? We gave the command of distress to previous prophets.' (Who are you that you want peace of heart? We gave the order of distress to previous prophets - Translator). From this, God forbid, the superiority of

previous prophets over the radiant Prophet, the Master of the Day of Resurrection, peace and blessings of Allah be upon him, is suggested. In such idioms, examples are always drawn from the superior; for instance, saying to a nobleman, 'What is your reality? Even kings were not safe from this.' Even at the lowest level of interpretation, saying that the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) is not superior to previous prophets (peace and blessings be upon them) is clear. Is this not misguidance? Then, attributing 'comfort' towards the Master of the Universe (peace and blessings be upon him), and that too...

उत्तर: खुतबे में गैर-अरबी भाषा का मिश्रण करना हानिकारक और 'मकरूह तंज़ीही' (अवांछनीय) है और पैगंबर की विरासत वाली सुन्नत के खिलाफ है। और खुतबे का पूरी तरह से गैर-अरबी भाषा में होना और भी अधिक मकरूह है, जैसा कि हमने अपने फतवों में शोध किया है (जैसा कि हमने अपने फतवों में इसकी तहकीक की है। त)। लेकिन इसे 'मकरूह तहरीमी' (निषिद्ध रूप से नापसंद) और 'बिदअत दलालत' (भटकाने वाला नवाचार) कहना पूरी तरह से गलत, असत्य और निराधार है। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

(२) इस [विशेष] खुतबे को पढ़ना हराम और आम मुसलमानों के प्रति शुद्ध दुर्भावना है। इसमें उल्लेखित यह भयानक संवाद मूलतः किसी आयत, हदीस, प्रभाव या किसी विश्वसनीय और प्रमाणिक पुस्तक में नहीं मिलता है। न ही हजरत सैय्यदना मखदूम शेख साद बुध्दन (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से सही तरीके से इसका प्रमाणित होना ज्ञात है। यदि यह ऐसी ही आधारहीन कहानी है, तो इसका खारिज होना स्वतः स्पष्ट है। और यदि यह नकल करने वाले की गलती नहीं है, तो इबारत (लेखन) की बे-रब्ती (असंगति) खुद इसके झूठे होने का स्पष्ट प्रमाण है। उदाहरण के तौर पर खुतबे के शुरू में: 'अफ़मन शरहल्लाहु सद्रहु लिल-इस्लामि व मन ताबा तौबतन नसूहन मिन अत-ताबिईन' (क्या वह व्यक्ति जिसका सीना अल्लाह इस्लाम के लिए खोल देता है और वह व्यक्ति जिसने सच्ची तौबा कर ली वह ताबिई है? - त)। दूसरे खुतबे में: 'नशहदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहु व रसूलुह खुसूसन अला अफ़ज़ल अस-सहाबती व अफ़ज़लिहिम बित-तहरीक' (हम गवाही देते हैं कि हजरत मुहम्मद अल्लाह के बंदे और उसके रसूल हैं, विशेष रूप से सहाबा से श्रेष्ठ और निश्चित रूप से उन पर फजीलत वाले। - त)। फिर खुतबे का मुख्य उद्देश्य जो 'अम्र बिल मारूफ व नही अनिल मुनकर' (भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना) है, यानी नेक कामों के लिए प्रोत्साहित करना और गुनाहों से रोकना, यह खुतबा इससे कतई सरोकार नहीं रखता बल्कि स्पष्ट रूप से इसके खिलाफ है। जब हर जुम्मे को अनपढ़ लोग सुनेंगे कि अल्लाह अज़्वजल फरमा चुका है कि 'जो कोई मेरी तौहीद और आपकी रिसालत की गवाही दे दे वह जन्नत में दाखिल होगा, चाहे उसके अमल कैसे भी हों,' तो इसका उन पर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा! वे समझेंगे कि बस कलमा पढ़ लेना काफी है, नेक अमल फालतू और व्यर्थ हैं। फिर आम जनता के सामने सूफियों की तीन विशेष शब्दावली जैसे जुआ खेलना, कलंदरी, चाक दामनी और मक्कारी का जिक्र करना खुतबे के उद्देश्यों के किस कदर खिलाफ है। और इन सब से बदतर और करोड़ों गुना बदतर वह जिक्र है जो मुस्तफा, सैय्यदुल मुर्सलीन, अकरमुल

अव्वलीन वल आख़िरीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से मुखातिब होकर हो: 'तुम कौन हो जो दिल का चैन चाहते हो? हमने तो पिछले नबियों को परेशानी का हुक्म दिया था।' (आप कौन हैं जो दिल का इत्मीनान चाहते हैं? हमने तो पिछले नबियों को परेशानी का हुक्म दिया था। - त)। इससे साफ-साफ पिछले अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) की श्रेष्ठता, अल्लाह की पनाह, हुजूर पुरनूर सैय्यद-ए-यौमुन-नशूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर टपकती है। ऐसे मुहावरों में श्रेष्ठ से ही उदाहरण दिया जाता है, उदाहरण के तौर पर किसी अमीर से कहें कि 'तुम्हारी क्या हकीकत है, सुल्तान भी इससे सुरक्षित न रहे।' और अगर कम से कम दर्जे पर भी गौर करें, तो हुजूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का पिछले अंबिया (अलैहिमुस्सलाम) से श्रेष्ठ न होना तो इसका साफ कहना है। क्या यह गुमराही नहीं है? फिर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर राहत का संबंध जोड़ना, और वह भी...

पृष्ठ ३८९/६७३

الجواب: خطبہ میں غیر عربی زبان کا خلط کرنا ضرر و مکروہ تنزیہی وخلاف سنت رسول متوارثہ ہے اور بالکل خطبہ غیر عربی زبان میں ہونا اور زیادہ مکروہ کما حققناہ فی فتاونا (جیسا کہ ہم نے اپنے فتاویٰ میں اس کی تحقیق کی ہے۔ ت) مگر اسے مکروہ تحریمی وبدعت ضلالت کہنا محض غلط و باطل وبے دلیل ہے واللہ تعالیٰ اعلم۔

(۲) یہ خطبہ پڑھنا حرام اور محض بدخواہی عوام الاسلام ہے، یہ مخاطبہ ہائلہ کہ اس میں مذکور ہوا اصلا کسی آیت یا حدیث یا اثر یا کسی کتاب معتمد معتبر میں اس کا پتا نہیں، نہ حضرت سید نا مخدوم شیخ سعد بدھن رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بروجہ صحیح اس کا ثابت ہونا معلوم اگر ایسی ہی حکایت بے سر وپا ہے جب تو اس کا واجب الرد ہونا خود ظاہر، اور اگر خطائے ناسخ نہ ہو تو اس کی بے ربطی عبارت خود اس کے بطلان نسبت پر دلیل زاہر مثلاً صدر خطبہ میں افمن شرح اللہ صدرہ للاسلام ومن تاب توبۃ نصوحا من التابعین (کیا وہ شخص جس کا سینہ اللہ تعالیٰ اسلام کے لئے کھول دیتا ہے اور وہ شخص جس نے خالص توبہ کر لی وہ تابعی ہے۔ت) خطبہ ثانیہ میں نشہد ان محمد اعبدہ و رسولہ خصوصاً علی افضل الصحابۃ و افضلہم بالتحقیق (ہم گواہی دیتے ہیں کہ حضرت محمد اللہ کے بندے اور اس کے رسول ہیں خصوصاً صحابہ سے افضل اور بالیقین ان سے صاحب فضیلت پر۔ت) پھر اصل مقصود خطبہ کہ لوگوں کو امر بالمعروف و نہی عن المنکر ہے یعنی اعمال صالحہ کی ترغیب دینا، معاصی سے روکنا، یہ خطبہ اس سے اصلاً بحث نہیں رکھتا بلکہ صراحتاً اس کے خلاف ہے، جب ہر جمعہ جاہل لوگ سنیں گے کہ اللہ عزوجل فرما چکا ہے کہ ہر کہ گواہی دھد مرابوحدانیت ومر ترابرسالت درآید بہ بہشت۔ بر ہر کاریکہ اوباشد (جو میری وحدانیت اور آپ کی رسالت کی گواہی دے دے وہ جنت میں داخل ہوگا اسکے عمل جیسے بھی

ہوں) اس کا کیسا برا اثر ان پر پڑے گا وہ سمجھ لیں گے کہ بس کلمہ پڑھ لینا کافی ہے اعمال فضول و مہمل ہیں، پھر عوام کے سامنے یہ تین مصلحاتِ خاصہ صوفیائے کرام مثل قمار بازی و قلندری و چاک دامنی و عیاری کا تذکرہ کس قدر خلاف مقاصد خطبہ ہے اور ان سب سے بدتر اور کروڑوں درجہ بدتر وہ تذکرہ کہ مصطفی سید المرسلین اکرم الاولین والاخرین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے خطاب ہو تو کیستی کہ خاطر جمع می خواھی حکم بر انبیا اولیا کن کہ دیم بہ پریشانی (آپ کون ہیں جو دل کا اطمینان چاہتے ہیں ہم نے تو سابقہ انبیاء کو پریشانی کا حکم دیا۔ ت) اس سے صاف صاف انبیاے سابقین علیہم الصلوۃ والتسلیم کی معاذ اللہ حضور پر نور سید یوم النشور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے افضیلت ٹپکتی ہے، ایسے محاورات میں اعلیٰ ہی سے استشہاد کیا کرتے ہیں، مثلاً کسی امیر سے کہیں تیری کیا حقیقت ہے سلاطین تو اس سے محفوظ نہ رہے، اور اگر تنزل بھی کیجئے تو حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اگلے انبیاء علیہم الصلوۃ والثناء سے افضل نہ ہونا تو اس کا صاف کہنا ہے یہ کیا گمراہی نہیں، پھر سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی طرف راحت کی نسبت، اور وہ بھی

Fatawa Rizvia, Volume 8

Thus, attributing such a plea to the Presence of the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him), which is against the Divine Will, like "O Lord of Muhammad! I wish Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) had never been created," would, God forbid, cause a loss of grandeur in the eyes of the world. And may Allah protect us, if this is one's belief, then faith is lost, for faith is merely the name of their veneration and love.

Allah Almighty said: "...that you may believe in Allah and His Messenger, and honor and respect Him."[1]

Allah Almighty stated: Believe in Allah and His Messenger, and venerate and honor them greatly. (T)

In short, it cannot be imagined in any way that Hazrat Makhdoom (may his secret be sanctified) authored this sermon. Even if, for the sake of argument, there were authentic proof from the praised Hazrat that he mentioned this address somewhere, then it would be considered whether it was by way of narration and story-telling, or based on unveiling and inspiration. In the first case, as the basis remains on narration, the issue comes under the domain of the manifest sciences, requiring an authentic chain of narration (isnad). Just because a reliable saint narrates an unreliable story from someone does not make that narration authentic or worthy of reliance.

"And this is the excuse offered for Imam Muhammad al-Ghazali (may his high secret be sanctified) regarding his inclusion of weak traditions in the Ihya, despite his greatness in both manifest and hidden sciences."

This is what the people of knowledge have presented as an excuse on behalf of Imam Muhammad Ghazali regarding the fact that, despite being a great expert in manifest and hidden sciences, he mentioned fabricated traditions in his book "Ihya Ulum al-Din." (T)

Maulana Bahr al-Ulum, Malik al-Ulama (may his secret be sanctified), states in 'Fawatih al-Rahamut Sharh Musallam al-Thubut':

"(It is often said that there are upright individuals among those other than the Imams of knowledge whose habit is that they do not narrate except from an upright person.) Therefore, their 'irsal' (narration skipping a link) also implies that those from

whom they narrated are upright; thus, their 'mursal' narration will be a proof just like the 'irsal' of the Imams, and there will be no difference between them. (I say) We do not accept the existence of uprightness with the aforementioned quality among those other than the Imams. On the contrary, the upright among those other than them do not care from whom they took and narrated. Do you not see) that Shaykh Ala al-Dawla al-Simnani (may his secret be sanctified)..."

(It is said that among non-imams, those who are often found to be just, it is known from their practice that they narrate only from a just person.) Therefore, their 'irsal' also implies that those from whom they have narrated are just, so their 'mursal' narration will be a proof like the 'irsal' of the imams and there will be no difference in them. (I say) We cannot accept justice with the mentioned quality among non-imams; rather, those who are just among non-imams do not care about this fact...

[1] Al-Quran 48:9 Page 390 of 673

फ़तावा रज़विया, खंड 8

इस प्रकार अल्लाह की मर्जी के खिलाफ, और हुज़ूर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर इस फरियाद को जोड़ना कि "ऐ मोहम्मद के रब! काश मोहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को पैदा ही न किया होता", दुनिया की नज़रों में, अल्लाह न करे, उनकी महानता में कमी का कारण बनेगा। और अल्लाह की पनाह, अगर यह अकीदा (विश्वास) हो तो ईमान ही चला गया, क्योंकि ईमान तो केवल उनकी ताज़ीम (सम्मान) और मोहब्बत का नाम है।

अल्लाह तआला ने फरमाया: "...ताकि तुम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और उसकी मदद करो और उसकी ताज़ीम करो।"[1]

अल्लाह तआला ने फरमाया: अल्लाह तआला पर ईमान लाओ और उसके रसूल पर, और उनकी खूब ताज़ीम और तौकीर करो। (त)

संक्षेप में, किसी भी तरह यह गुमान नहीं किया जा सकता कि हज़रत मखदूम (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे) ने यह खुतबा (भाषण) लिखा हो। और अगर मान भी लिया जाए कि हज़रत-ए-ममदूह से इसका प्रमाण सही और विश्वसनीय तरीके से मिल जाए कि हज़रत ने कहीं यह बात कही थी, तो अब इस पर विचार किया जाएगा कि क्या यह केवल एक कहानी या किस्सा सुनाने के तौर पर था या कश्फ़ (रहस्योद्घाटन) और इल्हाम (प्रेरणा) पर आधारित था। पहली स्थिति में, जब बात रिवायत (वर्णन) पर आधारित है, तो मसला उलूम-ए-ज़ाहिरा (प्रकट विज्ञान) के दायरे में आ गया, जिसके लिए सनद की प्रमाणिकता आवश्यक होगी। और किसी विश्वसनीय वली द्वारा किसी अविश्वसनीय कहानी को किसी से नकल करना, उस रिवायत को सही और विश्वसनीय नहीं बना देगा।

"और यही वह बहाना है जो इमाम मुहम्मद अल-ग़ज़ाली (अल्लाह उनके उच्च रहस्य को पवित्र रखे) के बारे में 'इहया' में कमज़ोर हदीसों को शामिल करने के लिए पेश किया जाता है, बावजूद इसके कि वे ज़ाहिरी और बातिनी उलूम में महान विशेषज्ञ थे।"

यह वह चीज़ है जिसे अहल-ए-इल्म (विद्वानों) ने इमाम मुहम्मद गज़ाली की ओर से इस बात पर उज्र (बहाने) के तौर पर पेश किया है कि उन्होंने ज़ाहिरी और बातिनी उलूम में महान विशेषज्ञ होने के बावजूद अपनी किताब "इहया उलूम अल-दीन" में मौज़ू (गढ़ी हुई) हदीसों का ज़िक्र किया है। (त)

मौला बहरुल उलूम, मलिकुल उलमा (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे), 'फवातिहुर रहमूत शरह मुसल्लमुस सुबूत' में फरमाते हैं:

"(कहा गया है कि गैर-इमामों में जो अक्सर आदिल (न्यायप्रिय) पाए जाते हैं तो उनके मामूल से मालूम होता है कि वे किसी आदिल ही से रिवायत करते हैं) इसलिए उनका 'इरसाल' भी इस बात की मांग करता है कि जिनसे उन्होंने रिवायत की है वे आदिल हैं, इसलिए उनकी रिवायत-ए-मुर्सला, इमामों के इरसाल की तरह ही हुज्जत (प्रमाण) होगी और उनमें कोई फर्क न होगा। (मैं कहता हूँ) हम गैर-इमामों में ऊपर बताई गई खूबी के साथ 'अदल' स्वीकार नहीं कर सकते, बल्कि गैर-इमामों में जो आदिल हैं वे इस बात की परवाह नहीं करते कि उन्होंने किससे लिया और रिवायत की। क्या तुम नहीं देखते) कि शेख अलाउद्दौला सिम्नानी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे)..."

(कहा गया है कि गैर-इमामों में जो अक्सर आदिल पाए जाते हैं तो उनके मामूल से मालूम है कि वह किसी आदिल ही से रिवायत करते हैं) लिहाज़ा उनका 'इरसाल' भी इस का मक्तज़ी है कि जिन से उन्होंने रिवायत की है वह आदिल हैं लिहाज़ा उन की रिवायत-ए-मुरसला, अइम्मा के इरसाल की तरह ही हुज्जत होगी और उन में कोई फ़र्क़ न होगा (अक़ूल) हम ग़ैर अइम्मा में सिफ़त-ए-मज़कूरा के साथ 'अदल' तस्लीम नहीं कर सकते बल्कि ग़ैर अइम्मा में जो आदिल हैं वह इस बात की परवाह नहीं...

[1] अल-कुरान 48:9 पृष्ठ 390 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

یوں مرضی الٰہی کے خلاف، اور حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی طرف اس فریاد کا انتساب کہ یا لیت رب محمد لم یخلق محمدا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم (اے رب محمد! کاش محمد کو پیدا ہی نہ کرتا ل، ت) جہاں کی نگاہ سے معاذ اللہ سقوط عظمت کا باعث ہو گا اور عیاذاً باللہ یہ عقیدہ ہو تو ایمان ہی گیا کہ ایمان تو صرف ان کی تعظیم و محبت کا نام ہے۔

قال اللہ تعالٰی لِتُؤْمِنُوْا بِاللّٰہِ وَ رَسُوْلِہٖ وَ تُعَزِّرُوْہُ وَ تُوَقِّرُوْہُ ط 1

اللہ تعالٰی نے فرمایا اللہ تعالٰی پر ایمان لاؤ اور اس کے رسول پر، اور ان کی خوب تعظیم و توقیر کرو، (ت)

غرض کسی طرح گمان نہیں کیا جاتا کہ حضرت مخدوم قدس سرہ الکریم نے یہ خطبہ تصنیف فرمایا ہو اور اگر بالفرض حضرت ممدوح سے اس کا ثبوت صحیح برو جہ معتمد ہو کہ حضرت نے یہ مخاطبہ کہیں ذکر فرمایا تو اب نظر اس میں ہوگی کہ آیا برسبیل نقل و حکایت ہے یا بر بنائے کشف والہام، بر تقدیر اول جبکہ مدار روایت پر رہا تو مسئلہ علوم ظاہر ہ کے دائرہ میں آگیا صحت سند درکار ہوگی اور کسی ولی معتمد کا کوئی نامعتمد حکایت کسی سے نقل فرمانا اس کی روایت کو صحیح و واجب الاعتماد نہ کر دے گا،

وھذا ما اعتذر روا بہ عن الامام محمد الغزالی قدس سرہ العالی فی ایرادہ الاحادیث الواہیۃ فی الاحیاء مع جلالۃ قدرہ فی العلوم الظاہرۃ الباطنۃ،

یہ وہ چیز ہے جس کے ساتھ اہل علم نے امام محمد غزالی کی طرف سے اس بات پر عذر کے طور پر پیش کیا جو انہوں نے باوجود علوم ظاہری و باطنی میں عظیم ماہر ہونے کے اپنی کتاب "احیاء علوم الدین" میں احادیث موضوعہ ذکر کی ہیں، (ت)

مولیٰ بحر العلوم ملک العلماء قدس سرہ، فواتح الرحموت شرح مسلم الثبوت میں فرماتے ہیں:

(قیل کثیرا مایوجد عدول فی غیر الائمة علم من عادتهم انهم لایروون الاعن عدل) فارسالهم ایضاً یقتضی تعدیل من رواعنهم فیکون حجة کارساکل الائمة فلا فوق اقول لانسلم وجود العدول بالصفة المذکورة فی غیر الائمة، بل العدول من غیرهم لایبالون عمن أخذ وا و رووا ألاتری) ان الشیخ علاء الدولة السمنانی قدس سرہ

(کہا گیا ہے کہ غیر ائمہ میں جو اکثر عادل پائے جاتے تو ان کے معمول سے معلوم ہے کہ وہ کسی عادل ہی سے روایت کرتے ہیں) لہذا ان کا ارسال بھی اس کا مقتضی ہے کہ جن سے انھوں نے روایت کی ہے وہ عادل ہیں لہذا ان کی روایت مرسلہ، ائمہ کے ارسال کی طرح ہی حجت ہوگی اور ان میں کوئی فرق نہ ہوگا (اقول) ہم غیر ائمہ میں صفت مذکورہ کے ساتھ عدل تسلیم نہیں کرسکتے بلکہ غیر ائمہ میں جو عادل ہیں وہ اس بات کی پرواہ نہیں...

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Arabic Box Text]: How could he rely on Ratan al-Hindi, and what kind of man is his equal in justice? (And even if it is accepted, that is according to their assumption, while they often err), so they mistake the non-just for the just. (Summary)

[Urdu Box Text]: ...doing that whom they are taking narration from, did you not see how Shaykh Ala-ud-Dawla Simnani (may his secret be sanctified) relied on Ratan al-Hindi, whereas who is like him in justice? (And if this is accepted, then it is according to their assumption whereas generally they make mistakes), so they consider a non-just person to be just. (Summary) (T)

Addressing this, it was mentioned that by the grace of Allah, we, the servants of the court of saints, are not among those who deem 'Kashf' (unveiling) and 'Ilham' (inspiration) as false or unreliable. The possibility of error in 'Kashf' exists for beginners and those in intermediate stages. For the great ones who have reached the goal (Wasileen) - may Allah Almighty benefit us with their blessings in this world, the hereafter, and in religion - their 'Kashf' is firm and their 'Ilham' is clear, truthful, and correct. Mawla Bahr-ul-Uloom Malik-ul-Ulama (may his secret be sanctified) states in 'Fawatih':

[Arabic Box Text]: If you ponder upon the stations of the saints, their findings, and their tastes, such as the stations of Shaykh Muhyiddin, and the Pole of the Time, the Master of the Revival of Religion, Sayyid Abdul Qadir Jilani, whose blessed foot is upon the neck of every saint, and Shaykh Sahl bin Abdullah al-Tustari, Shaykh Abu Madyan al-Maghribi, Shaykh Abu Yazid al-Bistami, the Leader of the Group Junayd al-Baghdadi, Shaykh Abu Bakr Shibli, Shaykh Abdullah Ansari, Shaykh Ahmad al-Namiqi al-Jami, and others (may their secrets be sanctified), you would know that what is inspired to them is not subject to any possibility or doubt. Rather, it is truth, truth, truth, according to the reality of the matter. And they have certain knowledge that it is from Allah Almighty, and they attain this scientific rank through the help and support of the Prophet (peace and blessings be upon him) without any intermediary or means.

[Urdu Box Text]: If you ponder upon the stations of the saints, their intuition, and their spiritual tastes, for example, the stations of Shaykh Muhyiddin, the Pole of the Time, the Master of the Revival of Religion, Sayyid Abdul Qadir Jilani, whose blessed foot is on the neck of every saint, Shaykh Sahl bin Abdullah Tustari, Shaykh Abu Madyan al-Maghribi, Shaykh Abu Yazid Bistami, the Leader of the Group Junayd

Baghdadi, Shaykh Abu Bakr Shibli, Shaykh Abdullah Ansari, and Shaykh Ahmad al-Namiqi al-Jami etc., then you will certainly know that whatever is inspired to them, no kind of probability or doubt can find a way into it, rather it is Truth, Truth, Truth and according to the essence of the matter, and they also have certain knowledge that this is from Allah Almighty Himself and they attain this scientific station with the help and support of the Prophet (peace and blessings be upon him) without any intermediary or means.

1 Fawatih al-Rahmut Sharh Musallam al-Thubut bi-dhayl al-Mustasfa, issue concerning 'al-Mursal', printed at Matba' Amir, Qom, Iran, 2/175.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[अरबी बॉक्स पाठ]: वह रतन अल-हिंदी पर कैसे भरोसा कर सकते थे, और न्याय में उनके समान कौन आदमी है? (और यदि इसे मान भी लिया जाए, तो यह उनकी धारणा के अनुसार है, जबकि वे अक्सर गलती करते हैं), इसलिए वे गैर-न्यायपूर्ण को न्यायपूर्ण समझ लेते हैं। (सारांश)

[उर्दू बॉक्स पाठ]: ...करते कि वह किससे रिवायत ले रहे हैं, क्या आपने नहीं देखा कि शेख अलाउद्दौला सिमनानी (क़ुदिस सिर्रहु) ने रतन हिंदी पर कैसे एतमाद कर लिया, हालांकि उनकी मिसाल अदालत में कौन है? (और अगर यह तस्लीम कर लिया जाए तो यह उनके ज़ोम के मुताबिक है हालांकि आम तौर पर वह खता करते हैं) पस वह गैर-आदिल गुमान कर लेते हैं (मुल्खसन) (त)

मुख़ातबा ज़िक्र फ़रमाया कि अल्हम्दुलिल्लाह हम ग़ुलामान-ए-बारगाह-ए-औलिया उनमें नहीं कि कश्फ़-ओ-इल्हाम बातिल या ना-मोतबर ठहराएं एहतिमाल-ए-खता कश्फ़-ए-मुब्तदियीन-ओ-अवास्त में होता है, अकाबिर-ए-वासेलीन - अल्लाह तआला हमें दुनिया-ओ-आख़िरत और दीन में उनकी बरकतों से फ़ायदा पहुंचाए - का कश्फ़ मतीन और इल्हाम मुबीन हक़-ओ-सहीह होता है। मौला बहर-उल-उलूम मलिक-उल-उलमा (क़ुदिस सिर्रहु) 'फ़वातिह' में फ़रमाते हैं:

[अरबी बॉक्स पाठ]: यदि आप संतों के पदों, उनकी खोजों और उनके स्वादों पर विचार करें, जैसे कि शेख मुहीउद्दीन के पद, और समय के ध्रुव, धर्म के पुनरुद्धार के स्वामी, सैय्यद अब्दुल कादिर जिलानी, जिनका धन्य चरण हर संत की गर्दन पर है, और शेख सहल बिन अब्दुल्ला अल-तुस्तरी, शेख अबू मदयन अल-मग़रिबी, शेख अबू यज़ीद अल-बिस्तामी, समूह के नेता जुनैद अल-बग़दादी, शेख अबू बक्र शिबली, शेख अब्दुल्ला अंसारी, शेख अहमद अल-नामिकी अल-जामी और अन्य (उनके रहस्य पवित्र हों), तो आप जान जाएंगे कि उन्हें जो कुछ भी प्रेरित किया जाता है, उसमें किसी भी संभावना या संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। बल्कि, यह सत्य, सत्य, सत्य है, मामले की वास्तविकता के अनुसार। और उन्हें इस बात का निश्चित ज्ञान होता है कि यह अल्लाह सर्वशक्तिमान की ओर से है, और वे इस वैज्ञानिक पद को नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मदद और समर्थन से बिना किसी मध्यस्थ या साधन के प्राप्त करते हैं।

[उर्दू बॉक्स पाठ]: अगर आप औलिया के मकामात, वजदान और अज़वाक में ग़ौर-ओ-फ़िक्र करें मसलन मकामात-ए-शेख मुहीउद्दीन, कुतबे वक़्त अल-सैय्यद मुहीउल मिल्लत-ओ-वद्दीन अल-सैय्यद अब्दुल कादिर जिलानी जिनका मुबारक कदम हर वली की गर्दन पर है, शेख सहल बिन अब्दुल्लाह

तुस्तरी, शेख अबू मदयन अल-मग़रिबी, शेख अबू यज़ीद बिस्तामी, सैयद-उत-ताइफ़ा जुनैद बग़दादी, शेख अबू बक्र शिबली, शेख अब्दुल्लाह अंसारी और शेख अहमद अन-नामिकी अल-जामी वग़ैरह तो आप यक़ीनन जान लेंगे कि जो कुछ उन्हें इल्हाम किया जाता है उसमें किसी किस्म का एहतिमाल-ओ-शुबह राह नहीं पा सकता बल्कि वह हक़ हक़ हक़ और नफ़्सुल अम्र के मुताबिक होता है, और उसमें उन्हें इस बात का भी इल्म-ए-यक़ीनी होता कि यह अल्लाह तआला ही की तरफ़ से है और वह यह इल्मी मकाम हुज़ूर अलैहिस्सलात-ओ-वस्सलाम की मदद-ओ-ताइद से पाते हैं बग़ैर वास्ता और वसीला के।

1 फ़वातिह अल-रहमुत शरह मुसल्लम अल-थुबूत बि-ज़ैल अल-मुस्तस्फ़ा, मसला फ़िल कलाम अलल मुर्सल, मतबा अमीर, क़ोम, ईरान, 2/175 में मुद्रित।

पृष्ठ 391/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[Arabic Box Text]: كيف اعتمد على الرتن الهندى وأي رجل يكون مثله فى العدالة (ولو سلم فذلك بزعمهم وكثيرا ما يخطئون) فيظنون غير العدل عدلا (ملخصاً)

[Urdu Box Text]: کرتے کہ وہ کس سے روایت لے رہے ہیں، کیا آپ نے نہیں دیکھا کہ شیخ علاؤالدولہ سمنانی قدس سرہ نے رتن ہندی پر کیسے اعتماد کرلیا، حالانکہ ان کی مثل عدالت میں کون ہے؟ (اور اگر یہ تسلیم کرلیا جائے تو یہ ان کے زعم کے مطابق ہے حالانکہ عام طور پر وہ خطا کرتے ہیں) پس وہ غیر عادل گمان کر لیتے ہیں (ملخصاً) (ت)

مخاطبہ ذکر فرمایا بحمداللہ ہم غلامانِ بارگاہِ اولیاء ان میں نہیں کہ کشف والہام باطل یا نا معتبر ٹھہرائیں احتمالِ خطا کشفِ مبتدین واواسط میں ہوتا ہے اکابر واصلین نفعنا اللہ تعالی ببر کا تہم فی الدنیا والآخرۃ والدین کا کشف متین والہام مبین حق و صحیح ہوتا ہے، مولٰی بحر العلوم ملک العلماء قدس سرہ، فواتح میں فرماتے ہیں:

[Arabic Box Text]: ان تاملت في مقامات الاولياء وموجيدهم واذوا فهم كمقامات الشيخ محى الدين وقطب الوقت السيد محى الملة والدين اليسد عبدالقادر الجيلاني الذى قدمه على ركاب كل ولى والشيخ سهل بن عبدالله التسترى والشيخ ابن مدين المغربي و الشيخ ابى يزيد البسطامى وسيد الطائفة جنيد البغدادى والشيخ ابى بكر الشبلى والشيخ عبدالله الانصارى والشيخ احمد التامقى الجامى وغيرهم قدس اسرارهم علمت ان ما يلهمون به لا يتطرق اليه احتمال وشبهة بل هو حق حق مطابق لما في نفس الا مرويكون مع على خلق علم ضرورى انه من الله تعالى لكن لاينالون

[Urdu Box Text]: اگر آپ اولیاء کے مقامات، وجدان اور اذواق میں غور و فکر کریں مثلاً مقامات شیخ محی الدین، قطب وقت السید محی الملتہ والدین السید عبدالقادر جیلانی جن کا مبارک قدم ہر ولی کی گردن پر ہے، شیخ سہل بن عبداللہ تستری، شیخ ابومدین المغربی، شیخ ابویزید بسطامی، سید الطائفہ جنید بغدادی، شیخ ابوبکر شبلی، شیخ عبداللہ انصاری اور شیخ احمد النامقی الجامی وغیرہ تو آپ بالیقین جان لیں گے کہ جو کچھ انہیں الہام کیا جاتا ہے اس میں کسی قسم کا احتمال و شبہ راہ نہیں پاسکتا بلکہ وہ حق حق حق اور نفس الامر کے مطابق ہوتا ہے، اور اس میں انھیں اس بات کا بھی علم یقینی ہوتا کہ یہ اللہ تعالیٰ ہی کی طرف سے ہے اور وہ یہ علمی مقام حضور علیہ الصلوۃ والسلام کی مدد و تائید سے پاتے ہیں بغیر واسطہ اور وسیلہ کے۔

1 فواتح الرحموت شرح مسلم الثبوت بذیل المستصفی، مسئلة في الكلام على المرسل مطبوعہ مطبعہ امیر قم ایران ۱۷۵/۲

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Arabic Box Text]: "This is a vessel of knowledge, forever supported and aided by Muhammad, peace and blessings of Allah be upon him, not essentially without any means at all..." until the end of what he benefited and excelled, may the mercy of the Generous King be upon him. (T)

[Urdu Box Text]: ...until the end, as they have described well, and may the mercy of Allah, the Master of existence, be upon them. (T)

Now, this discourse belongs to those states of intimacy and supplication that exist between the Lord and the servant and the beloved, in which it is forbidden for others to interfere; it is forbidden to make them a subject of public assembly, rather in the state of evil intention, it is explicit disbelief (Kufr) without any doubt. Well, this would be a visionary discourse; the Commander of the Faithful severely rebuked a person who used to recite Surah 'Abasa frequently. Imam ibn al-Hajj Makki says in 'Al-Madkhal':

[Table Header/Arabic]: Our scholars, may Allah Almighty have mercy on them, have said: "Whoever says about any of the Prophets, peace and blessings be upon them, outside of [the context of] reciting the Quran and Hadith, that he disobeyed or went against [the command], then he has committed disbelief; we seek refuge in Allah from that."

[Table Header/Urdu]: Our scholars, may Allah Almighty have mercy on them, have said: Every person who, besides reciting the Quran and the Hadith of the Messenger, says that a certain prophet disobeyed or opposed the Sharia, he will become an infidel; we seek Allah's protection from this.

[Table Body/Arabic]: Imam Abu Abdullah al-Qurtubi, may Allah Almighty have mercy on him, said in his book of exegesis (Tafsir), while discussing the verse "And they began to fasten together over themselves the leaves of Paradise" in Surah Ta-Ha: "Qazi Abu Bakr ibn al-Arabi, may Allah be pleased with him, said: 'It is not permissible for any of us today to report such a thing about Adam, peace be upon him, except when we mention it while reciting the word of Allah Almighty or the word of His Prophet, peace and blessings of Allah be upon him. As for initiating this ourselves, it is not permissible for us regarding our forefathers.'"

[Table Body/Urdu]: Imam Abu Abdullah Qurtubi wrote in his commentary on Surah Ta-Ha under the verse "they both started sticking leaves of Paradise on themselves"

that Qazi Abu Bakr ibn al-Arabi (may Allah be pleased with him) said: None of us are allowed to report such a thing about Adam (peace be upon him) today, except in the case when he is reading this decree of Allah the Almighty or the blessed Hadith of the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him). If we start describing such incidents on our own, then we cannot say this about our near predecessors, who are like us.

Footnotes: 1. Fawatih ar-Rahmut Sharh Musallam ath-Thubut, along with al-Mustasfa, the section on 'Whether it was permissible for him, peace be upon him, to practice Ijtihad', etc., printed at Matba'ah Ameer, Qom, Iran, 2/473. 2. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, chapter on the birth of the Prophet, printed at Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/15.

फ़तावा रज़विया - जिल्द अष्टम

[अरबी बॉक्स पाठ]: "यह ज्ञान का वह पात्र है जो मुहम्मदी सहायता और समर्थन से हमेशा के लिए पोषित है, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, वास्तव में बिना किसी साधन के नहीं..." अंत तक जो उन्होंने लाभ पहुँचाया और उत्कृष्टता प्राप्त की, उदार राजा (अल्लाह) की उन पर दया हो। (त)

[उर्दू बॉक्स पाठ]: ...अंत तक, जैसा कि उन्होंने अच्छी तरह से वर्णन किया है, और अस्तित्व के स्वामी अल्लाह की उन पर दया हो। (त)

अब यह संवाद उन रहस्य और अनुनय के स्थानों से होगा जो स्वामी और सेवक और प्रिय के बीच होते हैं, जिनमें दूसरों का हस्तक्षेप करना हराम है, उन्हें सभा का विषय बनाना हराम है, बल्कि बुरी नीयत की स्थिति में यह बिना किसी संदेह के स्पष्ट कुफ़्र (अविश्वास) है। खैर, यह तो एक कश्फ़ी (अनुभूतिजन्य) संवाद होगा; अमीरुल मोमिनीन ने एक व्यक्ति को जो सूरह 'अबासा' का बहुत अधिक पाठ करता था, कड़ी फटकार लगाई। इमाम इब्न अल-हाज मक्की 'अल-मदखल' में फरमाते हैं:

[तालिका शीर्षक/अरबी]: हमारे विद्वानों (अल्लाह उन पर दया करे) ने फरमाया है: "हर वह व्यक्ति जो कुरान की तिलावत और रसूल की हदीस के अलावा किसी नबी के बारे में कहे कि उन्होंने नाफ़रमानी की या शरीयत का विरोध किया, तो वह काफ़िर हो जाएगा। हम इससे अल्लाह की पनाह मांगते हैं।"

[तालिका शीर्षक/उर्दू]: हमारे विद्वानों (अल्लाह उन पर दया करे) ने फरमाया है: प्रत्येक व्यक्ति जो कुरान और रसूल की हदीस पढ़ने के अलावा यह कहे कि किसी नबी ने अवज्ञा की या शरीयत का विरोध किया, तो वह काफिर हो जाएगा; हम इससे अल्लाह की सुरक्षा चाहते हैं।

[तालिका मुख्य भाग/अरबी]: इमाम अबू अब्दुल्ला क़ुर्तुबी ने अपनी तफ़्सीर में सूरह ता-हा की आयत "वे दोनों अपने ऊपर जन्नत के पत्ते चिपकाने लगे" के तहत लिखा है कि काज़ी अबू बक्र इब्न अल-अरबी (रज़ी अल्लाहु अन्हु) ने फ़रमाया: "हम में से किसी को आज यह अनुमति नहीं है कि वह हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) के बारे में ऐसी बात की जानकारी दे, सिवाय उस स्थिति के जब वह अल्लाह तआला का यह फ़रमान पढ़ रहा हो या नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मुबारक हदीस। जहाँ तक अपनी तरफ़ से ऐसे वाकयात बयान करने की बात है, तो यह हमारे लिए अपने पूर्वजों के बारे में जायज़ नहीं है।"

[तालिका मुख्य भाग/उर्दू]: इमाम अबू अब्दुल्ला क़ुर्तुबी ने सूरह ता-हा की अपनी टिप्पणी में आयत "वे दोनों अपने ऊपर जन्नत के पत्ते चिपकाने लगे" के तहत लिखा कि काज़ी अबू बक्र इब्न अल-अरबी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने कहा: हम में से किसी को भी आज आदम (उन पर शांति हो) के बारे में ऐसी बात रिपोर्ट करने की अनुमति नहीं है, सिवाय उस स्थिति के जब वह अल्लाह सर्वशक्तिमान के इस आदेश या पवित्र पैगंबर (अल्लाह की शांति और आशीर्वाद उन पर हो) की धन्य हदीस को पढ़ रहा हो। यदि हम अपनी ओर से ऐसी घटनाओं का वर्णन करना शुरू कर दें, तो हम अपने निकटवर्ती पूर्वजों के बारे में ऐसा नहीं कह सकते, जो हमारे समान हैं।

पाद टिप्पणियाँ: 1. फ़वातिह अर-रहमूत शरह मुसल्लम अत्-थुबूत, अल-मुस्तस्फ़ा के साथ, अनुभाग 'क्या उनके लिए इज्तिहाद करना जायज़ था', आदि, मुद्रित: मतबा अमीर, क़ुम, ईरान, 2/473। 2. अल-मदखल इब्न अल-हाज द्वारा, नबी के जन्म पर अध्याय, मुद्रित: दार अल-किताब अल-अरबी, बेरुत, 2/15।

पृष्ठ 392/673

ھذا لوعاء من العلم ابد المدد المحمدی و تأییدہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم لا بالذات من غیر وسیلۃ اصلاً الی اخر ما افاد و اجاد علیہ رحمۃ الملك الجواد۔ نہیں پاتے الی آخرہ جیسا کہ انھوں نے خوب بیان کیا اور ان پر مالک وجود اللہ کی رحمت ہو۔ (ت)

اب یہ مخاطبہ ان مقامات راز و نیاز سے ہوگا مولٰی و عبد و محبوب میں ہوتے ہیں جن میں دوسرے کو دخل دینا حرام، انہیں نقل مجلس بنانا حرام بلکہ بحال فساد نیت کفر صریح بلا کلام، بھلا یہ تو ایک مخاطبہ کشفیہ ہوگا، امیر المؤمنین ایک شخص کو کہ سورہ عبس شریف کی تلاوت بکثرت کرتا زجر شدید فرمایا، امام ابن الحاج مکی مدخل میں فرماتے ہیں:

قد قال علمائنا رحمۃ اللہ تعالٰی علیہم ان من قال عن نبی من الانبیاء علیہم الصلوۃ و السلام فی غیر التلاوۃ والحدیث انہ عصی او خالف فقد کفر نعوذ باللہ من ذلك، ہمارے علماء رحمہم اللہ تعالٰی نے فرمایا: ہر وہ شخص جو تلاوت قرآن وحدیث رسول پڑھنے کے علاوہ کہے کہ فلاں نبی نے نافرمانی کی یا شریعت کی مخالفت کی وہ کافر ہو جائے گا، ہم اس سے اللہ کی پناہ چاہتے ہیں،

وقد قال الامام ابو عبد اللہ القرطبی رحمۃ اللہ تعالٰی فی کتاب التفسیر لہ حین تکلم علی قولہ و طفقا یخصفان علیھما من ورق الجنۃ الآیۃ فی سورۃ طہ: قال القاضی ابو بکر ابن العربی رضی اللہ تعالٰی عنہ لا یجوز لا حد منا الیوم ان یخبر بذلك عن آدم علیہ الصلوۃ والسلام الا اذا ذکر ناہ فی اثناء قولہ تعالٰی عنہ او قول نبیہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فاما ان نبتدئ ذلک من انفسنا فلیس بجائز لنا فی ابائنا امام ابو عبد اللہ قرطبی نے اپنی تفسیر میں سورہ طہ میں "وہ دونوں اپنے اوپر جنت کے پتے چپکانے لگے" کے تحت لکھا کہ قاضی ابو بکر ابن العربی رضی اللہ تعالٰی عنہ نے فرمایا: ہم میں

سے کسی کو اجازت نہیں کہ آج وہ حضرت آدم علیہ الصلوۃ والسلام کے بارے میں ایسی بات کی اطلاع دے البتہ اس صورت میں جب وہ اللہ تعالیٰ کا یہ فرمان پڑھ رہا ہو یا نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی حدیث مبارک، ہم اپنی طرف سے ایسے واقعات کو بیان کرنا شروع کر دیں تو یہ ہم اپنے قریب اپنی مثل پہلے آباء کے بارے میں نہیں کہہ سکتے

حواشی: 1 فواتح الرحموت شرح مسلم الثبوت بزیل المستصفی حل کان یجوز لہ علیہ السلام الاجتہاد الخ مطبوعہ مطبعہ امیر قم ایران ۲/ ۴۷۳ 2 المدخل لابن الحاج فصل فی مولد النبی مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ۲/ ۱۵

[Table/Box 1] ...the lowliest of us, those similar to us, then how can it be permissible regarding that being who is our father, the most ancient, greatest, biggest, and foremost Prophet, peace and blessings of Allah be upon him and upon all the Prophets and Messengers. [1] End. (Urdu Translation): So how would this be permissible for that being who is our father, the most ancient, greatest, biggest and foremost Prophet, peace and blessings of Allah be upon him and upon all the Prophets and Messengers. End (T)

Allama Shahab Khafaji states in Naseem al-Riyadh, a commentary on Al-Shifa by Qazi Iyad:

[Table/Box 2] Supplicating for him (i.e., for forgiveness) for him (peace and blessings of Allah be upon him) from his Ummah is not appropriate because it suggests a deficiency in the one for whom supplication is made, just like supplicating for mercy for him is also not appropriate. As for the saying of Allah Almighty, "That Allah may forgive you what has preceded of your sins and what will follow," and his own supplication for himself for forgiveness, others cannot be compared to this. [2] (Urdu Translation): Supplication (for forgiveness) for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) from the Ummah is not permissible because it creates an illusion of some deficiency in him, just as praying for mercy for him is also not appropriate. As for the honorable statement of Allah Almighty that "Allah has forgiven your previous and future matters," and his own praying for forgiveness for himself, others cannot be compared to that. (T)

Hazrat Sheikh Muhaqqiq Maulana Abdul Haq Muhaddith Dehlavi (may Allah sanctify his secret) states in the noble Madarij al-Nubuwwah:

[Table/Box 3] Know that here is an etiquette and a rule that some of the chosen ones and people of research have mentioned, and knowing it and observing it is a cause for resolving difficulties and for the safety of one's spiritual state. That rule is that if from the Divine Presence (Glorious and Exalted) there occurs a discourse, a reprimand, an expression of power, authority, or independence—such as "Verily you cannot guide," or "your deeds will be nullified," or "you have no part in the matter," or "you desire the adornment of the worldly life" and their likes—or if from the side of Prophethood there appears servitude, humility, need, helplessness, or poverty, such as "I am but a human being like you," "I get angry as a servant gets angry," or "I do not know"... (Urdu Translation): Let it be clear that here is an etiquette and a rule

which some of the pure ones and people of research have stated, and knowing it and following it is the solution to escape difficulties and the cause for safety. It is that if at any place an address, reprimand, expression of awe and majesty, or independence occurs from the side of Allah the Lord of Honor (Glorious and Exalted), for example: you cannot give guidance, your deeds will be ended, there is nothing for you, you desire the adornment of worldly life, and other such places, or if from any place on behalf of the Prophet...

1. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, chapter on the birth of the Prophet, published by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 1/63.
2. Naseem al-Riyadh, commentary on al-Shifa, chapter on the manner of sending blessings upon him, published by Dar al-Fikr, Beirut, 2/85.

फ़तावा रज़विया | जिल्द आठवीं

[सारणी/बॉक्स 1] ...हममें से सबसे छोटे, हमारे समान लोगों के लिए, तो उस हस्ती के बारे में यह कैसे जायज़ होगा जो हमारे पिता, सबसे प्राचीन, महान, बड़े और प्रमुख नबी हैं, अल्लाह उन पर और तमाम अंबिया और रसूलों पर अपनी रहमतें और सलामती नाज़िल फरमाए। [1] इति। (उर्दू अनुवाद): तो इस हस्ती के बारे में यह कैसे जायज़ होगा जो हमारे बाप सब से अक़्दम, आज़म, अकबर और मुक़द्दम नबी हैं, सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम व अला जमीअ अल-अंबिया वल-मुर्सलीन। इति (त)

अल्लामा शहाब ख़फ़ाजी 'नसीमुर रियाज़' (क़ाज़ी अयाज़ की 'शिफ़ा' की व्याख्या) में फरमाते हैं:

[सारणी/बॉक्स 2] उनकी उम्मत की ओर से उनके(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) लिए (मग्फ़िरत यानी क्षमा की) दुआ करना उचित नहीं है क्योंकि इसमें उस हस्ती की कमी का भ्रम होता है जिनके लिए दुआ की जा रही है, जैसे कि उनके लिए रहमत की दुआ करना भी मुनासिब नहीं। रहा अल्लाह तआला के इस फरमान का मामला कि "ताकि अल्लाह आपकी पिछली और अगली (खताओं) को माफ कर दे" और उनका स्वयं अपने लिए मग्फ़िरत की दुआ करना, तो इस पर दूसरों को क़ियास (तुलना) नहीं किया जा सकता। [2] (उर्दू अनुवाद): उम्मत की तरफ से नबी अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के लिए दुआ (बराय मग़्फ़िरत) जायज़ नहीं क्योंकि इसमें आपसे कोताही का वहम होता है जैसे कि आपके लिए रहमत की दुआ करना भी मुनासिब नहीं। रहा मामला अल्लाह तआला के इस इरशादे गिरामी का कि "अल्लाह तआला ने मुआफ फरमा दिए आपके मामलाते साबिक़ा और आने वाले" और आपका अपने लिए मग़्फ़िरत की दुआ करना, तो इस पर दीगर को क़ियास नहीं किया जा सकता। (त)

हज़रत शेख मुहक़्क़िक़ मौलाना अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (अल्लाह उनकी क़ब्र को नूर से भर दे) 'मदारिजुन नुबुव्वत' शरीफ में फरमाते हैं:

[सारणी/बॉक्स 3] जान लें कि यहाँ एक अदब और नियम है जिसे कुछ साफ़िया और शोधकर्ताओं ने उल्लेख किया है, और उसे जानना और उसका पालन करना समस्याओं के समाधान और आध्यात्मिक सलामती का कारण है। वह नियम यह है कि यदि ईश्वरीय प्रभुत्व (महान और उच्च) की ओर से कोई संबोधन, डांट, शक्ति, प्रभुत्व या बेनियाज़ी (स्वतंत्रता) का प्रदर्शन हो, जैसे "बेशक आप जिसे चाहें हिदायत नहीं दे सकते", "आपके कर्म व्यर्थ हो जाएंगे", "आपका इस मामले में कोई

अधिकार नहीं", या "आप सांसारिक जीवन की शोभा चाहते हैं" और उनके जैसे; या पैगंबर की ओर से दासता, विनम्रता, आवश्यकता, लाचारी या दरिद्रता प्रकट हो, जैसे "मैं तो केवल तुम्हारी तरह एक मनुष्य हूँ", "मैं वैसे ही क्रोधित होता हूँ जैसे एक दास क्रोधित होता है", या "मैं नहीं जानता"... (उर्दू अनुवाद): वाज़ेह रहे कि यहाँ अदब और क़ायदा है जिसे बाज़ असफिया और अहल-ए-तहक़ीक़ ने बयान किया है और इसका जान लेना और इस पर अमल पैरा होना मुश्किलात से निकलने का हल और सलामत रहने का सबब है और वह यह है कि अगर किसी मुक़ाम पर अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त जल्ल व अला की तरफ से कोई खिताब, अताब, रुब-ओ-दबदबा का इज़हार या बेनियाज़ी का वक़ूअ हो मसलन आप हिदायत नहीं दे सकते, आपके आमाल खत्म हो जाएंगे, आपके लिए कोई चीज़ नहीं, आप हयाते दुनियावी की ज़ीनत चाहते हैं, और इसकी मिस्ल दीगर मुक़ामात, या किसी जगह नबी की तरफ से...

1. अल-मदखल इब्नुल हज्ज द्वारा, नबी के जन्म पर अध्याय, दारुल किताब अल-अरबी, बेरूत द्वारा प्रकाशित, 1/63.
2. नसीमुर रियाज़ शरह अल-शिफ़ा, उन पर दुरूद भेजने के तरीके पर अध्याय, दारुल फ़िक्र, बेरूत द्वारा प्रकाशित, 2/85.

पृष्ठ 393/673

[خانہ 1] الادنین الینا المماثلین لنا فکیف بابینا الاقدم الاعظم الاکبر النبی المقدم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وعلی جمیع الانبیاء والمرسلین ۱ انتہی تو اس ہستی کے بارے میں یہ کیسے جائز ہوگا جو ہمارے باپ سب سے اقدم، اعظم، اکبر اور مقدم نبی ہیں صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وعلی جمیع الانبیاء والمرسلین انتہی (ت)

علامہ شہاب خفاجی نسیم الریاض شرح شفائے قاضی عیاض میں فرماتے ہیں:

[خانہ 2] الدعا بھا (ای بالمغفرۃ) لہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم من امتہ لاینبغی لا یھامہ القصور من المدعو لہ کالدعاء لہ بالرحمۃ واما قول اللہ تعالٰی لیغفر لک اللہ ما تقدم من ذنبک وما تأخر و دعاؤہ لنفسہ بالمغفرۃ فلا یقاس علیہ ۲۔ امت کی طرف سے نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے لئے دعا (برائے مغفرت) جائز نہیں کیونکہ اس میں آپ سے کوتاہی کا وہم ہوتا ہے جیسے کہ آپ کے لئے رحمت کی دعا کرنا بھی مناسب نہیں، رہا معاملہ اللہ تعالٰی کے اس ارشاد گرامی کا کہ "اللہ تعالٰی نے معاف فرما دئے آپ کے معاملات سابقہ اور آنے والے" اور آپ کا اپنے لئے مغفرت کی دعا کرنا تو اس پر دیگر کو قیاس نہیں کیا جاسکتا۔ (ت)

حضرت شیخ محقق مولانا عبدالحق محدث دہلوی قدس سرہ، مدارج النبوۃ شریف میں فرماتے ہیں:

[خانہ 3] بدانکہ اینجا ادبے وقاعدہ ایست کہ بعضے از اصفیا و از اہل تحقیق ذکر کردہ اند و شناخت آں ورعایت آں موجب حل اشکال وسبب سلامت حال ست و آں اینست کہ اگر از جناب ربوبیت جل و تعالٰی خطابے و عتابے وسطوتے و سلطنتے واستغنائے واقع شود مثل انک لا تھدی، ولیحبطن عملک، ولیس لک من الامر شیئ و ترید زینۃ الحیوۃ الدنیا وامثال آں یا از جانب نبوت عبودیتی یا

انکسارے وافتقارنے وعجزے ومسکنتے بوجود آید مثل انما انا بشر مثلکم ، اغضب کما یغضب العبد، ولا اعلم واضح رہے کہ یہاں ادب اور قاعدہ ہے جسے بعض اصفیا اور اہل تحقیق نے بیان کیا ہے اور اس کا جان لینا اور اس پر عمل پیرا ہونا مشکلات سے نکلنے کا حل اور سلامت رہنے کا سبب ہے اور وہ یہ ہے کہ اگر کسی مقام پر اللہ رب العزت جل وعلا کی طرف سے کوئی خطاب، عتاب، رعب و دبدبہ کا اظہار یا بے نیازی کا وقوع ہو مثلاً آپ ہدایت نہیں دے سکتے، آپ کے اعمال ختم ہو جائیں گے، آپ کے لئے کوئی شیئ نہیں، آپ حیات دنیوی کی زینت چاہتے ہیں، اور اس کی مثل دیگر مقامات، یا کسی جگہ نبی کی طرف سے

1 المدخل لابن الحاج فصل فی مولد النبی مطبوعہ دار الکتاب العربی بیروت ۱/۶۳ 2 نسیم الریاض شرح الشفاء فصل فی کیفیۃ الصلوۃ علیہ مطبوعہ دار الفکر بیروت ۲/۸۵

Fatawa Rizvia Volume 8

[Arabic/Persian Text]: "Whatever is behind this wall, I do not know what will be done with me or with you, and like that, we should not interfere in it or seek participation and expansion; rather, we must maintain etiquette, silence, and pause at the limit of respect. It belongs to the Master that He may say and do whatever He wishes with His servant, and manifest His loftiness and dominion. The servant, too, should behave with servitude and humility towards the Master. What room or power is there for anyone else to enter this station, interfere, and go beyond the bounds of etiquette? This station is a place where many weak and ignorant people slip, leading to their ruin. And from Allah is protection and help. And Allah Almighty knows best. (T)"

[Urdu Translation/Explanation of the above]: "Where servitude, humility, neediness, helplessness, and poverty are mentioned, for example: 'I am a human like you,' 'I get angry just as a servant gets angry,' and 'I do not know what is beyond this wall,' 'I do not know what will be done with me and with you,' and similar other instances; it is not permissible for us followers and slaves to interfere in these matters, participate in them, or make them a joke. Instead, it is mandatory for us, while observing etiquette, to maintain silence, stillness, and pause. It is the Right of the Owner to say whatever He wishes to His servant, and to express the dominance of His loftiness over him. It is also the servant's right to express servitude and humility before his Master. Who else has the audacity to interfere in this and try to step outside the bounds of etiquette? At this point, the feet of many weak and ignorant people slip, leading them to destruction. Allah Almighty is the One who protects and helps. And Allah Almighty knows best. (T)"

Issue 1337: From Johannesburg, Africa, sent by Muhammad Ibrahim Sahib Shafi'i, 13 Shaban 1327 AH. If the Imam is Hanafi and there are Shafi'i followers (Muqtadis) as well, if in the first Friday sermon (Khutbah) the Imam does not say 'I enjoin you with the fear of Allah' (Auseekum bi-taqwallah) and does not recite Salutations (Durood Sharif), will the Shafi'i follower's prayer be valid or not?

The Answer: According to the Shafi'i school, the Shafi'i follower's prayer will not be valid because, in their view, the exhortation (to piety) and Durood are among the essential pillars (Arkan) of the sermon. And by consensus, the sermon is a condition for the validity of the Friday prayer. When a pillar is missed, the sermon is not

realized, and when the sermon is not realized, the prayer is not valid. It is stated in 'Kitab al-Anwar':

[Arabic Column]: "For the validity of the Friday prayer, besides the general conditions, there are specific conditions... until he said: Seventh: Two sermons before the prayer, and their pillars are five: First, the praise of Allah Almighty; Second..."

[Urdu Column]: "For the validity of the Friday prayer, besides the general conditions, the seventh condition is that there be two sermons before the prayer, and its pillars are five: One is the praise of Allah Almighty, the second..."

1. Madarij-un-Nubuwwah, Section on removing doubts from some verses, printed by Nooria Rizvia, Sukkur, 1/831. Page 394 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[अरबी/फ़ारसी पाठ]: "इस दीवार के पीछे जो कुछ है, मुझे नहीं पता कि मेरे साथ या तुम्हारे साथ क्या किया जाएगा, और उसी तरह, हमें इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए या इसमें भागीदारी और विस्तार की तलाश नहीं करनी चाहिए; बल्कि, हमें सम्मान की सीमा पर शिष्टाचार, मौन और ठहराव बनाए रखना चाहिए। यह मालिक का अधिकार है कि वह अपने सेवक के साथ जो चाहे कहे और करे, और अपनी श्रेष्ठता और प्रभुत्व प्रकट करे। सेवक को भी अपने मालिक के प्रति दासता और विनम्रता का व्यवहार करना चाहिए। किसी और के पास इस स्थान में प्रवेश करने, हस्तक्षेप करने और शिष्टाचार की सीमाओं से बाहर जाने का क्या अवसर या शक्ति है? यह स्थान वह जगह है जहाँ कई कमज़ोर और अज्ञानी लोग फिसल जाते हैं, जिससे उनका विनाश होता है। और अल्लाह ही रक्षा और सहायता करने वाला है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। (त)"

[उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: "जहाँ दासता, विनम्रता, आवश्यकता, लाचारी और गरीबी का उल्लेख आता है, उदाहरण के लिए: 'मैं तुम्हारी तरह एक इंसान हूँ,' 'मुझे गुस्सा वैसे ही आता है जैसे एक दास को आता है,' और 'मुझे नहीं पता कि इस दीवार के उस पार क्या है,' 'मुझे नहीं पता कि मेरे साथ और तुम्हारे साथ क्या किया जाएगा,' और इसी तरह के अन्य उदाहरण; हम अनुयायियों और दासों के लिए इन मामलों में हस्तक्षेप करना, उनमें भाग लेना या उन्हें खेल बनाना जायज़ नहीं है। बल्कि, हमारे लिए शिष्टाचार का पालन करते हुए मौन, स्थिरता और ठहराव बनाए रखना अनिवार्य है। मालिक का अधिकार है कि वह अपने सेवक से जो चाहे कहे, और उस पर अपनी बुलंदी के प्रभुत्व को व्यक्त करे। सेवक का भी यह अधिकार है कि वह अपने मालिक के सामने दासता और विनम्रता व्यक्त करे। किसी और की क्या हिम्मत कि वह इसमें दखलअंदाजी करे और शिष्टाचार की सीमा से बाहर निकलने की कोशिश करे? इस बिंदु पर, बहुत से कमज़ोर और अज्ञानी लोगों के पैर फिसल जाते हैं, जिससे वे तबाही और बर्बाद की ओर चले जाते हैं। अल्लाह तआला ही रक्षा करने वाला और मदद करने वाला है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)"

मसला 1337: अफ्रीका के जोहान्सबर्ग से, मुहम्मद इब्राहिम साहिब शाफ़ई द्वारा प्रेषित, 13 शाबान 1327 हिजरी। इमाम हनफ़ी है और मुक़्तदी शाफ़ई भी हैं, यदि जुमे के पहले खुतबे में इमाम 'मैं तुम्हें अल्लाह के डर की वसीयत करता हूँ' (औसीकुम बितक़्वल्लाह) नहीं पढ़ता और दरूद शरीफ़ नहीं पढ़ता, तो शाफ़ई मुक़्तदी की नमाज़ होगी या नहीं?

उत्तर: शाफ़ई मज़हब के अनुसार शाफ़ई की नमाज़ नहीं होगी क्योंकि उनके नज़दीक वसीयत और दरूद खुतबे के अरकान (अनिवार्य अंग) में से हैं। और सर्वसम्मति से खुतबा जुमे की नमाज़ की सेहत (वैधता) के लिए शर्त है। जब रुकन (अंग) छूट गया तो खुतबा नहीं हुआ, और जब खुतबा नहीं हुआ, तो नमाज़ नहीं हुई। 'किताबुल अनवार' में है:

[अरबी कॉलम]: "जुमे की नमाज़ की सेहत के लिए सामान्य शर्तों के अलावा कुछ शर्तें हैं... यहाँ तक कि कहा गया: सातवीं शर्त: नमाज़ से पहले दो खुतबे, और उनके अरकान पाँच हैं: पहला, अल्लाह तआला की हम्द (प्रशंसा); दूसरा..."

[उर्दू कॉलम]: "जुमे की सेहत के लिए सामान्य शर्तों के अलावा सातवीं शर्त यह है कि नमाज़ से पहले दो खुतबे हों और उसके अरकान पाँच हैं: एक अल्लाह तआला की हम्द, दूसरा..."

1 मदारिजुन नुबुव्वत, कुछ आयतों से शंकाओं को दूर करने वाला अध्याय, नूरिया रज़विया सुक्कुर द्वारा मुद्रित, 1/831। पृष्ठ 394/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

ما وراء هذا الجدار ما ادری ما یفعل بی ولا بکم ومانند آن مارا نباید دراں دخل کنیم او اشتراك جوئیم و انبساط نمائیم بلکه بر حد ادب وسکوت وتحاشی توقف نمائیم خواجہ رامی رسد که بنده خود هر چه خواهد بگوید وبکند واستعلاء واستیلا نماید وبنده نیز با خواجہ بندگی وفروتنی کند دیگری راچه مجال یارا اے آنکہ دریں مقام درآید و دخل کند وحد ادب بیرون رود ایں مقام پالغز بسیاری از ضعفاء و جهلا و سبب تضر رایشاں است ومن اللہ العصمة والعون - واللہ تعالٰی اعلم (ت)

عبدیت، انکساری، محتاجی و عاجزی اور مسکینی کا ذکر آئے مثلاً میں تمہاری طرح بشر ہوں، مجھے اسی طرح غصہ آتا ہے جیسے عبد کو آتا ہے اور میں نہیں جانتا اس دیوار کے ادھر کیا ہے، میں نہیں جانتا میرے ساتھ اور تمہارے ساتھ کیا کیا جائے گا، اور اس کی مثل دیگر مقامات، ہم اتیوں اور غلاموں کو جائز نہیں کہ ان معاملات میں مداخلت کریں، ان میں اشتراک کریں اور اسے کھیل بنائیں، بلکہ ہمیں پاس ادب کرتے ہوئے خاموشی وسکوت اور توقف کرنا لازم ہے، مالک کا حق ہے کہ وہ اپنے بندے سے جو چاہے فرمائے، اس پر اپنی بلندی کا غلبہ کا اظہار کرے، بندے کا بھی یہ حق کہ وہ اپنے مالک کے سامنے بندگی اور عاجزی کا اظہار کرے، دوسرے کی کیا مجال کہ وہ اس میں دخل اندازی کرے اور حد ادب سے باہر نکلنے کی کوشش کرے، اس مقام پر بہت سے کمزور اور جاہل لوگوں کے پاؤں پھسل جاتے ہیں جس سے وہ تباہ وبرباد ہو جاتے ہیں، اللہ تعالٰی محفوظ رکھنے والا اور مدد کرنے والا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۳۷: از افریقہ جوہانس برگ مرسلہ محمد ابراہیم صاحب شافعی ۱۳ شعبان ۱۳۲۷ھ امام حنفی ہے اور مقتدی شافع بھی ہیں اگر خطبہ اولیٰ جمعہ میں امام اوصیکم بتقوی اللہ نہ پڑھے اور درود شریف نہ پڑھے تو شافع کی نماز ہوگی یا نہیں؟

الجواب: مذہب شافعی پر شافعی کی نماز نہ ہوگی کہ وصیت و درود ان کے نزدیک ارکان خطبہ سے ہیں اور خطبہ بالاتفاق شرط صحت نماز جمعہ، جب رکن فوت ہوئے خطبہ نہ ہوا، جب خطبہ نہ ہوا، نماز نہ ہوئی۔ کتاب الانوار میں ہے:

لصحة الجمعة وراء الشروط العامة شروط الی ان قال السابع خطبتان قبل الصلوٰة وارکانهما خمسة حمداللہ تعالیٰ الثانی صحت جمعہ کے لئے شروط عامہ کے علاوہ ساتویں شرط یہ ہے کہ نماز سے پہلے دو خطبے ہوں اور اس کے ارکان پانچ ہیں ایک اللہ تعالیٰ کی حمد، دوسرا

1 مدارج النبوة وصل در ازالۂ شبہات از بعضے آیات مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۸۳۱ Page of 673 394

Volume 8 | Fatawa Ridawiyya

Invoking blessings upon the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him | Salutations and blessings in the service of the Noble Prophet, peace and blessings of Allah be upon him. The third: Admonition for obedience and piety[1] (Extracted) | Third: Advice for obedience and piety (Extracted - T).

It is mentioned in the same: Conditions for valid following (Iqtida): First, the Imam must be outwardly a Muslim. Second, his prayer must be valid according to the belief of the follower. If a Shafi'i follows a Hanafi who has touched his private parts or omitted the Basmalah, or if a Hanafi follows a Shafi'i who has undergone phlebotomy or cupping and did not perform ablution (Wudu), the prayer of the follower becomes void.[2] (Abridged) Conditions for the validity of Friday prayer following (Iqtida): First, the Imam must be an apparent Muslim. Second, his prayer must be valid according to the belief of the follower. If a Shafi'i follows a Hanafi and the Imam touched his private parts or omitted Bismillah, or if a Hanafi followed a Shafi'i who had a vein cut or was cupped and did not perform Wudu, then the prayer of the follower will be void. (In brief - T)

In the Fatawa of Imam Ibn Hajar Makki Shafi'i, it is stated: If it is known that they omit some pillars or conditions, their Friday prayer will not be valid; therefore, it is not permissible for anyone to pray with them.[3] (Summarized) If it is known that they have omitted certain pillars or conditions, then their Friday prayer will not be correct; therefore, performing the Friday prayer with them will not be valid. (Summarized)

Omitting the Durood (invoking blessings) is even more severe. If the blessed name was not mentioned in the sermon and only a pronoun was relied upon, for example, 'Peace and blessings of Allah be upon him,' the aforementioned Imam has proven the invalidity of the sermon and the prayer. Similarly, his Sheikh-ul-Islam Zakariya Ansari (may Allah sanctify his secret) stated in Sharh Bahjah, Sharh Rawdh, and Sharh Manhaj: as all of this is mentioned in his Fatawa al-Kubra (as all this is mentioned in his Fatawa al-Kubra - T). For a person praying alone, it is recommended by consensus to observe the schools of all the noble Imams (may Allah be pleased with them) as much as possible. And the meaning of 'as much as possible' is that as long as observing it does not make something disliked (Makruh) in his own school mandatory, as stated in various places in Radd al-Muhtar, Al-Maslak al-Mutaqassit of Mulla Ali al-Qari, etc. (Just as there are multiple places regarding this in Radd al-Muhtar and Al-Maslak al-Mutaqassit of Mulla Ali al-Qari etc.

Footnotes: 1. Al-Anwar li-A'mal al-Abrar, Chapter: Validity of Friday Prayer, etc., Jamaliya Press, Egypt, 1/100 2. Al-Anwar li-A'mal al-Abrar, Chapter: The Governor in the place of Friday authority, Jamaliya Press, Egypt, 1/85 3. Fatawa Kubra, Jurist Ibn Hajar Makki, Chapter: Friday Prayer, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 1/239

जिल्द आठवीं | फ़तावा रज़विया

अल्लाह के रसूल, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम पर दुरूद। | नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सेवा में दुरूद और सलाम। तीसरा: आज्ञाकारिता और धर्मपरायणता की वसीयत[1] (उद्धृत) | तीसरा: आज्ञाकारिता और धर्मपरायणता की सलाह (उद्धृत - त)।

इसी में है: इक़्तिदा (अनुसरण) के सही होने की शर्तें: पहली यह कि इमाम ज़ाहिरी तौर पर मुसलमान हो। दूसरी यह कि उसकी नमाज़ मुक़्तदी (अनुयायी) के अक़ीदे के मुताबिक़ सही हो। अगर किसी शाफ़ई ने हनफ़ी की इक़्तिदा की और इमाम ने शर्मगाह को छू लिया या बिस्मिल्लाह छोड़ दी, या किसी हनफ़ी ने ऐसे शाफ़ई की इक़्तिदा की जिसने नस कटवाई या पछने लगवाए और वज़ू नहीं किया, तो इक़्तिदा करने वाले की नमाज़ बातिल (अमान्य) हो जाएगी।[2] (संक्षेप में) जुमे की इक़्तिदा के सही होने की शर्तें: पहली यह कि इमाम ज़ाहिरी तौर पर मुसलमान हो। दूसरी यह कि उसकी नमाज़ मुक़्तदी के अक़ीदे के मुताबिक़ सही हो। अगर शाफ़ई ने किसी हनफ़ी की इक़्तिदा की और इमाम ने शर्मगाह को छू लिया या उसने बिस्मिल्लाह छोड़ दी, या हनफ़ी ने ऐसे शाफ़ई की इक़्तिदा की जिसने नस कटवाई या पछने लगवाए और वज़ू नहीं किया, तो इक़्तिदा करने वाले की नमाज़ बातिल हो जाएगी। (संक्षेप में - त)

इमाम इब्ने हजर मक्की शाफ़ई के फ़तावा में है: अगर यह जान लिया गया हो कि वे कुछ अर्काल (स्तंभों) या शर्तों को छोड़ देते हैं, तो उनका जुमा सही नहीं होगा, इसलिए किसी के लिए उनके साथ जुमा पढ़ना जायज़ नहीं है।[3] (संक्षिप्त) अगर यह जान लिया गया हो कि उन्होंने कुछ अर्काल या शर्तों को छोड़ दिया है, तो उनका जुमा सही नहीं होगा, इसलिए उनके साथ जुमा की अदायगी सही नहीं होगी। (संक्षिप्त)

दुरूद छोड़ना तो और भी सख़्त है। अगर खुत्बे में मुबारक नाम नहीं लिया गया और केवल ज़मीर (सर्वनाम) पर इक्तिफ़ा किया गया, मिसाल के तौर पर 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम', तो ज़िक्र किए गए इमाम ने खुत्बे और नमाज़ के बातिल होने को साबित किया है। इसी तरह उनके शैखुल इस्लाम ज़करिया अंसारी (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे) ने शरह बहजा, शरह रौज़ और शरह मन्हज में फ़रमाया: जैसा कि यह सब उनके फ़तावा अल-कुबरा में ज़िक्र है (जैसा कि यह सब उनके फ़तावा अल-कुबरा में ज़िक्र है - त)। अकेला नमाज़ पढ़ने वाले व्यक्ति के लिए यह आम सहमति (इज्मा) से मुस्तहब है कि वह तमाम अइम्मा किराम (अल्लाह उन सब से राज़ी हो) के मज़ाहिब की जहाँ तक

मुमकिन हो रियायत रखे। और 'जहाँ तक मुमकिन हो' का मतलब यह है कि जहाँ तक उनकी रियायत करने में अपने मज़हब का कोई मकरूह लाज़िम न आए, जैसा कि रद-उल-मुह्तार, मुल्ला अली क़ारी की अल-मस्लकुल मुतक़स्सित और अन्य में कई जगहों पर ज़िक्र किया गया है। (जैसे कि इस पर रद-उल-मुह्तार और मुल्ला अली क़ारी की अल-मस्लकुल मुतक़स्सित आदि में कई स्थानों पर...

पाद-टिप्पणियाँ: 1. अल-अनवार लि-आमाल अल-अबरार, अध्याय: जुमे की वैधता आदि, जमलिया प्रेस, मिस्र, 1/100 2. अल-अनवार लि-आमाल अल-अबरार, अध्याय: जुमे के अधिकार के स्थान पर गवर्नर, जमलिया प्रेस, मिस्र, 1/85 3. फ़तावा कुबरा, फ़क़ीह इब्ने हजर मक्की, अध्याय: जुमे की नमाज़, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरुत द्वारा प्रकाशित, 1/239

الصلوٰۃ علی رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم | نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی خدمت میں درود وسلام، الثالث الوصیۃ بالطاعۃ والتقوی[1] اھ ملتقطاً | تیسرا اطاعت و تقویٰ کی نصیحت اھ ملتقطا (ت)

اسی میں ہے: لصحۃ الاقتداء شروط الاول ان یکون الامام مظھر مسلما الثانی ان تصح صلوتہ باعتقاد المأموم فلو اقتدی الشافعی بالحنفی وقد مس فرجہ او ترک البسملۃ او الحنفی بالشافعی الذی افتصد او احتجم ولم یتوضأ بطلت صلوتہ[2] اھ مختصرا۔ صحت جمعہ اقتداء کے لئے شروط ہیں اول یہ کہ امام مسلمان ظاہر ہو دوسرا یہ کہ اس کی نماز مقتدی کے اعتقاد کے مطابق درست ہو، اگر شافعی نے کسی حنفی کی اقتداء کی تو امام نے شرمگاہ کو چھولیا یا اس نے بسم اللہ ترک کردی یا حنفی نے ایسے شافعی کی اقتداء کی جس نے رگ کٹوائی یا پچھنے لگوائے اور وضو نہ کیا تو اقتداء کرنے والے کی نماز باطل ہو جائے گی اھ اختصاراً(ت)

فتاوی امام ابن حجر مکی شافعی میں ہے: ان علم انھم یترکون بعض الارکان او الشروط لم تصح منھم جمعۃ فلا یجوز لاحد ان یصلی معھم[3] (ملخصاً) اگر یہ جان لیا گیا ہو کہ انھوں نے بعض ارکان یا شرائط کو ترک کردیا ہے تو ان کا جمعہ صحیح نہ ہوگا لہذا ان کے ساتھ جمعہ کی ادائیگی درست نہ ہوگی اھ (ملخصاً)

ترک درود تو سخت تر ہے، درود خطبہ میں اگر نام اقدس نہ لیا ضمیر پر اکتفا کی مثلاً صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تو امام مذکور نے بطلان خطبہ و نماز ثابت کیا، اسی طرح ان کے شیخ الاسلام زکریا انصاری قدس سرہ، نے شرح بہجہ و شرح روض و شرح منہج میں فرمایا: کما ہو مذکور کلہ

فی فتاواہ الکبریٰ (جیسا کہ یہ تمام ان کے فتاویٰ الکبریٰ میں مذکور ہے۔ ت) آدمی کہ تنہا نماز پڑھے اسے بالاجماع مستحب ہے کہ جملہ ائمہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم کے مذاہب کی حتی الامکان رعایت رکھے اور حتی الامکان کے یہ معنی کہ جہاں تک اس کی رعایت میں اپنے مذہب کا مکروہ لازم نہ آئے کما نص علیہ فی غیر ماموضع فی ردالمحتار وفی المسلك المتقسط للملا علی القاری وغیرہما (جیسے کہ اس پر ردالمحتار اور المسلک المتقسط للملا علی القاری وغیرہ میں متعدد مقامات پر

حواشی: 1 الانوار لاعمال الابرار فصل الصحة الجمعہ الخ مطبعہ جمالیہ مصر ۱ / ۱۰۰ 2 الانوار لاعمال الابرار فصل الوالی فی محل ولایة الجمعہ مطبعہ جمالیہ مصر ۱ / ۸۵ 3 فتاویٰ کبریٰ فقیہ ابن حجر مکی باب الصلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت ۱ / ۲۳۹

It is a clarification. (T) Not those matters which are Sunnah in one's own madhhab but obligatory (fard) in the madhhab of other Imams of Truth, for abandoning such matters now is severe ignorance. Furthermore, if an Imam has followers from other Sunni madhahib as well, then observing the rules of that madhhab as much as possible is extremely important and emphasized. Allah Almighty knows best.

Question 1335: From Bareilly, Muhalla Bihari Pur, asked by Nawab Molvi Sultan Khan Sahib, 4 Safar al-Muzaffar 1330 AH. On Friday, a few people gathered in the mosque and performed Friday prayer. Afterwards, ten to twelve more people arrived and they also performed Friday prayer with Adhan, Iqamah, and Khutbah in the same mosque. Then another ten to twelve people came and did the same. Was the Friday prayer of the second and third congregations valid or not? Please explain and may you be rewarded.

Answer: Friday and Eid prayers are not like regular prayers where anyone can lead and the prayer is valid. For these, it is necessary that the Imam be either the Sultan of Islam himself or someone appointed by him. If these are not present, then by necessity, someone appointed and designated by the general Muslims for leading the Friday prayer. Among these three congregations, the prayer was valid only for the one whose Imam was the designated and appointed Imam for Friday prayer, and for his followers. It was not valid for the others. If no one's Imam was such, then no one's prayer was valid. For example, there is a roadside mosque, ten to twelve travelers passed by, one came forward and led the Friday prayer, then others came and did the same, and thus ten to twenty congregations occurred. Friday prayer was not valid for even one of them, and the obligation of Dhuhr prayer remains on everyone's responsibility. It is stated in Durr al-Mukhtar:

"For the validity of Friday prayer, the Sultan or his appointee for its establishment is a condition. The appointment by the general public is not valid in the presence of those mentioned. However, in their absence, it is permissible by necessity." (abridged). And Allah Almighty knows best.

For the validity of Friday prayer, it is necessary to have the Sultan or his appointee for establishing the Friday prayer. In the presence of the mentioned individuals, the appointment by the common people is not valid. If the mentioned persons are not present, then the appointment by the common people will be permissible out of necessity. (End of summary). And Allah Almighty knows best.

Question 1336: From Ganaur, Tehsil Sonepat, District Rohtak, sent by Hafiz Ahmed Hussain Sahib, Imam of the mosque, 23 Dhu al-Hijjah 1330 AH. What do the scholars of religion and muftis of the clear Shari'ah say regarding this issue: On Friday, after the first sermon (Khutbah) of the Imam, a session (Jalsa) is held. Is raising hands to supplicate (dua) in this session permissible in the Hanafi school of thought or not? And if it is impermissible, to what degree is it—Makruh Tanzihi or Makruh Tahrimi? Zaid says that raising hands for dua between the two sermons is a bid'ah (innovation) and haram (forbidden). This belief...

---

1 Durr al-Mukhtar, Bab al-Jumu'ah, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/109-110.

फतवा-ए-रज़विया, जिल्द 8

यह एक स्पष्टीकरण है। (त) न कि वे मामले जो अपने मज़हब में सुन्नत हों और सत्य के अन्य इमामों के मज़हब में फ़र्ज़ हों, क्योंकि अब उन्हें छोड़ना घोर अज्ञानता है। इसके अलावा, यदि कोई इमाम ऐसा है जिसके पीछे अन्य सुन्नी संप्रदायों के लोग भी नमाज़ पढ़ते हैं, तो यथासंभव उस मज़हब के नियमों का पालन करना अत्यंत महत्वपूर्ण और ताकीदी है। अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1335: बरेली, मुहल्ला बिहारी पुर से नवाब मौलवी सुल्तान खान साहब द्वारा पूछा गया, 4 सफर अल-मुजफ्फर 1330 हिजरी। जुमे के दिन कुछ लोगों ने मिलकर मस्जिद में जुमे की नमाज़ अदा की। उसके बाद दस-बारह और लोग आए और उन्होंने भी उसी मस्जिद में अज़ान, इक़ामत और खुतबे के साथ जुमे की नमाज़ अदा की। फिर दस-बारह और लोग आए और उन्होंने भी ऐसा ही किया। तो क्या दूसरी और तीसरी जमात वालों का जुमा हो गया या नहीं? कृपया स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: जुमे और ईदैन की नमाज़ें आम नमाज़ों की तरह नहीं हैं कि जिसे इमाम बना दिया नमाज़ हो गई। इनके लिए यह ज़रूरी है कि इमाम या तो स्वयं सुल्तान-ए-इस्लाम हो या उसका नियुक्त किया हुआ व्यक्ति। और अगर ये न हों, तो ज़रूरत के आधार पर वहां के आम मुसलमानों द्वारा जुमे की इमामत के लिए नियुक्त और निर्धारित व्यक्ति। इन तीनों जमातों में से केवल उसी की और उसके मुकतदियों की नमाज़ हुई जिसका इमाम जुमे के लिए नियुक्त और निर्धारित इमाम था, बाकियों की नहीं हुई। और अगर किसी का इमाम ऐसा नहीं था, तो किसी की भी नमाज़ नहीं हुई। उदाहरण के लिए, रास्ते में एक मस्जिद है, दस-बारह मुसाफिर गुज़रे, एक ने आगे बढ़कर जुमे की नमाज़ पढ़ाई, फिर कुछ और आए उन्होंने भी वैसा ही किया, और इस तरह दस-बीस जमातें हो गईं। जुमा एक का भी नहीं हुआ और ज़ुहर का फ़र्ज़ सभी के ज़िम्मे रहा। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

"जुमे की नमाज़ की वैधता के लिए सुल्तान या जुमा कायम करने के लिए उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति का होना शर्त है। वर्णित व्यक्तियों की उपस्थिति में आम जनता द्वारा नियुक्त करना मान्य नहीं है। लेकिन उनकी अनुपस्थिति में ज़रूरत के कारण (आम जनता का) नियुक्त करना जायज़ होगा।" (संक्षेप में)। और अल्लाह ताला बेहतर जानता है।

जुमे की वैधता के लिए सुल्तान या जुमा कायम करने के लिए उसके नियुक्त व्यक्ति का होना ज़रूरी है। उपरोक्त व्यक्तियों की उपस्थिति में आम जनता का नियुक्त करना मान्य नहीं है और यदि उक्त

व्यक्ति मौजूद न हों तो ज़रूरत के लिए आम जनता की नियुक्ति जायज़ होगी। और अल्लाह ताला बेहतर जानता है।

मसला 1336: गन्नौर, तहसील सोनीपत, जिला रोहतक से हाफिज़ अहमद हुसैन साहब, इमाम मस्जिद द्वारा भेजा गया, 23 ज़िलहिज्जा 1330 हिजरी। धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या कहते हैं कि जुमे के दिन इमाम के पहले खुतबे के बाद एक जलसा (बैठक) होता है, उस जलसे में हाथ उठाकर दुआ मांगना हनफी मज़हब में जायज़ है या नहीं? और अगर नाजायज़ है तो किस दर्जे का, मकरूह-ए-तन्ज़ीही या मकरूह-ए-तहरीमी? ज़ैद दो खुतबों के बीच हाथ उठाकर दुआ मांगने को बिदअत और हराम कहता है। यह अकीदा...

---

1 'दुर्रे मुख्तार', बाब अल-जुमुआ, मुतबअ मुज्तबाई दिल्ली 1/109-110। पृष्ठ 673 में से 396

تصریح ہے۔ ت) نہ کہ وہ امور جو اپنے مذہب میں مسنون اور دوسرے مذہب ائمہ حق میں فرض ہوں کہ اب تو اس کی ترک سخت جہالت، نہ کہ امام کہ دوسرے مذہب کے اہل سنت بھی اس کے مقتدی ہوں اسے تو حتی الوسع اس مذہب کی رعایت کمال اہم ومؤکد ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۳۵: از بریلی محلہ بہاری پور مسئولہ جناب نواب مولوی سلطان خاں صاحب ۴ صفر المظفر ۱۳۳۰ھ جمعہ کے دن چند آدمیوں نے مل کر مسجد میں جمعہ کی نماز ادا کی بعدہ، اور دس بارہ آدمی آگئے انھوں نے بھی اذان واقامت خطبہ کے ساتھ اسی مسجد میں نماز جمعہ ادا کی پھر دس بارہ آدمی آگئے انھوں نے بھی ایسا کیا، تو دوسری تیسری جماعت والوں کا جمعہ ادا ہو لیا یا نہیں، فقط، بینوا توجروا

الجواب: نمازِ جمعہ وعیدین مثلِ عام نمازوں کے نہیں کہ جسے امام کر دیا نماز ہوگئی ان کے لئے ضرور ہے کہ اما خود سلطان اسلام ہو یا اس کا مقرر کردہ، اور یہ نہ ہوں تو بضرورت وہاں کے عام مسلمانوں نے جسے امامتِ جمعہ کے لئے معین ومقرر ہو، تو ان تینوں جماعتوں میں جس کا امام امامِ معین ومقرر کردہ جمعہ تھا اس کی اور اس کے مقتدیوں کی نماز ہو گئی باقیوں کی نہیں، اور اگر کسی کا امام ایسا نہ تھا تو کسی کی نہ ہوئی مثلاً سرِ راہ مسجد ہے دس بارہ راہگیر گزرے ایک نے آگے ہو کر نمازِ جمعہ پڑھائی پھر کچھ اور آئے انھوں نے بھی ایسا ہی کیا یوں ہی دس بیس جماعتیں ہوئیں جمعہ ایک کا بھی نہ ہوا اور فرض ظہر سب کے ذمہ رہا، درمختار میں ہے:

الجمعۃ یشترط لصحتھا السلطان او مأ مورہ با قامتھا ونصب العامۃ غیر معتبر مع وجود من ذکر اما مع عدمہ فیجوز للضرورۃ اھ ملتقطا واللہ تعالٰی اعلم۔ صحتِ جمعہ کے لئے سلطان یا اس کا مقرر

کردہ برائے اقامتِ جمعہ کا ہونا ضروری ہے، مذکورہ افراد کے ہوتے ہوئے عوام کا مقرر کرنا معتبر نہیں اور اگر مذکور اشخاص نہیں تو ضرورت کے لئے عوام کا تقرر جائز ہو گا اھ مختصراً۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۳۶: از گنور تحصیل سونی تپ ضلع رہتک مرسلہ حافظ احمد حسین صاحب امام مسجد ۲۳ ذی الحجہ ۱۳۳۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ جمعہ کے روز امام اول کا خطبہ پڑھ کے جلسہ کرنا ہے اس جلسہ میں ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنا مذہبِ حنفی میں جائز ہے یا نہیں؟ اور اگر ناجائز ہے تو کس درجہ کا، مکروہ تنزیہی یا مکروہ تحریمی؟ زید درمیان خطبین کے ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنا بدعت اور حرام بتاتا ہے۔ یہ عقیدہ

---

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۹-۱۱۰ Page 396 of 673

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Is Zaid's statement in accordance with the noble Shariah or not? The Answer: Zaid's statement is false. It is unanimously permissible for the Imam to supplicate (make dua) between the two sermons. In fact, it is recorded in the Sahih books of Hadith that during the sermon itself, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) raised his blessed hands to pray for rain. Regarding the followers, there is a difference of opinion in the Hanafi school. Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad (may Allah have mercy on them) undoubtedly consider it permissible for them as well. Two narrations have come down from Imam Azam (may Allah be pleased with him); one aligns with the view of the two disciples (Sahibayn), that according to the Imam, it is permissible for followers to supplicate between the two sermons. Imam Sughnaqi in Nihaya and Imam Akmaluddin Babarti in Inaya (commentary on Hidaya) stated: "This is the correct view."

[Box Content] Arabic: Its sunnahs are fifteen. The fourth is to recite Ta'awwudh (seeking refuge) silently before the sermon. The sixth is to begin with the praise and glorification of Allah the Almighty, etc. (Summarized). Urdu: Its fifteen sunnahs are... the fourth is to recite Ta'awwudh in the heart before the sermon, the sixth is to start with the praise and glorification of Allah Almighty, etc. (Summarized).

Furthermore, this is not a matter necessitating harshness; it should be explained gently. If one does not agree, there is no need for factionalism or instigating strife. "And strife (fitna) is worse than killing." (Al-Quran). And Allah Almighty knows best.

Problem 733: From Kanpur Jail, sent by Kallan Khan Jamadar, 12 Shawwal 1331 AH. To His Holiness (may his shadow be lengthened), after respectful greetings, it is submitted that in a jail where five to six hundred prisoners, detainees, and employees reside, can Friday prayer (Jumu'ah) be offered or not? Where general permission for fasting and congregational prayer is given without hindrance, but outsiders cannot enter without permission nor can those inside leave. Thus, should the Muslims inside the jail, who number over a hundred, perform Jumu'ah prayer in congregation on Friday or Dhuhr prayer? Hoping for a reply via return mail. With utmost respect. The Answer: One of the conditions for Jumu'ah is "General Permission" (Idhn-e-Aam). Since no one can [freely] enter the jail, performing Jumu'ah prayer there is impossible and void. Moreover, a congregation for Dhuhr is also not permissible for them on Friday if the jail is within city limits; rather, every individual, whether an employee or a prisoner, should pray Dhuhr alone. However, if

the jail is outside the city, they may pray Dhuhr in congregation. It is stated in Tanwir al-Absar:

1. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter on Jumu'ah Prayer, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 2/17.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

क्या ज़ैद का कहना शरीयत-ए-मुतहरा के अनुकूल है या नहीं? उत्तर: ज़ैद का कथन असत्य है। दोनों खुत्बों (धर्मोपदेशों) के बीच में इमाम का दुआ (प्रार्थना) माँगना सर्वसम्मति से जायज़ है। बल्कि स्वयं खुत्बे के दौरान वर्षा के लिए हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का अपने दोनों मुबारक हाथों को उठाकर दुआ माँगना सहाह की किताबों में मौजूद है। मक़्तदियों (अनुयायियों) के संबंध में हनफी पंथ (मज़हब) में मतभेद है। इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैहिमा) निस्संदेह उनके लिए भी इसे जायज़ बताते हैं। और इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) से दो रिवायतें (वर्णन) आई हैं; एक साहिबैन (दोनों शिष्यों) के कथन के अनुसार है कि इमाम के नज़दीक भी मक़्तदियों को दो खुत्बों के बीच दुआ माँगना जायज़ है। इमाम सुग़नाक़ी ने 'निहाया' में और इमाम अकमलुद्दीन बाबरती ने हिदाया की व्याख्या 'इनाया' में फ़रमाया: "यही सही है।"

[बॉक्स कंटेंट] अरबी: इसकी पंद्रह सुन्नतें हैं। चौथी यह कि खुत्बे से पहले चुपचाप ताअव्वुज़ (अऊज़ु बिल्लाह) पढ़ना। छठी यह कि अल्लाह तआला की हम्द-ओ-सना (प्रशंसा) से शुरुआत करना आदि (संक्षिप्त)। उर्दू: इसकी पंद्रह सुन्नतें हैं... चौथी यह कि खुत्बे से पहले दिल में ताअव्वुज़ पढ़ना, छठी यह कि अल्लाह तआला की प्रशंसा और महिमा से शुरुआत करना आदि (संक्षिप्त)।

फिर यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिस पर सख्ती की जाए; इसे नरमी से समझाया जाना चाहिए। यदि कोई न माने तो गुटबाजी और फ़साद (उपद्रव) पैदा करने की ज़रूरत नहीं। "और फ़ितना (उपद्रव) हत्या से भी बड़ा है।" (अल-क़ुरान)। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 733: कानपुर जेल से, प्रेषक कल्लन खान जमादार, 12 शव्वाल 1331 हिजरी। हज़रत अक़दस (मदज़िल्लहु आ़ली) की सेवा में सम्मानपूर्वक निवेदन है कि जिस जेल में पांच-छह सौ कैदी, हवालाती और कर्मचारी रहते हैं, वहाँ जुमे की नमाज़ अदा की जा सकती है या नहीं? जहाँ रोज़ा और नमाज़ की जमाअत (सामूहिक प्रार्थना) की सामान्य अनुमति है और कोई रोक-टोक नहीं है, लेकिन बाहरी लोग बिना अनुमति के अंदर नहीं आ सकते और न ही अंदर वाले बाहर जा सकते हैं। अतः जो मुसलमान जेल के अंदर हैं और जिनकी संख्या सौ से अधिक है, वे जुमे के दिन जमाअत के साथ जुमे की नमाज़ पढ़ें या ज़ुहर की? आशा है कि वापसी डाक से उत्तर देकर सम्मानित करेंगे। सादर प्रणाम। उत्तर: जुमे की एक शर्त 'इज़्ने आम' (सामान्य अनुमति) है। चूंकि जेल में कोई [स्वतंत्र रूप से] नहीं जा सकता, इसलिए वहां जुमे की नमाज़ असंभव और बातिल (अमान्य) है। और यदि जेल शहर की सीमा

के भीतर है, तो उनके लिए जुमे के दिन ज़ुहर की जमाअत भी जायज़ नहीं है; बल्कि हर व्यक्ति चाहे वह कर्मचारी हो या कैदी, अकेले ज़ुहर पढ़े। हाँ, यदि जेल शहर के बाहर हो, तो ज़ुहर जमाअत के साथ पढ़ें। 'तन्वीरुल अबसार' में है:

1. अल-बह्रुर राइक़, जुमे की नमाज़ का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा मुद्रित, 2/17।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

زید کا موافق شرع شریف کے ہے یا نہیں ؟ الجواب: زید کا قول باطل ہے، دونوں خطبوں کے بیچ میں امام کو دعا مانگنا تو بالاتفاق جائز ہے بلکہ خود عین خطبہ میں حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا مینہ کے لئے دونوں دست انور بلند فرما کر دعا مانگنا کتب صحاح میں موجود ہے، مقتدیوں کے بارہ میں مذہب حنفی میں اختلاف ہے، امام ابویوسف و امام محمد رحمہ اللہ تعالٰی علیہما بلا شبہ ان کے لئے بھی جائز فرماتے ہیں، اور امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے دور روایتیں آئیں، ایک مطابق قول صاحبین کے امام کے نزدیک بھی مقتدیوں کو بین الخطبتین دعا مانگنا جائز ہے امام سغناقی نے نہایہ و امام اکمل الدین بابرتی نے عنایہ شرح ہدایہ میں فرمایا: ھو الصحیح یہی صحیح ہے۔

سنتہ خمسۃ عشر اربعتھا التعوذ فی نفسہ قبل الخطبۃ سادستھا البدایۃ بحمد اللہ تعالٰی الخ ملخصاً اس کی پندرہ سنتیں ہیں چوتھی یہ کہ خطبہ سے پہلے دل میں تعوذ کا پڑھنا، چھٹی یہ کہ اللہ تعالٰی کی حمد و ثناء سے ابتداء کرنا الخ ملخصاً (ت)

پھر یہ کوئی ایسا امر نہیں جس پر تشدد ضروری ہو، بہ نرمی سمجھایا جائے اگر نہ مانے تو گروہ بندی و اثارتِ فتنہ کی حاجت نہیں والفتنۃ اکبر من القتل (فتنہ قتل سے بڑا ہے۔ ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۷۳۳: از جیل کانپور مرسلہ کلن خاں جمعدار ۱۲ شوال ۱۳۳۱ھ حضرت اقدس مدظلہ العالی بعد عرض تسلیم بصد تعظیم گزارش ہے کہ جیل میں جہاں پانچ چھ سو آدمی قیدی و حوالاتی اور ملازمین رہتے ہیں نماز جمعہ ادا کی جا سکتی ہے یا نہیں؟ جہاں پر صوم صلوٰۃ کی جماعت کو عام اجازت ہے اس میں روک ٹوک نہیں مگر باہر کے لوگ بغیر اجازت اندر نہیں آسکتے نہ اندر کے

باہر جاسکتے ہیں، پس جو مسلمان اندر جیل کے ہیں اور جن کی تعداد سو سے زائد ہے جمعہ کے روز جماعت سے نماز جمعہ ادا کریں یا نماز ظہر کی، امید کہ واپسی ڈاک جواب سے سرفرازی بخشی جائے، زیادہ حد آداب ! الجواب: جمعہ کی ایک شرط اذنِ عام ہے، جیل میں کوئی نہیں جاسکتا تو اس میں نماز جمعہ ناممکن و باطل ہے اور ظہر کی جماعت بھی ان کو جمعہ کے دن جائز نہیں، جبکہ جیل حدودِ شہر میں ہو، بلکہ ہر شخص تنہا ظہر پڑھے ملازم ہو یا ماخوذ، ہاں جیل بیرونِ شہر ہو تو ظہر بجماعت پڑھیں، تنویر الابصار میں ہے:

1 بحر الرائق باب صلوٰۃ الجمعہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۷

Volume 8 - Fatawa Razawiya

[Box 1] Arabic: يشترط لصحتها الاذن العام فلو دخل امیر حصنا واغلق بابہ وصلی باصحابہ لم تنعقد 1۔ **Urdu Translation:** General permission (Idhn-e-Aam) is a condition for the validity of the Friday prayer (Jumu'ah). If a ruler enters a fortress, closes its gate, and performs Jumu'ah with his companions, this Jumu'ah will not be valid. (T)

[Box 2] In Durr-ul-Mukhtar, it is stated: Arabic: کرہ تحریماً لمعذور ومسجون ومسافر اداء ظہر بجماعتہ فی مصر قبل الجمعۃ وبعدھا 2۔ وھو سبحنہ وتعالیٰ اعلم **Urdu Translation:** In a city, it is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi) for an excused person, a prisoner, or a traveler to perform the Dhuhr prayer in congregation before or after the Friday prayer. And Allah (the Exalted) knows best. (T)

Problem 1338: What do the scholars of the religion and the muftis of the firm Sharia say regarding this matter: In a place which has the status of a city (Misr) and where, according to a reliable opinion, Jumu'ah is held, should 'Ihtiyati Dhuhr' (precautionary Dhuhr prayer) be performed or not? And for those who do not perform it, is the Dhuhr prayer waived by performing Jumu'ah or not? If there is evidence for it in Sharia, with what intention (Niyyah) should it be performed? And what is the Sharia ruling for one who prevents it? Explain with legal proofs and be rewarded with rational arguments. (T)

The Answer: Undoubtedly, in an Islamic city where Jumu'ah is held at only one location and there is no doubt about the invalidity of the Imam's leadership, performing 'Ihtiyati Dhuhr' is prohibited and an innovation (Bid'ah). However, this condition is not found in general cities today, except for the Two Holy Sanctuaries (Haramayn Sharifayn) and some other places. Similarly, where Jumu'ah is held at multiple locations, the person who prayed in the very first congregation is not allowed to perform 'Ihtiyati Dhuhr'. In places where there is doubt about it being a city, or about the Imam or his authorization, or where Jumu'ah is held at multiple locations and it is not known if one's congregation was the first, then if the doubt is weak, 'Ihtiyati Dhuhr' is recommended (Mustahab), and if the doubt is strong, it is obligatory (Wajib). However, this ruling is for the elite (learned people); the general public does not need it, tolerating a minor harm for fear of a greater one. The elite should make the intention: "The last Dhuhr prayer which was due upon me and I did not perform," and let not even the thought arise that "if Jumu'ah was valid, then these are my supererogatory (Nafl) prayers, otherwise they are obligatory (Fard)." Furthermore, there should be no hesitation at the time of intending for Jumu'ah, as

hesitation is contrary to intention. He who prohibits it where it is meant to be prohibited does no wrong, but he who prohibits it where it is recommended is a fool, and for the place where it is obligatory...

---

1. Tanwir al-Absar with Durr al-Mukhtar, Chapter on Jumu'ah, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/112.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on Jumu'ah, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/112.

खंड 8 - फ़तावा रज़विया

[बॉक्स 1] अरबी: يشترط لصحتها الاذن العام فلو دخل امير حصنا واغلق بابہ وصلی باصحابہ لم تنعقد 1۔ **उर्दू अनुवाद:** जुमा की नमाज़ की वैधता के लिए 'इज़्न-ए-आम' (सामान्य अनुमति) एक शर्त है। यदि कोई शासक किसी किले में प्रवेश करता है, उसका दरवाज़ा बंद कर लेता है और अपने साथियों के साथ जुमा पढ़ता है, तो यह जुमा मान्य नहीं होगा। (त)

[बॉक्स 2] दुर्रे मुख़्तार में है: अरबी: کرہ تحریماً لمعذور ومسجون ومسافر اداء ظہر بجماعتہ فی مصر قبل الجمعۃ وبعدھا 2۔ وھو سبحنہ وتعالیٰ اعلم **उर्दू अनुवाद:** शहर में किसी मज़दूर (अक्षम), कैदी या यात्री के लिए जुमा से पहले या बाद में जमात के साथ ज़ुहर की नमाज़ पढ़ना मकरूह-ए-तहरीमी (सख्त नापसंद) है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 1338: धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: जहाँ शहर (मिस्र) का हुक्म लागू होता है और विश्वसनीय मत के अनुसार वहाँ जुमा होता हो, क्या वहाँ 'एहतियाती ज़ुहर' (सावधानी के तौर पर ज़ुहर की नमाज़) पढ़नी चाहिए या नहीं? और जो लोग इसे नहीं पढ़ते, क्या जुमा पढ़ने से ज़ुहर साक़ित (माफ़) हो जाती है या नहीं? और यदि शरीयत में इसका प्रमाण है, तो इसे किस नीयत (इरादे) से पढ़ा जाना चाहिए? और शरीयत के अनुसार इसे रोकने वाले का क्या हुक्म है? दलाइल-ए-शरईया (शरई प्रमाणों) के साथ स्पष्ट करें और दलाइल-ए-अकलिया (तर्कसंगत प्रमाणों) से पुण्य प्राप्त करें। (त)

अल-जवाब (उत्तर): निस्संदेह, जो इस्लामी शहर हो और वहाँ केवल एक ही स्थान पर जुमा होता हो और इमाम की इमामत की अवैधता के बारे में कोई संदेह न हो, वहाँ एहतियाती ज़ुहर पढ़ना वर्जित और बिदअत (नवाचार) है। लेकिन आज आम शहरों में यह स्थिति कहीं नहीं है सिवाय हरमैन शरीफ़ैन और कुछ अन्य शहरों के। इसी तरह, जहाँ जुमा कई स्थानों पर होता है, जिस व्यक्ति ने सबसे पहली जमात में नमाज़ पढ़ी है, उसे एहतियाती ज़ुहर की अनुमति नहीं है। और जहाँ शहर होने में संदेह हो, या इमाम या उसकी अनुमति में संदेह हो, या जुमा कई स्थानों पर होता हो और यह ज्ञात न हो कि अपनी जमात सबसे पहली थी, वहाँ यदि संदेह कमज़ोर है तो एहतियाती ज़ुहर मुस्तहब (पसंदीदा) है, और यदि संदेह प्रबल है तो यह वाजिब (अनिवार्य) है। हालाँकि, यह हुक्म ख़ास लोगों (विद्वानों) के लिए है; आम जनता को इसकी आवश्यकता नहीं है, बड़े नुक़सान के डर से छोटे नुक़सान को बर्दाश्त करते हुए। ख़ास लोग यह नीयत करें: "पिछली वह ज़ुहर जो मुझ पर थी और

मैंने अदा नहीं की," और यह विचार भी न आने पाए कि "यदि जुमा हो गया तो ये मेरे नफ़्ल हैं, अन्यथा फ़र्ज़।" साथ ही जुमा की नीयत के समय कोई हिचकिचाहट (तरद्दुद) नहीं होनी चाहिए, क्योंकि हिचकिचाहट नीयत के विपरीत है। जो मना करने की जगह पर मना करता है उसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन जो मुस्तहब की जगह पर मना करता है वह मूर्ख है, और जहाँ वाजिब है...

---

1. तनवीरुल अबसार मय दुर्रे मुख़्तार, बाबुल जुमा, मुस्तबाई प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/112
2. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल जुमा, मुस्तबाई प्रेस दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/112

جلد ہشتم - فتاویٰ رضویہ

[پہلا خانہ] عربی: یشترط لصحتھا الاذن العام فلو دخل امیر حصنا واغلق بابہ وصلی باصحابہ لم تنعقد 1۔ **اردو ترجمہ:** صحت جمعہ کے لئے اذنِ عام شرط ہے، اگر کسی امیر نے قلعہ میں داخل ہو کر دروازہ بند کر لیا اور اپنے ساتھیوں کو جمعہ پڑھا یا تو یہ جمعہ منعقد نہ ہوگا۔ (ت)

[دوسرا خانہ] در مختار میں ہے: عربی: کرہ تحریماً لمعذور ومسجون ومسافر اداء ظہر بجماعتہ فی مصر قبل الجمعۃ وبعدھا 2۔ وھو سبحنہ وتعالیٰ اعلم **اردو ترجمہ:** شہر میں معذور، قیدی اور مسافر کے لئے جمعہ سے پہلے اور بعد نمازِ ظہر جماعت کے ساتھ ادا کرنا مکروہِ تحریمی ہے۔ وہو سبحنہ وتعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۳۸: کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ جہاں پر حکمِ مصر رکھتا ہے اور بنا بر قولِ معتبر کے وہاں جمعہ ہوتا ہو ان میں احتیاطِ ظہر پڑھنا چاہئے یا نہیں؟ اور جولوگ اس کو نہیں پڑھتے ہیں جمعہ پڑھنے سے ظہر ساقط ہوتے ہیں یا نہیں؟ اور اگر اس کا ثبوت شرع میں ہو تو اس کو کس نیت سے پڑھنا چاہئے اور جو اس کا مانع ہو از روئے شرع شریف کے کیا حکم ہے؟ بینوا بالدلائل الشرعیۃ وتوجروا بالبراھین العقلیۃ (دلائل شرعیہ سے بیان کرو اور براہین عقلیہ سے اجر پاؤ ،ت)

الجواب: بلا شبہ جو اسلامی مصر ہو اور وہاں ایک ہی جگہ جمعہ ہوتا ہو اور امام میں کوئی شبہہ ناجوازی امامت کا نہ ہو وہاں احتیاطی ظہر پڑھنا ممنوع وبدعت ہے مگر یہ بات آج عامہ بلاد میں کہیں نہیں سوا حرمین شریفین وغیر ہما، بعض بلاد کے، یونہی جہاں جمعہ متعدد جگہ ہوتا ہو جس نے سب سے اول جماعت میں پڑھا اسے احتیاطی ظہر کی اجازت نہیں، اور جہاں مصریت میں

شبہہ ہو یا امام یا اس کی ماذونیت میں یا جمعہ متعدد جگہ ہوتا ہو اور اپنی جماعت سب سے پہلے ہونا معلوم نہیں وہاں اگر شبہہ ضعیف ہے احتیاطی ظہر مستحب ہے اور قوی ہے تو واجب، مگر اس کا حکم خواص کے لئے ہے عوام کو حاجت نہیں تحملا للضرر الادنی مخافۃ الاقوی (بڑے ضرر سے ڈرتے ہوئے ادنیٰ ضرر کو برداشت کرتے ہوئے ت) خواص یہ نیت کریں کہ پچھلی وہ ظہر جو میں نے پائی اور ادا نہ کی اور یہ خطرہ بھی نہ آنے پائے کہ جمعہ ہو گیا تو یہ میرے نفل ہیں، ورنہ فرض، نہ جمعہ کی نیت کے وقت تردد ہو کہ تردد منافی نیت ہے، جو منع کی جگہ منع کرتا ہے حرج نہیں اور جو استحباب کی جگہ منع کرتا ہے احمق ہے اور وجوب کے

---

1 تنویر الابصار مع در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۲ 2 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۲

Volume Eight Fatawa Razawiyyah

...preventing at the right place makes one a sinner. The detail of this issue is in our Fatawa and success is through Allah (the details of the issue are in our Fatawa and this is through the guidance of Allah Almighty. - T) And Allah subhanahu wa ta'ala knows best.

Issue 1339: From Naitaur, District Bijnor, sent by Muhammad Abdullah, merchant of shoes, 29 Muharram 1332 AH. In a congregational mosque where an Imam leads prayers who owns property and has purchased another property using interest-based money, and some powerful people of the city do not like to replace him, rather if anyone even mentions it, there is a fear of discord (fitna). In such a situation, is it permissible for the people of any neighborhood in the city to agree and offer Friday prayers in another mosque? Clarify and be rewarded.

The Answer: If there is no power to change this Imam, then it is obligatory to go elsewhere in the city where a pious Imam leads the Friday prayers. And if Friday prayers are not held elsewhere in the city, or other Imams are also unfit for leadership, then appoint a new Imam who is a Sunni with correct beliefs, correct recitation, correct purification, and knowledgeable of issues, who is not an open sinner (fasiq mu'lin), and offer Friday and Eid prayers behind him. Allah Almighty knows best.

Issue 1340: From Hyderabad Deccan, Mohalla Sultanpura, House No. 2954/6, sent by Maulvi Muhammad Abdul Jalil Sahib Nomani, Superintendent of Religious Affairs, 20 Safar 1332 AH. What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say on this matter that the common people cannot understand the Arabic sermons (khutbah) of Friday and Eid; can it be read in Urdu for their sake? Clarify and be rewarded, indeed your reward is with Allah Almighty. (State it and get rewarded, for your reward is with Allah Almighty. - T)

The Answer: From the blessed era of the Resplendent Presence, Master of Mankind and Jinn, upon him and his family be the best of blessings and peace, through the era of the noble Sahaba (companions), the great Tabi'in (successors), and the eminent Imams, across all centuries and classes, the sermons of Friday and Eid have always been mentioned and narrated in pure Arabic. Even though in the times of the Sahaba and those after them from the noble Imams, thousands of non-Arab lands were conquered, thousands of congregational mosques were built, thousands of pulpits were installed, and the general attendees were non-Arabs, and many among those

dignitaries knew the language of the conquered people and spoke to them in it, nevertheless it was never narrated that the sermon was delivered in a non-Arabic language or that both languages were mixed, as mentioned by Shah Waliullah Dehlavi in 'Sharh al-Muwatta' (As Shah Waliullah Dehlavi has mentioned in 'Sharh al-Muwatta'. - T). Opposing the inherited Sunnah is disliked.

जिल्द हश्टम (खंड 8) फ़तावा रज़विया

...सही जगह पर रोकने वाला गुनहगार है और इस मसले का विस्तार हमारे फ़तावा में है और अल्लाह ही की तौफ़ीक़ से है। (मसले का विवरण हमारे फ़तवे में है और यह अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से है। - त) और अल्लाह सुभानहू व तआला बेहतर जानता है।

मसला १३३९: नैतोर जिला बिजनौर, प्रेषक मुहम्मद अब्दुल्ला, जूता व्यापारी, २९ मुहर्रम १३३२ हिजरी। जिस जामा मस्जिद में ऐसा इमाम नमाज़ पढ़ाता हो जो जायदाद का मालिक है और दूसरी जायदाद सूद (ब्याज) के रुपयों से खरीदी हो, और शहर के कुछ प्रभावशाली लोग उसे बदलना पसंद नहीं करते, बल्कि अगर कोई इस बारे में ज़िक्र भी करे तो फ़ितने (झगड़े) का डर है। ऐसी स्थिति में क्या शहर के किसी मोहल्ले के लोगों का आपस में सहमत होकर किसी दूसरी मस्जिद में जुमा अदा करना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

जवाब: अगर इस इमाम को बदलने की शक्ति न हो, तो शहर में किसी दूसरी जगह जहाँ कोई नेक इमाम जुमे की नमाज़ पढ़ाता हो, वहाँ जाना वाजिब (अनिवार्य) है। और अगर शहर में दूसरी जगह जुमा होता ही न हो, या अन्य इमाम भी इमामत के अयोग्य हों, तो एक नया इमाम नियुक्त करें जो सही अकीदे (विश्वास) वाला सुन्नी हो, सही क़िरअत (पाठ) करने वाला हो, पवित्रता के नियमों को जानने वाला और मसलों का जानकार हो, जो खुलेआम गुनाह करने वाला (फ़ासिक़ मुअ्लिन) न हो, और उसके पीछे जुमा और ईदैन की नमाज़ पढ़ें। अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १३४०: हैदराबाद दक्कन, मोहल्ला सुल्तानपुरा, मकान नंबर २९५४/६, प्रेषक मौलवी मुहम्मद अब्दुल जलील साहब नोमानी, धार्मिक मामलों के अधीक्षक, २० सफ़र १३३२ हिजरी। धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या कहते हैं कि जुमा और ईदैन का अरबी खुत्बा आम लोग नहीं समझ सकते, क्या उनके लिहाज़ से इसे उर्दू भाषा में पढ़ा जा सकता है? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ निश्चय ही आपका बदला अल्लाह तआला के पास है। (बयान करके अज्र पाओ कि तुम्हारा अज्र अल्लाह तआला के पास है। - त)

जवाब: हुज़ूर पुरनूर, सैयदुल इंस वल जान (इंसानों और जिन्नों के सरदार), उन पर और उनके आल (वंश) पर बेहतरीन दुरूद और सलाम हो, उनके बरकत वाले ज़माने से लेकर सहाबा-ए-किराम, ताबेईन और बड़े इमामों के दौर तक, सभी सदियों और वर्गों में जुमा और ईदैन के खुत्बे हमेशा विशुद्ध अरबी भाषा में ही वर्णित और प्रचलित रहे हैं। हालाँकि सहाबा और उनके बाद के नेक इमामों

के दौर में हज़ारों ग़ैर-अरब (अजम) देश फ़तह हुए, हज़ारों जामा मस्जिदें बनीं, हज़ारों मिंबर लगाए गए, और वहाँ आने वाले आम लोग ग़ैर-अरबी (अजमी) थे। उन महान हस्तियों में से बहुत से लोग विजित लोगों की भाषा जानते थे और उनसे उसी में बात करते थे, फिर भी कभी यह उल्लेख नहीं मिला कि खुत्बा ग़ैर-अरबी भाषा में दिया गया हो या दोनों भाषाओं को मिलाया गया हो, जैसा कि शाह वलीउल्लाह देहलवी ने 'शरह अल-मुवत्ता' में उल्लेख किया है (जैसा कि शाह वलीउल्लाह देहलवी ने शरह मुवत्ता में ज़िक्र किया है। - त)। चली आ रही सुन्नत (सुन्नत-ए-मुतवारिषा) के खिलाफ़ जाना नापसंद है।

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

محل پر منع کرتا ہے تو گنہگار ہے وتفصیل المسألة فی فتاؤنا وباللہ التوفیق (مسئلہ کی تفصیل ہمارے فتاوی میں ہے اور یہ اللہ تعالیٰ کی توفیق سے ہے۔ت) واللہ سبحنہ وتعالی اعلم

مسئلہ ۱۳۳۹: نیتھور ضلع بجنور مرسلہ محمد عبداللہ سوداگر جفت ۲۹ محرم ۱۳۳۲ھ جس جامع مسجد میں ایسا امام نماز پڑھاتا ہو جو صاحب جائیداد ہے اور دوسری جائیداد سودی روپیہ لے کر خریدی اور اس کے بدلنے کو چند اشخاص اہل شہر جن کا زور زیادہ ہے پسند نہیں کرتے بلکہ اگر کوئی اس بابت ذکر بھی کرے تو خوف فتنہ کا ہے ایسی صورت میں شہر میں سے کسی محلہ کے آدمیوں کو متفق ہو کر کسی دوسری مسجد میں جمعہ ادا کرنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: اگر اس امام کے بدلنے پر قدرت نہ ہو تو شہر میں دوسری جگہ جہاں کوئی امام صالح امامت جمعہ پڑھاتا ہو وہاں جانا واجب ہے اور اگر شہر میں دوسری جگہ جمعہ ہوتا ہی نہ ہو یا اور امام بھی ایسا نا قابل امامت ہوں تو نیا امام سنی صحیح العقیدہ، صحیح خواں، صحیح الطہارۃ، مسائل داں کہ فاسق معلن نہ ہو مقرر کریں اور اس کے پیچھے جمعہ وعیدین پڑھیں، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۴۰: از حیدرآباد دکن محلہ سلطان پورہ مکان نمبر ۲۹۵۴/۶ مرسلہ مولوی محمد عبدالجلیل صاحب نعمانی مہتمم امور مذہبی ۲۰ صفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ خطبہ جمعہ وعیدین عربی عوام نہیں سمجھ سکتے ہیں کیا ان کے لحاظ سے اردو زبان ہی میں پڑھا جا سکتا ہے؟ بینوا توجروا ان اجرکم علی اللہ تعالیٰ (بیان کر کے اجر پاؤ کہ تمہارا اجر اللہ تعالیٰ کے پاس ہے۔ت)

الجواب: زمان برکت نشان حضور پر نور سید الانس والجان علیہ علی الہ افضل الصلوٰۃ والسلام سے عہد صحابہ کرام و تابعین عظام وائمہ اعلام تک تمام قرون و طبقات میں جمعہ وعیدین کے خطبے ہمیشہ خالص زبان عربی میں مذکور و ماثور اور بانکہ صحابہ و من بعد ہم من ائمۃ الکرام کے زمانوں میں ہزار ہا بلاد عجم فتح ہوئے ہزار ہا جوامع بنیں، ہزار ہا منبر نصب ہوئے، عامہ حاضرین اہل عجم ہوئے، اور ان حضرات میں بہت وہ تھے کہ مفتوحین کی زبان جانتے اس میں ان سے کلام فرماتے بانیمہ کبھی مروی نہ ہوا کہ خطبہ غیر عربی زبان میں فرمایا یا دونوں زبانوں کا ملایا ہو کما ذکرہ الشاہ ولی اللہ الدھلوی فی شرح الموطأ (جیسا کہ شاہ ولی اللہ دہلوی نے شرح موطا میں ذکر کیا ہے۔ت) سنتِ متوارثہ کا خلاف ناپسند ہے،

Fatawa Razawiyya Volume Eight

In al-Durr al-Mukhtar, it is mentioned that the Muslims inherited it (tawaruth), thus following them is mandatory. Ah, meaning it is established and emphasized.

In al-Durr al-Mukhtar, it is stated that this is established among Muslims through inheritance; therefore, following them is mandatory. [Ah], meaning it is established and emphasized. -(T)

It is not a Sunnah where, despite the presence of a need, no instruction was given to the contrary, such that opposing it now would certainly be disliked (makruh) and considered bad conduct (isa’at).

I say: Its verification is that the requirement for sermon and admonition in a non-Arabic language was identically present and there was no impediment, yet they did not do it. Thus, this was a restraint (kaff) from them, not a mere abandonment (tark). Restraint is an action, and inheritance (tawaruth) applies to actions, unlike abandonment, because there is no meaning for its inheritance nor a scope for following it, since it is neither performed nor within one's power, as the great scholars have explicitly stated. It is mentioned in 'al-Ashbah wa al-Naza'ir' that proximity cannot be sought through abandonments (truuk) unless the abandonment becomes restraint (kaff), which is an action. And this is what is commanded in prohibition, not abandonment in the sense of non-existence, because non-existence does not fall under the servant's power, as stated in 'al-Tahrir'. [Ah], meaning the 'Tahrir al-Usul' by the Researcher Imam (al-Imam al-Muhaqqiq), where he stated it, may Allah have mercy on him. Master this, for it is one of the most important matters.

I say: Its detail is that the demand for sermon and advice in a non-Arabic language was identically present and there was no obstacle either, yet they did not do so. So this is their restraint (kaff), not abandonment (tark), and restraint is an action, and inheritance continues in actions. Unlike abandonment, because there is no meaning for its transmission, nor is following it permissible, because it is not from what is done nor is it within power, as our great predecessors have stated. It is in 'al-Ashbah wa al-Naza'ir' that proximity (to Allah) cannot be attained through abandonments except in the case when the abandonment takes the form of restraint (kaff), and it becomes an action, and in prohibition, this is what is mandated, not abandonment in the sense of non-existence, because a non-existent thing is not under the power of the servant, as it is in 'al-Tahrir' [End]. This refers to 'Tahrir al-Usul' which al-Imam al-Muhaqqiq al-Mutlaq has mentioned. Remember this well because it is among the most important matters. (T)

Adhan is definitely for calling and informing people of the time, but if it is in a non-Arabic language, it will not be Adhan at all, even if the purpose of informing is achieved, because Adhan was only a Sunnah when it was in itself not fundamentally against the Sunnah.

---

[1] Al-Durr al-Mukhtar, Book of Eids, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/171. [2] Al-Ashbah wa al-Naza’ir, First Art, Second Principle, printed at Idara-tul-Quran wal-Uloom al-Islamiyya, Karachi, 7/71.

दुर्र-उल-मुख्तार में है कि मुसलमानों को यह विरासत में मिला है, इसलिए उनका अनुसरण करना अनिवार्य है। [आह, यानी स्थापित और पुष्ट]।

दुर्र-उल-मुख्तार में है कि यह मुसलमानों में विरासत के साथ स्थापित है, इसलिए उनका अनुसरण अनिवार्य है। [आह, यानी स्थापित और पुष्ट]। -(त)

ऐसा नहीं है कि ऐसी सुन्नत जहाँ ज़रूरत महसूस होने के बावजूद, विपरीत दिशा में रुख न किया गया हो, कि अब उसका विरोध निश्चित रूप से मकरूह (नापसंद) और इसाअत (बुरा आचरण) होगा।

मैं कहता हूँ: इसका शोध यह है कि गैर-अरबी भाषा में उपदेश और सलाह की आवश्यकता उसी तरह मौजूद थी और कोई रुकावट भी नहीं थी, फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया। तो यह उनकी ओर से संयम (कफ़) था, न कि त्याग (तर्क)। संयम एक क्रिया है, और क्रिया में विरासत (तवारुस) चलती है, त्याग के विपरीत, क्योंकि इसके विरासत में मिलने का कोई अर्थ नहीं है और न ही इसमें अनुसरण (इक्तादा) की गुंजाइश है, क्योंकि यह न तो किया गया है और न ही सामर्थ्य में है, जैसा कि बड़े बुजुर्गों ने स्पष्ट किया है। 'अल-अश्बाह वन-नज़ायर' में कहा गया है कि त्यागों (तरूक) के माध्यम से सामीप्य प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि त्याग संयम (कफ़) न बन जाए, जो कि एक क्रिया है। और निषेध में यही आदेशित है, न कि अभाव के अर्थ में त्याग, क्योंकि अभाव बंदे के सामर्थ्य के अधीन नहीं होता जैसा कि 'अत-तहरीर' में है। [आह, यानी इमाम अल-मुहक्क़िक द्वारा 'तहरीर अल-उसूल' जहाँ उन्होंने इसे व्यक्त किया है, अल्लाह उन पर दया करे]। इसे अच्छी तरह याद कर लो क्योंकि यह सबसे महत्वपूर्ण मामलों में से एक है।

मैं कहता हूँ: इसका विवरण यह है कि गैर-अरबी भाषा में उपदेश और सलाह का तकाज़ा उसी तरह मौजूद था और कोई रुकावट भी नहीं थी, फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो यह उनका रुकना (कफ़) है, त्याग (तर्क) नहीं। और रुकना एक क्रिया है, और क्रिया में विरासत जारी होती है। त्याग के विपरीत, क्योंकि इसके हस्तांतरण का कोई अर्थ नहीं है और न ही इसमें अनुसरण जायज़ है, क्योंकि वह न तो किया गया है और न ही सामर्थ्य में है, जैसा कि हमारे बड़े पूर्वजों ने स्पष्ट किया है। 'अल-अश्बाह वन-नज़ायर' में है कि त्यागों के साथ सामीप्य नहीं हो सकता सिवाय उस स्थिति में जब त्याग संयम (कफ़) के रूप में हो और वह क्रिया हो, और निषेध में यही आदेशित है, न कि अभाव के अर्थ में त्याग, क्योंकि अभाव बंदे के सामर्थ्य के अधीन नहीं होता जैसा कि 'तहरीर' में है। [आह]। इससे तात्पर्य इमाम अल-मुहक्क़िक अल-मुतलक़ ने 'तहरीर अल-उसूल' में जो उल्लेख किया है, उससे है। इसे अच्छी तरह याद कर लें क्योंकि यह अत्यंत महत्वपूर्ण मामला है। (त)

अज़ान निश्चित रूप से बुलाने और उन लोगों को समय की सूचना देने के लिए है, लेकिन यदि यह गैर-अरबी में हो तो यह कतई अज़ान नहीं होगी, भले ही सूचना देने का उद्देश्य प्राप्त हो जाए, क्योंकि अज़ान केवल तभी सुन्नत थी जब वह अपने आप में सुन्नत के विरुद्ध हो।

---

[1] दुर्र-उल-मुख्तार, बाब-उल-ईदैन, मुतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 1/171। [2] अल-अश्बाह वन-नज़ायर, अल-फन्न अल-अवल, अल-काइदा अस-सानिया, इदारा-तुल-क़ुरआन वल-उलूम अल-इस्लामिया, कराची, 7/71।

فی الدرالمختار ان لمسلمین توارثوہ فوجب اتباعھم[1] اہ ای ثبت وتاکد۔

در مختار میں ہے کہ یہ مسلمانوں میں توارث کے ساتھ ثابت ہے لہذا ان کی اتباع واجب ہے اھ یعنی ثابت اور مؤکد ہے - (ت)

نہ کہ ایسی سنت جہاں با وصف تحقق حاجت، جانب خلاف رخ نہ فرمایا ہو کہ اب تو اس کا خلاف ضرور مکروہ و اساءت ہوگا۔

اقول: وتحقیقه ان التذکیر بالعجمیة کان المقتضی له بعینه موجودا والمانع مفقودا ثم لم یفعلوه فکان ذلك کفامنهم لاترکا والکف فعل والفعل یجری فیه التوارث بخلاف الترك اذا لامعنی لتوارثه ولا مساغ للتأسّی فیه لانه غیر مفعول ولا مقدور کما نص علیه الاکابرا لصدور قال فی الاشباه والنظائر التروك لا یتقرب بها الا اذا صار الترك کفا و هو فعل و هو المکلف به فی النهی لا الترك بمعنی العدم لانه لیس داخلا تحت القدرة للعبد کما فی التحریر[2] اه ای تحریر الاصول للامام المحقق حیث اطلق رحمه الله تعالی اتقن هذا فانه من اجل المهمات.

اقول: اس کی تفصیل یہ ہے کہ عجمی زبان میں وعظ و نصیحت کا تقاضا بعینہ موجود تھا اور مانع بھی کوئی نہیں تھا پھر انہوں نے ایسا نہیں کیا تو یہ ان کا رکنا ہے ترک نہیں اور رکنا فعل ہے اور فعل میں توارث جاری ہوتا ہے۔ بخلاف ترک کے، کیونکہ اس کے نقل ہونے کا معنی نہیں اور نہ ہی اس میں اقتداء جائز ہے کیونکہ وہ معمول سے نہیں اور نہ ہی قدرت میں، جیسا کہ اس پر ہمارے اسلاف اکابر نے تصریح کی ہے، الاشباہ والنظائر میں ہے کہ تروک کے ساتھ تقرب نہیں ہو سکتا مگر اس صورت میں جب ترک کف کی صورت میں ہو اور وہ فعل ہو گا اور نہی میں یہی مکلف بہ ہے نہ کہ ترک بمعنی عدم کیونکہ معدوم قدرت عبد کے تحت نہیں ہوتا جیسا کہ تحریر میں ہے اھ اس سے مراد تحریر الاصول للامام المحقق المطلق نے ذکر کیا ہے اسے اچھی طرح یاد کر لو کیونکہ یہ نہایت اہم معاملہ میں سے ہے۔ (ت)

اذان ضرور بلانے اور ان لوگوں کو اطلاع وقت دینے کے لئے ہے مگر غیر عربی میں ہو تو ہرگز اذان ہی نہ ہو گی اگرچہ مقصود اعلام حاصل ہو جائے کہ اذان صرف سنت تھی جب فی نفسہ برخلاف سنت ہوئی راسا

---

[1] در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۷۱ [2] الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدة الثانیة مطبوعہ ادارة القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۷/۷۱

Fatawa Rizvia, Volume 8

...passed away, it is stated in Tanwir: Al-Adhan is a specific sign on a specific manner with specific words. (T) Adhan is to inform in specific words through a specific method. It is stated in Radd al-Muhtar: "He indicated that it is not valid in Persian, even if it is known to be the adhan, and this is the most apparent and most correct view, as stated in al-Siraj." (T) This points out that it is not permissible in Persian, even if it's known that it's the adhan, and this is the clearest and most correct position as mentioned in al-Siraj.

The sermon (khutbah) is for necessity, preaching, and reminding, just as prayer is for remembrance. Allah Almighty says: "Establish prayer for My remembrance." (T) And the Great Quran itself is named 'Dhikr-e-Hakim' (The Wise Reminder), and He severely rebukes those who do not understand it: "Do they not then reflect on the Quran, or are there locks on their hearts?" (T) Then, for someone who does not understand Arabic, prayer and the Quran will not be changed into Urdu, Bengali, or English for them, nor will the khutbah and adhan. This is their own fault; their religion is Arabic, the Prophet is Arabic, the Book is Arabic, yet they did not even learn enough Arabic to understand their religion. Look at the state of English; how people fall for it blindly like madmen in the hope of earning a few pennies, but they have no concern for Arabic, which contains religion and faith. May Allah grant guidance and success, Ameen. And Allah Almighty knows best.

Problem 451 to 453: From Pilibhit, Muhalla Bhure Khan, sent by Haji Aziz Ahmad Sahab, 7 Safar 1332 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) The second adhan of Friday, which is customary inside the mosque near the Imam, is it disliked, meaning prohibitively disliked (Makruh Tahrimi) or mildly disliked (Makruh Tanzihi)? (2) Is the boundary wall of the water tank outside the mosque or inside it? (3) In the Hadith of Abu Dawood, what was practiced during the time of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and the Shaykhayn (may Allah be pleased with them both)?

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Adhan, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/62.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Adhan, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/282.
3. Al-Quran 20/14.
4. Al-Quran 47/24.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

...देहांत हो गया, तनवीर में है: अज़ान विशिष्ट शब्दों में विशिष्ट तरीके से सूचना देना है। (त) अज़ान, विशिष्ट शब्दों में विशिष्ट तरीके से जानकारी देना है। रद-उल-मुहतार में है: "इसमें इशारा है कि यह फ़ारसी में जायज़ नहीं है, हालाँकि यह ज्ञात हो कि यह अज़ान है और यही अधिक स्पष्ट और सही है जैसा कि सिराज में है।" (त) इसमें संकेत है कि यह फारसी में वैध नहीं है, भले ही यह ज्ञात हो कि यह अज़ान है, और यही सबसे स्पष्ट और सही मत है जैसा कि सिराज में है।

ख़ुतबा ज़रूरत, उपदेश और नसीहत के लिए है जैसे नमाज़ ज़िक्र (याद) के लिए है। अल्लाह तआला का इरशाद है: "मेरी याद के लिए नमाज़ क़ायम करो।" (त) और स्वयं क़ुरआन अज़ीम कि उसका नाम ही 'ज़िक्र-ए-हकीम' है और उसे न समझने पर अल्लाह सख्त ऐतराज़ फरमाता है: "क्या वे क़ुरआन में सोच-विचार नहीं करते या उनके दिलों पर ताले पड़े हैं?" (त) फिर जिसकी समझ में अरबी न आए, उसके लिए नमाज़ और क़ुरआन उर्दू या बंगला या अंग्रेजी में नहीं कर दिए जाएँगे और न ही खुतबा और अज़ान। यह उसकी अपनी कमी है; उसका धर्म अरबी, नबी अरबी, किताब अरबी है, फिर भी उसने इतनी अरबी नहीं सीखी कि अपना धर्म समझ सके। अंग्रेजी की हालत देखिए, लोग उस पर कैसे अंधे और पागल होकर गिरते हैं कि दो पैसे कमाने की उम्मीद है, लेकिन अरबी जिससे धर्म और ईमान है, उससे कोई सरोकार नहीं। अल्लाह तआला तौफीक दे और हिदायत बख्शे, आमीन। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 451 से 453: पीलीभीत, मोहल्ला भूरे खां, प्रेषक: हाजी अज़ीज़ अहमद साहब, 7 सफ़र 1332 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि: (1) जुमे के दिन दूसरी अज़ान जो मस्जिद के अंदर इमाम के करीब प्रचलित है, उसमें कराहत यानी कराहत-ए-तहरीमी है या तनज़ीही? (2) हौज (पानी की टंकी) की मुंडेर मस्जिद से बाहर है या मस्जिद के अंदर? (3) अबू दाऊद की हदीस में जो हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और शैख़ैन (अल्लाह उन दोनों से राज़ी हो) के समय में...

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल अज़ान, मुतबूआ मतबा मुजतबाई देहली, 1/62.
2. रद-उल-मुहतार, बाबुल अज़ान, मुतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/282.
3. अल-क़ुरआन 20/14.
4. अल-क़ुरआन 47/24.

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

فوت ہوگئی، تنویر میں ہے: الاذان علامہ مخصوص علی وجہ مخصوص بالفاظ کذلک[1]- (ت) اذان، الفاظِ مخصوص میں بطریقِ مخصوص اطلاع دینا ہے۔ رد المحتار میں ہے: اشار الی انہ لا یصح بالفارسیہ وان علم انہ اذان وھو الاظھر والاصح کما فی السراج[2]- (ت) اس میں اشارہ ہے کہ یہ فارسی میں جائز نہیں، اگرچہ معروف یہ کہ اذان ہے اور یہی اظہر واصح ہے جیسا کہ سراج میں ہے۔

خطبہ ضرورت وعظ وتذکیر کے لئے ہے جیسے نماز کہ ذکر کے لئے ہے خطبہ ضرورت وعظ وتذکیر کے لئے ہے جیسے نماز کہ ذکر کے لئے ہے قال اللہ تعالٰی اَقِمِ الصَّلٰوۃَ لِذِکْرِیْ (اللہ تعالٰی کا ارشاد ہے میری یاد کے لئے نماز قائم کرو۔ ت) اور خود قرآن عظیم کہ اس کا تو نام ہی ذکر حکیم ہے اور اس کے نہ سمجھنے پر سخت انکار فرماتا ہے، اَفَلَا یَتَدَبَّرُوْنَ الْقُرْاٰنَ اَمْ عَلٰی قُلُوْبٍ اَقْفَالُھَا (کیا وہ قرآن میں تدبر نہیں کرتے یا ان کے دلوں پر تالے پڑے ہیں۔ ت) پھر جس کی سمجھ میں عربی نہ آئے نہ اس کے لئے نماز و قرآن اردو یا بنگلہ یا انگریزی کر دئے جائیں گے نہ خطبہ واذان، یہ اس کا اپنا قصور ہے اس کا دین عربی، نبی عربی، کتاب عربی، پھر عربی اتنی بھی نہ سیکھی کہ اپنا دین سمجھ سکتا۔ انگریزی کی حالت دیکھئے اس پر کیسے اندھے باؤلے ہو کر گرتے ہیں کہ دو پیسے کمانے کی امید ہے اور عربی جس میں دین ہے ایمان ہے اس سے کچھ غرض نہیں اللہ تعالٰی توفیق دے وہدایت بخشے، آمین واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۴۵۱ تا ۴۵۳: از پیلی بھیت محلہ بھورے خاں مرسلہ حاجی عزیز احمد صاحب ۷ صفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ: (۱) اذان ثانی جمعہ کے دن امام کے قریب اندر مسجد کے جو مروج ہے اس میں کراہت یعنی کراہت تحریمی ہے یا تنزیہی؟ (۲) فصیل حوض

خارجِ مسجد ہے یا داخل مسجد؟ (۳) ابوداؤد کی حدیث میں جو حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور شیخین رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے وقت میں

[1] در مختار باب الاذان مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۶۲ [2] رد المحتار باب الاذان مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۲۸۲ [3] القرآن ۲۰ / ۱۴ [4] القرآن ۴۷ / ۲۴

Fatawa Razawiyya Volume 8

Regarding the mention of Adhan at the door of the mosque, was the first Adhan started at that time or not? If at that time there was only one Adhan, then when the second Adhan started, did it take place at the door of the mosque during the time of the remaining Rightly Guided Caliphs or near the Imam next to the pulpit? Explain and you will be rewarded.

The Answer:

(1) The noble scholars have written about its dislike (karahat) and kept it absolute, and absolute dislike is mostly carried over to 'Karahat-e-Tahrimi' (prohibitory dislike). In the holy era of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him), the Adhan was given at the door of the mosque, and it is never narrated from the Prophet nor from the Rightly Guided Caliphs that the Adhan was called inside the mosque. It was his noble habit to sometimes adopt a 'Makruh-e-Tanzihi' (slightly disliked act) to demonstrate its permissibility; moreover, doing so (calling Adhan inside) is a lack of etiquette in the court of Allah. And Allah knows best the truth with Him.

(2) The wall of an old pond is considered the perimeter (Fana) of the mosque, not the mosque itself; otherwise, performing ablution on it would be impermissible, and Adhan is permissible in the perimeter of the mosque. And Allah Almighty knows best.

(3) Until the leadership of the Commander of the Faithful, Usman Ghani (may Allah be pleased with him), there was only that one Adhan of the sermon (Khutbah). He added the first Adhan but did not make any change in the Adhan of the sermon, nor is any change reported from any Rightly Guided Caliph in this regard. Yes, Imam Ibn al-Hajj al-Makki wrote in 'Al-Madkhal' regarding Hisham bin Abdul Malik, the Marwanid king, that he changed the Sunnah. His era was eighty years after the Commander of the Faithful, Usman (may Allah be pleased with him). And Allah Almighty knows best.

Case 1344: Questioned by Maulvi Fazl-ur-Rahman Sahib from Cantonment Sadar Bazar, Ferozepur, Punjab, 19 Safar 1332 AH.

What do the scholars of religion and jurists of the clear Sharia say about the issue mentioned below? In a fort where the general public is not allowed to enter, nor are the employees allowed outside except at specified times, out of five hundred Muslim employees, a congregation established there performs Friday prayers with the

announced permission of the government. There is no built mosque there, and also near the said fort in the city and Cantonment Sadar Bazar, Friday prayers are held at several other mosques. Is the Friday prayer of this congregation valid? Some scholars, referring to Fatawa Alamgiri and Durr-e-Mukhtar, due to the lack of general permission (Idn-e-Aam), have considered the said congregation analogous to prisoners etc., and have given a fatwa for the non-permissibility and invalidity of the Friday prayer. However, some others, referring to the text of Shami, that:

Arabic Quote	Translation
Qultu wa yanbaghi an yakuna mahallu al-niza'i ma idha kanat la tuqamu illa fi mahallin wahidin amma law ta'addadat fala liannahu la yatahaqqaqu al-tafwitu kama afadahu al-ta'lilu ta'ammal.	I say: it is appropriate that the point of contention is the situation when Friday prayer is established at only one location. However, if it is in multiple places, then it is not the point of contention because then the missing (of prayer) is not realized, as the reasoning provided the benefit. Reflect. (T)

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मस्जिद के दरवाज़े पर अज़ान का ज़िक्र है, उस समय तक अज़ान-ए-अव्वल शुरू थी या नहीं? अगर उस समय केवल एक अज़ान थी, तो जब से दूसरी अज़ान शुरू हुई, उस समय भी शेष खुलफ़ा-ए-राशिदीन के समय में अज़ान-ए-सानी मस्जिद के दरवाज़े पर होती थी या इमाम के पास मिम्बर के नज़दीक? बयान करें और पुण्य कमाएँ।

उत्तर:

(1) उलेमा-ए-किराम ने इसके नापसंद होने (कराहत) के बारे में लिखा है और इसे पूर्ण रखा है, और पूर्ण नापसंदगी (मुतलक़ कराहत) अक्सर 'कराहत-ए-तहरीमी' (निषिद्ध नापसंदगी) मानी जाती है। सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के पवित्र युग में मस्जिद के दरवाज़े पर अज़ान होती थी, और कभी भी न हुज़ूर से और न ही खुलफ़ा-ए-राशिदीन से यह वर्णित है कि मस्जिद के अंदर अज़ान दिलवाई गई हो। हुज़ूर की यह मुबारक आदत थी कि वे कभी-कभी 'मक़रूह-ए-तंज़ीही' (हल्की नापसंदगी) को केवल उसकी अनुमति (जवाज़) बताने के लिए अपना लेते थे; इसके अलावा, ऐसा करना (अंदर अज़ान देना) अल्लाह की बारगाह में अदब (शिष्टाचार) की कमी है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

(2) पुराने हौज की दीवार मस्जिद का घेरा (फ़ना-ए-मस्जिद) है, न कि स्वयं मस्जिद; अन्यथा उस पर वज़ू करना नाजायज़ होता, और फ़ना-ए-मस्जिद में अज़ान जायज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

(3) अमीरुल मोमिनीन उस्मान ग़नी (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) के खिलाफ़त काल के समय तक वही एक खुतबे की अज़ान थी। उन्होंने पहली अज़ान बढ़ाई लेकिन खुतबे की अज़ान में कोई बदलाव नहीं किया, और न ही किसी खुलफ़ा-ए-राशिद से इसमें कोई बदलाव वर्णित है। हाँ, इमाम इब्न अल-हज्ज अल-मक्की ने 'अल-मदखल' में मरवानी राजा हिशाम बिन अब्दुल मलिक के बारे में लिखा है कि उसने सुन्नत को बदल दिया। उसका काल अमीरुल मोमिनीन उस्मान (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) के ८० साल बाद था। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1344: मौलवी फ़ज़्लुर रहमान साहिब, छावनी सदर बाज़ार फ़िरोज़पुर पंजाब, 19 सफ़र 1332 हिजरी द्वारा पूछा गया।

उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ क्या कहते हैं कि नीचे लिखे मसले के बारे में? एक किले में जहाँ आम लोगों को जाने की अनुमति नहीं है और न ही कर्मचारियों को निर्धारित समय के अलावा बाहर जाने की अनुमति है, पाँच सौ मुस्लिम कर्मचारियों में से एक समूह वहाँ सरकार की घोषित अनुमति से जुमे की नमाज़ पढ़ता है। वहाँ कोई निर्मित मस्जिद नहीं है, और साथ ही उक्त किले के पास शहर और छावनी सदर बाज़ार की अन्य कई मस्जिदों में जुमा पढ़ा जाता है। क्या इस समूह का जुमा अदा हो जाता है? कुछ उलेमा-ए-दीन ने फ़तावा आलमगीरी और दुर्र-ए-मुख़्तार के हवाले से आम अनुमति (इज़न-ए-आम) न होने के कारण उक्त समूह को क़ैदियों आदि के समान मानकर जुमे की नमाज़ के नाजायज़ और गलत होने का फ़तवा दिया है, और कुछ ने शामी की इबारत के हवाले से कि:

अरबी पाठ	**हिन्दी अनुवाद**
قلت وينبغى ان يكون محل النزاع ما اذا كانت لاتقام الافى محل واحد اما لو تعددت فلا لانہ لايتحقق التفويت كما افادہ التعليل تامل۔	मैं कहता हूँ कि उचित यह है कि विवाद का विषय वह स्थिति है जब केवल एक ही स्थान पर जुमे की नमाज़ हो और यदि अनेक स्थानों पर जुमा हो तो फिर विवाद का विषय नहीं क्योंकि फिर छूटने (तफ़वीत) का अहसास नहीं होता जैसा कि कारण के बयान ने स्पष्ट किया है, विचार करें। (त)

पृष्ठ 402/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

باب مسجد پر اذان کا ذکر ہے اُس وقت تک اذانِ اول شروع تھی یا نہیں؟ اگر اس وقت میں صرف ایک اذان تھی تو جب سے دوسری اذان شروع ہوئی اُس وقت بھی بقیہ خلفائے راشدین کے وقت میں اذانِ ثانی باب مسجد پر ہوتی تھی یا امام کے متصل منبر کے پاس؟ بینوا توجروا

الجواب:

(۱) علمائے کرام نے کراہت لکھی اور اسے مطلق رکھا اور مطلق کراہت غالباً کراہتِ تحریم پر محمول ہوتی ہے، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے زمانۂ اقدس میں اذان دروازۂ مسجد پر ہوا کی، اور کبھی نہ حضور سے منقول نہ خلفائے راشدین سے کہ مسجد کے اندر اذان کہلوائی ہو، اور عادتِ کریمہ تھی کہ مکروہِ تنزیہی کو بیانِ جواز کے لئے کبھی اختیار فرماتے پھر اس میں ترکِ ادب بارگاہِ الٰہی ہے واللہ اعلم بالحق عند اللہ۔

(۲) حوض قدیم کی فصیل فنائے مسجد ہے نہ عین مسجد، ورنہ اس پر وضو نا جائز ہوتا اور فنائے مسجد میں اذان جائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

(۳) صدرِ خلافت امیر المومنین عثمان غنی رضی اللہ تعالٰی عنہ تک وہی ایک اذانِ خطبہ تھی انھوں نے اذانِ اول زائد فرمائی مگر اذانِ خطبہ میں کوئی تبدیلی نہ کی، نہ کسی خلیفۂ راشد سے اس میں کوئی تغییر منقول، ہاں امام ابن الحاج مکی نے مدخل میں ہشام بن عبد الملک بادشاہِ مروانی کی نسبت لکھا کہ اس نے سنت کو بدلا اس کا زمانہ امیر المومنین عثمان رضی اللہ تعالٰی عنہ سے اسی ۸۰ برس بعد ہوا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۴۴: مسئولہ مولوی فضل الرحمان صاحب از چھاؤنی صدر بازار فیروز پور پنجاب ۱۹ صفر ۱۳۳۲ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین مسئلہ مرقومہ الذیل میں کہ ایک قلعہ میں جہاں عام لوگوں کو جانے کی اجازت نہیں اور نہ ملازمان کو باہر بجز وقت معینہ کے منجملہ پانچ صد مردمان مسلمان ملازمان کے ایک جماعت وہاں نمازِ جمعہ باجازتِ مشتہرہ گورنمنٹ قائم کرتی ہے وہاں بنائے مسجد نہیں ہے نیز متصل قلعہ مذکور کے شہر اور چھاؤنی صدر بازار میں چند جگہ دیگر مساجد میں جمعہ پڑھا جاتا ہے کیا اس جماعت کا جمعہ ادا ہو جاتا ہے بعض علمائے دین نے بحوالۂ فتاوٰی عالمگیری و درمختار بباعث عدمِ اذنِ عام او جماعت مذکور کو محبوسین وغیرہ کا مقیس علیہ قرار دے کر عدمِ جواز اور نادرست ہونے نماز جمعہ کا فتوٰی دیا ہے اور بعض نے بحوالہ عبارتِ شامی کہ

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قلت وینبغی ان یکون محل النزاع ما اذا کانت لاتقام الافی محل واحد اما لو تعددت فلا لانہ لایتحقق التفویت کما افادہ التعلیل تامل۔	میں کہتا ہوں کہ مناسب یہ ہے کہ محلِ نزاع وہ صورت ہے جب ایک ہی مقام پر جمعہ کا قیام ہو اور اگر متعدد جگہ ہو تو پھر محل نزاع نہیں کیونکہ پھر تفویت متحقق نہیں جیسا کہ علت کے بیان نے فائدہ دیا ہے، غور کرو۔ (ت)

Fatawa Razviya Volume 8

...has given the fatwa that the Friday prayer is valid. (State with evidence and receive a great reward. - T)

Answer: In the described situation, since the fort is closed and no outsider can enter it for prayer, general permission (Idhn-e-Aam) is not established. General permission is an intrinsic condition for the validity of the Friday prayer. Allama Shami (may Allah have mercy on him) did not narrate this opinion from anyone else; rather, it is his own view, which he starts with "I say" (Qultu). Even he himself was not confident about it, as he instructs contemplation (ta'ammul) at the end. Allama Shami is not among those whose original research (baht) can be prioritized over textual evidence (nass). Even if his research were not against a textually established rule, it remains a discussion that cannot serve as a proof, let alone when his discussion is contrary to what is narrated and textually established. Such discussions are not narrated even from Imam Ibn al-Humam, as Allama Shami himself has clarified in various places, "as we have explained in our book 'Fasl al-Qada fi Rasm al-Ifta'" (as we mentioned in our book "Fasl al-Qada fi Rasm al-Ifta". - T). As a human error, this discussion occurred similarly. This humble servant has completed the discussion on this issue in his annotations on Radd al-Muhtar. Here, these few words are sufficient: Imam Malik al-Ulama Abu Bakr Mas'ud Kashani, in the venerable book Badai', and other Imams in their works, and most notably Imam Ibn Amir al-Hajj in Halya, narrate:

[Arabic Quote] Al-Sultanu idha salla fi darihi wal-qawmu ma'a umara'i al-sultani fil-masjidi al-jami'i qala in fataha baba darihi jaza, wa takunu al-salatu fi mawdi'ayni, wa law lam ya'dhan lil-'ammati wa salla ma'a jayshihi la tajuzu salatu al-sultani wa tajuzu salatu al-'ammah 1.

[Urdu Translation of the Quote] When the Sultan prayed in his palace and the people, by his command, offered the Friday prayer in the central mosque, they said: if the door of the palace was open, it is permissible and the prayer will be valid in both places. If there was no general permission for the public and the king offered the Friday prayer with his army, the Sultan's prayer is not valid, though the public's prayer will be valid. (T)

Look, this is a clear text narrated by the great Imams and from the author of the school of thought (muharrir-e-madhhab), Imam Muhammad, without any disagreement. Friday prayer was held outside the fort, and the Sultan also prayed inside the fort. If general permission to enter the fort was given, then both Friday

prayers were correct; otherwise, the one outside was correct and the one inside the fort was void. It is clearly proven that general permission is an intrinsic condition for the validity of the Friday prayer, even if Friday prayer is held in multiple places and no reinforcement is necessary. "And after the text, there is no choice but to return to it" (Once a text is found, there is no option but to refer back to it. - T).

---

1 Badai' al-Sanai', summarized, section on conditions of Jumu'ah, published by H.M. Saeed Company Karachi, 1/269.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

...जुमे की नमाज़ के दुरुस्त होने का फ़तवा दिया है। (दलील के साथ बयान करें और अज़ीम अज्र पाएं। - त)

जवाब: पूंछी गई सूरत में जब कि क़िले की पाबंदी है, बाहर का कोई व्यक्ति नमाज़ के लिए उसमें नहीं जा सकता तो इज़्न-ए-आम (सामान्य अनुमति) नहीं हुई, और इज़्न-ए-आम अपने आप में जुमे की शर्त है। अल्लामा शामी (रहमतुल्लाह अलैह) ने यह कौल किसी से नकल नहीं फ़रमाया बल्कि यह उनका अपना विचार है जिसे वह 'क़ुलतु' से शुरू फ़रमाते हैं और खुद उनको भी इस पर भरोसा नहीं कि अंत में चिंतन (तामुल) का हुक्म फ़रमाते हैं। अल्लामा शामी बहस के अह्ल नहीं, उनकी बहस का अगर मसला मन्सूसा (पाठ पर आधारित) के खिलाफ होना मालूम न भी हो तब भी वह एक बहस है जो हुज्जत (दलील) नहीं हो सकती, न कि जब उनकी बहस नकुल और मन्सूस (स्पष्ट पाठ) के खिलाफ हो कि ऐसी बहस तो इमाम इब्न अल-हुमाम से भी नकुल नहीं होती जिसकी खुद अल्लामा शामी ने जगह-जगह स्पष्टीकरण फ़रमाया है जैसा कि हमने अपनी किताब "फ़स्ल अल-कज़ा फ़ी रस्म अल-इफ़्ता" में बयान किया है (जैसा कि हमने अपनी किताब "फ़स्ल अल-कज़ा फ़ी रस्म अल-इफ़्ता" में बयान किया है। - त)। मानवीय स्वभाव के कारण यह बहस इसी तरह हुई, फ़कीर ने रद अल-मुह्तार पर अपनी टिप्पणियों में इस मसले की बहस पूरी कर दी है, उसमें से यहाँ सिर्फ ये कुछ शब्द काफ़ी हैं कि इमाम मलिकुल उलमा अबूबक्र मसूद काशानी किताब मुस्तताब बदाइ' और उनके अलावा अन्य इमामों ने अपनी रचनाओं में और उन सब से इमाम इब्न अमीर अल-हाज हलिया में नकल फ़रमाते हैं:

[अरबी पाठ] قال السلطان اذاصلی فی دارہ والقوم مع امراء السلطان فی المسجد الجامع ان فتح باب دارہ جاز، وتکون الصلوۃ فی موضعین، ولو لم یاذن للعامۃ وصلی مع جیشہ لا تجوز صلوۃ السلطان و تجوز صلوۃ العامۃ 1.

जब सुल्तान ने अपने घर (महल) में और क़ौम ने उसके हुक्म से जामा मस्जिद में जुमा अदा किया, तो उन्होंने फ़रमाया कि अगर घर का दरवाज़ा खुला था तो जायज़ है, और नमाज़ दोनों जगह हो जाएगी, और अगर आवाम को इज़्न-ए-आम न था और बादशाह ने अपने लश्कर के साथ जुमा अदा किया तो सुल्तान की नमाज़ जायज़ नहीं अलबत्ता आवाम की नमाज़ जायज़ होगी। (त)

देखो यह स्पष्ट पाठ (नस्स) है जिसे बड़े इमामों ने नकल किया है और मज़हब के मुहर्रिर इमाम मुहम्मद से बिना किसी मतभेद के मन्कूल है कि क़िले से बाहर भी जुमा हुआ और क़िले में भी सुल्तान ने पढ़ा। अगर क़िले में आने का इज़्न-ए-आम दिया था तो दोनों जुमे सही हो गए वरना बाहर का जुमा सही हुआ और क़िले का बातिल (अमान्य)। साफ़ साबित हुआ कि इज़्न-ए-आम अपने आप में जुमे की सेहत की शर्त है, चाहे जुमा कई जगहों पर हो और तक़वियत की ज़रूरत न हो। "और स्पष्ट पाठ के बाद उसकी ओर लौटने के सिवा कोई चारा नहीं।" (नस्स पाए जाने के बाद उसकी तरफ रुजू किए बिना कोई चारा नहीं। - त)

---

1 बदाइ' अल-सनाइ', संक्षेप में, जुमे की शर्तों के बयान में, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/269।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

درست ہونے نماز جمعہ کا فتوٰی دیا ہے۔ یتمنوا بالدیل توجر ابالاجر جزیل (دلیل سے بیان کر کے اجر عظیم پائیں۔ ت)

الجواب: صورت مستفسرہ میں جبکہ قلعہ کی بندش ہے، باہر کا کوئی شخص نماز کے لئے اس میں نہیں جاسکتا تو اذنِ عام نہ ہوا، اور اذنِ عام فی نفسہ شرط جمعہ ہے، علامہ شامی رحمتہ اللہ تعالٰی علیہ نے یہ قول کسی سے نقل نہ فرمایا بلکہ یہ ان کا اپنا خیال ہے جسے وہ قُلْتُ سے شروع فرماتے ہیں اور خود ان کو بھی اس پر وثوق نہیں کہ آخر میں تامل کا حکم فرماتے ہیں، علامہ شامی رحمتہ اللہ تعالٰی علیہ اہل بحث نہیں ان کی بحث کا اگر مسئلہ منصوصہ کے خلاف ہو نا معلوم نہ بھی ہو تاہم وہ ایک بحث ہے جو حجت نہیں ہو سکتی نہ کہ جب ان کی بحث مخالف منقول و منصوص واقع ہے کہ ایسی بحث تو امام ابن الہمام کے بھی منقول نہیں ہوتی جس کی خود علامہ شامی نے جابجا تصریح فرمائی کما بیناہ فی کتابنا فصل القضاء فی رسم الافتاء (جیسا کہ ہم نے اپنی کتاب "فصل القضاء فی رسم الافتاء" میں بیان کیا ہے۔ ت)۔ براہ بشریت یہ بحث اسی طرح واقع ہوئی، فقیر نے ردالمختار پر اپنی تعلیقات میں اس مسئلہ کی بحث تمام کردی ہے اس میں سے یہاں صرف یہ چند کلمات کافی ہیں کہ امام ملک العلماء ابو بکر مسعود کاشانی کتاب مستطاب بدائع اور ان کے سوا اور ائمہ اپنی تصانیف میں اور ان سب سے امام ابن امیر الحاج حلیہ میں نقل فرماتے ہیں:

السلطان اذاصلی فی دارہ والقوم مع امراء السلطان فی المسجد الجامع قال ان فتح باب دارہ جاز، وتکون الصلوۃ فی موضعین، ولو لم یاذن للعامۃ وصلی مع جیشہ لا تجوز صلوۃ السلطان و تجوز صلوۃ العامۃ 1۔

جب سلطان نے اپنی دار میں اور قوم نے اس کے حکم سے جامع مسجد میں جمعہ ادا کیا تو انھوں نے فرمایا اگر دار کا دروازہ کھولا تھا تو جائز، اور نماز دونوں جگہ ہو جائے گی، اور اگر عوام کو اذنِ عام نہ تھا اور بادشاہ نے اپنے لشکر کے ساتھ جمعہ ادا کیا تو سلطان کی نماز جائز نہیں البتہ عوام کی نماز جائز ہوگی۔(ت)

دیکھو یہ نص صریح ہے اجلہ ائمہ کی نقل اور محرر مذہب امام محمد سے بلانخلاف منقول کہ قلعہ سے باہر بھی جمعہ ہوا اور قلعہ میں بھی سلطان نے پڑھا اگر قلعہ میں آنے کا اذن عام دیا تھا تو دونوں جمعے صحیح ہو گئے ورنہ باہر کا جمعہ صحیح ہوا اور قلعہ کا باطل، صاف ثابت ہوا کہ اذن عام فی نفسہ شرط صحت جمعہ ہے اگر چہ جمعہ متعدد جگہ پایا جائے اور تقویت لازم نہ آئے ولیس بعد النص الا الرجوع الیہ (نص پائے جانے کے بعد اس کی طرف رجوع کے بغیر کوئی چارہ نہیں۔ ت)

---

1 بدائع الصنائع مفہوماً فصل فی بیان شرائط الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۲۶۹

Volume 8 Fatawa Razawiyya

Problem 1325: Asked by Mahmood Hasan Sahib from Mumbai, Post Byculla, 20 Safar 1337 AH. What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say on this matter: In a Friday prayer (Jumu'ah), there are 80 Hanafi and 20 Shafi'i individuals. Between the two schools, a Shafi'i Imam led the Friday sermon (Khutbah) and prayed two units (rak'ahs) of obligatory prayer with the Hanafis. After finishing, the mentioned Imam again leads a four-unit obligatory prayer for people of his own school. However, with the two-unit obligatory prayer performed with both schools, is the prayer of the Shafi'i school valid or not?

The Answer: If the Shafi'i Imam does not allow doubt and hesitation in the intention (niyyah) for Friday prayer and makes a pure, correct intention for the obligatory Friday prayer, then praying behind him is valid, provided he adheres to the obligations of the Hanafi school. For example, he must perform ablution (wudu) after bloodletting or if pus or water flows from a wound or boil. He should not perform purification from water less than 'dah dar dah' (approx. 5x5 meters) if impurity falls in it. He should not suffice with wiping only one-fourth of the head during wudu. He should not perform wudu again with used wudu water, and so on. If he observes these matters, then praying behind him is permissible, though it is preferable to pray behind a Hanafi. If he does not observe these, then the Hanafi's prayer behind him is void. If it is unknown, then it is disliked (makruh), as thoroughly researched in 'Al-Bahr' and 'Ad-Durr' etc. (As is researched in all these in Al-Bahr and Ad-Durr etc.). And if he doubts while intending for Friday prayer, the prayer behind him is void because "There is no intention except with determination, and there is no determination with doubt." (There is no intention without resolve, and in the case of doubt, there is no resolve). And Allah Almighty knows best.

Problem 1326: From Pilibhit, Mohalla Muhammad Sher Khan, asked by Abdul Latif Khan Sahib, 22 Safar al-Muzaffar 1332 AH. What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say on this matter: In a congregational mosque, without the permission of the appointed Imam, another person recited the sermon (Khutbah) and led the Friday prayer without the appointed Imam's permission, and the said Imam did not participate in it. In this case, was the prayer valid or not? If not, is making up (qada) for the Dhuhr prayer obligatory or not? State the answer and be rewarded.

The Answer: Our Imams explicitly state that without the permission of the appointed orator (khatib), another person cannot recite the sermon. If he does, the sermon will not be valid, and the sermon is a condition for the Friday prayer; when the sermon did not take place, the prayer also did not happen. It is stated in 'Alamgiri': "A man delivered the sermon on Friday without the Imam's permission while the Imam was present; that is not permissible unless the Imam commanded him to do so." If a person gave the Friday sermon without the permission of the Imam even though the Imam was present, then it is not permissible, except in the case when the Imam has ordered him to do so, as...

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

मसला १३२५: प्रार्थी महमूद हसन साहब, मुंबई पोस्ट बायकुला, २० सफ़र १३३७ हिजरी। इस मसले में दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती क्या कहते हैं कि जुमे की नमाज़ में ८० हनफी और २० शाफ़ई व्यक्ति हैं। दोनों मज़हबों के बीच एक शाफ़ई इमाम ने जुमे का खुतबा दिया और दो रकात फ़र्ज़ नमाज़ हनफियों के साथ पढ़ी। इसके बाद उक्त इमाम ने अपने मज़हब वालों को लेकर फिर से चार रकात फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ाई। लेकिन दोनों मज़हबों के साथ दो रकात फ़र्ज़ पढ़ने से शाफ़ई मज़हब की नमाज़ जायज़ होती है या नहीं?

जवाब: अगर शाफ़ई मज़हब का इमाम जुमे की नीयत में शक और दुविधा को जगह नहीं देता और जुमे के फ़र्ज़ की शुद्ध और सही नीयत करता है, तो उसके पीछे नमाज़ हो जाती है, बशर्ते कि वह हनफी मज़हब के फ़राइज़ (अनिवार्यताओं) का पाबंद हो। उदाहरण के लिए, फस्द (रक्तमोक्षण) कराने पर या ज़ख्म/फोड़े से मवाद या पानी बहने पर वज़ू ज़रूर कर लेता हो। अगर दस-दर-दस (लगभग ५x५ मीटर) से कम पानी में गंदगी गिर जाए तो उससे पवित्रता हासिल न करता हो। वज़ू में सिर के केवल चौथाई हिस्से के मसह पर संतोष न करता हो। इस्तेमाल किए हुए वज़ू के पानी से दोबारा वज़ू न करता हो, इत्यादि। अगर वह इन बातों का पालन करता है, तो उसके पीछे नमाज़ जायज़ है, हालांकि हनफी के पीछे पढ़ना बेहतर है। अगर वह इनका पालन नहीं करता, तो उसके पीछे हनफी की नमाज़ बातिल (अमान्य) है। और अगर पता न हो तो मकरूह (नापसंद) है, जैसा कि 'अल-बहर' और 'अद-दुर्र' आदि में शोध किया गया है। और अगर वह जुमे की नीयत में शक करता है, तो उसके पीछे नमाज़ बातिल है क्योंकि "बिना दृढ़ संकल्प के कोई नीयत नहीं होती और शक के साथ कोई दृढ़ संकल्प नहीं होता।" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १३२६: पीलीभीत, मोहल्ला मुहम्मद शेर खां से, प्रार्थी अब्दुल लतीफ़ खां साहब, २२ सफ़र अल-मुजफ्फर १३३२ हिजरी। इस मसले में दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती क्या कहते हैं कि एक जामा मस्जिद के नियुक्त इमाम की अनुमति के बिना किसी दूसरे व्यक्ति ने खुतबा पढ़ा और जुमे की नमाज़ भी नियुक्त इमाम की अनुमति के बिना पढ़ाई, और उक्त इमाम उसमें शामिल नहीं हुआ। इस स्थिति में वह नमाज़ हुई या नहीं? अगर नहीं हुई, तो क्या ज़ुहर की कज़ा पढ़ना फ़र्ज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: हमारे इमाम स्पष्ट रूप से कहते हैं कि नियुक्त खतीब (वक्ता) की अनुमति के बिना दूसरा व्यक्ति खुतबा नहीं पढ़ सकता। यदि वह पढ़ेगा, तो खुतबा जायज़ नहीं होगा, और खुतबा जुमे की नमाज़ के लिए एक शर्त है; जब खुतबा नहीं हुआ, तो नमाज़ भी नहीं हुई। 'आलमगीरी' में है: "यदि किसी व्यक्ति ने जुमे के दिन इमाम की अनुमति के बिना खुतबा दिया जबकि इमाम मौजूद था; तो यह जायज़ नहीं है जब तक कि इमाम ने उसे ऐसा करने का आदेश न दिया हो।" यदि किसी व्यक्ति ने इमाम की अनुमति के बिना जुमे का खुतबा दिया जबकि इमाम मौजूद था, तो यह जायज़ नहीं है, सिवाय उस स्थिति के जब इमाम ने उसे आदेश दिया हो, जैसा कि...

पृष्ठ ४०४ / ६७३

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مسئلہ ۱۳۲۵: مسئولہ محمود حسن صاحب از بمبئی پوسٹ بائی کھلا ۲۰ صفر ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ جمعہ میں اسی ۸۰ اشخاص حنفیہ اور ہیں ۲۰ اشخاص شافعیہ ہر دو مذہب کے درمیان شافعی امام جمعہ میں خطبہ کے دورکعت فرض پڑھا کے حنفیوں نے نماز سے فارغ ہوئے، بعدہ مذکور امام نے اپنے مذہب والوں کو لے کر پھر دوبارہ چار رکعت فرض نماز پڑھواتا ہے لیکن ہر دو مذہب والوں کے ساتھ دورکعت فرض پڑھنے سے شافعیہ مذہب کی نماز جائز ہوتی ہے یا نہیں؟

الجواب: اگر ہو امام شافعی المذہب نیت جمعہ میں شک و تردد کو راہ نہیں دیتا خالص صحیح نیت فرض جمعہ کی کرتا ہے تو اس کے پیچھے نماز ہو جاتی ہے جبکہ فرائض مذہب حنفی کا پابند ہو مثلاً فصد لے کر یا زخم پھوڑیا سے پیپ یا پانی بہہ کر ضرور وضو کر لیتا ہو وہ دہ در دہ سے کم پانی میں اگر نجاست پڑ جائے اس سے طہارت نہ کرتا ہو وضو میں چہارم سر کے مسح پر قناعت نہ کرتا ہو وضو کئے ہوئے پانی سے دوبارہ وضو نہ کرتا ہو و علی ہذا القیاس اگر ان باتوں کی رعایت کرتا ہے تو اس کے پیچھے نماز جائز ہے اگرچہ اولی حنفی کے پیچھے ہے اگر رعایت نہ کرتا ہو تو اس کے پیچھے حنفی کی نماز باطل ہے اور اگر نہ معلوم ہو تو مکروہ ہے کما حقق کل ذلک فی البحر والدر وغیرہما (جیسا کہ اس تمام کی بحر اور در وغیرہ میں تحقیق ہے۔ت) اور جمعہ کی نیت کے ساتھ شک کرتا ہو تو اس کے پیچھے نماز باطل ہے کہ لانیۃ الا بالعزم ولا عزم مع الشک (عزم کے بغیر نیت نہیں اور شک کی صورت میں عزم نہیں ہوتا۔ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۲۶: از پیلی بھیت محلہ محمد شیر خاں مسئولہ عبد اللطیف خاں صاحب ۲۲ صفر المظفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ ایک جامع مسجد کے

امام معین کے بغیر اذن دوسرے شخص نے خطبہ پڑھا اور نماز جمعہ بھی امام معین کے بے اذن پڑھائی اور امام مذکور اس میں شریک نہ ہوا اس صورت میں وہ نماز ہوئی یا نہیں، اگر نہ ہوئی تو ظہر کی قضا فرض ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: ہمارے ائمہ تصریح فرماتے ہیں کہ بے اجازت خطیب معین دوسرا شخص خطبہ نہیں پڑھ سکتا، اگر پڑھے گا خطبہ جائز نہ ہوگا، اور خطبہ شرط نماز جمعہ ہے، جب خطبہ نہ ہوا نماز بھی نہ ہوئی۔ عالمگیری میں ہے: رجل خطب یوم الجمعۃ بغیر اذن الامام والامام حاضر لا یجوز ذلک الا ان یکون الامام امرہ بذلک کذا کسی شخص نے اذنِ امام کے بغیر خطبہ جمعہ دیا حالانکہ امام موجود تھا تو یہ جائز نہیں البتہ اس صورت میں جب امام نے اسے حکم دیا ہو، جیسا کہ

Fatawa Razawiyya Volume 8

In Fatawa Qazi Khan [1]:

And it is clarified that if someone leads the Friday prayer without the permission of the appointed Imam, the prayer will not be valid except in the case where the Imam joins that prayer. It is stated in Fatawa Sirajiyya and Durr-e-Mukhtar:

"If someone prays without the permission of the Khatib, it is not permissible, unless the one who has the authority over Friday prayers follows him." [2]

It is stated in Fatawa Qazi Khan (T):

If someone leads the prayer without the permission of the Khatib (preacher), it is not permissible, except in the case where a person who has authority over the Friday prayer is a follower (Muqtadi). (T)

In this case, where the sermon was also delivered without the Imam's permission and the prayer was also led without his permission, and the Imam did not participate in it, then for two reasons that prayer became invalid, and the makeup (Qaza) of the Dhuhr prayer is mandatory for them. Allah (Exalted) knows best, and His knowledge, glorified be He, is most perfect and most firm.

Issue 737: Maulvi Naeemuddin Sahib from Muradabad, 28 Safar 1332 AH. Respected Excellency, greetings of respect. I lead the Friday prayer in the Fort mosque. This mosque has a large courtyard. Outside the mosque, there is a path which is about one bamboo height lower than the floor of the mosque. There is no place where the Muezzin can stand. It is a matter of great perplexity. Or in some such mosques, beyond the courtyard, there are walls belonging to other people like Hindus etc., such that a place for the Muezzin (minaret) cannot be built on those walls. In such a case, what should be done? Please provide a ruling and be rewarded.

The Answer: O Allah, grant guidance to the truth and correctness (T). Here there are two Sunnahs: one is being in front of (or parallel to) the preacher (Khatib), and the second is for the Adhan to be outside the mosque. When there is a conflict between them and a combination is impossible, the most preferable (arjah) option will be adopted, as is the constant and unbreakable rule. Here, the most preferable and stronger option is the second Sunnah for several reasons. Firstly, Adhan inside the mosque is prohibited. It is stated in Qazi Khan, Khulasa, Khizanat al-Muftin, Fath al-

Qadir, Bahr al-Ra'iq, Durr al-Jundi, and Alamgiri: "The Adhan should not be given in the mosque." [3] Also in Fath al-Qadir, Nazm, Tahtawi on Maraqi, and others.

1. Fatawa Hindiyya, Chapter 16 regarding Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/145.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on Friday Prayer, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/110.
3. Fatawa Hindiyya, section on words of Adhan and Iqamah, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/55.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

फ़तावा क़ाज़ी ख़ान [1] में:

और स्पष्ट करते हैं कि नियत इमाम की अनुमति के बिना अगर कोई व्यक्ति जुमा की नमाज़ पढ़ाए तो नमाज़ नहीं होगी, सिवाय उस स्थिति के जब इमाम उस नमाज़ में शामिल हो जाए। फ़तावा सिराजिया और दुर्रे मुख्तार में है:

"यदि कोई ख़तीब की अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ता है, तो यह जायज़ नहीं है, सिवाय उस स्थिति के जब वह व्यक्ति जिसके पास जुमा की नमाज़ का अधिकार है, उसका अनुसरण (मुक़्तदी) करे।" [2]

फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है (त):

अगर किसी ने ख़तीब (प्रवक्ता) की अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ाई तो जायज़ नहीं है, सिवाय उस स्थिति में जब मुक़्तदी ऐसा व्यक्ति हो जिसके पास जुमा का अधिकार था। (त)

यहाँ कि खुतबा भी इमाम की अनुमति के बिना पढ़ा गया और नमाज़ भी उसकी अनुमति के बिना पढ़ाई गई और इमाम उसमें शामिल नहीं हुआ, तो दो कारणों से वह नमाज़ नाजायज़ हुई, उन पर ज़ोहर की कज़ा अनिवार्य है। अल्लाह तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म, जिसकी महिमा महान है, सबसे पूर्ण और सबसे मज़बूत है।

मसला 737: मौलवी नईमुद्दीन साहिब मुरादाबाद से, 28 सफ़र 1332 हिजरी। हुज़ूर आली सलाम नियाज़, मैं किले की मस्जिद में जुमा की नमाज़ पढ़ाता हूँ। इस मस्जिद का एक विशाल सहन (आँगन) है। मस्जिद के बाहर एक रास्ता है जो मस्जिद के फर्श से लगभग एक बाँस नीचे है। मुअज़्ज़िन के खड़े होने के लिए कोई जगह नहीं है, यह बड़ी हैरानी की बात है। या कुछ ऐसी मस्जिदें हैं जिनमें सहन के बाद दूसरे व्यक्तियों, जैसे हिंदू आदि की दीवारें हैं, कि उन दीवारों पर मुअज़्ज़िना (मीनार) नहीं बनाया जा सकता। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? जवाब दें और पुण्य प्राप्त करें।

अल-जवाब: ऐ अल्लाह! सत्य और सही मार्ग का मार्गदर्शन प्रदान कर। (त) यहाँ दो सुन्नतें हैं: एक ख़तीब के सामने होना, और दूसरी मस्जिद से बाहर अज़ान देना। जब इनमें टकराव हो और दोनों का एक साथ होना असंभव हो, तो सबसे उचित (अरजह) विकल्प चुना जाएगा, जैसा कि एक स्थायी और अटूट नियम है। यहाँ कई कारणों से दूसरी सुन्नत अधिक उचित और प्रबल है। पहला, मस्जिद के अंदर अज़ान देने की मनाही है। क़ाज़ी ख़ान, खुलासा, ख़िज़ानतुल मुफ़्तीन, फ़तहुल क़दीर, बहरुर

रैक़, दुर्रुल जुन्दी और आलमगीरी में है: "मस्जिद में अज़ान न दी जाए।" [3] इसके अलावा फ़तहुल क़दीर, नज़्म, तहतावी अलल मराक़ी आदि में भी यही है।

1. फ़तावा हिन्दिया, अध्याय 16 जुमा की नमाज़ के बारे में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/145।
2. दुर्रे मुख्तार, जुमा का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/110।
3. फ़तावा हिन्दिया, अज़ान और इक़ामत के शब्दों का अनुभाग, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा प्रकाशित, 1/55।

فی فتاوٰی قاضی خاں 1۔ **فتاوٰی قاضی خاں میں ہے (ت)**

اور تصریح فرماتے ہیں کہ امام معین کے بغیر اذن اگر کوئی شخص نمازِ جمعہ پڑھائے تو نماز نہ ہوگی مگر اس صورت میں کہ امام اس نماز میں شریک ہو جائے۔

فتاوٰی سراجیہ و در مختار میں ہے :

لوصلی احد بغیر اذن الخطیب لا یجوز الا اذا اقتدی بہ من لہ ولایۃ الجمعۃ 2۔

اگر کسی نے اذن خطیب کے بغیر نماز پڑھائی تو جائز نہیں البتہ اس صورت میں جب مقتدی ایسا شخص ہو جو جمعہ کا والی تھا۔ (ت)

یہاں کہ خطبہ بھی بے اجازت امام پڑھا گیا اور نماز بھی بے اُس کی اجازت کے پڑھائی گئی اور امام اس میں شریک نہ ہوا تو دو وجہ سے وہ نماز ناجائز ہوئی اُن پر ظہر کی قضا لازم ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم

مسئلہ ۷۳۷ : مولوی نعیم الدین صاحب از مراد آباد ۲۸ صفر ۱۳۳۲ھ حضور عالی سلام نیاز ، میں جمعہ کی نماز قلعہ کی مسجد میں پڑھاتا ہوں اس مسجد کا وسیع صحن ہے مسجد سے باہر راستہ ہے جو ایک بانس کے قریب مسجد کے فرش سے نیچا ہے کوئی جگہ ہی نہیں جہاں مؤذن کھڑا ہو سکے سخت حیرانی ہے یا بعض ایسی مسجدیں ہیں کہ ان میں بعدِ صحن کے کسی دوسرے شخص ہندو وغیرہ کی دیواریں ہیں کہ ان دیواروں پر مئذنہ نہیں بنایا جا سکتا ایسی صورت میں کیا کیا جائے ؟ بینوا توجروا

الجواب : اللھم ھدایۃ الحق والصواب (اے اللہ ! حق اور صواب کی ہدایت عطا فرماۃت) یہاں دو سنتیں ہیں ، ایک محاذات خطیب ، دوسرے اذان کا مسجد سے باہر ہونا ، جب ان میں تعارض ہو اور جمع ناممکن ہو تو ارجح کو اختیار کیا جائے گا کما ھوا لضابطۃ المستتمرۃ الغیر المنخرمۃ (جیسا کہ دائمی اور نہ ٹوٹنے والا ضابطہ ہےۃت) یہاں ارجح و اقویٰ سنتِ ثانیہ بوجوہ اولاً مسجد میں اذان سے نہی ہے ، قاضی خاں و خلاصہ و خزانۃ المفتین و فتح القدیر و بحر الرائق و در جندی و عالمگیری میں ہے : لایؤ ذن فی المسجد 3۔ (مسجد میں اذن نہ دی جائےۃت) نیز فتح القدیر و نظم و طحطاوی علی المراقی و غیرہما میں

1 فتاویٰ ہندیۃ الباب السادس عشر فی صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۱۴۵ 2 در مختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۰ 3 فتاویٰ ہندیۃ فصل فی کلمات الاذان والا قامتہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/۵۵

Fatawa Razviyya Volume Eight

It is clearly stated that calling the Adhan inside the mosque is disliked (Makruh), and every Makruh is forbidden. In Radd al-Muhtar, under the rules of the mosque, it says:

[Box Left] It does not follow from this that it is Makruh unless a specific prohibition has been narrated, because being Makruh is a Sharia ruling, so it must have evidence. (T)

[Box Right] لَا يَلْزَمُ مِنْهُ اَنْ يَّكُوْنَ مَكْرُوْهًا اِلَّا بِا نَّهْيٍ خَاصٍ لِاَنَّ الْكَرَاہَۃَ حُكْمٌ شَرْعِیٌّ فَلَا بُدَّ لَہٗ مِنْ دَلِیْلٍ 1۔

And avoiding the prohibited is more important and significant than performing the required acts. It is mentioned in 'Al-Ashbah':

[Box Right] اِعْتِنَاءُ الشَّرْعِ بِالْمَنْهِیَّاتِ اَشَدُّ مِنْ اِعْتِنَائِہٖ بِالْمَاْمُوْرَاتِ۔ وَلِذَا قَالَ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ اِذَا اَمَرْتُكُمْ بِشَیْئٍ فَاْتُوْا مِنْہُ مَا اسْتَطَعْتُمْ وَ اِنْ نَّهَیْتُكُمْ عَنْ شَیْئٍ فَاجْتَنِبُوْہُ وَرُوِیَ فِی الْكَشْفِ حَدِیْثًا لِتَرْكِ ذَرَّۃٍ مِّمَّا نَہَی اللہُ تَعَالٰی عَنْہُ اَفْضَلُ مِنْ عِبَادَۃِ الثَّقَلَیْنِ وَ مِنْ ثَمَّ جَازَ تَرْكُ الْوَاجِبِ دَفْعًا لِلْمَشَقَّۃِ وَلَمْ یُسَامِحْ فِی الْاِقْدَامِ عَلَی الْمَنْهِیَّاتِ 2۔

[Box Left] The Sharia's concern for forbidden acts is more intense than its concern for commanded acts. Therefore, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "When I command you with something, do as much of it as you can, and if I forbid you from something, then avoid it." In 'Al-Kashf', a Hadith is narrated: "To refrain from even an atom's weight of what Allah Almighty has forbidden is better than the worship of Jinn and Mankind." This is why it is permissible to leave an obligatory act to avoid hardship, but performing forbidden acts is not permitted. (T)

Secondly, facing the preacher (Khatib) is a benefit (maslahah), and calling the Adhan inside the mosque is a corruption (mufsadat). Warding off corruption is more important than attaining a benefit. It is in 'Al-Ashbah':

[Box Right] دَرْءُ الْمَفَاسِدِ اَوْلٰی مِنْ جَلْبِ الْمَصَالِحِ 3۔

[Box Left] Warding off harms is better than attaining benefits. (T)

The reason for corruption is clear: it is disrespect in the court of the King of Kings, may His majesty be exalted. Witness to this is that if a mace-bearer in a royal court stood right in the middle of the assembly hall and shouted, "O courtiers, move on, present yourselves for greeting!", he would surely be considered rude and

disrespectful. Those who have not seen royal courts should look at these courts, where the attendance of the plaintiff, defendant, and witnesses...

---

1 Radd al-Muhtar, Bab ma yufsid al-Salat wa ma yukrah fiha, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/483 2 Al-Ashbah wa al-Nazair, al-Fann al-Awwal, al-Qa'idah al-Khamisah, published by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah Karachi, 1/125 3 Al-Ashbah wa al-Nazair, al-Fann al-Awwal, al-Qa'idah al-Khamisah, published by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah Karachi, 1/125

फतावा रज़विया खंड आठ

मस्जिद के अंदर अज़ान का मकरूह (नापसंद) होना स्पष्ट है और हर मकरूह चीज़ वर्जित (मन्ही अन्हु) है। रद अल-मुहतार में मस्जिद के अहकाम के तहत कहा गया है:

[Box Left] इससे मकरूह होना लाज़िम नहीं आता जब तक कि कोई विशेष निषेध न आया हो, क्योंकि कराहत (नापसंदगी) एक शरीयत का हुक्म है, इसलिए इसके लिए दलील (प्रमाण) होना ज़रूरी है। (त)

[Box Right] لَا یَلْزَمُ مِنْہُ اَنْ یَّکُوْنَ مَکْرُوْھًا اِلَّا بِا نَّھْیٍ خَاصٍ لِاَنَّ الْکَرَاہَۃَ حُکْمٌ شَرْعِیٌّ فَلَا بُدَّ لَہٗ مِنْ دَلِیْلٍ 1۔

और मना की गई चीज़ों से बचना, मांगे गए कामों को करने से अधिक महत्वपूर्ण और महान है। 'अल-अश्बाह' में है:

[Box Right] اِعْتِنَاءُ الشَّرْعِ بِالْمَنْھِیَّاتِ اَشَدُّ مِنْ اِعْتِنَائِہٖ بِالْمَاْمُوْرَاتِ۔ وَلِذَا قَالَ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ اِذَا اَمَرْتُکُمْ بِشَیْئٍ فَاْتُوْا مِنْہُ مَا اسْتَطَعْتُمْ وَ اِنْ نَّھَیْتُکُمْ عَنْ شَیْئٍ فَاجْتَنِبُوْہُ وَرُوِیَ فِی الْکَشْفِ حَدِیْثًا لِتَرْکِ ذَرَّۃٍ مِّمَّا نَہَی اللہُ تَعَالٰی عَنْہُ اَفْضَلُ مِنْ عِبَادَۃِ الثَّقَلَیْنِ وَ مِنْ ثَمَّ جَازَ تَرْکُ الْوَاجِبِ دَفْعًا لِلْمَشَقَّۃِ وَلَمْ یُسَامِحْ فِی الْاِقْدَامِ عَلَی الْمَنْھِیَّاتِ 2۔

[Box Left] शरीयत का मना की गई चीज़ों पर ध्यान देना, हुक्म दिए गए कामों से अधिक है। इसीलिए नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "जब मैं तुम्हें किसी चीज़ का हुक्म दूँ तो अपनी क्षमता के अनुसार उसे करो, और अगर मैं तुम्हें किसी चीज़ से मना करूँ तो उससे बचो।" 'अल-कश्फ' में यह हदीस वर्णित है कि अल्लाह तआला द्वारा मना किए गए काम से एक ज़र्रे के बराबर रुक जाना, जिन्न और इंसानों की इबादत से बेहतर है। यही कारण है कि कठिनाई दूर करने के लिए वाजिब काम को छोड़ना जायज़ है, लेकिन मना किए गए कामों पर अमल की अनुमति नहीं है। (त)

दूसरे, खतीब (प्रवक्ता) के सामने होना एक हित (मसलहत) है, और मस्जिद के अंदर अज़ान देना एक बिगाड़ (मफ़्सदत) है, और बिगाड़ को रोकना हित प्राप्त करने से अधिक महत्वपूर्ण है। 'अल-अश्बाह' में है:

[Box Right] 3۔ دَرْءُ الْمَفَاسِدِ اَوْلٰی مِنْ جَلْبِ الْمَصَالِحِ

[Box Left] नुकसानों को टालना, लाभ प्राप्त करने से बेहतर है। (त)

बिगाड़ का कारण स्पष्ट है कि यह बादशाहों के बादशाह (जल्ला जलालुहू) के दरबार में अशिष्टता है। इसका गवाह यह है कि यदि शाही दरबार में कोई चोबदार (छड़ी-बरदार) सभा कक्ष के बीच में खड़ा होकर चिल्लाए कि "ऐ दरबारियों, चलो सलाम के लिए हाज़िर हो!", तो वह निश्चित रूप से गुस्ताख और असभ्य माना जाएगा। जिसने शाही दरबार नहीं देखे, वह इन कचहरियों को देख ले कि वादी, प्रतिवादी और गवाहों की हाज़िरी...

---

1 रद अल-मुहतार, बाब मा युफ्सिद अल-सलात व मा युकरह फीहा, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/483 2 अल-अश्बाह व अल-नज़ायर, अल-फन्न अल-अवल, अल-कायदा अल-खामिसाह, इदारात अल-कुरान वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची द्वारा प्रकाशित, 1/125 3 अल-अश्बाह व अल-नज़ायर, अल-फन्न अल-अवल, अल-कायदा अल-खामिसाह, इदारात अल-कुरान वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची द्वारा प्रकाशित, 1/125

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مسجد کے اندر اذان مکروہ ہونے کی تصریح ہے اور ہر مکروہ منہی عنہ ہے، ردالمحتار میں قبیل احکام مسجد ہے:

[Box Left] اس سے مکروہ ہونا لازم نہیں آتا مگر یہ کہ نہی خاص وارد ہو کیونکہ کراہت حکم شرعی ہے، لہذا اس کے لئے دلیل کا ہونا ضروری ہے (ت)

[Box Right] لَا یَلْزَمُ مِنْہُ اَنْ یَّکُوْنَ مَکْرُوْھًا اِلَّا بِا نَّھْیٍ خَاصٍ لِاَنَّ الْکَرَاہَۃَ حُکْمٌ شَرْعِیٌّ فَلَا بُدَّ لَہٗ مِنْ دَلِیْلٍ 1-

اور اجتناب ممنوع، ایتان مطلوب سے اہم وا عظم ہے، اشباہ میں ہے:

[Box Right] اِعْتِنَاءُ الشَّرْعِ بِالْمَنْھِیَّاتِ اَشَدُّ مِنْ اِعْتِنَائِہٖ بِالْمَاْمُوْرَاتِ۔ وَلِذَا قَالَ صَلَّی اللہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَسَلَّمَ اِذَا اَمَرْتُکُمْ بِشَیْئٍ فَاْتُوْا مِنْہُ مَا اسْتَطَعْتُمْ وَ اِنْ نَّھَیْتُکُمْ عَنْ شَیْئٍ فَاجْتَنِبُوْہُ وَرُوِیَ فِی الْکَشْفِ حَدِیْثًا لِتَرْکِ ذَرَّۃٍ مِّمَّا نَھَی اللہُ تَعَالٰی عَنْہُ اَفْضَلُ مِنْ عِبَادَۃِ الثَّقَلَیْنِ وَ مِنْ ثَمَّ جَازَ تَرْکُ الْوَاجِبِ دَفْعًا لِلْمَشَقَّۃِ وَلَمْ یُسَامِحْ فِی الْاِقْدَامِ عَلَی الْمَنْھِیَّاتِ 2-

[Box Left] شریعت کے ممنوعات کا اہتمام اس کے مامورات سے زیادہ ہے اسی لئے نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: جب کسی شئ کا حکم دوں تو اس کو استطاعت کے مطابق بجالاؤ اور اگر میں تمہیں کسی شئ سے منع کروں تو اس سے بچو۔ الکشف میں یہ حدیث منقول ہے ایک ذرہ کے برابر اس کام سے رک جانا جس سے اللہ تعالٰی نے منع فرمایا جن وانس کی عبادت سے بہتر ہوتا ہے، یہی وجہ ہے کہ رفع مشقت کے لئے واجب کا ترک جائز ہوتا ہے لیکن ممنوعات پر عمل کی اجازت نہیں۔(ت)

ثانیا محاذات خطیب ایک مصلحت ہے، اور مسجد کے اندر اذان کہنا مفسدت اور جلب مصلحت سے سلب مفسدت اہم ہے۔ اشباہ میں ہے:

[Box Right] دَرْءُ الْمَفَاسِدِ اَوْلٰی مِنْ جَلْبِ الْمَصَالِحِ 3۔

[Box Left] مفاسد کا دفع کرنا مصالح کے حصول سے بہتر ہے۔ (ت)

وجہ مفسدت ظاہر ہے کہ دربار ملک الملوک جل جلالہ کی بے ادبی ہے شاہد اس کا شاہد ہے دربار شاہی میں اگر چوب دار عین مکان اجلاس میں کھڑا ہو چلائے کہ در باریو چلو سلام کو حاضر ہو، ضرور گستاخی بے ادب ٹھہرے گا، جس نے شاہی در بارنہ دیکھے ہوں وہ انھیں کچہریوں کو دیکھ لے کہ مدعی مدعاعلیہ گواہوں کی حاضری

---

1 ردالمحتار باب مایفسد الصلوۃ ومایکرہ فیہا مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۸۳ 2 الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدۃ الخامسۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱/ ۱۲۵ 3 الاشباہ والنظائر الفن الاول القاعدۃ الخامسۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱/ ۱۲۵

Fatawa Razawiya, Volume 8

When a call is made from outside the room, and the peon himself stands inside the courtroom shouting and calling for presence, he certainly deserves punishment. In such matters of etiquette, the Shariah considers the established custom among the witnesses. The absolute researcher (Mohaqqiq-e-Ala-al-Itlaq) states in Fath al-Qadir:

"In the state of standing with the intention of reverence, hands should be placed according to what is customary; and what is customarily observed is to tie hands below the navel." (1)

In the state of standing, hands will be folded according to what is known as a sign of respect, and the observed known practice is to fold hands below the navel. (T)

Based on this, scholars have explicitly stated that wearing shoes into a mosque is disrespectful, although this rule did not exist in the first century. It is mentioned in Fatawa Sirajiyah and Fatawa Alamgiriyah: "Entering the mosque wearing shoes is disliked (Makruh)." (2) (Entering the mosque while wearing shoes is disliked. T) In Umdat al-Muftin and Radd al-Muhtar, it says: "Entering the mosque wearing shoes is part of bad etiquette." (3) (Entering the mosque while wearing shoes is disrespectful. T) In the first issue, i.e., tying hands below the navel, no Hadith was found in agreement, and in the second issue, there was a Hadith to the contrary. Despite this, in matters of etiquette, the custom of witnesses was considered. So, where even the Hadith itself is in agreement, not observing the established etiquette is a great degree of insolence and fearlessness. Furthermore, the Hadith has also prohibited shouting in the mosque. It is mentioned in Bahr al-Ra'iq and Radd al-Muhtar:

"Al-Mundhiri narrated as a Marfu' (elevated) report: Keep your children, your insane people, your buying and selling, and raising your voices away from your mosques." (4) "I say: Ibn Majah narrated it from Wathilah ibn al-Asqa' (may Allah be pleased with him) and Abd al-Razzaq in his Musannaf with a preserved chain of transmission from Mu'adh ibn Jabal (may Allah be pleased with him)."

Imam Mundhiri narrated as a Marfu' report that (the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him, said): Keep your mosques free from your children and insane people, and from buying and selling and raising voices. I say, Ibn Majah narrated this from Hazrat Wathila bin al-Asqa (may Allah be pleased with him) and

Imam Abd al-Razzaq preserved it in his Musannaf with a sound chain of transmission from (Hazrat Mu'adh bin Jabal, may Allah be pleased with him).

1. Fath al-Qadir, Chapter on the Description of Prayer, published by Nooriya Razawiya Sukkur, 1/249.
2. Fatawa Sirajiyah, Chapter on the Mosque from the Book of Disliked Acts, published by Nawal Kishore Lucknow, p. 71.
3. Radd al-Muhtar, Discussion on the Rulings of Mosques, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/286.
4. Radd al-Muhtar, Discussion on the Rulings of Mosques, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/286.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

कमरे के बाहर से पुकार लगाई जाती है, चपरासी खुद कचहरी के कमरे में खड़ा होकर चिल्लाए और हाज़िरियाँ पुकारे तो वह निश्चित रूप से सज़ा का पात्र है और ऐसे शिष्टाचार के मामलों में शरई तौर पर गवाहों के बीच प्रचलित रीति-रिवाजों का लिहाज़ रखा जाता है। मुहक़्क़िक़ अली-अल-इतलाक़ 'फ़तह अल-क़दीर' में फ़रमाते हैं:

"क़ियाम (खड़े होने) की स्थिति में सम्मान के उद्देश्य से हाथ वैसे ही बांधे जाएंगे जैसा कि प्रचलित है; और जो प्रचलित देखा गया है वह यही है कि नाभि के नीचे हाथ बांधना है।" (1)

हालत-ए-क़ियाम में सम्मान के उद्देश्य से जो ज्ञात हो, उसी के अनुसार हाथ बांधे जाएंगे और जिस ज्ञात रीति का अवलोकन है वह यही है कि नाभि के नीचे हाथ बांधना है। (त)

इसी आधार पर विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि मस्जिद में जूते पहनकर जाना बेअदबी (अपमान) है, हालांकि प्रारंभिक काल में यह नियम नहीं था। फ़तावा सिराजिया और फ़तावा आलमगीरिया में है: "मस्जिद में जूते पहनकर प्रवेश करना मकरूह (नापसंद) है।" (2) (मस्जिद में जूते पहनकर दाखिल होना मकरूह है। त) उमदतुल मुफ़्तीन और रद-अल-मुह्तार में है: "मस्जिद में जूते पहनकर प्रवेश करना खराब शिष्टाचार का हिस्सा है।" (3) (मस्जिद में जूते पहनकर दाखिल होना बेअदबी है। त) पहले मसले यानी नाभि के नीचे हाथ बांधने में कोई हदीस अनुकूल नहीं थी और दूसरे में हदीस इसके विपरीत थी। इसके बावजूद शिष्टाचार के मामलों में गवाहों के रिवाज़ का एतबार किया गया। तो जहाँ खुद हदीस भी अनुकूल मौजूद है, वहाँ स्थापित शिष्टाचार का लिहाज़ न करना कितनी बड़ी गुस्ताखी और निडरता है। इसके अलावा हदीस में मस्जिद में चिल्लाने से भी मना किया गया है। बहर-उर-राइक़ और रद-अल-मुह्तार में है:

"इमाम मुन्ज़िरी ने मरफ़ू तौर पर रिवायत किया है: अपनी मस्जिदों को अपने बच्चों, पागलों, खरीद-फरोख्त और आवाज़ ऊँची करने से बचाओ।" (4) "मैं कहता हूँ इसे इब्न माजा ने हज़रत वाथिला बिन असक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और अब्द अल-रज़्ज़ाक़ ने अपनी मुसन्नफ़ में महफ़ूज़ सनद के साथ हज़रत मुआज़ बिन जबल (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।"

इमाम मुन्ज़िरी ने मरफ़ू तौर पर रिवायत किया है कि (रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया) अपनी मस्जिदों को अपने बच्चों, पागलों और खरीद-फरोख्त और आवाज़ ऊँची करने से बचाओ। मैं कहता हूँ इसे इब्न माजा ने हज़रत वाथिला बिन असक़ा रज़ियल्लाहु अन्हु से और इमाम

अब्द अल-रज़्ज़ाक़ ने मुसन्नफ़ में महफ़ूज़ सनद से (हज़रत मुआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हु से) बयान किया है।

1. फ़तह अल-क़दीर, बाब सिफ़त-उस-सलात, नूरिया रज़विया सुक्कुर, 1/249।
2. फ़तावा सिराजिया, बाब अल-मस्जिद, किताबुल कराहिय्यत, नवल किशोर लखनऊ, पृ. 71।
3. रद-अल-मुह्तार, मस्जिद के अहकाम पर चर्चा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/286।
4. रद-अल-मुह्तार, मस्जिद के अहकाम पर चर्चा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/286।

کمرہ سے باہر پکاری جاتی ہے چپراسی خود کمرہ کچہری میں کھڑا ہو کر چلائے اور حاضریاں پکارے تو ضرور مستحق سزا ہو اور ایسے امور ادب میں شرعاً عرفِ معہود فی الشاہد ہی کا لحاظ ہوتا ہے محقق علی الاطلاق فتح القدیر میں فرماتے ہیں:

یحال علی المعھود من وضعھا حال قصد التعظیم فی القیام والمعھود فی الشاھد منہ تحت السرۃ 1۔

حالتِ قیام میں بقصدِ تعظیم جو معروف ہو اس کے مطابق ہاتھ باندھے جائیں گے اور جس معروف کا مشاہدہ ہے وہ یہی ہے کہ ناف کے نیچے ہاتھ باندھنا ہے۔ (ت)

اسی بناء پر علماء نے تصریح فرمائی کہ مسجد میں جوتا پہنے جانا بے ادبی ہے حالانکہ صدرِ اول میں یہ حکم نہ تھا، فتاوٰی سراجیہ و فتاوٰی عالمگیری میں ہے: دخول المسجد متنعلا مکروہ 2 (مسجد میں جوتا پہن کر داخل ہونا مکروہ ہے۔ت) عمدۃ المفتین و ردالمحتار میں ہے: دخول المسجد متنعلا من سوء الادب 3 (مسجد میں جوتا پہن کر داخل ہونا بے ادبی ہے۔ت) مسئلہ اولٰی یعنی ناف کے نیچے ہاتھ باندھنے میں کوئی حدیث موافق نہ تھی اور ثانیہ میں حدیث برخلاف تھی بائینہمہ امور ادب میں عرفِ شاہد کا اعتبار فرمایا تو جہاں خود حدیث بھی موافق ہی موجود ہے ادبِ معروف کا لحاظ نہ کرنا کس درجہ گستاخی و بیباکی ہے معہذا حدیث نے مسجد میں چلانے سے بھی منع فرمایا ہے، بحر الرائق ورد المحتار میں ہے:

اخرج المنذری مرفوعاً جنبوا مساجد کم صبیانکم ومجانینکم وبیعکم وشرائکم ورفع اصواتکم 4 ۔ قلت رواہ ابن ماجۃ عن واثلۃ ابن الاسقع رضی اللہ تعالٰی عنہ وعبدالرزاق فی مصنفہ بسند اسلم عن معاذ بن جبل رضی اللہ تعالٰی عنہ

امام منذری نے مرفوعاً روایت کیا ہے کہ (رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا) اپنی مسجدوں کو اپنے بچوں اور دیوانوں اور خرید و فروخت اور آواز بلند کرنے سے بچاؤ، میں کہتا ہوں اسے ابن ماجہ نے حضرت واثلہ بن اسقع رضی اللہ تعالیٰ عنہ اور امام عبدالرزاق نے مصنف میں محفوظ سند سے (حضرت معاذ بن جبل رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے) روایت کیا۔

1 فتح القدیر باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۴۹/۱ 2 فتاویٰ سراجیہ باب المسجد از کتاب الکراہیۃ مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ص ۷۱ 3 رد المحتار مطلب فی احکام المساجد مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۸۶/۱ 4 رد المحتار مطلب فی احکام المساجد مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۸۶/۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

Reported from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). From Hadhrat Mu'adh bin Jabal (may Allah be pleased with him), and he reported from the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (T)

So the instruction towards this etiquette is present in the Hadith itself, and scholars have clarified its general applicability. It is stated in Durr al-Mukhtar:

"Asking (begging) in it (i.e., the mosque) is prohibited (Haraam), and giving is disliked (Makruh), as is raising the voice for Dhikr (remembrance), except for one who is teaching or explaining religion, they may raise their voice." (T)

So the fundamental rule is prohibition unless there is proof, like the Iqamah and recitation of prayer. But here, there is no proof at all from the Legislator (peace and blessings be upon him) for giving Adhan inside the mosque. Even if there were no other evidence, this much would suffice for it being disrespectful and prohibited. Rather, the pure Shariah has commanded to protect the mosque from every such sound for which mosques were not built. It is in Sahih Muslim from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

"Whoever hears a man searching for something lost in the mosque, let him say: 'May Allah not restore it to you, for mosques were not built for this.'" 2 (T)

The command in the Hadith is general, and Fiqh (jurisprudence) has also kept it general. In Durr al-Mukhtar and others it is stated: "Searching for a lost item (announcing a lost thing in the mosque) is Makruh." (T). So if someone's Mushaf (Holy Quran) is lost and they ask about it in the mosque for recitation, they would receive the same answer: that mosques were not built for this. If it (the mosque) were built for giving Adhan, then the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would surely have had the Adhan given inside the mosque, or at least commanded it sometimes. How can it be rational that the purpose for which a mosque is built was never proven to have occurred in the mosque during the holy era? So the reason is that Adhan is to call for presence in the court (of Allah), and a court itself is not made for calling for presence. If our brothers, bowing their necks before Divine Grandeur and closing their eyes, look with a sense of justice, then something that cannot be done in the court of a magistrate or judge...

1 Durr al-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/93. 2 Sahih Muslim, Chapter on the prohibition of eating garlic etc., printed at Nur Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/210.

फ़तावा रजविया जिल्द 8

नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत है। हज़रत मुआज़ बिन जबल (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और उन्होंने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत किया है। (त)

तो इस अदब की तरफ खुद हदीस में इरशाद मौजूद है और उलमा ने इस मुमानियत (मनाही) के आम होने की तसरीह (स्पष्टीकरण) फरमाई है, 'दुर्रे मुख्तार' में है:

"(मस्जिद में) सवाल करना हराम है और देना मकरूह है और ज़िक्र के लिए आवाज़ बुलंद करना भी, अलबत्ता दीन पढ़ाने और समझाने वाला आवाज़ बुलंद कर सकता है।" 1 (त)

तो असल मनाही है जब तक सबूत न हो, जैसे इकामत और नमाज़ की किरअत। लेकिन यहाँ शरीअत देने वाले (अलैहिस्सलाम) से मस्जिद के अंदर अज़ान देने का हरगिज़ कोई सबूत नहीं है। तो अगर कोई और दलील न भी होती, तो उसका बे-अदबी और ममनू (निषिद्ध) होना ही काफी था, बल्कि शरीअते मुताहरा ने मस्जिद को ऐसी हर आवाज़ से बचाने का हुक्म दिया है जिसके लिए मस्जिदें नहीं बनाई गई हैं। सहीह मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

"जो किसी शख्स को मस्जिद में खोई हुई चीज़ तलाश करते हुए सुने, तो कहे: 'अल्लाह तेरी खोई हुई चीज़ तुझे न लौटाए, क्योंकि मस्जिदें इसके लिए नहीं बनाई गई हैं'।" 2 (त)

हदीस में हुक्म आम है और फिक़्ह ने भी इसे आम रखा है। 'दुर्रे मुख्तार' वग़ैरह में है: "खोई हुई चीज़ का (मस्जिद में) ऐलान करना मकरूह है।" (त)। तो अगर किसी का मुसहफ़ शरीफ़ (कुरान) खो गया और वह तिलावत के लिए मस्जिद में पूछता है, तो उसे भी यही जवाब मिलेगा कि मस्जिदें इसके लिए नहीं बनीं। अगर मस्जिदें अज़ान देने के लिए बनाई गई होतीं, तो हुज़ूरे अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ज़रूर मस्जिद के अंदर ही अज़ान दिलवाते या कभी न कभी इसका हुक्म फरमाते। यह कैसे मुमकिन है कि मस्जिद जिस चीज़ के लिए बनाई गई हो, अहदे रिसालत में उसका मस्जिद में होना कभी साबित न हो? तो वजह यही है कि अज़ान 'दरबारे खुदावंदी' में हाज़िरी के लिए पुकारना है, और खुद दरबार हाज़िरी के लिए पुकारने के लिए नहीं होता। अगर हमारे भाई अज़मते इलाही के हुज़ूर अपनी गर्दनें झुकाकर और आँखें बंद करके इंसाफ़ की नज़र से देखें, तो जो बात एक मुंसिफ़ या जज की कचहरी में नहीं कर सकते...

1 दुर्रे मुख्तार, बाब मा युफ़सिदुस-सलाह व मा युक़रहु फ़ीहा, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/93
2 सहीह मुस्लिम, बाब नहीं मन अकला थुमन (लहसुन खाने की मनाही), मतबुआ नूर मोहम्मद असहुल मुताबे कराची, 1/210

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔ حضرت معاذ بن جبل رضی اللہ تعالٰی عنہ سے اور انہوں نے نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا ہے (ت)

تو اس ادب کی طرف خود حدیث میں ارشاد موجود ہے اور علماء نے اس ممانعت کو ذکر کر کے لئے بھی عام ہونے کی تصریح فرمائی، در مختار میں ہے:

یحرم فیہ (ای فی المسجد) السوال ویکرہ الاعطاء ورفع صوت بذکر الاللمتفقھۃ 1۔ (مسجد میں) سوال کرنا حرام ہے اور دینا مکروہ ہے اور ذکر کے لئے آواز کو بلند کرنا بھی، البتہ دین پڑھانے اور سمجھانے والا آواز بلند کرسکتا ہے۔ (ت)

تو اصل منع ہے جب تک ثبوت نہ ہو جیسے اقامت و قرائت نماز لیکن یہاں شارع علیہ الصلوۃ والسلام سے اندرون مسجد اذان کا ہر گز ثبوت نہیں، تو اگر کچھ اور دلیل نہ ہوتی اسی قدر اس کے بے ادبی و ممنوع ہونے کو بس تھا بلکہ شرع مطہر نے مسجد کو ہر ایسی آواز سے بچانے کا حکم فرمایا ہے جس کے لئے مساجد کی بنا نہ ہو، صحیح مسلم شریف میں ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

من سمع رجلا ینشد ضالۃ في المسجد فلیقل لا ردھا اللہ علیك فان المساجد لم تبن لھذا 2۔ جو گئی ہوئی چیز کو مسجد میں دریافت کرے اس سے کہو اللہ تیری گئی چیز تجھے نہ ملائے مسجدیں اس لئے نہیں بنیں۔ (ت)

حدیث میں حکم عام ہے اور فقہ نے بھی عام رکھا، در مختار وغیرہ میں ہے: کرہ انشاد ضالۃ (گمشدہ شئی کا (مسجد میں) اعلان کرنا مکروہ ہے۔ ت) تو اگر کسی کا مصحف شریف گم گیا اور

وہ تلاوت کے لئے مسجد میں پوچھتا ہے اسے بھی یہی جواب ہو گا کہ مسجدیں اس لئے نہ بنیں، اگر اذان دینے کے لئے اس کی بنا ہوتی تو ضرور حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم مسجد کے اندر ہی اذان دلواتے یا کبھی کبھی تو اس کا حکم فرماتے، مسجد جس کے لئے بنی زمانہ اقدس میں اسی کا مسجد میں ہونا کبھی ثابت نہ ہو یہ کیونکر معقول، تو وجہ وہی ہے کہ اذان حاضری در بار پکارنے کو ہے اور خود دربار حاضری پکارنے کو نہیں بنتا، ہمارے بھائی اگر گردنیں عظمت الٰہی کے حضور جھکا کر آنکھیں بند کر کے براہ انصاف نظر فرمائیں تو جو بات ایک منصف یا جج کی کچہری میں نہیں کر سکتے

---

1 در مختار باب مایفسد الصلوۃ وما یکرہ فیہا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۹۳ 2 صحیح مسلم باب نبی من اکل ثوما لخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/ ۲۱۰

Fatawa Rizwia, Volume Eight

Consider it necessary to keep the court of the Ruler of rulers (Allah), the Majestic and Glorious, safe from this, rather than [just] that statement of Hadith. Then, these explicit clarifications of the authoritative books of jurisprudence that Adhan in the mosque is forbidden; see all this, and yet you stick to a custom. O people of justice! This does not suit your dignity.

Thirdly, the 'Adhan Muhadhat al-Khatib' (Adhan in front of the preacher) is a matter of scholarly disagreement. The narrations from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) vary here. A large number of Maliki imams consider the second Adhan of Friday being directly in front of the preacher as an innovation (Bid'ah). They state that this Adhan also used to be on the minaret, just like the five daily calls to prayer. Allamah Khalil ibn Ishaq al-Maliki clarifies this as follows:

[Table Content] (Arabic): There is a difference in the narration as to whether the Adhan was called in front of him (peace and blessings of Allah be upon him) or on the minaret. Our companions narrated that it was on the minaret.[1] Ibn al-Qasim narrated it from Malik in 'Al-Majmu'ah', and Ibn Abd al-Barr narrated in 'Al-Kafi' from Malik that giving Adhan in front of the Imam is not from the ancient practice.[2] (Urdu): There is a difference in narration as to whether the Adhan was given in front of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) or on that minaret about which our companions narrated that the Adhan used to be on the minaret. Ibn al-Qasim narrated this from Imam Malik in 'Al-Majmu'ah', and Sheikh Ibn Abd al-Barr narrated from Imam Malik in 'Al-Kafi' that giving Adhan in front of the Imam is not an ancient practice. (T)

Imam Ibn al-Hajj al-Makki al-Maliki says in 'Al-Madkhal':

[Table Content] (Arabic): Indeed, the Sunnah for the Friday Adhan, when the Imam ascends the pulpit, is for the Mu'adhin to be on the minaret. Thus it was during the time of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), Abu Bakr, Umar, and the beginning of the caliphate of Uthman (may Allah be pleased with them). Then Uthman (may Allah be pleased with him) added another Adhan at Al-Zawra, which is a place in the market, and kept the Adhan that was from the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) on the minaret. (Urdu): The Sunnah in the Friday Adhan is that when the Imam sits on the pulpit, the Mu'adhin should give the Adhan on the minaret. This was the practice during the visible life of the Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) and during the early

periods of Hazrat Abu Bakr, Hazrat Umar, and Hazrat Uthman (may Allah be pleased with them). Then Hazrat Uthman (may Allah be pleased with him) added another Adhan which was given at the place of Zawra in the market, and the Adhan of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) [remained] on the minaret.

[1] Al-Mukhtasar fi Furu' al-Malikiyyah [2] Kafi Furu' al-Malikiyyah

फतावा रज़विया, आठवां खंड

अहकमुल हाकिमीन (अल्लाह) के दरबार को इससे सुरक्षित रखना आवश्यक समझें, न कि केवल हदीस के उस कथन को। फिर न्यायशास्त्र (फिकह) की विश्वसनीय पुस्तकों के ये स्पष्ट विवरण कि मस्जिद में अज़ान देना मना है; यह सब देखें और एक रिवाज पर अड़े रहें, ऐ न्यायप्रिय भाइयों! यह आपकी शान के खिलाफ है।

तीसरा, 'मुहाज़ात-ए-खतीब' (खतीब के सामने अज़ान देना) एक विवादास्पद सुन्नत है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से यहाँ अलग-अलग रिवायतें हैं। बड़ी संख्या में मालिकी इमाम जुमे की दूसरी अज़ान को खतीब के ठीक सामने देने को बिदअत (नवाचार) बताते हैं। वे कहते हैं कि यह अज़ान भी मीनार पर ही होती थी, जैसे पांच वक्त की नमाज़ों की अज़ान। अल्लामा खलील इब्न इस्हाक अल-मालिकी इस प्रकार स्पष्ट करते हैं:

[तालिका सामग्री] (अरबी): रिवायतों में मतभेद है कि क्या अज़ान उनके(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) सामने दी जाती थी या मीनार पर। हमारे साथियों ने रिवायत की है कि यह मीनार पर थी।[1] इब्न अल-कासिम ने 'अल-मजमुआ' में इमाम मालिक से इसे रिवायत किया है, और इब्न अब्द अल-बर्र ने 'अल-काफी' में इमाम मालिक से रिवायत किया है कि इमाम के सामने अज़ान देना प्राचीन प्रथा नहीं है।[2] (उर्दू): रिवायतों में मतभेद है कि क्या अज़ान नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सामने दी जाती थी या उस मीनार पर जिसके बारे में हमारे साथियों ने रिवायत की कि अज़ान मीनार पर होती थी। इसे इब्न अल-कासिम ने 'मजमुआ' में इमाम मालिक से रिवायत किया और शेख इब्न अब्द अल-बर्र ने काफी में इमाम मालिक से रिवायत किया कि इमाम के सामने अज़ान देना कोई प्राचीन बात नहीं है। (त)

इमाम इब्न अल-हज्ज अल-मक्की अल-मालिकी 'अल-मदखल' में फरमाते हैं:

[तालिका सामग्री] (अरबी): वास्तव में जुमे की अज़ान में सुन्नत यह है कि जब इमाम मिंबर पर चढ़े, तो मुअज़्ज़िन मीनार पर हो। ऐसा ही नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), अबू बक्र, उमर और उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के खिलाफत के शुरुआती दौर में था। फिर उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने ज़ौरा के स्थान पर एक और अज़ान बढ़ा दी, जो बाजार में एक जगह है, और रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के समय वाली अज़ान को मीनार पर ही रहने दिया। (उर्दू): जुमे की अज़ान में सुन्नत यह है कि जब इमाम मिंबर पर बैठ जाए, तो मुअज़्ज़िन मीनार पर अज़ान दे। यही तरीका रिसालत

मआब (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के सांसारिक जीवन और हज़रत अबू बक्र, हज़रत उमर और हज़रत उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के शुरुआती काल में था। फिर हज़रत उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने एक और अज़ान का इजाफा फरमाया जो बाज़ार में ज़ौरा नामक स्थान पर दी जाती थी, और हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) वाली अज़ान को मीनार पर।

[1] अल-मुख्तसर फी फुरूअल मालिकिया [2] काफी फुरूअल मालिकिया

पृष्ठ 409/673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

احکم الحاکمین عزوجلالہ کے دربار کو اس سے محفوظ رکھنا لازم جانیں نہ کہ حدیث کا وہ ارشاد پھر کتب معتمدہ فقہ کی یہ صریح تصریحات کہ مسجد میں اذان منع ہے سب کچھ دیکھیں اور ایک رواج پر اڑے رہے ہیں، ذی انصاف بھائیو! یہ آپ کی شان نہیں۔

ثالثاً محاذاتِ خطیب ایک اختلافی سنت ہے، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے یہاں نقل مختلف ہے بکثرت ائمہ مالکیہ اذانِ ثانی جمعہ کے رُوئے بروئے خطیب ہونے ہی کو بدعت بتاتے ہیں، وہ فرماتے ہیں یہ اذان بھی منارہ ہی پر ہوتی تھی جیسے پنجگانہ کی اذان، علامہ خلیل ابن اسحق مالکی توضیح فرماتے ہیں:

اختلف النقل هل كان يؤذن بين يديه صلى الله تعالٰى عليه وسلم اوعلى المنار الذي نقله اصحابنا انه كان على المنار 1- نقله ابن القاسم عن مالك في المجموعة ونقل ابن عبدالبر في كافيه عن مالك ان الاذان بين يدي الامام ليس من الامر القديم 2 نقل میں اختلاف ہے کہ کیا اذان نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے سامنے دی جاتی تھی یا اس منار پر جس کے بارے میں ہمارے اصحاب نے نقل کیا کہ اذان منار پر ہوتی تھی، اسے ابن القاسم نے "مجموعہ" میں امام مالک سے نقل کیا اور شیخ ابن عبدالبر نے کافی میں امام مالک سے نقل کیا کہ امام کے سامنے اذان دینا امرِ قدیم نہیں ہے۔ت)

امام ابن الحاج مکی مالکی مدخل میں فرماتے ہیں:

ان السنة فی اذان الجمعة اذاصعد الامام علی المنبر ان یکون المؤذن علی المنار کذلك کان علی عهد النبی صلی الله تعالی علیه وسلم وابی بکر و عمر و صدرامن خلافة عثمن رضی الله تعالی عنهم ثم زاد عثمن رضی الله تعالی عنه اذاناً آخر بالزوراء وهو موضع بالسوق وابقی الاذان الذی کان علی عهد

رسول اللہ صلی اللہ تعالی جمعہ کی اذان میں سنت یہ ہے کہ جب امام منبر پر بیٹھ جائے تو مؤذن منار پر اذان دے ، یہی طریقہ جناب رسالت مآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ظاہری حیات اور حضرت ابوبکر و حضرت عمر اور حضرت عثمان رضی اللہ تعالٰی عنہم کے ابتدائی دور میں تھا، پھر حضرت عثمان رضی اللہ تعالٰی عنہ نے ایک اور اذان کا اضافہ فرمایا جو بازار میں مقامِ زوراء پر دی جاتی تھی اور حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم والی اذان کو منار پر

1 المختصر فی فروع المالکیہ 2 کافی فروع المالکیہ

Volume Eight Fatawa Razawiya

(The Prophet) peace and blessings be upon him, (kept the Adhan) on the minaret while the preacher (khatib) was on the pulpit (minbar) at that time. Then, when Hisham became the ruler, he moved the call to prayer (Adhan), which used to be on the minaret, to the front of the pulpit at the time the Imam ascended it. (Summary)

He kept it as it was, and at that time the khatib would be on the minbar. Then, when Hisham became the governor, he moved the Adhan that used to be on the minaret to in front of the minbar at the time of ascending the pulpit. (T)

Until he said:

It has become clear that performing this in the mosque in front of the preacher is an innovation (Bid'ah). Some people adhered to these two innovations, then it became as if it were a practiced Sunnah, while it has no basis in the pure Shariah. Rather, it is just customs that people became accustomed to. Thus, the one who denies it appears to them as if he is bringing an innovation. To Allah we belong and to Him we shall return regarding the inversion of truths. (Abridged)

Meaning, it became clear that saying this Adhan inside the mosque in front of the khatib is a bid'ah (innovation) which some people adopted at first, and then it became so customary that it seemed like a Sunnah, although it has no basis in the pure Shariah. It is just a habit that people became fond of. So, anyone who objects to it is seen, in their view, as if he is introducing an innovation. "To Allah we belong and to Him we shall return" - how the truth has been inverted among people that they began to consider truth as falsehood and falsehood as truth. (Abridged)

Allama Yusuf bin Saeed Sifati Maliki states in the marginalia of Jawahir al-Zakiya Sharh al-Ashmawiyya:

The second call to prayer (Adhan) used to be on the minaret in olden times, and the people of the Maghreb (West) still practice it. Performing it in front of the Imam is disliked (Makruh) as explicitly stated by al-Barzali, and Imam Malik forbade it. Performing it on the minaret while the Imam is sitting is what is prescribed (Mashru'). (Summary from Sikandari)

The second Adhan used to be on the minaret in ancient times; the people of the Maghreb still follow this till now. Giving the Adhan in front of the Imam is Makruh (disliked) as clarified by al-Barzali, and Imam Malik prohibited it. Giving the Adhan on

the minaret when the Imam is on the pulpit is what is prescribed. (Summary from Sikandari) (T)

1. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, Chapter on Innovations Introduced in Mosques, published by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/212.
2. Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, Chapter on Innovations Introduced in Mosques, published by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/212.
3. Hashiya Jawahir al-Zakiya Sharh al-Muqaddimah al-Ashmawiyya.

जिल्द अष्टम (आठवीं) फ़तावा रज़विया

(हुज़ूर) सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम (के ज़माने में अज़ान) मीनार पर होती थी और खतीब मिम्बर पर होता था। फिर जब हिशाम हाकिम बना, तो उसने वह अज़ान जो मीनार पर होती थी, इमाम के मिम्बर पर चढ़ने के वक़्त मिम्बर के सामने कर दी। (सारांश)

यही सिलसिला जारी रखा गया और उस वक़्त खतीब मिम्बर पर होता था। फिर जब हिशाम गवर्नर बना, तो उसने मीनार वाली अज़ान को इमाम के मिम्बर पर बैठने के वक़्त उसके सामने मुंतकिल कर दिया। (त)

यहाँ तक कि फ़रमाया:

यह स्पष्ट हो गया कि मस्जिद में खतीब के सामने ऐसा करना बिदअत (नवाचार) है। कुछ लोगों ने इन दो बिदअतों को अपना लिया, फिर ऐसा लगने लगा जैसे यह एक प्रचलित सुन्नत हो, हालाँकि शरीअत-ए-मुतह्हरा में इसकी कोई असल नहीं है। यह तो केवल रस्मो-रिवाज़ हैं जिनसे लोग मानूस हो गए। लिहाज़ा, जो इसका इनकार करता है, उनके ख्याल में गोया वही बिदअत निकाल रहा है। 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन', सत्यों के पलटने पर अफ़सोस! (संक्षेप में)

यानी यह रोशन (साफ़) हो गया कि इस अज़ान का मस्जिद में खतीब के सामने कहना बिदअत है जिसे शुरुआत में कुछ लोगों ने अपनाया, फिर इसका ऐसा रिवाज पड़ गया गोया वह सुन्नत हो, हालाँकि शरीअत-ए-मुतह्हरा में इसकी कोई बुनियाद नहीं है। यह तो बस एक आदत है जो लोगों के दिलों में बैठ गई, तो अब जो इस पर ऐतराज़ करे, उनके नज़दीक गोया वही बिदअत पैदा कर रहा है। "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" - लोगों में हक़ कैसा उल्टा हो गया कि हक़ को बातिल और बातिल को हक़ समझने लगे। (संक्षेप में)

अल्लामा यूसुफ बिन सईद सफ़ती मालिकी 'हाशिया जवाहर ज़किया शरह अश्माविया' में फ़रमाते हैं:

दूसरी अज़ान पुराने ज़माने में मीनार पर होती थी और मग़रिब (पश्चिम) के लोग अब तक इसी पर अमल कर रहे हैं। इमाम के सामने अज़ान देना मकरूह है जैसा कि बरज़ली ने इसकी वज़ाहत की है, और इमाम मालिक ने इससे मना फ़रमाया है। अज़ान का उस वक़्त मीनार पर देना जब इमाम मिम्बर पर बैठा हो, यही शरीअत के मुताबिक़ (मशरू) है। (सिकंदरी से संक्षेप में)

दूसरी अज़ान पुराने ज़माने में मीनार पर होती थी, अहल-ए-मग़रिब का अब तक इसी पर अमल है। इमाम के सामने अज़ान देना मकरूह है जैसा कि इस पर बरज़ली ने तसरीह (स्पष्टता) की है, और इमाम मालिक ने इससे मना फ़रमाया। अज़ान का उस वक़्त मीनार पर देना जब इमाम मिम्बर पर हो, यही मशरू है। (सिकंदरी से संक्षेप में) (त)

1. अल-मदखल, इब्न अल-हाज, मस्जिदों में ईजाद की गई बिदअतों का ज़िक्र, दारुल किताब अल-अरबी, बैरूत, 2/212
2. अल-मदखल, इब्न अल-हाज, मस्जिदों में ईजाद की गई बिदअतों का ज़िक्र, दारुल किताब अल-अरबी, बैरूत, 2/212
3. हाशिया जवाहर ज़किया शरह अल-मुक़दमा अल-अश्माविया

पृष्ठ 410/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

علیہ وسلم علی المنار والخطیب علی المنبر اذ ذاک ثم لما تولی ھشام نقل الاذان الذی کان علی المنار حین صعود الامام علی المنبر بین یدیہ - (ملخصاً)

ہی باقی رکھا اور اس وقت خطیب منبر پر ہوتا، پھر جب ہشام والی بنے تو جو اذان منار پر ہوتی تھی اسے منبر پر چڑھنے کے وقت منبر کے سامنے کر دیا۔ (ت)

یہاں تک کہ فرمایا:

فقد بان ان فعل ذلك في المسجد بین یدی الخطیب بدعة فیتمسك بعض الناس بھاتین البدعتین ثم صار کانه سنة معمول بھا ولیس له اصل في الشرع وانما ھي عوائد وقع الاستئناس بھا فصار المنکر لھا کأنه یأتي ببدعة علی زعمھم فانا للہ وانا الیه راجعون علی قلب الحقائق اھ مختصرا -

یعنی روشن ہوا کہ اس اذان کا مسجد میں خطیب کے سامنے کہنا بدعت ہے جسے ابتداءً بعض لوگوں نے اختیار کیا پھر اس کا ایسا رواج پڑ گیا گویا وہ سنت ہے حالانکہ شرع مطہر میں اس کی کچھ اصل نہیں وہ تو یہی ایک عادت ہے کہ لوگوں کے جی اس میں لگ گئے تو جو اس پر انکار کرے ان کے زعم میں گویا وہی بدعت نکالتا ہے تو انا للہ وانا الیہ راجعون حق لوگوں میں کیسا الٹا ہو گیا کہ حق کو باطل، باطل کو حق سمجھنے لگے اھ مختصراً

علامہ یوسف بن سعید سفطی مالکی حاشیہ جواہر زکیہ شرح عشماویہ میں فرماتے ہیں:

الاذان الثاني کان علی المنار في الزمن القدیم وعلیه اھل المغرب الی الان وفعله بین یدی الامام مکروه کما نص علیه البرزلي وقد نھی عنه مالك وفعله علی المنار والامام جالس ھو المشروع اھ سکندری اھ باختصار۔

دوسری اذان زمانہ قدیم میں منار پر ہوتی تھی، اہل مغرب کا اب تک اسی پر عمل ہے، امام کے سامنے اذان دینا مکروہ ہے جیسا کہ اس پر برزلی نے تصریح کی، اور امام مالک نے اس سے منع فرمایا، اذان کا اس وقت منار پر دینا جب امام منبر پر ہو یہی مشروع ہے اھ سکندری اھ اختصاراً (ت)

1 المدخل لابن الحاج فصل فی ذکر البدع التی احدث فی المساجد مطبوعہ دار الکتاب العربیہ بیروت ۲۱۲/۲ 2 المدخل لابن الحاج فصل فی ذکر البدع التی احدث فی المساجد مطبوعہ دار الکتاب العربیہ بیروت ۲۱۲/۲ 3 حاشیہ جواہر زکیہ شرح لمقدمۃ العشماویۃ

Fatawa Razawiyyah Volume 8

Contrary to the Adhan of the mosque, which the Malikis also consider prohibited. It is mentioned in 'Al-Madkhal': [Arabic]: A chapter on the prohibition of Adhan in the mosque; so, Adhan inside the mosque is prohibited for several reasons, one of which is that it was not the practice of the predecessors, etc. [Urdu]: A section regarding the explanation of the prohibition of Adhan in the mosque; Adhan in the mosque is forbidden for several reasons, one of which is that it was not the way of the predecessors etc. (T)

Thus, it is proven that having the Adhan outside the mosque is more important, greater, more emphasized, and more necessary than it being directly opposite the orator (Khateeb). So, where both cannot be fulfilled, ignore being opposite the Khateeb and give this Adhan also outside the mosque, such as on a minaret or wall, etc. "This is all that has appeared to me, and the knowledge of the truth is with my Lord" (all this has become clear to me, and the knowledge of the truth is with my Lord. T) And Allah, Glorified and Exalted is He, knows best, and His knowledge, Majestic is His Glory, is most complete and most wise.

Issue 1348: Asked by Iqbal Hussain from Saroli Town, Bareilly District, 29 Safar 1332 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Is one Khutbah of Friday Fard (obligatory) and the second Sunnah, or are both Fard? Please clarify and be rewarded.

The Answer: According to Imam Azam [may Allah be pleased with him], only the amount of 'Al-Hamd' (praising Allah) is Fard. According to the 'Sahibain' [may Allah have mercy on them], a 'long remembrance' is required, such as what is commonly called a Khutbah. Although the essence of the obligation is fulfilled by the primary, or rather by some part of it, when something absolute (mutlaq) is commanded, the rule of Shari'ah is not that only one part of it—which is the lowest degree of applying the absolute—is considered the commanded part and the rest excluded. Rather, whatever occurs is all an individual instance of that absolute command, so everything will be characterized by that quality. For example, the obligatory recitation in prayer is fulfilled by one verse. Now, we will not say that the first verse of 'Al-Hamd' (Surah Fatiha) was Fard and the rest was its non-fard part; instead, 'Al-Hamd' and the surah, rather the entire Holy Quran, if one finishes it in one rak'ah, will all fall under the Fard. This is because it is an instance of "So recite what is easy [for you] of the Qur'an" (So read as much of the Quran as is easy for you. T). Therefore, if someone

forgets to join a surah after reciting Surah Fatiha and remembers it there [in Ruku], the command is to leave the Ruku and return (عود) to the standing position (Qiyam), recite the surah, and then go into Ruku. Even though it is not permissible to leave a Fard for a Wajib, and therefore if one stands up completely after forgetting the first Tashahhud (At-Tahiyyat), returning is not allowed. But for the surah, the Shari'ah itself has commanded returning because whatever amount of the Holy Quran is recited will fall under the Fard. So, this is not a return towards a Wajib but towards a Fard. Therefore, if one does not perform Ruku again, the prayer will not be valid...

1 Al-Madkhal by Ibn al-Hajj, Chapter on the prohibition of Adhan, published by Dar al-Kitab al-Arabi, Beirut, 2/251 Page 411 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मस्जिद की अज़ान के विपरीत जिसे मालिकी भी निषिद्ध मानते हैं। 'अल-मदखल' में है: [अरबी]: मस्जिद में अज़ान की मनाही के बारे में एक अध्याय; इसलिए मस्जिद के अंदर अज़ान देना कई कारणों से वर्जित है, जिनमें से एक यह है कि यह पूर्वजों का तरीका नहीं था, आदि। [उर्दू]: मस्जिद में अज़ान वर्जित होने के वर्णन में अनुभाग, मस्जिद में अज़ान कई कारणों से वर्जित है, उनमें से एक कारण यह है कि यह पूर्वजों का तरीका नहीं रहा आदि (त)

तो यह सिद्ध हुआ कि अज़ान का मस्जिद के बाहर होना खतीब (वक्ता) के सामने होने से अधिक महत्वपूर्ण, महान, ताकीदी और अनिवार्य है। तो जहाँ दोनों संभव न हों, खतीब के सामने होने को छोड़ दें और यह अज़ान भी मस्जिद के बाहर ही दें, जैसे मीनार या दीवार आदि पर। "यह सब जो मुझ पर ज़ाहिर हुआ और सच्चाई का ज्ञान मेरे रब के पास है" (यह सब मुझ पर स्पष्ट हो गया और सत्य का ज्ञान मेरे रब के पास है। त) और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान, जिसकी महिमा महान है, सबसे पूर्ण और सबसे हिकमत वाला है।

मसला १३४८: मो. इक़बाल हुसैन, कस्बा सरौली, जिला बरेली, २९ सफ़र १३३२ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि जुमे का एक खुतबा फ़र्ज़ है और दूसरा सुन्नत, या दोनों फ़र्ज़ हैं? कृपया स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

अल-जवाब (उत्तर): इमाम आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) के नज़दीक केवल 'अल-हम्द' (अल्लाह की प्रशंसा) की मात्रा फ़र्ज़ है। और 'साहिबैन' (रहमतुल्लाहि अलैहिम) के नज़दीक ज़िक्र-ए-तवील (लंबा स्मरण) जैसे जिसे आमतौर पर खुतबा कहें। हालाँकि फ़र्ज़ का मूल हिस्सा प्राथमिक रूप से या उसके कुछ हिस्से से अदा हो जाता है, लेकिन जब कोई चीज़ मुतलक (निरपेक्ष) रूप से आदेशित हो, तो शरीअत का नियम यह नहीं है कि उसके एक हिस्से को—जो मुतलक के प्रयोग का न्यूनतम स्तर हो—आदेशित माना जाए और बाकी को बाहर रखा जाए। बल्कि जितना भी अदा हो, वह सब उसी मुतलक का हिस्सा है, तो सब उसी गुण से युक्त होगा। जैसे नमाज़ में फ़र्ज़ क़िरात एक आयत से अदा हो जाती है। अब यह नहीं कहेंगे कि 'अल-हम्द' शरीफ़ की पहली आयत फ़र्ज़ थी और बाकी उसका ग़ैर, बल्कि 'अल-हम्द' और सूरत, बल्कि पूरा क़ुरान मजीद अगर एक रकात में खत्म करे तो सब फ़र्ज़ के तहत दाखिल होगा। क्योंकि यह "फ़क़रऊ मा तयस्सर मिनल क़ुरआन" (तो क़ुरआन में से जितना तुम्हारे लिए आसान हो उतना पढ़ो। त) का हिस्सा है। इसीलिए अगर सूरह फ़ातिहा पढ़कर

सूरत मिलाना भूल गया और वहाँ याद आया, तो हुक्म है कि रुकू को छोड़े और क़याम की तरफ वापस लौटे (औद करे), सूरत पढ़े और फिर रुकू में जाए। हालाँकि वाजिब के लिए फ़र्ज़ को छोड़ना जायज़ नहीं है, इसीलिए अगर पहली अत्तहियात भूलकर पूरा खड़ा हो गया तो अब लौटने की अनुमति नहीं है। लेकिन सूरत के लिए ख़ुद शरीअत ने लौटने का हुक्म दिया क्योंकि जितना क़ुरआन मजीद पढ़ा जाएगा, वह सब फ़र्ज़ में ही वाक़े होगा। तो यह वाजिब की तरफ लौटना नहीं बल्कि फ़र्ज़ की तरफ लौटना है। इसीलिए अगर दोबारा रुकू नहीं करेगा तो नमाज़ नहीं होगी...

1 अल-मदखल इब्न अल-हाज्ज, मस्जिद में अज़ान की मनाही का अध्याय, दार अल-किताब अल-अरबिया, बेरूत, 2/251 पृष्ठ 411 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

بخلاف اذان مسجد کہ مالکیہ بھی اسے ممنوع جانتے ہیں۔ مدخل میں ہے: فصل فی النھی عن الاذان فی المسجد فیمنع من | مسجد میں اذان ممنوع ہونے کے بیان میں فصل، مسجد میں الاذان فی جوف المسجد لوجوہ، احدھا انہ لم | اذان کئی وجہ سے منع ہے ان میں سے ایک وجہ یہ ہے کہ یکن من فعل من مضیٰ الخ | اسلاف کا طریقہ نہیں رہا الخ (ت)

تو ثابت ہوا کہ اذان بیرونِ مسجد ہونا ہی محاذاتِ خطیب سے اہم واعظم واکد والزم ہے تو جہاں دونوں نہ پڑیں محاذاتِ خطیب سے درگزیریں اور منارہ یا فصیل وغیرہ پر یہ اذان بھی مسجد سے باہر ہی دیں ھذا کلہ ما ظھر لی والعلم بالحق عند ربی (یہ تمام مجھ پر واضح ہوا اور حق کا علم میرے رب کے پاس ہے۔ت) واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم

مسئلہ ۱۳۴۸: مسئولہ اقبال حسین از قصبہ سرولی ضلع بریلی ۲۹ صفر ۱۳۳۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین بیچ اس مسئلہ کے کہ خطبہ جمعہ کا ایک فرض ہے دوسرا سنت، یا دونوں فرض ہیں، بینوا توجروا

الجواب: خطبہ امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے نزدیک صرف بقدر الحمد فرض ہے اور صاحبین رحمہم اللہ کے نزدیک ذکر طویل جیسے عرف میں خطبہ کہیں تو نفس فرض اگرچہ اولٰی بلکہ اس کے بعض سے ادا ہو جاتا ہے مگر جب کوئی مطلق مامور بہ ہو تو قاعدہ شرع یہ نہیں کہ اس کے ایک حصے کو جو ادنی درجہ کا اطلاق مطلق کا ہو مامور بہ ٹھہرائیں باقی کو خارج بلکہ جس قدر واقع ہو سب اسی مطلق کا فرد ہے تو سب اسی صفت سے متصف ہوگا جیسے فرض قراءت نماز میں ایک آیت سے ادا ہو جاتا ہے اب یہ نہ کہیں گے کہ الحمد شریف کی پہلی آیت فرض تھی باقی

اُس کا غیر بلکہ الحمد اور سورت بلکہ سارا قرآن مجید اگر ایک رکعت میں ختم کرے سب زیر فرض داخل ہوں گے کہ "فَاقْرَءُوْا مَا تَيَسَّرَ مِنَ الْقُرْآنِ" (پس قرآن میں سے جتنا تم پر آسان ہو اتنا پڑھو۔ت) کا فرد ہے ولہذا اگر سورہ فاتحہ پڑھ کر سورت ملانا بھول گیا اور وہاں یاد آیا تو حکم ہے کہ رکوع کو چھوڑے اور قیام کی طرف عود کر کے سورت پڑھے اور رکوع میں جائے حالانکہ واجب کے لئے فرض کا چھوڑنا جائز نہیں ولہذا اگر پہلی التحیات بھول کر پورا کھڑا ہو گیا اب عود کی اجازت نہیں مگر سورت کے لئے خود شرع نے عود کا حکم دیا کہ جتنا قرآن مجید پڑھا جائے گا سب فرض ہی میں واقع ہو گا تو یہ واجب کی طرف عود نہیں بلکہ فرض کی طرف، ولہذا اگر دوبارہ رکوع نہ کرے گا نماز نہ ہو گی کہ

1 المدخل لابن الحاج فصل فی النہی عن الاذان مطبوعہ دارالکتاب العربیہ بیروت ۲/۲۵۱ Page 411 of 673

Volume 8

Fatawa Ridawiyya

The first Ruku' (bowing in prayer) became void due to the return to the obligatory act. Just as the obligation is fulfilled by both Al-Hamd (Surah Al-Fatiha) and a Surah, similarly, both sermons are included under the absolute command of: "Hasten to the remembrance of Allah" (Run towards the remembrance of Allah. - T). And Allah the Almighty knows best.

Page 412 of 673

जिल्द अष्टम

फ़तावा रज़विया

पहला रुकू'औद इलल फ़र्ज़' (फ़र्ज़ की तरफ लौटने) के कारण निरस्त हो गया, तो जिस तरह अल-हम्द और सूरत दोनों से फ़र्ज़ ही अदा होता है, वैसे ही दोनों खुतबों से भी कि सब मुतलक़ "फास'औ इला ज़िक्रिल्लाह" (अल्लाह के ज़िक्र की तरफ दौड़कर आओ। त) के तहत दाखिल हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

पृष्ठ 412 of 673

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

پہلا رکوع عود الی الفرض کے سبب زائل ہو گیا تو جس طرح الحمد اور سورت دونوں سے فرض ہی ادا ہوتا ہے یوں ہی دونوں خطبوں سے بھی کہ سب مطلق فَاسْعَوْا إِلَى ذِكْرِ اللهِ (اللہ کے ذکر کی طرف دوڑ کر آؤ۔ت) کے تحت میں داخل ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

Volume Eight Fatawa Rizvia

Mirqat al-Juman fi al-Hubut 'an al-Minbar li-Madh al-Sultan 1320 AH (Research regarding the orator descending and ascending one step of the pulpit to praise the ruler)

Question 1349: From Ahmedabad, Gujarat, Mahalla Chakla Kalupur near Pul Galiyara, sent by Maulvi Abdul Rahim Sahib, 16 Rabi al-Awwal Sharif 1320 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter, which of these two answers is more worthy of acceptance: Question: What do the scholars of the firm religion decree in this matter? Please state with references to reliable books whether it is permissible in the Noble Sharia for the orator to descend one step from the pulpit during the second sermon and then ascend again or not? Explain with evidence from the Book and be rewarded on the Day of Reckoning. The Correct Answer: In the case questioned, it is not permissible for the orator to descend and ascend the step; it is a loathsome innovation, as mentioned in Shami, Volume 1, page 860:

[Table/Box Content] (Arabic): Ibn Hajar stated in 'al-Tuhfa', and some of them researched that what has become customary now of descending during the second sermon to a lower step and then returning is a foul innovation. | (Urdu): Ibn Hajar stated in Tuhfa that some people have discussed that this habit which has been formed, of [descending to] the lower step of the pulpit at the time of the second sermon and then back again to the upper step [is a foul innovation].

Page 413 of 673

जिल्द आठवीं फ़तावा रिज़विया

मिर्कातुल जुमान फ़िल हुबूत अनिल मिंबर लि-मदहिस सुल्तान १३२० हि. (शासक की प्रशंसा के लिए उपदेशक (ख़तीब) के मिंबर की एक सीढ़ी उतरने और फिर चढ़ने के बारे में शोध)

मसअला १३४९: अहमदबाद गुजरात, मुहल्ला चकला कालूपुर, पुल गलियारा के पास से मौलवी अब्दुल रहीम साहिब द्वारा प्रेषित, १६ रबी-उल-अव्वल शरीफ़ १३२० हि. इस मसले में दीन के उलमा क्या फ़रमाते हैं कि इन दो जवाबों में से कौन सा जवाब क़बूल करने के अधिक योग्य है: सवाल: मज़बूत दीन के उलमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं? विश्वसनीय पुस्तकों के संदर्भ के साथ लिखें कि क्या शरीयत-ए-मुतह्हरा में ख़तीब के लिए दूसरे खुतबे में मिंबर से एक सीढ़ी उतरना और फिर चढ़ जाना जायज़ है या नहीं? किताब के प्रमाण के साथ स्पष्ट करें और हिसाब के दिन इसका प्रतिफल प्राप्त करें। जवाब वही है जो सही है: सवाल में वर्णित स्थिति में ख़तीब के लिए सीढ़ी उतरना और चढ़ना जायज़ नहीं है, यह एक घृणित नवाचार (बिदअत-ए-शनीआ) है जैसा कि शामी जिल्द अव्वल, पृष्ठ ८६० में उल्लेखित है:

[तालिका/बॉक्स की सामग्री] (अरबी): इब्न हजर ने 'तूहफ़ा' में फ़रमाया और उनमें से कुछ ने शोध किया कि आजकल दूसरे खुतबे में निचली सीढ़ी तक उतरने और फिर वापस आने की जो आदत बन गई है, वह एक बुरी बिदअत है। | (उर्दू): इब्न हजर ने तूहफ़ा में फ़रमाया कि कुछ लोगों ने यह चर्चा की है कि यह जो आदत बना ली गई है कि दूसरे खुतबे के समय मिंबर की निचली सीढ़ी पर (उतरना) और फिर दोबारा ऊपर वाली सीढ़ी पर (जाना एक बुरी बिदअत है)।

पृष्ठ ४१३ / ६७३

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مرقاۃ الجمان في الهبوط عن المنبر لمدح السلطان ۱۳۲۰ھ (تعریف حاکم کے لئے خطیب کے منبر کی ایک سیڑھی اترنے پھر چڑھنے کے بارے میں تحقیق)

مسئلہ ۱۳۴۹: از احمد آباد گجرات محلہ چکلہ کالوپور متصل پل گلیارہ مرسلہ مولوی عبدالرحیم صاحب ۱۶ ربیع الاول شریف ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ان دونوں جوابوں میں کون سا جواب احق بالقبول ہے: سوال: علمائے دین متین اس مسئلہ میں کیا ارشاد فرماتے ہیں بحوالہ کتب معتبرہ تحریر فرمائیں خطیب کو خطبہ ثانی میں منبر سے ایک سیڑھی اترنا اور پھر چڑھ جانا یہ شرع شریف میں جائز ہے یا نہیں؟ بینوا بالسند الکتاب وتوجروا فی یوم الحساب۔ الجواب ھو الصواب: صورت مسئولہ میں خطیب کو سیڑھی اترنا اور چڑھنا جائز نہیں بدعت شنیعہ ہے جیسا کہ شامی جلد اول صفحہ ۸۶۰ میں مذکور ہے:

[جدول / باکس کا متن] قال ابن حجر في التحفة وبحث بعضهم ان ما اعتيد الأن من النزول في الخطبة الثانية الى درجة سفلى ثم العود بدعة قبيحة | ابن حجر نے تحفہ میں فرمایا کہ بعض لوگوں نے یہ بحث کی ہے کہ یہ جو عادت بنالی گئی ہے کہ دوسرے خطبہ کے وقت منبر کی نچلی سیڑھی اور پھر دوبارہ اوپر والی سیڑھی پر

Fatawa Razawiyya, Volume 8

...is a heinous act[1]. And Allah Almighty knows best what is correct. Going away is the worst innovation, and Allah Almighty knows best what is correct. Muhammad Isa, may he be forgiven. The answerer is correct in the sight of Allah, Abdul Rahman son of Maulvi Muhammad Isa, may he be forgiven.

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. O Allah, show us the truth as truth and grant us the ability to follow it, and show us falsehood as falsehood and grant us the ability to avoid it. I begin in the name of Allah, who is most compassionate and merciful. O Allah! Show us the truth and grant us the guidance to follow it, and show us falsehood and grant us the guidance to avoid it. (T)

The intelligent responder has attempted to prove the impermissibility, or rather the heinous innovation, of descending the steps, which Allama Shami quoted from the statement of Ibn Hajar al-Shafi'i in his book 'Tuhfah'. Neither is its impermissibility proven from it, nor its being a heinous innovation. It is written in the commentary of 'Tariqah Muhammadiyyah': "When a situation arises where its derivation is possible according to any opinion within our school or another school, it is not a 'munkar' (evil) that must be condemned or forbidden. Verily, a 'munkar' is that upon whose prohibition there is consensus (ijma') and which has been specifically forbidden[2]." Ends briefly. Meaning: if a matter occurs whose derivation is possible according to any statement of our Hanafi school, or its clarification is possible according to the school of the Shafi'is, Hanbalis, or Malikis, then it is not such an evil that denying it and forbidding it is mandatory. Rather, such is for an evil whose prohibition is agreed upon by consensus and the Lawgiver (peace be upon him) has specifically forbidden it. Ends briefly (T).

Now, people of justice should observe carefully what the reason for descending these steps is. Imam Rabbani Hazrat Mujaddid Alf Thani (may Allah Almighty have mercy on him) writes in the second volume of his Maktubat on page 162 published by Nawal Kishore: "The matter is that in the Friday sermon, the names of sultans are read while descending three steps of the pulpit. What a wise humility this is which the great sultans have shown in respect to the Master of Sovereigns and the Rightly Guided Caliphs (upon him and them be blessings and peace). They did not deem it permissible that their names be mentioned at the same level as the names of the

great figures of religion. May Allah reward their efforts[3]." Ends. Allama Husayn Kashifi, author of Tafsir Husayni, says in his book 'Targhib-us-Salat':

1. Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, published by Mustafa al-Babi, Egypt 1/608
2. Tariqah Muhammadiyya, Commentary of Tariqah Muhammadiyya, Type 33, published by Nooriyah Razawiyah, Faisalabad 2/309
3. Maktubat Imam Rabbani, Letter 92, published by Naval Kishore, Lucknow 2/162

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

...घृणित[1] है। और अल्लाह तआला ही सबसे बेहतर जानता है। चला जाना सबसे बुरी बिदअत है, और अल्लाह तआला ही सबसे बेहतर जानता है। मुहम्मद ईसा, अल्लाह उन्हें क्षमा करे। जवाब देने वाला अल्लाह के नज़दीक सही है, अब्दुल रहमान पुत्र मौलवी मुहम्मद ईसा, अल्लाह उन्हें क्षमा करे।

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम। ऐ अल्लाह! हमें हक़ को हक़ दिखा और हमें उसका अनुसरण करने की तौफीक दे, और हमें बातिल को बातिल दिखा और हमें उससे बचने की तौफीक दे। अल्लाह के नाम से शुरू करता हूँ जो निहायत ही मेहरबान और रहम वाला है। ऐ अल्लाह! हमें हक़ दिखा और उस पर चलने की तौफीक दे और हमें बातिल दिखा और उससे बचने की तौफीक दे। (त)

बुद्धिमान उत्तरदाता ने ज़ीना उतरने के नाजायज़ होने बल्कि बिदअत-ए-शनीअ (घृणित नवाचार) होने को, जिसे अल्लामा शामी ने इब्न-ए-हजर शाफ़ई के उस कौल से नक़ल किया है जो उनकी किताब 'तुहफ़ा' में है, साबित किया है। इससे न तो इसका नाजायज़ होना साबित होता है और न ही इसका बिदअत-ए-शनीअ होना साबित होता है। 'तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया' की शरह में लिखा है: "जब कोई ऐसा मामला पेश आए जिसकी तख़रीज (व्युत्पत्ति) हमारे मज़हब के किसी कौल के मुताबिक़ या किसी और मज़हब के मुताबिक़ मुमकिन हो, तो वह ऐसा मुनकर (बुराई) नहीं है जिसका इनकार करना और जिससे मना करना वाजिब हो। मुनकर तो सिर्फ वह है जिसकी हुरमत (निषेध) पर इज्मा (आम सहमति) हो और जिससे विशेष रूप से मना किया गया हो[2]।" मुख्तसरन समाप्त। यानी अगर कोई मसला ऐसा पेश आए कि उसकी तख़रीज हमारे हनफ़ी मज़हब के किसी कौल के मुवाफ़िक़ मुमकिन हो, या शाफ़ईयों, हनबलियों या मालिकियों के मज़हब के मुवाफ़िक़ उसकी तसरीह (स्पष्टीकरण) मुमकिन हो, तो वह ऐसा मुनकर नहीं कि उसका इनकार करना और उससे मना करना वाजिब हो, बल्कि ऐसा मुनकर के लिए है जिसकी हुरमत इजमाई हो और शारय अलैहिस्सलाम ने उससे बिल-ख़ुसूस मना किया हो। मुख्तसरन समाप्त (त)।

अब इंसाफ पसंद लोग गौर से मुलाहिज़ा फरमाएं कि कभी इस ज़ीना उतरने की वजह क्या है। इमाम रब्बानी हज़रत मुजद्दिद अल्फ सानी रहमतुल्लाह अलैहि अपने मकतूबात की दूसरी जिल्द के सफ़ा 162 (नवल किशोर संस्करण) में तहरीर फरमाते हैं: "बात यह है कि जुमे के खुतबे में सुल्तानों के नाम मिम्बर के तीन पायदान उतरकर पढ़े जाते हैं। यह कितनी अक्लमंदी और तवाज़ो (विनम्रता) है जो बड़े सुल्तानों ने सरवरे कायनात और खुलफा-ए-राशिदीन (उन पर और उन सब पर दुरूद-ओ-

सलाम हो) के सम्मान में दिखाई है। उन्होंने यह जायज़ नहीं समझा कि उनके नाम दीन के बड़े बुजुर्गों के नामों के साथ एक ही दर्जे में ज़िक्र किए जाएँ। अल्लाह उनकी कोशिशों को क़बूल फरमाए[3]।" समाप्त। अल्लामा हुसैन काशिफी, तफ़सीर-ए-हुसैनी के लेखक, अपनी किताब 'तरगीब-उस-सलात' में फरमाते हैं:

1. रद-उल-मुहतार, बाब-उल-जुमा, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/608
2. तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया, शरह तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया, अल-नौ-उस-सालिस-उस-सलासून, नूरया रज़विया फैसलाबाद, 2/309
3. मकतूबात इमाम रब्बानी, मकतूब 92, नवल किशोर लखनऊ, 2/162 पेज 414 ऑफ 673

فتاوٰی رضویہ ، جلد ہشتم

شنیعۃ[1] ۔ واللہ تعالٰی اعلم بالصواب۔ چلا جانا بد ترین بدعت ہے، واللہ تعالٰی اعلم بالصواب محمد عیسٰی عفی عنہ، المجیب مصیب عنداللہ عبدالرحمن ولد مولوی محمد عیسٰی عفی عنہ

بسم اللہ الرحمن الرحیم ہ اللھم ارنا الحق حقاً وارزقنا اتباعہ وارنا الباطل باطلا وارزقنا اجتنابہ۔ اللہ کے نام سے شروع کرتا ہوں جو نہایت ہی مہربان اور رحم والا ہے، اے اللہ! ہمیں حق دکھا اور اس پر چلنے کی توفیق دے اور ہمیں باطل دکھا اور اس سے بچنے کی توفیق دے۔ (ت)

مجیب لبیب نے زینہ اترنے کا ناجائز ہونا بلکہ بدعت شنیعہ ہونا جو علامہ شامی نے ابن حجر شافعی کے قول سے جوان کی کتاب تحفہ میں نقل کیا ہے ثابت کیا ہے ہر گز ناجائز ہونا اس سے ثابت ہوتا ہے نہ بدعت شنیعہ ہونا اس سے ثابت ہوتا ہے، طریقہ محمدیہ کی شرح میں لکھا ہے: ان المسئلۃ الواقعۃ متی امکن تخریجھا علی قول من الاقوال فی مذھبنا او مذھب غیرنا فلیست بمنکر یجب انکارہ والنھی عنہ وانما المنکر ما وقع الاجماع علی حرمتہ والنھی عنہ خصوصاً[2] انتھی مختصرا۔ یعنی اگر کوئی مسئلہ ایسا واقع ہو کہ اس کی تخریج ہمارے حنفی مذہب کے کسی قول کے موافق ممکن ہو شافعیوں یا حنبلیوں یا مالکیوں کے مذہب کے موافق اس کی تصریح ممکن ہو تو وہ ایسا منکر نہیں کہ اس کا انکار کرنا اور اس سے منع کرنا واجب ہو بلکہ ایسا منکر کیلئے ہے جس کی حرمت اجماعی ہو اور شارع علیہ السلام نے اس سے بالخصوص منع کیا ہو انتھی مختصراً (ت)

اب اہل انصاف بغور ملاحظہ فرمائیں کبھی اس زینہ اترنے کی وجہ کیا ہے، امام ربانی حضرت مجدد الف ثانی رحمتہ اللہ تعالٰی علیہ اپنے مکتوبات کی جلد ثانی کے صفحہ ۱۶۲ مطبوعہ نولکشور میں تحریر فرماتے ہیں: میدان یہ کہ در خطبہ روز جمعہ نام سلاطین کہ در زینہ پایہ سہ فرود آمدہ

می خوانند و جس کیاست ایں تواضعیست کہ سلاطین عظام نسبت بال سرور و خلفائے راشدین علیہ وعلیہم الصلوات والتسلیمات نمودہ اند و جائز نداشتہ اند کہ اسامی ایشان باسامی اکابردین در یک درجہ مذکور شود شکر اللہ سعیہم[3] انتھی علامہ حسین کاشفی مؤلف تفسیر حسینی اپنی کتاب "ترغیب الصلوۃ" میں فرماتے ہیں:

[1] ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۶۰۸ [2] طریقہ محمدیہ شرح طریقہ محمدیہ النوع الثالث الثلاثون مطبوعہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/ ۳۰۹ [3] مکتوبات امام ربانی مکتوب نو و دوم مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۲/ ۱۶۲ Page 414 of 673

Fatawa Razawiyyah Volume 8

"From that step of the pulpit where praise, glorification, and salutations were recited, and the mention of the noble caliphs was made, one should descend. After completing the mention and prayer for the Sultan, one should ascend again and complete the remaining sermon." (1) The essence of this written passage is that all Muslim brothers should know why, on the day of Friday, the names of the kings are recited in the sermon by descending to the lower steps of the pulpit. The author explains the reason for this: it is an act of humility and modesty that great Muslim kings have shown in comparison to the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) and the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them). These kings did not consider it permissible for their names to be mentioned on the same level as the great leaders of religion. Hazrat Mujaddid Alf Thani (may the mercy of the Creator be upon him) prays for these fortunate kings, asking Allah Almighty to accept their efforts and grant them a good reward. And the meaning of the phrase in "Targheeb-us-Salah" is that after reciting praise, glorification, and salutations on that known step of the pulpit and mentioning the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them), the preacher should come down to the lower step. After performing the mention and prayer for the Sultan, when the Sultan's prayer is finished, he should climb back up to the upper step and complete the rest of the sermon. Now, let the fair-minded consider that even in the books of our Hanafi school, Mulla Husain Kashifi Hanafi, the author of "Tafsir Husaini," has written about descending this step. Hazrat Mujaddid Alf Thani (may Allah's mercy be upon him) has also explained the reason for it being practiced for the reason mentioned above. Now, those scholars who call it an evil and abominable innovation (Bid'at-e-Qabeeha Shanee'a) should observe carefully. According to the text of the commentary on "Tariqah Muhammadiyyah," an act is considered an evil and forbidden innovation when its derivation is not possible according to any saying of our school of thought. However, in our case, the books of our own Hanafi school have written about descending this step and have also explained the reason for it. So how can descending this step be an innovation? Yes, if scholars who declare it an innovation can prove from other books of the Hanafi school that it is an evil innovation, or if it is written in any book that descending the step is prohibited in summary, or if the Lawgiver (peace be upon him) has explicitly forbidden it—once its being forbidden is proven, then it would be mandatory to prevent it. "Wa doonahu khartul qatad" (which means there is a strong barrier ahead). And those scholars who attempt to prove that descending this step is

an evil and abominable innovation, in "Mirqat Sharh Mishkat," Volume 1, Page 479, it is stated:

---

1. Targheeb-us-Salah, Allamah Husain Kashifi

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

"मिम्बर के उस पायदान से जहाँ हम्द-ओ-सना और दुरूद पढ़ा गया और खुलफ़ा-ए-किराम का ज़िक्र किया गया, नीचे उतर आए और सुल्तान का ज़िक्र और दुआ मुकम्मल करने के बाद फिर ऊपर जाकर बाक़ी खुत्बा पूरा करे।" (1) इस इबारत का मक़सद यह है कि तमाम मुसलमान भाई जान लें कि जुमे के दिन खुत्बे में सुल्तानों के नाम मिम्बर के नीचे के पायदानों पर उतर कर क्यों पढ़े जाते हैं। हज़रत इसकी वजह यह बयान फ़रमाते हैं कि यह वह आज़िज़ी और इंकिसारी है जो बड़े-बड़े मुसलमान बादशाहों ने नबी करीम अलैहिस सलातो वस-सलाम और खुलफ़ा-ए-राशीदीन (अलयहुम अस-सलात वत-तस्लीमात) के मुक़ाबले में अपनाई है। उन बादशाहों ने यह गवारा नहीं किया कि उनके नाम दीन के बड़े बुजुर्गों के नामों के साथ एक ही दर्जे में ज़िक्र किए जाएँ। हज़रत मुजद्दिद अल्फ़ थानी (रहमतुल्लाही अलैह) उन नेकबख्त बादशाहों के हक़ में दुआ करते हैं कि अल्लाह तआला उनकी इस कोशिश को क़बूल फ़रमाए और उन्हें जज़ा-ए-खैर अता फ़रमाए। और "तर्गीब-उस-सलाह" की इबारत का मतलब यह है कि मिम्बर के उस मशहूर पायदान पर हम्द-ओ-सना और दुरूद पढ़कर और खुलफ़ा-ए-राशीदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का ज़िक्र करके खतीब नीचे के पायदान पर आए और सुल्तान का ज़िक्र और दुआ करे। जब सुल्तान की दुआ पूरी हो जाए तो फिर ऊपर के पायदान पर चढ़कर बाक़ी खुत्बा मुकम्मल करे। अब इंसाफ़ पसंद लोग गौर फ़रमाएँ कि हमारे हनफ़ी मज़हब की किताब में भी इस ज़ीने (पायदान) से उतरने के बारे में मुल्ला हुसैन काशिफ़ी हनफ़ी, मुसन्निफ़ 'तफ़्सीर हुसैनी' ने तहरीर फ़रमाया है और हज़रत मुजद्दिद अल्फ़ थानी (रहमतुल्लाही अलैह) ने इसकी वजह भी बयान कर दी है कि ऊपर ज़िक्र की गई वजह से यह ज़ीने से उतरना जारी हुआ है। अब जो उलेमा इसे 'बिदअत-ए-क़बीहा शनीआ' (बुरी और घिनौनी बिदअत) कहते हैं, वे गौर से देखें कि 'शराह तरीक़ा-ए-मुहम्मदिया' की इबारत के मुताबिक बिदअत-ए-क़बीहा तब होती है जब उसकी बुनियाद हमारे मज़हब के किसी भी क़ौल के मुताबिक मुमकिन न हो। जबकि यहाँ तो खुद हमारे हनफ़ी मज़हब की किताबों में इस ज़ीने से उतरने का ज़िक्र है और उसकी वजह भी बयान की गई है। तो फिर यह ज़ीने से उतरना बिदअत कैसे हुआ? हाँ, जो उलेमा इसे बिदअत क़रार देते हैं, वे हनफ़ी मज़हब की दीगर किताबों से इसका बिदअत-ए-क़बीहा होना साबित करें, या किसी किताब में यह लिखा हो कि ज़ीने से उतरना मजमूई तौर पर हराम है या अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने साफ़ तौर पर इससे मना फ़रमाया है। जब इसका बुरा होना साबित हो जाए तो इससे रोकना वाजिब होगा। 'वदूनहू खर्तुल क़ताद' (यानी इसके आगे मज़बूत

रुकावट है)। और जो उलेमा इस ज़ीने से उतरने को बिदअत-ए-क़बीहा शनीआ साबित करते हैं, 'मिर्क़ात शराह मिश्कात' जिल्द अव्वल, सफ़ा 479 में है:

---

1. तर्गीब-उस-सलाह, अल्लामा हुसैन काशिफ़ी

पृष्ठ 415 का 673

ازاں پایہ منبر کہ حمد وثنا و درود گفتہ ذکر خلفائے کرام کردہ نشیب آید و ذکر کردو دعائے سلطان چوں تمام کند باز بالارفتہ خطبہ باقیہ تمام کند ۱۲ انتہی مطلب عبارت مکتوب کا یہ ہے کہ تمام مسلمان بھائی جان لیں کہ جمعہ کے دن خطبہ میں نام بادشاہوں کو نیچے کے زینے منبر پر اتر کر پڑھتے ہیں اس کی کیا وجہ ہے، آنجناب اس کی یہ وجہ بیان فرماتے ہیں کہ یہ تواضع و فروتنی ہے کہ بڑے بڑے مسلمان بادشاہوں نے بہ نسبت نبی کریم علیہ الصلوٰۃ والسلام وخلفائے راشدین آں سرور کائنات علیہم الصلوٰۃ والتسلیمات کے کی ہے اور ان بادشاہوں نے یہ بات جائز نہیں رکھی ہے کہ بادشاہوں کے نام ساتھ اسامی اکابر دین کے ایک درجہ میں مذکور ہوں، حضرت مجدد الف ثانی علیہ رحمۃ الباری ان نیک بخت بادشاہوں کے حق میں دعا کرتے ہیں کہ اللہ تعالیٰ ان بادشاہوں کی کوشش کو قبول کرے اور ان کو جزائے خیر عطا فرمائے۔ اور مطلب عبارت "ترغیب الصلوٰۃ" کا یہ ہے کہ منبر کے اس زینہ معلومہ پر حمد وثنا و درود پڑھ کر اور ذکر خلفائے راشدین رضی اللہ تعالیٰ عنہم کر کے نیچے کے زینہ پر خطیب آئے اور ذکر و دعائے سلطان کر کے جب دعائے سلطان تمام ہو جائے پھر اوپر کے زینہ پر چڑھ کر خطبہ باقیہ تمام کرے۔ اب منصفین غور فرمائیں کہ ہمارے حنفی مذہب کی کتاب میں بھی اس زینہ اترنے کے لئے ملا حسین کاشفی حنفی مصنف تفسیر حسینی نے تحریر فرمایا ہے اور حضرت مجدد الف ثانی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ نے اس کی وجہ بھی بیان کر دی ہے کہ بوجہ مذکور الصدر کے یہ زینہ اترنا جاری ہوا ہے اب جو علماء اس کو بدعت قبیحہ شنیعہ فرماتے ہیں بغور ملاحظہ فرمائیں کہ بدعت قبیحہ و منکر مطابق عبارت شرح طریقہ محمدیہ کے جب ہوتی ہے کہ اس کی تخریج ہمارے مذہب کے کسی قول کے موافق ممکن نہ ہو اور مابحن فیہ میں خود ہمارے حنفی مذہب کی کتابوں میں اس زینہ اترنے کو تحریر

فرمایا ہے اور اس کی وجہ بھی بیان کی ہے اب یہ زینہ اترنا بدعت کیسے ہوا، ہاں جو علماء اس کو بدعت قرار دیتے ہیں حنفی مذہب کی اور کتابوں سے اس کا بدعت قبیحہ ہونا ثابت کریں یا کسی کتاب میں یہ لکھا ہو کہ زینہ اترنا حرام اجمالاً ہے یا شارع علیہ السلام نے صراحتاً منع فرمایا ہے جب اس کا منکر ہونا ثابت ہو تو اس سے منع کرنا واجب ہوگا ودونہ خرط القتاد (جبکہ اس کے آگے مضبوط رکاوٹ ہے۔ ت) اور جو علماء اس زینہ اترنے کو بدعت قبیحہ شنیعہ ہونا ثابت کریں، مرقاۃ شرح مشکوٰۃ جلد اول صفحہ ۴۷۹ میں ہے:

۱؎ ترغیب الصلوٰۃ علامہ حسین کاشفی

Fatawa Razawiyya Volume 8

Imam Shafi'i (may Allah have mercy on him) said: "Whatever is newly introduced that contradicts the Book, the Sunnah, the traditions (Athar), or the Consensus (Ijma), it is a misguidance (Dalalah). And whatever of good is introduced that does not contradict any of those things is not blameworthy." [1] - End.

That is, Imam Shafi'i (whom Allama Ibn Hajar follows) says that if something is introduced that goes against the Book of Allah, the Sunnah of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), the sayings of the noble Companions (may Allah be pleased with them), or the consensus of the Ummah, then it is a misguiding innovation (bid'at-e-dalalat) and an ugly, repulsive innovation (bid'at-e-qabihah shani'ah). And whatever good is introduced that does not contradict any of the aforementioned four things is not blameworthy at all. End.

Rather, it is a good innovation (bid'at-e-hasanah). In short, it falls under one of the three well-known types of non-prohibited innovations: obligatory (wajibah), recommended (mandubah), or permissible (mubahah). Now, let the people of justice carefully observe: which verse of the Holy Quran does descending stairs contradict? Which noble Hadith of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) does it contradict? Or which sayings of the noble Companions (may Allah be pleased with them) does it contradict? When it does not contradict these mentioned proofs, then according to the statement of Imam Shafi'i (may Allah have mercy on him), its being an ugly innovation is not proven. Instead, it falls under the saying of Imam Shafi'i: "Whatever of good is innovated that does not contradict any of those things is not blameworthy." (Whatever good thing is invented that does not oppose the aforementioned things (Book of Allah, Sunnah of the Messenger of Allah, sayings of the Companions, and consensus of the Ummah) is never blameworthy. - Translator). And contrary to Imam Shafi'i's statement, seeing Allama Ibn Hajar Shafi'i's statement and calling this descending of stairs an ugly, repulsive innovation is rejected and discarded; for a wise and just person, a hint is sufficient.

This is what I hold, and Allah knows best, and His knowledge, may His glory be exalted, is most complete and most perfect. This is my view, and Allah knows best, and His knowledge is most complete and perfect. (Translator)

Written by the needy towards his Eternal Lord, Abdul Rahim, may he be forgiven.

All praise is due to Allah, who revealed the Clear Quran to the one who ascended the stages of proximity (at-Taqrib). May Allah send blessings upon him, his family, and all his companions. To Him ascend the good words, and all praise is due to Allah, the Lord of the worlds.

All praise is for Allah, who revealed the clear Quran upon that holy being who attained the heights of the spaceless realm. May Allah's blessings be upon him, his family, and all his companions. And towards Him, the blessed words ascend. All praise is for Allah, the Lord of the worlds. (Translator)

[1] Mirqat al-Mafatih Sharh Mishkat al-Masabih, Chapter on Adherence, Section 1, published by Maktaba Imdadia, Multan, 216/1.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

इमाम शाफ़ई (रहमतुल्लाह अलैह) ने कहा: "जो कुछ नया निकाला जाए जो किताब, सुन्नत, असर (सहाबा के आसार) या इज्मा के खिलाफ हो, तो वह गुमराही (दलालाह) है। और जो कुछ नेकी में से नया निकाला जाए जो इनमें से किसी भी चीज़ के खिलाफ न हो, तो वह निंदनीय नहीं है।" [1] - समाप्त।

यानी इमाम शाफ़ई (जिनके अल्लामा इब्न हजर मुक़ल्लिद हैं) फ़रमाते हैं कि अगर कोई ऐसी चीज़ निकाली जाए जो अल्लाह की किताब, रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत, सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के अक़्वाल या उम्मत के इज्मा के ख़िलाफ़ हो, तो वह बिदअत-ए-ज़लालत और बुरी व नापसंदिदा बिदअत (बिदअत-ए-क़बीहा शनीआ) है। और जो चीज़ नेकी के तौर पर ऐसी निकाली जाए जो उपर्युक्त चार चीज़ों में से किसी के भी ख़िलाफ़ न हो, तो वह हरगिज़ निंदनीय नहीं है। समाप्त।

बल्कि वह बिदअत-ए-हसना (अच्छी बिदअत) है। संक्षेप में, यह गैर-निषिद्ध बिदअतों की तीन प्रसिद्ध श्रेणियों में से एक में आता है: वाजिब, मंदूब और मुबाह। अब इंसाफ वाले लोग गौर से देखें कि सीढ़ी उतरना कुरान मजीद की किस आयत के खिलाफ है? या रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की किस हदीस के खिलाफ है? या सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के किन अक़्वाल के खिलाफ है? जब यह इन बताए गए दलीलों के खिलाफ नहीं है, तो इमाम शाफ़ई (रहमतुल्लाह अलैह) के फरमान के मुताबिक इसका बुरा बिदअत होना साबित नहीं हुआ। बल्कि यह इमाम शाफ़ई के इस कौल में शामिल है: "जो नेकी ऐसी ईजाद की जाए जो ज़िक्र की गई चीज़ों (किताबुल्लाह, सुन्नत-ए-रसूलुल्लाह, सहाबा के अक़्वाल और उम्मत का इज्मा) के ख़िलाफ़ न हो, वह हरगिज़ निंदनीय नहीं होती।" इमाम शाफ़ई के कौल के बरअक्स अल्लामा इब्न हजर शाफ़ई के कौल को देखकर इस सीढ़ी उतरने को बिदअत-ए-क़बीहा शनीआ कहना मरदूद (अस्वीकार्य) और तिरस्कृत है; एक अकलमंद और इंसाफ पसंद के लिए इशारा काफी है।

यह मेरा नज़रिया है और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है, और उसका इल्म सबसे कामिल और मुकम्मल है। यह मेरे नज़दीक है और अल्लाह सबसे खूब जानने वाला है और उसका इल्म अतम और कामिल है। (अनुवादक)

लिखा इसे अपने शाश्वत रब के मोहताज, अब्दुल रहीम ने, अल्लाह उन्हें माफ़ करे।

तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जिसने वाज़ेह कुरान उस मुकद्दस हस्ती पर नाज़िल किया जो ला-मकां की बुलंदियों पर फाइज़ हुए। अल्लाह की रहमतें हों उन पर, उनकी आल और उनके तमाम सहाबा पर। उसी की तरफ पाकीज़ा कलमात बुलंद होते हैं। तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है।

सब तारीफ अल्लाह के लिए जिसने कुरान-ए-मबीन उस ज़ात-ए-अकदस पर नाज़िल फरमाया जो ला-मकां की बुलंदियों पर फाइज़ हुई, सल्लल्लाहु अलैहि व आलिहि व सहबिहि अजमईन, और उसी की तरफ मुबारक कलमात बुलंद होते हैं, अल्हम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन। (अनुवादक)

1 मिरकातुल मफ़ातीह शरह मिश्कातुल मसाबीह, बाबुल एतसाम, पहली फसल, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 216/1

पेज 416 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

قال الشافعي رحمه الله تعالى ما احدث مما يخالف الكتاب او السنة او الاثر او الاجماع فهو ضلالة وما احدث من الخير مما لا يخالف شيئا من ذلك فليس بمذموم 1۔ انتہی۔

یعنی حضرت امام شافعی (جن کے علامہ ابن حجر مقلد ہیں) فرماتے ہیں جو ایسی چیز نکالی جائے کہ وہ کتاب اللہ یا سنت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یا اقوال صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم یا اجماع امت کے مخالف ہو وہ بدعت ضلالت و بدعت قبیحہ شنیعہ ہے اور جو چیز نیکی سے ایسی نکالی جائے کہ وہ اشیائے اربعہ مذکورہ میں سے کسی چیز کے مخالف نہ ہو وہ ہرگز مذموم نہیں ہے انتہٰی

بلکہ وہ بدعت حسنہ ہے بالجملہ فعل بدعت غیر مذکور میں جن کے اقسام ثلاثہ مشہورہ یعنی واجبہ مندوبہ و مباحہ ہیں ان میں سے ایک میں داخل ہے۔ اب اہل انصاف بغور ملاحظہ فرمائیں کہ زینہ اترنا کون سی قرآن مجید کی آیت کے خلاف ہے یا رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی کون سی حدیث شریف کے خلاف ہے یا کون سے اقوال صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم کے خلاف ہے۔ جب ان ادلہ مذکورہ کے خلاف نہ ہوا تو مطابق فرمانے حضرت امام شافعی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ کے اس کا بدعت قبیحہ ہونا ثابت نہ ہوا اور امام شافعی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ کے اس قول "وما احدث من الخير مما لا يخالف شيئا من ذلك فليس بمذموم" (جو ایسی نیکی ایجاد کی جائے جو مذکورہ اشیاء (کتاب اللہ، سنت رسول اللہ، اقوال صحابہ اور اجماع امت) کے مخالف نہ ہو وہ ہرگز مذموم نہیں ہوتی۔ ت) میں داخل ہوا اور امام شافعی کے قول کے برخلاف علامہ ابن حجر شافعی کا قول دیکھ کر اس زینہ اترنے کو بدعت قبیحہ شنیعہ کہنا مردود و مطرود ہو گیا، عاقل منصف کے لئے اشارہ کافی ہے،

ھذا ما عندی واللہ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ یہ میرے نزدیک ہے اور اللہ سب سے خوب جاننے والا ہے اور اس کا علم اتم اور کامل ہے۔ (ت)

حررہ الفقیر الی ربہ القدیم عبدالرحیم عفی عنہ

الحمد للہ المنزل القرآن المبین علی عارج معارج التقریب المکین صلی اللہ تعالیٰ علیہ والہ وصحبہ اجمعین الیہ یصعد الکلم الطیب والحمد للہ رب العلمین

سب تعریف اللہ کے لئے جس نے قرآن مبین اس ذات اقدس پر نازل فرمایا جو لامکان کی بلندیوں پر فائز ہوئی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وآلہ وصحبہ اجمعین، اور اسی کی طرف مبارک کلمات بلند ہوتے ہیں، الحمد للہ رب العلمین۔ (ت)

1 مرقاۃ المفاتیح شرح مشکوٰۃ المصابیح باب الاعتصام فصل اول مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۱/۲۱۶

Volume Eight, Fatawa-e-Razawiyya

The Answer: I say: And with Allah is the guidance. To label any act of Muslims as a "vile innovation" (bid'at-e-shanee'ah) and "impermissible" is to pass a judgment upon Allah and His Messenger (Jalla Jalaluhu wa Sallallahu Ta'ala Alayhi wa Sallam) as well as upon Muslims. Regarding Allah and His Messenger (Jalla wa 'Ala wa Sallallahu Ta'ala Alayhi wa Sallam), the judgment is that in their view this act is improper and they have forbidden it. And regarding Muslims, it is that they, because of it, are sinners and deserving of punishment and the displeasure of the Lord of lords. Every God-fearing Muslim who has in his heart complete honor and greatness for Allah and His Messenger (Jalla wa 'Ala wa Sallallahu Ta'ala Alayhi wa Sallam), full reverence and status for the word of Islam, and true well-wishing and love for his brothers, would never deem permissible the audacity to issue such a judgment until clear and sufficient evidence from Sharia is obtained.

Allah the Almighty says: "Or do you say about Allah what you do not know?" 1 The noble saying of Allah is: "Or do you say such a thing on behalf of Allah that you do not know?" (t)

Do you pass a judgment upon Allah Almighty without knowledge? The Sharia evidence for a Mujtahid is the four principles (Usul-e-Arba'ah), and for us, only the statement of a Mujtahid is sufficient. Scholars write a definitive judgment (hukm bi al-jazm) only in such instances. Apart from this, if any non-Mujtahid scholar has discussed a matter, they never write the issue as if the rule is such; rather, they explicitly state that this is the discussion of so-and-so or some scholars, so that it is not perceived as something transmitted in the school of thought (madhbab). Let the responsibility remain with the one whose opinion it is: "Entrust its heat to the one who managed its coldness" (Meaning: Entrust the difficult/bad aspect of the matter to the one who is the master of its easy/good aspect; i.e., let the one who was benefiting also bear the burden and loss. Among the Arabs, hot things are considered bad and cold things are considered good. 'Haarr-ul-Amal' means hard and difficult work, and 'Qaarr-ul-Amal' means easy work - T). If occasionally someone writes it definitively, they are taken to task, because contrary to the prior tenor of what is transmitted in the school of thought, they wrote this issue as if it were transmitted. This explanation will be apparent to those who look into various sections of 'Radd al-Muhtar' etc. Here too, Allama Shami adopted the same method; he did not state that 'nuzool' (descent) and 'so'ood' (ascent) are forbidden or a vile innovation, but rather quoted the statement of Ibn Hajar Shafi'i so that the source of

the issue remains distinct. Far from being transmitted in the madhbab, it should not even be considered as mentioned by any scholar of one's own madhbab. Imam Ibn Hajar (may Allah the Almighty have mercy on him) maintained that same caution; he did not write the ruling of the issue himself from which a definitive conclusion could be understood, but rather said: "Ba'dhahum bahatha" (Some of them discussed it). A "discussion" (bahth) is mentioned where the issue is neither transmitted nor explicitly found in any general principle or specific ruling of the madhbab.

1 Al-Quran 2/80 Page 417 of 673

खंड आठ, फ़तावा-ए-रज़विया

अल-जवाब (उत्तर): मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही से तौफ़ीक़ है। मुसलमानों के किसी कार्य को 'बिदअत-ए-शनीआ' (बुरी ईजाद) और 'नाजायज़' कहना अल्लाह और उसके रसूल (जल्ल जलालाहु व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) पर एक हुक्म लगाना है और एक हुक्म मुसलमानों पर। अल्लाह और रसूल (जल्ल व अला व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) पर तो यह हुक्म कि उनके नज़दीक यह कार्य अनुचित है और उन्होंने इससे मना फ़रमाया है, और मुसलमानों पर यह कि वे इसके कारण गुनहगार और रबुल अरबाब (ईश्वर) के अज़ाब और नाराज़गी के पात्र हैं। हर खुदा-तरस मुसलमान जिसके दिल में अल्लाह और रसूल (जल्ल व अला व सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) की पूर्ण इज़्ज़त व अज़मत और कलमा-ए-इस्लाम का पूरा सम्मान व स्थान और अपने भाइयों की सच्ची ख़ैर-ख़्वाही और मोहब्बत है, वह कभी ऐसे हुक्म पर जुर्रत रवा न रखे जब तक कि स्पष्ट शरीयत की दलील से पर्याप्त और पूर्ण प्रमाण न मिल जाए।

अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "या तुम अल्लाह पर वह कहते हो जिसका तुम्हें ज्ञान नहीं?" 1 अल्लाह तआला का इरशाद-ए-गिरामी है: "या तुम ऐसी बात अल्लाह तआला की तरफ़ से कहते हो जिसका तुम्हें इल्म नहीं?" (त)

क्या तुम अल्लाह अज़वज्जल पर बिना ज्ञान के हुक्म लगाए देते हो? मुज्तहिद के लिए शरीयत की दलील 'उसूले अरबा' (चार सिद्धांत) हैं और हमारे लिए केवल 'कौले मुज्तहिद' (मुज्तहिद का कथन) पर्याप्त है। उलेमा-ए-किराम केवल ऐसी ही जगहों पर हुक्म को दृढ़ता (जज़्म) के साथ लिखते हैं। इसके अलावा यदि किसी ग़ैर-मुज्तहिद विद्वान ने किसी मामले पर चर्चा की है, तो वे कभी भी उस मसले को इस तरह नहीं लिखते कि 'हुक्म यह है', बल्कि स्पष्ट रूप से बताते हैं कि यह फ़लां या कुछ की 'बहस' (चर्चा) है ताकि उसे मज़हब (विचारधारा) में 'मनकुल' (प्रमाणित) न समझा जाए। जिसका विचार है वही उसका ज़िम्मेदार रहे: "वलीय्य हार्रिहा मन तवल्ला कार्रिहा" (मामले के गर्म पहलू को भी उसी के सुपुर्द कर दो जो उसके ठंडे पहलू का मालिक है, यानी जिसने लाभ उठाया वही बोझ और नुकसान भी उठाए। अरबों के नज़दीक गर्म चीज़ बुरी और ठंडी चीज़ अच्छी समझी जाती है। 'हार्रुल अमल' का अर्थ है कठिन और श्रमसाध्य काम, और 'कार्रुल अमल' का अर्थ है आसान काम - त)। यदि कभी कोई इसे दृढ़ता के साथ लिख देता है, तो उस पर आपत्ति की जाती है कि मज़हब में प्रमाणित परंपराओं के विपरीत उसने इस मसले को इस तरह लिख दिया जैसे यह मज़हब में प्रमाणित हो। 'रद अल-मुह्तार' आदि के विभिन्न स्थानों को देखने वालों पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी। यहाँ भी

अल्लामा शामी ने वही तरीका अपनाया; यह नहीं फ़रमाया कि 'नज़ूल' (उतरना) और 'सुऊद' (चढ़ना) वर्जित या बिदअत-ए-शनीआ है, बल्कि इब्ने हजर शाफ़ई का कथन उद्धृत कर दिया ताकि मसले का स्रोत स्पष्ट रहे। मज़हब में प्रमाणित होना तो दूर की बात, इसे अपने किसी मज़हब के विद्वान का वर्णित (मज़कूर) भी न समझा जाए, वही सावधानी इमाम इब्ने हजर (रहमतुल्लाह अलैहि) ने बरती, मसले का हुक्म स्वयं नहीं लिखा जिससे दृढ़ता का बोध हो, बल्कि फ़रमाया: "बाज़ुहुम बहस" (उनमें से कुछ ने बहस की है)। 'बहस' वहाँ कही जाती है जहाँ मसला न तो प्रमाणित हो और न ही मज़हब के किसी सामान्य सिद्धांत या विशिष्ट मसले से स्पष्ट रूप से सिद्ध हो।

1 अल-कुरआन 2/80 पेज 417 ऑफ 673

جلد ہشتم، فتاویٰ رضویہ

الجواب: اقول: وباللہ التوفیق کسی فعلِ مسلمین کو بدعتِ شنیعہ و ناجائز کہنا ایک حکم اللہ و رسول جل جلالہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر لگانا ہے اور ایک حکم مسلمانوں پر۔ اللہ و رسول جل و علا و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر تو یہ حکم کہ ان کے نزدیک یہ فعل ناروا ہے انھوں نے اس سے منع فرما دیا ہے، اور مسلمانوں پر یہ کہ وہ اس کے باعث گنہگار و مستحق عذاب و ناراضیِ رب الارباب ہیں، ہر خدا ترس مسلمان جس کے دل میں اللہ و رسول جل و علا و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی کامل عزت و عظمت اور کلمۂ اسلام کی پوری توقیر و وقعت اور اپنے بھائیوں کی سچی خیر خواہی و محبت ہے کبھی ایسے حکم پر جرات روا نہ رکھے جب تک دلیلِ شرعی واضح سے ثبوت کافی و وافی نہ مل جائے۔

قال اللہ تعالیٰ: اَمْ تَقُوْلُوْنَ عَلَی اللہ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ 1 اللہ تعالیٰ کا ارشاد گرامی ہے: یا تم ایسی بات اللہ تعالیٰ کی طرف سے کہتے ہو جس کا تمھیں علم نہیں (ت)

کیا اللہ عزوجل پر بے علم حکم لگائے دیتے ہو، دلیل شرعی مجتہد کے لئے اصولِ اربعہ ہیں اور ہمارے لئے قولِ مجتہد صرف ایسی ہی جگہ علمائے کرام حکم بالجزم لکھتے ہیں اس کے سوا اگر کسی عالم غیر مجتہد نے کسی امر کی بحث کی تو ہر گز اس مسئلے کو یونہی نہیں لکھ جاتے کہ حکم یہ ہے بلکہ صراحۃً بتاتے ہیں کہ یہ فلاں یا بعض کی بحث ہے تاکہ منقول فی المذہب نہ معلوم ہو اور جس کا خیال ہے اسی کے ذمہ رہے وَلِیَّ حَارَّھَا مَنْ تَوَلّٰی قَارَّھَا (معاملہ کے گرم حال کو بھی اس کے سپرد کر دو جو سرد حال کا مالک ہے یعنی اچھا پہلو جس کے سپرد کیا ہے برا پہلو بھی اسی کے سپرد کر دیا جو نفع اٹھاتا رہا وہی بوجھ اور نقصان بھی اٹھائے۔ اہل عرب کے نزدیک گرم چیز بری اور ٹھنڈی چیز اچھی سمجھی جاتی ہے۔ حارّ العمل سخت اور کٹھن کام، اور قارّ العمل

آسان کامت) اگر احیاناً کوئی اسے بطورِ جزم لکھ جاتا ہے تو اس پر گرفت ہوتی ہے کہ سابقاً مساق المنقول فی المذہب یہ اس مسئلے کو ایسا لکھ گیا گویا مذہب میں منقول ہے خود اسی ردالمحتار وغیرہ کے مواضع عدیدہ سے نظر کرنے والوں کو یہ بیان عیاں ہو جائے گا یہاں بھی علامہ شامی نے وہی طریق برتا، یہ نہ فرمایا کہ نزول و صعود ممنوع یا بدعتِ شنیعہ ہے بلکہ ابن حجر شافعی کا کلام نقل فرمادیا کہ ماخذِ مسئلہ متمیز رہے، منقول فی المذہب ہونا در کنار اپنے کسی عالمِ مذہب کا مذکور نہ سمجھا جائے، وہی تحفظ امام ابن حجر رحمہ اللہ تعالیٰ نے ملحوظ رکھا، مسئلے کا حکم خود نہ لکھا جس سے جزم مفہوم ہو، بلکہ فرمایا بحث بعضھم بعض نے یوں بحث کی ہے، بحث وہیں کہیں گے جہاں مسئلہ نہ منقول ہو نہ صراحۃً کسی کلیہ یا مخصوصہ مذہب کے

1 القرآن ۸۰/۲ Page 417 of 673

Fatawa Razawiyya, Volume 8

It is included under the category that relying on such general rules does not depend on research and investigation. For example, if a question is asked: "A boy aged six months, five days, four hours, and three minutes drank the milk of a woman. Did her daughter become forbidden (Haram) for him or not?" The answer will be: "Forbidden." This specific case, although not mentioned in any book as such, will never be called the "research of so-and-so," because the books of the school (Madhhab) explicitly state the general rule that breastfeeding within the period of lactation causes prohibition. Thus, it is proven that Allama Shami or Imam Ibn Hajar do not consider it to be explicitly included under any general rule of the school; otherwise, they would not have settled for saying "Ibn Hajar said and some debated it." Furthermore, the word "Ba'duhum" (some of them) also indicated that this view belongs only to some, while the majority of scholars oppose it, or at least their agreement is not proven. Allama Shami himself, in the same Radd al-Muhtar, has explicitly stated this indication and implication in various places. In Durr al-Mukhtar, it is quoted from Nazm al-Faraid:

And its manumission is denied by some Imams. (Some Imams dislike declaring it as free).

On this, Allama Shami objected: | Arabic | Urdu | | :--- | :--- | | The meaning of the saying 'some Imams deny it' is that most of them have declared it permissible, etc. | The meaning of the phrase "some Imams deny" is that the majority has declared it permissible, etc. |

In fact, he stated that such an expression is evidence of the unreliability of that saying. In Durr al-Mukhtar, Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb), it was: | Arabic | Urdu | | :--- | :--- | | Some of them chose the verdict based on the saying of al-Karkhi in our time. | In our time, some have given the fatwa according to the saying of Imam Karkhi. |

Shami said: | Arabic | Urdu | | :--- | :--- | | This is from the words of al-Zayla'i, which he brought to indicate by this expression its lack of reliability (Summary). | These are the words of Imam Zayla'i; his expression clearly shows that it is not reliable (Summary). |

In Radd al-Muhtar, Chapter on the Description of Prayer (Sifat al-Salah), it was:

1. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Sayd, published by Matba' Mujtabai Delhi, 2/262.
2. Radd al-Muhtar, Kitab al-Sayd, published by Mustafa al-Babi Egypt, 5/339.
3. Durr al-Mukhtar, Kitab al-Ghasb, published by Matba' Mujtabai Delhi, 2/206.
4. Radd al-Muhtar, Kitab al-Ghasb, published by Mustafa al-Babi Egypt, 5/133.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

यह इस श्रेणी में आता है कि ऐसी सामान्य बातों पर आधारित होना शोध और दृष्टि पर निर्भर नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि कोई प्रश्न पूछा जाए कि: "छह महीने, पांच दिन, चार घड़ी और तीन मिनट की उम्र के एक लड़के ने एक महिला का दूध पिया, क्या उसकी बेटी उस पर हराम (वर्जित) हो गई या नहीं?" उत्तर होगा: "हराम।" यह विशेष मामला, हालांकि मूल रूप से किसी पुस्तक में वर्णित नहीं है, लेकिन इसे कभी भी 'फलां का शोध' नहीं कहा जाएगा, क्योंकि मज़हब की किताबों में इस सामान्य नियम का स्पष्ट उल्लेख है कि स्तनपान की अवधि के भीतर दूध पीना हराम होने का कारण है। अतः सिद्ध हुआ कि अल्लामा शामी या इमाम इब्न हजर इसे मज़हब के किसी सामान्य नियम के तहत स्पष्ट रूप से शामिल नहीं मानते; अन्यथा वे केवल "इब्न हजर ने कहा और कुछ ने इसमें शोध किया" कहने पर संतोष नहीं करते। फिर "बा'दुहुम" (उनमें से कुछ) शब्द ने और भी संकेत दिया कि यह विचार केवल कुछ का है, जबकि अधिकांश विद्वान इसके विरुद्ध हैं, या कम से कम उनकी सहमति सिद्ध नहीं है। स्वयं अल्लामा शामी ने इसी रद अल-मुह्तार में स्थान-स्थान पर इस संकेत और अर्थ को स्पष्ट किया है। दुर्र-ए-मुख्तार में नज़्म अल-फराइद से उद्धृत है:

और कुछ इमामों द्वारा इसका मानुमेशन (आज़ाद करना) अस्वीकार किया गया है। (कुछ इमामों ने इसे स्वतंत्र घोषित करना नापसंद किया है)।

इस पर अल्लामा शामी ने आपत्ति व्यक्त की है: | अरबी | उर्दू | | :--- | :--- | | कथन 'कुछ इमामों ने इनकार किया' का अर्थ है कि अधिकांश ने इसे जायज़ करार दिया है, इत्यादि। | "बाज़ुल अइम्मती युनकिरु" का अर्थ यह है कि अधिकांश ने इसे जायज़ करार दिया है, आदि। |

बल्कि यह स्पष्ट किया कि ऐसी अभिव्यक्ति उस कथन की अविश्वसनीयता का प्रमाण होती है। दुर्र-ए-मुख्तार, किताब अल-ग़सब (अपहरण की पुस्तक) में था: | अरबी | उर्दू | | :--- | :--- | | उनमें से कुछ ने हमारे समय में अल-करखी के कथन पर फतवा चुना है। | हमारे ज़माने में कुछ ने इमाम करखी के कौल पर फ़तवा दिया है। |

शामी ने कहा: | अरबी | उर्दू | | :--- | :--- | | यह अल-ज़ैलई का कथन है, जिसे उन्होंने इस अभिव्यक्ति द्वारा इसकी अविश्वसनीयता का संकेत देने के लिए लाया है (सारांश)। | यह इमाम ज़ैलई का कलाम है, उनकी यह ताबीर (अभिव्यक्ति) स्पष्ट कर रही है कि यह विश्वसनीय नहीं है (सारांश)। |

रद अल-मुह्तार, फ़स्ल सिफ़त अल-सलात (नमाज़ के गुणों का अध्याय) में था:

1. दुर्र-ए-मुख्तार, किताब अल-सैद, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली, 2/262.
2. रद अल-मुह्तार, किताब अल-सैद, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 5/339.
3. दुर्र-ए-मुख्तार, किताब अल-ग़सब, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली, 2/206.
4. रद अल-मुह्तार, किताब अल-ग़सब, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 5/133.

पृष्ठ 418/673

تحت میں داخل ہو کہ ایسے کلیات سے استناد بحث و نظر پر موقوف نہیں مثلاً سوال کیا جائے کہ ایک لڑکے نے چھ مہینے پانچ دن چار گھڑی تین منٹ کی عمر میں ایک عورت کا دودھ پیا اس کی دختر اس پر حرام ہوئی یا نہیں؟ جواب ہوگا کہ حرام، یہ صورت خاصہ اگرچہ اصلاً کسی کتاب میں منقول نہیں مگر اسے ہرگز بحثِ فلاں نہ کہا جائے گا کہ کتبِ مذہب میں اس کلیہ عامہ کی تصریح ہے کہ مدتِ رضاعت کے اندر جو ارتضاع ہو موجبِ تحریم ہے، تو ثابت ہوا کہ علامہ شامی یا امام ابن حجر اسے کسی کلیہ مذہب کے نیچے بھی صراحتہً داخل ہونا نہیں مانتے ورنہ یہ قال ابن حجر و بحث بعضہم (ابنِ حجر نے کہا اور اس میں بعض نے بحث کی ہے۔ت) پر اکتفانہ کرتے، پھر بعضہم (کم از کم۔ت) کے لفظ نے اور بھی اشعار کیا کہ یہ خیال صرف بعض کا ہے اکثر علماء اس کے مخالف ہیں لا اقل ان کی موافقت ثابت نہیں، خود علامہ شامی نے اسی ردالمحتار میں اس اشارہ و اشعار کی جابجا تصریح کی، درمختار میں نظم الفرائد سے نقل کیا: ع

واعتاقه بعض الائمة ینکر ۱ (بعض ائمہ کا اسے آزاد قرار دینا ناپسند ہے۔ت)

اس پر علامہ شامی نے اعتراض فرمایا ہے: | عربی | اردو | | | :--- | :--- | | مفهوم قول بعض الائمة ینکر انه یجوزه اکثرهم و لم ینقل ذلک ۲ الخ | قولہ "بعض الائمة ینکر" کا مطلب یہ ہے کہ اکثر نے اس اسے جائز قرار دیا ہے الخ (ت) |

بلکہ تصریح فرمائی کہ ایسی تعبیر اس قول کی بے اعتمادی پر دلیل ہوتی ہے، درمختار کتاب الغضب میں تھا: | عربی | اردو | | | :--- | :--- | | اختار بعضهم الفتوی علی قول الکرخی فی زماننا ۳ ۔ | ہمارے زمانے میں بعض نے امام کرخی کے قول پر فتوٰی دیا ہے۔ (ت) |

شامی نے کہا: | عربی | اردو | | :--- | :--- | | هذا من كلام الزيلعى اتى به لاشعار هذا التعبير بعدم اعتماده ۴ (ملخصاً) | یہ امام زیلعی کا کلام ہے ان کی یہ تعبیر واضح کررہی ہے کہ یہ معتمد نہیں (ملخصاً)۔ (ت) |

ردالمحتار فصل صفۃ الصلوۃ میں تھا:

---

1 درمختار کتاب الصید مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۲/ ۲۶۲ 2 ردالمحتار کتاب الصید مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵/ ۳۳۹ 3 درمختار کتاب الغضب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۲/ ۲۰۶ 4 ردالمحتار کتاب الغضب مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵/ ۱۳۳

Fatawa Ridawiyya Volume 8

If a letter or a word remains and is completed while bowing, there is no harm in it according to some (Munya al-Musalli).	**If a letter or word was left out and completed while bowing in prayer, then according to some, there is no harm in it, Munya al-Musalli - (T).**

Shami wrote: | His saying 'there is no harm according to some' indicates that this opinion is against the relied-upon one, etc. | The saying "there is no harm according to some" indicates that this opinion is against the relied-upon one, etc. (T) | | :--- | :--- |

By this brilliant discourse, by the grace of Allah Almighty, it has become clear that the writing of Allama Shami or Imam Ibn Hajar is not at all supportive of this claim of a definitive ruling on impermissibility; rather, it is contrary to it. Now, as for the discussion regarding 'some' (others), I say: Firstly, those 'some' are unknown, and a discussion of unknown status with an unknown source is not even worthy of reliance. In the same Rad al-Muhtar, Book of Marriage, Chapter of the Guardian, it says: | The saying of [the author of] al-Mi'raj 'I saw in a place' etc. is not sufficient for citation because of its anonymity. | The statement of the author of Mi'raj that "I have read in some place etc." is not sufficient for narration due to his lack of knowledge (of the source) - (T). | | :--- | :--- | Secondly, it is possible, or rather apparent, that those 'some' are not from the mujtahid imams. Mere followers (muqallideen) who are not in any level of ijtihad cannot pass judgment based on their own reasoning, nor can their reasoning be a proof for others; otherwise, it would be the 'taqlid' of a 'muqallid', which is void by consensus (otherwise it would be following a follower, which is unanimously false) - (T). Thirdly, there is no clear evidence for it. If it is said it is a 'new occurrence' (hadith), I say: mere occurrence is not a reason for prohibition either inherently or legally, nor is it a proof. Neither Allama Shami nor Imam Ibn Hajar accepts any of those 'some'. It is in Rad al-Muhtar: | [He is a] person of innovation, meaning a forbidden one; otherwise, it might be [obligatory innovation]. | He will be a person of forbidden innovation, otherwise sometimes it is an obligatory innovation. | | :--- | :--- |

---

1. Durr al-Mukhtar etc., printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/57.
2. Rad al-Muhtar etc., printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/324.

3. Rad al-Muhtar, Book of Marriage, Chapter of the Guardian, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/39.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

अगर कोई अक्षर या शब्द रह गया और झुकने की स्थिति में उसे पूरा किया गया, तो कुछ के अनुसार इसमें कोई हर्ज नहीं है (मुनियतुल मुसल्ली)।

अगर एक हर्फ़ या कलिमा रह गया था जो नमाज़ में झुकने की हालत में पूरा किया तो बाज़ के नज़दीक इसमें कोई हर्ज नहीं, मुनियतुल मुसल्ली - (त)।

शामी ने लिखा: | उनका यह कहना कि 'बाज़ के नज़दीक कोई हर्ज नहीं' इस बात की ओर इशारा करता है कि यह राय मोअतमिद (विश्वसनीय) के खिलाफ़ है, आदि। | क़ौल "बाज़ के नज़दीक कोई हर्ज नहीं" इस बात की तरफ़ इशारा कर रहा है कि यह क़ौल मोअतमिद के खिलाफ़ है इलख (त)। | | :--- | :--- |

इस रौशन बयान से अल्हम्दुलिल्लाह वाज़ेह हो गया कि अल्लामा शामी या इमाम इब्न हजर की तहरीर इस दावे (नाजाएज़ होने के यक़ीनी हुक्म) की बिल्कुल भी समर्थक नहीं है, बल्कि उसके खिलाफ़ है। अब रही 'बाज़' (कुछ अन्य) की बात, मैं कहता हूँ: अव्वलन वे 'बाज़' मजहूल (अज्ञात) हैं और मजहूल हाल और मजहूल माख़ज़ (अज्ञात स्रोत) की बहस क़ाबिले इस्तिनाद (भरोसेमंद) भी नहीं है। इसी रद्दुल मुहतार, किताबुन निकाह, बाबुल वली में है: | मिराज (के लेखक) का यह कहना कि 'मैंने किसी जगह देखा' आदि, इसके अज्ञात होने के कारण नक़ल के लिए काफ़ी नहीं है। | साहबे मिराज का क़ौल कि मैंने किसी जगह पढ़ा है इलख उनके अदम इल्म की वजह से नक़ल के लिये काफ़ी नहीं - (त)। | | :--- | :--- | सानियन, मुहतमिल बल्कि ज़ाहिर है कि वे 'बाज़' अइम्मा-ए-मुजतहिदीन में से नहीं हैं। और मुक़ल्लिद, जो इजतिहाद के किसी दर्जे में न हों, न तो अपनी बहस पर खुद हुक्म लगा सकते हैं और न ही दूसरों पर उनकी बहस हुज्जत (प्रमाण) हो सकती है; वर्ना यह मुक़ल्लिद की तक्लीद हो जाएगी जो इज्मा (आम सहमति) से बातिल (अमान्य) है (वर्ना यह मुक़ल्लिद की तक्लीद हो जाएगी और वह बिल-इत्तिफ़ाक़ बातिल है) - (त)। सालिसन, इस पर कोई दलील ज़ाहिर नहीं है। अगर कहा जाए कि यह नया है, तो मैं कहता हूँ: सिर्फ़ नया होना न तो अक़ली तौर पर और न ही शरई तौर पर मनाही की दलील है, न ही उसकी हुज्जत है। न अल्लामा शामी, न इमाम इब्न हजर ने उन 'बाज़' में से किसी को स्वीकार किया है। रद्दुल मुहतार में है: | बिदअत वाला, यानी हराम बिदअत; वरना कभी बिदअत वाजिब (अनिवार्य) भी हो सकती है। | साहबे बिदअत मुहर्रमा होगा वर्ना कभी बिदअत वाजिबा। | | :--- | :--- |

1. दुर्रे मुख़्तार आदि, मुतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/57.
2. रद्दुल मुहतार आदि, मुतबा मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/324.
3. रद्दुल मुहतार, किताबुन निकाह, बाबुल वली, मुतबा मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/39.

لو بقی حرف او کلمة فاتمه حال الانحناء لاباس به عند البعض منیة المصلی ۱۔

اگر ایک حرف یا کلمہ رہ گیا تھا جو نماز میں جھکنے کی حالت میں پورا کیا تو بعض کے نزدیک اس میں کوئی حرج نہیں،منیۃ المصلی -(ت)

شامی نے لکھا: | قوله لاباس به عند البعض اشار بهذا الی ان هذا القول خلاف المعتمد ۲ الخ | قولہ "بعض کے نزدیک کوئی حرج نہیں" اس بات کی طرف اشارہ کر رہا ہے کہ یہ قول معتمد کے خلاف ہے الخ (ت) | | :--- | :--- |

اس تقریر منیر سے بحمد اللہ تعالٰی روشن ہو گیا کہ علامہ شامی خواہ امام ابن حجر کی تحریر اس دعوے جزم بحکم عدم جواز کے اصلاً مساعد نہیں بلکہ ہے تو مخالف ہے، اب رہی بعض کی بحث، اقول: اوّلاً وہ بعض مجہول ہیں اور مجہول الحال کی بحث مجہول الماخذ کیا قابل استناد بھی نہیں، اسی ردالمحتار کتاب النکاح باب الولی میں ہے: | قول المعراج رأیت فی موضع الخ لایکفی فی النفل لجهالته ۳۔ | صاحب معراج کا قول کہ میں نے کسی جگہ پڑھا ہے الخ ان کے عدم علم کی وجہ سے نقل کے لئے کافی نہیں-(ت) | | :--- | :--- | ثانیاً محتمل بلکہ ظاہر کہ وہ بعض ائمہ مجتہدین سے نہیں اور مقلدین صرف کہ کسی طبقہ اجتہاد میں نہ ہوں نہ خود اپنی بحث پر حکم لگا سکتے ہیں، نہ دوسرے پر ان کی بحث حجت ہو سکتی ہے والا لکان تقلید مقلد وھو باطل اجماعاً (ورنہ یہ مقلد کی تقلید ہو جائے گی اور وہ بالاتفاق باطل ہے-(ت) ثالثاً اس پر کوئی دلیل ظاہر نہیں، اگر کہیے حادث ہے اقول مجرد حدوث اصلاً نہ شرعاً دلیل منع، نہ اس کی حجیت، علامہ شامی نہ امام ابن حجر نہ ان بعض کسی کو تسلیم، ردالمحتار میں ہے: | صاحب بدعة ای محرمة والا فقد تکون | صاحبِ بدعت محرمہ ہوگا ورنہ کبھی بدعتِ واجبہ | | :--- | :--- |

۱ در مختار واذارادالشروع فی الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۵۷ ۲ ردالمحتار واذارادالشروع فی الصلوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۳۲۴ ۳ ردالمحتار کتاب النکاح، باب الولی مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/۳۹

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

[Table Header: Arabic - Urdu] (Obligatory): Such as establishing proofs to refute misguided sects and learning grammar, which is necessary for understanding the Quran and Sunnah. (Recommended): Such as building inns and schools and every good deed that did not exist in the first era. (Disliked): Such as decorating mosques. (Permissible): Such as choosing abundance in delicious food, drink, and clothing, as Imam Al-Manawi stated in his commentary on Al-Jami' al-Saghir, citing Nawawi's Tahdhib, and similarly mentioned in Al-Birkiwi's Al-Tariqa al-Muhammadiyya. (T)

Imam Ibn Hajar says in Fath al-Mubin: (The gist is that there is consensus on the recommendation of 'Good Innovation' (Bid'ah Hasana), and performing the Mawlid (Prophet's birth anniversary) and gathering people for it is also the same. 2-) | The gist is that there is consensus among scholars that 'Good Innovation' is recommended; performing the noble Mawlid and the gathering of people for it is also a 'Good Innovation'. (T)

Restricting 'Bid'ah' (innovation) to being 'repulsive and heinous' within this very statement indicates that innovation itself does not necessitate repulsiveness and heinousness. Moreover, the context in which this 'descent and ascent' occurs—meaning the mention of kings—was itself an innovation. Thus, there was no reason to specify the speech with this 'descent and ascent'. In the same Radd al-Muhtar, after quoting from Jami' al-Rumuz:

(Then he prays for the Sultan of the time for justice and benevolence, while avoiding in his praise what scholars have termed as disbelief and loss, as mentioned in At-Targhib and elsewhere. 3ah) | Then a prayer should be made for the king of the time, that Allah Almighty may grant him the success of justice and benevolence, but one should avoid praising the king excessively, because scholars have said that doing so is disbelief and loss, as mentioned in At-Targhib etc. (T)

He said: (The commentator, by saying 'and it is permitted', indicated towards the interpretation of his statement...) | The commentator, by saying "this is permissible", indicated towards this...

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Imamate, Topic: Five Categories of Innovation, Printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/414.
2. Fath al-Mubin.

3. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayers, Printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/599.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

[तालिका शीर्षक: अरबी - उर्दू] (अनिवार्य): जैसे गुमराह फिरक़ों की गुमराही का खंडन करने के लिए प्रमाण प्रस्तुत करना और व्याकरण (इल्मे नहव) सीखना जो कुरान और सुन्नत की समझ के लिए आवश्यक है। (पसंदीदा): जैसे सराय और मदरसे बनाना और हर वह नेक काम जो शुरुआती दौर में नहीं था। (नापसंदीदा): जैसे मस्जिदों को सजाना। (अनुमेय): जैसे अच्छे भोजन, पेय और वस्त्रों में विस्तार करना, जैसा कि इमाम अल-मनावी ने नववी की तहज़ीब से अल-जामि' अस-सगीर की अपनी व्याख्या में उल्लेख किया है, और इसी तरह अल-बिरकिवी की अल-तरीका अल-मुहमदिय्या में भी है। (त)

इमाम इब्ने हजर 'फ़त्हुल मुबीन' में फरमाते हैं: (निष्कर्ष यह है कि 'बिदअत-ए-हसना' (अच्छी नवीनता) के मुस्तहब होने पर सहमति है, और मिलाद शरीफ़ मनाना और उसके लिए लोगों का एकत्रित होना भी वैसा ही है। 2-) | निष्कर्ष यह है कि बिदअत-ए-हसना के मुस्तहब होने पर विद्वानों के बीच सहमति है; मिलाद शरीफ़ करना और उसके लिए लोगों का एकत्रित होना भी बिदअत-ए-हसना ही है। (त)

इस कथन में बिदअत को 'बुरी और घृणित' तक सीमित करना यह संकेत देता है कि बिदअत अपने आप में बुराई और घृणा का कारण नहीं बनती। इसके अतिरिक्त, जिस संदर्भ में यह 'उतार-चढ़ाव' होता है - जिसका अर्थ राजाओं का उल्लेख है - वह स्वयं एक बिदअत थी। इसलिए, इस 'उतार-चढ़ाव' के साथ भाषण को विशेष रूप से निर्दिष्ट करने का कोई कारण नहीं था। उसी 'रद्द अल-मुह्तार' में, 'जामि' अर-रुमूज़' के उद्धरण के बाद:

(फिर वह समय के सुल्तान के लिए न्याय और उपकार की प्रार्थना करता है, और उसकी प्रशंसा में उन बातों से बचता है जिन्हें विद्वानों ने कुफ्र और नुकसान बताया है, जैसा कि 'अत-तरगीब' और अन्य में उल्लेखित है। 3अह) | फिर समय के राजा के लिए यह प्रार्थना की जाए कि अल्लाह उसे न्याय और उपकार की शक्ति दे, लेकिन राजा की प्रशंसा करने से बचना चाहिए, क्योंकि विद्वानों ने कहा है कि ऐसा करना कुफ्र और नुकसान है, जैसा कि 'अत-तरगीब' आदि में है। (त)

कहा: (टीकाकार ने 'और यह जायज़ है' कहकर उनके कथन की व्याख्या की ओर संकेत किया...) | टीकाकार ने "यह जायज़ है" कहकर इस ओर संकेत किया...

1. रद्द अल-मुह्तार, इमामत का अध्याय, विषय: बिदअत के पांच प्रकार, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/414।
2. फ़त्हुल मुबीन।
3. रद्द अल-मुह्तार, जुमे का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/599।

पृष्ठ 673 का 420

واجبة كنصب الادلة للرد على اهل الفرق الضالة وتعلم لنحو المفهم للكتاب والسنة ومندوبة كاحداث نحو رباط ومدرسة وكل احسان لم يكن فى الصدر الاول ومكروهة كزخرفة المساجد ومباحة كالتوسع بلذيذ المأكل والمشارب الصياد كما فى شرح جامع الصغير للمناوى عن تهذيب النوى ومثله فى الطريقة المحمدية للبركوى 1- | ہوتی ہے جیسے کہ گمراہ فرقوں کی گمراہی کارد کرنے کے لئے دلائل قائم کرنا اور علم نحو کا سیکھنا جو کتاب وسنت کی تفہیم کے لئے ضروری ہے اور کبھی مستحب ہوگی جیسے کہ سرائے اور مدرسہ اور ہر نیکی کا کام جو پہلے دور میں نہ تھا، اور کبھی مکروہ ہوگی جیسے مساجد کو مزین کرنا، اور مباح ہوگی جیسے کھانے پینے اور لباس میں وسعت اختیار کرنا جیسا کہ امام مناوی نے شرح جامع صغیر میں تہذیب نووی سے بیان کیا، اور برکوی کی طریقہ محمدیہ میں بھی اسی طرح ہے۔ (ت)

امام ابن حجر فتح المبین میں فرماتے ہیں: الحاصل ان البدعة الحسنة متفق على ندبها وعمل المولد واجتماع الناس له كذلك 2- | حاصل یہ ہے کہ بدعت حسنہ کے مندوب ہونے پر اہل علم کا اتفاق ہے، میلاد شریف کرنا اور اس کے لئے لوگوں کا اجتماع بھی بدعت حسنہ ہی ہے۔ (ت)

خود اسی قول میں بدعت کو قبیحہ شنیعہ سے مقید کرنا مشعر ہے کہ نفس بدعت مستلزم فتیح وشناعت نہیں معذ ایوں تو وہ محل جس پر یہ نزول وصعود ہوتا ہے یعنی ذکر سلاطین خود ہی بدعت تھا تو اس نزول وصعود کے ساتھ تخصیص کلام کی وجہ نہ تھی اسی ردالمحتار میں بعد نقل عبارت جامع الرموز:

ثم یدعو لسلطان الزمان بالعدل والاحسان متجنبا فی مدحه عما قالوا انه کفر وخسران کما فی الترغیب وغیرہ 3اھ | پھر بادشاہ وقت کے لئے یہ دعا کی جائے کہ اللہ تعالٰی اسے عدل واحسان کی توفیق دے لیکن بادشاہ کی مدح سرائی سے اجتناب کرے کیونکہ علماء نے کہا ہے کہ ایسا کرنا کفر اور خسارہ ہے جیسا کہ ترغیب وغیرہ میں ہے (ت)

فرمایا: اشار الشارح بقوله وجوز الی حمل قوله | شارح نے "یہ جائز ہے" کہہ کر اس طرف اشارہ

1 ردالمحتار باب الامامة مطلب البدعة خمسة اقسام مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۱۴ 2 فتح المبین 3 ردالمحتار باب الجمعة مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۹۹

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

[Main Table Section] Arabic Text (Left Column): Then he supplicates on the basis of permissibility, not because it is a sunnah (mandated), because that is a legal ruling which requires proof. It was stated in ‘al-Bahr’ that it is not recommended because it is narrated from 'Ata (may Allah be pleased with him) that when he was asked about this, he said, "It is an innovation (muhdath); the sermon (khutbah) is only for reminder." However, there is no prohibition against its being recommended, just as one supplicates for the general body of Muslims, for in the righteousness of the ruler is the righteousness of the world. What is in ‘al-Bahr’ regarding it being an innovation does not contradict this, for the ruler of this time is in greater need of supplication for righteousness and victory over enemies. Innovation (bid'ah) can sometimes be mandatory or recommended. (Summarized - T)

Urdu Translation (Right Column): It is stated that the words "then he shall pray" are interpreted as permissible, not recommended (mandated), because recommendation is a legal ruling and must have a proof. In ‘al-Bahr’ it says that this is not desirable because it is narrated from Hazrat ‘Ata (may Allah be pleased with him) that when he was asked about this, he said it is a new invention and the sermon is only for advice. Thus, there is no harm in the desirability of praying for the Sultan in the sermon, just as prayer is made for all Muslims in it, because the reform of the Sultan is the reform of the whole world. And what is in ‘al-Bahr’ that it is a new thing does not negate this, because in this era, the King and his companions are more in need of this prayer so that they may be reformed and prevail over the enemy, and sometimes innovation is mandatory or recommended. (Summarized - T)

[Middle Paragraph] If one says that this is an addition to the Sunnah, I say: In that case, mentioning the rulers, or rather mentioning the two noble uncles, the pure Batul (Fatima), the two fragrant flowers of Mustafa (Hasan and Husayn), and the remaining six of the Ten Promised Paradise—nay, rather even mentioning the four Caliphs (may Allah's blessings be upon the Beloved and upon them all)—all these would be considered more of an addition to the Sunnah of Mustafa (may Allah bless him and grant him peace). An addition to the Sunnah is disliked only if it is done with the belief that it is a Sunnah; otherwise, if done with the belief that it is permissible or recommended, it is not considered an (illegal) addition. In ‘Durr al-Mukhtar’, in the chapter explaining the Sunnahs of Wudu, it is stated:

[Lower Table Section] Arabic Text (Left Column): If one increases [the washing] for tranquility of heart or with the intention of performing Wudu over Wudu, there is no harm in it. The Hadith "then he has exceeded" is interpreted as pertaining to belief [that it is necessary].

Urdu Translation (Right Column): If someone washed the limbs more than (three) times for the peace of mind or the purpose was Wudu upon Wudu, then there is no harm in it. The remaining Prophetic saying "the one who did so has exceeded" is interpreted as regarding the belief (that without it Wudu is not valid). (T)

[Footnotes] 1 Radd al-Muhtar, Chapter of Jumu’ah, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/599 2 Durr al-Mukhtar, Book of Purification, printed by Matba' Mujtaba’i, Delhi, 1/22

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

[मुख्य तालिका अनुभाग] अरबी पाठ (बायाँ कॉलम): फिर वह अनुमति (जवाज़) के आधार पर दुआ करे, न कि सुन्नत (नदब) के रूप में, क्योंकि यह एक कानूनी हुक्म है जिसके लिए प्रमाण की आवश्यकता है। 'अल-बहर' में कहा गया है कि यह मुस्तहब (पसंदीदा) नहीं है क्योंकि हज़रत अता (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि जब उनसे इसके बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा, "यह एक नई खोज (मुहद्दस) है; खुत्बा तो केवल नसीहत के लिए है।" हालांकि, इसके मुस्तहब होने में कोई बाधा नहीं है, जैसे कि आम मुसलमानों के लिए इसमें दुआ की जाती है, क्योंकि सुल्तान के सुधार में ही दुनिया का सुधार है। 'अल-बहर' में जो इसे नई चीज़ कहा गया है वह इसका विरोध नहीं करता, क्योंकि इस ज़माने का सुल्तान सुधार और दुश्मनों पर जीत के लिए दुआ का अधिक मोहताज है। बिदअत (नवाचार) कभी-कभी वाजिब (अनिवार्य) या मंदूब (पसंदीदा) होती है। (संक्षेप में - त)

उर्दू अनुवाद (दायाँ कॉलम): कहा गया है कि "फिर दुआ करे" के शब्द जवाज़ (अनुमति) पर आधारित हैं, नदब पर नहीं, क्योंकि नदब एक शरई हुक्म है और इसके लिए दलील का होना ज़रूरी है। और 'बहर' में है कि यह मुस्तहब नहीं है क्योंकि हज़रत अता (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि जब उनसे इस बारे में पूछा गया तो फ़रमाया कि यह नई ईजाद है और खुत्बा तो महज़ नसीहत के लिए होता है। अतः खुत्बे में सुल्तान के लिए दुआ करना मुस्तहब होने में कोई रुकावट नहीं है, जैसे कि तमाम मुसलमानों के लिए इसमें दुआ की जाती है, क्योंकि सुल्तान का सुधार पूरे संसार का सुधार है। और जो 'बहर' में है कि यह नई चीज़ है, वह इसके विपरीत नहीं है क्योंकि इस दौर में बादशाह और उसके साथियों को इस दुआ की अधिक ज़रूरत है ताकि उनका सुधार हो और वे दुश्मन पर हावी हों, और कभी-कभी बिदअत वाजिब या मंदूब होती है। (संक्षेप में - त)

[मध्य पैराग्राफ] यदि कोई कहे कि यह सुन्नत पर ज़्यादती है, तो मैं कहता हूँ: इस तरह तो सलातीन का ज़िक्र, बल्कि दो करीम चाचाओं, बतूल ज़हरा, मुस्तफ़ा के दो फूलों (हसन-हुसैन), और अशरा मुबशरा के बाकी छह सहाबा का ज़िक्र—बल्कि खुलफ़ा-ए-अर्बा का ज़िक्र भी—हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सुन्नत पर सबसे बड़ी ज़्यादती ठहराई जाएगी। सुन्नत पर ज़्यादती वह है जो सुन्नत मानकर की जाए, अन्यथा इबाहत (अनुमति) या नदब मानकर की गई ज़्यादती मना नहीं है। 'दुर्रे मुख्तार' में वज़ू की सुन्नतों के बयान में है:

[निचला तालिका अनुभाग] अरबी पाठ (बायाँ कॉलम): यदि दिल के सुकून के लिए या 'वज़ू पर वज़ू' के इरादे से [धोने में] वृद्धि की जाए, तो इसमें कोई बुराई नहीं है। हदीस "उसने हद पार की" अक़ीदे (विश्वास) पर आधारित है।

उर्दू अनुवाद (दायाँ कॉलम): अगर किसी ने (तीन से) ज़्यादा बार अंगों को धोया और मक़सद दिल का इत्मीनान या 'वज़ू पर वज़ू' था तो इसमें कोई हर्ज नहीं। बाकी नबवी फ़रमान "ऐसा करने वाले ने ज़्यादती की" अक़ीदे (कि इसके बिना वज़ू नहीं होता) पर आधारित है। (त)

[पाद टिप्पणियाँ] 1 रद्दुल मुहतार, बाबुल जुमुआ, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/599 2 दुर्रे मुख्तार, किताबुत तहारत, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/22

पृष्ठ 421/673

[ٹیبل سیکشن] عربی عبارت (بایاں کالم): ثم یدعو علی الجواز لا الندب لانه حکم شرعی لا بد له من دلیل وقد قال فی البحر انه لا یستحب لماروی عن عطاء رضی اللہ تعالٰی عنہ حین سئل عن ذلک فقال انه محدث وانماکانت الخطبة تذکیر اھ ولا مانع من استحبابه فیها کما یدعی لعموم المسلمین فان فی صلاحه صلاح العالم وما فی البحر من انه محدث لا ینافیه فان سلطان ھذا الزمان احوج الی الدعاء له ولامراءہ بالصلاح والنصر علی الاعداء وقد تکون البدعة واجبة اومندوبة اھ مختصرا۔

اردو ترجمہ (دایاں کالم): کیا ہے کہ "پھر دعا کرے" کے الفاظ جواز پر محمول ہیں ندب پر نہیں کیونکہ ندب حکم شرعی ہے اس کے لئے دلیل کا ہونا ضروری ہے، اور بحر میں ہے کہ یہ مستحب نہیں کیونکہ حضرت عطاء رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی ہے کہ جب آپ سے اس بارے میں پوچھا گیا تو فرمایا یہ نئی ایجاد ہے اور خطبہ تو محض نصیحت کے لئے ہوتا ہے اھ تو خطبہ میں سلطان کے لئے دعا کرنا مستحب ہونے میں کوئی امر مانع نہیں جیسے کہ تمام مسلمانوں کے لئے اس میں دعا کی جاتی ہے کیونکہ سلطان کی اصلاح تمام جہاں کی اصلاح ہوتی ہے، اور جو بحر میں ہے کہ یہ نئی چیز ہے وہ اس کے منافی نہیں کیونکہ اس دور میں بادشاہ اور اس کے رفقاء اس دعا کے زیادہ محتاج ہیں کہ ان کی اصلاح ہو اور وہ دشمن پر غالب آئے اور بعض اوقات بدعت واجب یا مندوب ہوتی ہے اھ مختصراً (ت)

[درمیانی عبارت] اگر کہئے زیادت علی السنہ ہے اقول : یوں تو ذکر سلاطین بلکہ ذکر عمین کریمین و بتول زہرا و ریحانتین مصطفی و ستہ باقیہ من العشرۃ المبشرہ بلکہ ذکر خلفائے اربعہ بھی صلی اللہ تعالٰی علی الحبیب و علیہم جمیعاً و بارک و سلم سب سے زیادہ علی سنۃ المصطفٰی صلی اللہ

تعالیٰ علیہ وسلم ٹھہریں گے، زیادہ علی السنہ وہ مکروہ ہے کہ باعتقاد سنت ہو ورنہ باعتقاد اباحت یا ندب زیادت نہیں ۔ در مختار بیان سنن الوضوء میں ہے :

[نیچے والا ٹیبل سیکشن] عربی عبارت (بایاں کالم): لو زاد لطمأنینة القلب او لقصد الوضوء علی الوضوء لا باس به وحدیث فقد تعدی محمول علی الاعتقاد2-

اردو ترجمہ (دایاں کالم): اگر کسی نے (تین سے) زائد بار اعضاء کو دھویا اور مقصد اطمینان قلب یا وضو پر وضو تھا تو اس میں کوئی حرج نہیں، باقی فرمانِ نبوی "ایسا کرنے والے نے زیادتی کی " اعتقاد (کہ اس کے بغیر وضو نہیں ہوتا) پر محمول ہے۔ (ت)

[حواشی] 1 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۵۹۹/۱ 2 در مختار کتاب الطہارۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۲۲/۱

Fatawa Razawiya Volume 8

In the same Radd al-Muhtar, it is cited from Badai' by Imam Malik al-Ulama:

"The correct position is that it relates to belief, not to the act itself. Thus, even if one adds to or subtracts from [the number of washings], but holds the belief that the Sunnah is three times, the threat of punishment does not apply to him." (T)

Allama Shami himself states:

"I say, it has been previously mentioned that according to us, the prohibition in the prophetic tradition 'he has exceeded the limit' pertains to belief, as explicitly stated in al-Hidayah and others. It is also mentioned in al-Badai' that the correct view is that if one increases or decreases [the number of washes] while maintaining the belief that the Sunnah is three times, he will not be a sinner. (He later said) A person who wastes water while performing wudu at a river, for example, without believing that the excess is Sunnah, is like someone who fills a vessel from a river and then empties it back into it. There is no fault in this except that it is a futile action with no benefit, and it is in addition to what is commanded for wudu. Hence, it is termed 'israf' (extravagance) in the Hadith. It is stated in al-Qamus that israf means wasteful spending or spending on something other than obedience. Exceeding what is commanded or spending on something other than an act of obedience does not necessarily imply that it is haram (forbidden). Yes, if he believes it to be Sunnah, then he has exceeded the limit and committed wrong, because he believes something which is not a means of proximity to God as being one. Thus, our scholars have based the prohibition on this." [Translation of the Arabic text provided in the right column of the original page follows:]

"The correct view is that this is based on belief, not the act itself. Even if someone adds or subtracts, but the belief remains that the Sunnah is only three times, they will not face the promised punishment. (T)

I say that it was mentioned earlier that according to us, the prophetic command 'he committed excess' refers to forbidden belief, as clarified in Hidaya etc., and in Badai it is stated that the correct view is that if someone adds or subtracts and holds the belief that the Sunnah is only three times, he will not be a sinner. (Later he said that) a person who wastes water while performing wudu in a river, but does not believe that doing so is Sunnah, is like the person who filled a vessel from the river and then poured it back into it; there is no harm in it except that this act is futile, there is no

benefit in it, and it is an addition to the commanded wudu. Therefore, it has been named 'israf' (wastefulness) in the Hadith. It is in the Qamus that israf is wasteful spending or spending in a place other than a place of obedience; spending more than what is commanded or other than a place of obedience does not necessarily make it haram, however..."

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Book of Purification, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/89 2. Radd al-Muhtar, Book of Purification, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/98

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

उसी रद अल-मुह्तार में बदा-ए इमाम मलिक अल-उलमा से है:

"सही यह है कि यह विश्वास (अकीदा) पर आधारित है, न कि स्वयं कार्य पर। यहाँ तक कि यदि किसी ने [धोने की संख्या] बढ़ाई या घटाई, लेकिन उसका यह विश्वास रहा कि सुन्नत केवल तीन बार है, तो उसे दंड की चेतावनी नहीं मिलेगी।" (त)

स्वयं अल्लामा शामी फ़रमाते हैं:

"मैं कहता हूँ कि यह बात पहले गुज़री है कि हमारे निकट नबवी हदीस 'उसने सीमा पार की' में निषेध का आधार विश्वास है, जैसा कि हिदाया आदि में स्पष्ट किया गया है। और बदा-ए में है कि सही यही है कि यदि किसी ने कमी या अधिकता की, और यह विश्वास रखा कि सुन्नत तीन बार ही है, तो वह गुनहगार नहीं होगा। (आगे चलकर कहा कि) वह व्यक्ति जो उदाहरण के लिए नहर के पानी से वज़ू करते समय अधिक पानी उपयोग करता है, लेकिन इसे सुन्नत नहीं मानता, उसकी स्थिति उस व्यक्ति जैसी है जिसने नहर से बर्तन भरा और फिर उसे उसी में उलट दिया। इसमें व्यर्थ कार्य के अलावा कोई दोष नहीं है जिसका कोई लाभ नहीं। और यह वज़ू के आदेश से अधिक है, इसीलिए हदीस में इसे 'इसराफ़' (अत्यधिक खर्च) कहा गया है। क़ामूस में है कि 'इसराफ़' अपव्यय या अल्लाह की आज्ञाकारिता के अलावा किसी चीज़ पर खर्च करना है। आज्ञा दी गई चीज़ से अधिक खर्च करना या आज्ञाकारिता के स्थान के अतिरिक्त खर्च करना अनिवार्य रूप से उसे हराम (वर्जित) नहीं बना देता। हाँ, यदि वह इसे सुन्नत मानता है, तो उसने सीमा पार की और अन्याय किया क्योंकि उसने उसे इबादत माना जो इबादत नहीं है। अतः हमारे विद्वानों ने निषेध को इसी पर आधारित किया है।"

[मूल पृष्ठ के दाहिने कॉलम में दिए गए उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण नीचे दिया गया है:]

"सही यह है कि यह अकीदा (विश्वास) पर आधारित है न कि स्वयं कार्य पर, यहाँ तक कि अगर किसी ने इज़ाफ़ा (वृद्धि) किया या कमी की मगर अकीदा यह था कि सुन्नत तीन दफा ही है तो उसे सजा की धमकी नहीं मिलेगी। (त)

मैं कहता हूँ कि पहले गुज़रा कि हमारे नज़दीक फरमाने नबवी 'उसने ज़्यादती की' में मना किया गया अकीदा है जैसा कि हिदाया वगैरह में तसरीह (स्पष्टीकरण) है, और बदा-ए में है कि सही यह है कि अगर किसी ने इज़ाफ़ा किया या कमी की और अकीदा यह रखा कि सुन्नत तीन दफा ही है तो वह

गुनहगार न होगा। (आगे चल कर कहा कि) वह व्यक्ति जो नहर के पानी में वज़ू करते हुए इसराफ़ करता है लेकिन उसके सुन्नत होने का अकीदा नहीं रखता यह उस व्यक्ति की तरह है जिसने नहर से बर्तन भरा फिर उसमें वापस डाल दिया, तो इसमें कोई कबाहत (बुराई) नहीं सिवाय इसके कि यह अमल व्यर्थ है इसमें कोई फायदा नहीं और यह मामूर बिही (आज्ञाकारी) वज़ू में ज़ायद (अतिरिक्त) चीज़ है पस इसीलिए हदीस में इसे इसराफ़ का नाम दिया गया है। क़ामूस में है इसराफ़, फ़ुज़ूलखर्ची या ऐसी जगह खर्च करना है जो मकाम-ए-ताअत (आज्ञाकारिता के स्थान) के अलावा हो, मामूर बिही से ज़ायद या मकाम-ए-ताअत के अलावा खर्च करने से उसका हराम होना लाज़िम नहीं आता अलबत्ता..."

फुटनोट: 1. रद अल-मुह्तार, किताबुत तहारत, मुद्रित मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/89 2. रद अल-मुह्तार, किताबुत तहारत, मुद्रित मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/98

पृष्ठ 673 का 422

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اسی رد المحتار میں بدائع امام ملک العلماء سے ہے:

الصحیح انہ محمول علی الاعتقاد دون نفس الفعل حتی لو زاد او نقص واعتقد ان الثلاث سنۃ لا یلحقہ الوعید ۱-

صحیح یہ ہے کہ یہ اعتقاد پر محمول ہے نفس فعل پر نہیں حتی کہ اگر کسی نے اضافہ کیا یا کمی کی مگر عقیدہ یہ تھا کہ سنت تین دفعہ ہی ہے تو اسے وعید لاحق نہ ہو گی ۔ (ت)

خود علامہ شامی فرماتے ہیں:

اقول قد تقدم ان المنهي عنه في حديث قد تعدى محمول على الاعتقاد عندنا كما صرح به في الهداية وغيره وقال في البدائع انه الصحيح حتى لوزاد اونقص واعتقدان الثلاث سنة لا يلحقة الوعيد (الى ان قال ان من اسرف في الوضوء بماء النهر مثلا مع عدم اعتقاد سنة ذلك. نظير من ملاء إناء من النهر ثم افرغه فيه وليس في ذلك محذور سوى انه عبث لا فائدة فيه وهو في الوضوء زائد على المأمور به فلذا سمى في الحديث اسرافاً قال في القاموس الاسراف التبذير او ما انفق في غير طاعة ولا يلزم من كونه زائداً على المأمور به وغير طاعة ان يكون حراماً نعم اذا اعتقد سنيته يكون قد تعدى وظلم لا اعتقاده ما ليس بقربة قربة فاذ احمل علماؤنا النهي على ذلك ۲-

میں کہتا ہوں کہ پہلے گزرا کہ ہمارے نزدیک فرمان نبوی "اس نے زیادتی کی" میں ممنوع اعتقاد ہے جیسا کہ ہدایہ وغیرہ میں تصریح ہے ، اور بدائع میں ہے کہ صحیح یہ ہے کہ اگر کسی نے اضافہ کیا یا کمی کی اور اعتقاد یہ رکھا کہ سنت تین دفعہ ہی ہے تو وہ گنہگار نہ ہوگا (آگے چل کر کہا کہ) وہ شخص جو نہر کے پانی میں وضو کرتے ہوئے اسراف کرتا ہے لیکن اس کے سنت

ہونے کا اعتقاد نہیں رکھتا یہ اس شخص کی طرح ہے جس نے نہر سے برتن بھرا پھر اس میں واپس ڈال دیا، تو اس میں کوئی قباحت نہیں سوائے اس کے یہ عمل عبث ہے اس میں کوئی فائدہ نہیں اور یہ مامور بہ وضو میں زائد شیئ ہے پس اسی لئے حدیث میں اسے اسراف کا نام دیا گیا ہے۔ قاموس میں ہے اسراف، فضول خرچی یا ایسی جگہ خرچ کرنا ہے جو مقام طاعت کے علاوہ ہو، مامور بہ سے زائد یا مقام طاعت کے علاوہ خرچ کرنے سے اس کا حرام ہونا لازم نہیں آتا البتہ

حواشی: ۱۔ رد المحتار کتاب الطھارۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۸۹ ۲۔ رد المحتار کتاب الطھارۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۹۸

If it is said that there is a risk that the common people might consider it a Sunnah. I say: Firstly, there are the same refutations that even these original remembrances (adhkar) are not Sunnah, so the risk exists here as well. And the research is that the mentioned risk neither makes the act a foul and abominable innovation (bid'ah qabihah shaniah) nor does it make its omission mandatory. Rather, where there is a risk, it is only necessary that scholars occasionally omit it so that the masses do not perceive it as Sunnah; what connection does this have with it being impermissible or a foul innovation! This humble person (the author), may the Almighty Forgive him, has quoted many clarifications from the reliable Imams and scholars of the Hanafi, Shafi'i, and Maliki schools (may Allah have mercy on them all) in his book 'Rashaqat al-Kalam Hashiyat Adhaqat al-Atham'. From 'Radd al-Muhtar' citing 'Fath al-Qadir' it is written:

[Table Header omitted as per exact transcription, content follows:] [Arabic]: The requirement of the proof is non-persistence, not persistence in omission. Because the necessity of illusion is negated by occasional omission. [Summarized] [Urdu]: The demand of the proof is non-persistence, not persistence in abandonment, because by occasionally abandoning it, the negation of it being necessary or obligatory is achieved. [Summarized] (T)

Now there remains only the argument of futile prayer, that it serves no purpose, and futility is disliked (makruh) everywhere, let alone in worship itself. The response to this has been sufficiently quoted by the second learned respondent (may he be safe) from the letters of Imam Rabbani (Alf Thani), which clarified its wisdom and removed the perception of futility. And I say: And success is from Allah (T). In those ages and cities where some have raised this debate, a beautiful and profound point originating from Shari'ah principles can be applied to this act, making it legally highly beneficial and important, leaving no trace of the researcher's debate. Mentioning rulers in the sermon (khutbah), although an innovation (muhdath), has become a symbol of the state, so much so that someone's rule in a country is expressed by saying his coinage and sermon are current there. In an Islamic state, if a preacher (khatib) omits the mention of the Sultan, he would face reprimand. If persistent, he would be seen as a rebel and denier of the state. In such a situation, a permissible or even a disliked act, depending on the risk of strife (fitnah), can be upgraded to emphasized (mu'akkad) or even mandatory (wajib). In the same 'Radd al-Muhtar', regarding the mention of the Sultan, it says:

[Arabic]: Also, praying for the Sultan on the pulpits has now become one of the symbols of the state. He who omits it is feared for, therefore some scholars said if it were said that praying for him is obligatory because of what is in its omission...
[Urdu]: Praying for the Sultan on the pulpit has also become part of the symbols of the state now. One who abandons it is at risk of harm. Therefore, some scholars said there is no distance (improbability) if it is said...

यदि आप कहें कि इसमें यह अंदेशा है कि आम लोग इसे सुन्नत समझ लेंगे। मैं कहता हूँ: पहले तो वही खंडन हैं कि ये स्वयं के ज़िक्र (अज़कार) भी सुन्नत नहीं हैं, तो अंदेशा यहाँ भी बना हुआ है। और शोध यह है कि उल्लेखित अंदेशा न तो कार्य को घृणित नवाचार (बिदअत क़बीहा) बनाता है और न ही इसके त्याग को अनिवार्य। बल्कि जहाँ अंदेशा हो वहाँ केवल इतना होना चाहिए कि विद्वान कभी-कभी इसे भी छोड़ दिया करें ताकि आम लोग सुन्नत न समझ लें। इसका अवैध और घृणित नवाचार होने से क्या संबंध! मुझ तुच्छ (लेखक) ने, ईश्वर उसे क्षमा करे, अपनी पुस्तक 'रशाक़त अल-कलाम हाशिया अदक़ात अल-आसाम' में विश्वसनीय इमामों, हनफी, शाफई और मालिकी विद्वानों (अल्लाह उन सब पर दया करे) के प्रचुर स्पष्टीकरण उद्धृत किए हैं। उसी 'रद्द अल-मुह्तार' में 'फतह अल-क़दीर' से है:

[अरबी]: प्रमाण की आवश्यकता निरंतरता का अभाव है, न कि त्याग पर निरंतरता। क्योंकि भ्रम की अनिवार्यता कभी-कभार त्याग से समाप्त हो जाती है। [संक्षिप्त] [उर्दू]: दलील का तक़ाज़ा निरंतरता न होना है, न कि छोड़ने पर निरंतरता, क्योंकि कभी-कभार छोड़ने से इसके आवश्यक या अनिवार्य होने का भ्रम दूर हो जाता है। (त)

अब केवल व्यर्थ प्रार्थना का तर्क बचा है कि इसमें कोई लाभ नहीं, और व्यर्थता हर जगह मकरूह (नापसंद) है, पूजा में तो क्या ही कहना। इसका उत्तर द्वितीय विद्वान उत्तरदाता (ईश्वर उनकी रक्षा करे) ने इमाम रब्बानी (अल्फ़ थानी) के पत्रों से पर्याप्त रूप से उद्धृत कर दिया है, जिससे इसकी हिकमत स्पष्ट हो गई और व्यर्थ होने का भ्रम दूर हो गया। और मैं कहता हूँ: और सफलता अल्लाह की ओर से है (त)। जिन युगों और शहरों में कुछ लोगों ने यह बहस की है, वहाँ इस कार्य पर शरीयत के सिद्धांतों से उत्पन्न एक सुंदर और गहरा बिंदु लागू हो सकता है जिससे यह कार्य कानूनी रूप से अत्यंत लाभदायक और महत्वपूर्ण हो जाता है, और शोधकर्ता की बहस का कोई नामोनिशान नहीं रहता। खुतबे में सुल्तानों का ज़िक्र हालाँकि बाद की ईजाद (मुहद्दस) है, लेकिन यह सल्तनत का प्रतीक बन चुका है, यहाँ तक कि किसी देश में किसी की सल्तनत को इस तरह व्यक्त किया जाता है कि वहाँ उसका सिक्का और खुतबा चल रहा है। इस्लामी सल्तनत में यदि खतीब सुल्तान का ज़िक्र छोड़ दे तो वह फटकार का पात्र होगा। यदि अडिग रहे तो मानो बाग़ी और सल्तनत का मुनकिर ठहराया जाएगा। ऐसी स्थिति में एक जायज़ या यहाँ तक कि मकरूह कार्य भी फ़ितने (विद्रोह) के डर

की मात्रा के अनुसार सुदृढ़ (मुअक्कद) बल्कि अनिवार्य (वाजिब) तक पहुँच जाता है। उसी 'रद्द अल-मुह्तार' में सुल्तान के ज़िक्र के मसले में है:

[अरबी]: और यह भी कि सुल्तान के लिए मिंबरों पर दुआ करना अब सल्तनत के प्रतीकों में से हो गया है। जो इसे छोड़ेगा उस पर डर है, इसलिए कुछ विद्वानों ने कहा कि यदि यह कहा जाए कि उसके लिए दुआ करना अनिवार्य है क्योंकि इसके त्याग में... [उर्दू]: सुल्तान के लिए मिंबर पर दुआ करना भी अब सल्तनत के प्रतीकों में से हो गया है। जो इसे छोड़ेगा उसे नुकसान का अंदेशा है। इसलिए कुछ विद्वानों ने कहा कि इसमें कोई दूरी नहीं है यदि यह कह दिया जाए...

اگر کہئے اس میں اندیشہ ہے کہ عوام سنت سمجھ لیں گے اقول: اولاً وہی نقوض ہیں کہ یہ نفس اذکار بھی سنت نہیں تو اندیشہ یہاں بھی حاصل۔ اور تحقیق یہ ہے کہ اندیشہ مذکورہ نہ فعل کو بدعت قبیحہ شنیعہ کردیتا ہے نہ اس کے ترک کو واجب، بلکہ جہاں اندیشہ ہو صرف اتنا چاہئے کہ علماء کبھی کبھی اُسے بھی ترک کر دیں تاکہ عوام سنت نہ سمجھ لیں، اسے ناجائز وبدعت قبیحہ ہونے سے کیا علاقہ ! فقیر غفر المولی القدیر نے اپنی کتاب رشاقۃ الکلام حاشیۃ اذقۃ الاثام میں اس کی بکثرت تصریحات ائمہ دین علمائے معتمدین حنفیہ وشافعیہ و مالکیہ رحمۃ اللہ علیہم اجمعین سے نقل کیں ،اسی ردالمحتار میں فتح القدیر سے ہے:

مقتضی الدلیل عدم المداومۃ لا المداومۃ علی الترک فان لزوم الایہام ینتفی بالترک احیانا اھ اختصارا | دلیل کا تقاضا عدم مداومت ہے نہ کہ ترک پر مداومت کیونکہ کبھی کبھار ترک سے لازم وواجب ہونے کی نفی ہو جاتی ہے اھ باختصار(ت)

اب نہ رہا مگر دعائے عبث کہ اس میں کوئی فائدہ نہیں، اور عبث ہر جگہ مکروہ ہے نہ کہ خود عبادت میں۔ اس کا جواب الف ثانی کے مکتوبات سے فاضل مجیب دوم سلمہ، نے بروجہ کافی نقل کر دیا جس سے اس کی مصلحت ظاہر ہو گئی اور توہم عبث زائل ہو گیا۔ وانا اقول: وباللہ التوفیق (اور میں اللہ تعالٰی کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) جن اعصار وامصار میں بعض نے یہ بحث کی وہاں اس فعل پر ایک نکتہ جمیلہ ودقیقہ جلیلہ اصول شرعی سے ناشیئ ہو سکتا ہے جس سے یہ فعل شرعاً نہایت مفید ومہم قرار پاتا اور بحث باحث کا اصلاً پتا نہیں رہتا ہے خطبے میں ذکر سلاطین اگر چہ محدث ہے مگر شعار سلطنت قرار پا چکا یہاں تک کہ کسی ملک میں کسی کی سلطنت ہونے کو یوں تعبیر کرتے ہیں کہ وہاں اس کا سکہ و خطبہ جاری ہے، سلطنت اسلامی میں

اگر خطیب ذکر سلطان ترک کرے مورد عتاب ہوگا، مصر ہو تو گویا باغی اور سلطنت کا منکر ٹھہرے گا اور ایسی حالت میں مباح بلکہ مکروہ بھی بقدر اندیشہ فتنہ موکد بلکہ واجب تک مترقی ہوتا ہے، اسی ردالمحتار میں اسی مسئلہ ذکر سلطان میں ہے:

وایضاً فان الدعاء للسلطان علی المنابر قد صار الآن من شعار السلطنة فمن ترکه یخشی علیه ولذا قال بعض العلماء لو قیل ان الدعاء له واجب لما في ترکه | سلطان کے لئے منبر پر دعا کرنا بھی اب سلطنت کے شعار سے ہو گیا ہے، جو اسے ترک کرے گا اس پر نقصان کا خدشہ ہے اس لئے بعض علماء نے فرمایا کہ اس میں کوئی بعد نہیں اگر یہ کہہ دیا جائے

Fatawa-e-Razviya Volume 8

[Boxed Text Top Left - Arabic]: من الفتة غالباً لم يبعد كما قيل به في قيام الناس بعضهم لبعض - 1 [Boxed Text Top Right - Urdu]: That it is mandatory (Wajib) to pray for the Sultan because its abandonment often leads to the fear of strife (Fitna) arising, as has been said regarding people standing for one another. (T)

And there is no doubt that for hundreds of years, most sultans of the time have been transgressors (Fasiq). Even if their transgression was nothing else, is the total abolition of Shariah limits and the imposition of various types of taxes and fines contrary to the pure Shariah a small matter? Similarly, in Radd al-Muhtar, at the end of the Book of Drinks, it is quoted from Sayyidi Arif Billah Abdul Ghani Nabulsi (may his secret be sanctified):

[Boxed Text Middle Left - Arabic]: 2 - قد قالوا من قال سلطان زماننا عادل كفر [Boxed Text Middle Right - Urdu]: The scholars have said that whoever calls the sultan of our era 'just' (Adil) is a disbeliever (Kafir). (T)

And there is no doubt that just as they would be displeased if their names were not included in the sermon (Khutba), so too, if the name is mentioned without words of praise and veneration, it would cause even more anger. And praising a transgressor is forbidden (Haram) according to Shariah. In a Hadith, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Boxed Text Bottom Left - Arabic/Urdu]: "3 - اذا مدح الفاسق غضب الرب واهتزله العرش" Reported by Ibn Abi al-Dunya in 'Dhamm al-Ghibah', Abu Ya'la in his 'Musnad', and al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' from Anas ibn Malik (may Allah be pleased with him), and Ibn 'Adi in 'al-Kamil' from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with them both).

[Boxed Text Bottom Right - Urdu]: When a transgressor (Fasiq) is praised, the Lord (Almighty and Majestic) becomes angry and the Throne (Arsh) of Allah shakes because of it. It has been narrated by Imam Ibn Abi al-Dunya in 'Dhamm al-Ghibah', Abu Ya'la in his 'Musnad', and al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' from Hazrat Anas bin Malik (may Allah be pleased with him), and Ibn 'Adi in 'al-Kamil' from Hazrat Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him).

When the sermon-givers (Khutaba) were compelled to be involved in this, these servants of God desired to separate this mention from the sermon, as the essence of worship consists in this matter, and that its separation from the sermon should not be completely unknown, so that the fire of strife (Fitna) remains un-ignited.

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday, Printed by Mustafa al-Babi, Egypt 1/599
2. Radd al-Muhtar, Book of Drinks, Printed by Mustafa al-Babi, Egypt 5/327
3. Shu'ab al-Iman, Hadith 4886, Chapter on Guarding the Tongue, Printed by Dar al-Kutub al-Ilmiyya, Beirut 4/230

फ़तावा-ए-रज़विया खंड 8

[बॉक्स टेक्स्ट ऊपर बाईं ओर - अरबी]: من الفتة غالباً لم يبعد كما قيل به في قيام الناس بعضهم لبعض - 1 [बॉक्स टेक्स्ट ऊपर दाईं ओर - उर्दू]: कि सुल्तान के लिए दुआ करना वाजिब है क्योंकि इसके परित्याग पर अक्सर फितना (अशांति) उठने का अंदेशा होता है जैसा कि कुछ लोगों के एक-दूसरे के लिए खड़े होने के बारे में कहा गया है। (त)

और इसमें कोई संदेह नहीं है कि सैकड़ों वर्षों से समय के अधिकांश सुल्तान फासिक (पापी) रहे हैं, यदि उनका फिस्क और कुछ न भी हो, तो शरीयत की सीमाओं को पूरी तरह से हटा देना और पवित्र शरीयत के खिलाफ विभिन्न प्रकार के कर और जुर्माने लगाना क्या कम है? इसी तरह रद्द अल-मुह्तार में किताबुल अश्रिबा के अंत में सय्यदी आरिफ़ बिल्लाह अब्दुल गनी नाबुलुसी (अल्लाह उनकी आत्मा को पवित्र करे) से उद्धृत है:

[बॉक्स टेक्स्ट बीच में बाईं ओर - अरबी]: 2 - قد قالوا من قال سلطان زماننا عادل كفر [बॉक्स टेक्स्ट बीच में दाईं ओर - उर्दू]: विद्वानों ने कहा है कि जो हमारे समय के सुल्तान को आदिल (न्यायप्रिय) कहेगा, वह काफ़िर है। (त)

और इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस तरह वे खुतबे में अपना नाम न होने पर नाराज होंगे, वैसे ही यदि नाम प्रशंसा और सम्मान के शब्दों के बिना लाया जाए, तो यह और भी अधिक नाराजगी का कारण बनेगा। और फासिक की प्रशंसा करना शरीयत के अनुसार हराम है। हदीस में अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं:

[बॉक्स टेक्स्ट नीचे बाईं ओर - अरबी/उर्दू]: "3 - اذا مدح الفاسق غضب الرب واهتزله العرش" इसे इब्न अबी अल-दुनिया ने 'ज़म्मुल गीबत' में, अबू याला ने अपनी 'मुसनद' में और बैहकी ने 'शुअबुल ईमान' में अनस बिन मलिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और इब्न अदी ने 'अल-कामिल' में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है।

[बॉक्स टेक्स्ट नीचे दाईं ओर - उर्दू]: जब फासिक की प्रशंसा की जाती है, तो रब (अल्लाह) नाराज होता है और उसके कारण अर्श-ए-इलाही हिल जाता है। इसे इमाम इब्न अबी अल-दुनिया ने 'ज़म्मुल गीबत', अबू याला ने 'मुसनद' और बैहकी ने 'शुअबुल ईमान' में हज़रत अनस बिन मलिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और इब्न अदी ने 'अल-कामिल' में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

खतीब जब मजबूरी में इसमें मुब्तला हुए, तो खुदा के इन बंदों ने चाहा कि इस ज़िक्र को खुतबे से अलग कर दें, क्योंकि इबादत का सार इसी बात में है, और खुतबे से इसकी जुदाई बिल्कुल अनजान न रहे ताकि फितने की आग भड़कती न रहे।

---

1. रद्द अल-मुह्तार, जुमा का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/599
2. रद्द अल-मुह्तार, किताबुल अश्रिबा, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 5/327
3. शुअबुल ईमान, हदीस 4886, ज़बान की हिफ़ाज़त का अध्याय, दार अल-कुतुब अल-इलमिया बेरूत द्वारा मुद्रित, 4/230

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

من الفتة غالباً لم یبعد کما قیل به في قیام الناس بعضهم لبعض - 1 کہ سلطان کے لئے دعا کرنا واجب ہے کیونکہ اس کے ترک پر غالباً فتنہ اٹھنے کا اندیشہ ہوتا ہے جیسا کہ بعض لوگوں کے بعض کے لئے قیام کے بارے میں کہا گیا ہے۔ (ت)

اور شک نہیں کہ صد ہا سال سے اکثر سلاطین زماں فساق ہیں، اس کا فسق اور کچھ نہ ہو تو حدود شرعیہ یک لخت اٹھا دینا اور خلاف شریعت مطہرہ طرح طرح کے ٹیکس اور جرمانے لگانا کیا تھوڑا ہے ، اسی ردالمحتار آخر کتاب الاشر بہ میں سیدی عارف باللہ عبدالغنی نابلسی قدس سرہ القدسی سے ہے :

قد قالوا من قال سلطان زماننا عادل کفر - 2 علماء نے فرمایا جو ہمارے دور کے سلطان کو عادل کہے گا وہ کافر ہے۔ (ت)

اور شک نہیں کہ جس طرح وہ خطبہ میں اپنا نام نہ لانے پر ناراض ہوں گے یوں ہی اگر نام بے کلمات مدح و تعظیم لایا جائے تو اس سے زیادہ موجب افروختگی ہوگا اور فاسق کی مدح شرعاً حرام ہے ، حدیث میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں :

اذا مدح الفاسق غضب الرب واهتزله العرش - 3 رواہ ابن ابی الدنیا فی ذم الغیبة وابو یعلی فی مسنده والبیہقی فی شعب الایمان عن انس بن مالک و ابن عدی فی الکامل عن ابی ہریرة رضی اللہ تعالٰی عنہما۔ جب فاسق کی مدح کی جاتی ہے رب عزوجل غضب فرماتا ہے اور اس کے سبب عرش الہی ہل جاتا ہے اسے امام ابن ابی الدنیا نے ذم الغیبة، ابویعلی نے مسند اور بیہقی نے شعب الایمان میں

حضرت انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اور ابن عدی نے الکامل میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔

خطباء جب کہ مجبوراً اس میں مبتلا ہوئے ان بندگانِ خدا نے چاہا کہ اس ذکر کو خطبے سے علیحدہ بھی کر دیں کہ نفسِ عبادت اسی امر پر مشتمل ہے اور بالکل خطبے سے جدائی بھی نہ معلوم ہو کہ آتشِ فتنہ مشتعل نہ رہے اس

---

1 ردالمحتار باب الجمعة مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۱ / ۵۹۹ 2 ردالمحتار کتاب الاشر بہ مطبوعہ مصطفی البانی مصر ۵ / ۳۲۷ 3 شعب الایمان حدیث ۴۸۸۶ باب فی حفظ اللسان مطبوعہ دار الکتب العلمیة بیروت ۴ / ۲۳۰

For this, if they did it such that while reciting the sermon they remained silent for a while, then after mentioning the kings, they completed the rest, it would not have been sufficient at all because the gathering remained one. And according to the clarification of all the Imams, a single gathering is a collector of words; whatever was said in one gathering is as if all words were uttered at once and together.

[Arabic Quote]: "From this, the connection of proposal (Ijab) with acceptance (Qabul) is completed if it follows in the gathering. Otherwise, the proposal was only a word that was uttered and then ceased to exist, and acceptance had not yet come into being. When it [acceptance] came into being, the proposal was no longer present, and that which is present cannot be linked to that which is absent, as stated in al-Hidayah and others."

[Urdu Translation of Quote]: And from this, the connection of the proposal with acceptance will be completed provided it is within the gathering, otherwise when the proposal was uttered verbally and acceptance had not yet come into existence, and when it came into existence, the proposal was no longer there, and the present cannot be linked with the absent; it is written thus in al-Hidayah etc. (T)

Therefore, this strategy was devised that for this mention, they should descend to the lower step and change the gathering as much as possible, because descending while reciting the sermon is conventionally intended for its interruption. Generally, an alien [action], especially with the intention of interruption, will cause a change in the gathering and separation of mention, just as scholars have considered moving from one branch to another while reciting a verse of prostration as a change of gathering. In Radd al-Muhtar, it is said:

[Arabic Quote]: "Perhaps the reason is that moving from one branch to another, and warping [for weaving], and the like, are numerous alien actions by which the gathering changes legally (hukman), like speaking and eating much. As previously mentioned, a gathering or a house changes legally by performing an act that is customarily considered an interruption of what preceded it. There is no doubt that these actions are like that, even if they occur in a mosque or a house. Rather, they change in reality, because the mosque is one place legally, and through these actions that include movement, it changes."

[Urdu Translation of Quote]: Perhaps the reason is that moving from one branch to another branch and setting the warp for making cloth are alien and numerous actions due to which the gathering becomes different legally, just as the gathering changes with excessive talking and eating, as passed previously that gathering and house change legally by every such work which is called in common practice (Urf) as ending the previous work. And there is no doubt in these actions being so, even if they occur in a mosque or house, rather a change will come in them in reality because the mosque legally is like one place and through these actions containing movement, it changes.

फतवा रज़विया जिल्द 8

इसके लिए अगर वे ऐसा करते कि खुतबा पढ़ते-पढ़ते कुछ देर खामोश रहते, उसके बाद सुल्तानों का ज़िक्र करके बाकी सब पूरा करते, तो यह हरगिज़ काफी न होता कि मजलिस (सभा) एक ही रही। और तमाम इमामों के स्पष्टीकरण के अनुसार एक मजलिस शब्दों का संग्रह होती है; एक मजलिस में जो कुछ कहा गया, वह ऐसा है मानो सभी शब्द एक साथ और एक ही समय में जारी हुए हों।

[अरबी उद्धरण]: "और इससे ईजाब (प्रस्ताव) का क़बूल (स्वीकृति) से संबंध पूरा होगा बशर्ते कि वह मजलिस के अंदर ही हो, वरना जब ईजाब मौखिक रूप से जारी हुआ और अभी तक क़बूल अस्तित्व में नहीं आया, और जब वह अस्तित्व में आया तो ईजाब मौजूद नहीं था, और मौजूद किसी लुप्त चीज़ से संबंधित नहीं हो सकता, जैसा कि हिदाया आदि में वर्णित है।"

[उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण]: और इससे ईजाब का क़बूल से रब्त (संबंध) पूरा होगा बशर्ते कि वह मजलिस के अंदर ही हो, वरना जब ईजाब लफ्ज़न सादिर (मौखिक रूप से जारी) हुआ और अभी तक क़बूल मअरज़े वजूद (अस्तित्व) में नहीं आया और जब वह मअरज़े वजूद में आया तो ईजाब न था और मौजूद किसी मादूम (लुप्त) से मरतबित (संबंधित) नहीं हो सकता, हिदाया वगैरह में ऐसे ही तहरीर है। (त)

इसलिए यह उपाय निकाला गया कि इस ज़िक्र के लिए वे निचली सीढ़ी तक उतर आएं और जहाँ तक संभव हो मजलिस बदल दें, क्योंकि खुतबा पढ़ते समय नीचे उतरना शरई तौर पर उसे काटने के लिए ही माना जाता है। आमतौर पर कोई बाहरी कार्य, विशेष रूप से काटने की नीयत से, मजलिस बदलने और ज़िक्र को अलग करने का कारण बनेगा, जिस तरह सजदे की आयत की तिलावत के दौरान एक डाल से दूसरी डाल पर जाने को उलेमा ने मजलिस बदलना माना है। रद अल-मुह्तार में है:

[अरबी उद्धरण]: "शायद वजह यह है कि एक डाल से दूसरी डाल पर जाना, और कपड़ा बुनने के लिए ताना लगाना आदि बाहरी और बहुत से कार्य हैं जिनकी वजह से मजलिस कानूनी रूप से (हुकमन) बदल जाती है, जैसे बहुत अधिक बोलने और खाने से मजलिस बदल जाती है। जैसा कि पहले बीत चुका है कि मजलिस और घर हर ऐसे काम से कानूनी रूप से बदल जाते हैं जिसे लोक-व्यवहार (उर्फ़) में पिछले काम को खत्म करने वाला कहा जाता हो। और इन कार्यों के ऐसा होने में कोई संदेह नहीं है, चाहे वे मस्जिद या घर में हों, बल्कि उनमें वास्तव में बदलाव आ जाएगा क्योंकि

मस्जिद कानूनी रूप से एक जगह की तरह होती है और इन कार्यों के कारण जिसमें स्थान परिवर्तन शामिल है, वह बदल जाती है।"

[उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण]: शायद वजह यह है कि एक शाख से दूसरी शाख की तरफ मुंतकिल (स्थानांतरित) होना और कपड़ा बनाने के लिए ताना लगाना आमाल-ए-अजनबी (बाहरी कार्य) और कसीर (अधिक) हैं जिनकी वजह से मजलिस हुकमन मुख्तलिफ हो जाती है जैसे कसीर कलाम और तआम (अधिक भोजन) से मजलिस बदल जाती है जैसा कि पीछे गुज़रा कि मजलिस और घर, हर ऐसे काम से हुकमन तब्दील हो जाते हैं जिन्हें उर्फ में माक़बल (पिछले) काम को खत्म करने वाला कहा जाता हो और इन अफ़आल (कार्यों) के ऐसा होने में शक ही नहीं अगरचे ये मस्जिद या घर में सरज़द (घटित) हों बल्कि इन में हक़ीक़तन तब्दीली आ जाएगी क्योंकि मस्जिद हुकमन एक जगह की तरह होती है।

पृष्ठ 673 का 425

کے لئے اگر یوں کرتے کہ خطبہ پڑھتے پڑھتے کچھ دیر خاموش رہتے اس کے بعد ذکر سلاطین کر کے بقیہ تمام کرتے تو یہ ہر گز کافی نہ تھا کہ مجلس واحد رہی اور مجلس واحد حسب تصریح کافہ ائمہ جامع کلمات ہوتی ہے جو کچھ ایک مجلس میں کہا گیا گویا سب الفاظ دفعۃً واحدۃً معاً صادر ہوئے۔

وعن هذا يتم ارتباط الايجاب بالقبول اذا لحقة في المجلس والا في الايجاب انما كان لفظاً صدر فعدم والقبول لم يوجد بعد و اذا وجد لم يكن الايجاب موجوداً والموجود لا يرتبط بالمعدوم كما افاده في الهداية وغيرها۔ اور اس سے ایجاب کا قبول سے ربط تمام ہوگا بشرطیکہ وہ مجلس کے اندر ہی ہو ورنہ جب ایجاب لفظاً صادر ہوا اور ابھی تک قبول معرضِ وجود میں نہیں آیا اور جب وہ معرضِ وجود میں آیا تو ایجاب نہ تھا اور موجود کسی معدوم سے مرتبط نہیں ہو سکتا، ہدایہ وغیرہ میں ایسے ہی تحریر ہے (ت)

لہٰذا یہ تدبیر نکالی کہ اس ذکر کے لئے زینہ زیریں تک اتر آئیں اور بقدر امکان مجلس بدل دیں کہ خطبہ پڑھتے پڑھتے نیچے اترنا شرعاً اس کے قطع ہی کے لئے معہود ہے تو عموماً اجنبی خصوصاً بہ نیتِ قطع تبدل مجلس وانفصال ذکر کا باعث ہوگا جس طرح تلاوتِ آیت سجدہ میں ایک شاخ سے دوسری پر جانے کو علماء نے تبدیل مجلس گنا ہے، اسی ردالمحتار میں ہے:

لعل وجهه ان الانتقال من غصن الى غصن و التسدية ونحو ذلك اعمال اجنبية كثيرة يختلف بها المجلس حكماً كالكلام والاكل الكثير لما مر من ان لمجلس او البيت يختلف حكماً بمباشرة عمل يعد في العرف قطعاً لما قبله ولاشك ان هذه الافعال كذلك وان كانت في المسجد او البيت بل يختلف بها حقيقة لان

المسجد مکان واحد حکماً وبهذه الافعال المشتملة علی الانتقال یختلف شاید وجہ یہ ہے کہ ایک شاخ سے دوسری شاخ کی طرف منتقل ہونا اور کپڑا بنانے کے لئے تانا لگانا اعمال اجنبی اور کثیر ہیں جن کی وجہ سے مجلس حکماً مختلف ہو جاتی ہے جیسے کثیر کلام اور طعام سے مجلس بدل جاتی ہے جیسا کہ پیچھے گزرا کہ مجلس اور گھر، ہر ایسے کام سے حکماً تبدیل ہو جاتے ہیں جنھیں عرف میں ماقبل کام کو ختم کرنے والا کہا جاتا ہو اور ان افعال کے ایسا ہونے میں شک ہی نہیں اگرچہ یہ مسجد یا گھر میں سرزد ہوں بلکہ ان میں حقیقۃ تبدیلی آجائے گی کیونکہ مسجد حکماً ایک جگہ کی طرح ہوتی ہے

Volume Eight Fatawa Razawiyya

“Reality, unlike eating, for the difference in it, and those actions which consist of moving, will result in it being legally different. Unlike eating, because in that, the difference will be legal (T).” Legal[1].

In this, it would be to the extent that the sermon was interrupted in the middle. To ward off this restriction, what is the harm in it when it is proven from the Holy Prophet (may Allah the Almighty's peace and blessings be upon him) himself in an authentic Hadith that he interrupted the sermon to pick up the princes, descended, and then went back up? So the discussion of some was not solid at all. In short, in the mentioned narration, there is no ground for the claimant of impermissibility to argue. Where the situation is as mentioned by this humble person, they should intend this descent and ascent, and when they cannot leave the mention and praise of the Sultan, there is no reason to abandon this reform. And where it is not so, as in our lands, mentioning false words and those contrary to Sharia in praise is purely forbidden in itself, especially mixing lies and atrocities in worship. For that, this descent cannot be an excuse. And when it is free from Sharia violations, with the intention of expressing status, as is in the letters of Sheikh Mujaddid (may Allah the Almighty have mercy on him): descent and ascent have a valid reason. In this case, condemnation is not necessary. Yes, due to the fear of the common people believing it to be Sunnah, it is appropriate for the scholars to occasionally abandon this descent and ascent, and even the mention of the Sultan (may Allah strengthen his victory) himself. Otherwise, praying for the Sultan of Islam is beloved and recommended, and for this intention, there is no harm in descent and ascent either. Charging Muslims with sin and committing an ugly innovation without Sharia evidence is clear falsehood. Therefore, the ruling most worthy of acceptance is that of the second respondent. This is what has become clear to me (T). And Allah the Glorified and Exalted knows best.

Problem 1350: From Mehrganj Chadanki Post Office, Baresian District, house of Munshi Abdul Karim, sent by Mr. Muhammad Hussain, 7 Jamadi-ul-Awwal 1346 AH. One group named Dudu Miyan residing in Faridpur... says Friday prayer is forbidden in Bengal, rather in all of India, because there is no city here according to the saying of Imam-e-Azam (may Allah the Almighty have mercy on him): "And he implements the rulings and establishes the limits." This definition is not met, but they take wages for Tasbeeh, Tahleel, etc. And one group offers Friday prayer and this region...

One group residing in Faridpur, called Dudu Miyan, believes that Friday prayer is forbidden in Bengal, rather in all of India, because the cities here do not fit the definition of Imam-e-Azam (may Allah the Almighty have mercy on him) that "the ruler should implement rulings and enforce limits (Hudud)," although...

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Prostration of Recitation, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/547. Page 426 of 673

खंड आठ फ़तावा रज़विया

"हकीकत में, खाने के विपरीत, क्योंकि इसमें मतभेद, और वे कार्य जो स्थानांतरण (मूवमेंट) पर आधारित हैं, के कारण कानूनी रूप से अलग हो जाएंगे। खाने के विपरीत, क्योंकि उसमें मतभेद कानूनी होगा (T)।" कानूनी[1]।

इसमें इतना होगा कि बीच में खुतबा रुक गया। इस पाबंदी को दूर करने के लिए, इसमें क्या बुराई है जब स्वयं हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से सही हदीस में शहजादों को लेने के लिए खुतबा रोककर नीचे उतरना और फिर ऊपर जाना साबित है? तो कुछ लोगों की बहस बिल्कुल बेबुनियाद थी। सारांश यह कि उल्लेखित नकल में नाजायज होने के दावेदार के लिए दलील का कोई स्थान नहीं है। जहाँ स्थिति वह हो जो इस फ़कीर ने उल्लेख की है, वहाँ इस उतरने और चढ़ने से यही नियत रखें और जब सुल्तान के उल्लेख और प्रशंसा को छोड़ना संभव न हो, तो इस सुधार को छोड़ने का कोई कारण नहीं है। और जहाँ ऐसा न हो जैसा कि हमारे देशों में है, वहाँ प्रशंसा में गलत और शरीयत के खिलाफ शब्दों का उल्लेख करना अपने आप में शुद्ध हराम है, विशेष रूप से इबादत में झूठ और बुराइयों को मिलाना। उसके लिए यह उतरना बहाना नहीं हो सकता। और जब शरीयत के उल्लंघन से मुक्त हो, मर्तबा जाहिर करने की नियत से, जैसा कि शेख मुजद्दिद (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) के मकतूबात में है: उतरने और चढ़ने की एक ठोस वजह है। इस स्थिति में इस पर आपत्ति करना आवश्यक नहीं है। हाँ, आम जनता में इसे सुन्नत मान लेने के डर से, उलेमा के लिए उचित है कि कभी-कभी इस उतरने-चढ़ने बल्कि स्वयं सुल्तान (अल्लाह उनकी जीत को मज़बूत करे) के उल्लेख को भी छोड़ दें। अन्यथा सुल्तान-ए-इस्लाम के लिए दुआ करना प्रिय और पसंद किया गया है, और इस नियत के लिए उतरने और चढ़ने में भी कोई हर्ज नहीं है। बिना शरीयत की दलील के मुसलमानों पर गुनाह का आरोप लगाना और बुरी बिद्दत का इल्जाम लगाना स्पष्ट झूठ है। अतः स्वीकार करने के योग्य फैसला दूसरे जवाब देने वाले का है। यह मुझ पर स्पष्ट हुआ है (T)। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला १३५०: डाकखाना मेहरगंज चढ़नकी जिला बरेसियां, मुंशी अब्दुल करीम का घर, प्रेषक मुहम्मद हुसैन साहब, ७ जमादी-उल-अव्वल १३४६ हिजरी। एक समूह जिसका नाम दुदू मियां है, जो फरीदपुर में रहते हैं... बंगाल बल्कि भारत में जुमे की नमाज़ को हराम कहते हैं क्योंकि यहाँ इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) के उस कथन के अनुसार कोई शहर नहीं है कि "और वह आदेशों को लागू करे और सीमाएँ(हुदूद) स्थापित करे।" यह परिभाषा यहाँ लागू नहीं होती, लेकिन वे

तस्बीह, तहलील आदि के लिए मज़दूरी लेते हैं। और एक समूह जुमे की नमाज़ पढ़ता है और इस क्षेत्र को...

एक समूह जो फरीदपुर में रहते हैं उन्हें दुदू मियां कहा जाता है, उनके अनुसार बंगाल बल्कि पूरे भारत में जुमा हराम है क्योंकि यहाँ जो शहर हैं वे इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि) के कथन कि "वहाँ शासक आदेश लागू करे और सीमाएँ(हुदूद) जारी करे" की परिभाषा पर खरे नहीं उतरते, हालाँकि...

[1] रद अल-मुहतार, सजदा-ए-तिलावत का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित १/५४७। पृष्ठ ४२६ / ६७३

حقیقۃ بخلاف الاکل فان الاختلاف فیہ اور ان افعال جو انتقال پر مشتمل ہیں کی وجہ سے حکمًا مختلف ہوجائے گی۔ بخلاف کھانے کے ، کیونکہ اس میں اختلاف حکمًا ہوگا۔ (ت) حکمی[1]۔

اس میں اس قدر ہوگا کہ بیچ میں خطبہ قطع کرنا ہوا اس محظور کے دفعہ کو ، اس میں کیا محذ ور جب خود حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے صحیح حدیث شاہزادوں کے لینے کے لئے خطبہ قطع فرماکر نیچے اترنا پھر اوپر تشریف لے جانا ثابت تو بعضہم کی بحث اصلاً متجر نہ تھی۔ غرض نقل مذکور میں مدعی عدم جواز کے لئے کوئی محل احتجاج نہیں ، جہاں صورت یہ ہو جو فقیر نے ذکر کی وہاں اس نزول و صعود سے یہی نیت کریں اور جب ذکر و مدح سلطان ترک نہ کرسکیں اس مصلح کے ترک کی کوئی وجہ نہیں اور جہاں ایسا نہ ہو جیسا ہمارے بلاد میں وہاں مدح میں الفاظ باطلہ و مخالفہ شرع ذکر کرنا خود حرام خالص ہے، خصوصًا کذب و شنائع کو عبادت میں ملانا ، تو اس کے لئے یہ نزول عذر نہیں ہو سکتا، اور جب مخالفات شرع سے پاک توبہ نیت اظہار مراتب ، جس طرح شیخ مجد درحمہ اللہ تعالیٰ کے مکتوبات میں ہے : نزول و صعود ایک وجہ موجہ رکھتا ہے اس صورت میں اس پر نکیر لازم نہیں ، ہاں عوام سے اندیشہ اعتقاد سنیت کے سبب علماء کو مناسب کہ گاہ گاہ اس نزول صعود بلکہ خود ذکر سلطان اعز اللہ نصرہ کو بھی ترک کریں ورنہ دعائے سلطان اسلام محبوب و مندوب ہے اور اس نیت کے لئے نزول و صعود میں بھی حرج نہیں، اور بے دلیل شرعی مسلمانوں پر الزام گناہ وار تکاب بدعت شنیعہ باطل مبین ، پس احق بالقبول حکم مجیب ثانی ہے ھذا ما ظھر لی (یہ مجھ پر واضح ہوا ہے ۔ ت) واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۵۰: از ڈاک خانہ مہر گنج چڑ نکی ضلع بریسیاں مکان منشی عبدالکریم مرسلہ محمد حسین صاحب ۷ جمادی الاولیٰ ۱۳۴۶ھ یک فریق اسمہ دودمیاں متواطن فورید فوردنی اند صلوۃ جمعہ را بملک بنگالہ بلکہ ہند را حرام گویند چراینجا شہر نیست بمصداق قول امام اعظم رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ وینفذ الاحکام ویقیم الحدودایں تعریف نیست مگر اجرت تسبیح و تہلیل وغیر ذلک اخذ می کنند ویک جماعت صلوۃ جمعہ رامی خوانند وایں دیار را

ایک فریق جو فورید فوردنی میں رہائش پذیر ہیں ان کو دودمیاں کہا جاتا ہے ان کے نزدیک بنگالہ بلکہ تمام ہندوستان میں جمعہ حرام ہے کیونکہ یہاں جو شہر ہیں امام اعظم رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ کے قول کہ (وہاں حاکم احکام نافذ کرے اور حدود جاری کرے) کی تعریف پر پورے نہیں اترتے ، حالانکہ

[1]ردالمحتار باب سجود التلاوۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۴۷ Page 426 of 673

Fatawa Rizwiya Volume 8

[Right Column - continued from previous page] ...Friday. They take wages for Tasbeeh and Tahleel. One group performs it and considers that area a city according to the opinion of the 'Sahibayn' (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad). Some say that according to the definition of a city as "any place where the largest mosque cannot accommodate all the people of that place if they gather," all of Bengal and India are called cities, and they perform prayers. They say taking wages for Tasbeeh and Tahleel is prohibited (haram), stating that according to the Great Imam (Abu Hanifa) it is haram while according to the Sahibayn it is permissible. However, I will follow the opinion of the predecessors (Mutaqaddimeen) and not the successors (Mutakhireen). Thus, these two groups are in dispute with each other. (T)

[Left Column - Persian/Urdu text corresponding to the above] A city is called such according to the opinion of the Sahibayn, which is the opinion of some, and it is a place where if the people gather in its largest mosque, it cannot contain them. Thus, by this criterion, the lands of Bengal and India are called cities, and the mentioned prayer is performed in them. But they call taking wages for Tasbeeh and Tahleel haram. And they say that according to the Great Imam it is haram, and according to the Sahibayn it is permissible, but I follow the opinion of the predecessors and have not followed the successors. Thus, both these groups are disputing.

[Heading] The Answer:

[Right Column] This definition of a city they are giving—that it is a place whose largest mosque does not have the capacity and space for its people—is neither the school of the Imam nor the opinion of the Sahibayn. Rather, it is a rare and retracted (marju') narration, and there is no need for it. India and Bengal are undoubtedly cities of Dar al-Islam. Friday prayer is obligatory (fard) in them; abandoning it is a severe sin, and denying it is extreme misguidance. According to the Great Imam and other Imams of ours, a city is that which has streets and permanent markets, and has villages surrounding it, which in modern terminology are called a district (Zila) or a sub-district (Pargana). And there should be some ruler there who possesses such authority and power that he can take justice for the oppressed from the oppressors, even if he does not actually do so; he should be able to enforce laws and...

[Left Column - Persian/Urdu text corresponding to the above] That which they say, "A city is what its largest mosque cannot contain its inhabitants," is neither the school of the Imam nor the opinion of the Sahibayn, but it is a rare and retracted narration,

and there is no need for it. The cities of India and Bengal are undoubtedly cities of Dar al-Islam, and Friday prayer is obligatory in them, and abandoning it is a severe disobedience, and its denial is a distant misguidance. In the school of the Imam and our other Imams, a city is that which has streets and permanent markets, and has villages for it, such that in the reform of the state, it is called a district or pargana. And in it should be a ruler who, by his grandeur and power, can take the right of the oppressed from the oppressors even if he does not take it. This is the meaning of "enforcing laws and establishing limits (Hudood)." Otherwise, what would you say about India and Bengal? Even the two Sacred Sanctuaries (Mecca and Medina) themselves would be excluded from being cities, and the establishment of Friday prayers there...

फ़तावा रज़विया खंड 8

[दाहिना कॉलम] ...जुमा। वे तस्बीह और तहलील पर मज़दूरी लेते हैं। एक जमात इसे अदा करती है और इस क्षेत्र को 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के कथन के अनुसार 'शहर' मानती है। कुछ का कहना है कि शहर की इस परिभाषा "हर वह जगह जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद में वहाँ के सभी लोग जमा हों तो वह उनकी गुंजाइश न रखती हो" के अनुसार बंगाल और पूरे भारत को शहर कहते हैं और नमाज़ अदा करते हैं। वे तस्बीह और तहलील पर मज़दूरी को हराम कहते हैं, कि इमाम-ए-आज़म के कथन के अनुसार यह हराम है और साहिबैन के नज़दीक जायज़ है, लेकिन मैं पूर्ववर्तियों के कथन का पालन करूँगा, परवर्तियों का नहीं। इसी तरह ये दोनों जमातें आपस में विवाद कर रही हैं। (त)

[बायाँ कॉलम - फ़ारसी/उर्दू मूल पाठ] शहर उसे कहते हैं साहिबैन के कथन के अनुसार, और यही कुछ का कहना है, और वह ऐसा स्थान है जब उसके निवासी उसकी सबसे बड़ी मस्जिद में जमा हों तो वह उन्हें न समा सके। तो इस प्रमाण से बंगाल और भारत के देश को शहर कहा जाता है और उसमें उक्त नमाज़ अदा की जाती है। लेकिन तस्बीह और तहलील की मज़दूरी को हराम कहते हैं। और यह कहते हैं कि इमाम-ए-आज़म के कथन के अनुसार हराम है और साहिबैन के नज़दीक जायज़ है, पर मैं पूर्ववर्तियों के कथन का अनुसरण करता हूँ और परवर्तियों के पीछे नहीं चला। इसी प्रकार ये दोनों जमातें विवाद करती हैं।

[शीर्षक] अल-जवाब (उत्तर):

[दाहिना कॉलम] यह जो शहर की परिभाषा कर रहे हैं कि वह स्थान जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद वहाँ के लोगों के लिए पर्याप्त और विस्तृत न हो, यह न तो इमाम का मज़हब है और न ही साहिबैन का कथन, बल्कि यह एक दुर्लभ और अस्वीकृत (मरजूअ) रिवायत है। इसकी आवश्यकता भी नहीं है। भारत और बंगाल निस्संदेह 'दारुल इस्लाम' के शहर हैं। इनमें जुमा फ़र्ज़ है; इसे छोड़ना बड़ा गुनाह है और इसका इनकार करना घोर पथभ्रष्टता है। इमाम-ए-आज़म और हमारे अन्य इमामों के अनुसार, शहर वह होता है जिसमें गलियाँ हों और स्थायी बाज़ार हों, और उसके लिए गाँव हों जिन्हें वर्तमान शब्दावली में ज़िला या परगना कहा जाता है। और वहाँ कोई न कोई ऐसा शासक हो जिसके पास इतने अधिकार और शक्ति हो कि वह मज़लूम को ज़ालिम से इंसाफ़ दिला सके, चाहे वह व्यावहारिक रूप से ऐसा न कर रहा हो। वह आदेशों को लागू कर सके और...

[बायाँ कॉलम - फ़ारसी/उर्दू मूल पाठ] वह जो कहते हैं कि "शहर वह है जिसकी सबसे बड़ी मस्जिद उसके निवासियों को न समा सके", न इमाम का मज़हब है और न साहिबैन का कथन, बल्कि दुर्लभ और अस्वीकृत रिवायत है और उसकी कोई ज़रूरत नहीं। भारत और बंगाल के शहर निस्संदेह दारुल इस्लाम के शहर हैं और उनमें जुमा फ़र्ज़ है और उसका त्याग कठोर पाप है और उसका इनकार दूर की पथभ्रष्टता। इमाम और हमारे अन्य इमामों के मज़हब में शहर वह है जिसके गलियाँ और स्थायी बाज़ार हों और उसके गाँव हों, जैसा कि वर्तमान व्यवस्था में ज़िला या परगना कहा जाता है। और उसमें एक हाकिम हो जो अपने प्रताप और प्रभुत्व से पीड़ितों का हक़ अत्याचारियों से ले सके चाहे वह न ले। यही अर्थ है 'आदेश लागू करने और दंड स्थापित करने' का, अन्यथा भारत और बंगाल के बारे में क्या कहेंगे? स्वयं दोनों पवित्र हरम (मक्का और मदीना) शहर होने से बाहर हो जाएंगे और वहाँ जुमा का आयोजन...

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

[دایاں کالم] ---جمعہ وہ تسبیح و تہلیل پر اجرت لیتے ہیں ایک جماعت ادا کرتی ہے اور اس علاقہ کو صاحبین کے قول کے مطابق شہر قرار دیتی ہے، اور بعض کا قول ہے کہ شہر کی اس تعریف "ہر جگہ جس کی سب سے بڑی مسجد میں وہاں کے تمام لوگ جمع ہوں تو وہ ان کی گنجائش نہ رکھتی ہو" کے مطابق ملک بنگالہ اور تمام ہندوستان کو شہر کہتے ہیں اور نماز ادا کرتے ہیں تسبیح و تہلیل پر اجرت حرام کہتے ہیں کہ امام اعظم کے قول کے مطابق حرام اور صاحبین کے نزدیک جائز ہے مگر میں متقدمین کے قول کی اتباع کرونگا نہ کہ متاخرین کی، علی ہذا القیاس یہ دونوں جماعتیں آپس میں تنازع کر رہی ہیں۔ (ت)

[بایاں کالم] شہر گویند بمطابق قول صاحبین وہو قول البعض وہو موضع اذا اجتمع اہل فی اکبر مساجدہ لم یسعہم فہو مصر بمصداق ایں کہ ملک بنگالہ وہند را شہر بگویند و نماز مذکور در و ادا می کنند مگر اجرت تسبیح تہلیل را حرام گویند وایں گویند بمطابق قول امام اعظم حرام است و نزد صاحبین جائزست مگر قول متقدمین را اتباع می کنم و متاخرین در پائے نشدم علی ہذا القیاس ایں ہر جماعت تنازع می کنند۔

الجواب:

[دایاں کالم] یہ جو شہر کی تعریف کر رہے ہیں کہ وہ مقام جس کی سب سے بڑی مسجد وہاں کے لوگوں کے لئے گنجائش و وسعت نہ رکھتی ہو یہ مذہب امام ہے نہ صاحبین کا قول بلکہ روایت نادرہ مرجوعہ ہے اور اس کی حاجت بھی نہیں ہندوستان اور بنگالہ بلاشبہ شہر دارالاسلام ہیں ان میں جمعہ فرض ہے اس کا ترک سخت گناہ اور اس کا انکار شدید گمراہی ہے، امام اعظم اور باقی

ائمہ کے ہاں شہر وہ ہوتا ہے جس کے کوچے ہوں اور دائمی بازار ہوں اور اس کے لئے دیہات ہوں جنہیں موجودہ اصطلاح میں ضلع یا پرگنہ کہا جاتا ہے اور وہاں کوئی نہ کوئی ایسا حاکم ہو جو اتنے اختیارات رکھتا ہو کہ مظلوم کو ظالم سے انصاف دلائے اگر چہ وہ عملاً ایسا نہ کر رہا ہو" وہ احکام کو نافذ کر سکے اور

[بایاں کالم] آنکہ گویند المصر مالا یسع اکبر مساجدہ اہلہ نہ مذہب امام ست نہ قول صاحبین بلکہ روایت نادرہ مرجوحہ است و حاجت باونیست امصار دیار ہند وبنگالہ بلا شبہہ شہر ہائے دارالاسلام ست وجمعہ در انہا فرض وترک او معصیت شدید ہ و انکار او ضلالت بعیدہ در مذہب امام وسائر ائمہ ما مصر آنست کہ کوچہا و بازار ہائے دائمہ داشتہ باشد و مر اور ار و ستاہا باشد چنانکہ اور ا در اصلاح حال ضلع یا پر گنہ خوانند و در وحاکمی باشد کہ بہ حشمت و سطوت خود داد ستم زدہ از ستمگراں تواں گرفت اگر چہ نہ گیرد، ہمین ست معنی ینفذ الاحکام و یقیم الحدود والا از ہند وبنگالہ چہ گوئی خود حرمین محترمین بیز از مصریت خارج شوند وا قامت جمعہ آنجا

Fatawa-e-Razvia Volume 8

...forbidden because the boundaries have been lost and closed for hundreds of years. Taking wages for reciting 'Tasbeeh' and 'Tahleel' is not permissible; hiring is for permissible matters, not for acts of obedience or disobedience, as established by Al-Mawla Ibn Abidin al-Shami in Radd al-Muhtar, al-Uqud al-Durriyya, and Shifa al-Alil. And Allah knows best.

"To establish boundaries" means this, otherwise, what to say about India and Bengal, even the Holy Sanctuaries (Haramain) would fall outside the definition of a city, and Friday prayer would be forbidden there because the establishment of boundaries has ceased and been closed for centuries. And taking wages for Tasbeeh and Tahleel is not permissible because rent and wages are for permissible matters, not for matters of obedience or disobedience, as Ibn Abidin Shami has researched in Radd al-Muhtar, Al-Uqud al-Durriyya, and Shifa al-Alil. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1351: From Calcutta, Dharamtala Street, sent by Maulvi Abdul Muttalib Sahib, 3 Jamadi al-Akhira 1326 AH.

Praising Allah and offering salutations to the Prophet (PBUH), what do the noble Hanafi scholars say regarding this matter: Is Friday prayer obligatory for the people of villages or not? Provide a sufficient answer and be rewarded with a complete reward. (T)

The Answer: Friday prayer is not obligatory for the people of villages because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "There is no Friday prayer, no Takbirat al-Tashreeq, no Eid al-Fitr prayer, and no Eid al-Adha prayer except in a central city or a great city." 1. And in Fath al-Qadir, it is stated that Allah's command "Hasten to the remembrance of Allah" is not absolute by consensus among the Ummah, as it is not permissible to establish it in wildernesses by consensus, nor in every village according to Him. Therefore, a specific location was intended.

Friday prayer is not obligatory for the people of villages because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Friday prayer, Takbirat al-Tashreeq, Eid al-Fitr, and Eid al-Adha prayers can only be held in a central city or a very large city." In Fath al-Qadir, regarding Allah's command "Then hasten to the remembrance of Allah," it is stated that it is not absolute among the Imams by consensus because

establishing Friday prayer in forests is not permissible by consensus and according to Imam Shafi'i it cannot be held in villages, so here...

1. Musannaf Ibn Abi Shaybah, Kitab al-Salat, published by Idara al-Qur'an wal-Uloom al-Islamiyya Karachi 101/2. Note: In Musannaf Ibn Abi Shaybah, this Hadith is narrated as a 'mauquf' (attributed to a companion) statement from Hazrat Ali (may Allah be pleased with him). - Nazir Ahmad.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द हशतम (खंड 8)

...निषिद्ध है क्योंकि सैकड़ों वर्षों से सीमाएं विलुप्त और बंद हो गई हैं। तस्बीह और तहलील पढ़ने पर मजदूरी लेना जायज नहीं है; किराया और मजदूरी जायज कामों के लिए होती है, न कि इबादत या गुनाह के कामों में, जैसा कि मौला इब्न आबिदीन अल-शामी ने रद अल-मुहतार, अल-उक़ूद अल-दुर्रिया और शिफ़ा अल-अलील में सिद्ध किया है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

"सीमाएं स्थापित करना" का यही अर्थ है, अन्यथा भारत और बंगाल की तो बात ही क्या, स्वयं हरमैन शरीफ़ैन भी शहर की परिभाषा से बाहर हो जाएंगे और वहां जुमा हराम होगा क्योंकि सीमाओं की स्थापना सदियों से समाप्त और बंद हो गई है। और तस्बीह और तहलील पर मजदूरी लेना जायज नहीं है क्योंकि किराया और मजदूरी जायज कामों में होती है न कि इबादत और गुनाह के कामों में, जैसा कि इब्न आबिदीन शामी ने रद अल-मुहतार, उक़ूद अल-दुर्रिया और शिफ़ा अल-अलील में इसकी तहकीकात की है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसाला 1351: कोलकाता, धरमतला स्ट्रीट से, मौलवी अब्दुल मुत्तलिब साहब द्वारा प्रेषित, 3 जमादी अल-आख़िर 1326 हिजरी।

अल्लाह की प्रशंसा और हुज़ूर अलैहिस्सलाम की सेवा में सलाम पेश करते हुए, महान हनफ़ी विद्वानों का इस मसले में क्या कहना है कि क्या ग्रामीणों पर जुमा अनिवार्य है या नहीं? एक पर्याप्त उत्तर के साथ नवाजें और पूर्ण पुण्य प्राप्त करें। (त)

उत्तर: ग्रामीणों पर जुमा अनिवार्य नहीं है क्योंकि नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का कथन है: "जुमा, तकबीरात-ए-तशरीक, ईद-उल-फ़ितर और ईद-उल-अज़हा की नमाज़ केवल जामा शहर या बहुत बड़े शहर में ही हो सकती है।" 1. फ़तहुल क़दीर में है कि अल्लाह तआला का फरमान "तो तुम अल्लाह के ज़िक्र की तरफ दौड़ो" उम्मत के बीच सर्वसम्मति से पूर्ण नहीं है क्योंकि जंगलों में जुमा स्थापित करना सर्वसम्मति से जायज नहीं है और न ही हर गाँव में उनके अनुसार। अतः स्थान की विशिष्टता अभिप्रेत थी।

ग्रामीणों पर जुमा अनिवार्य नहीं है क्योंकि नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का इरशाद है: "जुमा, तकबीरात-ए-तशरीक़, ईद-उल-फ़ित्र, ईद-उल-अज़हा की नमाज़ सिर्फ जामा शहर या बहुत बड़े शहर में ही हो सकती है," फ़तहुल क़दीर में है अल्लाह तआला का फरमान "पस तुम अल्लाह तआला के ज़िक्र की तरफ भागो" इमामों के यहाँ सर्वसम्मति से पूर्ण नहीं है क्योंकि जुमा का क़ियाम

जंगलों में सर्वसम्मति से जायज़ नहीं और इमाम शाफ़ई के नज़दीक देहात में जुमा नहीं हो सकता तो यहाँ...

1. मुसन्निफ इब्न अबी शैबा, किताबुस-सलात, इदारातुल कुरान वल उलूम अल-इस्लामिया कराची द्वारा प्रकाशित, 101/2। टिप्पणी: मुसन्निफ इब्न अबी शैबा में यह हदीस हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मौक़ूफ़न वर्णित है। - नज़ीर अहमद।

पृष्ठ 428/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

حرام زیرا کہ حدود از صد ہا سال مفقود مسدود شدہ است و بر تسبیح و تہلیل اجرت خواند گرفتن روا نیست اجارہ در امور مباحہ باشد نہ در طاعت و معصیت کما حقہ المولیٰ بن عابدین الشامی فی رد المختار والعقود الدریہ وشفاء العلیل واللہ تعالیٰ اعلم۔

حدود قائم کرسکے" کا یہی معنی ہے ورنہ ہند اور بنگلہ کی کیا بات ہوئی خود حرمین شریفین بھی شہر کی تعریف سے خارج ہو جائیں گے اور وہاں جمعہ حرام ہوگا کیونکہ حدود کا قیام صدیوں سے ختم اور بند ہو گیا ہے اور تسبیح و تہلیل پر اجرت لینا جائز نہیں کیونکہ کرایہ واجرت امورِ مباحہ میں ہوتی ہے نہ کہ امورِ طاعت و معصیت میں جیسا کہ ابن عابدین شامی ردالمحتار، عقود الدریہ اور شفاء العلیل میں اس کی تحقیق کی ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۵۱: از کلکتہ دھرم تلہ اسٹریٹ مرسلہ مولوی عبد المطلب صاحب ۳ جمادی الآخرہ ۱۳۲۶ھ

حامداً ومصلیاً، ما قولکم ایہا العلماء الکرام من الاحناف العظام فی ہذہ المسئلۃ ان صلوٰۃ الجمعۃ واجبۃ علی اہل القریٰ ام لا بینوا بجواب شاف توجروا بثواب واف۔ اللہ تعالیٰ کی حمد اور حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام کی خدمت میں سلام عرض کرتے ہوئے، حنفی علماء کرام کا اس مسئلہ میں کیا فرمان ہے کہ اہل دیہات پر جمعہ لازم ہے یا نہیں؟ جواب کافی سے نواز رثواب کامل حاصل کریں۔ (ت)

الجواب: الجمعۃ علی اہل القریٰ لیست بواجبۃ لقولہ علیہ الصلوٰۃ والسلام لا جمعۃ ولا تشریق ولا صلوٰۃ فطر ولا اضحیٰ الا فی مصر جامع او فی مدینۃ عظمیۃ ۱۔ وفی فتح القدیر ان قولہ تعالیٰ "فَاسْعَوْا اِلٰی

ذِكْرِ اللهِ" لیس علی اطلاقہ اتفاقاً بین الامۃ اذلا یجوز اقامتہا فی البراری اجماعاً ولا فی کل قریۃ عندہ فکان خصوص المکان مراداً

جمعہ اہل دیہات پر لازم نہیں کیونکہ نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے: جمعہ تکبیرات تشریق، عید الفطر، عید الاضحیٰ کی نماز صرف جامع شہر یا بہت بڑے شہر میں ہی ہو سکتی ہے، فتح القدیر میں ہے اللہ تعالیٰ کا فرمان "پس تم اللہ تعالیٰ کے ذکر کی طرف بھاگو" ائمہ کے ہاں بالاتفاق مطلق نہیں کیونکہ جمعہ کا قیام جنگلوں میں بالاتفاق جائز نہیں اور امام شافعی کے نزدیک دیہات میں جمعہ نہیں ہو سکتا تو یہاں

۱ مصنف ابن ابی شیبہ کتاب الصلوٰۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱۰۱/۲ ف: مصنف ابن شیبہ میں یہ حدیث حضرت علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے موقوفاً منقول ہے۔ نذیر احمد

Volume Eight Fatawa Razawiyya

[Arabic Column Text:] There is consensus in this matter that a specific place must be designated. Imam Shafi'i designated the village, while we designated the city (misr), and it is more appropriate due to the Hadith of Ali (may Allah be pleased with him). If his action were opposed by someone else's action, priority would be given to Ali (may Allah be pleased with him). How could it be otherwise, when no opposition to what we mentioned has been established? That is why it is not narrated from the Companions that when they conquered lands, they busied themselves with establishing pulpits and Friday prayers except in cities, not in villages. Had there been such a narration, even if singular, it would have been reported. Friday prayer was made obligatory upon the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in Makkah before the Migration, as recorded by al-Tabarani from Ibn Abbas (may Allah be pleased with him), but it was not established due to the disbelievers. When the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and his migrating companions reached Madinah, he stayed with the Banu Amr bin Awf for fourteen days and did not perform the Friday prayer. This is evidence for the absence of Friday prayer in villages; otherwise, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) would have performed it. Moreover, al-Bukhari narrated in his Sahih that people used to take turns, and in one report, they would come for Friday prayer from their homes and from the outskirts (al-Awali), arriving in dust...

[Urdu Column Text:] By consensus, a specific place must be designated; Imam Shafi'i researched the village while we researched the city, and the city is more appropriate due to the Hadith of Ali (may Allah be pleased with him). If there were a counter-action by someone else, Hazrat Ali (may Allah be pleased with him) would be prioritized over it. And why should this priority not be, given that no contradiction against our mentioned meaning is established? This is why it is narrated from the Companions that when they conquered regions, they only established congregational mosques and pulpits in cities, not in villages. Had they established them in villages, their action would have been narrated, even if it were just one report. It is also accepted that Friday prayer (Jumu'ah) was made obligatory upon the Prophet (peace and blessings be upon him) in Makkah before the Migration, as Imam Tabarani narrated from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). However, due to the disbelievers there, you did not establish the Friday prayer. When you (peace and blessings be upon him) and your Companions migrated to Madinah al-Tayyibah, the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) stayed with

the tribe of Banu Amr bin Awf for fourteen days, but you did not establish the Friday prayer there. This serves as proof that there is no Friday prayer in villages; otherwise, the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) would have established it there. Furthermore, although Imam Bukhari narrated a sahih report that people used to perform Friday prayer, and in one narration it is mentioned that people would come for Friday prayer from their homes and from 'Awali (outskirts), and they would arrive in dust and get covered by it.

1. Fath al-Qadir, Chapter on Friday Prayer, published by Nooria Razawiyya Sukkur 2/24
2. Fath al-Qadir, Chapter on Friday Prayer, published by Nooria Razawiyya Sukkur 2/24

[अरबी कॉलम का पाठ:] इसमें आम सहमति है कि एक विशिष्ट स्थान का निर्धारण करना होगा। इमाम शाफ़ी ने गाँव को निर्धारित किया और हमने शहर (मिस्र) को, और हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस के कारण यह अधिक उपयुक्त है। यदि उनके कार्य का विरोध किसी और के कार्य से होता, तो अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) को प्राथमिकता दी जाती। ऐसा कैसे न हो, जब हमने जो उल्लेख किया है उसके विरुद्ध कोई विरोध सिद्ध ही नहीं हुआ? यही कारण है कि सहाबा से यह वर्णित नहीं है कि जब उन्होंने देशों को जीता, तो उन्होंने शहरों के अलावा कहीं भी मिंबर और जुम्मा स्थापित करने की चिंता की, न कि गाँवों में। यदि ऐसा कोई विवरण होता, भले ही वह एकल होता, तो वह सूचित किया गया होता। जुम्मा की नमाज़ नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर मक्का में हिजरत से पहले अनिवार्य की गई थी, जैसा कि तबरानी ने इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) से दर्ज किया है, लेकिन काफिरों के कारण इसे स्थापित नहीं किया गया था। जब नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और उनके हिजरत करने वाले साथी मदीना पहुँचे, तो वह चौदह दिनों तक बनू अम्र बिन औफ के साथ रहे और जुम्मा की नमाज़ नहीं पढ़ी। यह गाँवों में जुम्मा की नमाज़ की अनुपस्थिति का प्रमाण है; अन्यथा, अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इसे अदा करते। इसके अलावा, बुखारी ने अपनी सहीह में रिवायत की है कि लोग बारी-बारी से आते थे, और एक रिपोर्ट में, वे अपने घरों और बाहरी इलाकों (अल-अवाली) से जुम्मा की नमाज़ के लिए आते थे, धूल में पहुँचते हुए...

[उर्दू कॉलम का पाठ:] सर्वसम्मति से, स्थान का निर्धारण करना होगा; इमाम शाफ़ी ने गाँवों का शोध किया और हमने शहर का, और शहर हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस के कारण अधिक उपयुक्त है। और यदि दूसरे के कार्य से इसका विरोध होता, तो हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) को उन पर वरीयता दी जाती। और यह वरीयता क्यों न दी जाए जब हमारे उल्लेखित अर्थ के विरुद्ध कोई विरोध सिद्ध ही नहीं है? इसीलिए सहाबा से यही वर्णित है कि जब उन्होंने क्षेत्रों को जीता, तो उन्होंने केवल शहरों में जामा मस्जिद और मिंबर बनाए, न कि गाँवों में। और अगर वे उन्हें गाँवों में बनाते, तो उनका यह कार्य वर्णित होता, चाहे वह केवल एक ही रिवायत क्यों न होती। और यह भी सर्वमान्य है कि जुम्मा हुज़ूर अलैहिस्सलाम पर मक्का में हिजरत से पहले अनिवार्य हुआ था, जैसा कि इमाम तबरानी ने हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से उद्धृत किया है। लेकिन वहाँ काफिरों के कारण आपने जुम्मा स्थापित नहीं किया। जब आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और आपके सहाबा ने मदीना तैयबा की ओर हिजरत की, तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) चौदह दिनों

तक बनू अम्र बिन औफ के कबीले में ठहरे रहे, लेकिन आपने वहाँ जुम्मा स्थापित नहीं किया। यह इस बात का प्रमाण है कि गाँवों में जुम्मा नहीं है, अन्यथा अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) वहाँ जुम्मा स्थापित करते। और इसके बावजूद कि इमाम बुखारी ने सहीह रिवायत की है कि लोग जुम्मा पाते थे, और एक रिवायत में है कि लोग अपने-अपने घरों और 'अवाली' (बाहरी इलाकों) से जुम्मा के लिए आते थे, तो वे धूल में आते और उन्हें धूल पहुँचती।

1. फतह अल-क़दीर, जुम्मा की नमाज़ का अध्याय, नूरिआ रज़विया सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 2/24
2. फतह अल-क़दीर, जुम्मा की नमाज़ का अध्याय, नूरिआ रज़विया सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 2/24

[عربی کالم کا متن:] فیھا اجماعًا فقدر الشافعی القریۃ الخاصۃ وقدرنا المصر وھو اولی لحدیث علی رضی اللہ تعالی عنہ ولو عورض بفعل غیرہ کان علی رضی اللہ تعالی عنہ مقدماً علیہ فکیف ولم یتحقق معارضۃ ما ذکرنا ایاہ ولھذا لم ینقل عن الصحابۃ انھم حین فتحوا البلاد اشتغلوا بنصب المنابر والجمع الا فی الامصار دون القری ولو کان النقل ولو احاداً ایضاً ان الجمعۃ فرضت علی النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم وھو بمکۃ قبل الھجرۃ کما اخرجہ الطبرانی عن ابن عباس رضی اللہ تعالی عنہ فلم یکن اقامتھا من اجل الکفار فلما ھاجر النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ومن ھاجر معہ من اصحابہ الی المدینۃ لبث رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم فی بنی عمر وبن عوف اربعہ عشر ایام ولم یصل الجمعۃ فھذا دلیل علی عدم الجمعۃ فی القری والا لصلی رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم الجمعۃ ومع ان البخاری روی فی صحیحہ کان الناس یتناوبون فی روایۃ یتناولون الجمعۃ من منازلھم والعوالی فیأتون فی

[اردو کالم کا متن:] بالاتفاق جگہ کہ تخصیص کرنا ہوگی، امام شافعی نے دیہات کی تحقیق کی اور ہم نے شہر کی، اور شہر حدیث علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی وجہ سے اولیٰ ہے اور اس کا معاوضہ اگر دوسرے کے عمل سے ہے تو حضرت علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کو اس پر تقدیم ہوگی اور یہ تقدیم کیوں نہ ہو کہ ہمارے مذکور معنی کے خلاف معارضہ ثابت ہی نہیں اسی لئے صحابہ سے یہی منقول ہے کہ جب انھوں نے علاقے فتح کئے تو فقط شہروں میں جامع مسجد اور منبر بنائے نہ کہ دیہاتوں میں، اور اگر وہ دیہاتوں میں بناتے تو ان کا یہ عمل منقول ہوتا خواہ کوئی ایک ہی روایت ہوتی، اور یہ بھی مسلم ہے کہ جمعہ حضور علیہ السلام پر مکہ میں قبل از ہجرت فرض ہوا جیسا کہ امام طبرانی نے حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے نقل کیا ہے لیکن وہاں کفار کی وجہ سے آپ نے جمعہ قائم نہ فرمایا جب آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور آپ کے صحابہ نے

مدینہ طیبہ ہجرت کی تو رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم چودہ دن تک قبیلہ بنو عمر وبن عوف کے ہاں ٹھہرے رہے مگر آپ نے وہاں جمعہ قائم نہ فرمایا، یہ دلیل ہے اس پر کہ دیہات میں جمعہ نہیں ورنہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وہاں جمعہ قائم فرماتے اور باوجودیکہ امام بخاری نے صحیح روایت کیا کہ لوگ جمعہ پاتے تھے، اور ایک روایت میں ہے کہ لوگ اپنے اپنے گھر اور عوالی سے جمعہ کے لئے آتے پس وہ غبار میں آتے تو انھیں غبار پہنچتی

1 فتح القدیر باب صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۲۴ 2 فتح القدیر باب صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۲۴

[Arabic Column] Dust settles on them, so they are affected by dust and sweat, and perspiration emanates from them. (1 Hadith). And in Al-Quduri: "Friday prayer is not valid except in a congregational city mosque or the city's prayer ground (Eidgah), and it is not permissible in villages." (2). Maulana Bahr al-Ulum said in his pillars under the word of Allah Almighty: "O you who have believed, when the call is made for prayer on the day of Jumu'ah (Friday), then proceed to the remembrance of Allah and leave trade" (i.e., trade becomes forbidden and striving towards Friday prayer becomes obligatory after hearing the call). Then indeed, conversation regarding trade may become lengthy, causing the sermon or the Friday prayer to be missed because merchants do not leave their transactions in this era. Therefore, it is forbidden starting from the first call (3). Thus, buying and selling in the city is evident. He also said in it: "It is disliked for the sick and others among those excused to pray Dhuhr in congregation on Friday. However, there is no harm in the congregation for Dhuhr for the villagers because Friday prayer is the gatherer of all congregations in the city" (4). Thus, it is known that the condition of the city for the obligation of Friday prayer is legislated because it has been inherited as a continuous practice from the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) until now, that the people of the villages do not perform Friday prayer.

[Urdu Column] ...and sweat comes, and it is in Al-Quduri that for Friday prayer, it is necessary to have a central city mosque or the city's Eidgah; Friday prayer is not permissible in villages. Maulana Bahr-ul-Ulum writes in "Arkan-ul-Islam" under this noble command of Allah Almighty: "O you who believe! When the call is made for prayer on Friday, run towards the remembrance of Allah and leave trade" that this means trade is forbidden after the Adhan and proceeding towards Friday prayer is necessary. Then, because conversation in trade becomes lengthy, Friday prayer and the sermon are missed because at such times merchants do not conclude their deals, and for this reason, it was forbidden right from the time of the first call. Thus, the occurrence of buying and selling in the city is evident. And it was also stated there that it is Makruh (disliked) for sick and other excused people to offer Dhuhr prayer in congregation on Friday. However, there is no harm in the Dhuhr congregation for villagers because in the city, Friday prayer is the gatherer of all congregations. From this, it becomes clear that for Friday prayer to be obligatory, the condition of being in a city is legislated because from the manifest life of the Holy Prophet (peace and

blessings be upon him) until today, it has been inherited as a continuous practice that the people of the villages do not offer Friday prayer.

[Footnotes] 1 Sahih al-Bukhari, chapter "From where is Friday prayer brought," etc., printed by Qadimi Kutub Khana, Karachi 1/123. 2 Al-Mukhtasar lil-Quduri, chapter on Friday prayer, printed by Matba' Majidi, Kanpur, p. 39. 3 Rasa'il al-Arkan, section on Friday prayer, printed by Maktaba Islamia, Quetta, p. 118. 4 Rasa'il al-Arkan, section on Friday prayer, printed by Maktaba Islamia, Quetta, p. 118.

फ़तावा रिज़विया खंड आठ

[अरबी स्तंभ] धूल, तो धूल और पसीना उन तक पहुँचता है और उनसे पसीना निकलता है। (1 हदीस)। और अल-कुदूरी में है: "जुमे की नमाज़ शहर की जामा मस्जिद या शहर के ईदगाह के बिना मान्य नहीं है, और गाँवों में यह जायज़ नहीं है।" (2)। हमारे मौलाना बहरुल उलूम ने अपनी रचना 'अरकान' में अल्लाह तआला के इस वचन के तहत फरमाया: "ऐ ईमान वालों! जब जुमे के दिन नमाज़ के लिए निदा (अज़ान) दी जाए, तो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ दौड़ो और व्यापार छोड़ दो।" (अर्थात, अज़ान सुनने के बाद व्यापार हराम हो जाता है और जुमे की नमाज़ के लिए जाना अनिवार्य हो जाता है)। फिर, व्यापार में चर्चा लंबी हो सकती है, जिससे खुतबा या जुमे की नमाज़ छूट सकती है क्योंकि इस ज़माने में व्यापारी अपना सौदा नहीं छोड़ते। इसलिए पहली अज़ान से ही इसे वर्जित किया गया है। (3)। अतः शहर में ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त होना स्पष्ट है। उन्होंने यह भी फरमाया: "बीमारों और अन्य मजबूर लोगों के लिए जुमे के दिन जमात के साथ ज़ुहर की नमाज़ पढ़ना मकरूह है। हालाँकि ग्रामीणों के लिए ज़ुहर की जमात में कोई हर्ज नहीं है क्योंकि शहर में जुमा सभी जमातों का संकलक होता है।" (4)। अतः, यह ज्ञात होता है कि जुमे की अनिवार्यता के लिए शहर की शर्त शरीयत सम्मत है क्योंकि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने से लेकर अब तक यह निरंतर प्रथा के रूप में चला आ रहा है कि गाँव के लोग जुमा नहीं पढ़ते।

[उर्दू स्तंभ] ...और पसीना आता, और कुदूरी में है कि जुमे के लिए शहर की जामा या शहर की ईदगाह का होना ज़रूरी है, देहातों में जुमा जायज़ नहीं। मौलाना बहरुल उलूम "अरकान-उल-इस्लाम" में अल्लाह तआला के इस इरशाद-ए-गिरामी "ऐ ईमान वालों! जब जुमे के दिन नमाज के लिए निदा दी जाए तो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ दौड़ कर आओ और बेअ (व्यापार) तर्क कर दो" के तहत लिखते हैं यानी अज़ान के बाद बेअ हराम है और जुमे की तरफ सई (कोशिश) लाज़िम है। फिर बेअ में गुफ़्तगू तवील हो जाने की वजह से जुमा और खुतबा फ़ौत हो जाता है क्योंकि ऐसे वक़्त ताज़िर (व्यापारी) सौदा ख़त्म नहीं करते और इसी लिए निदा-ए-अव्वल के वक़्त ही से इस से मना कर दिया गया। पस बेअ-ओ-शिरा (ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त) का शहर में होना ज़ाहिर है। और वहां ये भी फ़रमाया कि मरीज़ और दीगर माज़ूर लोगों के लिए जुमे के दिन जमात के साथ ज़ुहर अदा करना मकरूह है, अलबत्ता देहाती लोगों के लिए ज़ुहर की जमात में कोई हरज नहीं क्योंकि शहर में जुमा तमाम जमातों का जामे होता है। इस से ये बात वाज़ेह हो जाती है कि वुजूबे जुमा के लिए शहर का शर्त होना

मशरूअ है क्योंकि हुज़ूर अलैहिस्सलातु वस्सलाम की ज़ाहिरी हयात से ले आज तक यही मुतवारिस है कि अहल-ए-देहात जुमा नहीं पढ़ते।

[पादलेख] 1 सहीह अल-बुखारी, अध्याय "जुमा कहाँ से लाई जाती है" आदि, मुद्रित: कदीमी कुतुब खाना, कराची 1/123। 2 अल-मुख्तसर लिल-कुदूरी, जुमे की नमाज़ पर अध्याय, मुद्रित: मतबा मजीदी, कानपुर, पृ. 39। 3 रसाईल अल-अरकान, जुमे पर खंड, मुद्रित: मकतबा इस्लामिया, क्वेटा, पृ. 118। 4 रसाईल अल-अरकान, जुमे पर खंड, मुद्रित: मकतबा इस्लामिया, क्वेटा, पृ. 118।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[عربی کالم] الغبار فیصیبھم الغبار والعرق ویخرج منھم العرق 1 الحدیث وفي القدوري ولا تصح الجمعة الا فی مصر جامع اوفی مصلی المصر ولا تجوز فی القری 2 قال مولانا بحر العلوم فی ارکانه تحت قوله تعالی یایھا الذین امنوا اذا نودی للصلوة من یوم الجمعة فاسعوا الی ذکر الله وذروا البیع (ای یحرم البیع ویجب السعی الی الجمعة بعد سماع الندأ) ثم ان البیع قد یطول الکلام فیه فیفوت الخطبة او الجمعة لان التجار یترکون صفقا تھم فی ھذا الزمان ولذا منع من النداء الاول 3 فالبیع والشراء فی المصر ظاھر وقال ایضا فیه ویکره للمریض وغیره من المعذورین ان یصلوا الظھر یوم الجمعة بجماعة، والاباس بالجماعة للظھر للقروی لان الجمعة جامعة للجماعت فی المصر 4- فعلم ان شرط المصر لوجوب الجمعة مشروع لا نه جری التوارث من لدن رسول الله صلی الله تعالی علیه وسلم الی ھذا الان ان لا یصلی الجمعة

[اردو کالم] اور پسینہ آتا، اور قدوری میں ہے کہ جمعہ کے لئے شہر کی جامع یا شہر کی عیدگاہ کا ہونا ضروری ہے دیہاتوں میں جمعہ جائز نہیں، مولانا بحرالعلوم "ارکان الاسلام" میں اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد گرامی "اے ایمان والو! جب جمعہ کے دن نماز کے لئے ندا دی جائے تو اللہ کے ذکر کی طرف دوڑ کر آؤ اور بیع ترک کردو" کے تحت لکھتے ہیں یعنی اذان کے بعد بیع حرام ہے اور جمعہ کی طرف سعی لازم ہے پھر بیع میں گفتگو طویل ہو جانے کی وجہ سے جمعہ اور خطبہ فوت ہو جاتا ہے کیونکہ ایسے وقت تاجر سودا ختم نہیں کرتے اور اسی لئے ندا اول کے وقت ہی سے اس سے منع کردیا گیا پس بیع و شراء کا شہر میں ہونا ظاہر ہے، اور وہاں یہ بھی فرمایا کہ مریض اور دیگر معذور لوگوں کے لئے جمعہ کے دن جماعت کے ساتھ ظہر ادا کرنا مکروہ ہے البتہ دیہاتی لوگوں کے لئے ظہر کی جماعت میں کوئی حرج نہیں کیونکہ شہر میں جمعہ تمام

جماعتوں کا جامع ہوتا ہے اس سے یہ بات واضح ہو جاتی ہے کہ وجوب جمعہ کے لئے شہر کا شرط ہونا مشروع ہے کیونکہ حضور علیہ الصلوۃ والسلام کی ظاہری حیات سے لے آج تک یہی متوارث ہے کہ اہل دیہات جمعہ نہیں پڑھتے،

[حواشی] 1 صحیح البخاری باب من این توتی الجمعة الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۲۳ 2 المختصر للقدوری باب صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجیدی کانپور ص ۳۹ 3 رسائل الارکان فصل فی الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۱۱۸ 4 رسائل الارکان فصل فی الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ کوئٹہ ص ۱۱۸

Vol. 8, Fatawa Razawiyya

[Column 1] For the desert dwellers and villagers, acting upon the statement of the author of al-Quduri is mandatory for followers (muqallidin), because his statement corresponds to the Hanafi school. The majority of expert jurists (faqaha) followed it and gave it preference, and none of the Hanafi scholars denied it, as mentioned in 'al-Durr al-Mukhtar'. Therefore, it is obligatory for us to follow what they have preferred and what they have authenticated, just as if they had issued a fatwa to us in their lives. 1 Truth is most worthy of being followed. And a follower who opposes it, his judgment is not permissible, as in 'al-Durr al-Mukhtar'. As for 2 the follower, his judicial ruling (qada) is not implemented at all if it is contrary to his school. The condition of being in a city (misr) for the validity of the Friday prayer is established among the majority of Hanafis without any denial. However, Imam Shafi'i definitely said that it is a place where there are permanent buildings and the residents are forty accountable men. If it is so, the Friday prayer becomes mandatory. Narrations differ in our school; in the Zahir al-Riwayah, it is a town which has an imam or judge capable of establishing legal punishments (hudud). In 'Fath al-Qadir', it is mentioned that Imam Abu Hanifa said: A city is every town which has streets and markets, and has rural districts, and a governor who redresses the grievances of the oppressed against the oppressor, and a scholar to whom people refer.

[Column 2] So, for the followers (muqallidin), acting upon the statement of the author of Quduri is mandatory because his statement is according to the Hanafi school, and the majority of research-oriented jurists have declared it as preferred (rajih) by following it, and none of the Hanafi scholars has denied it, as mentioned in 'al-Durr al-Mukhtar'. So it is mandatory for us to follow what they have called preferred and validated, just as if they had given us a fatwa on it in their lives, it would have been followed. And only truth is worthy of being followed. And that follower who opposes it, his ruling is not valid, as mentioned in 'al-Durr al-Mukhtar'. In any case, the judicial judgment (qada) of a follower against his own school will not be implemented fundamentally. The condition of a city for the validity of Friday prayer is proven among the majority of Hanafis and no one denies it. Yes, a difference is found among them in the definition of a city. Imam Shafi'i says that every place where there is a non-moving population and forty accountable men reside, Friday prayer becomes mandatory there. In our school, narrations are different in this regard. In 'Zahir al-Riwayah', it is said that it should be such a city in which there is such an Imam or judge who has the power to establish legal

punishments (hudud). In 'Fath al-Qadir', it is stated that Imam Abu Hanifa says that a city will be one in which there are neighborhoods and markets and such a governor who...

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, introduction of the book, printed by Mujtabai Press Delhi, 1/15. 2. Durr al-Mukhtar, introduction of the book, printed by Mujtabai Press Delhi, 1/15.

जिल्द 8, फ़तावा रज़विया

[स्तंभ 1] मरुस्थली और ग्रामीण लोगों के लिए, साहब-ए-क़ुदुरी के कथन पर अमल करना मुक़ल्लिदीन (अनुयायियों) के लिए अनिवार्य है क्योंकि उनका कथन हनफ़ी पंथ के अनुकूल है। अधिकांश शोधकर्ता न्यायविदों (फ़ुक़हा) ने इसका पालन किया और इसे प्राथमिकता दी, और हनफ़ी विद्वानों में से किसी ने भी इसका खंडन नहीं किया, जैसा कि 'अल-दुर्र अल-मुख्तार' में है। अतः हमारे लिए उसका पालन अनिवार्य है जिसे उन्होंने प्राथमिकता दी और प्रमाणित किया, जैसे कि वे अपने जीवन में हमें फतवा देते। 1 सत्य ही अनुसरण के सर्वाधिक योग्य है। और वह मुक़ल्लिद जो इसका विरोध करता है, उसका निर्णय मान्य नहीं है जैसा कि 'अल-दुर्र अल-मुख्तार' में है। रही बात 2 मुक़ल्लिद की, तो उसका न्यायिक निर्णय (क़ज़ा) उसके पंथ के विरुद्ध होने पर कतई लागू नहीं होता। जुमे की नमाज़ की वैधता के लिए शहर का होना अधिकांश हनफ़ियों के निकट सर्वसम्मति से स्थापित है। लेकिन इमाम शाफ़ई ने निश्चित रूप से कहा कि यह वह स्थान है जहाँ स्थायी निर्माण हो और वहाँ चालीस जवाबदेह पुरुष निवासी हों। यदि ऐसा है, तो जुमा अनिवार्य हो जाता है। हमारे पंथ में रिवायतें भिन्न हैं; 'ज़ाहिर अल-रिवायत' में है कि वह ऐसा नगर हो जिसमें कोई इमाम या क़ाज़ी हो जो कानूनी दंड (हुदूद) लागू करने में सक्षम हो। 'फ़तह अल-क़दीर' में कहा गया है कि इमाम अबू हनीफ़ा फ़रमाते हैं: शहर वह हर नगर है जिसमें गलियां और बाज़ार हों, और उसके आसपास देहात हों, और एक ऐसा शासक हो जो अत्याचारी से पीड़ित को न्याय दिलाए, और एक विद्वान हो जिसकी ओर लोग मार्गदर्शन के लिए मुड़ें।

[स्तंभ 2] तो साहब-ए-क़ुदुरी के कथन पर मुक़ल्लिदीन के लिए अमल लाज़िम है क्योंकि उनका कथन हनफ़ी मज़हब के मुताबिक़ है और जमहूर.फ़ुक़हा-ए-मुहक़्क़िक़ीन ने इसी का इत्तेबा (अनुसरण) करते हुए इसे ही राजह (प्राथमिकता प्राप्त) करार दिया है और उलेमा-ए-अहनाफ़ में से किसी ने इसका इनकार नहीं किया जैसा कि 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है। तो हम पर इसकी इत्तेबा लाज़िम है जिसे उन्होंने राजह कहा और इसकी तसहीह (पुष्टि) की, जैसा कि वे अपनी ज़िंदगी में इस पर हमें फ़तवा देते तो उसी की इत्तेबा की जाती और हक़ ही इत्तेबा के लायक़ है। और वह मुक़ल्लिद जो इसकी मुख़ालफ़त (विरोध) करे उसका हुक्म जायज़ नहीं जैसा कि 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है। बहरहाल अपने मज़हब के खिलाफ मुक़ल्लिद की क़ज़ा अस्लन नाफ़िज़ नहीं होगी। सेहत-ए-जुमा के लिए शहर का शर्त होना जमहूर अहनाफ़ के यहाँ साबित है और इसमें किसी को इनकार नहीं। हाँ, तारीफ़-ए-शहर (शहर की परिभाषा) में उनके दरम्यान इख्तिलाफ़ (मतभेद) पाया जाता है। इमाम

शाफ़ई फरमाते हैं कि हर वह जगह जहाँ न मुंतकिल होने वाली आबादी हो और वहाँ चालीस मुक़ल्लफ़ आदमी मुक़ीम हों तो वहाँ जुमा लाज़िम हो जाता है। हमारे मज़हब में इस बारे में रिवायतें मुख्तलिफ़ हैं। ज़ाहिर अल-रिवायत में है कि ऐसा शहर हो जिसमें कोई ऐसा इमाम या क़ाज़ी हो जो इक़ामत-ए-हुदूद की ताक़त रखता हो। फ़तह अल-क़दीर में है कि इमाम अबू हनीफ़ा फ़रमाते हैं शहर वह होगा जिसमें मोहल्ले और बाज़ार हों और ऐसा वाली (शासक) हो जो मज़लूम की...

[पादलेख] 1. दुर्र-ए-मुख्तार, मुक़द्दमा अल-किताब, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/15 2. दुर्र-ए-मुख्तार, मुक़द्दमा अल-किताब, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/15

पृष्ठ 431/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

[پہلا کالم] اهل البدو والقرى فالعمل على قول صاحب القدورى لازم على المقلدين لانه قوله مطابق لمذهب الحنفى واتبعوه ورجحوه جمهور فقهاء المحققين ولم ينكره احد من علماء الحنفيين كما فى الدرالمختار فعلينا اتباع مارجحوه وما صححوه كما لو افتونا فى حياتهم 1 الحق احق بالاتباع والمقلد الذي يخالفه فحكمه غير جائز كما فى الدرالمختار واما المقلد فلا ينفذ قضاؤه بخلاف مذهبه اصلا 2 فشرط المصر لصحة الجمعة محقق عند الجمهور الحنفية بلانكار احدلكن البتتة فقال الامام الشافعى موضع فيه بنيان غير منتقلة ويكون المقيمون اربعون رجلا من اصحاب المكلفين فاذا كان كذلك لزمت الجمعة واختلف الروايات فى مذهبنا ففى ظاهر الروايات بلدة لها امام اوقاضى يصلح الاقامة الحدود ۔ و فى فتح القدير قال الامام ابوحنيفة المصر كل بلدة فيها سكك واسواق وبها رساتيق ووال ينصف المظلوم من الظالم وعالم يرجع اليه

[دوسرا کالم] تو صاحب قدوری کے قول پر مقلدین کے لئے عمل لازم ہے کیونکہ ان کا قول مذہب حنفی کے مطابق ہے اور جمہور فقہاء محققین نے اسی کی اتباع کرتے ہوئے اسے ہی راجح قرار دیا ہے اور علماء احناف میں سے کسی نے اس کا انکار نہیں کیا جیسا کہ در مختار میں ہے تو ہم پر اس کی اتباع لازم ہے جسے انھوں نے راجح کہا اور اس کی تصحیح کی جیسا کہ وہ اپنی زندگی میں اس پر ہمیں فتویٰ دیتے تو اسی کی اتباع کی جاتی اور حق ہی اتباع کے لائق ہے اور وہ مقلد جو اس کی مخالفت کرے اس کا حکم جائز نہیں جیسا کہ در مختار میں ہے بہر حال اپنے مذہب کے خلاف مقلد کی قضاء اصلاً نافذ ہو گی صحت جمعہ کے لئے شہر کا شرط ہونا جمہور احناف کے ہاں ثابت ہے اور اس میں کسی کو انکار نہیں، ہاں تعریف شہر میں ان کے درمیان اختلاف پایا جاتا ہے ، امام شافعی فرماتے ہیں کہ ہر وہ جگہ جہاں نہ منتقل ہونے والی آبادی ہو اور وہاں چالیس

مکلف آدمی مقیم ہوں تو وہاں جمعہ لازم ہو جاتا ہے ، ہمارے مذہب میں اس بارے میں روایات مختلف ہیں ، ظاہر الروایت میں ہے کہ ایسا شہر ہو جس میں کوئی ایسا امام یا قاضی ہو جو اقامت حدود کی طاقت رکھتا ہو، فتح القدیر میں ہے کہ امام ابو حنیفہ فرماتے ہیں شہر وہ ہوگا جس میں محلے اور بازار ہوں اور ایسا والی ہو جو مظلوم کی

[حواشی] 1 در مختار مقدمة الكتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۵ 2 در مختار مقدمة الكتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۵

Vol. 8 Fatawa Ridawiyyah

[Arabic Text]: From 'Al-Hawadith' [1] and a narration from Imam Abu Yusuf: A city (Misr) is a place where the number of residents reaches such a point that the largest mosque there is insufficient for them. This is stated in 'Al-Hidayah' and was the choice of [Imam] Al-Balkhi [2]. Most scholars issued fatwas based on this, seeing the corruption of the people and rulers of the time. It is also narrated from him that every place where ten thousand men reside is a city. Another narration states that any place where there is an Amir (ruler) and a Qazi (judge) who can implement rulings and establish legal punishments (Hudud) is a city; this was the choice of Al-Karkhi [3], as mentioned in 'Al-Hidayah'. Some said it is a place where every craftsman can live off his craft year-round without needing another craft. Some said it is a place where, if an enemy intended to attack them, they could defend themselves. Some said a place where every day someone is born and someone dies. Others said it is a place where the number of its inhabitants cannot be known without great effort and hardship. The choice of most jurists, considering the necessity of our times, and the fatwa issued by the majority of later scholars regarding the definition of a city, is the narration chosen by [Imam] Al-Balkhi, meaning...

[Urdu Explanation]: ...can seek redress, and there should be a scholar whom people can turn to for various occurrences. It is narrated from Imam Abu Yusuf that a city is a place where there are so many residents that the largest mosque there is inadequate for them. It says in 'Al-Hidayah' that this is the chosen opinion of Imam Al-Balkhi, and seeing the corruption of the times and the mischief of the rulers, most scholars gave fatwas on this. And there is also this narration from Imam Abu Yusuf that every place where ten thousand men reside is a city. This is also a narration that every place where there is an Amir or a Qazi who has the authority to implement commands and establish limits is a city. Imam Al-Karkhi adopted this, 'Al-Hidayah'. Some are of the opinion that every craftsman stays there year after year in such a way that he does not need another craft. Some are of the opinion that if an enemy attacks there, it is possible to defend against them. Some said that there, every day someone or the other is born and someone or the other dies. Some said that the number of resident people there cannot be known without hardship. In view of the need of our times, the choice of most jurists and the fatwa of later scholars in the definition of a city is the same narration which is chosen by Imam Al-Balkhi, that place is a city whose most...

[Footnotes]: 1 Fath al-Qadir, Chapter on Friday, published by Maktabah Nooriyah Ridawiyyah, Sukkur, 2/24 2 Al-Hidayah, Chapter on Friday, published by Maktabah Arabiyah, Karachi, 1/148 3 Al-Hidayah, Chapter on Friday, published by Maktabah Arabiyah, Karachi, 1/148

[अरबी पाठ]: 'अल-हवादिथ' [1] और इमाम अबू यूसुफ से एक रिवायत के अनुसार: शहर (मिस्र) वह जगह है जहाँ रहने वालों की संख्या इतनी हो जाए कि वहाँ की सबसे बड़ी मस्जिद उनके लिए कम पड़ जाए। यह 'अल-हिदाया' में वर्णित है और [इमाम] अल-बल्ख़ी की पसंद थी [2]। समय के लोगों और शासकों के भ्रष्टाचार को देखते हुए अधिकांश विद्वानों ने इसी पर फतवा दिया। उनसे यह भी रिवायत है कि हर वह जगह जहाँ दस हज़ार पुरुष रहते हों, शहर है। एक और रिवायत कहती है कि कोई भी जगह जहाँ एक अमीर (शासक) और एक काज़ी (न्यायाधीश) हो जो फैसलों को लागू कर सके और कानूनी दंड (हुदूद) स्थापित कर सके, वह शहर है; यह अल-करखी की पसंद थी [3], जैसा कि 'अल-हिदाया' में बताया गया है। कुछ ने कहा कि यह वह जगह है जहाँ हर कारीगर साल भर अपने शिल्प पर जीवित रह सकता है बिना किसी दूसरे शिल्प की आवश्यकता के। कुछ ने कहा कि यह वह जगह है जहाँ, यदि कोई दुश्मन उन पर हमला करने का इरादा रखता है, तो वे अपना बचाव कर सकते हैं। कुछ ने कहा कि वह जगह जहाँ हर दिन कोई न कोई पैदा होता है और कोई न कोई मरता है। दूसरों ने कहा कि यह वह जगह है जहाँ इसके निवासियों की संख्या बिना बड़ी मेहनत और कठिनाई के नहीं जानी जा सकती। हमारे समय की आवश्यकता को देखते हुए अधिकांश न्यायविदों की पसंद और शहर की परिभाषा के संबंध में बाद के अधिकांश विद्वानों द्वारा जारी फतवा, [इमाम] अल-बल्ख़ी द्वारा चुनी गई रिवायत है, जिसका अर्थ है...

[उर्दू व्याख्या]: ...शिकायत का निवारण कर सके, और वहाँ ऐसा विद्वान होना चाहिए जिसके पास लोग विभिन्न घटनाओं के लिए मार्गदर्शन हेतु जा सकें। इमाम अबू यूसुफ से रिवायत है कि शहर वह जगह है जहाँ रहने वाले इतने हों कि वहाँ की सबसे बड़ी मस्जिद उनके लिए अपर्याप्त हो। 'अल-हिदाया' में है कि यह इमाम बल्ख़ी की चुनी हुई राय है, और समय के बिगाड़ और शासकों के उपद्रव को देखते हुए अधिकांश विद्वानों ने इसी पर फतवा दिया। और इमाम अबू यूसुफ से यह रिवायत भी है कि हर वह स्थान जहाँ दस हज़ार पुरुष निवास करते हों, शहर है। यह भी एक रिवायत है कि हर वह स्थान जहाँ ऐसा अमीर या काज़ी हो जिसे आदेश लागू करने और दंड विधान (हुदूद) स्थापित करने का अधिकार हो, शहर है। इमाम करखी ने इसे अपनाया, 'अल-हिदाया'। कुछ की राय यह है कि वहाँ हर शिल्पकार साल-दर-साल इस तरह रहे कि उसे दूसरे शिल्प की आवश्यकता न हो। कुछ की राय यह है कि यदि वहाँ दुश्मन हमला करे तो उनसे बचाव संभव हो। कुछ ने कहा कि वहां हर दिन कोई न कोई जन्म ले और कोई न कोई मरे। कुछ ने कहा कि वहाँ के निवासी लोगों की संख्या

बिना कठिनाई के ज्ञात न हो सके। हमारे समय की आवश्यकता को देखते हुए शहर की परिभाषा में अधिकांश फकीहों की पसंद और बाद के विद्वानों का मुफ़्ती-बे-कौल (मान्य फतवा) वही रिवायत है जो इमाम बल्ख़ी द्वारा चुनी गई है, वह स्थान शहर है जिसकी सबसे...

[पाद टिप्पणियाँ]: 1 फतह अल-क़दीर, जुमा का अध्याय, मकतबा नूरिया रिज़विया, सुक्कुर, 2/24 द्वारा प्रकाशित। 2 अल-हिदाया, जुमा का अध्याय, मकतबा अरबिया, कराची, 1/148 द्वारा प्रकाशित। 3 अल-हिदाया, जुमा का अध्याय, मकतबा अरबिया, कराची, 1/148 द्वारा प्रकाशित।

पृष्ठ 673 में से 432

[عربی متن]: من الحوادث ^1 ورواية عن الامام ابي يوسف المصر موضع يبلغ المقيمون فيه عدد الا يسع اكبر مساجد اياهم فی الهداية وهوا ختار البلخي ^2 وبه افتی اكثر المشايخ لما رأوا فساد اهل الزمان والولاة وعنه ايضاً كل موضع فيه يسكن عشرة الاف رجل، وعنه ايضاً ان كل موضع له امير وقاض ينفذ الاحكام ويقيم الحدود وهو اختيار الكرخي ^3 كذا فی الهداية وقال بعضهم هو ان يعيش كل محترف بحرفته من سنة الی سنة من غير ان يحتاج الی حرفة اخری وقال بعضهم هوان يكون بحال لو قصد هم عدو يمكنهم دفعه وقال بعضهم ان يولد فيه كل يوم ويموت فيه انسان، وقال بعضهم هو ان لا يعرف عدد اهله الابكلفة ومشقة فمختار اكثر الفقهاء مراعة لضرورة زماننا والمفتی به عند جمهور المتأخرين في تعريف المصر الرواية المختارة للبلخي ای

[اردو وضاحت]: فریاد رسی کر سکے اور ایسا عالم ہو جس کی طرف لوگ مختلف پیش آنے والے واقعات میں رجوع کر سکیں، امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ شہر وہ جگہ ہے جہاں کے رہائشی اتنے ہوں کہ وہاں کی سب سے بڑی مسجد ان کے لئے ناکافی ہو ، ہدایہ میں ہے یہ امام بلخی کا مختار ہے اور فسادِ زمانہ اور امراء کا فتنہ دیکھتے ہوئے اکثر مشایخ نے اسی پر فتوٰی دیا، اور امام ابو یوسف سے یہ روایت بھی ہے کہ ہر وہ جگہ شہر ہے جہاں دس ہزار مرد مقیم ہوں یہ بھی روایت ہے کہ ہر وہ مقام جہاں ایسا امیر یا قاضی ہو جو احکام کو نافذ اور اقامتِ حدود کا اختیار رکھتا ہو، امام کرخی نے اسی کو اختیار فرمایا ہدایہ ، بعض کی رائے یہ ہے کہ وہاں ہر صاحب صنعت سالہا سال سے اس طرح رہتا ہو کہ اسے دوسری صنعت کی محتاجی نہ ہو، بعض کی رائے یہ ہے کہ اگر وہاں دشمن حملہ آور ہو تو ان سے دفاع ممکن ہو بعض نے کہا کہ وہاں ہر روز کوئی نہ کوئی پیدا ہو اور کوئی نہ کوئی مرے، بعض نے کہا کہ وہاں کے رہائشی لوگوں کی تعداد کا علم

بغیر مشقت کے نہ ہو سکے، ہمارے زمانے کی ضرورت کے پیشِ نظر تعریف شہر میں اکثر فقہاء کا مختار اور متاخرین کا مفتی بہ قول وہی روایت ہے جو امام بلخی کی مختار ہے وہ مقام شہر ہے جس کی سب سے

[حواشی]: 1 فتح القدیر باب الجمعہ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۴/۲ 2 الہدایہ باب الجمعہ مطبوعہ مکتبہ عربیہ کراچی ۱۴۸/۱ 3 الہدایہ باب الجمعہ مطبوعہ مکتبہ عربیہ کراچی ۱۴۸/۱

Fatawa-e-Razvia, Volume 8

Text: [Left Column - Arabic Content:] ...where its largest mosque does not have enough capacity for the residents obligated with it. Sheikh Abu Shuja says this is the best among the definitions given. In 'Al-Walwalajiyyah', it is stated that this is correct. 'Al-Bahr', 'Al-Wiqayah', 'Matn al-Mukhtar' and its commentary have adopted this, and in 'Matn al-Durar', it is prioritized over other opinions, showing preference for it. Sadr al-Shariah supported this view by stating that because negligence has occurred in Sharia rulings, especially in establishing punishments (Hudud) in cities, every place where the mentioned definition applies is a city where Friday prayer is mandatory for its inhabitants. If the definition does not apply, Friday prayer is not mandatory, whether that place is known as a 'village' (Qaryah) or by any other name. Thus, according to the definition of later scholars, such a place is legally a city under Sharia, not necessarily by common usage (Urf), and this is the better view. Any place where the stated definition does not apply is not a city under Sharia or by common usage. Regarding the term 'village' (Qaryah), there are two Shari'i considerations: first, one to which this definition applies, and second, one to which it does not. In the first case, Friday prayer is valid and it is a large city or a town. In the second case, Friday prayer is not valid and it refers to small villages or wilderness. The same ruling applies to jungles, as indicated by the text of Al-Quhistani, stating that Friday prayer is obligatory in towns and large villages that have markets. In 'Al-Bahr', it is stated that Friday prayer cannot be held in a small village or a wilderness.

[Right Column - Urdu Content:] ...a large mosque there does not have enough capacity for the obligated people. Sheikh Abu Shuja says that among these definitions, this is the most beautiful (best). In 'Walwalajiyah', it is stated that this same definition is correct. 'Al-Bahr', 'Wiqayah', 'Matn-ul-Mukhtar' and its commentary have adopted this. In 'Matn-ul-Durar', it has been placed ahead of other opinions, and clearly the preference is for it. Sadr-ul-Shariah supported this view in his statement, noting that since negligence has occurred in Shari'i rulings, especially in the establishment of punishments (Hudud) in cities, every place where the definition applies is a city, and Friday prayer will be mandatory for its residents. If the definition does not apply, Friday prayer will not be mandatory there, whether it is known as a village (Qarya) or by some other name. So now, according to the definition of later scholars, that place will be a city under Sharia, not by common convention, and this is best. And any place where the said definition does not apply is not a city legally or conventionally. In the word 'Qarya' (village), there are two Shari'i considerations: one

is that for which this definition is given, and the second is that for which this definition cannot apply. In the first case, Friday prayer is valid and it is a large city or town. In the second case, Friday prayer is not valid and it is a rural area. The ruling for the jungle is the same, as indicated by the text of Al-Quhistani, that in towns and large villages where there are markets, Friday prayer becomes obligatory. In 'Al-Bahr', it is mentioned that Friday prayer cannot be held in a village or jungle.

Footnotes: 1. Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter: Prayer of Friday, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 120/2. 2. Sharh al-Wiqayah, Chapter: Friday, published by Al-Maktabah al-Rashidiyya, Delhi, 220/1. 3. Jami' al-Rumuz, Section: Prayer of Friday, published by Maktaba Islamia, Gunbad-e-Qamoos, Iran, 261/1.

फतावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

मुख्य पाठ: [बायाँ कॉलम - अरबी विषय-वस्तु:] ...जहाँ की सबसे बड़ी मस्जिद वहाँ के शरीयत के पाबन्द (मुकल्लफ़) लोगों के लिए पर्याप्त न हो। शैख़ अबू शुजाअ कहते हैं कि इन परिभाषाओं में यह सबसे बेहतर है। 'अल-वलवालजिया' में है कि यही सही है। 'अल-बहर', 'अल-विक़ाया', 'मतनुल मुख़्तार' और इसकी व्याख्या में इसी को अपनाया गया है, और 'मतनुल दुरर' में इसे ही अन्य मतों पर प्राथमिकता दी गई है और ज़ाहिरी तौर पर इसी को पसन्द किया गया है। सदरुश-शरिया ने अपने इस कथन से इसका समर्थन किया कि चूँकि शरीयत के नियमों, विशेष रूप से शहरों में हद (निर्धारित सज़ा) लागू करने में सुस्ती आ गई है, इसलिए हर वह जगह जिस पर बताई गई परिभाषा खरी उतरती है, वह शहर है और वहाँ के निवासियों पर जुमा अनिवार्य होगा। यदि परिभाषा लागू नहीं होती, तो जुमा अनिवार्य नहीं है, चाहे वह स्थान 'गाँव' (क़रिया) के नाम से जाना जाए या शहर के अलावा किसी और नाम से। अतः अब बाद के विद्वानों की परिभाषा के अनुसार ऐसा स्थान शरीयत की दृष्टि में शहर के हुक्म में होगा, न कि लोक-प्रसिद्धि की दृष्टि में, और यही बेहतर है। जिस पर बताई गई परिभाषा लागू नहीं होती, वह शरीयत और लोक-प्रसिद्धि दोनों के अनुसार शहर नहीं है। 'क़रिया' शब्द के शरीयत में दो पहलू हैं: एक वह जिसकी यह परिभाषा की गई है, और दूसरा वह जिसकी यह परिभाषा नहीं हो सकती। पहले मामले में जुमा सही है और वह बड़ा शहर या क़स्बा है; दूसरे मामले में जुमा सही नहीं है और वह छोटे देहात हैं। जंगल के लिए भी यही नियम है, जैसा कि 'क़ुहिस्तानी' के लेख से स्पष्ट है कि क़स्बों और बड़े गाँवों जिनमें बाज़ार हों, उनमें जुमा फ़र्ज़ होता है। 'अल-बहर' में है कि गाँव और जंगल में जुमा नहीं हो सकता।

[दायाँ कॉलम - उर्दू विषय-वस्तु:] ...जहाँ की बड़ी मस्जिद वहाँ के मुकल्लफ़ लोगों के लिए पर्याप्त जगह न रखती हो। शैख़ अबू शुजाअ कहते हैं कि इन परिभाषाओं में यह बेहतर है। 'वलवालजिया' में है कि यही सही है। 'बहर', 'विक़ाया', 'मतनुल मुख़्तार' और इसकी शरह में इसी को चुना गया है। 'मतनुल दुरर' में इसे दूसरे कौल पर प्राथमिकता दी गई है। सदरुश-शरिया ने अपने कथन से इसका समर्थन किया कि चूँकि शरीयत के हुक्मों, विशेष रूप से सज़ाओं को लागू करने में सुस्ती आ गई है, इसलिए हर वह जगह जहाँ परिभाषा लागू होती है, वह शहर है और वहाँ के निवासियों पर जुमा लाज़िम (अनिवार्य) होगा। यदि परिभाषा खरी न उतरे, तो वहाँ जुमा नहीं होगा, भले ही वह गाँव के नाम से प्रसिद्ध हो। विद्वानों की परिभाषा के अनुसार वह शरीयत में शहर माना जाएगा, न कि लोक-प्रसिद्धि के अनुसार, और यही बेहतर है। 'क़रिया' शब्द के शरीयत में दो अर्थ हैं: एक वह जिसकी

परिभाषा की गई, दूसरा वह जहाँ यह परिभाषा नहीं हो सकती। पहले में जुमा सही है और वह बड़ा शहर या क़स्बा है, दूसरे में जुमा सही नहीं है और वह देहात है। जंगल का भी यही हुक्म है जैसा कि कुहिस्तानी की इबारत से ज़ाहिर है कि क़स्बों और बड़े देहातों जिनमें बाज़ार हों, जुमा फ़र्ज़ होता है। 'बहर' में है कि गाँव और जंगल में जुमा नहीं हो सकता।

पाद-टिप्पणी: 1. अल-बहर अल-राइक़, अध्याय: जुमा की नमाज़, एच.एम. सईद कंपनी कराची, 120/2. 2. शरह अल-विक़ाया, अध्याय: जुमा, अल-मकतबा अल-रशीदिया दिल्ली, 220/1. 3. जामे अल-रुमूज़, अनुभाग: जुमा की नमाज़, मकतबा इस्लामिया, गुंबद-ए-क़ामूस ईरान, 261/1.

فتاوی رضویہ (دائیں جانب)، جلد ہشتم (بائیں جانب)

متن: [بائیں کالم کا عربی متن:] ما لا یسع اکبر مساجده اهله المکلفون بها، وقال ابوشجاع هذا حسن ما قیل فیه وفی الولوالجیه وهو صحیح (1) بحر وعلیه مشی فی الوقایة ومتن المختار وشرحه وقدمه فی متن الدرر علی قول الأخر وظاهره ترجیحه وایده صدر الشریعة بقوله لظهور التوانی فی احکام الشرع لاسیما فی اقامة الحدود فی الامصار (2) وکل موضع یصدق علیه التعریف المذکور فهو مصر تجب الجمعة علی اهله والافلا تجب سواء ذلك الموضع یتعارف بلفظ القریة او دونها غیر المصر، فالآن هو لاحق فی حکم المصر شرعا لا عرفا لتطبیق تعریف المتأخرین وهذا احسن ومالا یصدق علیه التعریف المذکور فهو لیس بمصر شرعا و عرفا ففی لفظ القریة اعتباران شرعا بحیث ترسم به و بحیث لاترسم به ففی الاول تصح الجمعة وهی مدینة عظیمة او قریة کبیرة وفی الثانی لا تصح الجمعة وهی قریة صغیرة ومفازة ومثلها کما یدل علیه عبارة القهستاني وتقع فرضا في القصبات والقری الکبیرة فیها اسواق (3) وفی البحر لاتصح في قریة ولامفازة لقول

[دائیں کالم کا اردو ترجمہ و تشریح:] بڑی مسجد وہاں کے مکلف لوگوں کی گنجائش نہ رکھتی ہو شیخ ابوشجاع کہتے ہیں کہ ان تعریفات میں یہ حسن ہے، ولوالجیہ میں ہے کہ یہی صحیح ہے، بحر، وقایہ، متن مختار اور اس کی شرح میں اسی کو اختیار کیا گیا ہے، اور متن درر میں اسے ہی دوسری قول پر مقدم کیا اور ظاہر ترجیح اسی کو ہے، صدر الشریعۃ نے اپنے اس قول سے تائید کی ہے کہ کیونکہ احکام شرع خصوصا اقامت حدود میں سستی واقع ہو چکی ہے، ہر وہ جگہ جس پر تعریف صادق آ رہی ہو وہ شہر ہے اور وہاں کے رہنے والوں پر جمعہ لازم ہوگا اور اگر تعریف صادق نہ آئے تو وہاں جمعہ نہیں ہوگا خواہ وہ قریہ کے نام سے متعارف ہو یا کسی اور نام سے، تو اب وہ مقام متاخرین کی تعریف کے مطابق حکم مصر میں شرعا ہوگا نہ کہ عرفا اور یہی احسن

ہے، اور جس پر تعریف مذکور صادق نہ ہو وہ شرعا شہر ہے نہ عرفا لفظ قریہ میں شرعا دو اعتبار ہیں ایک وہ جس کی یہ تعریف کی گئی، دوسری وہ جس کی یہ تعریف نہ ہو سکے، پس پہلے میں جمعہ صحیح ہے اور بڑا شہر یا قصبہ ہے اور دوسرے میں جمعہ صحیح نہیں اور یہ دیہات ہے اور جنگل کا بھی یہی حکم ہے جیسا کہ اس پر قہستانی کی عبارت دال ہے کہ قصبات اور بڑے دیہاتوں جن میں بازار ہوں جمعہ فرض ہوتا ہے، اور بحر میں ہے کہ قریہ اور جنگل میں جمعہ نہیں ہوسکتا۔

حواشی: 1۔ بحر الرائق باب صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۲۰/۲ 2۔ شرح الوقایۃ باب الجمعۃ مطبوعہ المکتبۃ الرشیدیہ دہلی ۲۲۰/۱ 3۔ جامع الرموز فصل صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۲۶۱/۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

Because Hazrat Ali (may Allah be pleased with him) said: "There is no Friday prayer (Jumu'ah), no Takbir-at-Tashreeq, no Eid al-Fitr prayer, and no Eid al-Adha prayer except in a 'Misr-e-Jami' (a congregational city) or a large city." Then it was said that this is not mandatory for anyone other than the residents of a city, as mentioned in Al-Tahtawi. Thus, there is a relationship of general and specific between them. It is established from the mentioned proofs that the obligation of Friday prayer is specific [to cities]. Therefore, if residents of a village perform Friday prayer in a place that cannot be legally called a city, the Dhuhr prayer will not be waived from their responsibility. If they perform it individually, they have committed a major sin because they abandoned a mandatory act, i.e., they abandoned the Dhuhr congregation by performing a voluntary (Nafil) prayer in congregation. This is a great flaw. It should be clear that Friday prayer is the gatherer of all congregations. Performing Dhuhr in congregation leads to dispersing the congregation of Friday prayer and reducing its numbers. Contrary to village residents where Friday prayer is not mandatory, performing Dhuhr in congregation there does not cause dispersal or reduction of Friday prayer. For them, this day is like any other day in terms of performing Dhuhr without dislike, as mentioned in 'Majalis al-Abrar'. So, the person who says there is no difference between Friday and Dhuhr except for the sermons, and that Friday prayer is performed everywhere just like Dhuhr whether it is a city, a village, or any other place, and one who abandons it without an excuse is a sinner and transgressor; such a claimant is astray and misguiding others, and this pertains to [the views of] non-followers (ghair-muqallideen).

1 Al-Bahr al-Ra'iq, Chapter of Friday Prayer, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 120/2. Page 434 of 673

क्योंकि हज़रत अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कथन है कि: जुमा, तकबीरात-ए-तश्रीक, ईद-उल-फितर और ईद-उल-अज़हा की नमाज़ें 'मिस्र-ए-जामे' या बड़े शहर के अलावा कहीं और नहीं हो सकतीं। फिर कहा गया कि शहर के निवासियों के अलावा यह किसी पर अनिवार्य नहीं है, जैसा कि 'तहावी' में है। इस प्रकार, उन दोनों के बीच सामान्य और विशिष्ट का संबंध है। उल्लिखित प्रमाणों से यह स्पष्ट हो गया कि सर्वसम्मति से जुमा की अनिवार्यता विशिष्ट है। इसलिए, यदि ऐसे गाँव के निवासी जुमा कायम करते हैं जिसे शरीयत के अनुसार शहर नहीं कहा जा सकता, तो उनके ज़िम्मे से ज़ुहर की नमाज़ समाप्त नहीं होगी। और यदि वे इसे अकेले अदा करेंगे, तो उन्होंने बड़े पाप (कबीरा) का काम किया क्योंकि एक अनिवार्य कार्य का त्याग हुआ, यानी नफिल नमाज़ जमात के साथ अदा करने के कारण उन्होंने ज़ुहर की जमात छोड़ दी, और यह एक बड़ी बुराई है। स्पष्ट रहे कि जुमा सभी जमातों का संग्रहकर्ता है। ज़ुहर को जमात के साथ अदा करना जुमा की जमात को तितर-बितर और कम करना है। इसके विपरीत गाँव वालों के लिए, जहाँ जुमा अनिवार्य नहीं है, वहाँ ज़ुहर को जमात के साथ पढ़ना जुमा के लिए बिखराव और कमी का कारण नहीं है। उनके लिए तो यह दिन अन्य दिनों की तरह ही बिना किसी नापसंदगी (कराहियत) के ज़ुहर अदा करने के मामले में अन्य दिनों की तरह ही है, 'मजालिस अल-अबरार' के अनुसार। अतः वह व्यक्ति जो कहता है कि जुमा और ज़ुहर के बीच खुतबों के अलावा कोई अंतर नहीं है, जुमा हर जगह ज़ुहर की तरह अदा हो जाता है चाहे वह शहर हो या गाँव या कोई और स्थान, और इसे बिना किसी बहाने के छोड़ने वाला गुनहगार और अवज्ञाकारी है; ऐसे कथन का प्रस्तावक गुमराह है और गुमराह करने वाला है, और इसका संबंध गैर-मुकल्लिदीन से है।

1 अल-बहर अल-राइक़, बाब सलात अल-जुमुआ, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी कराची, 120/2। पृष्ठ 434 का 673

کیونکہ حضرت علی رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا قول ہے کہ جمعہ، تکبیرات تشریق، نماز عیدالفطر اور اضحی مصر جامع یاد بڑے شہر کے سوا نہیں ہو سکتیں، پھر کہا اہل شہر کے علاوہ یہ کسی پر لازم نہیں طحطاوی میں اس طرح ہے، تو ان دونوں کے درمیان عموم و خصوص کی نسبت ہے تو دلائل مذکورہ سے واضح ہو گیا کہ بالاتفاق فرضیتِ جمعہ مخصوص ہے تو اگر ایسے اہل دیہات جمعہ قائم کریں جسے شرعاً شہر نہیں کہا جاسکتا تو ان کے ذمے سے ظہر ساقط نہ ہوگی، اور اگر وہ تنہا ادا کریں گے تو انھوں نے کبیرہ کا ارتکاب کیا کیونکہ واجب کا ترک ہوا یہی نوافل جماعت کے ساتھ ادا کرنے کی وجہ سے ظہر کی جماعت ترک کردی اور یہ عظیم قباحت ہے۔ واضح رہے کہ جمعہ تمام جماعتوں کا جامع ہے، ظہر کو جماعت کے ساتھ ادا کرنا جمعہ کی جماعت کو متفرق اور کم کرنا ہے۔ بخلاف اہل دیہات کے کہ وہاں جمعہ لازم نہیں تو وہاں ظہر کو جماعت کے ساتھ ادا کرنا جمعہ کے لئے تفریق و تقلیل کا سبب نہیں ان کے لئے تو یہ دن دیگر دنوں کی طرح ہی بلا کراہت ظہر ادا کرنے کے لحاظ سے دیگر دنوں کی طرح ہی ہے مجالس الابرار، تو وہ شخص جو کہتا ہے کہ جمعہ اور ظہر کے درمیان خطبوں کے علاوہ کوئی فرق نہیں، جمعہ ہر جگہ ظہر کی طرح ادا ہو جاتا ہے خواہ شہر ہو یا دیہات یا اور کوئی مقام ہو، اس کا تارک فاسق اور مردود ہے تو ایسے قول کا قائل گمراہ ہے اور گمراہ کرنے والا ہے اور اس کا تعلق مقلدین سے۔

1 بحر الرائق باب صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۱۲۰ Page 434 of 673

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[It is stated that] he is not from among us the followers (Muqallidin), and it is necessary for the followers to avoid his words and actions, and to refrain from his company and interaction. Allah knows best, and His knowledge is most perfect and complete. Written by the humblest of creatures, Abu al-Fayz Muhammad Habib-ur-Rahman, may Allah forgive him. - (T)

The Answer: Whoever claims that Friday prayer can be held in any place without any distinction between a city and a village has gone against the consensus (Ijma) and is misguided without dispute. Our Imams have agreed on the condition of a city for it (Friday prayer), and engaging in it in villages is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi) because it is engaging in something that is not valid, as mentioned in *Durr* [al-Mukhtar][1] and others. We have investigated this issue in our treatise *Lawami' al-Baha* and in several places in our Fatawa. As for the definition of a city, the correct one is what is narrated from our Great Imam (Abu Hanifa), may Allah be pleased with him, in *Zahir al-Riwayah*, and we have detailed it in our Fatawa such that no further addition is possible. As for the definition that "a place whose largest mosque cannot accommodate its residents [is a city]," it is not correct according to research-oriented scholars, as explicitly stated in *al-Ghunyah*. A sufficient proof of its invalidity is that under this definition, Mecca and Medina would not be cities and Friday prayer would be prohibited in them, because it is observed that their two mosques are not enough for the pilgrims coming from east and west, let alone being sufficient for their own inhabitants specifically. And Allah Almighty knows best. (T)

---

[1] *Durr al-Mukhtar*, Chapter on the Two Eids, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/131.

फ़तावा रज़विया, जिल्द आठवीं

[यह कहा गया है कि] वह हम मुक़ल्लिदीन (अनुयायियों) में से नहीं है, और मुक़ल्लिदीन के लिए उसके कथनों और कार्यों से बचना और उसकी संगति और मेलजोल से परहेज़ करना आवश्यक है। अल्लाह सबसे बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान सबसे पूर्ण और मुकम्मल है। इसे अल्लाह के तुच्छ बंदे अबू अल-फ़ैज़ मुहम्मद हबीब-उर-रहमान ने लिखा है, अल्लाह उन्हें क्षमा करे। - (त)

जवाब: जो व्यक्ति यह दावा करता है कि जुमे की नमाज़ हर जगह हो जाती है और उसके लिए किसी शहर या गाँव की कोई विशेषता नहीं है, वह सर्वसम्मति (इज्मा) के खिलाफ है और निर्विवाद रूप से गुमराह है। हमारे इमामों का इस पर इत्तेफ़ाक़ है कि जुमे के लिए शहर का होना शर्त है। गाँवों में जुमे का आयोजन मकरूह-ए-तहरीमी (कड़ाई से नापसंद) है क्योंकि यह एक ऐसे काम में मशगूल होना है जो सही नहीं है, जैसा कि 'दुरर' [अल-मुख्तार][1] आदि में है। इसकी जाँच हमने अपने रिसाले 'लवामे उल-बहा' और अपने फतावा में कई जगहों पर की है। जहाँ तक शहर की सही परिभाषा का सवाल है, वह वही है जो हमारे इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रज़ियल्लाहु अन्हु से 'ज़ाहिर अल-रिवायत' में वर्णित है, और हमने अपने फतावा में इसका वह विवरण दिया है जिस पर और इज़ाफ़ा करना मुश्किल है। रही यह परिभाषा कि "जिस जगह की सबसे बड़ी मस्जिद उसके निवासियों के लिए पर्याप्त न हो [वह शहर है]", तो यह शोधकर्ता विद्वानों के अनुसार सही नहीं है, जैसा कि 'ग़ुनिया' में स्पष्ट किया गया है। और इस परिभाषा के गलत होने पर यही दलील काफी है कि इस सूरत में मक्का मुकर्रमा और मदीना तैयबा दोनों ही शहर नहीं रहेंगे और उनमें जुमे की नमाज़ मना होगी, क्योंकि यह देखा गया है कि उनकी दोनों मस्जिदें पूर्व से पश्चिम तक आने वाले ज़ायरीन (तीर्थयात्रियों) के लिए भी पर्याप्त नहीं होतीं, तो वहां के खास लोगों के लिए काफी कैसे हो सकती हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। (त)

---

[1] दुर्र-ए-मुख्तार, बाबुल-ईदैन, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/131

نہیں، اس کے اقوال وافعال، اس کی محبت و مخالطت سے مقلدین کو احتراز کرنا لازم ہے، اللہ تعالٰی کا علم کامل واکمل ہے، کتبہ احقر الوری ابو الفیض محمد حبیب الرحمن عفا اللہ عنہ -(ت)

الجواب: جو شخص یہ دعوی کرتا ہے کہ جمعہ ہر مقام پر ہوجاتا ہے اس کے لئے کسی شہر اور دیہات کی تخصیص نہیں، وہ بالاتفاق اجماع کے مخالف اور گمراہ ہے ہمارے ائمہ کا اس پر اتفاق ہے کہ جمعہ کے لئے شہر کا ہونا شرط ہے دیہاتوں میں جمعہ کا قیام مکروہ تحریمی ہے کیونکہ یہ نادرست کام میں مشغول ہونا ہے جیسا کہ درر [المختار][1] وغیرہ میں ہے، اس کی تحقیق ہم نے اپنے رسالہ لوامع البہا اور اپنے فتاوی میں متعدد جگہ کی ہے، شہر کی صحیح تعریف جو امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ظاہر الروایت میں منقول ہے اور ہم نے اپنے فتاوی میں اس کی وہ تفصیل دی جس پر اضافہ دشوار ہے، رہی یہ تعریف کہ "جس جگہ کی سب سے بڑی مسجد اس کے باشندوں کی گنجائش نہ رکھتی ہو" محققین علماء کے ہاں درست نہیں، جیسا کہ اس پر غنیہ میں تصریح ہے اور اس تعریف کے بطلان پر یہی دلیل کافی ہے کہ اس صورت میں مکہ مکرمہ اور مدینہ طیبہ دونوں ہی شہر نہ ہوں اور ان میں جمعہ کی نماز منع ہو کیونکہ یہ مشاہدہ ہے کہ وہ تو مشرق تا مغرب آنے والے زائرین سے نہیں پر ہوتیں، چہ جائیکہ وہاں کے لوگوں کے لئے کافی نہ ہوں، واللہ تعالٰی اعلم (ت)

---

[1] در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۳۱

Fatawa Razawiya, Volume 8

Issue 1352: From Bengal Question: What do the scholars of the faith say about this issue: Is it permissible for followers (Muqtadis) to also engage in supplications during the second Adhan of Friday prayer, and is it permissible to start the Friday and Eid sermons with 'Bismillah Sharif'? Some people say it is permissible and ask for proof of its impermissibility. The Answer: According to our Imam (Abu Hanifa), it is not permissible for the followers to respond to the second Adhan; the Imam should respond. The two companions (Sahibayn - Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) allow it. In 'Tabyeen al-Haqa'iq', the first opinion is called more cautious, and in 'Nihaya' and 'Inaya', the second is called clearer. Therefore, practice should be on the first as it is the Imam's opinion. However, if someone acts on the second, one should not quarrel with them because correction is also in that direction. Regarding the permissibility of saying 'Bismillah' at the beginning of the sermon, there is no doubt as there is no Sharia prohibition, but it should be said silently. What is written in books is that one should start the sermon after silently reciting 'A'udhu', as stated in 'al-Hindiyya' etc. And Allah knows best.

Issue 1353: From Nasirabad, Mohalla Teliyan, sent by Mr. Muhammad Umar, 26 Shawwal 1336 AH. Details: Dawood son of Muhammad Ali, known as Peerji, the Imam of Dudhiyaan Mosque in Nasirabad, stood up to deliver the sermon on Friday, July 5, 1918. When he finished the first sermon and sat for supplication, two people stood up and started praying Sunnah prayers. Then the aforementioned Dawood, after reading some of the second sermon, said that praying Sunnah between the first and second sermons is impermissible, and when followers hear the name 'Muhammad' in the sermon, it is impermissible to say 'Sallallahu Alayhi Wasallam'. Is this issue stated by Dawood according to the Holy Quran and Hadith? And what is the Sharia ruling regarding such a person who considers it impermissible to say 'Sallallahu Alayhi Wasallam' upon hearing the holy name of Muhammad (Sallallahu Alayhi Wasallam) during the sermon? Is he outside the fold of Islam or not? And is it permissible for Muslims to pray behind a person with such beliefs mentioned above? Sheikh Muhammad Umar Nasirabad, Rasul Bakhsh and Rasir, Muhammad Akbar Khan, Qamaruddin Clerk, Noor Muhammad Mistri, Lal Muhammad. The Answer: Our honorable Sunni brothers from all corners, may Allah Almighty protect them, send certain questions regarding some jurisprudential issues. The opinions they quote in these questions often have nothing to do with heresies like Wahhabism etc. They write in the letter that this person is such and such. In answering the fatwa, the

letter's tone is not considered here, especially since many times the statement attributed to that person is correct in itself. Now, why should it not be corrected, that the statement is correct? And if corrected, the common people might think that the words of Wahhabis and other misguided ones are correct, which raises the fear that they might [follow] his other words...

फ़तावा रज़विया, खंड 8

मसला 1352: बंगाल से प्रश्न: इस मसले में क्या हुक्म है कि जुमे की दूसरी अज़ान में मुक्तदियों का भी दुआ करना और जुमे और ईदैन के खुतबे को 'बिस्मिल्लाह शरीफ़' से शुरू करना जायज़ है या नहीं? कुछ लोग जायज़ कहते हैं और नाजायज़ होने की दलील चाहते हैं। उत्तर: दूसरी अज़ान का जवाब इमाम दे, हमारे इमाम के नज़दीक मुक्तदियों के लिए जायज़ नहीं है। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) इजाज़त देते हैं। 'तबीन अल-हक़ा'इक़' में पहले (इमाम के) कौल को ज़्यादा एहतियात वाला कहा गया है और 'निहाया' व 'इनाया' में दूसरे को ज़्यादा स्पष्ट। तो अमल पहले पर ही है क्योंकि वही इमाम का कौल है, और अगर कोई दूसरे पर अमल करे तो उससे भी झगड़ा नहीं करना चाहिए क्योंकि तसहीह (सही करार देना) उस तरफ भी है। खुतबे की शुरुआत में 'बिस्मिल्लाह' कहने के जायज़ होने में तो कोई शक नहीं क्योंकि शरीयत में इसकी मनाही नहीं है, मगर आहिस्ता कहे। किताबों में जितना लिखा है वो यह है कि 'अऊज़ु' आहिस्ता पढ़कर खुतबा शुरू करे जैसा कि 'हिंदिया' वगैरह में है। वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1353: नसीराबाद, मोहल्ला तेलियां से, प्रेषक मुहम्मद उमर साहब, 26 शव्वाल 1336 हिजरी। विवरण: दाऊद वल्द मुहम्मद अली उर्फ़ पीर जी, पेश इमाम मस्जिद दूधियां नसीराबाद, दिनांक 5 जुलाई 1918 जुमे के दिन खुतबा पढ़ने के लिए खड़े हुए। जब पहला खुतबा खत्म करके दुआ के लिए बैठे, उस वक्त दो व्यक्तियों ने खड़े होकर सुन्नत पढ़ना शुरू की। तब उक्त दाऊद ने दूसरा खुतबा थोड़ा पढ़कर फरमाया कि पहले और दूसरे खुतबे के बीच सुन्नतें पढ़ना नाजायज़ है, और जब खुतबे में मुहम्मद का नाम सुनें तो मुक्तदियों का 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' कहना नाजायज़ है। क्या दाऊद द्वारा बताया गया यह मसला कुरान और हदीस के मुताबिक है या नहीं? और ऐसे व्यक्ति के बारे में शरीयत का क्या हुक्म है जो खुतबे में मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का पाक नाम सुनकर 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' कहना जायज़ नहीं जानता? क्या वह इस्लाम से खारिज है या नहीं? और क्या मुसलमानों का ऐसे अकीदे वाले व्यक्ति के पीछे नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? शेख मुहम्मद उमर नसीराबाद, रसूल बख्श और रसीर, मुहम्मद अकबर खान, कमरुद्दीन क्लर्क, नूर मुहम्मद मिस्त्री, लाल मुहम्मद। उत्तर: तमाम अतराफ़ और अक़तार से हमारे सम्मानित सुन्नी भाई (अल्लाह उनकी हिफाज़त करे) कुछ फ़िक़्ही मसलों के बारे में सवाल भेजते हैं। उन सवालों में वे जिस किसी का कौल नक़ल करते हैं, उसका वहाबियत वगैरह जैसी गुमराहियों से कोई लेना-देना नहीं होता। वे खत में लिखते हैं कि यह व्यक्ति ऐसा और वैसा है। फतवे के जवाब में खत के इन

अल्फाज़ का ख्याल नहीं रखा जाता, खासकर जब अक्सर वह बात जो उस व्यक्ति की तरफ मंसूब (जुड़ी हुई) होती है, वह अपने आप में सही होती है। अब इसकी तसहीह (पुष्टि) क्यों न की जाए कि बात सही है? और अगर तसहीह की जाए तो आम लोगों के ज़हन में यह आता है कि वहाबियों और अन्य गुमराह लोगों की बातें सही हैं, जिससे यह अंदेशा रहता है कि वे उसकी अन्य बातों...

فتاویٰ رضویہ ، جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۵۲: از بنگال کیا فرماتے ہیں اس مسئلہ میں کہ جمعہ کی اذانِ ثانی میں مقتدیوں کو بھی مناجات کرنا اور جمعہ و عیدین کے خطبہ کو بسم اللہ شریف سے شروع کرنا جائز ہے یا نہیں؟ بعض لوگ جواز کہتے ہیں عدمِ جواز کی دلیل چاہتے ہیں۔ الجواب: اذانِ ثانی کا جواب امام دے مقتدیوں کو ہمارے امام کے نزدیک جائز نہیں صاحبین اجازت دیتے ہیں تبیین الحقائق میں اول کو احوط کہا اور نہایہ اور عنایہ میں ثانی کو واضح، تو عمل اول ہی پر ہے کہ وہی قولِ امام ہے، اور اگر کوئی ثانی پر عمل کرے تو اس سے بھی نزاع نہ چاہئے کہ تصحیح اُس طرف بھی ہے ابتدائے خطبہ میں بسم اللہ کہنے کے جواز میں تو شک نہیں کہ منعِ شرعی نہیں مگر آہستہ کہے، کتابوں میں جس قدر لکھا ہے وہ یہ ہے کہ اعوذ آہستہ پڑھ کر خطبہ شروع کرے کما فی الھندیۃ وغیرہا (جیسا کہ ہندیہ وغیرہ میں ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۵۳: از نصیر آباد محلہ تیلیاں مرسلہ محمد عمر صاحب ۲۶ شوال ۱۳۳۶ھ داود ولد محمد علی عرف پیر جی پیش امام مسجد دودھیاں نصیر آباد مورخہ ۵ جولائی ۱۹۱۸ء بروز جمعہ خطبہ پڑھنے کے لئے کھڑے ہوئے اور جب خطبہ اول ختم کرکے دعا کے لئے بیٹھے اُس وقت دو شخصوں نے کھڑے ہو کر سنت پڑھنا شروع کی تب مسمّٰی داود مذکور بالانے کچھ خطبہ ثانی پڑھ کر فرمایا کہ سنتوں کا خطبہ اول و ثانی میں پڑھنا ناجائز ہے اور جب خطبہ میں نام محمد مقتدی سنیں تو صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کہنا نا جائز ہے، آیا یہ مسئلہ جو مسمّٰی داود نے بیان کیا قرآن شریف و حدیث کے مطابق ہے یا نہیں؟ اور ایسے شخص کی نسبت جو خطبہ میں محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا نام پاک سن کر صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کہنا جائز نہ جانتا ہو اس کے حق میں از روئے شرع شریف میں کیا حکم ہے آیا خارجِ اسلام ہے یا نہیں؟ اور مسلمانوں کو ایسے عقیدہ

والے شخص کے پیچھے نماز پڑھنا جس کا ذکر اوپر ہوا ہے جائز ہے یا نہیں؟ شیخ محمد عمر نصیر آباد رسول بخش اور رسیر، محمد اکبر خان، قمر الدین کلرک۔ نور محمد مستری۔ لعل محمد الجواب: اطراف واقطار سے ہمارے معزز اہلسنت بھائی حفظہم اللہ تعالیٰ بعض سوالات بعض مسائل فقہیہ کی نسبت بھیجتے ہیں ان سوالوں میں جو قول کسی کا نقل کرتے ہیں اسے وہابیت وغیرہ ضلالتوں سے کچھ علاقہ نہیں ہوتا خط میں تحریر فرماتے ہیں کہ یہ شخص چنین و چناں ہے جواب استفتاء میں یہاں خط ملحوظ نہیں ہوتا خصوصاً بارہا وہ بات جو اس شخص کی طرف نسبت کی فی نفسہ صحیح ہوتی ہے اب اس کی تصحیح کیوں نہ کیجئے، کہ بات صحیح ہے اور تصحیح کیجئے تو عوام ذہن میں وہابی وغیرہ ضالین کی باتوں کا صحیح ہونا آتا ہے جس سے اندیشہ ہے کہ وہ اس کی اور باتوں

Fatawa Razawiyya - Volume 8

...start considering [it] as correct or doubtful, and this is a loss to their religion, whether it be a Wahabi or any infidel, Jew, Magian, idol-worshipper, etc. Not everything anyone says is a lie; every person says something true at some point. In Hanafi jurisprudence, many individuals such as Zamakhshari, Zahidi, and Mutarrizi were Mu'tazilites; their statements are cited and accepted in the branches of jurisprudence, while in beliefs (Aqa'id), they are misguided and irreligious. This point should always be kept in mind. Undoubtedly, the correct school of thought is that listening to both sermons (khutbahs) is mandatory (fard), and it is not permissible to offer Sunnah prayers during any sermon. Nor is it permitted to say 'Azza wa Jalla' after hearing the holy name of Allah Almighty, or 'Salla Allahu Ta'ala 'Alayhi wa Sallam' after hearing the holy name of the Noble Prophet (may Allah bless him and grant him peace). Verbal speech and greetings are strictly prohibited during the sermon. However, one may say 'Jalla Jalaluhu' and 'Salla Allahu Ta'ala 'Alayhi wa Sallam' in one's heart. It is mentioned in Durr-ul-Mukhtar:

[Box Left (Arabic):] When the Imam comes out, there is neither prayer nor speech until its completion, except for making up a missed prayer where the sequence between it and the current prayer has not lapsed. Therefore, making up such a prayer is not disliked so that the Friday prayer may be valid, as per Siraj and others. Otherwise, speech is prohibited, even if it is a single glorification (tasbih) or commanding good; rather, it is obligatory for him to listen and remain silent. (Summarized)

[Box Right (Urdu Translation):] When the Imam appears, then until completion, there should be neither speech nor prayer, except for making up a missed prayer where the order between it and the current prayer has not been dropped. Therefore, there is no dislike in making it up so that the Friday prayer is valid, as in Siraj etc. If this is not the case, then speech is prohibited even if it is just one tasbih, similarly commanding good [is prohibited]; rather, it is mandatory for him to listen to the sermon and remain silent. (T)

In the same [book]:

[Box Left (Arabic):] One should remain silent if the Imam recites a verse of encouragement or warning, and likewise during the sermon. He should not do anything that causes the loss of listening, even if it is writing or responding to a greeting, even if the preacher (Khatib) sends blessings upon the Prophet (may Allah

Ta'ala bless him and grant him peace). Except when the preacher recites the verse 'Send blessings upon him' (Sallu Alayhi), then the listener sends blessings upon him silently within himself and remains silent with his tongue, acting upon both commands: 'send blessings' and 'be silent.' (Summarized). And Allah Almighty knows best.

[Box Right (Urdu Translation):] When the Imam recites any verse of encouragement or warning, the follower should remain silent. The same applies to the sermon. Thus, he should not do any such work due to which listening is lost, even if it be writing or giving an answer to a greeting, even if the Khatib is reciting Durood Sharif upon the Noble Prophet (may Allah Ta'ala bless him and grant him peace). However, when the Khatib says the verse 'Sallu Alayhi', then the listener should recite Durood Sharif slowly in the heart and remain silent with the tongue, so that both commands 'recite Durood Sharif' and 'remain silent' are acted upon. And Allah Almighty knows best. (T)

1. Durr-ul-Mukhtar, Chapter on Friday, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/113.
2. Durr-ul-Mukhtar, Section on incense for the Imam etc., printed at Mujtabai Press, Delhi, 81/1.

...को भी सही या संदिग्ध ही समझने लगें, और यह उनके धर्म का नुकसान है, वहाबी हो या कोई काफ़िर, यहूदी, मजूस, मूर्तिपूजक आदि। किसी की सब बातें झूठी नहीं होतीं, हर व्यक्ति कभी न कभी कोई बात सच कहता है। हनफ़ी फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) में ज़मख़शरी, ज़ाहिदी और मुतर्रिज़ी जैसे कई व्यक्ति मुअतज़िला गुज़रे हैं; फ़िक़्ह की शाखाओं में उनके कथन उद्धृत और स्वीकार किए जाते हैं, जबकि विश्वासों (अक़ाएद) में वे लोग गुमराह और अधर्मी हैं। यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए। निस्संदेह, सही मत यही है कि दोनों खुत्बों का सुनना फर्ज़ है और किसी भी खुत्बे के समय सुन्नतें पढ़ने की अनुमति नहीं है। न ही अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल का पवित्र नाम सुनकर 'अज़्ज़ शानुहू' आदि कहने की और न ही हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का पवित्र नाम सुनकर 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' आदि ज़बान से कहने की अनुमति है, क्योंकि खुत्बे की स्थिति में सलाम और कलाम (बातचीत) पूरी तरह हराम है। हाँ, दिल में 'जल्ला जलालुहू' और 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' कह सकते हैं। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

[बायाँ बॉक्स (अरबी):] जब इमाम (खुत्बे के लिए) निकल आए, तो उसके पूरा होने तक न नमाज़ है और न ही कलाम, सिवाय छूटी हुई नमाज़ की क़ज़ा के, जब तक कि उसके और वर्तमान नमाज़ के बीच का क्रम (तरतीब) समाप्त न हुआ हो। अतः क़ज़ा पढ़ने में कोई मकरूहियत (बुराई) नहीं है ताकि जुमा की नमाज़ सही हो जाए, जैसा कि 'सिराज' आदि में है। अन्यथा, बातचीत हराम है, चाहे वह एक तस्बीह ही क्यों न हो, या भलाई का आदेश (अम्र बिल मारूफ) देना ही क्यों न हो; बल्कि उस पर अनिवार्य है कि वह सुने और चुप रहे। (सारांश)

[दायाँ बॉक्स (उर्दू अनुवाद):] जब इमाम आ जाए तो अब पूरा होने तक न बातचीत और न ही नमाज़, सिवाय उस नमाज़ की क़ज़ा के जो छूट गई हो, जबकि उसमें और वर्तमान नमाज़ में तरतीब साक़ित (ख़त्म) न हुई हो। इसलिए क़ज़ा में कोई बुराई नहीं ताकि जुमा सही हो जाए, 'सिराज' आदि। और यदि ऐसी स्थिति न हो तो बात करना हराम है, चाहे वह एक तस्बीह ही क्यों न हो, इसी प्रकार भलाई का आदेश देना भी; बल्कि उस पर अनिवार्य है कि खुत्बा सुने और चुप रहे। (त)

उसी में है:

[बायाँ बॉक्स (अरबी):] यदि इमाम प्रोत्साहन (तर्गीब) या चेतावनी (तर्हीब) की कोई आयत पढ़े तो चुप रहना चाहिए, इसी प्रकार खुत्बे का भी यही नियम है। अतः ऐसा कोई कार्य न करे जिससे सुनना छूट

जाए, चाहे वह लिखना ही क्यों न हो या सलाम का उत्तर देना हो, भले ही खतीब नबी अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम पर दरूद शरीफ़ पढ़ रहा हो। हाँ, जब खतीब 'सल्लू अलैहि' की आयत पढ़े, तो सुनने वाला अपने मन में चुपके से दरूद शरीफ़ पढ़ ले और ज़बान से चुप रहे ताकि दोनों आदेशों 'दरूद शरीफ़ पढ़ो' और 'चुप रहो' पर अमल हो जाए। (सारांश)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[दायाँ बॉक्स (उर्दू अनुवाद):] जब इमाम प्रोत्साहन या चेतावनी की कोई आयत पढ़े तो मुक्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाला) चुप रहे, खुत्बे का भी यही मामला है। अतः ऐसा कोई काम न करे जिससे सुनना छूट जाए, चाहे लिखना ही क्यों न हो या सलाम का जवाब देना हो, भले ही खतीब नबी अकरम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम पर दरूद शरीफ़ पढ़ रहा हो। हाँ, जब खतीब 'सल्लू अलैहि' की आयत कहे, तो सुनने वाला दिल में धीरे से दरूद शरीफ़ पढ़ ले और ज़बान से चुप रहे ताकि दोनों आदेशों 'दरूद शरीफ़ पढ़ो' और 'चुप रहो' पर अमल हो जाए। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/113
2. दुर्रे मुख्तार, फ़स्ल व युजम्मिरुल इमाम अलख, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली 81/1

کو بھی صحیح یا مشکوک ہی سمجھنے لگیں، اور یہ ان کے دین کا نقصان ہے، وہابی ہو یا کوئی کافر، یہودی، مجوسی، بت پرست و غیر ہم کسی کی سب باتیں جھوٹی نہیں ہوتیں کوئی نہ کوئی بات ہر شخص سچ کہتا ہے، فقہ حنفی تو متعدد اشخاص مثل زمخشری وزاہدی و مطرزی معتزلہ گزرے ہیں ان کے اقوال فروع فقہ میں نقل و مسلم ہوتے ہیں اور عقائد میں وہ لوگ گمراہ بد دین ہیں یہ نکتہ ہمیشہ ملحوظ رکھنا چاہئے، بلا شبہ صحیح مذہب یہی ہے کہ دونوں خطبوں کا سننا فرض ہے اور کسی خطبے کے وقت نہ سنتیں پڑھنے کی اجازت، نہ اللہ عزوجل کا نام پاک سن کر عز شانہ وغیرہ نہ حضور اقدس صلی اللہ علیہ وسلم کا نام پاک سن کر صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و وغیرہ زبان سے کہنے کی اجازت کہ بحالت خطبہ سلام و کلام مطلقاً حرام ہے، ہاں دل میں جل جلالہ ، وصلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کہیں، در مختار میں ہے:

[بائیں خانہ (عربی):] اذا خرج الامام فلا صلوۃ ولا کلام الی تمامہا خلا قضاء فائتۃ لم یسقط الترتیب بینہا و بین الوقتیۃ، فانہا لاتکرہ سراج وغیرہ لضرورۃ صحۃ الجمعۃ والا لافیحرم کلام ولو تسبیحا او امر بمعروف بل یجب علیہ ان یسمع و یسکت- (ملخصاً)

[دائیں خانہ (اردو ترجمہ):] جب امام آجائے تو اب اتمام تک نہ کلام نہ نماز جو فوت شدہ نماز کی قضاء کے علاوہ ہو جبکہ اس میں اور وقتی نماز میں ترتیب ساقط نہ ہوئی ہو، لہذا قضاء میں کراہت نہیں تاکہ جمعہ صحیح ہو، سراج وغیرہ، اور اگر ایسی صورت نہیں تو کلام حرام خواہ ایک تسبیح ہی کیوں نہ ہو، اسی طرح امر بالمعروف بھی، بلکہ اس پر لازم ہے کہ خطبہ سنے اور خاموش رہے- (ت)

اسی میں ہے:

[بائیں خانہ (عربی):] ینصت ان قرأ الامام آیۃ ترغیب او ترھیب کذا الخطبۃ فلا یأتی بما یفوت الاستماع لو کتابۃ اورد سلام وان صلی الخطیب علی النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم الا اذا قرأ آیۃ صلوا علیہ فیصلی علیہ المستمع سرا بنفسہ وینصت بلسانہ عملاً بامری صلوا وانصتوا۔ ملخصاً واللہ تعالی اعلم

[دائیں خانہ (اردو ترجمہ):] جب امام کوئی آیت ترغیب یا ترھیب پڑھے تو مقتدی خاموش رہے، اسی طرح خطبہ کا معاملہ ہے، پس ایسا کام نہ کرے جس سے سماع فوت ہوتا ہو اگرچہ کتابت ہی کیوں نہ ہو یا سلام کا جواب دینا ہو اگرچہ خطیب نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر درود شریف پڑھ رہا ہو البتہ جب خطیب آیت صلوا علیہ کہے تو سننے والا دل میں آہستہ درود شریف پڑھ لے اور زباں سے خاموش رہے تاکہ دونوں حکموں درود شریف پڑھو اور خاموش رہو پر عمل ہوجائے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۳ 2 در مختار فصل و یجمر الامام الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۸۱/۱

Fatawa Razawiyya Volume 8

Problem 1352: From Udaipur Mewar Rajputana, Maharana School, sent by Maulvi Wazir Ahmed Sahib, Teacher, 29 Dhul-Hijjah 1336 AH. On Friday, when the Khatib delivers the sermon, he reads it while looking at a book, whereas another person here reads it without looking at a book. Therefore, please state whose action is more in accordance with the Sunnah?

The Answer: Reading while looking and reading from memory are equal in fulfilling the command, but reading from memory is more in accordance with the Sunnah. And Allah Almighty knows best.

Problem 1355: From Bombay Station Bandra, Mohalla Nawapara Mosque, sent by Muhammad Jahangir Sahib, Imam of the said mosque, 11 Muharram al-Haram 1337 AH. Respected Maulana Sahib, Compelling Proof, Reviver of the Current Century, Peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. The request is that this booklet is being sent to your service to state that it bears your seal. Nowadays, there is a dispute here regarding the supplication (dua) between the two sermons (khutbahs). We have acted upon this booklet seeing your seal because your signatures and writings are present, as well as the signatures of several famous Indian scholars. For this reason, people have acted without hesitation. Therefore, it is sent to your service to ask whether your signatures are indeed present and whether the writings of other famous and prominent Indian scholars are such that we should act upon them or not? And are the arguments written in this booklet correct or not? Whatever you write shall be accepted.

The Answer: And upon you be peace and the mercy of Allah and His blessings. Supplication between the two sermons is by no means something that should be strictly prohibited. Creating division, inciting strife, seeking conflict, and factionalism in such matters is only done by those who seek fame through it. The statement of this humble servant (faqir) that has been quoted in this booklet has been heavily edited and truncated. My stance on this has always been that the followers (muqtadis) supplicate in my presence, and I never forbid it. This has also been the practice of my noble ancestors and eminent researchers, may Allah Almighty have mercy on them all. I myself led the Friday prayer in Bombay, and the attendees supplicated between the two sermons; I did not forbid it at that time nor afterwards. This booklet contains many egregious errors and many false lies, to the extent that correct references have been denied and a purely fabricated false reference has been

forged in the book. A detailed explanation of these matters and a fine investigation of the issue could fill an entire booklet. It is sufficient for Muslims to understand that this person and his teacher are Deobandis, students of Gangohi, and admirers of Gangohi and Thanvi. These are the ones against whom the noble scholars of the Two Holy Sanctuaries (Haramayn Sharifayn) unanimously issued fatwas of disbelief (kufr) by name and declared: 'Whoever doubts their disbelief and punishment, has indeed disbelieved.'

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मसला 1352: उदयपुर मेवाड़ राजपूताना, महाराणा स्कूल से, मौलवी वज़ीर अहमद साहब शिक्षक द्वारा प्रेषित, 29 ज़ुल-हिज्जा 1336 हिजरी। जुमे के दिन जब खतीब खुतबा पढ़ता है, तो वह किताब में देख कर पढ़ता है, और यहाँ एक व्यक्ति बिना देखे किताब पढ़ता है। अतः बताएँ कि दोनों में से किसका कार्य सुन्नत के अधिक अनुकूल है?

अल-जवाब: देख कर और ज़बानी (याद से) पढ़ना हुक्म की अदायगी में बराबर हैं, लेकिन ज़बानी पढ़ना सुन्नत के ज़्यादा करीब है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1355: बम्बई स्टेशन बांद्रा, मोहल्ला नवापाड़ा मस्जिद से, मुहम्मद जहांगीर साहब, उक्त मस्जिद के इमाम द्वारा प्रेषित, 11 मुहर्रम अल-हराम 1337 हिजरी। जनाब मौलाना साहब हुज्जत-ए-क़ाहिरा, मुजद्दिद-ए-मिअत-ए-हाज़िरा, अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह। गुज़ारिश यह है कि यह रिसाला (पुस्तिका) आपकी सेवा में भेज कर निवेदन किया जाता है कि इसमें आपकी मुहर है। आजकल यहाँ दो खुतबों के बीच दुआ के बारे में विवाद है। हमने आपकी मुहर देख कर इस रिसाले पर अमल कर लिया है क्योंकि आपके हस्ताक्षर और तहरीर (लेख) मौजूद हैं, और कुछ प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों के भी हस्ताक्षर हैं। इस वजह से लोगों ने बिना किसी हिचकिचाहट के अमल कर लिया है। इसलिए आपकी सेवा में भेज कर पूछा जा रहा है कि क्या आपके हस्ताक्षर मौजूद हैं और अन्य प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों की तहरीर ऐसी है कि उन पर अमल करें या न करें? और इस रिसाले में जो दलीलें लिखी हैं, वे सही हैं या नहीं? जैसा आप तहरीर फरमाएँ, वैसा ही माना जाएगा।

अल-जवाब: वअलैकुम अस्सलाम व रहमतुल्लाहि व बरकातुह। दो खुतबों के बीच दुआ हरगिज़ ऐसी चीज़ नहीं है जिस पर मनाही का ज़ोर दिया जाए। ऐसे मसलों में फूट डालना, फ़ितना फैलाना, झगड़े की प्रवृत्ति और गुटबाज़ी वही लोग करते हैं जो इसके ज़रिए शोहरत चाहते हैं। फ़कीर (मैं) की इबारत जो इस रिसाले में उद्धृत की गई है, उसमें बहुत काट-छाँट की गई है। इस बारे में मेरा नज़रिया हमेशा यह रहा है कि मेरे सामने मुक्तदी दुआ करते हैं और मैं कभी मना नहीं करता। यही तरीका मेरे बुज़ुर्गों और प्रतिष्ठित शोधकर्ताओं का रहा है, अल्लाह तआला उन सब पर रहम फरमाए। मैंने खुद बम्बई में जुमे की नमाज़ पढ़ाई और हाज़िरीन ने दो खुतबों के बीच दुआएं मांगीं; न मैंने उस वक्त मना किया और न बाद में। इस रिसाले में बहुत सी गंभीर गलतियाँ और बहुत से झूठे दावे हैं, यहाँ तक कि सही हवालों को झुठलाया गया है और खुद किताब पर मनगढ़ंत झूठा हवाला गढ़ा गया है।

इन बातों का विवरण और मसले की सुंदर जाँच एक पूरा रिसाला हो सकती है। मुसलमानों को समझने के लिए इतना काफी है कि यह व्यक्ति और उसके उस्ताद देवबंदी हैं, गंगोही के शागिर्द और गंगोही व थानवी के प्रशंसक हैं। और ये वे लोग हैं जिनके बारे में हरमैन शरीफ़ैन के विद्वानों ने एकमत होकर नाम-ब-नाम उनके कुफ्र का फतवा दिया और फरमाया: 'जिसने उनके कुफ्र और अज़ाब में शक किया, वह खुद काफ़िर हो गया।'

पेज 438 का 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۵۲: از او دیپور میواڑ راجپوتانہ مہارانا اسکول مرسلہ مولوی وزیر احمد صاحب مدرس ۲۹ ذی الحجہ ۱۳۳۶ھ جمعہ کے دن جب خطیب خطبہ پڑھتا ہے تو کتاب میں دیکھ کر پڑھتا ہے اور ایک شخص یہاں بے دیکھے کتاب پڑھتا ہے لہذا فرمائیں دونوں میں کس کا عمل موافق سنت ہے؟

الجواب: دیکھ کر اور زبانی نفس ادائے حکم میں یکساں ہیں مگر زبانی اوفق بالسنۃ ہے واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۳۵۵: از بمبئی اسٹیشن باندرہ محلہ نواپارہ مسجد مرسلہ محمد جہانگیر صاحب امام مسجد مذکور ۱۱ محرم الحرام ۱۳۳۷ھ جناب مولانا صاحب حجتہ قاہرہ مجد دمانتہ حاضرہ، السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، گزارش یہ ہے کہ یہ رسالہ آپ کی خدمت میں روانہ کر کے عرض کیا جاتا ہے کہ اس میں آپ کی مہر ہے اور آج کل یہاں دعاء بین الخطبتین میں تنازع ہے تو ہم لوگ اس رسالہ پر آپ کی مہر دیکھ کر عمل کر لیا ہے کیونکہ آپ کی دستخط تحریر ہیں اور چند علمائے ہند نامی کی بھی دستخطیں تحریر، اس وجہ سے لوگوں نے بےدغدغہ عمل کر لیا ہے تو اسی واسطے آپ کی خدمت میں ارسال کر کے عرض ہے کہ دستخط آپ کے موجود ہیں اور دیگر علمائے ہند نامی گرامی کی تحریر ہے تو عمل کریں یا نہ کریں اور اس رسالہ میں جو دلیلیں تحریر ہیں صحیح ہیں یا نہیں، جیسا آپ تحریر فرمائیں آمنا کیا جائے۔

الجواب: وعلیکم السلام ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، دعاءبین الخطبتین ہر گز ایسی چیز نہیں ہے جس سے ممانعت پر کچھ بھی زور دیا جائے ایسے مسائل میں تفرقہ اندازی، فتنہ پردازی، جدال پسندی، فریق

بندی وہی لوگ کیا کرتے ہیں جو اس کے ذریعہ شہرت چاہتے ہیں، فقیر کی عبارت کہ اس رسالہ میں منقول ہوئی ہے کہ اس میں بہت قطع وبریدہ کی گئی ہے میرا مسلک اس میں ہمیشہ یہ رہا ہے کہ خود میرے سامنے مقتدین دعا کرتے ہیں اور میں کبھی منع نہیں کرتا اور یہی مسلک میرے آبائے کرام اور محققین اعلام کا رہا ہے رحمۃ اللہ تعالیٰ اجمعین، خود بمبئی میں بھی میں نے جمعہ پڑھایا اور حاضرین نے بین الخطبتین دعائیں مانگیں اور میں نے نہ اس وقت منع کیا نہ بعد کو، اس رسالہ میں بہت اغلاط فاحشہ ہیں اور بہت اکاذیب باطلہ ہیں، یہاں تک کہ صحیح حوالوں کو جھٹلایا ہے اور خود محض جھوٹا حوالہ کتاب پر گھڑ کر دیا ہے ان امور کی تفصیل اور مسئلہ کی تحقیق جمیل ایک رسالہ ہو سکتی ہے مسلمانوں کو سمجھ لینے کو اتنا کافی ہے کہ یہ شخص اور اس کے استاذ دیوبندی ہیں گنگوہی کے شاگرد اور گنگوہی و تھانوی کے مداح، اور یہ وہ ہیں کہ علماء کرام حرمین شریفین نے بالاتفاق نام بنام ان کے کفر کا فتویٰ دیا اور فرما دیا کہ من شك في كفره وعذابه فقد كفر۔

Volume 8 Fatawa Razawiyya

Whoever doubts their being a disbeliever is a disbeliever himself, let alone one who considers them a scholar of religion and believes such and such things about them, We seek refuge in Allah. And Allah Almighty knows best. Issue 1356: From Hadi Hassan Khan, Kanpur, Nayi Sadak, 15 Safar 1337 AH. What do the scholars of religion and the clear Shariah say regarding this matter: there is a village with a population of about five hundred, and it has a mosque such that if all the accountable people of the village gather in it, it will not be adequate for them, and near it, at a distance of two 'kos' (approx. 4 miles), there are several towns. Is Jumu'ah and Eid prayer permissible in this village according to the Hanafi school of thought or not? Please explain and be rewarded. The Answer: By the consensus of all Hanafi Imams, Jumu'ah and Eid in it are void, and performing them is a sin. It is stated in all texts, commentaries, and fatwas: "The condition for their validity is the city." (The presence of a city is a condition for the validity of Jumu'ah. T) It is in Durr-e-Mukhtar: "Eid prayer in villages is prohibitively disliked (Makruh Tahrimi) because it is engagement in what is not valid, since being in a city is a condition for validity." (In villages, the Eid prayer is prohibitively disliked because it is engagement in an act that is not correct since the city is a condition for its validity. (T)) They themselves will not perform it; if the ruling is asked, the fatwa will be that where it is not established, it should not be performed. Despite this, if the common people perform it, they should not be stopped. Durr-e-Mukhtar: "It is prohibitively disliked to pray absolutely or voluntarily at sunrise, except for commoners; they are not prevented from doing so because they would leave it entirely, and performing what is permissible according to some is better than leaving it. (summarized)" (Every prayer at sunrise is prohibitively disliked, whether it be voluntary, but the common people will not be stopped from praying because they will leave it completely, and what is permissible in the eyes of some, its performance is better than its abandonment. (T)) In Radd-ul-Muhtar, it is stated: "His saying 'so they are not prevented' informed that the exception is the prevention." The phrase "so they are not prevented" clarifies that the exception is prevention.

1 Durr-e-Mukhtar, Chapter of Friday, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/109 2 Durr-e-Mukhtar, Chapter of Eids, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/112 3 Durr-e-Mukhtar, Book of Prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 61/1

जिल्द हष्टम फ़तावा रजविया

जो उनके काफ़िर होने में शक करे वह खुद काफ़िर है, न कि वह जो उन्हें दीन का आलिम जाने और ऐसा वैसा माने, अल्लाह की पनाह। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मसला 1356: हादी हसन खान, कानपुर नई सड़क, 15 सफ़र 1337 हिजरी। दीन के विद्वान और शरीअत-ए-मतीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक देहात (गाँव) है जिसकी आबादी तक़रीबन पाँच सौ है और उसमें एक ऐसी मस्जिद है कि अगर उस गाँव के मुकल्लफ़ (ज़िम्मेदार) लोग उसमें जमा हों तो मस्जिद पर न होगी (यानी पर्याप्त नहीं होगी) और उसके करीब दो-दो कोस पर कई कस्बे हैं, तो उस गाँव में हनफ़ी मज़हब के अनुसार जुमा और ईदैन (ईद) की नमाज़ जायज़ है या नहीं? बयान करें, सवाब पाएँ। अल-जवाब: तमाम हनफ़ी इमामों की सर्वसम्मति से इसमें जुमा और ईदैन बातिल (अमान्य) हैं और पढ़ना गुनाह है, तमाम मूल ग्रंथों, व्याख्याओं और फतवों में है: "इसकी सेहत (वैधता) के लिए शहर होना शर्त है।" (जुमा की वैधता के लिए शहर होना शर्त है। त) दुर्रे मुख्तार में है: "गाँवों में ईद की नमाज़ मकरूह-ए-تहरीमी है क्योंकि यह ऐसे काम में मशगूल होना है जो सही नहीं है क्योंकि इसकी वैधता के लिए शहर होना शर्त है।" (देहातों में ईद की नमाज़ मकरूह-ए-تहरीमी है क्योंकि यह ऐसे कार्य में संलग्न होना है जो सही नहीं है क्योंकि इसकी सेहत के लिए शहर का होना शर्त है। (त)) वे खुद नहीं पढ़ेंगे; यदि हुक्म पूछा जाए, तो फतवा यह दिया जाएगा कि जहाँ कायम नहीं है, वहाँ कायम न करें। इसके बावजूद अगर आम जनता पढ़ती हो, तो उन्हें न रोकें। दुर्रे मुख्तार: "सूर्योदय के समय हर नमाज़ मकरूह-ए-تहरीमी है, चाहे नफ़्ल हो, सिवाय आम लोगों के, उन्हें ऐसा करने से नहीं रोका जाएगा क्योंकि वे इसे पूरी तरह छोड़ देंगे, और जो कुछ के नज़दीक जायज़ हो, उसका करना छोड़ने से बेहतर है (संक्षेप में)।" (सूर्योदय के समय हर नमाज़ मकरूह-ए-تहरीमी है चाहे वह नफ़्ल हो, लेकिन आम लोगों को नमाज़ पढ़ने से नहीं रोका जाएगा क्योंकि वे इसे पूरी तरह छोड़ देंगे, और जो कुछ के नज़दीक जायज़ हो उसका पालन करना छोड़ने से बेहतर होता है (त)) रद्दुल मुहतार में है: "उनका कथन 'तो उन्हें रोका नहीं जाएगा' ने बताया कि अपवाद रोक है।" उनका कथन "तो उन्हें रोका नहीं जाएगा" स्पष्ट कर रहा है कि अपवाद रोक का है।

1 दुर्रे मुख्तार बाबुल जुमा, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/109 2 दुर्रे मुख्तार बाबुल ईदैन, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/112 3 दुर्रे मुख्तार किताबुस सलात, मतबा मुजतबाई दिल्ली 61/1

पृष्ठ 439/673

جو ان کے کافر ہونے میں شک کرے خود کافر ہے ، نہ کہ وہ جو انھیں عالم دین جانے اور چنان و چنیں مانے ، والعیاذ باللہ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۵۶: ہادی حسن خاں از کانپور نئی سڑک ۱۵ صفر ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و شرع متین اس مسئلہ میں کہ ایک دیہات ہے جس کی آبادی تقریباً پانچ سو کے ہے اور اس میں ایک ایسی مسجد ہے کہ اگر اس گاؤں کے مکلفین اس میں جمع ہوں تو مسجد پر نہ ہوگی اور اس کے قریب دو دو کوس پر کئی قصبے ہیں تو اس گاؤں میں ازروئے مذہب حنفی نمازِ جمعہ وعیدین جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: باجماع جملہ ائمہ حنفیہ اس میں جمعہ و عیدین باطل ہیں اور پڑھنا گناہ ، تمام متون و شروح و فتاویٰ میں ہے : شرط صحتھا المصر (جمعہ کی صحت کے لئے شہر کا ہونا شرط ہے۔ت) در مختار میں ہے : صلاۃ العید في القری تکرہ تحریما لانہ اشتغال بما لا یصح لان المصر شرط الصحۃ - دیہاتوں میں عید کی نماز مکروہ تحریمی ہے کیونکہ یہ ایسے عمل میں مشغول ہونا ہے جو درست نہیں کیونکہ اس کی صحت کے لئے شہر کا ہونا شرط ہے۔(ت) خود نہ پڑھیں گے حکم پوچھا جائے گا تو فتویٰ یہ دیں گے جہاں نہیں ہوتے قائم نہ کریں گے بایں ہمہ اگر عوام پڑھتے ہوں منع نہ کریں گے۔ در مختار : کرہ تحریماً صلوٰۃ مطلقاً او نفلاً مع شروق الا العوام فلا یمنعون من فعلھا لانھم یترکونھا والاداء الجائز عند البعض اولی من الترک - (ملخصاً) طلوع آفتاب کے وقت ہر نماز مکروہ تحریمی ہے خواہ نفل ہو لیکن عوام کو نماز پڑھنے سے روکا نہیں جائے گا کیونکہ وہ بالکل ترک کر دیں گے ، اور جو بعض کے نزدیک جائز ہو اس کا بجالانا ترک سے اولیٰ ہوتا ہے (ت) رد المحتار میں ہے : قولہ فلا یمنعون افاد ان المستثنی المنع قولہ "فلا یمنعون" واضح کر رہا ہے کہ استثنا،

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰۹ 2 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۲ 3 در مختار کتاب الصلوٰۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۶۱/۱

Fatawa-e-Razvia Volume 8

(Arabic text snippet): "not the ruling of invalidity according to those who report it from some... i.e., some Mujtahids like Imam Shafi'i here, there is a saying of permissibility. And Allah Almighty knows best." Urdu Explanation: [The ruling] is of prohibition, not of the ruling of invalidity according to us. The phrase "according to some" refers to some Mujtahids, for example, according to Imam Shafi'i, there is a saying of permissibility in this matter. And Allah Almighty knows best. (T)

Question 1357: From Abdul Sattar Ibn Ismail, Rangoon. 2 Rabi-ul-Awwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: In a city where the person leading Friday (Jumu'ah) prayers is a Deobandi or misguided in belief, and there is no other mosque where Jumu'ah is held, or if in all mosques where Jumu'ah is held, the imams are followers of misguided sects, then in such a situation, should the Ahl-e-Sunnat abandon Jumu'ah prayers, or is there another ruling? Also, what is the ruling regarding the Eid prayers in such cases?

Answer: When the situation is such, it is mandatory (fard) for Muslims to appoint a righteous Muslim as their Imam and pray Jumu'ah and Eid behind him. To establish Jumu'ah, if they need to build a mosque, or they can pray in an open field or a house with public permission (idhn-e-aam) and announcement. If they do not have the power to do this, and the imams of all mosques are Deobandis, Wahhabis, Ghair-Muqallids, Necharis, Mirzais, etc., who are apostates (murtadeen), then it is mandatory to pray Zuhr individually. Praying behind these people is utterly void, just like praying behind an idol worshiper or an Arya. This is not considered abandoning Jumu'ah because what they are performing is a futile and void act, not prayer at all. Following them is strictly forbidden (haram qat'i) for several reasons. Furthermore, if someone becomes aware of their beliefs and still considers them fit for imamat, he becomes an infidel (kafir): "Whosoever doubts their infidelity and punishment, indeed commits infidelity himself." (T) Yes, if there is a misguided person who is not ruled as a kafir, such as a Tafziliya, and a Sunni Imam cannot be found, then one may pray Jumu'ah and Eid behind him. And Allah Almighty knows best.

Question 1358: From Pandul Buzurg, Post Office Raipur, District Muzaffarpur, sent by Niamat Ali Sahib. 4 Rabi-ul-Awwal Sharif 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Jumu'ah is held in another settlement and people go there to pray. Now, an epidemic (waba), i.e., cholera, etc., has broken out there. In such a

state, is it permissible to go to that cholera-affected settlement to pray Jumu'ah or not?

Answer: If this place is within the vicinity of the city, then it's not a different place but part of it. Otherwise, if it is a city itself, then even without an epidemic, Jumu'ah should be prayed here...

---

1 Radd al-Muhtar, Kitab al-Salat, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/231.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं

(अरबी पाठ का अंश): "कुछ लोगों के अनुसार अमान्यता का हुक्म नहीं... यानी कुछ मुजतहिदीन जैसे यहाँ इमाम शाफ़ई, इस स्थान पर अनुमति का मत है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।" उर्दू व्याख्या: [हुक्म] मनाही का है, न कि हमारे नज़दीक अमान्यता (अदम-ए-सेहत) के हुक्म का। 'अलबअज़' (कुछ के नज़दीक) से मुराद कुछ मुजतहिदीन हैं, मिसाल के तौर पर इमाम शाफ़ई के नज़दीक इस जगह पर जवाज़ (अनुमति) का कौल है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला १३५७: अब्दुल सत्तार इब्न इस्माइल, रंगून से। २ रबीउल अव्वल १३३७ हिजरी। उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि जिस शहर में जुमे की नमाज़ पढ़ाने वाला देवबंदी या बद-अक़ीदा हो और दूसरी किसी मस्जिद में भी जुमा न होता हो, या तमाम मस्जिदें जहाँ जुमे की नमाज़ होती है उनके इमाम बद-मज़हब हों, तो ऐसी सूरत में अहले सुन्नत जुमा छोड़ दें या कोई और हुक्म है? साथ ही ईदैन (दोनों ईदों) की नमाज़ का क्या हुक्म है?

जवाब: जब सूरत ऐसी हो तो मुसलमानों पर फ़र्ज़ है कि किसी नेक मुसलमान को अपना इमाम मुक़र्रर करें और उसके पीछे जुमा और ईदैन पढ़ें। जुमा क़ायम करने के लिए अगर कोई मस्जिद बनानी पड़े, तो आम मुसलमानों की अनुमति (इज़्न-ए-आम) और प्रचार के साथ किसी मैदान या मकान में पढ़ें। और अगर इस पर ताक़त न हो और तमाम मस्जिदों के इमाम देवबंदी, वहाबी, ग़ैर-मुक़ल्लिद, नेचरिया, मिर्ज़ाई आदि मुर्तद (धर्म-त्यागी) हों, तो फ़र्ज़ है कि ज़ुहर की नमाज़ अकेले-अकेले पढ़ें। इन लोगों के पीछे नमाज़ बिल्कुल बातिल (अमान्य) है, जैसे किसी मूर्तिपूजक या आर्य के पीछे पढ़ना। यह जुमा छोड़ना नहीं हुआ क्योंकि जो वे पढ़ रहे हैं वह एक व्यर्थ और बातिल कार्य है, नमाज़ ही नहीं। और उनका अनुसरण (इक़्तेदा) कई कारणों से कतई हराम है। बल्कि उनके अक़ायद (मान्यताओं) से अवगत होकर फिर भी उन्हें इमामत के लायक़ समझना कुफ़्र है: "जिसने उनके कुफ़्र और अज़ाब में शक किया, उसने स्वयं कुफ़्र किया।" (त) हाँ, अगर कहीं ऐसा बद-मज़हब हो जिस पर कुफ़्र का हुक्म नहीं है, जैसे तफ़्ज़ीलिया, और सुन्नी की इमामत न मिल सके तो उसके पीछे जुमा और ईदैन पढ़ ले। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला १३५८: पंडुल बुज़ुर्ग, डाकखाना रायपुर, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर से, निअमत अली साहब द्वारा प्रेषित। ४ रबीउल अव्वल शरीफ़ १३३७ हिजरी। उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक

दूसरी बस्ती में जुमा होता है और लोग वहाँ जाकर जुमा पढ़ते हैं। अब वबा (महामारी) यानी हैज़ा आदि आ गया है, तो ऐसी हालत में उस हैज़ा वाली बस्ती में जाकर जुमा पढ़ना जायज़ है या नहीं?

जवाब: अगर यह जगह शहर के आस-पास की है तो वह दूसरी जगह नहीं बल्कि उसी का हिस्सा है। अन्यथा अगर वह स्वयं शहर है, तो बिना वबा के भी जुमा यहीं...

---

१ रद्दुल मुहतार, किताबुस सलात, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, १/२३१।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

لا الحکم بعدم الصحة عند ناقوله عند البعض | منع کا ہے نہ کہ عدم صحت کے حکم کا ہمارے نزدیک، قولہ عند ای بعض المجتهدین کالامام الشافعی هنا | البعض یعنی بعض مجتہدین مثلاً امام شافعی کے نزدیک اس مقام ۱- واللہ تعالٰی اعلم | پر جواز کا قول ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۵۷: عبدالستار ابن اسمعیل از رنگون ۲ ربیع الاول ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس شہر میں جمعہ کی نماز پڑھانے والا دیوبندی یا بدعقیدہ اور دوسری کسی مسجد میں بھی جمعہ نہ ہوتا ہو یا تمام مساجد جہاں جمعہ کی نماز ہوتی ہے ان کے امام بد مذہب ہوں تو ایسی صورت میں اہل سنت جمعہ کو ترک کرے یا کوئی اور حکم ہے؟ نیز ایسا ہی عیدین کی نماز کا کیا حکم ہے؟

الجواب: جب صورت ایسی ہو تو مسلمانوں پر فرض ہے کہ کسی مسلمان صالح امامت کو اپنا امام مقرر کریں اس کے پیچھے جمعہ و عیدین پڑھیں، جمعہ قائم کرنے کے لئے اگر کوئی مسجد بنائیں تو اذن عام مسلمین واشتہار کے ساتھ کسی میدان خواہ مکان میں پڑھیں اور اگر اس پر قدرت نہ ہو اور سب مساجد کے امام دیوبندی یا وہابی یا غیر مقلد یا نیچری یا مرزائی و غیر ہم مرتدین ہیں تو فرض ہے کہ ظہر تنہا تنہا پڑھیں ان لوگوں کے پیچھے نماز باطل محض ہے جیسے کسی بت پرست یا آریہ کے پیچھے یہ ترک جمعہ نہ ہوا کہ وہ جو پڑھ رہے ہیں لغو و باطل حرکت ہے نماز ہی نہیں، اور ان کی اقتداء بوجوہِ حرام قطعی ہے بلکہ ان کے عقائد پر مطلع ہو کر پھر بھی انہیں قابلِ امامت جانے تو کافر ہو جائے من شك فی کفره و عذابه فقد کفر (جس نے اس کے کفر اور عذاب میں شک کیا اس نے کفر کیا۔ت) ہاں اگر کہیں ایسا بد مذہب ہو جس پر حکم کفر نہیں جیسے تفضیلیہ، اور سنی کی امامت نہ مل سکے تو اس کے پیچھے جمعہ و عیدین پڑھ لے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۵۸: از پنڈول بزرگ ڈاکخانہ رائے پور ضلع مظفر پور مرسلہ نعمت علی صاحب ۴ ربیع الاول شریف ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک دوسری بستی میں جمعہ ہوتا ہے لوگ وہاں جا کر جمعہ پڑھتے ہیں اب وباء یعنی حیضہ وغیرہ آگیا ہو تو ایسی حالت میں اس حیضہ والی بستی میں جا کر جمعہ پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: اگر یہ جگہ جوالی شہر ہے تو دوسری جگہ نہیں اسی کا حصہ ہے ورنہ اگر خود شہر ہے تو بغیر وبا بھی یہیں جمعہ

---

۱ ردالمحتار کتاب الصلوٰۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۳۱

established there instead of going elsewhere to pray. And if it's a village, Friday prayer is not obligatory for them; in the state of a plague, do not go there. And Allah Almighty knows best. Problem 1359: From Mumbai Banjar, District Mandla, asked by Abdul Sattar Sahib Pilibhiti, 3 Rajab 1337 AH. Is it permissible to listen to the Friday sermon while standing? The Answer: Moving while listening to the sermon is forbidden, and listening to the sermon while standing without necessity is against the Sunnah. It is common practice among the public that when the preacher reaches these words at the end of the sermon "wa la-dhikrullah ta'ala a'la" (And the remembrance of Allah Almighty is greatest), they stand up for prayer as soon as they hear them. This is forbidden because the sermon has not yet finished, a few words still remain, and any action during the sermon is forbidden. And Allah Almighty knows best. Problem 1360: From Faridkot State, District Ferozepur, Punjab, Government Printing Press, sent by Munshi Muhammad Ali Iram, 6 Rajab-ul-Murajab 1337 AH: What do the scholars of the religion say on this matter? A person led the Friday prayer in one mosque himself, and then due to a necessity, he went to another mosque and prayed Friday prayer as a follower. What is the ruling on this? The Answer: There is no harm if he has already led the prayer once, for "performing a supererogatory act with Friday prayer is not prohibited" (making Friday prayer a voluntary/nafl act is not forbidden). And Allah Almighty knows best. Problem 1361: From the city, asked by Shaukat Ali Sahib, 10 Sha'ban 1337 AH. What is the opinion of the scholars of Ahl-e-Sunnat wa Jama'at on this matter? In the city, prayers are held in many places. Is every mosque where Friday prayer is held considered a Jamia Masjid and possesses the virtue of a Jamia Masjid? Or is it only that one mosque adjacent to the fort which is famous as the Jamia Masjid? Is there any prohibition against Friday prayer being held in many places in the city? What is the minimum number of people required for Friday prayer, and in which mosque is there more reward? The Answer: Jamia Masjid is that one mosque. There is no prohibition against congregating in multiple places in the city. For Friday prayer, at least [excluding] the Imam...

वहाँ स्थापित किया जाए न कि दूसरी जगह पढ़ने जाएँ, और अगर गाँव है तो उन पर जुम्मा नहीं है, महामारी की स्थिति में वहाँ न जाएँ और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मसला 1359: मुंबई बंजर, जिला मंडला से, प्रार्थी अब्दुल सत्तार साहब पीलीभीती, 3 रजब 1337 हिजरी। क्या जुम्मे का खुत्बा खड़े होकर सुनना जायज़ है? अल-जवाब (उत्तर): खुत्बा सुनने की स्थिति में हरकत मना है और बिना ज़रूरत खड़े होकर खुत्बा सुनना सुन्नत के खिलाफ है। आम जनता में यह रिवाज है कि खतीब (प्रवक्ता) खुत्बा के अंत में जब इन शब्दों पर पहुँचता है "वल-ज़िकरुल्लाह तआला आला" (और अल्लाह तआला का ज़िक्र सबसे ऊँचा है), तो इसे सुनते ही वे नमाज़ के लिए खड़े हो जाते हैं। यह हराम है क्योंकि अभी खुत्बा खत्म नहीं हुआ है, कुछ शब्द बाकी हैं, और खुत्बा की स्थिति में कोई भी अमल (कार्य) हराम है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मसला 1360: रियासत फरीदकोट, जिला फिरोजपुर, पंजाब, सरकारी प्रेस से, प्रेषक मुंशी मोहम्मद अली इरम, 6 रजब-उल-मुरज्जब 1337 हिजरी: दीन के उलमा इस मसले में क्या फरमाते हैं कि एक व्यक्ति ने एक मस्जिद में खुद इमामत करके जुम्मे की नमाज़ पढ़ाई, और दूसरी मस्जिद में किसी ज़रूरत की वजह से आकर खुद मुक्तदी (अनुयायी) होकर भी जुम्मे की नमाज़ पढ़ी, इसका क्या हुक्म है? अल-जवाब (उत्तर): इसमें कोई हर्ज नहीं जबकि वह पहले इमामत कर चुका हो, क्योंकि "जुम्मे को नफ़ल (स्वैच्छिक) बनाना मना नहीं है।" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। मसला 1361: शहर से, प्रार्थी शौकत अली साहब, 10 शाबान 1337 हिजरी। इस मसले में अहले सुन्नत व जमाअत के उलमा का क्या कहना है कि शहर में बहुत सी जगहों पर नमाज़ होती है, तो क्या हर वह मस्जिद जहाँ जुम्मा होता है, जामा मस्जिद है और जामा मस्जिद की फज़ीलत (महिमा) रखती है? या सिर्फ वही एक मस्जिद जो किले से सटी हुई है और जामा मस्जिद के नाम से मशहूर है? क्या शहर में बहुत सी जगहों पर जुम्मा होने में कोई रुकावट तो नहीं है? और जुम्मे में कम से कम कितने आदमी होने चाहिए और किस मस्जिद में ज़्यादा सवाब (पुण्य) है? अल-जवाब (उत्तर): जामा मस्जिद वही एक मस्जिद है। शहर में कई जगहों पर जमा होने की कोई मनाही नहीं है। जुम्मे के लिए कम से कम इमाम के अलावा...

قائم کیا جائے نہ کہ دوسری جگہ پڑھنے جائیں، اور اگر گاؤں ہے تو ان پر جمعہ نہیں بحالت وباء وہاں نہ جائیں، واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۵۹: از بمبئی بنجر ضلع منڈلا مسئولہ عبد الستار صاحب پیلی بھیتی ۳ رجب ۱۳۳۷ھ کیا خطبہ جمعہ کھڑے ہو کر سننا جائز ہے؟ الجواب: خطبہ سننے کی حالت میں حرکت منع ہے اور خطبہ بلا ضرورت کھڑے ہو کر سننا خلاف سنت ہے، عوام میں یہ معمول ہے کہ خطیب آخر خطبہ میں ان لفظوں پر پہنچتا ہے ولذکر اللہ تعالیٰ اعلیٰ تو اس کے سنتے ہی نماز کے لئے کھڑے ہو جاتے ہیں یہ حرام ہے کہ ہنوز ختم نہ ہوا چند الفاظ باقی ہیں اور خطبہ کی حالت میں کوئی عمل حرام ہے واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۶۰: از ریاست فرید کوٹ ضلع فیروز پور پنجاب مطبع سرکاری مرسلہ منشی محمد علی ارم ۶ رجب المرجب ۱۳۳۷ھ: کیا فر ماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے ایک مسجد میں جمعہ با مامت خود پڑھایا دوسری مسجد میں ایک ضرورت کی وجہ آجانے سے خود مقتدی ہو کر بھی جمعہ پڑھا، اس کا کیا حکم ہے؟ الجواب: کوئی حرج نہیں جبکہ امامت پہلے کر چکا ہو فان التنفل بالجمعۃ غیر ممنوع (جمعہ کو نفل بنانا منع نہیں۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۶۱: از شہر مسئولہ شوکت علی صاحب ۱۰ شعبان ۱۳۳۷ھ کیا قول ہے علمائے اہلسنت و جماعت کا اس مسئلہ میں کہ شہر میں بہت جگہ نماز ہوتی ہے تو ہر وہ مسجد جس میں جمعہ ہوتا ہے جامع مسجد ہے اور جامع مسجد کی فضیلت رکھتی ہے یا وہی ایک مسجد جو متصل قلعہ کے جامع مسجد مشہور ہے اور شہر میں بہت جگہ جمعہ ہونے میں کچھ ممانعت تو نہیں ہے اور جمعہ میں کم از کم کے آدمی ہوں جو نہ ہوسکے اور زیادہ ثواب کس مسجد میں ہے؟ الجواب: جامع مسجد وہی ایک مسجد ہے شہر میں متعدد جگہ جمع ہونے کی ممانعت نہیں، جمعہ کے لئے کم سے کم امام کے

Fatawa Rizwia Volume 8

...there should be three people besides [the Imam], but not every person can be the Imam for Jumu'ah and Eidain; he must be the Sultan of Islam, or his deputy, or his authorized representative. If none of them is present, then out of necessity, the common worshippers may appoint an Imam for Jumu'ah. There is greater reward for Jumu'ah in a Jamia Masjid (Grand Mosque), unless the Imam at another place is more learned and virtuous. And Allah Almighty knows best.

Problem 1362: From Jaroda, District Meerut, sent by Syed Altaf Hussain Sahab, landlord and government pensioner, 11th Ramadan al-Mubarak 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter? In our settlement, there are three mosques, and in all three, five-times congregational prayers are held. There are seven or eight Hafiz-e-Quran, two or three Hajis of the Two Holy Sanctuaries, ten to fifteen people well-versed in Persian, and two or three have studied some Arabic and Persian. One gentleman is a certified practitioner from Madrasa Tayyiba Delhi, and there are three or four local quack doctors. One person treats eyes. There is a Quran school where ten to twelve students are memorizing the Holy Quran. Besides this, there is a government middle school and a post office is also present. There are five or six English-educated people, including those with BA and FA degrees. Fifteen or sixteen people are government employees receiving salaries ranging from ten rupees to three hundred rupees. One person receives a thirty-rupee pension from the government. There are three or four shops where all necessary items are available at all times. There are three or four cloth merchants, two betel-leaf sellers, and one local apothecary shop. There are three or four houses of butchers. There are five or six brick (solid) houses and seven brick-lined wells for drinking water in the settlement. Except for some Gaddi (shepherds) and Chamars (leatherworkers), no Hindus reside here. Animal sacrifices, etc., are performed freely. The landlords are Muslims. Practitioners of various trades like sweepers, water-carriers, carpenters, blacksmiths, barbers, etc., are all settled here. The population is approximately twelve hundred. Friday prayers have always been held, in which a congregation of sometimes up to three hundred men gathers. Now, some individuals are objecting that Friday and Eidain prayers are not permissible in this settlement, and a few people have even stopped attending the Friday prayer. In light of the mentioned facts, should the Friday and Eidain prayers be abandoned or continued as usual?

The Answer: If it is a 'Pargana' (administrative division) to which villages are attached, and in such a state, there is necessarily an official appointed by the government for

the resolution of disputes and decision of cases, such as a Tehsildar etc., then it is a city. In it, the performance of Jumu'ah and Eidain is certainly obligatory, and those who abandon them are sinners.

Indeed, the correct definition of a city, narrated in Zahir al-Riwayah from Imam Azam, applies to it. (The correct definition of a city which is mentioned in Zahir al-Riwayah from Imam Azam (may Allah be pleased with him) applies to it.)

फ़तावा रिज़विया जिल्द 8

...[इमाम के अलावा] तीन लोग होने चाहिए, लेकिन हर व्यक्ति जुमा और ईदैन का इमाम नहीं हो सकता; वही होगा जो सुल्तान-ए-इस्लाम हो, या उसका नायब (प्रतिनिधि), या उसका अधिकृत व्यक्ति। यदि उनमें से कोई न हो, तो आवश्यकतानुसार आम नमाज़ी जिसे जुमा का इमाम नियुक्त कर लें। जुमा का अधिक सवाब जामा मस्जिद में है, बशर्ते कि दूसरी जगह का इमाम अधिक विद्वान और श्रेष्ठ न हो। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1362: जरोदा, ज़िला मेरठ से प्रेषित, सैयद अल्ताफ हुसैन साहब ज़मींदार और सरकारी पेंशनभोगी, 11 रमज़ान अल-मुबारक 1337 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि हमारी बस्ती में तीन मस्जिदें हैं और तीनों में पाँचों समय की बा-जमात नमाज़ होती है। सात-आठ हाफ़िज़-ए-क़ुरआन हैं, दो-तीन हाजी-उल-हरमैन हैं, दस-पंद्रह अच्छी फ़ारसी और दो-तीन कुछ अरबी-फ़ारसी पढ़े हुए हैं। एक साहब मदरसा तैय्यबा दिल्ली के सनद याफ्ता (प्रमाणित) हकीम हैं और तीन-चार अताई तबीब (क्वैक्स) हैं। एक व्यक्ति आँखों का इलाज करता है। एक क़ुरआन मकतब है जिसमें दस-बारह छात्र क़ुरआन शरीफ़ हिफ़्ज़ कर रहे हैं। इसके अलावा एक गवर्नमेंट मिडिल स्कूल है और डाकख़ाना भी मौजूद है। पाँच-छह अंग्रेज़ी पढ़े हुए लोग हैं जिनमें बी.ए. और एफ.ए. वाले भी हैं। पंद्रह-सोलह आदमी सरकारी कर्मचारी हैं जिन्हें दस रुपये से तीन सौ रुपये तक वेतन मिलता है। एक व्यक्ति सरकार से तीस रुपये पेंशन पाता है। तीन-चार दुकानें हैं जिनमें ज़रूरत की सभी चीज़ें हर समय उपलब्ध रहती हैं। तीन-चार कपड़े के व्यापारी हैं, दो पनवाड़ी हैं, एक अत्तार की दुकान है। तीन-चार घर क़साइयों के हैं। पाँच-छह पक्के मकान हैं, बस्ती में पीने के पानी के लिए सात पक्के कुएं हैं। गद्दियों और चमारों के अलावा कोई हिंदू यहाँ आबाद नहीं है। क़ुरबानी आदि स्वतंत्रता से होती है। ज़मींदार मुसलमान हैं। भंगी, सक़्क़ा (भिश्ती), बढ़ई, लोहार, हज्जाम आदि सभी पेशेवर यहाँ आबाद हैं। लगभग बारह सौ की आबादी है। हमेशा से जुमा की नमाज़ होती रही है जिसमें कभी-कभी तीन-तीन सौ आदमियों का मजमा (भीड़) हो जाता है। अब कुछ हज़रात आपत्ति कर रहे हैं कि इस बस्ती में जुमा और ईदैन की नमाज़ जायज़ नहीं है और कुछ व्यक्तियों ने जुमा की नमाज़ छोड़ भी दी है। हालांकि मौजूदा विवरण की मौजूदगी में नमाज़-ए-जुमा और ईदैन तर्क(बंद) कर दी जाएँ या पूर्ववत पढ़ी जाएँ?

अल-जवाब: अगर वह परगना है जिसके साथ देहात (गाँव) जुड़े हैं और ऐसी स्थिति में वहाँ सरकार की ओर से विवादों के निपटारे और मुक़दमों के फ़ैसले के लिए कोई हाकिम नियुक्त होता है, जैसे

तहसीलदार आदि, तो वह शहर है और उसमें जुमा और ईदैन की अदायगी ज़रूर लाज़िम है, और उन्हें छोड़ने वाला गुनहगार और पापी है।

बेशक, इस पर शहर की वह सही परिभाषा खरी उतरती है जो इमाम आज़म से ज़ाहिर-उर-रिवायत में वर्णित है। (इस पर शहर की वह सही परिभाषा लागू होती है जो ज़ाहिर-उर-रिवायत में इमाम आज़म रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से वर्णित है।)

पृष्ठ 673 का 442

سوا تین آدمی ہوں مگر جمعہ و عیدین کا امام ہر شخص نہیں ہو سکتا وہی ہو گا جو سلطان اسلام ہو یا اس کا نائب یا اس کا ماذون، اور ان میں کوئی نہ ہو تو بضرورت جسے عام نمازی امام جمعہ مقرر کرلیں، جمعہ کا زیادہ ثواب جامع مسجد میں ہے مگر جبکہ دوسری جگہ کا امام اعلم وافضل ہو۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۶۲: از جرو دہ ضلع میرٹھ مرسلہ سید الطاف حسین صاحب زمیندار و گورنمنٹ پنشنر ۱۱ رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ہماری بستی میں تین مسجدیں ہیں اور تینوں میں پنجوقتہ باجماعت نماز ہوتی ہے آٹھ سات حافظ قرآن ہیں، دو تین حاجی الحرمین الشریفین ہیں، دس پندرہ اچھی فارسی اور دو تین کچھ عربی فارسی پڑھے ہوئے ہیں، ایک صاحب مدرسہ طیبہ دہلی کے سند یافتہ اور تین چار عطائی طبیب ہیں، ایک شخص آنکھیں بناتا ہے، ایک قرآن مکتب ہے جس میں دس بارہ طالب علم قرآن شریف حفظ کرتے ہیں، اس کے علاوہ ایک گورنمنٹ مڈل اسکول ہے ڈاک خانہ بھی موجود ہے، پانچ چھ آدمی انگریزی داں ہیں جن میں بی اے اور ایف اے بھی ہیں پندرہ سولہ آدمی گورنمنٹ ملازم ہیں جو دس روپیہ سے تین سو روپیہ تک تنخواہ پاتے ہیں ایک شخص گورنمنٹ سے تمہیں روپیہ پنشن پاتا ہے، تین چار دکانیں ہیں جن میں ضرورت کی تمام اشیاء ہمہ وقت دستیاب ہوتی ہیں، تین چار بزاز ہیں، دو پنواری کی ایک عطاء کی دکان ہے، تین چار گھر قصابوں کے ہیں، پانچ چھ پختہ مکانات ہیں، سات پختہ کنویں بستی میں آبنوشی کے ہیں سوائے گڑیوں اور چماروں کے ہندو کوئی آباد نہیں، قربانی وغیرہ آزادی سے ہوتی ہے زمیندار مسلمانوں کی ہے، بھنگی، سقہ، بڑھئی، لوہار، حجام وغیرہ پیشہ ور سب آباد ہیں قریباً بارہ سو کی مردم شماری ہے، ہمیشہ سے جمعہ کی نماز ہوتی رہی ہے جس میں کبھی

کبھی تین تین سو آدمیوں کا مجمع ہو جاتا ہے، اب بعض بعض حضرات معترض ہیں کہ اس بستی میں جمعہ و عیدین کی نماز جائز نہیں اور چند اشخاص نے جمعہ کی نماز ترک بھی کر دی ہے، حالانکہ موجودہ مذکورہ کی موجودگی میں نماز جمعہ و عیدین ترک کی جائے یا بدستور پڑھی جائیں۔

الجواب: اگر وہ پر گنہ ہے اس کے متعلق دیہات ہیں اور ایسی حالت میں ضرور جانب سلطنت سے کوئی حاکم وہاں فصل خصومات و فیصلہ مقدمات کے لئے ہوتا ہے مثلاً تحصیلدار وغیرہ جب تو وہ شہر ہے اور اس میں ادائے جمعہ و عیدین ضرور لازم، اور ان کا تارک گنہگار و آثم۔

فقد صدق علیها حد المصر الصحیح المروی فی ظاهر الروایة عن الامام الاعظم اس پر شہر کی وہ صحیح تعریف صادق آرہی ہے جو ظاہر الروایۃ میں امام اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے

Fatawa Razawiyya, Volume 8

It is narrated that it is a city in which there are streets, markets, and villages, and there is a ruler in it, etc.

رضی اللہ تعالی عنہ انہا بلدۃ فیہا سکك واسواق ورساتیق وفیہا وال الخ (t)

And if it is not a Pargana (district) or if no judge is appointed there for deciding cases, but it was such during the time of Islamic rule and Friday prayers were held there, then it will still be performed now. It is in "Salat-e-Masoodi", Chapter 33:

A place that was declared a city continues to have the status of a city even after deterioration. If the Sultan's deputy performs the Friday prayer in congregation there, it will still be valid. (t)

جائے را کہ حکم شہر دادند بعد ازاں خرابی پذیرد آں حکم شہر باقی ماند تا اگر ایشاں نائب سلطان با جمع درانجا نماز آدینہ گزارند روا بود۔[2]

And if neither of these two situations exists, then according to the Hanafi school, Friday and Eid prayers are not held there. However, since they have been established for a long time, they should not be abolished, nor should people be stopped from it, but fame is sought (fame is required),

Allah Almighty said: "Have you seen him who forbids a servant when he prays?" And under this verse, there is also a narration from the Commander of the Faithful, Ali (may Allah honor him). And Allah knows best. (t)

قال اللہ تعالی اَرَءَیْتَ الَّذِي یَنْهٰی ۙ عَبْدًا اِذَا صَلّٰی[3] وفیہ عن امیر المؤمنین علی کرم اللہ وجہہ۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

Issue 1363: From Karachi Saddar Bazaar, office of Anjuman Jamiat-ul-Ahnaf, sent by Abu al-Raja Ghulam Rasool Sahab, 28th Ramadan-ul-Mubarak 1337 AH.

To the holy master, the collection of noble morals, the source of beautiful compassion, the embodiment of Prophetic character, the manifestation of Mustafawi secrets. Sultan of the Sunni scholars, the proof of the elite of the community, the leader of the masters of the time, our Maulana the served, the ocean of knowledge, Aala Hazrat, the Imam of Sharia and Tariqa, the renewer of the present century, may Allah grant the Muslims benefit through your long life and may your graces and blessings remain upon the heads of those seeking guidance. After the Sunnah salutations and ever-increasing longing, it is requested according to the command "Consult them" (seek advice), for a long time the sad cry of the poor Sunnis of Karachi has produced no effect till now. The difficulty of the Friday and Eid congregations is

indescribable. Therefore, please pray, at this time the luminous presence, heir of the Prophet's throne.

---

1. Fath al-Qadir, Chapter on Friday Prayers, printed by Maktaba Nooria Razawiyya, Sukkur, 2/24.
2. Salat-e-Masoodi, Chapter 33 regarding Friday Prayers, Ahmadi Press, Bombay, India, 2/371.
3. Al-Quran 9-10/96

फतवा रज़विया, खंड 8

यह वर्णित है कि वह एक बड़ा शहर है जिसमें गलियां, बाजार और गांव हैं और इसमें एक शासक है, आदि। (त)

رضی اللہ تعالی عنہ انہا بلدۃ فیہا سکك واسواق ورساتیق وفیہا وال الخ

और यदि वह परगना नहीं है या वहां मुकदमों के फैसले के लिए कोई हाकिम नियुक्त नहीं है, लेकिन इस्लामी शासन के दौरान वह ऐसा था और तब से वहां जुमा होता था, तो अब भी पढ़ा जाएगा। 'सलात-ए-मसूदी' अध्याय 33 में है:

वह स्थान जिसे शहर घोषित किया गया था, खराब होने के बाद भी वह शहर का हुक्म रखता है। यदि सुल्तान का नायब वहां जमात के साथ जुमे की नमाज़ अदा करे तो अब भी अदा होगी। (त)

جائے را کہ حکم شہر دادند بعد ازاں خرابی پذیرد آں حکم شہر باقی ماند تا اگر ایشاں نائب سلطان با جمع درانجا نماز آدینہ گزارند روا بود۔[2]

और यदि ये दोनों स्थितियां नहीं हैं, तो हनफी पंथ में वहां जुमा और ईदैन नहीं है, फिर भी जब से यह लंबे समय से स्थापित है, इसे हटाया नहीं जाएगा, न ही लोगों को इससे रोका जाएगा, बल्कि प्रसिद्धि की तलाश है,

अल्लाह तआला ने फरमाया: "क्या तुमने उसे देखा जो मना करता है एक बंदे को जब वह नमाज़ पढ़ता है?" और इसी आयत के तहत अमीरुल मोमिनीन अली (करम अल्लाह वजहु) से भी एक रिवायत है। और अल्लाह बेहतर जानता है। (त)

قال اللہ تعالی اَرَءَیْتَ الَّذِي یَنْهٰی ۙ عَبْدًا اِذَا صَلّٰی[3] **وفیہ عن امیر المؤمنین علی کرم اللہ وجہہ۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔**

मसला 1363: कराची सदर बाजार से, अंजुमन जमीअतुल अहनाफ का कार्यालय, प्रेषक अबू अल-रजा गुलाम रसूल साहब, 28 रमजान-उल-मुबारक 1337 हिजरी।

पवित्र महोदय, उत्तम चरित्र के केंद्र, दया के स्रोत, नबी के चरित्र के प्रतिरूप, मुस्तफा के रहस्यों के प्रकटीकरण। सुन्नी विद्वानों के सुल्तान, उम्मा के विद्वानों के प्रमाण, समय के बुजुर्गों के मार्गदर्शक, हमारे मौलाना मखदूम, ज्ञान के सागर, आला हज़रत, शरीयत और तरीकत के इमाम, वर्तमान

शताब्दी के मुजद्दिद, अल्लाह मुसलमानों को आपकी लंबी उम्र से लाभान्वित करे और आपका अनुग्रह और आशीर्वाद हिदायत चाहने वालों के सिर पर बना रहे। सुन्नत सलाम और बढ़ती हुई व्याकुलता के बाद, यह निवेदन है कि 'परामर्श करें' (मशवरा तलब करो) के आदेश के अनुसार, लंबे समय से कराची के गरीब सुन्नियों की दुखद पुकार ने अब तक कोई प्रभाव पैदा नहीं किया है। जुमा और ईदैन की जमात की जो कठिनाई है वह अवर्णनीय है। इसलिए दुआ फरमाएं, इस समय हुज़ूर पुरनूर वारिस-ए-सज्जाद-ए-रिसालत-मआब।

---

1. फतह अल-कादिर, जुमा का अध्याय, मकतबा नूरिया रज़विया सुक्कुर द्वारा मुद्रित 2/24।
2. सलात-ए-मसूदी, जुमे की नमाज़ के बारे में अध्याय 33, अहमदी प्रेस, बॉम्बे, इंडिया 2/371।
3. अल-कुरान 9-10/96

رضی اللہ تعالٰی عنہ انہا بلدۃ فیہا سکك واسواق ورساتیق وفیہا وال الخ **مروی ہے کہ وہ بڑا شہر جس میں کوچے اور بازار ہوں اور کوئی نہ کوئی والی ہو الخ (ت)**

اور اگر وہ پرگنہ نہیں یا وہاں کوئی حاکم فصل مقدمات پر مقرر نہیں مگر زمانہ سلطنت اسلام میں وہ ایسا تھا اور جب سے اس میں جمعہ ہوتا تھا تو اب بھی پڑھا جائے گا۔ صلوٰۃ مسعودی باب ۳۳ میں ہے:

جائے را کہ حکم شہر دادند بعد ازاں خرابی پذیرد آں حکم شہر باقی ماند تا اگر ایشاں نائب سلطان با جمع درانجا نماز آدینہ گزارند روا بود۔[2] **وہ جگہ جسے شہر قرار دیا گیا خرابی کے بعد بھی وہ حکم شہر رکھتا ہے اگر نائب سلطان نماز جمعہ باجماعت ادا کرے تو اب بھی ادا ہوگا۔ (ت)**

اور اگر یہ دونوں صورتیں نہیں تو مذہب حنفی میں وہاں جمعہ و عیدین نہیں پھر بھی جبکہ مدت سے قائم ہے اسے اکھاڑا نہ جائے گا، نہ لوگوں کو اس سے روکے گا مگر شہرت طلب،

قال اللہ تعالٰی اَرَءَیْتَ الَّذِیْ یَنْھٰی ۙ عَبْدًا اِذَا صَلّٰی[3] **وفیہ عن امیر المؤمنین علی کرم اللہ وجہہ۔ واللہ تعالٰی اعلم۔** **اللہ تعالٰی نے فرمایا: "بھلا دیکھو تو جو منع کرتا ہے بندے کو جب وہ نماز پڑھے " اور اسی آیت کے تحت حضرت امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ سے بھی ایک روایت ہے واللہ تعالٰی اعلم (ت)**

مسئلہ ۱۳۶۳: از کراچی صدر بازار دفتر انجمن جمعیۃ الاحناف مرسلہ ابوالرجا غلام رسول صاحب ۲۸ رمضان المبارک ۱۳۳۷ھ

جناب تقدس مآب، مجمع مکارم اخلاق، منبع محاسن اشفاق، سراپا اخلاق نبوی، مظہر اسرار مصطفوی۔ سلطان العلماء اہلسنت، برہان الفضلاء الملة، قدوة شیوخ الزمان، مولانا المخدوم، بحر العلوم، اعلحضرت، امام الشریعت والطریقت، مجدد مائۃ حاضرۃ، متع اللہ المسلمین، بطول بقائکم و دامت علی روس المستر شدین فیوضاتکم وبرکاتکم، بعد سلام مسنون و اشتیاق روز افزوں آنکہ بحکم شاور وا (مشورہ طلب کروت) حضرت سے التماس ہے ایک عرصہ ہوا غربائے اہلسنت کراچی کی صدائے محزون نے تاحال کوئی اثر پیدا نہیں کیا، جمعہ و عیدین جماعت کی جیسی کچھ تکلیف ہے نا قابل بیان ہے لہذا دعا فرمائے، اس وقت حضور پر نور وارث سجاد رسالتمآب

---

1. فتح القدیر باب الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۲۴
2. صلوٰۃ مسعودی باب ۳۳ در بیان نماز آدینہ مطبع احمدی بمبئی، انڈیا ۲/ ۳۷۱
3. القرآن ۹-۹۶/۱۰

Fatawa Razawiya Volume 8

(May the peace and blessings of Allah be upon him). May Allah Almighty, through the blessing of your prayers, create a Jami' Ahle Sunnat for us paupers so that the Sunni Muslims of Sadar can perform the Friday prayer duty. There are two mosques in Sadar, and currently both are under the control of such forces for whom religiousness and religion are, God forbid, madness, or the current well-known and recognized form of Ahle Sunnat, which we and our noble Sheikhs follow, is, Allah protect us, shirk and innovation (bid'at). Therefore, all friends and associates perform Tarawih and obligatory prayers in a rented house which is spacious and suitable for holding gatherings. For Friday prayer, they go and perform it in a mosque which is about a mile away from Sadar, give or take. But for some, this mosque is nearby while for others it is difficult. Can they gather in a rented house to perform Friday and Eid prayers? Whatever the decree from the Mujaddid, whether yes or no, it will satisfy the people and me.

The Answer: Respected sir, possessor of glory and generosity, may Allah Almighty honor you. Peace be upon you and the mercy and blessings of Allah. For Friday prayer, neither a mosque nor a building is a condition, other than it being in the city or the city's outskirts (fina-e-shahr). It can be held in a house or in an open field; public permission (idhn-e-aam) is required. It is stated in *Bada'i* by Imam Malik al-Ulama:

"If the ruler prays in his house, if he opens the door of his house, it is permissible. If he does not permit the general public, it is not permissible." (Summarized)

If a ruler offered Friday prayer in his residence, it is valid if the door was open. If the public was not allowed to join, it is not valid. (T)

It is stated in *Durr-e-Mukhtar*:

"For its validity, the city or its outskirts are required, which are the surrounding areas for its public interests, such as burying the dead and horse racing." (Summarized). And Allah Almighty knows best.

For the validity of Friday prayer, the presence of a city or its outskirts is necessary. By outskirts (fina), it is meant the area around the city intended for city needs, such as a graveyard or racecourse. And Allah Almighty knows best. (T)

Issue 1364: From Habib Wala, District Bijnor, Tehsil Dhampur, sent by Manzoor Sahib, 11 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: there is a settlement with a total population of nearly 900, and in it...

1. Bada'i al-Sana'i, Chapter explaining the conditions of Friday, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 1/269.
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter of Friday, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/109.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

(अल्लाह तआला उन पर दुरूद और सलाम भेजे)। अल्लाह तआला हुज़ूर की दुआ की बरकत से हम फ़कीरों के लिए जामे अहले सुन्नत पैदा कर दे ताकि सदर के सुन्नी मुसलमान जुमे का फ़र्ज़ अदा कर सकें। सदर में दो मस्जिदें हैं, इस वक्त दोनों पर ऐसे लोगों का कब्ज़ा है जिनके नज़दीक दीनदारी और मज़हब, मआज़ अल्लाह, जुनून है, या अहले सुन्नत की मौजूदा मशहूर और मारूफ सूरत जिस पर हम और हमारे शयूख किराम हैं, वल-इयाज़ु बिल्लाह तआला शिर्क और बिदअत है। लिहाज़ा तमाम अहबाब और मुताल्लिक़ीन तरावीह और फ़रायज़ एक किराए के मकान में, जो वसीअ और महफ़िल मुनाकिद करने के काबिल है, अदा कर लिया करते हैं। जुमे के लिए सदर से तक़रीबन एक मील के फ़ासले पर, कम या ज़्यादा, एक मस्जिद में जाकर अदा कर लेते हैं लेकिन कुछ लोगों को ये मस्जिद करीब पड़ती है और कुछ को दिक्कत होती है। क्या ऐसा हो सकता है कि एक ऐसे मकान में जो किराए का हो, जमा होकर जुमा और ईदैन अदा कर सकें? हुज़ूर मुजद्दिद की तरफ से जो फ़रमान हो, चाहे हाँ या ना, कौम को और मेरी तसल्ली हो जाएगी।

अल-जवाब (उत्तर): जनाबे मोहतरम ज़िल-मज्द वल-करम अकरमकल्लाह तआला, अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू। जुमे के लिए शहर या फ़ना-ए-शहर के सिवा न मस्जिद शर्त है न इमारत, मकान में भी हो सकता है, मैदान में भी हो सकता है, इज़्ने आम (आम इजाज़त) दरकार है। बदाइअ इमाम मलिकुल उलमा में है:

"अगर सुल्तान ने अपने घर में जुमे की नमाज़ पढ़ी, अगर दरवाज़ा खुला था तो जायज़ है और अगर अवाम को शामिल होने की इजाज़त न थी तो जायज़ नहीं।" (ख़ुलासा) (त)

दुर्रे मुख्तार में है:

"इसकी सेहत (वैधता) के लिए शहर या उसका फ़ना (बाहरी इलाका) शर्त है, और वो शहर के आस-पास की जगह है जो उसकी ज़रूरतों के लिए हो जैसे मुर्दों को दफ़्न करना और घोड़ों की दौड़।" (ख़ुलासा) वल्लाह तआला आलम। जुमे की सेहत के लिए शहर या फ़ना-ए-शहर का होना ज़रूरी है। फ़ना से मुराद शहर के आस-पास की जगह है जो शहर की ज़रूरतों के लिए बनाई गई हो, मसलन कब्रिस्तान और घुड़दौड़ के लिए जगह। वल्लाह तआला आलम (त)

मसला 1364: अज़ हबीब वाला, ज़िला बिजनौर, तहसील धामपुर, मुर्सला मंज़ूर साहब, 11 शव्वाल 1337 हिजरी। क्या फ़रमाते हैं उलमा-ए-दीन इस मसले में कि एक बस्ती है जिसकी कुल आबादी क़रीब 900 की है और इसमें...

1. बदाइअ उस-सनाइट, फ़स्ल फ़ी बयान शराइतुल जुमा, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/269।
2. दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमा, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/109।

पृष्ठ 444/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہیں ، اللہ تعالٰی جناب کی دعا کی برکت سے ہم فقیروں کے لئے جامع اہلسنت پیدا کر دے کہ صدر کے مسلمانانِ اہلسنت فریضہ جمعہ ادا کر سکیں، صدر میں دو مسجدیں ہیں، اس وقت دونوں پر تصرف ایسی طاقتوں کا ہے کہ جن کے نزدیک دینداری اور مذہب معاذ اللہ جنون ہے یا اہلسنت کی موجودہ مشہور و متعارف صورت کہ جس پر ہم اور ہمارے شیوخ کرام ہیں والعیاذ باللہ تعالٰی شرک و بدعت ہے لہذا جامع احباب و متعلقین تراویح و فرائض ایک کرایہ کے مکان میں جو وسیع اور قابل انعقادِ محافل ہے ادا کر لیا کرتے ہیں جمعہ جا کر ایک مسجد جو صدر سے قریبًا میل بھر کے فاصلہ پر ہو گی یا کم و بیش پہنچ کر ادا کر لیتے ہیں لیکن بعض کو یہ مسجد قریب پڑ جاتی ہے اور بعض کو دقت ہوتی کیا ایسا ہو سکتا ہے کہ ایک ایسے مکان میں جو کرایہ کا مکان ہو جمع ہو کر جمعہ وعیدین ادا کر سکتے ہیں جناب مجدد یہ سے جو فرمان ہو خواہ ہاں یا نہ، قوم کو اور میری تسلی ہو جائے گی۔

الجواب: جناب محترم ذی المجد والکرم اکرمک اللہ تعالٰی ، السلام علیکم و رحمۃ اللہ وبرکاتہ ،، جمعہ کے لئے شہر کا یا فنائے شہر کے سوا نہ مسجد شرط ہے نہ بنا، مکان میں بھی ہو سکتا ہے میدان میں بھی ہو سکتا ہے اذنِ عام درکار ہے ، بدائع امام ملک العلماء میں ہے:

السلطان اذا صلی فی دارہ ان فتح باب دارہ جاز وان لم یأذن للعامۃ لا تجوز 1۔ (ملخصًا) سلطان نے اگر اپنی دار میں نمازِ جمعہ پڑھی اگر دروازہ کھلا تھا تو جائز اور اگر عوام کو شرکت کی اجازت نہ تھی تو جائز نہیں۔ (ت)

درِ مختار میں ہے:

یشترط لصحتھا المصر او فناؤہ وھو ما حولہ لاجل مصالحہ کدفن الموتی ورکض الخیل 2 (ملخصًا) واللہ تعالٰی اعلم۔ صحتِ جمعہ کے لئے شہر یا فنائے شہر کا ہونا ضروری ہے فنائے مراد شہر کے ارد گرد جگہ ہے جو شہر کی ضروریات کے لئے بنائی گئی ہو، مثلاً قبرستان اور گھڑ دوڑ کے لئے جگہ۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۶۴: از حبیب والا ضلع بجنور تحصیل دھامپور مرسلہ منظور صاحب ۱۱ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک بستی ہے جس کی کل آبادی قریب ۹۰۰ کے ہے اور اس میں

1 بدائع الصنائع فصل فی بیان شرائط الجمعہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۲۶۹ 2 درِ مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۰۹

Fatawa Razawiyya, Volume 8

...everything cannot be obtained on time either. Therefore, is Jumu'ah (Friday prayer) permissible in such a village? What are the conditions for the obligation of prayer? Please explain with evidence.

The Answer: Jumu'ah is only permissible in a city or its outskirts (fana-e-shahr), otherwise not. A city is a settlement where there are multiple streets and permanent markets, and it is a district or pargana that has surrounding villages, and where a judge is appointed to decide legal cases. There are seven conditions for the obligation of Jumu'ah: (1) Being free (not a slave), (2) Being male, (3) Being sane, (4) Being an adult (puberty), (5) Residency in the city, (6) Sufficient health to be able to attend the congregation and pray, (7) Absence of obstacles like imprisonment, fear of an enemy, or heavy rain, etc. Their details and some citations in Durr al-Mukhtar etc. state: "We have included eyesight and the ability to walk in 'health'." And there are seven conditions for it (the Jumu'ah prayer) to be valid: (1) City or outskirts of the city. (2) The Muslim ruler or his deputy or one authorized, or out of necessity, one whom the common Muslims have made the Imam of Jumu'ah. (3) The time for Zuhr must remain until the end. (4) The sermon (khutbah) must be within the time of Zuhr. (5) The sermon must be before the prayer in front of at least three sane Muslim men. (6) It must be in congregation, which includes at least three such men. (7) General permission for Jumu'ah, without any Sharia-based obstruction for anyone. Books are full of detailed evidence. And Allah Almighty knows best.

Problem 1365: From Maulainpur, Brahma, sent by Muhammad Wahid, Khatib of Cemetery Mosque, New Settlement, 27 Shawwal 1337 AH. What do the scholars of the Hanafis (may Allah Almighty have mercy on them) say: is it permissible for the Imams of Hanafi mosques to read the khutbah (sermon) authored by Nawab Siddiq Hasan Khan every Jumu'ah and on the two Eids? And according to the Hanafis, which khutbah is considered valid?

The Answer: Siddiq Hasan Khan was a Ghair-Muqallid (one who does not follow a specific school of jurisprudence) and La-Mazhab (sectless). Sunnis should not read the khutbah authored by him because it contains praise/mention of him.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

...हर चीज़ भी समय पर नहीं मिल सकतीं, लिहाज़ा ऐसी बस्ती में जुम्मा जायज़ है या नहीं? नमाज़ की वाजिबता (अनिवार्यता) के लिए क्या-क्या शर्तें हैं? दलीलों के साथ बयान करें।

जवाब: जुम्मा सिर्फ शहर या शहर के बाहरी इलाके(फ़ना-ए-शहर) में जायज़ है, वरना नहीं। शहर वह बस्ती है जिसमें कई गलियां और स्थायी बाज़ार हों, और वह ज़िला या परगना हो जिसके तहत देहात हों और उसमें मुक़दमों के फैसले के लिए कोई हाकिम नियुक्त हो। जुम्मा वाजिब होने की सात शर्तें हैं: (१) स्वतंत्र होना, (२) पुरुष होना, (३) अक्ल होना (समझदार होना), (४) वयस्क होना, (५) शहर में निवास, (६) इतना स्वास्थ्य कि जमात में शामिल होकर पढ़ सके, (७) किसी रुकावट का न होना जैसे जेल, दुश्मन का डर, भारी बारिश आदि। उनका विवरण और कुछ उद्धरण 'दुर्र-ए-मुख्तार' आदि में हैं: "हमने स्वास्थ्य में दृष्टि और चलने की शक्ति को शामिल किया है।" और इसके सही होने की सात शर्तें हैं: (१) शहर या फ़ना-ए-शहर। (२) मुस्लिम शासक या उसका प्रतिनिधि या अधिकृत व्यक्ति, या ज़रूरत पड़ने पर जिसे आम मुसलमानों ने जुम्मा का इमाम बनाया हो। (३) ज़ोहर का समय समाप्त होने तक बाकी रहना। (४) खुत्बा ज़ोहर के समय में होना। (५) नमाज़ से पहले कम से कम तीन समझदार मुसलमान पुरुषों के सामने खुत्बा होना। (६) जमात के साथ होना जिसमें कम से कम तीन ऐसे पुरुष हों। (७) जुम्मा के लिए आम इजाज़त होना, बिना किसी शरई वजह के किसी पर रोक न हो। दलीलों के साथ बयान से किताबें भरी पड़ी हैं, और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

मसला १३६५: मौलींपुर, बरहमा से, प्रेषक मुहम्मद वाहिद, खतीब मस्जिद कब्रिस्तान नई बस्ती, २७ शव्वाल १३३७ हिजरी। हनफी उलेमा (अल्लाह तआला उन पर रहम फरमाए) क्या फ़रमाते हैं कि क्या हनफी मस्जिदों के इमामों के लिए नवाब सिद्दीक हसन खां की लिखी हुई खुत्बा की किताब से हर जुम्मा और ईदैन में खुत्बा पढ़ना जायज़ है या नहीं? और हनफियों के नज़दीक कौन सा खुत्बा मान्य है?

जवाब: सिद्दीक हसन खां गैर-मुक़ल्लिद ला-मज़हब था, अहल-ए-सुन्नत को उसकी लिखी हुई किताब का खुत्बा नहीं पढ़ना चाहिए, क्योंकि इसमें उसका गुणगान/ज़िक्र शामिल है।

पृष्ठ 445 का 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

ہر چیز بھی وقت پر نہیں مل سکتیں، لہذا ایسی بستی میں جمعہ جائز ہے یا نہیں؟ وجوب صلوٰۃ کے لئے کیا کیا شرائط ہیں؟ مدلل بیان ہوں۔

الجواب: جمعہ صرف شہر فنائے شہر میں جائز ہے ورنہ نہیں۔ شہر وہ بستی ہے جس میں متعدد کوچے دائم بازار ہوں، اور وہ ضلع یا پرگنہ ہو کہ اس کے متعلق دیہات ہوں اور اس میں فیصلہ مقدمات پر کوئی حاکم مقرر ہو، وجوب جمعہ کی سات شرطیں ہیں: (۱) حریت (۲) ذکورت (۳) عقل (۴) بلوغ (۵) شہر میں اقامت (۶) اتنی صحت کہ حاضر جماعت ہو کر پڑھ سکے (۷) عدم مانع مثل حبس و خوف دشمن و باران شدید وغیرہ ان کی تفاصیل اور بعض استشہاد در مختار وغیرہ میں وقد ادخلنا البصر وقدرۃ المشی فی الصحۃ (ہم نے صحت میں بینائی اور چلنے کی قدرت کو شامل کیا ہے) اور اس کے صحیح ہونے کی سات شرطیں ہیں: (۱) شہر یا فنائے شہر (۲) سلطان اسلام یا اس کا نائب یا ماذون یا بضرورت جسے عام مسلمین نے امام جمعہ بنایا ہو، (۳) وقت ظہر ختم تک باقی رہنا۔ (۴) خطبہ وقت ظہر میں (۵) قبل نماز کم از کم تین مسلمان مرد عاقلوں کے سامنے خطبہ ہونا۔ (۶) جماعت سے ہونا جس میں کم از کم تین ایسے مرد ہوں۔ (۷) جمعہ کے اذن عام ہونا بلا وجہ شرعی کسی کی روک نہ ہو۔ بیان دلائل سے کتب لبریز ہیں، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۶۵: از مولیں پور، برہما مرسلہ محمد واحد خطیب مسجد قبرستان نئی بستی ۲۷ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے احناف رحمہم اللہ تعالیٰ کہ ائمہ مساجد احناف کو نواب صدیق حسن خاں کی تصنیف کا خطبہ ہر جمعہ و عیدین میں پڑھنا جائز ہے یا نہیں اور حنفیہ کے نزدیک کون سا خطبہ معتبر ہے؟

الجواب: صدیق حسن خاں غیر مقلد لامذہب تھا اس کی تصنیف کا خطبہ اہلسنت کو پڑھنا نہ چاہئے لان فیہ تنویھا بذکرہ

صفحہ 445 از 673

Fatawa-e-Razvia Volume 8

...and it is considered disliked, and that is not permissible (because it involves an act that is a mockery of His remembrance and respect, and this is not allowed. - T). Especially if the malice of one's own sect is included in it, then it is absolutely prohibited. The sermons of Ibn Nabatah al-Masri are good, and now the scholarly sermons in India are also good, but reciting Urdu verses in the sermon is not appropriate. And Allah Almighty knows best.

Problem 1366: From Muradabad, sent by Maulvi Muhammad Abdul Bari Sahab, 7 Safar 1338 AH. What do the scholars of the religion say about this matter: a person recites Ta’awwudh (seeking refuge) and Tasmiyah (starting with Allah's name) before a Quranic verse in the sermon (Khutbah), although this is not proven as a Sunnah from the predecessors (Salaf). If this were sunnah, it would have been established by the noble scholars somewhere, especially when our guide and mentor, the Mujaddid of the present Ummah, i.e., yourself, propose such a thing. Now, this is an innovation contrary to the predecessor imams; to what extent is it impermissible?

The Answer: In the sermon, one should recite 'A'udhu' (Ta'awwudh) before a Quranic verse, and if that verse is the beginning of a Surah, then 'Bismillah' (Tasmiyah) as well. This humble servant (the author) has always acted upon this. And if one recites Bismillah at the beginning of any verse, there is no harm. It is stated in Radd al-Muhtar:

In al-Imdad and al-Muhit:	**In Al-Imdad and Al-Muhit it is stated that a Surah or a verse should be recited in the sermon.**
If a complete Surah is recited, one should recite Ta'awwudh and then Tasmiyah before it. If only a verse is recited, it is said that one should recite Ta'awwudh and then Tasmiyah, while the majority say one should recite Ta'awwudh and not Tasmiyah. [1] (Summarized). And Allah Almighty knows best.	When a Surah is recited, Ta’awwudh should be recited and then Bismillah. If only one verse is to be recited, some say recite Ta’awwudh then Tasmiyah, and the majority opinion is that Ta’awwudh should be recited and Tasmiyah should not be recited. And Allah Almighty knows best (T).

Problem 1367: From Bareilly, Madrasa Manzar-e-Islam, asked by Maulvi Ramzan Ali Sahab Bengali. What do the scholars of the religion say about this matter: a person missed the sermon in the Friday prayer and time became so short that he could not

find it in another mosque, and the Imam did not deliver any sermon. In this case, how should the prayer be offered, and if the prayer is offered without a sermon, will the prayer be valid or not?

The Answer: Friday prayer without a sermon is invalid. a short sermon is sufficient. Such a person cannot be the Imam of Friday prayer who cannot recite the sermon. And Allah Almighty knows best.

[1] Radd al-Muhtar, Chapter on Friday, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/598.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 8

...और उसे मकरूह करार दिया गया है और यह जायज़ नहीं है (क्योंकि इसमें ज़िक्र का एहतराम और उसका मज़ाक उड़ाना शामिल है और यह जायज़ नहीं है। - त)। विशेष रूप से यदि इसमें अपने पंथ की दुर्भावना शामिल हो, तो यह पूर्णतः हराम है। इब्न नबाता अल-मिस्री के खुतबे अच्छे हैं और अब भारत में भी विद्वानों के खुतबे अच्छे हैं, लेकिन खुतबे में उर्दू के शेर पढ़ना उचित नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1366: मुरादाबाद से, मुर्सला मौलवी मुहम्मद अब्दुल बारी साहब, 7 सफ़र 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि एक व्यक्ति खुतबे में कुरानी आयत से पहले ताअव्वुज़ (अऊज़ुबिल्लाह) और तस्मिया (बिस्मिल्लाह) पढ़ता है, जबकि पूर्वजों (सलफ़) से यह सुन्नत साबित नहीं है। यदि यह सुन्नत होती, तो विद्वानों से कहीं न कहीं साबित होती, विशेष रूप से जब हमारे मार्गदर्शक और संरक्षक मुजद्दिद-ए-मिल्लत, यानी आप स्वयं ऐसा प्रस्ताव करते हैं। अब यह पूर्ववर्ती इमामों के विरुद्ध एक नई बात है; यह कहाँ तक नाजायज़ है?

जवाब: खुतबे में कुरानी आयत से पहले अऊज़ु (ताअव्वुज़) पढ़ना चाहिए और यदि वह आयत सूरा की शुरुआत है तो बिस्मिल्लाह शरीफ़ (तस्मिया) भी। इस फ़कीर का हमेशा इसी पर अमल रहा है, और अगर आयत की शुरुआत में भी बिस्मिल्लाह पढ़ ले तो कोई हर्ज नहीं, रद-उल-मुहतार में है:

अल-इमदाद और अल-मुहीत में है:

जब पूरी सूरा पढ़ी जाए तो उससे पहले ताअव्वुज़ पढ़े फिर तस्मिया। और अगर सिर्फ एक आयत पढ़नी हो तो कुछ ने कहा कि ताअव्वुज़ पढ़े फिर तस्मिया, जबकि अधिकांश की राय यह है कि ताअव्वुज़ पढ़े और तस्मिया न पढ़े। [1] (संक्षेप में)। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

इमदाद और मुहीत में है कि खुतबे में सूरत या आयत पढ़ी जाए।

जब सूरा पढ़े तो ताअव्वुज़ पढ़े फिर बिस्मिल्लाह। अगर सिर्फ एक आयत ही पढ़नी हो, तो कुछ ने कहा ताअव्वुज़ पढ़े फिर तस्मिया, और अधिकांश की राय यह है कि ताअव्वुज़ पढ़े और तस्मिया न पढ़े। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है (त)।

मसला 1367: बरेली से, मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम, मौलवी रमज़ान अली साहब बंगाली द्वारा पूछा गया। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि जुमे की नमाज़ में खुतबा नहीं मिला और समय भी इतना कम हो गया कि दूसरी मस्जिद से तलाश करके ला सके और इमाम साहब ने कोई खुतबा

नहीं दिया था, तो इस स्थिति में नमाज़ कैसे अदा की जाएगी और अगर बिना खुतबे के नमाज़ पढ़ ली तो नमाज़ होगी या नहीं?

जवाब: बिना खुतबे के जुमे की नमाज़ बातिल (अमान्य) है। संक्षिप्त खुतबा पर्याप्त है। ऐसा व्यक्ति जुमे का इमाम नहीं हो सकता जो खुतबा न पढ़ सके। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[1] रद-उल-मुहतार, बाब-उल-जुमा, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/598।

وتر ویجعل مکرہ و ذلك لا یجوز (کیونکہ اس میں اس کے ذکر کا احترام اور اس کے مکر کی ترویج ہے اور یہ جائز نہیں۔ت) خصوصاً اگر اس میں اپنے مذہب کی خباثت درج کی ہو جب تو قطعاً حرام ہے خطب ابن نباتہ مصری اچھے ہیں اور اب ہند میں علمی کے خطبے، مگر اردو اشعار خطبہ میں پڑھنا مناسب نہیں، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۶۶: از مراد آباد مرسلہ مولوی محمد عبدالباری صاحب ۷ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص خطبہ میں آیہ قرآنی میں تعوذ و تسمیہ پڑھتا ہے حالانکہ سلف سے کہیں یہ بدعت ثابت نہیں، اگر یہ مسنون ہوتا تو کہیں بھی علمائے کرام سے ثابت ہوتا، خصوصاً ہمارے ہادی مرشد حضرت مولانا صاحب مجدد ملت حاضرہ یعنی آپ خود ایسا تجویز فرماتے، اب یہ تجدید خلاف ائمہ سلف کے ہوئی، کہاں تک ناجائز ہے؟

الجواب: خطبہ میں آیہ قرآنی سے پہلے اعوذ پڑھنا چاہئے اور اگر وہ آیت ابتدائے سورہ ہے تو بسم اللہ شریف بھی، فقیر کا ہمیشہ اسی پر عمل ہے، اور اگر سر آیت پر بھی بسم اللہ پڑھ لے گا حرج نہیں، ردالمحتار میں ہے :

في الامداد و في المحيط يقرأ في الخطبة سورة أواية فاذ **امداد اور محیط میں ہے کہ خطبہ میں سورت یا آیت پڑھی جائے،**

اقرأ سورة تامة يتعوذ ثم يسمى قبلها وان جب سورۃ پڑھے تو تعوذ پڑھے پھر بسم اللہ اگر ایک آیت قرأ آية قيل يتعوذ ثم يسمى و اكثر هم قالوا ہی پڑھنی ہو، بعض نے کہا تعوذ پڑھے پھر تسمیہ، اور

في الامداد و في المحيط يقرأ في الخطبة سورة أواية فاذ

امداد اور محیط میں ہے کہ خطبہ میں سورت یا آیت پڑھی جائے،

یتعوذ ولا یسمی [1]۔ (ملخصاً) واللہ تعالیٰ اعلم اکثر کی رائے یہ ہے کہ تعوذ پڑھے اور تسمیہ نہ پڑھے۔ واللہ تعالیٰ اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۶۷: از بریلی مدرسہ منظر الاسلام مسئولہ مولوی رمضان علی صاحب بنگالی کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز جمعہ میں خطبہ نہیں ملا اور وقت بھی تنگ ہو گیا جو اور مسجد سے تلاش کرکے لاسکے اور امام صاحب کہ کوئی خطبہ نہیں دیا تھا تو اس صورت میں کس طرح نماز ادا کی جائے گی اور اگر بغیر خطبہ نماز پڑھ لی تو نماز ہو جائے گی یا نہیں؟

الجواب: نماز جمعہ بے خطبہ باطل ہے، خطبہ مختصر کافی ہے، ایسا شخص امام جمعہ نہیں ہوسکتا جو خطبہ نہ پڑھ سکے۔ واللہ تعالیٰ اعلم

[1] رد المحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۸

جلد ہشتم (Volume 8) فتاویٰ رضویہ (Fatawa Ridawiyya)

Problem 1368: From Kanpur city, Topkhana Bazaar, Qadeem Masjid Subedar, late, through Maulana Maulvi Hafiz Ubaidullah Sahib, sent by Muhammad Jafar, 6 Rabi-ul-Awwal 1338 AH.

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: Is it permissible or not to read the collection of sermons (Khutbat) of 'Ilmi' in the Friday and Eid prayers? Since some Urdu verses are included in this sermon, for this reason, all the people of India whose language is Urdu listen to it with great enthusiasm. Many elders frequently read this sermon in Friday and Eid prayers. Syed Mahbub Ali Shah Sahib of Sikandariya, Hyderabad Deccan, who also takes disciples (Murids) and delivers sermons, loudly stated after Friday prayers in Mumbai, Kamai Pura, Street No. 5, that reading and listening to the collection of sermons of 'Ilmi' in Friday and Eid prayers is impermissible; prayers are not valid with it because 'Ilmi's' religion was Rafidhi (Shia). Therefore, with utmost respect, I request a ruling on this matter according to Sharia. Is reading and listening to the collection of 'Ilmi's' sermons in Friday and Eid prayers impermissible or not? And what was 'Ilmi's' religion? 'Ilmi' has also praised the companions of the Prophet (SAW) in his sermons. Please provide a reference and clarify whether reading the aforementioned collection of sermons in Friday and Eid prayers will be valid or not. In reality, if 'Ilmi' followed the creed of Ahl-ul-Sunnah wal-Jama'ah, then what is the ruling for the person who calls him a Rafidhi? Is it permissible to pray behind such a person, and how is it to be his disciple? Inform us and you will be rewarded.

The Answer: Maulana Muhammad Hasan 'Ilmi' Barailvi (Mercy of Allah be upon him) was a Sunni of correct creed, a preacher, an advisor, and a praiser of the Holy Prophet (Peace and blessings of Allah be upon him). He was a student of my grandfather (May his secret be sanctified). No one would call him a Rafidhi except some Nasibi or Khariji (extremist anti-Shia sects). If the gentleman from Deccan said it based on hearsay without investigation, then he acted contrary to this noble verse:

Arabic Quranic Verse	**Urdu Translation**
فَتَبَيَّنُوا اَنْ تُصِيْبُوا قَوْمًا بِجَهَالَةٍ فَتُصْبِحُوْا عَلٰی مَا فَعَلْتُمْ نٰدِمِيْنَ (۱)	Investigate, lest you attack a people out of ignorance and then become regretful over what you have done. (T)

Authentic Hadith:	Translation:
(٢) لَا تَذْكُرُوْا مَوْتٰكُمْ اِلَّا بِالْخَيْرِ Reported by Bukhari and others.	Mention your deceased with goodness. Bukhari and others narrated this. (T)

1. Quran 49/6
2. Ittihaf al-Sadat al-Muttaqin Kitab Afat al-Lisan, al-Afah al-Thaminah, published by Dar al-Fikr Beirut 7/91-290.

खंड 8 फ़तावा रज़विया

मसला 1368: कानपुर शहर, तोपखाना बाज़ार, क़दीम मस्जिद सूबेदार मरहूम से, मौलाना मौलवी हाफ़िज़ उबैदुल्लाह साहिब के माध्यम से, प्रेषक मुहम्मद जाफ़र, 6 रबी-उल-अव्वल 1338 हिजरी।

प्रश्न: धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि क्या शुक्रवार (जुमा) और ईद की नमाज़ों में 'इल्मी' के खुतबे (प्रवचन) के संग्रह को पढ़ना जायज़ है या नहीं? चूँकि इस खुतबे में कुछ उर्दू शेर भी शामिल हैं, इसी कारण पूरे भारत के लोग, जिनकी भाषा उर्दू है, इसे बड़े शौक से सुनते हैं। और कई बुज़ुर्ग इस खुतबे को अक्सर जुमा और ईद की नमाज़ों में पढ़ा करते हैं। हैदराबाद दकन के सिकंदरिया के सैयद महबूब अली शाह साहिब, जो मुरीद भी बनाते हैं और उपदेश भी देते हैं, उन्होंने मुंबई के कमाई पुरा, गली नंबर 5 में जुमा की नमाज़ के बाद ऊँची आवाज़ में कहा कि जुमा और ईद की नमाज़ों में 'इल्मी' के खुतबों के संग्रह को पढ़ना और सुनना नाजायज़ है; इससे नमाज़ नहीं होती क्योंकि 'इल्मी' का मज़हब राफ़ज़ी (शिया) था। इसलिए, अत्यंत सम्मान के साथ मैं इस मामले में शरीयत के अनुसार हुक्म का अनुरोध करता हूँ। क्या जुमा और ईद की नमाज़ों में 'इल्मी' के खुतबों के संग्रह को पढ़ना और सुनना नाजायज़ है या नहीं? और 'इल्मी' का मज़हब क्या था? 'इल्मी' ने खुतबे में सहाबा किराम की प्रशंसा और गुणगान भी किया है, किताब के संदर्भ के साथ स्पष्ट करें कि क्या जुमा और ईद की नमाज़ों में उक्त खुतबों के संग्रह को पढ़ने से नमाज़ जायज़ होगी या नहीं? और वास्तव में, यदि 'इल्मी' का मज़हब अहले सुन्नत वल जमाअत था, तो जो व्यक्ति 'इल्मी' को राफ़ज़ी कहे, उसके बारे में क्या हुक्म है और क्या उसके पीछे नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं, और उसका मुरीद होना कैसा है? कृपया उत्तर दें और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: मौलाना मुहम्मद हसन 'इल्मी' बरैलवी (अल्लाह की उन पर रहमत हो) सही अक़ीदे के सुन्नी, उपदेशक, शुभचिंतक और हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रशंसक थे और मेरे दादा जान (क़ुद्दिस सिर्रहु) के शागिर्द थे। उन्हें राफ़ज़ी केवल वही कहेगा जो नासिबी या खारिजी हो। यदि दकनी साहिब ने बिना जांच-पड़ताल के सुनी-सुनाई बात कह दी, तो उन्होंने इस पवित्र आयत के विरुद्ध कार्य किया:

अरबी कुरान की आयत	**हिन्दी अनुवाद**
فَتَبَيَّنُوا اَنْ تُصِيْبُوا قَوْمًا بِجَهَالَةٍ فَتُصْبِحُوْا عَلٰى مَا فَعَلْتُمْ نٰدِمِيْنَ (۱)	जांच कर लिया करो, कहीं अज्ञानता के कारण किसी कौम पर हमला न कर बैठो, फिर तुम अपने किए पर शर्मिंदा हो। (T)

सही हदीस:	**अनुवाद:**
(٢) لَا تَذْكُرُوْا مَوْتٰكُمْ اِلَّا بِالْخَيْرِ बुखारी और अन्य द्वारा रिवायत।	अपने मृतकों को अच्छाई के साथ याद किया करो। इसे बुखारी आदि ने रिवायत किया है। (T)

1. कुरान 49/6
2. इत्तिहाफ अल-सादात अल-मुत्तक़ीन, किताब आफ़ात अल-लिसान, अल-आफ़ाह अल-थामिना, दार अल-फ़िक्र बेरुत 7/91-290।

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مسئلہ ۱۳۶۸: از شہر کانپور توپ خانہ بازار قدیم مسجد صو بیدار مرحوم معرفت مولانا مولوی حافظ عبید اللہ صاحب مرسلہ محمد جعفر ۶ ربیع الاول ۱۳۳۸ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مجموعہ خطب علمی کا پڑھنا نماز جمعہ و عیدین میں جائز ہے یا نہیں؟ چونکہ اس خطبہ میں کچھ اشعار اردو کے بھی شامل ہیں اسی وجہ سے تمام ہندوستان کے لوگ جن کی زبان اردو ہے اس کو بہت شوق سے سنتے ہیں اور اکثر بزرگ اس خطبہ کو بکثرت نماز جمعہ و عیدین میں پڑھا کرتے ہیں سید محبوب علی شاہ صاحب سکندریہ حیدر آباد دکن جو مرید بھی کرتے ہیں اور وعظ بھی فرماتے ہیں انھوں نے بمبئی محلہ کمائی پورہ گلی نمبر ۵ میں بآواز بلند بعد نماز جمعہ یہ فرمایا کہ مجموعہ خطب علمی کا پڑھنا اور سننا نماز جمعہ و عیدین میں ناجائز ہے اس سے نماز نہیں ہوتی ہے کیونکہ علمی کا مذہب رافضی تھا، لہذا بکمال ادب مستدعی ہوں کہ اس مسئلہ میں شرعا کیا حکم ہے، آیا مجموعہ خطب علمی کا پڑھنا اور سننا نماز جمعہ و عیدین میں ناجائز ہے یا نہیں، اور علمی کا مذہب کیا تھا؟ علمی نے خطبہ میں صحابہ کرام کی تعریف اور مدح بھی کی ہے مع حوالہ کتاب مطلع فرمائے، کہ نماز جمعہ و عیدین مجموعہ خطبہ مذکور بالا پڑھنے سے جائز ہوگی یا نہیں؟ اور در حقیقت اگر علمی کا مذہب اہلسنت والجماعت تھا تو جو شخص علمی کو رافضی کہے اس کے حق میں کیا حکم ہے اور اس کے پیچھے نماز پڑھنا جائز ہے یا نہیں، اور اس کا مرید ہونا کیسا ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب: مولانا محمد حسن علمی بریلوی رحمتہ اللہ علیہ سنی صحیح العقیدہ اور واعظ و ناصح اور حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے مداح اور میرے حضرت جد امجد قدس سرہ العزیز کے

شاگرد تھے انھیں رافضی نہ کہے گا مگر کوئی ناصبی یا خارجی، دکھنی صاحب نے اگر کسی کی سنی سنائی بے تحقیق کہہ دی تو یہ آیت کریمہ:

فَتَبَیَّنُوا اَنْ تُصِیْبُوا قَوْمًا بِجَهَالَةٍ فَتُصْبِحُوْا عَلٰی مَا فَعَلْتُمْ نٰدِمِیْنَ (۱)

تحقیق کر لو کہیں جہالت کی وجہ سے کسی قوم پر حملہ آور نہ ہو جاؤ تو پھر تم اپنے کئے پر نادم ہو جاؤ۔ (ت) کا خلاف کیا۔

صحیح حدیث:

لَا تَذْکُرُوْا مَوْتٰکُمْ اِلَّا بِالْخَیْرِ (۲) رواہ البخاری و غیرہ۔

اپنے فوت شدگان کو اچھائی سے یاد کیا کرو، اسے بخاری وغیرہ نے روایت کیا۔ (ت)

1 القرآن ۴۹/۶ 2 اتحاف السادۃ المتقین کتاب آفات اللسان الآفۃ الثامنہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۷/ ۲۹۰ - ۹۱

Fatawa Razawiyyah Volume Eight

And the Sahih Hadith: "It is enough of a lie for a person to narrate everything he hears."[1] Narrated by Muslim and others. For a person to be a liar, it is sufficient that he relates whatever he hears. It was narrated by Muslim etc. (T)

The instruction of the Quranic verse is to thoroughly investigate the news brought by an untrustworthy person, lest you harm someone out of ignorance and then regret what you have done. And the first Hadith says to remember your deceased only with good, and the second is that it is sufficient for a man to be a liar that he believes whatever he hears and narrates it to others; and if he says it from his own side, then the calamity is even more severe: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever mentions something about a person that is not in him in order to shame him, Allah will imprison him in the fire of Hell until he produces proof for what he said about him."[2] Whoever attributes a fault to someone by stating something that is not in him, Allah will imprison him in the fire of Hell until he brings proof for what he said.

In another narration: "It is a right upon Allah that He melts him in the Fire on the Day of Resurrection until he produces proof for what he said."[3] Narrated by Tabarani with a Sahih chain from Abu al-Darda (may Allah be pleased with him). It is a right upon Allah that He melts him in the fire of Hell until he presents proof of his statement. Tabarani narrated it with a Sahih chain from Abu al-Darda (may Allah be pleased with him).

And even if, for the sake of argument, God forbid, a person of bad belief (misguided) compiles a sermon (Khutba), and it is correct without any heresy in it, why would the prayer (Namaz) become invalid because of reading it? To invent such a ruling from the heart is a slander against the pure Sharia. Yes, Urdu language should not be mixed into the sermon as it is contrary to the inherited Sunnah; this is a separate matter, what connection does it have with the invalidity of the prayer? If the mentioned person persists in these actions and does not repent, then one should not pray behind him nor pledge allegiance (Bay'ah) to him. "And Allah turns in mercy to whom He wills" (Allah bestows mercy on everyone who repents, T). And Allah Almighty knows best what is correct.

[1] Sahih Muslim, Prophet's narration about everything one hears, printed by Noor Muhammad Asah al-Matabi Karachi, 1/8. [2] Majma' al-Awsat Hadith 8931, Maktabah

al-Ma'arif Riyadh, 9/432. [3] Majma' al-Awsat with reference to al-Tabarani al-Kabir, Chapter on Witnesses, Dar al-Kitab Beirut, 2/201.

और सहीह हदीस: "किसी व्यक्ति के झूठा होने के लिए यही पर्याप्त है कि वह जो कुछ भी सुने उसे बयान कर दे।"[1] इसे मुस्लिम आदि ने वर्णित किया है। किसी आदमी के झूठा होने के लिए यही काफी है कि वह सुनी सुनाई बात बयान कर देता है, इसे मुस्लिम वगैरह ने रिवायत किया। (त)

आयत का इरशाद यह है कि अविश्वसनीय व्यक्ति की खबर की अच्छी तरह जाँच कर लो, कहीं अज्ञानता वश किसी को कष्ट न पहुँचा बैठो और फिर अपने किए पर पछताओ। और पहली हदीस कहती है कि अपने मृतकों को केवल अच्छाई के साथ याद करो और दूसरी यह कि आदमी के झूठा होने के लिए यह बहुत है कि जो कुछ सुने उस पर भरोसा करके लोगों से बयान कर दे; और अगर अपनी ओर से कहा तो आफ़त और भी गंभीर है: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "जो किसी व्यक्ति के बारे में ऐसी बात कहे जो उसमें नहीं है ताकि उसे दोष दे सके, अल्लाह उसे जहन्नुम की आग में तब तक कैद रखेगा जब तक वह अपनी कही हुई बात का प्रमाण न ले आए।"[2] जो किसी पर ऐब लगाए और वह बात बयान करे जो उसमें नहीं है, अल्लाह उसे नर्क की आग में कैद रखेगा यहाँ तक कि वह अपने कहने का प्रमाण लाए।

दूसरी रिवायत में है: "अल्लाह पर यह हक है कि वह उसे कयामत के दिन आग में पिघलाए यहाँ तक कि वह अपनी कही हुई बात का प्रमाण पेश करे।"[3] इसे तबरानी ने सहीह सनद के साथ हज़रत अबू दरदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। अल्लाह पर हक है कि जब तक अपनी उस बात का प्रमाण पेश न करे उसे दोज़ख की आग में पिघलाए, इसे तबरानी ने सहीह सनद के साथ अबी दरदा रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया।

और मान लीजिए, खुदा न करे, अगर कोई बुरा अक़ीदा रखने वाला व्यक्ति (बद मज़हब) ही खुत्बा (धर्मोपदेश) लिख दे और वह सही हो, उसमें कोई बदमज़हबी न हो, तो उसे पढ़ने से नमाज़ क्यों नाजायज़ होने लगी? यह दिल से मसला गढ़ना और शरीअत-ए-मुतह्हरा पर आरोप लगाना है। हाँ, खुत्बे में उर्दू भाषा नहीं मिलानी चाहिए क्योंकि यह सुन्नत-ए-मुतवारिसा (विरासत में मिली सुन्नत) के खिलाफ है; यह दूसरी बात है, इसका नमाज़ के नाजायज़ होने से क्या वास्ता? यदि उक्त व्यक्ति अपनी इन हरकतों पर अड़ा रहे और तौबा न करे, तो उसके पीछे नमाज़ नहीं पढ़नी चाहिए और न ही उसके हाथ पर बैअत (दीक्षा) करनी चाहिए। "और अल्लाह हर तौबा करने वाले पर करम फरमाता है" (त)। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है कि सही क्या है।

[1] सहीह मुस्लिम, हर सुनी बात बयान करने के बारे में नबी की हदीस, नूर मुहम्मद असहा अल-मताबे कराची द्वारा मुद्रित, 1/8. [2] मजमा-उल-औसत हदीस 8931, मकतबा-उल-मारिफ रियाद, 9/432. [3] मजमा-उल-औसत तबरानी अल-कबीर के हवाले से, गवाहों का अध्याय, दार अल-किताब बेरूत, 2/201.

اور حدیث صحیح: کفی بالمرء کذابا ان یحدث بکل ماسمع[1] رواہ مسلم وغیرہ۔ کسی آدمی کے جھوٹا ہونے کے لئے یہی کافی ہے کہ سنی سنائی بیان کردیتا ہے، اسے مسلم وغیرہ نے روایت کیا۔ (ت)

آیت کا ارشاد یہ ہے کہ غیر ثقہ کی خبر خوب کی تحقیق کرلو کہیں کسی کو جہالت سے آزار دے بیٹھو پھر اپنے کئے پر پچھتاتے ہو، اور حدیث اول کا کہ اپنے اموات کو خیر ہی سے یاد کرو اور دوم یہ کہ آدمی کے جھوٹا ہونے کو یہ بہت ہے کہ جو کچھ سنے اس پر اعتبار کرکے لوگوں سے بیان کردے اور اگر اپنی طرف سے کہا تو آفت سخت تر ہے : رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : من ذکر امرأ بما لیس فیہ لیعیبہ بہ حبسہ اللہ فی نار جھنم حتی یأتی بنفاذ ما قال فیہ [2]۔ جو کسی کے عیب لگالے کو وہ بات بیان کرے جو اس میں نہیں اللہ اسے نارِ جہنم میں قید کرے گا یہاں تک کہ اپنے کہنے کی سند لائے۔

دوسری روایت میں ہے: کان حقاً علی اللہ ان یذیبہ یوم القیمۃ فی النار حتی یأتی بانفاذ ماقال [3] ۔ رواہ طبرانی بسند صحیح عن ابی الدرداء رضی اللہ تعالٰی عنہ۔ اللہ پر حق ہے کہ جب تک اپنی اس بات کا ثبوت پیش نہ کرے اُسے آتش دوزخ میں پگھلائے، اسے طبرانی نے صحیح سند کے ساتھ ابی درداء رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔

اور بفرض غلط اگر معاذ اللہ کوئی بد مذہب ہی خطبہ تصنیف کرے اور وہ صحیح ہو اس میں کوئی بدمذہبی نہ ہو تو اس کے پڑھنے سے نماز کیوں ناجائز ہونے لگی۔ یہ دل سے مسئلہ گھڑنا اور شریعت مطہرہ پر افتراء کرنا ہے، ہاں اردو زبان خطبہ میں ملانا نہ چاہئے کہ خلاف سنت متوارثہ ہے یہ دوسری بات ہے اسے عدم جواز نماز سے کیا علاقہ، شخص مذکور اگر اپنی ان حرکات پر

مصر رہے اور تائب نہ ہو تو اس کے پیچھے نماز نہ چاہئے نہ اس کے ہاتھ پر بیعت، ویتوب اللہ علی من تاب (اللہ تعالیٰ ہر توبہ قبول کرنے والے پر کرم فرماتا ہے، ت) واللہ تعالیٰ اعلم بالصواب۔

[1] صحیح مسلم النبی عن الحدیث بکل ما سمع مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۸ [2] معجم اوسط حدیث ۸۹۳۱ مکتبۃ المعارف الریاض ۹/۴۳۲ [3] معجم الاوسط بحوالہ الطبرانی الکبیر باب فی الشہود دارالکتاب بیروت ۲/۲۰۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

Issue 1369: From Sarkoon, Tehsil Khattia, Post Office Tanakpur, sent by Nanhe Khan Sahib, 13 Jamadi al-Akhirah 1338 AH.

Friday (Jumu'ah) prayer is obligatory for every individual except those exempted by the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). In Mishkat Sharif, page 114, chapter "Obligation of Friday Prayer," it is narrated from Tariq ibn Shihab as a marfu' hadith that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Friday prayer is a right and obligatory, except for four: a slave, a woman, a minor, and a sick person." That is, it is obligatory for everyone except these four, whether he is someone's servant, a merchant, a farmer, or a laborer. In some narrations, a traveler is also mentioned. On the same page of the same book, it is narrated from Abdullah ibn Umar (may Allah be pleased with them both) as a marfu' hadith that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "People should stop missing Friday prayers, or Allah Almighty will seal their hearts, and they will become among the hypocrites," meaning their names will be recorded in the register of hypocrites. Yes, this much restriction and condition has come in the Hadith: pray with the congregation. As for the issue of congregation, whenever there is more than one, whether they are two or more, they are called a congregation. As it says in Mishkat Sharif, chapter "The Congregation and its Excellence," footnote 3, narrated from Abu Musa al-Ash'ari as a marfu' hadith. And in the chapter of Friday in Mishkat Sharif, it is narrated that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever misses three Friday prayers without necessity is recorded as a hypocrite in that book which neither fades nor changes." Therefore, Friday prayer should be offered everywhere, whether it be a city, a village, a forest, or a wilderness, because no specificity is mentioned in the Hadith. Written by Muhammad Ashraf Khan, may he be forgiven.

The Answer:

Friday prayer is forbidden in the wilderness and impermissible in villages. General statements are subject to their conditions. The ignorant reasoning derived from Ahadith by an ignorant person—if he lets go of the hem of the Imams, let him explain why he didn't cite these Hadith as proof from the beginning? Allah Almighty has stated absolutely in Surah Jumu'ah: "O you who believe" (1). This does not exempt women, children, slaves, the sick, or travelers. So why doesn't he say that Friday prayer is also obligatory for a four-year-old child? All those Ahadith are solitary

reports (Khabar al-Ahad) and solitary reports lead to conjecture (zann). Therefore, to use them as evidence is forbidden and contrary to the Holy Quran. Allah Almighty says: "They follow nothing but conjecture" (2) and He says: "Indeed, conjecture..."

---

1. Al-Quran 9/62
2. Al-Quran 26/10

फतावा रज़विया, जिल्द 8

मसला 1369: सरकुं तहसील खटिया, डाकखाना टनकपुर से, नन्हे खान साहब द्वारा भेजा गया, 13 जमादी अल-आखिरा 1338 हिजरी।

जुमा की नमाज़ हर शख्स पर फ़र्ज़ है सिवाए उनके जिन्हें अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने मुस्तस्ना (छूट दी) फरमाया। मिश्कात शरीफ़ के सफ़्हा 114, बाब 'वुजूबे जुमा' में तारिक इब्न शिहाब से मरफ़ूअ़न रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "जुमा हक़ है और वाजिब है, सिवाए चार के गुलाम, औरत, नाबालिग और बीमार।" यानी इन चारों के सिवा सब पर वाजिब है, चाहे वह खुद किसी का नौकर हो, सौदागर हो, किसान हो या मज़दूर। कुछ रिवायतों में मुसाफिर का भी ज़िक्र है। इसी किताब के इसी सफ़्हा पर अब्दुल्लाह इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से मरफ़ूअ़न रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "लोग जुमा छोड़ने से बाज़ आ जाएं वरना अल्लाह तआला उनके दिलों पर मोहर लगा देगा, फिर वे मुनाफ़िक़ों में से हो जाएंगे," यानी उनका नाम मुनाफ़िक़ों के रजिस्टर में लिख दिया जाएगा। हाँ, इतनी शर्त और क़ैद हदीस में आई है कि जमाअत के साथ पढ़ो। जमाअत का मसला यह है कि जब एक से ज़्यादा हों, चाहे दो हों या ज़्यादा, उन्हें जमाअत कहते हैं। जैसा कि मिश्कात शरीफ़, बाब 'अल-जमाअत व फ़ज़्लुहा' (हाशिया 3) में अबू मूसा अशअरी से मरफ़ूअ़न रिवायत है। और मिश्कात शरीफ़ के'बाबुज जुमा' में रिवायत है कि हज़रत रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "जो शख्स बिना किसी ज़रूरत के तीन जुमे न पढ़े, तो उसे मुनाफ़िक़ लिख दिया जाता है उस किताब में जो न मिटती है न बदलती है।" लिहाज़ा जुमा की नमाज़ हर जगह पढ़नी चाहिए, चाहे शहर हो, गाँव हो, जंगल हो या बन हो, क्योंकि हदीस शरीफ़ में कोई खुसूसियत (विशेषता) नहीं आई है। केवल लेखक: मोहम्मद अशरफ़ खां, अफ़ी अन्हु।

अल-जवाब (उत्तर):

बन (जंगल) में जुमा हराम है और गाँवों में नाज़ायज़ है, और आम हुक्म अपनी शर्तों के साथ होते हैं। अहादीस से जो जाहिलाना दलील किसी जाहिल ने दी है, अगर वह इमामों का दामन छोड़े तो वह बताए कि ये हदीसें उसने शुरू में क्यों दलील के तौर पर पेश नहीं कीं? अल्लाह तआला ने सूरह जुमा में फरमाया: "ऐ ईमान वालो!" (1) यह मुतलक़ (निरपेक्ष) इरशाद है, इसमें औरत, बच्चे, गुलाम, मरीज़ या मुसाफ़िर किसी की छूट नहीं है। तो वह क्यों नहीं कहता कि चार साल के बच्चे पर भी जुमा फ़र्ज़

है? वे तमाम अहादीस 'ख़बर-ए-आहाद' (एकल सूचनाएँ) हैं और ख़बर-ए-आहाद सिर्फ गुमान (ज़न्न) का फायदा देती है, लिहाज़ा उनसे दलील पकड़ना हराम और क़ुरान मजीद के खिलाफ़ है। अल्लाह तआला फरमाता है: "वे सिर्फ गुमान (ज़न्न) के पीछे चलते हैं" (2) और फरमाता है: "बेशक गुमान..."

---

1. अल-क़ुरान 9/62
2. अल-क़ुरान 26/10

فتاویٰ رضویہ ، جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۶۹: از سرکوں تحصیل کھٹیا ڈاک خانہ ٹنک پور مرسلہ ننھے خاں صاحب ۱۳ جمادی الآخرہ ۱۳۳۸ھ

جمعہ کی نماز ہر شخص پر فرض ہے سوائے ان کے جن کو رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے مستثنیٰ فرمادیا، مشکوۃ شریف صفحہ ۱۱۴ باب وجوب الجمعہ میں طارق ابن شہاب سے مرفوعاً روایت ہے کہ فرمایا رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے کہ جمعہ حق ہے اور واجب ہے مگر چار پر، غلام اور عورت اور نابالغ اور بیمار، یعنی ان چار کے سوا سب پر واجب ہے، خود کسی کا نوکر ہو یا سوداگر یا کھیتی والا یا مزدور ہو، بعض روایت میں مسافر کا بھی ذکر ہے، اور اسی کتاب کے اسی صفحہ میں عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے مرفوعاً روایت ہے فرمایا رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے کہ باز آئیں لوگ جمعہ کا ناغہ کرنے سے ورنہ اللہ تعالیٰ ان کے دلوں پر مہر لگا دے گا پھر وہ منافقوں میں سے ہو جائیں گے یعنی ان کا نام منافقوں کے دفتر میں لکھا جائے گا، ہاں اتنی قید اور شرط تو حدیث میں آئی ہے کہ جماعت کے ساتھ پڑھو، سو جماعت کا مسئلہ یہ ہے کہ جب ایک سے زیادہ ہوئے خواہ دو ہوں یا زیادہ ان کو جماعت کہتے ہیں، چنانچہ مشکوۃ شریف باب الجماعۃ وفضلھا ف ۳ ابو موسیٰ اشعری سے مرفوعاً روایت ہے اور مشکوۃ شریف کے باب الجمعہ میں روایت ہے کہ حضرت رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا ہے: جو شخص تین جمعے بلا ضرورت نہ پڑھے تو لکھا جاتا ہے منافق اس کتاب میں جو نہ مٹتی ہے نہ بدلتی ہے، لہٰذا نماز جمعہ ہر جگہ پڑھنا چاہئے خواہ شہر ہو یا گاؤں ہو یا جنگل ہو یا بن ہو کیونکہ حدیث شریف میں کوئی خصوصیت نہیں آتی ہے۔ فقط حررہ محمد اشرف خاں عفی عنہ۔

الجواب:

جمعہ بن میں حرام ہے اور گاؤں میں ناجائز ہے اور عمومات اپنے شروط سے مشروط ہوتے ہیں، احادیث سے جو جاہلانہ استناد کسی جاہل نے کیا ہے وہ اگر دامن ائمہ چھوڑے تو وہی بتائے کہ یہ حدیثیں اس نے شروع میں کیوں نہ کر حجت قرار دیں، اللہ تعالیٰ نے سورہ جمعہ میں یٰۤاَیُّهَا الَّذِیْنَ اٰمَنُوْۤا١ (اے ایمان والو) مطلق ارشاد فرمایا ہے اس میں عورت یا بچے یا غلام یا مریض یا مسافر کسی کا استثنا نہیں تو کیوں نہیں کہتا کہ چار برس کے بچے پر بھی جمعہ فرض ہے وہ احادیث سب خبر آحاد ہیں اور خبر احاد موجب ظن، تو ان سے استدلال کرنا اس کو حرام اور قرآن مجید کے خلاف ہے۔ اللہ تعالیٰ فرماتا ہے: اِنْ یَّتَّبِعُوْنَ اِلَّا الظَّنَّ٢ (وہ نہیں اتباع کرتے مگر ظن کی ۔ت) اور فرماتا ہے: اِنَّ الظَّنَّ

---

1 القرآن ۹/۶۲ 2 القرآن ۲۶/۱۰

Fatawa Rizvia, Volume 8

"...it (conjecture) cannot avail anything against the truth" 1 (Quran 10:36). Therefore, how did he allow acting upon them, especially against the generality of the Holy Quran? And this is only if the authenticity of these individual reports (ahadith ahad) is established. Disregarding the ijtihad (legal reasoning) of the leading jurists and relying solely on the corrections of Bukhari and Muslim, or the appraisals and extractions of Nasa'i and Dar-Qutni, is severe injustice and distant ignorance. In which verse or hadith is it stated that if Bukhari calls a hadith authentic, believe it, and if he calls it weak, do not; or if Yahya and Shu'bah call someone reliable, consider him trustworthy, and if they call him weak, consider him weak? The Quran and mutawatir (continuous) hadith establish the consensus of the Ummah (community) as a proof. And there is a consensus of the Ummah that the command for Friday prayer is not absolute and general but is restricted by conditions and prerequisites. He who goes against the consensus, the Great Quran says:

"We shall cast him into Hell; and what an evil destination it is." 2 We shall put him in Hell, it is a very bad place to return to. And Allah Almighty knows best.

Issue 170: Sent by Janab Jadd al-Husayn from Faridpur, dated 22 Jumada al-Akhirah 1338 AH. What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say regarding the following: Some individuals leave their neighborhood mosque to perform Friday prayers at another neighborhood's mosque, despite it having no special merit—it is not larger, the congregation is not bigger, and the Imam is not more knowledgeable. However, the other mosque is a quarter-mile away while their own neighborhood mosque is one-third of a mile away. Is this permissible or not? Because they leave, the congregation in their own neighborhood mosque decreases. Can these people be stopped or not? And if they are not stopped, there is a possibility that others might follow them. If it is permissible, which mosque is superior? State and be rewarded.

The Answer: Friday prayer is superior in the Jamia (central) mosque. The right of the neighborhood mosque is for the five daily prayers. Since it is not a Jamia mosque and it is easier for them to go to the other place, there is no reason for prohibition. And Allah Almighty knows best.

Issue 171: From the city of Rohili Tola, questioned by a Bengali student, 23 Shaban 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: a village that fits the definition of a city? For instance, its inhabitants cannot fit in the largest mosque,

there are streets and markets, several scholars reside there teaching religious matters, and there is a Qazi (judge) who provides justice to the oppressed. Adjacent to this village, there are other villages...

---

1 Al-Quran 10:36 2 Al-Quran 4:115

फ़तावा रज़विया, खंड 8

"...बेशक अनुमान सत्य के विरुद्ध कुछ भी काम नहीं आता" 1 (कुरान 10:36)। तो उन पर अमल करना, विशेष रूप से पवित्र कुरान की व्यापकता के विरुद्ध, उसने कैसे जायज़ कर लिया? और यह भी तब है जब इन एकल हदीसों (अहादीथ-ए-आहाद) की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाए। प्रमुख मुजतहिदीन के इज्तिहाद को न मानना और बुखारी व मुस्लिम के सही कहने या नसाई व दार-कुतनी की समीक्षा पर भरोसा करना घोर अन्याय और गहरी अज्ञानता है। किस आयत या हदीस में आया है कि जिस हदीस को बुखारी सही कह दें उसे मानो और जिसे वह ज़ईफ़ (कमज़ोर) कह दें उसे न मानो, या याह्या और शुबा जिसे विश्वसनीय कह दें उसे भरोसेमंद मानो और जिसे ज़ईफ़ कह दें उसे ज़ईफ़ समझो? कुरान और मुतवातिर (लगातार) हदीसें उम्मत (समुदाय) की आम सहमति (इज्मा) को एक प्रमाण के रूप में स्थापित करती हैं। और उम्मत की आम सहमति है कि जुमे की नमाज़ का हुक्म निरपेक्ष और सामान्य नहीं है, बल्कि यह शर्तों और प्रतिबंधों के अधीन है। जो आम सहमति के विरुद्ध जाता है, उसके बारे में महान कुरान कहता है:

"हम उसे जहन्नुम (नरक) में डालेंगे; और वह बहुत बुरा ठिकाना है" 2 हम उसे जहन्नुम में डालेंगे, वह पलटने की बहुत बुरी जगह है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 170: जनाब जद अल-हुसैन द्वारा फरीदपुर से प्रेषित, दिनांक 22 जमादी उल-आख़िर 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत के मुफ्ती इन विषयों पर क्या कहते हैं: कुछ लोग अपने मोहल्ले की मस्जिद छोड़कर दूसरे मोहल्ले की मस्जिद में जुमे की नमाज़ पढ़ने जाते हैं, जबकि उस मस्जिद की कोई विशेष श्रेष्ठता नहीं है—न वह मस्जिद बड़ी है, न वहां जमात बड़ी है, न वहां के इमाम अधिक जानकार (अफ़क़ह) हैं। हाँ, इतना है कि दूसरे मोहल्ले की मस्जिद एक चौथाई मील दूर है और उनके अपने मोहल्ले की मस्जिद एक तिहाई मील की दूरी पर है। क्या यह जायज़ है या नहीं? और इन लोगों के जाने के कारण उनके अपने मोहल्ले की मस्जिद में जमात कम हो जाती है। क्या इन लोगों को रोका जा सकता है या नहीं? और यदि उन्हें नहीं रोका गया, तो संभावना है कि दूसरे लोग भी उनके साथ चले जाएं। जायज़ होने की स्थिति में, कौन सी मस्जिद बेहतर है? बयान करें और पुण्य प्राप्त करें।

अल-जवाब (उत्तर): जुमे की नमाज़ जामा मस्जिद में पढ़ना बेहतर है। मोहल्ले की मस्जिद का हक पांच वक्त की नमाज़ों के लिए है। चूंकि वह जामा मस्जिद नहीं है और दूसरी जगह जाने में उन्हें

आसानी होती है, इसलिए रोक लगाने का कोई कारण नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 171: रोहिली टोला शहर से, बंगाली छात्र द्वारा पूछा गया, 23 शाबान 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि जिस गांव पर शहर की परिभाषा लागू होती हो? उदाहरण के लिए, सबसे बड़ी मस्जिद में भी वहां के लोग न समा सकें, वहां गलियां और बाज़ार हों, वहां कई मौलवी हों जो धार्मिक शिक्षा देते हों, और वहां काज़ी हों जो मज़लूमों को न्याय दिलाते हों। उस गांव के पास अन्य गांव भी हैं...

---

1 अल-कुरान 10:36 2 अल-कुरान 4:115

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

لا یُغْنِي مِنَ الْحَقِّ شَیْئًا (بلاشبہ ظن حق سے بے نیاز نہیں کر سکتا۔ ت) 1 تو ان پر عمل خصوصاً عموم قرآن مجید کے خلاف کیونکر اس نے حلال کر لیا، اور یہ بھی اس وقت ہے کہ ان احادیث آحاد کی صحت ثابت کرلے، ائمہ مجتہدین کا اجتہاد نہ ماننا اور بخاری و مسلم کی تصحیح یا نسائی و دار قطنی کی تعدیل و تخریج پر اعتماد کرنا ظلم شدید و جہل بعید ہے، کون سی آیت یا حدیث میں آیا ہے کہ بخاری جس حدیث کو صحیح کہہ دیں اسے مانو اور جسے ضعیف کہہ دیں اسے نہ مانو یا یحییٰ و شعبہ جسے ثقہ کہہ دیں اسے معتمد جانو اور ضعیف کہہ دیں تو ضعیف جانو، قرآن و حدیث متواترہ اجماع امت کو حجت بتاتے ہیں، اور اجماع امت ہے کہ جمعہ کا حکم مطلق و عام نہیں مقید بقیود و مشروط بشرائط ہے اور جو اجماع کا خلاف کرتا ہے قرآن عظیم فرماتا ہے:

نُصْلِهٖ جَهَنَّمَ وَ سَاءَتْ مَصِیرًا ط 2 ہم اسے جہنم میں ڈالیں گے وہ بہت بری پھرنے کی جگہ ، واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۷۰: مرسلہ جناب جدالحسین از فرید پور مورخہ ۲۲ جمادی الآخرہ ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین مسائل ذیل میں معہ چند اشخاص اپنے محلے کی مسجد کو چھوڑ کر دوسرے محلے کی مسجد جا کر نماز جمعہ کو ادا کرنا باوجود اس کے کوئی طریقہ فضیلت نہیں رکھتی ہے نہ مسجد بڑی ہے نہ جماعت کثیر نہ امام افقہ، ہاں اتنا ہے کہ دوسرے محلے کی مسجد ربع میل اور اپنے محلے کی مسجد ثلث میل فاصلہ پر ہے جائز ہے یا نہیں؟ اور ان لوگوں کے جانے کی وجہ سے اپنے محلے کی مسجد میں جماعت کم ہوتی ہے اکنوں ان لوگوں کو منع کیا جا سکتا ہے یا نہیں؟ اور بر تقدیر منع نہ کرنے کے ان لوگوں کے ساتھ اور لوگوں کے بھی جانے کا احتمال ہے اور بصورت جائز ہونے کے کون سی مسجد میں افضل ہے؟ بینوا توجروا

الجواب: جمعہ مسجد جامع میں افضل ہے، مسجد محلہ کا حق نماز پنجگانہ میں ہے، جب ہو جامع نہیں اور دوسری جگہ جانے میں ان کو آسانی ہے تو ممانعت کی کوئی وجہ نہیں۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۷۱: از شہر روہیلی ٹولہ مسئولہ طالب علم بنگالی ۲۳ شعبان ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس گاؤں میں تعریف شہر کی صادق آئے مثلاً بڑی سے بڑی مسجد میں اس کے اہل نہ جمع ہوسکیں اور گلیاں اور بازار ہوں اور اس میں چند مولوی ہوں مسئلہ دین کا جاری کرتے ہوں اور قاضی ہو کر انصاف مظلوم کا کرتے ہوں اُس گاؤں کے متصل اور گاؤں بھی ہے ایسے

---

1 القرآن ۳۶/۱۰ 2 القرآن ۱۱۵/۴

Volume 8

Fatawa Rizvia

Is Friday prayer permissible in a village or not?

The Answer: Being connected to a village means nothing; rather, villages should be related to it. Whether it is a district or a pargana, making decisions on one's own does not make it a city. Instead, there should be a ruler of the country or a governor appointed by him. If both these things are present, then Friday prayer in it is permissible and correct; otherwise, it is void and impermissible. And Allah Almighty knows best.

Issue 72 to 76/13: Questioned by Mukarram Ahmad Ullah Sahab, Sadar Bazar, Hardoi. What do the scholars of religion and the jurists of the bright Sharia say regarding the following matters: (1) Did the Holy Prophet Muhammad Mustafa (peace and blessings of Allah be upon him) recite the 'Khutba al-Wada' (Farewell Sermon) on the last Friday of Ramadan? (2) If the Prophet Muhammad Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) did not recite it, who first recited the Farewell Sermon, and who was its inventor and innovator among the noble companions (may Allah be pleased with them all) or the mujtahid imams, jurists, and hadith scholars (may Allah have mercy on them)? (3) In the sacred, pure, luminous Muhammadan Hanafi Sharia of the Ahlus Sunnah wal Jama'ah, what is the status of the Farewell Sermon: obligatory (Fard), mandatory (Wajib), Sunnah, recommended (Mustahab), or permissible (Mubah)? Write a clear and reasoned explanation. (4) Will the Friday prayer be valid if the Farewell Sermon is not recited on the last Friday of Ramadan? And to what degree is the one who omits the Farewell Sermon a wrongdoer and sinner, and is he deserving of blame and reprimand or not? Will those who blame and reprimand him be sinners? Is it permissible for him to lead the prayer (Imamat) or not? (5) It is written on page 244 of the book 'Shabih al-Insan':

Reciting words of longing and regret in the sermon of the last Friday of Ramadan is permissible, but it is not narrated from the predecessors (Salaf). Leaving it is better so that the common people do not consider it mandatory (Wajib) or Sunnah. The condition is that no lies or slanders against the noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) are included in it, otherwise it is forbidden, and that is what it is.

Reciting words of longing and regret in the sermon of the last Friday of Ramadan is permissible, but it is not narrated from the predecessors (Salaf). Leaving it is better so that the common people do not consider it mandatory (Wajib) or Sunnah. The condition is that no lies or slanders against the noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) are included in it, otherwise it is forbidden, and that is what it is.

जिल्द अष्टम

फ़तावा रज़विया

क्या गाँव में जुमे की नमाज़ जायज़ है या नहीं?

उत्तर: गाँव के जुड़े होने से कुछ नहीं होता, बल्कि देहात इसके अंतर्गत हों। यह ज़िला हो या परगना, अपने-अपने तौर पर फैसला करने से शहर नहीं बन जाता। बल्कि मुल्क का शासक या उसके द्वारा नियुक्त हाकिम होना चाहिए। अगर ये दोनों बातें हैं, तो इसमें जुमा जायज़ और सही है, वरना बातिल और नाजायज़। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला संख्या 72 से 76 / 13: मुस्तौला मुकर्रम अहमद उल्लाह साहब, सदर बाज़ार, हरदोई। धर्म के विद्वान और शरिया के मुफ्ती निम्नलिखित मामलों में क्या कहते हैं: (1) क्या पैगंबर मुहम्मद मुस्तफा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने रमज़ानुल मुबारक के आखिरी जुमे को 'ख़ुत्बा अल-वदा' (विदाई भाषण) पढ़ा था या नहीं? (2) यदि हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसे नहीं पढ़ा था, तो सबसे पहले विदाई भाषण किसने पढ़ा और इसके निर्माता और आविष्कारक कौन थे - सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन) या मुजतहिद इमाम, फ़क़ीह और मुहद्दिस (रहमतुल्लाह अलैहि)? (3) अहले सुन्नत वल जमात की पवित्र मुहम्मदी हनफी शरिया में विदाई भाषण का क्या स्थान है: फर्ज़, वाजिब, सुन्नत, मुस्तहब या मुबाह? स्पष्ट और तर्कसंगत रूप से लिखें। (4) क्या वह जुमा सही होगा जिसमें विदाई भाषण नहीं पढ़ा जाता है? और विदाई भाषण छोड़ने वाला किस स्तर का अपराधी और गुनाहगार है, क्या वह निंदा और फटकार का पात्र है या नहीं? क्या निंदा और फटकार करने वाले गुनाहगार नहीं होंगे? उसकी इमामत (प्रार्थना का नेतृत्व) जायज़ है या नाजायज़? (5) किताब 'शबीह अल-इंसान' के पृष्ठ 244 में लिखा है:

रमज़ान के आखिरी जुमे के ख़ुत्बे में हसरत और अफसोस के शब्द पढ़ना मुबाह है, लेकिन पूर्वजों (सलफ़) से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसे छोड़ना ही बेहतर है ताकि आम लोग इसे वाजिब या सुन्नत न समझ लें। शर्त यह है कि इसमें रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रति कोई झूठ या दोषारोपण शामिल न हो, अन्यथा यह हराम है और वह यह है।

रमज़ान के आखिरी जुमे के ख़ुत्बे में हसरत और अफसोस के शब्द पढ़ना मुबाह है, लेकिन पूर्वजों (सलफ़) से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसे छोड़ना ही बेहतर है ताकि आम लोग इसे वाजिब या सुन्नत न समझ लें। शर्त यह है कि इसमें रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रति कोई झूठ या दोषारोपण शामिल न हो, अन्यथा यह हराम है और वह यह है।

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

گاؤں میں جمعہ جائز ہے یا نہیں؟

الجواب: گاؤں متصل ہونے سے کچھ نہیں ہوتا بلکہ دیہات اس کے متعلق ہوں یہ ضلع یا پرگنہ ہو اپنے اپنے طور پر فیصلہ کرنے سے شہر نہیں ہو جاتا بلکہ والی ملک یا اس کا مقرر کردہ حاکم ہو، اگر یہ دونوں باتیں ہیں تو اس میں جمعہ جائز و صحیح ہے ورنہ باطل و ناجائز۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۷۲ تا ۷۶/ ۱۳: مسئولہ مکرم احمد اللہ صاحب صدر بازار ہر دوئی کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین مسائل ذیل میں: (۱) جمعۃ الوداع رمضان المبارک کو نبی کریم احمد مجتبیٰ محمد مصطفی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے خطبۃ الوداع پڑھا ہے یا نہیں؟ (۲) اگر حضور محمد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے نہیں پڑھا ہے تو سب سے پہلے خطبۃ الوداع کس نے پڑھا ہے اور اس کا موجد و مخترع کون ہے صحابہ کرام رضوان اللہ علیہم اجمعین یا ائمہ مجتہدین فقہاء و محدثین رحمہم اللہ تعالیٰ۔ (۳) شریعت مقدسہ مطہرہ منورہ محمدیہ حنفیہ اہلسنت و جماعت میں خطبہ الوداع کا کیا درجہ ہے فرض، واجب، سنت، مستحب، مباح؟ صاف صاف مدلل تحریر فرمائیں۔ (۴) جس جمعۃ الوداع کو خطبۃ الوداع نہ پڑھا جائے وہ جمعہ صحیح ہوگا یا نہیں؟ اور تارک خطبۃ الوداع کس درجہ کا خاطی و گناہگار ہے، قابل ملامت وزجر ہے یا نہیں؟ ملامت وزجر کرنے والے تو گنہگار نہ ہوں گے؟ امامت اس کی جائز ہے یا نا جائز؟ (۵) کتاب شبیہ الانسان کے ص ۲۴۴ میں لکھا ہے:

رمضان کے آخری جمعہ میں حسرت و افسوس کے کلمات پڑھنا مباح ہے لیکن اسلاف سے منقول نہیں، ترک افضل ہے تاکہ عوام اسے واجب یا سنت نہ بنالیں، شرط یہ ہے کہ اس میں جھوٹ شامل نہ ہو ورنہ حرام ہے اور وہ یہ ہے رسالتمآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی نسبت

اما خواندن کلمات حسرت وافسوس در خطبہ آخر رمضان مباح است فاما از سلف منقول نیست وافضل ترک ست تا عوام راگمان وجوب و سنتش نگردد دریں شرط ست کہ روایت دروغ وبہتان بر رسول مقبول صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم دراں نباشد والارام ہمچنانکہ این ست۔

Fatawa Razawiyyah Volume 8

Ofttimes Muhammad Mustafa is the beloved and desired of God; The beloved and desired of God is Muhammad the Arabian, may Allah's peace and blessings be upon him. They say in this regret, 'O month of Ramadan, farewell'; expressing regret, saying 'O month of Ramadan, farewell'. (T)

Question: This fatwa is by an elder named Mufti Saadullah, which was printed in Nawal Kishore Press, Kanpur in 1296 AH. What do you say regarding this fatwa? Is it correct and actionable, or should it be rejected? Whatever the case, please write clearly. Give us your verdict and you shall be rewarded.

The Answer:

(1) The practice of 'Al-Wida' (farewell sermon) as it is currently prevalent is not proven from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). (2) Nor is it known from the noble Companions or the great Mujtahids (may Allah be pleased with them), nor is its originator known. (3) In its essence, it is permissible (mubah). Every permissible act becomes recommended (mustahabb) with a good intention, and due to external factors and contrary circumstances, it can range from disliked (makruh) to forbidden (haram). (4) A sermon is a condition for Friday prayer; however, a specific 'Al-Wida' sermon is nothing special. Its omission does not affect the prayer; there is no harm in omitting it. Reprimand and blame are not permissible for the one who omits it, provided the omission is not based on Wahhabism. Yes, if it is due to Wahhabism, then praying behind a Wahhabi is certainly invalid and void, and such a person deserves even harsher reprimand and blame. (5) Everything written in that fatwa is correct word for word, except for the phrase 'omitting it is better'. Instead, it should be: 'Commitment to it should perhaps not be permanent; sometimes it should be omitted so that the common people do not mistakenly believe it to be obligatory or a favor'. (One should not strictly adhere to it; sometimes omit it so that commoners do not have the illusion of it being mandatory or Sunnah. T) For the noble scholars have clarified that 'sometimes omitting an act removes the misconception'. (T) And Allah, Glory be to Him and Most High, knows best.

Issue 773: From Dhaka district, Nahrawi post office, Hafizpur Madrasah, Mukhlisur Rahman. To the honorable presence of Maulana Molvi Ahmad Raza Khan Sahib (may his shadow endure), Peace be upon you and the mercy of Allah and His blessings. The submission is that in our country, Bengal, there are villages such that each contains multiple 'paras' (parts), and each para is known by a separate name. One

para is separate from the other and settled at such a distance as if they are separate small villages, with farms and fields in between separate locations, and in some places...

फ़तावा रज़विया खंड 8

अक्सर मुहम्मद मुस्तफ़ा अल्लाह के महबूब और मतलूब हैं; अल्लाह के महबूब और मतलूब मुहम्मद अरबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हैं। इस हसरत में कहते हैं, 'ऐ माहे रमज़ान अलविदा'; हसरत का इज़हार करते हुए कहते हैं 'ऐ माहे रमज़ान अलविदा'। (त)

प्रश्न: यह फ़तवा मुफ्ती सादुल्ला नाम के किसी बुजुर्ग का है जो 1296 हिजरी में नवल किशोर प्रेस, कानपुर में छपा था। आप इस फ़तवे के बारे में क्या फरमाते हैं? क्या यह सही और अमल के काबिल है या रद करने के लायक? जो कुछ भी हो साफ तहरीर फरमाएं, जवाब दें और सवाब पाएं।

उत्तर:

(1) अलविदा जिस तरह प्रचलित है, वह हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से साबित नहीं है। (2) न ही सहाबा किराम और महान मुजतहिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से और न ही इसके आविष्कारक का पता है। (3) यह अपने आप में मुबाह (अनुमेय) है। हर मुबाह अच्छी नीयत से मुस्तहब (पसंदीदा) हो जाता है और बाहरी कारणों और विपरीत परिस्थितियों के कारण यह मकरूह (नापसंद) से हराम (वर्जित) तक हो सकता है। (4) जुमे के लिए खुत्बा शर्त है, खास अलविदा खुत्बा कोई चीज़ नहीं है। उनके छोड़ने से नमाज़ पर कोई असर नहीं पड़ता, इसके छोड़ने में कोई कमी नहीं है। छोड़ने वाले पर डांट-डपट और मलामत जायज़ नहीं है, जब तक कि छोड़ना वहाबियत की बुनियाद पर न हो। हाँ, अगर वहाबियत है तो वहाबी के पीछे नमाज़ यकीनन नाजायाज़ और बातिल है और वह डांट-डपट और मलामत से भी ज़्यादा सख्त का हकदार है। (5) उस फ़तवे में जो कुछ लिखा है वह शब्दशः सही है सिवाय इस शब्द के कि 'इसे छोड़ना बेहतर है'। इसकी जगह ऐसा होना चाहिए: 'शायद इसका इल्तज़ाम (स्थायी पालन) न किया जाए, कभी-कभी इसे छोड़ भी दें ताकि आम लोग इसे वाजिब या अहसान न समझ बैठें?' (इसका इल्तज़ाम नहीं करना चाहिए, कभी इसे छोड़ दें ताकि आम जनता को वाजिब या सुन्नत होने का भ्रम न हो। त) क्योंकि महान विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि 'कभी-कभी छोड़ देना आम लोगों के भ्रम को दूर कर देता है'। (त) और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है।

मसला 773: जिला ढाका, डाकखाना नहरवी, मदरसा हाफ़िज़पुर, मुख्लिसुर रहमान की ओर से। खिदमत शरीफ़ जनाब मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खां साहब दाम ज़िल्लहू में, अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातुहू। अर्ज़ यह है कि हमारे मुल्क बंगाल में ऐसी बस्तियां होती हैं कि हर एक में

कई पारा यानी हिस्से होते हैं और हर एक पारा अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है। एक पारा दूसरे पारे से अलग है और इतनी दूरी पर बसा है कि जैसे अलग-अलग छोटे गाँवों के बीच अलग-अलग स्थानों में खेत और मैदान हों और कहीं-कहीं...

पृष्ठ 452 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اکثر محمد مصطفٰی محبوب و مطلوبِ خدا خدا کے محبوب و مطلوب محمد عربی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم گفتے دریں حسرتا ای ماہِ رمضان الوداع حسرت کا اظہار کرتے ہوئے کہتے اے ماہِ رمضان الوداع۔ (ت) یہ فتوٰی مفتی سعد اللہ نامی کسی بزرگ کا ہے جو ۱۲۹۶ھ میں مطبع نولکشور کانپور میں چھپا ہے جناب اس فتوٰی کے متعلق کیا فرماتے ہیں آیا صحیح قابل عمل ہے یا واجب الرد؟ جو کچھ ہو صاف تحریر فرمائے، بینوا توجروا الجواب:

(۱) الوداع جس طرح رائج ہے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثابت نہیں۔ (۲) نہ صحابہ کرام و مجتہدین عظام رضی اللہ تعالٰی عنہم سے نہ اس کا موجد معلوم، (۳) وہ اپنی حد ذات میں مباح ہے ہر مباح نیت حسن سے مستحب ہو جاتا ہے اور عروض و عوارض خلاف سے مکروہ سے حرام تک۔ (۴) جمعہ کے لئے خطبہ شرط ہے خاص خطبہ الوداع کوئی چیز نہیں ان کے ترک سے نماز پر کچھ اثر نہیں پڑ سکتا اس کے ترک میں کچھ خلل نہیں، نہ تارک پر نہ زجر و ملامت روا جبکہ ترک بر بنائے وہابیت نہ ہو، ہاں اگر وہابیت ہے تو وہابی کے پیچھے نماز بیشک ناجائز محض باطل اور وہ زجر و ملامت سے بھی سخت تر کا مستحق ہے۔ (۵) اس فتوے میں جو کچھ لکھا حرف بحرف صحیح ہے سوائے اس لفظ کے کہ "افضل ترک است" اس کی جگہ یوں چاہئے التزامش نہ شاید گاہے ترک ہم کنند تا عوام گمان وجوب و امتنان؟ (اس کا التزام نہیں کرنا چاہئے کبھی اسے ترک کر دیں تاکہ عوام کو وجوب یا سنت ہونے کا وہم نہ ہو، ت) فقد صرح العلماء الکرام ان الترك احیانا یزیل الایهام (علماء کرام نے تصریح کی ہے کہ بعض اوقات ترک کر دینا عوام کے وہم کو زائل کر دیتا ہے۔ت) واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم مسئلہ ۷۷۳: از ضلع ڈھاکہ ڈاکخانہ نہروی مدرسہ حافظ پور مخلص الرحمٰن بخدمت شریف جناب مولانا مولوی احمد رضا خاں صاحب

دام ظلہ، السلام علیکم ورحمۃ اللہ وبرکاتہ، عرض یہ ہے کہ ہمارے ملک بنگالہ میں ایسی بستیاں ہوا کرتی ہیں کہ ہر ایک میں متعدد پارہ یعنی حصے ہوتے ہیں اور ہر ایک پارہ جدا جدا نام سے موسوم ہے، ایک پارہ سے دوسرے پارہ علیحدہ اور اس قدر فاصلہ سے بسا ہے کہ گویا قریہ صغیرہ مستقلہ کے درمیان مواضع منفصلہ میں مزارع اور میدان اور کہیں کہیں

Volume 8 Fatawa Razawiyya

There are bamboo and other low-lying forests. During the rainy season, there is little need for a boat to travel from one settlement (parah) to another, but one cannot go wearing shoes. In some middle distances, water reaches up to the knees, and in most places, it is slightly less than that. There is no major road for traveling from one settlement to another except for the field boundaries and small paths; that is, it is difficult for two people to walk side-by-side on such a path. Yes, in some places, "Gopat" (cow paths), i.e., some fallow land like wide paths for cattle to walk on, is left open. They are also not high like a road. The buildings in each settlement are also not connected and are in a completely disorganized state. These settlements have a large collective name by which they are famous in correspondence, legal documents, deeds, and government records. Often, these villages have no post office, police station, communication lines, or markets. Markets (haat) are held once or twice a week at the edge of some villages where people sell and buy food items, but except for the fixed market time, rarely anything is found there, and there aren't more than one or two such shops. Mosques have been built for Friday prayers in the settlements of such villages. In those mosques, even the largest ones can barely accommodate forty people. In each village (i.e., a collection of several settlements), two to two-and-a-half thousand people, including Hindus and Muslims, adults and minors, men and women, reside. In short, except for the population density, there is no other sign of a city or neighborhood in these settlements. There is no congregation for the five daily prayers; if by chance two or four people gather somewhere, they pray in congregation, otherwise, there is no established regular congregation. Now the question is: Is it correct to perform Friday prayers in such villages according to the Hanafi school of thought or not? Secondly, if it's not correct, will those who perform it be sinners or not? Can such a village, made up of several separate settlements and inhabited by two to two-and-a-half thousand people, be called a 'Qarya Kabira' (large village/township)? Explain, and you shall be rewarded by Allah with a goodly reward. More salams.

Answer: In the mentioned scenario, those small settlements and their collective whole are all considered villages, and Friday prayer is impermissible in them, and performing it is a sin. It is stated in Durr al-Mukhtar:

Prayer of Eid in villages is Makruh Tahrimi (prohibitively disliked), because it is engagement in something that is not valid. Eid prayer in villages is prohibitively disliked because it is engaging in a task that is not correct. (T)

And if because of this they abandon the Zuhr prayer, they will be abandoners of an obligatory duty (Fard), and if they pray Zuhr alone as a precaution, they will be abandoners of a necessary duty (Wajib).

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed at Matba' Mujtabai Delhi, 1/112. Page 453 of 673

बाँस और अन्य छोटे जंगल होते हैं। बरसात के मौसम में एक टोले (पारा) से दूसरे टोले में जाने के लिए नाव की ज़रूरत कम होती है, लेकिन जूते पहनकर नहीं जा सकते। कहीं-कहीं बीच की दूरी में पानी घुटनों तक होता है और अधिकतर स्थानों पर इससे कुछ कम। एक टोले से दूसरे टोले तक जाने के लिए खेतों की मेढ़ों और छोटी पगडंडियों के अलावा कोई बड़ा रास्ता नहीं है; यानी दो लोगों का एक साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना मुश्किल है। हाँ, कहीं-कहीं मवेशियों के चलने के लिए "गोपाट" यानी कुछ परती ज़मीन बड़े रास्तों की तरह चौड़ी छोड़ी गई है, वह भी सड़क की तरह ऊँची नहीं है। हर टोले की इमारतें भी जुड़ी हुई नहीं हैं और पूरी तरह से अव्यवस्थित स्थिति में हैं। इन टोलों का एक बड़ा नाम होता है जिससे वे पत्राचार, दस्तावेज़ों, ज़मीन के कागज़ात और सरकारी अभिलेखों में प्रसिद्ध होते हैं। अक्सर इन गाँवों में न डाकघर है, न थाना और न ही बाज़ार। बाज़ार (हाट) कुछ गाँवों के किनारे सप्ताह में एक-दो बार लगता है जहाँ लोग खाने-पीने की चीज़ें बेचते और खरीदते हैं, लेकिन बाज़ार के निश्चित समय के अलावा वहाँ शायद ही कुछ मिलता है, और ऐसी दुकानों की संख्या एक या दो से अधिक नहीं होती। ऐसे गाँवों के टोलों में जुमे की नमाज़ के लिए मस्जिदें बनी हैं। उन मस्जिदों में जो बहुत बड़ी होती हैं, उनमें मुश्किल से चालीस लोग समा सकते हैं। प्रत्येक गाँव (अर्थात कई टोलों का समूह) में दो से ढाई हज़ार हिंदू-मुसलमान रहते हैं, जिसमें वयस्क, नाबालिग, पुरुष और महिलाएँ सभी शामिल हैं। संक्षेप में, जनसंख्या की सघनता के अलावा, इन टोलों में शहर या मुहल्ले का कोई अन्य चिन्ह नहीं है। पाँचों समय की नमाज़ के लिए जमात नहीं होती; यदि इत्तेफाक से दो-चार लोग कहीं जमा हो जाते हैं तो जमात से नमाज़ पढ़ लेते हैं, अन्यथा कोई स्थायी जमात नहीं है। अब सवाल यह है कि ऐसे गाँवों में हनफी मज़हब के अनुसार जुमे की नमाज़ पढ़ना सही है या नहीं? यदि सही नहीं है, तो पढ़ने वाले गुनहगार होंगे या नहीं? ऐसे गाँव को जो कई अलग-अलग टोलों से बना है और जिसमें दो-ढाई हज़ार लोग रहते हैं, 'क़रिया कबीरा' (बड़ा गाँव/कस्बा) कह सकते हैं या नहीं? विस्तार से बताएँ अल्लाह आपको अच्छा बदला दे। वस्सलाम।

उत्तर: उपरोक्त स्थिति में, वे छोटे टोले और उनका समूह सभी गाँव हैं और उनमें जुमे की नमाज़ नाजायज़ है और उसे पढ़ना गुनाह है। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

गाँवों में ईद की नमाज़ मकरूह तहरीमी है, क्योंकि यह एक ऐसे काम में मशगूल होना है जो सही नहीं है। गाँवों में ईद की नमाज़ मकरूह तहरीमी है क्योंकि यह ऐसे काम में व्यस्त होना है जो सही ही नहीं है। (त)

और अगर इसके कारण ज़ुहर की नमाज़ छोड़ देंगे तो फ़र्ज़ के त्यागने वाले होंगे और अगर एहतियातन अकेले ज़ुहर की नमाज़ पढ़ी तो वाजिब के त्यागने वाले।

1. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल ईदैन, मुद्रित मतबअ मुजतबाई दिल्ली, 1/112. Page 453 of 673

بانس اور دیگر ادنیٰ جنگل ہوا کرتے ہیں موسم برسات میں ایک پارہ سے دوسرے پارہ میں جانے کے لئے کشتی کی ضرورت کم ہوتی ہے مگر جوتی پہن کر نہیں جاسکتے کہیں کہیں درمیانی فاصلہ میں زانوں تک پانی ہوتا ہے اور اکثر جگہ میں اس سے کچھ کم ایک پارہ سے دوسرے پارہ میں جانے کے لئے سوائے کھیتوں کی حد بندی اور چھوٹے چھوٹے راستوں کے اور کوئی بڑا راستہ نہیں ہے یعنی دو آدمی محاذی ہو کر ایسے راستہ سے چلنا دشوار ہے ہاں کہیں کہیں موائشی کے چلنے کے لئے "گوپاٹ" یعنی کچھ زمین افتادہ مثل بڑے راستے کے فراخ چھوڑی ہوئی ہے وہ بھی مثل سڑک کے اونچے نہیں، ہر ایک پارہ کے ابنئیہ بھی متصل نہیں بالکل غیر منظم حالت پر ہیں، ان پاروں کا ایک بڑا نام ہوا کرتا ہے جس سے وہ خط وکتابت و تمسک وقبالہ و گورنمنٹ کا غذات میں مشہور ہوتا ہے اکثر ان گاؤں میں ڈاکخانہ ہے نہ تھانہ و سلک و اسواق، روزانہ بالکل نہیں ہاں ہفتہ میں دو ایک مرتبہ بعض گاؤں کے کنارے میں بازار (ہاٹ) لگتا ہے جس میں لوگ اشیائے خوردنی بیچتے اور خریدتے ہیں مگر بازار کے معین وقت کے سوا وہاں شاذ و نادر ہی کچھ ملتا ہے مگر ایسے دکان دو ایک سے زیادہ نہیں ہوتا، ایسے گاؤں کے پاروں میں نماز جمعہ کے لئے مسجدیں بنی ہیں ان مسجدوں میں جو نہایت بڑی ہوتی ہے اس میں بمشکل چالیس آدمی سما سکتے ہیں، ہر ایک گاؤں یعنی (مجموعہ چند پاروں میں) دو ڈھائی ہزار لوگ ہندو مسلمان بستے ہیں اس تعداد میں بالغ نابالغ مرد وزن سب شامل ہیں، الحاصل سوائے کثرت مردم کے شہر محلے کی دوسری کوئی علامت ان پاروں میں نہیں ہے، نماز پنجگانہ کی جماعت نہیں ہوتی، اتفاقیہ دو چار آدمی کہیں جمع ہوتے ہیں تو جماعت پڑھتے ہیں ورنہ کچھ جماعت راتبہ نہیں اب سوال یہ ہے کہ ایسے گاؤں میں نماز جمعہ پڑھنی مطابق مذہب حنفی کے درست ہے یا نہیں، بر تقدیر ثانی

پڑھنے والے گنہگار ہوں گے یا نہیں، ایسے گاؤں کو جو متعدد پارہائے منفصلہ سے بنا ہے اور جس میں دو ڈھائی ہزار لوگ بستے ہیں قریہ کبیرہ کہہ سکتے ہیں یا نہیں؟ بینوا توجروا عند اللہ اجرا حسنا۔ زیادہ والسلام الجواب: صورت مذکورہ میں وہ چھوٹے پارے اور ان کا مجموعہ سب گاؤں ہیں اور ان میں جمعہ ناجائز ہے اور پڑھنا گناہ۔ در مختار میں ہے:

صلواۃ العید فی القری تکرہ تحریماً ای لانہ اشتغال بما لا یصح- دیہاتوں میں نماز عید مکروہ تحریمی ہے کیونکہ یہ ایسے کام میں مشغول ہونا ہے جو درست ہی نہیں۔ (ت)

اور اگر اس کے سبب ظہر ترک کریں گے تو تارک فرض ہوں گے اور ظہر احتیاطا تنہا پڑھی تو تارک واجب۔

۱ در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۲ Page 453 of 673

Fatawa Rizvia Volume 8

...will be; in any case, multiple sins are incumbent upon them. However, where people are reading, they should not be stopped, as clarified in Al-Durr al-Mukhtar regarding prayer at sunrise (as explained in Durr al-Mukhtar about prayer times at sunrise - Ed.). And they themselves should never read, nor establish it in a new place; avoiding sin is necessary. Although a collection of hamlets might collectively be called a large village (qariya kabira), it is by no means a large village in the sense of a small town where Friday prayers could be valid. And Allah Almighty knows best.

Issue 78 to 1381: From Jahanabad, Pilibhit district, sent by Ashiq Hussain Bakhshi of the aforementioned town, dated 7th Dhul-Hijjah al-Haram 1338 AH.

What do the scholars of religion and jurists of Sharia say regarding the following issues: (1) In Friday sermons, if the Imam reads the Arabic text and then its Urdu translation solely with the intent of informing the people, is there any defect or merit in it? (2) Does reciting a long sermon or lengthy Quranic recitation hold any merit or cause any harm? (3) Is there any harm in referring to the sunnahs before and after the Friday prayer as the "Sunnah of the Messenger of Allah"? (4) Does the repeated recitation of "Al-Wada'" (farewell sermon/poem) have any defect in Sharia, and is this practice correct or incorrect? Please explain according to Sharia, and you shall be rewarded.

The Answer: (1) Mixing any language other than Arabic in the sermon is disliked (makruh) and against the Sunnah. And Allah Almighty knows best. (2) Recitation should not exceed the Sunnah amount, and such an increase that becomes burdensome for any follower is forbidden (haram). Regarding the sermon, it is narrated that a sign of a person's understanding of religion (fiqahat) is that his sermon is short and his prayer is moderate; an excessively long sermon is against the Sunnah. And Allah Almighty knows best. (3) Whether the sunnahs are of Friday or any other time, attributing them to the sacred name, i.e., "it is the Sunnah of the Prophet," is not problematic. Wahhabis, who burn with jealousy at the mention of the sacred name, forbid it. And Allah Almighty knows best. (4) "Al-Wada'" as it is prevalent has no specific Sharia command for or against it. However, scholars should not make it obligatory; sometimes...

---

1 Durr al-Mukhtar, Book of Prayer, published by Mujtabai Delhi, 1/21

फ़तावा रिज़विया जिल्द 8

...होंगे; बहरहाल, उन पर कई गुनाह लाज़िम हैं। इसके बावजूद जहाँ लोग पढ़ रहे हों उन्हें न रोका जाए, जैसा कि अद-दुर्र अल-मुख्तार में सूर्योदय के समय नमाज़ के बारे में बताया गया है। (जैसा कि दुर्र-ए-मुख्तार में सूर्योदय के समय की नमाज़ के बारे में बयान किया गया है - संपादक)। और वे खुद हरगिज़ न पढ़ें, न ही नई जगह पर इसे कायम करें; गुनाह से बचना लाज़िम है। हालाँकि बस्तियों के समूह को सामूहिक रूप से बड़ा गाँव (करिया कबीरा) कहा जा सकता है, लेकिन यह किसी भी तरह से छोटे शहर के अर्थ में बड़ा गाँव नहीं है जहाँ जुमे की नमाज़ जायज़ हो सके। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 78 से 1381: क़स्बा जहानाबाद, जिला पीलीभीत से, प्रेषक आशिक हुसैन बख्शी, उक्त क़स्बा, दिनांक 7 ज़ुल-हिज्जा अल-हराम 1338 हिजरी।

उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरह निम्नलिखित मसलों के बारे में क्या फ़रमाते हैं: (1) जुमे के खुतबे में अरबी इबारत पढ़ने के बाद अगर इमाम सिर्फ कौम की जानकारी के लिए उर्दू में तर्जुमा पढ़े तो इसमें क्या नुक्स (दोष) या फ़ज़्ल (गुण) है? (2) खुतबा या क़िरात (कुरान पाठ) का ज़्यादा लंबा होना कोई फ़ज़्ल रखता है या नुकसान? (3) जुमे से पहले और बाद की सुन्नतों को "सुन्नत-ए-रसूलुल्लाह" कहना कोई नुकसानदेह है? (4) बार-बार "अल-विदाअ" (विदाई कलाम) पढ़ना शरीयत के किसी अमल में नुक्स रखता है और यह अमल सही है या गलत? शरीयत की रोशनी में बयान फ़रमाएं, आपको सवाब मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): (1) खुतबे में अरबी के अलावा दूसरी ज़बान मिलाना मकरूह और खिलाफ़-ए-सुन्नत (सुन्नत के विरुद्ध) है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (2) क़िरात सुन्नत की मिक्दार (मात्रा) से ज़्यादा न हो, और इतनी ज़्यादती कि किसी मुक्तदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) पर बोझ बने, हराम है। खुतबे के बारे में इरशाद फ़रमाया कि आदमी की फकाहत (दीनी समझ) की निशानी यह है कि उसका खुतबा छोटा और नमाज़ औसत हो; ज़्यादा लंबा खुतबा खिलाफ़-ए-सुन्नत है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (3) सुन्नतें जुमे की हों या किसी और वक्त की, उनकी सुन्नतों में नाम-ए-अकदस (पवित्र नाम) की तरफ निस्बत करना कि हुज़ूर की सुन्नत है, इसमें कोई हर्ज नहीं। वहाबी इससे मना करते हैं जो मुकद्दस नाम से जलते हैं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (4) "अल-

विदाअ" जो प्रचलित है, उसके लिए न तो कोई शरई हुक्म है और न ही शरई मनाही। हाँ, उलेमा इसे लाज़िम न करें, कभी...

---

1 दुर्र अल-मुख्तार, किताबुस-सलात, मतबुआ मुज्तबाई दिल्ली, 1/21

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ہوں گے بہر حال متعدد گناہ ان پر لازم ہیں باینمہ جہاں لوگ پڑھتے ہوں انہیں نہ روکا جائے کما افادہ فی الدر المختار فی الصلوۃ عند الشروق (جیسا کہ در مختار میں طلوع آفتاب کے وقت نماز کے بارے میں بیان کیا ہے۔ت) اور خود ہرگز نہ پڑھیں، نہ نئی جگہ قائم کریں گناہ سے بچنا لازم ہے اور پاروں کے مجموعے کو اگر چہ مجموعی طور پر قریہ کبیرہ کہہ سکیں مگر قریہ کبیرہ بمعنی بلدہ صغیرہ ہرگز نہیں جس میں جمعہ جائز ہو سکے واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۷۸ تا ۱۳۸۱: از قصبہ جہاں آباد خاص ضلع پیلی بھیت مرسلہ عاشق حسین بخشی قصبہ مذکور مورخہ ۷ ذی الحجہ الحرام ۱۳۳۸ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع مسائل ذیل میں : (۱) جمعہ کے خطبوں میں عربی عبارت پڑھ کر بعد کو ترجمہ اردو زبان میں محض بہ نیت آگاہی قوم امام جمعہ پڑھے تو کیا نقص یا فضل ہے؟ (۲) خطبہ دراز یا قراءت طویل کا پڑھنا کوئی فضل رکھتا ہے یا نقصان؟ (۳) قبل اور بعد جمعہ سنتوں میں سنت رسول اللہ کہنا کوئی نقصان ہے؟ (۴) مکرر الوداع شریف کوئی عمل شرعی میں نقص رکھتا ہے اور یہ عمل درست ہے یا نا درست؟ بشریعت بینوا توجروا

الجواب: (۱) خطبہ میں عربی کے سوا دوسری زبان ملانا مکروہ و خلاف سنت ہے واللہ تعالیٰ اعلم۔ (۲) قراءت بقدر سنت سے زائد نہ ہو اور اتنی زیادت کہ کسی مقتدی کو ثقیل ہو حرام ہے، اور خطبہ کی نسبت ارشاد فرمایا کہ آدمی کی فقاہت کی یہ نشانی ہے کہ اسکا خطبہ کوتاہ ہو اور نماز متوسط زیادہ طویل خطبہ خلاف سنت ہے واللہ تعالیٰ اعلم۔ (۳) سنتیں جمعہ کی ہوں یا اور وقت کی، ان کی سنتوں میں نام اقدس کی طرف اضافت کہ حضور کی سنت ہے اس میں کوئی حرج نہیں اس

سے وہابیہ منع کرتے ہیں جو نام اقدس سے جلتے ہیں واللہ تعالٰی اعلم (۴) الوداع کہ رائج ہے نہ کوئی شرعی حکم ہے نہ اس سے منع شرعی، ہاں علماء اس کا التزام نہ کریں، کبھی

---

1 در مختار کتاب الصلوۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی ۲۱/۱

Fatawa-e-Razvia Volume 8

...must also leave so that the common people do not consider it mandatory, and the true farewell is from the heart, being happy at the arrival of Ramadan Sharif and sad at its departure. And if this is the case, then let them be counted for coming and going. And Allah knows best.

Problem 1382: From Anjuman Ahle Sunnat wa Jama'at, Sehwani Tola, Bareilly. 10 Muharram al-Haram 1339 AH.

What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say regarding this matter: A person or a group of Hanafi Sunnis (Ahle Sunnat wal Jama'at) who, as far as possible, avoid polytheists, innovators, Wahhabis, and especially Rafidis, and maintain the practice of boycotting them, but are eager to participate in congregational prayers, especially large ones. On the heart-wrenching and soul-piercing occasion of Muharram al-Haram, seeing that Friday coincides with the tenth day (Ashura) and there's an arrangement for congregational prayer at the Eidgah by the joint efforts of Sunni Hanafi organizations of Bareilly. However, innovators who practice Taziya (processions) are also present in this turmoil. Furthermore, this large gathering has assembled merely for Taziya-dari and viewing the Takht (thrones). Can a person join this congregational prayer? Will he receive the full reward as expected for praying with such a large congregation? Also, while coming and going, if his sight falls on the Takht, Taziya, etc., and on those people who have gathered for festivities and fun, considering his original intent, will there be a reduction in the reward of his Friday and congregational prayers, or will he necessarily become a sinner?

Answer:

When the arrangement for the congregation has been made by Sunni Hanafi individuals and the Imam is a Sunni Hanafi who fulfills the conditions for leadership, then undoubtedly there is a strong hope of receiving the reward for a large congregation. Taziya-dari is a practical innovation; it is not to the extent that those who practice it are like the wicked Rafidis, Wahhabis, etc. (God forbid), or that their congregation is not a congregation, or that avoiding them is as obligatory as avoiding those wicked ones who have cast aside the necessities of religion. They do not deny the essential beliefs of the Ahle Sunnat, nor do they (God forbid) insult the beloved of God, nor do they (God forbid) bear enmity towards any beloved of the Divine Court. Therefore, what comparison can there be between those wicked ones and these? These believe they are amongst us and whatever they do, they do with

the intention of love for the beloved of God in their own minds. Out of ignorance and foolishness, they include sport, play, and unlawful acts in it. Therefore, not considering their congregation as a congregation is pure injustice. And when his intention is not to watch the spectacle but to pray in a large congregation, he is not blamed for his sight falling on these things on the way, just as in the present day during Urs (death anniversaries of saints) at the visits to the holy shrines. And Allah Almighty knows best.

फ़तावा-ए-रज़विया भाग 8

...भी छोड़ दें ताकि आम लोग इसे अनिवार्य न समझने लगें, और सच्ची विदाई दिल से है कि रमज़ान शरीफ़ के आने पर खुश हों और जाने पर दुखी। और अगर यह हाल हो कि आना बोझ था और जाने के लिए घड़ियाँ गिनी जा रही थीं तो जो झूठी विदाई है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1382: अंजुमन अहले सुन्नत व जमाअत, सहवानी टोला, बरेली की ओर से। 10 मुहर्रम अल-हराम 1339 हिजरी।

धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत के मुफ्ती इस मामले में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति या हनफी मज़हब के अहले सुन्नत व जमाअत का एक समूह जो जहाँ तक संभव हो मुशरिकों (बहुदेववादियों), बिदअतियों (नवाचारियों), वहाबियों और विशेष रूप से राफ़िज़ियों से बचता है और उनसे संबंध विच्छेद (तर्कए-मुवालात) के अमल को जायज़ रखता है, लेकिन नमाज़-ए-जमाअत और विशेष रूप से बड़ी जमाअत का शौकीन है। मुहर्रम अल-हराम के इस दुखद और हृदय विदारक मौके पर यह देखते हुए कि जुमे का दिन आशूरा (दसवाँ दिन) का दिन है, नमाज़-ए-जमाअत और ईदगाह का अवसर है जिसका प्रबंध बरेली की हनफी अहले सुन्नत व जमाअत की अंजुमनों के संयुक्त प्रयासों से हुआ है। लेकिन इस हंगामे में ताज़ियादार बिदअती वगैरह भी शामिल हैं। साथ ही इस बड़े समूह का जमावड़ा केवल ताज़िया-दारी और तख्त देखने की वजह से हुआ है। क्या वह इस नमाज़-ए-जमाअत में शामिल हो सकता है और क्या उसे नमाज़ का उतना सवाब (पुण्य) मिलेगा जितना कि इतनी बड़ी जमाअत के साथ नमाज़ अदा करने से हासिल होना चाहिए? और यह भी कि आने-जाने में उसकी नज़र तख्त और ताज़िया वगैरह और उन लोगों पर पड़े जो खुशी और मेला समझकर इस मौके पर जमा हुए हैं, तो उसके मूल उद्देश्य को देखते हुए क्या उसके नमाज़-ए-जमाअत और जुमे के सवाब में कोई कमी आएगी या उसका गुनहगार होना ज़रूरी होगा?

उत्तर:

जब जमाअत का प्रबंध सुन्नी हनफी व्यक्तियों ने किया है और इमाम सुन्नी हनफी इमामत की शर्तों को पूरा करने वाला होगा, तो इसमें निसंदेह बड़ी जमाअत का सवाब मिलने की प्रबल आशा है। ताज़िया-दारी एक व्यावहारिक बिदअत (नवाचार) है, वह उस हद तक नहीं है कि इसके करने वाले (ईश्वर न करे) राफ़ज़ी, वहाबी आदि खबीसों (दुष्टों) की तरह हों, या (ईश्वर न करे) उनकी जमाअत, जमाअत न हो, या उनसे बचना वैसा ही फ़र्ज़ हो जैसा उन खबीसों से जो धर्म की अनिवार्यताओं को ताक पर रख

चुके हैं। वे अहले सुन्नत के अनिवार्य अकीदों (मान्यताओं) के भी मुनकिर (इनकारी) नहीं हैं, न ही वे (ईश्वर न करे) ईश्वर के प्रियजनों का अपमान करते हैं, न ही किसी प्रिय ईश्वरीय दरबार के साथ (ईश्वर न करे) दुश्मनी रखते हैं। फिर उन खबीसों की इनसे क्या तुलना? ये अकीदा रखते हैं कि हम में से हैं और जो कुछ करते हैं अपने हिसाब से अल्लाह के प्यारों की मुहब्बत की नीयत से करते हैं। अज्ञानता और नादानी के कारण इसमें खेल-कूद और नाजायज़ काम शामिल कर लेते हैं। इसलिए उनकी जमाअत को जमाअत न मानना सरासर ज़ुल्म है। और जब उसकी नीयत तमाशा देखने की नहीं बल्कि बड़ी जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने की है, तो रास्ते में इन चीज़ों पर नज़र पड़ने का उस पर दोष नहीं है, जैसा कि आजकल उर्स के दिनों में पाक मज़ारों पर हाज़िरी के समय होता है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

ترک بھی کریں کہ عوام واجب نہ سمجھنے لگیں، اور سچی الوداع قلب سے ہے کہ رمضان شریف کے آنے سے خوش ہو اور جانے سے غمگین، اور اگر یہ حالت ہو کہ آنا بار تھا اور جانے کے لئے گھڑیاں گئیں تو جو جھوٹی الوداع ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۸۲: از جانب انجمن اہلسنت وجماعت سہوانی ٹولہ، بریلی ۱۰ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ ایک فرد یا ایک گروہ حنفی المذہب اہلسنت والجماعت کا جو کہ حتی الامکان مشرکوں بدعتیوں وہابیوں اور خصوصاً رافضیوں سے مجتنب ہے اور ان سے عمل ترک موالات جائز رکھتا ہے لیکن شرکت نماز جماعت اور خصوصاً نماز جماعت کثیر کا شائق ہے اس جانکاہ و جگر خراش ہنگامہ محرم الحرام کے موقع پر یہ دیکھتے ہوئے کہ جمعہ کا روز عشرہ کا دن نماز جماعت اور عیدگاہ کا موقع ہے جس کا انتظام بریلی کے حنفی المذہب اہل سنت والجماعت انجمنوں کی مشترکہ کوششوں سے ہوا ہے مگر اس ہنگامہ میں تعزیہ دار بدعتی وغیرہ ہم شامل ہیں نیز اس گروہ کثیر کا اجتماع محض تعزیہ داری و تخت بینی کی وجہ سے ہوا ہے کیا اس نماز جماعت میں شریک ہوسکتا ہے اور اس کو نماز کا اس قدر ثواب جتنا کہ اتنی بڑی جماعت کے ساتھ نماز ادا کرنے سے حاصل ہونا چاہئے حاصل ہوگا اور یہ بھی کہ آمد و شد میں اس کی نظر تخت و تعزیہ وغیرہ اور ان اشخاص پر پڑے کہ جو خوشی و میلہ سمجھ کر اس موقع پر جمع ہوئے ہیں تو اس کے مطمح نظر کو دیکھتے ہوئے اس کے ثواب نماز جماعت وجمعہ میں فرق آئیگا یا اس کا گناہگار ہونا تو لازم نہ ہوگا۔

الجواب: جبکہ جماعت کا انتظام سنی حنفی اصحاب نے کیا اور امام سنی حنفی جامع شرائط امامت ہوگا تو اس میں بلاشبہ جماعت کثیر کا ثواب ملنے کی امید واثق ہے، تعزیہ داری ایک بدعت عملی ہے وہ اس حد تک نہیں کہ اس کے مرتکب معاذ اللہ رافضی وہابی و غیرہم خبثاء کی مثل ہوں یا معاذ اللہ ان کی جماعت جماعت نہ ہو یا ان سے اجتناب ایسا ہی فرض ہو جیسا ان خبیثوں سے ضروریات دین بالائے سر، وہ عقائد ضروریہ اہلسنت کے بھی منکر نہیں، نہ محبوبان خدا کی معاذ اللہ توہین کرتے ہیں، نہ کسی محبوب بارگاہ سے معاذ اللہ دشمنی رکھتے ہیں، پھر ان خبیثوں کو ان سے کیا نسبت، یہ عقیدہ ہم میں سے ہیں اور جو کچھ کرتے ہیں پیش خود محبت محبوبان خدا کی نیت سے کرتے ہیں، براہِ جہالت و نادانی اس میں لہو ولعب وافعال ناجائز شامل کرتے ہیں لہذا ان کی جماعت پر حکم جماعت نہ ماننا محض ظلم ہے اور جب اس کی نیت تماشا دیکھنے کی نہیں نماز باجماعت کثیر کی نیت ہے تو راستے میں ان چیزوں پر نگاہ پڑنے کا اس پر الزام نہیں جیسا کہ زمانہ عرس میں آج کل مزارات طیبہ کی حاضری۔ واللہ تعالیٰ اعلم

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Question 1384: From Aish Ara, District Mymensingh, Post Kalu Ba Khanda, sent by Moazzam Ali Sahab, 10 Muharram al-Haram 1329 AH.

What do the scholars of religion and the muftis of the firm Shariah say regarding this matter—may Allah have mercy on you in both worlds? In this region, a few scholars are deceiving the ignorant by saying that Friday prayer (Jumu'ah) is not valid in villages and those who perform it will be sinners. Because Jumu'ah is not valid, the obligatory Dhuhr prayer is not waived. They have abandoned Jumu'ah in many places and also prohibit Eid prayers, not performing them themselves either. They further claim that anyone who performs Jumu'ah or Eid prayers in a village persists in a major sin (Kabira), and one who persists in a major sin is an infidel (Kafir). What is the ruling regarding such a scholar who calls the believers' prayers the act of a Kafir?

Answer: Performing Friday and Eid prayers in villages is not permissible according to the Hanafi school. However, stopping it where it already occurs is the work of an ignorant person.

Allah Almighty says: "Have you seen him who forbids a servant when he prays?" (Quran 96:9-10)

And whoever calls them Kafir is misled and irreligious. It is neither a major sin (due to the difference of opinion among the Imams) nor is persistence in a major sin considered disbelief (Kufr) according to the Ahl-us-Sunnah. And Allah Almighty knows best.

Question 1385 to 1386: From all Muslims of Behat town, State of Sawai Jaipur, via Hamid Muhammad, teacher at Persian School Behat, through the post office of Thana Ghazi, State of Alwar.

What do the scholars of religion and muftis of the firm Shariah say about this matter: (1) In a town live a Qazi and a Khatib of the Sandi Padshahi Jamia Masjid. They are equal in lineage and are brothers. Both possess knowledge of Persian and religious matters according to their abilities. However, the Qazi, due to his sense of authority, ego, and mutual opposition, claims: "It is my right to lead the Friday prayer." The Khatib of the Jamia Masjid says: "I am not the Qazi, but I am the Sandi Padshahi Khatib. I am entitled to lead the Friday prayer, or you, the Qazi, or anyone else more virtuous, should lead after taking permission from me." But the Qazi finds it offensive to seek permission for the reasons mentioned above. Consequently, they abandon

the Royal Jamia Masjid in that small town and perform Friday prayers separately with two or three people in another mosque. The Jamia Masjid is located in the middle of the town, surrounded by the Hindu community, and at such a place, the congregation of Muslims...

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

मसअला 1384: ऐश आरा, जिला मैमन सिंह, पोस्ट कालू बा खंदा, मोअज्जम अली साहब की ओर से, 10 मुहर्रम अल-हराम 1329 हिजरी।

धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत के मुफ़्ती इस मसअले के बारे में क्या कहते हैं—अल्लाह दोनों जहां में आप पर रहम करे? इस इलाके में कुछ विद्वान जाहिलों को यह धोखा दे रहे हैं कि गाँव में जुमे की नमाज़ जायज़ नहीं है और पढ़ने वाला गुनहगार होगा। चूँकि जुमा दुरुस्त नहीं है, इसलिए इससे फ़र्ज़ ज़ोहर की नमाज़ माफ़ नहीं होती। उन्होंने कई जगहों पर जुमे को वीरान कर दिया है और ईदैन की नमाज़ से भी मना करते हैं, और खुद भी नहीं पढ़ते। वे यह भी कहते हैं कि जो व्यक्ति गाँव में जुमे और ईद की नमाज़ अदा करता है, वह गुनाह-ए-कबीरा (बड़े पाप) पर अड़ा हुआ है, और गुनाह-ए-कबीरा पर अड़ने वाला काफ़िर है। ऐसे आलिम (विद्वान) के लिए क्या हुक्म है जो मोमिनों की नमाज़ों को कुफ़्र कहता है?

जवाब: हनफी मज़हब में देहात (गाँव) में जुमे और ईदैन की नमाज़ जायज़ नहीं है, लेकिन जहाँ होती है उसे बंद करना जाहिल का काम है।

अल्लाह तआला का फ़रमान है: "क्या आपने उस व्यक्ति को देखा जो बंदे को रोकता है जब वह नमाज़ पढ़ता है?" (क़ुरआन 96:9-10)

और जो उन्हें काफ़िर कहता है वह गुमराह और बद-दीन (अधर्मी) है। यह न तो गुनाह-ए-कबीरा है (इमामों के बीच मतभेद के कारण) और न ही गुनाह-ए-कबीरा पर अड़े रहना अहल-ए-सुन्नत के नज़दीक कुफ़्र है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसअला 1385 से 1386: कस्बा बीहट, रियासत सवाई जयपुर के समस्त मुसलमानों की ओर से, हामिद मुहम्मद, शिक्षक फ़ारसी स्कूल बीहट के माध्यम से, डाकखाना थाना गाज़ी, रियासत अलवर के ज़रिए।

धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत के मुफ़्ती इस मसअले में क्या कहते हैं कि: (1) एक कस्बे में जामा मस्जिद संदी पादशाही के एक काज़ी और एक ख़तीब रहते हैं। वे दोनों वंश और रिश्ते में बराबर और भाई हैं। वे अपनी योग्यता के अनुसार फ़ारसी और मसाइल का ज्ञान रखते हैं। मगर काज़ी साहब अपनी काज़ियत, नफ़्सानियत (अहंकार) और आपसी विरोध के कारण कहते हैं: "जुमे की नमाज़

पढ़ाना मेरा हक़ है।" जामा मस्जिद के ख़तीब कहते हैं: "मैं काज़ी नहीं हूँ लेकिन संदी पादशाही ख़तीब हूँ, मैं जुमे की नमाज़ पढ़ाने का हकदार हूँ, या आप काज़ी साहब या कोई अन्य जो अधिक योग्य हो, मुझसे अनुमति लेकर पढ़ाएँ।" लेकिन काज़ी साहब उपरोक्त कारणों से अनुमति लेना नागवार समझते हैं। इसी वजह से वे उस छोटे से कस्बे की जामा मस्जिद को छोड़कर दो-तीन आदमियों के साथ दूसरी मस्जिद में अलग जुमा पढ़ते हैं। जामा मस्जिद कस्बे के बीच में है जहाँ आस-पास हिंदू आबादी है और ऐसी जगह पर मुसलमानों की जमात...

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

مسئلہ ۱۳۸۴: از عیش آرا ضلع میمن سنگھ پوسٹ کالو با خندہ کار معظم علی صاحب ۱۰ محرم الحرام ۱۳۲۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اندریں مسئلہ رحمکم اللہ تعالیٰ فی الدارین کہ اس دیار میں چند علماء جاہلوں کو یہ دھوکا دے رہے ہیں کہ گاؤں میں جمعہ درست نہیں اور پڑھنے والا گنہگار ہوگا کیونکہ جمعہ درست نہیں تو اس سے فرض ظہر کا ساقط نہیں ہوا بہت جگہ کے جمعہ کو ایسے ویران کر دیا اور عیدین کی نماز بھی منع کرتا ہے اور خود بھی نہیں پڑھتا ہے، اور یہ بھی کہا کرتا ہے کہ جو شخص گاؤں میں نماز جمعہ و نماز عید ادا کرتا ہے وہ گناہِ کبیرہ کا اصرار کرتا ہے اور گناہِ کبیرہ کا اصرار کرنے والا کافر ہے، آیا ایسے عالم جو نمازین مومنین کو کافر کہتا ہے کے لئے کیا حکم ہے؟

الجواب: دیہات میں نمازِ جمعہ و عیدین مذہب حنفی میں جائز نہیں مگر جہاں ہوتا ہے اسے بند کرنا جاہل کا کام ہے

قال اللہ تعالٰی اَرَءَیْتَ الَّذِیْ یَنْهٰی ۙ عَبْدًا اِذَا صَلّٰی ؕ ۱ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: کیا آپ نے اس شخص کو نہیں دیکھا جو نماز پڑھنے سے روکتا ہے (ت)

اور جو انھیں کافر کہتا ہے گمراہ و بددین ہے نہ وہ کبیرہ ہے نہ کبیرہ (ائمہ کے درمیان اختلاف کی وجہ سے۔ت) نہ کبیرہ پر اصرار اہل سنت کے نزدیک کفر۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۸۴ تا ۱۳۸۵: جملہ اہل اسلام قصبہ بیہٹ ریاست سوای جے پور معرفت حامد محمد مدرس فارسی اسکول بیہٹ بذریعہ ڈاک خانہ تھانہ غازی ریاست الور۔ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ: (۱) ایک قصبہ میں قاضی اور خطیب مسجد جامع سندی

پادشاہی رہتے ہیں اور وہ دونوں حسب ونسب میں برابر اور برادر ہیں اور علم فارسی و مسائل میں حسب لیاقت خود ہیں الا قاضی کہ بزعم قضایت و نفسانیت و نقیض باہمی ، یہ کہتا ہے کہ نمازِ جمعہ پڑھانے کا میرا حق ہے اور خطیب مسجد جامع کہتا ہے کہ میں قاضی نہیں الا خطیب سندی پادشاہی ہوں میں نمازِ جمعہ پڑھانے کا مستحق ہوں یا مجھ سے اجازت لے کر آپ قاضی صاحب یا دیگر جو افضل ہوں وہ پڑھائیں لیکن قاضی صاحب بوجوہات مندرجہ بالا کے اجازت ناگوار سمجھتے ہیں اور اسی چھوٹے قصبہ میں جامع مسجد پادشاہی کو چھوڑ کر دو تین آدمیوں میں سے دیگر مسجد میں علیحدہ جمعہ پڑھتے ہیں اور مسجد جامع درمیانِ قصبہ کہ جہاں گردنواح میں قوم ہنود آباد ہے ایسے مقام پر اہل اسلام کی جماعت

۱ القرآن ۹/۹۶ و ۹۰ Page 456 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

...prayer, which is part of the beauty and glory of Islam. Then, causing a disruption in the Muslim congregation, leaving the Jamia Masjid to perform Friday (Jumu'ah) prayer separately in another mosque; in this situation, who is entitled to lead the Jumu'ah prayer? The Khatib (sermon giver) of the Jamia Masjid, the Qazi (judge), or someone else? Is it mandatory to seek permission from the Khatib or not? In which mosque is it obligatory for the Jumu'ah to be held? And in this small town, are two Jumu'ah congregations permissible or impermissible due to the aforementioned reasons? Please inform us of the answer according to the Sharia with explanation.

(2) In a town, a person named Zaid is blind and suffers from a chronic fistula (nasoor), due to which the purity of his body and clothes remains doubtful, whereas being pure is among the obligatory conditions of prayer. Zaid also says that Jumu'ah has been waived for him. Then what is the reason that he himself leads the Eid and Jumu'ah prayers out of carnal desire? If he is told that according to his own words, Jumu'ah is waived for him and he is excused, then how can his leading the prayer be valid and correct? Zaid has not provided any proof in this regard. Is Zaid's leadership (imamat) permissible or impermissible? Therefore, we request your blessed service to write the answers to both questions with explicit references from the books of the mujtahid imams, holy verses, and noble hadiths.

The Answer: (1) In the aforementioned situation, only that Khatib is worthy of leading the Jumu'ah prayer; the Qazi has no right. These Qazis are just for marriage ceremonies, not administrative judges (Wali Qazi). The Jumu'ah prayer he performs separately with two or three people is completely void. Only the Khatib, in case of necessity—such as being unable to attend the mosque due to illness or travel—can appoint another as his deputy in his place. It is not that Jumu'ah can be established in another place merely with his permission; even he does not have that authority.

If the ruler of Islam appoints an Imam for Jumu'ah, it is valid; if there is no ruler, then the common people appoint him, not the Khatib alone. (T)	**Appointing the Imam for Jumu'ah is the duty of the ruler of Islam; if there is no ruler, then the public does it, the Khatib alone cannot. (T)**

Jumu'ah will be held in that same mosque and will not be established in another place there without necessity, "for the remainder of the public's authority is restricted by necessity" (because the appointment by the rest of the public is tied to necessity. T). Yes, if there is a religious scholar, a jurist (faqih), a reliable person, and the most

knowledgeable jurist of the city, he can establish Jumu'ah in another place as well by his command according to the wisdom of the situation. And Allah knows best.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

...नमाज़ हो, वह इस्लाम की सुंदरता और महिमा का हिस्सा है। फिर मुस्लिम जमात में खलल डालते हुए, जामा मस्जिद को छोड़कर दूसरी मस्जिद में अलग से जुमे की नमाज़ पढ़ना; इस स्थिति में जुमा पढ़ाने का हक़दार कौन है? जामा मस्जिद का खतीब, काज़ी साहब, या कोई और? क्या खतीब से अनुमति लेना अनिवार्य है या नहीं? जुमा किस मस्जिद में होना अनिवार्य है? और इस छोटे से कस्बे में उपरोक्त कारणों से दो जुमे जायज़ हैं या नाजायज़? शरीअत के अनुसार व्याख्या के साथ जवाब से सूचित करें।

(2) एक कस्बे में ज़ैद नाम का एक व्यक्ति है जो अंधा है और भगंदर (नासूर) की पुरानी बीमारी से पीड़ित है, जिसकी वजह से उसके शरीर और कपड़ों की पाकी (शुद्धता) संदिग्ध रहती है, जबकि नमाज़ के फर्ज़ों में शरीर और कपड़ों का पाक होना अनिवार्य है। ज़ैद यह भी कहता है कि मुझ पर से जुमा साक़ित (माफ़) हो चुका है। फिर क्या कारण है कि वह खुद नफ़्सानी ख्वाहिश की वजह से ईद और जुमे की इमामत करता है? अगर उससे कहा जाता है कि आपके कहने के अनुसार जुमा आप पर साक़ित हो चुका है और आप माज़ूर (लाचार) हैं, तो फिर आपकी इमामत किस तरह जायज़ और सही हो सकती है? ज़ैद ने इस बारे में कोई सबूत नहीं दिया है। क्या ज़ैद की इमामत जायज़ है या नाजायज़? इसलिए आपकी धन्य सेवा में निवेदन है कि दोनों सवालों के जवाब मुज्तहिद इमामों की किताबों के हवाले, आयतों और हदीसों के साथ तहरीर फ़रमाएं।

जवाब: (1) उपरोक्त स्थिति में वही खतीब जुमे की इमामत के योग्य है; काज़ी को कोई अधिकार नहीं है। ये काज़ी केवल निकाह पढ़ने वाले काज़ी होते हैं, शासन करने वाले (वाली) काज़ी नहीं। वह जो दो-तीन आदमियों के साथ अलग जुमा पढ़ता है, उसका और उसके साथियों का जुमा पूरी तरह बातिल (अमान्य) है। केवल खतीब ही ज़रूरत के समय—जैसे बीमारी या यात्रा के कारण मस्जिद में हाज़िर होने से मजबूर हो—अपनी जगह दूसरे को नायब (प्रतिनिधि) नियुक्त कर सकता है। ऐसा नहीं है कि केवल उसकी अनुमति से दूसरी जगह जुमा कायम हो सके, उसे इसका भी अधिकार नहीं है।

यदि इस्लाम के शासक ने जुमे का इमाम नियुक्त किया है, तो ठीक है; यदि शासक न हो तो आम जनता नियुक्त करेगी, न कि अकेला खतीब। (त)

जुमे का इमाम नियुक्त करना इस्लाम के शासक का काम है; और यदि शासक न हो तो अवाम (जनता) करेगी, खतीब अकेला नहीं कर सकता। (त)

जुमा उसी मस्जिद में होगा और वहाँ दूसरी जगह बिना ज़रूरत के जुमा कायम नहीं होगा, "क्योंकि शेष जनता का अधिकार आवश्यकता तक सीमित है" (क्योंकि बाकी जनता द्वारा नियुक्ति आवश्यकता के साथ जुड़ी हुई है। त)। हाँ, अगर वहाँ कोई आलिम-ए-दीन, फ़क़ीह, भरोसेमंद और शहर का सबसे बड़ा विद्वान हो, तो वह स्थिति की ज़रूरत के हिसाब से अपने हुक्म से दूसरी जगह भी जुमा कायम कर सकता है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

पेज 457 का 673

کی نماز ہو نازینت و شوکت اسلام میں داخل ہے پھر جماعت اسلام میں خلل انداز ہو کر جامع مسجد کو چھوڑ کر دیگر مسجد میں علیحدہ جمعہ پڑھتے ہیں اس حالت میں جمعہ کون پڑھانے کا مستحق ہے خطیب مسجد جامع یا قاضی صاحب یا دیگر اور جازت بھی خطیب سے لینا واجب ہے یا نہیں، اور جمعہ کون سی مسجد میں ہونا واجب ہے، اور اس چھوٹے قصبہ میں دو جمعہ بوجوہات مندرجہ بالا جائز یا ناجائز؟ از روئے شرع شریف مع تشریح کے جواب سے مطلع فرمائیں۔ (۲) ایک قصبہ میں زید نامی شخص کہ جو نابینا اور مرض بھگندر یعنی ناسور دائمی میں مبتلا ہے کہ جس کی وجہ سے جسم و جامہ کی پاکی و ناپاکی مشتبہ رہتی ہے کہ جن کا پاک ہونا فرائض نماز میں سے ہے اور زید بھی کہتا ہے کہ مجھ پر سے جمعہ ساقط ہو چکا پھر کیا وجہ ہے کہ عید و جمعہ کی امامت بخواہش نفسانی خود کرتا ہے اگر اس سے کہا جاتا ہے کہ بقول آپ کے جمعہ ساقط آپ پر ہو چکا ہے اور آپ معذور ہیں پھر امامت آپ کی کس طرح جائز اور درست ہو سکتی ہے، زید نے کوئی ثبوت اس بارہ میں نہیں دیا آیا زید کی امامت جائز ہے یا ناجائز؟ اس لئے مکلف خدمت با برکت میں ہیں کہ دونوں سوالات کے جواب بالتصریح حوالہ کتب ائمہ مجتہدین و آیات شریف و احادیث شریف تحریر فرمائیں۔

الجواب: (۱) صورت مذکورہ میں وہ خطیب ہی قابل امامت جمعہ ہے قاضی کو کوئی حق نہیں، یہ قاضی قاضی نکاح خوانی ہوتے ہیں نہ والی قاضی کہ دو تین آدمیوں کے ساتھ الگ جمعہ پڑھتا ہے اس کا اور اس کے ساتھیوں کا جمعہ باطل محض ہے خطیب ہی بوقت ضرورت جبکہ خود بوجہ مرض یا سفر حاضری مسجد سے معذور ہو اپنی جگہ دوسرے کو نائب کر سکتا ہے نہ یہ کہ صرف اس کی اجازت سے دوسری جگہ جمعہ قائم ہو سکے اس کا اسے بھی اختیار نہیں۔

فان نصب امام الجمعة لوالی الاسلام فان لم یکن فللعامة لاللخطیب وحدہ۔

امام جمعہ کا مقرر کرنا والی اسلام کا کام ہے اور اگر والی نہ ہو تو عوام، خطیب تنہا نہیں کر سکتا۔ (ت)

جمعہ اسی مسجد میں ہوگا اور وہاں دوسری جگہ بلا ضرورت جمعہ قائم نہ ہوگا فان بقیۃ العامۃ مقید بالضرورۃ (کیونکہ باقی عوام کا تقرر ضرورت کے ساتھ مقید ہے۔ ت) ہاں اگر وہاں کوئی عالم دین فقیہ معتمد افقہ اہل بلد ہو تو وہ حسب مصلحت اپنے حکم سے دوسری جگہ بھی جمعہ قائم کر سکتا ہے واللہ تعالٰی اعلم

Volume 8 Fatawa-e-Razvia

(2) If Zaid is truly excused (ma'zoor), he cannot lead the prayer of those who are not excused in Friday (Jumu'ah) or any other prayer. If he is not excused and the impurity of his clothes is not proven, then he can lead other prayers. He can also lead Jumu'ah and Eid prayers if he is authorized by the Sultan of Islam or if the general Muslims have appointed him as the Imam for Jumu'ah and Eid. Being blind does not prevent the validity of his leadership in Jumu'ah, as Jumu'ah is not obligatory for him, similar to a slave or a traveler. And Allah knows best. Problem 1386: From Nowshera, Tehsil Jampur, District Dera Ghazi Khan, questioned by Abdul Ghafoor Sahib, 14 Muharram al-Haram 1339 AH. A 'Majlis Khana' (meeting place) of the saints of Allah is established where a gathering is held on the day of Urs Sharif. Is it permissible to perform Eid prayers, Jumu'ah prayers, or any prayer in this Majlis Khana? Give us a decree (fatwa) and be rewarded. The Answer: There is no reason for prayer to be impermissible in a Majlis Khana. Yes, the reward of praying in a mosque will not be attained, and leaving the mosque without an excuse is a sin, but the prayer will be valid. Similarly, Jumu'ah and Eid prayers will also be valid if there is public announcement and permission that anyone who wishes can come and pray Jumu'ah or Eid here. And Allah knows best. Problem 1387: From Iran, Mahalla Sadat, District Fatehpur, questioned by Hakim Syed Niamatullah Sahib, 23 Muharram 1339 AH. What do the scholars of religion say on this matter: is there any harm if one uses an umbrella while listening to the sermon (Khutbah) due to the intensity of the sun? The Answer: It is not better; it is against the etiquette of being present in the court (of Allah). However, if one is weak or ill and the heat is unbearable, one may use it. And Allah knows best. Problem 1388: From Maqam-e-Dur, Central Provinces, sent by Dr. Hussain Beg Sahib through Mr. Abdul Majeed, dated 2 Rabi al-Akhir 1339 AH. What do the scholars of religion say about a person who, after praying Fajr, goes to a place nine miles away from his residence for business on the day of Jumu'ah and does not participate in the Jumu'ah prayer? This has been going on for a long time. A Molvi (cleric) says that he has become a hypocrite and should not be buried in a Muslim cemetery, and all social ties and affection with him should be severed. He says he goes there to provide for his children. A Shari'i decree is needed on this. Give us a decree and be rewarded.

(२) जैद अगर वास्तव में माज़ूर (मजबूर) है तो जुमा या किसी और नमाज़ में उन लोगों की इमामत नहीं कर सकता जो माज़ूर नहीं हैं। और अगर वह माज़ूर नहीं है और उसके कपड़ों की नापाकी साबित नहीं है, तो वह दूसरी नमाज़ों की इमामत कर सकता है। जुमा और ईदैन की इमामत भी कर सकता है अगर उसे सुल्तान-ए-इस्लाम की ओर से अनुमति हो या आम मुसलमानों ने उसे जुमा और ईदैन का इमाम नियुक्त किया हो। अंधा होने के कारण उस पर जुमा फ़र्ज़ न होना जुमा में उसकी इमामत की सेहत (वैधता) में बाधक नहीं है, जैसे गुलाम और मुसाफिर। और अल्लाह बेहतर जानता है। मसला १३८६: नौशेरा, तहसील जामपुर, जिला डेरा गाजी खान से, अब्दुल गफूर साहब द्वारा पूछा गया, १४ मुहर्रम अल-हराम १३३९ हिजरी। औलिया अल्लाह का एक मजलिस खाना बना हुआ है जहाँ उर्स शरीफ के दिन मजलिस होती है। क्या इस मजलिस खाने में ईद की नमाज़, जुमा की नमाज़ या कोई भी नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? फतवा दें और पुण्य कमाएं। जवाब: मजलिस खाने में नमाज़ के नाजायज़ होने का कोई कारण नहीं है। हाँ, मस्जिद का सवाब (पुण्य) नहीं मिलेगा और बिना किसी कारण के मस्जिद छोड़ना गुनाह होगा, लेकिन नमाज़ हो जाएगी। इसी तरह जुमा और ईदैन भी, अगर आम शोहरत (प्रसिद्धि) और इजाज़त हो कि जो चाहे आए और यहाँ जुमा या ईद पढ़े। और अल्लाह बेहतर जानता है। मसला १३८७: ईरान, मोहल्ला सादात, जिला फतेहपुर से, हकीम सैयद नेमतुल्लाह साहब द्वारा पूछा गया, २३ मुहर्रम १३३९ हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि अगर कोई धूप की शिद्दत (तेजी) के कारण खुतबा सुनते समय छाता लगा ले तो क्या इसमें कोई हर्ज है? जवाब: बेहतर नहीं है, यह दरबार (ईश्वरीय दरबार) में उपस्थिति के शिष्टाचार के खिलाफ है। और यदि कोई व्यक्ति कमजोर या बीमार है और धूप असहनीय है, तो वह छाता लगा सकता है। और अल्लाह बेहतर जानता है। मसला १३८८: मुकाम-ए-दुर, सेंट्रल प्रोविंस से, डॉक्टर हुसैन बेग साहब द्वारा जनाब अब्दुल मजीद के माध्यम से भेजा गया, दिनांक २ रबी-अल-आखिर १३३९ हिजरी। धर्म के विद्वान क्या कहते हैं कि एक व्यक्ति फज्र की नमाज़ पढ़कर जुमा के दिन बाज़ार जाने के लिए अपने निवास स्थान से नौ मील की दूरी पर स्थित एक स्थान पर चला जाता है और जुमा की नमाज़ में शामिल नहीं होता। ऐसा करते हुए उसे काफी समय हो गया है। एक मौलवी साहब कहते हैं कि वह मुनाफिक (पाखंडी) हो गया है और उसे मुसलमानों के कब्रिस्तान में दफन नहीं किया जाना चाहिए और उससे मेल-मिलाप और मोहब्बत वगैरह सब खत्म कर देनी चाहिए। वह

कहता है कि मैं अपने बच्चों की परवरिश के लिए वहाँ जाता हूँ। इस पर शरीयत के फतवे की जरूरत है। फतवा दें और पुण्य कमाएं।

पेज ४५८ ऑफ ६७३

(۲) زید اگر واقعی معذور ہے تو جمعہ و غیر جمعہ کسی نماز میں غیر معذورین کی امامت نہیں کرسکتا اور اگر معذور نہیں اور کپڑوں کی نجاست ثابت نہیں تو اور نمازوں کی امامت کرسکتا ہے اور جمعہ و عیدین کی بھی اگر جانب سلطانِ اسلام سے ماذون ہو یا عام مسلمانوں نے اسے جمعہ و عیدین کا امام مقرر کیا ہو اور بوجہ نابینائی اس پر جمعہ فرض نہ ہونا جمعہ میں اس کی صحت امامت کا مانع نہیں۔ جیسے غلام و مسافر۔ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۸۶: از نوشہرہ تحصیل جام پور ضلع ڈیرہ غازی خاں مسئولہ عبدالغفور صاحب ۱۴ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ ایک اولیاء اللہ کا مجالس خانہ مقرر ہے وہاں عرس شریف کے دن مجلس ہوتی ہے اس مجلس خانہ میں عید نماز یا جمعہ نماز یا مطلق نماز پڑھنا جائز ہے یا نہ؟ بینوا توجروا الجواب: مجلس خانہ میں نماز ناجائز ہونے کی کیا وجہ ہے، ہاں مسجد کا ثواب نہ ملے گا اور بلا عذر ترک مسجد ہو تو گناہ ہوگا مگر نماز ہوجائے گی، یو نہی جمعہ وعیدین بھی اگر عام شہرت واذن ہو کہ یہاں جمعہ یا عید پڑھیں گے جو چاہے آئے۔ واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۸۷: از ایران محلہ سادات ضلع فتح پور مسئولہ حکیم سید نعمت اللہ صاحب ۲۳ محرم ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ دھوپ کی شدت سے اگر خطبہ سنتے وقت چھاتا لگالے تو حرج تو نہیں؟ الجواب: بہتر نہیں، حاضری دربار کے خلاف ہے، اور یہ ضعیف یا مریض ہے اور دھوپ نا قابل برداشت تو لگالے ، واللہ تعالیٰ اعلم۔ مسئلہ ۱۳۸۸: از مقام در گرممالک متوسطہ مرسلہ جناب ڈاکٹر حسین بیگ صاحب معرفت جناب عبدالمجید صاحب مورخہ ۲ ربیع الآخرہ ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ ایک شخص فجر کی نماز پڑھ کر جمعہ کے روز بازار کرنے کو ایک مقام پر جو کہ سکونت سے نو میل کے فاصلے پر چلا جاتا ہے اور جمعہ کی نماز میں شریک نہیں ہوتا جس کو عرصہ دراز ہو گیا ایک

مولوی صاحب کہتے ہیں کہ وہ منافق ہو گیا اور اس کو مسلمانوں کے قبرستان میں نہیں دفن کرنا چاہئے اور اس سے میل و محبت وغیرہ سب ترک کردئے جائیں وہ کہتا ہے کہ اپنے بچوں کی پرورش کرنے کی وجہ سے جاتا ہوں اس پر شرعی فتویٰ کی ضرورت ہے۔ بینوا توجروا

Fatawa Razawiyya - Volume 8

The Answer: If he leaves the city limits before exactly midday, there is no blame on him at all. If the time for Friday (Jumu'ah) prayer starts while he is still in the city and he departs without praying, he is certainly a sinner. However, the claim that he cannot be buried in a Muslim cemetery is false. This can be termed as practical hypocrisy, not actual hypocrisy. Yes, for this crime, Muslims may boycott him. As for the first scenario, all the rulings imposed on him are incorrect. It is stated in Fatawa Zahiriyya and other commentaries of Durr al-Mukhtar, etc.: "The correct view is that it is disliked (makruh) to set out on a journey after the decline of the sun (zawal) before performing the Friday prayer, but it is not disliked to set out before zawal. And Allah Almighty knows best." (Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday Prayer, printed at Matba' Mujtabai Delhi 1/113)

Problem 1389: Question from Kishanganj, Purnia district, submitted by Master Muhammad Tahir Ali Sahib, Headmaster of Madrasa Anjuman-e-Islamiya, 24 Jumada al-Ula 1339 AH. What do the scholars of religion say about this matter: It is common in this area for people to build a small square structure of four to six cubits in their courtyards using walls or reed screens, calling it "Allah's House" or a "Masjid," without regular prayers. These structures are moved around as needed or even demolished. In short, in such customary masjids, even in the largest ones, people have organized Friday prayers. Visiting preachers come and have led Friday prayers for them. In such a situation, according to the research of the followers of the Hanafi school, would these Friday prayers be considered correct or erroneous? Provide a reasoned answer based on Hanafi proofs.

The Answer: These places are called "Masajid al-Buyut" (household masjids). They are not true masjids, nor do the rules of a masjid apply to them. It is stated in Durr al-Mukhtar: "It is disliked to lock the door of a masjid, to have intercourse on its roof, or to urinate or defecate there. However, these acts are not disliked above a house where a room is designated as a masjid; in fact, it is not disliked even inside it because it is not [a real masjid]." (Footnote 1: Durr al-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, Matba' Mujtabai Delhi 1/93).

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

अल-जवाब: यदि वह ठीक दोपहर होने से पहले शहर की आबादी से निकल जाता है, तो उस पर कोई दोष नहीं है। और यदि शहर ही में शुक्रवार (जुमा) का समय हो जाता है और वह बिना नमाज पढ़े चला जाता है, तो वह निश्चित रूप से गुनहगार है। लेकिन यह बात गलत है कि उसे मुसलमानों के कब्रिस्तान में दफन नहीं किया जा सकता। इसे 'निफ़ाक़-ए-अमली' (व्यावहारिक पाखंड) कहा जा सकता है, न कि वास्तविक पाखंड। हाँ, इस अपराध पर मुसलमान उससे मेल-जोल छोड़ सकते हैं। और पहली स्थिति में, उस पर लगाए गए सभी नियम गलत हैं। फतावा ज़हीरिया और दुर्रे मुख्तार की अन्य व्याख्याओं में है: "सही बात यह है कि ज़वाल (दोपहर ढलने) के बाद जुमा की नमाज़ पढ़े बिना यात्रा पर निकलना मकरूह (नापसंदीदा) है, लेकिन ज़वाल से पहले निकलना मकरूह नहीं है। और अल्लाह बेहतर जानता है।" (दुर्रे मुख्तार, बाबुल जुमा, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/113)

मसला 1389: किशनगंज, जिला पूर्णिया से मसला, मास्टर मुहम्मद ताहिर अली साहब, हेडमास्टर मदरसा अंजुमन-ए-इस्लामिया द्वारा भेजा गया, 24 जमादी-उल-उला 1339 हिजरी। दीन के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं: इस क्षेत्र में यह रिवाज है कि अधिकांश लोग अपने घर के अहाते में चार-छह हाथ का एक चौकोर कमरा दीवार या टाट का 'अल्लाह घर' या मस्जिद के नाम से बिना नमाज की पाबंदी के बनाते हैं। यह कमरा ज़रूरत के अनुसार इधर-उधर हटा भी दिया जाता है और कभी खोदा भी जाता है। संक्षेप में, ऐसी लोक-प्रचलित मस्जिदों में, जो सबसे बड़ी मस्जिद थी, उसमें लोगों ने जुमा की जमात तैयार कर ली और आते-जाते उपदेशक (वाइज़) लोगों ने उन्हें जुमा की नमाज़ भी पढ़ाई। तो ऐसी स्थिति में हनफी अनुयायियों के शोध के अनुसार, ये पढ़ी गई जुमा की नमाज़ सही मानी जाएगी या गलत? दलीलों के साथ जवाब दें।

अल-जवाब: ये स्थान 'मसाजिद अल-बुयूत' (घरेलू मस्जिदें) कहलाते हैं। ये वास्तव में मस्जिद नहीं होतीं और न ही उन पर मस्जिद के नियम लागू होते हैं। दुर्रे मुख्तार में है: "मस्जिद का दरवाज़ा बंद रखना, उसकी छत पर संभोग करना और मल-मूत्र त्यागना मकरूह है, लेकिन यह उस घर के ऊपर मकरूह नहीं है जिसमें मस्जिद (कमरा) बनाई गई हो, बल्कि उसके अंदर भी मकरूह नहीं है क्योंकि वह मस्जिद नहीं है..." (पाद-टिप्पणी 1: दुर्रे मुख्तार, बाब मा युफसिद-उत-सलाह व मा युकराहू फीहा, मतबा मुजतबाई दिल्ली 1/93)।

पृष्ठ 459/673

الجواب: اگر وہ ٹھیک دوپہر ہونے سے پہلے شہر کی آبادی سے نکل جاتا ہے تو اس پر اصلاً کچھ الزام نہیں اور اگر اسے شہر ہی میں وقت جمعہ ہو جاتا ہے اس کے بعد بے پڑھے چلا جاتا ہے تو ضرور گنہگار ہے مگر یہ باطل ہے کہ اسے قبرستانِ مسلمین میں دفن نہ کر سکیں اسے نفاق عملی کہہ سکتے ہیں نہ کہ حقیقی۔ ہاں اس جرم پر مسلمان اس سے میل جول ترک کر سکتے ہیں اور پہلی تقدیر پر تو جتنے احکام اس پر لگائے گئے سب غلط ہیں۔ فتاوٰی ظہریہ وغیرہ شروح ودر مختار وغیرہما میں ہے: الصحیح انہ یکرہ السفر بعد الزوال قبل ان یصلیھاولا یکرہ ان یصلیھا قبل الزوال ۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (ت) صحیح یہ ہے کہ زوال کے بعد جمعہ ادا کرنے سے پہلے سفر پر نکلنا مکروہ ہے البتہ قبل از زوال نکلنا مکروہ نہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۳)

مسئلہ ۱۳۸۹: مسئلہ از کشن گنج ضلع پورنیہ مسئولہ ماسٹر محمد طاہر علی صاحب ہیڈ ماسٹر مدرسہ انجمن اسلامیہ ۲۴ جمادی الاولٰی ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اس جوار کا دستور ہے کہ اکثر لوگ احاطہ مکان میں ایک چار چھ ہاتھ کا مربع مکان دیوار یا ٹٹی کا بنام "اللہ گھر" یا مسجد کے بلا لحاظ پابندی نماز بتاتے ہیں، یہ مکان ضرورتہً ادھر اُدھر ہٹا بھی دیا جاتا ہے اور کبھی کھود بھی ڈالتے ہیں غرض ایسی عرفی مسجدوں میں جو بڑی سے بڑی مسجد تھی اس میں لوگوں نے جمعہ جماعت تیار کر لی اور چلتے پھرتے واعظ لوگ آتے انھوں نے ان لوگوں کی شاملِ جمعہ بھی پڑھا اور پڑھتے ہیں تو ایسی حالت میں بتحقیق مقلدینِ احناف یہ خواندہ جمعہ مصیب ٹھہریں گے یا خاطی؟ جواب مدلل بادلہ حنیفہ ہو۔

الجواب: یہ مکانات مساجد البیوت کہتے ہیں یہ حقیقۃً مسجد نہیں ہوتے، نہ ان کے لئے حکمِ مسجد ہے، در مختار میں ہے: کرہ غلق باب المسجد والوطاء فوقه والبول والتغوط ولایکرہ ماذکر فوق بیت جعل فیه مسجد بل ولا فیه لانه لیس مسجد کا دروازہ بند رکھنا، مسجد کی چھت پر وطی اور بول و براز مکروہ ہے لیکن یہ اس گھر کے اوپر مکروہ نہیں جس گھر میں مسجد ہو بلکہ اس کے اندر بھی مکروہ نہیں کیونکہ (۱ در مختار باب ما یفسد الصلوۃ و مایکرہ فیہا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۹۳)

Fatawa Razawiyya - Volume 8

It is not a Shar'i mosque[1] - (Summary) | It is not a Shar'i mosque. (T)

However, a mosque is not a condition for the Friday prayer; it can also be held in a house provided the conditions for Friday prayer are met, general permission is given, the public is notified that the Friday prayer will be held here, and no one is prevented from coming. It is stated in Al-Kafi of Imam Nasafi:

If the Sultan intends to pray with his retinue in his house, if he opens its doors and gives general permission to the people, it is permissible.[2] | If the Sultan wishes to perform the Friday prayer in his own home, if he kept the door open and there was general permission for the people, then it is permissible. (T)

So, if this was the situation, those people were correct. Yes, if a Friday mosque was available there and prayer was not held in it but was established in a house, then it is disliked (Makruh). It is stated in Durr-e-Mukhtar:

If the Emir enters his palace, closes his door, and prays with his companions, the prayer is not valid; but if he opens it and gives the people permission to enter, it is valid but disliked.[3] | If the Emir entered his palace, closed the door, and performed the prayer with his companions, then the Friday prayer was not established. And if he kept the door open and there was general permission for the people, it became valid, though it is disliked. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar:

Because he did not fulfill the right of the Congregational Mosque (Masjid al-Jami'). Zayla'i and Durar.[4] | It is disliked because he did not fulfill the right of the congregational mosque. Zayla'i and Durar. (T)

And if any condition for the Friday prayer was missing—for example, the place was not a city or its outskirts, or the Imam was not the designated Imam for the Friday prayer, or some worshippers were prevented from coming to the prayer there without a valid Shari'i reason, or the establishment of the Friday prayer there was not well-known among the worshippers and they prayed it by themselves without general notification, even if others prayed in other mosques—then in these cases, their prayer was not valid. In Al-Khulasa, from the commentary of Jami' al-Saghir by Imam Sadr al-Shahid, it is stated:

Among those conditions is general permission, meaning performing it publicly... | Among them is also general permission, which means publicly.

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter: What Nullifies the Prayer and What is Disliked in it, Printed by Mujtabai, Delhi, 1/93.
2. Radd al-Muhtar with reference to Al-Kafi, Chapter: Friday Prayer, Printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/601.
3. Durr-e-Mukhtar, Chapter: Friday Prayer, Printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/121.
4. Radd al-Muhtar, Chapter: Friday Prayer, Printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/601.

फ़तावा रज़विया - भाग 8

यह शरीयत के अनुसार मस्जिद नहीं है[1] - (संक्षेप में) | वह शरीयत के अनुसार मस्जिद नहीं है। (त)

लेकिन जुमे की नमाज़ के लिए मस्जिद शर्त नहीं है, यह घर में भी हो सकती है बशर्ते जुमे की शर्तें पूरी हों और आम इजाज़त (इज़्न-ए-आम) दी गई हो, लोगों को सार्वजनिक सूचना हो कि यहाँ जुमा होगा और किसी के आने पर रोक न हो। इमाम नसफ़ी की किताब अल-काफ़ी में है:

अगर सुल्तान अपने घर में अपने सेवकों के साथ नमाज़ पढ़ना चाहे, तो अगर उसने दरवाज़ा खोल दिया और लोगों को आम इजाज़त दे दी, तो यह जायज़ है।[2] | अगर सुल्तान चाहता है कि वह अपने घर में जुमे की नमाज़ अदा करे, तो अगर उसने दरवाज़ा खुला रखा और लोगों को आम इजाज़त थी, तो जायज़ है। (त)

तो अगर स्थिति ऐसी थी, तो वे लोग सही थे। हाँ, अगर वहाँ जुमे की मस्जिद मौजूद थी और उसमें नमाज़ नहीं हुई बल्कि घर में कायम की गई, तो यह मकरूह (नापसंद) हुआ। दुर्रे-मुख्तार में है:

अगर अमीर अपने महल में दाखिल हुआ, दरवाज़ा बंद कर लिया और अपने साथियों के साथ नमाज़ पढ़ी, तो नमाज़ नहीं हुई। और अगर उसने उसे खोल दिया और लोगों को अंदर आने की इजाज़त दी, तो जायज़ हो गई लेकिन मकरूह है।[3] | अगर अमीर ने अपने महल में दाखिल होकर दरवाज़ा बंद कर लिया और अपने साथियों के साथ नमाज़ अदा की, तो जुमा नहीं हुआ। और अगर दरवाज़ा खुला रखा और लोगों के लिए आम इजाज़त थी, तो जायज़ हो गई, हालाँकि मकरूह है। (त)

रद्दुल मुह्तार में है:

क्योंकि उसने जामा मस्जिद का हक अदा नहीं किया। ज़ैलई और दुरर।[4] | मकरूह इसलिए है क्योंकि उसने जामा मस्जिद का हक अदा नहीं किया। ज़ैलई और दुरर। (त)

और अगर जुमे की कोई शर्त गायब थी, उदाहरण के लिए वह स्थान शहर या शहर की सीमा में नहीं था, या इमाम जुमे का इमाम नहीं था, या कुछ नमाज़ियों को बिना किसी शरई कारण के वहाँ नमाज़ के लिए आने से रोका गया था, या नमाज़ियों के बीच वहाँ जुमे का आयोजन प्रसिद्ध नहीं था और उन लोगों ने खुद ही नमाज़ पढ़ ली और आम सूचना नहीं हुई, भले ही लोगों ने अन्य मस्जिदों में नमाज़ पढ़ी हो, तो इन स्थितियों में उनकी नमाज़ नहीं हुई। इमाम सद्र अल-शाहिद द्वारा रचित जामे सगीर की व्याख्या 'खुलासा' में है:

उन शर्तों में से एक आम इजाज़त भी है, यानी सार्वजनिक रूप से अदा करना... | उनमें से एक आम इजाज़त भी है, यानी खुले तौर पर।

1. दुर्रे-मुख्तार, बाब: नमाज़ को खराब करने वाली चीज़ें और उसमें जो मकरूह है, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/93।
2. रद्दुल मुह्तार, अल-काफ़ी के हवाले से, जुमे का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/601।
3. दुर्रे-मुख्तार, जुमे का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/121।
4. रद्दुल मुह्तार, जुमे का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/601।

पृष्ठ 460/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

بمسجد شرعاً[1] - (ملخصاً) | وہ شرعی مسجد نہیں۔ (ت)

مگر جمعہ کے لئے مسجد شرط نہیں مکان میں بھی ہو سکتا ہے جبکہ شرائط جمعہ پائے جائیں اور اذن عام دے دیا جائے لوگوں کو اطلاع عام ہو کہ یہاں جمعہ ہوگا اور کسی کے آنے کی ممانعت نہ ہو ، کافی امام نسفی میں ہے :

السلطان اذا اراد ان یصلی بحشمہ فی دارہ فان فتح بابھا واذن للناس اذناً عاماً جازت ۔[2] | اگر سلطان چاہتا ہے کہ وہ اپنے گھر میں نماز جمعہ ادا کرے تو اگر اس نے دروازہ کھلا رکھا اور لوگوں کو اذنِ عام تھا تو جائز ہے۔ (ت)

تو اگر صورت یہ تھی وہ لوگ مصیب ہوئے، ہاں اگر وہاں مسجدِ جمعہ موجود تھی اس میں نماز نہ ہوئی اور گھر میں قائم کی تو کراہت ہوئی، درمختار میں ہے :

لو دخل الامیر قصرہ واغلق بابہ وصلی باصحابہ لم تنعقد ولو فتحہ واذن للناس بالدخول جاز وکرہ[3] ۔ | اگر امیر نے اپنے محل میں داخل ہو کر دروازہ بند کر کے اپنے ساتھیوں کے ساتھ نماز ادا کی تو جمعہ نہ ہوا اور اگر دروازہ کھلا رکھا اور لوگوں کے لئے اجازت عام تھی تو جائز ہوئی البتہ کراہت ہے۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے :

لانہ لم یقض حق المسجد الجامع زیلعی و درر[4] ۔ | مکروہ اس لئے ہے کہ اس نے جامع مسجد کا حق ادا نہ کیا زیلعی و درر (ت)

اور اگر کوئی شرط جمعہ مفقود تھی مثلاً وہ جگہ مصر وفنائے مصر نہ تھی، یا امام امامِ جمعہ نہ تھا یا بعض نمازیوں کو بلاوجہ شرعی ، وہاں نماز کے آنے سے ممانعت تھی یا نمازیوں میں وہاں اقامتِ جمعہ مشہور نہ تھی بطور خود ان لوگوں نے پڑھ لی اور عام اطلاع نہ ہوئی اگرچہ لوگوں نے اور مسجدوں میں میں پڑھی تو ان صورتوں میں ان کی نماز نہ ہوئی ، خلاصہ میں شرح جامع صغیر امام صدر شہید سے ہے :

من جملة ذلك الاذن العام يعنى الاداء على | ان سے ایک اذنِ عام بھی ہے یعنی اعلانیہ

[1] در مختار باب ما یفسد الصلوۃ و مایکرہ فیھا مطبوعہ مجتبائی دہلی ۱/۹۳ [2] ردالمحتار بحوالہ الکافی باب الجمعتہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۶۰۱ [3] در مختار باب الجمعتہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۲۱ [4] ردالمحتار باب الجمعتہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۶۰۱

Fatawa-e-Razvia Volume 8

Sabeel al-Ishtihar[1] - Should be performed. (T) It is stated in Bada'i, Hiliyah, etc.: If the Sultan offers Friday prayers in his house while the people along with the Sultan's officials are in the Jami' Masjid, then if he opens the door of his house and grants permission to the general public, it is permissible, and the prayer will be valid in both places. However, if he does not grant permission to the general public and prays only with his army, then the Sultan's prayer is not valid, though the public's prayer is valid.[2] [End of quote]. Its complete detail is in what we have commented on Radd al-Muhtar. And Allah Almighty knows best.

The Sultan offered Friday prayer in his residence, while the rest of the people along with the Sultan's officials offered Friday prayer in the Jami' Masjid. Now, if the door of the residence was open and there was permission for common people, then it is permissible, and prayers will be valid at both locations. If the common people were not allowed and the Sultan prayed only with his army, then the Sultan's prayer is not valid, although the public's prayer is valid. Its detail can be seen in our marginalia on Radd al-Muhtar. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1390 to 1391: From Hafiz Maulvi Hashmat Ali Sahib, student of Madrassa Manzar-e-Islam, Bareilly, Mohalla Saudagran, 25 Muharram 1339 AH. (1) What is the ruling of the defenders of the radiant Sunnah and the eradicators of dark innovations on this matter: To mention the holy name of our master Ghaus-e-Azam (may Allah be pleased with him) in the sermon (Khutbah) out of spite for the Wahhabis and Rafidis, and to recite blessings (Durud) upon him following the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), how is this? (2) Does "Ulul Amri Minkum" (those in authority among you) literally refer to the religious scholars or not? If yes, then is it permissible to pray in the sermon (Khutbah) for the dominance over all enemies of Allah and enemies of the Messenger (Almighty and His Prophet), of a Sunni scholar who is devoted heart and soul to the Religion and Sunnah, through whose being Islam receives great strength, who by the consensus of the Sunni scholars of this time is their leader and the foremost of jurists (Sadr al-Fuqaha), who has dedicated his life solely to sacrifice at the sacred feet of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), who wherever he sees a new fitna (tribulation) arise in religion, strives to the best of his ability with his pen, tongue, and life to eradicate it—may his blessed life be long and may divine help and victory be granted to him from the unseen? Explain in detail, you will be rewarded by the Exalted King and then by the Beloved.

[1] Khulasat al-Fatawa, referencing Sharh al-Jami' al-Saghir by Sadr-e-Shaheed and Minhaj al-Jama'ah, printed at Maktaba Habibiyah, Quetta, 1/210. [2] Bada'i al-Sana'i, referencing al-Nawadir, section on explaining the conditions of Jumu'ah, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/269.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 8

सबील-अल-इश्तिहार[1] - अदा किया जाए। (त) बदाए और हिलिया आदि में है: यदि सुल्तान अपने घर में जुमे की नमाज़ पढ़ता है और लोग सुल्तान के अमरा (अधिकारियों) के साथ जामा मस्जिद में हैं, तो यदि वह अपने घर का दरवाज़ा खोल देता है और आम जनता को अनुमति दे देता है, तो यह जायज़ है और नमाज़ दोनों स्थानों पर हो जाएगी। और यदि उसने आम लोगों को अनुमति नहीं दी और केवल अपनी सेना के साथ नमाज़ पढ़ी, तो सुल्तान की नमाज़ जायज़ नहीं है, हाँ आम लोगों की हो जाएगी।[2] [उद्धरण समाप्त]। इसका पूर्ण विवरण उस टिप्पणी में है जो हमने रद्-अल-मुह्तार पर लिखी है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

सुल्तान ने अपने निवास में जुमे की नमाज़ पढ़ी, और बाकी लोगों ने सुल्तान के अधिकारियों के साथ जामा मस्जिद में जुमा पढ़ा, तो अब अगर निवास का दरवाज़ा खुला था और आम लोगों को अनुमति थी, तो जायज़ है, और नमाज़ दोनों स्थानों पर हो जाएगी। और अगर वहाँ आम लोगों को अनुमति नहीं थी और बादशाह ने केवल अपने लश्कर (सेना) के साथ नमाज़ अदा की, तो अब सुल्तान की नमाज़ नहीं हुई, हाँ आम जनता की हो जाएगी। इसका विवरण हमारे हाशिए रद्-अल-मुह्तार में देखिये। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 1390 से 1391: हाफ़िज़ मौलवी हशमत अली साहिब, छात्र मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम, बरेली, मोहल्ला सौदागरान, 25 मुहर्रम 1339 हिजरी। (1) सुन्नत-ए-सनिया के संरक्षकों और काली बिदअतों (नवाचारों) के मिटाने वालों का इस मसले में क्या इरशाद (आदेश) है कि ख़ुत्बे में वहाबियों और राफ़िज़ियों की नाक रगड़ने के लिए (उनके विरोध में) हुज़ूर सय्यदना ग़ौस-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) का नाम-ए-अक़दस लेकर हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अनुसरण में दुरूद शरीफ़ पढ़ना कैसा है? (2) क्या "उलुल अम्रि मिन्कुम" (तुम में से अधिकार वाले) से हक़ीक़त में उलेमा-ए-दीन मुराद हैं या नहीं? अगर हैं तो जो आलिम-ए-अहले सुन्नत दिल-ओ-जान से दीन और सुन्नत पर फ़िदा हो और जिसकी हस्ती से इस्लाम को बड़ी तक़वियत (शक्ति) पहुँचती हो, इस ज़माने के उलेमा-ए-अहले सुन्नत के इत्तेफ़ाक़ से वह पेशवा-ए-उलेमा सदरुल फ़ुक़हा हों, जिन्होंने अपनी ज़िंदगी महज़ हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के मुक़द्दस क़दमों पर सदक़े(न्यौछावर) कर देने के लिए वक़्फ़ कर दी हो, जहाँ कहीं दीन में नया फ़ितना उठते देखें, अपनी पूरी कोशिश से उसे मिटाने में अपनी क़लम, ज़बान और जान से कोशिश करें, उनकी मुबारक ज़िंदगी दराज़ (लंबी) हो, ग़ैब से उनकी मदद-ओ-नुसरत फ़रमाई जाए, तमाम अल्लाह और रसूल के दुश्मनों पर उनके

ग़ालिब (प्रभावी) रहने की ख़ुत्बे में दुआ करना जायज़ है या नहीं? विस्तार से बताएँ, अल्लाह और उसके हबीब के यहाँ इसका अज्र (पुण्य) पाएँगे।

[1] ख़ुलासत अल-फ़तावा, हवाला शरह अल-जामि' अल-सग़ीर लिसद्र शहीद व मिनहाज अल-जमाअ़:, मक़्तब-ए-हबीबिया, क्वेटा, 1/210. [2] बदाए अस-सनाए, हवाला अन-नवादिर, जुमा की शर्तों के विवरण पर खंड, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/269.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

سبیل الاشتہار 1 - ادا کیا جائے۔ (ت) بدائع وحلیہ وغیرہما میں ہے : السلطان اذا صلی فی دارہ و القوم مع امراء السلطان فی المسجد الجامع ان فتح باب دارہ واذن للعامۃ جاز وتکون الصلوۃ فی موضعین ولو لم یأذن للعامۃ وصلی مع جیش لا تجوز صلوۃ السلطان وتجوز صلوۃ العامۃ 2 اھ و تمامہ فیما علقناہ علی ردالمحتار۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

سلطان نے اپنی دار میں جمعہ پڑھا، باقی لوگوں نے بمع امراء سلطان جامع مسجد میں جمع پڑھا تو اب اگر دار کا دروازہ کھلا تھا تو جائز ہے، اور نماز دونوں مقام پر ہو جائے گی اور اگر وہاں عام لوگوں کو اجازت نہ تھی بادشاہ نے صرف اپنے لشکر کے ساتھ نماز ادا کی تو اب سلطان کی نماز نہ ہوئی، ہاں عام کی ہو جائے گی اھ اسکی تفصیل ہمارے حاشیہ ردالمحتار میں ملاحظہ کیجئے ۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۳۹۰ تا ۱۳۹۱: حافظ مولوی حشمت علی صاحب طالب علم مدرسہ منظر الاسلام بریلی محلہ سوداگران ۲۵ محرم ۱۳۳۹ھ (۱) کیا ارشاد ہے حماۃ سنت سنیہ بیضاء ومحاۃ بدعت قبیحہ ظلماء کا اس مسئلہ میں کہ خطبہ میں رغمًا لانوف الوہابیہ والرافضیہ سرکار حضور سید نا غوث اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ کا نام اقدس لے کر بہ تبعیت حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم درود شریف پڑھنا کیسا ہے؟ (۲) اولی الامر منکم سے حقیقتاً علمائے دین مراد ہیں یا نہیں؟ اگر ہیں تو جو عالم اہلسنت دل و جان سے دین وسنت پر فدا ہو اور اس کی ذات سے اسلام کو بڑی تقویت پہنچتی ہو اس زمانہ کے علمائے اہلسنت کے اتفاق سے وہ پیشوائے علمائے سد الفقہاء ہو اس نے اپنی زندگی محض حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے مقدس قدموں پر تصدق کر دینے کے لئے وقف کردی ہو، جہاں کوئی دین میں نیا فتنہ اٹھتے دیکھے، حتی الوسع اس کے مٹانے میں اپنے قلم

وزبان و جان سے کوشش کرے، اس کی مبارک زندگی زیادہ ہو، غیب سے اس کی مدد نصرت فرمائی جائے، تمام اعداء اللہ واعداء الرسول جل وعلا وصلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر ، اس کے غالب رہنے کی خطبہ میں دعا کرنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا بالتفصیل توجروا عند الملك الجلیل ثم لدی الحبیب

1 خلاصۃ الفتاویٰ بحوالہ شرح الجامع الصغیر لصدر شہید ومنہاج الجماعۃ مطبوعہ مکتبہ حبیبیہ کوئٹہ ۲۱۰/۱ 2 بدائع الصنائع بحوالہ النوادر فصل فی بیان شرائط الجمعۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲۶۹/۱

Fatawa Rizvia Volume 8

...Al-Jameel Jalla 'Ala, and peace and blessings of Allah Almighty be upon him. (By describing in detail, may one receive a reward from Allah Jalla Jalaluhu, the Great Master, and His beautiful Beloved peace and blessings of Allah be upon him. - T)

The Answer:

It is permissible, and Allah Almighty knows best.

Issue 1392 to 1394: From Agra, Abu al-Ala'i Steam Press, questioned by Waheeduddin Sahab, 8 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of the religion say about this issue: (1) Is Jumu'ah (Friday prayer) performed in the cities of India or not, and after performing Jumu'ah, is the 'Zuhre Ihtiyati' (precautionary Zuhr prayer) obligatory, recommended, or disliked? (2) Are two prayers obligatory at one time? And does the performance of Jumu'ah not cause the Zuhr prayer to lapse? (3) In those cities of India where the Imam of the congregational mosque has been appointed by consensus, is he sufficient for the establishment and performance of Jumu'ah, or is the king of Islam or his deputy required? Please provide a brief answer with evidence and book references.

The Answer:

(1) Jumu'ah is valid in the cities of India, and 'Zuhre Ihtiyati' is only appropriate for the elite (scholars). It is mentioned in Durr-e-Mukhtar:

Arabic Text	**Urdu Translation**
Appointment [of an Imam] by the common people is not considered valid when those [authorized persons] mentioned are present, but if they are absent, then it is permissible due to necessity.	When the mentioned persons are present, the appointment by commoners is not reliable, and if the mentioned individuals are not present, then the appointment will be permissible in view of necessity. (T)

The research and details of this issue are in our Fatawa and our treatise 'Lawami' al-Baha'. And Allah Almighty knows best. (2) There are never two obligatory prayers at one time, and when Jumu'ah is performed, Zuhr will be dropped. To avoid such thoughts, scholars did not command the common people to perform 'Zuhre Ihtiyati'. It is mentioned in Radd al-Muhtar:

Arabic Text	Urdu Translation
And for this reason, al-Maqdisi said: We do not command the likes of these commoners to do that, but we point it out to...	We do not command the common people with such things, but rather we tell the elite, even if the elite are [among the] commoners...

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter of Jumu'ah, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/110.

फ़तावा रिज़विया जिल्द 8

...अल-जमील जल्ल अला, और अल्लाह तआला उन पर दुरूद ओ सलाम भेजे। (विस्तार से वर्णन करके अल्लाह जल्ल जलालुहु, महान मालिक, और उनके सुंदर प्रिय दुरूद ओ सलाम उन पर हो, से प्रतिफल प्राप्त करें। - टी)

उत्तर:

यह जायज़ है, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1392 से 1394: आगरा, अबुल अलाई स्टीम प्रेस से, प्रार्थी वहीदुद्दीन साहब, 8 शव्वाल 1339 हिजरी। इस मसले में धर्म के विद्वान क्या फ़रमाते हैं: (1) क्या भारत के शहरों में जुमा अदा होता है या नहीं, और जुमा अदा करने के बाद 'ज़ोहर एहतियाती' (एहतियाती ज़ोहर की नमाज़) वाजिब है या मुस्तहब (पसंदीदा) या मकरूह (नापसंद)? (2) क्या एक ही समय में दो नमाज़ें फ़र्ज़ हैं? और क्या जुमा अदा करने से ज़ोहर साक़ित (ख़त्म) नहीं होती? (3) भारत के जिन शहरों में जामा मस्जिद का इमाम आम सहमति से नियुक्त किया गया है, क्या वह जुमा कायम करने और अदा करने के लिए पर्याप्त है, या इस्लाम के बादशाह या बादशाह के नायब (प्रतिनिधि) की आवश्यकता है? कृपया किताबों के संदर्भ और संक्षिप्त दलीलों के साथ उत्तर प्रदान करें।

उत्तर:

(1) भारत के शहरों में जुमा सही है, और 'ज़ोहर एहतियाती' केवल खास लोगों (विद्वानों) के लिए उपयुक्त है। दुर्रे मुख्तार में है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
[इमाम की] नियुक्ति आम लोगों द्वारा मान्य नहीं है जब उल्लेखित [प्राधिकृत] व्यक्ति मौजूद हों, लेकिन यदि वे अनुपस्थित हों, तो आवश्यकता के कारण यह जायज़ है।	जब उल्लेखित व्यक्ति मौजूद हों, तो आम जनता की नियुक्ति विश्वसनीय नहीं है, और यदि उल्लेखित व्यक्ति मौजूद न हों, तो आवश्यकता को देखते हुए नियुक्ति जायज़ होगी। (टी)

इस मसले का शोध और विवरण हमारे फ़तावा और हमारे शोध पत्र 'लवामे अल-बहा' में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (2) एक समय में दो फ़र्ज़ कभी नहीं होते, और जब जुमा अदा हो

जाएगा, तो ज़ोहर साक़ित हो जाएगी। ऐसे ख्यालों से बचने के लिए विद्वानों ने आम जनता को 'ज़ोहर एहतियाती' का हुक्म नहीं दिया। रद्द अल-मुह्तार में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
और इसी कारण अल-मक़दसी ने कहा: हम इन आम लोगों को ऐसा करने का आदेश नहीं देते, बल्कि हम संकेत करते हैं...	हम ऐसी चीज़ों का आदेश आम जनता को नहीं देते, बल्कि हम खास लोगों को बताते हैं, भले ही खास लोग आम जनता के..

1. दुर्रे मुख्तार, बाबू अल-जुमा, मुत्बा मुज्तबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/110। पृष्ठ 462 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

الجمیل جل علا وصلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم (تفصیل کے ساتھ بیان کرکے اللہ جل جلالہ مالک و جلیل اور اس کے حبیب جمیل صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے اجر پائے۔ت)

الجواب:

جائز ہے، واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۳۹۲ تا ۱۳۹۴: از آگرہ ابوالعلائی اسٹیم پریس مسئولہ وحیدالدین صاحب ۸ شوال ۱۳۳۹ھ

علمائے دین اس مسئلہ میں کیا ارشاد فرماتے ہیں: (۱) ہندوستان کے شہروں میں جمعہ ادا ہوتا ہے یا نہیں اور جمعہ ادا کرنے کے بعد ظہر احتیاطی واجب ہے یا مستحب یا مکروہ؟ (۲) کیا ایک وقت میں دو نمازیں فرض ہیں اور کیا جمعہ ادا کرنے سے ظہر ساقط نہیں ہوتی۔ (۳) ہندوستان کے جن شہروں میں جامع مسجد کا امام باتفاق مقرر کیا گیا ہے کیا وہ اقامت و ادائیگی جمعہ کے لئے کافی ہے یا بادشاہِ اسلام یا نائب بادشاہ کی ضرورت۔ مختصر اولہ حوالہ کتب کے ساتھ جواب مرحمت ہو۔

الجواب:

(۱) ہندوستان کے شہروں میں جمعہ صحیح ہے اور ظہر احتیاطی صرف خواص کو مناسب ہے۔

درمختار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
نصب العامۃ غیر معتبر مع وجود من ذکر ام مع عدمھم فیجوز للضرورۃ ۱۔	جب مذکور اشخاص موجود ہوں تو عوام کا مقرر کرنا معتبر نہیں اور مذکورہ افراد نہ ہوں تو ضرورت کے پیش نظر تقرر جائز ہوگا۔(ت)

اس مسئلہ کی تحقیق و تفصیل ہمارے فتاوٰی اور ہمارے رسالہ لوامع البہا میں ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

(۲) ایک وقت میں دو فرض ہرگز نہیں اور جمعہ جب ادا ہو جائے گا ظہر ساقط ہوجائے گی ایسے ہی خیالوں سے بچنے کو علماء نے عوام کو ظہر احتیاطی کا حکم نہ دیا۔ ردالمختار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
ولذا قال المقدسی نحن لا نامر بذلك امثال ھذہ العوام بل ندل	ہم ایسی اشیاء کا حکم عوام کو نہیں دیتے بلکہ خواص کو بتاتے ہیں اگر چہ خواص عوام کی

۱ درمختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۰ Page 462 of 673

Volume 8 Fatawa Razawiyya

...even if it is with respect to specific individuals. (1) And Allah knows best. | ...are with respect [to them]. (T) And Allah knows best. (3) That Imam is sufficient if he is of correct belief, correct recitation, correct purification, and fulfilling all conditions of health. It has just passed from Durr-e-Mukhtar: "It is permissible due to necessity" (Permissible for necessity. T) And Allah knows best. Problem 1395: From Pilibhit, Mohalla Punjabian, asked by Muhammad Yunus Sahab, 27 Sha'ban 1339 AH. What do the scholars of religion and jurists of the solid Sharia say regarding this issue: A river is located within a city, and a steamboat (agboot) stays there permanently. Ship owners bring several ships to this steamboat and join them together. Goods and passengers are offloaded from the ships onto the steamboat. In front of the steamboat, there is a bridge made of iron; passengers cross this bridge into the city. There is a distance of three yards between this steamboat and the ships. Due to fear of theft, the ship owners forbid [the crew] from going into the city to perform prayers. Is their prayer valid according to Sharia or not?

The Answer: Friday (Jumu'ah) and Eid prayers cannot be held in a river. If it is a sea, then it is clear that its ruling is like that of Dar al-Harb (abode of war), and Jumu'ah and Eid prayers are invalid in Dar al-Harb. It is stated in Rad al-Muhtar:

In the marginalia (Hashiya) of Abi al-Saud, citing the commentary of al-Nazm al-Hamili: | It is stated in Hashiya Abu Saud with reference to Sharh al-Nazm al-Hamili

"The surface of the sea has the ruling of Dar al-Harb." (2) | that the ruling of the sea surface is that of Dar al-Harb. (T)

In the same [source], from Durr al-Muntaqa Sharh al-Multaqa: "The saltwater sea is annexed to Dar al-Harb." (3) (Saltwater sea is attached to Dar al-Harb. T). And if it is a river, the river is neither a city (Misr) nor the city's outskirts (Fina-e-Misr). To the extent that even if two parts of a city are settled on its two banks, they are like two different cities because the river is a separate and distinct thing in between. It is stated in Fath al-Qadir:

"Its basis according to Abu Hanifa is that multiple [congregations] are not allowed..." | According to Imam Abu Hanifa (may Allah be pleased with him), its original basis is exactly this.

---

1 Rad al-Muhtar, Chapter of Jumu'ah, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/596-597. 2 Rad al-Muhtar, Chapter of Occupation by Disbelievers, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/267-266. 3 Rad al-Muhtar, Chapter of Occupation by Disbelievers, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/267.

जिल्द 8 फ़तावा रज़विया

...भले ही उनके संबंध में हो। (1) और अल्लाह बेहतर जानता है। | ...संबंध से हैं। (त) और अल्लाह बेहतर जानता है। (3) वह इमाम पर्याप्त है यदि वह सही अकीदा (विश्वास), सही तिलावत, सही पाकी (शुद्धता) वाला हो और स्वास्थ्य की सभी शर्तों को पूरा करता हो। अभी 'दुर्रे मुख्तार' से गुज़रा: "ज़ुरूरत (आवश्यकता) के लिए जायज़ है" (ज़रूरत के लिए जायज़ है। त) और अल्लाह बेहतर जानता है। मसला 1395: पीलीभीत, मोहल्ला पंजाबियां से, सायल मोहम्मद यूनुस साहब, 27 शाबान 1339 हिजरी। उलमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ-ए-मतीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि एक मुकाम पर दरिया शहर में स्थित है और एक आगबोट (स्टीमबोट) यहाँ हमेशा खड़ा रहता है। जहाज़ वाले कई जहाज़ों को इस आगबोट में लाकर जोड़ते हैं, माल और सवारियां जहाज़ों से आगबोट पर उतारते हैं। आगबोट के आगे लोहे का एक पुल बना हुआ है, सवारियां उसी पुल से गुज़रकर शहर में जाती हैं। इस आगबोट और जहाज़ों के बीच तीन गज़ का फासला है। चोरी के डर की वजह से जहाज़ वाले शहर में जाकर नमाज़ पढ़ने से मना करते हैं। तो शरीयत की रोशनी में क्या उनकी नमाज़ जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब: दरिया में जुमा और ईदैन (ईद की नमाज़ें) नहीं हो सकतीं। अगर समुंदर है तो ज़ाहिर है कि उसका हुक्म 'दारुल हरब' (शत्रु देश) का है और दारुल हरब में जुमा और ईदैन बातिल (अमान्य) हैं। रद-अल-मुह्तार में है:

हाशिया अबू सऊद में 'शरह अल-नज़्म अल-हामिली' के हवाले से है: | हाशिया अबू सऊद में शरह अल-नज़्म अल-हामिली के हवाले से है

"समुंदर की सतह का हुक्म दारुल हरब का है।" (2) | कि समुंदर की सतह का हुक्म दारुल हरब का है। (त)

उसी में 'दुर्र अल-मुंतका' शरह अल-मुल्तका से है: "खारा समुंदर दारुल हरब के साथ जुड़ा हुआ है।" (3) (खारा समुंदर दारुल हरब से मुल्हक है। त)। और अगर दरिया हो, तो दरिया न तो शहर (मिस्र) है और न ही शहर का उपनगर (फ़िना-ए-मिस्र)। यहाँ तक कि अगर शहर के दो हिस्से उसके दो

किनारों पर बसे हों, तो वे दो शहरों की तरह हैं क्योंकि दरिया बीच में एक अलग और स्वतंत्र चीज़ है। फ़तह अल-कदीर में है:

"इमाम अबू हनीफ़ा के नज़दीक इसकी असल यह है कि तादाद (एकाधिक जमात) जायज़ नहीं..." | इमाम अबू हनीफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु के नज़दीक इसकी असल यही है।

---

1 रद-अल-मुह्तार, बाब अल-जुमा, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/596-597। 2 रद-अल-मुह्तार, बाब इस्तिला अल-कुफ़्फ़ार, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 2/267-266। 3 रद-अल-मुह्तार, बाब इस्तिला अल-कुफ़्फ़ार, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 2/267।

पेज 463/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

علیہ خواص ولو بالنسبة الیھم 1۔ واللہ تعالیٰ اعلم | نسبت سے ہوں۔ (ت) واللہ تعالیٰ اعلم (۳) وہ امام کافی ہے اگر صحیح العقیدہ، صحیح القرائتہ، صحیح الطہارۃ، جامع شرائط صحت ہو ، ابھی درمختار سے گزرا: یجوز للضرورۃ (ضرورت کے لئے جائز ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۹۵: از پیلی بھیت محلہ پنجا بیاں مسئولہ محمد یونس صاحب ۲۷ شعبان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ومفتیانِ شرع متین اس مسئلہ میں کہ ایک مقام پر دریا شہر میں واقع ہے اور ایک آگبوٹ یہاں مدام کھڑا رہتا ہے اور جہاز والے چند جہازوں کو اس آگبوٹ میں لا کر جوڑتے ہیں مال اور سواریاں جہازوں کی آگبوٹ اتارتے ہیں اور آگبوٹ کے آگے ایک پل لوہے کا بنا ہوا ہے سواریاں شہر کو اسی پل سے پار ہو کر جاتی ہیں اور اس آگبوٹ اور جہازوں میں تین گز کا فاصلہ ہے اور جہازوں والے بوجہ خوف چوری کے شہر میں جاکر نماز ادا کرنے سے منع کرتے ہیں تو از روئے شرع نماز ان کی جائز ہوتی ہے یا نہیں؟

الجواب: دریا میں نماز جمعہ و عیدین نہیں ہو سکتی، اگر سمندر ہے جب تو ظاہر ہے کہ وہ حکم دارالحرب میں ہے اور دارالحرب میں جمعہ وعیدین باطل۔ ردالمختار میں ہے:

في حاشية بی السعود عن شرح النظم الهاملی | -حاشیہ ابو سعود میں شرح النظم الہاملی کے حوالے سے ہے

سطح البحر له حکم دار الحرب 2 | کہ سطح سمندر کا حکم دار الحرب کا ہے (ت)

اسی میں دُرمنتقی شرح الملتقی سے ہے: البحر الملح ملحق بدار الحرب 3 (نمکین سمندر، دارالحرب سے ملحق ہے۔ ت)) اور اگر دریا ہو تو دریا نہ مصر ہے نہ فنائِ مصر، یہاں تک کہ شہر کے دو حصے کہ اس کے دو پہلوؤں پر آباد ہوں دو شہر کے مثل ہیں کہ دریا ایک جدا و مستقل چیز بیچ میں فاصل ہے۔ فتح القدیر میں ہے:

اصلہ عند ابی حنیفہ لا یجوز تعدد ہانی | اس کی اصل امام ابو حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کے نزدیک یہی ہے

---

1 ردالمختار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۹۶۔۵۹۷ 2 ردالمختار باب استیلاء الکفار مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۲۶۷۔ ۲۶۶ 3 ردالمختار باب استیلاء الکفار مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۲۶۷

In Arabic: In a city, and similarly the authors of al-Imla narrated from Abu Yusuf, that Jumu'ah is not permissible in two mosques in a city, unless there is a large river between them so that they become like two cities. He used to order the cutting of the bridge in Baghdad likewise. (1) In Urdu: Friday prayer is not held in multiple places in a city. Similarly, the authors of al-Imla narrated from Imam Abu Yusuf that Friday prayer is not held in two mosques in a city, yes, if there is a large river between them, then they will become like two cities at that time; that is why he issued an order to end the bridge in Baghdad. (T)

It is clear that the outskirts (fina) are subordinate and not divisive, and Jumu'ah and Eid prayers cannot be held except in a city or the outskirts of a city. All this is in the event that there is a genuine fear and disembarking is impossible, otherwise, the five daily prayers, Witr, and the Sunnah of Fajr also cannot be performed on these ships because their stability is on water, while the condition for the validity of these prayers is stability on the ground except in case of necessity. It is in 'Fath al-Qadir':

In Arabic: In al-Idah, if it was stationed at the shore and it is stable on the ground, then he prayed standing, it is permissible because when it is stable on the ground, its ruling is the ruling of the ground. But if it was tied and it was possible for him to go out, the prayer in it is not permissible, because when it is not stable, it is like an animal. End of quote. Contrary to when it is stable, for it is then like a bed. (2) In Urdu: In al-Idah it is stated: if the boat is standing on the shore and is stable on the ground, and one performs the prayer while standing, then the prayer is permissible because now, due to gaining stability on the ground, it is in the same ruling as the ground. And if the boat was tied and it was possible to get out of it, then the prayer on it will not be valid because when it is not stable, it is in the ruling of a four-legged animal. Contrary to this case, when it is stable, then at that time it is like a bed. (T)

In such a case, if they are forcibly not allowed to disembark, they should pray the five daily prayers and repeat them all after disembarking, because the obstacle is from the side of the servants (human beings). (T) And Allah Almighty knows best.

Problem 1396: From Kathiawar, district Rajkot, Porbandar, Panch History. Submitted by Syed Ghulam Muhammad Sahib Qadri Razvi, Imam of Mithi Mosque, 5 Ramadan 1339 AH.

Leader of the scholars, foremost among researchers, vanguard of the virtuous and meticulous, our master and patron, Mawlana Mawlawi Haji Qari.

1. Fath al-Qadir, Chapter on Jumu'ah Prayer, printed by Nooria Razvia, Sukkur, 2/25
2. Fath al-Qadir, Chapter on Prayer of the Sick, printed by Nooria Razvia, Sukkur, 1/462

अरबी में: एक शहर में, और इसी तरह अल-इमला के लेखकों ने अबू यूसुफ़ से रिवायत की है कि एक शहर की दो मस्जिदों में जुमा जायज़ नहीं है, जब तक कि उनके बीच कोई बड़ी नहर न हो जिससे वे दो शहरों की तरह हो जाएँ। वह इसी तरह बगदाद में पुल को काटने का आदेश दिया करते थे। (1) उर्दू में: एक शहर में कई जगहों पर जुमे की नमाज़ नहीं होती। इसी तरह असहाब-उल-इमला ने इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत की है कि शहर की दो मस्जिदों में जुमा नहीं होता, हाँ जब उनके बीच बड़ी नहर हो तो वे उस समय दो शहरों की तरह हो जाएँगे, इसीलिए उन्होंने बगदाद में पुल खत्म करने का हुक्म जारी किया था। (त)

ज़ाहिर है कि फ़ना (शहर के बाहरी हिस्से) ताबे है न कि क़ाते (काटने वाला), और जुमा व ईदैन सिर्फ शहर या शहर की फ़ना में ही हो सकते हैं। यह सब उस स्थिति में है जब सही डर हो और उतरना मुमकिन न हो, वर्ना पाँचों वक़्त की नमाज़, वित्र और फ़ज्र की सुन्नत भी इन जहाज़ों में नहीं हो सकती क्योंकि उनकी स्थिरता पानी पर है, और इन नमाज़ों की सेहत के लिए ज़मीन पर स्थिर होना शर्त है, सिवाय मजबूरी के। 'फ़तह अल-क़दीर' में है:

अरबी में: 'अल-ईज़ाह' में है, अगर वह किनारे पर खड़ी थी और ज़मीन पर स्थिर है, और उसने खड़े होकर नमाज़ पढ़ी, तो यह जायज़ है क्योंकि जब वह ज़मीन पर स्थिर होती है, तो उसका हुक्म ज़मीन का हुक्म होता है। लेकिन अगर वह बँधी हुई थी और उसके लिए बाहर निकलना मुमकिन था, तो उसमें नमाज़ जायज़ नहीं है, क्योंकि जब वह स्थिर नहीं है, तो वह एक जानवर की तरह है। उद्धरण समाप्त। इसके विपरीत जब वह स्थिर हो, तो वह एक बिस्तर की तरह होती है। (2) उर्दू में: 'ईज़ाह' में है: अगर नाव किनारे पर खड़ी है और ज़मीन पर स्थिर है, और कोई खड़े होकर नमाज़ अदा करे तो नमाज़ जायज़ है क्योंकि अब ज़मीन पर टिकने की वजह से वह ज़मीन के हुक्म में ही है। और अगर नाव बँधी हुई थी और उससे निकलना मुमकिन था, तो अब उस पर नमाज़ नहीं होगी क्योंकि जब वह मुस्तक़र (स्थिर) नहीं है, तो वह चौपाये (जानवर) के हुक्म में है। इसके विपरीत उस स्थिति में जब वह मुस्तक़र है, तो उस वक़्त वह चारपाई की तरह होती है। (त)

ऐसी स्थिति में, अगर वे ज़बरदस्ती उतरने न दें, तो पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ें और उतरने के बाद उन सबका एआदा (दोहराना) करें, क्योंकि रुकावट बंदों की तरफ से है। (त) और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1396: काठियावाड़, ज़िला राजकोट, पोरबंदर, पंच हिस्ट्री से। सैय्यद गुलाम मोहम्मद साहब क़ादरी रज़वी, इमाम मस्जिद मीठी द्वारा प्रेषित, 5 रमज़ान 1339 हिजरी।

उलेमाओं के इमाम, मुहक्क़िक़ीन के सरगना, फज़ला और मुदक़्क़िक़ीन के पेशवा, हज़रत सैय्यदना व मख़दूमना व मौलाना मौलवी हाजी क़ारी।

1. फ़तह अल-क़दीर, जुमे की नमाज़ का अध्याय, नूरय्या रज़विय्या सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 2/25
2. फ़तह अल-क़दीर, बीमार की नमाज़ का अध्याय, नूरय्या रज़विय्या सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 1/462

पृष्ठ 464/673

فی مصر وکذا روی اصحاب الاملاء عن ابی یوسف انه لا یجوز فی مسجدین فی مصر الا ان یکون بینهما نهر کبیر حتی یکون کمصرین وکان یامر بقطع الجسر ببغداد کذلك ۱۔ کہ ایک شہر میں متعدد جگہ جمعہ نہیں ہوتا۔ اسی طرح اصحاب الاملاء نے امام ابو یوسف سے روایت کیا کہ شہر میں دو مساجد میں جمعہ نہیں ہوتا، ہاں جب ان کے درمیان بڑی نہر ہو تو وہ اس وقت دو شہروں کی طرح ہو جائیں گے، اسی لئے انہوں نے بغداد میں پل ختم کرنے کا حکم جاری فرمایا تھا۔ (ت)

ظاہر ہے کہ فنا تابع ہے نہ کہ قاطع، اور جمعہ و عیدین نہیں ہو سکتے مگر مصر یا فنائے مصر میں، یہ سب اس صورت میں ہے کہ خوف صحیح ہو اترنا متعذر ہو ورنہ نماز پنجگانہ ووتر وسنت فجر بھی ان جہازوں میں نہیں ہو سکتے کہ ان کا استقرار پانی پر ہے اور ان نماز کی شرط صحت استقرار علی الارض مگر بحال تعذر، فتح القدیر میں ہے :

فی الایضاح ان کانت موقوفه فی الشط وهی علی قرار الارض فصلی قائماً جاز لانها اذا استقرت علی الارض فحکمها حکم الارض فان کانت مربوطة ویمکنه الخروج لم تجز الصلوة فیها، لانها اذا لم تستقم فهی کالدابة انتهی بخلاف ماذا استقرت فانها حینئذ کالسریر ۲۔ ایضاح میں ہے اگر وہ کشتی کنارے پر کھڑی ہے اور زمین پر برقرار ہے تو نماز کھڑے ہو کر ادا کرے تو نماز جائز ہے کیونکہ اب زمین پر قرار پکڑنے کی وجہ سے زمین کے حکم میں ہی ہے، اور اگر کشتی باندھی ہوئی تھی اور اس سے نکلنا ممکن تھا تو اب اس پر نماز نہ ہوگی کیونکہ جب وہ مستقر نہیں تو وہ چار پایہ کے حکم میں ہے۔ بخلاف اس صورت کے جب وہ مستقر ہے تو اس وقت وہ چار پائی کی طرح ہوتی ہے۔ (ت)

اسی صورت میں اگر جبراً نہ اترنے دیتے ہوں پنجگانہ پڑھیں اور اترنے کے بعد سب کا اعادہ کریں لان المانع من جھۃ العباد (کیونکہ رکاوٹ بندوں کی طرف سے ہے۔ت) واللہ تعالیٰ اعلم مسئلہ ۱۳۹۶: از کاٹھیا واڑ ضلع راجکوٹ شہر پور بندر پنچ ہسٹری مسئولہ سید غلام محمد صاحب قادری رضوی امام مسجد میٹھی ۵ رمضان ۱۳۳۹ھ امام العلماء المحققین مقدام الفضلاء المدققین حضرت سیدنا ومخدومنا ومولانا مولوی حاجی قاری

۱ فتح القدیر باب صلوۃ الجمعہ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۲۵ ۲ فتح القدیر باب صلوۃ المریض مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۴۶۲

Fatawa Razawiya Volume Eight

What do the scholars of religion say regarding the custom prevalent in many places in Kathiawar? On Fridays, during the sermon (Khutbah), a prayer (dua) is made for the Sultan of Muslims. In some places, the preacher (Khatib) descends one step from the pulpit to make the prayer and then climbs back up after the prayer. In other places, this is not done. When a preacher does not descend one step, Zaid objects and says that one must descend one step while praying for the Sultan. The question is, how is this action?

The Answer: The act of the preacher descending one step and then going back up was established by some scholars due to a certain Sharia necessity, as mentioned in the letters (Maktubat) of Sheikh Mujaddid and detailed in our Fatwas. Here, that necessity does not exist, nor is there a need to mix exaggerated or incorrect words with the names of rulers. Therefore, this act is purely futile. Its status as an innovation (Bid'at) has been cited in Radd al-Muhtar. And Allah knows best.

Problem 1367: From Bhusawal, district Khandesh, Mohalla Sitara, asked by Hafiz Ilahi Mahbub Sahib, 7 Ramadan 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding the time frame during which the Friday congregational prayer can be offered? Explain and be rewarded.

The Answer: Friday and Zuhr have the same time. After the sun's decline (Zawal), there is the first Adhan, then Sunnah prayers, then the second Adhan, then the Khutbah, then the prayer; this is its initial time. And if the Adhan, Khutbah, and prayer are conducted such that the final Sunnah prayers are completed before the shadow becomes twice the length of the object (Asr-e-Thani), that is its end time. And Allah knows best.

Problem 1398: From Jaipur, outside Ajmeri Gate, Kothi Abdul Wahid Ali Khan, asked by Hamid Hasan Qadri, 7 Ramadan 1339 AH. What do the scholars of religion say about how long the sermon should be after the middle sitting break (Jalsa-e-Istirahat) in the Friday Khutbah, and what should be its content? Will the second sermon be complete with just a few words of praise for Allah (Hamd) and a Quranic verse? And will there be any harm in omitting the praise (Naat) of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him), the Salutations (Durood Sharif), the mention of the Great Caliphs and the Noble Household (may Allah be pleased with them all), and the prayer for the believers? Explain and be rewarded.

The Answer: The second sermon being complete in the sense that the obligation is fulfilled—this is achieved from the very first sermon itself, but without necessity...

Page 465 of 673

फ़तावा रज़विया खंड आठ

अहमद रज़ा खाँ साहब क़िबला क़ादरी बरकाती मदज़िल्लहु व दाम फ़ैज़ुहू, धर्म के विद्वान क्या कहते हैं कि यहाँ काठियावाड़ देश में अक्सर स्थानों पर यह रिवाज है कि शुक्रवार के दिन खुतबे में सुल्तानुल मुस्लिमीन के लिए दुआ मांगी जाती है, तो खतीब दुआ माँगते समय मिम्बर से एक सीढ़ी नीचे उतरता है और दुआ माँगने के बाद एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता है। कुछ स्थानों पर ऐसा नहीं किया जाता है, यानी खतीब एक सीढ़ी नीचे नहीं उतरता, तो ज़ैद इस पर आपत्ति करता है और कहता है कि सुल्तान के लिए दुआ माँगने के लिए एक सीढ़ी उतरना चाहिए। प्रश्न यह है कि यह कार्य कैसा है?

उत्तर: खतीब का एक सीढ़ी नीचे आना और फिर ऊपर जाना कुछ विद्वानों ने मजबूरी में एक शरीअत की भलाई के लिए रखा था, जिसका उल्लेख शेख मुजद्दिद के मक्तूबात में है और हमारे फ़तावा में इसका विवरण है। यहाँ वह मजबूरी नहीं है, न ही सुल्तानों के नामों के साथ बढ़ा-चढ़ाकर या गलत शब्द मिलाने की आवश्यकता है। इसलिए, यह कार्य विशुद्ध रूप से व्यर्थ है। रद अल-मुह्तार में इसे बिदअत (नवाचार) के रूप में उद्धृत किया गया है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

मसला १३६७: भुसावल, जिला खानदेश, मोहल्ला सितारा से, हाफ़िज़ इलाही महबूब साहब द्वारा पूछा गया, ७ रमज़ान १३३९ हिजरी। धर्म के विद्वान क्या कहते हैं कि शुक्रवार की नमाज़ जमात के साथ किस समय से लेकर कब तक अदा की जा सकती है? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर: जुमा और ज़ुहर का समय एक ही है। सूर्य के ढलने (ज़वाल) के बाद पहली अज़ान हो, फिर सुन्नतें, फिर दूसरी अज़ान, फिर खुतबा, फिर नमाज़; यह इसका शुरुआती समय है। और अज़ान, खुतबा और नमाज़ इस तरह हो कि साया दो गुना (सय्या-ए-मिस्लैन) होने से पहले आखिरी सुन्नतें पूरी हो जाएँ यह इसका अंतिम समय है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

मसला १३९८: जयपुर, अजमेरी गेट के बाहर, कोठी अब्दुल वाहिद अली खान से, हामिद हसन कादरी द्वारा पूछा गया, ७ रमज़ान १३३९ हिजरी। धर्म के विद्वान क्या कहते हैं कि जुमा के खुतबे में बीच के विश्राम (जलसा-ए-इस्तिराहत) के बाद कितना खुतबा पढ़ना चाहिए और इसमें क्या-क्या विषय होने चाहिए? क्या केवल हम्द के कुछ शब्दों और कुरान की एक आयत से दूसरा खुतबा पूरा हो जाएगा? और क्या हुज़ूर सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की नात, दरूद शरीफ़, बड़े खलीफाओं और अहले बैत (रज़ियल्लाहु अन्हुम अजमईन) के उल्लेख और मोमिनों के लिए दुआ छोड़ने से कोई नुकसान नहीं होगा? स्पष्ट करें और पुण्य पाएँ।

उत्तर: दूसरा खुतबा पूरा होना इस अर्थ में कि फ़र्ज़ अदा हो जाए—यह तो पहले ही खुतबे से प्राप्त हो गया, लेकिन बिना आवश्यकता के..

पृष्ठ ४६५ का ६७३

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

احمد رضا خان صاحب قبلہ قادری برکاتی مدظلہ و دام فیضہ، کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ یہاں ملک کاٹھیاواڑ میں اکثر مقامات پر یہ رواج ہے کہ جمعہ کے روز خطبہ میں سلطان المسلمین کے واسطے دعا مانگی جاتی ہے تو خطیب بروقت دعا مانگنے کے منبر پر سے ایک سیڑھی نیچے اترتا ہے اور بعد دعا مانگ کر ایک سیڑھی اوپر چڑھتا ہے اور بعض مقامات پر اس طرح نہیں کیا جاتا ہے یعنی خطیب ایک سیڑھی نیچے اترتا تو زید اس سے اعتراض کرتا ہے اور کہتا ہے کہ سلطان کے لیے دعا مانگنے کے لیے وقت ایک سیڑھی اترنا چاہئے، عرض یہ ہے کہ یہ فعل کیسا ہے؟

الجواب: خطیب کا ایک سیڑھی نیچے آنا اور پھر اوپر جانا بعض علماء نے بمجبوری ایک مصلحت شرعی کے لئے رکھا تھا جس کا ذکر مکتوبات شیخ مجدد اور تفصیل ہمارے فتاویٰ میں ہے، یہاں وہ مجبوری نہیں ، نہ سلاطین کے نام کے ساتھ مبالغہ آمیز، غلط الفاظ ملانے کی حاجت، لہٰذا یہ فعل عبث محض ہے، ردالمختار میں اس کا بدعت ہونا نقل کیا، وھو تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۳۶۷: از بھوساول ضلع خاندیس محلہ ستارہ مسئولہ حافظ الٰہی محبوب صاحب ۷ رمضان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ جمعہ کی نماز باجماعت کس وقت سے لے کر اور کب تک ادا کر سکتے ہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: جمعہ اور ظہر کا ایک وقت ہے زوال شمس کے بعد اذان اول ہو پھر سنتیں پھر اذان ثانی پھر خطبہ پھر نماز، یہ اس کا اول وقت ہے اور ایسے وقت اذان و خطبہ و نماز ہوں کہ سایہ دو مثل ہونے سے پہلے اخیر سنتیں ہو جائیں یہ اس کا آخر وقت ہے۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۳۹۸: از جے پور بیرون اجمیری دروازہ کوٹھی عبدالواحد علی خاں مسئولہ حامد حسن قادری ۷ رمضان ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین کہ خطبہ جمعہ میں بعد جلسہ استراحت درمیانی، کس قدر خطبہ پڑھنا چاہئے اور اس میں کیا کیا مضامین ہوں، کیا صرف چند کلمات حمد اور ایک آیت قرآنی سے خطبہ ثانیہ پورا ہو جائے گا، اور کیا نعت حضور سرور عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و درود شریف و ذکر خلفائے کبار و اہلبیت کرام رضوان اللہ تعالیٰ علیہم اجمعین و دعا برائے مومنین کے ترک سے کچھ نقصان نہ ہوگا؟ بینوا توجروا

الجواب: خطبہ ثانیہ پورا ہونا بایں معنی کہ فرض ادا ہو جائے، یہ تو پہلے ہی خطبہ سے حاصل ہو گیا مگر بلا ضرورت

Fatawa Razawiyyah Volume 8

To leave the established, ancient, and perpetual Sunnah, to cause aversion among Muslims, to open the door for backbiting against oneself, and to act contrary to the noble command 'Bashiru wala tunaffiru' (Give glad tidings and do not repel) is not the work of a sensible religious person. All the matters mentioned in the question, from the recitation of the noble praise (Na'at) to the prayer for the believers, are praiseworthy, practiced, and traditional; they must certainly be performed. And Allah Almighty knows best.

Problem 1399: From Shahjahanpur, Khalil locality, asked by Amir Khan Mukhtar Aamir, 2nd Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: there is a mosque in Shahjahanpur where it has been decided that first, at all times, even the Friday prayer will be led by Qadianis, and thereafter the Ahl-e-Sunnat will perform it along with the Friday sermon. So, your excellency, please state whether our prayer will be valid or not? Since the Qadianis have already delivered a sermon, can we deliver it again or not? Explain and be rewarded.

The Answer: Neither is the prayer of the Qadianis valid nor is their sermon, because they are not Muslims at all. The Ahl-e-Sunnat should call their own Azan in that same mosque, deliver their own sermon, and hold their own congregation. Only those Azan, sermon, and congregation will be religiously valid. Whatever the Qadianis did before that was purely void and rejected. And He (Allah) knows best.

Problem 1400: From Jagdal, District 24 Parganas, Naya Bazar, New Mosque, asked by Abdul Sattar Hashmi, 6th Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Is it permissible or absolutely forbidden to give a sermon and advice to explain Sharia rulings to the public instead of the first Friday sermon? Is it correct to speak in Urdu within the sermon, or to translate the sermons, or to translate the verses and Hadiths contained in the sermons, or not? Explain and be rewarded.

The Answer: The sermon itself is advice and preaching, but mixing a non-Arabic language in it is disliked (Makruh) and contrary to the established Sunnah, although the essential obligation of the sermon would be fulfilled even in another pure language. The noble companions (Sahaba) conquered thousands of non-Arab cities, installed pulpits, and delivered sermons. They knew their languages and conversed with them, yet it is never reported that they delivered a sermon in any language other than Arabic or mixed a foreign language into it:

[Arabic]: فهو كف والكف متبع قال صلى الله تعالى عليه وسلم من احدث فى امرنا هذا ما ليس منه فهو رد [Urdu Explanation]: This is to abstain from an act, and in abstaining, one must follow (the Sunnah). The Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever innovates something in this matter of ours which is not from it, it will be rejected." (T)

1. Sahih al-Bukhari, Chapter: If they agree on an unjust settlement, it is rejected, published by Qadimi Kutub Khana Karachi 1/371.

स्थापित, प्राचीन और निरंतर सुन्नत को छोड़ना, मुसलमानों के बीच घृणा का कारण बनना, स्वयं के विरुद्ध निंदा (ग़ीबत) का द्वार खोलना और पवित्र आदेश "बशिरु वला तुनफ्फिरु" (खुशखबरी दो, घृणा मत फैलाओ) के विरुद्ध कार्य करना एक समझदार धार्मिक व्यक्ति का काम नहीं है। प्रश्न में उल्लेखित पवित्र नात से लेकर मोमिनों के लिए दुआ तक की सभी बातें सराहनीय, प्रचलित और पारंपरिक हैं; उन्हें अवश्य ही किया जाना चाहिए। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1399: शाहजहाँपुर, मुहल्ला खलील से, प्रेषक आमिर खान मुख्तार आमिर, 2 शव्वाल 1339 हिजरी। धर्मगुरुओं का इस मसले पर क्या कहना है: शाहजहाँपुर में एक मस्जिद है जिसमें यह तय हुआ है कि पहले, हर समय, यहाँ तक कि जुमे की नमाज़ भी कादियानी पढ़ाएंगे, उसके बाद अहले सुन्नत जुमे के खुत्बे के साथ पढ़ेंगे। तो सरकार, कृपया बताएं कि हमारी नमाज़ होगी या नहीं? कादियानी पहले ही खुत्बा पढ़ चुके हैं, क्या हम दोबारा पढ़ सकते हैं या नहीं? विस्तार से बताएँ और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: न तो कादियानियों की नमाज़ मान्य है और न ही उनका खुत्बा, क्योंकि वे मुसलमान ही नहीं हैं। अहले सुन्नत को उसी मस्जिद में अपनी अज़ान देनी चाहिए, अपना खुत्बा पढ़ना चाहिए और अपनी जमात (प्रार्थना सभा) करनी चाहिए। केवल वही अज़ान, खुत्बा और जमात शरई तौर पर मान्य होंगे। उससे पहले कादियानियों ने जो कुछ किया वह पूरी तरह से शून्य और अस्वीकार्य था। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1400: जगदल, जिला चौबीस परगना, नया बाज़ार, नई मस्जिद से, प्रेषक अब्दुल सत्तार हाशमी, 6 शव्वाल 1339 हिजरी। धर्मगुरुओं का इस मसले पर क्या कहना है: क्या जुमे के पहले खुत्बे के स्थान पर जनता को शरई हुक्म बताने और समझाने के लिए उपदेश और नसीहत देना जायज़ है या नहीं, या यह पूरी तरह हराम है? खुत्बे के अंदर उर्दू में बात करना, या खुत्बों का अनुवाद करना, या खुत्बों में मौजूद आयतों और हदीसों का अनुवाद करना सही है या नहीं? विस्तार से बताएँ और पुण्य प्राप्त करें।

उत्तर: खुत्बा स्वयं उपदेश और नसीहत है, लेकिन इसमें गैर-अरबी भाषा का मिश्रण मकरूह (नापसंद) और स्थापित सुन्नत के विरुद्ध है, हालाँकि खुत्बे का मूल दायित्व किसी अन्य शुद्ध भाषा में भी पूरा हो जाएगा। सहाबा किराम ने गैर-अरबों के हज़ारों शहर फतह किए, वहाँ मिम्बर स्थापित

किए और खुत्बे दिए। वे उनकी भाषाएँ जानते थे और उनसे बातचीत करते थे, लेकिन यह कभी भी प्रमाणित नहीं है कि उन्होंने अरबी के अलावा किसी और भाषा में खुत्बा दिया या किसी गैर-भाषा को उसमें मिलाया:

[अरबी]: تبع قال صلى الله تعالى عليه وسلم من احدث فى امرنا هذا ماما ليس منه فهو رد [व्याख्या]: यह कार्य से रुकना है और रुकने में भी अनुसरण (इत्तेबा) किया जाएगा। हुज़ूर अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "जिसने हमारे इस मामले (दीन) में कोई नई चीज़ निकाली जो इसमें से नहीं थी, तो वह अस्वीकार्य है।" (त)

1. सहीह अल-बुखारी, अध्याय: यदि वे अन्यायपूर्ण समझौते पर सहमत हों तो वह अस्वीकार्य है, प्रकाशक: कदीमी कुतुब खाना कराची 1/371.

पृष्ठ 466 / 673

سنتِ متوارثہ قدیمہ دائمہ کو چھوڑ نا اور مسلمانوں کی تنفیر کا باعث ہونا اور اپنے اوپر فتح باب غیبت کرنا اور ارشاد اقدس بشرو ا ولا تنفروا (خوشخبری دو، نفرت نہ دلاؤ۔ ت) کی مخالفت کرنا دیندار عاقل کا کام نہیں ، نعتِ اقدس سے دعا برائے مومنین تک جتنی باتیں سوال میں مذکور ہیں سب محمود و معمول وماثور ہیں انھیں ضرور بجالانا چاہئے ۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۳۹۹: از شاہجہان پور محلہ خلیل مسئولہ امیر خاں مختار عامر ۲ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ شاہجہان پور میں ایک مسجد ہے اس میں یہ قرار پایا کہ اول ہر وقت یہاں تک کہ جمعہ کی نماز قادیانی پڑھیں، بعد کو اہلسنت مع خطبہ جمعہ کے، تو حضور فرمائے کہ ہماری نماز ہو گی یا نہیں؟ پہلے قادیانی خطبہ پڑھ چکے ہم دوبارہ پڑھ سکتے ہیں یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: نہ قادیانیوں کی نماز ہے نہ ان کا خطبہ، خطبہ کہ وہ مسلمان ہی نہیں، اہلسنت اپنی اذان کہہ کر اسی مسجد میں اپنی خطبہ پڑھیں اپنی جماعت کریں وہی اذان و خطبہ و جماعت شرعاً معتبر ہوں گے، اور اس سے پہلے جو کچھ قادیانی کر گئے باطل و مردود محض تھا۔ وھو تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۴۰۰: از جندل ضلع چوبیس پرگنہ نیا بازار نئی مسجد مسئولہ عبدالستار ہاشمی ۶ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جمعہ کے خطبہ اولیٰ کے بجائے وعظ و پند عوام کو احکام شرعیہ بتانے اور سمجھانے کے لئے جائز ہے یا نہیں یا قطعی حرام ہے؟ اردو کلام کرنا اندر خطبہ کے یا خطبوں کا ترجمہ یا آیات و احادیث جو خطبوں میں ہیں ان کا ترجمہ کرنا درست ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: خطبہ خود وعظ و پند ہے مگر اس میں غیر عربی زبان کا خلط مکروہ و خلافِ سنتِ متوارثہ ہے اگر چہ نفسِ فرض خطبہ خالص دوسری زبان سے ادا ہو جائے گا صحابہ کرام نے عجم کے ہزاروں شہر فتح فرمائے اور ان میں منبر نصب کئے اور خطبے پڑھے اور ان کی زبانیں جانتے تھے ان سے گفتگو کرتے تھے مگر کبھی منقول نہیں کہ عربی کے سوا کسی اور زبان میں خطبہ فرمایا یا غیر زبان کو ملایا:

فهو كف والكف متبع قال صلى الله تعالى عليه وسلم من احدث فى امرنا هذا ما ليس منه فهو رد | یہ فعل سے رکنا ہے اور رکنے میں اتباع کی جائے گی، حضور اکرم صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا جس نے ہمارے کسی معاملہ میں اختراع کی حالانکہ وہ اس میں سے نہ تھی تو وہ مردہ ہو گی۔ ت)

1- صحیح البخاری باب اذا اصطلحوا علی صلح جور فهو مردود مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۳۷۱

Jild Hashtam (Volume 8) Fatawa-e-Razviya

In Durr-ul-Mukhtar: [Arabic]: Sahha law shara'a bi ghayri 'arabiyyatin wa shartan 'ajzuhu wa 'ala hadha al-khilafu al-khutbatu. (1) [Urdu Translation]: It is valid if one starts the Takbir of prayer in a language other than Arabic, and according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), it is conditional on being unable [to do it in Arabic]. The same disagreement applies to the sermon (Khutbah). (T)

In Radd-ul-Muhtar from Ghurrar-ul-Afkar, commentary on Durrar-ul-Bihar: [Arabic]: Kuriha ad-du'au bil-a'jamiyyati li anna Umara radiyallahu ta'ala 'anhu naha 'an ita'atil-a'ajami. (2) [Urdu Translation]: Supplicating in a non-Arabic language is disliked because Umar (may Allah be pleased with him) forbade following the non-Arabs. (T)

In the same, from Walwalajiyyah: [Arabic]: At-Takbiru 'ibadatullahi ta'ala la yuhibbu ghayra al-'arabiyyah. (3) [Urdu Translation]: Takbir is the worship of Allah Almighty, and Allah Almighty does not like [worship in a language] other than Arabic. (T)

However, if during the sermon, one sees for instance an Indian person committing an impermissible act, such as walking or fanning oneself while the sermon is being delivered, and that person does not understand Arabic, then forbid them in Urdu as the need will only be fulfilled in this way. And Allah Almighty knows best.

Issue 1201 to 1203: From Bhaji Bazar city, presented by Mazhar Hussain Sahib Azad, Private Secretary. 8 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding the following matters: (1) The city's Qazi and Khatib holds a government title and receives a stipend from the royal era. Due to personal grievances and enmities, he has not returned the title etc. in connection with the non-cooperation movement. However, he is a sympathizer of the Khilafat (Caliphate) movement and has provided aid in word and deed and is ready to do so. Being the Khatib, he delivers the sermon on Eid. Is it shariah-permissible to listen to the sermon of such a person? (2) In the Grand Mosque and Eidgah, a person who is a Hafiz and Qari, who has performed two Hajj pilgrimages and does not hold a title, has been appointed for a long time by the aforementioned Qazi and Khatib for leading prayers (Imamat). Is prayer valid under his leadership or not?

1. Durr-ul-Mukhtar, Chapter: When one intends to start the prayer, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/72.
2. Radd-ul-Muhtar, Topic: Regarding supplication in non-Arabic, printed at Mustafa al-Babi, Egypt, 1/385.

3. Radd-ul-Muhtar, Topic: Regarding supplication in non-Arabic, printed at Mustafa al-Babi, Egypt, 1/385.

जिल्द हशतम (खंड 8) फ़तावा-ए-रज़विया

दुर्र-उल-मुख़्तार में है: [अरबी]: सह़ह़ लव शर'अ बि ग़ैरि अरबीयतिन व शर्तन् 'अज़ुहु व 'अला हाज़ा अल-ख़िलाफ़ु अल-ख़ुत्बतु। (1) [उर्दू अनुवाद]: यह सही है यदि किसी ने नमाज़ की तकबीर गैर-अरबी में शुरू की, और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार शर्त यह है कि वह असमर्थ हो। यही मतभेद खुतबे (प्रवचन) के बारे में भी है। (त)

रद्द-उल-मुह्तार में ग़ुर्रर-उल-अफ़कार शरह दुरर-उल-बिह़ार से है: [अरबी]: कुरिह अद-दुआ'उ बिल-आ'जमिय्यति लि अन्ना उमर रज़ियल्लाहु तआला 'अन्हु नहा 'अन इता'अतिल-आ'जामि। (2) [उर्दू अनुवाद]: दुआ अजमी (गैर-अरबी) भाषा में करना मकरूह है क्योंकि हज़रत उमर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु ने अजमी लोगों की पैरवी से मना फ़रमाया है। (त)

इसी में वलवालजीया से है: [अरबी]: अत-तकबीरू 'इबादतुल लाहि तआला ला युह़िब्बु ग़ैरा अल-अरबीयति। (3) [उर्दू अनुवाद]: तकबीर अल्लाह तआला की इबादत है और अल्लाह तआला अरबी के अलावा [दूसरी भाषा] को पसंद नहीं करता। (त)

हाँ, अगर खुतबे के दौरान किसी को कोई नाजायज काम करते देखा जाए, जैसे खुतबा होने की स्थिति में चलना या पंखा झलना, और वह अरबी नहीं समझता, तो उसे उर्दू में मना करे क्योंकि ज़रूरत इसी तरह पूरी होगी। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसाला 1201 से 1203: भाजी बाज़ार शहर से, मज़हर हुसैन साहब आज़ाद प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा। 8 शव्वाल 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान निम्नलिखित मामलों में क्या कहते हैं: (1) शहर का काज़ी और खतीब सरकार द्वारा सम्मानित है और उसे शाही ज़माने से वजीफा मिल रहा है। उसने व्यक्तिगत रंजिशों और दुश्मनी के कारण असहयोग आंदोलन के सिलसिले में उपाधि आदि वापस नहीं की है। वैसे वह खिलाफत आंदोलन का शुभचिंतक है और उसने बोलकर और काम करके सहायता की है और करने को तैयार है। खतीब होने के कारण वह ईद में खुतबा पढ़ता है। क्या शरीयत के अनुसार ऐसे व्यक्ति का खुतबा सुनना जायज़ है? (2) जामा मस्जिद और ईदगाह में एक व्यक्ति जो हाफ़िज़ और क़ारी है, जिसने दो हज भी किए हैं और वह कोई उपाधि नहीं रखता, उपर्युक्त काज़ी और खतीब

की ओर से इमामत के लिए लंबे समय से नियुक्त है। क्या उसकी इमामत में नमाज़ जायज़ है या नहीं?

1. दुर्र-उल-मुख़्तार, अध्याय: जब नमाज़ शुरू करने का इरादा हो, मुजतबाई प्रेस दिल्ली, 1/72।
2. रद्द-उल-मुह्तार, विषय: अरबी के अलावा दुआ करने के बारे में, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/385।
3. रद्द-उल-मुह्तार, विषय: अरबी के अलावा दुआ करने के बारे में, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/385।

पृष्ठ 467/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

در مختار میں ہے: صح لو شرع بغیر عربیه وشرطاً عجزه و علی هذا الخلاف الخطبة ۱۔ صحیح ہے اگر اس نے نماز کی تکبیر غیر عربی میں شروع کی اور صاحبین کے نزدیک بشرطیکہ وہ عاجز ہو، یہی اختلاف خطبہ کے بارے میں ہے۔ (ت)

ردالمحتار میں غرر الافکار شرح دررالبحار سے ہے: کره الدعاء بالأعجمية لان عمر رضي الله تعالی عنه نهی عن اطاعة الأعاجم ۲۔ دعا عجمی زبان میں مکروہ ہے کیونکہ حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے عجمی لوگوں کی پیروی سے منع فرمایا ہے۔ (ت)

اسی میں ولوالجیہ سے ہے: التکبیر عبادة الله تعالی لا یحب غیر العربیة ۳۔ تکبیر، اللہ تعالیٰ کی عبادت ہے اور اللہ تعالیٰ غیر عربی کو پسند نہیں کرتا۔ (ت)

ہاں اگر اثنائے خطبہ میں مثلاً کسی ہندی کو کوئی فعل نا جائز کرتے دیکھا جیسے خطبہ ہونے کی حالت میں چلنا یا پنکھا جھلنا، اور وہ عربی نہیں سمجھتا تو اردو میں اسے منع کرے کہ یہ حاجت یونہی رفع ہو گی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۰۱ تا ۱۲۰۳ : از بھاجی بازار شہر مسئلہ مظہر حسین صاحب آزاد پرائیویٹ سیکریٹری ۸ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین مسائل ذیل میں : (۱) قاضی و خطیب شہر گورنمنٹ کا خطاب یافتہ ہے اور اس کے متعلق اس کو معاش، زمانہ شاہی سے ملی ہوئی ہے اس نے ذاتی رنجشوں عداوتوں کی وجہ سے خطاب وغیرہ ترک موالات کے سلسلہ میں واپس نہیں کئے، ویسے خلافت کا ہمدرد اور قولاً فعلاً امداد کی اور کرنے کو تیار ہے، بوجہ خطیب ہونے کے عید میں خطبہ پڑھتا ہے کیا شرعاً ایسے شخص کا خطبہ سُننا جائز ہے؟ (۲) جامع مسجد اور عیدگاہ میں

ایک شخص حافظ قاری جو دو حج بھی کر چکا ہے اور خطاب یافتہ نہیں ہے منجانب قاضی و خطیب مذکور امامت کے لئے عرصہ دراز سے مقرر ہے اس کی امامت میں نماز جائز ہے یا نہیں؟

1 در مختار فصل واذا اراد الشروع فی الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۷۲ 2 رد المحتار مطلب فی الدعاء بغیر العربیہ مطبوعہ مصطفیٰ البانی مصر ۱ / ۳۸۵ 3 رد المحتار مطلب فی الدعاء بغیر العربیہ مطبوعہ مصطفیٰ البانی مصر ۱ / ۳۸۵

Fatawa Razawiya Volume 8

(3) In a city, there are two titled Muslims. A Khilafat Committee is also established. This committee has taken a biased stance towards one titled person, not forcing him to relinquish his title, etc. The mosque under his management has an Imam appointed by him. They have declared listening to his sermon and praying behind his appointed Imam as permissible. However, they have declared listening to the sermon of the other titled person and praying behind his appointed Imam as impermissible. Is this act of the committee according to the fatwas of scholars and the commands of Allah and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him)? Is there any such differentiation in Sharia laws, or are they uniform and general for all Muslims? Explain and be rewarded.

The Answer: (1) He who has been appointed to the position of sermon and leadership (Imamat) since the royal era, anyone calling it impermissible to listen to his sermon without a Sharia-compliant reason is committing slander against the Pure Sharia. Not returning a title is not such a crime that would prohibit listening to his sermon. "Indeed, those who invent falsehood about Allah will not succeed." [Quran 16:116] (2) It is permissible if there is no Sharia-based impediment, even if he is titled. (3) This differentiation is pure ignorance and slander against Sharia. And Allah knows best.

Problem 1204: From Airayan, district Fatehpur Sadat, questioned by Syed Saghir Hussain Sahib, Assistant Teacher, Middle School, 12 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: on Friday, when the Imam comes to the pulpit (minbar) to deliver the sermon and the Adhan is called, should one respond to the words of the Adhan and recite the post-Adhan prayer (dua) or not? And should one kiss their thumbs upon hearing the blessed name of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) during the Adhan or during the sermon?

The Answer: Regarding responding to the Adhan of the sermon and the prayer after it, there is a difference of opinion among the Imam and his companions (Sahibayn), may Allah be pleased with them. It is better to avoid it, but there is no harm if done. Similarly, the same ruling applies to kissing thumbs upon hearing the blessed name during the sermon's Adhan. However, during the sermon, the command is for absolute silence and stillness. Upon hearing the blessed name during the sermon,

one should only recite Salawat (Durood) in the heart and do nothing else; do not even move the tongue. And Allah knows best.

1. Al-Quran 116/16 Page 468 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

(3) एक शहर में दो खिताब याफ़्ता (उपाधि प्राप्त) मुसलमान हैं। खिलाफ़त कमेटी भी कायम है। इस कमेटी ने एक खिताब याफ़्ता का पक्ष ले रखा है और उसे खिताब वग़ैरह छोड़ने पर मजबूर नहीं करती। उसके प्रबंधन वाली मस्जिद में उसकी तरफ से नियुक्त इमाम का खुतबा सुनना और उसके पीछे नमाज़ पढ़ना जायज़ करार दिया है, जबकि दूसरे खिताब याफ़्ता का खुतबा सुनना और उसके द्वारा नियुक्त इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ना नाजायज़ करार दिया है। क्या कमेटी का यह कृत्य उलमा-ए-किराम के फ़तवों और अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के अहकाम के अनुसार है? क्या शरीयत के कानूनों में ऐसा कोई भेदभाव है या वे सभी मुसलमानों के लिए समान और आम हैं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब: (1) जो शाही ज़माने से खुतबा और इमामत के पद पर नियुक्त है, बिना किसी शरई कारण के उसके खुतबा सुनने को नाजायज़ बताने वाला शरीयत-ए-मुतहरा पर बोहतान (झूठ) बाँधता है। खिताब वापस न करना कोई ऐसा अपराध नहीं है जिसके कारण उसका खुतबा सुनना मना हो जाए। "निःसंदेह जो लोग अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं वे कभी सफल नहीं होंगे।" [अल-कुरान 16:116] (2) यह जायज़ है यदि इसमें कोई शरई रुकावट न हो, चाहे वह खिताब याफ़्ता ही क्यों न हो। (3) यह भेदभाव केवल अज्ञानता और शरीयत पर बोहतान है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1204: ऐरायां, जिला फतेहपुर सादात से मुस्तफ़ती (सवाल पूछने वाले) सैयद सगीर हुसैन साहब, नायब मुदर्रिस मिडिल स्कूल, 12 शव्वाल 1339 हिजरी। उलमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि जुमे के दिन जब इमाम मिंबर पर खुतबा पढ़ने आए और अज़ान दी जाए, तो अज़ान के शब्दों का जवाब देना और उसके बाद अज़ान की दुआ पढ़नी चाहिए या नहीं? और हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के नाम-ए-पाक पर अज़ान में अंगूठा चूमना या खुतबे में आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के नाम पर अंगूठा चूमना चाहिए या नहीं?

अल-जवाब: खुतबे की अज़ान के जवाब और उसके बाद की दुआ के बारे में इमाम और साहिबैन (इमाम अबू युसूफ और इमाम मुहम्मद) रज़ियल्लाहु अन्हुम का मतभेद है। बचना बेहतर है, और अगर करें तो कोई हर्ज नहीं। इसी तरह खुतबे की अज़ान में नाम-ए-पाक सुनकर अंगूठे चूमने का भी यही हुक्म है। लेकिन खुतबे के दौरान केवल खामोशी और सुकून का हुक्म है। खुतबे में नाम-ए-पाक

सुनकर केवल दिल में दुरूद शरीफ़ पढ़ें और कुछ न करें, यहाँ तक कि ज़ुबान को हरकत भी न दें। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

1. अल-कुरान 16/116 पेज 468 ऑफ़ 673

(۳) ایک شہر میں دو خطاب یافتہ مسلمان ہیں، خلافت کمیٹی بھی قائم ہے ، اس کمیٹی نے ایک خطاب یافتہ کی جانبداری اختیار کر رکھی ہے اس کو خطاب وغیرہ چھوڑنے پر مجبور نہیں کرتی اور اس کی تولیت میں جو مسجد ہے اور اس میں اسی خطاب یافتہ کی جانب سے امام مقرر ہے ، اس کا خطبہ سننا اور اس کے پیچھے نماز پڑھنا جائز قرار دیا ہے اور دوسرے خطاب یافتہ کا خطبہ سننا اور اس کے مقرر کردہ امام کے پیچھے نماز پڑھنا ناجائز قرار دیا ہے ، کیا کمیٹی کا یہ فعل فتاوی علمائے کرام احکام خدا اور رسول صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہے اور احکام شرعیہ میں کوئی تفرقہ ہے یا سب مسلمانوں کے لئے یکساں اور عام ہیں؟ بینوا توجروا الجواب: (۱) جو زمانہ شاہی سے منصب خطبہ و امامت پر منصوب ہے بلا وجہ شرعی اس کے خطبہ سننے کو ناجائز بتانے والا شریعت مطہرہ پر افتراء کرتا ہے ، خطاب واپس نہ کرنا کوئی ایسا جرم نہیں جس کے سبب اس کا خطبہ سننا منع ہو جائے اِنَّ الَّذِیْنَ یَفْتَرُوْنَ عَلَی اللّٰہِ الْکَذِبَ لَا یُفْلِحُوْنَ ط ۱ (بلاشبہ وہ لوگ جو اللہ تعالٰی پر افتراء باندھتے ہیں وہ کبھی کامیاب نہ ہوں گے۔ت) (۲) جائز ہے اگر اس میں کوئی مانع شرعی نہ ہو اگرچہ خطاب یافتہ ہو۔ (۳) یہ تفرقہ محض جہالت اور افتراء بر شریعت ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۰۴: از ایران ضلع فتحپور سادات مسئولہ سید صغیر حسین صاحب نائب مدرس مڈل اسکول ۱۲ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جمعہ کے روز جب امام منبر پر خطبہ پڑھنے کو آجائے اور اذان کہی جائے تو کلمات اذان کا جواب دینا اور بعد ازاں دعائے اذان پڑھنی چاہئے یا نہیں؟ اور حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے نام پاک پر اذان میں انگوٹھا چومنا یا خطبہ میں آں حضرت کے نام پر انگوٹھا چومنا چاہئے یا نہیں؟

الجواب: اذانِ خطبہ کے جواب اور اس کے بعد دُعا میں امام وصاحبین رضی اللہ تعالیٰ عنہم کا اختلاف ہے بچنا اولیٰ ، اور کریں تو حرج نہیں ، یوں ہی اذانِ خطبہ میں نام پاک سن کر انگوٹھے چومنا اس کا بھی یہی حکم ہے لیکن خطبہ میں محض سکوت و سکون کا حکم ہے ، خطبہ میں نام پاک سن کر صرف دل میں درود شریف پڑھیں اور کچھ نہ کریں زبان کو جنبش بھی نہ دیں، واللہ تعالیٰ اعلم

Volume 8

Fatawa Razviyya

Question 1405: From the town of Sirsi, Mohalla Bochar Khana Kalan, Pargana Sambhal, District Moradabad. Queried by Hafiz Khuda Bakhsh and Sheikh Abdul Aziz on 1st Zil-Qa'dah 1339 AH. What do the scholars of religion and jurists of the firm Shariah say about this: Individuals of the Najdi sect wander around and mislead male and female believers. No one stays to listen to their speeches. Now they have devised a trick to start abduction (of thoughts/misleading) during the Friday sermon and call it a 'sermon'. What is the ruling regarding this sect, and is the Friday sermon actually permissible in Urdu or not? Clarify and be rewarded.

The Answer: Wahhabis are apostate disbelievers as is clear from the fatwas of the scholars of the Two Holy Harams in "Husam al-Haramayn". Their sermon is void, their prayer is void, and praying behind them is absolutely void, just like praying behind a Hindu or a Christian. Reciting the sermon in Urdu is against the established Sunnah and is very bad. In the manner of the Wahhabis, it is an intrusion into the essence of faith because it is an innovation (Bid'ah), and according to them, every innovation interferes with the essence of faith, even though they possess no faith at all. And Allah Almighty knows best. Sent from Ujjain, Gwalior by Maulvi Yaqub Ali Khan. 15th Jamadi al-Akhira 1309 AH.

Question 1406: What do the scholars of religion and jurists of the firm Shariah say about this matter: Zaid is appointed to the seat of judgeship (Qaza) in a town generation after generation by the order of the ruler and the agreement of the Muslim community. He performs the duties of Imamate, Khitabat (sermonizing), Eid prayers, and all business related to the office of Qaza. Other than Zaid, Hindah's husband never performed the duties of Imam or Khatib throughout his life. Despite these reasons, after the death of her husband, Hindah, based on the instigation of a few people, wants to remove Zaid from the mentioned service without any cause and appoint Amr, her son-in-law, in place of Zaid by the order of a ruler. Hindah is Zaid's aunt. So, with the permission and help of the woman, without the consent of the Muslim community, can Amr perform Imamate and Khitabat or not? Please explain with documentary evidence.

The Answer: A woman who does not hold sovereign power, and similarly, any ruler other than the Sultan of Islam or his authorized deputy, appointing any person as a Khatib or Imam for Friday prayers is not valid at all. Friday prayer will not be fulfilled

by such a person's sermon or leading of prayer, as the permission of the Sultan of Islam is a condition for it. Only the person appointed by him or authorized by his appointee can be the Khatib and Imam, no one else. It is stated in Durr-ul-Mukhtar: "For the validity of the Friday prayer, the presence of the Sultan or his appointee for the establishment of the Friday prayer is a condition. The jurists said: the governor of the city establishes it, then the police chief, then..." It is necessary for the validity of the Friday prayer to have the Sultan or his appointee for the establishment of the Friday prayer, as the jurists have stated.

जिल्द अष्टम

फ़तावा रज़विया

मसला १४०५: कस्बा सिरसी, मोहल्ला बूचड़ खाना कलां, परगना संभल, जिला मुरादाबाद से। प्रेषक: हाफ़िज़ खुदा बख्श और शेख अब्दुल अज़ीज़। १ जुल-क़ादा १३३९ हिजरी। धर्म के विद्वान और दीन की शरीयत के मुफ़्ती इस बारे में क्या कहते हैं कि नजद संप्रदाय के लोग जगह-जगह घूमते हैं और मोमिनों (मुसलमानों) को बहकाते फिरते हैं। उनका बयान सुनने के लिए कोई नहीं रुकता, तो उन्होंने अब यह चाल चली है कि जुमे के खुत्बे (भाषण) के समय गुमराह करना शुरू करते हैं और इसे खुत्बा कहते हैं। इस संप्रदाय का क्या हुक्म है और क्या जुमे का खुत्बा वास्तव में उर्दू में जायज़ भी है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: उत्तर: वहाबी लोग काफ़िर और मुरतद (धर्मत्यागी) हैं जैसा कि हरमैन शरीफ़ैन (मक्का और मदीना) के विद्वानों के फतवे "हुसामुल हरमैन" से स्पष्ट है। उनका खुत्बा बातिल (अमान्य) है, उनकी नमाज़ बातिल है, उनके पीछे नमाज़ पढ़ना बिल्कुल वैसा ही बातिल है जैसे किसी हिंदू या ईसाई के पीछे पढ़ना। उर्दू में खुत्बा पढ़ना सुन्नत-ए-मुतवारिसा (पुरानी परंपरा) के खिलाफ है और बहुत बुरा है। वहाबियों के तरीके से तो यह असल ईमान में खलल डालने वाला है क्योंकि यह बिदअत (नई इजाद) है, और उनके पास तो हर बिदअत असल ईमान में खलल डालने वाली है, हालांकि उनके पास ईमान है ही नहीं। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। उज्जैन, ग्वालियर से, मौलवी याकूब अली खान द्वारा भेजा गया। १५ जमादी-उल-आखिर १३०९ हिजरी।

मसला १४०६: धर्म के विद्वान और दीन की शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या कहते हैं कि ज़ैद एक कस्बे में पीढ़ियों से शासक के हुक्म और मुसलमानों की सहमति से काज़ी (न्यायाधीश) के पद पर तैनात है। वह इमामत, खिताबत, ईद की नमाज़ और काज़ी के पद से जुड़े सभी काम करता है। ज़ैद के अलावा हिंदा के पति ने अपनी पूरी उम्र में कभी इमामत या खिताबत नहीं की। इन कारणों के बावजूद, पति की मृत्यु के बाद, हिंदा कुछ लोगों के उकसावे पर ज़ैद को बिना किसी वजह के उक्त सेवा से हटाकर अम्र को, जो उसका दामाद है, शासक के आदेश से ज़ैद की जगह नियुक्त करना चाहती है। हिंदा ज़ैद की चाची है। तो क्या महिला की अनुमति और सहायता से, मुसलमानों की सहमति के बिना, अम्र इमामत और खिताबत कर सकता है या नहीं? किताबी प्रमाण के साथ समझाएं।

जवाब: उत्तर: एक महिला जिसके पास सत्ता न हो, और इसी तरह सुल्तान-ए-इस्लाम (इस्लामी शासक) या उसके अधिकृत नायब (प्रतिनिधि) के अलावा किसी और हाकिम (शासक) द्वारा किसी व्यक्ति को खतीब या जुमे का इमाम नियुक्त करना बिल्कुल मान्य नहीं है। न ही ऐसे व्यक्ति के खुत्बा पढ़ने या नमाज़ पढ़ाने से जुमा अदा होगा क्योंकि इसमें सुल्तान-ए-इस्लाम की अनुमति शर्त है। जिसे उसने नियुक्त किया या उसके नियुक्त व्यक्ति ने अनुमति दी, वही खतीब और इमाम हो सकता है, दूसरा नहीं। 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है: "जुमे की नमाज़ की वैधता के लिए सुल्तान या जुमा कायम करने के लिए उसके नियुक्त व्यक्ति का होना शर्त है। फुकहा (न्यायविदों) ने कहा कि शहर का अमीर (गवर्नर) इसे कायम करे, फिर पुलिस प्रमुख, फिर..." जुमे की नमाज़ की सेहत (वैधता) के लिए सुल्तान या जुमा कायम करने के लिए उसके नियुक्त व्यक्ति का होना ज़रूरी है, जैसा कि फुकहा ने फ़रमाया।

पेज ४६९/६७३

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

مسئلہ ۱۴۰۵: از قصبہ سرسی محلہ بوچڑ خانہ کلاں پرگنہ سنبھل ضلع مراد آباد مسئولہ حافظ خدا بخش و شیخ عبدالعزیز یکم ذی القعدہ ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین کہ فرقہ نجدیہ کے اشخاص جابجا گشت کرتے ہیں اور مومنین مومنات کو بہکاتے پھرتے ہیں ان کا بیان سننے کو کوئی نہیں ٹھہرتا، تو انھوں نے اب یہ کید کیا ہے کہ بوقت خطبہ جمعہ اغوا شروع کرتے ہیں اور اس کا نام خطبہ رکھتے ہیں، یہ فرقہ کیا حکم رکھتا ہے اور خطبہ جمعہ دراصل اردو میں جائز بھی ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: وہابیہ کفار مرتدین ہیں جیسا کہ علمائے حرمین شریفین کے فتوے "حسام الحرمین" سے ظاہر ہے، ان کا خطبہ باطل، ان کی نماز باطل، ان کے پیچھے نماز باطل محض جیسے کسی ہندو یا نصرانی کے پیچھے، اور اردو میں خطبہ پڑھنا سنت متوارثہ کا خلاف اور بہت برا ہے، اور وہابیہ کے طور پر تو اصل ایمان میں خلل انداز ہے کہ بدعت ہے اور ان کے نزدیک ہر بدعت اصل ایمان میں خلل انداز اگرچہ ان کے پاس سرے ہی سے نہیں واللہ تعالی اعلم از اوجین گوالیار مرسلہ مولوی یعقوب علی خاں ۱۵ جمادی الآخرہ ۱۳۰۹ھ

مسئلہ ۱۴۰۶: کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ زید ایک قصبہ میں نسلاً بعد نسلاً مسند قضا پر بحکم حاکم و اتفاق جماعت مسلمانان مامور ہے اور امامت و خطابت اور نماز عیدین بلکہ تمام کاروبار متعلقہ عہدہ قضا کرتا ہے اور سوائے زید کے شوہر ہندہ نے تمام عمر امامت و خطیبی نہ کی باوجود ان وجوہات کے ہندہ نے بعد وفات شوہر اپنے کے بشارت چند کس

زید کو بلا وجہ خدمت مذکور سے علیحدہ کرکے عمر و داماد اپنے کو بحکم حاکم قائم مقام زید کیا چاہتی ہے، ہندہ چچی زید ہے تو باجازت واعانت عورت بلا استرضائے اقوام اہل اسلام عمر و امامت و خطابت کر سکتا ہے یا نہیں؟ بسند کتاب بیان فرمائیں۔

الجواب: عورت کہ سلطنت نہ رکھتی ہو اور اسی طرح سلطانِ اسلام یا اس کے نائب ماذون کے سوا کسی حاکم کا کسی شخص کو خطیب یا امام جمعہ مقرر کرنا اصلاً معتبر نہیں، نہ ایسے شخص کے خطبہ پڑھنے یا نماز پڑھانے سے جمعہ ادا ہوسکے کہ اس میں اذنِ سلطانِ اسلام شرط ہے جسے اس نے مقرر کیا یا اس کے مقرر کئے ہوئے نے اذن دیا وہی خطیب وامام ہوسکتا ہے دوسرا نہیں، در مختار میں ہے: الجمعة شرط لصحتها السلطان اومأموره باقامتها قالوا يقيمها امير البلد ثم الشرطی ثم صحت جمعہ کے لئے سلطان یا اس کے مامور برائے اقامت جمعہ کا ہونا ضروری ہے فقہاء نے فرمایا

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Arabic Box Text]: The Judge (Qadi), then whoever the Chief Judge (Qadi al-Quda) has appointed. (Al-Multaqat) [Urdu Translation]: Friday prayer should be established by the Amir or the city [authority], then the accountant (muhasib), then the Judge (Qadi), and then the person appointed by the Chief Judge (Qadi al-Quda). (Summarized)

So, if Zaid's ancestors were appointed to this position by the Islamic Sultanate, and those orators and leaders (Khatibs and Imams) continued to appoint their descendants as deputies one after another until it reached Zaid, then Zaid himself would be considered appointed to this position by the Islamic Sultans. In his presence, if all the residents of the city wish to appoint another person as Imam or Khatib without his permission, it would never be permissible, nor would anyone's sermon or leadership (Imamat) be valid without his permission. It is mentioned in Radd al-Muhtar:

[Arabic Box Text]: Permission from the Sultan is only required for the first time. Once he grants permission to someone to establish it, that person can give permission to another, and that other can give permission to yet another, and so on. Its establishment is not valid except for the one whom the Sultan has permitted, whether directly or indirectly. As for without that, it is not valid. (Summarized) [Urdu Translation]: The Sultan's permission is a condition for the first time. When the Sultan grants permission to a person for establishing Friday prayers, that person can permit another person. Similarly, that person can proceed further. The Friday prayer can be established by the one who has the Sultan's permission, whether the permission is direct or indirect. However, if there is no permission, he cannot establish the Friday prayer. (Summarized)

And if it is not so, i.e., his ancestors were not appointed by the Islamic Sultans or they did not appoint him as a deputy, nevertheless, while he himself is appointed to the leadership and sermonizing (Imamat and Khatabat) with the consensus of the Muslims, then in our times and cities, he is undoubtedly the correct legal (Shari') Imam and Khatib. For where there is no Sultan, the authority for this matter lies in the hands of the general Muslims; whoever they appoint, his appointment is correct. It is mentioned in Durr al-Mukhtar:

[Arabic Box Text]: The appointment of the Khatib by the general public is not valid in the presence of those mentioned as leaders. In their absence, it is permissible out of necessity. [Urdu Translation]: The appointment of a Khatib by the general public is

not valid in the presence of the aforementioned individuals. If none of them are present, it will be permissible due to necessity.

So in this case too, no other person is authorized to lead the prayer or deliver the sermon without Zaid's permission, because ultimately he is the legal (Shari') Khatib.

1 Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/109-110. 2 Radd al-Muhtar, Chapter of Friday, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/592. 3 Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/110.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

इसलिए, यदि ज़ैद के पूर्वज इस्लामी सल्तनत द्वारा इस पद पर नियुक्त किए गए थे और वे उपदेशक और इमाम (खतीब और इमाम) एक के बाद एक अपनी संतानों को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करते रहे यहाँ तक कि यह ज़ैद तक पहुँचा, तो ज़ैद को स्वयं इस्लामी सुल्तानों की ओर से इस पद पर नियुक्त माना जाएगा। उसकी उपस्थिति में, यदि शहर के सभी निवासी उसकी अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति को इमाम या खतीब नियुक्त करना चाहें, तो यह कदापि स्वीकार्य नहीं होगा, और न ही उसकी अनुमति के बिना किसी का प्रवचन या नेतृत्व (इमामत) मान्य होगा। रद्द अल-मुह्तार में उल्लेखित है:

अरबी बॉक्स पाठ: सुल्तान की अनुमति केवल पहली बार आवश्यक है। एक बार जब वह किसी को इसे स्थापित करने की अनुमति दे देता है, तो वह व्यक्ति किसी अन्य को अनुमति दे सकता है, और वह अन्य किसी और को, और इसी तरह आगे भी। इसकी स्थापना केवल उसी के लिए मान्य है जिसे सुल्तान ने सीधे या परोक्ष रूप से अनुमति दी हो। इसके बिना, यह मान्य नहीं है। (संक्षिप्त) उर्दू अनुवाद: सुल्तान की अनुमति पहली बार की शर्त है। जब सुल्तान किसी व्यक्ति को जुमा की नमाज़ कायम करने की अनुमति दे देता है, तो वह व्यक्ति किसी दूसरे को अनुमति दे सकता है। इसी तरह वह आगे भी ऐसा कर सकता है। जुमा वही व्यक्ति कायम कर सकता है जिसे सुल्तान की अनुमति प्राप्त हो, चाहे वह अनुमति प्रत्यक्ष हो या परोक्ष। लेकिन यदि अनुमति नहीं है, तो वह जुमा कायम नहीं कर सकता। (संक्षिप्त)

और यदि ऐसा नहीं है, यानी उसके पूर्वज इस्लामी सुल्तानों द्वारा नियुक्त नहीं किए गए थे या उन्होंने उसे प्रतिनिधि नियुक्त नहीं किया था, फिर भी जबकि वह स्वयं मुसलमानों की सहमति से इमामत और खतावत (नेतृत्व और प्रवचन) पर नियुक्त है, तो हमारे समय और शहरों में वह निस्संदेह सही शरीयत (कानूनी) इमाम और खतीब है। क्योंकि जहाँ सुल्तान नहीं होता, वहाँ इस मामले का अधिकार आम मुसलमानों के हाथ में होता है; वे जिसे नियुक्त करें, उसकी नियुक्ति सही है। दुर्र अल-मुख्तार में है:

अरबी बॉक्स पाठ: आम जनता द्वारा खतीब की नियुक्ति इमामों के रूप में ऊपर वर्णित व्यक्तियों की उपस्थिति में मान्य नहीं है। उनकी अनुपस्थिति में, आवश्यकतावश यह स्वीकार्य होगा। उर्दू अनुवाद:

आम जनता द्वारा खतीब को नियुक्त करना ऊपर बताए गए व्यक्तियों की मौजूदगी में मान्य नहीं है। और अगर उनमें से कोई न हो, तो ज़रूरत की वजह से यह जायज़ होगा।

तो इस स्थिति में भी, ज़ैद की अनुमति के बिना कोई अन्य व्यक्ति नमाज़ पढ़ाने या प्रवचन देने का हकदार नहीं है क्योंकि अंततः वह शरीयत के अनुसार खतीब है।

1 दुर्र अल-मुख्तार, बाब उल-जुमा, मुस्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/109-110. 2 रद्द अल-मुह्तार, बाब उल-जुमा, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 1/592. 3 दुर्र अल-मुख्तार, बाब उल-जुमा, मुस्तबाई प्रेस, दिल्ली, 1/110.

القاضي ثم من ولاه قاضي القضاة ۱ اھ ملتقطاً | کہ جمعہ امیر یا شہر قائم کرے اس کے بعد محاسبہ پھر قاضی پھر وہ شخص جسے قاضی القضاۃ نے مقرر کیا ہوا ھ اختصاراً (ت)

پس اگر آباء واجدادِ زید سلطنت اسلام سے اس عہدہ پر از جانبِ سلاطین اسلام مقرر تھے اور وہ خطباء وائمہ یکے بعد دیگرے اپنی اولاد میں ایک دوسرے کو نائب کرتے آئے یہاں تک کہ یہ نہایت زید تک پہنچی تو زید خود سلاطین اسلام کی طرف سے اس عہدہ پر مامور گنا جائے گا اور اس کے ہوتے ہوئے اگر تمام اہل شہر بے اس کے اذن کے دوسرے کو امام یا خطیب مقرر کرنا چاہیں گے ہرگز جائز نہ ہو گانہ بغیر اس کی اجازت کے کسی کی خطبہ خوانی یا امامت صحیح ہو گی، ردالمحتار میں ہے:

الاذن من السلطان انما یشترط في اول مرة فاذا اذن باقامتها لشخص کان له ان یأذن لغیره وذلك الغیرله ان یأذن لاخر وهلم جرا ولا تصح اقامتها الا لمن اذن له السلطان بواسطة او بدونها اما بدون ذلك فلا ۲ اھ ملخصاً | سلطان کا اذن پہلی دفعہ شرط ہے جب سلطان کسی شخص کو اقامتِ جمعہ کا اذن جاری کر دے تو وہ شخص کسی دوسرے کو اجازت دے سکتا ہے اسی طرح وہ آگے ایسا کر سکتا ہے، اقامتِ جمعہ وہ قائم کر سکتا ہے جس کو اذنِ سلطان حاصل ہو خواہ بلاواسطہ اذن ہو یا بالواسطہ ۔ لیکن اگر اذن نہیں تو جمعہ قائم نہیں کر سکتا اھ تلخیصاً (ت)

اور اگر ایسا نہیں یعنی اس کے اجداد جانب سلاطین اسلام سے مامور نہ تھے یا اس کی انہوں نے نائب نہ کیا تاہم جبکہ یہ خود باتفاق مسلمین امامت وخطابت پر مامور ہے تو ہمارے اعصار وامصار

میں بلاریب امام وخطیب صحیح شرعی ہے کہ جہاں سلطان نہ ہو اس امر کا اختیار عامہ مسلمین کے ہاتھ ہوتا ہے وہ جسے مقرر کر دیں اسی کا تقرر ٹھیک ہے، در مختار میں ہے:

نصب العامة الخطیب غیر معتبر مع وجود من ذکر اماماً مع عدمھم فیجوز للضرورة ۳ ۔ | عوام کا خطیب کو مقرر کرنا مذکورہ افراد کے ہوتے ہوئے معتبر نہیں اور اگر ان میں سے کوئی نہ ہو تو ضرورت کی وجہ سے جائز ہو گا (ت)

تو اس صورت میں بھی دوسرا کوئی شخص بغیر اذن زید کے امامت وخطابت کا مجاز نہیں کہ آخریہ خطیبِ شرعی ہے

1 درمختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۰-۱۰۹ 2 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۹۲ 3 درمختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۰

And without the permission of the Sharia-designated khatib (sermonizer), no one else can lead the prayer or deliver the sermon. It is stated in Radd al-Muhtar:

"His statement: 'If someone led the prayer without the permission of the khatib, it is not permissible.' Its literal meaning indicates that the khatib himself delivered the sermon, but another person led the prayer without his permission. Similar to this is the case when someone gave the sermon without the khatib's permission, because it is mentioned in Al-Khaniyah etc., that if someone delivered the sermon without the Imam's permission while the Imam was present, it is not permissible." (T)

Yes, in this situation, if the general body of Muslims, who were agreed on the appointment of Zaid until today, now agree on the dismissal of Zaid due to a Sharia-compliant reason and appoint another person, then in this case Zaid will be considered dismissed and the appointment of the second person will be correct and acceptable. The ignorant action of a woman or the participation and assistance of a non-Islamic ruler is purely useless and futile, as only the one who had the authority to appoint has the authority to dismiss from any position. Originally, this authority belongs to the Sultan of Islam, and by necessity, to the Muslim congregations, not to a woman or the rulers of a non-Islamic state, as is evident to anyone who has even a minimal understanding of jurisprudence. (T) And Allah Almighty knows best.

Issue 170: From Banaras, Kandi Garh Tolah, Masjid Bibi Raji Shafakhana, sent by Molvi Abdul Ghafoor, Jumada al-Ula 1313 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: A person started the intention for four rak'ahs of Sunnah on Friday, after which the Imam started the sermon. Now, should he perform salam after two rak'ahs or complete the full four rak'ahs? The differences among the Hanafi scholars on this are known to you, but a small sample is listed below:

In Durr al-Mukhtar, in the chapter on Friday: "If the Imam comes out while he is performing Sunnah or after standing up for the third rak'ah of Nafil, he should complete it according to the more correct opinion and lighten the recitation." Also, in the chapter on catching the obligatory prayer, the same is mentioned for the Sunnah of Zuhr.

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/593-94.
2. Durr al-Mukhtar, Chapter on Friday, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/113.

फ़तावा रज़विया - भाग 8

और शरीयत द्वारा नियुक्त खतीब की अनुमति के बिना दूसरा व्यक्ति इमामत या खिताबत नहीं कर सकता। रद्दु अल-मुह्तार में है:

उनका कथन है, "यदि किसी ने खतीब की अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ाई तो यह जायज़ नहीं है।" इसका प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि खतीब ने स्वयं खुतबा दिया लेकिन दूसरे व्यक्ति ने उसकी अनुमति के बिना नमाज़ पढ़ा दी। इसी के समान वह स्थिति भी है जब किसी ने खतीब की अनुमति के बिना खुतबा दे दिया, क्योंकि खानिया आदि में है कि यदि किसी ने इमाम की अनुमति के बिना खुतबा दिया और इमाम उपस्थित था, तो यह जायज़ नहीं है। (त)

हाँ, इस स्थिति में यदि आम मुसलमान, जो आज तक ज़ैद की नियुक्ति पर सहमत थे, अब किसी शरीयत सम्मत कारण से ज़ैद को बर्खास्त करने पर सहमत हो जाएँ और किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त कर दें, तो ऐसी स्थिति में ज़ैद बर्खास्त माना जाएगा और दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति सही और स्वीकार्य होगी। किसी महिला की अज्ञानी हरकत या किसी गैर-इस्लामी शासक की भागीदारी और सहायता पूरी तरह से बेकार और निष्फल है, क्योंकि किसी पद से बर्खास्त करने का अधिकार केवल उसी के पास होता है जिसे नियुक्त करने का अधिकार था। मूल रूप से यह अधिकार सुल्तान-ए-इस्लाम का है, और आवश्यकतानुसार मुस्लिम समुदायों का है, न कि किसी महिला या गैर-इस्लामी राज्य के शासकों का, जैसा कि उस व्यक्ति के लिए स्पष्ट है जिसे फ़िक़्ह (इस्लामी कानून) की न्यूनतम समझ भी है। (त) और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 170: बनारस, कंडी गढ़ टोला, मस्जिद बीबी राजी शफाखाना से, प्रेषक मौलवी अब्दुल गफूर, जमादी अल-उला 1313 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं: एक व्यक्ति ने शुक्रवार के दिन चार रकात सुन्नत की नीयत बांधी, उसके बाद इमाम ने खुतबा शुरू कर दिया। अब क्या वह दो रकात पढ़कर सलाम फेर दे या पूरी चार रकात पढ़े? हनफ़ी विद्वानों के बीच इस पर जो मतभेद हैं, वे आपको ज्ञात हैं, लेकिन नमूने के तौर पर कुछ नीचे दिया गया है:

दुर्रुल मुख्तार के जुमा के अध्याय में है: "यदि इमाम खुतबे के लिए बाहर आ जाए जबकि वह सुन्नत पढ़ रहा हो या नफ़िल की तीसरी रकात के लिए खड़ा हो गया हो, तो सही राय के अनुसार उसे पूरा

करना चाहिए और किराअत (पाठ) में कमी करनी चाहिए।" साथ ही, 'फर्ज नमाज़ पाने' (इदराक अल-फ़रीज़ा) के अध्याय में ज़ुहर की सुन्नत के बारे में भी यही है।

1. रद्दु अल-मुह्तार, जुमा का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र द्वारा मुद्रित, 1/593-94।
2. दुर्रुल मुख्तार, जुमा का अध्याय, मुतबा मुजतबाई, दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/113।

पृष्ठ 673 में से 471

اور خطیب شرعی کے بے اجازت دوسرا امامت یا خطابت نہیں کرسکتا، ردالمحتار میں ہے:

قولہ "اگر کسی نے اذن خطیب کے بغیر نماز پڑھائی تو جائز نہیں" اس کا ظاہر بتارہا ہے کہ خطیب نے خود خطبہ دیا مگر نماز اس کی اجازت کے بغیر دوسرے نے پڑھادی اور اسی کی مثل وہ صورت ہے جب بلا اجازت خطیب کسی نے خطبہ دے دیا، کیونکہ خانیہ وغیرہ میں ہے کہ اگر کسی نے بغیر اجازتِ امام خطبہ دیا اور امام حاضر تھا تو یہ جائز نہیں۔ اھ (ت)

ہاں اس صورت میں اگر عامہ مسلمین جیسے آج تک تقرر زید پر متفق رہے اب بوجہ شرعی معزولی زید پر متفق ہو جائیں اور دوسرے شخص کو قائم کردیں تو اس صورت میں زید معزول اور دوسرے کا تعین صحیح ومقبول ہوگا صرف عورت کی جاہلانہ حرکت یا حاکم سلطنت غیر اسلامی کی شرکت ومعانت محض بیکار وبے سود ہے کہ کسی منصب سے معزول کرنے کا اسی کو اختیار ہوتا ہے جسے مقرر کرنے کا اختیار تھا وہ اصالۃً سلطانِ اسلام ہے اور ضرورۃً جماعاتِ مسلمین نہ کہ عورت یا حکام سلطنتِ غیر اسلام کما لا یخفی علی من لہ بالفقہ ادنی الالمام (جیسا کہ یہ ہر اس شخص پر واضح ہو جو فقہ میں ادنیٰ سا درک رکھتا ہے۔ ت) واللہ تعالیٰ اعلم۔

مسئلہ ۱۷۰: از بنارس محلہ کندی گڑھ ٹولہ مسجد بی بی راجی شفاخانہ مرسلہ مولوی عبدالغفور صاحب جمادی الاولی ۱۳۱۳ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک شخص نے بروز جمعہ نیت چار رکعت سنت کی باندھی، بعدہ، امام نے خطبہ شروع کیا اب وہ دو رکعت پڑھ کر سلام کرے یا چار رکعت پوری پڑھے اس میں جو کچھ اختلاف درمیان علمائے حنفیہ سے ہے وہ جناب پر ظاہر ہے لیکن بطورِ نمونہ قدرے درج ذیل ہے:

درمختار کے باب الجمعہ میں ہے کہ اگر امام آگیا اور نمازی سنن ادا کر رہا تھا یا نفل کی تیسری رکعت کی طرف کھڑا ہوا تو صحیح قول کے مطابق اسے مکمل کرلے اور قراءت میں تخفیف کرے، اس کے باب ادراک الفریضہ میں بھی یہی ہے

1. ردالمحتار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۵۹۳-۹۴
2. در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۳

Fatawa Razawiyya - Volume 8

And similarly, regarding the Sunnah of Zuhr and the Sunnah of Jumu'ah, if the Iqamah (Takbir) is called or the Imam starts the sermon, according to the predominant view, one should complete four rak'ahs because they are under the ruling of a single prayer. Here, breaking it off would not be completion but rather invalidation, contrary to what Al-Kamal preferred. And in Alamgiriyyah, it is mentioned that if someone was in the initial Sunnahs of Zuhr or Jumu'ah and the Takbir was called or the sermon started, he should finish at the end of two rak'ahs; this is narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah Almighty have mercy on him). Some have said to complete it, as in Al-Hidayah, and this is the most correct view, as stated in Muhit al-Sarkhasi, and it is correct as in Siraj al-Wahaj. In Sagheeri Sharh Munyah, it is mentioned that when the Imam ascends the pulpit, it is obligatory for the people to leave the prayer, etc. In the marginalia of Radd al-Muhtar on Al-Durr al-Mukhtar regarding what Al-Kamal preferred, where he said: It is said he should stop at the end of two rak'ahs, and this is the predominant view because their makeup (qada) is possible after the obligatory (fard) prayer, and ending with Salaam at two rak'ahs is not an invalidation of them. Thus, now listening to the sermon which is obligatory will not be missed, and the performance of the Sunnahs will also be done in a complete manner. I say: The apparent meaning of Al-Hidayah is that this is their chosen view, and upon this have proceeded Al-Multaqa, Nur al-Idah, Al-Mawahib, Jumu'at al-Durar, and Fayd in Shurunbulaliyyah.

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on 'Attaining the Obligatory Prayer', printed at Mujtabai, Delhi, 1/99.
2. Fatawa Hindiyyah, Chapter Ten on 'Attaining the Obligatory Prayer', printed at Nurani Kutub Khana, Peshawar, 1/120.
3. Sagheeri Sharh Munyah al-Musalli, Section on 'Friday Prayer', printed at Matba' Mujtabai, Delhi, p. 280.

फतावा रज़विया - जिल्द 8

और इसी तरह जुहर की सुन्नत और जुमा की सुन्नत में अगर तकबीर (इकामह) कही जाए या इमाम खुत्बा शुरू कर दे, तो राजिह (प्रबल) कौल के मुताबिक वह चार रकात मुकम्मल करे क्योंकि यह एक ही नमाज़ के हुक्म में है। यहाँ तोड़ना मुकम्मल करना नहीं बल्कि बातिल (अमान्य) करना होगा, इसके खिलाफ है जिसे कमाल ने तरजीह दी। और आलमगीरिया में है कि अगर कोई शख्स जुहर और जुमा की पहली सुन्नतों में था और तकबीर कही गई या खुत्बा शुरू हो गया, तो दो रकात अदा करके खत्म कर दे; यह इमाम अबू यूसुफ रहमतुल्लाह अलैह से मन्कूर (वर्णित) है। और कुछ ने कहा कि मुकम्मल करे जैसा कि हिदाया में है, और यही असह (सबसे सही) है जैसा कि मुहीते सरखसी में है, और यही सही है जैसा कि सिराजुल वहाज में है। सगीरी शर्ह मुनिया में है कि जब इमाम मिंबर पर चढ़े तो लोगों पर नमाज़ का छोड़ देना लाज़िम है आदि। रद्दुल मुहतार अल दुर्रुल मुख़्तार के हाशिये (टिप्पणी) में उस बारे में है जिसे कमाल ने तरजीह दी जहाँ उन्होंने कहा: कहा गया है कि दो रकातों पर इख़्तिताम (समाप्त) कर दे और यही राजिह है क्योंकि फराइज (अनिवार्य नमाज़) के बाद उनकी कज़ा मुमकिन है और दो रकातों पर सलाम फेरना उनका इब्ताल (अमान्य करना) भी नहीं। पस अब खुत्बा सुनना जो फर्ज है वह भी फौत (छूट) न होगा और कामिल तरीके पर सुन्नतों की अदायगी भी हो जाएगी। मैं कहता हूँ: हिदाया का ज़ाहिर यही है कि यह उनका मुख्तार (पसंदीदा) है, इसी पर मुल्तका, नूरुल ईज़ाह, अल-मवाहिब, जुमअतुल दुरर और फैज़ में है, शरनबलालीया में...

1. दुर्रुल मुख़्तार, बाब 'इदराक अल-फरीज़ा', मुतबुआ मुज्तबाई दिल्ली, 1/99.
2. फतावा हिन्दिया, बाब दहम 'इदराक अल-फरीज़ा', मुतबुआ नूरानी कुतुब खाना पेशावर, 1/120.
3. सगीरी शर्ह मुनिया अल-मुसल्ली, फसल 'नमाज़े जुमा', मुतबुआ मतब' मुज्तबाई दिल्ली, पृ. 280.

पृष्ठ 472/673

اور اسی طرح سنت ظہر اور سنت جمعہ میں اگر تکبیر کہی جائے یا امام خطبہ شروع کردے تو قولِ راجح کے مطابق وہ چار رکعت مکمل کرے کیونکہ یہ ایک ہی نماز کے حکم میں ہے یہاں انقطاع، اکمال نہیں بلکہ ابطال ہوگا، اس کے خلاف ہے جسے کمال نے ترجیح دی۔ اور عالمگیری میں ہے اگر کوئی شخص ظہر اور جمعہ کی پہلی سنتوں میں تھا تکبیر کہی گئی یا خطبہ شروع ہوگیا تو دو رکعت ادا کرکے ختم کردے یہ امام ابویوسف رحمہ اللہ تعالیٰ سے مروی ہے اور بعض نے کہا کہ تمام کرے اسی طرح ہدایہ میں ہے اور یہی اصح ہے، محیطِ سرخسی میں یہی ہے اور یہی صحیح ہے، اسی طرح سراج الوہاج میں ہے، صغیری شرح منیہ میں ہے جب امام منبر پر چڑھے تو لوگوں میں نماز کا ترک کردینا لازم ہے الخ حاشیہ ردالمحتار علی الدرالمختار میں متعلق، لما رجحہ الکمال کے بارے میں ہے کہ بعض نے کہا دو رکعتوں پر اختتام کردے یہی راجح ہے کیونکہ فرائض کے بعد ان کی قضا ممکن ہے اور دو رکعات پر سلام ان کا ابطال بھی نہیں، پس اب خطبہ کا سننا جو فرض ہے وہ بھی فوت نہ ہوگا اور کامل طریقہ پر سنن کی ادائیگی بھی ہوجائے گی۔ اقول: ہدایہ کا ظاہر یہی کہ یہ ان کا مختار ہے، اس پر ملتقٰی ، نور الایضاح، المواہب، جمعۃ الدرر اور فیض میں ہے شرنبلالیہ میں

1. درمختار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مجتبائی دہلی 99/1
2. فتاویٰ ہندیہ الباب العاشر فی ادراک الفریضہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور 120/1
3. صغیری شرح منیہ المصلی فصل فی صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص 280

(Left box - Arabic quotes): [Mentioned in] Jumu'ah ad-Durar and al-Fayd, and it was attributed in ash-Shurunbulaliyah to al-Burhan. It was mentioned in al-Fath that it was narrated from as-Saghdi that he returned to it when he saw it in an-Nawadir from Abu Hanifa. Also, as-Sarakhsi and al-Baqali inclined towards it. In al-Bazzaziyah, it says that Qadi an-Nasafi returned to it. The apparent meaning of al-Maqdisi's speech indicates an inclination towards it. It is quoted in al-Hilyah from the speech of his teacher al-Kamal, who then said, "And it is as he said, etc." In Sharh al-Wiqayah: When the Imam comes out, prayer becomes forbidden. In 'Umdat al-Ri'ayah, the commentary on Sharh al-Wiqayah by our master and teacher Mawlawi Abdul Hayy (may God have mercy on him and forgive him), it is recorded that Ishaq bin Rahwayh narrated in his Musnad from as-Sa'ib: We used to pray during the time of Umar on Friday, but when Umar came out and sat on the pulpit, we would cease the prayer, etc.

(Right box - Urdu explanation): It has been attributed to al-Burhan. In al-Fath, it is narrated from as-Saghdi that he retracted towards this because it is narrated in an-Nawadir from Imam Abu Hanifa in this manner. as-Sarakhsi and al-Baqali also inclined towards this. In al-Bazzaziyah, it is mentioned that Qadi an-Nasafi returned to this view. From al-Maqdisi's words, a clear inclination towards this is evident. In al-Hilyah, after quoting the words of Kamal, it is stated that it is exactly as mentioned, etc. In Sharh al-Wiqayah, it says that when the Imam appears, prayer becomes forbidden. In 'Umdat al-Ri'ayah, the marginal notes on Sharh al-Wiqayah by our teacher Mawlawi Abdul Hayy Sahib, it is written that Ishaq bin Rahwayh narrated in his Musnad from Hazrat Sa'ib: "We used to pray in the time of Hazrat Umar Farooq (may Allah be pleased with him) on Friday, but when Hazrat Umar (may Allah be pleased with him) would sit on the pulpit, we would terminate our prayer," etc. (T)

The Answer: Both opinions are strong and correct, and there is firm conviction and preference on both sides. However, the chosen view of this humble servant is the latter one, as the first is a narration of 'an-Nawadir' and the second is the meaning of 'Zahir al-Riwayah'. The fatwa rule is: When narrations differ, the return is to 'Zahir al-Riwayah'. The codifier of the school, our master Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on him), indicated this in 'Al-Mabsut', and he is sufficient as an authority and a guide (T). In 'Fath al-Qadeer', it says: "This was pointed out in 'Al-Asl'"

(It is pointed out in the original source, T). Along with this, there is an abundance of corrections and explicit fatwas supporting this.

1. Radd al-Muhtar, Chapter on Attaining the Obligatory Prayer, Published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/527
2. Sharh al-Wiqayah, Chapter on Friday, Published by Maktaba Rasheediyah, Delhi, 1/244
3. 'Umdat al-Ri'ayah, Marginal Notes on Sharh al-Wiqayah, Chapter on Friday, Published by Maktaba Rasheediyah, Delhi, 1/244
4. Fath al-Qadeer, Chapter on Attaining the Obligatory Prayer, Published by Maktaba Nooriyah Razawiyyah, Sukkur, 1/393

(बायां बॉक्स - अरबी उद्धरण): जुमुआ अद-दुरर और अल-फ़ैज़ में इसका उल्लेख है और 'शुरुनबुलालीया' में इसे 'अल-बुरहान' की ओर संबंद्धित किया गया है। 'अल-फतह' में उल्लेख है कि 'अस-सग़दी' से वर्णित है कि उन्होंने इस ओर तब रुजू किया जब उन्होंने इसे इमाम अबू हनीफ़ा से 'अन-नवादिर' में देखा। अस-सरखसी और अल-बकाली का भी इसी ओर झुकाव था। 'अल-बज्जाज़िया' में है कि क़ाज़ी अन-नसफी ने इस ओर रुजू किया। अल-मक़दसी की बातों से ज़ाहिर तौर पर इसी ओर झुकाव मालूम होता है। 'अल-हिल्या' में उनके उस्ताद 'अल-कमाल' की बातों को उद्धृत करते हुए कहा गया कि "यह वैसा ही है जैसा कहा गया है आदि।" 'शरह अल-विकाया' में है: जब इमाम (ख़ुतबे के लिए) बाहर आए तो नमाज़ हराम हो जाती है। 'उमदत अर-रिआया' (शरह अल-विकाया पर हाशिया) में हमारे आका और उस्ताद मौलवी अब्दुल हई साहब (जिन पर अल्लाह की रहमत हो) ने लिखा है कि इसहाक बिन राहवय्या ने अपनी मुसनद में हज़रत साइब से रिवायत की है: हम हज़रत उमर के ज़माने में जुमे के दिन नमाज़ पढ़ते थे, लेकिन जब हज़रत उमर बाहर आते और मिम्बर पर बैठ जाते, तो हम नमाज़ बंद कर देते थे, आदि।

(दायां बॉक्स - उर्दू स्पष्टीकरण): इसे अल-बुरहान की ओर श्रेय दिया गया है। फतह में अस-सग़दी से वर्णित है कि उन्होंने इस ओर इसलिए रुजू किया क्योंकि नवादिर में इमाम अबू हनीफ़ा से इसी तरह वर्णित है। सरखसी और बकाली ने भी इसी ओर झुकाव दिखाया। बज़ाज़िया में है कि क़ाज़ी नसफी ने इस ओर रुजू किया। मक़दसी के कलाम से ज़ाहिर तौर पर इसी ओर झुकाव मालूम होता है। हिल्या में कमाल का कलाम नकल करके कहा गया कि वह उसी तरह है जैसा कहा गया है आदि। शरह वकाया में है कि जब इमाम आ जाए तो नमाज़ हराम हो जाती है। उमदतुल रिआया, शरह वकाया का हाशिया, जो हमारे उस्ताद मौलवी अब्दुल हई साहब का है, उसमें लिखा है कि इसहाक बिन राहवय्या ने मुसनद में हज़रत साइब से रिवायत की है कि हम हज़रत उमर फारूक (रज़ियल्लाहु अन्हु) के दौर में नमाज़ पढ़ते थे, तो जब हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) मिम्बर पर बैठते थे तो हम नमाज़ खत्म कर देते थे आदि (त)।

जवाब: दोनों बातें मज़बूत और सही हैं और दोनों तरफ़ दृढ़ता और प्राथमिकता है। इस तुच्छ सेवक की चुनी हुई राय बाद वाली है क्योंकि पहली रिवायत 'नवादिर' की है और दूसरी 'ज़ाहिर अर-रिवाया' के अर्थ के अनुकूल है। फ़तवे का नियम है: जब रिवायतों में मतभेद हो, तो 'ज़ाहिर अर-रिवाया' की ओर लौटना चाहिए। मज़हब के संकलनकर्ता हमारे आका इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर अपनी

रहमत बरसाए) ने 'अल-मबस्त' में इसी ओर इशारा किया है और वह एक प्रमाण और मार्गदर्शक के रूप में पर्याप्त हैं (त)। 'फतह अल-क़दीर' में है: "इस ओर 'अल-अस्ल' (मूल ग्रंथ) में इशारा किया गया है" (त)। इसके साथ ही, इस पक्ष में सुधारों और स्पष्ट फ़तवों की बहुतायत भी है।

1. रद अल-मुह्तार, अध्याय: नमाज़ पाना, मुस्तफ़ा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/527
2. शरह अल-विकाया, जुमे का अध्याय, मकतबा रशीदिया, दिल्ली, 1/244
3. उमदत अर-रिआया, शरह अल-विकाया पर हाशिया, जुमे का अध्याय, मकतबा रशीदिया, दिल्ली, 1/244
4. फतह अल-क़दीर, अध्याय: नमाज़ पाना, मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 1/393

पृष्ठ 473/673

(Left box): جمعہ الدرر والفیض وعزاہ فی الشرنبلالیہ الی البرھان وذکر فی الفتح انہ حکی عن السغدی انہ رجع الیہ لما رآہ فی النوادر عن ابی حنیفۃ وانہ مال الیہ السرخسی والبقالی وفی البزازیۃ انہ رجع الیہ القاضی النسفی و ظاھر کلام المقدسی المیل الیہ ونقل فی الحلیۃ کلام شیخہ الکمال ثم قال وھو کما قال ھذا الخ فی شرح الوقایۃ اذا خرج الامام حرم الصلوۃ 2 وفی عمدۃ الرعایۃ حاشیۃ شرح الوقایۃ لمولنا واستاذنا مولوی عبدالحی صاحب مرحوم ومغفور واخرج اسحق بن راھویہ فی مسندہ عن السائب کنا نصلی فی زمن عمر یوم الجمعۃ فاذا خرج عمر وجلس علی المنبر قطعنا الصلوۃ 3 الخ

(Right box): اسے برہان کی طرف منسوب کیا گیا ہے، فتح میں ہے سغدی سے منقول ہے کہ اس کی طرف رجوع اس لئے کیا کہ نوادر میں امام ابوحنیفہ سے اسی طرح مروی ہے، اور اسی کی طرف سرخسی اور بقالی نے میلان کیا ہے اور بزازیہ میں ہے کہ اس کی طرف قاضی نسفی نے رجوع کیا، کلام مقدسی سے ظاہر اسی طرف میلان معلوم ہوتا ہے، حلیہ میں کمال کا کلام نقل کر کے کہا کہ وہ اسی طرح ہے جو یہ کہا گیا ہے الخ شرح وقایہ میں ہے جب امام آجائے تو نماز حرام ہو جاتی ہے۔ عمدۃ الرعایہ حاشیہ شرح وقایہ جو ہمارے استاذ مولوی عبدالحی صاحب کے میں لکھا ہے کہ اسحاق بن راہویہ نے مسند میں حضرت سائب سے روایت کیا کہ ہم حضرت عمر فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے دور میں نماز پڑھتے تھے تو جب حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ منبر پر بیٹھتے تو ہم نماز ختم کر دیتے تھے الخ (ت)

الجواب: دونوں قول قوی و صحیح ہیں اور دونوں طرف جزم و ترجیح اور مختار فقیر قول اخیر کہ اول روایت نوادر ہے اور ثانی مفاد ظاہر الروایہ والفتویٰ متی اختلفت فالمصیر الی ظاھر الروایۃ (جب روایات مختلف ہوں تو ظاہر الروایت کی طرف رجوع کرنا چاہئے۔ محرر المذہب سیدنا امام

محمد رحمۃ اللہ تعالیٰ نے مبسوط میں اسی کی طرف اشارہ فرمایا وناھیك بہ حجۃ وقدوۃ (اس میں وہی مقتدا کافی ہیں، ت) فتح القدیر میں ہے : الیہ اشار فی الاصل 4 (اسی کی طرف اصل میں اشارہ ہے۔ت) معہذا کثرت تصحیح وافتائے صریح بھی اسی

1 رد المحتار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۵۲۷ 2 شرح الوقایہ باب الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ رشیدیہ دہلی ۱/۲۴۴ 3 عمدۃ الرعایۃ حاشیہ شرح الوقایۃ باب الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ رشیدیہ دہلی ۱/۲۴۴ 4 فتح القدیر باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/۳۹۳

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

Towards:

“The rule is that action should be based on what the majority [scholars] are upon, as they have explicitly stated in more than one book, and we have explained it in our treatise ‘Bazl al-Jawa’iz ‘ala al-Du’a ba’da Salat al-Jana’iz’.”

And this rule is that action should be taken on that which the majority agrees upon, as the jurists have specified in several places in their books, and we have provided its details in our treatise "Bazl al-Jawa'iz ala al-Du'a ba'da Salat al-Jana'iz". (T)

The preference for the first opinion in the explicit reliable books of the verifiers that are currently with the humble servant [the author], has not been observed in any except in Khaniyah and Fath.

“As for al-Hilyah, it followed al-Fath. As for al-Maraqi, it only followed al-Burhan Sharh Mawahib al-Rahman based on the testimony of Ghunyat Dhawi al-Ahkam. As for al-Tarabulsi, he only followed the footsteps of al-Kamal, as is his habit in every discourse. He said the discourse is towards al-Kamal, despite the fact that al-Shurunbulali contradicted himself in Ghunyat al-Jumu'ah, as will follow.”

Hilyah followed Fath; Maraqi followed Burhan Sharh Mawahib al-Rahman according to the statement of Ghunyat Dhawi al-Ahkam; Tarabulsi followed [Ibn al-]Humam as is his habit in every statement, and said that the discourse points towards [Ibn al-]Humam, even though Shurunbulali contradicted himself in Ghunyat al-Jumu'ah as is coming up. (T)

And for the latter opinion, the author of al-Muhit, Imam Abdur Rashid, Imam Abu Hanifah, al-Walaji, Imam Ali bin Muhammad Qarah Shahri the author of al-Mubtaghi, Imam Zahir al-Din al-Marghinani the author of al-Zahiriyyah, Allama Shamsi, and the author of al-Siraj al-Wahhaj said: “It is the correct [opinion].” (This is the correct opinion. T) Imam Shams al-A'immah al-Sarakhsi said: “It is the more correct [opinion].” (This is the more correct opinion. T) In al-Durr al-Mukhtar: “In the more correct [opinion].” (This is in the more correct opinion. T) In the text of Tanwir it is: “Upon the preferred [opinion].” (This is according to the preferred opinion. T) In al-Bahr al-Ra'iq: “The scholars corrected it.” (The scholars have authenticated it. T) In Majma' al-Anhur: “Most of the scholars corrected it.” (Most of the scholars have authenticated it. T) Similarly, in Jami' al-Rumuz, al-Hindiyyah, al-Nahr, etc., its authentication and preference are mentioned.

[Logo: I.T. Majlis of Dawateislami]

1. Fatawa Hindiyyah with reference to al-Siraj al-Wahhaj, Chapter 10 regarding reaching the obligatory prayer, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/120.
2. Fatawa Hindiyyah with reference to Muhit al-Sarakhsi, Chapter 10 regarding reaching the obligatory prayer, printed by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/120.
3. Durr al-Mukhtar, Chapter on Friday Prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/13.
4. Durr al-Mukhtar, Chapter on reaching the obligatory prayer, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/99.
5. Bahr al-Ra'iq, Chapter on Friday Prayer, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/178.
6. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter on reaching the obligatory prayer, printed by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/141.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8

पक्ष में है:

“नियम यह है कि उस पर अमल किया जाए जिस पर बहुमत हो, जैसा कि विद्वानों ने एक से अधिक पुस्तकों में स्पष्ट किया है, और हमने इसे अपने शोध प्रबंध ‘बज़्लुल जवाइज़ अलाद-दुआ बाद सलातुल जनाइज़’ में विस्तार से बताया है।”

और नियम यह है कि अमल उस पर किया जाए जिस पर बहुमत हो, जैसा कि फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने किताबों में कई जगहों पर इसकी व्याख्या की है और हमने इसका विवरण अपने रिसाले (लेख) "बज़्लुल जवाइज़ अलद-दुआ बाद सलातुल जनाइज़" में दिया है। (त)

पहली राय की प्राथमिकता उन विश्वसनीय किताबों में जो इस समय फ़क़ीर (लेखक) के पास उपलब्ध हैं, खानिया और फ़तह के अलावा किसी और में नज़र नहीं आई।

“जहाँ तक अल-हिलया का सवाल है, उसने अल-फ़तह का अनुसरण किया। जहाँ तक अल-मराक़ी का सवाल है, उसने ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम की गवाही के अनुसार बुरहान शरह मवाहिब अल-रहमान का अनुसरण किया। जहाँ तक अल-तराबुलसी का सवाल है, उसने अल-कमाल के पदचिह्नों का अनुसरण किया, जैसा कि उसकी हर चर्चा में आदत है। उसने कहा कि चर्चा अल-कमाल की ओर है, बावजूद इसके कि अल-शुरुनबुलाली ने ग़ुनियत अल-जुमुआ में खुद अपना विरोध किया है जैसा कि आगे आएगा।”

हिलया ने फ़तह का अनुसरण किया है; मराक़ी ने ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम के बयान के अनुसार बुरहान शरह मवाहिब अल-रहमान का अनुसरण किया है; तराबुलसी ने कमाल का अनुसरण किया जैसा कि उनका हर जगह यही तरीक़ा है और कहा कि चर्चा कमाल की तरफ़ ही है, बावजूद इसके कि शुरुनबुलाली ने जुमुआ ग़ुनया में खुद अपना विरोध किया है जैसा कि आगे आ रहा है। (त)

और अंतिम राय के लिए साहिबे मुहीत, इमाम अब्दुर रशीद, इमाम अबू हनीफ़ा, अल-वलाजी, इमाम अली बिन मुहम्मद क़रा शहरी साहिबे मुब्तग़ी, इमाम ज़हीर उद्दीन अल-मरग़ीनानी साहिबे ज़हीरिया, अल्लामा शम्सी और साहिबे सिराजुल वह्हाज ने फ़रमाया: “यही सही है।” (सही राय यही है। त) इमाम शम्सुल आइम्मा सरख़सी ने फ़रमाया: “यही अधिक सही है।” (अधिक सही राय यही है। त) दुर्रे मुख़्तार में है: “अधिक सही राय में यही है।” (अधिक सही राय में यही है। त) मतन तनवीर में है:

“वरीय राय के अनुसार।” (यह वरीय राय के मुताबिक़ है। त) बह्रुर राइक़ में है: “मशाईख़ ने इसकी तस्दीक़ (पुष्टि) की है।” (मशाईख़ ने इसकी पुष्टि की है। त) मजमाउल अन्हुर में है: “अधिकांश मशाईख़ ने इसकी तस्दीक़ की है।” (अधिकांश मशाईख़ ने इसकी पुष्टि की है। त) इसी प्रकार जामेउर रुमूज़, हिन्दिया और नह्र आदि में इसकी तस्दीक़ और प्राथमिकता दर्ज है।

[प्रतीक: आई.टी. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी]

1. फ़तावा हिन्दिया, संदर्भ: अल-सिराजुल वह्हाज, अध्याय 10: फ़र्ज़ को पाने के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/120.
2. फ़तावा हिन्दिया, संदर्भ: मुहीत अल-सरख़सी, अध्याय 10: फ़र्ज़ को पाने के बारे में, नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/120.
3. दुर्रे मुख़्तार, अध्याय: जुमुआ, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/13.
4. दुर्रे मुख़्तार, अध्याय: फ़र्ज़ को पाना, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/99.
5. बह्रुर राइक़, अध्याय: जुमुआ की नमाज़, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 2/178.
6. मजमाउल अन्हुर शरह मुल्तक़ल अबहुर, अध्याय: फ़र्ज़ को पाना, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी, बेरुत, 1/141.

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

طرف ہے:

والقاعدة ان العمل بما علیه الاکثر کما نصوا علیه في غیر ما کتاب وبیناه فی رسالتنا بذل الجوائز علی الدعاء بعد صلوة الجنائز -

اور یہ قاعدہ ہے کہ عمل اس پر کیا جائے جس پر اکثریت ہو جیسا کہ فقہاء نے کتب میں متعدد جگہ اس کی تصریح کی ہے اور ہم نے اس کی تفصیل اپنے رسالے "بذل الجوائز علی الدعاء بعد صلوة الجنائز" میں دی ہے۔ (ت)

قول اول کی ترجیح صریح کتب معتمدہ مرجحین میں کہ اس وقت فقیر کے پاس ہیں خانیہ وفتح کے سوا کسی میں نظر سے نہ گزری

اما الحلیة فقد تبعت الفتح واما المراقی فانما تبع البرهان شرح مواهب الرحمن بشهادة غنیة ذوی الاحکام واما الطرابلسی فانما اقتفی اثر الکمال کما هودابه في کل مقال قال الکلام الی الکمال مع ان الشرنبلالی خالف نفسه في جمعة غنیة کما یأتي -

حلیہ نے فتح کی اتباع کی ہے، مراقی نے غنیہ ذوی الاحکام کے بیان کے مطابق برہان شرح مواہب الرحمن کی اتباع کی ہے، طرابلسی نے کمال کی اقتداء کی جیسا کہ ان کا ہر جگہ یہی طریقہ ہے اور کہا کہ کلام کمال کی طرف ہی ہے باوجودیکہ شرنبلالی نے جمعہ غنیہ میں خود اپنی مخالفت کی ہے جیسا کہ آرہا ہے۔ (ت)

اور قول اخیر کو صاحب محیط و امام عبدالرشید و امام ابوحنیفہ و لوالجی و امام علی سی بن محمد قرہ شہری صاحب مبتغی و امام ظہیر الدین مرغینانی صاحب ظہیر یہ و علامہ شمسی و صاحب

سراج وہاج نے فرمایا: ھو الصحیح (صحیح قول یہی ہے۔ت) امام شمس الائمہ سرخسی نے فرمایا: ھو الاصح (اصح قول یہی ہے۔ت) در مختار میں ہے: فی الاصح (اصح قول میں یہی ہے۔ت) متن تنویر میں ہے: علی الراجح (یہ راجح قول کے مطابق ہے۔ت) بحر الرائق میں ہے: صحح المشائخ (مشائخ نے اس کی تصحیح کی ہے۔ت) مجمع الانہر میں ہے: صححہ اکثر المشائخ (اکثر مشائخ نے اس کی تصحیح کی ہے۔ت) اسی طرح جامع الرموز و ہندیہ و نہر وغیرہما میں اس کی تصحیح و ترجیح

[لوگو: آئی ٹی مجلسِ دعوتِ اسلامی]

1 فتاوی ہندیہ بحوالہ السراج الوہاج الباب العاشر فی ادراک الفریضہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۲۰ 2 فتاوی ہندیہ بحوالہ محیط السرخسی الباب العاشر فی ادراک الفریضہ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۲۰ 3 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۳ 4 در مختار باب ادراک الفریضہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹۹/۱ 5 بحر الرائق باب صلوۃ الجمعہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۱۷۸ 6 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب ادراک الفریضہ مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۱/ ۱۴۱

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

It is mentioned here that the great Imam Mujtahid al-Fatwa Hussam-ud-Din 'Umar Sadr Shaheed (may his secret be sanctified) stated in 'Fatawa al-Sughra': "Fatwa is upon this"[1] (The Fatwa is on this. T). It is stated in 'Shurunbulaliyya':

اقول: الصحيح خلافه وهو انه ** يتم سنة الجمعة اربعا وعليه الفتوى كما في الصغرى وهو الصحيح كما فى البحر عن الولوالجية والمبتغى[2] الخ.**	I say: The correct view is contrary to it, which is that one should complete the four Sunnahs of Friday prayer, and the fatwa is based on this as stated in 'Al-Sughra'. This is the correct view as stated in 'Al-Bahr' quoting 'Al-Walwalajiyya' and 'Al-Mubtagha'[2] etc. (T)

Therefore, in 'Al-Bahr', regarding the first statement, it is said: "It is a weak statement, and Qazi Khan attributed it to 'An-Nawadir'"[3] (This is a weak statement and Qazi Khan attributed it towards Al-Nawadir. T). As for the narrations regarding cutting off, abandoning, and the prohibition of prayer upon the Imam's emergence for the sermon (Khutbah), they are not related to this discussion. These are explicitly stated and agreed upon by both parties. Their meaning is that after the Imam's emergence, one should not start any prayer (except for an obligatory prayer missed in sequence). If someone is already praying voluntary prayers (Nafl) while waiting for the Imam, they should cut short the sequence and not prolong it. It does not mean that the prayer they are currently performing becomes forbidden and they must terminate it immediately by breaking their intention (Niyyah). This is completely baseless. Otherwise, if someone had just tied their intention or prayed only one rak'ah when the Imam came out for the sermon, and it became obligatory to break the intention immediately, this is not the statement of anyone. The general texts of the books of the school of thought are consistent and concurrent on the falsity of this, as is not hidden (T). And Allah the Exalted knows best.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द 8

यहाँ तक उल्लेख है कि महान इमाम मुजतहिद अल-फतवा हुसामुद्दीन उमर सद्र शहीद (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) ने 'फ़तावा सुग़रा' में फ़रमाया: इसी पर फतवा है[1]। (फतवा इसी पर है। त) शरुन्बुलालीय्या में है:

** اقول: الصحیح خلافه وهو انه یتم سنة الجمعة اربعا وعلیه الفتوی کما في الصغری وهو الصحیح کما فی البحر عن الولوالجیة والمبتغی[2] الخ۔**

मैं कहता हूँ: सही इसके विपरीत है और वह यह है कि जुमा की चार सुन्नतें पूरी करे, और इसी पर फतवा है जैसा कि सुग़रा में है और यही सही है जैसा कि 'बहर' में 'वलवालजिय्या' और 'मुब्तग़ी'[2] आदि के हवाले से है। (त) अतः 'बहर' में पहले कथन के बारे में कहा गया: "यह एक कमज़ोर कथन है और क़ाज़ी ख़ान ने इसे 'नवादिर' की ओर मनसूब किया है"[3] (यह कमज़ोर कथन है और क़ाज़ी ख़ान ने इसकी निस्बत नवादिर की तरफ की है। त)। जहाँ तक इमाम के खुतबे के लिए निकलने पर नमाज़ को काटने, छोड़ने और हराम होने की रिवायतों का सवाल है, उनका इस बहस से कोई लेना-देना नहीं है। वे दोनों पक्षों द्वारा स्पष्ट रूप से उल्लिखित और सहमत हैं। उनका अर्थ यह है कि इमाम के निकलने के बाद कोई नमाज़ शुरू न करे (सिवाय क्रमबद्ध अनिवार्य नमाज़ के)। जो पहले से इमाम के इंतज़ार में नवाफिल आदि पढ़ रहा है, वह उस सिलसिले को छोटा कर दे, उसे लंबा न खींचे। इसका मतलब यह नहीं है कि जो नमाज़ वह पढ़ रहा है वह हराम हो गई और वह उसे काट दे या नीयत तोड़ दे। यह बिल्कुल निराधार है। अन्यथा, यदि किसी ने अभी नीयत ही बाँधी हो या केवल एक रकात पढ़ी हो कि इमाम खुतबे के लिए निकला, तो तुरंत नीयत तोड़ना अनिवार्य हो जाता, यह किसी का कहना नहीं है। मज़हब की किताबों के सामान्य ग्रंथ इसके निराधार होने पर एकमत और निरंतर हैं जैसा कि छिपा नहीं है (त)। और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है।

1 2 3 पृष्ठ 475 / 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

مذکور یہاں تک کہ امام اجل مجتہد الفتوٰی حسام الدین عمر صدر شہید قدس سرہ نے فتاوی صغری میں فرمایا : علیہ الفتوٰی 1 (فتوٰی اسی پر ہے۔ ت) شرنبلالیہ میں ہے :

** اقول: الصحیح خلافه وهو انه یتم سنة میں کہتا ہوں صحیح اس کے خلاف ہے اور وہ یہ ہے کہ
الجمعة اربعا وعلیه الفتوی کما في جمعہ کی چار سنتیں مکمل کرے، اور اسی پر فتوی ہے
الصغری وهو الصحیح کما فی البحر عن جیسا کہ صغری میں ہے اور یہی صحیح ہے جیسا کہ
الولوالجیة والمبتغی[2] الخ۔** بحر میں ولوالجیہ اور مبتغی سے ہے الخ۔(ت)

لاجرم بحر میں قول اول کی نسبت فرمایا : هو قول ضعیف وعزاه قاضی خان الی النوادر 3 (یہ ضعیف قول ہے اور قاضی خاں نے اس کی نسبت نوادر کی طرف کی ہے۔ت) رہیں روایات قطع و ترک و تحریم نماز بخروج امام للخطبہ انہیں اس مبحث سے علاقہ نہیں وہ فریقین کی منصوصہ و متفق علیہا ہیں ان کے معنی یہ ہیں کہ خروج امام کے بعد کوئی نماز (سوائے فائتہ واجب الترتیب کے) شروع نہ کرے پہلے سے جو انتظارِ امام میں نوافل وغیرہ پڑھ رہا ہے اس کا سلسلہ قطع کر دے متمادی نہ رہے نہ یہ کہ جو نماز پڑھ رہا ہے وہ حرام ہو گئی اسے قطع کردے نیت توڑ دے یہ قطعاً باطل ہے ورنہ اگر ہنوز نیت ہی باندھی یا ایک ہی رکعت پڑھی کہ امام خطبہ کے لئے خارج ہوا تو فوراً نیت توڑ دینا واجب ہو یہ کسی کا قول نہیں نصوص عامہ کتب مذہب اس کے بطلان پر متظافر و متواتر ہیں کما لا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں۔ ت) واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم

1 2 3 صفحہ 475 از 673

Fatawa Rizvia, Volume 8

Ra'ayat al-Madhhabayn fi al-Du'a' bayna al-Khutbatayn 1310 AH (Description of making supplication between the two sermons)

Issue 1408: From Kathora Station, Sine District, Surat, sent by Maulvi Abdul Haq Sahib, teacher at Madrasa Arabiya, 15 Jumadi al-Akhirah 1310 AH. In this place, on the day of Friday, during the sitting between the two sermons, supplication is made silently with raised hands. Some people declare this as severely disliked (Makruh Shadid), forbidden (Haram), an evil innovation (Bid'ah Sayyi'ah), and polytheism (Shirk), and they prohibit this act. Therefore, it is requested that an accurate answer be written which resolves the dispute and removes the conflict between Muslims.

The Answer: There is no dispute regarding the permissibility of this supplication for the Imam. For him, the absence of a prohibition from the Legislator (Allah/Prophet) is sufficient evidence. Prohibited is only that which God and His Messenger (may He be glorified and may peace and blessings of Allah be upon him) have forbidden. Nothing can ever be prohibited without their prohibition, especially something like supplication, towards which the Great Quran itself has called with absolute encouragement and emphasis, without limit or restriction, and the noble Hadiths have termed it worship and the essence of worship. Furthermore, the implication of a sound Hadith here is a correct proof for its permissibility, as the luminous Prophet, the Master of the World (may Allah's peace and blessings be upon him) himself raised his blessed hands in the middle of a sermon to pray for rain to fall on one Friday and for the sky over Medina Tayyiba to clear on another. This is narrated from the Hadith of Anas (may Allah be pleased with him) in Sahih Bukhari, Muslim, and others. Even though that required interrupting the sermon, [supplicating] between the two sermons is even more permissible. Consequently, the noble scholars have clearly stated its permissibility in commentaries on Hadith and other books. Maulana Ali Qari Makki Hanafi (may Allah have mercy on him) in 'Mirqat', the commentary...

फ़तावा रज़विया, खंड 8

रिआयातुल मज़हबैन फ़िल दुआ बेनल खुतबतैन 1310 हिजरी (दो खुतबों के बीच दुआ करने का वर्णन)

मसला 1408: कठोरा स्टेशन साइन, जिला सूरत से, मौलवी अब्दुल हक साहब, शिक्षक मदरसा अरबिया द्वारा भेजा गया, 15 जमादी अल-आखिरा 1310 हिजरी। इस स्थान पर जुमे के दिन दो खुतबों के बीच बैठने के दौरान हाथ उठाकर चुपचाप दुआ माँगी जाती है। कुछ लोग इसे 'मकरूहे शदीद', 'हराम', 'बिदअते सईया' और 'शिर्क करार देकर इस कार्य से रोकते हैं। इसलिए निवेदन है कि इसका सही उत्तर लिखकर विवाद को सुलझाएं और मुसलमानों के बीच के झगड़े को दूर करें।

उत्तर: इमाम के लिए तो इस दुआ के जायज़ होने में कोई विवाद ही नहीं है, जिसके लिए शरीयत के कानून बनाने वाले (शारेअ) की मनाही न होना ही पर्याप्त प्रमाण है। वर्जित केवल वही है जिसे ईश्वर और उसके रसूल (अल्लाह उन पर कृपा और शांति बरसाए) ने वर्जित किया हो। उनकी मनाही के बिना कोई भी चीज़ कभी वर्जित नहीं हो सकती, विशेष रूप से दुआ जैसी चीज़ जिसके लिए स्वयं महान कुरान ने बिना किसी सीमा या शर्त के पूर्ण प्रोत्साहन और ज़ोर के साथ बुलाया है, और हदीसों ने इसे 'इबादत' और 'इबादत का सार' कहा है। फिर यहाँ एक सही हदीस का संकेत इसकी अनुमति पर एक ठोस प्रमाण है कि स्वयं हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने खुतबे के दौरान अपने मुबारक हाथ उठाकर एक जुमे को बारिश के लिए और दूसरे जुमे को मदीना तैयबा से बादल हट जाने के लिए दुआ मांगी थी। यह सही बुखारी और मुस्लिम आदि में हजरत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से वर्णित है। जब कि वह खुतबे को बीच में रोकने की माँग करता था, तो दो खुतबों के बीच दुआ करना तो और भी बेहतर तरीके से जायज़ है। इसीलिए, विद्वानों ने हदीस की व्याख्याओं और अन्य पुस्तकों में स्पष्ट रूप से इसकी अनुमति दी है। मौलाना अली कारी मक्की हनफी रहमतुल्लाह अलैहि ने 'मिरक़ात' की व्याख्या में...

पृष्ठ 477 का 673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

رعایۃ المذھبین فی الدُّعاء بین الخُطبتین ۱۳۱۰ھ (دو خطبوں کے درمیان دُعا کرنے کا بیان)

مسئلہ ۱۴۰۸: از کٹھورا اسٹیشن سائن ضلع سورت مرسلہ مولوی عبد الحق صاحب مدرس مدرسہ عربیہ ۱۵ جمادی الآخرہ ۱۳۱۰ھ اس جائے پر بروز جمعہ بین الخطبتین کے جلسہ میں ہاتھ اٹھا کر دُعا آہستہ مانگی جاتی ہے اور بعض لوگ اس کو مکروہ شدید و حرام و بدعت سیئہ و شرک قرار دے کر اس فعل کو منع کرتے ہیں، لہذا التماس یہ ہے کہ اس کے جواب با صواب سے جو دافع جدال ہو تحریر فرما کر رفع خصومت بین المسلمین فرمائیں۔

الجواب: امام کے لئے تو اس دُعا کے جواز میں اصلاً کلام نہیں، جس کے لئے نہی شارع نہ ہونا ہی سند کافی، ممنوع وہی ہے جسے خدا رسول منع فرمائیں جل جلالہ و صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم، بے ان کی نہی کے ہر گز کوئی شے ممنوع نہیں ہو سکتی خصوصاً دُعا سی چیز جس کی طرف خود قرآن عظیم نے بحال ترغیب و تاکید علی الاطلاق بے تحدید و تقیید بلایا اور احادیث شریفہ نے اسے عبادت و مغز عبادت فرمایا، پھر یہاں صحیح حدیث کا فحوی الخطاب اُس کی اجازت پر دلیل صواب کہ خود حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا عین خطبہ میں دست مبارک بلند فرما کر ایک جمعہ کو مینہ برسنے اور دوسرے کو مدینہ طیبہ پر سے کھل جانے کی دُعا مانگنا، صحیح بخاری و مسلم و غیرہما میں حدیث انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی حالانکہ وہ قطع خطبہ کو مستلزم ، تو بین الخطبتین بدرجہ اولیٰ جواز ثالث، لاجرم علمائے کرام نے شروح حدیث وغیرہ کتب میں صاف اُس کا جواز افادہ فرمایا، مولانا علی قاری مکی حنفی رحمہ اللہ تعالیٰ مرقاۃ شرح

Fatawa Ridawiyyah Volume 8

In Mishkat, under the Hadith "He preaches then sits and does not speak" (The Imam delivers the sermon then sits without talking - T), it is stated:

Arabic	Urdu
"Does not speak" means he should not talk while sitting except for silent remembrance (dhikr), supplication (dua), or recitation. Recitation is preferable because Ibn Hibban narrated that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to recite the Book of Allah while sitting, etc.	"Does not speak" means he should not talk while sitting except for silent dhikr or recitation; recitation is preferable because it is narrated by Ibn Hibban that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to recite the Book of Allah while sitting, etc. (T)

Hafiz-ush-Shan Shihab al-Din Ahmad ibn Hajar al-Asqalani al-Shafi'i (may Allah have mercy on him) states regarding the same Hadith in Fath al-Bari Sharh Sahih Bukhari Sharif:

Arabic	Urdu
From this, it is inferred that sitting between the two sermons is without talking, but this does not negate that Allah may be remembered and supplications may be made silently.	Its implication is that one should sit between the two sermons without talking, but this does not negate that Allah's dhikr and supplication should also be performed silently. (T)

Allama Zarqani Maliki (may Allah have mercy on him) states in Sharh al-Mawahib al-Ladunniyyah wa al-Manah al-Muhammadiyyah:

Arabic	Urdu
Then the preacher sits and does not speak (out loud; this is not contradictory to the narration of Ibn Hibban that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to recite in it, i.e., while sitting, and the Hafiz said its meaning is as previously explained).	Then the preacher sits without conversation (i.e., does not converse loudly; this is not contrary to the narration of Ibn Hibban that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to recite in this (sitting), and the Hafiz said that its meaning is what has been stated earlier). (T)

Rather, according to a Sahih Hadith from the Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) and numerous sayings of the Companions and Successors, this sitting is during those times when the hour of acceptance of prayers on Friday is expected. It is narrated in Sahih Muslim on the authority of Hazrat Abu Musa al-Ash'ari (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said regarding the hour of Friday:

---

1. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on the Sermon and Prayer etc., published by Maktaba Imdadiyah Multan, 2/733
2. Fath al-Bari Sharh al-Bukhari, Chapter on Sitting between the Two Sermons on Friday, published by Mustafa al-Babi Egypt, 2/57
3. Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib, Second Chapter regarding the Prayer of (the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) on Friday, published by Dar al-Ma'rifat Beirut, 2/385

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

मिश्कात में, हदीस "वह खुतबा देता है फिर बैठ जाता है और बात नहीं करता" (इमाम खुतबा पढ़ता है फिर बिना बात किए बैठ जाए - त) के तहत फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू
"बात न करे" का अर्थ है कि बैठने की स्थिति में चुपचाप ज़िक्र या दुआ या क़िरात (पाठ) के अलावा बात न करे। क़िरात बेहतर है क्योंकि इब्न हब्बान की रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बैठने की स्थिति में अल्लाह की किताब की तिलावत फ़रमाते थे आदि।	न गुफ़्तगू करे यानी बैठने की हालत में आहिस्ता ज़िक्र या क़िरात के अलावा बात न करे, क़िरात औला है क्योंकि इब्न-ए-हब्बान की रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बैठने की हालत में किताबुल्लाह की तिलावत फ़रमाते थे आदि। (त)

हाफ़िज़-उश-शान शिहाब-उद-दीन अहमद इब्न हजर असक़लानी शाफ़ई (रहमहुल्लाह) इसी हदीस के संबंध में फ़तह-उल-बारी शरह सहीह बुख़ारी शरीफ में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू
इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों खुतबों के बीच बिना बातचीत के बैठना है, लेकिन यह इस बात से इनकार नहीं करता है कि चुपचाप अल्लाह का ज़िक्र और दुआ भी की जाए।	इसका मफ़ाद यह है कि दोनों खुतबों के दरमियान बिला-कलाम बैठना है लेकिन इससे इस बात की नफ़ी नहीं कि आहिस्ता अल्लाह का ज़िक्र और दुआ भी की जाए। (त)

अल्लामा ज़रक़ानी मालिकी (रहमहुल्लाह) शरह मवाहब-उद-लदुन्निय्या वल-मनाह-उल-मुहम्मदिया में फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू
फिर ख़तीब (उपदेशक) बिना बात किए बैठ जाए (यानी ऊँची आवाज़ में बात न करे; यह इब्न हब्बान की रिवायत के विपरीत नहीं है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इस (बैठने) के	फिर ख़तीब गुफ़्तगू के बगैर बैठ जाए (यानी बुलंद आवाज़ से गुफ़्तगू न करे, यह बात रिवायत-ए-इब्न-ए-हब्बान के मुनाफी नहीं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इसमें (जुलूस में) क़िरात फ़रमाते थे और हाफ़िज़ ने

अरबी	उर्दू
दौरान क़िरात करते थे, और हाफ़िज़ ने कहा कि इसका अर्थ वही है जो पहले बताया जा चुका है)।	कहा कि इसका मफ़ाद वह है जो पहले बयान हो चुका है)। (त)

बल्कि, सैय्यद-उल-मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सहीह हदीस और सहाबा और ताबिईन के कई कथनों के अनुसार, यह बैठना उन समयों में है जब जुमे के दिन दुआओं की मंज़ूरी की घड़ी की उम्मीद की जाती है। सहीह मुस्लिम शरीफ में हज़रत अबू मूसा अशअरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) के हवाले से उल्लेख है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जुमे की घड़ी के बारे में फ़रमाया:

---

1. मिरक़ात शरह मिश्कात, बाब अल-खुतबा वस-सलात आदि, मकतबा इमदादिया मुल्तान, 2/733
2. फ़तह-उल-बारी शरह अल-बुख़ारी, बाब अल-क़अदा बैन अल-खुतबतैन यौम अल-जुमुआ, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/57
3. शरह अल-ज़रक़ानी अलल-मवाहब, अल-बाब अत्त-सानी फ़ी ज़िक्र सलातहु (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अल-जुमुआ, दार अल-मअरिफ़त बैरुत, 2/385

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

مشکوۃ میں زیرِ حدیث یخطب ثم یجلس فلا یتکلم (امام خطبہ پڑھے پھر بلا گفتگو بیٹھ جائے۔ ت) فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
لا یتکلم ای حال جلوسه بغیر الذکر او الدعاء او القراءة سرا والاولی القراءة لروایة ابن حبان کان رسول الله صلی الله تعالی علیه وسلم یقرأ فی جلوسه کتاب الله الخ	نہ گفتگو کرے یعنی بیٹھنے کی حالت میں آہستہ ذکر یا قراءت کے علاوہ بات نہ کرے، قراءت اولیٰ ہے کیونکہ ابنِ حبان کی روایت ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بیٹھنے کی حالت میں کتاب اللہ کی تلاوت فرماتے تھے الخ (ت)

حافظ الشان شہاب الدین احمد ابن حجر عسقلانی شافعی رحمۃ اللہ تعالیٰ فتح الباری شرح صحیح بخاری شریف میں اسی حدیث کی نسبت فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
واستفید من هذا ان حال الجلوس بین الخطبتین لا کلام فیه لکن لیس فیه نفی ان یذکر الله او یدعو سراً۔	اس کا مفاد یہ ہے کہ دونوں خطبوں کے درمیان بلاکلام بیٹھنا ہے لیکن اس سے اس بات کی نفی نہیں کہ آہستہ اللہ کا ذکر اور دعا بھی کی جائے۔ (ت)

علامہ زرقانی مالکی رحمۃ اللہ تعالیٰ شرح مواہب لدنیہ و منح محمدیہ میں فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
ثم یجلس فلا یتکلم (جھراً فلا ینافی روایۃ ابن حبان انہ کان یقرأ فیہ ای الجلوس وقال الحافظ مفادہ الی آخر مامر۔	پھر خطیب گفتگو کے بغیر بیٹھ جائے (یعنی بلند آواز سے گفتگو نہ کرے یہ بات روایت ابنِ حبان کے منافی نہیں کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اس (جلوس) میں قراءت فرماتے ہے اور حافظ نے کہا اس کا مفاد وہ جو پہلے بیان ہوچکا ہے۔ (ت)

بلکہ صحیح حدیث حضور سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم و متعدد اقوال صحابہ و تابعین کی رو سے یہ جلسہ اُن اوقات میں ہے جن میں ساعتِ اجابت جمعہ کی امید ہے، صحیح مسلم شریف میں بروایت حضرت ابی موسیٰ اشعری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے درباره ساعتِ جمعہ فرمایا:

---

1. مرقاۃ شرح مشکوۃ باب الخطبۃ والصلوۃ الخ مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۲/۷۳۳
2. فتح الباری شرح البخاری باب القعدۃ بین الخطبتین یوم الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/۵۷
3. شرح الزرقانی علی المواہب الباب الثانی فی ذکر صلوتہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم الجمعۃ مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۲/۳۸۵

Fatawa Razawiya Volume Eight

“He is between the time the Imam sits down until the prayer is completed”[1] — The hour of Friday is from the Imam’s sitting until the end of prayer. (T) In another Hadith, the radiant Prophet (peace and blessings be upon him) said: It is from the beginning of the sermon (Khutbah) to the end of the sermon. (Narrated by Ibn Abd al-Barr from Ibn Umar, may Allah be pleased with them both). It is also narrated from the same Ibn Umar and Abu Musa (may Allah be pleased with them) that it is from the emergence of the Imam until the end of prayer. Similarly, it is reported from Imam Aamir Sh'abi (Tabi'i), narrated by Ibn Jarir al-Tabari. In another narration from Sh'abi, he specified the time from the emergence of the Imam to the end of the sermon, narrated by al-Marwazi. Similarly, it is narrated from Imam Hasan al-Basri, narrated by Ibn al-Mundhir. Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) considered it to be from the Adhan until the prayer, narrated by Humaid bin Zanjawayh. In any case, this time is also included among them. So here, prayer is the subject of a special encouragement in the commentary, especially regarding the second Hadith. When one wishes to pray for a specific purpose that is not related to the sermon, then this time of 'Jalsa bayn al-Khutbatayn' (the sitting between the two sermons) is designated. In fact, Allama Tibi, the commentator of Mishkat, specifically identified this time as the hour of acceptance (Sa'at al-Ijabah) and quoted it from some commentators of Masabih. Rather, the noble saying "between the sitting of the Imam" was interpreted as this very sitting. It is stated in Ash'at al-Lam'aat, a commentary on Mishkat:

[Left box - Persian original]: He said, the Prophet (peace and blessings be upon him) said regarding the hour of Friday that that hour is between the sitting of the Imam on the pulpit until the performance of prayer; Tibi meant by 'sitting' the sitting between the two sermons etc.[2] [Right box - Urdu translation]: The Messenger (peace and blessings be upon him) said regarding the hour of Friday that that moment is from the Imam's sitting on the pulpit until the performance of prayer, Allama Tibi interpreted 'sitting' as sitting between the two sermons etc. (T)

According to this view, praying especially at this time is among the most eminent of recommended acts (Mandubaat) and desirable obligations. Furthermore, there is absolutely no doubt that when it is intended to strengthen hope, the collection of Hadiths and scholarly sayings is necessary, just as in matters like Laylat al-Qadr.

[1] Sahih Muslim Sharif, Kitab al-Jumu'ah, published by Noor Muhammad Asah al-Matabi', Karachi, 1/281. [2] Ash'at al-Lam'aat Sharh Mishkat, Kitab al-Jumu'ah, published by Maktaba Nooriya Razawiya, Sukkur, 2/517.

“इमाम के बैठने से लेकर नमाज़ खत्म होने तक जुमे की साअत (घड़ी) है”[1] — (त) दूसरी हदीस में आया कि हुज़ूर पुर नूर (उन पर अल्लाह की रहमत और सलाम हो) ने फरमाया: खुतबे के शुरू से खुतबे के खत्म होने तक है। इसे इब्ने अब्दुल बर ने हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है। उन्हीं इब्ने उमर और अबू मूसा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से रिवायत है कि इमाम के निकलने से नमाज़ खत्म होने तक है। इसी तरह इमाम आमिर शअबी (ताबई) से मन्कूल है जिसे इब्ने जरीर तबरी ने रिवायत किया है। उन्हीं शअबी से दूसरी रिवायत में इसका वक्त इमाम के निकलने से खुतबा खत्म होने तक बताया गया जिसे मरवज़ी ने रिवायत किया है। इसी तरह इमाम हसन बसरी से मरवी हुआ जिसे इब्ने मुन्ज़िर ने रिवायत किया। इब्ने अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने इसे अज़ान से नमाज़ तक रखा जिसे हुमैद बिन ज़न्जुविया ने रिवायत किया। बहरहाल यह वक्त भी उन्हीं में शामिल है, तो यहाँ दुआ एक विशेष प्रोत्साहन का विषय है, खासकर दूसरी हदीस पर जब किसी खास मतलब के लिए दुआ करनी हो जिसका खुतबे से संबंध न हो, तो उसके लिए यही 'जलसा बैन अल-खुतबतैन' (दो खुतबों के बीच बैठने) का समय तय है। बल्कि अल्लामा तैबी, शारेह मिश्कात ने विशेष रूप से इसी समय को साअत-ए-इजाबत (दुआ कुबूल होने की घड़ी) बताया और इसे मसाबीह के कुछ व्याख्याकारों से उद्धृत किया। बल्कि खुद इर्शाद-ए-अकदस "मबैन अन यज्लिस अल-इमाम" (इमाम के बैठने के बीच) से यही जलसा मुराद लिया गया। अशअतुल लम्आत शराह मिश्कात में है:

[बायां बॉक्स - मूल फ़ारसी]: उन्होंने कहा, रसूले अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जुमे की साअत के बारे में फ़रमाया कि वह साअत इमाम के मिम्बर पर बैठने से नमाज़ अदा करने तक के दरमियान है, तैबी ने 'जुलूस' (बैठने) से मुराद दो ख़ुत्बों के दरमियान बैठना लिया है इत्यादि।[2]

इस कथन पर तो विशेष रूप से इसी समय की दुआ शरीयत की दृष्टि से उत्तम सुन्नतों और पसंदीदा कार्यों में से है। फिर इस बारे में कोई शक नहीं कि जब उम्मीद को मज़बूत करने के उद्देश्य से हदीसों और विद्वानों के कथनों को जमा करना चाहिए, जैसा कि लैलतुल कद्र जैसे विषयों में होता है।

---

[1] सहीह मुस्लिम शरीफ़, किताबुल जुमुआ, मतबुआ नूर मोहम्मद असहुल मताबे, कराची, 1/281. [2] अशअतुल लम्आत शराह मिश्कात, किताबुल जुमुआ, मतबुआ मकतबा नूरिया रज़विया, सुक्कुर, 2/517.

ھي مابین ان یجلس الامام الی ان تقضی الصلوۃ[1] - امام کے جلوس سے نماز ختم ہونے تک ساعت جمعہ ہے۔ (ت) دوسری حدیث میں آیا حضور پر نور صلوات اللہ وسلامہ علیہ نے فرمایا: شروع خطبہ سے ختم خطبہ تک ہے رواہ ابن عبدالبر عن ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما (اسے ابن عبدالبر نے حضرت عبداللہ ابن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کیا ہے۔ت) انہی ابن عمر و ابو موسٰی رضی اللہ تعالٰی عنہم سے مروی کہ خروج امام سے ختم نماز تک ہے۔ یونہی امام عامر شعبی تابعی سے منقول رواہ ابن جریر الطبری (اسے ابن جریر طبری نے روایت کیا ہے۔ت) انہی شعبی سے دوسری روایت میں خروج امام سے ختم خطبہ تک اس کا وقت بتایا رواہ المروزی (اسے امام مروزی نے روایت کیا ۔ت) اسی طرح امام حسن بصری سے مروی ہوا رواہ ابن المنذر (اسے ابن المنذر نے روایت کیا۔ت) ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما نے اذان سے نماز تک رکھا رواہ حمید بن زنجویہ (اسے حمید بن زنجویہ نے روایت کیا۔ت) بہر حال یہ وقت بھی ان میں داخل ، تو یہاں دعا ایک خاص ترغیب شرح کی مورد خصوصاً حدیث دوم پر جبکہ کسی مطلب خاص کے لئے دعا کرنی ہو جسے خطبہ سے مناسبت نہ ہو تو اس کے لئے یہی جلسہ بین الخطبتین کا وقت متعین بلکہ علامہ طیبی شارح مشکوٰۃ نے بالتعیین اسی وقت کو ساعت اجابت بتایا اور اسے بعض شراح مصابیح سے نقل فرمایا بلکہ خود ارشاد اقدس مابین ان یجلس الامام (امام کے بیٹھنے سے لے کر۔ت) سے یہی جلسہ مراد رکھا، اشعۃ اللمعات شرح مشکوٰۃ میں ہے:

[بائیں باکس]: می گفت آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم در شان ساعۃ الجمعۃ کہ آں ساعت میان نشستن امام است بر منبر تا گزار دن نماز، طیبی از جلوس، نشستن میان دو خطبہ مراد داشتہ[2] الخ

[دائیں باکس]: حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے جمعہ کی ساعت کے بارے میں فرمایا کہ وہ

گھڑی امام کے منبر پر بیٹھنے سے لے کر نماز ادا کرنے تک ہوتی ہے، علامہ طیبی نے جلوس سے مراد دو خطبوں کے درمیان بیٹھنا لیا ہے الخ (ت)

اس قول پر تو بالخصوص اسی وقت کی دعا شرعاً اجل المندوبات واجب مرغوبات سے ہے پھر اس قدر میں اصلاً شک نہیں کہ جب بغرض تقویت رجاء جمع احادیث و اقوال علماء چاہئے، جو امثال باب مثل لیلۃ القدر۔

---

[1] صحیح مسلم شریف کتاب الجمعۃ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۱/۲۸۱ [2] اشعۃ اللمعات شرح مشکوٰۃ کتاب الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۵۱۷

Fatawa Ridawiyyah Volume 8

...and others, it has always been the path of researchers. Therefore, along with other times, prayer (du'a) is definitely required at this time too, and there is no choice but to consider it good and desirable. Necessarily, the author of 'Ain al-Ilm', who is among the senior Hanafi scholars, clearly stated that it is recommended (mustahabb) in this sitting. Similarly, Imam Ibn al-Munayyar gathered the benefits of considering it good. The highlight is that this saying of the praised Imam was quoted by Ash-Shawkani—the leader of the objectors—in 'Nayl al-Awtar Sharh Muntaqa al-Akhbar', and he established and accepted it.

Arabic Quote	Urdu Translation
Where he said in 'Adad al-Aqwal': "The thirtieth is during the sitting between the two sermons," Al-Tayyibi narrated it etc. Then he said: Ibn al-Munayyar said: It is good to combine the sayings, for the hour of acceptance is one of them, not specified, so whoever strives in supplication during all of them will coincide with it.	Here he counted it as the thirtieth saying and said: at the time of sitting between the two sermons, Al-Tayyibi has narrated it, etc. Then he said: Ibn al-Munayyar said all sayings are good; the hour of acceptance is only one, and only he will find it who remains in prayer throughout the time. (T)

This is the ruling for the Imam. As for the followers (muqtadi), our honorable Imams (may Allah be pleased with them) differ about them. According to the Second Imam, the Divine Scholar, Judge of the East and West, Hazrat Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), silence is only obligatory (wajib) during the sermon; he allows supplication and other religious speech before the start, after the end, and between the two sermons. The Imam of Imams, the holder of leadership, Hazrat Imam Azam (may Allah be pleased with him), prohibits every type of religious and worldly speech, even commanding good and responding to greetings, from the Imam's emergence until the end of prayer, upon investigation. This is true even if the speech is low, and even if one is sitting far from the preacher so that the sermon is not heard. The Third Imam, the compiler of the school, Muhammad bin al-Hasan (may Allah have mercy on him), is with Imam Azam between the two sermons, and with Imam Abu Yusuf before and after. It is stated in 'Durr al-Mukhtar':

Arabic Quote	Urdu Translation
When the Imam comes out of the chamber, or when he stands up to ascend	When the Imam comes out of the room, otherwise when he stands up to climb

Arabic Quote	Urdu Translation
[the pulpit]—Sharh al-Majma'—then there is no prayer and no speech until its completion, even if it is a glorification (tasbih), or returning a greeting, or commanding good, with no difference between those near and those far. Both [the companions] said: There is no harm in speech before and after the sermon, and when he sits, according to the second [Abu Yusuf], and the disagreement is in the speech.	the pulpit—Sharh al-Majma'—then from that time until the end, there is neither prayer nor speech, even if it is a single 'tasbih' or answering a greeting or commanding good. There is no difference between those sitting near or far. According to the 'Sahibayn' (two companions), before and after the sermon, and according to Imam Abu Yusuf when the preacher sits in between.

1. Nayl al-Awtar Sharh Muntaqa al-Akhbar, Chapter on the Excellence of Friday and Mention of the Hour of Acceptance, published by Mustafa al-Babi Egypt, 3/275.
2. Nayl al-Awtar Sharh Muntaqa al-Akhbar, Chapter on the Excellence of Friday and Mention of the Hour of Acceptance, published by Mustafa al-Babi Egypt, 3/277.

फतावा रज़विया जिल्द 8

...इत्यादि में हमेशा शोधकर्ताओं का यही मार्ग रहा है। इसलिए, बाकी समयों के साथ इस समय भी दुआ (प्रार्थना) अवश्य आवश्यक होगी और इसे नेक और सराहनीय मानने के अलावा कोई चारा नहीं होगा। लाजिमी तौर पर 'ऐनुल इल्म' के लेखक ने कहा, जो बड़े हनफी विद्वानों में से हैं, उन्होंने स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया कि इस बैठने (جلسہ) के दौरान मुस्तहब (पसंदीदा) है। इसी प्रकार इमाम इब्न अल-मुनय्यर ने इसके सराहनीय होने के लाभों को एकत्र किया। मुख्य बात यह है कि प्रशंसित इमाम के इस कथन को विरोधियों के इमाम शौकानी ने 'नैल अल-अवतार शरह मुन्तका अल-अखबार' में उद्धृत किया और इसे स्थापित और स्वीकृत रखा।

अरबी उद्धरण

जहाँ उन्होंने 'अदद अल-अकवाल' में कहा: "तीसवां दो खुतबों के बीच बैठने के समय है," इसे तैय्यीबी ने वर्णित किया है। फिर उन्होंने कहा: इब्न अल-मुनय्यर ने कहा: सभी कथनों को मिलाना अच्छा है, क्योंकि स्वीकृति की घड़ी उनमें से एक है, जो निर्दिष्ट नहीं है, इसलिए जो उन सभी में दुआ में प्रयास करेगा, वह उसे पा लेगा।

उर्दू अनुवाद

यहाँ उन्होंने तीसवां कथन गिनते हुए कहा कि दो खुतबों के बीच बैठने के समय, इसे तैय्यीबी ने उद्धृत किया है आदि। फिर कहा कि इब्न मुनैयर ने कहा सभी कथन अच्छे हैं, स्वीकृति की घड़ी तो एक ही है, इसे वही पाएगा जो पूरे समय दुआ में रहेगा। (त)

यह नियम इमाम के लिए है। जहाँ तक अनुयायियों (मुकतदी) की बात है, हमारे सम्मानित इमामों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के बीच उनके बारे में मतभेद है। द्वितीय इमाम, दिव्य विद्वान, पूर्व और पश्चिम के काज़ी, हज़रत इमाम अबू यूसुफ़ (अल्लाह उन पर दया करे) के अनुसार, उनके लिए केवल खुत्बे की स्थिति में चुप रहना अनिवार्य (वाजिब) है; वह खुत्बा शुरू होने से पहले, समाप्त होने के बाद और दो खुत्बों के बीच दुआ और अन्य धार्मिक बातचीत की अनुमति देते हैं। और इमामों के इमाम, हज़रत इमाम-ए-आज़म (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो), जाँच के अनुसार, इमाम के बाहर निकलने से लेकर नमाज़ समाप्त होने तक हर तरह की धार्मिक और सांसारिक बातचीत, यहाँ तक कि भलाई का आदेश देने (अम्र बिल मारूफ) और सलाम का जवाब देने से भी मना करते हैं, चाहे बातचीत धीमी हो, चाहे वह खतीब (प्रवक्ता) से इतनी दूर बैठा हो कि खुत्बा सुनाई न दे। तृतीय इमाम, मज़हब के संकलनकर्ता मुहम्मद बिन अल-हसन (अल्लाह उन पर दया करे), दो खुत्बों के बीच इमाम-ए-आज़म के साथ हैं और पहले और बाद में इमाम अबू यूसुफ़ के साथ हैं। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

अरबी उद्धरण	उर्दू अनुवाद
जब इमाम कमरे से बाहर निकले, अन्यथा जब वह चढ़ने के लिए खड़ा हो - 'शरह अल-मजमा' - तो उस समय से पूर्ण होने तक न नमाज़ है और न ही बातचीत, चाहे वह एक तस्बीह हो, या सलाम का जवाब, या भलाई का आदेश हो, करीब और दूर बैठने वाले में कोई अंतर नहीं है। दोनों [साथियों] ने कहा: खुत्बे से पहले और बाद में बातचीत में कोई बुराई नहीं है, और जब वह बैठे, दूसरे [अबू यूसुफ़] के अनुसार, और विवाद बातचीत में है।	जब इमाम हुर्रे (कमरे) से निकले वर्ना वो जब मिम्बर पर चढ़ने के लिये खड़ा हो, 'शरह अल-मजमा', तो उस वक्त से अंत तक न नमाज़ है न कलाम (बातचीत) अगरचे वो एक तस्बीह या सलाम का जवाब या अम्र बिल मारूफ (भलाई का हुक्म) हो, करीब और दूर बैठने वाले में कोई अंतर नहीं, साहिबैन (दोनों साथियों) के निकट खुतबे से पहले और बाद और इमाम अबू यूसुफ के यहाँ जब खतीब दरमियान में बैठे।

1. नैल अल-अवतार शरह मुन्तका अल-अखबार, जुमा की फजीलत और स्वीकृति की घड़ी का जिक्र अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित 3/275.
2. नैल अल-अवतार शरह मुन्तका अल-अखबार, जुमा की फजीलत और स्वीकृति की घड़ी का जिक्र अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित 3/277.

पेज 480/673

...وغیرہا میں ہمیشہ مسلک محققین رہا ہے، تو بقیہ اوقات کے ساتھ اس وقت بھی دعا ضرور درکار ہوگی اور اس کے نیک و مستحسن ماننے سے چارہ نہ ہوگا، لاجرم صاحب عین العلم نے کہا جو اکابر علمائے حنفیہ سے ہیں صاف تصریح فرمائی کہ اس جلسہ میں مستحب ہے، اسی طرح امام ابن المنیر نے افادہ استحسان جمع فرمایا، طرہ یہ کہ یہ قول امام ممدوح حضرات منکرین کے امام شوکانی نے نیل الاوطار شرح منتقی الاخبار میں نقل کیا اور مقرر و مسلم رکھا

عربی عبارت	اردو ترجمہ
حیث قال في عدالا قوال، الثلاثون عند الجلوس بین الخطبتین حکاہ الطیبی ۱ الخ ثم قال قال ابن المنیر یحسن جمع الاقوال فتکون ساعة الاجابة واحدة منها لا بعینها فیصادفها من اجتهد في الدعاء في جمیعها ۲ اہ	یہاں انہوں نے تیسواں قول شمار کرتے ہوئے کہا کہ دو خطبوں کے درمیان بیٹھنے کے وقت، اسے طیبی نے نقل کیا ہے الخ پھر کہا کہ ابن منیر نے کہا تمام اقوال احسن ہے ساعت قبولیت تو ایک ہی ہے اسے وہی پائے گا جو تمام وقت دعا میں رہے گا۔ (ت)

یہ حکم امام کا ہے، رہے مقتدی ان کے بارے میں ہمارے ائمہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہم مختلف، امام ثانی عالم ربانی قاضی الشرق والغرب حضرت امام ابویوسف رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ کے نزدیک انہیں صرف بحالت خطبہ سکوت واجب، قبل شروع و بعد ختم و بین الخطبتین دعا و غیرہ کلام دینی کی اجازت دیتے ہیں، اور امام الائمہ مالک الازمہ حضرت امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ خروج امام سے ختم نماز تک عند التحقیق دینی و دنیوی ہر طرح کے کلام یہاں تک کہ امر بالمعروف وجواب سلام بلکہ مخل استماع ہر قسم کے کام سے منع فرماتے ہیں اگر چہ کلام آہستہ ہو اگر چہ

خطیب سے دور بیٹھا ہو کہ خطبہ سننے میں نہ آتا ہو، امام ثالث محرر المذہب محمد بن الحسن رحمۃ اللہ تعالیٰ بین الخطبتین میں امام اعظم اور قبل و بعد میں امام ابویوسف کے ساتھ ہیں، در مختار میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
اذاخرج الامام من الحجرة والافقیامه للصعود شرح المجمع فلا صلوة ولا کلام الی تمامہا ولو تسبیحاً او رد سلام اوامرا بمعروف بلا فرق بین قریب وبعید وقالا لاباس بالکلام قبل الخطبة وبعدها واذا جلس، عند الثانی والخلاف فی کلام	جب امام حجرہ سے نکلے ورنہ وہ جب منبر پر چڑھنے کے لئے کھڑا ہو، شرح المجمع، تو اس وقت سے اختتام تک نہ نماز ہے نہ کلام اگر چہ وہ ایک تسبیح یا سلام کا جواب یا امر بالمعروف ہو ، قریب اور بعید بیٹھنے والے میں کوئی فرق نہیں، صاحبین کے نزدیک خطبہ سے پہلے اور بعد اور امام ابویوسف کے ہاں جب خطیب درمیان میں بیٹھے

۱ نیل الاوطار شرح منتقی الاخبار باب فضل الجمعۃ وذکر ساعۃ الاجابۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۷۵/۳ ۲ نیل الاوطار شرح منتقی الاخبار باب فضل الجمعۃ وذکر ساعۃ الاجابۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۷۷/۳

Fatawa Ridawiyya Volume 8

| (Arabic) It relates to the hereafter; as for anything else, it is disliked by consensus. [1] End excerpt. | (Urdu) There is no harm in talking, but this difference of opinion is regarding talk related to the hereafter; other than that, talk is unanimously disliked. (T) |

This is the researched position, although the reports here differ to the extent of confusion. If all were mentioned with preference and clarification, the discourse would be long. Based on this research, the gist is that if followers pray in their hearts such that the tongue does not move, it is undoubtedly permissible. Since during the sermon itself, at the time of the mention of the Holy Prophet, Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him), it is required to send blessings upon him from the heart, then between the two sermons when the Imam is silent, praying from the heart is even more appropriate. It is stated in Radd al-Muhtar:

| (Arabic) When the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is mentioned, it is not permissible for them to send blessings aloud, but rather in the heart, and upon this is the fatwa. - Ramli [2] | (Urdu) When the blessed mention of the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) comes, Durood Sharif should be recited in the heart instead of aloud; the fatwa is on this. - Ramli (T) |

And praying with the tongue is disliked according to the Imam [Abu Hanifa] and permissible according to Imam Abu Yusuf, and the chosen opinion is that of the Imam. Thus, in the refined Hanafi school, followers are commanded to avoid it. This is not based on the false premise of the ignorant Wahhabis that 'absence of a specific mention is the mention of absence.' Even in the specific case of permissibility, there is no need for a specific prohibition from God and His Messenger; claiming so is mere ignorance, foolishness, and arbitrariness. Rather, it is because ‘When the Imam comes out, there is neither prayer nor speech.’ (T) Thus, the ultimate goal is that people who are unaware of this issue should be informed, not, God forbid, labeled as innovators or misguided, or to the extent that Muslims are declared polytheists without cause. What an injustice! If calling upon Allah Almighty is also considered polytheism by these wretched ones, then calling upon the Najdi Sheikh, i.e., the accursed Iblis (Satan), would be monotheism? Far be it from Allah! (Exalted is Allah. T) These are the foul utterances of these brainless people, the taste of which will be

revealed in the Hereafter when 'La ilaha illAllah' comes from the side of the Muslims to contend with these insolent miscreants.

| (Arabic) And those who have wronged are going to know to what [kind of] return they will be returned. [3] | (Urdu) And now the wrongdoers will know to what end they will return. (T) |

---

1. Ad-Durr al-Mukhtar, Chapter on Friday Prayer, Mujtabai Press, Delhi, 1/113
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Friday Prayer, Mustafa al-Babi Press, Egypt, 1/606
3. Al-Quran, 26/227

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

| (अरबी) यह आख़िरत (परलोक) से संबंधित है, इसके अलावा अन्य बातों पर सर्वसम्मति से नापसंदगी (मक़रूह) है। [1] संक्षेप समाप्त। | (उर्दू) बातचीत में कोई हर्ज नहीं है, लेकिन यह मतभेद उस बातचीत के बारे में है जो आख़िरत से संबंधित हो; इसके अलावा बातचीत सर्वसम्मति से मक़रूह (नापसंद) है। (त) |

अनुसंधान यही है, हालांकि यहाँ विभिन्न विवरणों के आधार पर कुछ भ्रम की स्थिति है। यदि सभी को प्राथमिकता और स्पष्टीकरण के साथ उल्लेख किया जाए तो चर्चा बहुत लंबी हो जाएगी। इस शोध के आधार पर निचोड़ यह है कि यदि मुक़्तदी (नमाज़ में इमाम का अनुसरण करने वाले) दिल में दुआ मांगें और ज़ुबान में कोई हरकत न हो, तो यह निस्संदेह जायज़ है। जब ख़ुत्बे की अवस्था में हुज़ूर सरोरे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़िक्र के समय दिल से दुरूद भेजना वांछित है, तो दो ख़ुत्बों के बीच जब इमाम ख़ामोश हो, तब दिल से दुआ करना और भी ज़्यादा उचित है। रद-उल-मुहतार में लिखा है:

| (अरबी) जब नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का ज़िक्र हो, तो उनके लिए ऊँची आवाज़ में दुरूद पढ़ना जायज़ नहीं है, बल्कि दिल में पढ़ा जाए और इसी पर फ़तवा है। - रमली [2] | (उर्दू) जब सरोरे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुबारक ज़िक्र आए, तो ऊँची आवाज़ के बजाय दिल में दुरूद शरीफ़ पढ़ लिया जाए; फ़तवा इसी पर है। - रमली (त) |

और ज़ुबान से दुआ मांगना इमाम (अबू हनीफ़ा) के नज़दीक मक़रूह है, और इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक जायज़ है, और चुना हुआ मत इमाम का ही है। अतः परिष्कृत हनफ़ी मज़हब में मुक़्तदियों को इससे बचने का हुक्म है। यह उस ग़लत बुनियाद पर नहीं है जो वहाबियों की अज्ञानता पर आधारित है कि 'विशेष प्रमाण का न होना, विशेष निषेध का प्रमाण है।' अनुमति के अधिकार के लिए अल्लाह और उसके रसूल के विशेष निषेध की आवश्यकता नहीं है; ऐसा कहना केवल अज्ञानता, मूर्खता और हठधर्मिता है। बल्कि इसलिए कि 'जब इमाम (ख़ुत्बे के लिए) निकले, तो न कोई नमाज़ है और न बातचीत।' (त) इसलिए मक़सद यह है कि जो लोग इस मसले से अनजान हैं उन्हें बता दिया जाए, न कि (अल्लाह की पनाह) उन्हें बिदअती या गुमराह कहा जाए, यहाँ तक कि बिना किसी कारण के मुसलमानों को मुशरिक (बहुदेववादी) ठहरा दिया जाए। क्या ज़ुल्म है! यदि इन बदनसीबों के नज़दीक अल्लाह तआला को पुकारना भी शिर्क(बहुदेववाद) है, तो क्या नज्दी शेख यानी लानती

इब्लीस को पुकारना तौहीद (एकेश्वरवाद) होगा? अल्लाह इससे पाक है! (त) यह उन बुद्धिहीनों की अपशब्द वाली बातें हैं जिनका मज़ा आख़िरत में पता चलेगा, जब 'ला इलाहा इल्लल्लाह' मुसलमानों की ओर से इन ढीठ अपराधियों से मुक़ाबला करने आएगा।

| (अरबी) और जल्द ही ज़ुल्म करने वाले जान लेंगे कि वे किस ओर पलटे जा रहे हैं। [3] | (उर्दू) और अब ज़ालिम जान जाएंगे कि वे किस करवट पर पलटा खाएंगे। (त) |

---

1. अद्दुर्रुल मुख़्तार, बाबुल जुमुआ, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली, 1/113
2. रद-उल-मुहतार, बाबुल जुमुआ, मतबअ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/606
3. अल-क़ुरआन, 26/227

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

| یتلق بالآخرۃ اما غیرہ فیکرہ اجماعاً 1 اہ ملتقطا | گفتگو میں کوئی حرج نہیں، لیکن یہ اختلاف اس گفتگو کے بارے میں ہے جو آخرت سے متعلقہ ہو اس کے علاوہ گفتگو بالاتفاق مکروہ ہے۔ (ت) |

تحقیق یہی ہے، اگرچہ یہاں اختلاف نقول، حد اضطراب پر ہے کہ سب کو مع ترجیح و تنقیح ذکر کیجئے تو کلام طویل ہو، اس تحقیق کی بنا پر حاصل اس قدر کہ مقتدی دل میں دعا مانگیں کہ زبان کو حرکت نہ ہو تو بلا شبہ جائز کہ جب عین حالت خطبہ میں، وقت ذکر شریف حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم دل سے حضور پر درود بھیجنا مطلوب، تو بین الخطبتین کہ امام ساکت ہے دل سے دعا بدرجہ اولٰی روا، ردالمحتار میں ہے:

| اذا ذکر النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم لایجوز ان یصلوا علیہ بالجھر بل بالقلب وعلیہ الفتوی رملي 2 - | جب سرور عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا مبارک ذکر آئے تو بالجر کی بجائے دل میں درود شریف پڑھ لیا جائے، اسی پر فتوٰی ہے۔ رملي (ت) |

اور زبان سے مانگنا امام کے نزدیک مکروہ، اور امام ابویوسف کے نزدیک جائز، اور مختار قول امام ہے، تو بیشک مذہب منقح حنفی میں مقتدیوں کو اس سے احتراز کا حکم ہے نہ کہ اس بنائے فاسد پر جو بنائے جہالات وہابیہ ہے کہ عدم ورودِ خصوص، ورودِ عدم خصوص ہے، وہ بھی خاص حق جواز میں، منع کے لئے ممانعت خاصہ خدا ورسول کی کچھ حاجت نہیں کہ یہ تو محض جہل و سفہ و تحکم ہے بلکہ اس لئے کہ اذا خرج الامام فلا صلوۃ ولا کلام (جب امام نکل آئے تو نہ کوئی نماز ہے نہ کلام۔ ت) پس غایت یہ کہ جو لوگ اس مسئلہ سے ناواقف ہوں انہیں بتا دیا جائے نہ کہ معاذ اللہ بدعتی گمراہ حتی کہ بلا وجہ مسلمانوں کو مشرک ٹھہرایا جائے، کیا ظلم ہے جب ان

اشقاء کے نزدیک اللہ عزوجل کو پکارنا بھی شرک ہوا تو مگر شیخ نجدی یعنی ابلیس لعین کا پکارنا تو توحید ہوگا حاش للہ (اللہ ہی کے لئے پاکیزگی ہے۔ ت) یہ ان بدعقلوں کی بد زبانیاں ہیں جن کا مزہ آخرت میں کھلے گا، جب لا الہ الا اللہ مسلمانوں کی طرف سے ان بیباکان بدسرف سے جھگڑنے آئے گا،

| وَسَیَعْلَمُ الَّذِیْنَ ظَلَمُوْا اَیَّ مُنْقَلَبٍ یَّنْقَلِبُوْنَ 3 | اور اب جانا چاہتے ہیں ظالم کہ کس کروٹ پر پلٹا کھائیں گے۔ (ت) |

---

1 درمختار باب الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۳ 2 ردالمحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۶۰۶ 3 القرآن ۲۶ / ۲۲۷

Fatawa Rizvia Volume 8

Even if the most correct opinion is prohibition, there are still several ways and permissions suggested in our own school of thought (madhhab) and its books for those who make these supplications.

Firstly, this very statement of Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), along with this allowance, is also a sufficient remedy for this Najdi ignorance, as they consider explicit glorification (tasbih) permissible at that time, even though it is not so, specifically regarding the timing of its occurrence.

Secondly, according to some, only audible recitation (jahr) is prohibited for the followers (muqtadis); there is no harm in reciting silently. This is also supported by the ruling that if one hears the mention of the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) during the sermon (Khutbah), one should recite Durood silently, although the research is that it should be recited in the heart.

As we previously mentioned from Al-Ramli, and this is the meaning of what is in Ad-Durr al-Mukhtar regarding:

His statement: "The correct view is that one should send blessings upon the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) upon hearing his name, within oneself." 1 Although Al-Quhistani inclined toward interpretation as hidden recitation (ikhfa), contrary to what is in Al-Jawhara and other reliable books. Al-Shami said: "That is, by making himself hear it or by pronouncing the letters correctly, for they have interpreted it thus." And from Abu Yusuf, it is narrated as "in the heart," as in Al-Kirmani and Al-Quhistani. In Al-Jawhara, he restricted it to the latter, saying: "And he should not articulate it, because it can be achieved in circumstances other than this, whereas the listening (to the sermon) would be lost." 2 (Summarized)

As has been mentioned with reference to Ramli, from these words of Durr-e-Mukhtar, the same is meant:

that it is correct to recite Durood in the heart upon hearing the noble name of the Master of the Universe (peace and blessings be upon him). Although Quhistani leans towards hidden recitation (ikhfa), Jawhara and other reliable books are against it. Shami says it means one should hear it oneself or pronounce the letters correctly, because scholars have interpreted it this way. It is narrated from Imam Abu Yusuf that one should recite in the heart, as is in Kirmani. Quhistani in Jawhara has settled on the latter; in his words, one should not articulate it with the tongue because it can be attained at other times, but along with it, the listening (of the Khutbah) will be lost. (Summarized)

As we previously mentioned from Al-Ramli, and this is the meaning of what is in Ad-Durr al-Mukhtar regarding:

As for Al-Quhistani's statement that "they interpreted it thus," he only intended to remove the improbability from the interpretation he chose. The literal meaning is the intention of the heart, yet they may have used the term and interpreted it as secret recitation.

As has been mentioned with reference to Ramli, from these words of Durr-e-Mukhtar, the same is meant:

Regarding Quhistani's statement that the jurists (fuqaha) have interpreted it this way, his intention was to remove the far-fetchedness from the interpretation he adopted.

1 Durr-e-Mukhtar, Chapter on Friday, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/113 2 Radd al-Muhtar, Chapter on Friday, printed at Mustafa al-Babi, Egypt, 1/606

फतावा रिज़विया जिल्द 8

भले ही सबसे सही राय मनाही की हो, फिर भी इन दुआ करने वालों के लिए स्वयं हमारे मज़हब और मज़हबी किताबों में कई रास्ते और इजाज़तें सुझाई गई हैं।

पहला: इमाम अबू यूसुफ (रहमतुल्लाह अलैह) का यही कथन इस छूट के साथ इस नजदी अज्ञानता का भी पर्याप्त इलाज है, क्योंकि वे उस समय स्पष्ट रूप से तस्बीह पढ़ने को जायज़ बताते हैं, हालांकि उस समय विशेष के लिहाज़ से ऐसा नहीं है।

दूसरा: कुछ के अनुसार मुक्तदियों (अनुयायियों) के लिए केवल ज़ोर से पढ़ना (जह्र) मना है, चुपके से पढ़ने में कोई हर्ज नहीं है। और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि ख़ुत्बे के दौरान पवित्र नाम सुनकर चुपके से दरूद पढ़ने का हुक्म दिया गया है, हालांकि शोध यह है कि दिल में पढ़ना चाहिए।

जैसा कि हमने पहले रमली से उल्लेख किया है, और दुर्र-ए-मुख्तार में जो है उसका अर्थ है:

उनका कथन: "सही यह है कि नाम सुनने पर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर स्वयं में दरूद भेजा जाए।" 1 हालांकि अल-कुहिस्तानी का झुकाव गुप्त व्याख्या (इख़फ़ा) की ओर था, जो अल-जौहरा और अन्य विश्वसनीय पुस्तकों के विपरीत है। अल-शामी ने कहा: "यानी, खुद को सुनाकर या अक्षरों का सही उच्चारण करके, क्योंकि उन्होंने इसी तरह इसकी व्याख्या की है।" और अबू यूसुफ से इसे "दिल में" वर्णित किया गया है, जैसा कि अल-किरमानी और कुहिस्तानी में है। अल-जौहरा में उन्होंने बाद वाले पर ही सीमित किया, यह कहते हुए: "और वह इसे बोले नहीं, क्योंकि इसे इस स्थिति के अलावा भी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि (ख़ुत्बे का) सुनना छूट जाएगा।" 2 (संक्षेप में)

जैसा कि रमली के हवाले से उल्लेख किया जा चुका है, दुर्र-ए-मुख्तार के इन

शब्दों से भी वही मतलब है कि सही यह है कि हुज़ूर सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का मुबारक नाम सुनकर दिल में दरूद शरीफ पढ़ा जाए। हालांकि कुहिस्तानी का झुकाव 'इख़फ़ा' (छिपाकर पढ़ना) की तरफ है, लेकिन 'जौहरा' और अन्य विश्वसनीय किताबें इसके खिलाफ हैं। शामी कहते हैं कि इसका मतलब है कि खुद को सुनाई दे या अक्षरों का उच्चारण सही हो क्योंकि विद्वानों ने इसकी व्याख्या इसी तरह की है। इमाम अबू यूसुफ से रिवायत है कि दिल में पढ़े जैसा कि किरमानी में है। कुहिस्तानी ने जौहरा में आखिरी बात पर ही बस किया है, उनके शब्दों में इसके साथ नطق (बोलना) न करे क्योंकि इसे इस हाल के अलावा भी पाया जा

जैसा कि हमने पहले रमली से उल्लेख किया है, और दुर्र-ए-मुख्तार में जो है उसका अर्थ है:

जैसा कि रमली के हवाले से उल्लेख किया जा चुका है, दुर्र-ए-मुख्तार के इन

सकता है लेकिन इसके साथ सुनना (समाअ) छूट जाएगा। (संक्षेप में)

जहाँ तक अल-कुहिस्तानी के इस कथन का प्रश्न है कि "उन्होंने इसकी व्याख्या इसी प्रकार की है", तो उनका उद्देश्य केवल उस व्याख्या की संभावनाहीनता को दूर करना था जिसे उन्होंने चुना है। प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ दिल का इरादा है, फिर भी उन्होंने कभी-कभी इसे सामान्य रूप से कहा और इसकी व्याख्या गुप्त रूप से (इसरार) की।

रहा कुहिस्तानी का यह कहना कि फुकहा (कानूनविदों) ने इसकी व्याख्या इसी तरह की है, तो इससे उनका इरादा उस दूरी को दूर करना है जो उनकी चुनी हुई तावील (व्याख्या) में है।

1 दुर्र-ए-मुख्तार, बाबुल जुमा, मुतबूआ मतबा मुजतबाई देहली, 1/113 2 रदुल मुहतार, बाबुल जुमा, मुतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/606

पृष्ठ 483/673

قول ارجح ممانعت سہی پھر بھی ان دعا کرنے والوں کے لئے خود ہمارے مذہب و کتب مذہب میں متعدد راہیں تجویز و اجازت کی ہیں۔

اولاً یہی قول امام ابو یوسف رحمۃ اللہ علیہ جو اس ترخیص کے ساتھ اس جہالت نجدیہ کا بھی علاج کافی ہے کہ وہ اس وقت تسبیح بالتشریح جائز بتاتے ہیں حالانکہ بہ لحاظ خصوص وقت ورود اس کا بھی نہیں نہیں۔

ثانیاً بعض کے نزدیک مقتدیوں کو صرف جہر ممنوع ہے آہستہ میں حرج نہیں۔ اور اس کی تائید اس قول سے بھی مستفاد کہ عین حالت خطبہ میں ذکر اقدس سن آہستہ کر درود پڑھنے کا حکم دیا گیا اگرچہ تحقیق وہی ہے، کہ دل سے پڑھے،

كما قدمنا عن الرملي وهو معنى مافي الدرالمختار من

جیسا کہ رملی کے حوالے سے ذکر کر آئے ہیں، در مختار کے ان

قوله والصواب انه يصلى على النبي صلى الله تعالى عليه وسلم عند سماع اسمه، في نفسه 1 اه وان مال القهستاني الى التاويل بالاخفاء خلافا لما فى الجوهرة وغيرها من الكتب المعتبرة قال الشامي اى بان يسمع نفسه او يصحح الحروف فانهم فسروه به وعن ابي يوسف قلباً كما فى

الفاظ سے بھی وہی مراد ہے کہ صواب یہ ہے کہ حضور سرور عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا اسم گرامی سن کر دل میں درود شریف پڑھا جائے اھ اگر چہ قہستانی کا میلان اخفاء کی طرف ہے مگر جوہرہ اور دیگر کتب معتبرہ اس کے خلاف ہیں، شامی کہتے ہیں کہ اس کا اپنا نفس سن لے یا حروف کی تصحیح ہو کیونکہ علماء نے اس کی تفسیر یوں ہی کی ہے، امام ابو یوسف سے مروی

كما قدمنا عن الرملي وهو معنى مافي الدرالمختار من

الكرماني قهستاني واقتصر في الجوهرة على الاخير حيث قال و لم ينطق به لانها تدرك في غير هذا الحال والسماع يفوت 2 اه مختصرا

واما قول القهستاني انهم فسروه به فانما اراد به دفع الاستبعاد عما اختاره من التاويل فان ظاہر اللفظ هو ارادة القلب ومع ذلك ربما اطلقوه وفسروه بی ای بالاسرار

جیسا کہ رملی کے حوالے سے ذکر کر آئے ہیں، در مختار کے ان

ہے کہ دل میں پڑھے جیسا کہ کرمانی میں ہے، قہستانی نے جوہرہ میں آخری پر ہی اکتفا کیا ہے ان کے الفاظ میں اس کے ساتھ نطق نہ کرے کیونکہ اس حال کے علاوہ میں اسے پایا جا سکتا ہے مگر اس کے ساتھ سماع فوت ہو جائیگا اھ اختصاراً

رہا قہستانی کا قول کہ فقہاء نے اس کی تفسیر یہی کی ہے اس سے ان کی مراد اس بُعد کو دور کرنا ہے جو ان کی اختیار کردہ تاویل

1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۳ 2 ردالمختار باب الجمعہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۰۶

Fatawa Razawiya - Volume Eight

[Top right heading]: On both opinions regarding its definition.

...it was because "fi nafsihi" (in itself), the apparent words point to the intention of the heart, although despite this, they apply it and interpret it along with its being hidden, based on both opinions that are regarding its definition. (T)

Thirdly, Imam Nasir bin Yahya, Imam Muhammad bin al-Fadl, and others do not consider silence (insat) obligatory for one who is far away during the sermon (khutba) such that the voice of the sermon does not reach him. Imam Muhammad bin Salama also only calls it preferable (awla), although the fatwa-giving opinion is its obligation; therefore, in this gathering where there is no voice at all, they would certainly not consider it obligatory even more so. It is stated in Al-Hadiqa al-Nadiyya:

Arabic Original	**Urdu Translation**
It is said in al-Nihaya that if he is in such a place where he cannot hear it, there is no narration about it from our companions in al-Mabsut. The later scholars have differed on this. From Muhammad bin Salama, silence is preferable. From Nasir bin Yahya, when he was far away, he would move his lips with the Quran. In al-'Inaya, it is said that silence is the chosen view of al-Karkhi and the author of al-Hidaya. Some said: reciting the Quran is preferable, and this is the choice of the virtuous scholars. 1	In Nihaya, it is stated: at the time when he is in such a place that he is not hearing the sermon, in Mabsut there is no single narration from our companions (Hanafis). There is a disagreement among the later scholars regarding it. According to Muhammad bin Salama, silence is better. Regarding Nasir bin Yahya, it is said that when he was far from the preacher, his lips would be moving with the recitation of the Quran. In Inaya, silence is the chosen view of Karkhi and the author of Hidaya. Some said: Reciting Quran is better; this is the chosen view among the virtuous scholars. (T)

It is in Radd al-Muhtar from al-Fayd: "Silence is more cautious, and on this the fatwa is given" 2 (Silence is indeed more cautious and the fatwa should be given on this. T).

Fourthly, some scholars believe that even according to our Imam, only worldly speech is prohibited, while supplication (du'a) and remembrance (dhikr) are absolutely permissible, even during the sermon itself. Although the correct view is contrary to this, as previously mentioned from al-Durr (as passed with reference to Durr. T). Abdul Ghani Nablusi states in Hadiqa:

Arabic Original

As for the Muadhins saying 'Ameen' to the preacher's supplication, sending blessings upon the companions (saying 'Radhiallahu Anhum'), and praying for the Sultan for victory.

Urdu Translation

The Muadhins saying 'Ameen' to the preacher's prayer, saying 'Radhiallahu Ta'ala Anhu' upon hearing the names of the companions, and praying for the king.

1. Al-Hadiqa al-Nadiyya, Part 4, Speech regarding the state of the Sermon, printed by Maktaba Nooriya Razawiya, Faisalabad, 1/22/303.
2. Radd al-Muhtar, Chapter of Jumu'ah, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/606.

फतावा रज़विया - जिल्द अष्टम

[शीर्ष दाएं]: इसकी परिभाषा के संबंध में दोनों कथनों के अनुसार।

...था क्योंकि 'फी नफ़्सिही' (स्वयं में) स्पष्ट शब्द तो हृदय के इरादे की ओर संकेत करते हैं, हालांकि इसके बावजूद वे इसे लागू करते हैं और इसकी व्याख्या छिपे होने के साथ करते हैं, उन दोनों कथनों पर जो इसकी परिभाषा के बारे में हैं। (त)

तीसरा, इमाम नसीर बिन यह्या, इमाम मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल और अन्य लोग खुतबे (धर्मोपदेश) की वास्तविक स्थिति में दूर बैठे व्यक्ति के लिए, जिसे खुतबे की आवाज़ न पहुँच रही हो, खामोश रहना (इंसात) अनिवार्य नहीं मानते। इमाम मुहम्मद बिन सलमा भी इसे केवल 'औला' (बेहतर) कहते हैं, हालांकि फतवा इसकी अनिवार्यता (वुजूब) पर है। तो उस सभा में जहाँ आवाज़ ही नहीं है, वहाँ वे इसे और भी अधिक अनिवार्य नहीं कहेंगे। 'हदीक़ा नदिय्या' में है:

अरबी मूल

'निहाया' में कहा गया है कि यदि वह ऐसी जगह पर हो जहाँ वह इसे नहीं सुन सकता, तो 'मबसूत' में हमारे साथियों से इसके बारे में कोई रिवायत नहीं है। बाद के विद्वानों (मुताखिरीन) में इस पर मतभेद है। मुहम्मद बिन सलमा से रिवायत है कि खामोशी बेहतर है। नसीर बिन यह्या के बारे में है कि जब वह खतीब से दूर होते थे, तो उनके होंठ कुरान की तिलावत से हिल रहे होते थे। 'इनाया' में है कि खामोशी अल-करखी और 'हिदाया' के लेखक का चुना हुआ मत है। कुछ ने कहा: कुरान की तिलावत बेहतर है और यही श्रेष्ठ विद्वानों का चुनाव है। 1

उर्दू अनुवाद

'निहाया' में है: उस समय जब ऐसी जगह पर हो कि वह खुतबा नहीं सुन रहा हो, 'मबसूत' में हमारे साथियों (हनाफियों) से कोई एक रिवायत नहीं है, मुताखिरीन मशाइख़ का इसमें मतभेद है, मुहम्मद बिन सलमा के नज़दीक खामोशी बेहतर है, नसीर बिन यह्या के बारे में है कि जब वे खतीब से दूर होते तो उनके होंठ कुरान की तिलावत से हरकत कर रहे होते थे, 'इनाया' में है खामोशी, करखी और साहिब-ए-हिदाया का मुख़्तार (पसंदीदा) है, कुछ ने फरमाया: कुरान की तिलावत बेहतर है, फुज़ला के यहाँ यही मुख़्तार है। (त)

'रद्दुल मुहतार' में 'फ़ैज़' से है: "खामोशी ही अधिक सावधानीपूर्ण है और इसी पर फतवा दिया जाएगा।" 2 (खामोशी ही अहवत (सावधानीपूर्ण) है और इसी पर फतवा दिया जाएगा। त)

चौथा, कुछ विद्वानों का मानना है कि हमारे इमाम के नज़दीक भी केवल सांसारिक बातचीत वर्जित है, दुआ और ज़िक्र पूर्णतः जायज़ है, यहाँ तक कि खुतबे की ऐन हालत में भी। हालाँकि सही बात इसके विपरीत है जैसा कि पहले 'दुर्र' के हवाले से गुज़रा। (जैसा कि दुर्र के हवाले से गुज़रा। त) अब्दुल ग़नी नाबुलसी 'हदीक़ा' में फरमाते हैं:

अरबी मूल	**उर्दू अनुवाद**
जहाँ तक मुअज़्ज़िनों का खतीब की दुआ पर आमीन कहना, सहाबा के लिए 'तरज़ी' (रज़ियल्लाहु अन्हुम कहना) और सुल्तान की जीत के लिए दुआ करना है।	खतीब की दुआ पर मुअज़्ज़िनों का आमीन कहना, सहाबा के नाम सुनकर रज़ियल्लाहु तआला अन्हु कहना, बादशाह के लिए दुआ।

1. अल-हदीक़ा अन-नदिय्या, भाग 4, खुतबे की स्थिति पर चर्चा, मुद्रित मकतबा नूरिय्या रज़विय्या फ़ैसलाबाद, 1/22/303।
2. रद्दुल मुहतार, जुमुआ का अध्याय, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/606।

पृष्ठ 484 का 673

علی القولین فی تحدیدہ۔

میں تھا کیونکہ "فی نفسہ" ظاہر الفاظ تو ارادۂ قلب پر دال ہیں حالانکہ اس کے باوجود اس کا اطلاق کر کے اس کی تفسیر مخفی ہونے کے ساتھ کرتے ہیں، ان دونوں اقوال پر جو اس کی تعریف کے بارے میں ہیں۔ (ت)

ثالثاً امام نصیر بن یحییٰ و امام محمد بن الفضل و غیر ہما عین حالتِ خطبہ میں بعید کو کہ خطبہ کی آواز اس تک نہ پہنچے انصات واجب نہیں جانتے، اور امام محمد بن سلمہ بھی صرف اولٰی کہتے ہیں اگرچہ مفتی بہ اس پر بھی وجوب، تو اس جلسہ میں کہ آواز ہی نہیں بدرجہ اولٰی واجب نہ کہیں گے۔ حدیقہ ندیہ میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
قال في النهاية اذا كان بحيث لا يسمعها لا رواية فيه عن اصحابنا في المبسوط وقد اختلف المشائخ المتاخرون فيه فعن محمد بن سلمة الانصات اولى وعن نصير بن يحيى انه كان بعيدا وكان يحرك شفتيه بالقرآن وفى العناية ان الانصات مختار الكرخي و صاحب الهداية وقال بعضهم	نہایہ میں ہے اس وقت جب ایسے مقام پر ہو کہ وہ خطبہ نہیں سن رہا، مبسوط میں ہمارے اصحاب (احناف) سے کوئی ایک روایت نہ ہے، متاخرین مشائخ کا اس میں اختلاف ہے، محمد بن سلمہ کے نزدیک خاموشی اولٰی ہے، نصر بن یحییٰ کے بارے میں ہے کہ جب ہو خطیب سے دُور ہوتے تو ان کے ہونٹ تلاوتِ قرآن سے حرکت کر رہے ہوتے تھے، عنایہ میں ہے خاموشی، کرخی اور

عربی متن	اردو ترجمہ
قراءۃ القرآن اولی وھو اختیار الفضلاء۔ 1	صاحبِ ہدایہ کا مختار ہے، بعض نے فرمایا: تلاوتِ قرآن اولیٰ ہے، فضلاء کے ہاں یہی مختار ہے۔ (ت)

رد المحتار میں فیض سے ہے: الاحوط السکوت و بہ یفتی 2 (سکوت ہی احوط ہے اور اسی پر فتویٰ دیا جائے گا ت)

رابعاً بعض علماء کا گمان ہے کہ ہمارے امام کے نزدیک بھی صرف کلامِ دنیوی ممنوع ہے دعا و ذکر مطلقاً جائز حتیٰ کہ عین حالتِ خطبہ میں بھی، اگرچہ صواب اُس کے خلاف ہے کما تقدم عن الدر (جیسا کہ در کے حوالے سے گزرا۔ ت) عبدالغنی نابلسی حدیقہ میں فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
اما تأمین المؤذنین علی دعاء الخطیب والترضي عن الصحابۃ والدعاء للسلطان بالنصر	خطیب کی دعا پر مؤذنین کا آمین کہنا، صحابہ کے نام سن کر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کہنا، بادشاہ کے لئے دعا

1 الحدیقۃ الندیہ نوع ۳۳۴ الکلام فی حال الخطبہ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد

۱/۲۲/۳۰۳ 2 رد المحتار باب الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۶۰۶

[Arabic Text]: "This is not conventional speech; rather, it is akin to glorification (Tasbih) and the like. Therefore, according to the more correct (Asah) opinion, it is not disliked (Makruh), etc." We have explained in our marginalia that this was a confusion encountered by the author (may Allah the Almighty have mercy on him) due to a correction in 'An-Nihayah' and 'Al-Inayah' regarding the permissibility of otherworldly speech. However, their discussion pertains to the period before the start of the sermon (Khutbah) or after it, not during it. Furthermore, it is not beyond scrutiny, as will be evident from referring to our annotations in the margins of 'Radd al-Muhtar'. The most correct and cautious (Ahwat) view is absolute prohibition, as stated by Az-Zayla'i. This is why this position has not been adopted in major authoritative works like 'Al-Bahr', 'An-Nahr', 'Ad-Durr', and 'Radd al-Muhtar'. [Urdu Translation/ Explanation]: This is not conventional speech but falls under the category of glorifications etc. Therefore, according to the most correct (asah) saying, it is not disliked etc. We have written in its margin that al-'Allama (may Allah the Exalted have mercy on him) faced this confusion from the correction of Nihayah and 'Inayah because they interpreted it as otherworldly speech. However, their speech is regarding before or after the sermon, not during it. Then that too is a matter of scrutiny as will be clear from referring to the margin of Radd al-Muhtar. Asah and ahwat is absolute prohibition as stated by Zayla'i. This is the reason why this school of thought was not adopted in common authoritative books like Bahr, Nahr, Durr and Radd al-Muhtar. (T)

If you consider other schools of thought, there are extreme expansions, so much so that it is narrated in 'Al-Muhit' that:

[Arabic]: "Among the scholars, there are those who said that silence was mandatory for the people during the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). As for today, it is not mandatory." This was narrated from him by Al-Quhistani. [Urdu Translation]: Some scholars said that silence was mandatory for the people during the manifest life of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), but now it is no longer mandatory. Quhistani has narrated this. (T)

Cautious scholars do not consider it necessary or obligatory to even deny such issues of independent reasoning (ijtihad), let alone—refuge with Allah—reaching the point

of declaring someone as astray (tadlil) or a disbeliever (ikfar). My master, the gnostic of Allah, the researcher An-Nabulsi, states in the aforementioned book:

[Arabic]: "Indeed, the occurring issue as it is now in the congregational mosques of our lands and elsewhere on Friday from the muezzins, whenever it is possible to derive it based on any of the opinions..." [Urdu Translation]: The issue at hand, as it is now in the congregational mosques of our city, where muezzins on Friday (say 'Amen' at the Imam's prayer), its derivation and proof [of] our school...

---

1. Al-Hadiqat an-Nadiyyah, Type 333, Speech during the Sermon, published by Maktaba Nooria Razawiyya Faisalabad, 22/30309.
2. Jami' ar-Rumuz with reference to Al-Muhit, chapter on Friday Prayer, published by Maktaba Islamiya Gonbad-e Qabus Iran, 11/77 2626.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

[अरबी पाठ]: "यह प्रथागत बातचीत नहीं है; बल्कि, यह तस्बीह (महिमा गान) आदि के समान है। इसलिए, अधिक सही (असह्) मत के अनुसार, यह मकरूह (नापसंद) नहीं है आदि।" हमने अपने हाशिये (टिप्पणी) में स्पष्ट किया है कि यह एक भ्रम था जो लेखक (अल्लाह उन पर दया करे) को 'अन-निहाया' और 'अल-इनाया' में पारलौकिक बातचीत की अनुमति से संबंधित एक सुधार के कारण हुआ। हालाँकि, उनकी चर्चा खुतबा (धर्मोपदेश) शुरू होने से पहले या उसके बाद की अवधि से संबंधित है, न कि उसके दौरान की। इसके अलावा, यह समीक्षा से परे नहीं है, जैसा कि 'रद्द अल-मुह्तार' के हाशिये पर हमारी टिप्पणियों को देखने से स्पष्ट होगा। सबसे सही और एहतियाती (अहवत) विचार पूर्ण प्रतिबंध है, जैसा कि अज़-ज़ैलई ने कहा है। यही कारण है कि 'अल-बह्र', 'अन-नह्र', 'अद-दुर्र' और 'रद्द अल-मुह्तार' जैसे प्रमुख प्रामाणिक कार्यों में इस स्थिति को नहीं अपनाया गया है। [उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: यह प्रथागत बातचीत नहीं है बल्कि तस्बीहात आदि की श्रेणी में आता है। इसलिए सबसे सही (असह्) कथन के अनुसार यह मकरूह नहीं है आदि। हमने इसके हाशिये में लिखा है कि अल्लामा (अल्लाह उन पर रहम करे) को यह भ्रम 'निहाया' और 'इनाया' के सुधार से हुआ क्योंकि उन्होंने इसे पारलौकिक बातचीत के रूप में समझा। हालांकि, उनकी बातचीत खुतबे से पहले या बाद के बारे में है, न कि बीच के बारे में। फिर वह भी विचारणीय है जैसा कि 'रद्द अल-मुह्तार' के हाशिये को देखने से स्पष्ट होगा। असह् और अहवत पूर्ण प्रतिबंध है जैसा कि ज़ैलई ने फरमाया है। यही कारण है कि सामान्य विश्वसनीय पुस्तकों जैसे बह्र, नह्र, दुर्र और रद्द अल-मुह्तार में इस विचारधारा को नहीं अपनाया गया। (त)

यदि आप अन्य विचारधाराओं पर विचार करें, तो विस्तार की अत्यधिक सीमाएँ हैं, यहाँ तक कि 'अल-मुहीत' में यह उद्धृत है कि:

[अरबी]: "विद्वानों में ऐसे लोग हैं जिन्होंने कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के समय में लोगों के लिए चुप रहना अनिवार्य था। जहाँ तक आज की बात है, यह अनिवार्य नहीं है।" इसे अल-कुहिस्तानी ने उनसे उद्धृत किया है। [उर्दू अनुवाद]: कुछ विद्वानों ने कहा कि लोगों पर खामोश रहना अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़ाहिरी जीवन में अनिवार्य था, अब अनिवार्य नहीं रहा। इसे कुहिस्तानी ने उद्धृत किया है। (त)

सतर्क विद्वान ऐसी इज्तिहादी (स्वतंत्र शोध) समस्याओं में इनकार करना भी आवश्यक या अनिवार्य नहीं समझते, फिर माज़ अल्लाह (अल्लाह की पनाह) गुमराह (तदलील) या काफ़िर (इकफ़ार) घोषित करने की नौबत तो दूर की बात है। मेरे आका, आरिफ़ बिल्लाह शोधकर्ता नाबुलसी पूर्वोक्त पुस्तक में कहते हैं:

[अरबी]: "वास्तव में, जो मामला वर्तमान में हमारे शहरों की जामा मस्जिदों और अन्य जगहों पर जुमे के दिन मुअज़्ज़िनों की ओर से पेश आता है, जब भी किसी मत के आधार पर इसका प्रमाण निकालना संभव हो..." [उर्दू अनुवाद]: मसला जैसा कि अब हमारे शहर की जामा मस्जिदों में पेश आता है, जहाँ मुअज़्ज़िन जुमे के दिन (इमाम की दुआ पर आमीन) कहते हैं, इसका प्रमाण और हमारे मज़हब का सबूत...

---

1. अल-हद्दीकत अन-नदिया, टाइप 333, खुतबा के दौरान बातचीत, मकतबा नूरिया रज़विया फैसलाबाद द्वारा प्रकाशित, 22/30309।
2. जामी अर-रुमुज़, अल-मुहीत के संदर्भ में, जुमा की नमाज़ का अध्याय, मकतबा इस्लामिया गोंबद-ए क़ाबूस ईरान द्वारा प्रकाशित, 11/77 2626।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[عربی عبارت]: "فلیس هذا من الکلام العرفی بل هو من قبیل التسبیح ونحوه فلا یکره فی الاصح الخ وبینا علی هامشها ان هذا من اشتباه عرض له رحمه الله تعالی من تصحیح النهایة والعنایة بلفظ لتجویز الکلام الاخروی وانما کلامهما فیما قبل شروع الخطبة و بعدها لا حالها ثم هو ایضا لا یخلو عن نظر کما یظهر بمراجعة ما علقنا علی هامش رد المحتار والاصح الاحوط اطلاق المنع کما افاده الزیلعی لذا لم یمش علیه فی عامة الکتب المعتمدة کالبحر والنهر والدر ورد المحتار۔" [اردو ترجمہ و تشریح]: یہ کلام عرفی نہیں بلکہ از قبیل تسبیحات وغیرہ ہے لہذا اصح قول کے مطابق یہ مکروہ نہیں الخ، ہم نے اس کے حاشیہ میں تحریر کیا کہ علامہ رحمہ اللہ تعالی کو یہ اشتباہ نہایہ اور عنایہ کی تصحیح سے عارض ہوا کیونکہ انھوں نے کلام اخروی پر محمول کیا ہے حالانکہ ان کا کلام خطبہ سے پہلے یا بعد پر محمول ہے نہ کہ درمیان میں، پھر وہ بھی محل نظر ہے جیسا کہ حاشیہ رد المحتار کی طرف مراجعت سے ظاہر ہوگا اصح اور احوط مطلقاً منع ہے جیسا کہ زیلعی نے فرمایا ہے یہی وجہ ہے کہ عامہ کتب معتمدہ میں اس مسلک کو اختیار نہیں کیا گیا مثلاً بحر، نہر، در اور ردالمحتار۔(ت)

اور مذاہب دیگر پر نظر کیجئے تو حد درجہ کی توسیعیں ہیں حتی کہ محیط میں تو یہاں تک منقول ہے کہ :

[عربی عبارت]: "من العلماء من قال السکوت علی القوم کان لازماً فی زمن رسول الله صلی الله تعالٰی علیہ وسلم اما الیوم فغیر لازم ۱ھ ونقله عنه القهستانی۔" [اردو ترجمہ]: بعض علماء نے کہا کہ لوگوں پر سکوت رسالت مآب صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ظاہری حیات میں لازم تھا اب لازم نہیں رہا اھ اسے قہستانی نے نقل کیا ہے۔ (ت)

علمائے محتاطین تو ایسے مسائل اجتہادیہ میں انکار بھی ضروری و واجب نہیں جانتے نہ کہ عیاذاً باللہ نوبت تابہ تضلیل واکفار۔ سیدی عارف باللہ محقق نابلسی کتاب مذکور میں فرماتے ہیں :

[عربی عبارت]: "ان المسئلة الواقعة كما هي الاٰن فی جوامع بلادنا وغيره يوم الجمعة من الموذنين متی امكن تخريجها علی قول من الاقوال" [اردو ترجمہ]: مسئلہ درپیش جیسا کہ اب ہمارے شہر کی جامع مساجد میں مؤذنین جمعہ کے دن (امام کی دعا پر آمین) کہتے ہیں اس کی تخریج وثبوت ہمارے مذہب

---

۱ حدیقہ الندیہ نوع ۳۳۳ الکلام فی حال الخطبة مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۳۰۳۰۹/۲۲

۲ جامع الرموز بحوالہ المحیط فصل فی صلوة الجمعة مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱۱/ ۷۷ ۲۶۲۶

Fatawa-e-Razvia Volume Eight

[Arabic Boxed Quote]: In our school of thought or in another's, it might be possible, so it is not such an impermissible act that its denial and prohibition become mandatory. An 'evil' (munkar) is only that upon whose prohibition and ban there is a consensus (ijma'). (T)

In short, this action of the followers is forbidden according to difference of opinion, but calling Muslims polytheists (mushrik) or innovators (bid'ati) without cause is strictly forbidden by consensus. Therefore, those who prohibit it should look to themselves. As for the Imam, there is absolutely no debate regarding its permissibility. Yes, if there is a fear of public misconception, he should not strictly adhere to it. The humble writer (may Allah forgive him) often remains silent in this gathering, sometimes reciting Surah Al-Ikhlas or Salawat (Durood), and never performs 'Raf-ul-Yadayn' (raising of hands) so that followers don't see and engage in innovation themselves. But refuge is sought in Allah, the Sharia never allows such impure extremism. May the Lord Almighty grant guidance, Ameen. And Allah, Glorified and Exalted, knows best, and His knowledge is most complete and perfect.

Issue 1209: From Heel Kattur, District O-Kand, residence of Sumar Seth Sahab, sent by Sayyid Haider Shah Sahab, 28 Rabi-ul-Awwal Sharif 1315 AH. Honorable reservoir of grace, master of traditional sciences and container of rational arts, the polymath of the age, the understanding scholar of the time, Maulana Maulvi Ahmad Raza Khan Sahab (may Allah prolong his blessings). After paying respects, humble Haider Shah submits that a ruling is needed. Since you are among the famous scholars of mankind, and your morals and attributes are endless, and I have heard from many people that you follow the Hanafi school of thought and Sunni way, and also send replies to questions quickly. Therefore, the request to your gracious service is that the humble one be honored with an answer: Is raising hands for supplication between the two sermons (Khutbas) prescribed (mashru') and Sunnah in the Hanafi and Shafi'i schools or not? The Urdu translator of 'Ad-Durr al-Mukhtar' writes in one place that a fatwa was once sought from the scholars of Bareilly on this very issue. Consequently, the fatwa of the scholars there was that raising hands to pray between the two sermons is a bad innovation (bid'at-e-sayyiah) and not prescribed. So, is this statement correct or incorrect? Since you are a resident of Bareilly, you would know its reality as it should be. Please inform whether the translator wrote correctly or it is merely deceiving the common people. Explain and be rewarded.

The Answer: The technical term 'Sunnah' [here means something] whose abandoner deserves divine wrath or is a sinner and deserving of divine punishment (refuge is sought with Allah). This is not anyone's...

---

1 Al-Hadiqa al-Nadiyya, Type 33, Discussion on the state of the sermon, published by Nooria Razvia, Faisalabad, 22 / 309.

फ़तावा-ए-रज़्विया जिल्द आठवीं

[अरबी बॉक्स]: हमारे मज़हब में या दूसरे मज़हब में मुमकिन है, तो यह ऐसा नाजायज़ नहीं कि इसका इनकार और इससे मना लाज़िम हो, मुनकर तो वो होता है जिसकी हुरमत और ममानअत पर इज्मा हो। (त)

संक्षेप में, मुक़्तदियों का यह काम तो मतभेद के आधार पर वर्जित है, लेकिन मुसलमानों को बिना वजह मुशरिक या बिदअती कहना सर्वसम्मति (इज्मा) से कतई हराम है। अतः मना करने वाले हज़रात खुद अपनी खबर लें। और इमाम के लिए तो इसके जाइज़ होने में कोई बहस ही नहीं है। हाँ, अगर अवाम के अक़ीदे में बिगाड़ का डर हो तो वह इसे अनिवार्य न करे। फ़क़ीर (अल्लाह उसे माफ़ करे) इस मजलिस में अक्सर खामोश रहता है और कभी सूरह इखलास या दरूद पढ़ता है, और हाथ उठाना (रफ़-उल-यदैन) कभी नहीं करता ताकि मुक़्तदी देखकर खुद भी बिदअत में व्यस्त न हो जाएँ। लेकिन अल्लाह की पनाह, शरीयत कभी ऐसी नापाक सख्ती की इजाज़त नहीं देती। मौला तआला हिदायत बख्शे, आमीन। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला बेहतर जानता है, और उसका इल्म सबसे मुकम्मल और पुख्ता है।

मसला १२०९: हील कत्तूर, जिला ओ-कंड, मकान सुमार सेठ साहब, प्रेषक सैयद हैदर शाह साहब, २८ रबी-ुल-अव्वल शरीफ़ १३१५ हिजरी। जनाब फ़ैज़-मआब, नक़ली उलूम के ज्ञाता और अक़्ली फुनून के महारथी, इस युग के बड़े विद्वान मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खां साहब (अल्लाह उनके फ़ैज़ को जारी रखे)। आदाब के बाद बंदा हैदर शाह अर्ज करता है कि एक मसले की ज़रुरत है। चूंकि आप प्रसिद्ध उलमा-ए-किराम में से हैं और आपके अख़लाक़ व औसाफ बेइंतहा हैं, और बहुत से लोगों से सुना है कि आप हनफी मज़हब और सुन्नी मेशरब हैं और सवालों के जवाब भी जल्दी भेजते हैं। लिहाज़ा खिदमत में इल्तेमास है कि अदना को जवाब से नवाज़ें: हनफी और शाफ़ई मज़हब में दो ख़ुत्बों के बीच हाथ उठाकर दुआ मांगना मशरूअ (विहित) और मसनून है या नहीं? 'अद-दुर्र अल-मुख्तार' के उर्दू अनुवादक एक जगह लिखते हैं कि एक बार बरेली के उलमा से इसी मसले पर फतवा माँगा गया था। चुनांचे वहां के उलमा का फतवा यही हुआ कि दो ख़ुत्बों के बीच हाथ उठाकर दुआ मांगना 'बिदअत-ए-सय्यिआ' (बुरी ईजाद) और ग़ैर-मशरूअ है। तो क्या यह बात सही है या गलत? चूंकि आप बरेली के रहने वाले हैं, आपको इसकी हकीकत पूरी तरह मालूम होगी। लिहाज़ा इत्तला दें कि अनुवादक ने सही लिखा है या यह महज़ अवाम को धोखा देना है। बयान करें और सवाब पायें।

जवाब: पारिभाषिक 'मसनून' जिसका छोड़ने वाला अल्लाह के गज़ब का पात्र हो या गुनाहगार और अज़ाब का हक़दार हो (अल्लाह की पनाह), यह न किसी का...

---

१ अल-हदीक़तुल नदिय्या, किस्म ३३, ख़ुत्बे के अहवाल पर चर्चा, नूरिया रज़्विया, फैसलाबाद द्वारा प्रकाशित, २२/३०९।

पृष्ठ ४८६/६७३

[Boxed Arabic/Urdu]: في مذهبنا او مذهب غيرنا فليست بمنكر يجب انكاره والنهى عنه وانما المنكر ما وقع الاجماع على حرمته والنهى عنه - یا دوسرے مسلک میں ممکن ہے، تو یہ ایسا نا جائز نہیں کہ اس کا انکار اور اس سے منع لازم ہو، منکر تو وہ ہوتا ہے جس کی حرمت اور ممانعت پر اجماع ہو۔ (ت)

بالجملہ مقتدیوں کا یہ فعل تو علی الاختلاف ممنوع مگر مسلمانوں کو بلاوجہ مشرک بدعتی کہنا بالاجماع حرام قطعی تو یہ حضرات مانعین خود اپنی خبر لیں اور امام کے لئے تو اس کے جواز میں اصلاً کلام نہیں ، ہاں خوف مفسدہ اعتقاد عوام ہو تو التزام نہ کرے، فقیر غفر اللہ تعالی اس جلسہ میں اکثر سکوت کرتا اور کبھی اخلاص کبھی درود پڑھتا ہے اور رفع یدین کبھی نہیں کرتا کہ مقتدی دیکھ کر خود بھی مشغول بدعہ نہ ہوں ، مگر معاذ اللہ ایسا نا پاک تشدد شرع کبھی روا نہیں فرماتی، مولٰی تعالٰی ہدایت بخشے آمین واللہ سبحنہ وتعالٰی اعلم وعلمہ اتم واحکم۔

مسئلہ ۱۲۰۹: از ہیل کتور ضلع او ککنڈ مکان سومار سیٹھ صاحب مرسلہ سید حیدر شاہ صاحب ۲۸ ربیع الاول شریف ۱۳۱۵ھ جناب فیض مآب جامع علوم نقلیہ و حاوی فنون عقلیہ علامہ دہر فہامہ عصر مولانا مولوی احمد رضا خاں صاحب ادام اللہ فیوضہ ، ادائے آداب کے بعد بندہ حیدر شاہ عرض رساں ہے کہ ایک مسئلہ کی ضرورت ہے چونکہ آپ مشاہیر علمائے انام سے ہیں اور آپ کے اخلاق و اوصاف بے نہایت ہیں اور بہت لوگوں سے سنا ہے کہ آپ حنفی المذہب سنی المشرب ہیں و نیز جواب سوال جلد ترسیل فرماتے ہیں، لہذا التماس خدمت فیض درجت میں یہ ہے کہ احقر کو جواب سے سرفراز فرمائیں، مذہب حنفی و شافعی میں بین الخطبتین ہاتھ اٹھا کے دعا مانگنی مشروع و مسنون ہے یا نہیں؟ مترجم اردو الدر المختار، ایک جگہ لکھتا ہے کہ ایک مرتبہ بریلی

کے علماء سے اسی مسئلہ میں استفتاء طلب کیا گیا تھا چنانچہ وہاں علماء کا فتویٰ یہی ہوا کہ ہاتھ اٹھا کے دعا مانگنی بین الخطبتین بدعت سیئہ و غیر مشروع ہے، پس آیا یہ بات صحیح ہے یا غلط چونکہ آپ متوطن بریلی کے ہیں آپ کو حقیقت اس کی کما ینبغی معلوم ہو گی پس آپ اطلاع دیجئے کہ مترجم نے ٹھیک لکھا ہے یا محض دھوکہ دہی عوام الناس ہے۔ بینوا توجروا

الجواب: مسنونیت مصطلحہ کہ تارک، مستوجب عتاب الہی یا آثم و مستحق عذاب الہی ہو والعیاذ باللہ یہ نہ کسی کا

---

1 الحدیقة الندیة نوع ۳۳ الکلام فی حال الخطبة مطبوعہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲۲ / ۳۰۹

Fatawa Razawiya, Volume 8

Among those who do not hold the view that prayer is prohibited, no intelligent person would say such a thing. Rather, knowing it to be a time when prayers are more likely to be answered, they pray, and indeed it is so. Prayer is the essence of worship and a form of remembrance of Allah Almighty, for whose increase the texts of the Great Quran and the continuous Hadiths of the compassionate Prophet (peace and blessings be upon him and his family) are clear. Raising hands is according to the clarification of the Hadiths and the consensus of the early scholars and the traditions and etiquettes of prayer. Its permission and legality for the khatib (preacher) is by agreement of both the Hanafi and Shafi'i schools. Similarly for the audience, when the prayer is from the heart and not with the tongue. And for the audience to pray with the tongue at that time, as is common and customary in these lands, its permission and legality are clear in the Shafi'i school, for the Shafi'i imams (may Allah Almighty have mercy on them) do not consider the speech of the audience during the sermon to be impermissible or forbidden; they only consider it disliked (makruh). And when 'disliked' is used absolutely in Shafi'i terminology, it refers to 'makruh tanzihi' (mildly disliked), unlike the words of our Hanafi imams (may Allah Almighty have mercy on them), where the prevailing interpretation of 'disliked' when used absolutely is 'makruh tahrimi' (prohibitively disliked). Allama Abdul Ghani Nabulsi (may his secret be sanctified) states in Al-Hadiqa al-Nadiyya Sharh al-Tariqa al-Muhammadiyya, under the section 'Evils of the Hand, Issue of Chess':

[Arabic Box 1]: Al-karahatu 'indash-shafi'iyyati iza utliqat tansarifu ilat-tanzihiyyati laa at-tahrimiyyati bikhilafi mazhabina -1 Translation: According to the Shafi'is, when 'disliked' (al-karaha) is mentioned absolutely, it refers to 'tanzihiyya' (mildly disliked), not 'tahrimiyya' (prohibitively disliked), unlike our school (where it refers to prohibitively disliked). (T)

And during the silence of the khatib, such as before and after the sermon and between the two sermons, they do not consider it disliked at all. Imam Abu Yusuf Ardebili Shafi'i states in the book Al-Anwar:

[Arabic Box 2]: La yajibu al-istima'u wa huwa shughlul-sam'i bis-sama'i -2

It is also mentioned therein:

[Arabic Box 3]: La yahrumu al-kalamu haalal-khutbati laa 'alal-khatibi wa laa 'alal-ma'mumina al-sami'ina wa ghayrihim Translation: Speech during the sermon is not

prohibited, neither for the khatib nor for the followers who are listening and others; yes, it is disliked without a purpose, for example...

---

1. Al-Hadiqa al-Nadiyya, the fifth class among nine classes regarding the explanation of the evils of the hand, published by Nooria Razwia Faisalabad, 2/440.
2. Al-Anwar li-A'mal al-Abrar, chapter on the validity of Friday prayer etc., Jamalia Press Egypt, 1/101.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

दुआ न करने वालों के धर्म में भी कोई समझदार व्यक्ति ऐसा नहीं कहेगा, बल्कि इसे दुआ की स्वीकार्यता का समय जानकर वे दुआ करते हैं, और वास्तव में ऐसा ही है। दुआ इबादत का सार और अल्लाह अज़्वजल के ज़िक्र के तरीकों में से है, जिसकी अधिकता पर क़ुरआन अज़ीम के स्पष्ट आदेश और नबी रऊफ़ रहीम (उन पर और उनके परिवार पर श्रेष्ठ दरूद व सलाम हो) की मुतवातिर हदीसें गवाह हैं। दुआ के समय हाथ उठाना हदीसों के स्पष्टीकरण और पुराने उलेमाओं के निरंतर बयानों और दुआ की सुन्नतों और आदाब के अनुसार है। ख़तीब के लिए इसकी अनुमति और वैधता पर हनफ़ी और शाफ़ई दोनों मज़हब सहमत हैं। इसी तरह सुनने वालों के लिए भी जब दुआ दिल से हो न कि ज़बान से। और उस समय सुनने वालों का ज़बान से दुआ माँगना जैसा कि इन शहरों में प्रचलित और सामान्य है, शाफ़ई मज़हब में तो इसकी अनुमति और वैधता स्पष्ट है क्योंकि अइम्मा शाफ़ईया (अल्लाह उन पर रहम करे) खुतबा होते समय भी सुनने वालों के बात करने को नाजायज़ और हराम नहीं मानते, केवल मकरूह (नापसंद) मानते हैं। और शाफ़ई मज़हब में जब 'मकरूह' शब्द बिना किसी शर्त के बोला जाता है, तो उससे 'मकरूह तन्ज़ीही' (हल्का नापसंद) मुराद होता है। इसके विपरीत हमारे हनफ़ी अइम्मा (अल्लाह उन पर रहम करे) के बयानों में अक्सर यही होता है कि बिना शर्त 'मकरूह' कहना 'मकरूह तहरीमी' (सख्ती से नापसंद) है। अल्लामा अब्दुल गनी नाबुलसी (उनका रहस्य पवित्र हो) 'हदीक़ा नदिय्या शरह तरीक़ा मोहम्मदिया' के'आफ़ात अल-यद' मसला शतरंज में फ़रमाते हैं:

[अरबी बॉक्स 1]: अल-कराहतु इंदश-शाफिइय्यति इज़ा उतलिक़त तंसरिफ़ु इलत-तन्ज़ीहिय्यति ला अत-तहरीमिय्यति बिख़िलाफ़ि मज़हबिना -1 अनुवाद: शाफ़ईयों के नज़दीक मुतलक़न कराहत का अर्थ मकरूह तन्ज़ीही होता है न कि तहरीमी, हमारे मज़हब के विपरीत (जिसमें तहरीमी पर होता है)। (त)

और ख़तीब की खामोशी के समय, जैसे खुतबे से पहले और बाद में और दो खुतबों के बीच, वे इसे बिल्कुल भी मकरूह नहीं मानते। इमाम अबू यूसुफ़ अर्देबिली शाफ़ई किताब 'अल-अनवार' में फ़रमाते हैं:

[अरबी बॉक्स 2]: ला यजीबु अल-इस्तिमाऊ व हुवा शुग़लुल-समइ बिस-समाई -2

इसी में है:

[अरबी बॉक्स 3]: ला यहरुमु अल-कलामु हालल-ख़ुतबति ला 'अलल-ख़तीबि व ला 'अलल-मामूमीना अस-सामिईना व ग़ैरिहिम अनुवाद: खुतबे के दौरान बात करना हराम नहीं है, न ख़तीब पर और न ही सुनने वाले मुक़्तदियों और दूसरों पर, हाँ बिना किसी ज़रूरत के मकरूह है, उदाहरण के लिए...

---

1. अल-हदीक़ा अल-नदिय्या, नौ श्रेणियों में से पाँचवीं श्रेणी, हाथ की बुराइयों के बयान में, नूरिया रज़विया फ़ैसलाबाद, 2/440 द्वारा मुद्रित।
2. अल-अनवार लि-अमाल अल-अबरार, जुमे की सहीह नमाज़ का अध्याय आदि, जमालिया प्रेस मिस्र, 1/101।

पृष्ठ 487 / 673

مذہب نہ دُعا کرنے والوں میں کوئی ذی فہم اس کا قائل بلکہ وقت مرجو الاجابۃ جان کر دُعا کرتے ہیں اور بیشک وہ ایسا ہی ہے اور دعا مغزِ عبادت وانحائے ذکر الٰہی عزوجل سے ہے جس کی تکثیر پر بلا تقیید و تحدید نصوصِ قرآن عظیم و احادیث متواترہ نبی رؤف رحیم علیہ و علی آلہ افضل الصلوۃ و التسلیم ناطق اور ہاتھ اٹھانا حسبِ تصریح احادیث و تظافر ارشادات علمائے قدیم و حدیث سُنن و آداب دُعا سے ہے خطیب کے لئے اُس کی اجازت و مشروعیت تو باتفاق مذہبین حنفی و شافعی ہے یونہی سامعین کے لئے جبکہ دُعا دل سے ہو نہ زبان سے اور سامعین کا اُس وقت زبان سے دُعا مانگنا جس طرح ان بلاد میں مروج و معمولی ہے، مذہب شافعیہ میں تو اُس کی اجازت و مشروعیت ظاہر کہ ائمہ شافعیہ رحمہم اللہ تعالٰی میں خطبہ ہوتے وقت بھی کلام سامعین نا جائز و حرام نہیں جانتے صرف مکروہ مانتے ہیں اور کراہت کلام شافعیہ میں جب مطلق بولی جاتی ہے اس سے کراہتِ تنزیہی مراد ہوتی ہے بخلاف کلمات ائمتنا الحنفیہ رحمہم اللہ تعالی فان غالب محملھا بھا مطلقۃ فیھا کراہۃ التحریم (بخلاف ہمارے ائمہ احناف رحمہم اللہ تعالٰی کی عبارات کے کیونکہ ان میں غالب یہی ہے کہ مطلقاً کراہت مکروہ تحریمی ہے۔ ت) علامہ عبدالغنی نابلسی قدس سرہ القدسی حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ آفات الید مسئلہ الشطرنج میں فرماتے ہیں:

[Arabic Box 1]: الکراہۃ عند الشافعیۃ اذا اطلقت تنصرف الی التنزیہیۃ لا التحریمیۃ بخلاف مذہبنا 1- [Urdu Translation]: شوافع کے نزدیک مطلقاً کراہت کا اطلاق مکروہ تنزیہی پر ہوتا ہے نہ کہ تحریمی پر بخلاف ہمارے مذہب کے (اس میں تحریمی پر ہے)۔(ت)

اور سکوتِ خطیب کے وقت جیسے قبل و بعد خطبہ و بین الخطبتین اصلاً کراہت بھی نہیں مانتے۔ امام ابو یوسف اردبیلی شافعی کتاب الانوار میں فرماتے ہیں:

[Arabic Box 2]: لا یجب الاستماع وھو شغل السمع بالسماع 2- [Urdu Translation]: استماع واجب نہیں اور استماع سے مراد کانوں کو سماع میں مشغول کرنا ہے۔(ت)

اسی میں ہے:

[Arabic Box 3]: لا یحرم الکلام حال الخطبۃ لا علی الخطیب ولا علی المأ مومین السامعین وغیر ھم [Urdu Translation]: خطبہ کے دوران کلام حرام نہیں نہ خطبہ پر نہ مقتدیوں پر، ہاں بغیر غرض کے مکروہ ہے، مثلاً

---

1 الحدیقۃ الندیۃ الصنف الخامس من الاصناف التسعۃ فی بیان آفات الید مطبوعہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲/۴۴۰ 2 الانوار الاعمال الابرار فصل لصحیح الجمعہ الخ مطبعہ جمالیہ مصر ۱/۱۰۱

Fatawa-e-Razvia Volume 8

(Arabic) But it is disliked except for an important purpose, such as warning someone who is about to fall into a well or about to be stung by a scorpion, or teaching something good or forbidding something evil.

(Urdu) It is permissible to warn someone falling into a well, or to save someone from a scorpion, or to command good and forbid evil. (T)

In the same book it is stated:

(Arabic) Talking is not disliked during the Azan, nor between the two sermons (Khutbahs), nor between the sermon and the prayer.

(Urdu) Talking is not disliked during the Azan, between the two sermons, and between the sermon and the prayer. (T)

Allama Zayn al-Din Shafi'i, a student of Imam Ibn Hajar al-Makki, says in Fath al-Mu'in sharh Qurrat al-'Ayn:

(Arabic) Talking is disliked during the sermon, not before it, even if [the Imam] has sat on the pulpit, nor after it, nor between the two sermons. It is Sunnah to say 'Yarhamukallah' to one who sneezes and to reply to them. Raising the voice without exaggeration in sending Salutations and Peace upon him (Allah's peace and blessings be upon him) when the Khateeb mentions his name or description is allowed. Our Sheikh said: It is not far-fetched that it is desirable to say 'Radi Allahu Anhu' for the Companions without raising the voice, as well as saying 'Ameen' for the Khateeb's prayer. (End of summary).

(Urdu) Talking during the sermon is disliked. Before the sermon, even if the Khateeb has sat on the pulpit, and between the two sermons, talking is not prohibited. Giving the answer to one who sneezes and praying for them in return is Sunnah. When the Khateeb mentions the name or description of the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him), Salutations and Peace can be offered, but the voice should not be raised. Our Sheikh said that saying 'Radi Allahu Anhu' at the mention of the Companions and 'Ameen' during the Khateeb's prayer without raising the voice is likely recommended. (End of summary) (T)

Similarly, in the Hanafi school, according to Imam al-Thani Qadi Rabbani Sayyiduna Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), it is also absolutely permissible. In the three times other than during the sermon—that is, before, after, and between the two sermons—although he forbids worldly talk, he considers religious talk like Dhikr and Tasbih absolutely permissible. And obviously, a special prayer is a religious talk and an act of worship to Allah. It is in Maraqi al-Falah:

(Arabic) When the Imam comes out, there is no prayer and no talk, and this is the saying...	**(Urdu) When the Imam comes out, there is no talk or prayer, and this...**

1. Al-Anwar li-A'mal al-Abrar, Chapter on the Validity of Jumu'ah, etc., Al-Jamaliyah Press, Egypt, 1/101.
2. Al-Anwar li-A'mal al-Abrar, Chapter on the Validity of Jumu'ah, etc., Al-Jamaliyah Press, Egypt, 1/101.
3. Fath al-Mu'in sharh Qurrat al-'Ayn, Chapter on the Jumu'ah Prayer, Amir al-Islam Press, Tiruvangadi, India, p. 146.

(अरबी) लेकिन यह किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य के बिना नापसंद (मक़रूह) है, जैसे किसी कुएँ में गिरने वाले को चेतावनी देना या बिच्छू से बचाना, या अच्छी बात सिखाना या बुराई से रोकना।

(उर्दू) कुएँ में गिरने वाले को सचेत करना या बिच्छू से बचाना या भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना जायज़ है। (त)

इसी में है:

(अरबी) अज़ान के दौरान, दोनों खुतबों के बीच, और खुतबे और नमाज़ के बीच बातचीत करना मक़रूह नहीं है।

(उर्दू) अज़ान, दोनों खुतबों के बीच और खुतबे और नमाज़ के बीच बातचीत मक़रूह नहीं है। (त)

अल्लामा ज़ैनुद्दीन शाफ़ई, इमाम इब्न हजर मक्की के शिष्य, फ़तह अल-मुईन शरह कुर्रतुल ऐन में फ़रमाते हैं:

(अरबी) खुतबे के दौरान बात करना मक़रूह है, उससे पहले नहीं, चाहे इमाम मिम्बर पर बैठ चुका हो, और न ही उसके बाद, और न ही दो खुतबों के बीच। छींकने वाले को 'यरहमुकल्लाह' कहना और उसे जवाब देना सुन्नत है। जब खतीब नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के नाम या उनकी विशेषता का ज़िक्र करे, तो ज़ोर से आवाज़ किए बिना उन पर दरूद व सलाम भेजना जायज़ है। हमारे शेख ने फ़रमाया: सहाबा के नाम पर 'रज़ी अल्लाहु अन्हु' कहना और खतीब की दुआ के समय आवाज़ बुलंद किए बिना 'आमीन' कहना मुस्तहब होना दूर नहीं है। (संक्षेप में समाप्त)।

(उर्दू) खुतबे के दौरान बात करना मक़रूह है। खुतबे से पहले, चाहे खतीब मिम्बर पर बैठ चुका हो, और दो खुतबों के बीच बातचीत हराम नहीं है। छींकने वाले को जवाब देना और उसके बदले में दुआ देना सुन्नत है। जब खतीब नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का नाम या सिफ़त बयान करे, तो दरूद व सलाम पेश किया जा सकता है, अलबत्ता आवाज़ बुलंद न की जाए। हमारे शेख ने फ़रमाया कि सहाबा के नाम पर 'रज़ी अल्लाहु अन्हु' और खतीब की दुआ के वक़्त आवाज़ बुलंद किए बिना 'आमीन' कहना मुस्तहब होना बईद (असंभव) नहीं है। (संक्षेप में समाप्त) (त)

इसी तरह हनफ़ी मज़हब में इमाम सानी क़ाज़ी रब्बानी सैय्यदना इमाम अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाह अलैहि) के नज़दीक भी मुतलक़न (पूरी तरह) जवाज़ है। खुतबे के अलावा तीन औक़ात में, यानी खुतबे से पहले, बाद में और दोनों खुतबों के दरमियान, हालाँकि वे दुनियावी बातों से मना फ़रमाते हैं, लेकिन दीनी बातें जैसे ज़िक्र और तस्बीह को मुतलक़न जायज़ रखते हैं। और ज़ाहिर है कि दुआ ख़ास दीनी बात और अल्लाह की इबादत है। मराक़िल फ़लाह में है:

(अरबी) जब इमाम बाहर आए, तो न नमाज़ है और न बात, और यही कौल (बात) है...	**(उर्दू) जब इमाम आ जाए तो कोई बात और नमाज़ नहीं, और यही...**

1. अल-अनवार ली-अमाल अल-अबरार, जुमे की सेहत का बयान, अल-जमालिया प्रेस, मिस्र, 1/101।
2. अल-अनवार ली-अमाल अल-अबरार, जुमे की सेहत का बयान, अल-जमालिया प्रेस, मिस्र, 1/101।
3. फ़तह अल-मुईन शरह कुर्रतुल ऐन, जुमे की नमाज़ का बयान, आमिरुल इस्लाम प्रेस, तिरुवंगाड़ी, इंडिया, पृ. 146।

لکن یکرہ الا لغرض مہم کاند ارمن یقع في بئر او عقرب ویتعلم خیرا او نہی عن شیئ1۔

کنوئیں میں گرنے والے کو متنبہ کرنا یا بچھو سے بچانا یا خیر کا حکم دینا اور برائی سے روکنا جائز ہے (ت)

اسی میں ہے :

لایکرہ الکلام حال الاذان ولابین الخطبتین ولابین الخطبۃ والصلوۃ2۔

اذان، دونوں خطبوں کے درمیان اور خطبہ اور نماز کے درمیان کلام مکروہ نہیں۔ (ت)

علامہ زین الدین شافعی تلمیذ امام ابن حجر مکی فتح المعین بشرح قرۃ العین میں فرماتے ہیں:

یکرہ الکلام وحال الخطبۃ لا قبلہا ولو بعد الجلوس علی المنبر ولابعدھا ولابین الخطبتین ویسن تشمیت العاطس والرد علیہ ورفع الصوت من غیر مبالغۃ بالصلوۃ والسلام علیہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم عند ذکر الخطیب اسمہ او وصفہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم قال شیخنا ولا یبعد ندب الترضی عن الصحابۃ بلارفع صوت وکذا التامین لدعاء الخطیب3اھ مختصرا۔

دوران خطبہ کلام مکروہ ہے، خطبہ سے پہلے اگرچہ خطیب منبر پر بیٹھ چکا ہو اور دو خطبوں کے درمیان کلام حرام نہیں ہے، چھینک مارنے والے کا جواب دینا اور اس کے بدلہ میں دعا دینا سنت ہے اور جب خطیب نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا اسم یا وصف ذکر کرے تو صلوٰۃ و سلام عرض کیا جا سکتا ہے البتہ آواز بلند نہ کی جائے، ہمارے شیخ نے فرمایا کہ صحابہ کے نام پر رضی اللہ تعالٰی عنہ اور دعاء خطیب کے وقت آمین آواز بلند کئے بغیر کہنا مستحب ہونا بعید نہیں اھ اختصاراً (ت)

یونہی مذہب حنفی میں امام ثانی قاضی ربانی سیدنا امام ابو یوسف رحمہ اللہ تعالیٰ کے نزدیک بھی مطلقاً جواز ہے، اوقات ثلثہ غیر حال خطبہ یعنی قبل و بعد و مابین خطبتین میں اگرچہ کلام دنیوی منع فرماتے ہیں مگر کلام دینی مثل ذکر و تسبیح مطلقاً جائز رکھتے ہیں، اور پر ظاہر دُعا خاص کلام دینی عبادت الہی ہے۔ مراقی الفلاح میں ہے :

اذا خرج الامام فلاصلوۃ ولا کلام وھو قول جب امام آ جائے تو کوئی کلام و نماز نہیں، اور یہی

1 الانوار لاعمال الابرار فصل لصحۃ الجمعۃ الخ مطبعۃ جمالیۃ مصر ۱ / ۱۰۱ 2 الانوار لاعمال الابرار فصل لصحۃ الجمعۃ الخ مطبعۃ جمالیۃ مصر ۱ / ۱۰۱ 3 فتح المعین شرح قرۃ العین فصل فی صلوۃ الجمعۃ عامر الاسلام پریس تر و نگاری انڈیا ص ۱۴۶

Fatawa Razwiya Volume Eight

[Arabic Box - Left]: The Imam [the author] said: Abu Yusuf and Muhammad said: There is no harm in speaking when the Imam comes out before he begins the sermon, and when he descends before he says the Takbir. They differed regarding his sitting while silent; according to Abu Yusuf, it is permissible because the dislike (karahah) is due to disturbing the purpose of listening, and there is no listening here. His reasoning is the absolute nature of the command. (Abbreviated)

[Urdu Box - Right]: The statement of the Imam: Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad (may Allah have mercy on them) say that there is no harm in conversation before the sermon begins. Similarly, there is no harm in conversation when the Imam descends from the pulpit and before the Takbir. When the preacher sits silently on the pulpit, there is a difference of opinion between them at that time. According to Imam Abu Yusuf, it is permissible because the reason for dislike is the occurrence of a disturbance in listening to the sermon, and here there is no listening. Their proof is the absolute nature of the command. (Abbreviated)

The founder of the school of thought, Imam al-A'immah Sayyiduna Imam al-Azam (may Allah be pleased with him), forbade conversation from the time the Imam comes out until the completion of the prayer. The scholars (Mashayikh) of the school differed regarding what is meant by this, and different corrections (tas-hih) have been presented. Some say that the Imam meant only worldly talk, and religious talk is generally permitted during those three times. This was called 'most correct' in Nihayah and Inayah. Similarly, Fakhr al-Islam stated this in Mabsoot. Other noble scholars took it in an absolute sense. Imam Zayla'i in Tabyin al-Haqa'iq called this the 'more cautious' view.

[Arabic Box - Left]: I say: The absolute statements of the texts and most books are based on it, and general sub-issues arise from it, as is clear from referring to what we have noted in the margins of Radd al-Muhtar. So, it is the most correct of the two corrections in it. Know that how can it not be so, while the researchers have clearly stated that worldly talk is disliked by consensus? So, if the Imam only forbade that, the disagreement would be resolved, whereas all the reliable books are full of the proof of this disagreement.

[Urdu Box - Right]: I say that the absolute statements of the texts and most books follow this, and common sub-issues are extracted from it, as is apparent from our marginalia on Radd al-Muhtar. According to my knowledge, this is the more correct

of the two corrections. And why should it not be so? While the researchers have clarified that worldly talk is unanimously disliked. And if the Imam had only forbidden that, the difference would disappear, whereas all the books are full of proofs of this difference. (T)

In Bahr al-Ra'iq, under the author's statement: "When the Imam comes out, there is no prayer and no talk" (when the Imam arrives...

---

[1] Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter of Friday, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 282.

फ़तावा रज़विया खंड आठ

[अरबी बॉक्स - बाएँ]: इमाम [लेखक] ने कहा: अबू यूसुफ़ और मुहम्मद ने कहा: खुत्बा शुरू करने से पहले इमाम के बाहर निकलने पर और तकबीर कहने से पहले उसके उतरने पर बातचीत करने में कोई हर्ज नहीं है। जब वह चुपचाप बैठा हो, तो उसके बैठने के बारे में उनमें मतभेद है; अबू यूसुफ़ के अनुसार, यह जायज़ है क्योंकि नापसंदगी (कराहियत) सुनने के उद्देश्य में व्यवधान डालने के कारण है, और यहाँ कोई सुनना नहीं है। उनका तर्क आदेश की निरपेक्षता है। (संक्षिप्त)

[उर्दू बॉक्स - दाएँ]: इमाम का कथन: इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर रहम करे) कहते हैं कि खुत्बा शुरू होने से पहले बातचीत में कोई हर्ज नहीं है। इसी तरह जब इमाम मिंबर से उतरे और तकबीर से पहले भी बातचीत में कोई हर्ज नहीं है। जब मिंबर पर खतीब चुपचाप बैठा हो, तो उस समय उनमें मतभेद है। इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार यह मुबाह (जायज़) है क्योंकि कराहियत का कारण खुत्बा सुनने में खलल पैदा होना है और यहाँ सुनना नहीं हो रहा है। उनकी दलील हुक्म का आम (निरपेक्ष) होना है। (संक्षिप्त)

मज़हब के संस्थापक इमाम-उल-आइम्मा सैयदुना इमाम-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने इमाम के निकलने से लेकर नमाज़ पूरी होने तक बातचीत करने से मना किया है। मज़हब के विद्वानों (मशायख) में इसके अर्थ को लेकर मतभेद रहा और अलग-अलग 'तसहीह' (सहीकरण) सामने आए हैं। कुछ कहते हैं कि इमाम का मतलब केवल दुनियावी बातों से था, और उन तीन समयों में धार्मिक बातों की आम अनुमति है। निहाया और इनाया में इसे ही 'सबसे सही' कहा गया है। इसी तरह फख़्र-उल-इस्लाम ने मबसूत में यह बात कही है। अन्य महान विद्वानों ने इसे निरपेक्ष अर्थ में लिया। इमाम ज़ैलाई ने तय्यीन अल-हक़ाएक़ में इसे ही 'अधिक एहतियात वाला' दृष्टिकोण बताया।

[अरबी बॉक्स - बाएँ]: मैं कहता हूँ: ग्रंथों के आम कथन और अधिकांश पुस्तकें इसी पर आधारित हैं, और आम उप-विषय इसी से निकले हैं, जैसा कि 'रद्दुल मुहतार' पर हमारे हाशिया (टिप्पणियों) को देखने से स्पष्ट है। अत; यह उनमें दो सहीकरणों में से सबसे सही है। जान लें कि यह ऐसा क्यों न हो, जबकि शोधकर्ताओं ने स्पष्ट किया है कि दुनियावी बातचीत सर्वसम्मति से नापसंद (मकरूह) है? तो, यदि इमाम ने केवल उसी से मना किया होता, तो मतभेद समाप्त हो जाता, जबकि सभी विश्वसनीय पुस्तकें इस मतभेद के प्रमाणों से भरी पड़ी हैं।

[उर्दू बॉक्स - दाएँ]: मैं कहता हूँ कि ग्रंथों के आम बयानों और अधिकांश पुस्तकों में यही चलता है और आम उप-मसले इसी से निकाले गए हैं जैसा कि हमारे हाशिया 'रद्दुल मुहतार' से ज़ाहिर है और मेरे ज्ञान के अनुसार दोनों तसहीह (सहीकरण) में यह ज़्यादा सही है। और यह कैसे न हो जबकि शोधकर्ताओं ने स्पष्ट किया है कि दुनियावी बातचीत सर्वसम्मति से मकरूह है। और अगर इमाम ने केवल इसी से मना किया है तो अब मतभेद समाप्त हो जाएगा जबकि तमाम पुस्तकें इस मतभेद के सबूत से भरी हुई हैं। (त)

'बह्र-उर-रायिक़' में लेखक के इस कथन के तहत: "जब इमाम बाहर आ जाए तो न नमाज़ है न बात" (जब इमाम आ जाए...

---

[1] मराक़ी अल-फ़लाह मा हाशिया अल-तहतावी, जुमा का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची द्वारा मुद्रित, पृष्ठ 282।

पृष्ठ 673 में से 489

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[Arabic Box - Left]: الامام وقال ابویوسف ومحمد لا بأس بالکلام اذا خرج قبل یخطب واذانزل قبل ان یکبر واختلفا فی جلوسه اذا سکت فعند ابی یوسف یباح لان الکراهة للاخلال بغرض الاستماع ولا استماع ، وله اطلاق الامر[1] اه ببعض اختصار۔

[Urdu Box - Right]: امام کا قول ہے، امام ابو یوسف اور امام محمد رحمہما اللہ تعالٰی کہتے ہیں خطبہ شروع ہونے سے پہلے کلام میں کوئی حرج نہیں، اسی طرح جب امام منبر سے اترے اور تکبیر سے پہلے بھی گفتگو میں کوئی حرج نہیں، جب منبر پر خطیب خاموش بیٹھا ہو تو اس وقت ان میں اختلاف ہے امام ابو یوسف کے نزدیک مباح ہے کیونکہ کراہت کی وجہ خطبہ سننے میں خلل کا واقع ہونا ہے اور یہاں استماع نہیں ہے ان کی دلیل امر کا اطلاق ہے اہ مختصراً (ت)

صاحبِ مذہب امام الائمہ سید نا امام اعظم رضی اللہ تعالٰی عنہ نے کہ خروج امام سے فراغ نماز تک کلام سے ممانعت فرمائی، مشائخ مذہب اس سے مراد میں مختلف ہوئے اور تصحیح بھی مختلف آئی، بعض فرماتے ہیں مراد امام صرف دنیوی کلام ہے، اوقات ثلاثہ میں دینی کی اجازت عام ہے، نہایہ و عنایہ میں اسی کو اصح کہا، ایسا ہی فخر الاسلام نے مبسوط میں فرمایا، مشائخ کرام نے مطلق مراد لیا، امام زیلعی نے تبیین الحقائق میں اسی کو احوط کہا۔

[Arabic Box - Left]: قلت واطلاقات المتون واکثر الکتب علیه ماشیة وعامة التفاریع عنه ناشیة کما یظهر بمراجعة ما علقنا علی رد المحتار فهو اصح التصحیحین فیها اعلم کیف لا وقد صرح المحققون ان الدنیوی مکروه اجماعا فلو لم ینهی الامام الاعنه لارتفع الخلاف مع ان الکتب المعتمدة عن آخرها متظافرة علی اثباته۔

[Urdu Box - Right]: میں کہتا ہوں کہ متون کے اطلاقات پر اور اکثر کتب اسی پر جاری ہیں اور عام تفریعات اس سے مستخرج ہیں جیسا کہ ہمارے حاشیہ ردالمحتار سے ظاہر ہے اور میرے علم کے مطابق دونوں تصحیحوں میں یہ اصح ہے اور یہ کیسے نہ ہو حالانکہ محققین نے تصریح کی ہے کہ کلام دنیوی بالاتفاق مکروہ ہے، اور اگر امام نے اس سے ہی منع کیا ہے تو اب اختلاف مرتفع ہوجائے گا حالانکہ تمام کتب اس اختلاف کے ثبوت سے مالا مال ہیں۔ (ت)

بحر الرائق میں زیر قول مصنف اذا خرج الامام فلا صلوۃ ولا کلام (جب امام آجائے تو

---

[1] مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب الجمعۃ مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۸۲

Fatawa Rizvia Volume 8

...no prayer and no speech. (T): [Arabic]: Speech was prohibited unconditionally, so this includes tasbih (glorification), dhikr (remembrance), and recitation. In Al-Nihayah, it is stated that the scholars differed regarding Imam Abu Hanifa's (may Allah be pleased with him) opinion. Some said that only human speech (worldly talk) is disliked here, while tasbih etc., are not disliked. Some said all of this is disliked, and the first view is more correct. End. Similarly, it is in Al-Inayah. The commentator mentioned that the most cautious approach is to remain silent. It is necessary that the point of difference is before the start of the sermon, as indicated by the words 'according to Abu Hanifa's view.' As for the time of the sermon, speech is prohibited (makruh tahrimi) even if it is commanding good or tasbih or anything like that, as clarified in Al-Khulasah and other books. Finished with brevity.

[Urdu]: Prohibition of speech was stated unconditionally, therefore this will also include tasbih, dhikr, and recitation. It is mentioned in Nihayah that scholars have differed on the statement of Imam Abu Hanifa (may Allah Almighty be pleased with him). Some said only that conversation is disliked which is of people (worldly talk), as for tasbih etc., they are not disliked. Some said that all of this is disliked and the first is more correct. It is also mentioned similarly in Inayah. The commentator mentioned that the more cautious approach is to remain silent, and it is necessary that the point of difference is before the start of the sermon, which is indicated by these words "on the statement of Abu Hanifa." During the sermon, speech is prohibited (Makruh Tahrimi), whether it be commanding good or tasbih or similar to it, as explicitly stated in Khulasah etc. Finished with brevity. (T)

In Tahtawi and Radd al-Muhtar, under the discussion of fatwa terminology: [Arabic]: His statement: and others like it such as Al-Ahwat (more cautious) and Al-Azhar (more apparent). [Urdu]: His statement: "besides these words", for example, Ahwat and Azhar. (T)

In Durr-ul-Mukhtar from Fatawa Khayriyyah: [Arabic]: Some words are more emphasized than others; the word 'Fatwa' is more emphasized than the word 'Sahih' (correct), and 'Al-Ahwat' is more emphasized than 'Al-Ihtiyat' (precaution). End concisely. [Urdu]: Some words are more emphasized relative to others; the word 'Fatwa' is more so than the word 'Sahih', and 'Ahwat' is more emphasized than 'Ihtiyat'. End concisely. (T)

[1] Bahr al-Ra'iq, Chapter of Friday Prayer, published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/128 [2] Radd al-Muhtar, Sermon of the Book, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/52 [3] Durr-ul-Mukhtar, Sermon of the Book, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/15

फ़तावा रिज़विया जिल्द 8

...कोई नमाज़ और कलाम नहीं। (त): [अरबी]: कलाम (बातचीत) को बिना किसी शर्त के मना किया गया है, इसलिए इसमें तस्बीह, ज़िक्र और क़िराअत भी शामिल होगी। निहाया में है कि उलेमा ने इमाम अबू हनीफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) के कौल पर मतभेद किया है। कुछ ने कहा कि यहाँ केवल इंसानी गुफ़्तगू (दुनियावी बातचीत) मकरूह है, जहाँ तक तस्बीह वग़ैरह का ताल्लुक है तो वो मकरूह नहीं। कुछ ने कहा कि यह सब मकरूह है और पहला कौल ज़्यादा सही है। इनाया में भी इसी तरह है। शारह ने ज़िक्र किया कि अहतियात चुप रहने में है। यह ज़रूरी है कि मतभेद का स्थान खुतबा शुरू होने से पहले का हो, जैसा कि उनके इन शब्दों से ज़ाहिर होता है 'अबू हनीफ़ा के कौल पर'। और खुतबे के समय कलाम करना मकरूह-ए-तहरीमी है, चाहे वो नेकी का हुक्म देना हो या तस्बीह या इसी तरह का कुछ और, जैसा कि खुलासा वग़ैरह में इसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है। संक्षेप में समाप्त।

[उर्दू]: मना-ए-कलाम मुतलकन कहा गया, लिहाज़ा यह तस्बीह, ज़िक्र और क़िराअत को भी शामिल होगा। निहाया में है कि मशाइख़ ने इमाम अबू हनीफ़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु के कौल पर इख़्तिलाफ़ किया है। बाज़ ने कहा यहाँ वही गुफ़्तगू मकरूह है जो लोगों की (दुनियावी गुफ़्तगू) हो, रही तस्बीह वग़ैरह तो वो मकरूह नहीं। बाज़ ने कहा कि यह तमाम मकरूह है और पहला अस्ह (ज़्यादा सही) है। इनाया में भी इसी तरह है। शारह ने ज़िक्र किया कि अहवत ख़ामोश होना है और यह ज़रूरी है कि महल्ले इख़्तिलाफ़ खुतबा में शुरू होने से पहले हो और इस पर उसके यह अल्फ़ाज़ कि "अबू हनीफ़ा के कौल पर" दलालत कर रहे और खुतबे के वक़्त कलाम मकरूहे तहरीमी है ख़्वाह अम्र बिल मारूफ़ या तस्बीह या उसकी मिसल हो जैसा कि खुलासा वग़ैरह में इस पर तसरीह है। इन्तहा बाख़्तिसार। (त)

तहतावी और रद्दुल मुहतार में फ़तवा के शब्दों की चर्चा के तहत: [अरबी]: उनका कौल 'और इसके अलावा अन्य शब्द जैसे अल-अहवत और अल-अज़हर'। [उर्दू]: उनका कौल ''इसके अलावा अल्फ़ाज़'' मसलन अहवत व अज़हर हैं। (त)

दुर्रे मुख्तार में फ़तावा खैरिया से है: [अरबी]: कुछ शब्द दूसरों की तुलना में अधिक ज़ोरदार (मुअक्कद) होते हैं; शब्द 'फ़तवा', शब्द 'सही' से अधिक ज़ोरदार है और 'अल-अहवत', 'अहतियात'

से अधिक ज़ोरदार है। संक्षेप में। [उर्दू]: बाज़ अल्फ़ाज़ बाज़ की निस्बत ज़्यादा मुअक्कद होते हैं लफ़्ज़े फ़तवा, लफ़्ज़े सही से और अहवत, अहतियात से ज़्यादा मुअक्कद है। मुख़्तसरन। (त)

1. बहरुल रैक, बाबे सलातुल जुमा, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी कराची, 2/128
2. रद्दुल मुहतार, खुतबुल किताब, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/52
3. दुर्रे मुख्तार, खुतबुल किताब, मुद्रित मतबा मुजतबाई दिल्ली, 1/15

पृष्ठ 490/673

کوئی نماز اور کلام نہیں۔ ت) ہے: اطلق فی منع الکلام فشمل التسبیح والذکر والقراءۃ وفی النھایۃ اختلف المشائخ علی قول ابی حنیفۃ قال بعضھم انما کان یکرہ ماکان من کلام الناس اما التسبیح ونحوہ فلاوقال بعضھم کل ذلك مکروہ والاول اصح اہ وکذا فی العنایۃ وذکر الشارح ان الاحوط الانصات اہ ویجب ان یکون محل الاختلف قبل شروعہ فی الخطبۃ ویدل علیہ قولہ "علی قول ابی حنیفۃ" و اماوقت الخطبۃ فالکلام مکروہ تحریما ولوکان امرا بمعروف اوتسبیحا اوغیرہ کما صرح بہ فی الخلاصۃ وغیرھا انتھی باختصار

منع کلام مطلقاً کہا، لہذا یہ تسبیح، ذکر اور قراءت کو بھی شامل ہوگا، نہایہ میں ہے کہ مشائخ نے امام ابو حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کے قول پر اختلاف کیا ہے بعض نے کہا یہاں وہی گفتگو مکروہ ہے جو لوگوں کی (دنیوی گفتگو) ہو، رہی تسبیح وغیرہ تو وہ مکروہ نہیں، بعض نے کہا کہ یہ تمام مکروہ ہے اور پہلا اصح ہے اہ عنایہ میں بھی اسی طرح ہے، شارح نے ذکر کیا کہ احوط خاموش ہونا ہے اور یہ ضروری ہے کہ محل اختلاف خطبہ میں شروع ہونے سے پہلے ہو اور اس پر اس کے یہ الفاظ کہ "ابو حنیفہ کے قول پر" دلالت کر رہے اور خطبہ کے وقت کلام مکروہ تحریمی ہے خواہ امر بالمعروف یا تسبیح یا اس کی مثل ہو جیسا کہ خلاصہ وغیرہ میں اس پر تصریح ہے، انتہٰی باختصار (ت)

طحطاوی ورد المحتار مبحث الفاظ افتا میں ہے: قولہ وغیرھا کالاحوط والاظہر۔ اس کا قول "اس کے علاوہ الفاظ "مثلاً احوط واظہر ہیں۔ (ت)

در مختار میں فتاویٰ خیریہ سے ہے: بعض الالفاظ اکد من بعض فلفظ الفتوی اکد من لفظ الصحیح والاحوط اکد من الاحتیاط اھ مختصرا۔ بعض الفاظ بعض کی نسبت زیادہ موکد ہوتے ہیں لفظ فتویٰ، لفظ صحیح سے اور احوط، احتیاط سے زیادہ موکد ہے اھ مختصراً (ت)

[1] بحر الرائق باب صلوۃ الجمعہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۱۲۸ [2] ردالمختار خطبہ الکتاب مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱ / ۵۲ [3] در مختار خطبہ الکتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۵

In short, the summary of the discussion is that the aforementioned prayer (dua) is absolutely permissible for the preacher (khateeb) and unanimously permissible for the listeners in their hearts according to the Shafi'i school of thought and the opinion of Imam Abu Yusuf. Regarding verbal recitation for them, one derivation of the Imam's guidance deems it disliked (makruh) and another deems it permissible. Since the authorities of fatwa have authenticated both opinions, according to one of the two authenticated views, the aforementioned prayer is absolutely permissible and prescribed for both the Imam and the followers, in heart and by tongue, by the consensus of both Hanafi and Shafi'i schools. Scholars explicitly state that when differing preferences are balanced, the obligated individual (mukallaf) has the choice to act upon whichever they desire; there is no ground for objection or denial. It is stated in 'Bahr al-Raiq', 'Durr al-Mukhtar', etc.:

When there are two authenticated opinions on an issue, it is permissible to judge and issue a fatwa based on either of them.[1]

When there are two correct opinions on a matter, fatwa and judgment based on either of them is permissible. (T)

For this reason, this humble servant (may Allah Almighty forgive him), despite knowing the authentication in 'Tabyeen' as more weightier here, has always seen the audience praying between the two sermons and never forbids or denies it. This is the summary of the discourse on this topic, and the detail is in our Fatwas with the help of the Bestower (Al-Wahhab). As for the translator of 'Durr al-Mukhtar's' citation of the scholars of Bareilly, it is not known who he intended by 'scholars of Bareilly' in his assumption. During his time, the most knowledgeable scholars of these regions, who were truly the only ones worthy of being called scholars of religion in their era and land, were the seal of researchers, our master and father (may his secret be sanctified). This humble servant was honored to follow him in Friday prayers for years. The praised master (may his secret be sanctified) would pray during the sitting between the two sermons and never forbade seeing the audience praying. Before the translator's time, an inquiry (istifta) regarding this matter took place in Bareilly. Maulana Ahmad Hussain (late), the student of Aala Hazrat Syed al-Ulama, the authority of the gnostics, our grandfather (may his noble secret be sanctified), issued a fatwa on the permissibility and legality. Aala Hazrat (may Allah enlighten his noble resting place) and the great scholar Maulana Syed Yaqub Ali Sahab Razavi Bareillwi and Maulana Syed Mahmood Ali Sahab Bareillwi and other noble scholars affixed

their seals to it. This fatwa is included and contained in the collection of fatwas of the late Maulana named 'Mufid al-Muslimeen', and for the satisfaction of the questioner, it is quoted here:

Question: What do the scholars of religion and the muftis of the firm Shariah say about the issue of whether it is Sunnah for the Imam to sit after reciting the first sermon or not? And how long should the preacher pause in the sitting? And these times...

[1] Durr al-Mukhtar, Sermon of the Book, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/14.

संक्षेप में, चर्चा का सार यह है कि उपर्युक्त दुआ खतीब (उपदेशक) के लिए पूर्णतः और श्रोताओं के लिए उनके दिलों में इमाम शाफी के मज़हब और इमाम अबू यूसुफ के कथन के अनुसार सर्वसम्मति से जायज़ है। उनके लिए ज़बान से कहने के सम्बन्ध में, इमाम के मार्गदर्शन की एक व्याख्या इसे मकरूह (नापसंद) और दूसरी इसे जायज़ मानती है। चूँकि फतवा देने वाले इमामों ने दोनों को सही ठहराया है, तो दो सही कथनों में से एक के अनुसार, उपर्युक्त दुआ इमाम और मुक्तदियों (अनुयायियों) दोनों के लिए दिल और ज़बान से, हनफी और शाफी दोनों मज़हबों की सर्वसम्मति से हर तरह से जायज़ और शरीयत के अनुकूल है। विद्वान स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जब प्राथमिकताएँ संतुलित हों, तो मुकल्लफ (जिस पर शरीयत के नियम लागू होते हैं) को अधिकार है कि वह उनमें से जिस पर चाहे अमल करे; यह मूलतः आपत्ति या इनकार का विषय नहीं है। 'बहर-उर-रैक' और 'दुर-ए-मुख्तार' आदि में लिखा है:

जब किसी मसले में दो प्रामाणिक कथन हों, तो उनमें से किसी एक पर फतवा और फैसला देना जायज़ है।[1]	**जब मसला में दो अक़वाल-ए-सहीहा हों तो उनमें से एक पर फ़तवा और क़ज़ा जाइज़ होती है। (त)**

और इसी कारण यह तुच्छ सेवक (अल्लाह उसे क्षमा करे), यहाँ 'तबीन' के प्रमाणीकरण को अधिक उपयुक्त जानते हुए भी, हमेशा श्रोताओं को दो खुत्बों (उपदेशों) के बीच दुआ करते देखता आया है और कभी इसे मना नहीं करता और न ही इस पर आपत्ति करता है। इस विषय पर यह बातचीत का सारांश है और इसका विवरण अल्लाह की सहायता से हमारे फतावा में मौजूद है। जहाँ तक 'दुर-ए-मुख्तार' के अनुवादक द्वारा बरेली के विद्वानों के हवाले का प्रश्न है, तो यह ज्ञात नहीं है कि उसने अपने अनुमान में बरेली के विद्वानों से किन लोगों को मुराद लिया है। उनके समय में इन क्षेत्रों के सबसे ज्ञानी विद्वान, जो अपने युग और स्थान में वास्तव में धर्मगुरु शब्द के हकदार थे, वे अनुसंधानकर्ताओं के शिरोमणि हमारे पूज्य पिता (उनका रहस्य पवित्र हो) थे। यह तुच्छ सेवक वर्षों तक उनकी इमामत में जुमा की नमाज़ पढ़ने के सौभाग्य से सम्मानित हुआ। वे स्वयं दो खुत्बों के बीच बैठने के दौरान दुआ फरमाया करते थे और श्रोताओं को दुआ करते देख कर कभी मना नहीं फरमाते थे। अनुवादक के समय से पहले बरेली में इस विषय पर एक सवाल (इस्तिफ़्ता) हुआ था। मौलाना अहमद हुसैन साहब मरहूम, जो आला हज़रत सैयदुल उलेमा, आरिफों के सनद, हमारे दादा (उनका रहस्य पवित्र और महान हो) के शागिर्द थे, उन्होंने इसकी अनुमति और शरियत के अनुकूल होने पर

फतवा दिया था। आला हज़रत (अल्लाह उनके पवित्र विश्राम स्थल को रोशन करे) और महान विद्वान मौलाना सैय्यद याकूब अली साहब रिज़वी बरेलवी और मौलाना सैय्यद महमूद अली साहब बरेलवी आदि विद्वानों ने उस पर अपनी मुहरें लगाई थीं। यह फतवा मरहूम मौलाना साहब के फतवों के संग्रह 'मुफीद अल-मुस्लिमीन' में शामिल है और पूछने वाले की तसल्ली के लिए यहाँ उद्धृत है:

सवाल: धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत के मुफ्ती इस मसले के बारे में क्या कहते हैं कि पहले खुत्बे की किरअत के बाद इमाम का बैठना सुन्नत है या नहीं? और खतीब जलसे (दो खुत्बों के बीच बैठने) में कितनी देर रुके? और इन समयों में...

[1] दुर-ए-मुख्तार, खुतबा अल-किताब, मुतबूआ मतबा मुजतबाई देहली, 1/14

بالجملہ خلاصہ کلام یہ کہ دعائے مذکور خطیب کے لئے مطلقاً اور سامعین کے لئے دل میں بالاتفاق جائز مذہب امام شافعی و قولِ امام ابی یوسف پر ان کے لئے زبان سے بھی قطعاً اجازت اور ارشاد امام کی ایک تخریج پر مکروہ دوسری پر جائز، ائمہ فتوٰی نے دونوں کی تصحیح کی تو احد الصحیحین پر دعائے مذکور امام و مقتدین سب کو دل و زبان ہر طرح سے باتفاق مذہبین حنفی و شافعی، مطلقاً جائز و مشروع، اور علماء تصریح فرماتے ہیں کہ جب ترجیح مختلف متکافی ہو تو مکلف کو اختیار ہے کہ ان میں سے جس پر چاہے عمل کرے اصلاً محلِ اعتراض وانکار نہیں، بحر الرائق و در مختار و غیرہما میں ہے:

متی کان في المسئلة قولان مصححان جاز القضاء والافتاء باحدھما -1 **جب مسئلہ میں دو اقوال صحیحہ ہوں تو ان میں سے ایک پر فتوٰی اور قضاء جائز ہوتی ہے۔ (ت)**

ولہذا فقیر غفر اللہ تعالی بائنہ یہاں تصحیح تبیین کو ارجح جانتا ہے ہمیشہ سامعین کو بین الخطبتین دعا کرتے دیکھا اور کبھی منع وانکار نہیں کرتا ہے ھذا جملة القول فی ھذا الباب والتفصیل فی فتاونا بعون الوھاب (اس مسئلہ میں یہ گفتگو کا خلاصہ ہے اور اس کی تفصیل اللہ تعالٰی کی اعانت سے ہمارے فتاوٰی میں ہے۔ ت) رہی مترجم درمختار کی علمائے بریلی سے وہ نقل معلوم نہیں کہ اس نے اپنے زعم میں علمائے بریلی سے کون لوگ مراد لئے، اُس کے زمانے میں ان اقطار کے اعلم علماء کہ اپنے عصر و مصر میں حقیقۃً صرف وہی عالم دین کے مصداق تھے یعنی خاتمۃ المحققین سیدنا الوالد قدس سرہ الماجد، فقیر برسوں جمعات میں اقتدائے حضرت والا سے مشرف ہوا حضرت ممدوح قدس سرہ، جلسہ، بین الخطبتین میں دُعا فرمایا کرتے اور سامعین کو دعا کرتے دیکھ کر کبھی انکار نہ فرماتے اور مترجم کے زمانے سے پہلے بریلی میں اس امر کا استفتاء ہوا، مولانا

احمد حسین مرحوم تلمیذ اعلیحضرت سید العلماء سند العرفا مولانا الجد قدس سرہ الامجد نے جوازِ مشروعیت پر فتویٰ دیا اعلیحضرت نور اللہ مرقدہ الشریف وفاضل اجل مولانا سید یعقوب علی صاحب رضوی بریلوی و مولوی سید محمود علی صاحب بریلوی وغیرہ ہم علمائے کرام نے اُس پر مہریں فرمائیں یہ فتویٰ مولوی صاحب مرحوم کے مجموعہ فتاویٰ مسمی بمفید المسلمین میں مندرج و مشمول اور اطمینانِ سائل کے لئے یہاں منقول:

سوال: چہ می فرمایند علمائے دین و مفتیانِ شرع متین بیچ اس مسئلہ کے کہ بیٹھنا امام کو بعد قراءت خطبہ پہلے کے سنت ہے یا نہیں؟ اور خطیب کس قدر جلسہ میں توقف کرے اور یہ اوقاتوں

1 در مختار خطبة الكتاب مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی 1/14

Fatawa Razawiyya Volume 8

Is it from the times of acceptance of prayer? And is it recommended to raise hands while praying? Explain and you shall be rewarded.

Answer: The sitting of the orator (khateeb) between the two sermons (khutbahs) is Sunnah. Accordingly, in Sahih Bukhari, under the chapter 'Sitting between the two sermons on Friday', it is recorded:

| Musaddad narrated to us, from Bishr bin al-Mufaddal, | Musaddad narrated to us, and Bishr bin al-Mufaddal | | from Ubaidullah, from Nafi, from Abdullah bin Umar, | narrated to them, and Nafi narrated to them, and | | who said: "The Prophet (peace and blessings of | Abdullah bin Umar informed them that when the | | Allah be upon him) used to deliver two sermons and | Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon | | would sit between them." 1 | him) delivered a sermon, he would sit between | | | the two sermons. - (T) |

And this sitting has been explicitly explained in Fatawa Alamgiri as being the duration of three verses:

| The fifteenth (Sunnah) is sitting between the two | The fifteenth Sunnah is sitting between the two | | sermons. This is also stated in Al-Bahr al-Ra'iq. | sermons. Likewise, in Al-Bahr al-Ra'iq, it is | | The duration of sitting between them, according to | mentioned that the duration of sitting between | | Zahir al-Riwayah, is equivalent to reciting three | them, according to Zahir al-Riwayah, is the | | verses. Similarly, it is stated in Siraj al-Wahhaj. 2 | duration of reciting three verses. It is also like | | | this in Siraj al-Wahhaj. - (T) |

And in Hisn Hasin, one of the times for acceptance of prayer is between the two sermons. And in Zafr-e-Jaleel, the commentary of Hisn Hasin, the act of praying at that time is cited from At-Tayyibi:

| And the hour of Friday is the most hopeful for | And the hour of Friday is the most hopeful of | | that (acceptance), and its time is from when the | these times; meaning, among all times, the hope | | Imam sits for the sermon until the prayer is | for acceptance is strongest during the hour of | | concluded. 3 M. | Friday. The time of the Friday hour is from the | | | Imam's sitting on the pulpit for the sermon | | | until the prayer is finished. This was narrated | | | by Muslim and Abu Dawood. - (T) |

It is evident that by 'the Imam's sitting' it is meant the Imam's initial sitting at the start of the sermon, and that is the time when speaking is prohibited for anyone other than the Imam. As stated by Al-Ali (as Ali explained - T) and At-Tayyibi from the sitting...

1 Sahih al-Bukhari, Chapter: Sitting between the two sermons, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/172. 2 Fatawa Hindiyyah, Chapter 16: Regarding Friday Prayer, published by Noorani Kutub Khana, Peshawar, 1/143. 3 Hisn Hasin, Times of Acceptance, published by Afzal al-Matabi, Lucknow, p. 21.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ (8)

क्या यह दुआ की कुबूलियत के वक्तों में से है? और क्या हाथ उठाकर दुआ मांगना मुस्तहसन (अच्छा) है? बयान करें, आपको इसका अजर (पुण्य) मिलेगा।

उत्तर: ख़तीब (उपदेशक) का दोनों खुतबों (प्रवचनों) के बीच बैठना सुन्नत है, चुनांचे सहीह बुखारी शरीफ़ में 'बाबु अल-क़ादह बैना अल-ख़ुतबतीनी यौम अल-जुमुअह' (जुमे के दिन दो खुतबों के बीच बैठने का अध्याय) में वर्णित है:

| मुसद्दद ने हमें हदीस बयान की, बिश्र बिन अल-मुफ़ज़्ज़ल ने | मुसद्दद ने हमें और उन्हें बिश्र बिन मुफ़ज़्ज़ल ने, | | उबैदुल्लाह से, उन्होंने नाफ़े से, उन्होंने अब्दुल्ला बिन उमर से, | उन्हें नाफ़े ने, उन्हें अब्दुल्ला बिन उमर ने बताया कि | | उन्होंने कहा कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम दो खुतबे | नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जब खुतबा | | देते थे और उन दोनों के बीच बैठते थे। 1 | इरशाद फरमाते तो दो खुतबों के दरमियान बैठते। | | | - (त) |

और इस बैठने को सुन्नत के तौर पर तीन आयतों के बराबर 'आलमगीरी' में स्पष्ट रूप से बयान किया गया है:

| पंद्रहवीं (सुन्नत) दो खुतबों के बीच बैठना है। इसी तरह | पंद्रहवीं सुन्नत दो खुतबों के दरमियान बैठना है। | | 'अल-बह्र अल-रईक़' में है। ज़ाहिर अल-रवाया के अनुसार | इसी तरह 'बह्र अल-रईक़' में है, उनके दरमियान | | उनके बीच बैठने की अवधि तीन आयतों के पाठ के| बैठने की मात्रा ज़ाहिर अल-रवाया के अनुसार तीन | | बराबर है। 'सिराज अल-वहाज' में भी इसी तरह है। 2 | आयतों के तिलावत (पाठ) की मात्रा के बराबर है। | | | ऐसे ही 'सिराज अल-वहाज' में है। - (त) |

और 'हिस्न हसीन' में दुआ की कुबूलियत के समयों में से एक दोनों खुतबों के बीच का समय है। और 'ज़फ़र-ए-जलील' शरह (व्याख्या) 'हिस्न हसीन' में उस समय दुआ मांगने को 'अत-तय्यीबी' से उद्धृत किया गया है:

| और जुमे की घड़ी इसके(कुबूलियत के) लिए सबसे अधिक | और सात-ए-जुमुअह (जुमे की घड़ी) की बहुत उम्मीद | | उम्मीद वाली है और उसका समय इमाम के खुतबे के लिए | वाली इन वक्तों की है, यानी सब वक्तों में से जुमे | | बैठने से लेकर नमाज़ पूरी होने तक है। 3 म. | की घड़ी में

कुबूलियत की उम्मीद प्रबल है। जुमे की | | | घड़ी का वक्त इमाम के मिम्बर पर बैठने से खुतबे | | | के लिए, नमाज़ मुकम्मल होने तक है। इसे मुस्लिम | | | और अबू दाऊद ने नकल किया है। - (त) |

ज़ाहिर यही है कि इमाम के बैठने से मुराद इमाम का खुतबा शुरू करने के वक्त का पहला बैठना है, और वही वक्त गैर-इमाम (श्रोताओं) के लिए बात करने की मनाही का है। जैसा कि अल-अली ने बयान किया (त) और तय्यीबी ने बैठने से...

---

1 सहीह अल-बुखारी, बाब: अल-क़ादह बैना अल-ख़ुतबतीनी, प्रकाशित: क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 1/172। 2 फ़तावा हिंदिया, अध्याय 16: जुमे की नमाज़ के बारे में, प्रकाशित: नूरानी कुतुब खाना, पेशावर, 1/143। 3 हिस्न हसीन, कुबूलियत के समय, प्रकाशित: अफ़ज़ल अल-मताबे, लखनऊ, पृष्ठ 21।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

قبولیت دعا سے ہے یا نہیں؟ اور دُعا مانگنا ہاتھ اُٹھا کے مستحسن ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب : بیٹھنا خطیب کا درمیان دونوں خطبوں کے سنت ہے، چنانچہ صحیح بخاری شریف میں باب القعدہ بین الخطبتین یوم الجمعہ میں مرقوم ہے:

| حدثنا مسدد ثنا بشر بن المفضل ثنا عبید اللہ عن | مسدد نے ہمیں اور انہیں بشر بن مفضل نے انہیں | | نافع عن عبد اللہ بن عمر ، قال کان النبي صلی | نافع نے انہیں عبد اللہ بن عمر نے بتایا کہ نبی | | اللہ تعالیٰ علیہ وسلم یخطب خطبتین یقعد بینھما۔ 1 | اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جب خطبہ ارشاد | | | فرماتے تو دو خطبوں کے درمیان بیٹھتے۔ - (ت) |

اور اس بیٹھنے کو سنت بمقدار تین آیات عالمگیری میں بالتصریح بیان کیا ہے:

| والخامس عشر الجلوس بین الخطبتین ھکذا في | پندرھویں سنت دو خطبوں کے درمیان بیٹھنا ہے، | | البحر الرائق ومقدار الجلوس بینھما مقدار ثلث | اسی طرح بحر الرائق میں ہے، ان کے درمیان | | أیات في ظاھر الروایۃ ھکذا في السراج الوھاج۔ 2 | بیٹھنے کی مقدار ظاہر الروایۃ کے مطابق تین آیات | | | کی تلاوت کی مقدار ہے۔ ایسے ہی سراج الوہاج | | | میں ہے۔ - (ت) |

اور پنچ حصن حصین کے ایک اوقات قبولِ دعا سے مابین الخطبتین ہے اور نچ ظفر جلیل شرح حصن حصین کے اُس وقت مانگنا دُعا کا طیبی سے نقل کیا:

| وساعۃ الجمعۃ ارجی ذلك و وقتھا مابین ان یجلس | اور ساعت جمعہ کی بہت امید والی ان وقتوں کی ہے | | الامام فی الخطبۃ الی ان تقضی الصلوۃ 3 م۔ | یعنی سب وقتوں میں سے ساعتِ جمعہ

میں امید | | | قوی ہے قبولیت کی، اور وقتِ ساعت جمعہ کا ہے | | | مابین بیٹھنے امام کے سے منبر پر، خطبہ کے لئے | | | تمام ہونے نماز تک، نقل کی یہ مسلم اور ابوداؤد | | | نے۔ - (ت) |

ظاہر تریہ ہے کہ مراد بیٹھنے امام کے سے بیٹھنا امام کا ہے اول شروع خطبہ کے، اور وہی وقت حرمتِ کلام کا ہے غیر امام کو ، کذا قال العلی (جیسا کہ علی نے بیان کیا۔ ت) اور طیبی نے بیٹھنے سے

---

1 صحیح البخاری باب القعدہ بین الخطبتین مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۲ 2 فتاوی ہندیہ الباب السادس عشر فی صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۱/ ۱۴۳ 3 حصن حصین اوقات الاجابۃ مطبوعہ افضل المطابع لکھنؤ ص ۲۱

Sitting between the two sermons is intended, and in one narration, this is the hour of Friday (the hour of acceptance of prayer). End. And also, the author of Fath al-Bari has stated that one of those times for acceptance of prayer is the sitting of the Imam between the two sermons:

Where he said: The thirtieth (time) is when sitting between the two sermons, as narrated by al-Tayyibi from some commentators of Al-Masabih. 1-	**In their words, the thirtieth place is the time of sitting between the two sermons; this same al-Tayyibi has quoted it from some commentators of Al-Masabih. (T)**

Furthermore, Shaykh Jalaluddin al-Suyuti (may Allah Almighty have mercy on him) has listed several times for the acceptance of prayer, and one of them he recorded is the sitting of the preacher (Khatib) between the two sermons:

Tenth: between the emergence of the Imam until the prayer is established. Eleventh: from when the Imam sits on the pulpit until the prayer is completed. Twelfth: from the beginning of the sermon until its conclusion. Thirteenth: when sitting between the two sermons. 2-	**Tenth is from the Imam coming out until the establishment of the prayer. Eleventh is from the Imam sitting on the pulpit until the end of the prayer. Twelfth is from the start of the sermon until its completion. Thirteenth is the time of sitting between the two sermons. (T)**

And during the time of the preacher's sitting, speaking is correct according to Imam Abu Yusuf (may Allah Almighty have mercy on him), as stated in Tatar Khaniyah, quoting Al-Atabiyyah:

If the preacher remains silent for a while when he sits, Abu Yusuf said: Speaking during that hour is permissible for him. 3-	**If the Imam sat on the pulpit and remained silent for a moment, Imam Abu Yusuf says that speaking at that time is permissible. (T)**

And in Durr al-Mukhtar, something similar is written. And in Sahih Bukhari Sharif, which is the most authentic book after the Book of Allah, in the chapter of raising hands during the sermon, it is narrated that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prayed during the sermon. And it is proven that the Holy Prophet

(peace and blessings of Allah be upon him) was delivering the sermon on Friday when a man came and said, "O..."

1. Fath al-Bari, Chapter on the hour that is on Friday, printed by Mustafa al-Babi Egypt 1/317.
2. Hirz-e-Thameen Sharh Hisn-e-Haseen by al-Suyuti.
3. Fatawa Tatar Khaniyah, Book of Prayer, Conditions of Friday, printed by Idarat al-Qur'an wal-Uloom al-Islamiyya Karachi 29/2.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

दोनों खुतबों के बीच बैठना मुराद है, और एक रिवायत में जुमे की साअत (दुआ की क़बूलियत का वक़्त) यही है। इंतिहा (अंत)। और फ़त्हुल बारी के लेखक ने भी इन तमाम दुआ की क़बूलियत के औक़ात में से इमाम के दो खुतबों के दरमियान बैठने को एक साअत फ़रमाया है:

जहाँ उन्होंने कहा: तीसवाँ (वक़्त) दो खुतबों के दरमियान बैठने के समय है, जैसा कि अल-तैयबी ने अल-मसाबीह के कुछ व्याख्याकारों से रिवायत की है। 1-

उनके शब्दों में तीसवाँ स्थान दो खुतबों के बीच बैठने का समय है, इसी तैयबी ने मसाबीह के कुछ शारिहीन (व्याख्याकारों) से नक़ल किया है। (त)

और शेख जलालुद्दीन सुयूती (रहमतुल्लाह अलैह) ने भी दुआ की क़बूलियत के कई औक़ात शुमार फ़रमाए हैं, उनमें से एक उन्होंने खुतबा देने वाले (खतीब) के दो खुतबों के बीच बैठने के समय को लिखा है:

दसवाँ: इमाम के निकलने से लेकर नमाज़ क़ायम होने तक। ग्यारहवाँ: इमाम के मिम्बर पर बैठने से लेकर नमाज़ पूरी होने तक। बारहवाँ: खुतबा शुरू होने से लेकर उसके खत्म होने तक। तेरहवाँ: दो खुतबों के बीच बैठने के समय। 2-

दसवाँ इमाम के निकलने और नमाज़ की इकामत तक है, ग्यारहवाँ इमाम के मिम्बर पर बैठने से लेकर नमाज़ के खत्म होने तक है, बारहवाँ खुतबा शुरू होने से लेकर उससे फ़राग़त (समाप्ति) तक है, तेरहवाँ दोनों खुतबों के बीच बैठने का समय है। (त)

और खतीब के बैठने के दौरान बातचीत करना इमाम अबू यूसुफ (रहमतुल्लाह अलैह) के नज़दीक दुरुस्त है, ततारखालिया में अल-इताबिया के हवाले से लिखा है:

और अगर खतीब बैठते समय एक पल के लिए खामोश हो जाए, तो अबू यूसुफ ने कहा: उस समय उसके लिए बात करना जायज़ है। 3-

इमाम मिम्बर पर बैठकर एक साअत (कुछ समय) खामोश रहा तो इमाम अबू यूसुफ फ़रमाते हैं कि उस वक़्त गुफ़्तगू मुबाह (जायज़) है। (त)

और दुर्रे मुख्तार में भी इसी तरह लिखा है। और सहीह बुखारी शरीफ में, जो अल्लाह की किताब के बाद सबसे प्रामाणिक किताब है, खुतबे के दौरान हाथ उठाने के अध्याय में जिक्र है कि खुतबे की

हालत में हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से दुआ माँगना मंकूल (वर्णित) है। और यह साबित है कि हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जुमे के दिन खुतबा दे रहे थे कि एक व्यक्ति आया और कहा, "ऐ..."

1. फ़त्हुल बारी, जुमे के दिन वाली साअत का अध्याय, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा प्रकाशित 1/317।
2. हर्ज़े-थमीन शरह हिस्ने-हसीन अल-सुयूती द्वारा।
3. फ़तावा ततारखालिया, नमाज़ की किताब, जुमे की शर्तें, इदारातुल कुरान वल उलूम अल इस्लामिया कराची द्वारा प्रकाशित 29/2।

पृष्ठ 673 का 493

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

بیٹھنا درمیان دونوں خطبوں کے مراد رکھا ہے ، اور ایک روایت میں ساعتِ جمعہ کی یہ ہے انتہی ، اور بھی صاحب فتح الباری نے ان تمام اوقاتِ اجابتِ دُعا سے ایک جلسہ امام کو درمیان خطبتین فرمایا ہے :

حیث قال الثلثون عند الجلوس بین الخطبتین حکاہ الطیبی عن بعض شراح المصابیح 1-

ان کے الفاظ میں تیسواں مقام دو خطبوں کے درمیان بیٹھنے کا وقت ہے ، اسی طیبی نے بعض شارحین مصابیح سے نقل کیا ہے ۔ (ت)

اور بھی شیخ جلال الدین سیوطی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ نے کتنے اوقات اجابت دعا سے شمار فرمائے ہیں ایک اُن میں سے جلسہ کرنے خطیب کو درمیان خطبتین تحریر کیا،

العاشر ما بین خروج الامام الی ان تقام الصلوۃ الحادی عشر مابین ان یجلس الامام علی المنبر الی ان تقضی الصلوۃ الثانی عشر مابین اول الخطبۃ والفراغ منھا الثالث عشر عند الجلوس بین الخطبتین 2-

دسواں امام کے نکلنے اور اقامت نماز تک ہے ، گیارہواں امام کے منبر پر بیٹھنے سے لے کر اختتام نماز تک ہے ، بارہواں شروع خطبہ سے لے کر اس سے فراغت تک ہے ، تیرہواں دونوں خطبوں کے درمیان بیٹھنے کے وقت ہے۔ (ت)

اور وقت جلسہ خطیب کے کلام کرنا نزدیک امام ابو یوسف رحمہ اللہ تعالٰی کے درست ہے تاتار خانیہ میں نقلاً عن العتابیہ مرقوم ہے:

ولوسكت الخطيب حين جلس ساعة قال ابو يوسف يباح له التكلم فی تلك الساعة 3- (ت)

امام منبر پر بیٹھ کر ایک ساعت خاموش رہا تو امام ابویوسف فرماتے ہیں کہ اس وقت گفتگو مباح ہے۔

اور در مختار میں مثل اسکے مرقوم ہے ، اور صحیح بخاری شریف میں کہ اصح الکتب بعد کتاب اللہ کے ہے پیچ باب رفع اليدين في الخطبة کے عین حالت خطبہ میں دعا مانگنا آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے منقول ، اور ثابت ہے کہ آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم روز جمعہ کے خطبہ فرماتے تھے کہ ایک شخص آیا پس کہا اے

1 فتح الباری باب الساعة التی فی یوم الجمعۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۳۱۷ 2 حرز ثمین شرح حصن حصین للسیوطی 3 فتاوی تاتار خانیہ کتاب الصلوۃ، شرائط الجمعۃ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیۃ کراچی ۲۹/۲

Volume Eight Fatawa Rizvia

O Messenger of Allah! The livestock are perishing and the sheep are perishing, so pray to Allah that He may grant us rain. So he (the Prophet) extended his blessed hands and requested for prayer:

(Arabic Text)

Narrated to us by Musaddad, narrated to us by Hammad bin Zaid from Abdul Aziz, from Anas, and from Yunus from Thabit from Anas, who said: While the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was delivering the sermon on the day of Friday, a man stood up and said, "O Messenger of Allah, the livestock have perished and the sheep have perished, so pray to Allah to give us water." So he extended his hands and prayed[1].

(Urdu Translation)

Musaddad narrated to us, who heard from Hammad bin Zaid, who heard from Abdul Aziz, from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him), and from Yunus through Thabit, who reported from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him), that while we were present and the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) was delivering the Friday sermon, a man stood up and submitted: "O Messenger of Allah! The quadrupeds are dying, the sheep are perishing, pray to Allah Almighty that He may grant us rain." So he extended his hands before Allah Almighty and prayed. (T)

Since speaking at that time is established by the words of the Mujtahid, and making supplication (Dua) during the sermon is established and proven from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), therefore, making Dua is among the best of acts of worship before Allah Almighty. Moreover, that is a time for the acceptance of Dua, as mentioned above and in most reliable narrations. The prohibition against speaking etc. was for the preacher (Khateeb), and even that does not apply at that moment. It would be highly commendable. Furthermore, in 'Miftah al-Salat', supplicating by raising hands has been stated as correct, and the duration of the interval (sitting between the two sermons) is equivalent to (reciting) three (3) verses according to 'Mujtaba'. The evidence for the acceptance of Dua has been quoted with the word 'Sawab' (correct) from Sahih Muslim and the commentator of Sahih Muslim, Imam Nawawi (may Allah Almighty have mercy on him). It is written in 'Miftah al-Salat':

(Persian/Arabic Text)

Between the two sermons when the Imam sits, making Dua will be permissible to a higher degree (Aula). Especially since it has come in the Hadith that 'the hour of acceptance is between the Imam sitting for the sermon until the prayer is concluded', as is correct in Sahih Muslim, and Imam Nawawi affirmed it in the commentary of Muslim and said it is the correct view. So it should be...

(Urdu Translation)

When the Imam sits between the two sermons, making Dua at that time should especially be permissible through the 'Aula' (preferred) method because it has come in the Hadith that the hour of acceptance is from when the Imam sits on the pulpit until the end of the prayer, as mentioned in Sahih Muslim, and Imam Nawawi, while affirming this in the commentary of Muslim, stated that this is correct.

[1] Sahih al-Bukhari, Chapter on Raising Hands in the Sermon, published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/172.

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

ऐ अल्लाह के रसूल! चौपाया जानवर मर रहे हैं और भेड़ें (बकरियां) हलाक हो रही हैं। पस अल्लाह से दुआ कीजिए कि हमें पानी से तर कर दे। फिर आपने अपने मुबारक हाथ फैलाए और दुआ की दरख्वास्त की:

(अरबी मूल)

मुसद्दद ने हमें हदीस बयान की, उन्हें हम्माद बिन ज़ैद ने अब्दुल अज़ीज़ से, अनस से और यूनुस ने साबित से और उन्होंने हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की कि: नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जुमे का खुतबा दे रहे थे कि एक आदमी खड़ा हुआ और कहा: "ऐ अल्लाह के रसूल! पशु और भेड़ें हलाक हो रही हैं, तो अल्लाह से दुआ करें कि वह हमें पानी पिलाए।" तो आपने अपने हाथ फैलाए और दुआ की[1]।

(उर्दू अनुवाद)

हमें मुसद्दद ने उन्हें हम्माद बिन ज़ैद ने उन्हें अब्दुल अज़ीज़ ने हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से और यूनुस से साबित ने और उन्होंने हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया कि हम हाज़िर थे, रिसालतमआब सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जुमे का खुतबा इरशाद फरमा रहे थे कि एक शख्स ने खड़े होकर अर्ज़ किया: "या रसूल अल्लाह! चौपाए हलाक हो रहे हैं, बकरियां हलाक हो रही हैं, अल्लाह तआला से दुआ कीजिए कि अल्लाह तआला हमें बारिश अता फरमाए।" तो आपने अल्लाह तआला के हुज़ूर हाथ फैला दिए और दुआ की। (त)

चूँकि उस वक्त बात करना मुजतहिद के कलाम से साबित हुआ और दुआ मांगना खुतबे की हालत में आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से साबित और मुतअक़्क़िक़ है, पस दुआ मांगना हक़ तआला के नज़दीक अफ़ज़ल इबादतों में से है, और वह दुआ की क़बूलियत का वक्त है जैसा कि ऊपर लिखा गया और अक्सर मोतबर रिवायतों के अनुसार है। बात करने से मनाही आदि खतीब के लिए थी, वह भी उस वक्त नहीं है, यह निहायत ही पसंदीदह (मुस्तहसन) होगा। और 'मिफ़्ताह-उस-सलात' में हाथ उठाकर दुआ माँगना दुरुस्त फ़रमाया गया है और जलसे (दो खुतबों के बीच बैठने) की मिक़दार 'मुजतबा' के अनुसार तीन (3) आयतों के बराबर है। और दुआ की क़बूलियत की सनद सहीह मुस्लिम और सहीह मुस्लिम के शारह इमाम नववी रहमतुल्लाहु अलैहि से लफ़्ज़ 'सवाब' के साथ नक़ल की गई है। 'मिफ़्ताह-उस-सलात' में लिखा है:

(फारसी/अरबी मूल)

दो खुतबों के दरमियान जब इमाम बैठता है, तो दुआ करना 'तरीक़-ए-औला' (बेहतर तरीक़े से) जायज़ होगा। विशेष रूप से हदीसों में आया है कि 'क़बूलियत की घड़ी इमाम के खुतबे के लिए बैठने से लेकर नमाज़ के खत्म होने तक है', जैसा कि सहीह मुस्लिम में सहीह है और इमाम नववी ने मुस्लिम की शरह में इस पर पुख्ता यकीन जाहिर करते हुए कहा कि यही सहीह है। तो चाहिए...

(उर्दू अनुवाद)

दो खुतबों के दरमियान जब इमाम बैठता है, तो उस वक्त दुआ करना विशेष रूप से 'तरीक़-ए-औला' (अधिमान्य तरीके से) जायज़ होना चाहिए क्योंकि हदीसों में आया है कि क़बूलियत की घड़ी इमाम के मिम्बर पर बैठने से लेकर नमाज़ के अंत तक होती है जैसा कि सहीह मुस्लिम में है और इमाम नववी ने मुस्लिम की शरह में इसी पर ज़ोर देते हुए फ़रमाया कि यही [सहीह है]।

[1] सहीह अल-बुखारी, बाब रफ़-उल-यदैन फ़िल-खुतबा, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना कराची 1/172।

رسول اللہ کے! ہلاک ہوئے جاتے ہیں چار پائے اور ہلاک ہوئے جاتے ہیں شاۃ (بکریاں) پس دعا فرمایئے اللہ سے یہ کہ تر کرے ہم کو، پس دراز کئے آپ نے ہاتھ مبارک اپنے اور درخواست دعا کی کی:

| حدثنا مسدد ثنا حماد بن زید عن عبد العزیز عن انس وعن یونس عن ثابت عن انس قال بینما النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم یخطب یوم الجمعۃ اذقام رجل فقال یارسول اللہ ھلك الکراع وھلك الشاۃ فادع اللہ ان یسقینا فمد یدیہ ودعا[1]۔ | ہمیں مسدد نے انھیں حماد بن زید نے انہیں عبدالعزیز نے حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اور یونس سے ثابت نے اور انھوں نے حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا کہ ہم حاضر تھے رسالتمآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جمعہ کا خطبہ ارشاد فرمارہے تھے کہ ایک شخص نے کھڑے ہو کر عرض کیا: یا رسول اللہ! چار پائے ہلاک ہورہے ہیں بکریاں ہلاک ہو رہی ہیں اللہ تعالیٰ سے دعا کیجئے کہ اللہ تعالیٰ ہمیں بارش عطافرمائے تو آپ نے اللہ تعالیٰ کے حضور ہاتھ پھیلادئے اور دعا کی۔ (ت) |

جبکہ کلام کرنا اس وقت میں کلام مجتہد سے ثابت ہوا اور دعا مانگنا دعا کا عین حالت خطبہ میں آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ثابت اور متحقق ہے، پس مانگنا دُعا کا افضل العبادات سے ہے نزدیک حق تعالیٰ جل وعلا کے ، اور وہ وقت قبولیت دعا کا ہے موافق مرقومہ بالا کے اور اکثر روایات معتبرہ کے ، اور مانع کلام وغیرہ کا پڑھنا خطیب کا تھا وہ بھی اُس وقت میں نہیں ہے کمال مستحسن ہوگا، اور بھی بیچ مفتاح الصلوٰۃ کے دعا مانگنا ہاتھ اٹھا کے درست فرمایا اور مقدار جلسہ کی بقدر سہ (۳) آیات کے مجتبیٰ سے اور سند اجابت دعا کی صحیح مسلم و شارح صحیح

مسلم امام نووی رحمۃ اللہ تعالیٰ علیہ سے ساتھ لفظ صواب کے نقل کی، مفتاح الصلوٰۃ میں مرقوم ہے:

| در میان دو خطبہ کہ امام بنشیند دعا بطریق اولیٰ جائز خواہد بود علی الخصوص در احادیث آمدہ کہ ساعۃ الاجابۃ مابین ان یجلس الامام فی الخطبۃ الی ان تقضی الصلوۃ کما صح فی صحیح مسلم وجزم الامام النووی فی شرح مسلم وقال ھو الصواب پس باید | دو خطبوں کے درمیان جب امام بیٹھتا ہے تو اس وقت دُعا کرنا خصوصاً بطریق اولیٰ جائز ہونی چاہئے کیونکہ احادیث میں آیا ہے کہ قبولیت کی ساعت امام کے منبر پر بیٹھنے سے لے کر اختتام نماز تک ہوتی ہے جیسا کہ صحیح مسلم میں ہے اور امام نووی نے شرح مسلم میں اسی پر جزم کرتے ہوئے فرمایا یہی |

[1] صحیح البخاری باب رفع الیدین فی الخطبۃ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۷۲

Fatawa Rizvia Volume 8

...It is correct, therefore, at the time of the Imam sitting, which according to 'Zahir al-Riwayah' is equivalent to the length of three verses as mentioned in 'al-Mujtaba' etc., this prayer should be recited: "O our Lord! Grant us good in this world and good in the Hereafter, and save us from the punishment of the Fire." This is so that action is taken according to 'Zahir al-Riwayah' and authentic Hadiths. And if hands are raised during the prayer, this too is consistent with the method of prayer mentioned in Hadiths and was also the practice of the predecessors. (T)

And similarly, it is written in 'Futuh al-Arwah' and in 'Hisn-e-Hasin' under the etiquettes of prayer, the raising of hands is recorded with a chain of Hadith: "And raising them and that their raising be level with the shoulders" (Damas), meaning among the etiquettes of prayer is lifting both hands towards the sky, narrated in 'Sihah Sittah', and that the lifting of hands should be level with the shoulders, narrated by Sunan Abi Dawud, Ahmad, and Hakim. From this, it is clearly evident that praying should be done with raising hands. However, raising hands empty without prayer is futile and useless. And it is also clear and apparent that praying without raising hands is distant from the etiquettes of prayer. And Allah knows best the right path and to Him is the ultimate return.

Ahmad Hussain Baig (may Allah forgive him). Muhammad Raza Ali Khan. Syed Yaqub Ali Rizvi, servant of students, Syed Mahmood Ali, Syed Muhammad Zakir (may Allah be pleased with them), the fatwa of the scholars of Bareilly (may Allah Almighty have mercy on them) is this and the practice is that. And Allah, Glorified and Exalted, knows best and His knowledge is most complete and most decisive.

Mas'alah 1310: Asghar Ali Khan, Bareilly Bans Mandi What do the scholars of religion and jurists of the firm Shariah say about this matter that in the Friday prayer, any Surah of the Holy Quran...

1. Miftah al-Salat
2. Hisn-e-Hasin, Etiquettes of Prayer, printed by Afzal al-Matabi', Lucknow, p. 17

फ़तावा रिज़विया खंड 8

...सही है, इसलिए इमाम के बैठने के समय, जो 'ज़ाहिर अल-रिवया' के अनुसार तीन आयतों की अवधि के बराबर है, जैसा कि 'अल-मुज्तबा' आदि में है, यह दुआ पढ़ ली जाए: "ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भलाई और नेकी अता फरमा और आख़िरत में भी भलाई अता फरमा और हमें आग के अज़ाब से बचा ले।" ताकि 'ज़ाहिर अल-रिवया' और सही हदीसों पर अमल हो जाए। और अगर दुआ में हाथ उठाए जाएं तो यह भी दुआ के उस तरीक़े के मुताबिक़ है जो हदीसों में आया है और पूर्वजों (असलाफ़) का भी यही अमल है। (त)

और इसी तरह 'फ़ुतूह अल-अरवाह' में लिखा है और 'हिस्न-ए-हसीन' में दुआ के आदाब के तहत हदीस की सनद के साथ हाथों को उठाने (रफ़ा यदैन) का ज़िक्र है: "और उन दोनों को उठाना और यह कि उनका उठाना कंधों के बराबर हो" (दामस), यानी दुआ के आदाब में से है दोनों हाथों को आसमान की तरफ़ उठाना, जो 'सिहाह सित्ता' में रिवायत है, और यह कि हाथों का उठाना कंधों के बराबर हो, जिसे सुनन अबू दाऊद, अहमद और हाकिम ने रिवायत किया है। इससे अच्छी तरह साफ़ हो गया कि दुआ रफ़ा यदैन (हाथ उठाकर) के साथ मांगनी चाहिए। अलबत्ता, बिना दुआ के खाली हाथ उठाना व्यर्थ और बेफ़ायदा है। और यह भी साफ़ और ज़ाहिर हो गया कि दुआ मांगना और हाथ न उठाना, दुआ के आदाब से दूर होना है। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है और उसी की तरफ़ लौटकर जाना है।

अहमद हुसैन बेग (अल्लाह उन्हें माफ़ करे)। मुहम्मद रज़ा अली ख़ान। सैयद याक़ूब अली रिज़वी, तुल्बा के सेवक, सैयद महमूद अली, सैयद मुहम्मद ज़ाकिर (अल्लाह उन पर कृपा करे), बरेली के उलेमा (अल्लाह उन पर रहम करे) का फ़तवा यही है और अमल भी वही है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला सबसे ज़्यादा जानने वाला है और उसका इल्म सबसे मुकम्मल और सबसे मज़बूत है।

मसअला 1310: असग़र अली ख़ान, बरेली बांस मंडी उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरअ मतीन इस मसअले में क्या फ़रमाते हैं कि जुमे की नमाज़ में क़ुरान मजीद की कोई सूरत...

1. मिफ़्ताह अल-सलात
2. हिस्न-ए-हसीन, आदाब-ए-दुआ, अफ़ज़ल अल-मताबे', लखनऊ, पृष्ठ 17 द्वारा मुद्रित

पृष्ठ 673 का 495

کہ دروق جلوس کہ در ظاہر الروایہ مقدار سہ ۳ آیت واردست صواب ہے لہذا امام کے بیٹھنے کے وقت، جو ظاہر الروایہ کے کما فی المجتبی و غیرہ ربنا اتنا فی الدنیا حسنۃ مطابق تین ۳ آیات کی مقدار ہے جیسا کہ مجتبی وغیرہ میں وفی الاخرۃ حسنۃ وقنا عذاب النار خواند کہ عمل بر ہے، یہ دعا پڑھ لی جائے اے ہمارے رب! ہمیں دنیا میں ظاہر الروایہ واحادیث صحیحہ واقع گردد و اگر دست برداشتہ بہتری اور نیکی عطا فرما اور آخرت میں بھی بہتری عطا فرما اور بخواند موافق طریقہ دعا کہ در احادیث ست واقع گردد و عمل ہمیں آگ کے عذاب سے بچا لے تا کہ ظاہر الروایہ اور بزرگان نیز ہست ۱۔ احادیث صحیحہ پر عمل ہو جائے اور اگر دعا میں ہاتھ اٹھائے تو یہ بھی اس طریقہ دعا کے موافق ہے جو احادیث میں آیا ہے اور اسلاف کا بھی عمل ہے۔(ت)

اور ایسا ہی پیچ فتوح الارواح کے مرقوم ہے اور پیچ حصن حصین کے ایک آداب دعا میں رفع یدین کو بسند حدیث تحریر کیا ہے، ورفعہما و ان یکون رفعہما حذو المنکبین ۲ دامس ، یعنی آداب دعا سے ہے اٹھانا دونوں ہاتھوں کا طرف آسمان کے، نقل کی یہ صحاح ستہ میں ، اور یہ کہ ہو وے ہاتھ اٹھانا برابر مونڈھوں کے ، نقل کی سنن ابوداؤد واحمد وحاکم نے اس سے خوب واضح ہوا کہ دعا مانگنا ساتھ رفع یدین کے چاہئے ، البتہ خالی ہاتھ اٹھانا بغیر دعا کے عبث اور بے فائدہ ہے اور یہ بھی واضح و لائح ہوا کہ دعا مانگنا اور ہاتھ نہ اٹھانا، آداب دعا کے، سے دور ہونا ہے واللہ اعلم بالصواب والیہ المرجع المآب۔ احمد حسین بیگ غفر اللہ لہ۔ محمد رضا علی خاں۔ سید یعقوب علی رضوی، خویدیم طلبہ سید محمود علی سید محمد ذاکر عفی عنہ علمائے بریلی رحمہم اللہ تعالٰی کا فتوٰی یہ ہے اور عمل وہ۔ واللہ سبحانہ و تعالٰی اعلم و علمہ جل مجدہ اتم واحکم

مسئلہ ۱۳۱۰: اصغر علی خاں بریلی بانس منڈی کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ نماز جمعہ میں کوئی سورہ کلام مجید کی

۱ مفتاح الصلوۃ ۲ حصن حصین آداب الدعاء مطبوعہ افضل المطابع لکھنو ص ۱۷

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Question: Should [the recitation] be short or long? If short, to what extent, and if long, to what extent? This is because the condition of the mosque is such that some worshippers are inside in the shade and some are outside on the floor where it is completely sunny and the floor is also hot.

The Answer: It is established from the Holy Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) that in the Friday prayer, Surah al-Jumu'ah was recited in the first rak'ah and Surah al-Munafiqun in the second; and sometimes 'Sabbihisma Rabbikal A'la'[1] in the first and 'Hal Ataka Hadithul Ghashiyah'[2] in the second. There is discretion to increase or decrease based on need and wisdom. If it causes hardship and displeasure to the followers, then brevity is necessary. However, one should not decrease from the sunnah measure as much as possible, for their displeasure based solely on laziness (kasal) is their fault, for which they do not deserve consideration, nor is the abandonment of sunnah permitted for that reason. Yes, if for example there is a sick or weak person such that even reciting according to the sunnah would cause them hardship, then showing consideration for them is obligatory, even if the Friday prayer has to be led with [Surah] Al-Kawthar and Al-Ikhlas. And Allah Almighty knows best.

---

1. Al-Quran 87/1
2. Al-Quran 88/1

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

सवाल: [किराअत] छोटी पढ़ी जाए या बड़ी, और छोटी पढ़ी जाए तो कितनी और बड़ी पढ़ी जाए तो कितनी, इस वजह से कि मस्जिद की हालत यह है कि कुछ नमाज़ी साये के अंदर हैं और कुछ बाहर फर्श पर जहाँ बिल्कुल धूप है और फर्श भी गर्म होता है।

जवाब: जुमा में हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) से पहली रकअत में सूरह जुमा, दूसरी रकअत में सूरह मुनाफ़िक़ून, और कभी पहली में 'सब्बिहिस्मा रब्बिकल आला'[1] और दूसरी में 'हल अताका हदीसुल ग़ाशिया'[2] साबित है, और ज़रूरत व मसलहत के मुताबिक कमी-बेशी का अख्तियार है। और अगर मुक्तदियों पर तकलीफ़ और नापसंदगी हो तो इख़्तिसार (संक्षेप) लाज़िम है, मगर जहाँ तक मुमकिन हो सुन्नत की मिकदार से कमी न करे, क्योंकि सिर्फ सुस्ती (कसल) की वजह से उनका नापसंद करना उनका अपना कुसूर है, जिसमें वे रिआयत के हक़दार नहीं हैं और न ही उस वजह से सुन्नत छोड़ने की इजाज़त है। हाँ, अगर मिसाल के तौर पर कोई मरीज़ या कमज़ोर ऐसा हो कि सुन्नत के मुताबिक पढ़ना भी उसके लिए तकलीफ़ का बाइस (कारण) हो, तो उसकी रिआयत वाजिब है, चाहे जुमा की नमाज़ सूरह कौसर और इख्लास से पढ़ानी पड़े। वल्लाहु तआला आलम।

---

1. अल-क़ुरआन 87/1
2. अल-क़ुरआन 88/1

पृष्ठ 496 / 673

چھوٹی پڑھی جائے یا بڑی، اور چھوٹی پڑھی جائے تو کس قدر اور بڑی پڑھی جائے تو کس قدر، بدیں وجہ کہ مسجد کی یہ حالت ہے کہ کچھ نمازی اندر سایہ کے اور کچھ باہر فرش پر جہاں بالکل دُھوپ اور فرش بھی گرم ہوتا ہے۔ الجواب: جمعہ میں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے پہلی رکعت میں سورہ جمعہ، دوسری رکعت میں سورہ منافقون، اور کبھی پہلی میں سَبِّحِ اسْمَ رَبِّكَ الْاَعْلَى ۙ﴿۱﴾ اور دوسری میں هَلْ اَتٰىكَ حَدِيْثُ الْغَاشِيَةِ ﴿۱﴾ ثابت ہے، اور حسبِ حاجت و مصلحت کمی بیشی کا اختیار ہے، اور اگر مقتدیوں پر تکلیف و ناگواری ہو تو اختصار لازم ہے مگر حتی الامکان قدرِ مسنون سے کمی نہ کرے کہ قدرِ مسنون کا محض کسل کی وجہ سے ناگوار ہونا ان کا قصور ہے جس میں وہ مستحق رعایت نہ اُس کے سبب ترکِ سنت کی اجازت، ہاں اگر مثلاً کوئی مریض یا ضعیف ایسا ہو کہ بقدر سنت پڑھنا بھی اُس کے لئے باعث تکلیف ہو گا تو اُس کی رعایت واجب ہے اگرچہ نماز جمعہ کوثر و اخلاص سے پڑھانا ہو، واللہ تعالٰی اعلم

---

1 القرآن ۸۷ / ۱ 2 القرآن ۸۸ / ۱

Volume Eight

Fatawa-e-Razawiyya

www.dawateislami.net

Dawat-e-Islami

I.T. Majlis of Dawateislami

Page 497 of 673

आठवीं जिल्द (भाग 8)

फ़तावा-ए-रज़विया

www.dawateislami.net

दावत-ए-इस्लामी

आई.टी. मजलिस दावत-ए-इस्लामी

पृष्ठ 497 / 673

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

www.dawateislami.net

دعوتِ اسلامی

آئی ٹی مجلسِ دعوتِ اسلامی

صفحہ 497 از 673

Fatawa Rizvia - Volume 8

Aufal Lum'ah fi Adhan Yaum al-Jumu'ah 1320 AH (Complete guidance regarding the Friday Adhan)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. We praise Him and send blessings upon His Noble Messenger.

Issue 1311: From the land of Bengal, village Shako Chapel, district Sylhet, post office Jagdishpur, sent by Maulana Mumtazuddin Sahib, 11th Dhul-Hijjah 1320 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: how is it to give the Adhan inside the mosque? The second Adhan of Friday, which is given after the Khateeb (sermon giver) sits on the pulpit (minbar) — should that Adhan be given by standing in front of the Khateeb inside the mosque or outside? And in the first case, is it permissible without dislike (karahat) or not? Some people say it is permissible without dislike according to all scholars, and from the righteous predecessors (salaf-e-salihin) until this time, in all cities and lands, this sunnah method is ongoing and prevalent with the consensus of the honorable scholars. It is in 'Shami' that the Mu'adhin should give the Adhan in front of the Khateeb; it is in 'Hidayah' that it should be in front of the pulpit, and this is what the practice of the scholars is based on. And in the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), there was no Adhan except this one. And in 'Durr-e-Mukhtar', it says to call it in front of the Khateeb. From these statements, it becomes clear that saying it in front of the Khateeb inside the mosque and that calling the Adhan standing outside the mosque or in the mosque courtyard is contrary to the books of jurisprudence and the righteous predecessors. [End quote]. And some people say that the second Adhan of Friday is not disliked when standing in front of the pulpit inside the mosque, although as far as the application of "bayna yadayhi" (between his hands/in front of him) goes...

फतावा रज़विया - खंड 8

औफ़ल लुम'अह फ़ी अज़ान यौम अल-जुमु'अह 1320 हिजरी (जुमे की अज़ान के बारे में पूर्ण मार्गदर्शन)

अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और कृपाशील है। हम उसकी प्रशंसा करते हैं और उसके महान रसूल पर दरूद भेजते हैं।

मसला 1311: बंगाल देश से, गाँव शाको चपल, जिला सिलहट, डाकखाना जगदीशपुर, प्रेषक मौलवी मुमताज़ुद्दीन साहब, 11 ज़ुल-हिज्जा 1320 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि मस्जिद के अंदर अज़ान देना कैसा है? जुमे की दूसरी अज़ान, जो खतीब के मिंबर पर बैठने के बाद दी जाती है—क्या वह अज़ान मस्जिद के अंदर खतीब के सामने खड़े होकर कही जाए या मस्जिद के बाहर? और पहली सूरत में, क्या यह बिना किसी कराहत (नापसंदगी) के जायज़ है या नहीं? कुछ लोग कहते हैं कि यह तमाम उलेमा के नज़दीक बिना कराहत जायज़ है, और सलफ़-ए-सालिहीन से लेकर इस ज़माने तक तमाम शहरों और देशों में यही सुन्नत तरीका उलेमा-ए-किराम के इत्तिफ़ाक से जारी और प्रचलित है। 'शामी' में है कि मोअज़िन खतीब के सामने अज़ान कहे; 'हिदाया' में है कि मिंबर के सामने कहे, और इसी पर उलेमा का अमल है। और रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़माने में सिवाय इस अज़ान के और कोई अज़ान नहीं थी। और 'दुर्रे मुख्तार' में है कि खतीब के सामने कहे। इन इबारतों से यह ज़ाहिर हुआ कि खतीब के रूबरू मस्जिद के अंदर अज़ान कहना ही सुन्नत है और मस्जिद के बाहर या मस्जिद के सहन में खड़े होकर अज़ान कहना फ़िक़्ह की किताबों और सलफ़-ए-सालिहीन के खिलाफ है। [इति]। और कुछ लोग कहते हैं कि जुमे की दूसरी अज़ान मस्जिद के अंदर मिंबर के सामने खड़े होकर कहना मकरूह नहीं है, हालाँकि जहाँ तक 'बैन यदैहि' (उनके सामने) के इतलाक का सवाल है...

पृष्ठ 498 का 673

فتاویٰ رضویہ - جلد ہشتم

اوفی اللمعۃ فی اذان یوم الجمعۃ ۱۳۲۰ھ (اذانِ جمعہ کے بارے میں کامل رہنمائی)

بسم اللہ الرحمن الرحیم نحمدہ ونصلی علی رسولہ الکریم

مسئلہ ۱۳۱۱: از ملک بنگالہ موضع شاکو چپل ضلع سلہٹ ڈاکخانہ جگدیش پور مرسلہ مولوی ممتاز الدین صاحب اذی الحجہ ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اذانِ مسجد کے اندر دینا کیسا ہے، جمعہ کی اذانِ ثانی خطیب کے منبر پر بیٹھنے کے بعد جو دی جاتی ہے آیا وہ اذان مسجد کے اندر خطیب کے سامنے کھڑا ہو کر کہے یا مسجد کے باہر، اور بر تقدیر اول بلا کراہت جائز ہے یا نہیں، بعض لوگ کہتے ہیں یہ بلا کراہت سب علماء کے نزدیک جائز ہے اور سلف صالحین سے لے کر اس زمانہ تک کل امصار و دیار میں اسی طریقہ مسنون پر باتفاقِ علمائے کرام جاری و دائر ہے، شامی میں ہے کہ مؤذن اذان خطیب کے سامنے کہے، ہدایہ میں ہے منبر کے سامنے کہے، اور اسی پر علماء کا عمل ہے، اور رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے زمانے میں نہیں تھا مگر یہ اذان، اور در مختار میں ہے خطیب کے سامنے کہے، ان عبارات سے ہویدا ہوا کہ روبرو خطیب کے مسجد کے اندر کہے اور باہر مسجد یا صحنِ مسجد میں کھڑا ہو کر اذان کہنا خلاف کتب فقہ و سلف صالحین کا ہے انتہی، اور بعض لوگ کہتے ہیں جمعہ کی اذانِ ثانی مسجد کے اندر منبر کے سامنے کھڑے ہو کر مکروہ نہیں ہے، اگرچہ جہاں تک اطلاق بین یدیہ آتا ہے

Fatawa Razawiya Volume 8

...it is correct everywhere. Finished. Which of these sayings is correct? Please clarify and be rewarded.

The Answer: Our noble scholars have specified in Fatawa Qadhi Khan, Fatawa Khulasa, Fath al-Qadir, Nazm and Sharh Nuqaya by Barjandi, Bahr al-Ra'iq, Fatawa Hindiyya, Tahtawi, Maraqi al-Falah, and others, that giving the Adhan (call to prayer) inside the mosque is disliked (Makruh). It is stated in Fatawa Khaniyya:

Arabic Text	Urdu Translation (from original text)
It is appropriate to give the Adhan on the minaret or outside the mosque, and it should not be given in the mosque.	Meaning the call to prayer should be on the minaret or outside the mosque; it should not be said inside the mosque.

The exact same text is in Fatawa Khulasa and Fatawa Alamgiriya. It is stated in Fath al-Qadir:

Arabic Text	Urdu Translation (from original text)
The Iqamah must be in the mosque, but as for the Adhan, it should be on the minaret. If there isn't one, then in the courtyard of the mosque. They said, "The call to prayer is not given in the mosque."	Meaning the Takbir (Iqamah) will definitely be in the mosque, whereas the Adhan should be on the minaret. If there is no minaret, then outside the mosque on the land associated with the mosque. Scholars say that the Adhan should not be in the mosque.

Furthermore, in the chapter of Jumu'ah (Friday) itself, it is stated:

Arabic Text	Urdu Translation (from original text)
It is the remembrance of Allah in the mosque, i.e., within its boundaries, due to the dislike of the Adhan inside it.	It is the remembrance of Allah Almighty in the mosque, meaning within the vicinity of the mosque, because it is disliked to give the Adhan inside the mosque itself.

It is stated in Sharh Mukhtasar al-Wiqaya by the scholar Abd al-Ali:

Arabic Text	Urdu Translation (from original text)
In mentioning the minaret, there is an indication that the Sunnah for the Adhan is to be in a high place, unlike the Iqamah, for the Sunnah for it is to	Meaning Sadr al-Shari'ah (may his secret be sanctified), by mentioning the minaret for the Adhan, gave a warning that the Sunnah in Adhan is for it to be in a high place, unlike the

Arabic Text	Urdu Translation (from original text)
be on the ground. Also, in it is an indication that it (Adhan) is not called in the mosque, for it was mentioned in Al-Khulasa that it is appropriate etc.	Takbir (Iqamah), where the Sunnah is for it to be on the ground. Also, there is a warning in it that it should not be given in the mosque. Its prohibition is explicitly mentioned in Al-Khulasa etc. - in brief.

1. Fatawa Qadhi Khan, Matters of Adhan, printed by Munshi Naval Kishore, Lucknow, 1/73.
2. Fath al-Qadir, Chapter of Adhan, printed by Nooria Rizvia, Sukkur, 1/215.
3. Fath al-Qadir, Chapter of Jumu'ah, printed by Nooria Rizvia, Sukkur, 2/29.
4. Sharh al-Nuqaya by Barjandi, Chapter of Adhan, printed by Munshi Naval Kishore, Lucknow, 1/84.

फ़तावा रज़विया खंड 8

...सब जगह सही है। समाप्त। इनमें से कौन सा कथन सही है? बयान करें, पुण्य पायें।

उत्तर: हमारे सम्मानित विद्वानों ने फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, फ़तावा ख़ुलासा, फ़तह अल-क़दीर, नज़्म और शरह नुक़ाया बरजन्दी, बहर अल-रैक़, फ़तावा हिन्दिया, तहतावी, मराक़ी अल-फ़लाह और अन्य में स्पष्ट किया है कि मस्जिद के भीतर अज़ान देना मकरूह (नापसंद) है। फ़तावा ख़ानिया में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (मूल पाठ से)
मीनार पर या मस्जिद के बाहर अज़ान देनी चाहिए और मस्जिद में अज़ान नहीं देनी चाहिए।	यानी अज़ान मीनार पर या मस्जिद के बाहर होनी चाहिए; मस्जिद में अज़ान नहीं कही जानी चाहिए।

बिल्कुल यही इबारत फ़तावा ख़ुलासा और फ़तावा आलमगीरिया में है। फ़तह अल-क़दीर में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (मूल पाठ से)
इक़ामत मस्जिद में होनी ही चाहिए, लेकिन अज़ान मीनार पर होनी चाहिए। यदि मीनार न हो, तो मस्जिद के आंगन में। उन्होंने कहा, "मस्जिद में अज़ान नहीं दी जाती।"	यानी तकबीर (इक़ामत) तो ज़रूर मस्जिद में होगी, रही अज़ान तो वह मीनार पर हो। मीनार न हो तो मस्जिद के बाहर मस्जिद से जुड़ी ज़मीन पर हो। विद्वान फ़रमाते हैं कि मस्जिद में अज़ान न हो।

साथ ही स्वयं जुमा के अध्याय में भी फ़रमाया:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (मूल पाठ से)
यह मस्जिद में अल्लाह का ज़िक्र है, यानी उसकी सीमाओं के भीतर, क्योंकि इसके अंदर अज़ान देना मकरूह है।	वह अल्लाह तआला का ज़िक्र है मस्जिद में यानी मस्जिद की सीमाओं के अंदर, इसलिए कि खुद मस्जिद के अंदर अज़ान देना मकरूह है।

अल्लामा अब्दुल अली की शरह मुख़्तसर अल-विक़ाया में है:

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (मूल पाठ से)
मीनार का ज़िक्र करने में इस बात का संकेत है कि अज़ान में सुन्नत यह है कि वह ऊँची	यानी सदर अल-शरिया (क़ुद्दिस सिर्रहु) ने अज़ान के लिए मीनार का जो ज़िक्र फ़रमाया, उसमें इस बात

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद (मूल पाठ से)
जगह पर हो, इक़ामत के विपरीत क्योंकि उसमें सुन्नत यह है कि वह ज़मीन पर हो। साथ ही इसमें इस बात का संकेत है कि मस्जिद में अज़ान नहीं दी जाती, क्योंकि ख़ुलासा में ज़िक्र किया गया है कि यह उचित है आदि।	पर चेतावनी है कि अज़ान में सुन्नत यह है कि वह बुलंद जगह पर हो, तकबीर के विपरीत कि उसमें सुन्नत यह है कि वह ज़मीन पर हो। साथ ही इसमें चेतावनी है कि इस मस्जिद में न दी जाए, ख़ुलासा में इसकी मनाही की स्पष्टता है आदि - संक्षेप में।

1. फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, मसाइल अल-अज़ान, मुंशी नवल किशोर द्वारा मुद्रित, लखनऊ, 1/73.
2. फ़तह अल-क़दीर, बाब अल-अज़ान, नूरिया रज़विया द्वारा मुद्रित, सुक्कुर, 1/215.
3. फ़तह अल-क़दीर, बाब अल-जुमुआ, नूरिया रज़विया द्वारा मुद्रित, सुक्कुर, 2/29.
4. शरह अल-नुक़ाया बरजन्दी, बाब अल-अज़ान, मुंशी नवल किशोर द्वारा मुद्रित, लखनऊ, 1/84.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

سب جگہ درست ہے انتہی، ان میں کون سا قول صحیح ہے؟ بینوا توجروا الجواب: ہمارے علمائے کرام نے فتاوٰی قاضی خاں و فتاوٰی خلاصہ وفتح القدیر و نظم و شرح نقایہ بر جندی و بحر الرائق و فتاوٰی ہندیہ وطحطاوی و علی مراقی الفلاح و غیر ہا میں تصریح فرمائی کہ مسجد میں اذان دینی مکروہ ہے فتاوٰی خانیہ میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ (اصل متن سے)
ينبغي ان يؤذن على المئذنة او خارج المسجد ولا يؤذن في المسجد 1۔	یعنی اذان منارے پر یا مسجد کے باہر چاہئے مسجد میں اذان نہ کہی جائے۔

بعینہ یہی عبارت فتاوٰی خلاصہ وفتاوٰی عالمگیریہ میں ہے۔ فتح القدیر میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ (اصل متن سے)
الاقامة في المسجد لابد واما الاذان فعلى المئذنة فان لم يكن ففى فناء المسجد وقالو لا يؤذن في المسجد 2۔	یعنی تکبیر تو ضرور مسجد میں ہوگی، رہی اذان وہ منارے پر ہو۔ منارہ نہ ہو تو بیرون مسجد زمین متعلق مسجد میں ہو۔ علما فرماتے ہیں مسجد میں اذان نہ ہو۔

نیز خود باب الجمعہ میں فرمایا:

عربی متن	اردو ترجمہ (اصل متن سے)
هو ذكر الله في المسجد اى في داخله حدوده لكراهة الاذان في داخله 3۔	وہ اللہ تعالٰی کا ذکر ہے مسجد میں یعنی حوالی مسجد کے اندر، اس لئے کہ خود مسجد کے اندر اذان دینی مکروہ ہے۔

شرح مختصر الوقایة للعلامہ عبد العلی میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ (اصل متن سے)
في ايراد المئذنة اشعار بأن السنة في الاذان ان يكون في موضع عال بخلاف الاقامة فان السنة فيها ان تكون في الارض و ايضا فيه اشعار بانه لا يؤذن في المسجد فقد ذكر في الخلاصة انه ينبغى الخ 4-اه	یعنی صدر الشریعہ قدس سرہ نے اذان کے لئے منارے کا جو ذکر فرمایا اس میں تنبیہ ہے اس پر کہ اذان میں سنت یہ ہے کہ بلند جگہ پر ہو بخلاف تکبیر کہ اس میں سنت یہ ہے کہ زمین پر ہو، نیز اس میں تنبیہ ہے، کہ اس مسجد میں نہ دی جائے، خلاصہ میں اس کی ممانعت کی تصریح ہے الخ اھ باختصار۔

1 فتاوئ قاضی خاں مسائل الاذان مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ ۱/ ۷۳ 2 فتح القدیر باب الاذان مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۲۱۵ 3 فتح القدیر باب الجمعة مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/ ۲۹ 4 شرح النقایة للبر جندی باب الاذان مطبوعہ منشی نولکشور لکھنؤ ۱/ ۸۴

Volume Eight Fatawa Rizvia

It is stated in *Bahr al-Ra'iq*: **"In al-Qunyah: It is Sunnah for the Adhan to be in an elevated place and for the Iqamah to be on the ground. Regarding the Maghrib Adhan, there is a difference among the scholars; the apparent view is that an elevated place is also Sunnah for the Maghrib Adhan, as will come later. In al-Siraj al-Wahaj: The Adhan should be given from a place where it can be heard well by neighbors. In al-Khulasah: The Adhan should not be given inside the mosque." [Summary ends]**

This means, according to *al-Qunyah*, it is Sunnah to give the Adhan from a height and the Iqamah on the ground. Regarding the Maghrib Adhan, there is disagreement among the scholars as to whether it is Sunnah to give it from a height or not. The apparent view is that even for Maghrib, giving the Adhan from a height is Sunnah. In *al-Siraj al-Wahaj*, it is said that the Adhan should be given where neighbors can hear the voice clearly. And in *al-Khulasah*, it is stated not to give the Adhan inside the mosque.

In the same source, a few pages later: **"The Sunnah is for the Adhan to be in the minaret and for the Iqamah to be in the mosque."** The Sunnah is that the Adhan should be called from the minaret and the Iqamah inside the mosque.

In the *Hashiyah al-Tahtawi*: **"It is disliked to call the Adhan inside the mosque, as reported in al-Quhistani from al-Nazm. If there is no elevated place for the Adhan there, it should be called in the courtyard of the mosque, as mentioned in al-Fath."** Meaning, giving the Adhan inside the mosque is disliked, as quoted from *al-Nazm* in *al-Quhistani*. If no high place is built for the Adhan, then it should be given in the land surrounding the mosque, as stated in *Fath al-Qadir*.

All these instructions are clear, absolute, and without restriction, showing no exception for Jumu'ah or any other occasion. It is incumbent upon anyone claiming an exception to show such clear and reliable words where the second Adhan of Jumu'ah is excluded, but they will never be able to do so. As for the argument based on the words "between the hands of the Imam" (in front of the Imam) or "between the hands of the pulpit" (in front of the pulpit) mentioned in the question, that is pure ignorance. The gist of these statements is only that the second Adhan should be in front of the preacher, facing the pulpit. From this, how can one infer that it should be in the lap of the Imam on the ledge of the pulpit, which would imply being inside the mosque?

1 *Bahr al-Ra'iq*, Chapter of Adhan, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/255.
2 *Bahr al-Ra'iq*, Chapter of Adhan, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/261.
3 *Hashiyah al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah*, Chapter of Adhan, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 107. Page 500 of 673

खण्ड आठ फ़तावा रिज़विया

'बहर-उर-राइक़' में है: **"फ़िल क़ुनिया युसन्नुल अज़ानु फ़ी मौज़िइन आलिन वल इक़ामतु अलल अर्ज़ि व फ़िल मग़रिबि इख़्तिलाफ़ुल मशाईख़ि अह वज्ज़ा हिरु अन्नहू युसन्नुल मकानुल आली फ़ी अज़ानिल मग़रिबि कमा सयाती व फ़िस सिराजिल वहाजि यनबग़ी अन युअज़्ज़ना फ़ी मौज़िइन यकूनु अस्माअ लिल जीरानि व फ़िल खुलासति वला युअज़्ज़नु फ़िल मस्जिदि अह मुख़्तसरन।"**

यानी 'क़ुनिया' में है कि अज़ान ऊंचाई पर और इक़ामत ज़मीन पर होना सुन्नत है और मग़रिब की अज़ान में मशाईख़ का मतभेद है कि वह भी ऊंचाई पर होना सुन्नत है या नहीं, और ज़ाहिर यह है कि मग़रिब में भी अज़ान ऊंचाई पर होना सुन्नत है और 'सिराजुल वहाज' में है कि अज़ान वहाँ होनी चाहिए जहाँ से पड़ोसियों को आवाज़ अच्छी तरह पहुँचे, और 'खुलासा' में फ़रमाया कि मस्जिद में अज़ान न दे। (संक्षिप्त)

इसी में कुछ पन्नों के बाद है: **"अस्सुनतु अन यकूनल अज़ानु फ़िल मनारति वल इक़ामतु फ़िल मस्जिदि।"** सुन्नत यह है कि अज़ान मीनार पर हो और इक़ामत मस्जिद में।

'हाशिया तहतावी' में है: **"युक़रहु अन युअज़्ज़ना फ़िल मस्जिदि कमा फ़िल क़ुहिस्तानी अनिन नज़्म, फ़इल लम यकुन थम्मा मकानुन मुरतफ़िउन लिल अज़ानि युअज़्ज़नु फ़ी फ़नाइल मस्जिदि कमा फ़िल फ़त्ह।"** यानी मस्जिद में अज़ान देना मकरूह है जैसा कि 'क़ुहिस्तानी' में 'नज़्म' से नक़ल है, तो अगर वहाँ अज़ान के लिए कोई ऊंची जगह न बनी हो तो मस्जिद के आस-पास की ज़मीन में अज़ान दे जैसा कि 'फ़त्हुल क़दीर' में है।

ये तमाम निर्देश साफ़-साफ़ और बिना किसी शर्त के हैं, जिनमें जुमा या किसी और चीज़ की कोई छूट नहीं है। छूट का दावा करने वाले पर लाज़िम है कि वह ऐसे ही स्पष्ट और विश्वसनीय शब्दों में जुमा की दूसरी अज़ान की छूट दिखाए, लेकिन वह हरगिज़ नहीं दिखा सकेगा। रहा सवाल में ज़िक्र किया गया लफ़्ज़ 'बैन यदयिल इमाम' (इमाम के सामने) या 'बैन यदयिल मिम्बर' (मिम्बर के सामने) से दलील लेना, तो वह सरासर अज्ञानता है। इन इबारतों का सार सिर्फ इतना है कि दूसरी अज़ान ख़तीब (प्रवक्ता) के सामने मिम्बर के आगे हो, इससे यह कहाँ साबित होता है कि वह इमाम की गोद में मिम्बर की सीढ़ी पर हो जिससे मस्जिद के अंदर होना समझा जाए।

1 बहर-उर-राइक़, बाबू-ल-अज़ान, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/255. 2 बहर-उर-राइक़, बाबू-ल-अज़ान, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/261. 3 हाशिया अत-तहतावी अला मराक़िल फ़लाह, बाबू-ल-अज़ान, मुद्रित नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारते कुतुब, कराची, पृष्ठ 107.
पृष्ठ 500 / 673

بحر الرائق میں ہے: **فی القنیة یسن الاذان فی موضع عال والاقامة علی الارض وفی المغرب اختلاف المشائخ اه والظاهر انه یسن المکان العالی فی اذان المغرب کما سیأتی وفی السراج الوهاج ینبغی ان یؤذن فی موضع یکون اسمع للجیران وفی الخلاصة ولا یؤذن فی المسجد اه مختصراً۔**

یعنی قنیہ میں ہے کہ اذان بلندی پر اور تکبیر زمین پر ہونا سنت ہے اور مغرب کی اذان میں مشائخ کا اختلاف ہے وہ بھی بلندی پر ہونا مسنون ہے یا نہیں اور ظاہر یہ ہے کہ مغرب میں بھی اذان بلندی پر ہونا سنت ہے اور سراج الوہاج میں ہے اذان وہاں ہونی چاہئے جہاں سے ہمسایوں کو خوب آواز پہنچے ، اور خلاصہ میں فرمایا کہ مسجد میں اذان نہ دے اھ مختصرا

اسی میں بعد چند ورق کے ہے: **السنة ان یکون الاذان فی المنارة والاقامة فی المسجد۔** سنت یہ ہے کہ اذان منارے پر ہو اور تکبیر مسجد میں۔

حاشیہ طحطاوی میں ہے: **یکره ان یؤذن فی المسجد کما فی القهستانی عن النظم ، فان لم یکن ثمه، مکان مرتفع للاذان یؤذن فی فناء المسجد کما فی الفتح۔** یعنی مسجد میں اذان دینی مکروہ ہے جیسا کہ قہستانی میں نظم سے منقول ہے تو اگر وہاں اذان کے لئے کوئی بلند مکان نہ بنا ہو تو مسجد کے آس پاس اس کے متعلق زمین میں اذان دے جیسا کہ فتح القدیر میں ہے۔

یہ تمام ارشادات صاف صاف مطلق بلا قید ہیں جن میں جمعہ و غیرہا کسی کی تخصیص نہیں، مدعی تخصیص پر لازم کہ ایسے ہی کلماتِ صریحہ معتمدہ میں اذانِ ثانی جمعہ کا استثناء دکھائے مگر ہر گز نہ دکھا سکے گا، رہا لفظ بین یدی الامام (امام کے سامنے۔ ت) یا بین یدی المنبر (منبر کے سامنے۔ ت) سے استدلال مذکور فی السوال وہ محض ناواقفی ہے، ان عبارات کا حاصل صرف

اس قدر کہ اذانِ ثانی خطیب کے سامنے منبر کے آگے مواجہہ میں ہو، اس سے یہ کہاں کہ امام کی گود میں منبر کی لگر پر ہو جس سے داخل مسجد ہونا استنباط

1 بحر الرائق باب الاذان مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲۵۵/۱ 2 بحر الرائق باب الاذان مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲۶۱/۱ 3 حاشیہ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب الاذان مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۱۰۷ Page 500 of 673

Fatawa Razawiyya, Volume 8

If the term *Bayna Yadayhi* (i.e., in front - written) is applied, it remains valid towards the opposite direction up to the furthest limit of that direction. A person who stands facing east at sunrise or west at sunset will certainly say, "The sun is in front of me." Or in Persian: *Mehr ru-baru-ye man ast* (The sun is in front of my face - written). Or in Arabic: *Ash-Shamsu bayna yadayya* (The sun is between my hands/in front of me - written). Even though the sun is more than a three-thousand-year journey away from him. Allah Almighty says:

"He knows what is before them and what is behind them." (1) Allah, glorified is He, knows what is before them, meaning what is to come, and what has passed behind them. This is by no means restricted to the past and future, but everything from eternity to eternity is included in it. Similarly, the saying of the noble angels as mentioned by the Great Quran:

Arabic Verse	Urdu Translation
"To Him belongs whatever is before us and whatever is behind us and what is between that." (2)	By Allah, it is His alone that which is before us and that which is behind us and that which is between them.

It encompasses all past, future, and present. Yes, in such contexts, conventionally in the light of the Quran, a type of proximity appropriate to each thing is inferred, not a physical connection that would necessarily serve as proof for occurrence within the mosque. Allah Almighty said:

Arabic Verse	Urdu Translation
"And He it is who sends the winds as good tidings before His mercy, until, when they have carried heavy-laden clouds, We drive them to a dead land and We send down water therefrom..." (3) The verse.	It is Allah Who sends the winds bearing glad tidings before the rain of mercy. Until when they have raised heavy clouds, We steered them towards some dead city, then brought down water from it.

Bayna Yadayhi (i.e., ahead - written) indicated the proximity of rain, but it does not mean that as soon as the winds blow, the water falls immediately; rather, they blow, clouds rise and become heavy, move towards a city, and upon reaching there, they rain. And Allah Almighty said:

Arabic Verse	Urdu Translation
"He is only a warner to you before a severe punishment." (4)	Muhammad (peace and blessings of Allah Almighty be upon him) is not as you disbelievers imagine; he is but a warner to you before a severe punishment.

The verse indicated the proximity of the Day of Resurrection, not that the Resurrection is immediate upon the commissioning (of the Prophet); rather, its proximity is as is appropriate for it.

---

1. Quran 20:110
2. Quran 19:64
3. Quran 7:57
4. Quran 34:46

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

अगर बयना यदयही (यानी सामने - त) शब्द का प्रयोग किया जाए, तो यह विपरीत दिशा में उस दिशा की अंतिम सीमा तक मान्य रहता है। जो व्यक्ति सूर्योदय के समय पूर्व की ओर या सूर्यास्त के समय पश्चिम की ओर मुंह करके खड़ा होगा, वह निश्चित रूप से कहेगा, "सूर्य मेरे सामने है।" या फ़ारसी में: मेहर रू-ब-रू-ये मन अस्त (सूरज मेरे चेहरे के सामने है - त)। या अरबी में: अश-शम्सु बयना यदैया (सूरज मेरे हाथों के बीच/सामने है - त)। हालाँकि सूरज उससे तीन हज़ार साल के सफर से भी ज़्यादा दूर है। अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"वह जानता है जो उनके आगे है और जो उनके पीछे है।" (1) अल्लाह सुब्हानहू व तआला जानता है जो उनके सामने है यानी जो आने वाला है और जो उनके पीछे बीत गया। यह हरगिज़ अतीत और भविष्य तक सीमित नहीं है, बल्कि अनादि काल से अनंत काल तक सब कुछ इसमें शामिल है। इसी तरह सम्मानित फरिश्तों का कथन जैसा कि महान क़ुरआन ने ज़िक्र फ़रमाया:

अरबी आयत	**उर्दू अनुवाद**
"उसी का है जो हमारे आगे है और जो हमारे पीछे है और जो इसके बीच है।" (2)	अल्लाह ही का है जो हमारे आगे है और जो कुछ हमारे पीछे है और जो कुछ उनके बीच है।

यह सभी अतीत, भविष्य और वर्तमान को शामिल करता है। हाँ, ऐसी जगह पर बोलचाल में क़ुरआन की दृष्टि से, हर चीज़ के योग्य एक प्रकार की निकटता का अर्थ निकाला जाता है, न कि वास्तविक जुड़ाव जो मस्जिद में होने का प्रमाण बने। अल्लाह तआला ने फ़रमाया:

अरबी आयत	**उर्दू अनुवाद**
"और वही है जो अपनी रहमत के आगे हवाओं को खुशखबरी बना कर भेजता है, यहाँ तक कि जब वे भारी बादलों को उठा लेती हैं, तो हम उन्हें किसी मुर्दा शहर की ओर हाँक ले जाते हैं, फिर उससे पानी बरसाते हैं..." (3) आयत।	अल्लाह ही है जो रहमत की बारिश के आगे हवाओं को खुशखबरी लेकर भेजता है। यहाँ तक कि जब उन्होंने भारी बादलों को उठाया, तो हमने उन्हें किसी मुर्दा शहर की ओर रवाना किया, फिर उससे पानी उतारा।

बयना यदयही (यानी आगे - त) ने वर्षा की निकटता की ओर संकेत किया, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हवाएं चलते ही तुरंत पानी गिर जाए; बल्कि हवाएं चलती हैं, बादल उठते हैं और भारी होते हैं, किसी शहर की ओर चलते हैं और वहां पहुंचकर बरसते हैं। और अल्लाह तआला ने फ़रमाया:

अरबी आयत	उर्दू अनुवाद
"वह तो तुम्हें एक सख्त अज़ाब के आने से पहले डराने वाला ही है।" (4)	मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) वैसे नहीं हैं जैसा कि ऐ काफिरों! तुम गुमान करते हो, वह तो तुम्हें एक सख्त अज़ाब के आगे डराने वाले ही हैं।

आयत ने क़यामत की निकटता की ओर इशारा किया, न कि यह कि नबुव्वत मिलते ही क़यामत आ जाएगी; बल्कि उसकी निकटता उसके अनुसार है।

---

1. क़ुरआन 20:110
2. क़ुरआन 19:64
3. क़ुरआन 7:57
4. क़ुरआन 34:46

کیا جائے بین یدی (یعنی سامنے ہے) سمت مقابل میں منتہائے جہت تک صادق ہے جو وقت طلوع مواجہہ مشرق یا ہنگام غروب مستقبل مغرب کھڑا ہو وہ ضرور کہے گا کہ آفتاب میرے سامنے ہے۔ یا فارسی میں مہر روبروئے من است (سورج میرے چہرے کے سامنے ہے) یا عربی میں الشمس بین یدی (سورج میرے سامنے ہے) حالانکہ آفتاب اس سے تین ہزار برس کی راہ سے زیادہ دور ہے، اللہ عزوجل فرماتا ہے: یَعْلَمُ مَا بَیْنَ أَیْدِیْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ 1 اللہ سبحانہ، جانتا ہے جو کچھ اس کے سامنے ہے یعنی آگے آنے والا ہے اور جو کچھ ان کے پیچھے گزر گیا۔ یہ ہر گز ماضی و مستقبل سے مخصوص نہیں بلکہ ازل تا ابد سب اس میں داخل ہے۔ یونہی ملائکہ کرام علیہم الصلوۃ والسلام کا قول کہ قرآن عظیم نے ذکر فرمایا:

عربی آیت	اردو ترجمہ
لَهُ مَا بَیْنَ أَیْدِینَا وَمَا خَلْفَنَا وَمَا بَیْنَ ذٰلِكَ 2۔	باللہ ہی کا ہے جو کچھ ہمارے آگے ہے اور جو کچھ ہمارے پیچھے اور جو کچھ ان کے درمیان ہے۔

تمام ماضی و مستقبل و حال سب کو شامل ہے، ہاں ایسی جگہ عرفاً بنظر قرآن حالیہ ایک نوع قرب ہر شے کے لائق مستفاد ہوتا ہے نہ اتصال حقیقی کہ خواہی نخواہی وقوع فی المسجد پر دلیل ہو، قال اللہ تعالیٰ :

عربی آیت	اردو ترجمہ
وَهُوَ الَّذِیْ یُرْسِلُ الرِّیٰحَ بُشْرًۢا بَیْنَ یَدَیْ رَحْمَتِهٖ حَتّٰۤی إِذَاۤ أَقَلَّتْ سَحَابًا ثِقَالًا	اللہ ہے کہ بھیجتا ہے ہوائیں خوشی کی خبر لائیں بارانِ رحمت کے آگے یہاں تک کہ جب انہوں نے اُبھارے بوجھل بادل، ہم

عربی آیت	اردو ترجمہ
سُقْنٰهُ لِبَلَدٍ مَّيِّتٍ فَأَنْزَلْنَا بِهِ الْمَاءَ 3- الآیہ-	نے اس رواں کیا کسی مردہ شہر کی طرف تو اتارا اُس سے پانی-

بین یدی (یعنی آگے۔ت) نے قربِ مطر کی طرف اشارہ فرمایا مگر یہ نہیں کہ ہوائیں چلتے ہی پانی معاً اُترے بلکہ چلیں اور بادل اُٹھے اور بوجھل پڑے اور کسی شہر کو چلے وہاں پہنچ کر برسے-

وقال اللہ تعالیٰ (اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا):

عربی آیت	اردو ترجمہ
اِنْ هُوَ اِلَّا نَذِيْرٌ لَّكُمْ بَيْنَ يَدَيْ عَذَابٍ شَدِيْدٍ 4-	محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم ایسے نہیں جیسا کہ اے کافرو! تم گمان کرتے ہو وہ تو نہیں مگر تمہیں ڈر سنانے والے ایک سخت عذاب کے آگے-

آیت نے قرب قیامت کا اشارہ فرمایا نہ یہ کہ بعثت کے برابر ہی قیامت ہے، پھر اس کا قرب اس کے لائق ہے-

---

1 القرآن ۱۱۰/۲۰ 2 القرآن ۶۴/۱۹ 3 القرآن ۵۷/۷ 4 القرآن ۴۶/۳۴

Fatawa Razawiya, Volume 8

Thirteen hundred and forty-three (1343) years have passed, and still there is time. Thus, the Adhan (call to prayer) which is given in the mosque or in any part of the mosque's courtyard as long as there is no obstacle in front of the Imam, it is certainly true to say it is "bayna yadayhi" (in front of him). It will undoubtedly be said that the Adhan was given in front of the Imam, in front of the Khatib (preacher), before the Minbar (pulpit), and that is all that is required. Probably the proponents themselves knew that being near the mosque, outside the mosque, or facing the Imam is also included in "bayna yadayhi". Therefore, after saying "in front of the Khatib", there was a need for these words "inside the mosque", but specifically these words, which were the main objective, were added only from their own side. In works like Shami, Badaya, Durr-e-Mukhtar, etc., there isn't even a scent of this. Now let us mention a Sahih (authentic) Hadith by which the meaning of this "bayna yadayhi" will become as clear as the sun, and the reality of this claim of inheritance will be revealed. It is narrated in Sunan Abi Dawud with a Hasan (good) chain:

"Al-Nufayli narrated to us from Muhammad bin Salamah, from Muhammad bin Ishaq, from al-Zuhri, from al-Sa'ib bin Yazid (may Allah be pleased with him) who said: 'The Adhan was given in front of the Messenger of Allah (may Allah send peace and blessings upon him) when he sat on the Minbar on the day of Friday at the door of the mosque, and similarly during the time of Abu Bakr al-Siddiq and Umar al-Farooq (may Allah be pleased with them).'" (1)

Nufayli narrated that Muhammad bin Salamah narrated from Muhammad bin Ishaq, who narrated from Zuhri, who narrated from Sa'ib bin Yazid (may Allah be pleased with him) that when the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) sat on the pulpit on Friday, the Adhan was given in front of his presence at the door of the mosque, and similarly during the times of Abu Bakr Siddiq and Umar Farooq (may Allah be pleased with them).

This magnificent Hadith has clarified what is meant by "in front of the Imam, before the pulpit" and what was the inherited practice during the era of Prophethood and the Rightly Guided Caliphs. Yes, you may say that now in India, it is becoming common to give this Adhan adjacent to the pulpit, but this is separate from the text of the Hadith and contrary to the clarifications of Jurisprudence. The mere prevalence of something among Indians is not an authority. Among Indians, not just this, but many people also give Adhans for other times inside the mosque, even though there

is no deception of "bayna yadayhi" etc. there against the clarifications of the Imams. How then can the action of such people be an authority? Praise be to Allah, the revival of this noble Sunnah was made by the Lord Almighty through the hands of this humble servant (the author). In my place, giving Adhan inside the mosque by the Mu'adhins is prohibited. The second Adhan of Friday, by the grace of Allah Almighty, is given in front of the Minbar at the door of the mosque, just as it used to be in the sacred era of the Prophet (may Allah send peace and blessings upon him) and the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them). "That is the grace of Allah which He bestows upon whom [He wills]."

(1) Sunan Abi Dawud, Chapter: Time of Jumu'ah, published by Aftab-e-Alam Press, Lahore, 1/155.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

तेरह सौ तैंतालीस (1343) वर्ष बीत चुके हैं, अभी भी समय शेष है। अत; जो अज़ान मस्जिद में या मस्जिद के अहाते की किसी भी ज़मीन में दी जाए जहाँ तक इमाम के सामने कोई रुकावट न हो, उस पर "बैन यदैहि" (उनके सामने) निश्चित रूप से सच बैठता है। निस्संदेह यह कहा जाएगा कि अज़ान इमाम के सामने, खतीब के सामने, मिम्बर के आगे हुई, और इतना ही आवश्यक है। संभवतः स्वयं दलील देने वालों को पता था कि मस्जिद के करीब, मस्जिद के बाहर, इमाम के सामने होना भी "बैन यदैहि" में शामिल है। इसलिए "खतीब के सामने" कहने के बाद, इन शब्दों की आवश्यकता पड़ी कि "मस्जिद के अंदर", लेकिन विशेष रूप से ये शब्द, जो मुख्य उद्देश्य थे, केवल अपनी ओर से जोड़े गए। शामी, बदाया, दुर्रे-मुख्तार आदि में कहीं इसकी गंध भी नहीं है। अब हम एक सहीह (प्रामाणिक) हदीस का उल्लेख करते हैं जिससे इस "बैन यदैहि" के अर्थ सूरज की तरह स्पष्ट हो जाएंगे, और इस विरासत के दावे की वास्तविकता भी खुल जाएगी। सुनन अबी दाऊद शरीफ में हसन सनद के साथ वर्णित है:

"नफ़ैली ने हमसे बयान किया, उन्होंने मुहम्मद बिन सलमा से, उन्होंने मुहम्मद बिन इसहाक़ से, उन्होंने ज़ुहरी से, उन्होंने साइब बिन यज़ीद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि: 'अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के सामने जुमा के दिन जब आप मिम्बर पर तशरीफ़ रखते, तो मस्जिद के दरवाज़े पर अज़ान दी जाती थी, और इसी तरह अबू बक्र सिद्दीक़ और उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के ज़माने में भी होता था।'" (1)

नफ़ैली ने बयान किया कि मुहम्मद बिन सलमा ने मुहम्मद बिन इसहाक़ से, उन्होंने ज़ुहरी से, उन्होंने साइब बिन यज़ीद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) जब जुमा के दिन मिम्बर पर विराजमान होते, तो आपके सामने मस्जिद के दरवाज़े पर अज़ान दी जाती थी और इसी प्रकार अबू बक्र सिद्दीक़ और उमर फ़ारूक़ (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के समय में भी था।

इस महान हदीस ने स्पष्ट कर दिया है कि इमाम के सामने मिम्बर के पास अज़ान का क्या अर्थ है और रिसालत और खुलफ़ा-ए-राशदीन के काल से क्या विरासत में मिला है। हाँ, आप कह सकते हैं कि अब भारत में मिम्बर से सटकर अज़ान कहना प्रचलित हो रहा है, लेकिन यह हदीस के पाठ से अलग है और फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) के स्पष्टीकरणों के विरुद्ध है। भारतीयों में किसी बात का प्रचलन हो जाना

कोई प्रमाण नहीं है। भारतीयों में केवल यही नहीं, बल्कि कई लोग अन्य समय की अज़ानें भी मस्जिद में दे लेते हैं, जबकि वहाँ तो इमामों के स्पष्टीकरणों के विरुद्ध "बैन यदैहि" आदि का कोई भ्रम भी नहीं है। फिर ऐसे लोगों का कार्य कैसे प्रमाण हो सकता है? अल्हम्दुलिल्लाह, यहाँ इस सुन्नत-ए-करीमा का पुनरुद्धार रब्बे अज़्ज़ व जल्ल ने इस फ़क़ीर के हाथों कराया। मेरे यहाँ मुअज्ज़िनों के लिए मस्जिद के अंदर अज़ान देना मना है। जुमा की दूसरी अज़ान अल्लाह तआला के फ़ज़ल से मिम्बर के सामने मस्जिद के दरवाज़े पर होती है, जैसा कि हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और खुलफ़ा-ए-राशदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के पवित्र काल में हुआ करती थी। "यह अल्लाह का फ़ज़ल है जिसे वह चाहता है देता है।"

(1) सुनन अबी दाऊद, बाब वक़्त अल-जुमुआ, आफताब-ए-आलम प्रेस, लाहौर, 1/155.

पेज 502/673

تیرہ سو تینتالیس ۱۳۴۳ برس گذر گئے ہنوز وقت باقی ہے پس جو اذان در مسجد پر یا فنائے مسجد کی کسی زمین میں جہاں تک حائل نہ ہو محاذات امام میں دی جائے اس پر ضرور بین یدیہ (اس کے روبروئت) صادق ہے بلاشبہ کہا جائے گا کہ امام کے سامنے خطیب کے روبرو منبر کے آگے اذان ہوئی، اور اسی قدر درکار ہے، غالباً خود مستدلین کو معلوم تھا کہ قریب مسجد، بیرون مسجد، مواجہہ امام کو بھی بین یدیہ شامل ہے لہذا روبر خطیب کہنے کے بعد، ان لفظوں کی حاجت ہوئی کہ مسجد کے اندر مگر خاص یہی لفظ کہ اصل مدعا تھے صرف اپنی طرف سے اضافہ ہوئے۔ شامی وبدایہ ودر مختار و غیرہ ہو غیرہا میں کہیں اس کی بُو بھی نہیں۔ اب ہم ایک حدیث صحیح ذکر کریں جس سے اس بین یدیہ کے معنی بھی آفتاب کی روشن ہوجائیں اور اس ادعائے توارث کا حال بھی کھل جائے، سُنن ابی داؤد شریف میں بسندِ حسن مروی ہے:

حدثنا النفیلی ثنا محمد بن سلمۃ عن محمد بن اسحٰق عن الزھری عن السائب بن یزید رضی اللہ تعالٰی عنہ قال کان یؤذن بین یدی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اذا جلس علی المنبر یوم الجمعۃ علی باب المسجد و ابی بکر و عمر۔۱

نفیلی نے بیان کیا کہ محمد بن سلمہ نے محمد بن اسحٰق سے انہوں نے زہری سے انہوں نے سائب بن یزید رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جب روزِ جمعہ منبر پر تشریف فرما ہوتے تو حضور کے روبرو اذان مسجد کے دروازے پر دی جاتی اور یونہی ابوبکر صدیق و عمر فاروق رضی اللہ تعالیٰ عنہما کے زمانے میں۔

اس حدیث جلیل نے واضح کر دیا کہ اس روبروئے امام پیشِ منبر کے کیا معنی ہیں اور یہ کہ زمانہ رسالت و خلفائے راشدین کے کیا متوارث ہے، ہاں یہ کہئے کہ اب ہندوستان میں یہ اذان متصل منبر کہنی شائع ہورہی ہے مگر نص حدیث سے جُدا، تصریحاتِ فقہ کے خلاف، کسی بات کا ہندیوں میں رواج ہو جانا کوئی حجت نہیں۔ ہندیوں میں یہی کیا اور وقت کی اذانیں بھی بہت لوگ مسجد میں دے لیتے ہیں حالانکہ وہاں تو تصریحاتِ ائمہ کے مقابل بین یدیہ وغیرہ کا بھی دھوکا نہیں، پھر ایسوں کا فعل کیا حجت ہو سکتا ہے۔ الحمد للہ یہاں اس سنتِ کریمہ کا احیاء رب عزوجل نے اس فقیر کے ہاتھ پر کیا، میرے یہاں مؤذنوں کی مسجد میں اذان دینے سے ممانعت ہے، جمعہ کی اذان ثانی بحمد اللہ تعالیٰ منبر کے سامنے دروازہ مسجد پر ہوتی ہے جس طرح زمانہ اقدس حضور پُر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و خلفائے راشدین رضی اللہ تعالیٰ عنہم میں ہوا کرتی تھی ذلک فضل اللہ یوتیہ من

۱ سنن ابی داؤد باب وقت الجمعہ مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱/۱۵۵

...whatever He wills. And Allah is the Possessor of Great Bounty, and all praise is for Allah, the Lord of the worlds. (This is the grace of Allah which He bestows upon whom He wills, and Allah is of Great Bounty, and all praise is due to Allah, the Sustainer of all the worlds. - Trans.) Some others from whom the questioner quoted the second opinion—even if entering the mosque "between its hands" (in front) is not fundamentally understood—if they had looked at the books, they would not have claimed, contrary to the scholars' clarifications, that it is not disliked (makruh) inside the mosque. In 1302 Hijri, this humble servant (faqir), with the intention of kissing the threshold of the exalted shrine of the Sultan of Saints, the Beloved of God, Nizam al-Haq wa al-Din (may Allah be pleased with him), set out from Bareilly and arrived at Ghiaspur Sharif. I went to a mosque in Delhi for prayer. The muezzin called the Adhan inside the mosque. As is my habit when I find something contrary to the pure Sharia, I mentioned the issue. Although I had no prior acquaintance with him, I gently told the muezzin that calling Adhan inside the mosque is disliked (makruh). He asked, "Where is it written?" I named Qadi Khan, Khulasa, Alamgiri, and Fath al-Qadir. He said, "I don't believe in them." I realized he was from the sect of Ghayr-Muqallidin (non-conformists). I asked him, "What work do you do?" It turned out he was employed in a court. I said, "The true court of the Ruler of Rulers (Allah), Exalted is His Glory, is most high and sublime. You must see in those courts every day: does the orderly, plaintiff, defendant, or witness call out while standing inside the courtroom or outside?" He said, "Outside." I asked, "If he starts shouting inside, would he be considered disrespectful or not?" He replied, "Now I understand." In short, when he didn't accept the books, I presented an argument suited to his understanding, and he accepted it.

"Every person's thought is according to their aspiration." (Everyone's thought is according to their own capacity/aspiration.)

Praise be to Allah, the truth has become clear. I say: And with Allah is success. Here two more points are worthy of consideration and reflection: First, if the founder of the mosque, while building the mosque and before declaring the whole area as a mosque, built a minaret or any elevated place inside the mosque for Adhan, then it is permissible. That portion will be considered separate for Adhan, and the dislike of calling Adhan in the mosque will not apply here. Just as performing ablution (wudu) in the mosque is fundamentally not permissible, but if the founder has already built a

specific designated place for wudu, then wudu is permissible there as that much area is considered exempt. It is stated in Al-Ashbah:

[Table/Box Content] Arabic: It is disliked to rinse the mouth and perform ablution in it (the mosque) unless there is a place prepared for that where prayer is not offered. Urdu: It is disliked to rinse the mouth and perform wudu in the mosque except in the case where a place has been made for it and prayer is not offered there, or if wudu is performed in a vessel.

फ़तावा रज़विया, खंड आठ

...जो वह चाहता है। और अल्लाह बड़े अनुग्रह वाला है, और सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो सभी लोकों का पालनहार है। (यह अल्लाह का अनुग्रह है जिसे वह चाहता है प्रदान करता है और अल्लाह बड़े अनुग्रह वाला है और अल्लाह ही के लिए सब प्रशंसा है जो तमाम जहानों का पालने वाला है। - अनु.) कुछ अन्य जिनसे प्रश्नकर्ता ने दूसरा मत उद्धृत किया—भले ही "हाथों के बीच" से मस्जिद में प्रवेश करना मूल रूप से समझ में न आए—अगर उन्होंने पुस्तकों पर नज़र डाली होती, तो विद्वानों के स्पष्टीकरण के विपरीत यह दावा न होता कि मस्जिद के अंदर मकरूह (नापसंद) नहीं है। १३०२ हिजरी में, इस फ़कीर (विनम्र सेवक) ने सुल्तान-उल-औलिया महबूब-ए-इलाही निज़ाम-उल-हक़ वद्दीन (रज़ियल्लाहु अन्हु) की महान दरगाह की चौखट चूमने की नियत से बरेली से प्रस्थान किया और गयासपुर शरीफ पहुँचा। दिल्ली की एक मस्जिद में नमाज़ पढ़ने गया। अज़ान देने वाले ने मस्जिद के अंदर अज़ान दी। अपनी आदत के अनुसार, जब भी मैं शरीयत के खिलाफ कोई बात देखता हूँ, मैंने मसला पेश कर दिया। हालाँकि उनसे कोई परिचय नहीं था, फिर भी मैंने मुअज़्ज़िन साहब से बड़े प्यार से कहा कि मस्जिद के अंदर अज़ान देना मकरूह है। उन्होंने पूछा, "कहाँ लिखा है?" मैंने क़ाज़ी खान, खुलासा, आलमगिरी और फ़तुल क़दीर के नाम लिए। उन्होंने कहा, "मैं उन्हें नहीं मानता।" मुझे समझ आ गया कि वे 'ग़ैर-मुक़ल्लिदीन' पंथ से हैं। मैंने उनसे पूछा, "आप क्या काम करते हैं?" पता चला कि वे किसी अदालत में कर्मचारी हैं। मैंने कहा, "अल्लाह, जो हाकिमों का हाकिम है, उसका सच्चा और असली दरबार तो सबसे ऊँचा और महान है। आप रोज़ अदालतों में देखते होंगे: चपरासी, वादी, प्रतिवादी या गवाह अदालत के कमरे के अंदर खड़े होकर पुकारता है या बाहर?" उन्होंने कहा, "बाहर।" मैंने पूछा, "अगर वह अंदर ही चिल्लाना शुरू कर दे, तो वह असभ्य माना जाएगा या नहीं?" उन्होंने कहा, "अब मैं समझ गया।" संक्षेप में, जब उन्होंने किताबों को नहीं माना, तो मैंने उनकी समझ के लायक बात पेश की और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया।

"हर व्यक्ति की सोच उसकी हिम्मत के अनुसार होती है।" (हर व्यक्ति की फ़िक्र उसकी हिम्मत के मुताबिक है)

अल्हम्दुलिल्लाह, सत्य स्पष्ट हो गया। मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही से सफलता है। यहाँ दो और बिंदु ध्यान देने योग्य और विचारणीय हैं: पहला: यदि मस्जिद बनाने वाले ने मस्जिद निर्माण के समय पूरी जगह को मस्जिद घोषित करने से पहले, अज़ान के लिए मस्जिद के अंदर कोई मीनार या ऊँचा स्थान बनाया, तो यह जायज़ है। अज़ान के लिए उस हिस्से को अलग माना जाएगा और मस्जिद में अज़ान

देने की मकरूहियत यहाँ लागू नहीं होगी। जैसे मस्जिद में वज़ू करना मूल रूप से जायज़ नहीं है, लेकिन अगर निर्माता ने पहले से ही वज़ू के लिए कोई विशेष स्थान बनवा दिया हो, तो उसमें वज़ू जायज़ है क्योंकि उतना हिस्सा अपवाद माना जाएगा। 'अशबाह' में है:

[बॉक्स सामग्री] अरबी: मस्जिद में कुल्ला करना और वज़ू करना मकरूह है, जब तक कि वहां इसके लिए कोई ऐसी जगह न बनाई गई हो जहाँ नमाज़ न पढ़ी जाती हो। उर्दू: मस्जिद में कुल्ला और वज़ू करना मकरूह है, मगर उस स्थिति में जब वहाँ इसके लिए जगह बनाई गई हो और उसमें नमाज़ न पढ़ी जाती हो, या किसी बर्तन में वज़ू किया जाए।

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

یشاء واللہ ذو الفضل العظیم والحمد للہ رب العلمین (یہ اللہ تعالیٰ کا فضل ہے جسے چاہتا ہے عطا کرتا ہے اور اللہ بڑے فضل والا ہے اور اللہ تعالیٰ ہی کے لئے سب تعریف ہے جو تمام جہانوں کا پالنے والا ہے ۔ ت) بعض دیگر جن سے سائل نے دوسرا قول نقل کیا اگرچہ اتنا سمجھے بن یدیہ سے داخل مسجد ہونا اصلاً مفہوم نہیں ہوتا مگر کتابوں پر نظر ہوتی تو خلاف تصریحات علماء یہ ادعاء نہ ہوتا کہ مسجد کے اندر مکروہ نہیں ۱۳۰۲ ہجری میں فقیر بہ نیت خابوسی آستانہ عالیہ حضرت سلطان الاولیاء محبوب الہی نظام الحق والدین رضی اللہ تعالیٰ عنہ بریلی سے شد الرحال کر کے حاضر بارگاہ غیاث پور شریف ہوا تھا، دہلی کی ایک مسجد میں نماز کو جانا ہوا، اذان کہنے والے نے مسجد میں اذان کہی فقیر نے حسب عادت کہ جو امر خلاف شرع مطہر پایا مسئلہ گزارش کر دیا اگرچہ ان صاحب سے اصلا تعارف نہ ہوا ان مؤذن صاحب سے بھی بہ نرمی کہا کہ مسجد میں اذان مکروہ ہے، کہا، کہاں لکھا ہے؟ میں نے قاضی خان، خلاصہ، عالمگیری، فتح القدیر کے نام لئے، کہا ہم ان کو نہیں مانتے، فقیر سمجھا کہ حضرت طائفہ غیر مقلدین سے ہیں، گزارش کی کہ آپ کیا کام کرتے ہیں؟ معلوم ہوا کہ کسی کچہری میں نوکر ہیں۔ فقیر نے کہا احکم الحاکمین جل جلالہ کا سچا حقیقی دربار تو ارفع و اعلیٰ ہے آپ انہی کچہریوں میں روز دیکھتے ہوں گے چپراسی، مدعی، مدعا علیہ گواہوں کی حاضری، کچہری کے کمرے کے اندر کھڑے ہو کر پکارتا ہے یا باہر؟ کہا باہر، کہا اگر اندر ہی چلانا شروع کرے تو بے ادب ٹھہرے گا یا نہیں؟ بولے اب میں سمجھ گیا۔ غرض کتابوں کو نہ مانا جب ان کی سمجھ کے لائق کلام پیش کیا تسلیم کر لیا ع

فکر ہر کس بقدر ہمت اوست (ہر شخص کی فکر اس کی ہمت کے مطابق ہے)

الحمد للہ حق واضح ہو گیا۔ اقول: وباللہ التوفیق یہاں دو نکتہ اور قابل لحاظ و غور ہیں: اول اگر بانی مسجد نے مسجد بناتے وقت تمام مسجدیت سے پہلے مسجد کے اندر اذان کے لئے منارہ خواہ کوئی محل مرتفع بنایا تو یہ جائز ہے، اور اتنا ٹکڑا اذان کے لئے جدا سمجھا جائے گا اور مسجد میں اذان دینے کی کراہت یہاں عارض نہ ہو گی جیسے مسجد میں وضو کرنا اصلاً جائز نہیں مگر پہلے سے اگر کوئی محل معین بانی نے وضو کے لئے بنوا دیا ہو تو اس میں وضو جائز کہ اس قدر مستثنی قرار پائے گا۔ اشباہ میں ہے:

[باکس کی تفصیل] عربی: تکرہ المضمضۃ والوضوء فیہ الا ان یکون ثمہ موضع اعد لذلک لا یصلی فیہ اردو: مسجد میں کلی اور وضو کرنا مکروہ ہے مگر اس صورت میں جب وہاں اس کے لئے جگہ بنائی گئی ہو اور اس میں نماز ادا نہ کی جاتی ہو یا کسی برتن میں وضو

Fatawa Rizvia Volume Eight

-1 ...should be done. (T)

In Durr-e-Mukhtar it is stated: Ablution (wudu) is disliked except in the place prepared for it. -2 Summarized. Translation: Ablution is disliked except in the place which has been prepared for it. Summarized (T)

In Radd-ul-Muhtar it is stated: Because its water is naturally repulsive, it is necessary to keep the mosque free from it, just as it is necessary to keep it free from mucus and phlegm. Bada'i -3. Translation: Because wudu water is naturally disliked, therefore it is necessary to save the mosque from it, just as it is necessary to keep the mosque safe from nasal discharge and phlegm. Bada'i (T)

The humble author (Faqir) commented on this: This reasoning is according to the madhhab of [Imam] Muhammad, which is the position for issuing fatwa. As for the opinion of Imam-e-Azam regarding the impurity of used water, it is obvious. -4 Translation: This is the proof for Imam Muhammad's fatwa-giving position. As for Imam Azam's position, it is obvious because he considers used water to be impure. (T)

In Radd-ul-Muhtar it is stated: His saying "except in what has been prepared for that": look whether the preparation of that by the waqif (endower) is a condition or not. -5 Translation: His saying "except in the place prepared for wudu," see if making that place for wudu by the donor (waqif) is a condition or not? (T)

The humble author commented on this: I say: Yes, and there is another thing above that, which is that the preparation should be before the completion of the mosque's status. For after that, neither he nor others have the right to expose it to repulsive things. Translation: I say: Yes, one more thing is above it, which is that keeping it for wudu should be before its full status as a mosque, because if it is after that, then now the donor and others [cannot change it].

Footnotes: 1. Al-Ashbah wan-Nazair, Al-Qawl fi Ahkam al-Masjid, printed by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 230/2 2. Durr-e-Mukhtar, Bab ma Yufsid al-Salat wa ma Yukrahu fiha, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 94/1 3. Radd-ul-Muhtar, Bab ma Yufsid al-Salat wa ma Yukrahu fiha, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 488/1 4. Jadd al-Muhtar ala Radd al-Muhtar, Bab Ahkam al-Masajid, printed by Al-Majma' al-Islami, Mubarakpur, India, 316/1 5. Radd-ul-Muhtar, Bab ma Yufsid al-Salat wa ma Yukrahu fiha, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 94/1

फ़तावा रज़विया खंड आठ

-1 ...कर लिया जाए। (त)

दुर-ए-मुख्तार में है: वज़ू मकरूह (नापसंद) है सिवाय उस स्थान के जो उसके लिए तैयार किया गया हो। -2 सारांश। अनुवाद: वज़ू मकरूह है मगर उस जगह में जो इसके लिए तैयार की गई हो। सारांश (त)

रद्द-उल-मुहतार में है: क्योंकि उसका पानी स्वाभाविक रूप से घृणित है, इसलिए मस्जिद को उससे पाक रखना वाजिब है जैसा कि उसे नाक की गंदगी और बलगम से पाक रखना वाजिब है। बदाए -3। अनुवाद: क्योंकि वज़ू का पानी स्वाभाविक रूप से नापसंद है लिहाज़ा इससे मस्जिद को बचाना ज़रूरी है जैसे मस्जिद को नाक और बलगम से महफ़ूज़ रखना ज़रूरी है, बदाए-(त)

फ़क़ीर (लेखक) ने इस पर टिप्पणी की: यह इमाम मुहम्मद के मुफ़्ती-बेह (जिस पर फतवा है) कौल की दलील है। रहा मामला इमाम आज़म के कौल का, जो इस्तेमाल शुदा पानी की नापाकी के बारे में है, तो वह ज़ाहिर है। -4 अनुवाद: यह इमाम मुहम्मद के मुफ़्ती-बेह कौल की दलील है। रहा मामला इमाम आज़म के कौल का। वो ज़ाहिर है क्योंकि वो मा-ए-मुस्तअमल (उपयोग किया हुआ पानी) को नापाक कहते हैं। (त)

रद्द-उल-मुहतार में है: उनका कौल 'सिवाय उस जगह के जो इसके लिए तैयार की गई हो': देखिये क्या उस जगह को वज़ू के लिए तैयार करना वाकिफ़ (दाता) की शर्त है या नहीं? -5 अनुवाद: उनका कौल "मगर उस जगह जो वज़ू के लिए तैयार करदा हो" देखिये क्या इस जगह का वज़ू के लिए बनाना वाकिफ़ से शर्त है या नहीं? (त)

फ़क़ीर ने इस पर टिप्पणी की: अकुल (मैं कहता हूँ): हाँ, और एक और चीज़ इसके ऊपर है वो यह कि यह वज़ू के लिए रखना मस्जिद बनने के मुकम्मल होने से पहले हो, क्योंकि अगर इसके बाद हो तो अब वाकिफ़ और दूसरों को उसे गंदगी की जगह बनाना जायज़ नहीं है। अनुवाद: अकुल: हाँ, एक और शय इसके ऊपर है वो ये कि ये वज़ू के लिए रखना तमाम मस्जिदियत (मस्जिद होने) से पहले हो क्योंकि अगर इसके बाद हो तो अब वाकिफ़ और दूसरों [को हक नहीं]।

पादलेख: 1. अल-अशबाह वन-नज़ायर, अल-कौल फ़ी अहकाम अल-मस्जिद, मुद्रित इदारतुल कुरआन वल उलूम अल-इस्लामिया, कराची, 230/2 2. दुर-ए-मुख्तार, बाब मा युफसिदुस सलात व

मा युकरहु फ़ीहा, मुद्रित मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 94/1 3. रद्द-उल-मुहतार, बाब मा युफसिदुस सलात व मा युकरहु फ़ीहा, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 488/1 4. जद अल-मुहतार अला रद्द अल-मुहतार, बाब अहकाम अल-मसाजिद, मुद्रित अल-मजमा अल-इस्लामी, मुबारकपुर, भारत, 316/1 5. रद्द-उल-मुहतार, बाब मा युफसिदुस सलात व मा युकरहु फ़ीहा, मुद्रित मतबा मुज्तबाई, दिल्ली, 94/1

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اوفی اناء -1 | کر لیا جائے۔ (ت)

در مختار میں ہے : یکرہ الوضوء الا فیما اعد ذلك -2 ملخصاً۔ | وضو مکروہ ہے مگر اس جگہ میں جو اس کے لئے تیار کی گئی ہو ملخصاً (ت)

ردالمحتار میں ہے : لان ماء ہ مستقذر طبعاً ، فیجب تنزیہ المسجد عنہ کما یجب تنزیھھا عن المخاط والبلغم بدائع -3۔ | کیونکہ وضو کا پانی طبعاً ناپسند ہے لہذا اس سے مسجد کو بچانا ضروری ہے جیسے مسجد کو ناک اور بلغم سے محفوظ رکھنا ضروری ہے، بدائع -(ت)

فقیر نے اس پر تعلیق کی: ھذا تعلیل علی مذھب محمد ن المفتی بہ اما علی قول الامام بنجاسۃ الماء المستعمل ، فظاھر-4۔ | یہ امام محمد کے مفتی بہ قول کی دلیل ہے۔ رہا معاملہ امام اعظم کے قول کا ۔ وہ ظاہر ہے کیونکہ وہ ماء مستعمل کو ناپاک کہتے ہیں۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے : قولہ الا فیما اعد لذلك انظر ھل یشترط اعداد ذلك من الواقف ام لا -5 | ان کا قول "مگر اس جگہ جو وضو کے لئے تیار کردہ ہو" دیکھئے کیا اس جگہ کا وضو کے لئے بنانا واقف سے شرط ہے یا نہیں؟ (ت)

فقیر نے اس پر تعلیق کی : اقول: نعم وشئ آخر فوق ذلك وھی ان یکون الاعداد قبل تمام المسجدیۃ فان بعدہ لیس لہ ولا لغیرہ تعریضہ للمستقذرات | اقول: ہاں ایک اور شئی اس کے اوپر ہے وہ یہ کہ یہ وضو کے لئے رکھنا تمام مسجدیت سے پہلے ہو کیونکہ اگر اس کے بعد ہو تو اب واقف اور دوسروں [کو حق نہیں]۔

حواشی: 1 الا شباہ والنظائر القول فی احکام المسجد مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۲۳۰/۲ 2 در مختار باب مایفسد الصلوۃ و مایکرہ فیہا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹۴/۱ 3 ردالمحتار باب مایفسد الصلوۃ و مایکرہ فیہا مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۴۸۸/۱ 4 جد المختار علی ردالمحتار باب احکام المساجد مطبوعہ المجمع الاسلامی مبارکپور، انڈیا ۳۱۶/۱ 5 ردالمحتار باب مایفسد الصلوۃ مایکروفیہا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۹۴/۱

Fatawa Rizwiya - Volume 8

[Arabic Text]: ولا فعل شئ يخل بحرمته اخذته مما يأتى فى الوقف من ان الواقف لوبنى فوق سطح المسجد بيتا سكنى الامام قبل تمام المسجدية جازلانه من مصالحه اما بعد فلا يجوز ويجب الهدم۔ [Urdu Explanation]: It is not permissible to designate any part of the mosque for unhygienic purposes; rather, every act that is contrary to the sanctity of the mosque is impermissible. This principle is derived from the following issue mentioned regarding Endowments (Waqf): if the endower (Waqif) built a residence for the Imam on the roof of the mosque before the completion of the formal status of the mosque (Masjidiyat), it is permissible because it serves the mosque's interests. However, after the mosque is fully established, this is not permissible and its demolition is mandatory. (T)

Similarly, if a minaret or a place for calling the Azan was outside the mosque in its courtyard, and later the mosque was expanded, and the land associated with the mosque was incorporated into the mosque such that the minaret is now inside the mosque, there would be no harm in calling the Azan from there. This is because, even before that land became part of the mosque, this place had already been constructed for calling the Azan, as is evident (T). Yes, if someone inside the mosque, even the founder of the mosque himself, wants to exempt a new space for calling the Azan, permission should not be granted because after the mosque is completed, no one has the authority to grant an exemption from it or build for a disliked (Makruh) act. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

[Arabic Text]: لو بنى فوقه بيتا للامام لا يضرلانه من مصالحه امالو تمت المسجديت ثم اراد البناء منع ، ولوقال عنيت ذلك لم يصدق تاتارخانيه فاذكان هذا في الواقف فكيف بغيره فيجب هدمه ولو على جدار المسجد۔ [Urdu Explanation]: If a place for the Imam is built on top of the mosque, there is no harm because it is among the requirements of the mosque. If the mosque is completed and then one wishes to build a residence, it is now forbidden. Even if the Waqif (endower) says that this was my original intention, it will not be verified (according to Tatar-khaniya). When this is the situation for the Waqif, how can an outsider build it? Therefore, its demolition is mandatory, even if it is built on the mosque wall. (T)

Secondly, in common usage (Urf), calling the Azan in the areas related to the mosque is expressed as "Azan has been called in such-and-such mosque." For example, if a minaret is on the specific land of the mosque at a distance of several yards from the main building and Azan is called from there, everyone will say, "Azan has been called

in the mosque, let's go for prayer." No one says, "Azan was called outside the mosque, get up for prayer." This is common practice, which no one can deny. This is why the Absolute Investigator Imam (Imam Muhaqqiq Al-Al-Mutlaq) provided the interpretation for "He is the remembrance of Allah in the mosque" (This is the remembrance of God in the mosque. T) as "meaning within its boundaries (i.e., mosque...)"

---

1. Durr-e-Mukhtar, Kitab-ul-Waqf, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/397.
2. Fath-ul-Qadeer, Bab-us-Salat-ul-Jumu'ah, published by Nooriya Rizwiya, Sukkur, 2/29.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

[अरबी पाठ]: ولا فعل شئ يخل بحرمته اخذته مما يأتى فى الوقف من ان الواقف لوبنى فوق سطح المسجد بيتا سكنى الامام قبل تمام المسجدية جازلانه من مصالحه اما بعد فلا يجوز ويجب الهدم۔ [उर्दू स्पष्टीकरण]: मस्जिद के किसी भी हिस्से को गंदगी के लिए बनाना जायज़ नहीं है; बल्कि हर वह काम जायज़ नहीं है जो मस्जिद के सम्मान के खिलाफ हो। यह सिद्धांत उस मसले से निकाला गया है जो वक्फ़ (धार्मिक बंदोबस्त) के बारे में आता है कि यदि मस्जिद की मस्जिदियत (मस्जिद का दर्जा) पूरी होने से पहले मस्जिद की छत पर वक्फ़ करने वाले ने इमाम के रहने के लिए जगह बना दी, तो यह जायज़ है क्योंकि यह मस्जिद के हितों में से है। लेकिन मस्जिद पूरी होने के बाद यह जायज़ नहीं है और इसे गिराना ज़रूरी है। (त)

इसी प्रकार, यदि मस्जिद के बाहर उसके प्रांगण (फ़ना-ए-मस्जिद) में कोई मीनार या अज़ान देने का स्थान था, और बाद में मस्जिद का विस्तार किया गया और वह ज़मीन मस्जिद में शामिल कर ली गई जिससे मीनार अब मस्जिद के अंदर हो गई, तो वहाँ से अज़ान देने में कोई हर्ज नहीं होगा। क्योंकि उस ज़मीन के मस्जिद बनने से पहले ही वहाँ अज़ान के लिए स्थान बनाया जा चुका था, जैसा कि स्पष्ट है। (त) हाँ, यदि मस्जिद पूरी होने के बाद कोई व्यक्ति, यहाँ तक कि मस्जिद का संस्थापक ही क्यों न हो, मस्जिद के अंदर अज़ान के लिए नया स्थान अलग करना चाहे, तो इसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। मस्जिद पूर्ण होने के बाद किसी को भी उसमें से किसी हिस्से को छूट देने या किसी मकरूह (नापसंद) कार्य के लिए निर्माण करने का अधिकार नहीं है। जैसा कि 'दुर्रे मुख्तार' में उल्लेख है:

[अरबी पाठ]: لو بنى فوقه بيتا للامام لا يضرلانه من مصالحه امالو تمت المسجديت ثم اراد البناء منع ، ولوقال عنيت ذلك لم يصدق تاتارخانيه فاذكان هذا في الواقف فكيف بغيره فيجب هدمه ولو على جدار المسجد۔ [उर्दू स्पष्टीकरण]: यदि मस्जिद के ऊपर इमाम के लिए जगह बनाई गई है, तो इसमें कोई हानि नहीं है क्योंकि यह मस्जिद की ज़रूरतों में से है। लेकिन अगर मस्जिद मुकम्मल हो गई और फिर घर बनाना चाहते हैं, तो अब मना है। और यदि वक्फ़ करने वाला कहे कि मेरा इरादा यही था, तो उसकी बात की पुष्टि नहीं की जाएगी (ततारखानिया के अनुसार)। जब वक्फ़ करने वाले का यह हाल है, तो कोई दूसरा कैसे बना सकता है? इसलिए, उसका गिराना ज़रूरी है, चाहे वह मस्जिद की दीवार पर ही क्यों न हो। (त)

दूसरा, मस्जिद के आसपास के क्षेत्रों में मस्जिद के लिए अज़ान होने को बोलचाल (उर्फ़) में यही कहा जाता है कि "फ़लाँ मस्जिद में अज़ान हुई।" उदाहरण के लिए, यदि मस्जिद की विशेष ज़मीन से कई गज़ दूर मीनार हो और उस पर अज़ान दी जाए, तो हर कोई यही कहेगा कि "मस्जिद में अज़ान हो गई, नमाज़ के लिए चलो।" कोई यह नहीं कहता कि "मस्जिद के बाहर अज़ान हुई, नमाज़ के लिए उठो।" यह एक आम रिवाज है जिसे कोई नकार नहीं सकता। इसीलिए इमाम मोहक़्क़िक़ अली-अल-मुतलक़ ने "वह मस्जिद में अल्लाह का ज़िक्र है" (यह मस्जिद में ईश्वरीय स्मरण है। त) की व्याख्या इस प्रकार की है कि "अर्थात उसकी सीमाओं के भीतर (यानी मस्जिद...)"

---

1. दुर्रे मुख्तार, किताबुल वक्फ़, मुज्तबाई प्रेस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/397.
2. फ़तहुल क़दीर, बाब-उस-सलातुल जुमुआह, नूरया रज़विया, सुक्कुर द्वारा प्रकाशित, 2/29.

[Arabic Text]: ولا فعل شئ یخل بحرمته اخذته مما یأتی فی الوقف من ان الواقف لوبنی فوق سطح المسجد بیتا سکنی الامام قبل تمام المسجدیة جاز لانه من مصالحه اما بعد فلا یجوز ویجب الهدم۔

[Urdu Explanation]: کے لئے یہ جائز نہیں کہ مسجد کے کسی حصہ کو گندگی کے لئے بنائیں بلکہ ہر وہ فعل جائز نہیں جو مسجد کی عزت کے منافی ہو، یہ اصول اس مسئلہ سے مستنبط ہے جو وقف میں آتا ہے کہ مسجد کے اوپر واقف نے تمام مسجدیت سے پہلے رہائش بنا دی تو یہ جائز ہے کیونکہ یہ مصالح مسجد سے ہے البتہ تمام مسجد کے بعد یہ جائز نہیں اور اس کا گرانا ضروری ہے(ت)

اسی طرح اگر منارہ یا مئذنہ بیرون مسجد فنائے مسجد میں تھا بعدہ مسجد بڑھائی گئی ہو اور زمین متعلق مسجد مسجد میں لے لی کہ اب مئذنہ اندرون مسجد ہو گیا اس پر بھی اذان میں حرج نہ ہو گا کہ یہ بھی وہی صورت ہے کہ اس زمین کی مسجدیت سے پہلے اس میں یہ محل اذان کے لئے مصنوع ہو چکا تھا کمالایخفی (جیسا کہ مخفی نہیں۔ت) ہاں اگر داخل مسجد کوئی شخص اگر چہ خود بانی مسجد نیا مکان اذان کے لئے مستثنٰی کرنا چاہے تو اُس کی اجازت نہ ہونی چاہئے کہ بعد تمامی مسجد کسی کو اُس سے استثناء یا فعل مکروہ کے لئے بنا کا اختیار نہیں، دُر مختار میں ہے:

[Arabic Text]: لو بنی فوقه بیتا للامام لا یضر لانه من مصالحه امالو تمت المسجدیت ثم اراد البناء منع ، ولوقال عنیت ذلك لم یصدق تاتارخانیه فاذکان هذا في الواقف فکیف بغیره فیجب هدمه ولو علی جدار المسجد۔ [Urdu Explanation]: اگر مسجد کے اوپر امام کے لئے جگہ بنائی تو ضرر نہیں کیونکہ یہ ضروریات مسجد میں سے ہے اگر مسجد مکمل ہو گئی اور پھر رہائش بنانا چاہتے تو اب منع ہے اور اگر واقف کہے کہ میرا ارادہ یہی تھا تو اس کی تصدیق نہیں کی جائے

گی تاتارخانیہ، جب واقف کا یہ حال ہے تو غیر کیسے بنا سکتا ہے، لہٰذا اس کا گرانا ضروری ہے اگر چہ وہ دیوار مسجد پر ہو۔ (ت)

دوم متعلقاتِ مسجد میں مسجد کے لئے اذان ہونے کو عرف میں یونہی تعبیر کرتے ہیں کہ فلاں مسجد میں اذان ہوئی مثلاً منارہ بیرون مسجد زمین خاص مسجد سے کئی گز کے فاصلے پر ہو اور اُس پر اذان کہی جائے تو ہر شخص یہی کہے گا مسجد میں اذان ہو گئی نماز کو چلو، یوں کوئی نہیں کہتا کہ مسجد کے باہر اذان ہوئی نماز کو اٹھو یہ عرفِ عام شائع ہے جس سے کسی کو مجال انکار نہیں، واللہذا امام محقق علی الاطلاق نے ھو ذکر اللہ فی المسجد - (یہ مسجد میں ذکر الہی ہے۔ ت) کی وہ تفسیر فرمادی کہ ای فی حدودہ (یعنی مسجد

---

1 در مختار کتاب الوقف مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۳۹۷ 2 فتح القدیر باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲/۲۹

Volume 8 Fatawa Razawiyya

...within its boundaries. (Trans.) And the reason for this is the saying that 'because the call to prayer (Azan) inside it [the mosque] is disliked'. (Trans.) It is worth remembering this point well so that no one who is unfamiliar with the words of Hadith Muslim might be misled:

From Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) it is narrated as a 'Mauquf' report that it is from the Sunnahs of guidance that prayer should be performed in the mosque in which the Azan is given. [1]	**It is narrated from Hazrat Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) in a halted manner that it is among the Sunnahs of guidance that prayer be performed in that mosque in which the Azan is given. (Trans.)**

And similar phrases like 'it is disliked for one who has not prayed to leave a mosque in which Azan was given' (Trans.) should not be misleading; and likewise the Hadith of Ibn Majah:

From the Commander of the Faithful, Uthman al-Ghani (may Allah be pleased with him), from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): Whoever is caught by the Azan in the mosque and then leaves, not for a need and not intending to return, he is a hypocrite. [2]	**Commander of the Faithful Hazrat Uthman Ghani (may Allah be pleased with him) narrates from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): Whoever was present in the mosque when the call to prayer was given and left without any compulsion or intention to return, he is a hypocrite. (Trans.)**

The deception from this is even weaker because 'the mosque is the place for catching [the Azan], not for [giving] the Azan'. (Trans.) This is why Allama Munawi explained this Hadith in Al-Taysir as follows: | (Whoever caught the call to prayer) and he (was in the mosque) [3] etc. | (Whoever caught the Azan) meaning heard the Azan, while he (was in the mosque) etc. (Trans.) |

Rather, the Hadith itself is sufficient to explain the Hadith: | Ahmad with a sound chain narrates from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that he said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) commanded us that if you are in the mosque and the call to prayer is given, do not leave. | Imam Ahmad narrated with an authentic chain from Hazrat Abu Hurairah (may Allah be pleased

with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) commanded us that when you are in the mosque and the Azan is given, do not leave without performing the prayer. |

---

1 Sahih Muslim, Chapter: The Virtue of Congregation, printed by Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/232. 2 Sunan Ibn Majah, Chapter: If the call to prayer is given while you are in the mosque, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 54. 3 Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, under the Hadith 'Whoever caught the Azan', Maktabat al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, 2/392.

जिल्द 8 फ़तावा रज़विया

...उसकी सीमाओं के भीतर। (अनु.) और इसका प्रमाण वही कथन है कि 'क्योंकि मस्जिद के अंदर अज़ान देना नापसंद (मक़रूह) है।' (अनु.) यह बात अच्छी तरह याद रखने योग्य है ताकि कोई ऐसा व्यक्ति जो हदीस-ए-मुस्लिम के शब्दों से अपरिचित हो, भ्रमित न हो जाए:

इब्ने मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से 'मौक़ूफ़' रिवायत है कि हिदायत की सुन्नतों में से यह है कि उस मस्जिद में नमाज़ पढ़ी जाए जिसमें अज़ान दी जाती हो। [1]

हज़रत इब्ने मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मौक़ूफ़न रिवायत है कि हिदायत की सुन्नतों में से यह है कि उस मस्जिद में नमाज़ पढ़ी जाए जिसमें अज़ान हो। (अनु.)

और 'मस्जिद से उस व्यक्ति का निकलना मक़रूह है जिसने नमाज़ न पढ़ी हो और वहां अज़ान दे दी गई हो' (अनु.) जैसे वाक्यांशों से धोखा न खाएं और इसी तरह इब्ने माजा की हदीस:

अमीर-उल-मोमिनीन उस्मान अल-ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: जो व्यक्ति मस्जिद में हो और अज़ान हो जाए, फिर वह मस्जिद से बाहर निकल जाए बिना किसी ज़रूरत के और उसका वापस आने का इरादा भी न हो, तो वह मुनाफ़िक़ (पाखंडी) है। [2]

अमीर-उल-मोमिनीन हज़रत उस्मान ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से बयान करते हैं: जिसने मस्जिद में अज़ान को पाया और बिना किसी मजबूरी के मस्जिद से निकला और वापसी का इरादा भी न था तो वह मुनाफ़िक़ है। (अनु.)

इससे मिलने वाला धोखा और भी कमज़ोर है क्योंकि 'मस्जिद अज़ान सुनने (पाने) का स्थान है न कि अज़ान देने का'। (अनु.) इसीलिए अल्लामा मुनावी ने अल-तयसीर में इस हदीस की इस प्रकार व्याख्या की है: | (जिसने अज़ान को पाया) और वह (मस्जिद में था) [3] आदि। | (जिसने अज़ान को पाया) यानी अज़ान सुनी, जबकि वह (मस्जिद में था) आदि। (अनु.) |

बल्कि खुद हदीस ही हदीस की व्याख्या के लिए काफ़ी है: | अहमद ने सही सनद के साथ अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि उन्होंने कहा: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हमें हुक्म दिया कि जब तुम मस्जिद में हो और नमाज़ के लिए अज़ान दी जाए, तो बाहर न निकलो। | इमाम अहमद ने सही सनद के साथ हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया कि हमें

रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हुक्म दिया कि जब तुम मस्जिद में हो और अज़ान हो जाए तो नमाज़ अदा किए बिना बाहर न निकलो। |

---

1 सही मुस्लिम, बाब: जमाअत की फ़ज़ीलत, मुद्रित: क़दीमी कुतुब ख़ाना, कराची, 1/232। 2 सुनन इब्ने माजा, बाब: जब अज़ान हो और तुम मस्जिद में हो, मुद्रित: एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. 54। 3 अल-तयसीर शरह अल-जामी अल-सग़ीर, हदीस 'जिसने अज़ान को पाया' के तहत, मकतबत अल-इमाम अल-शाफ़ई, रियाद, 2/392।

کے حدود میں۔ت) اور اس کی دلیل وہی ارشاد فرمائی کہ لکراہۃ الاذان في داخله (کیونکہ مسجد کے اندر اذان مکروہ ہے۔ت) یہ نکتہ خوب یاد رکھنے کا ہے کہ کوئی سخن ناشناس نظائر حدیث مسلم :

عن ابن مسعود رضی اللہ تعالی عنہ حضرت ابن مسعود رضی اللہ تعالی عنہ سے موقوفاً مروی وقفاً ان من سنن الہدی الصلوٰۃ فی المسجد الذی یؤذن فیہ -1 **ہے کہ سنن ہدی میں سے ہے کہ اس مسجد میں نماز پڑھی جائے جس میں اذان ہو۔ (ت)**

وامثال عبارت کرہ خروج من لم یصل من مسجد اذن فیہ (اس مسجد سے نکلنا مکروہ جس میں اذان دی گئی ہو۔ت) ہے دھوکا نہ کھائے اور اشباہ حدیث ابن ماجہ :

عن امیر المؤمنین عثمن الغنی رضی اللہ تعالی عنہ عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم من ادرك الاذان فی المسجد ثم خرج لم یخرج لحاجته وھو لا یرید الرجعة فھو منافق -2 **امیر المؤمنین حضرت عثمان غنی رضی اللہ تعالی عنہ نبی اکرم صلی اللہ تعالی علیہ وسلم سے بیان کرتے ہیں جس نے مسجد میں اذان کو پایا اور بغیر مجبوری کے مسجد سے نکلا اور واپسی کا ارادہ بھی نہ تھا تو وہ منافق ہے۔ (ت)**

سے دھوکا اور بھی ضعیف تر ہے فان المسجد ظرف الادراك دون الاذان (کیونکہ مسجد ادراک کے لئے ظرف ہے اذان کے لئے نہیں۔ت) و لہذا علامہ منادی نے تیسر میں اس حدیث کی یوں تشریح فرمائی : | (من ادرك الاذان) وھو (فی المسجد) 3 الخ | (جس نے اذان کو پایا) یعنی اذان کو سنا، حالانکہ وہ (مسجد میں تھا) الخ (ت) |

بلکہ خود حدیث شرح حدیث کو بس ہے: | احمد بسند صحیح عن ابي هريرة رضی الله تعالی عنه قال امرنا رسول الله صلی الله تعالی علیه وسلم اذا کنتم في المسجد فنودی بالصلوة فلا یخرج | امام احمد نے سند صحیح کے ساتھ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالی عنہ سے روایت کیا کہ ہمیں رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم نے حکم دیا کہ جب تم مسجد میں ہو اور اذان دی جائے تو نماز ادا کئے بغیر |

---

1 صحیح مسلم باب فضل جماعۃ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۲۳۲ 2 سنن ابن ماجہ باب اذا اذان وانت فی المسجد مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۵۴ 3 التیسر شرح الجامع الصغیر حدیث من ادرک الاذان کے تحت مکتبۃ الامام الشافعی ریاض ۳۹۲/۲

Fatawa-e-Razvia Volume 8

"one of you until he prays" - (1) No one should leave the mosque. (T) In short, wherever such words occur, they are attributed to one of these two (2) points.

I say: From this, the statement of al-Jalabi also becomes clear, that the Adhan should be given in the mosque or in a place that has the ruling of a mosque, and not in a place far from it. i.e., the Adhan should be given within the boundaries of the mosque and its courtyard, as explained by the Absolute Verified Imam, or inside the mosque itself provided a place was designated there previously, or it should be given in a place that has the ruling of a mosque due to its proximity, because the Adhan there will be counted as the Adhan for the mosque itself. As Hazrat Uthman (Allah be pleased with him) did, he ordered the first Adhan to be given at the place of Zaura in the market. Adhan should not be given far from the mosque, for example, if the mosque is in the western part of the city and Adhan is given in the eastern part, then this Adhan will belong to another locality; it will not be counted as the Adhan for this mosque as is clear. Al-Jalabi's statement is not a rectification of the structured text as Quhustani presumed. By the grace of Allah, what we discussed and the meaning we explained for "in front of the Imam," it became clear that the words "Bayna Yadayh" (between his hands/in front of him) demand a proximity appropriate to the place and not physical attachment. Praise be to Allah, the text of Nuqayah says "When the Imam sits on the pulpit, the second Adhan is given in front of him."

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Huraira (Allah be pleased with him), published by Dar al-Fikr Beirut 2/537.
2. Jami' al-Rumuz, referencing al-Jalabi, chapter on Adhan, published by Maktaba Islamia Gunbad-e-Qamus Iran 1/123.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 8

"अहदुकुम हत्ता युसल्ली" - (1) कोई मस्जिद से न निकले। (त) संक्षेप में, जहाँ भी ऐसे शब्द आते हैं, उन्हें इन दो (2) बिंदुओं में से एक पर माना जाता है।

मैं कहता हूँ: इससे जलाबी का यह कथन भी स्पष्ट हो गया कि अज़ान मस्जिद में या उस स्थान पर दी जाए जो मस्जिद के हुक्म में हो, उससे दूर किसी स्थान पर न दी जाए। यानी मस्जिद की सीमाओं और मस्जिद के आँगन (फ़ना-ए-मस्जिद) में अज़ान दी जाए जैसा कि इमाम मोहक़्क़िक़ अली अल-इतलाक़ ने इसकी व्याख्या की है, या मस्जिद के अंदर बशर्ते कि वहाँ पहले से कोई जगह बनाई गई हो या उस जगह दी जाए जो नज़दीकी के कारण मस्जिद का हुक्म रखती हो क्योंकि वहाँ की अज़ान को मस्जिद की ही अज़ान माना जाएगा। जैसा कि हज़रत उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने किया कि पहली अज़ान बाज़ार में 'ज़ौरा' नामक स्थान पर देने का हुक्म दिया। मस्जिद से दूर अज़ान न दी जाए, उदाहरण के लिए जब मस्जिद शहर के पश्चिम में हो और अज़ान पूर्व में दी जाए, तो यह अज़ान दूसरे मोहल्ले की होगी; इसे इस मस्जिद की अज़ान नहीं गिना जाएगा जैसा कि स्पष्ट है। जलाबी का कथन नज़्म (मूल पाठ) पर कोई सुधार नहीं है जैसा कि क़ुहिस्तानी ने समझा। अल्लाह की तौफ़ीक़ से, हमने जो चर्चा की और "इमाम के सामने" का जो अर्थ बताया, उससे यह स्पष्ट हो गया कि "बैन यदैहि" (उसके सामने) शब्द स्थान के अनुसार उचित निकटता की माँग करते हैं न कि भौतिक जुड़ाव (इत्तेसाल) की। अल्लाह की प्रशंसा है, नुक़ाया का इबारत है "जब इमाम मिंबर पर बैठे तो उसके सामने दूसरी अज़ान"।

1. मुसनद अहमद बिन हनबल, अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित, मुद्रित दार अल-फ़िक्र बेरूत 2/537।
2. जामि' अल-रुमूज़, अल-जलाबी के हवाले से, अज़ान का अध्याय, मुद्रित मकतबा इस्लामिया गुंबद-ए-क़ामूस ईरान 1/123।

पृष्ठ 507 का 673

احدکم حتی یصلّی- (1) کوئی مسجد سے نہ نکلے۔ (ت) بالجملہ جہاں ایسے الفاظ واقع ہوں انہیں دو (2) نکتوں سے ایک پر محمول ہیں۔

اقول: اس سے جلابی کی یہ عبارت بھی واضح ہوگئی کہ مسجد میں یا اس جگہ میں اذان دی جائے جو حکم مسجد میں ہو، مسجد سے دُور اور جگہ میں نہ دی جائے اھ یعنی مسجد کے حدود اور فنائے مسجد میں اذان دی جائے جیسا کہ اس کی تفسیر امام محقق علی الاطلاق نے کی ہے، یا مسجد کے اندر بشرطیکہ وہاں پہلے سے جگہ بنائی گئی ہو یا اس جگہ دی جائے جو قرب کی وجہ سے مسجد کا حکم رکھتی ہو کیونکہ وہاں کی اذان کو مسجد کی ہی اذان شمار کیا جائے گا جیسا کہ حضرت عثمان رضی اللہ تعالٰی عنہ نے کیا کہ اذانِ اوّل بازار میں مقام زوراء پر دینے کا حکم دیا، مسجد سے دُور اذان نہ دی جائے مثلاً جب مسجد غربی البلد ہو اور اذان شرقی میں دی جائے تو اب یہ اذان دوسرے محلے کی ہوگی اس مسجد کی اذان اسے شمار نہیں کیا جائیگا جیسا کہ واضح ہے، کلام جلابی کلام نظم پر استدراک نہیں جیسا کہ قہستانی نے گمان کیا۔ اللہ تعالٰی کی توفیق سے جو کچھ ہم نے گفتگو کی اور "سامنے امام" کا معنٰی بیان کیا اس سے واضح ہوگیا کہ "بین یدیہ" کے الفاظ مقام کے مناسب قُرب کا تقاضا کرتے ہیں نہ کہ اتصال کا، بحمد اللہ نقایہ کی عبارت "جب امام منبر پر بیٹھے تو اس کے سامنے دوسری اذان"

1. مسند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲/۵۳۷
2. جامع الرموز بحوالہ الجلابی فصل فی الاذان مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/۱۲۳

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Box 1] (Arabic): Between the two directions aligned with the right of the pulpit and the imam and his left, close to it and their middle with stillness. This includes when the call to prayer (Adhan) is made in a right, acute, or obtuse angle arising from two lines protruding from these two directions. Proximity is not denied, nor is connection implied. He only intended by it to exclude the distance at which the Adhan would not be considered that of the mosque if it contradicts that, as we mentioned in the words of Al-Jallabi. End quote.

(Urdu): "...should be given" - what was stated under Quhastani also became clear: that the Adhan should be to the right of the pulpit and the Imam, or to his left near him, or in the middle of both. This includes situations where the Adhan is given in a right, acute, or obtuse angle created by two directions of the mentioned lines. Thus, there is no denial of proximity here and no indication of connection. His purpose was to remove that distance whereby the Adhan is not considered the Adhan of that mosque, as we mentioned in Al-Jallabi's words. (T)

In short, even if there were an explicit statement in an isolated and uncommon book contrary to the general authoritative books of the school of thought, it would not be accepted rationally, customarily, or legally.

[Box 2] (Arabic): Do you not see how Al-Tahtawi limited himself in the ruling to narrating what is in Al-Qubastani from Al-Nazm, and did not pay any attention to his rectification at all, knowing that the rectification is redundant and should not be narrated?

(Urdu): Did you not see how Allamah Tahtawi sufficed with the ruling that Quhastani narrated from Nazm and did not pursue its rectification at all? He knew that the rectification was superfluous, so narrating it is not appropriate. (T)

Especially when it is not a vague word but a clear, plain statement worthy of explanation and correction.

[Box 3] (Arabic): As is not hidden from anyone of sound mind. This is how research should be. Allah, glorified be He, is the giver of success. Praise be to Allah, Lord of the worlds. May Allah's blessings be upon our master and leader Muhammad, and upon all his family and companions. Amen. Allah knows best, and His knowledge, may His glory be exalted, is most complete and most decisive.

(Urdu): As is not hidden from any sane person, this was the right of research. Allah, glorified be He, is the master of success. Praise be to Allah, Lord of the worlds, and peace and blessings of Allah be upon our master and leader Muhammad and his family and all his companions. Amen. And Allah knows best, and His knowledge, glorified be His majesty, is most complete and most firm. (T)

---

1. Jami' al-Rumuz, chapter on Friday Prayer, published by Maktaba Islamia Gunbad Qamus Iran, 1/268.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

[बॉक्स 1] (अरबी): मिंबर और इमाम के दाहिने और बाएं दोनों दिशाओं के बीच, उसके करीब और स्थिरता के साथ उनके बीच। इसमें वे स्थितियां शामिल हैं जब अज़ान इन दो दिशाओं से निकलने वाली दो रेखाओं से बने समकोण, न्यून कोण या अधिक कोण में दी जाती है। यहाँ निकटता का खंडन नहीं है और न ही यह जुड़ाव का संकेत है। उन्होंने केवल उस दूरी को बाहर करने का इरादा किया था जिसके कारण अज़ान को उस मस्जिद की अज़ान नहीं माना जाएगा यदि वह इसके विरुद्ध हो, जैसा कि हमने अल-जलाबी के शब्दों में उल्लेख किया है।

(उर्दू): "...दी जाए" - कुहस्तानी के तहत जो कहा गया वह भी स्पष्ट हो गया कि अज़ान मिंबर और इमाम के दाईं ओर, या उसके बाईं ओर उसके पास हो, या उन दोनों के बीच में हो, यह उन स्थितियों को शामिल करता है जब अज़ान समकोण, न्यून कोण या अधिक कोण में दी गई हो जो इन दो रेखाओं की दो दिशाओं से उत्पन्न होती है। अतः यहाँ निकटता का खंडन नहीं है और न ही जुड़ाव का संकेत है। उनका उद्देश्य केवल उस दूरी को दूर करना था जहाँ अज़ान को उस मस्जिद की अज़ान नहीं माना जाता यदि वह इसके विपरीत हो, जैसा कि हमने अल-जलाबी के शब्दों में उल्लेख किया है। (त)

संक्षेप में, यदि मज़हब की सामान्य विश्वसनीय पुस्तकों के विरुद्ध किसी एक-आधी दुर्लभ और अप्रचलित पुस्तक में कोई स्पष्ट उल्लेख भी हो, तो वह विवेक, परंपरा और शरीयत के आधार पर स्वीकार्य नहीं होगा।

[बॉक्स 2] (अरबी): क्या आपने नहीं देखा कि अल्लामा तहतावी ने किस प्रकार उस आदेश पर संतोष किया जिसे कुहस्तानी ने नज़्म से उद्धृत किया था और उसके सुधार (इस्तदराक) के पीछे बिल्कुल नहीं पड़े? उन्हें ज्ञात था कि सुधार व्यर्थ है, इसलिए इसे उद्धृत करना उचित नहीं है।

(उर्दू): क्या आपने नहीं देखा कि अल्लामा तहतावी ने किस प्रकार उस हुक्म पर इक्तिफ़ा (संतोष) किया जिसे कुहस्तानी ने नज़्म से नक़ल किया था और उसके इस्तदराक (सुधार) के पीछे बिल्कुल नहीं पड़े? उन्हें इल्म था कि इस्तदराक फ़ालतू है, लिहाज़ा इसका नक़ल करना मुनासिब नहीं। (त)

विशेषकर जब वह कोई संदिग्ध शब्द न हो बल्कि स्पष्ट और साफ बयान हो जो व्याख्या और सुधार के योग्य हो।

[बॉक्स 3] (अरबी): जैसा कि किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति से छिपा नहीं है। शोध का यही तरीका होना चाहिए। अल्लाह, जो महिमामय है, सफलता देने वाला है। समस्त प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो संसारों का पालनहार है। अल्लाह की कृपा हमारे स्वामी और नेता मुहम्मद और उनके सभी परिवार और साथियों पर हो। आमीन। अल्लाह बेहतर जानता है, और उसका ज्ञान, जिसकी महिमा बुलंद है, सबसे पूर्ण और सबसे दृढ़ है।

(उर्दू): जैसा कि हर अक़्लमंद पर छुपा नहीं है, तहक़ीक़ का हक़ यही था। अल्लाह सुब्हानहु तौफ़ीक़ का मालिक है। अलहम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन, और अल्लाह तआला की रहमत हो हमारे आका और मौला मुहम्मद और उनकी आल और उनके तमाम असहाब पर। आमीन। अल्लाह तआला बेहतर जानता है और उसका इल्म, जिसकी बुज़ुर्गी बुलंद है, सबसे कामिल और सबसे मज़बूत है। (त)

---

1. जामे अल-रुमूज़, जुमा की नमाज़ का अध्याय, मकतबा इस्लामिया गुंबद कामूस ईरान द्वारा प्रकाशित, 1/268.

بین الجھتین المسامتین لیمین المنبر والامام ویساره قریباً منہ ووسطھما بالسکون فیشتمل ما اذا اذن فی زاویة قائمة او حادة او منفرجة حادثة من خطین خارجین من ھاتین الجھتین فلیس القرب منکرا ولا بالاتصال مشعرا وانما اراد به اخراج البعد الذی لایعد به الاذان اذا نافی ذلک المسجد کما ذکرناه فی کلام الجلابی۔ اھ[1] دی جائے" کہ تحت قہستانی نے جو کہا وہ بھی واضح ہو گیا کہ اذان یمینِ منبر وامام اس کے بائیں جانب اس کے قریب ہو یا ان دونوں کے وسط میں ہو، یہ ان صورتوں کو شامل ہے جب اذان زاویہ قائمہ یا حادہ یا منفرجہ میں ہوئی جو ان دو خطوطِ مذکورہ کی دو جہات سے پیدا ہوا اھ تو یہاں قرب کا انکار نہیں اور اتصال پر دلالت نہیں، اس سے ان کا مقصد اس بُعد کا دُور کرنا ہے جس میں اذان کو اس مسجد کی اذان تصور نہ کیا جائے جیسا کہ ہم نے اسے جلابی کے کلام میں ذکر کیا۔(ت)

غرض عامہ کتبِ معتمدہ مذہب کے خلاف اگر ایک آدھ غریب و نامتداول کتاب میں کوئی تصریح بھی ہوتی عقلاً وعُرفاً و شرعاً قبول نہ ہوتی۔

الا تری ان العلامة الطحطاوی کیف اقتصر فی الحکم علی حکایة ما فی القہستانی عن النظم ولم یعرج علی استدراکہ اصلا علما منه ان الاستدراك مستدرك لا ینبغی نقلا۔ کیا آپ نے نہ دیکھا علامہ طحطاوی نے کس طرح اکتفا کیا اس حکم پر جو قہستانی نے نظم سے نقل کیا تھا اور اس کے استدراک کے بالکل درپے نہ ہوئے، انہیں علم تھا کہ استدراک فالتو ہے لہٰذا اس کا نقل کرنا مناسب نہیں۔ (ت)

نہ کہ کوئی لفظِ محتمل نہ صریح ، صاف صاف لائق توجیہ و تصحیح ہو،

کما لا یخفی علی ذی عقل نجیح ھکذا ینبغی التحقیق واللہ سبحانہ ولی التوفیق والحمد للہ رب العلمین وصلی اللہ تعالیٰ علی سیدنا و مولنا محمد وآلہ وصحبہ اجمعین۔ آمین۔ واللہ تعالیٰ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ جیسا کہ ہر عاقل پر مخفی نہیں، تحقیق کا حق یہی تھا، اللہ سبحانہ توفیق کا مالک ہے، الحمدللہ رب العالمین وصلی اللہ تعالیٰ علی سیدنا ومولنا محمد وآلہ وصحبہ اجمعین۔ آمین۔ واللہ اعلم وعلمہ جل مجدہ اتم واحکم۔ (ت)

---

[1] جامع الرموز فصل فی صلوٰۃ الجمعۃ مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/۲۶۸

Fatawa Razawiya Volume 8

Chapter on the Two Eids (Description of Eids)

Issue No. 1212: From Sahasram, Muhalla Partala, District Arrah, questioned by Qudratullah Sahib, 5 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: Zaid, who is knowledgeable about the Sunnah, punctual in prayer, and pious, recited the first sermon of Eid al-Adha and then loudly recited 'Labbaik' and 'Salat-o-Salam' upon the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and 'Takbir' himself and made the congregants say them as well. Then he recited 'Barak Allahu lana wa lakum' and sat down. Then he recited the second sermon. After finishing, he was asked why he performed this unprescribed (non-Sharia) act. He replied, 'My act is not unprescribed; it was issued in a state of ecstasy (kaif), similar to the blessed saying of Hazrat Umar (may Allah be pleased with him), "Ya Sariyat-ul-Jabal" (O Sariya, to the mountain). How far is this claimant's claim correct, and is the perpetrator of such an act worthy of blame or not? Clarify and you shall be rewarded.

The Answer: There is no harm in reciting 'Labbaik' and 'Durood' by himself. However, making the congregants say them is out of place as they are ordered to remain silent during the sermon. If it happened in a state of ecstasy (wajd) as per his statement, then he is excused. And when the questioner describes him as a knowledgeable Sunni follower, why should his statement not be accepted? Nevertheless, determining the Shariah ruling is a separate matter.

Page 510 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

बाबुल ईदैन (ईदैन का बयान)

मसला नंबर 1212: सहसराम, मोहल्ला परतला, ज़िला आरा से, प्रार्थी कुदरतउल्लाह साहब, 5 शव्वाल 1339 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ज़ैद, जो सुन्नत का ज्ञाता, नमाज़ का पाबंद और परहेज़गार है, उसने ईदुल अज़हा का पहला खुतबा पढ़ा और फिर 'लब्बैक' और नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर 'सलात-ओ-सलाम' और 'तकबीर' स्वयं ज़ोर से पढ़ी और नमाज़ियों से भी कहलवाई। फिर 'बारकुल्लाह लना व लकुम' पढ़कर बैठ गया। फिर दूसरा खुतबा पढ़ा। समाप्ति के बाद उनसे पूछा गया कि यह गैर-मशरूअ (शरीअत विरुद्ध) कार्य क्यों किया? उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरा यह कार्य गैर-मशरूअ नहीं है; यह कैफ (समाधि की अवस्था) में घटित हुआ, जैसे हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का मुबारक कथन "या सारियतुल जबल" (हे सारिया, पहाड़ की तरफ़) है। इस दावेदार का दावा कहाँ तक सही है और ऐसे कार्य को करने वाला निंदा का पात्र है या नहीं? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: 'लब्बैक' और 'दुरूद' जो उसने स्वयं कहा उसमें कोई हर्ज नहीं है, अलबत्ता मुक़्तदियों (नमाज़ियों) से कहलवाना अनुचित है क्योंकि उन्हें खुतबे के दौरान खामोश रहने का आदेश है। यदि यह वज्द (आध्यात्मिक परमानंद) की स्थिति में हुआ जैसा कि उनका बयान है, तो वे विवश हैं। और जब पूछने वाला उन्हें विद्वान सुन्नी अनुयायी कहता है, तो उनके बयान को क्यों स्वीकार न किया जाए? इसके साथ ही शरीयत के मसले को जान लेना दूसरी बात है।

पृष्ठ 510 का 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

باب العیدین (عیدین کا بیان)

مسئلہ نمبر ۱۲۱۲: از سہسرام محلہ پر تلہ ضلع آرہ مسئولہ قدرت اللہ صاحب ۵ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید اعلم بالسنۃ پابند صلوٰۃ متقی نے اول خطبہ عید الاضحٰی پڑھ کر لبیک اور صلوٰۃ والسلام نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور تکبیر بآواز بلند خود کہا اور مصلیوں سے کہلایا پھر بارک اللہ لنا ولکم پڑھ کر بیٹھا پھر دوسرا خطبہ پڑھا بعد فراغ سوال کیا گیا یہ غیر مشروع فعل کیوں کیا اس نے جواب دیا میرا یہ فعل غیر مشروع نہیں حالت کیف میں صادر ہوا مثل قول مبارک حضرت عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہ یاساریۃ الجبل ہے، یہ دعویٰ مدعی کا کہاں تک صحیح ہے اور ایسے فعل کا مرتکب لائق ملامت ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: لبیک ودرود کہ اس نے خود کہا حرج نہیں البتہ مقتدیوں سے کہلانا بے محل وہ خطبہ میں مامور بالسکوت ہیں، اگر حالت وجد میں ایسا ہوا جیسا کہ اس کا بیان ہے تو معذور ہے اور جب سائل اسے عالم سنّی مقتدی کہتا ہے تو اس کا بیان کیوں نہ تسلیم کیا جائے معہذا مسئلہ شرعیہ معلوم کرلینا دوسری بات

Volume 8 Fatawa Razawiyya

That is certainly required, but the common people cannot be allowed to reprimand a Sunni, pious scholar because of his slip/mistake, as specified by the Imams and indicated by the Hadiths (as the Imams have clarified this and there is guidance on this in the Hadiths as well). This applies to one who is a Sunni scholar; otherwise, nowadays many misguided, irreligious people, rather apostates, for example, Deobandis and Wahhabis, call themselves Sunni scholars. They deserve not just reprimand, but something thousands of degrees more severe than that. And Allah Almighty knows best.

वह ज़रूर चाहिए, लेकिन आम जनता को किसी सुन्नी, परहेज़गार आलिम (विद्वान) पर उसकी किसी चूक के कारण बुरा-भला कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जैसा कि इमामों ने स्पष्ट किया है और हदीसों में इसकी ओर इशारा किया गया है (जैसा कि इमामों ने इसकी व्याख्या की है और हदीसों में भी इस पर मार्गदर्शन है)। यह उसके बारे में है जो सुन्नी आलिम हो; अन्यथा आजकल बहुत से गुमराह, बे-दीन बल्कि मुर्तद (धर्मत्यागी), उदाहरण के लिए देवबंदी और वहाबी, खुद को सुन्नी आलिम कहते हैं। वे केवल बुरा-भला कहे जाने के ही नहीं, बल्कि उससे हज़ारों गुना अधिक सख्त व्यवहार के पात्र हैं। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

وہ ضرور چاہئے مگر عوام کو سنی عالم متقی پر اس کی لغزش کے سبب ملامت کی اجازت نہیں ہو سکتی کما نص علیہ الائمہ واشارت الیہ الاحادیث (جیسا کہ ائمہ نے اس کی تصریح کی ہے اور احادیث میں بھی اس پر رہنمائی ہے۔ت) یہ اس کے حق میں ہے جو سنی عالم ہو ورنہ آجکل بہت گمراہ بد دین بلکہ مرتدین مثلاً دیوبندیہ وہابیہ اپنے آپ کو سنی عالم کہتے ہیں وہ ملامت کیا اُس سے ہزاروں درجہ سخت ترکہ مستحق ہیں۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

Fatawa-e-Razvia Volume 8

Surur al-Eid al-Sa'id fi Hill al-Du'a ba'd Salat al-Eid 1339 AH (Proof of raising hands and supplicating after the Eid prayer)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

Issue Number 1413: What do the scholars of religion say about this matter? Maulvi Abdul Hayy Sahab Lakhnawi wrote in the second volume of his Fatawa that supplicating after the two Eid prayers or after the Eid sermon is not proven from the Master of the Universe, peace and blessings of Allah be upon him, his companions, or the followers (tabi'in), may Allah be pleased with them all. Now, the Wahhabis have made a great clamor over this, calling the said supplication impermissible and prohibiting Muslims from it. They cite the aforementioned writing as evidence, saying that Maulvi Abdul Hayy Sahab has given a fatwa. Their prohibitions have had such an effect that people have even stopped supplicating after the five daily obligatory prayers. What is the truth in this matter? Explain and you shall be rewarded.

The Answer:

[Table Content] Arabic Text: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful. All praise is due to Allah, who made Eid beloved to us and made it a means of bringing near everything far. He commanded us to supplicate on the auspicious day and promised us acceptance in the Praiseworthy Speech (the Quran). Blessings and peace be upon the one whose face is Eid, whose meeting is Eid, whose birth is Eid, and what an Eid it is! And upon his noble family and great companions.

Urdu Translation: Starting with the name of Allah, who is the Most Beneficent and Most Merciful. All praise is for Allah Almighty who made Eid beloved to us and made it a bringer of every distant thing near. He commanded supplication on the auspicious day, promised acceptance in the Praiseworthy Speech (Quran), and may blessings and peace be upon that holy personage whose face is Eid, vision is Eid, birth is Eid, and upon his honorable family and great companions.

Page 512 of 673

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द 8

सुरूरुल ईद-उस-सईद फी हिल्लिद दुआ बाद सलातिल ईद, 1339 हिजरी (नमाज़-ए-ईद के बाद हाथ उठाकर दुआ माँगने का सबूत)

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम

मसला नंबर 1413: इस मसले में दीन के उलेमा क्या फ़रमाते हैं कि मौलवी अब्दुल हई साहब लखनवी ने अपने फ़तावा की दूसरी जिल्द में यह बात लिखी है कि ईदैन की दो रकात नमाज़ के बाद या ईदैन के खुतबे के बाद दुआ माँगना हुज़ूर सरवर-ए-आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम, सहाबा और ताबिईन रिज़वानुल्लाहि तआला अलैहिम अजमईन से किसी तरह साबित नहीं है। अब वहाबियों ने इस पर बड़ा शोर मचाया है, उक्त दुआ को नाजायज़ कहते हैं और मुसलमानों को इससे रोकते हैं और उक्त तहरीर से दलील लाते हैं कि मौलवी अब्दुल हई साहब फ़तवा दे गए हैं। उनकी पाबंदियों ने यहाँ तक असर डाला कि लोगों ने पाँचों वक़्त के फ़राज़ के बाद भी दुआ छोड़ दी। इस बारे में हक़ क्या है? बयान फ़रमाएं सवाब पायेंगे।

अल-जवाब:

[सारणी सामग्री] अरबी पाठ: अल्लाह के नाम से शुरू जो बहुत मेहरबान और निहायत रहम करने वाला है। तमाम तारीफ़ अल्लाह के लिए है जिसने हमारे लिए ईद को महबूब बनाया और उसे हर दूर की चीज़ को क़रीब करने वाला बनाया, मुबारक दिन में दुआ का हुक्म दिया और कलाम-ए-हमीद (क़ुरआन) में क़बूलियत का वादा फ़रमाया। और दरूद-ओ-सलाम हो उस ज़ात-ए-अकदस पर जिसका चेहरा ईद है, दीदार ईद है, विलादत (पैदाइश) ईद है और क्या ही ईद है! और आपकी मोहतरम आल और अज़ीम सहाबा पर।

उर्दू अनुवाद: अल्लाह के नाम से शुरू जो रहमान और रहीम है। सब तारीफ़ अल्लाह तआला के लिए जिसने हमारे लिए ईद को महबूब बनाया और इसे हर बईद (दूर) को क़रीब करने वाला बनाया, यौम-ए-सईद (मुबारक दिन) में दुआ का हुक्म दिया, कलाम-ए-हमीद में क़बूलियत का वादा फ़रमाया, और सलात-ओ-सलाम हो उस ज़ात-ए-अकदस पर जिसका चेहरा ईद, दीदार ईद, मीलाद ईद, आपकी आल-ए-मोहतरम और सहाबा-ए-इज़ाम पर।

पेज 512 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

سرور العید السعید فی حل الدعاء بعد صلوۃ العید ۱۳۳۹ھ (نماز عید کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعاء مانگنے کا ثبوت)

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم

مسئلہ نمبر ۱۴۱۳: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ مولوی عبدالحئی صاحب لکھنوی نے اپنے فتاوٰی کی جلد ثانی میں یہ امر تحریر فرمایا کہ بعد دوگانہ عیدین یا بعد خطبہ عیدین دُعا مانگنا حضور سرورِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و صحابہ و تابعین رضوان اللہ تعالٰی علیہم اجمعین سے کسی طرح ثابت نہیں ہے اب وہابیہ نے اس پر بڑا غل شور کیا ہے دعائے مذکور کو ناجائز کہتے اور مسلمانوں کو اس سے منع کرتے اور تحریر مذکور سے سند لاتے ہیں کہ مولوی عبدالحئی صاحب فتوٰی دے گئے ہیں ان کی ممانعتوں نے یہاں تک اثر ڈالا کہ لوگوں نے بعد فرائض پنجگانہ بھی دعا چھوڑ دی اس بارے میں حق کیا ہے؟ بینوا توجروا۔

الجواب:

بسم اللہ الرحمٰن الرحیم ہ الحمدللہ الذی حببنا العید وجعلہ مقر بالکل بعید و امرنا بالدعاء فی الیوم السعید ووعدنا بالاجابۃ فی الکلام الحمید والصلوۃ والسلام علی من وجھہ عید ولقاؤہ عید ومولدہ عید و ای عید وعلی الہ الکرام و صحبہ

اللہ کے نام سے شروع جو رحمن و رحیم ہے سب تعریف اللہ تعالٰی کے لئے جس نے ہمارے لئے عید کو محبوب بنایا اور اسے ہر بعید کو قریب کرنیوالا بنایا، یوم سعید میں دعا کا حکم دیا، کلام

حمید میں قبولیت کا وعدہ فرمایا، اور صلوۃ وسلام ہو اس ذاتِ اقدس پر جس کا چہرہ عید، دیدار عید، میلاد عید، آپ کی آلِ محترم اور صحابہ عظام

Fatawa Razawiyya Volume Eight

[Arabic Prayer]: Al-Izam ma da'allah fil eid abdun sa'eedun wa ta'anaq al-nooru wal surooru ghadata al-eid wa ashhadu alla ilaha illallah wahdahu la sharika lahu wa anna Muhammadan abduhu wa rasuluhu sallallahu ta'ala alaihi wa ala alihi wa sahbihi min yaumin abadan ila yaumi yu'eedu ameen ameen ya azizu ya majeed. 5 [Urdu Translation of Prayer]: ...as long as any fortunate servant supplicates to Allah on the occasion of Eid, and as long as light and joy are found together on the morning of Eid, I bear witness that there is no god but Allah, He is alone, has no partner, and Hazrat Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) is His chosen servant and Messenger. May peace and blessings be upon his person, his family, and his companions from the first day until the last day. O Mighty, O Glorious! Accept the prayer, accept the prayer. (T)

Allahumma hidayat al-haqqi wal sawab (O Allah, grant guidance of truth and correctness - T). The supplication after the Eid prayers is established from the noble figures, great followers (Tabi'in), and eminent jurists (Mujtahideen), may Allah be pleased with them.

[Arabic Section]: The poor servant Abdul Mustafa Ahmad Raza Al-Muhammadi Al-Sunni Al-Hanafi Al-Qadri Al-Barkati, may Allah forgive him and fulfill his hopes, said: The master Abdul Rahman Al-Siraj Al-Makki, the Mufti of the city of Allah the Sacred, informed us at his house near Bab al-Safa on the twenty-second of Dhu al-Hijjah in the year twelve hundred and ninety-five for all his narrations of Hadith, Fiqh, and others, from the proof of the age Jamal bin Abdullah bin Umar al-Makki, from the great Sheikh Abid al-Sindi, from his uncle Muhammad Hussain al-Ansari. I was granted permission for it by Sheikh Abdul Khaliq bin Ali al-Mizjaji by recitation upon Sheikh Muhammad bin Alauddin al-Mizjaji, from Ahmad al-Nakhli, from Muhammad al-Bahili, from Salim al-Sanuri, from al-Najm al-Ghaiti, from al-Hafiz Zakariyya al-Ansari, from al-Hafiz Ibn Hajar al-Asqalani, he from Abu Abdullah al-Jurayri, he from Qawamuddin al-Atqani, he from...

[Urdu Section]: The poor servant Abdul Mustafa Ahmad Raza Muhammadi Sunni Hanafi Qadri Barkati Barelwi (may Allah forgive him and fulfill his hopes) says: Sheikh Abdur Rahman al-Siraj al-Makki, Mufti of the Sacred City of Allah, gave us permission for all his narrations, whether they were in the form of Hadith or Fiqh or otherwise, in his house near Bab al-Safa on 22 Dhu al-Hijjah 1295 AH. He was given permission for those narrations by the proof of the age Jamal bin Abdullah bin Umar al-Makki. He

was given them by the most exalted Sheikh Abid Sindi, who was given them by his uncle Muhammad Hussain Ansari. He said: Sheikh Abdul Khaliq bin Mizjaji gave me permission for them; he from Sheikh Muhammad bin Alauddin Mizjaji by way of recitation; he from Ahmad Nakhli; he from Muhammad Bahili; he from Salim Sanuri; he from Najm Ghaiti; he from Hafiz Zakariyya Ansari; he from Hafiz Ibn Hajar Asqalani; he from Abu Abdullah Jurayri; he from Qawamuddin Atqani; he from Burhan Ahmad bin...

फ़तावा रज़विया आठवीं जिल्द (खंड)

[अरबी दुआ]: अल-इज़ाम मा दा'अल्लाह फिल ईद अब्दु सईदुन व ता'आनक अल-नूरू वल सुरूरु ग़दात अल-ईद व अश्हदु अल्ला इलाहा इल्लल्लाह वहदहु ला शरीका लहू व अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहु सल्लल्लाहु तआला अलैहि व अला आलिही व सहबिही मिन यौमिन अबदन इला यौमि यु'ईदु आमीन आमीन या अज़ीज़ु या मजीद। 5 [दुआ का उर्दू अनुवाद]: ...जब तक कोई खुशनसीब बंदा ईद के मौके पर अल्लाह से दुआ करने वाला है, और जब तक ईद की सुबह नूर और खुशी एक साथ पाए जाएं मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (ईश्वर) नहीं है, वह अकेला है, उसका कोई साथी नहीं है, और हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु तआला अलैहि व सल्लम) अल्लाह के चुनिंदा बंदे और रसूल हैं। आपकी ज़ात, आपके परिवार और आपके साथियों पर पहले दिन से लेकर आखिरी दिन तक दुरूद और सलाम हो। ऐ सर्वशक्तिमान, ऐ महिमामय! दुआ स्वीकार फरमा, दुआ स्वीकार फरमा। (त)

अल्लाहुम्मा हिदायत अल-हक़्क़ि वल सवाब (ऐ अल्लाह, सच्चाई और सही राह की हिदायत अता फरमा - त)। ईद की नमाज़ के बाद दुआ बुज़ुर्गों, महान ताबईन और प्रतिष्ठित मुजतहिदीन (धर्मशास्त्रियों) से प्रमाणित है, अल्लाह उन सब से राज़ी हो।

[अरबी खंड]: फ़क़ीर अब्दुल मुस्तफ़ा अहमद रज़ा अल-मुहम्मदी अल-सुन्नी अल-हनफ़ी अल-कादरी अल-बरकाती (अल्लाह उसे क्षमा करे और उसकी आशाएं पूरी करे) ने कहा: हमें मुल्ला अब्दुर रहमान अल-सिराज अल-मक्की, अल्लाह के मुक़द्दस शहर के मुफ़्ती ने, बाब अल-सफ़ा के पास अपने घर पर २२ ज़ुल-हिज्जा १२९५ हिजरी को अपनी हदीस, फ़िक़्ह और अन्य सभी रिवायतों (वर्णनों) की इजाज़त दी, ज़माने की हुज्जत जमाल बिन अब्दुल्ला बिन उमर अल-मक्की से, उन्होंने अफ़ज़ल शेख आबिद अल-सिंदी से, उन्होंने अपने चाचा मुहम्मद हुसैन अल-अंसारी से। मुझे इसकी इजाज़त शेख अब्दुल खालिक बिन अली अल-मिज़जाजी ने शेख मुहम्मद बिन अलाउद्दीन अल-मिज़जाजी पर तिलावत के ज़रिये दी, उन्होंने अहमद अल-नखली से, उन्होंने मुहम्मद अल-बाहीली से, उन्होंने सालिम अल-सनूरी से, उन्होंने अल-नज्म अल-ग़ैती से, उन्होंने हाफ़िज़ ज़करिया अल-अंसारी से, उन्होंने हाफ़िज़ इब्न हजर अल-अस्क़लानी से, उन्होंने अबू अब्दुल्ला अल-जुरैरी से, उन्होंने क़वामुद्दीन अल-अतक़ानी से, उन्होंने...

[उर्दू खंड]: फ़क़ीर अब्दुल मुस्तफ़ा अहमद रज़ा मुहम्मदी सुन्नी हनफ़ी कादरी बरकाती बरेलवी (अल्लाह तआला उसे बख़्श दे और उसकी उम्मीद पूरी करे) कहता है कि हमें शेख अब्दुर रहमान अल-सिराज मक्की, मुफ़्ती बलद अल्लाह अल-हराम ने बाब-ए-सफ़ा के पास अपने घर २२ ज़ुल-हिज्जा १२९५ हिजरी को अपनी तमाम मरवियात (रिवायतों) की इजाज़त दी, चाहे वे हदीस की सूरत में हों या फ़िक़्ह की सूरत में या उसके अलावा हों। उन्हें उन रिवायतों की इजाज़त हुज्जत-ए-ज़माना जमाल बिन अब्दुल्ला बिन उमर मक्की ने दी, उन्हें शेख अजल आबिद सिंदी ने, उन्हें उनके चाचा मुहम्मद हुसैन अंसारी ने दी, उन्होंने कहा मुझे उनकी इजाज़त शेख अब्दुल खालिक बिन मिज़जाजी ने दी, उन्हें शेख मुहम्मद बिन अलाउद्दीन मिज़जाजी से किरात (पढ़ने) के तौर पर मिली, उन्हें अहमद नखली ने, उन्हें मुहम्मद बाहिली ने, उन्हें सालिम सनूरी ने, उन्हें नज्म ग़ैती ने, उन्हें हाफ़िज़ ज़करिया अंसारी ने, उन्हें हाफ़िज़ इब्न हजर अस्क़लानी ने, उन्हें अबू अब्दुल्ला जुरैरी ने, उन्हें क़वामुद्दीन अतक़ानी ने, उन्हें बुरहान अहमद बिन...

पृष्ठ ५१३ का ६७३

العظام مادعا اللہ فی العید عبد سعید و تعانق النور والسرور غداۃ العید واشھد ان لا الہ الا اللہ وحدہ لا شریك لہ وان محمد عبدہ ورسولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلی آلہ وصحبہ من یوم ابداً الی یوم یعید آمین آمین یا عزیز یا مجید۔ ۵ پر بھی جب تک کوئی عبدِ سعید، عید کے موقع پر دعا کرنے والا ہے اور جب تک عید کی صبح کو نور و سرور باہم پائے جائیں، میں گواہی دیتا ہوں کہ اللہ کے سوا کوئی معبود نہیں وہ وحدہ لا شریک ہے اور حضرت محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اللہ کے برگزیدہ بندے اور رسول ہیں آپ کی ذات، آل اور صحابہ پر درود و سلام ابتدائی دن سے لے کر آخری دن تک ہو۔ اے غالب اے صاحبِ مجد! دعا قبول فرما دعا قبول فرما۔ (ت)

اللّٰھم ہدایۃ الحق والصواب (اے اللہ حق اور صواب کی ہدایت عطا فرمادے۔ت) نماز عیدین کے بعد دُعا حضراتِ عالیہ تابعین عظام و مجتہدین اعلام رضی اللہ تعالٰی عنہم سے ثابت،

قال الفقیر عبدالمصطفٰی احمد رضا المحمدی السنی الحنفی القادری البرکاتی غفراللہ لہ وحقق املہ، انبانا المولٰی عبدالرحمن السراج المکی مفتی بلد اللہ الحرام ببیتہ عندباب الصفا لثمان بقین من ذی الحجۃ سنۃ خمس وتسعین بعد الالف والمائتین فی سائر مروایاتہ الحدیثیۃ والفقہیۃ وغیر ذلک عن حجۃ زمانۃ جمال بن عبداللہ بن عمر المکی عن الشیخ الاجل عابد السندی عن عمہ محمد حسین الانصاری اجازنی بہ الشیخ عبدالخالق بن علی المزجاجی قراءۃ علی الشیخ محمد بن علاء الدین المزجاجی عن احمد النخلی عن محمد الباہلی عن سالم السنوری عن النجم الغیطی عن الحافظ زکریا الانصاری عن الحافظ ابن حجر العسقلانی انا بہ ابو عبد اللہ الجریری انا قوام الدین الاتقانی انا

فقیر عبدالمصطفٰی احمد رضا محمدی سنی حنفی قادری برکاتی بریلوی (اللہ تعالیٰ اس کو بخش دے اور اس کی امید بر لائے) کہتا ہے کہ ہمیں شیخ عبدالرحمن السراج مکی مفتی بلد اللہ الحرام نے باب صفا کے پاس اپنے گھر ۲۲ ذوالحجہ ۱۲۹۵ھ کو اپنی تمام مرویات کی اجازت دی خواہ وہ حدیث کی صورت میں تھیں یا فقہ کی صورت میں یا اس کے علاوہ تھیں انھیں مرویات کی اجازت حجتِ زمانہ جمال بن عبداللہ بن عمر مکی نے دی انہیں شیخ اجل عابد سندی نے انہیں ان کے چچا محمد حسین انصاری نے دی، اس نے کہا مجھے ان کی اجازت شیخ عبدالخالق بن مزجاجی نے، انھیں شیخ محمد بن علاء الدین مزجاجی سے قراءۃ کے طور، انہیں احمد نخلی نے انہیں محمد باہلی نے انھیں سالم سنوری نے انھیں نجم غیطی نے انھیں حافظ زکریا انصاری نے انھیں حافظ ابن حجر عسقلانی نے انہیں ابو عبداللہ جریری نے انہیں قوام الدین اتقانی نے انہیں برہان احمد بن

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Left Column - Arabic]: 15. Al-Burhan Ahmad bin Sa'd bin Muhammad al-Bukhari and al-Hakim al-Siftaqi (16) both said: Hafiz al-Din Muhammad bin Muhammad bin Nasr al-Bukhari, who is Hafiz al-Din al-Kabir, informed us. (17) We were informed by Imam Muhammad bin Abdul Sattar al-Kardari, (18) who was informed by Umar bin Abdul Karim al-Warsiki, (19) who was informed by Abdul Rahman bin Muhammad al-Kirmani, (20) who was informed by Abu Bakr Muhammad bin al-Husayn bin Muhammad, who is the Imam, the Pride of Judges of Arshaband. (21) We were informed by Abdullah al-Zauzani, who was informed by (22) Abu Zaid al-Dabusi, who was informed by Abu Ja'far al-Ustrushani. (H) And I was informed through an elevated chain (Note) by four degrees, by my Sheikh, my blessing, my protector, my benefactor, my master, my lord, my treasure for today and tomorrow, our master, the leader of mankind, the brave, the great gnostic, the most perfect scholar, Sayyid Aal-e-Rasool al-Ahmadi al-Marahrawi (May Allah be pleased with him and may He be pleased with him), and may He make Paradise his final destination and resting place, five days into Jumada al-Ula in the year ninety-four [1294 AH] at his purified residence in Marahra al-Munawwara, granting general permission to narrate from him and his teachers.

[Right Column - Urdu Translation/Commentary]: Sa'd bin Muhammad al-Bukhari and Husam al-Siftaqi told him: Hafiz al-Din Muhammad bin Muhammad bin Nasr al-Bukhari... (16) this is the same Hafiz al-Din al-Kabir. To them, (17) Muhammad bin Abdul Sattar al-Kardari, to him (18) Umar bin Abdul Karim al-Warsiki, to him Abdul Rahman bin Muhammad al-Kirmani. (19) To him (20) Abu Bakr Muhammad bin al-Husayn bin Muhammad, who was the Pride of Judges of Arshaband. To him (21) Abdullah al-Zauzani, to him (22) Abu Zaid al-Dabusi, to him (23) Abu Ja'far al-Ustrushani, gave this "second chain" which is four degrees higher. My Sheikh, my blessing, my heart, my master, my treasure for today and tomorrow, the reliable master, the great leader, the most eminent gnostic, the root of the world, the most complete, Sayyid Aal-e-Rasool al-Ahmadi al-Marahrawi (May Allah the Almighty be pleased with him and may He be pleased with him—may Allah make his abode Jannat al-Firdous) granted permission for all narrations at his threshold in Marahra Munawwara on 5th Jumada al-Ula 1294 AH. These were given to him by his teacher Sheikh Abdul Aziz Muhaddith Dehlawi, who received them from his noble father, who received them from Sheikh Tajuddin al-Qal'i, the Hanafi Mufti, who received them from Sheikh Hasan al-Ujmi, who received them from Sheikh Khairuddin al-Ramli...

[Bottom Section]: Note: Observe the elegance of this magnificent chain of narration and the greatness of its rank. All of its narrators, from our master the Sheikh up to the founder of the school, Imam al-A'zam, are among the leading figures and famous scholars of the Hanafi school, and most of them are authors of books within the school. 12 Minhu (M)

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[बायाँ कॉलम - अरबी]: 15. अल-बुरहान अहमद बिन साद बिन मुहम्मद अल-बुखारी और अल-हाकिम अल-सिफ्ताकी (16) दोनों ने कहा: हाफिज अल-दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन नस्र अल-बुखारी ने हमें सूचित किया, जो हाफिज अल-दीन अल-कबीर हैं। (17) हमें इमाम मुहम्मद बिन अब्दुल सत्तार अल-करदरी ने सूचित किया, (18) जिन्हें उमर बिन अब्दुल करीम अल-वरसीकी ने सूचित किया, (19) जिन्हें अब्दुल रहमान बिन मुहम्मद अल-किरमानी ने सूचित किया, (20) जिन्हें अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-हुसैन बिन मुहम्मद ने सूचित किया, जो इमाम और अर्शबंद के न्यायाधीशों के गौरव हैं। (21) हमें अब्दुल्ला अल-ज़ौज़ानी ने सूचित किया, जिन्हें (22) अबू ज़ैद अल-दबूसु ने सूचित किया, जिन्हें अबू जाफर अल-उस्तरुशनी ने सूचित किया। (ह) और मुझे एक उच्च सनद के माध्यम से सूचित किया गया (नोट) जो चार पायदान ऊँची है, मेरे शेख, मेरी बरकत, मेरे रक्षक, मेरे उपकारी, मेरे आका, मेरे स्वामी, आज और कल के लिए मेरे खजाने, हमारे आका, मानव जाति के नेता, बहादुर, महान आरिफ, पूर्ण विद्वान, सैयद आल-ए-रसूल अल-अहमदी अल-मारहरवी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो और वे उससे प्रसन्न हों), और अल्लाह जन्नत को उनका ठिकाना और विश्राम स्थल बनाए, जब जुमादा अल-उला वर्ष चौरानवे [1294 हिजरी] के पांच दिन बीत चुके थे, मारहरा अल-मुनव्वरा में उनके पवित्र निवास पर, उनसे और उनके उस्तादों से रिवायत करने की आम इजाज़त देते हुए।

[दायाँ कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या]: साद बिन मुहम्मद अल-बुखारी और हुसाम अल-सिफ्ताकी ने उन्हें बताया: हाफिज अल-दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन नस्र अल-बुखारी... (16) यही हाफिज अल-दीन अल-कबीर हैं। उन्हें (17) मुहम्मद बिन अब्दुल सत्तार अल-करदरी ने, उन्हें (18) उमर बिन अब्दुल करीम अल-वरसीकी ने, उन्हें अब्दुल रहमान बिन मुहम्मद अल-किरमानी ने। (19) उन्हें (20) अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-हुसैन बिन मुहम्मद ने, जो अर्शबंद के न्यायाधीशों के गौरव थे। उन्हें (21) अब्दुल्ला अल-ज़ौज़ानी ने, उन्हें (22) अबू ज़ैद अल-दबूसु ने, उन्हें (23) अबू जाफर अल-उस्तरुशनी ने यह "दूसरी सनद" दी जो चार पायदान ऊँची है। मेरे शेख, मेरी बरकत, मेरा दिल, मेरे आका, आज और कल के लिए मेरे खजाने, भरोसेमंद आका, महान इमाम, सबसे प्रमुख आरिफ, दुनिया की जड़, सबसे पूर्ण, सैयद आल-ए-रसूल अल-अहमदी अल-मारहरवी (अल्लाह तआला उनसे प्रसन्न हो और वे उससे प्रसन्न हों—अल्लाह उनका ठिकाना जन्नत अल-फिरदौस बनाए) ने 5 जुमादा अल-उला 1294 हिजरी को मारहरा मुनव्वरा में अपने आस्ताने पर सभी रिवायतों की इजाज़त दी। ये उन्हें उनके उस्ताद शेख अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी ने दी थीं, जिन्होंने अपने सम्मानित पिता से प्राप्त की थीं,

जिन्होंने हनफी मुफ्ती शेख ताजुद्दीन अल-कलई से, उन्होंने शेख हसन अल-उजमी से, उन्होंने शेख खैरूद्दीन अल-रमली से...

[निचला हिस्सा]: नोट: इस महान सनद की सुंदरता और इसके पद की महानता को देखें। इसके सभी रावी, हमारे आका शेख से लेकर मज़हब के संस्थापक इमाम-ए-आज़म तक, हनफी मज़हब की प्रमुख हस्तियों और प्रसिद्ध विद्वानों में से हैं, और उनमें से अधिकांश मज़हब में किताबों के लेखक हैं। 12 मिन्हु (म)

पृष्ठ 514 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[بایاں کالم - عربی]: ۱۵البرهان احمد بن سعد بن محمد البخاری و الحاکم السفتاقی ۱۶قالا انبأنا حافظ الدین محمد بن محمد بن نصر البخاری هو حافظ الدین الکبیر ۱۷انبأنا الامام محمد بن عبدالستار الکردری ۱۸انبأنا عمر بن عبد الکریم الورسیگی ۱۹اناعبد الرحمن بن محمد الکرمانی ۲۰انا ابوبکر محمد بن الحسین من محمد هوالامام مخر القضاة الارشابندی ۲۱انا عبدالله الزوزنی انا ۲۲ابو زید الدبوسی انا ابو جعفر الاستروشنی ح وانبأنا عالیا عه باربع درج شیخي وبرکتی وولی نعمتی ومولائی وسیدی و ذخری وسندی لیومی وغدی سیدنا الانام الهمام العارف الاجل العالم الاکمل السید ال الرسول الاحمدی المار هروی رضی الله تعالی عنہ وارضاہ وجعل الفردوس متقلبہ ومثواہ لخمس خلت من جمادی الاولی سنة اربع وتسعین بداره المطهره بمارهرة المنورة في سائر یجوز لہ روایتہ عن استاذہ۔

[دایاں کالم - اردو]: سعد بن محمد البخاری اور حسام السفتاقی نے انہیں حافظ الدین محمد بن محمد بن نصر بخاری نے ۱۶یہی حافظ الدین الکبیر ہیں انہیں ۱۷محمد بن عبدالستار الکردری نے انہیں ۱۸عمر بن عبد الکریم الورسیگی نے انہیں عبدالرحمن بن محمد الکرمانی نے ۱۹ انہیں ۲۰ابوبکر محمد بن الحسین بن محمد نے جو فخر القضاة الاشار بندی نے انہیں ۲۱عبدالله الزورتی نے انہیں ۲۲ابوزید الدبوسی نے انہیں ۲۳ابو جعفر الاستروشی نے "دوسری سند" جو چار درجے عالی ہے میرے شیخ، میری برکت، میرے دل، سیدی ذخری آج و کل کے لئے میر اعتماد سید نا امام ہمام عارف اجل اصل العالم الاکمل السید آل الرسول الاحمدی المار ہروی رضی اللہ تعالیٰ عنہ و ارضاہ اللہ تعالیٰ (اللہ ان کا ٹھکانہ جنت الفردوس میں بنائے) نے مارہرہ منورہ میں اپنے آستانے پر ۵جمادی الاولیٰ ۱۲۹۴ھ کو تمام روایات کی اجازت دی جو انہیں ان کے استاد شیخ عبدالعزیز محدث

دہلوی انہیں اپنے والد گرامی سے انہیں شیخ تاج الدین القلعی مفتی حنفیہ نے انہیں شیخ حسن عجمی نے انہیں شیخ خیر الدین رملی نے انہیں۔

[نیچے والا حصہ]: عہ: انظر الی لطافة هذا السند الجليل وجلالة شأنہ | اس سند جلیل کی لطافت اور شان جلالت میں غور کرو کہ اس کے فان رجالہ کلهم من سیدنا الشیخ الی صاحب المذہب | رجال سیدنا شیخ سے صاحب مذہب امام اعظم تک سارے کے الامام الاعظم جمیعاً من اجلة اعلام الحنفية ومشاهير | سارے معروف و مشہور حنفی ہیں اور ان میں سے اکثر اصحاب کی وا کثرهم اصحاب تالیفات فی المذہب ۱۲منہ (م) | مذہب میں تالیفات موجود ہیں ۱۲منہ (م)

Fatawa Razawiyya Volume 8

(Left Column) Abdul Aziz the Muhaddith of Delhi, on the authority of his father, on the authority of Sheikh Zainuddin al-Qal'i the Hanafi Mufti, on the authority of Sheikh Hassan al-Ajami, on the authority of Sheikh Khairuddin al-Ramli, on the authority of Sheikh Muhammad bin Sirajuddin al-Khanuni, on the authority of Ahmad bin al-Shibli, on the authority of Ibrahim al-Kurki, the author of 'Kitab al-Fayd', on the authority of Amin al-Din Yahya bin Muhammad al-Aqsara'i, on the authority of Sheikh Muhammad bin Muhammad al-Bukhari al-Hanafi, known as Sayyidi Muhammad Parsa, the author of 'Fasl al-Khitab', on the authority of Sheikh Hafizuddin Muhammad bin Muhammad bin Ali al-Bukhari al-Tahiri, on the authority of Imam Sadr al-Shari'ah, the commentator of 'al-Wiqayah', on the authority of his grandfather Taj al-Shari'ah, on the authority of his father Sadr al-Shari'ah, on the authority of his father Jamal al-Din al-Mahbubi, on the authority of Muhammad bin Abi Bakr al-Bukhari, known as Imam Zadah, on the authority of Shams al-A'immah al-Zartaji and Shams al-A'immah al-Halwani, both on the authority of the great Imam Abu Ali al-Nasafi, the Imam of Halwan. They said, "On the authority of Abu Ali," and thus it continues with "on authority of" until the end of the chain. As for al-Ustrushani, he said: "I am Abu Ali al-Husayn bin Khidr al-Nasafi, I am Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl al-Bukhari who is the Imam famous as al-Fadl, I am Abu Muhammad bin Abdullah bin Muhammad bin Yaqub al-Harithi, i.e., the Master of the 'Muni' chain, I am Abdullah Muhammad bin Abi Hafs al-Kabir, I from my father, I from Muhammad bin al-Hasan al-Shaybani, Abu Hanifa informed us, on the authority of Hammad, on the authority of Ibrahim, who said: it used to be..."

(Right Column) Sheikh Muhammad bin Sirajuddin al-Khanuni told Ahmad bin Shibli, who told Ibrahim al-Kurki, author of 'Kitab al-Fayd', who told Amin al-Din Yahya bin Muhammad Qasrani, who told Sheikh Muhammad bin Muhammad al-Bukhari al-Hanafi, known as Sayyidi Muhammad Parsa, author of 'Fasl al-Khitab', who told Sheikh Hafizuddin Muhammad bin Muhammad bin Ali Bukhari Tahiri, who told Imam Sadr al-Shari'ah, the commentator of 'al-Wiqayah', who told his grandfather Taj al-Shari'ah from his father Sadr al-Shari'ah from his father Jamal al-Din Mahbubi, who told Muhammad bin Abi Bakr Bukhari, known as Imam Zadah, who told Shams al-A'immah al-Zarjari, who told Shams al-A'immah Halwani, and both of them narrated from their great Imam Abu Ali Nasafi: 'On the authority of Abu Ali'. In this manner, they narrated the entire chain with 'on the authority of'. Ustrushani said: "Abu Ali al-Husayn bin Khidr al-Nasafi informed us, then Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl

Bukhari, who is famous as Imam Fadl, then Abu Muhammad Abdullah bin Muhammad Yaqub al-Harithi, i.e., the Master of the 'Muni' chain, then Abdullah Muhammad bin Abi Hafs al-Kabir from his father, then Muhammad bin Hasan al-Shaybani, then Imam Abu Hanifa, then Hammad, then Ibrahim narrated that the Eid prayers were performed before the sermon, and after the prayer, the Imam would stand on his mount and supplicate."

फ़तावा रज़विया खंड 8

(बायां कॉलम) अब्दुल अज़ीज़ अल-मुहद्दिस अद-देहलावी, अपने पिता से, वह शेख़ ज़ैनुद्दीन अल-क़लई हनफ़ी मुफ़्ती से, वह शेख़ हसन अल-अजमी से, वह शेख़ ख़ैरुद्दीन अर-रमली से, वह शेख़ मुहम्मद बिन सिराजुद्दीन अल-खानूनी से, वह अहमद बिन अल-शिब्ली से, वह इब्राहिम अल-कुरकी से जो किताब अल-फ़ैज़ के लेखक हैं, वह अमीन अल-दीन यह्या बिन मुहम्मद अल-अक़सराइ से, वह शेख़ मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-बुखारी अल-हनफ़ी यानी सय्यदी मुहम्मद पारसा से जो फ़स्ल अल-ख़िताब के लेखक हैं, वह शेख़ हाफ़िज़ुद्दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन अली बुखारी ताहिरी से, वह इमाम सद्र अल-शरिया यानी अल-विक़ाया के टीकाकार से, वह अपने दादा ताज अल-शरिया से, वह अपने पिता सद्र अल-शरिया से, वह अपने पिता जमाल अल-दीन अल-महबूबी से, वह मुहम्मद बिन अबी बक्र अल-बुखारी उर्फ़ इमाम ज़ादा से, वह शम्स अल-अइम्माह अल-ज़रतजी और शम्स अल-अइम्माह हलवानी से, इन दोनों ने महान इमाम अबू अली अल-नस्फ़ी इमाम हलवानी से रिवायत की। उन्होंने कहा: "अबू अली से," और इस तरह सनद के अंत तक रिवायत चली। जहाँ तक उस्त्रुशनी का संबंध है, उन्होंने कहा: "मैं अबू अली अल-हुसैन बिन खिद्र अन-नस्फ़ी हूँ, मैं अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़्ल अल-बुखारी हूँ जो इमाम फ़ज़्ल के रूप में प्रसिद्ध हैं, मैं अबू मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन यअक़ूब अल-हारिसी यानी उस्ताद-ए-सनद मुनी हूँ, मैं अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अबी हफ़्स अल-कबीर हूँ, मैं अपने पिता से, मैं मुहम्मद बिन अल-हसन अल-शैबानी से, हमें अबू हनीफ़ा ने बताया, हम्माद से, इब्राहिम से, उन्होंने कहा कि..."

(दायां कॉलम) शेख़ मुहम्मद बिन सिराजुद्दीन अल-खानूनी ने उन्हें अहमद बिन शिब्ली ने, उन्हें इब्राहिम अल-कुरकी जो किताब अल-फ़ैज़ के लेखक हैं उन्होंने, उन्हें अमीन अल-दीन यह्या बिन मुहम्मद क़सरानी ने, उन्हें शेख़ मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-बुखारी हनफ़ी यानी सय्यदी मुहम्मद पारसा जो फ़स्ल अल-ख़िताब के लेखक हैं उन्होंने, उन्हें शेख़ हाफ़िज़ुद्दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन अली बुखारी ताहिरी ने, उन्हें इमाम सद्र अल-शरिया यानी शारेह अल-विक़ाया ने, उन्हें उनके दादा ताज अल-शरिया ने अपने पिता सद्र अल-शरिया से, उन्हें उनके पिता जमाल अल-दीन महबूबी ने, उन्हें मुहम्मद बिन अबी बक्र बुखारी जो इमाम ज़ादा के नाम से प्रसिद्ध हैं उन्होंने, उन्हें शम्स अल-अइम्माह अल-ज़रजरी ने, उन्हें शम्स अल-अइम्माह हलवानी ने और इन दोनों के महान इमाम अबू अली नस्फ़ी से इन दोनों ने कहा 'अन अबी अली', इसी तरह उन्होंने पूरी सनद को 'अन' (से) के साथ बयान किया। उस्त्रुशनी ने कहा कि हमें अबू अली अल-हुसैन बिन खिद्र अन-नस्फ़ी ने, उन्हें अबू बक्र

मुहम्मद बिन अल-फ़ज़्ल बुखारी और ये इमाम फ़ज़्ल के साथ प्रसिद्ध हैं उन्होंने, उन्हें अबू मुहम्मद अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद यअक़ूब अल-हारिसी यानी अल-उस्ताद अस-सनद मुनी ने, उन्हें अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अबी हफ़्स अल-कबीर ने उनके पिता से, उन्हें मुहम्मद बिन हसन अल-शैबानी ने, उन्हें इमाम अबू हनीफ़ा ने, उन्हें हम्माद ने, उन्हें इब्राहिम ने बयान किया कि ईदैन की नमाज़ ख़ुत्बे से पहले अदा होती थी, फिर नमाज़ के बाद इमाम सवारी पर खड़े होकर दुआ करता था।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

(بایاں کالم) عبد العزیز المحدث الدهلوی عن ابیه عن الشیخ الدین القلعی مفتی الحنفیہ عن الشیخ حسن العجی عن الشیخ خیر الدین الرملی عن الشیخ محمد بن سراج الدین الخانونی عن احمد بن الشبلي عن ابراهیم الکرکی یعنی صاحب کتاب الفیض عن امین الدین یحیی بن محمد الاقصرائی عن الشیخ محمد بن محمد البخاری الحنفی یعنی سیدی محمد پارسا صاحب فصل الخطاب عن الشیخ حافظ الدین محمد بن محمد بن علی البخاری الطاہری عن الامام صدر الشریعة یعنی شارح الوقایه عن جده تاج الشریعة عن والده صدر الشریعہ عن والده جمال الدین المحبوبی عن محمد بن ابی بکر البخاری عرف بامام زاده عن شمس الائمة الزرتجی و شمس ائمة الحلوانی کلاهما عن الامام الاجل ابی علی النسفی امام حلوانی فقالا عن ابی علی وذلك عنعن الی نهایة الاسناد واما لاستروشنی فقال انا ابو علی الحسین بن خضر النسفی انا ابوبکر محمد بن الفضل البخاري هو الامام الشهیر بالفضل انا ابومحمد بن عبدالله بن محمد بن یعقوب الحارثی یعنی استاذ السند مونی انا عبد الله محمد بن ابی حفص الکبیر انا ابی انا محمد بن الحسن الشیبانی اخبرنا ابوحنیفة عن حماد عن ابراهیم قال کانت

(دایاں کالم) شیخ محمد بن سراج الدین الخانونی نے انہیں احمد بن شبلی نے انہیں ابراہیم الکرکی صاحب کتاب الفیض نے انہیں امین الدین یحییٰ بن محمد قصرانی نے انہیں شیخ محمد بن محمد البخاری الحنفی یعنی سیدی محمد پارسا صاحب فصل الخطاب نے انہیں شیخ حافظ الدین محمد بن محمد بن علی بخاری طاہری نے انہیں امام صدر الشریعہ یعنی شارح الوقایہ نے انہیں ان کے جد تاج الشریعہ نے اپنے والد صدر الشریعہ سے انہیں ان کے والد جمال الدین محبوبی نے انہیں محمد بن ابی بکر بخاری المعروف امام زاده نے انہیں شمس الائمہ الزرجری نے انہیں شمس الائمہ حلوانی نے اور ان دونوں کے امام اجل ابو علی نسفی سے ان دونوں نے کہا عن ابی علی، اسی طرح انہوں

نے تمام سند کو عن کے ساتھ بیان کیا، استرو شنی نے کہا ہمیں ابو علی الحسین بن خضر النسفی انہیں ابو بکر محمد بن الفضل بخاری اور یہ امام فضل کے ساتھ مشہور ہیں انہیں ابو محمد عبد اللہ بن محمد یعقوب الحارثی یعنی الاستاذ السند مونی انہیں عبد اللہ محمد بن ابی حفص الکبیر انہیں ان کے والد نے انہیں محمد بن حسن الشیبانی نے انہیں امام ابو حنیفہ نے انھیں حماد نے انھیں ابراہیم نے بیان کیا کہ عیدین کی نماز خطبہ سے پہلے ادا ہوتی پھر نماز کے بعد امام سواری پر کھڑے ہو کر دعا کرتا تھا۔

صفحہ 515 از 673

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Prayer on the two Eids was before the sermon, then the Imam would stand on his mount after the prayer and supplicate, and the prayer was offered without Adhan or Iqamah.

The prayer used to be without Adhan and Iqamah. (T)

— Al-Sahliyah after the prayer, then he supplicates and prays without Adhan and Iqamah[1]

That is, our master Imam Muhammad (mercy of Allah be upon him) says: I was informed by the greatest of Imams, Abu Hanifa (may Allah be pleased with him), from the most noble Imam Hammad bin Abi Sulaiman (mercy of Allah be upon him), that the Imam of Mujtahidin, Imam Ibrahim Nakh'i (mercy of Allah be upon him) said: The Eid prayers used to be held before the sermon, then the Imam would pause on his mount after the prayer and supplicate, and the prayer was without Adhan and Iqamah. This Imam Ibrahim Nakh'i (may his secret be sanctified) was himself among the prominent Tabi'in. So this method which he narrated was, at the very least, the practice of the senior Tabi'in. Thus, supplicating after the Eid prayers was the Sunnah of the Tabi'i Imams. Furthermore, it is apparent that standing on a mount or not cannot negate the Sunnah of supplication, as is not hidden. Then our Imam Mujtahid Imam Muhammad (may Allah elevate his ranks in the Abode of Eternity) narrated this Hadith in the noble "Kitab al-Athar" and established it. It is his noble habit that when a report (Athar) is contrary to his school of thought, he does not pass over it without comment. Thus, for the Hanafis of sound creed and against the Wahhabis (who hold beliefs like the triple-era people), this amount of answer to the issue is sufficient. However, this humble servant (may the Powerful Guardian forgive him), for the sake of clarifying the objective and completing the discourse, divides the discussion on this issue into two "Eids" (parts).

First Eid: Permission for this supplication from Quran and Hadith, and the error and heinousness of the claim of those who prohibit it.

Second Eid: Discussion on the evidence from the Fatwa of the Maulana of Lucknow and complete removal of the delusions of the prohibiters, and help is from Allah, the Lord of Favors. (Help is from Allah who bestows favors. -T). First Eid, and reliance is upon the grace of Allah. (First Eid, reliance is on Allah's grace alone. -T). It is clear that there is no prohibition of this supplication anywhere in the pure Shariah, and whatever the Shariah has not prohibited can never be forbidden. He who claims

prohibition is responsible for proving it, which, if Allah wills, he will never be able to fulfill. According to the rules of debate, it is enough for us to say this much. And to hear the good news of the seeker's chains of transmission, listen with attentive ears to what has dawned upon the heart of this humble servant from the Quran and Hadith.

So I say: And with Allah is success and through Him is the reaching to the heights of investigation. (Success is from Allah alone and through Him the research reaches completion. -T) Firstly, the Exalted Lord said:

[1] Kitab al-Athar by Imam Muhammad, Chapter on Eid Prayers, published by Idarat al-Qur'an wal-Ulum al-Islamiyyah Karachi, p. 41.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

ईदैन की नमाज़ खुतबे से पहले होती थी, फिर इमाम नमाज़ के बाद अपनी सवारी पर रुककर दुआ करता था, और नमाज़ अज़ान और इक़ामत के बिना होती थी।

नमाज़ अज़ान और इक़ामत के बिना होती थी। (त)

— अल-साहलिया नमाज़ के बाद, फिर वह दुआ मांगता है और अज़ान और इक़ामत के बिना नमाज़ पढ़ता है[1]

यानी हमारे आका इमाम मुहम्मद (अल्लाह उन पर रहम करे) फरमाते हैं: मुझे इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा (अल्लाह उनसे राज़ी हो) ने बताया, उन्होंने अजल इमाम हम्माद बिन अबी सुलेमान (अल्लाह उन पर रहम करे) से रिवायत किया कि इमामुल मुजतहिदीन इमाम इब्राहिम नखई (अल्लाह उन पर रहम करे) ने फरमाया: ईदैन की नमाज़ खुतबे से पहले होती थी, फिर इमाम अपनी सवारी पर रुककर नमाज़ के बाद दुआ मांगता था, और नमाज़ अज़ान और इक़ामत के बिना होती थी। यह इमाम इब्राहिम नखई (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) खुद बड़े ताबईन में से थे। तो यह तरीका जो उन्होंने रिवायत फरमाया, कम से कम बड़े ताबईन का मामूल था। तो ईदैन की नमाज़ के बाद दुआ मांगना ताबईन अइम्मा की सुन्नत हुई। और फिर यह ज़ाहिर है कि सवारी पर ठहरना या न ठहरना दुआ की सुन्नत की नफी (इनकार) नहीं कर सकता, जैसा कि छिपा नहीं है। फिर हमारे इमाम मुजतहिद इमाम मुहम्मद (अल्लाह उनके दर्जों को जन्नत में बुलंद करे) ने 'किताबुल आसार' शरीफ में इस हदीस को रिवायत फरमाकर बरक़रार रखा। और उनकी यह मुबारक आदत है कि जब कोई रिवायत उनके मज़हब के खिलाफ होती है, तो वे उस पर खामोश नहीं रहते। तो सहीह अकीदा वाले हनफ़ियों के लिए और वहाबियों (जो तीन ज़मानों के लोगों की तरह अकीदा रखते हैं) के खिलाफ, इस मसले का इतना जवाब काफी है। लेकिन यह फकीर (अल्लाह वली-ए-क़दीर उसे माफ करे), मकसद की वजाहत और कलाम की तकमील के लिए इस मसले पर बहस को दो 'ईदों' (भागों) में तक़सीम करता है।

पहली ईद: कुरान और हदीस से इस दुआ की इजाज़त और मना करने वालों के दावे की गलती और बुराई।

दूसरी ईद: मौलवी लखनवी के फतवे से दलील पर चर्चा और मना करने वालों के वहमों का मुकम्मल खात्मा, और मदद अल्लाह की तरफ से है जो नेमतें देने वाला है। (मदद अल्लाह की जो इनाम अता

करने वाला है। -त)। पहली ईद, और अल्लाह के फज़ल पर ही भरोसा है। (पहली ईद, अल्लाह ही के फज़ल पर भरोसा है। -त)। यह ज़ाहिर है कि शरीअत-ए-मुतह्हरा में इस दुआ की कहीं मनाही नहीं है, और जिस बात से शरीअत ने मना नहीं फरमाया, वह हरगिज़ मना नहीं हो सकती। जो मना करने का दावा करे, मनाही को साबित करना उसकी ज़िम्मेदारी है, जिसे इंशा अल्लाह तआला वह कभी पूरा नहीं कर सकेगा। मुनाज़रे (बहस) के नियम के अनुसार हमारे लिए इतना कहना ही काफी है। और साइल की सनदों की खुशखबरी लीजिए, तो जो कुछ कुरान और हदीस से इस फकीर के दिल पर ज़ाहिर हुआ, उसे ध्यान लगाकर सुनिए।

तो मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही तौफीक देने वाला है और उसी के ज़रिए तहकीक की बुलंदियों तक पहुँचा जाता है। (अल्लाह ही की तौफीक है और उसी से तहकीक तक रसाई होती है। -त) सबसे पहले मौला सुब्हानहू व तआला ने फरमाया:

[1] किताबुल आसार इमाम मुहम्मद के लिए, बाब सलातुल ईदैन, मतबुआ इदारतुल कुरान वल उलूम अल इस्लामिया कराची, सफा 41।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

الصلوٰۃ فی العیدین قبل الخطبۃ ثم یقیف الامام علی راحلیہ بعد الصلوٰۃ نماز اذان واقامت کے بغیر فید عو ویصلی بغیر اذان ولا اقامۃ ہوتی تھی۔ (ت)

راحلیہ بعد الصلوٰۃ فید عو ویصلی بغیر اذان ولا اقامۃ[1]

یعنی سید نا امام محمد رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ فرماتے ہیں مجھے امام اعظم الائمہ ابو حنیفہ رضی اللہ تعالٰی عنہ نے امام اجل حماد بن ابی سلیمان رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ سے خبر دی کہ امام المجتہدین امام ابراہیم نخعی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ نے فرمایا نماز عیدین خطبہ سے پہلے ہوتی تھی پھر امام اپنے راحلہ پر وقوف کر کے نماز کے بعد دعا مانگتا اور نماز بے اذان واقامت ہوتی ، یہ امام ابراہیم نخعی قدس سرہ ، خود اجلہ تابعین سے ہیں تو یہ طریقہ کہ انہوں روایت فرمایا لا اقل اکابر تابعین کا معمول تھا تو نماز عیدین کے بعد دُعا مانگنا ائمہ تابعین کی سنّت ہوا اور پھر ظاہر کہ راحلہ پر وقوف وعدم وقوف سنّت دُعا کی نفی نہیں کر سکتا کمالا یخفی، پھر ہمارے امام مجتہد امام محمد اعلیٰ اللہ درجاتہ فی دارالابد نے کتاب الآثار شریف میں اس حدیث کو روایت فرما کر مقرر رکھا اور ان کی عادت کریمہ ہے جو اثر اپنے خلاف مذہب ہوتا اُس پر تقریر نہیں فرماتے تو حنفیہ اہل عقیدہ مضمون وہابیہ اہل تثلیث قرون ، دونوں کے حق میں جواب مسئلہ اسی قدر بس ہے مگر فقیر غفرلہ الولی القدیر ایضاح مرام واتمام کلام کے لئے اس مسئلہ میں مقال کو دو عید پر منقسم کرتا ہے۔

عید اول میں قرآن وحدیث سے اس دُعا کی اجازت اور ادعائے مانعین کی غلطی وشناعت۔

عید دوم فتوائے مولوی لکھنوی سے اسناد پر کلام اور اوہام مانعین کا ازالہ تام والعون من اللہ ولی الانعام (مدد اللہ کی جو انعام عطا کرنے والا ہے ۔ت) العید الاول وعلی فضل اللہ المعول (عید اول ، اللہ ہی کے فضل پر بھروسا ہے ۔ت) ظاہر ہے کہ شرع مطہر سے اس دعا کی کہیں ممانعت نہیں اور جس امر سے شرع نے منع نہ فرمایا ہر گز ممنوع نہیں ہوسکتا، جو ادعائے منع کرے اثبات ممانعت اس کے ذمہ ہے جس سے ان شاء اللہ تعالٰی کبھی عہدہ برآ نہ ہوسکے گا بقاعدہ مناظرہ ہمیں اسی قدر کہنا کافی ، اور اسانید سائل کا مژدہ لیجئے تو جو کچھ قرآن وحدیث سے قلب فقیر پر فائز ہوا بگوش ہوش استماع کیجئے۔

فاقول : وباللہ التوفیق وبہ الوصول الی ذری التحقیق (اللہ ہی کی توفیق ہے اور اس سے تحقیق تک وصول ہوتا ہے۔ ت) اولا قال المولٰی سبحنہ وتعالٰی:

[1] کتاب الآثار للامام محمد باب صلوۃ العیدین مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ص ۴۱

Fatawa Razawiyya, Volume Eight

“So when you have finished [your duties], then stand up [for worship]. And to your Lord direct [your] longing.” 1 When you find leisure, then labor hard [in prayer] and turn towards your Lord with longing.

Regarding the commentary of this noble verse, the most authentic of sayings is that of Imam Mujahid, the distinguished student of the Sultan of Commentators, the Sage of the Ummah, the Scholar of the Quran, Hazrat Syedna Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both). It states that “finishing” (faragh) refers to finishing prayer, and “standing up” (nasab) means striving in supplication. That is, the Almighty commands that when you have finished praying, occupy yourself well in supplication and present your humility and entreaty before your Lord. In the noble commentary of Al-Jalalayn, it is stated:

“So when you have finished (your prayer), then stand up (tire yourself in supplication). And to your Lord direct your longing (supplicate humbly).” 2 | When you are free from prayer, then exert effort and hardship in supplication, and perform humility and entreaty before your Lord.

In the preface (Khutba) of Jalalayn, it is stated:

This is the completion of the commentary by Imam Jalal al-Din al-Mahalli, following his style of relying on the most preferred opinions and avoiding lengthiness by mentioning unsatisfactory opinions. 3 (Summarized) | This is the completion of the commentary of Imam Jalal al-Din al-Mahalli, which is on his method; meaning, relying on the preferred opinions and avoiding the mention of weak opinions. (Summarized)

Allama Zurqani states in Sharh al-Mawahib al-Ladunniyyah:

This is the correct view, as Jalal [al-Din as-Suyuti] restricted himself to it, and he committed to restricting himself to the most preferred opinions. 4 | This is correct; Al-Jalal has sufficed with this, even though he had committed that he would only mention the preferred opinions. (Summarized)

And it is evident that the noble verse is absolute, and in its absolute nature, it includes obligatory, mandatory, and voluntary prayers. So, without doubt, the Eid prayers are also included in this pure and blessed command. Similarly, it is derived from the Hadiths that the time after prayers is absolutely a place for supplication. Therefore, scholars, by the testimony of Hadith, count asking for supplication after

absolute prayer among the etiquettes. Imam Shams al-Din Muhammad ibn al-Jazari in Hisn-e-Hasin and Maulana Ali Qari in its commentary Hirz-e-Thamin state:

1 Al-Quran 94 / 7 and 8 2 Jalalayn Kalan, mentioned in Surah Alam Nashrah, printed by Asah al-Matabi', Delhi, India, 2/502 3 Jalalayn Kalan, Khatbat al-Kitab, printed by Asah al-Matabi', Delhi, India, 4/1 4 Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib al-Ladunniyyah, the second objective regarding His names, printed in Egypt, 3/195

फ़तावा रज़विया, जिल्द आठवीं

“सो जब तू फ़ारिग हो तो मेहनत कर। और अपने रब की तरफ़ राग़िब हो।” 1 जब तू फ़राग़त (फ़ुरसत) पाए तो मशक्क़त कर और अपने रब की तरफ़ राग़िब हो।

इस आयते करीमा की तफ़्सीर में सबसे प्रामाणिक कथन हज़रत इमाम मुजाहिद का है, जो सुल्तानुल मुफ़स्सरीन, जह्बुल उम्मत, आलिमे क़ुरआन हज़रत सैयदना अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के शागिर्द-ए-रशीद हैं। वह कहते हैं कि 'फ़राग़' से मुराद नमाज़ से फ़ारिग होना है और 'नसब' का मतलब दुआ में कोशिश और जद्दोजहद करना है। यानी बारी तआला हुक्म फ़रमाता है कि जब तू नमाज़ पढ़ चुके तो अच्छी तरह दुआ में मसरूफ़ हो और अपने रब की बारगाह में गिड़गिड़ा और आरज़ू कर। तफ़्सीर शरीफ़ जलालैन में है:

फ़इज़ा फ़राग़ता मिनस सलाति फ़नसब (दुआ में थक जा), व इला रब्बिका फ़रग़ब (गिड़गिड़ा)। 2 | जब तू नमाज़ से फ़ारिग हो तो दुआ में थकान और मशक्क़त कर और अपने रब के सामने आज़िज़ी और दुआ कर।

खुतबा-ए-जलालैन में है:

यह इमाम जलालुद्दीन महल्ली की तफ़्सीर का पूरक है जो उन्हीं के तरीक़े पर है, यानी सबसे मज़बूत (राजिह) कथनों पर भरोसा करना और कमज़ोर कथनों के उल्लेख से बचकर बात को लंबा न करना। 3 (संक्षिप्त) | यह तफ़्सीर इमाम जलालुद्दीन महल्ली का तक़मिला (पूरक) है जो उन्हीं के तरीक़े पर है, यानी राजिह (वरीयता प्राप्त) अक़्वाल (कथनों) पर भरोसा और ज़ईफ़ अक़्वाल के ज़िक्र से बचते हुए। (संक्षिप्त)

अल्लामा ज़रक़ानी 'शरह मवाहिबुल लदुनिया' में फ़रमाते हैं:

यही सही है, इसी पर जलाल ने इक्तिफ़ा (बस) किया है, जबकि उन्होंने यह इल्तिज़ाम (नियम) कर रखा था कि वह राजिह अक़्वाल ही ज़िक्र करेंगे। 4 | यही सही है, इसी (बात) पर जलाल ने इक्तिफ़ा किया है, हालांकि उन्होंने यह पाबंदी कर रखी थी कि राजिह अक़्वाल ही ज़िक्र करेंगे। (संक्षिप्त)

और ज़ाहिर है कि आयते करीमा मुतलक़ (सामान्य) है और अपनी उमूमियत में फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल सभी नमाज़ों को शामिल करती है। तो निस्संदेह ईदैन की नमाज़ भी इस पाक व मुबारक हुक्म में दाख़िल है। इसी तरह अहादीस से भी मुतलक़ तौर पर नमाज़ के बाद दुआ का वक़्त होना साबित

है। लिहाज़ा उलेमा हदीस की गवाही से मुतलक़ नमाज़ के बाद दुआ माँगने को आदाब में गिनते हैं। इमाम शम्सुद्दीन मुहम्मद इब्नुल जज़री 'हिसने हसीन' में और मौलाना अली क़ारी इसकी शरह 'हिर्ज़े थमीन' में फ़रमाते हैं:

1 अल-क़ुरआन ९४ / ७ व ८ 2 जलालैन कलाँ, सूरा अलम नशरह में मज़कूर है, मतबूआ असहुल मताबे', दिल्ली, हिन्द ५०२/२ 3 जलालैन कलाँ, खुत्बतुल किताब, मतबूआ असहुल मताबे', दिल्ली, हिन्द ४/१ 4 शरह अल-ज़रक़ानी अलल मवाहिबुल लदुनिया, अल-मक़्सद अल-थानी फ़ी अस्माहि, मतबूआ मिस्र ३/१९५

पृष्ठ ५१७/६७३

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

فَإِذَا فَرَغْتَ فَانصَبْ ﴿۷﴾ وَإِلَىٰ رَبِّكَ فَارْغَب ﴿۸﴾ 1 | جب تو فراغت پائے تو مشقت کر اور اپنے رب کی طرف راغب ہو۔

اس آیہ کریمہ کی تفسیر میں اصح الاقوال قول حضرت امام مجاہد تلمیذ رشید سلطان المفسرین جرالامۃ عالم القرآن حضرت سیدنا عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہم ہے کہ فراغ سے مراد نماز سے فارغ ہونا اور نصب دعا میں جدوجہد کرنا ہے یعنی باری عزوجل حکم فرماتا ہے جب تو نماز پڑھ چکے تو اچھی طرح دعا میں مشغول ہو اور اپنے رب کے حضور الحاح وزاری کر۔ تفسیر شریف جلالین میں ہے:

فإذا فرغت من الصلوۃ فانصب "تعب فی الدعاء، والی ربك فارغب "تضرع"۔ 2 | جب تو نماز سے فارغ ہو تو دعا میں تعب اور مشقت کر اور اپنے رب کے سامنے تضرع وزاری بجالائے۔

خطبہ جلالین میں ہے:

ھذا تکملۃ تفسیر الامام جلال الدین المحلی علی نمطہ من الاعتماد علی ارجح الاقوال وترك التطویل بذکر اقوال غیر مرضیۃ 3 اہ ملخصا | یہ تفسیر امام جلال الدین محلی کا تکملہ ہے جو انہیں کے طریقہ پر ہے یعنی راجح اقوال پر اعتماد اور اقوال ضعیفہ کے ذکر سے بچتے اھ ملخصا(ت)

علامہ زرقانی شرح مواہب لدنیہ میں فرماتے ہیں۔

ھو الصحیح فقد اقتصر علیہ الجلال وقد التزم الاقتصار علی ارجح الاقوال 4- | یہی صحیح ہے اسی جلال نے اکتفاء کیا ہے حالانکہ انہوں نے یہ التزام کر رکھا کہ راجح اقوال ذکر کریں گے۔ (ت)

اور پر ظاہر کہ آیہ کریمہ مطلق ہے اور باطلاقہ نماز فرض وواجب ونفل سب کو شامل تو بلاشبہ نماز عیدین بھی اس پاک مبارک حکم میں داخل، یونہی احادیث سے بھی ادبار صلوات کا مطلقاً محل دعا ہونا مستفاد، ولہٰذا علماء بشہادت حدیث نماز مطلق کے بعد دعا مانگنے کو آداب سے گنتے ہیں، امام شمس الدین محمد ابن الجزری حصن حصین اور مولانا علی قاری اس کی شرح حرز ثمین میں فرماتے ہیں:

1 القرآن ۹۴ / ۷ و ۸ 2 جلالین کلاں سورہ الم نشرح میں مذکور ہے مطبوعہ اصح المطابع دہلی ہند ۵۰۲/۲ 3 جلالین کلاں خطبة الکتاب مطبوعہ اصح المطابع دہلی ہند ۴/۱ 4 شرح الزرقانی علی مواہب اللدنیہ المقصد الثانی فی اسمائہ مطبوعہ مصر ۳/ ۱۹۵

Fatawa-e-Razviya Volume 8

| Arabic: As-Salat (Prayer), i.e., that which consists of bowing (Rukū‘) and prostration (Sujūd), and the intent is that the desired supplication should occur after it.[1] | Urdu: That is, it is among the etiquettes that the desired supplication should take place after a prayer containing bowing and prostration. |

Then he said:

| Arabic: Hab Mus, i.e., the four (Sunan books), Ibn Hibban, and al-Hakim narrated it, all from the Hadith of al-Siddiq, may Allah be pleased with him.[2] | Urdu: That is, this etiquette is proven from that Hadith of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) which Abu Dawud, al-Nasa'i, al-Tirmidhi, Ibn Majah, Ibn Hibban, and al-Hakim narrated from Siddiq-e-Akbar (may Allah be pleased with him). |

I say: Likewise, this Hadith is narrated by Ibn al-Sunni and al-Bayhaqi and also mentioned in Sahih Ibn Khuzaymah; Imam al-Tirmidhi classified it as 'Hasan' (good). It is evident that prayer consisting of bowing and prostration includes every obligatory (Fard), mandatory (Wajib), and voluntary (Nafl) prayer except for the funeral prayer, and this also includes the Eid prayers. Then I say: And with Allah is success (Then I say with the success granted by Allah. T). The essence is that righteous deeds are a means to attain the pleasure of the Master, the Mighty and Exalted, and the pleasure of the Master, Blessed and Exalted, is a cause for the acceptance of supplication, and its proper time is after finishing a righteous deed, as Allah the Almighty said: "So when you have finished [your duties], then stand up [for worship][3]" (As the command of Allah the Almighty is: So when you are free, then toil. T). And for this reason, it is mentioned in a Hadith that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said:

| Arabic: Have you not seen the laborers work, and when they finish their tasks, they are given their full wages?[4] - Narrated by al-Bayhaqi from Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them both) in a long Hadith. | Urdu: Have you not seen that laborers work, and when they finish their work, they receive their full wages at that time? Al-Bayhaqi has narrated this from Hazrat Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with him) in the form of long Hadiths. |

In another Hadith, it is mentioned:

1. Hawashi Hisn-e-Hasin, Adab al-Dua, marginal note 212, printed by Afzal al-Matabi' Lucknow, p. 9.

2. Hawashi Hisn-e-Hasin, Adab al-Dua, marginal note 22, printed by Afzal al-Matabi' Lucknow, p. 9.
3. Al-Quran 94/7.
4. Shu'ab al-Iman, Chapter on Fasting, Hadith 3360, 3603, printed by Dar al-Fikr Beirut, 2/303.

फ़तावा-ए-रज़विया खंड 8

| अरबी: अस्-सलात (नमाज़), यानी वह जो रुकू और सजदे वाली हो, और उद्देश्य यह है कि वांछित दुआ इसके बाद होनी चाहिए।[1] | उर्दू: यानी शिष्टाचार में से है कि वांछित दुआ रुकू और सजदे वाली नमाज़ के बाद हो। |

फिर फ़रमाया:

| अरबी: हब मुस, यानी इसे चारों (सुनन की किताबों), इब्ने हिब्बान और हाकिम ने रिवायत किया है, ये सभी सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से हैं।[2] | उर्दू: यानी यह अदब हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की उस हदीस से साबित है जिसे अबू दाऊद, नसाई, तिर्मिज़ी, इब्ने माजह, इब्ने हिब्बान और हाकिम ने सिद्दीक़-ए-अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है। |

मैं कहता हूँ: इसी प्रकार यह हदीस इब्न अस-सुन्नी और बैहक़ी के यहाँ भी रिवायत की गई है और सहीह इब्न खुज़ैमा में भी वर्णित है; इमाम तिर्मिज़ी ने इसे 'हसन' (उत्तम) कहा है। यह स्पष्ट है कि रुकू और सजदे वाली नमाज़ में जनाज़ा की नमाज़ के अलावा हर फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल शामिल है, जिनमें ईद की नमाज़ें भी आती हैं। फिर मैं कहता हूँ: और अल्लाह की दी हुई तौफ़ीक़ से (तौफ़ीक़-ए-इलाही के साथ कहता हूँ। त)। मूल बात यह है कि नेक आमाल अल्लाह तआला की रज़ा का कारण होते हैं, और अल्लाह तआला की रज़ा दुआ की स्वीकार्यता का कारण है, और इसका समय नेक अमल से फ़ारिग (निवृत्त) होने के बाद है, जैसा कि अल्लाह तआला का फ़रमान है: "फिर जब आप फ़ारिग हों तो मेहनत करें[3]" (जैसा कि अल्लाह तआला का आदेश है: अतः जब आप निवृत्त हों, तो परिश्रम करें। त)। और इसी लिए हदीस में आया है, हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया:

| अरबी: क्या तुमने मज़दूरों को नहीं देखा कि वे काम करते हैं, और जब वे अपने काम से फ़ारिग होते हैं, तो उन्हें उनकी पूरी मज़दूरी दी जाती है?[4] - इसे बैहक़ी ने जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हुमा से एक लंबी हदीस में रिवायत किया है। | उर्दू: क्या तुमने नहीं देखा कि मज़दूर काम करते हैं और जब वे अपने काम से फ़ारिग होते हैं, उस समय वे अपनी पूरी मज़दूरी पाते हैं। इसे बैहक़ी ने लंबी हदीसों के रूप में हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत किया है। |

दूसरी हदीस में है:

1. हवाशी हिस्न-ए-हसीन, आदाब अद-दुआ, हाशिया 212, मुद्रित अफ़ज़ल अल-मतब'अ लखनऊ, पृष्ठ 9।
2. हवाशी हिस्न-ए-हसीन, आदाब अद-दुआ, हाशिया 22, मुद्रित अफ़ज़ल अल-मतब'अ लखनऊ, पृष्ठ 9।
3. अल-क़ुरआन 94/7।
4. शुअब अल-ईमान, रोज़े का अध्याय, हदीस 3360, 3603, मुद्रित दार अल-फ़िक्र बेरुत, 2/303।

पृष्ठ 518/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

| والصلوۃ ای ذات الرکوع والسجود والمراد ان یقع الدعاء المطلوب بعدھا - 1 | یعنی آداب سے ہے کہ مطلب کی دعا بعد نماز ذات رکوع و سجود واقع ہو۔ |

پھر فرمایا:

| حب مس ای رواہ الاربعۃ وابن حبان والحاکم کلھم من حدیث الصدیق رضی اللہ تعالٰی عنہ - 2 | یعنی یہ ادب حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی اُس حدیث سے ثابت ہے جسے ابوداؤد ونسائی وترمذی وابن ماجہ وابن حبان و حاکم نے صدیقِ اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔ |

اقول یونہی یہ حدیث ابن السنی وبیہقی کے یہاں مروی اور صحیح ابن خزیمہ میں بھی مذکور، امام ترمذی نے اسکی تحسین کی۔ ظاہر ہے کہ نماز ذات رکوع و سجود، نماز جنازہ کے سوا ہر فرض وواجب و نائلہ کو شامل جن میں نماز عیدین بھی داخل۔ ثم اقول: وباللہ التوفیق (پھر میں اللہ کی توفیق سے کہتا ہوں۔ ت) اصل یہ ہے کہ اعمالِ صالحہ وجہ رضائے مولٰی جل وعلا ہوتے ہیں اور رضائے مولٰی تبارک وتعالٰی موجبِ اجابتِ دعا اور اس کا محل عملِ صالح سے فراغ پاکر کما قال تعالٰی فَاِذَا فَرَغْتَ فَانْصَبْ۝۳ (جیسا کہ اللہ تعالٰی کا فرمان ہے: پس جب آپ فارغ ہوں تو مشقت کرو۔ ت) ولہذا حدیث میں آیا حضور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا:

| الم تر الی العمال یعملون فاذا فرغوا من اعمالہم وفوا اجورہم - 4 رواہ البیہقی عن جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما فی حدیث طویل۔ | کیا تو نے نہ دیکھا کہ مزدور کام کرتے ہیں جب اپنے

عمل سے فارغ ہوتے ہیں اُس وقت پوری مزدوری پاتے ہیں۔ اسے بیہقی نے احادیث طویل کی صورت میں حضرت جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔ |

دوسری حدیث میں ہے:

1 حواشی حصن حصین آداب الدعاء حاشیہ ۲۱۲ مطبوعہ افضل المطابع لکھنؤ ص ۹ 2 حواشی حصن حصین آداب الدعاء حاشیہ ۲۲ مطبوعہ افضل المطابع لکھنؤ ص ۹ 3 القرآن ۹۴/ ۷ 4 شعب الایمان باب فی الصیام۔ حدیث ۳۳۶۰۳۶۰۳ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۳۰۳/۲

Fatawa Rizvia Volume 8

Arabic	English Translation
العامل انما يوفى اجره اذا قضى عمله ١-رواه احمد والبزار والبيهقى وابو شيخ في الثواب عن ابى هريرة رضى الله تعالى عنه فى حديث۔	The worker is given his full reward only when he completes his work. (1) Narrated by Ahmad, Al-Bazzar, Al-Bayhaqi, and Abu Ash-Shaykh in 'Ath-Thawab' from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him) in a Hadith.

So, for the seeker, it is indeed a very great opportunity for supplication (dua) to present their needs after serving and obeying the Lord. Hence, it has been narrated that at every completion of the Quran, there is one accepted supplication. Al-Bayhaqi, Al-Khatib, Abu Nu’aym, and Ibn Asakir narrate from Anas (may Allah be pleased with him) that the Master of the Universe (may peace and blessings of Allah be upon him) said: "With every completion (of the Quran), there is an accepted supplication." (2) Every completion is accompanied by an accepted prayer. At-Tabarani narrates in 'Al-Mu'jam al-Kabir' from Irbadh bin Sariyah (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever completes the Quran has an accepted supplication." (3) For the one who completes the Quran, there is one accepted prayer. For this reason, it was said regarding the fasting person that at the time of breaking the fast (iftar), one of their prayers is not rejected. Imam Ahmad in his 'Musnad', and At-Tirmidhi with the benefit of classification as 'Hasan' in 'Jami', and the sons (narrators) of Majah, Hibban, and Khuzaymah in their 'Sahihs', and Al-Bazzar in his 'Musnad', narrate from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him) that the Master of the Messengers (may peace and blessings of Allah be upon him) said:

Arabic	English Translation
ثلثة لا ترد دعوتهم الصائم حين يفطر الحديث۔ 4	There are three whose supplication is not rejected: the fasting person when he breaks his fast... [the Hadith continues]. (4) The supplication of three persons is not rejected, one of them is the fasting person when he breaks his fast.

Ibn Majah and Al-Hakim narrate from Abdullah bin Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with them both) that the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) said:

Arabic	English Translation
ان للصائم عند فطره لدعوة ما ترد 5-	Indeed, for the fasting person at the time of breaking his fast, there is a supplication that will not be rejected. (5) Surely, for the fasting person at the time of iftar, there is certainly one supplication that will not be rejected.

Imam Hakim Tirmidhi narrates from Abdullah bin Umar Farooq-e-Azam (may Allah be pleased with them both) that the Radiance-filled Prophet...

---

1. Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Hurayrah (RA), printed by Dar al-Fikr, Beirut, 2/292.
2. Shu'ab al-Iman, Chapter on Honoring the Quran, Hadith 2086, printed by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 2/374.
3. Al-Mu'jam al-Kabir, narrated from Irbadh bin Sariyah, Hadith 737, printed by Maktabah Fayṣaliyyah, Beirut, 18/259.
4. Sunan Ibn Majah, Chapter on the Fasting Person whose Supplication is not Rejected, etc., printed by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 126.
5. Sunan Ibn Majah, Chapter on the Fasting Person whose Supplication is not Rejected, etc., printed by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 126.

फतावा रिज़विया जिल्द अष्टम

अरबी	हिंदी अनुवाद
العامل انما يوفى اجره اذا قضى عمله ١-رواه احمد والبزار والبيهقى وابو شيخ في الثواب عن ابى هريرة رضى الله تعالى عنه فى حديث۔	काम करने वाले को उसकी पूरी मज़दूरी तभी दी जाती है जब वह अपना काम पूरा कर लेता है। (१) इसे इमाम अहमद, बज़ार, बैहकी और अबू शेख ने 'अत-सवाब' में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से एक हदीस में रिवायत किया है।

तो मांगने वाले के लिए बेशक दुआ का बहुत बड़ा अवसर है कि अपने स्वामी की सेवा और आज्ञाकारिता के बाद अपनी ज़रूरतें पेश करे। इसलिए हदीस में आया है कि कुरान के हर ख़त्म (पूरा पढ़ने) पर एक दुआ मक़बूल (स्वीकृत) है। बैहकी, ख़तीब, अबू नुऐम और इब्न असाकिर अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "हर कुरान ख़त्म करने के साथ एक दुआ मक़बूल है।" (२) हर ख़त्म के साथ एक दुआ मक़बूल होती है। तबरानी ने 'मोजम कबीर' में इर्बाज़ बिन सारिया (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जो कुरान ख़त्म करे उसके लिए एक दुआ मक़बूल है।" (३) जो कुरान ख़त्म करे, उसके लिए एक दुआ कुबूल होने वाली है। इसी कारण रोज़ेदार के हक में फ़रमाया गया कि इफ़्तार के समय उसकी एक दुआ रद्द नहीं होती। इमाम अहमद ने अपनी 'मुसनद' में, और तिरमिज़ी ने 'जामे' में तहसीन के साथ, और इब्न माजा, हिब्बान और खुज़ैमा ने अपनी 'सहीह' में, और बज़ार ने अपनी 'मुसनद' में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि हुज़ूर सैयदुल मुर्सलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

अरबी	हिंदी अनुवाद
ثلثة لا ترد دعوتهم الصائم حين يفطر 4 الحديث۔	तीन लोगों की दुआ रद्द नहीं की जाती: रोज़ेदार की जब वह इफ़्तार करे... [पूरी हदीस]। (४) तीन व्यक्तियों की दुआ रद्द नहीं होती, उनमें से एक रोज़ेदार है जब वह इफ़्तार करे।

इब्न माजा और हाकिम ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

अरबी	हिंदी अनुवाद
ان للصائم عند فطره لدعوة ما ترد 5-	बेशक रोज़ेदार के लिए इफ़्तार के समय एक ऐसी दुआ है जो रद्द नहीं की जाएगी। (५) यकीनन रोज़ेदार के लिए इफ़्तार के समय एक ऐसी दुआ है जो निश्चित रूप से रद्द नहीं होगी।

इमाम हकीम तिरमिज़ी हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर फ़ारूक़-ए-आज़म (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं कि हुज़ूर पुर नूर...

---

1. मुसनद अहमद बिन हंबल, हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) से रिवायत, दार अल-फ़िक्र, बेरूत, २/२९२.
2. शुअ़बुल ईमान, कुरान की ताज़ीम का बाब, हदीस २०८६, दार अल-कुतुब अल-इल्मिय्या, बेरूत, २/३७४.
3. अल-मोजम अल-कबीर, इर्बाज़ बिन सारिया से रिवायत, हदीस ७३७, मकतबा फ़ैसलिया, बेरूत, १८/२५९.
4. सुनन इब्न माजा, रोज़ेदार की दुआ रद्द न होने का बाब, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. १२६.
5. सुनन इब्न माजा, रोज़ेदार की दुआ रद्द न होने का बाब, एच.एम. सईद कंपनी, कराची, पृ. १२६.

पेज ५१९/६७३

عربی متن	اردو ترجمہ
العامل انما یوفی اجرہ اذا قضی عملہ ۱- رواہ احمد والبزار والبیھقی وابو شیخ في الثواب عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ فی حدیث۔	عامل کو اُسی وقت اجرِ کامل دیا جاتا ہے جب عمل تمام کرلیتا ہے۔ اسے امام احمد، بزار، بیہقی اور ابو شیخ نے ثواب میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔

تو سائل کے لئے بیشک بہت بڑا موقع دعا ہے کہ مولیٰ کی خدمت و طاعت کے بعد اپنی حاجات عرض کرے لہذا وارد ہوا کہ ہر ختم قرآن پر ایک دُعا مقبول ہے بیہقی و خطیب و ابو نعیم و ابن عساکر انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی، حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: مع کل ختمۃ دعوۃ مستجابۃ ۲- ہر ختم کے ساتھ ایک دعا مستجاب ہے۔ طبرانی معجم کبیر میں عرباض بن ساریہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روای حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: من ختم القرآن فلہ دعوۃ مستجابۃ ۳- جو قرآن ختم کرے اس کے لئے ایک دُعا مقبول ہے۔ اسی لئے روزہ دار کے حق میں ارشاد ہوا کہ افطار کے اس وقت اس کی ایک دعا رد نہیں ہوتی۔ امام احمد، مسند اور ترمذی بافادہ تحسین جامع اور ابنائے ماجہ و حبان و خزیمہ اپنی صحاح اور بزار مسند میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی حضور سید المرسلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عربی متن	اردو ترجمہ
ثلثة لا ترد دعوتهم الصائم حين يفطر 4 الحديث۔	تین ۳ شخصوں کی دُعا رد نہیں ہوتی ایک اُن میں روزہ دار جب افطار کرے۔الحدیث

ابن ماجہ و حاکم حضرت عبداللہ بن عمرو بن عاص رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا:

عربی متن	اردو ترجمہ
ان للصائم عند فطره لدعوة ما ترد -5	بیشک روزہ دار کے لئے وقتِ افطار بالیقین ایک دُعا ہے کہ رَد نہ ہوگی۔

امام حکیم ترمذی حضرت عبداللہ بن عمر فاروق اعظم رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے راوی حضور پُر نور

---

1 مسند احمد بن حنبل مروی از ابو ہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲ / ۲۹۲ 2 شعب الایمان باب فی تعظیم القرآن حدیث ۲۰۸۶ مطبوعہ دارالکتب العلمیہ بیروت ۲ / ۳۷۴ 3 المعجم الکبیر مروی از عرباض بن ساریہ حدیث ۷۳۷ مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲۵۹/۱۸ 4 سنن ابن ماجہ باب فی الصائم لا ترد دعوتہ الخ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۲۶ 5 سنن ابن ماجہ باب فی الصائم لا ترد دعوتہ الخ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۱۲۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

Prophet (may Allah bless him and grant him peace) said:

Arabic	Urdu Translation
Every fasting servant has an accepted prayer at the time of breaking the fast, whether it is given in this world or stored for him in the Hereafter. [1]	For every fasting servant, there is an accepted prayer at the time of breaking the fast, whether it is given in this world or kept as a treasure for him in the Hereafter.

And there are other Hadiths in this chapter. Definitely, this excellence is general for all obligatory (Fard), necessary (Wajib), and voluntary (Nafl) fasts, as there is no restriction or specific categorization in the texts. Therefore, Imam Abdul Azeem Munziri mentioned the two previous Hadiths in "Al-Targheeb fi al-Sawm" unconditionally. And Allama Manadi, in "Taysir Sharh Jami' al-Saghir" under the Hadith narrated by Aqili and Bayhaqi from Abu Hurairah (RA) from the Prophet (PBUH), after the words "Dawat-us-Sa'im" (the prayer of the fasting person), wrote "Even if it is voluntary"[2] (Footnote 2). Undeniably, prayer (Salah), which is the most virtuous of deeds and the greatest pillar of Islam, and more pleasing to the Lord of Majesty and Honor than fasting, will also remain within its generality and absolute application. The place for prayer after completion will not be specific only to obligatory prayers. And how can it be specific when the Holy Prophet himself (PBUH) commanded to raise hands and pray after every two units (Rakat) of voluntary prayer and said: whoever does not do so, their prayer is deficient. Tirmidhi, Nasa'i, and Ibn Khuzaymah narrate from Fadl bin Abbas (may Allah be pleased with them), and Ahmad, Abu Dawood, and Ibn Majah from Matlab bin Abi Wida'a (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (may Allah bless him and grant him peace) said:

Arabic	Urdu Translation
Prayer (Nafl) is in pairs (two by two). Recite Tashahhud in every two Rakats, and show humility, submissiveness, and meekness. Then raise your hands towards your Lord, keeping the palms facing your face and say: "O my Lord, O my Lord!" Whoever does not do this, it is such and such (i.e., deficient). [3]	Meaning, voluntary prayer is in two-two Rakats. Recite Tashahhud on every two Rakats and show humility, lamentation, and meekness. Then after the salutation, raise both hands towards your Lord and, keeping the palms facing the face, request: "O my Lord, O my Lord!" Whoever

Arabic	Urdu Translation
	does not do so, then that prayer is such and such, meaning it is deficient.

It is clearly stated in the narration of Matlab (may Allah be pleased with him): "Whoever does not do that, it is 'khidaj' (deficient)."[4] Whoever does not do so, there is a deficiency in their prayer.

---

[1] Nawadir al-Usul, Principle Sixty, regarding the fasting person's prayer, etc. Published by Dar Sader, Beirut, p. 83. [2] Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, Hadith "Three prayers are answered". Published by Maktabah al-Imam al-Shafi'i, Riyadh, 1/467. [3] Jami' al-Tirmidhi, Chapter on Submissiveness in Prayer. Published by Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 1/505. [4] Musnad Ahmad bin Hanbal, Hadith of Matlab (may Allah be pleased with him). Published by Dar al-Fikr, Beirut, 2/167.

फतावा रज़विया जिल्द 8

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इरशाद है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
हर रोज़ा रखने वाले बंदे के लिए इफ्तार के समय एक दुआ मक़बूल (स्वीकार्य) है, चाहे वह दुनिया में दे दी जाए या आख़िरत में उसके लिए संचित (ज़ख़ीरा) रखी जाए। [1]	हर रोज़ा रखने वाले बंदे के लिए इफ्तार के समय एक दुआ मक़बूल है, चाहे दुनिया में दी जाए या आख़िरत में उसके लिए ज़ख़ीरा रखी जाए।

इस अध्याय में और भी हदीसें हैं। निश्चित रूप से रोज़े की यह फ़ज़ीलत (महिमा) फ़र्ज़, वाजिब और नफ़्ल सभी के लिए सामान्य है क्योंकि ग्रंथों (नसूस) में कोई पाबंदी या विशिष्टता नहीं है। इसीलिए इमाम अब्दुल अज़ीम मुन्ज़िरी ने पिछली दो हदीसों को "अल-तरग़ीब फ़ि अस-सौम" में बिना शर्त (मुतलक़न) पेश किया। और अल्लामा मनादी ने "तयसीर शरह जामे सगीर" में अक़ीली और बैहक़ी द्वारा हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत की गई हदीस के तहत "दावत-उस-साएम" (रोज़ेदार की दुआ) के शब्दों के बाद "चाहे वह नफ़्ली हो" [2] (पदटिप्पणी 2) लिखा। तो निसंदेह नमाज़ भी, जो सबसे उत्तम कर्म और इस्लाम का महानतम स्तंभ है और रोज़े से भी अधिक ज़ुल-जलाल वल-इक्राम (महिमा और सम्मान के स्वामी) की प्रसन्नता का कारण है, अपनी व्यापकता और पूर्णता पर बनी रहेगी। फ़राग़त (नमाज़ पूरी होने) के बाद दुआ का स्थान केवल फ़र्ज़ नमाज़ों तक सीमित नहीं होगा। और यह सीमित क्यों हो जबकि स्वयं हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने नफ़्ल नमाज़ की हर दो रकअत के बाद हाथ उठाकर दुआ माँगने का हुक्म दिया और फ़रमाया: "जो ऐसा नहीं करता उसकी नमाज़ अधूरी है।" तिर्मिज़ी, नसाई और इब्न खुज़ैमा ने हज़रत फ़ज़ल बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से और अहमद, अबू दाऊद और इब्न माजा ने हज़रत मतलब बिन अबी वदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

अरबी	उर्दू अनुवाद
यानी नफ़्ल नमाज़ दो-दो रकअत है, हर दो रकअत पर अत-तहीयात पढ़ी जाए और खज़ूअ (आज़िज़ी), गिड़गिड़ाहट और विनम्रता दिखाई जाए। फिर सलाम	यानी नमाज़ नफ़्ल दो-दो रकअत है, हर दो रकअत पर अत-तहीयात और खज़ूअ व ज़ारी व तज़ल्लुल, फिर बाद सलाम दोनों

अरबी	उर्दू अनुवाद
के बाद दोनों हाथ अपने रब की ओर उठाओ और हथेलियों को चेहरे के सामने रखकर अर्ज़ करो: "ऐ मेरे रब, ऐ मेरे रब!" जो ऐसा नहीं करता, वह नमाज़ ऐसी और वैसी है, यानी नाक़िस (अधूरी) है। [3]	हाथ अपने रब की तरफ उठा और हथेलियां चेहरे के मुकाबिल रख कर अर्ज़ कर, ऐ मेरे रब ऐ मेरे रब, जो ऐसा न करे तो वह नमाज़ चने व चनाँ यानी नाक़िस है।

हज़रत मतलब (रज़ियल्लाहु अन्हु) की रिवायत में स्पष्ट रूप से आया है: "जो ऐसा नहीं करता, वह 'ख़िदाज' (दोषपूर्ण) है।" [4] जो ऐसा नहीं करता उसकी नमाज़ में कमी है।

---

[1] नवादिरुल उसूल, असल साठवीं, रोज़ेदार की दुआ के बारे में आदि। दार सादिर बेरूत, पृ. 83 [2] तयसीर शरह अल-जामे अस-सगीर, हदीस 'तीन दुआएं मक़बूल होती हैं'। मकतबतुल इमाम अल-शफ़ई रियाद 1/467 [3] जामे अल-तिर्मिज़ी, नमाज़ में आज़िज़ी के अध्याय में। अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली 1/505 [4] मुसनद अहमद बिन हंबल, हदीस हज़रत मतलब (रज़ियल्लाहु अन्हु)। दारुल फ़िक्र बेरूत 2/167

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے:

عربی	اردو ترجمہ
لکل عبد صائم دعوۃ مستجابۃ عند افطارہ اعطیہا فی الدنیا او ذخر لہ فی الآخرۃ - 1	ہر روزہ دار بندے کے لئے افطار کے وقت ایک دعا مقبول ہے خواہ دنیا میں دی جائے یا آخرت میں اس کے لئے ذخیرہ رکھی جائے۔

وفی الباب احادیث أخر اور بالیقین یہ فضیلت روزہ فرض واجب و نفل سب کو عام کہ نصوص میں قید و خصوص نہیں۔ ولہذا امام عبدالظیم منذری نے دو حدیث پیشین کو الترغیب فی الصوم مطلقاً میں ایراد فرمایا، اور علامہ منادی نے تیسر شرح جامع صغیر میں زیر حدیث باب مروی عقیلی و بیہقی عن ابی ہریرۃ عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم بعد لفظ دعوۃ الصائم (روزہ دار کی دعا ت) کے ولو نفلا 2 (اگر چہ وہ نفلی روزہ ہوت) تحریر کیا تو بلا شبہ نماز بھی کہ افضل اعمال و اعظم ارکانِ اسلام اور روزے سے زائد موجبِ رضائے ذوالجلال والا کرام ہے یونہی اپنے عموم و اطلاق پر رہے گی اور بعدِ فراغ محلیت دعا صرف فرائض سے خاص نہ ہوگی، اور کیونکر خاص ہو حالانکہ خود حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ہر دو رکعت نفل کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کا حکم دیا اور فرمایا: جو ایسا نہ کرے اس کی نماز ناقص ہے۔ ترمذی و نسائی و ابن خزیمہ حضرت فضیل بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما اور احمد و ابو داؤد و ابن ماجہ حضرت مطلب بن ابی وداء رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عربی	اردو ترجمہ
الصلوۃ مثنی مثنی تشھد فی کل رکعتین وتخشع وتضرع وتمسکن وتفنع یدیک یقول ترفعہا الی ربک مستقبلا ببطونہما وجھک وتقول یارب یارب من لم یفعل ذلک فہی کذا وکذا - 3	یعنی نماز نفل دو دو رکعت ہے ہر دو رکعت پر التحیات اور خضوع وزاری و تذلل، پھر بعد سلام دونوں ہاتھ اپنے رب کی طرف اٹھا اور ہتھیلیاں چہرے کے مقابل رکھ کر عرض کر اے میرے رب اے رب میرے جو ایسا نہ کرے تو وہ نماز چنیں و چناں یعنی ناقص ہے۔

مطلب رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی روایت میں مصرحاً آیا: - فمن لم یفعل ذلك فهو خداج 4 جو ایسا نہ کرے اس کی نماز میں نقصان ہے۔

---

1 نوادر الاصول الاصل الستون فی ان للصائم دعوۃ الخ مطبوعہ دار صادر بیروت ص ۸۳ 2 تیسیر شرح الجامع صغیر حدیث ثلاث دعوات مستجابات مطبوعہ مکتبۃ الامام الشافعی الریاض ۱/ ۴۶۷ 3 جامع الترمذی باب ماجاء فی التخشع فی الصلوۃ مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۵۰۵ 4 مسند احمد بنحنبل حدیث مطلب رضی اللہ تعالیٰ عنہ مطبوعہ دار الفکر بیروت ۲/ ۱۶۷

Fatawa Razawiyya Volume 8

Allama Tahir states in Takmila Majma' Bihar al-Anwar:

| فيه ثم تقنع يديك وهو عطف على محذوف اى اذا فرغت منها فسلم ثم ارفع يديك سائلا فوضع الخبر موضع الامر 1۔ | Then he should bring his palms level with his face. This is conjoined to an omitted [phrase], meaning when he finishes these two (2) rak'ahs and says Salaam, he should raise his hands for supplication. Here, a report is mentioned in place of a command. (T) |

In 'Taysir' it is mentioned:

| اى اذا فرغت منها فسلم ارفع يديك فوضع الخبر موضع الطلب 2 الخ۔ | Meaning when one finishes these two (2) rak'ahs, then says Salaam, then raises the hands; here the report is in place of a request, etc. (T). |

Inevitably, when in 'Hisn-e-Hasin', referring to the Hadith of Abu Umamah (may Allah be pleased with him) indicated by the symbols for Tirmidhi and Nasai, it was said: "We asked: O Messenger of Allah! Which supplication is most heard? He replied: [Supplication in] the latter part of the night and after the obligatory prayers." 3 Maulana Ali Qari (may Allah's mercy be upon him) wrote in its commentary:

| دبر الصلوات المكتوبات اى عقيب الصلوات المفروضات والتقييد بها لكونها افضل الحالات فهى ارجى لاجابة الدعوات 4۔ | "Dubur al-Salawat al-Maktubat" means immediately after the obligatory prayers, and their specification was made because they are superior to all states, so there is more hope of acceptance in them. |

See, it is clear and explicit that after prayer, supplication is not exclusive to the obligatory ones, but rather they have a greater distinction due to their superiority. The questioners themselves asked which supplication is most accepted among all, therefore their restriction was mentioned. In short, once the specification to obligatory prayers is shown to be invalid, there is no evidence for excluding the mandatory (Wajib) prayers; rather, general proofs apply to them.

---

1. Takmila Bihar al-Anwar, appended to Majma' al-Bihar under the word 'Qana'', printed at Munshi Naval Kishore Lucknow, p. 174.
2. Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir, Hadith 'Salatu Layli Mathna Mathna' etc., Maktaba al-Imam al-Shafi'i Riyadh, 99/2.

3. Hisn-e-Hasin, Times of Acceptance, printed at Afzal al-Matabi' Lucknow India, p. 22; Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Supplications, printed at Amin Company Kitab Khana Rashidiya Delhi, 188/2.
4. Marginalia of Hisn-e-Hasin, note 16 on the mentioned page, printed at Afzal al-Matabi' Lucknow India, p. 17.

फतवा रज़विया खंड 8

अल्लामा ताहिर 'तकमिला मजमअ बिहार अल-अनवार' में फरमाते हैं:

| فیه ثم تقنع یدیك وهو عطف علی محذوف ای اذا فرغت منها فسلم ثم ارفع یدیك سائلا فوضع الخبر موضع الامر 1. | फिर हथेलियों को चेहरे के सामने करे, इसका संबन्ध विलोपित शब्द से है यानी जब इन दो (2) रकात नमाज़ों से फारिग हो जाए और सलाम कहे तो दुआ के लिए हाथ बुलंद करे, यहाँ खबर अम्र के स्थान पर ज़िक्र है। (त) |

'तयसीर' में है:

| ای اذا فرغت منها فسلم ارفع یدیك فوضع الخبر موضع الطلب 2 الخ. | यानी जब इन दो (2) रकातों से फारिग हों, फिर सलाम कहें, फिर हाथ उठाएं यहाँ खबर तलब की जगह है इत्यादि (त)। |

लाज़िम है कि जब 'हिसन-ए-हसीन' में हजरत अबू उमामा (रज़िअल्लाहु अन्हु) की इस हदीस की तरफ तिरमिजी और नसाई के संकेत से इशारा किया गया कि: "हमने अर्ज की, ऐ अल्लाह के रसूल! कौन सी दुआ ज्यादा सुनी जाती है? आपने फरमाया: रात के आखरी हिस्से में और फर्ज नमाजों के बाद।" 3 मौलाना अली कारी (रहमतुल्लाही अलैहि) ने इसकी शरह (व्याख्या) में लिखा:

| دبر الصلوات المکتوبات ای عقیب الصلوات المفروضات والتقیید بها لکونها افضل الحالات فهی ارجی لاجابة الدعوات 4. | "दुबुर अस-सलावात अल-मक्तूबात" का अर्थ कि फर्ज नमाजों के बाद, और उनकी विशिष्टता इसलिए बताई कि वे सब हालतों में श्रेष्ठ हैं तो उनमें कुबूलियत की उम्मीद ज्यादा है। |

देखिये, यह स्पष्ट और साफ़ है कि नमाज़ के बाद दुआ किसी फर्ज तक ही सीमित नहीं है, बल्कि श्रेष्ठता की वजह से उनमें अधिक विशेषता है। पूछने वालों ने खुद यही पूछा था कि सब में ज्यादा कौन सी दुआ कुबूल होती है, इसलिए उनकी पाबंदी बताई गई। संक्षेप में, जब फर्जों की विशिष्टता ख़त्म हो गई, तो वाजिबात को बाहर करने की कोई दलील नहीं है, बल्कि उन पर सामान्य दलीलें लागू होती हैं।

---

1. तकमिला बिहार अल-अनवार, मजमअ अल-बिहार के साथ संलग्न, शब्द 'कनअ' के तहत, मुंशी नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 174.

2. तयसीर शरह अल-जामिअ अस-सगीर, हदीस 'सलातु लैली मथना मथना' आदि, मकतबा अल-इमाम अल-शाफई रियाद, 99/2.
3. हिसन-ए-हसीन, कुबूलियत के औकात, अफजल अल-मताबे लखनऊ भारत द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 22; जामिअ अत-तिरमिजी, दुआओं के अध्याय, अमीन कंपनी किताब खाना रशीदिया दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 188/2.
4. हिसन-ए-हसीन के हाशिए, उल्लेखित पृष्ठ का हाशिया 16, अफजल अल-मताबे लखनऊ भारत द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 17.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

علامہ طاہر تکملہ مجمع بحار الانوار میں فرماتے ہیں:

| فیه ثم تقنع یدیك وھو عطف علی محذوف ای اذا فرغت منھا فسلم ثم ارفع یدیك سائلا فوضع الخبر موضع الامر ۱۔ | پھر ہتھیلیاں چہرے کے مقابل کرے اس کا عطف محذوف پر ہے یعنی جب ان دو ۲ رکعتوں سے فارغ ہو اور سلام کہے تو دعا کے لئے ہاتھ بلند کرے یہاں خبر امر کی جگہ مذکور ہے۔(ت) |

تیسیر میں ہے:

| ای اذا فرغت منھا فسلم ارفع یدیك فوضع الخبر موضع الطلب ۲ الخ۔ | یعنی جب ان دو ۲ رکعتوں سے فارغ ہوں پس سلام کہے پھر ہاتھ اٹھائے یہاں خبر، طلب کی جگہ ہے الخ (ت)۔ |

لا جرم جبکہ حصن حصین میں اس حدیث ابی امامہ رضی اللہ تعالٰی عنہ کی طرف برمز ترمذی و نسائی نے اشارہ کیا کہ ہم نے عرض کی یا رسول اللہ! ای الدعاء اسمع قال جوف اللیل الأخر و دبر الصلوات المکتوبات ۳ (کون سی دعا زیادہ سنی جاتی ہے، فرمایا رات کے نصف اخیر میں اور فرض نمازوں کے بعد) مولنا علی قاری علیہ رحمۃ الباری نے اس کی شرح میں لکھا:

| دبر الصلوات المکتوبات ای عقیب الصلوات المفروضات والتقیید بھا لکونھا افضل الحالات فھی ارجی لاجابۃ الدعوات ۴۔ | دبر الصلوات المکتوبات کے معنی کہ فرض نمازوں کے بعد، اور ان کی تخصیص اس لئے فرمائی کہ وہ سب حالتوں سے افضل ہیں تو ان میں امید اجابت زیادہ ہے۔ |

دیکھو صاف صریح ہے کہ نماز کے بعد بحیثیت دعا کچھ فرضوں ہی سے خاص نہیں بلکہ ان میں بوجہ افضلیت زیادہ خصوصیت ہے اور سائلین نے خود یہی پوچھا تھا کہ سب میں زیادہ کون سی

دعا مقبول ہے لہذا ان کی تقیید فرمائی گئی، بالجملہ جب تخصیص فرائض باطل ہو چکی تو اخراج واجبات پر کوئی دلیل نہیں بلکہ ان پر دلائل مطلقہ

---

۱ تکملہ بحار الانوار ملحق بمجمع البحار تحت لفظ قنع مطبوعہ منشی نولکشور لکھنئو ص ۱۷۴ ۲ تیسیر شرح الجامع الصغیر حدیث صلواۃ لیل مثنیٰ مثنیٰ الخ مکتبۃ الامام الشافعی الریاض ۹۹/۲ ۳ حصن حصین اوقات الاجابۃ مطبوعہ افضل المطابع لکھنؤ ہند ص ۲۲، جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱۸۸/۲ ۴ حواشی حصن حصین صفحہ مذکورہ کا حاشیہ ۱۶ مطبوعہ افضل المطابع لکھنؤ ہند ص ۱۷

Fatawa Razawiyya - Volume 8

Apart from this, the Hadith regarding supererogatory prayers (Nawafil) speaks by way of priority: if even the time following Nawafil is a place where prayers are likely to be answered, then how can obligatory acts, which are higher and greater than them and lead to a more complete pleasure of Allah, be excluded from this grace? Is this anything other than preferring the less preferred? (This is nothing but an unacceptable preference - Trans.)

Then I say: Rather, consider the reality of the matter. Just as there is specific proof for Fard (obligatory) and Nafl (optional), there is specific proof for Wajibat (necessary acts). In reality, Wajib is not a third thing, but belongs to one of these two sides, which uncertainty in proof has made a middle matter for a Mujtahid (jurist). For the Lawgiver (peace and blessings of Allah be upon him), in whose presence doubts and uncertainties in narration and understanding find no place, if a thing required by Shariah is truly commanded, it is definitively Fard; otherwise, it is certainly Nafl. There is no third option (other than these two, there is no third case - Trans.). In 'Talweeh', under the statement of 'Tanqeeh' regarding the section on 'His (PBUH) Actions', it is written: "Some of the actions of the Prophet (PBUH) which are worthy of following are Mubah (permissible), some Mustahab (recommended), some Wajib (necessary), and some Fard (obligatory)." It states:

Arabic	Urdu Translation
Indeed, His (PBUH) action in relation to us is characterized by that, such as making Witr Wajib upon him, not Mustahab or Fard, otherwise, what is proven to him by evidence is necessarily definitive, even his analogy (Qiyas) and effort (Ijtihad) are also definitive, etc.	Meaning, your (Prophet PBUH) actions in relation to us are characterized by them, for example, Witr was Wajib upon you, not Mustahab or Fard, because to you, a thing proven by evidence will certainly be definitive, to the extent that your analogy and Ijtihad are also definitive, etc. (Trans.)

The absolute researcher Imam in 'Fath' says:

Arabic	Urdu Translation
Obligation is considered from two perspectives: regarding its issuance from the Lawgiver and regarding its establishment in our right. Considering	There are two considerations in obligation: one is that it issued from the Lawgiver (PBUH), and the second is its proof in our right. So from the second consideration, if

Arabic

the second, if the path of its establishment from the Lawgiver is definitive, its attachment is Fard, and if it is speculative, it is Wajub. Therefore, this category, I mean Wajib, is not established for someone who heard from the Prophet (PBUH) directly.

Urdu Translation

its proof from the Lawgiver is definitive, it demands Fardiyat (obligation), and if the proof is speculative, then Wujub (necessity). This is why this type (Wujub) cannot be proven for a person who heard directly from the presence of the Prophet (PBUH).

1. Al-Tawdeeh wa al-Talweeh, Section on His (PBUH) Actions, printed by Noorani Kutub Khana Peshawar, p. 491. Page 522 of 673

इसके अलावा नफ़ल (स्वैच्छिक प्रार्थना) के बारे में हदीस प्राथमिकता के तौर पर कहती है: यदि नफ़ल के बाद का समय भी वह स्थान है जहाँ दुआओं के स्वीकार होने की प्रबल संभावना होती है, तो अनिवार्य कार्य (वाजिबात), जो उनसे श्रेष्ठ और महान हैं और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने का अधिक पूर्ण माध्यम हैं, इस अनुग्रह से कैसे बाहर रह सकते हैं? क्या यह कम पसंदीदा को प्राथमिकता देने के अलावा कुछ और है? (यह एक अस्वीकार्य प्राथमिकता के अलावा कुछ नहीं है - अनु.)

फिर मैं कहता हूँ: बल्कि मामले की वास्तविकता पर विचार करें। जिस तरह फ़र्ज़ और नफ़ल के लिए विशिष्ट प्रमाण हैं, वैसे ही वाजिबात के लिए भी विशिष्ट प्रमाण हैं। वास्तव में वाजिब कोई तीसरी चीज़ नहीं है, बल्कि यह इन दो पक्षों में से एक है जिसे प्रमाण में अनिश्चितता ने मुजतहिद (न्यायविद) के लिए एक मध्यम मामला बना दिया है। शरीयत के निर्माता (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम), जिनके सामने वर्णन और समझ में संदेह और अनिश्चितता का कोई स्थान नहीं है, यदि शरीयत द्वारा वांछित कोई चीज़ वास्तव में आदेशित है, तो वह निश्चित रूप से फ़र्ज़ है; अन्यथा, वह निश्चित रूप से नफ़ल है। इन दोनों के अलावा कोई तीसरा विकल्प नहीं है (इन दोनों के अलावा कोई तीसरा मामला नहीं है - अनु.)। 'तलवीह' में 'तनक़ीह' के कथन के अंतर्गत 'उनके(सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) कार्यों' के अनुभाग में लिखा है: "नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के कुछ कार्य जो अनुसरण के योग्य हैं, मुबाह (अनुमेय) हैं, कुछ मुस्तहब (अनुशंसित), कुछ वाजिब (आवश्यक), और कुछ फ़र्ज़ (अनिवार्य) हैं।" इसमें लिखा है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
वास्तव में, हमारे संबंध में उनका (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) कार्य उसकी विशेषता रखता है, जैसे कि वित्र को उन पर वाजिब बनाना, न कि मुस्तहब या फ़र्ज़, अन्यथा, प्रमाण द्वारा उनके पास जो सिद्ध होता है वह अनिवार्य रूप से निश्चित होगा, यहाँ तक कि उनका कयास (सादृश्य) और इज्तिहाद (प्रयास) भी निश्चित है, आदि।	यानी, आपके(नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) कार्य हमारे संबंध में उनसे विशेषित हैं, उदाहरण के लिए वित्र आप पर वाजिब था, न कि मुस्तहब या फ़र्ज़, क्योंकि आपके यहाँ प्रमाण से सिद्ध बात निश्चित रूप से कतई (निश्चित) होगी, यहाँ तक कि आपका कयास और इज्तिहाद भी कतई है आदि। (अनु.)

मुतलक़ शोधकर्ता इमाम 'फतह' में फरमाते हैं:

अरबी

दायित्व (लुज़ूम) को दो दृष्टिकोणों से देखा जाता है: शरीअत के निर्माता से इसके जारी होने के संबंध में और हमारे हक में इसके स्थापित होने के संबंध में। दूसरे दृष्टिकोण पर विचार करते हुए, यदि शरीअत के निर्माता से इसके स्थापित होने का मार्ग निश्चित है, तो इसका संबंध फ़र्ज़ से है, और यदि यह अनुमानित है, तो यह वुजूब है। इसीलिए, यह श्रेणी, यानी वाजिब, उस व्यक्ति के लिए स्थापित नहीं होती जिसने सीधे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से सुना हो।

उर्दू अनुवाद

लुज़ूम (दायित्व) में दो विचार हैं: एक यह कि वह शारे (कानून देने वाले) अलैहिस्सलाम से जारी हुआ, और दूसरा यह कि उसका प्रमाण हमारे हक में हुआ। तो दूसरे विचार से यदि शारे से उसका प्रमाण कतई (निश्चित) है, तो उसकी मांग फर्ज़ियत है, और यदि प्रमाण ज़न्नी (अनुमानित) है, तो वुजूब। यही कारण है कि यह प्रकार (वुजूब) उस व्यक्ति के हक में सिद्ध नहीं हो सकता जिसने सीधे हुज़ूर अलैहिस्सलातु वस्सलाम से सुना हो।

1. अत-तौदीह व अत-तलवीह, उनके(सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) कार्यों पर अनुभाग, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित, पृ. 491। पृष्ठ 673 का 522

کے سوا حدیث نافلہ بر سبیلِ اولویت ناطق ، کہ جب ادبار نوافل تک محل دعاء مظنہ اجابت ہیں تو واجبات کہ ان سے اعلیٰ وا عظم اور رضائے الٰہی میں اوفر واتم ہیں کیونکر اس فضل سے خارج ہوں گے ھل ھذا الاتر جیح المرجوح (یہ تر جیح موجوع کے سوا کچھ نہیں ۔ ت)

ثم اقول: بلکہ واقع نفس الامر کو لحاظ کیجئے تو فریضہ و نافلہ کے لئے ثبوت ، خاص بعینہ واجبات کے لئے ثبوت خاص ہے کہ واجب حقیقۃً کوئی تیسری چیز نہیں بلکہ انہیں دو طرفوں سے ایک میں ہے جسے شبہہ فی الثبوت نے مجتہد کے نزدیک ایک امر متوسط کر دیا صاحب شرع صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جس کے حضور روایۃً ودرایۃً ظنون و شبہات کو بار نہیں اگر اس کے نزدیک شیئ مطلوب فی الشرع حقیقۃً مامور بہ ہے قطعاً فرض ورنہ یقیناً نافلہ ، لا ثالث لھما (ان دو کے علاوہ کوئی تیسری صورت نہیں ۔ ت) تلویح میں زیر قول تنقیح فصل فی افعالہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فمنھا ما یقتدی بہ وھو مباح مستحب وواجب وفرض (آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے کچھ افعال قابل اقتداء مباح ، کچھ مستحب ، کچھ واجب اور کچھ فرض ہیں ۔ت) تحریر فرمایا :

عربی	اردو ترجمہ
ان فعلہ علیہ الصلوٰۃ والسلام بالنسبۃ الینا یتصف بذلك بان جعل الوتر واجباً علیہ لا مستحباً او فرضاً والا فالثابت عندہ بدلیل یکون قطعیا لا محالۃ حتی قیاسہ واجتھادہ ایضاً قطعی الخ	یعنی آپ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے افعال ہماری نسبت ان سے متصف ہیں مثلاً وتر آپ پر واجب تھے نہ کہ مستحب یا فرض ، ورنہ آپ کے ہاں دلیل ثابت شدہ امر یقیناً قطعی ہوگا حتی کہ آپ کا قیاس و اجتہاد بھی قطعی ہے الخ (ت)

امام محقق علی الاطلاق امامیہ فتح میں فرماتے ہیں :

عربی	اردو ترجمہ
اللزوم يلاحظ باعتبارين باعتبار صدوره من الشارع وباعتبار ثبوته في حقنا فملاحظة باعتبار الثانی ان كان طريق ثبوته ظنيا كان الوجوب ولذا لا يثبت هذا القسم اعنی الواجب في حق من سمع من النبي صلى الله عليه وسلم مشافهة	لزوم میں دو اعتبار ہیں ایک یہ کہ وہ شارع علیہ السلام سے صادر ہوا اور دوسرا یہ کہ اس کا ثبوت ہمارے حق میں ہوا تو دوسرے اعتبار سے اگر اس کا ثبوت شارع سے قطعی ہے تو اس کا تقاضا فرضیت ہے ، اور اگر ثبوت ظنی ہے تو وجوب ۔ یہی وجہ ہے کہ یہ قسم (وجوب) اس شخص کے حق میں ثابت نہیں ہو سکتی جس نے براہِ راست حضور علیہ الصلوٰۃ والسلام سے

1 التوضیح والتلویح فصل فی افعاله صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ص

(Arabic) مع قطعية دلالة المسموع فليس في حقه الا الفرض اوغير اللازم من السنة فما بعدها وظهربهذا ان ملاحظة باعتبار الاول ليس فيه وجوب بل الفرضية اوعدم اللزوم اصلاً ١ اه ملخصاً	**(Urdu) Heard, while the indication of what was heard was definitive, so in his right, it would be Fard (obligatory), or it would not be binding but Sunnah or a lower rank than that. From this, it becomes clear that considering the first, there is no Wujub (necessity) there, but rather Fardiyyat (obligation), or no binding at all. Summarized. (T)**

So, by the grace of Allah, with the testimony of the Quran, Hadith, and the sayings of scholars, it has been proven that making supplication (du'a) after the five daily prayers, the two Eids, Tahajjud, and every kind of prayer is Shariah-wise permissible, rather recommended (mandub) and desirable, and that is the desired objective.

Secondly, I say: And with Allah is success. Du'a, by the text of the Quran and Hadith and the consensus of the ancient imams and the greatest Hadith, is among the recommended acts of Shariah. And seeking its times of acceptance is Sunnah and beloved. The Exalted One said: "There did Zechariah pray to his Lord"[2] (Prophet Zechariah, peace be upon him, prayed to his Lord there. T). It is mentioned in the Hadith that the radiant Prophet, the Master of the World, peace and blessings of Allah be upon him, says:

(Arabic) ان لربكم في ايام دهركم نفحات، فتعرضوا له لعله ان يصيبكم نفخة منها فلاتشتقون بعدها ابداً ٣ـ رواه الطبراني في الكبير عن محمد بن مسلمة رضي الله تعالى عنه۔	**(Urdu) Indeed, for your Lord, in the days of your times, there are certain moments of giving, forgiveness, manifestation, and benevolence; so try to attain them, perhaps one of those moments reaches you, and then misfortune never comes near you. Tabarani narrated it in al-Kabir from Muhammad bin Maslamah, may Allah be pleased with him.**

And the Hadith itself has given a sign of one of those times as the gathering of Muslims, where a group of Muslims gathers, makes supplications, some submit requests and some say 'Ameen'. It is in the book Al-Mustadrak 'ala al-Bukhari wa Muslim:

(Arabic) عن حبيب بن مسلمة الفهري رضي الله تعالى عنه وكان مجاب الدعوة قال سمعت رسول الله	(Urdu) Meaning Habib bin Maslamah, may Allah be pleased with him, who was one whose prayers were granted, says that I heard the radiant Prophet, the Master of the World...

[1] Fath al-Qadir, Chapter of Imamate, published by Nooria Razawiya, Sukkur, 1/301. [2] The Quran, 3/38. [3] Al-Mu'jam al-Kabir, narrated from Muhammad bin Maslamah, Hadith 519, published by Maktaba Faisalia, Beirut, 19/234.

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

(अरबी) مع قطعية دلالة المسموع فليس في حقه الا الفرض اوغير اللازم من السنة فما بعدها وظهربهذا ان ملاحظة باعتبار الاول ليس فيه وجوب بل الفرضية اوعدم اللزوم اصلاً ١ اه ملخصاً

(उर्दू) सुना गया, जबकि सुने हुए का प्रमाण निश्चित था, तो उसके हक़ में वह फ़र्ज़ ही होगा, या लाज़िम नहीं सुन्नत होगा या उससे निचला दर्जा। इससे स्पष्ट हो गया कि पहले के विचार से वहाँ वाजिब नहीं बल्कि फ़र्ज़ियत है या बिल्कुल लाज़िम ही नहीं। (संक्षिप्त) (त)

अतः अल्लाह के शुक्र से, क़ुरान और हदीस की गवाही और उलेमा के कथनों से यह साबित हुआ कि पाँचों वक़्त की नमाज़, ईदों, तहज्जुद और अन्य हर तरह की नमाज़ के बाद दुआ माँगना शरीअत के अनुसार जायज़ बल्कि मन्दूब (पसंदीदा) और वांछनीय है, और यही अभीष्ट है।

दूसरे, मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है। दुआ क़ुरान और हदीस की स्पष्ट आयतों और प्राचीन इमामों के सर्वसम्मति और सबसे बड़ी हदीस के अनुसार शरीअत की पसंद की गई चीज़ों (मन्दूबात) में से है, और इसकी क़बूलियत के मौक़ों की तलाश सुन्नत और पसंदीदा है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: "वहीं हज़रत ज़करिया अलैहिस्सलाम ने अपने रब से दुआ की"[2] (हज़रत ज़करिया अलैहिस्सलाम ने वहाँ अपने रब से दुआ की। त)। हदीस में है, हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम फ़रमाते हैं:

(अरबी) ان لربكم في ايام دهركم نفحات، فتعرضوا له لعله ان يصيبكم نفخة منها فلاتشتقون بعدها ابداً ٣۔ رواه الطبراني في الكبير عن محمد بن مسلمة رضي الله تعالى عنه۔

(उर्दू) बेशक तुम्हारे रब के लिए तुम्हारे ज़माने के दिनों में कुछ वक़्त अता और बख़्शिश और तजल्ली और करम वजूद के हैं, तो उन्हें पाने की तदबीर करो, शायद उनमें से कोई वक़्त तुम्हें मिल जाए तो फिर कभी बदनसीबी तुम्हारे पास न आए। इसे तबरानी ने 'कबीर' में मुहम्मद bin मसलमा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया।

और स्वयं हदीस ने उन समयों में से एक समय मुसलमानों के एकत्रित होने का संकेत दिया कि मुसलमानों का एक समूह जमा होकर दुआ माँगे, कुछ अपनी बात कहें और कुछ आमीन कहें। किताब 'अल-मुस्तदरक अलल बुख़ारी व मुस्लिम' में है:

(अरबी) عن حبيب بن مسلمة الفهري رضي الله تعالى عنه وكان مجاب الدعوة قال سمعت رسول الله	**(उर्दू) यानी हबीब बिन मसलमा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु जो मुस्तजाबुद दुआ (जिनकी दुआ क़बूल होती हो) थे, फ़रमाते हैं कि मैंने हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम...**

[1] फ़तह अल-क़दीर, बाबुल इमामत, प्रकाशित नूरिया रज़विया, सक्खर, ३०१/१ [2] अल-क़ुरान ३८/३ [3] अल-मुअजम अल-कबीर, मुहम्मद बिन मसलमा से रिवायत, हदीस ५१९, प्रकाशित मकतबा फ़ैसलिया, बैरुत २३४/१९

مع قطعية دلالة المسموع فليس في حقه الا الفرض اوغير اللازم من السنة فما بعدها وظهربهذا ان ملاحظة باعتبار الاول ليس فيه وجوب بل الفرضية اوعدم اللزوم اصلاً ١ اه ملخصاً

سُنا حالانکہ مسموع کی دلالت قطعی تھی تو اس کے حق میں وہ فرض ہی ہوگا، یا لازم نہ ہوگا سُنّت ہوگا یا اس سے نچلا درجہ، اس سے ظاہر ہوگیا کہ اول کے اعتبار سے وہاں وجوب نہیں بلکہ فرضیت ہے یا بالکل لزوم ہی نہیں اھ ملخصاً (ت)

پس بحمد اللہ بشہادتِ قرآن و حدیث و اقوالِ علماء ثابت ہوا کہ نماز پنجگانہ و عیدین و تہجد و غیرہاہر گونہ نماز کے بعد دُعا مانگنا شرعاً جائز بلکہ مندوب و مرغوب ہے وھو المطلوب۔

ثانیاً اقول: وباللہ التوفیق دُعا بنصِ قرآن و حدیث واجماعِ ائمہ قدیم و حدیثِ اعظم مندوباتِ شرع سے ہے اور اس کے مظانِ اجابت کی تحری مسنون و محبوب، قال جل ذکرہ: هُنَالِكَ دَعَا زَكَرِيَّا رَبَّه ٢ (حضرت زکریا علیہ السلام نے وہاں اپنے رب سے دعا کی۔ت) حدیث میں ہے حضور پُر نور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں :

ان لربكم في ايام دهركم نفحات، فتعرضوا له لعله ان يصيبكم نفخة منها فلاتشتقون بعدها ابداً ٣۔ رواه الطبراني في الكبير عن محمد بن مسلمة رضي الله تعالى عنه۔

بیشک تمہارے رب کے لئے تمہارے زمانے کے دنوں میں کچھ وقت عطا و بخشش و تجلی و کرم وجود کے ہیں تو انہیں پانے کی تدبیر کرو شاید ان میں سے کوئی وقت تمہیں مل جائے تو پھر کبھی بدبختی تمہارے پاس نہ آئے۔ اسے طبرانی نے کبیر میں محمد بن مسلمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا۔

اور خود حدیث نے اُن اوقات سے ایک وقت اجتماعِ مسلمین کا نشان دیا کہ ایک گروہ مسلمانان جمع ہو کر دعا مانگے کچھ عرض کریں کچھ آمین کہیں۔ کتاب المستدرک علی البخاری و مسلم میں ہے :

عن حبیب بن مسلمة الفهري رضي الله تعالى عنه وكان مجاب الدعوة قال سمعت رسول الله

یعنی حبیب بن مسلمہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کہ مستجاب الدعوات تھے، فرماتے ہیں کہ میں نے حضور پُر نور سیدِ عالم

1 فتح القدیر باب الامامۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۳۰۱/۱ 2 القرآن ۳۸/۳ 3 المعجم الکبیر مروی از محمد بن مسلمہ حدیث ۵۱۹ مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲۳۴/۱۹

Fatawa Rizvia Volume 8

It is said: No group of people will gather together, some of them supplicating and others saying 'Amen', but that Allah will answer them - 1 He (peace and blessings of Allah be upon him) was heard saying that no group will gather such that some supplicate and some say 'Amen', except that Allah, the Mighty and Sublime, will accept their supplication.

Scholars have counted the gathering of Muslims among the times of acceptance (of prayer). It is stated in Al-Hisn al-Hasin: "And the gathering of Muslims" 2, meaning that the gathering of Muslims being a time of acceptance is derived from the Hadith of Sahah Sitta. Ali Qari states in the commentary: Furthermore, whenever the gathering is larger, such as on Fridays, the two Eids, and Arafat, the hope for acceptance is more evident - 3 That is, the larger the crowd, as on Fridays, Eids, and Arafat, the more evident the hope for acceptance will be.

The humble servant, may Allah forgive him, says: Furthermore, restricting oneself to the prayer after Salat is not at all required by Shariah; rather, the seeking of its contrary is proven. It has been passed down from Hadith itself that the Radiant Presence, Master of the Day of Resurrection, peace and blessings of Allah be upon him, commanded raising hands and supplicating after every two units of voluntary (nafl) prayer, and deemed the prayer of one who does not do so as deficient, even though supplications have already been made within the prayer, and that moment occurred four times which is the extreme degree of closeness to Allah, i.e., prostration (sujud), in which there was a specific command for supplication. The Radiant Presence, Master of the Messengers, peace and blessings of Allah be upon him, says: "The closest a servant is to his Lord is when he is prostrating, so increase your supplications." - 4 Narrated by Muslim, Abu Dawood, and An-Nasa'i from Abu Hurayrah, may Allah be pleased with him. Most closeness to the Lord for a servant is in the state of prostration, so increase supplication in it. This was narrated by Muslim, Abu Dawood, and An-Nasa'i from Hazrat Abu Hurayrah, may Allah be pleased with him.

In fact, even if there is no specific request, the glorification (tasbih) performed in prostration is itself a supplication because it is a form of remembrance (dhikr), and every dhikr is a supplication. Maulana Ali Qari states in Mirqat Sharh Mishkat: "Every

dhikr is a supplication" 5 (Every remembrance is a prayer. T) Imam Hafiz al-Din al-Nasafi.

1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Du'a, Habib bin Maslama was an answerer of prayers, printed by Dar al-Fikr, Beirut, 3 / 377.
2. Al-Hisn al-Hasin, Times of Acceptance, printed by Afzal al-Matabi', Lucknow, India, p. 23.
3. Hirz Thamin Sharh Hisn Hasin.
4. Sunan an-Nasa'i, The Closest a Servant is to Allah, Mighty and Sublime, printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1 / 170.
5. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on the Reward of Tasbih, Second Section, printed by Maktaba Imdadia, Multan, 112/5.

कहा गया है: कोई भी लोगों का समूह ऐसा इकट्ठा नहीं होगा कि उनमें से कुछ दुआ करें और कुछ 'आमीन' कहें, मगर यह कि अल्लाह उनकी दुआ स्वीकार करेगा - 1 हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को फरमाते सुना कि कोई भी गिरोह ऐसा जमा नहीं होगा कि उनमें से कुछ दुआ करें और कुछ आमीन कहें, मगर यह कि अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल उनकी दुआ कुबूल फ़रमाएगा।

विद्वानों ने मुसलमानों के जमावड़े को दुआ की क़बूलियत (इजाबत) के समयों में गिना है। 'हिसन हसीन' में है: "और मुसलमानों का जमावड़ा" 2, यानी मुसलमानों का इकट्ठा होना दुआ की क़बूलियत के समयों में होना सहाह सित्ता (छह प्रामाणिक पुस्तकों) की हदीस से लिया गया है। अली कारी शरह में फ़रमाते हैं: इसके अलावा, जब भी जमावड़ा बड़ा होता है, जैसे कि जुमा, दोनों ईद और अराफ़ात में, तो दुआ की क़बूलियत की उम्मीद अधिक स्पष्ट होती है - 3 अर्थात्, जिस कद्र मज्मा ज़्यादा होगा जैसे जुमा, ईदैन और अराफ़ात में, उसी कद्र इजाबत (क़बूलियत) की उम्मीद ज़्यादा ज़ाहिर होगी।

फकीर (अल्लाह उसे क्षमा करे) कहता है कि फिर नमाज़ के बाद की दुआ पर ही इक्तिसार (सीमित रहना) शरीअत में हरगिज़ मक़सूद नहीं है, बल्कि इसके उलट की माँग साबित है। खुद हदीस से गुज़रा है कि हुज़ूर पुरनूर, सय्यद-ए-यौम-ए-नुशूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हर दो रकात नफ़्ल के बाद हाथ उठाकर दुआ माँगने का हुक्म दिया और जो ऐसा न करे उसकी नमाज़ को अधूरा (नाक़िस) बताया, हालांकि नमाज़ में दुआएँ हो चुकी होती हैं और वह वक्त चार बार आया जो अल्लाह के अत्यंत निकटता का समय है यानी सज्दा, जिसमें विशेष रूप से दुआ का हुक्म था। हुज़ूर पुरनूर सय्यदुल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "बंदा अपने रब के सबसे करीब सजदे की हालत में होता है, इसलिए इसमें खूब दुआ करो।" - 4 इसे मुस्लिम, अबू दाऊद और नसाई ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है। सब से ज़्यादा क़ुर्ब बंदे को अपने रब से सज्दे की हालत में होता है तो इसमें दुआ की कसरत करो। इसे मुस्लिम, अबू दाऊद और नसाई ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया।

बल्कि अगर कोई विशेष सवाल न भी हो, तो सज्दे में होने वाली तस्बीह खुद दुआ है क्योंकि वह ज़िक्र है और हर ज़िक्र दुआ है। मौलाना अली कारी 'मिरक़ात शरह मिश्क़ात' में फ़रमाते हैं: "हर ज़िक्र दुआ है" 5 (हर ज़िक्र दुआ है। त) इमाम हाफ़िज़ुद्दीन अन-नफ़ी।

1. अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताबुल दुआ, हबीब बिन मसलमा मुजीबुद-दावात थे, मक़्बूआ दारुल फ़िक्र, बैरूत, 3/377
2. हिसन हसीन, औक़ातुल इजाबत, मक़्बूआ अफ़ज़लुल मताबे, लखनऊ, हिंद, पृ. 23
3. हिर्ज़-ए-शमीन शरह हिसन हसीन
4. सुनन अन-नसाई, अक्रबु मा यकूनुल अब्दु मिनल्लाहि अज़्ज़-व-जल्ल, मक़्बूआ नूर मोहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब, कराची, 1/170
5. मिरक़ात शरह मिश्क़ात, बाबू सवाबित-तस्बीह, फ़स्ल-ए-सानी, मक़्बूआ मक़्तबा इमदादिया, मुल्तान, 112/5

पृष्ठ 524 / 673 आई.टी. मज्लिस दावत-ए-इस्लामी

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

یقول لا یجتمع ملؤ فیدعو بعضھم یؤمن بعضھم الا اجابھم اللہ - 1 صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو فرماتے سنا کہ کوئی گروہ جمع نہ ہوگا کہ اُن بعض دعا کریں بعض آمین کہیں، مگر یہ کہ اللہ عزوجل اُن کی دعا قبول فرمائے گا۔

علماء نے مجمع مسلمان کو اوقاتِ اجابت سے شمار کیا۔ حصن حصین میں ہے: واجتماع المسلمین 2ع یعنی مسلمین کا اوقاتِ اجابت سے ہونا حدیث صحاح ستہ سے مستفاد ہے۔ علی قاری شرح میں فرماتے ہیں: ثم کل مایکون الاجتماع فیہ اکثر کالجمعۃ والعیدین وعرفۃ یتوقع فیہ رجاء الاجابۃ اظھر - 3 یعنی جس قدر مجمع کثیر ہوگا جیسے جمعہ و عیدین و عرفات میں، اسی قدر امید اجابت ظاہر تر ہوگی۔

فقیر غفر اللہ کہتا ہے پھر دعائے نماز پر اقتصار ہرگز شرعاً مطلوب نہیں بلکہ اس کے خلاف کی طلب ثابت، خود حدیث سے گزرا حضور پر نور سید یوم النشور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ہر دو رکعت نفل کے بعد ہاتھ اٹھا کر دعا مانگنے کا حکم دیا اور جو ایسا نہ کرے اس کی نماز کو ناقص بتایا، حالانکہ نماز میں دعائیں ہو چکیں اور وہ وقت چار بار آیا جو انتہائی درجہ قرب الٰہی کا ہے یعنی سجود جس میں بالخصوص حکم دعا تھا، حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں۔ اقرب ما یکون العبد من ربہ وھو ساجد فاکثروا الدعاء - 4 رواہ مسلم وابو داؤد والنسائی عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ۔ سب سے زیادہ قرب بندے کو اپنے رب سے حالتِ سجود میں ہوتا ہے تو اس میں دعا کی کثرت کرو۔ اسے مسلم، ابو داؤد اور نسائی نے حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا۔

بلکہ اگر سوال نہ بھی ہو تو تسبیح کہ سجود میں ہوتی ہے خود دعا ہے کہ وہ ذکر ہے اور ہر ذکر دعا۔ مولانا علی قاری مرقاۃ شرح مشکوٰۃ میں فرماتے ہیں: کل ذکر دعا 5 (ہر ذکر دعا ہے۔ ت)

امام حافظ الدین النسفی

1 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء حبیب بن مسلمہ کان مجیب الدعوات مطبوعہ دارالفکر بیروت ۳ / ۳۷۷ 2 حصن حصین اوقات الاجابۃ مطبوعہ افضل المطابع لکھنو ہند ص ۲۳ 3 حرز ثمین شرح حصن حصین 4 سنن النسائی اقرب مایکون العبد من اللہ عزوجل مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱ / ۱۷۰ 5 مرقاۃ شرح مشکوٰۃ باب ثواب التسبیح فصل ثانی مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۱۱۲/۵

Fatawa Razawiya Volume 8

In the chapter on Takbir al-Tashriq of 'Kafi Sharh Wafi', it is stated:

Allah Almighty says: "Call upon your Lord with humility and in secret." (7:55) Allah Almighty's blessed command is: Call upon your Lord with humility and in secret. (T)

Every remembrance (dhikr) is a supplication (dua). (Every dhikr is a dua. T) In this sense, this humble servant [the author] has mentioned clear proofs in his treatise 'Idhan al-Ajr fi Adhan al-Qabr' (A rare research on the permissibility of calling the Adhan at the grave after burial. T). More comprehensive discussion is found in this humble servant's treatise 'Nasim al-Saba fi anna al-Adhan yahul al-Waba' (The morning breeze regarding the fact that Adhan averts plague. T). Imam Bukhari, in his Sahih, 'Kitab al-Da'wat' (Book of Supplications), established a chapter 'Dua when descending into a valley' (When one descends into a low place, one should supplicate. T) and stated: "It contains a Hadith of Jabir, may Allah be pleased with him." (A Hadith narrated from Hazrat Jabir, may Allah be pleased with him, is mentioned regarding this. T) In 'Irshad al-Sari' it is stated:

It contains, i.e., in this chapter, the previously mentioned Hadith of Jabir al-Ansari (may Allah be pleased with him) from the chapter 'Glorification when descending into a valley' in the 'Book of Jihad', with the wording: "Whenever we ascended, we said Takbir (Allahu Akbar), and whenever we descended, we said SubhanAllah." This is the end of the Hadith, the chain of narration is omitted.

In this, meaning in this matter, there is a Hadith narrated from Hazrat Jabir al-Ansari (may Allah be pleased with him) which was mentioned in the chapter 'Glorification when descending into a valley' of the 'Book of Jihad'. The words are: "When we climbed to a high place, we said Takbir, and when we descended, we said SubhanAllah." These are the final words of the Hadith, the chain is omitted here. (T)

Look, Imam Bukhari (may the mercy of the Creator be upon him) considered mere glorification (tasbih) as supplication (dua) and showed that 'Glorification when descending into a valley' and 'Supplication when descending into a valley' (When descending, say tasbih, and when descending, supplicate. T) are one and the same. Despite the fact that prayers had already been offered during Salah at such a time of extreme proximity [to Allah], the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was not content with that alone and strongly emphasized supplication again after the Salaam. Furthermore, a person cannot make every kind of

supplication during prayer, as the Imams have explained in detail in books of jurisprudence.

---

1 Kafi Sharh Wafi, chapter on Takbir al-Tashriq 2 Sahih al-Bukhari, Kitab al-Da'wat, printed by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 2/944 3 Irshad al-Sari, Chapter on 'Dua when descending into a valley', etc., printed by Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 9/218

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

'काफ़ी शरह वाफ़ी' के तकबीर-ए-तशरीक़ वाले अध्याय में उल्लेख है:

अल्लाह तआला का फ़रमान है: "अपने रब को गिड़गिड़ाकर और चुपके से पुकारो।" अल्लाह तआला का मुबारक फ़रमान है: तुम अपने रब को पुकारो गिड़गिड़ाकर और आहिस्ता (त)

हर ज़िक्र दुआ है (हर ज़िक्र दुआ है। त) इस अर्थ में इस फ़क़ीर (लेखक) ने अपने रिसाले "इज़ानुल अज्र फ़ी अज़ानिल क़ब्र" (क़ब्र पर दफ़्न के बाद अज़ान की अनुमति पर दुर्लभ शोध। त) में स्पष्ट प्रमाणों का उल्लेख किया है और इससे अधिक विस्तृत चर्चा इस फ़क़ीर के रिसाले "नसीमुल सबा फ़ी अन्नल अज़ान यहूलुल वबा" (सुबह की हवा इस बारे में कि अज़ान से वबा टल जाती है। त) में है। इमाम बुखारी ने अपनी 'सहीह' की 'किताब-उद-दावात' में एक अध्याय 'जब किसी निचली जगह उतरे तो दुआ करे' (जब किसी निचली जगह उतरे तो दुआ करे। त) स्थापित किया है और उसमें फ़रमाया: "इसमें हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु से हदीस वर्णित है।" (इस बारे में हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु से हदीस रिवायत की गई है। त) 'इरशाद-उस-सारी' में है:

इसमें यानी इस अध्याय में हज़रत जाबिर अंसारी रज़ियल्लाहु अन्हु की वही हदीस है जो 'किताबुल जिहाद' के'निचली जगह उतरते समय तस्बीह' वाले अध्याय में गुज़री है, जिसके शब्द हैं: "जब हम ऊँचाई पर चढ़ते तो तकबीर कहते और जब उतरते तो सुब्हान अल्लाह कहते।" यह हदीस का अंत है, यहाँ सनद (श्रृंखला) हटा दी गई है।	इस मसले में हज़रत जाबिर अंसारी रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है जो 'किताबुल जिहाद' के अध्याय 'तस्बीह जब वादी में उतरे' में आ चुकी है। शब्द ये हैं: "जब हम ऊँची जगह चढ़ते तो तकबीर कहते और जब उतरते तो सुब्हान अल्लाह कहते।" ये हदीस के आख़िरी शब्द हैं, सनद यहाँ छोड़ दी गई है। (त)

देखो, इमाम बुखारी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने सिर्फ़ तस्बीह को दुआ ठहराया और 'नीचे उतरते वक़्त तस्बीह' और 'नीचे उतरते वक़्त दुआ' (जब नीचे उतरे तो तस्बीह पढ़े और जब नीचे उतरे तो दुआ करे। त) का एक ही अर्थ बताया। गौर करें कि नमाज़ के दौरान अल्लाह के इतने क़रीब होने के वक़्त दुआएँ हो चुकी थीं, फिर भी हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन पर बस नहीं किया और सलाम के बाद फिर से दुआ की कड़ी ताकीद फ़रमाई। इसके अलावा, आदमी नमाज़ में हर क़िस्म की दुआ नहीं माँग सकता जैसा कि इमामों ने फ़िक़्ह की किताबों में विस्तार से बताया है।

1 काफ़ी शरह वाफ़ी, तकबीर-ए-तशरीक़ का अध्याय 2 सहीह अल-बुखारी, किताब-उद-दावात, प्रकाशक: क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची 944/2 3 इरशाद-उस-सारी, अध्याय: दुआ जब वादी में उतरे आदि, प्रकाशक: दारुल कुतुबुल इलमिया बेरूत 218/9

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

کافی شرح وافی کی فصل فی تکبیر التشریق میں فرماتے ہیں:

قال تعالٰی اُدْعُوْا رَبَّکُمْ تَضَرُّعًا وَّ اللہ تعالٰی کا فرمان مبارک ہے: تم اپنے رب کو پکارو گڑ گڑا کر اور آہستہ (ت) خُفْیَۃً 1۔

کل ذکر دعاء 2 (ہر ذکر دعا ہے۔ ت) اس معنی پر فقیر نے اپنے رسالہ "ایذان الاجر فی اذان القبر" (دفن کرنے کے بعد قبر پر اذان کے جواز پر نادر تحقیق۔ ت) میں دلائل واضحہ ذکر کئے اور اس سے زیادہ کلام مستوفی فقیر کے رسالہ "نسیم الصبا فی ان الاذان یحول الوباء" (صبح کی ہوا اس بارے میں کہ اذان سے وباء ٹل جاتی ہے۔ ت) میں ہے ، امام بخاری نے اپنی صحیح کی کتاب الدعوات میں باب الدعاء اذا ھبط وادیاً (جب کسی نچلی جگہ اترے تو دعا کرے۔ ت) وضع کیا اور اس میں فرمایا: فیہ حدیث جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ 3 (اس بارے میں حضرت جابر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے حدیث مروی ہے۔ ت) ارشاد الساری میں ہے:

فیہ اي في الباب حدیث جابر الانصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ السابق في باب التسبیح اذا ھبط وادیاً من کتاب الجھاد بلفظ کنا اذا صعدنا کبرنا و انزلنا سبحنا ھذا آخر الحدیث اھ بحذف السند۔

اس میں یعنی اس مسئلہ میں حضرت جابر انصاری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی حدیث ہے جو کتاب الجہاد کے باب التسبیح اذا ھبط وادیا میں گزری ہے الفاظ یہ ہیں: جب ہم بلند جگہ چڑھتے تو تکبیر کہتے اور جب اترتے تو سبحان اللہ کہتے۔ یہ حدیث کے آخری الفاظ ہیں اھ سند محذوف ہے۔ (ت)

دیکھو امام بخاری علیہ رحمۃ الباری نے صرف تسبیح کو دُعا ٹھہرایا اور التسبیح اذا ھبط وادیاً والدعاء اذا ھبط وادیاً (جب نیچے اترے تو تسبیح پڑھے اور جب نیچے اترے تو دعا کرے۔ت) کا ایک مصداق بتایا تو بانکہ ایسے قرب اتم کے وقت میں نماز میں دعائیں ہو چکیں پھر بھی حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان پر قناعت پسند نہ فرمائی اور بعد سلام پھر دُعا کی تاکید شدید کی۔ علاوہ بریں نماز میں آدمی ہر قسم کی دعا نہیں مانگ سکتا کما بسط الائمۃ في کتب الفقھیۃ (جیسا کہ ائمہ کرام نے کتب فقہیہ میں اس کی تفصیل بیان

---

1 کافی شرح وافی فصل فی تکبیر التشریق 2 صحیح البخاری کتاب الدعوات مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۲/۹۴۴ 3 ارشاد الساری باب الدعاء اذا ھبط وادیاً الخ مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت ۹/۲۱۸

Fatawa Razawiya, Volume 8

...is. (T) And one should ask for every kind of need from their Lord (Jalla wa A'la), and there is a command to seek the moment of acceptance in the request. According to Hadiths, this time is among the most likely moments for acceptance. Thus, undoubtedly, the gathering for the two Eids for prayer and supplication is proven by specific permission from Hadith and Shariah guidance, and fulfilling the command 'expose yourselves to them' (the breezes of mercy) is the objective. Then I say: If there were no specific mention of the Eid gathering in Shariah, its inclusion in this general rule would still be proven. Furthermore, Hadiths have emphasized its great specificity and provided immense encouragement and motivation for supplication. So much so that the Radiant Presence, Master of the Messengers (Sallallahu Alaihi Wa Sallam), in that era of goodness and righteousness which was completely pure and free from fitna and corruption, would command that virgins and secluded women should come out for the Eids and participate in the prayers of Muslims. Even menstruating women were commanded to sit away from the prayer area (Musalla) but join in the supplications of that day. Imam Ahmad and the authors of the Sahah Sittah (six authentic books of Hadith) narrate from Hazrat Umm Atiyah (Radiallahu Anha) that the Radiant Presence (Sallallahu Alaihi Wa Sallam) said:

تخرج العواتق وذوات الخدور والحيض ويعتزل الحيض المصلى ويشهدن الخير ودعوة المسلمين.

Young virgins, secluded women, and menstruating women should all go to the Eid-gah, and those in their periods should sit apart from the prayer area and be present for this goodness and the prayers of the Muslims.

Another narration from Sahih Bukhari is in these words:

قالت كنا نومر ان نخرج يوم العيد حتى تخرج البكر من خدرها حتى تخرج الحيض فيكن خلف الناس فيكبرن بتكبيرهم ويدعون بدعائهم يرجون بركة ذلك اليوم وطهرته

Meaning, Hazrat Umm Atiyah (Radiallahu Anha) says that we women were commanded to go out on the day of Eid, so much so that a virgin would come out from her veil, and even menstruating women would come out, sit behind the rows, say Takbir upon the Takbir of the Muslims, and pray along with their prayers, in the hope of the blessing and purity of that day.

Imam Bayhaqi and Abu al-Shaykh Ibn Hibban in 'Kitab al-Thawab' narrate from Hazrat Abdullah bin Abbas (Radiallahu Anhuma)... I say: A witness to this precious

Hadith is found in the narration of Imam Uqayli from the Hadith of Anas bin Malik (Radiallahu Anhu). In the narrations of this humble one, a chain of transmission exists from this weak servant to the Radiant Presence (Sallallahu Alaihi Wa Sallam), Alhamdu Lillah. 12 (M).

---

1. Sahih al-Bukhari, Chapter on the presence of menstruating women at the two Eids etc., published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/174 & 134.
2. Sahih al-Bukhari, Chapter on the presence of menstruating women at the two Eids etc., published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/132.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

...है। त) और अपने रब (जल्ल व आला) से हर प्रकार की ज़रूरत माँगनी चाहिए और माँगने में स्वीकृति के क्षण की खोज का आदेश है। हदीसों के अनुसार, यह समय स्वीकृति के सबसे प्रबल क्षणों में से है। तो निस्संदेह, ईदैन (दो ईदों) के जमावड़े में प्रार्थना और दुआ के लिए विशेष हदीस और शरीयत के मार्गदर्शन से अनुमति सिद्ध है, और 'फतअर्रज़ू लहा' (उनके सामने हो जाओ - यानी दया की हवाओं के) के आदेश का पालन करना ही उद्देश्य है। फिर मैं कहता हूँ: यदि शरीयत में ईदैन के जमावड़े के लिए कोई विशिष्टता न आती, तो भी इस सामान्य नियम में इसका शामिल होना सिद्ध था। बल्कि हदीसों ने इसकी महान विशिष्टता का उल्लेख किया है और इसमें दुआ के लिए अत्यंत प्रोत्साहन और प्रेरणा दी है। यहाँ तक कि हुज़ूर पुर नूर, सैय्यद अल-मुर्सलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उस भलाई और सुधार के युग में, जो फ़ितना और भ्रष्टाचार से पूरी तरह पवित्र और मुक्त था, आदेश दिया कि ईदैन में कुंवारी और पर्दे में रहने वाली महिलाएँ बाहर निकलें और मुसलमानों की दुआ में शामिल हों। यहाँ तक कि ऋतुमती (मासिक धर्म वाली) महिलाओं को आदेश होता कि वे नमाज़ की जगह (मुसल्ला) से अलग बैठें और उस दिन की दुआ में शरीक हों। इमाम अहमद और सिहाह सित्ता (हदीस की छह प्रामाणिक पुस्तकें) के लेखकों ने हज़रत उम्मे अतिया (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया है कि हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

تخرج العواتق وذوات الخدور والحيض ويعتزل الحيض المصلى ويشهدن الخير ودعوة المسلمين.

युवा कुंवारियाँ और पर्दे वाली और ऋतुमती सभी ईदगाह जाएँ और ऋतुमती महिलाएँ ईदगाह से अलग बैठें और इस भलाई और मुसलमानों की दुआओं में शामिल हों।

सहीह बुखारी की दूसरी रिवायत इन शब्दों में है:

قالت كنا نومر ان نخرج يوم العيد حتى تخرج البكر من خدرها حتى تخرج الحيض فيكن خلف الناس فيكبرن بتكبيرهم ويدعون بدعائهم

अर्थात् हज़रत उम्मे अतिया (रज़ियल्लाहु अन्हा) फ़रमाती हैं कि हम महिलाओं को आदेश दिया जाता था कि ईद के दिन बाहर जाएँ यहाँ तक कि कुंवारी अपने पर्दे से बाहर निकले, यहाँ तक कि ऋतुमती महिलाएँ बाहर आएँ सफ़ों (पंक्तियों) के पीछे बैठें, मुसलमानों की तकबीर पर

يرجون بركة ذلك اليوم وطهرته	**तकबीर कहें और उनकी दुआ के साथ दुआ माँगें, उस दिन की बरकत और पवित्रता की आशा में।**

इमाम बैहक़ी और अबु अल-शेख इब्न हिब्बान 'किताब अल-सवाब' में हज़रत अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं... मैं कहता हूँ: इस कीमती हदीस का एक गवाह इमाम उक़ैली की रिवायत में हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से मिलता है। इस फ़कीर (मुझ) की रिवायतों में, इस कमज़ोर बंदे से हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तक की सनद (प्रमाण श्रृंखला) मौजूद है, अल्हम्दुलिल्लाह। 12 (एम)।

---

1. सहीह अल-बुखारी, ईदैन में ऋतुमती महिलाओं की उपस्थिति का अध्याय आदि, प्रकाशित क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 1/174 और 134।
2. सहीह अल-बुखारी, ईदैन में ऋतुमती महिलाओं की उपस्थिति का अध्याय आदि, प्रकाशित क़दीमी कुतुब खाना, कराची, 1/132।

کی ہے۔ ت) اور حاجت ہر قسم کی اپنے رب جل وعلا سے مانگنا چاہے اور طلب میں مظنہ اجابت کی تحری کا حکم اور یہ وقت بحکم احادیث اعلیٰ مظانِ اجابت سے، تو بلا شبہ مجمع عیدین میں نمازِ دعا، خاص اذنِ حدیث وارشادِ شرع سے ثابت ہوئی اور حکم فتعرضوا لھا کی تعمیل ٹھہری وہو المقصود۔ ثم اقول : اگر مجمع عیدین کے لئے شرع میں کوئی خصوصیت نہ آتی تو اس عموم میں دخول ثابت تھا نہ کہ احادیث نے اس کی خصوصیت عظیم ارشاد فرمائی اور اس میں دعا پر نہایت تحریص و ترغیب آئی یہاں تک کہ حضور پُر نور سید المر سلین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اس زمانہ خیر و صلاح میں کہ فتنہ و فساد سے یکسر پاک و منزہ تھا حکم دیتے کہ عیدین میں کنواریاں اور پردہ نشین خواتین باہر نکلیں اور مسلمانوں کی دعا میں شریک ہوں حتی کہ حائض عورتوں کو حکم ہوتا مصلے سے الگ بیٹھیں اور اس دن کی دعا میں شریک ہو جائیں، امام احمد و اصحابِ صحاح ستہ حضرت ام عطیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے راوی حضور پُر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

تخرج العواتق وذوات الخدور والحیض ویعتزل الحیض المصلی ویشھدن الخیر ودعوۃ المسلمین.

نوجوان کنواریاں اور پردہ والیاں اور حائض سب عید گاہ کو جائیں اور حیض والیاں عید گاہ سے الگ بیٹھیں اور اس بھلائی اور مسلمانوں کی دعا میں حاضر ہوں۔

صحیح بخاری کی دوسری روایت ان لفظوں سے ہے:

قالت کنا نومر ان نخرج یوم العید حتی تخرج البکر من خدرھا حتی

یعنی ام عطیہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا فرماتی ہیں کہ ہم عورتوں کو حکم دیا جاتا تھا کہ عید کے دن باہر جائیں یہاں تک کہ

تخرج الحیض فیکن خلف الناس فیکبرن بتکبیرھم ویدعون بدعائھم یرجون برکة ذلك الیوم وطھرته

کنواری اپنے پردے سے باہر نکلے یہاں تک کہ حیض والیاں باہر آئیں صفوں کے پیچھے بیٹھیں مسلمانوں کی تکبیر پر تکبیر کہیں اور ان کی دعا کے ساتھ دعا مانگیں اس دن کی برکت پاکیزگی کی امید میں۔

امام بیہقی اور ابوالشیخ ابن حبان کتاب الثواب میں حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما عہ: اقول: اس حدیثِ نفیس کا شاہد بر وایتِ امام عقیلی حدیث انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مرویاتِ فقیر میں بندہ ضعیف سے حضور پُر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم تک سند موجود ہے الحمد للہ ۱۲منہ (م)

---

1. صحیح البخاری باب شہود الحائض العیدین الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۷۴ و ۱۳۴

2. صحیح البخاری باب شہود الحائض العیدین الخ مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۳۲

Fatawa-e-Razavia Volume 8

From the narrator: "Verily, he heard the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) saying: 'When it is the morning of Eid-ul-Fitr, Allah, the Almighty, sends angels to every city...' (and he mentioned the Hadith until he said) 'So when they emerge to their place of prayer, Allah, the Almighty says...' (and he continued the Hadith until he said) 'and He says: O My servants! Ask of Me. By My Might and My Majesty, you shall not ask Me for anything today in your assembly for your Hereafter, but I will give it to you; nor for your worldly life, but I will look [with favor] for you. By My Might, I will surely cover your slips as long as you remain mindful of Me. And by My Might and My Majesty, I will not disgrace you nor shame you among the people of legal punishments. Depart, forgiven; you have pleased Me and I am pleased with you.'" 1 (Abridgment of a long Hadith)

Meaning, the Resplendent Presence, the Master of the Day of Resurrection (upon him be the best of prayers and peace) said: When the morning of Eid comes, the Holy Lord, Exalted is He, sends angels to every city (after which the Hadith mentions the angels standing at every checkpoint of the city and calling Muslims to the Eidgah, then it is mentioned that when Muslims come to the field towards the Eidgah (the Holy Lord, Exalted is He, speaks to the angels thus and the angels submit to Him) then it is said that the Lord, Blessed and Exalted is He, says to the Muslims: O My servants! Ask, for by My Honor and Majesty, whatever you ask for your Hereafter in this assembly today, I will grant it to you. And whatever you ask for this world, I will look into it for you (meaning, worldly things can contain both good and evil, and man often through his ignorance considers good to be evil and evil to be good, while Allah knows and you do not. Therefore, whatever you ask for the world, it will be looked at with mercy. If that thing is better for you, it will be granted, otherwise, an equivalent affliction will be averted or it will be stored for the Hereafter; and this is better for the servant in every case). I swear by My Honor, as long as you maintain My mindfulness, I will cover your mistakes. I swear by My Honor and Majesty, I will not disgrace or shame you among the people of major sins. Go back forgiven; indeed you have pleased Me and I am pleased with you.

The poor one (may the Rich and Powerful One forgive him) says that the beginning of this blessed speech is "O My servants! Ask of Me," meaning "O My servants! Pray to Me," and the end is "Go back forgiven," meaning "Return to your homes, your forgiveness has been granted."

1 Shu'ab al-Iman, Chapter 23 on Fasting, Section on Laylat al-Qadr, Published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah, Beirut, 3/371-336.

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं

रावी (वर्णनकर्ता) से: "बेशक उन्होंने अल्लाह के रसूल (उन पर अल्लाह की कृपा और शांति हो) को यह कहते हुए सुना: 'जब ईदुल फ़ितर की सुबह होती है, तो अल्लाह महान हर शहर में फरिश्ते भेजता है...' (और उन्होंने हदीस का ज़िक्र किया यहाँ तक कि कहा) 'तो जब वे अपने नमाज़ के स्थान (ईदगाह) की ओर निकलते हैं, तो अल्लाह महान कहता है...' (और उन्होंने हदीस को जारी रखा यहाँ तक कि कहा) 'और वह कहता है: ऐ मेरे बंदों! मुझसे मांगो। मेरी इज़्ज़त और मेरे जलाल की कसम, आज तुम अपनी इस सभा में अपनी आख़िरत (परलोक) के लिए जो कुछ भी मुझसे मांगोगे, मैं तुम्हें दूँगा; और तुम्हारी दुनिया के लिए जो कुछ भी मांगोगे, मैं तुम्हारे लिए उस पर (रहमत की) नज़र करूँगा। मेरी इज़्ज़त की कसम, जब तक तुम मेरा ध्यान रखोगे, मैं तुम्हारी गलतियों को छुपाता रहूँगा। और मेरी इज़्ज़त और मेरे जलाल की कसम, मैं तुम्हें सज़ा पाने वालों के बीच रुसवा और ज़लील नहीं करूँगा। लौट जाओ, तुम्हें माफ़ कर दिया गया है; तुमने मुझे राज़ी कर दिया और मैं तुमसे खुश हो गया हूँ।'" 1 (एक लंबी हदीस का संक्षिप्त अंश)

यानी हुज़ूर पुर नूर सय्यिद-ए-यौम-ए-नुशूर (उन पर सर्वश्रेष्ठ दुरूद और सलाम हो) ने फरमाया: जब ईद की सुबह होती है, तो मौला सुब्हानहु तआला हर शहर में फरिश्ते भेजता है (इसके बाद हदीस में फरिश्तों का शहर के हर नाके पर खड़ा होना और मुसलमानों को ईदगाह की तरफ बुलाना बयान फरमाया, फिर इरशाद हुआ जब मुसलमान ईदगाह की तरफ मैदान में आते हैं (मौला सुब्हानहु तआला फरिश्तों से इस तरह फरमाता है और फरिश्ते उससे यूँ अर्ज़ करते हैं) फिर फरमाया रब तबारक व तआला मुसलमानों से इरशाद फरमाता है: ऐ मेरे बंदों! मांगो कि कसम मुझे अपनी इज़्ज़त व जलाल की आज इस मजमे (सभा) में जो चीज़ अपनी आख़िरत के लिए मांगोगे मैं तुम्हें अता फरमाऊंगा और जो कुछ दुनिया का सवाल करोगे उसमें तुम्हारे लिए नज़र करूँगा (यानी दुनिया की चीज़ में ख़ैर व शर दोनों की संभावना है और आदमी अक्सर अपनी नादानी से ख़ैर को शर और शर को ख़ैर समझ लेता है, और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते। लिहाज़ा दुनिया के लिए जो कुछ मांगोगे उसमें रहमत की नज़र फरमाई जाएगी, अगर वह चीज़ तुम्हारे हक में बेहतर हुई तो अता होगी वर्ना उसके बराबर बला (मुसीबत) टाल दी जाएगी या आख़िरत के लिए ज़खीरा (संग्रह) कर दी जाएगी और यह बंदे के लिए हर सूरत में बेहतर है)। मुझे अपनी इज़्ज़त की कसम है जब तक तुम मेरा मुराक़बा (ध्यान) रखोगे मैं तुम्हारी लग़्ज़िशों (गलतियों) को छुपाता रहूँगा। मुझे अपनी इज़्ज़त व

जलाल की कसम मैं तुम्हें बड़े गुनाहगारों के बीच फज़ीहत (अपमानित) व रुसवा न करूँगा। पलट जाओ मग़फ़िरत (क्षमा) पाए हुए, बेशक तुमने मुझे राज़ी किया और मैं तुमसे खुशनूद (प्रसन्न) हुआ।

फकीर (अल्लाह उसे माफ करे) कहता है कि इस कलाम-ए-मुबारक का आरम्भ "ऐ मेरे बंदों! मुझसे मांगो" है, यानी "ऐ मेरे बंदों! मुझसे दुआ करो," और अंत "मग़फ़ूरन लकुम" है, यानी "घरों को पलट जाओ तुम्हारी मग़फ़िरत (क्षमा) हो गई।"

1 शुअबुल ईमान, अध्याय 23 रोज़ों के बारे में, शबे क़द्र का खंड, दारुल कुतुब अल-इल्मिय्या, बेरुत द्वारा प्रकाशित, 3/371-336.

पृष्ठ 527 का 673

سے راوی: انہ سمع رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم یقول اذا کانت غداۃ الفطر بعث اللہ عزوجل الملئکۃ في کل بلد (وذکر الحدیث الی ان قال) فأذا برزوا الی مصلاھم فیقول اللہ عزوجل (وساق الحدیث الی ان قال) ویقول یا عبادي سلوني فوعزتی وجلالی لا تسئلونی الیوم شیئا في جمعکم لأخرتکم الا اعطیتکم ولا لدنیاکم الا نظرت لکم، فوعزتی لا سترن علیکم عثراتکم مار اقبتمونی وعزتی وجلالی لا اخزیکم ولا افضحکم بین اصحاب الحدود وانصرفوا مغفورا لکم قد ارضیتمونی و رضیت عنکم 1 (مختصر من حدیث طویل)

یعنی حضور پر نور سید یوم النشور علیہ افضل الصلوۃ و السلام نے فرمایا: جب عید کی صبح ہوتی ہے ہے مولٰی سبحانہ تعالٰی ہر شہر میں فرشتے بھیجتا ہے (اس کے بعد حدیث میں فرشتوں کا شہر کے ہر ناکہ پر کھڑا ہونا اور مسلمانوں کو عید گاہ کی طرف بلانا بیان فرمایا، پھر ارشاد ہوا جب مسلمان عیدگاہ کی طرف میدان میں آتے ہیں (مولٰی سبحانہ تعالٰی فرشتوں سے یوں فرماتا ہے اور ملائکہ اس سے یوں عرض کرتے ہیں) پھر فرمایا رب تبارک و تعالٰی مسلمانوں سے ارشاد فرماتا ہے اے میرے بندو! مانگو کہ قسم مجھے اپنی عزت و جلال کی آج اس مجمع میں جو چیز اپنی آخرت کے لئے مانگو گے میں تمہیں عطا فرماؤں گا اور جو کچھ دنیا کا سوال کرو گے اس میں تمہارے لئے نظر کروں گا (یعنی دنیا کی چیز میں خیر و شر دونوں کو محتمل ہیں اور آدمی اکثر اپنی نادانی سے خیر کو شر، شر کو خیر سمجھ لیتا ہے، اور اللہ جانتا ہے اور تم نہیں جانتے لہذا دنیا کے لئے جو کچھ مانگو گے اس میں بحال رحمت، نظر فرمائی جائے گی، اگر وہ چیز تمہارے حق میں بہتر ہوئی عطا ہوگی ورنہ اس کے برابر بلا دفع کریں گے یا ذخیرہ آخرت کے لئے ذخیرہ رکھیں گے اور یہ بندے کے لئے ہر صورت سے بہتر ہے) مجھے اپنی عزت کی قسم ہے جب تک

تم میرا مراقبہ رکھو گے میں تمہاری لغزشوں کی ستاری فرماؤں گا مجھے اپنی عزت و جلال کی قسم میں تمہیں اہل کبائر میں فضیحت و رسوا نہ کروں گا پلٹ جاؤ مغفرت پائے ہوئے، بیشک تم نے مجھے راضی کیا اور میں تم سے خوشنود ہوا۔

فقیر غفر لہ الغنی القدیر کہتا ہے اس کلام مبارک کا اول یا عبادی سلونی ہے یعنی میرے بندو! مجھ سے دعا کرو، اور آخر انصرفوا مغفور الکم گھروں کو پلٹ جاؤ تمہاری مغفرت ہوئی۔

1 شعب الایمان ۲۳ باب فی الصیام فصل فی لیلۃ القدر مطبوعہ دارالکتب العلمیۃ بیروت ۳/۳۷۱-۳۳۶

Thus it becomes clear that this instruction is for after the conclusion of the prayer; there will be no command at all to return home before the end of the prayer. So from this Hadith, it is derived that the Lord of Might Himself, Glory be to Him and Exalted is He, demands supplication (dua) from the Muslims after the Eid prayer. Then, woe to the wretchedness of one who stops Muslims from supplicating before their Lord at such a time. We ask Allah for forgiveness and well-being. Amen. (We seek grace and forgiveness from Allah. Amen. - Translator)

Thirdly, I say: And with Allah is the guidance. Abu Dawud, Tirmidhi, Nasa'i, Ibn Hibban, and Hakim, with authentic and good chains of narration from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him); and Abu Dawud, Darimi, and Abu Bakr bin Abi Shaybah, the teacher of Bukhari and Muslim, from Hazrat Abu Barzah al-Aslami (may Allah be pleased with him); and Nasa'i and Tabarani with a sahih chain, and Ibn Abi al-Dunya and Hakim with the benefit of correction, from Hazrat Jubayr bin Mut'im (may Allah be pleased with him); and Nasa'i, Ibn Abi al-Dunya, Hakim, and Bayhaqi from the Mother of the Believers, Hazrat Aisha Siddiqa (may Allah be pleased with her), narrate that the Radiant Presence, the Leader of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him), said:

"When one of you sits in a gathering, let him not leave it until he says three times: 'Glory be to Thee, O Allah, our Lord, and with Thy praise. There is no god but Thee. Forgive me and accept my repentance.' For if he spoke good in that gathering, this [dua] will be like a seal upon it, and if it was a gathering of idle talk, it will be an atonement for what occurred in that gathering." 1

These words are according to the narration of Imam Abu Bakr Ibn Abi al-Dunya from the Hadith of Jubayr (may Allah be pleased with him), and in the Hadith of Abu Barzah (may Allah be pleased with him), it is like this:

"The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)... | When the Leader of the World (peace and blessings of Allah be upon him) any..."

1 Al-Targhib wa al-Tarhib, with reference to Ibn Abi al-Dunya, Kitab al-Dhikr wa al-Du'a, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/411; Al-Mu'jam al-Kabir, narrated from Jubayr bin Mut'im, printed by Maktaba Faysaliyya, Beirut, 2/139; Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Du'a, printed by Dar al-Fikr, Beirut, 1/53.

तो स्पष्ट हुआ कि यह आदेश नमाज़ के समापन के बाद का है; नमाज़ ख़त्म होने से पहले घरों को वापस जाने का हुक्म हरगिज़ न होगा। तो इस हदीस से यह सिद्ध हुआ कि ख़ुद रब्बुल इज़्ज़त जल्ल व अला नमाज़-ए-ईद के बाद मुसलमानों से दुआ की अपेक्षा फ़रमाता है, फिर उस व्यक्ति की बदक़िस्मती पर अफ़सोस है जो ऐसे समय में मुसलमानों को अपने रब के समक्ष दुआ करने से रोके। हम अल्लाह से माफ़ी और सलामती मांगते हैं। आमीन। (हम अल्लाह से फ़ज़्ल और बख़्शिश की दुआ करते हैं। आमीन। - अनु.)

तीसरी बात मैं कहता हूँ: और अल्लाह की ही तौफ़ीक़ है। अबू दाऊद, तिर्मिज़ी, नसाई, इब्न हिब्बान और हाकिल ने सही और उत्तम सनदों के साथ हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से; और अबू दाऊद, दारिमी और अबू बक्र बिन अबी शैबा, जो बुखारी और मुस्लिम के उस्ताद हैं, उन्होंने हज़रत अबू बरज़ा असलमई (रज़ियल्लाहु अन्हु) से; और नसाई और तबरानी ने सही सनद के साथ, और इब्न अबी दुनिया और हाकिम ने तसहीह के साथ हज़रत जुबैर बिन मुतइम (रज़ियल्लाहु अन्हु) से; और नसाई, इब्न अबी दुनिया, हाकिम और बैहक़ी ने उम्मुल मोमिनीन हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की है कि हुज़ूर पुरनूर सैयदुल मुर्सलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

"जब तुम में से कोई किसी सभा (मजलिस) में बैठे, तो वह वहाँ से तब तक न हटे जब तक कि वह तीन बार यह दुआ न पढ़ ले: 'हे अल्लाह, हमारे रब! तू पवित्र है और तेरी प्रशंसा है, तेरे सिवा कोई सच्चा माबूद नहीं, मेरे गुनाह बख़्श दे और मेरी तौबा क़बूल कर।' क्योंकि अगर उस मजलिस में उसने कोई नेक बात कही होगी, तो यह दुआ उस पर मुहर (सील) की तरह हो जाएगी, और अगर वह मजलिस फ़ुज़ूल बातों वाली रही होगी, तो यह दुआ उसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) बन जाएगी।" 1

ये शब्द इमाम अबू बक्र इब्न अबी दुनिया की रिवायत से हज़रत जुबैर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस के हैं, और अबू बरज़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में इस प्रकार है:

"रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) थे... | हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब कोई..."

1 अत-तरगीब वत-तरहीब, इब्न अबी दुनिया की किताब अज़-ज़िक्र वद-दुआ के हवाले से, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र, 2/411; अल-मुअजम अल-कबीर, जुबैर बिन मुतइम से मरवी, मक्तबा फ़ैसलिया, बैरूत, 2/139; अल-मुस्तदरक अल-सहीहैन, किताब अद-दुआ, दारुल फ़िक्र, बैरूत, 1/53.

تو ظاہر ہوا کہ یہ ارشاد بعد ختمِ نماز ہوتا ہے ختمِ نماز سے پہلے گھروں کو واپس جانے کا حکم ہر گز نہ ہوگا تو اس حدیث سے مستفاد کہ خود رب العزت جل و علا بعدِ نمازِ عید مسلمانوں سے دعا کا تقاضا فرماتا ہے، پھر وائے بدبختی اُس کی جو ایسے وقت مسلمانوں کو اپنے رب کے حضور دُعا سے روکے نسأل اللہ العفو والعافیۃ آمین (ہم اللہ سے فضل وبخشش طلب کرتے ہیں۔ آمین۔ ت)

ثالثاً اقول: وباللہ التوفیق ابوداؤد و ترمذی و نسائی و ابن حبان و حاکم باسانیدِ صحیحہ جیدہ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ اور ابوداؤد و دارمی و ابوبکر بن ابی شیبہ استاد بخاری و مسلم حضرت ابو برزہ اسلمی رضی اللہ تعالٰی عنہ اور نسائی و طبرانی بسندِ صحیح و ابن ابی الدنیا اور حاکم با فادہ تصحیح حضرت جبیر بن مطعم رضی اللہ تعالٰی عنہ اور نسائی و ابن ابی الدنیا و حاکم و بیہقی حضرت ام المومنین عائشہ صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے روایت کرتے ہیں حضورِ پُر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں:

اذا جلس احدکم فی مجلس فلا یبرحن منہ حتی یقول ثلث مرات سبحنک اللھم ربنا وبحمدک لا الہ الا انت اغفر لی وتب علی فان کان اتی خیرا کان کالطابع علیہ وان کان مجلس لغو کان کفارۃ لما کان فی ذلک المجلس ۱۔ جب تم میں کوئی کسی جلسے میں بیٹھے تو زنہار وہاں سے نہ ہٹے جب تک تین بار یہ دعا نہ کرلے "پاکی ہے تجھے اے رب ہمارے، اور تیری تعریف بجالاتا ہوں، تیرے سوا کوئی سچا معبود نہیں میرے گناہ بخش اور مجھے توبہ دے" کہ اگر اس جلسے میں اس نے کوئی نیک بات کہی ہے تو یہ دُعا اس پر مہر ہوجائے گی اور اگر وہ جلسہ لغو تھا جو کچھ اس میں گزرا یہ دعا اس کا کفارہ ہوجائے گی۔

یہ لفظ بہ روایت امام ابوبکر ابن ابی الدنیا حدیثِ جبیر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کے ہیں، اور ابو برزہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی حدیث میں یوں ہے:

کان رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم | حضور سیدِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جب کوئی

۱ الترغیب والترہیب بحوالہ ابن ابی الدنیا کتاب الذکر والدعاء مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۴۱۱، المعجم الکبیر مروی از جبیر بن مطعم مطبوعہ مکتبہ فیصلیہ بیروت ۲/ ۱۳۹، المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دار الفکر بیروت ۱/ ۵۳

[Box 1] Arabic: If he sat, he would say at the end of it when he intended to rise from the gathering: "Subhanaka Allahumma wa bihamdika, ash-hadu an la ilaha illa Anta, astaghfiruka wa atubu ilayka."[1] Urdu: When he would hold a gathering, he would recite this prayer at the end while rising: "I proclaim Your purity and remain occupied in Your praise and glorification, O Allah! I bear witness that there is none worthy of worship except You, I seek Your forgiveness and turn towards You in repentance."

Similarly, in the hadith of Rafi' bin Khadij (may Allah be pleased with him), the words are "arada an yanhadha" (intended to rise)[2], meaning when he wanted to get up, he would recite this prayer. And he added these further words to the aforementioned prayer:

[Box 2] Arabic: "Amiltu su'an wa zalamtu nafsi innahu la yaghfiru az-zunuba illa Anta."[3] Urdu: I have done evil and wronged my own soul; now grant me forgiveness, for surely there is no forgiver of sins except You.

The hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) regarding the prayer is like the hadith of Abu Barzah. In it, it was also stated: "Before he rose from his gathering"[4], he would pray. In short, in this authentic and famous hadith according to the principles of the scholars of Hadith, which Imam Tirmidhi called 'Hasan Sahih', Al-Hakim called 'Sahih' based on the criteria of Muslim, and Al-Mundhiri called 'Jayyid-al-Asanid', the radiant Master of the world (peace and blessings of Allah be upon him) gives a general verbal and practical instruction that whenever a person holds a gathering, they must recite this prayer upon rising from it. If the gathering was for a good cause, that virtue will remain sealed and preserved until the Day of Resurrection, and if it was vain talk, then by the permission of Allah, that vanity will be erased. Thus, it is proven by both wording and meaning that every Muslim should [recite this prayer] after every prayer also as indicated by the wording...

---

[1] At-Targhib wat-Tarhib citing Sunan Abi Dawud, Kitab al-Zikr wad-Du'a, published by Mustafa al-Babi Egypt, 2/114; Sunan ad-Darimi, 29: Chapter on the Kaffarah of a Gathering, published in Madinah Munawwarah (Majaz), 2/195. [2] Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Kitab al-Du'a, Du'a Kaffarah al-Majalis, published by Dar al-Fikr Beirut, 1/53; At-Targhib wat-Tarhib citing Sunan an-Nasa'i, Hakim, Abu Dawud, and Ibn Hibban, published by Mustafa al-Babi Egypt, 2/114. [3] At-Targhib wat-Tarhib citing Sunan an-Nasa'i, Hakim, Abu Dawud, and Ibn Hibban, published by Mustafa al-Babi Egypt,

2/114. [4] At-Targhib wat-Tarhib citing Sunan an-Nasa'i, Hakim, Abu Dawud, and Ibn Hibban, published by Mustafa al-Babi Egypt, 2/114; Jami' at-Tirmidhi, Chapters of Supplications, published by Amin Company Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 2/181.

फ़तावा रज़विया | खंड ८

[बॉक्स १] अरबी: यदि वे बैठते, तो अंत में सभा से उठने का इरादा करते समय यह कहते: "सुब्हानका अल्लाहुम्मा व बिहम्दिका, अश्हदु अन ला इलाहा इल्ला अन्ता, अस्तग़फ़िरुका व अतूबु इलैका।"[1] उर्दू: सभा करते तो ख़त्म करते और उठते वक़्त यह दुआ करते: "तेरी पाकी बोलता और तेरी हम्द व सना में मश्गूल होता हूँ ऐ अल्लाह! मैं गवाही देता हूँ तेरे सिवा कोई मुस्तहक़-ए-इबादत नहीं, मैं तेरी मग़फ़िरत माँगता और तेरी तरफ़ तौबा करता हूँ।"

इसी तरह राफ़े बिन ख़दीज (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में 'अरादा अन यन्हाज़ा'[2] शब्द हैं, यानी जब उठना चाहते तो यह दुआ फ़रमाते। और उन्होंने उक्त दुआ के बाद इतने शब्द और बढ़ाए:

[बॉक्स २] अरबी: "अमिलतु सूअन व ज़लमतु नफ़्सी इन्नहू ला यग़फ़िरुज़-ज़ुनूबा इल्ला अन्ता।"[3] उर्दू: मैंने बुरा किया और अपनी ही जान को आज़ार पहुँचाया अब मेरी मग़फ़िरत फ़रमादे बेशक तेरे सिवा कोई गुनाह माफ़ करने वाला नहीं।

दुआ में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस अबू बरज़ा की हदीस के समान है। उसमें भी कहा गया है: "अपनी सभा से उठने से पहले"[4] वे दुआ करते थे। संक्षेप में, मुह्द्दिसीन के उसूलों के अनुसार इस मशहूर सहीह हदीस में, जिसे इमाम तिर्मिज़ी ने 'हसन सहीह' और हाकिम ने 'मुस्लिम की शर्त पर सहीह' और मुन्ज़िरी ने 'जय्यिद-अल-असानीद' कहा है, हुज़ूर पुर नूर सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) आम जुबानी और अमली हिदायत फ़रमाते हैं कि आदमी कोई सभा करे उससे उठते वक़्त यह दुआ ज़रूर करनी चाहिए कि अगर सभा ख़ैर (भलाई) की थी तो वह नेकी क़यामत तक मुहरबंद महफ़ूज़ रहेगी और अगर फ़ुज़ूल (लग़्व) थी तो अल्लाह की अनुमति से वह व्यर्थता मिटा दी जाएगी। तो शब्द और अर्थ दोनों की दृष्टि से साबित हुआ कि हर मुसलमान को हर नमाज़ के बाद भी इस दुआ की तरफ़ इशारा फ़रमाया...

---

[1] अत-तरग़ीब वत-तरहीब, बा-हवाला सुनन अबी दाऊद, किताबुज़ ज़िक्र वद-दुआ, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/114; सुनन अद-दारिमी, 29: बाब फ़ी कफ़्फ़ारतुल मज्लिस, मदीना मुनव्वरा, 2/195 [2] अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताबुद-दुआ, दुआ कफ़्फ़ारतुल मजालिस, दारुल फ़िक्र बैरूत, 1/53; अत-तरग़ीब वत-तरहीब, बा-हवाला सुनन नसई, हाकिम, अबू दाऊद और इब्ने हिब्बान, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/114 [3] अत-तरग़ीब वत-तरहीब, बा-हवाला सुनन नसई, हाकिम, अबू दाऊद और इब्ने हिब्बान, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/114 [4] अत-तरग़ीब वत-तरहीब, बा-हवाला

सुनन नसई, हाकिम, अबू दाऊद और इब्ने हिब्बान, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/114; जामे तिर्मिज़ी, अबवाबुद दावात, अमीन कंपनी कुतुब ख़ाना रशीदिया दिल्ली, 2/181

पृष्ठ 529 का 673

[Box 1] عربی: اذا جلس یقول فی اخرہ اذا اراد ان یقوم من المجلس سبحنك اللھم وبحمدك اشھد ان لا الہ الا انت استغفرك واتوب الیك[1]۔ اردو: جلسہ فرماتے تو ختم اٹھتے وقت یہ دعا کرتے "تیری پاکی بولتا اور تیری حمد و ثنا میں مشغول ہوتا ہوں اے اللہ! میں گواہی دیتا ہوں تیرے سوا کوئی مستحق عبادت نہیں میں تیری مغفرت مانگتا اور تیری طرف توبہ کرتا ہوں"۔

اسی طرح رافع بن خدیج رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی حدیث میں لفظ اراد ان ینہض[2] ہے یعنی جب اٹھنا چاہتے یہ دُعا فرماتے ۔ اور انہوں نے بعد الفاظِ مذکورہ دُعا میں اتنے الفاظ اور زائد کئے:

[Box 2] عربی: عملت سوءاً وظلمت نفسي انہ لا یغفر الذنوب الا انت۔[3] اردو: میں نے بُرا کیا اور اپنی ہی جان کو آزار پہنچایا اب میری مغفرت فرمادے بیشک تیرے سوا کوئی گناہ معاف کرنے والا نہیں۔

حدیث ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ دعا میں مثلِ حدیث ابو برزہ ہے اُس میں بھی ارشاد ہوا: قبل ان یقوم من مجلسہ[4] کھڑے ہونے سے پہلے دُعا کرتے۔ غرض اس حدیثِ صحیح مشہور علی اصول المحدثین میں جسے امام ترمذی نے حسن صحیح اور حاکم نے بر شرطِ مسلم صحیح اور منذری نے جید الاسانید کہا، حضور پُر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عام ارشاد و ہدایتِ قولی و فعلی فرماتے ہیں کہ آدمی کوئی جلسہ کرے اُس سے اٹھتے وقت یہ دُعا ضرور کرنی چاہئے کہ اگر جلسہ خیر کا تھا تو وہ نیکی قیامت تک سر بمہر محفوظ رہے گی اور لغو تھا تو وہ لغو باذن اللہ محو ہو جائے گا تو لفظ و معنیٰ دونوں کی رُو سے ثابت ہوا کہ ہر مسلمان کو ہر نماز کے بعد بھی اس دُعا کی طرف اشارہ فرمایا جہتِ لفظ

1 الترغیب والترہیب بحوالہ سنن ابی داؤد کتاب الذکر والدعاء مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۱۱۴، سنن الدارمی ۲۹۔ باب فی کفارۃ المجلس مطبوعہ مدینہ منورہ (مجاز) ۲/ ۱۹۵ 2 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء دعاء کفارۃ المجالس مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/ ۵۳، الترغیب والترہیب بحوالہ سنن نسائی وحاکم وابوداؤد وابن حبان مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۱۱۴ 3 الترغیب والترہیب بحوالہ سنن نسائی وحاکم وابوداؤد وابن حبان مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۱۱۴ 4 الترغیب والترہیب بحوالہ سنن نسائی وحاکم وابوداؤد وابن حبان مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲/ ۱۱۴، جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/ ۱۸۱

Fatawa Rizvia Volume 8

Therefore, since the assembly (majlis) is mentioned in the context of a condition (shart) as an indefinite noun (nakirah), it becomes general. It is stated in Talkhis al-Jami' al-Kabir:

[Box 1] Arabic: The indefinite noun in a condition implies generality, and in the consequence, it implies specificity, just as in negation and affirmation. Urdu: An indefinite noun in the place of a condition provides the benefit of generality, and in the place of consequence, it provides specificity, as it is in negation and affirmation. (T)

It is stated in Jami' al-Saghir:

[Box 2] Arabic: Indeed, an indefinite noun in the place of a condition, and the place of a condition is negation, and an indefinite noun in negation implies generality. Urdu: This is an indefinite noun in the place of a condition, and the place of a condition is negation, and an indefinite noun in the place of negation is useful for generality. (T)

Moreover, all nouns of condition are general in all forms. The absolute investigative Imam (Imam Muhaqqiq al-Mutlaq) says in Fath:

[Box 3] Arabic: Thus, it is general in all forms, as is the state of nouns of condition. Urdu: This is general in all forms, as is the state of nouns of condition. (T)

Therefore, certainly the sittings (jalsas) of all obligatory (faridha), necessary (wajib), and voluntary (nafila) prayers are included in this ruling. A claim of specificity without a specifier is merely rejected and false. From the perspective of meaning, since supplicating while rising from a good gathering is for the protection of that good, then the greater and more magnificent the good, the more necessary and important its protection is. Undoubtedly, the good of prayer is superior and higher than all things, so asking for this supplication after every prayer is more emphasized. O Lord! Is the Eid prayer not a prayer? Or is there no need for its protection? Or did the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) himself include the sitting of prayer in this ruling? You have already heard the citation of the Hadith above, as narrated by Nasai, Ibn Abi al-Dunya, Hakim, and Bayhaqi. Now listen to the words; in Sunan Nasai, under the chapter of 'Types of Remembrance after Salutation', it says:

[Box 4] Arabic: From Aisha (may Allah be pleased with her) who said: "Indeed the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him)..." Urdu: Meaning, the

Mother of the Believers Siddiqa (may Allah be pleased with her) states: "When the luminous Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him)..."

---

1 Talkhis al-Jami' al-Kabir 2 Al-Jami' al-Saghir 3 Fath al-Qadir

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

चूंकि मजलिस शर्त के संदर्भ में एक अनिश्चित संज्ञा (नकीरा) के रूप में आई है, इसलिए यह सामान्य हो गई। तल्खीस अल-जामी अल-कबीर में है:

[बॉक्स 1] अरबी: शर्त में अनिश्चित संज्ञा व्यापकता प्रदान करती है और जज़ा (परिणाम) में विशिष्टता, जैसा कि निषेध और विधान में है। उर्दू: शर्त के स्थान पर नकीरा व्यापकता (आम होना) और जज़ा के स्थान पर विशेषता (ख़ास होना) का लाभ देती है जैसा कि निषेध और विधान में है। (त)

जामी सगीर में है:

[बॉक्स 2] अरबी: यह शर्त के स्थान पर नकीरा है और शर्त का स्थान निषेध है और निषेध में नकीरा व्यापक होता है। उर्दू: यह शर्त के स्थान पर नकीरा है और शर्त का स्थान निषेध है और नकीरा निषेध के स्थान पर व्यापकता का लाभ देता है। (त)

इसके अलावा, शर्त के सभी संज्ञा शब्द सभी स्थितियों में सामान्य होते हैं, इमाम मुहक़्क़िक़ अल-मुतलक़ 'फ़तह' में फरमाते हैं:

[बॉक्स 3] अरबी: तो यह तमाम सूरतों में आम है, जैसा कि अस्मा-ए-शर्त का हाल होता है। उर्दू: यह तमाम सूरतों में आम है जैसा कि शर्त की संज्ञाओं का हाल होता है। (त)

अतः निश्चित रूप से सभी अनिवार्य (फ़रीज़ा), आवश्यक (वाजिबा) और ऐच्छिक (नाफ़िला) नमाज़ों की बैठकें(जलसे) इस हुक्म में शामिल हैं, और बिना किसी विशेष प्रमाण के विशेषता का दावा पूरी तरह से खारिज और गलत है। अर्थ के दृष्टिकोण से, चूंकि किसी भलाई की सभा से उठते समय यह दुआ माँगना उस भलाई की रक्षा के लिए है, तो भलाई जितनी बड़ी और महान होगी, उसकी रक्षा उतनी ही आवश्यक और महत्वपूर्ण होगी। और निःसंदेह, नमाज़ की भलाई सब चीज़ों से श्रेष्ठ और उच्च है, तो हर नमाज़ के बाद इस दुआ का माँगना अधिक ताकीद वाला हुआ। या रब, क्या ईदैन की नमाज़ नमाज़ नहीं है? या उसकी रक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है? या हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने स्वयं नमाज़ की बैठक को इस हुक्म में शामिल फरमाया? हदीस का प्रमाण आप ऊपर सुन चुके हैं कि नसाई, इब्न अबी अल-दुनिया, हाकिम और बैहक़ी ने रिवायत की है, अब शब्द सुनिए। सुनन नसाई में 'सलाम के बाद ज़िक्र की क़िस्मों' के अध्याय में है:

[बॉक्स 4] अरबी: हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत है, उन्होंने फरमाया कि बेशक रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)... उर्दू: यानी उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) फरमाती हैं, हुज़ूर पुर नूर सय्यदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब...

---

1 तल्खीस अल-जामी अल-कबीर 2 अल-जामी अल-सगीर 3 फ़तह अल-क़दीर

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

سے تو یوں کہ مجلس نکرہ سیاقِ شرط میں واقع ہے عام ہوا، تلخیص الجامع الکبیر میں ہے:

[Box 1] Arabic: النکرۃ فی الشرط تعم وفی الجزاء تخص کما فی النفی والاثبات[1]۔ Urdu:
نکرہ مقامِ شرط میں عموم اور مقامِ جزاء میں خصوص کا فائدہ دیتا ہے جیسا کہ نفی و اثبات میں ہے۔ (ت)

جامع صغیر میں ہے:

[Box 2] Arabic: انہ نکرۃ فی موضع الشرط وموضع الشرط نفی والنکرۃ فی النفی تعم[2]۔
Urdu: یہ موضع شرط میں نکرہ ہے اور مقامِ شرط نفی ہے اور نکرہ مقامِ نفی میں عموم کا مفید ہوتا ہے۔ (ت)

معہذا اسمائے شروط سب صورتوں کو عام ہوتے ہیں، امام محقق علی الاطلاق فتح میں فرماتے ہیں:

[Box 3] Arabic: اذا عام فی الصور علی ماھو حال اسماء الشرط[3]۔ Urdu: ذا تمام صورتوں میں عام ہے جیسا کہ اسماء شرط کا حال ہوتا ہے۔ (ت)

تو قطعاً تمام صلواتِ فریضہ و واجبہ و نافلہ کے جلسے اس حکم میں داخل اور ادعائے تخصیص بے مخصص محض مردود و باطل، اور جہت معنی سے یوں کہ جلسہ خیر سے اُٹھتے وقت یہ دعا کرنا اُس خیر کے نگہداشت کے لئے ہے تو خیر جس قدر اکبر و اعظم اُسی قدر اس کا حفظ ضروری و اہم، اور بلاشبہ خیرِ نماز سے سب چیزوں سے افضل و اعلیٰ تو ہر نماز کے بعد اس دعا کا مانگنا مؤکد تر ہوا یارب، مگر نمازِ عیدین نماز نہیں یا اس کے حفظ کے جانب نیاز نہیں یا

حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے بنفسِ نفیس جلسہ نماز کو اس حکم میں داخل فرمایا

تخریجِ حدیث تو اوپر سُن چکے کہ نسائی و ابن ابی الدنیا نے و حاکم و بیہقی نے روایت کی اب لفظ سنئے، سنن نسائی کی نوع من الذکر بعد التسلیم میں ہے:

[Box 4] Arabic: عن عائشۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہا قالت ان رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم

Urdu: یعنی ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا فرماتی ہیں حضورِ پُر نور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم جب

---

1 تلخیص الجامع الکبیر 2 الجامع الصغیر 3 فتح القدیر

Fatawa Razawiyya - Volume Eight

| Arabic: Whenever he [the Prophet ﷺ] sat in a gathering or prayed, he would utter some words. Aisha (RA) asked about those words. He replied: 'If good words were spoken in that gathering, these words act as a seal upon them until the Day of Judgment; and if bad words were spoken, they serve as an atonement for them: "Glory be to You, O Allah, and with Your praise; I seek Your forgiveness and turn to You in repentance."'[1] | Urdu: Whenever he sat in a gathering or performed prayer, he would say some words. The Mother of the Believers asked about those words. He said: 'They are such that if something good was said in that assembly, they will be a seal upon it until the Day of Resurrection, and if something bad was said, they are an expiation for it. O Allah! I praise and glorify You, and I seek Your forgiveness and repent to You.' |

By the grace of Allah, it has been proven from authentic Hadiths that the Holy Prophet ﷺ himself emphasized praying (supplicating) after the Eid prayers. The word 'La Yabrahan' (let them not leave) was used with the 'Noon' of emphasis. In fact, if you judge fairly, the Hadith of the Mother of the Believers ﷺ regarding her noble husband ﷺ indicates that the Holy Prophet ﷺ himself used to pray after the Eid prayers. Since the term used includes all types of prayers, it also covers Eid prayers. Therefore, this great Hadith, by the grace of Allah, is a complete clarification of this specific issue.

Fourthly, I say: And with Allah's success, setting all this aside, supplication (du'a) in general is one of the greatest religious recommendations and most exalted Sharia requirements. The Lawgiver ﷺ has permitted it for us without restriction of time or specification of form, invited us towards it, encouraged its increase, and warned against abandoning it. The Lord, Glorified and Exalted, says:

| Arabic: AND YOUR LORD SAYS, "CALL UPON ME; I WILL RESPOND TO YOU." [2] | Urdu: And your Lord said, "Call upon Me, I shall accept from you." |

And He says:

| Arabic: I RESPOND TO THE INVOCATION OF THE SUPPLICANT WHEN HE CALLS UPON ME. [3] | Urdu: I accept the prayer of the one who prays when he calls Me. |

In a Hadith Qudsi, He says:

1. Sunan al-Nasa'i, Book of Prostration of Forgetfulness, Chapter on Remembrance after Salutations, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub Karachi, 17/19.
2. Al-Quran 40/60
3. Al-Quran 2/186

फ़तावा-ए-रज़विया - जिल्द आठवीं

| अरबी: जब भी वह [पैगंबर ﷺ] किसी सभा में बैठते या नमाज़ पढ़ते, तो वे कुछ शब्द कहते। आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने उन शब्दों के बारे में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया: 'यदि उस सभा में अच्छी बातें कही गईं, तो ये शब्द प्रलय के दिन तक उन पर मुहर के रूप में काम करते हैं; और यदि बुरी बातें कही गईं, तो वे उनके लिए प्रायश्चित के रूप में काम करते हैं: "हे अल्लाह, तू पवित्र है और तेरी प्रशंसा के साथ; मैं तुझसे क्षमा माँगता हूँ और तेरी ओर पश्चाताप के साथ मुड़ता हूँ।"'[1] | उर्दू: किसी महफ़िल में बैठते या नमाज़ पढ़ते कुछ कलिमात फ़रमाते, उम्मुल मोमिनीन ने वो कलिमात पूछे, फ़रमाया वो ऐसे हैं कि अगर इस जलसा में कोई नेक बात कही है तो ये क़यामत तक उस पर मुहर हो जाएंगे और बुरी कही है तो कफ़ारा। इलाही! मैं तेरी तस्बीह ओ हम्द बजा लाता हूँ और तुझसे इस्तिग़फ़ार ओ तौबा करता हूँ। |

अल्लाह के फ़ज़ल से सही हदीसों से साबित हो गया कि नमाज़-ए-ईदैन के बाद दुआ माँगने की खुद हुज़ूर अकदस ﷺ ने ताकीद फ़रमाई। लफ्ज़ 'ला यबराहन्न' ताकीद के'नून' के साथ फ़रमाया गया। बल्कि इंसाफ़ कीजिये तो हदीस उम्मुल मोमिनीन ﷺ खुद हुज़ूर अकदस ﷺ का बाद नमाज़-ए-ईदैन दुआ माँगना बता रही है क्योंकि जो लफ्ज़ इस्तेमाल हुआ है वो तमाम नमाज़ों को आम है और उनमें ईदैन की नमाज़ें भी शामिल हैं, तो मज़कूरा हुक्म उन्हें भी शामिल है। पस यह हदीस-ए-जलील अल्लाह के फ़ज़ल से इस खास मसले की मुकम्मल वज़ाहत है।

चौथा मैं कहता हूँ: और अल्लाह की तौफ़ीक़ से, इन सब को अलग रखें तो दुआ मुतलकन दीन की अज़ीम पसंदीदा चीज़ों और शरीयत के बुलंद मक़सदों में से है कि शरीअ (नबी ﷺ) ने हमें वक्त की पाबंदी और रूप की विशेषता के बिना मुतलकन इसकी इजाज़त दी और उसकी तरफ दावत दी और इसकी ज़्यादती की रग़बत दिलाई और इसके छोड़ने पर चेतावनी दी, मौला सुबहानहु व तआला फ़रमाता है:

| अरबी: और तुम्हारे रब ने फ़रमाया, "मुझे पुकारो, मैं तुम्हारी पुकार सुनूँगा।" [2] | उर्दू: और तुम्हारे रब ने फ़रमाया मुझ से दुआ करो मैं क़बूल करूँगा। |

और फ़रमाता है:

| अरबी: मैं पुकारने वाले की पुकार सुनता हूँ जब भी वह मुझे पुकारता है। [3] | उर्दू: क़बूल करता हूँ दुआ करने वाले की दुआ जब मुझे पुकारे। |

हदीस-ए-कुदसी में फ़रमाता है:

1. सुनन अन-नसाई, किताबुस सहव, तस्लीम के बाद ज़िक्र की किस्म, नूर मुहम्मद कारख़ाना तिजारत कुतुब कराची, 17/19.
2. अल-क़ुरआन 40/60
3. अल-क़ुरआन 2/186

पेज 531 of 673

فتاوٰی رضویہ - جلد ہشتم

| عربی: کان اذا جلس مجلسا او صلی تکلم بکلمات و سالته عائشة عن الکلمات فقال ای تکلم بخیر کان تابعا علیهن یوم القیمة وان تکلم بشر کان کفارة له، سبحنك اللهم و بحمدك استغفرك و اتوب الیک۔ ۱ | اردو: کسی مجلس میں بیٹھتے یا نماز پڑھتے کچھ کلمات فرماتے، ام المومنین نے وہ کلمات پوچھے، فرمایا وہ ایسے ہیں کہ اگر اس جلسہ میں کوئی نیک بات کہی ہے تو یہ قیامت تک اس پر مُہر ہو جائیں گے اور بُری کہی ہے تو کفارہ۔ الٰہی! میں تیری تسبیح و حمد بجالاتا ہوں اور تجھ سے استغفار و توبہ کرتا ہوں۔ |

پس بحمد اللہ احادیثِ صحیحہ سے ثابت ہوگیا کہ نمازِ عیدین کے بعد دُعا مانگنے کی خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے تاکید فرمائی لفظ لا یبرحن بنون تاکید ارشاد ہوا بلکہ انصاف کیجئے تو حدیث ام المومنین صلی اللہ تعالٰی علی زوجہا الکریم وعلیہ وسلم خود حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا بعد نماز عیدین دعا مانگنا بتا رہی ہے کہ صلے زیرِ اذا، داخل تو ہر صورت نماز کو عام و شامل اور منجملہ صورِ نماز عیدین، تو حکمِ مذکور انہیں بھی متناول، پس یہ حدیثِ جلیل بحمد اللہ خاص جزئیہ کی تصریح کامل۔ رابعاً اقول: وباللہ التوفیق ان سب سے قطع نظر کیجئے تو دُعا مطلقاً اعظم مندوبات دینیہ واجل مطلوبات شرعیہ سے ہے کہ شارع صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ہمیں بے تقیید وقت و تخصیصِ ہیأت مطلقاً اس کی اجازت دی اور اُس کی طرف دعوت فرمائی اور اسکی تکثیر کی رغبت دلائی اور اس کے ترک پر وعید آئی، مولٰی سبحانہ وتعالٰی فرماتا ہے:

| عربی: وَقَالَ رَبُّکُمُ ادْعُوْنِیْٓ اَسْتَجِبْ لَکُمْؕ ۲ | اردو: اور تمہارے رب نے فرمایا مجھ سے دعا کرو میں قبول کروں گا۔ |

اور فرماتا ہے:

| عربی: أُجِيْبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ اِذَا دَعَانِۡ ۳ | اردو: قبول کرتا ہوں دُعا کرنے والے کی دُعا جب مجھے پکارے۔ |

حدیث قدسی میں فرماتا ہے:

1 سنن النسائی کتاب السہو نوع من الذکر بعد التسلیم مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱۷/۱۹ 2 القرآن ۶۰/۴۰ 3 القرآن ۱۸۶/۲

Volume Eight Fatawa Razawiya

'I am as My servant thinks of Me, and I am with him when he calls upon Me.' - Narrated by al-Bukhari, Muslim, at-Tirmidhi, an-Nasa'i, and Ibn Majah from Abu Hurayrah, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), from his Lord. Translation: I am near the expectation of My servant and I am with him when he prays to Me. Al-Bukhari, Muslim, Tirmidhi, Nasa'i and Ibn Majah narrated this from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) who narrated it from the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) who narrated it from his Lord, Mighty and Majestic.

And He says: 'O son of Adam, so long as you call upon Me and ask of Me, I shall forgive you for what you have done, and I shall not mind.' - Narrated by at-Tirmidhi and graded it 'hasan' from Anas bin Malik, from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), from his Lord, Blessed and Exalted is He. Translation: O son of Adam! As long as you keep praying to Me and keep hope, I will keep forgiving you no matter what your sins are and I do not care. Tirmidhi has narrated and termed it 'Hasan' and narrated it from Hazrat Anas bin Malik who narrated it from the Presence of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) who stated it from his Lord Blessed and Exalted.

And He, Mighty and Majestic, says: 'Whoever does not call upon Me, I am angry with him.' - Narrated by al-Askari in 'al-Mawa'iz' with a 'hasan' chain from Abu Hurayrah, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), from his Lord, Exalted and Holy is He. Translation: Whoever does not pray to Me, I shall be angry with him. Al-Askari narrated it in 'Mawa'iz' with a good chain from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him) who narrated it from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and he stated it from the Lord Exalted and Holy.

1. Sahih al-Bukhari, Book of Tawhid, published by Qadimi Kutub Khana Karachi 2/1101; Sahih Muslim, Book of Remembrance and Supplication, published by Noor Muhammad Ashah al-Matabi Karachi 2/441, 343 and 352
2. Jami' at-Tirmidhi, Chapters of Asceticism, published by Amin Company, Kutub Khana Rashidiya Delhi 2/62
3. Kanz al-Ummal referring to al-Askari in al-Mawa'iz, Hadith 3127, published by Maktabat al-Turath al-Islami Beirut 2/23; Sunan Ibn Majah, Chapter on the Virtue of Supplication, published by HM Saeed Company Karachi p. 280

जिल्द अष्टम फ़तावा रज़विया

'मैं वैसा ही हूँ जैसा मेरा बंदा मेरे बारे में गुमान (सोच) रखता है, और मैं उसके साथ होता हूँ जब वह मुझे पुकारता है।' - बुखारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसाई और इब्न माजाह ने हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत की, उन्होंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से, उन्होंने अपने रब अज़्ज-व-जल्ल से। अनुवाद: मैं अपने बंदे के गुमान के पास हूँ और मैं उसके साथ हूँ जब वह मुझसे दुआ करे। इसे बुखारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसाई और इब्न माजाह ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया, उन्होंने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से, आपने अपने रब अज़्ज-व-जल्ल से रिवायत किया।

और वह फरमाता है: 'ऐ आदम के बेटे! जब तक तू मुझे पुकारेगा और मुझसे उम्मीद रखेगा, तेरे जैसे भी गुनाह हों मैं तुझे माफ़ कर दूँगा और मुझे कोई परवाह नहीं।' - तिरमिज़ी ने इसे हज़रत अनस बिन मालिक से रिवायत किया और इसे 'हसन' करार दिया, उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से, आपने अपने रब तबारक व तआला से बयान फरमाया। अनुवाद: ऐ फ़र्ज़न्द-ए-आदम! तू जब तक मुझसे दुआ मांगेगा और उम्मीद रखेगा, तेरे कैसे ही गुनाह हों बख्शता रहूँगा और मुझे कुछ परवाह नहीं। तिरमिज़ी ने रिवायत करके इसे 'हसन' करार दिया है और इसे हज़रत अनस बिन मालिक से, उन्होंने हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से, आपने अपने रब तबारक व तआला से बयान फरमाया।

और अज़्ज-व-जल्ल फरमाता है: 'जो मुझसे दुआ नहीं करता, मैं उस पर नाराज़ होता हूँ।' - अल-अस्करी ने 'मवाइज़' में हसन सनद के साथ हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत किया, उन्होंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से, आपने रब तआला व तक़द्दस से। अनुवाद: जो मुझसे दुआ न करेगा मैं उस पर ग़ज़ब फरमाऊंगा। इसे अस्करी ने 'मवाइज़' में सनद-ए-हसन के साथ हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से और आपने रब तआला व तक़द्दस से बयान फरमाया।

1. सहीह अल-बुखारी किताब अल-तौहीद, कदीमी कुतुब खाना कराची 2/1101; सहीह मुस्लिम किताब अल-ज़िक्र व अल-दुआ, नूर मोहम्मद अश-उल-मताबे कराची 2/441, 343 और 352
2. जामि' अत-तिरमिज़ी अबवाब अल-ज़ुहद, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली 2/62

3. कंज़ुल उम्माल अल-अस्करी फी अल-मवाइज़ के हवाले से हदीस 3127, मकतबत अल-तुराथ अल-इस्लामी बेरूत 2/23; सुनन इब्न माजाह बाब फ़ज़्ल अल-दुआ, एच.एम. सईद कंपनी कराची पृ. 280

पृष्ठ 673 का 532

اَنَا عِنْدَ ظَنِّ عَبْدِیْ بِیْ وَاَنَا مَعَہٗ اِذَا دَعَانِیْ۔ رواہ البخاری و مسلم والترمذی والنسائی و ابن ماجہ عن ابی ھریرۃ عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم عن ربہ۔ میں اپنے بندے کے گمان کے پاس ہوں اور میں اس کے ساتھ ہوں جب مجھ سے دعا کرے۔ اسے بخاری، مسلم، ترمذی، نسائی اور ابن ماجہ نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے انہوں نے نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے آپ نے اپنے رب عزوجل سے روایت کیا۔

اور فرماتا ہے: یَا ابْنَ اٰدَمَ اِنَّکَ مَا دَعَوْتَنِیْ غَفَرْتُ لَکَ عَلٰی مَا کَانَ مِنْکَ وَلَا اُبَالِیْ۔ رواہ الترمذی وحسنہ عن انس بن مالك عن رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم عن ربہ تبارك وتعالی۔ اے فرزند آدم! تو جب تک مجھ سے دعا مانگے جائے گا اور اُمید رکھے گا تیرے کیسے ہی گناہ ہوں بخشا رہوں گا اور مجھے کچھ پرواہ نہیں۔ ترمذی نے روایت کر کے اسے حسن قرار دیا ہے اور اسے حضرت انس بن مالک سے انہوں نے حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے آپ نے اپنے رب تبارک وتعالیٰ سے بیان فرمایا۔

اور فرماتا ہے عزوجل: مَنْ لَا یَدْعُوْنِیْ اَغْضَبُ عَلَیْہِ۔ رواہ العسکری فی المواعظ بسند حسن عن ابی ھریرۃ عن النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم عن ربہ تعالی وتقدس۔ جو مجھ سے دعا نہ کرے گا میں اس پر غضب فرماؤں گا اسے عسکری نے مواعظ میں سندِ حسن کے ساتھ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے انہوں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے اور آپ نے رب تعالیٰ وتقدس سے بیان فرمایا۔

1 صحیح البخاری کتاب التوحید مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱۱۰۱/۲ ، صحیح مسلم کتاب الذکر والدعاء مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۴۴۱/۲ و ۳۴۳ و ۳۵۲ 2 جامع الترمذی ابواب الزہد مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۶۲/۲ 3 کنزالعمال بحوالہ العسکری فی المواعظ حدیث ۳۱۲۷ مطبوعہ مکتبۃ التراث الاسلامی بیروت ۲۳/۲ ، سنن ابن ماجہ باب فضل الدعاء مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۸۰

Fatawa Razawiya Volume Eight

The traditions (Hadiths) of Mustafa (Peace and blessings of Allah be upon him) on this subject are extremely numerous, reaching the level of mass transmission (Tawatur). A pious sentence regarding them was mentioned by the seal of researchers, the pinnacle of investigators, our noble father (may Allah sanctify his secret) in his blessed treatise "Ahsan al-Wi'a li-Adab al-Du'a". And this humble servant (may Allah the Almighty forgive him) in its commentary titled "Dhayl al-Mud'a li-Ahsan al-Wi'a" has provided the references of their narrations. The remaining books like "At-Targhib" by Imam Mundhiri and "Hisn Hasin" by Imam Ibn al-Jazari, etc., by other scholars, are sufficient to provide these Hadiths. For fear of being too lengthy, I am refraining from mentioning all the Hadiths regarding virtues and am restricting myself to only those few traditions that contain a command for emphasis on prayer (Du'a), or a warning against abandoning it, or a firm order for performing it frequently.

Hadith 1: It is narrated from Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with them both) that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Arabic: "Alaykum 'ibad Allah bid-du'a" 1 - Narrated by Tirmidhi | English translation: O servants of Allah, hold fast to prayer (Du'a). Tirmidhi narrated it and Arabic: "mustaghariban wal-Hakimu wa sahhahahu." | English translation: categorized it as 'Gharib', and Al-Hakim narrated it and declared it authentic (Sahih).

Hadith 2: It is narrated from Zaid bin Kharijah (may Allah be pleased with them both) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: Arabic: "Sallu 'alayya wajtahidu fid-du'a" 2 - Narrated by Imam Ahmad, An-Nasa'i, and At-Tabarani in 'Al-Kabir', and Ibn Sa'd, Samuwayh, Al-Baghawi, Al-Bawardi, and Ibn Qani'. | English translation: Send blessings (Durood) upon me and strive in prayer (Du'a). Imam Ahmad, An-Nasa'i, and At-Tabarani (in Kabir), Ibn Sa'd, Samuwayh, Al-Baghawi, Al-Bawardi and Ibn Qani' narrated it.

Hadith 3: It is narrated from Anas (may Allah be pleased with him) that the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) said: Arabic: "La ta'jazu fid-du'a fa-innahu lan yahlaka ma'ad-du'a ahadun" 3 - Narrated by Ibn Hibban in his 'Sahih' and Al-Hakim and declared it authentic. | English translation: Do not fall short in prayer, for indeed, no one will ever perish while continuing to pray. Ibn Hibban narrated it in Sahih and Al-Hakim narrated it and declared it authentic.

Hadith 4: It is narrated from Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them both) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: Arabic: "Tad'una

Allaha laylakum wa naharakum fainnad-du'a" | English translation: Pray to God night and day, for prayer is... Narrated by Abu Ya'la. | English translation: Pray to God night and day, for prayer is the Muslim's...

1 Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Supplications, printed by Amin Company, Rashidiyah Bookshop, Delhi 193/2 2 Sunan an-Nasa'i, Chapter on Sending Blessings upon the Prophet (PBUH), printed by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi 190/1 3 Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Supplication, printed by Dar al-Kutub, Beirut 1/494

फ़तावा रज़विया खंड आठ

इस विषय में मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की हदीसें तवातुर (व्यापक प्रसार) की सीमा पर हैं। उनके बारे में एक पवित्र वाक्य शोधकर्ताओं के मुहर, जांचकर्ताओं के शिखर, हमारे महान पिता (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र रखे) ने अपने धन्य ग्रंथ "अहसन अल-विआ लि-आदाब अल-दुआ" में उल्लेख किया है। और इस विनम्र सेवक (अल्लाह सर्वशक्तिमान उसे क्षमा करे) ने "ज़ैल अल-मुदआ लि-अहसन अल-विआ" नामक इसकी व्याख्या में उनके उल्लेखों के संदर्भ प्रदान किए हैं। बाकी किताबें जैसे इमाम मुन्ज़िरी की "अत-तरगीब" और इमाम इब्न अल-जज़री की "हिसन हसीन" आदि अन्य विद्वानों की रचनाएँ इन हदीसों के लिए पर्याप्त हैं। विस्तार के डर से, मैं गुणों से संबंधित सभी हदीसों का उल्लेख करने से बच रहा हूँ और केवल उन कुछ हदीसों तक सीमित हूँ जिनमें दुआ (प्रार्थना) पर जोर देने का आदेश है, या इसे छोड़ने के खिलाफ चेतावनी है, या इसे अधिकता से करने का कड़ा आदेश है।

हदीस १: अब्दुल्ला बिन उमर (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत है कि पवित्र पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: अरबी: "अलैकुम इबादल्लाहि बिद-दुआ" १ - इसे तिर्मिज़ी ने रिवायत किया | हिन्दी अनुवाद: अल्लाह के बंदों! दुआ को अनिवार्य रूप से थामे रखो। इसे तिर्मिज़ी ने रिवायत करके अरबी: "मुस्तग़रिबन वल-हाकिमु व सह़्ह़ह़हु।" | हिन्दी अनुवाद: 'ग़रीब' कहा और अल-हाकिम ने इसे रिवायत किया और इसे सही (प्रामाणिक) करार दिया।

हदीस २: ज़ैद बिन ख़ारिजा (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: अरबी: "सल्लू अलैय्या वज्तहिदू फ़िद-दुआ" २ - इसे इमाम अहमद, नसाई और तबरानी ने 'कबीर' में, इब्न साद, समवैया, बगवी, बावर्दी और इब्न क़ानि ने रिवायत किया है। | हिन्दी अनुवाद: मुझ पर दरूद भेजो और दुआ में कोशिश करो। इसे इमाम अहमद, नसाई और तबरानी ने कबीर में, इब्न साद, समवैया, बगवी, बावर्दी और इब्न क़ानि ने रिवायत किया।

हदीस ३: अनस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत है कि सैय्यद ए आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: अरबी: "ला तअ़जज़ू फ़िद-दुआ फ़इन्नहु लन यहलका मअ़द-दुआ अह़दुन" ३ - इसे इब्न हिब्बान ने अपनी 'सहीह' में और अल-हाकिम ने रिवायत करके इसे सही करार दिया। |

हिन्दी अनुवाद: दुआ में कमी न करो, क्योंकि दुआ करने वाला कभी हलाक (नष्ट) नहीं होगा। इसे इब्न हिब्बान ने 'सहीह' में और अल-हाकिम ने रिवायत करके सही करार दिया।

हदीस ४: जाबिर बिन अब्दुल्ला (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: अरबी: "तदऊनल-लाहा लैलकुम व नहारकुम फ़इन्नद-दुआ" | हिन्दी अनुवाद: रात-दिन अल्लाह से दुआ करो क्योंकि दुआ... रिवायत किया अबू याला ने। | हिन्दी अनुवाद: रात-दिन खुदा से दुआ मांगो कि दुआ मुसलमान का...

१ जामि अल-तिर्मिज़ी, अबवाब अल-दावात, अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली १९३/२ द्वारा मुद्रित २ सुनन अन-नसाई, बाब अल-सलात अला अल-नबी (सल्ल.), नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब कराची १९०/१ द्वारा मुद्रित ३ अल-मुस्तदरक अला अल-सहीहैन, किताब अल-दुआ, दार अल-कुतुब बेरूत १/ ४९४ द्वारा मुद्रित

पृष्ठ ५३३ / ६७३

احادیث مصطفٰی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اس باب میں سرحد تواتر پر خیمہ زن، ایک جملہ صالحہ اُن سے حضرت خاتم المحققین سنام المدققین سیدنا الوالد قدس سرہ الماجد نے رسالہ مستطابہ "احسن الوعاء لآداب الدعاء" میں ذکر فرمایا اور فقیر غفرلہ المولی القدیر نے اس کی شرح مسمّٰی بہ "ذیل المدعا لاحسن الوعا" میں اُن کی تخریجات کا پتا بتایا، باقی کتاب الترغیب امام منذری وحصن حصین امام ابن الجزری وغیرہما تصانیفِ علما ان احادیث کی کفیل ہیں، میں بخوف اطالت احادیثِ فضائل سے عطف عنان کر کے صرف ان بعض حدیثوں پر اقتصار کرتا ہوں جن میں دعا کی تاکید یا اس کے ترک پر تہدید یا اس کی تکثیر کا حکم اکید ہے۔

حدیث ۱: عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما کی حدیث میں ہے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: علیکم عباد اللہ بالدعاء ۱۔ رواہ الترمذی | خدا کے بندو! دعا کو لازم پکڑو۔ اسے ترمذی نے روایت کر کے مستغرباً والحاکم وصححہ۔ | غریب کہا اور حاکم نے روایت کر کے صحیح کہا۔

حدیث ۲: زید بن خارجہ رضی اللہ تعالٰی عنہما کی حدیث میں ہے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: صلوا علیّ واجتہدوا فی الدعاء ۲۔ رواہ الامام احمد والنسائی والطبرانی فی الکبیر وابن سعد وسمویہ والبغوی والباوردی وابن قانع۔ | مجھ پر درود بھیجو اور دعا میں کوشش کرو۔ اسے امام احمد، نسائی اور طبرانی نے کبیر میں، ابن سعد، سمویہ، بغوی، باوردی اور ابن قانع نے روایت کیا۔

حدیث ۳: انس رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث میں ہے سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: لا تعجزوا فی الدعاء فانہ لن یھلک مع الدعاء احد ۳۔ رواہ ابن حبان فی صحیحہ والحاکم وصححہ۔ | دعا میں تقصیر نہ کرو جو دعا کرتا رہے گا ہر گز ہلاک نہ ہوگا۔ اسے ابن حبان نے صحیح میں اور حاکم نے روایت کر کے صحیح قرار دیا۔

حدیث ۴: جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما کی حدیث میں ہے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: تدعون اللہ لیلکم ونہارکم فان الدعاء | رواہ ابو یعلیٰ۔ رات دن خدا سے دعا مانگو کہ دعا مسلمان کا

1 جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱۹۳/۲ 2 سنن النسائی باب الصلوۃ علی النبی صلی اللہ علیہ وسلم مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱۹۰/۱ 3 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دار الکتب بیروت ۱/ ۴۹۴

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Prayer is the] weapon of the believer[1]. (Narrated by Abu Ya'la).

Hadith 5: In the Hadith of Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them), the Mercy of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Pray for well-being frequently[2]." (Narrated by Al-Hakim with a fair [Hasan] chain). Imam Al-Hakim has narrated it with a fair chain.

Hadith 6: In the Hadith of Anas (may Allah be pleased with him), the Master of Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Pray frequently, for prayer repels the firm decree[3]." (Narrated by Abu al-Shaykh in Al-Thawab). Increase in prayer because prayer can overturn even a fixed fate. Abu al-Shaykh has recorded this in [the book] Al-Thawab. See the commentary on this Hadith in the humble servant's treatise "Zail al-Mud'a".

Hadith 7 & 8: In the Hadiths of Ubadah bin Samit and Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with them), it is mentioned that once the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) spoke about the virtue of prayer. The companions submitted: "Then we will pray excessively[4]." He replied: "Allah is even more [generous][5]." (The grace of Allah Almighty is very abundant). And in another narration: (And in the other narration: T) "Allah is Greatest" (Allah is very great). (Narrated by al-Tirmidhi and al-Hakim from Ubadah, and they graded it authentic [Sahih]; and Ahmad, al-Bazzar, and Abu Ya'la with good [Jayyid] chains; and al-Hakim said the chain is authentic from Abu Sa'id, may Allah be pleased with them). Imam Tirmidhi and Hakim narrated it from Hazrat Ubadah (may Allah be pleased with him) and declared it authentic. Imam Ahmad, Bazzar, and Abu Ya'la narrated it with good chains, and Hakim narrated from Hazrat Abu Sa'id (may Allah be pleased with both) and stated that its chain is authentic. (T)

Hadith 9 & 10: In the Hadiths of Salman al-Farsi and Abu Hurairah (may Allah be pleased with them), the noble Prophet (peace be upon him)...

---

1. Musnad Abu Ya'la narrated from Jabir (may Allah be pleased with him), Hadith 1806, published by Mu'assasat 'Ulum al-Qur'an Beirut, 2/329.
2. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Supplication, published by Dar al-Fikr Beirut, 1/529.

3. Kanz al-'Ummal with reference to Abu al-Shaykh from Anas (may Allah be pleased with him), Hadith 3120, published by Maktabat al-Turath al-Islami Beirut, 2/63.
4. Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Supplications, published by Amin Company Kutub Khana Rashidiyah Delhi, 2/174.
5. Musnad Ahmad bin Hanbal narrated from Abu Sa'id al-Khudri, published by Dar al-Fikr Beirut, 3/18.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[दुआ] मोमिन का हथियार है[1]। इसे अबू यला ने रिवायत किया है।

हदीस 5: अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस में है, रहमत-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "आफ़ियत की दुआ अक्सर माँगो[2]।" (रवाहु अल-हाकिम बिसंदिन हसन)। इमाम हाकिम ने इसे सनदे हसन के साथ रिवायत किया है।

हदीस 6: अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में है, सैय्यदुल मुर्सलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "दुआ की कसरत करो क्योंकि दुआ कज़ा-ए-मुबरम (अटल भाग्य) को रद्द कर देती है[3]।" (अखरजहु अबुल शैख़ फ़ी अल-सवाब)। दुआ की कसरत करो कि दुआ कज़ा-ए-मुबरम को रद्द करती है। इसे अबुल शैख़ ने 'अल-सवाब' में नक़ल किया है। इस हदीस की शरह (व्याख्या) फ़क़ीर (लेखक) के रिसाले 'ज़ैल अल-मुद्दआ' में देखिये।

हदीस 7 व 8: उबादा सामित और अबू सईद ख़ुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीसों में है, एक बार हुज़ूर अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने दुआ की फ़ज़ीलत (महिमा) बयान फ़रमाई, सहाबा ने अर्ज़ की: "तो फिर हम दुआ की कसरत करेंगे[4]।" फ़रमाया: "अल्लाह अक्सर[5]।" (अल्लाह अज़्ज़वजल का करम बहुत कसीर है)। और दूसरी रिवायत में है: (व फ़ी अल-रिवायतिल उख़रा: त) "अल्लाहू अकबर" (अल्लाह बहुत बड़ा है)। (रवाहु अत-तिर्मिज़ी व अल-हाकिम अन उबादा व सह्-हहाहु व अहमद व अल-बज़्ज़ार व अबू यला बि-असानीदुन जय्यिदतुन व अल-हाकिम व क़ाला सहीहु अल-इसनाद अन अबी सईद रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा)। इसे इमाम तिर्मिज़ी और हाकिम ने हज़रत उबादा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत करके सहीह क़रार दिया, इमाम अहमद, बज़्ज़ार और अबू यला ने असानीदे जय्यिदा (अच्छी संदों) के साथ रिवायत किया है और हाकिम ने हज़रत अबू सईद (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करके फ़रमाया कि इसकी सनद सहीह है। (त)

हदीस 9 व 10: सलमान फ़ारसी और अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीसों में है, हुज़ूर वाला (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)...

---

1. मुसनद अबू यला, जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी, हदीस 1806, प्रकाशक: मुअस्ससतु उलूम अल-क़ुरआन बेरूत, 2/329.
2. अल-मुस्तदरक अलस-सहीहैन, किताबुद-दुआ, प्रकाशक: दारुल फ़िक्र बेरूत, 1/529.

3. कंज़ुल उम्माल, अबुल शैख़ के हवाले से अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, हदीस 3120, प्रकाशक: मकतबतुल तुरासुल इस्लामी बेरूत, 2/63.
4. जामे' तिर्मिज़ी, अबवाबुद-दअवात, प्रकाशक: अमीन कंपनी कुतुब ख़ाना रशीदिया दिल्ली, 2/174.
5. मुसनद अहमद बिन हंबल, अबू सईद ख़ुदरी से मरवी, प्रकाशक: दारुल फ़िक्र बेरूत, 3/18.

سلاح المؤمن ۱۔ ہتھیار ہے۔ اسے ابویعلی نے روایت کیا ہے۔

حدیث ۵: عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما کی حدیث میں ہے رحمت عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : اکثروالدعاء بالعافیۃ ۲۔ رواہ الحاکم بسند حسن۔ عافیت کی دعا اکثر مانگو۔ امام حاکم نے اسے سند حسن کے ساتھ روایت کیا ہے۔

حدیث ۶: انس رضی اللہ تعالٰی عنہ کی حدیث میں ہے سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں : اکثر من الدعاء فان الدعاء یرد القضاء المبرم ۳۔ اخرج ابوالشیخ فی الثواب۔ دعا کی کثرت کرو کہ دعا قضائے مبرم کو رد کرتی ہے۔ اسے ابوالشیخ نے ثواب میں نقل کیا ہے۔ اس حدیث کی شرح فقیر کے رسالہ ذیل المدعامیں دیکھئے۔

حدیث ۷ و ۸: عبادہ صامت وابوسعید خدری رضی اللہ تعالٰی عنہما کی حدیثوں میں ہے ایک بار حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے دعا کی فضیلت ارشاد فرمائی ، صحابہ نے عرض کی : اذا نکثر ۴ ایسا ہے تو ہم دعا کی کثرت کریں گے، فرمایا : اللہ اکثر ۵ اللہ عزوجل کا کرم بہت کثیر ہے، وفي الروایۃ الاخری (دوسری روایت میں ہے۔ت) اللہ اکبر اللہ بہت بڑا ہے، رواہ الترمذی والحاکم عن عبادۃ وصححاہ واحمد والبزار وابویعلی باسانید جیدۃ والحاکم وقال صحیح الاسناد عن ابی سعید رضی اللہ تعالی عنہما۔ اسے امام ترمذی اور حاکم نے حضرت عبادہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کر کے صحیح قرار دیا ، امام احمد ، بزار اور ابویعلی نے اسانید جیدہ کے ساتھ روایت کیا ہے اور حاکم نے حضرت ابو سعید رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کر کے فرمایا کہ اس کی سند صحیح ہے۔ (ت)

حدیث ۹ و ۱۰: سلمان فارسی وابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہما کی حدیثوں میں ہے حضور والا صلی اللہ

---

1 مسند ابی یعلی مروی از جابر رضی اللہ تعالیٰ عنہ حدیث ۱۸۰۶ مطبوعہ موسسۃ علوم القرآن بیروت ۳۲۹/۲ 2 المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دارالفکر بیروت ۵۲۹/۱ 3 کنز العمال بحوالہ ابی الشیخ عن انس رضی اللہ عنہ حدیث ۳۱۲۰ مطبوعہ مکتبۃ التراث الاسلامی بیروت ۲/ ۶۳ 4 جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/ ۱۷۴ 5 مسند احمد بن حنبل مروی از ابوسعید الخدری مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱۸/۳

Fatawa Ridawiyya - Volume 8

[The Prophet] (peace and blessings of Allah be upon him) says: “Whoever is pleased that Allah should answer his prayers during times of hardship, let him increase his prayers during times of ease.”[1] - Narrated by al-Tirmidhi from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), and by al-Hakim from him and from Salman, and he said it is Sahih (authentic) and the scholars of Hadith concurred with its authenticity.

Hadith 11: It is narrated in the Hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) says: “Whoever does not ask of Allah, He becomes angry with him.”[2] - Narrated by Ahmad, Ibn Abi Shaybah, and al-Bukhari in 'al-Adab al-Mufrad', and al-Tirmidhi, Ibn Majah, al-Bazzar, Ibn Hibban, and al-Hakim, and they graded it as Sahih.

O Muslims! You have heard the instructions of your Lord (Exalted be He) and your noble Messenger (peace and blessings of Allah be upon him). Is there any scent of restriction or limitation in them? It has been repeatedly said 'supplicate (make Dua)'. Did it ever say 'do not do it after a certain prayer'? It is clearly stated that 'whenever you supplicate, I will listen'. Did it ever say 'only if you supplicate at a certain time, will I listen'? There are repeated commands and emphasis: do not be lazy in supplication, strive in supplication, hold fast to supplication, increase your supplications, supplicate day and night. Did it ever say 'do not ask after a certain prayer'? Rather, a warning has been given that whoever does not ask will face [His] wrath. Was it ever said that if someone asks after a certain prayer, Allah will be angry with him? And when it is not mentioned anywhere, then why treat as restricted what God and His Messenger (Glory be to Him and peace be upon him) have left general and absolute?

---

[1] Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Supplications, printed by Amin Company, Rashidiyah Book Depot, Delhi, 2/174. [2] Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Supplications, printed by Amin Company, Rashidiyah Book Depot, Delhi, 2/174; al-Adab al-Mufrad, Chapter 286, Hadith 658, printed by al-Maktabat al-Athariyyah, Sangla Hill, p. 171; Musnad Ahmad bin Hanbal, narrated from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), printed by Dar al-Fikr, Beirut, 2/443; Musannaf Ibn Abi Shaybah, Book of Supplication, Hadith 9218, printed by Idarat al-Qur'an wal-'Ulum al-Islamiyyah, Karachi, 10/200.

[नबी] (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: "जिसे यह पसंद हो कि अल्लाह उसकी दुआओं को कठिनाई के समय स्वीकार करे, तो वह खुशहाली के समय अधिक दुआ किया करे।"[1] - इसे तिर्मिज़ी ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और हाकिम ने उनसे और हज़रत सलमान (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है और कहा है कि यह सहीह है और मुहाद्दिसीन (हदीस विशेषज्ञों) ने इसकी प्रमाणिकता को बरकरार रखा है।

हदीस 11: हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस में है कि हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: "जो अल्लाह से दुआ नहीं करता, अल्लाह उस पर क्रोधित होता है।"[2] - इसे इमाम अहमद, इब्न अबी शैबा और बुखारी ने 'अल-अदब अल-मुफ़रद' में, तिर्मिज़ी, इब्न माजाह, बज़ार, इब्न हिब्बान और हाकिम ने रिवायत किया है और इसे सहीह कहा है।

ऐ मुसलमानों! आपने अपने मौला (अज़-व-जल) और अपने रसूल अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के उपदेशों को सुना। क्या उनमें कहीं भी विशिष्टता या पाबंदी की गंध है? यह तो बार-बार फरमाया गया कि दुआ करो। क्या कहीं यह भी फरमाया कि फ़लाँ नमाज़ के बाद न करो? यह तो स्पष्ट आदेश है कि जिस समय तुम दुआ करोगे, मैं सुनूँगा। क्या कहीं यह भी फरमाया कि फ़लाँ समय करोगे तो ही सुनूँगा? यह तो ताकीद (ज़ोर देकर) बार-बार हुक्म आया है कि दुआ से हार न मानो, दुआ में कोशिश करो, दुआ को लाज़िम पकड़ो, दुआ की कसरत (ज़्यादा) करो, दिन-रात दुआ माँगो। क्या कहीं यह भी फरमाया गया है कि फ़लाँ नमाज़ के बाद न माँगो? यह तो डरावा सुनाया गया है कि जो दुआ नहीं माँगेगा, उस पर गज़ब (क्रोध) होगा। क्या कहीं यह भी फरमाया गया है कि फ़लाँ नमाज़ के बाद जो माँगेगा, उससे अल्लाह नाराज़ होगा? और जब कहीं नहीं है, तो ख़ुदा और रसूल (जल्ल-जलालुहू व सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जिस चीज़ को आम और मुतलक (असीमित) रखा है, उसे वैसा ही रहने दो।

---

[1] जामि तिर्मिज़ी, अबवाब अल-दावात, मुद्रित अमीन कंपनी, कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 2/174। [2] जामि तिर्मिज़ी, अबवाब अल-दावात, मुद्रित अमीन कंपनी, कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 2/174; अल-अदब अल-मुफ़रद, अध्याय 286, हदीस 658, मुद्रित अल-मकतबत अल-असरिया, सांगला हिल, पृ. 171; मुसनद अहमद बिन हंबल, हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत, मुद्रित

दार अल-फ़िक्र बेरुत, 2/443; मुसन्निफ इब्न अबी शैबा, किताब अल-दुआ, हदीस 9218, मुद्रित इदारत अल-कुरान वल-उलूम अल-इस्लामिया कराची, 10/200।

पृष्ठ 673 में से 535

تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: من سرہ ان یستجیب اللہ لہ عند الشدائد فلیکثر من الدعاء عند الرخاء ۱- رواہ الترمذی عن ابی ہریرۃ والحاکم عنہ وعن سلمان وقال صحیح واقروہ۔ جسے خوش آئے کہ اللہ تعالیٰ سختیوں میں اس کی دعا قبول فرمائے وہ نرمی میں دعا کی کثرت رکھے۔ اسے ترمذی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے اور حاکم نے ان سے اور حضرت سلمان رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کرکے فرمایا کہ یہ صحیح ہے اور محدثین نے اس کی صحت کو برقرار رکھا۔

حدیث ۱۱: ابوہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ کی حدیث میں ہے حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: من لم یسأل اللہ یغضب علیہ ۲- رواہ احمد وابن ابی شیبۃ والبخاری فی الادب المفرد والترمذی وابن ماجۃ والبزار وابن حبان والحاکم وصححاہ۔ جو اللہ تعالیٰ سے دعا نہ کرے گا اللہ تعالیٰ اس پر غضب فرمائے گا۔ اسے امام احمد، ابن ابی شیبہ اور بخاری نے ادب المفرد میں، ترمذی، ابن ماجہ، بزار، ابن حبان اور حاکم نے روایت کرکے صحیح کہا۔

ایہا المسلمون تم نے اپنے مولا جل وعلا اور اپنے رسول اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ارشادات سنے ان میں کہیں بھی تخصیص و تقیید کی بو ہے، یہ تو بار بار فرمایا کہ دعا کرو، کہیں یہ بھی فرمایا کہ فلاں نماز کے بعد نہ کرو؟ یہ تو صاف ارشاد ہوا ہے کہ جس وقت دعا کرو گے میں سنوں گا، کہیں یہ بھی فرمایا کہ فلاں وقت کرو گے تو سنوں گا؟ یہ تو تاکید بار بار حکم آیا ہے کہ دعا سے عاجز نہ ہو، دعا میں کوشش کرو، دعا کو لازم پکڑو، دعا کی کثرت رکھو، رات دن دعا مانگو، کہیں یہ بھی فرمایا ہے کہ فلاں نماز کے بعد نہ مانگو؟ یہ تو ڈر سنایا گیا ہے کہ جو دعا نہ مانگے گا اس پر غضب ہوگا، کہیں یہ بھی فرمایا ہے کہ فلاں نماز کے بعد جو مانگے گا اس

سے اللہ تعالیٰ ناراض ہوگا؟ ۔ اور جب کہیں نہیں تو خدا اور رسول جل جلالہ وصلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے جس چیز کو عام و مطلق رکھا وہ سرا اسے

---

۱ جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/۱۷۴ ۲ جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/۱۷۴، ادب المفرد باب ۲۸۶ حدیث ۶۵۸ مطبوعہ المکتبۃ الاثریۃ سانگلہ ہل ص ۱۷۱، مسند احمد بن حنبل مروی از ابوہریرہ رضی اللہ عنہ مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲/۴۴۳، مصنف ابن ابی شیبہ کتاب الدعاء حدیث ۹۲۱۸ مطبوعہ ادارۃ القرآن والعلوم الاسلامیہ کراچی ۱۰/۲۰۰

Fatawa-e-Razvia Volume Eight

Who is the one to specify and restrict? If Allah (Glorified and Exalted be He) and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) have not forbidden something, then who else is there to forbid it? Allah says:

| “And do not say about what your tongues assert of untruth, 'This is lawful and this is forbidden,' to invent falsehood about Allah. Indeed, those who invent falsehood about Allah will not succeed.”[1] | And do not say that which your tongues describe as lies: this is lawful and this is forbidden, so that you forge a lie against Allah. Verily, those who forge lies against Allah will not prosper. |

The principle is that “The command is for none but Allah”[2]. Judgment belongs only to God. Whatever thing He has specified with a particular form or designated location, and restricted or confined it thereto, exceeding it is not permissible. Whoever exceeds it will introduce an innovation (Bid'ah) in religion. And whatever He has kept in a state of general dispatch and absolute application, it shall never be restricted to any particular form or location, and it will always remain upon its absolute application. Anyone who separates some forms from it will be creating an innovation in religion. Remembrance (Dhikr) and Supplication (Du'a) are of this category, for indeed the Pure Shari'ah has never confined them to any restriction or specification, but rather commanded their abundance generally and absolutely. You have already heard the verses and Hadiths regarding Du'a, and the absolute proofs for the abundance of Dhikr, which should be counted fifth in this sequence, because every Du'a is self-evidently a remembrance of Allah. Scholars have also explicitly stated this; Mullah Ali Qari states in 'Sharh al-Mishkat': 'Every Du'a is Dhikr'. Therefore, the proofs for general permission of Dhikr are exactly the same as the proofs for general permission of Du'a because generalization of broader individuals* or equals necessarily entails generalization of narrower and equal individuals, as is not hidden. The complete abundance of these majestic proofs is beyond count. This humble person (may the Almighty Master forgive him) has written numerous verses and Hadith on this claim in his treatise 'Naseem al-Saba fi an al-Adhan Yahul al-Waba'. Among them is the good Hadith from Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him) that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said:

*: Note: Dhikr being broader is only with respect to the present universal proposition, otherwise it was mentioned previously that from the other side this same proposition

applies, so Du'a and Dhikr are categorically equal, and now the unity of evidence is even more clear and manifest. 12 (m)

[1] Quran 16/116 [2] Quran 6/57

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द अष्टम (आठवीं)

विशिष्ट और प्रतिबंधित करने वाला कौन है? जिस चीज़ से अल्लाह अज़्ज़वजल और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मना नहीं फ़रमाया, उसे मना करने वाला दूसरा कौन है? अल्लाह तआला फ़रमाता है:

| “और अपनी ज़बानों के झूठ के आधार पर यह न कहो कि 'यह हलाल है और यह हराम है' ताकि तुम अल्लाह पर झूठ गढ़ो। बेशक, जो अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं, वे सफल नहीं होंगे।”[1] | और न कहो इसे जो तुम्हारी ज़बानें झूठ बयान करती हैं यह हलाल है और यह हराम है कि अल्लाह पर झूठ बांधो बेशक जो अल्लाह पर झूठ बांधते हैं उनका भला न होगा। |

मूल बात यह है कि 'हुक्म सिर्फ अल्लाह ही के लिए है'[2]। हुक्म सिर्फ ख़ुदा ही के लिए है। जिस चीज़ को उसने किसी विशेष रूप या निश्चित स्थान के साथ विशिष्ट किया और उसे वहीं तक सीमित और संकुचित रखा, उससे आगे बढ़ना जायज़ नहीं है। जो आगे बढ़ेगा वह दीन में बिदअत (नवाचार) निकालेगा। और जिस चीज़ को उसने सामान्य और निरपेक्ष रखा है, वह कभी भी किसी विशेष रूप और स्थान के साथ नहीं जुड़ेगी और हमेशा अपने निरपेक्ष स्वरूप पर ही रहेगी। जो इससे कुछ रूपों को अलग करेगा, वह दीन में बिदअत पैदा करेगा। ज़िक्र और दुआ इसी श्रेणी से हैं, क्योंकि पावन शरीयत ने उन्हें कभी किसी पाबंदी या विशिष्टता में सीमित नहीं किया, बल्कि आम तौर पर और निरपेक्ष रूप से उनकी बहुतायत का हुक्म दिया है। दुआ के बारे में आप आयतें और हदीसें सुन ही चुके हैं और ज़िक्र की बहुतायत के निरपेक्ष प्रमाण जिन्हें इस सिलसिले में पांचवां कहा जा सकता है, क्योंकि हर दुआ स्पष्ट रूप से अल्लाह का ज़िक्र है और इस पर विद्वानों ने भी स्पष्ट रूप से फ़रमाया है। मौलाना अली क़ारी 'शरह मिश्कात' में फ़रमाते हैं: 'हर दुआ ज़िक्र है'। तो ज़िक्र की आम अनुमति के प्रमाण ही वास्तव में दुआ की आम अनुमति के प्रमाण हैं, क्योंकि व्यापक* या समान व्यक्तियों का सामान्यीकरण अनिवार्य रूप से विशिष्ट और समान व्यक्तियों के सामान्यीकरण की ओर ले जाता है, जैसा कि छिपा नहीं है। इन महान प्रमाणों की प्रचुरता गणना से परे है। फ़कीर (अल्लाह उसे क्षमा करे) ने अपने रिसाले 'नसीम अल-सबा फ़ी अन्न अल-अज़ान यहुल अल-वबा' में इस दावे पर बहुत सी आयतें और हदीसें लिखी हैं, जिनमें से अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की अच्छी हदीस है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं:

*: नोट: ज़िक्र का व्यापक होना केवल वर्तमान सामान्य नियम के संदर्भ में है, अन्यथा पहले उल्लेख किया गया है कि दूसरी ओर से भी यही नियम है, तो दुआ और ज़िक्र निश्चित रूप से समान हैं और अब प्रमाणों की एकता और भी स्पष्ट और उज्ज्वल है। 12 (म)

[1] अल-कुरान 116/16 [2] अल-कुरान 57/6

पृष्ठ 536/673

مخصوص و مقید کرنے والا کون؟ خدا اور رسول عزوجل و صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے جس چیز سے منع نہ فرمایا دوسرا اسے منع کرنے والا کون؟ قال تعالٰی:

| وَلَا تَقُولُوا لِمَا تَصِفُ أَلْسِنَتُكُمُ الْكَذِبَ هَذَا حَلَالٌ وَهَذَا حَرَامٌ لِتَفْتَرُوا عَلَى اللَّهِ الْكَذِبَ إِنَّ الَّذِينَ يَفْتَرُونَ عَلَى اللَّهِ الْكَذِبَ لَا يُفْلِحُونَ ۱ | اور نہ کہو اسے جو تمہاری زبانیں جھوٹ بیان کرتی ہیں یہ حلال ہے اور یہ حرام ہے کہ اللہ پر جھوٹ باندھو بیشک جو اللہ پر جھوٹ باندھتے ہیں ان کا بھلا نہ ہوگا۔ |

اصل یہ ہے کہ اِنِ الْحُکْمُ اِلَّا لِلّٰہِ ۲ حکم صرف خدا ہی کے لئے ہے۔ جس چیز کو اس نے کسی ہیئت خاصہ محل معین سے مخصوص اور اس پر مقصور و محصور فرمایا اس سے تجاوز جائز نہیں، جو تجاوز کرے گا دین میں بدعت نکالے گا اور جس چیز کو اس نے ارسال و اطلاق پر رکھا ہر گز کسی ہیئت و محل پر مقترنہ نہ ہوگی اور ہمیشہ اپنے اطلاق ہی پر رہے گی جو اس سے بعض صور کو جدا کرے گا دین میں بدعت پیدا کرے گا، ذکر و دعا اسی قبیل سے ہیں کہ زنہار شرع مطہر نے انہیں کسی قید و خصوصیت پر محصور نہ فرمایا بلکہ عموماً و مطلقاً ان کی تکثیر کا حکم دیا۔ دعا کے بارے میں آیات و حدیث سن ہی چکے اور دلائل مطلقہ تکثیرِ ذکر جنہیں اس سلسلہ شمار میں (خامساً) کہنے کہ ہر دعا بالبداہۃ ذکر الٰہی ہے اور اس پر علماء نے تنصیص بھی فرمائی، مولانا قاری شرح مشکوۃ میں فرماتے ہیں: کل دعا ذکر (ہر دعا ذکر ہے۔ت) تو اجازتِ عامہ ذکر کے دلائل بعینہا اجازتِ عامہ کے دلائل ہیں کہ تعمیم افراد اعم عہ یا مساوی، لاجرم تعمیم افراد اخص و مساوی ہے کما لا یخفی (جیسا کہ مخفی نہیں ہے۔ت) ان دلائل جلائل کا وفور کامل حدِ احصاء کی طرف مقابل، فقیر غفر لہ المولی القدیر نے اپنے رسالہ نسیم الصبا فی ان الاذان یحول

الوباء میں اس مدعا پر بکثرت آیات و حدیثیں لکھیں، از انجلہ حدیث حسن ابو سعید خدری رضی اللہ تعالیٰ عنہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

عہ: ذکر اعم صرف بنظر کلیہ حاضرہ ہے ورنہ سابق گزرا کہ دوسری طرف سے یہی کلیہ ہے تو دعا و ذکر قطعاً مساوی اور اب اتحاد ادلہ اور بھی واضح و جلی ۱۲منہ (م)

1 القرآن ۱۱۶/۱۶ 2 القرآن ۵۷/۶

Fatawa Rizvia, Volume 8

"Remember Allah so much that people say you are insane."[1] | Remember Allah's remembrance to such an extent that people call you crazy. And the good (Hasan) Hadith from Abdullah bin Busr (may Allah be pleased with him): The Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Let your tongue remain always moist with the remembrance of Allah."[2] A Hadith with a strong chain of narrators (Jayyid al-Isnad) from Umm Anas (may Allah be pleased with her): The exalted Presence (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Remember Allah abundantly, for you will not bring anything more beloved to Him than the abundance of His remembrance."[3] | Remember Allah abundantly so that you do not bring anything more beloved to God than the abundance of His remembrance. And the Hadith of Abu Huraira (may Allah be pleased with him): The Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Whoever does not remember Allah much has become free from faith."[4] | Whoever does not do remembrance of Allah abundantly, he has become weary of faith. And a Sahih Hadith from the Mother of the Believers, Siddiqah (may Allah be pleased with her): "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to remember Allah Almighty at all times."[5] | The radiant Presence, the Master of the Messengers (peace and blessings of Allah be upon him) used to perform the remembrance of God at all times. Besides these, there are numerous other Hadiths and reports (Athar). (T) Here, we restrict ourselves to some verses and their interpretations which are explicit texts regarding the generality of all times and states: Verse 1: He, Whose remembrance is exalted, said: "Then remember Allah standing, sitting, or [lying] on your sides."[6] | Remember Allah while standing, sitting, and on your sides. Scholars of Islam write in the interpretation of this verse to maintain constancy in the remembrance of Allah and prayer in all states. - Baidawi.

1. Al-Mustadrak 'ala al-Sahihayn, Book of Supplication, published by Dar al-Fikr, Beirut, 1/499.
2. Jami' al-Tirmidhi, Chapters on Supplications, published by Amin Company, Kutub Khana Rashidiyah, Delhi, 2/173.
3. Dur al-Manthur, citing Al-Tabarani, mentioned under "Abundant Remembrance," published by Ayatollah al-Uzma, Qom, Iran, 5/205.
4. Dur al-Manthur, citing Al-Mu'jam al-Awsat, mentioned under "Abundant Remembrance," published by Ayatollah al-Uzma, Qom, Iran, 5/205; At-Targhib

wat-Tarhib, Book of Remembrance and Supplication, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 2/201.
5. Sunan Abi Dawud, Chapter on a man remembering Allah without Wudu, published by Aftab Alam Press, Lahore, 1/7.
6. Al-Qur'an 4/103.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

"अल्लाह का इतना ज़िक्र करो कि लोग तुम्हें पागल कहें।"[1] | ज़िक्र-ए-इलाही की यहाँ तक कसरत करो कि लोग मजनून (पागल) बताएँ। और अब्दुल्लाह बिन बुस्र (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी हसन हदीस में है कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुम्हारी ज़ुबान हमेशा अल्लाह के ज़िक्र से तर रहे।"[2] जय्यिदुल असनाद हदीस उम्मे अनस (रज़ियल्लाहु अन्हा) से मरवी है कि हुज़ूरे वाला (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "अल्लाह का ज़िक्र कसरत से कर कि तू कोई ऐसी चीज़ न लाए जो अल्लाह को अपने कसरत-ए-ज़िक्र से ज़्यादा प्यारी हो।"[3] | अल्लाह का ज़िक्र बकसरत कर कि तू कोई चीज़ ऐसी न लाए जो ख़ुदा को अपनी कसरत-ए-ज़िक्र से ज़्यादा प्यारी हो। और अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस है कि सरवरे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फ़रमाते हैं: "जो अल्लाह का ज़िक्र कसरत से न करे वह ईमान से बेज़ार हो गया।"[4] | जो ज़िक्र-ए-इलाही की कसरत न करे वह ईमान से बेज़ार हो गया। और उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की सहीह हदीस है: "रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर समय अल्लाह तआला का ज़िक्र फ़रमाया करते थे।"[5] | हुज़ूरे पुर नूर सैयदुल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हर वक़्त ज़िक्र-ए-ख़ुदा फ़रमाया करते। इसके अलावा भी अनेक अहादीस और आसार (रिपोर्ट्स) हैं। (त) यहाँ केवल कुछ आयतों और उनकी तफ़सीरों (व्याख्याओं) पर इक्तिसार (संक्षेप) किया जा रहा है जो तमाम औक़ात और अहवाल की उमूमियत पर नस (स्पष्ट पाठ) हैं: आयत 1: अल्लाह जल्ला ज़िक्रुहू ने फ़रमाया: "फिर अल्लाह का ज़िक्र करो खड़े, बैठे और अपनी करवटों पर।"[6] | अल्लाह का ज़िक्र करो खड़े और बैठे और अपनी करवटों पर। उलेमा-ए-किराम इस आयत की तफ़सीर में लिखते हैं कि तमाम अहवाल में ज़िक्र-ए-इलाही और दुआ की मुदावमत (निरंतरता) करो। - बैज़ावी

1. अल-मुस्तदरक अलस सहीहैन, किताबुद दुआ, मतबूआ दारुल फ़िक्र बेरूत, 1/499
2. जामेअ अत-तिर्मिज़ी, अबवाबुद दावात, मतबूआ अमीन कंपनी कुतुब खाना रशीदिया दिल्ली, 2/173
3. दुर्र-ए-मंसूर बहवाला अल-तबरानी, ज़िक्र-ए-कसीर के तहत मज़कूर है, मतबूआ आयतुल्लाह अल-उज़मा क़ुम ईरान, 5/205
4. दुर्र-ए-मंसूर बहवाला अल-मुअजम अल-औसत, ज़िक्र-ए-कसीर के तहत मज़कूर है, मतबूआ आयतुल्लाह अल-उज़मा क़ुम ईरान, 5/205; अत-तर्गीब वत-तरहीब, किताबुज़ ज़िक्र वद दुआ, मतबूआ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 2/201

5. सुनन अबी दाऊद, बाब फ़िर रजुल यज़कुरुल्लाह तआला अला ग़ैरे वुज़ू, मतबूआ आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर, 1/7
6. अल-कुरआन 4/103

اکثروا ذکر اللہ حتی یقولوا مجنون ۱- | ذکر الٰہی کی یہاں تک کثرت کرو کہ لوگ مجنون بتائیں۔ وحدیث حسن عبداللہ بن بُسر رضی اللہ تعالٰی عنہ سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: لایزال لسانک رطبا من ذکر اللہ ہمیشہ ذکر الٰہی میں تری زبان رہ۔ ۲ حدیث جید الاسناد ام انس رضی اللہ تعالٰی عنہا حضور والا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا: اکثری من ذکر اللہ فانک لاتأتین بشیئ احب الیہ من کثرۃ ذکرہ ۳- | اللہ کا ذکر بکثرت کر کہ تو کوئی چیز ایسی نہ لائے جو خدا کو اپنی کثرت ذکر سے زیادہ پیاری ہو۔ وحدیث ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سرور عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فرماتے ہیں: من لم یکثر ذکر اللہ فقد برئ من الایمان ۴ | جو ذکر الٰہی کی کثرت نہ کرے وہ ایمان سے بیزار ہوگیا۔ وحدیث صحیح ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا: کان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یذکر اللہ تعالٰی علی کل احیانہ ۵- | حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ہر وقت ذکر خدا فرمایا کرتے۔ الی غیر ذلک من الاحادیث والاثار (ان کے علاوہ متعدد احادیث وآثار ہیں۔ ت) یہاں صرف بعض آیات اور ان کی تفسیروں پر اقتصار ہوتا ہے جو عموم تمامی اوقات واحوال میں نص ہیں: آیت ۱: قال جل ذکرہ : فا ذ کروا اللہ قیاماً وَقُعُودًا وَ عَلَی جُنُوبِکُمْ ج ۶- | اللہ کا ذکر کرو کھڑے اور بیٹھے اور اپنی کروٹوں پر۔ علمائے کرام اس آیت کی تفسیر میں لکھتے ہیں کہ جمیع احوال میں ذکر الٰہی ودعا کی مداومت کرو۔ بیضاوی

۱ المستدرک علی الصحیحین کتاب الدعاء مطبوعہ دارالفکر بیروت ۱/۴۹۹ ۲ جامع الترمذی ابواب الدعوات مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۲/۱۷۳ ۳ دُرِّ منثور بحوالہ الطبرانی ذِکرِ کثیر کے تحت مذکور ہے مطبوعہ آیت اللہ العظمٰی قم ایران ۵/۲۰۵ ۴ دُرِّ منثور بحوالہ المعجم الاوسط ذِکرِ کثیر کے تحت مذکور ہے مطبوعہ آیت اللہ العظمٰی قم ایران ۵/۲۰۵، الترغیب والترہیب کتاب

الذکر والدعاء مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۰۱/۲ ۵ سنن ابی داؤد باب فی الرجل یذکر اللہ تعالٰی علی غیر وضوء مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۷/۱ ۶ القرآن ۱۰۳/۴

Fatawa Rizvia | Volume 8

It is in [Anwar al-Tanzil]:

- [Arabic]: Persevere in remembrance in all circumstances[1] meaning persevere in the remembrance of Allah the Almighty in all circumstances.[2]
- [Urdu]: Persevere in remembrance in all circumstances. (T) That is, adopt constancy in the remembrance of Allah the Almighty in all circumstances. (T)

It is in Irshad al-Aql al-Salim:

- [Arabic]: Persevere in the remembrance of Allah the Almighty. Safeguard His meditation, His communion, and His supplication in all circumstances.[3]
- [Urdu]: Persevere in the remembrance of Allah the Almighty in all circumstances, and safeguard meditation, intimate conversation, and supplication to the Lord. (T)

Verse 2: Allah, whose name is Mighty, said:

- [Arabic]: O you who have believed, remember Allah with much remembrance.[4]
- [Urdu]: O believers! Remember Allah in abundance.

The prominent Mufti Abu al-Sa'ud says in Irshad: "It encompasses all times and conditions."[5] This verse applies generally to all times and circumstances.

Verse 3: Allah, whose glory is exalted, said:

- [Arabic]: And remember Allah like your [previous] remembrance of your fathers or with [much] greater remembrance.[6]
- [Urdu]: Remember Allah as you remember your forefathers, but even more so.

Imam Nasafi says in Kafi Sharh al-Wafi: "It means the remembrance of Allah the Almighty at all times."[7] This...

---

1. Anwar al-Tanzil, known as Tafsir al-Baydawi, under the mentioned verse, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/202
2. Tafsir al-Nasafi, known as Tafsir al-Madarik, under the mentioned verse, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyah, Beirut, 1/248
3. Tafsir Irshad al-Aql al-Salim, under the mentioned verse, published by Ihya al-Turath al-Islami, Beirut, 2/228

4. Al-Quran 33/41
5. Tafsir Irshad al-Aql al-Salim, under the mentioned verse, published by Ihya al-Turath al-Islami, Beirut, 7/106
6. Al-Quran 2/200
7. Kafi Sharh al-Wafi

फ़तावा रज़विया | खंड 8

इसमें [अनवार अल-तंज़ील] है:

- [अरबी]: सभी परिस्थितियों में ज़िक्र (स्मरण) में निरंतरता बनाए रखें[1] यानी सभी परिस्थितियों में अल्लाह तआला के ज़िक्र पर निरंतरता बनाए रखें।[2]
- [उर्दू]: सभी परिस्थितियों में ज़िक्र पर निरंतरता बनाए रखें। (त) यानी सभी परिस्थितियों में अल्लाह तआला के ज़िक्र को अपनाएं। (त)

इरशाद अल-अक़्ल अल-सलीम में है:

- [अरबी]: अल्लाह तआला के ज़िक्र पर निरंतरता बनाए रखें। सभी परिस्थितियों में उनके ध्यान, उनकी प्रार्थना और उनकी दुआ की रक्षा करें।[3]
- [उर्दू]: सभी परिस्थितियों में अल्लाह तआला के ज़िक्र पर निरंतरता बनाए रखें, और मुराक़बा (ध्यान), मुनाजात (प्रार्थना) और रब से दुआ की रक्षा करें। (त)

आयत 2: अल्लाह, जिनका नाम शक्तिशाली है, ने फ़रमाया:

- [अरबी]: ऐ ईमान वालो! अल्लाह को बहुत अधिक याद करो।[4]
- [उर्दू]: ऐ ईमान वालों! अल्लाह का ज़िक्र कसरत (बहुतायत) से करो।

अल्लामा अल-वजूद मुफ़्ती अबु अल-सऊद 'इरशाद' में फ़रमाते हैं: "यह सभी समयों और स्थितियों को शामिल करता है।"[5] यह आयत सभी समयों और परिस्थितियों के लिए सामान्य है।

आयत 3: अल्लाह, जिनकी शान बुलंद है, ने फ़रमाया:

- [अरबी]: अल्लाह को याद करो जैसे तुम अपने बाप-दादाओं को याद करते हो, बल्कि उससे भी ज़्यादा।[6]
- [उर्दू]: अल्लाह का ज़िक्र करो जैसे अपने बाप-दादा को याद करते हो बल्कि उससे भी ज़्यादा।

इमाम नसफ़ी 'काफ़ी शरह वाफ़ी' में फ़रमाते हैं: "इससे अल्लाह तआला का हर समय ज़िक्र करना मुराद है।"[7] इस...

1. अनवार अल-तंज़ील, जिसे तफ़्सीर अल-बैज़ावी के रूप में जाना जाता है, उल्लेखित आयत के तहत, मुस्तफ़ा अल-बाबी, मिस्र द्वारा प्रकाशित 1/202
2. तफ़्सीर अल-नसफ़ी, जिसे तफ़्सीर अल-मदारिक के रूप में जाना जाता है, उल्लेखित आयत के तहत, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया, बेरूत द्वारा प्रकाशित 1/248
3. तफ़्सीर इरशाद अल-अक़्ल अल-सलीम, उल्लेखित आयत के तहत, इह्या अल-तुराथ अल-इस्लामी, बेरूत द्वारा प्रकाशित 2/228
4. अल-क़ुरआन 33/41
5. तफ़्सीर इरशाद अल-अक़्ल अल-सलीम, उल्लेखित आयत के तहत, इह्या अल-तुराथ अल-इस्लामी, बेरूत द्वारा प्रकाशित 7/106
6. अल-क़ुरआन 2/200
7. काफ़ी शरह वाफ़ी

فتاوٰی رضویہ | جلد ہشتم

میں ہے:

- [عربی]: داوموا علی الذکر فی جمیع الاحوال[1] ای داوموا علی ذکر اللہ تعالٰی فی جمیع الاحوال[2]
- [اردو]: تمام احوال میں ذکر پر مداومت کرو۔ (ت) یعنی تمام احوال میں اللہ تعالٰی کے ذکر پر دوام اختیار کرو۔ (ت)

ارشاد العقل السلیم میں ہے:

- [عربی]: داوموا علی الذکر اللہ تعالٰی۔ حافظوا علی مراقبتہ و مناجتہ ودعائہ فی جمیع الاحوال۔[3]
- [اردو]: تمام احوال میں اللہ تعالٰی کے ذکر پر مداومت کرو، اور مراقبہ، مناجات اور رب سے دعا کی محافظت کرو۔ (ت)

آیت ۲: قال عزّ اسمہ :

- [عربی]: یٰۤاَیُّهَا الَّذِیْنَ اٰمَنُوا اذْكُرُوا اللّٰهَ ذِكْرًا كَثِیْرًاۙ [4]
- [اردو]: اے ایمان والو! اللہ کا ذکر بکثرت کرو۔

علایہ الوجود مفتی ابوالسعود ارشاد میں ارشاد فرماتے ہیں: یعم الاوقات و الاحوال[5] یہ آیت تمام اوقات و احوال کو عام ہے۔

آیت ۳: قال تعالٰی شانہ:

- [عربی]: فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًاؕ [6]

• [اردو]: اللہ کا ذکر کرو جیسے اپنے باپ دادا کو یاد کرتے ہو بلکہ اس سے بھی زیادہ۔

امام نسفی کافی شرح وافی میں فرماتے ہیں: ارید به ذکر الله تعالیٰ فی الاوقات کلها[7] اس

---

1. انوار التنزیل المعروف بتفسیر البیضاوی آیہ مذکورہ کے تحت مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۲۰۲
2. تفسیر النسفی المعروف بتفسیر المدارک آیہ مذکورہ کے تحت مطبوعہ دار الکتب العلمیہ بیروت ۱/ ۲۴۸
3. تفسیر ارشاد العقل السلیم آیہ مذکورہ کے تحت مطبوعہ احیاء التراث الاسلامی بیروت ۲/ ۲۲۸
4. القرآن ۳۳/۴۱
5. تفسیر ارشاد العقل السلیم آیہ مذکورہ کے تحت مطبوعہ احیاء التراث الاسلامی بیروت ۷/ ۱۰۶
6. القرآن ۲۰۰/۲
7. کافی شرح وافی

Fatawa Rizwia Volume Eight

The verse means to remember Allah at all times. Verse 4: Allah Almighty said: "And remember Allah much." It says in Ma'alim: "In all situations, in prosperity and adversity." In all places, in joy and sorrow. Verse 5: His holy attributes stated: "And for men and women who remember Allah much - for them, Allah has prepared forgiveness and a great reward." (Quran 33:35) God has prepared forgiveness and a great reward for men who remember God much and women who remember God much. Maulana Sheikh Muhaqqiq Abdul Haq Muhaddith Dehlvi (may Allah sanctify his secret) writes in Ma Thabata bis-Sunnah: "It is not hidden that there is no harm in Dhikr, Tasbih, Tahlil, and Dua, as they are legislated in every place and at all times." It is not hidden that there is no objection to Dhikr, Tasbih, Tahlil, and Dua, as these things are prescribed in every place and at every time. By Allah! What an act of tyranny it is that people, after such general and absolute permissions from the Quran and Hadith, unnecessarily stop the servants of Allah from His remembrance and supplication, even though He has never forbidden this supplication. "Say, 'Has Allah permitted you [to do so], or are you inventing [something] about Allah?'" (Quran 10:59) O Beloved! Ask them, has Allah given you permission for this, or are you forging a lie against Allah? (T) And there is no power and no strength except in Allah, the Most High, the Most Great. Thus, by the grace of Allah, it has become as clear as the bright sun that the supplication mentioned in the question is absolutely permissible and recommended, and prohibiting it is purely baseless, false, and flawed.

I.T. Majlis of DawateIslami

1 Quran 8/25 & 62/10 2 Ma'alim al-Tanzil on the margins of Khazin, Part 21, published by Mustafa al-Babi Egypt, 5/245 3 Quran 33/35 4 Ma Thabata bis-Sunnah, conclusion of the book, Idara Naeemia Rizwia Lahore, p. 326 5 Quran 10/59

Page 539 of 673

फ़तावा रिज़विया जिल्द आठ

आयत से यह मुराद है कि अल्लाह का ज़िक्र हर समय करो। आयत 4: अल्लाह सुब्हानहू व तआला ने फ़रमाया: "और अल्लाह को बहुत याद करो।" 'मआलिम' में है: "हर स्थिति में, सुख और दुख में।" हर स्थान पर, खुशी और परेशानी में। आयत 5: उसकी पाकीज़ा सिफ़ात ने फ़रमाया: "अल्लाह को कसरत से याद करने वाले मर्द और कसरत से याद करने वाली औरतें—अल्लाह ने उनके लिए मग़फ़िरत (क्षमा) और बहुत बड़ा सवाब तैयार कर रखा है।" (क़ुरआन 33:35) अल्लाह को कसरत से याद करने वाले मर्द और कसरत से याद करने वाली औरतों के लिए अल्लाह ने मग़फ़िरत और बड़ा सवाब तैयार कर रखा है। मौलाना शैख़ मुहक़्क़िक़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी (अल्लाह उनकी रूह को मुक़द्दस करे) 'मा सबाता बिस-सुन्नह' में लिखते हैं: "यह बात छिपी नहीं है कि ज़िक्र, तस्बीह, तहलील और दुआ में कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि ये हर जगह और हर समय में शरीअत के मुताबिक़ हैं।" यह बात छिपी नहीं है कि ज़िक्र, तस्बीह, तहलील और दुआ में कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि ये चीज़ें हर जगह और हर समय जायज़ हैं। अल्लाह की क़सम! यह कितनी बड़ी ज़्यादती है कि क़ुरआन और हदीस की ऐसी आम और खुली इजाज़तों के बाद भी लोग नाहक़ अल्लाह के बंदों को उसकी याद और दुआ से रोकते हैं, जबकि उसने इस दुआ से कभी मना नहीं किया। "कह दीजिए, 'क्या अल्लाह ने तुम्हें [इसकी] इजाज़त दी है, या तुम अल्लाह पर झूठ गढ़ रहे हो?'" (क़ुरआन 10:59) ऐ हबीब! उनसे पूछिए कि क्या अल्लाह ने तुम्हें इसकी इजाज़त दी है या अल्लाह पर झूठ बाँधते हो? (त) और न कोई ताक़त है और न कोई क़ुव्वत मगर अल्लाह की मदद से जो आली और अज़ीम है। पस, अल्लाह के फ़ज़्ल से यह सूरज की तरह साफ़ हो गया कि सवाल में ज़िक्र की गई दुआ यक़ीनन जायज़ और मुस्तहब है, और उसे रोकना महज़ बेबुनियाद, बातिल और ऐबदार है।

आई.टी. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

1 क़ुरआन 8/25 और 62/10 2 मआलिमुल तनज़ील, हाशिया ख़ाज़िन, पारा 21, मतबूआ मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 5/245 3 क़ुरआन 33/35 4 मा सबाता बिस-सुन्नह, किताब का आख़िरी हिस्सा, इदारा नईमिया रिज़विया लाहौर, पृ. 326 5 क़ुरआन 10/59

पेज 539/673

آیت سے یہ مراد کہ ذکر الٰہی جمیع اوقات میں کرو۔ آیت ۴: قال تبارک مجدہ : وَاذْكُرُوا اللَّهَ كَثِيرًا اور بکثرت خدا کا ذکر کرو۔ معالم میں ہے : فی جمیع المواطن علی السراء والضراء تمام مواضع میں خوشی و تکلیف میں۔ آیت ۵: قال تقدس اوصافہ : وَالذَّٰكِرِينَ اللَّهَ كَثِيرًا وَّ الذّٰكِرٰتِ اَعَدَّ اللّٰهُ لَهُمْ مَّغْفِرَةً وَّ اَجْرًا عَظِيمًا (۳۵) خدا کو بکثرت یاد کرنے والے مرد اور بکثرت یاد کرنے والی عورتوں کے لئے اللہ نے مغفرت اور بڑا ثواب تیار کر رکھا ہے۔ مولنا شیخ محقق عبدالحق محدث دہلوی قدس سرہ، ماثبت بالسنۃ میں لکھتے ہیں: لایخفی ان الذکر والتسبیح والتہلیل والدعاء لا باس بہ لانہا مشروعۃ في کل الامکنۃ والازمان۔ پوشیدہ نہیں کہ ذکر و تسبیح و تہلیل و دعا میں کچھ مضائقہ نہیں کہ یہ چیزیں وہر جگہ اور ہر وقت مشروع ہیں۔ اللہ اللہ کیا ستم جری ہے وہ لوگ کہ قرآن و حدیث کی ایسی عام مطلق اجازتوں کے بعد خواہی نخواہی بندگان خدا کو اس کی یاد و دعا سے روکتے ہیں حالانکہ اس نے ہرگز اس دعا سے ممانعت نہ فرمائی، قُلْ اٰللّٰهُ اَذِنَ لَكُمْ اَمْ عَلَى اللّٰهِ تَفْتَرُوْنَ (۵۹) اے حبیب ! ان سے پوچھئے کہ اللہ نے اس کی تمہیں اجازت دی ہے یا اللہ پر جھوٹ باندھتے ہو۔ (ت) ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم۔ پس بحمد اللہ آفتاب روشن کی طرح واضح ہو گیا کہ دعائے مذکور فی السوال قطعاً جائز و مندوب، اور اس سے ممانعت محض بے اصل و باطل و معیوب،

I.T. Majlis of DawateIslami

1 القرآن ۲۵/۸ و ۱۰/۶۲ 2 معالم التنزیل علی ہامش خازن پ ۲۱ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۴۵/۵ 3 القرآن ۳۵/۳۳ 4 ماثبت بالسنۃ خاتمہ کتاب ادارہ نعیمیہ رضویہ لاہور ص ۳۲۶ 5 القرآن ۵۹/۱۰

[Boxed Text] And praise be to Allah, the Guide of hearts, and peace and blessings be upon the Intercessor of sins, and his family and companions, the number of defects [they cover], as long as the sun alternates in rising and setting. Ameen! All praise is for Allah, Who guides the hearts, and may peace and blessings be upon the one who intercedes for sins, and upon his family and companions whose faults are nonexistent as long as the sun rises and sets. Ameen! (T)

[Heading] The Second Eid: Achieving Hopes through the Presence of the Beloved (Success in objectives is only by the guidance of Allah Almighty. T). First, keep in mind that fatwa which shows the extent of the effort and reach of the authorities; far be it from this fatwa to discuss the original permissibility or impermissibility. Neither did the questioner ask about it, nor did the respondent write it as impermissible. Rather, the question is: what is the opinion of the scholars—may Allah have mercy on them—(What is their statement, may Allah Almighty have mercy on them. T) on the issue that did the Prophet (peace and blessings be upon him), the Companions, the Successors (Tabi'in), the followers of the Successors, and the four Imams (may Allah be pleased with them all) used to pray (dua) after the Eid prayers, or after delivering the Eid sermon, while standing or sitting, or without raising their hands? Explain and provide a fatwa with evidence from the Book, and you will be rewarded with a good return from Allah. (Narrate it with the authority of the Book and receive better reward and compensation from Allah Almighty. T). And the answer provided is: From the traditions of Hadith, it is known that the Holy Prophet (peace and blessings be upon him) would deliver the sermon after finishing the Eid prayer and then return. Praying after the prayer or the sermon is not proven from him; similarly, no proof of this matter has been observed from the noble Companions and the great Successors. And Allah knows best.

Written by the one hopeful of the pardon of his Powerful Lord, Abu al-Hasanat Muhammad Abdul Hayy, may Allah forgive his manifest and hidden sins.

[Boxed Text] Muhammad Abdul Hayy Abu al-Hasanat

I say: And by Allah is success, and by Him is the ascent to the peak of research (Success and ascent to the height of research is only from Allah. T). Regardless of how far it can be presented in the place of argument, it is not beneficial at all for those who prevent it, nor is it harmful to us. There is no mention of permissibility or impermissibility in it. The discourse of both the questioner and the respondent is

about the occurrence or non-occurrence. Furthermore, the respondent did not even assert that it is not proven from the noble Companions and great Successors (may Allah be pleased with them); he only wrote that it has not come under his observation. Every sane person knows there is a world of difference between 'it is not' and 'I haven't seen it'. The great masters of the science of Hadith repeatedly say, 'We haven't seen it,' while other Hadith scholars provide clues for it. This humble servant has mentioned numerous examples of this in his treatise Safa'ih al-Lujayn fi Kawn al-Tasafuh bi-Kaffay al-Yadayn. Moreover, this 'not seeing' is also the respondent's own statement, not that the great Imams have made such a clarification, because if it were so, it would not have escaped observation.

[बॉक्स किया हुआ टेक्स्ट] सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो दिलों को मार्गदर्शन देने वाला है और दुरूद व सलाम हो गुनाहों की शफ़ाअत करने वाले पर, उनकी आल और असहाब पर जिनके ऐब मिटे हुए हैं जब तक सूरज निकलता और डूबता है। आमीन! सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो दिलों को मार्गदर्शन प्रदान करता है, और शांति और आशीर्वाद हो पापों के लिए मध्यस्थता करने वाले पर, और उनके परिवार और साथियों पर जब तक सूरज उगता और ढलता है, उनके दोष अस्तित्वहीन हैं। आमीन! (त)

[हेडिंग] अल-ईद अल-सानी बि-वुजूद अल-हबीब हुसूल अल-अमानी (अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ से ही मक़ासिद का हुसूल है। त)। पहले उस फ़तवे को ध्यान में रखें जो सनद देने वालों की कोशिश और समझ का निचोड़ है; दूर रहे कि इस फ़तवे में असल में जायज़ या नाजायज़ होने पर कोई चर्चा हो। न तो पूछने वाले ने इसके बारे में पूछा और न ही जवाब देने वाले ने इसे नाजायज़ लिखा। बल्कि सवाल यह है: उन (विद्वानों) का क्या कहना है—अल्लाह तआला उन पर रहम करे—(उनका क्या कथन है, अल्लाह तआला उन पर रहम करे। त) इस मसले में कि क्या नबी-ए-करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), सहाबा, ताबेईन, तबे ताबेईन और अइम्मा अरबआ (अल्लाह उन सब से राज़ी हो) ईद की नमाज़ के बाद या ईद का खुतबा पढ़ने के बाद, खड़े होकर या बैठकर, या हाथ उठाए बिना दुआ मांगते थे? किताब (कुरान/हदीस) की दलील के साथ बयान करें और अल्लाह के यहाँ से अच्छा बदला पाएँ। (किताब की सनद के साथ इसे बयान करें और अल्लाह तआला के यहाँ से बेहतर अज्र और जज़ा पाएँ। त)। और जवाब यह दिया गया: हदीस की रिवायतों से इतना पता चलता है कि नबी-ए-करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद की नमाज़ से फ़ारिग होकर खुतबा पढ़ते थे और उसके बाद वापस लौट जाते थे। नमाज़ या खुतबे के बाद दुआ माँगना आपसे साबित नहीं है; इसी तरह सहाबा किराम और ताबेईन अज़ाम से भी इस मामले का कोई सबूत नज़र से नहीं गुज़रा। वल्लाहु आलम।

इसे अपने शक्तिशाली रब की माफ़ी के उम्मीदवार अबू अल-हसनात मुहम्मद अब्दुल हई ने लिखा है, अल्लाह उनके ज़ाहिर और छुपे हुए गुनाहों को माफ़ करे।

[बॉक्स किया हुआ टेक्स्ट] मुहम्मद अब्दुल हई अबू अल-हसनात

अक़ूल (मैं कहता हूँ): और अल्लाह की तौफ़ीक़ से और उसी के ज़रिए तहक़ीक़ (अनुसंधान) की बुलंदी पर उरूज (चढ़ाई) है (अल्लाह की तौफ़ीक़ और तहक़ीक़ की बुलंदी पर उसी से उरूज है। त)। इस बात से हटकर कि इसे दलील की जगह कहाँ तक पेश किया जा सकता है, यह मना करने वालों के लिए बिल्कुल भी फ़ायदेमंद नहीं है, और न ही हमारे लिए नुकसानदेह है। इसमें जायज़ और नाजायज़ का तो ज़िक्र ही नहीं है। पूछने वाले और जवाब देने वाले दोनों की बात केवल होने या न होने के बारे में है। फिर जवाब देने वाले ने सहाबा किराम और ताबेईन अज़ाम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से साबित न होने पर दावा भी नहीं किया, सिर्फ़ यह लिखा कि उनकी नज़र से नहीं गुज़रा। और हर अक़्लमंद जानता है कि 'नहीं है' और 'नहीं देखा' में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। हदीस के बड़े माहिर बार-बार कहते हैं कि हमने नहीं देखी, जबकि दूसरे मुहद्दिसन उसका पता देते हैं। इस फ़क़ीर ने इसकी कई मिसालें अपने रिसाले 'सफ़ाइह अल-लुजैन फ़ी कौन अत-तसाफ़ुह बि-कफ़्फ़ै अल-यदैन' में ज़िक्र की हैं। फिर यह 'न देखना' भी जवाब देने वाले का अपना निजी बयान है, न कि बड़े इमामों ने इस तरह की कोई स्पष्टता दी है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो यह नज़र से न बचता।

[خانہ والا متن] والحمد للہ ھادی القلوب والصلوۃ والسلام علی شفیع الذنوب والہ وصحبہ عدید العیوب ما تناوب للشمس الطلوع والغروب آمین! سب تعریف اللہ کے لئے ہے جو دل کو رہنمائی عطا کرنے والا ہے اور صلوۃ و سلام ہو گناہوں کی شفاعت کرنے والے پر آپ کی آل و اصحاب پر جن کے عیوب معدوم ہیں جب تک شمس کے لئے طلوع و غروب ہے، آمین! (ت)

[سرخی] العید الثاني بوجود الحبیب حصول الامانی (اللہ تعالٰی کی توفیق ہی سے مقاصد کا حصول ہے۔ ت) پہلے وہ فتوٰی پیش نظر رکھ لیجئے کہ مستندین کا حاصل سعی و مبلغ و ہم ظاہر ہو حاشا اس فتوے میں جواز و عدم جواز کی اصلاً بحث نہیں، نہ سائل نے اس سے پوچھا نہ مجیب نے ناجائز لکھا بلکہ سوال یوں ہے ما قولھم رحمھم اللہ تعالی (ان رحمہم اللہ تعالٰی کا کیا قول ہے۔ ت) اس مسئلہ میں کہ جناب رسول مقبول علیہ الصلوۃ والسلام اور اصحاب و تابعین و تبع تابعین و ائمہ اربعہ رضوان اللہ تعالٰی علیہم اجمعین بعد نماز عیدین کے دعا مانگتے تھے یا بعد پڑھنے خطبہ عیدین کے کھڑے کھڑے یا بیٹھ کر یا بدون ہاتھ اٹھائے بینوا و افتوا بسند الکتاب توجر و عند اللہ یحسن المآب (کتاب کی سند کے ساتھ اسے بیان کر کے اللہ تعالٰی کے ہاں سے بہتر اجر و جزا پاؤ۔ ت) اور جواب یہ ہو المصبوب روایات حدیث سے اس قدر معلوم ہوتا ہے کہ آنحضرت صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نماز عید سے فراغت کر کے خطبہ پڑھتے تھے اور بعد اس کے معاودت فرماتے، دعا مانگنا بعد نماز یا خطبہ کے آپ سے ثابت نہیں، اسی طرح صحابہ کرام و تابعین عظام سے ثبوت اس امر کا نظر سے نہیں گزرا۔ واللہ اعلم

حررہ الراجی عفو ربہ القوی ابو الحسنات محمد عبد الحی تجاوز اللہ عن ذنبہ الجلی و الخفی

[خانہ والا متن] محمد عبد الحی ابوالحسنات

اقول: وباللہ التوفیق وبہ العروج علی اوج التحقیق (اللہ کی توفیق اور تحقیق کی بلندی پر اسی سے عروج ہے۔ ت) قطع نظر اس سے محل احتجاج میں کہاں تک پیش ہو سکتا ہے حضرات مانعین کو ہرگز مفید، نہ ہمیں مضر، جواز و عدم کا تو اس میں ذکر ہی نہیں، سائل و مجیب دونوں کا کلام ورود و عدم ورود میں ہے پھر مجیب نے صحابہ کرام و تابعین عظام رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے ثابت نہ ہونے پر جزم بھی نہ کیا، صرف اپنی نظر سے نہ گزرنا لکھا اور ہر عاقل جانتا ہے کہ نہیں اور نہ دیکھا میں زمین و آسمان کا فرق ہے یہ ان کے جو اکابر ماہران فن حدیث ہیں بار بار فرماتے ہیں ہم نے نہ دیکھی اور دوسرے محدثین اس کا پتا دیتے ہیں فقیر نے اس کی متعدد مثالیں اپنے رسالہ صفائح اللجین فی کون التصافح بکفی الیدین میں ذکر کیں پھر یہ نہ دیکھنا بھی مجیب، خاص اپنا بیان کر رہے ہیں نہ کہ ائمہ شان نے اس طرح کی تصریح فرمائی، کہ ایسا ہوتا تو نظر سے نہ گزرتا کے

Instead of quoting the saying of this Imam, especially when the questioner had requested: 'Explain and give a fatwa with the authority of the Book' (Explain with the reference of the Book and give fatwa. -T), how can the failure of today's Indian scholars to see it be proof of its non-existence? Finally, didn't you see that this humble servant (may the Almighty Lord forgive him) clarified its explicit text from authentic Hadith and the leading Tabi'in (may their secrets be sanctified)? Praise be to Allah, Lord of the worlds. Then, setting aside the specific detail, the adherence to which is in no way necessary logically or through narration, when this servant himself elucidated its proof from the presence of the radiant Master of the Messengers, peace and blessings of Allah be upon him, in various ways, an unbiased and fair person will recognize its value. Praise and gratitude be to Allah. Furthermore, the question included an inquiry regarding the Tabi' al-Tabi'in and the four Imams. The respondent didn't even write regarding them that it 'didn't cross my sight'. Now, whether proof was not seen from them or the complete answer was not given, in any case, the point of contention and the reliable basis is only that the respondent denies proof from the Holy Prophet, peace and blessings of Allah be upon him. The reasoning is that the Hadiths state that he would deliver the sermon immediately following the prayer and return immediately after the sermon; so where was the time for supplication (Dua)? Based on this, it would be a claim of proof of non-existence. Secondly, in the Hadiths, only prayer, sermon, and return are mentioned; supplication is not mentioned. This would be a claim of lack of proof. It appears from the respondent's words that it is 'not established', meaning they say it isn't proven to have happened, not that it is proven to have not happened. The phrase 'only this much is known' also points to this; if the intention was to prove non-existence, the manner of expression would have been that it's clearly established from Hadiths that there was no gap between prayer, sermon, and return, thus proving that no supplication was made. Despite this, perhaps those who prohibit it, thinking it's in their favor, may forcibly apply the respondent's words to the first interpretation. Therefore, this servant (may the Almighty Lord forgive him) will address both interpretations, and success is from Allah.

The argument on the first interpretation is itself invalid for many reasons: Firstly, it is not mentioned in any Hadith at all that the radiant Master of the world, peace and blessings of Allah be upon him, would deliver the sermon instantaneously and simultaneously upon completing the salutation, and would return immediately

without any gap upon finishing the sermon. At most, it would be argued based on the appearance of the particle 'fa' of succession in some Hadith, but that by no means indicates an absolute physical connection that would prevent a gap of two words of supplication. It is stated in Fawatih, the commentary of Muslim:

[Arabic Box] "The letter 'Fa' is for order in the sense of succession without delay or postponement, yet in custom, it is considered as including delay and postponement." 'Fa' is for order; it is for [succession] without delay or postponement, [yet] in custom, it is counted as delay, and postponement is also correct. (T)

1. Fawatih al-Rahamut following al-Mustasfa, issue of 'al-Fa for order', printed at Amiriyyah Press, Qom, Iran, 1/234.

उस इमाम के कथन को उद्धृत करने के बजाय, विशेष रूप से जब पूछने वाले ने यह अनुरोध किया था कि 'किताब (क़ुरान/सुन्नत) के प्रमाण के साथ स्पष्ट करें और फ़तवा दें' (T), तो आज के भारतीय विद्वानों का इसे न देख पाना इसके अस्तित्व न होने का प्रमाण कैसे हो सकता है? अंततः क्या आपने नहीं देखा कि इस विनम्र सेवक (सर्वशक्तिमान प्रभु उसे क्षमा करें) ने सही हदीस और अग्रणी ताबिईन (उनके रहस्य पवित्र हों) से इसके स्पष्ट पाठ को स्पष्ट कर दिया है? और सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जो संसारों का पालनहार है। फिर विशिष्ट विवरण को छोड़ दें, जिसका पालन तार्किक या वर्णन के रूप में किसी भी तरह से आवश्यक नहीं है, जब इस सेवक ने स्वयं रसूलों के स्वामी, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की उपस्थिति से विभिन्न तरीकों से इसके प्रमाण को स्पष्ट किया है, तो एक निष्पक्ष और न्यायप्रिय व्यक्ति इसके मूल्य को पहचान लेगा। अल्लाह की प्रशंसा और उसका आभार। इसके अलावा, प्रश्न में तबे ताबिईन और चार इमामों के संबंध में पूछताछ की गई थी। उत्तर देने वाले ने उनके बारे में इतना भी नहीं लिखा कि 'मेरी दृष्टि से नहीं गुज़रा'। अब चाहे उनसे प्रमाण न मिला हो या पूरी बात का उत्तर न दिया गया हो, बहरहाल, विवाद का बिंदु और विश्वसनीय आधार केवल इतना है कि उत्तरदाता पवित्र नबी, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से प्रमाण का निषेध करते हैं। उनका तर्क यह है कि हदीसों में यही आया है कि नमाज़ के तुरंत बाद ख़ुत्बा और ख़ुत्बे के तुरंत बाद वापसी होती थी, तो दुआ का समय कहाँ रहा? इस आधार पर, यह गैर-अस्तित्व के प्रमाण का दावा होगा। दूसरा यह कि हदीसों में केवल नमाज़, ख़ुत्बा और वापसी का उल्लेख है; दुआ का उल्लेख नहीं है। यह 'प्रमाण की कमी' का दावा होगा। और उत्तरदाता के शब्दों से यही स्पष्ट होता है कि 'साबित नहीं है', यानी वे कहते हैं कि इसका होना प्रमाणित नहीं है, न कि यह कि इसका न होना प्रमाणित है। वाक्यांश 'इतना ही ज्ञात होता है' भी इसी ओर संकेत करता है; यदि उद्देश्य गैर-अस्तित्व को सिद्ध करना होता, तो अभिव्यक्ति का तरीका यह होता कि हदीसों से स्पष्ट रूप से प्रमाणित है कि नमाज़, ख़ुत्बा और वापसी के बीच कोई अंतर नहीं था, इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता कि कोई दुआ नहीं की गई थी। इसके बावजूद, शायद रोकने वाले हज़रात, अपने लाभ के विचार से, उत्तरदाता के शब्दों को ज़बरदस्ती पहली व्याख्या पर लागू करें। इसलिए, यह विनम्र सेवक (सर्वशक्तिमान प्रभु उसे क्षमा करें) दोनों व्याख्याओं पर चर्चा करेगा, और सफलता अल्लाह की ओर से है।

पहली व्याख्या पर यह तर्क स्वयं ही कई कारणों से निराधार है: पहली बात तो यह कि किसी भी हदीस में बिल्कुल यह नहीं है कि संसार के स्वामी, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम सलाम फेरते ही

वास्तव में तुरंत और एक साथ ख़ुत्बा देते थे, और ख़ुत्बा समाप्त करते ही बिना किसी अंतराल के तुरंत वापस लौट आते थे। अधिक से अधिक, किसी हदीस में अनुक्रम के अक्षर 'फ़ा' (ف) के आने से तर्क दिया जाएगा, लेकिन वह कतई ऐसे वास्तविक जुड़ाव का संकेत नहीं देता जो दुआ के दो शब्दों के अंतराल को रोक सके। फ़वातिह (मुस्लिम की शरह) में कहा गया है:

[अरबी बॉक्स] 'अक्षर "फ़ा" बिना देरी या विलंब के अनुक्रम के लिए है, फिर भी प्रचलन में इसे देरी और विलंब के रूप में गिना जाता है।' 'फ़ा' अनुक्रम के लिए है; यह बिना मोहलत और देरी के लिए है, [फिर भी] उर्फ़(प्रचलन) में इसे मोहलत माना जाता है, और देरी भी सही है। (T)

1. फ़वातिह अल-रहमूत, अल-मुस्तसफ़ा के साथ, अनुक्रम के लिए 'अल-फ़ा' का मसला, अमीरिया प्रेस, क़ुम, ईरान में मुद्रित, 1/234।

عوض اس امام کا ارشاد نقل کرتے ،خصوصاً جبکہ سائل درخواست کر چکا تھا کہ بینوا و افتوا بسند الکتاب (کتاب کی سند کے ساتھ بیان کرو اور فتوی دو۔ت) تو آج کل کے ہندی علماء کانہ دیکھنا نہ ہونے کی دلیل کیونکر ہوسکتا ہے آخر نہ دیکھا کہ فقیر غفر لہ المولٰی القدیر نے حدیث صحیح سے اس کا نص صریح، ائمہ تابعین قدست اسرار ہم سے واضح کردیا والحمد للہ رب العلمین پھر خصوص جزئیہ سے قطع نظر کیجئے، جس کا التزام عقلاً و نقلاً کسی طرح ضرور نہیں جب تو فقیر نے خود حضور پر نور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے جس جس طرح اس کا ثبوت روشن کیا منصف غیر متعسف اس کی قدر جانے گا والحمد للہ والمنہ، پھر سوال میں تبع تابعین و ائمہ اربعہ سے استفسار تھا مجیب نے ان کی نسبت اس قدر بھی نہ لکھا کہ نظر سے نہ گزرا ،اب خواہ ان سے ثبوت نہ دیکھا یا پوری بات کا جواب نہ ہوا، بہر حال محل نظر واسناد مستند صرف اس قدر کہ مجیب حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے نفی ثبوت کرتے ہیں اور تقریب یہ کہ حدیثوں میں یہی وارد ہے کہ نماز کے متصل خطبہ اور خطبہ کے متصل معاودت فرماتے تو دعا کا وقت کون سا رہا، اس تقدیر پر ثبوت عدم کا ادعا ہوگا، دوسرے یہ کہ حدیثوں میں صرف نماز و خطبہ و معاودت کا ذکر ہے دعا مذکور نہیں ، یہ عدم ثبوت کا دعوٰی ہوگا، اور کلام مجیب سے یہی ظاہر ہے کہ ثابت نہیں ،کہتے ہیں، نہ کہ نہ کرنا ہی ثابت ہے، اور لفظ "اسی قدر معلوم ہوتا ہے" بھی اسی طرف ناظر ،کہ اگر اس سے اثبات عدم مقصود ہوتا تو طرز ادا یہ تھی، کہ حدیثوں سے صاف ثابت کہ نماز وخطبہ و معاودت میں فصل نہ تھا، پس دعا نہ مانگنا ثابت ہوا، باینمہ شاید حضرات مانعین اپنے نفع کے گمان سے کلام مجیب کو خواہ مخواہ محمل اول پر حمل کریں، لہذا فقیر غفر لہ المولٰی القدیر دونوں محمل پر کلام کرتا ہے وباللہ التوفیق۔

محمل اول پر یہ کلام خود ہی بوجوہ کثیر باطل: اولاً یہ تو اصلاً کسی حدیث میں نہیں کہ حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ و سلم سلام پھیرتے ہی بفور حقیقی معاً خطبہ فرماتے تھے اور خطبہ ختم فرماتے ہی بے فصل فوراً واپس تشریف لاتے ،غایت یہ کہ کسی حدیث میں فائے تعقیب آنے سے استدلال کیا جائے گا مگر وہ ہرگز اتصال حقیقی پر دال نہیں کہ دو حرف دعا سے فصل کی مانع ہو، فواتح شرح مسلم میں فرمایا:

[Arabic Box] الفاء للترتیب علی سبیل التعقیب من غیر مہلۃ و تراخ ، یعد فی العرف مہلۃ و تراخیاً۱۔ فاء ترتیب کے لئے ہے یہ بغیر مہلت و تراخی کے لئے ہے عرف میں اسے مہلت شمار کیا جاتا ہے اور تراخی بھی صحیح ہے۔(ت)

۱ فواتح الرحموت بذیل المستصفی مسئلہ الفاء للترتیب مطبوعہ مطبعۃ امیریہ قم ایران ۱/ ۲۳۴

Fatawa Razawiyyah Volume 8

O seeker! These are not narrow philosophical investigations but clear customary idioms. If Zaid promises that he will come immediately after praying, then a common two-word supplication after prayer will by no means be considered as negating "immediately" or violating the promise, either conventionally or legally. Regarding the issue of prostration of recitation (Sajda-e-Tilawat) during prayer, you must have heard that by consensus, two verses, and according to some differences, three verses do not break the continuity of "immediately."

Secondly, supplication is subordinate, and subordinates do not act as separators. You must have heard about adding a Surah in the obligatory acts, yet "Ameen" is not a separator because it follows the Surah Fatiha. The luminous presence, the Master of the Day of Resurrection (peace and blessings of Allah be upon him), said regarding the tasbih of Hazrat Batul Zahra (may the peace and blessings of Allah be upon her noble father and her):

Litanies (Mu'aqqibat) whose reciter is never disappointed[1] - Narrated by Ahmad, Muslim, Tirmidhi, and Nasai from Ka'b bin Ujrah (may Allah be pleased with him).	Some words are meant to be said after prayer without a gap, the reciter of which never remains unsuccessful. This was narrated by Imam Ahmad, Muslim, Tirmidhi, and Nasai from Hazrat Ka'b bin Ujrah (may Allah be pleased with him).

Furthermore, scholars say that if they are recited after the post-prayer Sunnahs, it will not affect their status as "after-prayer litanies" (Ta'qeeb) because Sunnahs are subordinates to the obligatory prayers. It is stated in Durr al-Mukhtar:

It is disliked to delay the Sunnah more than the extent of "O Allah, You are Peace..." etc.[2]	Delaying more than the length of "Allahumma antas-Salam..." etc. in Sunnahs is disliked. (T)

It is in Radd al-Muhtar:

Because Muslim and Tirmidhi narrated from Aisha (may Allah be pleased with her) that she said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to sit only for the duration of saying "O Allah, You are Peace, and from You is	Because Muslim and Tirmidhi have narrated from Hazrat Aisha (may Allah be pleased with her) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) only used to sit for the duration of "Allahumma antas-Salam wa

peace, blessed are You, O Owner of Majesty and Honor." As for the hadiths mentioned regarding dhikr (remembrance) following prayer, there is no indication in them for performing them before the Sunnah.

minkas-Salam tabarakta ya dhal-Jalali wal-Ikram." And in other narrations where dhikrs after prayer are mentioned, there is no evidence that those dhikrs used to be before Sunnahs; rather, they can be performed afterwards as well.

1 Sunan an-Nasa'i, Nu' Akhar min 'Adad at-Tasbih, published by Noor Muhammad Karkhana-e-Tijarat-e-Kutub Karachi, 1/198. 2 Durr al-Mukhtar, Section: Wa idha arada ash-shuru' etc., published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/97.

फ़तावा रज़विया खण्ड 8

हे शोधकर्ता! ये कोई संकीर्ण दार्शनिक शोध नहीं हैं, बल्कि स्पष्ट प्रथागत मुहावरे हैं। यदि ज़ैद वादा करता है कि वह नमाज़ पढ़कर तुरंत आएगा, तो नमाज़ के बाद एक सामान्य दो-शब्दों वाली दुआ किसी भी तरह से प्रथागत या धार्मिक रूप से "तुरंत" शब्द को नहीं तोड़ेगी या वादे का उल्लंघन नहीं माना जाएगा। आपने नमाज़ के दौरान होने वाले सज्दा-ए-तिलावत के बारे में सुना ही होगा कि सर्वसम्मति से दो आयतें और मतभेदों के अनुसार तीन आयतें "तुरंत" की निरंतरता को नहीं तोड़ती हैं।

दूसरे, दुआ अधीनस्थ है, और अधीनस्थ चीजें अलग करने वाली नहीं होतीं। आपने अनिवार्य कार्यों में सूरह मिलाने के बारे में सुना होगा, फिर भी "आमीन" अलग करने वाला नहीं है क्योंकि यह फातिहा के अधीन है। कयामत के दिन के स्वामी हुज़ूर-ए-पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हज़रत बतुल ज़हरा (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अला अबिहाल करीम व अलैहा) की तस्बीह के बारे में फरमाया:

कुछ ऐसे कलिमात (Mu'aqqibat) हैं जिन्हें नमाज़ के बाद कहने वाला कभी निराश नहीं होता[1] - इसे अहमद, मुस्लिम, तिर्मिज़ी और नसाई ने कअब बिन उजरह (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।	नमाज़ के बाद बिना अंतराल के कहे जाने वाले कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका कहने वाला कभी नाकाम नहीं रहता। इसे इमाम अहमद, मुस्लिम, तिर्मिज़ी और नसाई ने हज़रत कअब बिन उजरह (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

इसके बावजूद विद्वान कहते हैं कि यदि इन्हें सुन्नते-बादिया के बाद पढ़ा जाए, तो इनके नमाज़ के बाद के अज़कार (Ta'qeeb) होने में कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि सुन्नतें अनिवार्य नमाज़ के अधीन हैं। दुर-ए-मुख्तार में है:

"अल्लाहुम्मा अन्तस-सलाम..." आदि की अवधि से अधिक सुन्नत में देरी करना मकरूह है।[2]	सुन्नतों में "अल्लाहुम्मा अन्तस-सलाम..." आदि की अवधि से अधिक देरी करना मकरूह है। (त)

रद-उल-मुहतार में है:

क्योंकि मुस्लिम और तिर्मिज़ी ने हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि	क्योंकि मुस्लिम और तिर्मिज़ी ने हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत किया है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम)

वसल्लम) केवल "ऐ अल्लाह, तू ही सलामती है और तुझसे ही सलामती है, तू बरकत वाला है ऐ जलाल और इकराम वाले" कहने की अवधि तक ही बैठते थे। जहाँ तक नमाज़ के बाद के अज़कार के बारे में हदीसों का सवाल है, उनमें ऐसा कोई संकेत नहीं है कि उन्हें सुन्नत से पहले अदा किया जाए।

सिर्फ"अल्लाहुम्मा अन्तस-सलाम व मिन्कस-सलाम तबारक्ता या ज़ल-जलालि वल-इकराम" की अवधि तक ही बैठते थे। और अन्य रिवायतों में नमाज़ के बाद जिन अज़कार का ज़िक्र है, उनमें यह दलील नहीं है कि वे अज़कार सुन्नतों से पहले होते थे, बल्कि वे बाद में भी किए जा सकते हैं।

1 सुनन अन-नसाई, नव आख़िर मिन अदद अत-तस्बीह, नौर मुहम्मद कारखाना-ए-तिजारत-ए-कुतुब कराची द्वारा प्रकाशित, 1/198. 2 दुर-ए-मुख्तार, फ़स्ल: व इज़ा अरादा अश-शुरु' आदि, मतबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/97.

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

یا ہذا یہ تدقیقات ضیقہ فلسفیہ نہیں، محاورات صافیہ عرفیہ ہیں، اگر زید وعدہ کرلے نماز پڑھ کر فوراً آتا ہوں تو نماز کے بعد معمولی دو حرفی دعا ہر گز عرفاً یا شرعاً مبطلِ فور و موجب خلاف وعدہ نہ ہوگی، مسئلہ سجودِ تلاوت صلاتیہ میں سنا ہی ہوگا کہ دو آیتیں بالاتفاق اور تین علی الاختلاف قاطع فور نہیں۔

ثانیاً دعا تابع ہے اور توابع فاصل نہیں ہوتے، واجبات میں ضم سورت سنا ہو گا مگر آمین فاصل نہیں کہ تابع فاتحہ ہے، حضور پر نور سید یوم النشور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے تسبیح حضرت بتول زہرا صلوات اللہ و سلامہ علی ابیھا الکریم و علیھا کی نسبت فرمایا:

معقبات لا یخیب قائلھن[1] - رواہ احمد و مسلم والترمذی والنسائی عن کعب بن عجرۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ۔

کچھ کلمات نماز کے بعد بلا فاصلہ کہنے کے ہیں جن کا کہنے والا نا مراد نہیں رہتا۔ اسے امام احمد، مسلم، ترمذی اور نسائی نے حضرت کعب بن عجرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا ہے۔

بایں ہمہ علماء فرماتے ہیں اگر سننِ بعدیہ کے بعد پڑھے تعقیب میں فرق نہ آئے گا کہ سنن توابع فرائض سے ہیں دُرِ مختار میں ہے:

یکرہ تاخیر السنۃ الابقدر اللھم انت السلام[2] الخ

سنتوں میں اللھم انت السلام الخ کی مقدار سے زائد تاخیر مکروہ ہے۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

لما رواه مسلم والترمذی عن عائشة رضی الله تعالیٰ عنہا قالت کان رسول الله صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم لایقعد الابمقدار مایقول اللھم انت السلام ومنک السلام تبارکت یا ذا الجلال والاکرام کی مقدار ہی بیٹھتے تھے، یاذاالجلال والاکرام واما ماورد من الاحادیث فی الاذکار عقیب الصلوٰۃ فلا دلالۃ فیہ علی الاتیان بھا قبل السنۃ

کیونکہ مسلم اور ترمذی نے حضرت عائشہ رضی الله تعالیٰ عنہا سے روایت کیا ہے کہ رسول الله صلی الله تعالیٰ علیہ وسلم صرف اللھم انت السلام ومنک السلام تبارکت یا ذا الجلال والاکرام کی مقدار ہی بیٹھتے تھے، اور دیگر روایات میں جو نماز کے بعد اذکار کا ذکر ہے اس میں یہ دلالت نہیں کہ وہ اذکار سنن سے پہلے ہوتے تھے بلکہ بعد میں بھی بجالائے جاسکتے ہیں

1 سنن النسائی نوع آخر من عدد التسبیح مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/ ۱۹۸ 2 درمختار فصل واذارادالشروع الخ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۹۷

Fatawa Rizwia, Volume 8

“Rather, it is interpreted as performing them after it, because the Sunnah is among the appendages, consequences, and completions of the obligatory (Fard) prayer. Therefore, it is not foreign to it. So, what is done after it can be described as being immediately after the obligatory prayer.” Because Sunnahs are the appendages, subordinates, and causes of completion of the obligatory prayers, they are not separate from the obligations. Therefore, what happens after these Sunnahs can also be said to have happened after the obligatory prayer. (T)

Thirdly, even if we accept that the implication of 'Fa' is actual continuity, one must remain well-aware that the illuminated Presence, the Master of the Universe (Peace and blessings of Allah be upon him), offered Eid prayers for nine years. Thus, it is possible for multiple Hadiths to be attributed to multiple events. Therefore, if one Hadith indicates continuity between the prayer and the sermon, and another between the sermon and the departure, it is not fundamentally useful, as it would not prove the non-existence of supplication (Dua) once after the sermon and another time after the prayer. So (in this way), it is miles away from the objective, as is not hidden.

Fourthly, it is granted that both continuities may be explicit in a single Hadith, yet there is fundamentally no Hadith containing the word 'perpetuity' (Dawam). ‘And whoever claims it, let him bring proof.’ (And whoever makes this claim, let him bring evidence. T) And if in one or two places it says 'Salla fa khataba fa 'ada' (He prayed, then gave a sermon, then returned. T), it is a situational occurrence, and situational occurrences do not imply generality, as scholars have explicitly stated. (T) And we do not claim necessity or obligation such that omitting it once would contradict us. Even if we assume the wording 'Kana yusalli fa yakhtubu fa ya'udu' (He would pray, then give a sermon, then return. T), its being proof for repetition is still a matter of dispute, let alone perpetuity. The respondent himself, in his treatise 'Ghayat al-Maqal', quotes the words of Hafiz Abu Zur'ah al-Iraqi:

“Verily in the two Sahihs and others, it is narrated from Sa'id bin Yazid who said: I asked Anas bin Malik, did the Messenger of Allah (Peace and blessings of Allah be upon him) use to pray in his sandals? He said: Yes. Its apparent meaning is that this was his consistent practice and continuous habit... etc.” It is narrated in Bukhari, Muslim, and others from Hadrat Sa'id bin Yazid (may Allah be pleased with him) that 'I asked Hadrat Anas bin Malik (may Allah be pleased with him): Did the Prophet

(peace and blessings of Allah be upon him) perform prayer in his sandals? He said: Yes.' From its apparent meaning, it feels as though this was your perpetual practice. etc. (T)

Having quoted this, he writes:

1. Radd al-Muhtar, Chapter: When he intends to start... etc., published by Mustafa al-Bani, Egypt, 1/391.
2. Treatise Ghayat al-Maqal from the collection of treatises of Abdul Hai, Chapter on Prayer, Chashma-e-Faiz Press, Lucknow, p. 109.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

“बल्कि इसे उसके बाद करने पर महमूल किया जाएगा क्योंकि सुन्नतें फ़राइज़ के लवाहक़ात (संलग्नक), तवाबे (अनुवर्ती) और उनकी तकमील (पूर्णता) का सबब हैं, लिहाज़ा ये फ़राइज़ से अजनबी नहीं हैं। जो इन सुन्नत के बाद हो उस पर ये इतलाक़ (लागू) किया जा सकता है कि वह फ़राइज़ के बाद हुआ।” क्योंकि सुन्नतें फ़राइज़ के लवाहक़ात, तवाबे और उनकी तकमील का सबब हैं लिहाज़ा ये फ़राइज़ से अजनबी नहीं हैं जो इन सुनन के बाद हो उस पर ये इतलाक़ किया जा सकता है कि वो फ़राइज़ के बाद हुआ। (त)

तीसरा, मान लिया कि 'फ़ा' (Fa) का लाभ वास्तविक जुड़ाव (इत्तेसाल) है, फिर भी अच्छी तरह सचेत रहना चाहिए कि हुज़ूर पुरनूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने नौ साल ईद की नमाज़ें पढ़ी हैं, तो कई हदीसों का कई वाक़यात पर महमूल होना मुमकिन है। इसलिए अगर एक हदीस नमाज़ और खुतबे के बीच, और दूसरी खुतबे और वापसी के बीच जुड़ाव पर दलालत करे, तो वह असल में काम की नहीं क्योंकि एक बार खुतबे के बाद और दूसरी बार नमाज़ के बाद दुआ की कमी साबित नहीं होगी, तो (इस तरह) वह मक़सद से कोसों दूर है जैसा कि स्पष्ट है।

चौथा, यह मान्य है कि एक ही हदीस में दोनों जुड़ाव स्पष्ट हों, फिर भी 'दवाम' (निरंतरता) शब्द वाली कोई हदीस नहीं आई। 'और जो इसका दावा करे उसे प्रमाण देना चाहिए।' (और जो इसका दावा करता है वह दलील लाए। त) और एक-दो जगह 'सल्ला फ खतबा फ आद' (नमाज़ पढ़ाई, फिर खुतबा दिया और लौट गए। त) हो भी तो वह सामयिक घटना है और सामयिक घटनाओं के लिए व्यापकता (उमूम) नहीं होती जैसा कि विद्वानों ने स्पष्ट किया है। (त) और हम अनिवार्यता के कायल नहीं कि एक बार का छोड़ना हमारे खिलाफ हो। और अगर 'काना युसल्ली फ यख्तुबु फ यऊदु' (आप नमाज़ पढ़ाते, खुतबा देते और लौट जाते। त) शब्द भी मान लें, तो अभी भी इसका दोहराव पर प्रमाण होना विवादास्पद है, निरंतरता तो दूर की बात है। स्वयं उत्तरदाता ने अपने रिसाला 'ग़ायत अल-मक़ाल' में हाफ़िज़ अबू ज़ुरआ इराक़ी के शब्द:

“बुखारी और मुस्लिम आदि में हज़रत सईद बिन यज़ीद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि 'मैंने हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से पूछा कि क्या रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जूतों (नैलैन) में नमाज़ अदा फरमाते थे? उन्होंने फरमाया: हाँ।' इसके ज़ाहिर से यही महसूस होता है कि आपका यह स्थायी नियम था... आदि।” बुखारी व मुस्लिम वगैरह में हज़रत सईद

बिन यज़ीद रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से मरवी है कि 'मैंने हज़रत अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से पूछा कि रिसालत मआब सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम नैलैन के अंदर नमाज़ अदा फरमाते थे? उन्होंने फरमाया: हाँ, इसके ज़ाहिर से यही महसूस होता है कि आपका दायमी मामूल था। आदि (त)'

नक़ल करके लिखते हैं:

1. रद अल-मुह्तार, अध्याय: 'जब वह शुरू करने का इरादा करे...' आदि, मुस्तफा अल-बानी प्रकाशन, मिस्र, 1/391
2. रिसाला ग़ायत अल-मक़ाल, अब्दुल हई के संकलन से, नमाज़ पर अध्याय, चश्मा-ए-फ़ैज़ प्रेस, लखनऊ, पृ. 109

पृष्ठ 543/673

بل یحمل علی الاتیان بھا بعدھا لان السنۃ من لواحق الفریضۃ وتوابعھا ومکملاتھا فلن تکن اجنبیۃ عنھا فما یفعل بعدھا یطلق علیہ انہ عقیب الفریضۃ۔ کیونکہ سنتیں فرائض کے لواحقات، توابع اور ان کی تکمیل کا سبب ہیں لہذا یہ فرائض سے اجنبی نہیں ہیں جو ان سنن کے بعد ہو اس پر یہ اطلاق کیا جا سکتا ہے کہ وہ فرائض کے بعد ہوا۔(ت)

ثالثاً مانا کہ مفاد 'فا' اتصال حقیقی ہے تاہم خوب متنبہ رہنا چاہئے کہ حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے نو برس عید کی نمازیں پڑھی ہیں تو احادیث متعددہ کا وقائع متعددہ پر محمول ہونا ممکن۔ پس اگر ایک حدیث صلوٰۃ و خطبہ اور دوسری خطبہ و انصراف میں وقوع اتصال پر دلالت کرے اصلاً بکارآمد نہیں کہ ایک بار بعد خطبہ، دوبارہ بعد نماز دعا کا عدم ثابت نہ ہوگا، تو (یوں وہ) مقصود سے منزلوں دور ہے کما لا یخفی۔

رابعاً مسلم کہ ایک ہی حدیث میں دونوں اتصال مصرح ہوں تاہم لفظ دوام تو اصلاً کوئی حدیث نہ آئی ومن ادعی فعلیہ البیان (اور جو اس کا دعوی کرتا ہے وہ دلیل لائے۔ ت) اور ایک آدھ جگہ صلی فخطب فعاد (نماز پڑھائی، پس خطبہ دیا اور لوٹ گئے۔ت) ہو بھی تو واقعہ حال ہے اور وقائع حال کے لئے عموم نہیں کما نصوا علیہ (جیسا کہ علماء نے اس پر تصریح کی ہے۔ت) اور ہم قائل وجوب و لزوم نہیں کہ ترک مرہ ہمارے منافی ہو اور اگر لفظ کان یصلی فیخطب فیعود (آپ نماز پڑھاتے خطبہ دیتے اور لوٹ جاتے۔ ت) بھی فرض کرلیں تو ہنوز اس کا تکرار پر دلیل ہونا محل نزاع نہ کہ دوام، خود مجیب اپنے رسالہ غایۃ المقال میں کلام حافظ ابوزرعہ عراقی:

ان في الصحيحين وغيرهما عن سعيد بن يزيد قال سألت انس بن مالك كان رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم يصلي في نعليه فقال نعم وظاهره ان هذا كان شانه وعادته المستمرة دائما الخ۔ بخاری و مسلم وغیرہما میں حضرت سعید بن یزید رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے مروی ہے کہ میں نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے پوچھا کہ رسالت مآب صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نعلین کے اندر نماز ادا فرماتے تھے؟ انہوں نے فرمایا: ہاں، اس کے ظاہر سے یہی محسوس ہوتا ہے کہ آپ کا دائمی معمول تھا۔ الخ (ت)

نقل کر کے لکھتے ہیں:

1. ردالمحتار فصل واذا اراد و الشروع الخ مطبوعہ مصطفیٰ البانی مصر ۱/ ۳۹۱
2. رسالہ غایۃ المقال من مجموعہ رسائل عبدالحی فصل فی الصلوۃ مطبع چشمہ فیض لکھنؤ ص ۱۰۹

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

[Table Content] (Arabic Part): Their inference from the hadith of Anas that the Prophet's (peace and blessings be upon him) continuous habit was to pray in sandals is open to question because there is nothing in the words of the hadith that indicates this. Perhaps they derived it from the word 'kana' (was/used to), but this is a weak derivation. As Imam Nawawi stated in the 'Book of Night Prayer' in the commentary on Sahih Muslim, the word 'kana' in the convention of the Hadith scholars does not denote perpetuity or continuity at all. (Urdu Part): Their reasoning from the hadith of Anas that praying in sandals was a permanent habit of the Prophet (peace and blessings be upon him) is questionable because no such thing exists in the words of the hadith. Perhaps they inferred it from the word 'kana', whereas this inference is weak because Imam Nawawi has clarified in the 'Book of Night Prayer' in the commentary on Muslim that the word 'kana' in the terminology of the scholars of Hadith does not indicate perpetuity and continuity at all. (t)

The complete research of this issue by the humble author is in the treatise 'Al-Taj 1305 AH Al-Mukallal fi Inarat Madlul Kana Yaf'alu'. Fifthly, all this was superficial talk; look at the hadiths, they reveal something else entirely. In the Sahah Sitta and others, especially in the Sahihayn, numerous narrations are present with the word 'thumma' (then). 'Thumma' requires a gap and a delay. So the claim that only connection ('ittisal') appeared in the hadiths is purely incorrect. Rather, if a word of connection is in one or two hadiths, then the word of separation ('infisal') is in eight or ten. Now listen to the narrations:

Hadith 1: In the Sahihayn from Hadrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with both of them): [Table Content] (Arabic Part): The wording is from Muslim, who said: I attended the Eid-ul-Fitr prayer with the Prophet of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), and Abu Bakr, Umar, and Uthman (may Allah be pleased with them). All of them used to pray before the sermon, then give the sermon. (Urdu Part): The words of Muslim are: I performed the Eid-ul-Fitr prayer in the company of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), Hadrat Abu Bakr Siddiq, Hadrat Umar, and Hadrat Uthman (may Allah be pleased with them). All of them led the prayer before the sermon, then gave the sermon. (t)

Hadith 2: In Sahih Bukhari from Hadrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with both of them): [Table Content] (Arabic Part): Indeed, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to pray on Eid-ul-Adha and Eid-ul-

Fitr, then he would give the sermon after the prayer. (Urdu Part): The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) would lead the prayers of Eid-ul-Adha and Eid-ul-Fitr and then deliver the sermon after the prayer. (t)

1. Risala Ghayat al-Maqal from Majmu'a Rasa'il Abdul Hayy, section on Prayer, Matba' Chashma-e-Faiz, Lucknow, p. 109.
2. Sahih Muslim, Kitab al-Idayn, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/289.
3. Sahih al-Bukhari, Kitab al-Idayn, printed by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/131.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[तालिका सामग्री] (अरबी भाग): हज़रत अनस की हदीस से उनका यह तर्क कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की स्थायी आदत सैंडल में नमाज़ पढ़ने की थी, विचारणीय है क्योंकि हदीस के शब्दों में ऐसा कुछ मौजूद नहीं है। शायद उन्होंने 'काना' (था) शब्द से यह निष्कर्ष निकाला हो, लेकिन यह एक कमज़ोर निष्कर्ष है। जैसा कि इमाम नववी ने सहीह मुस्लिम की व्याख्या में 'क़िताब सलातुल लैल' में स्पष्ट किया है कि मुहाद्दिसीन की शब्दावली में 'काना' शब्द निरंतरता और स्थायित्व को बिल्कुल भी नहीं दर्शाता है। (उर्दू भाग): हदीस-ए-अनस से उनका इस पर इस्तदलाल कि नअ़लैन (जूतों) में नमाज़ अदा करना हुज़ूर अलैहिस्सलाम की आदत-ए-दाएमी थी, महल्ले नज़र है क्योंकि अल्फ़ाज़-ए-हदीस में ऐसी कोई चीज़ मौजूद नहीं, शायद उन्होंने लफ़्ज़ 'काना' से इस्तिनबात किया हो हालाँकि यह इस्तिनबात ज़ईफ़ है क्योंकि इमाम नववी ने शरह मुस्लिम के किताब सलातुल लैल में तसरीह की है कि लफ़्ज़ 'काना' मुहद्दिसीन के उरफ़ में हरगिज़ दवाम-ओ-इस्तिमरार पर दलालत नहीं करता। (त)

इस मसले की तमाम तहक़ीक़ फ़क़ीर के रिसाले 'अत-ताज 1305 हि. अल-मुकल्लल फ़ी इनारत मदलूल काना यफ़अ़लू' में है। पांचवें, यह सब तो ऊपरी बात थी; हदीसों पर नज़र कीजिए तो वे कुछ और ही ज़ाहिर करती हैं। सहाह सित्तह वगैरह में, विशेष रूप से सहीहैन में, बहुत सी रिवायतें लफ़्ज़ 'सुम्मा' (फिर) के साथ आई हैं। 'सुम्मा' अंतराल और मोहलत चाहता है, तो यह दावा कि हदीसों में केवल 'इत्तेसाल' (जुड़ाव) आया है, सरासर ग़लत है। बल्कि अगर जुड़ाव का शब्द एक या दो हदीसों में है, तो अलगाव (इनफ़िसाल) का शब्द आठ या दस में है। अब रिवायतें सुनिए:

हदीस 1: सहीहैन में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से है: [तालिका सामग्री] (अरबी भाग): शब्द मुस्लिम के हैं, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), और अबू बक्र, उमर और उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के साथ ईदुल फ़ितर की नमाज़ पढ़ी। वे सभी खुतबे से पहले नमाज़ पढ़ते थे, फिर खुतबा देते थे। (उर्दू भाग): मुस्लिम के अल्फ़ाज़ यह हैं कि मैंने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़, हज़रत उमर और हज़रत उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हुम की मय्यत में नमाज़-ए-ईद-उल-फ़ितर अदा की, इन सबने खुतबे से पहले नमाज़ पढ़ाई फिर खुतबा दिया। (त)

हदीस 2: सहीह बुखारी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से है: [तालिका सामग्री] (अरबी भाग): बेशक अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईदुल अज़हा और ईदुल फ़ितर में नमाज़ पढ़ते थे, फिर नमाज़ के बाद खुतबा देते थे। (उर्दू भाग): रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद-उल-अज़हा और ईद-उल-फ़ितर की नमाज़ पढ़ाते फिर नमाज़ के बाद खुतबा इरशाद फ़रमाते। (त)

1. रिसाला ग़ायत अल-मक़ाल मिन मजमूअ़ रसाइल अब्दुल हई, फ़सल फ़ी अस-सलात, मतबा चश्मा-ए-फ़ैज़ लखनऊ, पृष्ठ 109।
2. सहीह मुस्लिम, किताबुल ईदैन, मतबुआ नूर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब कराची, 289/1।
3. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना कराची, 131/1।

पृष्ठ 544/673

فتاوٰی رضویہ ، جلد ہشتم

[جدول کا مواد] (عربی حصہ): ما ذکروہ من دلالة حدیث انس علی کون العادة النبویة مستمرة بالصلوة في النعال منظور فیه لعدم وجود ما یدل علیه فیه ولعله استخرجه من لفظ کان وھو استخراج ضعیف لما نص علیه الامام النووي في کتاب صلوة اللیل من شرح صحیح مسلم من ان لفظ کان لا یدل علی الاستمرار والدوام في عرفهم اصلا۱۔ (اردو حصہ): حدیث انس سے ان کا اس پر استدلال کہ نعلین میں نماز ادا کرنا حضور علیہ الصلوۃ والسلام کی عادت دائمی تھی محل نظر ہے کیونکہ الفاظ حدیث میں ایسی کوئی شئی موجود نہیں شاید انہوں نے لفظ 'کان' سے استنباط کیا ہو حالانکہ یہ استنباط ضعیف ہے کیونکہ امام نووی نے شرح مسلم کے کتاب صلوۃ اللیل میں تصریح کی ہے کہ لفظ 'کان' محدثین کے عرف میں ہرگز دوام و استمرار پر دلالت نہیں کرتا۔(ت)

اس مسئلہ کی تمام تحقیق فقیر کے رسالہ التاج ۱۳۰۵ھ المکلل فی انارۃ مدلول کان یفعل میں ہے۔ خامساً یہ سب تو بالائی کلام تھا احادیث پر نظر کیجئے تو وہ اور ہی کچھ اظہار فرماتی ہیں صحاح ستہ و غیر ہا خصوصاً صحیحین میں روایات کثیرہ بلفظ ثم وارد، ثم فاصلہ و مہلت چاہتا ہے تو ادعاء کہ احادیث میں اتصال ہی آیا محض غلط بلکہ حرف اتصال اگر دو ایک حدیث میں ہے تو کلمہ انفصال آٹھ دس میں، اب روایات سنئے :

حدیث ۱: صحیحین میں حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے: [جدول کا مواد] (عربی حصہ): واللفظ لمسلم قال شهدت صلوة الفطر مع نبی الله صلی الله تعالٰی علیہ وسلم و ابی بکر وعمر وعثمان رضی الله تعالٰی عنهم فکلهم یصلیها قبل الخطبة ثم یخطب۲۔ (اردو حصہ): مسلم کے الفاظ یہ ہیں کہ میں نے نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ، حضرت ابوبکر صدیق، حضرت عمر

اور حضرت عثمان رضی اللہ تعالیٰ عنہم کی معیت میں نماز عید الفطر ادا کی ان سب نے خطبہ سے پہلے نماز پڑھائی پھر خطبہ دیا۔ (ت)

حدیث ۲: صحیح بخاری میں حضرت عبداللہ بن عمر رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے ہے: [جدول کا مواد] (عربی حصہ): ان رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کان یصلی في الاضحی والفطر ثم یخطب بعد الصلوۃ۳۔ (اردو حصہ): رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عید الاضحٰی اور عید الفطر کی نماز پڑھاتے پھر نماز کے بعد خطبہ ارشاد فرماتے۔(ت)

۱: رسالہ غایۃ المقال من مجموعہ رسائل عبدالحئی فصل فی الصلوۃ مطبع چشمۂ فیض لکھنؤ ص ۱۰۹ ۲: صحیح مسلم کتاب العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱/۲۸۹ ۳: صحیح البخاری کتاب العیدین مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۳۱

Fatawa-e-Razvia Volume 8

Hadith 3: In the same chapter 'The Imam Facing the People during the Eid Sermon,' it is narrated from Hazrat Bara' bin Azib (may Allah be pleased with him):

[Box 1] Arabic: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) came out on the day of Adha, prayed two rak'ahs of Eid, then turned his blessed face towards us and delivered the sermon. (T) Urdu: The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) arrived on the day of Eid-ul-Adha, led two rak'ahs of Eid prayer, then turned his radiant face towards us and delivered the sermon. (T)

Hadith 4: In the same, it is narrated from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him):

[Box 2] Arabic: Indeed, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to pray on the Day of Sacrifice, then deliver the sermon. (T) Urdu: Undoubtedly, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) offered prayers on the day of Eid-ul-Adha and then gave the sermon. (T)

Hadith 5: In the same, it is narrated from Hazrat Jundub bin Abdullah Bajali (may Allah be pleased with him):

[Box 3] Arabic: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prayed on the Day of Sacrifice, then delivered the sermon, then performed the sacrifice. (T) Urdu: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) offered prayers on the day of sacrifice, then gave the sermon, then performed the sacrifice. (T)

Hadith 6: In Jami' al-Tirmidhi, with beneficial appraisal and correction, it is narrated from Hazrat Abdullah bin Umar (may Allah be pleased with both of them):

[Box 4] Arabic: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), Abu Bakr, and Umar used to pray the two Eids before the sermon, then they would deliver the sermon. (T) Urdu: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him), Hazrat Abu Bakr, and Hazrat Umar (may Allah be pleased with both of them) used to lead the Eid prayers before the sermon, then they would deliver the sermon. (T)

Hadith 7: In Sunan al-Nasa'i, it is narrated from Hazrat Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him):

[Box 5] Arabic: Indeed, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to go out on the day of Eid, pray two rak'ahs, then deliver the sermon. (T) Urdu: Undoubtedly, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to come out on the day of Eid, he would lead two rak'ahs, then give the sermon. (T)

1 Sahih al-Bukhari, Kitab al-Eidayn, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/133
2 Sahih al-Bukhari, Kitab al-Eidayn, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/132
3 Sahih al-Bukhari, Kitab al-Eidayn, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/132
4 Jami' al-Tirmidhi, Bab fi Salat al-Eidayn, published by Amin Company, Kutub Khana Rashidiya, Delhi, 1/70 5 Sunan al-Nasa'i, Kitab Salat al-Eidayn, published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/234

फ़तावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं

हदीस ३: इसी के अध्याय "ईद के खुतबे में इमाम का लोगों की ओर मुड़ना" में हज़रत बरा बिन आज़िब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है:

[बॉक्स १] अरबी: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अज़हा के दिन बाहर निकले, ईद की दो रकातें पढ़ाईं, फिर अपना मुबारक चेहरा हमारी तरफ फेरा और खुतबा इरशाद फरमाया। (त) उर्दू: नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईदुल अज़हा के दिन तशरीफ लाए, फिर ईद की दो रकातें पढ़ाईं, फिर आपने हमारी तरफ रुख-ए-अनवर किया और खुतबा इरशाद फरमाया। (त)

हदीस ४: इसी में हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है:

[बॉक्स २] अरबी: बेशक रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कुर्बानी के दिन नमाज़ पढ़ते फिर खुतबा देते। (त) उर्दू: बिलाशुबा रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ईदुल अज़हा के रोज़ नमाज़ पढ़ाई फिर खुतबा दिया। (त)

हदीस ५: इसी में हज़रत जुंदुब बिन अब्दुल्लाह बजली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है:

[बॉक्स ३] अरबी: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कुर्बानी के दिन नमाज़ पढ़ाई, फिर खुतबा दिया, फिर कुर्बानी की। (त) उर्दू: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कुर्बानी के दिन नमाज़ पढ़ाई फिर खुतबा दिया फिर कुर्बानी की। (त)

हदीस ६: जामे तिर्मिज़ी में तहसीन व तसहीह के साथ हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से मरवी है:

[बॉक्स ४] अरबी: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), अबू बक्र और उमर ईदों की नमाज़ खुतबे से पहले पढ़ते थे फिर खुतबा देते थे। (त) उर्दू: रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम), हज़रत अबू बक्र और हज़रत उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ईदैन की नमाज़ खुतबे से पहले पढ़ाते थे फिर खुतबा देते थे। (त)

हदीस ७: सुनन नसाई में हज़रत अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है:

[बॉक्स ५] अरबी: बेशक रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद के दिन बाहर तशरीफ ले जाते, दो रकात नमाज़ पढ़ते फिर खुतबा देते। (त) उर्दू: बिलाशुबा रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद के दिन बाहर तशरीफ लाते आप दो रकातें पढ़ाते फिर खुतबा देते (त)

1. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना, कराची, १/१३३
2. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना, कराची, १/१३२
3. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना, कराची, १/१३२
4. जामे अत-तिर्मिज़ी, बाब फी सलातुल ईदैन, मतबुआ अमीन कंपनी, कुतुब खाना रशीदिया, दिल्ली, १/७०
5. सुनन नसाई, किताब सलातुल ईदैन, मतबुआ नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, १/२३४

पृष्ठ ६७३ का ५४५

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

حدیث ۳: اسی کے باب استقبال الامام الناس فی خطبۃ العید میں حضرت براء بن عازب رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے:

[Box 1] خرج النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یوم اضحی فصلی العید رکعتین ثم اقبل علینا بوجھہ وقال الحدیث[1]- نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اضحٰی کے دن تشریف لائے پھر عید کی دورکعات پڑھائیں پھر آپ نے ہماری طرف رخ انور کیا اور خطبہ ارشاد فرمایا۔ (ت)

حدیث ۴: اسی میں حضرت انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے:

[Box 2] ان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یصلی یوم النحر ثم خطب الحدیث[2]- بلاشبہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے عید الاضحٰی کے روز نماز پڑھائی پھر خطبہ دیا۔ (ت)

حدیث ۵: اسی میں حضرت جندب بن عبد اللہ بجلی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے:

[Box 3] صلی النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یوم النحر ثم خطب ثم ذبح[3]- رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے قربانی کے دن نماز پڑھائی پھر خطبہ دیا پھر قربانی کی (ت)

حدیث ۶: جامع ترمذی میں بافادۂ تحسین و تصحیح حضرت عبد اللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے:

[Box 4] کان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و ابو بکر وعمر یصلون فی العیدین قبل الخطبۃ ثم یخطبون[4]- رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم، حضرت ابوبکر اور حضرت عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما عیدین کی نماز خطبہ سے پہلے پڑھاتے تھے پھر خطبہ دیتے۔ (ت)

حدیث ۷: سنن نسائی میں حضرت ابوسعید خدری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے ہے:

[Box 5] ان رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کان یخرج یوم العید فیصلی رکعتین ثم یخطب[5]-

بلاشبہ رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم عید کے دن باہر تشریف لاتے آپ دورکعتیں پڑھاتے پھر خطبہ دیتے (ت)

[1] صحیح البخاری کتاب العیدین مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۳۳ [2] صحیح البخاری کتاب العیدین مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۳۲ [3] صحیح البخاری کتاب العیدین مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱ / ۱۳۲ [4] جامع الترمذی باب فی صلوۃ العیدین مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱ / ۷۰ [5] سنن نسائی کتاب صلوۃ العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۱ / ۲۳۴

Fatawa Razawiyya Volume 8

These seven Hadiths show that the Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and Siddiq, Farooq, and Uthman Ghani (may Allah be pleased with them) used to start the sermon some time after completing the Eid prayers.

Hadith 8: In Sahihayn, narrated by Hazrat Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him):

Arabic Text	Urdu Translation
The wording is from Bukhari: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to go out to the prayer ground on the days of Eid al-Fitr and Eid al-Adha. The first thing he would begin with was the prayer. Then he would turn and stand facing the people while they were sitting in their rows. He would exhort them and advise them. If he wanted to send a military expedition, he would dispatch it, or if he wanted to command something, he would command it. Then he would depart. 1	The wording of Bukhari is that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would come out to the Eidgah on the day of Eid al-Fitr and Adha. First of all, you would lead the prayer, then you would turn towards the people; the people would remain seated in their rows. You would give them sermons and advice. If you had to send an army, you would dispatch it, and if you had to give an order, you would give it, then you would return. (T)

This Hadith indicates a separation between the sermon and the return.

Hadith 99: Narrated by Bukhari, Muslim, Darimi, Abu Dawud, Nasai, and Ibn Majah from the Great Scholar of the Ummah (Ibn Abbas) (may Allah be pleased with him):

Arabic Text	Urdu Translation
He said: I went out with the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) on the day of Fitr or Adha. He prayed, then he gave the sermon, then he went to the women, exhorted them, reminded them, and commanded them to give charity. 2	He said: I went out with the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) on the day of Fitr and Adha. You led the prayer, then gave the sermon, then went to the gathering of women, gave them sermons and advice, and commanded them to give charity. (T)

This Hadith shows a separation in both places. Subhan Allah! How then can it be claimed that there was such an immediate succession between prayer and sermon, and sermon and return, that it serves as proof for the absence of supplication? If you

say that "thumma" (then) is sometimes used metaphorically even when there is no delay, the poet said:

Like the movement of a Rudayni spear under the dust [of battle], It flowed through the joints and then trembled. 3

(Its movement is like that of a Rudayni spear which, while moving in the flying dust of the battlefield, strikes the knuckles and then vibrates.)

1. Sahih al-Bukhari, Book of Eids, Chapter on Children Going Out, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/131.
2. Sahih al-Bukhari, Book of Eids, Chapter on Children Going Out, published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/133.
3. Awdah al-Masalik ila Alfiyyah Ibn Malik, discussion on the word "thumma", published by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 3/24; Sharh al-Zurqani 'ala al-Mawahib al-Ladunniyyah, sixth branch of the second section, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 29/8.

फतावा रज़विया जिल्द 8

ये सात हदीसें ज़ाहिर करती हैं कि हुज़ूर-ए-पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और सिद्दीक़, फ़ारूक़ और उस्मान-ए-ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हुम) नमाज़-ए-ईदैन का सलाम फेर कर कुछ देर के बाद खुत्बा शुरू फरमाते।

हदीस 8: सहीहैन में हज़रत अबू सईद खुदरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
बुखारी के अलफ़ाज़ ये हैं: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ईद-उल-फित्र और अज़्हा के दिन नमाज़ की जगह (ईदगाह) की ओर निकलते थे। सबसे पहले वह जिस चीज़ की शुरुआत करते थे, वह नमाज़ थी। फिर वह वापस मुड़ते और लोगों के सामने खड़े होते, जबकि लोग अपनी सफ़ों में बैठे रहते। वह उन्हें वअज़ देते और नसीहत करते। यदि वह किसी सैन्य दल को भेजना चाहते, तो उसे भेज देते, या यदि वह किसी चीज़ का आदेश देना चाहते, तो आदेश दे देते। फिर वह चले जाते। 1	बुखारी के अलफ़ाज़ ये हैं कि नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ईद-उल-फित्र और अज़्हा के दिन बाहर ईदगाह में तशरीफ लाते। सबसे पहले आप नमाज़ पढ़ाते फिर लोगों की तरफ मुतवज्जेह होते; लोग अपनी-अपनी सफ़ों में बैठे रहते। आप उन्हें वअज़-ओ-नसीहत फरमाते, अगर आप ने किसी लश्कर को भेजना होता तो रवाना फरमाते और किसी का हुक्म देना होता तो हुक्म फरमा देते फिर आप वापस तशरीफ लाते। (त)

ये हदीस खुत्बा और वापसी में फासले को बताती है।

हदीस 99: बुखारी, मुस्लिम, दारीमी, अबू दाऊद, नसाई और इब्न माजा ने हज़रत हबरुल उम्मत (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है:

अरबी पाठ	**उर्दू अनुवाद**
उन्होंने कहा: मैं नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के साथ फित्र या अज़्हा के दिन निकला। उन्होंने नमाज़ पढ़ी, फिर खुत्बा दिया, फिर महिलाओं के पास आए, उन्हें वअज़ दिया,	फरमाया मैं फित्र और अज़्हा के रोज़ नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के साथ निकला। आप ने नमाज़ पढ़ाई फिर खुत्बा दिया फिर खवातीन के इज्तेमा में तशरीफ ले गए, उन्हें

अरबी पाठ	उर्दू अनुवाद
उन्हें याद दिलाया और उन्हें सदका देने का आदेश दिया। 2	वअज़-ओ-नसीहत फरमाई और उन्हें सदक़ा का हुक्म दिया। (त)

ये हदीस दोनों जगह फासले का इज़हार करती है, सुब्हानअल्लाह! फिर कैसे दावा कर सकते हैं कि नमाज़-ओ-खुत्बा और खुत्बा-ओ-वापसी में ऐसा इत्तेसाल (निरंतरता) रहा जो दुआ न होने पर दलील हुआ। अगर कहें कि "सुम्मा" (फिर) कभी मजाज़न (लाक्षणिक रूप से) बिना किसी मोहलत के भी आता है, जैसा कि शायर ने कहा:

धूल के नीचे एक रुदैनी नेज़े के हिलने की तरह, यह जोड़ों के माध्यम से प्रवाहित हुआ और फिर कांप गया। 3

(इसकी हरकत उस रुदैनी नेज़े की तरह है जो मैदान-ए-कारज़ार में उड़ने वाले गुबार में हरकत करते हुए पोरों पर लगता है तो जुम्बिश करता है।)

1. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, बाब खुरूज-उल-सिबयान, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/131
2. सहीह अल-बुखारी, किताबुल ईदैन, बाब खुरूज-उल-सिबयान, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/133
3. औज़हुतुल मसालिक इल अलफियह इब्न मालिक, लफ्ज़ 'सुम्मा' की बहस, मतबुआ दारुल इहया-उत-तुरास अल-अरबी बैरुत, 3/24; शरह अल-ज़ुरक़ानी अलल मवाहिब अल-लदुन्निया, फेरअ सादिस मिन अल-फ़स्ल अल-सानी, मतबुआ दारुल मारिफ़ा बैरुत, 29/8

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

یہ سات حدیثیں ظاہر کرتی ہیں کہ حضور پرنور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور صدیق و فاروق و عثمان غنی رضی اللہ تعالٰی عنہم نماز عیدین کا سلام پھیر کر کچھ دیر کے بعد خطبہ شروع فرماتے۔

حدیث ۸: صحیحین میں حضرت ابوسعید خدری رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ہے:

عربی عبارت

واللفظ للبخاري كان النبي صلى الله تعالٰى عليه وسلم يخرج يوم الفطر والاضحى الى المصلى فأول شيئ يبدأ به الصلوة ثم ينصرف فيقوم مقابل الناس والناس جلوس على صفوفهم فيعظهم و يوصيهم فان كان يريد ان يقطع بعثا قطعه او يأمر بشيئ امر به ثم ينصرف۔ 1

اردو ترجمہ

الفاظ بخاری یہ ہیں کہ نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم عید الفطر اور اضحی کے دن باہر عیدگاہ میں تشریف لاتے سب سے پہلے آپ نماز پڑھاتے پھر لوگوں کی طرف متوجہ ہوتے لوگ اپنی اپنی صفوں میں بیٹھے رہتے آپ انہیں وعظ و نصیحت فرماتے، اگر آپ نے کسی لشکر کو بھیجنا ہوتا تو روانہ فرماتے اور کسی کا حکم دینا ہوتا تو حکم فرمادیتے پھر آپ واپس تشریف لاتے۔ (ت)

یہ حدیث خطبہ و معاودت میں فصل بتاتی ہے۔

حدیث ۹۹: بخاری و مسلم ودارمی وابوداؤد ونسائی وابن ماجہ حضرت حبرالامت رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قال خرجت مع النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم یوم فطر او اضحی فصلی ثم خطب ثم اتی النساء فوعظہن و ذکرھن و امرھن بالصدقۃ 2۔	فرمایا میں فطر اور اضحی کے روز نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ساتھ نکلا آپ نے نماز پڑھائی پھر خطبہ دیا پھر خواتین کے اجتماع میں تشریف لے گئے انہیں وعظ و نصیحت فرمائی اور انہیں صدقہ کا حکم دیا۔ (ت)

یہ حدیث دونوں جگہ فصل کا اظہار کرتی ہے، سبحن اللہ ! پھر کیونکر ادعا کرسکتے ہیں کہ نماز وخطبہ وخطبہ و معاودت میں ایسا اتصال رہا جو عدم دعا پر دلیل ہوا، اگر کہئے ثم کبھی مجازاً بحالت عدم مہلت بھی آتا ہے قال الشاعر:

کھز الردینی تحت العجاج جری فی الانابیب ثم اضطرب 3

(اس کی حرکت اس ردینی نیزے کی طرح ہے جو میدان کارزار میں اڑنے والے غبار میں حرکت کرتے ہوئے پوروں پر لگتا ہے تو جنبش کرتا ہے)

1 صحیح البخاری کتاب العیدین باب خروج الصبیان مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۳۱ 2 صحیح البخاری کتاب العیدین باب خروج الصبیان مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۱۳۳ 3 اوضح المسالک الی الفیہ ابن مالک بحث لفظ ثم مطبوعہ دار احیاء التراث العربی بیروت ۳/۲۴، شرح الزرقانی علی المواہب اللدنیہ فرع سادس من الفصل الثانی مطبوعہ دار المعرفۃ بیروت ۲۹/۸

Fatwa-e-Razvia Volume 8

I say: You are the claimant, and for a claimant, mere possibility is not sufficient, especially when it is against the fundamental principle, as is not hidden from any person of intellect. (T) Moreover, many times the letter 'fa' (ف) comes for mere sequence without the meaning of immediate connection and succession. Imam Jalaluddin Suyuti states regarding 'fa' in 'Al-Itqan':

Sometimes it comes for mere sequence, such as: 'Then he went to his family and brought a fat calf, then he placed it before them. Then his wife came forward crying aloud and struck her forehead. Then by those who drive away with a [reproachful] driving. Then by those who recite [the Message]...' (Translation of verses) (T)	**Sometimes 'fa' comes for mere sequence, for example in these verses: (Translation of verses) Then he went to his family and brought a fat calf, then he placed it before them. Upon this, his wife came crying out, then she struck her forehead. Then by the oath of those who drive away reprovingly. Then by those groups that recite the Quran. (T)**
The letter 'fa' is for sequence by way of succession, even if it is a sequence in mention. - 2	'Fa' comes for sequence by way of succession, whether it is a sequence in mention.

So, interpreting one 'fa' as mere sequence or sequence in mention as a metaphorical usage is better than interpreting ten 'thumma' (ثم) as metaphorical usage.

Sixthly, if you take this 'lack of separation' as a negative of generality, how does it harm us or benefit you? We do not need a universal affirmative such that a particular negative would be against us. And as for the generality of negation, its invalidity is proven and clear in both places. Authentic hadiths explicitly state that separation certainly occurred in both places, the prayer and the sermon. That hadith (10) reported by Abu Dawood and...

Note: I say: This hadith is authentic.

Narrated by Abu Dawood from Muhammad bin al-Sabah al-Bazzar (truthful), al-Nasa'i from Muhammad bin Yahya bin Ayyub (reliable), and Ibn Majah from Hadiyya bin Abdul Wahhab (truthful) and Umar bin Rafi' al-Bajali (reliable), all of them... (continued on the next page)

Abu Dawood narrated it from Muhammad bin al-Sabah al-Bazzar (who is truthful), and al-Nasa'i from Muhammad bin Yahya bin Ayyub (who is reliable), and Ibn Majah from Hadiyya bin Abdul Wahhab (who is truthful), and Umar bin Rafi' al-Bajali (who is reliable), all of them... (continued on the next page)

1. Al-Itqan, Type 40 regarding knowledge of the meanings of particles etc., published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/126.
2. Musallam al-Thubut, issue of 'fa' for sequence, published by Matba' Ansari, Delhi, p. 61.

फतावा-ए-रज़विया जिल्द 8

मैं कहता हूँ: तुम तर्क देने वाले हो और तर्क देने वाले के लिए केवल संभावना पर्याप्त नहीं है, विशेष रूप से जब यह मूल सिद्धांत के विरुद्ध हो, जैसा कि किसी बुद्धिमान व्यक्ति से छिपा नहीं है। (त) इसके अतिरिक्त, कई बार 'फ़ा' (ف) बिना निरंतरता और अनुक्रम के अर्थ के केवल क्रम के लिए आता है। इमाम जलालुद्दीन सुयुती 'इतक़ान' में 'फ़ा' के बारे में लिखते हैं:

कभी-कभी यह केवल क्रम के लिए आता है, जैसे: 'फिर वह अपने घर गया और एक मोटा बछड़ा लाया, फिर उसने उसे उनके पास रखा। फिर उसकी पत्नी चिल्लाती हुई आई फिर उसने अपना माथा पीटा। फिर उनकी कसम जो झिड़क कर चलाएँ। फिर उन समूहों की जो कुरान पढ़ें...' (आयतों का अनुवाद) (त)

कभी-कभी 'फ़ा' केवल क्रम के लिए आता है, उदाहरण के लिए इन आयतों में (आयतों का अनुवाद): फिर वह अपने घर गया और एक मोटा बछड़ा लाया फिर उसे उनके पास रखा। इस पर उसकी पत्नी चिल्लाती हुई आई फिर अपना माथा पीटा। फिर उन की कसम जो झिड़क कर चलाएँ। फिर उन जमातों की जो कुरान पढ़ें। (त)

'फ़ा' अनुक्रम के माध्यम से क्रम के लिए है, भले ही वह उल्लेख का क्रम हो। - 2

'फ़ा' अनुक्रम के माध्यम से क्रम के लिए आता है चाहे वहां ज़िक्री (उल्लेख का) क्रम हो।

तो, एक 'फ़ा' को मात्र क्रम या उल्लेख में क्रम के रूप में रूपक मानना, दस 'थुम्मा' (ثم) को रूपक मानने से बेहतर है।

छठा, यदि आप इस 'अलगाव की कमी' को सामान्य निषेध के रूप में लेते हैं, तो इससे हमें क्या हानि और आपको क्या लाभ? हमें सार्वभौमिक सकारात्मक की आवश्यकता नहीं है कि आंशिक नकारात्मक हमारे विरुद्ध हो। और जहाँ तक निषेध की व्यापकता का प्रश्न है, दोनों स्थानों पर इसकी अमान्यता सिद्ध और स्पष्ट है। प्रामाणिक हदीसें स्पष्ट कर रही हैं कि निश्चित रूप से दोनों स्थानों पर, प्रार्थना और खुतबे में, अलगाव हुआ। वह हदीस (१०) कि अबू दाऊद और...

नोट: मैं कहता हूँ: यह हदीस सही (प्रामाणिक) है।

इसे अबू दाऊद ने मुहम्मद बिन अल-सबा अल-बज़ार (जो सच्चे हैं), नसाई ने मुहम्मद बिन यहया बिन अय्यूब (जो विश्वसनीय हैं), और इब्न माजा ने हदीया बिन अब्दुल वहाब (जो सच्चे हैं) और उमर बिन राफे अल-बजली (जो विश्वसनीय हैं) से रिवायत किया, इन सभी ने... (बाकी अगले पृष्ठ पर)

इसे अबू दाऊद ने मुहम्मद बिन अल-सबा अल-बज़ार से (जो सादिक़ हैं) और नसाई ने मुहम्मद बिन यहया बिन अय्यूब से (जो थिक़ा/विश्वसनीय हैं) और इब्न माजा ने हदीया बिन अब्दुल वहाब से (जो सदूक़/सच्चे हैं) और उमर बिन राफे अल-बजली (जो थिक़ा हैं) से रिवायत किया, इन सभी ने... (बाकी अगले पृष्ठ पर)

1. अल-इतक़ान, चालीसवाँ प्रकार, उपकरणों के अर्थ के ज्ञान के बारे में आदि, मुस्तफा अल-बाबी प्रेस, मिस्र, 1/126।
2. मुसल्लम अल-थुबूत, क्रम के लिए 'फ़ा' का मुद्दा, मुतबा अंसारी प्रेस, दिल्ली, पृ. 61।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اقول : تم مستدل ہو اور مستدل کو احتمال کافی نہیں خصوصاً خلافِ اصل کمالا یخفی علی ذی عقل (یہ کسی صاحبِ عقل پر پوشیدہ نہیں۔ ت) معہٰذا ف بارہا مجرد ترتیب بے معنیٰ اتصال و تعقیب کے لئے آتی ہے، امام جلال الدین سیوطی اتقان میں زیر بیان ف فرماتے ہیں :

قد تجئ لمجرد الترتیب نحو فراغ کبھی کبھی فاء محض ترتیب کے لئے آتی ہے، مثلاً ان آیات الی اھلہ فجاء بعجل سمین ہ فقربہ میں (ترجمہ آیات) پھر اپنے گھر گیا تو ایک فربہ بچھڑا لے الیھم فاقبلت امرأتہ في صرّۃ فصکّت آیا پھر اسے ان کے پاس رکھا۔ اس پر اس کی بیوی چلاتی وجھھا۔ فالزاجرات زجراً ہ فالتالیات آئی پھر اپنا ماتھا ٹھونکا۔ پھر قسم ان کی کہ جھڑک کر 1 - چلائیں۔ پھر ان جماعتوں کی کہ قرآن پڑھیں۔ (ت)

الفاء للترتیب علی سبیل التعقیب ولو فاء بطریقِ تعقیب ترتیب کے لئے آتی ہے خواہ وہاں ترتیب في الذکر - 2 ذکری ہو۔

تو ایک ف کا مجرد ترتیب یا ترتیب فی الذکر پر مجاز پر حمل اولیٰ ہے یا دس ثمّ کا مجاز پر۔

ساڈسا یہ عدم فصل بطور سلبِ عموم لیتے ہو تو ہمیں کیا مضر اور تمہیں کیا مفید کہ ہمیں ایجابِ کلی کی ضرورت نہیں، کہ سلبِ جزئی ہمارے خلاف ہو، اور بطورِ عموم، سلب تو دونوں جگہ اس کا بطلان ثابت و واضح۔ صحیح حدیثیں تنصیص کر رہی ہیں کہ بالیقین دونوں جگہ فصل واقع ہوا، نماز و خطبہ میں وہ حدیث عہ (۱۰) کہ ابو داؤد و

عہ اقول : یہ حدیث صحیح ہے،

رواه ابوداؤد عن محمد بن الصباح البزار صدوق والنسائي عن محمد بن يحيى بن ايوب ثقة و ابن ماجة عن هدية بن عبدالوهاب صدوق وعمر بن رافع البجلى (جو کہ ثقہ ہیں) تمام نے (باقی اگلے صفحہ پر)

اس کو ابوداؤد نے محمد بن الصباح البزار سے (جو صادق ہیں) اور نسائی نے محمد بن یحییٰ بن ایوب سے (جو ثقہ ہیں) اور ابن ماجہ نے ہدیہ بن عبدالوھاب سے (جو کہ صدوق ہیں) اور عمر بن رافع البجلی (جو کہ ثقہ ہیں) تمام نے (باقی اگلے صفحہ پر)

1 الاتقان النوع الاربعون فی معرفۃ معانی الادوات الخ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۱۲۶ 2 مسلم الثبوت مسئلہ الفاء للترتیب مطبوعہ مطبع انصاری دہلی ص ۶۱

Volume 8 Fatawa Rizvia

Nasa'i and Ibn Majah narrated from Hazrat Abdullah bin Sa'ib (may Allah be pleased with both of them):

Arabic	Urdu
The wording belongs to Ibn Majah: He said, 'I attended the Eid with the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). He led us in the Eid prayer, then said, "We have completed the prayer. Whoever wishes to sit for the sermon may sit, and whoever wishes to leave may leave."'[1]	The words of Ibn Majah are: 'I was present with the radiant Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) during Eid. The Prophet led the Eid prayer, then said, "We have finished the prayer; now whoever wants to sit to listen [to the sermon] should sit, and whoever wants to go should go."'

Even if you do not consider this, this conversation was a gap between the prayer and the sermon, so the claim that there must always be a continuous connection became invalid. And a significant separation between the sermon and the return is proven by the same ninth Hadith which was mentioned recently, a narration of which is found in Bukhari, Muslim, Abu Dawood, and Nasa'i as follows:

Arabic	Urdu
He (i.e., the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) prayed, then gave a sermon, then went to the women accompanied by Bilal, exhorted them, reminded them, and commanded them to give charity. I saw them reaching out with their hands, throwing [their jewelry] into Bilal's garment. Then he and Bilal went to his house.'[2]	Meaning, the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) performed the Eid prayer, then after that delivered the sermon. Then after that, he went to the rows of women, gave them advice and guidance, and ordered them to give charity. So I saw the ladies taking off jewelry with their hands and throwing it into the cloth of Bilal (may Allah be pleased with him).

(Remainder of footnote from previous page): | Arabic Isnad Analysis | Urdu Explanation | | :--- | :--- | | Reliable and firm narrators, all of them. They said: Al-Fadl bin Musa narrated to us, who is reliable and firm. Ibn Jurayj narrated to us from Ata, both of whom are accepted in Muslim. From Abdullah bin Sa'ib (may Allah be pleased with both of them), he and his father had companionship [of the Prophet]. Thus, the correction of Abu Dawood and Nasa'i is valid. Ibn Ma'in's considering it 'mursal' (a

hadith with a missing link) after the reliability of the narrators is established does not affect us. Therefore, this hadith is Sahih (authentic) according to our principles. 12 Minhu (M) | Said that Al-Fadl bin Musa (who is reliable and strong) told us, he said Ibn Jurayj told us from Ata (both are established in Muslim), from Abdullah bin Sa'ib (may Allah be pleased with him) (he and his father had companionship), so the correction of Abu Dawood and Nasa'i occurred. And Ibn Ma'in making it 'mursal' after the reliability of the narrators will not be influential. Thus, according to us, this hadith is authentic. 12 Minhu (T). |

1 Sunan Ibn Majah, Chapter on Eid Prayers, published by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 93. 2 Sahih al-Bukhari, Book of Eid, Chapter on Knowledge in the Prayer Place, published by Noor Muhammad Qadeemi Kutub Khana, Karachi, 1/133.

खंड 8 फ़तावा रज़विया

नसई और इब्न माजह ने हज़रत अब्दुल्ला बिन साइब (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
इब्न माजह के शब्द हैं: उन्होंने कहा, 'मैं अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ ईद में शामिल हुआ। उन्होंने हमें ईद की नमाज़ पढ़ाई, फिर फरमाया, "हमने नमाज़ पूरी कर ली है। अब जो खुतबे के लिए बैठना चाहता है वह बैठ जाए, और जो जाना चाहता है वह चला जाए।"'[1]	इब्न माजह के शब्द ये हैं: 'मैं ईद में हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ हाज़िर हुआ। हुज़ूर ने नमाज़-ए-ईद पढ़ाई, फिर फरमाया, "हम नमाज़ पढ़ चुके अब जो सुनने के लिए बैठना चाहे बैठे और जो जाना चाहे चला जाए।"'

अगर तुम का ख्याल न भी करें, तो यह बातचीत नमाज़ और खुतबे के बीच का फासला था, तो हमेशा हकीकी मेल होने का दावा बातिल हो गया। और खुतबे और वापसी के बीच लंबा फासला उसी नौवीं हदीस से साबित है जो अभी गुज़री, जिसकी एक रिवायत बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और नसई के यहाँ इस प्रकार है:

अरबी	उर्दू अनुवाद
उन्होंने (अर्थात नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने) नमाज़ पढ़ी, फिर खुतबा दिया, फिर बिलाल के साथ औरतों के पास गए, उन्हें उपदेश दिया, उन्हें याद दिलाया और उन्हें सदका देने का आदेश दिया। मैंने उन्हें अपने हाथों से पहुँचते हुए देखा, वे बिलाल के कपड़े में (अपने गहने) डाल रही थीं। फिर वह और बिलाल अपने घर चले गए।'[2]	यानी हुज़ूर सैयाद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने नमाज़-ए-ईद पढ़ी, फिर उसके बाद खुतबा फरमाया, फिर उसके बाद औरतों की सफों (कतारों) पर तशरीफ लाकर उन्हें वाज़-ओ-इरशाद किया और सदका का हुक्म दिया, तो मैंने देखा कि बीबियाँ अपने हाथों से गहने उतार-उतार कर बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) के कपड़े में डाल रही थीं।

(पिछली पृष्ठ की शेष टिप्पणी): | अरबी इसनाद विश्लेषण | उर्दू व्याख्या | | :--- | :--- | | तमाम रावी भरोसेमंद और पक्के हैं। उन्होंने कहा: हमें अल-फज़ल बिन मूसा ने बताया, जो भरोसेमंद और पक्के हैं। हमें इब्न जुरैज ने अता से बताया, और वे दोनों मुस्लिम में (मान्य) हैं। हज़रत अब्दुल्ला बिन साइब (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से, उन्हें और उनके पिता को सोहबत (साहचर्य) प्राप्त है। इसलिए अबू

दाऊद और नसई की पुष्टि हुई। और रावियों के भरोसेमंद होने के बाद इब्न मुईन का इसे 'मुरसल' (टूटी हुई कड़ी वाली हदीस) कहना हमें प्रभावित नहीं करेगा। इसलिए, हमारे सिद्धांतों के अनुसार यह हदीस सही (प्रामाणिक) है। 12 मिन्हु (म) | कहा कि हमें फज़ल बिन मूसा (जो भरोसेमंद और मज़बूत हैं) उन्होंने कहा, हमें इब्न जुरैज ने अता से (ये दोनों जगह मुस्लिम में हैं) ने अब्दुल्ला बिन साइब रज़ियल्लाहु अन्हु (इनको और इनके पिता को सोहबत है) तो अबू दाऊद और नसई की तस्दीक हुई। और इब्न मुईन का रावियों के भरोसेमंद होने के बाद इसे मुरसल बनाना असरअंदाज़ नहीं होगा। अतः हमारे यहाँ यह हदीस सही है। 12 मिन्हु (त) |

1 अल-सुनन इब्न माजह, ईद की नमाज़ का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 93. 2 सहीह अल-बुखारी, ईद की किताब, नमाज़गाह में इल्म (ज्ञान) का अध्याय, नूर मोहम्मद कदीमी कुतुब खाना कराची द्वारा प्रकाशित, 1/133.

نسائی وابن ماجہ نے حضرت عبداللہ بن سائب رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت کی:

عربی	اردو ترجمہ
واللفظ لابن ماجة قال حضرت العيد مع رسول الله صلى الله تعالىٰ عليه وسلم فصلى بنا العيد ثم قال قدقضينا الصلوة فمن احب ان يجلس للخطبة فليجلس ومن احب ان يذهب فليذهب۔[1]	ابن ماجہ کے الفاظ یہ ہیں میں عید میں حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے ساتھ حاضر ہوا حضور نے نماز عید پڑھائی پھر فرمایا ہم نماز پڑھ چکے اب جو سننے کے لئے بیٹھنا چاہے بیٹھے اور جو جانا چاہے چلا جائے۔

اگر تم کا خیال نہ بھی کیجئے تو یہ کلام نماز و خطبہ کے درمیان فاصل تھا تو ہمیشہ اتصال حقیقی ہونا باطل ہوا اور خطبہ ومعاودت میں تو فصل کثیر اسی حدیث نہم سے ثابت جو عنقریب گزری جس کی ایک روایت بخاری و مسلم و ابوداؤد و نسائی کے یہاں یوں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
صلى (يعنى النبى صلى الله تعالى عليه وسلم) ثم خطب ثم أتى النساء ومعه بلال فوعظهن وذكرهن وامرهن بالصدقة فرايتهن يهوين بأيديهن يقذ فنهن فى ثوب بلال ثم انطلق هو وبلال الى بيته۔[2]	یعنی حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے نماز عید پڑھی پھر بعدہ خطبہ فرمایا پھر بعد ازاں صفوف زنان پر تشریف لا کر انہیں وعظ و ارشاد کیا اور صدقہ کا حکم دیا تو میں نے دیکھا کہ بیبیاں اپنے ہاتھوں سے گہنا اتار اتار کر بلال رضی اللہ عنہ کے کپڑے میں ڈالتی تھیں

(بقیہ حاشیہ صفحہ گذشتہ) | عربی متن | اردو متن | | :--- | :--- | | ثقہ ثبت کلھم قالوا ثنا الفضل بن موسی ثقہ ثبت ثنا ابن جریح عن عطاء وہما ما ہما عن عبد اللہ بن السائب رضی اللہ تعالیٰ عنھما لہ ولا بیہ صحبتہ فتصویب دس وابن معین ارسلہ غیر متاثر عندنا بعد ثقہ الرجال فالحدیث صحیح علی اصولنا ۱۲ منہ (م) | کہا کہ ہمیں فضل بن موسیٰ (جو ثقہ اور مضبوط ہیں) انہوں نے کہا ہمیں ابن جریح نے عطاء سے (یہ دونوں مقام میں مسلم ہیں) نے عبداللہ بن السائب رضی اللہ تعالیٰ عنہ (ان کو اور ان کے باپ کو صحبت ہے) پس ابوداؤد اور نسائی کی تصویب ہوئی اور ابن معین کا رجال کے ثقہ ہونے کے بعد اس کو مرسل بنانا متاثر نہیں کرے گا، پس ہمارے ہاں یہ حدیث صحیح ہے ۱۲ منہ (ت) |

1 السنن لابن ماجہ باب في صلوۃ العیدین مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۹۳ 2 صحیح البخاری کتاب العیدین، باب العلم بالمصلی مطبوعہ نور محمد قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۳۳

Volume 8 Fatawa-e-Razvia

Then the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) and Bilal (may Allah be pleased with him) returned to the prophetic chamber. See how long after the sermon the return took place; this preaching and guidance given to the women is not a part of the sermon but separate from it. In the Sahihayn (Bukhari and Muslim), the narration of Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them both) clearly states:

"Then he addressed the people after [the prayer]. When the Prophet of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) finished, he came down and went to the women and admonished them." (1)

Meaning, then after the prayer, the radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) delivered the sermon. When the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) finished the sermon, he descended, went to the women, and gave them a reminder (admonition), until the end of the Hadith.

Allama Zarqani narrates in Sharih al-Mawahib: "This narration clarifies that this happened after the sermon." (2) (T)

Imam Nawawi says in Al-Minhaj: "He went down to the gathering of women only after finishing the Eid sermon." (3) (T)

Thus, by the grace of Allah Almighty, it has become as clear as the full moon and the midday sun that trying to prove the absence of supplication (Du'a) from this discourse is mere baseless desire, and this argument on this premise is itself false and disorganized. And praise be to Allah, the Guardian of Bounties. (T) Now let's move to the second premise, the essence of which is that the Hadiths only mention the prayer and the sermon, and the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) offering supplication after them is not mentioned. I say: This is not even slightly useful for those who prohibit. The questioner had asked about the occurrence of this specific act with its specific characteristic from the Master of the World (peace and blessings of Allah be upon him) as to how it happened. The answer to it was just this, that the Holy Prophet...

Footnotes: 1. Sahih Muslim, Book of the Two Eids, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/289. 2. Sharh al-Zarqani 'ala al-Mawahib al-Ladunniyyah, Sixth Branch, published by Dar al-Fikr, Beirut, 8/29. 3. Minhaj al-Nawawi Sharh Muslim with Muslim, Book of the Prayer of the Two Eids, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 1/289.

जिल्द अष्टम (खंड 8) फ़तावा-ए-रज़विया

फिर हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) नुबुवत के कक्ष की ओर लौटे। देखिए, खुतबे (प्रवचन) के कितनी देर बाद वापसी हुई; महिलाओं को जो यह उपदेश और मार्गदर्शन दिया गया, वह खुतबे का हिस्सा नहीं बल्कि उससे अलग है। सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) में जाबिर बिन अब्दुल्ला (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) का वर्णन स्पष्ट रूप से कहता है कि:

"फिर उन्होंने [नमाज़ के] बाद लोगों को संबोधित किया। जब अल्लाह के नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फारिग हुए (खत्म किया), तो वह नीचे आए और महिलाओं के पास गए और उन्हें याद दिलाया (उपदेश दिया)।" (1)

अर्थात, फिर नमाज़ के बाद हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने खुतबा दिया। जब नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) खुतबे से फारिग हुए, तो नीचे उतरकर महिलाओं के पास आए और उन्हें उपदेश दिया, अल-हदीस।

अल्लामा ज़रकानी शरह मवाहिब में उल्लेख करते हैं: "यह वर्णन स्पष्ट करता है कि यह खुतबे के बाद हुआ था।" (2) (त)

इमाम नववी मिन्हाज में फरमाते हैं: "आप केवल ईद का खुतबा समाप्त करने के बाद ही महिलाओं के सभा में गए थे।" (3) (त)

अतः, अल्लाह तआला की कृपा से, यह पूर्णिमा के चंद्रमा और दोपहर के सूरज की तरह स्पष्ट हो गया है कि इस चर्चा से दुआ की अनुपस्थिति का प्रमाण चाहना मात्र कोरी कल्पना है, और इस आधार पर यह तर्क स्वयं में गलत और अव्यवस्थित है। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो इनामों का मालिक है। (त) अब दूसरे पक्ष की ओर चलें जिसका सार यह है कि हदीसों में केवल नमाज़ और खुतबे का उल्लेख है, उनके बाद नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का दुआ मांगना वर्णित नहीं हुआ। मैं कहता हूँ: यह मना करने वालों के लिए नाम मात्र के लिए भी उपयोगी नहीं है। पूछने वाले ने इस विशिष्ट कार्य के बारे में एक विशिष्ट विशेषता के साथ सैय्यदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इसके होने के बारे में पूछा था कि यह किस प्रकार हुआ, उसका उत्तर यही था कि हुज़ूर अकदस...

पाद-टिप्पणियाँ (फुटनोट्स): 1. सहीह मुस्लिम, किताबुल ईदैन, नुर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची द्वारा प्रकाशित, 1/289। 2. शरह अल-ज़रकानी अलल मवाहिब अल-लदुन्निया, छठा

भाग, दारुल फिक्र, बेरुत द्वारा प्रकाशित, 8/29। 3. मिन्हाज अल-नववी शरह मुस्लिम म'अ मुस्लिम, किताब सलातुल ईदैन, नुर मुहम्मद कारख़ाना तिज़ारत कुतुब, कराची द्वारा प्रकाशित, 1/289।

पृष्ठ 549/673

پھر حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اور بلال رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا شانہ نبوت کو تشریف فرما ہوئے، دیکھو خطبہ کے کتنی دیر بعد معاودت ہوئی یہ وعظ وارشاد کہ بیبیوں کو فرمایا گیا جزء خطبہ نہیں بلکہ اس سے جُدا ہے، صحیحین میں روایت جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالیٰ عنہما صاف فرماتے ہیں کہ:

ثم خطب الناس بعد فلما فرغ نبی اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نزل فأتی النساء فذکرھن الحدیث۔ (1)

یعنی پھر بعد نماز حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے خطبہ فرمایا، جب نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم خطبہ سے فارغ ہوئے اُتر کر بیبیوں کے پاس تشریف لائے اور انہیں تذکیر فرمائی، الحدیث۔

علامہ زرقانی شرح مواہب میں ناقل: ھذہ الروایۃ مصرحۃ بأن ذلک کان بعد الخطبۃ (2)۔ یہ روایت اس پر تصریح ہے یہ عمل خطبہ کے بعد تھا۔ (ت)

امام نووی منہاج میں فرماتے ہیں: انما نزل الیھن بعد فراغ خطبۃ العید (3)۔ آپ خواتین کے اجتماع میں خطبہ عید کے بعد تشریف لے گئے تھے۔ (ت)

پس بحمد اللہ تعالیٰ ماہ نیم ماہ مہر نیم روز کی طرح روشن ہوا کہ اس تقریر سے عدم دعا کا ثبوت چاہنا محض ہوسِ خام اور اس محمل پر یہ کلام خود باطل وبے نظام والحمد للہ ولی الانعام (سب تعریف اللہ کے لئے جو انعام का مالک ہے۔ ت) اب محمل دوم کی طرف چلئے جس کا یہ حاصل کہ حدیثوں میں صرف نماز وخطبہ کا ذکر ہے ان کے بعد نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا دعا مانگنا مذکور نہ ہوا۔ اقول: یہ حضرات مانعین کے لئے نام کو بھی مفید نہیں، سائل نے اس فعل خاص

بخصوصیت خاصہ کا سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے صدور پوچھا تھا کہ کس طور پر ہوا، اس کا جواب یہی تھا کہ حضور اقدس

1 صحیح مسلم کتاب العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲۸۹/۱ 2 شرح الزرقانی علی المواھب اللدنیۃ فرع سادس مطبوعہ دارالفکر بیروت ۲۹/۸ 3 منہاج نووی شرح مسلم مع مسلم کتاب صلوۃ العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۲۸۹/۱

Fatawa Razawiya Volume 8

...from Sallallahu Ta'ala Alayhi Wa Sallam, no specific partial narration of this action has been observed, but to consider this as a fatwa of impermissibility is pure tasteless ignorance. Firstly, it was mentioned in the first Eid section that the Hadith of Umm-ul-Mu'minin Siddiqa Radiyallahu Ta'ala Anha, in its generality, indicates the practical evidence (Thubut-e-Fili) of this supplication from the Holy Prophet Sallallahu Ta'ala Alayhi Wa Sallam. Secondly, even if there were no practical evidence, is verbal evidence (Thubut-e-Qawli) any less? In fact, from one perspective, word is higher and more perfect than action. Now recall the discussions of the first Eid; the Hadith of Ibn Abbas Radiyallahu Ta'ala Anhuma shows the demand for supplication from His servants by the Majestic Lord (Azza wa Jalla) Himself after the Eid prayer. After this, what further proof is needed? If you say that the Hadith is weak (Daeef), I say: A weak Hadith is accepted by consensus (Ijma) in the virtues of actions (Fadhail-e-A'mal) and is sufficient and ample for establishing recommendation (Istihbab), as stated by prominent scholars (as the senior scholars have explicitly mentioned this. - T). In the respondent's own second volume of Fatawa at the end, it states:

[Arabic Box Text]: "A weak Hadith is sufficient for recommendation, as the great Imam writes in Fath al-Qadir in the Book of Funerals: 'Recommendation is established by a weak Hadith that is not fabricated (Mawdu)'. Finished. (1)"

A weak Hadith is sufficient for recommendation, as Ibn al-Humam has written in the chapter of funerals in Fath al-Qadir that being recommended is proven by a weak, non-fabricated Hadith. Finished. (T)

Thirdly, when a general ruling is known from the pure Sharia as being permissible and recommended, there is absolutely no need for separate verbal or practical proof for every individual instance. By the consensus and agreement of reason and tradition, a general ruling is applicable and pervasive in all its specifics. The very meaning of a general ruling is that wherever that universal essence or scattered individual exists, the ruling applies. Individuality without specificity is impossible, and external existence and determination are concurrent. So, whatever rational specificities and determinations exist, they all certainly fall under that same general ruling, unless an exception for a specific case is proven from the pure Sharia. The clear investigation of this noble rule was provided by the seal of investigators, the imam of researchers, the Proof of Allah on Earth, our master and father (Qaddasa Sirruhu al-Majid), in the esteemed book 'Usul al-Rashad li Qam' Mabani al-Fasad'.

Whoever wishes may be honored by studying it. (T). Here it is sufficient that the second leader and first teacher of the Wahhabi sect, Miyan Ismail Dehlvi, writes in his treatise on innovation (Bid'at):

1. Majmu'a Fatawa Muhammad Abdul Hayy, Kitab-us-Salat, published by Matba' Yusufi, Lahore, 1/248. Page 550 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

...सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से इस विशेष कार्य का कोई आंशिक विवरण नहीं मिला है, लेकिन इसे नाजायज़ होने का फतवा मान लेना कोरी अज्ञानता है। प्रथम, पहले ईद के भाग में उल्लेख किया गया था कि उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु तआला अन्हा की हदीस अपनी व्यापकता में हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से इस दुआ का व्यावहारिक प्रमाण (सुबूत-ए-फेअली) बता रही है। द्वितीय, यदि व्यावहारिक प्रमाण न भी हो, तो मौखिक प्रमाण (सुबूत-ए-क़ौली) क्या कम है? बल्कि एक दृष्टिकोण से शब्द, कर्म से श्रेष्ठ और पूर्ण है। अब प्रथम ईद की चर्चाओं को पुनः स्मरण करें; इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु तआला अन्हुमा की हदीस दिखाती है कि ईद की नमाज़ के बाद स्वयं महिमामय रब (अज़्ज़ा व जल्ला) ने अपने बंदों से दुआ की मांग की है। इसके बाद और किसी प्रमाण की क्या आवश्यकता है? यदि आप कहें कि वह हदीस कमज़ोर (ज़ईफ़) है, तो मैं कहता हूँ: 'फ़ज़ाइल-ए-अमाल' (कार्यों के गुणों) में ज़ईफ़ हदीस आम सहमति (इजमा) से स्वीकार्य है और मुस्तहब (पसंदीदा कार्य) साबित करने के लिए पर्याप्त और प्रचुर है, जैसा कि प्रमुख विद्वानों ने स्पष्ट किया है (जैसा कि वरिष्ठ विद्वानों ने इस पर स्पष्टता प्रदान की है। - त)। स्वयं प्रतिवादी के फतवे के दूसरे खंड के अंत में है:

[अरबी बॉक्स पाठ]: "मुस्तहब होने के लिए ज़ईफ़ हदीस पर्याप्त है, जैसा कि महान इमाम फ़तह अल-क़दीर में जनाज़ा की किताब में लिखते हैं: 'मुस्तहब होना ऐसी ज़ईफ़ हदीस से साबित होता है जो मनगढ़ंत (मौज़ू) न हो'। समाप्त। (1)"

ज़ईफ़ हदीस मुस्तहब के लिए पर्याप्त होती है जैसा कि इब्न-ए-हुमाम ने फ़तह अल-क़दीर के जनाज़ा के अध्याय में लिखा है कि ग़ैर-मौज़ू ज़ईफ़ हदीस से मुस्तहब होना साबित हो जाता है। समाप्त। (त)

तृतीय, जब शरीयत-ए-मुतह्हरा से सामान्य आदेश ज्ञात हो गया कि यह जायज़ और मुस्तहब है, तो प्रत्येक व्यक्ति या उदाहरण के लिए अलग से मौखिक या व्यावहारिक प्रमाण की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। बुद्धि और परंपरा की सहमति और एकरूपता से, सामान्य नियम अपनी सभी विशिष्टताओं में लागू और व्याप्त रहता है। सामान्य नियम का अर्थ ही यह है कि जहाँ कहीं भी वह सार्वभौमिक तत्व या बिखरा हुआ व्यक्ति मौजूद हो, नियम लागू होगा। विशिष्टता के बिना व्यक्तिगतता असंभव है, और बाह्य अस्तित्व और निर्धारण समवर्ती हैं। अत; जितनी भी तर्कसंगत विशिष्टताएँ और निर्धारण हैं, वे सभी निश्चित रूप से उसी सामान्य नियम के अंतर्गत आते हैं, जब तक कि शरीयत-ए-

मुतह्हरा से किसी विशेष स्थिति के लिए अपवाद सिद्ध न हो। इस महान नियम की स्पष्ट जांच अन्वेषकों की मुहर, शोधकर्ताओं के इमाम, पृथ्वी पर अल्लाह के प्रमाण, हमारे स्वामी और पिता (कुद्दिसा सिर्रुहुल माजिद) ने सम्मानित पुस्तक 'उसूल अल-रशाद ली क़म' मबानी अल-फ़साद' में प्रदान की है। जो चाहे इसके अध्ययन से सम्मानित हो सकता है। (त)। यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि वहाबी संप्रदाय के दूसरे नेता और पहले शिक्षक मियां इस्माइल देहलवी बिदअत (नवाचार) पर अपने ग्रंथ में लिखते हैं:

1. मजमुआ फ़तावा मुहम्मद अब्दुल हई, किताबुस-सलात, मतबा यूसुफी लाहौर द्वारा प्रकाशित, 1/248 पृष्ठ 550 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے اس فعلِ خاص کی نقل جزئی نظر سے نہ گزری مگر اسے عدم جواز کا فتوٰی جان لینا محض جہالت بے مزہ۔ اولاً عید اول میں گزرا کہ حدیث ام المؤمنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا اپنے عموم میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے اس دعا کا ثبوت فعلی بتا رہی ہے۔ ثانیاً ثبوت فعلی نہ ہو تو قولی کیا کم ہے بلکہ من وجہ قول فعل سے اعلٰی و اتم ہے۔ اب عید اول کی تقریریں پھر یاد کیجئے اور حدیث ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما تو بعد نماز عید خود رب مجید جل و علا کا اپنے بندوں سے تقاضائے دعا فرمانا بتا رہی ہے، اس کے بعد اور کسی ثبوت کی حاجت کیا ہے، اگر کہئے وہ حدیث ضعیف ہے اقول: فضائل اعمال میں حدیث ضعیف بالاجماع مقبول اور اثباتِ استحباب میں کافی و وافی ہے کما نص علیہ العلماء الفحول (جیسا کہ اکابر علماء نے اس پر تصریح فرمائی ہے۔ ت) خود مجیب کے آخر جلد دوم کے فتاوٰی میں ہے:

حدیث ضعیف برائے استحباب کافی ست چنانچہ امام ہمام در فتح القدیر در کتاب الجنائز می نویسند والاستحباب یثبت بالضعیف غیر الموضوع انتہی ۱۔ حدیث ضعیف استحباب کے لئے کافی ہوتی ہے جیسا کہ ابنِ ہمام نے فتح القدیر کے باب الجنائز میں لکھا ہے کہ حدیث ضعیف غیر موضوع سے مستحب ہونا ثابت ہو جاتا ہے انتہی (ت)

ثالثاً جب شرعِ مطہر سے حکمِ مطلق معلوم کہ جواز و استحباب ہے تو ہر فرد کے لئے جدا گانہ ثبوتِ قولی یا فعلی کی اصلاً حاجت نہیں کہ باجماع و اطباقِ عقل و نقل حکمِ مطلق اپنی تمام خصوصیات میں جاری و ساری اطلاقِ حکم کے معنٰی ہی یہ ہیں کہ اس ماہیتِ کلیہ یا فردِ منتشر کا جہاں وجود ہو حکم کا ورود ہو اور فردیت بے خصوصیت محال اور وجودِ عینی و تعینِ متساوق تو جس قدر خصوصیات و تعیناتِ معقول ہوں سب بالیقین اسی حکمِ مطلق میں داخل، جب تک کسی

خاص کا استثناء شرعِ مطہر سے ثابت نہ ہو، اس قاعدہ جلیلہ کی تحقیق مبین حضرت ختام المحققین امام المدققین حجتہ اللہ فی الارضین سیدنا الوالد قدس سرہ الماجد نے کتاب مستطاب اصول الرشاد لقمع مبانی الفساد میں افادہ فرمائی من شاء فلیتشرف بمطالعتہ (جو چاہے اس کے مطالعہ کا شرف حاصل کرے۔ ت) یہاں اسی قدر کافی کہ خود حضراتِ وہابیہ کے امامِ ثانی و معلمِ اول میاں اسمعیل دہلوی رسالہ بدعت میں لکھتے ہیں:

1 مجموعہ فتاویٰ محمد عبدالحئی کتاب الصلوۃ مطبوعہ مطبع یوسفی لاہور ۱/۲۴۸ Page 550 of 673

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Boxed Text] (Right - Persian): Regarding a debate on the verification of a specific ruling: if someone claims that a general ruling applies to a specific case under discussion, it is an argument based on the origin (asl). This is because arguing based on the origin does not require additional proof; the general ruling itself is sufficient proof. (Left - Urdu): Regarding a debate on the verification of a specific ruling: the claim that a ruling is general and its application also extends to the specific case under discussion is an argument based on the origin, because in arguing with the origin, there is no need for proof; this very reason is sufficient that the ruling is general. (T)

Fourthly: We have already narrated the proof of this supplication from the leading Tabi'un (successors of the companions) in the primary response. Then, with what face can the deniers use the lack of proof from the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) as a prohibition? Especially since, according to them, the legislation of rulings continued until the Tabi'un and ceased thereafter. So, how is the lack of proof from the first generation harmful or contradictory?

Fifthly: Every rational person knows that in the claim of proof, only the lack of personal discovery (adam-e-wajdan) by the speaker is subject to conviction and verification. Lack of discovery does not imply lack of existence (adam-e-wujood), especially among the people of this age. This matter is clear and evident. This was hinted at before and will be mentioned again. We have explained some of it in our treatise 'Safa'ih al-Lujjayn' etc. Here, it is enough that the respondent himself writes in his book 'Al-Sa'y al-Mashkur fi Radd al-Madhhab al-Mathur': "Absence of observation does not necessitate absence of existence; there are numerous parallels of this. Among them is the Hadith of Aisha (may Allah be pleased with her) recorded in Sahih Bukhari and others:

[Arabic/Urdu Box] (Left - Arabic): I never saw the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) praying the Duha (Chasht) prayer, yet I pray it. End. (Right - Urdu): I did not see the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) performing the Chasht prayer, and I do perform it. End. (T)

When, according to Mother of the Believers Siddiqa (may Allah be pleased with her), the lack of her witnessing it did not necessitate the actual non-existence of the act, then where do Zaid and Amr, or you and I stand in comparison?

Sixthly: Even if we accept the lack of proof, its only result is that it was not narrated. To the wise, 'absence of narration' is not 'narration of absence'. That is, if a specific action is not narrated from the Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), it does not necessarily mean that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) did not perform it. The absolute investigative Imam says in 'Fath al-Qadir':

---

1 Treatise on Innovation by Miyan Ismail Dehlvi. 2 The book 'Al-Sa'y al-Mashkur' by Abdullah, discussing that lack of observation does not necessitate non-existence, Chashma-e-Faiz Press, Lucknow, p. 113.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[बॉक्स टेक्स्ट] (दायां - फारसी): मुनाज़रा के दौरान किसी विशेष स्थिति के हुक्म की जांच के बारे में: यदि कोई दावा करता है कि एक सामान्य हुक्म विचाराधीन विशेष स्थिति पर भी लागू होता है, तो यह मूल (अस्ल) के साथ दलील देना है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल के साथ दलील देने में किसी अतिरिक्त प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती; सामान्य हुक्म ही पर्याप्त प्रमाण है। (बायां - उर्दू): मुनाज़रा में किसी सूरत-ए-ख़ास के सबूत के लिए यह दावा कि हुक्म मुतलक (सामान्य) है और उसका इतलाक (लागू होना) सूरत-ए-ख़ास पर भी होता है, अस्ल (मूल) के साथ इस्तदलाल (तर्क) है क्योंकि अस्ल के साथ इस्तदलाल में दलील की हाजत नहीं होती, यही दलील काफ़ी है कि हुक्म मुतलक है। (त)

चौथा: हमने मुख्य उत्तर में आइम्मा ताबिईन से इस दुआ का प्रमाण रिवायत किया है। फिर रोकने वाले किस मुंह से हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से प्रमाण न होने को मना करने का आधार बना सकते हैं, जबकि उनके नज़दीक अहकाम की व्याख्या ताबिईन तक बाकी रहती थी और उनके बाद समाप्त हुई। फिर पहली पीढ़ी से प्रमाण का न होना कैसे हानिकारक या विरोधी है?

पांचवां: हर बुद्धिमान व्यक्ति जानता है कि प्रमाण के दावे में केवल वक्ता द्वारा न पाया जाना (अदम-ए-वजदान) ही दृढ़ विश्वास और पुष्टि के योग्य है। न पाया जाना, अस्तित्व न होने (अदम-ए-वजूद) को अनिवार्य नहीं बनाता, विशेषकर इस युग के लोगों में। यह बात स्पष्ट और साफ़ है। इसका संकेत पहले दिया जा चुका है और दोबारा आएगा। हमने इसका कुछ वर्णन अपने रिसाले 'सफ़ाएह अल-लुजैन' आदि में लिखा है। यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि स्वयं उत्तरदाता अपनी पुस्तक 'अस-सई अल-मश्कूर फी रद अल-मज़हब अल-मातूर' में लिखते हैं: "देखने की कमी (नफी-ए-रूयत) से अस्तित्व की कमी (नफी-ए-वजूद) लाज़िम नहीं आती, इसके उदाहरण बहुत अधिक हैं। उनमें से एक हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस है जो सहीह बुखारी आदि में वर्णित है:

[अरबी/उर्दू बॉक्स] (बायां - अरबी): मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को चाश्त की नमाज़ पढ़ते नहीं देखा, जबकि मैं इसे पढ़ती हूँ। इति। (दायां - उर्दू): मैंने रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को नमाज़-ए-चाश्त अदा करते नहीं देखा और मैं अदा करती हूँ। इति (त)

जब उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) के नज़दीक सबूत न होना, वास्तविक वजूद न होने को अनिवार्य नहीं करता, तो ज़ैद और अम्र या मैं और तुम किस गिनती में हैं?

छठा: यदि सबूत की कमी को मान भी लिया जाए, तो इसका परिणाम केवल इतना है कि यह मंकूल (वर्णित) नहीं हुआ। फिर बुद्धिजीवियों के नज़दीक 'अदम-ए-नक़्ल' (वर्णन न होना), 'नक़्ल-ए-अदम' (न होने का वर्णन) नहीं है। यानी, यदि कोई विशिष्ट कार्य हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से मंकूल नहीं है, तो इससे यह लाज़िम नहीं आता कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उसे किया ही न हो। इमाम मुहक्क़िक़ 'फ़तह अल-क़दीर' में फ़रमाते हैं:

---

1 रिसाला बिदअत मियां इस्माइल देहलवी 2 किताब 'अस-सई अल-मश्कूर' लेखक अब्दुल्ला, इस बहस पर कि देखने की कमी से अस्तित्व की कमी लाज़िम नहीं आती, मतबा चश्मा-ए-फ़ैज़ लखनऊ पृ. 113

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

[خانہ] (دایاں - فارسی): در باب مناظرہ در تحقیق حکم صورت خاصہ کسے کہ دعوے جریان حکم مطلق در صورت خاصہ مبحوث عنہا می نماید ہمانست متمسک باصل کہ در اثبات دعوے خود حاجت بدلیلے ندارد و دلیل او ہماں حکم مطلق است و بس۔ (بایاں - اردو): مناظرہ میں کسی صورتِ خاصہ کے ثبوت کے لئے یہ دعوٰی کہ حکم مطلق ہے اور اس کا اطلاق صورتِ خاصہ پر بھی ہوتا ہے اصل کے ساتھ استدلال ہے کیونکہ اصل کے ساتھ استدلال میں دلیل کی حاجت نہیں ہوتی یہی دلیل کافی ہے کہ حکم مطلق ہے۔ (ت)

رابعاً: ہم صدر جواب میں حضرت ائمہ تابعین سے اس دعا کا ثبوت روایت کر آئے پھر حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ثبوت نہ ہونے کو مانعین کس منہ سے منع ٹھہرا سکتے ہیں کہ ان کے نزدیک تشریح احکام تابعین تک باقی رہتی اور ان کے بعد منقطع ہوتی ہے پھر قرن اول سے عدم ثبوت کیا مضر و منافی ہے۔

خامساً: ہر عاقل جانتا ہے کہ ادعائے ثبوت میں قابل جزم و تصدیق صرف عدم وجدان قائل ہے اور عدم وجدان، عدم وجود کو مستلزم نہیں خصوصاً ابنائے زماں میں۔ اور امر واضح ہے اور سہرِ فاصح۔ اور گزرا اشارہ اور آئے گا دوبارہ۔ ہم نے اس کا کچھ بیان اپنے رسالہ صفائح اللجین وغیرہ میں لکھا یہاں اتنا ہی بس ہے کہ خود مجیب اپنی کتاب السعی المشکور فی ردالمذہب الماثور میں لکھتے ہیں: "نفی رؤیت سے نفی وجود لازم نہیں، نظائر اس کے بکثرت ہیں کم نہیں منجملہ ان کے حدیث عائشہ ہے جو صحیح بخاری وغیرہ میں مروی ہے:

[عربی/اردو خانہ] (بایاں - عربی): ما رأیت رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم یسبح سبحۃ الضحی وانی لاسبحھا انتھی۔ (دایاں - اردو): میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو نمازِ چاشت ادا کرتے نہیں دیکھا اور میں ادا کرتی ہوں انتہی (ت)

جب ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا کے نزدیک عدم ثبوت عدمِ ثبوتِ واقعی کو مستلزم نہ ہوا تو زید و عمرو من و تو کس شمار و قطار میں ہیں۔

سادساً: عدم ثبوت مان بھی لیں تو اس کا صرف یہ حاصل کہ منقول نہ ہوا پھر عقلاء کے نزدیک عدم نقل نقلِ عدم نہیں یعنی اگر کوئی فعل بخصوصہ حضورِ پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے منقول نہ ہو تو اس سے یہ لازم نہیں آتا کہ حضورِ اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے کیا بھی نہ ہو، امام محقق علی الاطلاق فتح القدیر میں فرماتے ہیں:

---

1 رسالہ بدعت میاں اسمعیل دہلوی 2 کتاب السعی المشکور لعبد اللہ بحث اسکی کہ نفی رویت سے نفی وجود لازم نہیں مطبع چشمہ فیض لکھنو ص ۱۱۳

Non-reporting does not negate existence.[1] (T) The respondent himself, in his commendable effort, quotes from "Tanzeeh-ush-Shariah" of Imam Ibn Iraq: *Absence of proof does not necessitate the proof of non-existence.*[2] (T) Seventhly, a servant of Hadith knows that many times the narrators of Hadith omit well-known and famous matters, and their omission is not evidence of non-existence. It is possible that here too, due to its fame, they did not find it necessary to mention it. Evidence of this fame will be found in the authentic Hadith we narrated at the beginning of the discourse: when the practice of supplication after the Eid prayers was prevalent among the great Tabi'in (successors), they apparently adopted this elegant method from the companions, and the companions from the Master of Mankind, peace and blessings be upon him. If those who prohibit this were to be honest, they would tell the truth: do they themselves not recite supplications and salutations in the final sitting of the Eid prayer and consider it permissible and recommended? Let them show a specific report of this from the Radiant Prophet, Master of the World, peace and blessings of Allah be upon him, or admit to being innovators. If they rely on analogies with obligatory prayers or general principles, then why are these rejected methods here? And Allah is the Giver of Success. Eighthly, even if there is a report of non-occurrence, it is not a report of prohibition. Allah Almighty has said: "And whatever the Messenger gives you, take it; and whatever he forbids you from, abstain."[3] He did not say: "Whatever the Messenger did, take it; and whatever he did not do, abstain from it." This is because both these rules are flawed in Shariah. The paternal uncle and intellectual forefather of the Wahhabis, Shah Abdul Aziz Dehlvi, states in "Tuhfa-e-Isna Ashariya": *Not doing something is one thing, and prohibiting something is another.*[4] (T) Ninthly, if the mere absence of a report or absence of an action necessitated prohibition, then what would be the answer for Shah Waliullah, his father Shah Abdul Rahim, his son Shah Abdul Aziz, and the leader of the group, Mian Ismail, and their...

---

1. Fath al-Qadir, Book of Purification, printed by Maktaba Nooria Razawiya, Sukkur, 1/20.
2. Kitab al-Sa'y al-Mashkur fi Radd al-Madhhab al-Mashhur by Abdullah, Da'if Ruwat wa Jahalat etc., Matba' Chashma-e-Faiz, Lucknow, p. 179.
3. Al-Qur'an 59/7, 23.
4. Tuhfa Isna Ashariya, Chapter 10, Objections against Abu Bakr (may Allah be pleased with him), Suhail Academy Lahore, p. 269.

रिपोर्ट न होना अस्तित्व को नकारता नहीं है।[1] (त) उत्तरदाता स्वयं अपने सराहनीय प्रयास में "तन्ज़ीह-उश-शरिया" में इमाम इब्न इराक से उद्धृत करते हैं: प्रमाण की अनुपस्थिति से अभाव का प्रमाण आवश्यक नहीं होता।[2] (त) सातवां, हदीस का एक सेवक जानता है कि कई बार हदीस के रावी (वर्णनकर्ता) प्रसिद्ध और ज्ञात मामलों को छोड़ देते हैं, और उनका वह त्याग, अस्तित्वहीनता का प्रमाण नहीं होता। संभव है कि यहाँ भी इसकी प्रसिद्धि के कारण उन्होंने इसका उल्लेख करना आवश्यक न समझा हो। इस प्रसिद्धि का पता उस सही हदीस से चलेगा जिसका उल्लेख हमने चर्चा की शुरुआत में किया है कि जब महान ताबिईन में ईदैन की नमाज़ के बाद दुआ का प्रचलन था, तो स्पष्ट रूप से उन्होंने यह सुंदर तरीका सहाबा किराम से और सहाबा किराम ने सैय्यद-उल-अनाम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से प्राप्त किया था। यदि रोकने वाले हज़रात ईमानदारी पर आएं तो वे सच-सच बताएंगे: क्या वे स्वयं भी ईदैन के अंतिम क़ादे (बैठक) में दुआ और दरूद नहीं पढ़ते और इसे जायज़ और मुस्तहब (पसंदीदा) नहीं मानते? वे विशेष रूप से हुज़ूर पुर नूर सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इसका वर्णन दिखा दें या अपने बिदअती होने को स्वीकार करें। और यदि वे फ़राइज़ पर क़यास (तुलना) या सामान्य नियमों का सहारा लेते हैं, तो यहाँ ये तरीके अस्वीकार्य क्यों माने जाते हैं? अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है। आठवां, भले ही न होने की रिपोर्ट हो, पर वह मना करने की रिपोर्ट नहीं है। अल्लाह अज़्ज़वजल ने फ़रमाया है: "और रसूल तुम्हें जो कुछ दें उसे ले लो, और जिस चीज़ से तुम्हें रोकें उससे रुक जाओ।"[3] यह नहीं फ़रमाया कि रसूल ने जो किया वह करो और जो नहीं किया उससे बचो, क्योंकि शरीयत के अनुसार ये दोनों नियम दोषपूर्ण हैं। वहाबियों के पूर्वज और गुरु शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी साहब "तुहफ़ा-ए-इसना अफ़रिया" में फ़रमाते हैं: किसी चीज़ को न करना एक बात है और किसी चीज़ से मना करना दूसरी बात है।[4] (त) नवां, यदि केवल रिपोर्ट न होने या कर्म न होने से मनाही आवश्यक हो जाए, तो शाह वलीउल्लाह, उनके पिता शाह अब्दुल रहीम साहब, उनके साहबज़ादे शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब और इमाम-उत-ताइफ़ा मियां इस्माइल और उनके..

---

1. फ़तह अल-क़दीर, किताब अल-तहारत, मुद्रित मकतबा नूरया रज़विया, सुक्कुर, 1/20।
2. किताब अल-सई अल-मश्कूर फ़ी रद्द अल-मज़हब अल-मशहूर, लेखक अब्दुल्लाह, ज़ईफ़ रुवात व जहालत इत्यादि, मतबा चश्मा-ए-फ़ैज़, लखनऊ, पृ. 179।

3. अल-क़ुरआन 59/7, 23।
4. तुहफ़ा इसना अफ़रिया, अध्याय दस, अबू बक्र (रज़ि.) पर आक्षेप, सुहैल अकादमी लाहौर, पृ. 269।

पृष्ठ 552/673

عدم النقل لاینفی الوجود۱۸ (عدم نقل نفی وجود کو مستلزم نہیں۔ت) خود مجیب اپنی سعی مشکور میں تنزیہہ الشریعہ امام ابن عراق سے نقل کرتے ہیں: عدم الثبوت لایلزم منہ اثبات العدم۲۸ (عدم ثبوت سے اثبات عدم لازم نہیں آتا۔ت) سابعاً خادم حدیث جانتا ہے کہ بارہا رواۃ حدیث امور مشہورہ معروفہ کو چھوڑ جاتے ہیں اور ان کا وہ ترک، دلیل عدم نہیں ہوتا، ممکن کہ یہاں بھی بربنائے اشتہار حاجت ذکر نہ جانی ہو، اس اشتہار کا پتا اس حدیث صحیح سے چلے گا جو ہم نے صدر کلام میں روایت کی کہ جب تابعین عظام میں بعد نماز عیدین دعا کا رواج تھا تو ظاہراً انہوں نے یہ طریقہ انیقہ صحابہ کرام اور صحابہ کرام نے حضور سید الانام علیہ الصلاۃ والسلام سے اخذ کیا، حضرات مانعین اگر دیانت پر آئیں تو سچ سچ بتادیں گے کہ عیدین کے قعدہ اخیرہ میں خود بھی دعا و درود پڑھتے اور اسے جائز و مستحب جانتے ہیں، اس کی خاص نقل حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے دکھا دیں یا اپنے بدعتی ہونے کا اقرار کریں، اور اگر فرائض پر قیاس یا اطلاقات سے تمسک کرتے ہیں تو یہاں کیوں یہ طرق نامقبول ٹھہرتے ہیں واللہ الموفق۔ ثامناً نقل عدم بھی سہی پر وہ نقل منع نہیں۔ اللہ عزوجل نے فرمایا ہے کہ وَمَا اٰتٰىكُمُ الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ وَمَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ فَانْتَهُوْا۱۸۳ جو رسول دے وہ لو اور جس سے منع فرمائے باز رہو۔ یہ نہیں فرمایا کہ ما فعل الرسول فخذوہ ومالم یفعل فانتھوا رسول جو کرے کرو اور جو نہ کرے اس سے بچو، کہ شرعاً یہ دونوں قاعدے منقوص ہیں۔ امام الوہابیہ کے عم نسب و پدر علم وجد طریقت شاہ عبدالعزیز صاحب دہلوی تحفہ اثنا عشریہ میں فرماتے ہیں: نکردن چیزی دیگرست و منع فرمودن چیزی دیگر۴۸۔ کسی چیز کا نہ کرنا اور شئی ہے اور منع کرنا اور شئی ہے۔ (ت) تاسعاً اگر مجرد عدم

نقل یا عدم فعل مستلزم ممانعت ہو تو کیا جواب ہوگا، شاہ ولی اللہ اور ان کے والد شاہ عبدالرحیم صاحب اور صاحب زادے شاہ عبدالعزیز صاحب اور امام الطائفہ میاں اسمعیل اور ان کے

---

1 فتح القدیر کتاب الطہارۃ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/ ۲۰ 2 کتاب السعی المشکور فی رد المذھب المشہور لعبداللہ ضعیف روات و جہالت الخ مطبع چشمہ فیض لکھنؤ ص ۱۷۹ 3 القرآن ۷ / ۵۹، ۲۳ 4 تحفہ اثنا عشریہ باب دہم مطاعن ابوبکر رضی اللہ عنہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۲۶۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

Peer Syed Ahmad and the Master of the Order, Honorable Sheikh Mujaddid, and the elders of the order like Mirza Mazhar Sahib and Qazi Sanaullah Sahib, etc., who initiated and invented hundreds of methods for remembrances (adhkar), spiritual exercises (ashghal), and litanies (aurad), etc., and themselves wrote admissions of being their originators and innovators. Then they continued to consider them causes of proximity to Allah and divine pleasure, practiced them themselves, and guided and instructed others in them. Shah Waliullah writes in 'Al-Qawl al-Jamil':

Neither is this specific set of etiquettes established, nor these occupations.[1]	Neither is the specification of these etiquettes established, nor these spiritual exercises. (T)

Mirza Jan-e-Janan Sahib states in Letter 11:

Audible dhikr or specific states and also meditations (muraqabat), not the customary practices that became prevalent in later centuries, are not derived from the Book and Sunnah. Rather, the honorable masters have acquired them through inspiration (ilham) and notification from the Abundant Source (Mabda'-e-Fayyad). Shari'ah is silent about them, and they fall within the circle of permissibility (ibahat). Their benefits are certain and there is no necessity for their denial.[2]	Audible dhikr with specific states and meditations with customary practices as they became prevalent in the era of later scholars are not derived from the Book and Sunnah. Rather, the honorable masters have acquired them through inspiration and notification from the Abundant Source. Shari'ah is silent about them, and they fall within the circle of permissibility, and there is no harm in their benefits. (T)

The humble one (may Allah Almighty forgive him) has detailed this somewhat in his treatise 'Anhar al-Anwar min Yamm Salawat al-Asrar' (1305 AH). And with Allah lies the success.

Tenthly, disregard all these gentlemen; look at the very scholar whose fatwa is the extent of your reliance and the limit of your seeking aid in this matter, namely the late Maulvi Lakhnawi. Look at the clear clarifications and strong textual evidence in his fatwas. See to what extent his principles and branches are the refuters and suppressors of your branches and principles. Then, clinging to him in these matters is like facing the lamp of intellect with the storm of ignorance, waging war against

reason and sense, and not knowing the difference between beneficial and harmful. I will quote only two passages of his here, which are the refuters and exposers of this common fallacy of the Wahhabis, who consider specific innovation and lack of mention in the first three centuries as a proof for prohibition. And these will be only from this collection of fatwas, not from his other treatises, so that it becomes clear to everyone.

---

[1] Al-Qawl al-Jamil with Shifa' al-Alil, Chapter 11, published by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 731 [2] Maktubat Mirza Mazhar Jan-e-Janan from Kalimat-e-Tayyibat, Letter 11, published by Mujtabai Press, Delhi, p. 23

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

पीर सैयद अहमद और सिलसिले के सरदार जनाब शैख़ मुजद्दिद साहब और सिलसिले के अन्य बुज़ुर्ग जैसे मिर्ज़ा मज़हर साहब और क़ाज़ी सनाउल्लाह साहब वगैरह जिनसे अज़कार व अशग़ाल और औराद आदि के सैकड़ों तरीक़े ईजाद हुए और उन्होंने ख़ुद इनके मुअद्दिस (नया बनाने वाला) और मुख़्तरिअ (आविष्कारक) होने का इक़रार लिखा, फिर उन्हें अल्लाह की नज़दीकी और रज़ा का सबब माना, ख़ुद उन पर अमल किया और दूसरों को भी उनकी हिदायत और तालीम देते रहे। शाह वलीउल्लाह 'अल-क़ौल अल-जमील' में लिखते हैं:

न ये आदाब का तअय्युन (निर्धारण) साबित है और न ये अशग़ाल।[1]	न ये आदाब का निर्धारण साबित है और न ये अशग़ाल (अभ्यास)। (त)

मिर्ज़ा जान-ए-जानां साहब मकतूब 11 में फ़रमाते हैं:

ज़िक्र-ए-जह्र (ऊँची आवाज़ में ज़िक्र) या विशेष कैफ़ियात और मुरक़बात (ध्यान), जो पिछले दौर में प्रचलित हुए, वे किताब और सुन्नत से नहीं लिए गए हैं, बल्कि बुज़ुर्गों ने उन्हें इल्हाम और इल्लाम के ज़रिये अल्लाह की अता से हासिल किया है। शरीयत उनके बारे में खामोश है और ये मुबाह (जायज़) कामों के दायरे में आते हैं, और इनके फ़ायदे निश्चित हैं और इनका इनकार ज़रूरी नहीं है।[2]	ज़िक्र-ए-जह्र (ऊँची आवाज़ में ज़िक्र) विशेष कैफ़ियात के साथ और मुरक़बात (ध्यान) सामान्य तरीक़ों के साथ, जो बाद के समय में प्रचलित हुए, किताब और सुन्नत से नहीं लिए गए हैं, बल्कि बुज़ुर्गों ने उन्हें इल्हाम और इल्लाम के ज़रिये रूहानी स्रोत से हासिल किया है। शरीयत उनके बारे में खामोश है और ये जायज़ दायरे में आते हैं, और इनके लाभों में कोई हानि नहीं है। (त)

फ़क़ीर (अल्लाह तआला उसे माफ़ करे) ने इसकी कुछ तफ़सील अपने रिसाले 'अनहारुल अनवार मिन यम्म सलातुल असरार' (1305 हिजरी) में ज़िक्र की है। और कामयाबी अल्लाह की तरफ़ से है।

दसवीं बात, इन सब साहबों को छोड़िए, ख़ुद उस आलिम को देखिए जिनका फ़तवा इस मसले में आपकी दलील का मरकज़ और मदद का आख़िरी सहारा है, यानी मरहूम मौलवी लखनवी। उनके फ़तवों की साफ़ तफ़सीलात और मज़बूत दलीलें देखिए कि उनके उसूल और फ़ुरूअ (शाखाएँ) किस हद तक आपके उसूलों और फ़ुरूअ को ख़त्म करने वाले हैं। फिर इन मसलों में उनका दामन

थामना, अक़्ल के चिराग़ के सामने जहालत की आँधी लाने, अक़्ल और होश से लड़ाई छेड़ने और फ़ायदेमंद और नुकसानदेह में फ़र्क न जानने जैसा है। मैं यहाँ उनकी सिर्फ़ दो इबारतें (उद्धरण) नक़ल करूँगा जो वहाबी हज़रात के उसी आम धोखे यानी किसी ख़ास चीज़ का बाद में शुरू होना और पहले तीन ज़मानों में न होने को मना करने की दलील मानने का पूरी तरह खंडन करती हैं, और वो भी सिर्फ़ इसी फ़तावा के मजमुए से, उनके दूसरे रिसालों से नहीं, ताकि सब पर ज़ाहिर हो जाए।

---

[1] अल-क़ौल अल-जमील मअ शिफ़ाउल अलील, फ़स्ल 11, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. 731 [2] मक्तूबात मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां, कलिमात-ए-तय्यिबात से, मक्तूब 11, मतबअ मुज्तबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पृ. 23

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

پیر سید احمد اور شیخ السلسلہ جناب شیخ مجدّد صاحب اور عمائد سلسلہ مرزا مظہر صاحب و قاضی ثناء اللہ صاحب وغیرہ ہم سے جنھوں نے اذکار و اشغال و اوراد و غیر ہا کے صدہا طریقے احداث و ایجاد کئے اور ان کے محدث و مخترع ہونے کے خود اقرار لکھے پھر انھیں سببِ قرب الٰہی و رضائے ربانی جانا کئے اور خود عمل میں لاتے اوروں کو اُن کی ہدایت و تلقین کرتے رہے۔ شاہ ولی اللہ قول الجمیل میں لکھتے ہیں:

لم یثبت تعین الاداب ولا تلك الاشغال -1 نہ یہ تعینِ آداب ثابت ہے اور نہ یہ اشغال۔ (ت)

مرزا جان جاناں صاحب مکتوب ۱۱ میں فرماتے ہیں:

ذکر جہر یا کیفیات مخصوصہ و نیز مراقبات نہ اطوارِ معمولہ کہ در قرون متاخرہ رواج یافتہ از کتاب و سنّن ماخوذ نیست بلکہ حضرات مشائخ بطریق الہام و اعلام از مبدءِ فیاض اخذ نمودہ اند و شرع ازاں ساکت است و داخل دائرہ اباحت و فائدہ دراں متحقّق و انکار آں ضرورتے-2

ذکر بالجہر مخصوص کیفیات کے ساتھ اس طرح اطوارِ معمول کے ساتھ مراقبات جو متاخرین کے دور میں رواج پاچکے ہیں یہ کتاب و سنت سے ماخوذ نہیں بلکہ حضرات مشائخ نے بطریق الہام و اعلام مبدءِ فیاض سے حاصل کئے ہیں، اور شریعت ان کے بارے میں خاموش ہے اور یہ دائرہ اباحت میں داخل، اور ان کے فوائد میں نقصان کوئی نہیں۔ (ت)

فقیر غفر اللہ تعالٰی لہ نے اس کی قدرے تفصیل اپنے رسالہ انہار الانوار من یم صلوۃ الاسرار (۱۳۰۵ھ) ذکر کی وباللہ التوفیق۔

عاشراً ان سب صاحبوں سے درگزرئیے، خود وہ عالم جن کا فتویٰ اس مسئلہ میں تمہارا مبلغِ استناد و منتہائے استمداد ہے یعنی مولوی لکھنوی مرحوم انھیں کے فتاویٰ کی تصریحات جلیہ تنصیصاتِ قویہ دیکھئے کہ ان کے اصول، فروع کس درجہ تمہارے فروع و اصول کے قاطع و قامع ہیں، پھر ان مسائل میں اُن کا دامن تھامنا، چراغِ خرد کا، صر صر جہل سے سامنا، عقل و ہوش سے لڑائی ٹھاننا، نافع و مضر میں فرق نہ جاننا، نہیں تو کیا ہے۔ میں یہاں ان کی صرف دو عبارتیں نقل کروں گا جو حضرات وہابیہ کے اسی مغالطہ عامتہ الورود یعنی حدوثِ مخصوص اور قرونِ ثلاثہ سے عدمِ ورود کو دلیلِ منع جاننے کی قاطع و فاضح ہیں اور وہ بھی صرف اسی مجموعہ فتاویٰ، نہ ان کے دیگر رسائل سے، تاکہ سب پر ظاہر ہو۔ ع

---

1 القول الجمیل مع شفاء العلیل فصل ۱۱ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۷۳۱ 2 مکتوبات مرزا مظہر جانجاناں از کلمات طیبات مکتوب ۱۱ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ص ۲۳

Volume Eight Fatawa Razawiyya

With whom have you gambled in love during the dark night? (With whom did you play the game of love in the pitch-black night?)

Furthermore, even in these, it is not my intention to be exhaustive, but I will present only a few passages; some contain useful rules and principles, and others contain definitive sub-rules for frivolous principles. And Allah is the Helper against every ignoramus. **The Principles — Passage 1:** In the collection of Fatawa (*Majmu'ah al-Fatawa*), Volume 1, page 56, it is quoted on the authority of Allamah Sayyid Sharif's marginalia on *Mishkat* that he said regarding the Hadith:

He who innovates something in this matter of ours which is not from it, it will be rejected.	**Whoever creates a new invention in our matter which was not of it, it will be rejected. (T)**

In its commentary, he stated:

| The meaning is that whoever introduces an opinion into Islam for which there is no evidence, either manifest or hidden, literal or inferred, in the Quran and Sunnah, then it is rejected and returned to him. Finis. 1. | That is, the meaning of the Hadith is that the person who creates such an opinion in religion for which there is no basis of any kind in the Quran and Sunnah, whether apparent or hidden, explicit or through inference, he is rejected. Finis. |

So it is clearly proven that a specific occurrence from the first three generations is by no means necessary; rather, inclusion within the general scope and broad permission is sufficient as evidence, as is the position of the people of truth (as is the school of the people of truth. T). **Passage 2:** On page 57 of the same, quoting from Imam Ibn Hajar al-Makki's *Fath al-Mubin Sharh al-Arba'in*:

| What is intended by the saying of the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him and his family, "He who innovates something in this matter of ours which is not from it," is that which contradicts it, or for which the principles of Sharia and general evidences do not bear witness. Finis. 2. | That is, the meaning of the Hadith is that only that newly invented thing is an evil innovation (*bid'ah sayyi'ah*) which rejects religion and Sunnah, or for which the general rules and evidences of Sharia do not provide testimony. Finis. |

Passage 3: On the same page, he writes himself:

| Do not think that legal commendation (*Istihsan Shar'i*) is a quality of that which is commanded. | Let it not be thought that Sharia commendation is of such a commanded thing... |

1 Majmu'ah al-Fatawa, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, published by Yusufi Farangi Mahalli, Lucknow, 8/2 2 Majmu'ah al-Fatawa, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, published by Yusufi Farangi Mahalli, Lucknow, 9/2 Page 554 of 673

कि बा-के बाख़्ता इश्क़ दर शब-ए-दैजूर *(तूने अंधेरी रात में किसके साथ इश्क़बाज़ी की?)*

फिर इनमें भी मेरा उद्देश्य विस्तृत होना नहीं है बल्कि केवल कुछ इबारतें (उद्धरण) पेश करूँगा, कुछ उपयोगी नियमों और सिद्धांतों के बारे में और कुछ निरर्थक सिद्धांतों के निर्णायक उप-नियमों के बारे में। और हर जाहिल के खिलाफ़ अल्लाह ही मददगार है। **सिद्धांत — इबारत १:** मजमुआ फ़तावा, जिल्द १, सफ़ा ५६ पर अल्लामा सैय्यद शरीफ़ के हाशिय-ए-मिश्कात के हवाले से नक़ल करते हैं कि उन्होंने हदीस:

जिसने हमारे इस दीन में कोई नई चीज़ ईजाद की जो इसमें से नहीं है, तो वह रद्द है।	**जिसने हमारे मामले में नई ईजाद की जो उसमें से नहीं थी, वह रद्द होगी। (त)**

की व्याख्या में फ़रमाया:

| इसका अर्थ यह है कि जिसने इस्लाम में ऐसी राय ईजाद की जिसके लिए क़ुरान और सुन्नत में कोई ज़ाहिर या छुपा हुआ, शाब्दिक या अनुमानित प्रमाण न हो, तो वह उस पर लौटा दी जाएगी (अस्वीकार्य है)। इति १। | यानी हदीस का यह अर्थ है कि जो व्यक्ति दीन में ऐसी राय पैदा करे जिसके लिए क़ुरान व सुन्नत में ज़ाहिर या पोशीदा, साफ़ तौर पर या इस्तंबात (निष्कर्ष) से किसी तरह की सनद (प्रमाण) न हो, वह मरदूद (अस्वीकार्य) है। इति। |

तो साफ़ साबित हुआ कि शुरुआती तीन पीढ़ियों (क़ुरून-ए-सलासा) से विशिष्टता का होना कतई ज़रूरी नहीं है, बल्कि आम इजाज़त और व्यापकता में शामिल होना ही सनद के लिए काफ़ी है जैसा कि हक़ वालों का मज़हब है (जैसा कि अहल-ए-हक़ का मज़हब है। त) **इबारत २:** उसी के सफ़ा ५७ पर इमाम इब्न हजर मक्की की 'फ़तह-उल-मुबीन शरह-ए-अरबईन' से नक़ल करते हुए:

| नबी करीम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के फ़रमान "जिसने हमारे इस मामले में वह ईजाद किया जो उसमें से नहीं है" से मुराद वह चीज़ है जो दीन के विपरीत हो या जिसके लिए शरीअत के नियम और सामान्य दलीलें गवाही न दें। इति २। | यानी हदीस की मुराद यह है कि वही नई चीज़ बिदअत-ए-सय्यिया (बुरी नवीनता) है जो दीन व सुन्नत को रद्द करे या शरीअत के क़ायदों और सामान्य दलीलों तक उसकी गवाही न दें। इति। |

इबारत ३: उसी सफ़ा पर खुद लिखते हैं:

| यह गुमान न करो कि इस्तेहसान-ए-शरई (शरई तौर पर अच्छा समझना) उस मामूर-बिही (आदेशित चीज़) का गुण है। | यह गुमान न हो कि इस्तेहसान-ए-शरई ऐसे मामूर-बिही की... |

१ मजमुआ फ़तावा, किताब-उल-हज़र वल-इबाहत, यूसुफ़ी फ़िरंगी महली, लखनऊ, ८/२ २ मजमुआ फ़तावा, किताब-उल-हज़र वल-इबाहत, यूसुफ़ी फ़िरंगी महली, लखनऊ, ९/२ पेज ५५४ ऑफ़ ६७३

کہ باکہ باختہ عشق در شب دیجور (تو نے اندھیری رات میں کس سے عشق بازی کی)

پھر ان میں بھی قصد استیعاب نہیں بلکہ صرف چند عبارتیں پیش کروں گا، بعض مفید ضوابط واصول اور بعض میں فروع قاطعہ اصول فضول واللہ المستعان علی کل جھول۔ **الاصول_ عبارت ۱:** مجموعہ فتاوی جلد اول کے صفحہ ۵۶ پر علامہ سید شریف کے حواشی مشکوۃ سے استناداً نقل کرتے ہیں کہ انھوں نے حدیث:

من احدث فی امرنا ھذا ما لیس منہ فھو ردّ۔ **جس نے ہمارے امر میں نئی ایجاد کی وہ اس میں سے نہ تھی وہ مردود ہو گی۔ (ت)**

کی شرح میں فرمایا:

| المعنی ان من احدث فی الاسلام رأیاً لم یکن لہ من الکتاب والسنۃ سند ظاھر اوخفی ملفوظ او مستنبط فھو مردود علیہ انتھی ۱۔ | یعنی حدیث کے یہ معنی ہیں کہ جو شخص دین میں ایسی رائے پیدا کرے جس کے لئے قرآن وسنت میں ظاہر یا پوشیدہ، صراحۃً یا استنباطاً کسی طرح کی سند نہ ہو وہ مردود ہے انتہی۔ |

تو صاف ثابت ہوا کہ قرون ثلاثہ سے ورود خصوصیت، زنہار ضرور نہیں بلکہ عوام واطلاق اباحت میں دخول بسند کافی ہے کما ھو مذھب اھل الحق (جیسا کہ اہل حق کا مذہب ہے۔ ت) **عبارت ۲:** اسی کے صفحہ ۵۷ پر امام ابن حجر مکی کی فتح مبین شرح اربعین سے ناقل :

| المراد من قولہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلی آلہ وسلم من احدث فی امرنا ھذا ما لیس منہ ماینا فیہ اولا یشھد لہ قواعد الشرع والادلۃ العامۃ انتھی ۲۔ | یعنی حدیث کی مراد یہ ہے کہ وہی نو پیدا چیز بدعتِ

سیئہ ہے جو دین وسنت کا رد کرے یا شریعت کے قواعد اطلاق و دلائلِ عموم تک اس کی گواہی نہ دیں۔ |

عبارت ۳: اسی صفحہ میں خود لکھتے ہیں :

| گمان نبری کہ استحسان شرعی صفت آن مامور بہ | یہ گمان نہ ہو کہ استحسان شرعی ایسے مامور بہ کی |

۱ مجموعہ فتاوی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۸/۲ ۲ مجموعہ فتاوی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۹/۲ Page 554 of 673

Fatawa Rizvia Volume 8

[Table 1] Left Column (Persian): It is that an explicit command for it should have come in any of the four proofs, but rather 'Istihsan' (preferential reasoning) is an attribute of every commanded action, whether an explicit command for it has arrived or its basis is found from universal Sharia principles. Right Column (Urdu): It will be a characteristic on which an explicit proof from the four proofs exists, but rather Istihsan can be a characteristic of every such commanded action, whether an explicit command is issued for it or there is a basis for it from universal Sharia principles. (T)

Passage 4: Written on page 58: [Table 2] Left Column (Persian): Every new thing whose specific existence was not in any of the three [early] eras, but its basis is found in any of the four proofs, will also become 'Mustahsan' (approved). Do you not see the establishment of Madrassas (schools) etc. Right Column (Urdu): Every new thing which did not exist in any of the three eras, but a basis for it exists from the four proofs, then it too will be Mustahsan. You do not see the invention of Madrassas etc. (T)

Passage 5: Page 531: There are many precedents in books of Fiqh (jurisprudence) that they did not exist in previous times, but due to righteous purposes, the ruling for their permissibility was given.

Al-Furu' (The Branches) — Passage 6: Page 62: [Table 3] Left Column (Persian): Even if I concede that the 'Zikr-e-Maulid' (commemoration of the Prophet's birth) was not in the three eras, nor was its ruling narrated from the Mujtahideen (jurists), but since this rule is established in Sharia that every individual act through which knowledge is spread is 'Mandub' (recommended), and Zikr-e-Maulid also falls under that, then inevitably the ruling of its being recommended will be given. Right Column (Urdu): If I concede that Zikr-e-Maulid is not from any of the three eras and no ruling for it is narrated from the Mujtahideen, yet when this is a fundamental principle in Sharia that every act from which the propagation of knowledge occurs is Mandub, then Zikr-e-Maulid is also included in it, so it is necessary to call it Mandub as well. (T)

Passage 7: Page 298: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) performing two Rak'ats of Nafl after the two Rak'ats of Sunnah for Zuhr, Maghrib, and Isha.

---

1 Collection of Fatawa, Book of Prohibition and Permission, published by Matba Yusufi, Farangi Mahal, Lucknow, 2/9. 2 Collection of Fatawa, Book of Prohibition and

Permission, published by Matba Yusufi, Farangi Mahal, Lucknow, 2/9. 3 Collection of Fatawa, Book of Masajid (Mosques), published by Matba Yusufi, Farangi Mahal, Lucknow, 1/913. 4 Collection of Fatawa, Book of Masajid (Mosques), published by Matba Yusufi, Farangi Mahal, Lucknow, 2/913.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

[तालिका 1] बायां कॉलम (फारसी): वह यह है कि चारों प्रमाणों में से किसी एक प्रमाण में इसका स्पष्ट आदेश आया हो, बल्कि 'इस्तेहसान' (वरीयता देना) हर उस कार्य की विशेषता है जिसका आदेश दिया गया है, चाहे उसका स्पष्ट आदेश आया हो या शरीयत के सार्वभौमिक नियमों में उसका आधार पाया गया हो। दायां कॉलम (उर्दू): यह एक विशेषता होगी जिस पर चारों प्रमाणों में से स्पष्ट प्रमाण मौजूद होगा, बल्कि इस्तेहसान हर उस आदेशित कार्य की विशेषता बन सकता है चाहे उस पर स्पष्ट आदेश आया हो या शरीयत के सार्वभौमिक नियमों से उस पर आधार हो। (त)

इबारत 4: पृष्ठ 58 पर लिखा है: [तालिका 2] बायां कॉलम (फारसी): हर वह नई चीज़ जिसका विशिष्ट अस्तित्व तीन कालों (प्रारंभिक युगों) में से किसी में न हो, लेकिन उसका आधार चारों प्रमाणों में से किसी में पाया जाए, तो वह भी 'मुस्तहसन' (पसंदीदा) कहलाएगी। क्या आप मदरसों आदि की स्थापना नहीं देखते। दायां कॉलम (उर्दू): हर वह नई चीज़ जिसका अस्तित्व तीनों ज़मानों में से किसी ज़माने में न हो, लेकिन उस पर चारों प्रमाणों से प्रमाण मौजूद हो, तो वह भी मुस्तहसन होगी। आप मदरसों आदि के आविष्कार को नहीं देखते आदि। (त)

इबारत 5: पृष्ठ 531: फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र) की किताबों में इसके कई उदाहरण मौजूद हैं कि पिछले समय में उनका अस्तित्व नहीं था, लेकिन नेक उद्देश्यों के कारण उनके जायज़ होने का आदेश दिया गया।

अल-फ़ुरु' — इबारत 6: पृष्ठ 62: [तालिका 3] बायां कॉलम (फारसी): यदि मैं यह स्वीकार कर लूँ कि ज़िक्र-ए-मौलिद (मिलाद का ज़िक्र) तीनों कालों में नहीं था और न ही मुजतहिदीन (धर्मशास्त्रियों) से इसका कोई आदेश वर्णित है, लेकिन चूँकि शरीयत में यह नियम स्थापित है कि हर वह कार्य जिससे ज्ञान का प्रसार हो, वह 'मन्दूब' (अनुशंसित) है, और ज़िक्र-ए-मौलिद भी उसी के अंतर्गत आता है, तो अनिवार्य रूप से इसके मन्दूब होने का आदेश दिया जाएगा। दायां कॉलम (उर्दू): अगर मैं स्वीकार कर लूँ कि ज़िक्र-ए-मौलिद तीनों ज़मानों में से किसी में नहीं है और मुजतहिदीन से इसका हुक्म नक़ल नहीं है, फिर भी जब शरीयत में यह बुनियादी नियम है कि हर वह व्यक्ति जिससे इल्म की इशाअत (प्रसार) हो वह मन्दूब होता है, तो ज़िक्र-ए-मौलिद भी उसी में शामिल है, तो ज़रूरी है कि इसे भी मन्दूब कहा जाए। (त)

इबारत 7: पृष्ठ 298: ज़ुहर, मग़रिब और ईशा की दो रकअत सुन्नत के बाद नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का दो रकअत नफ़्ल पढ़ना।

---

1 मजमुआ फ़तावा, किताब अल-हज़र वल-इबाह, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ, 2/9। 2 मजमुआ फ़तावा, किताब अल-हज़र वल-इबाह, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ, 2/9। 3 मजमुआ फ़तावा, किताबुल मसाजिद, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ, 1/913। 4 मजमुआ फ़तावा, किताबुल मसाजिद, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ, 2/913।

पृष्ठ 555/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

است کہ صراحۃً در دلیلے از دلائل اربعہ امر باو وارد شدہ باشد بلکہ استحسان صفت ہر مامور بہ است خواہ صراحۃً امر باو وارد شدہ باشد یا از قواعد کلیہ شرعیہ سندش یافتہ شدہ باشد ۱۔ | صفت ہوگا جس پر دلائل اربعہ میں سے صراحۃً کوئی دلیل وارد ہوگی بلکہ استحسان ہر اس مامور بہ کی صفت بن سکتا ہے خواہ صراحۃً اس پر امر وارد ہو یا قواعد کلیہ شرعیہ سے اس پر سند ہے ۔(ت)

عبارت ۴: صفحہ ۵۸ پر لکھا: ہر محدثیکہ وجودش بخصوصہ در زمانے از ازمنہ ثلثہ نباشد لیکن سندش در دلیلے از ادلہ اربعہ یافتہ شود ہم مستحسن خواہد شد نمی بینی کہ بنائے مدارس ۲ الخ۔ | ہر وہ نئی شئی جس کا وجود تین زمانوں میں سے کسی زمانہ میں نہ ہو لیکن اس پر ادلہ اربعہ سے سند موجود ہو تو وہ بھی مستحسن ہوگی آپ مدارس وغیرہ کی ایجاد نہیں دیکھتے الخ(ت)

عبارت ۵: صفحہ ۵۳۱: کتب فقہ میں نظائر اس کے بہت موجود ہیں کہ ازمنہ سابقہ میں ان کا وجود نہ تھا مگر بہ سبب اغراض صالحہ کے حکم اس کے جواز کا دیا گیا ۳۔

الفروع — عبارت ۶: صفحہ ۶۲: اگر تسلیم کنم کہ ذکر مولد در ازمنہ ثلثہ نبودہ و نہ از مجتہدین حکم او منقول شد لیکن چون در شرع ایں قاعدہ ممہد شدہ است کل فرد من افراد نشر العلم فہو مندوب و ذکر مولد نیز زیر آنست لابد حکم مندوبیت او دادہ خواہد شد ۴۔ | اگر میں تسلیم کرلوں کہ ذکر مولد تین زمانوں میں سے کسی میں نہیں اور مجتہدین سے اس کا حکم منقول نہیں ہے لیکن شرع میں جب یہ بنیادی قاعدہ ہے کہ ہر وہ فرد جس سے علم کی اشاعت ہو وہ مندوب ہوتا ہے تو ذکر مولد بھی اسی میں شامل ہے تو ضروری ہے اسے بھی مندوب کہا جائے۔(ت)

عبارت ۷: صفحہ ۲۹۸: بعد دورکعت سنتِ ظہر و مغرب و عشاء کے دورکعت نفل پڑھنا آنحضرت صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا۔

---

1 مجموعہ فتاوی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۲ / ۹ 2 مجموعہ فتاوی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۲/ ۹ 3 مجموعہ فتاوی کتاب المساجد مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۱ / ۹۱۳ 4 مجموعہ فتاوی کتاب المساجد مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۲ / ۹۱۳

Fatawa Razawiyya Volume 8

It has not come under observation till now, but a person who recites it with the intention of gaining reward without considering it an established Sunnah will receive the reward because it is mentioned in the Hadith: Prayer is the best of actions; whoever wishes may do little and whoever wishes may do much. (1) Prayer is the best action; whoever wants can do less and whoever wants can do more. (T)

I say: It was asked of the questioner whether its origin is established by Sunnah, consensus, and analogy or not? In the humble view of this faqir, proof for some of them is present in specific Hadiths, but the discourse is in refuting Wahhabi ideas, and that is the gist (and this is the essence. T).

Passage 8: Page 294: Reciting the sermon of 'Al-Wada' or 'Al-Firaq' at the end of Ramadan and expressing words of sorrow and departure is an inherently permissible (mubah) act. In fact, if these words cause regret and repentance in the listeners, there is hope for reward. However, the proof of this specific method is not found in the three blessed generations (Qurun-e-Thalatha) (2) etc.

Passage 9: Majmu'a Fatawa, Volume 2, Page 170: One who says that the followers of Wujudiyyah and Shuhudiyyah are from the people of innovation (Ahl-e-Bid'at), his statement is not worthy of consideration. The source of his statement is ignorance and lack of awareness regarding the states of the Saints (Awliya) and the meaning of Tawhid-e-Wujudi and Shuhudi. The one who has vilified both groups is deserving of blame. And Allah knows best. (3) Whoever says that those who believe in Wahdat-al-Wujud and Wahdat-al-Shuhud are people of innovation, his word has no weight. The reason for this is his ignorance and lack of awareness of the states of the saints and the meaning of Tawhid Wujudi and Shuhudi. And that poet who criticizes both these classes is deserving of condemnation. And Allah knows best. (T)

Just remember the overstatements of 'Taqwiyat-ul-Iman'.

Passage 10: Page 421: In reality, the practice of 'Shughl-e-Barzakh' in the manner described by the pure Sufis is neither polytheism (shirk) nor misguidance (dalalat),

1 Majmu'a Fatawa, Kitab al-Salat, published by Matba' Yusufi Farangi Mahali, Lucknow 1/153. 2 Majmu'a Fatawa, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, published by Matba' Yusufi Farangi Mahali, Lucknow 2/24, 25. 3 Majmu'a Fatawa, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, published by Matba' Yusufi Farangi Mahali, Lucknow 2/58.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

अब तक नज़र से नहीं गुज़रा, लेकिन जो व्यक्ति सुन्नत होने के विश्वास के बिना पुण्य (सवाब) की नियत से इसे पढ़ेगा, उसे पुण्य मिलेगा क्योंकि हदीस में वर्णित है: नमाज़ सबसे अच्छा कार्य है; जो चाहे कम करे और जो चाहे ज़्यादा करे। (1) नमाज़ सबसे बेहतर अमल है; जो चाहता है कम करे और जो चाहता है ज़्यादा करे। (त)

अकूल (कथन): मैंने पूछने वाले से पूछा था कि इसका मूल सुन्नत, इज्मा और क़यास से साबित है या नहीं? और इस फ़क़ीर की नज़र में उनमें से कुछ के लिए विशेष हदीसों से प्रमाण मौजूद है, लेकिन यह चर्चा वहाबी विचारों के खंडन में है और यही सार है (और यही हासिल है। त)।

इबारत 8: पृष्ठ 294: रमज़ान के अंत में 'अल-विदा' या 'अल-फ़िराक़' का खुत्बा पढ़ना और दुख व विदाई के शब्दों को व्यक्त करना अपने आप में एक जायज़ (मुबाह) कार्य है। बल्कि अगर ये शब्द सुनने वालों में पछतावे और तौबा का कारण बनें तो सवाब की उम्मीद है, लेकिन इस विशेष तरीके का प्रमाण शुरुआती तीन उत्तम युगों (क़ुरून-ए-सलासा) में नहीं मिलता। (2) इत्यादि।

इबारत 9: मजमुआ फ़तावा, जिल्द 2, पृष्ठ 170: जो व्यक्ति यह कहता है कि वजूदिया और शुहूदिया वाले बिदअती हैं, उसकी बात विचारणीय नहीं है। उसकी बात का आधार संतों (औलिया) की स्थितियों और तौहीद-ए-वजूदी व शुहूदी के अर्थ से अज्ञानता और अनभिज्ञता है। जिसने दोनों समूहों की निंदा की है वह तिरस्कार के योग्य है। और अल्लाह बेहतर जानता है। (3) जो व्यक्ति यह कहता है कि वहदतुल वजूद और वहदतुल शुहूद वाले बिदअती हैं, उसकी बात का कोई एतबार नहीं और इसकी वजह औलिया के अहवाल और तौहीद वजूदी और शुहूदी के अर्थ से उसकी जहालत और नावाक़िफ़ियत है, और वह शायर जो इन दोनों वर्गों पर टिप्पणी करता है वह निंदा के योग्य है। वल्लाहु आलम। (त)

ज़रा 'तक़वियतुल ईमान' की बढ़ा-चढ़ा कर की गई बातों को याद करें।

इबारत 10: पृष्ठ 421: वास्तव में 'शुग्ल-ए-बरज़ख' उस तरह से जैसा कि पाक सोफ़िया ने लिखा है, न शिर्क है और न ही गुमराही।

1 मजमुआ फ़तावा, किताबुस सलात, मतबा यूसुफ़ी फरंगी महली, लखनऊ 1/153 2 मजमुआ फ़तावा, किताबुल हज़्र वल इबाहह, मतबा यूसुफ़ी फरंगी महली, लखनऊ 2/24, 25 3 मजमुआ फ़तावा, किताबुल हज़्र वल इबाहह, मतबा यूसुफ़ी फरंगी महली, लखनऊ 2/58

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اب تک نظر سے نہیں گزرا لیکن جو شخص بقصدِ ثواب بدونِ اعتقادِ سنّیت پڑھے گا ثواب پائے گا کیونکہ حدیث میں وارد ہے: الصلوۃ خیر موضوع فمن شاء فلیقلل ومن شاء فلیکثر 1 ۔ نماز سب سے بہتر عمل ہے جو چاہتا ہے کم کرے اور جو چاہتا ہے زیادہ کرے ۔(ت)

اقول: سائل سے پوچھا تھا اصل اس کی سنت و اجماع و قیاس سے ثابت ہے یا نہیں اور ان میں بعض کے لئے ثبوت خاص احادیث سے نظرِ فقیر میں حاضر مگر کلام ردِ خیالات و ہلیت میں ہے و ھو حاصل (اور یہی حاصل ہے۔ت)

عبارت ۸: صفحہ ۲۹۴: الوداع یا الفراق کا خطبہ آخر رمضان میں پڑھنا اور کلماتِ حسرت و رخصت کے ادا کرنا فی نفسہ امرِ مباح ہے بلکہ اگر یہ کلمات باعثِ ندامت و توبہ سامعان ہوئے تو امیدِ ثواب ہے مگر اس طریقہ کا ثبوت قرونِ ثلثہ میں نہیں 2الخ

عبارت ۹: مجموعہ فتاوی جلد دوم صفحہ ۱۷۰: کسیکہ می گوید وجودیہ و شہودیہ از اہل بدعت اند قولش قابل اعتبار نیست و منشاء قولش جہل و ناواقفیت است از احوالِ اولیاء از معنی توحید وجودی و شہودی کہ ذمِ ہر دو فرقہ ساختہ قابل ملامت است واللہ اعلم 3۔ جو شخص یہ کہتا ہے کہ وحدت الوجود اور وحدت الشہود والے اہل بدعت ہیں اس کے قول کا کوئی اعتبار نہیں اور اس کی وجہ اس کا احوال اولیاء اور معنی توحید وجودی اور شہودی سے جہالت و ناواقفیت ہے اور وہ شاعر جو ان دونوں طبقات پر طعن کرتا ہے وہ قابل مذمت ہے واللہ اعلم ۔(ت)

ذرا تقویتہ الایمان کی بالاخوانیاں یاد کیجئے ۔

عبارت ۱۰: صفحہ ۴۲۱: فی الواقع شغل برزخ اُس طور پر کہ حضرات صوفیہ صافیہ نے لکھا ہے نہ شرک ہے نہ ضلالت،

1 مجموعہ فتاوی کتاب الصلوۃ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو 1/ 153 2 مجموعہ فتاوی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو 2/ 25، 24 3 مجموعہ فتاوی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو 2/ 58

Fatawa Razawiyya Volume 8

Yes, excess and negligence in this lead towards misguidance; its clarification is present in various places in the letters of Mujaddid Alf Thani, and Allah knows best. [1] Subhan Allah! That scholar who, according to your unrefined sect—refuge is with Allah—has clearly become a polytheist and a permitter of polytheism, in what religion and honesty is reliance on him and citation of his fatwas permissible? Statement 11: In the same [book's] third volume, page 58:

[Table] Question: At the time of completing the Quran in Tarawih, they recite Surah Al-Ikhlas three times. Is it commendable or not? Answer: It is commendable. [2] | Question: Is it commendable to recite Surah Al-Ikhlas three times at the completion of the Quran in Tarawih or not? Answer: It is commendable.

Statement 12: Page 125:

[Table] As for combining the verbal greeting of peace with raising the hand and placing it on the head or chest, it appears there is no harm in it. [3] | There is apparently no harm in placing the hand on the head or chest while saying the word of Salaam. (T)

Statement 13: Page 172:

[Table] Question: Is writing 'Bismillah' on the forehead of the deceased with a finger correct or not? Answer: It is correct. [4] | Question: Is it correct to write 'Bismillah' on the forehead of the deceased with a finger or not? Answer: It is correct. (T)

Statement 14: Page 133: Question: In response to the standing during the mention of the blessed birth, they write after narrating that intentional standing is not reported from the three [best] generations, and that in some circumstances the Sahaba (Companions) did not stand for the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him):

[Table] But the scholars of the Two Holy Harams (may Allah increase them in honor) do stand; Imam Barzanji (may Allah's mercy be upon him) in the treatise on Mawlid | But the scholars of the Two Holy Harams (may Allah grant them more honor) do stand; Imam Barzanji (may Allah's mercy...)

Footnotes: 1. Majmu'a Fatawa 2. Majmu'a Fatawa, Chapter of Tarawih, printed at Matba' Yusufi Farangi Mahalli, Lucknow, 3/75 3. Majmu'a Fatawa, Chapter of Handshaking and Embracing, printed at Matba' Yusufi Farangi Mahalli, Lucknow,

3/121 4. Majmu'a Fatawa, Chapter of what pertains to death, printed at Matba' Yusufi Farangi Mahalli, Lucknow, 3/123

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

हाँ, इसमें अतिशयोक्ति और लापरवाही गुमराह की ओर ले जाती है; इसका स्पष्टीकरण मुजद्दिद अल्फ़ थानी के पत्रों में विभिन्न स्थानों पर मौजूद है, और अल्लाह बेहतर जानता है। [1] सुब्हान अल्लाह! वह विद्वान जो आपके अशिक्षित पंथ के अनुसार—अल्लाह की पनाह—स्पष्ट रूप से मुशरिक (बहुदेववादी) और शिर्क को अनुमति देने वाला हो गया है, उस पर भरोसा करना और उसके फतवों को प्रमाण मानना किस धर्म और ईमानदारी में जायज़ है? कथन 11: उसी [पुस्तक] की तीसरी जिल्द, पृष्ठ 58 में है:

[तालिका] प्रश्न: तरावीह में कुरान पूरा करते समय तीन बार सूरह इखलास पढ़ते हैं। क्या यह मुस्तहसन (सराहनीय) है या नहीं? उत्तर: मुस्तहसन है। [2] | प्रश्न: तरावीह में कुरान पूरा करते समय तीन बार सूरह इखलास पढ़ना मुस्तहसन है या नहीं? उत्तर: मुस्तहसन है।

कथन 12: पृष्ठ 125:

[तालिका] जहाँ तक सलाम के शब्दों को कहने और हाथ उठाने और उसे सिर या छाती पर रखने के संयोजन का सवाल है, तो ज़ाहिर है कि इसमें कोई हर्ज नहीं है। [3] | सलाम कहते समय सिर या छाती पर हाथ रखने में ज़ाहिर तौर पर कोई हर्ज नहीं है। (त)

कथन 13: पृष्ठ 172:

[तालिका] प्रश्न: क्या मृतक के माथे पर उंगली से 'बिस्मिल्लाह' लिखना सही है या नहीं? उत्तर: सही है। [4] | प्रश्न: मृतक के माथे पर उंगली से 'बिस्मिल्लाह' लिखना सही है या नहीं? उत्तर: सही है। (त)

कथन 14: पृष्ठ 133: प्रश्न: मुबारक विलादत के ज़िक्र के समय खड़े होने (क़ियाम) के उत्तर में, यह लिखकर कि तीन पीढ़ियों (क़ुरून-ए-सलासा) से जानबूझकर खड़े होने का कोई प्रमाण नहीं है और कुछ परिस्थितियों में सहाबा किराम का हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के लिए खड़ा न होना उद्धृत है, वे लिखते हैं:

[तालिका] लेकिन हरमैन शरीफैन (अल्लाह उनकी इज़्ज़त बढ़ाए) के विद्वान खड़े होते हैं; इमाम बरज़ंजी (रहमतुल्लाह अलैहि) मौलिद के रिसाले में | लेकिन हरमैन शरीफैन (अल्लाह तआला उन्हें और अधिक सम्मान प्रदान करे) के विद्वान क़ियाम (खड़े होना) करते हैं, इमाम बरज़ंजी रहमतुल्लाह...

पादलेख (Footnotes): 1. मजमुआ फतावा 2. मजमुआ फतावा, बाब-अत-तरावीह, मताबे यूसुफी फरंगी महली, लखनऊ, 3/75 3. मजमुआ फतावा, बाब-अल-मुसाफहा वल-मुआनका, मताबे यूसुफी फरंगी महली, लखनऊ, 3/121 4. मजमुआ फतावा, बाब मा यतालुक्क बिल-मौत, मताबे यूसुफी फरंगी महली, लखनऊ, 3/123

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ہاں افراط و تفریط اس میں منجر ضلالت کی طرف ہے، تصریح اس کی مکتوب مجدد الف ثانی میں جابجا موجود ہے واللہ اعلم۔ ۱ سبحن اللہ وہ عالم کہ تمہارے مذہب نامہذب پر معاذ اللہ صراحۃً مشرک و مجوز شرک ہو چکا اُس پر اعتماد اور اس کے فتوے سے استناد کس دین و دیانت میں روا۔ عبارت ۱۱: اُسی کی جلد سوم صفحہ ۵۸ میں ہے:

[ٹیبل] سوال: وقت ختمِ قرآن در تراویح سہ بار سورہ اخلاص می خوانند مستحسن است یا نہ۔ جواب: مستحسن است۔ ۲ | سوال: تراویح میں ختمِ قرآن کے وقت تین بار سورہ اخلاص پڑھنا مستحسن ہے یا نہیں؟ جواب: مستحسن ہے۔

عبارت ۱۲: صفحہ ۱۲۵:

[ٹیبل] اما جمع میان تکلم بالفاظِ سلام و دست بر داشتن و بر سر یا سینہ نہادن پس ظاہر الا باس بہ است۔ ۳ | لفظ سلام کہتے ہوئے سر یا سینہ پر ہاتھ رکھنے میں ظاہراً کوئی حرج نہیں۔ (ت)

عبارت ۱۳: صفحہ ۱۷۲:

[ٹیبل] سوال: بسم اللہ نوشتن بر پیشانی میت از انگشت درست یا نہ؟ جواب: درست است۔ ۴ | سوال: میت کی پیشانی پر انگلی سے بسم اللہ لکھنا درست ہے یا نہیں؟ جواب: درست ہے۔ (ت)

عبارت ۱۴: صفحہ ۱۳۳: سوال: قیام وقتِ ذکر ولادت با سعادت کے جواب میں قیام بالقصد کا قرونِ ثلاثہ سے منقول نہ ہونا اور بعض احوال میں صحابہ کرام کا حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کے لئے قیام نہ کرنا نقل و تحریر کر کے لکھتے ہیں:

[ٹیبل] لیکن علمائے حرمین شریفین زادہا اللہ شرفا قیام می فرمایند امام برزنجی رحمۃ اللہ تعالیٰ در رسالہ مولد | لیکن حرمین شریفین (اللہ تعالیٰ ان کو اور شرف عطا فرمائے) کے علماء قیام کرتے ہیں، امام برزنجی رحمۃ اللہ

١ مجموعہ فتاوی ٢ مجموعہ فتاوی باب التراویح مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنؤ ٣/ ٧٥ ٣ مجموعہ فتاوی باب المصافحہ والمعانقہ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنؤ ٣/ ١٢١ ٤ مجموعہ فتاوی باب ما یتعلق بالموت مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنؤ ٣/ ١٢٣

Fatawa Razawiyya Volume 8

[Left box]: They write: "The imams of narration and insight have commended standing up during the mention of the noble birth. So glad tidings to him whose ultimate aim and goal was the glorification of him, may Allah's peace and blessings be upon him." End 1. [Right box]: They write in the treatise on Mawlid: The imams of narration and insight consider standing up at the time of the mention of the noble Mawlid (birth) to be commendable. Blessed are those scholars whose ultimate goal and objective is the glorification of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). End (T).

This means that standing up at the time of the mention of the noble birth has been termed commendable by those imams who were masters of narration and insight. So, let there be happiness and joy for the one whose ultimate desire and purpose is the glorification of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). The respondent from Lucknow himself describes his presence and participation in the blessed gatherings of the Two Holy Harams and calls them blessed gatherings, even though, according to the respondent's own testimony and the observation of successive accounts, it is certain that these gatherings include the standing of angels and men. The aforementioned respondent writes on page 52 of this same volume of Fatawa:

[Left box]: In the gatherings of Mawlid Sharif where they recite from Surah Ad-Duha to the end, they certainly say Takbir after finishing each Surah. The writer, having been a participant in these blessed gatherings, has observed this matter both in Makkah al-Mukarramah, Madinah al-Munawwarah, and Jeddah. 2 [Right box]: In the gatherings of Mawlid Sharif, they recite from Surah Ad-Duha until the end. At the conclusion of each Surah, they say 'Takbir'. The writer has participated in these blessed gatherings in Makkah al-Mukarramah, Madinah al-Munawwarah, and Jeddah. (T)

Passage 15: Oddly enough, he writes on page 120: [Left box] Question: Can the cloth of the flag of Salar Masood Ghazi be brought into one's own use or should one give it in charity? [Right box] Question: Can the cloth from Salar Masood Ghazi's flag be used for one's own purposes or should it be given in charity? [Left box] Answer: Apparently, there is no reason for the use of the mentioned cloth for oneself to be considered a cause of mockery/sin, but it is better to give it to the poor and needy. 3

[Right box] Answer: Apparently, there is no sin in using it for oneself; however, it is better to spend it on the needy and the poor. (T)

Let the opposing gentlemen explain the reason for "it is better" (awla anast) and apply it to their own principles.

1. Majmu'a-e-Fatawa, chapter on Qiyam during Milad Sharif, printed at Yusufi Press, Farangi Mahal, Lucknow, 1/130.
2. Majmu'a-e-Fatawa, chapter on Recitation in Prayer, Reciting Surah Fatiha behind the Imam, printed at Yusufi Press, Farangi Mahal, Lucknow, 3/52.
3. Majmu'a-e-Fatawa, chapter on What is permissible to use and what is not, printed at Yusufi Press, Farangi Mahal, Lucknow, 3/116.

फ़तावा रज़विया खंड 8

[बायां बॉक्स]: वे लिखते हैं: "रिवायत और दरायत के धनी इमामों ने पाक पैदाइश के ज़िक्र के वक़्त खड़े होने को बेहतर समझा है। सो ख़ुशख़बरी है उसके लिए जिसकी आख़िरी मुराद और मक़सद हुज़ूर की ताज़ीम था, अल्लाह उन पर दरूद और सलाम भेजे।" समाप्त 1। [दायां बॉक्स]: रिसाला-ए-मौलिद में लिखते हैं: रिवायत और दरायत (समझ) के धनी इमामों ने मौलिद शरीफ़ के ज़िक्र के समय खड़े होने (क़ियाम) को मुस्तहसन (सराहनीय) माना है। उन उलेमा के लिए मुबारकबाद है जिनका मक़सद और मंज़िल नबी अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की ताज़ीम (सम्मान) है। इति (त)

यानी पाक विलादत के ज़िक्र के समय खड़े होने को उन इमामों ने मुस्तहसन (उत्तम) कहा है जो रिवायत और दरायत के विशेषज्ञ थे। तो उसे ख़ुशी और प्रसन्नता हो जिसका अंतिम उद्देश्य और लक्ष्य हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का सम्मान है। ख़ुद मुजीब लखनवी (उत्तरदाता) हरमैन तैयबैन की बरकत वाली महफ़िलों में अपनी मौजूदगी और शिरकत का वर्णन करते हैं और उन्हें 'मुतबर्रका महफ़िल' (पावन सभाएं) लिखते हैं, हालांकि मुजीब की गवाही और निरंतर अवलोकन के अनुसार, इन महफ़िलों में फ़रिश्तों और इंसानों का खड़ा होना निश्चित है। उक्त मुजीब फतावा के इसी भाग के पृष्ठ 52 पर लिखते हैं:

[बायां बॉक्स]: मौलिद शरीफ़ की महफ़िलों में जहाँ सूरह अज़-ज़ुहा से आख़िर तक पढ़ते हैं, यक़ीनन हर सूरह ख़त्म करने के बाद तकबीर कहते हैं। लेखक, इन मुतबर्रका महफ़िलों का हिस्सा होने के नाते, मक्का मुकर्रमा, मदीना मुनव्वरा और जेद्दा दोनों जगह इस बात का गवाह रहा है। 2 [दायां बॉक्स]: मौलिद शरीफ़ की महफ़िलों में सूरह अज़-ज़ुहा से लेकर आख़िर तक पढ़ते हैं। हर सूरह के अंत में तकबीर कहते हैं। लेखक मक्का मुकर्रमा, मदीना मुनव्वरा और जेद्दा में इन मुबारक महफ़िलों में शरीक हुआ है। (त)

अनुच्छेद 15: मज़े की बात यह है कि पृष्ठ 120 पर लिखते हैं: [बायां बॉक्स] प्रश्न: क्या सालार मसूद ग़ाज़ी के झंडे का कपड़ा अपने इस्तेमाल में लाया जा सकता है या दान दिया जाना चाहिए? [दायां बॉक्स] प्रश्न: सालार मसूद ग़ाज़ी के झंडे का कपड़ा अपने इस्तेमाल में लाया जा सकता है या इसे सदक़ा कर दिया जाए? [बायां बॉक्स] उत्तर: ज़ाहिर है कि उल्लेखित कपड़े का अपने लिए उपयोग किए जाने का कोई ऐसा कारण नहीं है जो पाप का कारण बने, लेकिन बेहतर यह है कि उसे गरीबों

और ज़रूरतमंदों को दे दिया जाए। 3 [दायां बॉक्स] उत्तर: ज़ाहिर है अपने इस्तेमाल में लाने में कोई गुनाह नहीं, हाँ बेहतर यह है कि मिस्कीनों और फ़क़ीरों पर ख़र्च कर दिया जाए। (त)

ज़रा विरोधी हज़रात इस 'बेहतर यह है' (औला आनस्त) का कारण बताएं और इसे अपने सिद्धांतों पर लागू करें।

1. मजमुआ-ए-फतावा, मिलाद शरीफ़ के दौरान क़ियाम का अध्याय, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ में मुद्रित, 1/130।
2. मजमुआ-ए-फतावा, नमाज़ में क़िरात का अध्याय, इमाम के पीछे सूरह फातिहा पढ़ना, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ में मुद्रित, 3/52।
3. मजमुआ-ए-फतावा, किन चीज़ों का उपयोग जायज़ है और किनका नहीं, युसुफ़ी प्रेस, फरंगी महल, लखनऊ में मुद्रित, 3/116।

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

می نویسند وقد استحسن القیام عند ذکر مولد الشریف ائمة ذو روایة ودرایة فطوبی لمن کان تعظیمه صلی اللہ تعالی علیه وسلم غایة مرامه ومرماه انتھی 1۔ رسالہ مولد میں لکھتے ہیں صاحبِ روایۃ و درایۃ ائمہ ذکر مولد شریف کے وقت قیام مستحسن تصور کرتے ہیں مبارک ہے ان علماء کے لئے جس کا مقصد و منزل نبی اکرم صلی اللہ علیہ وسلم کی تعظیم ہے انتہی (ت)

یعنی ذکر ولادت شریف کے وقت قیام کرنے کو ان اماموں نے مستحسن فرمایا ہے جو صاحبِ روایت و درایت تھے تو خوشی و شادمانی ہو اسے جس کی نہایت مراد و مقصد حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کی تعظیم ہے اور خود مجیب لکھنوی حرمین طیبین کی مجالس متبرکہ میں اپنا حاضر و شریک ہونا بیان کرتے اور انہیں مجالسِ متبرکہ لکھتے ہیں حالانکہ بشادت مجیب و مشاہدہ تواتر ان مجالس ملائک انس کا قیام پر مشتمل ہونا یقینی، مجیب موصوف اسی جلد فتاوی صفحہ ۵۲ میں لکھتے ہیں:

در مجالس مولد شریف کہ از سورۃ والضحٰی تا آخر می خوانند البتہ بعد ختم ہر سورہ تکبیر می گویند راقم شریک مجالس متبر کہ بودہ این امر را مشاھد کردہ ام ہم در مکہ معظمہ و ہم در مدینہ منورہ و ہم در جدہ 2۔ مولد شریف کی مجالس میں سورہ والضحٰی سے لے کر آخر تک پڑھتے ہیں ہر سورت کے اختتام پر تکبیر کہتے ہیں راقم الحروف مکہ معظمہ، مدینہ منورہ اور جدہ میں ان مجالسِ مبارکہ میں شریک ہوا ہے۔ (ت)

عبارت ۱۵: طرفہ یہ کہ صفحہ ۱۲۰ پر لکھتے ہیں: سوال: پارچہ جھنڈا سالار مسعود غازی ودر مصرف خود آورد یا تصدق نماید؟ سوال: سالار مسعود غازی کے جھنڈے کا کپڑا اپنے مصرف میں

لایا جاسکتا ہے یا اسے صدقہ کردیا جائے؟ جواب: ظاہر ا در استعمال پارچہ مذکور بصرف خود وجہے کہ موجب ہزہ کاری باشد نیست واولے آنست کہ بمسا کین و فقراء دہد 3۔ جواب: ظاہر ہے اپنے استعمال میں لانے میں کوئی گناہ نہیں، ہاں بہتر یہ ہے کہ مساکین و فقراء پر خرچ کردیا جائے۔ (ت)

ذرا حضرات مخالفین اس اولی آنست (بہتر یہ ہے۔ ت) کی وجہ بتائیں اور اسے اپنے اصول پر منطبق

1 مجموعہ فتاوی باب قیام میلاد شریف مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محل لکھنؤ ۱/ ۱۳۰ 2 مجموعہ فتاوی باب القرآءۃ فی الصلوۃ قراءۃ فاتحہ خلف الامام مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محل لکھنؤ ۳/ ۵۲ 3 مجموعہ فتاوی باب ما یحل استعمالہ و مالا یحل مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محل لکھنؤ ۳/ ۱۱۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

May it be stated, "There is no power nor strength except with Allah, the Most High, the Most Great." You will find plenty of such discussions and wonderful issues in pamphlets. "And what we have mentioned is sufficient, and Allah, Glorified be He, is the Guardian of Guidance" (Translation: What we have mentioned is enough. And Allah Almighty's pure essence is the one who possesses guidance. - T). By the grace of Allah, the answer has reached its conclusion, and the investigation of the truth has left no doubt. However, the first manifestation of the effort of those who prevent [this] - that is, the common people refraining from supplication even after obligatory prayers - if I were to descend into quoting ahadith here, I would dictate a whole independent treatise. But, as a matter of necessity, I am only quoting a summary of a fatwa by Molvi Abdul Haie Sahib, which also bears the seal of the Imam-e-Azam of the non-followers (ghair-muqallideen) of the time, Nazir Husain Dehlavi, from the collection of fatwas, volume 2, page 777:

[Table Content] Column 1 (Persian/Arabic): What do the scholars of religion say regarding the issue of raising hands in supplication after prayer, as is the practice of the imams of this land? Even though the jurists write it as commendable and ahadith regarding the absolute raising of hands in supplication are also reported, is there any specific hadith in this regard or not? Explain and you shall be rewarded.

He is the Appointed [Helper]. Regarding this, a hadith is also reported. Hafiz Abu Bakr Ahmad bin Muhammad bin Ishaq bin al-Sunni writes in 'Amal al-Yawm wa al-Laylah': "Ahmad bin al-Hasan narrated to me, Abu Ishaq Yaqub bin Khalid bin Yazid al-Yalisi narrated to us, Abd al-Aziz bin Abd al-Rahman al-Qurashi narrated to us, from Khusaif, from Anas, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) that he said: 'No servant spreads his palms at the end of every prayer and then says: O Allah, my God, and the God of Ibrahim, Ishaq, and Yaqub, and the God of Jibril, Mikhail, and Israfil, I ask You to answer my prayer, for I am distressed, and to protect me in my religion, for I am afflicted, and grant me..."

Column 2 (Urdu): What do the scholars say regarding the raising of hands in supplication after prayer, as is the practice of the leaders (imams) of this region? The jurists (fuqaha) have written it as commendable (mustahsan). The mention of raising hands in supplication in general has also appeared in ahadith. Is there any specific hadith in this regard or not? State it and be rewarded.

He is the Appointed [Helper]. Regarding this, a specific hadith is also reported. Hafiz Abu Bakr Ahmad bin Muhammad bin Ishaq bin al-Sunni writes in his book 'Amal al-Yawm wa al-Laylah' that: "Ahmad bin al-Hasan narrated to me, Abu Ishaq Yaqub bin Khalid bin Yazid al-Yalisi narrated to him, Abd al-Aziz bin Abd al-Rahman al-Qurashi narrated to him, from Khusaif, from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'No servant spreads his palms after every prayer and then says: O Allah, my God, and the God of our masters Ibrahim, Ishaq, and Yaqub, and the God of Jibril, Mikhail, and Israfil! I ask You to answer my prayer, for I am distressed, and protect me in my religion, for I am afflicted, and grant me..."

फ़तावा रज़विया खंड 8

कहिए, "अल्लाह के सिवा कोई शक्ति और सामर्थ्य नहीं है, जो सबसे ऊँचा और महान है।" इस प्रकार की चर्चाएँ और अद्भुत मसले पत्रिकाओं में बहुत मिलेंगे। "और जो हमने उल्लेख किया है वह पर्याप्त है, और अल्लाह, उसकी जय हो, मार्गदर्शन का संरक्षक है" (अनुवाद: जो हमने उल्लेख किया है वह पर्याप्त है। और अल्लाह तआला की शुद्ध सत्ता ही मार्गदर्शन का मालिक है। - टी)। अल्लाह के अनुग्रह से उत्तर अपने निष्कर्ष पर पहुँच गया है और सत्य की जाँच ने कोई संदेह नहीं छोड़ा है। हालाँकि, उन लोगों के प्रयास की पहली अभिव्यक्ति जो [इसे] रोकते हैं - अर्थात् आम लोगों का अनिवार्य प्रार्थना के बाद भी दुआ से हाथ खींच लेना - यहाँ यदि मैं हदीसों को उद्धृत करने लगूँ तो मैं एक पूरा स्वतंत्र ग्रंथ लिखवा दूँ। लेकिन, आवश्यकतावश, मैं केवल मौलवी अब्दुल हई साहब के एक फतवे का संक्षिप्त उद्धरण दे रहा हूँ, जिस पर उस समय के गैर-मुकल्लिदीन के इमाम-ए-आजम नज़ीर हुसैन देहलवी की भी मुहर है, फतवा संग्रह, खंड 2, पृष्ठ 777 से:

[तालिका सामग्री] कॉलम 1 (फारसी/अरबी): दीन के उलेमा इस मसले में क्या फरमाते हैं कि नमाज के बाद दुआ में हाथ उठाना (रफ-ए-यदैन) जैसा कि इस क्षेत्र के इमामों का तरीका है, क्या है? यद्यपि न्यायविद (फुकहा) इसे मुस्तहसन (सराहनीय) लिखते हैं और सामान्य रूप से दुआ में हाथ उठाने की हदीसें भी वर्णित हैं, क्या इस संबंध में भी कोई हदीस आई है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें।

वह सहायक है। इस विषय में भी हदीस वर्णित है। हाफ़िज़ अबू बक्र अहमद बिन मुहम्मद बिन इसहाक बिन अल-सुन्नी 'अमल अल-यौम व अल-लैला' में लिखते हैं: "अहमद बिन अल-हसन ने मुझे बताया, अबू इसहाक याकूब बिन खालिद बिन यज़ीद अल-यालिसी ने हमें बताया, अब्दुल अज़ीज़ बिन अब्दुल रहमान अल-कुरैशी ने हमें बताया, खुसैफ से, अनस से, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कि उन्होंने फरमाया: 'कोई ऐसा बंदा नहीं है जो हर नमाज़ के बाद अपनी हथेलियों को फैलाए और फिर कहे: ऐ अल्लाह, मेरे इलाह और इब्राहीम, इसहाक और याकूब के इलाह, और जिब्रील, मिकाईल और इसराफ़ील के इलाह, मैं तुझसे सवाल करता हूँ कि मेरी दुआ मुस्तजाब (स्वीकार) फरमा, क्योंकि मैं मुज़्तर (व्यथित) हूँ और मुझे मेरे दीन में महफूज़ (सुरक्षित) रख, क्योंकि मैं मुब्तला (ग्रस्त) हूँ और मुझे...'

कॉलम 2 (उर्दू): विद्वान इस बारे में क्या कहते हैं कि नमाज़ के बाद दुआ में हाथ उठाना जैसा कि इस क्षेत्र के इमामों का तरीका है, क्या है? न्यायविदों (फुकहा) ने इसे मुस्तहसन (सराहनीय) लिखा है।

हदीसों में सामान्य रूप से दुआ में हाथ उठाने का उल्लेख भी आया है। क्या इस संबंध में कोई विशेष हदीस है या नहीं? बताकर पुण्य कमाएं।

वह सहायक है। इस बारे में विशेष रूप से हदीस भी वर्णित है। हाफ़िज़ अबू बक्र अहमद बिन मुहम्मद बिन इसहाक बिन अल-सुन्नी अपनी पुस्तक 'अमल अल-यौम व अल-लैला' में लिखते हैं कि: "अहमद बिन अल-हसन ने मुझे बताया, अबू इसहाक याकूब बिन खालिद बिन यज़ीद अल-यालिसी ने उन्हें बताया, अब्दुल अज़ीज़ बिन अब्दुल रहमान अल-कुरैशी ने उन्हें बताया, खुसैफ से, हज़रत अनस (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से कि नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: 'जिस किसी बंदे ने भी हर नमाज़ के बाद अपनी हथेलियों को फैलाया और फिर कहा: ऐ अल्लाह, मेरे माबूद (पूज्य), सैयदना इब्राहीम और इसहाक और याकूब के माबूद, जिब्रील, मिकाईल और इसराफ़ील के इलाह (ईश्वर)! मैं तुझसे सवाल करता हूँ कि मेरी दुआ स्वीकार कीजिए, मैं व्यथित हूँ, मुझे मेरे दीन में सुरक्षित रखिये, मैं ग्रस्त हूँ मुझे...'

فرمائیں ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم اس قسم کے کلام رسائل و مسائل عجیب میں بکثرت ملیں گے وفیما ذکرنا کفایۃ اللہ واللہ سبحانہ ولی الھدایۃ (جو کچھ ہم نے ذکر کیا یہ کافی ہے۔ اور اللہ تعالٰی کی ذات پاک ہے اور وہی ہدایت کا مالک ہے۔ ت) بحمد اللہ جواب اپنے منتہی کو پہنچا اور تحقیق حق تا زدہ علیہا لب نہ رہا مگر سعی مانعین کا وہ پہلا رو نما یعنی عوام کا بعد نماز فرائض بھی دعا سے دست کش ہونا، یہاں اگر میں نقل احادیث پر اتروں تو ایک مستقل رسالہ املا کروں مگر بحکم ضرورت صرف مولوی عبدالحئی صاحب کا ایک فتوٰی ملخصاً نقل کرتا ہوں جس پر غیر مقلدین زمانہ کے امام اعظم نذیر حسین دہلوی کی بھی مہر ہے، مجموعہ فتاوٰی جلد دوم صفحہ ۷۷۷:

[جدول] کالم ۱ (فارسی/عربی): چہ می فرمایند علمائے دین اندریں مسئلہ کہ رفع یدین در دعا بعد نماز چنانکہ معمول ائمہ ایں دیارست ہر چند فقہاء مستحسن می نویسند واحادیث در مطلق رفع یدین دردعا نیز وارد دریں خصوص ہم حدیثے واردست یا نہ، بینواتوجروا۔

ھوالمنصوب دریں خصوص نیز حدیثے واردست حافظ ابوبکر احمد بن محمد بن اسحق بن السنی در عمل الیوم واللیلۃ می نویسند حدثنی احمد بن الحسن حدثنا ابواسحق یعقوب بن خالد بن یزید الیالسی حدثنا عبدالعزیز بن عبدا لرحمن القرشی عن خصیف عن انس عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم انہ قال مامن عبد بسط کفیہ فی دبر کل صلوۃ ثم یقول اللھم الھی والہ ابراھیم واسحق ویعقوب والہ جبرئیل و میکائیل و اسرافیل اسئلك ان تستجیب دعوتی فانی مضطر و تعصمنی فی دینی فانی مبتلی و تنالنی

کالم ۲ (اردو): اس بارے میں علماء کیا فرماتے ہیں کہ نماز کے بعد دعا میں ہاتھ اٹھانا جیسا کہ اس علاقے کے ائمہ کا طریقہ ہے کیا ہے؟ فقہاء نے اسے مستحسن لکھا ہے احادیث میں مطلقاً دعا میں ہاتھ اٹھانے کا تذکرہ بھی آیا ہے کیا اس سلسلہ میں کوئی حدیث ہے یا نہیں؟ بیان کرکے اجر پاؤ۔

ھوالمنصوب، اس بارے میں خصوصاً حدیث بھی وارد ہے حافظ ابوبکر احمد بن محمد بن اسحق بن السنی اپنی کتاب عمل الیوم واللیلہ میں لکھتے ہیں کہ مجھے احمد بن حسن انھیں ابواسحق یعقوب بن خالد بن یزید الیالسی نے انھیں عبدالعزیز بن عبدالرحمن القرشی نے انھیں خصیف نے حضرت انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے بیان کیا کہ نبی اکرم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے فرمایا جس شخص نے بھی ہر نماز کے بعد اپنے ہاتھوں کو پھیلایا اور پھر عرض کیا: اے اللہ میرے معبود، سیدنا ابراہیم واسحق اور یعقوب کے معبود، جبرائیل، میکائیل اور اسرافیل کے الہ! میں تجھ سے سوال کرتا ہوں کہ میری دعا قبول کیجئے، میں مضطر، مجھے میرے دین میں محفوظ رکھئے، میں مبتلا ہوں مجھے

[Arabic Box Text]: By Your mercy, for I am a sinner, and remove poverty from me, for I am needy. It is indeed a duty upon Allah, the Almighty, that He does not return his hands empty. And Allah the Almighty knows best. (1) [Urdu Box Text]: Bestow Your mercy upon me, I am a great sinner. Remove my poverty, for I am extremely needy. It is a right upon Allah the Almighty that He does not return the supplicant's hands empty. And Allah the Almighty knows best. (T)

Muhammad Abdul Hai Abul Hasanat

[Arabic Box Text]: The answer is correct: It is supported by what was narrated by Abu Bakr ibn Abi Shaybah in 'Al-Musannaf' from Al-Aswad al-Amiri from his father, who said: "I prayed the Fajr prayer with the Messenger of Allah, may Allah the Almighty bless him and grant him peace. When he performed the Taslim, he turned, raised his hands, and supplicated..." (al-hadith). Thus, raising the hands in supplication after the obligatory prayer is established from the Master of Prophets, the Exemplar of the God-fearing, may Allah the Almighty bless him and grant him peace, as is not hidden from the intelligent scholars.

[Urdu Box Text]: The answer is correct: And it is also supported by the narration that Abu Bakr bin Abi Shaybah has recorded in 'Musannaf' from Aswad Amiri, who narrated from his father: "I performed the Fajr prayer with the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him. When he finished the prayer with Salam, he turned away, raised his hands, and supplicated..." (al-hadith). Therefore, it is proven to raise hands and supplicate after the obligatory prayer as established by the Master of Prophets, the Exemplar of the Pious, peace and blessings of Allah be upon him, as is not hidden from the wise scholars. (T)

Muhammad Syed Nazir Hussain

Nuance: This humble servant (may the Powerful Lord forgive him) has quoted fifteen statements of the respondent to refute and invalidate the misguided notion of the Wahhabis that whatever is not specifically narrated from the first three generations (Qurun Thalatha) is prohibited. But the irony is that the very fatwa they relied upon here is sufficient to invalidate that notion. It is the respondent's habit to begin a response with "Huwa al-Musawwib" (He is the One Who rights things. - T). This same word was written at the beginning of that fatwa as well, as you have already read its text. Now, let the opponents prove that the Prophet...

1 Majmu'ah Fatawa, Kitab al-Salat, Raising Hands in Supplication After Performing the Five Daily Prayers, published by Matba' Yusufi, Farangi Mahal, Lucknow, 8/248.

फतावा रज़विया | खंड 8

[अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: अपनी दया से, क्योंकि मैं एक पापी हूँ, और मुझ से दरिद्रता को दूर कर दे, क्योंकि मैं बहुत ज़रूरतमंद हूँ। अल्लाह सर्वशक्तिमान पर यह हक़ है कि वह उसके हाथों को खाली न लौटाए। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है। (1) [उर्दू बॉक्स टेक्स्ट]: अपनी दया प्रदान कीजिए, मैं अत्यंत गुनहगार हूँ। मेरी दरिद्रता को दूर कर दीजिये, मैं अत्यंत दीन हूँ, तो अल्लाह तआला पर यह हक़ है कि वह उसके हाथों को खाली न लौटाए। और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। (त)

मुहम्मद अब्दुल हई अबुल हसनात

[अरबी बॉक्स टेक्स्ट]: उत्तर सही है: इसका समर्थन उस वर्णन से होता है जिसे अबू बक्र इब्न अबी शैबा ने 'मुसन्नफ़' में असवद अल-अमीरी से, उनके पिता के माध्यम से उद्धृत किया है, जिन्होंने कहा: "मैंने अल्लाह के रसूल, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ फज्र की नमाज़ पढ़ी। जब आपने सलाम फेरा, तो मुड़े, अपने हाथ उठाए और दुआ की..." (अल-हदीस)। अतः, अनिवार्य नमाज़ के बाद दुआ में हाथ उठाना नबियों के सरदार, धर्मपरायणों के आदर्श, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से सिद्ध है, जैसा कि बुद्धिमान विद्वानों से छिपा नहीं है।

[उर्दू बॉक्स टेक्स्ट]: उत्तर सही है: और इसका समर्थन वह रिवायत भी करती है जिसे अबू बक्र बिन अबी शैबा ने 'मुसन्नफ़' में असवद आमरी से, उन्होंने अपने पिता से बयान किया कि: "मैंने अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के साथ फज्र की नमाज़ अदा की। जब आपने सलाम फेरा, तो मुड़े, हाथ उठाए और दुआ की..." (अल-हदीस)। लिहाज़ा, फ़र्ज़ नमाज़ के बाद सैयदुल अंबिया, उसवतुल अत़किया सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से हाथ उठाकर दुआ माँगना साबित है, जैसा कि अक्लमंद उलमा पर ज़ाहिर है। (त)

मुहम्मद सैयद नज़ीर हुसैन

बारीकी (नुक्ता): इस फ़क़ीर (अल्लाह उसे माफ़ करे) ने वहाबियों के इस गुमराह ख्याल को रद्द करने के लिए, कि जो कुछ विशेष रूप से शुरुआती तीन सदियों (कुरून सलासा) से वर्णित नहीं है वह मना है, मुजीब (उत्तरदाता) के पंद्रह उदाहरण पेश किए। लेकिन मज़ा यह है कि स्वयं वही फ़तवा जिसका यहाँ उन्होंने सहारा लिया, इस ख्याल को गलत साबित करने के लिए काफी है। मुजीब की आदत है कि वह जवाब के शुरू में "हुवा अल-मुसव्विब" (वही दुरुस्त करने वाला है - त) लिखते हैं। यही शब्द

उस फ़तवे की शुरुआत में भी लिखा था जैसा कि आप इसके शब्द पीछे पढ़ चुके हैं। अब विरोधी साबित करके दिखाएं कि हुज़ूर...

1 मजमुआ फ़तावा, किताबुल सलात, पाँचों वक्त की नमाज़ के बाद दुआ में हाथ उठाना, मतबा यूसुफी, फरंगी महल, लखनऊ, 8/248 द्वारा प्रकाशित।

पृष्ठ 560 का 673

برحمتك فانی مذنب وتنفی عنی الفقر فانی متمسکن الا کان حقا علی اللہ عزوجل ان لایرد یدیہ خائبتین واللہ تعالی اعلم 1 اپنی رحمت عطا کیجئے میں نہایت گنہگار ہوں میرے فقر کو دور کر دیجئے میں نہایت مسکین ہوں، تو اللہ تعالٰی پر حق ہے کہ اس کے ہاتھوں کو خالی نہ لوٹائے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

محمد عبد الحئی ابوالحسنات

الجواب صحیح: ویؤیدہ ما رواہ ابوبکر ابن ابی شیبۃ في المصنف عن الاسود العامري عن ابیہ قال صلیت مع رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم الفجر فلما سلم انصرف ورفع یدیہ و دعاالحدیث فثبت بعد الصلوۃ المفروضۃ رفع الیدین في الدعاء عن سید الانبیاء اسوۃ الاتقیاء صلی اللہ تعالی علیہ وسلم کمالا یخفی علی العلماء الاذکیاء۔ جواب صحیح ہے: اور اس کی تائید وہ روایت بھی کرتی ہے جو ابوبکر بن ابی شیبہ نے مصنف میں اسود عامری سے انھوں نے اپنے والد سے بیان کی کہ میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے ساتھ نماز فجر ادا کی آپ نے سلام پھیرا، ہاتھ اٹھائے اور دُعا کی الحدیث، لہذا نماز فرض کے بعد سید الانبیاء اسوۃ الاتقیاء صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے ہاتھ اٹھا کر دُعا مانگنا ثابت ہے جیسا کہ علماء اذکیاء پر مخفی نہیں۔ (ت)

محمد سید نذیر حسین

لطیفہ: فقیر غفرلہ المولی القدیر نے وہابیہ کے اس خیال ضلال کے ردو ابطال کو کہ جو کچھ بخصوصہ قرون ثلثہ سے منقول نہیں ممنوع ہے، مجیب کی پندرہ 15 عبارتیں نقل کیں مگر لطف یہ ہے کہ خود ہی فتوے جس سے یہاں انھوں نے استناد کیا اس خیال کے ابطال کو بس ہے، مجیب

کی عادت ہے کہ شروع جواب میں ہوا المصوب (وہی درست کرنے والا ہے۔ت) یہی لفظ اُس فتوے کی ابتداء میں بھی لکھا کما سمعت نصہ (جیسا کہ اس کے الفاظ آپ پیچھے پڑھ چکے۔ت) اب حضرات مخالفین ثابت کر دکھائیں کہ حضور

1 مجموعہ فتاویٰ کتاب الصلوۃ رفع یدین در دعا بعد ادائے نماز پنجگانہ مطبوعہ مطبع یوسفی فرنگی محلی لکھنو ۸/ ۲۴۸

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Whether the Master of the World (peace and blessings be upon him) or the noble Companions and Successors (may Allah be pleased with them) used to call Allah 'Mussawib' (approver), especially since the names of Allah are 'Tawqeefi' (divinely ordained).

(Arabic Text)

And since we have reached the mention of Tawqeef, the pen stopped. This was on the night that remained from the middle tens of Sha'ban al-Mu'azzam in the year 1307 AH of the migration of the Master of the World (peace and blessings be upon him). All praise be to Allah for what He inspired. Blessings and peace be upon the Supreme Lord, his family, and his companions, the masters of the nations. And Allah, Glorified and Exalted is He, knows best, and His knowledge is most complete and most perfect. (T)

(Urdu Translation)

When we reached the word 'Tawqeef', the pen stopped. Its conclusion was in the middle of Sha'ban al-Mu'azzam in 1307 AH. All praise is for Allah who provides guidance. Blessings and peace be upon the Supreme Lord, his family, and his companions who are the leaders of the Ummah. And Allah, Glorified and Exalted is He, knows best, and His knowledge is most complete and most perfect. (T)

Issue 1214 to 1215: Banaras, Kandi Gartola neighborhood, Masjid Bibi Raji Hospital, from Maulvi Abdul Ghafoor Sahib, 6 Jumada al-Akhira 1312 AH. To the blessed service of the collector of rational and transmitted sciences, encompasser of branches and principles, Hazrat Maulana Maulvi Ahmed Raza Khan Sahib (may his grace be prolonged). From the servant of students, Abdul Ghafoor, peace be upon you. There is a disagreement among the scholars here on some matters, so the issue is sent to your blessed service, hoping for an informative reply. (1) Zaid says that praying Eid prayers in an open field (Sahra) is Sunnah, but it is also permissible in the city. Whoever prayed the said prayer in the city, his prayer is certainly valid, although he abandoned a Sunnah and was deprived of its reward. Amr was for a few days of the opinion that Eid prayers are not permissible in the city, but for a few days, either by himself or due to learning from someone else, he says that the said prayer is permissible in the city but those who pray will be sinners. (2) Zaid says that by praying Eid prayers inside a paved, roofed mosque located in the open field (Sahra), one will not get the reward of praying in an open field. Amr says although the mosque is paved and roofed, since it is located in the open field, one will get the

reward of praying in the field. In all these matters, is Zaid's view correct or Amr's? Give a ruling and be rewarded.

The Answer: (1) Zaid's view is correct. In most books of the school of thought, texts, commentaries, and fatwas, it is clearly stated that praying Eid prayers outside the city in a Musalla (Eidgah) is recommended (Mandub), liked (Mustahabb), better (Afdhal), and Sunnah; it is not an obligation (Fardh) such that it cannot be performed in the city.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

क्या सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) या सहाबा किराम और ताबेईन (अज़म अलैहिमर रिज़वान) अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त को 'मुसव्विब' (सहमत होने वाला) कहा करते थे, विशेष रूप से जबकि अल्लाह के नाम 'तौक़ीफ़ी' (खुदा की तरफ से तयशुदा) हैं।

(अरबी पाठ)

चूँकि हम तौक़ीफ़ के उल्लेख तक पहुँच गए, तो कलम रुक गया। यह उस रात हुआ जो शाबानुल मुअज़्ज़म 1307 हिजरी के मध्य के दस दिनों से शेष थी। सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जिसने प्रेरणा दी। दुरुद और सलाम हो रसूले आज़म पर, आपकी आल और सहाबा पर जो उम्मत के सरबराह हैं। और अल्लाह पाक सबसे ज़्यादा जानने वाला है और उसका इल्म सबसे कामिल और सबसे पुख्ता है। (त)

(उर्दू अनुवाद)

जब हम 'तौक़ीफ़' शब्द पर पहुँचे, तो क़लम रुक गया। इसका समापन 1307 हिजरी में शाबानुल मुअज़्ज़म के मध्य में हुआ। सभी प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो मार्गदर्शन करता है। दुरुद और सलाम हो रसूले आज़म पर, आपकी आल और सहाबा पर जो उम्मत के सरबराह हैं। और अल्लाह पाक सबसे ज़्यादा जानने वाला है और उसका इल्म सबसे कामिल और सबसे पुख्ता है। (त)

मसला 1214 से 1215: बनारस, मोहल्ला कुंडी गरतोला, मस्जिद बीबी राजी शिफाखाना, मौलवी अब्दुल गफूर साहब की तरफ से, 6 जमादी-उल-आख़िर 1312 हिजरी। ख़िदमत में जामेअ माक़ूल-ओ-मक़ूल (बौद्धिक और पारंपरिक विद्याओं के ज्ञाता), हावी फुरूअ-ओ-असूल (शाखाओं और सिद्धांतों के समावेशक) जनाब मौलाना मौलवी अहमद रज़ा खान साहब (अल्लाह उनके फ़ैज़ को जारी रखे)। तलबा (छात्रों) के सेवक अब्दुल गफूर की ओर से सलाम। यहाँ के उलेमा के बीच कुछ मसाइल में मतभेद है, इसलिए यह मसला आपकी ख़िदमत में भेजा जा रहा है, उम्मीद है कि जवाब से सूचित करेंगे। (1) ज़ैद कहता है कि ईद की नमाज़ मैदान (सहरा) में पढ़ना सुन्नत है लेकिन शहर में भी जायज़ है। जिस व्यक्ति ने शहर में नमाज़ पढ़ी, उसकी नमाज़ ज़रूर अदा हो गई, अलबत्ता उसने सुन्नत छोड़ दी और सुन्नत के सवाब से वंचित रहा। अम्र कुछ दिनों तक इस बात का कायल था कि शहर में ईद की नमाज़ जायज़ नहीं है, लेकिन कुछ दिनों से खुद से या किसी और से सीखकर कहता है कि शहर में नमाज़ जायज़ तो है लेकिन पढ़ने वाले गुनाहगार होंगे। (2) ज़ैद कहता है कि मैदान में स्थित पक्की और छत वाली मस्जिद के अंदर ईद की नमाज़ पढ़ने से मैदान में नमाज़ पढ़ने का सवाब नहीं मिलेगा। अम्र कहता है कि भले ही मस्जिद पक्की और छत वाली हो, लेकिन चूँकि वह मैदान में

स्थित है, इसलिए मैदान में नमाज़ पढ़ने का सवाब मिलेगा। इन सभी मसाइल में ज़ैद की बात सही है या अम्र की? हुक्म बयान फरमाएं और सवाब पाएं।

जवाब: (1) ज़ैद की बात सही है। मज़हब की आम किताबों, मतनों, शराहों और फतावा में स्पष्ट है कि शहर के बाहर मुसल्ला यानी ईदगाह में ईद की नमाज़ पढ़ना मंदूब (पसंदीदा), मुस्तहब, अफ़ज़ल और मसनून है, फर्ज़ नहीं कि शहर में अदा न हो सके।

पृष्ठ 673 में से 561

سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم یا صحابہ کرام و تابعین عظام علیہم الرضوان ، اللہ جل وعلا کو مصوب کہا کرتے ہوں خصوصاً بحالیکہ اسمائے الٰہیہ توقیفی ہیں،

(عربی)

واذ قد بلغنا الی ذکر التوقیف وقف القلم و کان ذلك اللیلة بقیت من اوسط عشرات شعبان المعظم سنة الف (۱۳۰۷ھ) وثلثمائة و سبع من ھجرة سید العالم صلی اللہ تعالی علیه وسلم والحمد للہ علی ما الھم والصلوة والسلام علی المولی الاعظم وآله وصحبه سادات الامم واللہ سبحنه و تعالی اعلم و علمه اتم واحکم۔ (ت)

(اردو)

جب ہم لفظ توقیف پر پہنچ چکے قلم رک گیا اس کا اختتام ۱۳۰۷ھ میں شعبان المعظم کے وسط میں ہوا، سب تعریف اللہ کے لئے ہے جو رہنمائی کرتا ہے صلوٰۃ وسلام مولیٰ اعظم پر، آپ کی آل پر اور اصحاب پر جو کہ امت کے سربراہ ہیں۔ واللہ سبحنہ و تعالی اعلم و علمہ اتم واحکم۔ (ت)

مسئلہ ۱۲۱۴تا ۱۲۱۵: بنارس محلہ کنڈی گرتولہ مسجد بی بی راجی شفا خانہ از مولوی عبدالغفور صاحب ۶ جمادی الآخر ۱۳۱۲ھ بخدمت لازم البرکتہ جامع معقول و منقول حاوی فروع و اصول جناب مولانا مولوی احمد رضا خاں صاحب مداللہ فیضانہ از جانب خادم الطلبہ عبدالغفور سلام علیک قبول باد، کچھ مسائل میں یہاں درمیان علمائے اختلاف ہے لہذا مسئلہ ارسال خدمت لازم البرکت ہے امید ہے کہ جواب سے مطلع فرمائیں (۱) زید کہتا ہے نماز عیدین صحرا میں پڑھنی سنت ہے لیکن شہر میں بھی جائز ہے جس شخص نے نماز مذکور شہر میں پڑھی نماز اس کی ضرور ادا ہوئی البتہ ترک سنت اس نے کیا اور ثواب سنت سے محروم رہا، عمرو کچھ روز تک قائل تھا نماز عیدین شہر میں جائز نہیں مگر چند روز سے بذات خود یا بوجہ تعلم کسی غیر کے کہتا ہے کہ نماز

مذکور شہر میں جائز ہے لیکن پڑھنے والے گنہگار ہوں گے۔ (۲) زید کہتا ہے نماز عیدین مسجد پختہ چھت دار کے اندر جو صحرا میں واقع ہے پڑھنے سے ثواب صحرا میں پڑھنے کا نہ ملے گا عمرو کہتا ہے گو مسجد پختہ چھت دار ہے مگر چونکہ صحرا میں واقع ہے لہذا ثواب صحرا میں پڑھنے کا ملے گا، ان سب مسائل میں قول زید کا صحیح ہے یا عمرو کا؟ بینواتوجروا

الجواب: (۱) قول زید صحیح ہے عامہ کتب مذہب متون و شروح وفتاوی میں تصریح ہے کہ نماز عیدین بیرونِ شہر مصلی یعنی عیدگاہ میں پڑھنی مندوب ہے، مستحب ہے، افضل ہے، مسنون ہے، فرض نہیں کہ شہر میں ادا نہ ہو

Fatawa Razviya, Volume 8

...is not; it is not mandatory that praying in the city is absolutely a sin. In the texts of Nuqaya, Kanz, Wafi, Ghurar, Islah, Multaqi, and others, the word 'Nadab' (recommendation) is used. In Wiqaya, it is expressed as 'Habab' (beloved/liked), and in Hidaya, the word 'Yustahabb' (is recommended) was used. In Mirqat, the commentary on Mishkat, it is stated from Allama Ibn Malak:

Arabic	English Translation
Al-Afdal adauha fi al-sahra' fi sa'ir al-buldan wa fi Makkah khilaf[4]	It is superior to perform Eid in an open field in all cities, but there is disagreement regarding Makkah. (T)

In the texts of Tanwir, Fath al-Qadir, Durar, Hindiyyah, Mudmarat, Bazzaziyyah, Ghunyah, Khaniyah, Khulasah, Khizanat al-Muftin, Fatawa Zahiriyyah, etc. it is stated: Al-Khuruuj ilaiha Sunnah[5] (Going out to the Eidgah is Sunnah. T). In Al-Bahr it is stated:

Arabic	English Translation
Al-Tawajjuh ila al-musalla mandub kama afada fi al-Tajnis wa in kanat salat al-'id wajibah hatta lau salla al-'id fi al-jami' wa lam yatawajjah ila al-musalla faqad taraka al-Sunnah[6]	Going towards the Eidgah is recommended as stated in Tajnis. Although the Eid prayer is mandatory, even if someone prayed Eid in the central mosque and did not go towards the Eidgah, they have abandoned the Sunnah. (T)

In the commentary of Nuqaya by Quhistani it is stated:

Arabic	English Translation
Al-khuruuj ilayhi yundab wa in kana al-jami' yas'ahum fal-khuruuj laysa bi-wajib[7]	Going out towards it is recommended even if the central mosque has enough capacity for them, however, going out is not mandatory. (T)

Footnotes: 1. Kanz al-Daqaiq, Chapter of Eidain, published by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 49 2. Sharh Wiqaya, Chapter of Eidain, published by Maktaba Rashidiya, Delhi, 1/225 3. Al-Hidaya, Chapter of Eidain, published by Al-Maktaba al-Arabiya, Karachi, 1/151 4. Mirqat Sharh al-Mishkat, Chapter of Eid Prayer, published by Maktaba Imdadia, Multan, 3/298 5. Tanwir al-Absar with Durr al-Mukhtar, Chapter of Eidain, published by Matba Mujtabai, Delhi, 1/124 6. Bahr al-Raiq, Chapter of Eidain, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/159 7. Jami' al-Rumuz, Section on Eid Prayer, published by Maktaba Islamiya Gunbad Qamus, Iran, 1/72

फ़तवा-ए-रज़विया, जिल्द 8

...नहीं है, यह अनिवार्य नहीं है कि शहर में नमाज़ पढ़ना पूर्णतः पाप हो। नुक़ाया, कंज़, वाफ़ी, ग़ुरर, इसलाह, मुल्तक़ी आदि ग्रंथों में 'नदब' (सिफ़ारिश) शब्द का प्रयोग किया गया है। विक़ाया में इसे 'हबब' के रूप में वर्णित किया गया है और हिदाया में 'युस्तहब' (अनुशंसित) शब्द के साथ। अल्लामा इब्न मलक के मिशकात की व्याख्या मिरक़ात में है:

अरबी	हिंदी अनुवाद
अल-अफ़्ज़ल अदाउहा फ़िस सहरा फ़ि साइरिल बुलदान वफ़ी मक्का ख़िलाफ़[4]	सभी शहरों में खुले मैदान में ईद अदा करना बेहतर है लेकिन मक्का के बारे में मतभेद है। (त)

तनवीर, फ़तुल क़दीर, दुरर, हिन्दिया, मुदमेरात, बज़ाज़िया, ग़ुनिया, खानिया, ख़ुलासा, ख़िज़ानातुल मुफ़्तीन और फ़तावा ज़हीरिया आदि के ग्रंथों में है: अल-ख़ुरूज इलैहा सुन्नत[5] (ईदगाह की तरफ निकलना सुन्नत है। त)। अल-बह्र में है:

अरबी	हिंदी अनुवाद
अत-तवज्जुह इलल मुसल्ला मन्दूब कमा अफ़ादा फ़ित तजनीस व इन कानत सलातुल ईद वाजिबा हत्ता लौ सल्लाल ईद फ़िल जामिअ वलम यतवज्जह इलल मुसल्ला फ़क़द तरकस सुन्नत[6]	ईदगाह की ओर जाना अनुशंसित है जैसा कि तजनीस में बताया गया है। हालांकि ईद की नमाज़ अनिवार्य (वाजिब) है, फिर भी यदि किसी ने केंद्रीय मस्जिद में ईद पढ़ी और ईदगाह की ओर नहीं गया, तो उसने सुन्नत को छोड़ दिया। (त)

नुक़ाया की व्याख्या कोहिस्तानी में है:

अरबी	हिंदी अनुवाद
अल-ख़ुरूज इलैहे युन्दब व इन कानल जामिउ यसअहुम फ़ल-ख़ुरूज लैसा बि-वाजिब[7]	ईदगाह की ओर निकलना अनुशंसित है भले ही केंद्रीय मस्जिद में लोगों के लिए जगह हो, अलबत्ता निकलना अनिवार्य नहीं है। (त)

पाद-लेख (Footnotes): 1. कंज़ुद दक़ाइक़, बाबुल ईदैन, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 49 2. शरह विक़ाया, बाबुल ईदैन, मकतबा रशीदिया दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/225 3. अल-हिदाया, बाबुल ईदैन, अल-मकतबा अल-अरबिया कराची द्वारा प्रकाशित, 1/151 4.

मिरक़ात शरहुल मिशकात, बाब सलातुल ईदैन, मकतबा इमदादिया मुल्तान द्वारा प्रकाशित, 3/298
5. तनवीरुल अबसार मअ दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मतबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1/124
6. बहरुर रईक़, बाबुल ईदैन, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 2/159 7. जामिउर रुमूज़, फ़स्ल सलातुल ईदैन, मकतबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस ईरान द्वारा प्रकाशित, 1/72

نہ ہو، واجب نہیں کہ شہر میں پڑھنا مطلقا گناہ ہو، نقایہ و کنز و وافی و غرر و اصلاح و ملتقی و غیرہا متون میں بلفظ "ندب" ہے، و قایہ بکلہ حبب، ہدایہ میں بلفظ "یستحب" تعبیر فرمایا۔ مرقاۃ شرح مشکوٰۃ میں علامہ ابن ملک سے ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
الافضل اداؤھا في الصحراء في سائر البلدان وفي مکة خلاف[4]	تمام شہروں میں میدان میں عید ادا کرنا افضل ہے لیکن مکہ میں اختلاف ہے۔ (ت)

متن تنویر و فتح القدیر و درر و ہندیہ و مضمرات و بزازیہ و غنیہ و خانیہ و خلاصہ و خزانۃ المفتین و فتاوی ظہیریہ و غیرہا میں ہے: الخروج الیھا سنۃ[5] (عید گاہ کی طرف نکلنا سنت ہے۔ ت)۔ بحر میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
التوجه الی المصلی مندوب کما افاده في التجنیس وان کانت صلوة العید واجبة حتی لو صلی العید في الجامع ولم یتوجه الی المصلی فقد ترك السنة[6]	عید گاہ کی طرف جانا مندوب ہے جیسا کہ تجنیس میں ہے اگر چہ نماز عید واجب ہے حتی کہ اگر کسی نے جامع مسجد میں عید پڑھی اور عید گاہ کی طرف نہیں گیا تو اس نے سنت کو ترک کیا (ت)

شرح نقایہ قہستانی میں ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
الخروج الیه یندب وان کان الجامع یسعهم فالخروج لیس بواجب[7]	عید گاہ کی طرف نکلنا مندوب ہے اگر جامع مسجد میں لوگوں کی گنجائش ہو البتہ نکلنا واجب نہیں۔ (ت)

حواشی: 1. کنز الدقائق باب العیدین مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۴۹ 2. شرح و قایه باب العیدین مطبوعہ مکتبہ رشیدیہ دہلی ۱/ ۲۲۵ 3. الہدایہ باب العیدین مطبوعہ المکتبہ العربیہ کراچی ۱۵۱/۱ 4. مرقاۃ شرح المشکوٰۃ باب صلوٰۃ العیدین مطبوعہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۲۹۸/۳ 5. تنویر الابصار مع الدر المختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۲۴ 6. بحر الرائق باب العیدین مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۵۹/۲ 7. جامع الرموز فصل صلوٰۃ العیدین مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۷۲

Fatawa Razawiyya Volume 8

In "Ghuniya," it is quoted from "Jami' al-Fiqh," "Muniyat al-Mufti," and "Al-Dhakheerah":

Arabic Text	Urdu Translation
It is permissible to establish it (Eid prayer) in the city, its outskirts, and in two or more places; this is also the opinion of Ash-Shafi'i and Ahmad.	Eid can be performed in the city and its suburbs in two or more locations; this is the view of Imam Shafi'i and Imam Ahmad. (T)

Yes, regarding a Sunnah Mu'akkadah (emphasized Sunnah), if someone makes a habit of abandoning it without necessity or excuse, out of negligence and indifference, they will incur a type of sin, not because of leaving the Sunnah itself, but due to undervaluing and showing lack of concern for it.

Arabic Text	Urdu Translation
In 'Sharh al-Muniyah' by Allamah Ibrahim al-Halabi, it is stated: Raising the hands during the Takbir should not be abandoned because it is a Sunnah Mu'akkadah. If one makes a habit of abandoning it, he sins, not for the act of abandoning itself, but because it shows disdain and a lack of concern for a Sunnah which the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) practiced consistently throughout his life. However, if he leaves it occasionally without making it a habit, he does not sin. This principle applies to all Sunan Mu'akkadah. And Allah, the Sublime and Exalted, knows best.	In "Sharh Muniyah," Allamah Ibrahim Halabi says that raising hands at the time of Takbir should not be abandoned as it is Sunnah Mu'akkadah. If someone makes a habit of abandoning it, he will be a sinner, not purely due to the abandonment itself, but because of considering such a Sunnah as light and showing indifference towards it, which the Holy Prophet (peace be upon him) practiced throughout his life. Yes, if he leaves it sometimes without making it a habit, he will not be a sinner. This principle is applicable to all Sunan Mu'akkadah. And Allah knows best. (T)

(2) 'Amr's statement is correct, and Zaid's claim also holds weight if by "wilderness" (Sahra) he means an open, empty space.

I say: And success is from Allah. The research is that there are two things here. First, the original Sunnah is that the Eid prayer should be offered outside the city in the

wilderness. The Lawgiver (peace be upon him) placed the wisdom of manifesting the symbols of Islam and the majesty and abundance of Muslims in this. This is achieved by the mere act of going out and gathering, even if a building is constructed in the wilderness. Therefore, 'Amr's statement that if the mosque is in the wilderness, the reward of going out of the city is attained, is undoubtedly correct. Second, there is a Sunnah within a Sunnah for the completion and emphasis of the original Sunnah, which is to pray in an open, empty space without any building, as this increases the manifestation of symbols and majesty. By praying in an Eidgah mosque located in the wilderness, although the reward for the original manifestation of symbols and praying in the wilderness is attained, the extra reward obtained for the most complete following in praying in an open space is not achieved, provided that the construction was not preferred due to some Shariah-based benefit. In this sense...

---

[1] Ghuniyat al-Mustamli Sharh Muniyat al-Musalli, Furu' al-Khurooj ilal-Musalla, published by Suhail Academy, Lahore, p. 577. [2] Ghuniyat al-Mustamli Sharh Muniyat al-Musalli, Bab Sifat al-Salah, published by Suhail Academy, Lahore, p. 300.

फतावा रज़विया जिल्द 8

"ग़ुनिया" में "जामे अल-फ़िक़्ह," "मुनियातुल मुफ़्ती," और "अज़-ज़ख़ीरा" से उद्धृत है:

अरबी पाठ

शहर, उसके बाहरी इलाकों और दो या दो से अधिक स्थानों पर इसे (ईद की नमाज़) स्थापित करना जायज़ है; इमाम शाफ़ई और इमाम अहमद की भी यही राय है।

उर्दू अनुवाद

शहर और शहर के बाहरी हिस्सों (फ़ना-ए-शहर) में ईद दो या दो से अधिक स्थानों पर अदा की जा सकती है, इमाम शाफ़ई और इमाम अहमद की यही राय है। (त)

हाँ, जो सुन्नत मुअक्कदा (ज़ोर दी गई सुन्नत) हो और कोई व्यक्ति बिना किसी ज़रूरत या बहाने के लापरवाही और उदासीनता के कारण उसे छोड़ने की आदत बना ले, तो उसे एक प्रकार का गुनाह होगा। यह सुन्नत छोड़ने की वजह से नहीं, बल्कि उसे कम महत्व देने और उसके प्रति लापरवाही बरतने के कारण होगा।

अरबी पाठ

अल्लामा इब्राहिम हलबी की 'शरह अल-मुनिया' में कहा गया है: तकबीर के समय हाथ उठाना नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि यह सुन्नत मुअक्कदा है। यदि कोई इसे छोड़ने की आदत बना लेता है, तो वह गुनहगार होता है, केवल छोड़ने के कारण नहीं, बल्कि इसलिए क्योंकि यह उस सुन्नत के प्रति तिरस्कार और बेपरवाही दिखाता है जिसका नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने अपने पूरे जीवन भर निरंतर पालन किया। हालांकि, यदि वह इसे बिना आदत बनाए कभी-कभी छोड़ देता है, तो वह गुनहगार नहीं होगा। यह सिद्धांत सभी सुन्नते मुअक्कदा पर लागू होता है। और अल्लाह, जो महान और सर्वोच्च है, सबसे बेहतर जानता है।

उर्दू अनुवाद

'शरह मुनिया' में अल्लामा इब्राहिम हलबी कहते हैं कि तकबीर के समय हाथ उठाना तर्क न किया जाए क्योंकि यह सुन्नत मुअक्कदा है। और अगर तर्क को आदत बना लेता है तो गुनहगार होगा, मगर नफ़्स-ए-तर्क की वजह से नहीं बल्कि ऐसी सुन्नत को हल्का समझने और उससे लापरवाही की वजह से होगा जिस पर नबी-ए-अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने तमाम उम्र हमेशा पाबंदी फरमाई। हाँ, बिना आदत के कुछ समय के लिए छोड़ दे तो गुनहगार न होगा और यही उसूल तमाम सुन्नते मुअक्कदा में जारी होता है। अल्लाह ही बेहतर जानता है। (त)

(2) अम्र का कहना सही है, और ज़ैद का दावा भी सही हो सकता है यदि "सहरा" (जंगल) से उसका मतलब एक खुली, खाली जगह हो।

मैं कहता हूँ: और अल्लाह ही तौफीक देने वाला है। तहकीक (शोध) यह है कि यहाँ दो चीजें हैं। पहली, असल सुन्नत यह है कि नमाज़ी ईदैन के लिए शहर से बाहर जंगल में हो। शरीअत देने वाले (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने इसमें इस्लाम के प्रतीकों के प्रदर्शन और मुसलमानों की शान-ओ-शौकत और संख्या की अधिकता की हिकमत रखी है। यह बात केवल बाहर निकलने और इकट्ठा होने से हासिल हो जाती है, भले ही जंगल में कोई इमारत बना ली जाए। इसलिए अम्र का कहना कि जब मस्जिद जंगल में है, तो शहर से बाहर जाने का सवाब हासिल है, निस्संदेह सही है। दूसरी, सुन्नत के अंदर सुन्नत जो असल सुन्नत की पूर्णता और ताकीद के लिए है, यानी बिना इमारत वाली खुली जगह में पढ़ना, क्योंकि इसमें प्रतीकों और शान-ओ-शौकत का प्रदर्शन अधिक होता है। जंगल में स्थित ईदगाह मस्जिद में पढ़ने से, हालांकि प्रतीकों के प्रदर्शन और सहरा में नमाज़ पढ़ने का असल सवाब हासिल होता है, लेकिन खुली जगह में नमाज़ पढ़ने पर मिलने वाला अतिरिक्त सवाब हासिल नहीं होगा, बशर्ते कि निर्माण को किसी शरीअत आधारित हित के कारण प्राथमिकता न दी गई हो। इस अर्थ में...

---

[1] ग़ुनियातुल मुस्तमली शरह मुनियातुल मुसल्ली, फ़ुर्र-ए-ख़ुरूज इलल मुसल्ला, प्रकाशित सुहैल एकेडमी, लाहौर, पृष्ठ 577। [2] ग़ुनियातुल मुस्तमली शरह मुनियातुल मुसल्ली, बाब सिफ़तुल सलात, प्रकाशित सुहैल एकेडमी, लाहौर, पृष्ठ 300।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

غنیہ میں جامع الفقہ ومنیہ المفتی و ذخیرہ سے ہے:

عربی متن	اردو ترجمہ
یجوز اقامتھا فی المصر وفنائہ وموضعین فاکثر وبہ قال الشافعی واحمد[1]۔	شہر اور فنائے شہر میں عید دو یا زیادہ مقامات پر ادا کی جاسکتی ہے، امام شافعی اور امام احمد کی یہی رائے ہے۔ (ت)

ہاں جو سنت مؤکدہ ہو اور کوئی شخص بلا ضرورت بے عذر براہ تھاون و بے پروائی اس کے ترک کی عادت کرے اسے ایک قسم اثم لاحق ہوگی نہ ترک سنت بلکہ اس کی کم قدری و قلت مبالات کے باعث،

عربی متن	اردو ترجمہ
فی شرح المنیۃ للعلامۃ ابراھیم الحلبی لا یترك رفع الیدین عند التکبیر لانہ سنۃ مؤکدۃ ولو اعتاد ترکہ یأثم لا لنفس الترك بل لانہ استخفاف و عدم مبالاۃ بسنۃ واظب علیھا النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم مدۃ عمرہ اما لو ترکہ بعض الاحیان من غیر اعتیاد لا یأثم وھذا	شرح منیہ میں علامہ ابراہیم حلبی کہتے ہیں کہ تکبیر کے وقت ہاتھ اٹھانا ترک نہ کیا جائے کیونکہ یہ سنت مؤکدہ ہے اور اگر ترک کو عادت بنالیتا ہے تو گناہ گار ہوگا مگر نفس ترک کی وجہ سے نہیں بلکہ ایسی سنت کو ہلکا سمجھنے اور اس سے لاپروائی کی وجہ سے ہوگا جس پر نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے تمام عمر ہمیشگی فرمائی، ہاں بغیر عادت کے بعض اوقات ترک کردے تو

عربی متن	اردو ترجمہ
مطرد فی جمیع السنن المؤکدۃ اھ واللہ سبحانہ وتعالی اعلم۔	گناہگار نہ ہوگا اور یہی اصول تمام سنن مؤکدہ میں جاری ہوتا ہے اھ واللہ سبحانہ وتعالیٰ اعلم (ت)

(۲) عمرو کا قول صحیح ہے اور زید کا دعوی بھی وجہ صحت رکھتا ہے اگر صحرا سے اس کی مراد فضائے خالی ہو۔

اقول: وباللہ التوفیق تحقیق یہ ہے کہ یہاں دو چیزیں ہیں ایک اصل سنت کہ نمازی عیدین بیرونِ شہر جنگل میں ہو شارع علیہ الصلاۃ والسلام نے اس میں حکمت اظہار شعار اسلام و شوکت و کثرت مسلمین رکھی ہے یہ بات نفس خروج و اجتماع سے حاصل اگرچہ صحرا میں کوئی عمارت بنالیں پس قول عمرو کہ جب مسجد صحرا میں ہے تو بیرونِ شہر جانے کا ثواب حاصل بلاشبہ صحیح ہے۔ دوم سنت، سنت کہ تکمیل و تاکید اصل سنت کے لئے ہے یعنی فضائے خالی بے عمارت میں پڑھنا کہ اس میں زیادت اظہار شعار و شوکت ہے، مسجد عیدگاہ واقع صحرا میں پڑھنے سے اگر چہ اصل اظہار شعار و صلوۃ فی الصحرا کا ثواب حاصل، مگر صلوۃ فی الفضا میں اتباع اتم پر جو ثواب ازید ملتا وہ نہ ہوا جبکہ جانبِ تعمیر کسی مصلحت شرعیہ سے مترجح نہ ہوا، اس معنی پر

---

1 غنیہ المستملی شرح منیہ المصلی فروع خروج الی المصلی مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۷۷

2 غنیہ المستملی شرح منیہ المصلی باب صفۃ الصلوۃ مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۳۰۰

Volume 8 Fatawa-e-Razvia

Zaid's statement is also correct. During the blessed era of the Prophet, the Leader of the Universe (may peace and blessings of Allah be upon him), the Eid prayer ground was an open field like the palm of a hand, in which there was absolutely no construction, located at the eastern gate of Madinah Tayyibah, as mentioned in the ninth objective of Al-Mawahib (as it is in Mawahib al-Ladunniyyah, 9th objective. - Ed). It was at a distance of a thousand paces from Bab al-Salam of the pure Mosque, as recorded in Al-Zarqani from Fath al-Bari from Umar ibn Shabba in Akhbar al-Madinah from Ibn Ghassan al-Katani, the companion of Malik (may Allah be pleased with him) (as it is in Zarqani from Fath al-Bari that Umar ibn Shabba narrated in Akhbar al-Madinah from Abu Ghassan al-Katani, who is a companion of Malik (may Allah be pleased with him). - Ed). In Sunan Ibn Majah, Sahih Ibn Khuzaymah, and Mustakhraj Isma'il, it is narrated from Abdullah ibn Umar (may Allah be pleased with them both):

"Indeed, the Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) used to go out to the prayer ground on the day of Eid, and a spear (Anaza) was carried before him. When he reached the prayer ground, it was fixed in front of him and he prayed towards it. That was because the prayer ground was an open space where there was nothing to serve as a screen (Sutrah)." 1 Undoubtedly, the Messenger of Allah (may peace and blessings of Allah be upon him) would set out early in the morning for the Eid prayer ground on the day of Eid. Someone would be carrying a spear ahead of him. When he arrived at the Eid prayer ground, the spear would be planted in the ground in front of him. He would then lead the prayer facing it. This Eid prayer ground was in an open field where there was no wall or anything similar. (Ed)

Now, for hundreds of years, an enclosure has been built around it. Allama Syed Noor-ud-Din Samhoudi (may Allah sanctify his secret) expresses his observation that this building was constructed during the era of the Commander of the Faithful, Umar bin Abdul Aziz (may Allah be pleased with him), as mentioned in his book (may Allah sanctify his secret) on the history of Tayyibah al-Tayyibah (may the blessings and peace of Allah be upon the purest of all pure beings, and upon his pure descendants, and may there be blessings and peace. - Ed). Indeed, when the praised Commander of the Faithful renovated the sacred mosque of the Prophet (upon whom be the blessings and peace of Allah), wherever it was known that the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) had offered prayers, he either built anew or renovated those spots, as can be inferred from 'Umdat al-Qari' by Allama Al-Imam

Al-Badr Mahmood Al-Ayni from Umar bin Shabba from Abu Ghassan from several scholars (as narrated by Umdat al-Qari Allama Badr-ud-Din Mahmood Al-Ayni from Umar bin Shabba, who narrated from Abu Ghassan, who in turn narrated from various scholars. - Ed). The esteemed scholars state that going to the prayer ground for the two Eids is Sunnah and commendable; this is the same.

1 Sunan Ibn Majah, Chapter: What has been narrated regarding the spear on the day of Eid, Published by H.M. Saeed Company Karachi, p. 93 Page 564 of 673

ज़ैद का कथन भी सही है। हुज़ूर पुर नूर, सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) के मुबारक ज़माने में ईदगाह एक हाथ की हथेली के बराबर खुला मैदान था जिसमें کوئی निर्माण नहीं था, जो मदीना तैयबा के पूर्वी द्वार पर स्थित था, जैसा कि 'अल-मवाहिब' के नौवें मक़सद में है। (जैसा कि मवाहिबुल लुदुन्निया के नौवें मक़सद में है। - सं.) मस्जिद-ए-अहर के बाब-उस-सलाम से हज़ार कदम की दूरी पर था, जैसा कि 'अज़-ज़रक़ानी' में 'फ़तह-उल-बारी' के हवाले से उमर बिन शब्बह से, उन्होंने 'अख़बार-उल-मदीना' में इब्न-ए-ग़सान अल-कतानी (जो इमाम मालिक के साथी थे) से रिवायत किया है। (जैसा कि ज़रक़ानी में फ़तह-उल-बारी से है कि उमर बिन शब्बह ने अख़बार-उल-मदीना में अबू ग़सान अल-कतानी से, जो इमाम मालिक के साथी थे, रिवायत किया है। - सं.) सुनन इब्न-ए-माजा, सहीह इब्न-ए-खुज़ैमा और मुस्तख़रज इस्माईल में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णित है:

"बेशक अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ईद के दिन सुबह सवेरे ईदगाह की तरफ निकलते और आपके आगे-आगे किसी के हाथ में एक नेज़ा (छोटा भाला) होता था। जब आप ईदगाह पहुँचते तो वह आपके सामने गाड़ दिया जाता और आप उसकी तरफ रुख करके नमाज़ पढ़ते। ऐसा इसलिए था क्योंकि ईदगाह एक खुला मैदान था जहाँ कोई ऐसी चीज़ (दीवार आदि) नहीं थी जो पर्दे (सुतरा) का काम दे सके।" 1 निसंदेह अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ईद के दिन तड़के ईदगाह के लिए प्रस्थान करते। आपके आगे किसी के हाथ में एक नेज़ा होता। जब आप ईदगाह पहुँचते तो आपके सामने नेज़ा गाड़ दिया जाता। आप उसके सामने खड़े होकर नमाज़ पढ़ाते। यह ईदगाह एक खुले मैदान में थी जहाँ कोई दीवार आदि नहीं थी। (सं.)

अब सैकड़ों वर्षों से इसके चारों ओर चहारदीवारी बना दी गई है। अल्लामा सैय्यद नूरुद्दीन समहूदी (क़ुद्स सिर्रहु) यह राय व्यक्त करते हैं कि यह इमारत अमीर-उल-मोमिनीन हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) के शासनकाल में निर्मित हुई थी, जैसा कि उनकी पुस्तक 'तारीख़-ए-तैयबा' में उल्लेखित है (अल्लाह तआला उन पर जो तमाम पाकों से पाक हैं और उनकी पाकीज़ा आल पर दरूद-ओ-सलाम और बरकतें नाज़िल फरमाए। - सं.) और वास्तव में जब प्रशंसित अमीर-उल-मोमिनीन ने हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की मस्जिद-ए-अक़दस का जीर्णोद्धार करवाया, तो जहाँ-जहाँ हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) का नमाज़ पढ़ना मालूम हुआ, उन तमाम जगहों पर नया निर्माण करवाया या जीर्णोद्धार किया, जैसा कि अल्लामा इमाम बद्रुद्दीन महमूद

अल-ऐनी की 'उम्दतुल क़ारी' से स्पष्ट होता है, जिन्होंने उमर बिन शब्बह के हवाले से अबू ग़सान से और उन्होंने कई विद्वानों से यह रिवायत की है। (जैसा कि 'उम्दतुल क़ारी' अल्लामा बद्रुद्दीन महमूद अल-ऐनी ने उमर बिन शब्बह से, उन्होंने अबू ग़सान से और उन्होंने कई विद्वानों से बयान किया है। - सं.) उलमा-ए-किराम ईदैन के लिए ईदगाह जाने को सुन्नत और मुस्तहब (पसंदीदा) बताते हैं, यह भी वही है।

1 सुनन इब्न-ए-माजा, बाब: ईद के दिन नेज़े के बारे में जो वर्णित है, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी कराची, पृष्ठ 93 पृष्ठ 564 / 673

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

قولِ زید بھی روبہ صحت ہے زمانہ اکرم حضور پُر نور سیدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں مصلائے عید کفِ دست میدان تھا جس میں اصلاً تعمیر نہ تھی مدینہ طیبہ کے مشرقی دروازے پر، کما فی المقصد التاسع من المواھب (جیسا کہ مواہب اللدنیہ کے نویں مقصد میں ہے۔ ت) مسجد اطہر کے باب السلام سے ہزار قدم کے فاصلے پر، کما فی الزرقانی عن فتح الباری عن عمر بن شبۃ فی الاخبار المدینۃ عن ابن غسان الکتانی صاحب مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ (جیسا کہ زرقانی میں فتح الباری سے ہے کہ عمر بن شبہ نے اخبار المدینہ میں ابو غسان الکتانی جو صاحب مالک رضی اللہ تعالٰی عنہ ہیں سے روایت کیا ہے۔ت) سنن ابن ماجہ و صحیح ابن خزیمہ و مستخرج اسمعیل میں عبد اللہ بن عمر رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے:

ان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کان یغد والی المصلی فی یوم عید والعنزۃ تحمل بین یدیہ فاذا بلغ المصلی نصبت بین یدیہ فصلی الیھا وذلک ان المصلی کان فضاء لیس فیہ ما یستربہ 1

بلا شبہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم عید کے دن صبح سویرے عید گاہ کی طرف نکلتے آپ کے آگے آگے کسی کے ہاتھ میں نیزہ اٹھایا ہوتا، جب آپ عیدگاہ میں تشریف فرما ہوتے تو آپ کے سامنے نیزہ گاڑ دیا جاتا آپ اس کے سامنے ہو کر نماز پڑھاتے اور یہ عید گاہ میدان میں تھی وہاں کوئی دیوار وغیرہ نہ تھی (ت)

اب صدہا سال سے اس کا احاطہ بن گیا، علامہ سید نور الدین سمہودی قدس سرہ استظہار فرماتے ہیں کہ یہ عمارت زمانہ امیر المومنین عمر بن عبدالعزیز رضی اللہ تعالٰی عنہ میں تعمیر ہوئی، کما فی کتابہ قدس سرہ فی تاریخ طیبہ الطیبۃ صلی اللہ تعالٰی علی طیب اطیب طیبہا وآلہ الطائب وبارک

وسلم (جیسا کہ ان کی کتاب تاریخ طیبہ میں ہے تمام پاکوں سے پاک پر صلوٰۃ و سلام ہو، ان کی آلِ پاک پر ہو اور برکات و سلام ہو، ت) اور واقعی جب امیر المومنین ممدوح نے مسجدِ اقدس حضور پر نور صلوات اللہ و سلامہ علیہ کی تجدیدِ تعمیر فرمائی ہے جہاں جہاں حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا نماز پڑھنا معلوم ہوا ان سب کی بھی تعمیرِ جدید، خواہ تجدید فرمائی کما یستفاد من عمدۃ القاری للعلامۃ الامام البدر محمود العینی عن عمر بن شبہۃ عن ابی غسان عن غیر واحد من اھل العلم (جیسا کہ عمدۃ القاری علامہ بدر الدین محمود العینی نے عمر بن شبہ سے انہوں نے ابو غسان سے اور انہوں نے متعدد اہل علم سے بیان کیا ہے۔ ت) علمائے کرام کو عیدین کے لئے مصلی کو جانا مسنون و مستحب بتاتے ہیں وہی یہ بھی

1 السنن لابن ماجہ باب ماجاء فی الحر بہ یوم العید مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۹۳

Fatawa Razawiyyah - Volume 8

Discussion: Is the Eid prayer ground considered a mosque in all rulings or only in some? Are sexual intercourse, urination, and defecation permissible in it? Although it may not be a mosque in all legal aspects, the builder did not construct this building for such purposes. It is stated in Bahr al-Ra'iq:

Arabic

There is disagreement regarding the funeral prayer place and the Eid prayer place. It is authenticated in *Al-Muhit* regarding the funeral prayer place that it does not have the legal status of a mosque at all. Similarly, for the Eid prayer place, it is authenticated as such except in the context of the validity of following the Imam, even if the rows are not continuous. In *An-Nihayah* and others, the chosen view for fatwa regarding a mosque designated for funeral and Eid prayers is that it is considered a mosque for the validity of following the Imam, out of consideration for the people, even if the rows are separated. Besides this, it does not have the legal status of a mosque. End quote. From the text of *An-Nihayah*, it appears that sexual intercourse, urination, and defecation are permissible in funeral and Eid prayer grounds. However, this is questionable because the builder did not construct it for that purpose. Therefore, even if we do not grant them the status of a mosque, these three things (intercourse, urination, and defecation) are not permissible therein. The benefit of this distinction will be apparent in the remaining rulings we are mentioning, such

Urdu

There is a difference of opinion regarding the Janaza-gah (funeral prayer ground) and Eidgah. In *Al-Muhit*, it is considered correct that the ruling for a Janaza-gah is not like that of a mosque at all. Regarding the Eidgah, the same is correct, except it is like a mosque for the validity of following the Imam, even if rows are not connected. In *An-Inayah* etc., it is stated that due to consideration for the people, the preferred fatwa is that the Eidgah and Janaza-gah are like mosques for following the Imam even if rows are not connected, but in other matters, they are not under the mosque's ruling. It is apparent from the text of *An-Nihayah* that intercourse, urination, and defecation are permissible in the Eidgah and Janaza-gah, but this is subject to scrutiny because the builder did not make it for this. Hence, even if we don't give them the status of a mosque, these three things (intercourse, urination, and defecation) are not permissible there. Its benefit will appear in the remaining rulings that we are mentioning, and the entry of a person in a state of major ritual impurity or a menstruating

Arabic	Urdu
as the permissibility of entry for a person in a state of major ritual impurity or a menstruating woman. End quote (T)	woman can also be permissible. End quote (T)

In *Jawahir al-Akhlati*, Chapter on the Two Eids, it is stated:

Arabic	Urdu
If the mihrab of the prayer place is ten cubits and the row of the people is one hundred cubits, and the rows are not connected, the prayer of everyone is valid.[2]	If the mihrab of the Eidgah was ten cubits and the row of people was a hundred cubits, even if the rows are not connected, the prayer of all would be valid. (T)

---

1. *Bahr al-Ra'iq*, Chapter on Factors Nullifying Prayer and Disliked Acts, Published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/36.
2. *Jawahir al-Akhlati*, Chapter on the Two Eids, unpublished manuscript, pg. 51.

फतावा रज़विया - खंड 8

चर्चा: क्या ईदगाह नमाज़ की जगह सभी नियमों में मस्जिद है या केवल कुछ में? क्या इसमें संभोग, मूत्र त्याग और मल त्याग की अनुमति है? हालांकि यह सभी कानूनी पहलुओं में मस्जिद नहीं हो सकती, लेकिन निर्माता ने इस इमारत को इन उद्देश्यों के लिए नहीं बनाया था। 'बहर अल-रईक' में लिखा है:

अरबी

जनाजा नमाज़ स्थल और ईद नमाज़ स्थल के संबंध में मतभेद है। 'अल-मुहीत' में जनाजा नमाज़ स्थल के बारे में यह प्रमाणित है कि इसे मस्जिद का कानूनी दर्जा बिल्कुल नहीं प्राप्त है। इसी तरह, ईद नमाज़ स्थल के लिए भी यही प्रमाणित है, सिवाय इमाम का अनुसरण करने की वैधता के संदर्भ में, भले ही सफें (पंक्तियाँ) जुड़ी हुई न हों। 'अन-निहाया' और अन्य ग्रंथों में, जनाजा और ईद की नमाज़ के लिए निर्धारित मस्जिद के संबंध में फतवे के लिए चुना गया विचार यह है कि लोगों की सुविधा को देखते हुए इसे इमाम का अनुसरण करने की वैधता के लिए मस्जिद माना जाता है, भले ही पंक्तियाँ अलग हों। इसके अलावा, इसे मस्जिद का कानूनी दर्जा प्राप्त नहीं है। 'अन-निहाया' के पाठ से यह प्रतीत होता है कि ईदगाह और जनाजा नमाज़ स्थल में संभोग, मूत्र और मल त्याग की अनुमति है। हालाँकि, यह विचारणीय है क्योंकि निर्माता ने इसे उस उद्देश्य के लिए नहीं बनाया था। इसलिए, भले ही हम उन्हें मस्जिद का दर्जा न दें, फिर भी ये तीन चीज़ें (संभोग, मूत्र और मल त्याग) वहाँ जायज़ नहीं हैं। इस अंतर का लाभ उन शेष नियमों में स्पष्ट होगा जिनका हम उल्लेख कर रहे हैं, जैसे कि

उर्दू

जनाजा गाह और ईदगाह के बारे में मतभेद है। 'मुहीत' में इसे सही कहा गया है कि जनाजा गाह का हुक्म बिल्कुल मस्जिद वाला नहीं है। ईदगाह के बारे में भी यही सही है, सिवाय इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने (इक्तदा) की वैधता के मामले में वह मस्जिद की तरह है, भले ही सफें(पंक्तियाँ) जुड़ी न हों। 'अनाया' आदि में है कि लोगों की सुविधा के कारण फतवे में पसंदीदा राय यह है कि ईदगाह और जनाजा गाह इक्तदा के मामले में मस्जिद के हुक्म में हैं, भले ही सफें जुड़ी न हों, लेकिन इनके अलावा अन्य मामलों में मस्जिद का हुक्म नहीं है। 'निहाया' की इबारत से यही ज़ाहिर है कि ईदगाह और जनाजा गाह में संभोग, और पेशाब-पाखाना जायज़ है, लेकिन यह गौर करने वाली बात है क्योंकि निर्माता ने इसे इसके लिए नहीं बनाया। इसलिए भले ही हम इन्हें मस्जिद का हुक्म न दें, लेकिन ये तीनों चीज़ें वहाँ जायज़ नहीं हैं। इसका लाभ उन शेष नियमों में ज़ाहिर होगा जिनका हम ज़िक्र कर रहे हैं,

अरबी	उर्दू
जुनुब (अशुद्ध अवस्था वाले व्यक्ति) या मासिक धर्म वाली महिला के प्रवेश की अनुमति। (त)	और जुनुब या हाएज़ा (मासिक धर्म वाली स्त्री) का प्रवेश भी मुमकिन हो सकता है। (त)

'जवाहर अल-अखलाती', दोनों ईदों के अध्याय में उल्लेख है:

अरबी	उर्दू
यदि प्रार्थना स्थल का मेहराब दस हाथ (ज़िरा) का हो और लोगों की पंक्ति सौ हाथ की हो, और पंक्तियाँ जुड़ी हुई न हों, तो सभी की नमाज़ जायज़ है।[2]	अगर ईदगाह का मेहराब दस ज़िरा (हाथ) था और लोगों की सफ (पंक्ति) सौ ज़िरा की थी, और सफें जुड़ी हुई न हों, तब भी सबकी नमाज़ जायज़ होगी। (त)

---

1. बहर अल-रईक, नमाज़ को तोड़ने वाली चीज़ों और नापसंद कार्यों का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 2/36।
2. जवाहर अल-अखलाती, दोनों ईदों का अध्याय, अप्रकाशित पांडुलिपि, पृष्ठ 51।

جلد ہشتم - فتاوی رضویہ

بحث فرماتے ہیں کہ مصلائے عید جمیع احکام میں مسجد ہے یا صرف بعض میں، اور اس میں بول و براز و طی جائز ہیں یا نہیں کہ اگرچہ وہ سب احکام میں مسجد نہ سہی مگر بانی نے یہ عمارت اس لئے نہ بنائی، بحر الرائق میں ہے:

عربی

اختلفوا في مصلى الجنازة والعيد فصحح في المحيط في مصلى الجنائز انه ليس له حكم المسجد اصلاً وصحح في مصلى العيد كذلك الا في حق جواز الاقتداء وان لم تتصل الصفوف وفى النهاية وغيرها والمختار للفتوى فى المسجد الذى اتخذ لصلوة الجنازة والعيد انه مسجد فى حق جواز الاقتداء وان انفصل الصفوف رفقاً بالناس وفيما عدا ذلك ليس له حكم المسجد اهـ وظاهر ما في النهاية انه يجوز الوطئ والبول والتخلي في مصلى الجنائز والعيد ولا يخفى ما فيه فان البانى لم يعده لذلك فينبغى ان لا تجوز هذه الثلثة وان حكمنا بكونه غير مسجد وانما تظهر فائدته

اردو

جنازہ گاہ اور عیدگاہ میں اختلاف ہے محیط میں اسے صحیح کہا کہ جنازہ گاہ کا حکم بالکل مسجد والا نہیں اور عیدگاہ کے بارے میں یہی صحیح ہے مگر جو از اقتدا کے حق میں مسجد والا ہے اگرچہ صفیں متصل نہ ہوں، عنایہ وغیرہ میں ہے کہ لوگوں کی رعایت کی وجہ سے فتویٰ میں مختار یہ ہے کہ عیدگاہ اور جنازہ گاہ جو از اقتدا کے حوالے سے مسجد کے حکم میں ہیں اگرچہ صفیں متصل نہ ہوں اور ان کے علاوہ میں مسجد کا حکم نہیں اھـ نہایہ کی عبارت سے یہی ظاہر ہے کہ عیدگاہ اور جنازہ گاہ کے اوپر وطی اور بول و براز جائز ہے اور یہ محلِ نظر ہے کیونکہ بانی نے اسے اس لئے نہیں بنایا لہٰذا اگرچہ انہیں ہم مسجد کا حکم نہیں دیتے مگر یہ تینوں چیزیں (وطی، بول و براز) اس کے اوپر جائز نہیں اور اس کا فائدہ بقیہ

عربی	اردو
في بقية الاحكام التی ذکرناها وفی حل دخول للجنب والحائض ۱ اھ۔	احکام میں ظاہر ہو گا جو ہم ذکر کر رہے ہیں اور جنبی و حائضہ کا داخلہ بھی ہو سکتا ہے اھ (ت)

جواہر الاخلاطی فصل فی العیدین میں ہے:

عربی	اردو
لوکان محراب المصلی عشرة اذرع وصف القوم مائة ذراع ولا یتصل الصفوف جازت صلوة الکل ۲-	اگر عیدگاہ کا محراب دس ذراع تھا اور لوگوں کی صف سو ذراع، صفیں متصل نہ ہوں تو تب بھی تمام کی نماز جائز ہوگی۔ (ت)

۱۔ بحر الرائق باب مفسد الصلوۃ وما یکرہ فیہا مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۳۶ ۲۔ جواہر الاخلاطی فصل فی العیدین غیر مطبوعہ نسخہ ص ۵۱

Fatawa-e-Razvia, Volume 8

In 'Jami-ur-Rumuz' it is stated: 'Al-Musalla mahoot bil-fana' (The Eidgah is that which is enclosed in an open field). In Sahih Bukhari Sharif, a chapter is titled: 'Bab-ul-Alam bil-Musalla', which means signs for identifying the Eid prayer place. Imam Badr Mahmood has also included the building of the Musalla in this sign. It is stated in 'Umdatul Qari':

[Boxed Text] Arabic: This is a chapter regarding the explanation of the sign which is in the Eid prayer place. 'Al-Alam' with 'fatha' on both letters means a thing made of construction, or placed stone, or an erected pillar and suchlike, by which the Musalla is identified. Urdu: In the explanation of the sign of the Eidgah. Meaning, this chapter is about the sign that indicates this place is an Eidgah. 'Al-Alam' has 'zabar' (fatha) on both 'Ain' and 'Laam'. It refers to a sign, whether it be in the form of a building or by installing stones, wood, etc., through which it can be known to be an Eidgah. (T)

In short, the permissibility of constructing an Eidgah is clear, even if an open space is superior. Rather, look at the correction of Imam Taj-ush-Shariah (that he stated: 'The correct view is that the Eid Musalla is a mosque in all rulings'). Then its construction becomes necessary, especially in the cities of India where non-believers dominate. If left as is, people, animals, those in a state of ritual impurity (junub, menstruating women) will all walk through it, urinate in it, leading to the desecration of the mosque. Allama Shurunbulali states in 'Ghuniyat-uz-Zawi-ul-Ahkam':

[Boxed Text] Arabic: Al-Sadr al-Shaheed mentioned that the chosen fatwa regarding a place designated for funeral or Eid prayers is that it is considered a mosque for the validity of following (the Imam), even if the rows are separated, out of kindness to the people. Beyond that, it does not have the ruling of a mosque. This was mentioned by Imam al-Mahbubi. Al-Kaki mentioned it too, and something similar is in 'Fath al-Qadir', which opposes what he said. Urdu: Sadr-ul-Shaheed stated that for the convenience of the people, the preferred fatwa is that the place built for funeral or Eid prayers will be given the ruling of a mosque in terms of the validity of following the Imam, even if the rows are not contiguous. Apart from this, its ruling will not be like a mosque. Imam Mahbubi has also described it similarly. It was mentioned by Kaki and a similar view is in 'Fath-ul-Qadir'.

Footnotes: 1. Jami-ur-Rumuz, Chapter of Eid Prayers, published by Maktabah Islamiyyah Gunbad Qamus Iran, 1/72. 2. Sahih Bukhari, Book of Eid Prayers, published by Qadimi Kutub Khana Karachi, 1/133. 3. Umdatul Qari Sharh-ul-Bukhari,

Chapter of the Sign in the Musalla, published by Idarat-ul-Taba'at-il-Muniriyyah Beirut, 6/298.

Page 566 of 673

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

'जामे-उर-रुमुज़' में है: 'अल-मुसल्ला महूत बिल-फ़ना' (ईदगाह वह है जो मैदान में चहारदीवारी के अंदर हो)। सहीह बुख़ारी शरीफ़ में एक अध्याय का नाम रखा गया है: 'बाबुल-अलम बिल-मुसल्ला', जिसका अर्थ है ईद के मुसल्ले की पहचान के लिए कोई संकेत। इमाम बदर महमूद ने मुसल्ले की इमारत को भी इस संकेत में शामिल किया है। 'उम्दतुल क़ारी' में है:

[बॉक्स किया हुआ पाठ] अरबी: यह अध्याय ईद के मुसल्ले में मौजूद निशान के बयान में है। 'अल-अलम' (दोनों अक्षरों पर 'फ़तह' के साथ) का अर्थ है निर्माण से बनी चीज़, या रखा हुआ पत्थर, या गाड़ा हुआ खंभा और इसी तरह की चीज़, जिससे मुसल्ला पहचाना जाए। उर्दू: ईदगाह की निशानी के बयान में। यानी यह अध्याय इस निशानी के बारे में है कि यह जगह ईदगाह है। 'अल-अलम' में ऐन और लाम दोनों पर ज़बर है, इससे मुराद निशानी है चाहे वह इमारत की शक्ल में हो या पत्थर, लकड़ी आदि गाड़ने से हो जिससे उसके ईदगाह होने का पता चल सके। (त)

संक्षेप में, ईदगाह का निर्माण जायज़ है, भले ही खुली जगह बेहतर हो। बल्कि इमाम ताज-उश-शरिया के शोध पर नज़र करें (कि उन्होंने फ़रमाया: सही यह है कि ईद का मुसल्ला तमाम अहकाम में मस्जिद है)। तब तो इसका निर्माण ज़रूरी होगा, विशेष रूप से भारत के शहरों में जहाँ काफ़िरों का प्रभुत्व है। अगर इसे यूँ ही छोड़ दिया जाए तो आदमी, जानवर, नापाक लोग, सब इसमें घूमेंगे, पेशाब करेंगे, मस्जिद की बेअदबी होगी। अल्लामा शुरुनबुलाली 'ग़ुनियत-उज़-ज़वी-उल-अहकाम' में फ़रमाते हैं:

[बॉक्स किया हुआ पाठ] अरबी: सदरुश-शहीद ने उस स्थान के बारे में फ़तवे के लिए चुना है जिसे जनाज़ा या ईद की नमाज़ के लिए बनाया गया हो, कि वह इक़्तेदा (अनुसरण) के जायज़ होने के हक़ में मस्जिद है, भले ही लोगों की आसानी के लिए सफ़ें अलग-अलग हों। इसके अलावा, उसे मस्जिद का हुक्म प्राप्त नहीं होगा। इमाम महबूबी ने भी ऐसा ही ज़िक्र किया है। काकी ने इसका ज़िक्र किया और इसी तरह 'फ़त्ह-उल-क़दीर' में भी है, और जो उसने कहा वह इसके विपरीत है। उर्दू: सदरुश-शहीद ने फ़रमाया कि लोगों की रिआयत की वजह से फ़तवे के लिए मुख़्तार यह है कि वह जगह जो जनाज़ा या ईद की नमाज़ के लिए बनाई गई हो, उसे इक़्तेदा के जायज़ होने में मस्जिद का हुक्म दिया जाएगा भले ही सफ़ें जुड़ी हुई न हों। इसके अलावा उसका हुक्म मस्जिद वाला न होगा। इमाम

महबूबी ने भी इसी तरह बयान किया है, इसे काकी ने ज़िक्र किया और इसी तरह 'फ़त्ह-उल-क़दीर' में है।

पाद लेख: 1. जामे-उर-रुमुज़, फ़स्ल सलातुल ईदैन, मक़तबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस ईरान, 1/72. 2. सहीह बुख़ारी, किताबुल ईदैन, क़दीमी कुतुब ख़ाना कराची, 1/133. 3. उम्दतुल क़ारी शरह-उल-बुख़ारी, बाबुल अलम बिल-मुसल्ला, इदारातुत तबाअतिल मुनीरैया बेरुत, 6/298.

पेज 566/673

جامع الرموز میں ہے: المصلی محوط بالفناء (عید گاہ وہ ہے جو میدان میں احاطہ بنا ہوت) صحیح بخاری شریف میں ایک باب وضع فرمایا: باب العلم بالمصلی یعنی مصلائے عید میں شناخت کے لئے کوئی علامت امام بدر محمود نے اس علامت میں عمارت مصلے کو بھی داخل فرمایا: عمدۃ القاری میں ہے:

[خانہ شدہ متن] عربی: ص باب العلم الذی بالمصلی ش ای ھذا باب فی بیان العلم الذی ھو بمصلی العید والعلم بفتحتین ھو الشیئ الذی عمل من بناء او وضع حجر او نصب عمود ونحو ذلك یعرف بہ المصلی اردو: باب عید گاہ کی علامت کے بیان میں ہے ش یعنی یہ باب اس علامت کے بیان میں ہے کہ یہ جگہ عیدگاہ ہے العلم عین اور لام دونوں پر زبر ہے اس سے مراد علامت ہے خواہ بنا کی صورت میں ہو یا پتھر ولکڑی وغیرہ نصب کرنے سے ہو جس سے اس کے عید گاہ ہونے کا پتا چل سکے۔ (ت)

باجملہ تعمیر عید گاہ جواز ظاہر، اگر افضل فضائے خالی ہو بلکہ امام تاج الشریعہ کی تصحیح پر نظر کیجئے (کہ انھوں نے فرمایا صحیح یہ ہے کہ مصلائے عید جمیع احکام میں مسجد ہے) جب تو اس کی تعمیر ضروری ہوگی خصوصاً بلاد ہندوستان میں جہاں کفار کا غلبہ ہے کہ یوں ہی رکھیں تو آدمی جانور، جنب، حائض سب اس میں چلیں گے، پیشاب کریں گے، مسجد کی بے حرمتی ہوگی، علامہ شرنبلالی غنیہ ذوی الاحکام میں فرماتے ہیں:

[خانہ شدہ متن] عربی: ذکر الصدر الشھید المختار للفتوی فی الموضع الذی یتخذ لصلوۃ الجنازۃ والعید انہ مسجد فی حق جواز الاقتداء و ان انفصل الصفوف رفقا بالناس و فیما عدا ذلك لیس لہ حکم المسجد

کذا ذکرہ الامام المحبوبی اہ ذکرہ الکاکی ومثلہ فی فتح القدیر ویخالفہ ما قالہ اردو: صدر الشہید نے فرمایا کہ لوگوں کی رعایت کی وجہ سے فتویٰ کے لئے مختار یہ کہ وہ جگہ جو جنازہ یا عید کی نماز کے لئے بنائی گئی ہو اسے جواز اقتدا میں مسجد کا حکم دیا جائے گا اگرچہ صفیں متصل نہ ہوں اور اس کے علاوہ اس کا حکم مسجد والا نہ ہوگا، امام محبوبی نے بھی اسی طرح بیان کیا ہے اھ اسے کاکی نے ذکر کیا اور اسی کی مثل فتح القدیر میں ہے

حواشی: 1 جامع الرموز فصل صلوۃ العیدین مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ اے ۲ 2 صحیح بخاری کتاب العیدین مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۱۳۳ 3 عمدۃ القاری شرح البخاری باب العلم بالمصلی مطبوعہ ادارۃ الطباعۃ المنیریۃ بیروت ۶ / ۲۹۸

Fatawa Rizvia, Volume 8

[Main Text Box] Arabic: Taj al-Shari'ah and the most correct opinion is that the Eid prayer ground (Eidgah) takes the legal ruling of a mosque because it is prepared for the establishment of prayer with the greatest congregation in an announced manner. However, bringing animals into it is permitted out of necessity, fearing their loss. It is permissible to bring animals into mosque precincts due to valid excuses and necessity. There is a difference in the authentication of opinions regarding the Eidgah, but there is agreement regarding the funeral prayer ground (Janazagah). 1-

Urdu: And Taj al-Shari'ah has opposed this, and the most correct view is that the Eidgah is under the same ruling as a mosque because the Eidgah is constructed for congregational prayers with the largest assembly in a publicized manner. However, the entry of four-legged animals into it has been declared permissible so that they are not lost, and in view of excuse and necessity, the entry of animals into mosque areas is permissible. There is a disagreement in the authentication of opinions regarding the Eidgah, but there is agreement regarding the funeral prayer ground. (T)

This statement will not be refuted by the fact that there was no structure in the sacred era, because in Medina the Blessed, from day one, by the grace of Allah Almighty, Islam and the rule of Islam have been dominant. The preservation of Sharia etiquettes among the nobles of the pure era is well-known. Although the majority of Imams are against this authentication, the opinion of the authenticator is sound. Respecting the differences of scholars is recommended by consensus, even if it is in a different school of thought, let alone a strong internal difference within one's own school due to variations in authentication. In any case, there is no doubt that through this construction, that place will not cease to be a wilderness and become an inhabited area; the prayer there will remain a wilderness prayer, and the reward of wilderness prayer will not be lost. Thus, the opinion of 'Amr is clearly correct. This is all that has appeared to me, and the knowledge of truth is with the All-Knowing, the Most High. (This has become clear to me, and the true knowledge is with Allah Almighty. - T) And Allah, Glorified and Exalted, knows best.

Issues 1216 to 1219: Queried by Maulana Rahim Bakhsh Sahib from Arrah, Shahabad, Madrasa Faiz-ul-Ghuraba, 30 Muharram 1332 AH. What do the scholars of religion state regarding these questions: (1) During the Eid prayer and the sermon, or between the first and second sermons, is the campaign for donations and the praise

and flattery of someone (a Muslim Hajji) (for example, the Imam called the Hajji 'the Qazi of the time' and 'Qazi of Shariah' and also said 'I had no right to lead the prayer in the presence of the Qazi (Hajji) Sahib, therefore I lead with his permission') proven from Quran, Hadith, consensus of Mujtahids, or the practice of reliable scholars or not? (2) If not proven, did any kind of dislike (karahat) arise in the prayer and sermon or not?

1. Ghuniyat Dhawi al-Ahkam, Commentary on Durr al-Ghurar, Chapter on things that invalidate prayer and what is disliked in it, printed at Ahmad Kamil, Dar al-Sa'adah, Beirut, 1/110. Page 567 of 673

फतावा रज़विया, जिल्द 8

[मुख्य टेक्स्ट बॉक्स] अरबी: ताज-उश-शरिया के अनुसार, और सबसे सही राय यह है कि ईदगाह मस्जिदों का हुक्म रखती है क्योंकि यह घोषणा के साथ सबसे बड़ी जमात के साथ नमाज़ कायम करने के लिए तैयार की गई है। हालाँकि, जानवरों को खोने के डर से इसमें ले जाना जायज़ है। उज़्र और ज़रूरत के कारण मस्जिदों के क्षेत्रों में जानवरों को ले जाना जायज़ होता है। ईदगाह के बारे में राय के सत्यापन में मतभेद है, लेकिन जनाज़ागाह के बारे में आम सहमति है। 1-

उर्दू: और ताज-उश-शरिया ने इसकी मुखालफत की है और सबसे सही बात यह है कि ईदगाह मस्जिद वाला हुक्म रखती है क्योंकि ईदगाह जमात-ए-आज़म के साथ सामूहिक रूप से नमाज़ कायम करने के ऐलान के तौर पर बनाई गई होती है। अलबत्ता इसमें चौपायों का दाखिला मुबाह (अनुमत) इसलिए करार दिया गया है ताकि उनका नुकसान न हो और उज़्र और ज़रूरत के पेश-ए-नज़र मस्जिदों की जगह में चौपायों का दाखिला जायज़ होता है। ईदगाह के बारे में सही कौलों में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है मगर जनाज़ागाह में इत्तेफ़ाक़ (सहमति) है। (त)

इस बात पर यह ऐतराज़ नहीं होगा कि मुकद्दस ज़माने में वहाँ कोई इमारत नहीं थी, क्योंकि मदीना तैयबा में पहले दिन से ही अल्लाह तआला के फ़ज़ल से इस्लाम और इस्लाम की हुकूमत ही ग़ालिब रही है। पाक दौर के बुज़ुर्गों के दरमियान शरीयत के आदाब की जो हिफ़ाज़त थी, वह रौशन है। हालाँकि अक्सर इमाम इस तस्हीह (सत्यापन) के खिलाफ़ हैं, फिर भी मुसह्हिह (सही ठहराने वाले) का कौल मज़बूत है। उलमा के इख़्तिलाफ़ का लिहाज़ रखना इज्मा (आम सहमति) से मुस्तहब है, चाहे वह दूसरे मज़हब में हो, तो अपने ही मज़हब में तस्हीह के इख़्तिलाफ़ की वजह से होने वाले कड़े विरोध का तो कहना ही क्या। बहरहाल, इसमें कोई शक नहीं कि इस तामीर (निर्माण) से वह जगह जंगल से निकलकर आबादी नहीं बन जाएगी; वहाँ नमाज़ जंगल की ही नमाज़ रहेगी और जंगल की नमाज़ का सवाब हाथ से नहीं जाएगा। इसलिए 'अम्र' का कौल वाज़ेह तौर पर सही है। यही सब है जो मुझ पर ज़ाहिर हुआ है और हकीकत का इल्म अल्लाह तआला के पास है। (मुझ पर यही वाज़ेह हुआ है और हकीकत का इल्म अल्लाह तआला के पास है। - त) और अल्लाह सुब्हानहू व तआला बेहतर जानता है।

मसला 1216 से 1219: सायल मौलवी रहीम बख़्श साहब, आरा, शाहाबाद, मदरसा फ़ैज़-उल-ग़ुरबा, 30 मुहर्रम 1332 हिजरी। उलमा-ए-दीन इन सवालों में क्या फ़रमाते हैं: (1) ईद की नमाज़

और खुत्बे के दरमियान, या पहले और दूसरे खुत्बे के दरमियान चंदा जमा करने की तहरीक और किसी (मुस्लिम हाजी) की तारीफ़ और खुशामद वगैरह (मिसाल के तौर पर इमाम ने हाजी को 'काज़ी-ए-वक़्त' और 'काज़ी-ए-शरअ' कहा और यह भी कहा कि 'काज़ी (हाजी) साहब के होते हुए मुझे नमाज़ पढ़ाने का हक़ नहीं था, इसलिए उनकी इजाज़त से नमाज़ पढ़ाता हूँ') क्या क़ुरान, हदीस, मुजतहिदीन के इज्मा या भरोसेमंद उलमा के अमल से साबित है या नहीं? (2) साबित न होने की सूरत में क्या नमाज़ और खुत्बे में किसी तरह की कराहत (नापसंदगी) पैदा हुई या नहीं?

1. ग़ुनियत ज़वी अल-अहकाम हाशिया दुरर ग़ुरर, नमाज़ बिगाड़ने वाली और उसमें मकरूह चीज़ों का बयान, मुद्रित अहमद कामिल, दारुस सआदत, बेरूत 1/110. पेज 567 ऑफ 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

Arabic [Main Text Box]: تاج الشریعۃ والاصح انه ای مصلی العید یاخذ حکمها ای المساجد لانه اعد لاقامة الصلوة فیه بالجماعة لا عظم الجموع علی وجه الاعلان الا انه ابیح ادخال الدواب فیها ضرورة الخشیة علی ضیا عها وقد یجوز ادخال الدواب في بقعة المساجد لمکان العذر والضرورة اه فقد اختلف التصحیح فی مصلی العید واتفق فی مصلی الجنازة 1-

Urdu: اور تاج الشریعہ نے اس کی مخالفت کی ہے اور اصح یہ ہے کہ عیدگاہ مسجد والا حکم رکھتی ہے کیونکہ عیدگاہ جماعت اعظم کے ساتھ اجتماعی صورت میں بطورِ اعلانِ اقامتِ نماز کے لئے بنائی گئی ہوتی ہے البتہ اس میں چار پایوں کا داخلہ مباح اس لئے قرار دیا گیا ہے تاکہ ان کا ضیاع نہ ہو اور عذر و ضرورت کے پیشِ نظر مساجد کی جگہ میں چوپایوں کا داخلہ جائز ہوتا ہے، عید گاہ میں تصحیح اقوال میں اختلاف ہے مگر جنازہ گاہ میں اتفاق ہے۔ (ت)

اس قول پر زمانہ اقدس میں عمارت نہ ہونا وارد نہ ہوگا کہ مدینہ طیبہ میں روزِ اول سے بحمد اللہ تعالی اسلام ہی حاکم اسلام ہی غالب ہے عہد اطہر کے حضرات میں آدابِ شریعت کا جو تحفظ تھا روشن ہے۔ جمہور ائمہ ترجیح اگرچہ اس تصحیح کے خلاف پر ہیں تاہم قول مصحح ہے اور خلافِ علماء کا لحاظ بالا جماع مستحب اگر چہ غیر مذہب میں ہو نہ کہ خود اپنے مذہب میں خلاف قوی باختلاف تصحیح، بہر حال اس قدر میں شک نہیں کہ اس تعمیر سے وہ جگہ صحرا سے نکل کر آبادی نہ ہو جائے گی اور اس میں نماز صحرا ہی میں نماز رہے گی اور نمازِ صحرا کا ثواب ہاتھ سے نہ جائے گا، تو قولِ عمرو واضح الصحة ہے هذا کله ما ظهر لی والعلم بالحق عند العلیم العلی (مجھ پر یہی واضح ہوا ہے اور حقیقت کا علم اللہ تعالٰی کے پاس ہے۔ ت) واللہ سبحانہ وتعالی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۱۶ تا ۱۲۱۹: مسئولہ مولوی رحیم بخش صاحب از آرہ شاہ آباد مدرسہ فیض الغربار ۳۰ محرم ۱۳۳۲ھ علمائے دین ان سوالوں میں کیا فرماتے ہیں: (۱) نمازِ عید اور خطبہ کے درمیان یا خطبہ اول و دوم کے درمیان تحریک چندہ اور کسی (مسلمان حج) کی مدح و ثنا، خوشامد وغیرہ (مثلاً امام نے حج کو قاضی وقت و قاضیِ شرع کہا اور یہ بھی کہا کہ قاضی (حج) صاحب کے ہوتے مجھے نماز پڑھانے کا حق نہ تھا لہٰذا ان کی اجازت سے نماز پڑھاتا ہوں قرآن و حدیث، اجماع مجتہد و تعامل علمائے ثقہ کسی سے ثابت ہے یا نہیں؟ (۲) ثابت نہ ہونے کی صورت میں نماز اور خطبہ میں کسی قسم کی کراہت پیدا ہوئی یا نہیں؟

1 غنیۃ ذوی الاحکام حاشیہ درر غرر باب مایفسد الصلوۃ و مایکرہ فیہا مطبوعہ احمد کامل الکائنہ دار سعادت بیروت ۱/۱۱۰ Page 567 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

(3) Is the ruling for leading the Friday (Jumu'ah) and Eid prayers the same as leading the five daily prayers, or is there a difference? (4) Who is called a Sharia Judge (Qadi al-Shar'a), what are the conditions for a Qadi? Is a Sharia Judge a judge (Hajj) or not? If yes, is every judge a Qadi or only a Muslim judge? If only a Muslim judge, then why? Clarify and be rewarded.

The Answer: If a fund-raising appeal is for a religious matter, then it is permitted during the sermon (Khutbah) itself, as proven in Hadith. Once, while delivering a sermon, [the Prophet ﷺ] noticed a person who was in a state of extreme poverty and destitution. He addressed the attendees saying: "Give charity, give charity." One person gave one piece of clothing, and another gave another piece. Then He ﷺ said again: "Give charity, give charity." This poor man, who had just received two pieces of clothing, stood up and presented one of them. That is, the command of the Holy Prophet ﷺ to "Give charity" was general for all attendees, and [he thought] "I am also present and currently have two pieces of clothing, so I can present one." He was stopped from doing so, [with the meaning that] the command for charity is given for your benefit, not to take from you. However, in India, a fund-raising appeal, no matter how necessary the work may be, will be in the Urdu language, and mixing non-Arabic into the Khutbah is disliked (Makruh) and contrary to the Sunnah. Therefore, it should not be done at that time; rather, after the conclusion of the Eid Khutbah, as mentioned in the Sahihayn (Bukhari and Muslim), the Holy Prophet ﷺ completed the Eid Khutbah and then went to the group of women and commanded them to give charity. They started taking off their jewelry and presenting it, and Bilal (may Allah be pleased with him) collected it in his garment. And Allah knows best.

A judge who rules against Sharia commands, even if he is a Muslim, even if he is a judge of an Islamic state, it is never permissible to praise him, especially from the pulpit, and specifically in the Friday or Eid sermons. Because of this, dislike (Karahat) in the sermon is certain, "as it contains what is forbidden" (because it includes haraam). And if it is in the Friday sermon, its dislike will also seep into the prayer, because the sermon in Friday prayer is among the conditions for the prayer and takes place before it. Yes, in the Eid prayers, since the prayer has already been performed and the sermon is neither its condition nor obligatory (Fard or Wajib) but a separate Sunnah, the dislike of the sermon will not seep into the prayer. This pertains to the sermon, which is a specific religious matter, and the pulpit, which is the specific seat of the Master of Messengers ﷺ. Regarding the general praise of a

transgressor (Fasiq), it is narrated that the Holy Prophet ﷺ said: "When a transgressor is praised, the Lord (Almighty) becomes angry, and the Throne of the Most Merciful trembles because of it." 1- And Allah the Almighty knows best.

Footnote: 1 Al-Kamil by Ibn Adi, under the name of the predecessor Abdullah, printed by Al-Maktabah al-Athariyah, Sangla Hill, 4/130.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं (भाग 8)

(३) जुमे और ईदैन (ईद-उल-फ़ित्र और ईद-उल-अज़हा) की इमामत और पाँच वक्त की नमाज़ों की इमामत का हुक्म एक ही है या उनमें अंतर है? (४) क़ाज़ी-ए-शरअ किसे कहते हैं, क़ाज़ी की शर्तें क्या हैं, क्या शरीअत का न्यायाधीश (हाज) क़ाज़ी है या नहीं? यदि हाँ, तो क्या हर न्यायाधीश या केवल मुस्लिम न्यायाधीश? यदि केवल मुस्लिम न्यायाधीश तो क्यों? बयान करें और पुण्य कमाएं।

अल-जवाब (उत्तर): यदि चंदे की अपील किसी धार्मिक कार्य के लिए हो, तो खुतबे के बीच में इसकी अनुमति हदीस से ही प्रमाणित है। एक बार खुतबा देते हुए [नबी ﷺ ने] एक व्यक्ति को देखा जो अत्यंत गरीबी और दरिद्रता की स्थिति में था। आपने उपस्थित लोगों से फ़रमाया: "सदका दो, सदका दो।" एक व्यक्ति ने एक कपड़ा दिया, दूसरे व्यक्ति ने दूसरा कपड़ा दिया। फिर आपने फ़रमाया: "सदका दो, सदका दो।" यह गरीब व्यक्ति जिसे अभी दो कपड़े मिले थे, खड़ा हुआ और उन दो कपड़ों में से एक पेश कर दिया। यानी हुज़ूर अकदस ﷺ का हुक्म कि "सदका दो" उपस्थित लोगों के लिए सामान्य था और [उसने सोचा कि] मैं भी उपस्थित हूँ और इस समय मेरे पास दो कपड़े हैं, तो एक पेश कर सकता हूँ। उसे ऐसा करने से रोका गया [इसका अर्थ यह था कि] तुम्हारे लिए सदका देने का हुक्म तुम्हारी भलाई के लिए दिया जाता है, न कि तुमसे कुछ लेने के लिए। लेकिन भारत में चंदे की अपील, चाहे वह कितने ही आवश्यक कार्य के लिए क्यों न हो, उर्दू भाषा में होगी और खुतबे में गैर-अरबी का मिश्रण नापसंद (मक़रूह) और सुन्नत के विरुद्ध है। इसलिए उस समय ऐसा नहीं करना चाहिए; बल्कि ईद के खुतबे की समाप्ति के बाद, जैसा कि सहीहैन (बुखारी और मुस्लिम) में है कि हुज़ूर अकदस ﷺ ने ईद का खुतबा पूरा किया और फिर महिलाओं के समूह के पास तशरीफ़ ले गए और उन्हें सदका देने का हुक्म दिया। वे अपने जेवर उतार-उतार कर पेश करने लगीं और हज़रत बिलाल (रज़ियल्लाहु अन्हु) उन्हें अपनी चादर के पल्ले में इकट्ठा करने लगे। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

जो क़ाज़ी शरीअत के आदेशों के विरुद्ध फैसला करता हो, चाहे वह मुसलमान हो, चाहे वह किसी इस्लामी राज्य का क़ाज़ी हो, उसकी प्रशंसा करना कभी भी जायज़ नहीं है, विशेष रूप से मिम्बर पर और विशेषकर जुमे या ईदैन के खुतबे में। इसके कारण खुतबे में नापसंदगी (कराहियत) निश्चित है, "क्योंकि यह हराम बातों पर आधारित है" (चूंकि यह हराम पर आधारित है)। और यदि यह जुमे के खुतबे में हो, तो इसकी नापसंदगी नमाज़ तक भी पहुँच जाएगी, क्योंकि जुमे में खुतबा नमाज़ की शर्तों में से है और नमाज़ से पहले होता है। हाँ, ईदैन में चूँकि नमाज़ हो चुकी होती है और खुतबा न तो

उसकी शर्त है और न ही उसमें फ़र्ज़ या वाजिब है बल्कि एक स्वतंत्र सुन्नत है, इसलिए खुतबे की नापसंदगी नमाज़ तक नहीं पहुँचेगी। यह खुतबे की बात है जो एक विशेष धार्मिक मामला है, और मिम्बर जो विशेष रूप से सैय्यद-उल-मुर्सलीन ﷺ का आसन है। किसी अपराधी (फ़ासिक) की सामान्य प्रशंसा के संबंध में उल्लेख है कि हुज़ूर अकदस ﷺ फ़रमाते हैं: "जब किसी फ़ासिक की प्रशंसा की जाती है, तो रब (अज़्वजल) क्रोधित होता है और उसके कारण रहमान का अर्श (सिंहासन) हिल जाता है।" १- और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

पाद-टिप्पणी: १ अल-कामिल इब्ने अदी, पूर्ववर्ती अब्दुल्लाह नाम के अंतर्गत, मकतबा अल-अस़रिया, सांगला हिल, ४/ १३० द्वारा प्रकाशित।

पृष्ठ ६७३ का ५६८

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

(۳) امامت جمعہ و عیدین و امامت نمازِ پنجگانہ کا حکم ایک ہی ہے یا فرق ہے؟ (۴) قاضیِ شرع کسے کہتے ہیں، قاضی کے شرائط کیا ہیں، حج شرعی قاضی ہے یا نہیں، اگر ہے تو ہر حج یا صرف مسلمان حج، اگر صرف مسلمان حج تو کیوں؟ بینوا توجروا

الجواد: چندہ کی تحریک اگر کسی امرِ دینی کے لئے ہو تو عین خطبہ میں اس کی اجازت اور خود حدیث میں ثابت ہے ایک بار خطبہ فرماتے ایک صاحب کو ملاحظہ فرمایا کہ بہت حالت فقر و مسکنت میں تھے، حاضرین سے ارشاد فرمایا: تصدقوا، تصدقوا، ایک صاحب نے ایک کپڑا، دوسرے صاحب نے دوسرا کپڑا دیا، پھر ارشاد فرمایا: تصدقوا، تصدقوا۔ یہ مسکین جن کو ابھی دو کپڑے ملے تھے اُٹھے اور ان دو کپڑوں میں سے ایک حاضر کیا، یعنی حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا حکم کہ تصدقوا حاضرین کے لئے عام ہے اور میں بھی حاضر ہوں اور اس وقت دو کپڑے رکھتا ہوں ایک حاضر کر سکتا ہوں، ان کو اس سے باز رکھا گیا تو تمھارے ہی لئے تصدق کا حکم فرمایا جاتا ہے نہ کہ تم کو، مگر ہندوستان میں تحریکِ چندہ اگرچہ کیسے ہی ضروری کام کے لئے ہو زبانِ اردو میں ہوگی اور خطبہ میں غیر عربی کا خلط مکروہ و خلاف سنت ہے، لہٰذا اس وقت نہ چاہئے بلکہ بعد ختمِ خطبہ عید جس طرح صحیحین میں ہے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم خطبہ عید تمام فرما کر گروہ نساء پر تشریف لے گئے اور ان کو تصدق کا حکم فرمایا وہ اپنے زیور اتار اتار کر حاضر کرتی تھیں اور بلال رضی اللہ تعالیٰ اپنے دامن میں لئے تھے واللہ تعالیٰ اعلم۔

جو قاضی خلافِ احکامِ شرعیہ حکم کرتا ہو، اگرچہ مسلمان ہو، اگرچہ سلطنتِ اسلامیہ کا قاضی ہو، ہر گز اس کی مدح جائز نہیں خصوصاً منبر پر خصوصاً خطبہ جمعہ یا عیدین میں اس کے سبب

خطبہ میں تو کراہت یقینی ہے لاشتمالھا علی المحرم (کیونکہ یہ حرام پر مشتمل ہے ت) اور اگر خطبہ جمعہ میں ہو تو اس کی کراہت نماز کی طرف بھی سرایت کرے گی کہ جمعہ میں خطبہ شرائطِ نماز سے ہے اور نماز سے قبل ہوتا ہے، ہاں عیدین میں کہ نماز ہو چکی اور خطبہ نہ اس کی شرائط نہ اس میں فرض نہ واجب بلکہ ایک سنتِ مستقلہ ہے، خطبہ کی کراہت نماز کی طرف سرایت نہ کرے گی، یہ تو خطبہ ہے کہ خاص امرِ دین ہے اور منبر کہ خاص مسندِ سید المرسلین ہے صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم، مطلقاً مدحِ فاسق کی نسبت میں ارشاد ہے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: اذا مدح الفاسق غضب الرب واھتز لہ عرش الرحمن | جب فاسق کی مدح کی جاتی ہے رب عزوجل غضب فرماتا ہے اور اس کے سبب رحمن کا عرش ہل جاتا ہے۔ 1- واللہ تعالیٰ اعلم

حاشیہ: 1 الکامل لابن عدی تحت اسم سابق عبد اللہ مطبوعہ المکتبۃ الاثریۃ سانگلہ ہل ۴/ ۱۳۰

Fatawa Ridawiyyah, Volume Eight

There is a great difference between Sharia rulings and conventional views. The command of Sharia is that it is obligatory for every ruler to judge according to the commands of Allah. If they act contrary to the command of Allah, there are two situations: one is intentional and the other is an error. Regarding intentional acts, there are three commands in the Great Quran:

"And whoever does not judge by what Allah has revealed - then it is those who are the defiantly disobedient." (1)	Those who do not decide according to the teachings revealed by Allah Almighty
"...then it is those who are the wrongdoers." (2) "...then it is those who are the disbelievers." (3)	are defiantly disobedient, they are wrongdoers, they are disbelievers. (T)

The Holy Quran calls such a ruling disobedience (fisq), wrongdoing (zulm), and disbelief (kufr). That is, if it is intentional—meaning one does not accept the command as truth—then one is a disbeliever, otherwise one is a wrongdoer and disobedient. And if it is an error, then there are again two situations: One is that the error is due to ignorance, meaning one did not have the knowledge to be aware of the correct rulings. This situation is also forbidden (haram) and a sin (fisq). In an authentic Hadith, three types of judges (Qadis) are mentioned: "One judge is in Paradise and two judges are in the Fire." The one who is a scholar and just is in Paradise. And the one who intentionally judges contrary to the truth or due to ignorance, both are in the Fire. The reason for being in the Fire due to ignorance is that he undertook something for which he did not have the capacity. He knew he was not a scholar and that matching rulings without knowledge is impossible. Thus, he intentionally consented to opposing the rulings. In fact, even if a ruling issued by him happens to match Sharia, he is still opposing Sharia because such accidental compliance is not credible. Therefore, it is said in a Hadith:

"Whoever speaks about the Quran according to his own opinion and is correct, he has still erred."(4)	Whoever said something in the Quran based on his own opinion, even if he said it correctly, he said it wrongly.

The second situation of error is when one is a scholar, aware of Sharia rulings, possesses the capability of being a judge, intended to decide according to the divine commands, but due to human nature, a misunderstanding occurred. This again has

two situations: if he is a mujtahid (an authority capable of legal reasoning) and his ijtihad was in error, then there is a reward for him, and the decision he made...

1 Quran 5:47 2 Quran 5:45 3 Quran 5:44 4 Sunan Abi Dawud, Kitab al-Ilm, printed at Aftab Press, Lahore, 2/158

फ़तावा रज़विया, खंड आठ

शरीयत के आदेशों और लोक-प्रचलित विचारों में बहुत अंतर है। शरीयत का आदेश यह है कि प्रत्येक शासक पर यह अनिवार्य है कि वह अल्लाह के आदेशों के अनुसार निर्णय करे। यदि वह अल्लाह के आदेश के विरुद्ध कार्य करता है, तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: एक जानबूझकर और एक भूलवश। जानबूझकर किए गए कार्यों के लिए महान कुरान में तीन आदेश दिए गए हैं कि:

"और जो अल्लाह के उतारे हुए के अनुसार निर्णय न करें, तो वही लोग अवज्ञाकारी (फासिक़) हैं।" (१)	जो लोग अल्लाह तआला द्वारा उतारी गई शिक्षाओं के अनुसार निर्णय
"तो वही लोग अत्याचारी (ज़ालिम) हैं।" (२) "तो वही लोग काफिर हैं।" (३)	नहीं करते वे अवज्ञाकारी हैं, वे अत्याचारी हैं, वे काफिर हैं। (त)

कुरान मजीद ऐसे आदेश को अवज्ञा (फिस्क), अत्याचार (ज़ुल्म) और कुफ़्र (अविश्वास) कहता है। अर्थात यदि जानबूझकर हो कि आदेश को सत्य न माने तो वह काफिर है, अन्यथा अत्याचारी और अवज्ञाकारी है। और यदि भूल हो तो उसकी फिर से दो स्थितियाँ हैं: एक यह कि भूल अज्ञानता के कारण हो, अर्थात उसे सही आदेशों से परिचित होने का ज्ञान नहीं था। यह स्थिति भी हराम और अवज्ञा (फिस्क) है। सही हदीस में काज़ी (न्यायाधीश) के तीन प्रकार बताए गए हैं: "एक काज़ी स्वर्ग में है और दो काज़ी नर्क में।" वह जो विद्वान और न्यायप्रिय हो, स्वर्ग में है। और वह जो जानबूझकर आदेश के विरुद्ध कार्य करे या अज्ञानता के कारण, वे दोनों नर्क में हैं। अज्ञानता के कारण नर्क में होने का कारण यह है कि उसने ऐसे कार्य का साहस किया जिसकी वह क्षमता नहीं रखता था। वह जानता था कि वह विद्वान नहीं है और बिना ज्ञान के आदेशों का पालन संभव नहीं है, तो वह जानबूझकर आदेशों के विरोध पर सहमत हुआ। बल्कि, यदि उसके द्वारा जारी किया गया कोई आदेश शरीयत के अनुसार भी हो, तब भी वह शरीयत का विरोध कर रहा है क्योंकि इस इत्तेफाकी (आकस्मिक) अनुकूलता का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए हदीस में कहा गया:

"जिसने अपनी राय से कुरान के बारे में कुछ कहा और वह सही भी निकला, तो भी उसने गलती की।" (४)	जिसने कुरान में अपनी राय से कुछ कहा, अगर ठीक भी कहा तो भी गलत कहा।

भूल की दूसरी स्थिति यह है कि वह विद्वान है, शरिया आदेशों से अवगत है, न्याय करने की योग्यता रखता है, ईश्वरीय आदेशों के अनुसार ही निर्णय करना चाहता था और मानवीय स्वभाव के कारण गलतफहमी हो गई। इसकी फिर से दो स्थितियाँ हैं: यदि वह मुजतहिद (कानूनी तर्क में सक्षम

अधिकारी) है और उसके इज्तिहाद (स्वतंत्र कानूनी तर्क) में गलती हुई, तो उस पर उसके लिए इनाम है और वह फैसला जो उसने...

१ कुरान ५/४७ २ कुरान ५/४५ ३ कुरान ५/४४ ४ सुनन अबी दाऊद, किताब अल-इल्म, आफताब प्रेस, लाहौर में मुद्रित २/१५८

पृष्ठ ५६९ / ६७३

فتاوی رضویہ، جلد ہشتم

شرعی احکام اور عرفی خیالات میں بہت تفاوت ہے، شریعت کا حکم تو یہ ہے کہ ہر حاکم پر فرض ہے کہ مطابق احکام الہیہ کے حکم کرے، اگر خلاف حکم الہی کرے تو اس کی دو صورتیں ہیں: ایک عمداً اور ایک خطا۔ عمداً کے لئے قرآن عظیم میں تین ارشاد ہوئے کہ:

وَ مَنْ لَّمْ یَحْكُمْ بِمَاۤ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓىٕكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ﴿۴۷﴾ (1) جو لوگ اللہ تعالیٰ کی نازل کردہ تعلیمات کے مطابق فیصلہ

فَاُولٰٓىٕكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ﴿۴۵﴾ (2) فَاُولٰٓىٕكَ هُمُ نہیں کرتے وہ فاسق ہیں، وہ ظالم ہیں، وہ کافر ہیں،

الْكٰفِرُوْنَ﴿۴۴﴾ (3) (ت)

قرآن مجید اسے حکم کو فسق و ظلم و کفر فرماتا ہے یعنی اگر عمداً ہو کہ حکم کو حق نہیں مانتا تو کافر ہے ورنہ ظالم و فاسق، اور اگر خطا ہو تو اس کی پھر دو صورتیں ہیں: ایک یہ کہ خطا بوجہ جہل ہو یعنی علم نہ رکھتا تھا کہ صحیح احکام سے واقف ہوتا، یہ صورت بھی حرام و فسق ہے، صحیح حدیث میں قاضی کی تین قسمیں فرمائیں: قاضی فی الجنۃ و قاضیان فی النار۔ ایک قاضی جنت میں ہے اور دو قاضی دوزخ میں، وہ کہ عالم و عادل ہو جنت میں ہے اور وہ کہ قصداً خلاف حکم کرے یا بوجہ جہل، یہ دونوں نار میں ہیں، بوجہ جہل پر ناری ہونے کا یہ سبب ہے کہ اس نے ایسی بات پر اقدام کیا جس کی قدرت نہ رکھتا تھا وہ جانتا تھا کہ میں عالم نہیں اور بے علم مطابقت احکام ممکن نہیں، تو مخالفت احکام پر قصداً راضی ہوا، بلکہ اس سے اگر کوئی حکم مطابق شرع بھی صادر ہو جب بھی وہ مخالفت شرع کر رہا ہے کہ اس اتفاقی مطابقت کا اعتبار نہیں، ولہذا حدیث میں فرمایا:

من قال في القرآن برأيه فأصاب فقد جس نے قرآن میں اپنی رائے سے کچھ کہا اگر ٹھیک کہا تو أخطأ (4) - بھی غلط کہا۔

دوسری صورت خطا کی یہ ہے کہ عالم ہے احکام شرعیہ سے آگاہ ہے قابلیت قضا رکھتا ہے احکام الہیہ کے مطابق ہی فیصلہ کرنا چاہا اور براہ بشریت غلط فہمی ہوئی۔ اس کی پھر دو صورتیں ہیں: اگر وہ مجتہد ہے اور اس کے اجتہاد نے خطا کی تو اس پر اس کے لئے اجر ہے اور وہ فیصلہ جو اس نے

1 القرآن ۴۷/۵ 2 القرآن ۴۵/۵ 3 القرآن ۴۴/۵ 4 السنن لابی داؤد کتاب العلم مطبوعہ آفتاب پریس لاہور ۲/۱۵۸

Fatawa-e-Razviya, Volume 8

...is enforceable? And if he is an adherent (Muqallid), as the judges of the present age generally are, and he did not lack in effort but made an error in understanding the ruling, and he is a complete scholar and worthy of this noble position, then his error is forgiven, but that decision is not enforceable. All these rulings are for the judges of previous Islamic empires who were appointed for the very purpose of deciding according to divine rulings. This is contrary to the current situation of most Islamic states where the rulers themselves have mixed their fabricated false laws with Sharia rulings, and judges are ordered to decide based on them. How can one judge their identity, that they were appointed specifically to rule against Allah and His Messenger? It cannot be permissible to call such judges of these Islamic states 'Judges of Sharia' (Qadhi-e-Shar'a). Rather, the malice hidden within this term is such that if the speaker were aware of it and intended it, they would definitely be out of the fold of Islam for naming falsehood as Sharia. Therefore, the esteemed Imams said regarding the Muslim rulers of their time:

Whoever says the sultan of our time is just, has committed disbelief (Kufr). -1 | To call the sultan of our time just is disbelief.

Because they rule against divine commands, and ruling against divine commands cannot be justice. Justice is truth. So calling it justice means that going against divine commands is truth; then, God forbid, divine commands would be untruth, and this is disbelief. In any case, a judge who rules against divine commands can never be a 'Judge of Sharia'. When these are the rulings regarding the judges of an Islamic empire, then the officials of a non-Islamic state are appointed specifically to decide according to the [secular] law. As for registration, although there is no specific ruling in it, it serves as witness to documents and entering them into the register, and many of those documents are related to interest (Riba), and it is in a Sahih (authentic) Hadith:

The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) cursed the consumer of interest, its payer, its scribe, and its two witnesses, and said they are all equal. -2 | The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) cursed the one who eats interest, the one who gives it, the one who writes the interest document, and those who bear witness to it. And he said they are all equal.

The leadership (Imamat) of Friday and Eid prayers is very specific compared to the five daily prayers. In the five daily prayers, only this much...

1. Radd al-Muhtar, Kitab al-Ashribah, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 15/327.
2. Sunan Abu Dawood, Chapter on the consumer of interest, printed by Aftab Alam Press Lahore, 12/11.

फ़तावा-ए-रज़विया, खंड 8

...क्या प्रभावी है? और यदि वह मुक़ल्लिद (अनुयायी) है जैसे वर्तमान युग के क़ाज़ी आम तौर पर होते हैं, और उसने प्रयास में कोई कमी नहीं की और फ़ैसला समझने में उससे गलती हो गई, और वह पूर्ण विद्वान और इस उच्च पद के योग्य है, तो उसकी यह त्रुटि क्षम्य है लेकिन वह फ़ैसला प्रभावी नहीं होगा। ये सभी आदेश पिछली इस्लामी सल्तनतों के क़ाज़ियों के लिए हैं जो इसी कार्य के लिए नियुक्त किए गए थे कि ईश्वरीय आदेशों के अनुसार फ़ैसला करें। इसके विपरीत आज की अधिकांश इस्लामी सल्तनतों की स्थिति यह है कि जिनमें स्वयं सुल्तानों ने शरई आदेशों के साथ अपने गढ़े हुए झूठे कानूनों को भी मिला दिया है और क़ाज़ियों को उन पर फ़ैसला करने का आदेश है। उनकी पहचान का क्या अंदाज़ा हो सकता है कि वे अल्लाह और उसके रसूल के खिलाफ फ़ैसला करने के लिए ही नियुक्त हुए हैं। ऐसी इस्लामी सल्तनतों के ऐसे क़ाज़ियों को भी 'क़ाज़ी-ए-शरअ' (शरिया के न्यायाधीश) कहना हलाल नहीं हो सकता, बल्कि इस शब्द की तह में जो खबासत (बुराई) है, कहने वाला अगर उस पर अवगत हो और उसका इरादा करे तो निश्चित रूप से इस्लाम से बाहर हो जाए कि उसने असत्य का नाम शरअ रखा। इसलिए महान इमामों ने अपने समय के इस्लामी सुल्तानों के बारे में फ़रमाया कि:

जिसने हमारे ज़माने के सुल्तान को न्यायप्रिय (आदिल) कहा, उसने कुफ्र (अविश्वास) किया। -1 | हमारे ज़माने के सुल्तान को आदिल कहना कुफ्र है।

क्योंकि वे ईश्वरीय आदेशों के विरुद्ध आदेश देते हैं और ईश्वरीय आदेशों के विरुद्ध न्याय नहीं हो सकता। न्याय सत्य है, तो उसे न्याय कहने का अर्थ यह हुआ कि ईश्वरीय आदेशों के विरुद्ध होना सत्य है, तो खुदा न खास्ता ईश्वरीय आदेश असत्य हुए और यह कुफ्र है। बहरहाल, जो क़ाज़ी ईश्वरीय आदेशों के विरुद्ध फ़ैसला करता हो, वह कभी भी 'क़ाज़ी-ए-शरअ' नहीं हो सकता। जब इस्लामी सल्तनत के क़ाज़ियों के बारे में ये आदेश हैं, तो गैर-इस्लामी सल्तनत के अधिकारी तो नियुक्त ही इसलिए किए जाते हैं कि कानून के अनुसार फ़ैसला करें। रही रजिस्ट्री, उसमें हालाँकि कोई आदेश नहीं है, लेकिन वह दस्तावेज़ों पर गवाही है और उन्हें रजिस्टर पर चढ़ाना है और उनमें बहुत से दस्तावेज़ ब्याज (सूद) के भी होते हैं और सही हदीस में है:

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने ब्याज खाने वाले, ब्याज देने वाले, उसके लेखक और उसके दोनों गवाहों पर लानत फ़रमाई और फ़रमाया कि वे सब बराबर हैं। -2 | अल्लाह के

रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने सूद खाने वाले और सूद देने वाले और सूद का काग़ज़ लिखने वाले और उस पर गवाही देने वालों पर लानत फ़रमाई। और फ़रमाया कि सब बराबर हैं।

जुमा और ईदैन की इमामत पाँचों वक्त की इमामत से बहुत विशेष है, पाँच वक्त की इमामत में केवल इतना...

1. रद्दुल मुहतार, किताबुल अश्रिबा, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, 15/327।
2. सुनन अबू दाऊद, बाब फ़ी आकिलुर्रिबा, आफ़ताब आलम प्रेस लाहौर द्वारा मुद्रित, 12/11।

کیا نافذ ہے، اور اگر مقلد ہے جیسے عموماً قاضیانِ زمانہ، اور جدو جہد میں اس نے کمی نہ کی اور فہمِ حکم میں اس سے غلطی واقع ہوئی اور ہے پورا عالم اور اس عہدہ جلیلہ کے قابل، تو اس کی یہ خطا معاف ہے مگر وہ فیصلہ نافذ نہیں، یہ سب احکام قاضیانِ سلطنت اسلامیہ سابقہ کے لئے ہیں جو اسی کام کے لئے مقرر ہوئے تھے کہ مطابق احکام الٰہیہ فیصلہ کریں بخلافِ حال کہ اکثر اسلامی سلطنتوں کے جن میں خود سلاطین نے احکام شرعیہ کے ساتھ اپنے گھڑے ہوئے باطل قانون بھی خلط کئے ہیں اور قاضیوں کو ان پر فیصلہ کرنے کا حکم ہے ان کی شناخت کا کیا اندازہ ہو سکتا ہے کہ وہ اللہ و رسول کے خلاف حکم کرنے ہی پر مقرر ہوئے، ان اسلامی سلطنتوں کے ایسے قاضیوں کو بھی قاضی شرع کہنا حلال نہیں ہو سکتا بلکہ اس کلمہ کی تہہ میں جو خباثت ہے قائل اگر اس پر آگاہ ہو اور اس کا ارادہ کرے تو قطعاً خارج از اسلام ہو جائے کہ اس نے باطل کا نام شرع رکھا، ولہٰذا ائمہ کرام نے اپنے زمانہ کے سلاطین اسلام کی نسبت فرمایا کہ:

من قال لسلطان زماننا عادل فقد کفر -1 | ہمارے زمانے کے سلطان کو عادل کہنا کفر ہے۔

کہ وہ خلافِ احکام الٰہیہ حکم کرتے ہیں اور خلاف احکام الٰہیہ عدل نہیں ہو سکتا، عدل حق ہے، تو اسے عدل کہنے کے یہ معنی ہوئے کہ خلاف احکام الٰہیہ حق ہے، تو معاذ اللہ احکام الٰہیہ ناحق ہوئے اور یہ کفر ہے، بہر حال جو قاضی خلاف احکام الٰہیہ حکم کرتا ہو، ہر گز قاضی شرع نہیں ہو سکتا، جب قاضیان سلطنت اسلامیہ کی نسبت یہ احکام ہیں تو سلطنت غیر اسلامیہ کے حکام تو مقرر ہی اس لئے کئے جاتے ہیں کہ مطابق قانون فیصلہ کریں، رہی رجسٹری اس میں اگر چہ کوئی

حکم نہیں مگر وہ دستاویزوں پر شہادت ہے اور انہیں رجسٹر پر چڑھانا اور ان میں بہت دستاویزیں سود کی بھی ہوتی ہیں اور صحیح حدیث میں ہے:

لعن رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم اکل الربو و مؤکلہ و کاتبہ وشاھدیہ و قال ھم سواء -2 | رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے لعنت فرمائی سود کھانے والے اور سود دینے والے اور سود کا کاغذ لکھنے والے اور اس پر گواہیاں کرنے والوں پر۔ اور فرمایا سب برابر ہیں۔

جمعہ و عیدین کی امامت پنجگانہ کی امامت سے بہت خاص ہے، امامتِ پنجگانہ میں صرف اتنا

1 رد المحتار کتاب الاشربہ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱۵/ ۳۲۷ 2 سنن ابوداؤد باب فی آکل الربا مطبوعہ آفتاب عالم پریس لاہور ۱۲/ ۱۱

Fatawa-e-Razvia - Volume 8

...It is necessary that the Imam's purity and prayer be correct, that he recites the Great Quran correctly, that he is not a follower of a wrong creed (bid'ati), and that he is not an open sinner (fasiq mu'allin). Then, whoever leads the prayer, it will be completed without any disruption. This is contrary to Friday (Jumu'ah) and Eid prayers, for which the condition is that the Imam himself must be the Sultan of Islam or his appointee. Where these are not present, out of necessity, whoever the general Muslims have appointed as Imam for Jumu'ah and Eid, as stated in Al-Durr al-Mukhtar etc. (As it is in Durr al-Mukhtar etc. - Translator). Another person, even if he is equally scholarly and righteous, cannot lead these prayers; if he does, the prayer will not be valid. And Allah Almighty knows best.

Issue 1440: From Bengal, Mymensingh district, sent by Abdul Hakim, 28 Jumada al-Ula 1322 AH. What do the scholars of religion and the firm Sharia say regarding whether it is permissible to offer Eid prayers in the Jumu'ah mosque or not? Explain and be rewarded. The Answer: It is permissible, but the Sunnah is that Eid prayers should be held in an Eidgah (open prayer ground) as long as there is no Sharia-compliant excuse preventing it. And Allah Almighty knows best.

Issue 1441: From Gilgit, sent by Sardar Amir Khan, employee of Captain Stott, 21 Dhu al-Hijjah 1312 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue: if a person who claims to be a Muslim is informed about the Eid prayer along with other Muslims, and he has plenty of free time, but if he intentionally does not come, what should be done to him? Explain and be rewarded. The Answer: Eid prayer is obligatory (wajib) in cities for every free, healthy, sane, adult male who is capable. Capable means he is not blind, nor crippled, nor lame, nor a prisoner, nor a caregiver for a patient such that if he leaves the patient and goes, the patient would suffer, nor so old that he cannot walk, nor has a genuine fear for his life, property, or honor from a ruler, thief, or enemy while going for prayer, nor is there such intense rain, snow, mud, or cold that going for prayer would cause severe hardship.

[Boxed Text] Arabic: In Al-Tanwir, "The prayer of the two Eids is obligatory for those upon whom the Friday prayer is obligatory, with its conditions, except for the sermon." (1 - End of quote). And in the chapter on Friday in Al-Durr al-Mukhtar. Urdu: It is stated in Tanwir that Eid prayer is necessary for those for whom Friday prayer is necessary; besides the sermon, the conditions are the same. It is in the chapter on Friday in Durr al-Mukhtar that...

1: Durr al-Mukhtar, Chapter on the Two Eids, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/112.

फतावा रज़विया - खंड 8

...यह आवश्यक है कि इमाम की पवित्रता और नमाज़ सही हो, वह महान कुरान का सही पाठ करता हो, कुमार्गगामी (बद-मज़हब) न हो, खुला पापी (फ़ासिक़-ए-मुअल्लेन) न हो। फिर जो कोई नमाज़ पढ़ाएगा, वह बिना किसी व्यवधान के पूरी हो जाएगी। इसके विपरीत जुमे और ईदैन की नमाज़ों के लिए शर्त यह है कि इमाम स्वयं सुल्तान-ए-इस्लाम हो या उसका नियुक्त व्यक्ति। और जहाँ ये न हों, वहाँ आवश्यकतावश जिसे आम मुसलमानों ने जुमे और ईदैन का इमाम नियुक्त किया हो, जैसा कि 'दुर्र अल-मुख्तार' आदि में है (जैसा कि दुर्र अल-मुख्तार आदि में है। - अनुवादक)। दूसरा व्यक्ति, भले ही वह उतना ही विद्वान और सदाचारी हो, इन नमाज़ों की इमामत नहीं कर सकता; यदि वह करता है, तो नमाज़ नहीं होगी। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

प्रश्न 1440: बंगाल राज्य के मैमनसिंह जिले से, अब्दुल हकीम द्वारा प्रेषित, 28 जमादी अल-उला 1322 हिजरी। धर्म के विद्वान और सुदृढ़ शरीयत इस बारे में क्या कहते हैं कि क्या जुमे की मस्जिद में ईद की नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें। उत्तर: यह जायज़ है, लेकिन सुन्नत यह है कि ईदैन की नमाज़ ईदगाह में होनी चाहिए, जब तक कि कोई शरीयत सम्मत बाधा न हो। और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

प्रश्न 1441: गिलगित से, कप्तान स्टॉट के कर्मचारी सरदार अमीर खान द्वारा प्रेषित, 21 ज़िल हिज्जाह 1312 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि जिस व्यक्ति को मुसलमानों के साथ ईद की नमाज़ की सूचना दी जाए और वह मुसलमान होने का दावा करता हो और उसके पास पर्याप्त फ़ुर्सत हो, फिर भी अगर वह जानबूझकर न आए, तो उसके साथ क्या किया जाना चाहिए? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें। उत्तर: शहरों में ईद की नमाज़ हर आज़ाद, स्वस्थ, बुद्धिमान, बालिग पुरुष पर वाजिब (अनिवार्य) है जो सक्षम हो। सक्षम का अर्थ है कि वह अंधा न हो, लूला न हो, लंगड़ा न हो, कैदी न हो, न ही किसी ऐसे बीमार का तीमारदार हो कि यदि वह उसे छोड़कर घर से जाए तो बीमार असुरक्षित रह जाए, न ही इतना बूढ़ा हो कि चल-फिर न सके, न ही उसे नमाज़ के लिए जाने में किसी हाकिम, चोर या दुश्मन की ओर से जान, माल या इज़्ज़त का सच्चा डर हो, और न ही उस समय बारिश, बर्फ़, कीचड़ या ठंड इतनी तीव्र हो कि नमाज़ के लिए जाना अत्यंत कष्टकारी हो।

[बॉक्स पाठ] अरबी: 'तनवीर' में है, "दो ईदों की नमाज़ उन पर अनिवार्य है जिन पर जुमे की नमाज़ अनिवार्य है, सिवाय खुतबे के।" (1 - उद्धरण समाप्त)। और 'दुर्र अल-मुख्तार' के जुमा के अध्याय में

है। उर्दू: 'तनवीर' में है कि ईदैन की नमाज़ उन पर आवश्यक है जिन पर जुमा आवश्यक है, खुतबे के अलावा शर्तें भी वही हैं। 'दुर्र अल-मुख्तार' के जुमा के अध्याय में है कि...

1: दुर्र अल-मुख्तार, ईदैन का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित, 1/112।

ضرور ہے کہ امام کی طہارت و نماز صحیح ہو، قرآن عظیم صحیح پڑھتا ہو، بد مذہب نہ ہو، فاسق معلن نہ ہو، پھر جو کوئی پڑھائے گا نماز بلا خلل ہو جائے گی۔ بخلاف نمازِ جمعہ وعیدین کہ ان کے لئے شرط ہے کہ امام خود سلطان اسلام ہو یا اس کا ماذون، اور جہاں یہ نہ ہوں تو بضرورت جسے عام مسلمانوں نے جمعہ و عیدین کا امام مقرر کیا ہو کما فی الدر المختار وغیرہ (جیسا کہ در مختار وغیرہ میں ہے۔ ت) دوسرا شخص اگر ایسا ہی عالم وصالح ہو ان نمازوں کی امامت نہیں کر سکتا اگر کرے گا نماز نہ ہوگی۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۴۴۰: از ملک بنگال ضلع میمن سنگھ مرسلہ عبدالکیم ۲۸ جمادی الاولٰی ۱۳۲۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و شرع متین اس بارہ میں کہ جمعہ مسجد میں نمازِ عید پڑھنا جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا الجواب: جائز ہے مگر سنت یہ ہے کہ نمازِ عیدین عید گاہ میں چاہئے جبکہ کوئی عذرِ شرعی مانع نہ ہو، واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۴۴۱: از گلگت مرسلہ سردار امیر خاں ملازم کپتان اسٹوٹ ۲۱ ذی الحجہ ۱۳۱۲ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ جس شخص کو نمازِ عید کی خبر دی جائے اہل اسلام کو اور وہ دعوٰی کرتا ہے اسلام کا اور اس کو فرصت بہت ہے، اگر وہ قصداً نہ آئے تو اس کو کیا کیا جائے؟ بینوا توجروا الجواب: نمازِ عید شہروں میں ہر مرد آزاد، تندرست، عاقل، بالغ، قادر پر واجب ہے، قادر کے یہ معنی کہ نہ اندھا ہو، نہ لولا ہو، نہ لنگھا، نہ قیدی، نہ کسی ایسے مریض کا تیماردار ہو کہ یہ اسے چھوڑ کر گھر سے جائے تو مریض ضائع رہ جائے، نہ ایسا بوڑھا کہ چل پھر نہ سکے، نہ اسے نماز کو جانے میں حاکم یا چور یا دشمن کی طرف سے جان یا مال یا عزت

کا سچا خوف ہو، نہ اس وقت مینہ یا برف یا کیچڑ یا سردی اس قدر شدت سے ہو کہ نماز کو جانا سخت مشقت کا موجب ہو،

[باکس تحریر] فی التنویر تجب صلوتھما ای العیدین علی من تجب علیه الجمعة بشرائطھا سوی الخطبة 1 اھ و في جمعة الدرالمختار | تنویر میں ہے عیدین کی نماز ان پر لازم ہے جن پر جمعہ لازم ہے، خطبہ کے علاوہ شرائط بھی وہی ہیں اھ تنویر میں ہے عیدین کی نماز ان پر لازم ہے جن پر جمعہ لازم ہے، خطبہ کے علاوہ شرائط بھی وہی ہیں اھ در مختار کے باب جمعہ میں ہے کہ

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۲

Fatawa Razawiyya - Volume Eight

Conditions for its (Friday Prayer) obligation include residency in a city and good health. Along with the sick, the caregiver (the one attending the patient such that if they were to leave, the patient would be neglected) and the frail elderly are also exempted. Other conditions include freedom, being male, adulthood, sanity, having sight, the ability to walk, not being imprisoned, absence of fear, heavy rain, mud, snow, etc. Summarized from Radd al-Muhtar: The statement 'caregiver' applies if the patient would be left neglected by their departure, according to the more correct opinion in Hilya and Jawhara. The statement 'absence of fear' refers to fear of a ruler or a thief, as mentioned in Minah. It is stated in Al-Imdad: an insolvent person is also included if they fear imprisonment, just as Tayammum is permissible for them. The statement 'and the like' refers to extreme cold. (Summary concludes).

Any person in a city who possesses these qualities and is free from these impediments, and if Eid is held there according to Sharia, yet does not perform it, then they are a sinner and legally deserve punishment and reprimand 'for committing a sin for which there is no fixed Hadd (legal penalty)'. (Because it is the commission of a sin that doesn't have a prescribed limit. - T). And Allah Almighty knows best.

Problem 1422: From Rampur, adjacent to Moradabad, Mulla Zarif neighborhood, Gher Farangan Mahal, sent by Maulvi Riyasat Hussain Sahib, 4th Ramadan-ul-Mubarak 1315 AH.

Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: in which year did the additional Takbirs (Takbirat-e-Zawaid) of the two Eids begin, and what was the reason for them?

Footnotes: 1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Friday (Jumu'ah), published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/112. 2. Radd al-Muhtar, section on conditions of Jumu'ah, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/202. 3. Radd al-Muhtar, section on conditions of Jumu'ah, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/203.

इसकी (जुमे की नमाज़ की) फ़र्ज़ियत के लिए शहर में मुकीम (निवासी) होना और स्वस्थ होना शर्त है। और मरीज़ के साथ मुमर्रिज़ (मरीज का तीमारदार कि अगर वह उसे छोड़कर घर से जाए तो मरीज लाचार रह जाए) और शेख-ए-फानी (वह वृद्ध जो चलने में असमर्थ है) शामिल है। साथ ही आज़ाद होना, पुरुष होना, बालिग़ होना, अक़्लमंद होना, दृष्टि का होना, चलने की शक्ति होना, बंदी न होना, भय न होना, भारी बारिश, कीचड़, बर्फ़ वगैरह न होना आवश्यक है। (रद्दुल मुहतार से संक्षिप्त)। मुमर्रिज़ का अर्थ है कि यदि तीमारदार के जाने से मरीज़ को नुकसान हो, जैसा कि हिलिया और जौहरा की सही राय है। 'भय का न होना' का अर्थ है सुल्तान या चोर का डर न होना, जैसा कि मिनह में है। अल-इमदाद में कहा गया है कि दिवालिया व्यक्ति भी इसमें शामिल है यदि उसे कैद का डर हो, ठीक वैसे ही जैसे उसके लिए तयम्मुम जायज़ है। 'व नहवुहुमा' यानी इन दोनों के समान जैसे भीषण ठंड। (त)

जो व्यक्ति शहर में इन गुणों से युक्त हो और इन बाधाओं से मुक्त हो और वहाँ शरीयत के अनुसार ईद की नमाज़ हो रही हो, फिर भी वह उसे न पढ़े, तो वह गुनहगार होगा और शरीयत के अनुसार सजा और ताज़ीर का हक़दार होगा। क्योंकि यह एक ऐसी अवज्ञा (पाप) का कार्य है जिसके लिए कोई निर्धारित 'हद' (निश्चित दंड) नहीं है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1422: रामपुर, मुरादाबाद के पास, मुहल्ला मुल्ला ज़रीफ़, घेर फरंगन महल से, मौलवी रियासत हुसैन साहब द्वारा भेजा गया, 4 रमज़ान-उल-मुबारक 1315 हिजरी।

प्रश्न: दीन के उलेमा इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ईदैन की तकबीरत-ए-ज़वाइद किस साल शुरू हुईं और उनकी वजह क्या थी?

पाद-टिप्पणी: 1. दुर्र-ए-मुख्तार, बाबुल जुमा, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/112 2. रद्दुल मुहतार, मतलब फी शरुतुल जुमा, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/202 3. रद्दुल मुहतार, मतलब फी शरुतुल जुमा, मुतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/203

شرط لافتراضها اقامة بمصر و صحة و الحق بالمریض الممرض والشیخ الفانی وحریة وذکورة وبلوغ وعقل ووجود بصروقدرته علی المشی وعدم حبس و خوف ومطر شدید ودحل وثلج و نحوهما اه ملخصاً فی ردالمحتار قوله الممرض، هذا ان بقی المریض ضائعاً بخروجه في الاصح حلیة وجوهرة ، قوله وعدم خوف ای من السلطان اولص، منح، قال فی الامداد ویلحق به المفلس اذاخاف الحبس کما جاز التیمم به قوله ونحوهما ای کبرد شدید اه ملتقطاً

اس کی فرضیت کے لئے شہر میں مقیم ہونا اور صحتمند ہونا شرط ہے اور مریض کے ساتھ ممرض (مریض کا تیمار دار کہ یہ اسے چھوڑ کر گھر سے جائے تو مریض ضائع رہ جائے) شیخ فانی ملحق ہے، حریت، ذکورت، بلوغ، عقل، نظر کا ہونا، چلنے پر قدرت، نہ قیدی، نہ خوف، نہ شدید بارش، نہ کیچڑ، نہ برف وغیرہ ہو اھ ملخصاً، ردالمحتار میں ہے کہ ماتن کا قول کہ ممرض یعنی مریض کا تیمار دار وہ کہ اسے چھوڑ کر گھر سے چلا جائے تو مریض ضائع رہ جائے، حلیہ و جوہرہ، اور ماتن کا قول عدم خوف، سلطان کا یا چور کا، منح، امداد میں ہے اس کے ساتھ مفلس بھی لاحق ہے جب اسے حبس کا خوف ہو جیسا کہ اس کے لئے تیمم جائز ہے، ماتن کا قول و نحو ہما یعنی دونوں کی مثل یعنی شدید سردی اھ ملتقطاً۔ (ت)

جو شخص شہر میں ان صفات کا جامع اور ان موانع سے خالی ہو اور وہاں عید، برو جہ شرعی ہو پھر نہ پڑھے تو گنہگار اور شرعاً مستحق سزا و تعزیر ہوگا لارتکابہ معصیۃ لا حد فیھا (کیونکہ یہ ایسی معصیت کا ارتکاب ہے جس میں حد نہیں ہے۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۴۲۲: از رام پور متصل مراد آباد محلہ ملا ظریف گھیر فرنگن محل مرسلہ مولوی ریاست حسین صاحب ۴ رمضان المبارک ۱۳۱۵ھ

چہ می فرمایند علمائے دین دریں مسئلہ کہ تکبیرات زوائد عیدین بکدام سال مشروع شدہ اند و علتش چہ بود؟ | اس بارے میں علمائے کرام کیا فرماتے ہیں کہ عیدین کی تکبیرات زائد کس سال شروع ہوئیں اور ان کی علت کیا ہے؟

حواشی: 1 در مختار باب الجمعہ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۲ 2 ردالمحتار مطلب فی شروط الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۲۰۲ 3 ردالمحتار مطلب فی شروط الجمعۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۲۰۳

Fatawa Razawiyya Volume 8

Answer: The legislation for the Eid prayer was in the first year of the Hijrah. In 'Al-Durr al-Mukhtar' it is stated that in the first year of Hijrah, the Eid prayer began, but it was not well-known in Shariah except in this manner and form. The wisdom in the Takbirat is to express religious joy and to obey the command of Allah Almighty: "and that you should complete the number and that you should exalt the greatness of Allah for His having guided you" (Quran 2:185). This is for Eid-ul-Fitr. And the word of the Almighty: "that you may magnify Allah for what He has guided you to; and give good news to the doers of good" (Quran 22:37) is regarding Eid-ul-Adha. And Allah knows best.

Problem 1242: From the aforementioned questioner. What do the scholars of the religion say on this matter: if Eid prayer is not performed on the first day without an excuse, is it permissible on the second day with dislike (karahat), as written in some sermons, or is it not correct at all? Please explain and be rewarded.

Answer: In the Eid-ul-Fitr prayer, the permission for a one-day delay due to an excuse is given. There, the condition of an excuse is not just for negating dislike, but for the fundamental validity of the prayer. That is, if it is not prayed on the first day without an excuse, it is not correct at all on the second day, not that it is permissible with dislike. This is explicitly stated in the general reliable books. The author of the sermon, being an unknown person, is not reliable. He likely confused it with the Eid-ul-Adha prayer, where a two-day delay is permissible: without dislike in case of an excuse, and with dislike in the absence of an excuse.

In 'Al-Durr al-Mukhtar': Delay is allowed until the zenith of the next day only, due to an excuse like rain. Its rulings are like the rulings of Adha, but it is permissible to delay it (Adha) until the end of the third day of slaughter (Nahr). In 'Durr-e-Mukhtar' it is said that due to an excuse, for example rain, it can only be delayed until the zenith of the second day, and the rulings of Eid-ul-Fitr are like those of Eid-ul-Adha, but Eid-ul-Adha...

1 Quran 2/185 2 Quran 22/37

Page 573 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

जवाब: ईद की नमाज़ का विधान हिजरत के पहले साल में हुआ। 'अल-दुर अल-मुख्तार' में है कि हिजरत के पहले साल में ईद की नमाज़ शुरू हुई, लेकिन शरीयत में वह उस समय इस विशेष पद्धति और स्वरूप में प्रसिद्ध नहीं हुई थी। तकबीरात में हिकमत धार्मिक खुशी का इज़हार करना और अल्लाह तआला के इस फरमान पर अमल करना है कि "और ताकि तुम गिनती पूरी कर सको और अल्लाह की बड़ाई बयान करो उस पर जो उसने तुम्हें हिदायत दी" (कुरान २:१८५)। यह ईद-उल-फितर के बारे में है। और अल्लाह तआला का फरमान "ताकि तुम अल्लाह की बड़ाई बयान करो उस पर जो उसने तुम्हें हिदायत दी और नेकी करने वालों को खुशखबरी सुना दो" (कुरान २२:३७) ईद-उल-अज़हा के बारे में है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

मसला १२४२: उपरोक्त प्रश्नकर्ता। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि यदि बिना किसी उज़्र (बहाने/कारण) के पहले दिन ईद की नमाज़ न पढ़ी जाए, तो क्या दूसरे दिन कराहत (नापसंदगी) के साथ जायज़ है जैसा कि कुछ खुतबों (प्रवचनों) में लिखा है, या यह बिल्कुल सही नहीं है? बयान करें और पुण्य प्राप्त करें।

जवाब: ईद-उल-फितर की नमाज़ में उज़्र के कारण एक दिन की देरी की जो अनुमति दी गई है, वहाँ उज़्र की शर्त केवल कराहत को खत्म करने के लिए नहीं बल्कि नमाज़ की असल सेहत (वैधता) के लिए है। यानी अगर बिना उज़्र के पहले दिन न पढ़ी जाए तो दूसरे दिन वह बिल्कुल सही नहीं है, ऐसा नहीं है कि वह कराहत के साथ जायज़ हो। विश्वसनीय किताबों में इसकी स्पष्ट व्याख्या है। खुतबे का लेखक जो कि एक अज्ञात व्यक्ति है, विश्वसनीय नहीं है। उसे शायद ईद-उल-अज़हा की नमाज़ से भ्रम हो गया है, जहाँ उज़्र के कारण दो दिन की देरी बिना कराहत के और बिना उज़्र के कराहत के साथ जायज़ है।

'अल-दुर अल-मुख्तार' में: उज़्र जैसे बारिश के कारण केवल अगले दिन के ज़वाल (दोपहर) तक देरी की जा सकती है। इसके नियम अज़हा के नियमों की तरह हैं, लेकिन उसे (अज़हा को) नह्र (कुर्बानी) के तीसरे दिन के अंत तक विलंबित करना जायज़ है। 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है कि उज़्र मसलन बारिश की वजह से सिर्फ दूसरे दिन ज़वाल तक मुअख़्ख़र (देरी) की जा सकती है और ईद-उल-फितर के अहकाम ईद-उल-अज़हा की तरह हैं लेकिन ईद-उल-अज़हा...

१ कुरान १८५/२ २ कुरान ३७/२२

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

الجواب: تشریع نماز عید در سال اول از ہجرت ست فی الدر شرح فی الاولی من الھجرۃ واو معروف نہ شد در شرع مگر بہمیں نہج و وضع و حکمت در تکبیرات اظہار سرور دینی و امتثال قول اللہ تعالٰی ست عز جلالہ "وَلِتُكْمِلُوا الْعِدَّةَ وَلِتُكَبِّرُوا اللهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ" ۱ ھذا فی عید الفطر وقولہ عزوجل لِتُكَبِّرُوا اللهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ وَبَشِّرِ الْمُحْسِنِيْنَ ۲ فی عید الاضحی۔ واللہ تعالٰی اعلم نماز عید ہجرت کے سال اول میں شروع ہوئی ، در میں ہے کہ نماز عید ہجرت کے پہلے سال شروع ہوئی ، اور وہ شرع میں معروف نہ ہوئی تھی ، مگر اسی سلوب و طریقہ پر ، اور تکبیرات میں حکمت دینی سرور کا اظہار اور اللہ تعالٰی کے اس فرمان پر عمل ہے کہ تم اس مدت (رمضان) کو مکمل کرو اور اللہ کی عطا کردہ ہدایت پر اللہ کی بڑائی بیان کرو ، یہ عید الفطر میں ہے ، اور اللہ تعالٰی کا فرمان ہے تم اللہ تعالٰی کی عطا کردہ ہدایت پر تکبیر کہو اور محسنین کو بشارت دو ، یہ عید الاضحی کے بارے میں ہے ، واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۴۲ : سائل مذکورہ بالا کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ اگر بلا عذر عید روز اول نہ پڑھیں تو روز دوم مع الکراہت جائز ہے جیسا کہ بعض خطبوں میں لکھا ہے یا اصلاً صحیح نہیں؟ بینواتوجروا

الجواب: نماز عید الفطر میں جو بوجہ عذر ایک دن کی تاخیر روا رکھی ہے وہاں شرط عذر صرف نفی کراہت کے لئے نہیں بلکہ اصل صحت کے لئے ہے یعنی اگر بلا عذر روز اول نہ پڑھے تو روز دوم اصلاً صحیح نہیں، نہ یہ کہ مع الکراہت جائز ہو، عامہ معتبرات میں اس کی تصریح ہے مصنف خطبہ کہ شخص مجہول ہے قابل اعتماد نہیں اسے نماز عید الاضحی سے اشتباہ گزرا کہ وہاں دو روز کی تاخیر بوجہ عذر بلا کراہت اور بلا عذر بوجہ کراہت روا ہے۔

فی الدرلمختار وتأخر کمطر الی الزوال من الغد فقط واحکامها احکام الاضحی لکن یجوز تاخیرها الی آخر ثالث ایام النحر در مختار میں ہے کہ عذر مثلاً بارش کی وجہ سے فقط دوسرے دن زوال تک مؤخر کی جاسکتی ہے اور عید الفطر کے احکام عید الاضحی کی طرح ہیں لیکن عید الاضحی

۱ القرآن ۲/۱۸۵ ۲ القرآن ۲۲/۳۷

Fatawa Razawiyya, Volume 8

[Main Table]

Arabic Column: Without an excuse, with dislike, and with it, i.e., with an excuse, without it (the dislike). So, the excuse here is to negate the dislike. Regarding Eid al-Fitr, it is for validity (1). Abridged. In 'Nur al-Idah' and its commentary 'Maraqi al-Falah,' both by Imam al-Shurunbulali, the Eid al-Fitr prayer can be delayed until the next day only due to an excuse. The condition of an excuse is for the validity of the prayer, not just to negate the dislike. Thus, if there is no excuse, it is not valid on the next day (2). Collected. In 'Majma' al-Anhur' by Fadil Shaykhzada, the excuse in [Eid] al-Adha is to negate the dislike, and in [Eid] al-Fitr, it is for validity (3). In the commentary of 'al-Niqayah' by ash-Shams al-Quhistani, if it is left without an excuse, it lapses as stated in 'al-Khazanah' (4). In 'Sharh al-Munyah al-Kabir' by al-'Allamah al-Halabi, the Eid al-Adha prayer is permissible on the second and third days, whether delayed with or without an excuse. As for the Eid al-Fitr prayer, it is not permissible except on the second day, provided there was an excuse on the first day (5). In 'al-Fatawa al-Khaniyyah,' if the Eid al-Fitr prayer is missed on the first day due to an excuse, it is prayed on the second day; if it is missed without an excuse, it is not prayed on the second day.

Urdu Column: It can be delayed without an excuse until the third day of the days of sacrifice (Ayyam al-Nahr). However, there is dislike (karahat), and if there is an excuse, there will be no dislike. Here, having an excuse is to negate the dislike, and in Eid al-Fitr, it is for the validity [of the prayer]. Abridged from Nur al-Idah and its commentary Maraqi al-Falah, where Imam Shurunbulali states that Eid al-Fitr can be delayed until the second day due to an excuse. The condition of an excuse is for validity, not for negating dislike. So, when there is no excuse, the prayer will not be valid on the second day. In Majma' al-Anhur, Fadil Shaykhzada says that in Adha, an excuse is to negate dislike, and in Fitr, it is for validity. In the commentary of Niqayah by Shams Quhistani, it is stated that if the Eid prayer is left without an excuse, it will lapse; it is the same in Khazana. In Sharh Munyah al-Kabir by Allama Halabi, it is stated that the Eid al-Adha prayer is permissible on the second and third days as well, whether it was delayed due to an excuse or without one. However, if the Eid al-Fitr prayer could not be offered on the first day due to some excuse, it can only be offered on the second day. In Fatawa Khaniyyah, it is stated that if Eid al-Fitr was missed on the first day due to some excuse, then on the second day...

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed by Mujtabai Press, Delhi, 1/116. 2. Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter of the Rulings of the Two Eids, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, 393. 3. Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur, Chapter of the Prayer of the Two Eids, printed by Dar Ihya al-Turath al-Arabi, Beirut, 1/175. 4. Jami' al-Rumuz, Section on the Two Eids, printed by Maktaba Islamia, Gunbad Qamus, Iran, 1/175. 5. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Chapter of the Two Eids, printed by Suhail Academy, Lahore, p. 571.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

[मुख्य तालिका]

अरबी कॉलम: बिना किसी बहाने (उज़्र) के नापसंदगी (कराहियत) के साथ, और उसके साथ, यानी बहाने के साथ, बिना उसके(कराहियत)। तो, यहाँ बहाना नापसंदगी को नकारने के लिए है। ईद-उल-फित्र के संबंध में, यह वैधता (सिहत) के लिए है (1)। संक्षेप में। 'नूर अल-ईदाह' और उसकी व्याख्या 'मराकी अल-फ़लाह' में, दोनों इमाम अल-शुरुनबुलाली द्वारा, ईद-उल-फित्र की नमाज़ केवल किसी बहाने (उज़्र) के कारण अगले दिन तक टाली जा सकती है। बहाने की शर्त नमाज़ की वैधता के लिए है, न कि केवल नापसंदगी को दूर करने के लिए। इस प्रकार, यदि कोई बहाना नहीं है, तो यह अगले दिन मान्य नहीं है (2)। संगृहीत। फ़ादिल शेखज़ादा द्वारा 'मजमा अल-अन्हुर' में, [ईद] अल-अज़हा में बहाना नापसंदगी को नकारने के लिए है, और [ईद] अल-फित्र में यह वैधता के लिए है (3)। अज़-शम्स अल-कुहिस्तानी द्वारा 'अल-निक़ाया' की व्याख्या में, यदि इसे बिना किसी बहाने के छोड़ दिया जाता है, तो यह समाप्त हो जाता है जैसा कि 'अल-खज़ाना' में बताया गया है (4)। 'शराह अल-मुन्याह अल-कबीर' में अल्लामा अल-हलबी द्वारा, ईद अल-अज़हा की नमाज़ दूसरे और तीसरे दिन जायज़ है, चाहे वह बहाने के साथ टाली गई हो या बिना किसी बहाने के। जहाँ तक ईद अल-फित्र की नमाज़ का सवाल है, यह दूसरे दिन के अलावा जायज़ नहीं है, बशर्ते कि पहले दिन कोई बहाना रहा हो (5)। 'अल-फ़तावा अल-खानियाह' में, यदि ईद अल-फित्र की नमाज़ पहले दिन किसी बहाने के कारण छूट जाती है, तो इसे दूसरे दिन पढ़ा जाता है; यदि यह बिना किसी बहाने के छूट जाती है, तो इसे दूसरे दिन नहीं पढ़ा जाता है।

उर्दू कॉलम: कुर्बानी के दिनों (अय्याम-ए-नहर) के तीसरे दिन तक बिना किसी बहाने के देरी की जा सकती है, हाँ, कराहियत (नापसंदगी) है और अगर बहाना होगा तो कराहियत नहीं होगी, यहाँ बहाने का होना कराहियत की नफ़ी (नकारने) के लिए है और ईद-उल-फित्र में सिहत (वैधता) के लिए है। 'नूर अल-ईदाह' और इसकी व्याख्या 'मराकी अल-फ़लाह' का सारांश है, जहाँ अल्लामा शुरुनबुलाली फ़रमाते हैं कि उज़्र (बहाने) की वजह से ईद-उल-फित्र को दूसरे दिन तक टाला जा सकता है, उज़्र की शर्त जवाज़ (वैधता) के लिए है नफ़ी-ए-कराहियत के लिए नहीं, तो जब उज़्र न हो तो दूसरे दिन में नमाज़ सही नहीं होगी। 'मजमा अल-अन्हुर' में फ़ादिल शेखज़ादा कहते हैं कि अज़हा में उज़्र नफ़ी-ए-कराहियत और फ़ित्र में जवाज़ के लिए है। शम्स कुहिस्तानी द्वारा 'शराह निक़ाया' में है कि अगर ईद की नमाज़ बिना उज़्र के छोड़ दी जाए तो साक़ित (समाप्त) हो जाएगी, 'खज़ाना' में भी इसी तरह है।

अल्लामा हलबी द्वारा 'शराह मुन्या कबीर' में है कि ईद-उल-अज़हा की नमाज़ दूसरे और तीसरे दिन भी जायज़ है चाहे उज़्र की वजह से मोख़र (देरी) हुई हो या बिना उज़्र, लेकिन नमाज़ ईद-उल-फित्र अगर पहले दिन किसी उज़्र की वजह से अदा न की जा सकी तो फ़क़त (केवल) दूसरे दिन पढ़ी जा सकती है। 'फ़तावा खानिया' में है कि अगर किसी उज़्र की वजह से ईद-उल-फित्र पहले दिन रह गई तो दूसरे दिन...

[पादलेख] 1. दुर्र अल-मुख्तार, ईदैन का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/116 द्वारा मुद्रित। 2. मराकी अल-फ़लाह साथ में हाशियत अल-तहतावी, ईदैन के अहकाम का अध्याय, नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब, कराची, 393 द्वारा मुद्रित। 3. मजमा अल-अन्हुर शराह मुल्तक़ा अल-अबहुर, ईदैन की नमाज़ का अध्याय, दार इह्या अल-तुराथ अल-अरबी बेरूत, 1/175 द्वारा मुद्रित। 4. जामे अल-रुमूज़, ईदैन पर खंड, मकतबा इस्लामिया गुंबद क़ामूस ईरान, 1/175 द्वारा मुद्रित। 5. ग़ुनियत अल-मुस्तमली शराह मुनियत अल-मुसल्ली, ईदैन का अध्याय, सुहैल एकेडमी लाहौर, पृष्ठ 571 द्वारा मुद्रित।

فتاوی رضویہ ، جلد ہشتم

[جدول]

عربی کالم: بلا عذر مع الکراھة وبه ای بالعذر بدونها فالعذر هنا النفی الکراھة وفی الفطر للصحة ١ اه ملخصاً وفی نورالایضاح وشرحه مراقی الفلاح کلاهما للعلامة الشرنبلالی تؤخر صلوة عید الفطر بعذر الی الغد فقط وقید العذر للجواز لالنفی الکراھة فاذا لم یکن عذر لا تصح فی الغد ٢ اه ملتقطاً وفی مجمع الانهر للفاضل شیخی زاده العذر فی الاضحی لنفی الکراھة وفی الفطر للجواز ٣ وفی شرح النقایة للشمس القهستانی لوترکت بغیر عذر سقطت کما فی الخزانة ٤ اهـ ففی شرح المنیة الکبیر للعلامة الحلبی صلوة عید الاضحی تجوز فی الیوم الثانی والثالث سواء اخرت بعذر اوبدونه اما صلوة الفطر فلاتجوز الا فی الثانی بشرط حصول العذر فی الاول ٥ اه وفی الفتاوی الخانیة ان فاتت صلوة الفطر فی الیوم الاول بعذر یصلی فی الیوم الثانی وان فاتت بغیر عذر لا یصلی فی الیوم الثانی

اردو کالم: کو بلا عذر ایام نحر کے تیسرے دن تک مؤخر کیا جاسکتا ہے ، ہاں کراہت ہے اور عذر ہو گا تو کراہت نہیں ہوگی ، یہاں عذر کا ہونا نفی کراہت کے لئے ہے اور عید الفطر میں صحت کے لئے اھ تلخیصاً نورالایضاح اور اس کی شرح مراقی الفلاح میں علامہ شرنبلالی فرماتے ہیں کہ عذر کی وجہ سے عید الفطر کو دوسرے دن تک مؤخر کیا جاسکتا ہے ، عذر کی قید جواز کے لئے ہے نفی کراہت کے لئے نہیں ، تو جب عذر نہ ہو تو دوسرے دن میں نماز صحیح نہ ہو گی اھ ملتقطاً، مجمع الانہر میں فاضل شیخی زادہ کہتے ہیں کہ اضحی میں عذر نفی کراہت اور فطر میں جواز کے لئے ہے ، شرح نقایہ لشمس قہستانی میں ہے کہ اگر نماز عید بغیر عذر کے چھوڑ دی تو ساقط ہو جائے گی ، خزانہ میں بھی اسی طرح ہے اھ شرح منیہ کبیر للعلمہ حلبی میں ہے کہ عید

الاضحیٰ کی نماز دوسرے اور تیسرے دن بھی جائز ہے خواہ عذر کی وجہ سے موخر ہوئی یا بلا عذر ، لیکن نماز عید الفطر اگر پہلے دن کسی عذر کی وجہ سے ادا نہ کی جاسکی تو فقط دوسرے دن پڑھی جاسکتی ہے اھ فتاوی خانیہ میں ہے کہ اگر کسی عذر کی وجہ سے عید الفطر پہلے دن رہ گئی تو دوسرے دن

[حواشی] 1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۶ 2 مراقی الفلاح مع حاشیة الطحطاوی باب احکام العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ۳۹۳ 3 مجمع الانہر شرح ملتقی الابحر باب صلوة العیدین مطبوعه دار احیاء التراث العربی بیروت ۱ / ۱۷۵ 4 جامع الرموز فصل فی العیدین مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱ / ۱۷۵ 5 غنیة المستملی شرح منیة المصلی باب العیدین مطبوعہ سہیل اکیڈمی لاہور ص ۵۷۱

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

(Table Content - Left Column: Arabic | Right Column: Urdu) Arabic: If it is missed on the second day with or without an excuse, it is not prayed after that. As for Eid al-Adha, if it is missed on the first day with or without an excuse, it is prayed on the second day. If it is missed on the second day with or without an excuse, it is prayed on the third day. If it is missed on the third day with or without an excuse, it is not prayed after that. [1] It is mentioned in Al-Hindiyyah from the explanation of Imam al-Zayla'i: The 'excuse' mentioned here is to negate the dislikedness (karahah), to the extent that if they delayed it up to three days without an excuse, the prayer would be valid, though they would have acted wrongly. Regarding [Eid] al-Fitr, the excuse is for validity, to the extent that if they delayed it until the next day without an excuse, it would not be permissible. [2] End. The same is in Ramz al-Haqa’iq of Allamah al-Ayni. (T) Urdu: ...be performed, and if there was no excuse, it cannot be prayed on the second day. And if it could not be prayed on the second day either, whether there was an excuse or not, then it cannot be prayed after that. As for the Eid al-Adha prayer, if it was missed on the first day due to an excuse or without an excuse, it should be performed on the second day. If it was missed on the second day, whether there was an excuse or not, it should be performed on the third day. And if it remained unperformed on the third day too, whether there was an excuse or not, then it cannot be performed after that. It is mentioned in Hindiyyah from the 'Tabyin' of Imam al-Zayla'i that here 'excuse' is for the negation of dislike (karahat), such that even if the prayer was delayed for three days without an excuse, the prayer is still valid, although delaying it was a bad act. In [Eid al-] Fitr, an excuse is necessary for validity, such that if the prayer was delayed until the second day without an excuse, its performance would not be permissible. End. Similar is mentioned in Allamah Ayni's Ramz al-Haqa'iq. (T)

In short, the opposite of this has not come across the humble writer's sight even in a weak narration in the standard books.

(Table Content - Left Column: Arabic | Right Column: Urdu) Arabic: O Allah, except for what I saw in 'Jawahir al-Akhlati' from his saying: "If the Eid al-Fitr prayer is missed on the first day with or without an excuse, it is prayed on the second day and not prayed after it." End. So it is thought that this might be a confusion (khalt) by al-Akhlati, for I have seen other issues of his where he contradicted the reliable books and authoritative scriptures, or it could be a mistake of the scribe. And Allah the Almighty knows best. Urdu: Except that I saw this text in Jawahir al-Akhlati that when the Eid al-

Fitr prayer is missed on the first day, whether there was an excuse or not, it should be performed on the second day and cannot be prayed after that. End. So the suspicion is that this is a confusion by Akhlati because I have seen in numerous issues that he writes against the reliable books and authoritative scriptures, or this could be a mistake of the scribe. And Allah the Almighty knows best. (T)

[1] Fatawa Qadi Khan, Chapter on the Prayer of the Two Eids, printed by Munshi Naval Kishore Lucknow, 1/88. [2] Fatawa Hindiyyah, Chapter on the Prayer of the Two Eids, Nuri Kutub Khana Peshawar, 1/153.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

(तालिका सामग्री - बायां कॉलम: अरबी | दायां कॉलम: उर्दू) अरबी: यदि यह दूसरे दिन किसी बहाने या बिना बहाने के छूट जाए, तो उसके बाद नहीं पढ़ी जाएगी। जहाँ तक ईद-उल-अज़हा का सवाल है, यदि यह पहले दिन किसी बहाने या बिना बहाने के छूट जाए, तो दूसरे दिन पढ़ी जाएगी। यदि दूसरे दिन भी छूट जाए, तो तीसरे दिन पढ़ी जाएगी। यदि तीसरे दिन भी छूट जाए, तो उसके बाद नहीं पढ़ी जाएगी। [1] अल-हिंदिया में इमाम ज़ैलई के'तबीन' के हवाले से उल्लेख है: यहाँ 'बहाना' (उज़्र) नापसंदगी (कराहियत) को दूर करने के लिए है, यहाँ तक कि अगर उन्होंने बिना किसी बहाने के इसे तीन दिनों तक विलंबित किया, तो नमाज़ वैध होगी, हालाँकि उन्होंने बुरा किया। ईद-उल-फ़ित्र के संबंध में, बहाना वैधता के लिए है, यहाँ तक कि अगर उन्होंने बिना किसी बहाने के अगले दिन तक विलंबित किया, तो यह जायज़ नहीं होगा। [2] समाप्त। अल्लामा ऐनी की 'रमज़ अल-हक़ाएक' में भी ऐसा ही है। (त) उर्दू: ...अदा की जाए और अगर उज़्र (बहाना) न था तो दूसरे दिन नहीं पढ़ी जा सकती, और अगर दूसरे दिन भी न पढ़ी जा सकी ख़्वाह उज़्र था या नहीं, तो इसके बाद नहीं पढ़ी जा सकती, बाक़ी नमाज़ ईद-उल-अज़हा अगर उज़्र या बग़ैर उज़्र पहले दिन रह गई तो दूसरे दिन पढ़ ली जाए, अगर दूसरे दिन फ़ौत हो गई उज़्र था या न था तो तीसरे दिन पढ़ ली जाए, और अगर तीसरे दिन भी रह गई ख़्वाह उज़्र था या न था तो इसके बाद अदा नहीं की जा सकती, हिंदिया में इमाम ज़ैलई की तबीन से है कि यहाँ उज़्र नफ़िए-कराहियत के लिए है, यहाँ तक कि अगर बग़ैर उज़्र के तीन दिन नमाज़ मौख़र (विलंबित) कर दी तो अब भी नमाज़ जायज़ अलबत्ता ताख़ीर करके बुरा किया और फ़ित्र में उज़्र जवाज़ के लिए है यहाँ तक कि अगर बग़ैर उज़्र के नमाज़ दूसरे दिन तक मौख़र की तो अब इसकी अदायगी जायज़ न होगी इन्तहा, अल्लामा ऐनी की रमज़ अल-हक़ाएक में इसी तरह है। (त)

संक्षेप में, प्रचलित पुस्तकों में फ़क़ीर की नज़र से इसके विपरीत कोई कमज़ोर रिवायत (कथन) भी नहीं गुज़री।

(तालिका सामग्री - बायां कॉलम: अरबी | दायां कॉलम: उर्दू) अरबी: ऐ अल्लाह, सिवाय उसके जो मैंने 'जवाहर अल-अख़लाती' में उनके इस कथन में देखा: "यदि ईद-उल-फ़ित्र की नमाज़ पहले दिन किसी बहाने या बिना बहाने के छूट जाए, तो उसे दूसरे दिन पढ़ा जाएगा और उसके बाद नहीं।" समाप्त। तो यह गुमान होता है कि यह अख़लाती की तरफ़ से कोई घालमेल (ख़ल्त) है, क्योंकि मैंने उनके कई अन्य मसले देखे हैं जहाँ उन्होंने विश्वसनीय पुस्तकों और प्रामाणिक ग्रंथों के विरुद्ध लिखा

है, या यह लिपिक (कातिब) की ग़लती हो सकती है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। उर्दू: मगर यह कि मैंने जवाहर अख़लाती में यह इबारत देखी कि जब नमाज़ ईद-उल-फ़ित्र पहले दिन फ़ौत हो ख़्वाह उज़्र था या न था दूसरे दिन अदा की जाए और इसके बाद नहीं पढ़ी जा सकती इह, तो गुमान यह है कि अख़लाती का ख़ल्त है क्योंकि मैंने मुतअद्दिद मसाइल में देखा है कि वो कुतुबे मुअतमदा और असफ़ारे मोतबरा के ख़िलाफ़ लिखते हैं या यह कातिब की ग़लती हो सकती है, वल्लाहु तआला आलम। (त)

[1] फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, बाब सलातुल ईदैन, मुद्रित मुंशी नवल किशोर लखनऊ, 1/88. [2] फ़तावा हिंदिया, बाब सलातुल ईदैन, नूरी कुतुब ख़ाना पेशावर, 1/153.

पेज 575/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

(ٹیبل کا مواد - بایاں کالم: عربی | دایاں کالم: اردو) عربی: فان فاتت في اليوم الثاني بعذر اوبغير عذر لايصلى بعد ذلك واماعيد الاضحى ان فاتت في اليوم الاول بعذر او بغير عذر يصلى في اليوم الثاني فان فاتت في اليوم الثاني بعذر او بغير عذر يصلى في اليوم الثالث فان فاتت في اليوم الثالث بعذر او بغير عذر لايصلى بعد ذلك [1] وفي الهندية عن تبيين الامام الزيلعي، العذر ههنا لنفي الكراهة حتى لو اخروها الى ثلاثة ايام من غير عذر جازت الصلوة وقد اساؤ ا وفي الفطر للجواز حتى لو اخروها الى الغد من غير عذر لا يجوز [2] انتهى ومثله في رمز الحقائق للعلامة العيني۔ (ت) اردو: ادا کی جائے اور اگر عذر نہ تھا تو دوسرے دن نہیں پڑھی جاسکتی، اور اگر دوسرے دن بھی نہ پڑھی جاسکی خواہ عذر تھا یا نہیں، تو اس کے بعد نہیں پڑھی جاسکتی، باقی نماز عید الاضحی اگر عذر یا بغیر عذر پہلے دن رہ گئی تو دوسرے دن پڑھ لی جائے، اگر دوسرے دن فوت ہوگئی عذر تھا یا نہ تھا تو تیسرے دن پڑھ لی جائے، اور اگر تیسرے دن بھی رہ گئی خواہ عذر تھا یا نہ تھا تو اس کے بعد ادا نہیں کی جاسکتی، ہندیہ میں امام زیلعی کی تبیین سے ہے کہ یہاں عذر نفی کراہت کے لئے ہے، حتی کہ اگر بغیر عذر کے تین دن نماز موخر کردی تو اب بھی نماز جائز البتہ تاخیر کرکے برا کیا اور فطر میں عذر جواز کے لئے ہے حتی کہ اگر بغیر عذر کے نماز دوسرے دن تک موخر کی تو اب اس کی ادائیگی جائز نہ ہوگی انتھی، علامہ عینی کی رمز الحقائق میں اسی طرح ہے۔ (ت)

بالجملہ اس کا خلاف کتب متداولہ میں فقیر کی نظر سے کسی روایت ضعیفہ میں بھی نہ گزرا۔

(ٹیبل کا مواد - بایاں کالم: عربی | دایاں کالم: اردو) عربی: اللهم الا ما رأيت في جواهر الاخلاطي من قوله اذا فاتت صلوة عيد الفطر في اليوم الاول بعذر اوبغيره صلى في يوم الثاني ولم يصل بعده اه فيظن ان يكون خلطا من الاخلاطي فاني رأيت له غير ما مسئلة خالف فيها الكتب المعتمدة والاسفار

المعتبرۃ او یکون من خطأ الناسخ۔ واللہ تعالٰی اعلم اردو: مگر یہ کہ میں نے جواہر اخلاطی میں یہ عبارت دیکھی کہ جب نماز عید الفطر پہلے دن فوت ہو خواہ عذر تھا یا نہ تھا دوسرے دن ادا کی جائے اور اس کے بعد نہیں پڑھی جاسکتی اھ تو گمان یہ ہے کہ اخلاطی کا خلط ہے کیونکہ میں نے متعدد مسائل میں دیکھا ہے کہ وہ کتب معتمدہ اور اسفار معتبرہ کے خلاف لکھتے ہیں یا یہ کاتب کی غلطی ہوسکتی ہے، واللہ تعالٰی اعلم (ت)

[1] فتاوی قاضی خاں باب صلوۃ العیدین مطبوعہ منشی نولکشور لکھنو ۱/ ۸۸ [2] فتاوی ہندیہ باب صلوۃ العیدین نوری کتب خانہ پشاور ۱ / ۱۵۳

Volume Eight, Fatawa Razawiya

Issue 1442: What do the scholars of religion say regarding this matter: In one Eidgah (Eid prayer ground), on the same day with one sermon (Khutbah), two Imams led two separate congregations (Jama'at) of prayers. Among them, the first Imam led the prayer with the sermon, and the second Imam offered the prayer without the sermon. Now, were the prayers of both these congregations valid or not? If valid, are both valid or just one? And if only one is valid, is it the first one or the second one? And if it's invalid, are both invalid or just one? If only one, is it the first or the second? Explain with references from books and receive reward on the Day of Reckoning.

The Answer: If both Imams were authorized to establish the Eid prayer, then both are valid, even though the second Imam abandoned a Sunnah, as the sermon in the two Eids is not an obligatory (Fard) condition. Therefore, omitting it will not make the prayer invalid, though it does cause unpleasantness and is disliked (makruh).

[Arabic Box] In Ad-Durr al-Mukhtar: The prayer of the two Eids is obligatory for those upon whom the Friday prayer (Jumu'ah) is obligatory, with its preceding conditions except for the sermon, for it is a Sunnah after the prayer. In Radd al-Muhtar: It is stated in al-Bahr that even if he does not deliver a sermon at all, it is valid, but he has done badly by abandoning the Sunnah. In at-Tanwir: It is performed in a city in various places by consensus. And Allah knows best.

[Urdu Box] It is stated in Durr al-Mukhtar that the Eid prayer is obligatory for those upon whom Friday (Jumu'ah) prayer is obligatory, and all the conditions except for the sermon are also the same as Jumu'ah, because the sermon after Eid is a Sunnah. In Radd al-Muhtar, it is cited from al-Bahr that even if no sermon is delivered at all, the prayer is correct but it is bad due to abandoning a Sunnah. It is stated in at-Tanwir that by consensus, Eid prayer can be performed at multiple locations in a city. And Allah the Almighty knows best. (T)

Issue 1425-1426: From the country of Bengal, District Dhaka, Post Office Badiar Bazaar, Village Qazia. What do the scholars of religion and jurists of the clear Shari'ah say regarding the following issues: (1) At a place where there is no upkeep for the Eid prayer but instead it remains submerged under water for five or six months...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on the Two Eids, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/114

2. Radd al-Muhtar, Chapter on the Two Eids, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/611
3. Tanwir al-Absar, Chapter on the Two Eids, printed at Matba' Mujtabai, Delhi, 1/114

जिल्द अष्टम, फतावा रज़विया

मसला 1442: उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फरमाते हैं कि एक ईदगाह में एक ही दिन एक ही खुत्बा है, दो इमामों ने दो जमात से नमाज़ पढ़ाई। उनमें से पहले इमाम ने खुत्बे के साथ नमाज़ पढ़ाई और दूसरे इमाम ने बिना खुत्बे के नमाज़ अदा की। अब इन दोनों जमातों की नमाज़ हुई या नहीं? अगर जाइज़ है तो दोनों की जाइज़ हुई या एक की, और अगर एक की जाइज़ हुई तो पहले की या दूसरे की, और अगर नाजाइज़ है तो दोनों की नाजाइज़ है या एक की? अगर एक की है तो पहले की या दूसरे की? किताबों के हवाले के साथ बयान करें और क़यामत के दिन अज्र पाएं।

अल-जवाब (उत्तर): अगर दोनों इमाम ईद की नमाज़ कायम करने के लिए अधिकृत थे तो दोनों (नमाज़ें) जाइज़ हो गईं, हालाँकि दूसरे इमाम ने सुन्नत को छोड़ा कि ईदैन (दोनों ईदों) में खुत्बा फ़र्ज़ और शर्त नहीं है, तो इसे छोड़ना नमाज़ के नाजाइज़ होने का कारण नहीं बनेगा, अलबत्ता यह बुराई और कराहत का कारण है।

[अरबी बॉक्स] दुर्रे मुख्तार में है: ईदैन की नमाज़ उन लोगों पर वाजिब है जिन पर जुमा वाजिब है, उसकी पिछली शर्तों के साथ सिवाय खुत्बे के, क्योंकि यह नमाज़ के बाद सुन्नत है। रद्दुल मुहतार में है: 'बहर' में कहा गया है कि अगर उसने बिल्कुल भी खुत्बा नहीं दिया तो भी (नमाज़) सही है, और उसने सुन्नत छोड़ने की वजह से बुरा किया। तन्वीर में है: शहर में सर्वसम्मति से कई स्थानों पर (नमाज़) अदा की जाती है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

[उर्दू बॉक्स] दुर्रे मुख्तार में है कि ईदैन की नमाज़ उन लोगों पर लाज़िम है जिन पर जुमा लाज़िम है और खुत्बे के अलावा तमाम शर्तें भी जुमा वाली ही हैं क्योंकि ईद के बाद खुत्बा सुन्नत है। रद्दुल मुहतार में है कि 'बहर' में है यहाँ तक कि अगर बिल्कुल खुत्बा दिया ही नहीं तो नमाज़ सही हो गई लेकिन सुन्नत छोड़ने की वजह से बुरा किया। तन्वीर में है कि शहर में सर्वसम्मति से कई स्थानों पर ईद अदा की जा सकती है। वल्लाहु तआला आलम। (त)

मसला 1425-1426: मुल्क बंगाल, जिला ढाका, डाकखाना बदियार बाज़ार, मौज़ा काज़िया गाँव। उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियान-ए-शरा-ए-मतीन इन नीचे दिए गए मसलों में क्या फरमाते हैं: (1) जिस

जगह में ईद की नमाज़ के लिए सावधानी (इंतज़ाम) नहीं है बल्कि पाँच या छह महीने तक पानी के नीचे डूबा रहता है...

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मुद्रित मतबा मुजतबाई देहली, 1/114
2. रद्दुल मुहतार, बाबुल ईदैन, मुद्रित मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र, 1/611
3. तन्वीरुल अबसार, बाबुल ईदैन, मुद्रित मतबा मुजतबाई देहली, 1/114

पृष्ठ 576 का 673

جلد ہشتم، فتاوی رضویہ

مسئلہ ۱۴۴۲ : کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک عیدگاہ میں ایک ہی دن ایک ہی خطبہ ہے دو امام نے دو جماعت نماز پڑھائی ان میں سے پہلے امام نے مع خطبہ نماز پڑھائی اور ثانی امام نے بدون خطبہ کے نماز ادا کی اب ان دونوں جماعتوں کی نماز ہوئی یا نہیں؟ اگر جائز ہے تو دونوں کی جائز ہوئی یا ایک کی ، اور اگر ایک جائز ہوئی تو پہلے کی یا ثانی کی ، اور اگر ناجائز ہے تو دونوں کی ناجائز ہے یا ایک کی؟ اگر ایک ہے تو پہلے کی یا ثانی کی؟ بینوا بحوالۃ الکتاب وتؤجروا یوم الحساب (کتاب کے حوالے کے ساتھ بیان کرو اور حساب کے دن اجر پاؤ۔ ت)

الجواب : اگر دونوں امام ماذون با قامت نماز عید تھے دونوں جائز ہو گئیں اگرچہ امام دوم نے ترک سنت کیا کہ عیدین میں خطبہ ہے فرض و شرط نہیں تو اس کا ترک موجب ناجوازی نہ ہوگا البتہ موجب اساءت و کراہت ہے۔

[Arabic Box] فی الدر المختار تجب صلوتہما علی من تجب علیہ الجمعۃ بشرائطھا المتقدمۃ سوی الخطبۃ فانھا سنۃ بعدھا فی ردالمحتار قال فی البحر حتی لو لم یخطب اصلا صح واساء لترك السنۃ فی التنویر تؤدی بمصر بمواضع اتفاقاً ۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

[Urdu Box] در مختار میں ہے کہ عیدین کی نماز ان لوگوں پر لازم ہے جن پر جمعہ لازم اور خطبہ کے علاوہ تمام شرائط بھی جمعہ والی ہی ہیں کیونکہ عید کے بعد خطبہ سنت ہے ، رد المحتار میں ہے کہ بحر میں ہے حتیٰ کہ اگر بالکل خطبہ دیا ہی نہیں تو نماز صحیح ہو گئی لیکن ترکِ سنت کی وجہ سے برا کیا۔ تنویر میں ہے کہ شہر میں بالاتفاق متعدد مقامات پر عید ادا کی جا سکتی ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (ت)

مسئلہ ۱۴۲۵ تا ۱۴۲۶ : از ملک بنگالہ ضلع ڈھاکہ ڈاک خانہ بدیعار بازار موضع قاضیہ گاؤں کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیانِ شرع متین ان مسائل مندرجہ ذیل میں : (۱) جس جگہ میں عید کی نماز کے واسطے احتیاط نہیں بلکہ پانچ یا چھ ماہ تک پانی کے نیچے ڈوبا ہوا رہتا ہے

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۴ 2 رد المحتار باب العیدین مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/۶۱۱ 3 تنویر الابصار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۴

Fatawa Razawiyya Volume 8

...and for the remaining six months, oxen and goats graze in the same place and it is in a state of disrepair and is not an endowment (waqf). In Sharia, is such a place called an Eidgah or not, and is it valid to perform Eid prayers there or not? (2) Is it permissible to shake hands (musafaha) after the Eid prayer on the day of Eid or not? If they do shake hands, is it forbidden (haram) or not? And is embracing (mu'anaqa) also permissible or not?

The Answer: (1) If that land is the property of some person and he has not endowed (waqf) it for Eid prayers, then it will not be an Eidgah.

Table Section: Arabic: "For the Eidgah, according to common usage (urf), is an ordinary piece of land designated by the Sultan of Islam or a group of the city's Muslims for Eid prayers, or it is an endowment for it by the owner." Urdu: "Because an Eidgah, according to common usage, is that piece of land which the King of Islam or a group of Muslims has left for the Eid prayer, or it is endowed (waqf) for the Eid prayer by the owner. (T)"

Yes, with the owner's permission, prayer is valid there.

Table Section: Arabic: "For it is neither a mosque nor an endowment from the aspect of the conditions for the validity of prayer at all, whether it be Eid prayer, Jumu'ah (Friday prayer), or anything else, as they have explicitly stated in the books of the school of law. And Allah Almighty knows best." Urdu: "Because neither being a mosque nor the conditions of an endowment being met are necessary for the validity of prayer, whether it is Eid prayer, Friday prayer, or any other prayer, as the jurists have specified in their books. (T) And Allah Almighty knows best."

(2) Both shaking hands and embracing after the Eid prayer are permissible as long as they do not involve or lead to any religiously prohibited act (munkar-e-shari), such as embracing a handsome beardless youth or a stranger who is a source of temptation (fitna). In fact, even shaking hands is disliked (makruh) if there is fear of temptation, just as looking at them would be, let alone shaking hands or embracing.

Table Section: Arabic: "As it is in Durr al-Mukhtar and other reliable works, and the detail of these issues is referred to our treatise 'Washah al-Jayyid fi Tahlil Mu'anaqat al-Eid'. And Allah Almighty knows best." Urdu: "As is found in reliable books like Durr al-Mukhtar, and its detail is well-explained in our treatise 'Washah al-Jayyid fi Mu'anaqat al-Eid'. (T)"

Problem 147: What do the scholars of the religion say about this issue: if the crescent of Shawwal is verified after sunrise and there is heavy rain, and some city dwellers perform the Eid prayer while others do not due to the rain, then the remaining group on the next day...

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

...और बाकी छह महीने बैल और बकरियां उसी जगह चरती हैं और वह जगह खराब हालत में है और वक्फ़ (धार्मिक बंदोबस्ती) नहीं है, तो क्या शरीअत में ऐसी जगह को ईदगाह कहा जाता है या नहीं और उसमें ईद की नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? (2) ईद के दिन ईद की नमाज़ के बाद मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) करना जायज़ है या नहीं? अगर मुसाफ़ा करें तो हराम है या नहीं? और मुआनक़ा (गले मिलना) करना भी जायज़ है या नहीं?

अल-जवाब (उत्तर): (1) अगर वह ज़मीन किसी व्यक्ति की मिल्कियत है और उसने उसे ईद की नमाज़ के लिए वक्फ़ नहीं किया है, तो वह ईदगाह नहीं होगी।

तालिका अनुभाग: अरबी: "क्योंकि ईदगाह उरफ़ (सामान्य बोलचाल) में ज़मीन का वह हिस्सा है जिसे सुल्तान-ए-इस्लाम या शहर के मुसलमानों की एक जमात ने ईद की नमाज़ के लिए मुक़र्रर किया हो, या वह मालिक की तरफ़ से उसके लिए वक्फ़ हो।" उर्दू: "क्योंकि ईदगाह उरफ़ में ज़मीन का वह टुकड़ा है जिसे बादशाह-ए-इस्लाम या मुसलमानों की एक जमात ने ईद की नमाज़ के लिए छोड़ा हो या वह मालिक की तरफ़ से ईद की नमाज़ के लिए वक्फ़ हो। (त)"

हाँ, मालिक की इजाज़त से उसमें नमाज़ जायज़ है।

तालिका अनुभाग: अरबी: "क्योंकि नमाज़ की सेहत (वैधता) के लिए न तो मस्जिद होना और न ही वक्फ़ की शर्तें होना ज़रूरी है, चाहे वह ईद की नमाज़ हो या जुमा या इसके अलावा कोई और नमाज़, जैसा कि मज़हब की किताबों में फ़ुक़हा (न्यायविदों) ने साफ़ तौर पर लिखा है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।" उर्दू: "क्योंकि नमाज़ की सेहत के लिए न मस्जिद होना और न ही वक्फ़ की शर्तों का पाया जाना ज़रूरी है, चाहे वह ईद की नमाज़ हो या जुमा या इसके अलावा कोई और नमाज़, जैसा कि किताबों में फ़ुक़हा ने तसरीह (स्पष्टीकरण) की है। (त) वल्लाह तआला आलम"

(2) ईद की नमाज़ के बाद मुसाफ़ा और मुआनक़ा दोनों जायज़ हैं, जब तक कि वे किसी शरीअत के विरुद्ध काम (मुनकर-ए-शरई) पर आधारित न हों या उसकी तरफ ले जाने वाले न हों, जैसे कि किसी खूबसूरत अमरुद (कम उम्र के लड़के), अजनबी या फ़ितना (बुराई) की जगह से मुआनक़ा करना। बल्कि ऐसी स्थिति में जहाँ फ़ितना का डर हो, मुसाफ़ा करना भी मकरूह (नापसंद) है, क्योंकि उस समय उनकी तरफ देखना भी मकरूह होता है, तो मुसाफ़ा और मुआनक़ा की बात ही क्या।

तालिका अनुभाग: अरबी: "जैसा कि दुर्र-ए-मुख़्तार और दीगर मोतबर किताबों में है, और इन मसाइल (समस्याओं) का विस्तार हमारे रिसाला (पुस्तिका) 'विशाह अल-जय्यद फ़ी तहलील मुआनक़त अल-ईद' में मौजूद है। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।" उर्दू: "जैसा कि दुर्र-ए-मुख़्तार जैसी विश्वसनीय किताबों में है, और इसका विवरण हमारे रिसाला 'विशाह अल-जय्यद फ़ी मुआनक़त अल-ईद' में बहुत अच्छी तरह से है। (त)"

मसला 147: उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि अगर शव्वाल का चाँद दिन चढ़े प्रमाणित हुआ और बारिश तेज़ थी, कुछ शहर वालों ने ईद की नमाज़ पढ़ ली और कुछ ने बारिश की वजह से नहीं पढ़ी, तो बाकी बची हुई जमात दूसरे दिन...

اور باقی چھ ماہ بیل بکریاں اسی جگہ میں چرتی ہیں اور وہ جگہ خرابی ہے وقفی نہیں ، تو اس جگہ کو شرع میں عیدگاہ کہتے ہیں یا نہیں اور اس میں نماز عید درست ہے یا نہیں؟ (۲) عید کے دن بعد نماز عید کے مصافحہ کرنا درست ہے یا نہیں؟ اگر مصافحہ کریں تو حرام ہے یا نہیں؟ اور معانقہ کرنا بھی درست ہے یا نہیں؟

الجواب: (۱) اگر وہ زمین کسی شخص کی ملک ہے اور اس نے نماز عید کے لئے وقف نہ کی تو وہ عید گاہ نہ ہوگی،

جدول کا حصہ: عربی: فان مصلی العید عرفاھو عادی الارض المقرر من جہۃ سلطان الاسلام او جماعۃ مسلمی البلد لصلوۃ العید او للملوك الموقوف لھا من جہۃ المالك۔ اردو: کیونکہ عیدگاہ عرفاً زمین کا وہ ٹکڑا ہے جسے بادشاہ اسلام یا مسلمانوں کی ایک جماعت نے نماز عید کے لئے چھوڑا ہو یا وہ مالک کی طرف سے نماز عید کے لئے وقف ہو۔ (ت)

ہاں باجازت مالک اس میں نماز درست ہے،

جدول کا حصہ: عربی: فانہ لیس المسجد ولا الوقف من جہۃ شرائط صحۃ صلوۃ اصلا، صلوۃ العید کانت او الجمعۃ او غیر ذلک کما نصوا علیہ في کتب المذھب۔ واللہ تعالٰی اعلم اردو: کیونکہ نہ مسجد اور نہ صحت صلوٰۃ کے لئے شرائط وقف کا پایا جانا ضروری ہوتا ہے خواہ وہ نماز عید ہو یا جمعہ یا اس کے علاوہ کوئی نماز ہو جیسا کہ کتب میں فقہاء نے تصریح کی ہے۔ (ت) واللہ تعالٰی اعلم

(۲) بعد نماز عید مصافحہ ومعانقہ دونوں درست ہیں جبکہ کسی منکر شرعی پر مشتمل یا اس کی طرف منجر نہ ہوں جیسے خوبصورت امرد، اجنبی محل فتنہ سے معانقہ بلکہ مصافحہ بھی کہ بحالت خوف فتنہ اس کی طرف نظر بھی مکروہ ہے نہ کہ مصافحہ نہ کہ معانقہ،

جدول کا حصہ: عربی: کما فی الدرالمختار وغیرہ من معتمدات الاسفار وتفصیل المسائل موکول الی رسالتنا وشاح الجید فی تحلیل معانقہ العید۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ اردو: جیسا کہ درمختار جیسی معتبر کتب میں ہے اور اس کی تفصیل ہمارے رسالہ "وشاح الجید فی معانقۃ العید" میں خوب ہے۔ (ت)

مسئلہ ۱۴۷: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں اگر ہلال شوال دن چڑھے تحقیق ہوا اور بارش شدید ہو بعض اہل شہر نماز عید پڑھیں بعض بسبب بارش نہ پڑھیں تو جماعت باقیماندہ دوسرے دن

...perform it now, or will they not be permitted since the prayer has already taken place? In Quhistani it is stated:

[Arabic Box] If the Imam has performed his prayer with some of the people, those who missed that prayer cannot perform it as make-up (qada), neither on the first day nor on the following day. End. Please clarify, and may you be rewarded. [Urdu Translation in Box] When the Imam has led the prayer with some people, those whose prayer was missed cannot make it up, neither on the first day nor on the second day. - End (T). Clarify so you may be rewarded.

The Answer: O Allah! Grant guidance to the truth and correctness. (Amen - T). In the questioned scenario, the remaining congregation can certainly perform it on the second day. In Eid-ul-Fitr, a delay of one day due to an excuse is permissible, and rain is a legally recognized excuse in Sharia.

[Arabic Box] In Al-Durr al-Mukhtar: The Fitr prayer can be delayed due to an excuse like rain only until the sun's decline (zawal) of the following day. End. [Urdu Translation in Box] In Al-Durr al-Mukhtar, it is stated that due to an excuse like rain, the Fitr prayer will be delayed only until the second day. End (T).

And the permissibility of multiple locations for Eid prayer is agreed upon, unlike the Friday prayer (Jumu'ah) where there is disagreement, but the preferred view is permissibility.

[Arabic Box] In Al-Durr al-Mukhtar: It is performed in a single city in many locations by consensus. End. [Urdu Translation in Box] In Al-Durr al-Mukhtar, it is mentioned that the Eid prayer can be performed at multiple places in one city by consensus. End (T).

So, how can performing it on the second day be forbidden for some city-dwellers when some others have already performed it? The discourse of Quhistani and others pertains to the situation where the general public of the city has prayed and only one person remains, as Eid prayer is not prescribed without a congregation; he would be forced to abstain from praying. The reasoning in Al-Hidayah is clear evidence of this:

[Arabic Box] He said: He who misses the Eid prayer with the Imam does not make it up, because prayer in this manner is not known as an act of worship except with conditions that are not met by an individual. End. [Urdu Translation in Box] He said:

Whoever misses the Eid prayer with the Imam cannot make it up, because this kind of prayer is prescribed with conditions, and those conditions are not met when one is alone. End (T).

---

1 Jami' al-Rumuz, Chapter on Eid Prayers, published by Maktaba Islamia Gumbad Qamus, Iran, 1/272. 2 Al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Eids, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/116. 3 Al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Eids, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/116. 4 Al-Hidayah, Chapter on Eids, Al-Maktaba al-Arabiyya, Karachi, 1/152.

...अदा करें या अब उन्हें अनुमति नहीं दी जाएगी कि नमाज़ हो चुकी, और कुहिस्तानी में है:

[अरबी बॉक्स] यदि इमाम ने कुछ लोगों के साथ नमाज़ पढ़ ली है, तो जिसकी वह नमाज़ छूट गई है, वह उसकी कज़ा नहीं करेगा, न पहले दिन और न ही अगले दिन। अंत। स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा। [उर्दू अनुवाद बॉक्स] जब इमाम ने कुछ लोगों को नमाज़ पढ़ा दी तो जिनकी नमाज़ छूट गई वे उसे कज़ा नहीं कर सकते, न पहले दिन और न दूसरे दिन। - अंत (त) बयान करें और पुण्य पायें।

उत्तर: ऐ अल्लाह! सत्य और सही मार्ग की तौफ़ीक़ अता फ़रमा। (आमीन - त) प्रश्नगत स्थिति में, शेष जमाअत निश्चित रूप से दूसरे दिन नमाज़ अदा कर सकती है। ईदुल फ़ित्र में किसी कारण (उज़्र) की वजह से एक दिन की देरी जायज़ है और बारिश शरीयत के अनुसार एक मान्य कारण है।

[अरबी बॉक्स] दुर्रे मुख्तार में है: बारिश जैसे कारण से फ़ित्र की नमाज़ केवल अगले दिन के ज़वाल तक टाली जा सकती है। अंत। [उर्दू अनुवाद बॉक्स] दुर्रे मुख्तार में है कि उज़्र की वजह से जैसे बारिश, नमाज़-ए-फ़ित्र केवल दूसरे दिन तक टाली जाएगी। अंत (त)।

और ईद की नमाज़ में एक से अधिक स्थानों पर नमाज़ होने की अनुमति सर्वसम्मत है, जुमे के विपरीत जिसमें मतभेद है और प्रबल मत अनुमति का है।

[अरबी बॉक्स] दुर्रे मुख्तार में: एक ही शहर में कई स्थानों पर आम सहमति से ईद अदा की जाती है। अंत। [उर्दू अनुवाद बॉक्स] दुर्रे मुख्तार में है कि एक शहर में आम सहमति से कई स्थानों पर ईद की नमाज़ अदा की जा सकती है। (त)

तो शहर के कुछ निवासियों द्वारा नमाज़ अदा कर लेने के बाद अन्य लोगों का दूसरे दिन पढ़ना कैसे वर्जित हो सकता है? कुहिस्तानी आदि का कथन उस स्थिति के बारे में है जब शहर के आम लोग नमाज़ पढ़ लें और केवल एक व्यक्ति शेष रह जाए, क्योंकि ईद की नमाज़ बिना जमाअत के शरीयत में नहीं है, वह विवश होकर पढ़ने से रुक जाएगा। हिदाया का तर्क इस पर स्पष्ट प्रमाण है:

[अरबी बॉक्स] उन्होंने कहा: जिसकी ईद की नमाज़ इमाम के साथ छूट गई वह उसे कज़ा नहीं करेगा, क्योंकि इस रूप में नमाज़ इबादत के रूप में नहीं जानी जाती सिवाय उन शर्तों के जो अकेले व्यक्ति द्वारा पूरी नहीं की जा सकतीं। अंत। [उर्दू अनुवाद बॉक्स] फ़रमाया: जिसकी ईद की नमाज़

इमाम के साथ छूट गई वह उसे कज़ा नहीं कर सकता क्योंकि इस तरह की नमाज़ शर्तों के साथ ही शरीयत में है और वे शर्तें अकेले होने की स्थिति में पूरी नहीं होतीं। (त)

---

1 जामेउर रुमुज़, ईदुल ईदैन की नमाज़ का अध्याय, मकतबा इस्लामिया गुम्बद क़ामूस, ईरान, 1/272। 2 दुर्रे मुख्तार, ईद का अध्याय, मताबे मुजतबाई, दिल्ली, 1/116। 3 दुर्रे मुख्तार, ईद का अध्याय, मताबे मुजतबाई, दिल्ली, 1/116। 4 अल-हिदाया, ईद का अध्याय, अल-मकतबा अल-अरबिया, कराची, 1/152।

पृष्ठ 578 का 673

ادا کریں یا اب انہیں اجازت نہ دی جائے گی کہ نماز ہو چکی، اور قہستانی میں ہے:

[Arabic Box] اذا صلی الامام صلوته مع بعض القوم لا یقضی من فاتت تلك الصلوة عنه لافي الیوم الاول ولا من الغد انتهی بینوا توجروا- [Urdu Translation in Box] جب امام نے کچھ لوگوں کو نماز پڑھا دی تو جن کی نماز فوت ہوگئی وہ اسے قضا نہیں کر سکتے، نہ پہلے دن اور نہ دوسرے دن۔ انتہی (ت) بینوا توجروا

الجواب: اللھم ھدایة الحق والصواب (اے اللہ! حق اور صواب کی توفیق عطا فرمات) صورة مستفسرہ میں جماعت باقیماندہ بیشک دوسرے دن ادا کرے عید الفطر میں بوجہ عذر ایک دن کی تاخیر جائز ہے اور بارش عذر شرعاً مسموع،

[Arabic Box] في الدرالمختار و توخر بعذر کمطر الی الزوال من الغد فقط انتهی [Urdu Translation in Box] در مختار میں ہے عذر کی وجہ سے نماز فطر فقط دوسرے دن تک مؤخر کی جائے گی جیسے بارش۔ انتہی (ت)

اور صلوة عید میں جواز تعدد متفق علیہ ہے، بخلاف جمعہ کہ اس میں خلاف ہے اور راجح جواز،

[Arabic Box] في الدرالمختار تؤدی بمصر واحد بمواضع کثیرة اتفاقاً اه [Urdu Translation in Box] در مختار میں ہے کہ ایک شہر میں بالاتفاق متعدد مقامات پر نماز عید ادا کی جاسکتی ہے اھ (ت)

توادائے بعض اہل شہر سے بعض دیگر کو دوسرے روز پڑھنا کیونکر ممنوع ہو سکتا ہے، کلام قہستانی وغیرہ اس صورت میں ہے جب عامہ اہل بلد پڑھ لیں اور ایک آدمی باقی رہ جائے کہ نماز عید بے جماعت مشروع نہیں ناچار پڑھنے سے باز رہے گا، ہدایہ کی تعلیل اس پر صاف دلیل،

[Arabic Box] قال من فاتته صلوة العید مع الامام لم یقضها لان الصلوة بهذه الصفة لم تعرف قربة الا بشرائط لاتتم بالمنفرد اه [Urdu Translation in Box] فرمایا جس کی نماز عید امام کے ساتھ فوت ہو گئی وہ اسے قضا نہیں کر سکتا کیونکہ اس طرح کی نماز شرائط کے ساتھ مشروع ہے اور وہ شرائط تنہا ہونے کی صورت میں پوری نہیں ہوتیں اھ (ت)

---

1 جامع الرموز فصل فی صلوۃ العیدین مطبوعہ مکتبہ اسلامیہ گنبد قاموس ایران ۱/ ۲۷۲ 2 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۶ 3 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۶ 4 الہدایہ باب العیدین المکتبہ العربیہ کراچی ۱/ ۱۵۲

Fatawa Rizvia, Volume Eight

And the text of 'Tanwir al-Absar', authored by Imam Abu Abdullah Muhammad bin Abdullah Ghazi (Mercy of Allah be upon him), initially presented this issue in such a way that no doubt or misconception remains:

Where he says: "And he shall not pray it alone if it was missed with the Imam." Here he stated that he should not pray alone when it was missed with the Imam. (T)

Similarly, Imam Hafiz-ud-Din Abu al-Barakat Nasafi (Mercy of Allah be upon him), in his text and commentary 'Wafi and Kafi', has provided sufficient and complete guidance to dispel doubts and awaken understanding:

It shall not be made up (qada) if missed with the Imam, i.e., the Imam prayed the Eid prayer and it was missed by an individual. Then it is not to be made up because it was not known as an act of worship except through the action of him (Peace and Blessings be upon him), and he did not perform it except with a congregation; therefore, it cannot be performed except with that attribute. (Summary)	**It shall not be made up if missed with the Imam, i.e., the Imam lead the Eid prayer and it was missed by an individual, so he should not make it up because this prayer is only legislated according to the practice of the Holy Prophet (Peace and Blessings be upon him) and he performed it only with a congregation, therefore it cannot be performed now except in that manner. (Summary) (T)**

Allama Badr-ud-Din Mahmood Ayni states in 'Ramz al-Haqa'iq':

The Imam prayed with the congregation but he did not pray it. He does not make it up, neither within the time nor after it, because it was legislated with conditions that are not fulfilled by a person alone.	**The Imam lead the congregation but that person did not pray, so now he shall not make it up, neither within the time nor afterwards, because this was legislated with certain conditions and they are not fulfilled in the case of being alone. (T)**

In 'Mustakhlas', under the statement of 'Kanz', 'It shall not be made up if missed with the Imam' (should not be made up if left with the Imam - T), it is written:

Its meaning is that if a man did not pray with the Imam, he does not make it up individually.	**Its meaning is that if a person did not pray the Eid prayer with the Imam, he should not make it up alone now. (T)**

1. Durr-e-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/116
2. Kafi Sharh Wafi
3. Ramz al-Haqa'iq, Chapter on the Rulings of the Two Eid Prayers, printed at Maktaba Nooria Rizvia, Sukkur, 1/58
4. Mustakhlas al-Haqa'iq, Chapter on the Rulings of the Two Eid Prayers, Munshi Ram Printing Press, Lahore, 1/299

फ़तावा रिज़विया, जिल्द आठवीं

और 'तन्वीर अल-अबसार' का इबारत, जिसके लेखक इमाम अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह ग़ज़ी (अल्लाह उन पर रहमत फ़रमाए) हैं, ने शुरू में इस मसले को इस अंदाज़ में पेश किया है कि कोई वहम और गुमान बाक़ी न रहे:

जहाँ वह कहते हैं: "और वह उसे अकेले नहीं पढ़ेगा अगर वह इमाम के साथ छूट गई हो।" यहाँ उन्होंने कहा कि जब इमाम के साथ (नमाज़) फ़ौت हो गई हो तो अकेले न पढ़े। (त)

इसी तरह इमाम हाफ़िज़-उद-दीन अबुल बरकात नसफ़ी (अल्लाह उन पर रहमत फ़रमाए) ने अपने मतन और शरह 'वाफ़ी व काफ़ी' में शंकाओं को दूर करने और समझ को जगाने के लिए पर्याप्त और मुकम्मल इरशाद फ़रमाया है:

अगर इमाम के साथ (नमाज़) रह गई हो तो क़ज़ा न की जाए, यानी इमाम ने ईद की नमाज़ पढ़ा दी और किसी शख़्स की छूट गई, तो वह उसकी क़ज़ा न करे क्योंकि यह नमाज़ हुज़ूर अलैहिस्सलातो वसल्लम के मामूल के मुताबिक़ ही मशरू (वैध) है और आप ने इसे जमाअत ही से अदा फ़रमाया, लिहाज़ा अब उस सिफ़त के अलावा इसे अदा नहीं किया जा सकता। (ख़ुलासा)

न क़ज़ा की जाए अगर इमाम के साथ रह गई हो यानी इमाम ने नमाज़-ए-ईद पढ़ा दी और एक शख़्स की फ़ौत हो गई तो वह उसे क़ज़ा न करे क्योंकि यह नमाज़ हुज़ूर अलैहिस्सलातो वसल्लम के मामूल के मुताबिक़ ही मशरू है और आप ने इसे जमाअत ही से अदा फ़रमाया लिहाज़ा अब इस सिफ़त के इलावा इसे अदा नहीं किया जा सकता अह् मुलख़्सन (त)

अल्लामा बदरुद्दीन महमूद ऐनी 'रम्ज़ अल-हक़ाएक़' में फ़रमाते हैं:

इमाम ने जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ी लेकिन उसने नहीं पढ़ी, वह न तो समय के भीतर और न ही उसके बाद इसकी क़ज़ा करेगा, क्योंकि यह ऐसी शर्तों के साथ बनाया गया था जो अकेले व्यक्ति द्वारा पूरी नहीं की जातीं।

इमाम ने जमाअत करवा दी लेकिन इस शख़्स ने नहीं पढ़ी तो अब वह क़ज़ा न करे न वक़्त के अंदर न बाद में क्योंकि यह कुछ शरायत के साथ मशरू थी और वह अकेला होने की सूरत में पूरी नहीं होतीं अह् (त)

'मुस्तख़लस' में 'कन्ज़' के इस क़ौल के तहत कि 'अगर इमाम के साथ रह गई हो तो क़ज़ा न की जाए' (क़ज़ा न की जाए अगर इमाम के साथ रह गई हो - त), लिखते हैं:

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति ने इमाम के साथ नमाज़ नहीं पढ़ी, तो वह अकेले इसकी क़ज़ा नहीं करेगा।	**मानी इस का यह है कि अगर किसी शख़्स ने इमाम के साथ नमाज़-ए-ईद नहीं पढ़ी तो वह अब तनहा क़ज़ा न करे (त)**

1. दुर्रे मुख़्तार, बाबुल ईदैन, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/116
2. काफ़ी शरह वाफ़ी
3. रम्ज़ अल-हक़ाएक़, बाब फ़ी अहकाम सलातुल ईदैन, मतबुआ मकतबा नूरिया रिज़विया सुक्कुर, 1/58
4. मुस्तख़लस अल-हक़ाएक़, बाब फ़ी अहकाम सलातुल ईदैन, मुंशी राम प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर, 1/299

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اور عبارت تنویر الابصار مورث تنویر الابصار امام ابو عبد اللہ محمد بن عبد اللہ غزی رحمۃ اللہ تعالٰی نے ابتداء اس مسئلہ کو ایسے پیرا میں ادا فرمایا و ہم واہم ، راہ نہ پائے،

حیث یقول ولا یصلیھا وحدہ ان فاتت مع الامام ۱ھ یہاں انھوں نے کہا تنہا نماز نہ پڑھے جب امام کے ساتھ فوت ہو گئی اھ (ت)

یونہی امام حافظ الدین ابوالبرکات نسفی رحمۃ اللہ تعالٰی کا اپنے متن و شرح وافی وکافی میں ارشاد ازالہ اوہام ایقاظ افہام کے لئے کافی و وافی ،

لم یقض ان فاتت مع الامام ای صلی نہ قضا کی جائے اگر امام کے ساتھ رہ گئی ہو یعنی امام نے
الامام العید وفاتت من شخص فأنھا نمازِ عید پڑھادی اور ایک شخص کی فوت ہو گئی تو وہ
لاتقضی لانھا ما عرفت قربۃ الا بفعلہ اسے قضا نہ کرے کیونکہ یہ نماز حضور علیہ الصلوۃ
علیہ الصلوۃ و السلام وما فعلھا الا والسلام کے معمول کے مطابق ہی مشروع ہے اور آپ نے
بالجماعۃ فلا تؤدی الا بتلك الصفۃ ۲ھ اسے جماعت ہی سے ادا فرمایا لہذا اب اس صفت کے
ملخصاً علاوہ اسے ادا نہیں کیا جا سکتا اھ ملخصاً (ت)

علامہ بدرالدین محمود عینی رمز الحقائق میں فرماتے ہیں :

صلاھا الامام مع الجماعۃ ولم امام نے جماعت کروادی لیکن اس شخص نے نہیں پڑھی تو
یصلھا ھو لایقضیھا الا في الوقت اب وہ قضا نہ کرے نہ وقت کے اندر نہ بعد میں کیونکہ یہ
ولا بعدہ لانھا شرعت بشرائط لا تتم کچھ شرائط کے ساتھ مشروع تھی اور وہ اکیلا ہونے کی
بالمنفرد ۳ھ صورت میں پوری نہیں ہوتیں اھ (ت)

مستخلص میں زیر قول کنز، لم تقض ان فاتت مع الامام (قضا نہ کی جائے اگر امام کے ساتھ رہ گئی ہو ۔ت) لکھتے ہیں:

معناہ لو لم یصل رجل مع الامام لم یقضھا منفرداً ۴۔ **معنی اس کا یہ ہے کہ اگر کسی شخص نے امام کے ساتھ نمازِ عید نہیں پڑھی تو وہ اب تنہا قضا نہ کرے (ت)**

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۶ 2 کافی شرح وافی 3 رمز الحقائق باب فی احکام صلوۃ العیدین مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ سکھر ۱/۵۸ 4 مستخلص الحقائق باب فی احکام صلوۃ العیدین کانشی رام پرنٹنگ پریس ، لاہور ۱/ ۲۹۹

Either it means that the specific Imam authorized by the Sultan has performed the prayer and there is no appointee among the remaining ones; who would lead the prayer? The discourse of the learned researcher Hasan Shurunbulali (may Allah's mercy be upon him) in *Maraqi al-Falah*, a commentary on *Nur al-Idah*, points towards this.

[Box 1] Arabic: For he said: "Whoever missed the prayer and did not catch it with the Imam, he does not make it up (qada), because it is not known as an act of devotion except with conditions that are not fulfilled without the Imam, i.e., the Sultan or his appointee." Urdu: Because they said that whoever could not pray with the Imam, they should not make it up now because this prayer is prescribed with conditions, and they cannot be fulfilled without the Imam, i.e., the Sultan or his deputy. (T)

Therefore, the learned Sayyid Ahmad Misri says in its marginal notes:

[Box 2] Arabic: That is, the Imam or his appointee has prayed it. If he was appointed to establish it, he may establish it. (End) I say: The definition of 'Imam' in the text of *An-Niqayah* mentioned and others also points towards this, as is not hidden from those expert in the styles of speech. Urdu: That is, the Imam or his deputy has led the prayer. So if he was appointed for the leadership of Eid, he can lead it. (T) I say: The definition given by the Imam in the texts of *An-Niqayah* etc. also points towards this, as it is not hidden from the experts in the styles of speech. (T)

In any case, it is a pure error to consider the text of *Jami' al-Rumuz* as a prohibition for the remaining people on the basis that the prayer has already occurred once. Rather, I say, if one has sound insight, that very same text in our current context points to permissibility. For in it, the prohibition is not only regarding the second day, but they forbid those who did not join when the Imam had performed the congregation, as it says: "neither on the first day nor the next" (T). It has already been stated first that the multiplicity of congregations for the two Eids is unanimously permissible, and it is known that this multiplicity is not devoid of being later [than the first congregation]. If the meaning of the texts of *Mufarrah* and *An-Niqayah* were that when one congregation has prayed, others are absolutely not permitted, then how would this multiplicity be valid? And the ruling for Eid prayer in this matter would become like the Jumu'ah prayer according to the school of thought that does not allow multiple Jumu'ah congregations. That is, the prayer of the previous congregation would be valid and everyone else's invalid, as in *Ad-Durr al-Mukhtar* regarding the weaker

opinion on Jumu'ah for those whose initial takbir (tahrima) was later. (Just as it is according to the weaker saying in *Ad-Durr al-Mukhtar* that Jumu'ah belongs to those whose tahrima was first. T). So certainly, the meaning of the speech is what we have...

---

1. *Maraqi al-Falah* with Marginal Notes of *at-Tahtawi*, Chapter on Rulings of the Two Eids, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 292.
2. *Hashiyat al-Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah*, Chapter on Rulings of the Two Eids, published by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 292.

फ़तावा रज़विया, जिल्द आठवीं

या तो इसके ये अर्थ हैं कि सुल्तान द्वारा नियुक्त इमाम नमाज़ अदा कर चुका है और बाकी लोगों में कोई नियुक्त नहीं है; इक़ामत (नमाज़ का नेतृत्व) कौन करे? फ़ाज़िल मोहक़्क़िक हसन शरनबलाली (रहमतुल्लाही अलैहि) का कलाम 'मराक़ी अल-फ़लाह' (नूर अल-ईज़ा की शरह) में इसी ओर संकेत करता है।

[बॉक्स 1] अरबी: क्योकि उन्होंने कहा: जिसने नमाज़ छोड़ दी और इमाम के साथ नहीं पा सका, वह उसकी क़ज़ा न करे, क्योंकि यह इबादत केवल उन शर्तों के साथ जानी जाती है जो इमाम यानी सुल्तान या उसके नियुक्त व्यक्ति के बिना पूरी नहीं होतीं। उर्दू: क्योंकि उन्होंने कहा है कि जो नमाज़ इमाम के साथ न पढ़ सका, वह अब क़ज़ा न करे क्योंकि यह नमाज़ शर्तों के साथ शरीयत में है और वे इमाम यानी सुल्तान या उसके नायब (प्रतिनिधि) के बिना पूरी नहीं हो सकेंगी। (त)

इसलिए फ़ाज़िल सैय्यद अहमद मिस्री इसके हाशिये में फ़रमाते हैं:

[बॉक्स 2] अरबी: यानी, इमाम या उसके नियुक्त व्यक्ति ने इसे पढ़ लिया है। यदि उसे इसे स्थापित करने के लिए नियुक्त किया गया था, तो वह इसे स्थापित कर सकता है। (समाप्त) मैं कहता हूँ: 'निक़ाया' आदि के पाठ में इमाम की परिभाषा भी इसी ओर संकेत करती है, जैसा कि कलाम की शैलियों के विशेषज्ञों से छिपा नहीं है। उर्दू: यानी इमाम या उसके नायब ने नमाज़ पढ़ा दी। तो अगर वह इमामत-ए-ईद के लिए नियुक्त था तो वह उसे पढ़ा सकता है। (त) मैं कहता हूँ: इसकी ओर 'निक़ाया' आदि की इबारत में इमाम ने जो परिभाषा की है, वह भी संकेत करती है जैसा कि कलाम की शैलियों के माहिर पर छिपा नहीं है। (त)

बहरहाल, 'जामेउर रुमूज़' की इबारत से इस वजह से कि नमाज़ एक बार हो चुकी है, बाकी लोगों के लिए मनाही समझना महज़ ग़लती है। मैं कहता हूँ बल्कि अगर नज़र सही हो तो वही इबारत हमारे इस मामले में जवाज़ (अनुमति) पर दलील है, कि इसमें सिर्फ़ दूसरे ही दिन के बारे में मनाही नहीं है बल्कि जब इमाम जमाअत करा चुके तो उस दिन भी न पाने वाले को मना करते हैं, जैसा कि कहा गया: "न पहले दिन और न अगले दिन" (त)। और पहले बताया जा चुका है कि ईदैन में जमाअत की बहुलता (तअद्दुद) सर्वसम्मति से जायज़ है, और यह मालूम है कि यह बहुलता बाद में होने से खाली नहीं होती। अगर 'मुफ़र्रह', 'निक़ाया' की इबारत के ये अर्थ होते कि जब एक जमाअत पढ़ ले तो दूसरों को बिलकुल अनुमति नहीं है, तो यह बहुलता कैसे सही होती? और ईद की नमाज़ का हुक्म भी

उस मज़हब पर जो जुमे की जमाअत की बहुलता की अनुमति नहीं देता, जुमे की नमाज़ की तरह हो जाता, यानी पिछली जमाअत की तो नमाज़ हो गई और बाकी सबकी नाजायज़, जैसा कि 'दुर्र-ए-मुख़्तार' में जुमे के बारे में कमज़ोर (मरजूह) कौल के अनुसार है कि जुमा उन लोगों का है जिनकी तहरीमा (प्रारंभिक तकबीर) पहले हो। (त)। तो निश्चित रूप से कलाम के अर्थ वही हैं जो हमने...

---

1. 'मराक़ी अल-फ़लाह' मअ हाशियतुल तहतावी, बाब अहकाम अल-ईदैन, मतबुआ नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब, कराची, पृ. 292
2. 'हाशियतुल तहतावी अला मराक़ी अल-फ़लाह', बाब अहकाम अल-ईदैन, मतबुआ नूर मुहम्मद कारखाना तिज़ारत कुतुब, कराची, पृ. 292

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

یا تو یہ معنی ہیں کہ امام معین ماذون من السلطان ادا کر چکا اور ان باقیماندہ میں کوئی مامور نہیں، اقامت کون کرے ، فاضل محقق حسن شرنبلالی رحمۃ اللہ تعالٰی علیہ کا کلام مراقی الفلاح شرح نور الایضاح میں اس طرف ناظر

[باکس 1] عربی: اذ قال من فاتته الصلوۃ فلم یدرکھا مع الامام لا یقضیھا لانھا لم تعرف قربۃ الابشرائط لاتتم بدون الامام ای السلطان او مأمورہ -1 اردو: کیونکہ انہوں نے کہا ہے کہ جو نماز امام کے ساتھ نہ پڑھ سکاوہ اب قضا نہ کرے کیونکہ یہ نماز شرائط کے ساتھ مشروع ہے اور وہ امام یعنی سلطان یا اس کے نائب کے بغیر پوری نہیں ہوسکیں (ت)

اس لئے فاضل سید احمد مصری اس کے حاشیہ میں فرماتے ہیں:

[باکس 2] عربی: ای وقد صلاھا الامام او مامورہ فان کان مأمو را با قامتھا لہ ان یقیمھا 2 اہ اقول: وقد یشیر الیہ تعریف الامام فی عبارۃ النقایۃ المذکورۃ وغیرھا کمالا یخفی علی العارف باسالیب الکلام۔ اردو: یعنی امام یا اس کے نائب نے نماز پڑھادی پس اگر وہ امامت عید کے لئے مامور تھا تو وہ اسے پڑھاسکتا ہے (ت) اقول : اس کی طرف عبارت نقایہ وغیرہ میں ہیں جو امام نے تعریف کی ہے وہ بھی اشارہ کرتی ہے جیسا کہ کلام کے اسالیب کے ماہر پر مخفی نہیں۔(ت)

بہر طور عبارت جامع الرموز سے بدیں وجہ کہ نماز ایک بار ہوچکی باقیماندہ لوگوں کے لئے ممانعت تصور کرنا محض خطا اقول بلکہ اگر نظر سلیم ہو تو وہی عبارت بعینھا مانحن فیہ میں جواز پر دال ، کہ اس میں صرف دوسرے ہی دن کی نسبت ممانعت نہیں بلکہ جب امام جماعت کر چکے تو اس روز بھی نہ پانے والے کو منع کرتے ہیں حیث قال لافی الیوم الاول ولا من الغد (نہ

پہلے اور دوسرے دن۔ ت) اور اول بیان ہو چکا کہ تعدد جماعت عیدین میں بالاتفاق جائز اور معلوم ہے کہ یہ تعدد تاخر سے خالی نہیں ہوتا اگر عبارت مفرح، نقایہ کے یہ معنی ہوتے کہ جب ایک جماعت پڑھ لے تو دوسروں کو مطلقاً اجازت نہیں تو یہ تعدد کیونکر روا ہوتا اور نماز عید کا بھی حکم اس امر میں اس کے مذہب پر جو تعدد جمعہ روانہیں رکھتا، مانند نماز جمعہ ہو جاتا یعنی جماعت سابقہ کی تو نماز ہو گئی باقی سب کی ناجائز کما فی الدرالمختار علی المرجوح فی الجمعۃ لمن سبق تحریمتہ (جیسا کہ درمختار میں مرجوح قول کے مطابق ہے کہ جمعہ ان لوگوں کا ہے جن کی تحریمہ پہلے ہو ۔ ت) تو بالیقین معنی کلام وہی ہیں جو ہم نے

---

1 مراقی الفلاح مع حاشیۃ الطحطاوی باب احکام العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۹۲ 2 حاشیۃ الطحطاوی علی مراقی الفلاح باب احکام العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۹۲

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

It is stated and conclusive to clear the confusion that in Durr-e-Mukhtar, regarding missing the prayer with the Imam, it is clarified:

[Arabic quote from Durr-e-Mukhtar]: "If it is possible for him to go to another Imam, he should do so, for the [Eid prayer] is performed in one city in many places by consensus."(1) / [Urdu original]: "If it is possible to go towards another Imam, one should go because, by consensus, Eid prayers can be offered at multiple places in one city. (T)"

In Hashiyah Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, it is stated:

[Arabic quote]: "If, after missing [the prayer] with the [first] Imam, he is able to catch it with another, let him do so, because of the consensus on the permissibility of its multiplicity. End."(2) / [Urdu original]: "If after missing it with one Imam, prayer can be offered with another Imam, then let the person go there for prayer because there is consensus on the permissibility of Eid at multiple locations. End. (T)"

Look, the texts state that if one does not pray behind [one] Imam, they should pray behind another Imam. In a state of excuse, the first and second days are equal. If one prays today, who is to stop them tomorrow? However, it is necessary that for the Imam who was appointed for Eidayn and Jumu'ah, the time should have also passed for him, so that an appointed Imam can be found for leadership. If the appointed Imam and everyone else has finished praying and some people are left behind, then they certainly cannot pray, neither today nor tomorrow. And Allah Almighty knows best what is right, and to Him is the return and final destination.

Issues 1328 to 1331: From Pilibhit, Madrasat-ul-Hadith, Hazrat Maulana Wasi Ahmad Sahib Muhaddith Surti (may Allah Almighty have mercy on him), 8 Dhul Hijjah 1327 AH.

What do the scholars of religion say regarding the following issues: (1) If the ruler of the time has given general permission saying, "You people build your Eidgah on such and such land," or without permission to build an Eidgah, only gave permission to offer the two-unit prayer; in both these cases, will the reward for the prayer be the same as that received in an Eidgah endowed (waqf) by a Muslim, or less? (2) In the first case, if Muslims build an Eidgah, will it be considered an endowment (waqf) and will the rulings of an Eidgah be established for it, or does that land remain the property of the ruler and the rulings of waqf will not apply? (3) If Eid prayer is offered

on government land without permission, will the prayer be performed without any dislike (karahat) or not? (4) In the meaning of Musalla, i.e., Eidgah, is its being enclosed (having a boundary) included, as is clear from the text of Jami al-Rumuz?

---

(1) Durr-e-Mukhtar, Chapter on Eidayn, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/116. (2) Maraqi al-Falah with Hashiyah al-Tahtawi, Chapter on the Rulings of Eidayn, printed by Nur Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 292.

फ़तावा रिज़विया, जिल्द आठवीं

बयान किया गया और विवाद को खत्म करने वाली बात यह है कि 'दुर्रे मुख्तार' में इमाम के साथ नमाज़ छूट जाने की स्थिति में स्पष्ट किया गया है:

[अरबी उद्धरण]: "यदि उसके लिए दूसरे इमाम के पास जाना संभव हो, तो वह ऐसा करे, क्योंकि सर्वसम्मति से एक शहर में कई स्थानों पर (ईद की नमाज़) अदा की जाती है।"(1) / [उर्दू अनुवाद]: "अगर दूसरे इमाम की तरफ़ जाना मुमकिन हो तो चला जाए क्योंकि एक शहर में बिल-इत्तेफ़ाक (सर्वसम्मति से) मुतअदद (अनेक) जगहों पर नमाज़े ईद अदा की जा सकती है। (त)"

'हाशिया तहतावी अला मराक़िल फ़लाह' में है:

[अरबी उद्धरण]: "यदि इमाम के साथ (नमाज़) छूट जाने के बाद वह किसी और के साथ उसे पाने में सक्षम है, तो वह ऐसा करे, क्योंकि इसके बहुलता की अनुमति पर सर्वसम्मति है। अंत।"(2) / [उर्दू अनुवाद]: "अगर एक इमाम के साथ फ़ौत होने (छूट जाने) के बाद दूसरे इमाम के साथ नमाज़ अदा की जा सकती है तो नमाज़ी वहीं चला जाए क्योंकि मुतअदद मकामात (अनेक स्थानों) पर ईद के जवाज़ (अनुमति) पर इत्तेफ़ाक (सहमति) है। अंत। (त)"

देखें, मूल ग्रंथ फ़रमाते हैं कि अगर इमाम के पीछे न पढ़े तो दूसरे इमाम के पीछे पढ़े। उज़्र (मजबूरी) की हालत में पहला और दूसरा दिन एक समान हैं। आज पढ़े तो कल कौन मना करने वाला है? मगर यह ज़रूरी है कि जो इमाम ईदैन और जुमा के लिए मुक़र्रर हुआ हो, उसे भी नमाज़ पढ़ाए हुए समय बीत चुका हो, ताकि इमामत के लिए मुअय्यन (निश्चित) इमाम मिल सके। और अगर मुक़र्रर कर्दा इमाम और सब लोग पढ़ चुके और बाज़ (कुछ) लोग रह गए, तो ये बेशक नहीं पढ़ सकते, न आज न कल। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है, और उसी की तरफ़ लौटना और ठिकाना है।

मसला १३२८ से १३३१: पीलीभीत, मदरसतुल हदीस, जनाब मौलाना वसी अहमद साहब मुहद्दिस सूरती (रहमतुल्लाहि तआला अलैहि), ८ ज़िल हिज्जा १३२७ हिजरी।

उलमा-ए-दीन दर्ज ज़ैल मसाइल में क्या फ़रमाते हैं: (१) अगर हाकिमे वक़्त (समय के शासक) ने आम तौर पर इजाज़त दे दी कि तुम लोग फ़लां ज़मीन पर अपनी ईदगाह बना लो या बिना इजाज़त ईदगाह बनाने के सिर्फ़ दोगाना (दो रकात नमाज़) अदा करने की इजाज़त दी, तो इन दोनों सूरतों में नमाज़ का सवाब उतना ही मिलेगा जितना मुसलमान की वक़्फ़ की हुई ईदगाह में मिलता है या उससे कम?

(२) और पहली सूरत में अगर मुसलमानों ने ईदगाह बना ली तो क्या वह वक़्फ़ समझी जाएगी और ईदगाह के अहकाम (नियम) उसके लिए साबित होंगे या वह ज़मीन हाकिम की मिलकियत पर बाक़ी है और वक़्फ़ के अहकाम जारी न होंगे? (३) अगर बिना इजाज़त गवर्नमेंट की ज़मीन पर नꦺज़े ईद पढ़ी गई तो नमाज़ बिना कराहत (नापसंदगी) के हो गई या नहीं? (४) मुसल्ला यानी ईदगाह के मफ़हूम (अर्थ) में उसका मुहात (चारों तरफ से घिरा हुआ) होना शामिल है जैसा कि 'जामेउर रुमूज़' की इबारत से वाज़ेह (स्पष्ट) है?

---

(१) दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली १/११६ (२) मराक़िल फ़लाह मअ हाशिया अत-तहतावी, बाब अहका़मुल ईदैन, मतबुआ नूर मोहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृ. २९२

पृष्ठ ५८१ / ६७३

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

بیان کئے اور قاطعِ شغب یہ ہے کہ در مختار میں در صورت فوات مع الامام تصریح کی:

لو امکنه الذهاب الی الامام الاخر فعل لانها تؤدی بمصر واحد بمواضع کثیرة اتفاقاً (1) | اگر دوسرے امام کی طرف جانا ممکن ہو تو چلا جائے کیونکہ ایک شہر میں بالاتفاق متعدد جگہوں پر نماز عید ادا کی جاسکتی ہے (ت)

حاشیہ طحطاوی علی مراقی الفلاح میں ہے:

لو قدر بعد الفوات مع الامام علی ادراکها مع غیر فعل للاتفاق علی جواز تعددها (2) اھ | اگر ایک امام کے ساتھ فوت ہونے کے بعد دوسرے امام کے ساتھ نماز ادا کی جاسکتی ہے تو نمازی وہاں چلا جائے کیونکہ متعدد مقامات پر عید کے جواز پر اتفاق ہے اھ (ت)

دیکھو نص فرماتے ہیں کہ امام کے پیچھے نہ پڑھے تو دوسرے امام کے پیچھے پڑھے اور حال عذر میں روز اول و دوم یکساں، آج پڑھے تو کل کون مانع، مگر یہ ضرور ہے کہ جو امام عیدین و جمعہ کے لئے مقرر ہوا اسے بھی فوت ہوئی ہو کہ امامت کے لئے امام معین مل سکے اور اگر مقرر کردہ امام سب پڑھ چکے اور بعض لوگ رہ گئے تو یہ بیشک نہیں پڑھ سکتے نہ آج نہ کل واللہ تعالٰی اعلم بالصواب والیہ المرجع والمآب۔

مسئلہ ۱۳۲۸ تا ۱۳۳۱: از پیلی بھیت مدرسۃ الحدیث جناب مولانا وصی احمد صاحب محدث سورتی رحمہ اللہ تعالٰی ۸ ذی الحجہ ۱۳۲۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین مسائل ذیل میں : (۱) اگر حاکم وقت نے عام طور پر اجازت دے دی کہ تم لوگ فلاں زمیں پر اپنی عیدگاہ بنالو یا بلا اجازت عیدگاہ بنانے کے، فقط دوگانہ ادا کرنے کی

اجازت دی تو ان دونوں صورتوں میں نماز کا ثواب اسی قدر ملے گا جس قدر مسلمان کی وقف کردہ عیدگاہ میں ملتا ہے یا اس سے کم؟ (۲) اور صورت اولیٰ میں اگر مسلمانوں نے عیدگاہ بنالی تو وہ وقف سمجھی جائے گی اور احکام عیدگاہ اس کے لئے ثابت ہوں گے یا وہ زمین ملک حاکم پر باقی ہے اور وقف کے احکام جاری نہ ہوں گے؟ (۳) اگر بے اجازت گورنمنٹ کی زمین پر نماز عید پڑھی گئی تو نماز بلا کراہت ہوگئی یا نہیں؟ (۴) مصلیٰ اعنی عیدگاہ کے مفہوم میں اس کا محاط ہونا داخل ہے جیسے کہ جامع الرموز کی عبارت سے واضح

---

1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۶ 2 مراقی الفلاح مع حاشیہ الطحطاوی باب احکام العیدین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص ۲۹۲

Fatawa Razawiya - Volume 8

...is it so or not? Rather, whichever place prayer is offered, whether enclosed or not, it is an Eidgah. Give a ruling, you will be rewarded.

The Answer:

(1) Yes, the reward is the same. Praying in an endowed (Waqf) land is neither part of the Sunnahs of Eidain nor among the recommended (Mustahabb) acts. The Sunnah is simply that it be in an open field (Sahra).

Arabic Text	English Translation
And the prayer place in the time of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and the time of the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them) was uncultivated land, without endowment (Waqf) or building.	Because during the manifest life of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and the era of the Rightly Guided Caliphs (may Allah be pleased with them), the Eidgah was uncultivated land; it was neither Waqf nor built upon. (T)

(2) The uncultivated lands of open fields and forests do not belong to the king; they originally belong to Allah and His Messenger (Exalted is He, and peace and blessings of Allah be upon him). It is mentioned in the Hadith:

Arabic Text	English Translation
Uncultivated land belongs to Allah and His Messenger[1]. Narrated by Al-Bayhaqi in *Shu'ab al-Iman* from Tawus, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and narrated from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) as a *mawquf* report.	Uncultivated lands belong to Allah and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him). This was narrated by Al-Bayhaqi in *Shu'ab al-Iman* from Tawus, and he from the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) this is narrated as a *mawquf* report. (T)

When the ruler of the time gives permission and there is no fear of repossession, and Muslims endow it, the Waqf becomes valid and binding, and the rulings of a prayer-place (Musalla) will apply to it. (3) Prayer is valid without any dislike (karahat).

Arabic Text	English Translation
Because it was previously mentioned that the land belongs to Allah (Exalted and Most High) and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him).	As previously mentioned, the land belongs to Allah (Exalted and Most High) and His Messenger (peace and blessings of Allah be upon him). (T)

(4) Being enclosed is not part of the definition of a Musalla (prayer-place).

Arabic Text	English Translation
As we have already mentioned, the prayer in his time and the time of the Caliphs was in an open field without building and...	As we stated earlier, the Eid prayer during the manifest life of the Master of both Worlds (peace and blessings of Allah be upon him) and the era of the Caliphs...

[1] *Al-Jami' al-Rumuz* with *Fayd al-Qadir*, referencing Bayhaqi, Hadith 5363, published by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 4/298.

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

...है या नहीं? बल्कि जिस जगह नमाज़ हो, चाहे वह घिरी हुई हो या नहीं, वह ईदगाह है। बयान फरमाएं आपको सवाब मिलेगा।

जवाब:

(1) हाँ, उतना ही सवाब है। वक़्फ़ की गई ज़मीन में नमाज़ पढ़ना न तो ईदैन की सुन्नतों में से है और न ही मुस्तहब्बात (पसंदीदा कार्यों) में से। सुन्नत सिर्फ इतनी है कि वह खुले मैदान (सहरा) में हो।

अरबी इबारत	**हिन्दी अनुवाद**
अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और खुलफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के ज़माने में ईदगाह बंजर ज़मीन थी, न तो वह वक़्फ़ थी और न ही उस पर कोई इमारत थी।	क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के ज़ाहिरी जीवन और खुलफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के दौर में ईदगाह बंजर ज़मीन थी; न तो वह वक़्फ़ थी और न ही उस पर कोई इमारत बनी थी। (त)

(2) मैदानों और जंगलों की बंजर ज़मीनें बादशाह की मिल्कियत नहीं होतीं, वे असल में अल्लाह और उसके रसूल (अल्लाह उन पर अपनी रहमत और सलामती भेजे) की होती हैं। हदीस में आया है:

अरबी इबारत	**हिन्दी अनुवाद**
बंजर ज़मीन अल्लाह और उसके रसूल[1] की है। इसे बेहक़ी ने 'शुअबुल ईमान' में ताऊस से और उन्होंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत किया है, और इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से यह मौक़ूफ़ रिवायत है।	बंजर ज़मीनें अल्लाह और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की हैं। इसे बेहक़ी ने 'शुअबुल ईमान' में ताऊस से और उन्होंने नबी अकरम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से रिवायत किया है, और हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से यह मौक़ूफ़ रिवायत है। (त)

जब वक्त के हाकिम ने इजाज़त दे दी और वापस लेने का कोई डर न रहा और मुसलमानों ने उसे वक़्फ़ कर दिया, तो वक़्फ़ सही और लाज़िम हो गया, और मुसल्ला (नमाज़ की जगह) के अहकाम उस पर लागू होंगे। (3) नमाज़ बिना किसी कराहत (नापसंदगी) के सही है।

अरबी इबारत	हिन्दी अनुवाद
जैसा कि पहले ज़िक्र हुआ कि ज़मीन अल्लाह (पाक व बरतर) और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की है।	जैसा कि पहले ज़िक्र हुआ कि ज़मीन अल्लाह (पाक व बरतर) और उसके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की है। (त)

(4) चारदीवारी का होना मुसल्ला के अर्थ में शामिल नहीं है।

अरबी इबारत	हिन्दी अनुवाद
जैसा कि हमने पीछे बयान किया कि उनके ज़माने और खुलफ़ा के दौर में नमाज़ एक खुले मैदान में होती थी जहाँ कोई इमारत नहीं थी और...	जैसा कि हमने पीछे बयान किया कि नमाज़-ए-ईद सरवर-ए-दो आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ज़ाहिरी हयात और खुलफ़ा के दौर में...

[1] अल-जामे अर-रुमूज़ मा फ़ैज़ुल क़दीर, हवाले बेहक़ी हदीस 5363, मत्तबूआ दारुल मआरिफ़ा बैरुत 4/298।

ہے یا نہیں بلکہ جس جگہ نماز ہو محاط ہو یا نہ ہو وہ عید گاہ ہے۔ بینوا توجروا

الجواب:

(۱) ہاں اتنا ہی ثواب ہے، زمین وقف کردہ میں پڑھنا نہ عیدین کے سنن سے ہے نہ مستحبات سے، سنت اس قدر ہے کہ صحرا میں ہو،

عربی عبارت	اردو ترجمہ
وقد کان المصلی فی زمنہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم و زمن الخلفاء الراشدین رضی اللہ تعالٰی عنہم من عادی الارض بغیر وقف ولا بناء۔	کیونکہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ظاہری حیات اور خلفاء راشدین رضی اللہ تعالٰی عنہم کے دور میں عیدگاہ افتادہ زمین تھی، نہ وقف تھی اور نہ تعمیر شدہ تھی۔ (ت)

(۲) صحراؤں جنگلوں کی افتادہ زمینیں بادشاہ کی ملک نہیں ہوتیں وہ اصل ملک خدا اور رسول پر ہیں جل جلالہ وصلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ، حدیث میں ہے:

عربی عبارت	اردو ترجمہ
عادی الارض للہ ورسولہ ۱ رواہ البیھقی فی الشعب عن طاؤس عن النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وعن ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنھما وقفا۔	افتادہ زمینیں اللہ اور اس کے رسول صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ہیں، اسے بیہقی نے شعب الایمان میں طاؤس سے اور انھوں نے نبی اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے روایت کیا، اور حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہم سے یہ موقوفاً روایت ہے (ت)

حاکم وقت نے جب اجازت دے دی اور استرداد کا خوف نہ رہا اور مسلمانوں نے وقف کر دی وقف صحیح لازم ہو گئی احکام مصلی اس پر جاری ہوں گے۔ (۳) نماز بلا کراہت صحیح ہے،

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لما مر ان الارض للہ ورسولہ جل وعلا وصلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم۔	جیسا کہ گزرا کہ زمین اللہ جل وعلا اور اس کے رسول صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ہے۔ (ت)

(۴) محاط ہونا مفہوم مصلی میں داخل نہیں،

عربی عبارت	اردو ترجمہ
لما قدمنا ان الصلوٰۃ فی زمنہ و زمن الخلفاء کانت فی ارض بیضاء بدون بناء وما	پیچھے ہم نے بیان کیا کہ نماز عید سرورِ دو عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی ظاہری حیات اور خلفاء کے دور

۱ الجامع الرموز مع فیض القدیر بحوالہ بیہقی حدیث ۵۳۶۳ مطبوعہ دارالمعرفۃ بیروت ۴/ ۲۹۸

Fatawa Rizvia, Volume 8

In Al-Quhistani, it says: "According to the emerging custom, building a structure was intended for identification, not as a requirement for the validity of the structure." And Allah knows best. — (T)

Problem 1332: 28 Muharram 1332 AH. From Qazi Abdul Hameed Sahib, town of Kekri, district Ajmer Sharif. What do the scholars of religion and experts of the clear Sharia say regarding this issue: when there is discord among Muslims and differences in belief, can two groups in the Eidgah mosque perform Eid prayer and sermon separately with their own imams in one mosque or not? Answer, and the Lord will reward you.

The Answer: Eid prayer is like Friday (Jummah) prayer; it is not like the five daily prayers in which any righteous person can lead. For the two Eids and Friday, it is a condition that the Imam be the ruler of Islam himself, or his deputy, or his authorized representative. If none exists, then out of necessity, the one appointed by the general Muslims for the leadership of Friday and Eid prayers. It is obvious that two people are not appointed as Imams for one prayer in one mosque. So, the prayer of the one not appointed and those behind him will not be valid. Here, a difference in school of thought between Hanafi and Shafi'i cannot be an excuse. However, if the difference in belief is such that one group is Sunni and the other is Wahhabi or Ghair-Muqallid, then in this case, the prayer of that [non-Sunni] imam and his followers is completely void. It is mandatory for Sunnis to appoint their own Imam from among themselves; only their prayer will be valid. And Allah knows best.

Problem 1333: 11 Dhu al-Hijjah 1336 AH. From the city, Bazar Sandal Khan Mohalla, sent by Hidayatullah Sahib. Zaid kept working as a tailor before the Eid prayer. Bakr said that whatever wages Zaid earned before the prayer are haram (forbidden) because the work he did before the prayer was illegitimate. Is this correct or not?

The Answer: Bakr is completely wrong. As long as Zaid did not fail to perform the prayer, working before the prayer was not haram, nor after the prayer, nor is there any issue with those wages. Yes, if he had not performed the prayer due to the work, then the work would have been haram, but the wages would still not have been haram. This is the ruling on lawfulness and prohibition. However, it is preferable (mustahabb), if there is no necessity, not to do any worldly work other than things related to Eid before the prayer, because it is a day of joy, not labor. There should be a distinction between this day and other days. That is why there is a custom of

holidays on their respective Eid days in every community. Even so, this is not mandatory. And...

फ़तावा रज़विया, खंड 8

अल-कुहिस्तानी में है: "उभरती हुई प्रथा के अनुसार, संरचना का निर्माण पहचान के लिए था, न कि संरचना की वैधता के लिए एक शर्त के रूप में।" और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। — (त)

मसला 1332: 28 मुहर्रम 1332 हिजरी। क़ाज़ी अब्दुल हमीद साहब, क़स्बा केकड़ी, ज़िला अजमेर शरीफ़ से। दीन के उलेमा और शरीयत के माहिर इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: जब मुसलमानों में रंजिश हो और मज़हब (विचारधारा) अलग हो, तो क्या ऐसी सूरत में ईदगाह मस्जिद में दो गिरोह अपने-अपने इमाम के साथ अलग-अलग ईद की नमाज़ और खुतबा एक ही मस्जिद में अदा कर सकते हैं या नहीं? जवाब दें, अल्लाह अज्र देगा।

जवाब: ईद की नमाज़ जुमे की नमाज़ की तरह है; यह पाँच वक़्त की नमाज़ों की तरह नहीं है जिनमें हर नेक शख़्स इमामत कर सकता है। ईदैन (दोनों ईदों) और जुमे के लिए शर्त है कि इमाम ख़ुद सुल्तान-ए-इस्लाम (इस्लामी शासक) हो या उसका नायब (उप) या उसका माज़ून (अधिकृत व्यक्ति)। और अगर न हो, तो ज़रूरत के वक़्त जिसे आम मुसलमानों ने जुमे और ईदैन की इमामत के लिए मुक़र्रर (नियुक्त) किया हो। यह ज़ाहिर है कि एक मस्जिद में एक नमाज़ के लिए दो शख़्स इमाम मुक़र्रर नहीं होते, तो जो उनमें मुक़र्रर नहीं है, उसकी और उसके पीछे वालों की नमाज़ नहीं होगी। और यहाँ हनफ़ी और शाफ़ई मज़हब का इख़्तिलाफ़ (अंतर) कोई उज़्र (बहाना) नहीं हो सकता। हाँ, अगर मज़हबी इख़्तिलाफ़ ऐसा है कि उनमें से एक गिरोह सुन्नी है और दूसरा वहाबी या ग़ैर-मुक़ल्लिद, तो इस सूरत में उस इमाम और उसके मुक़्तदियों (अनुयायियों) की नमाज़ पूरी तरह बातिल (अमान्य) है। और सुन्नियों पर लाज़िम है कि वे अपने में से अपना इमाम मुक़र्रर करें, सिर्फ़ उनकी नमाज़ ही नमाज़ होगी। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1333: 11 ज़ुल-हिज्जा 1336 हिजरी। शहर मोहल्ला बाज़ार संदल ख़ाँ से, मुरसला हिदायत उल्लाह साहब। ज़ैद ईद की नमाज़ से पहले दर्ज़ी का काम करता रहा, बक्र ने कहा कि ज़ैद ने नमाज़ से पहले जितनी मज़दूरी की वह हराम है क्योंकि उसने नमाज़ से पहले जितना काम किया वह नाज़ायज़ था। क्या यह सही है या नहीं?

जवाब: बक्र महज़ ग़लत कहता है। जब ज़ैद ने नमाज़ अदा करने में कोताही नहीं की, तो नमाज़ से पहले काम करना हराम था न नमाज़ के बाद, और न ही उस उजरत (मज़दूरी) में कोई हर्ज है। हाँ, अगर काम की वजह से नमाज़ न पढ़ता तो वह काम हराम होता, लेकिन उजरत फिर भी हराम नहीं

थी। यह तो हलाल और हराम का हुक्म है, अलबत्ता मुस्तहब (पसंदीदा) है कि अगर ज़रूरत न हो तो ईद के दिन नमाज़ से पहले ईद से मुताल्लिक़ कामों के अलावा कोई दुनियावी काम न करे क्योंकि यह ख़ुशी का दिन है न कि मेहनत का। इस दिन और दूसरे दिनों में फ़र्क़ होना चाहिए, इसीलिए हर कौम में अपनी-अपनी ईदों के दिन छुट्टी का रिवाज है, फिर भी यह कोई वाजिब (अनिवार्य) नहीं है। और...

पृष्ठ 583 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

فی القھستانی فلہ علی العادۃ الحادثۃ بناء قصد بہ التعریف لا اشتراط بناء۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت) میں چٹیل میدان میں بغیر کسی عمارت کے ہوتی تھی، اور قہستانی میں جو کچھ ہے وہ عادت معروفہ پر مبنی ہے یہ نہیں کہ بناء کو بطور شرط بیان کیا گیا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ (ت)

مسئلہ ۱۳۳۲: ۲۸ محرم ۱۳۳۲ھ، قاضی عبدالحمید صاحب از قصبہ کیکڑی ضلع اجمیر شریف۔ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و فضلاء شرع متین اس مسئلہ میں کہ مسجد عیدگاہ میں جبکہ مسلمانوں میں رنج ہو اور مذہب غیر ہو تو اس صورت میں نماز عید کی دونوں گروہ اپنے اپنے امام کے ساتھ علیحدہ علیحدہ نماز و خطبہ ایک مسجد میں ادا کر سکتے ہیں یا نہیں؟ جواب دو پروردگار اجر دے گا۔

الجواب: نماز عید مثلِ نماز جمعہ ہے نماز پنجگانہ کی طرح نہیں جن میں ہر شخص صالح امامت کر سکتا ہے، عیدین اور جمعہ کے لئے شرط ہے کہ امام خود سلطانِ اسلام ہو یا اس کا نائب یا اس کا ماذون، اور نہ ہو تو بضرورت جسے عام مسلمانوں نے امامت جمعہ و عیدین کے لئے مقرر کیا ہو، ظاہر ہے کہ ایک مسجد میں ایک نماز کے لئے دو شخص امام مقرر نہیں ہوتے تو جوان میں مقرر نہیں ہے اسکی اور اس کے پیچھے والوں کی نماز نہ ہوگی اور یہاں اختلافِ مذہب حنفیت وشافعیت عذر نہیں ہوسکتا، ہاں اگر ایسا اختلافِ مذہب ہے کہ ان میں ایک گروہ سنی اور دوسرا وہابی یا غیر مقلد، تو اس صورت میں اس امام اور اس کے مقتدیوں کی نماز باطل محض ہے، اور سنیوں پر لازم ہے کہ اپنا امام اپنے میں سے مقرر کریں انھیں کی نماز نماز ہوگی وبس واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۳۳۳: ۱۱ ذی الحجہ ۱۳۳۶ھ، از شہر محلہ بازار صندل خاں مرسلہ ہدایت اللہ صاحب۔ زید عید کی نماز سے پہلے درزی کا کام کرتا رہا، بکر نے کہا کہ زید نے نماز سے پہلے جتنی مزدوری کی وہ حرام ہے اس لئے کہ اس نے جتنا کام قبل از نماز کیا وہ ناجائز تھا، آیا یہ صحیح ہے یا نہیں؟

الجواب: بکر محض غلط کہتا ہے جبکہ زید نے ادائے نماز میں قصور نہ کیا تو قبلِ نماز کام کرنا حرام تھا نہ بعد نماز نہ اس اجرت میں کوئی حرج ہے، ہاں اگر کام کے سبب نماز نہ پڑھتا تو وہ کام حرام ہوتا اجرت پھر بھی حرام نہ تھی، یہ تو حلت وحرمت کا حکم ہے البتہ مستحب ہے کہ ضرورت نہ ہو تو عید کے دن نماز سے پہلے متعلقاتِ عید کے سوا کوئی دنیوی کام نہ کرے کہ خوشی کا دن ہے نہ کہ محنت کا، اس دن کا اور دنوں سے امتیاز چاہئے، اسی واسطے ہر گروہ میں اپنی اپنی عیدوں کے دن تعطیل کا معمول ہے پھر بھی یہ کوئی واجب نہیں، اور

Fatawa Razawiyya Volume 8

...no room for argument if there is a necessity. Allah the Almighty knows best.

Problem 1234: In the Eid prayer, after the initial Takbir (Takbir-e-Tahreema), the Imam started Surah al-Fatiha. After saying 'Alhamdulillahi Rabbil Aalameen', the followers reminded him, so he performed the three (extra) Takbirs and then restarted the recitation. Is the prayer valid in this situation or not?

The Answer: In the first case (not doing Takbirs), the prayer was not valid; in the second case, it was valid. Such a person cannot be the most deserving of leading the congregation. Allah the Almighty knows best.

Problem 1235: From Pilibhit, Muhalla Sher, sent by Haji Hamid Hussain Sahib and Azizuddin Sahib, 3 Shawwal 1337 AH.

What do the scholars of religion say: Zaid performed the Eid al-Fitr prayer as a follower in a mosque located in the city. Afterwards, Zaid went to the Eidgah where Bakr was the Imam. While leading the prayer, the extra Takbirs in the last rak'ah were missed, due to which the prayer became invalid. Then Zaid became the Imam and led the Eid al-Fitr prayer again, even though he had already performed it as a follower. In such a situation, should Zaid have led the prayer or not? Is Zaid's prayer, which he previously performed as a follower, correct or is it his state as an Imam? And is the prayer of the other followers who prayed behind Zaid, who led the prayer again as an Imam, valid or not?

The Answer: It was not at all permissible for Zaid to lead the prayer. The prayer of those who prayed behind him is void. For those among them who were unaware, the burden of their prayer being missed also remains on Zaid's head. It is stated in Durr-ul-Mukhtar:

[Table/Box Start] Arabic: لا يصح اقتداء مفترض بمتنفل ولا ناذر بمتنفل English Translation: It is not valid for one performing an obligatory prayer to follow one performing a voluntary prayer, nor for one fulfilling a vow to follow one performing a voluntary prayer. (T) [Table/Box End]

It is stated in Radd al-Muhtar:

[Table/Box Start] Arabic: لان النذر واجب فيلزم بناء القوى على الضعيف English Translation: Because a vow is obligatory, therefore it would necessitate building the strong upon the weak. Allah the Almighty knows best. (T) [Table/Box End]

1. Durr-ul-Mukhtar, Chapter on Leadership, published by Mujtabai Press, Delhi, 1/82.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Leadership, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/429.

फतावा रज़विया खंड 8

...जब ज़रूरत हो तो बहस की कोई गुंजाइश ही नहीं है, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1234: ईद की नमाज़ में इमाम ने तकबीर-ए-तहरीमा के बाद सूरह फ़ातिहा शुरू की, 'अल्हम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन' कहने के बाद मुक्तदी के याद दिलाने पर तीन तकबीरें कहीं और तकबीरों के बाद दोबारा क़िरात (पाठ) शुरू की, इस सूरत में नमाज़ हुई या नहीं?

जवाब: पहली सूरत में नमाज़ नहीं हुई, दूसरी में हो गई, ऐसा व्यक्ति इमामत के सबसे ज़्यादा हक़दार नहीं हो सकता। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1235: पीलीभीत, मुहल्ला शेर, प्रेषित हाजी हामिद हुसैन साहब और अज़ीज़ुद्दीन साहब, 3 शव्वाल 1337 हिजरी।

धर्म के विद्वान क्या कहते हैं: ज़ैद ने शहर में स्थित एक मस्जिद में मुक्तदी (पीछे पढ़ने वाला) बनकर ईद-उल-फ़ित्र की नमाज़ पढ़ी। उसके बाद ज़ैद ईदगाह गया जहाँ बक्र इमाम था। नमाज़ पढ़ाते समय उससे आख़िरी रकअत में तकबीरें छूट गईं जिससे नमाज़ फ़ासिद (अमान्य) हो गई। तब ज़ैद ने दोबारा इमाम बनकर ईद-उल-फ़ित्र की नमाज़ पढ़ाई, जबकि वह पहले ही मुक्तदी की हैसियत से नमाज़ पढ़ चुका था। क्या ऐसी स्थिति में ज़ैद को नमाज़ पढ़ानी चाहिए थी या नहीं? क्या ज़ैद की नमाज़, जो उसने पहले मुक्तदी बनकर पढ़ी थी, सही है या इमाम वाली स्थिति में सही है? और अन्य मुक्तदियों की नमाज़, जिन्होंने ज़ैद के पीछे नमाज़ पढ़ी, जिन्होंने दोबारा इमाम बनकर नमाज़ पढ़ाई, क्या उनकी नमाज़ सही हुई या नहीं?

जवाब: ज़ैद को इमामत करना हरगिज़ जायज़ न था, जिन लोगों ने उसके पीछे नमाज़ पढ़ी उनकी नमाज़ बातिल (अमान्य) हो गई। उनमें से जो अनजान थे उनकी नमाज़ रह जाने का गुनाह भी ज़ैद के सिर रहा। 'दुर्रे मुख्तार' में है:

[तालिका/बॉक्स प्रारंभ] अरबी: لا يصح اقتداء مفترض بمتنفل ولا ناذر بمتنفل हिंदी अनुवाद: फ़र्ज़ पढ़ने वाले का नफ़्ल पढ़ने वाले के पीछे इक़्तिदा (अनुसरण) करना सही नहीं है और न ही नज़्र (मन्नत) पूरी करने वाले का मुतफ़्फ़िल (नफ़्ल पढ़ने वाले) के पीछे इक़्तिदा करना सही है। (त) [तालिका/बॉक्स अंत]

'रद-उल-मुहतार' में है:

[तालिका/बॉक्स प्रारंभ] अरबी: لان النذر واجب فيلزم بناء القوى على الضعيف हिंदी अनुवाद: क्योंकि नज़्र वाजिब है, इसलिए मज़बूत का कमज़ोर पर बुनियाद रखना लाज़िम आएगा। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त) [तालिका/बॉक्स अंत]

1. दुर्रे मुख्तार, बाब अल-इमामा, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/82 द्वारा प्रकाशित।
2. रद-उल-मुहतार, बाब अल-इमामा, मुस्तफा अल-बाबी, मिस्र, 1/429 द्वारा प्रकाशित।

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

ضرورت ہو جب تو کوئی گنجائش کلام ہی نہیں، واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳۴: نماز عید میں امام نے تکبیر تحریمہ کے بعد سورہ فاتحہ شروع الحمد اللہ رب العلمین کہنے کے بعد مقتدی کے یاد دلانے پر تکبیر ثلثہ کہیں اور بعد تکبیرات دوبارہ قرات شروع کی، اس شکل میں نماز ہوئی یا نہیں؟

الجواب: پہلی صورت میں نماز نہ ہوئی دوسری میں ہو گئی، ایسا شخص احق بالامتہ نہیں ہو سکتا۔ واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۲۳۵: از پیلی بھیت محلہ شیر مرسلہ حاجی حامد حسین صاحب و عزیز الدین صاحب ۳ شوال ۱۳۳۷ھ

کیا فرماتے ہیں علمائے دین، زید نے ایک مسجد میں جو شہر میں واقع ہے مقتدی بن کر نماز عید الفطر پڑھی، بعد اس کے زید عید گاہ کو گیا اور وہاں بکر امام تھا، اُس سے نماز پڑھاتے وقت اخیر رکعت میں تکبیریں چھوٹ گئی تھیں جس سے نماز فاسد ہو گئی، تب زید نے دوبارہ امام بن کر نماز عید الفطر پڑھائی حالانکہ وہ نماز مقتدی کی حالت میں پڑھ کر گیا تھا، ایسی حالت میں زید کو نماز پڑھانا چاہئے تھا یا نہیں؟ آیا زید کی نماز جو اس نے پیشتر مقتدی ہو کر پڑھی تھی صحیح ہے یا امام کی حالت میں ہے؟ اور دیگر مقتدیان کی نماز جنہوں نے زید کے پیچھے کہ جس نے دوبارہ حالت امام میں نماز پڑھائی اُن کی نماز درست ہوئی یا نہیں؟

الجواب: زید کو امامت ہرگز جائز نہ تھی، جن لوگوں نے اُس کے پیچھے نماز پڑھی ان کی نماز باطل ہوئی، اُن میں جو ناواقف تھے ان کی نماز رہ جانے کا وبال بھی زید کے سر رہا، در مختار میں ہے:

[خانہ شروع] لا یصح اقتداء مفترض بمتنفل ولا ناذر بمتنفل فرض پڑھنے والے کی نفل پڑھنے والے کی اقتداء درست نہیں اور نہ نذر پوری کرنے والے کی متنفل کی اقتداء (ت) [خانہ ختم]

رد المحتار میں ہے:

[خانہ شروع] لان النذر واجب فیلزم بناء القوی علی الضعیف کیونکہ نذر واجب ہے لہذا قوی کی ضعیف پر بنا لازم آئے گی۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت) [خانہ ختم]

1 در مختار باب الامامۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۸۲/۱ 2 رد المحتار باب الامامۃ مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۴۲۹/۱

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

Problem 1236: From Sylhet, 28 Shawwal 1337 AH. Question: What do the scholars of religion say regarding this matter? People from several neighborhoods offer Friday and Eid prayers in a mosque. Due to negligence and laziness, every person does not arrive at the appointed time. Consequently, some people miss their prayer, which leads to quarrels and disputes. Now, all the neighborhood residents consulted a scholar. He advised that it is appropriate to light three firecrackers/signal-rockets. If no one arrives by the third rocket one after another, there will be no quarrel. Everyone agreed and started this practice of lighting three rockets on the day of Eid, saying it's for the purpose of informing and announcing to the congregants. When another scholar heard this, he said this fireworks display is a sinful innovation (Bid'ah Sayyi'ah), a prohibited act, and a practice of non-believers that they do in their festivals; it is not permissible at all. Answer: Indeed, this is a sinful innovation and resembles the disbelievers; avoiding it is mandatory. This was decided in the Hadith regarding the Adhan; fire and bells were all rejected, and the Adhan was established for the exaltation of the Word of Allah. For the two Eids, there isn't even a command for Adhan. It is in the authentic Hadiths that the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) neither had the Adhan called nor the Iqamah recited for the Eids. Only "As-Salatu Jami'ah" is called out twice. One should limit themselves to this and there should be nothing more than that. The burden of the negligent ones is upon them. And Allah Almighty knows best.

Problem 1237: From Bareilly, Madrasa Manzar-e-Islam, questioned by Maulana Rahim Bakhsh Sahib Bengali, 16 Safar 1338 AH. Question: What do the scholars of religion say regarding this matter: is it permissible to take the bedding etc., of the mosque to the Eidgah or not? Answer: Taking the property of the mosque to the Eidgah is prohibited. And Allah Almighty knows best.

Problem 1238: From Tarakandi, Madrasa Islamia, Post Pakundia, District Mymensingh, questioned by Muhammad Abdul Hafiz Sahib, First Teacher Tarakandi, 24 Muharram 1339 AH. Question: What do the scholars of religion and the jurists of the clear Sharia say in the following matter: is it permissible to ask for (supplication/ dua) after the Eid prayers, before the sermon (Khutbah) or after the sermon? If it is permissible, what is the proof for it from Hanafi books? Please explain with multiple proofs. It is written in "Behishti Gohar" authored by Maulana Ashraf Ali...

फ़तावा रज़विया खंड आठ

मसला 1236: सिलहट से, 28 शव्वाल 1337 हिजरी। प्रश्न: धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं? कई मोहल्लों के लोग एक मस्जिद में जुमा और ईद की नमाज़ पढ़ते हैं। लापरवाही और आलस्य के कारण हर व्यक्ति निर्धारित समय पर उपस्थित नहीं होता है, इसलिए कुछ लोगों की नमाज़ छूट जाती है, जिससे झगड़े और फसाद होते हैं। अब मोहल्ले के सभी लोगों ने मिलकर एक विद्वान से सलाह ली। उन्होंने सलाह दी कि तीन गोले (पटाखे/रॉकेट) जलाना उचित है, एक के बाद एक; अगर तीसरे गोले तक कोई नहीं आता है, तो कोई झगड़ा नहीं होगा। सभी लोगों ने इस पर सहमति जताई और यह अभ्यास शुरू किया कि वे ईद के दिन तीन गोले जलाते हैं और कहते हैं कि यह नमाज़ियों को सूचित करने और घोषणा करने के लिए है। जब दूसरे किसी विद्वान ने यह सुना, तो उन्होंने कहा कि यह आतिशबाज़ी एक बुरी बिदअत (बिदअत-ए-सय्यिअह) और वर्जित कार्य है, यह हिंदुओं का काम है जो वे अपने त्योहारों पर करते हैं; यह हरगिज़ जायज़ नहीं है। उत्तर: वास्तव में, यह एक बुरी बिदअत है और काफिरों की नकल है, इससे बचना अनिवार्य है। अज़ान से संबंधित हदीस में इसका फैसला हो चुका है; आग और नक़ूस (शंख/घंटी) सबको अस्वीकार कर दिया गया और अज़ान निर्धारित की गई जिससे अल्लाह के शब्द की महिमा हो। और ईदैन के लिए तो अज़ान का भी हुक्म नहीं है। सही हदीसों में है कि हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम) ने ईदैन में न अज़ान दिलवाई और न इकामत कहलवाई, केवल 'अस-सलातु जामिअह' दो बार पुकारा जाता है। इसी पर संक्षिप्त रहें और इससे अधिक हरगिज़ कुछ न हो। लापरवाही करने वालों का पाप उन्हीं पर है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1237: बरेली, मदरसा मंज़र-ए-इस्लाम से, प्रस्तावक मौलवी रहीम बख्श साहब बंगाली, 16 सफर 1338 हिजरी। प्रश्न: धर्म के विद्वान इस मसले में क्या कहते हैं कि क्या ईदगाह में मस्जिद के बिस्तर वगैरह ले जाना जायज़ है या नहीं? उत्तर: ईदगाह में मस्जिद का सामान ले जाना वर्जित है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1238: ताराकांडी से, मदरसा इस्लामिया, पोस्ट पाकुंदिया, ज़िला मैमनसिंह, प्रस्तावक मुहम्मद अब्दुल हाफिज़ साहब, प्रथम शिक्षक ताराकांडी, 24 मुहर्रम 1339 हिजरी। प्रश्न: धर्म के विद्वान और शरीयत के मुफ़्ती इस मसले में क्या कहते हैं कि ईदैन की नमाज़ के बाद खुतबे से पहले या खुतबे के बाद दुआ माँगना जायज़ है या नहीं? अगर जायज़ है, तो हनफी किताबों के अनेक संदर्भों के साथ इसका वर्णन करें। मौलवी अशरफ़ अली की किताब 'बेहिश्ती गौहर' में लिखा है...

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

مسئلہ ۱۲۳۶: از سلہٹ ۲۸ شوال ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ چند محلے کے لوگ مسجد میں جمعہ و عید کی نماز پڑھتے ہیں اور ہر شخص از روئے تغافل و تکاسل وقت معین میں حاضر نہیں ہوتے لہذا بعض لوگوں کی نماز فوت ہوتی ہے اس لئے جھگڑا فساد لڑائی برپا کرتے ہیں اب سب محلہ والے مل کر ایک صاحب علم سے مشورہ کیا اس نے یہ امر کیا کہ تین بنگولہ جلانا مناسب ہے، یکے بعد دیگرے اگر تیسرے بنگولے کے متصل کوئی حاضر نہ ہو تو جھگڑا لڑائی نہیں، سب لوگوں نے اس بات پر متفق ہو کر یہ عمل شروع کیا کہ عید کے دن تین بنگولہ جلاتے ہیں اور کہتا ہے کہ یہ واسطے اعلام اور اعلان مصلیوں کے کرتے ہیں، اب یہ بات جب دوسرے کسی صاحب علم نے سنا تو کہا یہ آتشبازی فعل بدعت سیئہ محرمہ ہنود کا کام ہے وہ لوگ اپنے عیدوں تہواروں میں کیا کرتے ہیں، ہرگز جائز نہیں۔ الجواب: فی الواقع یہ بدعت سیئہ ہے اور مشابہت کفار ہے، اس سے بچنا واجب، حدیث اذان میں اس کا فیصلہ ہو چکا، نار و ناقوس سب رد کر دئے گئے اور اذان مقرر فرمائی گئی جس سے اعلائے کلمتہ اللہ ہے، اور عیدین کے لئے تو اذان کا بھی حکم نہیں، احادیث صحیحہ میں ہے کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے عیدین میں نہ اذان دلوائی نہ اقامت کہلوائی صرف الصلوۃ جامعہ دو بار پکارا جاتا ہے، اسی پر اختصار کریں اور اس سے زائد ہرگز کچھ نہ ہو، تغافل والوں کا وبال ان پر۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۳۷: از بریلی مدرسہ منظر اسلام مسئولہ مولوی رحیم بخش صاحب بنگالی ۱۶ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ عید گاہ میں مسجد کے بستر وغیرہ لے جانا جائز ہے یا نہیں؟ الجواب: عید گاہ میں مسجد کا مال لے جانا ممنوع ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم۔

مسئلہ ۱۲۳۸: از تارا کاندی مدرسہ اسلامیہ پوسٹ پاکندی ضلع میمن سنگھ مسئولہ محمد عبدالخافظ صاحب مدرس اول تارا کاندی ۲۴ محرم ۱۳۳۹ھ چہ می فرمایند علمائے دین و مفتیان شرع متین اندریں مسئلہ ذیل کہ بعد نماز عیدین قبل الخطبہ یا بعد الخطبہ دعا خواستن جائز است یا نہ۔ بر تقدیر اول دلیلش چہ بحوالہ کتب حنفیہ باظہار دلائل متعدد بیان فرمایند در بہشتی گوہر مصنفہ مولوی اشرف علی مرقوم است کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ عیدین کی نماز کے بعد قبل از خطبہ یا بعد از خطبہ دعا مانگنا جائز ہے یا نہیں؟ اگر جائز ہے تو حنفی کتب سے متعدد حوالہ جات سے بیان فرمائیں مولوی اشرف علی کی کتاب بہشتی گوہر میں لکھا ہے

Fatawa Rizwia, Volume 8

| That in this situation, it is better not to supplicate, following the Sunnah. | That following the Sunnah, not supplicating is better than supplicating. |

The Answer:

| Bahishti Gohar and Bahishti Zewar are both books by that person about whom the scholars of the Haramin (may Allah Almighty grant the Haramin more honor and respect) have written that he (due to his blasphemous words) is an apostate. And whoever, after becoming aware of his blasphemies, doubts his being a disbeliever, will be a disbeliever. These contain many wrong and corrupt issues; reading them is forbidden and a cause of misguidance for the masses. Whereas, following the established Sunnah and specific narrations, supplicating after the Eid prayer is permissible and recommended. Its details are in our treatise "Suroor al-Eid fi Hall al-Dua Ba'd Salat al-Eid". And Allah Almighty knows best. | Bahishti Gohar and Bahishti Zewar are both works of a person about whom all the noble scholars of the Haramin Sharifain (may Allah increase both in honor and respect) have unanimously written that he is an apostate. And whoever becomes aware of his cursed statements and yet doubts his disbelief is himself a disbeliever. These books contain many corrupt issues and false errors; seeing them is forbidden and a cause of misguidance for the masses. Supplicating after the Eid prayer, following the general Sunnah and specific reports, is permissible and recommended. The details are in our treatise "Suroor al-Eid fi Hall al-Dua Ba'd Salat al-Eid". And Allah Almighty knows best. |

Problem 1239, 1240: From Tinsukia Post Office, District Dibrugarh, Assam. Questioned by Abdul Latif. 12 Shawwal 1339 AH. What do the scholars of religion say regarding these issues: (1) If it is permissible to break the fast (Iftar) based on news from a telegram, then for the purpose of ensuring that people from far away can catch the Eid prayer, is it correct to perform the prayer one day later in such a situation or not? (2) And a pious leader of the Muslim community said that we will break the fast today based on telegram news if it is shariah-permissible, but due to such a short time, all people from far away will be deprived of the prayer. Therefore, it is better to perform the prayer the next day so everyone can participate and no one remains deprived. Now, is it permissible to perform the prayer without the leader's consent or not? Explain and you will be rewarded.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

| कि इस स्थिति में सुन्नत का पालन करते हुए दुआ न मांगना बेहतर है। | कि सुन्नत के अनुसरण में दुआ मांगने से बेहतर दुआ न मांगना है। |

उत्तर:

| बहिश्ती गौहर और बहिश्ती ज़ेवर दोनों पुस्तकें उस व्यक्ति की हैं जिसके बारे में हरमैन के विद्वानों ने (अल्लाह तआला हरमैन को और अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान करे) लिखा है कि वह व्यक्ति (अपने कुफ़्र वाले शब्दों के कारण) धर्मत्यागी (मुरतद) है। और जो व्यक्ति उसके कुफ़्रिया बयानों से अवगत होने के बाद उसके काफ़िर होने में संदेह करे, वह स्वयं काफ़िर होगा। ये पुस्तकें कई गलत और भ्रष्ट मसलों पर आधारित हैं, इनका पढ़ना हराम है और आम जनता के लिए गुमराह होने का कारण है। जबकि ईद की नमाज़ के बाद सुन्नत और विशेष हदीसों के अनुसरण में दुआ करना जायज़ और मुस्तहब (पसंदीदा) है। इसका विवरण हमारे शोध प्रबंध "सुरूर अल-ईद फ़ी हल अद-दुआ बाद सलात अल-ईद" में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। | बहिश्ती गौहर और बहिश्ती ज़ेवर दोनों उस व्यक्ति की रचनाएँ हैं जिसके बारे में हरमैन शरीफैन के सभी विद्वानों ने (अल्लाह दोनों का सम्मान और गरिमा बढ़ाए) सर्वसम्मति से लिखा है कि वह धर्मत्यागी है। और जो कोई उसके शापित कथनों से अवगत होने के बाद उसके कुफ़्र में संदेह करता है, वह स्वयं काफ़िर है। ये पुस्तकें कई भ्रष्ट मसलों और त्रुटियों से भरी हैं; इन्हें देखना हराम है और जनता की गुमराही का कारण है। सामान्य सुन्नत और विशेष विवरणों के अनुसार ईद की नमाज़ के बाद दुआ करना जायज़ और मुस्तहब है। इसका विवरण हमारे रिसाले "सुरूर अल-ईद फ़ी हल अद-दुआ बाद सलात अल-ईद" में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। |

मसला 1239, 1240: तिनसुकिया डाकखाना, ज़िला डिब्रूगढ़, असम। प्रश्नकर्ता: अब्दुल लतीफ़। 12 शव्वाल 1339 हिजरी। विद्वान इन मसलों के बारे में क्या फ़रमाते हैं: (1) यदि टेलीग्राम (तार) की खबर पर इफ़्तार करना जायज़ हो, तो क्या दूर-दराज के लोगों को ईद की नमाज़ में शामिल करने के लिए ऐसी स्थिति में एक दिन बाद नमाज़ पढ़ना सही है या नहीं? (2) और मुस्लिम समुदाय के एक नेक नेता ने कहा कि यदि शरीयत के अनुसार जायज़ हो तो हम तार की खबर से आज ही इफ़्तार कर लेंगे, लेकिन इतने कम समय के कारण दूर के लोग नमाज़ से वंचित रह जाएंगे, इसलिए बेहतर है कि

नमाज़ अगले दिन पढ़ी जाए ताकि सब लोग शामिल हो सकें और कोई वंचित न रहे। अब नेता की सहमति के बिना नमाज़ पढ़ना जायज़ है या नहीं? स्पष्ट करें, पुण्य प्राप्त करें।

पृष्ठ 586/673

| کہ اس صورت میں سنت کی پیروی کرتے ہوئے دعا نہ مانگنا بہتر ہے۔ | کہ باتباع سنت دعا مانگنے سے دعا نہ مانگنا بہتر ہے۔ |

الجواب:

| بہشتی گوہر اور بہشتی زیور دونوں کتابیں اس شخص کی ہیں جس کے بارے میں علمائے حرمین (حرمین کو اللہ تعالیٰ زیادہ شرف و تعظیم عطا فرمائے) نے تحریر فرمایا ہے کہ وہ شخص (اپنے کفریہ الفاظ کی وجہ سے) مرتد ہے، اور جو شخص اس کے کفریات پر مطلع ہو کر اس کے کافر ہونے میں شک کرے وہ کافر ہوگا، یہ بہت سے غلط اور فاسد مسائل پر مشتمل ہے اس کا پڑھنا حرام ہے اور عوام کی گمراہی کا سبب ہے جبکہ عید کی نماز کے بعد سنت معروفہ اور آثار مخصوصہ کی اتباع میں جائز اور مستحب ہے، اور اس کی تفصیل ہمارے رسالہ "سرور العید فی حل الدعاء بعد صلوٰۃ العید" میں ہے، واللہ تعالیٰ اعلم۔ | بہشتی گوہر و بہشتی زیور ہر دو تصنیف ہیچو کسے است کہ ہمہ علمائے کرام حرمین شریفین زاد ہما اللہ شرفاً و تعظیماً بالاتفاق تحریر فرمودہ اند کہ اومرتد است و آنکہ ہر کہ براقوال ملعونہ او مطلع شدہ در کفر او شک آرد خود کافر است و ایں کتابہا بر بسیای از مسائل فاسدہ و اغلاط کاسدہ مشتمل ست دیدن آنہا حرام و موجب ضلالت عوام و دعا بعد نماز عید باتباع سنت عامہ و آثار خاصہ جائز و مستحب است والتفصیل فی رسالتنا سرور العید فی حل الدعاء بعد صلوٰۃ العید، واللہ تعالیٰ اعلم۔ |

مسئلہ ۱۲۳۹، ۱۲۴۰: از تین سوکیا ڈاک خانہ خاص ضلع ڈبر وگڑھ ملک آسام مسئولہ عبد اللطیف ۱۲ شوال ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین ان مسئلوں میں : (۱) اگر تار کی خبر پر افطار کرنا

جائز ہو تو عید کی نماز پانے کے سبب دور دراز کے آدمی کی خبر گیری کے لئے ایسے موقع پر ایک روز کے پیچھے نماز پڑھنا درست ہے یا نہیں ؟ (۲) اور مسلم جماعت کے سردار پر ہیز گار نے کہا آج تار کی خبر سے افطار تو کرلیں گے اگر شرعاً جائز ہو، لیکن ایسے تنگ وقت پڑھنے سے دور دراز کے آدمی سب نماز سے محروم رہیں گے لہذا بہتر ہے کہ دوسرے روز نماز پڑھی جائے تاکہ سب لوگ شامل ہوں اور کوئی محروم نہ رہے، اب بغیر رضا سردار کے نماز پڑھنی جائز ہے یا نہیں؟ بینوا توجروا

Fatawa Razawiyyah Volume 8

The Answer: (1) A telegram's report is not reliable at all. If the Shari'ah evidence was received at a time when time was short, making notification in the city and gathering people difficult, then pray on the next day, "because it is delayed due to an excuse until the next day as they have specified" (because due to an excuse, the Eid prayer can be postponed until the second day, as there is a text [nas] on this). And if the time is sufficient for the city, but the news cannot reach distant villages and those people cannot come, then it is mandatory to perform Eid today. Delaying until tomorrow for the sake of the villages is not permissible, as delaying the Eid-ul-Fitr prayer without a valid excuse is a sin and prohibited, and the inability of villagers to come is not considered an excuse at all. It is stated in Durr-ul-Mukhtar:

[Box 1] "It is delayed due to an excuse like rain until the zenith of the next day only, and for [Eid] al-Adha it is permissible to delay it until the end of the days of sacrifice without an excuse, although it will be disliked (Makruh), and with an excuse it is without [dislike]. So the excuse here is to negate the dislike, and in [Eid] al-Fitr, it is for validity." -1 (Translation: Due to an excuse, it can only be postponed until the next day, for example, rain; and the Eid al-Adha prayer can be postponed without an excuse until the last of the days of sacrifice, though there will be dislike. If there is an excuse, then there is no dislike either. So here, the excuse is to negate dislike, and in [Eid] al-Fitr, the excuse is for the validity [of the prayer].)

In Radd-ul-Muhtar: [Box 2] "His saying 'due to an excuse like rain' includes cases where the Imam did not come out, and cases where the crescent was hidden and they testified to it after the zenith or before it such that it was impossible to gather the people." -2 (Translation: The author's statement that there be an excuse, for example rain, also includes the situation when the Imam did not come, and also the situation when the moon remained hidden, and testimony was received after the sun's decline (zawal) or so early that gathering people was not possible.)

In Durr-ul-Mukhtar: [Box 3] "The prayer of both (i.e., the two Eids) is obligatory upon those for whom the Friday prayer is obligatory." -3 (Translation: The prayer of the two Eids is obligatory for those people for whom the Friday prayer is obligatory.)

Footnotes: 1. Durr-ul-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/116. 2. Radd-ul-Muhtar, Chapter of the Two Eids, printed by Mustafa Al-Babi Egypt, 1/218. 3. Durr-ul-Mukhtar, Chapter of the Two Eids, printed by Matba' Mujtabai Delhi, 1/114.

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

उत्तर: (१) तार (टेलीग्राम) की खबर बिल्कुल भी विश्वसनीय नहीं है। यदि शरीअत का प्रमाण ऐसे समय में प्राप्त हुआ कि समय कम है, शहर में सूचना देना और लोगों का एकत्रित होना कठिन है, तो अगले दिन पढ़ें "क्योंकि इसे उज़्र (बहाने/कारण) की वजह से कल तक टाला जा सकता है जैसा कि इस पर नस (स्पष्ट आदेश) है" (क्योंकि किसी उज़्र के कारण ईद की नमाज़ को दूसरे दिन तक विलंबित किया जा सकता है, जैसा कि इस पर स्पष्ट प्रमाण है)। और यदि शहर के लिए समय पर्याप्त है, लेकिन दूर-दराज के गाँवों तक खबर पहुँचाना और उन लोगों का आना संभव नहीं है, तो आज ही ईद मनाना वाजिब है। गाँवों के लिहाज से कल तक देरी करना जायज़ नहीं है क्योंकि बिना किसी उज़्र के ईदुल फ़ित्र की नमाज़ में देरी करना गुनाह और मना है, और ग्रामीणों का न आ पाना कोई उज़्र ही नहीं है। दुर्रे मुख़्तार में है:

[बॉक्स १] "इसे केवल अगले दिन के ज़वाल (दोपहर) तक ही उज़्र जैसे कि बारिश के कारण टाला जा सकता है, और [ईद] अल-अज़हा के लिए बिना किसी उज़्र के कुर्बानी के दिनों के अंत तक देरी करना जायज़ है, हालाँकि यह मकरूह (नापसंद) होगा, और उज़्र के साथ बिना [नापसंदगी] के होगा। तो यहाँ उज़्र नापसंदगी को दूर करने के लिए है, और [ईद] अल-फ़ित्र में यह सेहत (वैधता) के लिए है।" -१ (अनुवाद: उज़्र के कारण केवल दूसरे दिन तक टाला जा सकता है, उदाहरण के लिए बारिश; और ईद-उल-अज़हा की नमाज़ को बिना किसी उज़्र के कुर्बानी के दिनों के आखिरी दिन तक टाला जा सकता है, अलबत्ता कराहत (नापसंदगी) होगी, और अगर उज़्र हो तो कराहत भी नहीं। तो यहाँ उज़्र कराहत की नफी (नकार) के लिए है और फ़ित्र में उज़्र सेहत (नमाज़ के सही होने) के लिए है।)

रद्दुल मुहतार में है: [बॉक्स २] "उनका यह कहना कि 'बारिश जैसे उज़्र के कारण' इसमें वह मामला भी शामिल है जहाँ इमाम बाहर नहीं आया, और वह मामला भी जहाँ चाँद छिपा रहा और उन्होंने ज़वाल के बाद या उससे पहले इस तरह गवाही दी कि लोगों को इकट्ठा करना असंभव था।" -२ (अनुवाद: मातिन (लेखक) का कहना कि उज़्र हो जैसे बारिश, तो इसमें वह सूरत भी शामिल है जब इमाम न आया हो और वह सूरत भी जब चाँद छिपा रहा, और इसके नज़र आने पर ज़वाल के बाद गवाही मिली या इतनी पहले कि लोगों का इकट्ठा होना मुमकिन न था।)

दुर्रे मुख़्तार में है: [बॉक्स ३] "दोनों की नमाज़ (यानी दोनों ईदें) उन पर वाजिब है जिन पर जुमा वाजिब है।" -३ (अनुवाद: ईदैन (दोनों ईदों) की नमाज़ उन्हीं लोगों पर लाज़िम है जिन पर जुमा लाज़िम है।)

पादलेख (Footnotes): १. दुर्रे मुख़्तार बाबुल ईदैन, मतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, १/११६ २. रद्दुल मुहतार बाबुल ईदैन, मतबूआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, १/२१८ ३. दुर्रे मुख़्तार बाबुल ईदैन, मतबूआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली, १/११४

पृष्ठ ५८७ / ६७३

الجواب: (۱) تار کی تو خبر معتبر ہی نہیں اگر شہادت شرعیہ ایسے وقت گزری کہ وقت تنگ ہے شہر میں اطلاع اور لوگوں کا اجتماع متعذر ہے تو دوسرے دن پڑھیں لانھا تؤخر بعذر الی الغد کما نصوا علیه (کیونکہ عذر کی وجہ سے نماز عید کو دوسرے دن تک موخر کیا جا سکتا ہے جیسا کہ اس پر نص ہے۔ت) اور اگر شہر کے لئے وقت کافی ہے مگر دور دراز کے دیہات کو خبر جانا اور ان لوگوں کا آنا نہیں ہو سکتا تو واجب ہے کہ عید آج کر لیں، دیہاتوں کے لحاظ سے کل کے لئے تاخیر جائز نہیں کہ نماز عید الفطر کی تاخیر بلا عذر گناہ و ممنوع ہے اور دیہاتوں کا نہ آسکنا کوئی عذر ہی نہیں۔ در مختار میں ہے:

[Box 1] تؤخر بعذر کمطر الی الزوال من الغد فقط و الاضحی یجوز تأخیرھا الی آخر ایام النحر بلا عذر مع الکراھة وبالعذر بدونھا فالعذر ھنا لنفی الکراھة وفی الفطر للصحة -1 | عذر کی وجہ سے فقط دوسرے دن تک موخر کیا جا سکتا ہے مثلاً بارش، اور نماز عید الاضحی کو بغیر عذر کے ایام نحر کے آخری دن تک موخر کیا جا سکتا ہے البتہ کراہت ہوگی، اور اگر عذر ہو تو کراہت بھی نہیں، تو یہاں عذر نفی کراہت کے لئے اور فطر میں عذر صحت کے لئے ہے۔ (ت)

رد المحتار میں ہے: [Box 2] قوله بعذر کمطر دخل فیه ما اذا لم یخرج الامام و ما اذا غم الھلال فشھدوا به بعد الزوال او قبله بحیث لا یمکن جمع الناس -2 | ماتن کا قول کہ عذر ہو مثلاً بارش، تو اس میں وہ صورت بھی شامل ہے جب امام نہ آیا ہو اور وہ صورت بھی جب چاند مخفی رہا، اور اس کے نظر آنے پر زوال کے بعد گواہی ملی یا اتنی پہلے کہ لوگوں کا جمع ہونا ممکن نہ تھا۔ (ت)

در مختار میں ہے: [Box 3] تجب صلوتهما (ای العیدین) علی من تجب علیه الجمعة -3 | عیدین کی نماز انھیں لوگوں پر لازم ہے جن پر جمعہ لازم ہے۔ (ت)

حواشی: 1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۶ 2 رد المحتار باب العیدین مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۲۱۸ 3 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۴

Fatawa Razawiyya Volume Eight

In *Radd al-Muhtar*, it is stated from *Burhan Sharh Mawahib al-Rahman*: | Its obligation is specific to the people of the city. And Allah Almighty knows best. | Its obligation is specific to the people of the city. And Allah Almighty knows best. | | :--- | :--- |

(2) It was learned above that breaking the fast based on a telegram is forbidden, and celebrating Eid and performing prayer based on it is also a sin, and that prayer will not count because, leave aside the leader, it is not even the will of the Shari'ah as it is before the time. Yes, if there was Shari'i proof, then delay for villages was impermissible, and if they prayed on the second day, the prayer would not have happened at all. In such a case, acting upon the leader's word was impermissible; it was obligatory to perform the Eid prayer on that very day. And Allah Almighty knows best.

Problem 1441: From Ujjain, residence of Mir Khadim Ali Assistant, sent by Yaqub Ali Khan Sahib, 9 Muharram al-Haram 1309 AH.

All praise is for Allah, the Lord of all the worlds, and the end is for the pious, and peace and blessings be upon His Messenger Muhammad and all his family and companions. What do the scholars and virtuous people of religion say about this issue: whether the Eid prayers in a town or city can be performed in other mosques besides the Eidgah, provided there is a repetition (crowd), or is it prohibited? And if a corrupt judge (Qadi Fasiq), considering the prayer as his own property, causes the authorities to stop congregations in other mosques of the city so that everyone prays behind him, then will the prayer be valid following the corrupt judge or not? What is the ruling on the judgment of a corrupt judge and what is the ruling for his followers? Please provide a detailed answer with references from books. May Allah have mercy on them all.

All praise is for Allah, who is the sustainer of all the worlds, and the hereafter belongs to the pious. And peace and blessings be upon Allah's Messenger Muhammad, peace and blessings of Allah be upon him, and upon all his family and companions. What do the scholars and virtuous people of religion say in this matter that the Eid prayers in a town or city, besides the Eidgah, provided there is a repetition (large gathering), can they be performed in other mosques or is it prohibited? If a corrupt judge, considering the prayer to be his own domain, uses authorities to prevent congregations in other mosques of the city so that all people pray only behind me, then will the prayer be valid behind a corrupt judge or not? What is the ruling on the decree of a corrupt judge and what is the ruling for those who follow him? Grant a detailed answer with references to books, may Allah have mercy on them all. (T)

The Answer: | Going to the Eidgah is a Sunnah; it is in *al-Durr al-Mukhtar*: The exit... | Going towards the Eidgah is a Sunnah; it is in *Durr-e-Mukhtar*. | | :--- | :--- |

^1 *Radd al-Muhtar*, Chapter of Eids, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/611. Page 588 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

रद्द अल-मुह्तार में बुरहान शरह मवाहिब अल-रहमान से है: | इसका अनिवार्य होना शहर के लोगों के लिए विशिष्ट है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। | इसका अनिवार्य होना शहर के लोगों के लिए विशिष्ट है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। | | :--- | :--- |

(२) ऊपर ज्ञात हुआ कि तार (टेलीग्राम) पर इफ़्तार करना हराम है और उस पर ईद करके नमाज़ पढ़ना भी गुनाह है और वह नमाज़ नहीं होगी क्योंकि सरदार तो दरकिनार, शरीयत ही की रज़ा नहीं है क्योंकि यह वक़्त से पहले है। हाँ, अगर शरई सुबूत हो जाता तो देहातों के लिए देरी करना नाजायज़ था और दूसरे दिन पढ़ते तो नमाज़ ही न होती। ऐसी स्थिति में सरदार के कहने पर अमल करना नाजायज़ था, उसी दिन नमाज़-ए-ईद पढ़ लेना वाजिब होता। वल्लाहु तआला आलम।

मसला १४४१: उज्जैन, आवास मीर खादिम अली असिस्टेंट, प्रेषित याकूब अली खां साहब, ९ मुहर्रम अल-हराम १३०९ हिजरी।

सब प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो तमाम जहानों का रब है, और अंत परहेज़गारों के लिए है, और अल्लाह के रसूल मुहम्मद और उनके तमाम आल और असहाब पर दुरूद और सलाम हो। दीन के विद्वान और गुणी लोग इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ईदैन की नमाज़ कस्बे या शहर में ईदगाह के अलावा भीड़ की शर्त पर या वैसे ही अन्य मस्जिदों में अदा करना सही है या वर्जित? और यदि कोई फ़ासिक क़ाज़ी नमाज़ को अपनी जागीर समझते हुए शहर की दूसरी मस्जिदों में हाकिमों के ज़रिए जमाअत से मना कर दे ताकि तमाम लोग मेरे पीछे ही नमाज़ पढ़ें, तो क्या फ़ासिक की इक़्तिदा में नमाज़ सही होगी या नहीं? फ़ासिक क़ाज़ी के फैसले का क्या हुक्म है और उसके पीछे चलने वालों का क्या हुक्म है? किताबों के हवाले से विस्तार से उत्तर प्रदान करें, रहमतुल्लाह अलैहिम अजमईन।

सब प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो तमाम जहानों का पालने वाला है और आख़िरत मुत्तक़ियों (परहेज़गारों) की है और अल्लाह के रसूल मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और आपकी तमाम आल व असहाब पर दुरूद व सलाम नाज़िल हो। उलमा और फ़ुज़ला-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ईदैन की नमाज़ क़स्बे या शहर में ईदगाह के अलावा बशर्ते तकरार (भीड़ के कारण) या उन्हें अन्य मस्जिदों में अदा किया जा सकता है या मना है? अगर क़ाज़ी-ए-फ़ासिक नमाज़ को अपनी मिल्कियत समझते हुए शहर की दूसरी मस्जिदों में हुक्काम को जमाअत से रोक देता है ताकि तमाम लोग मेरे पीछे ही नमाज़ अदा करें, तो क्या फ़ासिक की इक़्तिदा में नमाज़ दुरुस्त होगी या नहीं? फ़ासिक क़ाज़ी की क़ज़ा का हुक्म और उसकी पैरवी करने वालों का क्या हुक्म है? किताबों के हवाले से तफ़सील से जवाब अता करें, रहमतुल्लाह अलैहिम अजमईन। (त)

अल-जवाब (उत्तर): | ईदगाह जाना सुन्नत है, 'दुर्रे मुख़्तार' में है: निकलना... | ईदगाह की जानिब जाना सुन्नत है, 'दुर्रे मुख़्तार' में है। | | :--- | :--- |

^१ रद्द अल-मुह्तार, बाबू अल-ईदैन, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र द्वारा मुद्रित, १/६११। पृष्ठ ५८८ का ६७३

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ردالمحتار میں برہان شرح مواہب الرحمن سے ہے: | وجوبھا مختص باھل المصر واللہ تعالی اعلم۔

| اس کا وجوب اہل شہر کے لئے مخصوص ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم | | :--- | :--- |

(۲) اوپر معلوم ہوا کہ تار پر افطار حرام ہے اور اس پر عید کر کے نماز پڑھنا بھی گناہ اور وہ نماز نہ ہو گی کہ سردار در کنار شریعت ہی کی رضا نہیں کہ پیش از وقت ہے، ہاں اگر شرعی ثبوت ہو جاتا تو دیہاتوں کے لئے تاخیر نا جائز تھی اور دوسرے دن پڑھتے تو نماز ہی نہ ہوتی، ایسی حالت میں سردار کے قول پر عمل ناجائز تھا اسی روز نماز عید پڑھ لینی واجب ہوتی۔ واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۴۴۱: از اوجین مکان میر خادم علی اسٹنٹ مرسلہ یعقوب علی خاں صاحب ۹ محرم الحرام ۱۳۰۹ھ

الحمد للہ رب العلمین والعاقبہ للمتقین والصلوۃ والسلام علی رسولہ محمد وآلہ واصحابہ اجمعین چہ می فرمایند علما و فضلائے دین دریں مسئلہ کہ نماز عیدین در قصبہ خواہ شہر باشد بجز عید گاہ بشرط تکرار یا ہمیں در مساجد دیگر بگزار و درست ست یا ممنوع و بر تقدیر قاضی فاسق نماز را ملک خود قرار دادہ نماز عید دیگر مساجد شہر را بجماعت حکام بند کنانیدہ دید بدیں سبب کہ مردمان شہر پس من نماز ادا نمایند پس باقتدائے فاسق نماز درست ست یانہ و حکم قضائے قاضی فاسق پیر وان او چیست بیان فرمایند بالتشر یح بحوالہ کتب رحمہ اللہ اجمعین۔

سب تعریف اللہ کے لئے ہے جو تمام جہانوں کا پالنے والا ہے اور آخرت متقین کی ہے اور صلوۃ و سلام نازل ہو اللہ کے رسول محمد صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم پر اور آپ کی آل و اصحاب تمام پر، علماء و فضلائے دین اس مسئلہ میں کیا فرماتے ہیں کہ عیدین کی نماز قصبہ یا شہر میں عید گاہ کے علاوہ بشرط تکرار یا انہیں دیگر مساجد میں ادا کی جاسکتی ہے یا ممنوع ہے، اگر قاضی فاسق نماز کو اپنی ملک سمجھتے ہوئے شہر کی دوسری مساجد میں حکام کو جماعت سے منع کر دیتا ہے تاکہ تمام لوگ میرے پیچھے ہی نماز ادا کریں تو فاسق کی اقتداء میں نماز درست ہوگی یا نہ ؟ قاضی فاسق کی قضا کا حکم اور اس کی پیروی کرنے والوں کا کیا حکم ہے، بحوالہ کتب تفصیلاً جواب عطا کریں رحمہ اللہ اجمعین۔ (ت)

الجواب: | رفتن عید گاہ سنت ست فی الدر المختار الخروج | عید گاہ کی جانب جانا سنت ہے در مختار میں ہے | | :--- | :--- | :--- |

1^8 ردالمحتار، باب العیدین مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۱۱ Page 588 of 673

Fatawa-e-Razviyya Volume Eight

[Right Column - Urdu Translation/Explication] It is Sunnah to go out to the 'Jabana' (a prayer ground established in the wilderness) for the Eid congregation, even if there is enough space in the congregational mosque (Masjid al-Jami'). This is the correct view, though going out is not mandatory. If the prayer is performed in the city's mosque, it is certainly valid without any defect, even if the Sunnah was abandoned. It is mentioned in Radd al-Muhtar that the obligation is the general act of going out, not specifically to a particular Eidgah. It is unanimously permitted to perform Eid prayers in multiple locations within a single city. In 'Durr al-Mukhtar', it is stated that Eid can be performed in multiple places in one city by consensus. Following a publicly sinful person (fasiq-e-mu'allin) in prayer is 'Makruh-e-Tahrimi' (severely disliked, close to forbidden). This is what the evidence requires, and it is not appropriate to deviate from this intellectual understanding when it matches the traditional reports. Allama Ibrahim Halbi states in 'Ghunyah' that giving precedence to a fasiq is 'Makruh-e-Tahrimi', and similarly for an innovator (bid'ati). As long as the leadership of a righteous person with correct recitation and sound belief is available, one should never pray behind a fasiq. If other mosques are closed through oppression and there is no other way but to follow him, then one is compelled and excused; the burden of this oppression and compulsion lies on that arrogant fasiq. "Allah does not burden a soul beyond its capacity" (Quran 2:286). Eid prayer is among the greatest symbols of Islam, and it cannot be abandoned due to this incidental reason. As mentioned in...

[Left Column - Original Arabic/Persian/Urdu Text] Going towards it, meaning the Jabana, for the Eid prayer is Sunnah, even if the congregational mosque accommodates them; this is the correct view (1). However, it is not mandatory; if they perform the prayer in the city mosque, it is certainly correct and without defect, even if they have abandoned the Sunnah. In Radd al-Muhtar, it says: The obligation is the general turning [towards prayer], not turning specifically to the Jabana (2). Repeating the Eid prayer in a single city in numerous places is permitted by consensus. In 'al-Durr al-Mukhtar': It is performed in a single city in numerous places by consensus (3). Following a publicly sinful person is Makruh-e-Tahrimi, close to Haram. This is what the evidence necessitates, and one should not deviate from reasoning that is supported by tradition. Allama Ibrahim Halbi has said in 'Ghunyah': Giving precedence to a fasiq is Makruh-e-Tahrimi, and likewise the innovator (4). Therefore, as long as prayer behind a righteous person with correct recitation and sound belief is possible, they should never follow him. However, if other mosques are closed

through oppression and they find no way except by following him, they are compelled and excused, and the sin of this oppression and compulsion is on the neck of that arrogant fasiq. "Allah does not burden a soul except [with that within] its capacity" (5). Eid prayer is one of the greatest symbols of Islam; one cannot say it should be abandoned due to this incidental reason. In...

[Footnotes] 1. Durr al-Mukhtar, Bab al-Eidayn, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/112 2. Radd al-Muhtar, Bab al-Eidayn, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/612 3. Durr al-Mukhtar, Bab al-Eidayn, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/116 4. Ghunyat al-Mustamli Sharh Munyat al-Musalli, Fasl al-Imamah, Suhail Academy Lahore, 1/513 5. Al-Quran 2/286 Page 589 of 673

फ़तावा-ए-रजविया जिल्द आठवीं

[दाहिना कॉलम - उर्दू अनुवाद/व्याख्या] ईद की जमात के लिए 'जबाना' (जंगल में बनाई गई नमाज़ की जगह) की ओर निकलना सुन्नत है, भले ही जामा मस्जिद में लोगों के लिए पर्याप्त जगह हो। यही सही है, लेकिन निकलना वाजिब (अनिवार्य) नहीं है। अगर शहर की मस्जिद में नमाज़ पढ़ ली जाए, तो यह निश्चित रूप से सही है और इसमें कोई कमी नहीं है, भले ही सुन्नत का त्याग हुआ हो। 'रद्द अल-मुह्तार' में है कि वाजिब केवल निकलना है, न कि किसी विशेष ईदगाह की ओर निकलना। एक ही शहर में कई स्थानों पर ईद की नमाज़ पढ़ना सर्वसम्मति से जायज़ है। 'दुर्रे मुख्तार' में है कि एक शहर में सर्वसम्मति से कई स्थानों पर ईद अदा की जा सकती है। खुले तौर पर गुनाह करने वाले (फासिक़-ए-मुअल्लीन) के पीछे नमाज़ पढ़ना 'मक़रूहे तहरीमी' है जो हराम के करीब है। दलील का तक़ाज़ा भी यही है और उस समझ से हटना उचित नहीं है जो रिवायत के अनुकूल हो। अल्लामा इब्राहिम हलबी 'ग़ुनिया' में फ़रमाते हैं कि फासिक़ को इमाम बनाना मक़रूहे तहरीमी है और इसी तरह बिदअती को भी। जब तक किसी नेक, सही किरात वाले और सही अकीदे वाले व्यक्ति के पीछे नमाज़ पढ़ने का अवसर मिले, तब तक हरगिज़ किसी फासिक़ के पीछे नमाज़ न पढ़ी जाए। अगर ज़ुल्म से अन्य मस्जिदें नमाज़ के लिए बंद कर दी गई हों और उसके पीछे नमाज़ पढ़ने के अलावा कोई रास्ता न हो, तो अब यह मजबूरी और माज़ूरी है; इस ज़ुल्म और जब्र का गुनाह उस मगरूर फासिक़ की गर्दन पर है। "अल्लाह किसी जान पर उसकी ताक़त से ज़्यादा बोझ नहीं डालता" (क़ुरान २:२८६)। ईद की नमाज़ इस्लाम के महानतम प्रतीकों में से है, इस आकस्मिक कारण से इसे छोड़ने की बात नहीं कही जा सकती। जैसा कि...

[बायां कॉलम - मूल अरबी/फारसी/उर्दू पाठ] الیہا ای الجبانة لصلوة العید سنة وان وسعهم المسجد الجامع هوا الصحیح ١ اما واجب نیست اگر به مسجد شهر نماز گزارند قطعاً باشد اگرچه ترک سنت کرده باشند في ردالمحتار الواجب مطلق التوجه لا التوجه الی خصوص الجبانة ٢ وتکرار نماز عید در مصر واحد بمواضع کثیره بالاتفاق جائزست فی الدرالمختار تؤدی بمصر واحد بمواضع کثیرة اتفاقاً ٣ واقتداء بفاسق معلن مکروہ تحریمی قریب بحرام ست وهو الذی یقتضیه الدلیل ولا یعدل عن درایة ما وافقتها روایة، علامہ ابراهیم حلبی در غنیہ فرموده یکره تقدیم الفاسق کرابة تحریم وکذا المبتدع ۴ پس تا وقتیکه نماز پس مصالح صحیح القراءة سلیم العقیده زنهار اقتداء باننکنند اما اگر ظلماً دیگر مساجد بند کرده شود وجز باقتدائے اورابے نیابند مجبور باشند و معذور و وبال

ایں ظلم و جبر بر گردن آں فاسق مغرور لَا يُكَلِّفُ اللَّهُ نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا ۵ نماز عید از اعظم شعائر اسلام ست بایں علت عارضہ ترکش نتواں گفت فی

[फ़ुटनोट्स] 1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/112 2. रद्द अल-मुह्तार, बाबुल ईदैन, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र, 1/612 3. दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मतबा मुज्तबाई दिल्ली, 1/116 4. ग़ुनियतुल मुस्तमली शरह मुनियतुल मुसल्ली, फ़स्लुल इमामा, सुहैल अकादमी लाहौर, 1/513 5. अल-क़ुरान 2/286 पृष्ठ 673 में से 589

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

[دائیں کالم - اردو ترجمہ و تشریح] جماعت عید کے لئے جبانہ (نماز کی وہ جگہ جو جنگل میں بنائی جائے) کی طرف نکلنا سنت ہے اگرچہ جامع مسجد میں لوگوں کی گنجائش ہو، اور یہی صحیح ہے لیکن نکلنا واجب نہیں، اگر چہ شہر کی مسجد میں نماز پڑھ لی تو یقیناً درست ہے اس میں کوئی کمی نہیں اگرچہ سنت کا ترک ہوا ہے، ردالمختار میں ہے کہ واجب مطلق نکلنا ہے نہ کہ مخصوص عیدگاہ کی طرف نکلنا، اور ایک شہر میں تکرار نماز عید بالاتفاق جائز ہے، در مختار میں ہے کہ ایک شہر میں بالاتفاق متعدد مقامات پر عید ادا کی جاسکتی ہے، فاسق معلن کی اقتداء مکروہ تحریمی حرام کے قریب ہے، اور دلیل کا تقاضا بھی یہی ہے اور اس درایت سے عدول مناسب نہیں جو روایت کے موافق ہو، علامہ ابراہیم حلبی غنیہ میں فرماتے ہیں فاسق کی تقدیم مکروہ تحریمی ہے اور اسی طرح بدعتی کی، جب تک کسی صالح صحیح القراۃ سلیم العقیدہ کی اقتداء میسر ہو ہرگز کسی فاسق کے پیچھے نماز نہ پڑھی جائے اگر ظلماً دیگر مساجد نماز کے لئے بند کردی گئی ہیں اور اس کی اقتداء کے علاوہ اور کوئی راستہ نہیں تو اب مجبوری اور معذوری ہے، اس کا وبال اس مغرور فاسق پر ہے۔ لَا يُكَلِّفُ اللَّهُ نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا (۵)۔ نماز عید از اعظم شعائر اسلام ست بایں علت عارضہ ترکش نتواں گفت۔

[بائیں کالم - اصل عربی/فارسی/اردو متن] الیھا ای الجبانۃ لصلوۃ العید سنۃ وان وسعھم المسجد الجامع ھوا الصحیح ۱ اما واجب نیست اگر بہ مسجد شھر نماز گزارند قطعاً درست وبے خلل باشد اگرچہ ترک سنت کردہ باشند في ردالمحتار الواجب مطلق التوجہ لا التوجہ الی خصوص الجبانۃ ۲ وتکرار نماز عید در مصر واحد بمواضع کثیرہ بالاتفاق جائزست فی الدرالمختار تؤدی بمصر واحد بمواضع کثیرۃ اتفاقاً ۳ واقتداء بفاسق معلن مکروہ تحریمی قریب بحرام ست وھو الذی یقتضیہ الدلیل

ولا یعدل عن درایة ما وافقتها روایة، علامہ ابراهیم حلبی در غنیہ فرموده یکره تقدیم الفاسق کراہة تحریم وکذا المبتدع ۴ پس تا وقتیکه نماز پس مصالح صحیح القراءة سلیم العقیده زنهار اقتداء باننکنند اما اگر ظلماً دیگر مساجد بند کرده شود وجز باقتدائے اوراہے نیابند مجبور باشند و معذور و وبال ایں ظلم و جبر بر گردن آں فاسق مغرور لَا يُكَلِّفُ اللَّهُ نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا ۵ نماز عید از اعظم شعائر اسلام ست بایں علت عارضہ ترکش نتواں گفت فی

[حواشی] 1 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۲ 2 رد المحتار باب العیدین مطبوعہ مصطفیٰ البابی مصر ۱/ ۶۱۲ 3 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۶ 4 غنیہ المستملی شرح منیۃ المصلی فصل الامامہ سہیل اکیڈمی لاہور ۱/ ۵۱۳ 5 القرآن ۲/ ۲۸۶

Fatawa Razawiyya - Volume 8

[Left Column] Radd al-Muhtar narrates from Al-Mi'raj: Our scholars said it is not appropriate to follow a transgressor (fasiq) in prayer except for Friday prayer, because in other prayers, one can find an imam other than him. In Al-Fath, it is stated: Based on this, it is disliked in Friday prayer as well if its performance is repeated in multiple places in the city according to the fatwa-based opinion of Imam Muhammad, as it is possible to move to another location. Furthermore, those appointed by Christians and other rulers of the time for marriage, leading Friday, and Eid prayers, hold positions of judgeship that are names without essence and meaningless words. Therefore, what can be said about their judgment? A ruling applies to something existing, while their judgment itself is non-existent; in fact, it does not even have the form of a judgment. If the intention is that appointing transgressors for these tasks [is permissible], the answer is that it is never appropriate for the state of imamate to be compromised. The purpose of appointment is validation and witnessing, which cannot be obtained from a transgressor. And Allah Almighty knows best.

[Right Column] The burden will also be upon this transgressor, and Allah does not burden any soul beyond its capacity. The Eid prayer is among the great symbols of Islam; it should not be abandoned due to this accidental circumstance. It is in Radd al-Muhtar, citing Al-Mi'raj, that our associates said that one should not follow a transgressor except in the Friday prayer, because in other prayers, one can follow someone else. It is in Al-Fath that, on this basis, following them in the Friday prayer is also disliked because, according to the fatwa-based opinion of Imam Muhammad, Friday prayer can be held in multiple places in the city, so it is possible to go to another location. And these people appointed by Christians for the position of judgeship for marriage, Friday imamate, and Eids, they are names without essence and meaningless words. What reality does their judgment hold? A ruling applies to what exists, and their judgment itself is non-existent, which in reality is not a judgment at all. If the question is how it is to appoint such transgressors to this position? The answer is that it is absolutely not permissible. The matter of imamate itself is important; the purpose of making someone a guardian is their validation and witnessing, which is not obtained from a transgressor. And Allah Almighty knows best.

[Question Section] Problem 1242: From the minor territory of Portugal, Khara Mode district, sent by Maulvi Muhammad Ziauddin Sahib, 10 Muharram al-Haram 1318 AH.

What do the scholars of the religion say about this matter? There is an Eidgah in a small settlement built since 1226 AH. Some Muslim residents of the city have to travel a distance of nearly a quarter of a mile from their neighborhood to reach it, and some residents of the neighborhood walk even less than a quarter-mile to enter the Eidgah. Since the mentioned year, all the people of the city have been equally...

[Footnote] 1. Radd al-Muhtar, Chapter on Imamate, published by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/412. Page 590 of 673

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

[बायां कॉलम] रद्द अल-मुह्तार में मेराज के हवाले से है: हमारे साथियों ने फरमाया कि जुमे के अलावा फासिक की इक़्तेदा (अनुसरण) नहीं की जानी चाहिए क्योंकि दूसरी नमाजों में किसी दूसरे की इक़्तेदा हो सकती है। फ़तह में है: इस आधार पर जुमे में भी इक़्तेदा मकरूह है क्योंकि इमाम मुहम्मद के मुफ़्ती-बिह (वह विचार जिस पर फ़तवा दिया गया है) कौल के मुताबिक शहर में कई जगहों पर जुमा हो सकता है, तो दूसरी जगह जाना मुमकिन है। इसके अलावा, जो लोग ईसाइयों और समय के अन्य शासकों द्वारा निकाह, जुमा और ईद की इमामत के लिए काजी के पद पर नियुक्त किए गए हैं, वे केवल नाम मात्र के पद हैं जिनका कोई सार नहीं है और वे शब्द अर्थहीन हैं। तो उनके फैसले के बारे में क्या कहा जा सकता है? फैसला मौजूद चीज़ पर होता है, जबकि उनका फैसला खुद अस्तित्वहीन है; वास्तव में, इसमें फैसले का स्वरूप भी नहीं है। यदि इसका मतलब यह है कि इन कार्यों के लिए फासिकों को नियुक्त करना [जायज़ है], तो जवाब यह है कि इमामत की स्थिति कभी भी ऐसी नहीं होनी चाहिए। नियुक्ति का उद्देश्य तस्दीक (पुष्टि) और गवाही है, जो एक फासिक से प्राप्त नहीं हो सकती। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

[दायां कॉलम] बोझ भी इसी फासिक पर होगा और अल्लाह तआला किसी जान को उसकी ताकत से बढ़कर हुक्म नहीं देता, ईद की नमाज इस्लाम के महान प्रतीकों में से है, इस आकस्मिक परिस्थिति की वजह से इसे नहीं छोड़ा जाना चाहिए। रद्द अल-मुह्तार में मेराज के हवाले से है कि हमारे साथियों ने फरमाया कि जुमे के अलावा फासिक की इक़्तेदा न की जाए क्योंकि दूसरी नमाजों में किसी दूसरे की इक़्तेदा हो सकती है। फ़तह में है कि इस आधार पर जुमे में भी इक़्तेदा मकरूह है क्योंकि इमाम मुहम्मद के मुफ़्ती-बिह कौल के मुताबिक शहर में कई जगहों पर जुमा हो सकता है, तो दूसरे स्थान की ओर जाना मुमकिन हुआ। और ये जो ईसाइयों की तरफ से निकाह, जुमा और ईदों की इमामत के लिए काजी के पद पर नियुक्त लोग हैं, ये केवल नाम मात्र के हैं और शब्द अर्थहीन हैं, उनके फैसले की क्या हकीकत है? फैसला मौजूद पर होगा और उनका फैसला खुद अस्तित्वहीन है जो हकीकत में फैसला ही नहीं है। अगर सवाल यह है कि ऐसे फासिक लोगों को इस पद पर नियुक्त करना कैसा है? तो जवाब यह है कि हरगिज़ जायज़ नहीं है, और इमामत का मामला खुद महत्वपूर्ण है, वाली (अभिभावक) बनाने से मकसद उनकी तस्दीक और गवाही है जो फासिक से हासिल नहीं होती। और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है।

[प्रश्न अनुभाग] मसला 1242: पुर्तगाल के छोटे से क्षेत्र, खारा मोड मोहल्ला से, मौलवी मुहम्मद ज़ियाउद्दीन साहब द्वारा भेजा गया, 10 मुहर्रम अल-हराम 1318 हिजरी। दीन के विद्वान इस मामले में क्या फरमाते हैं कि एक छोटी बस्ती में 1226 हिजरी से एक ईदगाह बनी हुई है, शहर के कुछ मुसलमान निवासियों को अपने मोहल्ले से करीब चौथाई मील की दूरी तय करके जाना पड़ता है और मोहल्ले के कुछ निवासी चौथाई मील से भी कम चलकर ईदगाह में प्रवेश कर जाते हैं, ज़िक्र किए गए साल से शहर के सभी लोग इसी ईदगाह में बराबर...

[पाद टिप्पणी] 1. रद्द अल-मुह्तार, बाब अल-इमामत, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 1/412। पेज 590/673

فتاوی رضویہ - جلد ہشتم

[بایاں کالم] رد المحتار عن المعراج قال اصحابنا لا ینبغی ان یقتدی بالفاسق الا فی الجمعة لانه فی غیرها یجد اماما غیره اه قال فی الفتح وعلیه فیکره فی الجمعة اذا تعددت اقامتها فی المصر علی قول محمد المفتی به لانه بسبیل الی التحول ۱ واینا کہ بر نکاح و امامت جمعہ و اعیاد از جانب نصاری و غیرہم حکام زمانہ مقرر باشند از عہدہ قضا جز اسم بے مسمیٰ و لفظ بے معنیٰ بہرہ ندارند پس حکم قضائے ایشاں چہ گفتہ آید حکم بر موجود باشد و قضائے ایشاں خود معدوم ست کہ حقیقت در کنار صورت قضا ہم ندار دے اگر مراد آنست کہ فساق را بائیں کار ہا معین کردن جواب آنست کہ ہرگز نشاید حال امامت خود حالی شود غرض از تولیت آنکہ توثیق و اشہادت و آں خود از فاسق حاصل نباشد واللہ تعالیٰ اعلم

[دایاں کالم] وبال بھی اس فاسق پر ہی ہوگا اور اللہ تعالیٰ کسی نفس کو اس کی طاقت سے بڑھ کر حکم نہیں دیتا، نماز عید اسلام کے عظیم شعائر میں سے ہے ، اس عارضہ کی وجہ سے اسے ترک نہ کیا جائے، رد المحتار میں معراج کے حوالے سے ہے کہ ہمارے اصحاب نے فرمایا جمعہ کے علاوہ فاسق کی اقتداء نہ کی جائے کیونکہ دوسری نمازوں میں کسی دوسرے کی اقتداء ہو سکتی ہے اھ فتح میں ہے کہ اس بنا پر جمعہ میں بھی اقتداء مکروہ ہے کیونکہ امام محمد کے مفتی بہ قول کے مطابق شہر میں متعدد جگہ جمعہ ہو سکتا ہے تو دوسرے مقام کی طرف چلے جانا ممکن ہوا اور یہ جو نصاریٰ کی طرف سے نکاح ، امامت جمعہ و اعیاد کے لئے عہدہ قضاء پر مقرر لوگ ہیں ، یہ اسم بے مسمیٰ اور لفظ بے معنیٰ ہیں، ان کی قضا کیا حقیقت رکھتی ہے حکم موجود پر ہوگا اور ان کی قضا خود معدوم ہے جو در حقیقت قضا ہی نہیں، اگر سوال یہ ہے کہ ایسے فاسق لوگوں کو اس عہدہ پر مقرر کرنا کیسا ہے؟ تو جواب یہ ہے کہ ہر گز جائز نہیں، اور امامت کا

معاملہ خود اہم ہے، والی بنانے سے مقصد ان کی توثیق و اشہاد ہے جو فاسق سے حاصل نہیں ہوتی۔ واللہ تعالیٰ اعلم

[سوالیہ حصہ] مسئلہ ۱۲۴۲: از من خورد ملک پرتگال محلہ کھارا موڈ مرسلہ مولوی محمد ضیاء الدین صاحب ۱۰ محرم الحرام ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ ایک عید گاہ ایک چھوٹی سی بستی میں ۱۲۲۶ھ سے بنی ہوئی ہے، بعض مسلمان اہل شہر کو اپنے محلہ سے ربع میل کے قریب مسافت طے کر کے جانا پڑتا ہے اور بعض اہل محلہ ربع میل سے بھی کم چل کر داخل عید گاہ ہو جاتے ہیں، سال مذکور سے جملہ اہل شہر اسی عید گاہ میں برابر

[حاشیہ] ۱ رد المحتار باب الامامة مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۱۲ صفحہ 590 از 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

Question: People used to perform Eid prayers at an Eidgah that was very close to them. Recently, due to worldly selfishness, they stopped performing Eid prayers in the Eidgah, even though no one had prohibited them from the Eidgah. Eventually, based solely on this selfishness or the instigation of some mischief-maker, they fabricated the idea in their minds that "the people on the side of the Eidgah founders prevent us from entering the Eidgah." For this reason, we stopped performing the two units of prayer in the Eidgah. For two or three years, they have been praying in a field near the Eidgah. This year, they intend to build another Eidgah in that same field. So, is it correct or incorrect according to the pure Shari'ah for these few individuals, in the aforementioned situation, to build their new Eidgah in such a small city? If it is correct, then due to there now being two Eidgahs, will the decrease in the congregation of the previous Eidgah cause a reduction in reward or not? And due to the cause of reduction in reward, will the founders of the new Eidgah be considered as such in this situation or not? If these people are considered so, then what does our pure Shari'ah rule regarding those who abandoned the previous Eidgah solely due to worldly selfishness and those who reduced a great reward to a small one? State the ruling and be rewarded.

The Answer: Although performing Eid prayers in multiple locations within a city is permissible by consensus, establishing two Eidgahs outside a city for one city has not been practiced from the blessed era of the Master of the Universe (may Allah the Almighty's peace and blessings be upon him) until now. Never is there any benefit for the pure Shari'ah and the enlightened religion in this, especially in such a small settlement. Even if there were no other harm in it, the mere fact that it is without Shari'ah necessity and religious benefit, and contrary to the inherited practice of Muslims, would be enough for its dislike (karahat). Such an act is always disliked. In Durr al-Mukhtar, Chapter of Eids, it is stated: "Because the Muslims have inherited it, therefore, following them is mandatory." (T) In Radd al-Muhtar, Book of Sacrifices, citing Ghayat al-Bayan: "People have inherited it, so abandoning it without an excuse will be disliked." (T) From this, it is clear that it cannot be compared to the multiplicity of five-time prayer mosques, as that itself is inherited and desired in Shari'ah. In Sunan Abi Dawood, Tirmidhi, and Ibn Majah, it is narrated from the Mother of the Believers Siddiqa (may Allah the Almighty be pleased with her):

1. Durr al-Mukhtar, Chapter of Eids, printed at Mujtabai Press Delhi, 1/117

2. Radd al-Muhtar, Book of Sacrifices, printed by Mustafa al-Babi Egypt, 1/208

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

प्रश्न: लोग एक ईदगाह में ईद की नमाज़ अदा करते थे, जो उनके बहुत नज़दीक थी। हाल ही में, दुनियावी नफ़सानियत (स्वार्थ) के कारण उन्होंने उस ईदगाह में नमाज़ पढ़ना छोड़ दिया, हालांकि किसी ने उन्हें ईदगाह से रोका नहीं था। अंतत; केवल इसी स्वार्थ के कारण या किसी शरारती व्यक्ति के बहकावे में आकर उन्होंने खुद से यह बात गढ़ ली कि "ईदगाह के संस्थापकों के पक्ष वाले हमें ईदगाह में प्रवेश करने से रोकते हैं।" इस कारण हमने ईदगाह में दुगाना (ईद की नमाज़) अदा करना छोड़ दिया। दो-तीन साल से वे ईदगाह के पास के एक मैदान में नमाज़ पढ़ रहे थे। इस साल उनका इरादा उसी मैदान में दूसरी ईदगाह बनाने का है। तो क्या इन कुछ व्यक्तियों के लिए, उपर्युक्त स्थिति में, इतने छोटे शहर में अपनी नई ईदगाह बनाना शरीअते मुतहरा (पवित्र शरीयत) के अनुसार सही है या गलत? यदि सही है, तो क्या अब दो ईदगाह होने से पिछली ईदगाह की जमात कम हो जाने के कारण सवाब (पुण्य) में कमी आएगी या नहीं? और क्या सवाब में कमी के कारण ऐसी स्थिति में नई ईदगाह बनाने वाले ज़िम्मेदार ठहरेंगे या नहीं? अगर ये लोग ज़िम्मेदार हैं, तो केवल दुनियावी स्वार्थ के कारण पिछली ईदगाह को छोड़ने वालों और बड़े सवाब को कम करने वालों के बारे में हमारी शरीअते मुतहरा क्या हुक्म देती है? बयान फ़रमाएं और अज्र (पुण्य) पाएं।

जवाब: हालांकि एक शहर में कई जगहों पर ईद की नमाज़ अदा करना सर्वसम्मति से जायज़ है, लेकिन एक शहर के लिए शहर के बाहर दो ईदगाहें मुकर्रर (निर्धारित) करना हुज़ूर सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के बरकत वाले ज़माने से अब तक ज्ञात नहीं है। पाक शरीअत और रौशन दीन की इसमें कभी कोई मसलहत (हित) नहीं है, खासकर ऐसी छोटी बस्ती में। अगर इसमें इसके अलावा कोई और खराबी न भी होती, तो इस काम की कराहत (नापसंदगी) के लिए इतना ही काफी था कि यह बिना किसी शरीई ज़रूरत और दीनी मसलहत के मुसलमानों की विरासत में मिली प्रथा (मुतवारिस) के खिलाफ है, और ऐसा काम हमेशा मकरूह होता है। 'दुर्रे मुख्तार' के'बाबुल ईदैन' (ईद का अध्याय) में है: "क्योंकि मुसलमानों ने इसे विरासत में पाया है, इसलिए उनका अनुसरण करना अनिवार्य है।" (त) 'रद्दुल मुहतार' की 'किताबुज़ ज़बायह' में 'ग़ायतुल बयान' से उद्धृत है: "लोगों ने इसे विरासत में पाया है, इसलिए बिना किसी उज़्र (बहाने/कारण) के इसे छोड़ना मकरूह होगा।" (त) और यहीं से ज़ाहिर है कि इसकी तुलना पांच वक्त की नमाज़ों के लिए मस्जिदों

की अधिकता से नहीं की जा सकती, क्योंकि वह खुद मुतवारिस है और शरीयत में वांछित है। सुनन अबू दाऊद, तिर्मिज़ी और इब्ने माजा में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णित है:

1. दुर्रे मुख्तार, बाबुल ईदैन, मतबुआ मतबा मुज्तबाई दिल्ली 1/117
2. रद्दुल मुहतार, किताबुज़ ज़बायह, मतबुआ मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/208

पृष्ठ 591 का 673

نمازِ عید ادا کرتے رہے، حال میں ان اشخاص نے جن سے بہت نزدیک عیدگاہ تھی بباعث نفسانیت دنیوی کے عیدگاہ میں نمازِ عید پڑھنا ترک کردیا حالانکہ ان کو کسی نے عید گاہ سے ممانعت بھی نہیں کی، آخر صرف اسی نفسانیت کی بنا پر یا کسی مفسد کے بہکانے سے یہ بات اپنی طبیعت سے گھڑ لی کہ ہم بانیانِ عید گاہ کی طرف والے عیدگاہ میں داخل ہونے سے منع کرتے ہیں بایں وجہ ہم نے عید گاہ میں دوگانہ ادا کرنا ترک کردیا، دو تین سال سے میدان میں جو عید گاہ کے قریب ہے نمازِ عید پڑھتے تھے امسال ان کا ارادہ اسی میدان میں دوسری عید گاہ کی تعمیر کا ہے، تو آیا ان چند اشخاص کو صورتِ مذکورہ بالا میں اپنی جدید عید گاہ ایسے مختصر شہر میں تعمیر کرنا ازروئے شرع شریف درست ہے یا نا درست؟ اگر درست ہے تو اب دو ۲ عید گاہوں کے ہو جانے سے قلتِ جماعت عید گاہِ سابق موجبِ کمی ثواب ہے یا نہیں؟ اور باعثِ قلتِ ثواب کے ایسی حالت میں بانیانِ عید گاہ جدید ٹھہریں گے یا نہیں؟ اگر یہ لوگ ٹھہرے تو عید گاہِ سابق کو محض نفسانیت دنیوی کے سبب ترک کردینے والوں کی نیت اور ثواب کثیر کو قلیل کرنے والوں کی بابت ہماری شریعتِ مطہرہ کیا حکم کرتی ہے؟ بینوا توجروا الجواب: نمازِ عید ایک شہر میں متعدد جگہ اگر چہ بالاتفاق روا ہے مگر ایک شہر کے لئے دو عید گاہ بیرونِ شہر مقرر کرنا زمانِ برکت نشان حضور سید عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے اب تک معہود نہیں نہ زنہار اس میں شرعِ مطہر و دینِ منور کی کوئی مصلحت خصوصاً ایسی چھوٹی بستی میں تو اگر اس میں اس کے سوا کوئی حرج نہ ہوتا تو اسی قدر اس فعل کی کراہت کو بس تھا کہ محض بے ضرورت شرعی و مصلحتِ دینی خلافِ متوارثِ مسلمین ہے اور ایسا فعل ہمیشہ مکروہ ہوتا ہے، در مختار باب العیدین میں ہے: لان المسلمین توارثوہ فوجب اتباعھم (کیونکہ یہ مسلمانوں کے ہاں متوارث ہے لہٰذا ان کی اتباع لازم ہے۔

ت) ردالمحتار کتاب الذبائح میں غایۃ البیان سے ہے: توارثہ الناس فیکرہ ترکہ بلا عذر (لوگوں کے ہاں متوارث ہے لہٰذا اس کا ترک بلا عذر مکروہ ہوگا۔ ت) اور یہیں سے ظاہر کہ تعدد مساجدِ پنجگانہ پر اس کا قیاس نہیں ہو سکتا کہ وہ خود متوارث و مطلوب فی الشرع ہے، سنن ابوداؤد و ترمذی وابنِ ماجہ میں ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے ہے:

1 درمختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۷ 2 ردالمحتار کتاب الذبائح مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۲۰۸

The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) ordered the building of mosques in various localities and that they be kept clean and fragrant.[1] — The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) ordered the construction of mosques in every area and their cleanliness and purity. (T)

When such construction is devoid of religious benefit and there is no evident worldly benefit, it is merely futile (abath), and every such futility is impermissible and forbidden. It is stated in al-Hidayah: Futility (abath) outside of prayer is prohibited, so what do you think about it during prayer?[2] — Futile acts are forbidden outside of prayer, so what would be their state within prayer? (T)

It is stated in al-Hilyah: The difference between futility (abath) and foolishness (safah), as mentioned by Badr al-Din al-Kurdi, is that foolishness is an action with no underlying purpose at all, while futility is an action with a purpose, but it is not Sharia-compliant. Others define futility as an action for which the doer has no sound purpose.[3] — The difference between futility (abath) and foolishness (safah), according to Allama Badr al-Din al-Kurdi, is that foolishness is an action in which there is no purpose, and futility is an action in which there is a purpose but it is not according to Sharia. In the words of others, futility is an action for which the doer's purpose is not sound. (T)

This building was constructed without necessity, and every building made without necessity will be a burden for its builder on the Day of Judgment. As mentioned in hadiths narrated by al-Bayhaqi from Anas, and by al-Tabarani from Wathilah, and reports from other Companions (may Allah be pleased with them) regarding this matter. As reported by al-Bayhaqi from Hazrat Anas (may Allah be pleased with him), al-Tabarani from Hazrat Wathilah (may Allah be pleased with him), and other narrations from other Companions (may Allah be pleased with them) in this regard. (T)

Erecting a building in a wilderness without a Sharia-sanctioned need is extravagance (israf), and extravagance is forbidden. Allah says: "And do not be extravagant; indeed, He does not like the extravagant."[4] (Allah the Almighty's command is: And do not commit extravagance for Allah the Almighty does not like extravagance.)

---

[1] Sunan Ibn Majah, Chapter on Building Mosques in Localities, Published by H.M. Saeed Company, Karachi, p. 66 [2] Al-Hidayah, Chapter on What Corrupts Prayer and

What is Disliked in It, Published by Al-Maktabah al-Arabiyah, Karachi, 1/119 [3] Hilyah, Explanation of Munyat al-Musalli [4] Al-Quran, 7/31, 17/26, and 7/31

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हर इलाके में मस्जिद बनाने और उनकी सफाई और सुथराई का हुक्म दिया।[1] — अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हर क्षेत्र में मस्जिद के निर्माण और उनकी स्वच्छता और पवित्रता का आदेश दिया। (त)

जब यह निर्माण धार्मिक हित से खाली हो और इसमें कोई स्पष्ट सांसारिक हित न हो, तो यह महज व्यर्थ (अबत) है, और ऐसा हर व्यर्थ कार्य नाजायज़ और निषिद्ध है। 'हिदाया' में कहा गया है: नमाज़ के बाहर व्यर्थ कार्य (अबत) हराम है, तो नमाज़ के दौरान इसके बारे में क्या ख्याल है?[2] — व्यर्थ कार्य नमाज़ के बाहर हराम हैं, तो नमाज़ के भीतर उनकी क्या स्थिति होगी? (त)

'हिलिया' में उल्लेख है: अल्लामा बदरुद्दीन अल-कुर्दी द्वारा बताए अनुसार व्यर्थ (अबत) और मूर्खता (सफ़ह) में अंतर यह है कि मूर्खता वह कार्य है जिसका मूल रूप से कोई उद्देश्य नहीं होता, जबकि व्यर्थ वह कार्य है जिसमें उद्देश्य तो होता है लेकिन वह शरीयत के अनुसार नहीं होता। दूसरों के शब्दों में, व्यर्थ वह कार्य है जिसके लिए कर्ता का कोई सही उद्देश्य न हो।[3] — अल्लामा बदरुद्दीन अल-कुर्दी के अनुसार, व्यर्थ (अबत) और मूर्खता (सफ़ह) के बीच अंतर यह है कि मूर्खता वह कार्य है जिसमें कोई उद्देश्य न हो, और व्यर्थ वह कार्य है जिसमें उद्देश्य हो लेकिन वह शरई न हो। दूसरों के शब्दों में, व्यर्थ वह कार्य है जिसके कर्ता का उद्देश्य सही नहीं है। (त)

यह इमारत बिना किसी आवश्यकता के बनाई गई है, और बिना आवश्यकता के बनाई गई प्रत्येक इमारत कयामत के दिन अपने निर्माता के लिए बोझ होगी। जैसा कि इस पर बैहकी ने हज़रत अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से, तबरानी ने हज़रत वाथिला (रज़ियल्लाहु अन्हु) से और उनके अलावा अन्य सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से रिवायतें दर्ज हैं। जैसा कि इस बारे में बैहकी ने हज़रत अनस से, तबरानी ने हज़रत वाथिला से और उनके अलावा अन्य साथियों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से रिवायतें प्राप्त हैं। (त)

बिना शरई आवश्यकता के जंगल में एक इमारत खड़ी कर देना फुजूलखर्ची (इसराफ़) है, और फुजूलखर्ची हराम है। अल्लाह फरमाता है: "और फुजूलखर्ची न करो; वास्तव में, वह फुजूलखर्चों को पसंद नहीं करता।"[4] (अल्लाह तआला का आदेश है: और फुजूलखर्ची मत करो क्योंकि अल्लाह तआला फुजूलखर्ची को पसंद नहीं करता।)

---

[1] सुनन इब्न माजह, मुहल्लों में मस्जिद बनाने का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा प्रकाशित, पृ. 66 [2] अल-हिदाया, नमाज़ को बिगाड़ने वाली और उसमें नापसंद चीजों का अध्याय, अल-मकतबा अल-अरबिया, कराची द्वारा प्रकाशित, 1/119 [3] हिलिया, मुन्यात अल-मुसल्ली की व्याख्या [4] अल-कुरान, 7/31, 17/26 और 7/31

امر رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم ببناء مساجد فی الدور وان تنظف وتطیب ۱۸ - رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ہر علاقے میں مسجد کی تعمیر اور ان کی نظافت و طہارت کا حکم دیا۔ (ت)

جب یہ تعمیر مصلحت دینی سے خالی ہوئی اور اس میں کوئی مصلحت دنیوی نہ ہو نا بدیہی، تو محض عبث ہوئی اور ایسا ہر عبث ناجائز و ممنوع ہے ، ہدایہ میں ہے : العبث خارج الصلوٰۃ حرام فما ظنك فی الصلوٰۃ ۲۸ - عبث کام نماز سے باہر حرام تو نماز میں کیا حال ہو گا۔ (ت)

حلیہ میں ہے : الفرق بین العبث والسفہ علی ما ذکرہ بدر الدین الکردی ان السفہ مآلا غرض فیہ اصلا والعبث فعل فیہ غرض لکن لیس بشرعی وعبارۃ غیرہ العبث مالیس فیہ غرض صحیح لفاعلہ ۳۸ - عبث اور سفہ میں فرق بقول علامہ بدرالدین الکردی کے یہ ہے کہ سفہ وہ عمل جس میں کوئی غرض نہ ہو اور عبث وہ فعل جس میں غرض ہو لیکن شرعی نہ ہو ، دیگر لوگوں کے الفاظ میں عبث وہ فعل ہے جس کے فاعل کی غرض صحیح نہ ہو ۔(ت)

یہ عمارت بے حاجت کی تعمیر ہوئی اور ہر عمارت بے حاجت اپنے بنانے والے پر روز قیامت وبال ہے ۔ کما وردت بہ احادیث عند البیہقی عن انس والطبرانی عن واثلۃ وفیہ عن غیرھما رضی اللہ تعالی عنھم ۔ جیسا کہ اس پر بیہقی نے حضرت انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے ، طبرانی نے حضرت واثلہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے اور اس سلسلہ میں ان کے علاوہ صحابہ رضی اللہ تعالٰی عنہم سے مرویات ہیں ۔ (ت)

جنگل میں بے حاجت شرعی ایک عمارت بنا کر کھڑی کر دینا اسراف ہوا اور اسراف حرام ہے قال اللہ وَ لَا تُسْرِفُوْا اِنَّہٗ لَا یُحِبُّ الْمُسْرِفِیْنَ ۸4 (اللہ تعالٰی کا فرمان ہے : اور اسراف نہ کرو کہ اللہ تعالٰی اسراف [کو پسند نہیں فرماتا])

---

1 سنن ابن ماجہ اتحاذ المساجد فی الدور مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۶۶ 2 الہدایہ باب مایشد الصلوٰۃ ومایکرہ فیہا مطبوعہ المکتبہ العربیہ کراچی ۱/۱۱۹ 3 حلیہ کحلی شرح منیۃ المصلی 4 القرآن ۷/۳۱ ، ۲۶/۱۷ و ۳۱/۷

Volume 8 Fatawa Rizvia

...He (Allah) does not like those who do [such things]. (T) In the case under inquiry, all these reprehensible qualities were present in this meaningless act itself, even if its construction was not out of self-indulgence. Since this construction is indeed out of self-indulgence, as is clear from the description of the question, its being condemned and rejected is itself clear and evident, as is not hidden. And Allah, Glory be to Him, the Most High, knows best.

Problem 434: From Mauza Manchandi, District Pilibhit, sent by Haji Nasiruddin Sahib on 14 Muharram al-Haram 1318 AH. What do the scholars of religion say regarding this issue? It is said that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) stated that on the Day of Sacrifice (Eid al-Adha), it is desirable not to eat until the prayer is performed. That is, one should restrain themselves from eating, drinking, and marital relations on the day of sacrifice until the Eid prayer is performed. Now, Muslims eat at their homes and smoke hookah/drink water on the 10th of Dhu al-Hijjah (Day of Sacrifice) before going to the Eidgah for the Eid prayer. They do not follow this command and act contrary to the instruction of the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him). What is the ruling for them according to the Shariah? What should be said to them in this matter, and will their prayer be correct, or will some defect affect their prayer? Please explain and you will be rewarded.

The Answer: In this regard, no verbal Hadith from the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) has been reported in the way the questioner mentioned. However, the action of the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) is established: he would not eat anything before the prayer on Eid al-Adha, and after the prayer, he would eat from the sacrificial meat.

[Table Content] Al-Tirmidhi and Ibn Majah narrated from Buraydah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) would not go out on the day of [Eid] al-Fitr until he ate, and he would not eat on the Day of Sacrifice until he prayed. (1) And Al-Daraqutni narrated it in his Sunan with the addition: "until he returned and ate from his sacrifice." (2) Ibn al-Qattan graded it as authentic. And in Al-Awsat of Al-Tabarani from Ibn Abbas (may Allah be pleased with him)../ Tirmidhi and Ibn Majah reported from Hazrat Buraydah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) would not come out for Eid al-Fitr without eating something, and on the Day of

Sacrifice, he would partake [after] performing the prayer. Al-Daraqutni mentioned it in Sunan, and in this connection, these words are also present: "until he returned from the prayer and ate from his sacrifice."

1 Jami' al-Tirmidhi, Chapter on Eid Prayers, printed by Amin Company, Rashidiyah Book House, Delhi, 1/71 2 Sunan al-Daraqutni, Book of Eid Prayers, Hadith 7, printed by Nashr-us-Sunnah, Multan, 25/2

जिल्द 8 फ़तावा रज़विया

...करने वालों को पसंद नहीं फरमाता। (त) प्रश्नाधीन मामले में, ये सभी बुराइयाँ स्वयं इस अर्थहीन कार्य में मौजूद थीं, भले ही इसका निर्माण नफ़्सानियत (आत्म-भोग) की वजह से न हो। और चूंकि यह निर्माण नफ़्सानियत के आधार पर है, जैसा कि प्रश्न के वर्णन से स्पष्ट है, तो इसका निंदनीय और अस्वीकार्य होना स्वयं स्पष्ट और उज्ज्वल है जैसा कि छिपा नहीं है। और अल्लाह, वह पवित्र और सर्वोच्च है, सबसे बेहतर जानता है।

मसला 434: मौजा मनचंदी, जिला पीलीभीत से हाजी नसीरुद्दीन साहब द्वारा प्रेषित 14 मुहर्रम अल-हराम 1318 हिजरी। दीन के विद्वान इस मसले में क्या फरमाते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया कि ईद-ए-क़ुर्बां में मुस्तहब (पसंदीदा) है कि जब तक नमाज़ न पढ़ी जाए, खाना न खाया जाए। अर्थात, कुर्बानी के दिन खुद को खाने, पीने और संभोग से रोके रखे जब तक कि ईद की नमाज़ न पढ़ ली जाए। अब, मुसलमान कुर्बानी के दिन 10 ज़िल हिज्जा को अपने घर पर खाना खाकर और हुक्का-पानी पीकर ईद की नमाज़ के लिए ईदगाह जाते हैं। वे इस हुक्म को नहीं मानते और रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के हुक्म की अवहेलना करते हैं। तो उनके लिए शरीयत-ए-मुतह्हरा में क्या हुक्म है? इस बारे में उनसे क्या कहा जाएगा और क्या उनकी नमाज़ सही होगी या उनकी नमाज़ में कोई कमी आएगी? बयान फरमाएं, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): इस बारे में रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कोई कौली (मौखिक) हदीस वैसी नहीं आई जैसी प्रश्नकर्ता ने ज़िक्र की है। हाँ, हुज़ूर-ए-अक़दस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का फेल (कार्य) साबित है कि ईद-ए-क़ुर्बां में नमाज़ से पहले कुछ न खाते थे, नमाज़ के बाद क़ुर्बानी के गोश्त से तनावल (भोजन) फ़रमाते।

[तालिका की सामग्री] अरबी: तिर्मिज़ी और इब्न माजा ने बुरैदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद-उल-फ़ितर के दिन तब तक बाहर नहीं निकलते थे जब तक कुछ खा न लेते, और कुर्बानी के दिन (ईद-उल-अज़हा) तब तक नहीं खाते थे जब तक नमाज़ न पढ़ लेते। (1) और दारकुतनी ने इसे अपनी सुनन में इन शब्दों के साथ रिवायत किया है: "जब तक वापस लौटते और अपनी कुर्बानी से खाते।" (2) इब्न अल-क़त्तान ने इसे सहीह कहा है। और अल-तबरानी की अल-औसत में इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हु) से... / उर्दू: तिर्मिज़ी और इब्न माजा ने हज़रत बुरैदा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ईद-

उल-फ़ितर को कोई चीज़ खाए बिना तशरीफ़ न लाते और यौम-उन-नहर (कुर्बानी के दिन) को नमाज़ अदा करके तनावल फ़रमाते। इसे दारकुतनी ने सुनन में ज़िक्र किया और इस सिलसिले में ये अल्फ़ाज़ भी हैं कि यहाँ तक कि नमाज़ से वापस लौटते और अपनी क़ुर्बानी से तनावल फ़रमाते।

1 जामी अल-तिर्मिज़ी, नमाज़-ए-ईद का अध्याय, मुद्रित अमीन कंपनी, रशीदिया कुतुब खाना, दिल्ली, 1/71 2 सुनन अल-दारकुतनी, ईद की नमाज़ की किताब, हदीस 7, मुद्रित नश्र-उस-सुन्नाह, मुल्तान, 25/2

کرنے والوں کو پسند نہیں فرماتا۔ ت) صورتِ مستفسرہ میں یہ سب شناعتیں خود اس فعلِ بے معنی میں موجود تھیں اگرچہ اس کی تعمیر براہِ نفسانیت نہ ہو اور جبکہ یہ بناء براہِ نفسانیت ہے جیسا کہ بیانِ سوال سے ظاہر، تو اس کا مذموم و مردود ہونا خود واضح و روشن ہے کما لا یخفی، واللہ سبحنہ وتعالیٰ اعلم۔ مسئلہ ۴۳۴: از موضع منچندی ضلع پیلی بھیت مرسلہ حاجی نصیر الدین صاحب ۱۴ محرم الحرام ۱۳۱۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ فرمایا رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے کہ عیدِ قرباں میں مستحب ہے کہ جب تک نماز نہ پڑھی جائے کھانا نہ کھائے یعنی جو کہ نگاہ رکھے اپنے آپ کو کھانے اور پینے سے اور جماع کرنے سے دنِ قربانی کے یہاں تک کہ پڑھی جائے نمازِ عید کی، اب مردمانِ اہل اسلام دنِ قربان کے دس ذی الحجہ کو اپنے مکان سے کھانا کھا کر اور حقہ پانی پی کر واسطے نمازِ عید کے عیدگاہ کو جاتے ہیں، یہ حکم نہیں مانتے اور رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی حکم عدولی کرتے ہیں تو ان کے واسطے شرع شریف سے کیا ہے، پس اس امر میں اس سے کیا کہا جائے گا اور نماز ان کی صحیح طور پر ہوگی و یا کوئی نقصان ان کی نماز میں عائد ہوگا۔ بینوا توجروا الجواب: اس باب میں رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے کوئی حدیثِ قولی جس طرح سائل نے ذکر کی وارد نہیں، ہاں حضورِ اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کا فعل ثابت ہوا ہے کہ عیدِ قرباں میں نماز سے پہلے کچھ نہ کھاتے بعدِ نماز گوشتِ قربانی سے تناول فرماتے۔

الترمذی وابن ماجۃ عن بریدۃ رضی اللہ تعالٰی عنہ ان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کان لا یخرج یوم الفطر حتی یأکل، وکان لا یأکل یوما النحر حتی یصلی ۱ ورواہ الدار قطنی فی سننہ حتی یرجع فیأکل من اضحیتہ ۲ صححہ ابن قطان۔ وفی اوسط الطبرانی عن ابن عباس رضی اللہ / ترمذی

اور ابن ماجہ نے حضرت بریدہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا کہ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم عید الفطر کو کوئی چیز کھائے بغیر تشریف نہ لاتے اور یوم النحر کو نماز ادا کر کے تناول فرماتے، اسے دارقطنی نے سنن میں ذکر کیا اور اس سلسلہ میں یہ الفاظ بھی ہیں کہ یہاں تک کہ نماز سے واپس لوٹتے اور اپنی قربانی سے تناول فرماتے، اسے

1 جامع الترمذی باب فی صلوۃ العیدین مطبوعہ امین کمپنی کتب خانہ رشیدیہ دہلی ۱/۷۱ 2 سنن الدار قطنی کتاب العیدین حدیث ۷ مطبوعہ نشر السنہ ملتان ۲۵/۲

[Arabic]: It is from the Sunnah not to go out on the day of [Eid] al-Fitr until one eats, and not to eat on the day of [Eid] al-Nahr [sacrifice] until one returns. [Urdu]: Ibn Qattan declared it authentic; it is mentioned in Tabarani's Al-Awsat from Hazrat Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) that the Sunnah is not to go out on the day of Eid al-Fitr without eating and to eat on the day of Eid al-Adha upon returning from the prayer. (T)

In any case, this matter is recommended (Mustahab), meaning if one does it, there is reward, and if not, there is no harm; omitting such a matter cannot be called disobedience and there is no possibility of deficiency in the prayer. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Arabic]: It is recommended to delay eating on both days, even if one does not offer a sacrifice, and if one eats, it is not disliked. (Condensed) [Urdu]: It is recommended (Mandub) to delay eating on the day of Eid al-Adha even if a sacrifice is not to be offered, and if one eats, there is no dislike (Karahat) in it. (Condensed) (T)

It is stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic]: That is, it is recommended to abstain from what breaks a fast from dawn until the prayer is performed. It was said in Al-Bahr: This is recommended, and omitting a recommended act does not necessitate the establishment of dislike, as it requires a specific proof. It is stated in Al-Bada'i: If one wishes, one may taste, and if one wishes, one may not. The etiquette is not to taste anything until the completion of the prayer so that his eating is from the sacrificial offerings. (Condensed) And Allah Almighty knows best. [Urdu]: That is, it is recommended to abstain from everything by which a fasting person's fast is broken until the performance of the prayer. It is stated in Al-Bahr: This is recommended, and dislike is not necessitated by the omission of a recommended act because a separate proof is required for it. It is stated in Al-Bada'i: If one wishes, one may taste, and if one wishes, one may not. The etiquette is not to eat anything before finishing the prayer so that his eating is from the sacrificial animal. (Condensed) And Allah Almighty knows best.

Issue 1444: Zaid, without expressing any opinion of his own, based on the research and proof of testimony of present-day scholars, and considering Tuesday to be the 10th of Dhu al-Hijjah with certainty, leads the Eid al-Adha prayer. However, on the night of Tuesday, a highly religious and authentic scholar...

1 Majma' al-Zawa'id, citing Al-Tabarani's Al-Awsat, Chapter on Eating on the Day of al-Fitr etc., printed by Dar al-Kitab, Beirut, 2/199 2 Durr al-Mukhtar, Chapter on the Two Eids, printed by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/116 3 Radd al-Muhtar, Chapter on the Two Eids, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/218

[अरबी]: सुन्नत यह है कि ईदुल फ़ित्र के दिन जब तक कुछ खा न लिया जाए, बाहर न निकला जाए और ईदुल अज़हा (नह्र) के दिन वापस आने तक कुछ न खाया जाए। [उर्दू]: इब्न क़त्तान ने इसे सही क़रार दिया, तबरानी की अल-औसत में हज़रत इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से है कि सुन्नत यह है कि ईदुल फ़ित्र के दिन बिना खाए न निकला जाए और ईदुल अज़हा के दिन नमाज़ से वापसी पर खाया जाए। (त)

बहरहाल, यह मामला मुस्तहब है, यानी अगर करे तो सवाब है, न करे तो कोई हर्ज नहीं। ऐसे अम्र के तर्क(त्याग) को हुक्म-अदूली नहीं कह सकते और नमाज़ में कमी का तो कोई एहतमाल (संभावना) ही नहीं। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

[अरबी]: दोनों [दिनों] से खाने को मुअख्खर (देर से खाना) करना मंदूब है चाहे क़ुर्बानी न की जाए, और अगर खा लिया तो नापसंद नहीं है। (संक्षेप में) [उर्दू]: ईदुल अज़हा के दिन खाना देर से खाना मंदूब है, चाहे क़ुर्बानी न देनी हो, और अगर खा लिया तो इसमें कराहत (नापसंदगी) नहीं है। (संक्षेप में) (त)

'रद्दुल मुहतार' में है:

[अरबी]: यानी सुबह से लेकर नमाज़ पढ़ने तक उन चीज़ों से रुकना मंदूब है जिनसे रोज़ा टूटता है। 'बह्र' में कहा गया: यह मुस्तहब है और मुस्तहब छोड़ने से कराहत लाज़िम नहीं आती क्योंकि उसके लिए अलग दलील ज़रूरी है। 'बदाए' में है: अगर चाहे तो चख ले और न चाहे तो न चखे। और अदब यही है कि नमाज़ पूरी होने तक कुछ न चखे ताकि उसका पहला खाना क़ुर्बानी के जानवरों से हो। (संक्षेप में) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। [उर्दू]: यानी नमाज़ की अदायगी तक हर उस चीज़ से रुकना मंदूब है जिससे रोज़ा इफ़्तार होता है। 'बह्र' में फ़र्माया: यह मुस्तहब है और मुस्तहब के तर्क से कराहत लाज़िम नहीं आती क्योंकि उसके लिए मुस्तकिल (स्थायी) दलील ज़रूरी है। 'बदाए' में है: अगर चाहे तो चख ले और न चाहे तो न चखे। और अदब यही है कि नमाज़ से फ़ारिग़ होने से पहले कोई चीज़ न खाए यहाँ तक कि उसका तनावुल (सेवन) क़ुर्बानी के जानवर से हो। (संक्षेप में) वल्लाहु तआला आलम।

मसला 1444: ज़ैद बग़ैर अपनी कोई राय ज़ाहिर किए, मौजूदा उलेमा की तहक़ीक़ और गवाही के सुबूत को सही मानकर, मंगल (सह-शम्बा) को दस ज़ुल-हिज्जा यक़ीनी जानकर ईदुल अज़हा की इमामत कराता है, लेकिन मंगल की रात को एक बड़े मुतदैय्यिन (धार्मिक) मुस्तनद आलिम...

1 मजमा-अज़-ज़वाइद, तबरानी की अल-औसत के हवाले से, बाबुल अक्ल यौमुल फ़ित्र वग़ैरह, मतबुआ दारुल किताब बैरुत 2/199 2 दुर्रे मुख़्तार, बाबुल ईदैन, मतबुआ मतबा-ए-मुज्तबाई देहली 1/116 3 रद्दुल मुहतार, बाबुल ईदैन, मुस्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/218

पृष्ठ 594/673

[عربی]: تعالٰی عنهما من السنۃ ان لایخرج یوم الفطر حتی یطعم ولایأکل یوم النحر حتی یرجع۔

[اردو]: ابن قطان نے صحیح قرار دیا، طبرانی کی اوسط میں حضرت ابن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے ہے کہ سنت یہ ہے کہ یوم الفطر کو کھائے کے بغیر نہ نکلا جائے اور یوم النحر کو نماز سے واپسی پر کھایا جائے۔ (ت)

بہر حال یہ امر استحبابی ہے یعنی کرے تو ثواب، نہ کرے تو حرج نہیں، ایسے امر کے ترک کو حکم عدولی نہیں کہہ سکتے اور نماز میں نقص کا تو کوئی احتمال ہی نہیں، در مختار میں ہے:

[عربی]: یندب تاخیر اکلہ عنهما وان لم یضح ولو اکل لم یکرہ اھ باختصار [اردو]: یوم النحر میں کھانا مؤخر کرنا مندوب ہے اگرچہ قربانی نہ دینی ہو اور اگر کھایا تو اس میں کراہت نہیں اھ اختصاراً (ت)

ردالمحتار میں ہے:

[عربی]: ای یندب الامساک عما یفطر الصائم من صبحہ الی ان یصلی قال فی البحر وھم مستحب ولا یلزم من ترک المستحب ثبوت الکراہۃ اذ لا بد لھا من دلیل خاص اھ وفی البدائع ان شاء ذاق وان شاء لم یزق والادب ان لایذوق شیأ الی وقت الفراغ من الصلوۃ حتی یکون تناولہ من القرابین اھ اھ مختصرا واللہ تعالٰی اعلم [اردو]: یعنی نماز کی ادائیگی تک ہر اس شئی سے رکنا مندوب ہے جس سے صائم کا روزہ افطار ہوتا ہے، بحر میں فرمایا: یہ مستحب ہے اور ترک مستحب سے کراہت لازم نہیں آتی کیونکہ اس کے لئے مستقل دلیل ضروری ہے اھ بدائع میں ہے اگر چاہے تو چکھ لے اور نہ چاہے

نہ چکھے، اور ادب یہی ہے کہ نماز سے فارغ ہونے سے پہلے کوئی شے نہ کھائے یہاں تک کہ اس کا تناول قربانی کے جانور سے ہو۔ اھ مختصراً واللہ تعالٰی اعلم

مسئلہ ۱۴۴۴: زید بغیر کچھ اپنی رائے ظاہر کرے علمائے حاضرہ کی تحقیق و ثبوت شہادت صحیح جان کر سہ شنبہ کو دس ذی الحجہ یقینی جان کر عید الاضحیٰ کی امامت کراتا ہے لیکن شب سہ شنبہ کو ایک بڑے متدین مستند عالم

1 مجمع الزوائد بحوالہ الطبرانی والاوسط باب الاکل یوم الفطر الخ مطبوعہ دار الکتاب بیروت ۲/ ۱۹۹ 2 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱۱۶/۱ 3 رد المحتار باب العیدین مصطفی البابی مصر ۲۱۸/۱

Fatawa Razvia Volume Eight

...[He] arrived and, not considering the sighting [of the moon] to be authentic, did not celebrate Eid on Tuesday. Efforts were made through people so that somehow the proof of sighting could become known to me so that I too could celebrate Eid, but no information was obtained from anyone. Those who had the proof went away saying only this: "If you consider me truthful, then celebrate Eid, otherwise there is no answer." For this reason, one scholar did not celebrate Eid; another scholar from among those present agreed with him. After finishing the leading of prayers and the sermon, Zaid says: "O religious brothers! Today is Eid, and pray [the prayer] also, but regarding the sacrifice which is permissible on the 10th, 11th, and 12th, if you do it on Wednesday instead of Tuesday as a precaution, it would be better." On this last sentence, a question arises from the people: "What is the meaning of precaution?" Zaid answers: "If you sacrifice today, those scholars who did not celebrate Eid will say the sacrifice was not valid. And if you do it on Wednesday, everyone will unanimously say it is correct. And avoiding disagreement is better." Is Zaid a Shari'a criminal for pronouncing this sentence? And those people who, after consultation and gathering people, in their presumption want to humiliate Zaid and make great efforts to prove a crime—are these people doing a good deed or a reprehensible one?

The Answer: Zaid is not a Shari'a criminal because of this sentence; the command to take precaution and avoid valid Shari'a disagreement exists in the pure Shari'a. Those who try to humiliate him for this reason are not doing a good deed but are striving towards sin. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says:

[Arabic Hadith Text]: Everything of a Muslim is sacred to another Muslim: his wealth, his honor, and his blood. It is enough evil for a man to despise his Muslim brother. - Narrated by Abu Dawud and Ibn Majah from Abu Huraira (may Allah be pleased with him).

[Urdu Hadith Translation]: Everything of a Muslim is forbidden for another Muslim: his wealth, his honor, his blood. It is enough for a man to be bad that he despises his Muslim brother. - Abu Dawud and Ibn Majah narrated this from Hazrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him).

However, regarding the prayer he performed, there are many aspects. In summary, if those who are named great contemporary scholars but are not expert jurists (faqih) whose fatwas can be relied upon, it was not permissible to trust their investigation. And if until that time their statement was worthy of trust for Zaid, and when the

other scholar, who is described as a very religious and authoritative scholar, did not consider that proof authentic, then Zaid no longer had trust in the statement of the former ones. Thus, Tuesday being the 10th [of Dhu al-Hijjah] became unproven. Then if he prayed the prayer, it was not a prayer at all, because just as time is a condition for prayer, similarly, the belief of the worshipper that the time has arrived is also a condition. For example, if someone prayed the morning prayer while having doubt about the dawn, the prayer is not valid even if in reality dawn had occurred. It is stated in Radd al-Muhtar:

---

[1] Sunan Ibn Majah, Chapter on the Sanctity of the Believer and his Wealth, published by H.M. Saeed Company Karachi, p. 290.

फतावा रजविया खंड आठ

...[वे] आए और उन्होंने चंद्रमा दिखने के प्रमाण को सही न मानकर मंगलवार को ईद नहीं मनाई। लोगों के माध्यम से प्रयास किए गए कि किसी तरह मुझे प्रमाण का पता चल जाए ताकि मैं भी ईद मना सकूं लेकिन किसी से कुछ पता नहीं चला। जिनके पास प्रमाण था, वे यह कहकर चले गए कि "यदि आप मुझे सच्चा मानते हैं तो ईद मनाएं अन्यथा कोई उत्तर नहीं है।" इस कारण से एक विद्वान ने ईद नहीं मनाई; उनके साथ मौजूद विद्वानों में से एक और भी सहमत हो गए। ज़ैद इमामत और खुत्बा से फारिग होकर कहता है कि "धार्मिक भाइयों! आज ईद है, और नमाज़ भी पढ़ें, लेकिन कुर्बानी जो 10, 11, 12 को जायज़ है, मंगलवार के बजाय बुधवार को एहतियातन (सावधानीवश) करें तो बेहतर होगा।" इस अंतिम वाक्य पर लोगों की ओर से सवाल उठता है कि "एहतियात का क्या मतलब है?" तो ज़ैद जवाब देता है कि "यदि आज कुर्बानी करोगे तो वे विद्वान जिन्होंने ईद नहीं मनाई, वे कहेंगे कि कुर्बानी नहीं हुई। और यदि बुधवार को करोगे तो सब सर्वसम्मति से कहेंगे कि सही है, और मतभेद से बचना ही बेहतर है।" क्या ज़ैद इस वाक्य को बोलने के कारण शरीयत का अपराधी है? और जो लोग मशविरा करके और लोगों को इकट्ठा करके अपने गुमान में ज़ैद को अपमानित करना चाहते हैं और अपराध साबित करने की पूरी कोशिश करते हैं, क्या ये लोग अच्छा काम कर रहे हैं या निंदनीय?

उत्तर: ज़ैद इस वाक्य के कारण शरई अपराधी नहीं है क्योंकि एहतियात बरतने और मान्य शरई मतभेद से बचने का आदेश मुताहिर शरीयत में मौजूद है। इतनी सी बात पर जो उसे अपमानित करने की कोशिश करते हैं, वे अच्छा काम नहीं कर रहे हैं बल्कि गुनाह की कोशिश कर रहे हैं। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फरमाते हैं:

[अरबी हदीस पाठ]: एक मुसलमान के लिए दूसरे मुसलमान की हर चीज़ हराम (पावन) है: उसका माल, उसकी प्रतिष्ठा और उसका खून। एक आदमी के बुरा होने के लिए इतना ही काफी है कि वह अपने मुसलमान भाई को हकीर (तुच्छ) समझे। - इसे अबू दाऊद और इब्न माजा ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

[उर्दू हदीस अनुवाद]: मुसलमान का सब कुछ दूसरे मुसलमान पर हराम है: उसका माल, उसकी आबरू, उसका खून। आदमी के बुरा होने के लिए यह काफी है कि वह अपने मुसलमान भाई की

हकीर समझे। - इसे अबू दाऊद और इब्न माजा ने हज़रत अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है।

अलबत्ता वह नमाज़ जो पढ़ी, उसमें कई पहलू हैं जिनका सारांश यह है कि यदि वे जिन्हें वर्तमान के बड़े विद्वान कहा जाता है न कि माहिर फकीह जिनके फतवे पर भरोसा किया जा सके तो उनकी तहकीक पर भरोसा जायज़ नहीं था। और अगर उस समय तक उनकी बात ज़ैद के हक में भरोसे के लायक थी और जब दूसरे विद्वान, जिन्हें बहुत धार्मिक और प्रामाणिक विद्वान कहा गया है, उन्होंने उस प्रमाण को सही नहीं माना, तो ज़ैद को पहले वालों के बयान पर भरोसा नहीं रहा। और मंगलवार को दसवीं होना बिना प्रमाण के हो गया। फिर नमाज़ पढ़ी तो नमाज़ ही नहीं हुई क्योंकि नमाज़ के लिए जिस तरह वक्त शर्त है, उसी तरह नमाज़ी के यकीन में वक्त का आ जाना भी शर्त है। उदाहरण के लिए, यदि किसी ने सुबह की नमाज़ पढ़ी और उसे सुबह होने में संदेह था, तो नमाज़ नहीं हुई चाहे वास्तव में सुबह हो गई हो। रद अल-मुहतार में है:

---

[1] सुनन इब्न माजा, मोमिन और उसके माल की हुरमत का बाब, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 290.

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

تشریف لائے اور انہوں نے ثبوت رؤیت صحیح نہ جان کر سہ شنبہ کو عید نہیں کی، لوگوں سے کوشش کرائی گئی کہ کسی صورت سے مجھ کو ثبوت رؤیت معلوم ہو جائے تو میں بھی عید کروں مگر کسی سے پتا نہیں چلا جن کے پاس ثبوت گزرا وہ اس قدر فرما کر گئے کہ مجھے سچا جانتے ہیں تو عید کریں ورنہ جواب کچھ نہیں، اس وجہ سے ایک عالم صاحب نے عید نہیں کی ان کے موافق موجود علماء میں سے ایک عالم اور ہو گئے زید امامت و خطبہ سے فارغ ہو کر یوں کہتا ہے کہ دینی بھائیو! آج عید ہے، اور نماز بھی پڑھے مگر قربانی جو دس گیارہ بارہ کو جائز ہے بجائے سہ شنبہ کے چہار شنبہ کو کرو احتیاطاً تو بہتر ہو، اس آخری فقرہ پر سوال ہوتا ہے لوگوں کی جانب سے کہ کیا مطلب احتیاط کا، تو زید جواب دیتا ہے کہ اگر آج قربانی کرو تو جن علماء نے عید نہیں وہ فرمائیں گے کہ قربانی نہیں ہوئی اور اگر چہار شنبہ کو کرو گے تو سب بالاتفاق فرمائیں گے کہ صحیح ہے اور اختلاف سے بچنا اولیٰ، زید کا اس فقرہ کے تلفظ سے مجرم شرعی ہے یا نہیں، اور جو لوگ مشورہ کرکے اور لوگوں کو فراہم کرکے اپنے زعم میں زید کو ذلیل کرنا چاہتے ہیں کوشش بلیغ کرتے ہیں کہ جرم ثابت ہو، یہ لوگ اچھا کام کرتے ہیں یا نا محمود؟

الجواب: زید اس فقرہ کے سبب مجرم شرعی نہیں کہ احتیاط کرنے اور اختلاف معتبر شرعی سے بچنے کا حکم شرعِ مطہر میں ہے اتنی بات پر جو اسے ذلیل کرنے کی کوشش کرتے ہیں اچھا کام نہیں کرتے بلکہ گناہ کے ساعی ہیں رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں:

[عربی حدیث]: کل المسلم علی المسلم حرام مالہ وعرضہ ودمہ حسب امرئ من الشرع ان یحقر اخاہ المسلم - رواہ ابوداؤد و ابن ماجۃ عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالیٰ عنہ۔

[اردو ترجمہ]: مسلمان کا سب کچھ دوسرے مسلمان پر حرام ہے اسکا مال، اُس کی آبرو، اس کا خون، آدمی کے بد ہونے کو یہ بہت ہے کہ اپنے مسلمان بھائی کی تحقیر کرے۔ اسے ابو داؤد اور ابن ماجہ نے حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے روایت کیا ہے۔

البتہ وہ نماز کہ پڑھی اس میں بہت شقوق ہیں جن میں سے ملخص یہ کہ اگر وہ جن کو علمائے حاضرہ کبار سمی علماء ہیں نہ کہ فقیہ ماہر جن کے فتوے پر اعتماد جائز ہو، ان کی تحقیق پر وثوق جائز نہ تھا اور اگر اس وقت تک ان کی بات زید کے حق میں لائق وثوق تھی اور جب دوسرے عالم جن کو بڑے متدین مستند عالم کہا ہے انہوں نے وہ ثبوت صحیح نہ جانا تو زید کو اگلوں کے بیان پر وثوق نہ رہا، اور سہ شنبہ کو دسویں ہونا بے ثبوت ہو گیا، پھر نماز پڑھی تو نماز ہی نہ ہوئی کہ نماز کے لئے جس طرح وقت شرط ہے یونہی اعتقاد مصلی میں وقت آجانا شرط ہے مثلاً اگر صبح کی نماز پڑھی اور اسے طلوع صبح میں شبہ تھا، نماز نہ ہوئی اگرچہ واقع میں صبح ہوگئی ہو۔ ردالمحتار میں ہے:

---

[1] سنن ابن ماجہ باب حرمت المومن ومالہ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ص ۲۹۰

Fatawa Ridawiyyah Volume 8

"And similarly, the belief of the entry (of the prayer time) is a condition; thus, if one doubts, their prayer is not valid even if it later becomes clear that the time had already entered." (T) Similarly, the belief of the entry of time is also a condition. Therefore, if there is doubt, the prayer will not be valid, even if it is apparent that the time has started. (T)

And if they were reliable and he remained confident in them, what was the need for caution in sacrifice? And if there was, was caution not required in prayer? The Eid al-Adha prayer can be performed until the 12th (of Dhu al-Hijjah), although delaying it without an excuse is disliked. It is stated in Tanwir al-Absar: "It is permissible to delay it until the third day of sacrifice (Nahr) without an excuse, along with dislike, and without it [dislike] in the case of an excuse." And Allah Almighty knows best. Delaying the Eid al-Adha prayer until the end of the days of sacrifice without an excuse is permissible with dislike, and in the case of an excuse, it is permissible without dislike. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 1245: From Kanpur, Mohalla Nai Sarak, sent by Haji Fahim Bakhsh alias Chhattan, 13 Safar al-Muzaffar 1337 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Amr performed the Eid al-Adha prayer under his own leadership with a large number of followers. After the prayer and sermon, due to a dispute over the sighting (of the moon), Amr prohibited sacrifice as a matter of extra caution. Bakr performed the Eid al-Adha prayer the next day with a small number of followers in a city mosque. Amr, who was present there at the time of the prayer, repeated the prayer behind Bakr. In such a case, which prayer of Amr's would be the obligatory (Wajib) one and which would be the voluntary (Nafl) one? Explain and be rewarded. The Answer: If on the first day Amr had doubt about it being the day of Eid, or if he performed the Eid prayer considering it Eid without Sharia proof, then that prayer did not count at all. This second one became the obligatory one. And if he had performed it on the first day based on Sharia proof without hesitation, then that was the obligatory one, and the second one was without cause. And Allah Almighty knows best.

Problem 1246: From the land of Bengal, district Kamarlla, village Chandpur, sent by Maulvi Abdul Hamid Sahib, beginning of 13 Safar 1320 AH. What do the scholars of religion and jurists of the firm Sharia say regarding this matter: if a person, in the intention for the Eid al-Adha prayer, says 'Eid al-Adha', meaning he says: "Nawaytu an

usalliya lillahi ta'ala rak'atayi salati al-id al-adha..." (I intend to pray two cycles of the Eid al-Adha prayer for the sake of Allah Almighty...), then will his prayer be valid or not?

1 Radd al-Muhtar, Chapter on Conditions of Prayer, Maktaba Rashidiya, Quetta, 1/296. 2 Durr al-Mukhtar, Chapter on the Two Eids, printed at Mujtabai Press, Delhi, 1/116. Page 596 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठ

"और इसी तरह (नमाज़ के समय के) प्रवेश का विश्वास शर्त है; अतः यदि संदेह हो, तो उसकी नमाज़ सही नहीं होगी, भले ही यह स्पष्ट हो जाए कि समय प्रवेश कर चुका था।" (त) इसी तरह समय के प्रवेश का विश्वास भी शर्त है। इसलिए यदि संदेह हुआ तो नमाज़ सही न होगी भले ही ज़ाहिर यही हो कि समय शुरू हो चुका है। (त)

और अगर वे विश्वसनीय थे और उसे उन पर भरोसा ही रहा तो कुर्बानी में एहतियात की क्या ज़रूरत थी, और थी तो क्या नमाज़ में एहतियात दरकार न थी, ईदुल अज़हा की नमाज़ बारहवीं तक हो सकती है अगरचे बिना उज़्र (बहाने) देरी करना मकरूह (नापसंदीदा) है, तनवीरुल अबसार में है: "बिना उज़्र के कुर्बानी के तीसरे दिन तक उसे विलंबित करना कराहत के साथ जायज़ है और उज़्र की स्थिति में बिना कराहत के।" और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। उज़्र के बिना ईदुल अज़हा की नमाज़ को अय्यामे नह्र (कुर्बानी के दिनों) के आख़िर तक मुअख़्ख़र (विलंबित) करना कराहत के साथ जायज़ है और उज़्र की सूरत में बिना कराहत के जायज़ है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला 1245: कानपुर, मोहल्ला नई सड़क से, हाजी फहीम बख़्श उर्फ़ छुट्टन द्वारा प्रेषित, 13 सफ़र अल-मुज़फ़्फ़र 1337 हिजरी। उलेमा-ए-दीन इस मसले में क्या फ़रमाते हैं: अम्र ने ईदुल अज़हा की नमाज़ अपनी इमामत में बड़ी संख्या में मुक्तदियों के साथ अदा की। नमाज़ और ख़ुत्बे के बाद, अम्र ने चाँद देखने के विवाद के कारण एहतियात के तौर पर कुर्बानी के लिए मना कर दिया। बक्र ने दूसरे दिन शहर की एक मस्जिद में कम संख्या में मुक्तदियों के साथ ईदुल अज़हा की नमाज़ पढ़ी। अम्र, जो नमाज़ अदा किए जाने के समय वहाँ मौजूद था, उसने बक्र के पीछे नमाज़ दोहराई। ऐसी स्थिति में, अम्र की कौन सी नमाज़ वाजिब (अनिवार्य) और कौन सी नफ़्ल होगी? बयान करें और पुण्य कमाएं। जवाब: पहले दिन अगर अम्र को ईद का दिन होने में संदेह था या बिना शरई सुबूत के ईद मानकर नमाज़ पढ़ी थी, तो वह नमाज़ हुई ही नहीं। यह दूसरी ही वाजिब हुई। और अगर उसने पहले दिन शरई सुबूत के आधार पर बिना किसी झिझक के नमाज़ पढ़ी थी, तो वही वाजिब थी और दूसरी बिना किसी वजह के थी। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

मसला 1246: बंगाल देश, ज़िला कमरल्ला, गाँव चाँदपुर से, मौलवी अब्दुल हमीद साहब द्वारा प्रेषित, 13 सफ़र 1320 हिजरी का प्रारंभ। उलेमा-ए-दीन और मुफ़्तियाने शरअ-ए-मतीन इस मसले में क्या

फ़रमाते हैं कि अगर कोई व्यक्ति ईदुल अज़हा की नमाज़ की नियत में ईदुल अज़हा कहे, यानी इस तरह कहे: "नवैतु अन उसल्लिया लिल्लाहि तआला रकअतयि सलातिल ईदिल अज़हा..." (मैंने नियत की कि मैं अल्लाह तआला को राज़ी करने के लिए ईदुल अज़हा की दो रकअत नमाज़ पढ़ रहा हूँ...। त), तो क्या उसकी नमाज़ सही होगी या नहीं?

1 रदुल मुहतार, नमाज़ की शर्तों का अध्याय, मकतबा रशीदिया, क्वेटा, 1/296. 2 दुर्रे मुख़्तार, दो ईदों का अध्याय, मुजतबाई प्रेस, दिल्ली, 1/116 में मुद्रित। पृष्ठ 596 का 673

وکذا یشترط اعتقاد دخول فلو شك لم تصح صلوته وان ظهر انه قد دخل1۔ اسی طرح اس کے دخول کا اعتقاد بھی شرط ہے لہذا اگر شک ہوا تو نماز صحیح نہ ہو گی اگرچہ ظاہر یہی ہو کہ وقت شروع ہو چکا ہے ۔ (ت)

اور اگر وہ قابل وثوق تھے اور اسے وثوق ہی رہا تو قربانی میں احتیاط کی کیا حاجت تھی ، اور تھی تو کیا نماز میں احتیاط درکار نہ تھی ، عید الاضحٰی کی نماز بھی بارہویں تک ہو سکتی ہے اگر چہ بلا عذر تاخیر مکروہ ہے، تنویر الابصار میں ہے : یجوز تأخیرھا الی ثالث ایام النحر بلا عذر مع الکراھة و به بدونها2 ۔ واللہ تعالٰی اعلم عذر کے بغیر نماز عید الاضحٰی کو ایام نحر کے آخر تک مؤخر کرنا کراہت کے ساتھ جائز ہے اور عذر کی صورت میں بغیر کراہت کے جائز ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۱۲۴۵: از کانپور محلہ نئی سڑک مرسلہ حاجی فہیم بخش عرف چھٹن ۱۳ صفر المظفر ۱۳۳۷ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں عمرو نے نماز عید الاضحٰی اپنی امامت سے کثیر التعداد مقتدیوں کے ساتھ ادا کی ، نماز خطبہ کے بعد عمرو نے بوجہ اختلاف رویت قربانی کے لئے بخیال مزید احتیاط ممانعت کی، بکر نے دوسرے روز نماز عید الاضحٰی مع قلیل التعداد مقتدیوں کے شہر کی ایک مسجد میں پڑھی عمرو نے جو ہنگام ادائے نماز وہاں موجود تھا بکر کی اقتداء میں تکرار نماز کی ، پس ایسی صورت میں عمرو کی کون سی نماز واجب اور کون سی نفل ہوگی ؟ بینوا توجروا الجواب : پہلے دن اگر عمرو کو روز عید ہونے میں شک تھا یا بلا ثبوت شرعی عید مان کر نماز عید پڑھی تھی تو وہ نماز ہی نہ ہوئی یہ دوسری ہی واجب واقع ہوئی اور اگر یہ ثبوت شرعی بلاتردد پہلے دن پڑھی تھی تو وہی واجب تھی دوسری بلا وجہ رہی۔ واللہ تعالٰی

اعلم مسئلہ ۱۲۴۶: از ملک بنگالہ ضلع کمرلہ موضع چاند پور مرسلہ مولوی عبدالحمید صاحب غرہ ۱۳ صفر ۱۳۲۰ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ اگر کوئی شخص نماز عید الاضحیٰ کی نیت میں عید الاضحیٰ کہے یعنی یوں کہے نویت ان اصلی للہ تعالی رکعتي صلوٰة العید الاضحی الخ (میں نے نیت کی کہ میں اللہ تعالیٰ کو راضی کرنے کے لئے نماز عید الاضحیٰ پڑھ رہا ہوں الخ۔ت) تو نماز اس کی صحیح ہو گی یا نہیں؟

1 رد المحتار باب شروط الصلوٰة مکتبہ رشیدیہ کوئٹہ ۱ / ۲۹۶ 2 در مختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱ / ۱۱۶ Page 596 of 673

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Give a ruling, you will be rewarded by Allah.

The Answer: Although this word is incorrect (the correct one is Salat Eid-ul-Adha), neither is a verbal intention required for prayer nor is it part of the prayer, nor does it cause a corruption of meaning. Therefore, this error cannot have any effect on the validity of the prayer at all. The intention in the heart is for Eid-ul-Adha, even if a mistake was made in the name; in fact, if one intended the Eid-ul-Adha prayer in the heart but the tongue uttered 'Eid-ul-Fitr' or, for example, 'Tarawih prayer' (which has no relation to this prayer), even then there would be no doubt about the validity of the prayer because intention is an act of the heart. When the heart has intended, the tongue's utterance is of no account. It is stated in Durr al-Mukhtar:

[Arabic Quote]: What is considered therein is the action of the heart which is necessary for the will. So, the mention by the tongue is not taken into account if it contradicts the heart because it is speech, not intention.

[Urdu Explanation]: Here, the heart's action is what counts as it is essential for the intention; hence, what is mentioned by the tongue is not considered even if it contradicts the heart because those are speech and words, not intention. (T)

It is stated in Radd al-Muhtar:

[Arabic Quote]: So, if one intended Dhuhr but mistakenly uttered Asr, it is valid, as mentioned in Zahidi and Qahistani. And Allah Almighty knows best.

[Urdu Explanation]: If the intention was for Dhuhr but 'Asr' was said by mistake, the prayer will be valid, as in Zahidi and Qahistani. And Allah Almighty knows best. (T)

Problem 744: From Bareilly city, Malukpur neighborhood, requested by Munshi Hidayat Yar Khan Sahib Qais, 8 Muharram al-Haram 1339 AH. What do the scholars of the religion and the muftis of the firm Shariah say regarding this matter: Is an Eidgah worthy of sanctity and respect like mosques or not? Is its ruling the same as the ruling for a mosque or not? Can non-Muslims enter within this enclosure wearing shoes or not? And can buying and selling take place within these four walls? Is it permissible for shopkeepers or street vendors to roam within it during the sermon (Khutbah) or not? Please grant a detailed answer.

The Answer: An Eidgah is a piece of land that Muslims have designated for the Eid prayer. Imam Taj al-Shari'ah stated that the correct view is...

1. Durr al-Mukhtar, Chapter on Conditions of Prayer, published by Matba' Mujtabai, Delhi, 1/116.
2. Radd al-Muhtar, Chapter on Conditions of Prayer, Mustafa al-Babi, Egypt, 1/305.

फ़तावा रज़विया आठवीं जिल्द (खंड)

बयान फ़रमाएँ अल्लाह के यहाँ सवाब पाएँ।

उत्तर: हालाँकि यह शब्द गलत है, सही 'सलातुल ईद-उल-अज़हा' है, लेकिन न तो नमाज़ में ज़बानी नियत की ज़रूरत है, न वह नमाज़ का हिस्सा है, और न ही इससे अर्थ में कोई बिगाड़ आता है। इसलिए, इस गलती का नमाज़ की शुद्धता (वैधता) पर बिल्कुल असर नहीं हो सकता। दिल में ईद-उल-अज़हा का ही इरादा है, भले ही नाम में गलती की हो; बल्कि अगर दिल में ईद-उल-अज़हा की नमाज़ का इरादा करता और ज़ुबान से ईद-उल-फ़ित्र या उदाहरण के तौर पर 'तरावीह' का नाम निकलता जिसका इस नमाज़ से कोई सरोकार नहीं है, तब भी नमाज़ की शुद्धता में कोई शक नहीं था क्योंकि नियत दिल का काम है। जब दिल का इरादा है तो ज़ुबान का कोई एतबार नहीं। 'दुर्र-ए-मुख्तार' में है:

[अरबी उद्धरण]: इसमें दिल के काम का एतबार है जो इरादे के लिए लाज़िम है, तो ज़ुबान से ज़िक्र का कोई एतबार नहीं अगर वह दिल के खिलाफ हो क्योंकि वह कलाम (बात) है नियत नहीं।

[उर्दू विवरण]: यहाँ दिल के काम का एतबार है जो इरादे को लाज़िम है, लिहाज़ा ज़ुबान के ज़िक्र का कोई एतबार नहीं चाहे उसने दिल की मुख़ालफ़त की हो क्योंकि वे तो कलाम और शब्द हैं नियत नहीं। (त)

'रद्दुल मुहतार' में है:

[अरबी उद्धरण]: तो अगर ज़ुहर का इरादा किया और भूल से 'असर' कह दिया तो नमाज़ हो जाएगी, जैसा कि ज़ाहिदी और कहिस्तानी में है। और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[उर्दू विवरण]: अगर इरादा ज़ुहर का था मगर भूलवश 'असर' कह दिया तो नमाज़ हो जाएगी जैसा कि ज़ाहिदी में है कहिस्तानी, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। (त)

मसला ७४४: शहर बरेली, मोहल्ला मलूकपुर, मुंशी हिदायत यार खान साहब कैस द्वारा पूछा गया, ८ मुहर्रम-उल-हराम १३३९ हिजरी। दीन के विद्वान और शरीयत के मुफ्ती इस मसले में क्या फ़रमाते हैं कि ईदगाह मसाजिद (मस्जिदों) की तरह आदर और सम्मान के योग्य है या नहीं? इसका हुक्म मस्जिद का हुक्म है या नहीं? इस अहाते के अंदर गैर-क़ौमें (अन्य धर्मावलंबी) जूते पहने हुए जा सकती हैं या नहीं? और इस चारदीवारी के अंदर खरीद-फरोख्त (खरीदना-बेचना) हो सकता है?

खुतबे के समय दुकानदारों या फेरीवालों का इसमें घूमना जायज़ हो सकता है या नहीं? विस्तार से इसका उत्तर प्रदान करें।

उत्तर: ईदगाह एक ज़मीन है जिसे मुसलमानों ने ईद की नमाज़ के लिए खास (निर्धारित) किया है, इमाम ताज-उश-शरीया ने फ़रमाया कि सही यह है कि...

---

1. दुर्र-ए-मुख्तार, बाब शरुतुल सलात, मतबा मुज्तबाई दिल्ली १/११६.
2. रद्दुल मुहतार, बाब शरुतुल सलात, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र १/३०५.

पेज ५९७ / ६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

بینوا توجروا عند اللہ۔

الجواب: اگرچہ یہ لفظ غلط ہے صحیح صلوٰۃ عید الاضحٰی ہے مگر نہ نیت زبانی کی نماز میں حاجت ہے نہ وہ نماز کے اندر ہے نہ اس میں فساد معنی ہے، تو اس غلطی کا صحت نماز پر اصلاً اثر نہیں ہوسکتا، دل میں عید الاضحٰی ہی کا قصد ہے اگرچہ نام میں غلطی کی بلکہ دل میں نماز عید الاضحٰی کا ارادہ کرتا اور زبان سے عید الفطر بلکہ مثلاً نماز تراویح کا نام نکلتا جسے اس نماز سے کوئی مناسبت ہی نہیں، جب بھی صحت نماز میں شبہ نہ تھا کہ نیت فعل قلب ہے۔ جب قلب کا ارادہ ہے زبان کا کچھ اعتبار نہیں، در مختار میں ہے:

المعتبر فیہا عمل القلب اللازم للارادۃ فلا عبرۃ للذکر باللسان ان خالف القلب لانہ کلام لا نیۃ۔

یہاں اعتبار فعلِ دل کا ہے جو ارادہ کو لازم ہے لہذا زبان کے ذکر کا کوئی اعتبار نہیں اگرچہ اس نے دل کی مخالفت کردی ہو کیونکہ وہ تو کلام و الفاظ ہیں نیت نہیں۔ (ت)

رد المحتار میں ہے:

فلو قصد الظھر وتلفظ بالعصر سھوا اجزاہ کما فی الزاھدی قھستانی واللہ تعالٰی اعلم۔

اگر ارادہ ظہر کا تھا مگر سہواً عصر کہہ دیا تو نماز ہوجائے گی جیسا کہ زاہدی میں ہے قہستانی، واللہ تعالٰی اعلم (ت)

مسئلہ ۷۴۴: از شہر بریلی محلہ ملوکپور مسئولہ منشی ہدایت یار خاں صاحب قیس ۸ محرم الحرام ۱۳۳۹ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین و مفتیان شرع متین اس مسئلہ میں کہ عیدگاہ مثلِ مساجد قابلِ

حرمت و وقعت ہے یا نہیں؟ اس کا حکم حکمِ مسجد ہے یا نہیں؟ اس احاطہ کے اندر غیر قومیں جوتے پہنے ہوئے جاسکتی ہیں یا نہیں؟ اور اس چار دیواری کے اندر خرید و فروخت ہوسکتی ہے؟ خطبہ کے وقت دکانداروں یا خوانچہ والوں کا گشت اس میں جائز ہوسکتا ہے یا نہیں؟ بالتشریح اس کا جواب مرحمت فرمایا جائے۔

الجواب: عید گاہ ایک زمین ہے کہ مسلمانوں نے نمازِ عید کے لئے خاص کی، امام تاج الشریعہ نے فرمایا صحیح یہ ہے کہ

---

1 در مختار باب شروط الصلوۃ مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/۱۱۶ 2 رد المحتار باب شروط الصلوۃ مصطفیٰ البابی مصر ۱/۳۰۵

Fatawa Rizvia, Volume 8

That it is a mosque, and all rules of a mosque apply to it. In Nihayah, although the preferred view for fatwa is that it is not identical to a mosque, this does not mean that its cleaning and purification are not necessary. Selling and buying in it during times other than prayer and sermon is absolutely prohibited according to the first opinion, and designating it for buying and selling is prohibited by consensus.

Arabic	Urdu
For it is not permissible to change the endowment (waqf) from its form, let alone its loss, as in Al-Hindiyah and others.[1]	Changing the form and condition of a waqf is not permissible, let alone allowing it to go to waste. Al-Hindiyah etc. (T)

And so if by chance outside of prayer and sermon time someone has something and sells it to another, there is no harm in that according to the second opinion. During prayer or sermon times, the movement of street vendors is undoubtedly prohibited and must be stopped, as it is a place for listening (to the sermon) and it is disruptive. At other times, the same difference of opinions exists. Similarly, the entry and exit of non-believers, especially wearing shoes, as they are not free from impurity nor from ritual impurity, as established in Al-Hilyah and built upon in our Fatawa (as researched in Al-Hilyah and we have explained it in detail in our Fatawa. T).

In Durr-ul-Mukhtar it is said:

Arabic	Urdu
As for what is prepared for funeral prayer or Eid prayer, it is a mosque in terms of the validity of following (the Imam), even if the rows are separated for the convenience of people, but not in terms of other matters; the fatwa is based on this, Nihayah.[2]	For the convenience of people, Eidgah and Janazagah are considered mosques regarding the validity of following the Imam, even if the rows are not continuous. Yes, other than this, this ruling does not apply; the fatwa is on this. Nihayah. (T)

In Radd-ul-Muhtar it is said:

Arabic	Urdu
It is said in Al-Bahr: Apparently, it is permissible to have intercourse, urinate, and defecate in it, but what is in it is not	The apparent text in Al-Bahr indicates that intercourse, urination, and defecation are permissible, but it should

Arabic	Urdu
hidden, for the builder did not intend it for that, so it should not be permissible even if we judge it as not being a mosque. Its benefit only appears in terms of other rulings and the permissibility of entry for those in a state of major ritual impurity (Junub) and menstruating women (Haiz).[3] End.	be clear that the builder did not construct it for this purpose. Therefore, it should not be permissible even if we do not give it the status of a mosque. Its benefit manifests in other rulings and the permissibility of entry for persons in a state of ritual impurity or menstruation. End. (T)

[1] Fatawa Al-Hindiyah, Book of Waqf, Chapter 14 on Miscellaneous Matters, printed by Nurani Kutub Khana Peshawar, 2/490. [2] Durr-ul-Mukhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, printed by Matba Mujtabai Delhi, 1/93. [3] Radd-ul-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, Mustafa al-Babi Egypt, 1/486.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

कि वह एक मस्जिद है, उस पर मस्जिद के सभी नियम लागू होते हैं। निहाया में, हालांकि फतवे के लिए पसंदीदा राय यह है कि यह मस्जिद के समान नहीं है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि इसकी साफ-सफाई और शुद्धि आवश्यक नहीं है। प्रार्थना और उपदेश के समय के अलावा इसमें खरीद-बिक्री पहली राय के अनुसार पूर्णतः हराम (वर्जित) है, और खरीद-बिक्री के लिए इसे निर्दिष्ट करना सर्वसम्मति से हराम है।

अरबी

वक़्फ़ की आकृति और स्थिति में परिवर्तन जायज़ नहीं है, तो फिर उसे नष्ट करना कैसे जायज़ हो सकता है, जैसा कि अल-हिंदीया और अन्य में है।[1]

उर्दू

वक़्फ़ की आकृति और स्थिति में परिवर्तन जायज़ नहीं है, तो फिर उसे नष्ट करना कैसे जायज़ हो सकता है। हिंदीया आदि। (त)

और इस प्रकार यदि संयोगवश प्रार्थना या उपदेश के समय के अलावा किसी के पास कोई चीज़ हो और वह उसे दूसरे को बेच दे, तो दूसरी राय के अनुसार इसमें कोई हर्ज नहीं है। प्रार्थना या उपदेश के समय, फेरीवालों का घूमना निस्संदेह प्रतिबंधित है और इसे रोकना अनिवार्य है क्योंकि यह सुनने का स्थान है और यह उसमें बाधा डालता है। अन्य समयों में, वही दो मतों का अंतर है। इसी तरह गैर-मुस्लिमों का आना-जाना, विशेष रूप से जूते पहनकर क्योंकि वे अशुद्धता और जनाबत (अशुद्धि की अवस्था) से मुक्त नहीं होते, जैसा कि अल-हिल्या में प्रमाणित किया गया है और हमारे फ़तावा में इस पर आधारित है (जैसा कि अल-हिल्या में इसकी शोध है और हमने अपने फ़तावा में इसे विस्तार से बताया है। त)।

दुर्रे मुख़्तार में है:

अरबी

जहाँ तक जनाज़ा की नमाज़ या ईद की नमाज़ के लिए तैयार किए गए स्थान का सवाल है, तो इमाम का अनुसरण करने की वैधता के मामले में वह मस्जिद है, भले ही लोगों की सुविधा के लिए सफें अलग-अलग हों, लेकिन अन्य मामलों में नहीं; इसी पर फतवा है, निहाया।[2]

उर्दू

लोगों की सुविधा के कारण ईदगाह और जनाज़ागाह इक़्तिदा (इमाम का अनुसरण) के जायज़ होने के हक में मस्जिद हैं, चाहे सफें (पंक्तियाँ) जुड़ी हुई न हों। हाँ, इसके अलावा अन्य मामलों में यह नियम नहीं है, इसी पर फतवा है। निहाया। (त)

रद्दुल मुहतार में है:

अरबी

बहर में कहा गया है: जाहिर तौर पर इसमें संभोग, मूत्र त्याग और मल त्याग जायज़ है, लेकिन जो इसमें है वह छिपा नहीं है, क्योंकि निर्माता ने इसे इसके लिए नहीं बनाया है, इसलिए यह जायज़ नहीं होना चाहिए चाहे हम इसे मस्जिद न मानें। इसका लाभ केवल अन्य नियमों और जुनबी (अशुद्ध अवस्था वाले व्यक्ति) और मासिक धर्म वाली महिला के प्रवेश की वैधता के मामले में प्रकट होता है।[3] अंत।

उर्दू

बहर में स्पष्ट कथन बता रहा है कि संभोग, मूत्र त्याग और मल त्याग जायज़ है लेकिन यह स्पष्ट रहना चाहिए कि निर्माता ने इसे इसके लिए नहीं बनाया है, इसलिए यह जायज़ नहीं होना चाहिए चाहे हम इसे मस्जिद का आदेश न दें। इसका लाभ शेष नियमों में प्रकट होता है और इसमें जुनबी और मासिक धर्म वाली महिला के प्रवेश की वैधता भी शामिल है। अंत। (त)

[1] फ़तावा हिंदीया, किताबुल वक़्फ़, चौदहवां अध्याय विविध मामलों में, नूरानी कुतुब खाना पेशावर द्वारा मुद्रित 2/490। [2] दुर्रे मुख़्तार, नमाज़ को खराब करने वाली और उसमें मकरूह चीज़ों का अध्याय, मतबा मुजतबाई दिल्ली द्वारा मुद्रित 1/93। [3] रद्दुल मुहतार, नमाज़ को खराब करने वाली और उसमें मकरूह चीज़ों का अध्याय, मुस्तफा अल-बाबी मिस्र 1/486।

पृष्ठ 598/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

کہ وہ مسجد ہے اس پر تمام احکام مسجد ہیں نہایہ میں اگرچہ مختار للفتوٰی یہ رکھا کہ وہ عین مسجد نہیں، مگر اس کے یہ معنی نہیں ہو سکتے کہ اس کی تنظیف و تطہیر ضروری نہیں، غیر وقت نماز و خطبہ میں اس میں خرید و فروخت قول اول پر مطلقاً حرام ہے اور خرید و فروخت کے لئے اس متعین کرنا بالاتفاق حرام ہے۔

عربی **اردو**

اذ لا یجوز تغییر الوقف عن هیأته فضلا عن وقف کی ہیئت و حالت میں تبدیلی جائز نہیں چہ جائیکہ ضیعته کما في الهندیة وغیرها[1]۔ اسے ضائع کرنا جائز ہو ہندیہ وغیرہ۔ (ت)

اور یوں کہ اتفاقاً غیر وقت نماز خطبہ میں ایک کے پاس کوئی شے ہو وہ دوسرے کے ہاتھ بیچ کرے، قول دوم پر اس میں حرج نہیں، وقت نماز یا خطبہ میں خوانچہ والوں کا گشت بلا شبہ ممنوع و واجب الانسداد ہے کہ محل استماع و ناقض ہے اور ان کے غیر اوقات میں وہی اختلاف قولین، یونہی کفار کی آمد ورفت خصوصاً جوتا پہنے کہ یہ نجاست سے خالی نہیں ہوتے نہ وہ جنابت سے کما حققہ فی الحلیہ و بناہ فی فتاونا (جیسا کہ اس کی تحقیق حلیہ میں ہے اور ہم نے اپنے فتاوٰی میں اسے تفصیلاً بیان کیا ہے۔ ت)

در مختار میں ہے:

عربی **اردو**

اما المتخذ لصلوة جنازه او عید فهو مسجد فی حق جواز الاقتداء و ان انفصل لوگوں کی سہولت کی وجہ سے عید گاہ اور جنازہ گاہ جواز اقتداء کے حق میں مسجد ہے اگرچہ صفیں متصل

عربی	اردو
الصفوف رفقا بالناس لا فی حق غیرہ بہ یفتی نہایۃ[2]۔	نہ ہوں، ہاں اس کے علاوہ میں یہ حکم نہیں، اسی پر فتوٰی ہے۔ نہایہ۔ (ت)

ردالمحتار میں ہے:

عربی	اردو
قال فی البحر ظاھرہ انہ یجوز الوطی و البول و التخلی فیہ ولا یخفی ما فیہ فان البانی لم یعدہ لذلک فینبغی ان لا یجوز و ان حکمنا بکونہ غیر مسجد و انما تظھر فائدتہ فی حق بقیۃ الاحکام و حل دخولہ للجنب والحائض[3] انتھی	بحر میں ظاہر عبارت بتارہی ہے کہ وطی اور بول و براز جائز ہے لیکن یہ واضح رہنا چاہئے کہ بانی نے اس کے لئے نہیں بنائی لہذا یہ جائز نہیں ہونا چاہئے اگرچہ ہم اسے مسجد کا حکم نہیں دیتے اس کا فائدہ بقیہ احکام میں ظاہر ہوتا ہے اور اس میں جنبی اور حائضہ کے دخول کا جواز بھی انتہی (ت)

[1] فتاوی ہندیہ کتاب الوقف الباب الرابع عشر فی المتفرقات مطبوعہ نورانی کتب خانہ پشاور ۲/ ۴۹۰

[2] درمختار باب مایفسد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۹۳ [3] ردالمحتار باب مایفسد الصلوۃ ومایکرہ فیھا مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۸۶

Fatawa Rizvia Volume 8

It is in the same:

[Box Start] Sahaha Taj-ush-Shari'ah anna Musalla al-Eid lahu hukm al-Masajid. - (T) And Allah knows best. | Taj-ush-Shari'ah has authenticated the ruling of a mosque for the Eid-gah (prayer ground). (T) And Allah Almighty knows best. [Box End]

Issue 1448: What do the scholars of religion say regarding this issue: an Imam performed the Eid prayer in such a way that in the first rak'ah, after the praise (Thana) and before the recitation, he said four Takbirs; in the second rak'ah, he said four Takbirs before the recitation and completed the prayer after recitation. In another instance, in the first rak'ah, he said three Takbirs after the praise followed by recitation, and in the second rak'ah, he said three Takbirs at the beginning and completed the prayer after performing recitation. So, in these scenarios, was the Eid prayer valid or not? Clarify and be rewarded.

The Answer: In the first scenario, two things were contrary to what is preferable (Khilaf-e-Aula): saying four Takbirs each, and in the second rak'ah, the Takbir should have been before recitation. In the second scenario, the same thing was contrary to what is preferable. However, in both cases, there was no deficiency in the prayer nor was any unlawful act or sin committed, though it was better not to have done so. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

[Box Start] Hiya thalathu Takbiratin fi kulli rak'atin walau zada taba'ahu ila sittata 'ashara liannahu ma'thur. | There are three Takbirs in each rak'ah; if the Imam increases them, he should be followed up to sixteen because they are narrated. (T) [Box End]

It is in Radd al-Muhtar:

[Box Start] Dhukira fil Bahri annal khilafa fil awlawiyati wa nahwuhu fil Hilyah. | It is stated in Bahr that the disagreement is regarding what is preferable, and similarly in Hilyah. (T) [Box End]

It is in Durr-e-Mukhtar: "Yuwalī nadban baynal qira'atayn" (It is recommended to perform the recitations of both rak'ahs without the separation of additional Takbirs. T)

1. Radd al-Muhtar, Chapter on what invalidates prayer and what is disliked in it, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/486.
2. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Eids, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/151.
3. Radd al-Muhtar, Chapter on Eids, published by Mustafa al-Babi Egypt, 1/615.
4. Durr-e-Mukhtar, Chapter on Eids, published by Matba' Mujtabai Delhi, 1/115.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

इसी में है:

[बॉक्स प्रारम्भ] सह़ह़ह़ ताज-उश-शरी'अ़ह अन्ना मुस़ल्लल ईद लहू ह़ुक्मुल मसाजिद। - (त) वल्लाहु त'आला अ'लम। | ताज-उश-शरी'अ़ह ने ईदगाह के लिये मस्जिद के ह़ुक्म की तस़ह़ीह़ की है। (त) वल्लाहु त'आला अ'लम। [बॉक्स समाप्त]

मस्अला 1448: क्या फ़रमाते हैं उ़लमा-ए-दीन इस मस्अले में कि नमाज़-ए-ईद को इमाम ने इस तौर पर अदा किया कि पहली रक्अत में बा'द ष़ना के अव्वल क़िरात से चार तकबीरें कहीं, दूसरी रक्अत में क़ब्ल अज़ क़िरात के चार तकबीरें कहीं और क़िरात कर के नमाज़ तमाम की। पहली रक्अत में बा'द ष़ना के तीन तकबीरें कहीं बा'द को क़िरात और दूसरी रक्अत में अव्वल में तीन तकबीरें कहीं और क़िरात अदा कर के नमाज़ तमाम की, तो इस सूरत से नमाज़-ए-ईद हो गई या नहीं? बय्यिनू तूजरू।

अल-जवाब: पहली सूरत में दो बातें ख़िलाफ़-ए-औला कीं, चार-चार तकबीरें कहनी और दूसरी रक्अत में क़ब्ल क़िरात तकबीर होनी, और दूसरी सूरत में यही बात ख़िलाफ़-ए-औला हुई, मगर दोनों सूरतों में न नमाज़ में नुक़्सान आया न किसी अम्र ना-जाइज़ व गुनाह का इर्तिकाब हुआ, हाँ बेहतर न किया। दर-ए-मुख़्तार में है:

[बॉक्स प्रारम्भ] हिय ष़लाषु तकबीरातिन फ़ी कुल्लि रक्अ़तिन वलौ ज़ाद ताबिअ़ह इला सित्तत अ़शर लिअन्नह मअ़षूर। | यह हर रक्अत में तीन तकबीरें हैं अगर इमाम इज़ाफ़ा कर दे तो सोलह तक उस की इत्तिबा' की जाये क्योंकि यहाँ तक मन्क़ूल हैं, (त) [बॉक्स समाप्त]

रद-अल-मुह़्तार में है:

[बॉक्स प्रारम्भ] ज़ुकिरा फ़िल बह़रि अननल ख़िलाफ़ा फ़िल अव्वलीयती व नह़वुह़ फ़िल ह़िल्ल्यह। | बह़र में है कि इख़्तिलाफ़ औला होने में है, और इसी तरह ह़िल्ल्यह में है (त) [बॉक्स समाप्त]

दर-ए-मुख़्तार में है: युवाली नदबन बैनल क़िरातयनि (दोनों रक्अतों की क़िरात को तकबीरात-ए-ज़ाइदा के फ़स्ल के बग़ैर अदा करना मुस्तह़ब है। त)

1. रद-अल-मुह्तार बाब मा युफ़सिदुस-स़लात व मा युकरहु फ़ीहा, मत़बूअ़ह मुस़्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/ 486
2. दर-ए-मुख़्तार बाबुल ईदैन, मत़बूअ़ह मत़बअ' मुज्तबाई देहली 1/ 151
3. रद-अल-मुह्तार बाबुल ईदैन, मत़बूअ़ह मुस़्तफ़ा अल-बाबी मिस्र 1/ 615
4. दर-ए-मुख़्तार बाबुल ईदैन, मत़बूअ़ह मत़बअ' मुज्तबाई देहली 1/ 115

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

اسی میں ہے:

[Box Start] صحح تاج الشریعة ان مصلی العید له حکم المساجد 1۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔ | تاج الشریعہ نے عید گاہ کے لئے مسجد کے حکم کی تصحیح کی ہے ۔(ت) واللہ تعالیٰ اعلم [Box End]

مسئلہ ۱۴۴۸: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ نماز عید کو امام نے اس طور ادا کیا کہ پہلی رکعت میں بعد ثناء کے اول قرات سے چار تکبیریں کہیں، دوسری رکعت میں قبل از قرات کے چار تکبیریں کہیں اور قرات کر کے نماز تمام کی پہلی رکعت میں بعد ثناء کے تین تکبیریں کہیں بعد کو قرات اور دوسری رکعت میں اول میں تین تکبیریں کہیں اور قرات ادا کر کے نماز تمام کی ، تو اس صورت سے نماز عید ہو گئی یا نہیں؟ بینوا توجروا

الجواب: پہلی صورت میں دو باتیں خلاف اولیٰ کیں چار چار تکبیریں کہنی اور دوسری رکعت قبل قرات تکبیر ہونی، اور دوسری صورت میں یہی بات خلاف اولیٰ ہوئی، مگر دونوں صورتوں میں نہ نماز میں نقصان آیا نہ کسی امر ناجائز و گناہ کا ارتکاب ہوا، ہاں بہتر نہ کیا، در مختار میں ہے:

[Box Start] ہی ثلاث تکبیرات فی کل رکعة ولو زاد تابعه الی ستة عشر لانہ مأثور 2۔ | یہ ہر رکعت میں تین تکبیرات ہیں اگر امام اضافہ کر دے تو سولہ تک اس کی اتباع کی جائے کیونکہ یہاں تک منقول ہیں، (ت) [Box End]

ردالمحتار میں ہے:

[Box Start] ذکر فی البحران الخلاف فی الاولویۃ ونحوہ فی الحلیۃ 3۔ | بحر میں ہے کہ اختلاف اولیٰ ہونے میں ہے، اور اسی طرح حلیہ میں ہے(ت) [Box End]

درمختار میں ہے: یوالی ندبا بین القرأتین 4 (دونوں رکعتوں کی قرات کو تکبیرات زائدہ کے فصل کے بغیر ادا کرنا مستحب ہے۔ ت)

---

1 ردالمحتار باب مایفسد الصلوۃ ومایکرہ فیہا مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۴۸۶ 2 درمختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۵۱ 3 ردالمحتار باب العیدین مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۱/ ۶۱۵ 4 درمختار باب العیدین مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۱/ ۱۱۵

Fatawa Ridawiyya Volume 8

In Radd al-Muhtar, it is stated: "He indicated that if he says Takbir at the beginning of his Rak'at, it is permissible because the difference is regarding what is better." [1] This indicates that although saying Takbir at the start of the Rak'at is permissible, the disagreement lies in what is more appropriate (preferable). (T) And Allah knows best.

Problem 1449: From Aurangabad district Gaya, sent by Muhammad Ismail, teacher at Madrasa Islamia, 15 Safar 1338 AH. What do the scholars of religion say regarding this matter: Zaid went to the pulpit after the completion of the Eid al-Adha prayer and started the sermon. During the first sermon, he told the listeners to say "Subhan Allah" loudly. Everyone remained silent. He repeated it two or three times, forcing people, saying "Why aren't you reading? Why are your mouths closed?". Then the people started reciting "Subhan Allah" loudly. Then he made them say "Labbaik wallahu akbar", then "La ilaha illallah Muhammadur Rasulullah". Then, after reciting a poetic sermon (Naat-based), he sat on the pulpit and then stood up to start the (second) sermon. Before the second sermon could even conclude, he told the people to stand up and recite "Ya Nabi Salam Alaika, Ya Rasul Salam Alaika". Consequently, the people stood up and recited "Ya Nabi Salam Alaika" loudly along with Urdu verses from prevalent Milad books in a melodic manner. Zaid then made some supplications in Urdu and left the second sermon incomplete in that manner. Is this act in accordance with the established Sunnah or against the Sunnah, completely futile? What ruling will be applied to the doer according to Shariah? Explain and you will be rewarded.

The Answer: Speaking during the state of the sermon, even if it is Dhikr (remembrance of Allah), is strictly forbidden. "When the Imam comes out (to deliver the sermon), there is no prayer and no speech." [2] (T). Whatever the Imam did is all an ugly and evil innovation (Bid'at-e-Shania Sayyiah). The burden of those ignorant people's sins is also upon him, without any decrease in their own burden. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) says: "Whoever calls to guidance will have a reward like the rewards of those who follow him, without that detracting from..." Whoever calls towards a good thing, he will get a reward like the reward of those who follow it, and there will be no decrease in their rewards.

[1] Radd al-Muhtar, Chapter of Eidain, printed by Mustafa al-Babi, Egypt, 1/216. [2] Nasb al-Rayah, Book of Prayer, Chapter of Friday Prayer, printed by Al-Maktabah al-

Islamiyyah, Riyadh, 2/201; Fath al-Bari, Book of Friday Prayer, printed by Dar al-Ma'rifah, Beirut, 2/338. Page 600 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

रद्दुल मुहतार में है: "उन्होंने इशारा किया कि यदि उसने अपनी रकात की शुरुआत में तकबीर कही तो यह जायज़ है क्योंकि मतभेद इसमें है कि क्या बेहतर है।" [1] इसमें इशारा है कि हालांकि रकात की शुरुआत में तकबीर कहना जायज़ है क्योंकि मतभेद औलवियत (बेहतर होने) के बारे में है। (त) और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

मसला 1449: औरंगाबाद जिला गया से, प्रेषक मुहम्मद इस्माइल, शिक्षक मदरसा इस्लामिया, 15 सफर 1338 हिजरी। धर्म के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि ज़ैद ईदुल-अज़हा की नमाज़ पूरी करने के बाद मिम्बर पर गया और खुतबा (प्रवचन) शुरू किया। पहले खुतबे के दौरान उसने सुनने वालों से कहा कि आप लोग ज़रा ज़ोर से "सुब्हान अल्लाह" कहें। सब चुप रहे, फिर उसने दो-तीन बार कहकर लोगों को मजबूर किया कि "क्यों नहीं पढ़ते, तुम लोगों का मुंह क्यों बंद हो गया?" तब लोगों ने बुलंद आवाज़ में "सुब्हान अल्लाह" पढ़ना शुरू किया। फिर उसने "लब्बैक वल्लाहु अकबर" कहलवाया, फिर "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" पढ़वाया। फिर नातिया खुतबा पढ़कर मिम्बर पर बैठा और उठकर दूसरा खुतबा शुरू किया। अभी दूसरा खुतबा पूरा भी नहीं हुआ था कि उसने लोगों को खड़े होकर "या नबी सलाम अलैका, या रसूल सलाम अलैका" पढ़ने को कहा। चुनाँचे लोगों ने खड़े होकर ज़ोर-ज़ोर से "या नबी सलाम अलैका" के साथ प्रचलित मिलाद की किताबों के उर्दू अशआर (कविताएँ) लय के साथ पढ़े। फिर ज़ैद ने उर्दू में कुछ दुआ माँगी और दूसरे खुतबे को उसी तरह अधूरा छोड़ दिया। क्या यह कार्य प्रचलित सुन्नत के अनुसार है या सुन्नत के खिलाफ पूरी तरह व्यर्थ है? शरीयत के अनुसार ऐसा करने वाले पर क्या हुक्म लगाया जाएगा? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

उत्तर: खुतबे की हालत में बोलना, चाहे वह ज़िक्र (अल्लाह की याद) ही क्यों न हो, मुतलकन (पूर्णतः) हराम है। "जब इमाम (खुतबे के लिए) बाहर आए तो न नमाज़ है और न ही बातचीत।" [2] (त)। इमाम ने जो कुछ भी किया, वह सब एक बुरी और घिनौनी बिदअत (नया धार्मिक आविष्कार) है। उन अज्ञानियों का पाप भी उसी पर है, बिना उनके पाप में किसी कमी के। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाते हैं: "जिसने हिदायत (मार्गदर्शन) की ओर बुलाया, उसे उसका अनुसरण करने वालों के बराबर सवाब (पुण्य) मिलेगा, बिना उसके कि..." जिसने किसी अच्छी बात की तरफ बुलाया, उसे उस पर चलने वालों के बराबर सवाब मिलेगा और उनके सवाब में कोई कमी नहीं होगी।

[1] रद्दुल मुहतार, बाबुल ईदैन, मुस्तफा अल-बाबी द्वारा प्रकाशित, मिस्र, 1/216. [2] नसबुल राया, किताबुस सालात, बाब सालातुल जुमुआ, अल-मकतबतुल इस्लामिया रियाद द्वारा प्रकाशित, 2/201; फतहुल बारी, किताबुल जुमुआ, दारुल मारिफा बेरुत द्वारा प्रकाशित, 2/338. पेज 600 of 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ردالمختار میں ہے: اشار الی انہ لو کبر فی اول رکعتہ جاز لان الخلاف فی الاولویۃ -1 اس میں اشارہ ہے کہ اگر چہ رکعت کی ابتدا میں تکبیر کہہ لی تو جائز ہے کیونکہ اختلاف اولیٰ ہونے میں ہے۔ (ت) واللہ تعالیٰ اعلم

مسئلہ ۱۴۴۹: از اورنگ آباد ضلع گیا مرسلہ محمد اسمعیل مدرس مدرسہ اسلامیہ ۱۵ صفر ۱۳۳۸ھ کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ زید عیدالاضحی میں بعد اختتام نماز منبر پر گیا اور خطبہ شروع کیا، اثنائے خطبہ اولیٰ میں مستمعین سے ہی آپ لوگ ذرا زور سے سبحان اللہ پڑھیں۔ سب چپ رہے، پھر دوبارہ سہ بارہ کہہ کر لوگوں کو مجبور کیا کہ کیوں نہیں پڑھتے، تم لوگوں کا منہ کیوں بند ہو گیا، تب لوگوں نے بآواز بلند سبحان اللہ پڑھنا شروع کیا پھر لبیک واللہ اکبر کہلوایا پھر لا الہ الا اللہ محمد رسول اللہ پڑھوایا پھر نعتیہ خطبہ پڑھ کر منبر پر بیٹھا اور اٹھ کر خطبہ شروع کیا، ابھی خطبہ ثانیہ تمام ہونے نہ پایا تھا کہ لوگوں کو کھڑے ہو کر یا نبی سلام علیک یا رسول سلام علیک پڑھنے کو کہا، چنانچہ لوگوں نے اٹھ کر زور زور سے یا نبی سلام علیک مع اشعار اردو کتب میلاد مروجہ ترنم سے پڑھا اور زید نے پھر کچھ اردو میں دعا مانگی اور خطبہ ثانیہ کو اسی طرح نا تمام چھوڑ دیا آیا یہ فعل موافق سنت متوارثہ ہوا یا خلاف سنت سراسر عبث اور ایسا کرنے والے پر عند الشرع کیا حکم لگایا جائے گا؟ بینوا توجروا

الجواب: حالت خطبہ میں کلام اگر چہ ذکر ہو مطلقاً حرام ہے اذا خرج الامام فلا صلوۃ ولا کلام -2 (جب امام آجائے تو صلوۃ و کلام نہیں، ت) امام نے جو کچھ کیا سب بدعت شنیعہ سیئہ ہے، ان جاہلوں کا وبال بھی اس پر بغیر اس کے کہ ان کے وبال میں کمی ہو، رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم فرماتے ہیں: من دعا الی ھدی کان لہ من الاجر مثل اجور من تبعہ لا ینقص ذلك من جس نے

کسی اچھی بات کی طرف بلایا اس کو اتباع کرنے کے اجر کی مثل اجر ملے گا اور ان کے اجر میں کوئی کمی

1 ردالمختار باب العیدین مطبوعہ مصطفی البابی مصر ۲۱۶/۱ 2 نصب الرایۃ کتاب الصلوۃ باب صلوۃ الجمعۃ مطبوعہ المکتبۃ الاسلامیہ الریاض ۲۰۱/۲، فتح الباری کتاب الجمعۃ مطبوعہ دارالمعرفہ بیروت ۳۳۸/۲ Page 600 of 673

Fatawa Razawiya Volume 8

[Table Content] Left column (Arabic Text): ...of their rewards in the least. And whoever calls to misguidance, he will have a burden of sin like the sins of those who follow him, without their sins being diminished in the least. Narrated by Imams Ahmad, Muslim, and the four (authors of Sunan) from Hadrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him). And Allah Almighty knows best.

Right column (Urdu Translation): ...nor will it be [diminished], and whoever called towards evil, upon him will be sin equal to the sins of those who follow him, and there will be no reduction in their sins either. It has been narrated by Imams Ahmad, Muslim, and the four Imams from Hadrat Abu Huraira (may Allah be pleased with him). And Allah Almighty knows best.

[Watermark] www.dawateislami.net I.T. Majlis of Dawat-e-Islami

[Footer] 1 Sahih Muslim, Chapter: Whoever starts a good or bad practice etc., Published by Noor Muhammad Asah al-Matabi, Karachi 2/341 Page 601 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

[तालिका सामग्री] बायां कॉलम (अरबी पाठ): ...उनके पुरस्कारों में ज़रा भी कमी नहीं होगी। और जिसने किसी गुमराह करने वाली चीज़ (बुराई) की ओर बुलाया, उस पर उन लोगों के पापों के समान पाप होगा जो उसका अनुसरण करेंगे, बिना उनके पापों में किसी प्रकार की कमी के। इसे इमाम अहमद, मुस्लिम और चार इमामों ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया है। वल्लाहु तआला आलम (और अल्लाह बेहतर जानता है)।

दायां कॉलम (उर्दू अनुवाद का हिंदी रूपांतरण): ...और जिसने बुराई की तरफ बुलाया उस पर गुनाह होगा पैरवी करने वालों की तरह, और उनके गुनाह में भी कमी न होगी, इसे इमाम अहमद, मुस्लिम और चार इमामों ने हज़रत अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु तआला अन्हु से रिवायत किया है। वल्लाहु तआला आलम।

[वॉटरमार्क] www.dawateislami.net आई.टी. मजलिस-ए-दावत-ए-इस्लामी

[पाद लेख] 1 सहीह मुस्लिम, बाब: मन सन्ना सुन्नतहुन हसनातन औ सय्यैतन आदि, नूर मुहम्मद असहुत तबा' कराची द्वारा प्रकाशित 2/341 पृष्ठ 601 में से 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

[ٹیبل کا مواد] بایاں کالم (عربی متن): اجورھم شیئا ومن دعا الی ضلالۃ کان علیہ من الاثم مثل اثام من تبعہ لا ینقص ذلك من اثامھم شیئا رواہ الائمۃ احمد ومسلم والاربعۃ عن ابی ھریرۃ رضی اللہ تعالی عنہ واللہ تعالٰی اعلم

دایاں کالم (اردو ترجمہ): نہ ہوگی اور جس نے برائی کی طرف بلایا اس پر گناہ ہوگا اتباع کرنے والوں کی مثل، اور ان کے گناہ میں بھی کمی نہ ہوگی، اسے امام احمد، مسلم اور چار ائمہ نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت کیا ہے۔ واللہ تعالٰی اعلم

[واٹر مارک] www.dawateislami.net I.T. Majlis of Dawat-e-Islami

[فٹ نوٹ] 1 صحیح مسلم باب من سن سنۃ حسنۃ او سئیۃ الخ مطبوعہ نور محمد اصح المطابع کراچی ۲/ ۳۴۱ صفحہ ۶۰۱ از ۶۷۳

Volume 8 Fatawa Razawiyya

Wishah al-Jayyid fi Tahlil Mu'anaqat al-'Id 1312 AH (Proof of the permissibility of embracing after Eid prayer)

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful

Arabic Text: Praise be to Allah, Whose Eid of mercy encompasses everyone near and far, and Who has made the Eids of the believers an embrace with the fulfillment of promise and the pardoning of threats. And the best prayers and most perfect peace be upon him whose Eid of beauty is embraced by the Eid of his generosity; for his noble face is an Eid, and his hand of bestowal is an Eid, and every fortunate person finds happiness through them. And [peace and blessings] upon his two groups of Family and Companions, who are the two Eids for the days of faith, and upon everyone whose neck is adorned with the jewels of certainty and is embraced by the necklace of the two testimonies [of faith], as long as day and night continue to embrace each other and the two Eids continue to arrive one after another. May Allah congratulate them with the Eids of Islam and the Eid of [beholding His] Vision in the Abode of Peace (Paradise). And He has more [rewards], and indeed He originates and repeats.

Urdu Translation: All praise is for Allah, whose Eid of mercy encompasses every distant and near one, and who has embraced the Eids of the people of faith with the purity of promise and forgiveness of threats. And may the best blessings and the most perfect peace be upon him whose Eid of beauty is embraced with (his) Eid of generosity and bounty; whose beautiful face is also an Eid and hand of bestowal is also an Eid, every fortunate person is blessed by both of them. (And peace and blessings) upon both the groups of his family and companions who are the two Eids for the days of faith, and upon every person whose neck is adorned with the gem of certainty and is embraced by the necklace of the two testimonies [of faith]. (May these blessings and peace remain) as long as day and night continue to embrace each other and both Eids continue to arrive one after another. May Allah bless them with the Eids of Islam and the Eid of Vision in Paradise. (T)

Page 602 of 673

जिल्द अष्टम फ़तावा-ए-रज़विया

विशाह अल-जय्यिद फ़ी तहलील मुआनक़त अल-ईद १३१२ हिजरी (नमाज़-ए-ईद के बाद गले मिलने के जाइज़ होने का सुबूत)

अल्लाह के नाम से शुरू जो बहुत मेहरबान, निहायत रहम वाला है।

अरबी पाठ: तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जिसकी रहमत की ईद हर दूर और नज़दीक को घेरे हुए है, और जिसने ईमान वालों की ईदों को वादे की वफ़ा और सज़ा की माफ़ी से गले मिलवाया। और सबसे बेहतरीन दुरूद और सबसे कामिल सलाम उन पर हो जिनकी जमाल (सुंदरता) की ईद उनकी जूद-ओ-नवाल (सख़ावत) की ईद से हम-आग़ोश (गले मिली हुई) है। जिनका मुकद्दस चेहरा भी ईद है और अता करने वाला हाथ भी ईद, हर खुशनसीब इन दोनों से फ़ैज़याब होता है। और (दुरूद-ओ-सलाम हो) उनकी आल और असहाब की दोनों जमातों पर जो ईमान के दिनों के लिए दो ईदों की तरह हैं, और हर उस शख्स पर जिसकी गर्दन यक़ीन के मोतियों से सजी शहादतैन (ईमान की गवाहियों) के हार से हमकिनार है। (यह दुरूद-ओ-सलाम रहें) जब तक दिन और रात एक-दूसरे से गले मिलते रहें और दोनों ईदें एक के बाद एक आती रहें। अल्लाह उन्हें इस्लाम की ईदों और जन्नत में दीदार की ईद की मुबारकबाद से नवाज़े। और उसके पास और भी ज़्यादा है, और बेशक वही पहली बार पैदा करता है और वही दोबारा पैदा करेगा।

उर्दू अनुवाद: तमाम तारीफ़ अल्लाह के लिए जिस की ईद-ए-रहम हर दूर नज़दीक को मुहीत है, और जिस ने अहल-ए-ईमान की ईदों को सफ़ाई-ए-वादा और माफ़ी-ए-वईद से बग़लगीर किया, और बेहतर दुरूद और कामिल तरीन सलाम हो उन पर जिन की ईद-ए-जमाल (उन की) ईद-ए-जूद-ओ-नवाल से हम-आग़ोश है, जिन का चेहरा-ए-ज़ेबा भी ईद और दस्त-ए-अता भी ईद, हर खुश नसीब इन दोनों से फ़ीरोज़ मंद है, उन की आल-ओ-असहाब दोनों जमातों पर जो अयाम-ए-ईमान की दो ईदें हैं और हर उस शख़्स पर जिस की गर्दन गौहर-ए-यक़ीन से आरास्ता क़लादा-ए-शहादतैन से हमकिनार है, (ये दुरूद-ओ-सलाम हों) जब तक रोज़-ओ-शब बाहम बग़लगीर और दोनों ईदें यके बाद दीगरे वरूद पज़ीर रहें, अल्लाह उन्हें ईद हा-ए-इस्लाम और जन्नत में ईद-ए-दीदार की मुबारकबाद से नवाज़े। (त)

पृष्ठ 602/673

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

وشاح الجید فی تحلیل معانقة العید ۱۳۱۲ھ (نماز عید کے بعد معانقہ کے جائز ہونے کا ثبوت)

بسم اللہ الرحمن الرحیم

عربی متن: الحمد للہ الذی عید رحمته وسع کل قریب و بعید، وجعل اعیاد المؤمنین مُعَانَقَة بصفر الوعد وعفو الوعید، وافضل الصلوة واکمل السلام علی من تعانق عید جماله بعید نواله، فوجهه عید، ویده عید، یسعد بهما کُلُّ سعید، وعلی حزبي الآل والاصحاب الذین هما العید ان لایام الایمان، وعلی کل من عانق جیده وشاح الشهادتین بجنّان الایقان ماتعانق الملوان ، وتوارد العیدان، هنّأهم اللہ بأعیاد الاسلام، وعید الروية في دار السلام، ولدیه مزید، وانّه یبدئ ویعید،

اردو ترجمہ: تمام تعریف اللہ کے لئے جس کی عید رحمت ہر دور نزدیک کو محیط ہے، اور جس نے اہل ایمان کی عیدوں کو صفائی وعدہ اور معافی وعید سے بغلگیر کیا، اور بہتر درود اور کامل ترین سلام ہو ان پر جن کی عید جمال (ان کی) عید جود و نوال سے ہم آغوش ہے، جن کا چہرہ زیبا بھی عید اور دست عطا بھی عید، ہر خوش نصیب ان دونوں سے فیروز مند ہے، ان کی آل واصحاب دونوں جماعتوں پر جو ایام ایمان کی دو عیدیں ہیں اور ہر اس شخص پر جس کی گردن گوہر یقین سے آراستہ قلادہ شہادتین سے ہمکنار ہے، (یہ درود سلام ہوں) جب تک روز و شب باہم بغلگیر اور دونوں عیدیں یکے بعد دیگرے ورود پذیر رہیں، اللہ انہیں عید ہائے اسلام اور جنت میں عید دیدار کی مبارکباد سے نوازے۔ (ت)

Afterwards, several years ago, on the day of Eid-ul-Fitr, some students of Maulana Gangohi criticized and denied the practice of embracing among some Ahl-e-Sunnat, saying: "In Shari'ah, embracing is only established for a traveler returning from a journey; without a journey, it is a bid'ah (innovation) and unlawful. I have heard this from my teachers." These Sunnis asked a question to this humble faqir, Abdul Mustafa Ahmad Raza Muhammadi Sunni Hanafi Qadri Barkati Barelvi (may Allah forgive him and fulfill his hopes) regarding this matter. The faqir wrote a brief fatwa stating that in Ahadith, embracing is proven both for travel and non-travel, and the specification of travel is a fabrication by these gentlemen [Footnote 2]. By the grace of Allah, this writing had the benefit that that gentleman denied his claim, saying: "Neither was I a claimant of this specification, nor did I narrate it from my teachers."

Well, this is also a way of repentance and return, and the accusation of lying is also removed and dismissed, for when they consider lying possible for their Deity, what wonder if they consider it obligatory and mandatory for themselves [Footnote 3].

Footnote 1: Qadim-e-safar: One returning from a journey. (Translator) Footnote 2: That is, I wrote in my fatwa that the permissibility of embracing is proven from Ahadith for the state of returning from a journey as well as other circumstances. And to restrict the permissibility of embracing only to the state of returning from a journey is a fabrication of these gentlemen; there is absolutely no credible evidence for this from Hadith or Fiqh. (Translator) Footnote 3: When they denied their claim, it became evident that they did not stick to their first statement and accepted the permissibility of embracing without specification. However, the accusation against them remains that they resorted to lying by first saying something and then denying saying it. But when Deobandi gentlemen consider it possible for their Deity to lie, then the accusation of lying can certainly be applied to themselves; it is not far-fetched that they consider it obligatory and mandatory for themselves. My respected teacher, Hafiz-e-Millat Maulana Abdul Aziz Muradabadi (may Allah have mercy on him), founder of Al-Jamiatul Ashrafia Mubarakpur, used to say that the belief of the scholars of Deoband and their followers is that "God can lie but does not." If their own condition is the same, that "they can lie but do not," then according to their belief, it would entail shirk (associating partners with God) and equality with God in this attribute. Therefore, according to their own belief and principle, it is "obligatory

and necessary that they lie." If they remain at the stage of "can lie but do not," they will be considered polytheists (mushrik). (Translator)

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

अम्मा बाद, कुछ साल पहले ईदुल फ़ित्र के दिन मौलवी गंगोही के कुछ शागिर्दों ने कुछ सुन्नियों के मुआनका (गले मिलने) पर यह कहते हुए एतराज़ और इनकार किया कि: "शरियत में मुआनका सिर्फ़ सफ़र से लौटने वाले के लिए आया है, बिना सफ़र के यह बिदअत और नाजायज़ है, मैंने अपने उस्तादों से ऐसा ही सुना है।" उन सुन्नियों ने इस बारे में इस फ़कीर हकीर अब्दुल मुस्तफ़ा अहमद रज़ा मोहम्मदी सुन्नी हनफ़ी क़ादरी बरकाती बरेलवी (अल्लाह उनकी मग़फ़िरत फ़रमाए और उनकी उम्मीदें पूरी करे) से सवाल किया। फ़कीर ने एक मुख़्तसर फ़तवा लिख दिया कि हदीसों में सफ़र और बिना सफ़र दोनों सूरतों में मुआनका साबित है और सफ़र की शर्त इन हज़रात की अपनी गढ़ी हुई है [हाशिया २]। अल्लाह के फ़ज़्ल से इस तहरीर का यह फ़ायदा हुआ कि उन साहब ने अपने दावे से इनकार कर दिया कि: "न मैं इस शर्त का दावेदार था और न ही मैंने अपने उस्तादों से इसे नक़ल किया।"

ख़ैर, यह भी तौबा और रुजू का एक तरीक़ा है और झूठ का इल्ज़ाम भी दूर हो जाता है, क्योंकि जब वे अपने माबूद के लिए झूठ मुमकिन मानते हैं, तो क्या ताज्जुब कि वे अपने लिए इसे फ़र्ज़ और वाजिब मानें [हाशिया ३]।

हाशिया १: क़ादिम-ए-सफ़र: सफ़र से वापस आने वाला। (अनुवादक) हाशिया २: यानी मैंने अपने फ़तवे में लिखा कि सफ़र से लौटने की हालत और इसके अलावा अन्य हालात में भी हदीसों से मुआनका का जायज़ होना साबित है। और मुआनका के जवाज़ को सिर्फ़ सफ़र से लौटने की हालत के साथ ख़ास करना इन हज़रात की अपनी गढ़ी हुई बात है, हदीस और फ़िक्ह से इस पर कोई मोतबर दलील हरगिज़ नहीं है। (अनुवादक) हाशिया ३: जब उन्होंने अपने दावे से इनकार कर दिया तो इतना साफ़ हो गया कि वे अपने पहले कॉल (कथन) पर नहीं रहे और बिना किसी शर्त के मुआनका के जवाज़ को तस्लीम कर लिया। अलबत्ता उन पर यह इल्ज़ाम आयद होता है कि उन्होंने दरोग़गोई (झूठ) से काम लिया कि पहले एक बात कही फिर कहने से इनकार कर दिया। मगर देवबंदी हज़रात जब अपने माबूद के लिए झूठ बोलना मुमकिन मानते हैं, तो खुद उन पर झूठ बोलने का इल्ज़ाम आयद किया जा सकता है, यह मुमकिन है कि वे इसे अपने लिए फ़र्ज़ और वाजिब मानते हों। उस्ताद-ए-मोहतरम हाफ़िज़-ए-मिल्लत मौलाना अब्दुल अज़ीज़ साहिब मुरादाबादी (अल्लाह उन पर रहमत फ़रमाए), संस्थापक अल-जामियतुल अशरफ़िया मुबारकपुर, फ़रमाया करते थे कि

उलेमा-ए-देवबंद और उनके मानने वालों का अक़ीदा है कि "ख़ुदा झूठ बोल सकता है मगर बोलता नहीं"। अगर खुद उनका भी यही हाल हो कि "झूठ बोल सकते हैं मगर बोलते नहीं" तो उनके अक़ीदे के मुताबिक़ शिर्क और ख़ुदा के साथ इस सिफ़त (गुण) में बराबरी लाज़िम आएगी, इसलिए उनके अपने अक़ीदे और क़ायदे के मुताबिक़ "फ़र्ज़ और ज़रूरी है कि वे झूठ बोलें"। अगर वे "झूठ बोल सकते हैं मगर बोलते नहीं" की मंज़िल में रह गए तो मुशरिक ठहरेंगे। (अनुवादक)

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

أَمَّا بَعْدُ چند سال ہوئے کہ روزِ عید الفطر بعض تلامذہ مولوی گنگوہی نے بعض اہل سنت پر دوبارہ معانقہ طعن وانکار کیا کہ: "شرع میں معانقہ صرف قادمِ مسافر کے لئے وراد ہوا، بے سفر بدعت، ناروا، میں نے اپنے اساتذہ سے یوں ہی سنا"۔ ان سنیوں نے اس باب میں فقیر حقیر عبدالمصطفیٰ احمد رضا محمدی سنی حنفی قادری برکاتی بریلوی غفر اللہ لہ وحقق آملہ سے سوال کیا فقیر نے ایک مختصر فتویٰ لکھ دیا کہ احادیث میں معانقہ سفر و بے سفر دونوں کا اثبات اور تخصیص سفر تراشیدہ حضرات ف ۲۔ بحمد اللہ اس تحریر کا یہ نفع ہوا کہ ان صاحب نے اپنے دعویٰ سے انکار کردیا کہ : "نہ میں اس تخصیص کا مدعی تھا نہ اپنے اساتذہ سے نقل کیا۔"

خیر یہ بھی ایک طریقہ توبہ ورجوع ہے اور الزام کذب بھی زائل و مدفوع ہے کہ جب اپنے معبود کا کذب ممکن جانیں، کیا عجب کہ اپنے واسطے فرض و واجب مانیں ف ۳۔

ف ۱ قادم سفر : سفر سے آنے والا۔ (مترجم) ف ۲ یعنی میں نے اپنے فتوے میں لکھا کہ سفر سے آنے کی حالت اور اس کے علاوہ احوال میں بھی احادیث سے معانقہ کا جائز ہونا ثابت ہے۔ اور معانقہ کا جواز محض آمد سفر کی حالت سے خاص کرنا ان حضرات کی اپنی گھڑی ہوئی بات ہے، حدیث فقہ سے اس پر کوئی معتبر دلیل ہر گز نہیں۔ (مترجم) ف ۳ جب انھوں نے اپنے دعوے سے انکار کر دیا تو اتنا ظاہر ہو گیا کہ وہ اپنے پہلے قول پر نہ رہے اور جواز معانقہ بلا تخصیص تسلیم کر لیا۔ البتہ ان پر یہ الزام عائد ہوتا ہے کہ انھوں نے دروغ گوئی سے کام لیا کہ پہلے ایک بات کہی پھر کہنے سے انکار کردیا۔ مگر دیوبندی حضرات جب اپنے معبود کے لئے جھوٹ بولنا ممکن مانتے ہیں، تو خود ان پر جھوٹ بولنے کا الزام عائد کیا جا سکتا ہے، بعید نہیں کہ وہ اسے

اپنے لئے فرض و واجب مانتے ہوں، استاد محترم حافظ ملت مولانا عبدالعزیز صاحب مراد آبادی علیہ رحمۃ بانی الجامعۃ الاشرفیہ مبارکپور فرمایا کرتے تھے کہ علمائے دیوبند اور ان کے متبعین کا عقیدہ ہے کہ "خدا جھوٹ بول سکتا ہے مگر بولتا نہیں" اگر خود ان کا بھی یہی حال ہو کہ "جھوٹ بول سکتے ہیں مگر بولتے نہیں" تو ان کے عقیدے کی رو سے شرک اور خدا کے ساتھ اس وصف میں برابری لازم آجائے گی، اس لئے ان کے اپنے عقیدہ و قاعدہ پر "فرض اور ضروری ہے کہ وہ جھوٹ بولیں۔" اگر "جھوٹ بول سکتے ہیں مگر بولتے نہیں" کی منزل میں رہ گئے تو مشرک ٹھہریں گے۔ (مترجم)

Fatawa Razvia Volume 8

Now, in this Eid al-Adha 1311 AH, a student of some city scholars again got into a dispute with some Ahl-e-Sunnat members. They again presented the fatwa of this humble servant (the author). They were firm in their views and would not relent at all. They showed the fatwa to their teacher; when he did not endorse it, they sought a reply. For a long time he refused, then after much insistence, promises, and agreements, he finally sent it back after marking a spot on page 539 of Volume 1 of 'Majmu'a Fatawa' by Maulana Abdul Hai Sahib, and added some marginal notes from 'Radd al-Muhtar' and 'Mirqat Sharh Mishkat Sharif'. The questioners insisted that "a reply is necessary; after all, investigating the truth is not unacceptable." This humble servant wrote a few pages and sent them, and included them in this treatise along with the previous fatwa so that readers may see, benefit, and remember this humble servant in their prayers for goodness. And with Allah is the guidance and direction to the path.

Considering the previous fatwa and the subsequent writing, this treatise has two parts: "Eidan par Inqisam" (Division on the two Eids). And considering the date it was written, 20th Muharram 1312 AH, its name is "Wishah al-Jid fi Tahlil Mu'anaqat al-Eid" [F1] and praise be to Allah, the Guardian of Bounties (And all praise is for Allah Almighty who is the Master of Favors. -Translator).

First Fatwa in the first Eid In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

Issue 1250: What do the scholars of religion say on this issue: is embracing (mu'anaqa) permissible even in a state other than traveling? And regarding the person who says it is specific to the arrival of a traveler and impermissible otherwise, what is their statement according to Sharia?

The Answer: Embracing over clothes as an act of goodness, honor, and expression of love—without corrupt intention or lustful motives—is unanimously permissible. Numerous Hadiths and famous narrations attest to its permissibility. The claim of restricting it to travel is completely without proof. Prophetic Hadiths and jurisprudential clarifications on this matter are absolute (mutlaq), and the Sharia rule is that an absolute statement must be kept in its absolute sense, and any restriction or specification without Sharia evidence is rejected and void, otherwise security from Sharia texts would be lifted, as is not hidden [F2] (as is not hidden. -Translator).

F1: The 'taa marbuta' (ة) of 'Mu'anaqa' (معانقة) is counted as 'ha' (ہ) as per the rule. Therefore, its numerical value will not be 400 but 5, and the total value of the name will not be 1707 but 1312. (Translator) F2: In these lines, Ala Hazrat has mentioned the gist of the entire fatwa and the answer to all objections. A brief explanation of these comprehensive lines follows (remaining on the next page).

फ़तावा रज़विया खंड 8

अब इस ईद-उल-अज़हा 1311 हिजरी में, शहर के कुछ विद्वानों के एक शिष्य ने फिर से कुछ सुन्नी मुसलमानों (अहले सुन्नत) से विवाद किया। उन्होंने फिर से इस फकीर (लेखक) का वही फतवा पेश किया। वे अपने ख्यालों में पक्के थे और बिल्कुल नहीं सुलझे। उन्होंने अपने उस्ताद को फतवा दिखाया; जब उन्होंने पुष्टि नहीं की तो जवाब चाहा। काफी समय तक इनकार करने के बाद, अंततः बार-बार आग्रह, वादे और इकरार के बाद, उन्होंने मौलवी अब्दुल हई साहब के'मजमुआ फ़तावा' के खंड 1 के पृष्ठ 539 पर निशान लगाकर भेजा, और 'रद-उल-मुहतार' और 'मिरक़ात शरह मिश्क़ात शरीफ़' से कुछ हाशिए (नोट्स) चढ़ाए। सवाल करने वालों ने जोर दिया कि "जवाब जरूरी है, आखिरकार सत्य की जांच नामंजूर नहीं है।" फकीर ने कुछ पन्ने लिखकर भेज दिए और उन्हें इस शोध पत्र में पिछले फतवे के साथ शामिल कर दिया ताकि पाठक देखें, लाभ उठाएं और फकीर को अपनी दुआओं में याद रखें। और अल्लाह ही की ओर से तौफीक और सीधे रास्ते का मार्गदर्शन है।

पिछले फतवे और बाद के लेखन के आधार पर इस शोध पत्र के दो भाग हैं: "ईदों पर विभाजन"। और इस तारीख को देखते हुए कि यह 20 मुहर्रम 1312 हिजरी को लिखा गया था, इसका नाम है "विशाह अल-जीद फ़ी तहलील मुआनक़त अल-ईद" [F1] और अल्हम्दुलिल्लाह वलीयुल अनआम (और तमाम तारीफ अल्लाह तआला के लिए है जो एहसान का मालिक है। -त)।

पहली ईद में पहला फतवा बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम (अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और कृपाण है।)

मसला 1250: धर्म के विद्वान इस विषय में क्या कहते हैं कि क्या सफर की स्थिति के अलावा भी गले मिलना (मुआनक़ा) जायज़ है या नहीं? और वह व्यक्ति जो इसे केवल यात्री के आने तक सीमित रखता है और इसके अलावा नाजायज़ बताता है, शरिया के अनुसार उसका कथन कैसा है?

जवाब: कपड़ों के ऊपर से गले मिलना भलाई, सम्मान और प्रेम के प्रदर्शन के तौर पर—बिना किसी बुरे इरादे या कामुक उद्देश्यों के—सर्वसम्मति (इज्मा) से जायज़ है, जिसके जायज़ होने पर कई हदीसें और प्रसिद्ध रिवायतें मौजूद हैं। और इसे केवल सफर तक सीमित रखने का दावा बिल्कुल बेबुनियाद है। इस बारे में पैगंबर की हदीसें और फिक्ही (न्यायशास्त्रीय) स्पष्टीकरण उनके व्यापक अर्थ (मुतलक़) के कारण आए हैं, और शरिया का नियम है कि व्यापक अर्थ वाले शब्द को उसके व्यापक अर्थ में ही रखना वाजिब है, और बिना किसी शरिया प्रमाण के उसे सीमित या विशिष्ट करना

अस्वीकार्य और निराधार है, अन्यथा शरिया ग्रंथों से भरोसा उठ जाएगा, जैसा कि स्पष्ट है [F2] (जैसा कि छिपा नहीं है। -त)।

F1: 'मुआनक़ा' (معانقة) की 'ता-ए-मदव्वरा' (ۃ) को नियम के अनुसार 'हा' (ہ) माना गया है, इसलिए इसका अंक 400 नहीं बल्कि 5 होगा और पूरे नाम का अंक 1707 नहीं बल्कि 1312 होगा। (अनुवादक) F2: इन्हीं पंक्तियों में आला हज़रत ने पूरे फतवे का सार और सभी आपत्तियों का उत्तर दे दिया है, इन व्यापक पंक्तियों की थोड़ी व्याख्या नीचे दी गई है (शेष अगले पृष्ठ पर)।

पेज 604 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اب اس عید الاضحٰی ۱۳۱۱ھ میں بعض علمائے شہر کے ایک شاگرد بعض اہلسنت سے پھر الجھے، انھوں نے پھر وہی فتوائے فقیر پیش کیا، خیالات کے پکے تھے ہر گز نہ سلجھے، انھوں نے ان کے استاذ کو فتوٰی دکھایا، تصدیق نہ فرمائیں تو جواب چاہا، مدت تک انکار پھر بعد اصرار و وعدہ و اقرار، بالآخر مجموعہ فتاوٰی مولوی عبدالحی صاحب صفحہ ۵۳۹ جلد اول پر نشانی رکھ کر ارسال فرمایا، اور بعض عبارات ردالمحتار و مرقاۃ شرح مشکوۃ شریف سے حاشیہ چڑھایا، سائل مصر ہوئے کہ "جواب ضرور ہے آخر تحقیق حق نا منظور ہے" فقیر نے چند ورق لکھ کر بھیج دیے اور رسالہ میں فتوٰی سابقہ کے ساتھ جمع کئے کہ ناظر دیکھیں، نفع پائیں، فقیر کو دعائے خیر سے یاد فرمائیں وباللہ التوفیق وھدایۃ الطریق۔

اس رسالہ کا بلحاظ فتوٰی سابق و تحریر لاحق دو "عید پر انقسام۔ اور بنظرِ تاریخ کہ بستم ۲۰ محرم ۱۳۱۲ھ لکھا گیا "وشاح الجید فی تحلیل معانقۃ العید" نام ف۱ والحمد للہ ولی الانعام (اور تمام تعریف اللہ تعالٰی کے لئے جو احسان کا مالک ہے ت)

عید اول میں فتوٰی اول بسم اللہ الرحمن الرحیم

مسئلہ ۱۲۵۰: کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ معانقہ حالتِ سفر کا بھی جائز ہے یا نہیں؟ اور یہ کہ جو اسے قدومِ مسافر کے ساتھ خاص اور اس کے غیر میں ناجائز بتاتا ہے، قول اس کا شرعاً کیسا ہے؟

الجواب: کپڑوں کے اوپر سے معانقہ بطورِ بِرّ و کرامت و اظہارِ محبت۔ بے فساد نیت و موادِ شہوت، بالاجماع جائز جس کے جواز پر احادیث کثیرہ و روایاتِ شہیرہ ناطق، اور تخصیص سفر کا

دعویٰ محض بے دلیل، احادیث نبویہ و تصریحاتِ فقہیہ اس بارے میں بوجہِ اطلاق وارد، اور قاعدہ شرعیہ ہے کہ مطلق کو اپنے اطلاق پر رکھنا واجب اور بے مدرکِ شرعی تقیید و تخصیص مردود و باطل، ورنہ نصوص شرعیہ سے امان اُٹھ جائے، کما لا یخفی ف۲ (جیسا کہ مخفی نہیں۔ ت)

ف۱: معانقہ کی تائے مدوّرہ حسبِ قاعدہ "ہ" مانی گئی ہے اس لئے اس کا عدد ۴۰۰ نہیں بلکہ ۵ ہوگا اور پورے نام کا عدد ۱۷۰۷ نہیں بلکہ ۱۳۱۲ ہوگا۔ (مترجم) ف۲: ان ہی سطور میں اعلیٰحضرت نے پورے فتوے کا ماحصل اور تمام اعتراضات کا جواب ذکر کر دیا، ان جامع سطور کی قدرے تشریح درج ذیل ہے (باقی بر صفحہ آئندہ)

Fatawa Razawiyya, Volume 8

Ibn Abi al-Dunya in 'Kitab al-Ikhwan', Dailami in 'Musnad al-Firdous', and Abu Ja'far al-Uqayli relate from Hazrat Tamim al-Dari (may Allah be pleased with him), and the wording is according to al-Uqayli:

[Arabic Box Text]: Indeed, he said: I asked the Messenger of Allah (may Allah send blessings and peace upon him) about embracing (Mu'anaqah), and he replied: It is a greeting of the nations and... [Urdu Box Text]: I asked the Messenger of Allah (may Allah send blessings and peace upon him) about embracing; he said: It is a greeting of the nations, and of their...

The conditions for the permissibility of Mu'anaqah (embracing) are as follows: (1) The embrace should be over clothing. (2) It should be for the sake of piety, honor, and expression of love. (3) There should be no involvement of bad intention or lust. With the above-mentioned conditions, embracing is permissible in every situation, whether related to travel or not. Proof: Its source is those narrations and Hadiths in which there is proof of embracing without the restriction of travel. The response to those who say that embracing is only permissible after returning from a journey is: In all Hadiths and narrations, the permissibility of embracing is proven in an absolute sense. It is not mentioned in any Hadith that it is only permissible after coming from a journey, and prohibited in other situations. Rather, some Hadiths explicitly provide proof of embracing in situations other than returning from travel. (4) It is a principle of Sharia that a ruling which is absolute and without any restriction must be kept absolute. (5) Since this ruling regarding embracing is absolute and without the restriction of travel, while keeping it absolute, embracing will be permissible in every situation, whether travel or non-travel. (6) Yes, if there is proof of specification or restriction from Sharia itself regarding any ruling, then that ruling must certainly be considered specific and restricted. However, regarding embracing, there is no restriction of arrival, travel, etc., except for those conditions mentioned at the beginning. Therefore, to impose a restriction of arrival or travel regarding the permissibility of embracing without Sharia-based evidence is purely false and unacceptable. (Translator) Fa: From here, the details of the evidence are provided. First, a Hadith is mentioned from which the historical origin of embracing is known. Then, those texts are written from authentic sources of Hanafi jurisprudence, the gist of which has already been recorded at the beginning. (Translator)

फ़तावा रज़विया, खंड 8

इब्न अबी अल-दुनिया ने 'किताब अल-इख्वान' में, दैलमी ने 'मुसनद अल-फिरदौस' में और अबू जाफ़र उकैली ने हज़रत तमीम दारी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है, और शब्द उकैली के हैं:

[अरबी बॉक्स पाठ]: बेशक उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से गले मिलने (मुआनका) के बारे में पूछा, तो उन्होंने फ़रमाया: यह उम्मतों का अभिवादन है और... [उर्दू बॉक्स पाठ]: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से गले मिलने के बारे में पूछा, फ़रमाया: यह उम्मतों का अभिवादन है, और उन...

मुआनका (गले मिलने) की वैधता की निम्नलिखित शर्तें हैं: (1) गले मिलना कपड़ों के ऊपर से हो। (2) यह नेकी, सम्मान और प्रेम व्यक्त करने के लिए हो। (3) बुरी नीयत या कामवासना का कोई दखल न हो। उपरोक्त शर्तों के साथ, यात्रा हो या न हो, हर हाल में गले मिलना जायज़ है। दलील: इसका स्रोत वे रिवायतें और हदीसें हैं जिनमें यात्रा की शर्त के बिना गले मिलने का प्रमाण है। जो लोग केवल यात्रा से आने के बाद गले मिलना जायज़ बताते हैं, उनका जवाब यह है: तमाम हदीसों और रिवायतों में सामान्य रूप से मुआनका की वैधता का प्रमाण मिलता है। किसी हदीस में यह नहीं है कि केवल यात्रा से आने के बाद ही गले मिलना जायज़ है, और बाकी स्थितियों में नाजायज़। बल्कि कुछ हदीसों से स्पष्ट रूप से यात्रा से आने के अलावा अन्य स्थितियों में भी मुआनका का प्रमाण मिलता है। (4) शरीयत का नियम है कि जो हुक्म मुतलक (बिना शर्त) हो, उसे मुतलक ही रखना वाजिब और ज़रूरी है। (5) गले मिलने के बारे में जब यह हुक्म मुतलक और यात्रा की शर्त के बिना है, तो इसे मुतलक रखते हुए यात्रा और गैर-यात्रा, हर हाल में गले मिलना जायज़ होगा। (6) हाँ, अगर किसी हुक्म में खुद शरीयत की ओर से किसी विशिष्टता या पाबंदी का सबूत हो, तो उस हुक्म को विशिष्ट और प्रतिबंधित ज़रूर माना जाएगा। लेकिन मुआनका के बारे में, उन शर्तों के अलावा जो शुरू में बताई गई हैं, आने-जाने या यात्रा आदि की कोई पाबंदी नहीं है। इसलिए, मुआनका की वैधता के बारे में बिना किसी शरई दलील के यात्रा की शर्त लगाना पूरी तरह से गलत और अस्वीकार्य है। (अनुवादक) फ़ा: यहाँ से दलील का विवरण दिया गया है। सबसे पहले एक हदीस का उल्लेख किया गया है जिससे मुआनका के इतिहास की शुरुआत का पता चलता है। फिर हनफ़ी न्यायशास्त्र के प्रामाणिक स्रोतों से वे इबारतें लिखी गई हैं, जिनका सारांश शुरू में लिखा जा चुका है। (अनुवादक)

पृष्ठ 605 का 673

فتاویٰ رضویہ، جلد ہشتم

ابن ابی الدنیا کتاب الاخوان اور دیلمی مسند الفردوس اور ابو جعفر عقیلی حضرت تمیم داری رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی واللفظ للعقیلی:

[عربی عبارت]: انه قال سألت رسول الله صلى الله تعالى عليه وسلم عن المعانقة فقال تحية الامم و

[اردو ترجمہ]: میں نے رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے معانقہ کو پوچھا، فرمایا: تحیت ہے امتوں کی، اور ان

جواز معانقہ کی مندرجہ ذیل شرطیں ہیں: (۱) معانقہ کپڑوں کے اوپر سے ہو۔ (۲) نیکی، اعزاز اور اظہارِ محبت کے طور پر ہو۔ (۳) خرابی نیت اور شہوت کا کوئی دخل نہ ہو۔ مذکورہ بالا شرطوں کے ساتھ معانقہ سفر، غیر سفر ہر حال میں جائز ہے۔ دلیل: اس کا ماخذ وہ روایات و احادیث ہیں جن میں قیدِ سفر کے بغیر معانقہ کا ثبوت ہے، جو لوگ صرف آمدِ سفر کے بعد معانقہ جائز بتاتے ہیں ان کا جواب یہ ہے: تمام احادیث و روایات میں مطلق طور پر جواز معانقہ کا ثبوت ہے، یہ کسی حدیث میں نہیں کہ بس سفر سے آنے کے بعد معانقہ جائز ہے، باقی حالات میں ناجائز_ بلکہ بعض احادیث سے صراحتہً آمدِ سفر کے علاوہ حالات میں بھی معانقہ کا ثبوت فراہم ہوتا ہے۔ (۴) شریعت کا قاعدہ ہے کہ جو حکم، مطلق اور کسی قید کے بغیر ہو، اسے مطلق ہی رکھنا واجب و ضروری ہے، (۵) معانقہ کے بارے میں جب یہ حکم مطلق اور قیدِ سفر کے بغیر ہے، تو اسے مطلق رکھتے ہوئے سفر، غیر سفر ہر حال میں معانقہ جائز ہوگا۔ (۶) ہاں اگر کسی حکم میں خود شریعت کی جانب سے تخصیص اور تقیید کا ثبوت ہو تو اس حکم کو مخصوص اور مقید ضرور مانا جائے گا_ مگر معانقہ کے بارے میں سوا ان شرائط کے جو ابتدا میں ذکر کی گئیں آمد و سفر وغیرہ کی کوئی قید نہیں۔ لہذا جوازِ معانقہ کے بارے میں بے دلیل شرعی آمدِ سفر کی قید

لگانا محض باطل اور نامقبول ہے۔ (مترجم) ف ا : یہاں سے دلیل کی تفصیل فرمائی، سب سے پہلے ایک حدیث ذکر کی جس سے معانقہ کی تاریخ آغاز معلوم ہوتی ہے، پھر فقہ حنفی کے مستند مآخذ سے وہ نصوص تحریر فرمائے جن کا حاصل ابتداءً رقم فرما چکے۔ (مترجم)

Fatawa Razawiyya Volume 8

صالح وُدّهم وانّ اول من عانق خليل الله ابراهيم[1]	Their friendship is good, and indeed the first person to embrace was Ibrahim Khaleelullah, peace and blessings be upon our Prophet and him.

In Khaniyah it is said: | | | | :--- | :--- | | ان كانت المعانقة من فوق قميص او جبّة جاز عند الكل اهـ ملخصا۔[2] | If the embrace is over a shirt or a cloak, then it is permissible according to everyone. Summarized (T) |

In Majma' al-Anhur it is said: | | | | :--- | :--- | | [3] اذا كان عليهما قميص او جبة جاز بالاجماع اه ملخصا۔ | If both the men are wearing a shirt or a cloak, then this embrace is permissible by consensus. Summarized (T) |

In Hidayah it is said: | | | | :--- | :--- | | قالوا الخلاف في المعانقة في ازار واحدٍ واما اذا كان عليه قميص او جبة فلا باس بها بالاجماع وهو الصحيح۔[4] | The scholars said the disagreement regarding embracing is when it is within a single wrap (izar); however, when the person embracing is wearing a shirt or a cloak, there is no harm in it by consensus, and this is the correct view. (T) |

In Durr al-Mukhtar it is said: | | | | :--- | :--- | | لو كان عليه قميص او جبة جاز بلا كراهة بالاجماع وصححه في الهدايه وعليه المتون۔[5] | If there is a shirt or a cloak on his body, then it is permissible without any dislike by consensus; Hidayah authenticated this, and the primary texts of jurisprudence are based on it. (T) |

In Sharh al-Niqayah it is said: | | | | :--- | :--- | | عناقُه اذا كان معه قميص او جبة | His embrace when it is in such a way that there is a shirt or a cloak. |

[1] Kitab al-Du'afa al-Kabir, biography number 1411, Umar bin Hafs bin Mujbir, published by Dar al-Kutub al-Ilmiyyah Beirut, 3/155. [2] Fatawa Khaniyah, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, published by Naval Kishore Lucknow, 4/783. [3] Majma' al-Anhur, Kitab al-Karahiyah, published Beirut, 2/521. [4] Hidayah, Kitab al-Karahiyah, published by Matba' Yusufi Lucknow, 4/466. [5] Durr al-Mukhtar, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, published by Mujtabai Delhi, 2/244.

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

صالح وُدّهم وانّ اول من عانق خليل الله ابراهيم[1]	उनकी अच्छी दोस्ती है, और वास्तव में गले लगाने वाले पहले व्यक्ति इब्राहिम खलील उल्लाह थे, हमारे पैगंबर और उन पर शांति और आशीर्वाद हो।

खानिह में है: | | | | :--- | :--- | | ان كانت المعانقة من فوق قميص او جبّة جاز عند الكل | اهـ ملخصا۔[2] | यदि आलिंगन कुरते या लबादे के ऊपर से हो, तो यह सभी के अनुसार जायज़ है। (संक्षिप्त) |

मजमा अल-अन्हुर में है: | | | | :--- | :--- | | اذا كان عليهما قميص او جبة جاز بالاجماع [3] اه | ملخصا۔ | यदि दोनों पुरुषों ने कुरता या लबादा पहना हो, तो यह आलिंगन सर्वसम्मति से जायज़ है। (संक्षिप्त) |

हिदाया में है: | | | | :--- | :--- | | قة في ازار واحدٍ واما اذا كانوا قالوا الخلاف في المع | عليه قميص او جبة فلا باس بها بالاجماع وهو الصحيح [4]۔ | उन्होंने कहा कि आलिंगन के बारे में असहमति तब होती है जब एक ही कपड़े (इज़ार) के भीतर हो। लेकिन यदि आलिंगन करने वाले ने कुरता या लबादा पहना हो, तो सर्वसम्मति से इसमें कोई हर्ज नहीं है और यही सही है। (त) |

दुर्र अल-मुख्तार में है: | | | | :--- | :--- | | لو كان عليه قميص او جبة جاز بلا كراهة بالاجماع | وصححه في الهدايه وعليه المتون [5]۔ | यदि उसके शरीर पर कुरता या लबादा हो, तो बिना किसी अरुचि के सर्वसम्मति से जायज़ है, हिदाया में इसे सही माना गया है, और न्यायशास्त्र के ग्रंथों में यही है। (त) |

शरह अल-निकायह में है: | | | | :--- | :--- | | عناقُه اذا كان معه قميص او جبة | उनका आलिंगन जब इस तरह हो कि कुरता या लबादा हो। |

[1] किताब अल-ज़ुआफ़ा अल-कबीर, जीवनी संख्या 1411, उमर बिन हफ़्स बिन मुजबिर, दार अल-कुतुब अल-इल्मिया बेरूत द्वारा प्रकाशित, 155/3। [2] फ़तावा खानिह, किताब अल-हज़्र वल-इबाहः, नवल किशोर लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 783/4। [3] मजमा अल-अन्हुर, किताब अल-कराहिया, बेरूत द्वारा प्रकाशित, 521/2। [4] हिदाया, किताब अल-कराहिया, मतबा युसूफ़ी लखनऊ द्वारा प्रकाशित, 466/4। [5] दुर्र अल-मुख्तार, किताब अल-हज़्र वल-इबाहः, मुजतबाई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 244/2।

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

صالح وُدّھم وانّ اول من عانق خلیل اللہ ابراھیم[1] ان کی اچھی دوستی، اور بیشک پہلے معانقہ کرنے والے ابراہیم خلیل اللہ علی نبینا وعلیہ الصلوۃ والسلام ہیں۔

خانیہ میں ہے : | | | | :--- | :--- | | ان کانت المعانقۃ من فوق قمیص او جبّۃ جاز عند الکل اھ ملخصا۔[2] | اگر معانقہ کرتے یا جبے کے اوپر سے ہو تو سب کے نزدیک جائز ہے اھ ملخصاً (ت) |

مجمع الانہر میں ہے : | | | | :--- | :--- | | اذا کان علیھما قمیص او جبۃ جاز بالاجماع [3] اھ ملخصا۔ | اگر معانقہ کرنے والے دونوں مردوں پر کرتا یا جبہ ہو تو یہ معانقہ بالاجماع جائز ہے اھ ملخصاً (ت) |

ہدایہ میں ہے : | | | | :--- | :--- | | قالوا الخلاف في المعانقۃ في ازار واحدٍ واما اذا کان علیہ قمیص او جبۃ فلا باس بھا بالاجماع وھو الصحیح [4]۔ | طرفین (امام اعظم وامام محمد) اور ابو یوسف میں اختلاف ایک تہمد کے اندر معانقہ کے بارے میں ہے لیکن جب معانقہ کرنے والا کرتا یا جبہ پہنے ہو تو بالاجماع اس میں کوئی حرج نہیں اور یہی صحیح ہے۔ (ت) |

در مختار میں ہے : | | | | :--- | :--- | | لو کان علیہ قمیص او جبۃ جاز بلا کراھۃ بالاجماع وصححہ في الھدایہ وعلیہ المتون [5]۔ | اگر اس کے جسم پر کرتا یا جبہ ہو تو بلا کراہت بالاجماع جائز ہے، ہدایہ میں اسی کو صحیح قرار دیا، متونِ فقہ میں یہی ہے۔ (ت) |

شرح نقایہ میں ہے : | | | | :--- | :--- | | عناقُہ اذا کان معہ قمیص او جبۃ | اس کا معانقہ جب اسی طرح ہو کہ کرتا یا جبہ |

[1] کتاب الضعفاء الکبیر ترجمہ نمبر ۱۴۱۱ عمر بن حفص بن مجبر مطبوعہ دارالکتب العلمیۃ بیروت ۱۵۵/۳ [2] فتاوی خانیہ کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ نولکشور لکھنؤ ۷۸۳/۴ [3] مجمع الانہر کتاب الکراہیۃ مطبوعہ بیروت ۵۲۱/۲ [4] ہدایہ کتاب الکراہیۃ مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنؤ ۴۶۶/۴ [5] در مختار کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مجتبائی دہلی ۲۴۴/۲

Volume 8 Fatawa Razawiya

"...or anything else, it is not disliked by consensus, and this is the correct view." (Summarized). (T) Or if there is some barrier, then by consensus it is not disliked, and this is the correct view. (Summarized) (T)

Similarly, Imam Nasafi in Al-Kafi, then Allamah Isma'il Nabulsi in his marginalia on Durar Mawla Khusrau and others have asserted this. This is the implication of texts like Wiqayah, Nuqayah, Islah, etc. In the commentaries of Hidayah, marginalia of Dur al-Mukhtar, and others, it is established; in all of them, the discussion is general, without any hint of restricting it to travel. In Ashi'at al-Lam'at, it is stated: "As for embracing (Mu'anaqah), if there is no fear of temptation (fitna), it is permissible and legislated, especially upon returning from travel." (T) Embracing is permissible and legislated if there is no fear of fitna, especially when arriving from a journey. (T)

This word "especially" is a clear textual evidence (nas) for the invalidity of restriction. As for the hadiths of prohibition, they do not serve as proof for Zaid because if prohibition is established from them, it is absolute. Then, if applied generally, the state of travel would also be included, whereas in that, even Zaid agrees with us. If we follow the path of reconciliation (tawfiq), the scholars say that prohibition there refers to embracing out of desire. And it is obvious that in such a case, even handshaking (musafaha) is forbidden even during travel, let alone embracing.

F 1: This is the answer to the reasoning based on those hadiths in which there is a prohibition of embracing. The correct answer is that prohibition is mentioned in the hadiths. Now, if absolute prohibition in all circumstances is intended, then embracing would be impermissible in travel and non-travel alike, whereas even those who prohibit it consider embracing permissible upon return from travel. Therefore, if they present the hadiths of prohibition against us, those will be against them too. Necessarily, reconciliation must be made between both types of hadiths—those of permissibility and those of prohibition—and meanings must be adopted for both such that all hadiths can be acted upon. The reconciliation is that where there is prohibition from embracing, it refers to embracing with lust. And where there is proof for the permissibility of embracing, it refers to embracing without lust and corruption of intent, as we mentioned at the beginning. It is obvious that embracing out of lust is impermissible even after returning from travel; in fact, even handshaking would be impermissible in that case. Different jurists have reconciled

the hadiths of permissibility and prohibition; Ala Hazrat (may Allah have mercy on him) has provided their references in the book. (Translator)

1 Sharh Nuqayah (Mulla Ghazi), Kitab al-Karahiya, published by H.M. Saeed Company Karachi, 229/2 2 Ashi'at al-Lam'at, Chapter on Musafaha and Mu'anaqah, published by Nooria Razawiya Sukkur, 20/4

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

"...या इसके अलावा, सर्वसम्मति से यह मकरूह (नापसंद) नहीं है, और यही सही है।" (संक्षिप्त)। (त) या यदि कोई अवरोध हो, तो सर्वसम्मति से मकरूह नहीं है, और यही सही है। (संक्षिप्त) (त)

इसी प्रकार, इमाम नसफ़ी ने अल-काफ़ी में, फिर अल्लामा इस्माइल नाबुलसी ने दुरर मौला खुसरो आदि के हाशिया में इसे दृढ़ता से कहा है। यही विकाया, नुकाया, इसलाह आदि ग्रंथों का सार है। हिदाया की शरहों (व्याख्याओं), दुर-ए-मुख्तार के हाशिये आदि में यह निर्धारित है; इन सब में चर्चा सामान्य (मुतलक) है, कहीं भी यात्रा (सफर) की विशिष्टता का कोई संकेत नहीं है। अशिअतुल लम्आत में फ़रमाते हैं: "जहाँ तक मुआनका (गले मिलना) का संबंध है, यदि फ़ितने (प्रलोभन) का डर न हो, तो यह जायज़ और शरीअत संगत है, विशेष रूप से यात्रा से आने पर।" (त) गले मिलने में अगर फितने का डर न हो तो जायज़ और शरीअत के अनुकूल है, विशेष रूप से जब कोई यात्रा से आ रहा हो। (त)

यह शब्द "विशेष रूप से" विशिष्टता के अमान्य होने पर स्पष्ट प्रमाण है। जहाँ तक मनाही वाली हदीसों का संबंध है, वे ज़ैद के लिए दलील नहीं हैं क्योंकि अगर उनसे मनाही साबित है तो वह मुतलक (पूर्ण) मनाही है। फिर यदि इसे सामान्य माना जाए, तो यात्रा की स्थिति भी शामिल हो जाएगी, जबकि उसमें ज़ैद भी हमारे साथ सहमत है। और यदि सामंजस्य (तौफ़ीक़) के मार्ग पर चलें, तो विद्वान कहते हैं कि वहाँ मनाही से तात्पर्य कामुकता (शहवत) के कारण गले मिलना है। और ऊपर ज़ाहिर है कि ऐसी स्थिति में तो यात्रा के दौरान भी मुसाफ़हा (हाथ मिलाना) भी वर्जित है, फिर मुआनका का तो कहना ही क्या?

फा १: यह उन हदीसों से किए गए तर्क का उत्तर है जिनमें मुआनका की मनाही आई है। तो सही उत्तर यह है कि हदीसों में मनाही का उल्लेख है। अब यदि उनसे मुतलक हर हाल में मनाही मुराद लें, तो सफर और गैर-सफर हर जगह मुआनका नाजायज़ होगा, जबकि सफर से आने के समय मना करने वाले भी मुआनका को जायज़ मानते हैं। इसलिए यदि वे मनाही वाली हदीसों को हमारे विरुद्ध पेश करेंगे, तो वे उनके अपने भी विरुद्ध होंगी। अनिवार्य रूप से मुआनका की इजाज़त और मनाही, दोनों प्रकार की हदीसों में सामंजस्य स्थापित करना होगा, और दोनों के ऐसे अर्थ लेने होंगे जिनसे तमाम हदीसों पर अमल हो सके। सामंजस्य यह है कि जहाँ मुआनका से मनाही है, वहाँ शहवत (वासना) के तौर पर मुआनका मुराद है। और जहाँ मुआनका के जायज़ होने का प्रमाण है, वहाँ बिना

शहवत और नेक नियत के साथ मुआनका मुराद है, जैसा कि हमने शुरुआत में उल्लेख किया है। और ज़ाहिर है कि शहवत के तौर पर मुआनका तो सफर से आने के बाद भी नाजायज़ है, बल्कि इस तरह तो मुआनका क्या, मुसाफ़हा भी नाजायज़ है। जायज़ और मनाही की हदीसों के बीच अलग-अलग फ़ुक़हा (विधिवेत्ताओं) ने सामंजस्य स्थापित किया है; आला हज़रत (रहमतुल्लाह अलैह) ने किताब में उनके संदर्भ पेश कर दिए हैं। (अनुवादक)

१ शरह नुकाया (मुल्ला ग़ाज़ी), किताबुल कराहिया, मुद्रित एच.एम. सईद कंपनी कराची, २२९/२ २ अशिअतुल लम्आत, बाबुल मुसाफ़हा वल मुआनका, मुद्रित नूरिया रज़विया सुक्कुर, २०/४

पृष्ठ ६०७/६७३

اوغیرہ لم یکرہ بالاجماع وھو الصحیح اھ ملخصا۔ (ت) یا کچھ حائل ہو تو بالاجماع مکروہ نہیں، اور یہی صحیح ہے اھ ملخصاً (ت)

اسی طرح امام نسفی نے کافی پھر علامہ اسمعیل نابلسی نے حاشیہ درر مولیٰ خسرو وغیرہما میں جزم کیا، اور یہ وقایہ و نقایہ و اصلاح و غیر ہا متون کا مفاد، اور شروح ہدایہ و حواشی در مختار و غیر ہما میں مقرر ان سب میں کلام مطلق ہے کہیں تخصیص سفر کی بو نہیں۔ اشعۃ اللمعات میں فرماتے ہیں: اما معانقہ اگر خوفِ فتنہ نباشد مشروع ست خصوصاً نزد قدوم از سفر۔ (ت) معانقہ میں اگر فتنے کا خوف نہ ہو تو جائز و مشروع ہے خصوصاً جب سفر سے آرہا ہو۔ (ت)

یہ "خصوصاً" بطلانِ تخصیص پر نص صریح_ رہیں احادیثِ نہی، ان میں زید کے لئے حجت نہیں کہ ان سے اگر ثابت ہے تو نہی مطلق۔ پھر اطلاق پر رکھے تو حالتِ سفر بھی گئی، حالانکہ اس میں زید بھی ہم سے موافق۔ اور توفیق پر چلئے تو علماء کرام فرماتے ہیں وہاں معانقہ بر وجہ شہوت مراد۔ اور اوپر ظاہر کہ ایسی صورت میں تو بحالتِ سفر بھی مصافحہ بھی ممنوع، تابمعانقہ چہ رسد؟

ف ۱: یہ ان احادیث سے استدلال کا جواب ہے جن میں معانقہ سے ممانعت آئی ہے۔ تو صحیح جواب یہ ہے کہ احادیث میں ممانعت مذکور ہے۔ اب اگر ان سے مطلقاً ہر حال میں ممانعت مراد لیں تو سفر، غیر سفر ہر جگہ معانقہ ناجائز ہوگا جب کہ سفر سے آنے کے وقت مانعین بھی معانقہ جائز مانتے ہیں۔ اس لئے وہ اگر احادیثِ نہی ہمارے خلاف پیش کریں تو خود ان کے بھی خلاف ہوں گی_ لامحالہ جوازِ معانقہ اور ممانعتِ جواز دونوں قسم کی حدیثوں میں تطبیق کرنا ہوگی، اور

دونوں کے ایسے معنی لینے ہوں گے جن سے تمام احادیث پر عمل ہوسکے_ اور تطبیق یوں ہے کہ جہاں معانقہ سے ممانعت ہے وہاں معانقہ بطور شہوت مراد ہے_ اور جہاں جوازِ معانقہ کا ثبوت ہے وہاں معانقہ بے شہوت و فساد نیت مراد ہے جیسا کہ ہم نے ابتداءً ذکر کیا_ اور ظاہر ہے کہ معانقہ بطور شہوت تو سفر سے آنے کے بعد بھی ناجائز ہے بلکہ اس طرح تو معانقہ کیا مصافحہ بھی ناجائز ہے۔ احادیثِ جواز منع کے درمیان تطبیق مختلف فقہاء کرام نے فرمائی ہے اعلحضرت رحمہ اللہ تعالیٰ نے ان کا حوالہ کتاب میں پیش کردیا ہے۔ (مترجم)

1 شرح نقایہ (ملا غازی) کتاب الکراہیۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲۲۹/۲ 2 اشعۃ اللمعات باب المصافحہ والمعانقہ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۲۰/۴

Fatawa Rizvia, Volume 8

Imam Fakhr al-Din al-Zayla'i in *Tabyin al-Haqa'iq*, Akmal al-Din al-Babarti in *Al-'Inayah*, Shams al-Din al-Quhustani in *Jami' al-Rumuz*, Afandi Shaykh Zadeh in *Sharh al-Multaqa al-Abhur*, Shaykh Muhaqqiq Dehlawi in *Sharh Mishkat*, Imam Hafiz al-Din in *Sharh al-Wafi*, Sayyidi Amin al-Din Afandi in his marginalia on *Sharh Tanwir*, and Mawla Abd al-Ghani Nabulsi in *Sharh Tariqah Muhammadiyah*, and besides them, other scholars state:

"This is the wording of al-Akmal: He said, Sheikh Abu Mansur (meaning al-Maturidi, the leader of the people of Sunnah and the master of the Hanafis) reconciled between the hadiths, stating: 'The disliked (makruh) form of embracing (mu'anaqah) is that which is done out of desire (shahwah). The author (meaning Imam Burhan al-Din al-Farghani) expressed this by his saying "under one garment," for it is a cause that leads to it. But as for embracing by way of piety and honor while wearing a shirt or a cloak, then there is no harm in it.'" 1

(These are the words of Akmaluddin Babarti) He said, Sheikh Abu Mansur (Maturidi, the Imam of Ahlus Sunnah and the leader of the Hanafis) has reconciled (the conflicting) hadiths regarding the permissibility and prohibition of embracing (mu'anaqah). He stated that the disliked embracing is that which is done out of lust. And the author (meaning Imam Burhanuddin Farghani, author of *Hidayah*) has described this as embracing in a single garment, because this can be a cause of lust. However, if embracing is done by way of virtue and honor while wearing a shirt or a cloak, there is no harm in it. (T)

And how could it be permissible to declare embracing outside the state of travel as absolutely prohibited, whereas in numerous hadiths, the Master of the World (Allah bless him and give him peace) embraced multiple times even in the aforementioned manner? Note 1.

Note 1: From here, the reasoning took another turn; A'la Hazrat (may Allah have mercy on him) presented sixteen hadiths with their references, which mention that very embracing which is for goodness, honor, and expression... far from any bad intention or elements of lust... but without the condition of travel... Therefore, from the hadiths, it is explicitly proven that embracing is undoubtedly permissible and correct not only after returning from a journey but also in other situations. And when proof of embracing is obtained from the Master of the World (Allah bless him and

give him peace) himself in all these states, what right does anyone else have to call it a "reprehensible innovation (bid'ah) and prohibited"! (Translator)

---

1 *Al-'Inayah* with *Fath al-Qadir Sharh al-Hidayah*, Book of Dislikes (Kitab al-Karahiyyah), printed by Nooria Rizvia, Sukkur, 8/458.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

इमाम फखरुद्दीन ज़ेली 'तबीनुल हक़ाएक' में, अकमलुद्दीन बाबरती 'अल-इनाया' में, शम्सुद्दीन कुहुस्तानी 'जामेउर रुमूज़' में, अफ़ंदी शेख़ज़ादा 'शरह मुल्तक़ल अबहुर' में, शेख़ मोहक़्क़िक़ देहलवी 'शरह मिश्कात' में, इमाम हाफ़िज़ुद्दीन 'शरह वाफ़ी' में, सैयदी अमीन उद्दीन अफ़ंदी 'हाशिया शरह तनवीर' में, और मौला अब्दुल ग़नी नाबलुसी 'शरह तरीक़ा मोहम्मदिया' में, और उनके अलावा अन्य विद्वान इरशाद फ़रमाते हैं:

"ये अकमल के शब्द हैं: उन्होंने कहा, शेख अबू मंसूर (यानी अल-मातुरीदी, सुन्नियों के इमाम और हनफ़ियों के सरदार) ने हदीसों के बीच समन्वय किया और कहा: 'मुआनाक़ा (गले मिलना) में नापसंद (मक़रूह) वह है जो कामवासना (शहवत) के आधार पर हो। लेखक (यानी इमाम बुरहान अल-दीन अल-फ़रग़ानी) ने इसे "एक चादर में" कहकर व्यक्त किया है, क्योंकि यह इसका कारण बन सकता है। लेकिन अगर यह नेकी और सम्मान के आधार पर हो, जबकि व्यक्ति ने कमीज़ या चोग़ा (जुब्बा) पहना हो, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है।'" 1

(ये अकमल उद्दीन बाबरती के शब्द हैं) उन्होंने फ़रमाया कि शेख़ अबू मंसूर (मातुरीदी, अहल-ए-सुन्नत के इमाम और हनफ़िया के सरदार) ने (गले मिलने के जायज़ होने और मना होने, दोनों तरह की) हदीसों में तालमेल बिठाया है। उन्होंने फ़रमाया कि मक़रूह (नापसंद) वह गले मिलना है जो शहवत (कामवासना) के तौर पर हो। और लेखक (यानी इमाम बुरहान उद्दीन फ़रग़ानी, हिदाया वाले) ने इसी को एक ही कपड़े में गले मिलने से व्यक्त किया है, क्योंकि यह शहवत का कारण हो सकता है। लेकिन अगर नेकी और सम्मान के तौर पर या जुब्बा (चोग़ा) पहने हुए गले मिलना हो, तो इसमें कोई हर्ज नहीं। (त)

और यह कैसे जायज़ होगा कि यात्रा की स्थिति के बिना गले मिलने को पूर्णतः वर्जित ठहराया जाए, जबकि अनेक हदीसों में सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने बार-बार उपरोक्त सूरत में भी गले मिलने का ज़िक्र फ़रमाया है। फ़ 1।

फ़ 1: यहाँ से तर्क ने एक दूसरा रुख अख्तियार किया; आला हज़रत (रहमतुल्लाह अलैह) ने उनके संदर्भों के साथ सोलह हदीसें पेश की हैं जिनमें उसी मुआनाक़ा (गले मिलने) का ज़िक्र है जो नेकी, सम्मान और इज़हार के तौर पर है... जो बुरी नीयत और शहवत के तत्वों से हर तरह से दूर है... मगर यात्रा के बिना है... इसलिए हदीसों से स्पष्ट रूप से यह प्रमाण मिलता है कि न केवल यात्रा से लौटने

के बाद, बल्कि अन्य स्थितियों में भी मुआनाक़ा (गले मिलना) निःसंदेह जायज़ और सही है। और जब स्वयं सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से इन तमाम स्थितियों में मुआनाक़ा का प्रमाण मिल जाता है, तो किसी दूसरे को इसे "बिदअत और नाजायज़" कहने का क्या अधिकार है! (अनुवादक)

---

1 अल-इनाया साथ में फ़तह अल-क़दीर शरह हिदाया, किताबुल कराहिया, नूरिया रज़विया सुक्कुर द्वारा मुद्रित, 8/458.

امام فخر الدین زیلعی تبیین الحقائق اور اکمل الدین بابرتی عنایہ اور شمس الدین قہستانی جامع الرموز اور آفندی شیخی زادہ شرح ملتقی الابحر اور شیخ محقق دہلوی شرح مشکوۃ اور امام حافظ الدین شرح وافی اور سیدی امین الدین آفندی حاشیہ شرح تنویر اور مولٰی عبدالغنی نابلسی شرح طریقہ محمدیہ میں، اور ان کے سوا اور علماء ارشاد فرماتے ہیں:

وھذا لفظ الاکمل ، قال وفّق الشیخ ابو منصور (یعنی الماتریدی امام اھل السنۃ وسید الحنفیۃ) بین الاحادیث فقال المکروہ من المعانقہ ما کان علی وجہ الشھوۃ وعبر عنہ المصنف (یعنی الامام برھان الدین الفرغانی) بقولہ ازارواحدٍ فانہ سبب یفضی الیھا فاما علی وجہ البر والکرامۃ اذاکان علیہ قمیص او جبۃ فلا بأس بہ 1۔

(یہ اکمل الدین بابرتی کے الفاظ ہیں) انھوں نے فرمایا شیخ ابو منصور (ماتریدی، اہل سنت کے امام اور حنفیہ کے سردار) نے (معانقہ کے جواز و منع دونوں طرح کی) حدیثوں میں تطبیق دی ہے، انھوں نے فرمایا مکروہ وہ معانقہ ہے جو بطور شہوت ہو۔ اور مصنف (یعنی امام برہان الدین فرغانی صاحب ہدایہ) نے اسی کو ایک تمہید میں معانقہ کرنے سے تعبیر کیا ہے، اس لئے کہ یہ سبب شہوت ہو سکتا ہے، لیکن نیکی اور اعزاز کے طور پر کرتا یا جبہ پہنے ہوئے معانقہ ہو تو اس میں کوئی حرج نہیں۔ (ت)

اور کیونکر روا ہوگا کہ بے حالت سفر معانقہ کو مطلقاً ممنوع ٹھہرائے حالانکہ احادیث کثیرہ میں سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے بارہا بے صورتِ مذکورہ بھی معانقہ فرمایا ف ۱۔

ف ۱: یہاں سے استدلال نے ایک دوسرا رنگ اختیار کیا، اعلیحضرت رحمہ اللہ تعالیٰ نے سولہ احادیث ان کے حوالوں کے ساتھ پیش فرمائی ہیں جن میں اُسی معانقہ کا ذکر ہے جو نیکی، اعزاز اور اظہار کے طور پر ہے--- خرابی نیت اور مواد شہوت سے ہر طرح دور ہے--- مگر بے حالت سفر ہے--- لہٰذا احادیث سے صراحتہً یہ ثبوت فراہم ہو جاتا ہے کہ صرف قدومِ سفر کے بعد ہی نہیں بلکہ دیگر حالات میں بھی معانقہ بلاشبہ جائز ودرست ہے۔ اور جب خود سرورِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے ان تمام احوال میں معانقہ کا ثبوت حاصل ہو جاتا ہے تو کوئی دوسرا اسے "بدعت وناروا" کہنے کا کیا حق رکھتا ہے! (مترجم)

---

1 العنایہ مع فتح القدیر شرح ہدایہ کتاب الکراھیۃ مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۸ / ۴۵۸

Fatawa Rizvia, Volume 8

Hadith 1: Bukhari, Muslim, Nasai, and Ibn Majah narrated through various chains from our master Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). These words are a compilation from them; some parts of the hadith are included in others. (T)

Arabic Text	Urdu Translation
The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) went out and sat in the courtyard of Fatima's (may Allah be pleased with her) house. He said, 'Call Hasan bin Ali.' She delayed him for a while, and I thought she was putting a bead-necklace on him or bathing him. Then he came running, with a bead-necklace around his neck. The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) spread his hands like this, and Hasan spread his hands like this until they embraced each other. Then the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: O Allah, I love him, so love him and love those who love him.	That is, once the Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) visited the house of Lady Batul Zahra (may Allah be pleased with her) and called for the master Imam Hasan (may Allah be pleased with him). Lady Zahra took some time in sending him; I thought she might be putting a necklace on him or bathing him. Meanwhile, he came running, with a necklace around his neck. The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) extended his blessed hands. Seeing the Prophet, Imam Hasan also extended his hands, until they embraced each other. The Prophet hugged him and prayed: 'O Allah! I love him, so love him, and keep him a friend who keeps him a friend.' Peace and blessings of Allah be upon him, his grandfather, and his progeny.

Hadith 2: Narrated from Imam Hasan (may Allah be pleased with him) in Sahih Bukhari:

Arabic Text	Urdu Translation
The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) used to take my hand and seat me on one of his thighs and seat Husayn on his other thigh, then he would embrace us both and say: O Lord, I have mercy on them, so have mercy on them.	The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) would hold my hand and seat me on one thigh and seat Imam Husayn on the other thigh, and hug us, then pray: 'O Allah! I have mercy on them, so have mercy on them.'

Hadith 3: In the same source, it is narrated from Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them):

1. Sahih Muslim, Chapter on the Virtue of Hasan and Husayn, printed in Rawalpindi, 2/282.
2. Sahih Bukhari, Chapter on Placing a Child in the Lap, printed in Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/888.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

हदीस 1: बुखारी, मुस्लिम, नसाई और इब्न माजा ने विभिन्न माध्यमों से हमारे सरदार अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है। ये शब्द उनके संग्रह से हैं, हदीस के कुछ भाग दूसरों में शामिल हैं। (त)

अरबी पाठ

नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बाहर निकले और फातिमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) के घर के आंगन में बैठ गए। आपने फरमाया, 'हसन बिन अली को बुलाओ।' उन्होंने उन्हें कुछ देर रोक लिया, तो मैंने सोचा कि शायद वे उन्हें माला पहना रही होंगी या नहला रही होंगी। फिर वह दौड़ते हुए आए, उनके गले में माला थी। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपने हाथ इस तरह फैलाए, और हसन ने भी अपने हाथ इस तरह फैलाए, यहाँ तक कि दोनों एक-दूसरे से लिपट गए। फिर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने दुआ की: ऐ अल्लाह! मैं इससे प्यार करता हूँ, तो तू भी इससे प्यार कर और उससे भी प्यार कर जो इससे प्यार करे।

उर्दू अनुवाद

यानी एक बार सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हज़रत बतूल ज़हरा (रज़ियल्लाहु अन्हा) के मकान पर तशरीफ़ ले गए और सय्यदना इमाम हसन (रज़ियल्लाहु अन्हु) को बुलाया। हज़रत ज़हरा ने भेजने में कुछ देर की, मैंने समझा उन्हें हार पहना रही होंगी या नहला रही होंगी, इतने में दौड़ते हुए हाज़िर आए, गले में हार पड़ा था, सय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने दस्त-ए-मुबारक बढ़ाए, हुज़ूर को देख कर इमाम हसन ने भी हाथ फैलाए, यहाँ तक कि एक-दूसरे को लिपट गए, हुज़ूर ने गले लगा कर दुआ की: 'इलाही! मैं इसे दोस्त रखता हूँ तो इसे दोस्त रख और जो इसे दोस्त रखे उसे दोस्त रख।' सल्लल्लाहु अलैहि व अला जद्दिही व बारक वसल्लम।

हदीस 2: सहीह बुखारी में इमाम हसन (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मरवी है:

अरबी पाठ

नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मेरा हाथ पकड़कर एक रान पर मुझे बैठा लेते और दूसरी रान पर हुसैन को बैठाते, फिर हम दोनों को सीने से लगा लेते और फरमाते: ऐ रब्ब! मैं इन पर रहम करता हूँ, तो तू भी इन पर रहम फरमा।

उर्दू अनुवाद

नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मेरा हाथ पकड़ कर एक रान पर मुझे बैठा लेते और दूसरी रान पर इमाम हुसैन को, और हमें लिपटा लेते फिर दुआ फरमाते: 'इलाही! मैं इन पर रहम करता हूँ तो इन पर रहम फरमा।'

हदीस 3: इसी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है:

1. सहीह मुस्लिम, बाबू फ़ज़लिल हसनी वल हुसैनी, मतबुआ रावलपिंडी, 2/282
2. सहीह बुखारी, बाबू वजअि़स सबिय्यी फ़िल हिज्रि, मतबुआ क़दीमी कुतुब खाना कराची, 1/888

पेज 609/673

حدیث اول : بخاری و مسلم و نسائی و ابن ماجہ بطرق عدیدہ سیدنا ابوہریرہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی و ہذا لفظ مؤلف منھا دخل حدیث بعضھم فی بعض (آئندہ الفاظ ان متعدد روایات کا مجموعہ ہے، بعض کی احادیث بعض میں داخل ہیں۔ ت)

عربی عبارت	اردو ترجمہ
قال خرج النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فجلس بفناء بیت فاطمۃ رضی اللہ تعالٰی عنھا فقال أدعی الحسن بن علی فحبستہ شیئا فظننت انھا تلبسہ سخابا او تغسلہ فجاء یشتد وفی عنقہ السخاب فقال النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم بیدہ ھکذا فقال الحسن بیدہ ھکذا حتی اعتنق کل منھما صاحبہ فقال صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اللھم انی أحبّہ، فَأَحِبَّہُ، وَأَحِبَّ مَنْ یُحِبُّہُ۔	یعنی ایک بار سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم حضرت بتول زہرا رضی اللہ تعالٰی عنھا کے مکان پر تشریف لے گئے اور سیدنا امام حسن رضی اللہ تعالٰی عنہ کو بلایا، حضرت زہرا نے بھیجنے میں کچھ دیر کی، میں سمجھا انہیں ہار پہناتی ہوں گی یا نہلارہی ہوں گی، اتنے میں دوڑتے ہوئے حاضر آئے، گلے میں ہار پڑا تھا، سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے دست مبارک بڑھائے حضور کو دیکھ کر امام حسن نے بھی ہاتھ پھیلائے، یہاں تک کہ ایک دوسرے کو لپٹ گئے، حضور نے گلے لگا کر دعا کی: الٰہی! میں اسے دوست رکھتا ہوں تو اسے دوست رکھ اور جو اسے دوست رکھے اسے دوست رکھ۔ صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلی جدہ وبارک وسلم۔

حدیث دوم : صحیح بخاری میں امام حسن رضی اللہ تعالٰی عنہ سے مروی :

عربی عبارت	اردو ترجمہ
کان النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم یا خذ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میرا ہاتھ پکڑ کر ایک ران	
بیدی فیقعدنی علی فخذہ ویقعد الحسین علی	پر مجھے بٹھا لیتے اور دوسری ران پر امام حسین کو،
فخذہ الاخری ویضمنا ثم یقول رب انی	اور ہمیں لپٹا لیتے پھر دعا فرماتے: الہی! میں ان پر
ارحمھما فارحمھما 2	رحم کرتا ہوں تو ان پر رحم فرما۔

حدیث سوم : اسی میں حضرت عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالیٰ عنہما سے روایت ہے :

1 الصحیح للمسلم باب فضل الحسن والحسین مطبوعہ راولپنڈی ۲/ ۲۸۲ 2 الصحیح البخاری باب وضع الصبی فی الحجر مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/ ۸۸۸

Volume 8, Fatawa Ridawiyya

[Table Content] Arabic: ضَمَّنِي النبي صلى الله تعالى عليه وسلم الى صدره فقال اللهم علمه الحكمة 1۔ Urdu: The Master of the World (may peace and blessings of Allah be upon him) "embraced me" then prayed: "O Allah! Grant him the knowledge of wisdom."

Fourth Hadith: Imam Ahmad narrates from Ya'la (may Allah be pleased with him) in his Musnad: [Table Content] Arabic: ان حسنًا وحسينًا رضی اللہ تعالٰی عنهمًا يستبقاً الى رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیه وسلم فضمّهما اليه 2۔ Urdu: Once both the sons (grandsons Al-Hasan and Al-Husain) came running towards the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him). The Prophet "embraced" both of them.

Fifth Hadith: In Jami' al-Tirmidhi, there is a narration from Anas (may Allah be pleased with him): [Table Content] Arabic: سُئِلَ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیه وسلم ای اهل بيتك احب اليك قال الحسن والحسين وكان يقول لفاطمة ادعی لی ابنی فيشمهما ويضمهما 3۔ Urdu: The Master of the World (may peace and blessings of Allah be upon him) was asked who among his family members he loved most. He replied: "Hasan and Husain." And the Holy Prophet would call for both sons from Lady Zahra and "press them to his chest" and smell their fragrance. May Allah's peace, blessings and salutations be upon him and them.

Sixth Hadith: Imam Abu Dawud narrates in his Sunan from Hazrat Usaid bin Hudair (may Allah be pleased with him): [Table Content] Arabic: بينما هو يحدث القوم وكان فيه مزاحٌ بينما يضحكهم فطعنه النبي صلی اللہ تعالی علیه وسلم في خاصرته بعود فقال اصبرني قال اصطبر قال ان عليك قميصًا وليس عليّ قميص فوضع النبي صلی اللہ تعالٰی علیه وسلم عن قميصه Urdu: While he was talking to the people, and he had a humorous nature, he was making the people laugh, when the Master of the World (may peace and blessings of Allah be upon him) poked a stick into his side. He submitted, "Grant me retribution." The Prophet said, "Take it." He submitted, "O Prophet, you are wearing a shirt while I was bare-chested." The Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) lifted his shirt...

---

1. Al-Sahih al-Bukhari, Virtues of Ibn Abbas, Published by Qadimi Kutub Khana, Karachi, 1/531.
2. Musnad Ahmad bin Hanbal, Virtues of Ibn Abbas, Published by Dar al-Fikr, Beirut, 4/172.
3. Jami' al-Tirmidhi, Virtues of Al-Hasan and Al-Husain, Published by Noor Muhammad Karkhana Tijarat Kutub, Karachi, p. 539-540.

जिल्द अष्टम (खंड 8), फतावा रज़विया

[तालिका सामग्री] अरबी: ضَمَّنِي النبي صلى الله تعالى عليه وسلم الى صدره فقال اللهم علمه الحكمة 1. उर्दू अनुवाद: सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने मुझे "सीने से लगाया" फिर दुआ फरमाई: "इलाही! इसे हिकमत (बुद्धिमत्ता) सिखा दे।"

हदीस चौथी: इमाम अहमद अपनी मुसनद में य'ला रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत करते हैं: [तालिका सामग्री] अरबी: ان حسنًا وحسينًا رضى اللہ تعالٰی عنهمًا يستبقاً الى رسول اللہ صلى اللہ تعالى عليه وسلم فضمّهما اليه 2. उर्दू अनुवाद: एक बार दोनों साहबज़ादे (हसन और हुसैन) हुज़ूर अकदस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के पास आपस में दौड़ लगाते हुए आए, हुज़ूर ने दोनों को "लिपटा लिया"।

हदीस पांचवीं: जामे तिर्मिज़ी में अनस रज़ियल्लाहु अन्हु से हदीस है: [तालिका सामग्री] अरबी: سُئِلَ رسول اللہ صلى اللہ تعالى عليه وسلم اى اهل بيتك احب اليك قال الحسن والحسين وكان يقول لفاطمة ادعى لى ابنى فيشمهما ويضمهما 3. उर्दू अनुवाद: सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पूछा गया कि हुज़ूर को अपने अहले बैत में सबसे ज़्यादा प्यारा कौन है? फरमाया: "हसन और हुसैन।" और हुज़ूर दोनों साहबज़ादों को हज़रत ज़हरा से बुलवाकर "सीने से लगा लेते" और उनकी खुशबू सूंघते, सल्लल्लाहु तआला अलैहि व अलैहिम व बारक व सल्लम।

हदीस छठी: इमाम अबू दाऊद अपनी सुनन में हज़रत उसैद बिन हुज़ैर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत करते हैं: [तालिका सामग्री] अरबी: بينما هو يحدث القوم وكان فيه مزاحٌ بينما يضحكهم فطعنه النبي صلى اللہ تعالى عليه وسلم في خاصرته بعود فقال اصبرني قال اصطبر قال ان عليك قميصًا وليس عليّ قميص فوضع النبي صلى اللہ تعالٰی عليه وسلم عن قميصه उर्दू अनुवाद: उस दौरान जब वो लोगों से बातें कर रहे थे और उनके मिज़ाज में मज़ाक था, लोगों को हंसा रहे थे कि सैयदे आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने लकड़ी उनके पहलू में चुभोई, उन्होंने अर्ज़ की: "मुझे बदला (किसास) लेने दीजिये", फरमाया: "ले लो"। अर्ज़ की: "हुज़ूर! आप तो कुर्ता पहने हैं और मैं नंगा था"। हुज़ूर अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने कुर्ता उठाया...

---

1. सहीह अल-बुखारी, मनाकिब इब्ने अब्बास, प्रकाशित: कदीमी कुतुब खाना, कराची, 1/531
2. मुसनद अहमद बिन हंबल, मनाकिब इब्ने अब्बास, प्रकाशित: दारुल फिक्र बेरूत, 4/172

3. जामे तिर्मिज़ी, मनाकिबुल हसन वल हुसैन, प्रकाशित: नूर मुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब कराची, पृ. 539-540

पृष्ठ 610/673

جلد ہشتم، فتاویٰ رضویہ

ضَمَّنِي النبي صلى الله تعالى عليه وسلم الى صدره فقال اللهم علمه الحكمة 1۔ | سیدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے مجھے "سینے سے لپٹایا" پھر دُعا فرمائی: الٰہی! اسے حکمت سکھادے۔

حدیثِ چہارم: امام احمد اپنی مُسند میں یعلٰی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے راوی: ان حسنًا وحسینًا رضی اللہ تعالٰی عنھمًا یستبقاً الی رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم فضمّھما الیہ 2۔ | ایک بار دونوں صاحبزادے حضورِ اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کے پاس آپس میں دوڑ کرتے ہوئے آئے حضور نے دونوں کو "لپٹالیا"

حدیثِ پنجم: جامع ترمذی میں انس رضی اللہ تعالٰی عنہ سے حدیث ہے: سُئِلَ رسول اللہ صلی اللہ تعالی علیہ وسلم ای اھل بیتك احب الیك قال الحسن والحسین وکان یقول لفاطمۃ ادعی لی ابنی فیشمھما ویضمھما 3۔ | سیدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے پوچھا گیا حضور کو اپنے اہل بیت میں زیادہ پیاراکون ہے؟ فرمایا: حسن اور حسین۔ اور حضور دونوں صاحبزادوں کو حضرت زہرا سے بلوا کر "سینے سے لگالیتے" اور ان کی خوشبو سونگھتے، صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلیہم و بارک وسلم۔

حدیثِ ششم: امام ابوداؤد اپنی سُنن میں حضرت اُسید بن حضیر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روای: بینما ھو یحدث القوم وکان فیہ مزاحٌ بینما یضحکھم فطعنہ النبي صلى الله تعالى عليه وسلم في خاصرته بعود فقال اصبرني قال اصطبر قال ان علیك قمیصًا ولیس علیّ قمیص فوضع النبي صلى الله تعالٰی علیه وسلم عن قمیصه | اس اثنا میں کہ وہ باتیں کر رہے تھے اور ان کے مزاج میں مزاح تھا، لوگوں کو ہنسا رہے تھے کہ سیدِ عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے لکڑی ان کے پہلو میں چھوٹی، انھوں نے

عرض کی مجھے بدلہ دیجئے، فرمایا: لے۔ عرض کی: حضور تو کُرتہ پہنے ہیں اور میں ننگا تھا۔ حضورِ اکرم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے کرتا اُٹھایا

---

1 الصحیح البخاری مناقب ابن عباس مطبوعہ قدیمی کتب خانہ کراچی ۱/۵۳۱ 2 مسند احمد بن حنبل مناقب ابن عباس مطبوعہ دارالفکر بیروت ۴/۱۷۲ 3 جامع ترمذی مناقب الحسن والحسین مطبوعہ نور محمد کارخانہ تجارت کتب کراچی ص۴۰-۵۳۹

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

...so he embraced him and began to kiss his side, saying: 'I only intended this, O Messenger of Allah!' - 1 (Translation: He took the Holy Prophet (PBUH) into his 'arms' and started kissing the sacred flank, then said: O Messenger of Allah! This was my only intention.)

Verse: The hearts of lovers are seekers of excuses. (The hearts of lovers look for excuses.) May Allah the Almighty send peace and blessings upon him and upon all those who love him.

Hadith 7: In the same source, it is narrated from Hazrat Abu Dharr (may Allah be pleased with him): Arabic: I never met him (the Messenger of Allah, peace and blessings of Allah be upon him) but he shook hands with me. One day he sent for me when I was not with my family. When I came and was informed of it, I went to him. He was on a couch. He embraced me, and that was even better and more excellent. - 2 Urdu: Whenever I presented myself to the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), he would always shake hands. One day he sent a man to call me, but I was not at home. When I returned and was informed, I presented myself. The Holy Prophet was seated on a couch; he 'embraced me' which was even more excellent and fine.

Hadith 8: Abu Ya'la narrates from Umm al-Mu'minin al-Siddiqah (may Allah be pleased with her): Arabic: She said, 'I saw the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) embrace Ali and kiss him, saying: May my father be sacrificed for this unique martyr.' - 3 Urdu: I saw the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) as he 'embraced' Mawla Ali and kissed him, saying: May my father be sacrificed for this unique martyr.

Hadith 9: Tabarani Kabir and Ibn Shahin in the book 'As-Sunnah' narrate from Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both): Arabic: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and his companions entered a pond (ghadir). He said: Let every man swim towards his companion. So every man among them swam... Urdu: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and his companions went to a pond. The Prophet (PBUH) instructed: Let every person swim towards his companion. Everyone...

1. Sunan Abi Dawud, Chapter on Kissing the Body (Book of Etiquette), published by H.M. Saeed Company Karachi 2/393.

2. Sunan Abi Dawud, Chapter on Embracing (Book of Etiquette), published by Matba Mujtabai Delhi 2/352.
3. Musnad Abi Ya'la, Musnad Aishah, published by Muassasat Ulum al-Quran Beirut 4/318.

फतावा रिज़विया, जिल्द आठवीं

...तो उसने उन्हें गले लगा लिया और उनकी कोख (पार्श्व) चूमने लगा। उसने कहा: 'ऐ अल्लाह के रसूल, मेरा बस यही इरादा था!' - 1 (अनुवाद: उन्होंने हुज़ूर को अपनी 'आगोश' में लिया और मुक़द्दस कोख को चूमना शुरू किया, फिर अर्ज़ की: ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा यही मक़सद था।)

मिसरा: प्रेमियों के दिल बहाने तलाशने वाले होते हैं। (आशिकों के दिल बहाना तलाश करने वाले होते हैं।) अल्लाह ताला उन पर और उनसे मुहब्बत करने वालों पर दरूद ओ सलाम भेजे।

हदीस 7: इसी में हज़रत अबू ज़र (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत है: अरबी: मैं जब भी हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से मिला, उन्होंने हमेशा मुझसे मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) किया। एक दिन उन्होंने मुझे बुलाने के लिए आदमी भेजा जबकि मैं अपने परिवार के पास नहीं था। जब मैं आया और मुझे पता चला, तो मैं उनके पास गया। वह एक तख़्त पर विराजमान थे। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया, और वह (मुसाफ़ा से भी) ज़्यादा उम्दा और बेहतर था। - 2 उर्दू: मैं हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की खिदमत में हाज़िर होता तो हुज़ूर हमेशा मुसाफ़ा फ़रमाते। एक दिन मेरे बुलाने को आदमी भेजा मैं घर में न था, आया तो ख़बर पाई, हाज़िर हुआ, हुज़ूर तख़्त पर जलवा फ़रमा थे 'गले से लगा लिया' तो ज़्यादा ज़य्यद और नफ़ीस तर था।

हदीस 8: अबू यला उम्मुल मोमिनीन सिद्दीक़ा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रावी हैं: अरबी: उन्होंने कहा, 'मैंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को देखा कि उन्होंने अली को गले लगाया और उन्हें चूमा, और कह रहे थे: मेरे पिता इस अनोखे शहीद पर कुर्बान हों।' - 3 उर्दू: मैंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को देखा हुज़ूर ने मौला अली को 'गले लगाया' और प्यार किया, और फ़रमाते थे मेरा बाप निसार इस वहीद शहीद पर।

हदीस 9: तबरानी कबीर और इब्न शाहीन किताब 'अस-सुन्ना' में अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं: अरबी: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और उनके सहाबा एक तालाब (ग़दीर) में दाखिल हुए। आपने फ़रमाया: हर आदमी अपने साथी की तरफ तैरे।

तो उनमें से हर आदमी तैरा... उर्दू: रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और हुज़ूर के सहाबा एक तालाब में तशरीफ़ ले गए, हुज़ूर ने इर्शाद फ़रमाया: हर शख़्स अपने यार की तरफ तैरे। सब ने...

1. सुनन अबू दाऊद, बाब क़िबलातुल जसद (किताबुल अदब), एच.एम. सईद कंपनी कराची 2/393।
2. सुनन अबू दाऊद, बाब फ़िल मुआनाक़ा (किताबुल अदब), मतबा मुजतबाई दिल्ली 2/352।
3. मुसनद अबू यला, मुसनद आयशा, मुअस्ससत उलूम अल-कुरान बेरुत 4/318।

पेज 611 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

فاحتضنہ و جعل یقبل کشحہ قال انما اردت ھذا یا رسول اللہ ۔ 1 (انھوں نے حضور کو اپنی "کنار میں لیا" اور تھیگہ اقدس کو چومنا شروع کیا پھر عرض کی : یا رسول اللہ ! میرا یہی مقصود تھا۔)

ع دلِ عشاق حیلہ گر باشد (عاشقوں کے دل بہانہ تلاش کرنے والے ہوتے ہیں) صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلٰی کل من احبہ وبارک وسلم۔

حدیث ہفتم: اسی میں حضرت ابوذر رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روایت ہے: مالقیتہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم قط الا صافحنی وبعث الی ذات یوم ولم اکن فی اھلی فلما جئت اخبرت بہ فاتیتہ وھو علی سریر فالتزمنی فکانت تلك اجود واجود ۔ 2 میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کی خدمت میں حاضر ہوتا تو حضور ہمیشہ مصافحہ فرماتے۔ ایک دن میرے بلانے کو آدمی بھیجا میں گھر میں نہ تھا، آیا تو خبر پائی، حاضر ہوا، حضور تخت پر جلوہ فرما تھے " گلے سے لگا لیا " تو زیادہ جید اور نفیس تر تھا۔

حدیث ہشتم: ابو یعلٰی اُم المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالٰی عنہا سے راوی: قالت رأیت النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم التزم علیا وقبلہ، وھو یقول بابی الوحید الشھید ۔ 3 میں نے نبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو دیکھا حضور نے مولٰی علی کو " گلے لگایا " اور پیار کیا، اور فرماتے تھے میرا باپ نثار اس وحید شہید پر۔

حدیث نہم: طبرانی کبیر اور ابن شاہین کتاب السنۃ میں عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے روایت کرتے ہیں: دخل رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم واصحابہ غدیرا فقال لیسبح کل رجل الی

صاحبہ فسبح کل رجل منھم رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور حضور کے صحابہ ایک تالاب میں تشریف لے گئے، حضور نے ارشاد فرمایا : ہر شخص اپنے یار کی طرف تیرے۔ سب نے

1 سنن ابو داؤد باب قبلۃ الجسد (کتاب الادب) مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/ ۳۹۳ 2 سنن ابو داؤد باب فی المعانقۃ (کتاب الادب) مطبوعہ مطبع مجتبائی دہلی ۲/ ۳۵۲ 3 مسند ابویعلی مسند عائشہ مطبوعہ موسسۃ علوم القرآن بیروت ۴/ ۳۱۸

...to his companion until only the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) and Abu Bakr remained. The Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) walked towards Abu Bakr until he embraced him and said: "If I were to take a bosom friend, I would have taken Abu Bakr as a bosom friend, but he is my companion." (1) [Urdu Translation]: It was done like this until only the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) and Abu Bakr Siddiq remained. The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) walked towards Siddiq and embraced him, saying: "If I were to make anyone a bosom friend, I would have made Abu Bakr one, but he is my companion." Peace and blessings of Allah be upon him and upon his companion.

Tenth Hadith: Khatib Baghdadi narrates from Hazrat Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with them both): [Arabic]: He said: We were with the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) and he said: "A man will appear before you after whom Allah has not created anyone better or more virtuous, and he will have intercession like the intercession of the Prophets." We remained there until Abu Bakr appeared, so the Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) stood up, kissed him, and embraced him. (2) [Urdu Translation]: We were present in the holy service of the luminous Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). He said: "At this moment, such a person will appear before you that after me, Allah Almighty has not made anyone better or more honorable than him, and his intercession will be like the intercession of the Prophets." We were still present when Abu Bakr Siddiq appeared. The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) stood up, kissed Siddiq, and "embraced him."

Eleventh Hadith: Hafiz Umar bin Muhammad Mulla in his Sira narrates from Hazrat Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them both): [Arabic]: He said: I saw the Messenger of Allah (may Allah's peace and blessings be upon him) standing with Ali bin Abi Talib when Abu Bakr arrived. The Prophet (may Allah's peace and blessings be upon him) shook his hand, embraced him, and kissed his mouth. Ali said: "Do you kiss the mouth of Abu Bakr?" He (peace and blessings of Allah be upon him) said: "O Abu al-Hasan, (his) status..." [Urdu Translation]: I saw the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) standing with the Commander of the Faithful Ali (may Allah honor his face). Meanwhile, Abu Bakr Siddiq (may Allah be pleased with him) arrived. The Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) shook hands

with him and "embraced him" and kissed his mouth. Mawla Ali (may Allah honor his face) asked: "O Messenger of Allah..."

Footnotes: 1. Tabarani Kabir, Hadith 276 & 11938, published by Al-Maktaba al-Faysaliyya, Beirut, 11/261 & 339. 2. Tarikh Baghdad, biography 1141, Muhammad bin Abbas Abu Bakr al-Qass, published by Dar al-Kutub al-Arabiyya, Beirut, 3/24-123.

फतावा रज़विया जिल्द 8

...अपने साथी के पास यहाँ तक कि केवल अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और अबू बक्र रह गए। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) अबू बक्र की ओर चले यहाँ तक कि उन्हें गले लगा लिया और कहा: "यदि मैं किसी को अपना खलील (परम मित्र) बनाता, तो अबू बक्र को बनाता, लेकिन वह मेरा साथी है।" (1) [उर्दू अनुवाद]: ऐसा ही किया गया यहाँ तक कि केवल अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और अबू बक्र सिद्दीक़ बाकी रहे। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) सिद्दीक़ की तरफ पैदल चलकर गए और उन्हें गले लगाकर फरमाया: "अगर मैं किसी को खलील बनाता तो अबू बक्र को बनाता, लेकिन वह मेरा यार है।" अल्लाह तआला उन पर और उनके साथी पर दुरूद व सलाम भेजे।

दसवीं हदीस: खतीब बगदादी हजरत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं: [अरबी]: उन्होंने कहा: हम नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास थे तो उन्होंने फरमाया: "तुम्हारे सामने एक ऐसा व्यक्ति प्रकट होगा जिसके बाद अल्लाह ने उससे बेहतर या अधिक गुणी किसी को पैदा नहीं किया, और उसकी शफ़ाअत (सिफारिश) नबियों की शफ़ाअत के समान होगी।" हम वहीं थे कि अबू बक्र प्रकट हुए, तो नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) खड़े हो गए, उन्हें चूमा और उन्हें गले लगा लिया। (2) [उर्दू अनुवाद]: हम हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ख़िदमत-ए-अकदस में हाज़िर थे, इर्शाद फरमाया: "इस वक्त तुम पर वह शख्स चमकेगा कि अल्लाह तआला ने मेरे बाद उससे बेहतर और बुज़ुर्गतर किसी को नहीं बनाया और उसकी शफ़ाअत अंबिया की शफ़ाअत के मानिंद होगी।" हम हाज़िर ही थे कि अबू बक्र सिद्दीक़ नज़र आए। सैय्यद-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कयाम फरमाया और सिद्दीक़ को प्यार किया और "गले लगाया।"

ग्यारहवीं हदीस: हाफ़िज़ उमर बिन मुहम्मद मुल्ला अपनी सीरत में हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत करते हैं: [अरबी]: उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को अली बिन अबी तालिब के साथ खड़े देखा जब अबू बक्र आए। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनसे मुसाफहा किया, उन्हें गले लगाया और उनके मुँह पर चूमा। अली ने कहा: "क्या आप अबू बक्र के मुँह को चूमते हैं?" उन्होंने (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) फरमाया: "ऐ अबू अल-हसन, (उनका) मर्तबा..." [उर्दू अनुवाद]: मैंने हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को अमीरुल मोमिनीन अली (कर्रमल्लाहु तआला वज्हहु) के साथ खड़े देखा, इतने में अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु तआला अन्हु) हाज़िर हुए। हुज़ूर पुरनूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनसे मुसाफ़हा

फ़रमाया और "गले लगाया" और उनके दहन (मुँह) पर बोसा दिया। मौला अली (कर्रमल्लाहु तआला वज्हहु) ने अर्ज़ की: "क्या हुज़ूर..."

पाद टिप्पणियाँ: 1. तबरानी कबीर हदीस 276 और 11938 मप्रूआ अल-मकतबतुल फैसलिया बैरूत 11/261 और 339 2. तारीख़ बग़दाद तर्जुमा 1141 मुहम्मद बिन अब्बास अबू बक्र अल-क़ास मप्रूआ दारुल कुतुबुल अरबीया बैरूत 3/24-123

पृष्ठ 612/673

الی صاحبہ حتی بقی رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وابوبکر فسبّح رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم الی ابی بکر حتی اعتنقہ فقال لو کنت متخذا خلیلا لاتخذت ابا بکر خلیلا ولکنہ صاحبی ۱ ایسا ہی کیا یہاں تک کہ صرف رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور ابو بکر صدیق باقی رہے، رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم صدیق کی طرف پیر کے تشریف لے گئے اور انھیں گلے لگا کر فرمایا: میں کسی کو خلیل بناتا تو ابو بکر کو بناتا لیکن وہ میرا یار ہے۔ صلی اللہ تعالٰی علیہ وعلیٰ صاحبہ وبارک وسلم۔

حدیث دہم *: خطیب بغدادی حضرت جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہما سے راوی: قال کنا عند النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فقال یطلع علیکم رجل لم یخلق اللہ بعدی احدا خیرا منہ ولا افضل ولہ شفاعۃ مثل شفاعۃ النبیین فما برحنا حتی طلع ابوبکر فقام النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فقبلہ والتزمہ ۲۔ ہم خدمت اقدس حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں حاضر تھے، ارشاد فرمایا: اس وقت تم پر وہ شخص چمکے گا کہ اللہ تعالٰی نے میرے بعد اس سے بہتر و بزرگ تر کسی کو نہ بنایا اور اس کی شفاعت شفاعت انبیاء کے مانند ہوگی، ہم حاضر ہی تھے کہ ابو بکر صدیق نظر آئے سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے قیام فرمایا اور صدیق کو پیار کیا اور "گلے لگایا"

حدیث یازدہم ": حافظ عمر بن محمد ملا اپنی سیرت میں حضرت عبداللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما سے راوی: قال رأیت رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم واقفاً مع علی بن ابی طالب اذا اقبل ابوبکر فصافحہ النبی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم وعانقہ، و قبّل فاہ فقال علی اتقبل فاہ ابی بکر فقال صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم یا ابا الحسن منزلۃ میں نے حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم کو امیر المومنین علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ کے ساتھ کھڑے دیکھا اتنے میں ابو بکر صدیق رضی اللہ تعالٰی

عنہ حاضر ہوئے، حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ان سے مصافحہ فرمایا اور "گلے لگایا" اور ان کے دہن پر بوسہ دیا۔ مولیٰ علی کرم اللہ تعالٰی وجہہ نے عرض کی: کیا حضور

۱ طبرانی کبیر حدیث ۲۷۶ و ۱۱۹۳۸ مطبوعہ المکتبۃ الفیصلیۃ بیروت ۱۱/ ۲۶۱ و ۳۳۹ ۲ تاریخ بغداد ترجمہ ۱۱۴۱ محمد بن عباس ابو بکر القاص مطبوعہ دارالکتب العربیہ بیروت ۳/ ۲۴-۱۲۳

Fatawa Razawiya Volume Eight

Abu Bakr is to me as I am to my Lord.[1] - They kiss Abu Bakr's mouth? He said: O Abul Hasan! Abu Bakr's status with me is like my status before my Lord.

Twelfth Hadith[12]: Ibn Abd Rabbih narrated briefly in the book 'Bahjat al-Majalis' and in detail in 'Riyadh al-Nadhrah' from the Mother of the Believers Siddiqah (may Allah be pleased with her). It details how Siddiq-e-Akbar (may Allah be pleased with him) proclaimed Islam in its early days, fought against the disbelievers, and received a severe blow on his blessed face. Even in that severe pain, his concern was for the Holy Prophet, the Master of the Beloved (peace and blessings of Allah be upon him). The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) was staying at Dar al-Arqam, and Siddiq-e-Akbar requested his mother to take him to the service of the Holy Prophet; this is narrated in detail. This Hadith is mentioned in our book 'Matla' al-Qamarayn fi Abana Sabqat al-Umarayn' (1297 AH). At the end of it, it says:

"Until the movement of the people ceased and they were still, she went out with him, he leaning on them until she brought him to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him). He fell upon him and kissed him, and the Muslims fell upon him, and he (the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him) felt a severe tenderness for him."[2] - The Hadith. Meaning, when the commotion ceased and people were asleep, his mother Umm al-Khair and the sister of Hazrat Farooq-e-Azam, Umm Jamil (may Allah be pleased with them both), took him. Due to weakness, he was leaning on both of them until they presented him in the holy presence. As soon as he saw, he "fell upon the candle of prophethood like a moth" (then kissed the Prophet), and the companions fell on him out of extreme love. The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) showed great tenderness towards them.

Thirteenth Hadith[13]: Hafiz Abu Sa'id in 'Sharaf al-Mustafa' (peace and blessings of Allah be upon him) narrates from Anas (may Allah be pleased with him):

"He said, the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) climbed the pulpit then said: 'Where is Uthman bin Affan?' So he jumped up and said: 'I am here.'" The Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him) was seated on the pulpit, then asked: "Where is Uthman?" Uthman (may Allah be pleased with him) rose restlessly and submitted: "Master! I am here."

[1] Sirat Hafiz Umar bin Muhammad Mulla [2] Al-Riyadh al-Nadhrah, mention of Umm al-Khair, published by Chishti Kutub Khana Faisalabad, 1/76 Page 613 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

अबू बक्र मेरे लिए वैसा ही है जैसे मैं अपने रब के लिए हूँ।[1] - वे अबू बक्र का मुँह चूमते हैं? फ़रमाया: ऐ अबुल हसन! अबू बक्र का मर्तबा मेरे यहाँ वैसा ही है जैसा मेरा मर्तबा मेरे रब के हुज़ूर।

बारहवीं हदीस[12]: इब्ने अब्द रब्बिही ने किताब 'बहजतुल मजालिस' में संक्षेप में और 'रियाज़ुन नज़रा' में उम्मुल मोमिनीन सिद्दीका (रज़ियल्लाहु अन्हा) से विस्तार से रिवायत की है। सिद्दीक-ए-अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का इस्लाम के शुरुआती दौर में इस्लाम का इज़हार करना, काफ़िरों से जंग करना, और उनके मुबारक चेहरे पर सख्त चोट आना, उस सख्त सदमे में भी हुज़ूर अकदस सैय्यदुल महबूबीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का ख्याल रहना, हुज़ूर पुर नूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) दार-ए-अरकम में तशरीफ़ फ़रमा थे, अपनी माँ से हुज़ूर की खिदमत में ले चलने की दरख्वास्त करना विस्तार से वर्णित है। यह हदीस हमारी किताब 'मत्लाउल कमरैन फी अबाना सबक़तल उमरैन' (१२९७ हिजरी) में ज़िक्र है, इसके आखिर में है:

"यहाँ तक कि जब लोगों की हलचल थम गई और वे शांत हो गए, तो वह उनके साथ निकलीं, वह उन पर सहारा लिए हुए थे यहाँ तक कि उन्हें नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास ले आईं। वह उन पर गिर पड़े और उन्हें चूमा, और मुसलमान उन पर गिर पड़े, और नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) उनके लिए बहुत भावुक हो गए।"[2] - हदीस। यानी जब हलचल बंद हो गई और लोग सो रहे थे, उनकी माँ उम्मुल खैर और हज़रत फ़ारूक़-ए-आज़म की बहन उम्म-ए-जमील (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) उन्हें लेकर चलीं, कमज़ोरी की वजह से दोनों पर सहारा लिए हुए थे, यहाँ तक कि खिदमत-ए-अकदस में हाज़िर किया, देखते ही "परवाना वार शमअ-ए-रिसालत पर गिर पड़े" (फिर हुज़ूर को बोसा दिया) और सहाबा इंतिहाई मुहब्बत से उन पर गिर पड़े। हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनके लिए निहायत रक़्क़त (भावुकता) फ़रमाई।

तेरहवीं हदीस[13]: हाफिज़ अबू सईद 'शरफ़ुल मुस्तफ़ा' (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) में अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रावी हैं:

"उन्होंने कहा, अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मिम्बर पर तशरीफ़ ले गए फिर फ़रमाया: 'उस्मान बिन अफ़्फ़ान कहाँ हैं?' तो वह उछल कर खड़े हो गए और कहा: 'मैं यहाँ हूँ।" हुज़ूर सरवर-ए-आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मिम्बर पर तशरीफ़ फ़रमा हुए फिर फ़रमाया: उस्मान कहाँ हैं? उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) बेताबाना उठे और अर्ज़ की: हुज़ूर! मैं यह (हाज़िर हूँ)।

[1] सीरत हाफिज़ उमर बिन मुहम्मद मुल्ला [2] अल-रियाज़ुन नज़रा, उम्मुल खैर का ज़िक्र, मुद्रित चिश्ती कुतुब खाना फैसलाबाद, १/७६ पृष्ठ ६१३ का ६७३

فتاوی رضویه جلد ہشتم

ابی بکرٍ عندی کمنزلتِی عند ربّی[1] - ابوبکر کا منہ چومتے ہیں؟ فرمایا: اے ابوالحسن! ابوبکر کا مرتبہ میرے یہاں ایسا ہے جیسا میرا مرتبہ میرے رب کے حضور۔

حدیث دوازدہم[12] : ابن عبد ربہ کتاب بہجۃ المجالس میں مختصراً اور ریاض نضرہ میں ام المومنین صدیقہ رضی اللہ تعالیٰ عنہا سے مطولاً، صدیق اکبر رضی اللہ تعالیٰ عنہ کا ابتدائے اسلام میں اظہارِ اسلام اور کفار سے حرب و قتال فرمانا، اور ان کے چہرہ مبارک پر ضرب شدید آنا، اس سخت صدمے میں بھی حضور اقدس سید المحبوبین صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا خیال رہنا، حضور پر نور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم دار الارقم میں تشریف فرما تھے اپنی ماں سے خدمت اقدس میں لے چلنے کی درخواست کرنا مفصلاً مروی، یہ حدیث ہماری کتاب مَطْلَعُ الْقَمَرَیْنِ فِی اَبَانَۃِ سَبْقَۃِ الْعُمَرَیْنِ (۱۲۹۷ھ) میں مذکور، اس کے آخر میں ہے:

حتی اذا ھدأت الرجل وسکن الناس خرجتآبہ یتکئ علیھا حتی ادخلتاہ علی النبي صلی اللہ علیہ وسلم فانکب علیہ فقبلہ وانکب علیہ المسلمون ورقّ لہ صلی اللہ علیہ وسلم رِقّۃً شدیدۃً[2] - الحدیث۔ یعنی جب ہلچل موقوف ہوئی اور لوگ سو رہے ان کی والدہ ام الخیر اور حضرت فاروق اعظم کی بہن ام جمیل رضی اللہ تعالیٰ عنہما انھیں لے کر چلیں، بوجہ ضعف دونوں پر تکیہ لگائے تھے، یہاں تک کہ خدمت اقدس میں حاضر کیا، دیکھتے ہی "پروانہ وار شمع رسالت پر گر پڑے" (پھر حضور کو بوسہ دیا) اور صحابہ غایتِ محبت سے ان پر گرے۔ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے ان کے لئے نہایت رقت فرمائی۔

حدیث سیزدہم[13] : حافظ ابو سعید شرف المصطفیٰ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم میں انس رضی اللہ تعالیٰ عنہ سے راوی:

قال صعد رسول اللہ صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم المنبر ثم قال این عثمان بن عفان؟ فوثّب وقال انا حضور سرورِ عالم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم منبر پر تشریف فرما ہوئے پھر فرمایا: عثمان کہاں ہیں؟ عثمان رضی اللہ تعالیٰ عنہ بے تابانہ اُٹھے اور عرض کی: حضور! میں یہ

[1] سیرت حافظ عمر بن محمد ملا [2] الریاض النضرۃ ذکر ام الخیر مطبوعہ چشتی کتب خانہ فیصل آباد

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

"O Messenger of Allah!" He said: "Come close to me." He approached him, and the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) hugged him to his chest and kissed him between his eyes. (Footnote 1)

Fourteenth Hadith: Hakim recorded in 'Al-Mustadrak' with Sahih authentication, Abu Ya'la in his 'Musnad', Abu Nu'aym in 'Fadha'il al-Sahaba', Burhan al-Khujandi in 'Arba'in' titled 'Al-Mala' al-Mu'in', and Umar bin Muhammad Mulla in his 'Sirah', narrated from Jabir bin Abdullah (may Allah be pleased with him): "While we were with the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) among a group of Muhajirin, including Abu Bakr, Umar, Uthman, Ali, Talha, Zubair, Abdur Rahman bin Auf, and Sa'd bin Abi Waqqas (may Allah be pleased with them), the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: 'Let every man stand up and go to his peer (or match).' Then the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) stood up towards Uthman, embraced him, and said: 'You are my friend in this world and the hereafter.'" (Footnote 2)

Fifteenth Hadith: Ibn Asakir narrated in his history on the authority of Imam Hasan al-Mujtaba, from his father Maula Ali Murtada (may Allah honor them both): "The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) embraced Uthman bin Affan and said: 'I have embraced my brother Uthman; whoever has a brother should embrace him.'" (Footnote 3)

In this Hadith, besides the action, an absolute command is also given that every person should embrace their brothers.

1 Sharh al-Mustafa (Sharaf al-Nabi), Chapter 29, Maidan-e-Inqilab, Tehran, p. 290. 2 Al-Mustadrak, Chapter on the Virtues of Uthman (may Allah be pleased with him), published Beirut, 3/97. 3 Kanz al-Ummal, cited from Ibn Asakir, Hadith 36220, published Dar al-Kutub al-Islamiyya, Aleppo, 13/57.

फ़तावा रज़विया, जिल्द 8

"या रसूल अल्लाह!" उन्होंने कहा: "मेरे करीब आओ।" वह उनके पास आए, फिर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उन्हें अपने सीने से लगाया और उनकी आँखों के बीच चूमा। (संदर्भ 1)

चौदहवीं हदीस: हाकिम ने 'अल-मुस्तदरक' में सहीह प्रमाणीकरण के साथ, अबू याला ने अपनी 'मुसनद' में, अबू नुअैम ने 'फ़ज़ाइल-ए-सहाबा' में, बुरहान खुजंदी ने अपनी किताब 'अरबईन' में जिसका नाम 'अल-मलाउल मुईन' है, और उमर बिन मुहम्मद मुल्ला ने अपनी 'सीरत' में जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया है: "हम कुछ मुहाजिरों के साथ सैयदुल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ख़िदमत में हाज़िर थे। हाज़िरीन में खुलफा-ए-अरबा, तल्हा, जुबैर, अब्दुर रहमान बिन औफ़ और साद बिन अबी वक़्क़ास (रज़ियल्लाहु अन्हुम) थे। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: 'तुम में से हर शख़्स अपने जोड़ीदार की तरफ उठ कर जाए।' फिर खुद हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) उस्मान-ए-ग़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की तरफ उठ कर तशरीफ़ लाए, उनसे 'मुआनका' (गले लगना) किया और फ़रमाया: 'तू दुनिया और आख़िरत में मेरा दोस्त है'।" (संदर्भ 2)

पंद्रहवीं हदीस: इब्न असाकिर ने तारीख़ में हज़रत इमाम हसन मुजतबा से, उन्होंने अपने वालिद माजिद मौला अली मुर्तज़ा (करमल्लाहु वज्हहुल करीम) से रिवायत की है: "अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उस्मान बिन अफ़्फ़ान से मुआनका किया और फ़रमाया: 'मैंने अपने भाई उस्मान से मुआनका किया, जिसके पास कोई भाई हो उसे चाहिए कि वह अपने भाई से मुआनका करे'।" (संदर्भ 3)

इस हदीस में अमल के अलावा मुतलक़ हुक्म भी दिया गया है कि हर शख़्स को अपने भाइयों से मुआनका करना चाहिए।

1 शरह अल-मुस्तफा (शरफ अल-नबी), अध्याय 29, मैदान-ए-इंकलाब, तेहरान, पृ. 290. 2 अल-मुस्तदरक, हज़रत उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) के फ़ज़ाइल का अध्याय, बेरूत प्रकाशन, 3/97. 3 कन्ज़ुल उम्माल, इब्न असाकिर के हवाले से, हदीस 36220, दारुल कुतुब अल-इस्लामिया, हलब, 13/57.

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ذا یارسول اللہ فقال ادْنُ مِنِّی فَدَنَا مِنْہُ فَضَمَّہ الی صَدْرِہٖ وَقَبَّلَ بَیْنَ عَیْنَیْہِ الخ حاضر ہوں۔ رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے فرمایا : میرے پاس آؤ۔ پاس حاضر ہوئے۔ حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے "سینہ سے لگایا" اور آنکھوں کے بیچ میں بوسہ دیا۔

حدیث چہاردہم ۱۴: حاکم صحیح مستدرک میں بافادہ تصحیح اور ابو یعلی اپنی مسند اور ابو نعیم فضائل صحابہ میں اور برہان خجندی کتاب اربعین مسمی بالملاء المعین اور عمر بن محمد ملا سیرت میں جابر بن عبداللہ رضی اللہ تعالٰی عنہ سے روای : قال بینا نحن مع رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم فی نفر من المہاجرین منہم ابوبکر وعمر و عثمان و علی و طلحہ والزبیر و عبدالرحمن بن عوف وسعد بن ابی وقاص فقال رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم لِیَنْہَضُ کُلُّ رَجُلٍ الی کفوہ وَنَہَضَ النبی صلی اللہ تعالی علیہ وسلم الی عثمان فاعتنقہ، وقال اَنْتَ وَلِیِّی فِی الدُّنْیَا وَالْآخِرَۃِ ۲ ہم چند مہاجرین کے ساتھ خدمت اقدس حضور سید المرسلین صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم میں حاضر تھے حاضرین میں خلفائے اربعہ و طلحہ و زبیر و عبد الرحمن بن عوف و سعد بن ابی وقاص رضی اللہ تعالٰی عنہم تھے ، حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ارشاد فرمایا : تم میں ہر شخص اپنے جوڑ کی طرف اٹھ کر جائے اور خود حضور والا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم عثمان غنی رضی اللہ تعالٰی عنہ کی طرف اٹھ کر تشریف لائے ان سے "معانقہ" کیا اور فرمایا : تو میرا دوست ہے دنیا و آخرت میں۔

حدیث پانزدہم ۱۵: ابن عساکر تاریخ میں حضرت امام حسن مجتبیٰ وہ اپنے والد ماجد مولیٰ علی مرتضیٰ کرم اللہ تعالٰی وجہہما سے راوی : ان رسول اللہ صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم عَانَقَ عثمان بن عفان وقال قد عَانَقْتُ اَخِی عثمان فَمَنْ کَانَ لَہ اَخٌ فَلْیُعَانِقْہُ - ۳ حضور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ

وسلم نے عثمان غنی رضی اللہ تعالٰی عنہ سے معانقہ کیا اور فرمایا : میں نے اپنے بھائی عثمان سے معانقہ کیا جس کے کوئی بھائی ہو اسے چاہئے اپنے بھائی سے "معانقہ کرے"

اس حدیث میں علاوہ فعل کے مطلقاً حکم بھی ارشاد ہوا کہ ہر شخص کو اپنے بھائیوں سے معانقہ کرنا چاہئے۔

1 شرح المصطفیٰ (شرف النبی) باب بیست و نہم میدان انقلاب تہران ص ۲۹۰ 2 المستدرک باب فضائل عثمان رضی اللہ تعالٰی عنہ مطبوعہ بیروت ۳/ ۹۷ 3 کنز العمال بحوالہ ابن عساکر حدیث ۳۶۲۲۰ مطبوعہ دار الکتب الاسلامی حلب ۱۳/ ۵۷

Fatawa Razawiyyah Volume 8

Sixteenth Hadith: The Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) asked Hazrat Batul Zahra (peace be upon her), "What is best for a woman?" She replied, "That a non-mahram person does not see her." The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) embraced her and said: "Offspring, one of the other" [Quran 3:34] (meaning, they are of one lineage. - Trans.) Or as narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him and his family and grant them peace). In short, many hadiths are narrated in this regard, and limiting it only to travel is baseless and corrupt. Rather, in every situation, whether traveling or not, embracing (mu'anaqah) is a Sunnah. And when a Sunnah is performed, it will remain a Sunnah unless a specific prohibition is explicitly established by Sharia. To the extent that the leader of the group of rejectors, Ismail Dehlvi himself, in his treatise 'Nuzoor', which is printed in the collection 'Zubdat-un-Nasaih', clearly admitted that embracing on the day of Eid, even if it is an innovation (bid'ah), is a good innovation (bid'ah hasanah). As he said:

At all times, apart from Quran recitation, Fatiha recitation, and feeding food...	**...digging a well. And similarly other things proven from hadith...**
...digging a well and similar prayers, seeking forgiveness, and sacrifice are innovations.	...besides prayers, seeking forgiveness, and sacrifice, all other ways like Quran recitation, Fatiha recitation, and feeding food [are good innovations].

Note 1: In this statement by Maulvi Ismail Dehlvi, the leader of the Deobandi scholars, several points are worth considering: (1) Digging a well for conveying rewards (Isal-e-Thawab), prayer, seeking forgiveness, sacrifice, and other such things are not innovations but are proven from the Sunnah. (2) Quran recitation, Fatiha recitation, feeding food, and other such methods are innovations, but they are good innovations (Bid'at Hasanah). (3) From this, two types of innovation become known: "Bid'at Hasanah" (Good Innovation) and "Bid'at Sayyi'ah" (Bad Innovation). Therefore, every innovation is not bad. And every new thing cannot be unlawful or forbidden just because it is an innovation; rather, some actions, while being innovations, are beautiful and good. (4) Embracing on Eid day, and shaking hands (Musafahah) every day after Fajr and Asr, is an assembly of good innovation, permissible and good. Verse: Your own testimony is heavier than a hundred thousand claimants. The rejectors of Aala Hazrat may not accept the entire treatise, they may close their eyes

to all Hadiths and juristic texts, but they must never find an escape from the explicit admission and clear words of their own "Great Leader". (Translator)

[1] Al-Quran 3/43 Page 615 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवां

सोलहवीं हदीस: कि हुज़ूर अक़दस सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ने हज़रत बतुल ज़हरा से फ़रमाया कि औरत के हक़ में सब से बेहतर क्या है? अर्ज़ की कि नामहरम शख़्स उसे न देखे। हुज़ूर ने गले लगा लिया और फ़रमाया: "ज़ुर्रियतुम बा'ज़ुहा मिम बा'ज़" (ये एक नस्ल है एक दूसरे से। त) या जैसा कि नबी करीम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वआलिही वबारिक वसल्लम से वारिद है। संक्षेप में, इस बारे में कसरत से हदीसें वारिद हैं और इसे सिर्फ सफर के लिए ख़ास करना बिल्कुल बेबुनियाद और ग़लत है। बल्कि सफर और बे-सफर हर सूरत में गले मिलना (मुआनक़ा) सुन्नत है, और सुन्नत जब अदा की जाएगी तो सुन्नत ही होगी जब तक कि शरीयत से कोई विशेष मनाही साफ़ तौर पर साबित न हो जाए। यहाँ तक कि खुद मुखालिफ़ीन के इमाम इस्माईल देहलवी ने अपने रिसाला 'नुज़ूर' में, जो मजमुआ 'ज़ुब्दतुन नसाएह' में छपा है, साफ़ तौर पर इक़रार किया है कि ईद के दिन मुआनक़ा करना अगरचे बिदअत हो, मगर बिदअत-ए-हसना है। जैसा कि उन्होंने कहा:

हर समय क़ुरआन ख़्वानी, फ़ातिहा ख़्वानी और खाना खिलाने के सिवा...	**...कुआँ खोदना। और इसी तरह हदीस से साबित दूसरी**
...कुआँ खोदना और दुआ व इस्तग़फ़ार और क़ुरबानी जैसी चीज़ें बिदअत हैं	चीज़ें, और दुआ व इस्तग़फ़ार, क़ुरबानी के सिवा तमाम तरीक़े क़ुरआन ख़्वानी, फ़ातिहा ख़्वानी, खाना खिलाना [बिदअत-ए-हसना हैं]

नोट १: मौलवी इस्माईल देहलवी, जो देवबंदी उलेमा के पेशवा हैं, की इस इबारत में चंद बातें गौर करने लायक हैं: (१) ईसाल-ए-सवाब के लिए कुआँ खुदवाना, दुआ, इस्तग़फ़ार, क़ुरबानी और इसी तरह की दूसरी चीज़ें बिदअत नहीं बल्कि सुन्नत से साबित हैं। (२) क़ुरआन ख़्वानी, फ़ातिहा ख़्वानी, खाना खिलाना और इस तरह के दूसरे तरीक़े बिदअत हैं मगर बिदअत-ए-हसना हैं। (३) इससे बिदअत की दो क़िस्में मालूम हुईं: "बिदअत-ए-हसना" और "बिदअत-ए-सय्यिआ"। लिहाज़ा हर बिदअत बुरी नहीं। और हर नया काम सिर्फ बिदअत होने की वजह से नाज़ायज़ और हराम नहीं हो सकता, बल्कि कुछ काम बिदअत होते हुए भी अच्छे और नेक होते हैं। (४) ईद के दिन का मुआनक़ा, और हर रोज़ फ़ज्र व अस्र के बाद मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) बिदअत-ए-हसना, जाइज़ और अच्छा है। शेर: तेरी अपनी गवाही ही लाखों दावेदारों पर भारी है। आला हज़रत के मुखालिफ़ भले ही पूरा

रिसाला न मानें, तमाम हदीसों और फ़िक़्ही दलीलों से आँखें बंद कर लें, मगर उन्हें अपने "पेशवा-ए-आज़म" के साफ़ इक़रार और वाज़ेह कलाम से हरगिज़ नहीं भागना चाहिए। (अनुवादक)

[1] अल-क़ुरआन ३/४३ पेज ६१५ ऑफ़ ६७३

حدیث شانزدہم : کہ حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے حضرت بتول زہرا سے فرمایا کہ عورت کے حق میں سب سے بہتر کیا ہے؟ عرض کی کہ نامحرم شخص اُسے نہ دیکھے۔ حضور نے گلے لگالیا اور فرمایا: "ذُرِّيَّةٌ بَعْضُهَا مِنْ بَعْضٍ" (یہ ایک نسل ہے ایک دوسرے سے۔ ت) او کما ورد عن النبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وآلہ وبارک وسلم (یا جیسا کہ نبی کریم صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم سے وارد ہے۔ ت) بالجملہ احادیث اس بارے میں بکثرت وارد اور تخصیص سفر محض بے اصل و فاسد۔ بلکہ سفر و بے سفر ہر صورت میں معانقہ سنت، اور سنت جب ادا کی جائے گی سنت ہی ہوگی تا وقتیکہ خاص کسی خصوصیت پر شرع سے تصریحاً نہی ثابت نہ ہو، یہاں تک کہ خود امام الطائفہ مانعین اسمٰعیل دہلوی رسالہ نذور میں کہ مجموعہ زبدۃ النصائح میں مطبوع ہوا صاف مقر کہ معانقہ روزِ عید گو بدعت ہو بدعت حسنہ ہے۔ حیث قال (یوں کہا۔ ت) ف ا:

ہمہ وقت از قرآن خوانی فاتحہ خوانی و خورانیدن طعام سوائے

کندن چاہ وامثال دعاو استغفار واُضحیہ بدعت ست

کنواں کھودنے۔ اور اسی طرح حدیث میں سے ثابت دوسری

چیزوں، اور دعا استغفار ، قربانی کے سوا تمام طریقے، قرآن خوانی، فاتحہ خوانی، کھانا کھلانا

ف ۱: مولوی اسمٰعیل دہلوی پیشویان علماء دیوبندی کی اس عبارت میں چند باتیں قابل غور ہیں : (۱) ایصالِ ثواب کے لئے کنواں کھدوانا، دعا، استغفار، قربانی اور اسی طرح کی دوسری چیزیں بدعت نہیں بلکہ سنت سے ثابت ہیں۔ (۲) قرآن خوانی، فاتحہ خوانی، کھانا کھلانا اور اس طرح کے دوسرے طریقے بدعت ہیں مگر بدعتِ حسنہ ہیں۔ (۳) اس سے بدعت کی دو قسمیں معلوم ہوئیں : "بدعتِ حسنہ "، "بدعتِ سیئہ"۔ لہذا ہر بدعت بُری نہیں۔ اور ہر نیا کام صرف بدعت ہونے کے

باعث ناجائز و حرام نہیں ہو سکتا بلکہ بعض کام بدعت ہوتے ہوئے بھی حسن اور اچھے ہوتے ہیں (۴) روزِ عید کا معانقہ، اور ہر روز فجر و عصر کے بعد مصافحہ بدعتِ حسنہ جائز اور اچھا ہے ع مدعی لاکھ پہ بھاری ہے گواہی تیری منکرین اعلیٰحضرت کا پورا رسالہ نہ مانیں، تمام احادیث و فقہی نصوص سے آنکھیں بند کرلیں مگر انھیں اپنے "پیشوائے اعظم " کے اقرارِ صریح اور کلام واضح سے ہر گز مفر نہ ہونا چاہئے۔ (مترجم)

It is particularly a 'Bid'at Hasana' (good innovation) such as hugging on the day of Eid and shaking hands after the morning or afternoon prayer[1]. (T)

All are innovations. But they are specifically good innovations, like hugging on the day of Eid. And shaking hands after the Fajr or Asr prayer (is a good innovation).

And Allah Ta'ala knows best. Written by His sinful servant Ahmad Raza Al-Barelwi, may he be forgiven, by the grace of Muhammad, the Chosen, the Unlettered Prophet, peace and blessings of Allah be upon him. Sunni Hanafi Qadri Abdul Mustafa Ahmad Raza Khan, 1301 AH.

Regarding the opposing fatwa of Maulvi Abdul Hai Sahib that was presented, its text is: "What do the scholars of religion say regarding this matter that the practice of shaking hands and hugging prevalent among people after the Eid sermons is it Sunnah or innovation? Clarify and be rewarded. (T)"

He is the one who leads to correctness (T). Shaking hands and hugging after Eid is not Sunnah, and scholars differ on this matter; some call it a permissible innovation (Bid'at Mubahah) and some call it a disliked innovation (Bid'at Makruh). At any rate, abandoning it is [Note].

Note: After this, four passages were quoted in the said fatwa: (1) A passage from 'Adhkar' stating there is no harm in this shaking of hands. (2) A passage from 'Durr al-Mukhtar' stating this is a permissible, rather good innovation, as it exists in 'al-Durr', although the respondent only sufficed with the name. (T) (3) A passage from 'Radd al-Muhtar' stating that one might say if done regularly after prayers, the ignorant will consider it Sunnah. And Ibn Hajar Shafi'i called it disliked. (4) A passage from 'Madkhal' of Ibn al-Haj of the Maliki school, that Ibn Uyaynah allowed it after absence, but not in Eid with those present with them [F1]. And shaking hands after Eid is not known to me except (continued on next page).

F1: Meaning hugging is not permissible in Eid with those who are present with one. (Translator)

[1] Collection of 'Zubdat al-Nasa'ih' Page 616 of 673

फ़तावा रज़विया | जिल्द आठवां

यह विशेष रूप से एक 'बिदअत हसना' (उत्तम नवाचार) है जैसे ईद के दिन गले मिलना और सुबह या दोपहर की नमाज़ के बाद हाथ मिलाना[1]। (त)

सभी नवाचार हैं। लेकिन वे विशेष रूप से उत्तम नवाचार हैं, जैसे ईद के दिन गले मिलना। और फज्र या असर की नमाज़ के बाद हाथ मिलाना (बिदअत हसना है)।

और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। इसे उनके पापी सेवक अहमद रज़ा अल-बरेलवी ने लिखा है, उन्हें मुहम्मद मुस्तफ़ा, नबी-ए-उम्मी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के माध्यम से क्षमा किया जाए। सुन्नी हनफ़ी क़ादरी अब्दुल मुस्तफ़ा अहमद रज़ा खां, 1301 हिजरी।

मौलवी अब्दुल हई साहब का जो विरोधी फतवा पेश किया गया था, उसका पाठ इस प्रकार है: "दीन के विद्वान इस मामले में क्या कहते हैं कि ईद के खुतबों के बाद लोगों में प्रचलित हाथ मिलाने और गले मिलने की प्रथा सुन्नत है या बिदअत? स्पष्ट करें और पुण्य प्राप्त करें। (त)"

वही सत्य तक पहुँचाने वाला है (त)। ईद के बाद हाथ मिलाना और गले मिलना सुन्नत नहीं है, और इस बारे में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं; कुछ इसे बिदअत मुबाह (अनुमेय नवाचार) कहते हैं और कुछ इसे बिदअत मकरूह (नापसंद नवाचार) कहते हैं। हर हाल में, इसे छोड़ देना [नोट] है।

नोट: इसके बाद उक्त फतवे में चार उद्धरण दिए गए: (1) 'अज़कार' का उद्धरण कि इस हाथ मिलाने में कोई हर्ज नहीं है। (2) 'दुर्रे मुख्तार' का उद्धरण कि यह बिदअत मुबाह बल्कि हसना है, जैसा कि 'अद-दुर' में मौजूद है, हालाँकि जवाब देने वाले ने केवल नाम का उल्लेख किया है। (त) (3) 'रद्दुल मुख्तार' का उद्धरण कि कहने वाला कह सकता है कि अगर हमेशा नमाज़ के बाद किया जाए तो अज्ञानी इसे सुन्नत समझ लेंगे। और इब्न हजर शाफई ने इसे मकरूह कहा है। (4) मलिकी संप्रदाय के इब्न अल-हज की 'मदखल' का उद्धरण कि इब्न उययना ने अनुपस्थिति (ग़ीबत) के बाद इसे जायज़ माना, लेकिन ईद में उन लोगों के साथ जो उनके साथ उपस्थित हैं, नहीं [F1]। और ईद के बाद हाथ मिलाना मुझे मालूम नहीं सिवाय (अगले पृष्ठ पर जारी)।

F1: अर्थात ईद में उन लोगों के साथ गले मिलना जायज़ नहीं है जो अपने साथ उपस्थित हैं। (अनुवादक)

[1] मजमूआ जुब्दतुल नसाएह पृष्ठ 616 का 673

بدعت حسنہ بالخصوص است مثل معانقہ روزِ عید و مصافحہ بعد نمازِ صبح یا عصر[1] ۔ (ت)

سب بدعت ہیں۔ مگر خاص بدعت حسنہ ہیں، جیسے عید کے دن معانقہ۔ اور نمازِ فجر یا عصر کے بعد مصافحہ کرنا (بدعت حسنہ ہے)۔

واللہ تعالٰی اعلم کتبہ عبدہ المذنب احمد رضا البریلوی عفی عنہ بمحمدن المصطفٰی النبی الامّی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سنی حنفی قادری عبدالمنطفی احمد رضا خاں ۱۳۰۱ھ

اس کے معارضے میں جو فتوٰی مولوی عبدالحی صاحب کا پیش کیا گیا اس کی عبارت یہ ہے: "کیا فرماتے ہیں علمائے دین اس مسئلہ میں کہ بعد خطبہ عیدین کے جو مصافحہ و معانقہ لوگوں میں مروج ہے وہ مسنون ہے یا بدعت؟ بَیِّنُوْا تُؤْجَرُوْا (بیان کرو اور اجر پاؤ۔ت)"

ھو المُصَوَّب (وہی درستی تک پہنچانے والا ہے۔ت) بعد عید مصافحہ و معانقہ مسنون نہیں، اور علماء اس باب میں مختلف ہیں، بعض بدعت مباحہ کہتے ہیں اور بعض بدعت مکروہ۔ علی کل تقدیر ترک عہ اس کا

عہ: اس کے بعد فتوٰی مذکور میں چار عبارتیں نقل کیں: (۱) عبارت اذکار کہ اس مصافحہ میں کوئی حرج نہیں۔ (۲) عبارت درمختار کہ یہ بدعت مباحہ بلکہ حسنہ ہے کما ھو موجود فی الدر وان اقتصر المجیب فی النقل (یہ درمختار میں موجود ہے اگرچہ مجیب نے صرف نام پر کفایت کی ہے۔ ت) (۳) عبارت ردالمختار کہ کہنے والا کہہ سکتا ہے کہ ہمیشہ بعد نماز کئے جاؤ تو جاہل سنت سمجھ لیں گے۔ اور ابن حجر شافعی نے اسے مکروہ کہا ہے۔ (۴) عبارت مدخل ابن حاج مالکی

المذہب کہ غیبت کے بعد ابن عیینہ نے جائز رکھا، اور عید میں ان لوگوں سے جو اپنے ساتھ حاضر ہیں، نہیں فا۔ اور مصافحہ بعد عید مجھے معروف نہیں مگر (باقی بر صفحہ آیندہ)

ف۱: یعنی عید میں ان لوگوں سے معانقہ جائز نہیں جو اپنے ساتھ حاضر ہیں۔ (مترجم)

[1] مجموعہ زبدۃ النصائح Page 616 of 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

It is preferable (F1) etc. The statements of Abul Hasanat Muhammad Abdul Hai [Lucknawi] which were presented by writing them in the margin, are as follows in their original words:

यदि कोई नियम सुन्नत और बिदअत के बीच संदिग्ध हो, तो सुन्नत को छोड़ना बिदअत करने पर प्रधान है। 12 रद अल-मुह्तार 1	**When a ruling is wavering between Sunnah and Bid'ah, then preference will be given to leaving the Sunnah over committing the Bid'ah. (F2)**

(Remaining footnote from previous page) Abdullah bin Nu'man says: "I saw in Madinah, while pious scholars were present there in abundance, that they would shake hands with each other after finishing the Eid prayer. So, if a report from the predecessors (Salaf) supports this, then well and good; otherwise, leaving it is preferable." 12 Minhu, may Allah be pleased with him. (M)

F1: The gist of Maulana Abdul Hai Farangi [Mahalli]'s fatwa is that shaking hands and embracing after Eid is not proven from Hadith. As for the scholars and jurists, they differ; some call it a permissible innovation (Bid'ah Mubahah) and some call it a disliked innovation (Bid'ah Makruhah). In any case, it is better not to do it. (From the phrase "it is better not to do it," it is certainly proven that doing it is permissible). This same fatwa of Maulana Farangi Mahalli (which is in his collection of fatwas, Vol. 1, p. 528) was sent by the scholar of Bareilly to whom Ala Hazrat was addressing in his reply. Along with this, he also wrote those statements in the margin of this collection of fatwas in proof of the prohibition of Eid embracing, which Ala Hazrat quoted verbatim in his book "Wishah al-Jid fi Tahlil Mu'anaqah al-Eid" and discussed in the fourth request. (Translator)

F2: That is, when the matter is such that if one does it, they commit an innovation, and if they don't, a Sunnah is missed, in such a case the ruling is not to do it. Although a Sunnah will be missed, one will not be guilty of committing an innovation. The same applies to Eid embracing; therefore, its prohibition will be decreed. Ala Hazrat has answered this argument in 'Iltimas-e-Na'am' that 'innovation' here refers to a bad innovation, and Eid embracing is not like that at all. Rather, in terms of its origin, it is Sunnah, and in terms of its specificity after Eid, it is permissible (mubah),

and if done with good intention, it is commendable (mustahsan). Therefore, your aforementioned statement cannot apply to Eid embracing. (Translator)

1. Radd al-Muhtar, Matlab: Idha Taraddad al-Hukm, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/282. Page 617 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

बेहतर है (फ़ 1) इत्यादि। अबुल हसनात मुहम्मद अब्दुल हई [लखनवी] के बयान, जिन्हें हाशिए पर लिखकर पेश किया गया है, वे अपने मूल शब्दों में इस प्रकार हैं:

اذا تردد الحكم بين سنة و بدعة كان ترك السنة راجحاً على فعل البدعة ۱۲ردالمحتار ۱	**जब हुक्म सुन्नत और बिदअत के दरमियान दुविधा में हो, तो बिदअत के इर्तिकाब (करने) पर सुन्नत को छोड़ने को प्राथमिकता दी जाएगी। (फ़ 2)**

(पिछले पृष्ठ का शेष हाशिये का हिस्सा) अब्दुल्लाह बिन नुअमान कहते हैं: "मैंने मदीना में, जबकि वहां नेक विद्वान प्रचुर मात्रा में मौजूद थे, देखा कि वे ईद की नमाज़ से फ़ारिग होकर आपस में मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) करते थे। तो, अगर सलफ़ (पूर्वजों) से कोई रिपोर्ट इसका समर्थन करती है, तो ठीक है; वरना इसे छोड़ना बेहतर है।" 12 मिन्हु, रज़ियल्लाहु अन्हु। (म)

फ़ 1: मौलाना अब्दुल हई फ़रंगी [महली] के इस फ़तवे का सार यह है कि ईद के बाद मुसाफ़ा और मुआनक़ा (गले मिलना) हदीस से साबित नहीं है। जहाँ तक विद्वानों और फकीहों की बात है, उनमें मतभेद है; कुछ इसे बिदअत-ए-मुबाह (अनुमत नवाचार) कहते हैं और कुछ इसे बिदअत-ए-मक़रूह (नापसंद नवाचार)। बहरहाल, इसे न करना ही बेहतर है। ("न करना बेहतर है" से इतना ज़रूर साबित हो जाता है कि कर लिया तो जायज़ है)। मौलाना फ़रंगी महली का यही फ़तवा (जो उनके फ़तावा के संग्रह, भाग 1, पृष्ठ 528 पर है) बरेली के उन विद्वान ने भेजा था जिनसे आला हज़रत अपने जवाब में मुखातिब थे। साथ ही, उन्होंने इस फ़तावा संग्रह के हाशिए पर ईद के मुआनक़ा की मनाही के सबूत में वे इबारतें भी लिख दीं, जिन्हें आला हज़रत ने अपनी किताब "विशाह अल-जीद फ़ी तहलील मुआनक़ा अल-ईद" में ज्यों का त्यों उद्धृत किया और चौथी विनती (इल्तिमास) में उन पर चर्चा की। (अनुवादक)

फ़ 2: यानी जब मामला ऐसा हो कि करने पर किसी बिदअत का अपराधी बनता हो, और न करने पर कोई सुन्नत छूटती हो, तो ऐसी स्थिति में यही हुक्म है कि न करे। हालाँकि इससे सुन्नत छूट जाएगी, लेकिन बिदअत का अपराधी तो नहीं होगा। ईद के मुआनक़ा का भी यही हाल है, इसलिए इसकी मनाही का ही हुक्म दिया जाएगा। आला हज़रत ने 'इल्तिमास-ए-नआम' में इस तर्क का जवाब दिया है कि यहाँ बिदअत से तात्पर्य बुरी बिदअत से है, और ईद का मुआनक़ा हरगिज़ ऐसा नहीं है। बल्कि अपनी असलियत के लिहाज़ से सुन्नत है और ईद के बाद की विशिष्टता के लिहाज़ से मुबाह (जायज़),

और अगर अच्छी नीयत के साथ हो तो मुस्तहसन (सराहनीय) है। इसलिए, आपका उपर्युक्त कथन ईद के मुआनक़ा पर लागू (फिट) हो ही नहीं सकता। (अनुवादक)

1. रद अल-मुह्तार, मतलब: इज़ा तरद्दद अल-हुक्म, मुद्रित: एच.एम. सईद कंपनी, कराची, 1/282। पृष्ठ 617 / 673

فتاویٰ رضویہ جلد ہشتم

اولی ہے (ف۱) الخ۔ ابوالحسنات محمد عبدالحہ عبارات کہ حاشیہ پر لکھ کر پیش کی گئیں بحروفہ یہ ہیں:

اذا تردد الحکم بین سنة و بدعة کان ترك السنة راجحاً علی فعل البدعة ۱۲ردالمحتار ۱

جب حکم سنت و بدعت کے درمیان متردد ہو تو ارتکاب بدعت پر ترک سنت کو ترجیح دی جائیگی۔ ف۲

(بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) عبداللہ بن نعمان فرماتے ہیں میں نے مدینہ خاص میں جبکہ وہاں علماء صالحین بکثرت موجود تھے، دیکھا کہ وہ نماز عید سے فارغ ہو کر آپس میں مصافحہ کرتے، تو اگر سلف سے نقل مساعد ہو تو کیا کہنا ورنہ ترک اولیٰ ہے۔ ۱۲ منہ رضی اللہ تعالیٰ عنہ (م)

ف ۱: مولانا عبدالحی صاحب فرنگی کے اس فتوے کا حاصل یہ ہے کہ بعد عید مصافحہ و معانقہ حدیث سے ثابت نہیں۔ رہے علماء و فقہاء تو ان میں اختلاف ہے کچھ بدعت مباحہ کہتے ہیں کچھ بدعت مکروہہ۔ بہر تقدیر اسے نہ کرنا بہتر ہے۔ ("نہ کرنا بہتر ہے" سے اتنا ضرور ثابت ہو جاتا ہے کہ کر لیا تو جائز ہے) مولانا فرنگی محلی کا یہی فتویٰ (جو ان کے مجموعہ فتاویٰ طبع اول کے ج۱ ص۵۲۸ پر ہے) بریلی کے ان عالم نے بھیجا جن سے اعلیٰحضرت اپنے جواب میں خطاب کر رہے تھے، ساتھ ہی انھوں نے اس مجموعہ فتاویٰ کے حاشیہ پر معانقہ عید کی ممانعت کے ثبوت میں وہ عبارتیں بھی لکھ دیں جنھیں کتاب "وشاح الجید في تحلیل معانقة العید" میں اعلیٰحضرت نے بعینہ نقل فرمایا اور التماس چہارم سے ان پر بحث کی۔ (مترجم)

ف ۲: یعنی جب معاملہ ایسا ہو کہ کرے تو کسی بدعت کا مرتکب ہوتا ہے، نہ کرے تو کوئی سنت چھوٹتی ہے، ایسی صورت میں یہی حکم ہے کہ نہ کرے اس سے سنت اگرچہ چھوٹ جائے گی مگر بدعت کا مرتکب تو نہ ہوگا۔ معانقہ عید کا بھی یہی حال ہے، لہٰذا اس سے بھی ممانعت ہی کا حکم دیا جائے گا۔ اعلیٰحضرت نے التماس نعم میں اس استدلال کا جواب دیا ہے کہ یہاں بدعت سے مراد بری بدعت ہے، اور معانقہ عید ایسا ہر گز نہیں، بلکہ اپنی اصلیت کے لحاظ سے سنت اور خصوصیت بعد عید کے لحاظ سے مباح، اور قصد حسن کے ساتھ ہو تو مستحسن ہے۔ لہٰذا آپ کی عبارت مذکورہ معانقہ عید پر منطبق (فٹ) ہو ہی نہیں سکتی، (مترجم)

۱ رد المحتار مطلب اذاتر دد الحکم مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱ / ۲۸۲ صفحہ 617 / 673

Fatawa Razawiya Volume 8

It is mentioned in Rad al-Muhtar that it is narrated from al-Multaqat in Tabyin al-Maharim that shaking hands after performing prayer is disliked (makruh) in any case. (1) Because the Companions did not shake hands after prayer, (2) because this is the way of the Rafidites (Shiites). Then it is narrated from 'Allama Ibn Hajar Shafi'i that this shaking hands is a disliked innovation (bid'ah makruhah) for which there is no basis in Sharia. The perpetrator of this should first be warned. If they do not agree, they should be reprimanded. Then he said that Ibn al-Hajj Maliki writes in al-Madkhal that this shaking hands is an innovation (3) and in Sharia, the occasion for shaking hands is at the time of a Muslim meeting his Muslim brother. After prayers is not the Sharia-stipulated time for shaking hands. One should keep it where the Sharia has appointed it. So, the one who shakes hands after prayers will be stopped and reprimanded because he is guilty of an act contrary to the Sunnah. [End quote from Rad al-Muhtar]. Regarding the statement 'does not exit, etc.', it is not hidden that there is a type of contradiction in the words of the Imam because...

Note: The objector wrote this margin on what was quoted in al-Fatawa al-Maknawiyyah from the text of al-Adhkar of Imam al-Nawawi (may Allah have mercy on him): "There is no harm in it, for the origin of shaking hands is a Sunnah, and the fact that they maintained it in some cases and neglected it in many or most cases does not remove that part from being among the handshakes whose origin is mentioned in the Sharia." [End quote, 12th of it, may Allah be pleased with him (m)]. In Fatawa Mawlavi Abdul Hayy Lakhnawi, the objector Mawlavi from Bareilly wrote this footnote on the text quoted from Imam Nawawi's book al-Adhkar. Imam Nawawi's text is: "There is no harm in this shaking hands, because the origin of shaking hands is Sunnah, and if in most situations people are negligent in shaking hands and only adhere to shaking hands in some situations, then this handshake of certain situations (e.g., handshake after prayer) will not be outside the circle of that permissible handshake whose authenticity is established from the Sharia." (T)

Page 618 of 673

फतावा रज़विया जिल्द अष्टम (8)

रद अल-मुह्तार में है कि तबीन अल-महारिम में मुल्तक़त से मन्कूल (उद्धृत) है कि नमाज़ अदा करने के बाद मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) बहरहाल मकरूह है (1) इस लिये कि सहाबा ने बाद नमाज़ मुसाफ़ा नहीं किया, (2) इस लिये कि यह राफ़िज़ियों का तरीक़ा है। फिर अल्लामा इब्ने हजर शाफ़ई से मन्कूल है कि यह मुसाफ़ा बिदअत-ए-मकरूहा है जिसकी शरीअत में कोई असल (आधार) नहीं। इसके मुर्तकिब (करने वाले) को अव्वलन (पहले) मुतन्बे (सचेत) किया जाएगा। न माने तो सरज़न्श (फटकार) की जाएगी। फिर फ़रमाया कि इब्नुल हाज मालिकी मदख़ल में लिखते हैं कि यह मुसाफ़ा बिदअत है (3) और शरीअत में मुसाफ़ा का महल (अवसर) मुसलमान की अपने मुसलमान भाई से मुलाक़ात का वक़्त है। नमाज़ों के बाद के औक़ात मुसाफ़ा का शरीअत महल नहीं। शरीअत ने जो महल मुक़र्रर किया है उसे वहीं रखे, तो नमाज़ों के बाद मुसाफ़ा करने वाले को रोका और ज़ज्र (डांटा) किया जाएगा इस लिये कि वो ख़िलाफ़-ए-सुन्नत फ़ेल (कार्य) का मुर्तकिब है। [रद अल-मुह्तार]। (इमाम नववी की इबारत अज़कार पर नीचे हाशिये में दर्ज है)।

नोट: एतराज करने वाले ने 'अल-फ़तावा अल-मकनूइय्या' में इमाम नववी (रह.) की किताब 'अल-अज़कार' से नक़ल की गई इबारत पर यह हाशिया लिखा है: "इसमें कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि मुसाफ़ा की असल सुन्नत है, और बाज़ (कुछ) हालतों में इसे बरक़रार रखना और बहुत से या अक्सर हालतों में इसे तर्क(छोड़) कर देना, उस बाज़ हालत वाले मुसाफ़ा को उस मुसाफ़ा के दायरे से बाहर नहीं करता जिसकी असल शरीअत से साबित है।" [12 तारीख, अल्लाह उनसे राज़ी हो (m)]। फ़तावा मौलवी अब्दुल हई लखनवी में इमाम नववी की किताब अज़कार से मन्कूल इबारत पर बरेली के मोतरिज़ (एतराज करने वाले) मौलवी साहब ने यह हाशिया लिखा है। इमाम नववी की इबारत यह है: "इस मुसाफ़ा में कोई हर्ज नहीं, इस लिये कि असल मुसाफ़ा सुन्नत है, और अक्सर हालात में लोग मुसाफ़ा के अंदर कोताही करने के साथ सिर्फ बाज़ हालात में अगर मुसाफ़ा की पाबंदी करते हैं तो उससे बाज़ हालात वाला मुसाफ़ा (मसलन मुसाफ़ा बाद नमाज़) उस मुसाफ़ा-ए-जायज़ के दायरे से ख़ारिज न होगा जिसकी असलियत शरीअत से साबित है।" (त)

पृष्ठ 618 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

نقل في تبيين المحارم عن الملتقط انه تكره المصافحة بعد اداء الصلوة بكل حال لان الصحابة رضي الله تعالى عنهم ماصافحوا بعد اداء الصلوة ولانها من سنن الروافض اھ ثم نُقل عن ابن حجر من الشافعية انها بدعة مكروهة لااصل لها في الشرع و انه ينبه فاعلها اولاً و يعزر ثانياً ثم قال وقال ابن الحاج من المالكية في المدخل انها من البدع و موضع المصافحة في الشرع انما هو عند لقاء المسلم لاخيه لافی ادبار الصلوات فحيث وضعها الشرع يضعها فينهى عن ذلك و يزجر فاعله لماتی به من خلاف السنة اھ ردالمحتار قوله عه لايخرج الخ ولا يخفى ان في كلام الامام نوع تناقض لان

ردالمحتار میں ہے کہ تبیین المحارم میں ملتقط سے منقول ہے کہ ادائے نماز کے بعد مصافحہ بہر حال مکروہ ہے (۱) اس لئے صحابہ نے بعد نماز مصافحہ نہیں کیا، (۲) اس لئے کہ یہ رافضیوں کا طریقہ ہے اھ پھر علامہ ابن حجر شافعی سے منقول ہے کہ یہ مصافحہ بدعت مکروہہ ہے جس کی شریعت میں کوئی اصل نہیں اس کے مرتکب کو اولاً متنبہ کیا جائے گا۔ نہ مانے تو سرزنش کی جائے گی، پھر فرمایا کہ ابن الحاج مالکی مدخل میں لکھتے ہیں کہ یہ مصافحہ بدعت ہے (۳) اور شریعت میں مصافحہ کا محل مسلمان کی اپنے مسلمان بھائی سے ملاقات کا وقت ہے۔ نمازوں کے بعد اوقاتِ مصافحہ کا شرعی محل نہیں، شریعت نے جو محل مقرر کیا ہے اسے وہیں رکھے، تو نمازوں کے بعد مصافحہ کرنے والے کو روکا اور زجر کیا جائے گا اس لئے کہ وہ خلافِ سنت فعل کا مرتکب ہے اھ ردالمحتار (حاشیہ ذیل میں مندرج امام نووی کی عبارت اذکار پر

عه: كتبه المعترض حاشية على مانقل فی الفتاوی المكنوية فی عبارة الاذكار للامام النووي رحمه الله تعالى من قوله "لابأس به فان اصل المصافحة سنة و كونهم حافظوا عليها فی بعض الاحوال وفرطوا فی كثير من الاحوال او اكثرها لا يخرج ذلك البعض عن كونه من المصافحة التی ورد الشرع بأصلها"

اھ ۱۲ منه رضي الله تعالی عنه (م) فتاویٰ مولوی عبدالحئی لکھنوی میں امام نووی کی کتاب اذکار سے منقولہ عبارت پر بریلی کے معترض مولوی صاحب نے یہ حاشیہ لکھا ہے امام نووی کی عبارت یہ ہے: "اس مصافحہ میں کوئی حرج نہیں، اس لئے کہ اصل مصافحہ سنت ہے، اور اکثر حالات میں لوگ مصافحہ کے اندر کوتاہی کرنے کے ساتھ صرف بعض حالات میں اگر مصافحہ کی پابندی کرتے ہیں تو اس سے بعض حالات والا مصافحہ (مثلاً مصافحہ بعد نماز) اس مصافحہ جائزہ کے دائرے سے خارج نہ ہوگا جس کی اصلیت شرع سے ثابت ہے۔ (ت)

Fatawa Razawiyya Volume 8

Doing a Sunnah at certain times is not called an innovation, even though the people's practice in the two mentioned times (after Fajr and Asr) is not according to the prescribed desirability. This is because the place for the mentioned handshake is at the first meeting. Sometimes a group meets without shaking hands and spends a long time in conversation and scholarly discussion, etc. Then, when they have prayed, they shake hands. So where is this from the prescribed Sunnah? Because of this, some scholars have stated that it is disliked (Makruh) and it is among the blameworthy innovations. This is mentioned in Al-Mirqat. | (Objecting, the aforementioned Maulana has written in the marginalia) It is clear that there is a kind of contradiction in Imam Nawawi's words. Because if people shake hands at certain times 'according to the Sunnah', it will not be called an innovation. But the practice after Fajr and Asr is not as a prescribed desirability because the place for the permissible prescribed handshake is only at the first meeting, and here it often happens that some people meet without shaking hands and stay together for a long time in conversation and scholarly discussion, etc. Then when they have prayed, they shake hands; where is this from the prescribed Sunnah! That is why some scholars have explicitly stated that this is disliked and is counted among the blameworthy innovations, this very phrase is in Al-Mirqat. (T)

Regarding the Second Eid Writing the answer and explaining the truth, removing doubts and lifting the veil—meaning the copy of this writing which was sent as a response to the objecting Maulana.

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful We praise Him and send blessings upon His Noble Messenger Respected Maulana! May your glory continue, after the prescribed greeting, it is requested: You sent the collection of fatwas of Maulana Abdul Hai Lakhnavi in response to the fatwa of this humble servant regarding embracing (mu'anaqah), and in its first volume, page 528 of the first edition, the fatwa on embracing...

Note: This 'H' (ح) is written like this in his handwriting, but it is not in the text of Al-Mirqat, nor does it have a place in the text, as is evident. (12 منه) May Allah be pleased with him. (M) | The mentioned author's writing has this 'H' like this, but it is not in the Mirqat phrase, nor is there any occasion for it in the text, as is apparent. (T)

Page 619 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

कुछ समयों में सुन्नत पर अमल करना बिदअत नहीं कहलाता, हालांकि उन दो समयों (फ़ज्र और अस्र के बाद) में लोगों का अमल शरीअत में मुस्तहब (पसंदीदा) नहीं है। क्योंकि ज़िक्र किया गया मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) पहली मुलाक़ात के समय होता है। कभी-कभी लोग बिना हाथ मिलाए मिलते हैं और लंबे समय तक बातचीत और ज्ञान चर्चा आदि में साथ रहते हैं, फिर नमाज़ के बाद हाथ मिलाते हैं। तो यह सुन्नत से कहाँ साबित है? इसी कारण कुछ विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि यह मकरूह (नापसंदीदा) है और इसे निंदनीय बिदअतों में गिना जाता है। मिरक़ात में ऐसा ही लिखा है। | (एतराज़ करते हुए मौलवी साहब ने हाशिये में लिखा है) साफ़ है कि इमाम नववी के कलाम में एक तरह का विरोधाभास है। क्योंकि अगर लोग कुछ समय 'सुन्नत के मुताबिक' हाथ मिलाते हैं तो उसे बिदअत नहीं कहा जाएगा। लेकिन फ़ज्र और अस्र के बाद का अमल शरीअत में पसंद नहीं किया गया क्योंकि जायज़ हाथ मिलाने का समय केवल पहली मुलाक़ात है, और यहाँ अक्सर ऐसा होता है कि लोग बिना हाथ मिलाए मिलते हैं और देर तक बातचीत और चर्चा करते हैं, फिर नमाज़ के बाद हाथ मिलाते हैं; यह सुन्नत कहाँ है! इसीलिए कुछ उलमा ने साफ़ कहा है कि यह मकरूह है और बुरी बिदअतों में है, यही बात मिरक़ात में है। (त)

दूसरी ईद के बारे में उत्तर लिखना और सच्चाई को स्पष्ट करना, शंकाओं को दूर करना और रहस्योद्घाटन—अर्थात उस लेखन की प्रतिलिपि जो आपत्ति करने वाले मौलवी के पास उत्तर के रूप में भेजी गई।

बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम हम उसकी प्रशंसा करते हैं और उसके सम्मानित रसूल पर दरूद भेजते हैं आदरणीय मौलाना! आपकी महिमा बनी रहे, दुआ-सलाम के बाद निवेदन है: आपने गले मिलने (मुआनक़ा) के बारे में इस फ़क़ीर के फ़तवे के जवाब में मौलाना अब्दुल हई लखनवी के फ़तवों का संग्रह भेजा और उसके पहले खंड के पृष्ठ 528 (प्रथम संस्करण) में गले मिलने के फ़तवे के बारे में...

नोट: यह 'ह' (ہ) उनके हाथ की लिखावट में इसी तरह है, लेकिन यह मिरक़ात की इबारत में नहीं है, और न ही इबारत में इसकी कोई जगह है, जैसा कि स्पष्ट है। (म) | संबंधित लेखक के लेखन में यह 'ह' इसी तरह बना हुआ है, लेकिन यह मिरक़ात के वाक्यांश में नहीं है, न ही इबारत में इसकी गुंजाइश है जैसा कि ज़ाहिर है। (त)

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

اتیان السنۃ فی بعض الاوقات لایسمی بدعۃ مع ان عمل الناس فی الوقتین المذکورین لیس علی وجہ الاستحباب المشروع، لان محل المصافحۃ المذکورۃ اول الملاقاۃ وقد یکون جماعۃ یتلاقون من غیر مصافحۃ ویتصاحبون بالکلام وبمذاکرۃ العلم وغیرہ مدۃ مدیدۃ ثم اذا صلوا یتصافحون فاین ھذا من السنۃ المشروعۃ وبھذا صرح بعض العلماء بأنھا مکروھۃ عہ وح انھا من البدع المذمومۃ کذا فی المرقاۃ۔ | اعتراض کرتے ہوئے مولوی صاحب مذکور نے حاشیہ لکھا ہے) ظاہر ہے کہ امام نووی کے کلام میں ایک طرح کا تعارض ہے۔ اس لئے کہ اگر لوگ بعض اوقات "سنت کے مطابق " مصافحہ کرتے ہیں توا سے بدعت نہیں کہا جائے گا۔ لیکن فجر و عصر کے بعد کا عمل استحباب مشروع کے طور پر نہیں ہے اس لئے کہ جائز مشروع مصافحہ کا محل بس اول ملاقات ہے، اور یہاں تو بسا اوقات ایسا ہوتا ہے کہ کچھ لوگ ملاقات بلا مصافحہ کرتے ہیں اور دیر تک گفتگو و علمی بحث وغیرہ میں ایک ساتھ رہتے ہیں پھر جب نماز پڑھ لیتے ہیں تو مصافحہ کرتے ہیں ، یہ سنت مشروعہ کہاں ! اسی لئے تو بعض علماء نے صراحۃ فرمایا ہے کہ یہ مکروہ ہے اور اس کا شمار مذموم بدعتوں میں ہے، یہی عبارت مرقاۃ میں ہے۔ (ت)

عید ثانی میں تحریر جواب و تقریر صواب وازالہ اوہام و کشفِ حجاب — یعنی اس تحریر کی نقل جو برسم جواب مولوی معترض کے پاس مرسل ہوئی۔

بسم اللہ الرحمن الرحیم نحمدہ و نصلی علی رسولہ الکریم جناب مولانا ! دام مجد کم، بعد ما ھو المسنون ملتمس، فتوٰی فقیر درباره معانقہ کے جواب میں مجموعہ فتاوٰی مولوی عبدالحئی صاحب لکھنوی جناب نے ارسال فرمایا اور اس کی جلد اول صفحہ ۵۲۸ طبع اول میں جو فتوٰی معانقہ...

عه: هکذا بخطه ولیست بهذه الحاء فی عبارة المرقاة ولا لها محل فی العبارة کما لا یخفی ۱۲ منه رضی اللہ تعالی عنہ (م) | صاحب موصوف کی تحریر میں اسی طرح یہ "ح" بنی ہوئی ہے مگر یہ عبارة مرقاة میں نہیں ہے، عبارت میں اس کا موقع بھی نہیں جیسا کہ ظاہر ہے۔ (ت)

(Volume Eight) (Fatawa Rizvia)

...is mentioned and on its margin, some supporting text from Radd al-Muhtar and Mirqat was also written. The questioner was waiting that when it was requested to you whether this collection is authentic in your view, you said: "If it were not authentic to us, why would we present it?". Truly, this statement is apparent and appropriate. Although it was not necessary for this humble servant to answer such a counter-argument, yet at the insistence of the questioner, purely for the purpose of establishing the truth and eradicating falsehood, there are a few requests. God forbid, do not interpret it in any other way. This humble servant considers every beneficent Muslim worthy of respect, especially since you are from the learned Sayyids. The only purpose is that you also, by virtue of your greatness in lineage, descent, age, and knowledge, listen to these submissions with an eye for investigating the truth. If the truth becomes clear, then its acceptance is expected and hoped for, because returning to the truth is not a shame for scholars, but rather, God forbid, persisting in falsehood is against the dignity of scholars. Allah says:

"So give good news to My servants (17) who listen to the Word and follow the best thereof." [1] F1 So give good news to those servants who listen to the word with attention and then follow its best. (T)

Request 1: Is the reliance on this collection of fatwas for the purpose of blaming or as a matter of research? On the first premise, when did this humble servant say that the writing of any contemporary is a proof for me? On the second premise, it had to be proven first with evidence that this book is worthy of being presented as an argument to the servants of knowledge F2.

F1: The summary is that we proved the permissibility of the Eid hug from the noble Hadiths and presented authentic jurisprudential texts. In response to this well-reasoned fatwa based on Hadiths and texts, you are presenting the fatwa of Maulvi Abdul Hai Sahib as an authority. Answering such a contrary argument was not necessary, but at the insistence of the questioner, for the sake of showing the truth as truth and erasing falsehood and injustice, there are a few requests in your service. The purpose of these requests is only that you look with a deep gaze; if the truth becomes clear, then it is hoped that you will accept it, because turning towards the truth and accepting it is not a disgrace for scholars, but rather, God forbid, sticking to a false and unjust matter is against the dignity of scholars. (T)

F2: Clarification: In response to my fatwa, you have presented Maulvi Abdul Hai Sahib's collection of fatwas as an authority. There can be only two possibilities for this: (1) Either the intention is to blame me, that look, in your own authentic and recognized book... (continued on the next page)

[1] Al-Quran 39/18

(खंड आठ) (फ़तावा रज़विया)

...उल्लेखित है और उसके हाशिये पर समर्थन में रद्दुल मुहतार और मिर्क़ात की कुछ इबारत भी लिख दी। प्रश्नकर्ता प्रतीक्षा में था कि जब आपसे यह निवेदन किया गया कि क्या यह संग्रह आपके निकट विश्वसनीय है, तो आपने फ़रमाया: "हमारे निकट विश्वसनीय न होता तो हम क्यों पेश करते"। और वास्तव में यह कहना स्पष्ट और उचित है। यद्यपि इस विनम्र सेवक के लिए ऐसी आपत्ति का उत्तर देना आवश्यक नहीं था, फिर भी प्रश्नकर्ता के आग्रह पर, केवल सत्य को स्थापित करने और असत्य को मिटाने के उद्देश्य से कुछ निवेदन हैं। ईश्वर न करे, इसे किसी अन्य अर्थ में न लें। यह विनम्र सेवक प्रत्येक उपकारी मुसलमान को सम्मान के योग्य समझता है, विशेष रूप से आप विद्वान सादात (सैयद) में से हैं। उद्देश्य केवल इतना है कि आप भी अपनी महानता, वंश, आयु और ज्ञान के अनुसार इन निवेदनों को सत्य की खोज की दृष्टि से ध्यानपूर्वक सुनें। यदि सत्य स्पष्ट हो जाए, तो उसकी स्वीकार्यता की अपेक्षा और आशा है, क्योंकि सत्य की ओर लौटना विद्वानों के लिए लज्जा की बात नहीं है, बल्कि ईश्वर न करे, असत्य पर अड़े रहना विद्वानों की गरिमा के विरुद्ध है। अल्लाह ने फ़रमाया:

"तो मेरे उन बंदों को शुभ सूचना दे दो (17) जो बात को ध्यान से सुनते हैं, फिर उसके सबसे अच्छे का अनुसरण करते हैं।" [1] फ़1 तो उन बंदों को खुशखबरी सुनाएं जो कान लगाकर बात सुनते हैं फिर उसके बेहतर पर चलते हैं। (त)

प्रथम निवेदन: इस फ़तावा संग्रह से प्रमाण देना आरोप के लिए है या शोध के रूप में? पहले आधार पर, इस विनम्र सेवक ने कब कहा था कि किसी समकालीन का लेखन मेरे लिए प्रमाण है? दूसरे आधार पर, पहले प्रमाण से सिद्ध करना था कि यह पुस्तक ज्ञान के सेवकों पर प्रमाण के रूप में पेश करने योग्य है फ़2।

फ़1: सारांश यह है कि हमने ईद के गले मिलने की अनुमति को हदीसों से सिद्ध किया और विश्वसनीय न्यायशास्त्रीय इबारतें पेश कीं। हदीसों और ग्रंथों पर आधारित इस तर्कसंगत फ़तवे के उत्तर में आप मौलवी अब्दुल हई साहब के फ़तवे को विश्वसनीय बनाकर पेश कर रहे हैं। ऐसे विपरीत तर्क का उत्तर देना तो आवश्यक नहीं था, लेकिन प्रश्नकर्ता के आग्रह पर सत्य को सत्य दिखाने और असत्य व अन्याय को मिटाने के लिए आपकी सेवा में कुछ निवेदन हैं। इन निवेदनों का उद्देश्य केवल यह है कि आप गहराई से देखें; यदि सत्य स्पष्ट हो जाए तो आपसे इसे स्वीकार करने की आशा है

क्योंकि सत्य की ओर मुड़ना और उसे स्वीकार कर लेना विद्वानों के लिए अपमान नहीं है, बल्कि ईश्वर न करे, असत्य और गलत बात पर अड़े रहना विद्वानों की शान के खिलाफ है। (त)

फ़2: स्पष्टीकरण: आपने मेरे फ़तवे के उत्तर में मौलवी अब्दुल हई साहब का फ़तावा संग्रह विश्वसनीय बनाकर पेश किया है, इसकी दो ही स्थितियाँ हो सकती हैं: (१) या तो मुझे दोष देना उद्देश्य है कि देखिए आपकी विश्वसनीय और मानी हुई किताब में (बाकी अगले पृष्ठ पर)

[1] अल-क़ुरआन 39/18 पृष्ठ 620 का 673

مندرجہ ہے پیش کیا اور اس کے حاشیے پر تائید کچھ عبارت رد المحتار مرقاۃ بھی تحریر فرمادی، سائل منتظر کہ جب جناب سے یہ گزارش ہوئی کہ آیا یہ مجموعہ آپ کے نزدیک مستند ہے تو فرمایا : "ہمارے نزدیک مستند نہ ہوتا تو ہم پیش کیوں کرتے"۔ اور واقعی یہ فرمانا ظاہر و بجاہے، فقیر کو اگر چہ ایسے معارضہ کا جواب دینا ضرور نہ تھا مگر حسب اصرار سائل، محض بغرضِ احقاقِ حق و ازہاقِ باطل چند التماس ہیں، معاذ اللہ کسی دوسری وجہ پر حمل نہ فرمائیے فقیر ہر محسن مسلمان کو مستحق ادب جانتا ہے خصوصاً جناب تو اہل علم سادات سے ہیں، مقصود صرف اتنا ہے کہ جناب بھی بمقتضائے بزرگی حسب و نسب و عمر و علم ان گزارشوں کو بنظرِ غور تحقیق حق استماع فرمائیں، اگر حق واضح ہو تو قبول مرجوح و مامول کہ علماء کے لئے رجوع الی الحق عارض نہیں بلکہ معاذ اللہ اصرار علی الباطل _ قال تعالٰی:

فَبَشِّرْ عِبَادِ ﴿۱۷﴾ الَّذِينَ يَسْتَمِعُونَ الْقَوْلَ فَيَتَّبِعُونَ أَحْسَنَهُ ط [1] ف ۱ تو خوشخبری سناؤ اُن بندوں کو جو کان لگا کر بات سُنیں پھر اس کے بہتر پر چلیں۔ (ت)

التباسِ اول: اس مجموعہ فتاویٰ سے استناد الزاماً ہے یا تحقیقاً؟ علی الاول فقیر نے کب کہا تھا کہ کسی معاصر کی تحریر مجھ پر حجت ہے، علی الثانی پہلے دلیل سے ثابت کرنا تھا کہ یہ کتاب خادمانِ علم پر احتجاجاً پیش کرنے کے قابل ہے ف ۲۔

ف ۱ : حاصل یہ ہے کہ ہم نے معانقہ عید کا جواز احادیثِ کریمہ سے ثابت کیا، مستند فقہی عبارتیں پیش کیں، اس احادیث اور نصوص سے مدلل فتوے کے جواب میں آپ مولوی عبدالحہ صاحب کا فتویٰ مستند بنا کر پیش کر رہے ہیں، ایسی مخالف دلیل کا جواب تو کوئی ضروری نہ تھا مگر سائل

کے اصرار پر حق کو حق دکھانے اور باطل و ناحق کو مٹانے کی خاطر آپ کی خدمت میں چند التماس ہیں، ان التماسوں کا مقصد صرف یہ ہے کہ آپ بنگاہِ غور دیکھیں اگر حق واضح ہو تو آپ سے اسے قبول کر لینے کی امید ہے اس لئے کہ حق کی طرف رجوع اور اسے قبول کر لینا علماء کے لئے عار نہیں بلکہ معاذ اللہ باطل و ناحق بات پر اڑے رہنا شانِ علماء کے خلاف ہے۔ (ت)

ف ۲: توضیح: آپ نے میرے فتوے کے جواب میں مولوی عبدالحہ صاحب کا مجموعہ فتاویٰ مستند بنا کر پیش کیا ہے اس کی دو ہی صورتیں ہو سکتی ہیں : (۱) یا تو مجھے الزام دینا مقصود ہے کہ دیکھئے آپ کی مستند اور مانی ہوئی کتاب میں (باقی اگلے صفحہ پر)

[1] القرآن ۳۹/ ۱۸ Page 620 of 673

Fatawa Ridawiyya Volume 8

Second: Perhaps the gentleman has not perused this collection comprehensively. It contains many issues and statements in many places that are completely contrary to and refute the basic creed of today's group of abstainers (Manieen). Let me point out a few of them as examples. In Volume 1, page 531, he writes: "There are many precedents for this in the books of jurisprudence that did not exist in previous times, but due to pious objectives, the ruling of their permissibility was given."[1] On page 494, it states: "Reciting the sermon of 'Al-Wada' or 'Al-Firaq' at the end of Ramadan and expressing words of sorrow and farewell is a permissible (mubah) act in itself. In fact, if these words cause regret and repentance in the listeners, then there is hope for reward, although there is no proof for this method in the first three generations (Qurun al-Thulatha)."[2] In Volume 2, page 70, it says:

[Persian Quote]: Whoever says that the Wujudiyyah and Shuhudiyyah are from the people of innovation, his statement is not worthy of consideration. The basis of his statement is ignorance and lack of awareness of the states of the friends of Allah (Awliya) and the meaning of Wahdat al-Wujud and Wahdat al-Shuhud. And the poet who censured both groups is worthy of blame.[3] [Urdu Translation]: Whoever says that the Wujudiyyah and Shuhudiyyah are from the people of innovation, his statement is not worthy of consideration. The basis of his statement is ignorance and lack of awareness of the states of the friends of Allah (Awliya) and the meaning of Wahdat al-Wujud and Wahdat al-Shuhud. And the poet who censured both groups (Wujudiyyah and Shuhudiyyah) is worthy of blame. (T)

On page 421, it states: The 'Shughl-e-Barzakh' in the manner described by the pure Sufis is neither polytheism (shirk) nor misguidance (dalalat). Yes, excess and deficiency in it leads to misguidance. This is clearly stated in the 'Maktubat' of Mujaddid Alf Thani. (Remainder of footnote from previous page) [It is] against you, but when did I say that the writing of any scholar of this era is a proof for me? (2) Or that you yourself have presented it as reliable and authoritative for everyone after research. So you had to first prove with evidence that this book is worthy of being used as an argument and as a proof and authority over the scholars. And when both these situations are not correct, then presenting this collection of fatwas here is out of place. (Translator)

1. Majmu'a Fatawa Abdul Hayy

2. Majmu'a Fatawa Abdul Hayy, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, printed at Matba' Yusufi, Lucknow, 12 / 24-25
3. Majmu'a Fatawa Abdul Hayy, Kitab al-Hazr wal-Ibaha, printed at Matba' Yusufi, Lucknow, 12 / 58

द्वितीय: शायद जनाब ने इस संग्रह का पूर्णतः अवलोकन नहीं किया है। इसमें कई स्थानों पर वे मसले और शब्द हैं जो आज के दौर के'मानिईन' (रोकने वाले) गुट के बिल्कुल विपरीत और उनके मूल पंथ को काटने वाले हैं। उदाहरण के तौर पर उनमें से कुछ का संकेत देता हूँ। प्रथम खंड, पृष्ठ 531 पर लिखते हैं: "फ़िक़्ह (इस्लामी न्यायशास्त्र) की किताबों में इसके कई उदाहरण मौजूद हैं जो पिछले युगों में नहीं थे, लेकिन नेक मकसदों के कारण उनकी अनुमति का हुक्म दिया गया।"[1] पृष्ठ 494 पर है: "रमज़ान के अंत में 'अल-विदा' या 'अल-फ़िराक़' का खुतबा पढ़ना और हसरत व विदाई के शब्द कहना अपने आप में एक जायज़ (मुबाह) काम है। बल्कि अगर ये शब्द सुनने वालों में पछतावा और तौबा का कारण बनें, तो सवाब की उम्मीद है, हालांकि इस तरीके का सबूत शुरुआती तीन पीढ़ियों (कुरून-ए-सलासा) में नहीं मिलता।"[2] द्वितीय खंड, पृष्ठ 70 में है:

[फारसी उद्धरण]: जो कहता है कि वजूदिया और शुहूदिया बिदअत वालों में से हैं, उसका कथन विचारणीय नहीं है। उसके कथन का आधार औलिया की स्थितियों और तौहीद-ए-वजूदी व शुहूदी के अर्थ से अज्ञानता और अनभिज्ञता है। और जिस शायर ने दोनों समूहों की निंदा की, वह स्वयं निंदा के योग्य है।[3] [उर्दू अनुवाद]: जो कहता है कि वजूदिया और शुहूदिया अहल-ए-बिदअत से हैं, उसका कथन विचारणीय नहीं है। और उसके कथन की बुनियाद यह है कि वह औलिया के हालात और तौहीद-ए-वजूदी व शुहूदी के अर्थ से अनभिज्ञ और बेखबर है। और जिस शायर ने दोनों समूहों (वजूदिया और शुहूदिया) की निंदा की है, वह स्वयं निंदा के योग्य है। (त)

पृष्ठ 421 पर है: 'शुग्ल-ए-बर्ज़ख़' उस तरीके से जैसा कि सूफ़ी संतों ने लिखा है, न तो शिर्क (बहुदेववाद) है और न ही गुमराही (ज़लालत)। हाँ, इसमें अति और कमी गुमराही की ओर ले जाती है। इसकी स्पष्ट व्याख्या मुजद्दिद अल्फ़ थानी के मकतूबात (पत्रों) में है। (पिछले पृष्ठ के हाशिए का शेष) [यह] आपके विरुद्ध है, लेकिन मैंने कब कहा कि इस ज़माने के किसी विद्वान का लेखन मुझ पर दलील (हुज्जत) है। (2) या यह कि आपने स्वयं शोध के बाद इसे सभी के लिए विश्वसनीय और प्रामाणिक मानकर पेश किया है। तो आपको पहले प्रमाण से सिद्ध करना था कि यह पुस्तक तर्क के योग्य है और विद्वानों पर हुज्जत व प्रमाण बनाकर पेश करने के लायक है। और जब ये दोनों स्थितियाँ सही नहीं हैं, तो इस फ़तवा संग्रह को यहाँ पेश करना ही अनुचित है। (अनुवादक)

1. मजमुआ फतावा अब्दुल हई

2. मजमुआ फतावा अब्दुल हई, किताब अल-हज़र वल-इबाहत, मुद्रित मतबा यूसुफी, लखनऊ, 12 / 24-25
3. मजमुआ फतावा अब्दुल हई, किताब अल-हज़र वल-इबाहत, मुद्रित मतबा यूसुफी, लखनऊ, 12 / 58

पृष्ठ 621 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

دوم: شاید جناب نے اس مجموعہ کو استیعاباً ملاحظہ نہ فرمایا اس میں بہت جگہ وہ مسائل و کلمات ہیں جو آج کل کے فرقہ مانعین کے بالکل مخالف و قاطع اصل مذہب ہیں۔ تمثیلاً ان میں سے چند کا نشان دوں۔ جلد اول صفحہ ۵۳۱ پر لکھتے ہیں: "کتب فقہیہ میں نظائر اس کے بہت موجود ہیں کہ ازمنہ سابقہ میں ان کا وجود نہ تھا مگر بسبب اغراض صالحہ کے حکم اس کے جواز کا دیا گیا"۔[1] صفحہ ۴۹۴ پر ہے: "الوداع یا الفراق کا خطبہ آخر رمضان میں پڑھنا اور کلمات حسرت و رخصت کے ادا کرنا فی نفسہ امر مباح ہے بلکہ اگر یہ کلمات باعث ندامت و توبہ سامعان ہوئے تو امید ثواب ہے مگر اس طریقہ کا ثبوت قرونِ ثلثہ میں نہیں[2] جلد دوم صفحہ ۷۰ میں ہے:

کسے کہ می گوید کہ وجودیہ و شہودیہ از اہل بدعت اند قولش قابل اعتبار نیست و منشاء قولش جہل و ناواقفیت است از احوال اولیاء و از معنی توحید وجودی و شہودی و شاعر کہ ذم ہر دو فرقہ ساخت قابل ملامت ست[3]۔ جو کہتا ہے کہ وجودیہ اور شہودیہ اہل بدعت سے ہیں اس کا قول قابل اعتبار نہیں، اور اس کے قول کی بنیاد یہ ہے کہ وہ اولیاء کے احوال اور توحید وجودی و شہودی کے معنی سے جاہل وبے خبر ہے اور جس شاعر نے دونوں فرقوں (وجودیہ و شہودیہ) کی مذمت کی ہے وہ قابل ملامت ہے۔ (ت)

صفحہ ۴۲۱ پر ہے: شغلِ برزخ اس طور پر کہ حضرات صوفیہ صافیہ نے لکھا ہے نہ شرک ہے نہ ضلالت۔ ہاں افراط و تفریط اس میں منجر ضلالت کی طرف ہے۔ تصریح اس کی مکتوبات مجدد الف ثانی (بقیہ حاشیہ صفحہ گزشتہ) آپ کے خلاف ہے، مگر میں نے کب کہا کہ اس زمانے کے کسی عالم کی تحریر مجھ پر حجت ہے۔ (۲) یا یہ کہ آپ نے خود تحقیقی طور پر اسے سب کے لئے معتمد اور مستند جان کر پیش کیا ہے۔ تو آپ کو پہلے دلیل سے ثابت کرنا تھا کہ یہ کتاب قابلِ

استدلال اور علماء پر حجت و سند بنا کر پیش کرنے کے لائق ہے۔ اور جب یہ دونوں صورتیں صحیح نہیں تو اس مجموعہ فتاویٰ کو یہاں پیش کرنا ہی بے محل ہے۔ (مترجم)

1 مجموعہ فتاویٰ عبد الحی 2 مجموعہ فتاویٰ عبد الحی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنؤ ۱۲ / ۲۴-۲۵ 3 مجموعہ فتاویٰ عبد الحی کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنؤ ۱۲ / ۵۸

Fatawa Razawiyya Volume Eight

It is found in various places [1] F. In Volume 3, page 85, it is written:

Question (Persian): Reciting Surah Ikhlas three times at the completion of the Quran in Tarawih; is it commendable or not?	**Question (Urdu): Reciting Surah Ikhlas three times at the completion of the Quran in Tarawih; is this commendable or not?**
Answer (Persian): It is commendable [2].	Answer (Urdu): It is commendable. (T)

On page 127 it is written:

| Question (Persian): Is it correct to write Bismillah on the forehead of the deceased with a finger or not? Answer: It is correct [3]. | Question (Urdu): Is it correct to write Bismillah on the forehead of the deceased with a finger or not? Answer: It is correct. (T) |

On page 152 it is written:

| (Persian): In the gatherings of Milad Sharif, where they recite from Surah Ad-Duha to the end, they certainly say Takbir after finishing each Surah. The author has been a participant in these blessed gatherings and has observed this practice in Makkah Mukarramah, Madinah Munawwarah, and Jeddah [4]. | (Urdu): In the gatherings of Milad Sharif, Surah Ad-Duha to the end of the Quran is recited, and Takbir is said after finishing each Surah. The author has participated in these blessed gatherings and observed this practice in Makkah Mukarramah as well, in Madinah Munawwarah as well, and in Jeddah as well. (T) |

Remarkably, on page 120 he writes: F1: Regarding seeking spiritual attention (tawajjuh) from souls, Tasawwur-e-Sheikh (visualization of the spiritual guide), Barzakh-related practices, etc., Aala Hazrat (may his secret be sanctified) has written a reasoned treatise named "Al-Yaqut al-Wasita fi Qalb Aqd al-Rabita" (1309 AH), in which its permissibility is proven through the texts of scholars and the statements of authoritative objectors. It is worth studying. - (Translator)

[1] Majmu'a Fatawa Abdul Hayy [2] Majmu'a Fatawa Abdul Hayy, Chapter of Tarawih, published by Matba' Yusufi Lucknow, 3 / 75 [3] Majmu'a Fatawa Abdul Hayy, Chapter regarding the Deceased, published by Matba' Yusufi Lucknow, 1 / 123 [4] Majmu'a Fatawa Abdul Hayy, Chapter of Recitation in Prayer, published by Matba' Yusufi Lucknow, 3 / 52

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

यह जगह-जगह मौजूद है [1] फ़ा। जिल्द तीसरी, पृष्ठ 85 में है:

प्रश्न (फ़ारसी): तरावीह में कुरान खत्म करने के समय तीन बार सूरह इखलास पढ़ते हैं, क्या यह मुस्तहसन (सराहनीय) है या नहीं?

उत्तर (फ़ारसी): मुस्तहसन है [2]।

प्रश्न (उर्दू): तरावीह में कुरान खत्म करने के समय तीन बार सूरह इखलास पढ़ते हैं, यह मुस्तहसन है या नहीं?

उत्तर (उर्दू): मुस्तहसन है। (त)

पृष्ठ 127 पर है:

| प्रश्न (फ़ारसी): मय्यत की पेशानी पर उंगली से बिस्मिल्लाह लिखना सही है या नहीं? उत्तर: सही है [3]। | प्रश्न (उर्दू): मय्यत की पेशानी पर उंगली से बिस्मिल्लाह लिखना सही है या नहीं? उत्तर: सही है। (त) |

पृष्ठ 152 में है:

| (फ़ारसी): मिलाद शरीफ़ की महफ़िलों में जहाँ सूरह वद्दुहा से आख़िर तक पढ़ते हैं, वे यकीनन हर सूरह खत्म करने के बाद तकबीर कहते हैं। लेखक ने इन मुबारक महफ़िलों में शरीक होकर मक्का मुकर्रमा, मदीना मुनव्वरा और जेद्दा में भी इस बात का मुशाहदा (अवलोकन) किया है [4]। | (उर्दू): मिलाद शरीफ़ की महफ़िलों में सूरह वद्दुहा से आख़िर कुरान तक पढ़ते हैं, हर सूरह खत्म करने के बाद तकबीर कहते हैं। लेखक ने इन मुबारक महफ़िलों में शरीक होकर इस बात का मुशाहदा किया है, मक्का मुकर्रमा में भी, मदीना मुनव्वरा में भी और जेद्दा में भी। (त) |

अजीब बात यह है कि पृष्ठ 120 पर लिखते हैं: फ़1: रूहों से तवज्जो तलब करना, तसव्वुर-ए-शेख़, शगल-ए-बर्ज़ख़ वगैरह के बारे में आला हज़रत (क़ुद्दसा सिर्रहु) का एक दलील युक्त रिसाला है "अल-याकूत अल-वास्ता फ़ी क़ल्ब अक़्द अल-राब्ता" (1309 हिजरी) जिसमें उलमा के नुसूस और मोतबर मानिईन (विरोध करने वालों) की इबारतों से इसका जवाज़ (वैधता) साबित फ़रमाया है। अध्ययन के योग्य है। - (अनुवादक)

[1] मजमुआ फ़तावा अब्दुल हई [2] मजमुआ फ़तावा अब्दुल हई, बाब-अत-तरावीह, मुद्रित मत्तबए यूसुफ़ी लखनऊ, 3 / 75 [3] मजमुआ फ़तावा अब्दुल हई, बाब मा यतअ़ल्लिक़ु बिल-मौता, मुद्रित

मत्तबए यूसुफ़ी लखनऊ, 1 / 123 [4] मजमुआ फ़तावा अब्दुल हई, बाबुल्-क़िराअत फ़िस-सलात, मुद्रित मत्तबए यूसुफ़ी लखनऊ, 3 / 52

पेज 622/673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

میں جا بجا موجود ہے ۱ ف جلد سوم صفحہ ۸۵ میں ہے:

سوال: وقت ختم قرآن در تراویح سہ بار سورہ اخلاص می خوانند مستحسن است یا نہ؟ **سوال: تراویح میں ختم قرآن کے وقت تین بار سورہ اخلاص پڑھتے ہیں یہ مستحسن ہے یا نہیں؟**

جواب: مستحسن ست ۲۔ جواب: مستحسن ہے۔ (ت)

صفحہ ۱۲۷ پر ہے:

| سوال: بسم اللہ نوشتن بر پیشانی میت از انگشت درست ست یا نہ؟ جواب: درست ست ۳۔ | سوال: انگلی سے میت کی پیشانی پر بسم اللہ لکھنا درست ہے یا نہیں؟ جواب: درست ہے۔ (ت) |

صفحہ ۱۵۲ میں ہے:

| در مجالس مولد شریف کہ از سورہ والضحٰی تا آخر می خوانند البتہ بعد ختم ہر سورہ تکبیر می گویند راقم شریک مجالس متبرک بودہ ایں امر را مشاہدہ کردم ہم در مکہ معظمہ و ہم در مدینہ منورہ و ہم در جدہ ۴۔ | میلاد شریف کی محفلوں میں سورہ والضحٰی سے آخر قرآن تک پڑھتے ہیں ہر سورہ ختم کرنے کے بعد تکبیر کہتے ہیں، راقم نے ان متبرک محفلوں میں شریک ہو کر اس امر کا مشاہدہ کیا ہے مکہ معظمہ میں بھی، مدینہ منورہ میں بھی اور جدہ میں بھی۔ (ت) |

طرفہ یہ کہ صفحہ ۱۲۰ پر لکھتے ہیں: ف۱: ارواح سے توجہ طلبی، تصورِ شیخ، شغلِ برزخ وغیرہ سے متعلق اعلیحضرت قدس سرہ ایک مدلل رسالہ ہے الیاقوت الواسطۃ فی قلب عقد الرابطۃ (۱۳۰۹ھ) جس میں نصوصِ علماء اور مستندین مانعین کی عبارتوں سے اس کا جواز ثابت فرمایا ہے۔ قابلِ مطالعہ ہے -(مترجم)

١ مجموعہ فتاویٰ عبد الحئی ٢ مجموعہ فتاویٰ عبد الحئی باب التراویح مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنو ٣ / ٧٥ ٣ مجموعہ فتاویٰ عبد الحئی باب ما یتعلق بالموتٰی مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنو ١ / ١٢٣ ٤ مجموعہ فتاویٰ عبد الحئی باب القراۃ فی الصلوٰۃ مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنو ٣ / ٥٢

Fatawa Razvia, Volume 8

Question: Can the cloth of the flag of Sayyid Salar Masood Ghazi be used for one's own consumption or should it be given as charity?

Answer (Arabic/Persian fragment): Apparently, the use of the aforementioned cloth for one's own consumption does not seem to be a cause for sin, and it is better to give it to the poor and needy. (T)

Answer (Urdu): There is apparently no reason for sin in using the aforementioned cloth for one's own consumption, and it is better to give it to the poor and needy. (T)

Question: What is the ruling regarding these statements of the Maulvi Sahib? And what is the status of the one who says and believes in them? Especially, is one who considers "Shughl-e-Barzakh" (a mystical practice) permissible, God forbid, a polytheist or misguided? And will a book containing such statements be considered authentic and reliable or will it lose its status as evidence? Explain and you shall be rewarded.

Third: Maulvi Sahib has only given this ruling regarding the Eid embrace (Mua'naqah) that "abstaining from it is better." From this, leave alone prohibition, even dislike (karahat) is not proven at all. "The preference for abandonment is neither contrary to lawfulness and permissibility nor does it necessitate dislike." Note: It is in Radd al-Muhtar:

Arabic Text: Restricting to [Surah] Al-Fatihah is Sunnah, not obligatory. Therefore, adding [another Surah] is 'Khilaf-ul-Awla' (contrary to the preferred way), and that does not contradict lawfulness and permissibility in the sense of no sin in performing or abandoning the act.

Urdu Translation: Restricting to Surah Fatihah in the third and fourth units (rak'ats) of an obligatory (fard) prayer is only Sunnah, not obligatory (wajib). Thus, adding a Surah in these rak'ats would be contrary to the preferred (Khilaf-ul-Awla), and this is not contrary to its being permissible and allowed. Permissibility in this sense means there is no sin in either doing it or not doing it. (T)

Note 1: If jurists rule that it is better to leave a certain matter, it never proves that the thing is impermissible; in fact, it doesn't even necessitate it being disliked (Makruh). This is a great principle worth memorizing and useful in many instances. In view of this principle, when Maulana Abdul Hayy Sahib wrote regarding the Eid embrace only

that not doing it is better, it does not at all prove that the mentioned embrace is impermissible or disliked; rather, it proves that there is no harm if one does it. Then, using the mentioned fatwa to argue for the prohibition of the embrace is completely futile and an argument against oneself. (T)

1 Majmu'ah Fatawa, Chapter: What is permissible to use and what is not, printed at Matba-e-Yousufi Lucknow, 3/116. 2 Radd al-Muhtar, Chapter: Every disliked prayer must be repeated, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 1/459.

फ़तावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

प्रश्न: क्या सैय्यद सालार मसूद ग़ाज़ी के झंडे का कपड़ा अपने उपयोग में लाया जा सकता है या उसे दान कर दिया जाए?

उत्तर (अरबी/फारसी अंश): ज़ाहिर तौर पर, उपरोक्त कपड़े को अपने उपयोग में लाने में पाप का कोई कारण नहीं दिखता, और बेहतर यही है कि इसे गरीबों और ज़रूरतमंदों को दे दिया जाए। (त)

उत्तर (उर्दू): उपरोक्त कपड़े को अपने उपयोग में लाने में ज़ाहिर तौर पर गुनाह की कोई वजह नहीं है, और बेहतर यह है कि उसे मिस्कीनों और फ़क़ीरों को दे दे। (त)

प्रश्न: आपकी सेवा में प्रश्न है कि मौलवी साहब के ये कथन कैसे हैं? और उन्हें कहने और मानने वाले के बारे में क्या हुक्म है? विशेष रूप से, क्या "शग़ल-ए-बरज़ख़" को जायज़ मानने वाला, अल्लाह न करे, मुशरिक या गुमराह है या नहीं? और जिस किताब में ऐसे कथन दर्ज हों, क्या वह प्रामाणिक और विश्वसनीय मानी जाएगी या साक्ष्य के स्तर से गिर जाएगी? स्पष्ट करें और आप पुरस्कृत होंगे।

तीसरा: मौलवी साहब ने इस फ़तवे में ईद के गले मिलने (मुआनक़ा) के बारे में केवल इतना हुक्म दिया है कि "इसका छोड़ना बेहतर है"। इससे मनाही तो दूर, नफ़रत (कराहत) भी बिल्कुल साबित नहीं होती। "छोड़ने की प्राथमिकता न तो वैधता और अनुमेयता के विपरीत है और न ही नफ़रत को ज़रूरी बनाती है।" नोट: रद अल-मुह्तार में है:

अरबी पाठ: सूरह अल-फ़ातिहा तक सीमित रहना सुन्नत है, वाजिब नहीं। इसलिए, (सूरह) मिलाना 'ख़िलाफ़-उल-औला' (बेहतर के ख़िलाफ़) है, और वह वैधता और अनुमेयता के विपरीत नहीं है, इस अर्थ में कि कार्य करने या छोड़ने में कोई पाप नहीं है।

उर्दू अनुवाद: नमाज़ फ़र्ज़ की तीसरी चौथी रकतों में सूरह फ़ातिहा पर इक़्तफ़ा (सीमित रहना) केवल सुन्नत है, वाजिब नहीं, तो इन रकतों में सूरह मिलाना ख़िलाफ़-ए-औला होगा और यह इसके जायज़ व मुबाह होने के मुनाफ़ी (विपरीत) नहीं, मुबाह होने के इस अर्थ में कि करने न करने दोनों में कोई गुनाह नहीं। (त)

नोट 1: फ़ुक़्हा (धर्मशास्त्री) अगर यह हुक्म दें कि फ़लां काम का छोड़ना बेहतर है, तो इससे यह हरगिज़ साबित नहीं होता कि वह चीज़ नाजायज़ है बल्कि मकरूह होना भी लाज़िम नहीं आता। यह एक महान सिद्धांत है जो याद कर लेने के योग्य और बहुत से स्थानों में उपयोगी है। इस सिद्धांत को

ध्यान में रखते हुए जब मौलाना अब्दुल हई साहब ने ईद के गले मिलने के बारे में जब सिर्फ इतना लिखा कि इसका न करना बेहतर है, तो इससे उक्त गले मिलने का नाजायज़ या मकरूह होना बिल्कुल साबित नहीं होता बल्कि इससे तो यह साबित होता है कि कर ले तो कोई हर्ज नहीं। फिर गले मिलने की मनाही के बारे में उक्त फ़तवे से दलील देना बिल्कुल बेकार और अपने ख़िलाफ़ दलील है। (त)

1 मजमुआ फ़तावा, बाब मा यहिल्लु इस्तिमालुहु व मा ला यहिल्लु, मतबुआ मतबा-ए-यूसुफ़ी लखनऊ 3/116 2 रद अल-मुह्तार, मतलब कुल्लू सलातिन मकरूहतिन तजिबु इआदतुहा, मतबुआ एच.एम. सईद कंपनी कराची 1/459

جلد ہشتم فتاوٰی رضویہ

سوال: پارچہ جھنڈا سالار مسعود غازی در مصرف خود آرد یا تصدق نماید: جواب: ظاہراً در استعمال پارچہ مذکور بصرف خود وجہ موجب بزہ کاری باشد نیست و اولٰی آنست کہ بساکین و فقراء بدہد- (ت)

سوال: سید سالار مسعود غازی کے جھنڈے کا کپڑا اپنے مصرف میں لائے یا صدقہ کردے؟ جواب: مذکورہ کپڑا اپنے مصرف میں لانے کے اندر بظاہر گناہ کی کوئی وجہ نہیں، اور بہتر یہ ہے کہ مساکین و فقراء کو دے دے۔ (ت)

جناب سے سوال ہے کہ مولوی صاحب کے یہ اقوال کیسے؟ اور ان کے قائل و معتقد کا حکم کیا ہے؟ خصوصاً شغل برزخ کو جائز جاننے والا معاذ اللہ مشرک یا گمراہ ہے یا نہیں؟ اور جس کتاب میں ایسے اقوال مندرج ہوں مستند و معتمد ٹھہرے گی یا پایہ احتجاج سے ساقط ہوگی؟ بینوا توجروا

سوم: مولوی صاحب نے اس فتوٰی میں معانقہ عید کی نسبت صرف اتنا حکم دیا ہے کہ "ترک اس کا اولٰی ہے" اس سے ممانعت درکنار اصلاً کراہت بھی ثابت نہیں ہوتی "اولویتِ ترک نہ مشروعیت و اباحت کے منافی نہ کراہت کو مستلزم" ف: ردالمحتار میں ہے:

الاقتصار علی الفاتحة مسنون لاواجب فکان الضم خلاف الأولی وذلك لاینافی المشروعیة والاباحة بمعنی عدم الاثم فی الفعل والترك۔

نماز فرض کی تیسری چوتھی رکعتوں میں سورہ فاتحہ پر اکتفاء کرنا صرف مسنون ہے، واجب نہیں، تو ان رکعتوں میں سورہ ملانا خلافِ اولٰی ہوگا اور یہ اس کے جائز ومباح ہونے کے منافی نہیں، اباحت بایں معنٰی کہ کرنے نہ کرنے دونوں میں کوئی گناہ نہیں۔ (ت)

ف ۱: فقہاء اگر یہ حکم کریں کہ فلاں امر کا ترک بہتر ہے تو اس سے ہر گز یہ نہیں ثابت ہوتا کہ وہ چیز ناجائز ہے بلکہ مکروہ ہونا بھی لازم نہیں آتا۔ یہ ایک عظیم قاعدہ ہے جو حفظ کر لینے کے قابل اور بہت سے مقامات میں مفید ہے۔ اس قاعدے کے پیش نظر مولانا عبدالحئی صاحب نے معانقہ عید کے متعلق جب صرف اتنا لکھا کہ اس کا نہ کرنا بہتر ہے تو اس سے معانقہ مذکورہ کا ناجائز یا مکروہ ہونا بالکل ثابت نہیں ہوتا بلکہ اس سے تو یہ ثابت ہوتا ہے کہ کر لے تو کوئی ہرج نہیں۔ پھر ممانعتِ معانقہ کے بارے میں فتویٰ مذکور سے استدلال ہی بالکل بیکار اور اپنے خلاف استدلال ہے۔ (ت)

1 مجموعہ فتاویٰ باب ما یحل استعمالہ ومالا یحل مطبوعہ مطبع یوسفی لکھنؤ ۳/ ۱۱۶ 2 ردالمحتار مطلب کل صلوٰۃ مکروہۃ تجب اعادتہا مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۴۵۹

جلد ہشتم (Volume 8) فتاویٰ رضویہ (Fatawa Razawiyya)

It is in the same:

صَرَّحَ في البحر في صلوة العيد عند مسئلة الاكل بانه لايلزم من ترك المستحب ثبوت الكراهة "اذلا بُدَّ لها من دليل خاص "اهـ واشار الى ذلك في التحرير الاصولى بان خلاف الاولى ماليس فيه صيغة نهى كترك صلوة الضحى بخلاف المكروه تنزيهاً 1 -

It is mentioned in Bahr al-Ra'iq, where the issue is that eating something before the Eid prayer is recommended (Mustahab), it is stated that if someone abandons this Mustahab, they will not be guilty of a disliked (Makruh) act, because the proof of dislike does not necessarily follow from the abandonment of a Mustahab, as a specific proof is required for it to be considered Makruh. This is also indicated in 'Tahrir al-Usuli' that 'Contrary to the Better' (Khilaf al-Awla) is that which does not contain a form of prohibition, such as leaving the Duha prayer, unlike the slightly disliked (Makruh Tanzihi) which contains a form of prohibition. (T)

Furthermore, if in your view the ruling is the same as what the Maulana wrote in his fatwa, then please clarify that embracing (mu'anaqah) on Eid is not prohibited by Sharia, nor is there any harm in it at all. Yes, not doing it is better; if done, there is no issue.

Fourthly: The passages you quoted from Radd al-Muhtar and Mirqat do not mention the prohibition of embracing on Eid anywhere. They discuss shaking hands (musafahah) after the Fajr and Asr prayers or the five daily prayers. You do not hold the rank of Ijtihad to analogize one issue over another. If it is said that "the arguments mentioned there also apply here"...

I say: This is mere desire. In those passages, three arguments are mentioned: (1) The place for shaking hands is at the start of a meeting, not after prayers. (2) This specific handshake is a custom of the Rawafid (Shia). (3) The companions did not perform this specific handshake.

These three justifications, although they themselves are weak and unacceptable as we have investigated by the grace of Allah Almighty in our fatwa (T). Therefore, the most correct view remains that this specific handshake is also permissible and allowed, as we shall mention, if Allah Almighty wills (as...

1. Radd al-Muhtar, topic: Abandoning the Mustahab does not necessitate proof of Karaha, published by H.M. Saeed Company Karachi, 12/177

जिल्द आठवीं (Volume 8) फ़तावा रज़विया (Fatawa Razawiyya)

उसी में है:

صَرَّحَ في البحر في صلوة العيد عند مسئلة الاكل بانه لايلزم من ترك المستحب ثبوت الكراهة اذلا بُدَّ لها من دليل خاص "اهـ" واشار الى ذلك في التحرير الاصولى بان خلاف الاولى ماليس فيه صيغة نهى كترك صلوة الضحى بخلاف المكروه تنزيهاً 1 -	**बहर-उर-राईक में नमाज़-ए-ईद से पहले कुछ खा लेने के मसले के तहत ज़िक्र है कि मुस्तहब (पसंदीदा कार्य) को छोड़ने से कराहत (नापसंदगी) साबित होना लाज़िम नहीं आता, क्योंकि इसके लिए किसी खास दलील की ज़रूरत होती है। इसी की ओर 'तहरीर-ए-उसूली' में भी इशारा किया गया है कि 'खिलाफ़-ए-औला' वह है जिसमें मनाही का कोई शब्द न हो, जैसे चाश्त की नमाज़ छोड़ना; इसके विपरीत 'मक़रूहे तंज़ीही' में मनाही का शब्द होता है। (त)**

फिर अगर आपके नज़दीक भी वही हुक्म है जो मौलवी साहब ने अपने फ़तवे में लिखा है, तो स्पष्ट कर दें कि ईद पर गले मिलना (मुआनक़ा) शरीयत में मना नहीं है और न ही इसमें कोई हर्ज़ है। हाँ, न करना बेहतर है, लेकिन अगर कर लिया जाए तो कोई बुराई नहीं।

चौथा: आपने रद्दुल मुहतार और मिरक़ात से जो इबारतें पेश की हैं, उनमें ईद के गले मिलने की मनाही का कहीं ज़िक्र नहीं है। उनमें तो फ़ज्र और अस्र की नमाज़ के बाद या पांचों नमाज़ों के बाद मुसाफ़ा (हाथ मिलाने) का ज़िक्र है। आपको इज्तिहाद (स्वतंत्र धार्मिक व्याख्या) का पद प्राप्त नहीं है कि आप एक मसले पर दूसरे को क़यास (अनुमान) करें। अगर आप कहें कि "जो दलीलें वहां लिखी हैं, वे यहाँ भी लागू होती हैं"...

मैं कहता हूँ: यह मात्र इच्छा है। उन इबारतों में तीन दलीलें दी गई हैं: (१) मुसाफ़ा (हाथ मिलाने) का समय मुलाकात की शुरुआत में है, नमाज़ों के बाद नहीं। (२) यह विशेष मुसाफ़ा राफ़ज़ियों (शियाओं) का तरीका है। (३) सहाबा किराम (पैगंबर के साथियों) ने यह विशेष मुसाफ़ा नहीं किया।

ये तीनों दलीलें, हालांकि वे स्वयं कमज़ोर और अस्वीकार्य हैं जैसा कि हमने अल्लाह की तौफ़ीक़ से अपने फ़तवे में इसकी तहक़ीक़ (जांच) की है। इसलिए, सही राय यही है कि वह विशेष मुसाफ़ा भी जायज़ और मुबाह (अनुमत) है, जैसा कि हम आगे ज़िक्र करेंगे, इंशा अल्लाह (जैसा कि...

1. रद्दुल मुहतार, विषय: मुस्तहब छोड़ने से कराहत लाज़िम नहीं होती, प्रकाशित एच. एम. सईद कंपनी कराची १२/१७७

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

اسی میں ہے:

صَرَّحَ في البحر في صلوة العيد عند مسئلة الاكل بانه لايلزم من ترك المستحب ثبوت الكراهة "اذلا بُدَّ لها من دليل خاص "اھ واشار الی ذلك في التحرير الاصولی بان خلاف الاولی ماليس فيه صيغة نهی كترك صلوة الضحی بخلاف المكروه تنزيهاً 1 -

بحر الرائق میں جہاں یہ مسئلہ کہ نماز عید سے پہلے کچھ کھا لینا مستحب ہے وہیں ہے کہ اس مستحب کو اگر کسی نے ترک کر دیا تو وہ فعلِ مکروہ کا مرتکب نہ ہوگا، کیونکہ ترکِ مستحب سے کراہت کا ثبوت لازم نہیں، اس لئے کہ مکروہ ہونے کے لئے کوئی خاص دلیل ضروری ہے، اور اس کی طرف تحریر اصولی میں بھی اشارہ کیا ہے کہ "خلافِ اولیٰ وہ ہے جس میں ممانعت اور نہی کا صیغہ نہ ہو" جیسے نماز چاشت کا ترک، بخلافِ مکروہِ تنزیہی کے کہ اس میں نہی و ممانعت کا صیغہ ہوتا ہے۔ (ت)

پھر اگر جناب کے نزدیک بھی حکم وہی ہے جو مولوی صاحب نے اپنے فتویٰ میں لکھا تو تصریح فرما دیجئے کہ عید کا معانقہ شرعاً ممنوع نہیں، نہ اس میں اصلاً کوئی حرج ہے، ہاں نہ کرنا بہتر ہے کرلے تو مضائقہ نہیں۔

چہارم: آپ نے جو عبارات ردالمحتار و مرقات نقل فرمائیں ان میں معانقہ عید کی ممانعت کا کہیں ذکر نہیں ان میں تو مصافحہ بعد نمازِ فجر و عصر یا نمازِ پنجگانہ کا بیان ہے، اور جناب کو منصبِ اجتہاد حاصل نہیں کہ ایک مسئلہ کو دوسرے پر قیاس فرما سکیں، اگر فرمائے کہ "جو دلائل اس میں لکھے ہیں یہاں بھی جاری"

اقول: یہ محض ہوس ہے اُن عبارتوں میں تین دلیلیں مذکور ہوئیں: (۱) محلِ مصافحہ ابتدائے ملاقات ہے نہ بعد صلوات۔ (۲) یہ مصافحہ مخصوصہ سنتِ روافض ہے۔ (۳) صحابہ کرام نے یہ خاص مصافحہ نہ کیا۔

یہ تینوں تعلیلیں اگرچہ فی اَنفُسِہا خود ہی علیل اور نا قابلِ قبول ہیں کما حققناہ بتوفیق اللہ تعالٰی فی فتاوٰینا (جیسا کہ ہم نے اللہ تعالٰی کی مدد سے اپنے فتوٰی میں اس کی تحقیق کی ہے۔ ت) ولہٰذا قولِ اصح یہی ٹھہرا کہ وہ مصافحہ مخصوصہ بھی جائز و مباح ہے کما سنذکر ان شاء اللہ تعالٰی (جیسا کہ

---

1 ردالمحتار مطلب لایلزم من ترك المستحب ثبوت الکراہۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱۲ / ۱۷۷

Fatawa Razawiyya, Volume 8

We shall mention them in the future, if Allah wills. However, the two arguments presented have no relevance at all to our current issue, namely the embrace (Mu'anaqah) on Eid. Even if the place for 'shaking hands' (Musafahah) is specifically at the beginning of a meeting, it is not at all accepted that 'embracing' is restricted to that time. And whoever claims so, the burden of proof is upon them.

The unsubstantiated writing of Molvi Sahib Lakhnawi cannot be entertained. Rather, embracing, like kissing, is an expression of joy, cheerfulness, affection, and love. Just as kissing is not specific to the beginning of a meeting, similarly embracing is not.

Sir, you must have seen the Hadith of Abdullah bin Abbas (may Allah be pleased with them) narrated in 'Kitab al-Sunnah' by Ibn Shahin and 'Mu'jam al-Kabir' by Imam Tabarani in the fatwa of this humble servant, that the Radiant Prophet, Master of the Universe (peace and blessings of Allah be upon him), embraced Amir al-Mu'minin Siddiq-e-Akbar (may Allah be pleased with him) while swimming in a pond... And also the Hadith of Usayd bin Hudayr (may Allah be pleased with him) narrated in Sunan Abi Dawud, that while talking, he requested the Noble Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) to lift his shirt. The Prophet accepted, and he clung to the Prophet's sacred body and kissed his blessed waist... And also a Sahih Hadith from Mustadrak that during a gathering, the Holy Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) embraced Hazrat Dhi al-Nurayn... And also Hazrat Batul Zahra (may Allah be pleased with her), when the Radiant Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) asked her, "What is best for a woman?" She replied, "That no non-mahram man should see her." The Prophet embraced her... In all these instances, where was the time of the initial meeting that an embrace was performed? Similarly, would hugging one's children, brothers, or wife out of love be permissible only at the first meeting and then prohibited?

Similarly, if the Rafidites (Shiites) at some point invented shaking hands after Fajr and Asr prayers and it became their specific hallmark, and for this reason, the scholars of Ahl-e-Sunnat disliked it for their followers at that time, then how can the embrace of Eid be forcibly compared to it? First, provide proof that this was "started by the Rafidites and is their exclusive hallmark." Otherwise, no permissible act can become impermissible or disliked just because an innovator performs it. There are millions of things in which Ahl-e-Sunnat and Rafidites, rather Muslims and non-believers, all participate. Will they become prohibited for this reason?

Refer to Bahr al-Ra'iq, Durr al-Mukhtar, Radd al-Muhtar, etc., which state: "Resemblance to innovators is only prohibited in matters that are inherently reprehensible in Shariah, or are a specific hallmark of that group, or if the person intends to create a resemblance to them. Otherwise, there is absolutely no reason for prohibition."

फतावा रज़विया, जिल्द 8

हम इंशा अल्लाह आगे ज़िक्र करेंगे। लेकिन हमारे मामले, यानी ईद के गले मिलने (मुआनका) से पेश किए गए दो दलीलों का कोई संबंध नहीं है। अगर 'मुसाफ़हा' (हाथ मिलाना) का स्थान विशेष रूप से मुलाक़ात की शुरुआत में ही हो, तो भी 'मुआनका' (गले मिलना) को उस समय के लिए विशेष मानना बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। और जो इसका दावा करे, उसे ही साबित करना होगा।

मौलवी साहब लखनवी का बिना किसी दलील और प्रमाण के लिखना स्वीकार्य नहीं हो सकता। बल्कि गले मिलना, चूमने की तरह खुशी, प्रसन्नता, अनुराग और प्रेम का इज़हार है। जैसे चूमना मुलाक़ात की शुरुआत के लिए विशेष नहीं है, वैसे ही गले मिलना भी नहीं है।

हुज़ूर, आपने इस फ़कीर के फ़तवे में हज़रत अब्दुल्ला बिन अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस देखी होगी जो इब्न शाहीन की 'किताबुस सुन्नाह' और इमाम तबरानी की 'मुअजम कबीर' में वर्णित है कि सैयदे आलम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने तालाब में तैरते हुए अमीरुल् मोमिनीन सिद्दीक़े अकबर (रज़ियल्लाहु अन्हु) को गले लगाया... और हज़रत उसैद बिन हुज़ैर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस जो सुनन अबी दाऊद में है कि बातें करते-करते उन्होंने हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कुर्ता उठाने का अनुरोध किया। हुज़ूर ने स्वीकार किया, तो वे हुज़ूर के पवित्र शरीर से लिपट गए और उनके मुबारक कमर को चूमा... और मुस्तदरक की सही हदीस कि महफ़िल के दौरान हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हज़रत ज़िन्नूरैन (उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु) से गले मिले... और हज़रत बतूल ज़हरा (रज़ियल्लाहु अन्हा) कि जब हुज़ूर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनसे पूछा: "औरत के लिए सबसे बेहतर क्या है?" उन्होंने अर्ज़ किया: "यह कि कोई गैर-महरम उसे न देखे।" हुज़ूर ने उन्हें गले लगा लिया... इन सब स्थितियों में मुलाक़ात की शुरुआत का समय कहाँ था जब गले मिलना हुआ? इसी तरह प्यार से अपने बच्चों, भाइयों, या पत्नी को गले लगाना क्या सिर्फ पहली मुलाक़ात पर ही जायज़ होगा, फिर मना कर दिया जाएगा?

इसी तरह, अगर फज्र और अस्र की नमाज़ के बाद हाथ मिलाना (मुसाफ़हा) किसी समय राफ़िज़ियों (शियाओं) ने शुरू किया और यह उनका विशेष प्रतीक बन गया, और इस कारण उस समय के सुन्नी विद्वानों ने इसे पसंद नहीं किया, तो ईद के गले मिलने को ज़बरदस्ती उस पर कैसे मापा जा सकता है? पहले सबूत दें कि यह "राफ़िज़ियों ने निकाला और उन्हीं का विशेष प्रतीक है।" वरना कोई भी जायज़ काम किसी विधर्मी के करने से नाजायज़ या मकरूह (नापसंद) नहीं हो सकता। लाखों बातें

ऐसी हैं जिन्हें करने में अहले सुन्नत और राफ़िज़ी, बल्कि मुसलमान और काफ़िर सब शामिल हैं। क्या वे इस कारण प्रतिबंधित हो जाएंगे?

बहरुर रैक, दुर्रे मुख़्तार, रद्दुल मुहतार आदि का अवलोकन करें कि "विधर्मियों से समानता केवल उसी बात में वर्जित है जो अपने आप में शरीयत में बुरा हो, या उस कौम का विशेष प्रतीक हो, या व्यक्ति का उद्देश्य उनसे समानता पैदा करना हो, वरना बिलकुल भी मनाही का कोई कारण नहीं है।"

पेज 625 का 673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

ہم ان شاء اللہ تعالٰی آگے ذکر کریں گے۔ت) مگر ہمارے مسئلہ دائرہ یعنی معانقہ عید سے دو دلیل پیش کو تو اصلاً علاقہ نہیں ۔ محل "مصافحہ" خاص ابتدائے لقا ہو تو بھی "معانقہ" کی اس وقت سے تخصیص ہر گز مسلم نہیں ومن ادعی فعلیہ البیان (جو مدعی ہو بیان اس کے ذمہ۔ت)

مولوی صاحب لکھنوی کا بے دلیل و سند لکھنا مسموع نہیں ہو سکتا۔ بلکہ معانقہ مثل تقبیل اظہار سرور و بشاشت و وداد و محبت ہے جیسے تقبیل خاص ابتدائے لقا سے مخصوص نہیں، یوں ہی معانقہ۔

جناب نے فتوی فقیر میں حدیث عبد اللہ بن عباس رضی اللہ تعالٰی عنہما مروی کتاب السنۃ ابن شاہین و معجم کبیر امام طبرانی ملاحظہ فرمائی ہوگی کہ حضور پر نور سید عالم صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے تالاب پیرنے میں امیر المومنین صدیق اکبر رضی اللہ تعالٰی عنہ کو گلے لگایا۔۔ و نیز حدیث اُسید بن حضیر رضی اللہ تعالٰی عنہ مروی سُنن ابی داود کہ انھوں نے باتیں کرتے کرتے حضور والا صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم سے کُرتا اٹھانے کی درخواست کی حضور نے قبول فرمائی، وہ حضور کے بدنِ اقدس سے لپٹ گئے اور تہی گاہِ مبارک پر بوسہ دیا۔۔ و نیز حدیث صحیح مستدرک کہ اثنائے مجلس میں حضور اقدس صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے حضرت ذی النورین سے معانقہ فرمایا۔۔ و نیز حضرت بتول زہرا رضی اللہ تعالٰی عنہا کہ حضور پر نور صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم نے ان سے پوچھا : عورت کے لئے سب سے بہتر کیا ہے؟ عرض کی : یہ کہ کوئی نامحرم اُسے نہ دیکھے۔ حضور نے گلے سے لگالیا۔۔ ان سب صورتوں میں ابتدائے لقا کا وقت کہاں تھا کہ معانقہ فرمایا گیا،۔۔ یوں ہی پیار سے اپنے بچوں۔ بھائیوں، زوجہ کو گلے لگانا شاید اول ملاقات ہی پر جائز ہوگا، پھر ممانعت کی جائے گی؟

یوں ہی مصافحہ بعد نمازِ فجر و عصر اگر کسی وقت کے روافض نے ایجاد کیا اور خاص ان کا شعار رہا ہو، اور بدیں وجہ اس وقت علماء نے اہلسنت کے لئے اسے ناپسند رکھا ہو تو معانقہ عید کا زبردستی اسی پر قیاس کیونکر ہو جائے گا، پہلے ثبوت دیجئے کہ یہ "رافضیوں کا نکالا اور انھیں کا شعار خاص ہے" ورنہ کوئی امرِ جائز کسی بد مذہب کے کرنے سے ناجائز یا مکروہ نہیں ہو سکتا۔ لاکھوں باتیں ہیں جن کے کرنے میں اہلسنت و روافض بلکہ مسلمین و کفار سب شریک ہیں۔ کیا وہ اس وجہ سے ممنوع ہو جائیں گی؟

بحر الرائق و در مختار و ردالمختار و غیر ہا ملاحظہ ہوں کہ "بد مذہبوں سے مشابہت اُسی امر میں ممنوع ہے جو فی نفسہ شرعاً مذموم یا اُس قوم کا شعار خاص یا بخود فاعل کو ان سے مشابہت پیدا کرنا مقصود ہو ورنہ زنہار وجہ ممانعت نہیں۔"

Fatawa Razvia Volume 8

The fact that the companions (may Allah be pleased with them) did not do something cannot be a proof of its prohibition. You have three authentic books, namely Majmu'a-e-Fatawa, Radd al-Muhtar, and Mirqat Sharif, and hundreds of other reliable books besides them are witnesses to its falsehood. Jurists have clarified hundreds of things as being new (innovations) but declared them permissible, rather desirable and commendable, even mandatory, and they categorize innovations (Muhdathat) into five types. The passages from Majmu'a-e-Fatawa have already been mentioned. It is stated in Radd al-Muhtar:

[Table] Arabic: قوله اى صاحب بدعة اى محرمة والا فقد تكون واجبة كنصب الادلة للرد على اهل الفرق الضالة وتعلم النحو المفهم الكتاب والسنة ومندوبة كا حداث نحو رباط ومدرسة وكل احسان لم يكن فى الصدر الاول ومكروهة كزخرفة المساجد ومباحة كالتوسع بلذيذ المآكل والمشارب والثياب كما في شرح الجامع الصغير للمناوي عن تهذيب النووي ومثله في الطريق المحمدية للبركوى۔ 1 Urdu: The commentator's statement "one who is an innovator (Sahib-e-Bid'ah)" refers to a forbidden innovation here. Otherwise, innovation can also be mandatory, such as establishing proofs to refute deviant sects, or learning the science of grammar (Nahw) so that the Book and Sunnah can be understood. It can be recommended (Mustahabb), such as building inns and schools, and every good deed that did not exist in the early era. It can be disliked (Makruh), such as decorating and engraving mosques. It can be permissible (Mubah), such as adopting abundance in delicious foods, drinks, and clothing, as is quoted from Imam Nawawi's book 'Tahdhib' in Imam Munawi's commentary on Jam'i al-Saghir, and similarly mentioned in Imam Barkawi's book 'Al-Tariqat al-Muhammadiyya'. (T)

It is stated in Mirqat Sharif: [Table] Arabic: احداث ما لا ينازع الكتاب والسنة كما سنقرره بعد ليس بمذموم۔ 2 Urdu: To innovate an action that is not contrary to the Book and Sunnah is not bad, as we will prove later. (T)

Then, after a page, the categorization of innovation as mandatory, forbidden, recommended, disliked, and permissible is mentioned in detail. It is stated in Al-Alamgiri: [Table] Arabic: لا باس بكتابة اسامى السور وعدد الآى Urdu: There is no harm in writing the names of the Surahs and the number of verses in the Holy Quran.

Footnotes: 1. Radd al-Muhtar, Chapter on Imamate, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/560. 2. Mirqat Sharh Mishkat, Chapter on Adhering to the Book and Sunnah, published by Imdadiya, Multan, 1/215. Page 626 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) का किसी कार्य को न करना, उसके निषेध (मना होने) का प्रमाण नहीं हो सकता। आपके पास तीन प्रामाणिक पुस्तकें हैं, अर्थात् मजमुआ-ए-फ़तावा, रद अल-मुह्तार और मिर्कात शरीफ़, और इनके अलावा सैकड़ों अन्य विश्वसनीय पुस्तकें इसके असत्य होने की गवाह हैं। न्यायविदों (फ़ुक़हा) ने सैकड़ों चीज़ों को नया (नवाचार) बताते हुए स्पष्ट किया है कि वे जायज़, बल्कि मुस्तहब (पसंदीदा) और मुस्तहसन (उत्कृष्ट), यहाँ तक कि वाजिब (अनिवार्य) हैं, और वे नवाचारों (मुहद्दसात) को पाँच श्रेणियों में विभाजित करते हैं। मजमुआ-ए-फ़तावा के उद्धरण पहले दिए जा चुके हैं। रद अल-मुह्तार में लिखा है:

[तालिका] अरबी: قوله ای صاحب بدعة ای محرمة والا فقد تکون واجبة کنصب الادلة للرد على اهل الفرق الضالة وتعلم النحو المفهم الکتاب والسنة ومندوبة کا حداث نحو رباط ومدرسة وکل احسان لم یکن فی الصدر الاول ومکروهة کزخرفة المساجد ومباحة کالتوسع بلذیذ المآکل والمشارب والثیاب کما في شرح الجامع الصغیر للمناوي عن تهذیب النووي ومثله في الطریق المحمدیة للبرکوی۔ 1 उर्दू अनुवाद: व्याख्याकार (शारिह) का कथन "जो बिदअत वाला (साहिब-ए-बिदअत) है", यहाँ बिदअत से तात्पर्य हराम (वर्जित) बिदअत है। अन्यथा, बिदअत वाजिब भी होती है, जैसे गुमराह फ़िरक़ों का खंडन करने के लिए प्रमाण स्थापित करना, या अरबी व्याकरण (नहव) सीखना ताकि कुरान और सुन्नत को समझा जा सके। यह मुस्तहब भी हो सकती है, जैसे सराय और मदरसे जैसी चीज़ें बनाना, और हर वह नेक काम जो शुरुआती दौर में नहीं था। यह मकरूह भी हो सकती है, जैसे मस्जिदों को सजाना और उन पर नक्काशी करना। यह मुबाह (अनुमेय) भी हो सकती है, जैसे स्वादिष्ट भोजन, पेय और कपड़ों में प्रचुरता अपनाना, जैसा कि अल्लामा मनावी की जामिउल सगीर की व्याख्या में अल्लामा नववी की पुस्तक 'तहज़ीब' से उद्धृत है, और इसी तरह अल्लामा बरकवी की पुस्तक 'अल-तरीक़त अल-मुहम्मदिया' में भी वर्णित है। (त)

मिर्कात शरीफ़ में लिखा है: [तालिका] अरबी: احداث ما لا ینازع الکتاب والسنة کما سنقرره بعد لیس بمذموم۔ 2 उर्दू अनुवाद: ऐसा कार्य शुरू करना जो कुरान और सुन्नत के विरुद्ध न हो, बुरा नहीं है, जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे। (त)

फिर एक पृष्ठ के बाद, बिदअत का वाजिब, हराम, मुस्तहब, मकरूह और मुबाह होने का विस्तार से उल्लेख किया गया है। आलमगीरी में है: [तालिका] अरबी: لا باس بكتابة اسامى السور وعدد الآى उर्दू अनुवाद: कुरान शरीफ़ में सूरतों के नाम और आयतों की संख्या लिखने में कोई हर्ज नहीं है।

पाद-टिप्पणियाँ: 1. रद अल-मुह्तार, इमामत का अध्याय, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/560। 2. मिर्कात शरह मिश्कात, किताब और सुन्नत को मज़बूती से थामने का अध्याय, इमदादिया मुल्तान द्वारा प्रकाशित, 1/215। पृष्ठ 626 / 673

ر ہا صحابہ کرام رضی اللہ تعالٰی عنہ کا نہ کرنا ، یہ دلیل منع نہیں ہو سکتا، آپ تینوں کتب مستند ہ یعنی مجموعہ فتاوی و ردالمختار و مرقاۃ شریف اور ان کے سوا صد ہا کتب معتمدہ اسکے بطلان پر گواہ ہیں، فقہا ء کرام سیکڑوں چیزوں کو یہ تصریح فرما کر کہ نو پیدا ہیں، جائز بلکہ مستحب و مستحسن بلکہ واجب بتاتے اور محدثات کو اقسام خمسہ کی طرف تقسیم فرماتے ہیں۔ مجموعہ فتاوی کی عبارتیں گزریں۔ ردالمختار میں ہے:

قولہ ای صاحب بدعۃ ای محرمۃ والا فقد تکون واجبۃ کنصب الادلۃ للرد علی اھل الفرق الضالۃ وتعلم النحو المفھم الکتاب والسنۃ ومندوبۃ کا حداث نحو رباط ومدرسۃ وکل احسان لم یکن فی الصدر الاول ومکروھۃ کزخرفۃ المساجد ومباحۃ کالتوسع بلذیذ المآکل والمشارب والثیاب کما في شرح الجامع الصغیر للمناوي عن تھذیب النووي ومثلہ في الطریق المحمدیۃ للبرکوی۔ 1 شارح کا قول "جو صاحب بدعت" یہاں بدعت سے مراد حرام بدعت ہے، ورنہ بدعت واجب بھی ہوتی ہے، جیسے گمراہ فرقوں کا رد کرنے کے لئے دلائل قائم کرنا علم نحو سیکھنا جس سے کتاب و سنت سمجھ سکیں، مستحب بھی جیسے سرائے اور مدرسہ جیسی چیزیں تعمیر کرنا، اور ہر وہ نیک کام جو زمانہ اول میں نہ رہا ہو، مکروہ بھی جیسے مسجدوں کو آراستہ و منقش کرنا۔ مباح بھی جیسے کھانے پینے کی لذیذ چیزوں اور کپڑوں میں وسعت و فراخی کی راہ اختیار کرنا، جیسا کہ علامہ مناوی کی شرح جامع صغیر میں علامہ نووی کی کتاب تہذیب سے منقول ہے، اور اسی طرح علامہ برکوی کی کتاب "الطریق المحمدیہ" میں مذکور ہے۔(ت)

مرقاۃ شریف میں ہے: احداث ما لا ینازع الکتاب والسنۃ کما سنقررہ بعد لیس بمذموم۔ 2 ایسا فعل ایجاد کرنا جو کتاب و سنت کے مخالف نہ ہو، برا نہیں، جیسا کہ ہم آگے ثابت کریں گے۔(ت)

پھر ایک صفحہ کے بعد بدعت کا واجب و حرام و مندوب و مکروہ و مباح ہونا مفصلاً ذکر فرمایا۔

عالمگیری میں ہے: لا باس بکتابة اسامی السور وعدد الآی مصحف شریف میں سورتوں کے نام، اور آیتوں کی (جاری ہے...)

1 ردالمختار باب الامامت مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۵۶۰ 2 مرقاۃ شرح مشکوۃ باب الاعتصام بالکتاب والسنۃ مطبوعہ امدادیہ ملتان ۱/ ۲۱۵

Volume 8 Fatawa Razawiyya

| And if it is an innovation, it is a good innovation (bid'ah hasanah), and how many things are there that were innovations and they are good innovations. 1 | There is no harm in writing the number, and although it is a new invention and innovation, it is a good innovation (bid'ah hasanah), and there are many things that are newly invented but are good innovations. (T) |

Imam Ibn al-Humam in Fath al-Qadir, after establishing that the rak'ahs before Maghrib are not proven from the Holy Prophet (may peace and blessings of Allah be upon him) and the Noble Companions (may Allah be pleased with them), says:

| Then what is established after this is the negation of its being recommended (mandub), but as for it being disliked (makruh), no, unless another evidence indicates otherwise. 2 | Then, after all this discussion, it was only established that the two rak'ahs before the Maghrib prayer are not recommended and desirable (mandub and mustahab), but being disliked (makruh) is not proven; yes, if there were another evidence for the proof of its being disliked, then that would be another matter. (T) |

Along with this, the group of "preventers" (mani'een) accept the authority of legislation for three generations and consider the innovations of the Successors (Tabi'in) as not blameworthy. Therefore, arguing solely based on the actions of the Companions is also incomplete and unfinished according to their own principles. F1. The discussion on these topics is lengthy, which we have mentioned in several of our treatises; here, a brief two-word summary is sufficient. And success is with Allah.

Fifthly: If you had seen these passages from Radd al-Muhtar and Mirqat, you would have also observed the general applications of the texts of the school of thought like Durar wa Ghurar, Kanz al-Daqaiq, Wiqayah, Niqayah, Majma', Muntaqa, Islah, Idah, Tanwir, etc., who allowed handshaking absolutely without any restriction or specification, as in Dur Mukhtar, Hashiyah of Allama Tahtawi, and Sharh of Allama Shihab Shalabi, etc.

F1: Those who object limit the authority to innovate something and declare it permissible and prescribed to only three eras: (1) The era of Prophethood (2) The era of the Companions (3) The era of the Successors (Tabi'in) From their theory, it is proven that the innovations of the era of the Successors are also not bad. Therefore, to prove the prohibition of the aforementioned handshaking, the argument based solely on the non-action of the Noble Companions is deficient and incomplete.

According to their own theory, they also had to prove that its existence and proof were not found even in the era of the Successors. (T)

1 Alamgiri (Fatawa Hindiyyah), Book of Masjid Etiquette, printed in Peshawar, 5/323 2 Fath al-Qadir, Book of Voluntary Prayers, printed in Nuriya Razawiyya, Sukkur, 1/389

भाग 8 फ़तावा रज़विया

| और यदि यह एक नया आविष्कार है तो यह बिदअत-ए-हसना (अच्छी नवीनता) है, और कितनी ही चीज़ें ऐसी हैं जो नया आविष्कार थीं और वे बिदअत-ए-हसना हैं। 1 | संख्या लिखने में कोई हर्ज नहीं है, और भले ही वह एक नया आविष्कार और बिदअत (नवीनता) है, लेकिन वह बिदअत-ए-हसना है, और बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जो नए आविष्कार तो हैं लेकिन बिदअत-ए-हसना हैं। (त) |

इमाम इब्न अल-हुमाम फतह अल-कादिर में मग़रिब से पहले की रकतों का हुज़ूर अकदस (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और सहाबा किराम (रज़ियल्लाहु अन्हुम) से प्रमाणित न होना साबित करके बताते हैं:

| फिर इसके बाद जो साबित हुआ वह यह है कि यह मन्दूब (सिफ़ारिश योग्य) नहीं है, लेकिन जहाँ तक इसके मकरूह (नापसंद) होने का सवाल है, तो नहीं, जब तक कि कोई अन्य प्रमाण ऐसा न कहे। 2 | फिर इस पूरी बहस के बाद केवल यही साबित हुआ कि मग़रिब की नमाज़ से पहले दो रकतें मन्दूब और मुस्तहब नहीं हैं, लेकिन मकरूह होना साबित नहीं है, हाँ अगर कराहत (नापसंदगी) के सबूत पर कोई और दलील हो तो अलग बात है। (त) |

इसके साथ ही, वे लोग जो (नयी चीज़ों को) रोकने वाले (मानिईन) हैं, तीन पीढ़ियों तक कानून बनाने के अधिकार को मानते हैं, और ताबेईन के नए आविष्कारों को भी निंदनीय नहीं मानते। तो केवल सहाबा के कर्मों से तर्क करना उनके अपने सिद्धांतों के अनुसार भी अधूरा और अपूर्ण है। F1. इन विषयों पर चर्चा लंबी है जिसे हमने अपने कई लेखों में उल्लेख किया है; यहाँ दो संक्षिप्त शब्द पर्याप्त हैं। और सफलता अल्लाह की ओर से है।

पाँचवाँ: यदि आपने रद-उल-मुह्तार और मिरकात के ये अंश देखे होते, तो आपने मज़हब के सामान्य ग्रंथों जैसे दुरर व ग़ुरर, कंज़-उद-दक़ाइक़, विक़ाया, निक़ाया, मजमा, मुंतक़ा, इस्लाह, ईज़ाह, तनवीर आदि के अनुप्रयोग देखे होते, जिन्होंने बिना किसी प्रतिबंध या विशिष्टता के पूर्ण रूप से मुसाफ़हा (हाथ मिलाने) की अनुमति दी, जैसा कि दुर-ए-मुख्तार, अल्लामा तहतावी के हाशिये और अल्लामा शिहाब शलबी की व्याख्या आदि में है।

F1: आपत्ति करने वाले किसी चीज़ के नए आविष्कार और उसे जायज़ व मशरूअ करार देने के अधिकार को केवल तीन युगों तक सीमित मानते हैं: (1) रिसालत का युग (2) सहाबा का युग (3) ताबेईन का युग उनके इस सिद्धांत से इतना साबित होता है कि ताबेईन के युग के आविष्कार भी बुरे

नहीं हैं। तो उपरोक्त मुसाफ़हा (हाथ मिलाने) की मनाही के प्रमाण में केवल सहाबा किराम के न करने से तर्क करना अधूरा और अपूर्ण है। उनके अपने सिद्धांत के अनुसार, उन्हें यह भी साबित करना था कि ताबेईन के युग में भी इसका अस्तित्व और प्रमाण नहीं था। (त)

1 आलमगीरी (फ़तावा हिंदिया), मस्जिद के शिष्टाचार का अध्याय, पेशावर में मुद्रित, 5/323 2 फतह अल-कादिर, स्वैच्छिक नमाज़ों का अध्याय, नूरिया रज़विया, सुक्कुर में मुद्रित, 1/389

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

| وھوان کان احداثاً فھو بدعة حسنة وکم من شیئ کان احداثاً وھو بدعة حسنة 1 | تعداد لکھنے میں کوئی حرج نہیں، اور وہ اگر چہ نئی ایجاد اور بدعت ہے مگر بدعتِ حسنہ ہے اور بہت سی چیزیں ایسی ہیں جو نو ایجاد تو ہیں مگر بدعتِ حسنہ ہیں۔ (ت) |

امام ابن الہمام فتح القدیر میں رکعتیں قبل مغرب کا حضور اقدس صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم وصحابہ کرام رضی اللہ تعالیٰ عنہم سے ثا بت نہ ہونا ثابت کرکے بتاتے ہیں:

| ثم الثابت بعد ھذا ھو نفي المندوبیة اما ثبوت الکراھة فلا الا ان یُدَلَّ دلیل اخر 2 | پھر اس ساری بحث کے بعد صرف یہ ثابت ہوا کہ نماز مغرب سے پہلے دو رکعتیں مندوب و مستحب نہیں لیکن مکروہ ہونا ثا بت نہیں، ہاں اگر ثبوت کراہت پر کوئی اور دلیل ہو تو البتہ ۔ (ت) |

مع ہذا حضرات مانعینِ زمانہ تین قرن تک اختیار تشریع مانتے، اور محدثاتِ تابعین کو بھی غیر مذموم جانتے ہیں تو صرف فعلِ صحابہ سے استدلال ان کے طور پر بھی ناقص و نا تمام ہے ف۱۔ کلام ان مباحث میں طویل ہے کہ ہم نے اپنے رسائلِ عدیدہ میں ذکر کیا یہاں بھی دو حرف مجمل کافی ہیں وباللہ التوفیق۔

پنجم : ردالمحتار ومرقات کی یہ عبارتیں اگر جناب نے دیکھیں تو درر و غرر و کنزالدقائق و وقایہ و نقایہ و مجمع و منتقی واصلاح و ایضاح و تنویر و غیر ہا عامہ متونِ مذہب کے اطلاق ملاحظہ فرمائے ہوتے جنھوں نے مطلقاً بلا تقیید و تخصیص مصافحہ کی اجازت دی، در مختار و حاشیہ علامہ طحطاوی و شرح علامہ شہاب شلبی و

ف ۱: مانعین کسی چیز کی ایجاد اور جائز و مشروع قرار دینے کا اختیار صرف تین زمانوں تک محدود مانتے ہیں : (۱) زمانہ رسالت (۲) زمانہ صحابہ (۳) زمانہ تابعین ان کے اس نظریہ سے اتنا ثابت ہے کہ زمانہ تابعین کی ایجادات بھی بری نہیں، تو مصافحہ مذکورہ کی ممانعت کے ثبوت میں صرف صحابہ کرام کے نہ کرنے سے استدلال ناقص و ناتمام ہے، اپنے ہی نظریہ کے مطابق یہ بھی ثابت کرنا تھا کہ زمانہ تابعین میں بھی اس کا وجود و ثبوت نہیں۔(ت)

1 عالمگیری (فتاوٰی ہندیہ) باب آداب المسجد مطبوعہ پشاور ۵ / ۳۲۳ 2 فتح القدیر باب النوافل مطبوعہ نوریہ رضویہ سکھر ۱ / ۳۸۹

Fatawa-e-Razavia, Volume 8

If you had seen the clear clarifications of Hanafi scholars such as Fath-ul-Allah al-Mu'in Hashiya Kanz, Ghaniyat Dhuw-ul-Ahkam Hashiya Durar, Hashiya Maraqi al-Falah, Naseem-ul-Riyad Sharh Shifa of Imam Qadi Iyad, Majma' Bihar-ul-Anwar, Matalib-ul-Mu'minin, Musawwa Sharh Muwatta, Takmila Sharh Arba'een of Allama Birgivi by Allama Muhammad Afandi, and Hadiqa-tun-Nadiyya Sharh Tariqa-tul-Muhammadiyya by Allama al-Nabulsi, and the Fatwa of Imam Shams-ud-Din bin Imam Siraj-ud-Din Hanuti, etc., they state clearly that the aforementioned handshake (Musafaha) and likewise the handshake on Eid are not only permissible but recommended, rather sunnah. In Durr-ul-Mukhtar, it is stated:

[Arabic Box 1] اطلاق المصنف تبعاً للدرر والكنز والوقاية و المجمع والملتقى وغيرها يفيد جوازها مطلقاً ولو بعد العصر، وقولهم انه بدعة اى مباحة حسنة كما افاده النووى في اذكاره وغيره- 1
Following [Durar-ul-Hukkam], Kanz, Wiqaya, Majma', Multaqa, etc., the author has also mentioned handshaking here unconditionally, which proves that handshaking is absolutely permissible, even if it is after the Asr prayer. As for the statement that it is an innovation (Bid'ah), it refers to a permissible and good innovation (Bid'ah Mubahah Hasanah), as explained by Imam Nawawi in his [Kitab-ul-] Adhkar and other scholars in other books. (T)

In Islah wal-Idah: [Arabic Box 2] كُره تقبيل الرجل وعناقه في ازار واحد وجاز مع قميص كمصافحته 2.
It is disliked for a man to kiss and embrace another man while wearing only a single lower garment (izar), but it is permissible if they are wearing shirts (qamees), just as handshaking is permissible. (T)

In Hadiqa-tun-Nadiyya: [Arabic Box 3] بعض المتأخرين من الحنفية صرّح بالكراهة في ذلك ادعاء بانه بدعة مع انه داخل في عموم سنة المصافحة مطلقا. 3
Some later Hanafi scholars explicitly declared it disliked, claiming it to be an innovation, even though it is included in the general practice of handshaking which is Sunnah. (T)

Footnotes: 1 Durr-ul-Mukhtar, Kitab-ul-Hazr wal-Ibaha, published by H.M. Saeed Company Karachi, 6/381. 2 Islah wal-Idah. 3 Al-Hadiqa-tun-Nadiyya, the 48th Truth etc., published by Maktaba Nooria Razvia, Faisalabad, 2/150.

फतावा-ए-रज़विया, जिल्द 8

फ़तह-उल्लाह अल-मुईन हाशिया कन्ज़, ग़ुनियत ज़ुल-अहकाम हाशिया दुरर, हाशिया मराक़िल फ़लाह, नसीम-उर-रियाज़ शरह शिफा इमाम क़ाज़ी अयाज़, मजमअ बिहार-उल-अनवार, मुतालिब-उल-मुअमिनीन, मुसव्वा शरह मोत्ता, तकमिला शरह अरबाईन अल्लामा बिरगवी अज़ अल्लामा मुहम्मद अफ़न्दी, और हदीक़तुन नदिय्या शरह तरीक़तुल मुहम्मदिया अज़ अल्लामा अल-नाबुलसी, और फ़तवा इमाम शम्सुद्दीन बिन इमाम सिराजुद्दीन हानूती वगैरह हनफ़ी उलमा की वाज़ेह तसरीहात (स्पष्टीकरण) भी देखी होतीं कि वे साफ़-साफ़ मजकूरा मुसाफ़हा (हाथ मिलाना) और इसी तरह ईद के मुसाफ़हा को भी जाइज़ बल्कि मुस्तहसन (पसंदीदा) बल्कि सुन्नत बताते हैं। दुर्रे मुख्तार में है:

[अरबी बॉक्स 1] اطلاق المصنف تبعاً للدرر والكنز والوقاية و المجمع والملتقى وغيرها يفيد جوازها مطلقاً ولو بعد العصر، وقولهم انه بدعة اى مباحة حسنة كما افاده النووى في اذكاره وغيره- 1 दुरर, कन्ज़, विक़ाया, मजमअ, मुल्तक़ा वगैरह की पैरवी में मुसन्निफ़ (लेखक) ने भी यहाँ मुसाफ़हा का ज़िक्र मुतलक़ (बिना किसी शर्त के) रखा है जिससे साबित होता है कि मुसाफ़हा मुतलक़न जाइज़ है ख़्वाह बाद-ए-अस्र (अस्र की नमाज़ के बाद) ही क्यों न हो, और लोगों का यह कहना कि वह बिदअत है तो इससे मुराद बिदअत-ए-मुबाहा-ए-हसना (जाइज़ और अच्छी नवीनता) है, जैसा कि इमाम नववी ने अज़कार में और दूसरे उलमा ने दूसरी किताबों में ज़िक्र फ़रमाया है। (त)

इस्लाह वल-ईज़ाह में है: [अरबी बॉक्स 2] كُره تقبيل الرجل وعناقه في ازار واحد وجاز مع قميص كمصافحته 2. आदमी का बोसा (चूमना) देना और मुआनक़ा (गले मिलना) करना एक इज़ार (तहमद) में मकरूह (नापसंद) है और कुर्ता पहन कर हो तो जाइज़ है। जैसे मुसाफ़हा जाइज़ है। (त)

हदीक़तुन नदिय्या में है: [अरबी बॉक्स 3] بعض المتأخرين من الحنفية صرّح بالكراهة في ذلك ادعاء بانه بدعة مع انه داخل في عموم سنة المصافحة مطلقا. 3 बाज़ मुतअख़्ख़िरीन (बाद के) हनफ़िया ने इस मुसाफ़हा के बिदअत होने का दावा करते हुए इसे सराहतन (साफ़ तौर पर) मकरूह बताया है बावजूद इसके कि वह मुतलक़ मुसाफ़हा के उमूम (सामान्य नियम) में दाख़िल होकर मसनून (सुन्नत के मुताबिक) है। (त)

फुटनोट: 1 दुर्रे मुख्तार, किताबुल हज़र वल इबाहत, मतबूआ एच एम सईद कंपनी कराची 6/381 2 इस्लाह वल-ईज़ाह 3 अल-हदीक़तुन नदिय्या, अल-हक़-उस-सामिन वल अरबऊन अल-मख़, मतबूआ मकतबा नूरिया रज़विया फ़ैसलाबाद 2/150

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

فتح اللہ المعین حاشیہ کنز و غنیہ ذوی الاحکام حاشیہ درر و حاشیہ مراقی الفلاح و نسیم الریاض شرح شفائے امام قاضی عیاض و مجمع بحارا لانوار و مطالب المومنین و مسوی شرح مؤطا و تکملہ شرح اربعین علامہ بر کوئی للعلا مہ محمد آفندی و حدیقہ ندیہ شرح طریقہ محمدیہ للعلا مہ النابلسی و فتوی امام شمس الدین بن امام سراج الدین حانوتی وغیرہ ہم علمائے حنفیہ کی تصریحات جلیلہ بھی دیکھی ہو تیں کہ صاف صاف مصافحہ مذکورہ اور اسی طرح مصافحہ عید کو بھی جائز بلکہ مستحسن بلکہ سنت بتاتے ہیں۔ در مختار میں ہے:

[عربی باکس 1] اطلاق المصنف تبعاً للدرر والکنز والوقایة و المجمع والملتقی وغیرھا یفید جوازھا مطلقاً ولو بعد العصر، وقولھم انه بدعة ای مباحة حسنة کما افاده النووی في اذکاره وغیرہ- 1 درر، کنز، وقایہ، مجمع، ملتقی، وغیرہما کے اتباع میں مصنف نے بھی یہاں مصافحہ کا ذکر مطلق رکھا ہے جس سے ثابت ہوتا ہے کہ مصافحہ مطلقاً جائز ہے خواہ بعد عصر ہی کیوں نہ ہو، اور لوگوں کا یہ کہنا کہ وہ بدعت ہے تو اس سے مراد بدعت مباحہ حسنہ ہے، جیسا کہ امام نووی نے اذکار میں اور دوسرے علماء نے دوسری کتابوں میں افادہ فرمایا ہے۔ (ت)

اصلاح والایضاح میں ہے: [عربی باکس 2] کُرہ تقبیل الرجل وعناقه في ازار واحد وجاز مع قمیص کمصافحته 2۔ آدمی کا بوسہ دینا اور معانقہ کرنا ایک ازار میں مکروہ ہے اور کرتا پہن کر ہو تو جائز ہے۔ جیسے مصافحہ جائز ہے۔ (ت)

حدیقہ ندیہ میں ہے: [عربی باکس 3] بعض المتأخرین من الحنفیة صرّح بالکراھة في ذلك ادعاء بانه بدعة مع انه داخل في عموم سنة المصافحة مطلقا۔ 3 بعض متاخرین حنفیہ نے اس مصافحہ کے بدعت

ہونے کا دعویٰ کرتے ہوئے اسے صراحۃً مکروہ بتایا ہے باوجودیکہ وہ مطلق مصافحہ کے عموم میں داخل ہو کر مسنون ہے۔ (ت)

حواشی: 1 در مختار کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۶ / ۳۸۱ 2 اصلاح والایضاح 3 الحدیقۃ الندیۃ الحق الثامن والاربعون الخ مطبوعہ مکتبہ نوریہ رضویہ فیصل آباد ۲ / ۱۵۰

Fatawa Razawiyya, Volume 8

In Majma' al-Bihar, it is stated: "It is among the permissible innovations" (i.e., this handshake is one of the innovations that are allowed. -T). It is mentioned in your Radd al-Muhtar after quoting Imam Nawawi:

(Arabic Quote)	(Urdu Translation/Explanation)
Sheikh Abu al-Hasan al-Bakri said: His [Imam Nawawi's] restriction of it to after Fajr and Asr was based on the custom prevalent in his time; otherwise, after all prayers, it is the same. Thus it is in the treatise of al-Shurunbulali regarding handshakes. A similar view is narrated from al-Shams al-Hanuti, who issued a fatwa based on the generality of texts regarding its legality, and this aligns with what the commentator [Sharh] mentioned regarding the absolute terms in the primary texts [Mutun].	Sheikh Abu al-Hasan Bakri says that Imam Nawawi mentioned handshakes specifically after Fajr and Asr because this was the custom in his time; otherwise, just like after Fajr and Asr, handshaking is permissible after all prayers. This is also stated in the treatise written by Allama Shurunbulali regarding handshakes, and a similar view is narrated from Allama Shamsuddin Hanuti. He issued a fatwa for the permissibility of this handshake, reasoning from the general narrations and texts regarding the legality of handshaking. And this is consistent with the absolute terms mentioned in the primary texts of jurisprudence by the commentator (author of Durr al-Mukhtar, Alauddin Haskafi). (T)

Shah Waliullah Dehlawi, after quoting the words of Imam Nawawi in al-Musawwa, says:

(Arabic Quote)	(Urdu Translation/Explanation)
I say: Similarly, it should be said regarding the handshake on the day of Eid.	I say: Just as Imam Nawawi argued for the permissibility of handshaking after Fajr and Asr, the same reasoning should apply to handshaking on the day of Eid. (T)

And in some copies of al-Musawwa, the phrase "and embracing on the day of Eid as well" (and also for 'embracing' on the day of Eid. -T) is also present.

1. Majma' al-Bihar al-Anwar, under the word 'Safh', printed by Naval Kishore, Lucknow, 2/250.

2. Radd al-Muhtar, Book of Prohibition and Permission, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 6/381.
3. al-Musawwa, Chapter on the Desirability of Handshaking, printed by H.M. Saeed Company, Karachi, 2/221.

फ़तावा रज़विया, खंड 8

मज्म-उल-बिहार में है: "यह मुबाह बिदतों में से है" (यानी यह मुसाफ़हा उन बिदतों में से है जो मुबाह हैं। -त)। आपकी इसी रद्द-उल-मुहतार में इमाम नववी की इबादत नक़ल करने के बाद है:

(अरबी उद्धरण)	(उर्दू अनुवाद/व्याख्या)
शेख़ अबुल हसन अल-बकरी ने कहा: उनका (इमाम नववी का) इसे फ़ज्र और अस्र के बाद तक सीमित करना उनके समय की प्रथा पर आधारित था; अन्यथा सभी नमाज़ों के बाद भी ऐसा ही है। मुसाफ़हा के बारे में अल-शुरुनबुलाली की रिसाला में इसी तरह है। और अल-शम्स अल-हानूती से भी इसी तरह का वर्णन है, जिन्होंने इसके जायज़ होने पर फतवा दिया है, मुसाफ़हा की शरायत पर आधारित सामान्य ग्रंथों (नसूस) से दलील देते हुए, और यह वही है जो टीकाकार (शारह) ने मतून-ए-फ़िक़्ह के इत्तलाक़ में ज़िक्र किया है।	शेख़ अबुल हसन बकरी फ़रमाते हैं कि इमाम नववी ने फ़ज्र और अस्र के बाद मुसाफ़हा का ज़िक्र इसलिए किया क्योंकि उनके ज़माने में यही प्रचलित था, वरना फ़ज्र और अस्र की तरह तमाम नमाज़ों के बाद मुसाफ़हा जायज़ है। यही अल्लामा शुरुनबुलाली के उस रिसाले में है जो उन्होंने मुसाफ़हा के बारे में लिखा है और इसी तरह अल्लामा शम्सुद्दीन हानूती से भी मन्क़ूल है। उन्होंने मुसाफ़हा के जायज़ होने के बारे में वारिद शुदा अहादीस और नसूस से इस्तिदलाल फ़रमाते हुए इस मुसाफ़हा के भी जायज़ होने का फ़तवा दिया है। और यही उस चीज़ के मुवाफ़िक़ है जो शारह (साहिब-ए-दुर्रे मुख़्तार अलाउद्दीन हसकफ़ी) ने मतून-ए-फ़िक़्ह का इत्तलाक़ ज़िक्र किया है। (त)

शाह वली उल्लाह देहलवी मुसव्वा में कलाम-ए-इमाम नववी नक़ल करके कहते हैं:

(अरबी उद्धरण)	(उर्दू अनुवाद/व्याख्या)
मैं कहता हूँ: और इसी तरह ईद के दिन मुसाफ़हा के बारे में कहा जाना चाहिए।	मैं कहता हूँ जिस तरह इमाम नववी ने फ़ज्र और अस्र के बाद मुसाफ़हा के जवाज़ में इस्तिदलाल किया है, यही इस्तिदलाल रोज़-ए-ईद के मुसाफ़हा में भी जारी होना चाहिए। (त)

और मुसव्वा के कुछ नुस्ख़ों में "ईद के दिन गले मिलना भी" (और ईद के दिन "मुआनक़ा" (गले मिलना) भी। -त) भी है।

1. मज्म-उल-बिहार अल-अनवार, शब्द 'सफ़्ह' के तहत, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित, 2/250।
2. रद्द-उल-मुहतार, किताब-अल-हज़्र वल-इबाहत, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा मुद्रित, 6/381।
3. मुसव्वा, बाब इस्तेहबाबुल मुसाफ़हा, एच.एम. सईद कंपनी, कराची द्वारा मुद्रित, 2/221।

पृष्ठ 629/673

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

مجمع البحار میں ہے: ہِیَ مِنَ الْبِدَعِ الْمُبَاحَۃِ (یہ مصافحہ ان بدعتوں سے ہے جو مباح ہیں۔ت) آپ کی اسی ردالمحتار میں بعد نقل عبارت امام نووی ہے:

(Arabic) **(Urdu)**

قال الشیخ ابو الحسن البکری وتقییدہ بما بعد الصبح والعصر علی عادۃ کانت في زمنہ والا فعقب الصلوات کلھا کذلك، کذا في رسالۃ الشُّرُنبُلالی فی المصافحۃ ونُقِلَ مثلہ عن الشمس الحانوتی وانہ افتی بہ مستدلا بعموم النصوص الواردۃ فی مشروعیتھا وھو الموافق لما ذکرہ الشارح من اطلاق المتون۔

شیخ ابوالحسن بکری فرماتے ہیں امام نووی نے بعد فجر و عصر کی قید کے ساتھ مصافحہ کا ذکر اس لئے فرمایا کہ ان کے زمانے میں یہی رائج تھا، ورنہ بعد فجر و عصر کی طرح تمام نمازوں کے بعد مصافحہ جائز ہے۔ یہی علامہ شرنبلالی کے اس رسالہ میں ہے جو انھوں نے مصافحہ کے بارے میں لکھا ہے اور اسی کے مثل علامہ شمس الدین حانوتی سے منقول ہے۔ انھوں نے جوازِ مصافحہ کے بارے میں وارد شدہ احادیث اور نصوص سے استدلال فرماتے ہوئے اس مصافحہ کے بھی جائز ہونے کا فتوٰی دیا ہے۔ اور یہی اس کے موافق ہے جو شارح (صاحبِ درِ مختار علاء الدین حصکفی) نے متونِ فقہ کا اطلاق ذکر کیا ہے۔ (ت)

شاہ ولی اللہ دہلوی مسوٰی میں کلام امام نووی نقل کرکے کہتے ہیں:

(Arabic) **(Urdu)**

اقول: وھکذا ینبغی ان یقال فی المصافحۃ یوم العید۔

میں کہتا ہوں جس طرح امام نووی نے مصافحہ بعد فجر و عصر کے جواز میں استدلال کیا ہے یہی استدلال مصافحہ روزِ عید میں بھی جاری ہونا چاہئے۔ (ت)

اور بعض نسخ مسوٰی میں "والمعانقۃ یوم العید ایضاً" (اور روز عید کے "معانقہ" میں بھی ت) بھی ہے۔

1 مجمع البحار الانوار تحت لفظ صفح مطبوعہ نول کشور لکھنؤ ۲ / ۲۵۰ 2 ردالمحتار کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۶ / ۳۸۱ 3 مسوٰی باب استحباب المصافحۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲ / ۲۲۱

Fatawa Razawiyya Volume Eight

In "Munasiha fi Tahqiq Masail al-Musafaha" it is taken from Takmila Sharh al-Arba'een:

There is no merit to the answer given by Allama Ibn Hajar al-Shafi'i when he was asked about shaking hands (musafaha) after prayer and he replied that it is an innovation (bid'ah). There is no acceptable reason for this answer because the state of Salaam (ending the prayer) is a state of meeting. This is because when the worshipper enters the state of Takbir (starting the prayer), he becomes absent from people and turns towards Allah Almighty. When he has fulfilled the right of Allah, it is said to him: "Now return to your affairs and interests and greet your Muslim brothers, for you have returned from your absence." For this reason, he should also intend the people in his Salaam just as he intends the guardian angels. When he offers Salaam, then shaking hands is recommended (mandub) or Sunnah for him, just like the Salaam itself. Similarly, Shaykh al-Islam, the teacher of our teachers, Shams al-Din Muhammad bin Siraj al-Din al-Hanuti, replied when this question was presented to him. He said that the scholars have stipulated that shaking hands with a Muslim, but not with a non-believer, is Sunnah without restricting it to any particular time. This is because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Whoever shakes hands with his Muslim brother and moves his hand, his sins fall away, and a hundred mercies descend upon them both; ninety-nine of them are for the one who initiates and takes the lead in shaking hands, and one for his companion."

Page 630 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

"मुनासिहा फ़ी तहक़ीक़ मसाइल अल-मुसाफ़हा" में तकमिला शरह अल-अरबईन से है:

अल्लामा इब्न हजर शाफ़ई ने नमाज़ के बाद हाथ मिलाने (मुसाफ़हा) के बारे में पूछे जाने पर इसे बिदअत कहा है, उनके इस जवाब की कोई स्वीकार्य वजह नहीं है, क्योंकि नमाज़ के बाद का मुसाफ़हा भी पहली मुलाक़ात का मुसाफ़हा है क्योंकि सलाम की स्थिति मुलाक़ात की स्थिति है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब नमाज़ी ने तहरीमा बाँध लिया, तो वह इंसानों से अनुपस्थित हो गया और अल्लाह तआला की ओर मुखातिब हो गया। फिर जब उसने अल्लाह का हक़ अदा कर दिया, तो उससे कहा गया कि अब अपने कामों और हितों की ओर वापस जाओ और अपने मुसलमान भाइयों को सलाम करो, क्योंकि तुम अपनी ग़ैर-हाज़िरी और ग़ैबत से आ रहे हो। इसी लिए वह अपने सलाम में लोगों की भी नीयत करेगा, जैसे वह मुहाफ़िज़ फ़रिश्तों की नीयत करेगा। और जब उसने सलाम किया तो मुसाफ़हा उसके लिए मंदूब (पसंदीदा) या सुन्नत है, जैसे कि सलाम। इसी तरह शैख़ुल इस्लाम, हमारे मशायख़ के शैख़ शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन सिराजुद्दीन हानुती ने जवाब दिया है, उनके सामने यह सवाल पेश किया गया था तो उन्होंने फ़रमाया कि उलमा ने काफ़िर से तो नहीं लेकिन मुसलमान से मुसाफ़हा को किसी ख़ास वक़्त की पाबंदी के बिना सुन्नत होने का साफ़ ज़िक्र किया है। इसीलिए हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का इरशाद है: "जिसने अपने मुसलमान भाई से मुसाफ़हा किया और अपने हाथ को हरकत दी तो उसके गुनाह झड़ जाते हैं, और दोनों पर कुल सौ १०० रहमतें नाज़िल होती हैं, निन्यानवे ९९ उसके लिए जिसने मुसाफ़हा में पहल और पेशक़दमी की और एक उसके साथी के लिए।"

पृष्ठ 630 का 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

"مناصحة في تحقيق مسائل المصافحة" میں تکملہ شرح اربعین سے ہے:

لا وجه لجواب ابن حجر الشافعی وقد سُئل عن المصافحة بعد الصلوة فقال ھی بدعة انتھی، لان حالة السلام حالة اللقاء لان المصلی لما احرم صار غائبا عن الناس مقبلا علی اللہ تعالی، فلما ادی حقه قیل له ارجع الی مصالحك وسلم علی اخوانك لقد ومک عن غیبتك، ولذلك ینوی القوم بسلام کما ینوی الحفظة واذا سلم یندب المصافحة اوتسن کالسلام، کما اجاب شیخ الاسلام شیخ مشائخنا شمس الدین محمد بن سراج الدین الحانوتی وقد رفع له ھذا السؤال فقال نص العلماء علی ان المصافحة للمسلم لا للکافر مسنونة من غیر ان یقیدوھا بوقت دون وقت لقوله علیه الصلوة والسلام من صافح اخاه والمسلم وحرّك یده تناثرت ذنوبه و نزلت علیھما مأة رحمة تسعة وتسعون منھا لا سبقھما وواحدة لصاحبه

علامہ ابن حجر شافعی نے مصافحہ بعد نماز سے متعلق جواب دیتے ہوئے اسے بدعت کہا ہے، ان کے اس جواب کی کوئی قابل قبول وجہ نہیں، اس لئے کہ مصافحہ بعد نماز بھی مصافحہ اول ملاقات ہے کیونکہ سلام نماز کی حالت، حالتِ ملاقات ہے ۔ اس لئے کہ جب مصلی نے تحریمہ باندھ لیا تو انسانوں سے غیر حاضر اور خدا کی طرف متوجہ ہوگیا، پھر جب حقّ اللہ کی ادائیگی سے فارغ ہوا تو اس سے کہا گیا کہ اب اپنے کاموں اور مصالح کی طرف واپس ہو اور اپنے مسلمان بھائیوں کو سلام کر ، کیونکہ تو اپنی غیر حاضری اور غیبت سے آرہا ہے اسی لئے تو اپنے سلام میں لوگوں کی بھی نیت کرے گا، جیسے محافظ فرشتوں کی نیت کرے گا، اور جب سلام کیا تو مصافحہ اس کے لئے مندوب یا مسنون ہے، جیسے سلام، اسی طرح شیخ الاسلام ہمارے مشائخ کے شیخ شمس الدین محمد بن سراج الدین حانوتی نے جواب دیا ہے، ان کے سامنے یہ سوال

پیش کیا گیا تھا تو انہوں نے فرمایا علماء نے کافر سے تو نہیں مگر مسلمان سے مصافحہ کو کسی خاص وقت کی کوئی قید لگائے بغیر مسنون ہونے پر نص فرمایا ہے، اسی لئے کہ حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم کا ارشاد ہے: "جس نے اپنے مسلمان بھائی سے مصافحہ کیا اور اپنے ہاتھ کو حرکت دی تو اس کے گناہ جھڑتے ہیں، اور دونوں پر کل سو ۱۰۰ رحمتیں نازل ہوتی ہیں، ننانوے ۹۹ اس کے لئے جس نے مصافحہ میں سبقت و پیش قدمی کی اور ایک اس کے ساتھی کے لیے۔"

صفحہ 630 از 673

Volume 8 Fatawa Ridawiyya

He (the author) also stated: "Whenever two Muslims meet and shake hands, their sins are forgiven before they part ways." Thus, the first Hadith implies the absolute permissibility and legitimacy of handshaking, whether it is after the five daily prayers, Friday prayer, the two Eids, or at any other time. This is because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) did not restrict it to any specific time. According to the Hanafis, a general evidence (dalil-e-aam) holds the same status as specific evidence (dalil-e-khaas) when the ruling of the general evidence has not been specifically restricted by conclusive evidences. In fact, they are of the opinion that general evidence is so strong that it can contradict and take precedence over specific evidence. Here, the evidence for handshaking is general because the word "man" (whoever) is used in the hadith, which is among the forms of generality. Similarly, it has been narrated from the teacher of our teachers, Allama al-Maqdisi, the Hadith: "Whoever shakes hands with a Muslim and says at the time of handshaking: 'O Allah, send blessings upon Muhammad and the family of Muhammad,' nothing remains of his sins." The wording of this Hadith is also of a general nature. Allama Shurunbulali mentioned it in his treatise titled "Sa'adat Ahl al-Islam." (T)

Allama Sayyid Abu al-Sa'ud al-Azhari states in the marginalia of Kanz: 1. Manasaha fi Tahqiq Mas'alah al-Musafahah. Page 631 of 673

जिल्द 8 फ़तावा रिज़विया

उन्होंने यह भी कहा: "जब भी दो मुसलमान मिलते हैं और मुसाफ़हा (हाथ मिलाना) करते हैं, तो उनके अलग होने से पहले ही उनकी मग़फ़िरत (पाप क्षमा) कर दी जाती है।" पहली हदीस का अर्थ यह है कि मुसाफ़हा पूर्ण रूप से जायज़ और शरीयत सम्मत है, चाहे वह पाँचों समय की नमाज़ों, जुमे और ईदैन के बाद हो या किसी अन्य समय। ऐसा इसलिए है क्योंकि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने मुसाफ़हा को किसी विशेष समय के साथ सीमित नहीं किया। हनफ़ियों के अनुसार, सामान्य प्रमाण (दलील-ए-आम) का वही स्थान है जो विशेष प्रमाण (दलील-ए-खास) का है, जब तक कि सामान्य प्रमाण के हुक्म को कतई तौर पर अनिवार्य करने वाली दलीलों द्वारा विशेष रूप से सीमित न किया गया हो। बल्कि वे इस बात के कायल हैं कि सामान्य प्रमाण इतना शक्तिशाली होता है कि वह विशेष प्रमाण का विरोध कर सकता है और उस पर प्रबल हो सकता है। यहाँ मुसाफ़हा का प्रमाण सामान्य है क्योंकि हदीस में शब्द "मन्" (जो कोई) आया है, जो व्यापकता (उमूम) के रूपों में से है। इसी प्रकार हमारे उस्तादों के उस्ताद अल्लामा मुक़द्दसी से यह हदीस वर्णित है: "जिसने किसी मुसलमान से मुसाफ़हा किया और मुसाफ़हा के समय (दुरूद शरीफ़) 'अल्लाहुम्मा सल्लि अला मुहम्मदिन् व अला आलि मुहम्मद' पढ़ा, तो उसके पापों में से कुछ भी शेष नहीं बचता।" इस हदीस के शब्द भी व्यापकता वाले हैं। इसे अल्लामा शुरुनबलाली ने अपने शोध पत्र "सआदत-ए-अहल-ए-इस्लाम" में उल्लेख किया है। (त)

अल्लामा सैय्यद अबू अल-सऊद अल-अज़हरी हाशिया-ए-कन्ज़ में फ़रमाते हैं: 1. मनासह़ा फ़ी तहक़ीक़ मसअला-तुल-मुसाफ़ह़ा पृष्ठ 631 का 673

وقال ایضا مامن مسلمین یلتقیان فیتصافحان الا غفر لھما قبل ان یتفرقا فالحدیث الاول یقتضی مشروعیة المصافحة مطلقا اعم من ان تکون عقب الصلوات الخمس والجمعة والعیدین او غیر ذلك، لان النبي صلی اللہ تعالیٰ علیه وسلم لم یقیدھا بوقت دون وقت والدلیل العام عند الحنفیة اذا لم یقع فیه تخصیص من الادلة الموجبة للحکم قطعا کالدلیل الخامس وقالوا لدلیل العام یعارض الخاص لقوته والدلیل ھھنا عام لان صیغة "من" من صیغ العموم وکذا نقل عن شیخ مشائخنا العلامة المقدسی حدیث "من صافح مسلما وقال عند المصافحة اللھم صل علی محمد و علی آل محمد لم یبق من ذنوبه شیئ" فصیغته ایضا من صیغ العموم ذکرہ الشرنبلالی فی رسالته المسماة بسعادة اھل الاسلام۔ ایک اس کے دوسرے ساتھی کے لئے" اور حضور صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے یہ بھی فرمایا کہ "جب دو مسلمان ایک دوسرے سے ملتے پھر مصافحہ کرتے ہیں تو جدا ہونے سے پہلے ان کی مغفرت ہو جاتی ہے" پہلی حدیث کا مقتضیٰ ہے کہ مصافحہ مطلقاً جائز و مشروع ہو، خواہ نماز پنجگانہ، جمعہ و عیدین کے بعد ہو یا کسی اور وقت، اس لئے کہ نبی صلی اللہ تعالیٰ علیہ وسلم نے مصافحہ کو کسی خاص وقت سے مقید نہ فرمایا، اور حنفیہ کے نزدیک دلیلِ عام کا بھی وہی مرتبہ ہے جو دلیلِ خاص کا ہے جبکہ دلیلِ عام کا حکم کو قطعی طور پر لازم کرنے والی دلیلوں سے کوئی تخصیص نہ ہوئی ہو، بلکہ وہ تو اس کے قائل ہیں کہ دلیلِ عام اتنی قوی ہوتی ہے کہ دلیلِ خاص کے معارض اور اس پر ترجیح یافتہ ہوا کرتی ہے، اور یہاں دلیلِ مصافحہ بھی عام ہے، اس لئے کہ حدیث میں کلمہ "مَنْ" ہے جو صیغہ عموم سے ہے، یوں ہی ہمارے شیخ المشائخ علامہ مقدسی سے یہ حدیث منقول ہے "جس نے کسی مسلمان سے مصافحہ کیا اور بوقت مصافحہ (درود شریف) اللھم صل علی محمد و علی آل

محمد پڑھا تو اس کے گناہوں سے کچھ باقی نہیں رہ جاتا" اس حدیث کا صیغہ بھی عموم کا صیغہ ہے۔ اسے علامہ شرنبلالی نے اپنے رسالہ "سعادتِ اہل اسلام" میں ذکر کیا ہے۔ (ت)

علامہ سید ابو السعود ازہری حاشیہ کنز میں فرماتے ہیں؛ 1 مناصحتہ فی تحقیق مسألۃ المصافحۃ

In the commentary of Shihab al-Din al-Shalabi: The practice of shaking hands after the Fajr and Asr prayers, which people have made customary, has no basis in the primary sources; however, there is no harm in it. (T)

In 'Ghunyah', the marginal notes on 'Ghurar wa Durar', regarding the Chapter on Eid Prayers: It is recommended to go to the Eidgah on foot and return by a different route. Offering congratulations with the words "Taqabbal Allah minna wa minkum" (May Allah accept from us and you) is not rejected or considered wrong, as mentioned in 'Bahr al-Ra'iq'. Similarly, shaking hands is recommended; in fact, it is a Sunnah after all prayers and at every meeting. We have a treatise on this subject titled "Sa'adat Ahl al-Islam bi al-Musafahah 'aqib al-Salah wa al-Salam" (The Happiness of the People of Islam through Shaking Hands after Prayer and Salutation). (T)

In 'Fath Allah al-Mu'in', the commentary on Allamah Mulla Miskeen: It is recommended to express joy and cheerfulness (up to the author's words) and to congratulate with "Taqabbal Allah minna wa minkum" (May Allah accept from us and you). Similarly, shaking hands is recommended; indeed, it is a Sunnah after all prayers and at every meeting. - Shurunbulaliyyah. (T)

Allama Sayyid Ahmad Tahtawi states in the marginal notes on 'Nur al-Idah': Similarly, shaking hands is sought after; rather, it is a Sunnah after all prayers...

1. Fath al-Mu'in, Marginal Notes on Sharh Mulla Miskeen, Book of Disliked Matters, Section on Istibra, published by H.M. Saeed Company Karachi, 2/402.
2. Ghunyat Dhuwi al-Ahkam, Marginal Notes on Ghurar, Chapter on Eid Prayers, published by Ahmad, Egypt, 1/142.
3. Fath al-Mu'in on Sharh al-Allamah al-Mulla Miskeen, Chapter on Eid Prayers, published by H.M. Saeed Company Karachi, 1/325. Page 632 of 673

जिल्द आठवीं | फतावा रज़विया

शिहाब अल-दीन अल-शलबी की शरह (व्याख्या) में है: फज्र और अस्र की नमाज़ के बाद जो मुसाफ़हा (हाथ मिलाना) लोगों ने अपना रखा है, उसका कोई मूल आधार नहीं है; हालाँकि, इसमें कोई हर्ज़ भी नहीं है। (त)

'ग़ुनिया', 'ग़ुरर व दुरर' की हाशिया (टिप्पणी) में, ईद की नमाज़ के अध्याय में है: ईद के दिन ईदगाह पैदल जाना और दूसरे रास्ते से वापस आना मुस्तहब (पसंदीदा) है। और "तक़ब्बल अल्लाहु मिन्ना व मिनकुम" (अल्लाह हम से और आपसे स्वीकार करे) शब्दों के साथ मुबारकबाद देना कोई नापसंद या बुरी बात नहीं है, जैसा कि 'बहर अल-राइक़' में है। इसी तरह मुसाफ़हा करना भी पसंदीदा है, बल्कि यह तो तमाम नमाज़ों के बाद और हर मुलाकात के समय सुन्नत है। और इस विषय पर हमारा एक शोधपत्र है जिसका नाम "सआदत अहल अल-इस्लाम बिल-मुसाफ़हा अक़िब अल-सलात व अल-सलाम" है। (त)

'फ़तह अल्लाह अल-मुईन', अल्लामा मुल्ला मिस्कीन की शरह में है: ईद के दिन खुशी और प्रसन्नता प्रकट करना (लेखक की बात तक) और "तक़ब्बल अल्लाहु मिन्ना व मिनकुम" (अल्लाह हम से और आपसे स्वीकार करे) के माध्यम से मुबारकबाद देना मुस्तहब है। इसी तरह मुसाफ़हा भी, बल्कि यह तो तमाम नमाज़ों के बाद और हर मुलाकात के समय सुन्नत है। - शरुन्बुलालिया। (त)

अल्लामा सैयद अहमद तहतावी 'हाशिया नूर अल-इज़ाह' में फ़रमाते हैं: इसी तरह मुसाफ़हा भी वांछित है बल्कि यह तो तमाम नमाज़ों के बाद...

1. फ़तह अल-मुईन, हाशिया अला शरह मुल्ला मिस्कीन, किताब अल-कराहिया, बाब अल-इस्तिबरा, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 2/402.
2. ग़ुनिया ज़वी अल-अहकाम, हाशिया ग़ुरर, बाब सलात अल-ईदैन, अहमद मिस्र द्वारा प्रकाशित, 1/142.
3. फ़तह अल-मुईन अला शरह अल-अल्लामा अल-मुल्ला मिस्कीन, बाब सलात अल-ईदैन, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा प्रकाशित, 1/325. पेज 632 / 673

فی شرح لشہاب الشلبی وما اعتادہ الناس بعد صلوۃ الصبح والعصر فلا اصل لہ لکن لا بأس بہ الخ۔ | شہاب الدین شلبی کی شرح میں ہے: نماز فجر وعصر کے بعد جو مصافحہ رائج ہے اس کی کوئی اصل نہیں، مگر اس میں کوئی حرج بھی نہیں ہے۔ (ت)

غنیہ حاشیہ غرر ودر باب صلوۃ العیدین میں ہے: المستحب الخروج ماشیا والرجوع من طریق آخر والتہنئۃ بتقبل اللہ منا ومنکم لأننکر کما فی البحر وکذا المصافحۃ بل ھی سنۃ عقب الصلوات کلھا عند کل لقی ولنا فیھا رسالۃ سمیتھا سعادۃ اھل الاسلام بالمصافحۃ عقب الصلوۃ والسلام 2۔ | عید کے دن عید گاہ کو پیادہ جانا اور دوسرے راستے سے واپس آنا یہی مستحب ہے۔ اور بالفاظ تَقَبَّلَ اللّٰہُ مِنَّا وَ مِنْکُمْ (اللہ ہمارے تمہارے عمل قبول فرمائے) مبارکباد پیش کرنا کوئی منکر اور بُرا نہیں، جیسا کہ بحر الرائق میں ہے، اسی طرح مصافحہ بھی، بلکہ وہ تو تمام نمازوں کے بعد ہر ملاقات کے وقت سنت ہے اور اس بارے میں "سعادہ اھل الاسلام بالمصافحہ عقب الصلوۃ والسلام" نامی ہمارا ایک رسالہ ہے۔ (ت)

فتح اللہ المعین علی شرح العلامۃ الملا مسکین میں ہے: من المستحب اظہار الفرح والبشاشۃ (الی قولہ) والتہنئۃ بتقبل اللہ منا ومنکم وکذا المصافحۃ بل ھی سنۃ عقب الصلوۃ کلھا و عند کل لقی۔
شرنبلالیۃ 3۔ | عید کے دن مسرت و خندہ روئی ظاہر کرنا اور تقبل اللہ منا ومنکم (اللہ ہم سے اور تم سے قبول فرمائے) کے ذریعہ مبارک باد دینا مستحب ہے، اسی طرح مصافحہ بھی، بلکہ یہ تو تمام نمازوں کے بعد اور ہر ملاقات کے وقت سنت ہے، شرنبلالیہ۔ (ت)

علامہ سید احمد طحطاوی حاشیہ نور الایضاح میں فرماتے ہیں: کذا تطلب المصافحۃ فھی سنۃ | اسی طرح مصافحہ بھی مطلوب ہے بلکہ یہ تو تمام نمازوں

1 فتح المعین حاشیہ علی شرح ملا مسکین کتاب الکراہیۃ فصل فی الاستبراء مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۲/۴۰۲ 2 غنیۃ ذوی الاحکام حاشیہ غرر باب صلوۃ العیدین مطبوعہ احمد مصرا / ۱۴۲ 3 فتح المعین علی شرح العلامۃ الملا مسکین باب صلوۃ العیدین مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/۳۲۵ Page 632 of 673

Volume 8 | Fatawa Ridawiyyah

[Boxed Section] After all prayers[1] | ...is Sunnah after. (T) It is stated in the marginalia of Durr al-Mukhtar: Handshaking is recommended, rather it is a sunnah after all prayers and at every meeting. Abu al-Su'ud from al-Shurunbulaliyah.[2] | Handshaking is recommended, rather it is a sunnah after prayers and at every meeting. Abu al-Su'ud from al-Shurunbulaliyah. (T)

[Main Body Text] Regrettably, you only saw two statements, and so many numerous statements that were against your view escaped your notice. Well, granted that most of these books might not have come under your noble study, at least Durr al-Mukhtar and Radd al-Muhtar were before you. You must have observed that statement in Durr al-Mukhtar saying that the aforementioned handshake is a 'good innovation' (bid'ah hasanah). In Radd al-Muhtar, you must have seen the words of Allama Shurunbulali's treatise and the fatwa of Allama Shams al-Din Hanuqi. Leave everything aside, in this very 'Fatawa Lucknow' which you presented for support, these words are present: that scholars differ on this matter, some call it a permissible innovation (bid'ah mubahah) and some a disliked innovation (bid'ah makruhah). Was the disagreement on the issue of handshaking not found? A very clear path was to seek preference; action should have been taken according to the preferred view. If your sight did not reach the point of preference, then hear from this humble person what Allama Shihab al-Din Khafaji Hanafi says in 'Nasim al-Riyad', the commentary on the Shifa of Imam Qadi 'Iyad:

[Boxed Section] It [handshaking] after prayer is an innovation according to us, and the more correct view is that it is permissible because it alludes to the fact that he has returned from an absence, for he was busy in intimate conversation with his Lord. So understand.[3] | This handshake after prayer is an innovation according to us, and the more correct view is that it is permissible because it points to the fact that he has come from absence and unavailability, for he was occupied in intimate prayer before his Lord. Understand this. (T)

[Final Paragraph] Observe how clear the clarification is that the permissibility of the said handshake is the most correct view. Then, even if, for the sake of argument, verification was found on the other side, nonetheless, this would remain the preferred view as Radd al-Muhtar itself admits that "the school of permissibility is in accordance with the general application of the texts". And it is their own clarification that "at the time of disagreement in fatwa, action is superior on that view which..."

[Footnotes] 1. Hashiya Tahtawi 'ala Maraqi al-Falah, Chapter on Eids, printed by Nur Muhammad Karachi, p. 288. 2. Hashiya Tahtawi 'ala al-Durr al-Mukhtar, Chapter on Eids, Dar al-Ma'rifa Beirut 1/353. 3. Nasim al-Riyad Sharh Shifa.

जिल्द अष्टम | फतावा रज़विया

[बॉक्स वाला भाग] सभी नमाज़ों के बाद[1] | ...के बाद सुन्नत है। (त) हाशिया दुर्र-ए-मुख़्तार में है: मुसाफ़हा मुस्तहब है, बल्कि यह सभी नमाज़ों के बाद और हर मुलाक़ात के वक़्त सुन्नत है। अबू अल-सऊद अन अल-शुरुनबुललिया[2] | मुसाफ़हा मुस्तहब है, बल्कि यह तो नमाज़ों के बाद और हर मुलाक़ात के वक़्त सुन्नत है। अबू अल-सऊद अन अल-शुरुनबुललिया। (त)

[मुख्य अनुच्छेद] अफ़सोस कि दो इबारतें जनाब ने देखीं, और इतनी इबारतें कसीरा (अत्यधिक) जो कि जनाब के ख़िलाफ़ थीं नज़र से रह गईं। ख़ैर माना कि इसमें अक्सर कुतुब मुताला-ए-सामी (आपके उच्च अध्ययन) में न आई हों, आख़िर दुर्र-ए-मुख़्तार और रद अल-मुहतार तो पेश-ए-नज़र थीं, दुर्र-ए-मुख़्तार की वह इबारत मुलाहज़ा फरमाई होगी कि मुसाफ़हा-ए-मज़कूरा बिदअत-ए-हसना है। रद अल-मुहतार में अल्लामा शुरुनबुलली के रिसाले का कलाम और अल्लामा शम्सुद्दीन हनूक़ी का फ़तवा देखा ही होगा, सब जाने दीजिये, यह 'फ़तावा लखनऊ' जो आपने प्रमाण के तौर पर पेश फ़रमाया, उसी में यहीं-यहीं ये अलफ़ाज़ मौजूद हैं कि उलमा इस विषय में भिन्न मत रखते हैं, कुछ इसे बिदअत-ए-मुबाहा (अनुमेय नवाचार) कहते हैं और कुछ बिदअत-ए-मक़रूहा (नापसंदीदा नवाचार)। क्या मुसाफ़हा के मसअले का विवादास्पद होना नहीं पाया गया? बहुत स्पष्ट मार्ग था कि प्राथमिकता (तरजीह) खोजी जाती, और जो विचार वरीयता प्राप्त होता उसी पर अमल किया जाता। यदि जनाब की दृष्टि प्राथमिकता के बिंदु तक नहीं पहुँची, तो इस अकिंचन व्यक्ति (फ़क़ीर) से सुनें कि अल्लामा शहाबुद्दीन खफ़ाजी हनफ़ी 'नसीम अर-रियाज़' शरह शिफ़ा-ए-इमाम क़ाज़ी अयाज़ में फरमाते हैं:

[बॉक्स वाला भाग] यह नमाज़ के बाद हमारे निकट बिदअत है, और सही यह है कि यह मुबाह (जायज़) है क्योंकि इसमें इस बात का संकेत है कि वह ग़ैर-मौजूदगी और अनुपस्थिति से आया है क्योंकि वह अपने रब के हुज़ूर गुप्त संवाद (मुनाजात) में लीन था। अतः समझो।[3] | यह मुसाफ़हा, नमाज़ के बाद हमारे निकट बिदअत है, और अधिक सही यह है कि मुबाह है क्योंकि इसमें इस बात की ओर संकेत है कि वह अनुपस्थिति और ग़ैर-हाज़िरी से आया है क्योंकि वह अपने रब के सम्मुख प्रार्थना में व्यस्त था। इसे समझो। (त)

[अंतिम पैराग्राफ] मुलाहज़ा फरमाइये कि कैसी स्पष्ट घोषणा (तसरीह) है कि उक्त मुसाफ़हा की इबाहत (अनुमेयता) ही सबसे सही विचार है। फिर यदि मान लिया जाए कि दूसरी ओर भी पुष्टि पाई

जाती, तब भी यही विचार वरीयता प्राप्त रहता क्योंकि रद अल-मुहतार स्वयं स्वीकार करता है कि "अनुमेयता का मत ही ग्रंथों के सामान्य अनुप्रयोग के अनुकूल है"। और स्वयं उनकी ही स्पष्ट घोषणा है कि "फ़तवे के मतभेद के समय उसी विचार पर अमल करना उत्तम है जो..."

[पाद टिप्पणियाँ] 1. हाशिया तहतावी अला मराक़ी अल-फ़लाह, ईद का अध्याय, नूर मुहम्मद कराची द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 288। 2. हाशिया तहतावी अला अद-दुर्र अल-मुख़्तार, ईद का अध्याय, दारुल मा'रिफ़ा बैरूत 1/353। 3. नसीम अर-रियाज़ शरह शिफ़ा।

पृष्ठ 633 ऑफ़ 673

[باکس شدہ حصہ] عقب الصلوات کلھا [1] | کے بعد سنت ہے۔ (ت) حاشیہ در مختار میں ہے:

تستحب المصافحة بل ھی سنة عقب الصلوات کلھا وعند کل لقی، ابوالسعود عن الشُّرُنْبُلَالِیَّة [2] |

مستحب ہے مصافحہ، بلکہ یہ تو نمازوں کے بعد اور ہر ملاقات کے وقت سنت ہے۔ ابو السعود عن الشرنبلالیہ۔ (ت)

[مرکزی عبارت] افسوس کہ دو عبارتیں جناب نے دیکھیں، اور اتنی عبارات کثیرہ جو کہ جناب کے خلاف تھیں نظر سے رہ گئیں۔ خیر مانا کہ اس میں اکثر کتب مطالعہ سامی میں نہ آئی ہوں، آخر در مختار اور رد المحتار تو پیش نظر تھیں، در مختار کی وہ عبارت ملاحظہ فرمائی ہو گی کہ مصافحہ مذکورہ بدعت حسنہ ہے۔ رد المحتار میں رسالہ علامہ شرنبلالی کا کلام اور علامہ شمس الدین حانوقی کا فتوٰی دیکھا ہی ہوگا، سب جانے دیجئے، یہ فتاوٰی لکھنو جو استناداً پیش فرمایا اسی میں یہیں یہیں یہ الفاظ موجود کہ علماء اس باب میں مختلف ہیں بعض بدعت مباحہ کہتے ہیں اور بعض بدعت مکروہہ۔ مسئلہ مصافحہ کا اختلافی ہونا پایا نہیں؟ بہت واضح راہ تھی کہ ترجیح تلاش فرمائی جاتی، جو قول مرجح نکلتا اسی پر عمل کرنا تھا، اگر جناب کی نظر ترجیح تک نہ پہنچتی تو فقیر سے سنتے علامہ شہاب الدین خفاجی حنفی نسیم الریاض شرح شفائے امام قاضی عیاض میں فرماتے ہیں:

[باکس شدہ حصہ] ھی بعد الصلوة بدعة عندنا، والا صح انھا مباحة لما فیھا من الاشارة الی انه کان قدم من غیبة لانه کان عند ربه یناجیه فافھم[3] | یہ مصافحہ، نماز کے بعد ہمارے نزدیک بدعت ہے، اور صحیح تر یہ ہے کہ مباح ہے کیونکہ اس میں اس بات کی طرف اشارہ ہے کہ وہ غیبت اور

غیر حاضری سے آیا ہے اس لئے کہ وہ اپنے رب کے حضور مصروف مناجات تھا۔ اسے سمجھو۔ (ت)

[آخری پیرا گراف] ملاحظہ فرمائیے کیسی صاف تصریح ہے کہ مصافحہ مذکورہ کی اباحت ہی قولِ اصح ہے، پھر اگر بالفرض دوسری طرف بھی تصحیح پائی جاتی، تاہم، یہی قولِ مرجح رہتا کہ خود باقرارِ رد المحتار "مذہب اباحت ہی موافق اطلاقِ متون ہے"۔ اور خود انہیں کی تصریح ہے کہ "اختلافِ فتویٰ کے وقت اسی قول پر عمل اولیٰ جو..."

[حواشی] 1 حاشیہ طحطاوی علی مراقی الفلاح باب العیدین مطبوعہ نور محمد کراچی ص ۲۸۸ 2 حاشیہ طحطاوی علی الدر المختار باب العیدین دار المعرفة بیروت ۱ / ۳۵۳ 3 نسیم الریاض شرح شفاء

"...should be in accordance with the general absolute statements of the foundational texts (Mutoon)."

(Arabic)	(English Translation)
As he said: Verification (tashih) and legal verdict (fatwa) have differed as you have seen, and acting upon what matches the absolute statements of the foundational texts is more appropriate. - Bahr	He stated that as you can see, there is a difference between verification and the fatwa, and it is more appropriate to act upon what aligns with the general absolute statements of the foundational texts. - Bahr (T)

It is stated in Durr-e-Mukhtar:

(Arabic)	(English Translation)
This is based on the reliable [opinion], because when there is a difference in giving preference (tarjih), the absolute statement of the foundational texts is preferred. - Bahr	This ruling is based on the reliable opinion, because at the time of difference in preference, the preference lies with the absolute statement of the foundational texts. - Bahr (T)

And when the preference is only in that direction, then choosing [another] opinion is completely contrary to jurisprudence. It is stated in Durr-e-Mukhtar:

(Arabic)	(English Translation)
As for us, it is upon us to follow what they [the authorities] have preferred and authenticated.	For us general followers, we must only follow what these elders have declared as preferred and correct. (T)

In the same [source] it is stated:

(Arabic)	(English Translation)
Giving a ruling or a fatwa based on an outweighed (marjuh) opinion is ignorance and a breach of consensus (ijma').	Giving a judgment or a fatwa based on a less preferred (marjuh) opinion is ignorance and contrary to the consensus. (T)

All praise is due to Allah, the truth has now become clear in the best possible way. I hope that you will now also issue a fatwa on the permissibility and lawfulness of the aforementioned handshaking and hugging on Eid, and instruct your students to

refrain from criticizing and denying these permissible matters. Allah is the Guide and the Patron of favors.

Sixth: Praise be to Allah, within the discourse, the issue of handshaking after prayer has also been clarified, and the weakness of the three justifications has also been revealed. The discussion on the third [point] has already passed explicitly, and the answer to the first is clear from the text of 'Takmela Sharh Arba'een' and 'Naseem al-Riyad' that meeting after the completion of prayer is also the beginning of an encounter. Therefore, greetings (Salam) are prescribed at that time, so why should handshaking not be?

---

1. Radd al-Muhtar, Matlab Rasm al-Mufti, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/71
2. Radd al-Muhtar, Matlab Rasm al-Mufti, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/77
3. Radd al-Muhtar, Matlab Rasm al-Mufti, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/74
4. Radd al-Muhtar, Matlab Rasm al-Mufti, published by H.M. Saeed Company, Karachi, 1/77

जिल्द अष्टम | फतावा रज़विया

"...मूल ग्रंथों (मूतून) के सामान्य कथनों के अनुकूल हो।"

(अरबी)

जैसा कि उन्होंने कहा: प्रमाणन (तसहीह) और फतवे में मतभेद हो गया है जैसा कि आपने देखा, और उस पर अमल करना अधिक उचित है जो मूल ग्रंथों के सामान्य कथनों के अनुकूल हो। - बह्र

(हिन्दी अनुवाद)

उन्होंने इस प्रकार फरमाया कि जैसा कि आप देख रहे हैं, तसहीह और फतवा में मतभेद हो गया है, और अमल उसी पर बेहतर है जो मूल ग्रंथों के सामान्य कथनों के अनुकूल हो। - बह्र (त)

दुर्रे मुख्तार में है:

(अरबी)

यह विश्वसनीय [राय] पर आधारित है, क्योंकि जब वरीयता (तरजीह) में मतभेद हो, तो मूल ग्रंथों के सामान्य कथन को ही वरीयता दी जाती है। - बह्र

(हिन्दी अनुवाद)

यह हुक्म विश्वसनीय आधार पर है, क्योंकि वरीयता में मतभेद के समय मूल ग्रंथों के सामान्य कथन को ही वरीयता प्राप्त है। - बह्र (त)

और जब वरीयता केवल उसी दिशा में है, तो अब इस मत का चयन करना न्यायशास्त्र (फकाहत) के बिल्कुल विपरीत है। दुर्रे मुख्तार में है:

(अरबी)

जहाँ तक हमारा सवाल है, तो हम पर उसी का अनुसरण करना अनिवार्य है जिसे उन [अधिकारियों] ने वरीयता दी और प्रमाणित किया है।

(हिन्दी अनुवाद)

हम आम मुक़ल्लिदीन (अनुयायियों) को तो बस उसी का अनुसरण करना है जिसे इन बुज़ुर्गों ने तरजीह दी और सही करार दिया। (त)

इसी में है:

(अरबी)

किसी कमज़ोर (मरजूह) राय पर फैसला या फतवा देना अज्ञानता और सर्वसम्मति (इज्मा) का उल्लंघन है।

(हिन्दी अनुवाद)

मरजूह (कमज़ोर) राय पर हुक्म और फतवा देना अज्ञानता और इज्मा (सर्वसम्मति) की मुखालफत है। (त)

अल्हम्दुलिल्लाह, अब हक बेहतरीन तरीके से स्पष्ट हो गया है। मुझे उम्मीद है कि अब आप भी उपर्युक्त ईद के दिन हाथ मिलाने (मुसाफहा) और गले मिलने (मुआनका) की अनुमति और वैधता पर फतवा देंगे, और अपने छात्रों को इन जायज़ कार्यों की आलोचना और इनकार करने से बचने का निर्देश देंगे। अल्लाह ही मार्गदर्शक और कृपाओं का स्वामी है।

छठा: अल्हम्दुलिल्लाह, चर्चा के दौरान नमाज़ के बाद हाथ मिलाने का मसला भी साफ़ हो गया है, और तीनों दलीलों की कमज़ोरी भी ज़ाहिर हो गई है। तीसरी बात पर चर्चा तो स्पष्ट रूप से हो चुकी है, और पहली का उत्तर 'तकमिला शरह अरबईन' और 'नसीम अल-रियाज़' के पाठ से स्पष्ट हो गया है कि नमाज़ पूरी होने के बाद मिलना भी मुलाक़ात की शुरुआत है। इसलिए, उस समय सलाम करना शरीयत सम्मत (मशरूह) हुआ, तो हाथ मिलाना क्यों न हो?

---

1. रद-उल-मुहतार, मतलब रस्म-उल-मुफ्ती, प्रकाशित एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/71
2. रद-उल-मुहतार, मतलब रस्म-उल-मुफ्ती, प्रकाशित एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/77
3. रद-उल-मुहतार, मतलब रस्म-उल-मुफ्ती, प्रकाशित एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/74
4. रद-उल-मुहतार, मतलब रस्म-उल-मुफ्ती, प्रकाशित एच.एम. सईद कंपनी कराची, 1/77

اطلاقِ متون کے موافق ہو"۔

(عربی)	(اردو)
حیث قال قد اختلف التصحیح والفتوی کما رأیت والعمل بما وافق اطلاق المتون أولی ۔ بحر	انھوں نے یوں فرمایا کہ جیسا کہ تم دیکھ رہے ہو تصحیح اور فتویٰ میں اختلاف ہو گیا، اور عمل اُسی پر اولیٰ ہے جو اطلاق متون کے موافق ہو ، بحر (ت)

در مختار میں ہے:

(عربی)	(اردو)
علی المعتمد لانه متی اختلف الترجیح رجح اطلاق المتون ، بحر	یہ حکم بر بنائے معتمد ہے، اس لئے کہ اختلافِ ترجیح کے وقت اطلاق متون ہی کو ترجیح ہے ، بحر (ت)

اور جب کہ ترجیح صرف اسی طرف ہے تو اب اس قول کا اختیار فقاہت سے بالکل برطرف ہے،

در مختار میں ہے:

(عربی)	(اردو)
اما نحن فعلینا اتباع مارجحوه وصححوه۔	ہم عام مقلدین پر تو بس اُسی کی پیروی کرنا ہے جسے ان بزرگوں نے راجح و صحیح قرار دے دیا ۔ (ت)

اسی میں ہے:

(عربی)	(اردو)
الحکم والفتیا بالقول المرجوح جھل وخرق للاجماع	مرجوح قول پر حکم اور فتوٰی دینا جہالت اور اجماع کی مخالفت ہے۔ (ت)

الحمد للہ اب حق باحسن وجوہ واضح ہو گیا، اُمید کرتا ہوں کہ جناب بھی اب تو مصافحہ مذکورہ و معانقہ عید کے جواز و اباحت پر فتوٰی دیں گے اور اپنے تلامذہ کو ان امورِ جائزہ کے طعن وانکار سے باز رہنے کی ہدایت کریں گے واللہ الہادی وولی الآیادی۔

ششم : الحمد للہ کہ ضمن تقریر میں مسئلہ مصافحہ بعد صلوٰۃ بھی صاف ہو گیا، اور تعلیلاتِ ثلاثہ کا علیل ہونا بھی منکشف ہو لیا، ثالث پر کلام تو صراحۃً گزرا اور اول کا جواب عبارتِ تکملہ شرح اربعین و نسیم الریاض سے واضح ہوا کہ بعدِ ختمِ نماز ملنا بھی ابتدائے لقا ہے ، ولہٰذا اس وقت سلام مشروع ہوا ، تو مصافحہ کیوں نہ ہو؟

---

1 رد المحتار مطلب رسم المفتی مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۷۱ 2 رد المحتار مطلب رسم المفتی مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۷۷ 3 رد المحتار مطلب رسم المفتی مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۷۴ 4 رد المحتار مطلب رسم المفتی مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۷۷

Fatawa Razawiyya, Volume Eight

...began to become illegitimate. As for the second reasoning, an indication to its answer has passed in my (the humble author's) words: imitation is only blameworthy in those three specific forms, otherwise not.

Completion of the Discourse: Hear this much more, that the practice (Sunnah) of a false sect only deserves avoidance as long as it remains their practice. When the custom among them has ceased, it no longer remains their practice; why then would avoidance be required? If shaking hands after prayer was a practice of the Rawafid (Shia), it is no longer common among them now. They neither pray in congregation nor shake hands after prayer; in fact, perhaps they don't even shake hands upon first meeting, as those enemies of the Sunnah have nothing to do with established practices. In such a situation, that reason (for prohibition) is removed at its root. It is stated in 'Durr al-Mukhtar':

(Arabic)	**(Urdu Translation)**
He places it on the palm side of his left hand, and it is said the right, except that it is a hallmark of the Rawafid, so it is necessary to avoid it (Quhistani et al.). I say: Perhaps it was so and then became apparent, so reflect.[1]	(A man) should place the ring towards the palm on the left hand. It is also said to wear it on the right hand, but this is a sign of the Rafidites (Shias), so it is necessary to avoid it (in Quhistani etc.). I say this might have been the case in some era, then it ended, so reflect upon this. (T)

In 'Radd al-Muhtar' it is stated:

(Arabic)	**(Urdu Translation)**
i.e., that was their sign in previous times, then it separated and was cut off in these times, so there is no prohibition against it, however it may be.[2]	That is, it was their hallmark in past times, then it no longer remained so in these times and ended, so now there will be no prohibition against it, however it is. (T)

Now, by the grace of Allah, all doubts have been removed. So memorize, praise, and be among the thankful. And all praise is due to Allah, the Lord of the worlds. (So remember it, praise, and be grateful, and all praise is for Allah, who is the Sustainer of all the worlds. -T)

Seventh: It is a matter of great regret that a significant shortcoming occurred in quoting the text of 'Mirqat'. In 'Mirqat Sharif', after that text, these words were present:

---

[1] Durr al-Mukhtar, Kitab al-Hazr wa al-Ibahah, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 6/361 [2] Radd al-Muhtar, Kitab al-Hazr wa al-Ibahah, printed by H.M. Saeed Company Karachi, 6/361

फ़तावा रज़विया, जिल्द आठ

...गैर-शरीअती होने लगा। रही दूसरी दलील की बात, तो उसका जवाब मेरे (फ़क़ीर के) कलाम में गुज़र चुका है कि मुशाबहत (नकल) सिर्फ उन तीन सूरतों में निंदनीय है वरना नहीं।

कलाम की तकमील (पूरा करना): इतना और सुन लीजिये कि किसी गुमराह गिरोह का तरीक़ा (सुन्नत) तभी तक परहेज़ के लायक रहता है जब तक वह उनका तरीक़ा रहे। और जब उनमें से वह रिवाज ख़त्म हो गया, तो उनका तरीक़ा रहना ही जाता रहा, फिर उससे बचना क्यों ज़रूरी होगा? नमाज़ के बाद मुसाफ़ा (हाथ मिलाना) अगर राफ़ज़ियों (शियाओं) का तरीक़ा था तो अब उनमें इसका रिवाज नहीं है। वे न तो जमाअत से नमाज़ पढ़ते हैं और न नमाज़ के बाद मुसाफ़ा करते हैं, बल्कि शायद पहली मुलाक़ात पर भी उनके यहाँ मुसाफ़ा न होता हो क्योंकि सुन्नत के उन दुश्मनों को सुन्नतों से कोई सरोकार ही नहीं रहा। तो ऐसी हालत में वह वजह (निषेध की) सिरे से ही खत्म हो गई। 'दुर्रे मुख़्तार' में है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
، یجعلہ لبطن کفہ فی یدہ الیسری وقیل الیمنی الانہ من شعار الروافض فیجب التحرز عنہ، قہستانی وغیرہ، قلت ولعلہ کان و بان فتبصر۔[1]	(पुरुष) अंगूठी बाएँ हाथ में हथेली की तरफ रखे, और कहा गया दाएँ हाथ में पहने, लेकिन यह राफ़ज़ियों की पहचान (शआर) है, तो इससे बचना ज़रूरी है (क़ुहस्तानी वग़ैरह)। मैंने कहा यह किसी ज़माने में रहा होगा फिर ख़त्म हो गया, तो इस पर ग़ौर करो। (त)

'रद्दुल मुहतार' में है:

अरबी	**उर्दू अनुवाद**
ای کان ذلک من شعار ھم فی الزمن السابق ثم انفصل و انقطع فی ھذہ الازمان فلا ینھی عنہ کیفما کان ۔[2]	यानी वह पिछले ज़माने में उनकी पहचान थी फिर इन ज़मानों में नहीं रही और ख़त्म हो गई तो अब उससे रोक-टोक नहीं होगी, चाहे जैसे भी हो। (त)

अब तो अल्लाह के फ़ज़्ल से सब शक-ओ-शुबहात दूर हो गए, तो इसे याद रखो, अल्लाह की हम्द करो और शुक्रगुज़ार बनो। और सब तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं जो सारे जहानों का पालने वाला है। (त)

सातवां: यह बहुत अफ़सोस की बात है कि 'मिरक़ात' की इबारत नक़ल करने में बहुत कोताही हुई। 'मिरक़ात शरीफ़' में उस इबारत के बाद ये लफ़्ज़ थे:

---

[1] दुर्रे मुख़्तार, किताब अल-हज़र वल इबाहत, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा मुद्रित, 6/361 [2] रद्दुल मुहतार, किताब अल-हज़र वल इबाहत, एच.एम. सईद कंपनी कराची द्वारा मुद्रित, 6/361

نامشروع ہونے لگا۔ رہی تعلیل ثانی اس کے جواب کا اشارہ کلامِ فقیر میں گزرا مشابہت صرف ان تین صورتوں میں مذموم ہے ورنہ نہیں۔ تکمیل کلام : اتنا اور سُن لیجئے کہ کسی طائفہ باطلہ کی سنت جبھی تک لائقِ احتراز رہتی ہے کہ وہ ان کی سنت رہے، اور جب ان میں سے رواج اُٹھ گیا تو ان کی سنت ہونا ہی جاتا رہا، احتراز کیوں مطلوب ہوگا، مصافحہ بعد نماز اگر سنتِ روافض تھا تو اب ان میں رواج نہیں، نہ وہ جماعت سے نماز پڑھتے ہیں نہ بعد نماز مصافحہ کرتے ہیں، بلکہ شاید اول لقاء پر بھی مصافحہ ان کے یہاں نہ ہو کہ ان اعدائے سُنن کو سُنن سے کچھ کام ہی نہ رہا، تو ایسی حالت میں وہ علت سرے سے مُرتفع ہے۔ درمختار میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
یجعلہ لبطن کفہ فی یدہ الیسری ، وقیل الیمنی الانہ من شعار الروافض فیجب التحرز عنہ، قہستانی وغیرہ، قلت ولعلہ کان و بان فتبصر۔[1]	(مرد) انگوٹھی بائیں ہاتھ میں ہتھیلی کی طرف کرے، اور کہا گیا دائیں ہاتھ میں پہنے، مگر یہ رافضیوں کا شعار ہے، تو اس سے بچنا ضروری ہے، (قہستانی وغیرہ) میں نے کہا یہ کسی زمانے میں رہا ہوگا پھر ختم ہو گیا، تو اس پر غور کرلو۔(ت)

ردالمحتار میں ہے:

عربی	اردو ترجمہ
ای کان ذلک من شعار هم فی الزمن السابق ثم انفصل و انقطع فی هذه الازمان فلا ینهی عنہ کیفما کان ۔[2]	یعنی وہ گزشتہ زمانے میں ان کا شعار تھا پھر ان زمانوں میں نہ رہا اور ختم ہو گیا تو اب اس سے ممانعت نہ ہوگی، جیسے بھی ہو ۔(ت)

اب تو بحمد اللہ سب شکوک کا ازالہ ہوگیا، فاحفظ و احمد و کن من الشاکرین والحمد للہ رب العلمین (تو اسے یاد رکھو اور حمد کرو اور شکر گزار بنو اور ساری تعریف اللہ کے لئے ہے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے۔ت) ہفتم: سخت افسوس کا مقام ہے کہ عبارتِ مرقات کی نقل میں بہت تقصیر واقع ہوئی، مرقاۃ شریف میں اُس عبارت کے بعد یہ الفاظ تھے:

---

[1] درمختار کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۶/۳۶۱ [2] ردالمحتار کتاب الحظر والاباحۃ مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۶/۳۶۱

Yes, if someone enters the mosque while people are in prayer or intending to start it, and after finishing [the prayer] he shakes hands with them, provided that greeting (Salam) precedes the handshake, then this is undoubtedly included among the Sunnah handshakes. —[1]

Yes, if someone enters the mosque and people are in prayer, or are about to start prayer, then after finishing, if he shakes hands with them, provided greeting (Salam) occurs before the handshake, it will undoubtedly be included in the collection of Sunnah handshakes. (T)

In these [texts], it was clearly stated that the dislike (karahat) only applies in the situation where they met before the prayer, talked, and the meeting took place, but no handshake occurred at that time, and now after the Salam (conclusion of prayer), they start shaking hands. However, if this is not the case, but rather this is the very beginning of the meeting—that he arrived when the prayer had started or there was an intention to start—and now after the Salam he shakes hands, then this is definitely the Sunnah handshake as it occurred at the very first meeting. It is evident that in Eid congregations, the condition of most people is that their first meeting occurs after the Salam. Therefore, even according to *Mirqat*, there can be no prohibition for them from embracing (mu'anaqa). Furthermore, Eid embracing is not specific only to participants of the same congregation; rather, all friends who prayed in different mosques embrace each other on that day, or even until the next day, upon their first meeting after the prayer. These embracings are certainly at the beginning [of meeting], which, based on the passage from *Mirqat* by way of analogy and the passage from *Fatawa Lucknow* explicitly, are correct and appropriate at the right time. However, the contemporary prohibiters generalize their prohibition of post-prayer handshakes and Eid embracing to all situations. Based on your own authoritative passages, this [general prohibition] is false and unjust. So, if you act upon these passages, then only those who meet before the Eid prayer should not embrace after the prayer; and for those who have not met yet, embracing is permissible and allowed without any dislike. Similarly, those who go to meet each other or meet on the way should also embrace without hesitation, whether they met before or after the prayer, because that is the start of the meeting. The permissibility of all these situations is proven from your own authoritative sources. Necessarily, you will have to clarify this. After that, see what the prohibiting gentlemen say to you. And Allah is the one whose help is sought against the ignorance of the times. (T)

Eighth: More strange than this is that immediately following these words in *Mirqat*, there is a great and beneficial research...

[1] *Mirqat Sharh Mishkat*, Chapter of Handshaking and Embracing, published by Imdadia Multan, 9/47

हाँ, यदि कोई मस्जिद में प्रवेश करे और लोग नमाज़ में हों या उसे शुरू करने का इरादा रखते हों, तो नमाज़ पूरी होने के बाद यदि वह उनसे मुसाफ़हा (हाथ मिलाना) करे, बशर्ते कि मुसाफ़हा से पहले सलाम हो जाए, तो यह निस्संदेह सुन्नत मुसाफ़हा के समूह में शामिल होगा। —[1]

हाँ, यदि कोई मस्जिद में प्रवेश करे और लोग नमाज़ में हों, या नमाज़ शुरू करने वाले हों, तो फारिग होने के बाद अगर उनसे मुसाफ़हा करे बशर्ते कि मुसाफ़हा से पहले सलाम हो ले तो बिला शुबा मुसाफ़हा मसनूना ही के मजमूआ में शामिल होगा। (त)

इनमें स्पष्ट रूप से उल्लेख था कि वह नापसंदगी (कराहत) केवल उस स्थिति में है जब वे नमाज़ से पहले मिले, बातें कीं, मुलाक़ात हुई, उस समय मुसाफ़हा नहीं हुआ, और अब सलाम के बाद आपस में मुसाफ़हा करने लगे। और अगर ऐसा न हो बल्कि यही पहली मुलाक़ात का समय हो कि वह इस समय आया कि नमाज़ शुरू हो गई थी या शुरू करने का इरादा था, अब सलाम के बाद मुसाफ़हा करे तो यह निश्चित रूप से सुन्नत मुसाफ़हा है क्योंकि यह पहली मुलाक़ात पर हुआ है। ज़ाहिर है कि ईद की जमातों में अक्सर लोगों की यही स्थिति होती है कि सलाम के बाद उनकी पहली मुलाक़ात होती है, तो 'मिर्कात' के अनुसार भी उन्हें गले मिलने (मुआनक़ा) से बिल्कुल रोका नहीं जा सकता। फिर ईद का मुआनक़ा केवल एक ही जमात के भागीदारों के लिए विशिष्ट नहीं है, बल्कि सभी मित्र जिन्होंने विभिन्न मस्जिदों में नमाज़ें पढ़ीं, उस दिन या अगले दिन तक नमाज़ के बाद पहली मुलाक़ात पर आपस में मुआनक़ा करते हैं। ये मुआनक़े निश्चित रूप से पहली मुलाक़ात पर होते हैं, जो 'मिर्कात' के उद्धरण से अनुमान के तौर पर और 'फ़तावा लखनऊ' के उद्धरण से स्पष्ट रूप से सही समय पर सही और उचित हैं। जबकि वर्तमान समय के निषेध करने वाले (मानईन) नमाज़ के बाद मुसाफ़हा और ईद मुआनक़ा दोनों को सभी स्थितियों में मना करते हैं, जो आपके ही प्रामाणिक उद्धरणों के अनुसार गलत और अनुचित है। इसलिए, यदि आप इन उद्धरणों पर अमल करें कि जो लोग ईद की नमाज़ से पहले मिल लेते हैं केवल वे नमाज़ के बाद मुआनक़ा न करें, और जो अभी तक नहीं मिले उनके लिए मुआनक़ा बिना किसी कराहत के जायज़ और मुबाह (अनुमत) है। इसी तरह, जो एक-दूसरे के पास मिलने जाते हैं या रास्ते में मिलते हैं, वे भी बिना संकोच के मुआनक़ा करें, चाहे वे नमाज़ से पहले मिले हों या नमाज़ के बाद, क्योंकि वह पहली मुलाक़ात का समय है। इन सभी स्थितियों की वैधता आपके ही प्रमाणों से सिद्ध है। अनिवार्य रूप से आपको इसे स्पष्ट करना होगा, उसके बाद देखें

कि निषेध करने वाले सज्जन आपसे क्या कहते हैं। 'वल्लाहुल मुस्तआन अला जहालातित ज़मान' (और अल्लाह ही वह है जिससे ज़माने की अज्ञानता के विरुद्ध मदद मांगी जाती है - त)।

आठवाँ: इससे भी अधिक आश्चर्यजनक यह है कि इन्हीं शब्दों के तुरंत बाद 'मिर्कात' में एक महान और लाभदायक शोध है...

[1] मिर्कात शरह मिश्कात, मुसाफ़हा और मुआनक़ा का अध्याय, इमदादिया मुल्तान द्वारा प्रकाशित, 9/47

पृष्ठ 636/673

نعم لو دخل احد في المسجد والناس في الصلوة اوعلي ارادة الشروع فيها فبعد الفراغ لو صافحهم لكن بشرط سبق السلام على المصافحة فهذا من جملة المصافحة المسنونة بلاشبهة۔[1]

ہاں اگر کوئی مسجد میں داخل ہو اور لوگ نماز میں، یا نماز شروع کرنے والے ہیں، تو فارغ ہونے کے بعد اگر ان سے مصافحہ کرے بشرطیکہ مصافحہ سے پہلے سلام ہو لے تو بلا شبہ مصافحہ مسنونہ ہی کے مجموعہ میں شامل ہوگا۔ (ت)

ان میں صاف تصریح تھی کہ وہ کراہت صرف اس صورت میں ہے کہ نماز سے پہلے مل لئے، باتیں کر چکے، ملاقات ہوئی، اُس وقت مصافحہ نہ ہوا نہ کچھ اور، اب بعد سلام آپس میں مصافحہ کرنے لگے اور اگر ایسا نہ ہو بلکہ یہی وقت ابتدائے لقا کا ہو کہ یہ اس وقت آیا کہ نماز شروع ہوگئی تھی یا شروع کا ارادہ تھا، اب بعد سلام مصافحہ کرے تو یہ یقینا مصافحہ مسنونہ ہے کہ خاص اول لقا پر واقع ہوا، ظاہر ہے کہ جماعاتِ عید میں اکثر لوگوں کی باہم یہی حالت ہوتی ہے کہ بعد سلام ان کی لقا اول ہوتی ہے، تو مرقاۃ کے طور پر بھی انہیں معانقہ سے اصلاً ممانعت نہیں ہو سکتی، پھر معانقہ عید شرکائے جماعت واحدہ ہی سے خاص نہیں بلکہ تمام احباب جنہوں نے مختلف مساجد میں نمازیں پڑھیں اس دن بلکہ اس دن بلکہ دوسرے دن تک اول ملاقات بعد الصلوٰۃ پر باہم معانقہ کرتے ہیں، یہ معانقے تو یقیناً ابتدائے پر ہوتے ہیں، جو عبارت مرقات سے بر سبیل قیاس جناب اور عبارتِ فتاوٰی لکھنؤ سے صراحتہً ٹھیک موقع پر درست و بجا واقع ہیں، حالانکہ مانعینِ زمانہ کا منع مصافحہ بعد نماز اور معانقہ عید دونوں میں سب صورتوں کو عام و مطلق اور وہ آپ ہی کی عبارات مستندہ کی رو سے باطل و ناحق، پس اگر انہیں عبارتوں پر عمل فرمادیجئے

کہ نماز عید سے پہلے جو لوگ مل لیتے ہیں صرف وہ بعد نماز معانقہ نہ کریں، اور جو ہنوز نہیں ملے انہیں معانقہ بلا کراہت جائز و مباح ہے، یوں ہی ایک دوسرے کے پاس جو ملنے جاتے یا راہ میں ملتے ہیں وہ بھی بلاتامل معانقہ کریں خواہ پیش از نماز یا بعد از نماز مل لئے ہوں یا نہ ملے ہوں کہ اس وقت تو ابتدائے لقا ہے، ان سب صورتوں کا جواز آپ ہی کے مستندات سے ثابت۔ لاجرم آپ کو اس کی تصریح کرنا ہوگی، اس کے بعد دیکھئے کہ حضرات مانعین آپ کو کیا کہتے ہیں، واللہ المستعان علی جھالات الزمان (اور اللہ ہی وہ ہے جس سے زمانے کی جہالتوں کے خلاف مدد طلبی ہے۔ت)

ہشتم: اس سے زیادہ عجیب تر یہ ہے کہ ان لفظوں کے متصل ہی مرقات میں اور تحقیق جلیل و نافع،

[1] مرقاۃ شرح مشکوٰۃ باب المصافحۃ والمعانقہ مطبوعہ امدادیہ ملتان ۴۷/۹

Fatawa Razawiyya, Volume 8

The thoughts that were a sharp sword against those who forbid were also not included in the transcription. He says: "Despite this, when a Muslim extends his hand for a handshake, it is not appropriate to avoid him by withdrawing the hand because of the pain caused, which is greater than observing etiquette. The summary is that starting a handshake then in the described manner is disliked (Makruh), but withdrawing the hand is not, although it might be said there is some form of assistance in innovation (Bid'ah)[1]. And Allah knows best." That is, even if in this specific case, meeting has already occurred before prayer and the greeting handshake is done after prayer, and it is considered disliked, still, if any Muslim extends a hand for a handshake, one should not withdraw the hand but should instead shake hands. Even if it is called assisting an innovation, because in this situation, not shaking hands was merely a point of etiquette and preference, and now in its abandonment lies the harm to a Muslim—that he extends his hand and we withdraw ours. Pleasing a Muslim is preferred over observing this etiquette (note 1), therefore, in this situation, there is no dislike; rather, one should shake hands. (Translator)

For Allah's sake, be just! How far is this fair discourse from the ideas of those who forbid in our time? These gentlemen, wanting to establish their own mastery and gain fame, consider opposing the congregation a source of pride and the ultimate goal of legislation. However, the investigating scholars consider pleasing a Muslim's heart to be superior to observing etiquette and abandoning disliked things, and they consider opposition in people's customs and habits to be disliked and a cause for notoriety. Therefore, they explicitly state that as long as there is no explicit, undeniable prohibition, one should please people's hearts by conforming to their customs even if that action is an innovation. It is stated in Ayn al-Ilm: "Secretly assisting in things which have not been forbidden and have become customary in their era [is good]." It is good to please people by conforming with them in matters which are not prohibited in Shari'ah.

Note 1: That is, if pleasing a Muslim means leaving etiquette and the preferred way, then one should not observe that etiquette but should prioritize a Muslim's heart. Causing pain to and breaking a Muslim's heart is worse than leaving the preferred way or acting against etiquette. Of course, where observing etiquette and honoring a believer's heart can both be done, there is undoubtedly no command to abandon

etiquette. Yes, if something has been explicitly prohibited, then one should not commit that forbidden act merely to please a Muslim. (Translator)

[1] Mirqat Sharh Mishkat, Book of Handshaking and Embracing, Maktaba Imdadia Multan 9/72.

फतावा रज़विया, जिल्द 8

मना करने वालों के विचारों पर जो काटती हुई तलवार थी, वह भी नक़ल में नहीं आई, वे फ़रमाते हैं: "इसके बावजूद, जब कोई मुसलमान मुसाफ़हा (हाथ मिलाने) के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाए, तो हाथ खींचकर उससे मुँह मोड़ना उचित नहीं है, क्योंकि इससे जो तकलीफ़ होती है वह अदब (शिष्टाचार) की रियायत से बढ़कर है। सारांश यह है कि उस समय वर्णित तरीक़े से मुसाफ़हा शुरू करना मकरूह (नापसंद) है, लेकिन हाथ पीछे खींचना मकरूह नहीं है, हालाँकि यह कहा जा सकता है कि इसमें बिदअत (नवाचार) में एक प्रकार की सहायता है[1]। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।" यानी हालाँकि इस विशेष स्थिति में, जहाँ नमाज़ से पहले मुलाक़ात हो चुकी हो और नमाज़ के बाद दुआ-सलाम वाला मुसाफ़हा करें, तो उसे मकरूह माना जाता है, फिर भी अगर कोई मुसलमान मुसाफ़हा के लिए हाथ बढ़ाए तो हाथ नहीं खींचना चाहिए बल्कि मुसाफ़हा कर लेना चाहिए। चाहे इसे बिदअत में सहायता कहा जाए, क्योंकि इस स्थिति में मुसाफ़हा न करना केवल एक अदब और औला (बेहतर तरीका) था, और अब इसे छोड़ने में मुसलमान की ईज़ा (तकलीफ़) है कि वह तो हाथ बढ़ाए और हम हाथ खींच लें। मुसलमान की ख़ातिरदारी इस अदब की रियायत पर मुक़द्दम (प्राथमिक) है (नोट 1), इसलिए इस स्थिति में कराहत (नापसंदगी) नहीं है बल्कि मुसाफ़हा करना ही चाहिए। (अनुवादक)

अल्लाह के लिए इंसाफ़ करें! इस इंसाफ़ पसन्द कलाम और ज़माने के मना करने वालों के विचारों में कितना अंतर है। ये हज़रात तो चाहे-अनचाहे अपनी मशियत (बुज़ुर्गी) बनाने और शोहरत पाने के लिए जमाअत की मुख़ालफ़त को फ़ख़्र का ज़रिया और शरीअत का आख़िरी मक़सद समझे हुए हैं। लेकिन मुहक़्क़िक़ीन (खोजकर्ता) उलेमा, मुसलमान का दिल रखने को आदाब की रियायत और मकरूहात को छोड़ने पर भी मुक़द्दम जानते हैं, और लोगों की रस्मों और आदतों में मुख़ालफ़त को मकरूह और शोहरत का सबब मानते हैं। इसलिए वे साफ़ तौर पर फ़रमाते हैं कि जब तक कोई स्पष्ट और अटूट मनाही न आई हो, लोगों की आदतों में सहमति जताकर ही उनका दिल ख़ुश करना चाहिए, भले ही वह काम बिदअत हो। ऐनुल इल्म में इरशाद हुआ: "उन कामों में चुपके से मदद करना जो मना नहीं किए गए और उनके दौर में रवाज पा चुके हों [अच्छा है]।" उन मामलों में लोगों के साथ सहमति जताकर उन्हें ख़ुश करना अच्छा है जिनसे शरीअत में मनाही नहीं है।

नोट 1: यानी अदब और औला (बेहतर) तरीका छोड़ने से अगर मुसलमानों की ख़ातिरदारी होती है, तो अदब की रियायत न करे, मुसलमान के दिल की रियायत करे। मुसलमान के दिल को तकलीफ़

पहुँचाना और उसे तोड़ना, बेहतर तरीक़ा छोड़ने और अदब के ख़िलाफ़ चलने से ज़्यादा बुरा है। बेशक, जहाँ अदब की रियायत और मोमिन की ख़ातिरदारी दोनों एक साथ हो सकें वहाँ अदब छोड़ने का हुक्म नहीं है। हाँ, अगर किसी काम से स्पष्ट रूप से मना किया गया है, तो महज़ मुसलमान की ख़ातिरदारी के लिए उस मना किए गए काम को न करे। (अनुवादक)

[1] मिरक़ात शरह मिश्क़ात, बाबुल मुसाफ़हा वल मुआनक़ा, मकतबा इमदादिया मुल्तान 9/72.

خیالات مانعین پر سیف قاطع تھی وہ بھی نقل میں نہ آئی، فرماتے ہیں: ومع ھذا اذا مدَّ مسلم یدہ للمصافحۃ فلا ینبغی الاعراض عنہ بجذب الید لما یترتّب علیہ من أذی یزید علی مراعاۃ الادب فحاصلہ ان الابتداء بالمصافحۃ حینئذ علی الوجہ المشروح مکروہ لا المجاذبۃ وان کان قد یقال فیہ نوع معاونۃ علی البدعۃ[1]۔ واللہ تعالٰی اعلم۔ یعنی ہانکہ اس صورتِ خاصہ میں کہ ملاقات پیش از نماز کر چکے ہوں، اور مصافحہ تحیت بعد نماز کریں، کراہت مانی جاتی ہے، پھر بھی اگر کوئی مسلمان مصافحہ کے لئے ہاتھ بڑھاتے تو ہاتھ نہ کھینچنا چاہئے بلکہ مصافحہ کر لیا جائے، اگر چہ اسے معاونتِ بدعت کہا جائے کہ اس حالت میں مصافحہ نہ کرنا صرف ایک ادب و اَوْلٰی تھا، اور اب اس کے ترک میں مسلمان کی ایذا ہے کہ وہ تو ہاتھ بڑھائے اور ہم ہاتھ کھینچ لیں، مسلمان کی خاطر داری اس ادب کی مراعات پر مقدم ہے ف ا، لہذا اس صورت میں کراہت نہیں بلکہ مصافحہ کرنا ہی چاہئے (ت)

للہ الانصاف! اس منصفانہ کلام کو مانعین زمانہ کے خیالات سے کتنا بُعد ہے، یہ حضرات تو خواہی نخواہی اپنی مَشِیْخَت بنانے اور شہرت پیدا کرنے کے لئے جماعت کی مخالفت کو ذریعہ فخر اور غایت تشریع سمجھے ہوئے ہیں مگر علمائے محققین مسلمان کا دل رکھنے کو رعایتِ آداب اور ترکِ مکروہات پر بھی مقدم جانتے اور ان کے رسوم و عادات میں مخالفت کو مکروہ و باعثِ شہرت مانتے ہیں، ولہذا تصریح فرماتے ہیں کہ جب تک کوئی نہی صریح، غیر قابلِ تاویل نہ آئی ہو، عاداتِ اُناس میں موافقت ہی کر کے ان کا دل خوش کیا چاہے اگر چہ وہ فعل بدعت ہو، عین العلم میں ارشاد ہوا: اَلْاِسْرَارُ بِالْمُسَاعَدَۃِ فِیْمَا لَمْ یَنْہَ وَ صَارَ مُعْتَادًا فِیْ عَصْرِھِمْ اُن امور میں لوگوں کی موافقت کر کے انہیں خوش کرنا اچھا ہے جن (امور) سے شریعت میں ممانعت نہیں ہے۔

ف ۱: یعنی ادب و اَوْلیٰ چھوڑنے سے مسلمانوں کی خاطر داری ہوتی ہے تو ادب و اَوْلیٰ کی رعایت نہ کرے، دلِ مسلم کی رعایت کرے، دلِ مسلم کو تکلیف پہنچانا اور اسے شکستہ کرنا ترکِ اَوْلیٰ و مخالفِ ادب سے زیادہ بُرا ہے، البتہ جہاں رعایتِ ادب و اَوْلیٰ اور مومن کا پاس خاطر دونوں جمع ہو سکتے ہیں وہاں بلاشبہ ترکِ ادب کا حکم نہیں، ہاں اگر کسی امر سے صراحتًا ممانعت آئی ہے تو محض مسلمان کی خاطر داری کے لئے اس امر ممنوع کا ارتکاب نہ کرے۔ (مترجم)

[1] مرقاۃ شرح مشکوٰۃ باب المصافحہ والمعانقہ مکتبہ امدادیہ ملتان ۹/ ۷۲

[Arabic]: It is good, even if it is an innovation (bid'ah).[1] [Urdu]: And they have become prevalent in people's eras, whether they are innovations or new inventions. (T)

Imam Hujjat al-Islam Muhammad al-Ghazali (may Allah sanctify his noble secret) states in the noble 'Ihya' Ulum al-Din':

[Arabic]: Agreeing with people in these matters is part of good companionship and social conduct, because opposition causes estrangement. Every people has customs; it is inevitable to interact with people according to their character as mentioned in the reports, especially if those characters include good social conduct, courtesy, and cheering the heart through assistance. The saying of one who says 'this is an innovation that was not present among the Sahaba (may Allah be pleased with them)' – the only forbidden innovation is that which opposes a commanded Sunnah. No prohibition has been narrated regarding any of this (until his words), and likewise with all other types of assistance: if the intention is to cheer the heart and a group has agreed upon it, there is no harm in assisting except in what a clear prohibition has been issued that does not accept interpretation.[2]

[Urdu]: Meaning, agreeing with people in these matters is part of good companionship and social interaction, because opposition creates a sense of desolation. Every people has certain customs, and instructions have come concerning them, especially those habits involving good social conduct, mutual good behavior, and pleasing hearts through agreement. As for the claim that this is 'innovation' because it wasn't there in the time of the Sahaba: is everything deemed permissible necessarily narrated from all the Sahaba? A bad habit is one that rejects a commanded Sunnah, whereas no prohibition of this act has appeared in Shariah. Thus, all acts of assistance, when the goal is to please the heart and it has become a group's custom, there is no harm in following them; rather, agreement is better, except in a case where a clear prohibition exists that is not open to interpretation. (T)

Look at these sayings of the physicians of the heart (may Allah be pleased with them). May Allah Almighty grant good guidance to whom He wills to act upon these precious divine teachings. Those who prevent are far from these stages. There is no power or strength except with Allah, the All-High, the All-Magnificent.

In short, if you follow 'Mirqat', then clearly state that after Eid, whoever extends a hand for a hug...

---

[1] Ayn al-'Ilm, Chapter 9 on Silence etc., printed at Amrit Press, Lahore, p. 412. [2] Ihya' Ulum al-Din, Etiquettes of Audition and Ecstasy, printed in Cairo, Egypt, 2/305.

[अरबी]: यह अच्छा है, भले ही यह एक नवाचार (बिदअत) हो।[1] [उर्दू]: और वे लोगों के युग में प्रचलित हो गए हैं, चाहे वे नवाचार हों या नए आविष्कार। (त)

इमाम हुज्जत-उल-इस्लाम मुहम्मद अल-ग़ज़ाली (अल्लाह उनके रहस्य को पवित्र करे) 'एहया उलूम-उद-दीन' में फरमाते हैं:

[अरबी]: इन मामलों में लोगों के साथ सहमत होना अच्छी संगति और सामाजिक व्यवहार का हिस्सा है, क्योंकि विरोध अलगाव पैदा करता है। हर कौम की अपनी रस्में होती हैं; लोगों के साथ उनके स्वभाव के अनुसार व्यवहार करना आवश्यक है जैसा कि उल्लेखों में आया है, खासकर यदि उन स्वभावों में अच्छा सामाजिक आचरण, शिष्टाचार और सहायता के माध्यम से दिल को खुश करना शामिल हो। यह कहने वाले की बात कि 'यह एक बिदअत है जो सहाबा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के बीच नहीं थी' - केवल वही बिदअत वर्जित है जो किसी अनिवार्य सुन्नत का विरोध करती हो। इनमें से किसी के बारे में कोई निषेध नहीं बताया गया है (उनके शब्दों तक), और इसी तरह अन्य सभी प्रकार की सहायता के साथ भी है: यदि उद्देश्य दिल को खुश करना है और एक समूह उस पर सहमत हो गया है, तो सहायता करने में कोई बुराई नहीं है, सिवाय उस चीज़ के जिसमें स्पष्ट निषेध आया हो जो व्याख्या स्वीकार न करता हो।[2]

[उर्दू]: यानी इन मामलों में लोगों के साथ सहमत होना अच्छी संगति और सामाजिक व्यवहार से है, क्योंकि विरोध से घबराहट होती है। हर कौम की कुछ रस्में होती हैं कि उनके बारे में निर्देश आया है, विशेष रूप से वे आदतें जिनमें अच्छा सामाजिक व्यवहार और आपसी अच्छा व्यवहार हो और सहमति के माध्यम से दिल को प्रसन्न करना हो। और कहने वाले का यह कहना कि यह 'बिदअत' है, सहाबा के काल में नहीं था: तो क्या जो कुछ भी जायज़ कहा जाए, वह सभी सहाबा से ही प्रमाणित होता है? बुरी तो वह आदत है जो किसी अनिवार्य सुन्नत को रद्द कर दे, जबकि इस कार्य की शरीअत में कहीं मनाही नहीं आई। इस प्रकार सहायता की सभी बातें जब उनसे दिल खुश करना उद्देश्य हो और वह एक समूह की रस्म बन गई हो, तो उनका पालन करने में कोई हर्ज नहीं है, बल्कि सहमति ही बेहतर है, सिवाय उस स्थिति में जब स्पष्ट निषेध आ जाए जो व्याख्या योग्य न हो। (त)

दिलों के चिकित्सकों (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) के इन कथनों को देखें। अल्लाह महान जिसे नेक तौफीक दे, वही इन अनमोल ईश्वरीय शिक्षाओं पर अमल करे। मना करने वाले इन मंज़िलों से बहुत दूर हैं। अल्लाह के अलावा कोई शक्ति या सामर्थ्य नहीं है, जो सबसे ऊँचा और सबसे महान है।

संक्षेप में, यदि आप 'मिरक़ात' पर अमल करते हैं, तो साफ़ तौर पर बता दें कि ईद के बाद जो व्यक्ति गले मिलने के लिए हाथ बढ़ाए...

---

[1] ऐन अल-इल्म, मौन पर नौवां अध्याय आदि, अमृत प्रेस, लाहौर, पृष्ठ 412। [2] एहया उलूम-उद-दीन, सुनने और वज्द के शिष्टाचार, काहिरा, मिस्र में मुद्रित, 2/305।

पृष्ठ 638/673

حَسَنٌ وَّ اِنْ کَانَ بِدْعَۃً ۱ - اور لوگوں کے عہد میں وہ رائج ہو چکے ہیں خواہ بدعت اور نو ایجاد ہی ہوں۔ (ت)

اما حجتہ الاسلام محمد غزالی قدس سرہ الغالی احیاء العلوم شریف میں فرماتے ہیں: الموافقة في هذا الامور من حسن الصحبة و العشرة اذ المخالفة موحشة و لكل قوم رسم لا بدّ من مخالفة الناس باخلاقهم كما ورد في الخبر لاسيّما اذا كانت اخلاق فيها حسن العشرة و لمجاملة وتطييب القلب بالمساعدة و قول القائل ان ذلك بدعة لم يكن في الصحابة رضي الله تعالى عنهم وانما المحذور بدعة تراغم سنة مأموراً بها و لم ينقل النهى عن شئ من هذا (الی قوله) و كذلك سائر انواع المساعدات اذ قُصد بها تطييب القلب و اصطلح عليها جماعة فلا بأس بمساعدة الا فيما ورد فيه نهى لا يقبل التأويل ۲۔

یعنی ان امور میں لوگوں کی موافقت کرنا حُسن صحبت اور معاشرت سے ہے اس لئے کہ مخالفت وحشت دلاتی ہے اور ہر قوم کی کچھ رسمیں ہوتی ہیں کہ ان میں ان کا حکم آیا خصوصاً وہ عادتیں جن میں حُسن معاشرت اور باہم اچھا برتاؤ اور موافقت کرکے دل خوش کرنا ہو اور کہنے والے کا کہنا یہ بدعت ہے، صحابہ کے زمانے میں ہی نہ تھا، تو کیا جو کچھ مباح کہا جائے سب صحابہ سے ہی منقول ہوتا ہے، بُری تو وہ عادت ہے جو کسی سنتِ مامور بہا کا رد کرے اور اس فعل سے شرع میں کہیں ممانعت نہ آئی۔ اس طرح تمام مساعدت کی باتیں جبکہ ان سے دل خوش کرنا مقصود ہو، ایک گروہ کی رسم ہو گئی تو ان کی موافق کرنا کچھ حرج نہیں بلکہ موافقت ہی بہتر ہے مگر اُس صورت میں کہ صاف نہی وارد ہو جو قابل تاویل نہ ہو۔ (ت)

دیکھئے اطبائے قلوب رضی اللہ تعالیٰ عنہم کے ارشاد یہ ہیں، اللہ عزوجل جسے نیک توفیق دے وہی ان نفیس الہی ہدایتوں پر عمل کرے۔ حضرات مانعین ان سے منزلوں دور ہیں ولا حول ولا قوۃ الا باللہ العلی العظیم

بالجملہ اگر آپ کو مرقات پر عمل ہے تو صاف تصریح فرمادیجئے کہ بعد عید جو شخص معانقے کو ہاتھ بڑھائے

---

1 عین العلم الباب التاسع فی الصمت الخ مطبوعہ امرت پریس، لاہور ص ۴۱۲ 2 احیاء العلوم آداب السماع والوجد مطبوعہ قاہرہ، مصر ۲/ ۳۰۵

One should never deny this, but rather embrace immediately. It is regrettable that bringing evidence from Mirqat turned out completely opposite. I hope from your eminence that perhaps you haven't personally reviewed Mirqat Sharif, but rather the objectors of this era are accustomed to cutting, tailoring, and theft in texts. Some thief must have quoted half the text somewhere, which you relied upon for evidence. Now that you are informed of the full text, you will surely return to the truth. Allah is the Giver of success.

Ninth: By the grace of Allah, from our exquisite researches, it has become clear as the bright sun that the Eid embrace has no relation to blameworthy innovation (bid'at-e-madhmuma). Instead, it falls between Sunnah and permissible (mubah), meaning Sunnah in principle and permissible in its specific application, and with good intention, it is commendable and better. So it became clear that the text of Radd al-Muhtar:

[Arabic Box Text]: IF THE RULING FLUCTUATES BETWEEN SUNNAH AND INNOVATION... etc. [Urdu Translation in Box]: When a ruling lies between a Sunnah and an innovation, then abandoning the Sunnah is preferred over committing the innovation. (T)

...has no relation to this issue at all because 'innovation' there refers to 'blameworthy innovation'. Only then was leaving the Sunnah tolerated to avoid it, otherwise, avoiding 'permissible innovation' (bid'at-e-mubaha) itself has no meaning, let alone commanding to leave the Sunnah for it. And this is evident to anyone who possesses a portion of sound intellect. (T)

Tenth: In this humble servant's fatwa, there was also a text by Mian Ismail Dehlvi in which there is a clear clarification of the Eid embrace being commendable. You did not address that, but instead presented a collection of fatwas and texts from Radd al-Muhtar and Mirqat. There are two possibilities in this: First, that which the opposing party is accustomed to, meaning they consider the aforementioned Dehlvi as the supreme leader in false utterances and useless superstitions, and disregard whatever he writes against the principles and branches of the group due to his excessive passion for contradiction.

Second, that you have no concern with it; that whatever of his discourse goes against the explicit statements of the likes of Mirqat and Radd al-Muhtar, even against Maulvi

Sahab Lakhnavi, is not acceptable. If the latter option is chosen, and this is what is expected from your sense of justice, then please explicitly state that whatever issues are in Taqwiyat-ul-Iman, Sirat-e-Mustaqeem, Izah-ul-Haq and other works of the said person, which are against the likes of Maulana Ali Qari and Allama Shami, even Maulvi Sahab Lakhnavi and their likes...

---

1. Radd al-Muhtar, Chapter on 'When a ruling fluctuates', Printed HM Saeed Company Karachi 1/682. Page 639 of 673

इससे हरगिज़ इंकार न किया जाए बल्कि फ़ौरन मुआनक़ा (गले मिलना) कर लें, अफ़सोस कि 'मिरक़ात' से सनद लाना तो बिल्कुल उल्टा पड़ा। मुझे जनाब की बुज़ुर्गी से उम्मीद है कि शायद 'मिरक़ात शरीफ़' ख़ुद मुलाहज़ा न फ़रमाई हो बल्कि मानईन-ए-ज़माना (ज़माने के रोकने वाले) इबारतों में कतर-ब्योंत और चोरी के आदी हैं, किसी सारिक़ (चोर) ने आधी इबारत कहीं नक़्ल कर दी है जिस पर आपने एतमाद करके सनद बना लिया, अब जबकि पूरी इबारत से आगाह हुए तो ज़रूर हक़ की तरफ़ रुजू फ़रमाएँगे। वल्लाहुल् मुवफ़्फ़िक़ (और अल्लाह ही तौफ़ीक़ देने वाला है)।

नहुम (नवाँ): बहमदुल्लाहि तआला हमारी तहक़ीक़ात-ए-राइक़ा से आफ़ताब-ए-रौशन की तरह वाज़ेह हो गया कि मुआनक़ा-ए-ईद को बिदअत-ए-मज़मूमा से कुछ तअल्लुक़ नहीं बल्कि वह सुन्नत-ए-मुबाह के अंदर दायार है, यानी मिन हयसुल अस्ल सुन्नत और मिन हयसुल ख़ुसूस मुबाह, और बक़स्दे-ए-हुस्न महमूदो मुस्तहसन, तो ज़ाहिर हुआ कि इबारत-ए-रद्दुल मुहतार:

[अरबी बॉक्स]: इज़ा तरददद अल-हुक्मु बैना सुन्नतिन व बिदअतिन अलख। [उर्दू अनुवाद बॉक्स]: जब हुक्म किसी सुन्नत और बिदअत के दरमियान दायार हो तो तर्कए-सुन्नत को इर्तिकाब-ए-बिदअत पर तरजीह हासिल है। (त)

को इसी मसले से असलन तअल्लुक़ नहीं कि वहाँ बिदअत से मुराद बिदअत-ए-मज़मूमा है। जब तो उससे बचने के लिए सुन्नत का छोड़ना तक गवारा किया वरना बिदअत-ए-मुबाहा से बचना ख़ुद ही मतलब नहीं, न कि उसके लिए सुन्नत छोड़ देने का हुक्म दिया जाए, व हाज़ा अज़हरु अला कुल्लि मन लहू हज़्ज़ुन मिन अक़्लिन सफ़ी (और यह हर उस शख़्स पर वाज़ेह है जिसे साफ़ अक़्ल से कुछ हिस्सा मिला है। त)।

दहुम (दसवाँ): फ़तवा-ए-फ़क़ीर में मियाँ इस्माइल देहलवी की भी इबारत थी जिसमें मुआनक़ा-ए-ईद के मुस्तहसन होने की साफ़ तसरीह (स्पष्टीकरण) है, उससे जनाब ने कुछ तअरुज़ न फ़रमाया बल्कि मजमुआ-ए-फ़तावा व इबारत-ए-रद्दुल मुहतार व मिरक़ात पेश फ़रमाईं। इसमें दो एहतमाल (संभावनाएँ) हैं: एक वह, जो ताइफ़ा-ए-मानईन (रोकने वालों का गिरोह) जिसके ख़ूगर (आदी) हैं यानी हफ़वात-ए-बातिला व ख़ुराफ़ात-ए-आतला में देहलवी मज़कूर को इमाम-ए-अकबर मानते हैं और जो बातें वह बइल्लत-ए-मुनाक़ज़त (विरोधाभास के कारण) जिसका उसके यहाँ हद से ज़ायद जोश-ओ-ख़रोश है, उसूल-ओ-फ़ुरू-ए-ताइफ़ा के ख़िलाफ़ लिखता है, दीवार से मारते हैं।

दुवम (दूसरा) यह कि जनाब को उससे कुछ काम नहीं जो कलाम उसका तसरीहात-ए-अमसाल-ए-मिरक़ात व रद्दुल मुहतार हत्ता कि मौलवी साहब लखनवी के ख़िलाफ़ हो क़ाबिल-ए-क़बूल नहीं। अगर शक़-ए-अख़ीर मुख़्तार है और जनाब की इंसाफ़ पसंदी से यही मामूल (उम्मीद), तो सराहतन इसकी तसरीह फ़रमा दीजिये कि जो मसाइल 'तक़्वियतुल ईमान' व 'सिरात-ए-मुस्तक़ीम' व 'ईज़ाहुल हक़' वग़ैरहा तसानीफ़ शख़्स-ए-मज़कूर, मौलाना अली क़ारी व अल्लामा शामी यहाँ तक कि मौलवी साहब लखनवी और उनके अमसाल की...

---

1 रद्दुल मुहतार मतलब इज़ा तरददद अल-हुक्मु मतबूआ एच एम सईद कंपनी कराची 1/ 682 पृष्ठ 639/673

اس سے انکار ہر گز نہ کیا جائے بلکہ فوراً معانقہ کر لیں، افسوس کہ مرقاۃ سے سند لانا تو بالکل الٹا پڑا۔ مجھے جناب کی بزرگی سے امید ہے کہ شاید مرقاۃ شریف خود ملاحظہ نہ فرمائی ہو بلکہ مانعین زمانہ عبارات میں قطع وبرید و سرقہ کے عادی ہیں، کسی سارق نے آدھی عبارت کہیں نقل کر دی ہے آپ کے اعتماد پر اسناد کر لیا، اب کہ پوری عبارت پر مطلع ہوئے ضرور حق کی طرف رجوع فرمائے گا واللہ الموفق۔

نہم: بحد اللہ تعالٰی ہماری تحقیقاتِ رائقہ سے آفتاب روشن کی طرح واضح ہو گیا کہ معانقہ عید کو بدعت مذمومہ سے کچھ علاقہ نہیں بلکہ وہ سنت مباح کے اندر دائر ہے، یعنی من حیث الاصل سنت اور من حیث الخصوص مباح، اور بقصد حسن محمود مستحسن، تو ظاہر ہوا کہ عبارت رد المحتار:

[عربی باکس]: اِذَا تَرَدَّدَ الْحُکْمُ بَیْنَ سُنَّۃٍ وَّبِدْعَۃٍ الخ [اردو ترجمہ باکس]: جب حکم کسی سنت وبدعت کے درمیان دائر ہو تو ترک سنت کو ارتکاب بدعت پر ترجیح حاصل ہے۔(ت)

کو اسی مسئلہ سے اصلاً تعلق نہیں کہ وہاں بدعت سے مراد بدعت مذمومہ ہے۔ جب تو اس سے بچنے کے لئے سنت کا چھوڑنا تک گوارا کیا ورنہ بدعت مباحہ سے بچنا خود ہی مطلب نہیں، نہ کہ اس کے لئے سنت چھوڑ دینے کا حکم دیا جائے، وھذا اظھر علی کل من لہ حظٌ من عقلٍ صفی (یہ ہر اس شخص پر عیار ہے جسے پسندیدہ اور خالص عقل سے کچھ حصہ ملا ہے۔ت)

دہم: فتوی فقیر میں میاں اسمعیل دہلوی کی بھی عبارت تھی جس میں معانقہ عید کے مستحسن ہونے کی صاف تصریح ہے، اس سے جناب نے کچھ تعرض نہ فرمایا بلکہ مجموعہ فتاوی و عبارات رد المحتار و مرقاۃ پیش فرمائیں۔ اس میں دو احتمال ہیں: ایک وہ، طائفہ مانعین جس کے خوگر ہیں

یعنی ہفوات باطلہ وخرافات عاطلہ میں دہلوی مذکور کا امامِ اکبر مانتے ہیں اور جو باتیں وہ بعلتِ مناقضت جس کا اس کے یہاں حد سے زائد جوش وخروش ہے اصول وفروع طائفہ کے خلاف لکھتا ہے دیوار سے مارتے ہیں۔

دوم یہ کہ جناب کو اس سے کچھ کام نہیں جو کلام اس کا تصریحاتِ امثال مرقات ورد المحتار حتی کہ مولوی صاحب لکھنوی کے خلاف ہو قابل قبول نہیں. اگر شقِ اخیر مختار ہے اور جناب کی انصاف پسندی سے یہی مامول، تو صراحۃً اس کی تصریح فرما دیجئے کہ جو مسائل تقویۃ الایمان وصراطِ مستقیم وایضاح الحق وغیرہ ہا تصانیف شخص مذکور، مولانا علی قاری وعلامہ شامی یہاں تک کہ مولوی صاحب لکھنوی اور ان کے امثال کی

---

1 رد المحتار مطلب اذاتر دد الحکم مطبوعہ ایچ ایم سعید کمپنی کراچی ۱/ ۶۸۲ Page 639 of 673

They are refuted by clear statements; please continue to accept their invalidity. I hope that many contentious issues, regarding which the ignorant opponents create immense noise and commotion, will be resolved in the best possible way. And by the grace of Allah Almighty, we will agree upon the misguidance of the mentioned person's beliefs and the futility of his schemes, and become mutual helpers and supporters of each other in declaring the sincere truth.

[Table Content] Arabic: And success is from Allah and reaching the straight path. Our final prayer is that all praise belongs to Allah, Lord of the worlds. And peace and blessings be upon the leader of the messengers, Muhammad, and his family and companions all together. Amen! Urdu: And success and access to the straight path are from Allah alone. And our final call is that all praise is for Allah, the Sustainer of all the worlds. And peace and blessings be upon the leader of the messengers, Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him), and upon all his family and companions. O Lord, accept it. (T)

Written by His sinful servant Ahmad Raza al-Barelvi, may he be forgiven, by the grace of Muhammad al-Mustafa, the Unlettered Prophet, peace and blessings of Allah Almighty be upon him.

स्पष्ट विवरणों से उनका खंडन होता है, उनकी असत्यता को स्वीकार करते चलें। मुझे आशा है कि बहुत से विवादास्पद मुद्दे, जिन पर अज्ञानी विरोधी अत्यधिक शोर-शराबा करते हैं, इस प्रकार सर्वोत्तम तरीके से हल हो जाएंगे। और हम आप, अल्लाह तआला की तौफीक से, उक्त व्यक्ति के अकीदों की गुमराह और उसकी चालों की व्यर्थता पर सहमत होकर, सच्चे हितैषी की घोषणा में एक-दूसरे के मददगार और सहायक बन जाएंगे।

[तालिका सामग्री] अरबी: और अल्लाह ही की ओर से तौफीक और सही रास्ते तक पहुंच है। और हमारी आखिरी पुकार यह है कि सारी तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है। और दुरूद व सलाम हो रसूलों के सरदार मुहम्मद और उनकी आल और असहाब सब पर। आमीन! उर्दू: और अल्लाह ही की तरफ से तौफीक और सीधी राह तक पहुंच है, और हमारी आखिरी पुकार यह है कि सारी तारीफ अल्लाह के लिए है जो सारे जहानों का पालने वाला है, और दुरूद व सलाम हो रसूलो के सरदार मुहम्मद सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और उनकी आल व असहाब सब पर। खुदावंद कुबूल फरमा। (त)

लिखा उसके गुनहगार बंदे अहमद रज़ा बरेलवी ने, जिसकी मगफिरत हो ब-तुफैल मुहम्मद मुस्तफा नबी-ए-उम्मी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम।

पेज 640/673

تصریحات سے رد ہوتے ہیں ان کا بطلان تسلیم فرماتے جائیے، امید کرتا ہوں کہ بہت مسائل نزاعیہ جن میں جہلائے مانعین کو بے حد شور و شغب ہے یوں باحسن وجوہ انفصال پائیں گے اور ہم آپ بتوفیقہ تعالٰی شخص مذکور کی ضلالت عقائد و بطالت مکائد پر متفق ہو کر حق ناصح کے اعلان میں باہم ممد و معاون یک دیگر ہو جائیں گے۔

[ٹیبل کا مواد] عربی: وباللہ التوفیق والوصول الی سواء الطریق، وآخر دعوانا ان الحمد للہ رب العالمین، والصلوۃ والسلام علی سید المرسلین محمد وآلہ وصحبہ اجمعین، آمین! اردو: اور اللہ ہی کی طرف سے توفیق اور سیدھی راہ تک رسائی ہے، اور ہماری آخری پکار یہ ہے کہ ساری تعریف اللہ کے لئے جو سارے جہانوں کا پروردگار ہے، اور درود و سلام ہو رسولوں کے سردار محمد صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم اور ان کی آل و اصحاب سب پر۔ خداوند قبول فرما۔ (ت)

کتبہ عبدہ المذنب احمد رضا البریلوی عفی عنہ بمحمد المصطفی النبی الامی صلی اللہ تعالٰی علیہ وسلم

Volume 8 Fatawa Ridawiyyah

Chapter on Istisqa (Explanation of the Prayer for Rain)

Problem 1251: From Mohalla Kot, Pargana Sambhal, District Moradabad, residence of Molvi Liaquat Ahmed Sahib, sent by Mazhar Hussain Sahib, 23 Dhu al-Qi'dah 1331 AH.

Is Salat al-Istisqa a formal prayer or a supplication (dua), and at what time should Istisqa be performed? Explain and you shall be rewarded.

The Answer: Salat al-Istisqa is Sunnah according to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), and this is what is practiced. It should be performed at a time when the need is severe and hope has been lost. People should perform it observing its etiquettes; its essence is fear [of God] and humility. Nowadays, these qualities have mostly departed from hearts, except for what Allah wills. In this country, we live alongside non-believers. Due to our improper conduct—neither supplicating properly nor praying correctly—there is a concern that if the prayer is not immediately answered, it might lead to mockery by non-believers. Therefore, it is more suitable for the conditions here to restrict ourselves to the action mentioned in the Great Quran for the descent of the rain of mercy, which is abundance of seeking forgiveness (istighfar) and turning towards the Almighty Forgiver. [Allah says:] "Ask forgiveness of your Lord. Indeed, He is ever a Perpetual Forgiver. He will send [rain from] the sky upon you in abundance"[1] (So I said, seek forgiveness from your Lord, He is most Forgiving; He will send rain in torrents upon you. - Translator). And Allah Almighty knows best.

[1] Al-Quran 71/10 and 11

जिल्द 8 फ़तावा रज़विया

बाब अल-इस्तिस्का (वर्षा की प्रार्थना का वर्णन)

मसला 1251: मोहल्ला कोट, परगना संभल, जिला मुरादाबाद, मौलवी लियाक़त अहमद साहब के मकान से, प्रेषक मज़हर हुसैन साहब, 23 ज़िलक़ादा 1331 हिजरी।

नमाज़-ए-इस्तिस्का नमाज़ है या दुआ, और इस्तिस्का किस समय होना चाहिए? स्पष्ट करें, आपको पुण्य मिलेगा।

अल-जवाब (उत्तर): साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार नमाज़-ए-इस्तिस्का सुन्नत है और इसी पर अमल है। यह उस समय होनी चाहिए जब ज़रूरत बहुत अधिक हो और उम्मीद टूट चुकी हो। लोगों को इसके शिष्टाचार के साथ इसे अदा करना चाहिए; इसकी जड़ ख़ुशू और ख़ुज़ू (विनम्रता और भय) है। आजकल यह ज़्यादातर दिलों से उठ चुकी है, सिवाय उनके जिन पर अल्लाह की मर्ज़ी हो। इस देश में पड़ोसी गैर-मुस्लिम हैं। हमारे अनुचित व्यवहार के कारण —कि न तो दुआ के तौर पर करते हैं और न ही नमाज़ के तौर पर नमाज़ पढ़ते हैं—यदि दुआ स्वीकार न हो, तो काफिरों के उपहास का डर है। इसलिए यहाँ की स्थिति के अनुसार उस अमल पर ही बस करना ज़्यादा उपयुक्त है जो महान कुरान में रहमत की बारिश के लिए बताया गया है, यानी कसरत से इस्तिग़फ़ार (क्षमा याचना) करना और अज़ीज़-ए-ग़फ़्फ़ार (क्षमाशील ईश्वर) की ओर ध्यान देना। [अल्लाह फ़रमाता है:] "अपने रब से माफ़ी मांगो, वह बड़ा माफ़ करने वाला है। वह तुम पर मूसलाधार बारिश भेजेगा।"[1] (तो मैंने कहा, अपने रब से माफ़ी मांगो वह बड़ा माफ़ करने वाला है, वह तुम पर झमाझम बारिश भेजेगा। - अनु.) और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

[1] अल-कुरान 71/10 और 11

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

باب الاستسقاء (نماز استسقاء کا بیان)

مسئلہ ۱۲۵۱: از محلہ کوٹ پرگنہ سنبھل ضلع مرادآباد مکان مولوی لیاقت احمد صاحب مرسلہ مظہر حسین صاحب ۲۳ ذیقعدہ ۱۳۳۱ھ

نماز استسقاء نماز ہے یا دعا، اور استسقاء کیسے وقت میں ہونا چاہئے؟ بینوا توجروا

الجواب: نماز استسقاء صاحبین کے نزدیک سنت ہے اور اسی پر عمل ہے اور اُس وقت ہونا چاہئے جبکہ حاجت شدید ہو اور امید منقطع ہوچکی ہو اور لوگ اس کے آداب کے طور پر اسے بجالائیں خشیت و خشوع اس کی اصل ہے اور وہ آج کل اکثر قلوب سے مرتفع الّا ماشاءاللہ اس ملک میں ہمسایہ کفار ہیں ہماری بے طوریوں کے باعث کہ نہ دعا کے طور پر کرتے ہیں نہ نماز کے طور پر نماز پڑھتے، اگر اجابت نہ فرمائی جائے تو کفار کے مضحکہ کا اندیشہ ہے اس لئے یہاں کی حالت کے مناسب تر اس عمل پر اقتصار رہے جو قرآن عظیم میں نزولِ بارانِ رحمت کے لئے ارشاد ہوا یعنی کثرتِ استغفار و توجہ عزیزِ غفار فَقُلْتُ اسْتَغْفِرُوا رَبَّكُمْ إِنَّهُ كَانَ غَفَّارًا ﴿۱۰﴾ يُرْسِلِ السَّمَاءَ عَلَيْكُمْ مِدْرَارًا ﴿۱۱﴾ [1] (تو میں نے کہا اپنے رب سے معافی مانگو وہ بڑا معاف کرنے والا ہے تم پر شراٹے کا مینہ بھیجے گا۔ت) واللہ تعالٰی اعلم

[1] القرآن ۷۱ / ۱۰ و ۱۱

Volume 8 Fatawa Razawiyyah

Sources and References

S.No | Name of Book | Author | Year of Death (Hijri) 1. | Al-Ajza' fi al-Hadith | Abd al-Rahman bin Umar bin Muhammad al-Baghdadi, known as al-Nahhas | 416 2. | Al-Ajnas fi al-Furu' | Abu al-Abbas Ahmad bin Muhammad al-Natafi al-Hanafi | 446 3. | Al-Ikhtiyar Sharh al-Mukhtar | Abdullah bin Mahmud (bin Mawdud) al-Hanafi | 683 4. | Al-Adab al-Mufrad lil-Bukhari | Muhammad bin Ismail al-Bukhari | 256 5. | Irshad al-Sari Sharh al-Bukhari | Shihab al-Din Ahmad bin Muhammad al-Qastallani | 923 6. | Irshad al-Aql al-Salim | Abu al-Sa'ud Muhammad bin Muhammad al-Imadi | 951 7. | Al-Arkan al-Arba' | Maulana Abd al-Ali Bahr al-Ulum | 1225 8. | Al-Ashbah wa al-Naza'ir | Sheikh Zayn al-Din bin Ibrahim ibn Nujaym | 970 9. | Ashi'at al-Lam'at Sharh al-Mishkat | Sheikh Abd al-Haq Muhaddith Dehlawi | 1052 10. | Usul al-Bazdawi | Ali bin Muhammad al-Bazdawi | 482 11. | Al-Islah wa al-Idah lil-Wiqayah fi al-Furu' | Ahmad bin Sulayman bin Kamal Pasha | 940 12. | Akam al-Murjan fi Ahkam al-Jann | Qadi Badr al-Din Muhammad bin Abdullah al-Shibli | 769 13. | Anfa' al-Wasa'il ila Tahrir al-Masa'il | Qadi Burhan al-Din Ibrahim bin Ali al-Tarsusi al-Hanafi | 758 14. | Imdad al-Fattah Sharh Nur al-Idah | Hasan bin Ammar al-Shurunbulali | 1069 15. | Al-Anwar li-Amal al-Abrar | Imam Yusuf al-Ardabili al-Shafi'i | 799

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

स्रोत और संदर्भ

क्रम संख्या | पुस्तक का नाम | लेखक | हिजरी मृत्यु वर्ष १. | अल-अजज़ा फ़िल हदीस | अब्दुर्रहमान बिन उमर बिन मुहम्मद अल-बग़दादी, जिन्हें अल-नहहास के नाम से जाना जाता है | ४१६ २. | अल-अजनास फ़िल फ़ुरूअ | अबुल अब्बास अहमद बिन मुहम्मद अल-नातफ़ी अल-हनफ़ी | ४४६ ३. | अल-इख़्तियार शरह अल-मुख्तार | अब्दुल्लाह बिन महमूद (बिन मवदूद) अल-हनफ़ी | ६८३ ४. | अल-अदब अल-मुफ़रद लिल-बुखारी | मुहम्मद बिन इस्माइल अल-बुखारी | २५६ ५. | इरशाद अल-सारी शरह अल-बुखारी | शिहाब अल-दीन अहमद बिन मुहम्मद अल-क़स्तलानी | ९२३ ६. | इरशाद अल-अक़्ल अल-सलीम | अबू सऊद मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-इमादी | ९५१ ७. | अल-अरकान अल-अर्बा | मौलाना अब्दुल अली बहरुल उलूम | १२२५ ८. | अल-अशबाह वन-नज़ाइर | शेख़ ज़ैनुद्दीन बिन इब्राहीम इब्न नुजैम | ९७० ९. | अशअतुल लमआत शरह अल-मिश्कात | शेख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी | १०५२ १०. | उसूल अल-बज़दवी | अली बिन मुहम्मद अल-बज़दवी | ४८२ ११. | अल-इसलाह वल-ईज़ाह लिल-विक़ाया फ़िल फ़ुरूअ | अहमद बिन सुलेमान बिन कमाल पाशा | ९४० १२. | आकामुल मरजान फ़ी अहकामुल जान | काज़ी बद्रुद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-शिबली | ७६९ १३. | अनफ़ाउल वसाएल इला तहरीरुल मसाएल | काज़ी बुरहानुद्दीन इब्राहीम बिन अली अल-तरसूसी अल-हनफ़ी | ७५८ १४. | इमदादुल फ़त्ताह शरह नूरुल ईज़ाह | हसन बिन अम्मार अल-शुरुनबुलाली | १०६९ १५. | अल-अनवार लि-अमल अल-अबरार | इमाम यूसुफ़ अल-अरदबीली अल-शाफ़ई | ७९९

पृष्ठ ६४२ का ६७३

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

مآخذ ومراجع

نمبر شمار | نام کتاب | مصنف | سن وفات ہجری ۱۔ | الاجزاء فی الحدیث | عبدالرحمن بن عمر بن محمد البغدادی المعروف بالنحاس | ۴۱۶ ۲۔ | الاجناس فی الفروع | ابوالعباس احمد بن محمد الناطفی الحنفی | ۴۴۶ ۳۔ | الاختیار شرح المختار | عبداللہ بن محمود (بن مودود) الحنفی | ۶۸۳ ۴۔ | الادب المفرد للبخاری | محمد بن اسمعیل البخاری | ۲۵۶ ۵۔ | ارشاد الساری شرح البخاری | شہاب الدین احمد بن محمد القسطلانی | ۹۲۳ ۶۔ | ارشاد العقل السلیم | ابو سعود محمد بن محمد العمادی | ۹۵۱ ۷۔ | الارکان الاربع | مولانا عبد العلی بحر العلوم | ۱۲۲۵ ۸۔ | الاشباہ والنظائر | شیخ زین الدین بن ابراہیم ابن نجیم | ۹۷۰ ۹۔ | اشعۃ اللمعات شرح المشکوۃ | شیخ عبد الحق المحدث الدہلوی | ۱۰۵۲ ۱۰۔ | اصول البزدوی | علی بن محمد البزدوی | ۴۸۲ ۱۱۔ | الاصلاح والایضاح للوقایۃ فی الفروع | احمد بن سلیمان بن کمال پاشا | ۹۴۰ ۱۲۔ | آکام المرجان فی احکام الجان | قاضی بدرالدین محمد بن عبداللہ الشبلی | ۷۶۹ ۱۳۔ | انفع الوسائل الی تحریر المسائل | قاضی برہان الدین ابراہیم بن علی الطرسوسی الحنفی | ۷۵۸ ۱۴۔ | امداد الفتاح شرح نور الایضاح | حسن بن عمار الشرنبلالی | ۱۰۶۹ ۱۵۔ | الانوار لعمل الابرار | امام یوسف الاردبیلی الشافعی | ۷۹۹

صفحہ 642 از 673

Fatawa Rizvia - Volume 8

1. Amali fil Hadith — Abdul Malik bin Muhammad bin Muhammad Bashran — 432
2. Al-I'jaz fil Hadith — Ahmad bin Muhammad known as Ibn al-Sunni — 364
3. Alqab al-Ruwat — Ahmad bin Abdul Rahman al-Shirazi — 407
4. Al-Asl (Mabsut) — Abu Abdullah Muhammad bin Hasan al-Shaybani — 189
5. Akhbar Madinah — Muhammad bin Hasan al-Madani ibn Zabalah — 200
6. Al-Umm — Muhammad bin Idris al-Shafi'i — 202
7. Akhbar Madinah — Zubair ibn Bakkar al-Zubayri — 256
8. Amthal al-Nabi (Peace be upon him) — Al-Hasan bin Abdul Rahman al-Ramahurmuzi — 360
9. Arba'in lil-Hakim — Abu Abdullah Muhammad bin Abdullah Nishapuri — 405
10. Ihya al-Ulum — Imam Muhammad bin Muhammad al-Ghazali — 505
11. Arba'in Nawawi — Muhyiddin Yahya bin Sharaf al-Nawawi al-Shafi'i — 676
12. Al-Adhkar al-Muntakhabah min Kalam Sayyid al-Abrar — Abu Zakaria Yahya Sharaf al-Nawawi — 676
13. Usd al-Ghabah fi Ma'rifat al-Sahabah — Ali bin Muhammad ibn Athir al-Shaybani — 630
14. Alfiyat al-Iraqi fi Usul al-Hadith — Imam Zayn al-Din Abd al-Rahim bin al-Husayn al-Iraqi — 806
15. Al-Isabah fi Tamyiz al-Sahabah — Shihab al-Din Ahmad bin Ali bin Hajar al-Asqalani — 852
16. Unmudhaj al-Ulum — Allama Jalal al-Din Muhammad bin As'ad al-Dawani — 903
17. Al-Itqan — Jalal al-Din Abd al-Rahman bin Kamal al-Din al-Suyuti — 911
18. I'lam bi-Qawati' al-Islam — Ahmad bin Hajar al-Haytami al-Makki — 974
19. Al-Asrar al-Marfu'ah fil Akhbar al-Mawdu'ah — Nur al-Din Ali bin Sultan Muhammad al-Qari (Mulla Ali al-Qari) — 1012
20. Al-Intibah fi Salasil Awliya — Shah Waliullah bin Abd al-Rahim — 1179
21. Ithaf al-Sadat al-Muttaqin — Sayyid Muhammad bin Muhammad Murtada al-Zabidi — 1205
22. Injah al-Hajah Hashiyah Sunan Ibn Majah — Abd al-Ghani al-Dahlawi al-Madani — 1273
23. I'anat al-Talibin — Sayyid Muhammad Shatta al-Dimyati —
24. Al-Isharat — Abu Ali Hasan bin Abdullah known as Ibn Sina — 428

Page 643 of 673

फ़तावा रिज़विया - खंड 8

1. अमाली फ़िल हदीस — अब्दुल मलिक बिन मुहम्मद बिन मुहम्मद बशरन — 432
2. अल-इजाज़ फ़िल हदीस — अहमद बिन मुहम्मद अल-मारूफ़ बा-इब्न अस-सुन्नी — 364
3. अल्काब अर-रुवात — अहमद बिन अब्दुर रहमान अज़-शिराज़ी — 407
4. अल-अस्ल (मब्सूत) — अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन हसन अश्-शैबानी — 189
5. अख़बार मदीना — मुहम्मद बिन हसन अल-मदनी इब्न ज़बाला — 200
6. अल-उम्म — मुहम्मद बिन इदरीस अश-शाफ़ई — 202
7. अख़बार मदीना — ज़ुबैर इब्न बक्कर अज़-ज़ुबैरी — 256
8. अम्सल अन-नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) — अल-हसन बिन अब्दुर रहमान अर-रामहुरमुज़ी — 360
9. अरबाईन लिल-हाकिम — अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन अब्दुल्ला निशापुरी — 405
10. इह्या अल-उलूम — इमाम मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़ज़ाली — 505
11. अरबाईन नववी — मुहियुद्दीन याह्या बिन शराफ़ अन-नववी अश-शाफ़ई — 676
12. अल-अज़कार अल-मुंतख़बा मिन कलाम सय्यद अल-अबरार — अबू ज़कारिया याह्या शराफ़ अन-नववी — 676
13. उस्द अल-ग़ाबा फ़ी मारिफ़त अस-सहाबा — अली बिन मुहम्मद इब्न असीर अश्-शैबानी — 630
14. अलफ़ियत अल-इराकी फ़ी उसूल अल-हदीस — इमाम ज़ैनुद्दीन अब्दुर रहीम बिन अल-हुसैन अल-इराकी — 806
15. अल-इसाबा फ़ी तमीज़ अस-सहाबा — शिहाबुद्दीन अहमद बिन अली बिन हजर अल-अस्कलानी — 852
16. उनमुज़ज अल-उलूम — अल्लामा जलालुद्दीन मुहम्मद बिन असद अद-दवानी — 903
17. अल-इतक़ान — जलालुद्दीन अब्दुर रहमान बिन कमालुद्दीन अस-सुयूती — 911
18. एलाम बि-क़वाति अल-इस्लाम — अहमद बिन हजर अल-हैतमी अल-मक्की — 974
19. अल-असरार अल-मरफ़ूआ फ़िल अख़बार अल-मौज़ूआ — नुरुद्दीन अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी (मुल्ला अली अल-क़ारी) — 1012
20. अल-इंतिबाह फ़ी सलासिल औलिया — शाह वलीउल्लाह बिन अब्दुर रहीम — 1179

21. इथफ़ अस-सादात अल-मुत्तक़ीन — सय्यद मुहम्मद बिन मुहम्मद मुर्तज़ा अज़-ज़ुबैदी — 1205
22. इंजा अल-हाजा हाशिया सुनन इब्न माजा — अब्दुल ग़नी अद-देहल्वी अल-मदनी — 1273
23. एआनत अत-तालिबीन — सय्यद मुहम्मद शत्ता अद-दम्याती —
24. अल-इशारात — अबू अली हसन बिन अब्दुल्ला अल-शहीर बा-इब्न सीना — 428

فتاوی رضویہ ـــ جلد ہشتم

۱۶ - امالی فی الحدیث ـــ عبدالملک بن محمد بن محمد بشران ـــ ۴۳۲ ۱۷ - الایجاز فی الحدیث ـــ احمد بن محمد المعروف بابن السنی ـــ ۳۶۴ ۱۸ - القاب الروات ـــ احمد بن عبدالرحمن الشیرازی ـــ ۴۰۷ ۱۹ - الاصل (مبسوط) ـــ ابوعبداللہ محمد بن حسن الشیبانی ـــ ۱۸۹ ۲۰ - اخبار مدینہ ـــ محمد بن حسن المدنی ابن زبالہ ـــ ۲۰۰ ۲۱ - الام ـــ محمد بن ادریس الشافعی ـــ ۲۰۲ ۲۲ - اخبار مدینہ ـــ زبیر ابن بکار الزبیری ـــ ۲۵۶ ۲۳ - امثال النبی صلی اللہ علیہ وسلم ـــ الحسن بن عبدالرحمن الرامہرمزی ـــ ۳۶۰ ۲۴ - اربعین للحاکم ـــ ابوعبداللہ محمد بن عبداللہ نیشا پوری ـــ ۴۰۵ ۲۵ - احیاء العلوم ـــ امام محمد بن محمد الغزالی ـــ ۵۰۵ ۲۶ - اربعین نووی ـــ محی الدین یحیی بن شرف النووی الشافعی ـــ ۶۷۶ ۲۷ - الاذکار المنتخبہ من کلام سید الابرار ـــ ابو زکریا یحیی شرف النووی ـــ ۶۷۶ ۲۸ - اسد الغابۃ فی معرفۃ الصحابۃ ـــ علی بن محمد ابن اثیر الشیبانی ـــ ۶۳۰ ۲۹ - الفیۃ العراقی فی اصول الحدیث ـــ امام زین الدین عبدالرحیم بن الحسین العراقی ـــ ۸۰۶ ۳۰ - الاصابۃ فی تمییز الصحابہ ـــ شہاب الدین احمد بن علی بن حجر عسقلانی ـــ ۸۵۲ ۳۱ - انموذج العلوم ـــ علامہ جلال الدین محمد بن اسعد الدوانی ـــ ۹۰۳ ۳۲ - الاتقان ـــ جلال الدین عبدالرحمن بن کمال الدین السیوطی ـــ ۹۱۱ ۳۳ - اعلام بقواطع الاسلام ـــ احمد بن حجر الہیتمی المکی ـــ ۹۷۴ ۳۴ - الاسرار المرفوعۃ فی الاخبار الموضوعہ ـــ نور الدین علی بن سلطان محمد القاری (ملا علی القاری) ـــ ۱۰۱۲ ۳۵ - الانتباہ فی سلاسل اولیاء ـــ شاہ ولی اللہ بن عبدالرحیم ـــ ۱۱۷۹ ۳۶ - اتحاف السادۃ المتقین ـــ سید محمد بن محمد مرتضی الزبیدی ـــ ۱۲۰۵ ۳۷ - انجاح الحاجۃ حاشیۃ سنن ابن ماجہ ـــ عبدالغنی الدہلوی المدنی ـــ ۱۲۷۳ ۳۸ - اعانۃ الطالبین

— سید محمد شطا الدمیاطی — ۳۹ - الاشارات ابن سینا — ابو علی حسن بن عبدالله الشهیر بابن سینا — ۴۲۸

صفحہ 643 کا 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

ب (B) 40. Bada'i al-Sana'i - Ala al-Din Abi Bakr bin Mas'ud al-Kasani - 587 41. Al-Hidayah (Bidayat al-Mubtadi) - Ali bin Abi Bakr al-Marghinani - 593 42. Al-Bahr al-Ra'iq - Shaykh Zayn al-Din bin Ibrahim bin Nujaym - 670 43. Al-Burhan Sharh Mawahib al-Rahman - Ibrahim bin Musa al-Tarabulusi - 922 44. Bustan al-Arifin - Faqih Abu al-Layth Nasr bin Muhammad al-Samarqandi - 372 45. Al-Basit fil-Furu' - Hujjat al-Islam Muhammad bin Muhammad al-Ghazali - 505 46. Al-Binayah Sharh al-Hidayah - Imam Badr al-Din Abu Muhammad al-Ayni - 855 47. Bahjat al-Asrar - Yusuf bin Jarir al-Lakhmi al-Shattanufi - 713 48. Bulugh al-Maram - Ahmad bin Ali ibn Hajar al-Asqalani - 852 49. Bustan al-Muhaddithin - Shah Abdul Aziz bin Shah Waliullah - 1239 50. Barahin-e-Qati'ah - Rashid Ahmad Gangohi - 1905

ت (T) 51. Taj al-Arus - Sayyid Muhammad Murtada al-Zabidi - 1205 52. Tarikh Ibn Asakir - Ali bin al-Hasan al-Dimashqi ibn Asakir - 571 53. Tarikh al-Bukhari - Muhammad bin Isma'il al-Bukhari - 256 54. Al-Tajnis wal-Mazid - Burhan al-Din Ali bin Abi Bakr al-Marghinani - 593 55. Tahrir al-Usul - Kamal al-Din Muhammad bin Abd al-Wahid bin al-Humam - 861 56. Tuhfat al-Fuqaha - Imam Ala al-Din Muhammad bin Ahmad al-Samarqandi - 540 57. Tahqiq al-Husami - Abdul Aziz bin Ahmad al-Bukhari - 730 58. Al-Tarjih wat-Tashih 'ala al-Quduri - Allamah Qasim bin Qutlubugha al-Hanafi - 879 59. Al-Ta'rifat li-Sayyid Sharif - Sayyid Sharif Ali bin Muhammad al-Jurjani - 816 60. Al-Tamhid lima fil-Muwatta' min al-Ma'ani wal-Asanid - Yusuf bin Abdullah ibn Abd al-Barr al-Andalusi - 463

Page 644 of 673

फ़तावा रज़विया खंड 8

ب (ब) 40. बदाइ अल-सनाइट - अलाउद्दीन अबी बक्र बिन मसूद अल-कसानी - 587 41. अल-हिदाया (बिदायत अल-मुब्तदी) - अली बिन अबी बक्र अल-मरग़िनानी - 593 42. अल-बहर अल-राइक़ - शेख ज़ैनुद्दीन बिन इब्राहिम इब्न नुजैम - 670 43. अल-बुरहान शरह मवाहिब अर-रहमान - इब्राहिम बिन मूसा अल-तराबुलुसी - 922 44. बुस्तान अल-आरिफ़ीन - फकीह अबुल लैस नसर बिन मुहम्मद अल-समरकंदी - 372 45. अल-बसीत फ़िल-फ़ुरू - हुज्जतुल इस्लाम मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़ज़ाली - 505 46. अल-बिनाया शरह अल-हिदाया - इमाम बद्रुद्दीन अबू मुहम्मद अल-ऐनी - 855 47. बहजत अल-असरार - युसूफ बिन जरीर अल-लखमी अल-शत्तनुफ़ी - 713 48. बुलुग़ अल-मराम - अहमद बिन अली इब्न हजर अल-अस्क़लानी - 852 49. बुस्तान अल-मुहद्दिसीन - शाह अब्दुल अज़ीज़ बिन शाह वलीउल्लाह - 1239 50. बराहीन-ए-क़ातिआ - रशीद अहमद गंगोही - 1905

ت (त) 51. ताज अल-अरुस - सैय्यद मुहम्मद मुर्तज़ा अल-ज़ुबैदी - 1205 52. तारीख इब्न असाकिर - अली बिन अल-हसन अद-दिमश्की इब्न असाकिर - 571 53. तारीख अल-बुखारी - मुहम्मद बिन इस्माइल अल-बुखारी - 256 54. अल-तजनीस वल-मजीद - बुरहानुद्दीन अली बिन अबी बक्र अल-मरग़िनानी - 593 55. तहरीर अल-उसूल - कमालुद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुल वाहिद इब्न अल-हुमाम - 861 56. तोहफ़तुल फ़ुक़हा - इमाम अलाउद्दीन मुहम्मद बिन अहमद अल-समरकंदी - 540 57. तहक़ीक़ अल-हुसामी - अब्दुल अज़ीज़ बिन अहमद अल-बुखारी - 730 58. अत-तरजीह वत-तसहीह अलल क़ुदूरी - अल्लामा कासिम बिन क़ुतलुबग़ा अल-हनफ़ी - 879 59. अत-तारीफ़ात लिस-सैय्यद शरीफ़ - सैय्यद शरीफ़ अली बिन मुहम्मद अल-जुरजानी - 816 60. अत-तमहीद लिमा फ़िल-मुवत्ता मिन अल-माआनी वल-असानीद - युसूफ बिन अब्दुल्लाह इब्न अब्दुल बर्र अल-अंदलुसी - 463

पृष्ठ 644/673

فتاوىٰ رضويہ جلد ہشتم

ب ۴۰- بدائع الصنائع - علاء الدين ابى بكر بن مسعود الكاسانى - ۵۸۷ ۴۱- البداية (بداية المبتدي) - على بن ابى بكر المرغينانى - ۵۹۳ ۴۲- البحر الرائق - شيخ زين الدين بن ابراهيم بابن نجيم - ۶۷۰ ۴۳- البربان شرح مواہب الرحمان - ابراهيم بن موسىٰ الطرابلسى - ۹۲۲ ۴۴- بستان العارفين - فقيه ابواللیث نصر بن محمد السمرقندى - ۳۷۲ ۴۵- البسيط فى الفروع - حجة الاسلام محمد بن محمد الغزالى - ۵۰۵ ۴۶- البناية شرح الهداية - امام بدر الدين ابو محمد العينى - ۸۵۵ ۴۷- بهجة الاسرار - يوسف بن جرير اللخمى الشطنوفى - ۷۱۳ ۴۸- بلوغ المرام - احمد بن على ابن حجر عسقلانى - ۸۵۲ ۴۹- بستان المحدثين - شاه عبد العزيز بن شاه ولى الله - ۱۲۳۹ ۵۰- براهين قاطعه - رشيد احمد گنگوہى - ۱۹۰۵

ت ۵۱- تاج العروس - سيد محمد مرتضىٰ الزبيدى - ۱۲۰۵ ۵۲- تاريخ ابن عساكر - على بن الحسن الدمشقى بابن عساكر - ۵۷۱ ۵۳- تاريخ البخارى - محمد بن اسمعيل البخارى - ۲۵۶ ۵۴- التجنيس والمزيد - برہان الدين على بن ابى بكر المرغينانى - ۵۹۳ ۵۵- تحرير الاصول - كمال الدين محمد بن عبد الواحد بن الهمام - ۸۶۱ ۵۶- تحفة الفقهاء - امام علاء الدين محمد بن احمد السمرقندى - ۵۴۰ ۵۷- تحقيق الحسامي - عبد العزيز بن احمد البخارى - ۷۳۰ ۵۸- الترجيح والتصحيح على القدوري - علامہ قاسم بن قطلوبغا الحنفى - ۸۷۹ ۵۹- التعريفات لسيد شريف - سيد شريف على بن محمد الجرجانى - ۸۱۶ ۶۰- التمهيد لما في المؤطا من المعانى والاسانيد - يوسف بن عبد الله ابن عبد البر الاندلسى - ۴۶۳

Volume Eight Fatawa Rizvia

61- Tanbih al-Anam fi Adab al-Siyam 62- Tafsir al-Jalalayn (Allama Jalal al-Din al-Mahalli and Jalal al-Din al-Suyuti) — 864-911 63- Tahdhib al-Tahdhib (Abu al-Fadl Ahmad bin Ali Ibn Hajar al-Asqalani) — 852 64- Tanzih al-Shari'ah al-Marfu'ah 'an Akhbar al-Shani'ah al-Mawdu'ah (Abu al-Hasan Ali bin Muhammad bin Iraq al-Kinani) — 923 65- Tafsir Ibn Abi Hatim (Abd al-Rahman bin Muhammad al-Razi (Hafiz)) — 327 66- Tahdhib al-Athar (Abu Ja'far Muhammad bin Muhammad bin Jarir) — 310 67- Taqrib al-Qarib (Abu Zakariya Yahya bin Sharaf al-Nawawi) — 911 68- Al-Taqrir wa al-Tahbir (Muhammad bin Muhammad ibn Amir al-Hajj al-Halabi) — 879 69- Al-Taysir Sharh al-Jami' al-Saghir (Abd al-Ra'uf bin Taj al-Arifin bin Ali al-Munawi) — 1031 70- Tabyin al-Haqa'iq (Fakhr al-Din Uthman bin Ali al-Zayla'i) — 743 71- Taqrib al-Tahdhib (Shihab al-Din Ahmad bin Ali Ibn Hajar al-Asqalani) — 852 72- Tanwir al-Miqyas (Abu Tahir Muhammad bin Ya'qub al-Fayruzabadi) — 817 73- Tanwir al-Absar (Shams al-Din Muhammad bin Abdullah bin Ahmad al-Timurtashi) — 1004 74- Ta'zim al-Salat (Muhammad bin Nasr al-Marwazi) — 294 75- Tarikh Baghdad (Abu Bakr Ahmad bin Ali al-Khatib al-Baghdadi) — 463 76- Al-Tawshih fi Sharh al-Hidayah (Umar bin Ishaq al-Siraj al-Hindi) — 773 77- Tarikh al-Tabari (Muhammad bin Jarir al-Tabari) — 310 78- Tanbih al-Ghafilin (Nasr bin Muhammad bin Ibrahim al-Samarqandi) — 373 79- Tarikh Ibn Najjar (Muhammad bin Mahmud bin Hasan Baghdadi Ibn Najjar) — 643 80- Al-Targhib wa al-Tarhib (Zaki al-Din Abd al-Azim bin Abd al-Qawi al-Mundhiri) — 656 81- Al-Tawdih Sharh al-Tanqih fi Usul al-Fiqh (Ubaidullah bin Mas'ud bin Taj al-Shari'ah) — 747 82- Tadhkirat al-Huffaz (Shams al-Din Abu Abdullah Muhammad bin Ahmad al-Dhahabi) — 748 83- Tadhib Tahdhib al-Kamal (Shams al-Din Muhammad bin Ahmad al-Dhahabi) — 748 84- Al-Talwih Sharh al-Tawdih (Sa'd al-Din Mas'ud bin Umar bin Abdullah al-Taftazani) — 792 85- Tadrib al-Rawi (Jalal al-Din Abd al-Rahman bin Abi Bakr al-Suyuti) — 911

Page 645 of 673

61- तन्बीह अल-अनाम फ़ी आदाब अल-सियाम 62- तफ़सीर अल-जलालैन (अल्लामा जलालुद्दीन अल-महल्ली और जलालुद्दीन अल-सुयुती) — 864-911 63- तहज़ीब अत-तहज़ीब (अबुल फ़ज़ल अहमद बिन अली इब्न हजर अल-अस्क़लानी) — 852 64- तन्ज़ीह अल-शरिया अल-मरफ़ूआ अन अख़बार अल-शनिआ अल-मौदूआ (अबुल हसन अली बिन मुहम्मद बिन इराक़ अल-किनानी) — 923 65- तफ़सीर इब्न अबी हातिम (अब्दुर्रहमान बिन मुहम्मद अर-राज़ी (हाफ़िज़)) — 327 66- तहज़ीब अल-आसार (अबू जफ़र मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन जरीर) — 310 67- तक़रीब अल-क़रीब (अबू ज़करिया यहया बिन शरफ़ अन-नवावी) — 911 68- अत-तक़रीर वत-तहबीर (मुहम्मद बिन मुहम्मद इब्न अमीर अल-हाज अल-हलबी) — 879 69- अत-तयसीर शरह अल-जामि' अस-सगीर (अब्दुर्रऊफ़ बिन ताज अल-आरिफ़ीन बिन अली अल-मुनावी) — 1031 70- तबीन अल-हक़ा'इक़ (फ़खरुद्दीन उस्मान बिन अली अज़-ज़ैलई) — 743 71- तक़रीब अत-तहज़ीब (शिहाबुद्दीन अहमद बिन अली इब्न हजर अल-अस्क़लानी) — 852 72- तनवीर अल-मिक़यास (अबू ताहिर मुहम्मद बिन यकूब अल-फ़ैरूज़ाबादी) — 817 73- तनवीर अल-अबसार (शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन अहमद अत-तिमुरताशी) — 1004 74- ताज़ीम अस-सलात (मुहम्मद बिन नस्र अल-मरवाज़ी) — 294 75- तारीख़ बग़दाद (अबू बक्र अहमद बिन अली अल-ख़तीब अल-बग़दादी) — 463 76- अत-तौशीह फ़ी शरह अल-हिदाया (उमर बिन इसहाक़ अस-सिराज अल-हिन्दी) — 773 77- तारीख़ अत-तबरी (मुहम्मद बिन जरीर अत-तबरी) — 310 78- तन्बीह अल-गाफ़िलीन (नस्र बिन मुहम्मद बिन इब्राहीम समरकंदी) — 373 79- तारीख़ इब्न नज्जार (मुहम्मद बिन महमूद बिन हसन बग़दादी इब्न नज्जार) — 643 80- अत-तर्ग़ीब वत-तर्हीब (ज़कीउद्दीन अब्दुल अज़ीम बिन अब्दुल क़वी अल-मुन्ज़िरी) — 656 81- अत-तौज़ीह शरह अत-तनक़ीह फ़ी उसूल अल-फ़िक़्ह (उबैदुल्लाह बिन मसूद बिन ताज अल-शरिया) — 747 82- तज़किरत अल-हुफ़्फ़ाज़ (शम्सुद्दीन अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद अज़-ज़हबी) — 748 83- तज़हीब तहज़ीब अल-कमाल (शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन अहमद अज़-ज़हबी) — 748 84- अत-तलवीह शरह तौज़ीह (सदुद्दीन मसूद बिन उमर बिन अब्दुल्लाह तफ़्ताज़ानी) — 792 85- तदरीब अर-रावी (जलालुद्दीन अब्दुल रहमान बिन अबी बक्र अस-सुयुती) — 911

جلد ہشتم فتاوی رضویه

۶۱_ تنبیه الانام فی آداب الصیام ۶۲_ تفسیر الجلالین علامہ جلال الدین المحلی وجلال الدین السیوطی ۹۱۱_۸۶۴ ۶۳_ تهذیب التهذیب ابوالفضل احمد بن علی ابن حجر العسقلانی ۸۵۲ ۶۴_ تنزیه الشریعة المرفوعه عن اخبار الشنیعة الموضوعة ابوالحسن علی بن محمد بن عراق الکنانی ۹۲۳ ۶۵_ تفسیر ابن ابی حاتم عبدالرحمن بن محمد الرازی (حافظ) ۳۲۷ ۶۶_ تهذیب الآثار ابوجعفر محمد بن محمد بن جریر ۳۱۰ ۶۷_ تقریب القریب ابوزکریا یحیی بن شرف النووی ۹۱۱ ۶۸_ التقریر والتحبیر محمد بن محمد ابن امیر الحاج الحلبي ۸۷۹ ۶۹_ التیسیر شرح الجامع الصغیر عبد الرؤف بن تاج العارفین بن علی المناوی ۱۰۳۱ ۷۰_ تبیین الحقائق فخر الدین عثمان بن علی الزیلعي ۷۴۳ ۷۱_ تقریب التهذیب شهاب الدین احمد بن علی ابن حجر العسقلانی ۸۵۲ ۷۲_ تنویر المقیاس ابوطاہر محمد بن یعقوب الفیروزآبادی ۸۱۷ ۷۳_ تنویر الابصار شمس الدین محمد بن عبدالله بن احمد التمرتاشی ۱۰۰۴ ۷۴_ تعظیم الصلوة محمد بن نصر المروزی ۲۹۴ ۷۵_ تاریخ بغداد ابوبکر احمد بن علی الخطیب البغدادی ۴۶۳ ۷۶_ التوشیح فی شرح الهدایة عمر بن اسحق السراج الہندی ۷۷۳ ۷۷_ تاریخ الطبری محمد بن جریر الطبري ۳۱۰ ۷۸_ تنبیه الغافلین نصر بن محمد بن ابراهیم سمرقندی ۳۷۳ ۷۹_ تاریخ ابن نجار محمد بن محمود بن حسن بغدادی ابن نجار ۶۴۳ ۸۰_ الترغیب والترهیب زکی الدین عبد العظیم بن عبد القوی المنذری ۶۵۶ ۸۱_ التوضیح شرح التنقیح فی اصول الفقه عبید الله بن مسعود بن تاج الشریعہ ۷۴۷ ۸۲_ تذکرة الحفاظ شمس الدین ابو عبد الله محمد بن احمد الذہبی ۷۴۸ ۸۳_ تذہیب تهذیب الکمال شمس الدین محمد بن احمد الذہبی ۷۴۸ ۸۴_ التلویح شرح توضیح سعد الدین مسعود بن عمر بن عبد الله تفتازانی ۷۹۲ ۸۵_ تدریب الراوی جلال الدین عبد الرحمن بن ابی بکر السیوطی ۹۱۱

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

1. Al-Ta'aqqubat 'ala al-Mawdu'at - Jalal al-Din 'Abd al-Rahman b. Abi Bakr al-Suyuti - 911
2. Tarikh al-Khamis - Shaykh Husayn b. Muhammad b. al-Hasan Diyar Bakri - 966
3. Tadhkira Uli al-Albab Antaki - Dawud b. 'Umar Antaki - 1008
4. Al-Tibyan fi Bayan ma fi Laylat al-Nisf min Sha'ban - 'Ali b. Sultan Muhammad al-Qari - 1012
5. Tafsirat Ahmadiyya - Ahmad b. Abu Sa'id known as Mulla Jiwan - 1130
6. Al-Tafsir al-Mazhari - Qadi Thanaullah Panipati - 1225
7. Tuhfa Ithna 'Ashariyya - Al-Shah 'Abd al-'Aziz Dehlawi - 1239
8. Tanbih Dhawi al-Afham - Muhammad Amin Ibn 'Abidin - 1252
9. Al-Tahrir al-Mukhtar (Taqrirat al-Rafi'i) - 'Abd al-Qadir al-Rafi'i al-Faruqi - 1323
10. Tadhkira al-Mawdu'at lil-Fatni - Muhammad b. Tahir al-Fatni - 986
11. Tajnis al-Multaqat
12. Tuhfa al-Mu'minin fi al-Tibb - Muhammad Mu'min b. Muhammad Zaman al-Husayni - 910
13. Tuhfa al-Salat (Persian) - Husayn b. 'Ali al-Kashifi al-Wa'iz

Th (ث) 99. Al-Thamanun fi al-Hadith - Abu Bakr Muhammad b. al-Husayn al-Ajurri - 360 100. Thabat Abu Muhammad b. Amir al-Makki al-Misri

J (ج) 101. Jami' al-Tirmidhi - Abu 'Isa Muhammad b. 'Isa al-Tirmidhi - 279 102. Jami' al-Rumuz - Shams al-Din Muhammad al-Khurasani - 962 103. Al-Jami' al-Sahih lil-Bukhari - Imam Muhammad b. Isma'il al-Bukhari - 252 104. Al-Jami' al-Saghir fi al-Fiqh - Imam Muhammad b. Hasan al-Shaybani - 189 105. Al-Jami' al-Sahih li-Muslim - Muslim b. Hajjaj al-Qushayri - 261 106. Jami' al-Fiqh (Jawami' al-Fiqh) - Abu Nasr Ahmad b. Muhammad al-'Attabi - 586

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

1. अल-ता'कुबात अला अल-मौज़ूआत - जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र अल-सुयुती - ९११
2. तारीख़ अल-ख़मीस - शैख़ हुसैन बिन मुहम्मद बिन अल-हसन दियार बकरी - ९६६
3. तज़किरा उली अल-अल्बाब अंताकी - दाऊद बिन उमर अंताकी - १००८
4. अल-तिब्यान फ़ी बयान मा फ़ी लैलत अल-निस्फ़ मिन शाबान - अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-कारी - १०१२
5. तफ़सीरात अहमदिया - अहमद बिन अबू सईद मारूफ़ मुल्ला जीवन - ११३०
6. अल-तफ़सीर अल-मज़हरी - काज़ी सनाउल्लाह पानीपती - १२२५
7. तोहफ़ा इस्ना अशरिया - अल-शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी - १२३९
8. तन्बीह ज़वी अल-अफ़हाम - मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन - १२५२
9. अल-तहरीर अल-मुख़्तार (तकरीरात अल-राफ़ई) - अब्दुल क़ादिर अल-राफ़ई अल-फ़ारूक़ी - १३२३
10. तज़किरा अल-मौज़ूआत लिल-फ़तनी - मुहम्मद बिन ताहीर अल-फ़तनी - ९८६
11. तजनीस अल-मुल्तक़त
12. तोहफ़ा अल-मोमिनीन फ़ी अल-तिब्ब - मुहम्मद मोमिन बिन मुहम्मद ज़मान अल-हुसैनी - ९१०
13. तोहफ़ा अल-सलात (फ़ारसी) - हुसैन बिन अली अल-काशफ़ी अल-वाइज़

सा (ث) ९९. अल-समानून फ़ी अल-हदीस - अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-हुसैन अल-आजुर्री - ३६० १००. सबत अबू मुहम्मद बिन अमीर अल-मक्की अल-मिसरी

जीम (ج) १०१. जामि अल-तिर्मिज़ी - अबू ईसा मुहम्मद बिन ईसा अल-तिर्मिज़ी - २७९ १०२. जामि अल-रुमूज़ - शम्सुद्दीन मुहम्मद अल-ख़ुरासानी - ९६२ १०३. अल-जामि अल-सहीह लिल-बुख़ारी - इमाम मुहम्मद बिन इस्माइल अल-बुख़ारी - २५२ १०४. अल-जामि अल-सग़ीर फ़ी अल-फ़िक़्ह - इमाम मुहम्मद बिन हसन अल-शैबानी - १८९ १०५. अल-जामि अल-सहीह लि-मुस्लिम - मुस्लिम बिन हज्जाज अल-कुशैरी - २६१ १०६. जामि अल-फ़िक़्ह (जवामि अल-फ़िक़्ह) - अबू नस्र अहमद बिन मुहम्मद अल-अत्ताबी - ५८६

पृष्ठ 646 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۸۶۔ التعقبات علی الموضوعات - جلال الدین عبدالرحمن بن ابی بکر السیوطی - ۹۱۱ ۸۷۔ تاریخ الخمیس - شیخ حسین بن محمد بن الحسن دیار بکری - ۹۶۶ ۸۸۔ تذکرہ اولی الالباب انطاکی - داؤد بن عمر انطاکی - ۱۰۰۸ ۸۹۔ التبیان فی بیان ما فی لیلۃ النصف من شعبان - علی بن سلطان محمد القاری - ۱۰۱۲ ۹۰۔ تفسیرات احمدیہ - احمد بن ابوسعید المعروف ملا جیون - ۱۱۳۰ ۹۱۔ التفسیر المظہری - قاضی ثناء اللہ پانی پتی - ۱۲۲۵ ۹۲۔ تحفہ اثناء عشریہ - الشاہ عبدالعزیز دہلوی - ۱۲۳۹ ۹۳۔ تنبیہ ذوی الافہام - محمد امین ابن عابدین - ۱۲۵۲ ۹۴۔ التحریر المختار (تقریرات الرافعی) - عبدالقادر الرافعی الفاروقی - ۱۳۲۳ ۹۵۔ تذکرۃ الموضوعات للفتنی - محمد بن طاہر الفتنی - ۹۸۶ ۹۶۔ تجنیس الملتقط ۹۷۔ تحفۃ المومنین فی الطب - محمد مومن بن محمد زمان الحسینی - ۹۱۰ ۹۸۔ تحفۃ الصلوٰۃ (فارسی) - حسین بن علی الکاشفی الواعظ

ث ۹۹۔ الثمانون فی الحدیث - ابوبکر محمد بن الحسین الآجری - ۳۶۰ ۱۰۰۔ ثبت ابومحمدبن امیرالمکی المصری

ج ۱۰۱۔ جامع الترمذی - ابوعیسیٰ محمد بن عیسیٰ الترمذی - ۲۷۹ ۱۰۲۔ جامع الرموز - شمس الدین محمد الخراسانی - ۹۶۲ ۱۰۳۔ الجامع الصحیح للبخاری - امام محمد بن اسمٰعیل البخاری - ۲۵۲ ۱۰۴۔ الجامع الصغیر فی الفقہ - امام محمد بن حسن الشیبانی - ۱۸۹ ۱۰۵۔ الجامع الصحیح لمسلم - مسلم بن حجاج القشیری - ۲۶۱ ۱۰۶۔ جامع الفقہ (جوامع الفقہ) - ابونصر احمد بن محمد العتابی - ۵۸۶

صفحہ 646 کا 673

Fatawa Ridawiyya, Volume Eight

107- Jami' al-Fusulayn - Shaykh Badr al-Din Mahmud bin Isra'il bin al-Qadi - 823 108- Al-Jami' al-Kabir fi Furu' al-Hanafiyyah - Abi al-Hasan 'Ubayd Allah bin Husayn al-Karkhi - 340 109- Jawahir al-Akhlati - Burhan al-Din Ibrahim bin Abi Bakr al-Akhlati - . 110- Al-Jawahir al-Zakiyyah - Ahmad bin Turki bin Ahmad al-Maliki - 989 111- Jawahir al-Fatawa - Rukn al-Din Abu Bakr bin Muhammad bin Abi al-Mafakhir - 565 112- Al-Jawharat al-Nayyirah - Abu Bakr bin 'Ali bin Muhammad al-Haddad al-Yamani - 800 113- Al-Jarh wa al-Ta'dil fi Rijal al-Hadith - Yahya bin Ma'in al-Baghdadi - 233 114- Al-Jami' al-Saghir fi al-Hadith - 'Allamah Jalal al-Din 'Abd al-Rahman bin Abi Bakr al-Suyuti - 911 115- Jami' al-Bayan fi Tafsir al-Qur'an (Tafsir al-Tabari) - Muhammad bin Jarir al-Tabari - 310 116- Juz' Hadithi Hasan bin 'Arafa - Abu 'Ali Hasan bin 'Arafa Baghdad - 256 117- Al-Jami' li Akhlaq al-Rawi wa al-Sami' - Abu Bakr Ahmad bin 'Ali Khatib al-Baghdadi - 463 118- Jami' Ahkam al-Sighar fi al-Furu' - Muhammad bin Mahmud al-Ustrushani - 636 119- Jami' al-Adwiyah wa al-Aghdhiyah - Diya' al-Din 'Abd Allah bin Ahmad al-Maliki - 646 120- Jawahir al-'Iqdayn fi Fadl al-Sharafayn - Nur al-Din 'Ali bin Ahmad al-Samhudi al-Misri - 911 121- Jawahir Khamsah - Muhammad Ghawth bin 'Abd Allah Gwaliyari - 970 122- Jam' al-Jawami' fi al-Hadith - Abu Bakr Jalal al-Din 'Abd al-Rahman bin Kamal al-Din Suyuti - 911 123- Jawhar Munazzam fi Ziyarat Qabr al-Nabi al-Akram sallallahu 'alayhi wa sallam - Shihab al-Din Ahmad bin Muhammad Ibn Hajar al-Makki - 947 124- Jadhb al-Qulub ila Diyar al-Mahbub - 'Abd al-Haq bin Sayf al-Din Muhaddith Dehlawi - 1052 125- Al-Jami' al-Kabir fi al-Fatawa - Imam Nasir al-Din Muhammad bin Yusuf al-Samarqandi - 556

H

126- Hashiyah 'ala al-Durar - Muhammad bin Mustafa Abu Sa'id al-Khadimi - 1176 127- Hashiyah Ibn Shalbi 'ala al-Tabyin - Ahmad bin Muhammad al-Shalbi - 1021 128- Hashiyah 'ala al-Durar - 'Abd al-Halim bin Muhammad al-Rumi - 1013 129- Hashiyah 'ala al-Durar li Mulla Khusraw - Qadi Muhammad bin Faramuz Mulla Khusraw - 885

फ़तावा-ए-रज़विया, खंड आठवाँ

१०७- जामि अल-फुसुलैन - शेख बदरुद्दीन महमूद बिन इस्राइल बिन अल-काज़ी - ८२३ १०८- अल-जामि अल-कबीर फी फुरू अल-हनफिया - अबी अल-हसन उबैद अल्लाह बिन हुसैन अल-करखी - ३४० १०९- जवाहर अल-अखलाती - बुरहानुद्दीन इब्राहिम बिन अबू बक्र अल-अखलाती - . ११०- अल-जवाहर अज़-ज़किया - अहमद बिन तुर्की बिन अहमद अल-मालिकी - ९८९ १११- जवाहर अल-फतावा - रुकनुद्दीन अबू बक्र बिन मुहम्मद बिन अबी अल-मफाखिर - ५६५ ११२- अल-जौहरा अन-नय्याराह - अबू बक्र बिन अली बिन मुहम्मद अल-हद्दाद अल-यमनी - ८०० ११३- अल-जर्ह वत-तादील फी रिजाल अल-हदीस - यह्या बिन मईन अल-बग़दादी - २३३ ११४- अल-जामि अस-सगीर फिल हदीस - अल्लामा जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र अस-सुयूती - ९११ ११५- जामि अल-बयान फी तफ़सीर अल-क़ुरान (तफ़सीर तबरी) - मुहम्मद बिन जरीर अत-तबरी - ३१० ११६- जुज़ हदीसी हसन बिन अराफा - अबू अली हसन बिन अराफा बगदाद - २५६ ११७- अल-जामि लि-अखलाक़ अर-रावी वस-सामि - अबू बक्र अहमद बिन अली खतीब अल-बग़दादी - ४६३ ११८- जामि अहकाम अस-सिगार फिल फुरू - मुहम्मद बिन महमूद अल-उस्त्रुशनी - ६३६ ११९- जामि अल-अद्विया वल-अग़िज़या - ज़ियाउद्दीन अब्दुल्लाह बिन अहमद अल-मालिकी - ६४६ १२०- जवाहर अल-इक़दैन फी फल अश-शरफ़ैन - नुरुद्दीन अली बिन अहमद अस-समहुदी अल-मिस्री - ९११ १२१- जवाहर खमसा - मुहम्मद गौस बिन अब्दुल्लाह ग्वालियर - ९७० १२२- जम अल-जवामि फिल हदीस - अबू बक्र जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन कमालुद्दीन सुयूती - ९११ १२३- जौहर मुनज़म फी ज़ियारत क़ब्र अन-नबी अल-अकरम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम - शिहाबुद्दीन अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर अल-मक्की - ९४७ १२४- जज़ब अल-कुलूब इला दियार अल-महबूब - अब्दुल हक़ बिन सैफुद्दीन मुहद्दिस देहलवी - १०५२ १२५- अल-जामि अल-कबीर फिल फतावा - इमाम नासिरुद्दीन मुहम्मद बिन यूसुफ अस-समरकंदी - ५५६

ह

१२६- हाशिया अला अद-दुरर - मुहम्मद बिन मुस्तफ़ा अबू सईद अल-खादिमी - ११७६ १२७- हाशिया इब्न शल्बी अला अत-तब्यीन - अहमद बिन मुहम्मद अल-शल्बी - १०२१ १२८- हाशिया अला अद-दुरर - अब्दुल हलीम बिन मुहम्मद अर-रूमी - १०१३ १२९- हाशिया अला अद-दुरर लि मुल्ला खुसरू - काज़ी मुहम्मद बिन फरामोज़ मुल्ला खुसरू - ८८५

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

۱۰۷- جامع الفصولین - شیخ بدرالدین محمود بن اسرائیل بابن قاضی - ۸۲۳ ۱۰۸- الجامع الکبیر فی فروع الحنفیة - ابی الحسن عبید الله بن حسین الکرخي - ۳۴۰ ۱۰۹- جواهر الاخلاطی - برهان الدین ابراهیم بن ابوبکر الاخلاطی - . ۱۱۰- الجواهر الزکیة - احمد بن ترکی بن احمد المالکی - ۹۸۹ ۱۱۱- جواهر الفتاویٰ - رکن الدین ابوبکر بن محمد بن ابی المفاخر - ۵۶۵ ۱۱۲- الجوهرة النیرة - ابوبکر بن علی بن محمد الحداد الیمنی - ۸۰۰ ۱۱۳- الجرح والتعدیل فی رجال الحدیث - یحییٰ بن معین البغدادی - ۲۳۳ ۱۱۴- الجامع الصغیر في الحدیث - علامہ جلال الدین عبدالرحمن بن ابی بکر السیوطی - ۹۱۱ ۱۱۵- جامع البیان فی تفسیر القرآن (تفسیر طبری) - محمد بن جریر الطبری - ۳۱۰ ۱۱۶- جزء حدیثی حسن بن عرفہ - ابو علی حسن بن عرفہ بغداد - ۲۵۶ ۱۱۷- الجامع لاخلاق الراوی والسامع - ابوبکر احمد بن علی خطیب بغدادی - ۴۶۳ ۱۱۸- جامع احکام الصغار فی الفروع - محمد بن محمود الاستروشنی - ۶۳۶ ۱۱۹- جامع الادویہ والاعذیہ - ضیاء الدین عبدالله بن احمد المالقی - ۶۴۶ ۱۲۰- جواهر العقدین فی فضل الشرفین - نور الدین علی بن احمد السمہودی والمصری - ۹۱۱ ۱۲۱- جواہر خمسہ - محمد غوث بن عبدالله گوالیاری - ۹۷۰ ۱۲۲- جمع الجوامع في الحدیث - ابوبکر جلال الدین عبدالرحمن بن کمال الدین سیوطی - ۹۱۱ ۱۲۳- جوہر منظم فی زیارت قبر النبی الکرم صلی الله علیہ وسلم - شہاب الدین احمد بن محمد ابن حجر المکی - ۹۴۷ ۱۲۴- جذب القلوب الی دیار المحبوب - عبدالحق بن سیف الدین محدث دہلوی - ۱۰۵۲ ۱۲۵- الجامع الکبیر فی الفتاویٰ - امام ناصر الدین محمد بن یوسف السمر قندی - ۵۵۶

ح

١٢٦- حاشية على الدرر - محمد بن مصطفىٰ ابوسعيد الخادمى - ١١٧٦ ١٢٧- حاشية ابن شلبي على التبيين - احمد بن محمد الشلبى - ١٠٢١ ١٢٨- حاشية على الدرر - عبدالحليم بن محمد الرومى - ١٠١٣ ١٢٩- حاشية على الدرر لملا خسرو - قاضى محمد بن فراموز ملا خسرو - ٨٨٥

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

130- Hashiyah 'ala al-Muqaddimah al-'Ashmawiyyah Allama Safati 925 131- Al-Hashiyah li-Sa'di Afandi 'ala al-'Inayah Sa'd Allah bin 'Isa al-Afandi 1143 132- Al-Hadiqah al-Nadiyyah Sharh Tariqah Muhammadiyyah 'Abd al-Ghani al-Nabulsi 600 133- Al-Hawi al-Qudsi Qadi Jamal al-Din Ahmad bin Muhammad Nuh al-Qabisi al-Hanafi 372 134- Hasr al-Masa'il fi al-Furu' Imam Abu al-Layth Nasr bin Muhammad al-Samarqandi al-Hanafi 430 135- Hilyat al-Awliya' fi al-Hadith Abu Nu'aym Ahmad bin 'Abd Allah al-Asbahani 879 136- Hilyat al-Mahalli Sharh Munyat al-Musalli Muhammad bin Muhammad ibn Amir al-Hajj 590 137- Hirz al-Amani wa-Wajh al-Tahani Abu Muhammad Qasim bin Firruh al-Shatibi al-Maliki 682 138- Hayat al-Hayawan al-Kubra lil-Damiri Zakariyya bin Muhammad bin Mahmud al-Qazwini 833 139- Al-Hisn al-Hasin min Kalam Sayyid al-Mursalin (SAW) Shams al-Din Muhammad bin Muhammad ibn al-Jazari 885 140- Hashiyah al-Talwih Mulla Khusraw Muhammad bin Faramuz Mulla Khusraw 668 141- Hashiyah al-Talwih Husayn Chalabi Hasan bin Muhammad Shah al-Fanari Chalabi 1012 142- Hirz Thamin Sharh Hisn Hasin Nur al-Din 'Ali bin Sultan Muhammad al-Qari 1179 143- Hujjat Allah al-Balighah Shah Wali Allah bin Shah 'Abd al-Rahim al-Dahlawi 1179 144- Hashiyah Maktubat Shah Wali Allah Shah Wali Allah bin Shah 'Abd al-Rahim al-Dahlawi 1257 145- Hasr al-Sharid fi Asanid al-Shaykh Muhammad 'Abid al-Sindi 146- Hashiyah al-Kamashri 'ala al-Anwar 147- Hashiyah Kifayat al-Talib al-Rabbani 148- Hashiyah al-Hafni 'ala al-Jami' al-Saghir Allama al-Hafni 149- Al-Hawi lil-Fatawa Jalal al-Din 'Abd al-Rahman bin Kamal al-Din al-Suyuti 911 150- Husn al-Maqsad fi 'Amal al-Mawlid Jalal al-Din 'Abd al-Rahman bin Kamal al-Din al-Suyuti 911

Kha

151- Khizanat al-Riwayat Qadi Jakan al-Hanafi 542 152- Khizanat al-Fatawa Tahir bin Ahmad 'Abd al-Rashid al-Bukhari

Page 648 of 673

फ़तावा रज़विया खंड आठ

१३०- हाशियह अला अल-मुक़द्दमत अल-अशमावियह अल्लामा सफ़्ती ९२५ १३१- अल-हाशियह ली-सादी आफ़ंदी अला अल-इनायह साद अल्लाह बिन ईसा अल-आफ़ंदी ११४३ १३२- अल-हदीक़त अन-नदिय्यह शरह तरीक़ह मोहम्मदियह अब्दुल गनी अल-नाबुलसी ६०० १३३- अल-हावी अल-क़ुदसी क़ाज़ी जमालुद्दीन अहमद बिन मुहम्मद नूह अल-क़ाबिसी अल-हनफ़ी ३७२ १३४- हस्र अल-मसाइल फ़िल फ़ुरू इमाम अबुल लैस नस्र बिन मुहम्मद अस-समरकंदी अल-हनफ़ी ४३० १३५- हिल्यतुल औलिया फ़िल हदीस अबू नुएम अहमद बिन अब्दुल्ला अल-असबहानी ८७९ १३६- हिल्यतुल महल्ली शरह मुन्यतुल मुसल्ली मुहम्मद बिन मुहम्मद इब्न अमीर अल-हाज ५९० १३७- हिर्ज़ अल-अमानी व वज्हुत तहानी अबू मुहम्मद क़ासिम बिन फ़िरह अल-शातबी अल-मालिकी ६८२ १३८- हयातुल हयवान अल-कुबरा ली-दुमैरी ज़करिया बिन मुहम्मद बिन महमूद अल-क़ज़वीनी ८३३ १३९- अल-हिस्न अल-हसीन मिन कलाम सैयिदिल मुरसलीन (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद इब्न अल-जज़री ८८५ १४०- हाशियह अत-तलवीह मुल्ला खुसरो मुहम्मद बिन फ़रामुज़ मुल्ला खुसरो ६६८ १४१- हाशियह अत-तलवीह हुसैन चलबी हसन बिन मुहम्मद शाह अल-फ़नारी चलबी १०१२ १४२- हिर्ज़ समीन शरह हिस्न हसीन नूरुद्दीन अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी ११७९ १४३- हुज्जतुल्लाह अल-बालिग़ा शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी ११७९ १४४- हाशियह मक्तुबात शाह वलीउल्लाह शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी १२५७ १४५- हस्र अल-शारिद फ़ी असानिद अल-शेख़ मुहम्मद आबिद अल-सिंदी १४६- हाशियह अल-कमशरी अलल अनवार १४७- हाशियह किफ़ायत अल-तालिब अल-रब्बानी १४८- हाशियह अल-हफ़नी अलल जामि अल-सग़ीर अल्लामा अल-हफ़नी १४९- अल-हावी लिल फ़तावा जलालुद्दीन अब्दुल रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती ९११ १५०- हुस्न अल-मक़सद फ़ी अमल अल-मौलिद जलालुद्दीन अब्दुल रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती ९११

ख़

१५१- खिज़ानतुल रिवायत क़ाज़ी जगन अल-हनफ़ी ५४२ १५२- खिज़ानतुल फ़तावा ताहिर बिन अहमद अब्दुल रशीद अल-बुख़ारी

पृष्ठ ६४८/६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۱۳۰- حاشیة علی المقدمة العشماویة علّامہ سفطی ۹۲۵ ۱۳۱- الحاشیة لسعدی آفندی علی العنایة سعد اللہ بن عیسیٰ الآفندی ۱۱۴۳ ۱۳۲- الحدیقة الندیة شرح طریقة محمدیة عبدالغنی النابلسی ۶۰۰ ۱۳۳- الحاوی القدسی قاضی جمال الدین احمد بن محمد نوح القابسی الحنفی ۳۷۲ ۱۳۴- حصر المسائل فی الفروع امام ابواللیث نصر بن محمد السمرقندی الحنفی ۴۳۰ ۱۳۵- حلیة الاولیاء فی الحدیث ابونعیم احمد بن عبداللہ الاصبہانی ۸۷۹ ۱۳۶- حلیة المحلی شرح منیة المصلی محمد بن محمد ابن امیر الحاج ۵۹۰ ۱۳۷- حرز الامانی ووجہ التہانی ابو محمد قاسم بن فیرہ الشاطبی المالکی ۶۸۲ ۱۳۸- حیوة الحیوان الکبری للدمیری زکریا بن محمد بن محمود القزوینی ۸۳۳ ۱۳۹- الحصن الحصین من کلام سید المرسلین صلی اللہ علیہ وسلم شمس الدین محمد بن محمد ابن الجزری ۸۸۵ ۱۴۰- حاشیة التلویح ملاخسرو محمد بن فراموز ملا خسرو ۶۶۸ ۱۴۱- حاشیة التلویح حسین چلبی حسن بن محمد شاہ الفناری چلبی ۱۰۱۲ ۱۴۲- حرز ثمین شرح حصن حصین نور الدین علی بن سلطان محمد القاری ۱۱۷۹ ۱۴۳- حجة اللہ البالغہ شاہ ولی اللہ بن شاہ عبد الرحیم الدہلوی ۱۱۷۹ ۱۴۴- حاشیة مکتوبات شاہ ولی اللہ شاہ ولی اللہ بن شاہ عبد الرحیم الدہلوی ۱۲۵۷ ۱۴۵- حصر الشارد فی اسانید الشیخ محمد عابد السندی ۱۴۶- حاشیة الکمشری علی الانوار ۱۴۷- حاشیة کفایة الطالب الربانی ۱۴۸- حاشیة الحفنی علی الجامع الصغیر علامہ الحفنی ۱۴۹- الحاوی للفتاوٰی جلال الدین عبد الرحمن بن کمال الدین السیوطی ۹۱۱ ۱۵۰- حسن المقصد فی عمل المولد جلال الدین عبد الرحمن بن کمال الدین السیوطی ۹۱۱

خ

۱۵۱- خزانة الروايات قاضى جكن الحنفى ۵۴۲ ۱۵۲- خزانة الفتاوىٰ طاہر بن احمد عبد الرشید البخارى

Fatawa Rizvia Volume 8

153- Khazanat al-Muftin — Husayn bin Muhammad al-Sam'ani al-Samiqani — After 740 154- Khulasat al-Dala'il — Husam al-Din Ali bin Ahmad al-Makki al-Razi — 598 155- Khulasat al-Fatawa — Tahir bin Ahmad Abd al-Rashid al-Bukhari — 542 156- Khayrat al-Hissan — Shihab al-Din Ahmad bin Hajar al-Makki — 973 157- Al-Khasa'is al-Kubra — Jalal al-Din Abd al-Rahman bin Kamal al-Din al-Suyuti — 911 158- Khulasat al-Wafa — Ali bin Ahmad al-Samhudi — 911 159- Khaza'in al-Asrar fi Sharh Tanwir al-Absar — Ala al-Din Muhammad bin Ali al-Haskafi — 1088

Dal (د) 160- Al-Diraya Sharh al-Hidaya — Shihab al-Din Ahmad bin Ali ibn Hajar al-Asqalani — 852 161- Al-Durar (Durar al-Hukkam) — Qadi Muhammad bin Faramuz Mulla Khusraw — 885 162- Al-Durr al-Mukhtar fi Sharh Tanwir al-Absar — Ala al-Din al-Haskafi — 1088 163- Al-Durr al-Nathir — Allama Jalal al-Din Abd al-Rahman al-Suyuti — 911 164- Al-Durr al-Manthur fi al-Tafsir bi al-Ma'thur — Allama Jalal al-Din Abd al-Rahman al-Suyuti — 911

Dhal (ذ) 165- Dhakhirat al-Uqba — Yusuf bin Junayd al-Halabi (Chalapi) — 905 166- Dhakhirat al-Fatawa — Burhan al-Din Mahmud bin Ahmad — 616 167- Dhamm al-Ghibat — Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya al-Qurashi — 281

Ra (ر) 168- Al-Rahmaniya — Muhammad Amin Ibn Abidin al-Shami — 1252 169- Radd al-Muhtar — Muhammad Amin Ibn Abidin al-Shami — 1252 170- Rahmat al-Ummah fi Ikhtilaf al-Aimmah — Abu Abdullah Muhammad bin Abd al-Rahman al-Dimashqi — 781 171- Ragha'ib al-Qur'an Abu Marwan — Abd al-Malik bin Habib al-Sulami (al-Qurtubi) — 239

Page 649 of 673

फ़तावा रज़विया आठवाँ खंड

153- खज़ानतुल मुफ़्तीन — हुसैन बिन मुहम्मद अल-समआनी अल-समीकानी — 740 के बाद 154- खुलासतुल दलायिल — हुसामुद्दीन अली बिन अहमद अल-मक्की अल-राज़ी — 598 155- खुलासतुल फ़तावा — ताहिर बिन अहमद अब्दुर रशीद अल-बुखारी — 542 156- खैरातुल हिसान — शहाबुद्दीन अहमद बिन हजर अल-मक्की — 973 157- अल-खसाइसुल कुबरा — जलालुद्दीन अब्दुर रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती — 911 158- खुलासतुल वफ़ा — अली बिन अहमद अल-सम्हूदी — 911 159- खज़ाइनुल असरार फी शरह तनवीरुल अबसार — अलाउद्दीन मुहम्मद बिन अली अल-हसकफी — 1088

द (ऽ) 160- अल-दिराया शरह अल-हिदाया — शहाबुद्दीन अहमद बिन अली इब्न हजर अल-अस्क़लानी — 852 161- अल-दुरर (दुररुल हुक्काम) — क़ाज़ी मुहम्मद बिन फ़रामुज़ मुल्ला खुसरो — 885 162- अद-दुर्रुल मुख्तार फी शरह तनवीरुल अबसार — अलाउद्दीन अल-हसकफी — 1088 163- अद-दुर्रुन नथीर अल्लामा — जलालुद्दीन अब्दुर रहमान अल-सुयूती — 911 164- अद-दुर्रुल मनसूर फ़िल तफ़सीर बिल मसूर — अल्लामा जलालुद्दीन अब्दुर रहमान अल-सुयूती — 911

ज़ (ऽ) 165- जखीरतुल उक़बा — यूसुफ बिन जुनैद अल-हलबी (चलपी) — 905 166- जखीरतुल फ़तावा — बुरहानुद्दीन महमूद बिन अहमद — 616 167- ज़म्मुल ग़ीबत — अब्दुल्ला बिन मुहम्मद इब्न अबि अल-दुनिया अल-क़ुरैशी — 281

र (ऽ) 168- अर-रहमानिया — मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन अल-शामी — 1252 169- रद्दुल मुहतार — मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन अल-शामी — 1252 170- रहमतुल उम्मा फी इख्तिलाफ़िल अइम्मा — अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन अब्दुर रहमान अद-दमिश्की — 781 171- रगाइबुल क़ुरआन अबू मरवान — अब्दुल मलिक बिन हबीब अल-सुलमी (अल-क़ुरतुबी) — 239

पृष्ठ 649 / 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۱۵۳- خزانۃ المفتین — حسین بن محمد السمعانی السمیقانی — ۷۴۰ کے بعد ۱۵۴- خلاصۃ الدلائل — حسام الدین علی بن احمد المکی الرازی — ۵۹۸ ۱۵۵- خلاصۃ الفتاوٰی — طاہر بن احمد عبد الرشید البخاری — ۵۴۲ ۱۵۶- خیرات الحسان — شہاب الدین احمد بن حجر المکی — ۹۷۳ ۱۵۷- الخصائص الکبرٰی — جلال الدین عبد الرحمن بن کمال الدین السیوطی — ۹۱۱ ۱۵۸- خلاصۃ الوفا — علی بن احمد السمہودی — ۹۱۱ ۱۵۹- خزائن الاسرار فی شرح تنویر الابصار — علاء الدین محمد بن علی الحصفکی — ۱۰۸۸

د ۱۶۰- الدرایۃ شرح الہدایۃ — شہاب الدین احمد بن علی ابن حجر العسقلانی — ۸۵۲ ۱۶۱- الدرر (درر الحکام) — قاضی محمد بن فراموز ملا خسرو — ۸۸۵ ۱۶۲- الدر المختار فی شرح تنویر الابصار — علاء الدین الحصفکی — ۱۰۸۸ ۱۶۳- الدر النثیر علامہ — جلال الدین عبد الرحمن السیوطی — ۹۱۱ ۱۶۴- الدر المنثور فی التفسیر بالمأثور — علامہ جلال الدین عبد الرحمن السیوطی — ۹۱۱

ذ ۱۶۵- ذخیرۃ العقبٰی — یوسف بن جنید الحلبی (چلپی) — ۹۰۵ ۱۶۶- ذخیرۃ الفتاوٰی — برہان الدین محمود بن احمد — ۶۱۶ ۱۶۷- ذم الغیبۃ — عبد اللہ بن محمد ابن ابی الدنیا القرشی — ۲۸۱

ر ۱۶۸- الرحمانیۃ — محمد امین ابن عابدین الشامی — ۱۲۵۲ ۱۶۹- ردالمحتار — محمد امین ابن عابدین الشامی — ۱۲۵۲ ۱۷۰- رحمۃ الامۃ فی اختلاف الائمۃ — ابو عبد اللہ محمد بن عبد الرحمن الدمشقی — ۷۸۱ ۱۷۱- رغائب القرآن ابو مروان — عبد الملک بن حبیب السلمی (القرطبی) — ۲۳۹

Fatawa Razawiyya Volume 8

1. Raf' al-Ghisha' fi Waqt al-'Asr wa al-'Isha' | Shaykh Zayn al-Din b. Ibn Nujaym | 970
2. Radd 'ala al-Jahmiyyah | 'Uthman b. Sa'id al-Darimi | 280
3. Risalah Nudhur | Mawlwi Isma'il Dehlvi | 1246 AH, 1831 AD
4. Risalah Qushayriyyah | 'Abd al-Karim b. Hawazin al-Qushayri | 465
5. Ramz al-Haqa'iq Sharh Kanz al-Daqa'iq | Badr al-Din Abu Muhammad Mahmud b. Ahmad al-'Ayni | 855
6. Raf' al-Ishtibah 'an Subul al-Miyah | Qasim b. Qutlubugha al-Misri | 879
7. Risalah Tulu' Thurayya | Jalal al-Din 'Abd al-Rahman b. Kamal al-Din al-Suyuti | 911
8. Risalah Ithaf al-Ghurfah | Jalal al-Din 'Abd al-Rahman b. Kamal al-Din al-Suyuti | 911
9. Rasa'il Ibn Nujaym | Zayn al-Din b. Ibrahim Ibn Nujaym | 970
10. Risalah Ibtida' | 'Ali b. Sultan Muhammad al-Qari | 1012
11. Risalah al-Qawl al-Baligh fi Hukm al-Tabligh | Ahmad b. Sayyid Muhammad Makki al-Hamwi | 1098
12. Risalah Insaf | Shah Wali Allah Dehlvi | 1179
13. Rasa'il Ibn 'Abidin | Muhammad Amin Afandi Ibn 'Abidin | 1252
14. Risalah Milad Mubarak (al-Kawkab al-Anwar 'ala 'Aqd al-Jawhar) | Ja'far Isma'il al-Barzanji | 1317
15. al-Riyad al-Nadirah fi Fada'il al-'Asharah | Abu Ja'far Ahmad b. Ahmad al-Shahir bi-al-Muhibb al-Tabari al-Makki | 694
16. Risalah Bid'at | Miyan Isma'il b. Shah 'Abd al-Ghani Dehlvi 1831 AD | 1246
17. Risalah Du'a'iyyah | Mawlwi Khurram 'Ali |
18. Risalah Ghayat al-Maqal | Abu al-Hasanat Muhammad 'Abd al-Hayy | 1343

Z

1. Zad al-Fuqaha' | Shaykh al-Islam Muhammad b. Ahmad al-Isbijabi (d. late 6th century) |
2. Zad al-Faqir | Kamal al-Din Muhammad b. 'Abd al-Wahid known as Ibn al-Humam | 861
3. Zwabir al-Jawahir | Muhammad b. Muhammad al-Tumurtashi (approx.) | 1016
4. Ziyadat | Imam Muhammad b. Hasan al-Shaybani | 189

5. Zahr al-Nasrayn fi Hadith al-Mu'ammarin | Muhammad b. 'Ali al-Shawkani | 1250

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

1. रफ़ अल-ग़िशा फ़ी वक़्त अल-अस्र वल-इशा | शैख़ ज़ैनुद्दीन इब्न नुजैम | 970
2. रद अल-जहमिया | उस्मान बिन सईद अल-दारिमी | 280
3. रिसाला नुज़ूर | मौलवी इस्माइल देहलवी | 1246 हिजरी, 1831 ई.
4. रिसाला कुशैरिया | अब्दुल करीम बिन हवाज़िन अल-कुशैरी | 465
5. रम्ज़ अल-हकाइक़ शरह कंज़ अद-दकाइक़ | बदरुद्दीन अबू मुहम्मद महमूद बिन अहमद अल-ऐनी | 855
6. रफ़ अल-इश्तिबाह अन सुबुल अल-मिया | क़ासिम बिन क़ुतलुबुग़ा अल-मिस्री | 879
7. रिसाला तुलूअ सुरैया | जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती | 911
8. रिसाला इतहाफ़ अल-ग़ुरफ़ा | जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती | 911
9. रसाईल इब्न नुजैम | ज़ैनुद्दीन बिन इब्राहीम इब्न नुजैम | 970
10. रिसाला इब्तिदा | अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-कारी | 1012
11. रिसाला अल-क़ौल अल-बलीग़ फ़ी हुक्म अत-तबलीग़ | अहमद बिन सय्यद मुहम्मद मक्की अल-हमवी | 1098
12. रिसाला इंसाफ़ | शाह वलीउल्लाह देहलवी | 1179
13. रसाईल इब्न आबिदीन | मुहम्मद अमीन आफ़ंदी इब्न आबिदीन | 1252
14. रिसाला मीलाद मुबारक (अल-कौकब अल-अनवार अली अक़द अल-जौहर) | जाफ़र इस्माइल अल-बरज़ंजी | 1317
15. अर-रियाज़ अल-नज़रा फ़ी फ़ज़ाइल अल-अशरा | अबू जाफ़र अहमद बिन अहमद अल-शहीर बिल-मुहिब अत-तबरी अल-मक्की | 694
16. रिसाला बिदअत | मियां इस्माइल बिन शाह अब्दुल ग़नी देहलवी 1831 ई. | 1246
17. रिसाला दुआइया | मौलवी खुर्रम अली |
18. रिसाला ग़ायत अल-मक़ाल | अबुल हसनात मुहम्मद अब्दुल हई | 1343

ज़

1. ज़ाद अल-फ़ुक़हा | शैखुल इस्लाम मुहम्मद बिन अहमद अल-असबीजाबी (वफ़ात छठी सदी के अंत में) |

2. ज़ाद अल-फ़क़ीर | कमालुद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुल वाहिद मारूफ़ ब-इब्न अल-हुमाम | 861
3. ज़वाबिर अल-जवाहर | मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-तुमुर्ताशी (लगभग) | 1016
4. ज़ियादात | इमाम मुहम्मद बिन हसन अल-शैबानी | 189
5. ज़ह्र अल-नसरैन फ़ी हदीस अल-मुअम्मरीन | मुहम्मद बिन अली अल-शौकानी | 1250

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

۱۷۲۔ رفع الغشاء فی وقت العصر والعشاء | شیخ زین الدین با بن نجیم | ۹۷۰ ۱۷۳۔ رد علی الجہمیۃ | عثمان بن سعید الدارمی | ۲۸۰ ۱۷۴۔ رسالہ نذور | مولوی اسمعیل دہلوی | ۱۲۴۶ ھ ۱۸۳۱ء ۱۷۵۔ رسالہ قشیریہ | عبدالکریم بن ہوازن القشیری | ۴۶۵ ۱۷۶۔ رمز الحقائق شرح کنز الدقائق | بدرالدین ابومحمد محمود بن احمد العینی | ۸۵۵ ۱۷۷۔ رفع الاشتباہ عن سبل المیاہ | قاسم بن قطلوبغا المصری | ۸۷۹ ۱۷۸۔ رسالہ طلوع ثریا | جلال الدین عبدالرحمن بن کمال الدین السیوطی | ۹۱۱ ۱۷۹۔ رسالہ اتحاف الغرفہ | جلال الدین عبدالرحمن بن کمال الدین السیوطی | ۹۱۱ ۱۸۰۔ رسائل ابن نجیم | زین الدین بن ابراہیم ابن نجیم | ۹۷۰ ۱۸۱۔ رسالہ ابتداء | علی بن سلطان محمد القاری | ۱۰۱۲ ۱۸۲۔ رسالہ القول البلیغ فی حکم التبلیغ | احمد بن سید محمد مکی الحموی | ۱۰۹۸ ۱۸۳۔ رسالہ انصاف | شاہ ولی اللہ دہلوی | ۱۱۷۹ ۱۸۴۔ رسائل ابن عابدین | محمد امین آفندی ابن عابدین | ۱۲۵۲ ۱۸۵۔ رسالہ میلاد مبارک (الکوکب الانوار علی عقد الجوہر) | جعفر اسمعیل البرزنجی | ۱۳۱۷ ۱۸۶۔ الریاض النضرۃ فی فضائل العشرہ | ابو جعفر احمد بن احمد الشہیر بالمحب الطبری المکی | ۶۹۴ ۱۸۷۔ رسالہ بدعت | میاں اسمعیل بن شاہ عبدالغنی دہلوی ۱۸۳۱ء | ۱۲۴۶ ۱۸۸۔ رسالہ دعائیہ | مولوی خرم علی | ۱۸۹۔ رسالہ غایۃ المقال | ابوالحسنات محمد عبدالحی | ۱۳۴۳

ز

۱۹۰۔ زاد الفقہاء | شیخ الاسلام محمد بن احمد الاسبیجابی المتوفی اواخر القرن السادس | ۱۹۱۔ زاد الفقیر | کمال الدین محمد بن عبد الواحد المعروف بابن الہمام | ۸۶۱ ۱۹۲۔ زوابر الجواہر | محمد

بن محمد التمرتاشی تقریباً | ۱۰۱۶ ۱۹۳۔ زیادات | امام محمد بن حسن الشیبانی | ۱۸۹ ۱۹۴۔ زہر النسرین فی حدیث المعمرین | محمد بن علی الشوکانی | ۱۲۵۰

Fatawa Razawiya Volume 8

195- Zahr al-Ruba 'ala al-Mujtaba | Jalal al-Din Abd al-Rahman al-Suyuti | 911 196- Zahr al-Rawd fi Mas'alat al-Hawd | Muhammad bin Abdullah ibn Shuhnah | 921 197- Al-Zawajir 'an al-Kaba'ir | Shihab al-Din Ahmad bin Muhammad ibn Hajar al-Makki | 974 198- Zubdat al-Athar fi Akhbar Qutb al-Akhbar | Shaikh Abd al-Haq Muhaddith Dehlawi | 1252 199- Zubdat al-Asrar fi Manaqib Ghawth al-Abrar | Shaikh Abd al-Haq Muhaddith Dehlawi | 1252

S (Section) 200- Al-Siraj al-Wahhaj | Abu Bakr bin Ali bin Muhammad al-Haddad al-Yamani | 800 201- Al-Sunan li-ibn Majah | Abu Abdullah Muhammad bin Yazid ibn Majah | 273 202- Al-Sunan li-ibn Mansur | Sa'id bin Mansur al-Khurasani | 273 203- Al-Sunan li-Abi Dawud | Abu Dawud Sulayman bin Ash'ath | 275 204- Al-Sunan li-l-Nasa'i | Abu Abd al-Rahman Ahmad bin Shu'ayb al-Nasa'i | 303 205- Al-Sunan li-l-Bayhaqi | Abu Bakr Ahmad bin Husayn bin Ali al-Bayhaqi | 458 206- Al-Sunan li-Daraqutni | Ali bin Umar al-Daraqutni | 385 207- Al-Sunan li-Darimi | Abd Allah bin Abd al-Rahman al-Darimi | 255 208- Sirat ibn Hisham | Abu Muhammad Abd al-Malik bin Hisham | 213 209- Sirat 'Uyun al-Athar | Muhammad bin Abdullah ibn Sayyid al-Nas | 737 210- Siraji fi al-Mirath | Siraj al-Din Sajawandi (7th Century Hijri) | 211- Siyar A'lam al-Nubala | Shams al-Din Muhammad Ahmad al-Dhahabi | 738 212- Al-Si'ayah fi Kashf ma fi Sharh al-Wiqayah | Muhammad bin Abd al-Hayy Lakhnawi | 1304 213- Sirat 'Umar bin Muhammad Mulla | Umar bin Muhammad Mulla | 214- Sirat ibn Ishaq | Muhammad bin Ishaq bin Yasar | 151 215- Siraj al-Qari | | 216- Al-Sa'diyah | | 217- Al-Sa'y al-Mashkur fi Radd al-Madhhab al-Ma'thur | Muhammad bin Abd al-Hayy Lakhnawi Hindi | 1304

Page 651 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

195- ज़हर अर-रुबा अल-मुज्तबा | जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान अल-सुयूती | 911 196- ज़हर अर-रौज़ फ़ी मसअला-ए-हौज़ | मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह इब्न शुहना | 921 197- अल-ज़वाजिर अनिल कबा'इर | शहाबुद्दीन अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर अल-मक्की | 974 198- ज़ुबदतुल आसार फ़ी अख़बार.क़ुब्बुल अख़बार | शेख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी | 1252 199- ज़ुबदतुल असरार फ़ी मनाक़िब ग़ौसुल अबरार | शेख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी | 1252

स (अनुभाग) 200- अल-सिराज अल-वहाज | अबू बक्र बिन अली बिन मुहम्मद अल-हद्दाद अल-यमनी | 800 201- अल-सुनन लि-इब्न माजा | अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन यज़ीद इब्न माजा | 273 202- अल-सुनन लि-इब्न मंसूर | सईद बिन मंसूर अल-ख़ुरासानी | 273 203- अल-सुनन लि-अबी दाऊद | अबू दाऊद सुलैमान बिन अश्अस | 275 204- अल-सुनन लिन-नसाई | अबू अब्दुर्रहमान अहमद बिन शुऐब अन-नसाई | 303 205- अल-सुनन लिल-बैहक़ी | अबू बक्र अहमद बिन हुसैन बिन अली अल-बैहक़ी | 458 206- अल-सुनन लि-दारक़ुत्नी | अली बिन उमर अद-दारक़ुत्नी | 385 207- अल-सुनन लि-दारिमी | अब्दुल्लाह बिन अब्दुर्रहमान अद-दारिमी | 255 208- सीरत इब्न हिशाम | अबू मुहम्मद अब्दुल मलिक बिन हिशाम | 213 209- सीरत उयून अल-असर | मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह इब्न सैय्यिद उन-नास | 737 210- सिराजी फ़िल मीरास | सिराजुद्दीन सजावंदी (सातवीं सदी हिजरी) | 211- सियर आलाम उन-नुबला | शम्सुद्दीन मुहम्मद अहमद अल-ज़हबी | 738 212- अल-सि'आया फ़ी कश्फ़ मा फ़ी शरह अल-विक़ाया | मुहम्मद बिन अब्दुल हई लखनवी | 1304 213- सीरत उमर बिन मुहम्मद मुल्ला | उमर बिन मुहम्मद मुल्ला | 214- सीरत इब्न इसहाक़ | मुहम्मद बिन इसहाक़ बिन यसार | 151 215- सिराज अल-क़ारी | | 216- अल-सा'दिया | | 217- अस-सई अल-मश्कूर फ़ी रद्द अल-मज़हब अल-मासूर | मुहम्मद बिन अब्दुल हई लखनवी हिंदी | 1304

पृष्ठ 651/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

۱۹۵- زهر الربى على المجتبى | جلال الدين عبدالرحمن السيوطى | ۹۱۱ ۱۹۶- زهر الروض في مسئلة الحوض | محمد بن عبدالله ابن شحنہ | ۹۲۱ ۱۹۷- الزواجر عن الكبائر | شہاب الدين احمد بن محمد ابن حجر المكى | ۹۷۴ ۱۹۸- زبدة الآثار في اخبار قطب الاخبار | شيخ عبدالحق محدث دہلوى | ۱۲۵۲ ۱۹۹- زبدة الاسرار فى مناقب غوث الابرار | شيخ عبدالحق محدث دہلوى | ۱۲۵۲

س ۲۰۰- السراج الوہاج | ابوبكر بن على بن محمد الحداد اليمنى | ۸۰۰ ۲۰۱- السنن لابن ماجة | ابو عبدالله محمد بن يزيد ابن ماجہ | ۲۷۳ ۲۰۲- السنن لابن منصور | سعيد بن منصور الخراسانى | ۲۷۳ ۲۰۳- السنن لابى داؤد | ابوداؤد سليمان بن اشعث | ۲۷۵ ۲۰۴- السنن للنسائى | ابو عبدالرحمن احمد بن شعيب النسائى | ۳۰۳ ۲۰۵- السنن للبيہقى | ابوبكر احمد بن حسين بن على البيہقى | ۴۵۸ ۲۰۶- السنن لدار قطنى | على بن عمر الدار قطنى | ۳۸۵ ۲۰۷- السنن لدارمى | عبد الله بن عبد الرحمن الدارمى | ۲۵۵ ۲۰۸- سيرت ابن ہشام | ابو محمد عبد الملک بن ہشام | ۲۱۳ ۲۰۹- سيرت عيون الاثر | محمد بن عبد الله ابن سيد الناس | ۷۳۷ ۲۱۰- سراجى فى الميراث | سراج الدين سجاوندى (ساتويں صدى ہجرى) | ۲۱۱- سير اعلام النبلاء | شمس الدين محمد احمد الذہبى | ۷۳۸ ۲۱۲- السعايہ فى كشف مافى شرح الوقايہ | محمد بن عبد الحى لكھنوى | ۱۳۰۴ ۲۱۳- سيرت عمر بن محمد ملا | عمر بن محمد ملا | ۲۱۴- سيرت ابن اسحاق | محمد بن اسحاق بن يسار | ۱۵۱ ۲۱۵- سراج القارى | | ۲۱۶- السعديہ | | ۲۱۷- السعى المشكور فى رد المذہب الماثور | محمد بن عبد الحى لكھنوى ہندى | ۱۳۰۴

Volume 8 Fatawa Rizwia

Shin 218- Al-Shafi - Shams al-Aimmah Abdullah bin Mahmood al-Kardari - 973 219- Sharh al-Arba'in li'l-Nawawi - Shihab al-Din Ahmad bin Hajar al-Makki - 1106 220- Sharh al-Arba'in li'l-Nawawi - Ibrahim ibn Atiyyah al-Maliki - 978 221- Sharh al-Arba'in li'l-Nawawi - Allama Ahmad bin al-Hijazi - 1099 222- Sharh al-Ashbah wa al-Naza'ir - Ibrahim bin Husain bin Ahmad bin Muhammad bin al-Biri - 592 223- Sharh al-Jami' al-Saghir - Imam Qadhi Khan Husain bin Mansur - 1062 224- Sharh al-Durar - Sheikh Ismail bin Abdul Ghani al-Nabulsi - 1052 225- Sharh Safar al-Sa'adah - Sheikh Abdul Haq Muhaddith Dehlavi - 516 226- Sharh al-Sunnah - Husain bin Mansur al-Baghawi - 931 227- Sharh Shari'at al-Islam - Yaqub bin Sayyidi Ali Zadah - 480 228- Sharh Mukhtasar al-Tahawi li'l-Isbijabi - Abu Nasr Ahmad bin Mansur al-Hanafi al-Isbijabi - 676 229- Sharh al-Gharibayn - 321 230- Sharh al-Muslim li'l-Nawawi - Sheikh Abu Zakariya Yahya bin Sharaf al-Nawawi - 921 231- Sharh Ma'ani al-Athar - Abu Ja'far Ahmad bin Muhammad al-Tahawi - 1252 232- Sharh al-Manzumah li-ibn Wahban - Abdul Barr bin Muhammad ibn Shihnah - 911 233- Sharh al-Manzumah fi Rasm al-Mufti - Muhammad Amin ibn Abidin al-Shami - 1122 234- Sharh al-Sudur bi-Sharh Hal al-Mawta wa al-Qubur - Allama Jalal al-Din Abdur Rahman al-Suyuti - 1122 235- Sharh Mawahib al-Laduniyah - Allama Muhammad bin Abdul Baqi al-Zarqani - 676 236- Sharh Muwatta Imam Malik - Allama Muhammad bin Abdul Baqi al-Zarqani - 932 237- Sharh al-Muhadhdhab li'l-Nawawi - Sheikh Abu Zakariya Yahya bin Sharaf al-Nawawi - 747 238- Sharh al-Nuqayah - Maulana Abdul Ali al-Barjandi - 890 239- Sharh al-Wiqayah - Sadr al-Shariah Ubaidullah bin Masud 240- Sharh al-Hidayah - Muhammad bin Muhammad bin Muhammad ibn Shihnah

Page 652 of 673

भाग 8 फ़तावा रिज़विया

श 218- अल-शाफी - शम्स अल-अइम्मा अब्दुल्ला बिन महमूद अल-करदरी - 973 219- शरह अल-अरबईन लिल-नवावी - शिहाब अल-दीन अहमद बिन हजर अल-मक्की - 1106 220- शरह अल-अरबईन लिल-नवावी - इब्राहिम इब्न अतिया अल-मालिकी - 978 221- शरह अल-अरबईन लिल-नवावी - अल्लामा अहमद बिन अल-हिजाजी - 1099 222- शरह अल-अश्बाह व अन-नज़ैर - इब्राहिम बिन हुसैन बिन अहमद बिन मुहम्मद बिन अल-बीरी - 592 223- शरह अल-जामि अल-सगीर - इमाम क़ाज़ी खान हुसैन बिन मंसूर - 1062 224- शरह अद-दुरर - शेख इस्माइल बिन अब्दुल गनी अल-नाबुलसी - 1052 225- शरह सफर अस-सआदत - शेख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी - 516 226- शरह अस-सुन्नह - हुसैन बिन मंसूर अल-बगवी - 931 227- शरह शरीअत अल-इस्लाम - याकूब बिन सैय्यदी अली ज़ादा - 480 228- शरह मुख्तसर अल-तहावी लिल-इस्बीजाबी - अबू नस्र अहमद बिन मंसूर अल-हनफी अल-इस्बीजाबी - 676 229- शरह अल-ग़रीबैन - 321 230- शरह अल-मुस्लिम लिल-नवावी - शेख अबू ज़करिया यहया बिन शरफ़ अल-नवावी - 921 231- शरह मानी अल-आसार - अबू जफ़र अहमद बिन मुहम्मद अल-तहावी - 1252 232- शरह अल-मंज़ूमा लि-इब्न वहबान - अब्दुल बर्र बिन मुहम्मद इब्न शिहना - 911 233- शरह अल-मंज़ूमा फी रस्म अल-मुफ्ती - मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन अल-शामी - 1122 234- शरह अस-सुदूर बि-शरह हाल अल-मौता व अल-कुबूर - अल्लामा जलाल अल-दीन अब्दुर रहमान अल-सुयुती - 1122 235- शरह मवाहिब अल-लदुनिया - अल्लामा मुहम्मद बिन अब्दुल बाक़ी अल-ज़रक़ानी - 676 236- शरह मुवत्ता इमाम मालिक - अल्लामा मुहम्मद बिन अब्दुल बाक़ी अल-ज़रक़ानी - 932 237- शरह अल-मुहज्ज़ब लिल-नवावी - शेख अबू ज़करिया यहया बिन शरफ़ अल-नवावी - 747 238- शरह अल-नुक़ाया - मौलाना अब्दुल अली अल-बरजंदी - 890 239- शरह अल-विक़ाया - सद्र अल-शरीअह उबैदुल्लाह बिन मसूद 240- शरह अल-हिदाया - मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन मुहम्मद इब्न शिहना

पेज 652 का 673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

ش ۲۱۸۔ الشافی - شمس الائمہ عبداللہ بن محمود الکردری - ۹۷۳ ۲۱۹۔ شرح الاربعین للنووی - شہاب الدین احمد بن حجر المکی - ۱۱۰۶ ۲۲۰۔ شرح الاربعین للنووی - ابراہیم ابن عطیہ المالکی - ۹۷۸ ۲۲۱۔ شرح الاربعین للنووی - علامہ احمد بن الحجازی - ۱۰۹۹ ۲۲۲۔ شرح الاشباہ والنظائر - ابراہیم بن حسین بن احمد بن محمد بن البیری - ۵۹۲ ۲۲۳۔ شرح الجامع الصغیر - امام قاضی خان حسین بن منصور - ۱۰۶۲ ۲۲۴۔ شرح الدرر - شیخ اسمعیل بن عبدالغنی النابلسی - ۱۰۵۲ ۲۲۵۔ شرح سفر السعادۃ - شیخ عبدالحق المحدث الدہلوی - ۵۱۶ ۲۲۶۔ شرح السنۃ - حسین بن منصور البغوی - ۹۳۱ ۲۲۷۔ شرح شرعۃ الاسلام - یعقوب بن سیدی علی زادہ - ۴۸۰ ۲۲۸۔ شرح مختصر الطحاوی للاسبیجابی - ابونصر احمد بن منصور الحنفی الاسبیجابی - ۶۷۶ ۲۲۹۔ شرح الغریبین - ۳۲۱ ۲۳۰۔ شرح المسلم للنووی - شیخ ابوزکریا یحیی بن شرف النووی - ۹۲۱ ۲۳۱۔ شرح معانی الاثار - ابوجعفر احمد بن محمد الطحاوی - ۱۲۵۲ ۲۳۲۔ شرح المنظومۃ لابن وہبان - عبدالبر بن محمد ابن شحنۃ - ۹۱۱ ۲۳۳۔ شرح المنظومۃ فی رسم المفتی - محمد امین ابن عابدین الشامی - ۱۱۲۲ ۲۳۴۔ شرح الصدور بشرح حال الموتی والقبور - علامہ جلال الدین عبدالرحمن السیوطی - ۱۱۲۲ ۲۳۵۔ شرح مواہب اللدنیہ - علامۃ محمد بن عبدالباقی الزرقانی - ۶۷۶ ۲۳۶۔ شرح مؤطا امام مالك - علامۃ محمد بن عبدالباقی الزرقانی - ۹۳۲ ۲۳۷۔ شرح المہذب للنووی - شیخ ابوزکریا یحیی بن شرف النووی - ۷۴۷ ۲۳۸۔ شرح النقایۃ - مولانا عبدالعلی البرجندی - ۸۹۰ ۲۳۹۔ شرح الوقایۃ - صدر الشریعہ عبیداللہ بن مسعود ۲۴۰۔ شرح الہدایۃ - محمد بن محمد بن محمد ابن شحنۃ

Volume Eight Fatawa Rizvia

1. Sharh al-Hidayah --- Muhammad ibn Muhammad ibn Muhammad Ibn Shuhnah --- 890
2. Shir'at al-Islam --- Imam al-Islam Muhammad ibn Abi Bakr --- 573
3. Shu'ab al-Iman --- Abu Bakr Ahmad ibn Husayn ibn Ali al-Bayhaqi --- 458
4. Sharh al-Jami' al-Saghir --- Ahmad ibn Mansur al-Hanafi al-Isbijabi --- 480
5. Sharh al-Jami' al-Saghir --- Umar ibn Abd al-Aziz al-Hanafi --- 536
6. Al-Shifa fi Ta'rif Huquq al-Mustafa (SAW) --- Abu'l-Fadl Iyad ibn Musa al-Qadi --- 544
7. Sharh Shafiyah Ibn Hajib --- Radi al-Din Muhammad ibn al-Hasan al-Astarabadi --- 686
8. Sharh Kafiyah Ibn Hajib --- Radi al-Din Muhammad ibn al-Hasan al-Astarabadi --- 686
9. Sharh Tawali' al-Anwar --- Mahmud ibn Abd al-Rahman al-Isfahani --- 739
10. Shifa al-Siqam fi Ziyarat Khayr al-Anam --- Taqi al-Din Ali ibn Abd al-Kafi al-Subki --- 756
11. Sharh 'Aqa'id al-Nasafi --- Sa'd al-Din Mas'ud ibn Umar al-Taftazani --- 792
12. Sharh al-Maqasid Sa'd al-Din --- Mas'ud ibn Umar al-Taftazani --- 792
13. Sharh al-Mawaqif --- Sayyid Sharif Ali ibn Muhammad al-Jurjani --- 816
14. Sharh al-Siraji --- Sayyid Sharif Ali ibn Muhammad al-Jurjani --- 816
15. Sharh Chaghmayni --- Musa Pasha ibn Muhammad al-Rumi --- 841
16. Sharh Hashiyah al-Kanz Mulla Miskin --- Mu'in al-Din al-Harawi Mulla Miskin --- 952
17. Sharh Fiqh al-Akbar --- Ali ibn Sultan Muhammad al-Qari --- 1012
18. Sharh 'Ayn al-'Ilm --- Ali ibn Sultan Muhammad al-Qari --- 1012
19. Sharh Qasidah Atyab al-Nagham --- Shah Wali Allah ibn Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi --- 1179
20. Sharh Qasidah Hamziyyah --- Shah Wali Allah ibn Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi --- 1179
21. Sharh Ruba'iyat --- Shah Wali Allah ibn Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi --- 1179
22. Sharh Fawatih al-Rahamut --- Shah Wali Allah ibn Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi --- 1179
23. Shifa al-'Alil --- Shah Wali Allah ibn Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi --- 1179
24. Sharh al-Niqayah li-Abi'l-Makarim --- Abu'l-Makarim ibn Abdullah ibn Muhammad --- 907

25. Sharaf al-Mustafa --- Hafiz Abd al-Malik ibn Muhammad Nishapuri --- 406
26. Sharh Muqaddimah 'Ashmawiyyah --- Ahmad ibn Turki al-Maliki

खंड आठ फतावा रिज़विया

1. शरह अल-हिदाया --- मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन मुहम्मद इब्न शुहना --- 890
2. शिरअतुल इस्लाम --- इमामुल इस्लाम मुहम्मद बिन अबी बक्र --- 573
3. शुअबुल ईमान --- अबू बक्र अहमद बिन हुसैन बिन अली अल-बैहकी --- 458
4. शरह अल-जामी अस-सगीर --- अहमद बिन मंसूर अल-हनफ़ी अल-असबीजाबी --- 480
5. शरह अल-जामी अस-सगीर --- उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ अल-हनफ़ी --- 536
6. अल-शिफ़ा फ़ी तअरीफ़ हुक़ूक़ अल-मुस्तफ़ा (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) --- अबुल फ़ज़ल अयाज़ बिन मूसा अल-क़ाज़ी --- 544
7. शरह शाफ़िया इब्न हाजिब --- रज़ीउद्दीन मुहम्मद बिन अल-हसन अल-अस्तराबादी --- 686
8. शरह काफ़िया इब्न हाजिब --- रज़ीउद्दीन मुहम्मद बिन अल-हसन अल-अस्तराबादी --- 686
9. शरह तवाली' अल-अनवार --- महमूद बिन अब्दुल रहमान अल-इसफ़हानी --- 739
10. शिफ़ा अल-सिकाम फ़ी ज़ियारत खैर अल-अनाम --- तक़ीउद्दीन अली बिन अब्दुल काफ़ी अल-सुबकी --- 756
11. शरह अकायद अन-नसफ़ी --- साद उद्दीन मसूद बिन उमर तफ़्ताज़ानी --- 792
12. शरह अल-मक़ासिद साद उद्दीन --- मसूद बिन उमर तफ़्ताज़ानी --- 792
13. शरह अल-मवाक़िफ़ --- सैय्यद शरीफ़ अली बिन मुहम्मद अल-जुरजानी --- 816
14. शरह अल-सिराजी --- सैय्यद शरीफ़ अली बिन मुहम्मद अल-जुरजानी --- 816
15. शरह चग़मीनी --- मूसा पाशा बिन मुहम्मद अल-रूमी --- 841
16. शरह हाशिया अल-कंज़ मुल्ला मिस्कीन --- मुईन उद्दीन अल-हरवी मुल्ला मिस्कीन --- 952
17. शरह फ़िक़्ह अल-अकबर --- अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी --- 1012
18. शरह ऐन अल-इल्म --- अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी --- 1012
19. शरह क़सीदा अतयब अल-नग़म --- शाह वली उल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी --- 1179
20. शरह क़सीदा हमज़िया --- शाह वली उल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी --- 1179
21. शरह रुबाइयात --- शाह वली उल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी --- 1179
22. शरह फ़वातिह अर-रहमूत --- शाह वली उल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी --- 1179
23. शिफ़ा अल-अलील --- शाह वली उल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी --- 1179

24. शरह अल-निकाया ली-अबिल मकारिम --- अबुल मकारिम बिन अब्दुल्ला बिन मुहम्मद --- 907
25. शरफ़ अल-मुस्तफ़ा --- हाफ़िज़ अब्दुल मलिक बिन मुहम्मद निशापुरी --- 406
26. शरह मुक़द्दमा अश्माविया --- अहमद बिन तुर्की अल-मालिकी

पृष्ठ 653/673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

۲۴۰۔ شرح الہدایۃ --- محمد بن محمد بن محمد ابن شحنہ --- ۸۹۰ ۲۴۱۔ شرعۃ الاسلام --- امام الاسلام محمد بن ابی بکر --- ۵۷۳ ۲۴۲۔ شعب الایمان --- ابوبکر احمد بن حسین بن علی البیہقی --- ۴۵۸ ۲۴۳۔ شرح الجامع الصغیر --- احمد بن منصور الحنفی الاسبیجابی --- ۴۸۰ ۲۴۴۔ شرح الجامع الصغیر --- عمر بن عبدالعزیز الحنفی --- ۵۳۶ ۲۴۵۔ الشفاء فی تعریف حقوق المصطفیٰ صلی اللہ علیہ وسلم --- ابوالفضل عیاض بن موسیٰ قاضی --- ۵۴۴ ۲۴۶۔ شرح شافیہ ابن حاجب --- رضی الدین محمد بن الحسن الاستراباذی --- ۶۸۶ ۲۴۷۔ شرح کافیہ ابن حاجب --- رضی الدین محمد بن الحسن الاستراباذی --- ۶۸۶ ۲۴۸۔ شرح طوالع الانوار --- محمود بن عبدالرحمان الاصفہانی --- ۷۳۹ ۲۴۹۔ شفاء السقام فی زیارۃ خیر الانام --- تقی الدین علی بن عبدالکافی السبکی --- ۷۵۶ ۲۵۰۔ شرح عقائد النسفی --- سعدالدین مسعود بن عمر تفتازانی --- ۷۹۲ ۲۵۱۔ شرح المقاصد سعدالدین --- مسعود بن عمر تفتازانی --- ۷۹۲ ۲۵۲۔ شرح المواقف --- سید شریف علی بن محمد الجرجانی --- ۸۱۶ ۲۵۳۔ شرح السراجی --- سید شریف علی بن محمد الجرجانی --- ۸۱۶ ۲۵۴۔ شرح چغبینی --- موسیٰ پاشا بن محمد الرومی --- ۸۴۱ ۲۵۵۔ شرح حاشیۃ الکنز ملا مسکین --- معین الدین الہروی ملا مسکین --- ۹۵۲ ۲۵۶۔ شرح فقہ اکبر --- علی بن سلطان محمد القاری --- ۱۰۱۲ ۲۵۷۔ شرح عین العلم --- علی بن سلطان محمد القاری --- ۱۰۱۲ ۲۵۸۔ شرح قصیدہ اطیب النغم --- شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی --- ۱۱۷۹ ۲۵۹۔ شرح قصیدہ ہمزیہ --- شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی --- ۱۱۷۹ ۲۶۰۔ شرح رباعیات --- شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی --- ۱۱۷۹ ۲۶۱۔ شرح فواتح الرحموت --- شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی --- ۱۱۷۹ ۲۶۲۔ شفاء العلیل --- شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی --- ۱۱۷۹ ۲۶۳۔ شرح النقایہ لابی المکارم --- ابوالمکارم بن عبد

الله بن محمد بعد از --- ۹۰۷ ۲۶۴۔ شرف المصطفیٰ --- حافظ عبدالملک بن محمد نیشاپوری --- ۴۰۶

۲۶۵۔ شرح مقدمہ عشماویہ --- احمد بن ترکی المالکی

Volume Eight Fatawa Razawiya

264- Sharaf al-Mustafa - Hafiz Abdul Malik bin Muhammad Nishapuri - 406 266- Sharh Jami' al-Usul lil-Mudif - Mubarak bin Muhammad, known as Ibn al-Athir al-Jazari - 686 267- Sharh al-Multaqa lil-Bahnasi - Muhammad bin Muhammad, known as Ibn al-Bahnasi - 987 268- Sharh Durar al-Bihar - Abdul Wahhab ibn Ahmad, known as Ibn Wahban - 768

Letter: S (Sad) 269- Sahah al-Jawhari - Ismail bin Hammad al-Jawhari - 393 270- Sahih Ibn Hibban (Kitab al-Taqsim wa al-Anwa') - Muhammad bin Hibban - 352 271- Sahih Ibn Khuzaymah - Muhammad bin Ishaq ibn Khuzaymah - 311 272- Al-Surah - Abu al-Fadl Muhammad bin Umar bin Khalid al-Qurashi (approx.) - 690 273- Sagheri Sharh Munyah - Ibrahim al-Halabi - 952 274- Sirat-e-Mustaqim - Sayyid Ahmad Shaheed Bareilly - 1226 275- Al-Sawa'iq al-Muhriqah - Shihab al-Din Ahmad bin Hajar al-Makki - 973

Letter: T (Ta) 276- Al-Tahtawi 'ala al-Durr - Sayyid Ahmad al-Tahtawi - 1302 277- Al-Tahtawi 'ala al-Maraqi - Sayyid Ahmad al-Tahtawi - 1302 278- Tabaqat al-Muqri'in - Muhammad bin Ahmad al-Dhahabi - 748 279- Tabaqat al-Qurra - Muhammad bin Muhammad al-Jazari - 833 280- Al-Tariqah al-Muhammadiyyah - Muhammad bin Bir Ali, known as Birgili - 981 281- Tolabat al-Tolaba - Najm al-Din Umar bin Muhammad al-Nasafi - 537

Letter: 'A (Ayn) 282- Umdat al-Qari Sharh Sahih al-Bukhari - Allama Badr al-Din Abi Muhammad Mahmud bin Ahmad al-Ayni - 855 283- Al-Inayah Sharh al-Hidayah - Akmal al-Din Muhammad bin Muhammad al-Babarti - 786 284- Inayat al-Qadi Hashiyah 'ala Tafsir al-Baydawi - Shihab al-Din al-Khafaji - 1069

Page 654 of 673

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

264- शराफ़ अल-मुस्तफा - हाफ़िज़ अब्दुल मलिक बिन मोहम्मद निशापुरी - 406 266- शरह जामे अल-उसूल लिल-मुदीफ़ - मुबारक बिन मोहम्मद, जिन्हें इब्न अल-असीर अल-जज़री के नाम से जाना जाता है - 686 267- शरह अल-मुल्तका लिल-बहनसी - मोहम्मद बिन मोहम्मद, जिन्हें इब्न अल-बहनसी के नाम से जाना जाता है - 987 268- शरह दुरार अल-बिहार - अब्दुल वहाब इब्न अहमद, जिन्हें इब्न वहबान के नाम से जाना जाता है - 768

अक्षर: स (साद) 269- सहह अल-जौहरी - इस्माइल बिन हम्माद अल-जौहरी - 393 270- सहीह इब्न हिब्बान (किताब अल-तक़सीम वल-अनवा) - मोहम्मद बिन हिब्बान - 352 271- सहीह इब्न खुज़ैमा - मोहम्मद बिन इसहाक इब्न खुज़ैमा - 311 272- अल-सुराह - अबू अल-फ़ज़ल मोहम्मद बिन उमर बिन खालिद अल-कुरशी (लगभग) - 690 273- सगीरी शरह मुन्याह - इब्राहिम अल-हलबी - 952 274- सिरात-ए-मुस्तकीम - सैय्यद अहमद शहीद बरेलवी - 1226 275- अल-सवाइक़ अल-मुहरिक़ा - शिहाब अल-दीन अहमद बिन हजर अल-मक्की - 973

अक्षर: त (ता) 276- अल-तहतवी अला अल-दुर्र - सैय्यद अहमद अल-तहतवी - 1302 277- अल-तहतवी अला अल-मराक़ी - सैय्यद अहमद अल-तहतवी - 1302 278- तबक़ात अल-मुकरीन - मोहम्मद बिन अहमद अल-ज़हबी - 748 279- तबक़ात अल-कुर्रा - मोहम्मद बिन मोहम्मद अल-जज़री - 833 280- अल-तरीक़ा अल-मोहम्मदिया - मोहम्मद बिन बीर अली, जिन्हें बीरगिली के नाम से जाना जाता है - 981 281- तलबात अल-तलबा - नज्म अल-दीन उमर बिन मोहम्मद अल-नसफ़ी - 537

अक्षर: अ (ऐन) 282- उम्दत अल-क़ारी शरह सहीह अल-बुखारी - अल्लामा बद्र अल-दीन अबी मोहम्मद महमूद बिन अहमद अल-ऐनी - 855 283- अल-इनाया शरह अल-हिदाया - अकमल अल-दीन मोहम्मद बिन मोहम्मद अल-बाबरती - 786 284- इनायत अल-क़ाज़ी हाशिया अला तफ़सीर अल-बैदावी - शिहाब अल-दीन अल-खफ़ाजी - 1069

पृष्ठ 654 का 673

جلد ہشتم فتاوی رضویه

۲۶۴- شرف المصطفٰی - حافظ عبدالملک بن محمد نیشا پوری - ۴۰۶ ۲۶۶- شرح جامع الاصول للمضیف - مبارک بن محمد المعروف بابن الاثیر الجزری - ۶۸۶ ۲۶۷- شرح الملتقی للبهنسی - محمد بن محمد المعروف بابن البهنسی - ۹۸۷ ۲۶۸- شرح درر البحار - عبدالوہاب ابن احمد الشهیر بابن وهبان - ۷۶۸

ص ۲۶۹- صحاح الجوهری - اسمعیل بن حماد الجوهری - ۳۹۳ ۲۷۰- صحیح ابن حبان (کتاب التقسیم والانواع) - محمد بن حبان - ۳۵۲ ۲۷۱- صحیح ابن خزیمة - محمد بن اسحاق ابن خزیمة - ۳۱۱ ۲۷۲- الصراح - ابو فضل محمد بن عمر بن خالد القرشی تقریبیًا - ۶۹۰ ۲۷۳- صغیری شرح منیة - ابراہیم الحلبی - ۹۵۲ ۲۷۴- صراط مستقیم - سید احمد شہید بریلوی - ۱۲۲۶ ۲۷۵- الصواعق المحرقة - شہاب الدین احمد بن حجر المکی - ۹۷۳

ط ۲۷۶- الطحطاوی علی الدر - سید احمد الطحطاوی - ۱۳۰۲ ۲۷۷- الطحطاوی علی المراقی - سید احمد الطحطاوی - ۱۳۰۲ ۲۷۸- طبقات المقرئین - محمد بن احمد الذهبي - ۷۴۸ ۲۷۹- طبقات القراء - محمد بن محمد الجزری - ۸۳۳ ۲۸۰- الطریقة المحمدیة - محمد بن بیر علی المعروف ببر کلی - ۹۸۱ ۲۸۱- طلبة الطلبة - نجم الدین عمر بن محمد النسفی - ۵۳۷

ع ۲۸۲- عمدة القاری شرح صحیح البخاری - علامہ بدر الدین ابی محمد محمود بن احمد العینی - ۸۵۵ ۲۸۳- العنایة شرح الہدایة - اکمل الدین محمد بن محمد البابرتی - ۷۸۶ ۲۸۴- عنایة القاضی حاشیة علی تفسیر البیضاوی - شہاب الدین الخفاجی - ۱۰۶۹

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

1. Uyun al-Masa'il - Abu al-Layth Nasr bin Muhammad al-Samarqandi - 378
2. Uqud al-Durriyah - Muhammad Amin ibn Abidin al-Shami - 1252
3. Uddat Kamal al-Din - Muhammad bin Ahmad, known as Tashkupri - 1030
4. Amal al-Yawm wa al-Laylah - Abu Bakr Ahmad bin Muhammad ibn al-Sunni - 364
5. Awarif al-Ma'arif - Shihab al-Din Suhrawardi - 632
6. Aqd al-Farid - Abu Abdullah Muhammad bin Abd al-Qawi al-Maqdisi - 699
7. Ayn al-Ilm - Muhammad bin Uthman bin Umar al-Hanafi al-Balkhi - 830
8. Aqd al-Jid - Shah Waliullah bin Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi - 1179
9. Uqud al-Durriyah fi Tanqih al-Fatawa al-Hamidiyah - Muhammad Amin Afandi ibn Abidin - 1252
10. Umdat al-Ri'ayah fi Hall Sharh al-Wiqayah - Muhammad bin Abd al-Hayy al-Lucknowi - 1304

Letter Ghayn (غ) 295. Ghayat al-Bayan Shaykh Qawam al-Din - Amir Katib ibn Amir al-Itqani - 758 296. Ghurar al-Ahkam - Qadi Muhammad bin Faramurz Mulla Khusraw - 885 297. Gharib al-Hadith - Abu al-Hasan Ali bin Mughira al-Baghdadi, known as Athram - 230 298. Ghamz Uyun al-Basa'ir - Ahmad bin Muhammad al-Hamwi al-Hanafi - 1098 299. Ghunyat Dhawi al-Ahkam - Hasan bin Ammar bin Ali al-Shurunbulali - 1069 300. Ghunyat al-Mustamli - Muhammad Ibrahim bin Muhammad al-Halabi - 956 301. Ghayth al-Naf' fi al-Qira'at al-Sab' - Yahya bin Sharaf al-Nawawi - 676

Letter Fa (ف) 302. Fath al-Bari Sharh al-Bukhari - Shihab al-Din Ahmad bin Ali ibn Hajar al-Asqalani - 852 303. Fath al-Qadir - Kamal al-Din Muhammad bin Abd al-Wahid ibn al-Humam - 861 304. Fatawa al-Nasafi - Imam Najm al-Din al-Nasafi - 537 305. Fatawa Bazzaziyah - Muhammad bin Muhammad bin Shihab ibn Bazzaz - 827

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

२८५- उयूनुल मसाइल - अबुल लैथ नस्र बिन मुहम्मद अस-समरकंदी - ३७८ २८६- उक़ूदुल दुर्रिय्यह - मुहम्मद अमीन इब्ने आबिदीन अल-शामी - १२५२ २८७- उद्दत कमाल अद-दीन - मुहम्मद बिन अहमद, ताशकुपरी के नाम से प्रसिद्ध - १०३० २८८- अमल अल-यौम व अल-लैला - अबू बक्र अहमद बिन मुहम्मद इब्न अल-सुन्नी - ३६४ २८९- अवारिफुल मआरिफ - शहाब अल-दीन सुहरावर्दी - ६३२ २९०- अक़दुल फ़रीद - अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल क़वी अल-मक़दिसी - ६९९ २९१- ऐनुल इल्म - मुहम्मद बिन उस्मान बिन उमर अल-हनफ़ी अल-बल्ख़ी - ८३० २९२- अक़दुल जीद - शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम देहलवी - ११७९ २९३- उक़ूदुल दुर्रिय्यह फ़ी तनक़ीह अल-फ़तावा अल-हामिदिय्यह - मुहम्मद अमीन आफ़ंदी इब्न आबिदीन - १२५२ २९४- उम्दतुर रिआया फ़ी हल्ल शराह अल-विक़ाया - मुहम्मद बिन अब्दुल हई लखनवी - १३०४

अक्षर ग़ैन (غ) २९५- ग़ायतुल बयान शैख़ क़वाम अल-दीन - अमीर कातिब इब्न अमीर अल-इत़क़ानी - ७५८ २९६- ग़ुरर अल-अहकाम - क़ाज़ी मुहम्मद बिन फ़रामुर्ज़ मुल्ला ख़ुसरो - ८८५ २९७- ग़रीबुल हदीस - अबुल हसन अली बिन मुग़ीरा अल-बग़दादी, अस़रम के नाम से प्रसिद्ध - २३० २९८- ग़म्ज़ उयूनुल बसायर - अहमद बिन मुहम्मद अल-हमवी अल-हनफ़ी - १०९८ २९९- ग़ुन्यत ज़वी अल-अहकाम - हसन बिन अम्मार बिन अली अल-शुरुनबुलाली - १०६९ ३००- ग़ुन्यतुल मुस्तमली - मुहम्मद इब्राहिम बिन मुहम्मद अल-हलबी - ९५६ ३०१- ग़ैथुन नफ़्अ फ़ी अल-क़िरात अस-सबा - यहया बिन शरफ़ अन-नवावी - ६७६

अक्षर फ़ा (ف) ३०२- फ़तहुल बारी शरह अल-बुख़ारी - शहाब अल-दीन अहमद बिन अली इब्न हजर अल-अस्क़लानी - ८५२ ३०३- फ़तहुल क़दीर - कमाल अल-दीन मुहम्मद बिन अब्दुल वाहिद इब्न अल-हुमाम - ८६१ ३०४- फ़तावा अन-नसफ़ी - इमाम नजम अल-दीन अन-नसफ़ी - ५३७ ३०५- फ़तावा बज़ाज़िया - मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन शहाब इब्न बज़ाज़ - ८२७

पृष्ठ ६५५ का ६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۲۸۵۔ عیون المسائل ۔ ابواللیث نصر بن محمد السمرقندی ۔ ۳۷۸ ۲۸۶۔ عقود الدریۃ ۔ محمد امین ابن عابدین الشامی ۔ ۱۲۵۲ ۲۸۷۔ عدۃ کمال الدین ۔ محمد بن احمد الشہیر بطاشکبری ۔ ۱۰۳۰ ۲۸۸۔ عمل الیوم واللیلۃ ۔ ابوبکر احمد بن محمد ابن السنی ۔ ۳۶۴ ۲۸۹۔ عوارف المعارف ۔ شہاب الدین سہروردی ۔ ۶۳۲ ۲۹۰۔ عقد الفرید ۔ ابو عبداللہ محمد بن عبدالقوی المقدسی ۔ ۶۹۹ ۲۹۱۔ عین العلم ۔ محمد بن عثمان بن عمر الحنفی البلخی ۔ ۸۳۰ ۲۹۲۔ عقد الجید ۔ شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی ۔ ۱۱۷۹ ۲۹۳۔ عقود الدریہ فی تنقیح الفتاوی الحامدیہ ۔ محمد امین آفندی ابن عابدین ۔ ۱۲۵۲ ۲۹۴۔ عمدۃ الرعایہ فی حل شرح الوقایہ ۔ محمد بن عبدالحی اللکھنوی ۔ ۱۳۰۴

غ ۲۹۵۔ غایۃ البیان شیخ قوام الدین ۔ امیر کاتب ابن امیر الاتقانی ۔ ۷۵۸ ۲۹۶۔ غرر الاحکام ۔ قاضی محمد بن فراموز ملا خسرو ۔ ۸۸۵ ۲۹۷۔ غریب الحدیث ۔ ابوالحسن علی بن مغیرہ البغدادی المعروف باثرم ۔ ۲۳۰ ۲۹۸۔ غمز عیون البصائر ۔ احمد بن محمد الحموی الحنفی ۔ ۱۰۹۸ ۲۹۹۔ غنیۃ ذوالاحکام ۔ حسن بن عمار بن علی الشرنبلالی ۔ ۱۰۶۹ ۳۰۰۔ غنیۃ المستملی ۔ محمد ابراہیم بن محمد الحلبی ۔ ۹۵۶ ۳۰۱۔ غیث النفع فی القراء السبع ۔ یحیٰی بن شرف النووی ۔ ۶۷۶

ف ۳۰۲۔ فتح الباری شرح البخاری ۔ شہاب الدین احمد بن علی ابن حجر العسقلانی ۔ ۸۵۲ ۳۰۳۔ فتح القدیر ۔ کمال الدین محمد بن عبدالواحد ابن الہمام ۔ ۸۶۱ ۳۰۴۔ فتاوٰی النسفی ۔ امام نجم الدین النسفی ۔ ۵۳۷ ۳۰۵۔ فتاوٰی بزازیہ ۔ محمد بن محمد بن شہاب ابن بزاز ۔ ۸۲۷

Fatawa Ridawiyya, Volume 8

306- Fatawa Hujjah 307- Fatawa Khayriyah - Allama Khayr al-Din bin Ahmad bin Ali al-Ramli - 1081 308- Fatawa Sirajiyah - Siraj al-Din Ali bin Uthman al-Ushi - 575 309- Fatawa 'Ata bin Hamzah - 'Ata bin Hamzah al-Sughra 310- Fatawa Ghiyathiyah - Dawud bin Yusuf al-Khatib al-Hanafi 311- Fatawa Qadi Khan - Hasan bin Mansur Qadi Khan - 592 312- Fatawa Hindiyah - Jam'iyat-e-Ulama of Aurangzeb Alamgir 313- Fatawa Zahiriyah - Zahir al-Din Abu Bakr Muhammad bin Ahmad - 619 314- Fatawa Walwalijiyah - 'Abd al-Rashid bin Abi Hanifah al-Walwaliji - 540 315- Fatawa al-Kubra - Imam Sadr al-Shahid Husam al-Din 'Umar bin 'Abd al-'Aziz - 536 316- Fiqh al-Akbar - Al-Imam al-A'zam Abi Hanifah Nu'man bin Thabit al-Kufi - 150 317- Fath al-Mu'in - Sayyid Muhammad Abi al-Sa'ud al-Hanafi 318- Fath al-Mu'in Sharh Qurrat al-'Ayn - Zayn al-Din bin Ali bin Ahmad al-Shafi'i - 928 319- Al-Futuhat al-Makkiyah - Muhi al-Din Muhammad bin Ali Ibn Arabi - 638 320- Fawatih al-Rahamut - Abd al-Ali Muhammad bin Nizam al-Din al-Kindi - 1225 321- Al-Fawa'id - Tammam bin Muhammad bin Abdullah al-Bajali - 414 322- Fawa'id al-Mukhtassah - Muhammad Amin bin Abidin al-Shami - 1252 323- Fayd al-Qadir - Sharh al-Jami' al-Saghir, Abd al-Ra'uf al-Munawi - 1031 324- Fawa'id Sawiyah - Isma'il bin Abdullah, titled Samawiyyah - 267 325- Fada'il al-Qur'an li-Ibn Durays - Abu Abdullah Muhammad bin Ayyub bin Durays al-Bajali - 294 326- Fawa'id al-Khal'i - Abu al-Hasan Ali bin al-Husayn al-Mawsili - 492 327- Fusul al-Imadi - Muhammad bin Mahmud Ustrushani - 636 328- Fatawa Tatar Khaniyah - Alim bin al-Ala al-Ansari al-Dihlawi - 786 329- Fath al-Mughith - Imam Muhammad bin Abd al-Rahman al-Sakhawi - 903 330- Fatawa Zayniyah - Zayn al-Din bin Ibrahim Ibn Nujaym - 970

Page 656 of 673

फ़तावा रज़विया, जिल्द आठवीं

३०६- फ़तावा हुज्जह ३०७- फ़तावा ख़ैरिया - अल्लामा ख़ैर अल-दीन बिन अहमद बिन अली अल-रमली - १०८१ ३०८- फ़तावा सिराजिया - सिराज अल-दीन अली बिन उस्मान अल-ऊशी - ५७५ ३०९- फ़तावा अता बिन हमज़ा - अता बिन हमज़ा अल-सुग़रा ३१०- फ़तावा ग़ियासिया - दाऊद बिन यूसुफ़ अल-ख़तीब अल-हनफ़ी ३११- फ़तावा क़ाज़ी ख़ान - हसन बिन मन्सूर क़ाज़ी ख़ान - ५९२ ३१२- फ़तावा हिंदिया - औरंगज़ेब आलमगीर की जमीयत-ए-उलेमा ३१३- फ़तावा ज़हीरिया - ज़हीर अल-दीन अबू बक्र मुहम्मद बिन अहमद - ६१९ ३१४- फ़तावा वलवालिजिया - अब्द अल-रशीद बिन अबी हनीफ़ा अल-वलवालिजी - ५४० ३१५- फ़तावा अल-कुबरा - इमाम सद्र अल-शहीद हुसाम अल-दीन उमर बिन अब्द अल-अज़ीज़ - ५३६ ३१६- फ़िक़्ह अल-अकबर - अल-इमाम अल-आज़म अबी हनीफ़ा नुमान बिन साबित अल-कूफ़ी - १५० ३१७- फ़त्ह अल-मुईन - सय्यद मुहम्मद अबी अल-सऊद अल-हनफ़ी ३१८- फ़त्ह अल-मुईन शरह क़ुर्रत अल-ऐन - ज़ैन अल-दीन बिन अली बिन अहमद अल-शाफ़ई - ९२८ ३१९- अल-फ़ुतूहात अल-मक्किआ - मुही अल-दीन मुहम्मद बिन अली इब्न अरबी - ६३८ ३२०- फ़वातिह अल-रहमूत - अब्द अल-अली मुहम्मद बिन निज़ाम अल-दीन अल-किन्दी - १२२५ ३२१- अल-फ़वाइद - तमाम बिन मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-बजली - ४१४ ३२२- फ़वाइद अल-मुख़्तसा - मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन अल-शामी - १२५२ ३२३- फ़ैज़ अल-क़दीर - शरह अल-जामिअ अल-सग़ीर, अब्द अल-रऊफ़ अल-मुनावी - १०३१ ३२४- फ़वाइद सविया - इसमाईल बिन अब्दुल्लाह, लक़ब समविया - २६७ ३२५- फ़ज़ाइल अल-क़ुरआन लि-इब्न दुरैस - अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अय्यूब इब्न दुरैस अल-बजली - २९४ ३२६- फ़वाइद अल-ख़लई - अबुल हसन अली बिन अल-हुसैन अल-मौसिली - ४९२ ३२७- फ़ुसूल अल-इमादी - मुहम्मद बिन महमूद उस्त्रुशानी - ६३६ ३२८- फ़तावा तातार खानिया - आलिम बिन अल-अला अल-अन्सारी अल-देहलावी - ७८६ ३२९- फ़त्ह अल-मुग़ीस - इमाम मुहम्मद बिन अब्द अल-रहमान अल-सखावी - ९०३ ३३०- फ़तावा ज़ैनिया - ज़ैन अल-दीन बिन इब्राहीम इब्न नुजैम - ९७०

पृष्ठ ६५६/६७३

فتاوٰی رضویہ، جلد ہشتم

۳۰۶ - فتاوٰی حجتہ ۳۰۷ - فتاوٰی خیریۃ - علامہ خیر الدین بن احمد بن علی الرملی - ۱۰۸۱ ۳۰۸ - فتاوٰی سراجیۃ - سراج الدین علی بن عثمان الاوشی - ۵۷۵ ۳۰۹ - فتاوٰی عطاء بن حمزہ - عطاء بن حمزہ الصغری ۳۱۰ - فتاوٰی غیاثیہ - داود بن یوسف الخطیب الحنفی ۳۱۱ - فتاوٰی قاضی خان - حسن بن منصور قاضی خان - ۵۹۲ ۳۱۲ - فتاوٰی ہندیہ - جمعیت علماء اورنگ زیب عالمگیر ۳۱۳ - فتاوٰی ظہیر یہ - ظہیر الدین ابو بکر محمد بن احمد - ۶۱۹ ۳۱۴ - فتاوٰی ولوالجیہ - عبد الرشید بن ابی حنیفہ الوالوالجی - ۵۴۰ ۳۱۵ - فتاوٰی الکبری - امام صدر الشہید حسام الدین عمر بن عبدالعزیز - ۵۳۶ ۳۱۶ - فقہ الاکبر - الامام الاعظم ابی حنیفہ نعمان بن ثابت الکوفی - ۱۵۰ ۳۱۷ - فتح المعین - سید محمد ابی السعود الحنفی ۳۱۸ - فتح المعین شرح قرۃ العین - زین الدین بن علی بن احمد الشافعی - ۹۲۸ ۳۱۹ - الفتوحات المکیۃ - محی الدین محمد بن علی ابن عربی - ۶۳۸ ۳۲۰ - فواتح الرحموت - عبدالعلی محمد بن نظام الدین الکندی - ۱۲۲۵ ۳۲۱ - الفوائد - تمام بن محمد بن عبداللہ البجلی - ۴۱۴ ۳۲۲ - فوائد المخصصۃ - محمد امین ابن عابدین الشامی - ۱۲۵۲ ۳۲۳ - فیض القدیر - شرح الجامع الصغیر عبد الرؤف المناوی - ۱۰۳۱ ۳۲۴ - فوائد سویۃ - اسمعیل بن عبداللہ الملقب بسمویہ - ۲۶۷ ۳۲۵ - فضائل القرآن لابن ضریس - ابو عبداللہ محمد بن ایوب ابن ضریس البجلی - ۲۹۴ ۳۲۶ - فوائد الخلعی - ابوالحسن علی بن الحسین الموصلی - ۴۹۲ ۳۲۷ - فصول العمادی - محمد بن محمود استروشنی - ۶۳۶ ۳۲۸ - فتاوٰی تاتار خانیہ - عالم بن العلاء الانصاری الدہلوی - ۷۸۶ ۳۲۹ - فتح المغیث - امام محمد بن عبدالرحمن السخاوی - ۹۰۳ ۳۳۰ - فتاوٰی زینیہ - زین الدین بن ابراہیم ابن نجیم - ۹۷۰

صفحہ 656 از 673

جلد ہشتم (Volume 8) فتاویٰ رضویہ (Fatawa Rizvia)

331_ Fath al-Mu'in Sharh Arba'in - Shihab al-Din Ahmad ibn Muhammad ibn Hajar al-Makki - 974 332_ Fath al-Ilah Sharh al-Mishkat - Shihab al-Din Ahmad ibn Muhammad ibn Hajar al-Makki - 974 333_ Fatawa al-Faqihiyyah ibn Hajar Makki - Shihab al-Din Ahmad ibn Muhammad ibn Hajar al-Makki - 974 334_ Fatawa al-Anfurawiyyah - Muhammad ibn Husayn al-Anfurawi - 1098 335_ Fatawa As'adiyyah - Sayyid As'ad ibn Abi Bakr al-Madani al-Husayni - 1116 336_ Fawa'id Majmu'ah - Shawkani Muhammad ibn Ali ibn Mahmud al-Shawkani - 1250 337_ Fatawa Jamal ibn Umar al-Makki - Jamal ibn Umar al-Makki - 1284 338_ Fadl Libas al-'Ama'im - Abu Abdullah Muhammad ibn Waddah 339_ Fatawa Qa'idiyyah - Abu Abdullah Muhammad ibn Ali al-Qadiri 340_ Fatawa Ghazzi - Muhammad ibn Abdullah al-Timurtashi - 1004 341_ Fatawa Shams al-Din al-Ramli 342_ Fath al-Malik al-Majid 343_ Fath al-Aziz (Tafsir Azizi) - Abdul Aziz ibn Waliullah al-Dahlawi - 1239

ق (Section Qaf)

344_ Al-Qamus al-Muhit - Muhammad ibn Ya'qub al-Fayruzabadi - 817 345_ Qurrat al-Ayn - Allama Zayn al-Din ibn Ali al-Malibari - 928 346_ Al-Qunyah - Najm al-Din Mukhtar ibn Muhammad al-Zahidi - 658 347_ Al-Qur'an al-Karim 348_ Qut al-Qulub fi Mu'amalat al-Mahbub - Abu Talib Muhammad ibn Ali al-Makki - 386 349_ Al-Qawl al-Musaddad - Shihab al-Din Ahmad ibn Ali al-Qastallani - 852 350_ Qurrat al-Aynayn fi Tafdil al-Shaykhayn - Shah Waliullah ibn Shah Abdul Rahim al-Dahlawi - 1179 351_ Al-Qawl al-Jamil - Shah Waliullah ibn Shah Abdul Rahim al-Dahlawi - 1179 352_ Qamar al-Aqmar Hashiyah Nur al-Anwar - Muhammad ibn Abdul Hayy Lakhnawi Ansari - 1304 353_ Al-Qawl al-Sawab fi Fadl Umar ibn al-Khattab - Ibrahim ibn Abdullah al-Yamani - 1304

जिल्द आठ (Volume 8) फतावा रज़विया (Fatawa Rizvia)

331_ फ़तह अल-मुईन शरह अरबीन - शहाब अल-दीन अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर अल-मक्की - 974 332_ फ़तह अल-इलाह शरह अल-मिशकात - शहाब अल-दीन अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर अल-मक्की - 974 333_ फतावा अल-फ़कीह इब्न हजर मक्की - शहाब अल-दीन अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर अल-मक्की - 974 334_ फतावा अल-अनफ़ुरविया - मुहम्मद बिन हुसैन अल-अनफ़ुरवी - 1098 335_ फतावा असअदिया - सैयद असअद इब्न अबी बक्र अल-मदनी अल-हुसैनी - 1116 336_ फवाइद मजमुआ - शौकानी मुहम्मद बिन अली बिन महमूद अल-शौकानी - 1250 337_ फतावा जमाल बिन उमर अल-मक्की - जमाल बिन उमर अल-मक्की - 1284 338_ फ़ज़्ल लिबास अल-अमइम - अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन वज्ज़ाह 339_ फतावा काइदिया - अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन अली अल-कादरी 340_ फतावा गज़ी - मुहम्मद बिन अब्दुल्ला अल-तिमुरताशी - 1004 341_ फतावा शम्स अल-दीन अल-रामली 342_ फ़तह अल-मलिक अल-मजीद 343_ फ़तह अल-अज़ीज़ (तफ़सीर अज़ीज़ी) - अब्दुल अज़ीज़ बिन वलीउल्लाह अल-देहलवी - 1239

क़ (अनुभाग क़ाफ़)

344_ अल-कामूस अल-मुहीत - मुहम्मद बिन याकूब अल-फिरोज़ाबादी - 817 345_ कुर्रत अल-ऐन - अल्लामा ज़ैन अल-दीन बिन अली अल-मलीबारी - 928 346_ अल-कुनिया - नज्म अल-दीन मुख्तार बिन मुहम्मद अल-ज़ाहीदी - 658 347_ अल-कुरान अल-करीम 348_ कुत अल-कुलूब फी मुआमलात अल-महबूब - अबू तालिब मुहम्मद बिन अली अल-मक्की - 386 349_ अल-कौल अल-मुसद्दद - शहाब अल-दीन अहमद बिन अली अल-कस्तलानी - 852 350_ कुर्रत अल-ऐनैन फी तफ़ज़ील अल-शैखैन - शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम अल-देहलवी - 1179 351_ अल-कौल अल-जमील - शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम अल-देहलवी - 1179 352_ कमर अल-अकमर हाशिया नूर अल-अनवार - मुहम्मद बिन अब्दुल हयी लखनवी अंसारी - 1304 353_ अल-कौल अल-सवाब फी फ़ज़्ल उमर बिन अल-खत्ताब - इब्राहिम बिन अब्दुल्ला अल-यमनी - 1304

पृष्ठ 673 में से 657

جلد ہشتم فتاوىٰ رضويہ

331_ فتح المعين شرح اربعين - شہاب الدين احمد بن محمد ابن حجر المكى - 974 332_ فتح الاله شرح المشكاة - شہاب الدين احمد بن محمد ابن حجر المكى - 974 333_ فتاوى الفقيہہ ابن حجر مكى - شہاب الدين احمد بن محمد ابن حجر المكى - 974 334_ فتاوى انفرويہ - محمد بن حسين الانفروى - 1098 335_ فتاوى اسعديہ - سيد اسعد ابن ابى بكر المدنى الحسينى - 1116 336_ فوائد مجموعہ - شوكانى محمد بن على بن محمود الشوكانى - 1250 337_ فتاوىٰ جمال بن عمر المكى - جمال بن عمر المكى - 1284 338_ فضل لباس العمائم - ابو عبد الله محمد بن وضاح 339_ فتاوى قاعديہ - ابو عبد الله محمد بن على القادرى 340_ فتاوى غزى - محمد بن عبد الله التمرتاشى - 1004 341_ فتاوىٰ شمس الدين الرملى 342_ فتح الملك المجيد 343_ فتح العزيز (تفسير عزيزى) - عبد العزيز بن ولى الله الدہلوى - 1239

ق

344_ القاموس المحيط - محمد بن يعقوب الفيروز آبادى - 817 345_ قرة العين - علامہ زين الدين بن على المليبارى - 928 346_ القنية - نجم الدين مختار بن محمد الزاہدى - 658 347_ القرآن الكريم 348_ قوت القلوب في معاملة المحبوب - ابو طالب محمد بن على المكى - 386 349_ القول المسدد - شہاب الدين احمد بن على القسطلانى - 852 350_ قرة العينين فى تفضيل الشيخين - شاه ولى الله بن شاه عبد الرحيم الدہلوى - 1179 351_ القول الجميل - شاه ولى الله بن شاه عبد الرحيم الدہلوى - 1179 352_ قمر الاقمار حاشيہ نور الانوار - محمد بن عبد الحئى لكھنوى انصارى - 1304 353_ القول الصواب فى فضل عمر بن الخطاب - ابراهيم بن عبد الله اليمنى - 1304

Fatawa Razawiya Volume 8

Letter: K 354- Al-Kafi fi al-Furu' | Hakim Shahid Muhammad bin Muhammad | 332 355- Al-Kamil li-Ibn 'Adi | Abu Ahmad Abdullah bin 'Adi | 365 356- Al-Kibrit al-Ahmar | Sayyid Abdul Wahhab al-Sha'rani | 973 357- Kitab al-Athar | Imam Muhammad bin Hasan al-Shaybani | 189 358- Kitab al-Athar | Imam Abu Yusuf Yaqub bin Ibrahim al-Ansari | 182 359- Kitab al-Ilmam fi Adab Dukhul al-Hammam | Abu al-Mahasin Muhammad bin Ali | 360- Kitab al-Siwak | Abu Nu'aym Ahmad bin Abdullah | 430 361- Kitab al-Hadiyya li-Ibn 'Imad | Abdur Rahman bin Muhammad Imad al-Din bin Muhammad al-'Imadi | 1050 362- Kitab al-Tuhur li-Abi 'Ubayd | | 363- Kitab al-'Ilal 'ala Abwab al-Fiqh | Abu Muhammad Abdur Rahman ibn Abi Hatim Muhammad al-Razi | 327 364- Kitab al-Asl | Imam Muhammad bin Hasan al-Shaybani | 189 365- Kitab al-Waswasa | Abu Bakr bin Abi Dawud | 366- Kashf al-Asrar | Ala al-Din Abdul Aziz bin Ahmad al-Bukhari | 730 367- Kashf al-Ramz 'Alama al-Qudsi | | 368- Kashf al-Astar 'an Zawa'id al-Bazzar | Amin al-Din Abdul Wahhab bin Wahban al-Dimashqi | 768 369- Kanz al-Ummal | Ala al-Din Ali al-Muttaqi bin Husam al-Din | 975 370- Al-Kifaya | Jalal al-Din bin Shams al-Din al-Khwarizmi | Approx. 800 371- Kaff al-Rua' | Shihab al-Din Ahmad bin Hajar al-Haytami | 973 372- Kanz al-Daqaiq | Abdullah bin Ahmad bin Mahmud | 710 373- Al-Kuni lil-Hakim | Abu Abdullah al-Hakim | 405 374- Al-Kawakib al-Durari | Shams al-Din Muhammad bin Yusuf al-Shafi'i al-Kirmani | 786 375- Kitab al-Jarh wa al-Ta'dil | Muhammad bin Hibban al-Tamimi | 352 376- Kitab al-Maghazi | Yahya bin Sa'id al-Qattan | 198

Page 658 of 673

फतावा रज़विया खंड 8

अक्षर: क (काफ़) 354- अल-काफी फी अल-फुरूं| हाकिम शहीद मुहम्मद बिन मुहम्मद | 332 355- अल-कामिल लि-इब्न अदी | अबू अहमद अब्दुल्लाह बिन अदी | 365 356- अल-किबरीत अल-अहमर | सैयद अब्दुल वहाब अल-शर्रानी | 973 357- किताब अल-आसार | इमाम मुहम्मद बिन हसन अल-शहबानी | 189 358- किताब अल-आसार | इमाम अबू यूसुफ़ याकूब बिन इब्राहिम अल-अंसारी | 182 359- किताब अल-इल्माम फी आदाब दुखूल अल-हम्माम | अबुल महासिन मुहम्मद बिन अली | 360- किताब अल-सिवाक | अबू नुइम अहमद बिन अब्दुल्लाह | 430 361- किताब अल-हदिया लि-इब्न इमाद | अब्दुर रहमान बिन मुहम्मद इमाद उद-दीन बिन मुहम्मद अल-इमादी | 1050 362- किताब अत-तहूर ली अबी उबैद | | 363- किताब अल-इलाल अला अबवाब अल-फिक़ह | अबू मुहम्मद अब्दुर रहमान इब्न अबी हातिम मुहम्मद अल-राज़ी | 327 364- किताब अल-असल | इमाम मुहम्मद बिन हसन अल-शहबानी | 189 365- किताब अल-वसवसा | अबू बक्र बिन अबी दाऊद | 366- कश्फ़ अल-असरार | अलाउद्दीन अब्दुल अज़ीज़ बिन अहमद अल-बुखारी | 730 367- कश्फ़ अल-रम्ज़ अल्लामा अल-कुदसी | | 368- कश्फ़ अल-अस्तार अन ज़वाइद अल-बज़ार | अमीन उद-दीन अब्दुल वहाब बिन वहबान अद-दिमश्की | 768 369- कंज़ अल-उम्माल | अलाउद्दीन अली अल-मुत्तकी बिन हुसाम उद-दीन | 975 370- अल-किफाया | जलाल उद-दीन बिन शम्स उद-दीन अल-ख्वारिज़मी | लगभग 800 371- कफ्फ अर-रुआ | शिहाब उद-दीन अहमद बिन हजर अल-हैतमी | 973 372- कंज़ उद-दक़ाइक़ | अब्दुल्लाह बिन अहमद बिन महमूद | 710 373- अल-कुनी लिल-हाकिम | अबू अब्दुल्लाह अल-हाकिम | 405 374- अल-कवाकिब अद-दुरारी | शम्स उद-दीन मुहम्मद बिन यूसुफ़ अल-शाफ़ई अल-किरमानी | 786 375- किताब अल-जरह वत-तादील | मुहम्मद बिन हिब्बान अल-तमीमी | 352 376- किताब अल-मगाज़ी | यहया बिन सईद अल-क़त्तान | 198

पृष्ठ 658 का 673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ک ۳۵۴- الکافی فی الفروع | حاکم شہید محمد بن محمد | ۳۳۲ ۳۵۵- الکامل لابن عدی | ابواحمد عبداللہ بن عدی | ۳۶۵ ۳۵۶- الکبریت الاحمر | سید عبدالوہاب الشعرانی | ۹۷۳ ۳۵۷- کتاب الآثار | امام محمد بن حسن الشیبانی | ۱۸۹ ۳۵۸- کتاب الآثار | امام ابویوسف یعقوب بن ابراہیم الانصاری | ۱۸۲ ۳۵۹- کتاب الالمام فی آداب دخول الحمام | ابوالحاسن محمد بن علی | ۳۶۰- کتاب السواک | ابونعیم احمد بن عبداللہ | ۴۳۰ ۳۶۱- کتاب الہدیہ لابن عماد | عبدالرحمن بن محمد عماد الدین بن محمد العمادی | ۱۰۵۰ ۳۶۲- کتاب الطہور لابی عبید | | ۳۶۳- کتاب العلل علی ابواب الفقہ | ابو محمد عبدالرحمن ابن ابی حاتم محمد الرازی | ۳۲۷ ۳۶۴- کتاب الاصل | امام محمد بن حسن الشیبانی | ۱۸۹ ۳۶۵- کتاب الوسوسہ | ابوبکر بن ابی داؤد | ۳۶۶- کشف الاسرار | علاء الدین عبدالعزیز بن احمد البخاری | ۷۳۰ ۳۶۷- کشف الرمز علامۃ القدسی | | ۳۶۸- کشف الاستار عن زوائد البزار | امین الدین عبدالوہاب بن وہبان الدمشقی | ۷۶۸ ۳۶۹- کنز العمال | علاء الدین علی المتقی بن حسام الدین | ۹۷۵ ۳۷۰- الکفایہ | جلال الدین بن شمس الدین الخوارزمی | تقریباً ۸۰۰ ۳۷۱- کف الرعاع | شہاب الدین احمد بن حجر الہیتمی | ۹۷۳ ۳۷۲- کنزالدقائق | عبداللہ بن احمد بن محمود | ۷۱۰ ۳۷۳- الکنی للحاکم | ابوعبداللہ الحاکم | ۴۰۵ ۳۷۴- الکواکب الدراری | شمس الدین محمد بن یوسف الشافعی الکرمانی | ۷۸۶ ۳۷۵- کتاب الجرح والتعدیل | محمد بن حبان التمیمی | ۳۵۲ ۳۷۶- کتاب المغازی | یحییٰ بن سعید القطان | ۱۹۸

Fatawa-e-Razvia Volume 8

377- Kitab al-Samt - Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya al-Qurashi - 281 378- Kitab al-Zuhd - Abdullah bin Mubarak - 180 379- Al-Kashshaf 'an Haqa'iq al-Tanzil - Jar Allah Mahmud bin Umar al-Zamakhshari - 538 380- Kitab al-Hujjah - Imam Muhammad (may Allah Almighty have mercy on him), Abu Abdullah Muhammad bin Hasan al-Shaybani - 189 381- Kitab al-Mashaykhah - Imam Muhammad Abu Abdullah Muhammad bin Hasan al-Shaybani - 189 382- Kitab al-Marasil - Sulayman bin Ash'ath al-Sijistani - 275 383- Kitab al-Ba'th wa al-Nushur - Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya - 281 384- Kitab al-Ikhwan - Abu Bakr Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya - 281 385- Kitab al-Du'afa al-Kabir - Abu Ja'far Muhammad bin Umar al-Uqayli al-Makki - 322 386- Kitab al-Zuhd al-Kabir lil-Bayhaqi - Ahmad bin Hasan al-Bayhaqi - 458 387- Kitab al-Ruwat 'an Malik bin Anas - Abu Bakr Ahmad bin Ali Khatib al-Baghdadi - 463 388- Kitab al-Hujjah 'ala Tarik al-Hujjah - Nasr bin Ibrahim al-Maqdisi - 490 389- Kimiya-e-Sa'adat - Imam Muhammad bin Muhammad al-Ghazali - 505 390- Kifayat al-Talib al-Rabbani bi-Sharh li-Risalah Ibn Abi Zayd al-Qayrawani - Abu al-Hasan Ali bin Nasir al-Din al-Shadhili - 939 391- Kashf al-Zunun - Mustafa bin Abdullah Haji Khalifa - 1067 392- Kashf al-Ghummah - Shaykh Abdul Wahhab bin Ahmad al-Sha'rani - 973 393- Kitab al-Siffin - Yahya bin Sulayman al-Ju'fi (Teacher of Imam Bukhari) 394- Kitab al-Masahif Ibn al-Anbari 395- Kamalin Hashiyah Jalalayn - Shaykh Salam Allah bin Muhammad, Shaykh al-Islam Muhaddith Rampuri - 1233 396- Kitab al-Maghazi - Muhammad bin Umar bin Waqid al-Waqidi - 207

L 397- Lama'at al-Tanqih - Allama Shaykh Abdul Haq al-Muhaddith al-Dehlavi - 1052 398- Laqt al-Marjan fi Akhbar al-Jann - Allama Jalal al-Din Abd al-Rahman bin Muhammad al-Suyuti - 911

Page 659 of 673

फतावा-ए-रज़विया जिल्द आठवीं

३७७- किताब अस्-समत - अब्दुल्ला बिन मुहम्मद इब्न अबी अद्दुनिया अल-कुरैशी - २८१ ३७८- किताब अज़्-ज़ुहद - अब्दुल्ला बिन मुबारक - १८० ३७९- अल-कशाफ अन हक़ाइक़ अल-तंज़ील - जारुल्लाह महमूद बिन उमर अल-ज़मखशरी - ५३८ ३८०- किताब अल-हुज्जाह - इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह तआला) अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन हसन अल-शैबानी - १८९ ३८१- किताब अल-मशैखह - इमाम मुहम्मद अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन हसन अल-शैबानी - १८९ ३८२- किताब अल-मरासील - सुलेमान बिन अशअथ अल-सिजिस्तानी - २७५ ३८३- किताब अल-बअस वल-नुशूर - अब्दुल्ला बिन मुहम्मद इब्न अबी अद्दुनिया - २८१ ३८४- किताब अल-इख्वान - अबू बक्र अब्दुल्ला बिन मुहम्मद इब्न अबी अद्दुनिया - २८१ ३८५- किताब अद्दुआफ़ा अल-कबीर - अबू जाफर मुहम्मद बिन उमर अल-उकैली अल-मक्की - ३२२ ३८६- किताब अज़्-ज़ुहद अल-कबीर लिल-बैहक़ी - अहमद बिन हसन अल-बैहक़ी - ४५८ ३८७- किताब अर-रवात अन मालिक इब्न अनस - अबू बक्र अहमद बिन अली खतीब बग़दादी - ४६३ ३८८- किताब अल-हुज्जाह अला तारिक अल-हुज्जाह - नसर बिन इब्राहीम अल-मक़दिसी - ४९० ३८९- कीमिया-ए-सआदत - इमाम मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़ज़ाली - ५०५ ३९०- किफ़ायत अल-तालिब अल-रब्बानी ब-शरह ल-रिसाला इब्न अबी ज़ैद अल-क़ैरवानी - अबुल हसन अली बिन नासिरुद्दीन अल-शाज़ली - ९३९ ३९१- कशफ अल-ज़ुनून - मुस्तफ़ा बिन अब्दुल्ला हाजी खलीफा - १०६७ ३९२- कशफ अल-ग़ुम्मा - शेख अब्दुल वहाब बिन अहमद अल-शारानी - ९७३ ३९३- किताब अल-सिफ़्फ़ीन - यह्या बिन सुलेमान अल-जुअफ़ी (इमाम बुखारी के उस्ताद) ३९४- किताब अल-मसाहिफ़ इब्न अल-अंबारी ३९५- कमालैन हाशिया जलालैन - शेख सलामुल्लाह बिन मुहम्मद शेखुल इस्लाम मुहद्दिस रामपुरी - १२३३ ३९६- किताब अल-मग़ाज़ी - मुहम्मद बिन उमर बिन वाक़िद अल-वाक़िदी - २०७

ल ३९७- लमआत अल-तनक़ीह - अल्लामा शेख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी - १०५२ ३९८- लक़्त अल-मरजान फ़ी अख़बार अल-जान - अल्लामा जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन मुहम्मद अल-सुयूती - ९११

पृष्ठ ६५९ का ६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۳۷۷۔ کتاب الصمت - عبداللہ بن محمد ابن ابی الدنیا القرشی - ۲۸۱ ۳۷۸۔ کتاب الزہد - عبداللہ بن مبارک - ۱۸۰ ۳۷۹۔ الکشاف عن حقائق التنزیل - جار اللہ محمود بن عمر الزمخشری - ۵۳۸ ۳۸۰۔ کتاب الحجہ - امام محمد رحمۃ اللہ تعالٰی ابو عبد اللہ محمد بن حسن الشیبانی - ۱۸۹ ۳۸۱۔ کتاب المشیخۃ - امام محمد ابو عبد اللہ محمد بن حسن الشیبانی - ۱۸۹ ۳۸۲۔ کتاب المراسیل - سلیمان بن اشعث السجستانی - ۲۷۵ ۳۸۳۔ کتاب البعث والنشور - عبداللہ بن محمد ابن ابی الدنیا - ۲۸۱ ۳۸۴۔ کتاب الاخوان - ابوبکر عبد اللہ بن محمد ابن ابی الدنیا - ۲۸۱ ۳۸۵۔ کتاب الضعفاء الکبیر - ابو جعفر محمد بن عمر والعقیلی المکی - ۳۲۲ ۳۸۶۔ کتاب الزہد الکبیر للبیہقی - احمد بن حسن البیہقی - ۴۵۸ ۳۸۷۔ کتاب الرواۃ عن مالک ابن انس - ابوبکر احمد بن علی خطیب بغدادی - ۴۶۳ ۳۸۸۔ کتاب الحجہ علی تارک الحجہ - نصر بن ابراہیم المقدسی - ۴۹۰ ۳۸۹۔ کیمیائے سعادت - امام محمد بن محمد الغزالی - ۵۰۵ ۳۹۰۔ کفایۃ الطالب الربانی بشرح لرسالہ ابن ابی زید القہروانی - ابوالحسن علی بن ناصر الدین الشاذلی - ۹۳۹ ۳۹۱۔ کشف الظنون - مصطفٰی بن عبداللہ حاجی خلیفہ - ۱۰۶۷ ۳۹۲۔ کشف الغمہ - شیخ عبدالوہاب بن احمد الشعرانی - ۹۷۳ ۳۹۳۔ کتاب الصفین - یحیٰی بن سلیمان الجعفی (استاد امام بخاری) ۳۹۴۔ کتاب المصاحف ابن الانباری ۳۹۵۔ کمالین حاشیہ جلالین - شیخ سلام اللہ بن محمد شیخ الاسلام محدث رامپوری - ۱۲۳۳ ۳۹۶۔ کتاب المغازی - محمد بن عمر بن واقد الواقدی - ۲۰۷

ل ۳۹۷۔ لمعات التنقیح - علامہ شیخ عبدالحق المحدث الدہلوی - ۱۰۵۲ ۳۹۸۔ لقط المرجان فی اخبار الجان - علامہ جلال الدین عبد الرحمن بن محمد السیوطی - ۹۱۱

Fatawa Razawiyya Volume Eight

399- Lisan al-Arab | Jamal al-Din Muhammad bin Mukarram ibn Manzur al-Misri | 711 400- Al-La'ali al-Masnu'ah fi al-Ahadith al-Mawdu'ah | Abu Bakr Abd al-Rahman bin Kamal al-Din al-Suyuti | 911 401- Lawaqih al-Anwar al-Qudsiyyah al-Muntakhab min al-Futuhat al-Makkiyyah | Abd al-Wahhab bin Ahmad al-Sha'rani | 973

M (Section) 402- Mashariq al-Anwar | Al-Shaykh Abd al-Latif bin Abd al-Aziz ibn al-Malik | 801 403- Mabsut Khwaharzadah | Bakr Khwaharzadah Muhammad bin Hasan al-Bukhari al-Hanafi | 483 404- Mabsut al-Sarkhasi | Shams al-A'immah Muhammad bin Ahmad al-Sarkhasi | 483 405- Majma' al-Anhur Sharh Multaqa al-Abhur | Nur al-Din Ali al-Baqani | 995 406- Majma' Bihar al-Anwar | Muhammad Tahir al-Siddiqui | 981 407- Majmu' al-Nawazil | Ahmad bin Musa bin Isa | 550 408- Majma' al-Anhur fi Sharh Multaqa al-Abhur | Abd al-Rahman bin Muhammad bin Sulayman, known as Damad Efendi Shaykhi-zadah | 1078 409- Al-Muhit al-Burhani | Imam Burhan al-Din Mahmud bin Taj al-Din | 616 410- Al-Muhit al-Radawi | Radi al-Din Muhammad bin Muhammad al-Sarkhasi | 671 411- Mukhtarat al-Nawazil | Burhan al-Din Ali bin Abi Bakr al-Marghinani | 593 412- Mukhtar al-Sahah | Muhammad bin Abi Bakr Abd al-Qadir al-Razi | 660 413- Al-Mukhtarah fi al-Hadith | Diya' al-Din Muhammad bin Abd al-Wahid | 643 414- Al-Mukhtasar | Allamah Jalal al-Din al-Suyuti | 911 415- Madkhal al-Shar' al-Sharif | Ibn al-Hajj Abi Abdullah Muhammad bin Muhammad al-Abdari | 737 416- Maraqi al-Falah bi-Imdad al-Fattah Sharh Nur al-Idah | Hasan bin Ammar bin Ali al-Shurunbulali | 1069 417- Mirqat Sharh Mishkat | Ali bin Sultan Mulla Ali Qari | 1012 418- Mirqat al-Su'ud | Allamah Jalal al-Din al-Suyuti | 911 419- Mustakhlas al-Haqa'iq | Ibrahim bin Muhammad al-Hanafi | 405 420- Al-Mustadrak lil-Hakim | Abu Abdullah al-Hakim | --- 421- Al-Mustasfa Sharh al-Fiqh al-Nafi' | Hafiz al-Din Abdullah bin Ahmad al-Nasafi | 710

फतावा रज़विया खंड आठवाँ

399- लिसान अल-अरब | जमालुद्दीन मुहम्मद बिन मुकर्रम इब्न मंज़ूर अल-मिसरी | 711 400- अल-लाअली अल-मस्नूअह फ़िल अहादीस अल-मौज़ूअह | अबू बक्र अब्दुल रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती | 911 401- लवाकिह अल-अनवार अल-कुद्सिया अल-मुंतखब मिन अल-फुतुहात अल-मक्किआह | अब्दुल वहाब बिन अहमद अल-शारानी | 973

म (अनुभाग) 402- मशारिक अल-अनवार | अल-शेख अब्दुल लतीफ़ बिन अब्दुल अज़ीज़ इब्न अल-मलिक | 801 403- मबसूत ख़्वाहज़ादा | बक्र ख़्वाहज़ादा मुहम्मद बिन हसन अल-बुखारी अल-हनफी | 483 404- मबसूत अल-सरखसी | शम्स अल-अइम्मह मुहम्मद बिन अहमद अल-सरखसी | 483 405- मजमा अल-अनहुर शरह मुल्तका अल-अबहुर | नूर अल-दीन अली अल-बाक़ानी | 995 406- मजमा बिहार अल-अनवार | मुहम्मद ताहिर अल-सिद्दीकी | 981 407- मजमूअ अल-नवाज़िल | अहमद बिन मूसा बिन ईसा | 550 408- मजमा अल-अनहुर फ़ी शरह मुल्तका अल-अबहुर | अब्दुर रहमान बिन मुहम्मद बिन सुलेमान, जिन्हें दामाद अफ़ंदी शैखी ज़ादा के नाम से जाना जाता है | 1078 409- अल-मुहीत अल-बुरहानी | इमाम बुरहानुद्दीन महमूद बिन ताजुद्दीन | 616 410- अल-मुहीत अल-रज़वी | रज़ी उद्दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-सरखसी | 671 411- मुख्तारात अल-नवाज़िल | बुरहानुद्दीन अली बिन अबी बक्र अल-मरग़ीनानी | 593 412- मुख्तार अल-सिहाह | मुहम्मद बिन अबी बक्र अब्दुल कादिर अल-राज़ी | 660 413- अल-मुख्ताराह फिल हदीस | ज़ियाउद्दीन मुहम्मद बिन अब्दुल वाहिद | 643 414- अल-मुख्तसर | अल्लामा जलालुद्दीन अल-सुयूती | 911 415- मदखल अल-शर अल-शरीफ | इब्न अल-हाज अबी अब्दुल्ला मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-अब्दरी | 737 416- मराकी अल-फलाह बि-इमदाद अल-फत्ताह शरह नूर अल-ईज़ाह | हसन बिन अम्मार बिन अली अल-शुरुनबुलाली | 1069 417- मिरकात शरह मिश्कात | अली बिन सुल्तान मुल्ला अली कारी | 1012 418- मिरकात अल-सुऊद | अल्लामा जलालुद्दीन अल-सुयूती | 911 419- मुस्तख़लस अल-हक़ाएक़ | इब्राहिम बिन मुहम्मद अल-हनफ़ी | 405 420- अल-मुस्तदरक लिल-हाकिम | अबू अब्दुल्ला अल-हाकिम | --- 421- अल-मुस्तस्फ़ा शरह अल-फिक्ह अल-नाफे| हाफ़िज़ुद्दीन अब्दुल्ला बिन अहमद अल-नसफ़ी | 710

पृष्ठ 660 का 673

فتاوىٰ رضويہ جلد ہشتم

۳۹۹- لسان العرب | جمال الدين محمد بن مكرم ابن منظور المصرى | ۷۱۱ ۴۰۰- اللآلى المصنوعہ فى الاحاديث الموضوعہ | ابوبكر عبد الرحمن بن كمال الدين السيوطى | ۹۱۱ ۴۰۱- لواقح الانوار القدسيہ سيد المنتخب من الفتوحات المكيہ | عبد الوہاب بن احمد الشعرانى | ۹۷۳

م ۴۰۲- مشارق الانوار | الشيخ عبد اللطيف بن عبد العزيز ابن الملک | ۸۰۱ ۴۰۳- مبسوط خواہرزادہ | بكر خواہرزادہ محمد بن حسن البخارى الحنفى | ۴۸۳ ۴۰۴- مبسوط السرخسى | شمس الائمہ محمد بن احمد السرخسى | ۴۸۳ ۴۰۵- مجمع الانہر شرح ملتقى الابحر | نور الدين على الباقانى | ۹۹۵ ۴۰۶- مجمع بحار الانوار | محمد طاہر الصديقى | ۹۸۱ ۴۰۷- مجموع النوازل | احمد بن موسىٰ بن عيسىٰ | ۵۵۰ ۴۰۸- مجمع الانہر فى شرح ملتقى الابحر | عبدالرحمن بن محمد بن سليمان المعروف بداماد آفندى شيخى زادہ | ۱۰۷۸ ۴۰۹- المحيط البرہانى | امام برہان الدين محمود بن تاج الدين | ۶۱۶ ۴۱۰- المحيط الرضوى | رضى الدين محمد بن محمد السرخسى | ۶۷۱ ۴۱۱- مختارات النوازل | برہان الدين على بن ابى بكر المرغينانى | ۵۹۳ ۴۱۲- مختار الصحاح | محمد بن ابى بكر عبد القادر الرازى | ۶۶۰ ۴۱۳- المختارۃ فى الحديث | ضياء الدين محمد بن عبد الواحد | ۶۴۳ ۴۱۴- المختصر | علامہ جلال الدين السيوطى | ۹۱۱ ۴۱۵- مدخل الشرع الشريف | ابن الحاج ابى عبد الله محمد بن محمد العبدرى | ۷۳۷ ۴۱۶- مراقى الفلاح بامداد الفتاح شرح نور الايضاح | حسن بن عمار بن على الشرنبلالى | ۱۰۶۹ ۴۱۷- مرقات شرح مشكوۃ | على بن سلطان ملا على قارى | ۱۰۱۲ ۴۱۸- مرقات الصعود | علامہ جلال الدين السيوطى | ۹۱۱ ۴۱۹- مستخلص الحقائق | ابراہيم بن محمد الحنفى | ۴۰۵ ۴۲۰- المستدرک للحاكم | ابو عبد الله الحاكم | --- ۴۲۱- المستصفىٰ شرح الفقہ النافع | حافظ الدين عبد الله بن احمد النسفى | ۷۱۰

Fatawa Razawiya Volume Eight

422_ Musallam al-Thubut - Muhibbullah al-Bihari - 1119 423_ Musnad Abi Dawud - Sulayman ibn Dawud al-Tayalisi - 202 424_ Musnad Abi Ya'la - Ahmad ibn Ali al-Mawsili - 307 425_ Musnad Ishaq ibn Rahwayh - Hafiz Ishaq ibn Rahwayh - 238 426_ Musnad al-Imam Ahmad ibn Hanbal - Imam Ahmad ibn Muhammad ibn Hanbal - 221 427_ Musnad al-Kabir fi al-Hadith - Abu Bakr Ahmad ibn Amr ibn Abd al-Khaliq al-Bazzar - 292 428_ Musnad al-Kabir fi al-Hadith - Abu Muhammad Abd ibn Muhammad Hamid al-Kishshi - 292 429_ Musnad al-Firdaws - Shahr-dar ibn Shirawayh al-Daylami - 558 430_ Misbah al-Munir - Ahmad ibn Muhammad ibn Ali - 770 431_ Al-Musaffa - Hafiz al-Din Abdullah ibn Ahmad al-Nasafi - 710 432_ Musannaf Ibn Abi Shaybah - Abu Bakr Abdullah ibn Muhammad Ahmad al-Nasafi - 235 433_ Musannaf Abd al-Razzaq - Abu Bakr Abd al-Razzaq ibn Hammam al-San'ani - 211 434_ Misbah al-Duja - Imam Hasan ibn Muhammad al-Saghani al-Hindi - 650 435_ Ma'rifat al-Sahabah - Abu Nu'aym Ahmad ibn Abdullah al-Asbahani - 430 436_ Al-Mu'jam al-Awsat - Sulayman ibn Ahmad al-Tabarani - 360 437_ Al-Mu'jam al-Saghir - Sulayman ibn Ahmad al-Tabarani - 360 438_ Al-Mu'jam al-Kabir - Sulayman ibn Ahmad al-Tabarani - 360 439_ Mi'raj al-Dirayah - Qawam al-Din Muhammad ibn Muhammad al-Bukhari - 729 440_ Mishkat al-Masabih - Shaykh Wali al-Din al-Iraqi - 722 441_ Al-Mughni fi al-Usul - Shaykh Umar ibn Muhammad al-Khabbazi al-Hanafi - 291 442_ Al-Maghrib - Abu al-Fath Nasir ibn Abd al-Sayyid al-Mutarrizi - 610 443_ Mukhtasar al-Quduri - Abu al-Husayn Ahmad ibn Muhammad al-Quduri al-Hanafi - 428 444_ Mafatih al-Jinan - Ya'qub ibn Sayyid Ali - 931 445_ Al-Mufradat li al-Imam Raghib - Husayn ibn Muhammad ibn Mufaddal al-Asfahani - 502 446_ Al-Muqaddimah al-Ashmawiyyah fi al-Fiqh al-Maliki - Abu al-Abbas Abd al-Bari al-Ashmawi al-Maliki

Page 661 of 673

फ़तावा रज़विया आठवाँ खंड

४२२_ मुसल्लम अल-सुबूत - मुहिबुल्लाह अल-बिहारी - ١١١٩ ४२३_ मुसनद अबी दाऊद - सुलेमान बिन दाऊद अल-तायालिसी - २०२ ४२४_ मुसनद अबी याला - अहमद बिन अली अल-मूसली - ३०७ ४२५_ मुसनद इस्हाक़ इब्न राहवैह - हाफ़िज़ इस्हाक़ इब्न राहवैह - २३८ ४२६_ मुसनद अल-इमाम अहमद बिन हंबल - इमाम अहमद बिन मुहम्मद बिन हंबल - २२१ ४२७_ मुसनद अल-कबीर फ़िल हदीस - अबू बक्र अहमद बिन अम्र बिन अब्दुल खालिक अल-बज़ार - २९२ ४२८_ मुसनद अल-कबीर फ़िल हदीस - अबू मुहम्मद अब्द बिन मुहम्मद हमीद अल-किश्शी - २९२ ४२९_ मुसनद अल-फ़िरदौस - शहर-दार बिन शिरवैह अद-दैलमी - ५५٨ ४३०_ मिस्बाह अल-मुनीर - अहमद बिन मुहम्मद बिन अली - ७७० ४३१_ अल-मुसफ़्फ़ा - हाफ़िज़ उद्दीन अब्दुल्लाह बिन अहमद अन-नसफ़ी - ७१० ४३२_ मुसन्नफ़ इब्न अबी शैबा - अबू बक्र अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद अहमद अन-नसफ़ी - २३५ ४३३_ मुसन्नफ़ अब्द अल-रज़्ज़ाक़ - अबू बक्र अब्द अल-रज़्ज़ाक़ बिन हम्माम अल-सनआनी - २११ ४३४_ मिस्बाह अद-दुजा - इमाम हसन बिन मुहम्मद अल-साग़ानी अल-हिन्दी - ६५० ४३५_ मआरिफ़त अल-सहाबा - अबू नुऐम अहमद बिन अब्दुल्लाह अल-असबहानी - ४३० ४३६_ अल-मुअजम अल-औसत - सुलेमान बिन अहमद अल-तबरानी - ३६० ४३७_ अल-मुअजम अल-सग़ीर - सुलेमान बिन अहमद अल-तबरानी - ३६० ४३٨_ अल-मुअजम अल-कबीर - सुलेमान बिन अहमद अल-तबरानी - ३६० ४३९_ मेराज अद-दिरयाह - क़वाम उद्दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-बुख़ारी - ७२९ ४४०_ मिश्कात अल-मसाबीह - शेख वली उद्दीन अल-इराक़ी - ७२२ ४४१_ अल-मुग़नी फ़िल उसूल - शेख उमर बिन मुहम्मद अल-ख़ब्बाज़ी अल-हनफ़ी - २९१ ४४२_ अल-मग़रिब - अबुल फ़तह नासिर बिन अब्द अल-सय्यद अल-मुतर्रिज़ी - ६१० ४४३_ मुख़्तसर अल-क़ुदूरी - अबुल हुसैन अहमद बिन मुहम्मद अल-क़ुदूरी अल-हनफ़ी - ४२८ ४४४_ मफ़ातीह अल-जिनान - याक़ूब बिन सैय्यद अली - ९३१ ४४५_ अल-मुफ़रदात लिल इमाम राग़िब - हुसैन बिन मुहम्मद बिन मुफ़ज़्ज़ल अल-असफ़हानी - ५०२ ४४६_ अल-मुक़द्दिमत अल-अश्माविया फ़िल फ़िक़्ह अल-मालिकी - अबुल अब्बास अब्दुल बारी अल-अश्मावी अल-मालिकी

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۴۲۲_ مسلم الثبوت محب اللہ البہاری ۱۱۱۹ ۴۲۳_ مسند ابی داؤد سلیمان بن داؤد الطیالسی ۲۰۲ ۴۲۴_ مسند ابی یعلی احمد بن علی الموصلی ۳۰۷ ۴۲۵_ مسند اسحق ابن راہویہ حافظ اسحق ابن راہویہ ۲۳۸ ۴۲۶_ مسند الامام احمد بن حنبل امام احمد بن محمد بن حنبل ۲۲۱ ۴۲۷_ مسند الکبیر فی الحدیث ابوبکر احمد بن عمر و بن عبدالخالق البزار ۲۹۲ ۴۲۸_ مسند الکبیر فی الحدیث ابو محمد عبد بن محمد حمید الکشی ۲۹۲ ۴۲۹_ مسند الفردوس شہر دار بن شیرویہ الدیلمی ۵۵۸ ۴۳۰_ مصباح المنیر احمد بن محمد بن علی ۷۷۰ ۴۳۱_ المصفی حافظ الدین عبداللہ بن احمد النسفی ۷۱۰ ۴۳۲_ مصنف ابن ابی شیبۃ ابو بکر عبداللہ بن محمد احمد النسفی ۲۳۵ ۴۳۳_ مصنف عبدالرزاق ابوبکر عبدالرزاق بن ہمام الصنعانی ۲۱۱ ۴۳۴_ مصباح الدجیٰ امام حسن بن محمد الصغانی الہندی ۶۵۰ ۴۳۵_ معرفۃ الصحابۃ ابو نعیم احمد بن عبداللہ الاصبہانی ۴۳۰ ۴۳۶_ المعجم الاوسط سلیمان بن احمد الطبرانی ۳۶۰ ۴۳۷_ المعجم الصغیر سلیمان بن احمد الطبرانی ۳۶۰ ۴۳۸_ المعجم الکبیر سلیمان بن احمد الطبرانی ۳۶۰ ۴۳۹_ معراج الدرایۃ قوام الدین محمد بن محمد البخاری ۷۲۹ ۴۴۰_ مشکوۃ المصابیح شیخ ولی الدین العراقی ۷۲۲ ۴۴۱_ المغنی فی الاصول شیخ عمر بن محمد الخبازی الحنفی ۲۹۱ ۴۴۲_ المغرب ابوالفتح ناصر بن عبدالسید المطرز ی ۶۱۰ ۴۴۳_ مختصر القدوری ابوالحسین احمد بن محمد القدوری الحنفی ۴۲۸ ۴۴۴_ مفاتیح الجنان یعقوب بن سید علی ۹۳۱ ۴۴۵_ المفردات للامام راغب حسین بن محمد بن مفضل الاصفہانی ۵۰۲ ۴۴۶_ المقدمۃ العشماویۃ في الفقه المالکی ابوالعباس عبدالبارئ العشماوی المالکی

Volume 8 Fatawa Rizvia 556 447- Al-Multaqat (in Fatawa Nasiri) Nasir al-Din Muhammad bin Yusuf al-Husayni 807 448- Majma' al-Zawa'id Nur al-Din Ali bin Abi Bakr al-Haythami 827 449- Manaqib al-Kardari Muhammad bin Muhammad bin Shahab ibn Bazzaz 307 450- Al-Muntaqa (in Hadith) Abdullah bin Ali ibn Jarud 332 451- Al-Muntaqa fi Furu' al-Hanifiya al-Hakim al-Shahir Muhammad bin Muhammad bin Ahmad 1252 452- Minhat al-Khaliq Hashiyah Bahr al-Ra'iq Muhammad Amin ibn Abidin al-Shami 1004 453- Manh al-Ghaffar Muhammad bin Abdullah al-Tumurtashi 956 454- Multaqa al-Abhur Imam Ibrahim bin Muhammad al-Halabi 676 455- Minhaj al-Nawawi (Sharh Sahih Muslim) Sheikh Abu Zakariya Yahya bin Sharaf al-Nawawi 694 456- Majma' al-Bahrayn Muzaffar al-Din Ahmad bin Ali bin Tha'lab al-Hanafi 456 457- Al-Mubtagha Sheikh Ali bin Muhammad ibn Inaj al-Hanafi 510 458- Al-Mabsut Abdul Aziz bin Ahmad Halwani 262 459- Musnad fi al-Hadith Al-Hafiz Abu al-Fath Nasr bin Ibrahim al-Marwazi 705 460- Al-Musnad al-Kabir Yaqub bin Shaybah al-Sadusi 179 461- Munyat al-Musalli Sadid al-Din Muhammad bin Muhammad al-Kashghari 807 462- Muwatta Imam Malik Imam Malik bin Anas al-Madani 642 463- Mawarid al-Zaman Nur al-Din Ali bin Abi Bakr al-Haythami 746 464- Mushkilat Ahmad bin Muzaffar al-Razi 973 465- Muhadhdhab Abi Ishaq ibn Muhammad al-Shafi'i 728 466- Mizan al-Shari'ah al-Kubra Abdul Wahhab al-Sha'rani 410 467- Mizan al-I'tidal Muhammad bin Ahmad al-Dhahabi 327 468- Al-Mustakhraj 'ala al-Sahih al-Bukhari Ahmad bin Musa ibn Marduwayh 150 469- Makarim al-Akhlaq Muhammad bin Ja'far al-Khara'iti 189 470- Musnad al-Imam al-A'zam Abu Hanifah Nu'man bin Thabit 471- Muwatta al-Imam Muhammad Abu Abdullah Muhammad bin al-Hasan al-Shaybani Page 662 of 673

जिल्द अष्टम फ़तावा रिज़विया ५५६ ४४७- अल-मुल्तक़त (फ़तावा नासिरी में) नासिरुद्दीन मुहम्मद बिन यूसुफ़ अल-हुसैनी ८०७ ४४८- मजमाउज़-ज़वाइद नूरुद्दीन अली बिन अबी बक्र अल-हैथमी ८२७ ४४९- मनाकिबुल करदरी मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन शहाब इब्ने बज़ाज़ ३०७ ४५०- अल-मुन्तक़ा (हदीस में) अब्दुल्लाह बिन अली इब्ने जारूद ३३२ ४५१- अल-मुन्तक़ा फ़ी फ़ुरू'इल हनफ़िया अल-हाकिम अश-शहीर मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन अहमद १२५२ ४५२- मिन्हातुल ख़ालिक़ हाशिया बह्रुर राइक मुहम्मद अमीन इब्ने आबिदीन अश-शामी १००४ ४५३- मनहुल ग़फ़्फ़ार मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अत-तुमुर्ताशी ९५६ ४५४- मुल्तक़ल अबहुर इमाम इब्राहीम बिन मुहम्मद अल-हलबी ६७६ ४५५- मिन्हाजुन नववी (शरह सहीह मुस्लिम) शैख़ अबू ज़करिया यहया बिन शरफ अन-नववी ६९४ ४५६- मजमउल बहरैन मुज़फ़्फ़रुद्दीन अहमद बिन अली बिन सअलब अल-हनफ़ी ४५६ ४५७- अल-मुब्तग़ा शैख़ अली बिन मुहम्मद इब्ने ईनाज अल-हनफ़ी ५१० ४५८- अल-मबसूत अब्दुल अज़ीज़ बिन अहमद हलवानी २६२ ४५९- मुसनद फ़िल हदीस अल-हाफ़िज़ अबुल फ़तह नस्र बिन इब्राहीम अल-मर्वज़ी ७०५ ४६०- अल-मुसनदुल कबीर याक़ूब बिन शैबा अस-सदूसी १७९ ४६१- मुनयतुल मुसल्ली सदीदुद्दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-काशग़री ८०७ ४६२- मुवत्ता इमाम मालिक इमाम मालिक बिन अनस अल-मदनी ६४२ ४६३- मवारिदुज़ ज़मआन नूरुद्दीन अली बिन अबी बक्र अल-हैथमी ७४६ ४६४- मुश्किलात अहमद बिन मुज़फ़्फ़र अर-राज़ी ९७३ ४६५- मुहज़्ज़ब अबी इस्हाक़ इब्ने मुहम्मद अश-शाफ़ई ७२८ ४६६- मीज़ानुल शरीअतुल कुबरा अब्दुल वहाब अश-शारानी ४१० ४६७- मीज़ानुल इ'तिदाल मुहम्मद बिन अहमद अज़-ज़हबी ३२७ ४६८- अल-मुस्तख़रज अला अल-सहीह अल-बुख़ारी अहमद बिन मूसा इब्ने मरदुवैया १५० ४६९- मकारिमुल अख़लाक़ मुहम्मद बिन जाफ़र अल-ख़राइती १८९ ४७०- मुसनद इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा नुमान बिन साबित ४७१- मुवत्ता इमाम मुहम्मद अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अल-हसन अश-शैबानी पेज 662 का 673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ ۵۵۶ ۴۴۷- الملتقط (فی فتاوی ناصری) ناصرالدین محمد بن یوسف الحسینی ۸۰۷ ۴۴۸- مجمع الزوائد نورالدین علی بن ابی بکر الہیثمی ۸۲۷ ۴۴۹- مناقب الکردری محمد بن محمد بن شہاب ابن بزاز ۳۰۷ ۴۵۰- المنتقی (فی الحدیث) عبداللہ بن علی ابن جارود ۳۳۲ ۴۵۱- المنتقی فی فروع الحنیفہ الحاکم الشہیر محمد بن محمد بن احمد ۱۲۵۲ ۴۵۲- منحۃ الخالق حاشیہ بحر الرائق محمد امین ابن عابدین الشامی ۱۰۰۴ ۴۵۳- منح الغفار محمد بن عبداللہ التمرتاشی ۹۵۶ ۴۵۴- ملتقی الابحر امام ابراہیم بن محمد الحلبی ۶۷۶ ۴۵۵- منہاج النووی (شرح صحیح مسلم) شیخ ابوزکریا یحیی بن شرف النووی ۶۹۴ ۴۵۶- مجمع البحرین مظفرالدین احمد بن علی بن ثعلب الحنفی ۴۵۶ ۴۵۷- المبتغی شیخ علی بن محمد ابن ایناج الحنفی ۵۱۰ ۴۵۸- المبسوط عبدالعزیز بن احمد حلوانی ۲۶۲ ۴۵۹- مسند فی الحدیث الحافظ ابوالفتح نصر بن ابراہیم المروزی ۷۰۵ ۴۶۰- المسند الکبیر یعقوب بن شیبہ السدوسی ۱۷۹ ۴۶۱- منیۃ المصلی سدید الدین محمد بن محمد الکاشغری ۸۰۷ ۴۶۲- موطا امام مالک امام مالک بن انس المدنی ۶۴۲ ۴۶۳- موارد الظمآن نورالدین علی بن ابی بکر الہیثمی ۷۴۶ ۴۶۴- مشکلات احمد بن مظفر الرازی ۹۷۳ ۴۶۵- مہذب ابی اسحق ابن محمد الشافعی ۷۲۸ ۴۶۶- میزان الشریعۃ الکبری عبدالوہاب الشعرانی ۴۱۰ ۴۶۷- میزان الاعتدال محمد بن احمد الذہبی ۳۲۷ ۴۶۸- المستخرج علی الصحیح البخاری احمد بن موسیٰ ابن مردویہ ۱۵۰ ۴۶۹- مکارم اخلاق محمد بن جعفر الخرائطی ۱۸۹ ۴۷۰- مسند الامام اعظم ابوحنیفہ نعمان بن ثابت ۴۷۱- موطا الامام محمد ابوعبداللہ محمد بن الحسن الشیبانی صفحہ 662 کا 673

Fatawa Razawiyya - Volume 8

1. Al-Musnad fil Hadith | Hasan bin Sufyan al-Nasawi | 303
2. Ma'alim al-Sunan li-Abi Sulayman al-Khattabi | Ahmad bin Muhammad bin Ibrahim al-Khattabi | 388
3. Maqamat Hariri | Qasim ibn Ali al-Hariri | 516
4. Ma'alim al-Tanzil Tafsir al-Baghawi | Abu Muhammad al-Husayn bin Mas'ud al-Baghawi | 516
5. Al-Milal wal-Nihal | Abul Fath Muhammad bin Abdul Karim al-Shahrastani | 548
6. Mawdu'at Ibn al-Jawzi | Abul Faraj Abdul Rahman bin Ali bin al-Jawzi | 597
7. Muqaddimah Ibn al-Salah fi 'Ulum al-Hadith | Abu 'Amr 'Uthman bin Abdul Rahman ibn al-Salah | 632
8. Mukhtasar Sunan Abi Dawud lil-Hafiz al-Mundhiri | Abdul Azim bin Abdul Qawi al-Mundhiri | 656
9. Madarik al-Tanzil Tafsir al-Nasafi | Abul Barakat Abdullah bin Ahmad al-Nasafi | 710
10. Al-Mawaqif al-Sultaniyah fi 'Ilm al-Kalam | 'Adud al-Din Abdul Rahman bin Rukn al-Din Ahmad | 756
11. Muqaddimah Jazariyyah | Muhammad bin Muhammad al-Jazari | 833
12. Maqasid Hasanah | Shams al-Din Muhammad bin Abdul Rahman al-Sakhawi | 902
13. Al-Mawahib al-Ladunniyyah | Ahmad bin Muhammad al-Qastallani | 923
14. Al-Minah al-Fikriyyah Sharh Muqaddimah Jazariyyah | Ali bin Sultan Muhammad al-Qari | 1012
15. Al-Maslak al-Mutaqassit fil-Mansak al-Mutawassit | Ali bin Sultan Muhammad al-Qari | 1012
16. Ma Thabata bis-Sunnah | Shaykh Abdul Haqq bin Sayf al-Din al-Dihlawi | 1052
17. Al-Maybudhi | Qadi Mir Husayn bin Mu'in al-Din | 1096
18. Musawwa Musaffa Sharh Muwatta Imam Malik | Shah Waliullah bin Shah Abdul Rahim al-Dihlawi | 1179
19. Maktubat Shah Waliullah | Shah Waliullah bin Shah Abdul Rahim al-Dihlawi | 1179
20. Maktubat | Mirza Mazhar Jan-e-Janan | 1195
21. Malfuzat | Mirza Mazhar Jan-e-Janan | 1195
22. Ma'mulat | Mirza Mazhar Jan-e-Janan | 1195

23. Makhzan Adwiyah fit-Tibb | Muhammad Husayn bin Muhammad al-Hadi Bahadur Khan |
24. Majmu'ah Fatawa | Abul Hasanat Muhammad Abdul Hayy | 1243
25. Mi'yar al-Haqq | Syed Nazir Husayn al-Dihlawi | 1243

फ़तावा रज़विया - जिल्द 8

1. अल-मुसनद फ़ी अल-हदीस | हसन बिन सुफ़यान अल-नसवी | 303
2. मआलिम अल-सुनन लि-अबी सुलेमान अल-खत्ताबी | अहमद बिन मुहम्मद बिन इब्राहीम अल-खत्ताबी | 388
3. मक़ामात हरीरी | क़ासिम इब्न अली अल-हरीरी | 516
4. मआलिम अत-तन्ज़ील तफ़सीर अल-बग़वी | अबू मुहम्मद अल-हुसैन बिन मसऊद अल-बग़वी | 516
5. अल-मिलल वल-निहल | अबुल फ़तह मुहम्मद बिन अब्दुल करीम अल-शहरस्तानी | 548
6. मौज़ूआत इब्न अल-जौज़ी | अबुल फ़रज अब्दुल रहमान बिन अली बिन अल-जौज़ी | 597
7. मुक़द्दमा इब्न अल-सलाह फ़ी उलूम अल-हदीस | अबू अम्र उस्मान बिन अब्दुल रहमान इब्न अल-सलाह | 632
8. मुख़्तसर सुनन अबी दाऊद लिल-हाफ़िज़ अल-मुन्ज़िरी | अब्दुल अज़ीम बिन अब्दुल क़वी अल-मुन्ज़िरी | 656
9. मदारिक अत-तन्ज़ील तफ़सीर अन-नसफ़ी | अबुल बरकात अब्दुल्लाह बिन अहमद अन-नसफ़ी | 710
10. अल-मवाक़िफ़ अल-सुल्तानिया फ़ी इल्म अल-कलाम | अज़ुद अल-दीन अब्दुल रहमान बिन रुकन अल-दीन अहमद | 756
11. मुक़द्दमा जज़रिय्या | मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-जज़री | 833
12. मक़ासिद हसना | शम्स अल-दीन मुहम्मद बिन अब्दुल रहमान अल-सखावी | 902
13. अल-मवाहिब अल-लदुन्निया | अहमद बिन मुहम्मद अल-क़स्तलानी | 923
14. अल-मिनह अल-फ़िक्रिया शरह मुक़द्दमा जज़रिय्या | अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी | 1012
15. अल-मस्लक अल-मुतक़स्सिट फ़िल-मन्सक अल-मुतवस्सिट | अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी | 1012
16. मा सबत बिस-सुन्ना | शेख़ अब्दुल हक़ बिन सैफ़ अल-दीन अल-देहल्वी | 1052
17. अल-मैबुज़ी | क़ाज़ी मीर हुसैन बिन मुईन अल-दीन | 1096

18. मुसव्वा मुसफ़्फ़ा शरह मुवत्ता इमाम मालिक | शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम अल-देहल्वी | 1179
19. मक्तूबात शाह वलीउल्लाह | शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम अल-देहल्वी | 1179
20. मक्तूबात | मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां | 1195
21. मल्फ़ूज़ात | मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां | 1195
22. मामूलात | मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानां | 1195
23. मख़ज़न अदविया फ़ित-तिब | मुहम्मद हुसैन बिन मुहम्मद अल-हादी बहादुर खां |
24. मज्मूआ फ़तावा | अबुल हसनात मुहम्मद अब्दुल हई | 1243
25. मेयार उल हक़ | सैयद नज़ीर हुसैन अल-देहल्वी | 1243

جلد ہشتم

فتاویٰ رضویہ

۴۷۲۔ المسند فی الحدیث | حسن بن سفیان النسوی | ۳۰۳ ۴۷۳۔ معالم السنن لابی سلیمان الخطابی | احمد بن محمد بن ابراہیم الخطابی | ۳۸۸ ۴۷۴۔ مقامات حریری | قاسم ابن علی الحریری | ۵۱۶ ۴۷۵۔ معالم التنزیل تفسیر البغوی | ابو محمد الحسین بن مسعود البغوی | ۵۱۶ ۴۷۶۔ الملل والنحل | ابوالفتح محمد بن عبدالکریم الشہرستانی | ۵۴۸ ۴۷۷۔ موضوعات ابن جوزی | ابوالفرج عبدالرحمن بن علی بن الجوزی | ۵۹۷ ۴۷۸۔ مقدمہ ابن الصلاح فی علوم الحدیث | ابو عمرو عثمان بن عبدالرحمن ابن الصلاح | ۶۳۲ ۴۷۹۔ مختصر سنن ابی داؤد للحافظ المنذری | عبدالعظیم بن عبدالقوی المنذری | ۶۵۶ ۴۸۰۔ مدارک التنزیل تفسیر النسفی | ابوالبرکات عبداللہ بن احمد النسفی | ۷۱۰ ۴۸۱۔ المواقف السلطانیہ فی علم الکلام | عضد الدین عبدالرحمن بن رکن الدین احمد | ۷۵۶ ۴۸۲۔ مقدمہ جزریہ | محمد بن محمد الجزری | ۸۳۳ ۴۸۳۔ مقاصد حسنہ | شمس الدین محمد بن عبدالرحمن السخاوی | ۹۰۲ ۴۸۴۔ المواہب اللدنیہ | احمد بن محمد القسطلانی | ۹۲۳ ۴۸۵۔ المنح الفکریہ شرح مقدمہ جزریہ | علی بن سلطان محمد القاری | ۱۰۱۲ ۴۸۶۔ المسلک المتقسط فی المنسک المتوسط | علی بن سلطان محمد القاری | ۱۰۱۲ ۴۸۷۔ ما ثبت بالسنۃ | شیخ عبدالحق بن سیف الدین الدہلوی | ۱۰۵۲ ۴۸۸۔ المیبذی | قاضی میر حسین بن معین الدین | ۱۰۹۶ ۴۸۹۔ مسوی مصفی شرح موطا امام مالک | شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی | ۱۱۷۹ ۴۹۰۔ مکتوبات شاہ ولی اللہ | شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم الدہلوی | ۱۱۷۹ ۴۹۱۔ مکتوبات | مرزا مظہر جان جاناں | ۱۱۹۵ ۴۹۲۔ ملفوظات | مرزا مظہر جان جاناں | ۱۱۹۵ ۴۹۳۔ معمولات | مرزا مظہر جان جاناں | ۱۱۹۵ ۴۹۴۔ مخزن ادویہ فی الطب | محمد حسین بن محمد الہادی بہادر

خاں | ۴۹۵۔ مجموعہ فتاویٰ | ابوالحسنات محمد عبدالحی | ۱۲۴۳ ۴۹۶۔ معیار الحق | سید نذیر حسین الدہلوی | ۱۲۴۳

Fatawa Rizwia Volume 8

1. Mazahir-e-Haq — Maulvi Nazir-ul-Haq Meeruthi
2. Maktubat Imam-e-Rabbani — Sheikh Ahmed Sirhindi 1034
3. Munasaha fi Tahqiq Mas'ala al-Musafaha
4. Miftah al-Salat
5. Mujtaba Sharh Quduri
6. Mashyakha Ibn Shadhan
7. Ma'rifat al-Sahaba li Abi Nu'aym — Ahmad bin Abdullah Isbahani 430
8. Mafatih al-Ghayb (Tafsir Kabir) — Imam Fakhruddin Razi 606

(Noon) 505. Al-Nuqaya Mukhtasar al-Wiqaya — Abdullah bin Masood 725 506. Nasb al-Raya — Abu Muhammad Abdullah bin Yusuf al-Hanafi al-Zayla'i 762 507. Nur al-Idah — Hasan bin Ammar bin Ali al-Shurunbulali 1069 508. Al-Nihaya — Husam al-Din Husain bin Ali al-Sighnaqi 711 509. Al-Nihaya li Ibn al-Athir — Majd al-Din Mubarak bin Muhammad al-Jazari Ibn al-Athir 606 510. Al-Nahr al-Fa'iq — Umar bin Nujaim al-Misri 1005 511. Nawadir fil Fiqh — Hisham bin Ubaidullah al-Mazini al-Hanafi 201 512. Nur al-Ayn — Muhammad bin Ahmad al-Ma'ruf bi Nishanchi Zadah 1031 513. Al-Nawazil fil Furu — Abu al-Layth Nasr bin Muhammad bin Ibrahim al-Samarqandi 376 514. Nawadir al-Usul fi Ma'rifat Akhbar al-Rasul — Abu Abdullah Muhammad bin Ali al-Hakim al-Tirmidhi 255

(Waw) 515. Al-Wafi fil Furu — Abdullah bin Ahmad al-Nasafi 710 516. Al-Wajiz fil Furu — Abu Hamid Muhammad bin Muhammad al-Ghazali 505 517. Al-Wiqaya — Mahmud bin Sadr al-Shari'ah 673

फ़तावा रिज़विया जिल्द आठवीं

1. मज़ाहिर-ए-हक़ — मौलवी नज़ीर-उल-हक़ मेरठी
2. मकतूबत इमाम-ए-रब्बानी — शेख अहमद सरहिंदी १०३४
3. मुनासाह फी तहकीक मसला अल-मुसाफहा
4. मिफ्ताह अल-सलात
5. मुजतबा शरह कुदूरी
6. मशयखा इब्न शाधान
7. मारिफत अल-सहाबा ली अबी नुइम — अहमद बिन अब्दुल्लाह इसबहानी ४३०
8. मफातिह अल-ग़ैब (तफ़सीर कबीर) — इमाम फखरुद्दीन राजी ६०६

(न) ५०५. अल-नुकाया मुख्तसर अल-विकाया — अब्दुल्लाह बिन मसूद ७२५ ५०६. नसब अल-राया — अबू मुहम्मद अब्दुल्लाह बिन यूसुफ अल-हनफी अल-ज़ैलई ७६२ ५०७. नूर अल-ईदाह — हसन बिन अम्मार बिन अली अल-शुरुनबुलाली १०६९ ५०८. अल-निहाया — हुसाम अल-दीन हुसैन बिन अली अल-सिग्नाकी ७११ ५०९. अल-निहाया ली इब्न अल-असीर — मजद अल-दीन मुबारक बिन मुहम्मद अल-जज़री इब्न अल-असीर ६०६ ५१०. अल-नहर अल-फायक — उमर बिन नुजैम अल-मिसरी १००५ ५११. नवादिरी फिल फिक़ह — हिशाम बिन उबैदुल्लाह अल-माज़नी अल-हनफी २०१ ५१२. नूर अल-ऐन — मुहम्मद बिन अहमद अल-मारूफ बिनिशानची ज़ादा १०३१ ५१३. अल-नवाज़िल फिल फुरू — अबू अल-लैथ नस्र बिन मुहम्मद बिन इब्राहिम अल-समरक़ंदी ३७६ ५१४. नवादिरी अल-उसूल फी मारिफत अख़बार अल-रसूल — अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अली अल-हाकिम अल-तिरमिज़ी २५५

(व) ५१५. अल-वाफी फिल फुरू — अब्दुल्लाह बिन अहमद अल-नसफ़ी ७१० ५१६. अल-वजीज़ फिल फुरू — अबू हामिद मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़ज़ाली ५०५ ५१७. अल-विकाया — महमूद बिन सदर अल-शरिया ६७३

पृष्ठ ६६४ का ६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۴۹۷۔ مظاہر حق مولوی نذیر الحق میرٹھی ۴۹۸۔ مکتوبات امام ربانی شیخ احمد سرہندی ۱۰۳۴ ۴۹۹۔ مناصحہ فی تحقیق مسئلہ المصافحہ ۵۰۰۔ مفتاح الصلوۃ ۵۰۱۔ مجتبٰی شرح قدوری ۵۰۲۔ مشیخہ ابن شاذان ۵۰۳۔ معرفۃ الصحابہ لابی نعیم احمد بن عبداللہ اصبہانی ۴۳۰ ۵۰۴۔ مفاتیح الغیب (تفسیر کبیر) امام فخر الدین رازی ۶۰۶

ن ۵۰۵۔ النقایۃ مختصر الوقایۃ عبداللہ بن مسعود ۷۲۵ ۵۰۶۔ نصب الرایۃ ابو محمد عبداللہ بن یوسف الحنفی الزیلعی ۷۶۲ ۵۰۷۔ نورالایضاح حسن بن عمار بن علی الشرنبلالی ۱۰۶۹ ۵۰۸۔ النہایۃ حسام الدین حسین بن علی السغناقی ۷۱۱ ۵۰۹۔ النہایۃ لابن اثیر مجدالدین مبارک بن محمد الجزری ابن اثیر ۶۰۶ ۵۱۰۔ النہرالفائق عمر بن نجیم المصری ۱۰۰۵ ۵۱۱۔ نوادر فی الفقہ ہشام بن عبیداللہ المازنی الحنفی ۲۰۱ ۵۱۲۔ نور العین محمد بن احمد المعروف بنشانچی زادہ ۱۰۳۱ ۵۱۳۔ النوازل فی الفروع ابواللیث نصر بن محمد بن ابراہیم السمر قندی ۳۷۶ ۵۱۴۔ نوادر الاصول فی معرفۃ اخبار الرسول ابو عبداللہ محمد بن علی الحکیم الترمذی ۲۵۵

و ۵۱۵۔ الوافی فی الفروع عبد اللہ بن احمد النسفی ۷۱۰ ۵۱۶۔ الوجیز فی الفروع ابو حامد محمد بن محمد الغزالی ۵۰۵ ۵۱۷۔ الوقایۃ محمود بن صدر الشریعۃ ۶۷۳

Volume Eight Fatawa Rizvia

518 - Al-Waseet fi al-Furoo' - Abi Hamid Muhammad bin Muhammad al-Ghazali - 505

H 519 - Al-Hidayah fi Sharh al-Bidayah - Burhan al-Din Ali bin Abi Bakr al-Marghinani - 593

Y 520 - Al-Yawaqeet wal-Jawahir - Sayyid Abdul Wahab al-Sha'rani - 973 521 - Yanabi' fi Ma'rifat al-Usool - Abi Abdullah Muhammad ibn Ramadan al-Rumi - 769

Page 665 of 673

जिल्द आठवीं फ़तावा रज़विया

518 - अल-वसीत फ़ी अल-फ़ुरू' - अबी हामिद मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ग़ज़ाली - 505

ह 519 - अल-हिदाया फ़ी शरह अल-बिदाया - बुरहानुद्दीन अली बिन अबी बक्र अल-मर्ग़ीनानी - 593

य 520 - अल-यवाक़ीत वल-जवाहर - सय्यद अब्दुल वहाब अल-शा'रानी - 973 521 - यनाबी फ़ी मा'रिफ़त अल-उसूल - अबी अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्न रमज़ान अल-रूमी - 769

पृष्ठ 665 / 673

جلد ہشتم فتاویٰ رضویہ

٥١٨ - الوسيط في الفروع - ابى حامد محمد بن محمد الغزالى - ٥٠٥

ہ ٥١٩ - الهداية في شرح البداية - برہان الدين على بن ابى بكر المرغينانى - ٥٩٣

ى ٥٢٠ - اليواقيت والجواهر - سيد عبد الوہاب الشعرانى - ٩٧٣ ٥٢١ - ينابيع في معرفة الاصول - ابى عبد الله محمد ابن رمضان الرومى - ٧٦٩

صفحہ 665 از 673

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

Supplement: Sources and References

S.No. | Book Title | Author | Year of Death (Hijri)

A 1. Anwar al-Tanzil fi Asrar al-Tawil (Tafsir al-Baydawi) | Nasir al-Din Abu Sa'id Abd Allah ibn Umar al-Baydawi, Hadiqat al-Arifin | 685/692/691 2. Al-Isti'ab fi Ma'rifat al-Ashab | Abu Umar Yusuf ibn Abd Allah al-Namari al-Qurtubi | 463/1 3. Awdah Ramz 'ala Sharh Nazm al-Kanz | Ali ibn Muhammad ibn Ghanim al-Maqdisi | 1042 4. Al-Istidhkar | Yusuf ibn Abd Allah ibn Abd al-Barr al-Andalusi | 463 5. Al-Afrad | Ali ibn Umar al-Daraqutni | 385 6. Al-Idah fi Sharh al-Tajrid | Imam Abu al-Fadl Abd al-Rahman ibn Ahmad al-Kirmani | 543 7. Asbab al-Nuzul | Abu al-Hasan Ali ibn Ahmad al-Wahidi | 468 8. Idah al-Haqq al-Sarih fi Ahkam al-Bayt wa al-Darih | Shah Muhammad Isma'il ibn Shah Abd al-Ghani Dehlawi | 1246 9. Anfas al-Arifin | Shah Waliullah ibn Shah Abd al-Rahim | 1176 10. Insan al-Ayn | Shah Waliullah ibn Shah Abd al-Rahim | 1176 11. Insan al-Uyun fi Sirat al-Amin al-Ma'mun | Ali ibn Burhan al-Din Halabi | 1044 12. Irshad al-Talibin | Qazi Muhammad Sanaullah Panipati | 1225 13. Al-I'lam bi A'lam Balad Allah al-Haram | Qutb al-Din Muhammad ibn Ahmad al-Hanafi | 989

फ़तावा रिज़विया आठवीं जिल्द

परिशिष्ट: स्रोत और संदर्भ

क्रम संख्या | पुस्तक का नाम | लेखक | मृत्यु वर्ष (हिजरी)

अ १- अनवार अल-तंज़ील फ़ी असरार अल-तावील (तफ़सीर अल-बैज़ावी) | नासिर अल-दीन अबू सईद अब्दुल्ला बिन उमर अल-बैज़ावी, हदीक़तुल आरिफ़ीन | ६८५/६९२/६९१ २- अल-इस्ती'आब फ़ी मारिफ़त अल-अशाब | अबू उमर यूसुफ़ बिन अब्दुल्ला अल-नमरी अल-क़ुर्तुबी | ४६३/१ ३- औज़ह रमज़ अला शरह नज़्म अल-कन्ज़ | अली बिन मुहम्मद इब्न ग़ानिम अल-मक़दिसी | १०४२ ४- अल-इस्तिज़कार | यूसुफ़ बिन अब्दुल्ला इब्न अब्द अल-बर्र अल-अंदलुसी | ४६३ ५- अल-अफ़राद | अली बिन उमर अल-दारक़ुतनी | ३८५ ६- अल-ईज़ाह फ़ी शरह अल-तजरीद | इमाम अबुल फ़ज़्ल अब्दुर रहमान बिन अहमद अल-किरमानी | ५४३ ७- अस्बाब अल-नुज़ूल | अबुल हसन अली बिन अहमद अल-वाहिदी | ४६८ ८- ईज़ाह अल-हक़ अल-सरीह फ़ी अहकाम अल-बैत व अल-ज़रीह | शाह मुहम्मद इस्माइल बिन शाह अब्द अल-ग़नी देहलवी | १२४६ ९- अनफ़ास अल-आरिफ़ीन | शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्द अल-रहीम | ११७६ १०- इंसान अल-ऐन | शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्द अल-रहीम | ११७६ ११- इंसान अल-उयून फ़ी सीरत अल-अमीन अल-मामून | अली बिन बुरहान अल-दीन हलबी | १०४४ १२- इर्शाद अल-तालिबीन | क़ाज़ी मुहम्मद सनाउल्लाह पानीपती | १२२५ १३- अल-इ'लाम बि आ'लाम बलद अल्लाह अल-हराम | कुतुब अल-दीन मुहम्मद बिन अहमद अल-हनफ़ी | ९८९

पृष्ठ ६६६ / ६७३

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

ضمیمہ مآخذ و مراجع

نمبر شمار | نام کتاب | مصنف | سن وفات ہجری

ا ۱- انوار التنزیل فی اسرار التاویل (تفسیر البیضاوی) | ناصر الدین ابو سعید عبد اللہ بن عمر البیضاوی، حدیقۃ العارفین | ۶۸۵/۶۹۲/۶۹۱ ۲- الاستیعاب فی معرفۃ الاصحاب | ابو عمر یوسف بن عبد اللہ النمری القرطبی | ۴۶۳/۱ ۳- اوضح رمز علی شرح نظم الکنز | علی بن محمد ابن غانم المقدسی | ۱۰۴۲ ۴- الاستذکار | یوسف بن عبد اللہ ابن عبد البر الاندلسی | ۴۶۳ ۵- الافراد | علی بن عمر الدارقطنی | ۳۸۵ ۶- الایضاح فی شرح التجرید | امام ابوالفضل عبد الرحمن بن احمد الکرمانی | ۵۴۳ ۷- اسباب النزول | ابوالحسن علی بن احمد الواحدی | ۴۶۸ ۸- ایضاح الحق الصریح فی احکام البیت والضریح | شاہ محمد اسمعیل بن شاہ عبد الغنی دہلوی | ۱۲۴۶ ۹- انفاس العارفین | شاہ ولی اللہ بن شاہ عبد الرحیم | ۱۱۷۶ ۱۰- انسان العین | شاہ ولی اللہ بن شاہ عبد الرحیم | ۱۱۷۶ ۱۱- انسان العیون فی سیرۃ الامین المامون | علی بن برہان الدین حلبی | ۱۰۴۴ ۱۲- ارشاد الطالبین | قاضی محمد ثناء اللہ پانی پتی | ۱۲۲۵ ۱۳- الاعلام بأعلام بلد اللہ الحرام | قطب الدین محمد بن احمد الحنفی | ۹۸۹

صفحہ 666 از 673

Fatawa Razawiyya Volume 8

1. Irshad al-Sari ila Manasik al-Mulla Ali al-Qari - Hussain bin Muhammad Sa'id Abdul Ghani al-Makki al-Hanafi: 310
2. Al-Adab al-Hamida wal-Akhlaq - Muhammad bin Jarir al-Tabari: 555
3. Al-Arba'in al-Ta'iyya - Abul Fath Muhammad bin Muhammad al-Ta'i al-Hamadani: 911
4. Anis al-Gharib - Jalal al-Din Abdullah bin Abi Bakr al-Suyuti: 478
5. Al-Irshad fi al-Kalam - Imam al-Haramayn Abul Ma'ali Abdul Malik bin Abdullah al-Juwayni, famous as Imam al-Haramayn: 974
6. Afzal al-Qurra' bi-Qira'at Umm al-Qurra' - Ahmad bin Muhammad ibn Hajar al-Makki: 582
7. Al-I'tibar fi Bayan al-Nasikh wal-Mansukh min al-Akhbar - Muhammad bin Musa al-Hazimi al-Shafi'i

(T) 21. Talkhis al-Jami' al-Kabir - Kamal al-Din Muhammad bin Abbad al-Hanafi: 652 22. Tuhfat al-Haris fi Sharh al-Talkhis - Ali bin Balban al-Farisi al-Misri al-Hanafi: 739 23. Taqwiyat al-Iman - Shah Muhammad Ismail bin Shah Abdul Ghani Dehlvi: 1226 24. Ta'lim al-Muta'allim - Imam Burhan al-Din al-Zarnuji 25. Al-Targhib wal-Tarhib - Abul Qasim Ismail bin Muhammad al-Asbahani: 535 26. Tazkirat al-Mawta wal-Qubur - Qazi Sanaullah Panipati: 1225 27. Al-Tathbit 'ind al-Tabyit - Jalal al-Din Abdur Rahman bin Kamal al-Din al-Suyuti: 911 28. Talkhis al-Adilla li-Qawa'id al-Tawhid - Abu Ishaq Ibrahim bin Ismail al-Saffar al-Bukhari: 534 29. Tafhim al-Masa'il 30. Tanbih al-Ghafil wal-Asnan - Muhammad Amin ibn Abidin al-Shami: 1252

(Th) 31. Thaqafiyyat - Abu Abdullah Qasim bin al-Fazl al-Thaqafi al-Asfahani: 489 32. Thawab al-A'mal li-ibn Hibban - Muhammad bin Hibban: 352

(J) 33. Al-Jami' li-Ahkam al-Qur'an (Tafsir Qurtubi) - Abu Abdullah Muhammad bin Ahmad al-Qurtubi: 761

Page 667 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

1. इरशाद अल-सारी इला मनासिक अल-मुल्ला अली अल-क़ारी - हुसैन बिन मुहम्मद सईद अब्दुल ग़नी अल-मक्की अल-हनफ़ी: 310
2. अल-आदाब अल-हमीदा वल-अख़लाक़ - मुहम्मद बिन जरीर अल-तबरी: 555
3. अल-अरबईन ताईया - अबुल फ़तह मुहम्मद बिन मुहम्मद अल-ताई अल-हमदानी: 911
4. अनीस अल-ग़रीब - जलालुद्दीन अब्दुल्लाह बिन अबी बक्र अल-सुयूती: 478
5. अल-इरशाद फ़ी अल-कलाम - इमाम अल-हरमैन अबुल मा'आली अब्दुल मलिक बिन अब्दुल्लाह अल-जुवैनी, इमाम अल-हरमैन के नाम से प्रसिद्ध: 974
6. अफ़ज़ल अल-क़ुर्रा बि-क़िरात उम्म अल-क़ुर्रा - अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर मक्की: 582
7. अल-एतिबार फ़ी बयान अल-नासिख़ वल-मंसूख़ मिन अल-अख़बार - मुहम्मद बिन मूसा अल-हाज़िमी अल-शाफ़ई

(त) 21. तलख़ीस अल-जामे अल-कबीर - कमालुद्दीन मुहम्मद बिन अब्बाद अल-हनफ़ी: 652 22. तोहफ़त अल-हरीस फ़ी शरह अल-तलख़ीस - अली बिन बलबान अल-फ़ारसी अल-मिस्री अल-हनफ़ी: 739 23. तक़वियत अल-ईमान - शाह मुहम्मद इस्माईल बिन शाह अब्दुल ग़नी देहलवी: 1226 24. तालीम अल-मुतअल्लिम - इमाम बुरहानुद्दीन अल-ज़रनूजी 25. अल-तग़ीब वत-तर्हीब - अबुल क़ासिम इस्माईल बिन मुहम्मद अल-असबहानी: 535 26. तज़किरात अल-मौता वल-क़ुबूर - क़ाज़ी सनाउल्लाह पानीपती: 1225 27. अल-तस्बीत इंद अल-तबीयत - जलालुद्दीन अब्दुर रहमान बिन कमालुद्दीन अल-सुयूती: 911 28. तलख़ीस अल-अदिल्ला ली-क़वाइद अल-तौहीद - अबू इसहाक़ इब्राहिम बिन इस्माईल अल-सफ़्फ़ार अल-बुख़ारी: 534 29. तफ़हीम अल-मसाइल 30. तन्बीह अल-ग़ाफ़िल वल-अस्नान - मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन अल-शामी: 1252

(थ़) 31. सक़फ़ियात - अबू अब्दुल्लाह क़ासिम बिन अल-फ़ज़्ल अल-सक़फ़ी अल-असफ़हानी: 489 32. सवाब अल-आमाल ले-इब्न हिब्बान - मुहम्मद बिन हिब्बान: 352

(ज) 33. अल-जामे ले-अहकाम अल-क़ुरआन (तफ़सीर क़ुर्तुबी) - अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद अल-क़ुर्तुबी: 761

पृष्ठ 667 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۱۴- ارشاد الساری الی مناسک الملا علی القاری، حسین بن محمد سعید عبد الغنی المکی الحنفی، ۳۱۰ ۱۵- الآداب الحمیدہ والاخلاق، محمد بن جریر الطبری، ۵۵۵ ۱۶- الاربعین طائیہ، ابوالفتح محمد بن محمد الطائی الهمدانی، ۹۱۱ ۱۷- انیس الغریب، جلال الدین عبد الله بن ابی بکر السیوطی، ۴۷۸ ۱۸- الارشاد فی الکلام، امام الحرمین ابوالعالی عبدالملک بن عبدالله الجوینی الشهیر بامام الحرمین، ۹۷۴ ۱۹- افضل القراء بقراء ام القراء، احمد بن محمد ابن حجر مکی، ۵۸۲ ۲۰- الاعتبار فی بیان الناسخ و المنسوخ من الاخبار، محمد بن موسیٰ الحازمی الشافعی، ---

ت ۲۱- تلخیص الجامع الکبیر، کمال الدین محمد بن عباد الحنفی، ۶۵۲ ۲۲- تحفہ الحریص فی شرح التلخیص، علی بن بلبان الفارسی المصری الحنفی، ۷۳۹ ۲۳- تقویۃ الایمان، شاہ محمد اسماعیل بن شاہ عبد الغنی دہلوی، ۱۲۲۶ ۲۴- تعلیم المتعلم، امام برہان الدین الزرنوجی، --- ۲۵- الترغیب والترہیب، ابوالقاسم اسماعیل بن محمد الاصبهانی، ۵۳۵ ۲۶- تذکرۃ الموتیٰ والقبور، قاضی ثناء الله پانی پتی، ۱۲۲۵ ۲۷- التثبیت عند التبییت، جلال الدین عبد الرحمن بن کمال الدین السیوطی، ۹۱۱ ۲۸- تلخیص الادلۃ لقواعد التوحید، ابو اسحاق ابراہیم بن اسماعیل الصفار البخاری، ۵۳۴ ۲۹- تفہیم المسائل، --- ۳۰- تنبیہ الغافل والاسنان، محمد امین ابن عابدین الشامی، ۱۲۵۲

ث ۳۱- ثقفیات، ابو عبد الله قاسم بن الفضل الثقفی الاصفہانی، ۴۸۹ ۳۲- ثواب الاعمال لابن حبان، محمد بن حبان، ۳۵۲

ج ۳۳- الجامع لاحکام القرآن (تفسیر قرطبی)، ابو عبد الله محمد بن احمد القرطبی، ۷۶۱

Fatawa Rizwia Volume 8

33_ Al-Jami' li Ahkam al-Qur'an (Tafsir al-Qurtubi) | Abu Abdullah Muhammad ibn Ahmad al-Qurtubi | 761 34_ Jami' al-Mudammarat wa al-Mushkilat (Sharh Quduri) | Yusuf bin Umar al-Sufi | 832 35_ Jadd al-Mumtar ala Radd al-Muhtar | Imam Ahmad Raza Khan Naqi Ali Khan | 1340

Section H (ح) 36_ Al-Husami | Muhammad bin Muhammad bin Umar Husam al-Din al-Hanafi | 644 37_ Hashiyah dar Ghurar Nabulsi | Ismail bin Abdul Ghani Nabulsi | 1062 38_ Husn al-Tawassul fi Ziyarat Afzal al-Rusul | Abdul Qadir al-Fakihi | 982 39_ Hawashi ala Ma'alim al-Tanzil | Imam Ahmad Raza Khan bin Naqi Ali Khan | 1340 40_ Husam al-Haramayn ala Manhar al-Kufri wa al-Mayn | Imam Ahmad Raza Khan bin Naqi Ali Khan | 1340

Section Kh (خ) 41_ Khulasat Khulasat al-Wafa | Nur al-Din Ali bin Ahmad al-Samhudi | 911

Section D (د) 42_ Dala'il al-Nubuwwah | Abu Bakr bin Ahmad bin Husayn al-Bayhaqi | 458 43_ Durr-e-Thamin fi Mubashshirat al-Nabi (PBUH) | Shah Waliullah bin Shah Abdul Rahim | 1176 44_ Durr-e-Munazzam fi Mawlid al-Nabi al-Mu'azzam (PBUH) | Abu al-Qasim Muhammad bin Uthman al-Lu'lu'i al-Dimashqi | 867 45_ Kitab al-Da'wat | Ahmad bin Husayn al-Bayhaqi | 458 46_ Al-Durrat al-Mughbiyah fi Ziyarat al-Mustafawiyyah | Nur al-Din Ali bin Sultan Muhammad al-Qari | 1014 47_ Al-Durrat al-Thaminah fi Akhbar al-Madinah | Hafiz Muhibb al-Din Muhammad bin Mahmoud bin Najjar | 633 48_ Al-Durar al-Saniyyah fi al-Radd ala al-Wahhabiyyah | Mufti Ahmad bin al-Sayyid Zayni Dahlan | 1304

Section Dh (ذ) 49_ Dhikr al-Mawt | Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya al-Baghdadi | 281

Page 668 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द 8

33_ अल-जामी' लि अहकाम अल-क़ुरआन (तफ़्सीर क़ुर्तुबी) | अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्न अहमद अल-क़ुर्तुबी | 761 34_ जामी' अल-मुदम्मरात व अल-मुश्किलात (शरह क़ुदूरी) | युसूफ बिन उमर अल-सूफ़ी | 832 35_ जद्द अल-मुमतार अला रद अल-मुहतार | इमाम अहमद रज़ा ख़ान नक़ी अली ख़ान | 1340

अनुभाग: ह (ح) 36_ अल-हुसामी | मुहम्मद बिन मुहम्मद बिन उमर हुसामुद्दीन अल-हनफ़ी | 644 37_ हाशिया दर ग़ुरर नाबुलसी | इस्माइल बिन अब्दुल ग़नी नाबुलसी | 1062 38_ हुस्न अल-तवस्सुल फ़ी ज़ियारत अफ़ज़ल अल-रुल | अब्दुल क़ादिर अल-फ़ाकीही | 982 39_ हवाशी अला मआलिम अल-तन्ज़ील | इमाम अहमद रज़ा ख़ान बिन नक़ी अली ख़ान | 1340 40_ हुसाम अल-हरमैन अला मन्हर अल-कुफ़्र व अल-मैन | इमाम अहमद रज़ा ख़ान बिन नक़ी अली ख़ान | 1340

अनुभाग: ख़ (خ) 41_ ख़ुलासत ख़ुलासत अल-वफ़ा | नूरुद्दीन अली बिन अहमद अल-समहूदी | 911

अनुभाग: द (د) 42_ दलाइल अल-नुबुव्वह | अबू बक्र बिन अहमद बिन हुसैन अल-बैहक़ी | 458 43_ दुर्रे-समीन फ़ी मुबश्शिरात अल-नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) | शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुर्रहीम | 1176 44_ दुर्रे-मुनज़्ज़म फ़ी मौलिद अल-नबी अल-मुअज़्ज़म (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) | अबुल क़ासिम मुहम्मद बिन उस्मान अल-लुलुई अल-दिमश्क़ी | 867 45_ किताब अल-दअवात | अहमद बिन हुसैन अल-बैहक़ी | 458 46_ अल-दुर्रत अल-मुग़बियह फ़ी ज़ियारत अल-मुस्तफ़वियह | नूरुद्दीन अली बिन सुल्तान मुहम्मद अल-क़ारी | 1014 47_ अल-दुर्रत अल-समीनह फ़ी अख़बार अल-मदीना | हाफ़िज़ मुहिबुद्दीन मुहम्मद बिन महमूद बिन नज्जार | 633 48_ अल-दुरर अल-सन्नियह फ़ी अल-रद अला अल-वहाबियह | मुफ़्ती अहमद बिन अल-सैय्यद ज़ैनी दहलान | 1304

अनुभाग: ज़ (ذ) 49_ ज़िक्र अल-मौत | अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद इब्न अबी अल-दुनिया अल-बग़दादी | 281

पृष्ठ 668/673

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

33_ الجامع لاحکام القرآن (تفسیر قرطبی) | ابو عبداللہ محمد ابن احمد القرطبی | 761 34_ جامع المضمرات و المشکلات (شرح قدوری) | یوسف بن عمر الصوفی | 832 35_ جد الممتار علی رد المحتار | امام احمد رضا خان نقی علی خاں | 1340

ح 36_ الحسامی | محمد بن محمد بن عمر حسام الدین الحنفی | 644 37_ حاشیہ درغرر نابلسی | اسماعیل بن عبدالغنی نابلسی | 1062 38_ حسن التوسل فی زیارۃ افضل الرسل | عبدالقادر الفاکہی | 982 39_ حواشی علی معالم التنزیل | امام احمد رضا خاں بن نقی علی خاں | 1340 40_ حسام الحرمین علی منحر الکفر و المین | امام احمد رضا خاں بن نقی علی خاں | 1340

خ 41_ خلاصۃ خلاصۃ الوفاء | نور الدین علی بن احمد السمھودی | 911

د 42_ دلائل النبوۃ | ابوبکر بن احمد بن حسین البیہقی | 458 43_ درثمین فی مبشرات النبی صلی اللہ علیہ وسلم | شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم | 1176 44_ درمنظم فی مولد النبی المعظم صلی اللہ علیہ وسلم | ابوالقاسم محمد بن عثمان اللؤلؤی الدمشقی | 867 45_ کتاب الدعوات | احمد بن حسین البیہقی | 458 46_ الدرۃ المغبیہ فی زیارۃ المصطفویۃ | نور الدین علی بن سلطان محمد القاری | 1014 47_ الدرۃ الثمینہ فی اخبار المدینہ | حافظ محب الدین محمد بن محمود بن نجار | 633 48_ الدرر السنیۃ فی الرد علی الوہابیہ | مفتی احمد بن السید زینی دحلان | 1304

ذ 49_ ذکر الموت | عبداللہ بن محمد ابن ابی الدنیا البغدادی | 281

Fatawa Razawiyya Volume Eight

Section: R 50- Raf' al-Intiqad wa Daf' al-I'tirad etc. - Muhammad Amin ibn 'Abidin known as Ibn 'Abidin - 1252

Section: S 51- Salfiyat min Ajza al-Hadith - Hafiz Abu al-Tahir Ahmad ibn Muhammad al-Salfi - 586 52- Al-Siraj al-Munir fi Sharh Jami' al-Saghir - 'Ali ibn Muhammad ibn Ibrahim al-Ma'muri al-'Azizi - 1070 53- Sunan al-Huda - Abdul Ghani ibn Ahmad ibn Shah Abdul Quddus Gangohi 54- Sunan fil Hadith - Hafiz Abu 'Ali Sa'id ibn 'Uthman ibn al-Sakan al-Baghdadi - 353

Section: Sh 55- Sharh Risala Fazaiya - Allama Ibrahim ibn Muhammad al-Bajuri - 1276 56- Sharh al-Sughra - Allama Muhammad Yusuf al-Sanusi - 895 57- Al-Shamil fi Furu' al-Hanafiyya - Abu al-Qasim Isma'il ibn Husayn al-Bayhaqi al-Hanafi - 402 58- Sharh Sahih Bukhari al-Kawakib al-Durari - Muhammad ibn Yusuf al-Kirmani - 796 59- Shifa al-Alil Sharh al-Qawl al-Jamil - Maulvi Khurram 'Ali Bilhauri, presumably - 1271 60- Sharh Sahih Bukhari - Nasir al-Din 'Ali ibn Muhammad ibn Munir 61- Sharh Zij-e-Sultani - Abdul 'Ali ibn Muhammad ibn Husayn - 933 62- Shifa al-Alil wa Bill al-Ghalil - Ibn 'Abidin Muhammad Amin Afandi - 1252

Section: S (Suad) 63- Al-Sihah al-Mathura 'an al-Nabi S.A.W. - 956 64- Sughra Sharh Munyat al-Musalli - Sheikh Ibrahim ibn Muhammad al-Halabi - 956 65- Sirat-e-Mustaqim - Shah Muhammad Isma'il ibn Abdul Ghani Dehlavi - 1246

Page 669 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द आठवीं

अनुभाग: र (रे) ५०- रफ़अ अल-इंतिक़ाद व दफ़अ अल-एतिराज़ वग़ैरह - मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन अल-शहीर बि-इब्न आबिदीन - १२५२

अनुभाग: स (सीन) ५१- सलफ़ियात मिन अज्ज़ा अल-हदीस - हाफ़िज़ अबू अल-ताहिर अहमद बिन मुहम्मद अल-सलफ़ी - ५८६ ५२- अल-सिराज अल-मुनीर फ़ी शरह जामिअ अल-सग़ीर - अली बिन मुहम्मद बिन इब्राहिम अल-मामूरी अल-अज़ीज़ी - १०७० ५३- सुनन अल-हुदा - अब्दुल ग़नी बिन अहमद बिन शाह अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही ५४- सुनन फ़िल हदीस - हाफ़िज़ अबू अली सईद बिन उस्मान इब्न अल-सकन अल-बग़दादी - ३५३

अनुभाग: श (शीन) ५५- शरह रिसाला फ़ज़ाईया - अल्लामा इब्राहिम बिन मुहम्मद अल-बाजूरी - १२७६ ५६- शरह अल-सुग़रा - अल्लामा मुहम्मद यूसुफ़ अल-सनूसी - ८९५ ५७- अल-शामिल फ़ी फ़ुरूँ अल-हनफ़िया - अबू अल-क़ासिम इस्माईल बिन हुसैन अल-बैहक़ी अल-हनफ़ी - ४०२ ५८- शरह सहीह बुखारी अल-कवाकिब अल-दुरारी - मुहम्मद बिन यूसुफ़ अल-किरमानी - ७९६ ५९- शिफ़ा अल-अलील शरह अल-क़ौल अल-जमील - मौलवी ख़ुर्रम अली बिलहोरी ग़ालिबन - १२७१ ६०- शरह सहीह बुख़ारी - नासिरुद्दीन अली बिन मुहम्मद इब्न मुनीर ६१- शरह ज़ीज-ए-सुल्तानी - अब्दुल अली बिन मुहम्मद बिन हुसैन - ९३३ ६२- शिफ़ा अल-अलील व बिल्ल अल-ग़लील - इब्न आबिदीन मुहम्मद अमीन आफ़ंदी - १२५२

अनुभाग: स (स्वाद) ६३- अल-सिहाह अल-मासूरा अन-नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम - ९५६ ६४- सुग़रा शरह मुनियतुल मुसल्ली - शेख़ इब्राहिम बिन मुहम्मद अल-हलबी - ९५६ ६५- सिरात-ए-मुस्तक़ीम - शाह मुहम्मद इस्माईल बिन अब्दुल ग़नी देहलवी - १२४६

पृष्ठ ६६९ / ६७३

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

ر ۵۰- رفع الانتقاض ودفع الاعتراض الخ - محمد امین ابن عابدین الشہیر بابن عابدین - ۱۲۵۲

س ۵۱- سلفیات من اجزاء الحدیث - حافظ ابو الطاہر احمد بن محمد السلفی - ۵۸۶ ۵۲- السراج المنیر فی شرح جامع الصغیر - علی بن محمد بن ابراہیم المعمری العزیزی - ۱۰۷۰ ۵۳- سنن الہدی - عبدالغنی بن احمد بن شاہ عبدالقدوس گنگوہی ۵۴- سنن فی الحدیث - حافظ ابو علی سعید بن عثمان ابن السکن البغدادی - ۳۵۳

ش ۵۵- شرح رسالہ فضائیہ - علامہ ابراہیم بن محمد الباجوری - ۱۲۷۶ ۵۶- شرح الصغری - علامہ محمد یوسف السنوسی - ۸۹۵ ۵۷- الشامل فی فروع الحنفیہ - ابو القاسم اسمعیل بن حسین البیہقی الحنفی - ۴۰۲ ۵۸- شرح صحیح بخاری الکواکب الدراری - محمد بن یوسف الکرمانی - ۷۹۶ ۵۹- شفاء العلیل شرح القول الجمیل - مولوی خرم علی بلہوری غالباً - ۱۲۷۱ ۶۰- شرح صحیح بخاری - ناصر الدین علی بن محمد ابن منیر ۶۱- شرح زیج سلطانی - عبدالعلی بن محمد بن حسین - ۹۳۳ ۶۲- شفاء العلیل وبل الغلیل - ابن عابدین محمد امین آفندی - ۱۲۵۲

ص ۶۳- الصحاح الماثورہ عن النبی صلی اللہ علیہ تعالٰی علیہ وسلم - ۹۵۶ ۶۴- صغری شرح منیۃ المصلی - شیخ ابراہیم بن محمد الحلبی - ۹۵۶ ۶۵- صراط مستقیم - شاہ محمد اسمعیل بن عبدالغنی دہلوی - ۱۲۴۶

Fatawa Razawiyya Volume 8

65- Sirat-e-Mustaqim Shah Muhammad Ismail bin Abdul Ghani Dehlavi 1246

ط (Ta) 66- Al-Tabaqat al-Kubra Muhammad bin Sa'd al-Zuhri 230

غ (Ghayn) 67- Ghara'ib al-Qur'an wa Ragha'ib al-Furqan (Tafsir Nishapuri) Nizamuddin Hasan bin Muhammad Nishapuri 728 68- Gharib al-Hadith Qasim bin Salam al-Baghdadi 224 69- Gharib al-Hadith Ibrahim bin Ishaq al-Harbi 285 70- Ghayat al-Awtar (Translation of Durre Mukhtar) Maulvi Khurram Ali Bilhouri (probably) 1712

ف (Fa) 71- Al-Futuhat al-Ilahiyyah (Tafsir Jamal) Sulaiman bin Umar al-Shafi'i, known as Al-Jamal 1202 72- Al-Faraj Ba'd al-Shiddah Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya al-Baghdadi 281 73- Fatih Sharh-e-Quduri --- --- 74- Fawa'id Hakim wa Khulas --- --- 75- Fayd al-Qadir Sharh al-Jami' al-Saghir Abd al-Rauf al-Munawi 1031 76- Fuyud al-Haramayn Shah Waliullah bin Shah Abdul Rahim 1176 77- Fatawa Shah Rafiuddin Shah Rafiuddin 1133 78- Al-Fath al-Mubin Sharh Arba'in Nawawi Ahmad bin Muhammad ibn Hajar Makki 974 79- Fasl al-Khitab fi Radd-e-Dalalat-e-Ibn Abdul Wahhab --- --- 80- Futuh al-Ghayb Sayyid Shaykh Abdul Qadir Jilani 561 81- Fatawa Azizi Abdul Aziz bin Waliullah al-Dehlavi 1004

ق (Qaf) 82- Qurrat 'Uyun al-Akhbar Muhammad Amin ibn Abidin, known as Ibn Abidin 1252

फतवा रज़विया जिल्द 8

65- सिरात-ए-मुस्तकीम शाह मुहम्मद इस्माइल बिन अब्दुल गनी देहलवी 1246

ط (त) 66- अल-तबाक़ात अल-कुबरा मुहम्मद बिन साद अल-ज़ुहरी 230

غ (ग़ैइन) 67- ग़राएब अल-क़ुरआन व रग़ाएब अल-फ़ुरक़ान (तफ़सीर निशापूरी) निज़ामुद्दीन हसन बिन मुहम्मद निशापूरी 728 68- ग़रीब अल-हदीस क़ासिम बिन सलाम अल-बग़दादी 224 69- ग़रीब अल-हदीस इब्राहीम बिन इसहाक़ अल-हरबी 285 70- ग़ायत अल-औतार (दुर्रे मुख़्तार का अनुवाद) मौलवी ख़ुर्रम अली बिलहोरी (संभवत) 1712

ف (फ़ा) 71- अल-फ़ुतूहात अल-इलाहिया (तफ़सीर जमल) सुलेमान बिन उमर अल-शाफ़ई, अल-जमल के नाम से प्रसिद्ध 1202 72- अल-फ़रज बाद अल-शिद्दह अब्दुल्ला बिन मुहम्मद इब्न अबी अल-दुनिया अल-बग़दादी 281 73- फ़ातिह शरह-ए-क़ुदूरी --- --- 74- फ़वाइद हाकिम व ख़लास --- --- 75- फ़ैज़ अल-क़दीर शरह अल-जामि' अल-सग़ीर अब्दुर रऊफ़ अल-मुनावी 1031 76- फ़ुयूज़ अल-हरमईन शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुल रहीम 1176 77- फ़तावा शाह रफ़ीउद्दीन शाह रफ़ीउद्दीन 1133 78- अल-फ़तह अल-मुबीन शरह अरबईन नववी अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर मक्की 974 79- फ़स्ल अल-ख़िताब फ़ी रद्द-ए-दलालात-ए-इब्न अब्दुल वहाब --- --- 80- फ़ुत्ह अल-ग़ैब सैय्यद शेख अब्दुल क़ादिर जीलानी 561 81- फ़तावा अज़ीज़ी अब्दुल अज़ीज़ बिन वलीउल्लाह अल-देहलवी 1004

ق (क़ाफ़) 82- कुर्रत उयून अल-अख़बार मुहम्मद अमीन इब्न आबिदीन, इब्न आबिदीन के नाम से प्रसिद्ध 1252

पृष्ठ 670 का 673

فتاوٰی رضویہ جلد ہشتم

۶۵- صراط مستقیم شاہ محمد اسمعیل بن عبدالغنی دہلوی ۱۲۴۶

ط ۶۶- الطبقات الکبرٰی محمد بن سعد الزہری ۲۳۰

غ ۶۷- غرائب القرآن ورغائب الفرقان (تفسیر نیشاپوری) نظام الدین حسن بن محمد نیشاپوری ۷۲۸

۶۸- غریب الحدیث قاسم بن سلام البغدادی ۲۲۴ ۶۹- غریب الحدیث ابراہیم بن اسحق الحربی ۲۸۵

۷۰- غایۃ الاوطار ترجمہ درمختار مولوی خرم علی بلہوری غالباً ۱۷۱۲

ف ۷۱- الفتوحات الالٰہیۃ (تفسیر جمل) سلیمان بن عمر الشافعی الشہیر بالجمل ۱۲۰۲ ۷۲- الفرج بعد الشدۃ عبداللہ بن محمد ابن ابی الدنیا البغدادی ۲۸۱ ۷۳- فاتح شرح قدوری --- --- ۷۴- فوائد حاکم و خلاص --- --- ۷۵- فیض القدیر شرح الجامع الصغیر عبدالرؤف المناوی ۱۰۳۱ ۷۶- فیوض الحرمین شاہ ولی اللہ بن شاہ عبدالرحیم ۱۱۷۶ ۷۷- فتاوٰی شاہ رفیع الدین شاہ رفیع الدین ۱۱۳۳ ۷۸- الفتح المبین شرح اربعین نووی احمد بن محمد ابن حجر مکی ۹۷۴ ۷۹- فصل الخطاب فی رد ضلالات ابن عبدالوہاب --- --- ۸۰- فتوح الغیب سید شیخ عبدالقادر جیلانی ۵۶۱ ۸۱- فتاوٰی عزیزی عبدالعزیز بن ولی اللہ دہلوی ۱۰۰۴

ق ۸۲- قرۃ عیون الاخبار محمد امین ابن عابدین الشہیر بابن عابدین ۱۲۵۲

Volume Eight Fatawa-e-Razviya

Kaf (ک) 83. Kashf al-Ghita ma lam yazal lil-mawta 'ala al-ahya - Muhammad Shaikh al-Islam bin Muhammad Fakhr al-Din - 285 84. Kitab Ittiba' al-Amwat - Ibrahim bin Ishaq al-Harbi - 360 85. Kitab al-Da'wat - Sulaiman bin Ahmad al-Tabarani - 399 86. Kitab al-Thawab fi al-Hadith - Abu al-Shaikh Abdullah bin Muhammad bin Ja'far - 1133 87. Kashf al-Nur 'an Ashab al-Qubur - Abd al-Ghani al-Nabulsi - 241 88. Kitab al-Zuhd - Imam Ahmad bin Muhammad bin Hanbal - 281 89. Kitab al-Qubur - Abdullah bin Muhammad ibn Abi al-Dunya - 90. Kitab al-Rawdah - Abu al-Hasan bin Bara - 243 91. Kitab al-Zuhd - Hafiz Hannad bin al-Sarri al-Tamimi al-Darimi - 92. Kitab Dhikr al-Mawt - 93. Kitab Ad'iyat al-Hajj wa al-Umrah - Qutb al-Din al-Dehlawi - 1289 94. Kunuz al-Haqa'iq fi Hadith Khayr al-Khala'iq - Abd al-Ra'uf bin Taj al-Din bin Ali al-Munawi - 1031 95. Kitab al-Khuruj - Qazi Imam Abu Yusuf Yaqub bin Ibrahim Hanafi - 182 96. Kaff al-Ra'a' 'an al-Muharramat al-Lahw wa al-Sama' - Abu al-Abbas Ahmad bin Muhammad ibn Hajar Makki - 974

Lam (ل) 97. Lubab al-Manasik - Shaikh Rahmatullah bin Qazi Abdullah al-Sindi - 978

Mim (م) 98. Minah al-Rawd al-Azhar fi Sharh al-Fiqh al-Akbar - Ali bin Sultan Muhammad al-Qari - 1012 - Majmu'ah Khani (Persian) 99. Maqamat-e-Mazhar & Annexure Maqamat-e-Mazhar - Mirza Mazhar Jan-e-Janan - 1195 100. Mashariq al-Anwar al-Qudsiyyah fi Bayan al-'Uqud al-Muhammadiyyah - Abd al-Wahhab bin Ahmad al-Sha'rani - 974

Page 671 of 673

जिल्द अष्टम (भाग 8) फ़तावा रज़विया

काफ़ (ک) 83. कश्फ़ुल ग़िता मा लम यज़ल लिल-मौता 'अलल अहया - मुहम्मद शैखुल इस्लाम बिन मुहम्मद फखरुद्दीन - 285 84. किताब इतिबा अल-अमवात - इब्राहीम बिन इसहाक अल-हर्बी - 360 85. किताब अद-दा'वात - सुलैमान बिन अहमद अत-तबरानी - 399 86. किताब अस-सवाब फ़िल हदीस - अबुल शैख अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन जाफ़र - 1133 87. कश्फ़ुन नूर 'अन असहाबिल कुबूर - अब्दुल ग़नी नाबुलसी - 241 88. किताबुज़ ज़ुहद - इमाम अहमद बिन मुहम्मद बिन हंबल - 281 89. किताबुल कुबूर - अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद इब्न अबिद्दुनिया 90. किताबुर रौज़ा - अबुल हसन बिन बरा - 243 91. किताबुज़ ज़ुहद - हाफ़िज़ हन्नाद बिन अल-सर्री अत-तमीमी अद-दारमी 92. किताब ज़िक्रुल मौत 93. किताब अद'इयतुल हज्ज वल उमराह - कुतुब उद्दीन अद-देहल्वी - 1289 94. कुनूज़ुल हकैक फ़ी हदीस खैरिल खलैक - अब्दुल रऊफ़ बिन ताज उद्दीन बिन अली अल-मुनावी - 1031 95. किताबुल खुरूज - काज़ी इमाम अबू यूसुफ़ याकूब बिन इब्राहीम हनफ़ी - 182 96. कफ़ुर रआ 'अनिल मुहर्रमात अल-लहव वस-समा' - अबुल अब्बास अहमद बिन मुहम्मद इब्न हजर मक्की - 974

लाम (ل) 97. लुबाबुल मनासिक - शैख रहमतुल्लाह बिन काज़ी अब्दुल्लाह अल-सिंदी - 978

मीम (م) 98. मिनहुल रौज़ अल-अज़हर फ़ी शरह अल-फिक्ह अल-अकबर - अली बिन सुलतान मुहम्मद अल-कारी - 1012 - मजमूआ खानी (फ़ारसी) 99. मकामात-ए-मज़हर व ज़मीमा मकामात-ए-मज़हर - मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ - 1195 100. मशारिकुल अनवारुल कुदसिया फ़ी बयान अल-'उक़ूद अल-मुहमदिया - अब्दुल वहाब बिन अहमद अल-शारानी - 974

पृष्ठ 671 का 673

جلد ہشتم فتاوی رضویہ

ک ۸۳۔ کشف الغطاء مالم یزل للموتی علی الاحیاء ۔ محمد شیخ الاسلام بن محمد فخر الدین ۔ ۲۸۵

۸۴۔ کتاب اتباع الاموات ۔ ابراہیم بن اسحاق الحربی ۔ ۳۶۰ ۸۵۔ کتاب الدعوات ۔ سلیمان بن احمد الطبرانی ۔ ۳۹۹ ۸۶۔ کتاب الثواب فی الحدیث ۔ ابوالشیخ عبداللہ بن محمد بن جعفر ۔ ۱۱۳۳ ۸۷۔ کشف النور عن اصحاب القبور ۔ عبدالغنی نابلسی ۔ ۲۴۱ ۸۸۔ کتاب الزہد ۔ امام احمد بن محمد بن حنبل ۔ ۲۸۱ ۸۹۔ کتاب القبور ۔ عبداللہ بن محمد ابن ابی الدنیا ۹۰۔ کتاب الروضہ ۔ ابوالحسن بن براء ۔ ۲۴۳ ۹۱۔ کتاب الزہد ۔ حافظ ہناد بن السری التمیمی الدارمی ۹۲۔ کتاب ذکر الموت ۹۳۔ کتاب ادعیۃ الحج والعمرہ ۔ قطب الدین الدہلوی ۔ ۱۲۸۹ ۹۴۔ کنوز الحقائق فی حدیث خیر الخلائق ۔ عبدالرؤف بن تاج الدین بن علی المناوی ۔ ۱۰۳۱ ۹۵۔ کتاب الخروج ۔ قاضی امام ابویوسف یعقوب بن ابراہیم حنفی ۔ ۱۸۲ ۹۶۔ کف الرعاع عن المحرمات اللھو والسماع ۔ ابوالعباس احمد بن محمد ابن حجر مکی ۔ ۹۷۴

ل ۹۷۔ لباب المناسک ۔ شیخ رحمۃ اللہ بن قاضی عبداللہ السندی ۔ ۹۷۸

م ۹۸۔ منح الروض الازہر فی شرح الفقہ الاکبر ۔ علی بن سلطان محمد القاری ۔ ۱۰۱۲ مجموعہ خانی (فارسی) ۹۹۔ مقامات مظہر و ضمیمہ مقامات مظہر ۔ مرزا مظہر جان جاناں ۔ ۱۱۹۵ ۱۰۰۔ مشارق الانوار القدسیہ فی بیان العہود المحمدیہ ۔ عبدالوہاب بن احمد الشعرانی ۔ ۹۷۴

صفحہ 671 از 673

Fatawa Ridawiyya Volume Eight

1. Maqamat Mazhar & Supplement to Maqamat Mazhar Mirza Mazhar Jan-e-Janan 1195
2. Musnad al-Kabir fi al-Hadith Abu Muhammad Ubayd bin Humayd al-Kashshi 249
3. Al-Muntaqa fi Ahadith al-Ahkam 'an Khayr al-Anam Ahmad bin Abdul Halim Ibn Taymiyyah 728
4. Manzumah al-Nasafi fi al-Khilaf Najm al-Din Umar bin Muhammad al-Nasafi 537
5. Mi'raj al-Dirayah fi Sharh al-Hidayah Imam Qawam al-Din bin Muhammad al-Kaki 739
6. Al-Musnad al-Sahih fi al-Hadith Abu Awana Yaqub bin Ishaq al-Isfara'ini 316
7. Musnad al-Shamiyyin --
8. Madarij al-Nubuwwah Shaykh Abdul Haq Muhaddith Dehlavi 1052
9. Majma' al-Barakat Shaykh Abdul Haq Muhaddith Dehlavi 1052
10. Manahil al-Safa fi Takhrij Ahadith al-Shifa Jalal al-Din Abd al-Rahman bin Abi Bakr al-Suyuti 911
11. Mukhtasar Tarikh Ibn Asakir Imam Muhammad bin Mukarram known as Ibn Manzur 711
12. Mi'at Masa'il Muhammad Ishaq Muhaddith Dehlavi 1262
13. Masa'il Arba'in Muhammad Ishaq Muhaddith Dehlavi 1262
14. Ma la Budda Minhu Qazi Muhammad Thanaullah Panipati 1225
15. Mishkat al-Masabih Abu Abdullah Muhammad bin Abdullah al-Khatib 740
16. Mutashaq or Durr-e-Muntaqa fi Sharh al-Multaqa Ala al-Din al-Haskafi 1088
17. Mozeh al-Quran Translation of the Quran Shah Abdul Qadir bin Shah Waliullah Dehlavi 1230
18. Mathnawi Sharif Persian (Poetic) Mulla Jalal al-Din Muhammad bin Muhammad al-Rumi al-Balkhi al-Qunawi 672
19. Mustalahat al-Hadith Ali bin al-Sayyid Muhammad bin Ali al-Jurjani Sayyid Sharif 816
20. Al-Maqasid fi 'Ilm al-Kalam Allama Sa'd al-Din Mas'ud bin Umar al-Taftazani 791
21. Mughni al-Mustafti 'an Su'al al-Mufti Allama Hamid Effendi --
22. Mazahir-e-Haq Translation of Mishkat al-Masabih Qutb al-Din Dehlavi 1289
23. Minnat al-Jalil Ibn Abidin Muhammad Amin Effendi 1252
24. Miftah al-Ghayb fi Sharh Futuh al-Ghayb Abdul Haq bin Sayf al-Din Muhaddith Dehlavi 1052

Nun 124. Nafi' fi al-Furu' Imam Nasir al-Din Muhammad bin Yusuf al-Samarqandi 402

फ़तावा रज़विया खंड आठ

1. मकामात-ए-मज़हर और ज़मीमा-ए-मकामात-ए-मज़हर मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जानाँ 1195
2. मसनद अल-कबीर फ़िल हदीस अबू मोहम्मद उबैद बिन हुमैद अल-कश्ती 249
3. अल-मुंतका फ़ी अहादीस अल-अहकाम अन खैर अल-अनाम अहमद बिन अब्दुल हलीम इब्न तैमिय्या 728
4. मन्ज़ूमतुन नसफ़ी फ़िल खिलाफ नजमुद्दीन उमर बिन मोहम्मद अन-नसफ़ी 537
5. मेराजुद्दायः फ़ी शरहिल हिदाया इमाम क़वामुद्दीन बिन मोहम्मद अल-काकी 739
6. अल-मसनद अस-सहीह फ़िल हदीस अबू अवाना याकूब बिन इस्हाक़ अल-इसफ़रैनी 316
7. मसनद अश्-शामिय्यीन --
8. मदारिजुन् नुबुव्वत शेख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी 1052
9. मज्म-उल-बरकात शेख अब्दुल हक मुहद्दिस देहलवी 1052
10. मनाहिलुस सफ़ा फ़ी तखरीज अहादीस अश्-शिफ़ा जलालुद्दीन अब्दुर्रहमान बिन अबी बक्र अस-सुयूती 911
11. मुख्तसर तारीख़ इब्ने असाकिर इमाम मोहम्मद बिन मुकर्रम अल-मअरूफ बि इब्ने मंज़ूर 711
12. मिअत मसाइल मोहम्मद इस्हाक़ मुहद्दिस देहलवी 1262
13. मसाइल-ए-अर्बईन मोहम्मद इस्हाक़ मुहद्दिस देहलवी 1262
14. माला बुद्द मिन्हु काज़ी मोहम्मद सनाउल्लाह पानीपती 1225
15. मिश्कातुल मसाबीह अबू अब्दुल्लाह मोहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-खतीब 740
16. मुतशक़ या दुर्र-ए-मुंतका फ़ी शरहिल मुल्तका अलाउद्दीन अल-हसकफी 1088
17. मौज़ेहुल क़ुरआन तर्जमा-ए-क़ुरआन शाह अब्दुल क़ादिर बिन शाह वलीउल्लाह देहलवी 1230
18. मसनवी शरीफ फ़ारसी मन्ज़ूम मुल्ला जलालुद्दीन मोहम्मद बिन मोहम्मद अर-रूमी अल-बलखी अल-कोनवी 672
19. मुस्तलहातुल हदीस अली बिन अस-सय्यद मोहम्मद बिन अली अल-जुरजानी सय्यद शरीफ 816
20. अल-मकासिद फ़ी इल्मिल कलाम अल्लामा सअदुद्दीन मसूद बिन उमर अत-तफ़्ताज़ानी 791
21. मुग़नी अल-मुस्तफ़ती अन सुआल अल-मुफ़्ती अल्लामा हामिद आफ़ंदी --
22. मज़ाहिर-ए-हक़ तर्जमा मिश्कातुल मसाबीह कुतबुद्दीन देहलवी 1289

23. मिन्नतुल जलील इब्ने आबिदीन मोहम्मद अमीन आफ़ंदी 1252

24. मिफ़्ताहुल गैब फ़ी शरह फ़ुत्ह अल-गैब अब्दुल हक़ बिन सैफ़ुद्दीन मुहद्दिस देहलवी 1052

नून 124. नाफ़ेअ फ़िल फ़ुरूअ इमाम नासिरुद्दीन मोहम्मद बिन यूसुफ़ अस-समरकंदी 402

فتاوی رضویہ جلد ہشتم

99۔ مقامات مظہر و ضمیمہ مقامات مظہر مرزا مظہر جان جاناں 1195 101۔ مسند الکبیر فی الحدیث ابو محمد عبید بن حمید الکشی 249 102۔ المنتقی فی احادیث الاحکام عن خیر الانام احمد بن عبد الحلیم ابن تیمیہ 728 103۔ منظومة النسفی فی الخلاف نجم الدین عمر بن محمد النسفی 537 104۔ معراج الدرایة فی شرح ہدایة امام قوام الدین بن محمد الکاکی 739 105۔ المسند الصحیح فی الحدیث ابو عوانہ یعقوب بن اسحق الاسفرائنی 316 106۔ مسند الشامیین -- 107۔ مدارج النبوة شیخ عبدالحق محدث دہلوی 1052 108۔ مجمع البرکات شیخ عبدالحق محدث دہلوی 1052 109۔ مناہل الصفافی تخریج احادیث الشفاء جلال الدین عبدالرحمن بن ابی بکر السیوطی 911 110۔ مختصر تاریخ ابن عساکر امام محمد بن مکرم المعروف بابن منظور 711 111۔ مائة مسائل محمد اسحق محدث دہلوی 1262 112۔ مسائل اربعین محمد اسحق محدث دہلوی 1262 113۔ مالا بد منہ قاضی محمد ثناء اللہ پانی پتی 1225 114۔ مشکوٰة المصابیح ابو عبداللہ محمد بن عبد اللہ الخطیب 740 115۔ متشق یا در منتقی فی شرح الملتقی علاء الدین الحصفکی 1088 116۔ موضح القرآن ترجمة القرآن شاہ عبد القادر بن شاہ ولی اللہ دہلوی 1230 117۔ مثنوی شریف فارسی منظوم ملا جلال الدین محمد بن محمد الرومی البلخی القونوی 672 118۔ مصطلحات الحدیث علی بن السید محمد بن علی الجرجانی سید شریف 816 119۔ المقاصد فی علم الکلام علامہ سعد الدین مسعود بن عمر التفتازانی 791 120۔ مغنی المستفتی عن سوال المفتی علامہ حامد آفندی -- 121۔ مظاہر حق ترجمہ مشکوٰة المصابیح قطب الدین دہلوی 1289 122۔ منة الجلیل ابن عابدین محمد امین آفندی 1252 123۔ مفتاح الغیب فی شرح فتوح الغیب عبد الحق بن سیف الدین محدث دہلوی 1052

ن 124۔ نافع فی الفروع امام ناصر الدین محمد بن یوسف السمرقندی 402

Fatawa Ridawiyya Volume 8

125_ Nayl al-Awtar Sharh Muntaqa al-Akhbar - Muhammad bin Ali al-Shawkani - 1250 126_ Nasihat al-Muslimin - Khurram Ali Bilhori - 1217 127_ Nafahat al-Uns min Hadarat al-Quds - Abd al-Rahman bin Ahmad al-Jami - 898 128_ Nasim al-Riyad fi Sharh Shifa Qadi Iyad - Ahmad bin Muhammad al-Khafaji - 1069 129_ Al-Nashr fi al-Qira'at al-Ashr - Shams al-Din Muhammad bin Muhammad Ibn al-Jazari - 833 130_ Nuzhat al-Nazar fi Tawdih Nukhbat al-Fikar - Ahmad bin Ali hajar al-Qastalani - 852 131_ Naf' al-Mufti wa al-Sa'il - Maulvi Abdul Hayy Madrasi - 1306 132_ Nawadir al-Usul - Abu Abdullah Muhammad bin Ali Hakim al-Tirmidhi - 255 133_ Nisab al-Ihtisab fi al-Fatawa - Umar bin Muhammad bin Awf al-Shami 134_ Nur al-Sham'ah fi Zafar al-Jumu'ah - Ali bin Ghanim al-Maqdisi - 944 135_ Nazm al-Fara'id wa Jam' al-Fawa'id fi al-Usul - Abd al-Rahim bin Ali al-Rumi al-Ma'ruf bi Shaykh Zadah 136_ Nafi' Sharh Quduri 137_ Nam-e Haqq - Sharaf al-Din Bukhari 138_ Nata'ij al-Afkar fi Kashf al-Rumuz wa al-Asrar - Shams al-Din Ahmad bin Qurd al-Ma'ruf bi Qadi Zadah - 988

Waw 139_ Wafayat al-A'yan - Shams al-Din Ahmad bin Muhammad Ibn Khallikan - 681 140_ Waqi'at al-Muftiyyin - 325 141_ Wafa al-Wafa - Nur al-Din Ali bin Ahmad al-Samhudi - 911

He 142_ Hawami' - Shah Waliullah bin Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi - 1179 143_ Ham'at - Shah Waliullah bin Shah Abd al-Rahim al-Dihlawi - 1179

Page 673 of 673

फ़तावा रज़विया जिल्द अष्टम

125_ नैल अल-अवतार शरह मुन्तक़ा अल-अख़बार - मुहम्मद बिन अली अल-शौकानी - 1250 126_ नसीहतुल मुस्लिमीन - खुर्रम अली बिलहोरी - 1217 127_ नफ़हात अल-उन्स मिन हज़रात अल-क़ुद्स - अब्दुर रहमान बिन अहमद अल-जामी - 898 128_ नसीम अल-रियाद फ़ी शरह शिफ़ा क़ाज़ी इयाद - अहमद बिन मुहम्मद अल-खफ़ाजी - 1069 129_ अल-नश्र फ़ी अल-क़िराअत अल-अश्र - शम्स अल-दीन मुहम्मद बिन मुहम्मद इब्न अल-जज़री - 833 130_ नुज़हत अल-नज़र फ़ी तौज़ीह नुख़बत अल-फ़िकर - अहमद बिन अली हजर अल-क़स्तलानी - 852 131_ नफ़' अल-मुफ़्ती व अल-साईल - मौलवी अब्दुल हई मद्रासी - 1306 132_ नवादिर अल-उसूल - अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन अली हकीम अल-तिर्मिज़ी - 255 133_ निसाब अल-एहतिसाब फ़ी अल-फ़तावा - उमर बिन मुहम्मद बिन औफ़ अल-शामी 134_ नूर अल-शमअह फ़ी ज़फ़र अल-जुमुअह - अली बिन ग़ानिम अल-मक़दिसी - 944 135_ नज़्म अल-फ़रायद व जम' अल-फ़वायद फ़ी अल-उसूल - अब्दुर रहीम बिन अली अल-रूमी अल-मारूफ़ ब-शेख़ ज़ादा 136_ नाफ़े शरह क़ुदूरी 137_ नाम-ए हक़ - शरफ़ अल-दीन बुख़ारी 138_ नतायज अल-अफ़कार फ़ी कश्फ़ अल-रुमूज़ व अल-असरार - शम्स अल-दीन अहमद बिन क़ुर्द अल-मारूफ़ ब-क़ाज़ी ज़ादा - 988

व (Waw) 139_ वफ़यात अल-अयान - शम्स अल-दीन अहमद बिन मुहम्मद इब्न खल्लिकान - 681 140_ वाकेआत अल-मुफ़्तियीन - 325 141_ वफ़ा अल-वफ़ा - नूर अल-दीन अली बिन अहमद अल-समहूदी - 911

ह (He) 142_ ह्वामेअ - शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुर रहीम अल-देहलवी - 1179 143_ हमात - शाह वलीउल्लाह बिन शाह अब्दुर रहीम अल-देहलवी - 1179

पेज 673/673

فتاوىٰ رضويہ جلد ہشتم

۱۲۵_ نیل الاوطار شرح منتقی الاخبار محمد بن علی الشوکانی ۱۲۵۰ ۱۲۶_ نصیحة المسلمین خرم علی بلهوری ۱۲۱۷ ۱۲۷_ نفحات الانس من حضرات القدس عبدالرحمن بن احمد الجامی ۸۹۸ ۱۲۸_ نسیم الریاض فی شرح شفاء قاضی عیاض احمد بن محمد الخفاجی ۱۰۶۹ ۱۲۹_ النشر فی قراءات العشر شمس الدین محمد بن محمد ابن الجزری ۸۳۳ ۱۳۰_ نزهة النظر فی توضیح نخبة الفکر احمد بن علی حجر القسطلانی ۸۵۲ ۱۳۱_ نفع المفتی و السائل مولوی عبد الحئی مدراسی ۱۳۰۶ ۱۳۲_ نوادر الاصول ابو عبدالله محمد بن علی حکیم الترمذی ۲۵۵ ۱۳۳_ نصاب الاحتساب فی الفتاوىٰ عمر بن محمد بن عوف الشامی ۱۳۴_ نورالشمعه فی ظفر الجمعه علی بن غانم المقدسی ۹۴۴ ۱۳۵_ نظم الفرائد و جمع الفوائد فی الاصول عبدالرحیم بن علی الرومی المعروف شیخ زاده ۱۳۶_ نافع شرح قدوری ۱۳۷_ نام حق شرف الدین بخاری ۱۳۸_ نتائج الافکار في کشف الرموز والاسرار شمس الدین احمد بن قورد المعروف بقاضی زاده ۹۸۸

و ۱۳۹_ وفیات الاعیان شمس الدین احمد بن محمد ابن خلکان ۶۸۱ ۱۴۰_ واقعات المفتیین ۳۲۵ ۱۴۱_ وفاء الوفاء نورالدین علی بن احمد السمہودی ۹۱۱

ھ ۱۴۲_ ہوامع شاه ولی الله بن شاه عبدالرحیم الدہلوی ۱۱۷۹ ۱۴۳_ ہمعات شاه ولی الله بن شاه عبدالرحیم الدہلوی ۱۱۷۹